स्वराज्य की व्याख्या

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचंद गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—भाद्रपद कृष्ण १. संवत् १९७८. शुक्रवार. तारीख १९, अगस्त. १९२१ ई० | अंक १

हिन्दी–नवजीवन

यद्यपि मुझे मालूम है कि "नवजीवन" को हिन्दी में प्रकाशित करना कठिन काम है तथापि मित्रोंके आग्रहवश होकर और साथियों के उत्साह से "नवजीवन" का हिन्दी अनुवाद निकालने की धृष्टता मैं करता हूँ। मेरे विचारों पर मेरा प्रेम है। मेरा विश्वास है कि उनके अनुकरण से जनता को लाभ है। इस लिए उसको हिन्दीमें प्रकट करने की इच्छा मुझे बहुत समय से थी। परन्तु आजतक परमात्माने उसे सफल नहीं किया था। हिन्दुस्तानी को भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा बनाने का प्रयत्न मैं हमेशा करता आया हूँ। हिन्दुस्तानी के सिवा दूसरी भाषा राष्ट्र-भाषा नहीं हो सकती। इस में कुछ भी शक नहीं। जिस भाषा को करोडों हिन्दू–मुसलमान बोल सकते हैं वही अखिल भारतवर्ष की सामान्य भाषा हो सकती है, और उसमें जबतक "नवजीवन" न निकाला गया तबतक मुझे दुःख था।

हिन्दुस्तानी–भाषानुरागी "हिन्दी–नवजीवन" में उत्तम प्रकारकी हिन्दीकी आशा न रक्खें। "नवजीवन" और–"यंग इंडिया" का अनुवाद ही उसमें देना सम्भवनीय है। मुझे न तो इतना समय है कि हमेशा हिन्दुस्तानी में लेख आदि लिख कर दे सकूं और न बहुत हिन्दुस्तानी लिखने की शक्ति ही मुझ में है।

"हिन्दुस्तानी–भाषा का प्रचार" इस साहस का मुख्य हेतु नहीं है। "शान्तिमय अ–सहयोग का प्रचार" ही इस का उद्देश समझना चाहिए। हिन्दुस्तानी भाषा जानने वाले जबतक अ–सहयोग और शान्ति के सिद्धान्त भली भांति न समझ लेंगे तबतक शान्तिमय अ–सहयोग की सफलता असम्भव सी है। इस लिए "हिन्दी–नवजीवन" की आवश्यकता थी। परमात्मा से प्रार्थना है कि जो लोग केवल हिन्दुस्तानी ही समझते हैं उन्हें "हिन्दी नवजीवन" मददगार हो।

मोहनदास करमचन्द गांधी

टिप्पणियां।

शान्तिका सामर्थ्य

मैं जगह जगह देखता हूं कि जहां लोगोंने शांति की महिमाको ठीक ठीक समझ लिया है वहां वे बहुत आगे बढ़ गये हैं। जो शांति भय और कमजोरी के कारण धारण की जाती है वह शांति नहीं। सच्ची शांति तो वही हो सकती है जिसमें बल और तेज हो। जिस प्रकार हमने अंगरेजों के विषयमें अपनी शांति भङ्ग नहीं होने दी उसी प्रकार हमे अपने हिंदुस्तानी कर्म्मचारियों, सैनिकों और पुलिस के सम्बंध में भी शांति न खोना चाहिए। एक भाई ने मुझसे पूछा है कि हमें केवल अंगरेजों के ही प्रति शांति का व्यवहार करना चाहिए अथवा अपने आपस में भी? यह सवाल तो पैदा ही न होना चाहिए। यदि हम अपने लोगोंके प्रति शांति न रक्खेंगे तो भी हार जायंगे। अ–सहयोगी तो सब का लिहाज रखता है, सब के साथ शांति और नम्रता का व्यवहार करता है। मनुष्य को जितना शूर उतना ही शान्त होना चाहिए, जितना बडा उतना ही नम्र होना चाहिए। आततायी मनुष्य जो बातबातमें गाली

देने और मारने लगता है वह अपना बल, अपना सामर्थ्य, खो बैठता है। शान्ति भी एक सूक्ष्म वीर्य है। उसका संचय करने वाला भी प्रौढ़ ब्रह्मचारी होता और तेजस्वी हो जाता है। हम लोगोंने ब्रह्मचर्य की व्याख्या को केवल स्थूल स्वरूप दे दिया और जो लोग प्रतिक्षण क्रोध करते रहते हैं उन्हें दोषी मानना छोड़ दिया है। जिस प्रकार स्थूल ब्रह्मचर्य का पालन शरीर-सुखके लिए आवश्यक है उसी प्रकार आध्यात्मिक ब्रह्मचर्य की भी आवश्यकता है। मेरा तो यह निश्चित मत है कि हम लोगोंने सहयोगियों को कोसकर, पुलिसवालों को गालियां दे कर, इस संग्राम की अवधि बढ़ा दी है। यदि हम तन, मन और वचन से सारे विरोधियों के साथ शान्ति, नम्रता और लिहाज से पेश आते तो अबतक सारी सत्ता हमारे हाथोंमें आ गई होती।

(नवजीवन से)

नकली माल

एक मित्र मद्रास से लिखते हैं-"इस के साथ मैं एक कपड़े का नमूना भेजता हूँ। वास्ते स्वदेशी स्टोअर के द्वारा यह मद्रास में, १०-१२ आने गज के भाव, शुद्ध स्वदेशी खादी (अर्थात् हाथ-कती और हाथबुनी) के नाम से बेचा जाता है। ऐसी धोखेबाजी से लोगोंका बचाव किस तरह किया जाय? मुझे इसमें शक नहीं कि वह कपड़ा विदेश का बना हुआ है।"

मैंने नमूनेको देखा है। हां, इसमें तो जरा भी सन्देह नहीं कि वह न तो हाथ का बुना हुआ है और न उसका सूत ही हाथ का कता हुआ है। मुमकिन है कि वह हिन्दुस्तान की मिलों में तैयार हुआ हो। परन्तु मुझे तो उसकी चकचकाहट हिन्दुस्तानी की अपेक्षा जापानी अधिक मालूम होती है। बड़े दुःख की बात तो यह है कि ऐसा माल स्वदेशी स्टोअर्स में बेचा जाता है। परन्तु ऐसी कुछ न कुछ धोखेबाजी तो होती ही रहेगी। यह बुलन्द आवाज से इस बात का प्रमाण देती है कि स्वदेशी का जोश बढ़ता जा रहा है। पर सवाल यह है कि यह किस तरह पहचानी और रोकी जाय। रामबाण उपाय तो इस का यही है कि हम अपने लिए खुद ही सूत कातें और जुलाहों से, अपनी ही देख-रेख में, उसे बुनवा लें। निस्सन्देह ऐसा समय आ रहा है। यदि हम खुद न कात सकें तो सारे देश में जो हजारों कातने वाले तैयार हो रहे हैं उनसे कतवा लें। यदि हमसे यह भी न हो सके तो जब हम खादी पसन्द करने लगें तब जो कपड़ा किसी भी तरह मिलका बना सा मालूम हो उसे न छुएं। मोटे सूत के कपड़ों में यह पहचानना बड़ा ही कठिन है कि कौन तो विदेश से आया है और कौन यहां की मिलों में बना है। हाथ-कते सूत की खादी में मिल की निर्जीव चमक नहीं रहती, बल्कि वह देखने में मोटी, छितरी हुई, हलकी और छूने पर गुदगुदी मालूम होती है। वह चिकनी और चमकदार तो होती ही नहीं।

एक दूसरा बचाव का उपाय यह है कि कपड़ा रंगा हुआ न होना चाहिए। तीसरी एक और बात है, पर वह धोखे से खाली नहीं। प्रत्येक कांग्रेस-जिले में ऐसी स्वदेशी दुकानें होनी चाहिएं जिन्हें कांग्रेस की ओर से लैसेंस दिया जाय। अच्छे जानकार निग्रहां रक्खे जायं जो लगातार ऐसी दुकानों के माल की जाँच किया करें। मुमकिन हो तो हरएक चीज पर मुहर लगी रहे। मैं जानता हूँ कि अभी हममें इतना सङ्गठन नहीं हुआ है और हमें इतनी तालीम नहीं मिली है कि जिससे हम बहुत बड़े आकार में इस काम को उठासकें। परन्तु जबतक कि हरएक ज़िला अपने लिए आवश्यक खादी तैयार न करने लगे तबतक कुछ ऐसी निगरानी की तो अवश्य आवश्यकता है और सच्चे दिलसे जो कुछ इस के लिए किया जा सकता है वह किया जाना चाहिए।

(यंगइंडिया से)

ग्वालियरमें अन्धकार

अलीगढ़ जाते हुए मैं ग्वालियर होकर गुजरा। मुझे देख कर आश्चर्य हुआ कि लोग स्टेशन पर हमारी गाड़ी के पास आते हुए डरते थे। प्लेटफार्म पर "स्वदेशी" का कोई चिन्ह नहीं था। दूसरे स्टेशनों पर तो लोगोंने अपनी विदेशी टोपियां लालाकर हमें दीं। पर ग्वालियर में यह भी न हुआ। मुझे शीघ्र ही इसका कारण मालूम हो गया। ग्वालियर में खादीकी टोपी पहनना और, चरखा घर में रखना जुर्म तो नहीं माना जाता है, पर ऐसा करने वाला रोष का पात्र अलबत्ते समझा जाता है। यह ख्याल नहीं हो सकता कि खुद महाराजा साहब के विचार ऐसे प्रतिगामी हैं। श्रीमान महाराजा साहब के प्रति मेरी सहानुभूति है। वर्तमान सरकार का विषैला प्रभाव जितना देशी-राज्यों में प्रकट होता है इतना और

कहीं नहीं। देशी-राज्य महत्वपूर्ण सुधारों के लिए तो अधिकार-हीन हैं परन्तु अपनी प्रजा की स्वतन्त्रता कम करने के काम में प्रायः "अनिच्छुक हथियार" बना लिये जाते हैं। अधिक क्या, सार्वभौम सत्ता की छत्रच्छायाने तो उन्हें, अंगरेजी भारत की ही तरह, पौरुष-हीन और उत्तर-दायित्व-हीन कर दिया है। फलतः जब कोई देशी राजा स्वयं प्रजा को दबाना चाहता है तब उस के पास अपनी रियासत के अन्दर अन्धाधुंधी मचाने के लिए बडे लाट से भी अधिक असीम सत्ता हो जाती है। वर्तमान शासन-प्रणाली की रगरग में भरे हुए दोषों में यह एक सब से बडा दोष है। तथापि मैं आशा करता हूं कि ग्वालियर स्टेशनपर मुझे जो बात मालूम हुई है वह बढ़ा कर कही गई होगी और ग्वालियर-राज्य में दमनने उतना उग्ररूप धारण नहीं किया होगा जितना कि बताया गया है. [यंग इंडियासे]

लखनऊके पापस्थान—एक अंगरेज मित्रने मुझे लखनऊ में लिखा—"आप यहांसे जाने के पहले लखनऊके वेश्यागृहों के सम्बन्धमें यहांके किसी अधिकारी को जो आपके मतका पृष्ठपोषक हो कुछ लिख दें। आज सुबह मैं अमीनाबाद में फौजी पुलिस से बातचीत कर रहा था। उससे मालूम होता है कि उस तरफ की बस्ती में ऐसे कोई पचास मुकाम हैं जहां योरपियन और एंग्लो-इंडियन सिपाही (जिनमें से कुछ लोग फौजी अदालतों में पेश भी किये जा चुके हैं, क्योंकि यह उनकी हदके बाहर है) अक्सर जाया करते हैं। उसने हिन्दुस्तानियों के विषय में तो नहीं कहा; परन्तु मैंने सुना कि वेभी उन स्त्रियों के यहां जाते हैं। इस मनुष्यत्व के अधःपतन और आत्मसंयम-हीनता के सम्बन्धमें आप यदि एक शब्द भी लिखेंगे तो वह इस बुराईको दूर करने में जितना कारगर होगा उतनी और कोई बात नहीं। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि इस काममें जितनी सहायता मुझसे हो सकती है वह करूंगा"

इन अंगरेज़ मित्रका कहना है कि मेरे शब्द में प्रभाव है। मैं चाहता हूं कि मैं उनके इस विश्वास में भाग ले सकता। इन पंक्तियों के लिखते समय बार बार मेरी आंखों के सामने उन प्यारी बहनों का चित्र आता है जो मुझसे रातके समय कोकोनाड में मिली थीं। जब मुझे उनकी लज्जामय स्थितिका हाल मालूम हुआ तब तो वे मुझे और भी प्यारी लगने लगीं। वे सङ्केत मात्र से मुझे अपने जीवन की दशा बता सकीं। जो स्त्री उनकी तरफसे मुझसे बात कर रहीथी उसकी आँखों में लज्जा और दुःख अङ्कित था। मैं उन्हें दोषी कहने के लिए तैयार न हो सका। इस मुलाकात के बाद मैंने "चारित्र शुद्धि की आवश्यकता" परही भाषण किया। इसलिए आज मेरा हृदय इन लखनऊकी पतित बहनों की ओर उछला जाता है। वे इस लज्जामय जीवन में प्रवेश करने के लिए मजबूर हुई हैं। मुझे यकीन हो गया है कि वे अपनी खुशीसे यह जीवन स्वीकार नहीं करतीं। यह तो मनुष्य की पशुवृत्ति की करतूत है जिसने इस घृणित कुकर्मको एक 'धन कमाने का धन्धा' बना दिया है। लखनऊ अपनी आराम-पसन्दगी के लिए मशहूर है। परन्तु लखनऊ मुसल्मानों के एक उल्मा काभी स्थान है। इस्लाम में जो कुछ उच्च और शरीफाना बातें हैं उनमें लखनऊ का काफी अङ्ग है। हिन्दुओं के लिए तो लखनऊ उस प्रान्तका सदर मुकाम है जहा सती सीता और रामने भ्रमण और राज्य किया था। यह हिन्दुओं की पवित्रता, उदात्तता, शूरवीरता और सत्यव्रतता के श्रेष्ठ युग की याद दिलाता है। असहयोग आत्मशुद्धि है, और मैं समस्त अ-सहयोगियों से तथा औरांसे भी कहता हूं कि आप लखनऊके इस नैतिक प्लेगका उपाय करें। मैं आशा करता हूं कि लखनऊ की कीर्ति का अभिमान रखने वाला कोई भी व्यक्ति मुझसे यह नहीं कहेगा कि लखनऊ भारत के दूसरे शहरों से तो बुरा नहीं है। लखनऊ का जिक्र तो यहां उदाहरण के तौर पर आ गया है। हमतो सारे भारतवर्ष में स्त्रीजाति की सुरक्षितता और पवित्रता के लिये उत्तरदाता हैं। लखनऊ इसमें अगुआ क्यों न हो?

(यंग इंडियासे)

संयुत-प्रान्तमें असहयोग-प्रचार

१—स्वराज फण्ड	४,१०,०२७
२—कांग्रेसके सदस्य	३,२८,९६६
३—चरखे	२,८१,०२८
४—वकालत छोड देने वाले वकील	११३
५—पञ्चायतें	३,०००
६—पदवियों और तगमोंको त्याग देने वाले (आनरेरी मैजिस्ट्रेट, दरबारी, लडाईके तगमे वाले, गांवके मुखिया)	१०
७—राष्ट्रीय विद्यालय	१२६
विद्यार्थी	१०,५००
८—त्याग पत्र देने वाले अध्यापक और शिक्षक	७६

हिन्दी

नवजीवन

शुक्रवार, भाद्रपद कृ. १ सं. १९७८.

स्वराज्य की व्याख्या.

स्वराज्य की व्याख्याओं के सम्बन्ध में मैं अपने मनमें तो विचार किया ही करता हूँ। अब उन्हें पाठकों के सामने भी उपस्थित करता हूं:-

(१) स्वराज्यका अर्थ है-स्वयं अपने ऊपर प्राप्त किया हुआ राज्य। इसे जो मनुष्य प्राप्त कर चुका है वह अपनी व्यक्तिगत प्रतिज्ञा का पालन कर चुका।

(२) परन्तु हमने तो उस के कुछ लक्षण, और स्वरूप की कल्पना की है। अतएव स्वराज्य का अर्थ है-देशके आयात और निर्यात पर, सेनापर और अदालतों पर जनता का पूरा नियन्त्रण। दिसम्बर की प्रतिज्ञा का यह अर्थ है। इस में अंगरेजी साम्राज्य के साथ सम्बन्ध रखने के लिए जगह है भी और नहीं भी। यदि खिलाफत और पञ्जाब-काण्ड का निपटारा न हो तो, जगह नहीं।

(३) परन्तु व्यक्तिगत स्वराज्य का तो उपभोग साधु लोग आज भी करते होंगे, और हमारी पार्लियामेंट स्थापित हो जाने पर भी लोगों की दृष्टि में सम्भव है, वह स्वराज्य न हो। इसलिए स्वराज्य का अर्थ है-अन्न-वस्त्र की बहुतायत। परन्तु वह इतनी होनी चाहिए कि किसी को भी उसके बिना भूखा और नंगा न रहना पडे।

(४) ऐसी स्थिति हो जाने पर भी एक जाति और एक श्रेणी के लोग दूसरों को दबा सकते हैं। अतएव स्वराज्य का अर्थ है -ऐसी स्थिति जिसमें एक बालिका भी घोर अन्धकार में निर्भयता के साथ घूम-फिर सके।

(५) पूर्वोक्त चार व्याख्याओं में कितनी ही व्याख्याओं का समावेश दिखाई देगा। तथापि राष्ट्रीय स्वराज्य में प्रत्येक अङ्ग सजीव और उन्नत होगा और होना चाहिए। इस दशा में स्वराज्य का अर्थ है अन्त्यजों की अस्पृश्यता का सर्वथा नाश;

(६) ब्राह्मण और अ-ब्राह्मण के झगडे की समाप्ति।

(७) हिन्दू-मुसलमान के मनोमालिन्य का सर्वथा नाश। इस का यह अर्थ है कि हिन्दू मुसलमान की मर्यादा रक्खें और उसके लिए जानतक दे दें। इसी तरह मुसलमान हिन्दुओं की मर्यादा प्राण-पण से रक्खें। मुसलमान गो-हत्या करके हिन्दुओं का दिल न दुखावें; बल्कि आप हो कर गो-वध बन्द करें और अपने हिन्दू भाई के चित्त को चोट न पहुंचने दें तथा हिन्दू, बिना किसी तरह का बदला किये, मसजिदों के सामने बाजे न बजावें और मुसलमानों का जी न दुखावें, बल्कि मसजिदों के पास से जाते हुए बाजे बन्द रखने में बड़प्पन समझें।

(८) स्वराज्य का अर्थ है-हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदी, सब धर्मोंके लोग अपने अपने धर्म्म का पालन कर सकें और ऐसा करने मे एक दूसरे की रक्षा करें और एक दूसरे के धर्म्म का आदर करें।

(९) स्वराज्य का अर्थ यह है कि प्रत्येक ग्राम चोरों और डाकुओं के भयसे अपनी रक्षा करने में समर्थ होजाय और प्रत्येक ग्राम अपने लिए आवश्यक अन्न-वस्त्र पैदा करे।

(१०) स्वराज्य का अर्थ है-देशी-राज्यों, जमीदारों और प्रजा में मित्र-भाव रहे, देशी-राज्य अथवा जमींदार प्रजाको जेरबार न करें और रिआया राजा अथवा जमींदार को तङ्ग न करे।

(११) स्वराज्य का अर्थ है-धनवान् और श्रमजीवियों में परस्पर मित्रता। मजदूर उचित मजदूरी ले कर धनवान् के यहां खुशीसे मजूरी करे।

(१२) स्वराज्य वह है जिसमें स्त्रियां माता और बहनें समझी जायं और उनका मानादर हो तथा ऊंच-नीचका भेद-भाव दूर हो कर सब भाई बहनकी भावना से बर्ताव करें।

इन व्याख्याओं से यह सिद्ध होता है कि—

(१) स्वराज्य में राज्यसत्ता शराब, अफीम इत्यादि (मादक पदार्थों) का व्यापार न करे।

(२) स्वराज्य में अनाज और रुई के सट्टे न हों।

(३) स्वराज्य में कोई कानूनका भङ्ग न करें।

(४) स्वराज्य में स्वेच्छाचार के लिए बिल्कुल स्थान न रहे, जिससे कोई अपने ही खिलाफ की गई शिकायत का फैसला, खुद ही काजी बन कर, न करे; बल्कि देशकी बनाई अदालत में अपने खिलाफ की गई फरियादका फैसला होने दे।

नवजीवनमें] मोहनदास करमचन्द गांधी।

अहमदाबादमें होनेवाली राष्ट्रीय महासभाकी स्वागतकारिणी समितिकी एक बैठक इसी सप्ताह हुई। उसमें श्रीयुत चित्तरंजन दास महासभा के सभापति और श्री वल्लभभाई पटेल स्वागत-कारिणी सभाके सभापति चुने गये। श्रीयुत दास के लिए प्रत्येक प्रान्तने मत दिया है।

मेरी भूल

परमात्मा अकेला जानता है कि मैंने कितनी बार भूलें की हैं। जो लोग यह समझते हैं कि मुझ से भूल नहीं होती वे मुझे नहीं पहचानते। मेरे निजी अनुभवोंने तो मुझे यही सिखाया है कि हम नम्रतापूर्वक इस बातको जानें और मानें कि भूलोंके साथ सङ्ग्राम करना ही जीवन है।

१९१९ में जब मैंने बड़े हर्ष के साथ सत्याग्रह आरम्भ किया, मैंने देखा कि मैंने बड़ी भारी गलती की। ज्यों ही मैंने नड़ियाद (गुजरात) में दूरदेशी का अभाव पाया त्यों ही मैंने उसे "हिमालय के बराबर गलत-अन्दाजी" बताया। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं थी। और यदि इस से भारत की नैतिक उन्नति में हानि नहीं हुई है तो इसका कारण यह है कि भूल को साफ और पूरे तौरपर कुबूल करलेने की बुद्धि मुझमें थी। अब अगले कुछ सप्ताहों में "स्वदेशी" का आंदोलन एकाग्र हो कर करना है। ऐसे समय, मैं एक और भूल स्वीकार कर लेना चाहता हूँ। अध्यापकों और विद्यार्थियों के साथ बातचीत में तो मैंने उसे पहले ही क़ुबूल कर लिया है। परंतु अपने चित्त की शांति और साथही वर्तमान स्वदेशी-प्रचार के कार्य्य के लिए उसे सब लोगों के सामने अधिक निश्चित रूपसे स्वीकार करलेना आवश्यक है। इन नौ महीनों के अनुभवों ने यह बात पक्की कर दी है कि सरकारी शिक्षा-संस्थाओं का बहिष्कार करना ठीक ही था। परंतु उस समय विद्यार्थियों को जो मार्ग बताये गये उन में मेरी कमजोरी थी। इसे मैं कमजोरी इस लिए कहता हूं कि मैंने अपने विश्वास का निश्चय दूसरे को करा देनेकी अपनी क्षमता पर विश्वास नहीं किया। मैंने इसके नतीजे को भगवान के भरोसे छोड़ देने के बजाय खुद ही उसकी चिंता की और इससे मुझमें दुर्बलता आगई एवं लड़कों से कहा कि मदरसे छोड़ देने पर, चाहे गलियों में घूमते फिरो, चाहे वैसी ही पढाई पढो या, सबसे बेहतर, स्वराज्य के स्थापित होने तक हाथ-कताई के काम में लग जाओ। परंतु नागपुर कांग्रेस के प्रस्ताव के बाद ही मैंने जान लिया कि लड़कों को बहुतेरे मार्ग बताकर मैंने गलती की। परंतु अकाज तो पहले ही हो चुका था। वह पिछले सितम्बर में शुरू हुआ और जनवरी से मैं उसे सुधारने लगा। परंतु मरम्मत तो हमेशा पैबंद का काम देती है। और इसी तरह अधिकतर असहयोग के विद्यालयों में चरखा कातना एक अनावश्यक कार्य्य या कालक्षेप का साधन हो गया है। मुझे साहस करके सारी सच्ची बात कहनी चाहिए थी और बताना चाहिए था कि हाथसे कातना और बुनना शिक्षा संस्थाओं के बहिष्कार के प्रस्ताव का अभिन्न अङ्ग है। हां, यह सच है कि इस से बहुत थोड़े लड़कों ने स्कूल छोड़े होते। परंतु उन्होंने उन लड़कों को बनिस्बत जिन्होंने इस मार्गके विषयमें निश्चित कल्पना किये बिना ही स्कूल और कालेज छोड़ दिये, बहुत ज्यादह काम किया होता। अबतक तो वे हाथ-कताई और हाथ-बुनाई में प्रवीण हो गये होते और हमारा स्वदेशी का काम ज्यादह आसान हो गया होता। मैं जानता हूं कि असहयोग-विद्यालयों के अध्यापक और विद्यार्थी अपनी काफी शक्ति इसमें लगा रहे हैं। परन्तु यह मानना होगा कि वे उसे दिक्कत के साथ कर रहे हैं। वे सामान्य रूप से स्वदेशी या हाथ-कताई के विषय में कोई विश्वास लेकर नहीं आये हैं। उन्होंने इस प्रश्नपर सिर्फ शिक्षाकी दृष्टि से ही विचार किया। और ऐसा करनेका उन्हें अधिकार भी था। उनके लिए तो बस इतना ही काफी था कि वे सरकारी शिक्षालयों से निकल आये और सरकार का मान कम कर दिया। अब यह कहना उनको अखरेगा कि तुम्हारा बहिष्कार पूर्ण तभी हो सकता है जब तुम सूत और खादी तैयार करो, और इस नयी (स्वराज्यकी) शिक्षाविधि की आरम्भिक पढाई तो यही है कि इस संग्राम-समय में हाथ-कताई का तथा कपडा तैयार करनेकी दूसरी क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त किया जाय।

परन्तु अब जबकि गलती हो चुकी है तो मुझे उसकी सजा भोगना लाजिम है और वह इस रूपमें कि मैं धीरज के साथ शंका-कर्त्ताओं को यह इत्मीनान दिलाने का प्रयत्न करूँ कि यदि मैं ने असहयोग के शिक्षा-विभाग में हाथ-कताई को भी एक आवश्यक बात बनाने पर जोर दिया होता तो अच्छा होता। अतएव मैं उन सब लोगों को जिन का मत मुझ से मिलता है, आवाहन करता हूं कि आप अब इस हानिको पूरा करने में जल्दी कीजिए और जिन राष्ट्रीय संस्थाओं पर आप का प्रभाव है उनमें सूत और खादी तैयार कराने के काम में सरगर्मी से लग जाइए। सिक्षकों की मांगें मुझ से न कीजिए। मेरे पास ही बहुत थोडे हैं। परंतु उन्हें मैं यह बताये देता हूं कि कपडा बनाने के लिए गांठकी रूई पर जो,

आम तौर पर मिलती है, कौनसी क्रिया किस तरह करनी चाहिए। सबसे पहले वह धुनी जानी चाहिए। हिंदुस्तान का ऐसा कोई हिस्सा नहीं जहाँ धुनिया या पिंजारे न मिलते हों। वे धुन दे सकते हैं और एक दो रोज ध्यान देने से आप उस रीतिको समझ सकते हैं। छः घंटा रोज के हिसाब से एक हफते के अभ्याससे आप साधारणतः अच्छी तरह धुन सकते हैं। धुनी हुई रुई की अब पूनियाँ बना लीजिए। पूनी बनाना तो इतना सीधा काम है कि एकाएक कोई उस पर विश्वास भी नहीं करेगा।

अब रुई सूत कातने योग्य हो गई। सूत-कातना तो कोई भी सूतकार सिखा सकता है। वही सूत 'सूत' हो सकता है जिसमें गर्द न लिपटी हो, जो बराबर-एकसा-हो और अच्छा बट खाया हुआ हो। एकसा और अच्छा बट खाया हुआ न होगा तो वह बुना नहीं जायगा।

इसके बाद मांडी लगाई जाती है। इसका अभ्यास कुछ कठिन है। मुझे उसका कोई वैज्ञानिक नियम मालूम नहीं जिससे यह बताया जा सके कि उसमें कौन वस्तु कितनी होती है। यह काम किसी तजरिबेकार जुलाहे-बुननेवाले-से जानना चाहिए।

सूत सांधने की क्रिया भी अलहदा सीखनी चाहिए। सायकल पर बैठना सीखने की तरह इसमें भी कुछ तरकीब से काम लेना पड़ता है, जो कि आसानी से आ सकती है।

अब रही बुनाई। यह केवल अभ्यास की बात है। इसका तत्व एक ही दिन में समझमें आजाता है। मैं दावेके साथ कहता हूँ कि इसकी क्रिया बड़ी आसानी के साथ सीखी जा सकती है। पाठक इस पर आश्चर्य न करें। सारा आवश्यक और स्वाभाविक कार्य्य आसान है। बस, प्रवीणता प्राप्त करने के लिए सिर्फ लगातार अभ्यास की जरूरत है, और यह काम के पीछे पड़े रहनेसे होता है। कामके पीछे पड़े रहने की योग्यता ही स्वराज्य है। यही योग है। और न पाठकों को वही काम बार बार करते हुए उकता ही जाना चाहिए। एक-रूपता अर्थात् एक ही बात का बार बार होना, तो प्रकृतिका नियम ही है। सूर्य को देखिए, किस तरह वह बार बार उदय होता है। यदि सूरज, लहरी बनकर, कहीं मनोरंजन करने में अटक जाय तो खयाल कीजिए, दुनिया पर कैसी आफत का पहाड़ टूट पड़े! एक-रूपता ही से रक्षा और एकरूपता ही से संहार होता है। आवश्यक कार्यों की एक-रूपता से प्रफुल्लता और जीवन मिलता है। कारीगर अपनी कारीगरी से कभी नहीं उकताता। जो सूतकार सूत-कातने की विद्यामें निपुण है वह निश्चय ही बिना थकावट के लगातार काम करता रहेगा। सूत कातने में जो सङ्गीत निकलता है उससे अच्छा कातने वाला तुरंत ही आनंद लाभ करने लगता है। और जब भारतवर्ष सूत कातने के बलपर स्वराज्य को प्राप्त कर लेगा तो उसका यह काम सौंदर्यसृष्टि के नाम से प्रसिद्ध होगा और, सदा के लिए आनंद का विषय होगा। परंतु यह चरखे के बिना नहीं हो सकता। अतएव भारतवर्ष के लिए सबसे श्रेष्ठ राष्ट्रीय शिक्षा यही है कि बुद्धि-पूर्वक चरखे के काम को हाथ में लिया जाय।

(यंग इंडिया से) मोहनदास करमचन्द गांधी

मृत्यु का भय

स्वराज्य की बहुत सी व्याख्यायें मैं एकत्र कर रहा हूं। उन में एक व्याख्या यह भी है-मृत्यु के भय का त्याग। जिस देश के लोग मौत के डर से घबडाये रहते हैं वह न तो स्वराज्य प्राप्त कर सकता है और न उसे संभाल ही सकता है। अंगरेज लोग तो मौत को जेब में लिए लिए घूमते हैं; अरबी और काबली मरण को एक मामूली बीमारी समझते हैं। जब उन के यहां कोई मर जाता है तब वे रोते-पीटते नहीं। बोअर स्त्रियां तो जानती ही नहीं थीं कि मरण भय क्या चीज है। बोअर-युद्ध के समय हजारों बोअर-युवतियां विधवा हो गईं। पर उन्होंने इस की कुछ परवा न की। उन्होंने अपने दिल को समझाया कि "मेरे पति या पुत्र मर गये तो क्या हुआ, मेरे देश की इज्जत तो कायम रही। यदि देश गुलाम हो जाता तो पति के रहने से भी क्या होता? अपने गुलाम बेटे को पर्वरिश करने की अपेक्षा तो उसकी लाश को कब्र में दफना देना और उसकी आत्मा को याद करते रहना ही अच्छा है।" इस तरह धीरज रखकर असंख्य बोअर रमणियों ने अपने प्रिय जनों को बिछुडने दिया।

ये तो उन लोगों के उदाहरण हैं जो खुद तो मरते ही हैं पर दूसरों को मारते भी हैं। परन्तु जो लोग मारते नहीं, सिर्फ मरते भर हैं, उनका क्या पूछना? ऐसों की तो संसार पूजा करता है। ऐसों के बदौलत देश का उत्कर्ष होता है। योरपीय महा

भारत में अंगरेज और जर्मन दोनों आपस में लड़े। दोनोंने दूसरों को मारा भी और खुद मरे भी। फल यह हुआ कि शत्रुता बढ गई, अशांति बढ गई और आज योरप की दशा दया-जनक हो गई है; पाखण्ड की वृद्धि हुई है और एक दूसरे को फांसने की पेश बंदी कर रहे हैं। परंतु जिस मृत्यु-भय को छोडने का दीर्घ प्रयत्न हम कर रहे हैं वह तो एक शुद्ध यज्ञ है और उसके द्वारा हम, थोडे ही समय में, बडी भारी विजय प्राप्त करने की आशा रखते हैं।

जब हमें स्वराज्य मिल जायगा तब या तो हममें से अधिकतर लोगोंने मौत का डर छोड दिया होगा या-यह कहना चाहिएकि-स्वराज्य मिला ही न होगा। अभीतक तो देश के ज्यादातर नौजवान लोग ही मरे हैं। अलीगढ में जितने लोगों की जानें गई हैं वे सब २१ वर्ष से कम अवस्थावाले थे। उन्हें तो कोई जानता भी नहीं था। पर, अब भी यदि सरकार को खून खराबी की हवस हो तो मैं आशा करता हूं कि उस समय देशका कोई पहली श्रेणी का मनुष्य उस की गोलियों का ग्रास होगा।

बालक मरें, चाहे जवान या बूढे मरें, हम इससे भयभीत क्यों हों? कोई पल ऐसा नहीं जाता जब इस जगत् में कहीं किसी का जन्म और कहीं किसी की मृत्यु न होती हो। पैदा होने पर खुशियां मनाना और मौत से डरना बडी मूर्खता है। यह बात हमें अवश्य सदा अनुभव करनी चाहिए। जो लोग आत्मवादी हैं-और हम में कौन हिन्दू, मुसलमान या पारसी ऐसा होगा जो आत्मा के अस्तित्व को न मानता होगा?-वे जानते हैं कि आत्मा कभी मरता नहीं। यही नहीं, बल्कि जीवित और मृत, समस्त प्राणी, एक ही हैं, उनके गुण भी एक ही हैं। इस दशा में, जब कि जगत् में उत्पत्ति और लय पल पल पर होता ही रहता है, हम क्यों खुशियां मनावें? और किस लिए शोक करें? सारे देश को यदि हम अपना परिवार मानें-यदि हमारी भावना इतनी व्यापक हो जाय-और देश में जहां कहीं किसी का जन्म हुआ हो उसे अपने यहां ही हुआ मानें तो, कितने जन्मोत्सव मनाइएगा? देश में जहां जहां मृत्युयें हों उन सब के लिए यदि हम रोते रहें तो हमारी आंखों के आंसू कभी बन्द ही न हों। यह सोचकर हमें मृत्यु का डर छोड़ ही देना चाहिए।

और देश के लोगों की अपेक्षा प्रत्येक भारतवासी अधिक ज्ञानी, अधिक आत्मवादी होने का दावा रखता है। फिर पर भी मौत के सामने जितने दीन हम हो जाते हैं उतने और लोग शायद ही होते हों। और उस में भी मेरा खयाल है कि हिन्दू-लोग जितने अधीर हो जाते हैं उतने भारत के दूसरे लोग नहीं। अपने यहां किसी का जन्म होते ही हमारे घरोंमें आनंद-मङ्गल उमड़ पडता है और जब कोई मर जाता है तब इतना रोना-पीटना मचता है कि आस-पास के लोग भी हैरान हो जाते हैं! यदि हम स्वराज्य लेना चाहते हैं और अपने को उसके योग्य सिद्ध करना चाहते हैं तो हमें मृत्यु का भय बिल्कुल छोड़ ही देना चाहिए।

और जो मनुष्य मृत्यु का भय छोड़ देगा उसे जेल का भय क्यों कर होगा? पाठक यदि विचार करेंगे तो उन्हें मालूम हो जायगा कि स्वराज्य-प्राप्ति में हमें जो विलम्ब हो रहा है उसका एकमात्र कारण है-हम लोगोंमें मृत्यु तथा उससे भी नीचे दरजे के दुःखों को सहने की शक्ति का अभाव।

ज्यों ज्यों अधिकाधिक निरपराध मनुष्य जान-बूझ कर मौत की भेंट के लिए तैयार होते जायेंगे त्यों त्यों दूसरे लोगों का बचाव होता जायगा और दुःख भी कम से कम होगा। जो दुःख खुशी के साथ सहन किया जाता है वह दुःख नहीं रहता, बल्कि सुख हो जाता है। जो दुःख से जी चुराता है वह बहुत कष्ट उठाता है और सङ्कट के उपस्थित होने पर निर्जीव-सा हो जाता है। जो आनन्द के साथ दुःख का स्वागत करने के लिए पैर बढाता है उसे वह आरम्भिक दुःख हो ही कैसे सकता है, जो केवल दुःखकी कल्पना से ही उत्पन्न होता है? और उसका आनन्द तो क्लोरोफार्म का काम करता है.

इस विषय पर इस समय जो मुझे इतना लिखना पडा वह इसलिए कि यदि हमें इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त कर लेना है तो मृत्यु का विचार भी कर लेना होगा। जो लोग पहले से तैयारी कर रखते हैं वे आपत्तिसे बच जाते हैं। हमारे विषय में भी चाहे ऐसा हो जाय। मेरा दृढ विश्वास है कि "स्वदेशी-आन्दोलन" हमारी पेशबंदी है। यदि इस में हमारी फतेह हो गई तो, मैं समझता हूं, सरकार को अथवा और किसी को हमारी "अग्नि-परीक्षा" की आवश्यकता ही न रहेगी।

परन्तु, इतना होने पर भी, यह आवश्यक है कि हम गफलत में न रहें। सत्ता अन्धी और बहरी होती है। वह अपने पास की घटनाओं को भी नहीं

देख सकती। अपने कान के पास का कोलाहल भी वह नहीं सुन सकती। अतएव, नहीं कह सकते कि जो सरकार मदोन्मत्त है वह क्या न कर बैठेगी? इस लिए मेरे मन में यह खयाल उठा कि अब देश-सेवकों को मृत्यु, जेल अथवा दूसरी आपत्तियों के स्वागत-एक मित्र की तरह स्वागत-करने की तैयारी कर रखनी चाहिए।

एक शूर-वीर जिस प्रकार हंसते हुए मृत्युका स्वागत करता है उसी प्रकार वह सावधान भी रहता है। शांतिमय संग्राम में तो गफलत के लिए जगह ही नहीं। हम ऐसे अपराध करके कि जो नीति और सदाचार के विरुद्ध हैं, जेल नहीं जाना चाहते न फांसी पर ही लटकना चाहते हैं। हमे तो सरकार के अन्याय-मूलक कानूनोंका सामना करते हुए 'बलिदान' होना है।

(नवजीवनसे) मोहनदास करमचंद गांधी

मारवाड़ी भाइयों और बहनों के प्रति

प्रिय भाई-बहनो,

आपके प्रेमवश हो कर मैंने "हिन्दी-नवजीवन" निकालनेका साहस किया है। जब से मैं भारत-वर्ष में आया हूँ तबसे मेरा सम्बन्ध आपसे निकट होता जा रहा है। आपने मेरी प्रवृत्ति को प्रेमभाव से देखा है और मुझे सहायता दी है। आपने हिन्दीप्रचार में खूब मदद की है। आप की ही सहायता से आज द्राविड प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार अच्छी तरह हो रहा है। आप भाई और बहनें अ-सहयोगी हैं। आप राष्ट्रीय जीवन में रस लेते हैं। आपने देख लिया है कि धनी पुरुष और स्त्रियाँ राष्ट्रीय जीवन से बहिर्मुख नहीं रह सकतीं।

आप धर्मप्रेमी हैं। धर्म के लिए आप लाखों रुपये देते हैं। आप में साहस भी है। द्रव्य उपार्जन में आपका प्रधान स्थान है। धनिक वर्ग के अलग रहते हुए, इस धर्मयुद्ध में, जो आज भारतवर्ष में छिड़ रहा है, सफलता मिलना मुझे बहुत ही कठिन दिखाई देता है।

अखिल भारतकी राष्ट्रीय समिति ने स्व-राज्य प्राप्ति के लिए अब जो कदम उठाया है उसमें आप लोगों की ओर से सहायता मिलने परही सम्पूर्ण सफलता मिल सकती है। उक्त समिति ने निश्चय कर लिया है कि आगामी ३० सितम्बर तक परदेशी कपड़ों का पूरा बहिष्कार कर दिया जाय। मैं ने आप ही के विश्वास पर सितम्बर मास की अवधि रखने को सलाह दी। अतएव इस-स्वदेशी आन्दोलन को प्रबल बनाने के-समय में "हिन्दी-नवजीवन" का प्रकाशित होना उचित ही है।

राष्ट्रीय जीवन में आजकल तो व्यापार-वृत्ति और दास-वृत्ति देखी जाती है। ज्ञान और शौर्य्य का अभाव मालूम होता है। अब हमारे व्यापारी-समाज तथा दास-वर्ग को ज्ञान और शौर्य्य प्राप्त करने की आवश्यकता है। हमे इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि विदेशी कपड़े के व्यापार से हमारा देश मटियामेट हो गया है। और उस व्यापार को त्याग करने का शौर्य्य भी हम में होना चाहिए। यदि हम में इतना भी बलिदान करने का शौर्य नहीं है जितना कि विदेशी कपड़े के व्यापार के त्याग के लिए आवश्यक है, तो हम अपने धर्म्म का पालन नहीं कर सकते। अपने ही भाई-बहनों को नुकसान पहुंचाकर हमने करोड़ों रुपये इकट्ठा किये और उसमें से लाखों का दान किया तो यह पुण्य नहीं है। इस लिए आप भाई और बहनोंसे मेरी प्रार्थना है कि आप परदेशी कपड़े का बहिष्कार करने में और खद्दर (गाढ़ा) तैयार करने में पूरा साहस दिखाकर अपनी पिछली देश-सेवा की वृद्धि करें।

आपका—

मोहनदास करमचन्द गांधी

शंकरलाल घेलाभाई बेंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूड़ी ओळ, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित ॥

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचंद गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—भाद्रपद कृष्ण ८, संवत् १९७८, शुक्रवार, तारीख २६ अगस्त, १९२१ ई० | अंक २

टिप्पणियां

मेरी महत्वाकांक्षा

शिमले से एक सज्जन मुझसे आग्रह के साथ पूछते हैं—क्या आप कोई सम्प्रदाय स्थापित करना चाहते हैं? या ईश्वरत्व का दावा करते हैं? मैंने एक खानगी पत्र में उन्हें इसका उत्तर दे दिया है। परन्तु उनका आग्रह है कि मैं भावी पीढी के लिए सब लोगों के सामने उसे प्रकट कर दूं। मैं तो समझता था कि आजतक जो ऐसे ईश्वरत्व के आरोपों को मैं समय समयपर कडे से कडे शब्दों में अ-स्वीकार कर चुका हूँ वह काफी था। खैर। हां, मैं इस बात का तो दावा रखता हूँ कि मैं भारत-माता का और मनुष्य-जाति का एक नम्र सेवक हूँ और ऐसी सेवाओं के करते हुए मृत्यु की गोद में जाना पसन्द करूंगा। पर मुझे सम्प्रदाय स्थापित करने की कोई इच्छा नहीं है। सच पूछिए तो मेरी महत्वाकांक्षा इतनी विशाल है कि कुछ अनुयायियोंका कोई सम्प्रदाय स्थापित करने से तृप्त नहीं हो सकती। मैं ने किसी नये सत्य का आविष्कार नहीं किया है। बल्कि सत्य को जैसा मैं जानता हूँ वैसाही उसके अनुसार चलने का और लोगों को बताने का प्रयत्न करता हूँ। हां, प्राचीन सत्य सिद्धान्तों पर नया प्रकाश डालने का दावा मैं जरूर करता हूं। आशा है कि यह खुलासा देखकर पूर्वोक्त सज्जन को तथा उनके जैसे दूसरे लोगों को सन्तोष हो जायगा। (यंग इंडियासे)

कांग्रेस की आज्ञाओं का पालन

यदि हम इसी वर्ष में स्वराज्य प्राप्त कर लेना चाहते हैं तो हमें अपने जीवन के प्रत्येक अङ्ग में और सब से अधिक कांग्रेस के सङ्गठन के अनुसार काम करने में उसके आने के लक्षण दिखाने होंगे। जिन कानूनों और नियमों को हम आज बनाते हैं उन्हीं पर अगर हम कायम न रहे तो जब हम स्वराज्य प्राप्त कर चुकेंगे तब भी हमारी यही वृत्ति रहेगी। वर्किंग कमिटी की पिछली बैठक में कोषाध्यक्ष ने इस बात की बडी शिकायत की कि कितनी ही प्रान्तीय कमिटियों ने अभी-तक उनके पास अपने चन्दे की ¼ रकम नहीं भेजी। यह कहा गया कि कुछ प्रान्तोंने तो अपनी रकम इस लिए रोक रक्खी है कि दूसरे प्रान्तों ने अभी तक अपनी रकम नहीं भेजी। परन्तु, इसके विपरीत, मैं तो यह कहता हूं कि कांग्रेस के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन ठीक ठीक करने में प्रत्येक प्रान्त को एक दूसरे से बढकर रहना चाहिए। बस, केवल इसी रीति से हम स्वराज्य के योग्य होने की आशा रख सकते हैं और अपनी मांगों के प्रति आदर स्थापित करा सकते हैं। यदि कांग्रेस-संस्थाओं का काम अच्छी तरह चलाना है तो वर्किंग कमिटी की तमाम सूचनाओं और आदेशों का पालन सचाई और सरगर्मी के साथ होना चाहिए। कमिटी ने यह निश्चय किया है कि प्रान्तीय फण्ड का कमसे कम ¼ स्वदेशी के काम में अर्थात् हाथ-कताई और हाथ-बुनाई में लगाना चाहिए। यदि हमें खादी की मांग पूरी करना है तो २५ लाख रुपये सारे हिंदुस्थान भर के लिए कोई बडी रकम नहीं है। जो प्रान्त जितनी ही ज्यादह रकम खर्च करेगा उतना ही, बेशक, और अच्छा होगा। (यंग इंडिया से)

बिहार में सङ्गठन

चम्पारन में जो कुछ सेवा मुझ से बन पडी है उस के तथा बिहारियों के स्वभाव के कारण मेरी बिहार-यात्रा बहुत कुछ कठिन हुई। छोटे छोटे गांवों में

भी झुण्ड के झुण्ड लोग चरणस्पर्श-पै लगो-के लिए एकत्र होते थे और इतना कोलाहल होता था कि मैं तो इस 'पैलगी' के झंकार से घबड़ा जाता था। 'दर्शन' के मारे जरा भी फुरसत नहीं मिलतीथी। इस से न रात को शान्ति मिलती थी न दिन को। फिर घूमने-फिरने की तो बात ही दूर रही। यदि थोडे हो परन्तु कुशल कार्यकर्त्ता हों तो भी ऐसे श्रद्धा-भक्ति हृदय रखने वाले लोगोंसे अभीष्ट काम लिया जा सकता है। और विहार ऐसा काम करके दिखा रहा है। विहार में कितने ही कार्यकर्त्ताओं का जीवन इतना सादा और पवित्र है और शान्तिमय अ-सहयोग पर उनका विश्वास इतना पक्का है कि समाज पर उनका गहरा प्रभाव बैठ गया है और उन्होंने शान्ति-पूर्वक बहुत काम किया है। एक वर्ष पहले जहां बहुत थोड़े चरखे चलते थे तहां आज हजारों घरों में चल रहे हैं। हजारों गज खादी बुनी जा रही है और हजारों लोगोंने केवल खादी ही पहनना अख्त्यार कर लिया है।

यह दो आना रोज मजदूरी देने वाला चरखा विहार, उड़ीसा इत्यादि प्रान्तों में कितने ही लोगों की सम्पूर्ण आजीविका का साधन हो गया है। खेतों पर काम करने वाले बहुतसे मजदूर भी इतनी मजदूरी नहीं पाते। खेतों पर काम करने लिए शरीर मजबूत होना चाहिए। पर चरखे को तो एक कोमलाङ्गी-नाजुक बदन-बालिका भी चला सकती है और चाहे तो उस से दो आना रोज पैदा कर सकती है। चरखोंका जैसा असर लोगों पर होता जा रहा है वैसा असहयोग के दूसरे अङ्गों का नहीं पड़ा। कितने ही लोग तो चरखे को एक बरकत देने वाली चीज समझते हैं और उसकी पूजा करते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों चरखे को एक दृष्टि से देखते हैं और दोनों ही को वह प्रिय हो गया है। ऐसी दशामें यदि चरखा सब दूर न फैल जाय और ३० सितम्बर के पहले उसके द्वारा हम आवश्यक कपडा न तैयार कर सके और विदेशी कपडे का बहिष्कार न कर सके तो कहना होगा कि इसका कारण केवल हमारी सङ्गठन-शक्ति और कार्य-दक्षता की कमी है। (नवजीवन से)

महायज्ञ

विदेशी कपडे का त्याग हमारा एक महायज्ञ है। इसमें हमें पूरो तरह सफलता मिलना ही स्वराज्य है। और यह इतना दीर्घ काम हमें सिर्फ एक महीने में करना है। इतने थोडे समय में यह कैसे हो जायगा, यह चिन्ता न कीजिए, क्योंकि चिन्तित और भयभीत मनुष्य मूढ हो जाता है, उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है और उसे मार्ग नहीं दिखाई देता। पर यदि हम जरा ही सोचें तो मालूम हो जाय कि स्वराज्य तो बड़ा आसान है। क्योंकि यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इसलिए स्वदेशी तो इससे भी सहल होना चाहिए। बस, यह निश्चय रख कर हमें काम में जुट जाना चाहिए। कार्य्य-परायण होने के लिए हमें निर्भयी और उद्योगी बनना चाहिए। ज्यों ज्यों मैं भ्रमण करता हूं त्यों त्यों मुझे तो यह अनुभव होता जाता है कि इसका सहल से सहल उपाय यही है कि हम अपनी जरूरत भर कपड़ा घर ही में तैयार करा लें। एक करोड आदमियों को एक जगह इकट्ठा करके उन्हें समझाने की बनिस्बत तो अपने ही गांवों में रहकर, अपने ही घरों में बैठ कर, कातने और बुनने की क्रिया बताना बहुत ही सहल है। मिलों के द्वारा, बड़े तीव्र वेग से जाने पर भी, जिस काम के लिए कमसे कम २५ वर्ष चाहिए, वही काम, यदि हम घर बैठें समझ जायँ, तो २५ दिन में कर सकते हैं। परन्तु जिस तरह नया अन्न पकाने वाला पहले अपने बरतन साफ कर डालता है उसी तरह हमे विदेशी कपडे रूपी मैल को पहले धो डालना चाहिए। उस के बिना हमारी शिथिलता दूर नहीं हो सकती। जो आदमी एक बार लंगडा हो जाता है वह अच्छा हो जानेपर भी जिस प्रकार लकडी का सहारा छोड़ते हुए डरता है और गिर जाने के भयसे लंगडते हुए ही चलता है उसी प्रकार जबतक हम विदेशी कपड़े के सहारे चलते रहेंगे तबतक हमारे पावोंमें बल नहीं आ सकता। (नवजीवन से)

वकालत में लगे हुए वकील

ऐसे वकीलों के विषय में जिन्होंने वकालत नहीं छोडी है पर फिर भी कांग्रेस कमिटियों में भिन्न भिन्न पदों पर काम कर रहे हैं, मेरे पास बराबर पत्र आ रहे हैं। पर जब से मैं बङ्गाल में आया हूं तब से तो यह सवाल मुझ से और भी आग्रह के साथ पूछा जा रहा है। डुबरी के एक पुराने विद्यार्थी लिखते हैं कि क्या आप उन वकीलों के नेतृत्व में जो अब भी वकालत कर रहे हैं, इस आन्दोलन के सफल होने की आशा रखते हैं? मैं नहीं समझ सकता कि जो आन्दोलन स्वार्थ-त्याग के ऊपर अवलम्बित है, उसके नेता यदि वे वकील हों जिनकी श्रद्धा स्वार्थ-त्याग में नहीं है, तो वह कभी सफल हो सकता है। बल्कि मैंने तो निस्सङ्कोच यह राय दी है कि ऐसे वकीलोंको, चाहे वे बडी योग्यता रखने वाले हों तो भी, अपना अहुदा

बनाने के बजाय तो यह बेहतर है कि मतदाता लोग उन से कम योग्यता रखने वाले दूसरे लोगों को अपना नेता बनावें। किसी डरपोक और शक्की वकील की बनिस्बत तो मैं खयाल करता हूं कि कोई मोची या जुलाहा जो बहादुर हो और जिसके हृदय में विश्वास हो वह निस्सन्देह बहुत अच्छी तरह नेता का काम कर सकता है। क्यों कि सफलता तो वीरता, त्याग या कुरबानी, सत्य, प्रेम और विश्वास पर अवलम्बित है, कानूनी गहरे ज्ञान, गिनती या हिसाब, कूट-नीति, द्वेष और अविश्वास पर नहीं। (यङ्ग इंडिया से)

जुलाहों की सभा

विहार-शरीफ नामका एक छोटा शहर विहार में है। उसकी आबादी कोई पच्चीस हजार है। उस के पास ही प्रसिद्ध जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी का जन्म हुआ था और उसी के पास वे समाधिस्थ हुए थे। उस स्थान पर बडे विशाल मन्दिर हैं। विहार शरीफ जाते हुए वे रास्ते में पडते हैं। यह एक मशहूर पीर का स्थान है, इसलिए शरीफ कहलाता है। कहते हैं कि अजमेर के पीर के बाद, दूसरे नम्बर पर, इसी स्थान की महिमा है। यहां कोई ५०० जुलाहे-बुनने वाले बसते हैं। इनमें मुसलमान ही ज्यादा हैं। यहां राष्ट्रीय सभा-कांग्रेस-और खिलाफत कमिटी की ओर से जुलाहों की सभा खास तौर पर की गई। उस में हमने समस्त बुनने वालों से निवेदन किया कि अब आज से आप लोग केवल हाथ का ही सूत बरतिए। उन्हों ने यह बात मंजूर की और कहा कि काम रुक जाने पर ही हम मिल का सूत काम में लावेंगे। आज तक तो वे विदेशी सूत को बरतते आ रहे थे, पर खुद उन्हों ने ही यह कहा कि हमारे बाप-बुढावे तो सिर्फ हाथ का ही सूत इस्तैमाल करते थे। ऐसी दशा में यदि इन जुलाहों को हाथ का ही कता सूत दिया जायगा तो ये जरूर उसीको काम में लेंगे। पर यदि इसके लिए उत्साही कार्यकर्ताओं का अभाव रहा तो वे, हाथ का सूत बरतना कुबूल कर चुकने पर भी, जरूर ही विदेशी सूत को काम में लेंगे। अब हमारा काम यह है कि हम जुलाहे, पिंजारे-धुनिया-सुतार, लुहार इत्यादिको देश के काम में अनुराग रखने के लिए प्रवृत्त करें। मैं आशा करता हूं कि राष्ट्रीय सभा के कार्यकर्ता प्रत्येक गांव में जा जा कर इन लोगों से मिलेंगे, उन्हें सभासद बनावेंगे और उनसे देशकी सेवा लेंगे। अपना काम वे लोग मजेमें करते रहें। पर देश के कार्य को पहला स्थान दें और उसके लिए मामूली से कुछ कम मिहनताना लें। बस, हमे उनकी इतनी ही सेवा पर सन्तोष हो सकता है।

कुछ सवाल-जवाब

एक अंगरेज मित्रने मुझसे पांच सवालों के जवाब चाहे थे। प्रश्नोत्तर मनोरंजक हैं। अतएव उन्हें, अपनी स्मृति के आधार पर, यहां देता हूं—

(१) आपके और लार्ड रीडिंग के विचारों का भेद आगे बढेगा या घटेगा? आपका क्या ख्याल है?

उत्तर—मत-भेद घट भी सकता है और बढ भी सकता है।

(२) आप कब तक स्वराज्य स्थापित करने की आशा करते हैं?

उत्तर—मैं खुद अपने ऊपर राज्य करने का प्रयत्न तो बडी तेजी से कर रहा हूं। मैं हिन्दुस्तान के लिए स्वराज्य स्थापित नहीं कर सकता। हां, मैं उससे यह आशा अवश्य करता हूँ कि वह इसी साल में स्वराज्य स्थापित कर लेगा।

(३) क्या आप प्रधान सचिव-वजीर-आजम को पहले से अधिक "शैतानो" या दुष्ट समझते हैं?

उत्तर—हां, मुझे मानना होगा कि प्रधान सचिव मेरे लिए एक 'पहेलो' हैं। उन्हें अबभी हिन्दुस्तान के मुसलमानों के ऋण से मुक्त होना है, जिसे उन्होंने आजतक नहीं चुकाया।

(४) हिन्दुस्तानी कौन्सिलों के बहुत से मन्त्री आपके ही देश में पैदा हुए और पर्वरिश पाये हैं। वे भी तो भारत में पूर्ण उत्तरदायित्व युक्त शासन स्थापित करने का प्रयत्न, नई कौन्सिलों के द्वारा, कर रहे हैं। फिर आप उन्हें उत्तेजना क्यों नहीं देते?

उत्तर—जब तक वे मन्त्री उस शासन-प्रणाली से हाथ नहीं धो लेंगे जो भारत के अधःपात के लिए उन्हें अपने हथियार के तौर पर काममें लाती है तबतक मुझे, आदर के साथ, उनको उत्तेजना देने से इनकार करना होगा।

(५) क्या आप विनोद को जीवन में आवश्यक समझते हैं?

उत्तर—यदि मुझमें विनोद की वृत्ति न होती तो मैंने कभी की आत्महत्या करली होती।

(यंग इंडिया से)

—

मुसलमानों की बेचैनी

खिलाफत के मामले में मैंने लखनऊ में मुसलमानों को अधीर देखा। उनकी अधीरता स्वाभाविक थी। मौलवी सलामतुल्लाने कहा कि अंगरेजों का रुख तो अब असह्य होता जाता है। यह कह कर उन्हों ने सौम्य भाषा में अंगोरा सरकार की स्थिति के विषय में लोगों की जो भावनायें हैं उन्हींको ध्वनित किया। इसमें कोई शक नहीं कि तुर्कों के साथ मित्र–भाव रखने के सम्बन्ध में अंगरेजों ने जो आश्वासन दिये हैं उनके प्रति अविश्वास बढता जा रहा है। अब इन दोमें से किसी बात पर कि अंगेरजों के आश्वासन बिलकुल सच्चे हैं या ब्रिटिश सरकार को तुर्की की सेहत करने की शक्ति नहीं है, कोई विश्वास नहीं करता। अतएव अधीरता और क्रोध के आवेश में मुसल्मान कहते हैं कि राष्ट्रीय सभा और खिलाफत–कमिटी की ओर से कोई जियादा तेज और जोरदार कार्रवाई तुरन्त होनी चाहिए। मुसलमान तो स्वराज्य का अर्थ यह समझते हैं–जैसा कि उन्हें समझना जरूरी है–कि हिन्दुस्तान खिलाफत के मामले का निपटारा पक्के तौर पर करने के लायक हो जाय। इस लिए वे कहते हैं कि अगर स्वराज्य के मिलने में न जाने कितनी देर है और अगर उसके लिए काम करते हुए मुसल्मानों को भूमध्य सागर में तुर्कस्तान की बरबादी का लाचार हो कर–कायरों की तरह देखा रहना पड़े तो मुसलमान अब इन्तजार करना नहीं चाहते।

यह नामुमकिन बात है कि ऐसी हालत पर मुसलमानों के लिए हमदर्दी न पैदा हो। यदि कोई कारगर इलाज मेरे खयाल में आया होता तो मैं जरूर, खुशीके साथ, कोई जल्द कार्रवाई करनेकी सिफारिश करता। यदि मैं देखता कि स्वराज्य को हलचल को मुल्तवी कर देनेसे हम खिलाफत के हकमें जियादा फायदा कर सकेंगे तो मैं खुशीसे ऐसी सलाह देता। करोडों मुसलमानों का दर्देदिल हलका करनेके लिए अगर असहयोग के अलावा भी मुझे कोई उपाय नजर आता तो मैं खुशी से उसमें लग जाता।

मगर मेरी नाकिस राय में तो खिलाफत के अन्याय को मिटाने की सबसे जल्दी असर करने वाली अगर कोई दवा है तो वह स्वराज्य ही है। और यही कारण है जो मेरे लिए तो स्वराज्यका पाना ही खिलाफत के सवाल का हल होना है और खिलाफत के सवाल का तय होना ही स्वराज्य पाना है। मुसीबत के मारे हुए तुर्कों को मदद पहुँचानेका सिर्फ एक ही जर्या हिन्दुस्तान के लिए है और वह है खुद अपने अन्दर इतनी ताकत पैदा कर लेना कि जिससे वह अपने स्वत्व को प्रदर्शित कर सके। यदि वह एक मीयाद के भीतर इतनी शक्ति नहीं बढा सकता तो फिर हिन्दुस्तान के लिए दैवाधीन होने के सिवा बाहर निकलने का दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जिसे खुद लकवा मार गया है वह अगर दूसरे की मदद के लिए हाथ बढाना चाहे तो इसके सिवा कि खुद अपना पीछा लकवे से छुडावे, और क्या कर सकता है? इसके बजाय अगर केवल ना समझी, नादानी और गुस्से में आकर खून–खराबी कर बैठे तो इससे अन्दर रुकी हुई आग भले ही बाहर धधक उठे; पर तुर्किस्तान का दुख दूर नहीं हो सकता। और न इस से हिन्दुस्तान की वह ताकत ही बढ सकती है जिस से वह अपने स्वत्वको प्रदर्शित कर सके। और, इसके अलावा, उस दङ्गे–फसाद को मिटाने के लिए जो उपाय काम मे लाये जायेंगे उनसे, सम्भव है, हमारा वह वेग जिस के साथ आज हम अपने लक्ष्य की ओर दौडे चले जा रहे हैं, खासा मन्द पड़ जाय।

तोभी हमें किसी तरह निराश होने का कोई कारण नहीं। कांग्रेस का सारा कार्य्यक्रम ऐसा ही बनाया गया है और ऐसे ही उपाय जारी हैं जिन से खिलाफत के सङ्कट का सामना किया जा सके। स्वदेशी–कार्य्य को पूरा करने की मीयाद दो मास की रक्खी गई है। यह निस्सन्देह एक ऐसा तीव्र और प्रबल उपाय है जिस के द्वारा देश का सम्पूर्ण सत्व प्रकट हो सकेगा। और, यदि भारत ने सितम्बर तक पूरा बहिष्कार कर दिखाया और अक्तूबर में वह अपने पांव पर खडा हो गया तो निश्चय ही इससे बड़े बड़े तेज मिजाज वाले लोगों और मुझ जैसे अधीर तथा जोशीले खिलाफतियों की आत्मा को भी सन्तोष होगा।

पर बात यह है कि अभी हमारे सारे काम करने वाले लोगों को न तो इस बात का यकीन हो पाया है कि बताई हुई मीयाद के भीतर स्वदेशी का कार्य्यक्रम पूरा हो जायगा और न जो करामात इस में बताई जाती है उसके कायल वे हो पाये हैं। ऐसे [illegible] लोगोंको

[illegible] कि [illegible] और [illegible] असर करने वाला दूसरा [illegible] नहीं बना सकते और उसे देश से स्वीकृत नहीं करा सकते, इससे अलग ही रहना लाज़िम है। अथवा [illegible] भिन्न होते हुए भी उन्हें शुद्ध हृदय से स्वदेशी के काम में लगजाना चाहिए और इस प्रयोग को सचाई के साथ आजमाना चाहिए। और क्या यह सन्देह करना कि भारत स्वदेशी के कार्य्य-क्रम के अनुसार काम करने में समर्थ नहीं है,—यदि यह सन्देह ठीक होतो यह नहीं बतलाता कि खिलाफत के काम में भारत को वास्तव में कोई अनुराग नहीं है और वह उसके लिए कुछ भी त्याग करना नहीं चाहता ? क्या हरएक हिन्दू और मुसलमान के लिए सारे विदेशी कपड़ो से मुंह मोड़ लेना और सिर्फ खादी ही पहनना, कोई बड़ा भारी स्वार्थ-त्याग है ? और अगर भारतवर्ष को यह क्षमता नहीं प्राप्त करना है तो क्या यह इस बात का सबूत नहीं होगा कि वह इससे अधिक स्वार्थत्याग के लिए लायक नहीं है और इसलिए तुर्कस्तान की भी सहायता के लिए योग्य नहीं है ? आइए, हम सब मिलकर विदेशी कपड़ों का पूरा बहिष्कार करे और जितनी ज़रूरत है उतनी खादी बनावे, फिर देखिए कि हम मंज़िल पर पहुंच गये हैं।

लखनऊ में एक यह मसला बड़ी संजीदगी के साथ पेश किया गया था कि हम राली ब्रदर्स का जो कि एक यूनानी कम्पनी है, बहिष्कार करके यूनानियों से बदला चुका लें तथा उन मजदूरों से जो बन्दरों पर काम करते हैं, कहें कि विदेशी जहाजों पर माल न चढ़ाओ। मैं तो समझता हूं कि ये दोनों सूचनायें अस्वाभाविक हैं और उनको कार्य्य के रूप में परिणत करना भी असम्भव है। जरा देर के लिए मान लीजिए कि हम एक क्षण में राली ब्रदर्स का कारोबार तोड़ सकते हैं, पर इसका असर यूनान पर क्या पड़ सकता है ? राली ब्रदर्स सारा या ज्यादातर माल यूनान को नहीं भेजते। उनका तो सारी दुनिया में व्यापार फैला हुआ है। अतएव स्वदेशीका काम उठाने की अपेक्षा उनके व्यापार के साथ झगड़ना ज्यादह कठिन होगा। ऐसी कोशिश का एक-मात्र परिणाम यह होगा कि—उसके रगों-रेशे में जो अन्याय भरा हुआ है उसकी तो बात ही जाने दीजिए—हम लोग उपहास्य बनेंगे और यह प्रकट होगा कि हम ठीक उसके योग्य ही हैं। विदेशी जहाजों पर काम करने वाले मजदूरों को छेड़ना भी [illegible] की तरह है। यदि [illegible] पर हमारा इतना पूर्ण नियन्त्रण होता तो हम इस समर में अबतक कभी के जीत गये होते। [illegible]

के लिए हमें आज काम करनेवाले सारे मजदूरों का काम हमेशा के लिए या एक अनिश्चित समय तक बन्द रखना होगा। यही नहीं, बल्कि ऐसा करते समय यह पहले ही मान लिया जाता है कि जो मजदूर काम बन्द कर देंगे उन की जगह दूसरे मजदूरों को काम पर न आने देनेका सामर्थ्य हम में है। मेरा तो ख्याल है कि अभी हम इतने सङ्गठित नहीं हैं जो यह काम कर सकें। ऐसी कोशिश में ना कामयाब होने के सिवा और कुछ हासिल नहीं। और इससे भी बुरा नतीजा न निकले तो गनीमत समझिए।

इस का तो उपाय अगर हो सकता है तो बस, यही कि कानून का सविनय भङ्ग तुरन्त शुरू कर दे। परन्तु मुझे इत्मीनान हो गया है कि देश अभी विस्तृत रूप से इसे करने के लिए तैयार नहीं है। पर यदि देश इस बात को दिखा दे कि उस में संगठन की इतनी काफी क्षमता है, उसके पास इतने विभिन्न साधन है, और उसमें इतनी नियमबद्धता है जितनी कि स्वदेशी जैसे बिल्कुल व्यवहार्य्य कार्य्य को पूर्ण सफल बनाने के लिए आवश्यक है, तो कानून का सविनय भङ्ग बिना जोखिम के सफलता-पूर्वक शुरू किया जा सकता है। आइए, हम यह आशा और प्रभुसे प्रार्थना करें कि देश ऐसा कर दिखावे।

(यङ्ग इंडियासे) मोहनदास करमचन्द गांधी

राजा-महाराजाओंके प्रति

(श्री गांधीजीने काठियावाड के राजा-महाराजाओं के नाम एक पत्र "नवजीवन" में लिखा है। उसका कुछ अंश यहां दिया जाता है।—उप-सम्पादक)

श्रीमन्

× × × × ×

काठियावाड से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतएव जब मैं काठियावाड के किसी भी राज्य की स्वेच्छाचारिता के विषय में कुछ सुनता हूं, तब मेरे हृदयको बड़ा दुःख होता है। काठियावाडको मैं शूर-वीरों की भूमि समझता हूं और मैं यह आशा लगाये हूं कि स्वराज्य-यज्ञ में काठियावाड अपना पूरा हिस्सा दे कर अपना तथा भारत-भूमि का मुख उज्वल करेगा।

'स्वराज्य' शब्द को सुन कर आप चौंकिए नहीं। मैं चाहता हूं कि "स्वराज्य," "अ-सहयोग" इन नामोंसे आप न चौंकें। जो लोग यह कहते है कि यह आन्दोलन तो अराजकता और राजद्रोह फैलानेवाला है, इस से देशका सत्यानाश हो जायगा, उन्हें ऐसा कहने दीजिए। परन्तु आप स्वयं विश्वास कीजिए कि ये आ-

ज्ञान-वश ऐसा कहते हैं और अपने मित्रों के भी सामने मेरी सफाई कीजिए।

हमारे धर्म्म-शास्त्र हमें यह उपदेश करते हैं कि अपने प्राणों की आहुति देकर भी अन्याय का सामना करना चाहिए। मेरे पू० पिताजीने, स्वयं अपने चरित्र के द्वारा, मुझे यही शिक्षा दी है। लोग साहस-सम्पन्न हों तो इससे देश की हानि नहीं होगी।

आप के राज्यों के विषय में अनेक लेख मेरे पास आये हैं। कितनी ही शिकायतें मैंने जबानी भी सुनी हैं। परन्तु अबतक मैंने उनका कुछ भी अंश प्रकाशित करना उचित न समझा। मैं यही आशा किये रहा कि अन्तको सब तरह शान्ति हो जायगी, और अब भी मेरा यही खयाल है। बड़े साम्राज्य को स्वेच्छाचारिता जहां एक बार नष्ट हुई कि छोटे छोटे राज्यों की मनमानी भी उसके साथ बन्द हो जायगी। आत्म-शुद्धि ऐसी वस्तु है जिस की जड़ जमने के लिए कुछ समय दरकार होता है। परन्तु जड़ के लग जाने पर उसके फैलने में फिर विलम्ब नहीं लगता।

पर, अब तो मैं सुनता हूं कि कोई कोई राज्य चरखे का उपहास करते हैं, कोई उसे एक रोग समझकर मिटाने की इच्छा रखते हैं, कोई 'स्वदेशी' जैसे शाश्वत आन्दोलन को रोकने के लिए लोगों को अनुचित रीति से दबाते हैं, कोई खादी पहनने के खिलाफ उठ खड़े होते हैं और खादी की टोपी पहनने को 'जुर्म' मानते हैं। इन बातों पर विश्वास करते हुए मुझे क्षोभ होता है। परन्तु मेरे पास इसके इतने प्रमाण मौजूद हैं कि ये बातें झूठ नहीं हो सकतीं।

× × × × ×

यह निश्चय जानिए कि यदि राजा-महाराजा मदद करें तो चर्खों और कर्घों के द्वारा काठियावाड़में पहलेसे भी अधिक जीवन आ जाय। काठियावाड की आबादी छब्बीस लाख गिनी जाती है। वहां पांच लाख चर्खे आसानीसे चल सकते हैं। इससे प्रति वर्ष कमसे कम साढे सात लाख रुपया आमदनी हो सकती है। यदि काठियावाड की बहनें केवल आठही महीने भजन गाते हुए चर्खा कातें तो हर साल साठ लाख रुपये पैदा कर सकती हैं। इसके लिए आपको एक पाई भी खर्च न करना पड़े। ऐसे आसान उपायसे यदि काठियावाडके लोग धन कमावें तो क्या आप उनका धिक्कार करेंगे? क्या उनका मजाक उड़ावेंगे?

× × × × ×

आप से तो मैं यह आशा करता हूं कि आप अपने दरबारमें भी खादीकी-दीन-हीन लोगों की बुनी हुई खादीकी-प्रतिष्ठा करेंगे। दरबारी पोशाक भी खादीके हों और आप स्वयं भी अपनी प्रजाकी बनाई खादी पहन कर भूषित हों।

काठियावाडकी प्रजा तो भूखों मरे और मैंचेस्टरके अथवा जापानके लोग आप के धन पर चैन उड़ावें, यह राज-न्याय नहीं। आपके शास्त्रवेत्ता लोग आपको यह बात समझावेंगे। यदि आप मलमल चाहते हैं तो अच्छी रुई की पैदावार कराइए, महीन सूत कातने और कपडा बुनने वालोंको उत्साहित कीजिए।

काठियावाडके पहाडों में रहने वाले राजाओंको आमोद-प्रमोद की क्या आवश्यकता? कुत्तोंकी टोलियां वे अपने पास किसलिए रक्खें? वे तो प्रजाके लिए अपने प्राण दें। प्रजा के दुःखसे दुखी हों और प्रजाको खिलाकर आप खावें। राजा बनिया और ब्राह्मण बहुरूपिया हो जाय तो धर्म की शिक्षा कौन दे और रक्षा कौन करे?

मैं यह नहीं चाहता कि काठियावाड के लोग आप के राज्योंमें रहते हुए अँगरेजी राज्य के खिलाफ आन्दोलन करे और आपकी स्थितिको नाजुक बनावें। आपकी नाजुक स्थिति मेरे ध्यानमें है। आपके प्रति मेरी सहानुभूति है। आपकी प्रजा भले ही अ-सहयोगी न हो, परन्तु मैं आपसे नम्रता-पूर्वक अनुरोध करता हूँ कि आप स्वदेशीको अपना एक भिन्न विभाग समझिए और प्रजाको सहायता देकर स्वतंत्रता-पूर्वक उसका उत्कर्ष कीजिए।

और भी एक निवेदन करूं? काठियावाडमें शराबकी दूकानोंका होना किस तरह सहन हो सकता है? आपको भी शराबके द्वारा कुछ आमदनी करनेकी आवश्यकता है? जबकि खुद प्रजाही शराबखोरी छोडने के लिए प्रयत्न कर रही है तब मैं तो आपके दरबारसे भी शराब की बोतलों के बहिष्कार की आशा रखता हूं। जब कि श्री रामचन्द्रने एक धोबीकी बात सुन कर सती सीताका त्याग कर दिया तब अपनी प्रजाकी इच्छा को जान कर क्या आप शराबको काठियावाडसे नहीं निकाल सकते?

और आपकी ट्रेनोंमें अन्त्यजोंके लिए अलग गाडियां हों, उन्हें टिकट मिलने में कठिनाई हो, वे धक्के खायँ, यह भी किस तरह सहन हो सकता है? लोगों को एकत्र करके आप उनके साथ विचार कीजिए और उन्हें समझाइए कि भङ्गी चमारों के साथ जो दुर्व्यवहार होरहा है वह दया-धर्म नहीं। वह तो अत्याचार है। इस तरह आप उन बेचारों को सुखी कीजिए और उनके दिलसे निकलने वाली दुआ लीजिए।

और भी बहुतसी बातें सुनी हैं। पर उन कथाओंको आज मैं कहना नहीं चाहता। वे पुरानी बातें हैं। मैंने तो सिर्फ यही प्रार्थना करने के लिए यह पत्र लिखा है कि आजकल जो शुद्ध प्राण-वायु बह रहा है उसकी गतिको न रोकिए। मैंने प्रेमभाव से जो कुछ लिखा है उसको समझिए और प्रेम-पूर्वक पढ़कर मेरी तीन सूचनाओंको कार्य्य के रूपमें परिणत कीजिए, बस यही निवेदन है। ईश्वरसे प्रार्थना है कि वह आपको न्याय-दृष्टि दे और काठियावाड के राजा-प्रजा नीति मार्गसे जाते हुए सुखी रहें।

आपका विश्वासपात्र सेवक

मोहनदास करमचंद गांधी.

चिरला-पेरला

चिरला-पेरला है तो वास्तव में एक गांव। वहां की आबोहवा बहुत उम्दा है। कोई १५००० घनी आबादी है। वह आन्ध्र-प्रान्त में है और श्री० गोपाल कृष्णय्या नामके एक बुद्धिमान् और स्वार्थ-त्यागी नेता उसमें रहते हैं। अपनी उद्योग-शक्ति और त्याग के बल पर उन्होंने वहां के लोगों में बिना दिक्कत के एकता स्थापित कर रक्खी है। वहां का म्युनिसिपल-शासन अब हिन्दी वजीर के अधीन है। उसने पिछले साल से वहां के बहादुर लोगों पर अपना आतङ्क जमाना शुरू किया। लोगों के ऊपर एक बेजा और कष्ट कर व्यापारी लैन्सेंस लगाया गया। पर लोगोंने बिना लैसेंस लिए ही अपना व्यापार जारी रक्खा। फल यह हुआ कि मुखालिफ लोगों पर मामला चला और सजायें हुईं। उन में एक बूढ़ी स्त्री को भी जेल जाना पड़ा। सरकार वहां नई म्युनिसिपालिटी का बोझ लोगों पर डालने की कोशिश कर रही है। लोगोंने इसका विरोध किया। परन्तु जिस मन्त्रीने, लोक-मत का अत्यन्त विरोध होते हुए भी, उस पद को ग्रहण किया है वह इसके सिवा और क्या कर सकता है कि लोगों को अपनी उंगलियों पर नचाना चाहे और दिखावे कि मुझे उसके मत की कुछ परवाह नहीं है।

अच्छा, अब हम यह देखें कि इस म्युनिसिपालिटी का उद्देश क्या है। "और भी अधिक आरोग्य-रक्षा" तो हो नहीं हो सकता, क्यों कि लोगों ने खुद ही उस स्थान को असाधारण रूप से अच्छी हालतमें बना रक्खा है। और अधिक शिक्षा-प्रचार भी नहीं, क्यों कि लोग तो अ-सहयोगी हैं। इसका उद्देश तो केवल यही हो सकता है कि और ज्यादा कर बैठाये जायें और लोगों की स्वतन्त्रता में और भी अधिक हाथ डाला जाय। यह बुराई लोगों के लिए असह्य थी।

अतएव उन लोगों ने निश्चय किया कि म्युनिसिपल हद को छोड कर हम लोग उसके बाहर पास ही खुली जगह में जा बसें। उन्होंने वहां झोपडियां बनाई और पिछली मई के लगभग लोग चिरला-पेरला खाली करके उनमें रहने चले गये। इस पर भी बेधड़क होकर मन्त्री ने महकमे मालगुजारी की शरण ली और उस महकमे की ओर से यह कह कर उनपर कर बिठा दिया गया कि तुम लोगोंने सरकारी पड़ी जमीन पर अपने छप्पर डाले हैं। हर छप्पर पर १०-२-६ के हिसाब से कर बैठाया गया है, यद्यपि उनकी कीमत कुल २५) ही रुपया है। कर न देने की हालत में रहने वालों को अपनी झोपड़ियां खाली कर देनी होंगी।

इस दमन के आरम्भ का वर्णन आन्ध्र प्रान्तीय कांग्रेस कमिटीने इस प्रकार किया है—

"चिरला-पेरला के दमन के "सन्मान-पत्रक" में संख्या बढ़ रही है। म्युनिसिपल टैक्स को देने से इनकार करने के कारण १२ पुरुष और १ स्त्री तो पहले ही सजा भोग कर आ चुके हैं। ३ पुरुष राजमहेन्द्री की सेन्ट्रल जेल में सख्त सजा भोग रहे हैं और छः आदमी कारावास की आज्ञा की बाट जोह रहे हैं। अनोखी बात तो यह है कि ये छः आदमी कोई एक महीने पहले ही कैद की सजा पाचुके थे और उनकी सजा रोक रक्खी गई थी। हमने ऐसी घटना कहीं नहीं सुनी कि लोगों को सजा तो ठोंक दी गई, पर चुपचाप कह दिया गया कि घर जाओ और हुक्म का इन्तजार करो, जमानत तक न तलब की गई। चिरला-पेरला में और भी कितनेही लोग जेलखानेको भर देने के लिए तैयार बैठे हैं। प्रशंसनीय वीरता और निश्चय के साथ संग्राम हो रहा है। हां, गांव के खाली कर देने से जो कारोबार बन्द हो गया है तथा गरीब लोगों को रहने धरने को जो कठिनाई हुई है उससे बहुत बड़ी हानि हुई है।

सजायाब लोगों की जायदाद जब्त कर लीगई है और बपतला तथा गन्तूर में कई बार बिक्री पर लगाई गई थी—इस लिए कि उसे बेचकर जुरमाने की रकम वसूल कर ली जाय। परन्तु कहीं भी किसीने आकर बोली नहीं लगाई। चिरला-पेरला के प्रति लोगों की जो सहानुभूति आम तौर पर है उसका यह एक उज्ज्वल प्रमाण है।"

इस प्रकार हमारे सामने यह प्रत्यक्ष उदाहरण मौजूद है जिस से सुधारों और उत्तरदायित्व का अर्थ मालूम हो जाता है। मुझे इस बात में सन्देह नहीं

कि मन्त्री महाशय जो कुछ करते हैं वह इसी विश्वास से करते हैं कि इसमें लोगों का हित है। जब जब अंगरेज अधिकारियों ने कोईभी बात, रोलट एक्ट तक, हमारे सिर पर लादी, तब तब उन्होंने क्या उसका समर्थन यह कह कर करना नहीं चाहा कि यह तो प्रजा के कल्याण के लिए है? अ-सहयोग का युद्ध, और और बातों के सिवा, आश्रयदान की भावना से भी है। हमें इस बात की स्वाधीनता जरूर होनी चाहिए कि हम अच्छा काम करना सीखने के पहले बुरा काम करें। "स्वाधीनता" भी हम पर 'जबरदस्ती' न लादी जाय। जन सत्ता की भावना तो यही चाहती है कि मन्त्री या तो लोकमत के आगे सिर झुका दें या इस्तीफा पेश करदें। अत्यन्त पूर्ण सुधार-कार्यों में भी उसे धीरज के साथ प्रबुद्ध लोगों के मत को अपने साथ ले कर चलना चाहिए।

चिरला-पेरला के बहादुर लोगों ने म्युनिसिपालिटी लेने से इनकार कर दिया है। उन्हें ऐसा करने की आवश्यकता नहीं थी। वे "स्वराज्य" तक इस का इन्तजार कर सकते थे। परन्तु उन्हों ने इसके विपरीत करना अच्छा समझा। इसकी जवाबदेही पूर्णतः उन्हीं पर है। अब वे किसी भी हालत में अपनी टेक न छोड़ें। न उत्तेजना और सनसनी की हालत में शान्ति खोवें। सरकार को वे, बड़ी खुशी के साथ, जो वह चाहे, इस की सजा देने दें। अपने इस नम्र परन्तु अटल कष्ट-सहन के बदौलत वे स्वयं अपने को तथा भारत माता को गौरव से भूषित करेंगे एवं देश को अ-हिंसा और शान्ति का प्रत्यक्ष पाठ पढावेंगे। (यं. ई. से)

मोहनदास करमचंद गांधी.

बम्बई-निवासियोंको सूचना

"हिन्दी-नवजीवन" की फुटकर बिक्री बम्बई में नहीं होगी। अतएव जो सज्जन हिन्दी-नवजीवन लेना चाहते हों वे ४) वार्षिक मूल्य मनीआर्डर द्वारा पेशगी भेजकर ग्राहक होनेकी कृपा करें।

व्यवस्थापक-"हिन्दी नवजीवन"
अहमदाबाद

आवश्यक निवेदन

"हिन्दी-नवजीवन" का यह अङ्क जिस टाईप में छापा गया है उससे बहुत छोटा टाईप इसके लिए हमने चुना है। परन्तु खेद है, वह अभी तैयार नहीं हो पाया। हम आशा करते हैं कि अगला अङ्क बहुत करके उसी टाईप में छापकर पाठकों को इससे बहुत अधिक लेख-सामग्री मिलेगी।

व्यवस्थापक।

२० लाख चर्खे=२५ करोड रुपये प्रति वर्ष.

१ चर्खेपर प्रतिदिन १८ तोले रुईका (कोई १० नम्बरका) सूत काता जाता है। १८ तोले रुईके लिए ५० तोला कपास चाहिए। इस हिसाबसे-

२० लाख चरखोंके लिए प्रतिदिन आवश्यक २५ लाख पौंड कपासकी कीमत, प्रति रुपया १० पौंड,= २,५०,०००)

१ करोड रुपये मूलधनका दैनिक सूद वार्षिक १२) सैकडाके हिसाबसे ३,३५०)

दैनिक खर्चेकी जोड २,५३,३५०)

प्रतिदिन तैयार हुए ७,५०,००० पौंड कपडेकी कीमत, १।=) फी पौंडके हिसाबसे=१०,३१,२५०)

१६ ¾ लाख पौंड बिनौलेकी कीमत, छः आना फी १० पौंडके हिसाबसे- ६२,५००)

दैनिक आमदनी १०,९३,७५०)
खर्च घटाया २,५३,३५०)

दैनिक असली आमदनी ८,४०,४००)
वार्षिक असली आमदनी २५,२१,२०,०००)
(३०० दिनका वर्ष)

हम ६२,५०० लोढनेवाले, ८३,३३२ धुनिया, २० लाख सूत कातनेवाले, ३ लाख जुलाहे (कपडा बुननेवाले) और १ लाख कार्य्यालयमें कर्म्मचारी,-इस तरह कोई २५ लाखसे अधिक आदमियोंको काममें लगा सकेंगे। इन पचीस लाख आदमियोंके सिवा हम १६ लाख से भी ऊपर मनुष्योंको भरण-पोषणका साधन दे सकेंगे, जिसमें सूत कातने वालोंको छोड कर शेष सब श्रेणियोंके लोग होंगे। प्रतिदिन ८ लाख चालीस हजार रुपये ४१ लाखसे अधिक आदमियोंमें बंटेंगे। इसके सिवा कितने ही बढई, लुहार और दूसरे कारीगरोंको भी इससे सारा मिलेगा वह जुदाही।

(यंग इंडियासे) लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम।

हिन्दी नवजीवन.

[साप्ताहिक पत्र]

वार्षिक	मूल्य	४)
छः मासका	,,	२)
एक प्रतिका	,,	-)॥
विदेशों के लिए वार्षिक	,,	५)

मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेजिए। हमारे यहां वी. पी. का नियम नहीं है। एजन्सी के लिए नियम मंगाइए।

व्यवस्थापक-"हिन्दी नवजीवन"
अहमदाबाद

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, खूडी ओळ, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित॥

राष्ट्रीय शिक्षा

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचंद गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—भाद्रपद कृष्ण ३०, संवत् १९७८, शुक्रवार, तारीख २ सितम्बर, १९२१ ई० | अंक ३

टिप्पणियां

खादी के नाश का प्रयत्न.

खादी टोपी के ऊपर भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में सरकारी अधिकारियों ने जो चक्र चलाया है उससे तो हम लोग परिचित ही हैं। परन्तु बिहार में मैंने सुना कि एक मजिस्ट्रेट ने दर अमल फेरी लगाने वालों को भेजा कि जाओ बिलायती कपडा बेचो! धारवाड में नाम पैदा करने वाले मि० पेटर तो और भी आगे बढ गये हैं। उन्होंने सरकारी तौर पर एक सरकूलर निकाला है, जिसमें वे कहते हैं—

"जिला मजिस्ट्रेट और कलेक्टर के मातहत तमाम अफसरों को चाहिए कि वे लोगों को यह बतलावें कि जहाँतक हिन्दुस्तान अपने तमाम लोगों की जरूरत से कम माल तैयार करता है, विलायती कपडे का बहिष्कार करने से अथवा उसके जलाने या बाहर भेजने से कपडे के दाम जरूर ही बहुत बढ जायंगे। इसका नतीजा यह हो सकता है कि बडा गोलमाल फैले और यह सब सरकार के किसी काम से नहीं, बल्कि श्रीयुत गांधी के आन्दोलन के बदौलत होगा।"

इसके बाद, दो हिस्सों में उन्होंने यह भी बताया है कि इस स्वदेशी-प्रचार का मुकाबला किसतरह किया जाय-(१) सभायें की जायं और-(२) जो व्यापारी बहिष्कार के खिलाफ हों उन्हें नियत समय पर कलेक्टर के दफ्तर में बुलाया जाय। मद्रास-सरकार ने तो इससे भी बढ कर अपनी विद्या-बुद्धि दिखाने वाला एक सरकूलर निकाला है। इन हुक्मनामों का मतलब साफ है। वह व्यापारियों और दूसरे लोगों पर दबाव डालना है जिस से वे बहिष्कार में साथ न दे सकें। अब नीचे के हुक्काम इसमें इतनी आजादी से काम लेंगे जितना कि उन सरकूलरों के निकालने वालों ने सोचा भी न होगा। परन्तु अब देश के सौभाग्य से हाकिमों की इन धमकियों का असर लोगों पर कुछ भी नहीं, या बहुत थोडा, होता है और हाकिम लोग दबे-छुपे अथवा खुले आम, न्याय-नीति को ताक में रख कर अथवा भलमन्सी के साथ, चाहे कितना ही विरोध करें, स्वदेशी आन्दोलन तो आगे बढता ही रहेगा।

हाकिम लोग इतने अज्ञान और हठीले हैं कि जिस "गोल-झाल और लूट-मार" का डर उन्हें हो रहा है उसको टालने का रामबाण उपाय वे नहीं करते; और वह यही कि स्वदेशी-प्रचार में लोगों का साथ दें और देशी माल तैयार करने में उत्तेजना दें। पर वे तो, विलायती कपडों के खिलाफ उठाये गये इस आन्दोलन को वाञ्छनीय और आवश्यक समझना तो एक ओर रहा, उलटा उसे दबाने योग्य खराबी समझते हैं। और फिरभी जो मैं इस शासन-व्यवस्था को जो कि जनता के सद्भावपूर्ण आन्दोलन को रोकना चाहती है, 'शैतानी' कहता हूँ तो शिकायत की जाती है। देशी कपडे की तंगी यहां क्यों होनी चाहिए? क्या हिन्दुस्तानमें कपास काफी नहीं है? क्या यहां ऐसे स्त्री-पुरुषों की संख्या काफी नहीं है जो सूत कात सकते और कपडा बुन सकते हैं? क्या यह मुमकिन नहीं है कि जरूरत के लायक तमाम चरखे थोडे ही दिनों में बन कर तैयार हो जायँ? हर एक घरमें जिस प्रकार अपना भोजन बनाया जाता है उसी प्रकार अपना कपडा भी क्यों नहीं तैयार होना चाहिए? अकाल के दिनों में क्या अकाल-पीडितों को कच्चा अनाज बांटना ही काफी नहीं है? फिर, जो लोग कपडे के मोहताज हैं उन्हें कोरा कपास ही देना क्यों काफी न होना चाहिए? तब फिर क्यों यह कपडे की तंगी का पाखंड भरा या झूठमूठ का शोर मचाया जाता है जब कि बिनाही कल-कारखानों की सहायता के भारत में एक महीने के अन्दर उसकी जरूरत के मुताबिक काफी कपडा बन सकता है? लोग बेचारे अबतक जानबूझ कर अथवा बे जाने-बूझे अंधेरे में रक्खे गये हैं। उन्हें जो यह विश्वास करना सिखाया गया है कि अपनी जरूरत के मुताबिक कपडा हिन्दुस्तान के घरों में, प्राचीन समय की तरह, नहीं बनाया जा सकता, बिल्कुल गलत है। अगर अलङ्कार की भाषामें कहें तो वे पहले अपङ्ग बना दिये गये हैं और फिर बिलायती या मिल के बने कपडों के बिना उनका काम ही न चलने लगा। अच्छा हो कि वे लोग जिनके यहां वे सरकूलर निकाले गये हैं, इसका वैसाही योग्य और गौरव-पूर्ण उत्तर दें कि वे फौरन् अपने सारे विलायती कपडे जला डालें या बाहर भेज दें। और हिम्मत और जवांमर्दी के साथ यह कस्द करलें कि अपनी जरूरत के लायक हम खुदही कातेंगे और खुदही बुनेंगे। निकम्मे और सुस्त आदमी को छोड कर हरएक के लिए ऐसा करना बायें हाथका खेल है। (यंग इंडियासे)

नीतिके तौर पर अहिंसा.

एक बंगाली सज्जन एक बात पूछते हैं, जो सबसे ज्यादह महत्व की है। "क्या आप यह आशा करते हैं कि यह शान्तिमय

संग्राम जिसका आधार प्रेम और आत्मिकबल है, उन लोगों के शामिल होने से जो कि अहिंसा या शान्ति को एक नीति मात्र समझते हैं, सफल हो सकता है? शुद्ध अहिंसा के लिए अधिक साहस और देश-प्रेम की आवश्यकता है। परन्तु अगर यह "कमजोरों का हथियार" हो तो भावी दमन के मुकाबलेमें इससे लोगों में भय का संचार होगा।" प्रश्नकर्ताने खुद ही सवाल का कुछ जवाब तो दे दिया है। अहिंसा को अगर विश्वास की अपेक्षा नीति के तौर पर ले कर चलें तो भी उस में सफलता मिल सकती है। पर कब? जब कि उसके साथ साहस और देशका अथवा स्वीकृत कार्य का सच्चा प्रेम मिला हुआ हो। अन्याय करनेवालों के प्रति द्वेष रखने का अर्थ देश-प्रेम हो, सो बात नहीं। हमारे रास्ते में तो कठिनाई इस बात से पैदा होती है कि बहुत से लोग दर असल तो नीति के तौरपर भी अहिंसा के कायल नहीं होते पर ऐसा बताते जरूर हैं। अलीबन्धु अहिंसा को बिलकुल नीति के तौर पर ही मानते हैं; परन्तु मेरे खयाल मे उनसे बढकर अहिंसा में नीति के तौर पर सच्चा विश्वास करनेवाला आज कोई नहीं है। वे मानते हैं कि शान्तिभङ्ग होनेसे हमारे काम को धक्का पहुँचने के सिवा और कुछ नहीं हो सकता और यदि विस्तृत रूपसे अहिंसा या शान्तिका व्यवहार किया गया तो पूरी तरह सफलता मिल सकती है। जो मनुष्य एक नीति के तौर पर ही सत्य का अवलम्बन करता है वह उसके भौतिक फलों को अवश्य पाता है। परन्तु जो केवल सत्यका ढोंग रचता है वह हरगिज नहीं पा सकता. (यं. इं. से.)

ईसाई और असहयोग.

उत्तरी बसरा से एक हिन्दुस्तानी ईसाई ने लिखा है—"मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि आप हिन्दुस्तानी ईसाइयों को हिन्दुस्तान की प्रजा नहीं समझते। मैंने कई बार आपके यंग-इंडिया में देखा है कि आपने मुसलमान, हिन्दू, सिक्ख आदि का तो नाम लिखा है, पर ईसाइयों का उल्लेख नहीं किया।

आप विश्वास कीजिए कि हम हिन्दुस्तानी ईसाई भी हिन्दुस्तान की प्रजा हैं और हिन्दुस्तान के हित के कामों में बहुत रस लेते हैं। मुझे इस बात का यकीन होता है कि हिन्दुस्तानी ईसाइयों ने अ-सहयोग में जितना भाग लिया है उतना और किसी ने नहीं। अपनी मातृभूमि के कल्याण के कामों के साथ मेरी बडी हमदर्दी है। मैं खुद भी एक असहयोगी हूँ।

मैं वादा करता हूँ कि मैं आपको कभी कभी मेसोपोटेमियामें रहनेवाले हिन्दुस्तानियों की हालत के बारे में कुछ लिखता रहूँगा।"

मैं इन पत्र भेजनेवाले महाशय तथा अन्य हिन्दुस्तानी ईसाइयों को विश्वास दिलाता हूँ कि अ-सहयोग के यहां जातियों और धर्मों का लिहाज नहीं है। वह तो अपने दायरे में सब को बुलाता और लेता है। कितने ही हिन्दुस्तानी ईसाइयोंने तिलक-स्वराज्य-फण्ड में चन्दा दिया है। कुछ प्रसिद्ध हिंदुस्तानी ईसाई तो अ-सहयोग की सबके आगे की कतार में हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों का जिक्र तो बार बार इस लिए आता है कि आज तक वे लोग एक दूसरे के दुश्मन समझे जाते रहे हैं। इसी प्रकार जब जब किसी जाति का उल्लेख खास तौर पर यंग इंडियामें हुआ है तब तब उसके लिए वैसा कोई सबब रहा है।

(यं. इं. से.)

पेट का सवाल.

धुबरी (आसाम) से एक सज्जन लिखते हैं कि बहुत से बंगाली इसलिए राष्ट्रीय काम में नहीं लग सकते और अपनी गुलामी की बेडियां नहीं तोड सकते कि उनके सामने रोटी का सवाल है! हम पढे लिखे लोगोंने पेट के लिए उद्योग करने की कला से हाथ धो लिया है! जुलाहों, धुनियों, और सूतकारों की मजदूरी के बढते हुए, सचमुच, रोटीका सवाल बाकी रही नहीं जाता। आठ घंटे बुनाई करने वाला, शुरुवात मे ही, कम से कम १) रोज पैदा कर सकता है। होशियार जुलाहे आज २) रोज पैदा करते हैं। हमें केवल 'कलम' के बल पर ही रोजी कमाने का ध्यान न करते रहना चाहिए! (यं. इं. से)

बरतानिया के गुलाम

जंजीबार के पादरी डाक्टर फ्रैंक वाटसन ने The Serfs of Great Britain नामक एक लेख लिखा है जिसमें उन्होंने बरतानिया के पूर्वी अफरीका में फैलाये दुष्ट साम्राज्य-वाद के खिलाफ आवाज उठाई है। ब्रिटिश पूर्वी आफ्रिका की सरकार ने अभी अभी जो हरकतें की हैं उन से उद्विग्न हो कर उन्होंने उसमें ज्वलन्त और घोर नैतिक अभिमान से भरे शब्दों का प्रयोग किया है। पूर्वी अफरीका की सरकार ने खुद ही पिछले साल जो हुक्म जारी किये हैं उनके अनुसार हर किस्म का काम जिसे गवर्नर "सार्वजनिक स्वरूप" का (जिनमें सरकारी बारबरदारी, रेलवे, सडकें इत्यादि भी **शामिल हैं**) कहे, मजदूरों से हर साल ६० दिन तक जबरदस्ती कराया जा सकता है। परन्तु इस कानून के ६० दिन, काम पर जाने और आने का समय मिला कर, ७० से भी अधिक दिन तक आसानी से पहुँच सकते हैं। इसके अलावा आफ्रिकनो के लिए कमसे कम २४ दिन अपने गांव में ही काम करना अनिवार्य्य कर दिया गया है। इस पर तुर्रा यह कि जिले के कर्म्मचारी और जाति के मुखिया को सरकार का यह हुक्म था कि योरपियन जमीनदारों के यहां काम करने के लिए आफ्रिकनों को "उत्तेजना" दी जाय। यदि मुखिया इस काम को न करे तो उसकी रिपोर्ट गवर्नर को करनी चाहिए और जाति के मुखिया को ताकीद दे दी गई कि ऐसी रिपोर्ट गवर्नर को बराबर की जाया करे। साथही योरपियनों के खेतों पर स्त्रियों और बालकों को भी अपने गांव के आस-पास काम करने के लिए "उत्तेजना देना" आवश्यक था। यहाँ यह बात ध्यानपूर्वक याद रखना चाहिए कि यह सब व्यवस्था किसी मामूली आदमी ने निजके तौरपर नहीं की, बल्कि खुद सरकार ने की है।

डाक्टर फ्रैंक वाटसन ने इस आर्थिक लूट की नीति की कलई इस प्रकार खोली है (नम्बरों का क्रम मैंने अपनी तरफ से लगाया है)

(१) जबरदस्ती से मजदूरी कराना नीति-विरुद्ध है। अफ्रीकन पुरुष या स्त्री को एक गुलाम की तरह काम करने के लिए बुलाना —सो भी इसलिए कि कुछ विदेशी बनियों की टोली मालामाल हो जाय, एक ऐसी बात है जिसकी ताईद कीहीं नहीं जा सकती।

(२) यह सिद्धान्त कि योरपियन लोगोंका व्यापार के नाम पर आफ्रिकनों को गुलाम बनाना न्याय्य है, हद दर्जे का नीति-विरुद्ध है।

(३) जबरदस्ती मजदूरी कराने से समाज में अनीति फैलती है। पतियों को उनके घरों से जबरदस्ती भेज देने से उनकी स्त्रियां घर पर अकेली अरक्षित अवस्था में रहती हैं। फल यह होता है कि योरपियनों के व्यापारिक केन्द्रों तथा उनके खेतों पर आने के बाद उन लोगों के तमाम स्वाभाविक बन्धन टूट जाते हैं और वे पापमय जीवन अख्त्यार कर लेते हैं जिससे उनमें गर्मी आदि बीमारियां फैल जाती हैं।

(४) बिना निष्ठुरता—बे रहमी—के अर्थात् मजदूरी कभी नहीं ली जा सकती। मर्दों और औरतों से जबरदस्ती काम लेने की पद्धति में इतनी बे-रहमी अनिवार्य्यतः भरी रहती है कि लोग

उसपर विश्वास न करेंगे। जबरदस्ती घर में से निकालकर लोगों को पशुओं की तरह घेर कर इकट्ठा करना, डाक्टरों का मुलाहजा न हो पाना, और देखरेख करनेवालों का मनमाना बरताव, आदि इसके उदाहरण हैं। मैं अपने जाती तजरिबे से (पादरी साहब कहते हैं) जोर देकर कहता हूं कि सरकार व्यक्तियोंपर निर्दयता कि ये बिना इन जबरदस्ती के मजदूरी वाले प्रस्तावों के अनुसार हरगिज काम नहीं कर सकती। पूर्वी आफ्रीका में हर आदमी जानता है कि योरपियनों के खेतों के निमहां लोग चाबुक का प्रयोग तो जब चाहे तभी करते हैं।

(५) जबरदस्ती की मजदूरी क्या है, मनुष्यता का अधःपतन है। जिस मनुष्य के साथ उसकी इच्छा अथवा प्रयत्न के विपरीत लगातार गुलामकासा बरताव किया जाता है उसका सारा आत्मसम्मान नष्ट हो जाता है।

(६) जबरदस्ती की मजदूरी से छोटे अधिकारियों के हाथ में भयंकर अधिकार आ जाते हैं। जब कि सरकार के कानून ही खुद मुखिया को यह आज्ञा देते हैं कि आफ्रिकन कुलियों को योरपियनों के खेतों पर काम करने के लिए "उत्साहित" करो तब, यह बिलकुल स्पष्ट है, (उनके लिए जो छोटे अफसरों के ढंगों को जानते हैं) कि हर तरह के दबाव से काम लिया जाता है और घूस और बेईमानीका बोलबाला होता है।

इतना कहकर जंजीबार के पादरी साहब कहते हैं कि पिछले गुलामी के दिनों में भी पूर्वी आफ्रिका के गुलाम अपने मालिकों के यहां सिर्फ १०४ दिन सालमें काम करते थे। परंतु इस नयी जबरदस्ती की मजदूरी में करीब करीब उतने ही दिन काम के हो जाते हैं और फिर भी बरतानिया अभिमान के साथ कहता है कि हमने तो गुलामों को आजाद कर दिया है। डाक्टर वाटसन इन सार्थक शब्दों में अपना लेख समाप्त करते हैं:—

"हमारा मत है कि जबरदस्ती की मजदूरी तो-युद्ध की बात छोड दीजिए—स्वयं नीति-विरुद्ध है; और हमारी धारणा है कि योरपियन सभ्यता के हित के लिए आफ्रिकन लोगों को काम करने पर मजबूर करना, बलवान् जाति के आर्थिक लाभ के लिए कमजोर जाति का विश्वासघात करना है।"

यह धन्यवाद देने की बात है कि (जहां तक मुझे अनुभव हुआ है) इस जबरदस्ती मजदूरी कराने के काम में हिन्दुस्तानी मालिकों ने योरपियनों की "बराबरी" का दावा कभी नहीं किया है। बल्कि बात ठीक इसके विपरीत मालूम हुई है। आफ्रीकन कुलियों के द्वारा इस प्रकार धन कमाने की रीति के खिलाफ़ हिन्दुस्तानी लोगों ने बार बार अपनी आवाज उठाई है। और इस से भी बढ कर मार्के की बात यह है, जिसे हिन्दुस्तानी मालिकों ने अच्छी तरह साबित कर दिया है, कि अच्छी और गुजर के लायक मजदूरी देने से, बिना ही जबरदस्ती के आफ्रिका में मजदूर बहुतायत से मिल सकते हैं। मैंने अपने मित्र अब्दुलरसूल अलादीन विश्राम के शम्बा (खेत) पर रह कर देखा, जहां कि हजार से भी ऊपर हट्टे कट्टे मजदूर काम करते थे। मैंने वहां कभी कोडे के प्रयोग का निशान तक नहीं देखा। मजदूर सुखी और सन्तुष्ट मालूम होते थे और मैनेजर ने मुझ से कहा कि मेरे पास इतनी ज्यादह दरख्वास्तें आई हैं कि मैं उन सब को काम नहीं दे सकता। योरपियनों की बनिस्बत वह बहुत ज्यादह मजदूरी देते थे और फिर भी, उन्होंने कहा कि, हमको अच्छा मुनाफा होता है।

परन्तु इस पर शायद कोई यह कहे कि भारत के स्वराज्य से इन सब बातों का क्या मतलब? पर मेरी समझ में तो इसमें सब कुछ है। सब से पहले तो इसका मतलब यह है कि खुद मेरे वतन बिरतानिया में भी दूसरों का धन खसोटने की प्रवृत्ति अभी मरी नहीं है। इस का यह अर्थ है कि अंगरेजी सल्तनत पिछले साम्राज्यों की ही तरह बुराइयों से भरी हुई है। वे कौनसी हैं? व्यापार के द्वारा कमजोर जातियों के धन-धान्य को हमेशा के लिए अपनी मुट्ठी में दबा लेना। इसका अर्थ यह है कि जबतक हिन्दुस्तान स्वराज्य प्राप्त नहीं कर लेता तबतक ये बुराइयां खुद हिन्दुस्तान को भी कमजोर बनाने में बराबर लगी रहेंगी।

दूसरे, इसका अर्थ यह है कि जबरदस्ती मजदूरी की बुराइयां सोचते समय हम आफ्रीका से भी पास अपने घर—हिन्दुस्तान—को टटोलें। क्यों कि जबरदस्ती मजदूरी अर्थात् बेगार कराने की प्रथा खुद हिन्दुस्तान में भी किसी न किसी रूप में सदियों से चली आ रही है और उसका असर उस व्यापारिक लूट से भी ज्यादा बदतर है जो कि अंगरेजी राज्य में बरतानिया के फायदे के लिए हो रही है। बेगार की प्रथा भारत में कहीं बाहर से नहीं आई है; बल्कि वह तो भीतर ही भीतर बहने वाला नासूर है। और आज सारी देशी रियासतों में, खास कर राजपूताने में, उसने कडीही मजबूती के साथ घेरा डाल रक्खा है! उसने खुद बहादुर राजपूतों को भी, जहां तक एक बडे हिस्से में खेती करने वाले लोगों से ताल्लुक है, धीरे धीरे गुलामी कीसी हालत में ला छोडा है!

इस 'जबरदस्ती मजदूरी' या बेगार की प्रथा से पिण्ड छुडाने का एक मात्र आखिरी उपाय यह है कि बेगार देने से इनकार कर दें! राजपूताने की कुछ रियासतों में बरसों से एक मजबूत झगडा चल रहा है, जिसमें असहाय ग्रामीण अपनी सारी पुरानी बहादुरी का परिचय दे रहे हैं और सो भी उससे अधिक ऊंचे ढंग से—सत्याग्रह के रूप में! यहांतक कि उन पर गोलियां चलाई गईं और वे उस आखरी भयंकर परीक्षा में एक तिल भी न हटे! वे उस अवस्था में भी शान्त रहे! शायद जल्द ही मैं इन वीर आत्माओं से मिलने जाऊं। फिजी जाने के पहले ही मैं वहां जाने का इरादा कर रहा हूं और उनकी इस साहस-पूर्ण सहनशीलता के विषय में कुछ जानना चाहता हूं। और जब वहां पहुंचूंगा तब अपनी आंखों देखी बातें लिखूंगा।

(यंग इंडिया से) सी. एफ. एण्डरूज

बम्बई-निवासियोंको सूचना

"हिन्दी-नवजीवन" की फुटकर बिक्री बम्बई में नहीं होगी। अतएव जो सज्जन हिन्दी-नवजीवन लेना चाहते हों वे ४) वार्षिक मूल्य मनीआर्डर द्वारा पेशगी भेजकर ग्राहक होनेकी कृपा करें।

व्यवस्थापक-"हिन्दी नवजीवन"
अहमदाबाद

ग्राहक होने वालों को सूचना

जिन स्थानों में "हिन्दी नवजीवन" की फुटकर बिक्री एजंटों के द्वारा होती है वहां के निवासियों को चाहिए कि वे वहीं से अंक प्राप्त कर लिया करें। वहां ग्राहक होकर डाकखाने से अंक मंगाने में उन्हें और हमें दोनों को असुविधा होती है। पर उस दशा में यदि ग्राहकों को अंक मिलने में गडबड हो तो इसकी शिकायत वे कृपा करके हम से न करें।

व्यवस्थापक—"हिन्दी-नवजीवन"
अहमदाबाद

हिन्दी
नवजीवन
शुक्रवार, भाद्रपद कृ. ३०, सं. १९७८.

बिहार–निवासियों के प्रति

बिहार की श्रद्धा और भक्ति अवर्णनीय है। गौ–माता के प्रति आप के प्रेम को मैं अच्छी तरह जानता हूं। आप भक्तशिरोमणि तुलसीदास के पुजारी हो। आप दया-धर्म के पालक हो। गो–माता को बचाने का सुवर्ण–मार्ग एक ही है। आप मुसलमान भाइयों की खिलाफत–रूपी गाय को बचाने में सहायता करें। मुसलमान–भाई प्रेम के वश होकर गाय को बचा सकते हैं। हमारा धर्म नहीं सिखाता है कि हम एक प्राणी को बचाने के लिए मनुष्य का जी लें। जिसको हम बचाना चाहते हैं उसके लिए हम अपना ही प्राण दें। इसको हमारा धर्म तपश्चर्या कहता है। तपश्चर्या से ही हम धर्म का पालन कर सकते हैं। तपश्चर्या दयामूलक है, और दया में ही धर्म है।

जब तक हम पाप रहित नहीं बने हैं तब तक हम कैसे दूसरों को कुछ भी कह सकते हैं? हमारे ही हाथों से क्या गो–हत्या नहीं होती है? हम गो–माता के वंश के प्रति कैसा बर्ताव करते हैं? बैलों पर हम कितना बोझ डालते हैं? बैलों को तो ठीक, पर गाय को भी हम पूरा खाना देते हैं? गाय के बछडे के लिए हम कितना दूध रखते हैं? गाय को कौन बेचते हैं! थोडे पैसे के लिए जो हिन्दू गाय को बेचते हैं उनको हम क्या कहते हैं? क्या करते हैं?

अंग्रेजी सिपाहियों के लिए हमेशा गायें काटी जाती हैं। इसके लिए हमने क्या किया है? इन सब बातों को समझते हुए हम क्यों अपने मुसलमान भाई पर जो अपना धर्म समझ कर गो–कुशी करते हैं, क्रोध करें? कम से कम हमारे हाथों का मैल तो हमें अवश्य निकालना ही चाहिए।

ईश्वर का बडा अनुग्रह है कि हमारे मुसलमान भाइयों ने बकर-ईद के दिन बडी खामोशी रक्खी, हमारी मुरव्वत की और जहां तक हो सका उन्होंने गो–कुशी न की। इसलिए हम उनके एहसानमंद हुए हैं।

लेकिन भविष्य में भी ऐसा ही हो, इसका ख्याल रखना आवश्यक है। इसलिए हम बकरे इत्यादि के मांस का त्याग करें। ऐसा करने से इन चीजों का दाम कम होगा और गाय का दाम बढेगा। गायका सौदा ही हमें असंभव कर देना चाहिए। यह सब कार्य हमसे तभी हो सकेगा जब हम अपने प्रत्येक कार्य में विवेक, दया, बुद्धि और त्याग का प्रयोग करेंगे। आप में धर्म पर बडी श्रद्धा है। जिस देश में जनक, बुद्ध और महावीर ने जन्म लिया है ऐसे पवित्र स्थान में रह-कर आप धीरज और धर्म को साथ रखते हुए बडा कार्य कर सकते हैं, और गोमाता की रक्षा करने का धर्म–मार्ग सारे भारतवर्ष को बता सकते हैं।

सिलचुर—आसाम, भाद्रपद कृष्ण ४ } आपका सेवक मोहनदास करमचंद गांधी.

राष्ट्रीय शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा–विषयक मेरे विचारों के सम्बन्ध में अबतक इतनी अजीब बातें कही गई हैं कि यहाँ पर उनका खुलासेवार वर्णन कर देना अ–प्रासंगिक न होगा।

मेरी राय है कि, शिक्षा की वर्तमान पद्धति इन तीन महत्वपूर्ण बातों में स–दोष है (पूर्ण अन्यायी सरकार के साथ इसका जो सम्पर्क है उसकी तो बात ही जाने दीजिए)

(१) इसका आधार विदेशी संस्कृति पर है जिससे देशी संस्कृति का इसमें प्रायः नामोनिशान तक नहीं।

(२) यह हृदय और हाथ की संस्कृति पर ध्यान नहीं देती, सिर्फ दिमाग की संस्कृति तक ही इस की पहुंच है।

(३) विदेशी माध्यम के द्वारा वास्तविक शिक्षा असम्भव है।

अब हम इन दोषों की छानबीन करें। पहले पाठ्य–पुस्तकों को ही लीजिए। उन में ऐसी बातों का अभाव होता है जिन की जरूरत लडकों और लडकियों को अपने घरेलू जीवन में हमेशा हुआ करती है; इस के विपरीत वे बातें भरी रहती हैं जो उनके लिए एकदम बेगानी हैं। पाठ्य–पुस्तकों के द्वारा लडका यह नहीं जान पाता कि गृह–जीवन में कौन सी बात तो ठीक है और कौनसी बात अनुचित। उसे ऐसी शिक्षा कभी नहीं दी जाती जिस से उसके मनमें अपने पास–पडौसियों के विषय में अभिमान जाग्रत हो। जितना ही आगे वह पढता है उतना ही दूर वह अपने घर से हो जाता है—यहाँ तक कि अपनी शिक्षा के अन्त होने तक अपने आसपास वालों से [illegible] [illegible] छूट जाता है। गृह–जीवन में उसे आनन्द नहीं आता। गांवों के दृश्य उसके लिए होना न होना बराबर है। खुद उसीकी सभ्यता उसे निःसत्व, जंगली, अन्धभक्ति से भरी हुई और सारे अमली कामों के लिए निकम्मी, बताई जाती है। यह शिक्षा इस ढंग से दी जाती है कि विद्यार्थी अपनी परम्परागत संस्कृति से बिछुड जाता है। पर, इतना होने पर भी, आज जो शिक्षित लोग पूरी तरह राष्ट्रीयता से हीन नहीं हो गये हैं उसका कारण यही है कि उनके दिल में प्राचीन संस्कृति की जड इतनी गहरी जम चुकी है कि जिस से वह, उसकी बढती को रोकनेवाली शिक्षा के द्वारा भी, बिलकुल नष्ट नहीं हो सकती। यदि मेरा वश चलता तो मैं अवश्य ही आज की बहुतेरी पाठ्य–पुस्तकें जला डालता और ऐसी

पाठ्य-पुस्तकें विद्यार्थी की गृह-जीवन से सम्बन्ध रखने वाली और उसके अनुरूप हों, जिससे लडका ज्यों ज्यों उन्हें पढे त्यों त्यों अपने नजदीकी सम्बन्ध रखने वालों की ओर अधिक आकर्षित होता जाय।

दूसरे, और देशों के विषय में चाहे जैसा हो, भारत में तो, जहां के ८० फी सदी से भी ज्यादह लोग खेती करनेवाले और १० फी सदी उद्योग-धन्धा करनेवाले हैं, केवल साहित्यिक शिक्षा देना और लडके-लडकियों को अपने आगे के जीवन में हाथ से काम करने के अयोग्य बनाना हर हालत में एक जुर्म है। मेरी तो बेशक यह धारणा है कि जब कि हमारा अधिकांश समय अपनी रोजी कमाने के उद्योग में जाता है, हमारे बालकों को लडकपन से ही ऐसे परिश्रम को गौरव की दृष्टि से देखने की शिक्षा दी जानी चाहिए। हमारे बालकों को ऐसी शिक्षा तो हरगिज न दी जाय जिस से वे मिहनत को हिकारत की नजर से देखने लगें। कोई वजह नहीं कि एक किसान का लडका मदरसे में तालीम पाकर निकम्मा बन जाय और खेती के लिए मिहनत न करे। हमारे मदरसों के लडके हाथ का काम करना बुरा समझते हैं। यह दुःख की बात है। पर गनीमत है कि वे उससे घृणा नहीं करते हैं। इसके सिवा, यहां हिन्दुस्तान में, अगर हम यह उम्मीद करें, जैसी कि हमें जरूर करना चाहिए, कि मदरसा जाने योग्य उम्र का हरएक लडका और लडकी मदरसे जाय, तो आज की प्रथा के अनुसार उनकी शिक्षा के लिए खर्च करने के साधन हमारे पास नहीं हैं और न करोडों माता-पिता उतनी फीस ही देने के लायक हैं, जो आज लगाई जाती है। इसलिए शिक्षा को यदि अधिक व्यापक-सार्वत्रिक-करना हो तो फीस न लगानी चाहिए। मेरा ख्याल है कि आदर्श शासन-व्यवस्था में भी हम २० करोड रुपये जो कि तमाम मदरसे जाने लायक उम्र के लडके-लडकियों की शिक्षा के लिए दरकार हैं, खर्च न कर सकेंगे। इस से यह नतीजा निकलता है कि हमारे बालक जो कुछ शिक्षा ग्रहण करें उसका सारा या अधिकांश भाग "परिश्रम" के रूप में अदा करें। और ऐसा सार्वत्रिक काम जो कि फायदेमन्द हो (मेरे ख्याल में तो) हाथ-कताई और हाथ-बुनाई ही हो सकता है।

परंतु मेरे कथन की सिद्धि के लिए यह कोई महत्व की बात नहीं है कि हम सूत कताई का ही अवलम्बन करें अथवा किसी दूसरे काम को करें, बशर्ते कि उससे उतना लाभ होता हो। लेकिन जाँच करने पर ऐसा ही मालूम होगा कि दूसरा कोई धन्धा ऐसा नहीं है जो कपडा बनाने सम्बन्धी क्रियाओं से बढ कर अमली, और फायदेमन्द हो और जो बहुत बडे आकार में किया जा सकता हो तथा सारे हिन्दुस्तान के मदरसों में चलाया जा सकता हो।

हमारे जैसे दरिद्र देश में हाथ से काम करने की तालीम से दुहेरा काम बनेगा। एक तो उससे हमारे बालकोंकी शिक्षा का खर्च निकलेगा और दूसरे, वे एक ऐसा धन्धा सीख जायंगे जिसपर वे अगर चाहें तो आगे की जिन्दगी में अपना सहारा रख सकते हैं। ऐसी प्रणाली से हमारे बालक अवश्यही आत्मावलम्बी होंगे। और दुनिया में कोई वस्तु ऐसी नहीं जो हमारे राष्ट्र को इतना नीतिभ्रष्ट कर दे जितना कि हमें मेहनत-मजदूरी से घृणा करने की शिक्षा दिये जाने से हो सकता है।

अब हृदय की शिक्षा के सम्बन्ध में एक बात कहे देता हूँ। मैं नहीं मानता कि यह पुस्तकों के द्वारा दी जा सकती है। यह तो सिर्फ शिक्षक के प्राणप्रेरक सहवास के ही द्वारा मिल सकती है। और, आरम्भिक तथा माध्यमिक पाठशालाओं में भी, शिक्षक कौन लोग होते हैं? क्या उन पुरुष और स्त्रियों में श्रद्धा और चारित्र्य होता है? क्या खुद उन्होंने हृदय की शिक्षा पाई है? क्या उनसे यह उम्मीद भी की जाती है कि वे अपने सिपुर्द किये गये लडकों और लडकियों के स्थायी गुणों पर ध्यान रक्खें? नीची कक्षाओं के मदरसों के लिए मुदर्रिस तजवीज करने की रीति क्या शील या चारित्र्य के लिए एक बडी भारी बाधा नहीं है? क्या शिक्षक गुजर के लायक भी तनख्वाह पाते हैं? और यह बात तो हम जानते ही हैं कि प्राइमरी स्कूलों में मुदर्रिसों का चुनाव उनकी देशभक्ति को देख कर नहीं होता है। वहां तो सिर्फ वही लोग आते हैं जिनकी रोटी का सहारा कहीं दूसरी जगह नहीं होता है।

अब रही शिक्षा के माध्यम की बात। इस विषय पर मेरे विचार इतने प्रकट हैं कि यहाँ उनके दोहराने की जरूरत नहीं। इस विदेशी भाषा के माध्यम ने लडकों के दिमाग को शिथिल कर दिया और उनकी शक्तियों पर अनावश्यक जोर डाला, उन्हें रट्टू और नकलची बना दिया, मौलिक विचारों और कार्य्यों के लिए अयोग्य कर दिया और अपनी शिक्षा का सार अपने परिवार वालों तथा जनता तक पहुचाने में असमर्थ बना दिया है। इस विदेशी माध्यम ने हमारे बच्चों को अपने ही घर में पूरा पक्का परदेशी बना दिया है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का यह सबसे बडा दुःखान्त दृश्य है। अंगरेजी भाषा के माध्यम ने हमारी देशी-भाषाओं की बढती को रोक दिया है। यदि मेरे हाथ में मनमानी करने की सत्ता होती तो मैं आज से ही विदेशी भाषा के द्वारा हमारे लडके और लडकियों की पढाई बन्द कर देता, और सारे शिक्षकों और अध्यापकों से यह माध्यम तुरन्त बदलवाता या उन्हें बरखास्त कराता। मैं पाठ्य-पुस्तकों की तैयारी का इन्तजार न करता। वे तो परिवर्तन के पीछे पीछे चली आ-

लेगी। यह खराबी तो ऐसी है, जिसके लिए तुरन्त इलाज की जरूरत है।

विदेशी माध्यम के मेरे इस अटल विरोध का फल यह हुआ है कि लोग मुझ पर एक अनुचित आरोप मढ़ते हैं। वह यह कि मैं विदेशी संस्कृति या अंगरेजी भाषा पढ़ने के खिलाफ हूं। यंग इंडिया में अक्सर मैं ने यह प्रतिपादन किया है कि मैं अंगरेजी को अन्तर्जातीय व्यापार और कुटिल नीति की भाषा मानता हूं और इसलिए उस के ज्ञान को हम में से कुछ लोगों के लिए आवश्यक समझता हूं। यंगइंडिया के पाठकों की नजर से यह गुजरा ही होगा। हां, मैं यह मानताहूं कि उस में कुछ अत्यन्त सुन्दर विचारों का और साहित्य का संग्रह है। अतएव जिन लोगों को भाषा-शास्त्र की ईश्वरी देन हो उन्हें मैं जरूर उसके ध्यान-पूर्वक अध्ययन के लिए उत्साहित करूंगा और उनसे यह अपेक्षा करूंगा कि वे अपने देश के लिए उसकी ज्ञान-राशि को देशी भाषाओं के द्वारा प्रकट करें।

मैं यह नहीं कहता कि दुनिया से अलग रहो या उसके और अपने बीच में रुकावट खड़ी कर लो। यह तो मेरे विचारों से बड़ी दूर भटक जाना है। परन्तु हाँ, यह मैं जरूर अदब के साथ कहता हूं कि दूसरी संस्कृतियों के गुण का ज्ञान और मान अपनी निजी संस्कृति के गुण के ज्ञान, मान और सद्रूपता के पीछे तो अच्छी तरह चल सकता है, पर आगे कभी नहीं। मेरा तो यह निश्चित मत है कि दुनिया में किसी संस्कृति का भाण्डार इतना भरा-पूरा नहीं है जितना कि हमारी संस्कृति का है। हमने उसे जाना नहीं है, हम उसके अध्ययन से दूर रक्खे गये हैं और उसके गुणको जानने और मानने का मौका हमें नहीं दिया गया है। हमने तो उसके अनुसार चलना करीब करीब त्याग ही दिया है। बिना आचार के कोरा बौद्धिक-ज्ञान वैसा ही है जैसा कि खुशबूदार मसाला लगाया हुआ मुर्दा। वह देखने में तो शायद सुन्दर दिखाई देता है परन्तु उसमें स्फूर्ति देने वाली या उदात्तता लाने वाली कोई भी बात नहीं। मेरा धर्म्म मुझे यह आज्ञा नहीं देता कि दूसरे की संस्कृति को तुच्छता या अनादर की दृष्टि से देखूं; उसी तरह वह इस बात पर भी जोर देता है कि खुद अपनी संस्कृति को भी मानो और उसके अनुसार चलो, अन्यथा आत्महत्या कर डालो।

[यं. इं. से] मोहनदास करमचंद गांधी

'स्वदेशी' में धोखेबाजी

देश-द्रोही और सोलह आना स्वार्थी मनुष्यों के बदौलत ही हमें गुलाम बनना पड़ा है और आज हम स्वार्थ-त्याग के लिए तैयार नहीं होते हैं। अतएव हम गुलाम बने रहने के ही योग्य हैं। आजकल स्वदेशी-प्रचार का काम जोरोशोर से चल रहा है। पर इस समय भी ठग लोग अपनी करतूत से बाज नहीं आते। वे तो अपना काम बना ही रहे हैं। बम्बई में कुछ लोग विलायती सड़ी गली बनात, विलायती ही साटन और धागे की बनी टोपियां स्वदेशी के और मेरे नाम पर बेंच रहे हैं। ये टोपियां काली हैं। अतएव स्वदेशी टोपी पहनने वालों को मैं सलाह देता हूं कि वे सिर्फ सफेद और खादी की ही टोपी पहना करें। सफेद टोपियों में जितनी शोभा, स्वच्छता और सुविधा है उतनी रंगीन टोपियों में नहीं। ये टोपियां हमेशा धोई जा सकती हैं। काली टोपियों में मैल लगी रहती है और बदबू निकला करती है। पसीना लग लग कर वे गंदी हो जाती हैं। सफाई का ख्याल रखने वाला तो उन्हें पहन ही नहीं सकता। जिस टोपी में चमड़ा लगा रहता है उसका असर दमाग पर भी अच्छा नहीं होता। हिन्दुओं को तो चमड़ेवाली टोपियां पहनना गवारा ही कैसे हो सकता है? हाँ, अंगरेज लोग भी चमड़ेवाली टोपियां देते हैं। परन्तु वे तो सिर्फ उसी वक्त पहनते हैं जब घरसे बाहर होते हैं। फिर वे बदलते भी बार बार हैं। परन्तु हम लोग तो बरसों तक एक ही टोपी देते हैं और दिन भर सिरपर रक्खे रहते हैं। चमड़े वाली टोपियां या पगड़ियां ऐसों के तो काम आनी ही न चाहिए। खादी की टोपी साफ और हलकी होती है। इससे वह बिल्कुल निर्दोष है। फिर मोटी से मोटी खादी का इससे बढ़ कर उचित उपयोग और क्या हो सकता है कि उसकी टोपियां बनाई जायं? जो सिर से पैर तक खादी पहनने का प्रेमी है उसे पहले सिर से ही 'श्री गणेश' करना चाहिए। इस खादी की टोपी को क्या धनी और क्या निर्धन, सभी पहन सकते हैं। धनी लोग खादी की टोपी को हमेशा धोयेंगे, उस पर बेल-बूटे कढ़ायंगे, उस में ज्यादा सहें लगवायेंगे। इतना फेरफार चाहे भले ही हो, पर टोपियां तो सब के सिर पर एक ही तर्ज की होनी चाहिएं। यह विचार उपेक्षा करने योग्य नहीं। आखिरी फैसला तो यही होना चाहिए कि अकेली खादी की टोपी ही स्वदेशी मानी जाय। ऐसी टोपीके लिए किसी छाप की जरूरत नहीं। स्वदेशी टोपी तो ऐसी होनी चाहिए कि उसे बालक भी पहचान सके। जिस प्रकार हम अपने दमाग से दिखाव और ढकोसला निकाल कर स्वराज्यवादी हो सकते हैं उसी प्रकार हमारी टोपियों में से भी दिखाव और ढकोसला दूर हो जाना चाहिए। जो लोग स्वदेशी के नाम पर विदेशी टोपियां बेचते हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि आप अगर ईमानदारी के साथ अपना रोजगार न कर सकते हों तो कम से कम देश-हित के काम में तो बेइमानी करने से बाज आइए। चोर भी अपनी एक नीति बनाकर चोरी करते हैं। वे आपस में चोरी नहीं करते। कोई गरीबों को छोड़ देते हैं। आज सारे देश में एक महायज्ञ हो रहा है। तो क्या इसमें से हम अपनी नीच स्वार्थ साधने का विचार रखने की नालायकी से अपने को नहीं बचा सकते? लोगों से तो मैं यही कहूंगा कि जो लोग इस तरह लोगों को धोखा देते हैं उनकी दूकान का तो सर्वथा बहिष्कार करना ही उचित है।

यह तो 'स्वदेशी टोपी' की बात हुई। अब 'स्वदेशी तालकलाक' की कथा सुनिए। शिमला से एक पत्र मुझे मिला है। उसमें लिखा है कि कुछ लोग जपानी तालकलाक पर से जापान का नाम काट

कर उसे फिरसे धो कर और बम्बई की छाप लगा कर स्वदेशी के नामसे बेचते हैं और कुछ मिलें भी इस काम में शरीक हैं। मुझे आशा है कि इस समय मिलों के मालिक तो देश के साथ दगाबाजी करने में कदम न बढ़ावेंगे। इस शुद्ध आन्दोलन के समय तो देश उनसे सहायता की ही आशा रखता है।

पर खरीदारों को भी सचेत रहने की जरूरत है। यदि लोग महीन कपडे पहनने का मोह छोड देंगे तो धोखा होने की कम सम्भावना रहेगी। तरह तरह की मांडी लगे माल का त्याग करनेसे भी लोग अपने आप स्वदेशी माल को परख लेंगे। इन सब झंझटों से छुटकारा पाने का उपाय है बिना धुली हुई खादी। हर गांव अपनी जरूरत भर खादी खुद ही बना ले तो कोई किसी को धोखा नहीं दे सकता।

मिलों के मालिक स्वदेशी-हलचल में जितनी सहायता कर सकते हैं उतनी दूसरे कोई नहीं कर सकते। अहमदाबाद के मिलमालिकों ने तिलक स्वराज्य-फण्ड में दान दे कर अपना नाम उज्वल किया है। श्रीयुत अम्बालाल साराभाई ने भाव न बढाने का तथा छोटी छोटी दुकानें खोल कर सस्ते भाव में फुटकर खरीदारों को माल बेचने का निश्चय किया है और मिलमालिकों की कीर्ति बढाई है। वे अ-सहयोग से भय खाते हैं; इसलिए हम उनकी पूरी सहायता न प्राप्त कर सके। जिस समय अ-सहयोगी अपने संयम के द्वारा सब को अ-भय कर देंगे तब मैं आशा करूंगा, कि वे अ-सहयोग में भी पूरी तरह शामिल हो जायंगे। इस बीच उनका यह निश्चय कि भाव न बढाया जायगा, निस्सन्देह बहुत सहायता देगा। मुझे आशा है कि दूसरे मिल-मालिक श्रीयुत अम्बालालजी का अनुकरण कर के स्वदेशी-प्रचार में सहायक होंगे।

कपडे के व्यापारी तो मुझसे यहां तक कहते हैं कि मिल-मालिकों को केवल भाव न बढाना चाहिए, इतना ही नहीं, बल्कि आज भी उनके भाव हद से ज्यादा, जापान की मिलों से भी ज्यादा, बढे हुए हैं। सो मालिकों को इस विषय में विचार करके कोई निर्णय अवश्य करना चाहिए।

देश की जरूरत को जान कर उन्हें परदेश के आर्डर भी कम लेना चाहिए। सूत भी यहां से बहुत बाहर जाता है। उसमें आवश्यक घटा-बढी की जानी उचित है। तथापि इस विषय में ज्यादा विचार करने की जरूरत रहेगी। हमें यह जान पडेगा कि जबतक बाहर वालों को हमारे माल की जरूरत रहेगी तब तक तो हमें उन्हें वह पहुंचाना ही होगा। परन्तु हमारी बात इंग्लैंड से जुदी है। इंग्लैंड का जो व्यापार हमारे साथ है उसमें एक प्रकार का बलात्कार रहा है। हमारे व्यापार में ऐसा कभी नहीं हो सकता। विदेशों के साथ हमारे व्यापार का विषय तो भिन्न और नाजुक है। तथापि तीन बातों के विषय में तो सन्देह नहीं। अफीम का व्यापार बिल्कुल अनीतिमय है। इसमें भारत-सरकार ने जो अनीति की है उसमें हमने पूरा पूरा भाग लिया है। चीन को हानि पहुंचाने का पाप हमारे माथे जरूर ही रहेगा। जहां तक हिन्दुस्तान की जरूरत पूरी न हो वहांतक अनाज और रुई बाहर जानी ही न चाहिए। उसके बदले हमारा बहुत सा अनाज लडाई के समय में भेजा जा चुका है। रुई के सम्बन्ध में हम कितना बडा अपराध कर रहे हैं इसकी पूरी खबर अभी पीछेसे पडेगी।

मिल के मालिकों से आखिरी मदद जो चाही जाती है वह माल की शुद्धता के विषय में है। वे परदेशी सूत का माल देशी कह कर न बेचें। हद से ज्यादा मांडी न लगावें। मुझे आशा है कि मिलमालिक विचार करके ऐसा निर्णय करेंगे जिससे देश के हित की रक्षा होगी।

[नवजीवन से] मोहनदास करमचंद गांधी

स्व-राज्य

स्वराज्य का अर्थ है अपना राज्य-हरएक आदमी का राज्य। परन्तु प्रत्येक मनुष्य कैसे राज्य प्राप्त कर सकता है? हर आदमी अगर राजा हो जाय तो फिर नौकर कौन होगा? मुझे तीन साल में या सात साल में एक बार प्रतिनिधि चुनकर लोक सभा में भेजने का अधिकार मिल जाने से क्या वह स्व-राज्य हो सकता है? वह तो स्व-प्रतिनिधि-राज्य है। यवन-यूनानी-लोगों के नगर-राज्यों में हर घर का बुजुर्ग लोक-सभा में शरीक होता था। क्या ऐसे राज्य को हम स्वराज्य कहेंगे? यवन लोग बहुतेरे काम गुलामों से कराते थे, इसी से निगम सभा में-नागरिक लोगों की सभा में-आकर बैठने की फुरसत बूढे लोगों को मिलती थी। ऐसा तो हम कर ही नहीं सकते। इतने वर्षों तक गुलामी में रहने के बाद तो दूसरों को गुलाम बनाये रखने की दुष्ट-पापी-इच्छा हमारे हृदय में प्रवेश कर ही नहीं सकती। जब हम अपनी आज की स्थिति का विचार करते हैं तब हृदय से अपने आप यह उद्गार निकल पडते हैं कि-"प्रभो, हमारे जैसी दुर्दशा हमारे जानी दुश्मन की भी न भोगनी पडे।"

तो, अब, स्वराज्य किसे कहना चाहिए? स्वराज्य तो मध्यम मार्ग है। जब हम किसी के गुलाम अथवा मालिक बनने से इन्कार करें, बस तभी हमारे लिए स्वराज्य है। जिन पर दूसरे हुकूमत करते हैं अथवा जो दूसरों पर हुकूमत करते हैं वे दोनों गुलाम हैं। संस्कृत-साहित्य में ऋण के दो भेद बताये गये हैं-उत्तम ऋण (लेना) और अधम ऋण, (देना) उसी प्रकार हम साम्राज्य का भोग करने वाले को उत्तम गुलाम कहें और पराधीन रहने वाले को अधम गुलाम। जिसने इन दोनों सिरों का त्याग कर दिया है वही स्वराज्य का उपभोग करता है। जो न खुद अत्याचार करता है और न उसे सहन करता है वही स्वराज्यवादी है। बकरा जुल्म को सहन करता है और शेर जुल्म करता है-इस से दोनों का नाश ही जाता है। हमें इन दोनों दशाओं से मुक्त होना चाहिए। यह किस तरह? आज हम स्वराज्य की तैयारी कर रहे हैं। आत्मशुद्धि करना चाहते हैं। इस में हमें दोनों तरफ से अपने जीवन की जाँच करनी चाहिए। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि जालिम और गुलाम ये एक ही मनुष्य के दो जुदा जुदा स्वरूप हैं। एक ही सिक्के की दो बाजुएं हैं। एक बाजू का नाश कर दें तो दूसरी बाजू अपने आप नष्ट हो जायगी-जुल्म करने की इच्छा छोड दें तो जुल्म को बरदाश्त करना असह्य हो जाता है। उसका विरोध करना सहल हो जाता है। वह स्वभाव बन जाता है।

हमारी शक्ति और सम्पत्ति की तादाद बराबर होनी चाहिए। शक्ति की अपेक्षा सम्पत्ति बढ जाने से दूसरे लोग हमारी सम्पत्ति पर बुरी निगाह डालते हैं और शक्ति की अपेक्षा सम्पत्ति कम हो जाय तो दूसरों की सम्पत्ति को हम बुरी नजर से देखने लगते हैं। इसी रीति से हमारे और अंगरेजों के सम्बन्ध की नीव पडी है। बैल और हाथी दास बनकर सेवा करने के लिए तैयार हो जाते हैं; इसी लिए लोग उन्हें पकड कर गुलाम बनाते हैं। भेडिया और बाघ हिंसक बन कर हमें खाजाते हैं; इस लिए हम उनको मार डालते हैं। दुनिया में दूसरे ऐसे असंख्य पशु-पक्षी पडे हुए हैं जो न तो हमारी सेवा करते हैं और न हमें कष्ट ही पहुँचाते हैं। वे आराम से अपने अपने स्थान पर रहते हैं-क्यों कि वे स्वराज्य-भोगी हैं।

स्वराज्यका अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्रता के योग्य हो जाय। समाज की उन्नति होने अथवा लोगों के व्यवहारके बेरोक चलने के लिए किसी न किसी तन्त्र-व्यवस्था-की तो आव-

स्पष्टता हुई है। इस तन्त्र का महत्व स्वयं समझ कर यदि मनुष्य बरते तो बाहरी नियम की जरूरत ही नहीं रह जाती। यदि मनुष्य स्वयं उस तन्त्र को न समझ सके तो जो उसको जानते है वे उसे अपने हाथ में लेते हैं-बस यहीं से परतन्त्रता शुरू होती है। ईश्वर की यह इच्छा स्पष्ट है कि प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्रता को पहचान कर स्वतन्त्र हो जाय। ईश्वर की दृष्टि में तो मनुष्य जब अयोग्य हो जाता है तभी परतन्त्र होता है और दूसरों को भी अयोग्य बनाता है। अतएव परतन्त्र होना एक प्रकार की सजा ही है। नहीं, पाप है। परतन्त्र रहना ईश्वर का अपराध करने के बराबर है। परतन्त्र मनुष्य को तो ईश्वर की निष्फलता ही कहना चाहिए।

(गुजरातीसे अनुवादित) अध्यापक कालेलकर

स्वदेशी से स्वराज्य

इस परिवर्तनशील ससार में एकसी दशा किसी की भी नहीं रहती। सुख, दु ख, स्वतन्त्रता, परतन्त्रता चक्र के समान घूमती हैं। इस कालचक्र के चक्कर मे पडकर इस के प्रवाह मे जो बह जाता है वह कहां जाकर ठहरेगा इसका कोई नियम नहीं है। इस लिये अपने को इस प्रवाह के बहाव से बचाना हरएक का धर्म है। राष्ट्रो के इतिहास में ऐसा एक समय आता है जो परीक्षा का समय कहलाता है। दुनिया मे एक ऐसा समय आता है जो युगान्तर-काल कहा जाता है। जो राष्ट्र इस युगान्तर-काल का लाभ उठाता है वह सुखी रहता है। भारत, जिसका पुनरुत्थान कुछ समय पहिले असंभव समझा जाता था, अब ईश्वरकी कृपा से जाग उठा है। देश के आगे इस समय युगसधि आ उपस्थित हुई है। स्वतन्त्रता और गुलामी की सधि पर हम आ पहुचे है। एक तरफ गुलामी का नरक है दूसरी ओर स्वतन्त्रता का स्वर्ग है। किन्तु उस स्वर्ग मे पुण्यात्मा लोग ही जाते है, यह शास्त्रोंका कथन है। पुण्यात्मा या पापी की परीक्षा की अग्नि स्वर्ग के आगे जल रही है। उस मे प्रवेश कर परीक्षा दिये बिना स्वतंत्रता नहीं मिलेगी। उस स्वराज स्वर्ग-स्वातन्त्र्य स्वर्ग के आगे दुखो की, दमननीति की अग्नि जल रही है। देखे, भारतवर्ष की प्रजा इस अग्नि से डरती है या परीक्षा में पास होती है। यदि प्रजा इन दुखों, कष्टों और दमन से डर गयी और वर्तमान स्थिति का सीमोल्लघन न किया तो उसके लिये अनत काल तक नरक निवास है। वह गुलामी में सडती रहेगी। इस गुलामी से तो मरना भला है। भारतमाता अपने पुत्रो की ओर देख रही है कि मेरे बच्चे क्या करना चाहते है। देशमाता चाहती है कि, मेरे पुत्र इस अग्नि मे कूद निर्मल स्वर्ण के समान होकर निकले।

भारतवर्ष सचमुच इस समय एक महान परिवर्तन के काल से-विप्लव के काल से-युगान्तर के काल से होकर गुजर रहा है। थोडे से समय के अदर भारत मे बडा फेरबदल हो गया है। देशने स्वतन्त्रता के मार्ग पर कदम बढाया है। जैसे हिंदुधर्म में पर्वकाल का माहात्म्य है और वह पर्वकाल बार २ नहीं आता, वैसे ही देशों के इतिहास में भी पर्वकाल आता है। इस समय से लाभ उठाना चाहिये। समय की अनुकूलता से, लाभ लेने का इतिहास मे बडा माहात्म्य है। इस से प्रत्येक भारत पुत्र का फर्ज है कि, वह इस पुण्यकाल में-असहयोग पर्व में-माताकी सेवा में कुछ हाथ बटावे। स्वतन्त्रता की प्राप्ति का फर्ज-अदा करे। भारतवासी मातृभूमि के सेवा-कार्य को सात्विक ईर्ष्या से सम्पन्न हो कर उठावें। तो भारत का स्वराज, जैसे म. गांधी चाहते हैं, वैसे बिल्कुल संभव है। आवश्यकता यह है कि राष्ट्र-कार्य में व्यक्ति अपना कर्तव्य समझ ले और उसका पालन करे।

व्यक्ति-समूह से राष्ट्र बनता है। राष्ट्र की श्रेष्ठता व्यक्ति के जीवन की श्रेष्ठता पर आश्रय रखती है। प्रत्येक व्यक्ति जब तक अपने व्यक्तित्व का बडा अंश संकट-काल में राष्ट्र को अर्पण न करेगा तब तक राष्ट्रोद्धार होना असंभव है। व्यक्ति के उत्तम चरित्र पर समाज और राष्ट्रका चारित्र्य आधार रखता है। किसी भी देश की तरक्की तब तक नहीं हो सकती जब तक देशवासी अपना फर्ज अदा नहीं करते। जब तक देशवासियों के मन में गुलामी से नफरत पैदा नहीं हुई है तब तक वह देश आजाद नहीं हो सकता। यह नियम संसार के सभी देशों पर लागू है। जहां २ गुलामी का घर है या था, वहां के देशभक्तों ने सबसे पहिले देशवासियों की मनोवृत्ति के परिवर्तन का काम शुरू किया है। देशकी दुर्दशा का दिग्दर्शन पहिले प्रजा को कराया जाता है जिस से उस ओर प्रजाका ध्यान जाता है और वह विचार करने लगती है, तब प्रजा के आगे स्वराज का दु ख-मोचन मन्त्र रखा जाता है। लोग जब दु खनाश के लिये स्वाधीनता या स्वराज के सिवा दूसरा उपाय नहीं देखते तब वे उस स्वराज के लिये कदम बढाते हैं। जिस समय लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन और स्वराज्याकांक्षा प्रबल हुई, तो, उस समय संसार की किसी भी महाशक्ति में सामर्थ्य नहीं है जो उसके मार्ग में रुकावट डाल सके। यह ऐतिहासिक सत्य है। फ्रांस, रूस, जर्मनी और अमेरिकादि देश इसके उदाहरण है।

अब देश के सामने जो कार्यक्रम रखा गया है वह सचमुच स्वराज के निकट ले जाने वाला है। वह है स्वदेशी। लोकमान्य तिलकने स्वराज-गीता के मन्त्र "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है" द्वारा अपने अर्धशताब्दि से ऊपर के जीवनमें प्रजा मे स्वराजाकांक्षा उत्पन्न की, पर वे अब इस लोक में नहीं है। आपने स्वराज के उपाय स्वदेशी बहिष्कार, राष्ट्रीय-शिक्षा का उपदेश दिया था। अब महात्माजी ने इन कामोंको उठाया है। उन्होंने सफलतापूर्वक काम चलाया है। उन्होंने स्वराज-मन्त्र का विधायक भाग स्वदेशी हाथ में लिया है। महात्माजी कहते हैं कि "स्वदेशी मेरे जन्म का कर्तव्य है। मैं उसके द्वारा स्वराज हासिल करूंगा"। इसके लिये राष्ट्र म गांधीजी का आभारी रहेगा।

इस व्यापारी गवर्नमेंट के मुकाबले में हम स्वदेशी को तभी बढा सकते है जब हरएक देशनिवासी स्वदेशी को अपना कर्तव्य समझे। देश के प्रत्येक व्यक्ति के स्वदेशी का अंगीकार किये बिना स्वदेशी नहीं टिकसकेगी और स्वराज भी नहीं मिलसकेगा। स्वदेशी का व्यक्तिगत भाव से अंगीकार करने से विपक्षियो के कितनेही आक्षेप निर्मूल हो जाते है। इससे प्रत्यक्ष रूप में किसी को भी हानि नहीं पहुंचती। अपना कर्तव्य पालन करते हुए यदि किसी की हानिभी मालूम हो तो उसमें कर्तव्य-पालक का कोई दोष नहीं है। वह किसी पर जबर्दस्ती नहीं करता। यदि भारत का प्रत्येक व्यक्ति स्वदेश-प्रेम से प्रेरित हो कर विदेशी वस्त्रों और वस्तुओं का बिलकुल त्याग करे, तो स्वदेशी के पालन में कोई रुकावट नहीं हो सकती। इससे चाहे मैन्चेस्टर वाले कितना भी कपडा सस्ता करें पर स्वदेशी के व्यक्तिगत पालनसे उनके किये कुछ नहीं होगा। न विदेशी कपडों की दूकानों पर पिकेटिंग आदि की आवश्यकता होगी। अतएव प्रजाको अवश्य स्वदेशी-व्रतका पालन करना चाहिए।

इन्द्रराज शर्मा

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, सूकी ओक, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित ॥

विनाश की मीमांसा

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रतिका ,, -)॥
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ } अहमदाबाद—भाद्रपद शुक्ल ८, संवत् १९७८, शुक्रवार, तारीख ९ सितम्बर, १९२१ ई० { अंक ४

टिप्पणियाँ

अब की कांग्रेस कैसी होगी ?

["महासभानी तैयारी" नामका एक लेख, महासभा के कार्य्य-कर्ताओं के लिए सूचना के तौर पर, श्री गांधीजी ने "नवजीवन" में लिखा है। हिन्दी-भाषी प्रान्तों के लोग भी यह जानने को उत्सुक हो रहे होंगे कि इस बार महासभा की तैयारी किस तरह होगी। इसलिए उसका कुछ अंश यहां दिया जाता है।—उप-सम्पादक]

बहुत वर्षों के बाद अहमदाबाद में महासभा की बैठक फिर से होने वाली है। फिर इस बार की महासभा भी औरोंसे बिल्कुल निराले ही ढंग की होगी। नया सङ्गठन, नई आशा, नया युग! अगर महासभा अपने सम्बन्ध में किये हुए प्रस्ताव के अनुसार चलेगी—अर्थात् अगर जनता अपनी की हुई प्रतिज्ञा का पालन करेगी तो हम लोगों को वहां इसलिए इकट्ठा होना है कि स्वराज्य का उत्सव मनावें। परन्तु ऐसा सु-अवसर कहीं इन बाकी के चार महीनों में आ सकता है? बरसों की बेड़ियां कहीं एक छिन में टूटती हैं?

इसका जवाब इस शङ्का के अन्दर ही है। हाँ, अगर किसी बीमार को अच्छा होना हो तो जरूर कुछ वक्त दरकार होता है; पर बीमार को अगर अपने मर्ज का सिर्फ वहम ही हो तो वह, अगर जाना होगा तो, छिन में ही छू हो जायगा। जब वह जायगा तो छिन में ही जायगा। दस साल पहले जिसके बेड़ियां पड़ी है उसकी बेड़ियां टूटने का जब वक्त आता है तब क्या तोड़ने की क्रिया में बहुत कुछ वक्त दरकार होता है? बस, बात सिर्फ हमारे भय के भागने की है। किसी की आंखों पर पट्टी चढ़ा दी गई और वह अन्धा बना दिया गया। अब, उसकी पट्टी के खुलते ही वह तुरन्त देखने न लगेगा तो और होगा क्या? हां, अगर बन्धन को तोड़ने की शर्तें कठिन होतीं, तो कुछ आगा-पीछा सोचने की जरूरत थी। पर अटल शर्तें तो सिर्फ तीन ही हैं—१-हिन्दू-मुसलमानों की एकता, २-शान्ति का पालन और ३-स्वदेशी का व्यवहार।

पहली दो शर्तों को पालने के लिए, सिर्फ दिल के बदलाव की जरूरत है और स्वदेशी के पालन के लिए जान-बूझ कर कुछ त्याग करने की। इसमें न तो पैसे की इतनी ज्यादह जरूरत है, न भारी तालीम की और न तलवार अर्थात् पशु-बल की। परन्तु यह लेख मैं यह बताने के लिए नहीं लिखने बैठा हूँ कि स्वराज्य इस साल में मिलेगा ही, अथवा वह किस तरह मिल सकता है। इस लेख का हेतु तो यह बात अमली तौर पर विचारना है कि अगली महासभा को सफल बनाने के लिए अहमदाबाद को और गुजरात को क्या करना चाहिए।

(इसके बाद मिहमानों की सुविधाओं के लिए क्या क्या इन्तजाम करने की जरूरत है, यह दिखलाते हुए श्री गांधीजी लिखते हैं—)

इस वक्त हम रहने धरने और खान-पान का इन्तजाम एक ही ढंग का कर सकेंगे और वह भी हिन्दुस्तानी ढंग का। मैं तो समझता हूँ कि महासभा के मैदान में हम लोग अंग्रेजी ढंग से रहने वाले मिहमानों के लिए कोई तजवीज न कर सकेंगे। हमें पहले ही से खबर दे देना चाहिए कि जो लोग सिर्फ अंगरेजी ढंग से ही रहना चाहेंगे, उनकी सुविधा की जिम्मेवारी लेने से महासभा लाचार है। उन्हें हम यहां के होटलों का नाम ठाम लिख कर भेज दें, बस, इतना ही काफी समझा जाना चाहिए।

परन्तु हिन्दुस्तानी व्यवस्था तो हमे ऊंचे दरजे की करनी चाहिए। आजकल तो यह माना जाता है कि हिन्दुस्तानी व्यवस्था के मानी है—गंदगी और अंगरेजी व्यवस्था के मानी है—सफाई। पर नियम असल में यह होना चाहिए कि जितनी ही अधिक सादगी, उतनी ही अधिक सफाई और जितना ज्यादह ढोंग-ढकोसला उतनी ही ऊपरी शान-बान और अन्दर मैलापन। परन्तु अपने आजकल के बरताव में हमने सादगी के साथ गंदगी को मिला दिया है। हमे इसमें से बाहर निकलना होगा।

टट्टी-पखाने का इन्तजाम, आम तौर पर, बहुत ही खराब होता है। हमें पखानों की तादाद बहुत रखनी होगी और उनको साफ रखने के लिए भी आवश्यक व्यवस्था करनी होगी। अगर अकेले मेहतरों पर ही हमारा दारोमदार रहा तो हम जितनी चाहिए उतनी सफाई न रख सकेंगे। हम अगर छूआ-छूत की बुराई से बाहर निकल आये होंगे तो हमें पाखाना साफ करने में कोई दिक्कत न आनी चाहिए। पखानों के लिए गड्ढे खोदना होंगे और अगर हम सूखी मट्टी के बड़े बड़े ढेर तैयार रक्खेंगे तो साफ करने में जरा भी कठिनाई न होगी। मेरी तो यह सलाह है कि

हिन्दू, उर्दू, गुजराती, वगैरह जितनी भाषाओं में हमसे हो सके, इस विषय की सूचनायें अगर निकाली जायें तो वे प्रतिनिधियों में बांटी जा सकेंगी।

(फिर पेशाब, स्नान, भोजन, पान की व्यवस्था की रूप-रेखा बताते हुए अन्त में आप लिखते हैं—)

एक सूचना अभी से करदेने की इच्छा मुझे हो रही है। गुजरात के सब प्रतिनिधि स्वयंसेवक हो जायें। दूसरे स्वयंसेवकों की तो जरूरत हमें होगी ही, परन्तु गुजरात के प्रतिनिधि सेवक बनकर हर तरह के इन्तजाम की देख-भाल करें और खुद सेवा लेने का हक छोड दें तो हमारी मेहमानदारी बहुत चमक उठे। यदि हम चाहते हों कि कहीं भी अ-व्यवस्था न हो तो हम सब को पूरी तरह सेवक बन जाना चाहिए।

हमें यह आशा रखनी है कि सब मिल कर एक लाख लोग जमा होंगे और ऐसी आकर्षक साधन-सामग्री भी हमें जुटानी होगी।

म्युनिसिपल्टी में खादी

रायपुर (मध्यप्रान्त) की म्युनिसिपल्टी में नीचे लिखे प्रस्ताव बहुमत से पास हुए हैं-

(१) १ अगस्त, १९२१ से म्युनिसिपल मदरसों के तमाम लडकों को खादी का कोट या कुरता और खादी की टोपी, यह राष्ट्रीय पहनाव, पहनना चाहिए।

(२) तमाम म्युनिसिपल मदरसों और दफ्तरों में १ अगस्त, १९२१ को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की बरसी के उपलक्ष में तातील रक्खी जाय।

(३) कमिटी अपने तमाम नोकरों से उम्मीद करती है कि वे देशी कपडा बरतेंगे।

(४) म्युनिसिपल्टी के नौकर-चाकरों को खादी की वर्दी दी जाय।

रायपुर की म्युनिसिपालिटी ने बडी दानाई के साथ अपने अख्त्यारात को बरता है। इसमें कोई शक नहीं कि हर एक म्युनिसिपल्टी, पूरी असहयोगवादी हुए बिना भी, असहयोग के तमाम विधायक स्थायी अङ्गों को अपना सकती है। ऊपर के प्रस्तावों में ऐसा एक भी प्रस्ताव नहीं है जिससे कोई भी किसी प्रकार अपने को मुस्तसना कर सके। जो म्युनिसिपल्टी स्वदेशी को अपनावेगी, अपनी कार्रवाई अपने प्रान्त की भाषा में करेगी, दबी हुई जातियों को ऊपर उठावेगी, शराब की बिक्री तथा वेश्याओं के धन्धे को बन्द करेगी, वह मानों राष्ट्रीय शुद्धि के काम में मदद देगी। और, तभी यह कहा जा सकेगा कि हाँ, म्युनिसिपल्टी हो तो ऐसी हो।

(यंग इंडिया)

भूल-सुधार

"हिन्दी-नवजीवन" के तीसरे अङ्क में राष्ट्रीय शिक्षा नाम के लेख में (पृ० २१, कालम १, सतर २८) २० करोड रुपये की जगह पाठक दो अरब रुपया बना लेने की कृपा करें।

उप-सम्पादक।

श्री इन्दौर-राज्य-प्रजा-परिषद् की पहली बैठक ११-१२ सितम्बर को इन्दौर शहर में होगी।

डिब्रूगढ़ (आसाम) में

गांधीजी का भाषण

भाइयो,

आज आसाम में हमारी आखिरी रात है। कल हम आसाम छोडकर सिलहट चले जायेंगे। आसाम से जो कुछ कहना था सो हम लोगों ने अबतक कह दिया है। और, इसके पहले कि मैं अब और कुछ कहना शुरू करूँ, आपसे यह जानना चाहता हूँ कि चाय के बागीचों में काम करने वाले मजदूरों में से कितने लोग यहां आये हैं। यदि मेरी आवाज आप लोगों तक पहुँचती है तो जो मजदूर लोग यहाँ पर आये हों वे अपना हाथ ऊंचा उठा दें। मैं देखता हूं कि इस जलसे में बहुत कम मजदूर आये हैं।

मुझे उम्मीद थी कि यहां पर मजदूर भाइयों से भी मेरी मुलाकात हो जायगी। मैंने अपनी जिन्दगी के कमसे कम बीस साल आफ्रिका में, मजदूरों के साथ, बिताये हैं। हिन्दुस्तान में भी मैं जहाँ जहाँ जाता हूँ, मजदूरों की जानकारी रखता हूँ। आसाम में मजदूरों की हालत कैसी है, यह मैं नहीं जानता। लीडरों के प्रतिनिधियों से कल मैं बात-चीत कर लूँगा। परन्तु मैं उम्मीद करता था कि, उसके पहले, मैं अपने मजदूर भाइयों से भी गुफ्तगू कर लूँ। मैं जिस काम के लिए इस तरफ आया हूं उसने मेरा इतना वक्त ले लिया कि मैं बागीचे में जाकर मजदूर भाइयों से बातचीत न कर सका। इस बात का मेरे मनमें अफसोस ही रह जायगा। परन्तु इस अफसोस के साथ आसाम को छोडता हुआ भी मैं इस ख्याल से शान्ति रख रहा हूँ कि जिस कार्य को मैंने हाथ में लिया है उसमें यदि ईश्वर सफलता दे दे तो फिर मजदूरों के पास जाना ही न पडे। हिन्दुस्तान के लोगों का दुःख मिट जाना चाहिए अन्यथा स्वराज्य के कोई मानी नहीं हैं। एक छोटे से छोटा मजदूर या चाय के बागीचे में काम करने वाली कुमारी, काश्मीर से ले कर कन्या कुमारी तक, आजादी के साथ घूम-फिर सके और एक भी बदमाश उसे तकलीफ न दे सके, ऐसा स्वराज्य जबतक न होगा तबतक वह "स्वराज्य" हो ही नहीं सकता। यह जो लडाई शुरू है इसका कारण यही है कि अंगरेजी राज से हिन्दुस्तान का भला नहीं हुआ है। अब मैं छोटी छोटी बातों में फंस नहीं सकता। मैं कुछ दिनों तक ऐसा समझता था कि मुहब्बत के साथ सब कुछ अच्छा हो जायगा। परन्तु पञ्जाब के अनुभव से और मुसल्मानों के साथ जो इन्साफ के नाम पर अत्याचार किया गया है उससे मैं समझ गया कि ऐसा अन्याय दूसरी सल्तनत में नहीं हो सकता। और तभी से मैं इस सल्तनत को "शैतानी" सल्तनत कहने लगा।

अगर हम शैतानियत को मिटाना चाहते हैं, यदि मजदूरों के दुःखों को कम करना चाहते हैं और औरतों पर के अत्याचारों को नष्ट करना चाहते हैं तो कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो हमें रोक सके।

हमारा विश्वास यदि खुदा पर कम न होता तो हिन्दुस्तान में कङ्गाली नहीं आ जाती।

हमारी लडाई दुश्मनी की नहीं है। परन्तु हम किसी की सरदारी कुबूल करना नहीं चाहते। ईश्वर के सिवा और किसी को हम अपना सरदार नहीं समझते। यही स्वराज्य के मानी हैं, जिस सल्तनत में खुदा का खौफ जाता है, अत्याचार किये जाते हैं, झूठे वादे भेजे जाते हैं, उसके मुताबिक करना हराम समझना चाहिए। इसलिए हम इस सरकार को मदद-

कभी से न्याय नहीं चाहते, उनके मदरसों में लड़के पढ़ाना नहीं चाहते और इसी को हम उनके साथ असहयोग कहते हैं। हम किसी को दंगा-फिसाद के लिए नहीं कहते। हम ईश्वर का नाम ले कर, शान्ति से स्वराज्य ले सकते हैं, और मुसलमानों के घावों को सुखा सकते हैं।

'आत्मशुद्धि' क्या चीज है; यह हमको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। शराब पीना छोड़ दो, गांजा पीना और अफीम खाना छोड़ दो। रण्डीबाजी छोड़ दो। मैं मजदूरों की आदतों से खूब वाकिफ हूं। आपको जो आठ नौ रुपया महीना मिलता है, उससे आप सुख और चैन से नहीं रह सकते। आप जो शराब पीते हैं सो दुःख को भूल जाने के लिए पीते हैं। परन्तु दुःख मिटाने का सीधा सा उपाय तो यह है कि आप दुःख को सो सहन करें; पर गैर-इन्साफ के साथ कोई जालिम सजा दे तो उसको सहना चाहिए। हिन्दुस्तान ने इस उसूल को अभी अच्छी तरह नहीं समझा है। जब मैं यह समझ लूँगा कि हिन्दुस्तान को इसका पूरा इल्म हो गया है, बस उसी दिन हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो सकता है। आज हिन्दुस्तान में कानून का सविनय भङ्ग शान्तिपूर्वक करने की ताकत नहीं है। मुझे आशा है कि वह ताकत अक्तूबर के पहले आ जायगी। परन्तु यह ताकत शराब पीने से, रण्डीबाजी करने से, नहीं आ सकती। इसलिए शराब पीना छोड़ दो, रण्डीबाजी छोड़ दो। इसका बड़ा गहरा अर्थ है। आप यदि गन्दी चीज से सम्बन्ध रखना नहीं चाहते तो आप खुद शुद्ध हो जाइए।

हमको पता नहीं है कि हमारा देश परदेशी व्यापार से—शराब और अफीम पीने से भी—कितना अधिक गिर गया है। हमने इसकी गन्दगी और पाप की ओर नजर नहीं फेंकी। मेरे प्यारे भाई एण्ड्रयूज साहब भी मुझसे पूछते हैं कि खुलना में कहत के होते हुए भी आप विलायती कपड़ा क्यों जलाते हैं? हमें पता नहीं है कि परदेशी कपड़ा पहनना कितना गुनाह है। आत्मशुद्धि के लिए, और दुनिया को आत्मशुद्धि की पहचान बताने के लिए, विदेशी कपड़ा छोड़ देना चाहिए। हिन्दुस्तान यदि इतना कर सके तो अक्तूबर तक वह आजाद हो सकता है।

डिब्रूगढ़ के मारवाड़ी भाइयों को मैं नम्रता-पूर्वक कहना चाहता हूं कि आप यदि आसाम की सेवा करना चाहते हैं, यदि धर्म की सेवा करना चाहते हैं—और मैं जानता हूं कि आपमें धर्म की सेवा का ज्ञान है और धर्म के लिए प्रेम भी है—तो परदेशी कपड़े का व्यवहार छोड़ दें!

मुझे दुःख है कि आसाम की इस आखिरी रात को डिब्रूगढ़ में परदेशी कपड़ा जलाने के पवित्र काम करने की कोई तजवीज नहीं की गई। दुःख की बात है कि डिब्रूगढ़ इतना भी यज्ञ नहीं कर सकता। क्या आप लोग मैल को भी जलाने से डरते हैं?

आप यदि मजदूरों के दुःख को मिटाना चाहते हैं, स्त्रियों की पवित्रता और हिन्दुस्तान की प्राचीन सभ्यता की रक्षा करना चाहते हैं तो परदेशी कपड़ा जला दीजिए। इतनी दूर दूर से मजदूर लोगों को यहां पर क्यों आना पड़ता है? इसका कारण मैं यही समझता हूं कि उन्होंने चरखा छोड़ दिया है। किसान लोगोंने भी चरखा छोड़ दिया है। इनको खेती से काफी पैदावार नहीं होती। इसलिए १० लाख लोग बाहर से आसाम में आये हैं। यह हमारे पाप की निशानी है।

"हमको ईश्वर परमेश्वर हमको परदेशी कपड़े का त्याग करने की और हमारी स्त्रियों की लाज रखने की शक्ति दे," ऐसी प्रार्थना करता हुआ मैं अपना भाषण खतम करता हूं।

हिन्दी नवजीवन

शुक्रवार, भाद्रपद शु. ८ सं. १९७८.

मोपलाओं में अशान्ति

मलाबार में एकाएक जो अशान्ति फैल गई है उसकी थोड़ी-बहुत खबरें, यहां ठेठ ईशान्य कोण में भी, मुझे मालूम हुई हैं। यह लेख मैं जन्माष्टमी के दिन रेलगाड़ी में बैठे हुए लिख रहा हूं। जबतक यह पाठकों के हाथ में पहुंचेगा तबतक और भी बातें प्रकट हो जायंगी। तो भी जो खबरें अबतक मालूम हुई हैं उनसे निकलने वाले सिद्धान्तों का विचार तो, अगले समाचारों में कमोबेशी होने पर भी, हम कर सकते हैं।

मोपला लोग मुसलमान हैं। उनकी नसों में अरब लोगों का खून बहता है। कहते हैं कि उनके बाप-दादे, कितने ही वर्षों पहले, अरबस्तान से आ कर मलाबार में बस गये थे। मिजाज उनका बड़ा तेज है। मजहब के बड़े कट्टर माने जाते हैं। जरा सी बातमें बिगड़ कर लड़ पड़ते हैं। बड़े बड़े खून उनके हाथों हुए हैं। उनको वश करने के लिए, बहुत बरस पहले, एक खास कानून भी बनाया गया था। उनकी आबादी दस लाख गिनी जाती है। यह जाति अपढ़ किन्तु बहादुर है। मौत का तो उन्हें डर ही नहीं। जब लड़ाई पर निकलते हैं तब पीछे पांव न हटाने की कसम खा कर ही निकलते हैं। इससे, कहा जाता है कि वे मारते या खून करते जरा भी नहीं हिचकते। उन्हीं के लड़ पड़ने के डर से जनाब याकूब हसन रोके गये थे और फिर पीछे से कैद भी कर दिये गये थे। इस बार वे क्यों बिगड़ खड़े हुए, यह बात अभी तो साफ साफ मालूम नहीं हुई है। कहते हैं कि उन्होंने सरकारी नौकरों को मार डाला है। और खुद उनमें से कोई ५०० आदमी मारे गये हैं। यह भी सुनते हैं कि उन्होंने कितने ही मकानों को जला डाला और लूट भी लिया। कालीकट तथा उसके ऊपर के हिस्से में आजकल फौजी कानून जारी है।

इस तरह अभी मलाबार में प्रगति रुक गई है और सरकार की बन बैठी है। सरकार तो ऐसे बलवों को दबाने की कला खूब जानती है। कितने ही बे-गुनाह लोग मर चुके होंगे और मरेंगे। सरकार को बुरा कौन कहेगा? और कहे भी तो सरकार उसे सुनने क्यों लगी?

जो अशान्ति को रोके अथवा शमन कर सके वही सरकार है। मलाबार ने दिखा दिया कि हम अ-सहयोगियों का प्रभाव अभी पूरा पूरा नहीं जमा। जो लोगों को अपने वश कर सके वही सरकार है। हम तो लोगों को एक ही रीति से वश कर सकते हैं और वह है शान्ति।

अशान्ति के अथवा मार-काट के द्वारा हम विजय प्राप्त करना चाहें तो भी इच्छित काम करने की ताकत हममें होनी चाहिए। उस शक्ति को प्राप्त करने के लिए हमें क्या करना चाहिए, यह सोचना फजूल है; क्योंकि इस उपाय से फतेह हासिल करना हमारी बुद्धि और अनुमान के बाहर की बात है।

पर यह तो साफ दिखाई देता है कि हमारी शान्ति भङ्ग हो गई। दो प्रतिकूल वस्तुयें एक दूसरी के साथ नहीं चल सकतीं। एक तरफ से शान्ति और दूसरी तरफ से अशान्ति हो तो इसमें किसी की भी जीत नहीं हो सकती।

यह तो पक्की बात है कि हम मोपलाओं के ऊपर असर न डाल सके । उनके दिल का इतना बदलाव नहीं हुआ कि जिससे वे कभी अशान्त न हों । उनकी अशान्ति तो हमको धोका देने वाली है, हमारी प्रगति को रोकती है।

अब, जो लोग यह मानते है कि हमारी फतेह तो शान्ति के ही द्वारा हो सकती है, उन्हें यही समझना चाहिए कि अशान्ति को हमें अपने दिल की तह में भी स्थान नहीं देना है।

दूसरे प्रान्तों को भी अपने कर्तव्य के पालन में एक दिल से जुट जाना चाहिए। एक प्रान्त भी अगर पूरी कोशिश करे तो इसी साल में स्वराज्य स्थापित करना नामुमकिन नहीं । अगर दूसरे प्रान्त पिछड जावँ और सिर्फ एक ही प्रान्त पूरी तरह से अ-सहयोग करे तो भी मैं इसी साल में स्वराज्य प्राप्त करना बिल्कुल सम्भवनीय मानता हूं । परन्तु, हाँ, दूसरे प्रान्तों में, अथवा किसी एक ही प्रान्त में, अशान्ति के जारी रहने पर भी, एक ही प्रान्त के शान्त साहस से, मैं यह दावेके साथ कहने की हिम्मत नहीं करता कि, स्वराज्य मिल ही जायगा । विघ्न तो मैं बहुतेरे देखा करता हूं; परन्तु फिर भी अपने कर्तव्य पर बिल्कुल पक्के तौर से मेरी नजर है । हम अधिक संयम रक्खें, अधिक शुद्ध हों, अधिक जाग्रत या सचेत रहें, अधिक कुरबानियां करें । दोनों शक्तियों की दिशायें जुदी जुदी हैं । इसलिए जब हमारी शान्ति का बल अधिक होगा तभी हमारी गाडी आगे चल सकती है । एक छकडा के चार बैल हों और उनमें से एक मर जाय या छूट निकले तो उसका बोझ बाकी के तीन बैलों को उठाना पडता है । परन्तु अगर चार में से एक छूट या मर तो नहीं जाय, बल्कि उलटा घूम जाय—उलटे रास्ते जाने लगे, तो फिर बाकी के तीन बैलों का काम केवल इतना ही नहीं रहेगा कि एक का बोझा उठावें, वरन् उस उलटा चलने वाले के उपद्रव को रोकने की शक्ति भी प्राप्त करें। इस तरह सच्चे असहयोगियों का बोझ अब औरभी बढ गया है ।

मैं तो यह बराबर देखता हूं कि हमारे रास्ते में भारी से भारी विघ्न सरकार की तरफ से नहीं, बल्कि खुद हमारी ही तरफ से आते हैं । हमारी उलटी गति, हमारी ना-समझी, हमारे काम में जितनी अधिक रुकावट डालती है उतनी सरकार की उलटी गति हमें नहीं रोकती है। यदि सरकार की विपरीत गति को हम समझ लें तो तो हम आगे बढ जायँगे। परन्तु स्वयं अपनी कमजोरी और उलटी गति के बदौलत हम पीछे हटेंगे। सच है, आत्माही हमारा शत्रु है और मित्र भी है। इस शत्रु को जीतने में ही शान्तिमय असहयोग की पूरी विजय है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

ग्राहक होने वालों को सूचना

जिन स्थानों में "हिन्दी नवजीवन" की फुटकर बिक्री एजंटों के द्वारा होती है वहां के निवासियों को चाहिए कि वे वहीं से अंक प्राप्त कर लिया करें । यहां ग्राहक होकर डाकखाने से अंक मंगाने में उन्हें और हमें दोनों को असुविधा होती है । पर उस दशा में यदि ग्राहकों को अंक मिलने में गडबड हो तो उसकी शिकायत वे कृपा करके हम से न करें ।

मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेजिए । हमारे यहां वी. पी. का नियम नहीं है । एजन्सी के लिए नियम मंगाइए ।

व्यवस्थापक—"हिन्दी नवजीवन"
अहमदाबाद.

विनाश की मीमांसा

श्रीयुत एण्ड्रयूज साहब ने मुझे एक बड़ा ही करुणा पैदा करने वाला और सुन्दर पत्र लिखा है । उसे मैं यहां देता हूं । आशा है कि पाठक उसकी कद्र करेंगे ।

"मैं यह बात जानता हूं कि आप जो विलायती कपडा जलाते हैं वह गरीबों को मदद पहुंचाने के ख्याल से जलाते हैं। मगर मैं समझता हूं कि इसमें आपने गलती की है। अगर विलायती कपडों के पूरे, या ज्यादातर बहिष्कार में आप को सफलता मिली तो मुझे यह स्वयंसिद्ध मालूम होता है कि मिल के बने कपडे की कीमत बढ जायगी और इससे गरीबों को धक्का पहुँचेगा । लेकिन इसके सिवा, यह 'विदेशी' शब्द जाति-विरोध का सूक्ष्म भाव झलका देता है और, मैं समझता हूँ कि इसको उत्तेजना देने के बजाय रोकने की ही आवश्यकता है। आपके हाथों उस भारी ढेर के, जिसमें बढिया बढिया और सुन्दर कपडे थे, जलाये जाने का चित्र देखकर मेरे दिलको गहरा धक्का पहुँचा। ऐसा जान पडता है कि जिस विशाल सुन्दर जगत् के हम एक अङ्ग हैं उसका ध्यान हम भुला रहे हैं और स्वार्थवश हो कर केवल भारत को अपना लक्ष्य बना रहे हैं। मुझे अन्देशा है कि यह प्रवृत्ति फिर से हमे उसी पुराने मतलबी वाहियात राष्ट्रीय-वाद तक खींच ले जायगी । अगर ऐसा हुआ तो हम भी उसी पाप-पूर्ण घेरे में पहुँच जायंगे—कूप-मण्डूक हो जायंगे जिसमें से निकलने का प्रयत्न आज, योरप, इतनी मायूसी के साथ, कर रहा है। लेकिन मैं इसपर वादविवाद नहीं कर सकता। फिर भी मैं यह तो कह सकता हूं कि इससे मेरा दिल दहल उठा है और मुझे तो यह प्रायः हिंसा का ही एक रूप नजर आता है, यद्यपि मैं यह जानता हूँ कि हिंसा से आपको कितनी चिढ है। विदेशी कपडे के प्रश्न को धर्म्म के अन्दर घुसेडने की बात को मैं बिल्कुल पसन्द नहीं करता ।

"जिस समय आप बडे बडे मुख्य नैतिक दोषों पर जैसे कि शराबखोरी, नशा-पत्ता, छुआछूत, जाति का घमण्ड, इत्यादि पर जोर का वज्रपात कर रहे थे, जिस समय आप वेश्यावृत्ति के घृणित पाप को दूर करने का प्रयत्न, अपने हृदय की उस अनोखी और सुन्दर कोमलता के साथ, कर रहे थे तब उसे देख कर मुझे परम सुख होता था। लेकिन यह विलायती कपडों की होली का जलाना और लोगों से यह कहना कि विदेशी कपडों को पहनना पाप है, अपने ही साथी पुरुषों और स्त्रियों—दूसरे देश के अपने ही भाइयों और बहनों—के हाथ की बढिया कारीगरी को आग में झोंक देना-यह कह कर कि इनको पहनना अपवित्र होता है यह सब, मैं नहीं कह सकता, कि मुझे कितना भिन्न, कितना अटपटा मालूम होता है! क्या आप जानते हैं कि अब मैं आप के दिये खद्दर को पहननेसे से प्रायः चौंकता हूं? मुझे यह ख्याल होता है कि कहीं मैं अपने को एक "फैरिसी" की तरह, यह यह कहते हुए कि "मैं तुमसे ज्यादा पवित्र हूं" दूसरों से श्रेष्ठ न समझने लगूं। इससे पहले मेरे दिल में कभी ऐसा ख्याल नहीं उठा था ।

"यह तो आप जानते ही हैं कि जब जब मेरे दिलको किसी बात से चोट पहुंचती है तब तब मैं जरूर आपतक पुकार मचाता हूं। इस बात सेभी मुझे बडा दुःख हुआ है।

"मॉडर्न रिव्यू" के लिए मैंने जो लेख लिखे उन्हें मैंने बडे उत्साह और हर्ष के साथ भेजा है; क्योंकि मुझे यकीन हो गया था कि मैंने आपके मिशन के जीवन के रहस्य का पता

पा लिया है । परन्तु अब मेरा अन्तःकरण तक पहुंच कर पुकार मचाता है कि आपका यह काम हिंसा-पूर्ण, कुछ का कुछ और अस्वाभाविक सा हो रहा है। जब आपने अपने भाई को कुछ वैसा काम करते हुए पाया था तब आपका प्रेम उसके प्रति और भी बढ़ गया था। उसी तरह मेरे हृदय में भी इस समय प्रेम का भाव जोर के साथ उमड़ रहा है। मुझे बताइए कि इसमें आपका क्या हेतु है? "यंग इंडिया" में अबतक आपने जो कुछ कहा है उससे मेरा ज़रा भी समाधान नहीं हुआ।"

यह उनके स्वभाव का प्रतिबिम्ब ही है। जब कभी मेरे किसी काम से उनको व्यथा होती है (और यह ऐसा पहला ही मौका नहीं है) तभी आप मुझ पर इस तरह पत्रों की भरमार करते हैं। उत्तर का रास्ता तक नहीं देखते। क्योंकि यह तो हृदय से हृदय की और प्रेम से प्रेम की बातचीत है, बहस नहीं। यह एक व्यथित मित्र के हृदय का उभार है। और इसका कारण है विदेशी कपड़ों का जलाया जाना।

जो बात एण्ड्रयूज साहब ने प्रेम-भरी भाषा में कही है उसी को इससे पहले बहुत से लोग, जो मुझ से सहमत नहीं हैं, भद्दे, गुस्सा भरे, और ग्राम्य शब्दों में कह चुके हैं। एण्ड्रयूज साहब के शब्द, प्रेम और दुःख से भरे होने के कारण, मेरे दिल में गहरे पैठ गये हैं और पूरा उत्तर पाने के अधिकारी हैं। परन्तु जिन लोगों के शब्द क्रोध-भरे थे उन्हें वैसे ही अलग रख देना पड़ा—कहीं चलते चलते उन पर कोई बात कह दी तो भले ही। एण्ड्रयूज साहब के शब्दों में हिंसा का भाव नहीं है और वे प्रेम से सने हुए हैं। इसलिए वे मुझ पर असर कर गये हैं। दूसरे लोगों के शब्द हिंसायुक्त और डाह भरे थे। इसलिए कुछ भी असर न डाल सके और अगर मुझे उलट कर वैसा ही जवाब देने की आदत होती, या मैं उसके योग्य होता, तो उनके बदौलत गुस्सा-भरा ही जवाब मिलता। एण्ड्रयूज साहब का यह पत्र उस अहिंसा का नमूना है जो स्वराज्य को शीघ्र प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

यह बात तो विषय के बाहर थी। हां, विदेशी कपड़ों को जलाने की आवश्यकता के विषय में तो मेरा मत अब भी वैसा ही पक्का बना हुआ है। इसकी क्रिया में जाति-विरोध पर कहीं भी जोर नहीं है। किसी पवित्रता के पाबन्द रहने वाले और उत्कृष्ट परिवार में अथवा मित्रों की मण्डली में भी मैं ठीक ऐसा ही करता। मैं जो कुछ करता हूं या जिसके करने की सलाह देता हूं उसे मैं एक अचूक कसौटी पर कसता हूं। वह यह है की आया यह काम मेरे अज़ीज़ और नज़दीकी लोगों के लिए फ़ायदेमन्द होगा? और इस विषय में मैंने जिस अपने प्रिय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है वह अचूक और निर्भ्रान्त है। चाहे मित्र हों चाहे शत्रु, मुझे तो सबके साथ एकही सा रहना चाहिए। और यही विश्वास इस बात का कारण है जो मुझे अपने ऐसे कितने ही कार्यों पर यकीन होता है जिनसे अक्सर मेरे मित्र उलझन में पड़ जाया करते हैं।

मुझे याद है कि मैंने एक दफ़ा एक बड़ी अच्छी दूरबीन को समुद्र में फेंक दिया था। क्योंकि उसके सबब से मेरे एक प्यारे मित्र में और मुझमें बराबर बहस-मुबाहसा हुआ करता था। पहले पहल तो वे भी हिचकिचाये, लेकिन फिर उन्होंने समर्थन किया कि हां, इस कीमती और सुन्दर चीज़ का भी नाश कर देना ठीक ही था, यद्यपि वह एक मित्र के द्वारा नज़र की गई थी। तजरिबे से मालूम होता है कि बड़े से बड़ा बढ़िया तोहफा भी, अगर वह हमारी नैतिक उन्नति में बाधा डालता है तो, उसको ही नष्ट कर डालना चाहिए—ज़रा भी हिचकिचाने की अथवा नुकसान की पूर्ति का ख्याल करने की ज़रूरत नहीं। अगर घर की कीमती से कीमती भी पुरानी चीज़ों में प्लेग के जन्तु फैल जायं तो उन्हें 'स्वाहा' कर देना क्या हमारा पवित्र कर्तव्य नहीं हो जाता है? मुझे याद पड़ता है कि जब मैं नौजवान था, मैंने खुद अपनी धर्मपत्नी की प्रेमभरी चूड़ियां टुकड़े टुकड़े कर डाली थीं। क्योंकि उनके बदौलत हमारे बीच में भेद-भाव होता जाता था। और, अगर मुझे ठीक ठीक याद होता है तो वे चूड़ियां उसकी मां की दी हुई थीं। मैंने यह काम घृणा या द्वेष के वश होकर नहीं, बल्कि प्रेम-वश किया, यद्यपि अब अपनी पकी उम्र में मैं देखता हूं कि वह प्रेम प्राकृत प्रेम था। इस विनाश ने हम को सहायता दी और हमारी जुदाई दूर की।

हां, अगर तमाम विदेशी चीज़ों पर ज़ोर दिया गया होता तो तो यह बात जाति का विरोध करने वाली, संकीर्णता-युक्त और शरारत-भरी होती। बल्कि ज़ोर तो सिर्फ तमाम विलायती कपड़ों पर दिया जाता है। दुनिया की तमाम भिन्नता बन्धन से उत्पन्न होती है। मैं यह नहीं चाहता कि अंगरेज़ी 'लिवर वाच' या सुन्दर जापानी वार्निश भारत में न आने पावे। लेकिन मुझे योरप की उम्दा से उम्दा किस्म की शराब ज़रूर नष्ट करनी होगी, फिर चाहे वह कितने ही परिश्रम और कितनी ही ख़बरदारी के साथ क्यों न बनाई गई हो। शैतान का जाल बड़ी माया के साथ बिछा रहता है और जहां कार्य्य और अकार्य्य का भेद इतना सूक्ष्म रहता है कि उसका पहचानना कठिन होता है तहां तो वह बहुत ही मोहोत्पादक हो जाता है। भेद तो फिर भी वैसाही दृढ़ और अमिट बना हुआ है। ज़रा सी उसकी सीमा का उल्लंघन हुआ नहीं कि बस, निश्चयपूर्वक मौत समझिए।

भारत में आज जाति-विरोध विद्यमान है। बड़ी ही कोशिशों के बाद लोगों के दुर्विकारों—दुर्भावों की गति को रोक रखना सम्भवनीय हुआ है। आम तौर पर लोगों के दिल बुरे भावों से भरे हुए हैं। इसका कारण यह है कि वे कमजोर हैं और अपनी कमजोरी को निकालने का उपाय बिल्कुल नहीं जानते। उनके इसी दुर्भाव को मैं मनुष्यों पर से हटाकर वस्तुओं की ओर ले जा रहा हूँ।

विदेशी कपड़े के प्रेम या मोह के ही बदौलत यहां विदेशियों का आधिपत्य हुआ, मुफलिसी आ गई और इससे भी बुरा और क्या होगा, कि कितने ही घरों की लाज भी जाती रही! पाठक, शायद, यह बात न जानते होंगे कि थोड़े ही दिन पहले, काठियावाड़ के "अछूत" बुनने वाले ज़रूरत देखकर, बम्बई की म्युनिसिपल्टी में मेहतरों का काम करने लगे। और अब इन लोगों का जीवन इतना कठिन होगया है कि बहुतेरे लोग तो अपने बालबच्चों से हाथ धो बैठते हैं और उनकी नीति नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। कुछ लोग तो इतने बेबस हो गये हैं कि अपनी बेटियों, और बीवियों तक, की लाज को जाते हुए अपनी आंखों देखते हैं, पर कुछ कर नहीं सकते। पाठक जानते होंगे कि गुजरात में इस श्रेणी की बहुत सी औरतें, कोई घर-धन्धा न होने के कारण, आम सड़कों पर काम करने के लिए लाचार हुई हैं और वहां वे, किसी न किसी ढंग के दबाव से, अपनी इज्जत को बेंचने पर मजबूर होती हैं। पाठक यह भी न जानते होंगे कि पञ्जाब के स्वाभिमानी बुनने वालों को जब कोई पेशा न रहा तो उन्होंने, बहुत बरसों की बात नहीं है, तलवार हाथ में ली और अपने अफसरों के हुक्म पर स्वाभिमानी और बे-गुनाह अरबों का संहार करने के लिए वे एक हथियार बन गये। और यह उन्हें अपने देश के लिए नहीं,

...लिए रोगियों के लिए करना पड़ा! और अब इन बढ़ते हुए अर्थशास्त्रियों को समझा कर इस खूनी पेशे से छुड़ाना कठिन मालूम होता है। जो पेशा किसी ज़माने में उनको एक इज्ज़त का और कारीगरी का मालूम होता था आज वही उन्हें बदनामी करने वाला दिखाई देता है। जब ढाका के जुलाहे आबे-रवाँ-शबनम-बिल्लाल मलमल बनाते थे तब तो वे 'बदनाम' नहीं समझे जाते थे।

तो, क्या, अब यह कोई ताज्जुब की बात है जो मैं विदेशी कपड़े को छूना पाप समझूँ? क्या उस मनुष्य के लिए, जिस का मेदा बहुत कमजोर पड़ गया है, भारी भोजन करना 'पाप' नहीं होगा? क्या ऐसे खाने को उसे नष्ट न कर देना चाहिए? अथवा फेंक न देना चाहिए? अगर मेरा लड़का बीमार पड़ा हो और उसे भारी भोजन करना बिलकुल मना हो परन्तु फिर भी वह उसे खाना चाहे तो, मैं जानता हूं कि उस समय मुझे उस अन्न को क्या करना चाहिए। उसकी हवस छुड़ाने के लिए मैं, उसे हजम करने की ताकत होते हुए भी, खुद उसे न खाऊंगा और उसके सामने उस को नष्ट कर दूंगा, जिससे कि उसके खाने का पाप उसे अच्छी तरह जँच जाय।

यदि विदेशी कपड़े का जलाना, ऊँचीसे ऊँची नैतिक दृष्टि से, अकाट्य सिद्धान्त हो तो स्वदेशी कपड़े की कीमत बढ़जाने के अन्देशे से हमको घबड़ा न जाना चाहिए। यह अग्नि-संस्कार माल की उत्पत्ति को उत्तेजना देने का तेज से तेज उपाय है। बस, एक ही दीर्घ प्रयत्न और इन अग्निसंस्कार के द्वारा हिन्दुस्तान को, उसपर जबरदस्ती लादी गई सुस्ती और अकबाहट से चैतन्य करना है। आसाम गजेटियर के रचयिता मि० अलेन ने १९०५ में कामरूप के विषय में लिखा था—

"इधर कुछ वर्षों से लोग विदेशी कपड़े को पसन्द करने लगे हैं। यह परिवर्तन ऐसा है जिसका समर्थन नहीं किया जा सकता। क्यों कि जो समय पहले करघों पर बिताया जाता था उसमें अब कोई दूसरा उपयोगी काम-धन्धा नहीं किया जाता।"

आसामियों से मैंने यह बात कही और उन्होंने भी, बहुत नुकसान उठाने के बाद, इन बातों की सत्यता का अनुभव किया। हिंदुस्तान के लिए विदेशी कपडा वैसा ही है जैसा कि शरीर के लिए विजातीय द्रव्य है। हिन्दुस्तान को आरोग्य-लाभ करानेके लिए विदेशी कपडे को दियासलाई दिखाना उतना ही आवश्यक है जितना कि शरीर-स्वास्थ्य के लिए विजातीय द्रव्य का नाश करना आवश्यक है। एक बार जहां आपने स्वदेशी की तुरन्त आवश्यकता को मान लिया कि फिर सिवा अग्नि-संस्कार किये छुटकारा नहीं।

और न हमें इसी बात से डरना चाहिए कि सर्वांश पूर्ण स्वदेशी-भावना का विकास करते हुए हम कहीं सङ्कीर्णता और दूसरे लोगों से अपने को अलग रखने की भावना की उन्नति न कर बैठें। बात यह है कि दूसरों की पवित्रता की रक्षा करने के पहले हमको स्वयं अपने शरीर को भोग से होने वाले विनाश से बचाना चाहिए। भारत आज एक बिल्कुल निर्जीव पिण्ड है, जो दूसरों की इच्छा के अनुसार चलन-वलन करता है। आत्मशुद्धि-आत्मसंयम और आत्म-विराग के द्वारा उसमें प्राण का सञ्चार होने दीजिए और वह स्वयं अपने लिए तथा सारी मनुष्य-जाति के लिए एक वरदान-रूप होगा। पर अगर लापरवाही के साथ उसे भोग-लिप्त, लड़ाका, और लोभी होने दिया और फिर उसका उत्थान हुआ तो वह कुम्भकर्ण के सदृश सर्वसंहार के लिए होगा और वह अपने तथा मनुष्य-जाति के लिए शाप-रूप ही जायगा।

और जो मनुष्य स्वदेशी में दृढ़ विश्वास रखता है उसे तो खादी पहन कर इस खयाल से सन्तुष्ट न होना चाहिए कि मैं औरों से श्रेष्ठ हूं। 'फैरिसी' अर्थात् अपने को श्रेष्ठ बताये रखने वाला, तो सद्गुण का आश्रयदाता है। स्वदेशी के खयाल से जो खादी पहनता है वह तो उस मनुष्य की तरह है जो अपने फेफड़ों से काम लेता है। दूसरे लोग जो इसकी आवश्यकता या उपयोगिता के कायल नहीं हैं वे चाहे इसे बुरे भाव से करें अथवा बिलकुल इससे दूर रहें, पर हमें तो इसे एक स्वाभाविक और नित्य कर्म की तरह करना है।

[यंग इंडिया] मोहनदास करमचन्द गांधी

आसाम का दर्शन

देश और निवासी

आसाम का तो मैंने सिर्फ नाम ही सुना था। जब मैं विलायत में था तब मैंने मणिपुर की चढ़ाई की कहानी पढ़ी थी, और तब से मेरा यही खयाल हो गया था कि आसाम के लोग निरे जंगली होंगे। इससे मैंने अपने 'हिन्द-स्वराज्य' में उन्हें जंगली लिखा था! यह बात आसामी भाइयों को अखरती थी। हाकिमों ने उस वाक्य का दुरुपयोग भी खूब किया। और, जिस अज्ञानी ने आसामियों को जंगली लिखा, उसको भला आसामी लोग भी कैसे चाह सकते हैं? परन्तु लोग तो अब मनुष्य के हृदय को परखने लगे हैं; तब यह कैसे हो सकता है कि वे निर्दोष अज्ञान पर बुरा मानें! तथापि मैंने, अपनी इस भूल के लिए, सभा में लोगों के सामने सब से पहले ही माफी मांग ली। जब मैंने अपनी भूल का जिक्र किया तब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। क्योंकि वे तो माफी की उम्मीद ही नहीं करते थे।

आसाम के लोगों को जङ्गली कौन कह सकता है? कहने वाला ही मुझ जैसा जङ्गली होना चाहिए। जिनकी स्त्रियाँ सुन्दर से सुन्दर कपड़ा बुनती हैं और अपने हाथ का ही बुना कपड़ा पहनती हैं, उन्हें कौन जंगली मान सकता है!

गुजरात जिस तरह हिन्दुस्तान के पश्चिम में और विन्ध्याचल के दक्षिण में है उसी तरह आसाम ठेठ पूर्व और उत्तर में है। आसाम हिन्दुस्तान का ईशान्य कोना है। यहाँ से ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे तिब्बत जाने का रास्ता है और यहां से दक्षिण की ओर पहाड़ों मेंसे होकर ब्रह्मदेश जाने का पगडंडी रास्ता है। आसाम में जहाँ देखिए वहीं हरियाली ही हरियाली छाई हुई है। आसाम की एक पहाड़ी—चिरापूंजी—पर हिन्दुस्तान में सब से ज्यादह वर्षा होती है। हर साल औसत इसमें कोई ४९८ इंच पानी बरसता है। परन्तु १८६१ ईसवी में ८०५ इंच बरसा था और उसमें भी, अकेले जुलाई मास में ही, ३६६ इंच पानी हुआ था! साठ इंच से कम बरसात तो यहां कहीं नहीं होती। इस तरह, जहाँ एक तरफ तो घनी बरसात और दूसरी ओर ब्रह्मपुत्र जैसा नद, वहाँ हरियाली का क्या पूछना! फिर नदी के आसपास जहाँ तहाँ टेकड़ियां खड़ी हैं, इससे जहाँ जहां नजर फैलती है वहां बड़े ऊंचे ही ऊंचे दरजे का दृश्य दिखाई पड़ता है।

जिस मकान में हम लोग ठहराये गये हैं वह ठीक नदी के किनारे पर ही है। सामने नदी शान्ति के साथ बह रही है। 'शान्ति के साथ' शब्दों का प्रयोग मैंने जान-बूझ कर किया है। पानी खूब गहरा है। इससे उसमें जरा भी खलबलाहट नहीं दिखाई देती। ब्रह्मपुत्र में इतनी ताकत है कि बड़े बड़े स्टीमर साल में बारहों महीने चल सकते हैं। उसके जैसी [illegible] [illegible] है [illegible] और उसके जैसी शान्ति [illegible]

हमें स्वराज्य प्राप्त करने में जिस बात की देर लगे? हमें उसके पानी की [illegible] नहीं। हमें तो गहरे पानी की शान्ति और उसमें से प्रकट होनेवाले बल की जरूरत है।

आसाम में तरह तरह के पेडपौधे और मेवे फलते हैं। चाय तो यहीं हुई है। उसकी आमद तो, कौन जाने क्या हुआ है; पर नुकसान तो हम सब लोगों को मालूम है। आसाम में केले, अनन्नास, नारंगी [illegible] इत्यादि बहुतेरे फल होते हैं। आसाम में चावल की फसल खूब है।

लोग भोले-भाले और सीधे-सादे हैं। हिन्दू मुसलमान दोनों आसामी बोली बोलते हैं। आसामी भाषा बङ्गाली की बहन मानी जाती है। लिपि बङ्गाली है। मैं ज्यों ज्यों ज्यादा घूमता हूं त्यों त्यों यही देखता हूं कि अगर हिन्दुस्तान की सारी भाषायें देवनागरी लिपि में लिखी जाया करें तो इससे हमारी जातीयता को बहुत बडी ताकत मिले। लिपियां तो, बस, दोही हो सकती हैं—उर्दू और देवनागरी। आसामी, बङ्गाली, पञ्जाबी, सिन्धी इत्यादि भाषायें जो देवनागरी में लिखी जायें, तो उनके समझने में बहुत ही थोडी दिक्कत हो, इसमें कोई शक नहीं। ऐसा होने से इन सब भाषाओं के पढनेवालों का बहुत सा समय बच जाय और भाषा बडी सहल मालूम होने लगे।

पर यह तो मैं बीच में एक नया ही मसला छेड बैठा। आसाम के लोगों को और लोगों से सुखी कह सकते हैं। उनकी जमीन को बहुत जोतना नहीं पडता। नदी की धारायें खाद का मसाला देती रहती हैं। इससे लोग थोडी मिहनत से ही अपनी रोजी कमा सकते हैं। आसाम बडी देर बाद अंगरेजों के कब्जे में आया, जिससे उसमें 'सुधारों' का प्रवेश कम हो पाया है। इससे लोग अपना धन और आबादी कायम रख पाये हैं। आसाम के लोग मजदूरी तो करते ही नहीं। पर चाय के खेतों पर तो मजदूरों के बिना काम चल ही नहीं सकता। इसलिए संयुक्त प्रान्त से मजदूर बुलाये जाते हैं। यही कारण है जो मजदूरों के साथ अत्याचारों की कितनी ही बातें सुनाई देती हैं और इसीसे चांदपुर के जैसी घटना हो सकी।

आसाम में, पचास साल पहले, ऐसा जमाना था कि वहां के लोगों की तमाम जरूरतें वहीं पूरी हो जाती थीं। पाठक यह जानकर खुश होंगे कि आज भी आसाम में हरएक औरत बुनना जानती है। छोटे बडे सब घरों की स्त्रियां बुनना जानती हैं। वे पेशे के तौरपर बुनने का काम नहीं करतीं; बल्कि घर में जबजब फुरसत मिल जाती है तबतब वे बुनाई किया करती हैं। जो लडकी बुनाई नहीं जानती उसकी तो सगाई होना ही मुमकिन नहीं। जिस घर में मैं ठहरा हूं उसके मालिक बडे वकील हैं; पैसे की कमी नहीं; लेकिन उनकी ७० वर्ष की बूढी मां, और बहनें और बीबी सब कपडा बुनती हैं। उन्हें एक दस-ग्यारह साल की लडकी है। वह भी बुनाई करती है।

आसाम में रेशम भी अच्छा पैदा होता है। इससे वहां की औरतें रेशम और सूत दोनों बुनती हैं। उन पर अनोखे बेलबूटे भी काढ सकती हैं। पचास बरस पहले प्रत्येक स्त्री सूत भी कातती थी और बुनती भी थी। पर जब से अंगरेजी शासन-पद्धति ने अमल में पांव रक्खा तब से, उसके साथ ही, विलायती सूत भी वहां आ पहुंचा। इसी सूत ने सारा चौपट कर दिया! इसी सूत से ललचा कर औरतों ने कातने का काम छोड दिया। सौभाग्य से यह नियम था कि जो बुनना नहीं जानती वह शादी करने का भी हक नहीं रखती; इससे बुनने की कला कायम रह गई। जिन औरतों को महावरा है उनके लिए तो कातना सहल ही है। इससे अब फिर औरतों की आंखें खुली हैं और कातने का काम भी शुरू हुआ है। पर जिन दिनों आसाम में विलायती सूत का प्रवेश हुआ उन्हीं दिनों एक अंगरेजी अवलोकन-कर्ता ने यह टिप्पणी की थी कि विदेशी सूत का अंगीकार कर के इन स्त्रियों ने कुछ कमाया नहीं। क्योंकि उन्होंने कताई के बदले में किसी दूसरे उद्योग की तजवीज नहीं की।

आसाम में अब भी ४० हजार एकड जमीन में कपास पैदा होती है। यह रुई बडे ऊंचे दरजे की होनी चाहिए, क्योंकि इसकी जो पूनियां मुझे दिखाई गई थीं उन्हें देखकर मुझे आन्ध्र देश की पूनियों की याद आ गई। पूनियां बहुत ही साफ-सुथरी, मुलायम और बिना गर्द लगी थीं। मुझे एक कपडे का नमूना भी दिया गया था, वह भी इतना उम्दा था कि प्रायः आन्ध्र के कपडे की बराबरी करता था।

आसाम में आसामी भाषा बोलने वालों की आबादी ३७ लाख है। इनमें कम से कम १० लाख औरतें हैं। ये दसी लाख औरतें जो हिन्दुस्तान के लिए कातें और बुनें तो आसाम केवल अपने ही भर कपडा तैयार न करे, बल्कि सारे हिन्दुस्तान को बहुत सी खादी दे सके।

मालूम होता है कि आसाम में जातीय महासभा–कांग्रेस–के कार्य्यकर्त्ता लोग अच्छे हैं। जिनके यहाँ मैं ठहरा हूँ वे आसाम के 'सेनापति' घराने के हैं। पुराने बैरिस्टर हैं। भारी जमींदार हैं। कौन्सिल के मेम्बर भी थे। बहुत सार्वजनिक सेवायें की हैं। अब वे पक्के असहयोगी हैं। मन्त्री हैं-श्रीयुत बारडोलाय। वे भी पुराने वकील हैं। घरबार और जमीन-जायदाद वाले हैं। आपने भी पूरा असहयोग किया है। आसामी वकीलों की संख्या ७८ है। उनमें से १५ लोगों ने वकालत छोड दी है और सब के सब असहयोग के काम में लगे हुए हैं। उनके साथ कोई ५०० स्वयंसेवक हैं। उनमें बहुतेरे कालेज छोड चुकने वाले हैं।

आसाम के लोगों को अफीम खाने-पीने की बुरी टेव है। इस में वे लाखों रुपया गवाते हैं। ये कार्य्यकर्त्ता लोग कहते हैं कि असहयोग की हलचल के बाद से अफीम-सेवन की कुटेव बहुत कुछ कम पड गई है। कहते हैं कि कोई २५) सैकडा सरकारी मालगुजारी कम हो गई है। विलायती बीडियां भी लोग बहुत पीते थे। पर उनमें से अब शायद ही कोई पीते हुए नजर आते हैं। जो लोग पीते हैं वे सिर्फ स्वदेशी बीडियां पीते हैं। परन्तु यह व्यसन भी हाल में तो छूटता आ रहा है। मुझे यह भी खबर दी गई है कि असहयोग के बदौलत लोग खुद ही, अपने आप, सुधार करते जाते हैं।

स्त्रियों की सभा

औरतों के तीन जल्से अलग अलग किये गये थे–एक मारवाडी बहनों का, दूसरा आसामी बहनों का और तीसरा बङ्गाली बहनों का। इन में से आसामी और बङ्गाली बहनें तो अपनी कीमती से कीमती विलायती साडियों की जगह सादी से सादी धोतियां पहन कर आई थीं। बहुत सी बहनें, खादी की साडी अपने पास न होने के कारण, शर्मिन्दा हो रही थीं, मारवाडी बहनें तो बिल्कुल विलायती कपडे पहन कर आई थीं! परन्तु श्री जमनालालजी ने मुझसे कहा कि उन बहनों ने भी अब खादी की साडियां मंगवाई हैं। इस सभा में मौलाना महम्मदअली की धर्मपत्नी भी आई थीं। उनकी खादी की पोशाक देखकर लोग बडे खुश हुए। उनमें बोलने का माद्दा अच्छा है। उन्होंने खुद, बुरका ओढे हुए, भाषण भी किया था।

विलायती कपडों की होली

गौहटी में बैठे हुए यह लिख रहा हूँ। गोहटी आसाम का मुख्य शहर है। कलकत्ते से १९ घण्टे का रस्ता है। यहां भारी सभा की गई थी। उसमें विलायती कपडे के बडे भारी ढेर की होली की गई थी। उसमें मैंने कितनी ही महीन धोतियां, पतली साडियां, टोपियां और टैलें देखीं। होली सुलगाने का पवित्र काम तो मेरे ही हाथों कराया जाता है। होली सुलगाने के बाद का दृश्य मुझे बडा भव्य दिखाई दिया। सैकडों बारीक कमीज़ें और दूसरे कपडे हवा में उडते हुए होली में गिरते थे। इस प्रान्त में टोपी कम पहनी जाती है। इससे विदेशी टोपियां कम जलीं। खादी तो यहां भी पहुंच गई है। इससे जो लोग टोपी पहनते हैं वे बहुत करके खादी की ही पहनते हैं।

मारवाडी

आसाम में मारवाडी भाइयों की बस्ती घनी नजर आती है। बाहर का तमाम व्यापार उन्हीं के हाथों में है। मैं पहले कही चुका हूँ कि आसाम के लोगों के अपने खेतों में फसल अच्छी पकती है। इसलिए वे दूसरे व्यापार में अथवा नौकरी की झंझट में बहुत कम पडते हैं। इससे व्यापार को मारवाडियों ने अपना लिया है और सरकारी नौकरी पर बङ्गाली लोग टूट पडे हैं। इन में से बहुत से मारवाडी परदेशी कपडे का व्यापार करने वाले हैं। उनमें से कितने ही—कोई ६५— व्यापारियोंने करार किया है कि अबसे हम विलायती कपडा और विलायती सूत नहीं मंगावेंगे।

मुसलमान भाई

आसाम में मुसलमान भाइयों की बस्ती बहुत बडी है। परन्तु फिर भी ये सार्वजनिक कामों में कम हिस्सा लेते हैं। खिलाफत के मामले पर भी उनका पूरा ध्यान नहीं जाता। पर अब उनमें भी अच्छी जागृति देखी जाती है। कहा जा सकता है कि हिन्दू नेताओंने उन्हें जगाया है। इससे यहां हिन्दू-मुसलमानों में बैर-भाव नहीं देखा जाता। मौलाना महम्मदअली और मौलाना आजाद सुभानी के आने से मुसलमानों में अधिक जागृति और हिम्मत आ गई है।

दूसरे के धन पर चैन

मैंने ऊपर कहा है कि गोहटी आसाम का मुख्य शहर है। इससे गोहटी को आसाम की राजधानी न समझिएगा। आसाम का सदर मुकाम तो है शिलांग। गोहटी से कोई पांच घण्टे में मोटर के जरिये वहां पहुँचा जाता है। शिलांग समुद्र की सतह से ४ हजार फीट ऊंचा है। मैं वहां तक न जा सका। पर कहते हैं कि वह तो अकेले योरपियनों के ही रहने का मुकाम है। अगर शिमला में भी बारहों मास रहने की सुविधा होती तो शिमला भी केवल गरमी भर की राजधानी नहीं रहती, वरन् हमेशा के लिए हो जाती। यदि दार्जिलिंग में लोग हमेशा रह पावें तो दार्जिलिंग बंगाल की बारहों मास के लिए राजधानी हो जाय। क्या बम्बई हाते में तीन सदर मुकाम नहीं हैं? कभी बम्बई, कभी गणेशखिण्ड और गरमियों में महाबलेश्वर! परन्तु शिलांग की आबहवा ऐसी है कि वहां योरपियन लोग बारहों महीने मजेमें रह सकते हैं। इसलिए शिलांग आसाम की राजधानी बनाया गया है। इतने ऊंचे पर भला कहीं खेतों में काम करने वाले मजदूरों की पुकार पहुँच सकती है? हर एक बात में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला मामला देखा जाता है। 'लैंडर' लोग शिलांग में रह सकते हैं और जब चाहें तब वहां जा सकते हैं। उनके मजदूरों में से किसकी ताब कि वहां जा सके? उस बेचारे की तो झूमी भी शिलांग तक पहुँचते पहुँचते फटकर चिथडा हो जाती है।

कहां ब्रह्मपुत्र और कहां सरकार?

ब्रह्मपुत्र इतनी विशाल नदी है कि वह नदी से नद—नदी से नद हो गई है। फिर भी उसकी नम्रता का पार नहीं। हिमालय की चोटी पर रहते हुए भी वह नीचे उतर कर लोगों को सुखी करती है और अपनी छाती पर उठा उठा कर हजारों मनुष्यों को और उनके माल-असबाब को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाती है। इस कारण आसाम का संसार उसकी पूजा करता है। और मुझ जैसे एक पश्चिम से आने वाले प्राणी का भी सिर अपने आप उसके चरणों पर झुक जाता है। पर हमारी सरकार अपोकी समुद्र पर उतर कर बे-शुमार मजदूरों की, भाफ की, और बिजली की मदद ले कर नीचे से ऊपर चढ कर शिमला और शिलांग पर जा कर विराजमान् होती है और वहां से बैठे बैठे लोगों को कुचलती है। फिर लोग बेचारे भयभीत हो कर "बचाओ! बचाओ!" पुकारें तो इसमें कौन ताज्जुब की बात? ब्रह्मपुत्र आश्वासन-तसल्ली देती है। शिलांग में रहने वाली सरकार ऊपर चढ़ कर लोगों को सताती है। इसीलिए आसामियों ने सरकार की सलामी-उसका सहयोग-छोड दिया है। ब्रह्मपुत्र अगर मस्ती में आकर लोगों के खेतों और गांवों को डुबोने लगे तो लोग उससे दूर हटने के सिवा और क्या कर सकते हैं? फिर सरकार के दावानल से जलने वाले लोग भागें नहीं तो क्या करें? आसामी लोग समझ चुके हैं कि हमारे लिए तो, बस, असहयोग ही एक मात्र राज-मार्ग है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

बम्बई-निवासियों को सूचना

"हिन्दी-नवजीवन" की फुटकर बिक्री बम्बई में नहीं होगी। अतएव जो सज्जन हिन्दी-नवजीवन लेना चाहते हों वे ४) वार्षिक मूल्य मनीआर्डर द्वारा पेशगी भेजकर ग्राहक होनेकी कृपा करें। व्यवस्थापक—"हिन्दी-नवजीवन"

एजन्सी के नियम

(१) फुटकर बिक्री के लिये एजन्ट को जितनी प्रतियां मंगवानी हों उतनी प्रति के दाम, एक प्रति के ०-१-० एक आने के हिसाबसे, पार्सलखर्च और डाकमहसूल सहित, हमको प्रति सप्ताह बृहस्पतिवार तक मिल जाना चाहिये।

(२) ऐसी फुटकर बिक्री के लिये २० से कम प्रतियां नहीं भेजी जावेंगी।

(३) एक प्रति के ०-१-३ पाई से अधिक दाम लेने का किसी एजन्ट को अधिकार नहीं।

(४) यदि एजन्ट चाहे तो एक सप्ताह से अधिक समय के लिये अपनी (एजन्ट की) जिम्मेवारी पर दाम भेज सकता है और कितनी प्रतियां उस सप्ताहमें उसको चाहिये, उस की सूचना प्रति सप्ताह, देता रहे। यदि मंगाई हुई प्रतियों का पूरा दाम हमारे पास जमा न होगा तो किसी प्रकार की सूचना दिये बिना ही पार्सल रोक लिया जायगा या जितना दाम जमा होगा उस हिसाब से प्रतियां भेज दी जावेंगी।

व्यवस्थापक-"हिन्दी नवजीवन"

अहमदाबाद

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूडी ओळ, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित॥

तैयार हो सके और फिर अक्तूबर में स्वराज्य प्राप्त कर के हम शुद्ध दिवाली मना सकते हैं। दिवाली मनाने की असली तैयारी तो यह है कि हम दिवाली के पहले ही स्वराज्य प्राप्त कर लें। इतने दिनों में हम स्वराज्य क्यों नहीं प्राप्त कर सकेंगे ? इसमें अगर कोई कठिनाई है तो वह है महज हमारी कमजोरी।

पर अच्छा, यह मान लें कि दिवाली के पहले स्वराज्य न मिल सके तो फिर हमें क्या करना चाहिए ? बस, मातम मनाना चाहिए। न बढ़िया खाने बनाये जायं, न दावतें दी जायं, न नाच-गान किया जाय। बस, संयम के साथ रह कर ईश्वर-प्रार्थना की जाय। भरत ने जब चौदह वर्ष तक तपस्या की थी तब कहीं दिवाली मनाने का समय आया था। अब क्या हम इस से उलटा चलें ? कु-समय में गाना किस काम का ? बिना भूख के खाना किस काम का ? स्वराज्य के बिना जल्सा किस बात का ? दिवाली के दिन सादे से सादा भोजन करना चाहिए, प्रातः काल उठकर भगवान का भजन करना चाहिए और तमाम दिन चरखा कातना चाहिए। उस रोज खादी के सिवा दूसरा कोई कपड़ा बदन पर न डाला जाय। और कोई वस्त्रदान करना चाहे तो वह भी खादी का ही किया जाय। पटाखे तो हमसे छोड़े ही किस तरह जा सकते हैं !

इस तरह दिवाली मनाने की दो विधियां हैं-एक, स्वराज्य प्राप्त करके दिवाली मनाई जाय, और दूसरी, स्वराज्य प्राप्त करने की तैयारी की जाय। अब इन दो में से किस रीति से दिवाली मनावें, यह बात तो हमारी शक्ति के ऊपर अवलम्बित है।

[नवजीवन]

बालकों का आशीर्वाद

मुझे बहुत सी बहनें और नवयुवक तो पत्र लिखा करते हैं; परन्तु बालकों के पत्र शायद ही कभी आते हैं। एक पत्र अनायास आ गया है, उसे यहां देता हूं—

"आप की आज्ञा के अनुसार मैं बहुत कुछ करना चाहता हूं। मैंने खादी पहनना शुरू कर दिया है और.......... पहले ही से अ-सहयोग को मानते हैं।.........मानता नहीं था, पर उसे इसमें पूरा विश्वास हो गया है। यदि हिन्दुस्तान के सारे बालकों को आप अ-सहयोग में शामिल कर लें तो जरूर विजय प्राप्त करेंगे।"

मैं जहां कहीं जाता हूं, इस धर्म-युद्ध में बहनों के आशीर्वाद चाहा करता हूं। क्योंकि मेरा विश्वास है कि उनका हृदय उदार और पवित्र होता है। उनके दिल में दांव पेंच और भेद भाव नहीं रहता। मैं तो इस संग्राम को पूरी तरह धर्म युद्ध मानता हूं।

परन्तु बालकों का हृदय तो बहनों के हृदय से भी अधिक निर्दोष होता है। तो अब, बालकों का आशीर्वाद किस तरह प्राप्त किया जाय ? बिना अपने मां-बाप की आज्ञा के भला वे एक [illegible] सकते हैं ? इससे मैंने अबतक बालकों के साथ सिवा विनोद के और कुछ नहीं किया। पर जब यह पूर्वोक्त पत्र मिला तब तो मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मैं यह जानता हूं कि उस की भाषा किसी बालक की लिखी हुई नहीं है। यह पत्र बहुत कर के उनके मास्टर साहब की प्रेरणा का फल होगा। परन्तु मैं तो यही मनाता हूं कि मां-बाप अपने बालकों को सामान्य धर्म्म की शिक्षा दें, पाप के साथ असहयोग करना और शान्ति के शस्त्र का प्रयोग करना सिखावें, एवं इस धर्म्म कार्य्य में उनका आशीर्वाद प्राप्त करें।

इस संग्राम में तो क्या स्त्रियां, क्या बच्चे, क्या लूले-लंगड़े, सब शामिल हो सकते हैं और ऐसा ही होना भी चाहिए। जितनी ही अधिक संख्या उनकी होगी उतनी ही जल्दी विजय प्राप्त होगी। इसमें न कोई ऊंचा है न कोई नीचा, न कोई छोटा न कोई बड़ा। बड़ा तो वही है जिसका हृदय बड़ा है; और जिसका हृदय छोटा है वही छोटा और अपाहिज है। इसलिए बालकों का आशीर्वाद मुझे बड़ा मधुर मालूम होता है। बड़े लाट साहब की महरबानी से चाहे स्वराज्य न मिले, परन्तु बालकों के निर्मल हृदय से निकले आशीर्वचनों से अवश्य मिल सकता है।

(नवजीवन)

झूठे विज्ञापन

'स्वदेशी' के सम्बन्ध में झूठे विज्ञापनों की शिकायतें बराबर मेरे पास आ रही हैं। सत्याग्रहाश्रम के व्यवस्थापक, जिन्होंने इन सुधरे हुए और ईजाद किये हुए कहे जाने वाले लगभग तमाम चरखों और करघों आदि को आजमा देखा है, लिखते हैं कि अभी हाल में मुझे कलकत्ते में एक विज्ञापन मिला है, जिसने पिछले सब विज्ञापनों के कान काट लिये हैं। उनकी राय है कि अभी तक कोई ऐसा चरखा नहीं पाया गया जो सादगी, आराम और अधिक सूत कताई में पुराने चरखे से बढ़कर हो। वे तमाम सूत कातने वालों को चेतावनी देते हैं कि आप किसी नये ढंग के चरखे के लिए रुपया बरबाद न करें। वे तमाम कांग्रेस कमिटियों को सलाह देते हैं कि ऐसे सारे विज्ञापनों की जांच अपने अपने प्रान्तों में की जाय और हर एक कल को कमसे कम १ महीना तक आजमा कर देख लें, तब उनके बारे में राय दी जाय। जैसे जैसे स्वदेशी की जड़ जमती जाती है तैसे तैसे बनावटी आविष्कार भी लोगों के सामने आये बिना न रहेंगे। इसलिए ऐसे तमाम मामलों में कांग्रेस कमिटियों को जरूर रहनुमा होना चाहिए।

एक गुंटूर सज्जन लिखते हैं कि कुछ बम्बई के दुकानदार महीन कपड़ा खरीदने के लिए आन्ध्र-देश को पहुंचे हैं। और मेरे खबरदार कर देने पर भी, कुछ सौदागरों ने बेजवाड़ा से विलायती सूत के कपड़े भेजे। मैं तमाम खरीदारों को होशियार किये देता हूं कि वे ऐसे कपड़े से दूर रहें। यहां स्वदेशी कपड़े का सारा स्टाक खतम हो चुका है। इससे क्या नसीहत लेना चाहिए सो साफ ही जाहिर है ! **"महीन कपड़े से बचो।"** महीन हाथकता सूत बहुतायत से मिलना मुश्किल है और इसलिए कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं के लिए सबसे अच्छी बात यही है कि **महीन खादी** से अपने को बचावें। जैसा कि श्रीमती सरोजिनी नायडू ने फर्रुखाबाद में कहा है, **विलायती कपड़ा पहनने की बनिस्बत तो पेड़ के पत्तों से अपना बदन ढक लेना अच्छा है।** जिनके दिल में यह भावना दिन रात जगमगाती रहती है वे अभी नफीस और महीन कपड़े के खतरनाक जाल में न फंसें। वह समय जल्द ही आवेगा जबकि हमें बुनने लायक महीन हाथ-कते सूत की कमी न रहेगी।

(यंग इण्डिया)

फजूल छेड़छाड़

आसाम के हुक्काम, साफ मालूम होता है, बड़े बड़े मजमों और जलसों के आदी नहीं। उन्होंने आम जगहों पर जलसे करना मना कर दिया है। पर नौगांव के हाकिमों ने तो सचमुच ही लोगों को चिढ़ा मारा है। फुटबाल के मैदान में जल्से के लिए मचान बनाने और उसपर शामियाना खड़ा करने की मंजूरी ली गई थी। पर वहां के डिप्टी कमिश्नर ने ऐसा नहीं होने दिया। बल्कि, तुर्रा यह कि पहले मैदान के इस्तैमाल करने का हुक्म देकर पीछे से शामियाना उखड़वा दिया ! अब, इसका सबब सुनिए। आप फरमाते हैं कि मचान बना कर कमिटी के

हुकिया ने हुक्म की मंशा के खिलाफ कार्रवाई की है। कमिटी ने लाचार हो कर एक खानगी जगह में जलसा किया। इतने पर ही बस नहीं। डिप्टी कमिश्नर की निगाह रेलवे स्टेशन पर जाने वाले लोगों तक भी पहुँची। उसने उनपर भी देख-रेख रखने की कोशिश की और जो लोग प्लेटफार्म पर आने वाले थे उनमें से चुनीदा लोगों के नाम भी जानना चाहे! दंगा-फसाद के डरसे उसने किसी किस्मका जलूस भी नहीं निकलने दिया! और सच पूछिए तो आसाम के मजमे ने अपनी चाह और प्रेम के जलसे में भी, जितना अपनी तबीयत को रोका या जिस अच्छी तरह से वे पेश आये, वैसा और कहीं नहीं देखा गया। और, कोई भी तजरिबेकार हाकिम वहाँ आ कर देख लेता कि मुहब्बत के जलसे, फिर चाहे उन में कितना ही शोरोगुल क्यों न होता हो, कभी कोई झगड़ा-फसाद या दंगा नहीं पैदा कर सकते। लेकिन आसाम तो एक ऐसी जगह है जहां, मुझे मालूम हुआ है, कि हाकिम लोग लोगों के अन्दर किसी तरह की जागृति का होना सहन नहीं कर सकते। एक रोज की बात है कि तेजपुर में कुछ भैंसों ने एक हाकिम के खेल में खलल डाल दिया। बस, उसने फौरन् जबरदस्ती उन भैंसों के मालिकों से उनके मकानात खाली करवा लिये। एक दूसरे हाकिम ने, लड़ाई के जमाने में, कुकी नाम की एक सरहद पर रहने वाली छोटी जाति में हत्या-काण्ड मचा दिया और उन्हें भेड़बकरियों की तरह काट-काट डाला! न औरतों को छोड़ा न बच्चों को! यह बात सब लोग जानते है। पर मुझे मालूम हुआ है, कि इस शर्म दिलानेवाली मार-काट की बात आम लोगों से छिपाई गई। आसाम में बातें इस हद तक पहुंच गई हैं कि वहां की स्थायी राजधानी समुद्र की सतह से डेढ़ ५,००० फीट ऊंची है। नीचे मैदान में तो उसका कोई सदर-मुकाम रहा नहीं। सुना है कि, शिलांग तो, हर इरादे से और हर गरज से, योरपियनों की बस्ती है। और वहां का सरकार अपनी अगम्य ऊंचाई से कभी नीचे नहीं उतरती!

(यंग इंडिया)

नागपुर के वकील

नागपुर के दौरा जज ने वहां के वकीलों की जो अग्नि-परीक्षा ली थी उसमें वे अच्छी तरह पास हुए। असहयोग करने वाले वकीलों से उन्होंने पूछा कि वकीलों के नाते तुम लोगों ने जो राजभक्ति की कसम खाई है उसमें और वकालत मुल्तवी कर देने में किस तरह संगति लग सकती है? सब वकीलों ने एक-स्वर में कहा कि कांग्रेस की आज्ञा के अनुसार हमने वकालत बन्द की है। श्रीयुत महम्मद समीउल्ला खान ने यह भी कहा की मेरी राजभक्ति की प्रतिज्ञा खुदा और उसके पैगम्बर की भक्ति की सौगन्द से नीची है, और उसको कोई किसी तरह दबा या हिला नहीं सकता। श्रीयुत नारायण राव टी० वैद्य ने कहा कि अब जमाना बहुत बदल गया है और राजभक्ति की शपथ में भी परिस्थिति के अनुसार फेर-बदल करना होगा। नहीं तो कोई भी स्वाभिमानी वकील किसी भी अंगरेजी अदालत में वकालत करना न चाहेगा। अपने इस निर्भय व्यवहार के लिए पूर्वोक्त वकीलगण बधाई के पात्र हैं। हां, वह जमाना अब बेशक चला गया है जब कि लोगों को डरा धमका कर गुलामों की तरह कायल किया जाता था। मनुष्य का जीवन केवल रोटियों के लिए नहीं है। उसे कुछ ऐसी कीमती बातों का भी पोषण करना है जो केवल बढ़िया भोजन से नहीं साध्य हो सकतीं।

(यंग इंडिया)

पूर्व बंगाल के अनुभव

अवर्णनीय दृश्य

डिब्रूगढ़ छोड़ने के बाद रेलवे ऐसे कितने ही प्रदेशों से होकर गुजरी, जिनका दृश्य मेरी आंखों में घूमा ही करता है। लमडिंग जंक्शन को आसाम की हद समझना चाहिए! इसको छोड़ने के बाद रेल धीरे धीरे ऊपर को चढ़ती है। एक के बाद दूसरे पहाड़ पर लगातार चढ़ती ही जाती है। पता जाते हुए जो पहाड़ पड़ते हैं वे तो, कह सकते हैं, कि इनके आगे कोई चीज नहीं। हवा एक दम बदल जाती है। बीमार आदमी भी तरो-ताजा हो जाता है। जहां देखिए वहीं हरी हरी टेकड़ियां! इस प्रान्त में बादलों का तो पार ही नहीं। कई बार तो बादल टेकड़ियों के नीचे ही रह जाते है। कभी कभी भाफ के गोले ऊपर जाकर बादलों में मिलते हुए साफ तौर पर नजर आते हैं। पहाड़ों में से निकलने वाली बड़ी बड़ी नदियां तो मानों रेल के साथ शर्त बद कर दौड़ती हुई नजर आती हैं। ऐसा दृश्य तो मैंने दुनिया में और कहीं नहीं देखा। आफ्रिका, इंग्लैंड वगैरह के भिन्न भिन्न दृश्यों को मैंने खूब देखा है। परन्तु इसके मुकाबले में टिकने लायक कोई भी दृश्य मुझे नजर नहीं आया।

सिलचर पहुंचे।

हमें सिलचर जाना था। सिलचर में पानी खूब बरसता है। दो सौ इंच में तो कसर ही नहीं। इससे वहां नमी का तो पार ही नहीं! जहां देखिए वहीं तालाब भरे हुए हैं। सिलचर पहाड़ की तलहटी पर है। इससे यहां तो हम मारे गर्मी के परेशान हो रहे थे। परन्तु लोगों के दिल में इतना प्रेम उमड़ रहा था कि बरसते पानी में भी खुले मैदान में हजारों आदमी जमा हो गये थे। अभिनन्दन-पत्र तो हर जगह खादी के ही वस्त्र पर दिया जाता है। आडम्बर-भरे अभिनन्दन-पत्रों का तो जमाना ही अब चला गया। मुझे अंदेशा था कि इस तरफ के लोग अंगरेजी भाषा की पुकार मचायेंगे। परन्तु यहां ऐसा नहीं हुआ। लोग हिन्दुस्तानी-भाषा के बहुत आदी हो गये है। इतने कि बंगाल में तो अब अंग्रेजी बोलने वाले को ही शरमाना पड़ता है। सिलचर में हम बाबू कामिनीकुमार चन्दा के यहां ठहरे थे। असहयोग आन्दोलन के पहले आप बड़ी धारा-सभा के मेम्बर थे और वकालत करते थे। अब आपने दोनों काम छोड़ दिये हैं और असहयोग का काम कर रहे है। उनकी धर्म-पत्नी, उनकी लड़कियां, सब चरखा कातती है। यहां के चरखों की बनावट कुछ ऐसी है कि जिससे काम अच्छी तरह नहीं हो सकता। चरखे बहुत छोटे और कमजोर, पटिया बहुत ही छोटी। उससे सूत कम निकलता है। तो भी राष्ट्रीय पाठशाला इत्यादि कई जगह चरखे ने अपना पड़ाव डाल दिया है।

सिलहट

एक दिन सिलचर रह कर हम लोग सिलहट गये। वहां मुसलमानों की आबादी कोई ५५ सैकड़ा है। इस तरफ के मुसलमानों में दूसरी जगह की बनिस्बत जागृति कम है। दूसरे, मुसलमानों की इतनी ज्यादा तादाद होते हुए भी, खिलाफत के स्मर्ना के चन्दे में सिर्फ २१६ रु० जमा हुए! सिलहट में एक मुसलमान वकील है—मौलवी महम्मद अबदुल्ला। सारे काम का भार उन्हीं पर है। उनके प्रयत्न से वहां एक बुनाई की पाठशाला स्थापित हुई है। उसी के सिलसिले में बढ़ई का काम भी होता है। वहां चरखे और करघे बनाये जाते हैं। ये सब काम असहयोग के बाद ही हुए हैं। सिलहट में सभा ईदगाह में की गई थी। मौलाना महम्मदअली कहते थे कि ऐसी खूबसूरत ईदगाह

हिन्दी
नवजीवन
गुरुवार, भाद्रपद शु. [illegible] सं. १९७८.

पतित बहनें

बरीसाल में कितनी ही उल्लेख करने योग्य स्मरणीय बातें है। परन्तु मुझे इतना समय नहीं कि उन सबका वर्णन कर सकूं। तो भी एक प्रसंग का उल्लेख किये बिना तो रही नहीं सकता। वह है बरीसाल की पतित बहनों का। इस दृश्य को मैं कभी नहीं भूल सकता। बरीसाल की कितनी ही पतित बहनों के नाम महासभा के सदस्यों में दर्ज हैं। उन्होंने तिलक-स्वराज्य-फंड में भी चन्दा दिया है। उनकी संख्या ३५० के करीब होगी। उन्होंने मुझे पत्र लिखा था कि हम आपसे मिलना चाहती हैं। वे चाहती थीं कि हम महासभा का कुछ अधिक कार्य्य करें। वे क्यों न चुनाव के लिए खड़ी हों और महासभा के किसी पद का कार्य्य क्यों न करें? ज्योंही मैं रात को सभा से आया, मैंने कोई २० बहनों को एक कोने में खड़ा देखा। मैं सचेत हुआ। बड़े आदर के साथ उन्हें छत पर ले गया। एक दुभाषिये को साथ में रक्खा। दूसरे पुरुषों को बिदा कर दिया। मैंने उनसे कहा कि तुम दिल खोल कर अपनी बात मुझसे कहो। उनमें चार पांच दस वर्षकी लडकियां भी थीं। कितनी ही जवानी पार कर गई थीं। बाकी जो थीं वे बीस से तीस वर्ष के अन्दर होंगी। उनके साथ मेरी जो बात-चीत हुई, उसका सार सवाल-जवाब के रूप में यहां देता हूं—

मैं—बहनों, अच्छा हुआ जो तुम आ गईं। मैं तो तुम्हें अपनी बहन और लडकियों के समान समझता हूं। मैं चाहता हूं कि तुम्हारे दुःख में शरीक होऊं। पर अगर तुम मुझ से कुछ छिपाव रक्खोगी तो मैं तुम्हें सहायता देने में असमर्थ हो जाऊंगा।

जवाब—आप जो कुछ पूछियेगा उसका जवाब हम सच सच देंगी।

सवाल—तुम में से कितनी ही की उम्र ज्यादह मालूम होती है। क्या वे भी अब तक तुम्हारे इस पेशे में अटकी हुई रहती हैं?

ज०—नहीं तो, जिनकी उम्र ज्यादह है वे भीख मांग कर अपना पेट भरती हैं।

स०—ऐसा करना तुम्हें कैसा लगता है?

ज०—यह पेट सब कुछ कराता है।

स०—ये लडकियां तो छोटी छोटी हैं। इनका भी यही [illegible] है?

ज०—हम तो यह आशा करके आपके पास आई हैं कि आप कोई रास्ता बतायेंगे। हम तो कोई भी इस पेशे को करना नहीं चाहतीं।

स०—[illegible] है उसका क्या हाल? इस पेशे की [illegible] पर [illegible] तो नहीं?

ज०—जी हां, [illegible] है।

स०—तुम लोगों [illegible] होते हैं?

ज०—जी, [illegible] है।

स०—तुम्हारी कुल संख्या कितनी होगी?

ज०—३५०

स०—इसमें बाल-बच्चे कितने हैं?

ज०—कोई १० हैं।

स०—लडके या लडकियां?

ज०—कोई छः लडकियां और बाकी लडके।

स०—लडकों का क्या करती हो?

ज०—एक लडका बड़ा है। उसकी शादी हममें से ही एक के साथ कर दी है।

स०—तुम अपनी लडकियां मुझे दोगी?

ज०—अगर आप परवरिश करें तो हम देदेंगी।

स०—तुम कितनी बहनें इस पेशे को छोडना चाहती हो?

ज०—सबकी सब।

स०—जो काम मैं बताऊं उसे करोगी?

ज०—हम जानती हैं, आप क्या काम बतायेंगे। हममें से कितनी ही ने सूत कातना शुरू भी कर दिया है।

स०—यह सुनकर तो मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। पर जिन बहनोंने कातना शुरू किया है उन्होंने अपना पेशा छोड दिया है या नहीं?

ज०—वह तो हमारे लिए आवश्यक हो गया है। उससे हम अपना पेट कैसे पाल सकती हैं?

स०—आजकल तुम कितना कमा लेती हो?

तुम जवाब देते हुए शरमाती हो। तुम्हारी शर्म का मतलब मैं समझ सकता हूं मैं तुम्हारे साथ बात तो कर रहा हूं, पर मेरे दिल में आग लग रही है जो बात हो वह इस वक्त तो तुम मुझ से कही दो।

ज०—बहुत सी साठ रुपया महीना पैदा कर लेती हैं। (२) रोज पडते हैं।

स०—यह तो मैं जानता हूं कि इतनी आमदनी सूत कात कर तुम नहीं कर सकती। परन्तु जो तुम ये अनेक प्रकार के मनोमोहक शृंगार विलास करती हो, इन्हें तो अब छोड ही देना होगा। मैं अकेले तुम्ही से यह बात कहता हूं, सो नहीं। मेरी धर्म पत्नी ने भी सिंगारों का त्याग कर दिया है। मेरे यहां कमसिन लडकियां हैं। उनके मां बाप इस हैसियत के हैं कि उन्हें बढ़िया गहने-पत्ते दे सकते हैं। तो भी वे खादी की धोतियां पहनती हैं और गहना तो किसी तरह का भी नहीं पहनतीं। इस कारण तुमसे बनावसिंगार छोड देने का इसरार करते हुए मुझे जरा भी आघात नहीं पहुंचता।

ज०—हम अपना जीवन सादा बनाने के लिए कोशिश करेंगी, कोई तुरन्त ही कोई धीरे धीरे। हममें से एक ने तो अपना सब कुछ रामकृष्ण मठ को अर्पण कर दिया है और खुद अब भिक्षा मांग कर रहती है।

स०—इस बहन को मैं वन्दना करता हूं। अच्छा किया जो उसने सर्वस्व त्याग दिया। परन्तु मैं देखता हूं कि (उसकी ओर इशारा करके) तुम्हारे हाथ पैर अच्छे हैं। अगर तुम सूत कातती हुई आदमी से रहो तो और भी पुण्य हो। मैं तो यह चाहता हूं कि हिन्दुस्तान का ऐसा एक भी भाई या बहन, जिसके हाथ पैर दुरुस्त हों, भीख न मांगे-वह भीख मांगना एक शर्म की बात समझे। ऐसा कहने का समय अब आ गया है। चरखा एक कामधेनु है। वह हमारे हाथ लग गई है। तुम बहनों के महज सूत कातने भर से मुझे सन्तोष नहीं हो सकता। तुम्हें धुनना और बुनना भी सीखना चाहिए। तब तुम अपनी आजीविका पूरी तरह प्राप्त कर सकोगी।

उ०—आप हमें रास्ता बताइए। हम जरूर उस मुताबिक चलेंगी।

स०—तुम कितनी बहनें कल ही से अपना पेशा छोड़ देने को तैयार हो?

इसके जवाब में ११ बहनें उसी वक्त खड़ी हो गईं। मैंने उनसे कहा कि खूब विचार कर लेना। उन्होंने कहा कि हम अपने निश्चय पर कायम रहेंगी। उन्होंने तो पहले ही से विचार कर रक्खा था। अब उसके अनुसार काम किस तरह करें, इसी उलझन में वे थीं। इसलिए मैंने कहा—

"अब तुम शादी का तो ख्याल ही छोड़ दो। इससे भूतकाल में तुमने जो कुछ किया हो पर अब अगर तुम सचमुच शुद्ध हो जाओगी तो संसार तुम्हारे पापों को भूल जायगा। तुम गृहस्था-श्रम के व्यवसाय से पृथक अर्थात् सन्यासिनी हो सकती हो। तुम भारतवर्ष की सेवा कर सकती हो। अगर तुममें से बहुत सी बहनें रोज बारह घंटे तक, ईश्वर का भजन करती हुई काता-बुना करें तो प्रायः सारे बरीसाल को अकेली तुमही कपड़ा दे सकती हो। तुम्हारी श्रेणी की हिन्दुस्तान की सारी बहनें अगर यह गन्दा काम छोड़ कर कातने का पुण्य कार्य करने लगें तो भारतवर्ष का उद्धार सहज में हो जाय। इसलिए मैं उम्मीद करता हूं कि तुम ग्यारह बहनें अपने निश्चय पर दृढ़ रहोगी। मैं तो मुसाफिर हूं। पर मैं यहां के अगुओं को जोर दे कर सिफारिश करता जाऊंगा और मुझे यकीन है कि यहां की महासभा-समिति तुमको पूरी पूरी मदद देगी। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे!"

पाठको, तुम चाहे भाई हो या बहन हो, मैं नहीं कह सकता कि इसे पढ़ कर आपके मन पर और हृदय पर क्या असर होगा मैंने आपके सामने पूरा वर्णन पेश नहीं किया है। यह तो अपनी शक्ति के अनुसार उसका चित्र मात्र अंकित किया है। चीज की असलियत तो आंखों देखने से ही मालूम होती है। मैं तो बराबर मारे शरम के मर रहा था, स्त्रियों के प्रति किये गये पुरुषों के अपराध की नाप-जोख करता रहा था। ये बहनें जान-बूझ कर इस पाप में नहीं पड़ीं! पुरुषों ने उन्हें इसमें गिराया है। अपने विषय-भोग के लिए उसने स्त्री-जाति के ऊपर घोर अत्या-चार किया है। जिनको इस बात पर दर्द होता हो उन्हें चाहिए कि वे प्रायश्चित्त के रूप में इन पतित बहनों को हाथ बढ़ाकर सहारा दें। जब जब इन बहनों का चित्र मेरी आंखों में खिंचता है तब तब मुझे ख्याल होता है कि अगर ये मेरी ही बहनें या लड़-कियां होतीं तो—! होतीं तो क्या, हई हैं। उनको उठाना मेरा और प्रत्येक मर्द का काम है। इसीसे मुझे चरखे का सुर बड़ा प्यारा लगता है। यह स्त्रियों की रक्षा करने वाला किला है। हिन्दुस्तान में रहने वाली ऐसी बहनों को सहारा देने वाली दूसरी कोई चीज मुझे नहीं दिखाई देती। परन्तु जब तक इस काम को हर एक शहर के रहने वाले साधु पुरुष न उठा लें तबतक यह नहीं हो सकता। बरीसाल में इन बहनों तक पहुँचने वाले साधुचरित शरत्कुमार घोष और उनकी साथ के एक असहयोगी वकील भूपति बाबू हैं। मैंने तो सिर्फ उनके तैयार किये हुए क्षेत्र से लाभ उठा लिया है। बहनों, अब मालूम हो जाने के बाद तो तुम को भी इसपर विचार करना है। पतित बहनों के हृदय-मंदिर में तो तुम्हीं प्रवेश कर सकती हो। जब तक तुम ऐसी पतित बहनों के उद्धार के लिए कमर न कसोगी तबतक मुझ जैसे लोगों के प्रयत्न भी निष्फल होंगे।

स्वराज्य का अर्थ है-पतितों का उद्धार।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

आसाम का दर्शन

२

ब्रह्मपुत्र पर

नदी में स्टीमर चल रही है। मेरे तीसरे दर्जे की मुसाफिरी के दिन तो कभी के पूरे हो चुके है। हम सब पहले दर्जे के डेक पर बैठे हुए है। जब जब मैं तीसरे दर्जे का खयाल करता हूं तबतब मुझे पहले या दूसरे दर्जे में बैठते हुए शर्म मालूम होती है। पर लाचारी है। ऐसी रात दिन की कष्टकर मुसाफिरी में तीसरे दर्जे की असुविधाओं को मैं सहन नहीं कर सकता। तथापि मैं यह मानता हूं कि हम लोगों में तीसरे दर्जे में सफर करने की ताकत जरूर ही होनी चाहिए, हमारे शरीर अवश्य ही इतने मजबूत होने चाहिए। जब तक हम तीसरे दर्जे से डर कर दूर रहेंगे तब तक उसकी हालत नहीं सुधर सकती, उसकी मुसीबत दूर नहीं हो सकती। सैकड़ों कार्य्य-कर्ता अगर पहले-दूसरे दर्जे की मुसाफिरी करने लग जायें तो बेचारी रैय्यत का सारा धन मुसाफिरी में ही लग जाय और हमारी स्वराज्य की नैया तिल भर भी आगे न बढ़ सके। रैय्यत का पैसा खर्च करते समय हमें कदम कदम पर विचार करने की जरूरत है। मैं यह इसलिए कह रहा हूं कि एक धनी आदमी ने ऐसी बातों पर खुद मेरे सामने टीका-टिप्पणी की है और इससे बराबर मेरे चित्त को दुःख बना ही रहता है। मेरे खादी की बात छेड़ते ही उन्होंने मुझसे कहा कि "हम लोगों का हाल आपको मालूम नहीं होता। क्योंकि आपको तो जब चाहें तभी बैठने को मोटर तैयार! एक प्याला मांगते ही दस प्याले बकरी का दूध हाजिर! खादी भी लोग आपको घर आ आकर दे जाते है। लेकिन मुझ जैसे पैसे वाले आदमी को भी जब हर वक्त मोटर का और होटलों का किराया देना पड़ता है और अपनी जरूरत भर की खादी के दाम चुकाने पड़ते हैं, तब तो जनता की सेवा हमें अखरने लगती और महँगी मालूम पड़ती है।" ये महाशय राष्ट्रीय सभा की महासमिति के सदस्य हैं और देश-कार्य्य में पैसा खरचते हुए हिचकते भी नहीं; लेकिन मैं यह समझ सकता हूं कि उन्हें बम्बई में हमेशा बीस रुपये से कम तो खर्च उठानाही न पड़ता होगा। मुझे उनकी दलील में बहुत कुछ सार मालूम होता है। लेकिन इस समय तो मैं निरुपाय हू। मैं कम-जोर हो गया हूं और यह जरूर जानता हूँकि इससे मेरी सेवा करने की शक्ति भी घट गई है। इसीलिए अब मुझे यह हिम्मत नहीं पड़ती कि सब लोगों को पैदल सफर करने की सलाह दूं। चूंकि मैं खुद कमजोर हूं, इस कारण दूसरों को भी कमजोर समझ कर मैं कितनी ही बार झूठी दया करने लग जाता हूं। वर्ना जनता की सेवा करने वालों को ज्यादा खर्च करने की जरूरत ही नहीं पड़ सकती। तीसरे दर्जे की मुसाफिरी का खर्च भारी नहीं जान पड़ता। जहां मुकाम करें वहां गाड़ी किराया न उठाया जाय। भोजन सादा किया जाय। और पोशाक भी सादा पहना जाय। किन्तु हमने खुद अपने को इतना आराम-तलब बना लिया है कि लाखों आदमी जो काम कर सकते हैं, उसके लिए हम अपने को असमर्थ मानते हैं।

मुझे करना तो था नदी का वर्णन, और मैं लिख गया अपने दिली दर्द का हाल। खैर। नदी समुद्र की तरह विशाल जान पड़ती है। बहुत दूरी पर दोनों तरफ के किनारे दिखाई देते हैं। नदी का पाट (चौडाई) लगभग दो मील या इससे भी कुछ अधिक होगा। १५ घंटे का सफर है। नदी की शांति भव्य जान पड़ती है। बादलों में छिपा हुआ चंद्रमा पानी पर अपनी चमकदार चांदनी छिड़क रहा है। स्टीमर

के पंखे पानी काट रहे हैं और उनका स्वर बड़ा मधुर मालूम होता है। इसके सिवा बस, चारों ओर बिल्कुल शांति छा रही है। पर फिर भी मेरे दिल में शान्ति स्थापित होना मुश्किल मालूम हो रहा है। क्योंकि न तो स्टीमर मेरा है और न नदी ही। और जिस सत्ता के जुल्म से मैं आरी आ गया हूं, जिस सत्ता के बल से हिन्दुस्तान घायल, निस्तेज और भिखारी बन चुका है, उसी सत्ता की महरबानी से मैं नदी में घूम रहा हूं, और स्टीमर में भी मैं उसी की कृपा से सफर कर रहा हूँ—ये विचार मुझे इस शांति के राज्य में भी अ-शान्त कर डालते हैं। पर इसमें मैं सत्ता को दोष-भागी नहीं कह सकता। तीस करोड़ हिन्दुस्तानी यदि अपने कर्तव्य को न समझें तो इसके लिए मैं सत्ता को दोषी कैसे कहूँ? सूद-खोर मुझसे दुगने रुपये मांगता है। अब मैं दूने रुपये लेने के लिए उसे दोषी बताऊं या खुद अपनेको—देने वालेको—अपराधी समझूँ। व्यापारी का तो यह स्वभाव ही है कि वह मेरे साथ व्यापार करे। लेकिन उसके साथ व्यापार करना न करना तो मेरी मर्जी की बात है। मैं उसके साथ व्यापार करूं ही क्यों? मैं अगर न मांगू तो मुझे कौन परदेशी कपड़ा दे सकता है! इसलिए यह समझ कर कि उसकी सत्ता को दोषी बनाना तो मेरी ही कमजोरी का चिन्ह है, मैं फिर शांत हो जाता हूं, और इस खयाल से कि बस मुझे तो सिर्फ जनता में ही काम करना है, मैं कर्तव्य-पालन में लग जाता हूं।

आसाम के हाथी

आसाम जिस प्रकार वहां की स्त्रियों की बुनाई की विद्या के लिए मशहूर है उसी तरह वह हाथियों के लिए भी प्रख्यात है। पेड़ की छाल पर लिखी हुई दो सौ वर्ष पुरानी एक हस्ति विद्या की पुस्तक भी मुझे दिखाई गई थी। उसमें लेख के अलावा हाथी वगैरा के कई खूबसूरत चित्र भी थे। उनके रंग अनूठे थे। वैसे सुहावने रंग आजकल विरली ही जगह दिखाई देते हैं। चित्रों में तारतम्य का खयाल भी इतना रक्खा गया है कि देखने वाले के मनमें आसाम की पुरानी कारीगरी के प्रति अभिमान उत्पन्न हुए बिना रही नहीं सकता। हाथी की कीमत ६०००) तक आंकी जाती है। और बोझ ढोने तथा शिकार करने का ही काम उन से लिया जाता है। एक अनुभवी आदमी ने मुझसे कहा कि जब जंगली हाथी को पकड़ते हैं तब शुरुआत में उसपर बहुत [illegible] किया जाता है। [illegible] कभी कभी महावत गाना गाकर उसकी खुशामद भी करता है। हाथी हमारी भाषा को इतनी अधिक समझता है कि गुस्से या प्रेम के शब्दों को अच्छी तरह पहचान सकता है। कहते हैं कि 'शाबास' शब्द से आसाम का हरएक हाथी जानकार है। हाथी दांत तो आसाम में बहुतायत से होना स्वाभाविक ही है। मैं यह जानकर बहुत खुश हुआ कि आसाम में हाथी-दांत के लिए हाथी नहीं मारे जाते। यही नहीं, बल्कि इसके लिए हाथी मारने की मनाही भी है।

आसाम का रेशम

आसाम में दो तरह का रेशम होता है। और दोनों ही तरह का रेशम कीड़ों से पैदा होता है। एक का नाम है—एण्डीकेरी और दूसरे का मूगा। एण्डी का रेशम तैयार करने में कीड़े का नाश नहीं किया जाता। उसका कोया रुई की तरह काता जाता है। मूगे का रेशम मूगा खुद ही कातता है। जब कताई खतम हो जाती है तब मूंग को धूप में [illegible] मार डालते हैं। इसके बाद कोये को पानी में उबाल कर रेशम सिरे पर इकट्ठा किया जाता है। यह रेशम खुद मेरे सामने कातके दिखाया गया। इन दोनों तरह के रेशम के कपड़े आसाम में बहुतायत से बनाये जाते हैं। इस उद्योग के जारी रहते हुए भी अब वहां परदेशी रेशम ने अपना अड्डा जमा लिया है। और बहुत से जुलाहे सिर्फ विदेशी रेशम का ही ताना तनते हैं।

रुई की क्रिया

रुई की क्रिया भी मैंने देखी। मैं समझता हूं कि आन्ध्र की तरह महीन कपड़ा आसाम में भी तैयार होने लग जायगा। हाल ही में तैयार किया हुआ ऐसा एक कपड़ा मुझे दिया गया है। दो सौ वर्ष पुरानी सूत की महीन साड़ियां भी मुझे दिखाई गईं। मिसर देश की कपास के पौधे भी अब कितनी ही जगह लगाये गये हैं। और उसकी रुई तो मैंने बिनौले समेत कतते देखी। दूसरी तरह की रुई को जिस तरह आन्ध्र में कातते हैं उसी तरह आसाम में कातते देखा। हर एक बीज को पहले तो मछली के दांत से सवांरते हैं। इससे तमाम रेशे अलग अलग हो जाते हैं। दांतों में जो रुई घुस जाती है उसे वैसी ही कात कर उस सूत से खादी बुनते हैं। इसके बाद जो रुई बिनौलों पर छूट जाती है उसमें से बिनौले निकाल लिये जाते हैं। फिर उस रुई को धुनकते हैं। इस तरह हर एक बीज पर क्रिया की जाती है। इस तरह की रुई को कात कर महीन से महीन सूत तैयार किया जाता है। अगर आसाम की औरतों के दिलों में उमङ्ग उमड़ पड़े तो उनसे जो सहायता मिल सकती है उसका पार ही न रहे। स्वदेशी पालन में मदद करने की आसाम की शक्ति तो मुझे पंजाब से भी ज्यादा मालूम होती है। आसाम की औरतें अगर कातें और बुनेंगी तो वे पैसे की गरज से नहीं, बल्कि स्वदेश-प्रेम के वश होकर कातें और बुनेंगी। हर एक औरत, आन्ध्र देश की तरह, अपनी रुई को आप ही धुन लेती है।

शोणितपुर

अब हम तेजपुर आ पहुंचे हैं। इसका पुराना नाम शोणितपुर है। कहा जाता है कि किसी अंगरेज हाकिम को 'शोणितपुर' शब्द का उच्चारण कठिन मालूम हुआ। उसने जब शोणित का आसामी भाषा में अर्थ पूछा तो उसे मालूम हुआ कि आसामी लोग शोणित को 'तेज' कहते हैं। इसलिए उसने शोणितपुर का नाम तेजपुर रख दिया। कहा जाता है कि तेजपुर पहले बाणासुर की राजधानी था। इसीसे पुराण-लेखकों ने उसे शोणितपुर लिखा है। यहां की यह आख्यायिका है कि उषा के लिए चित्रलेखा अनिरुद्ध को द्वारका से यहीं उठा कर लाई थी। कहते हैं, अर्जुन ठेठ मणिपुर तक गया था। ब्रह्मपुत्र के पूर्व किनारे पहला शहर पांडु है। वहीं तक पाण्डव लोग अज्ञात-वास के समय आये थे। पांडु से पांच मील के फासले पर ब्रह्मपुत्र के किनारे ही गौहाटी है, जहां से कि हम तेजपुर पहुंचे हैं। गौहाटी का भी प्राचीन नाम है। कहते हैं, हरिहर-युद्ध तेजपुर के पास ही हुआ था। और भावुक जन, जहां रुद्र ने खड़े होकर युद्ध किया था वहां—उनकी पादुका भी बतलाते हैं। इस तरह मैं जहां जाता हूं वहीं इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि पहले हिन्दुस्तान एक था।

प्लैंटर-राज्य

तेजपुर की आबादी ६ हजार होगी। लेकिन वहां म्युनिसिपालिटी है, रेलवे है और बिजली की रोशनी भी है और पानी के नल भी हैं। यह सब क्यों है? इसका उत्तर फौरन ही दिया जा सकता है। तेजपुर के नजदीक ही चाय के बड़े बड़े खेत हैं। बस, चाय को ढोने के लिए रेलें हैं और इस बंदरगाह के रास्ते से चाय [illegible] जाती है। लोग यही मानते हैं कि आसाम में [illegible] राज्य है। [illegible] यहां—यहां सब प्लैंटर ही हैं। चांदपुर में गरीब मजदूरों पर जो चढ़ाई हुई थी वह, मि० एण्ड्रूज का कहना है, कि इन प्लैंटरों के ही लिये हुई है।

ब्रह्मपुत्र का पानी गंगा की तरह आरोग्य-वर्धक नहीं माना जाता। इस कारण आसाम में कितनी ही जगह दरवाजे नदी होने पर भी लोग नल का पानी ही काम में लाते हैं। यह पानी कई तरह के खारों में से छान कर काम में लाया जाता है। खास तेजपुर में १० फुट ऊंचा एक हौज बनाया गया है, उसमें पानी छाना जाता है और फिर वह नल के द्वारा लोगों को पहुंचाया जाता है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गान्धी

टिप्पणियां

इस्तगासों का एक नमूना

नागपुर के पण्डित राधामोहन गोकुल जी पर एक नोटिस निकाला गया था कि या तो तुम नेकचलनी के लिए जमानत दाखल करो, या जेल के लिए तैयार रहो। पण्डित जी इन दिनों जेल में, सही-सलामती के साथ, बन्द हैं। एक मित्र ने इस नोटिस की नकल मुझे भेजी है।

उस नोटिस के साथ भाषणों के जो टुकड़े जुड़े हुए थे और जो, कहा जाता है, कि पण्डित जी के जगह जगह के भाषणों के हैं, वे इस समय मेरे सामने हैं। मैंने उन टुकड़ों को एक नहीं, दो बार पढ़ा। उनमें कोई बात ऐसी नहीं है जो हमारे वक्ताओं ने जिनमें एक मैं भी हूं, कितनी ही जगहों में और कितने ही मौकों पर नहीं कही हैं। सिर्फ एक जुमला उनमें ऐसा है जिस पर वाजबी तौर पर एतराज किया जा सकता है। वह यह है—

"जिस बदजात सरकार ने औरतों के पेशाब के मुकाम पर लकड़ियां घुसड़वाई उसको बरबाद करना अगर तुम अपना कर्त्तव्य न समझते हो तो क्या तुम इन्सान कहलाने के लायक हो?"

यह इल्जाम कांग्रेस-कमिटी के सामने पेश किये गये बयानों में जरूर आया है। परन्तु वह कुछ आदमियों पर है, सारी संस्था पर नहीं। सरकार के लिए जितना यह कहना वाजिब हो सकता है कि उसने अमृतसर की गलियों में लोगों को पेट के बल रेंगाया, उतना यह कहना वाजिब नहीं हो सकता था कि उसने ऐसा निन्दित और जङ्गलीपन का काम करवाया। परन्तु पण्डित जी पर यह दोष नहीं लगाया गया है कि उनके भाषण में अ-यथार्थ बात कही गई है या अति-रंजन से काम लिया गया है। उनका इस्तगासा तो बड़ा तेज और मुकम्मिल है और उसमें उनके तीन भाषणों पर [illegible] लगाये गये हैं। और उन में से [illegible] एक की पुष्टि [illegible] होती है। [illegible] निष्पक्षपात से काम लिया है जैसा कि उनके सारनाडियों और आज्ञापत्रों विषयक उद्गारों में प्रकट होता है। फिर यह भी [illegible] होगा कि वक्ता ने भाषण हिन्दी में किया था और ये टुकड़े बिना ही सन्दर्भ के पेश किये गये थे। इससे हम कार्य-कर्ताओं को यही सबक लेना है कि निडरता के साथ हम अपना काम जारी रक्खें और पण्डित गोकुलजी की तथा दूसरे सज्जनों की तरह जेल जाने की तैयारी करें।

[यंग इंडिया]

सिन्ध की तेजस्विता

बम्बई इलाके में सरकार ने सिन्ध-प्रांत को ही दमन के लिए सबसे पहले पसन्द किया था। उसके बाद करनाटक की बारी आई। करनाटक के अभियुक्तों ने अपना बचाव करना पसन्द न किया। सिन्ध के दमन से प्रजा का तेज बिलकुल दब नहीं गया है। [illegible] वर्ष के लिए जेल भेजे गये "हिन्दू" के सम्पादक विष्णु शर्मा हैदराबाद से यहां के एक मित्र को लिखते हैं—

"मैं आज आपको चिट्ठी लिखता हूं। पता नहीं, कल लिख सकूंगा अथवा नहीं। हिन्दू के ऊपर केस की मंजूरी आज आ गई है—दफा १२४ और १५३ के नीचे। मुझे यह सुनकर बहुत आनन्द हुआ है। लड़ता (हुआ) मैं जेल जाता हूं। और आशा है कि मैं भी इसी आनन्द से लौट आऊंगा। सिन्धु अभी तक पीछे थी। पर उम्मेद है कि अब आगे बढ़ने का उसको मौका मिला है। मेरे साथ दो चार और भी चलेंगे। द्वारकाप्रसाद को एक वर्ष मिल गया। सिन्धु की खुशनसीबी है कि अभी तक ६० आदमी जेल चले गये हैं। ईश्वर शक्ति दें कि और भी इसी तरफ चलें।

बापूजी के चरणों में मेरा नमस्कार देना।"

एक दुविधा

[कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जेठे भाई श्रीयुत द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्ति निकेतन से "यंग इंडिया" के सम्पादक के नाम एक पत्र भेजा है। उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है— उप-सम्पादक।]

"प्रिय महाशय

Ethics of Destruction (विनाश की मीमांसा) नामक आपका लेख पढ़ने पर नीचे लिखी दुविधा मेरे ध्यान में आई—

(१) अगर हम सस्ते विलायती कपड़े से मुंह मोड़ें तो हमारे देश के लोग तबाह हो जायंगे। इसका सहन करना कठिन है।

(२) अगर हम महंगे स्वदेशी कपड़े से दूर रहें तो हमें दूसरे निर्धनियों के सामने [illegible] होगा।

दोनों दशाओं में, दोनों दलों के लोग यह कहेंगे कि हमको देशाधीन ही होना पड़ेगा।

इस पर मेरी राय यह है कि यह [illegible] पहली अवस्था में तो गलत रास्ते को झुकना है और दूसरी अवस्था में सही रास्ते को ग्रहण करना है।"

अली भाइयों पर मुकदमा चलेगा !

भारत-सरकार की अनुमतिसे बम्बई-सरकार ने अली बन्धुओं पर मुकदमा चलाने का निश्चय, एक प्रेस-नोट निकाल कर, जाहिर किया है।

ग्राहक होनेवालों को सूचना

जिन स्थानों में "हिन्दी नवजीवन" की फुटकर बिक्री एजेंटों के द्वारा होती है वहां के निवासियों को चाहिए कि वे वहीं से अंक प्राप्त कर लिया करें। वहां ग्राहक होकर डाकखाने से अंक मंगाने से उन्हें और हमें दोनों को असुविधा होती है। पर उस दशा में यदि ग्राहकों को अंक मिलने में गड़बड़ हो तो इसकी शिकायत वे कृपा करके हम से न करें।

मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेजिए। हमारे यहां वी. पी. का नियम नहीं है। एजन्सी के लिए नियम मंगाइए।

व्यवस्थापक—"हिन्दी नवजीवन"
अहमदाबाद.

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, सूर्य ओफ, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित ॥

"कहीं गफलत न हो" !

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—आश्विन ब० ६, संवत् १९७८, शुक्रवार, तारीख २३ सितम्बर, १९२१ | अंक ६

टिप्पणियां

क्या क्या करना चाहिए ?

मौलाना महम्मदअली की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में मैं अपने विचार अग्रलेख में विस्तार के साथ प्रकट कर चुका हूं। उसमें तो मैंने सिर्फ उन्हीं बातों का जिक्र किया है जो इसी साल में स्वराज्य को हासिल करने के लिए बिल्कुल जरूरी हैं। लेकिन कुछ और भी ऐसी बातें हैं जिनको करके हम स्वराज्य की चाल को बहुत तेज कर सकते हैं।

मसलन्-खिताब वाले अपने खिताब लौटा सकते हैं, वकील लोग वकालत छोड सकते हैं, बालिग विद्यार्थी अपने स्कूलों और कालेजों को त्याग सकते हैं और चरखा कातने में जुट जा सकते हैं तथा कौन्सिलों के मेम्बर अपनी मेम्बरी का इस्तीफा दे सकते हैं।

यह तो धर्म्म और अ-धर्म्म का संग्राम है। इसलिए हम से यह भी उम्मीद की जाती है कि सब लोग शराब पीना, जुआ खेलना और वेश्यागमन करना छोड दें। अस्पृश्यता या छुआ-छूत तो शैतान की करामात है। हमें इससे बाज आना ही होगा। बस, फिर देखिए कि स्वराज्य अक्तूबर के भी पहले दौडता हुआ चला आवेगा! मैं तो इस गिरफ्तारी को एक ईश्वरी प्रसाद-खुदाई नियामत-समझता हूँ। आइए, हम सब मिलकर इसका जितना अच्छे से अच्छा उपयोग हो सकता है, करें।

[यंग इंडिया]

क्या क्या न करना चाहिए ?

जैसे कितनी ही बातें हम लोगों के करने लायक हैं और जिन्हें हमें करना ही चाहिए वैसे ही कितनी ही ऐसी भी बातें हैं जिनसे हमें बिल्कुल मुंह मोडने की जरूरत है। हम हडतालों की घोषणा न करें। हमें लोगों के मकानात को न जलाना चाहिए, और न किसी की हत्या करनी चाहिए। हमें किसी की कसम भी न लेना चाहिए। हमें अपने आपस में झगडा-फसाद न करना चाहिए और न उन लोगों के प्रति अ-सहनशीलता दिखानी चाहिए जो हमारे कदम-ब-कदम न चलते हों। असहन शीलता की बनिस्बत हमें सहन-शीलता के ही द्वारा अपने उठाये काम में अधिक सहायक मिलेंगे। 'जबरदस्ती धर्मान्तर' करने के मामले में जिस तरह दीने-इस्लाम में यह माना जाता है कि "मजहबी मामलों में जबरदस्ती नहीं हो सकती" उसी तरह असहयोग के सिद्धान्त पर भी वह चरितार्थ होता है। हमें अपनी कमजोरियों के सिवा न तो किसी मनुष्य से और न किसी चीज से डरने की जरूरत है।

[यंग इंडिया]

विश्वासघात ?

बडे लाट साहब के द्वारा मौलाना महम्मद अली की गिरफ्तारी की अनुमति मिलने के बारे में मेरे मित्र लोग मुझ से पूछ रहे हैं कि क्या ऐसा कर के बडे लाट साहब ने विश्वासघात नहीं किया? परन्तु मैं लार्ड रीडिंग पर विश्वासघात का इल्जाम नहीं लगा सकता। क्योंकि मुकद्दमा न चलाने का उनका आश्वासन तो हमें सेतमेत ही मिला था। पर हां, उनको यह जरूर मुनासिब है कि उनके शिमला वाले भाषण के बाद जो नयी परिस्थिति उत्पन्न हुई है उसे साफ साफ समझावें और बतावें कि मौलाना महम्मद अली की गिरफ्तारी किस वजह से वाजिब है। बडे लाट साहब ने यह उम्मीद तो जरूर ही नहीं की थी कि मौलाना साहब अपने मुंह पर मुहर लगा दें और अपने भाषणों को नरम कर दिया करें। वह "माफी" तो बहादुर और बे-खौफ आदमियों का ही काम था। और अगर किसी जोश और सन-सनी के मौके पर उनके मुंह से कोई ऐसी बात निकल गई हो कि जिसके मानी दङ्गा-फसाद के लिए उभाडने के हो सकते हों, तो इसके लिए उन्होंने अफसोस जाहिर किया था। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि अली-भाई बहादुर हैं, ईमान के पक्के हैं और वे खुदा के सिवा किसीका डर नहीं रखते। उस मशहूर माफी-खत की घटना के बाद से मौलाना महम्मद अली मेरे साथ ही साथ सफर करते रहे हैं। उन्होंने कितने ही व्याख्यान भी दिये। परन्तु जहां, एक ओर उन्होंने खूब जोरदार भाषण किये तहां, दूसरी ओर उन्होंने अहिंसा के उपदेश देने का भी पूरा ध्यान रक्खा है और खानगी तौर पर तो अहिंसा के पक्ष में जो काम उन्होंने किया है वह तो और भी भारी और पक्का है। दोनों भाई खूब जोरों से अहिंसा का प्रचार करते रहे हैं। और जो कुछ उन्होंने कहा वैसा ही खुद किया भी है। मदरास की सरकार यह जानती थी कि हम शान्ति स्थापित करने के ही लिए निकले हैं। वह जानती थी कि मौलाना महम्मदअली हिन्दू-मुसलमान की एकता का उपदेश किये बिना मानने के नहीं। उनके पैगाम मोपला लोगों तक पहुंचने और उनके मजहबी पागल-पन को कुछ रुकावट मिलती। अगर उस अशान्त प्रदेश में; जाने

की इजाजत उन्हें दी जाती तो वे एक कतरा भी खून गिराये बिना शांति स्थापित करा देते। लेकिन इससे सरकार की इज्जत मिट्टी में मिल जाती और असहयोग की फतेह जाहिर होती !

(यंग इंडिया)

सबूत

अगर मेरे इस अनुमान की ताईद के लिए सबूत दरकार हो तो इसके लिए मदरास सरकार के चीफ सेक्रेटरी का एक पत्र जो मेरे मदरास आने पर मुझे मिला है, यहां पेश करता हूं—

"अगर आप मलाबार जिले में जाने की तैयारी में हों तो मुझे आपको यह सूचना देने की आज्ञा हुई है कि फौजी अधिकारियों की राय में जहां जहां फौजी कानून जारी है वहां की हालत ऐसी है कि आपका वहां जाना और ठहरना मुनासिब नहीं है। लार्ड साहब और उनकी कौन्सिल के मेम्बर भी इस राय से इत्तफाक करते हैं। मुझे यह भी इत्तिला कर देने का हुक्म मिला है कि फौजी अधिकारियों ने ऐसे एहकाम जारी कर रक्खे हैं कि अगर आप उन जगहों में प्रवेश करें जहां कि फौजी कानून जारी है, तो आप वहां से वापस लौटा दिये जांय।"

सरकार ने मेरे हेतु को अब तक शुद्ध ही बताया है। मेरे हेतु के प्रति अबतक उसने अविश्वास प्रकट नहीं किया है। हरएक आदमी ने इस बात की जांच कर ली है कि जहां जहां मैं जाता हूं वहां वहीं शान्ति फैल जाती है। परन्तु मेरी रोक का यह हुक्म—क्योंकि हुक्म तो यह बेशक है—मुझे यह अनुमान करने के लिए मजबूर करता है कि सरकार शान्ति नहीं चाहती। वह नहीं चाहती कि उसकी तरफ से रिपोर्टों में जो बात का बतंगड़ बनाया गया है उसकी पोल खुले और सबसे अधिक बुरी बात तो यह कि वह पंजाब के इस दूसरे संस्करण को जो बदकिस्मत मलाबार में हो रहा है, बन्द करना नहीं चाहती !

(यंग इंडिया)

स्त्रियों पर पुरुषों के अत्याचार

[श्री-गांधीजी "यंगइंडिया" में "हमारी पतित बहनों" के सम्बन्ध में लिखते हुए नीचे लिखे उद्गार प्रकट करते हैं-उप-सम्पादक]

"इस मनुष्य-जाति ने यों तो संसार के अनेक पापों और बुराइयों के लिए अपने को जवाबदेह बनाया है; परन्तु उन सब में कोई भी पाप इतना नीचे गिरानेवाला, दिल को इतना दहलाने वाला और इतना हैवानियत से भरा हुआ, नहीं है जितना कि उसके द्वारा किया गया रमणी जाति का-मनुष्य-जाति की एक प्रियतम वस्तु का-जिसे मैं देवी समझता हूं, अबला नहीं,-दुरुपयोग है ! स्त्री-जाति आज भी कुरबानी, चुपचाप कष्ट-सहन, विनम्रता, श्रद्धा और ज्ञान की प्रतिमा है, और इसलिए स्त्री-पुरुष दोनों में एकमात्र वही ज्यादा उच्च और श्रेष्ठ है।

पुरुष इस बात का बड़ा घमण्ड रखते हैं कि हम ज्ञान में बहुत बढ़े-चढ़े हैं; परन्तु उसकी इस धारणा के मुकाबले में तो स्त्री-जाति का सहज ज्ञान-वह ज्ञान जो उन्हें अपनी अन्तःस्फूर्ति से स्वयं प्राप्त होता है-प्रायः अधिक यथार्थ पाया जाता है। राम के नाम के पहले सीता का और कृष्ण के पहले राधा का जो नाम लगाया जाता है उस में कुछ तत्व है। हां, यह पाप की बाजी आज सभ्य योरप में बड़े जोर पर है। और कहीं कहीं तो यह कानूनन् भी जायज मानी गई है ! लेकिन उसकी मिसाल लेकर हमको आंख मूंद कर यह विश्वास न करना चाहिए कि यह पाप की बाजी भी हमारे विकास के लिए एक आवश्यक बात है। और न हमें यह कह कर भी इस पाप का पालन करना चाहिए कि भारत के इतिहास में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं। जिस घड़ी हम पुण्य और पाप का अन्तर समझना छोड़ देंगे और, गुलामों की तरह, भूतकाल की बातोंका (जिनका पूरा पूरा ज्ञान हमको हुई नहीं) अनुकरण करने लगेंगे, बस, उसी घड़ी से हमारा उन्नति का रास्ता बन्द हो जायगा ! हाँ, बेशक पिछले जमानों में जो जो बातें उदात्त और उत्कृष्ट थीं उनके वारिस होनेका हमको बड़ा अभिमान है; परन्तु हमें यह न चाहिए कि हम पिछली गलतियों का भी प्रचार कर के अपनी इस बपौती को नीचा दिखावें। इस स्वाभिमानी हिन्दुस्तान में क्या हरएक मनुष्य को हरएक स्त्रीकी पवित्रता को उसी तरह अपनी चीज न समझना चाहिए जिसतरह कि वह अपनी बहन की पवित्रता को समझता है ? स्वराज्य के मानी तो 'भारत-माता के हरएक सन्तान को अपने ही भाई और बहन की तरह समझने की काबलियत' ही है।"

कांग्रेस कोई तमाशा नहीं है !

अहमदाबाद में होने वाली अगली महासभा की स्वागत-समिति ने दर्शकों के लिए तीन हजार से अधिक टिकट तैयार न करने का निश्चय किया है। इसके खिलाफ, मैं देखता हूँ, कि शिकायतें हो रही हैं। मुझे तो उसका यह काम मुनासिब ही मालूम होता है। अगर हम इस कांग्रेस को महज एक सालाना तमाशा न बनाना चाहते हों और यह चाहते हों कि यह एक ऐसी वास्तविक काम करने वाली परिषद की बैठक हो जो हर साल हुआ करे और मुल्क के लिए आगे सालभर काम करने की तजवीज तय किया करे, तो मेरी राय में दर्शकों की यह तीन हजार संख्या भी बहुत ज्यादा है। प्रतिनिधियों की तादाद बांधने का अर्थ यही है कि दर्शकों की संख्या भी बांध दी जाय; हजारों आदमियों के जल्से में शान्ति के साथ बहस-मुबाहसा करना और मतों की गिनती करना गैर-मुमकिन है। ऐसी हालत में मैं यह महसूस किये बिना नहीं रह सकता कि दर्शकों की तादाद बांध देने का यह स्वागत-समिति का काम बहुत ठीक ही है।

मगर इसका मतलब यह नहीं कि यह मजलिस अपने अच्छे अच्छे व्याख्यानों और प्रचार के स्वरूप को गंवा बैठे। इसलिए स्वागत-समिति यह तजवीज कर रही है कि अच्छे लोक-प्रिय विषयों पर नामी नामी कांग्रेस-भक्तों के, तथा दूसरे प्रख्यात वक्ताओं के भी, व्याख्यान कांग्रेस के कार्य-क्रम के अलावा, कराये जांय। एक अच्छी बोध-प्रद स्वदेशी नुमाइश का भी प्रबंध हो रहा है। दर्शकों के लिए राष्ट्रीय संगीत के जल्से भी होंगे। मुझे भरोसा होता है कि समिति एक लाख आदमियों के लिए इन्तजाम कर रही है। उस मौके पर अहमदाबाद आने के लिए लोगों का उत्साह हर तरह से बढ़ाया जायगा। और उनके लिए काफी बोध-प्राप्ति और मनोरंजन का सामान मुहैया किया जायगा। और वह इस तरह से कि जिससे कांग्रेस के कार्य-क्रम में किसी तरह का खलल न पड़ने पावेगा। इस तरह इस स्वागत-समिति ने अपने सामने वास्तविक कार्य-क्रम और प्रदर्शन को अलग अलग रखने का जो आदर्श रक्खा है वह इसीलिए है कि जिससे दोनों बातों को उत्तेजना मिले।

(यंग इंडिया)

हड़तालें क्यों हों ?

आसाम-बंगाल-रेलवे में और स्टीमरों पर जो हड़तालें हुई हैं वे मामूली नहीं हैं। वे तो अपने ढंग की निराली और पहली ही हैं। मुझे तो यह मालूम हुआ है कि चांदपुर आदि के चाय के खेतों पर काम करने वाले कुली बुरी तरह सताये जाते हैं। उनके दुःखों से उस रेलवे और स्टीमरों के कर्मचारियों के दिलों में हमदर्दी पैदा हुई और उससे जोश में आकर उन्होंने हड़तालें कीं।

इसलिए ये हडतालें सहानुभूति-मूलक, पारमार्थिक और राजनैतिक हैं। मैं तमाम रेलवे लाइनों के, विशेष करके गौहटी, चटगांव और बरीसाल के, हडतालियों से मिला हूं। उनसे दिल खोल कर बात-चीत भी की है। उससे मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि लोग इस बात को पूरी तरह नहीं समझ पाये थे कि इस काम को उठाने में कितनी जोखिम है। पर एक दफा हडताल शुरू कर देने पर उसके नतीजे का सामना करने से भी वे पीछे नहीं हटे हैं। ऐसे मौकों पर बाहरी आदमियों के लिए यह कहना है तो दिक्कत-तलब और बेजा कि अगर ऐसी हालत मेरे सामने होती तो मैं इस इस तरह से यह काम यों करता। लेकिन, ऐसी पेचीदा हालत में भी, अगर कोई चाहे तो, मेरे ख्याल में, यह राय दे सकता है कि वे मजदूर लोग पारमार्थिक अर्थात् दूसरे के भले के लिए की जाने वाली, हडताल के लिए तैयार नहीं थे। मेरी राय में तो हिन्दुस्तान के कुली और कारीगर अभी जातीय चैतन्य या जागृति की उस हद तक नहीं पहुंचे हैं जो कि सहानुभूति मूलक हडतालों में कामयाबी हासिल करने के लिए जरूरी है।

पर इसमें दोष हमारा ही है। हम लोगों ने जो कि इन दिनों राष्ट्रीय सेवा में दिलचस्पी ले रहे हैं, अभी तक इस बात पर गौर नहीं किया था कि इस दरजे के लोगों की जरूरतें और अरमानें क्या हैं। और न हमने उन्हें देश की राजनैतिक अवस्था की जानकारी कराने की तकलीफ ही उठाई थी। अबतक हम लोग यही मानते आये हैं कि मुल्क की खिदमत करने के लायक तो सिर्फ वही लोग हैं जिन्होंने हाई-स्कूल और कालिजों से इम्तहान पास किये हैं। इस हालत में मजदूरों और कारीगरों से यह उम्मीद करना कैसे मुनासिब है कि वे एक दम ऐसे कामों में जिनसे उनके नफा नुकसान का ताल्लुक नहीं है, पडने और उनके लिए कुरबानी करने लग जायं? हमें राजनैतिक कामों के लिए अथवा किसी दूसरे मतलब के लिए भी उनको अपना औजार न बनाना चाहिए। बल्कि ऐसी अवस्था में तो हम जो अच्छी से अच्छी सेवा उनकी कर सकते हैं और उनसे ले सकते हैं वह यह है कि हम उन्हें स्वावलम्बन की-अपने पैरों पर आप खडे रहने की-शिक्षा दें, उन्हें अपने फरायज और हकूक की जानकारी करावें और उन्हें ऐसी हालत में लाकर छोड दें जिसमें वे अपने दुख-दर्द को मिटा और दूर कर सकें। तभी वे राजनैतिक, जातीय अथवा परोपकार-मूलक कामों के लिए तैयार हो सकते हैं, इसके पहले नहीं।

इस हालत में अगर सहानुभूति-मूलक हडतालों के लिए, उचित समय के पहले ही, उद्योग किया जाय तो उससे हमारा उठाया काम बुरी तरह बिगडे बिना नहीं रह सकता। अहिंसा के कार्य-क्रम में से हमें इस खयाल को पक्के तौर पर निकाल देना होगा कि सरकार को तंग और हैरान करने से हमें कुछ भी हासिल हो सकता है। अगर हमारी हल-चल निर्मल-पाक और सरकार की हलचल अशुद्ध-गन्दी होगी और अगर सरकार खुद अपने को शुद्ध न करेगी तो हमारी शुद्धता के बदौलत उसे अपने आप, कुदरती तौर पर, दिक होना पडेगा। इस तरह आत्म-शुद्धि का आन्दोलन दोनों ही पक्ष वालों का भला करता है। इसके खिलाफ अगर दूसरे को बरबाद करने की नीयत से कोई हलचल उठाई जाय तो उससे न केवल बरबादी चाहने वाला खुद अशुद्ध ही बना रहता है, बल्कि वह उतना ही नीचे भी गिर जाता है जितना कि वह आदमी, जिसकी बरबादी के लिए कोशिश की जा रही है।

सहानुभूति-मूलक हडतालें भी आत्म-शुद्धि-मूलक अर्थात् असहयोग-मूलक होनी चाहिए। क्योंकि इस रीति से जब हम किसी जुल्म को मिटाने के लिए हडताल की तजवीज करते हैं, तब हम खुद-ब-खुद अपने को जुल्म में शरीक होने से दर असल अलहदा रखते हैं और, इस तरह हम जालिम को महज उसीकी साधन-सामग्री के सहारे छोड देते हैं-दूसरे अल्फाज में यों कहें कि हम जालिम को ऐसा मौका देते हैं जिसमें वह अपने आप यह देख सके कि बराबर जुल्म करते रहने में मैं कितनी बेवकूफी कर रहा हूं। मगर ऐसी हडताल में तभी कामयाबी हो सकती है जब कि उसकी पीठ पर हडतालियों का यह पक्का कस्द हो कि हम बीच ही में हरगिज काम पर न जायंगे।

मैंने आज तक कई हडतालें कामयाबी के साथ की हैं। और यहां मैं एक हडतालों के तजरिबेकार की हैसियत से हडतालों के कुछ नियम लिखता हूं, जिससे उम्मीद है कि हडतालों के अगुआ लोगों को कुछ मदद मिलेगी—

(१) दर हकीकत किसी दुख-दर्द के हुए बिना हडताल हरगिज न की जाय।

(२) अगर हडतालिये लोग अपनी ही बचत के चन्दे के जरिये या धुनकना, कातना, बुनना, जैसे किसी रोजगार पेशा अख्त्यार करके अपनी गुजर न कर सकें तो हडताल न की जाय। हडतालियों को आम लोगों के चंदों या दूसरी किस्म के दानों के भरोसे हरगिज हडताल न करनी चाहिए।

(३) हडतालियों को अपनी मांग पहले से तय कर रखना चाहिए। मांग कमसे कम हो और ऐसी हो कि उसे फिर आगे चलकर तिल भर भी घटाना-बढाना न पडे। और हडताल शुरू करने के पहले ही उसे जाहिर भी कर देना चाहिए।

अगर हडतालियों की जगह पर दूसरे काम करने वाले लोग तैयार हों तो हडताल, सच्चे दुख-दर्द के होते हुए भी और हडतालियों में अपनी टेक पर पक्के डटे रहने की काबिलियत होते हुए भी, ना-कामयाब हो सकती है। इसलिए कोई भी समझदार आदमी अगर वह यह जानता होगा कि मेरी जगह दूसरा आदमी आसानी से काम पर आ सकता है तो अपनी मजदूरी बढाने के लिए अथवा दूसरे सुख-साधन के लिए कभी हडताल नहीं करेगा। परन्तु जो मनुष्य परोपकारशील या देश-भक्त होगा वह अगर अपने भाइयों की मुसीबत को महसूस करता होगा और उसमें उसका साथ देने की ख्वाहिश रखता होगा, तो जरूर हडताल करेगा-फिर उसकी मांग चाहे कितनी ही ज्यादह क्यों न पूरी की जानी हो? और यह कहने की तो जरूरत ही नहीं है कि बा-अदब हडतालों का जो ढंग मैंने बताया है उसमें हिंसा के लिए तो जगह ही नहीं है-फिर वह चाहे दूसरों को डराने-धमकाने के अथवा आग लगाने के या दूसरे किसी रूप में क्यों न हो। इस हालत में अगर मुझे यह मालूम हुआ कि चटगांव में हाल ही में जो रेल की लाइनें उखाड दी गई हैं, वह किसी हडतालियों की ही शरारत है, तो मुझे बडा ही अफसोस होगा।

मेरी सुझाई हुई इन कसौटियों पर कस कर अगर देखा जाय तो यह साफ हो जाता है कि हडतालियों के हित-चिन्तकों को यह न चाहिए था कि वे हडतालियों को कांग्रेस अथवा दूसरी आम संस्थाओं के खजाने से उनकी गुजर के लिए दरख्वास्त देने या रुपया लेने की सलाह देते। सच पूछिए तो हडतालियों ने आर्थिक सहायता पाकर अपनी हमदर्दी की कीमत को घटा लिया! सहानुभूति-मूलक हडतालों का महत्व तो हमदर्दी रखने वालों के असुविधा उठाने और कष्ट सहने में ही है।

अब यह सवाल आता है कि उन हडतालियों को, अथवा उनके लिए-और ये ५० फी सदी से भी ज्यादह हैं-अब क्या करना चाहिए, जिन्होंने धमकाये जाने और लोभ-लालच दिये जाने पर

भी जवांमर्दी के साथ अपनी टेक नहीं छोड़ी है ! सो इस बारे में मैंने अपनी राय बंगाल कौप्रान्तीय महासभा-समिति के पास भेज दी है। और मैं उसीका पाबन्द रहना चाहता हूं। अगर हड़तालियों ने केवल चांदपुर के अत्याचार-पीड़ित कुलियों के प्रति सहानुभूति के वश होकर हड़ताल की है और सो भी अपने भाइयों को बिना डराये-धमकाये, तो नैतिक दृष्टि से उन्हें ऐसा करने का पूरा हक था, और ऐसा करके उन्होंने इस दर्जे की देश-भक्ति और भाई-चारे का परिचय दिया है जिसकी उम्मीद उनसे नहीं की जा सकती थी।

मुझे आशा है कि अब, जबतक सरकार पूरी तरह और खुले तौर पर माफी न मांगे और जबतक कुलियों को उनके घर पहुंचाने के लिए खर्च की रकम न अदा कर दे, तबतक हड़तालिये लोग बराबर काम पर जाने से साफ इनकार करते रहेंगे।

(यंग इंडिया)

चरखे-करघे की आमदनी

बहुत लोगों को यह शक है कि चरखे और करघे की आमदनी आज-कल के गरीब से गरीब मजदूर के लिए भी काफी नहीं है। परन्तु यह ख्याल गलत है। नीचे दिये हुए नकशों से साफ मालूम हो जायगा कि हमारे देश में अबतक बहुत से ऐसे मुकाम हैं जहाँ दो और तीन आने से ज्यादह मजदूरी नहीं मिलती। ये अंक सरकारी रिपोर्ट से लिये गये हैं और केवल नमूने के तौर पर यहां दिये जाते हैं। इस दर्दनाक कहानी का मुफस्सिल हाल जो लोग जानना चाहते हों उन्हें Prices and Wages in India (1920) नाम की पुस्तक देखनी चाहिए। १९११ की मर्दुमशुमारी के साथ मजदूरों की भी गिनती की गई थी। १९१६ में यह गिनती कुछ विस्तार के साथ की गई थी। उस गिनती के अंक तो दिलको और भी पानी पानी कर देते हैं। पर उन अंकों को लोग बहुत पुराना समझेंगे। इस ख्याल से पिछली सरकारी रिपोर्ट के ही अंक दिये गये हैं। आसाम के चाय के खेतों में काम करने वाले कुलियों की औसत मजदूरी का भी नकशा दिया जाता है। उसीके साथ कानूनन् तय की हुई मजदूरी का भी ब्योरा है।

नकशा नं० १

दिसम्बर तक के छः महीने की मासिक औसत

नाम	मजदूरी (सन् १९११)
मेवाड़ (उदयपुर)	रु०—४ से ६
मध्य-देश और बरार (रोजाना)	
शहरों में—	
कम से कम	३ आना
ज्यादह से ज्यादह	१२ ,,
२१ शहरों की औसत	५ ,, ९ पा.
देहात में—	
कम से कम	२ ,,
ज्यादह से ज्यादह	१० ,,
२२ जिलों की औसत लगभग	४ ,, ९ पा.

नकशा नं० २

उड़ीसा की नहरों पर मामूली काम करने वालों की मजदूरी की रोजाना औसत (१९२०)

	मर्द	औरत	बच्चा
कटक डिवीजन (आने)	४	३	२.५
[illegible] डिवीजन ,,	४.८	३	२.६

नोट—ये अंक औसत के हैं। पर अनेक लोग बहुतेरे मजदूरों को इससे भी कम मजदूरी मिलती है।

नकशा नं० ३

आसाम में चाय-बाग के कुलियों की माहवार मजदूरी (१९१८-१९)

जो मिलता है—	मर्द	औरत
कम से कम	४॥=४	४॥
ज्यादह से ज्यादह	१३)२	१३।) *
१० सब-डिवीजन का औसत	८॥=११	८॥।-२

(१९०१ में संशोधित) १८८२ के कानून द्वारा मुकर्ररा

नौकरी के पहले साल में	५)	४)
,, २ रे और ३ रे ,,	५॥)	४॥)
,, ४ थे ,,	६)	५)

* नोट—यह जाहिर है कि कई जगहों में औरतों की तादाद मर्दों की बनिस्बत बहुत कम है।

इन नकशों पर टीका-टिप्पणी करने की जरूरत नहीं। इतना लिखना काफी है कि हिन्दुस्तानी कुली लोग जो देश के कोने-कोने से जाकर संसार के सब हिस्सों में विदेशी खेतिहरों के हाथ, आधे-पेट भोजन पर अपनी आजादी बेच रहे हैं, अगर वे कभी अपने बाप-दादों की झोपड़ी की शान बढ़ाना चाहेंगे तब घर आकर चरखा चलाने और कपड़ा बुनने की आमदनी पर नाज्जुब करेंगे। केवल खेती पर ही कृषकों की रोटी चलना मुश्किल है ! साल में पांच मास वे बे-काम रहते हैं। घर की स्त्रियों को नित्य के काम-काज से कई घंटे समय बचता है। शहरों की धूल फांकने के बदले यदि वे सूत कातें तो पांच आने और यदि कपड़ा बुनें तो एक रुपया, दैनिक, आसानी से पैदा कर सकते हैं। चरखे की आमदनी से शहर की बड़ी-बड़ी मजदूरी का मुकाबला करना बड़ी भूल है। दोनों की असली मजदूरी को (real wages) लेना चाहिए। रुपया खाया नहीं जाता। उससे तो आराम का साज-समान मिलता है। इसलिए मुकाबला करते वक्त सुख के समष्टि-रूप का ध्यान रखना जरूरी है। पहली अवस्था में, खेत पर ही रह कर, स्वतंत्रता-पूर्वक, सस्ते में जीवन बीतता है। दूसरी अवस्था में, घर-बार छोड़ कर, स्वतंत्रता बेच कर, मंहगी के साथ, शहर के कूड़े-कर्कट में रहना पड़ता है। फिर भी, केवल व्यक्तिगत दृष्टि से सब प्रश्नों का विचार करना अनुचित है। राष्ट्रीय जीवन-मरण के सिद्धान्तों की अवहेलना करने से भयंकर स्थिति उपस्थित हो सकती है।

हरेन्द्र बहादुरचन्द्र

पिछले हफ्ते में इन्दौर-राज्य प्रजा-परिषद की पहली बैठक इन्दौर-नगर में, वहां के उत्साही देश-भक्तों के प्रयत्न से, हुई। उसमें इन्दौर-राज्य में निर्वाचित लोक-प्रतिनिधि-सभा स्थापित करने की प्रार्थना करने, स्वदेशी का प्रचार करने, शराब-खोरी को बन्द करने के लिए कानून बनाने की प्रार्थना करने, आदि के प्रस्ताव पास हुए। काठियावाड़ की परिषद के बाद देशी-राज्यों की प्रजा की तरफ से देशी-राज्य में होने वाली यह दूसरी परिषद है। मध्य भारतमें तो यह पहली ही है !

* *

मौलाना महम्मदअली के अलावा मौलाना शौकतअली, डाक्टर किचलू, शारदा पीठ के जगद्गुरु श्री शंकराचार्य तथा दो और मुसलमान् नेता गिरफ्तार करके कराची पहुंचाये गये हैं। वहीं उन पर मुकदमा चलेगा। अ-सहयोग के कार्य-कर्त्ता देश में जोरों और शान्ति-रखने के लिए सफलता-पूर्वक कोशिश कर रहे हैं।

* *

हिन्दी
नवजीवन
शुक्रवार, आश्विन ब. ८ सं. १९७८.
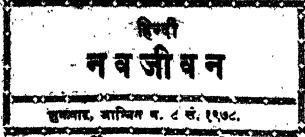
"कहीं गफलत न हो"!

मौलाना महम्मद अली की गिरफ्तारी की जो चर्चा मुल्कभर में फैल रही थी, वह आखिर सच होगई! मदरास जाते हुए ज्यों ही हम लोग रास्ते में वाल्टेयर स्टेशन पर पहुंचे, मौलाना साहब पकड़ लिये गये! अभी मैंने कुछ तार लिखकर खतम ही किये हैं और ट्रेन में बैठे हुए इन सतरों को लिख रहा हूँ। गाड़ी वाल्टेयर में २५ मिनट से भी ज्यादह ठहरती है। मैं और मौलाना महम्मदअली एक सभा में व्याख्यान देने के लिए बाहर जा रहे थे। हम स्टेशन के दरवाजे से कुछ ही कदम आगे बढ़े होंगे कि मैंने मौलाना साहब की पुकार सुनी और देखा तो वे रुक पड़ रहे थे। मैं उनसे कुछ कदम आगे था। जो लोग उन्हें पकड़ने आये थे उनमें दो गोरे और आधे दर्जन हिंदुस्तानी पुलिस के आदमी थे। इस टोली के अफसर ने मौलाना साहब को नोटिस पूरा पढ़ने भी नहीं दिया और उनका हाथ पकड़कर अपने साथ ले गया। मौलाना साहब ने मुसकराते हुए हाथ ऊंचा उठा कर सलाम किया और बिदा हुए। मैं इसका मतलब समझ गया। अब झण्डे को फहराते हुए मुझे ही आगे बढ़ना है। परमात्मा मुझे मदद दें कि मैं अपने एक साथी के—वह साथी जिसके साथ काम करने का सौभाग्य मुझे अबतक मिला—इस सन्देश को पालन करने के लायक साबित होऊं।

फिर मैं सभा में गया। मैंने लोगों से कहा कि शान्ति धारण करो और कांग्रेस के कार्य्य-क्रम को पूरा करो। मैं वापिस लौटा और उस जगह पर गया जहां मौलाना साहब हवालात में थे। जिस अफसर की सिपुर्दगी में वे थे उससे मैंने पूछा कि क्या मैं मौलाना साहब से मिल सकता हूं? उसने कहा कि मुझे तो सिर्फ उनकी बीबी और सेक्रेटरी को ही उनसे मिलने देने का हुक्म है। मैंने मौलाना साहब की बेगम और उनके सेक्रेटरी श्रीयुत हयात को हवालात के कमरे से लौटते हुए देखा।

आन्ध्र-देश में वाल्टेयर सुन्दरता का घर है। यहां की आबो-हवा तन्दुरुस्ती के लिए बहुत मुफीद है। ऐसे बढ़िया मुकाम पर मौलाना साहब को गिरफ्तार होते हुए देखकर मुझे बड़ा रश्क हुआ। वे वाल्टेयर में कुछ दिन ठहरकर आराम करना और अपने डेपुटेशन का हिसाब तैयार करना चाहते थे। परन्तु हमें बङ्गाल में अन्दाज से ज्यादह दिन रहना पड़ा और इधर मोपलाओं में उत्पात खड़ा हो गया! इससे उनकी यह इच्छा दिल की दिल ही में रह गई।

परन्तु परमात्मा की इच्छा कुछ और ही थी। वह मौलाना साहब को जबरदस्ती आराम देना चाहता था। और मैं जानता हूं कि अब हवालात में वे बड़े सुख से रहेंगे।

मौलाना साहब की गिरफ्तारी के लिए जो वारण्ट निकला उसकी नकल नीचे दी जाती है—

"श्रीयुत एफ० ई० कर्निंघाम साहब,

डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल पुलिस, सी० आई० डी०

और रेल्वे, मदरास।

चूंकि महम्मदअली को हाजिर अदालत होकर यह बतलाने की जरूरत है कि वह कानून फौजदारी की दफा १०७ और १०८ के मुताबिक एक सालतक अमनो-अमां कायम रखने और अपना चाल चलन दुरुस्त रखने के लिए क्यों न जमानत दाखल करे, बजरिये हाजा तुमको इत्तिला दी जाती है कि तुम सदर मू महम्मदअली को गिरफ्तार करके मेरे इजलास में पेश करो। इसमें कहीं गफलत न हो।

तारीख १४ सितम्बर १९२१

(सही) जे० आर० गृफिन्स,

जिला मजिस्ट्रेट,

विजगापट्टम्"

क्या यह दिल्लगी नहीं है कि जो शख्स न सिर्फ खुद ही अमनो-अमां कायम रखता रहा, बल्कि दूसरों में भी शान्ति का प्रचार, और सो भी बड़ी कामयाबी के साथ, करने की जी-जान से कोशिश करता रहा, और जो कि नेकचलनी का एक सरपरस्त रहा है, उसको एक ऐसी ताकत जोकि गुस्ताख है, "अमनो-अमां कायम रखने और नेक चाल चलन रखने को जमानत देने के लिए" तलब करे? सच है, जो **सरकार कि खुद बद है उसके यहां, भले मानसों के लिए, सिवा उसके कैदखानों के दूसरी जगह और कहां हो सकती है?**

अब यहां जो छोटे भाई पर बीती है वही बड़े भाई पर भी बीते बिना नहीं रह सकती। वे दोनों अपने को 'स्यामी' जुड़े-भाई कहते हैं। वे जुदा तो हो ही नहीं सकते। और अगर एक भाई ने बदचलनी की है तो दूसरे ने भी जरूर ही की है। मुझे उम्मीद है कि जबतक यह लेख छप कर आया होगा तबतक आप लोग मौलाना शौकतअली के भी पकड़े जाने की खबर सुन चुके होंगे।

सरकार ने मौलाना महम्मदअली को क्या कैद किया, खिलाफत को कैद कर लिया है! क्योंकि ये दोनों भाई खिलाफत के सच्चे से सच्चे प्रतिनिधि हैं। जबतब कि खलीफा दर हकीकत एक कैदी बना हुआ है और जबतक कि उनके तीर्थस्थान करीब करीब सब तरह से गैर-मुसलमान कौम के ही ताबे में हैं, तबतक वे दम नहीं ले सकते। इन दोनों भाइयों में से किसी एक को या दोनों को कैद करने के मानी यही है कि खिलाफत के दावे को साफ साफ ना मंजूर करना।

लेकिन सरकार देखेगी, कि वह अली-भाइयों के तेज और जोश को कैद करने में कामयाब नहीं हुई है, और देखेगी कि उन को कैद कर देने से खिलाफत का संग्राम उग्र से उग्र रूप धारण कर रहा है। इससे हर एक सच्चे हिन्दू और मुसलमान भाई के दिल में दोनों भाइयों का तेज और जोश जाग्रत और अमर हो जायगा और दोनों कौमें मिलकर खिलाफत की लपटों को वैसे ही धधकाती रहेंगी!

लेकिन ये दोनों भाई आज खिलाफत के अलावा कुछ और बात के लिए भी लड़ रहे हैं। वे स्वराज्य चाहते हैं और खिलाफत के जुल्मों को मिटाने के साथ ही, उतना ही जोर के साथ, पंजाब के जुल्मों को भी मिटा देना चाहते हैं। उनकी शराफत ऐसी है कि वह अकेले खिलाफत के निपटारे से उन्हें ठंडा नहीं पड़ने देगी। उनका ईमान ऐसा नहीं है कि वह खिलाफत के लिए, दूसरी सब बातों को छोड़ कर, सरकार से समझौता करने पर राजी होने दे। वे तो इन तीनों बातों को एक ही समझते हैं, जुदा जुदा नहीं। और इसके सिवा दूसरी बात हो भी नहीं सकती: क्योंकि इनमेंसे किसी एक बात कोदेना या पाना दूसरी बात को देना या पाना है।

मैं तो मौलाना साहब के कैद होने को एक शुभ शकुन मानता हूं। अबतक तो सरकार असहयोग के मामूली अनुयायियों

की पकड़-धकड़ कर के जेल कर रही थी। मगर जो सरकार लोकमत के सामने सिर झुकाना नहीं चाहती उसके लिए देश के लोक-प्रिय नेताओं को गिरफ्तार करने और लोगों के जोश या तेज को कुचलने के सिवा दूसरा रास्ता ही नहीं है। और इस हिन्दुस्तान की सरकार के घर की तो यह रीत ही चली आई है कि पहले तो अगुओं को पकड़-धकड़ कर उन्हें जेल में बांध दे और उस समय उनकी मांगे पूरी करे और लोकमत का आदर करे, जब कि उसके इस काम में किसी तरह की शोभा नहीं रह जाती!

मौलाना महम्मदअली की इस गिरफ्तारी को तो स्वराज्य की स्थापना का "श्री-गणेश" समझना चाहिए। बस, इन जेलों के दरवाजों के ताले तो अब हमारी स्वराज्य, पार्लमेंट ही खोलेगी और वही मौलाना साहब को तथा उनके दूसरे साथी कैदियों को उचित आदर के साथ बधा कर लावेगी, क्योंकि **यह जंग जो कि छिड़ चुका है, अब खतम हुए बिना बीच में रुक ही नहीं सकता।**

इस मौके पर हम अलीभाइयों की और उनके साथी कैदी भाइयों की उम्दासे उम्दा जो इज्जत कर सकते हैं वह इस तरह कि अब हम अपने तमाम शकोशुबह को, डर को और आलस्य को अपने दिल से बिल्कुल हटा दें! अबतक इसबात पर कि अपनी मंजिले मकसूद पर पहुंचने के काम में अ-हिंसा और स्वदेशी की महिमा कितनी है और इसी साल में उसके कार्य्य-क्रम को पूरा करने की काबलियत हममें कितनी है, हम शक करते आये हैं। अब तक हम अपने दिलों में यह झिझक रखते आये हैं कि आवश्यक कुरबानी का माद्दा हममें है या नहीं, और इसलिए इस कार्य्य-क्रम को पूरा करने में बड़ी सुस्ती दिखा रहे हैं। अब, आइए, हम इन भाइयों के साहस का, श्रद्धाका, निडरता का, सच्चाई का और जागृत तथा अ-विराम कार्य्य-तत्परता का अनुसरण करें और, निश्चय ही, हमें स्व-राज्य मिले बिना न रहेगा!

उस जिला मैजिस्ट्रेट के हुक्म-नामे के आखिरी लफ्ज थे "इस में गफलत न होने पावे" और वह अफसर दर-असल "चूका भी नहीं!" कितने ही अंगरेजों ने अपनी जान तक देकर भी अपने सौंपे कामो को पूरा करने का-उसमें गफलत न करनेका-प्रयत्न किया है और इस बात का जस भी उन्हें दिया जाना चाहिए। अब, महासभा और खिलाफत का भी यही फरमान है कि "**देखना गफलत न होने पावे!**" अब क्या हम इन शेष दो महीनों में इतना काम न करेंगे, जिससे महासभा को यह कह सकें कि "हां, हम चूके नहीं हैं?"

फरमान तो यही है—

(१) गहरी सनसनी की हालत में भी अहिंसा का पालन करो।

(२) चाहे कितना ही जोर हम पर क्यों न पड़े, हिन्दू-मुसलमान की एकता कायम रक्खो।

(३) तमाम विलायती कपड़ों का बरतना एक दम छोड़ दो, फिर चाहे हमें मोटे से मोटे कपड़े पर क्यों न अपना काम चलाना पड़े और तमाम फुरसत के वक्त में चरखा कातो और कपड़ा बुनो।

अब हम इन तीनों शर्तों को पूरा कर सकेंगे तभी हम बा-अदब कानून को तोड़ने के लिए तैयार होंगे, उसके पहले नहीं। और यह बा-अदब कानून का तोड़ना वह चीज है जिसके बदौलत दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकतवर सरकार को लोगों का हुक्म मानने पर मजबूर होना पड़ेगा!

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

खुराफात!

अगर किसी बात की गहरी लगन भर होना ही नेकनामी का परवाना समझा जा सकता हो तो बरीसाल की जिला-प्रचार-समिति को यह श्रेय जरूर मिलना चाहिए। परन्तु तजरिबे से यह मालूम होता है कि अगर ऐसी लगन भी किसी बुरे मतलब से हो तो वह नेकनामी के बजाय बदनामी के ही काबिल है। और बरीसाल की जिला-प्रचार-समिति की हलचल मुझे तो इसी तरह की दिखाई देती है। वह खुले और पक्के तौर पर असहयोग के खिलाफ है। हमारे बरीसाल पहुंचने पर मुझे एक रजिस्टर्ड खत मिला। उसमें मुझसे कुछ सवाल किये गये थे। और उनके जवाब एक आम जलसे में चाहे गये थे, जो कि जल्दही वहां होने वाला था और जिसमें मौलाना महम्मदअलीका और मेरा भाषण होने वाला था। ये सवाल छपे हुए थे। परन्तु किसी ने खुद आकर भी मुझे वह सवाल का कागज दिया। मैंने हर एक सवाल का पूरा पूरा जवाब दिया। दूसरे दिन मैं क्या देखता हूं कि मेरे उन्हीं जवाबों का खुलासा मेरे सामने शुद्ध करने के लिए पेश किया गया। यह खुलासा क्या था, मेरे जवाबों का एक खासा हास्यचित्र मात्र था। इसके बाद फिर एक आदमी आया और उसने कुछ पत्र मुझे पढ़ने के लिए दिये और मुझसे उनका खुलासा चाहा। मैं अबतक यह नहीं जानता था कि इन कागजों को लिखने वाला और मेरे पास भेजनेवाला शख्स कौन है। क्योंकि एक भी कागज पर किसी की सही नहीं थी। मैंने आजतक किसी भी आम संस्था में इतनी बे-जवाबदेही का काम नहीं देखा। मुझे कुछ लोगों से मालूम हुआ कि यह सब सरकारी नौकरों की करामात है और इसलिए यह खर्च लोगों की गांठ के पैसे से हो रहा है। अच्छा, अब मेरे कामों पर जो इतना 'ध्यान' रक्खा गया है, उसके मूल में कहीं किसी बात के जानने की जरा भी ख्वाहिश या मुझे अपनी गलती का कायल करने की कोई कोशिश हो, सो भी बात भी नहीं। हां, अगर वह समिति मुझे और मेरे दोस्तों को किसी मसले पर तकरीर करने के लिए बुलाती तो भी एक बात होती। और, यह भी अगर आम लोगों के सामने होता तो और भी अच्छा होता। इस तरह वह हम लोगों की हाजिरी का उपयोग दोनों दलों का मेल करने में कर पाती। जो हो, मुझे तो उसकी इस सतत निगरानी में यहां के असहयोगियों के कामो की बदनामी करने के सिवा और कुछ न दिखाई दिया। अपनी बंगाल की सफर में मुझे जो कुछ तजरिबा हुआ उसीको ध्यान में रखकर मैंने इस हलचल को भी देखा। और मुझे इसमें असहयोग और असहयोगियों के बारे में गलत ख्याल फैलाने का दुष्ट हेतु दिखाई देता है। यही नहीं, मैं तो देखता हूं कि मेरे विचारों का भी उलट-पुलट अर्थ समझाया जा रहा है। बस, लोग मेरे भाषणों में से कुछ इधर के और कुछ उधर के जुमले ले लेते हैं और मन चाहा उलटा अर्थ करते फिरते हैं! इसकी सबसे ताजी मिसाल है कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की और मेरी बात-चीत की। ओहो, उसकी भी कितनी तोड़-मरोड़ की गई है!

कई मनगढंत और बे सिर पैर की खबरें अखबारों में निकली हैं। दर असल मेरी उनकी मुलाकात में कोई छिपाव की बात नहीं थी। तो भी उसके छिपाव का ढिंढोरा पीटाही जा रहा है। मैं तो समझता हूं कि यह कोशिश महज इसीलिए की जा रही है कि मुझमें और कविवर में फूट पड़ जाय। लेकिन यह कोशिश बे काम हुए बिना नहीं रह सकती। कविवर का हृदय महान् है। उस पर इन बातों का असर होही नहीं सकता। असहयोगियों को भी चाहिए कि वे कविवर के सम्बन्ध में जो कुछ

बुरा भला कहा गया है, उस पर कभी ऐतबार न करें। हां, उनके और मेरे मतों में कुछ भेद जरूर है। परन्तु वह उनके प्रति मेरे हृदय के आदर-भाव को तिलभर भी किसी तरह कम नहीं कर सकता। भारत पर जितना प्रेम मेरा है उतनाही कविवर काभी है। और एक मात्र यही प्रेम हम दोनों के हृदय को जुदा रखने के लिए बहुत काफी है। इसलिए मैंने निश्चय कर लिया है कि मेरी और उनकी बातचीत के विषय में जो कुछ बतंगड़ फैल रहा है उससे अपने को दूर ही रक्खूं।

अच्छा, अब उन सवालों की ओर झुकें। हां, मुझे विश्वास तो था कि वे सवाल दुष्ट हेतु से पूछे गये हैं तथापि मैंने उन सबका जवाब, मैं ऊपर कही चुका हूं कि, उस दिन उस आम*जलसे में- दे दिया। उन सब जवाबों को मैं मुफस्सिल तौर पर लिखना नहीं चाहता। परन्तु पाठकों को वे सवाल खुद ही बड़े दिलचस्प मालूम होंगे; क्योंकि उनसे उन्हें यह आपही आप मालूम हो जायगा कि वह कीमर्त्ता प्रचार-कार्य किस तर्ज का है।

१ सवाल—आपने तो राजनैतिक हड़तालों के खिलाफ अपनी राय दी है। लेकिन आपके यहांके अनुयायियों ने तो स्टीमर की हड़तालों की पुष्टि की है और हड़तालियों के भोजन-पान के लिए कांग्रेस के कोश में से हजारों रुपये खर्च किये हैं। क्या यह ठीक है?

जवाब—हड़तालों के विषय में मेरे विचार प्रकट हो चुके हैं। उन्हें पढ़िए।

२ सवाल—आपकी आज्ञा के अनुसार सैकड़ों विद्यार्थियों ने स्कूल और कालिज छोड़ दिये हैं, और अब वे अपना वक्त शांति रखने वाले और कानून के पाबन्द रहने वाले लोगों का अपमान करने और उनको डराने-धमकाने में बरबाद करते हैं। इन लड़कों का भविष्य आगे कैसा होने वाला है? ये लोग अपना पेट किस तरह भरेंगे?

जवाब—लड़के अगर गुस्ताखी से पेश आते हों और डराते-धमकाते हों तो उनका यह काम बेजा है। लेकिन मैं तो नहीं समझता कि बहुत से लड़के ऐसे होंगे। लड़कों की आयन्दा जिन्दगी तो मुझे बड़ी शानदार मालूम होती है। क्योंकि इस समय वे आजाद हैं। वे सिर से पैर तक पसीना बहाकर अपना पेट भरेंगे। साहित्य-विषयक शिक्षा तो वे अब भी प्राप्त कर सकते हैं और प्राप्त कर भी रहे हैं।

३ सवाल—आपने तो हड़तालों का निषेध किया है। लेकिन आपके अनुयायियों ने तो कई हड़तालें की हैं और दूकानदारों को भड़काया है कि तुम सरकारी नौकरों और राज-भक्त लोगों के हाथ सौदा मत बेचो। क्या आप इसका भी निषेध करते हैं?

जवाब—मैंने सब तरह की हड़तालों के खिलाफ राय कभी नहीं दी है। हड़ताल शुरू कर देने के बाद हड़तालिये किसी के भी यहां काम नहीं कर सकते। परन्तु हां, अगर वे किसी खास ही फिरके के और कुछ खास ही आदमियों के यहां काम करने से इन्कार करें तो यह बेजा है। यह ठीक है कि हड़तालें केवल खास खास और बहुत ही कम मौकों पर की जानी चाहिए।

४ सवाल—इन हाल की हड़तालों में आपके असहयोगियों ने दो दिन तक म्युनिसिपल्टी के मेहतरों को अपना काम नहीं करने दिया, पानी पहुंचना बन्द कर दिया, और लोगों की तन्दुरुस्ती को बड़े खतरे में डाल दिया। क्या यह ठीक था?

जवाब:—हां, मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि इस सवाल में जो बात कही गई है उसका कुछ अंश तो सच है। हम अपने मुखालिफों को भी उनकी निजी खिदमात से महरूम रखना नहीं चाहते। सूरज देवता जिस तरह बिना किसी तरह के भेदभाव के सबको अपनी रोशनी देते हैं, उसी तरह सेवा तो सबकी बराबर होनी चाहिए।

५ सवाल—बाबू शरत् कुमार घोष ने, जब वे राजभक्त लोगों का अपमान करने के लिए लोगों को उभाड़ने के आरोप में गिरफ्तार किये गये, तब कहा था कि शहर में हर्गिज न तो पानी पहुँचने दिया जाय, न रोशनी होने दी जाय और न मेहतरों को काम पर आने दिया जाय और यह मुकाम एक स्मशान बना दिया जाय। उनका यह कहना उचित था या अनुचित?

जवाब—उसके बाद बाबू शरत्कुमार घोष के भाषण जो समिति की ओरसे मुझे मिले, मैंने पढ़े। उन भाषण में ऐसे कई जुमले हैं जिनका मतलब ऐसा भी हो सकता है जैसा कि निकालने की कोशिश की गई है। परंतु शरद बाबू की सच्चरित्रता की जो कीर्ति मैंने अबतक सुनी है, उससे तो मैं यह नहीं मान सकता कि शरद बाबू के दिल में हिंसा के भाव हैं। और, मुझे यकीन है कि अगर शरद बाबू के मुंहसे ऐसा कभी निकल भी गया होगा तो वे अपनी भूल को कबूल करने में कभी आनाकानी न करेंगे.

६ सवाल—ये सब बातें आपके नाम पर की गईं। और वे उन लोगों ने कीं जो "गांधी महाराज की जय" पुकारते थे। क्या आप इसे पसन्द करते हैं? अगर नहीं, तो आप अपने इन अनुयायियों को किस तरह रोकेंगे, जिससे भविष्य में ये ऐसा बुरा काम न करें?

जवाब:—मुझे तो उम्मीद है कि मेरे 'अनुयायी' अहिंसा के भावों को अपने रगो-रेशेमें पैवस्त कर रहे हैं। परन्तु अगर कभी वे अहिंसा की ओट में हिंसा का अवलंबन करें तो उनके इन हिंसात्मक भावों का पहला शिकार खुद मैंही होऊंगा। लेकिन अगर मेरी बद-किस्मती से, या मेरी ही कायरता से, ऐसा नहीं हो पाया और मैंने अपने को जिंदा ही पाया तो उस हालत में वह बर्फ से ढका हुआ स्वच्छ सफेद हिमालय मुझे अपना समझ कर अपनी गोद में स्थान देगा।

७-८-९ सवाल—क्या इस समय मुल्क में इतना स्वदेशी कपड़ा है जिसे सब लोग पहन सकें? विलायती कपड़े के बहिष्कार से क्या कपड़े के दाम बढ़ नहीं जायंगे? दाम पहले से ही क्या बढ़े हुए नहीं हैं? क्या बहिष्कार के बदौलत गरीबों पर आफत नहीं छा जायगी और क्या इससे पहले की तरह बाजार में लूट खसोट नहीं मचेगी? क्या खुलना के लोगों को पहले ही कपड़े की जरूरत नहीं है? क्या यह बहिष्कार उन्हें मदद देगा? जिस कपड़े को देकर उनकी मुसीबत रफा की जा सकती है उसे जलाना क्या उचित है?

क्या युद्ध के जमाने में बम्बई के मिल-मालिकों ने, विलायती कपड़े की कमी के कारण, अपना कपड़ा ऊंचे दामों में बेचकर खूब मुनाफा नहीं कमाया है? और अगर अब बहिष्कार किया गया तो क्या वे और ज्यादह मुनाफा नहीं उठावेंगे? क्या गरीब लोगों से रुपया लेकर अमीरों का घर भरना ठीक है?

तमाम बड़े बड़े देश विदेशी व्यापार पर हसर रखते हैं। अगर बाहर से माल मंगाना बन्द कर दिया जाय तो बाहर माल जाना भी बन्द हो जायगा और हिन्दुस्तानी व्यापारी तबाह हो जायंगे। क्या आप ऐसा चाहते हैं? आप हिन्दुस्तान को एक ताकतवर मुल्क बनने देना चाहते हैं या कमजोर?

जवाब—ये सवाल या तो अज्ञान-वश या द्रोह वश पूछे गये हैं और स्वदेशी से सम्बन्ध रखने वाले जो प्रश्न हैं उन सबका उत्तर तो मैं पहले ही मुफस्सिल तौर पर दे चुका हूं। अगर जिला प्रचार-समिति ऐसे ऐसे सवाल पूछने की अपेक्षा अपना सारा

ध्यान करघों के तथा करघों के प्रचार में लगावेंगे तो हमारी आवश्यकता से भी अधिक कपड़ा तैयार होने लग जायगा और अकाल भी फिर सिर्फ तवारीख की कहानी ही रह जायगा। खुलना का अकाल क्या पैसे का ही अकाल नहीं है? यदि लोगों के पास पैसा होता तो वे अपने खाने के लिए अन्न खरीद सकते। वे खासे हट्टे-कट्टे हैं। चरखा और करघा भी अच्छी तरह चला सकते हैं। उनमें से हर एक आदमी चरखा कात कर अपना पेट पाल सकता है। हां, यह सत्य है कि बम्बई के मिल-मालिकों ने सचमुच ही खूब मुनाफा कमाया है। परन्तु इस वक्त जो स्वदेशी की तजवीज तैयार की गई है वह तो चाहती है कि हर एक प्रांत को अपने लिए कपड़ा भी बुनना चाहिए। विदेशी कपड़े के बहिष्कार का मतलब तमाम विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार से नहीं है। भारत की तरक्की के लिए जिन जिन वस्तुओं की जरूरत होगी वे हमें जरूर ही विदेशों से मंगानी होगी और जो जो चीजें यहां की जरूरत से ज्यादह हैं उनको हम विदेशों में भी भेजेंगे। भारत जितना बलहीन और दीन आज हो गया है उससे अधिक निर्बल और दीन अब आगे और क्या होगा! लेकिन परमात्मा को धन्यवाद है कि उसकी कृपा से अब "स्वदेशी" के द्वारा यह कमजोरी दूर हो रही है।

१० सवाल—तिलक-स्वराज्य-फण्ड का कितना रुपया दर हकीकत वसूल आ चुका है? और कितना अभी वादे पर है? उसमें कितनी रकम ऐसी है जो स्कूलों, कालेजों, अस्पतालों आदि के लिए ही लोगों ने दी है, आम तौर पर महज स्वराज्य के काम के लिए नहीं? बम्बई के मिल-मालिकों ने कितना रुपया दिया है? इस आशा पर कि विलायती कपड़े का बहिष्कार होने पर खूब मुनाफा मार लेंगे।

जवाब—फंड का हिसाब तो बा-जाब्ता शाया किया जायगा ही. बम्बई के मिल-मालिकों ने स्वराज्य फंड में कोई ज्यादह रकम नहीं दी है। सिर्फ अकेले मौलाना हाजी यूसफ सोबानी साहब ने फण्ड में एक अच्छी रकम दी और उनका इस कार्य में इतना-बड़ा दान देने का कारण यही है कि वे कट्टर असहयोगी हैं। अधिकतर मिलमालिकों ने प्रायः कुछ नहीं दिया है।

यहां मैं एक बात और भी कह देना चाहता हूं। जब मैं बरीसाल में था तब यह सुना था कि जब सुरेन्द्र बाबू बरीसाल आये थे, उनका अपमान किया गया। मुझे यह सुनकर बड़ा ही दुःख हुआ। असहयोगी किसी का भी, कट्टर दुश्मन का भी, अपमान नहीं कर सकते। किसी का अपमान करना भी तो एक प्रकारकी हिंसा ही है। फिर बाबू सुरेन्द्रनाथ बनरजी का अपमान करना, अपने आप को भूल जाना है। आज भलेही उनसे हमारा मतभेद हो, परंतु उनकी पहली मुल्क की खिदमात को हमें भूल न जाना चाहिए। एक समय ऐसा था जब वे बंगाल के लिए सर्व-पूज्य नेता थे। वे हमारे हृदय के भावों को प्रकाशित करते थे। क्या उन्हीं का अब हमें अपमान करना चाहिए? जो जो नेता हमसे मतभेद रखते हैं वे निश्चय ही देश के शत्रु नहीं हैं। हम या तो उनके व्याख्यानों और सभाओं में न जायं अथवा जाकर भी हम उनका विरोध कर सकते हैं। परंतु हमें अपना विरोध भी बड़ी सभ्यता के और आदर के साथ प्रकट करना चाहिए। और जब हमें किसी भारी नेता का विरोध करना हो तब तो इस बात का और भी अधिक ख्याल रखना चाहिए।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी।

अहमदाबाद में होली.

गत १४ सितम्बर को अली भाइयों की गिरफ्तारी पर उन के प्रति अपना आदर-भाव दिखलाने के लिए और सरकार की इस करतूत की कद्र करने के लिए अहमदाबाद में विलायती कपड़ों का एक भारी जलूस निकाला गया और उनकी होली की गई! इस अवसर सभापति श्री. वल्लभ भाई पटेल ने अपने भाषण में अटल शान्ति और हिन्दू-मुसलमान में पूरी एकता रखने की आवश्यकता बताते हुए कहा कि अब सरकार मैदान में आ गई है। अब जल्द ही कजें खुलने वाली हैं और उनमें या तो हमारा दफन होगा या इस सरकार का! आपने इस बात पर बहुत जोर दिया कि ३० सितम्बर तक अहमदाबादमें और सारे गुजरात में एक भी आदमी विलायती कपड़े पहना हुआ नजर न आवे।

आवश्यकता

है बीस ऐसे उत्साही नवयुवकों की जो मद्रास में हिन्दी-प्रचार और हिन्दी पढ़ाने का काम भली प्रकार कर सकें। हिन्दी और अंगरेजीका अच्छा ज्ञान होना जरूरी है। मेट्रिक पास प्रार्थियों के प्रार्थना-पत्रों पर अधिक ध्यान दिया जायगा। प्रार्थना पत्र प्रशंसापत्रों के साथ ३० सितम्बर से पहले नीचे लिखे पते पर पहुंच जाना चाहिए। वेतन योग्यतानुसार—

प्रधान मंन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग,

ग्राहकों को सूचना।

महीने के बीच में ही ग्राहक का नाम दर्ज करने में कठिनाई होने से अब जो मनिआर्डर हमें मिलेंगे, उन्हें हम आगामी महीने की १ तारीख से जमा करेंगे। और तभी से पत्र भी भेजना शुरू करेंगे। यदि ग्राहक गण पिछले अङ्क लिया चाहें तो उन्हें डेढ आना प्रति अङ्क के हिसाब से डाक के टिकट भेज देना चाहिये।

व्यवस्थापक हिन्दी नवजीवन

अहमदाबाद

ग्राहक होनेवालों को सूचना

जिन स्थानों में "हिन्दी नवजीवन" की फुटकर बिक्री एजंटों के द्वारा होती है वहां के निवासियों को चाहिए कि वे वहीं से अंक प्राप्त कर लिया करें। यहां ग्राहक होकर डाकखाने से अंक मंगाने में उन्हें और हमें दोनों को असुविधा होती है। पर उस दशा में यदि ग्राहकों को अंक मिलने में गड़बड़ हो तो इसकी शिकायत वे कृपा करके हम से न करें।

मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेजिए। हमारे यहां वी. पी. का नियम नहीं है। एजन्सी के लिए नियम मंगाइए।

व्यवस्थापक-"हिन्दी नवजीवन"

अहमदाबाद.

बंबई निवासियों को सूचना.

"हिन्दी-नव जीवन" की फुटकर बिक्री बम्बई नगर में बन्द रक्खी गई है। इसलिए वहां वालों को ४) मनीआर्डर द्वारा भेज कर ग्राहक होना चाहिए।

व्यवस्थापक,

"हिन्दीनवजीवन" अहमदाबाद.

शंकरलाल घेलाभाई बेंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, सूत्री ओळ, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित॥

राजभक्ति में दस्तन्दाजी

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका „ २)
एक प्रतिका „ -)।
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—आश्विन ब० १४, संवत् १९७८, शुक्रवार, तारीख ३० सितम्बर, १९२१ ई० | अंक ७

मौ० महम्मदअली की माताजी का संदेश

बेटा ! कमर हिम्मत से मजबूत बांध लो । तुम तनहा नहीं हो, खुदा तुम्हारे साथ है । मुसलमान का काम घबराने का नहीं है । हजरत इब्राहीम के लिए जो आग काफिरों ने जलाई थी खुदाने उसे गुलजार कर दिया था, तो बेटा मत घबराना ! मुसलमान का कदम आगे बढना चाहिए । जो सख्ती तुम्हारे ऊपर हो, बरदाश्त करना । इसलाम की खिदमत में अगर मैं भी काम आऊं तो बहुत अच्छी बात है । महात्माजी को मेरा सलाम कहना और कहना काम की ढील किसी तरह न हो । मैं बहुत खुश हूं । मुझमें कोई फ़ुवत नहीं । मगर इसलाम की खिदमत में रहने को तय्यार हूं । खुदा काम में बरकत करे ।

कुछ परवाह कैद होने की मत करना । सब हिन्दू मुसलमान याद रक्खें कि कांग्रेस का काम अब सेर का सवा सेर बल्कि डेढ सेर हो जाय । अल्लाह ने मुझे सब्र अदा किया है । जिस अल्लाह ने उन्हें पहिले आजाद किया था, वेही अब भी आजाद करेगा । हमारे साथ तो यह सात वर्ष से हो रहा है । मुसलमानो और हिन्दुओ, मैं जंग सिखाती नहीं हूं । गवर्नमेंट के हाथ में किसी की जान नहीं है । गवर्नमेंट किसी को मार नहीं सकती, जबतक खुदा का हुक्म न हो । मुझको रिम्मा बराबर मलाल नहीं । और काम को न छोडना । कहीं ऐसा न करना कि कांग्रेस का काम छोड दो । मैं तय्यार हूं सब काम करने को--हर एक जलसे में आने को, हर जगह चलने को । इसलाम के काम के लिए मेरा कदम पीछे न हटेगा । यह वक्त बडे इम्तहान का वक्त है । इसलाम की किश्ती समुद्र में झोंका खा रही है । मैं कहूंगी, मुसलमान हाजिर हैं । अब वक्त सुस्ती का नहीं है । हिन्दू और मुसलमान दोनों खामोशी और सकून के साथ, अमन के साथ, कांग्रेस का काम करें । इसलाम की खातिर स्वदेशी को कामयाब करो । मरने पर साथ कुछ नहीं जायगा । सिर्फ आमाल ही मरने पर साथ जाता है ।

टिप्पणियां

लंगोटी ही अच्छी !

श्री गांधीजी ने जनता से नीचे लिखी अपील की है—

"राष्ट्रीय महासभा-समिति ने विदेशी कपडे के बहिष्कार का जो फरमान जारी किया है उसको पूरा करने की मीयाद के अब बहुत ही थोडे दिन बाकी रह गये हैं । अगर कांग्रेस का हर एक कार्यकर्ता, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, अपना सारा ध्यान बहिष्कार को सफल बनाने में ही लगा दे तो अब भी वक्त है । अगर हर आदमी यह महसूस करता हो कि स्वदेशी के बिना अर्थात् विदेशी कपडे के बहिष्कार और उसकी जगह पर आवश्यक तमाम कपडा चरखे के सूतसे हाथ-करघों पर बुन कर तैयार किये बिना स्वराज्य नहीं प्राप्त हो सकता, और बिना स्वराज्य के न तो खिलाफत के और न पंजाब के मामले का निपटारा हो सकता है तो इस बहिष्कार को कामयाब बनाना और आवश्यक कपडा तैयार करना कोई कठिन बात नहीं है । हां, यह बात मैं जानता हूं कि कितने ही लोग अपने तमाम विदेशी कपडों को आगामी आज ही सब स्वदेशी कपडे न प्राप्त कर सकेंगे । लाखों लोग इतने गरीब हैं कि वे विदेशी कपडों को त्याग कर उनके बजाय काफी खादी को न खरीद सकेंगे । उनके लिए मेरे पास एक ही सलाह है- वही जो मैंने मदरास के समुद्र-तट पर दी थी । बस, वे सिर्फ लंगोटी या लंगोटी लगाकर ही अपना काम चला लें । हमारे देश की आबोहवा ही ऐसी है कि गरमी के दिनों में हमें तो शरीर की हिफाजत से ज्यादा कपडा पहनने की जरूरत ही नहीं है । पोशाक के सम्बन्ध

मैं झूठी लज्जा की कोई जरूरत नहीं। हिन्दुस्तान में कभी इस बात पर जोर नहीं दिया गया है कि पुरुष के लिए अपने सारे बदन को ढांक रखना जरूरी है, और वह भी इस खयाल से कि यह सभ्यता की कसौटी है।

मैंने अपनी जवाबदेही का खूब अच्छी तरह खयाल रखकर यह सलाह दी है। और मैं खुद भी इसका उदाहरण बनने का विचार करता हूं। कम से कम ३१ अक्तूबर तक मैं अपनी टोपी और कुरता पहनना छोड़ दूंगा और सिर्फ अंगोछा या लंगोटी पहन कर ही रहूंगा। कभी जरूरत मालूम हुई तो महज शरीर की रक्षा के लिए सिर्फ चद्दर को काम में लूंगा। मेरे इस वेषान्तर का यह कारण है कि आजतक मैंने लोगों को कोई बात ऐसी नहीं बताई है जिसे करने के लिए मैं खुद तैयार नहीं रहा हूं। दूसरे, मैं इस बात के लिए उत्सुक हूं कि स्वयं आगे बढ़कर उन लोगों का रास्ता सुगम कर दूं जो कि विदेशी कपड़े के त्याग से होने वाले वेषान्तर से हिचकिचाते हैं। टोपी और कुरते के त्याग को मैं इसलिए भी आवश्यक मानता हूं कि यह शोक-चिन्ह है। और मेरे गुजरात-प्रान्त में नंगा सिर और खुला बदन मातम का ही निशान माना जाता है। ज्यों ज्यों इस साल के समाप्त होने के दिन नजदीक आ रहे हैं और ज्यों ज्यों मैं देखता हूं कि अभी तक हम स्व-राज्य-हीन ही हैं, त्यों त्यों यह खयाल कि हम शोक-ग्रस्त हैं। मेरे दिमाग में अधिक ही अधिक प्रबल होता जाता है। यहां मैं यह साफ साफ बतला देना चाहता हूं कि मैं अपने साथियों से यह उम्मीद नहीं कर रहा हूं कि वे भी टोपी और कुरते का पहनना छोड़ दें–हां, जब उन्हें खुद अपने स्वीकृत कार्य के लिए ऐसा करना जरूरी मालूम हो तब की बात दूसरी है।

मेरा यह निश्चित मत है कि अगर काफी तादाद में काम करने वाले लोग हों तो हर एक प्रान्त और हरएक जिले में अपनी जरूरत के लायक कपड़ा एक महीने में तैयार किया जा सकता है। और इसलिए मैं यह सलाह देता हूं कि एक महीने तक 'स्वदेशी' के सिवा दूसरे तमाम काम मुल्तवी कर दिये जायं। मैं तो शराब की दूकानों का पहरा उठा देने के लिए भी कहूंगा-यह भरोसा रख कर कि शराबखोर लोग आत्म-शुद्धि के इस नये तेज को पहचान जायंगे। मैं हरएक अ-सहयोगी को सलाह देता हूं कि आप लोग जेल जाने को अपने जीवन की एक मामूली घटना समझें और उसके विषय में जरा भी आगा-पीछा न करें। अगर हम सिर्फ इतना ही भर करें कि इस अक्तूबर महीने में कपड़ा तैयार करने के लिए ठीक ठीक व्यवस्था कर दें और विदेशी कपड़ा घर घर से इकट्ठा करा लें तथा ऐसा करते हुए न तो कोई सभा करें और न किसी तरह की उत्तेजना से काम लें तो हम ऐसा शान्त वायु-मण्डल तैयार कर सकेंगे कि जिसमें बिला खटका बा-अदब कानून को तोड़ने के लिए अगर उस वक्त उसकी जरूरत मालूम हुई तो—कदम बढ़ा सकेंगे। लेकिन मुझे इस बात का पक्का यकीन हो चुका है कि अगर हम अपने चरित्र-बल का संगठन-क्षमता का और अनुकरणीय संयम-शक्ति का जो कि पूर्ण स्वदेशी के लिए आवश्यक है, परिचय देंगे तो हम बिना ही अधिक प्रयास के स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे।" (यंग इंडिया)

मुझ पर नोटिस

(मदरास-सरकार की ओर से श्री गांधीजी को मलाबार न जाने देने के सम्बन्ध में जो पत्र मिला था उसका जिक्र 'हिन्दी नवजीवन' के पिछले अंक में किया जा चुका है। इसी विषय पर श्री-गांधीजी "नवजीवन" में नीचे लिखे विचार प्रकट करते हैं– उप-सम्पादक)

"इस खत का जवाब मैंने अभी तक नहीं भेजा है। क्या भेजता? मैं तो यह एक ही जवाब भेज सकता हूं–"आपका खत मिला। मैं वहां गये बिना नहीं रह सकता। आपसे जो हो सके सो कीजिए"।

लेकिन ऐसा जवाब मैं भेजूं किस तरह? मैंने खुद ही तो बा-अदब कानून तोड़ने की तजवीज को मुल्तवी किया और दूसरों से भी कराया है। अब, ऐसे वायु-मंडल में जब कि लोग बा-अदब कानून को तोड़ना और आम तौर पर कानून को तोड़ना इसके भेद को समझते नहीं हैं, मुझ जैसे आदमी से एक बारगी बा-अदब कानून कैसे तोड़ा जा सकता है? इस खयाल से मैंने अभी उसका जवाब दिया ही नहीं है। सच पूछिए तो मुझे तो यह स्वराज्य प्राप्त करने का मौका घर बैठे मिल गया है, और इस तरह मैं उसे हाथ से खो रहा हूं! पर यह इस आशा से कि मीयाद के जो दिन अभी बाकी हैं उसमें लोग बा-अदब कानून तोड़ने के मर्म को समझ जायंगे और हम निडर होकर बा-अदब कानून को तोड़ सकेंगे तथा सार्वजनिक-आम-स्वराज्य को प्राप्त कर लेंगे।

यह लेख मैं त्रिचनापल्ली से लिख रहा हूं। यहां मुझे एक और भी हुक्म मिला है। वह पुदुकोटा नाम की देशी-रियासत की तरफ से आया है। उस पर उस राज्य के किसी अंगरेज हाकिम की सही है। मुझे उस राज्य की हद में से गुजरते हुए चेटीनाद को जाना था। महज मेरे उसकी हद में से गुजरने भर से कहीं वहां की रिआया पर मेरा असर न हो जाय, इस डर से वहां के हाकिम मुझे लिखते हैं–'राजा साहब ने सुना है कि आप उनकी हद में होकर जाने वाले हैं। अगर आप ऐसा करेंगे तो सरहद पर तैनात किये हुए सिपाही आपको वापस लौटा देंगे।' इसका जवाब तो मैंने दे दिया है–'आपका खत मिला। हां, मुझे आपकी हद में होते हुए जाना तो था, पर आपका यह खत मिलने से अब मैं दूसरे रास्ते होकर चेटीनाद जाऊंगा।'

पर इन सबको मैं तो शुभ चिन्ह समझता हूं! अगर इन अवसरों का उपयोग करना हमें आ जाय तो हम निश्चय ही इसी वर्ष में स्वराज्य प्राप्त कर लें। इसका उपाय भी कितना आसान है! बस, पहले तो हम अपने काम में लगे रहें और पीछे जेल का स्वागत करें। जेल जाने का माद्दा अभी हम लोगों में नहीं आ पाया है। अभी हमने 'स्वदेशी' की महिमा को पहचाना नहीं है, चरखे के महत्व को जाना नहीं है! हमारे कितने कार्य्य-कर्त्ता अपना धर्म समझ कर श्रद्धा के साथ चरखा कात रहे हैं? कितनों ने अपने तमाम विदेशी कपड़ों का त्याग कर दिया है? और यह बात तो कोई अन्धा भी देख सकता है कि सरकार इस कपड़े के बहिष्कार को तो गवारा कर ही नहीं सकती। वह ऐसी अनेक तजवीज़ें काम में ला रही है जिससे हम ऐसे बहिष्कार से बाज आजावें।

लड़कों का स्कूल-कालेज छोड़ना, वकीलों का वकालत छोड़ना, शराब-खोरों का शराब पीना छोड़ना, यह सब सरकार को खलता तो है, पर फिर भी वह इनको गवारा करती है। लेकिन स्वदेशी को तो वह किसी तरह गवारा नहीं कर सकती। इस विदेशी कपड़े ही के लिए तो यह सरकार यहां तशरीफ लाई है और इसी के लिए वह हिन्दुस्तान पर हुकूमत भी करती है!, और उसका हम पर अगर कोई बड़ा से बड़ा टैक्स है तो बस यही विदेशी कपड़ा! जहां यह टैक्स देना हमने बन्द किया कि तुरन्त यह सरकार 'हाकिम' के बजाय 'सेवक' हुए बिना नहीं रहने की।

सितम्बर की मीयाद नजदीक आ रही है। पता नहीं कि गुजरात में बहिष्कार की मंजिल कहां तक पहुंची है! कितने चरखे चलते

रही है ? मैं तो अक्तूबर के पहले गुजरात के दर्शन न कर सकूंगा । लेकिन मुझे उम्मीद है कि अब मैं गुजरात में पहुंचूंगा तब भाइयों और बहनों के बदन पर और उनके घरों में खादी ही खादी देखूंगा और हर एक घर में चरखा चलता हुआ नजर आवेगा ।

हिन्दुस्तान के शरीर पर अभी खिलाफत का घाव तो ज्यों का त्यों बना ही हुआ था और पंजाब का घाव अभी हाल में बही रहा है कि अब यह मलाबार का एक ताजा घाव और हो गया है ! मुझे यकीन है कि अगर गुजरात चाहे तो इन घावों को सुखा सकता है । इसी बात को अपनी आंखों देखने के लिए मैंने, यह कहूं तो अत्युक्ति न होगी कि, जेल में जाने का यह शुभ अवसर हाथ से जाने दिया है । मैं जो इस समय खामोश रह गया हूं, उसका एक कारण यह भी है ।

मोची बनाम वकील

बाबू मोतीलाल घोष (कलकत्ते के मशहूर अंगरेजी रोजाना अखबार 'अमृत-बाजार-पत्रिका' के सम्पादक) अब इतने बूढे और कमजोर हो गये हैं कि उनसे चला-फिरा तक नहीं जाता । तो भी उनका दिल और दमाग अभी नौ-जवानों की तरह तरोताजा है । उन्होंने मौलाना महम्मद अली को और मुझे बुलाया था—खास कर यह कहने के लिए कि वकील लोग कांग्रेस के काम में शरीक कर लिये जायं और उन्हें उनकी पहले की जगह—लोकमत के अधिकारी नेता होने का स्थान—दे दिया जाय । मैं और मौलाना साहब दोनों ने उनसे कहा कि हां, हम तो यह जरूर ही चाहते हैं कि हमारे वकील-भाई कांग्रेस का काम करें । हमारा कहना तो सिर्फ यही है कि जिन वकीलों ने अपनी वकालत नहीं छोड़ी है वे कांग्रेस के नेता नहीं हो सकते, न होने चाहिए । इस पर मोती बाबू ने कहा कि आपने जो चमारों और वकीलों को एक ही पलडे में बैठा दिया उससे कुछ वकील लोगों के दिल को बुरा मालूम हुआ है । मुझे यह सुनकर बडा दुःख हुआ । हां, उस टिप्पणी की बात मुझे याद तो पडती है; परन्तु वह किसी का दिल दुखाने की गरज से हरगिज नहीं लिखी गई थी । वकीलों के बारे में यों तो मैंने कितनी ही सख्त-सुस्त बातें अबतक कही हैं; परन्तु मैंने उन्हें किसी खास जाति के प्रति दुर्भाव रखने का मुजरिम कभी नहीं समझा है । मुझे तो यकीन होता है कि जिस भाव से मैंने वे उद्गार प्रकट किये थे उसकी वकील साहबान ने कद्र की है । यों तो मैं अपने लेखों में आम तौर पर किसी को चुभाने की गरज से कोई बात लिखने का गुनाह नहीं करता । लेकिन यह तो मैं निश्चय के साथ कहता हूं कि वह टिप्पणी मैंने किसी का दिल दुखाने के लिए नहीं लिखी थी । मैं खुद भी वकालत करता था । ऐसी हालत में मैं अपने को इतना नहीं भूल जा सकता कि ख्वाम-ख्वाह अपने ही हम-पेशा लोगों का दिल दुखाऊं और न मैं कितने ही वकीलों के द्वारा—जैसे स्वर्गीय फेरोजशाह मेहता, रानडे, तैयबजी, तैलंग, मनमोहन घोष, कृष्ण स्वामी अय्यर आदि, और वर्तमान वकीलों की तो बात ही जाने दीजिए—अपनी मातृभूमि की की गई उज्वल और लासानी सेवाओं को भूल जा सकता हूं । उस जमाने में जब कि किसी को चूं तक करने की हिम्मत नहीं पडती थी, इन लोगों ने लोगों की आवाज को ऊंचा उठाया और अपने मुल्क की आजादी की रक्षा की । और अगर आज उनमें के बहुतेरे लोग जनता के नेता नहीं माने जा रहे हैं तो उसका सबब यही है कि अब नेता बनने के लिए जो गुण दरकार हैं वे उनके आजतक के दिखाये गुणों से भिन्न हैं । अब तो नेताओं में साहस, सहनशीलता, निर्भयता और इन सब से बढकर स्वार्थ-त्याग—इन गुणों की जरूरत है । मनुष्य चाहे दबी हुई और गिरी हुई जाति का ही क्यों न हो, पर, अगर उसमें ये गुण भली भांति दिखाई देते हों तो वह जरूर ही देश का अगुआ बनने के लायक है । इसके खिलाफ, कोई उम्दा से उम्दा वक्ता क्यों न हो, पर अगर उसमें ये बातें नहीं हैं तो वह मुंह की खाये बिना नहीं रह सकता ।

और मुझे सारे देश भर में यह देख कर परम सन्तोष होता है कि जो वकील भाई अपनी वकालत नहीं छोड सके हैं उन्होंने इस बात को मान लिया है और वे बडे सन्तोष के साथ देश की छोटी-बडी सेवायें करने में लग गये हैं । अगर फौज में दूसरे लोग छोटे-बडे काम करने वाले न हों तो फौज के अफसर का काबिज किया हुआ सारा मुल्क छिन जायगा ।

लेकिन मोती बाबू ने कहा कि 'हमारे इस आन्दोलन में अ-सहनशीलता का बहुत बडा अंश चुपके चुपके घुस गया है । जिन वकीलों ने वकालत नहीं छोडी है, अ-सहयोगी लोग उनकी बे-इज्जती करते हैं ।' हां, मुझे अन्देशा है कि यह इल्जाम कुछ हदतक सच होगा । अ-सहनशीलता खुद ही हिंसा का एक भेद है और यह वास्तविक प्रजा सत्ताक भावना की बढती के रास्ते में एक भारी विघ्न है । जरा-सा स्वार्थ त्याग कर दिया, या खादी के कपडे पहन लिये और अ-सहयोगी बनकर लगे अपने को औरों से श्रेष्ठ मानने की अकड दिखाने ! ऐसा करना इस आन्दोलन के लिए बडे ही खतरे की बात है ! अ-सहयोगी अगर नम्र नहीं है, तो उसकी कोई वकत नहीं । आत्म-सन्तोष ने जहां किसी आदमी को धर दबाया कि बस, उसकी उन्नति रुक जाती है और इसलिए वह आजादी के लिए अयोग्य हो जाता है । परन्तु जो मनुष्य नम्र होकर और धार्मिक भावना से थोडा-बहुत स्वार्थ-त्याग करता है वह तुरन्त ही जान जाता है कि अरे, यह त्याग तो दर्या में खसखस के बराबर है ! स्वार्थ-त्याग के रास्ते जहां एक बार हम लगे कि हमको अपनी स्वार्थ-परायणता की नाप मालूम होने लगती है, और हमें अधिक से अधिक त्याग करने की इच्छा होने लगती है—यहांतक कि पूर्ण आत्म-समर्पण किये बिना रहा ही नहीं जाता !

और यह इस बात का ज्ञान कि हमने तो बहुत थोडा त्याग करने का प्रयत्न किया है और दर असल त्याग तो उससे भी कम किया है, हमको नम्र और सहनशील बनाये बिना नहीं रह सकता । यह हमारी दूसरों से फटककर रहने की प्रवृत्ति और जरासी बात से होने वाले आत्म सन्तोष का ही फल है जो आज जुलाहे लोग हमारे कामों में शरीक हो कर हमारा हाथ नहीं बटा रहे हैं । हमारे इस कार्य का मुख्य सिद्धान्त तो हमेशा यही होना चाहिए कि हम नम्रता के साथ समझा-बुझा कर और उनके दिल में हमदर्दी पैदा करके लोगों को अपनी तरफ करें । इसलिए हमें उन लोगों के साथ जो हमारे कदम-ब-कदम न चलना चाहते हों, बडे ही अदब, लिहाज और धीरता के साथ पेश आना चाहिए । जो लोग हमारे मत के खिलाफ हैं उन्हें हमें देशका दुश्मन तो हरगिज हरगिज न समझना चाहिए ।

अब वे वकील भाई तथा दूसरे लोग जो असहयोग को मानते तो हैं परन्तु किसी कारण से अपने जिम्मे आने वाले कामों से अ-सहयोग नहीं कर सके हैं, स्वदेशी के इस आन्दोलन में अनुयायी या सहायक बनकर काम कर सकते हैं । इसके लिए जितने ज्यादा काम करने वाले मिलें उतनों ही की जरूरत है । कोई सबब नहीं दिखाई देता कि वकील लोग क्यों खादी पहन कर अदालतों तक

भी न जाय और ऐसा करने का रिवाज क्यों न डाले ? क्यों उन्हें और उनके घरके लोगों को अपने फुरसत के समय सूत न कातना चाहिए ? मैंने तो सिर्फ इस एक ही बात की मिसाल दी है। पर और भी ऐसे तरह तरह के काम हैं जिन्हें वकालत में लगे हुए वकील लोग स्वराज्य प्राप्त करने के लिए, कर सकते हैं। ऐसी हालत में मैं उम्मीद करता हूं कि कोई भी वकालत में लगे हुए वकील और सरकारी स्कूल-कालेजों में पढने वाले विद्यार्थी, इस आन्दोलन में जिस किसी तरह का काम कर सकते हैं उसे करने से बाज न आवेंगे। हां, यह सच है कि सभी लोग नेता नहीं बन सकते परन्तु कार्य्य-वाहक तो सभी बन सकते हैं, और मुझे आशा है कि जो लोग असहयोगी हैं वे ऐसे भाइयों के लिए देश-सेवा करने का रास्ता सुगम और सुलभ बनाते रहेंगे।

(यंग इंडिया)

धन्य धर्मपत्नी !

मौलाना महम्मद अली की बेगम साहबा के धीरज को देख कर मैं तो दंग रह जाता हूं। वाल्टेर में जब उनके पति, मौलाना साहब, गिरफ्तार हुए तब वे उनसे मिलने गई थीं और जब लौट कर लौटीं तब मैंने उनसे पूछा कि आपके दिल को घबराहट तो नहीं न होती ? उन्होंने कहा 'नहीं, मुझे जरा भी घबराहट नहीं। पकडे जाने वाले तो थे ही। यह तो उनका धर्म था।' मैंने उनकी आवाज में भी घबराहट नहीं पाई। उसके बाद से वे हमारे ही साथ घूम कर अपनी हिम्मत का परिचय दे रही हैं। औरतों के जलसों में, और मर्दों के भी जल्से में वे बुर्का ओढ कर, आती हैं और थोडे में परन्तु ऐसा भाषण करती हैं कि वह ठेठ दिल की तह तक पैठ जाता है। वे सब को अमनो-अमान कायम रखने, चरखा कातने और खादी पहनने के लिए निवेदन करती हैं और स्मर्ना के लिए मुसलमानों से चन्दा भी मांगती हैं। कुछ ही महीने पहले तक उनके बनाव-सिंगार की इन्तहा नहीं थी, महीन कपडे के बिना काम नहीं चलता था। पर आज वे मोटी खादी का हरा रंगा हुआ जामा पहनती हैं। हिन्दू-स्त्रियों की बनिस्बत मुसलमान-स्त्रियों को अधिक कपडे पहनना पडते हैं। उसमें भी बेगम साहबा का बदन हलका नहीं। तो भी वे अपने धर्म के लिए, इस तरह, तपस्या कर रही हैं। इसका फल यह हो रहा है कि उनका दर्शन करने के लिए जगह, जगह जगह पर, मुसलमान बहनें भी आया करती हैं।

मदरास-प्रान्त की मुसलमान बहनों का पोशाक मुझे बहुत ही सादा नजर आता है। जहां हिन्दू-बहनों के पोशाक में तो रंग-बिरंगे का पार भी नहीं है, तहां मुसलमान-बहनों के पोशाक में तो सादा सफेद कपडा ही नजर आता है। यह दृश्य मुझे बहुत प्यारा मालूम होता है। हिन्दू-बहनों की रंगबिरंगी साडियां इस समय तो, मुझे बडी भद्दी मालूम होती हैं।

(नवजीवन)

सिन्ध में दमन

सिन्ध से मुझे एक तार मिला है। उसे यहां देता हूं। वह अपनी कहानी आप ही कहता है—

"सिन्ध में दमन का जोर बढ रहा है। लोग अपनी टेक पर अडे हुए हैं। २४ अगस्त को दादू के द्वारका महाराज को एक साल की सजा दी गई। ९ तारीख को कराची के मौलवी फतेह अली १ साल के लिए जेल गये। ३ सितम्बर को शेख अब्दुल मजीद को २ साल और "हिन्दू" के सम्पादक महाराज विष्णु शर्मा को ३ साल की कैद की सजा हुई। इनके अलावा सिन्ध और गुजरात के कितने ही 'पिकेटर' भी जेल भेजे गये हैं।"

इसके सिवा मेरे पास कुछ अखबारों की कतरनें भी हैं जिनमें उस प्रान्त के दमन की डरावनी हालत की तसवीर खींची गई है। इस अवस्था में मुझे तो यही उम्मीद हो सकती है कि ज्यों ज्यों यह दमन बढता जायगा त्यों ही त्यों इसी साल में स्वराज्य प्राप्त करने का लोगों का निश्चय भी बढता जायगा। कुरबानी की उतनी जरूरत इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए नहीं है जितनी कि अक्लमन्दी और सख्त मिहनत करने की है।

(यंग इंडिया)

प्रेम और पहरा

किसी अखबार में एक महाशय बडे क्रोध से पूछते हैं कि "आप पहरा देने का मेल अपने प्रेम के सिद्धान्त से किस प्रकार बैठा सकते हैं ! क्या पहरा रखना हिंसा का या बेजा दबाव का एक भेद नहीं है ?

हां, बात तो ऐसी भी हो सकती है और मुझे यह खेद के साथ कहना पडता है कि कई बार ऐसा हुआ भी है। किन्तु इसके विपरीत, यह प्रेम का भी कार्य है और इसका भी मुझे अनुभव है। बहुत सी बहनें और जवान लडके केवल मोहब्बत की वजह से ही आज पहरा देते हैं। कोई भी मुझ पर यह इल्जाम नहीं लगाता कि मैं मारवाडियों से द्वेष रखता हूं। और सेठ जमनालालजी पर तो कोई भूल कर भी यह आरोप नहीं कर सकता कि वे अपने बन्धुओं और व्यापारी भाइयों से द्वेष रखते हैं। पर फिर भी हम दोनों मारवाडी व्यापारियों की विदेशी कपडों की दूकानों पर पहरा रखने को उत्तेजना देते हैं। जब कोई लडकी अपने भटके हुए पिता पर निगरानी करती है तो वह केवल प्रेमसे प्रेरित होकर ही ऐसा करती है। बात तो यह है कि कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें हर तरह के लोग कर सकते हैं। और जब वे कार्य स्वयं बुरे नहीं होते हैं तब उनके करने वाले की नीयत को देखकर उनको अच्छा या बुरा मानना चाहिए। मेरी हालत भी इस बारे में इसीलिए पेचीदा होगई है कि मैंने ऐसे लोगों को इस कार्य के लिए पुकारा है और उनके साथ काम कर रहा हूं कि जो महज मोहब्बत की वजह से ही काम नहीं कर रहे हैं।

(यंग इंडिया)

मुकदमा शुरू !

अली-भाइयों का मुकदमा पिछले सोमवार को कराची में शुरू हो गया। शहर में खूब सनसनी फैल रही है। सडकों पर और अदालत में गोरे और काले सिपाहियों की खासी भीड रहती है। अदालत के पूछने पर सातों मुल्जिमों ने अपना नाम बताने से इनकार कर दिया। मैजिस्ट्रेट के आने पर अली-भाई अपनी जगह पर ही बैठे रहे, उठे नहीं। अलीभाइयों की माता, बहनें और मौलाना महम्मदअली की बेगम साहबा कराची पहुंच गई हैं। कराची के कांग्रेस और खिलाफत के कार्य्य--कर्ताओं ने अदालत का बहिष्कार कर दिया है।

सिन्ध की प्रान्तिक समिति ने यह प्रस्ताव पास किया है कि सिन्धमें आगामी १ नवम्बर से बा-अदब कानून तोडना शुरू के लिए वर्किंग कमिटी से प्रार्थना की जाय।

श्रीयुत इन्द्रजी, गुरुकुल, कांगडी से सूचित करते हैं कि स्वामी श्रद्धानन्दजी सम्पादित 'श्रद्धा' का प्रकाशन आगामी १६ अक्टूबर तक बन्द रहेगा।

हिन्दी
नवजीवन
शुक्रवार, आश्विन व. १५, सं. १९७८.

राजभक्ति में दस्तन्दाजी

कुछ समय पहले बम्बई के लाट साहब ने लोगों को चेतावनी दी थी कि अब हमको गम्भीरता से काम लेना है और अब हम अधिक समय तक जिस तर्ज के भाषण किये जा रहे हैं उन्हें गवारा नहीं कर सकते। अब अली-भाइयों के सम्बन्ध में जो प्रेस नोट उन्होंने जाहिर किया है उसमें उन्होंने अपनी गम्भीरता के मतलब को साफ किया है। अली-भाइयों पर यह जुर्म लगाया जाने वाला है कि उन्होंने फौज के सिपाहियों की राजभक्ति को बिगाने का प्रयत्न किया है और राजद्रोही भाषण किये हैं। लेकिन कहना पड़ेगा कि, मुझे यह खयाल तक नहीं होता था कि बम्बई के लाट साहब इस विषय में इतनी बुरी तरह से अ-ज्ञान होंगे। इससे यह साफ जाहिर होता है कि उन्होंने इस बात पर ध्यान ही नहीं रक्खा कि इन पिछले बारह महीनों में हिन्दुस्तान के अन्दर क्या क्या घटनायें हुईं। मालूम होता है, उन्हें यह पता तक नहीं है कि राष्ट्रीय महासभा ने तो पिछले साल सितम्बर में ही फौजी सिपाहियों की राजभक्ति में हाथ डाल दिया है और सेंट्रल खिलाफत कमिटी ने तो उससे भी पहले तथा खुद मैंने तो इन सब के पहले, इस विषय में अपनी आवाज उठाई है! क्योंकि यह सुझाने के श्रेय या निन्दा का पात्र तो मैं ही हूं कि हिन्दुस्तान को यह पूरा हक है कि वह सिपाहियों से तथा सरकार के हर एक नौकर से, फिर वह चाहे किसी जगह पर क्यों न काम करता हो, यह कहे कि इस सरकार ने जो जो अत्याचार किये हैं उनके पाप-भागी तुम भी हो। कराची में जो खिलाफत कान्फ्रेन्स हुई थी उसने तो सिर्फ कांग्रेस की इसी आवाज की प्रतिध्वनि, इसलाम की भाषा में, की थी। इस्लाम के सम्बन्ध में मुसलमानों के धर्म-गुरु ही कुछ कहने के अधिकारी हैं। लेकिन हिन्दू-धर्म्म और राष्ट्रीय धर्म्म की तरफ से यह कहने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं होता कि जिस सरकार ने हिन्दुस्तान के मुसलमानों के साथ दगाबाजी की है और जो पंजाब के अमानुष अत्याचारों की अप-राधिनी है उसके यहां सिपाही बन कर अथवा मुल्की नौकर बन-कर नौकरी करना महान् पाप है! यह बात मैं कितनी ही जगह खुद सिपाहियों की मौजूदगी में कह चुका हूं। और अगर आज तक मैंने हर एक सिपाही से अलग अलग यह बात नहीं कही है तो इसका सबब यह नहीं है कि हम ऐसा चाहते नहीं हैं, बल्कि यह है कि हममें उनकी जीविका चलाने का सामर्थ्य अभी नहीं आया है। लेकिन मैं सिपाहियों से यह कहते कभी नहीं हिचका हूं कि अगर तुम कांग्रेस या खिलाफत के भरोसे न रहते, खुद ही अपनी गुजर का जरिया पैदा कर सकते हो, तो तुम तुरन्त इस्तीफा दे दो। और मैं वादा करता हूं कि ज्योंही चरखा हर एक घर में एक स्थायी वस्तु हो जायगा, और ज्योंही हिन्दुस्तानी यह महसूस करने लगेंगे कि बुनाई के द्वारा कोई भी आदमी किसी भी दिन अपनी गुजर बाइज्जत और इत्मिनान के साथ कर सकता है, त्योंही मैं हरएक हिन्दुस्तानी सिपाही से अलग अलग यह कहते हुए जरा भी आगा-पीछा न करूंगा कि तुम अपनी नौकरी छोड़ दो और जुलाहे का काम करने लगो, फिर ऐसा कहने के लिए मुझे गोली भी मार दी जाय तो परवा नहीं! क्योंकि, क्या हिन्दुस्तान को पराधीन रखने में इन सिपाहियों का उपयोग नहीं किया गया है? क्या जालियांवाला बाग के बे-गुनाह लोगों के हत्याकाण्ड के लिए उनका उपयोग नहीं किया गया है? क्या चांदपुर में उस खौफनाक रात में बेकसूर मर्दों, औरतों और बच्चों को घर से बाहर निकालने में उनका उपयोग नहीं किया गया? क्या मेसापोटेमिया के मान-धनी अरबों को अपने अधीन करने के लिए इन सिपाहियों का उपयोग नहीं किया गया है? क्या मिसरानियों को पद-दलित करने में इनका उपयोग नहीं किया गया? ऐसी हालत में कोई भी हिन्दुस्तानी जिसमें मनुष्यता का कुछ भी तेज है, और कोई भी मुसलमान जिसे अपने मजहब का कुछ भी फख है, किस तरह वही बात महसूस किये बिना नहीं रह सकता जो कि अली-भाइयों ने की है? इन फौज के सिपाहियों का उपयोग किसी शूरवीर की तरह,—जिसका यही धर्म है कि दीन-दुर्बल लोगों की आजादी और इज्जत की रक्षा करे—करने के बजाय ज्यादातर भड़ैत जल्लादों की तरह ही किया गया है। लाट साहब ने हम लोगों को यह कह कर के तो, कि अगर गोरे सोल्जर और सिपाही न होते तो मलाबार में क्या हो जाता, हमारी अधम से अधम वृत्ति का सहारा ढूंढा है। मैं लाट साहब को जतला देना चाहता हूं कि मलाबार के हिन्दू अंग्रेजों की संगीने न होतीं तो भी मजेमें रहते, हिन्दू और मुसलमान दोनोंने मिल कर मोपलाओं को शान्त कर दिया होता, अगर खिलाफत का सवाल दरपेश न होता तो मुमकिन था कि मोपला-उत्पात बिल्कुल हुआ ही न होता और, इससे भी गये गुजरे, अगर मान लें कि मुसलमान और मोपला आपस में मिल जाते तो हिन्दू-धर्म अपने अहिंसा के ही सिद्धान्त का अवलम्बन कर के हरएक मुसलमान को अपना दोस्त बना लेता, या हिन्दुओं के शौर्य की परीक्षा और आजमायश हो जाती! हिन्दू और मुसलमानों के भेद को उत्तेजना दे कर बम्बई के लाट साहब ने खुद अपना और अपने कार्य्य का (फिर वह चाहे जो हो) बड़ा बिगाड़ कर लिया है और अपने उस नोट के द्वारा हिन्दुओं को यह अनुमान करने का मौका देकर के उनका बड़ा अपमान किया है कि हम तो बेकस और बेबस प्राणी हैं, हममें न तो अपने बाल-बच्चों की, न अपने देश की या अपने धर्म की रक्षा करने की वकत है और न उनके लिए मर मिटने की ही जुरत हममें है। परन्तु अगर लाट साहब का यह ख्याल सही हो तो हिन्दू लोग जितना ही जल्दी मर मिटें, इन्सानियत के लिए उतना ही बेहतर होगा! लेकिन इस जगह मैं लाट साहब को यह याद दिलाना चाहता हूं कि यह कहना कि आज अंगरेजी राज्य में हिन्दुस्तानी इतने पौरुष-हीन हैं कि वे लुटेरों से—फिर वे चाहे मोपला मुसलमान हों और चाहे आरा के धर्मोन्मत्त हिन्दू हों—अपनी रक्षा नहीं कर सकते, अंगरेजी राज्य पर बड़े से बड़ा कलंक लगाना है।

हां, लाट साहब ने अली-भाइयों के राजद्रोह का जो उल्लेख किया है वह उनके राजभक्ति में दस्तन्दाजी करने के उल्लेख से तो कम अक्षम्य है। क्योंकि वे यह बात जरूर जानते होंगे कि राजद्रोह तो कांग्रेस का बिरुद ही हो गया है। इस कानून-संस्थापित सरकार के प्रति अप्रीति पैदा करने का तो व्रत ही प्रत्येक अ-सहयोगी ने धारण कर लिया है। अ-सहयोग आन्दोलन तो एक धार्मिक और पूर्ण नैतिक आन्दोलन है और वह इस सरकार का उच्छेद करने के उद्देश से ही, बहुत विचार के

उपरान्त, उठाया गया है। इसलिए वह कानून की रू से, ताजीरात हिन्द की भाषा में, जरूर ही राजद्रोहात्मक है। लेकिन यह आविष्कार कोई नया नहीं है। लार्ड चेम्सफोर्ड इस बात को जानते थे। लार्ड रीडिंग भी इसे जानते है। अब यह ख्याल में नहीं आ सकता कि बम्बई की सरकार इस बात को न जानती हो। यह बात आपस में तय हो चुकी थी कि जबतक यह आन्दोलन हिंसा का अवलम्बन न करेगा तबतक इसमें किसी तरह का खलल न डाला जायगा।

पर इसपर यह कहा जा सकता है कि सरकार को यह अख्त्यार है कि जब वह देखे कि अब तो यह आन्दोलन वाकई अपनी--तर्जे अमल--की हस्ती को ही डावाडोल करने लगा है तब वह अपनी नीति बदल दे। मैं उसके अधिकार को ना मंजूर नहीं करता। मेरा ऐतराज तो लाट साहब के उस नोट पर है। उसका मजमून इस तरह से लिखा गया है कि जिससे अनजान लोग यह ख्याल करें कि सिपाहियों को राज भक्ति से हटाना और राजद्रोह करना मानों कोई नये जुर्म हैं जो अली-भाइयों ने इस वक्त किये हैं और मानों यह पहला ही मौका है जो लाट साहब का ध्यान इन पर गया है।

जो हो; अब यह तो साफ ही जाहिर है कि कांग्रेस और खिलाफत के कार्य्य-कर्त्ताओं का क्या कर्त्तव्य है। हमें दया की भीख नहीं मांगना! हम सरकार से इसकी उम्मीद भी नहीं करते। हमने कभी यह प्रार्थना नहीं की कि जबतक हम अहिंसा का अवलम्बन कर रहे हैं तबतक हम जेल से मुक्त रहें और अगर हम राजद्रोह के लिए भी जेल भेजे गये तो अब किसी तरह की शिकायत न करेंगे। इसलिए अब हमारा आत्म--सम्मान और हमारा मन यह चाहता है कि हम शान्त, स्थिर और अहिंसा के पाबन्द रहें। हमें तो अपने उसी निश्चित रास्ते पर चलना है। **हमें उसी बात का उच्चार हजारों जगहों से करना चाहिए जो अली-भाइयों ने सिपाहियों के सम्बन्ध में कही है।** और हमें खुल्लमखुल्ला परन्तु तरतीब के साथ इस सरकार के प्रति अप्रीति का प्रचार करना चाहिए-तब-तक बराबर करते रहना चाहिए जबतक कि सरकार हमें गिरफ्तार न करले! परन्तु यह काम हमें क्रोधित होकर, 'जैसे को तैसा' की रीति से नहीं बल्कि अपना धर्म समझ कर करना चाहिए। हमें अली-भाइयों की तरह खद्दी पहनना चाहिए और 'स्वदेशी' के मन्त्र का प्रचार करना चाहिए, मुसलमानों को स्मर्ना और अंगोरा सरकार के लिए चन्दा जमा करना चाहिए। हमें स्वराज्य की प्राप्ति के लिए और खिलाफत और पंजाब के अत्याचारों के निपटारे के लिए, अलीभाइयों की तरह, हिन्दू-मुसलमान की एकता के और अहिंसा के मन्त्र का प्रचार करना चाहिए।

अब जोखों का समय आ पहुंचा है। परन्तु, जिन लोगों में उसके पार कर जाने का सामर्थ्य है उसके लिए तो यह अच्छा ही अवसर है। अगर खतरे को सामने देखते हुए भी एक ओर तो हम चट्टान की तरह मजबूत रहे और दूसरी तरफ अधिक आत्म-संयम रक्खा तो हम निश्चय ही इसी साल अपने मंजिले मकसूद को पहुंच जायगे।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

बंबई निवासियों को सूचना.

" हिन्दी-नव जीवन "की फुटकर बिक्री बम्बई नगर में बन्द रक्खी गई है। इसलिए वहां वालों को ४) मनीआर्डर द्वारा भेज कर ग्राहक होना चाहिए।

व्यवस्थापक,
" हिन्दीनवजीवन " अहमदाबाद.

हिन्दू-मुसलमान--एकता

मेरे एक परम मित्र लिखते हैं—

" इस समय हिन्दू और मुसलमान में एकता हो रही है। परन्तु मोपलाओं के उत्पात ने हिन्दुओं के दिलों में एक नया वहम पैदा कर दिया है। इस बात का क्या भरोसा है कि मुसलमान लोग हिन्दुओं को हिकमत-अमली से, जबरदस्ती से, मुसलमान बनाने का प्रयत्न न करेंगे? खिलाफत के तो मानी हैं इसलाम के लिए आन्दोलन। और इसमें अगर फतेह हो गई तो फिर मुसलमानों का जोर और जोश खूब बढ़ जायगा। इससे वे अपने मजहब को फैलाने का अर्थात हिन्दुओं को अपने मजहब में मिलाने का उद्योग करेंगे। मोपला लोगों ने अहिंसा का रहस्य नहीं समझ पाया और इसमे वे इतनी खून-खराबी कर बैठे। परन्तु हिन्दुओं को अपने धर्म्म से भ्रष्ट करने से अहिंसा का क्या सम्बन्ध? धर्म्म की धुन में अगर वे धर्म्म-भ्रष्ट करने पर तुल जांय तो इसमें कौन अचम्भे की बात है? "

इस पत्र के लेखक हिन्दू हैं और मुसलमानों की एकता के कट्टर पक्षपाती हैं। फिर भी उनके दिल में शंका पैदा होगई है। जब इस एकता को दृढ़ता के साथ मानने वाले एक सज्जन के दिल में यह शंक हो गया है, तब जिन लोगों के दिल में हमेशा शक बना ही रहता है, उनका तो पूछना ही क्या! इसलिए मैं यह मुनासिब समझता हूं कि ऐसी शंकाओं का समाधान प्रकट रूप से किया जाय। अगर हम यह चाहते हों कि दिन-पर-दिन निडर होते जायं तो ऐसी परिस्थिति होजाना चाहिए जिसमें हम तमाम शंकाओं का विचार जाहिरा तौर पर कर सकें। पूर्वोक्त शंका को देख कर ऐसा साफ मालूम होता है कि लेखक अ-हिंसा का अर्थ नहीं समझ पाये है। न तो उन्होंने इस्लाम का अर्थ समझ पाया है और न हिन्दू-मुसलमान की एकता का ही।

जो अहिंसा को अपना धर्म्म मानते है वे जान सकते हैं कि उसके सामने वैर-भाव-बलात्कार-तो ठहर ही नहीं सकता। अगर मलाबार के हिन्दू अहिंसा का पालन करने वाले होते तो क्या मजाल थी कि कोई मोपला उन पर जबरदस्ती कर सकता? यहां कोई यह कह सकता है कि सभी लोग अहिंसा के पाबन्द नहीं हो सकते। उनका कहना है तो ठीक, पर मै कहता हूं कि अगर कुछ थोड़े हिन्दू भी सचमुच अहिंसा का पालन करे तो उतने ही से दूसरों की रक्षा हो सकती है। अहिंसा का ऐसा प्रभाव है। इसपर अगर कोई यह कहे कि हिन्दू लोग तो अहिंसा के मानने वाले नहीं हैं, तो फिर पूर्वोक्त सवाल रही नहीं जाता। क्योंकि जो अहिंसा वादी नहीं हैं वे तो लड़कर अपनी रक्षा कर सकते हैं--फिर चाहे वे अकेले हों, चाहे अनेक हों। शस्त्र-बल के द्वारा जिन जिन अर्थो की सिद्धि हो सकती है वे सब अहिंसा-बल से भी साध्य हो सकते हैं। जो शस्त्रबल का उपयोग करते हैं वे भी तो शूर तभी कहाते हैं जब बलवान् से संग्राम करते हैं। पर अहिंसावादी तो बिना ही शस्त्रास्त्र के युद्ध करता है। इसलिए उसके बल की तो सीमा ही नहीं है। जो लोग जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये हैं उन्होंने बलात्कार को क्यों सहन किया? क्यों प्राण त्याग नहीं कर डाला! अथवा क्यों न लड़ते हुए जान कर जीवित रहे या मर ही गये? अगर अंग्रेजों ने उनको बचाया और उससे वे जीवित रहे तो उन्होंने अंग्रेजों का धर्म्म कबूल कर लिया। अगर मेरे बचाने से जिन्दा रहते तो वे मेरा धर्म्म कबूल करते। उनका तो कोई धर्म्म ही नहीं था। धर्म्म तो एक व्यक्तिगत संग्रह है। मनुष्य स्वयं ही उसकी रक्षा और स्वयं ही उसका नाश कर सकता है। जिसकी रक्षा केवल समुदाय में हो सकती है वह धर्म नहीं; वह तो मत है।

इस्लाम धर्म यह आज्ञा नहीं देता कि किसी को जबरदस्ती मुसलमान बनाया जाय। यही नहीं बल्कि वह तो बलात्कार का निषेध भी करता है। और यह कहना तो फजूल है कि इस्लाम में जबरदस्ती से काम लिया भी गया है। किसी धर्म के सभी अनुयायी उसका पूरा पूरा अनुसरण नहीं करते। क्या गो-रक्षा के लिए मुसलमानों का वध करने की आज्ञा हिन्दू-धर्म्म में है? नहीं। फिर भी हिन्दू उन्मत्त होकर मुसलमानों के साथ झगड़ते हैं! क्या इस बात को हम नहीं जानते? अगर इस्लाम-धर्म में जबरदस्ती करने का विधान हो तो वह धर्म्म नहीं, बल्कि अधर्म माना जाय। मुझे तो यकीन है कि ऐसे बलात्कार की आज्ञा इस्लाम में हरगिज नहीं। अगर होती तो तमाम मुसलमान खुल्लमखुल्ला यह बात कबूल करते। जबरदस्ती के बलपर आजतक कोई मजहब दुनिया के परदे पर नहीं टिका। मुसलमानों के शासन-काल का जो इतिहास हम लोगों को पढ़ाया जाता है उसमें, मेरा मत है कि, बहुत सी बातें बढ़ाकर कही गई हैं। हां, खिलाफत की फतेह से मुसलमानों का जोर जरूर ही बढ़ेगा, उनका पराक्रम भी बढ़ेगा, परन्तु इससे यदि हम यह मानें कि मुसलमान लोग उसका उपयोग खुद हिन्दुओं के ही खिलाफ करेंगे तो इसका अर्थ तो यह है कि गोया मुसलमानों के यहां शराफत जैसी कोई चीज ही नहीं है, उनके पास नेकी के बदले सिर्फ बदी ही है, अर्थात् उनके यहां धर्म्म ही नहीं है! मुझे तो अबतक जो कुछ तजरिबा हुआ है वह बिल्कुल इसके उलटा है। अनेक मुसलमानों की सचाई और शराफत का अनुभव मुझे हुआ है।

परन्तु हिन्दू और मुसलमानों की एकता का यह अर्थ हरगिज नहीं है कि किसी मुसलमान या किसी हिन्दू से कभी कोई गलती होही नहीं। गलती हो जाने पर भी जब हम अटल ही बने रहें तभी यह माना जायगा कि हां, एकता धर्म्म का पालन किया गया है।

पर अभी इस सवाल पर जरा और भी विचार करें। हां, इस सरकार ने हमारी चुटिया तो बेशक जबरदस्ती नहीं काटी है, परन्तु इसने तो हमारे आत्मा ही को कहां रहने दिया है? सरकार के बलात्कार के मुकाबले में तो मुझे मोपलाओं का बलात्कार न-कुछ मालूम होता है। सरकार के हाकिमों ने तो एक छिन भर में लोगों से खादी छीन ली और हिन्दू और मुसलमान दोनों को धर्म्म-हीन कर डाला! यह हिन्दू-मुसलमान का पौरुष किसने हरण किया है? आज तो सरकार के शस्त्र-बल के सामने मुंह उठाने की भी शक्ति हममें नहीं रह गई! मुगलों के जमाने में हमारी ऐसी हीन स्थिति नहीं हुई थी। मोपलाओं के शस्त्र-बल का सामना शस्त्रों के ही द्वारा करने की तजवीज तो मैं इसी घड़ी कर सकता हूं; परन्तु मैं अपने को शस्त्र-शास्त्र का थोड़ा-बहुत ज्ञाता मानते हुए भी सरकार के शस्त्र-बल के सामने शस्त्र-प्रयोग करने की विद्या का आविष्कार न तो खुद ही कर सकता हूं और न अली-भाई ही अबतक कर सके हैं।

तो, ऐसी दशा में, हिन्दू और मुसलमानों की एकता का टिकना दोनों के शान्ति को स्वीकार करने पर ही अवलम्बित है। और हर एक कौम के अगुआ लोगों को यह कुबूल करना होगा कि हमारे आपस के झगड़े सहज शांति के ही साथ अर्थात् पंच की ही मारफत फैसल होना चाहिए।

अब, अन्त में, जो हिन्दू जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये हैं वे मुसलमान नहीं माने जा सकते और न वे भ्रष्ट ही समझे जा सकते हैं। उन्हें हिन्दू मानने का पूरा पूरा अधिकार है। उन्हें किसी भी तरह के प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं।

मुझे इतना और भी कह देना उचित है कि जिन जिन मुसलमानों ने मोपलाओं के अत्याचारों की बातें सुनी हैं उन्हें बड़ा ही अफसोस हुआ है और अगर आज हम लोग वहां जाने दिये जाते तो मोपला लोग खुद ब खुद आकर माफी के ख्वास्तगार होते। मुझे पूरी उम्मीद है कि जब स्वराज्य मिल जायगा तब वे लोग जरूर ही माफी मांगेंगे। वे तो सिर्फ एक बात जानते हैं—लड़ना। वे हमारे नादान भाई हैं। उन्हें सुधारने का प्रयत्न सरकार ने तो किया ही नहीं, पर हम लोगों ने भी नहीं किया। क्या इसमें मलाबार के हिन्दुओं का कुछ दोष नहीं है?

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

कलकत्ते के कड़वे अनुभव

पूर्व बंगाल की मुसाफिरी का कुछ हाल मैं पहले ही लिख चुका हूं। वहां यद्यपि हजारों आदमियों की भीड़ होती थी तो भी उससे मैं परेशान नहीं होता था। लेकिन कलकत्ते में तो, मैं सोलहों आने थक गया हूं। एक तो आधी आधी रात तक सोने को नहीं मिलता और दूसरे जयघोष की आवाज पर आवाज! ये बातें अब मुझे नागवार मालूम होती हैं। दिन भर 'जय घोष' को सुनते सुनते मैं थक जाता हूं। कान उसे गवारा नहीं कर सकते। फिर, इसमें कुछ मतलब भी नजर नहीं आता। इससे मुझे यह दुःसह मालूम होता है। इस तरह की आवाजों से लोगों को कोई फायदा नहीं पहुंचता, यह बात मैं अच्छी तरह जानता हूँ। जब लोगों को ज्ञान नहीं था, जब कि वे बोलते हुए भी डरते थे, तब तो जरूर इस जय जयकार से उनके दिलों में जोश उमड़ता होगा। इस बात का अनुभव मुझे चम्पारन में मिल चुका है। वहां सैकड़ों आदमी सिर्फ इसीलिए मुझे घेर कर बैठ जाते थे कि उन्हें स्फूर्ति मिले। इस कारण, यद्यपि उनका प्रेम मुझे हैरान तो कर देता था, लेकिन फिर भी मैं उसे गवारा कर जाता था। यहां भी प्रेम तो वैसा ही है। इस जय-जयकार से तो अन्ध मोह प्रकट होता है। इसमें न लोगों का फायदा है और न मेरा।

यह तो मैंने अपने मतलब की नजर से जयघोष की जांच की। लेकिन चरण-स्पर्श (पैर छूना) भी उतनाही दुखदाई है। कितनी ही बार मुझे चोट लग जाती है, और कभी कभी तो मैं गिरते गिरते भी बच जाता हूं। सभाओं में जाते हुए मेरा कलेजा कांपता है। लेकिन जयघोष में तो मुझे खतरा भी नजर आता है। क्योंकि जब लोग प्रेमोन्मत्त होकर बराबर चिल्लाते रहते हैं तब वे अपने कान से तो किसी दूसरी बात को सुन नहीं सकते, और न आंखों से कुछ देखते ही बनता है। अब मान लीजिए कि ऐसे मौके पर किसी ने दंगा-फसाद खड़ा कर दिया और दो तीन लाठियां भी चल पड़ीं। मैं खड़ा हुआ यह सब देख रहा हूं और हाथों के तथा मुंह के बल मारपीट रोकने के लिए प्रयत्न कर रहा हूं। लेकिन नक्कारे में तूती की आवाज सुनता कौन है! मानलो कि इसी बीच मार-पीट बढ़ गई और दलबन्दी होकर खून की नदी बह चली। ये सब बातें बिना किसी के इरादे के ही सकती हैं। अमृतसर में भी, मेरा तो खयाल है कि ऐसा ही हुआ है। मैं यह नहीं मानता कि किसी ने पहले से ही उस बेकुसूर बैंक मैनेजर के खून करने का इरादा किया होगा। बल्कि उस समय लोगों के खून में जोश को उमड़ते हुए देखकर, हो न हो, किसी शैतान ने अपना मतलब बना लिया।

इसीलिए मैं समझता हूं कि, इस खामोशी की लड़ाई में जयघोष की जरा भी जरूरत नहीं है; और अगर है भी तो वह

मुनासिब ढंग से और अकरस के वक्त पर, और बहुत ही कम तादाद में।

मालूम होता है कि कलकत्ते में स्वयं-सेवकों को सभा के नियम पालने की तालीम नहीं दी गई। क्योंकि मैंने देखा कि अगर लोगों को शुरू से ही हिदायतें मिल जाय तो वे उसके अनुसार चल सकते हैं। गला फाड फाड कर चिल्लाने से ही प्रेम दिखाई दे सकता हो, सो बात नहीं है, बल्कि चुप रहना भी शुद्ध प्रेम-अदब-का चिन्ह है। यह बात अगर लोगों को समझाई जाय तो जरूर ही वे इसका मर्म, समझ सकते हैं। क्योंकि मैंने दो एक सभाओं में ऐसा कर भी देखा है। कई जगह भीड को पार करते हुए मेरे पैर कुचल गये और जयघोष से मैं हैरान भी हुआ। एक जगह तो मुझे अपने स्थान तक पहुंचने में २० मिनिट लग गये।

इन दोनों जगहों में मेरे भाषण का चौथाई हिस्सा तो केवल सभा में चुप रहने-शांति बनाये रखने-और नेताओं के लिए रास्ता देने के उपदेश ने ही ले लिया; लेकिन दोनों ही जगह इसका नतीजा यह निकला कि लौटते वक्त हमें रास्ता मिल गया। शोर भी न मचा और जबतक हम वहां से चले न गये तबतक लोग अपनी जगह से उठे तक नहीं। इस तरह जहां भीड को पार करने में मुझे बीस मिनिट लगे थे, वहीं लौटने में सिर्फ एक मिनिट ही लगा!

इन बातों से मैं यह देखता हूं कि अगर लोगों को शुरू से ही ठीक तौर पर समझा दिया जाय तो जरूर ही वे उसे मानेंगे और उस पर अमल करेंगे। मुझे यह विश्वास है कि आम तौर पर लोग शान्तिके पाठको-अमन के सबक को-समझते हैं और उसको अमल में लाने का इरादा भी रखते हैं।

अब मैं अपने ऊपर वाले उदाहरण की उलटी स्थिति का अनुमान करता हूं। मान लीजिए कि सभा में सब लोग चुप चाप बैठे हैं, सबका ध्यान मुख्य नेता की तरफ है। ऐसी शांत सभा में अगर कुछ लोगों में कहीं लडाई-झगडा खडा हो जाय, और फिर भी अगर सब लोग चुप-चाप ही बैठे रहें तो नतीजा यह होगा कि मुख्य नेता की आवाज जैसे दूसरों को सुन पडती है, वैसे ही उन लडने वालों को भी सुनाई देगी और उन्हें शान्त कर देगी। अगर ऐसा न हो पाया तो भी कम से कम हमारी अनजान में तो झगडा बढ ही नहीं सकेगा और शांति-भंग का दोषभी हमारे सिर न आने पावेगा।

फौज में ऐसा ही होता है। सब सिपाही अपनी अपनी जगह को संभाले रहते हैं। बिना हुक्म के वे अपनी जगह पर से जरा भी आगे पीछे नहीं हट सकते। दूसरे किसी काम में पड ही नहीं सकते। हम भी तो स्वराज्य की एक शान्तिमय सेना ही हैं। हमें भी अपने अपने स्थानों पर रह कर अपने अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। दूसरे लोग क्या कर रहे हैं, इसका विचार करना हमारा काम नहीं। हम यह जानते हैं कि उस बात का प्रबन्ध उस विभाग के कार्यकर्ता कर लेंगे। शान्ति की सेना में तो अशान्ति की सेना से भी अधिक संयम की और अधिक व्यवस्था की जरूरत है, अथवा होनी चाहिए।

कलकत्ते में प्रेमका जिस तरह कडवा अनुभव हुआ उसी तरह अवगुण का भी हुआ। मुझे मालूम होता है कि जितना पक्ष-द्वेष कलकत्ते में है उतना दूसरी जगह शायद ही कहीं हो। जो अंग्रेजी अखबार असहयोग का विरोध करते हैं उनमें मुझे सिवा जहर के और कुछ भी नहीं दिखाई देता। असहयोगियों के लेखों की बे-मतलब और वाहियात नुक्ताचीनी और उनके विषय में फैलाई बिलकुल झूठी अफवाहों का तो पार ही नहीं। उसमें भी फिर कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के लेखों और व्याख्यानों का तो इतना कुछ जहरीला उपयोग किया जाता है कि, वह मेरी समझ तक में भी नहीं आता कि, लोग ऐसा करने की हिम्मत कैसे करते होंगे! कितनी ही बार ऐसी बातों को देखकर रावण-राज्य की तस्वीर मेरी आंखों में खिंच आती है। जहां साधन की पसन्दगी मनमाने ढंग पर की जाती हो वहां मक्कारी और जाल-फरेब का उपयोग कौन अचम्भे की बात है? सीताजी का हरण राक्षस के वेष में नहीं हो सकता था। वह तो साधु के वेष में ही हो सका। और जहां साधुता का इस तरह दुरुपयोग हो वहां नाश होते जरा भी देर नहीं लगती। यहां सत्य के नाम पर झूठ को फैलते हुए मैं अंग्रेजी अखबारों में अपनी आंखों से देख रहा हूं। असहयोगियों को इस तरह की झूठ से बचने का संकेत करने के लिए ही मैंने इस जहरीली हवा का यह सारा हाल लिखा है। हमारा शस्त्र तो सत्य और शांति है, यह बात हमें हरगिज न भूलना चाहिए।

यहां के राष्ट्रीय महाविद्यालय में चरखों की नुमाइश की गई थी। वहां मैंने कोई १५ किस्म के नये चरखे देखे। इनमें नई नई तरकीबों का तो पार ही नहीं। बहुत से नवयुवक अपनी शक्तियों का उम्दा प्रयोग कर रहे हैं। कितने ही चरखे बडे सुन्दर थे; कितने ही छोटे छोटे भी थे। एक तो इतना छोटा था कि एक छोटी सी पेटी में ले जाया जा सकता था। और एक ऐसा था कि वह सन्दूक में भी ले जाया जा सकता था और उसमें बाजा बजने की भी तरकीब लगाई गई थी। परन्तु मुझे एक भी चरखा ऐसा न दिखाई दिया जो अधिक सूत कातने में पुराने चरखे का मुकाबला कर सकता हो। हां, इन सब आविष्कारों को देख कर मैंने यह नतीजा जरूर निकाला कि आजकल चरखा खूब लोकप्रिय हो गया है और अनेक कारीगरों की बुद्धि को उसने अपने सुधार के काम में लगा रक्खा है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

ग्राहक होनेवालों को सूचना

जिन स्थानों में "हिन्दी नवजीवन" की फुटकर बिक्री एजंटों के द्वारा होती है वहां के निवासियों को चाहिए कि वे वहीं से अंक प्राप्त कर लिया करें। वहां ग्राहक होकर डाकखाने से अंक मंगाने में उन्हें और हमें दोनों को असुविधा होती है। पर उस दशा में यदि ग्राहकों को अंक मिलने में गड़बड़ हो तो इसकी शिकायत वे कृपा करके हम से न करें।

मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेजिए। हमारे यहां वी. पी. का नियम नहीं है। एजन्सी के लिए नियम मंगाइए।

व्यवस्थापक-"हिन्दी नवजीवन"

अहमदाबाद.

ग्राहकों को सूचना।

महीने के बीच में ही ग्राहक का नाम दर्ज करने में कठिनाई होने से अब जो मनिआर्डर हमें मिलेंगे, उन्हें हम आगामी महीने की १ तारीख से जमा करेंगे। और तभी से पत्र भी भेजना शुरू करेंगे। यदि ग्राहक गण पिछले अङ्क लिया चाहें तो उन्हें डेढ़ आना प्रति अङ्क के हिसाब से डाक के टिकट भेज देना चाहिये।

व्यवस्थापक हिन्दी नवजीवन

अहमदाबाद

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, सूरी ... पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित।

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—आश्विन शु० ६, संवत १९७८, शुक्रवार, तारीख ७ सितम्बर, १९२१ ई० | अंक ८

घोषणा !

बम्बई-सरकार के ता० १५ सितम्बर, १९२१, के कम्यूनिक में बताये कारणों से अलीभाइयों तथा दूसरे सज्जनों पर जो मुकदमा चलाया गया है उसे ध्यान में रखते हुए हम, नीचे सही करने वाले, अपनी व्यक्तिगत हैसियत से, यह प्रकट करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का जन्म-सिद्ध अधिकार है कि वह इस विषय पर कि सरकार की नौकरी का उम्मीदवार होना, या उसकी नौकरी में रहना—फिर वह चाहे मुल्की विभाग में हो चाहे फौजी विभाग में हो—उचित है या नहीं, पूरी स्वतन्त्रता के साथ अपनी राय प्रकट करें।

हम, नीचे सही करने वाले, बतौर अपनी राय के, यह भी जाहिर करते हैं कि इस सरकार-शासन-प्रणाली के मातहत मुलकी जगहों पर और खास कर के सैनिक की हैसियत से, किसी भी हिन्दुस्तानी का नौकरी करना उसके राष्ट्रीय गौरव के खिलाफ है, जो हिन्दुस्तान के आर्थिक, नैतिक और राजनैतिक अधःपात की कारणीभूत है और जिसने अपनी फौज और पुलिस का उपयोग राष्ट्रीय उच्च आकांक्षाओं के दमन करने में किया है, जैसे कि रौलट-कानून-सम्बन्धी आन्दोलन के जमाने में, और जिसने अपने सैनिकों का उपयोग अरब, मिसर तथा तुर्कस्तान जैसे और दूसरे भी ऐसे राष्ट्रों की स्वाधीनता को नष्ट भ्रष्ट करने में किया है, जिन्होंने हिन्दुस्तान को किसी तरह हानि नहीं पहुँचाई है।

हमारी यह भी राय है कि यह हरएक हिन्दुस्तानी सिपाही और मुल्की नौकर का कर्तव्य है कि वह इस सरकार से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर ले और अपनी जीविका के लिए कोई दूसरा जरिया तलाश करले।

मोहनदास करमचन्द गांधी	अबुल कलाम आजाद	अजमल खान	लाजपत राय
मोतीलाल नेहरू	सरोजिनी नायडू	अब्बास तैयबजी	नरसिंह चिन्तामण केलकर
विट्ठलभाई जवेरभाई पटेल	वल्लभभाई पटेल	एम० आर० जयकर	दत्तात्रेय विश्वनाथ गोखले
शंकरलाल घेलाभाई बैंकर	जवाहरलाल नेहरू	गंगाधरराव देशपांडे	लक्ष्मीदास रवजी तेरसी
उमर सोबानी	जमनालाल बजाज	माधवराव अणे	एस० ई० स्टोक्स
एम० ए० अनसारी	खलीकुज्जमां	के० एम० अब्दुल गफूर	कृष्णाजी नी० करगुजणी
सी० राजगोपालचार्य	कोंडा वेंकटप्पय्या	जी० हरि सर्वोत्तमराव	अनसूया साराभाई
जितेन्द्रलाल बनर्जी	मुशीर हुसेन किदवाई	श्यामसुन्दर चक्रवर्ती	राजेन्द्रप्रसाद
आजाद सोभानी	हसरत मोहानी	महादेव हरिभाई देसाई	बरजोरजी फामजी भरूचा
याकूब हसन	बी० एस० मुंजे	जयरामदास दौलतराम	एम० आर० चोळकर
वी० पी० [illegible]	अहमद हाजी सिद्दीक खत्री	गुडुर रामचन्द्र राव	डी० एस० विजयराव
वी० एल० सुब्रह्मण्य	सि. अ. हाजी आदमहम्मद छोटानी	अब्दुल बारी	(और सहियां आ रही हैं)

धर्म या अधर्म ?

कभी कभी तो ऐसे लोग भी टेढ़े-मेढ़े सवाल पूछ बैठते हैं और अपने कडुवे अनुभव पेश करते हैं जो इस युद्ध में हमारी फतेह चाहते हैं और जो अ-सहयोग के भी कायल हैं। ऐसे सवाल मुझे चौंका देते हैं ; पर साथ ही सावधान भी कर देते हैं। अपने एक मित्र के ऐसे एक पत्र का सार नीचे देता हूं। उन्होंने यह पत्र बड़े प्रेम के साथ लिखा है। वे देश का हित चाहने वाले हैं। धर्म्म उन्हें प्रिय है। उन्हें मनुष्य के स्वभाव का विस्तृत अनुभव है। उनके पत्र का आशय जितना मुझे याद रह गया है, अपनी भाषा में देता हूं-

"आपकी नीयत के विषय में तो किसी को जरा भी शक नहीं। आपके साधन भी निर्दोष हैं। परन्तु विद्यार्थियों से जो आपने स्कूल-कालेज छुडवाये हैं यह काम क्या आपको ठीक-सराहनीय मालूम होता है ? क्या इसका नतीजा बुरा नहीं होगा ? मैं तो इसका बुरा असर हुआ आज ही देख रहा हूं। आजादी का सबक सिखाने से उनका जी घर-बार की तरफ से उचट गया है और मां-बाप के प्रति लड़कों का आदर-भाव कम हो गया दिखाई देता है। अगर मर्य्यादा-धर्म्म का लोप होते हुए स्वराज्य प्राप्त हुआ तो वह किस काम का ? भला बच्चों को चरखा कातना कहीं शोभा देता है ? हां, बड़े हो जाने पर वे जो जी चाहे सो करते रहें। लड़के जब खुद मां-बाप के साथ गुस्ताखी से पेश आते हैं तब वे धर्म-भ्रष्ट हुए बिना तो रही नहीं सकते।

हां, अ-सहयोगियों के प्रति आप का अच्छा खयाल होना तो स्वाभाविक ही है। पर कहीं इसमें आप को भ्रम तो नहीं हो रहा हो ? क्या आपको यह विश्वास है कि सब लोग आपके ही जैसे हैं ? मुझे तो यह दिखाई देता है कि इसमें बहुतेरे लोग ढोंगी हैं, मतलबी हैं और घमण्डी हैं। अगर भले भले आदमियों को खोकर आप उच्छृंखल लोगों को अपने साथ रख रहे हों तो क्या आप यह पसन्द करेंगे ? मैं किस तरह अपनी आंखों से आपको यह दिखा सकता हूं कि दुनिया की तमाम सफेद चीजें दूध नहीं होतीं !

आपकी विजय-कामना से प्रेरित हो कर ही यह शङ्का की है और आपका समय लिया है।"

लेखक ने अपने पत्र में जितनी सरलता और सभ्यता से काम लिया है उसे मैं यहां पूरी तरह प्रकट नहीं कर सका हूं। उन्होंने महज प्रेम-वश हो कर ही यह पत्र लिखा है। और ऐसे पत्र मुझे हमेशा इस पशो-पेश में डाल देते हैं कि कहीं सचमुच मर्य्यादा का लोप तो नहीं हो रहा हो ?

मुमकिन है, कुछ लड़के गुस्ताख और सीनाजोर हो गये हों। जब कि गीता के आधार पर गोले बरसाये गये हैं तब मेरे वचनों का अनर्थ हो, तो कौन अचम्भे की बात है ? पर मुझे तो यकीन है कि स्कूल-कालेजों के बहिष्कार के इस आन्दोलन का फल, समष्टि रूप से, अच्छा ही हुआ है। सोलह साल से कम के लड़कों के लिए तो यह बात थी ही नहीं, और मेरी धारणा है कि सोलह साल से ऊपर की उम्र के युवक में निर्णय-शक्ति जाग्रत हो जाती है।

एक और भी सवाल मेरे दिमाग में चक्कर मारा करता है। क्या आजकल मां-बाप यह समझते हैं कि हमारा धर्म्म क्या है ? भला जहां मां-बाप खुद ही पतित होते हैं वहां लड़कों का धर्म्म क्या होगा ? जहां खुद मां-बाप ही व्यभिचारी हों और दुर्व्यसनी हों तो भला उनके जवान लड़के-लड़कियों को क्या करना चाहिए ? गुलाम के लड़के-बाले अपना बरताव कैसा रक्खें ?

ऐसे विषयों में मर्यादा-शास्त्र का एकांगी अर्थ करने से सिवा विषम परिणाम के और क्या हाथ आ सकता है ? घूसखोर मां-बाप की औलाद को घूस के पैसे पर अपना निर्वाह करना चाहिए या उसका त्याग ? मान लीजिए कि हिन्दू मां-बाप अपना धर्म्म छोड़ दें तो क्या उनके लड़के-बालों को भी अपना धर्म्म छोड़ देना चाहिए ?

इस जमाने में हमें जिस प्रकार राजभक्ति की हद बांधना पड़ती है उसी प्रकार पितृभक्ति की भी हद बांध देने पर ही काम चल सकता है।

जहां राजा व्यभिचारी हो, जहां राजा प्रजा को पीड़ित करता हो, जहां वह प्रजा के धन-माल पर तरह तरह के भोग-विलास करता हो, रक्षा करने के गुण को छोड़ कर भक्षक हो जाता हो, वहां राजभक्ति अगर पाप न माना जाय तो फिर पुण्य ही पाप हो जायगा। **राजभक्ति तो रामभक्ति थी, रावण-भक्ति तो किसी तरह नहीं हो सकती। हां, दशरथ वन जाने की आज्ञा दें और राम खुशी से जायं, यह तो सुसंगत है, परन्तु हिरण्यकशिपु अपनी गद्दी दे और प्रह्लाद उसपर बैठ जाय तो धर्म्म का लोप हो।**

बाप के कुए में तैरना तो चाहिए, पर डूब न मरना चाहिए।

इस संग्राम में युवकों को स्वच्छन्दता का पाठ नहीं पढ़ाया गया है। जिन युवकों को मर्य्यादा का ज्ञान है, जो दुःखों को सहन कर सकते हैं सिर्फ उन्हीं को यह कहा गया था कि इस ज्ञान के मिलते हुए भी तुम सरकारी स्कूल-कालेज छोड़ दो। ऐसे लड़के भी बहुत हैं जिन्होंने अपने मां-बाप को खुश रखने के लिए अपने को सरकारी मदरसों में रख छोड़ा है। अपने मां बाप की इच्छा को तोड़ कर निकलने वालों की संख्या तो कम ही है और उनमें भी उन लड़कों की तादाद तो और भी कम है जो मदरसा छोड़कर स्वेच्छाचारी हो गये हों।

अपने अंतरात्मा के नाम पर स्वच्छंदता की उपासना करने वाले वीर दुनिया में जरूर रहा ही करते हैं। ऐसों के बदौलत धर्म डूबे बिना नहीं रह सकता। परन्तु इससे क्या हमें अन्तरात्मा का नाम लेते हुए डरना चाहिए ? मुझे इस बात में जरा भी सन्देह नहीं है कि बालकों को चरखा सौंप कर मैंने जनता की बड़ी भारी सेवा की है। इसे तो मैं एक चिरस्थायी आन्दोलन मानता हूं। हमने तो बालकों के मन को ही शिक्षा देने में अत्याचार से काम लिया है। शरीर के लालन-पालन में ही हमारा बहुतसा समय चला जाता है। उसके पोषण के वास्तविक साधनों की अवहेलना करके हमने बड़ा पाप किया है। देश अब उसी हालत में सुखी होगा जब हम फिर से वही शिक्षा देने लगेंगे। औद्योगिक शिक्षा देना हमारा कर्तव्य है। और चरखों के द्वारा यह शिक्षा देने से हमारे कई काम बन जायंगे।

इन मित्र महाशय की दूसरी शंका से चित्त चिन्तित हो जाता है। हां, इस धार्मिक युद्ध में अगर पाखण्ड अपनी जड़ जमा ले तो धर्म मुरझा जाय और जनता की भी हानि हो। अगर ऐसा हो जाय तो फिर लोग या तो धर्म्म के नाम से कोसों दूर भागेंगे या धर्म्मान्धता को ही धर्म मानकर बैठ रहेंगे।

हां, मैं यह जरूर मानता हूं कि इस आन्दोलन में बहुतेरे ढोंग-ढकोसले घुस गये होंगे। मैं यह भी जानता हूं कि कुछ पाखण्डी लोग अपना स्वार्थ साधने के लिए निकल पड़े हैं। पर फिर भी, मेरा यह विश्वास है कि इस आन्दोलन में पाखण्ड ने प्रधान पद ग्रहण नहीं किया है। अगर पाखण्ड प्रधान पद ले ले

तो हमारी स्थिति आज से भी अधिक खराब हो जाय। क्योंकि उससे हमारी भीरुता को पोषण मिलेगा। जहां डर है वहीं दम्भ के लिए गुंजाइश है। पाप की जोखिम उठाने से डरने वाला पापी पुण्यवान् का वेश बनाकर रहता है और दूना पाप कमाता है। अपनी नास्तिकता को छिपाने के लिए, अपना पेट-पालने के लिए, लम्बा-चौड़ा तिलक लगाता है और खीर मलता है। यही नहीं, पर पाप में और भी पाप की वृद्धि करता है। ऐसे लोग इस आन्दोलन में प्रवेश न कर सकें इसके लिए एक पामर मनुष्य जितने प्रयत्न कर सकता है, उतने मैं समझता हूं, किये गये हैं; और इसीलिए मैंने अपनी आखिरी स्वतन्त्रता कायम रख छोड़ी है। जब मैं देखूंगा कि अरे, अब तो चारों ओर ढोंग ही ढोंग है; तभी मैं इस आन्दोलन से जी छोड़कर भाग निकलूंगा, क्योंकि पाखण्डी मनुष्य अ-सहयोगी नहीं होता और मैं तो अ-सहयोगियों का दास हूं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

अगर मैं पकड़ा जाऊं तो?

(अपनी गिरफ्तारी की अफवाह को सरगर्म देखकर श्री-गांधीजी ने नीचे लिखा सन्देश अखबारों में छपवाया है-उप सम्पादक)

"मेरी गिरफ्तारी की कई अफवाहें मैंने मदरास में सुनी। और मुझ से यह भी कहा गया कि उनमें बहुत कुछ तथ्य है। बम्बई में यह बात मैंने और भी जोर के साथ सुनी। अगर ये अफवाहें कुछ सचाई रखती हों तो, अली-भाइयों की गिरफ्तारी के बाद यह मुनासिब कार्रवाई करने के लिए, बेशक सरकार बधाई की पात्र है! क्योंकि सरकार की टक्कर झूठी या सच्ची हिंसा के या उसकी उत्तेजना के मुकाबले में नहीं बल्कि जिस अ-सहयोग के मूल सिद्धान्त पर कांग्रेस और खिलाफत कमिटियों का मुख्य आधार है उसीके मुकाबले में है और वह सिद्धान्त यही है कि वर्तमान सरकार के प्रति अप्रीति उत्पन्न करना और हर तरह के लोगों से, जिनमें मुल्की नौकर और फौजी सिपाही भी शामिल हैं, सरकार के साथ अ-सहयोग कराना। अब यह साफ ही जाहिर है कि इस आन्दोलन की सफलता के मानी हैं वर्तमान शासन-प्रणाली का उन्मूलित हो जाना और ऐसी दशा में किसी भी सच्चे अ-सहयोगी के लिए सरकार की किसी भी कार्रवाई पर जो वह इस आंदोलन को कुचलने के लिए काम में लावे, चू तक करना उचित नहीं है। और मैं तो सरकार के पास इसके सिवा दूसरी कोई युक्ति-संगत कार्रवाई नहीं देखता कि वह अगर अ-सहयोगियों की इच्छा के अनुसार परिवर्तन करना नहीं चाहती है, तो इस आंदोलन के प्रवर्तक को ही गिरफ्तार करे।

अलीभाइयों की तथा दूसरे सज्जनों की गिरफ्तारी के बाद देश ने गौरव-पूर्ण शांत वृत्ति का परिचय देकर यह दिखला दिया है कि उसने अहिंसा की आवश्यकता को अनुभव कर लिया है। मैं उम्मीद करता हूं कि मेरी अथवा किसी दूसरे कार्यकर्ता की गिरफ्तारी पर भी चारों ओर ऐसी ही अहिंसा वृत्ति दिखाई देगी। लोग अपने मजहब और मुल्क के खातिर साहस दिखाकर अहिंसा को और जेलखाने को गौरव-रूप समझेंगे और पूर्ण शांति रखते रहेंगे-यही नहीं बल्कि 'हड़ताल' तथा ऐसे ही दूसरे दिखावों से भी बाज रहेंगे। मेरी अथवा किसी दूसरे देश-सेवक की गिरफ्तारी पर अगर 'हड़तालें' की जायगीं तो वे अहिंसा की मर्यादा को भंग करने वाली समझी जायगीं, और इसलिए गिरफ्तार शुदा लोगों के प्रति उनके प्रेम और आदर का मानी जायगी।

उनके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति दिखाने का तो केवल एक ही मार्ग है और वह यह कि कांग्रेस के निश्चित स्वदेशी के कार्य-क्रम को और भी अधिक उत्साह के साथ पूरा करना और इस तरह स्वराज्य को शीघ्र प्राप्त कर लेना। अगर मैं पकड़ा गया तो उस हालत में मैं हरएक पुरुष और स्त्री से, जो स्वदेशी के संदेश के कायल तो हैं, लेकिन शिथिलता या कमजोरी के कारण जिन्होंने अभी तक विदेशी कपड़ों का त्याग नहीं किया है और चरखा कातना और कपड़ा बुनना अख्त्यार नहीं किया है, यह उम्मीद करता हूं कि वे अपने तमाम विदेशी कपड़ों को दूर कर देंगे और सूत कातने और करघे पर कपड़ा बुनने लग जायंगे। हिन्दुओं से मैं उम्मीद करूंगा कि वे किसी भी कारण से खिलाफत के आंदोलनमें ढील न पड़ने देंगे और नाम मात्र के स्वराज्य के लिए सौदा न करेंगे, क्योंकि मेरे विचार में तो मुसलमानों की मित्रता के बिना स्वराज्य असम्भव है।

(अंगरेजी से अनुवादित) मोहनदास करमचन्द गांधी

नया निश्चय

अपनी जिंदगी में अबतक जो जो फेर-बदल मैंने किये हैं वे महान् प्रसंगों के आ जाने पर ही किये हैं। और वे सब मैंने इतने सोच-विचार के बाद किये हैं कि उनके लिए मुझे शायद ही कभी पछताना पड़ा हो। फिर वे परिवर्तन मैंने उसी हालत में किये हैं जब मैंने देख लिया कि इसके बिना तो काम चल ही नहीं सकता। ऐसा ही एक परिवर्तन मैंने मदरास में अपने पोशाक में किया है।

सब से पहले बरीसाल में यह खयाल मेरे दिमाग में आया। खुलना के अकाल-पीड़ित लोगों के लिए जब मुझ से व्यंग में यह कहा गया कि एक ओर तो वहां के लोग भूखों मर रहे हैं और नंगे बदन फिर रहे हैं और दूसरी ओर आप ये कपड़ों की होलियां जलाते हैं, तब मैंने सोचा कि मैं भी अपना कुरता टोपी और धोती उतार कर डाक्टर राय के हवाले कर दूं और सिर्फ अंगोछा ही पहना करूं। लेकिन मैंने अपने उभार को रोका। क्योंकि उसमें अहंकार की भावना थी। मैं यह जानता था कि इस ताने में कुछ भी जान नहीं है। खुलना को सहायता पहुंच ही रही थी और सिर्फ एक ही बंगाली जमींदार उसका निवारण करने में समर्थ थे। मुझे वहां के लिए कुछ भी करने की जरूरत नहीं थी।

दूसरा मौका उस समय आया जब मेरे साथी महम्मदअली, मेरे आंखों देखते, पकड़े गये। उनकी गिरफ्तारी के जरा ही देर बाद में एक सभा में गया। उसी समय मैंने कुरता और टोपी उतार डालने का इरादा किया, परन्तु मैंने यह सोचकर कि इसमें दिखावा करने का दोष हो सकता है-उस समय भी अपने आवेश को रोक रक्खा।

तीसरा प्रसंग आया मदरास की मुसाफिरी में। लोग मुझे कहने लगे कि हमारे पास तो काफी खादी हई नहीं। और जो खादी कहीं मिलती भी है तो हमारे पास पैसा नहीं। "मजदूर बेचारे अपने विदेशी कपड़े जला डालें तो फिर खादी कहां से लावें?" यह बात मेरे दिल में पैठ गई। इन दलीलों में मुझे कुछ सार दिखाई दिया। 'गरीब बेचारे क्या करें' इस ध्वनि ने मुझे बेचैन कर दिया। अपना यह दर्द मैंने मौलाना आजाद सोबानी, श्री० राजगोपालाचारी, डाक्टर राजन् इत्यादि से कह सुनाया और उन्हें जताया कि अब मुझे केवल अंगोछा पहन कर ही रहना चाहिए। मौलाना साहब ने मेरे दर्द को पहचाना। उन्हें मेरा यह खयाल बड़ा पसन्द आया। पर दूसरे साथी सोच में पड़ गये। उन्होंने समझा कि मेरे इस प्रकार वस्त्रान्तर से लोग व्याकुल हो उठेंगे। कुछ लोग उसका मर्म नहीं समझेंगे और कुछ लोग मुझे दीवाना बतायेंगे और उसकी नकल करना सब लोगों को असम्भव नहीं, तो कमसे कम कठिन जरूर मालूम होगा।

मैं चार दिनों तक इस प्रश्न पर बराबर विचार करता रहा और दलीलों पर दिमाग छालता रहा। इधर मैं अपने भाषणों में कहने लगा कि "अगर तुम्हें खादी न मिलती हो तो लंगोटी ही पहन कर रहो, पर विदेशी कपड़ा तो बदन पर से निकाल ही डालो।" परन्तु जब तक मैं खुद कुरता-टोपी पहनता था तबतक मेरी बात का कुछ जोर नहीं पड़ता था।

फिर मदरास में मैंने स्वदेशी का भी अभाव पाया। इससे भी मेरा जी व्याकुल हुआ। लोगों में प्रेम तो खूब दिखाई दिया, पर वह मुझे कच्चा मालूम हुआ।

अब फिर दिल में तूफान उठा। फिर अपने साथियों से चर्चा की। उनके पास नई दलील तो थी ही नहीं। इसी बीच सितम्बर का अन्त आंखों में तैरने लगा। सितम्बर के आखीर में बहिष्कार पूरा होजाना चाहिए। वह कैसे हो? या मैं उसके लिए क्या उपाय कर सकता हूं?

इसी तरह विचार करते हुए हम २१ ता० की रात को मदुरा पहुंचे। मैंने निश्चय किया और यह तय किया कि कम से कम अक्तूबर के अन्त तक तो बस, मैं सिर्फ अंगोछा भर पहन कर ही रहूंगा। सबेरे मदुरा के जुलाहों की ही सभा थी। वहां मैं सिर्फ अंगोछा पहन कर ही गया। आज यह तीसरी रात है।

मौलाना साहब को तो यह बात इतनी पसन्द पड़ी है कि खुद उन्होंने भी अपने पहनाव में उतना फेर-बदल कर डाला है जितना कि शरीयत के मुताबिक वे कर सकते थे। अब वे पजामे के बदले एक छोटी सी लुङ्गी पहनते हैं और बदन में सिर्फ एक निमास्तीन। हां, नमाज के वक्त सिर पर टोपी दे लेते हैं, क्योंकि उस समय सिर पर कोई कपड़ा होना जरूरी है।

दूसरे साथी लोग शान्त हैं। मदरास के सामान्य श्रेणी के लोग दांतों उंगली दबा कर देखते रहते हैं।

पर मुझे हिन्दुस्तान पागल कहे तो इससे क्या? अथवा साथी लोग नकल न करें तो इससे क्या? यह कार्य इसलिए तो किया ही नहीं गया है कि साथी लोग नकल करें। इसके द्वारा तो जन-समाज को धीरज देकर रास्ता बताना है और अपना रास्ता साफ करना है। जबतक मैं खुद-अंगोछा न पहनूं तबतक मैं दूसरों को कैसे कह सकता हूं कि तुम्हें अंगोछा ही पहनना पड़े तो परवा नहीं। हिन्दुस्तान में जब कि लाखों आदमी नंगे बदन रहते हैं तब मेरी कौन कथा? आखिर सवा महीना अंगोछे पर रह कर तजरिबा ही क्यों न करूं? कमसे कम यह सन्तोष तो प्राप्त करूं कि मुझसे जो कुछ हो सकता था उतना तो मैंने कर डाला!

यह सोच कर मैंने यह काम किया है। अब मेरे सिर का तो बोझ उतर गया। यहां की आबोहवा ऐसी है कि साल में आठ मास तो कुरते आदि की जरूरत ही नहीं रहती। फिर मदरास में तो साल भर में सरदी बराय नाम के भले ही होती हो। और मदरास में जो लोग भले आदमी माने जाते हैं वे भी धोती के सिवा दूसरा कपड़ा बहुत ही कम इस्तेमाल करते हैं।

भारत के करोड़ों किसानों का पोशाक तो बस अंगोछा या धोती ही है। मैं चारो ओर यही देखता हूं कि इससे अधिक कपड़े वे लोग नहीं पहनते हैं।

इन सब का निचोड़ मैं यही निकालना चाहता हूँ कि पाठक मेरे मन के संताप को पहचानें। मैं यह नहीं चाहता कि मेरे साथी अथवा पाठक खुद भी अंगोछा भर पहन कर रहें। पर मैं यह जरूर चाहता हूं कि वे विदेशी कपड़े के बहिष्कार का अर्थ अच्छी तरह समझें और बहिष्कार करने के लिए तथा खादी उत्पन्न करने के लिए उनसे जो कुछ हो सके उसे करने में कोई बात बाकी न उठा रक्खें और यह समझें कि इस स्वदेशी में ही हमारा सर्वस्व है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गान्धी

ग्राहकों की सूचना।

महीने के बीच में ही ग्राहक का नाम दर्ज करने में कठिनाई होने से अब जो मनिआर्डर हमें मिलेंगे, उन्हें हम आगामी महीने की १ तारीख से जमा करेंगे। और तभी से पत्र भी भेजना शुरू करेंगे। यदि ग्राहक गण पिछले अङ्क लिया चाहें तो उन्हें डेढ़ आना प्रति अङ्क के हिसाब से डाक के टिकट भेज देना चाहिए।

व्यवस्थापक "हिंदी नवजीवन"

अहमदाबाद

हिन्दी
नवजीवन
गुरुवार, आश्विन शुक्ल ६, सं. १९७८.

हिन्दू-धर्म

यों तो मैंने कई दफा अपने को सनातनी हिन्दू कहा है, परन्तु इस मदरास की मुसाफिरी में, छुआ-छूत के प्रश्न की चर्चा करते समय, मैंने पहले से भी ज्यादह जोर और तर्क के साथ कहा कि मैं सनातनी हिन्दू हूं। परन्तु मैं देखता हूं कि लोग हिन्दू-धर्म के नाम पर कितनी ही ऐसी बातें आम तौर पर करते हैं जिनका कायल मैं नहीं हूं। अगर मैं सनातनी हिन्दू नहीं हूं तो मैं नहीं चाहता कि सनातनी हिन्दू कहलाऊं। और यह अभिलाषा तो मुझे बिलकुल ही नहीं है कि किसी महान् धर्म-मत की ओट में चुपके चुपके कोई सुधार या बिगाड़ करूं।

अतएव यह मेरे लिए आवश्यक हो गया है कि मैं अपने सनातन हिन्दू-धर्म का मतलब एक बारगी साफ २ समझा दूं। "सनातन" शब्द का प्रयोग मैंने उसके स्वाभाविक अर्थ में ही किया है।

मैं नीचे लिखे कारणों से अपने को सनातनी हिन्दू कहता हूं—

(१) मैं वेदों को, उपनिषदों को, पुराणों को और उन सब वस्तुओं को मानता हूं जो हिन्दू शास्त्र के नाम से विख्यात हैं। इसलिए मैं अवतारों और पुनर्जन्म को भी मानता हूं।

(२) मैं वर्णाश्रम-धर्म को मानता हूं—परन्तु अपनी समझ के अनुसार ठीक वैदिक अर्थ में, आजकल के प्रचलित और अपूर्ण अर्थ में नहीं।

(३) मैं गो-रक्षा को मानता हूं, परन्तु वर्तमान प्रचलित अर्थ से बहुत ही व्यापक अर्थ में।

(४) मैं मूर्ति-पूजा में अविश्वास नहीं करता।

पाठक इस बात पर ध्यान रक्खें कि मैंने वेदों अथवा किसी शास्त्र के सम्बन्ध में 'अपौरुषेय' शब्द का प्रयोग जान-बूझ कर नहीं किया है। क्योंकि मैं सिर्फ वेदों को ही अपौरुषेय नहीं मानता हूं। मैं तो बाइबल, कुरान और जेन्दा-अवस्ता को भी, वेदों की ही तरह, ईश्वरी प्रेरणा का फल मानता हूं। हिन्दू धर्म ग्रन्थों पर जो मेरी श्रद्धा है उसके लिए यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि मैं उनके प्रत्येक शब्द और प्रत्येक श्लोक को अ-पौरुषेय मानूं। और न मैं इस बात का दावा ही रखता हूं कि इन अद्भुत ग्रन्थों का विशुद्ध ज्ञान मुझे है। परन्तु हां, मैं उन धर्म-ग्रन्थों के अत्यन्त आवश्यक उपदेशों की सत्यता के ज्ञान का और उसको अनुभव करने का दावा जरूर करता हूं। मैं उस अर्थ को मानने के लिए तैयार नहीं जो तर्क और नीति के विरुद्ध हो, फिर वह चाहे कितना ही विद्वता-पूर्ण क्यों न हो। और मैं बड़े जोर के साथ आजकल के इन शंकराचार्यों और शास्त्री पण्डितों के इस दावे (अगर वे कोई ऐसा दावा पेश करें) के खिलाफ अपनी आवाज उठाता हूं कि हिन्दू धर्म-शास्त्रों का वास्तविक अर्थ वही है जो हम बताते हैं। बल्कि, इसके विपरीत, मेरा तो यह विश्वास है इन ग्रन्थों का जो ज्ञान इस समय लोगों को है, वह अत्यन्त अव्यवस्थित दशा में है। मैं हिन्दू-शास्त्र के इस वचन का सोलहों आना कायल हूं कि जिसने अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन नहीं किया और जिसने सम्पत्ति के अधिकार और उपार्जन का त्याग नहीं कर दिया है वह वस्तुतः शास्त्रों का मर्म नहीं समझ सकता। हां, मैं 'गुरु' की प्रणाली को मानता हूं, परन्तु इस वर्तमान युग में तो लाखों लोगों को बिना गुरु के ही काम चलाना पड़ेगा; क्योंकि पूर्ण शुद्धता और पूर्ण विद्वता का संयोग बहुत ही कम जगह पाया जाता है। परन्तु इससे किसी को यह समझकर निराश होने की जरूरत नहीं है कि हमारे धर्म्म का सत्य ज्ञान तो कभी होगा ही नहीं; क्योंकि हिन्दू-धर्म्म के मूलभूत सिद्धान्त तो, प्रत्येक महान् धर्म्म की तरह, त्रिकालाबाधित हैं और आसानी से समझ में आ जाते हैं। प्रत्येक हिन्दू यह मानता है कि ईश्वर है और वह अद्वैत है। वह पुनर्जन्म और मुक्ति को भी मानता है। परन्तु हिन्दू-धर्म्म में और दूसरे धर्मों में अगर कोई भिन्नता-दर्शक बात है तो वह हिन्दूधर्म की गो-रक्षा है। वर्णाश्रम-व्यवस्था भी इतनी भिन्नता-दर्शक नहीं है।

मेरी राय में तो वर्णाश्रम व्यवस्था मनुष्य की प्रकृति के लिए स्वाभाविक है। हिन्दू-धर्म ने तो सिर्फ उसे एक शास्त्र के रूप में परिणत भर कर दिया है। जन्म के साथ उसका सम्बन्ध अवश्य ही है। कोई मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार अपना 'वर्ण' नहीं बदल सकता। अपने 'वर्ण' के अनुसार न चलना जीवन्म के नियम को न मानना है। हां, जो ये हजारों छोटी छोटी जातियां बन गई हैं, यह तो उस सिद्धान्त का अनावश्यक और मनमाना व्यवहार करना है। सिर्फ चार वर्ण ही सब तरह से काफी हैं।

मैं इस बात को नहीं मानता कि सहभोज और अन्तर्विवाह से किसी मनुष्य का जन्म-जात दर्जा अवश्य ही छिन जाता है। ये चार विभाग मनुष्य के व्यवसाय के सूचक हैं। ये सामाजिक व्यवहार की मर्यादा नहीं बांधते या उसका नियम नहीं बनाते। ये चार वर्ण तो कर्तव्य का निर्णय करते हैं, किसी को किसी तरह की रिआयत का अधिकार नहीं देते। मेरी राय में तो यह बात हिन्दू-धर्म्म के सनातन तत्व के विपरीत है कि एक को तो श्रेष्ठता देदी जाय और दूसरे को कनिष्ठ बनाया जाय। सब लोग ईश्वर की इस सृष्टि की सेवा करने के लिए उत्पन्न हुए हैं-ब्राह्मण अपने ज्ञान के द्वारा, क्षत्रिय अपने रक्षा-बल के द्वारा, वैश्य अपनी व्यापारिक योग्यता के द्वारा और शूद्र अपने शारीरिक परिश्रम के द्वारा। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि, जैसे, कोई ब्राह्मण शारीरिक श्रम या अपनी तथा दूसरे की रक्षा के कर्तव्य से मुक्त हो। ब्राह्मण कुल में जन्म होने के कारण वह प्रधानतः ज्ञानशील है, आनुवंशिक रूपसे तथा शिक्षा और अभ्यास के कारण वह दूसरों को ज्ञान-दान देने के लिए सब से अधिक पात्र है। फिर ऐसी कोई बात नहीं है जो किसी शूद्र को यथेच्छ ज्ञान प्राप्त करने से रोक सके। बात सिर्फ यही है कि वह अपने शरीर के द्वारा उत्कृष्ट सेवा कर सकेगा और उसे दूसरों के सेवा करने के विशेष गुणों की ईर्ष्या करने की जरूरत नहीं। लेकिन जो ब्राह्मण अपने ज्ञान के अधिकार के बलपर अपने उच्च और श्रेष्ठ होने का दावा करता है उसका पतन हो जाता है और वह वास्तव में ज्ञानहीन ही है। और यही बात दूसरे लोगों पर भी घटती है जो अपने विशेष गुणों का घमण्ड दिखाते हैं। वर्णाश्रम का अर्थ है-आत्म-संयम और कार्य्य-शक्ति का सद्व्यय तथा रक्षण।

इस प्रकार यद्यपि सहभोज और अन्तर्विवाह से वर्णाश्रम में बाधा नहीं होती तथापि हिंदू-धर्म्म सहभोज और एक वर्ण के साथ दूसरे वर्ण

के अन्तर्विवाह को रोकने का प्रयत्न करता है। हिन्दू-धर्म्म आत्म-संयम की चरम सीमा तक पहुंच गया है। इस धर्म का मूलाधार तो निस्सन्देह भौतिक बातों की निवृत्ति पर है, और उसका लक्ष्य है आत्म-स्वातन्त्र्य। हिन्दुओं के यहां तो उनके पुत्र के भी साथ भोजन करना उनके कर्तव्य का अंग नहीं है। और अमुक ही जाति की कन्या से विवाह करने का नियम बनाकर तो हिन्दूलोग असाधारण आत्म-संयम का पालन करते हैं। हिन्दूधर्म विवाहित अवस्था को किसी भी दशा में मुक्ति के लिए आवश्यक नहीं बताता। 'जन्म' की तरह 'विवाह' भी आत्मा का अधःपात ही है। मुक्ति का अर्थ है-जन्म से, अतएव मृत्यु से भी, छुटकारा पाना। अतएव अन्तर्विवाह का और सहभोज का निषेध आत्मा के द्रुत विकास के लिए परम आवश्यक है। परन्तु यह निवृत्ति या विरक्ति 'वर्ण' की कसौटी नहीं है। ब्राह्मण ने यदि ज्ञान के द्वारा सेवा करने के अपने कर्तव्य का त्याग नहीं किया है तो, वह अपने शूद्र-भाई के साथ भोजन-पान करने पर भी, ब्राह्मण बना रह सकता है। अबतक मैंने जो कुछ कहा, उससे यह नतीजा निकलता है कि भोजन-पान और विवाह के विषय में जो संयम रक्खा गया है उसका आधार श्रेष्ठता या कनिष्ठता के भाव पर नहीं है। जो हिन्दू अपने को श्रेष्ठ समझकर किसी दूसरे के साथ भोजन-पान करने से इनकार करता है वह अपने धर्म्मका आदर्श बिलकुल उलटा दिखाता है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि आज हिन्दू-धर्म्म अकेले चूल्हे-चौके में ही माना जाता है। मैंने एक बार एक मुसलमान भाई के यहां कुछ खाया। यह देखकर एक धर्मनिष्ठ हिन्दू हैरान हो गये। मैंने मुसलमान भाई के दिये प्याले में दूध उंडेला। उन्हें देखकर बड़ा दुःख हुआ और जब उन्होंने देखा कि मैं मुसलमान की दी हुई डबल रोटी खाने लगा तब तो उनके दुःख की सीमा न रही। अगर हिन्दू-धर्म्म केवल क्या खावें और किसके साथ खावें, इसके परिश्रमसाध्य नियमों के सम्बन्ध में ही मन्तव्य करने लगे तो उसके प्राणों के संकट में आ पड़ने का अन्देशा है। हां, मादक पेय और पदार्थों का तथा हर तरह के खाद्य पदार्थों का विशेष करके मांस का सेवन न करने से निस्सन्देह आत्मोन्नति में सहायता मिलती है, परन्तु केवल यही हमारा लक्ष्य किसी तरह नहीं। बहुत से मनुष्य ऐसे हैं जो मांस भोजन करते हैं और सब लोगों के साथ खाते-पीते हैं, परन्तु ईश्वर से डरते हैं। ऐसे लोग उस मनुष्य की अपेक्षा मुक्ति के अधिक नजदीक हैं जो धार्मिक दृष्टि से मद्य-मांस आदि का तो सेवन नहीं करता, परन्तु अपने हरएक कार्य्य के द्वारा ईश्वर का तिरस्कार करता है।

तथापि हिन्दूधर्म्म का मध्यवर्ती या प्रधान अंग है गोरक्षा। मेरी दृष्टि में तो गो-रक्षा मनुष्य--जाति के विकास में एक अद्भुत चमत्कार--पूर्ण घटना है। यह मनुष्य-प्राणी को उसकी स्वाभाविक मर्यादा के ऊपर ले जाती है। मुझे तो गाय मानों मनुष्य जाति से नीचे की सम्पूर्ण सृष्टि नजर आती है। गाय के द्वारा मनुष्य प्राणिमात्र के साथ अपने तादात्म्य के अनुभव का अधिकारी होता है। मुझे तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि गाय ही अकेली क्यों देवता मानी गई है। हिंदुस्तान में गाय से बढ़कर मनुष्यों का साथी दूसरा कोई नहीं। उसने बहुतेरी वस्तुयें हमें दी हैं। उसने हमें केवल दूध ही नहीं दिया है बल्कि हमारी खेती का भी सारा आधार उसीपर है। गाय तो एक मूर्तिमती करुणामयी कविता है। इस नम्र प्राणी में करुणा ही करुणा दिखाई देती है। भारत के लाखों मनुष्यों की वह माता है। गो-रक्षा का अर्थ है ईश्वर की सम्पूर्ण मूक सृष्टि की रक्षा। लेकिन प्राचीन ऋषियों ने, फिर वे चाहे कोई हों, गाय से ही श्री-गणेश किया। सृष्टि की नीची श्रेणी के प्राणियों को वाक् शक्ति नहीं है। इसलिए उसकी अपील में सबसे अधिक बल है। गो-रक्षा संसार को हिन्दू-धर्म्म का दिया हुआ प्रसाद है। और तबतक हिन्दूधर्म बराबर जीवित रहेगा जबतक हिन्दू लोग गो-रक्षा करने के लिए मौजूद हैं।

गो-रक्षा करने का मार्ग है-उसके लिए स्वयं मर मिटना। हिन्दू-धर्म्म और अहिंसा यह आज्ञा नहीं देते कि गो-रक्षा के लिए किसी मनुष्य-प्राणी का वध करो। हिन्दुओं को तो तपस्या, आत्म शुद्धि और स्वार्थ-त्याग के द्वारा गो-रक्षा करने का आदेश दिया गया है! आजकल की इस गो-रक्षा ने मुसलमानों की साथ एक चिरस्थायी शत्रुता का रूप धारण कर लिया है, हालां कि गो-रक्षा का अर्थ तो है मुसलमानों को प्रेम से अपने वशीभूत करना। एक मुसलमान मित्रने, कुछ समय पहले, मुझे एक पुस्तक भेजी थी। उसमें सविस्तर रूपसे यह बताया गया था कि हम लोग गायके और उसकी सन्तान के साथ कैसा अमानुष व्यवहार करते हैं! हम किस बेरहमी के साथ खून टपकनेतक उसे दुहते हैं-एक बूंद तक दूध उसके थन में नहीं रहने देते! किस तरह हम उसे भूखों मार मार कर मुर्दा देते हैं? उसके बछड़ों के साथ कैसा दुर्व्यवहार करते हैं! किस तरह हम उसके हिस्से का दूध उसके पल्ले नहीं पड़ने देते! बैलों के साथ किस निठुरता से पेश आते हैं! किस तरह हम उन्हें बधिया करते हैं! किस तरह हम उन्हें पीटते हैं और कितना सारा बोझ उन पर लादते हैं! अगर उन्हें बोलनेकी शक्ति होती तो वे उनके प्रति किये हमारे अपराधों का बयान इस तरह अपने मुंह से करते कि सारी दुनिया दहल उठती अपने चौपायों के प्रति अपने एक एक निर्दयता--पूर्ण कार्य्य के द्वारा मानों हम ईश्वर का और हिन्दू-धर्म्म का त्याग कर रहे हैं! इस अभागे भारत-वर्ष में चौपायों की जितनी बुरी दशा है उतनी मैं नहीं जानता, कि दुनिया के किसी दूसरे देश में होगी। हम अंगरेजों को इसके लिए दोषी नहीं बता सकते। अपने इस अपराध के लिए हम दरिद्रता की दुहाई नहीं दे सकते। हमारे चौपायों की दुर्दशा का एक मात्र कारण है हमारी अक्षम्य ला-परवाही। हां, हमारे 'पिंजरापोलें' हैं। वे हमारे दया-भाव की तृप्ति का साधन भी हैं, परन्तु हैं ये उन दयायुक्त कार्यों के बेढंगे प्रदर्शन ही। वे नमूना--रूप दुग्ध-शाला और महान् लाभदायक राष्ट्रीय संस्था होने के बजाय केवल अपाहिज और निर्बल गायों के एक संग्रह-स्थान भर हैं।

हिन्दुओं की पहचान न तो उनके तिलकों से होगी, न उनके मन्त्रों के शुद्ध गान से, न उनके तीर्थाटन से और न जाति बन्धन के नियमों के अत्यन्त शिष्टाचार-युक्त पालन से ही होगी! बल्कि उनकी पहचान तो उनके गो-रक्षा के सामर्थ्य से होगी। हम गो-रक्षा को अपना धर्म मानने का दावा तो बड़ा करते हैं, लेकिन वास्तव में तो हमने गाय को और उसकी संतति को अपना गुलाम बना डाला है और खुद भी गुलाम हो गये हैं।

अब यह बात समझ में आ जायगी कि मैं क्यों अपने को सनातनी हिन्दू समझता हूं। गौ के प्रति जो मेरी श्रद्धा है उसमें मैं किसी से हारने वाला नहीं। मैंने खिलाफत के कार्य्य को जो अपना कार्य्य बनाया है उसका सबब यही है कि उसकी रक्षा के द्वारा मुझे गाय की पूरी तरह रक्षा होने की सम्भावना दिखाई देती है। मैं मुसलमान भाइयों से यह नहीं कहता कि मेरी इस सेवा के खातिर वे गाय की रक्षा करें। मैं तो उस सर्व शक्तिमान परमात्मा से ही नित्य यह प्रार्थना करता हूं कि जिस कार्य्य को मैंने न्याय्य समझा है उसके निमित्त की गई

मेरी सेवा तेरी इतनी प्रसन्नता का कारण हो कि जिससे तू मुसलमानों के हृदयों को बदल दे, उन्हें अपने हिन्दू-भाइयों के प्रति दया-भाव से परिपूर्ण कर दे और उनके द्वारा उस प्राणी की रक्षा करा जिसे हिन्दू लोग अपने प्राणों की तरह प्यारा मानते हैं।

हिन्दू-धर्म्म के प्रति मेरी जो भावना है उसका वर्णन मैं अपनी धर्मपत्नी के प्रति मेरी भावना से बढकर नहीं कर सकता। वह मेरे हृदय पर जितना अधिकार कर सकती है उतना दुनिया की कोई स्त्री नहीं कर सकती। इसका कारण यह नहीं कि वह निर्दोष है। मैं कह सकता हूं कि जितने दोष मैंने उसमें पाये हैं उससे भी अधिक दोष उसमें होंगे। लेकिन उसके हृदय में एक अटूट बन्धन की भावना है। इसी प्रकार हिन्दू-धर्म्म के लिए और उसके विषय में उसके तमाम दोषों और कमियों के होते हुए भी, मेरे हृदय में प्रेम की भावना है। गीता और तुलसीदास की रामायण के संगीत से जो स्फूर्ति और उत्तेजना मुझे मिलती है वैसी और किसी से नहीं मिलती। हिन्दू-धर्म्म में यही दो ग्रंथ ऐसे हैं जिनके विषय में कहा जा सकता है कि मैंने देखे हैं। जब मैंने देखा था कि अब मेरे अन्त की घडी आ पहुंची है, बस एक मात्र गीता ही मेरी शान्ति का-सान्त्वना का-साधन थी। आज तमाम बड़े बड़े हिन्दू-धर्म-मंदिरों में जो पापाचार हो रहा है उसे मैं जानता हूं, लेकिन उनकी इन अवर्णनीय त्रुटियों के होते हुए भी मेरा प्रेम उन पर है। उनके अन्दर मुझे एक ऐसी दिलचस्पी होती है जो और कहीं नहीं मिलती। मैं शुरू से अखीर तक सुधारक हूं। लेकिन यह मेरी उत्सुकता मुझ से यह नहीं कहती कि हिन्दू-धर्म्म की किसी भी आवश्यक बात को रद कर दो। मैं ऊपर कह चुका हूं कि मैं मूर्ति-पूजा में अविश्वास नहीं रखता। हां, किसी मूर्ति को देख कर मेरे हृदय में तो किसी प्रकार की आदर की भावना जाग्रत नहीं होती। लेकिन मेरा खयाल है कि मूर्ति-पूजा मानवी स्वभाव का एक अंग है। हमें स्थूल उपकरण का सहारा लेना पड़ता है। गिरजा में चित्त जितना एकाग्र हो जाता है उतना दूसरी जगह क्यों नहीं होता? क्या यह मूर्ति-पूजा ही का एक भेद नहीं है? प्रतिमाओं से पूजा-आराधना में सहायता मिलती है। कोई हिन्दू प्रतिमा को ही स्वयं ईश्वर नहीं मानता। मैं मूर्ति-पूजा को पाप नहीं समझता।

ऊपर की बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू-धर्म्म संकुचित धर्म्म नहीं है। उसमें संसार के समस्त पैगम्बरों की पूजा के लिए गुंजायश है। यह कोई मिशनरी—किसी धर्म-मत का प्रचार करने वाला-धर्म्म नहीं है। हां, इसमें कितनी ही भिन्न २ जातियों का समावेश हुआ है, परन्तु उनका यह रूपान्तर विकासात्मक और अत्यन्त सूक्ष्म है। हिन्दू-धर्म्म तो हरएक मनुष्य से यह कहता है कि तुम अपने विश्वास या 'धर्म' के अनुसार ईश्वर का भजन-पूजन करो और, इस प्रकार वह दूसरे समस्त धर्मों के साथ मेल-जोल से रहता है।

हिन्दू-धर्म्म के सम्बन्ध में मेरा यह मत है। और इसीलिए छुआछूत के विषय में मेरा मत अनुकूल नहीं रहा है। मैं इसे सदा से एक अनावश्यक बात मानता आ रहा हूं। हां, यह सच है कि यह प्रथा हमारे यहां परम्परा से चली आ रही है। और दूसरी भी ऐसी कितनी ही प्रथायें आजतक प्रचलित हैं। बड़ी शरम की बात होगी अगर मैं यह खयाल करने लगूं कि लड़कियों को वस्तुतः वेश्या-वृत्ति के लिए समर्पित कर देना हिन्दू-धर्म्म का एक अंग है। परन्तु मैं तो देखता हूं कि हिन्दुस्तान के कितने ही भागों के हिन्दू-लोगों में यह बात प्रचलित है। काली को बकरे का बलिदान करना मैं बिलकुल अ-धर्म्म मानता हूं और इसे मैं हिंदू-धर्म्म का अंग नहीं मानता। हिंदू-धर्म्म तो कई युगों के विकास का फल है। 'हिंदू-धर्म्म' नाम तो हिंदुस्तान के रहने वाले लोगों के धर्म्म का विदेशियों द्वारा रक्खा हुआ नाम है। हां, इसमें कोई शक नहीं कि किसी जमाने में धर्म्म के नाम पर जीवों का बलिदान हुआ करता था। पर वह धर्म नहीं है और हिंदू-धर्म्म तो और भी नहीं है। और इसी तरह मुझे तो यह भी जान पड़ता है कि जब हमारे पूर्वजों ने गो-रक्षा को एक अटल सिद्धांत बना लिया तब जिन लोगों ने गो-मांस खाना नहीं छोड़ा उनके साथ व्यवहार करना बंद कर दिया गया। यह झगड़ा खूब ही बड़ा होगा। जो लोग उस नियम को न मानते थे, न केवल उन्हीं का बहिष्कार किया गया, बल्कि उनके पाप का फल उनकी संतानको भी भोगना पड़ा। इस तरह यह क्रम जोकि बहुत करके अच्छे ही हेतु से शुरू हुआ था, जारी रहा और अंत को प्रथा के रूप में दृढ हो गया-यहांतक कि हमारे धर्मग्रंथों में भी ऐसे ऐसे श्लोकों का प्रवेश हो गया जिनके बल पर यह प्रथा चिरस्थायी हो गई। पर वास्तव में यह योग्य नहीं था और समर्थनीय तो उससे भी कम था। मेरा यह अनुमान चाहे ठीक हो या न हो, अस्पृश्यता तर्क के और दया, करुणा और प्रेम-भाव के विरुद्ध तो अवश्य है। जो धर्म गो-पूजा की स्थापना करता है वह भूल कर भी मनुष्य-प्राणी के निर्दयता-पूर्ण और अमानुष बहिष्कार को न तो आवश्यक मान सकता है और न उसे जारी ही रख सकता है। और मैं तो अछूत जातियों को अपने से अलग रखने की अपेक्षा अपने शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दिये जाने से अधिक संतुष्ट रहूंगा। अगर हिंदू-लोग अपने उच्च और उदात्त धर्म्म को, अस्पृश्यता के कलंक को कायम रखते हुए, निंदनीय बनावेंगे तो वे अवश्य ही कभी न तो स्वतन्त्रता के योग्य होंगे और न उसे प्राप्त ही कर सकेंगे। और चूंकि मैं हिंदू-धर्म्म को अपने प्राण से भी अधिक प्यार करता हूं, यह कलंक मेरे लिए एक असह्य भार हो गया है। अपनी जाति के पंचमांश मनुष्यों को बराबरी के साथ रहने सहने का अधिकार देने से इनकार करके हम ईश्वर से मुंह न मोड़ें!

(यंग इण्डिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

अली भाइयों का मुकदमा दौरा सिपुर्द हुआ है और अनिश्चित समय तक मुल्तवी रक्खा गया है।

***

५ अक्तूबर को बम्बई में वर्किंग कमिटी की बैठक हुई थी। उसमें कराची वाले प्रस्ताव का समर्थन किया गया और तमाम कांग्रेस कमिटियों को उसका स्वीकृत प्रस्ताव पास करने की सलाह दी गई।

***

आवश्यकता

है चार ऐसे उत्साही नवयुवकों की जो मद्रास में हिन्दी-प्रचार और हिन्दी पढ़ाने का काम भली प्रकार कर सकें। हिन्दी और अंगरेजी का अच्छा ज्ञान होना जरूरी है। मैट्रिक पास प्रार्थियों के प्रार्थना-पत्रों पर अधिक ध्यान दिया जायगा। प्रार्थना-पत्र प्रमाणपत्रों के साथ ३० सितम्बर से पहले नीचे लिखे पते पर पहुंच जाना चाहिए। वेतन योग्यतानुसार—

प्रधान मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,

जानकार चाहिए

कितने ही लोग चरखे के प्रचार पर तरह तरह के आक्रमण करते हैं। परन्तु फिर भी मेरा तो यही विश्वास दृढ़ है कि जबतक यह सुन्दर कला हिन्दुस्तान में घर घर न फैल जायगी तबतक स्वराज्य मिलना गैर-मुमकिन है। इस बात को साबित करने के लिए जिन वजूहात की जरूरत है वे बहुत ही मामूली हैं हिन्दुस्तान तबतक जिन्दा नहीं रह सकता जबतक कि वह अपना पेट आप ही भरने लायक न हो जाय। और ऐसा तब तक नहीं हो सकता जबतक कि भारतवासी किसी दूसरे-अपने प्रधान धंधे के सिवा-अच्छे और उनको इस काम में सहायता देने वाले धन्धे को न अपना लें। परन्तु इसके लिए अगर हमारे पहनने का तमाम कपड़ा सिर्फ मिलों में ही-हिन्दुस्तान की मिलों में ही-तैयार किया जाय तो भी उससे हमारा काम न चलेगा। पर अगर घर घर में चर्खा चलने लग जाय तो वे करोड़ों रुपये घर घर में बट जायं और इन बड़ी बड़ी पेचीदा कलों की भी जरूरत न रहे। और आज भारत अपनी जरूरत मुताबिक तमाम कपड़ा बुनने की जुरत भी रखता है। हां, यह कहने की तो जरूरत ही नहीं है कि जब चरखा कातने का रिवाज घर घर में हो जायगा तब लाखों जुलाहे और धुनिया फिर से अपने पुराने पेशे को अख्तयार कर लेंगे।

यह तो आर्थिक दृष्टि से हाथ-कताई का महत्व हुआ।

यह चरखा हमारी मां-बहनों को बेइज्जती से बचावेगा। और यह भारत के भीख मांगने के रिवाज को भी, जो कि आज एक पेट पालने का धन्धा हो रहा है, जड़-मूल से मिटा देगा, जैसा कि इसने जरूर मिट जाना चाहिए। यह हमारी उस काहिली को भी दूर कर देगा जो हम पर जबरदस्ती लद गई है। यह हमारे चित्त को स्थिरता प्राप्त करा देगा। और मैं तो पूरे यकीन के साथ इस बात को मानता हूं कि जब हम करोड़ों की तादाद में हाथ-कताई को एक नित्य धार्मिक विधि बना लेंगे तब यह हमारे दिलों में ईश्वर की भक्ति भी पैदा किये बिना न रहेगा।

चरखा कातने का यह नैतिक फायदा है।

और जब कि चरखे का प्रचार घर घर में हो जायगा और जब कि विदेशी कपड़े की तिजारत एक गुजिश्ता जमाने की चीज हो जायगी तभी यह इस बात का अचूक चिन्ह समझा जायगा कि भारत स्वराज्य के लिए सरगर्मी से कोशिश कर रहा है, वह शान्त और विचारवान है और इस आन्दोलन के धार्मिक और अहिंसात्मक रूप का कायल है।

बाहरी लोगों को यह विश्वास नहीं हो रहा है कि विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने और अपनी जरूरत के लायक कपड़ा हाथ-करघों के द्वारा तैयार करने की काबलियत हम रखते हैं। पर जब यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध हो जायगी तब भारत के भी मन-बल को कोई न रोक सकेगा और तभी, अगर जरूरत हुई तो, हिन्दुस्तान इस सरकार को जो हमेशा हमें दुरदुराया करती है, अपनी इच्छा के सामने सिर झुकाने पर मजबूर करने के लिए, बा-अदब कानून तोड़ने पर कमर कस सकेगा, उसके पहले नहीं।

यह राजनैतिक महत्व है।

इसीलिए मुझे यह देखकर बड़ा रंज हुआ कि सारे बंगाल भर में मुझे एक भी ऐसा सूत कातने का जानकार नहीं मिला जो अपना सब समय और ध्यान चरखे के मन्त्र का प्रचार करने, उसकी शिक्षा देने, उसका संगठन करने और उसके सम्बन्ध में लोगों को तरह तरह की सलाहें देने के सिवा दूसरा कोई काम न करता हो। मुझे यह तो मालूम हुआ कि लोग चरखा कातने के लिए तो तैयार हैं, परन्तु वे यह नहीं जानते कि यह किया किस तरह जाय। और जो हालत बंगाल की है वैसी ही शायद लगभग तमाम प्रांत की है। हर एक प्रांतमें एक नमूना-रूप चरखा और कुछ विशेषज्ञ लोग होने चाहिए, जिनसे लोग सलाह-मशवरा ले सकें और जो लोगों को रास्ता दिखाते रहें। अगर ऐसे जानकार लोगों का साथ हमें मयस्सर हो तो कितने ही अच्छे अच्छे बुद्धिमान् लोगों की बुद्धि का भी उपयोग इस काम में हो सकता है। कलकत्ता के राष्ट्रीय महाविद्यालय की नुमायश में पन्द्रह से भी ज्यादा नये-ईजाद किये हुए-चरखे थे। परन्तु उनकी उपयोगिता और अनुपयोगिता के विषय में वहां निर्णय कौन कर सकता था? मैंने अक्सर हरएक जगह नई नई तर्ज के चरखे चलते हुए देखे। परन्तु एक भी जगह मुझे उनकी उपयोगिता की जांच होती हुई नहीं दिखाई दी। बंगाल में आज हजारों लोग चरखा कात रहे हैं। परन्तु उनके काम की नाप करने वाला आज कोई भी नहीं दिखाई देता। इसलिए मेरी तो तमाम महासभा-समितियों को यह सलाह है कि वे कम से कम छः ऐसे जानकार आदमी और औरतें इसी काम पर नियुक्त कर दें जो इस काम को दिलोजान से करने की रुचि रखते हों। उन्हें इस खयाल से सत्याग्रहाश्रम की ओर देखने की जरूरत नहीं है कि वहां से उन्हें मदद के लिए कोई रहनुमा मिले। वहां से जो कुछ हो सकता है वह उन खास खास लेखों के द्वारा हो ही रहा है जो कि 'यंग इंडिया' (और "नवजीवन") में हर हफ्ते प्रकाशित होते रहते हैं। और जो लोग इन बातों के अच्छे जानकार होना चाहते हैं उन्हें मेरी यह सूचना है कि वे ध्यान लगाकर उनका मनन करें। परन्तु हां, कोई यह उम्मीद न करे कि महज लेखों को पढ़कर ही हम अच्छे जानकार हो जायेंगे। एक मात्र अभ्यास ही के द्वारा वे विशेषज्ञ हो सकते हैं। लाखों लोग तो चरखा इसलिए कातेंगे कि वह उनकी रोजी का एक जरिया है और आम लोग उसे एक धार्मिक विधि समझकर कातेंगे, तथा कुछ लोगों को इस क्रियाकी शास्त्रका-विज्ञानका स्वरूप प्राप्त कर देनेकी दृष्टि से सूत कातना होगा। जो लोग इस उद्देश को सिद्ध करना चाहें उन्हें आरंभ में कम से कम आठ घण्टा रोज तो जरूर ही सूत कातना चाहिए। और ज्यों ज्यों वे सूत कातते जायं त्यों त्यों इस बात पर भी ध्यान देते जायं कि उनके कते सूत में भी कुछ तरक्की होती जा रही है या नहीं। उन्हें रोज यह देखते रहना चाहिए कि हम हर रोज कितना सूत कात सकते हैं और उसमें हमें ठीक ठीक कितना समय लगता है। साथही उन्हें रुई धुनकने तथा कपड़ा बुनने की भी क्रिया सीखना चाहिए।-उन्हें कपास की भिन्न भिन्न जातियों का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, उन्हें चरखों की जुदी जुदी किस्में भी मालूम होना चाहिए और उनकी साधारण टूट-फूट की मरम्मत करने की काबलियत भी उन्हें हासिल कर लेना चाहिए।

जबतक हम सब मिलजुल कर सहकारिता के, अक्लमंदी के, और एक तरीके और तरतीब के साथ अपना संगठन न कर लेंगे तबतक स्वराज्य प्राप्त करना हमारे लिए कठिन होगा। स्वदेशी के मानी हैं-जातीय जीवन के दूसरे बड़े विभाग (आर्थिक) में असहयोग करना।

आज हम बहिष्कार कर रहे हैं इसका अर्थ यह है कि हम चरखे के सूतसे हाथ-करघों के द्वारा अपना कपड़ा बनाने के लिए तैयार हैं। परंतु अगर इस संक्रमण-काल में हरएक आदमी सूत नहीं कातेगा और हरएक प्रान्त अपने लिए आवश्यक कपड़ा बनाने की व्यवस्था न करने लगेगा तो हम विदेशी के बहिष्कार का पोषण न कर सकेंगे। और अगर प्रत्येक प्रांतमें कुछ विशेषज्ञ न हों तो ऐसा होना ना मुमकिन है।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, [illegible] पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और [illegible] हिन्दी [illegible] कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित हुआ।

अलीभाइयों पर आक्षेप

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—आश्विन सु० १३, संवत् १९७८, शुक्रवार, तारीख १४ अक्टूबर, १९२१ ई० | अंक ९

टिप्पणियां

मुसाफिरी खतम

इन पिछले तेरह महीनों में हिन्दुस्तान में जितनी यात्रा करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है उतना शायद ही किसी को हुआ हो। मुसाफिरी क्या थी, हिन्दुस्तान की पूरी परिक्रमा ही थी। और खास कर मुझे तो यह यात्रा तीर्थयात्रा की भी ही मालूम हुई। पश्चिम में कराची से लेकर पूर्व में डिब्रूगढ़ तक और उत्तर में रावलपिण्डी से लेकर दक्षिण में तूतीकोरिन तक मैंने यात्रा की। इस अवसर में मुझे लोगों से जो कुछ कहना-सुनना था, सब कह-सुन चुका। अब कोई भी नई बात कहने लायक नहीं रह गई। मैंने यह भी बता दिया है कि खिलाफत की, पंजाब के इन्साफ की और स्वराज्य की शर्तें क्या क्या हैं। अब तो सिर्फ लोगों का काम बाकी रहा है। वे स्वदेशी को अपनावें और स्वराज्य लें। स्वदेशी के बिना स्वराज कभी नहीं मिल सकता।

हां, अब कहीं से भी, बाहर जाने के लिए, मेरे पास निमन्त्रण न आने चाहिए। अब तो मेरे लिए यही ठीक है कि मैं इन बाकी तीन महीनों में एक ही जगह बैठकर सोचूं-विचारूं, लिखूं और शंकायें दूर करता रहूं।

इन तीन महीनों में लोग बहुत कुछ काम कर सकते हैं। अगर लोग अपना मुंह बन्द कर लें और सिर्फ काम ही काम करते रहें तो अवश्य अपना उद्देश सफल कर सकते हैं। **स्वराज्य बातें बनाने से नहीं, केवल काम करने से ही मिलेगा।**

(नवजीवन)

शान्ति ही प्रकृति है

ईश्वर के मौन को कौन पहुंच सकता है? और, फिर, उसकी प्रवृत्ति को भी कौन पा सकता है? वह तो अंगड़ाई लेने की भी फुरसत नहीं चाहता; और न नींद ही लेता है। हमारे सो जाने पर भी वह तो जागता ही रहता है। काम के आगे वह खाना पीना भी छोड़ देता है। भला यह भी कैसे कह सकते हैं कि वह बैठा रहता है? उसकी गति की तो सीमा ही कहां है? उसे न आराम मिलता है, न दरकार ही है। ऐसा अभागी वह है। फिर भी, इससे भूल तो होती ही नहीं। वह तो ऐसा स्वराज्य-वादी है कि भूल करने की क्षमता ही इसने जान-बूझ कर छोड़ दी है। अगर इसमें हम जरा भी तकलीफ लें तो बात की बात में स्वराज ले सकते हैं। शान्ति रखते हुए भी वह अधिक से अधिक काम करता है। इससे हम यह सबक क्यों न लें कि शान्ति में ही अधिक से अधिक शक्ति है? सरकार जो जी आवे सो शौक से करे, जो कहना हो, कहा करे—हम तो बस अपना कर्तव्य ही करते चले जायें। यही है कानून का विवेक-पूर्वक पालन और विवेक-पूर्वक भंग।

(नवजीवन)

शान्ति का अर्थ

इस विषय शान्ति का मतलब जड़ता नहीं, सूना नहीं और कमजोरी भी नहीं। यह तो शुद्ध चेतना, ज्ञान और कर्म-वीरता है। जो अपनी काया को पत्थर बना कर रहता है वह एक ही जगह बैठे हुए सारे संसार को हिलाया करता है। पत्थर को कौन मार सकता है? पत्थर को चाहे जितना चूर कर डालिए, पर वह कभी माफी न मांगेगा। फिर उससे घर भी नहीं बनाया जा सकता। ज्यों ज्यों उसे तोड़ोगे त्यों ही त्यों थकोगे; ज्यों ज्यों मांगोगे त्यों त्यों वह घर बनाने में इनकार करेगा। जिस मनुष्य ने अपने शरीर को इस प्रकार पत्थर बना लिया है, उसको इस दुनिया में कौन परास्त कर सकता है? मनुष्य में पत्थर और ईश्वर दोनों का मिलाप होता है। मनुष्य क्या है, चेतनामय पत्थर है। इसीसे हमारे शास्त्र हमें यह शिक्षा देते हैं कि जिसने पूरी तरह अपना देह-दमन कर लिया है बस, उसी की पूरी विजय है। अतएव शान्ति का अर्थ है देह-दमन। हमने अपने को अपनी काया का, शरीर-सुख का, गुलाम बना लिया है; इसीलिए हमें सरकार का भी गुलाम होना पड़ा है। अब अगर हम अपनी काया को जीत लें तो इस गुलामी के फेर से छूट जायें। अतएव हम जितना ही अधिक शरीर के मोह का त्याग करेंगे उतना ही अधिक स्वतन्त्रता को प्राप्त करेंगे।

सरकार हमें क्या दबावेगी? अगर हम उसकी गरज ही न रक्खें तो वह क्या कर सकती है? अगर हम उसके रुपये-पैसे की, उसकी तजवीज की हुई शान्ति की और सुख की जरूरत ही न रक्खें, तो गुलामी से आज ही मुक्त हो सकते हैं।

(नवजीवन)

असली शान्ति

परन्तु हाँ, हरएक आदमी पूर्ण रूप से शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता; प्रत्येक मनुष्य अपनी काया को पत्थर की तरह नहीं बना

सकती। इसलिए हम समाज में रह कर कुछ कुछ शान्ति का संग्रह करते हुए थोडा-बहुत सुख प्राप्त कर लेते हैं। और इस प्रकार यह अल्प देह-दमन का मार्ग हमने 'स्वदेशी' के द्वारा खोज निकाला है। अब, ऐसा कोई कारण नहीं जिससे छोटे-बडे सब लोग इतना भी यज्ञ न कर सकें। कुछ समय तक कातना और बुनना, यह लोगों के लिए किसी तरह भारभूत नहीं हो सकता। इसीलिए चरखा हिन्दू और मुसलमान की एकता का चिह्न है; यह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हमें यह बोध होता है और यह सिद्ध होता है कि हम मदरासी, कानडी, बंगाली, मराठी, पंजाबी, सिंधी सब भाई एक हैं। इस बात का ज्ञान रखते हुए भी जो चरखा तो नहीं कातता पर स्वराज्य मांगने के लिए हाथ पसारता है वह भिखारी है और उसे ऐसा करने का कोई हक नहीं। भिखारी को तो स्वराज्य मिल ही नहीं सकता। अतएव जो लोग स्वराज्य चाहते हों उन्हें चाहिए कि चुपचाप ज्ञान-पूर्वक हमेशा ईश्वर का नाम लेते हुए अपने मुल्क के खातिर सुवर्णमय सूत कातें। जब प्रत्येक हिन्दुस्तानी अपने ही घर के काते सूत से कपडा बुनने लगेगा, जैसा कि अपने ही घर का पका हुआ खाना वह खाता है, अथवा अपने पडोसी से बुनवा कर पहनेगा, दूसरा कोई कपडा न पहनेगा उसी दिन स्वराज्य तैयार है, उसके पहले हरगिज नहीं !

कोई कह सकता है कि यह बात एक बालक की भी शक्ति से अधिक है ! भला, इससे भी अधिक आसान शर्त कोई हो सकती है ! हमने आप हो कर खुद ही उसे कठिन बना लिया है और तकलीफ उठाते हैं, अकाल से पीडित होते हैं, छुआछूत से दुःखी होते हैं और हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे को अपना दुश्मन मानते हैं। (नवजीवन)

अकाल की दवा

मदरास के दृत-मंडल की सफर में मुझे ऐसे कई सबूत मिले जिनसे यह बात साबित होती है कि चरखा कातना अकाल के न आने देने का सबसे उत्तम उपाय है, उससे लोगों को ... करने का सबसे अच्छा जरिया है। इन जिलों के कुछ हिस्सों में इन दिनों जोर का कहत है। एक कार्यकर्ता ने मुझसे कहा कि एक औरत ने तो, अपनी और अपने बाल-बच्चों का गुजर न कर सकने के कारण, अपने लडकों-बच्चों को डुबो दिया और खुद भी डूबकर मर गई। और यह मुमकिन नहीं कि सैकडों और हजारों लोगों की गुजर केवल दान और चंदे पर चलाई जाय। फिर जो लोग धर्म्म की रोटी पर पेट पालते हैं वे अपने आत्म-सम्मान से हाथ धो बैठते हैं। यह बात नहीं है कि जहां जहां अकाल है वहां अनाज नहीं मिलता हो। पर बात यह है कि लोगों के पास न तो काम है और न रुपया। हां, सरकार की तरफ से अकाल पीडितों की सहायता के लिए पत्थर तोडने और ढोने का काम जारी है। पर इस पर एक मित्र ने कहा कि सरकार को जान-बूझ कर अच्छी सडकें खुदवाना पडी हैं तब जाकर कहीं उन अकाल-पीडित पुरुषों और स्त्रियों के लिए कुछ काम निकला। सडकें चाहे खुदवाई गई हों चाहे न हों, पर यह तो निश्चित है कि सरकार के पास अकाल से बचाने का एक ही काम है और वह है-सडकों की मरम्मत करना। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि दर असल मजदूरी जो एक औरत के पल्ले पडती है चार-पांच पैसे हैं और मर्द को दस पैसे से ज्यादा नहीं मिलते। इसके खिलाफ मैंने देखा कि पंचम (मदरास की एक अछूत जाति) लोगों की औरतों को कांग्रेस-कमिटी तीन आना रोज मजदूरी देती है, जिस पर वे ८ घंटा रोज चरखे पर सूत कातती हैं। और पंचम औरतों को जो काम दिया जा रहा है वही इन हजारों अकाल-पीडित औरतों और मर्दों को भी दिया जा सकता है। इन जिलों में मर्द को भी तीन आना रोज मजदूरी मिलना मानों एक बडी भारी नियामत है। परन्तु चरखे के द्वारा इतनी सुविधायें हो सकती हैं जितनी और किसी धंधे में नहीं हो सकतीं। क्योंकि चरखा कातने में ओटना और धुनकना ये दो क्रियायें उसके पहले की और बुनना उसके पीछे की, शामिल रहती हैं। दल-मंडल में बुनाई सिखाने में भी अधिक कठिनाई नहीं पेश आ सकती। और अगर कपडे की तमाम पैदायश की तजवीज वहां की जा सके तो हजारों लोगों को घर बैठे मुस्तकिल तौर पर काम-धंधा मिल सकता है।

हरएक काम करने वाले ने खुले दिल से यह बात कुबूल की है कि हां, हम लोग तथा अकाल-पीडित लोग, दोनों, इस बातको समझने लगे हैं कि चरखे से कितने लाभ हैं, और लोगों के दिलों में आशा का संचार होने लगा है तथा कार्य्य-कर्त्ताओं ने जगह जगह चरखा कातने और कपडा बुनने की तजवीज भी शुरू कर दी है। मुझे ऐसे लोग भी मिले जिन्होंने कहा कि हम तो आपकी इस बात पर हंसते थे कि चरखा अकाल न पडने देने का सर्वोत्तम साधन है, पर जब उन्हें अमली तौर पर उसका तजरिबा हुआ तब उसकी सचाई वे समझ गये।

मैं जानता हूं कि अभी तो यह रूपांतर का श्री-गणेश ही है। पर जब यह सम्पूर्ण हो जायगा तब किसी भी मर्द या औरत को जिसके हाथ काम करने लायक हैं, न तो किसी के दरवाजे भीख मांगने की और न भूखों मरने की जरूरत होगी। आज हम देखते हैं कि अकाल के दिनों में हजारों लोग जो काम करने के लायक हैं धर्म की रोटी पर जीते हैं। उन्हें कोई उपयोगी काम नहीं ! वे अध पेट खाकर ही रह जाते हैं ! यह दृश्य हमें कितना नीचा दिखानेवाला और नीचा गिराने वाला है ! (यंग इंडिया)

बस, एक ही आन्दोलन

इसलिए मैं हरएक कांग्रेस और खिलाफत के कार्य्यकर्त्ता को यह सूचित करता हूं कि आप अपने अपने जिलों में बस, चरखा कातने और करघों पर कपडा बुनवाने की ही तजवीज में लग जायं तो अच्छा हो। दूसरे तमाम-कामों को छोड दीजिए। जबतक हमारे यहां एक भी हट्टा-कट्टा आदमी बिना काम के और बिना खाने-दाने के बना रहे तबतक अगर हम पेट-भर खाते रहें और आराम से बैठे रहें तो हमारे लिए यह बडे शर्म की बात होगी। मैं धनवान लोगों से अनुरोध करूंगा कि आप बिना सोचे विचारे कभी दान न दें और मुफ्त में खाना न खिलावें। अगर हम भारतवर्ष को भिक्षा देनेवाले और भिक्षा मांगनेवाले इन दो भागों में बांट देंगे तो आयन्दा नस्ल हमें शाप दिये बिना न रहेगी। अगर हम चाहते हों कि हमारे राष्ट्र में कुछ भी आत्म सम्मान रहे तो हमें अवश्य ही इस बार बार की तंगी के लिए कुछ न कुछ तजवीज कर रखना चाहिए। अतएव जो लोग दीन-दुखियों की सहायता करना चाहते हैं वे उनके हाथोंमें चरखा दें और उससे संबंध रखने वाली विविध रीतियां सीखने की सुविधायें उनके लिए करें। (यंग इंडिया)

मत-प्रकाशन

जब किसी भी आंदोलन में हिंसा का त्याग धार्मिक भाव से कर दिया जाता है तब वह एक शुद्ध से शुद्ध ढंग का आंदोलन हो जाता है। ऐसे आंदोलन को कुचलने का कुछ भी प्रयत्न करना लोकमत को कुचलने का प्रयत्न करना है। और ऐसा ही रूप इस वर्तमान दमन ने धारण कर लिया है। इस विषय में मुझे

अपने दृढ़-मूल निश्चित मत क्यों न प्रकट करना चाहिए? वे ये हैं-

(१) किसी भी हैसियत से, खास करके सिपाही की हैसियत से, इस सरकार की नौकरी करना हराम है।

(२) शराब और दूसरी नशीली चीजों का पीना हराम है।

(३) विदेशी कपड़े का पहनना हराम है।

(४) अनाज और रुई का सट्टा करना और जुआ खेलना हराम है।

हां, यह सरकार, जैसा कि आजकल अ-सहयोग आंदोलन के खिलाफ प्रचार-कार्य्य कर रही है, अपनी मुलकी और फौजी नौकरियों के लिए कामयाबी के साथ रंगरूट प्राप्त कर सकती है, तरह तरह की तरकीबें लड़ाकर लोगों को शराब पीने और विदेशी कपड़ा पहनने के लिए तथा अनाज और रुई का सट्टा करने के लिए ललचा सकती है। और इस तरह तबतक अपनी हुकूमत कायम रख सकती है जबतक कि लोग जान-बूझ कर या अज्ञान-वश उसके साथ सहयोग कर रहे हैं। लेकिन जिस दिन इसके विपरीत विश्वास लोगों के दिल में हो जायगा उसी दिन उसकी सारी इमारत ढह जायगी। और जिस प्रकार मैं शराबखोरों में और सटो-रिये लोगों में अपने मतों का प्रचार करता हूँ जिससे कि वे इन बुरी बातों से दूर रहा करें, ठीक उसी तरह मैं सिपाहियों से भी उनके मुंह पर यह कहने के हक का दावा करता हूं कि मेरे मन के अनुसार तुम्हारा अमुक कर्तव्य है। देश के अन्दर जो कुछ हो रहा है उसके ज्ञान से फौज के लोग क्यों महरूम रक्खे जाने चाहिए? क्या सरकार को इस बात का डर है कि अगर सिपाही सब सच बातें जान जायंगे तो उसकी नौकरी छोड़ देंगे? जो सरकार 'सरकार' नाम के लायक है उसे तो सैनिकों की पूरी तरह शिक्षा देने और उनकी राजभक्ति को कायम रखने के योग्य होना चाहिए। लेकिन, यहां, भारतवर्ष में तो हर बात-शान्ति, राजभक्ति और सम्मति, शस्त्र-सज्जित है। निःशस्त्र अगर कोई है तो वह बस, प्रजा। अतएव हमारा कर्तव्य स्पष्ट है। हमे दावे के साथ जो राय हमारी हो और जिसे रखना हम पसन्द करें उसे रखना और खुल्लमखुल्ला जाहिर करना चाहिए, जबतक कि उसके द्वारा प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः हमसे हिंसा न होती हो। फिर इसके लिए हमें सूली पर भी चढ़जाना पड़े तो परवा नहीं। यही अहिंसात्मक अ-सहयोग का संग्राम है। इसमें हमें अन्त तक लड़ना होगा। मैं यहां सब लोगों को आगाह किये देता हूं कि "फौज की राजभक्ति में खलल देने के लिए" जो मुकदमा चलाया गया है यह "लोगों की विदेशी कपड़ों के प्रति भक्ति में दस्तन्दाजी करने के लिए" मुकदमे चलाने का पूर्वचिह्न है। कालीकट में जो नौजवानों की खादी की टोपियां और कुरते जलाये गये, वह किस बात का सूचक था? विजगा-पट्टम के मेडिकल स्कूल के विद्यार्थियों के साथ जो अ-धर्म-युद्ध शुरू किया गया है, वह खादी के साथ मुकतायुक्त अ-धर्म-युद्ध नहीं तो और क्या है? (यंग इंडिया)

एक मात्र कसौटी

लेकिन अगर हमें स्वराज्य प्राप्त करना है तो बस यह ठीक इसी किस्म की परीक्षा है, जिसमें हमें अवश्य ही पास होना होगा। अगर यह बात सच है कि इस सरकार का अस्तित्व अपने विशेष प्रकार के हितों के ही लिए है, जोकि अधिकांश प्रजा के हित से विरोध रखते हैं, तो वह अवश्य ही जी-जान लड़ा कर भी अपनी नींव को पुख्ता करेगी और इसके लिए हमें इस पर हरगिज क्रोध न दिखाना चाहिए। स्वतन्त्र लोक-मत की बढ़ती के दमन के लिए उसका कोशिश करना कोई नया आविष्कार नहीं है। हम लोग तो पहले से ही सरकार के इन गुणों को पहचानते हैं, और आज जो हम उसकी वर्तमान प्रणाली को नष्ट कर देना चाहते हैं उसका कारण यही है कि हमें उसके अस्तित्व के हेतु का ज्ञान है। इसके अस्तित्व का उद्देश है—हिन्दुस्तान के धन का तथा उसके कच्चे माल का धीरे धीरे, परन्तु निश्चित रूप से, अपहरण करना एवं हिन्दुस्तान को इतना कमजोर कर देना कि जिससे वह सदा के लिए यहां से धन खसोट कर ले जाने वाले विदेशी लोगों का एक साधन मात्र बना रहे। दूसरे शब्दों में यह कहें कि हमारे ही घर में हमको कैद कर देना। और यह स्थिति प्राप्त करने के लिए जो तरीका अख्तयार किया गया है वह है इनाम और इजा-इनाम तो उन लोगों को जो इस प्रणाली की सहायता करते हैं, खिताब और प्रलोभनों के रूप में, और सजा तथा अत्याचार उन लोगों को जो उस तरीके को सुधारना या मिटाना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में सरकार उन तमाम लोगों का जो अपनी सच्ची राय जाहिर करते हैं, और तमाम आन्दोलनों का जो उसके विशेष हितों पर आघात पहुंचाते हैं, गला घोंटने का प्रयत्न प्राण-पण से किये बिना नहीं रहने की। हम इस भ्रम में न रहें कि सरकार उदारता धारण करके आखिरी दम तक चुप रही और जब हद हो गई तभी उसने अपना हाथ उठाया। परन्तु यह बात हमको माननी होगी कि यह सरकार एक इतनी ताकतवर और साधन-प्रचुर संस्था है कि दुनिया ने कभी आज तक न देखी होगी। यह मौका ताकती रहती है; यह अपने विपक्षियों को खेल खेलने का मौका देती है, परन्तु ज्योंही उनमें संजीदगी का भाव पाया कि यह तुरन्त ही वार करती है। जो डाकू अपनी लूट की चीजों के मालिक को अपनी चीजें वापस लेने का तबतक मौका देता है जबतक कि वह बच्चों की तरह कोशिश करता है, परन्तु ज्योंही वह संजीदगी से पेश आता है और उसके माल को छीन ले जाने का अन्देशा हो जाता है त्योंही वह उसका सिर धड़ से अलग कर देने के लिए तैयार रहता है उसे उदार कौन कहेगा? जो डाकू इस प्रकार नीति-धर्म को एक ओर रख कर बरतता है उसे हम चालाक समझते हैं और जब वह अपने बिलकुल निर्दोष होने का और अपने ऊपर अत्याचार होने का ढोंग करता है तब हम उसे पाखण्डी कहेंगे।

अब हमारी दक्षता इसी बात में है कि हम इस सरकार के हाथ की कठपुतली न बन जायं। वह चाहे कितना ही हमें जेल में बांध दे, चाहे कितनी ही सख्त या सादी सजायें करे, तो भी हमें न तो अपने होश-हवास खो बैठना चाहिए और न मारकाट या खून-खराबी पर ही तुल जाना चाहिए। हमें फांसी पर लटका दिया जाय तो भी न डगमगाना चाहिए। मैं अली-भाइयों को अपने सगे भाइयों की तरह चाहता हूं। पर अगर सरकारी न्यायधीश उन्हें फांसी की सजा दे दे तो भी मैं सरकार के पास उनके लिए वकालत करने हरगिज न जाऊंगा। उनकी इस तरह की मौत को मैं बड़ी शान-बान की मृत्यु कहूंगा और इस बात का रश्क करूंगा कि ऐसी खुशकिस्मती मुझे भी नसीब हो। अगर उन्हें आ-जन्म काले पानी की सजा मिली तो मैं यह सोचता हूं कि मैं जितना जल्दी हो सके, स्वराज्य स्थापित करके ही उन्हें वहां से छुड़ा कर घर लाऊंगा।

इसकी बस एक ही दवा (और वह बहुत ही कारगर दवा है) जो हमारे हाथ में है-वह यही है कि सरकार को हम उसके जी-भर उसकी करामात और करतूतें दिखाने दें, और यह विश्वास रख कर कि उनकी बुरी से बुरी करतूतों का फल देश के लिए अच्छे से अच्छा होगा, उसके दमन से चित्त को जरा भी

जोशीले न होवें तथा अपने निश्चित कार्य-क्रम को पूरा करने में जी-जान से लग जायं—इस अटल विश्वास से कि इससे निश्चय ही हमारी अभीष्ट सिद्धि होगी। वह कार्य-क्रम क्या है? यही कि घर घर में और गांव गांव में चरखों और करघों का प्रचार कर दिया जाय।

(यंग इंडिया)

स्त्री पर वार !

श्रीमती सेन गुप्त एक सुसंस्कृत अंगरेज महिला हैं। उनका विवाह श्रीयुत सेन गुप्त से हुआ है। आप एक भद्र बंगाली सज्जन हैं। कुछ ही दिन हुए, आपको सरकार ने गिरफ्तार कर लिया है। उनके पकड़े जाने के बाद श्रीमती सेन गुप्त चटगांव के कपड़ा-बाजार में जाने लगीं और लोगों से कहने लगीं कि सिर्फ खादी ही खरीदो, विदेशी कपड़े को न छुओ। एक स्त्री के लिए ऐसा काम करना एक भयंकर जुर्म था। बस, दफा १४४ के अनुसार उन्हें एक नोटिस मिला कि तुम ऐसा न करो। कांग्रेस की आज्ञा के अनुसार अभी आपने उस नोटिस को मान लिया है। पुरुषों के लिए तो चाहे जो कहा जाय, लेकिन श्रीमती सेन गुप्त पर तो यह शुबह किया ही नहीं जा सकता कि उनका इरादा कुछ फसाद खड़ा करने का था या किसी को धमकाने-डराने का था। हां, इसमें कोई शक नहीं कि महज उनके वहां जाने भर ही से इतना प्रभाव पड़ता होगा कि विदेशी कपड़े की दुकानों पर जाते हुए खरीदार शर्मिंदा होता होगा। और मजिस्ट्रेट के ख्याल में यही बात बुरी नजर आई होगी। इस अवस्था में यह हुक्म वस्तुतः स्वदेशी के कार्यक्रम की मनाही का ही हुक्म है। लेकिन यह देख कर मुझे जरा भी ताज्जुब नहीं होता; क्योंकि यह सरकार तो प्रधानतः विदेशी कपड़े के व्यापार की रक्षा के ही लिए यहां हुकूमत करती है। इसलिए विदेशी कपड़े के बहिष्कार के साथ ही साथ इसका भी अन्त निश्चित है। ज्यों ज्यों वास्तविक स्वदेशी की उन्नति होती जायगी त्यों त्यों सरकार उन्मत्त हुए बिना रही नहीं सकती।

(यंग इंडिया)

गौहट्टी से प्रतिध्वनि

जो बात चटगांव में हुई है उसीकी नकल गौहट्टी में भी की गई है। वहां के कार्यकर्ता लोगों को शांति के साथ चेतावनी देते थे कि पूजा के दिनों के लिए आप लोग विदेशी कपड़ा न खरीदें। पर वे ऐसा करने से रोक दिये गये हैं। हुक्म का आशय यह है—

"गौहट्टी की म्युनिसिपलिटी की हद के अन्दर रहने वाले तमाम लोगों को चाहिए कि वे माल की खरीदी-बिक्री करने वाले लोगों को न तो धक्का कर, न कुहराम मचा कर, न आवाजें कस कर, न जबरदस्ती दिखा कर भयभीत करें, या उनसे छेड़ छाड़ करें और न आम सड़कों पर, या, दुकानों और बाजार के आस-पास ऊपर लिखे इरादे से जमा हों, तथा ऐसा कोई काम न करें जिससे कानून के अनुसार काम काज करने वाले लोगों को तकलीफ होने का या आम लोगों की शांति भंग होने का अन्देशा हो।

श्रीयुत बरदोलाय जिन्होंने कि इस हुक्म की नकल भेजी है कहते हैं कि "यह तो शांति-पूर्वक होने वाले पहरे को भी बन्द कर देने का ही उपाय है।"

(यंग इंडिया)

इसका इलाज

इसके सम्बन्ध में मैं कार्य-कर्ताओं को यह सलाह दूंगा कि जबतक अत्यन्त आवश्यकता न मालूम हो वे कपड़े के पहरे से बचे ही रहें, परन्तु जब ऐसी आवश्यकता आ ही पड़े तब, कार्य-कारिणी समिति ने रास्ता साफ कर ही दिया है कि अगर गौहट्टी और चटगांव जैसे हुक्म निकलें तो वे न माने जायं और निडरता के साथ बेधड़क पहरा जारी रक्खा जाय। इसके बदले जेल जाना पड़े तो जायं। स्वदेशी तो हमारे जातीय जीवन की प्राण-भूत वायु है। उसके लिए अगर हम जेलों को भर देंगे तो वे महल हो जायंगे।

(यंग इंडिया)

अलीभाइयों का साथी

अली-भाई जेल में बैठे बैठे भी चरखे का ध्यान किया करते हैं। उनका एक तार आया है, जिसमें वे कहते हैं कि हमने तथा हमारे कैदी-भाइयों ने चरखा मिलने के लिए सरकार से कहा है, जिससे कि हम लोग यहां फुरसत का वक्त सूत कात कर बिताया करें। इस प्रकार सब लोग अगर निश्चय कर लें तो जरूर ही स्वराज्य जल्द आ जाय। अब देखना है कि सरकार की तरफ से इसका क्या जवाब मिलता है।

(नवजीवन)

एक डाक्टर का नमूना

हांसोट (गुजरात) में एक डाक्टर हैं। वे तथा उनकी धर्म्मपत्नी रोज कम से कम तीन घण्टा चरखा कातती हैं। अभी चार ही महीने हुए हैं कि डाक्टर चरखा कातना सीखे हैं। दो ही महीने के महावरे से वे ३० नम्बर का सूत कातने लगे। दो महीने में उन्होंने इतना सूत काता कि जिससे उनके दो कुरते बन जायं और फिर भी कुछ बच रहे। वे खुद उसीके बने कुरते पहनते हैं। उसका बचा हुआ टुकड़ा उन्होंने बड़े प्रेम के साथ मुझे दिया। इस टुकड़े को मैं अपने साथ रखता हूं और जहां तहां बड़े हर्ष के साथ बताता हूं। उनकी धर्म्मपत्नी तो इससे भी महीन सूत कातती हैं। डाक्टर साहब अगर अपना प्रयत्न जारी ही रक्खें तो एक वर्ष में २६ वार महीन खादी के लायक सूत कात डालें। और इतना कपड़ा तो एक आदमी को एक साल में दरकार ही नहीं होता।

(नवजीवन)

अदालतों में हिंदुस्तानी

डाक्टर किचलू ने जो अदालत में अंगरेजी बोलना मंजूर नहीं किया, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। कुछ थोड़े मौकों को छोड़ कर हमें निश्चयही अपनी मातृ-भाषा के द्वारा अदालतों में बयान आदि देते रहना चाहिए। जब हमें अंगरेजी में बोलना पड़ता है या कुछ प्रतिपादन करना पड़ता है तब हमारे अच्छे अच्छे आदमियों को भी असुविधा होती है। और अगर तमाम लोग अपनी बोली के सिवा दूसरी कोई बोली में बोला करें तो जल्द ही हमें अनुवादकों से छुट्टी मिल जाय और मुन्सिफों को अपने प्रान्त की भाषा जानने पर मजबूर हो जाना पड़े। दुनिया के दूसरे किसी मुल्क में न्यायाधीश उन लोगों की भाषा से ना-वाकिफ नहीं होते हैं जिनको उन्हें न्याय-दान करना पड़ता है।

(यंग इंडिया)

एजंटों के लिए सुविधायें

"हिन्दी नवजीवन" की एजेन्सी के नियमों में कुछ परिवर्तन किया गया है। परिवर्तित नियमों में मुख्य दो नियम इस प्रकार हैं—

(१) ४० से अधिक प्रतियां मंगाने वालों को डाक या रेल-खर्च न देना पड़ेगा।

(२) १०० से अधिक प्रतियां मंगाने वालों को सोल एजन्सी दी जा सकती है।

अधिक ब्योरा जानना हो तो पत्र-व्यवहार कीजिए।

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

हिन्दी
नवजीवन
शुक्रवार, आश्विन शुक्ल ११, सं. १९७८.

अली-भाइयों पर आक्षेप

अली-भाइयों का यह अहोभाग्य है कि उनके कितने ही पक्के मित्र हैं। और यह भी उनका सौभाग्य है कि उनके कितने ही जबरदस्त नुक्ताचीन भी हैं। एक मित्र मुझे लिखते हैं कि "आप अली-भाइयों पर इतने मुग्ध हो गये हैं कि उनकी कोई भी बुरी बात आपको नहीं दिखाई देती।" हाँ, उनका कहना ठीक है। सन्देह न रखना ही मित्रता की खास खूबी है। परन्तु जो अपने मित्रों की दुर्बलताओं को नहीं जानता, वह कुमित्र होता है। हाँ, मैं अली-भाइयों की कमजोरियों को जानता हूं। लेकिन मुझमें भी तो कमजोरियां भरी हुई हैं। यह देख कर उनकी दुर्बलताओं के प्रति मेरा हृदय कोमल हो जाता है। मेरा हृदय कहता है कि अबतक जिन जिन साथियों के साथ काम करने में मैंने अपना सौभाग्य माना है, अली-भाई उन सबसे बढ़कर और सबसे अधिक वीर हैं। यह तो उनके सामान्य आरोप के विषय में हुआ।

असंगत बात

परन्तु उनपर एक खास इल्जाम भी लगाया गया है। एक पत्रप्रेरक महाशय लिखते हैं--

"मैं कुछ प्रश्न आपके सामने पेश करता हूं। मैंने उनपर खूब और गहरा विचार किया है। परन्तु फिर भी अ-सहयोग के सिद्धान्त से मैं उनका मेल न बैठा सका। क्या आप कृपा करके बतावेंगे कि मेरी यह उलझन दरअसल ठीक है या बिलकुल निस्सार है। जब किसी अंगरेजी अदालत में किसी पर मुकदमा चलाया गया हो तो असहयोग-सिद्धान्त कहता है कि मुल्जिम को उस मुकदमे की कार्रवाई में किसी भी तरह की मदद न देना चाहिए। लेकिन क्या अली-भाइयों का अपना बयान अदालत में पेश करना अदालत को एक तरह की मदद देना नहीं है? खुद सरकारी वकील ने भी यह कह कर इस बात को साफ कर दिया है कि मुल्जिमों के बयानों ने मेरा काम बहुत-कुछ हलका कर दिया है।

हाँ, अली-भाई खुद भी पहले ही से इस ऐतराज का अन्देशा कर चुके थे, और इसलिए अपने बयान की शुरुआत में ही उन्होंने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि हम अदालत को मदद देने की गरज से नहीं, बल्कि लोगों के दमाग से यह गलत ख्याल हटाने के लिए यह बयान पेश करते हैं कि फौज में राजद्रोह और अप्रीति के उपदेश करने का जो इल्जाम हम पर लगाया गया है वह कोई नया जुर्म है जो हमने किया है। इस बयान के पेश करने में हमारा मकसद यह रहा है कि हम किसी नये जुर्म के मुजरिम नहीं हैं; बल्कि जो जुर्म हम मुद्दत से अपना फर्ज समझ कर करते आ रहे हैं वही इस बार भी किया है।

लेकिन मैं यह कह देना चाहता हूं कि अली-भाइयों के इस खुलासे से मेरी जरा भी तसल्ली नहीं हुई है। जनता ने उनसे ऐसा कोई खुलासा नहीं चाहा था। और यह बात तो हम सब लोग जानते हैं,--क्योंकि यह बीसों दफा बार बार लोगों को बता दिया गया है--कि आप इस सरकार को सुधारने या मिटाने के लिए कमर कस चुके हैं। इसलिए यह तो आपका फर्ज मन्सबी ही है कि आप जहां जायें वहां इस सरकार के प्रति अप्रीति के बीज बोवें। अली-भाई भी कई बार बुलन्द से बुलन्द आवाज में जाहिर कर चुके हैं कि अंगरेजी फौज में नौकरी करना हराम है। इस हालत में उन्हें ऐसा बयान पेश करने की जरूरत नहीं थी। क्योंकि जिस कहानी को हम अक्सर सुना करते हैं उसके दोहराने से कोई लाभ नहीं होता। अच्छा, अगर यह भी मान लें कि उसकी जरूरत थी तो उसको सिर्फ अखबारों में ही छपा कर देना काफी था, अदालत में पेश न करना था। निस्सन्देह अदालत को इससे मदद मिली है। मैंने काफी तौर पर यह दिखला और साबित कर दिया है कि अली-भाइयों के बयान पेश करने में और अ-सहयोग के उसूल में मेल नहीं बैठता।

दूसरी उलझन जो मुझे चक्कर में डाल रही है, यह है--अभी हमने बा-अदब कानून को तोड़ने के लिए कदम आगे नहीं बढ़ाया है। अतएव हमको फिलहाल तो तमाम अंगरेजी अफसरों के हुक्मों को जरूर ही मानना चाहिए। खुद आपने भी उस हुक्म को नहीं तोड़ा है जो आपको मलाबार न जाने देने के संबन्ध में निकला था। ऐसी अवस्था में क्या मौलाना महम्मदअली को यह वाजिब था कि कराची के मजिस्ट्रेट के हुक्म को न मानते? और जब कि उसने उन्हें बैठ जाने को कहा तब गुस्सा दिखाते? क्या यह मैजिस्ट्रेट के हुक्म का जाहिरा तौर पर भंग करना नहीं था? क्या मौलाना महम्मदअली के लिए मेजिस्ट्रेट से यह पूछना अच्छा था कि "क्या आप खुदा को तसलीम नहीं करते?" और जब उनसे बैठ जाने के लिए कहा गया तब बैठने से इनकार करना और यह कहना कि "देखूं तो आप क्या कर सकते हैं?"

मेरे ख्याल में तो, बा-अदब कानून भंग शुरू कर देने पर भी, हम सबको नम्रता के ही साथ पेश आना चाहिए। अ-सहयोगी तो नम्रता का अवतार होना चाहिए। उसको किसी भी तरह की मनसनी की हालत में आपे से बाहर न होना चाहिए, और न किसी तरह का बल-प्रयोग ही करना चाहिए। गुस्ताखी तो उसे छू तक न जाना चाहिए। अगर मेरे ये ख्यालात वाजिब हों तो अली-भाइयों का यह काम किसी तरह ताईद के काबिल नहीं और खासा गुस्ताखी में दाखिल हो सकता है। इस शब्द के प्रयोग के लिए क्षमा चाहता हूं।

मेरी समझ में तो अगर अलीभाई किसी भी तरह से अदालत को मदद पहुंचाने के या हाकिमों के साथ जहालत का बरताव करने के बजाय, अदालत में चुपचाप ही रहते तो यह उन जैसे नेता के लायक, बहुत ही बेहतर और बहुत ही दूरन्देशी का काम होता।

मुझे डर है कि इस आखिरी बात से शायद आप नाराज हो जायें। अगर ऐसा हो तो मैं आपसे माफी की दरख्वास्त करता हूं। मुझसे तो यह बात कहे बिना रहा ही नहीं गया। हां, मैं यह तो जानता हूं कि आप किसी न किसी तरह अली-भाइयों के इस काम का समर्थन करेंगे, परन्तु यह नहीं जानता कि "किस तरह।"

यह पत्र दिल खोल कर लिखा गया है। लेकिन इसमें पत्र लेखक का हेतु अच्छा ही है। कितने ही मित्रों ने मुझसे यही सवाल किये हैं। और मैंने अपने बस भर उनके समाधान का प्रयत्न किया है। लेकिन इस पूर्वोक्त पत्र पर सार्वजनिक रीति से विचार करने की जरूरत है। यदि अदालत में बयान पेश करना असंगत है तो इसका

कारण है अखिल भारतवर्षीय महासभा समिति, जिसने कि बयान पेश करने की अनुमति दी है। हाँ, कोई चाहे तो समिति से इस बारे में सवाल कर सकता है; परन्तु वह अली-भाइयों पर असंगति का दोषारोपण नहीं कर सकता। भारतवर्षीय महासभा-समिति के निर्णय का मूल है मेरी सलाह। और शायद इसके लिए सर्व-साधारण के सामने मुझे ही कारण बताना वाजिब है। बयान पेश करने से मुल्जिम को अपना अभिप्राय स्पष्ट करने का अवसर मिलता है और अदालत में उसके पेश करने से वह हमेशा के लिए मिसल में शामिल रहता है। इसके सिवा मुझे इस बात पर विश्वास है कि भारतवर्ष इसी साल स्वराज्य प्राप्त करने का सामर्थ्य रखता है। स्वराज्य की स्थापना होने के पहले मैं हजारों लोगों के जेल में दाखिल होने की उम्मीद करता हूँ। और यह भी आशा रखता हूँ कि स्वराज्य-पार्लियामेंट उन तमाम असहयोगी कैदियों को छुड़ा कर ले आवेगी, जिन पर कोई नैतिक अपराध साबित नहीं हुआ है। अतएव स्वराज्य के पश्चात् न्यायाधीशों को ये बयान बड़ी कीमती इमदाद देंगे। फिर मैं इस बात के लिए बहुत उत्सुक हूँ कि अपराधी लोग अ-सहयोग से अनुचित लाभ न उठा सकें और बयान न पेश करके सर्व साधारण को अपनी निर्दोषिता के अनुमान करने का मौका दें। जो बयान मुख्तसिर हो, अपने विषय से बिल्कुल संलग्न हो और जिसमें दलीलों का तो बिल्कुल ही सहारा न लिया गया हो, वही इस कसौटी पर उतर सकता है।

मौलाना महम्मद अली का बयान इस श्रेणी में नहीं आ सकता। वे तो इस्लाम की लम्बी-चौड़ी और बहु-भाष्य व्याख्या में लग गये। उन्होंने स्पष्टतः अपनी सफाई के लिए अदालत का उपयोग नहीं किया; बल्कि अपने स्वीकृत कार्य की शोहरत फैलाने के लिए किया है। लोगों ने उनके बयान को बड़े चाव के साथ पढ़ा है। उन्होंने उसे यदि निबन्ध के रूप में लिखा होता तो उसका असर मारा जाता। इसलिए मैं न तो उस बयान की पुष्टि करने के लिए तैयार हूँ और न निषेध। हाँ, वह मुख्तसिर तो जरूर ही किया जा सकता था। लेकिन संक्षेप से काम लेना मौलाना महम्मदअली के लिए नामुमकिन है। मैं उन्हें जानता हूँ। उन्होंने थोड़े में व्याख्यान देने का वादा करके एक एक घण्टा तक लगाया है।

दूसरा आरोप और भी तेज है। बैठने से इनकार करने के मामले में बा-अदब या बे-अदब कानून भंग करने का कोई सवाल नहीं था। वह तो सिर्फ रुचि का सवाल था। यह सब दृश्य मुझे तो पसन्द नहीं आया। हाँ, बेशक, उसमें कोई गुस्ताखी की बात नहीं थी। वह सिर्फ एक गैर-जरूरी चुनौती थी। हाँ, मैं मानता हूँ कि अ-सहयोगी को बिल्कुल नम्र रहना चाहिए और उन कैदियों का व्यवहार नम्रता की सीमा के बाहर था।

लेकिन फिर भी मैं उन कैदियों के व्यवहार की निन्दा करने में असमर्थ हूँ। उन्होंने इसके द्वारा एक प्रयोजन की पूर्ति की है और वह कोई बुरा प्रयोजन नहीं है। मारे दबाव के आज हम बिल्कुल दीन हो गये हैं। अदालतों के आसपास देखिए तो एक सारा भय और भीति का वायुमण्डल फैला रहता है। कानून और अदालतों के प्रति आदर एक चीज है और उनका डर दूसरी चीज है। मेरी राय में तो अली भाई और उनके साथी कैदी शरारत पर तुल गये थे। वे अदालत की और कैदखाने की दहशत को मिटा देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने समझ-बूझकर अदालत को इस तरह ललकारा। अगर मजिस्ट्रेट उस विनोदावस्था का मर्म समझ जाता तो ... उनसे मामूल के मुआफिक सीधी तरह पेश आते। अदालत अपनी शान के दम पर चलना चाहती थी। लेकिन अली-भाई तो उसे जरा भी नहीं रहने देना चाहते थे। हाँ, मैं इनकार नहीं कर सकता कि इसका इससे भी अच्छा रास्ता था। लेकिन मेरा तो यह निश्चित मत है कि अली-भाइयोंने अपनी इस चुनौती के द्वारा भी अपने स्वीकृत कार्य की सहायता ही की है। अगर वे नम्रता धारण कर लेते तो अपने काम का बिगाड़ कर बैठते। उन्होंने इस बार भी अपनी सचाई और स्वाभाविकता सिद्ध कर दिखाई है। और यही मेरी दृष्टि में उनके चरित्र का अत्यन्त प्रिय और प्रधान अङ्ग है। हमको याद रखना चाहिए कि हमको इन आज की अदालतों की बेइज्जती जरूर ही करनी है; क्योंकि वे हमारे मत में बेइज्जती के ही लायक हैं। लेकिन एक ओर जहाँ मैं अली-भाइयों की ललकार को बुरा नहीं बता सकता वहाँ, दूसरी ओर, मैं उसे एक नमूने के तौर पर भी पेश नहीं करता हूँ, जिसका अनुसरण सब लोग करें। जो ऐसा करने का प्रयत्न करेंगे वे अ-सफल हुए बिना न रहेंगे। क्योंकि, मुझे पाठकों को यह बता देना चाहिए, कि अली-भाइयों के दिल में मजिस्ट्रेट के प्रति दुर्भाव नहीं है। और इसमें कोई शक नहीं है कि जब मजिस्ट्रेट अदालत के बाहर हो तब उनसे वे उसी शिष्टता से पेश आवेंगे जिससे खुद मेरे साथ आते हैं।

आँखों देखी बात

नीचे एक पत्र दिया जाता है जिसमें उसके लेखक ने अपनी आँखों देखा हाल लिखा है। उससे पाठक वहाँ की स्थिति का शायद और अच्छा अन्दाज कर सकेंगे। पत्र इस प्रकार है--

"अखबारों के द्वारा आपने इस मुकदमे की कार्रवाई पढ़ी ही होगी। लेकिन इस मामले की कार्रवाई को चुपचाप देखने वाले आदमी की तबीयत पर उसका क्या असर हुआ है, यह दिखला देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। आरम्भ में ही 'वीर' मुल्जिम को दबाने की कोशिश की गई थी. लेकिन उस अभागे मजिस्ट्रेट को पाला पड़ा था किसी ऐसे-वैसे से नहीं, मौलाना महम्मद अली से। उस भले आदमी को उसके 'योग्य' ही 'डांट-डपट' मिल गई।

मेरी जिन्दगी में यह दूसरा मौका है जो मैं किसी अदालत में किसी मुकदमे की पेशी देखने के लिए गया हूँ। पहली बार जो तजरिबा हुआ उसकी यादगार तो, हाँ, मीठी नहीं है; लेकिन इस दूसरी बार की और मैं ख्याल करता हूँ कि आखिरी बार के पहले की--क्योंकि आखिरी बार तो अभी आने वाली है--हालत देख कर तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। जहाँ 'कानून और व्यवस्था' का शासन है उस देश की लार्ड रीडिंग के राज्य की न्यायालय के नाम से विख्यात होनेवाली वह अदालत, एक नाटकगृह से बढ़ कर नहीं थी। नहीं जनाब, मैं गलती कर रहा हूँ। नाट्यशाला में तो नट अपना अपना काम ईमानदारी के साथ कर के अपने दर्शकों को, जो अपने मन-बहलाव के लिए रुपया देकर वहाँ जाते हैं, खुश करते हैं; लेकिन अंगरेजी अदालत का 'न्यायाधीश' फिर वह चाहे गोरा हो या काला, प्रामाणिकता से कोसों दूर रहता है और मुझे विश्वास है कि न्याय शब्द तो उनके कोश में रहता ही नहीं।

मैं वकील नहीं हूँ। इससे मैं कानूनी बेकायदगियों को नहीं जान पाया; पर अगर सामान्य बुद्धि से कानून का कुछ भी सम्बन्ध है तो मैं साहस के साथ कह सकता हूँ कि उस अकीकदिवा हाल का सारा तमाशा एक खासा प्रहसन था, जिसका सानी मैंने इससे पहले कभी नहीं देखा।

गवाहों के बयान और साजिश को साबित करने का तरीका बड़ा मजेदार था। और मुकदमे के अन्त में सरकारी वकील ने जो भाषण किया उसकी तो जरा भी नुक्ताचीनी की आवश्यकता नहीं!

मैं खुद तो इस नतीजे पर आ पहुँचा हूं कि इन अदालतों में बयान पेश करना भी केवल जंगल में रोना है। हां, अगर वह अपने देश-भाइयों के प्रति आखिरी अपील के रूप में हो और उससे अपने मतों का कुछ प्रचार होता हो तो भले ही।"

विपरीत दृश्य

बुलन्दशहर का एक पत्र यहां देता हूं। उससे मेरा प्रतिपाद्य विषय और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा।

"गत ३ अक्तूबर को यहां के जिला मजिस्ट्रेट के इजलास में एक राजनैतिक मुकदमा पेश हुआ। उसके सिलसिले में मजिस्ट्रेट की महज बेजा कार्रवाइयों की तरफ आपका खयाल दिलाना चाहता हूँ।

जिला मजिस्ट्रेट, मिस्टर बोबस के इजलास में, महाशय महावीरप्रसाद स्वामी पर दफा १२४ ए और १५३ ताजीरात हिन्द की रू से मुकदमा चलाया गया। हेड कानिस्टबल मुहम्मद यार खां की जिरह के वक्त मुल्जिम के व्याख्यान के मुख्तसिर नोट अदालत के सामने पढ़े जा रहे थे। उसपर अदालत ने कहा कि रिपोर्ट का अंगरेजी तरजुमा मूल व्याख्यान से नहीं मिलता है। इसपर सरकारी वकील ने भी कहा कि हां, मालूम तो ऐसा ही होता है लेकिन मैं नहीं बता सकता कि ऐसा 'क्यों है।' जब गवाह की जिरह का मुख्य भाग खतम हो चुका, अदालत ने मुल्जिम से पूछा कि तुम जिरह करना चाहते हो? मुल्जिम ने जवाब दिया "नहीं। आप सिर्फ इतना ही लिख लीजिए कि अँगरेजी तरजुमा मूल व्याख्यान से नहीं मिलता है, जैसा कि सरकारी वकील ने अदालत के सामने साफ साफ कुबूल किया है।" यहां पर यह लिख देना बे-मौका न होगा कि मुल्जिम की तरफ से कोई वकील नहीं किया गया था और वह कानून की वाकफियत भी नहीं रखता। उसने महकमे फौज के सिवा दूसरी जगह कहीं नौकरी नहीं की है और लड़ाई के सिलसिले में समुद्र-पार गया था। मजिस्ट्रेट ने यह बात लिख लेने से इनकार किया और कहा "क्या बेहूदा बात करते हो!" इस पर मुल्जिम को बुरा लगा और उसने उलट कर कहा 'मैं तो समझता हूं, आप ही बेहूदा बात कह रहे हैं।' तब मजिस्ट्रेट ने बलवन्तसिंह कान्स्टेबल नं. ६० से, जो कि मुल्जिम पर तैनात था कहा कि इसे एक तमाचा लगाओ। सिपाही झिझका और उसने बड़ी ही अनिच्छा के साथ मुल्जिम की गर्दन के पिछले हिस्से पर धीरे से एक थप्पड़ लगाई। यह देख कर मजिस्ट्रेट ने फिर उसे आज्ञा दी थी कि मुंह पर एक जोर का तमाचा लगाओ। कानिस्टेबिल मजबूर हुआ। उसने वैसा ही किया। मुल्जिम ने इस बेइज्जती और सख्ती को चुपचाप बरदाश्त किया। उसने न तो अपनी सफाई पेश की और न सरकारी गवाह से जिरह ही की।

मुझे इतना और कहना चाहिए कि ज्योंही जिला मजिस्ट्रेट अदालत में आये उन्होंने देखा कि मुल्जिम अदालत के बाहर एक बेंच पर बैठा हुआ है और एक थानेदार की हिरासत में है। जब मामला पेश हुआ, उन्होंने थानेदार को झिड़का कि क्यों तुमने उसको बैंच पर बैठाया और अदालत में हथकड़ी खोल कर क्यों पेश किया? कोई आधी ही मिनट के बाद उन्होंने हुक्म दिया कि इसके हथकड़ी डाल दो। वह फिर अपने हाथों को बांह पर रख कर खड़ा है। मजिस्ट्रेट की इस हद दर्जे की सख्ती से यहां के लोगों में बड़ी सनसनी फैली। कोई ४ हजार आदमियों की सभा हुई। श्रीयुत सैयद हसन बेरनी, बी. ए. एल. एल. बी., वकील ने सभापति का पद ग्रहण किया था। उसमें प्रसंगोचित प्रस्ताव पास हुए। प्रस्ताव के अनुसार जगह जगह तार भी भेजे गये हैं, परन्तु यकीन नहीं कर सकते कि वे पहुंचाये गये हैं या नहीं। इसलिए पत्रद्वारा भी यह समाचार भेजा गया है। अखबारों में भी तारद्वारा खबर भेजी गई है।"

बुलन्दशहर की इस आम सभा के प्रस्तावों में मुल्जिम को उसके आत्मसंयम, वीरता, और विरक्ति पर बधाइयां दी गई हैं। लेकिन मुझे इस बात पर बड़ा सन्देह है कि इन विशेषणों का उपयोग समुचित रूप से हुआ है या नहीं। मुल्जिम ने उसके प्रतीकार में एक भी शब्द क्यों नहीं कहा? ऐसे मजिस्ट्रेट नाम धारी व्यक्ति के इजलास में अपना मुकदमा चलाने से इनकार क्यों नहीं कर दिया? मजिस्ट्रेट ने तो बिल्कुल साफ साफ जुर्म किया है और इसी तरह उस अनिच्छुक कानिस्टबिल ने भी गुनाह किया है। क्या मुल्जिमने प्रेम और नम्रता के कारण अपना मुंह बन्द कर लिया था? डर अथवा किसी अनिष्ट के लिए स्तब्धता या निष्क्रियता का उपयोग, दया के नाम पर, हरगिज न होना चाहिए। क्या अलीभाइयों का बरताव अनीति, मरीना और कुदरती नहीं था? जहां बुलन्दशहर के जैसा मौका पेश आता हो वहां मनुष्य का अपना बल ही उसकी रक्षा का साधन हो सकता है। और मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि जब अली-भाइयों ने अदालत को ललकारा है, तब अपने देश-भाइयों की राजनैतिक निर्बलता ही उनके मद्दे नजर रही है।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

टिप्पणियां

(२)

गीता में चरखा

कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने, एक धार्मिक विधि समझ कर चरखा कातने के विषय में, जो आक्षेप (माडर्न रिव्यू में) किये हैं उनके उत्तर देने का प्रयत्न मैंने ('यंग इंडिया' में) किया है। मैंने उसमें अपनी पूरी नम्रता से काम लिया है और वह कविवर के तथा उनके सदृश विचार रखनेवाले लोगों के समाधान करने के हेतु से लिखा है। पाठकों को यह जान कर कुतूहल होगा कि मेरे इस मत को अधिकांश में भगवद्गीता से गति मिली है। इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाले भगवद्गीता के कुछ श्लोक (अध्याय ३ से) यहां उद्धृत किये जाते हैं -

'नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
॥८॥
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥९॥
सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक् ॥१०॥
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥
इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥१२॥
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ।॥१६॥ "

यहां काम से अभिप्राय निस्सन्देह शारीरिक श्रम से ही है और यज्ञ के रूप में किया जाने वाला कर्म तो एकमात्र वही हो सकता है जो सब लोगों के लाभ के लिए सब लोगों के द्वारा किया जाय। और ऐसा कर्म-ऐसा यज्ञ अकेला चरखा कातना ही हो सकता है। मैं यह सूचित करना नहीं चाहता हूँ कि भगवद्गीता के रचयिता ने चरखे को ही लक्ष्य कर के यह लिखा है। उन्होंने तो व्यवहार के एक मूलभूत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। और भारतवर्ष में बैठ कर उसका मनन करते हुए तथा भारत पर उसको घटाते हुए मेरे ध्यान में तो योग्य से योग्य और अधिक से अधिक मान्य यज्ञ-रूप शरीर-कर्म के स्थान पर चरखे के सिवा और कुछ नहीं आता। कोई भी इससे अधिक उन्नत और स्वाभाविक बात मेरे दिमाग में नहीं आ रही है कि हम सब प्रतिदिन एक घण्टा वही काम करें जो गरीब आदमी को अवश्य ही करना पड़ता है और इस तरह हम उनके साथ और फिर सारी मनुष्य जाति के साथ अपना तादात्म्य कर लें। मुझे ईश्वर की पूजा का इससे बढ़ कर साधन सूझ ही नहीं सकता कि मैं उसके नाम पर गरीबों के लिए वैसी ही मिहनत किया करूं, जैसी कि वे खुद करते हैं। चरखा पृथिवी की सम्पत्ति को अधिक सम-भाग में बांटने का साधन है। (यंग इंडिया)

ह्रास का कारण

एक महाशय पूछते हैं कि " क्या यह सच बात नहीं है कि हिन्दू-राज्य का नाश हिन्दुओं के अत्युच्च कोटि के अध्यात्मवाद के कारण ही हुआ है ? " पर मेरा ख्याल ऐसा नहीं है। हम देखते हैं कि सचमुच जब जब हिन्दुओं का ह्रास हुआ है, केवल आत्म-बलकी-दूसरे शब्दों में नैतिक आधार की कमीके कारण ही हुआ है। राजपूत लोग छोटी छोटी बातों के लिए आपस में लड़ मरे और उन्होंने हिन्दुस्तान को खो दिया। व्यक्तिगत वीरता तो उनमें बहुत थी, किन्तु सच्चा आत्मबल उस समय उनमें बहुत कम था। राम अपने आत्मबल के द्वारा नहीं तो फिर किस बल से केवल बन्दरों की सहायता से जीते, और रावण क्यों हारा ? क्या पांडव अपने उस आत्मबल के कारण नहीं जीते ? हम अक्सर आत्मज्ञान और आत्म प्राप्ति का भेद नहीं समझते। आत्मबल के मानी शास्त्रों का जानना और उनपर तात्विक दृष्टि से बहस करते रहना नहीं। यह तो हृदय की संस्कृति की और अपार शक्ति की बात है। आत्म शक्ति को प्राप्त करने के लिए निर्भयता रखने की बहुत जरूरत है। कायरता कभी नीति-संगत नहीं हो सकती।

(यंग इंडिया)

मूल कारण

वही सज्जन फिर पूछते हैं " क्या आपका यह ख्याल नहीं है, कि इस विदेशी सरकार का जो आधिपत्य यहां हुआ उसका कारण है ऊंची जातियों के द्वारा गरीबों, कमजोरी और अछूत कहलानेवाले लोगों का दबाया जाना ! "

हां, बेशक यही, हमारे द्वारा अपने भाइयों का दबाया जाना ही, इसका मूल कारण है। यह आत्मिक अवनति है। हमने जो अपनेही भाई-बिरादरों को लूटा है और धर्म के पवित्र नाम पर उनको जानबूझ कर नीचे गिराया है उसीका बहुत ठीक ईश्वरदत्त बदला यह विदेशी सरकार के आधिपत्य और आर्थिक लूट रूपी शाप है। और इसीलिए मैंने छुआछूत का निकाल देना स्वराज्यकी प्राप्ति में एक अनिवार्य शर्त रक्खी है। जब कि खुद हमी ने दूसरों को गुलाम बना रक्खा है तब हमें अपनी गुलामी के लिए दूसरों से झगड़ने का कोई सबब नहीं है, जबतक कि हम अपने ही गुलामों को बिना किसी शर्त के स्वतंत्र नहीं कर देते। अपने 'शासकों' की आंख में से रजःकण निकालने की कोशिश करने के पहले खुद अपनी आंख में से छुआछूत की फांस निकाल बाहर करना चाहिए। (यंग इंडिया)

पत्र-प्रेषक महाशयों

आप हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, अंगरेजी इनमें से किसी भी भाषा में पत्र लिखें, परन्तु वह सुवाच्य जरूर होना चाहिए। अन्यथा उसका उत्तर मिलना कठिन होगा।

अंक न मिलने की शिकायत करने वाले सज्जनों को अपना ग्राहक नम्बर और पूरा पता—डाकखाना, जिला, आदि—साफ साफ लिखना चाहिए। नहीं तो हम उनकी शिकायत दूर करने में समर्थ न हो सकेंगे।

मनीआर्डरों के कूपन पर भी अपना पूरा पता बिलकुल साफ साफ लिखने की कृपा किया करें।

व्यवस्थापक " हिन्दी नवजीवन "

ग्राहक होनेवालों को सूचना

जिन स्थानों में " हिन्दी नवजीवन " की फुटकर बिक्री एजंटों के द्वारा होती है वहां के निवासियों को चाहिए कि वे वहीं से अंक प्राप्त कर लिया करें। वहां ग्राहक होकर डाकखाने से अंक मंगाने में उन्हें और हमें दोनों को असुविधा होती है। पर उस दशा में यदि ग्राहकों को अंक मिलने में गड़बड़ हो तो इसकी शिकायत वे कृपा करके हम से न करें।

मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेजिए। हमारे यहां वी. पी. का नियम नहीं है। एजन्सी के लिए नियम मंगाइए।

व्यवस्थापक-"हिन्दी नवजीवन"
अहमदाबाद.

ग्राहकों को सूचना।

महीने के बीच में ही ग्राहक का नाम दर्ज करने में कठिनाई होने से अब जो मनिआर्डर हमें मिलेंगे, उन्हें हम आगामी महीने की १ तारीख से जमा करेंगे। और तभी से पत्र भी भेजना शुरू करेंगे। यदि ग्राहक गत पिछले अङ्क लिया चाहें तो उन्हें डेढ़ आना प्रति अङ्क के हिसाब से डाक के टिकट भेज देना चाहिए।

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन" अहमदाबाद

बंबई निवासियों को सूचना.

" हिन्दी-नव जीवन "की फुटकर बिक्री बम्बई नगर में बन्द रक्खी गई है। इसलिए वहां वालों को ४) मनीआर्डर द्वारा भेज कर ग्राहक होना चाहिए।

व्यवस्थापक,
"हिन्दीनवजीवन" अहमदाबाद.

एजेंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में श्री-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का घर घर और गांव गांव के प्रचार करने के लिए "हिन्दी-नव जीवन" के एजेंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, [illegible] पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और [illegible] प्रकाशित।

कर्मवीर की चौकी

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—कार्तिक व० ५, संवत् १९७८, शुक्रवार, तारीख २१ अक्टूबर, १९२१ ई० | अंक १०

टिप्पणियां

थकावट

जब मुझसे कोई कहता है कि लोग अब थकने लगे हैं, कोई नई बात बताइए, तब मैं हैरान हो जाता हूं, तब मैं समझता हूं, कि लोग स्वराज्य का रहस्य नहीं जानते, धर्म्म-युद्ध का अर्थ नहीं समझते ।

स्वराज्य अगर नित्य नया होने वाला हो तो उसके उपाय भी नये हों । मैं तो स्वदेशी के सिवा दूसरा उपाय नहीं ला सकता; और अगर हम स्वदेशी से थक गये हों तो हमें स्वराज्य से भी थक जाना होगा ।

जो मनुष्य सांस लेते हुए थकता है वह मरने की तैयारी में है । तन्दुरुस्त आदमी की सांस चला करती है, नाड़ी चलती है, आंख भी अपना काम करती है, पर इसकी खबर तक उसको नहीं रहती । जरूरी क्रियाओं को करते हुए वह कभी नहीं थकता । कवि कभी अपनी शक्ति के उपयोग से नहीं थकता, और जो थक जाता है वह कवि हई नहीं । जो सारंगी की धुन में मस्त है वह कभी नहीं थकता । इसी प्रकार अगर हमपर स्वदेशी का पक्का रंग चढ़ा होगा तो हम नहीं थक सकते, बल्कि हम देख सकेंगे कि जितनी सीढ़ियां हम स्वदेशी की चढ़े हैं उतनी ही स्वराज्य की चढ़े हैं और जिस प्रकार हम स्वराज्य का रास्ता तय करते हुए कभी थक नहीं सकते उसी प्रकार स्वदेशी का मार्ग आक्रमण करते हुए भी हम नहीं थक सकते । ज्यों ज्यों मनुष्य उत्तम और पौष्टिक हवा में आगे बढ़ता है त्यों त्यों वह अधिक शक्तिमान् होता जाता है; ऐसा ही अनुभव हमें भी होना चाहिए । ज्यों ज्यों हम स्वदेशी की मंजिल अधिकाधिक तय करते हैं त्यों त्यों हमारा बल अधिक बढ़ता जाता है । एक साल के पहले जो लोग चरखे का मजाक उड़ाया करते थे, आज वे कहां हैं ? श्रीयुत प्रफुल्लचन्द्र राय हमारे एक महान् विज्ञानाचार्य हैं । वे श्रीयुत बसु की जोड़ के हैं । सूक्ष्म शास्त्रों के परखैया हैं । स्वयं कितनीही कम्पनियों से सम्बन्ध रखते हैं । पर उन्हें भी कुबूल करना पड़ा है कि बंगाल के सात्रे चार करोड़ स्त्री-पुरुषों का एक-मात्र आधार चरखा ही है । ऐसी हल-चल से जो थक जाता है, वास्तव में वह उसका रहस्य जानता ही नहीं है ।

भला थका हुआ योद्धा क्या कर सकता है ? जो योद्धा हमेशा अपनी लड़ाई की गति को बदला करता है उसकी हार हुए बिना नहीं रहने की । हम तो उत्तरोत्तर आगे ही बढ़ते गये हैं । धारा-सभा, खिताब, वकील और विद्यार्थियों के किलों में से तो जो कुछ थोड़ा-बहुत हमारे हाथ लगा, उससे हमारा काम चल गया; परन्तु इस विदेशी कपड़े ने तो हमारा रास्ता ही रोक रक्खा है । इस किले को हम जबतक मिट्टी में नहीं मिला सकते तबतक हम स्वराज्य की आशा नहीं रख सकते । उसके समूल नाश पर ही स्वराज्य सम्भव-नीय है । इसलिए, चाहे एक मास लगे या अनेक, विदेशी कपड़े का चट्टान के टुकड़े किये बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते । दूसरी चट्टानों में से तो [illegible] कर के भी पार हो सके हैं ।

स्वराज्य तो ऐसी वस्तु है जिसका अनुभव हमें अनुभव से ही हो सकता है । रोगी का रोग दूर हुआ या नहीं, इसका अन्तिम निर्णय तो स्वयं रोगी ही कर सकता है । जो रोगी बिछौने पर ही पड़ा रहता था, जो उठ-बैठ ही नहीं सकता था, उसके चेहरे पर सुर्खी छिटकने लगे, वजन बढ़ जाय और वैद्य कह दे कि हां, अब तो तुम चंगे हो गये, तो भी रोगी इस बात को नहीं मान सकता । इस बात का साक्षी कि स्वराज्य मिला है या नहीं, तो प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही अपने लिए हो सकता है । इससे जो यह सिद्ध हो कि चरखे से, बुनकने से, कपड़े से और खादी से लोगों का जी ऊब उठा है तो उसका अर्थ मैं यह करता हूं कि लोगों को स्वराज्य की जरूरत ही नहीं है । जो रोज लंघन करता है अथवा चावल को छोड़ कर भूसा खाता है उसे हम कहते हैं कि यह तो आत्म-घात करना चाहता है । उसी प्रकार जो स्वदेशी का लंघन करता है उसके विषय में कहा जा सकता है कि इसे स्वराज्य की इच्छा नहीं है ।

क्या कार्य्य-कर्त्ताओं ने और उनके कुटुम्बियों ने पूरी तरह स्वदेशी का अंगीकार कर लिया है, जो वे अब उससे उकता उठे हैं ? जबतक एक भी अ-सहयोगी स्वयं तथा उसके परिवार के लोग स्वदेशी-मय नहीं हो गये हैं तबतक उन्हें थक जाने का या निराश होने का कोई कारण ही नहीं है । और जिस दिन तमाम अ-सहयोगी अपना कर्त्तव्य समझ कर सच्चे स्वदेशी हो जायंगे उस दिन मुझे विश्वास है कि सारा हिन्दुस्तान स्वदेशी हो जायगा । आज की हमारी थकावट तो बालकों की थकावट जैसी है । बालक

को जो सवाल कठिन मालूम होता है उसको वह छोड देता है और कहता है—दूसरा सवाल दीजिए। जो शिक्षक इस प्रकार बालक को थकने और हारने देता है वह उसका शत्रु है। दिया हुआ सवाल लगाने पर ही बालक का छुटकारा हो सकता है। इसी प्रकार स्वदेशी का जो यज्ञ हमने आरम्भ किया है उसके पूर्ण करने पर ही काम चल सकता है। हमारी यह थकावट अपनी अपूर्णता और अज्ञान के कारण है। हम स्वराज्य की कीमत जानते नहीं हैं और अगर जानते हैं तो उतनी देना नहीं चाहते। हमारा खिलाफत-सम्बन्धी प्रेम सभायें करने और चन्दा देने में ही समा जाता है। अगर ऐसी ही स्थिति रहे तो स्वराज्य कभी नहीं मिल सकता। स्वराज्य प्राप्त करने के लिए पहले हमको उद्योगी बनना होगा; सभाओं का, जुलूसों का, व्याख्यानों का शौक हमें छोडना होगा; या यदि ऐसा मालूम होता हो कि अभी इन खेल-तमाशों की जरूरत है तो कुबूल करना होगा कि अभी स्वराज्य दूर है। (नवजीवन)

स्वेच्छापूर्वक नियम-पालन

एक मित्र ने मुझसे कुछ सवाल पूछे। उत्तर-सहित उनको नीचे देता हूँ—

सवाल—क्या स्वराज्य में हमें कुछ कानूनों की जरूरत पडेगी?

जवाब—हां, पडेगी तो।

स०—तब तो लोगों को वे कानून मानने भी पडेंगे?

ज०—जरूर ही, लेकिन उनकी मरजी से। अगर वे कानून-कायदे लोगों की सलाह से बनाये गये होंगे तो वे उन्हें खुशी से मानने लगेंगे। क्या इसमें आपको कोई अचरज मालूम पडता है?

स०—जी हां, इसमें मुझे कुछ शक होता है।

मैंने पूछा—किस तरह?

ज०—अपने अनुभव से!

मैं चौंका, और मैंने फिर पूछा:—

स०—मुझे समझाओ। मैं जरा उलझनमें पड गया हूं!

ज०—देखिए, नागपुर में २०,००० मनुष्यों ने अ-सहयोग का प्रस्ताव पास किया था। जिन जिन लोगों ने उस प्रस्ताव को मंजुर किया, उनके लिए तो वह बन्धन-कारक था ही। लेकिन फिर भी क्या उन सब अर्थात् बीसों हजार मनुष्यों ने उसका पालन किया है? वहां हाजिर रहने वाले वकीलों ने वकालत छोडी है? वहां मौजूद रहने वाले विद्यार्थियों ने स्कूल या कालेज छोड दिया है? सबने स्वदेशी-व्रत का पालन किया है? सभीने चरखा खरीदा है? इन बातों को भी जाने दीजिए। कार्य-कारिणी समिति ने जो जो प्रस्ताव पास किये हैं क्या उनका अमल सब जगह हुआ है? जैसा महासभा का हाल है वैसा ही छोटी छोटी संस्थाओं के लोगों का भी है। हमारी जितनी संस्थायें हैं उनमें अपने ही बनाये हुए कायदों का पालन कितने लोग करते हैं? मुझे सार्वजनिक जीवन का तजरिबा है और मैंने देखा है कि अपने ही बनाये हुए कायदों का पालन हम खुद बहुत थोडा करते हैं! भला जबतक यह कुटेव नहीं छूट जाती तबतक क्या हम स्वराज्य का उपभोग कर सकते हैं। क्या आप यह नहीं मानते कि हमारी इस दुःख के समय बनाये हुए नियमों के पालन करने की शक्ति में ही स्वराज्य है? और आज अगर हममें वह शक्ति नहीं है, तो फिर स्वराज्य के मिल जाने पर भी वह हममें नहीं आ सकती। अर्थात् उस शक्ति के बिना स्वराज्य असंभव है। फिर, अपने ही बनाये हुए कायदों का पालन करना तो बडी ही आसान बात है। क्योंकि इसके लिए हमें किसी दूसरे से जा कर कहने की जरूरत नहीं रहती। यह बात तो सिर्फ हम हाथ ऊंचा उठाने वालों पर ही घट सकती है! और मैं भी सिर्फ हाथ ऊंचा उठाने वाले महासभावादी अ-सहयोगियों की ही बात कर रहा हूं। और जब मैं उनकी स्थिति पर विचार करने लगता हूं तब व्याकुल हो उठता हूं और इसी साल स्वराज्य प्राप्त करलेने की बात में मुझे सन्देह होने लगता है।

इस जवाब के प्रत्युत्तर में मैंने कहा:—हाँ, आप जो कुछ कह रहे हैं उसमें सत्यांश जरूर है। हम सब अपने ही बनाये हुए नियमों का पूरी तरह पालन नहीं करते। फिर भी आपको यह तो कुबूल करना ही पडेगा कि बारह महीने पहले हम जितने लापरवाह थे उतने आज नहीं हैं। हम कह सकते हैं कि नागपुर के प्रस्ताव का लोगों ने अच्छी तरह अमल किया है। जिस बात में लोग उसका अमल नहीं करपाये उसके लिए वे अपनी कमजोरी कुबूल करते हैं और सबल बनने की कोशिश करते हैं।

इस तरह जवाब देकर मैंने प्रश्नकर्ता का कुछ समाधान किया तो, लेकिन खुद मेरा समाधान न हो सका। उनके सवालों में मुझे गंभीरता दिखाई दी। मैं विचार में पडगया। उनसे तो मैंने यही कहा कि इस बारे में मैं "नवजीवन" में लिखूंगा, लेकिन उस मित्र के प्रश्नों का असर यह टिप्पणी लिखते समय मुझ पर बहुत ज्यादा हुआ है। यद्यपि मैं समझता हूं कि मैंने लोगों की तरफ से जो वकालत की वह वाजिब थी, तो भी मुझे यह तो दिखाई दे सकता है कि जिन नियमों और कायदों को खुद हमीं बनाते हैं उनको अमल में लाने की शक्ति तो हममें बहुत ज्यादा होनी चाहिए। "नहीं रूख तहँ रेंड प्रधान" वाली कहावत के अनुसार हम संतोष नहीं मान सकते। हम तो स्वराज्य की कसौटी पर कसे जा रहे हैं, उसमें हम सौ टच नहीं उतर रहे हैं। हमारे सोने में जरूरत से ज्यादा मिलावट है। सोने के कस को तो परखैया ही परख सकता है। और हमें तो उस कसौटी पर स्वराज्य के लायक सिद्ध होना है। इसलिए जबतक हम उतने टच न उतरेंगे तबतक हम स्वराज्य प्राप्त करने की शक्ति ही किस तरह प्राप्त कर सकते हैं? प्रश्नकर्ता की यह दलील भी वाजिब है कि हम महासभा के सेवकों को तो बिना दिक्कत के ही पूरे सौ टच उतरना चाहिए। यह बात तो स्वतःसिद्ध है कि हम सब कार्य-कारिणी समिति या प्रान्तिक समिति के पास किये हुए प्रस्तावों का अमल यंत्र या मशीन की तरह नियमित होकर नहीं करते।

इस लापर्वाही का एक कारण भी है। वह यह कि आज तक हमने बिना विचारे हाथ ऊंचे किये हैं, डर या शर्म अथवा लालच से हाथ ऊंचे उठाये हैं। लेकिन स्वतंत्रता चाहने वालों को ऐसी बातें शोभा नहीं देती। ऐसा मनुष्य तो अपने नापसंद प्रस्ताव के खिलाफ, अकेला होने पर भी, हाथ ऊंचा उठाता है और स्वतंत्र तंत्र में दूसरे लोग उसे धन्यवाद दे कर आदर की दृष्टि से देखते हैं। इसलिए हमें जो प्रस्ताव मंजूर न हो उसके खिलाफ चाहे हम अपनी आवाज भले ही उठावें, भले ही उस पर वाद विवाद करें; और जब उसमें 'नवनीत' दिखाई दे तभी उसे मंजूर करें। लेकिन एक बार स्वीकार कर लेने पर तो हमें मन-वचन और काया से उस पर डट रहना ही चाहिए। इस तरह के आदमी अगर हमें फी हजार एक भी मिलजायँ तो हम जरूर ही स्वराज्य स्थापित करने में समर्थ हो सकते हैं। इस हिसाब से हमें सारे हिन्दुस्तान में तीन लाख आदमियों की जरूरत है। और वे ऐसे हों कि जो महा-सभा के ठहरावों का खुद पूरी तरह अमल करके दूसरों से भी उनके पालन कराने का प्रयत्न करें। हां, इस श्रेणी के आदमी

हो तो बहुत गये हैं, लेकिन फिर भी मैं अच्छी तरह जानता हूं कि वे तीन लाख तो किसी हालत में नहीं हैं।

हां, आजतक तो हम सरकार से ही आशा रखते आये थे। हमारे प्रस्ताव उसके लिए होते थे, इसलिए उन प्रस्तावों के पास कर देने पर हमारे लिए करने का काम बहुत कम रह जाता था। लेकिन गये बारह महीनों में हमने एक ही उद्योग किया है, और वह यह कि खुद हमी कुछ काम करें।

अब भी वक्त चला नहीं गया है। अगर हम खूब मिहनत करें और जो जो प्रस्ताव पास हुए हैं उनका अमल करते चले जायँ तो मैं मानता हूं कि हम बहुत कुछ आगे बढ़ जायँगे।

हमारा बहुत सा काम तो विचार, कार्य-दक्षता और उद्यम के अभाव से रह जाता है। आलस्य का छोड़ना, कार्य-शक्ति का बढ़ाना और नियमबद्ध बनना ही हमारा एक आवश्यक कर्तव्य है। ये गुण तो प्रत्येक स्वराज्य-वादी में होना ही चाहिए!

(नवजीवन)

शादी में खादी

सिर्फ खादी ही पहनकर शादी करने में तो सबसे पहले पारसी जाति ने ही कदम बढ़ाया है। बंबई की महासभा-समिति के सभापति श्रीयुत लांबेगिया की शादी उस दिन बम्बई के कामा बाग में श्रीमती दीनबाई पटेल के साथ हुई। दूल्हा-दुलहिन दोनों खादी के ही पोशाक में थे। उन्हींके साथ साथ शादी करानेवाले पुरोहित ने भी खादी का जामा पहना था और मिहमानों से भी यह प्रार्थना की गई थी कि वे खादी के ही लिबास में पधारें। इसलिए मजलिस में खास कर खादी ही खादी दिखाई देती थी। इसी तरह और भी सब बातों में सादगी से काम लिया गया था। दूल्हा के पिता ने स्वराज्य फंड में ५००) दिये। इस तरह स्वदेशी और सादगी का अनुकरण सभी लोग करें तो कितना अच्छा हो! मैं आशा करता हूं कि इन दम्पति की दीर्घायु-कामना और इनके हाथों बहुत बड़ी देश-सेवा होने की भावना, मेरी ही तरह, प्रत्येक पाठक के हृदय में उत्पन्न होगी। (नवजीवन)

दर्शकों के लिए सुविधायें

आगामी महासभा में कितनी ही बातों में इतना फेर-बदल होने वाला है कि अगर लोग उसका मतलब ठीक ठीक न समझें तो या तो लोगों के ना-खुश होने की या बद-इन्तजामी होने की संभावना है। महासभा की सफलता का आधार जितना उसके कर्मचारियों पर और स्वयंसेवकों पर है उतना ही लोगों पर भी है। लोग अगर इन्तजाम को पसंद करें, नियमों का पालन करें तो काम ठीक तौर पर बन जायगा। पर अगर लोग ऐसा न करें तो फल अच्छा हो ही नहीं सकता। इस बार दर्शकों की संख्या की हद बांध दी गई है। एक तो यही बात कितने ही लोगों को पसंद नहीं हो रही है। फिर भी अगर लोग कुछ विचार करें तो इसकी आवश्यकता उन्हें तुरन्त ही मालूम हो सकती है। महासभा प्रजा का कार्य संचालन करने वाली संस्था है। अब अगर केवल कार्य-संचालन की विधि को ही देखने के लिए हजारों आदमी इकट्ठा होना चाहें तो उनकी व्यवस्था करना ही एक बड़े से बड़ा काम बन बैठे। इसलिए जब महासभा कार्य-सम्पादन अथवा कार्य-योजना करती हो तब उसके देखने की इच्छा अधिक लोगों को करनी ही न चाहिए।

इसका एक उपाय तो यह था कि दर्शक बिलकुल ही न लिये जायं। परन्तु अभी हालमें तो ऐसा नहीं हो सकता। किसी किसी के आने की सुविधा करना आवश्यक था। इसलिए अधिक से अधिक तीन हजार दर्शकों की व्यवस्था करने का प्रस्ताव स्वागत-समिति ने किया। अब यह विचार शेष रहा कि किस तरह के तीन हजार आदमी आ सकें। इसलिए फीस की शर्त रक्खी गई और स्वागत-समिति को यह अधिकार दिया गया कि कुछ प्रथम पंक्ति के लोगों को वह निमन्त्रित कर सके। इस प्रकार स्वागत-समिति ने भरसक हर तरह की सुविधा रखने का विचार किया है। जनता को उचित है कि वह इस मर्यादा को स्वीकार कर ले।

परन्तु जो बातें देखने-भालने की है, उन्हें सब कोई देख-भाल सकते हैं। हर रोज चार आना देने वाला आदमी महा-सभा की हद में तमाम दिन रह सकेगा। उसमें वह महासभा में होने वाला जल्सा, संगीत, व्याख्यान, इत्यादि में शरीक हो सकेगा। सिर्फ जितनी देर तक महासभा का काम चलना होगा उतने ही समय तक वह महासभा के मंडप में न जा सकेगा। महासभा के प्रत्येक वक्ता का भाषण भी वह सुन सकेगा। अत-एव चार आने में सबकी जिज्ञासा तृप्त हो सकेगी। मुझे तो यह आशा है कि इस बार कम से कम एक लाख आदमी महा-सभा के निमित्त एकत्र होंगे। और उनके संतोष के लायक उनकी ज्ञान-वृद्धि के लिए प्रबंध उनको यहां दिखाई देगा।

(नवजीवन)

बम्बई क्या कर सकती है ?

("नवजीवन" में श्री गांधीजी ने एक लेख लिखा है—"मुंबई शुं करशे?" उसमें आपने यह बताया है कि स्वराज्य की प्राप्ति के लिए इस मास में बम्बई-निवासी क्या क्या काम कर सकते हैं। उसका अन्तिम अंश यहां दिया जाता है—उप-सम्पादक)

"स्वराज्य की प्राप्ति और खिलाफत की रक्षा के लिए होने वाले युद्ध में थोड़े आदमियों से काम नहीं चलने का। उसके लिए तो हमें हजारों आदमियों की जरूरत है। अकेली बम्बई के ही द्वारा यदि हमें स्वराज्य प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त करनी हो तो हमें एक लाख योद्धाओं की जरूरत है। फिर उसमें स्त्री और पुरुष दोनों ही क्यों न हों। सोलह साल से ले कर किसी भी उम्र के स्त्री-पुरुष काम दे सकते हैं। इतने योद्धाओं के खान-पान का प्रबन्ध कोई भी संस्था नहीं कर सकती। अगर महा-सभा यह काम अपने ऊपर ले तो हम हार जायंगे। इतने आदमियों का खर्च फी आदमी ॥) रोज के हिसाब से लगावें तो ५० हजार रुपये होते हैं। अगर हमारी लड़ाई एक महीने तक चले तो १५ लाख रुपये तो सिर्फ इतने आदमियों के भोजन-पान में ही खर्च हो जायं। अगर उनके कुटुम्ब के भरण-पोषण का प्रबन्ध भी करना पड़े तो उनके खर्च का अनुमान करना ही कठिन है। तो भी कम से कम मेरी बताई रकम की दुगुनी रकम तो समझ ही लीजिए।

इतना खर्च उठाने के लिए हम तैयार नहीं, और कदाचित् इतने रुपये बम्बई के लिए कठिन न हों तो भी हमें लाभ नहीं होने का; उलटा हार ही होगी। इस बात का कोई नियम न रहेगा कि आदमी कैसे होने चाहिए। इस भारतीय युद्ध के संचालन का भार उठाने वाले वे लोग चरित्र में, सचाई में, शूर-वीरता में, पहले दरजे के होने चाहिए। और इसकी कसौटी भी चरखा और रुई की क्रियायें हैं। जबतक योद्धाओं की समझ में यह बात न आवेगी कि धुनकने से या बुनने से हम अपना पेट पाल सकते हैं तबतक हम लाखों योद्धा प्राप्त कर ही नहीं सकेंगे।

अब हम इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि अगर बम्बई इस काम में सबके आगे होना चाहे तो उसे क्या करना चाहिए—

(१) इस मास के अन्ततक युद्ध करने की इच्छा रखने वाले प्रत्येक आदमी को धुनकने, सूत कातने और बुनने की क्रिया की जानकारी प्राप्त कर लेना चाहिए। उसे आखिर एक घंटा रोज सूत जरूर ही कातना चाहिए।

(२) इस महीने के अखीर तक बम्बई के बाजारों का, मन्दिरों का, मसजिदों का नाटक-घरों का, दृश्य बदल जाना चाहिए और सब खादीमय दिखाई देना चाहिए।

(४) बम्बई के स्त्री-पुरुषों को अपना फुरसत का समय धुनकने, सूत कातने या बुनने में लगाना चाहिए।

(५) बम्बई के शहरातियों के मन में अब भी मार-पीट पर कुछ विश्वास रह गया हो तो उसे छोड़ देना चाहिए।

(६) बम्बई के हिन्दू-मुसल्मानों में अब भी कुछ अनबन हो, कुछ मैल हो तो वह निकल जाना चाहिए।

इतना काम अगर इस मास के अन्त तक हो जाय तो नवम्बर में बम्बई बड़े पैमाने में कानून का शान्ति-पूर्वक भंग शुरू कर सकती है।

युवराज के बम्बई उतरने की तारीख १७ नवम्बर है। क्या उसके पहले बम्बई अपनी शक्ति का चमत्कार दिखा सकेगी? बम्बई जब ऊपर लिखी आसान शर्तों का पालन कर दिखावेगी तभी वह युद्ध का आरम्भ कर सकती है; उसके पहले नहीं। जो प्रान्त ऐसा कर दिखावेगा वही सविनय भंग शुरू कर सकता है।

सम्मान वृद्धि

उपाधियों की सूची रोज ब रोज बढ़ती ही जा रही है। एक ओर जहां हम सरकार के दिये एक किस्म के खिताबों को छोड़ रहे हैं तहां दूसरी तरह के खिताब, और सच्चे खिताब, पा रहे हैं। अभी हाल ही श्रीयुत गंगाधर राव देशपांडे इस सम्मान के लिए पसन्द किये गये हैं। उनके तथा और दूसरे कितने ही लोगों के जिन का मैं अनुमान कर सकता हूं, नाम देख कर मुझे यकीन होता है कि हां, विजय नजदीक आ रही है। बस, हमें सिर्फ गाड़ियों की बौछार के सामने स्थिर भर रहना चाहिए। अगर हम सरकार के वारण्ट आते ही बिना शोरोगुल, बिना धूमधाम और बिना क्रोध के सरकार के हवाले हो जाया करें तो हमें शीघ्र सफलता मिलने का निश्चय हो सकता है, मेरे पास मित्रों के लगातार ऐसे पत्र आ रहे हैं कि इस तरह अगर तमाम नेता लोग पकड़ लिये जायं तो फिर क्या होगा? उनका यह सवाल करना चाहे स्वराज्य के लिए उनकी अयोग्यता न प्रकट करता हो, पर उसके प्रति उनका अविश्वास अवश्य प्रकट करता है। अगर सब अगुआ लोग मर जायं तो क्या हो? हमारी स्वराज्य की योग्यता तभी दिखाई देगी जब हम मृत्यु अथवा कैद के कारण अपने नेताओं के हमारे पास न रहने पर भी बराबर काम करते रहें। नेताओं के जेल में रहने की स्मृति निश्चय ही एक आर का काम करेगी, जिससे हमारा कार्य अधिक तेजी और नियम-बद्धता के साथ होगा। एक दूसरे मित्र ने, जिन्हें कि अफवाह के अनुसार १ ता० को मेरे न पकड़े जाने पर निराश होना पड़ा है, स्वयं अपने और अपने कार्य के विषय में बड़ा जबरदस्त विश्वास प्रकट किया है। हमें तो अब अपने ही पांव पर खड़ा होना चाहिए—सो भी बिना किसीके सहारे; ठीक उसी तरह जिस तरह हम बिना किसी बनावटी इमदाद के, अपनी सांस लेते और छोड़ते हैं। अगर करनाटक वैसा ही वीर है जैसी कि मेरी धारणा उसके विषय में है, तो श्रीयुत गंगाधर राव देशपांडे की गिरफ्तारी का और उनके जेल जाने का फल यह होना चाहिए कि विदेशी कपड़ों का पूरा बहिष्कार हो जाय और बहुत ज्यादा खादी तैयार होने लगे। करनाटक तबतक सन्तुष्ट नहीं हो सकता जबतक कि वह खुद अपने ही प्रयत्नों के द्वारा अपने जेल गये हुए तथा और आगे जाने वाले देशभक्तों को स्वतन्त्र न कर सके। (यंग इंडिया)

दूसरे नेता लोग

इस बात में प्रायः कुछ सन्देह नहीं है कि बम्बई-सरकार नेताओं की आजादी छीन लेने के अपने काम में एक ढंग के साथ निमग्न है। क्योंकि पीर तुराब अली शाह और पीर मुजद्दीद को गिरफ्तार कर के उसने दो ऐसे मुसलमानों को गिरफ्तार किया है जिनके प्रभाव से छोटे-बड़े सब लोगोंकी हिंसा-वृत्ति को रोकने का काम लिया जाता था। करनाटक में श्रीयुत देशपांडे के मुकाबले में किसी का प्रभाव नहीं है और उसका भी उपयोग शान्ति रक्षा के लिए होता था। इस पर कोई यह खयाल कर सकता है कि बम्बई-सरकार को अब अपनी नरमी पर शरम आने लगी और वह इस उपेक्षा की खामी को पूरा करने का उद्योग कर रही है। धारवाड़ के मामले का फैसला और सिन्ध और करनाटक की गिरफ्तारियां इसी बात को दिखलाती हैं कि बम्बई-सरकार लोगों को हिंसा के लिए निमन्त्रण सी दे रही है। लेकिन हमें यह उम्मीद करना चाहिए, कि वह बहुत देर के बाद जगी है। मालूम होता है कि देश अब इस बात को समझ गया है कि उसका हित किस बात में है और अब वह सरकार के हाथ का खिलौना न बन जायगा। जहां हमने हिन्दू-मुसलमान की एकता दृढ़ की, जहां जनता ने अहिंसा के सिद्धान्त को खूब सोच-समझकर बुद्धि पूर्वक अपना लिया और स्वदेशी का काम तरतीब के साथ होने लगा कि फिर सम्भवतः कोई हमको इसी साल स्वराज्य प्राप्त करने से नहीं रोक सकता। (यंग इंडिया)

महासभा के दर्शकों की फीस

पहला दरजा ५०००); दूसरा दरजा १०००); तीसरा दरजा ५००); चौथा दरजा १००); पांचवां दरजा (खास गुजरात में रहने वालों के लिए) ५०); गुजरात से बाहर रहने वालों के लिए २५).

स्त्रियों के लिए भी ऊपर लिखे अनुसार ही फीस रक्खी गई है किन्तु उनके लिए बैठने की व्यवस्था अलहदा करने का विचार है।

दर्शकों के नाम दर्ज करना शुरू हो गया है। जिस क्रम से दरख्वास्तें मिलती जायंगी उसी क्रम से दर्शकों के नाम दर्ज किये जायंगे और उसी क्रम से उनको टिकट भी भेजे जायंगे। नाम दर्ज किये हुए महाशयों में अगर कोई महाशय टिकट न लेंगे तो उनके बाद जिनका नाम दर्ज होगा उनको को मौका दिया जायगा।

दर्शकों के टिकटों के दर नियत कर दिये गये हैं। इसलिए मुमकिन है कि थोड़े ही समय में सब टिकट बिक जायं। इस लिए जिनको अपना नाम दर्ज कराना हो वे शीघ्र ही फार्म भरके भेज दें, जिससे पीछे उन्हें निराश न होना पड़े। फार्म राष्ट्रीय महा-सभा—कार्यालय, अहमदाबाद, से मिल सकेंगे। जिन्हें मंगाना हो उन्हें जवाब के लिए टिकट भी भेज देना चाहिए।

हिन्दी
नवजीवन
शुक्रवार, कार्तिक बदी ९ सं. १९७८.

कविवर की चौकी

शान्ति-निकेतन के प्राण कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने "मॉडर्न रिव्यू" (एक प्रसिद्ध अंग्रेजी मासिक पत्र) में असहयोग आंदोलन पर एक सुन्दर लेख लिखा है। लेख क्या, वह तो शब्द-चित्रों की एक मालिका ही है, जिसे केवल वेही चित्रित कर सकते हैं। वह लेख तो हुकूमत का, मानसिक परतन्त्रता का अथवा आशा या भय के कारण, किसी भी उठती हुई सनक के अन्ध-अनुकरण का जो कुछ नाम रक्खा जाय उसका एक खासा प्रभावशाली प्रतिकार ही है। उस लेख के द्वारा उन्होंने हम तमाम कार्य-कर्ताओं को मीठे तौर पर याद दिहानी की है कि हमें किसी भी काम में अधीर न होना चाहिए, न हमें किसी भी बात में दूसरों पर अपनी सत्ता का जरा भी रौब गांठना चाहिए, फिर हम चाहे कितने ही बड़े आदमी क्यों न हों। उनकी यह चेतावनी स्वागत करने योग्य है। कविवर हमें बड़ी सरगर्मी के साथ कहते हैं कि हमें उन सब बातों को मानने से इंकार करना चाहिए जो हमको युक्ति-संगत न मालूम होती हों तथा जिन्हें हमारा हृदय ग्रहण न करता हो। अगर हमें स्वराज्य प्राप्त करना है तो हमें जो सत्य मालूम हो उसी पर दृढता से आरूढ होना चाहिए। फिर इसके लिए हमें कितना ही संकट क्यों न सहना पड़े। जिस सुधारक को यह देखकर कि मेरे उपदेश को लोग ग्रहण नहीं करते, सन्ताप होता हो उसे जंगल में कूच कर देना चाहिए। वहां वह ध्यान धारणा करे, राह देखे, और प्रार्थना करे।

हर आदमी इन बातों को हृदय से माने बिना नहीं रह सकता, और कविवर जो 'सत्य' और 'तर्क' की हिमायत कर रहे हैं उसके लिए वे अपने तमाम देश-भाइयों के धन्यवाद के पात्र हैं। इसमें कोई शक नहीं कि अगर हम अपनी बुद्धि और विचारशक्ति दूसरे के हवाले करदें तो हमारी आखरी हालत पहली हालत से भी अधिक खराब हो जायगी। और अगर मुझे मालूम हुआ कि देश ने मेरे कहे और किये का अनुकरण बिना विचारे और आंखें मूंद कर किया है तो मुझे बड़ा भारी दुःख होगा। मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि अत्याचारी के कोड़ों के सामने आत्मसमर्पण करना उतना हानिकारक नहीं है जितना कि अंधे की तरह किसी के प्रेम के वश हो जाना। पशुबल की धाक से जो गुलाम बन जाता है उसके उद्धार की तो बहुत कुछ आशा रहती है परन्तु जिसे प्रेम ने अन्धा बना दिया है उसके छुटकारे की कोई आशा नहीं। हां, दुर्बल को सबल बनाने के लिए प्रेम आवश्यक वस्तु है, परन्तु जब वह हमें दबाकर अपने विश्वास के प्रतिकूल चलाता है तब वह जुल्मी हो जाता है। मंत्र का महत्व जाने बिना उसका जप करने वाला मनुष्य नहीं, तोता है। इसलिए यह बड़ाही अच्छा हुआ कि कविवर ने उन सब लोगों को अपनी प्रतिकूल राय साहस के साथ प्रकट करने की सिफारिश की है, जो दूसरों के गुलाम ही कर चरखे की पुकार में अपना सुर मिलाते हैं। साथ ही उनका यह निबंध हम सब लोगों को एक चेतावनी का काम देता है, जो उन लोगों के प्रति अधीरता, असहन-शीलता दिखलाते हैं या गुस्से से पेश आते हैं जिनका मत हम से नहीं मिलता है। मैं तो कविवर को एक संत्री के तौर पर मानता हूं जो हमें धर्मान्धता, दीर्घसूत्रता, असहिष्णुता, अज्ञान और जड़ता तथा इसीकी जाति के दूसरे शत्रुओं के आक्रमण की सूचना देकर सावधान करते हैं।

परन्तु यद्यपि मैं कविवर की इन सब बातों से सहमत हूं जो उन्होंने असावधानी से अपनी विचार-शक्ति का त्याग न करने के विषय में कही हैं तथापि इससे यह हरगिज न समझना चाहिए कि मैं इस बात का भी कायल हूं कि देश में इस प्रकार का अंध अनुकरण बड़े पैमाने में हो रहा है। मैं बराबर जनता की तर्क-शक्ति की ही आराधना करता आ रहा हूं। और मैं कविवर को विश्वास दिलाता हूं कि देश को जो ऐसा विश्वास हो गया है कि चरखा हमारे लिए कामधुक है वह बड़े शंका-समाधान के बाद, खूब अच्छी तरह सोच-विचार करने पर हुआ है। और मुझे इस बात का यकीन अभी नहीं होता कि भारत के शिक्षित समाज ने चरखे के आधारभूत तत्व को अच्छी तरह समझ लिया है। कविवर अपने आस-पास के अज्ञान को देख कर कहीं भ्रम में न पड़ गये हों कि सभी दूर अन्धेर है। अच्छा हो कि कविवर अधिक गहरे उतरें और वे देखेंगे कि चरखा अन्ध-विश्वास के द्वारा नहीं, बल्कि तर्कसिद्ध आवश्यकता के बदौलत अपनाया गया है।

हां, बेशक मैं कविवर को और उसी तरह एक किंकर तक को कहता हूं कि आप एक धार्मिक विधि समझकर चरखा काना करें। जब देश में संग्राम छिड़ जाता है तब कवि अपनी वीणा को अलग रख देते हैं, वकील अपनी कानून की किताबों को बांधकर रख देते हैं और विद्यार्थी अपनी पाठ्य पुस्तकों को विश्रान्ति देते है। संग्राम का अंत होने पर ही कवि की वीणा में से सच्चा सुर निकलेगा और जब लोगों को आपसमें लड़ने का समय मिलेगा तब वकील भी फिर भले ही अपनी कानून की किताबें खोलें। परन्तु जब कि मकान में आग लग जाती है, तब घरके सब लोग बाहर दौड़ आते हैं और हर आदमी घड़ा हाथ में लेकर बुझाने की कोशिश करता है। जब कि मेरे चारों ओर सब लोग भूखों मर रहे हों तब मेरे लिए केवल एक ही काम है कि मैं उन भूखों के भोजन-पान का प्रबंध करूं। मेरा दृढ विश्वास हो चुका है कि इस भारत-रूपी घर में आग भभक रही है, क्योंकि उसके मनुष्यत्व की होली हो चुकी है, और यह मारे भूख के मर रहा है, क्योंकि इसके पास कोई काम नहीं जिससे पैसा पाकर वह अपना पेट भर सके। खुलना आज इसलिए भूखों नहीं मर रहा है कि लोग काम नहीं कर सकते, बल्कि इसलिए कि उनके पास कोई कामही नहीं है। दत्त-मंडल में लगातार यह चौथा अकाल है। उड़ीसा को तो अकाल ने अपना घर ही बना लिया है। हमारे ये बड़े बड़े शहर ही सारा भारत नहीं है, भारत तो अपने साढे सात लाख गावों में रहता है। और ये शहर उन गावों पर अपनी जिन्दगी बसर करते हैं। ये अपनी धन-दौलत कहीं दूसरे देशों से नहीं ले आते। शहर के लोग तो बस यूरोप, अमेरिका और जापान के बड़े बड़े व्यापारियों के और कम्पनियों के दलाल और कमिशन एजन्ट हैं। और पिछले २०० साल से विदेशियों द्वारा जो भारत का खून चूसा जा रहा है उसमें इन शहरों का भी हाथ है। और मेरा तो यह अनुभव-सिद्ध विश्वास है कि भारत-वर्ष दिन ब दिन कंगाल ही होता जा रहा है। उसके पैर तो प्रायः ठंढे हो पड़ गये हैं, और अगर अब भी हम न चेतेंगे तो वह गश खाकर गिर पड़ेगा

अतएव जो लोग भूखों मर रहे हैं और बेकार हैं उनका परमेश्वर तो योग्य काम और उससे मिलने वाला अनाज ही है। परमात्मा ने मनुष्य को अपने पेट के लिए मजदूरी करने को पैदा किया है। और उसने कह दिया है कि जो अपने हिस्से का काम किये बिना ही भोजन पाते हैं वे चोर हैं। देशके फी सदी कोई ८० आदमी विवश होकर साल भर में ६ माह ऐसे चोर का जीवन बिता रहे हैं। ऐसी स्थिति में अगर भारतवर्ष एक बड़ाभारी जेलखाना ही बन गया है तो इसमें कौन आश्चर्य की बात है? हिन्दुस्तान को अगर कोई दलील चरखे की तरफ खींच रही है तो वह है भूख। चरखे की पुकार दूसरी सब पुकारों से मधुर है। क्योंकि यह प्रेमकी पुकार है। और प्रेम ही स्वराज्य है। अगर आवश्यक शारीरिक परिश्रम से बुद्धि का विकास रुकता है तो चरखे पर किया हुआ कविवर का आक्षेप सत्य सिद्ध हो सकेगा। हमको भारत के उन लाखों, करोड़ों आदमियों की हालत पर अवश्य विचार करना चाहिए जिनका जीवन पशु से भी गया बीता हो गया है, जो बिलकुल मरणोन्मुख हो रहे हैं। यह चरखा ही उन लाखों देश-भाइयों और बहनों के लिए एक मात्र संजीवनी दवा है। हां, मुझसे यह सवाल किया जा सकता है कि जिसे अपना पेट पालने के लिए कोई काम करने की जरूरत नहीं है वह क्यों चरखा काते? उसका जवाब यह है कि वे जो कुछ खा रहे हैं वह उनका नहीं है। वे अपने देश-भाइयों को लूट कर अपना पेट भर रहे हैं। जरा गौर कीजिए, आपके पाकट की एक एक पाई कहां से आती है। तब आपको मेरे कथन की यथार्थता का अनुभव हो जायगा अगर हमारे देशके लाखों करोड़ों भाई अपनी बेबसी की बेकारी को दूर करके अपना समय किसी काम में बिताना न सीखें तो उनके लिए स्वराज्यका कोई अर्थ नहीं है। ऐसे स्वराज्य की प्राप्ति थोड़े ही समय के अन्दर हो सकती है, और उसका एक मात्र साधन चरखे का पुनर्जीवन ही है।

हां, मैं जरूर उन्नति चाहता हूं, स्वयं-निर्णय का भी भूखा हूं, और स्वतंत्रता भी मुझे अत्यंत प्रिय है; परन्तु यह सब मैं आत्मा के लिए चाहता हूं। इस विषय में मुझे सन्देह है कि फौलाद का जमाना चकमक के जमाने से आत्म विकास में बढ़ कर है। मैं तो इस विषय में तटस्थ हूं। हमें अपनी बुद्धि आदि सब शक्तियों का उपयोग केवल आत्मोन्नति के लिए ही करना है। मैं यह कल्पना बिना कठिनाई के कर सकता हूं कि आधुनिक सब शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो कर मनुष्य किसी लोकोपयोगी आविष्कार को कर सकता है। परन्तु यह कल्पना करने में तो मुझे और भी कम कठिनाई है कि एक आदमी जिसके हाथ में चकमक और लोहेका टुकड़ा है जिसका उपयोग वह अपने रास्तेपर रोशनी करने के लिए अथवा अपनी तोड़ेदार बंदूक के लिए करता हो, नित्य नये नये गीतों से ईश्वर की प्रार्थना कर रहा है और इस दुःखमय संसार को शांति और सुख के सन्देश सुना रहा है। चरखा कातने की हिमायत करना मानों परिश्रम के गौरव को मान्य करना है।

मैं यह दावे के साथ कहता हूं कि हमने चरखे को क्या खो दिया, अपना बांया फेफड़ा गंवा दिया है। इसीसे क्षय हम पर झपाटे से हमला कर रहा है। और ज्यों हमने चरखे को अपने घर में फिर से स्थान दिया कि इस महारोग से हमारा छुटकारा हो जायगा। कितनी ही बातें सब देश में सब लोगों को करनी पड़ती हैं। कुछ बातें ऐसी हैं जिन्हें सबको कहीं कहीं करना चाहिए। चरखा एक ऐसी वस्तु है जिसे सब लोगों को भारत में इस संक्रमण समय में तो हर हालत में कातना चाहिए और देश के बहुसंख्यक लोगों को सदा ही कातते रहना चाहिए।

विदेशी कपड़े के हमारे मोह ने ही चरखे को उसके सिंहासन से गिरा दिया। इसीलिए मैं विदेशी कपड़े के उपयोग को पाप समझता हूं। हां, यह मुझे स्वीकार है कि मैं अर्थ-शास्त्र को नीतिशास्त्र से पृथक् नहीं समझता। जिस अर्थशास्त्र से किसी व्यक्ति या देश की नैतिक उन्नति पर आघात पहुंचता हो वह नीति-विरुद्ध, अतएव पाप, है। इसी प्रकार जो अर्थशास्त्र एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र को अपना भक्ष्य बनाने की अनुमति देता हो वह भी अनीतियुक्त है। मजदूरों का खून चूस कर बनी वस्तुयें खरीदना और उनका उपभोग करना पाप है। अमेरिका से गेहूं मंगाकर खाना और अपने देश के अनाज के व्यापारियों को ग्राहकों के अभाव में भूखों मरने देना पाप है। इसी प्रकार यह जानते हुए कि अगर मैं यहीं का बुना हुआ कपड़ा पहनूंगा तो मेरा भी काम निकलेगा और मेरे उन भाइयों को भी अन्न और वस्त्र दोनों मिलेंगे, यहां के जुलाहों का बुना हुआ कपड़ा छोड़ कर अगर मैं विलायत की नई फैशन के कपड़े खरीदूं और पहनूं तो मैं पाप ही का भागी हूंगा। और अपने इस पाप का ज्ञान होते ही मुझे चाहिए कि मैं विदेशी कपड़ों को उसी समय आग लगादूं और अपने को शुद्ध कर लूं और अपने देश-भाइयों के हाथ की ही बुनी हुई मोटी खादी पहन कर सुख और सन्तोष मानूं। और जब मुझे मालूम हो कि मेरे भाई बहन चरखा कातना और बुनना भूल जानेपर फिर झट शुरू नहीं करते, तब मुझे चाहिए कि खुद मैं ही चरखा कातना शुरू कर दूं और उसको लोक-प्रिय बनाऊं।

कविवर का यह मत है कि जिन कपड़ों को जलाने के लिए मैं कह रहा हूं वे उनके नहीं, गरीबों के हैं। इस पर मैं कविवर को यह सूचना करने की धृष्टता करता हूं कि वे खुद उन्हींके होने चाहिए और हैं। अगर ये कपड़े गरीबों के और वस्त्रहीन लोगों के होते तो उन्होंने कभी के गरीबों को दे दिये होते। मैं तो अपने विदेशी कपड़ों को जला कर अपनी शर्म को जलाता हूं। नंगे भूखे लोगों को जिन कपड़ों की जरूरत नहीं है वे उन्हें दे कर उनका अपमान मैं किस तरह करूं? हां, जिस काम की उन्हें सख्त जरूरत है वह उन्हें दूं। मैं उनके महरबान बनने का पाप कैसे करूं? बल्कि ज्योंही मुझे मालूम हो कि मैंने उन्हें कंगाल बनाने में सहायता दी है त्योंही मैं उन्हें ऊंचा स्थान दूं और न तो उन्हें अपनी जूठन और न फटे-पुराने चिथड़े ही दूं, बल्कि अपने अच्छे से अच्छे भोजन में से खाना खिलाऊं और अपने पहनने के अच्छे से अच्छे कपड़े पहनाऊं और खुद उनके काम में उनका साथी होऊं।

असहयोग और स्वदेशी में कविवर को संकुचित वृत्ति की बू आती है। पर बात ऐसी नहीं है। मैंने संकोचवश अभीतक छतपर चढ़कर यह आवाज नहीं उठाई है कि असहयोग, अहिंसा और स्वदेशी का सन्देश तो सारे संसार के लिए है। और ऐसी पुकार करने पर भी जिस भूमि में उसका जन्म हुआ है वहीं अगर वह न फूले-फले तो घोषणा मिथ्या हो जाय। इस समय तो भारत के पास गुलामी, फाकेकशी और भयंकर रोगों के सिवा संसार को देने के लिए और है क्या? क्या हम अपने प्राचीन शास्त्र संसार के पास भेजें? पर उनके तो अनेक संस्करण छप चुके हैं और यह श्रद्धा-हीन मूर्ति-पूजक संसार उनकी ओर आंख उठा कर देखना भी नहीं चाहता। इसका कारण यह है कि खुद हम, उनके उत्तराधिकारी और रक्षक हो, उनके अनुसार अपना जीवन नहीं बना रहे हैं। इसलिए संसार को कुछ देने का विचार करने के पहले, हमारे पास कुछ संग्रह होना चाहिए। हमारा यह असहयोग न तो अंगरेजों के साथ है न पश्चिमी दुनिया के साथ है

हमारा असहयोग तो सिर्फ उस प्रथा के साथ-जिसे अंगरेजों ने इस देश में प्रचलित किया है, और ईश्वर-शून्य सभ्यता के साथ तथा उससे ही उत्पन्न होने वाले राक्षसी लोभ और उसके कारण गरीबों के मरण, के साथ है। हमारा असहयोग हमारी वृत्तियों को अन्तर्मुख करने का प्रयत्न है। हमारे अ-सहयोग का अर्थ है-अंगरेज अधिकारियों से उनकी शर्तोंपर सहयोग करने से इनकार करना। हम तो उन्हें कहते हैं-"आओ, हम जो शर्तें आपके सामने पेश करते हैं उनपर हम से सहयोग करो, इसमें हमारा, आपका और सारे संसार का भला है।" हमें स्थानभ्रष्ट होने से तो बिल्कुल इनकार ही करना चाहिए। डूबता हुआ आदमी दूसरों को कैसे बचा सकता है? दूसरों को बचाने के योग्य होने के लिए पहले खुद हमको अपने बचाव की कोशिश करनी चाहिए। भारत का राष्ट्रीयत्व स्वार्थी नहीं, उद्धत नहीं, और न नाशकारक ही है। वह तो पोषक है, धार्मिक है, अतएव जगत् के लिए कल्याणकारी है। किन्तु भारत वर्ष को दूसरों के लिए अपनी जान देने की उमंग रखने के पहले यह जानना चाहिए कि खुद जीवित कैसे रहे? जो चूहा विवश होकर बिल्ली के मुंह में जा फंसता है उसको अपने इस जबरदस्ती के आत्म-बलिदान का पुण्य कहीं मिल सकता है?

कविवर भविष्य के लिए जीवन धारण कर रहे हैं, और हम लोगों से भी ऐसा करने के लिए कहते हैं। यह उनकी स्वाभाविक काव्य-प्रतिभा के अनुकूल ही है। कविवर हमारी दृष्टि के सामने यह सुन्दर चित्र खड़ा करते है कि प्रभात-काल में हमेशा पक्षीगण आकाश में उड़ते उड़ते किलोलें करते हुए ईश-स्तवन कर रहे हैं। परन्तु वे पक्षी तो अगले दिन अपना दाना पा चुके थे और अगली रात को अपने पंखों को आराम दे चुके थे, इससे उनमें नया खून दौड़ने लगा था। और वे उड़ सके। परन्तु मैंने ऐसे पक्षियों को भी देखने का दुःख भोगा है जिनके पर इतने कमजोर थे कि बेचारे उन्हें फड़फड़ा तक नहीं सकते थे। भारतीय आकाश के नीचे रहनेवाला यह मनुष्य-प्राणी रात को सोने का तो महज स्वांग बनाता है और हमेशा उठते वक्त अगले दिन से भी ज्यादह कमजोर हो जाता है। करोड़ों लोग तो हमेशा ही या तो जागरण करते हैं या अचेत पड़े रहते हैं। इस दुःखमय स्थिति का वर्णन असम्भव है। यह तो केवल अनुभव से ही जानी जा सकती है। ऐसे व्यथित लोगों को मैं कबीर के भजन सुनाकर शान्ति न दिला सका। दुःख से व्याकुल भारत की करोड़ों सन्तान सिर्फ एक ही कविताकी चाह लगाये हुए है-शक्तिवर्धक अन्न। और वह उन्हें भेंट नहीं किया जा सकता। वह तो उन्हें खुद ही उपार्जन करना चाहिए। और वे उसे प्राप्त करने लायक मजदूरी ही मांगते हैं।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः॥
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः।
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर॥
सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः।
परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः॥
यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्बिषैः।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात्॥
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

इन श्लोकों में मेरे मत के अनुसार तो हिन्दुस्तान के लिए अनिवार्य्य यज्ञ के रूप में चरखा ही छिपा हुआ है। अगर हम सिर्फ 'आज'की ही चिन्ता रक्खेंगे तो 'कल'की चिन्ता करने वाला परमात्मा बैठा है।

(यंग इण्डिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

मोपला-उत्पात का अर्थ

स्काटलैंड से एक सज्जन मुझसे जवाब-तलब करते हैं कि अभीतक आपने अपने अखबार में मोपला-उत्पात के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट क्यों नहीं किये? इस का फल यह हुआ है कि इंग्लैंड में जो लोग भारतीय प्रश्नों के मनन करने के प्रेमी हैं उनका यह खयाल होता चला है कि हिन्दुस्तान में तो मुसलमानों की बादशाहत कायम हो गई है। हाँ, यह फटकार बिल्कुल ही बेजा नहीं है; लेकिन मैंने अपनी तरफ से अपना फर्ज अदा करने में किसी तरह मुंह नहीं मोड़ा है। मेरा तो इसमें कोई चारा ही नहीं रहा। मैंने खुद कालीकट जाकर इस उपद्रव की असलियत को जानना चाहा था; और मुझे विश्वास था कि मैं उसमें अवश्य सफल होता। लेकिन सरकार की इच्छा कुछ और ही थी। मुझे यह विश्वास करते दुःख होता है किन्तु यह मेरा विश्वास है-कि वहां के अधिकारी इस उपद्रव का अंत करना नहीं चाहते। और यह तो उन्हें अवश्य ही अभीष्ट नहीं है कि उस उपद्रव का अन्त शांति के साथ करने का श्रेय असहयोगियों को मिले। वे तो फिर एकबार यह दिखाने के लिए लालायित हो रहे हैं कि केवल अंगरेजी फौज ही हिन्दुस्तान में शान्ति कायम रख सकती है। इस दशा में मैं सरकार के इस फरमान की अवज्ञा करके कि आप मलाबार न जाइए, सरकार से मुठभेड़ न कर सका।

मैं वहां के हाकिमों की निस्बत अपना खयाल अच्छा बनाना पसन्द करता हूं। यह मानना तो मेरे स्वभाव के विरुद्ध है कि मनुष्य-जाति स्वभावतः नीच है। किन्तु नौकरशाही की नीचता के तो इतने सबूत मेरे आसपास हैं कि वह अपना मतलब गांठने के लिए चाहे जो कर बैठने में कभी न हिचकिचायगी। मेरे चम्पारन जाने के पहले, चम्पारन के किसानों पर किये गये अत्याचारों की जो कथायें मैंने सुनी थीं, उनपर मुझे विश्वास नहीं होता था। मेरा यह कथन अक्षरशः सत्य है। परन्तु जब मैं वहां पहुँचा तो मैंने देखा कि वहां की हालत जो मैंने सुनी थी उससे भी अधिक खराब है। मैं इस बात को नहीं मानता था कि जालियांवाला बाग की तरह बे-गुनाह लोग कहीं बिना ही चेतावनी दिये जानबूझ कर कत्ल किये जाते होंगे। मुझे यह विश्वास ही नहीं होता था कि मनुष्य भी कहीं जबरदस्ती पेट के बल पर रेंगाया जाता होगा। किन्तु जब मैं पंजाब पहुंचा तब वहां की हालत देखकर भौचक रह गया कि ओफ! इतना तो मैंने सुना भी नहीं था। और यह सब किया तो गया कहने के लिए शान्ति और व्यवस्था के नाम पर परन्तु दर-असल एक झूठी प्रतिष्ठा की, दोषमय शासनप्रणाली की, और अत्याचारिक व्यापार की जड़ मजबूत करने के लिए। हां, यह सच है कि बिहार के तत्कालीन गवर्नर छोटे लाट, तीव्र विरोध का सामना करते हुए भी, न्याय कर पाये थे; परन्तु

वास्तव में वह एक अपवाद ही था और उसके कारण भी अपवादात्मक ही थे। और इसीलिए मुझे मालूम होता है कि यह मोपला-उत्पात तो अपने पापों के बोझ के कारण रसातल को जाने वाली इस शासन-प्रणाली के लिए एक खासा आशीर्वाद ही है।

यह मोपला-उपद्रव हिन्दू और मुसलमानों की जांच के लिए एक कसौटी है। क्या इस आघात को सहते हुए हिन्दुओं की मित्रता टिक सकेगी? और क्या मुसलमान लोग मोपलाओं की करतूतों को अपने दिल के भीतरी से भीतरी हिस्से में भी पसंद कर सकते हैं? केवल समय ही असली बात को बता सकता है। किसी न टाली जा सकने वाली बात को विवश हो कर तात्विक रीति से या जबानी कुबूल करना हिन्दुओं की मित्रता का लक्षण नहीं है। हिन्दुओं के दिल में यह साहस और विश्वास होना चाहिए कि हम ऐसे धर्मान्धता से उत्पन्न होने वाले उत्पातों के होते हुए भी अपने धर्म्म की रक्षा कर सकते हैं। मोपलाओं की इस उन्मत्तता पर कोरी जबानी नापसन्दगी प्रकट करना ही मुसलमानों की मित्रता का लक्षण नहीं है। मोपलाओं ने जो लोगों को जबरदस्ती धर्मभ्रष्ट कर दिया है और लूट-मार की है उससे स्वभावतः ही मुसलमानों को शर्म आनी चाहिए, उनका सिर नीचा हो जाना चाहिए और उन्हें इस तरह चुपचाप और कारगर ढंग से काम करना चाहिए कि जिससे आयन्दा उनके कट्टर से कट्टर लोग भी ऐसा न कर सकें। मेरा तो यह मत हुआ है कि मोपलाओं की उन्मत्तता पर हिन्दू-समाज शान्त है और सुसंस्कृत मुसलमानों को इस बात पर सच्चे दिल से अफसोस हुआ है कि मोपलाओं ने उनके धर्म्म की आज्ञाओं का उल्लंघन किया।

मोपला-उत्पात से एक और शिक्षा मिलती है। वह यह कि प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-रक्षा करने की विद्या सिखाई जानी चाहिए। इसके लिए हमारे शरीर को प्रतीकार करने की शिक्षा देने के बजाय हमारे मन को ही अधिक तैयार करने की जरूरत है। अबतक हमारे मन को अपने को दीन समझने की ही शिक्षा मिलती रही है। बहादुरी शरीर का गुण नहीं है, वह तो आत्मा का गुण है। मैंने ऐसे कायरों को देखा है, जो बड़े मोटे-ताजे थे और ऐसे अद्वितीय साहसी लोगों को भी देखा है, जिनका बदन बिल्कुल दुबला-पतला था। मैंने बड़े लम्बे चौड़े, मोटे-ताजे और हट्टे-कट्टे अफ्रीका के जुलू लोगों को एक अंगरेज लड़के के सामने गऊ बन जाते और जहां अपनी ओर तमंचे का मुंह देखा कि दुम दबाते हुए देखा है। मैंने एमिली हाबहाउस नामकी एक बोअर-रमणी को देखा है जिसका शरीर लकवे से बेकार हो गया था; लेकिन उसमें हद दर्जे का साहस था। उस अकेली कुलीन स्त्री ने वीर बोअर-सेनानायकों के और उसी तरह बोअर-स्त्रियों के गिरते हुए जोश को जीवित रखा था। हमें अपने कमजोर से कमजोर आदमियों को भी अजर संकटों का सामना करने और अपने पराक्रम का परिचय देने की विद्या सिखानी चाहिए। अधिक निन्दनीय बात कौनसी थी?—नादान मोपला भाइयों की धर्मान्धता, या उन हिन्दूभाइयों की कायरता, जिन्होंने बकरी बनकर कल्मा पढ़ लिया, चुटिया कटवाली और पजामा पहन लिया। कहीं मेरे कथन का उलटा अर्थ न लगा लीजिएगा। मैं तो हिन्दू और मुसलमान दोनों में यह शान्त साहस पैदा करना चाहता हूं कि बिना दूसरे की जानपर हाथ उठाये, खुद ही अपनी जान देने के लिए तैयार रहें। लेकिन अगर किसी में इतना साहस नहीं है तो उस हालत में मैं यह चाहता हूं कि कायर की तरह संकट से दुम दबा कर भागने की अपेक्षा, वह मरने और मारने की विद्या को प्राप्त करे। क्योंकि इस तरह कायरता दिखानेवाला आदमी, भागजाने पर भी, मानसिक हिंसा करता है। उसके भाग जाने का कारण यही है कि मारने का कर्म करते हुए उसमें मरने का साहस नहीं था।

इस मोपला-उत्पात से हमें एक और भी सबक मिलता है। हमें अपने देश की किसी भी जाति या समाज को गहरे अन्धकार में न रहने दें और न हम अपने को उसके पंजे में न फंसने देने की ही उम्मीद करें। हमारे अंगरेज 'भाग्य-विधाताओं' का तो मोपला लोगों के सभ्य नागरिक बनने में, सहिष्णुता धारण करने में और इस्लाम का रहस्य समझने में कोई हित नहीं था; परन्तु हमने भी अपने इन अज्ञान देश-भाइयों की ओर सदियों से ध्यान नहीं दिया। हमारे हृदय में अभी इतना प्रेम जाग्रत नहीं हुआ है कि जिससे हम कहीं भी किसी को दयालुता की आवश्यकता के विषय में अज्ञान, या बिना किसी अपराध के अन्न-वस्त्रहीन न देखें। अगर हम समय पर ही न जगे तो हमें तमाम छोटी छोटी दबी हुई जातियों में ऐसा ही दुःखान्त नाटक दिखाई देगा। इस वर्तमान जाग्रति का असर तमाम जातियों पर हो रहा है। अगर हम अपने किये का प्रायश्चित्त न करें और उनके साथ पूरा न्याय न करेंगे तो ये 'अछूत' और नीम वहशी कहलानेवाली जातियां अपने प्रति किये हमारे अत्याचारों की गाथा सारे संसार को सुनावेंगी।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

पत्र-प्रेषक महाशयों

आप हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, अंगरेजी इनमें से किसी भी भाषा में पत्र लिखें, परन्तु वह **सुवाच्य जरूर होना चाहिए**। अन्यथा उसका उत्तर मिलना कठिन होगा।

अंक न मिलने की शिकायत करने वाले सज्जनों को अपना **ग्राहक नम्बर** और पूरा पता—**डाकखाना, जिला, आदि**—साफ साफ लिखना चाहिए। नहीं तो हम उनकी शिकायत दूर करने में समर्थ न हो सकेंगे।

मनीआर्डरों के कूपन पर भी अपना **पूरा पता बिलकुल साफ साफ** लिखने की कृपा किया करें।

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

एजंटों के लिए सुविधायें

"हिन्दी नवजीवन" की एजन्सी के नियमों में कुछ परिवर्तन किया गया है। परिवर्तित नियमों में मुख्य दो नियम इस प्रकार हैं—

(१) ४० से अधिक प्रतियां मंगाने वालों को डाक या रेल-खर्चा न देना पड़ेगा।

(२) १०० से अधिक प्रतियां मंगाने वालों को सोल एजन्सी दी जा सकती है।

अधिक ब्यौरा जानना हो तो पत्र-व्यवहार कीजिए।

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में श्री-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का घर घर और गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

[illegible] घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, [illegible] पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और [illegible] प्रकाशित [illegible]

आशावाद

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका „ २)
एक प्रतिका „ -)।
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—कार्तिक व० १२, संवत् १९७८, शुक्रवार, तारीख २८ अक्टूबर, १९२१ ई० | अंक ११

टिप्पणियां

हमारी परराज्य-नीति

महा-सभा की कार्य्य-कारिणी समिति ने अपनी परराज्य-नीति से सम्बन्ध रखने वाले प्रस्ताव का जो मसविदा तैयार किया है और जगह जगह भेजा है उससे देश में कुछ कुतूहल और सनसनी फैल रही है। कुछ लोग तो कार्य्य-कारिणी समिति को इस पर गम्भीरता के साथ चर्चा करते हुए देखकर दांतों उंगली दबाते हैं। इससे यह जाना जाता है कि उनकी राय में भारत अभी स्वराज्य के योग्य नहीं है। अबतक मैं यह दिखलाने का प्रयत्न करता आ रहा हूं कि प्रत्येक राष्ट्र हमेशा ही स्वराज्य के लिए योग्य रहता है, या दूसरे ढंग से यों कहूं कि किसी भी राष्ट्र को किसी दूसरे राष्ट्र की मुहाफिजत या निगहबानी की जरूरत नहीं है। जब कि हम स्वराज्य स्थापित करने की तजवीज का प्रस्ताव कर रहे हैं तब निस्सन्देह हमारे लिए अपनी परराज्य-सम्बन्धी नीति का विचार और निर्णय करना अनिवार्य है। हां, निश्चय ही हम इस बात पर बाध्य हैं कि बाजाब्ता दुनिया को यह बतावें कि हम उसके साथ कैसा नाता रखना चाहते हैं। अगर हम अपने पड़ौसी राज्यों से निर्भय हैं, या अपने को शक्तिशाली देखकर भी हम उनके खिलाफ कोई बन्दिश नहीं करना चाहते हैं तो हमें यह बात जरूर उनके कान पर डालनी चाहिए। इसी तरह हम संसार को यह बताने के लिए भी बाध्य हैं कि हम अपने सिपाहियों को फ्रांस और मेसोपोटेमिया के मैदाने-जंग में भेजना चाहते हैं या नहीं। जिन जिन बातों का राष्ट्र से सम्बन्ध है उनके विषय में अपने विचारों को प्रकट करते हुए हमें किसी का डर रखने की क्या जरूरत है?

लुधियाना से एक सज्जन ने प्रश्नों की एक खासी माला ही मुझे भेजी है, जिससे यह पता चलता है कि जन-समाज का चित्त कितना क्षुब्ध हो रहा है। वे पूछते हैं—

(१) भारत की परराज्य-नीति का संचालन केवल भारत के ही हित को मद्देनजर रख कर किया जायगा या और किसी बात पर ध्यान रख कर?

दूसरी बातों की अपेक्षा स्वभावतः ही भारत के हित पर प्रधान रूप से दृष्टि रक्खी जायगी।

(२) इंग्लैंड अथवा दूसरे देशों के लिए लड़ाई लड़ने में क्या भारत के धन-जन का उपयोग होना चाहिए?

हां, अगर भारतवर्ष दूसरे देशों के साथ इस तरह उनकी तरफ से लड़ाई लड़ने की शर्त सुलहनामे में कर ले तो।

(३) क्या देश का कानून किसी भी जाति, भाषा या सम्प्रदाय-विशेष के विशेष हितों के अधीन माना जायगा?

हरगिज नहीं। पर अगर आज हम एक आजाद कौम होते तो तुर्कस्तान को अपने धन-जन के द्वारा अपने बस भर सहायता पहुँचाते। इसी तरह देश का कानून ऐसा बनाया जा सकता है, जिसके अनुसार हमारे पड़ोसी मित्र-राष्ट्रों को सहायता की जा सके।

(४) क्या किसी भी सरकार को किसी भी धर्म, जाति या श्रेणी की रक्षा का साधन-स्वरूप होना चाहिए?

स्वराज्य-सरकार का नाम तो तभी सार्थक हो सकता है जब वह भारत के प्रचलित धर्मों और उसमें बसने वाली जातियों की रक्षा करे।

(५) जब शास्त्र या शरीयत और देश की आवश्यकता में विरोध उत्पन्न हो तब निपटारा कैसे होगा?

सवाल बेतुका है। किसी समाज की या उसके धर्म की जो आवश्यकता है वही देश की आवश्यकता होगी।

(६) क्या जमीदारों में और उनकी रैयत में छत्तीस का ही सम्बन्ध रहना चाहिए?

स्वराज्य में उनका सम्बन्ध ऐसा नहीं रह सकेगा; बल्कि उलटा वे अधिक सुखी होंगे और एक से दूसरे को अधिक लाभ पहुंचेगा।

(७) क्या देश-भक्ति के लिए कोई शर्त होनी चाहिए, और अगर हो, तो कैसे?

(८) देश-भक्ति सदा ही ईश्वर-भक्ति से गौण है।

(यंग इंडिया)

मजिस्ट्रेट ने माफी मांगी

बुलन्दशहर के मजिस्ट्रेट को आखिर श्रीयुत त्यागी से माफी मांगनी पड़ी। उनके माफीनामे पर टिप्पणी करते हुए श्री-गांधीजी 'यंग इंडिया' में लिखते हैं—

"मजिस्ट्रेट के थप्पड लगवाने की घटना से एक बडे ही मार्के का सवाल पैदा होता है। क्या किसी भी सभ्य सरकार के मातहत ऐसा शख्स एक दिन भी मजिस्ट्रेट की जगह पर रह सकता था? क्या, मिसाल के तौर पर, इंगलिस्तान के लार्ड चीफ जस्टिस उस मुल्जिम पर हमला कर सकते जिसका मामला उनके इजलास में दरपेश है, और फिर भी अपने ऊंचे पद पर कायम रह पाते? अगर भारत-सरकार वाकई बे-कानून और बिल्कुल बे-जवाबदेह सरकार न होती तो मजिस्ट्रेट को अपने घर बैठ जाना पडता और एक मामूली मुजरिम की तरह उसका चालान किया गया होता। मुकदमे की पेशी के अपने ही इजलास में जारी रहते हुए किसी न्यायाधीश का मुल्जिम पर हमला करना कोई ऐसा-वैसा हमला नहीं है जो चलती कार्रवाई करके खतम किया जाय।

सहयोगियों के धीरज की भी कुछ हद होनी चाहिए। क्या मजिस्ट्रेट के राष्ट्र के प्रति किये इस अपराध से भारतीय मन्त्रियों के दिल पर कुछ भी असर नहीं होता? या क्या वे यह ख्याल करते हैं कि मजिस्ट्रेट से हमारे महकमे का कोई ताल्लुक नहीं, इस लिए हम जवाबदेह भी नहीं!

अ-सहयोगी का कर्तव्य तो सीधा-सादा है। सरकारी अधिकारी ऐसे जितने ही कानून और नीति के नियमों का भंग करें उतना ही अधिक हमको अपने कार्य में दृढ और निश्चयी होना चाहिए। हमारे दिल को तबतक तसल्ली नहीं हो सकती जबतक वह शासन-प्रणाली ही जड से न उखड जाय जिसके बदौलत ऐसे घोर अत्याचार हो सकते हैं।"

सहियों का तांता

कराची वाले प्रस्ताव के सम्बन्ध में जो घोषणा प्रकाशित की गई है उसपर सही के लिए देशबन्धु दास से ले कर कितने ही सज्जनों ने अपने नाम तारद्वारा मेरे पास भेजे हैं। परन्तु अब मैं उनको प्रकाशित करना अनावश्यक समझता हूँ। वह घोषणा सरकार को यह दिखलाने के लिए प्रकाशित की गई थी कि सरकार की नौकरी करना हराम समझने वाले अकेले मुसलमान उल्मालोग ही नहीं हैं, और अकेले अली-भाई तथा उनके साथी मुस्लिम लोगों ने ही कराची का प्रस्ताव पसन्द नहीं किया है। अगर सरकार ने अनुग्रह करके घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले लोगों को गिरफ्तार किया और उन्हें कैदखाने की हवा खिलाई तो और लोग भी उसपर सहियां करने के लिए तैयार हैं।

(यंग इंडिया)

आगामी बैठक

अखिल भारतवर्षीय महासभा समिति की चौथी बैठक, नवम्बर के प्रथम सप्ताह में, देहली में होने वाली है। वह हमारे इसी साल में सिद्ध होने वाले उद्देश्यों के सम्बन्ध में हमारे भाग्य का फैसला करीब करीब कर देगी। हमको ऐसा कार्य्य-क्रम रखना होगा जिसे अगर हम स्वीकृत कर लें तो जान को जोखों में डाल कर भी हम पूरा करें। मैं आशा कर रहा हूँ कि प्रत्येक सभासद अपने प्रान्त से प्रत्येक विषय की पूर्ण जानकारी लेकर आवेगा। मुझे यह भी आशा है कि प्रत्येक सदस्य कार्यक्रम के अनुसार अपने अपने हिस्से के काम का पूरा पक्का ब्योरा ले कर आवेगा। प्रत्येक सभासद के दिल में यह भावना जाग्रत रहे कि मैं जनता का और खासकर अपने मतदाताओं का प्रतिनिधि हूँ—सो भी इस तरह का कि जिसका दावा इन नयी कौन्सिलों के मेम्बर भी नहीं कर सकते। और अगर उन्हें जनता के प्रतिनिधि की हैसियत से इन अगले दो महीनों में अपने राष्ट्रीय ध्येय की सिद्धि के लिए कुछ कर दिखाना है तो अपनी जवाबदेही के अर्थ पर भी विचार कर लें।

(यंग इंडिया)

दिवाली

दिवाली अब नजदीक आगई है। उसकी तैयारी कैसे की जाय, यह मैं पहले एक दो बार बतला चुका हूं; लेकिन फिर भी आज उस पर कुछ लिखता हूं। दिवाली के लिए हमें पवित्र बनना चाहिए। चरखे की पूजा ही लक्ष्मी-पूजा है, अर्थात् हरएक घर में अच्छे से अच्छा चरखा दाखिल कर देना चाहिए। और उसमें से कुछ सूत तो हमें जरूर ही निकालना चाहिए। इसके लिए घर के सब आदमियों को मिलकर दिन भर चरखा कातना चाहिए। और उसमें से जो सूत निकले उसे हमें अपनी बहियों में देश के खाते जमा करना चाहिए।

बच्चों को तो दिवाली पर कोई न कोई नई चीज अवश्य ही मिलनी चाहिए। इसलिए हाथ से कते हुए सूत की खादी की गुडिया लडकियों को दी जायँ और खादी के सुन्दर बस्ते बालकों को दिये जायं। हाथ के सूत की रस्सियां बना कर वे बच्चों को रस्सा-खिंचाई का खेल खेलने के लिए देनी चाहिए। ऐसी खादी का एक आध कपडा तो जरूर ही बना लेना चाहिए। लेकिन हां, खादी को जरूरत के मुआफिक ही खर्च करना चाहिए।

अगर बच्चे पटाखे मांगे तो उनसे कहना चाहिए कि पटाखे चलाने के दिन तो स्वराज्य मिलने पर और फाकेकशी मिटने पर ही आ सकते हैं। जबतक देश से फाकेकशी मिट नहीं जाती तब-तक तो हम पटाखों के लिए अपना पैसा खर्च कर ही नहीं सकते। लेकिन हमें अपने यहां का मैलापन अवश्य दूर करना चाहिए। इसके लिए अबतक हमारे पास जितने भर परदेशी कपडे बच रहे हों उनको निकाल कर दिवाली के दिन उनकी एक खासी होली कर डालनी चाहिए, और इस तरह अपने मैल को जलता देख कर आनन्दित होना चाहिए।

लेकिन एक जैन-भाई लिखते हैं कि इस होली में बहुत से जीवजन्तु जल जाते हैं। इससे जो हिंसा हो रही है, वह देखी नहीं जा सकती। इससे तो अगर हम परदेशी कपडों को इकट्ठा कर रक्खें तो क्या बुरा? यह सवाल जैनियों की हालकी नजर से ठीक ही उठा है। छोटे से छोटा जन्तु भी हमारा भाई है, और उस पर दया करना हमारा धर्म है। यह अमर वाक्य है। लेकिन इतना ही कह कर हम चुप नहीं बैठ सकते। इतना होने पर भी हम चूल्हा तो रखते ही हैं, और मुर्दे भी जलाते हैं। जिस तरह नाश हिंसा का रूप है, उसी तरह उत्पत्ति भी हिंसा का रूप है। क्योंकि उत्पत्ति के सिवा नाश नहीं और नाश के बिना उत्पत्ति नहीं हो सकती। अपने किये का फल तो सब को भोगना ही पडता है। अगर यह सूत्र कुबूल कर लें कि परदेशी कपडों का व्यवहार त्याज्य है तो फिर उनके जलाने में तो बहुत ही थोडी हिंसा है और जब दो हिंसाओं में से किसी एक को पसंद करने का समय आता है, तब हमें थोडी से थोडी हिंसा कर के काम चलाना पडता है। अगर परदेशी कपडे इकट्ठे कर के एक तरफ डाल दिये जायं तो उनमें दीमक लग जायगी, और तब वहां नाश और उत्पत्ति की क्रिया इतनी तेजी के साथ होने लगेगी कि होली से जितने जीवों का नाश होता है उसके बनिस्बत इसमें कई गुना ज्यादा नाश होगा। किसी आदमी को भूखों मरने देने की अपेक्षा उसका तुरन्त नाश कर देने में कम हिंसा होती है। इसीलिए मैंने यह बतलाया था कि हमारे समागम में रहने वाले मनुष्य का अनाज-पानी बंद कर देना

हमारी लड़ाई के नियम के विरुद्ध है। लेकिन इस विषय में मैं इससे ज्यादा गहरा उतरना नहीं चाहता; क्योंकि इसकी चर्चा वक्त मिलने पर फिर कभी बढ़ा कर की जा सकेगी। अभी तो मैं इतना ही कहता हूं कि हरएक दृष्टि से परदेशी कपड़े जला देना कम से कम हिंसा है और यह हिन्दुस्तान के, अतएव संसार के, भले के लिए एक बहुत ही जरूरी क्रिया है।

लेकिन दिवाली के दिनों में मुसलमान क्या करें? यह तो हिन्दुओं का त्यौहार है। इसीलिए मैं मुसलमानों से कह देना चाहता हूं कि उन्हें भी इसमें दिलचस्पी लेनी चाहिए। इस त्यौहार में जो धर्म-विधि है वह तो हिन्दुओं की ही रहेगी; लेकिन यह हिन्दुओं के उत्सव का दिन है, इसलिए इसमें मुसलमान भी शरीक हों और इसका उपयोग जितने परिमाण में सारे देश के लिए किया जाता है उतने ही अंश में न सिर्फ उन्हीं को बल्कि सभी जातियों को उसमें शामिल होना चाहिए। मुसलमानी नये साल के दिन या पारसी नये वर्ष के दिन अथवा ईसाई नये बरस के दिन हमें इन सब धर्मवालों के लिए शुभ कामना करनी चाहिए और उस समय वे लोग जो सार्वजनिक उत्सव करें उसमें भाग लेना चाहिए। एक दूसरे के सुख-दुःख में शरीक होना तो हमारा काम ही है। इसीलिए मुझे उम्मीद है कि हिंदुओं की इस दिवाली के दिनों में सभी कौमें मिलकर स्वदेशी को हर तरह से अपना लेंगी।

(नवजीवन)

आत्मरक्षा का प्रश्न

बुलन्दशहर के श्रीयुत त्यागी के साहसयुक्त और स्पष्ट लेखी बयान पर टिप्पणी करते हुए श्री-गांधीजी 'यंग इंडिया' में लिखते हैं—

"मेरी राय में तो 'जबानबन्दी' से और 'खामोशी' का खिताब पाने से हमारा काम नहीं चल सकता। जब श्री० त्यागी को थप्पड़ लगाई गई तभी उनका यह कर्तव्य था कि वे अदालत में ठहरने से इनकार कर देते। उन्हें उसी समय उस मजिस्ट्रेट कहलाने वाले शख्स के इजलास में मामला आगे चलाने से इनकार कर देना चाहिए था। उन्हें बेधड़क वहां बैठ जाना चाहिए था और इस तरह दिखलाना चाहिए था कि वे अदालत की सत्ता को नहीं मानते। इसका फल शायद यह होता कि ज्यादा थप्पड़ पड़ते, ज्यादा सजा मिलती। परन्तु असहयोग का प्रयोग जब बलवान् के शस्त्र के तौर पर किया जाय तब उसका मर्म यही है कि अधिक कष्ट-सहन और जाती नुकसान कुबूल कर के अत्याचार के शिकार होने से अपने को बचाया जाय। इस आन्दोलन में अबतक यह मामूल रहा है कि सरकार का वारण्ट मिलने पर मुल्जिम अदालत में हाजिर हो; क्योंकि यह अन्देशा नहीं किया जाता था कि मजिस्ट्रेट लोग बुलन्दशहर के मजिस्ट्रेट की तरह पेश आवेंगे। लेकिन इस मजिस्ट्रेट के असाधारण व्यवहार के लिए जरूरत भी असाधारण उपाय की ही है।

अहिंसा-व्रत के मानी यह नहीं है कि हम अपने तेजोभ्रंश के काम में सहयोग करें। वह नहीं कहता कि हम पेट के बल रेंगें, या नाक रगड़ते हुए चलें, या 'यूनियन जैक' को सलाम करने जायें, या हाकिमों के इशारे पर कोई भी अपने को गिरानेवाला काम करें। बल्कि, इसके खिलाफ, हमारा व्रत तो हमसे यही कहता है कि चाहे हमें गोली ही क्यों न मार दी जाय पर हम हरगिज ऐसा न करें। अतएव जालियांवाला बाग के लोगों का यह कर्तव्य नहीं था कि जब गोलियां छोड़ी जा रही थीं तब वहां से भाग खड़े होते या मुंह तक फेरते। अगर अहिंसा का पैगाम उन तक पहुँच गया होता तो उनसे यह उम्मीद की जा सकती कि जब उन पर फायर शुरू हुआ तो वे अपनी छाती खुली कर के उसकी तरफ आगे बढ़ आते और यह विश्वास करते हुए कि हमारी यह मौत देश की आजादी के लिए है, अपने प्राण खुशी खुशी गवांते। अ-हिंसा तो जालिम की ताकत को कोई चीज नहीं समझती है और अपने जैसे के साथ उसी तरह पेश न आने के तथा अपनी टेक पर अड़े रहने के निश्चय के द्वारा उसे बेकार कर देती है। हम जनरल डायर के पंजे में इसलिए फंस गये कि हमने उस समय वैसा ही कर दिखाया जैसा कि वह हमसे कराना चाहता था। वह चाहता था कि उसकी गोलियों को देखकर हम रफू चक्कर हो जायं, वह चाहता था कि हम पेट के बल रेंगे और जमीन पर नाक रगड़ें। यह तो उस 'दहशत' के खेल का एक अंग था। जब हम हिम्मत बांध कर उसका मुकाबला करते हैं तब वह किसी भूत-प्रेत की तरह तुरन्त गायब हो जाता है। मुमकिन है कि सभी लोग इतने साहस का परिचय न दे सकें। परन्तु यह तो मुझे निश्चय है कि अगर हममें से कुछ लोग भी इतना साहस न रक्खें कि चट्टान की तरह अटल खड़े रहें, पर जरा भी हाथ न उठावें तो हमें इस साल स्वराज्य नहीं मिल सकता। जब जालिम की ताकत का जवाब नहीं मिलता तब वह खुद उसी पर उलट पड़ती है—ठीक उसी तरह जिस तरह कि अगर हवा में बड़ी ताकत और जोर के साथ हाथ घुमाया जाय तो खुद हाथ ही उखड़ जाता है।"

मदरास के जनाब याकूब हसन फिर से गिरफ्तार कर लिये गये हैं।

* * *

अली-भाइयों का मुकदमा कराची की दौरा-अदालत में शुरू हो गया है।

पत्र-प्रेषक महाशयो

आप हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, अंगरेजी इनमें से किसी भी भाषा में पत्र लिखें, परन्तु वह **सुवाच्य जरूर होना चाहिए**। अन्यथा उसका उत्तर मिलना कठिन होगा।

अंक न मिलने की शिकायत करने वाले सज्जनों को अपना **ग्राहक नम्बर** और पूरा पता—**डाकखाना, जिला, आदि**—साफ साफ लिखना चाहिए। नहीं तो हम उनकी शिकायत दूर करने में समर्थ न हो सकेंगे।

मनीआर्डरों के कूपन पर भी अपना **पूरा पता बिलकुल साफ साफ** लिखने की कृपा किया करें।

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में श्री-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

एजंटों के लिए सुविधायें

"हिन्दी नवजीवन" की एजेन्सी के नियमों में कुछ परिवर्तन किया गया है। परिवर्तित नियमों में मुख्य दो नियम इस प्रकार हैं—

(१) ४० से अधिक प्रतियां मंगाने वालों को डाक या रेल-खर्च न देना पड़ेगा।

(२) १०० से अधिक प्रतियां मंगाने वालों को सोल एजन्सी दी जा सकती है।

अधिक ब्योरा जानना हो तो पत्र-व्यवहार कीजिए।

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

आशावाद

आशावाद आस्तिकता है । सिर्फ नास्तिक ही निराशावादी हो सकता है । आशावादी ईश्वर का डर मानता है, विनय-पूर्वक अपना अन्तर-नाद सुनाता है, उसके अनुसार बरतता है और मानता है कि 'ईश्वर जो करता है वह अच्छे के ही लिए करता है ।'

निराशावादी कहता है कि 'मैं करता हूँ,' अगर सफलता न मिले तो अपने को बचा कर दूसरे सब लोगों के मत्थे दोष मढ़ता है, भ्रमवश कहता है कि 'किसे पता, ईश्वर है या नहीं' और खुद अपने को भला और दुनिया को बुरा मान कर कहता है कि मेरी किसीने कद्र नहीं की एवं अन्त को आत्मघात कर लेता है; और यदि न करे तो भी मुर्दे की तरह जीवन बिताता है ।

आशावादी प्रेम में मगन रहता है । किसी को अपना दुश्मन नहीं मानता । इससे वह निडर हो कर जंगलों में और गांवों में सैर करता है । भयानक जानवरों तथा ऐसे जानवरों जैसे मनुष्यों से भी वह नहीं डरता; क्योंकि उसकी आत्मा को न तो सांप काट सकता है और न पापी का खंजर ही छेद सकता है । शरीर की तो वह चिन्ता ही नहीं करता । क्योंकि वह तो काया को कांच की बोतल समझता है । वह जानता है कि एक न एक दिन तो यह फूटने ही वाली है । इसलिए वह उसकी रक्षा के निमित्त संसार को पीड़ित नहीं करता; वह न किसी को दिक ही करता है, न किसी की जान पर ही हाथ उठाता है। वह तो अपने हृदय में वीणा का मधुर गान निरन्तर सुनता है और आनन्द-सागर में डूबा रहता है ।

निराशावादी स्वयं रागद्वेष से भरपूर होता है । इसलिए वह हरएक को अपना दुश्मन मानता है और हरएक से डरता है । अन्तर-नाद तो उसके होता ही नहीं । वह तो मधु-मक्खियों की तरह इधर उधर भिन-भिनाता हुआ बाहरी भोगों को भोग भोग कर रोज थकता है और रोज नया भोग खोजता है; और इस तरह प्रेम-रहित तथा अ-मित्र हो कर इस दुनिया से कूच कर देता है और उसके नाम की याद तक किसी को नहीं आती ।

मेरे विचार तो ऐसे हैं । अतएव यह बात किसी को न मानना चाहिए कि मैंने किसीसे यह कहा होगा---इस वर्ष स्वराज्य यदि न मिलेगा तो मैं आत्म-हत्या कर डालूंगा । विषय-संग से बचने के समय को छोड़ कर किसी भी मौके पर आत्म-हत्या करने को मैं महापाप और कायरता मानता हूँ । और यदि भारत-वर्ष स्वराज्य न प्राप्त करे तो भला मैं क्यों आत्महत्या करने लगा? हिन्दुस्तान को गरज हो तो स्वराज्य ले । स्वराज्य की कीमत हिन्दुस्तान को मालूम हो चुकी है, उसने स्वराज्य का स्वाद भी चख लिया है । अब, उसे गरज हो तो उसकी कीमत दे और स्वराज्य ले । दे या न दे, ले या न ले, इससे मुझे खुदकुशी करने की क्या जरूरत ?

पर, हां, मैंने एक बात अपने मित्रों से जरूर कही है । मुझसे यह पूछा गया था कि यदि जनवरी में स्वराज्य न मिला तो आप क्या करेंगे ? मैंने उत्तर दिया---'हिन्दुस्तान पर मेरा बहुत बड़ा भरोसा है---इतना कि मैं तो ३१ दिसम्बर तक यह माने बिना रही नहीं सकता कि भारत हर हालत में स्वराज्य प्राप्त कर लेगा । इस कारण मैं यह नहीं कह सकता कि जनवरी में मैं क्या करूँगा । मुझे यह अच्छा मालूम होता है कि जनवरी में मैं जनता से रुखसत ले कर किसी शान्त जगह में जा कर रहूँ या जनता के स्वराज्य-तंत्र के संगठन में यथाशक्ति हाथ-बटाऊं । अगर इस वर्ष किसी तरह स्वराज्य न प्राप्त हो सका तो अगले वर्ष में जीवित रहना मुझे अच्छा नहीं लगता । मेरी आत्मा को इतना क्लेश होने की सम्भावना है कि जिससे मेरा शरीर ही छूट जा सकता है---छूट जाय, यही मैं चाहूँगा ।

हिन्दुस्तान के दुःखों--आर्थिक और नैतिक दोनों--को मैंने इतना अनुभव किया है कि उसकी लपटों से अगर मैं जलकर भस्म नहीं हो गया हूं तो उसका कारण केवल यही है कि मैं जनता की दिखाई आशा के बल पर जी रहा हूँ । मैं तो इसी आशा, और केवल आशा के ही भरोसे घूमता-फिरता हूँ कि आज हम आत्मशुद्ध होंगे, आज हमारे करोड़ों भाई-बहनों की हड्डियों में कुछ मांस दिखाई देगा । मेरा खयाल है कि इस आशा को पूर्ण करने के लिए एक साल काफी है । सितम्बर में एक वर्ष की बात को मानने वाला अकेला मैं ही था ।

दिसम्बर में तो सब लोगों ने उस वचन को ग्रहण कर लिया । अब अगर महासभा अपनी प्रतिज्ञा को पूरा न करे तो फिर मुझ जैसे की क्या हालत होगी ? अगर महासभा दिवाला निकाल दे तो मेरा भी दिवाला निकला कहा जा सकता है । महासभा की आशा पर मैंने तो हुंडी कर दी है और अगर वह न सिकरे, तो फिर ? मैं तो यह चाहता हूँ कि स्वराज्य न मिलने से जो दुःख जनवरी की पहली तारीख को मुझे हो सकता है वही सबको हो । सब लोगों को धर्म और अनाज के अभाव का दर्द जरूर ही होना चाहिए ।'

इसपर एक मित्र ने मुझे पूछा--इसका अर्थ क्या कायरता नहीं है ? पर मुझे तो इसमें कायरता नहीं दिखाई देती; बल्कि करुणा प्रतिबिम्बित दिखाई देती है । इसमें मुझे व्यवहार-दृष्टि नजर आती है । जहां सेवा की कद्र नहीं वहां सेवा क्या करना? जिस जीवन से लाभ नहीं वहां जीना किस काम का ? जीर्ण और जर्जर शरीर को वसन्त-मालती आदि मात्रायें खिलाकर आकृति-मात्र को जबरदस्ती रख छोड़ने की अपेक्षा अगर वह शरीर गंगाजल पर रहता हुआ क्षीण हो जाय तो इसमें क्या बुराई है ? आजकल जहांतक मैं देखता हूँ तहांतक मेरे मुंह से दूसरी कोई बात ही नहीं निकलती---स्वदेशी का पालन करो और स्वराज्य लो। इसके सिवा मुझे दूसरा कुछ दिखाई ही न देता हो तो मेरा क्या बस ?

अब हम आखिरी सीढ़ी तक आ पहुंचे हैं । यहां खूब अच्छी तरह पैर जमाये बिना---शक्ति प्राप्त किये बिना आगे पैर उठाना मानों पीछे हटना है । मुझे याद है कि जब मैं सिंहगढ़ के पहाड़ पर चढ़ रहा था तब एक मुकाम ऐसा आया कि जहां से मेरा कदम आगे बढ़ता ही नहीं था । वहां दम लेकर, जोर आने पर ही, मैं आगे बढ़ सका ।

यही दशा हमारी है । स्वदेशी का पालन किये बिना हमें आगे बढ़ने के लिए बल प्राप्त हो ही नहीं सकता। अतएव, मेरा जीवित रहना, मेरा समाज में रहना, स्वदेशी के ही ऊपर अवलम्बित है ।

यह है मेरी चिकित्सा--यह है मेरी आज की मनोदशा । कल की बात तो परमात्मा जानता है ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

***

हिन्दी
नवजीवन
शुक्रवार, कार्तिक बदी १२, सं. १९७८.

शाहजादे की इज्जत करो

पाठकों, इस लेख के नाम को पढकर आश्चर्य न कीजिए। कल्पना कीजिए की शाहजादा हमारा सगा भाई है और किसी बडी जगह पर है, फर्ज कीजिए कि उसके निकटवर्ती लोग अपने नीच स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए उसको अपना औजार बना रहे हैं, और यह भी मान लीजिए कि वह मेरे निकटवर्ती लोगों के मध्य में है, मेरी आवाज वहां तक अच्छी तरह नहीं पहुंची है और वे पडौसी उसे मेरे घोष को ला रहे हैं, ऐसी दशा में क्या मैं इसी तरीके से उनकी अच्छी से अच्छी इज्जत नहीं कर सकता कि मैं स्वार्थ-साधन के निमित्त उनकी 'इज्जत' के लिए किये जाने वाले उन तमाम जलसों से अपने को अलहदा रक्खूं और अपनी तमाम बुद्धि और शक्ति लगा कर उनको यह बताऊं कि ये लोग किस तरह आपको अपनी कठ-पुतली बना रहे हैं? अपने पडोसियों के बिछाये जाल में उन्हें न फंसने देने के लिए अगर मैं अपनी आवाज न उठाऊं तो क्या मैं उनकी मुंह देखी कहने वाला न कहलाऊंगा?

मुझे इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि युवराज का भारत में आगमन इसी नीयत से कराया जा रहा है कि दुनिया में शोहरत फैले—"भारत में अंगरेजों का राज्य तो 'रामराज्य' है।" जब कि भारत में तीव्र असंतोष फैल रहा है, जब कि अपनी वर्तमान-शासन प्रणाली के प्रति भारत के जन-समाज की रग-रग मे अप्रीति भर गई है, जब कि खुलना और दत्त-मंडल में अकाल अपना भयंकर मुंह फैलाये हुए है, और जब कि मलाबार में सशस्त्र युद्ध ठन रहा है, तब अगर युवराज यहां केवल अपने आमोद-प्रमोद के लिए बुलाये जा रहे हों तो यह हमारा गहरा अपराध किया जा रहा है। जब कि लाखों लोग मुद्दत से फाकेकशी कर रहे हैं तब महज तमाशों और जल्सों में लाखों रुपया खर्च करना भारत का अपराध नहीं तो और क्या है? बम्बई की धारा-सभा ने सिर्फ युवराज के जल्सम के लिए आठ लाख रुपये पर बत्ती लगाने की मंजूरी दी है!

एक ओर तो युवराज आ रहे हैं और दूसरी ओर दमन की भीषण गर्जना हो रही है। सिन्ध में ५६ से भी ज्यादा असहयोगी जेल में सड रहे हैं। कुछ बडे से बडे बहादुर मुसलमान-भाइयों पर कराची में मुकदमा चल रहा है-इस बात पर कि वे कुछ खास किस्म की रायें रखते हैं। चटगांव के सब से भारी बैरिस्टर श्रीयुत सेन गुप्त और उनके १९ साथी अभी हाल ही जेल के मिहमान बनाये गये हैं। ऐसे ही 'जुर्म' के लिए एक मुसलमान पीर और तीन दूसरे निःस्वार्थ कार्य-कर्ता पहले ही से जेल की हवा खा रहे हैं। करनाटक के कितने ही पैंसवा जेल में ठूंस दिये गये हैं और अब उनके मुखिया पर भी मुकदमा दायर है—उसी अपराध पर—वही बात कहने पर, जिसे मैंने खुद इस पत्र (यंग इंडिया) में कई मर्तबा दोहराया है, जिसे कांग्रेस के अनुयायी पिछले साल भर से बराबर कहते आ रहे हैं। इसी तरह मध्य-प्रान्त के भी कई अगुआ लोगों की आजादी छीन ली गई है। वहां के अत्यन्त लोकप्रिय और निःस्वार्थ डाक्टर श्रीयुत परांजपे, जिन्हें वहां के लोग आम तौर पर बडे ही आदर की दृष्टि से देखते हैं, एक मामूली मुजरिम की तरह सख्त कैद की सजा भोग रहे हैं।

अ-सहयोगी कैदियों की यह मेरी नाम-माला इतने ही पर खतम नहीं हो जाती है। ये सजायें चाहे वास्तविक अपराधों का लक्षण हों, चाहे बढती हुई अप्रीति का 'पुरस्कार' हों, पर युवराज का आगमन तो कम से कम हद दर्जे का बे-मौका है। भारत के लोग नहीं चाहते कि ऐसी परिस्थिति के होते हुए युवराज भारत में पांव रक्खें। इस बात में कोई सन्देह नहीं। फिर उन्होंने अपने दिल की बात गोल-मोल ही नहीं रहने दी है। उन्होंने साफ साफ जाहिर कर दिया है कि जिस दिन युवराज बम्बई उतरें उस दिन बम्बई में हडताल की जाय। ऐसी अवस्था में, ऐसा जोर का विरोध होते हुए भी, युवराज को यहां लाना लोगों पर साफ साफ दबाव डालना है।

ऐसी परिस्थिति में हमें क्या करना चाहिए? युवराज का सम्मान करने के लिए जो जो तैयारियां हों उन सबका पूरा बहिष्कार करने की व्यवस्था हमको करनी चाहिए। इस उद्देश से किये जाने वाले दान-धर्म, समारम्भ आतिशबाजी आदि के उत्सवों में अधर्म समझ कर हमें न जाना चाहिए। हमें न तो अपने घर पर रोशनी करनी चाहिए और न अपने बाल-बच्चों को उसे देखने के लिए ही भेजना चाहिए। ऐसा करने के लिए हमें लाखों छोटी २ पुस्तकें छपा कर बांटनी चाहिएं और लोगों को बताना चाहिए कि इस विषय में उनका कर्त्तव्य क्या है। और, अगर बम्बई उस दिन एक 'ऊजड शहर' नजर आवे तो वही युवराज का सच्चा सम्मान होगा।

लेकिन हमें युवराज को और उनके व्यक्तित्व को अलहदा मानना चाहिए। मनुष्य की हैसियत से हमें युवराज के साथ कोई बैर-भाव नहीं। शायद वे तो यहां के भावों और दमन का कुछ भी हाल न जानते होंगे, और उसी तरह वे इस बात को भी न जानते होंगे कि पंजाब का घाव अभी बह ही रहा है और खिलाफत के मामले में हिन्दुस्तान के साथ की गई दगाबाजी हरएक हिन्दुस्तानी के दिल में अभी तक खटक रही है तथा जैसा कि सरकारने खुद ही कबूल किया है कि इन नई कौंसिलों के मेम्बरों का चुनाव बराय नाम के हुआ है और वे किसी तरह उन कुछ लाख आदमियों के भी प्रतिनिधि नहीं है जिनका नाम मतदाताओं की मालिका में दर्ज है। शाहजादे के इसम को किसी तरह खतरा पहुंचाना या पहुंचाने की कोशिश करना न सिर्फ हमारी बे-रहमी और बेदरदी ही होगी बल्कि खुद हमारे जात खास और शाहजादे दोनों के साथ दगाबाजी होगी; क्योंकि हमने तो खुद आप होकर हिंसा से सर्वथा अलग रहने का व्रत धारण किया है। शाहजादे को किसी तरह खतरा पहुंचाना या बे-आबरू करना इस-लाम और हिन्दुस्तान के साथ ऐसा जब्र करना है जैसा कि किसी भी अंगरेज ने नहीं किया है। वे तो इससे अच्छी बात जानते ही नहीं। और हम ऐसे अज्ञान का उज्र नहीं कर सकते। हमने तो अच्छी तरह से जान-बूझ कर खुदा और लोगों के सामने प्रतिज्ञा की है कि जिस शासन-प्रणाली को मटिया मेट करने के लिए हम जी-जान लड़ा रहे हैं उससे सम्बंध रखने वाले एक भी आदमी पर हम हाथ न उठावेंगे। इस लिए हमें हरतरह के खतरे से शाहजादे के इसम की रक्षा खुद अपने प्राणों की तरह करना चाहिए। यह हमारा कर्तव्य है। इसके लिए हमें बहुत सचेत और सावधान रहना चाहिए।

हमारे इतना प्रयत्न करने पर भी, यह हम जानते हैं कि कुछ लोग ऐसे निकल ही आवेंगे, जो किसी डर या आशा या

अपनी खुशी से उन तरह तरह के उत्सवों में शरीक होना चाहेंगे। सो यद्यपि इस गुस्ताख नौकरशाही के द्वारा हमारे चित्त को गहरा सन्ताप पहुंचाया जा रहा है तथापि हमको इस समय अधिक से अधिक संयम से काम लेना चाहिए। जिस प्रकार हमें अपने विचारों के अनुसार काम करने का हक है, उसी प्रकार उन लोगों को भी है यही हमारी स्वतंत्रता की कसौटी है। एक ओर तो हमें युवराज के जलूस से बिल्कुल अलहदा रह कर, अपना यह निश्चय दिखलाना चाहिए कि उससे हमारा कोई वास्ता नहीं है और दूसरी ओर हम उन लोगों के साथ सहिष्णुता का परिचय दें जो इस विषयमें हमसे मत-भेद रखते हों। तब हम अपने अंगीकृत कार्य्य की प्रगति बहुत ही कामिल तौर पर कर सकेंगे।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

अ-सहयोग का रहस्य

*इसमें कोई शक नहीं कि अ-सहयोग एक ऐसी तालीम है जिसके द्वारा लोक-मत विकसित और निश्चित होता जा रहा है। और ज्योंही उसका इतना संगठन हुआ कि उसके द्वारा मजबूती के साथ कदम बढ़ाया जा सके, बस त्योंही स्वराज्य को मौजूद समझिए। अशांत वायुमण्डल में लोकमत का संगठन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार वे लोग कि जिन्हें मोपलाओं ने जबरन् कल्मा पढ़ाया, मुसलमान नहीं माने जा सकते, उसी प्रकार जो लोग अपने को शौक से या दबाव से अ-सहयोगी कहते हैं, वे सच्चे अ-सहयोगी नहीं है। वे सहायक नहीं, उलटा बाधक हैं। अगर हम लोगों को जबरन् अपनी इच्छा के अनुसार चलाने लगें तो हमारा यह जुल्म होगा और वह नौकरशाही के अंगभूत मुट्ठी भर अंग्रेजों के जुल्म से भी निहायत खराब होगा। उनका भय तो एक मुट्ठीभर लोगों का भय है, जो प्रतिकार का सामना करते हुए अपने अस्तित्व के लिए लड़ते हैं। पर हमारा भय तो बहु-संख्यक लोगों का भय होगा और इसलिए पहले से ज्यादह बदतर और वाकई ज्यादा ईश्वर-शून्य होगा। अतएव हमें अपने आंदोलन में से हर किस्म के जब्र और दबाव को बिल्कुल हटा देना चाहिए। अगर हम केवल मुट्ठीभर ही हों, पर हों अ-सहयोग सिद्धांत के पक्के पाबंद, और दूसरे लोगों का मत हमारे मत के पक्ष में करते हुए हमें प्राण भी गवांना पड़े तो उस हालत में सचमुच हम से अपने कार्य्य की रक्षा बन पड़ेगी और उसी समय हम उसके प्रतिनिधि कहे जा सकेंगे। तो भी अगर हम दबाव डाल कर लोगों को अपनी सेना में दाखिल करें तो ऐसा करना मानों अपने कार्य्य को भ्रष्ट करना और ईश्वर को न मानना है। और अगर उस समय हम सफल होते हुए दिखाई दिये तो वह सफलता अधिक बुरी भांति की स्थापना की ही सफलता है।

अगर हम असहिष्णुता दिखाकर दूसरों को अपना मत प्रकट करने से रोकें या दबावें तो भी हमारा काम बिगड़े बिना न रहेगा। क्योंकि उस अवस्था में हम यह कभी न जान सकेंगे कि कौन तो हमारे साथ है और कौन खिलाफ है। इसलिए सफलता की सबसे अनिवार्य शर्त यही है कि हम लोगों को अपनी राय आजादी के साथ, दिल खोल कर, प्रकट करने के लिए उत्साहित करें। हमें अपने वर्तमान 'अधीश्वरों' से अगर कोई जरा भी सबक सीखना है तो वह यही है। उनके ताजीरात हिन्द में उन खयालात के लिए कड़ी से कड़ी सजायें रक्खी गई हैं जिन्हें वे पसन्द नहीं करते हैं। और उन्होंने हमारे कुछ बड़े से बड़े शरीफ देश-भाइयों को महज इसलिए गिरफ्तार किया है कि उन्होंने अपनी सच्ची राय प्रकट की है। हमारा यह असहयोग उस शासन-प्रणाली का खुल्लमखुल्ला पक्का प्रतीकार ही है। अतएव हम लोग इसी लड़ाई में जो कि हम मत-प्रकाशन की कैद के खिलाफ लड़ रहे हैं, खुद ही दूसरों को अपनी राय मानने पर मजबूर करने का अपराध न करें। इन विचारों के प्रकट करने का कारण यह है कि जब कोई सज्जन हमारे मत के प्रतिकूल अपनी राय प्रकट करते हैं तब उनका नाम प्रकाशित करने में मुझे बड़ा पसोपेश होता है। मैं उन्हें इस खयाल से प्रकट नहीं करता हूं कि इस से उन लोगों के चित्त में क्रोध होगा जो उन मतों को बुरा चाहते हैं। हमको इतना साहस और उदारता अवश्य रखनी चाहिए कि हम खुद अपने प्रति तथा अपने विषय में कही गई तमाम गन्दी से गन्दी बातों को सुन और पढ़ सकें। इससे हमें उनके विचारों को बदलने का मौका मिलता है। मैं यहां एक सज्जन की भेजी हुई एक ऐसी ही कांटेदार प्रश्न-मालिका उपस्थित करता हूं। प्रश्न हमारे प्रचलित आन्दोलन के सम्बन्ध में किये गये हैं और जन-समाज के सामने पेश किये जाने के योग्य हैं। लेखकने आरम्भ इस प्रकार किया है—आप इस बात को तसलीम करेंगे कि आपको मानने वाले और न मानने वाले दोनों आपकी राजनैतिक हलचल के उद्देश के सम्बन्ध में किसी निर्णय पर नहीं पहुंचे हैं। इस अवस्था में क्या आप नीचे लिखे प्रश्नों का उत्तर दे कर उनकी बुद्धि पर प्रकाश डालने की उदारता दिखावेंगे?

सवाल—क्या आप वाकई महात्मा हैं?

जवाब—मुझे तो नहीं मालूम होता कि मैं हूं। हां, यह मैं जरूर जानता हूं कि मैं ईश्वर की सृष्टि का एक विनम्र जीव हूं।

स०—अगर हां, तो क्या आप 'महात्मा' शब्द की परिभाषा बतावेंगे?

ज०—किसी महात्मा से मेरा परिचय नहीं, अतएव मैं उसका लक्षण नहीं बता सकता।

स०—अगर नहीं, तो क्या कभी आपने अपने अनुयायियों से कहा है कि 'मैं महात्मा नहीं हूं।'

ज०—ज्यों ज्यों मैं इसके खिलाफ आवाज उठाता हूं त्यों त्यों उसका प्रयोग अधिकाधिक ही किया जाता है।

स०—क्या साधारण जनता आप के 'आत्म-बल' को प्राप्त कर सकती है?

ज०—उसके पास तो वह पहले ही बहुतायत से है। एक दफा फरासीसी वैज्ञानिकों का एक दल ज्ञान की खोज में निकला और घूमता-फिरता भारत में पहुंचा। उन्होंने अपनी अपेक्षा के अनुसार उसे विद्वन्मण्डली में पाने का भगीरथ प्रयत्न किया; पर कृतकार्य्य न हुए। पर उन्हें अचानक वह एक नीच जाति के झोपड़े में मिल गया।

स०—आप कहते हैं कि यह 'यन्त्र-सामग्री' तो सभ्यता के लिए एक बला हो गई है। तब फिर आप रेलगाड़ी और मोटर में क्यों सफर करते हैं?

ज०—कुछ बातें ऐसी हैं जिनके फन्दे से, प्रयत्न करते हुए भी, एकबारगी नहीं छूट सकते। यह पार्थिव शरीर—मिट्टी का ढांचा—ही जिसमें कि मैं बन्द कर दिया गया हूं, मेरे जीवन के लिए एक बला है; परन्तु मैं उसको सहन करने के लिए मजबूर हूं, और उसका कतियल हो गया हूं जैसा कि ये महाशय जानते ही हैं—पर क्या लेखक को इस हकीकत इस बात में शक है कि 'इस पिछले महाभारत में जो नर-संहार हुआ उसके लिए यह 'यन्त्र-युग' ही जवाब देह है?' विषाक्त गैस तथा अन्य दूषित वस्तुओं ने एक इंच भी हमारी प्रगति नहीं की है।

स०—क्या यह बात सच है कि पहले आप रेलगाडी के तीसरे दरजे में मुसाफिरी करते थे और अब आप स्पेशल ट्रेनों और फर्स्ट क्लास में घूमते हैं?

ज०—अफसोस! इन महाशय को सही सही खबर मिल गई। स्पेशल ट्रेनों के लिए तो यह महात्मापन जवाबदेह है और सेकंड क्लास तक पहुंचने के इस अधःपात के लिए यह पार्थिव कलेवर।

स०—काउंट टालस्टाय को आप किस दृष्टि से देखते हैं?

ज०—मैं उनको अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखता हूं। अपने जीवन की कितनी ही बातों के लिए मैं उनका ऋणी हूं।

स०—आप स्वराज्य की व्याख्या क्यों नहीं करते? क्या आप यह नहीं समझते कि कम से कम अपने अनुयायियों के लिए तो आप इस शब्द की व्याख्या करने के लिए बाध्य हैं?

ज०—पहली बात तो यह कि यह शब्द ऐसा है कि जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। दूसरे, अगर प्रश्नकर्ता 'यंग इंडिया' की फाइल देखेंगे तो उसमें उनको उसकी असली परिभाषा मिल जायगी। तथापि मैं यहां और भी व्याख्या करने का प्रयत्न करता हूं। स्वराज्य का अर्थ है—मत प्रकट करने और कार्य्य करने की पूरी आजादी-बशर्ते कि दूसरे के मत-प्रकाशन के और कार्य्य करने के अधिकार में दस्तन्दाजी न की जाय। इसलिए इसके यह मानी है कि आमदनी और खर्च के तमाम जर्यों पर हिन्दुस्तान का पूरा कब्जा रहे और न दूसरे देश उसके काम में न वह उनके काम में दस्तन्दाजी कर सके।

स०—जब स्वराज्य प्राप्त हो जायगा तब आप क्या करेंगे?

ज०—मैं तो बड़ी लम्बी-चौड़ी छुट्टी लेना पसंद करूंगा, जो शायद समुचित भी हो।

स०—स्वराज्य प्राप्त हो जाने पर मुसलमानों के राजनैतिक और धार्मिक हितों की हिफाजत किस तरह की जायगी?

ज०—उनके लिए किसी तरह की हिफाजत की जरूरत नहीं रहेगी। क्योंकि हरएक हिन्दुस्तानी दूसरे हिन्दुस्तानी की तरह ही आजाद रहेगा और उस हालत में परस्पर सहिष्णुता, सम्मान और प्रेम होगा इसलिए परस्पर विश्वास भी होगा।

स०—क्या आप सचमुच यह मानते हैं कि ३१ अक्तूबर १९२१ ई० या इस साल के अंदर जो समय आप मुकर्रर कर दें, उस दिन सरकार अपना बोरिया-बिस्तरा बांध कर हिन्दुस्तान से रवाना हो जायगी?

ज०—सरकार तो एक प्रणाली है और मैं जरूर मानता हूं कि अगर भारत के हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, पारसी, ईसाई और यहूदी चाहें तो वह ३१ अक्तूबर के पहले भी मटियामेट हो सकती है। मैं तो अब भी यह आशा कर रहा हूं कि वे इस वर्ष के समाप्त होने के पहले ही इसका नाश कर देंगे। लेकिन उस नई शासन-प्रणाली में किसी भी अंगरेज बच्चे को, जो हिन्दुस्तान में उसका वफादार नौकर बन कर रहना चाहेगा, मुल्क हिन्दुस्तान छोड़ने की जरूरत नहीं।

स०—क्या आप ऐसा खयाल नहीं करते कि सरकार इतनी कमजोर है कि वह आपके आन्दोलन को नहीं रोक सकती?

ज०—हां, मैं जरूर ही ऐसा मानता हूँ और वह तो दिन पर दिन कमजोर होती जा रही है।

स०—अगर खुद आपके लड़के पर (ईश्वर न करे) राजद्रोह का नहीं, पर खून का मामला चलाया जाय, तो क्या आप उस को बिना ही सफाई के रहने देंगे?

ज०—हां, वाकई मुझे भरोसा है, कि ऐसा करने का साहस मुझमें है। अपने कितने ही प्रिय मित्रों को ऐसी सलाह देने की कठोरता मैंने की है। और इसके पहले ही मैंने आन्ध्र जिले के अपने एक प्रिय मित्र को सलाह दी है कि आप अपने दीवानी मुकदमे में हरगिज सफाई न दें-फिर आपकी चाहे तमाम कीमती जायदाद पर पानी क्यों न फिर जाय! यह दीवानी दावा उन पर महज राजनैतिक मत्सर के कारण दायर किया गया है।

स०—अगर कोई शख्स (मिसाल के तौर पर) आपके लड़के के कुछ रुपये धोखा देकर छीन ले और रफू-चक्कर हो जाय तो वह क्या करेगा?

ज०—मेरा लड़का, अगर एक अच्छा अ-सहयोगी है, तो निश्चय ही रुपये उस चोर के पास रहने देगा। नौ महीने पहले मौलाना शौकतअली के ६००) किसीने चुरा लिये। वे चुराने वाले शख्स को जानते भी थे। पर उन्होंने उसका खयाल ही छोड़ दिया।

स०—आपके सत्याग्रह का पंजाब पर क्या असर हुआ?

ज०—सर माइकेल ओडायर ने सत्याग्रह के सन्देश को पंजाब में नहीं पहुंचने दिया। इससे कुछ पंजाबी लोग उत्तेजित हो गये; और कुछ लोग अपने को काबू में न रख सके। सर माइकेल ओडायर तो उनसे भी ज्यादा भड़क उठे। और अपने सहायक के द्वारा बे-गुनाह लोगों को कटवा डाला। लेकिन सत्याग्रह तो एक बड़ी ताकतवर पुनर्जीवन देने वाली पौष्टिक दवा है और अब पंजाब में वही सजीवता दिखाई देती है जो भारत के दूसरे प्रान्तों में है और वहां के लोगों के तेज मिजाज होते हुए भी वह ऐसा आत्मसंयम दिखला रहा है, जो दूसरे प्रान्तों के लिए रश्क करने योग्य है।

स०—क्या आप वाकई मानते हैं कि वह अ-सहयोग शान्तिमय बना रहसकता है?

ज०—जरूर। सिन्ध, करनाटक और पूर्व-बंगाल में, गिरफ्तारियों के समय और बाद लोगों ने जो आश्चर्यजनक संयम दिखलाया है वह इस बात का सबूत है।

स०—हिन्दुओं को जबरन् मुसलमान बना लेने और उनके घरों में लूट-खसोट मचाने का क्या प्रभाव हिन्दू-मुसलमान की एकता पर पड़ा है?

ज०—इससे हिन्दुओं के धैर्य्य को गहरा धक्का पहुंचा है; परन्तु उन्होंने उसे सहन कर लिया है। उनके धीरज का ज्यों का त्यों बना रहना साबित करता है कि इस एकता का आधार ज्ञान है। मोपलाओं की इस धर्मान्धता को कोई मुसलमान अच्छा नहीं कहता।

स०—मलाबार में जो यह हिन्दू-मुसलमान एकता में बिगाड़ हुआ उसका वास्तविक कारण क्या है?

ज०—जहां उत्पात हुआ है वहां एकता का भंग नहीं हुआ। मोपलाओं ने आजतक कभी हिन्दुओं को अपना भाई न समझा होगा। उत्पात के कारण वही हैं जो १९१९ में पंजाब में थे। मलाबार में भी अभी हाल में अ-सहयोग का सन्देश बिल्कुल अनिश्चित रूप से पहुँच पाया था कि हाकिमों ने उसकी गति बन्द कर दी। मोपला लोग मलाबार के हिन्दुओं के साथ कभी खास तौरपर मेल-जोल से नहीं रहे। ये पहले भी उन्हें लूट-खसोट चुके हैं। इसलाम के सम्बन्ध में उनकी कल्पना बड़ी अपरिपक्व है। सरकार ने उन्हें बिल्कुल अंधेरे में रक्खा और न मुसलमानों ने और न हिन्दुओं ने उनकी हालत पर ध्यान दिया। वे जंगली और बहादुर परन्तु अज्ञान हैं। इससे उन्होंने खिलाफत के ध्येय को समझने में गलती कर दी और जंगलीपन एवं बेरहमी का यह धर्म-विरुद्ध काम कर बैठे। मोपलाओं के इस वर्तमान व्यवहार को देख कर इसलाम या भारत के शेष मुसलमानों की पहचान करना अनुचित है।

स०—क्या आप बता सकते हैं कि आपने जो खिलाफत को और पंजाब के अत्याचारों को एक-सूत्र में बांध दिया इसका क्या कारण है?

ज०—खिलाफत के अन्याय का जन्म पंजाब के अत्याचारों के पहले हुआ है और मैने उसे १९१८ में देहली की युद्ध परिषद् में अपनाया। (बडे लाट के नाम मेरी खुली-चिट्ठी देखिए) पंजाब के अन्याय को निश्चित स्वरूप मिलने के पहले ही १९१९ में देहली में अ-सहयोग का ख्याल उठा। जब यह साफ साफ पाया गया कि पंजाब के अत्याचारों के लिए भी खिलाफत की ही तरह तेज इलाज की जरूरत है तब दोनों की जोड मिला दी गई।

स०—क्या आप बता सकते है कि जब कि दूसरे मुसल्मानी देशों के मुसलमान उसकी चिन्ता करते हुए नहीं दिखाई देते तब भारत के ही मुसलमान क्यों जोश दिखाते हैं?

ज०—मैं यह बात नहीं जानता कि भारत के बाहर के मुसलमान खिलाफत की चिंता नहीं रखते; पर अगर वे नहीं करते हैं और भारतीय मुसल्मान करते हैं तो मैं तो इसे इस बात का सबूत समझता हूं कि भारत के मुसल्मानों में बाहरी मुसल्मानों की अपेक्षा धार्मिक चैतन्य का अधिक विकास हुआ है।

स०—जब कि तुर्कस्तान के सुलतानने मुसलमानों के तीर्थस्थानों की रक्षा की ही नहीं तब भी क्या वे खलीफा माने जाने का हक रखते हैं?

ज०—इस सवाल का जवाब देना एक हिन्दू के लिए कठिन ही है। तथापि अगर मैं उत्तर देने की धृष्टता करूं तो तुर्कों ने खिलाफत की रक्षा सैकडों वर्षों तक बडी दिलेरी के साथ की है और इसीलिए उसपर उनका अधिकार है। सुलतान ने चाहे गफलत की हो; पर तुर्कों ने नहीं की। खिलाफत-आंदोलन किसी व्यक्ति के लिए नहीं है; बल्कि एक भावना के लिए है, जो कि भौतिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक तीनों है। यदि तुर्क उसकी रक्षा नहीं कर सकते, अगर दुनिया के मुसलमान अपने मन-बल या सक्रिय सहानुभूति के द्वारा तुर्कों के कन्धे से कन्धा नहीं भिडाते हैं तो इससे दोनों की ऐसी हानि होगी की फिर उसका सुधार कभी न हो सकेगा। और अगर ऐसा हुआ तो यह सारे संसार के लिए एक घोर विपत्ति होगी। क्योंकि मेरा यह विश्वास है कि इसलाम भी दुनिया में अपना वैसा ही स्थान रखता है जैसा कि ईसाई धर्म तथा दूसरे मजहब रखते हैं। शूरता यही चाहती है कि इस विपत्ति के मौके पर तुर्कों के पक्ष की पुष्टि की जाय।

स०—क्या अर्थ-शास्त्र का यह नियम कि मनुष्य को अच्छीसे अच्छी और सस्ती से सस्ती चीजेंही खरीदना चाहिए, गलत है?

ज०—आधुनिक अर्थ-शास्त्रियों का बनाया यह एक अत्यन्त निष्ठुर सिद्धांत है। और न हम किसी ऐसे वाहियात विचार से मानवी व्यवहार चलातेही हैं। अंगरेज लोग कोयले की खानों पर (मिसाल के तौर पर) इटाली के सस्ते लोगों को छोड कर अधिक वेतन देकर अंगरेज को ही नौकर रखते हैं और यह ठीक भी है। इंग्लैंड में मजदूरी सस्ती करने की जराभी कोशिश करनेका परिणाम क्रांति ही होगा। किसी ज्यादा वेतन पाने वाले परन्तु वफादार नौकर को इसलिए निकाल देना कि दूसरा उससे अच्छाऔर सस्ता नौकर मिलसकता है, मेरी नजर में तो पाप है—फिर यह दूसरा नौकर चाहे उतना ही वफादार भी क्यों न हो। जो अर्थशास्त्र नीति और सदाचार का तथा मनुष्य की भावुकता का ख्याल नहीं करता वह एक ऐसे मोम के पुतले की तरह है जो दिखाई तो सजीव-सा देता है पर जिसमें जान का पता कोसों तक नहीं है। अब जब ऐसा आनबान का अवसर आ उपस्थित होता [illegible] ऐसे नये बनाये अर्थशास्त्र के नियम व्यवहार में तोड डाले [illegible] हैं और जो राष्ट्र या व्यक्ति उन्हें अपने व्यवहार के मूलभूत सिद्धांत मानते हैं, उनका सर्वनाश [illegible] बिना नहीं रहता। मुसलमान लोग अपनी धर्म-विधि के अनु[illegible] पकाये खाने को ज्यादा कीमत दे कर लेते हैं और हिन्दूलोग उस भोजन को पाने से इनकार कर देते हैं जो शुद्धता और पवित्रता के साथ न बनाया गया हो। दोनों के इस संयम में जरूर कुछ उच्चता और श्रेष्ठता है। ज्योंही हम इंग्लैंड और जापान का सस्ता कपडा खरीदने लगे, बस चौपट हो गये। अब हममें तभी जान आ सकती है जब हम खुद अपने ही पडोसियों के द्वारा उनकी झोंपडियो में तैयार हुए कपडे को खरीदने की धार्मिक आवश्यकता को समझें और उसकी कद्र करें।

स०—क्या 'पहरा' रखना अहिंसात्मक है?

ज०—अधिकांश जगह वह अवश्य ही शांतिमय रहा है। पहरा रखने में हिंसा की ओर प्रवृत्ति हो जाना बहुत ही आसान बात तो है; परन्तु स्वयं-सेवकों ने सब दूर बहुत ही संयम से काम लिया है।

स०—जब कि देश में कितने ही लोग अर्धनग्न रहकर अपना जीवन बिता रहे हैं और इस जाडे के ख्याल-मात्र से उनके बदन ठिठुरने लगते हैं, ऐसी दशा में भी जब आप कपडों की होलियां जलाते है तब क्या आप इसकी खूबी (आध्यात्मिक अथवा जो कोई हो) समझाते हैं?

ज०—हां, समझता हूं; क्यों कि मैं जानता हूं कि उनकी अर्द्धनग्नता का कारण है—हमारे भारतीय जीवन के इस मूलभूत सिद्धान्त की अक्षम्य अवहेलना कि "जिस प्रकार हम अपने ही घर का बनाया भोजन पाते हैं उसी प्रकार हमें हाथ का ही कता और बनाया कपडा भी पहनना चाहिए।" अगर मैं उन्हें अपने त्याग किये हुए विदेशी कपडे दूं तो इससे उनकी व्यथा की उम्र और भी बढ जायगी। लेकिन इन होलियों से उत्पन्न होनेवाली गरमी अगले जाडे तक ठहरेगी और अगर ये होलियां बराबर तेजी के साथ होती ही रहीं—यहां तक कि एक भी विदेशी कपडे का टुकडा जलने से बाकी न रहे, तो फिर वह गरमी चिरस्थायिनी हो जायगी और फिर आगे आने वाली हरएक जाडे की मौसम इस देश को अधिक ही अधिक बल-वीर्यवान् देखेगी।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

ग्राहक होनेवालों को सूचना

जिन स्थानों में "हिन्दी नवजीवन" की फुटकर बिक्री एजंटों के द्वारा होती है वहां के निवासियों को चाहिए कि वे वहीं से अंक प्राप्त कर लिया करें। वहां ग्राहक होकर डाकखाने से अंक मंगाने में उन्हें और हमें दोनों को असुविधा होती है। पर उस दशा में यदि ग्राहकों को अंक मिलने में गड़बड़ हो तो इसकी शिकायत वे कृपा करके हम से न करें।

मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेजिए। हमारे यहां वी. पी. का नियम नहीं है। एजन्सी के लिए नियम मंगाइए।

व्यवस्थापक—"हिन्दी नवजीवन"
अहमदाबाद.

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, [illegible], पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से [illegible] द्वारा प्रकाशित।

अगर अकेले जुलाहा-लोग जग जायें और केवल हाथ का ही कता हुआ सूत इस्तेमाल करें तो करोड़ों सूत कातने वालों को थोड़ा थोड़ा लाभ हो; इतना ही नहीं—बल्कि उनके द्वारा लाखों पिंजारे या धुनिया, लाखों लोढने वाले, और हजारों माडी देने-वालों का धंधा जागृत हो जाय। हजारों लुहार-बढ़ई को रोजी बढ़ जाय। सम्पूर्ण स्वदेशी का अर्थ यह है कि देश में केवल साठ करोड़ रुपये ही न आ जायें, बल्कि उनके द्वारा दूसरे करोड़ों रुपयों का उद्योग देश में फैले और देश की नष्ट हुई प्राचीन सुन्दर कलायें फिर से सजीव हों। आज तो हम केवल कलाहीन मजदूर ही हो रहे हैं।

इस दशा में यह बात तो हरकोई समझ सकता है कि बुनने वालों को इस तरफ झुका कर जनता की सेवा में लगाना बड़े ही महत्व का काम है। उनको स्वदेश-कार्य्य में शरीक करने का अच्छे से अच्छा उपाय तो यह है कि हम खुद ही बुनने का काम करने लगें। हम बुनने वाले अर्थात् जुलाहे भाइयों के पास अपनी गरज के लिए जायें, यह एक बात है और उन्हीं के भले के लिए जायें, यह दूसरी बात है। उनका भला तो हम उनके पेशे को सीखकर, उसके तत्व और क्रिया को समझ कर तथा यह बात जुलाहों को समझा कर ही कर सकते हैं।

(नवजीवन)

आखिर वही हुआ

चटगांव के नेता और ए. बी. रेलवे के हड़ताल-आन्दोलन के प्राण श्री० सेनगुप्त को उनके अठारह साथियों के साथ आखिर कैद की सजा हो ही गई। लेकिन यह बहुत दिनों के लिए नहीं। उन्हें और उनके साथियों को सिर्फ तीन तीन माह की सख्त कैद की सजा दी गई है। श्रीमती सेनगुप्त अपने पति के विषय में लिखती हैं कि इस खयाल से उन्हें बड़ा सुख होता था कि "मुझे सजा होगी"। जब मैं चटगांव गया था तब मुझे यह कहा गया था कि चटगांव के लोगों ने तो स्वराज्य प्रायः प्राप्त कर लिया है। यह 'प्रायः' शब्द बड़ा सन्देह [illegible] होता है। उसके एक मानी तो यह हो सकते हैं कि 'लगभग पूर्ण' और दूसरा 'कमसे कम' भी हो सकता है। [illegible] हम दोनों [illegible] में उसका प्रयोग कर सकते हैं। परंतु यदि चटगांव के लोगों को सचमुच ही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना हो तो उन्हें अपना (पहनने ओढ़नेका) तमाम कपड़ा खुद ही अपने हाथसे सूत कातकर अपने घर पर ही बुनना चाहिए और विदेशी कपड़ा बेचने वालों के दिलमें उनकी बिक्री का जरा भी मोह न रहने देना चाहिए। अदालतें सुनसान दिखाई दें और सरकारी पाठशालायें खाली हो जायें। अगर वे इतना कर सकें तो उन्हें 'सविनय कानून-भंग' शुरू करने की भी जरूरत न रहेगी। परन्तु शायद उनमें इतना एका और आत्म बल न हो तो भी यदि अधिकांश जनता स्वराज्य चाहती हो तो उसे थोड़े लोग रोक नहीं सकते; तथापि उन अधिकांश लोगों को यदि स्वराज्य प्राप्त करना हो तो उन्हें सविनय कानून-भंग के रास्ते कठिन तपस्या की अग्नि में होकर गुजरना ही होगा।

(यंग इंडिया)

'पीपल्स फेअर'

'पीपल्स फेअर' का अर्थ है 'मेला'। दो पारसी बहनें लिखती हैं कि श्रीमान् युवराज के आगमन के समय 'मेला' लगाया जाने वाला है। कुछ लोग कहते हैं कि उसमें हम लोग शरीक हो सकते हैं। वे कहते हैं कि 'हां यह तो ठीक है कि शाहजादा के सम्मान-स्वागत में हम शरीक न हों; पर म्युनिसिपालिटी के खर्च से जो आतिशबाजी, मेले आदि हों उनमें क्यों न जायें?' यह दलील ठीक नहीं है। क्योंकि अगर बात कायें को ही हो तो शाहजादे का जो सम्मान होने वाला है वह हमारे ही खर्च से होगा। सरकार जो रुपया खर्च करती है वह तो हमारा ही है। हमारी दलील तो यह है कि जो लोगों का रुपया उनकी सलाह से खर्च नहीं किया जाता है उससे किये जाने वाले मेलों में भी हम शरीक नहीं हो सकते। अगर कोई लुटेरा अपने खर्च से हमें भोज दे तो क्या उसमें हमें जाना चाहिए? इसी प्रकार शाहजादे की इज्जत और उसकी इज्जत के लिए लगाये जाने वाले मेले, इन दो बातों में मुझे तो फर्क नहीं दिखाई देता। यदि एक त्याग करने के लायक है, तो दोनों का ही त्याग करना चाहिए।

(नवजीवन)

राम और रहमान

एक सिक्ख भाई लिखते हैं कि "हां, स्वदेशी की बात तो ठीक है; परन्तु आप तो स्वयं ईश्वर के मानने वाले हैं। फिर आप ईश्वर का नाम पहले क्यों नहीं रखते? सब लोगों को अपने खुदा, ईश्वर, राम अथवा वे जिस नाम से अपने परमात्मा को पहचानते हों, उसका नाम जपने की सिफारिश आप क्यों नहीं करते?" हां, यह बात सच है, मैं ऐसी बात उनसे नहीं कहता हूं। परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि केवल शब्दों के उच्चारण मात्र से स्वर्ग नहीं मिल सकता। अङ्गीकार करने के लिए लियाकत दरकार है। हम जबतक विदेशी वस्त्र पहनते हैं तबतक, मेरा खयाल है कि, हम हिन्दुस्तान में रहकर ईश्वर का या खुदा का नाम जपने के लायक नहीं हो सकते। अगर एक आदमी दूसरे के गले पर छुरा फेरते हुए राम-नाम जपता है तो वह राम को लज्जित करता है। इसी प्रकार एक हिन्दुस्तानी के हाथ के कते सूत से बने कपड़े को छोड़कर सैकड़ों कोस दूर से अपने कपड़े मंगाना अपने भाई के गले पर मानों छुरा ही फेरना है। चरखा कातना एक ऐसी शान्तिमय विधि है कि अपने हाथ को सूत के साथ मिलाते हुए अपने हृदय को हम ईश्वर के नाम के साथ जोड़ सकते हैं। ईश्वर-भक्ति भी, ब्रह्मचर्य्य की तरह, स्वदेशी के साथ नहीं जोड़ी जा सकती। ईश्वरका नाम न लेने वाला मनुष्य भी अगर स्वदेशी का पालन करे तो वह तो उसका फल पाता ही है; पर अगर नास्तिक भी स्वदेशी का पालन करे तो वह भी उसका उतना ही फल प्राप्त कर सकता है और उसे देश को भी चखा सकता है। जिस मनुष्य के मन में ईश्वर का नाम है, जिसके हृदय में ईश्वर निवास करता है वह तो जरूर ही स्वयं भी बहुत लाभ उठाता है और देश को भी पहुंचाता है। स्वदेशी तो हमें ईश्वर की ओर ले जाने वाली शक्ति है; क्योंकि वह हमें ऊपर की ओर ले जा रही है। इस मित्र की सूचना पर जो मैंने यह इतना भी लिखा है वह यह बतलाने के लिए लिखा है कि अगर हम ईश्वर की आराधना न करते हों तो हम अपने युद्ध को धर्म्म-युद्ध न कह सकेंगे। हम लोग तो एक दूसरे के धर्म की रक्षा करने के हेतु से लड़ रहे हैं। हमें तो ईश्वर का नाम भूलना ही न चाहिए। उसकी रटन तो हमारे हृदय में निरंतर होती ही रहना चाहिए। हमारे हृदय में जितनी बार धड़कन होती है उतनी बार तो, अर्थात् निरन्तर, हमें उसका चिन्तन जरूर करना चाहिए। इसमें स्वदेशी अवश्य सहायभूत है; परन्तु दोनों बात एक नहीं हैं। स्वदेशी देह का धर्म्म है; ईश्वर स्तवन आत्मा का गुण है।

(नवजीवन)

अलाभइयों को सजा !

कराची वाले मुकदमे में श्री शंकराचार्य्य को छोड़ कर शेष छः सज्जनों को दो दो वर्ष की सख्त कैद की सजा दी गई।

प्रकाशन-तिथि में परिवर्तन

'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' दोनों का ताजा मजमून उसी सप्ताह में पाठकों को पहुंचा देने के उद्देश से अब "हिंदी "नवजीवन" शुक्रवार के बजाय हर रविवार को शाम का प्रकाशित हुआ करेगा।

इसी नियम के अनुसार अगला-तेरहवां-अंक आगामी १३ नवम्बर, रविवार, सायङ्काल को प्रकाशित होगा।

व्यवस्थापक "हिन्दी-नवजीवन"

हिन्दी

नवजीवन

शुक्रवार, कार्तिक सुदी ५, सं. १९७८.

फिर गुरखी हमला!

प्रायः ऐसा मालूम होता है कि कष्ट-सहन में, अतएव स्वराज्य-विजय में, बंगाल का पहला नम्बर होने वाला है। चांदपुर के हिंसाकाण्ड की यादगार अभी ज्यों की त्यों बनी हुई है। अब एक और वैसे ही भयङ्कर आक्रमण की खबर चटगांव से आई है। उसकी कथा जिला कांग्रेस कमिटी के मन्त्री बाबू प्रसन्न कुमार सेन के ही शब्दों में सुनिए—

" . चटगांव जिला कांग्रेस कमिटी के सभापति श्रीयुत सेनगुप्त और मन्त्री श्रीयुत मोहिमचन्द्र दास तथा दूसरे १६ सज्जन गत २ जुलाई को गिरफ्तार हुए। उनका अपराध यह था कि वे एक जलूस में बिना इजाजत लिये शामिल हुए। पुलिस कानून की धारा ३० के अनुसार स्थानीय हाकिमों ने जलूस के पहले ही एक नोटिस जारी कर दिया था। पूर्वोक्त सज्जनों का जलूस में शरीक होना उस नोटिस का मंशा के खिलाफ माना गया। मुल्जिमों ने अपनी सफाई नहीं दी। फलतः २० अक्तूबर को हरएक को तीन तीन मास की सख्त कैद की सजा दी गई। कस्बे में यह बात फैल गई कि उन भद्र कैदियों को उसी रात अलीपुर की सेन्ट्रल जेल को ले जाने वाले हैं। लोग ४ बजे के पहले से ही जेल के फाटक के पास जमा होने लगे। बैंड, भजन-मण्डली, और संकीर्तन-मण्डली भी आ दाखल हुई। शाम के वक्त सारे गांव में रोशनी की गई और आतिशबाजी छोड़ी गई। ये बातें लोगों ने बिना ही कांग्रेस-कमिटी की सूचना के कीं। ८ बजने के कुछ ही देर बाद कैदी लोग जेल के दरवाजे पर लाये गये और स्टेशन पर जाने के लिए पुलिस की गाड़ियों पर सवार कराये गये। उनके पीछे पीछे बैंड, भजन-मण्डली का जलूस निकला। मशालें जल रही थीं। जलूस शान्ति और नियम के साथ जा रहा था।

जलूस ज्यों ही रेल्वे स्टेशन के नजदीक पहुंचा, कोई १०० गुरखों की संगीनबन्द एक टोली, एक छिपे स्थान से, बाहर निकली। कुछ लोगों ने, जिनका पता आजतक नहीं लगा, रोशनी बुझा दी और गुरखा लोग 'मारो, मारो,' 'लगाओ, लगाओ', पुकारते हुए एक दम, बिना खबर किये, बिलकुल जंगलियों की तरह, उन बेगुनाह और शान्तिमय लोगों पर टूट पड़े। उन्होंने जिसे देखा उसे और जिधर देखा उधर हाथ साफ करना शुरू किया—बेचारे गाड़ीवान और उनके घोड़े भी नहीं बचे। वे अपनी संगीन तबतक बराबर लोगों को भोंकते रहे जबतक कि लोग स्टेशन से बहुत दूर नहीं निकल गये; और एक जगह से सीटी की आवाज आते ही बन्द हो गये। पता लगा है कि कोई १०० आदमियों के बदन पर जगह जगह घाव पहुंचे हैं, जिनमें से खून बहता था और कोई २०० आदमियों को ऐसी चोटें पहुंची हैं जिससे बड़ा दर्द होता था। जिला मजिस्ट्रेट मि० स्ट्रांग और एडिशनल जिला मजिस्ट्रेट मि० बरोज उस जगह पर मौजूद थे। अमन सभा का एक खास आदमी हमला करते हुए और जोर जोर से यह चिल्लाते हुए कि 'मारो, मारो,' देखा गया और जब यह चढ़ाई खतम हो गई तब यह जिला मजिस्ट्रेट के साथ देखा गया। स्टेशन के बाहर इस हमले के बाद एक योरपियन फौजी अफसर जो कि अनुमानतः गोरखाओं का कमान्डर था प्लेटफार्म में घुसा। पहले तो उसने यह दिखाया कि मानों कैदियों की रिजर्व गाड़ी की ओर जा रहा है; पर एकाएक बाईं ओर घूमा और जो लोग प्लैटफार्म टिकट ले कर गये थे उन्हें धक्का देने लगा। प्लेटफार्म खाली कर देने के लिए न तो किसी तरह की हिदायत ही दी गई और न ऐसा कहा ही गया। हमें ऐसा शक होता है कि ऐसा करने का उद्देश यह था कि एक दूसरे हमले के लिए परिस्थिति उत्पन्न की जाय। परन्तु लोग शान्ति-पूर्वक वहां से हट गये, और जब गुरखे प्लेटफार्म पर लाये गये तब उन्हें वहां कोई न मिला जिस पर वे हमला करते। ऐसी सनसनी की हालत में अगर लोग शान्त और खामोश न रहते तो प्लेट फार्म के भीतर और बाहर दोनों जगह कितनी ही जानें जाया गई होतीं। गोरखा लोग तो बावले होकर भीड़ में घुस पड़े थे। ऐसी दशा में उनके हथियार बन्द होते हुए भी उनके टुकड़े टुकड़े हो जाना एक आसान बात थी; परन्तु लोगों ने उनपर उलट कर हमला नहीं किया। यह बात भी ध्यान देने लायक है कि चांदपुर की दुःखान्त घटना २० मई १९२१ को हुई और उसीका दूसरा संस्करण २० अक्टूबर २१ को, उससे भी अधिक बीभत्स रूप में हुआ और सो भी ऐसे अवसर पर हुआ कि जिसके लिए कोई भी उज्र नहीं हो सकता।

स्थानीय कांग्रेस कमिटी, चटगांव असोसियेशन, और स्थानीय खिलाफत कमिटी की एक असाधारण आवश्यक बैठक २१ अक्तूबर को हुई और उसमें इस मामले की तहकीकात के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई। कमिटी की बैठकें प्रतिदिन जत्रामोहन सेन हाल में हो रही हैं और गवाहियां ली जा रही हैं। फोटोग्राफर लोग जख्मी लोगों की तस्वीरें खींचने के लिए तजवीज कर लिये गये हैं। अगर आप कृपा कर के हमें यह बतावेंगे कि इस विषय के हमारे कष्टों को दूर करने के लिए हमें आगे क्या कार्रवाई करनी चाहिए, तो हम आपके कृतज्ञ होंगे।

स्वदेशी-आन्दोलन पहले से भी अधिक जोरोशोर के साथ बढ़ाया जा रहा है। हम आशा करते हैं कि शीघ्र ही जो ५ फी-सदी विदेशी कपड़ा चटगांव में दिखाई देता है वह भी तिरोहित हो जायगा।

अबतक कांग्रेस-आन्दोलन के सम्बन्ध में ३० आदमियों को सजायें हो चुकी हैं और उनमें से २७ अभीतक जेल में हैं। *और छः का मामला जेर तजवीज है।"*

ये बातें इतनी सावधानी के साथ पेश की गई हैं कि इनके विषय में अत्युक्ति का संदेह करना कठिन है। परंतु वहां के हाकिमों पर भी इतनी अजहद संगदिली का आरोपण करना कठिन है जितना कि प्रसन्नबाबू के वर्णन से अनुमान होता है। यह तो साफ प्रकट है कि लोग उस समय खुशी मना रहे थे। ईश्वर को धन्यवाद है, अब कैदखानों का डर हमारे दिलों से निकल गया है। इसलिए लोगों ने अपने

घरों में रोशनी की और उन कैदियों को पहुंचाने के लिए जलूस निकाल कर स्टेशन पर गये। इसमें उनके दंगे-फसाद का कोई इरादा नहीं हो सकता। लेकिन मजिस्ट्रेट के लिए तो इतना भी हद से ज्यादह था। उसने निस्सन्देह यह सोचा कि इस खुशियां मनाने से मेरी दी सजाओं के प्रतिरोधक प्रभाव की प्रतिक्रिया हो रही है और आगे चल कर मुझे सारे चटगांव को एक जेलखाना बनाना पड़ेगा तब कहीं तमाम लोगों का समावेश उसमें हो सकेगा। इसलिए उसने गुरखों हमले से काम लिया। इसके सिवा दूसरी तरह से (पूर्वोक्त रिपोर्ट को सत्य मानते हुए) उस पशुता-पूर्ण व्यवहार की उपपत्ति नहीं लगाई जा सकती। जो उन बिल्कुल बे-गुनाह खुशियां मनाने वालों के साथ किया गया। और यह भी स्पष्ट ही है कि अमन-सभा कहलाने वाली संस्था के लोग नौकरशाही के हाथ की कठपुतली हो रहे हैं। यह समय निस्संदेह परीक्षा का समय है। लेकिन इसके लिए हमें क्या क्या सहन करना होगा इसका हिसाब तो हमने इस रास्ते पर कदम बढने के पहले ही कर लिया है। अब हमें अवश्य सहन करना चाहिए। हमें अग्नि-परीक्षा देनी होगी और उसमें से शुद्ध होकर निकलना होगा; तब हम अपने गन्तव्य स्थान पर पांव रखने पावेंगे। चटगांव के लोगों और नेताओंने ऐसे उद्वेग और संक्षोभ के समय जो उदाहरण-भूत आत्मसंयम और शांति धारण की उसके लिए वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। मैं उन्हें इसके सिवा दूसरी कोई सलाह नहीं दे सकता कि इससे कठिन सङ्कट उपस्थित होने पर भी वे अपने सीधे रास्ते पर आगे ही बढते रहें। हमारे पास तो क्षति-पूर्ति का केवल एक ही रास्ता है और वह यह कि ऐसे हर मौके पर अधिकाधिक साहस और अधिकाधिक आत्मसंयम दिखलावें—यहांतक कि आखिर को जालिम अपनी ही कोशिशों के बोझ से दबकर थक जायगा। चटगांव के असहयोगियों को अमन-सभा के या सरकारी आदमियों पर बिगड न जाना चाहिए। वे तो सिर्फ अपने स्वभाव के अनुसार काम करते हैं। असहयोगी का धर्म तो है न तो बदला लेना और न सिर ही झुकाना। उसे तो अपने चारों ओर तूफान के उठते हुए भी अचल सीधा खडा रहना चाहिए। अगर हम बडभागी हों तो आइए, सचाई के साथ गावें—

> "जबतक तेरा वरद हस्त है मेरे सिर पर हे प्रभुवर !
> निश्चय ही वह पार लगावेगा प्रति पल आगे रह कर।
> कठिन, कंटीले, मग से, डर मे, दुर्गम गिरि, दारुण दुख से—
> बांह पकड कर ले जावेगा तिमिर रात्रि मे वह सुख से"

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

टिप्पणियां

न्याय का नाटक (२)

['यंग इंडिया' में मौलाना महम्मद अली का कराची जेल से भेजा हुआ एक पत्र प्रकाशित हुआ है। उसके पढने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कराची के खलिकदिना हाल में 'न्याय का नाटक' किस प्रकार हो रहा है। स्थानाभाव से पत्र का अदालती कार्रवाई से सम्बन्ध रखने वाला अंश ही यहां दिया जाता है—उप-सम्पादक।]

"* * * * जब मैं जेल के बाहर था तब मुझे इतना समय और शान्ति नहीं मिलती थी कि मैं अपने भाषणों की रिपोर्टों की गलतियों को रोज दुरुस्त करता रहता। किन्तु चूंकि अब मुझे जेल के जीवन में अधिक फुरसत मिलती है और चूंकि इस कैदी के जीवन की तैयारी के लिए मनुष्य को अधिक शान्त और धीरजवान् बनने की आवश्यकता है, अब मैं इतना आजाद नहीं रहा कि ऐसी गलतियों को बिना ही दुरुस्त किये छोड दिया करूं, जैसा कि पहले था। किन्तु निश्चय ही यह कोई ऐसा कारण नहीं है कि जिससे लोगों को केवल छपे हुए शब्दों पर ही पूरा विश्वास रखना चाहिए। जब मैंने अदालत की कार्रवाई की चौथे दिन की अधूरी, नादुरुस्त और बिलकुल गलत-फहमी फैलाने वाली रिपोर्ट पढी, तब तो मुझे ऐसा ही मालूम होने लगा कि इससे कुछ लोगों के तो ख्यालात जरूर हमारे निस्बत उलटे हो जायंगे। और इसलिए जो खत मैंने तेरसी को 'बाम्बे क्रानिकल' की छापी उलट-पुलट बातों के विषयमें—जिसमें मेरे बयान की रिपोर्ट के दर्जनों पेराग्राफ और वाक्य नीचे के ऊपर और ऊपर के नीचे छाप दिये गये हैं,—लिखा था. उसमें मैंने उस परिस्थिति का भी कुछ जिक्र किया था जिसके कारण 'अदालत को ललकारने' की घटना हुई थी। किन्तु सचमुच हम "शरारत पर तुले" हुए नहीं थे। पहले तीन दिन तक तो अदालत की कार्रवाई शान्ति के साथ चलती रही और सरकारी वकील हम पर जितना 'सफाई' देने का दोष लगा सकते हैं उससे अधिक अदालत भी 'ललकार' का इल्जाम हम पर नहीं लगा सकती थी। हां, बखेडा तो मौलाना हुसेन अहमद साहब के बयानसे ही शुरू हुआ। अदालत ने एक काबिल दुभाषिये को बुलाने से इनकार किया। और जब मजिस्ट्रेट यह समझ कर कि दूसरे मुल्जिम के लिए दुभाषिये की जरूरत न होगी, मामला आगे चलाने लगे तब पूर्वोक्त घटना के कारण किचलू ने उर्दू में ही बोलने का आग्रह किया। दूसरे दिन तो अदालत का तमाम रंग ही बदल गया। यह बात किसे मालूम कि रात भर में इतना बडा भारी परिवर्तन हो गया होगा। 'गुस्ताखी' तो अदालत की ही थी। किचलू का बयान ठीक उसी तर्ज का था जैसा कि मेरा था। परन्तु वह पद पद पर रोका जाने लगा और मैजिस्ट्रेट भी उसे लिखना नहीं चाहते थे। फिर उन्होंने यह जिद पकडी कि शंकराचार्य को यदि बयान देना हो तो खडे होकर ही देना होगा। शंकराचार्यने धार्मिक कारण बतलाते हुए ऐसा करने से इनकार किया। जब बात यहां तक पहुंच गई तब मुझे मजिस्ट्रेट को दो बातें कहना पडीं—पर उनमें कहीं 'क्रोध' का नामोनिशा नहीं था।

मैंने उनसे यह पूछा कि क्या आप श्री शंकराचार्य जैसे धार्मिक पुरुष को भी जो कि तमाम हिन्दुओं में एक अति उच्च पद पर स्थित है, अदालत के सामने अपना सिर झुकाने के लिए जिद कर सकते हैं, जब कि ऐसा करने में उन्हें अपने मत के अनुसार धार्मिक आज्ञाओं का उल्लंघन करना पडता हो? मजिस्ट्रेट साहब पारसी हैं। इस जाति का मूल भारत के इतिहास में इस प्रकार मिलता है कि वह इस देश में अपनी मातृभूमि को छोडकर इसी लिए चली आई थी कि उसे यह भीति होने लगी थी कि कहीं हमें अपने विश्वास के अनुसार ईश्वरीय आज्ञाओं का उल्लंघन न करना पडे। मैंने मजिस्ट्रेट से पूछा—ब्रिटिश अदालत की प्रतिष्ठा पर तो आप की इतनी श्रद्धा है। क्या ईश्वर पर आपका कुछ भी विश्वास नहीं है? और पत्रों में इन सब बातों का कहा जिक्र नहीं। सिर्फ इतना ही छपा है कि महम्मदअलीने पूछा—"क्या आप खुदा को नहीं मानते"? मेरी इस नम्र बात का जवाब क्या मिला? एक झिडकी भरी आवाज में यह हुक्म कि "बैठ जाओ"। मैंने उसे मानने से इनकार तो किया, किन्तु यह मैंने कभी नहीं कहा कि "देखूं तो आप क्या कर सकते हैं"। मैंने तो यह कहा कि 'आप चाहें तो बल प्रयोग कर के मुझे बैठा सकते हैं।'

श्री. त्यागी का समर्थन

पिछली २७ अक्तूबर के 'यंग इंडिया' में श्री० त्यागी के समर्थन में काशी के विख्यात बाबू भगवानदासजी की एक विद्वत्तापूर्ण टिप्पणी प्रकाशित हुई है। उसमें बाबू साहब ने १६ अक्तूबर के 'यंग इंडिया' में श्रीयुत महावीरप्रसाद त्यागी के अदालत के बर्ताव पर की गई सम्पादकीय टिप्पणी को अधूरी खबरों के आधार पर लिखी गई बताते हुए श्री० त्यागी पर किये गये आक्षेपों का जवाब सिलसिलेवार दिया है। आप कहते हैं—

"१—जब कि हुकूमत का और पद का इतनी बुरी तरह से और बेशरमी के साथ उपयोग किया जाता है, तब सिर्फ उसके "खिलाफ आवाज" उठाने से कुछ फल न निकलता। तथापि श्री त्यागी ने उसका लेखी निषेध जरूर किया है जो अपने ढंग का गौरवपूर्ण और उस परिस्थिति में अत्युत्तम है।

२—श्री० त्यागी का यह प्रतीकार कि मैं अब न तो अदालत के और न मुकदमे की पैरवी करने वाले वकीलों के सवालों का जवाब दूंगा, केवल उस मॅजिस्ट्रेट के सामने मुकदमा चलाने से इनकार कर देनेके बनिस्बत अधिक प्रभावशाली और अत्यन्त गौरवपूर्ण मालूम होता है।

३—जहांतक खबरें मिली हैं उनपर से यह कहा जा सकता है कि श्री. त्यागी ने प्रेम या नम्रता के वशीभूत होकर मौन नहीं धारण किया था। मौन तो धारण किया भारत के उन अंगरेजी 'न्यायमन्दिरों' की तिरस्करणीय वृत्ति के प्रति तथा उस मजिस्ट्रेट के प्रति तिरस्कार प्रकट करने के लिए, जिसका बर्ताव एक मुन्सिफ की बनिस्बत एक झगड़ालू का सा था और जो ताजीरात हिन्द की दफा १०७ और ३५३ के अनुसार खासा जुर्म में शामिल हो सकता है। इसमें शक नहीं कि यह तिरस्कारयुक्त मौन ईसामसीह के या बुद्ध के उस प्रेममय या नम्रतायुक्त मौन की बराबरी तो नहीं कर सकता; किन्तु वह असहयोग के सिद्धान्त के खिलाफ भी नहीं मालूम होता; क्योंकि वह तो यही कहता है कि यह शासन-प्रणाली जितना अहिंसात्मक तिरस्कार बताया जा सके उस सबके योग्य है।

४—श्री. त्यागी ने भीति को छिपाने के लिए मौन नहीं धारण किया था। इससे अधिक बुरी बात क्या हो सकती है?

यह सच है कि जब देशमें एक तरफ सरकार की अयोग्यता के कारण स्त्रियों तथा पुरुषोंपर मोपलाओं के द्वारा भीषण अत्याचार हो रहे हैं ऐसी हालत में श्री. त्यागी के बर्ताव जैसी छोटीसी बातपर लम्बी-चौड़ी बहस करना अनुचित तो है; तथापि "यंग इंडिया" देशभर में बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है। ऐसी दशामें उस की सम्पादकीय टिप्पणियों में एक असहयोगी कार्यकर्ता के बर्तावपर कुछ विपरीत लिख जाय अथवा उसके सिर व्यर्थ दोष लग जाय तो यह दुर्भाग्य की बात होगी।

इसलिए 'यंगइंडिया' के संपादक महाशय से निवेदन है कि अब अधिक बातें मालूम हो गई हैं। अतएव वे अपने मत पर फिर से विचार करने की कृपा करें।"

इस पर श्री गांधीजी नीचे लिखा टिप्पणी करते हैं—"पाठकों को याद होगा कि श्री० त्यागी का लेखी बयान देखते ही यं. इं. के गतांक की टिप्पणी में उनके साथ कुछ अन्याय हुआ हो तो उसका परिमार्जन किया गया है। मैंने इस चेतावनी को इसलिए आवश्यक समझा कि मैं अपने अनुभव से यह जानताहूं कि ऐसा मौन हमारी कमजोरी काही परिणाम होता है। दुर्भाग्य से उसका प्रसार किसी एक ही शख्स तक खतम नहीं हो जाता है। यह कमजोरी तो हमारे राष्ट्रभरका दुर्गुण बन रही है। श्री० त्यागी के मामले का नाम तो इस दुर्गुण के एक ताजे उदाहरण के तौर पर आया है। मैं पहले बता चुका हूँ कि मोपलाओं के अत्याचार तो बुरे हई हैं; किन्तु उनके अत्याचारों के सामने दूसरों का आत्मसमर्पण कर देना इससे भी अधिक बुरा है। "हम तो जबरदस्ती मुसलमान बना दिये गये" यह रोना रोने के लिए भी वे जिंदा क्यों रहे? हमारे धर्म की रक्षा खुद हमारे सिवा और कौन कर सकता है? हरएक इन्सान को, फिर वह स्त्री हो या पुरुष, अपना रक्षक स्वयं ही बनना चाहिए। जिस परमात्मा ने हमें धर्म दिया है उसीने हमें उसकी रक्षा करने की शक्ति भी दी है। हरएक इन्सान को मारने की शक्ति नहीं होती; लेकिन मरने की शक्ति तो सब अंधे, लंगड़े, लूले और गूंगे तक को अवश्य होती है। उस मजिस्ट्रेट ने श्री० त्यागीपर जो कायर वार किया वह उनके पौरुष पर और अतएव धर्म पर ही आघात था। इसलिए उनको चाहिए था कि वे बेअदबी, गुस्ताखी, पाजीपन आदि कहलाने वाला ऐसा कोई कार्य करते जिससे उन्हें वह अधिक धप्पड़ें लगवाता और इस तरह वहां 'एक शांति-मय दृश्य खड़ा कर देते'। सच्चा असहयोग तो यही होता। लेकिन मैं श्री० त्यागी अथवा किसी दूसरे व्यक्ति को दोष नहीं लगाता। हमारा पौरुष तो जान बूझकर नष्ट ही कर दिया गया है और हमको निःशस्त्र करके केवल शरण जाने के योग्य बना दिया है। किन्तु अहिंसा के आधुनिक रूप के प्रणेता की हैसियत से मुझे यह बड़ी चिंता रहती है कि कहीं यह कमजोरी हमारा आदर्श न बन जाय। और उससे मैं अपनी रक्षा करता रहता हूं। इसलिए मेरी तो यह इच्छा है कि मैं बहादुरी पर भी तबतक धन्यवाद न दूं जबतक कि हमें उसका पक्का यकीन न हो जाय। किन्तु यों तो हमें उस प्रगति के लिए जरूर धन्यवाद देना चाहिए जिसके बदौलत हम हुकूमत की दहशत से डर कर पीछे हटना भूल गये। असहयोग तो दान और भीम दोनों के लिए एक अमोघ शस्त्र है। यदि हमें अपनी कमजोरी के कारण अपमान के सामने सिर झुकाना पड़े; पर यदि ऐसा करते हुए हम यह जानते हों कि यह अपमान हमें अपनी ही कमजोरी के कारण सहना पड़ता है और इसलिए हम उत्तरोत्तर उन्नति करने की चेष्टा करते रहें तो फिर मुझे इसके लिए भी शरम न मालूम होगी।

बाबू भगवानदासजी यह जानने के लिए उत्सुक हैं कि भयसे भी बुरा और क्या हो सकता है? मेरे ध्यान में था 'कायरता'।

यह बड़ा मार्के की बात है कि एक ओर तो बाबू भगवानदासजी श्री० त्यागी के लेखी बयान के मामले में, मेरी दूसरी टिप्पणी को न देखने के कारण, मेरे द्वारा जल्दी में किये गये श्री० त्यागी की कमजोरी के निषेध, के खिलाफ उचित आवाज उठा रहे हैं और दूसरी ओर मौलाना महम्मदअली ने अपने बर्ताव के गुस्ताखी कहे जाने के खिलाफ (जैसा कि पाठक अन्यत्र पढ़ेंगे) आवाज उठाई है। इन विरोधों को मैं अपने दोष को न छिपाने की राष्ट्रीय इच्छा के बड़े भारी शुभ शकुन समझता हूं। मौलाना साहब उस बातका श्रेय तक लेनेसे इनकार करते हैं जो मामूली दृष्टिसे देखने पर, संस्कृति के खिलाफ नजर आती हो और बाबू भगवानदासजी मुझे उस क्रिया को भीतियुक्त कहने से रोकते हैं, जिसका समर्थन वीरोचित अहिंसा के सिद्धान्त से किया जा सकता हो। अब यह आशा और प्रार्थना करते हुए कि हमारा देश इतना शूरवीर और साथ ही सभ्य और उच्च-हृदय बने जिससे वह उत्कृष्टता की सीमा को पहुंच जाय, हम इस विवाद को खतम करते हैं।"

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, [illegible], पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से [illegible] द्वारा [illegible]।

फिर गुरखी हमला

वार्षिक	मूल्य ४)
छ मासका	,, २)
एक प्रतिका	,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक	,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—कार्तिक सु० ५, संवत् १९७८, शुक्रवार, तारीख ४ नवम्बर, १९२१ ई० | अंक १२

टिप्पणियां

सेना में हल-चल

अली-भाइयों तथा उनके साथी मुस्लिमों के मुकद्दमे की बातें और कांग्रेस के नेताओं की घोषणा सेनाओं के स्थानों में जा पहुँची हैं और सैनिक लोग यह बात जानने का प्रयत्न कर रहे हैं कि अगर हम नौकरी छोड़ दें तो गुजर किस जरिये से करें। उनकी तरफ से एक सज्जन पूछते हैं कि स्वराज्य होजाने पर सेना का क्या अवस्था होगी। पहली बात के लिए तो महासभा की कार्य्यकारिणी समिति ने उन्हें रास्ता बता दिया है। हर एक फौजी सिपाही जुलाहे और धुनिया का काम आसानी से कर सकता है। धुनकने के लिए कलाई में ताकत होने की जरूरत है और यह सिपाहियों के पास हई है। कोई भी धुनिया या पिंजारा बम्बई में दो और तीन रुपये के बीच में रोजाना पैदा करता है। पंजाब के कितने ही जुलाहों ने-बुनने का काम करने वालोंने-करघा छोड़ कर किराये पर तलवारें बांध ली हैं। मैं तो इस दूसरे काम से पहले काम को निहायत अच्छा मानता हूँ। ऐसी हालत में जबकि यह बात कि 'कब और किसके खिलाफ अपनी तलवार उठावें' सिपाहियों के निर्णय पर नहीं छोड़ी जाती तब मैं सिपाहियों के इस पेशे को 'सम्मान्य' पेशा नहीं कहता। सिपाहियों का उपयोग हमारी रक्षा के बजाय हमें गुलाम बनाने में ही अधिक किया गया है; परन्तु करघे का बुननेवाला आज अपने देश को आजादी दिलाने वाला और इसलिए एक सच्चा सिपाही बन सकता है।

एक मित्र ने यह भी सूचित किया है कि महासभा के बताये कपड़ा बुनने और धुनकने के साथ साथ खेती भी जोड़ देना चाहिए। परन्तु इस साधन के द्वारा जल्दी काम नहीं ले सकते। खेती का काम आसान भी नहीं है। उसके लिए आरम्भ में काफी खर्च की जरूरत होती है। इसलिए इस बात में उससे काम नहीं चल सकता।

अब यह रहा कि स्वराज्य हो जाने पर क्या होगा। इसका जवाब तो आसान है। स्वराज्य की हालत में सैनिक 'किराये के टट्टू' नहीं होंगे। बल्कि उनको एक 'राष्ट्रीय सेना' बनेगी; और उसका भी उपयोग बहुत देश की रक्षा और बाहरी हमलों से बचाव के ही कामों में होगा। वे देश के कामों में अपनी आवाज उठा सकेंगे। और यह तो पक्की बात है कि वे पश्चिम में तुर्कों, अरबों, जैसे और पूर्व में चीनी और बरमी जैसे लोगों की जान मारने के लिए, जिन्होंने हमारा कुछ बिगाड़ नहीं किया है, हरगिज नहीं भेजे जायँगे।

(यंग इंडिया)

खादी के खिलाफ

कराची से श्रीयुत धर्मदास उधाराम लिखते हैं कि मैं फोर्ब्स केम्पबेल एंड कंपनी के यहां मुलाजिम था। परंतु खादी टोपी पहनने की खाहिश करने के कारण मैं बरखास्त कर दिया गया हूं। मैं उन्हें इस बात के लिए बधाई देता हूं कि उन्होंने बरखास्त होना कुबूल कर लिया; पर खादी टोपी नहीं छोड़ी। अगर हमारा नैतिक अधःपात न हुआ होता तो हरएक कारकुन, फिर वह कहीं का भी हो, इसी तरह एक के बाद एक खादी टोपी पहन पहन कर के आने को बरखास्त होने देता। इससे सचमुच कम्पनियों पर असर पड़ता कि हां, लोगों का ऐसा करना अनिवार्य है और उनको समझ में आ जाता कि बेचारे गरीब खादी के पहनाव के सामने ताल ठोंकना बेहूदी ही है। इसमें कोई शक नहीं कि यह दफ्तर नौकरों में दहशत फैलाने और उन्हें दबाये रखने तथा पौरुष-हीन बनाने के लिए शुरू की गई है। इधर मदरास के शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर इन्स्पेक्टरों को स्कूल में चरखा जारी नहीं करने देते हैं। इसका सबब डायरेक्टर साहब सिर्फ यह बताते हैं कि चरखों का महत्व अब राजनैतिक दृष्टि से हो गया है। इसी दलील के अनुसार तो मद्यपान-निषेध पर व्याख्यान भी नहीं देने दिये जाने चाहिए; क्योंकि असहयोगियों की दृष्टि में तो वह भी राजनैतिक महत्व रखता है। स्वदेशी के खिलाफ जो यह विविध रूप में आन्दोलन उठाया गया है उससे यह मालूम होता है कि स्वदेशी-प्रचार सरकार को अखरने लगा है ... मैं यों कहूँ कि सरकार भारत को ... कपड़ा बुनते हैं। कुछ लोग आंखों नहीं देख सकती। क्या ... काम में लाते हैं। वे यदि सिर्फ स्वदेशी के कार्यक्रम को सह... ने लग जायं और उसमें सुधार करते चाहिए ? ... क उठे और लोगों के घर में करोड़ों रुपया

चरखा और बुद्धि

कवेवर आ रोनदरा

लेखा है,

है।

रुक जाती है। इसकी टीका-टिप्पणियों को मैं प्रकाशित करना नहीं चाहता। क्योंकि कविवर का वह वाक्य एक अनुमान मात्र है। हिन्दुस्तान में आज लाखों चरखे चल रहे हैं। उनमें वकील, डाक्टर और तत्वज्ञानी लोग भी हैं और मुझे मालूम है कि ऐसे लोग तमाम प्रान्तों में हैं। इन लोगों के अनुभव का सबूत कविवर के अनुमान के खिलाफ है। बस, इतना ही कह देना काफी है। उन्होंने चरखे को बुद्धि का विरोधक नहीं पाया। डाक्टरों और वकीलों का अनुभव भी यही कहता है बंगाल के एक प्रख्यात उपन्यास लेखक मेरे पास सिर्फ अपना अनुभव बयान करने के ही लिए आये थे। उन्होंने मुझे कहा कि मैं नियमित रूप से चरखा कातता हूँ और इससे मेरी उपन्यास लिखने की शक्ति का अधिक विकास हुआ है। इन सब बातों से जो कुछ सिद्ध हो सकता है उससे अधिक सिद्ध करना मैं चाहता ही नहीं हूँ। मैं तो सिर्फ यही बताना चाहता हूँ कि बुद्धिवान् मनुष्य की बुद्धि हर तरह के शारीरिक कार्य से अधिक तेज होती है और अगर वह काम लोकोपयोगी हो तो पुनीत भी होती है। ऐसे शारीरिक कार्यों में चरखा अच्छा, हलका और मधुर अनन्य उत्तम है। और हिन्दुस्तान की वर्तमान अवस्था में तो वह कल्पद्रुम के समान है।

(नवजीवन)

राष्ट्रीय पाठशालाओं की राष्ट्रीयता

इस विषय पर कि राष्ट्रीय शालाओं की राष्ट्रीयता किस बात में है, कितने ही दिन पहले एक सज्जन ने कुछ सवाल मुझसे किये थे। उनमें से जानने योग्य प्रश्नों के उत्तर नीचे दिये जाते हैं—

स०—जो लड़के राष्ट्रीय शिक्षा-मन्दिरों से शिक्षा प्राप्त कर चुकेंगे उन्हें अपने जीवन के लिए किसी व्यवसाय की खोज से छुट्टी मिलेगी ?

ज०—हां, मिलना तो चाहिए। जिस विद्या से इतनी भी मुक्ति नहीं मिलती वह विद्या ही नहीं है। विद्या उसीका नाम है जिस से त्रिविध—आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक-मुक्ति मिलती है। जिसे पहले प्रकार की मुक्ति नहीं मिली उसे दूसरे प्रकार की नहीं मिल सकती।

स०—राष्ट्रीय संस्था के नौकर के लिए क्या स्वार्थ-त्याग धर्म न होना चाहिए ?

ज०—अवश्य होना चाहिए। मेरा तो यह विश्वास है कि जो स्वार्थ-त्याग नहीं कर सकता वह राष्ट्र का सेवक नहीं हो सकता।

स०—क्या स्नातक को अपना जीवन देश-सेवा के लिए समर्पित न करना चाहिए ?

ज०—यह नियम सर्वदा के लिए नहीं प्रचलित किया जा सकता। जब राष्ट्र का संगठन धार्मिक रीति से होता है तब जो जो लोग प्रामाणिकता के साथ निर्भय जीवन व्यतीत करते हैं वे सब सेवा [illegible] हैं।

[illegible] साथ कुछ [illegible] ने हैं कि सरकारी मदरसों में दिये है। मैंने इस [illegible] नहीं रहता। क्या इसका यह कि मैं अपने अनुभव से [illegible] शालाओं में चारित्र्य को प्रधान [illegible] परिणाम होता है। दुर्भाग्य [illegible] तक खतम नहीं हो जाता [illegible] ज्ञान भी चारित्र्य के लिए [illegible] दुर्गुण बन रही है। श्री० [illegible] चारित्र्य साध्य है। [illegible] के एक ताजे उदाहरण [illegible] आवश्यक होना

स०—इसलिए क्या मदिरापान करने वाला और बीड़ी पीने वाला शिक्षक त्याज्य नहीं है ?

ज०—हमें इस कोटि पर तो पहुंच ही जाना चाहिए कि जिससे शराब पीने वाले शिक्षकों का त्याग कर सकें। बीड़ी के लिए ऐसा कहने की हिम्मत मुझे नहीं होती। मेरा अनुभव तो ऐसा है कि बीड़ी पीने वाला दूसरी तरह से शीलवान् हो सकता है। और यह भी जरूरी बात है कि शील पर नजर रखते हुए हम कहीं शील-शून्य चौकीदार न हो जायं।

स०—मैट्रिक पास होते ही बीमार हो जाना और बी. ए. होते ही बेहाल हो जाना, यह हालत क्या शोचनीय नहीं है ?

ज०—जो मेरी चलती हो तो मैं रोगी विद्यार्थियों का अक्षर ज्ञान बन्द ही कर दूं।

स०—क्या राष्ट्रीय शिक्षा पाने वाले विद्यार्थी की समस्त शक्तियों का विकास न होना चाहिए ?

ज०—जरूर होना चाहिए। तन-दुरुस्त का ही मन दुरुस्त; और मन दुरुस्त होने से ही आत्मा दुरुस्त—यही सीधा नियम मालूम होता है।

स०—क्या यह नियम न होना चाहिए कि २१ वर्ष से कम उम्र के विवाहित विद्यार्थियों को राष्ट्रीय शालाओं में भरती न किया जाय ?

ज०—होना तो चाहिए। पाठशाला का विद्याभ्यास विवाहित जीवन का विरोधी है।

स०—क्या ऐसी शिक्षा न दी जानी चाहिए कि विधुर दूसरा विवाह न करें ?

ज०—हां, ऐसी शिक्षा को मैं पसन्द तो करता हूँ।

स०—राष्ट्रीय शालाओं में देह-दण्ड को स्थान मिलना चाहिए ?

ज०—हरगिज नहीं।

स०—अगर विद्यार्थी का चित्त राष्ट्रीय शिक्षा की तरफ से हट जाय तो इसमें दोष किसका है ?

ज०—आम तौर पर तो विद्यार्थी और शिक्षक दोनों का होता है; परन्तु ज्यादहतर शिक्षक का।

स०—क्या इस शिक्षा-क्रम में भाषायें अधिक नहीं हो जाती हैं ?

ज०—एक ही गोत्र की अधिक भाषायें होने से बहुत बोझ नहीं मालूम होता। जैसे कि हिन्दुस्तानी, गुजराती, मराठी, बंगाली, इन चार भाषाओं को लोग, मेरा खयाल है, कम परिश्रम में पढ़ सकते हैं। परन्तु अंगरेजी ग्रीक, लैटिन, अरबी इत्यादि का मेल नहीं बैठ सकता।

स०—क्या शिक्षक का पद प्रधान की अपेक्षा बड़ा नहीं है ? बड़े लाट अगर हजार पावें तो शिक्षक को दो हजार न मिलना चाहिए ?

ज०—बड़े लाट की नौकरी की तो कीमत होती है; पर शिक्षक की होनी ही नहीं। अतएव शिक्षक तो हमेशा गरीब ही होना चाहिए। उन्हें तो सिर्फ खाने भर को ले कर पढ़ाना चाहिए। वाइसराय तो अपनी कीमत मांगता है; पर शिक्षक यदि कीमत मांगने लगे तो वह निकम्मा हो जाय।

एक और सवाल एक दूसरे प्रश्नकार ने किया है। उसका सम्बन्ध भी इसी विषय से है। इसलिए उसे भी यहीं दिये देता हूं—

स०—क्या शिक्षक को अपने पास पढ़ने वाली कन्या से विवाह करना चाहिए ? विद्यार्थी को अपने साथ पढ़ने वाली लड़की के साथ शादी करना चाहिए ?

ज०—मुझे तो दोनों निहायत बेजा मालूम होते हैं। मेरे पास पढ़ने वाली कन्या की रक्षा मेरी कन्या की तरह होना

चाहिए। मेरे साथ पढने वाली बालिका की रक्षा मेरी बहन की तरह होनी चाहिए। सहाध्यायियों में भाई-बहन का ही सम्बन्ध शोभा दे सकता है। इतना ही कह कर मैं यहां तो इस सवाल का जवाब खतम कर देना चाहता हूं। विषय बड़ा है। इसलिए उसकी सविस्तर चर्चा ठीक है। पहले सवाल के जवाब के विषय में तो मुझे जरा भी शंका नहीं। पर दूसरे प्रश्न में, जब कि आज हमारे बालक-बालिकायें एक पाठशाला में शिक्षा पाते हैं, जरा कठिनाई नजर आती है। परन्तु मेरी स्थापित जितनी संस्थायें हैं उन सबमें इस नियम का पालन अनिवार्य रक्खा गया है और उसका फल भी अच्छा ही निकला है।

(नवजीवन)

एकता का रहस्य

["मॉडर्न रिव्यू" के पिछले अंक की सम्पादकीय टिप्पणियों में उसके सम्पादक ने हिन्दू-मुसलिम-एकता को मिथ्या-भास बताया है। उसके उत्तर में श्री-गांधीजी ने 'यंग इंडिया' में कोई ढाई कालम का एक लेख लिखा है। स्थानाभाव से उसके अत्यंत महत्त्व-पूर्ण भाग का ही अनुवाद यहां दिया जाता है—उपसंपादक]

"मैं यह दावे के साथ कहता हूं कि हम दोनों का एक मात्र प्रधान लक्ष्य खिलाफत ही है। मौलाना महम्मद अली उसको इस लिए प्रधान मानते हैं कि वह उनका धर्म है। और मैं इसलिए उसको अपना प्रधान लक्ष्य मानता हूं कि मेरे खिलाफत के लिए मर मिटने से मुसलमानों की छुरी से गाय की रक्षा निश्चित रूप से हो जायगी। और गोरक्षा तो मेरा धर्म ही ठहरा। स्वराज्य भी हम दोनों को इसीलिए एक-सा प्रिय है कि स्वराज्य के द्वारा ही हम अपने अपने धर्म की रक्षा कर सकेंगे। शायद यह ध्येय अधिक उच्च न मालूम हो। परन्तु इसमें कोई छिपाव की बात नहीं है। मैं तो भारत के बल पर खिलाफत की रक्षा करने की शक्ति को ही स्वराज्य पाना मानता हूं। धर्म की तरह हमारी मित्रता की जड़ भी शुद्ध प्रेम है। और इस प्रेम के अधिकार के बल पर ही मैं मुसलमानों से मित्रता करना चाहता हूं। अगर दो में से किसी एक ओर भी ज्यों का त्यों शुद्ध प्रेम बना रहा तो हमारे जातीय जीवन में हिन्दू-मुसलमानों की एकता पत्थर की लकीर हो जायगी। * * *

हाँ, दुर्भाग्यवश यह सत्य है कि अभीतक ऐसे कई हिन्दू और मुसलमान भाई हैं जो एक दूसरे के डर से विदेशी प्रभुता को एक आवश्यक वस्तु मान रहे हैं। और यह हमारे स्वराज्य-प्राप्ति के विलम्ब के लिए कोई ऐसी वैसी बात नहीं है। सच तो यह है कि हमें अभी यह साफ तौर पर नहीं दिखाई देने लगा है कि इन दो जातियों में दिल खोलकर युद्ध होने की सम्भावना उतनी बुरी बात नहीं है जितनी कि यह विदेशी प्रभुता है। और अगर हम दोनों को ऐसी खुली लड़ाई से रोकने वाला यह अंगरेजी राज्य ही है तो जितनी जल्दी हम आपस में लड़ने के लिए आजाद हो जाय उतना ही वह हमारे पौरुष, धर्म और देश के लिए अच्छा होगा। और अगर इस प्रकार लड़ने में हमें शारीरिक और मानसिक शान्ति मिलती हो तो उसके लिए लड़ना कोई नया चमत्कार न होगा। खुद अंगरेज ही २१ साल तक आपस में लड़ते रहे, तब जाकर कहीं वे शांति के साथ रहने लगे। इसी प्रकार फरांसीसी भी जंगलियों की तरह बेरहमी से आपस में लड़े, जैसे कि लोग आजकल शायद ही लड़ते हों। और अमेरिका के लोग भी तो प्रजा-सत्ता स्थापन करने के पहले इसी प्रकार लड़े थे। इसलिए हमें भी अपने आपस की लड़ाई के डर से अपनी कायरता का दामन पकड़कर न बैठ रहना चाहिए * * *

हिन्दुओं और मुसलमानों को अपना अपना धर्म छोड़ देने के लिए कहना निरर्थक ही है। मैं यह नहीं कहता कि ऐसा करना बुरा है। किन्तु मैं यह अवश्य कहूंगा कि यह सुधार अमली राजनीति की सीमा के बाहर है। और कभी ऐसा रूपांतर हुआ भी तो फिर यह हिन्दू-मुसलमानों की एकता न होगी। और इस आन्दोलन का उद्देश तो यह है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों अपने अपने धर्म पर कायम रहते हुए, मेल-जोल के साथ रहें। इसलिए मैं अक्सर अपने भाषणों में कहता रहा हूं कि मेरे और अलीभाइयों के बीच की इस एकता को तमाम लोग हिन्दू-मुसलिम-एकता का एक जीता जागता उदाहरण समझ सकते हैं। हम दोनों की अपने अपने धर्म पर दृढ श्रद्धा है। अलीभाइयों के प्रति मेरे दिलमें अत्यन्त आदर होते हुए भी मैं उनके किसी लड़के के साथ अपनी कन्या का ब्याह कभी न करूंगा और न वे ही अपनी लड़की की शादी मेरे लड़के के साथ कर देंगे—यद्यपि यह भी मान लिया जाय कि वह हिन्दू होते हुए भी ऐसा सुधारक बन जाय कि उनकी कन्या के पाणिग्रहण करने का अधिकार भी प्राप्त कर ले। मैं उनके मांसाहार में कभी शामिल नहीं होता और वे भी मेरे इस धार्मिक दुराग्रह को—यदि मेरा यह संयम दुराग्रह समझा जाय तो—आदर के साथ अपना लेते हैं और इतना होते हुए भी मुझे कोई ऐसे तीन आदमी नहीं दिखाई देते जिनका हृदय मेरे और अलीभाइयों की तरह एक हो गया हो। इसलिए मैं पाठकों को यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि यह एकता किसी तरह मिथ्या भास नहीं है। यह तो ऐसी चिरस्थायिनी मित्रता है जिसकी जड़ एक दूसरे के विचारों और आदतों के प्रति सहिष्णुता और अत्यंत कोमल आदरभाव पर ही जमी हुई है। और मुझे यह डर जरा भी नहीं है कि अगर अंगरेजों की 'छत्रच्छाया' हमपर से उठ गई तो अलीभाई या उनके दोस्त मेरी आजादी को धक्का पहुंचावेंगे या मेरे धर्म पर कभी आक्रमण करेंगे। मेरे इस अभय का पहला आधार तो है स्वयं परमात्मा और उसका वह अभयदान कि जो दिलमें मेरा डर रखकर चलता है उसकी मैं जरूर रक्षा करता हूं, और दूसरा है अली भाइयों का और उनके दोस्तों का माननीय बरताव। हाँ, मैं जानता हूं कि शरीर-सामर्थ्य में अली-भाइयों में से कोई भी एक मुझ जैसे बारह आदमियों से भी बढ़कर है। इस विशेष उदाहरण से मैं इस सामान्य परिणाम पर पहुंचा हूं और बता चुका हूं कि अगर हम सिर्फ एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता धारण कर लें, और स्वयं अपनी, अतएव मनुष्य-स्वभाव की, सत्प्रवृत्ति पर विश्वास रखें तो भारत में हिन्दू-मुसलमान की एकता होना कुछ भी कठिन बात नहीं है।"

जुलाहों का हमसुध

एक मित्र लिखते हैं कि जिस तरह हम वकील, व्यापारी, विद्यार्थी आदि की खुशामद कर चुके हैं उसी प्रकार यदि जुलाहों की खुशामद करें तो क्या ठीक न होगा? इस विषय पर मैं बार बार इसलिए नहीं लिखता हूं कि जुलाहों में पढ़नेवाले लोग नहीं हैं। इसमें कोई शक नहीं कि अगर कारीगरों में और उनमें भी बुनने वाले लोगों में देश-सेवा की प्रवृत्ति उदय हो जाय, तो हम स्वदेशी का काम बहुत जल्दी पूरा कर लें। देश में लाखों बुनने वाले—हिन्दू और मुसलमान—केवल विदेशी का पोषण कर रहे हैं। वे लाखों रुपयों के विदेशी सूत से कपड़ा बुनते हैं। कुछ लोग हमारी मिलों के सूत को भी काम में लाते हैं। वे यदि सिर्फ हाथ-कते सूत से ही काम लेने लग जायं और उसमें सुधार करते जायं तो आज देश चमक उठे और लोगों के घर में करोड़ों रुपया भर जाय।

अगर आजके जुलाहा-लोग जग जायं और केवल हाथ का ही कता हुआ सूत इस्तेमाल करें तो करोड़ों सूत कातने वालों को थोड़ा थोड़ा लाभ हो; इतना ही नहीं-बल्कि उनके द्वारा लाखों पिंजारे या धुनिया, लाखों ओटने वाले, और हजारों माड़ो देने-वालों का धंधा जीवित हो जाय। हजारों लुहार-बढ़ई की रोजी बढ़ जाय। सम्पूर्ण स्वदेशी का अर्थ यह है कि देश में केवल साठ करोड़ रुपये ही न आ जायं, बल्कि उसके द्वारा दूसरे करोड़ों रुपयों का उद्योग देश में फैले और देश की नष्ट हुई प्राचीन सुन्दर कलायें फिर से सजीव हों। आज तो हम केवल कलाहीन मजदूर ही हो रहे हैं।

इस दशा में यह बात तो हरकोई समझ सकता है कि बुनने वालों को इस तरफ झुका कर जनता की सेवा में लगाना बड़े ही महत्व का काम है। उनको स्वदेश-कार्य्य में शरीक करने का अच्छे से अच्छा उपाय तो यह है कि हम खुद ही बुनने का काम करने लगें। हम बुनने वाले अर्थात् जुलाहे भाइयों के पास अपनी गरज के लिए जायं, यह एक बात है और उन्हीं के भले के लिए जायं, यह दूसरी बात है। उनका भला तो हम उनके पेशे को सीख-कर, उसके तत्व और विद्या को समझ कर तथा वह बात जुलाहों को समझा कर ही कर सकते हैं।

(नवजीवन)

आखिर वही हुआ

चटगांव के नेता और ए. बी. रेलवे के हड़ताल-आन्दोलन के प्राण श्री॰ सेनगुप्त को उनके अठारह साथियों के साथ आखिर कैद की सजा हो ही गई। लेकिन वह बहुत दिनोंके लिए नहीं। उन्हें और उनके साथियों को सिर्फ तीन तीन माह की सख्त कैद की सजा दी गई है। श्रीमती सेनगुप्त अपने पति के विषय में लिखती हैं कि इस खयाल से उन्हें बड़ा सुख होता था कि "मुझे सजा होगी"। जब मैं चटगांव गया था तब मुझे यह कहा गया था कि चटगांव के लोगों ने तो स्वराज्य प्रायः प्राप्त कर लिया है। यह 'प्रायः' शब्द बड़ा धोखादेह होता है। उसके एक मानी तो यह हो सकते हैं कि 'लगभग पूर्ण' और दूसरा 'कमसे कम' भी हो सकता है। फिर भी हम दोनों अर्थों में उसका प्रयोग कर सकते हैं। परंतु यदि चटगांव के लोगोंको सचमुच ही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना हो तो उन्हें अपना (पहनने ओढ़नेका) तमाम कपड़ा खुद ही अपने हाथसे सूत कातकर अपने घर पर ही बुनना चाहिए और विदेशी कपड़ा बेचने वालों के दिलमें उनकी बिक्री का जरा भी मोह न रहने देना चाहिए। अदालतें सुनसान दिखाई दें और सरकारी पाठशालायें खाली हो जायं। अगर वे इतना कर सकें तो उन्हें 'सविनय कानून-भंग' शुरू करने की भी जरूरत न रहेगी। परंतु शायद उनमें इतनी एकता और आत्म बल न हो तो भी यदि अधिकतर जनता स्वराज्य चाहती हो तो उसे थोड़े लोग रोक नहीं सकते। तथापि उन अधिकतर लोगों को यदि स्वराज्य प्राप्त करना हो तो उन्हें सविनय कानून-भंग के रास्ते कठिन तपस्या की अग्निमें से होते हुए ही जाना होगा।

(यंग इंडिया)

'पीपल्स फेअर'

'पीपल्स फेअर' का अर्थ है 'मेला'। दो पारसी बहनें लिखती हैं कि श्रीमान् युवराज के आगमन के समय 'मेला' लगाया जाने वाला है। कुछ लोग समझते हैं कि उसमें हम लोग शरीक हो सकते हैं। वे कहते हैं कि 'हां यह तो ठीक है कि शाहजादा के सम्मान-समारम्भ में हम शरीक न हों; पर म्युनि-सिपालिटी के खर्च से जो आतिशबाजी, मेले आदि हों उनमें क्यों न जायं?' यह दलील ठीक नहीं है। क्यों कि अगर बात सबके को ही हो तो शाहजादे का जो सम्मान होने वाला है वह हमारे ही खर्च से होगा। सरकार जो रुपया खर्च करती है वह तो हमारा ही है। हमारी शिकायत तो यह है कि जो लोगों का रुपया उनकी सलाह से खर्च नहीं किया जाता है उससे किये जाने वाले मेलों में भी हम शरीक नहीं हो सकते। अगर कोई लुटेरा अपने खर्च से हमें भोज दे तो क्या उसमें हमें जाना चाहिए? इसी प्रकार शाहजादे की इज्जत और उसकी इज्जत के लिए लगाये जाने वाले मेले, इन दो बातों में मुझे तो फर्क नहीं दिखाई देता। यदि एक त्याग करने के लायक है, तो दोनों का ही त्याग करना चाहिए।

(नवजीवन)

राम और रहमान

एक सिक्ख भाई लिखते हैं कि "हां, स्वदेशी की बात तो ठीक है; परन्तु आप तो स्वयं ईश्वर के मानने वाले हैं। फिर आप ईश्वर का नाम पहले क्यों नहीं रखते? सब लोगों को अपने खुदा, ईश्वर, राम अथवा वे जिस नाम से अपने परमात्मा को पहचानते हों, उसका नाम जपने की सिफारिश आप क्यों नहीं करते?" हां, यह बात सच है, मैं ऐसी बात उनसे नहीं कहता हूं। परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि केवल शब्दों के उच्चारण मात्र से स्वर्ग नहीं मिल सकता। शब्दोच्चार करने के लिए लियाकत दरकार है। हम जबतक विदेशी वस्त्र पहनते हैं तबतक, मेरा खयाल है कि, हम हिन्दुस्तान में रहकर ईश्वर का या खुदा का नाम जपने के लायक नहीं हो सकते। अगर एक आदमी दूसरे के गले पर छुरी फेरते हुए राम-नाम जपता है तो वह राम को लज्जित करता है। इसी प्रकार एक हिन्दुस्तानी के हाथ के कते सूत से बने कपड़े को छोड़कर सैकड़ों कोस दूर से अपने कपड़े मंगाना अपने भाई के गले पर मानों छुरी ही फेरना है। चरखा कातना एक ऐसी शान्तिमय विधि है कि अपने हाथ को सूत के साथ मिलाते हुए अपने हृदय को हम ईश्वर के नाम के साथ जोड़ सकते हैं। ईश्वर-भक्ति भी, ब्रह्मचर्य्य की तरह, स्वदेशी के साथ नहीं जोड़ी जा सकती। ईश्वरका नाम न लेने वाला मनुष्य भी अगर स्वदेशी का पालन करे तो वह तो उसका फल पाता ही है; पर अगर नास्तिक भी स्वदेशी का पालन करे तो वह भी उसका उतना ही फल प्राप्त कर सकता है और उसे देश को भी चखा सकता है। जिस मनुष्य के मन में ईश्वर का नाम है, जिसके हृदय में ईश्वर निवास करता है वह तो जरूर ही स्वयं भी बहुत लाभ उठाता है और देश को भी पहुंचाता है। स्वदेशी तो हमें ईश्वर की ओर ले जाने वाली शक्ति है; क्योंकि वह हमें ऊपर की ओर ले जा रही है। इस मित्र की सूचना पर जो मैंने यह इतना भी लिखा है वह यह बतलाने के लिए लिखा है कि अगर हम ईश्वर की आराधना न करते हों तो हम अपने युद्ध को धर्म्म-युद्ध न कह सकेंगे। हम लोग तो एक दूसरे के धर्म की रक्षा करने के हेतु से लड़ रहे हैं। हमें तो ईश्वर का नाम भूलना ही न चाहिए। उसकी रटन तो हमारे हृदय में नित्य होती ही रहना चाहिए। हमारे हृदय में जितनी बार धड़कन होती है उतनी बार तो, अर्थात् निरन्तर, हमें उसका चिन्तन जरूर करना चाहिए। इसमें स्वदेशी अवश्य सहायभूत है; परन्तु दोनों बात एक नहीं है। स्वदेशी देह का धर्म्म है; ईश्वर स्मरण आत्मा का गुण है।

(नवजीवन)

अलीभाइयों को सजा!

कराची वाले मुकदमे में श्री शंकराचार्य को छोड़ कर शेष छः सज्जनों को दो दो वर्ष की सख्त कैद की सजा दी गई!

प्रकाशन-तिथि में परिवर्तन

'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' दोनों का ताजा मजमून उसी सप्ताह में पाठकों को पहुंचा देने के उद्देश से अब "हिंदी "नवजीवन" शुक्रवार के बजाय हर रविवार की शाम को प्रकाशित हुआ करेगा।

इसी नियम के अनुसार अगला-तेरहवां-अंक आगामी १३ नवम्बर, रविवार, सायङ्काल को प्रकाशित होगा।

व्यवस्थापक "हिन्दी-नवजीवन"

हिन्दी

नवजीवन

शुक्रवार, कार्तिक सुदी ५, सं. १९७८.

फिर गुरखी हमला!

प्राय: ऐसा मालूम होता है कि कष्ट-सहन में, अतएव स्वराज्य-विजय में, बंगाल का पहला नम्बर होने वाला है। चांदपुर के निराकाण्ड की यादगार अभी ज्यों की त्यों बनी हुई है। अब एक और वैसे ही भयङ्कर आक्रमण की खबर चटगांव से आई है। उसकी कथा जिला कांग्रेस कमिटी के मन्त्री बाबू प्रसन्न कुमार सेन के ही शब्दों में सुनिए—

"... चटगांव जिला कांग्रेस कमिटी के सभापति श्रीयुत सेनगुप्त और मन्त्री श्रीयुत महिमचन्द्र दास तथा दूसरे १६ सज्जन गत २ जुलाई को गिरफ्तार हुए। उनका अपराध यह था कि वे एक जलूस में बिना इजाजत लिये शामिल हुए। पुलिस कानून की धारा ३० के अनुसार स्थानीय हाकिमोंने जलूस के पहले ही एक नोटिस जारी कर दिया था। पूर्वोक्त सज्जनों का जलूस में शरीक होना उस नोटिस की मंशा के खिलाफ माना गया। मुलजिमों ने अपनी सफाई नहीं दी। फलतः २० अक्तूबर को हरएक को तीन मास का सख्त कैद की सजा दी गई। कस्बे में यह बात फैल गई कि उन भद्र कैदियों को उसी रात अलीपुर को सेंट्रल जेल को ले जाने वाले हैं। लोग ४ बजे के पहले से ही जेल के फाटक के पास जमा होने लगे। बैंड, भजन-मण्डली, और संकीर्तन-मण्डली भी आ दाखिल हुई। शाम के वक्त सारे गांव में रोशनी की गई और आतिशबाजी छोड़ी गई। ये बातें लोगों ने बिना ही कांग्रेस-कमिटी की सूचना के की। ८ बजने के कुछ ही देर बाद कैदी लोग जेल के दरवाजे पर लाये गये और स्टेशन पर जाने के लिए पुलिस की गाड़ियों पर सवार कराये गये। उनके पीछे पीछे बैंड, भजन-मण्डली का जलूस निकला। मशालें जल रही थीं। जलूस शान्ति और नियम के साथ जा रहा था।

जलूस ज्यों ही रेल्वे स्टेशन के नजदीक पहुंचा, कोई १०० गुरखों की संगीनबन्द एक टोली, एक छिपे स्थान से, बाहर निकली। कुछ लोगों ने, जिनका पता अबतक नहीं लगा, रोशनी बुझा दी और गुरखा लोग 'मारो, मारो,' 'लगाओ, लगाओ', पुकारते हुए एक दम, बिना खबर किये, बिलकुल जंगलियों की तरह, उन बेगुनाह और शान्तिमय लोगों पर टूट पड़े। उन्होंने जिसे देखा उसे और जिधर देखा उधर हाथ साफ करना शुरू किया—बेचारे गाड़ीवान और उनके घोड़े भी नहीं बचे। वे अपनी संगीन तबतक बराबर लोगों को भोंकते रहे जबतक कि लोग स्टेशन से बहुत दूर नहीं निकल गये; और एक जगह से सीटी की आवाज आते ही बन्द हो गये। पता लगा है कि कोई १०० आदमियों के बदन पर जगह जगह घाव पहुंचे हैं, जिनमें से खून बहता था और कोई २०० आदमियों को ऐसी चोटें पहुंची हैं जिससे बड़ा दर्द होता था। जिला मजिस्ट्रेट मि० स्ट्रांग और एडिशनल जिला मजिस्ट्रेट मि० बरोज उस जगह पर मौजूद थे। अमन सभा का एक खास आदमी हमला करते हुए और जोर जोर से यह चिल्लाते हुए कि 'मारो, मारो,' देखा गया और जब यह चढ़ाई खतम हो गई तब वह जिला मजिस्ट्रेट के साथ देखा गया। स्टेशन के बाहर इस हमले के बाद एक योरपियन फौजी अफसर जो कि अनुमानतः गोरखाओं का कमान्डर था प्लेटफार्म में घुसा। पहले तो उसने यह दिखाया कि मानों कैदियों की रिजर्व गाड़ी की ओर जा रहा है; पर एकाएक बाईं ओर घूमा और जो लोग प्लेटफार्म टिकट ले कर गये थे उन्हें धक्का देने लगा। प्लेटफार्म खाली कर देने के लिए न तो किसी तरह की हिदायत ही दी गई और न ऐसा कहा ही गया। हमें ऐसा शक होता है कि ऐसा करने का उद्देश यह था कि एक दूसरे हमले के लिए परिस्थिति उत्पन्न की जाय। परन्तु लोग शान्ति-पूर्वक वहां से हट गये, और जब गुरखे प्लेटफार्म पर लाये गये तब उन्हें वहां कोई न मिला जिस पर वे हमला करते। ऐसी सनसनी की हालत में अगर लोग शान्त और खामोश न रहते तो प्लेट फार्म के भीतर और बाहर दोनों जगह कितनी ही जानें जाया गई होतीं। गोरखा लोग तो बावले होकर भीड़ में घुस पड़े थे। ऐसी दशा में उनके हथियार बन्द होते हुए भी उनके टुकड़े टुकड़े हो जाना एक आसान बात थी; परन्तु लोगों ने उनपर उलट कर हमला नहीं किया। यह बात भी ध्यान देने लायक है कि चांदपुर की दुःखान्त घटना २० जून १९२१ को हुई और उसीका दूसरा संस्करण २० अक्तूबर २१ को, उससे भी अधिक बीभत्स रूप में हुआ और सो भी ऐसे अवसर पर हुआ कि जिसके लिए कोई भी उज्र नहीं हो सकता।

स्थानीय कांग्रेस कमिटी, चटगांव असोसियेशन, और स्थानीय खिलाफत कमिटी की एक असाधारण आवश्यक बैठक २१ अक्तूबर को हुई और उसमें इस मामले की तहकीकात के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई। कमिटी की बैठकें प्रतिदिन जत्रामोहन सेन हाल में हो रही हैं और गवाहियां ली जा रही हैं। फोटोग्राफर लोग जख्मी लोगों की तस्वीरें खींचने के लिए तजवीज कर लिये गये हैं। अगर आप कृपा कर के हमें यह बतावेंगे कि इस विषय के हमारे कष्टों को दूर करने के लिए हमें आगे क्या कार्रवाई करनी चाहिए, तो हम आपके कृतज्ञ होंगे।

स्वदेशी-आन्दोलन पहले से भी अधिक जोरोशोर के साथ बढ़ाया जा रहा है। हम आशा करते हैं कि शीघ्र ही जो ५ फी-सदी विदेशी कपड़ा चटगांव में दिखाई देता है वह भी तिरोहित हो जायगा।

अबतक कांग्रेस-आन्दोलन के सम्बन्ध में ३० आदमियों को सजायें हो चुकी हैं और उनमें से २७ अभीतक जेल में हैं, और छः का मामला जेर तजवीज है।"

ये बातें इतनी सावधानी के साथ पेश की गई हैं कि इनके विषय में अत्युक्ति का संदेह करना कठिन है। परंतु वहां के हाकिमों पर भी इतनी अजहद संगदिली का आरोपण करना कठिन है जितना कि प्रसन्नबाबू के वर्णन से अनुमान होता है। यह तो साफ प्रकट है कि लोग उस समय खुशी मना रहे थे। ईश्वर को धन्यवाद है, अब कैदखानों का डर हमारे दिलों से निकल गया है। इसलिए लोगों ने अपनी

घरों में रोशनी की और उन कैदियों को पहुंचाने के लिए जलूस निकाल कर स्टेशन पर गये। इसमें उनके दंगे-फसाद का कोई इरादा नहीं हो सकता। लेकिन मजिस्ट्रेट के लिए तो इतना भी हद से ज्यादह था। उसने निस्सन्देह यह सोचा कि इस खुशियां मनाने से मेरी दी सजाओं के प्रतिरोधक प्रभाव की प्रतिक्रिया हो रही है और आगे चल कर मुझे सारे चटगांव को एक जेलखाना बनाना पड़ेगा तब कहीं तमाम लोगों का समावेश उसमें हो सकेगा। इसलिए उसने गुरखी हमले से काम लिया। इसके सिवा दूसरी तरह से (पूर्वोक्त रिपोर्ट को सत्य मानते हुए) उस पशुता-पूर्ण व्यवहार की उपपत्ति नहीं लगाई जा सकती। जो उन बिल्कुल बे-गुनाह खुशियां मनाने वालों के साथ किया गया। और यह भी स्पष्ट ही है कि अमन-सभा कहलाने वाली संस्था के लोग नौकरशाही के हाथ की कठपुतली हो रहे हैं। यह समय निस्संदेह परीक्षा का समय है। लेकिन इसके लिए हमें क्या क्या सहन करना होगा इसका हिसाब तो हमने इस रास्ते पर कदम बढने के पहले ही कर लिया है। अब हमें अवश्य सहन करना चाहिए। हमें अग्नि-परीक्षा देनी होगी और उसमें से शुद्ध होकर निकलना होगा; तब हम अपने गन्तव्य स्थान पर पांव रखने पावेंगे। चटगांव के लोगों और नेताओंने ऐसे उद्वेग और संक्षोभ के समय जो उदाहरण-भूत आत्मसंयम और शांति धारण की उसके लिए वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। मैं उन्हें इसके सिवा दूसरी कोई सलाह नहीं दे सकता कि इससे कठिन संकट उपस्थित होने पर भी वे अपने सीधे रास्ते पर आगे ही बढते रहें। हमारे पास तो क्षति-पूर्ति का केवल एक ही रास्ता है और वह यह कि ऐसे हर मौके पर अधिकाधिक साहस और अधिकाधिक आत्मसंयम दिखलावें-यहांतक कि आखिर को जालिम अपनी ही कोशिशों के बोझ से दबकर थक जायगा। चटगांव के असहयोगियों को अमन-सभा के या सरकारी आदमियों पर बिगड न जाना चाहिए। वे तो सिर्फ अपने स्वभाव के अनुसार काम करते हैं। असहयोगी का धर्म तो है न तो बदला लेना और न सिर ही झुकाना। उसे तो अपने चारों ओर तूफान के उठते हुए भी अचल सीधा खडा रहना चाहिए। अगर हम बडभागी हों तो आइए, सबाई के साथ गावें—

> '' जबतक तेरा वरद हस्त है मेरे सिर पर हे प्रभुवर !
> निश्चय ही वह पार लगावेगा प्रति पल आगे रह कर।
> कठिन, कँटीले, मग से, डर से, दुर्गम गिरि, दारुण दुख से—
> बांह पकड कर ले जावेगा तिमिर रात्रि में वह सुख से ''

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

टिप्पणियां

न्याय का नाटक (२

['यंग इंडिया' में मौलाना महम्मद अली का कराची जेल से भेजा हुआ एक पत्र प्रकाशित हुआ है। उसके पढने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कराची के खलिफदिना हाल में 'न्याय का नाटक' किस प्रकार हो रहा है। स्थानाभाव से पत्र का अदालती कारवाई से सम्बन्ध रखने वाला अंश ही यहां दिया जाता है—उप-सम्पादक।]

''* * * * जब मैं जेल के बाहर था तब मुझे इतना समय और शान्ति नहीं मिलती थी कि मैं अपने भाषणों की रिपोर्टों की गलतियों को रोज दुरस्त करता रहता। किन्तु चूंकि अब मुझे जेल के जीवन में अधिक फुरसत मिलती है और चूंकि इस कैदी के जीवन की तैयारी के लिए मनुष्य को अधिक शान्त और धीरजवान् बनने की आवश्यकता है, अब मैं इतना आजाद नहीं रहा कि ऐसी गलतियों को बिना ही दुरस्त किये छोड दिया करूं, जैसा कि पहले था। किन्तु निश्चय ही यह कोई ऐसा कारण नहीं है कि जिससे लोगों को केवल छपे हुए शब्दों पर ही पूरा विश्वास रखना चाहिए। जब मैंने अदालत की कारवाई की चौथे दिन की अधूरी, नादुरस्त और बिलकुल गलत-फहमी फैलाने वाली रिपोर्ट पढी, तब तो मुझे ऐसा ही मालूम होने लगा कि इससे कुछ लोगों के तो ख्यालात जरूर हमारे निस्बत उलटे हो जायंगे। और इसलिए जो खत मैंने तेरसी को 'बाम्बे क्रानिकल' की छापी उलट-पुलट बातों के विषयमें—जिसमें मेरे बयान की रिपोर्ट के दर्जनों पैराग्राफ और वाक्य नीचे के ऊपर और ऊपर के नीचे छाप दिये गये हैं,—लिखा था उसमें मैंने उस परिस्थिति का भी कुछ जिक्र किया था जिसके कारण 'अदालत को ललकारने' की घटना हुई थी। किन्तु सचमुच हम ''शरारत पर तुले'' हुए नहीं थे। पहले तीन दिन तक तो अदालत की कारवाई शान्ति के साथ चलती रही और सरकारी वकील हम पर जितना 'सफाई' देने का दोष लगा सकते हैं उससे अधिक अदालत भी 'ललकार' का इल्जाम हम पर नहीं लगा सकती थी। हां, बखेडा तो मौलाना हुसेन अहमद साहब के बयानसे ही शुरू हुआ। अदालत ने एक काबिल दुभाषिये को बुलाने से इनकार किया। और जब मजिस्ट्रेट यह समझ कर कि दूसरे मुस्लिम के लिए दुभाषिये की जरूरत न होगी, मामला आगे चलाने लगे तब पूर्वोक्त घटना के कारण किचलू ने उर्दू में ही बोलने का आग्रह किया। दूसरे दिन तो अदालत का तमाम ढंग ही बदल गया। यह बात किसे मालूम कि रात भर में इतना बडा भारी परिवर्तन हो गया होगा। 'गुस्ताखी' तो अदालत की ही थी। किचलू का बयान ठीक उसी तर्ज का था जैसा कि मेरा था। परन्तु वह पद पद पर रोका जाने लगा और मैजिस्ट्रेट भी उसे लिखना नहीं चाहते थे। फिर उन्होंने यह जिद पकडी कि शंकराचार्य को यदि बयान देना हो तो खडे होकर ही देना होगा। शंकराचार्यने धार्मिक कारण बतलाते हुए ऐसा करने से इनकार किया। जब बात यहां तक पहुंच गई तब मुझे मजिस्ट्रेट को दो बातें कहना पडीं—पर उनमें कहीं 'क्रोध' का नामोनिशां नहीं था।

मैंने उनसे यह पूछा कि क्या आप श्री शंकराचार्य जैसे धार्मिक पुरुष को भी जो कि तमाम हिन्दुओं में एक अति उच्च पद पर स्थित हैं, अदालत के सामने अपना सिर झुकाने के लिए जिद कर सकते हैं, जब कि ऐसा करने में उन्हें अपने मत के अनुसार धार्मिक आज्ञाओं का उल्लंघन करना पडता हो ? मजिस्ट्रेट साहब पारसी हैं। इस जाति का मूल भारत के इतिहास में इस प्रकार मिलता है कि वह इस देश में अपनी मातृभूमि को छोडकर इसी लिए चली आई थी कि उसे यह भीति होने लगी थी कि कहीं हमें अपने विश्वास के अनुसार ईश्वरीय आज्ञाओं का उल्लंघन न करना पडे। मैंने मजिस्ट्रेट से पूछा—ब्रिटिश अदालत की प्रतिष्ठा पर तो आप की इतनी श्रद्धा है। क्या ईश्वर पर आपका कुछ भी विश्वास नहीं है ? और पत्रों में इन सब बातों का कहीं जिक्र नहीं। सिर्फ इतना ही छपा है कि महम्मदअलीने पूछा—''क्या आप खुदा को नहीं मानते'' ? मेरी इस नम्र बात का जवाब क्या मिला ! एक झिडकी भरी आवाज में यह हुक्म कि ''बैठ जाओ''। मैंने उसे मानने से इनकार तो किया; किन्तु यह मैंने कभी नहीं कहा कि ''देखूं तो आप क्या कर सकते हैं''। मैंने तो यह कहा कि 'आप चाहें तो बल प्रयोग कर के मुझे बैठा सकते हैं।'

किन्तु ऐसा कोई कानून नहीं है जिसके द्वारा मुल्जिम को मजबूरन् बैठाया जा सके। बेचारे शौकत ने भी मजिस्ट्रेट को सन्तुष्ट रखने की अपनी ओर से भरसक कोशिश की। और अपना बयान देते समय बीच बीच में रोकने से भी उनको मना किया; क्योंकि ऐसा करने से उनके बयान देने में बड़ी दिक्कत पैश आती थी। किन्तु मजिस्ट्रेट ने तो साफ साफ यही इरादा कर लिया था कि मेरे पिछले दिन जैसा एक भी बयान अब कहीं भी अदालत के दफ्तर में न दर्ज होने पावे और न वह उन कोर्ट में बैठे हुए सहयोगियों के और दूसरे आदमियों के कान तक पहुंचने पावे। जब मौलाना हुसेन अहमद साहब ने अपना बयान शुरू किया तब न तो मजिस्ट्रेट ने उन दुभाषियों द्वारा (जो पहले ही इसलामी कानून के विशेष का तर्जुमा करते समय अपनी असमर्थता प्रकट कर चुका था) उसका तर्जुमा करवा लिया और न खुद भी यह समझने की कोशिश की कि मौलाना साहब अपने बयान में क्या कहते जा रहे हैं। और न कुछ लिखा ही। इतने ही पर वे नहीं ठहरे। पहले तो उनकी लापरवाही कुछ कम गुस्ताखी नहीं थी; फिर उसमें उन्होंने कुछ अपमानकारक वचनों की और जोड़ मिला दी। एकबार उन्होंने कहा—

"यहां पर तमाम कुरान पढ़वाने की जरूरत नहीं है"। मौलाना निसार अहमद साहब के छोटे बयान की भी यही हालत की गई। मजिस्ट्रेट साहब तो कानून की और जाब्ता कार्रवाई की इतनी लापरवाही करते थे कि मेरा पढ़ रखा हुआ बयान (जिसके पूरा कर देने का अवसर मैंने उनके अनुरोध करने पर और उनके एक शार्ट हैंड टाईपिस्ट भेज देना मंजूर करने पर दिया था) बगैर लिये ही इनका उन्होंने दौरा अदालत के सिपुर्द कर दिया। किन्तु वह तो सब पहले ही से एक फार्स करने का इरादा था। उसके दूसरे दिन ता. जब कि मुकद्दमे का सबूत अभी भी न होने पाया था कि मजिस्ट्रेट ने सरकारी वकील की इस दरख्वास्त पर कि दो गवाहों की तलबी की जाय, यह हुक्म दे दिया कि अब रव्वामुख्वाह कार्रवाई बढ़ाने से कुछ फायदा नहीं; दौरा अदालत में भी इनकी तलबी होने से काम चल जायगा! मजिस्ट्रेट साहब तो इस प्रकार फैसला पहले ही दे चुके!! और तारीख २९ को मुकदमे की कार्रवाई खतम होने के पहले ही खुद ज्युडीशियल कमिश्नर साहब यह देख-भाल करने के लिए आये कि यह हाल दौरान के काम के लिए ठीक होगा या नहीं और सरकारी वकील से उस मामले में बातचीत भी कर गये!!!

मैंने अदालत से कहा कि 'फांसी देने का तख्ता भी तैयार कर रखने के लिए बढ़ई को बुला लीजिए न।' इसलामी कानून का तो जहां कहीं जरा भी नाम निकला कि मजिस्ट्रेट साहब घबड़ा कर कह उठते कि "यहां पर हमें फतवाओं से कोई वास्ता नहीं है।" इसपर फिर शौकत बिगड़ उठा और उसने कहा कि आप हमसे ये बे-मतलब की बातें क्यों पूछा करते हैं? मुझसे आप यह पूछिए कि 'ऐसे मौकों के लिए इस्लाम के कानून की क्या आज्ञा है'। पर इससे भी कुछ मतलब नहीं निकला। यह देखकर शौकत भी फिर अधिक धीरज न रख सका उसने कहा—"अफसोस है मैं आप यह तमाशा नहीं देखता!"

बस, इतनी कार्रवाई खतम होने पर मजिस्ट्रेट साहब थोड़ी देर आराम करने के लिए बाहर चले गये; और आप न मानेंगे, पर जब वे वापस लौटे तो बिल्कुल ही नये आदमी बन गये थे। शौकत पर और मुझ पर जब दूसरे मुकद्दमे चलना शुरू हुए तब तो वे फिर एक बार उस तीसरे दिन के जैसे बन गये थे! कह नहीं सकता कि यह दूसरा फैसला कैसे होगा। किन्तु अदालत की (और साथ ही मुल्जिमों की भी) 'स्वाभाविक' स्थिति का ख्याल तो आप इसी पर से कर सकते हैं कि आखरी दिन सरकारी वकील बड़ी जल्दी में मेरे पास आये और कहने लगे क्या "आप फिर बयान मेहरबानी अदालत में पढ़ सकते हैं? एक गवाह ने बेकहुक गलत बयान लिखा दिया है और मैं चाहता हूं कि वह फिर बुलाया जाय" मैंने तुरन्त मंजूर किया और कहा 'ठीक है, ऐसा आप करो;' और जब सी. आई. डी. के रिपोर्टर ने कसम खा कर यह कबूल किया कि मैं जो बयान लिख रहा था वह मेरे सहयोग की भाषण का था। तब मैंने हंसते हंसते मजिस्ट्रेट साहब से यह कहा कि इस गवाह ने पहले झूठी कसम खा कर कह दिया था कि मेरा भाषण तो दूसरा था। अतएव इस पर मामला चलाने का मैं अपना हक छोड़ देता हूं।" और इस बात के लिए मजिस्ट्रेट ने भी हंसते हंसते मेरे प्रति कृतज्ञता प्रकट की। बात यह है और इसे हम सब लोग जानते ही हैं कि मजिस्ट्रेट साहब तो एक भोला-भाला पुतला था। उस मुकद्दमे के दिन मैंने तो उन्हें यह भी दिया था कि मुझे यह देखकर बड़ा दुःख हो रहा है कि मेरे ही एक देशवासी का उपयोग एक घृणित काम के लिए किया जा रहा है; परन्तु मेरे यह कहने के दूसरे दिन तो वे खूब 'बागी भरे हुए' आये थे। पीछे से मुझे मालूम हुआ कि जिन लोगों से उन्होंने अपनी वफादारी और 'जी हुजूरगिरी' की तारीफ की आशा की थी उन्होंने भी इस बात पर खेद प्रकट किया कि मजिस्ट्रेट ने कानून और जाब्ता कार्रवाई को ताकमे रख कर ऐसे 'ऐतिहासिक महत्वपूर्ण राजनैतिक मुकद्दमे को बिगाड़ डाला; क्योंकि वह उनकी रायमें इन सुधारों के युग में न्याय का एक आदर्श बनाया जाने वाला था। इसलिए तो इलाहाबाद से राय अकबरउद्दीन और एक आफिसर इस मामले को भरसक बनाने के लिए आने वाले हैं और लाहौर से एक दुभाषिया भी आ रहा है। पर यह तमाम मामला तो एक खासा फार्स था। अब तो वह किसी तरह सुधर नहीं सकता। हमें न तो गुस्ताखी करने की इच्छा है और न इसको शरारत ही करना दिखलाना है। ताहम हम ऐसे गूंगे जानवर तो नहीं हो सकते कि जिधर कोई हांक लेजाय उधर ही चले जायं। और अहिंसा भी ऐसा बकरी बना देना नहीं चाहती। कयामत के दिन हिंसा को बहुतसी बातोंके लिए जवाब देना होगा और बहुतसे मुसलमानों की आंखें उस रोज खुल जायेंगी जब उनको कुरान के अनुसार हिंसा की परिभाषा बताई जायगी। परंतु उसके साथ ही अहिंसा को भी कई बातों के लिए जवाब देना होगा। और मैं अभीसे देख रहा हूं कि उसके आचार्य अहिंसा-देवी के उन कई भोले उपासकों का भ्रम दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जो इस दिव्य नाम की ओट में कायरता को छिपाने का यत्न कर रहे हैं। * * * * * "

अन्न त्याग

जेल में अन्न-त्याग करने में जेलवासी असहयोगी जो जल्दी कर डालते हैं उससे होने वाले खतरे की चेतावनी मैं पूरी तरह से नहीं दे सकता। इस अन्न-त्याग का समर्थन हम यह कहकर तो कर ही नहीं सकते कि जेल की कष्टदायक सख्तियों को हटाने के लिए वह एक उपाय है। क्योंकि अगर जेल में वे सख्तियां न हों, जिनका सामना हमें अपने साधारण जीवन में नहीं करना पड़ता हो, तो वह जेल ही क्या है। अन्न छोड़ना तो तभी ठीक कहा जा सकता है जब हमारे साथ अमानुष व्यवहार किया जा रहा हो, अथवा हमारे मजहब के खिलाफ हमें खाना खिलाया जा रहा हो, या ऐसा खाना हमें खिलाया जा रहा हो जो इन्सान के खाने योग्य न हो। हम खाना खाने से तभी इंकार कर सकते हैं जब हमारा खाना हमें अपमानकारक रीतिसे दिया जा रहा हो। अथवा यों कहिए कि जब जब उसके ग्रहण करने से हम भूख के गुलाम साबित हो सकते हों तब हमें खाना खाने से इंकार कर देना चाहिए।

(यंग इंडिया)

श्री. त्यागी का समर्थन

पिछली २७ अक्तूबर के 'यंग इंडिया' में श्री॰ त्यागी के समर्थन में काशी के विख्यात बाबू भगवानदासजी की एक विद्वत्ता-पूर्ण टिप्पणी प्रकाशित हुई है। उसमें बाबू साहब ने १३ अक्तूबर के 'यंग इंडिया' में श्रीयुत महावीरप्रसाद त्यागी के अदालत के बर्ताव पर की गई सम्पादकीय टिप्पणी को अधूरी खबरों के आधार पर लिखी गई बताते हुए श्री॰ त्यागी पर किये गये आक्षेपों का जवाब सिलसिलेवार दिया है। आप कहते हैं—

"१—जब कि हुकूमत का और पद का इतनी बुरी तरह से और बेशरमी के साथ उपयोग किया जाता है, तब सिर्फ उसके "खिलाफ आवाज" उठाने से कुछ फल न निकलता। तथापि श्री त्यागी ने उसका लेखी निषेध जरूर किया है जो अपने ढंग का गौरवपूर्ण और उस परिस्थिति में अत्युत्तम है।

२—श्री॰ त्यागी का यह प्रतीकार कि मैं अब न तो अदालत के और न मुकदमे की पैरवी करने वाले वकीलों के सवालों का जवाब दूंगा, केवल उस मॅजिस्ट्रेट के सामने मुकदमा चलाने से इनकार कर देनेके बनिस्बत अधिक प्रभावशाली और अत्यन्त गौरवपूर्ण मालूम होता है।

३—जहांतक खबरें मिली हैं उनपर से यह कहा जा सकता है कि श्री. त्यागी ने प्रेम या नम्रता के वशीभूत होकर मौन नहीं धारण किया था। मौन तो धारण किया भारत के उन अंगरेजी 'न्यायमन्दिरों' की तिरस्करणीय वृत्ति के प्रति तथा उस मजिस्ट्रेट के प्रति तिरस्कार प्रकट करने के लिए, जिसका बर्ताव एक मुन्सिफ की बनिस्बत एक झगडालू का सा था और जो ताजीरात हिन्द की दफा १०७ और ३५३ के अनुसार खासा जुर्म में शमिल हो सकता है। इसमें शक नहीं कि यह तिरस्कारयुक्त मौन ईसामसीह के या बुद्ध के उस प्रेममय या नम्रतायुक्त मौन की बराबरी तो नहीं कर सकता; किन्तु वह असहयोग के सिद्धान्त के खिलाफ भी नहीं मालूम होता; क्योंकि वह तो यही कहता है कि यह शासन-प्रणाली जितना अहिंसात्मक तिरस्कार बताया जा सके उस सबके योग्य है।

४—श्री. त्यागी ने भीति को छिपाने के लिए मौन नहीं धारण किया था। इससे अधिक बुरी बात क्या हो सकती है?

यह सच है कि जब देशमें एक तरफ सरकार की अयोग्यता के कारण स्त्रियों तथा पुरुषोंपर मोपलाओं के द्वारा भीषण अत्याचार हो रहे हैं ऐसी हालत में श्री. त्यागी के बर्ताव जैसी छोटीसी बातपर लम्बी-चौडी बहस करना अनुचित तो है; तथापि "यंग इंडिया" देशभरमें बडे आदर की दृष्टि से देखा जाता है। ऐसी दशामें उस की सम्पादकीय टिप्पणियों में एक असहयोगी कार्यकर्ता के बर्तावपर कुछ विपरीत लिख जाय अथवा उसके सिर व्यर्थ दोष लग जाय तो यह दुर्भाग्य की बात होगी।

इसलिए 'यंगइंडिया' के संपादक महाशय से निवेदन है कि अब अधिक बातें मालूम हो गई हैं। अतएव वे अपने मत पर फिर से विचार करने की कृपा करें।"

इस पर श्री गांधीजी नीचे लिखी टिप्पणी करते हैं—"पाठकों को याद होगा कि श्री॰ त्यागी का लेखी बयान देखते ही यं. इं. के गतांक की टिप्पणी में उनके साथ कुछ अन्याय हुआ हो तो उसका परिमार्जन किया गया है। मैंने इस चेतावनी को इसलिए आवश्यक समझा कि मैं अपने अनुभव से यह जानताहूं कि ऐसा मौन हमारी कमजोरी का ही परिणाम होता है। दुर्भाग्य से उसका प्रसार किसी एक ही शख्स तक खतम नहीं हो जाता है। यह कमजोरी तो हमारे राष्ट्र भरका दुर्गुण बन रही है। श्री॰ त्यागी के मामले का नाम तो इस दुर्गुण [illegible] उदाहरण [illegible]

मैं पहले बता चुका हूं कि मोपलाओं के अत्याचार तो बुरे हई हैं; किन्तु उनके अत्याचारों के सामने दूसरों का आत्मसमर्पण कर देना इससे भी अधिक बुरा है। "हम तो जबरदस्ती मुसलमान बना दिये गये" यह रोना रोने के लिए भी वे जिंदा क्यों रहे? हमारे धर्म की रक्षा खुद हमारे सिवा और कौन कर सकता है? हरएक इन्सान को, फिर वह स्त्री हो या पुरुष, अपना रक्षक स्वयं ही बनना चाहिए। जिस परमात्मा ने हमें धर्म दिया है उसीने हमें उसकी रक्षा करने की शक्ति भी दी है। हरएक इन्सान को मारने की शक्ति नहीं होती; लेकिन मरने की शक्ति तो सब अंधे, लंगडे, लूले और गूंगे तक को अवश्य होती है। उस मजिस्ट्रेट ने श्री॰ त्यागीपर जो कायर वार किया वह उनके पौरुष पर और अतएव धर्म पर ही आघात था। इसलिए उनको चाहिए था कि वे बेअदबी, गुस्ताखी, पाजीपन आदि कहलाने वाला ऐसा कोई कार्य करते जिससे उन्हें वह अधिक धप्पड़ लगाता और इस तरह वहां 'एक शांति-मय दृश्य खडा कर देते'। सच्चा असहयोग तो यही होता। लेकिन मैं श्री॰ त्यागी अथवा किसी दूसरे व्यक्ति को दोष नहीं लगाता। हमारा पौरुष तो जान बूझकर नष्ट ही कर दिया गया है और हमको निःशस्त्र करके केवल शरण जाने के योग्य बना दिया है। किन्तु अहिंसा के आधुनिक रूप के प्रणेता की हैसियत से मुझे यह बडा चिंता रहती है कि कहीं यह कमजोरी हमारा आदर्श न बन जाय। और उससे मैं अपनी रक्षा करता रहता हूं। इसलिए मेरी तो यह इच्छा है कि मैं बहादुरी पर भी तबतक धन्यवाद न दूं जबतक कि हमें उसका पक्का यकीन न हो जाय। किन्तु यों तो हमें उस प्रगति के लिए जरूर धन्यवाद देना चाहिए जिसके बदौलत हम हुकूमत की दहशत से डर कर पीछे हटना भूल गये। असहयोग तो दीन और भीम दोनों के लिए एक अमोघ शस्त्र है। यदि हमें अपनी कमजोरी के कारण शासन के सामने सिर झुकाना पडे; पर यदि ऐसा करते हुए हम यह जानते हों कि यह अपमान हमें अपनी ही कमजोरी के कारण सहना पडता है और इसलिए हम उत्तरोत्तर उन्नति करने की चेष्टा करते रहें तो फिर मुझे इसके लिए भी शरम न मालूम होगी।

बाबू भगवानदासजी यह जानने के लिए उत्सुक हैं कि भयसे भी बुरा और क्या हो सकता है? मेरे ध्यान में थी 'कायरता'।

यह बडी मार्के की बात है कि एक ओर तो बाबू भगवानदासजी श्री॰ त्यागी के लेखी बयान के मामले में, मेरी दूसरी टिप्पणी को न देखने के कारण, मेरे द्वारा जल्दी में किये गये श्री॰ त्यागी की कमजोरी के निषेध, के खिलाफ उचित आवाज उठा रहे हैं और दूसरी ओर मौलाना महम्मदअली ने अपने बर्ताव के गुस्ताखी कहे जाने की शिकायत (जैसा कि पाठक अन्यत्र पढेंगे) आवाज उठाई है। इन विरोधों को मैं अपने दोष को न छिपाने की राष्ट्रीय इच्छा के बडे भारी शुभ शकुन समझता हूं। मौलाना साहब उस बातका श्रेय तक लेनेमें इनकार करते हैं जो आयुक्त दृष्टिसे देखने पर, संस्कृति के खिलाफ नजर आती हो और बाबू भगवानदासजी [illegible] किया को भीतियुक्त कहने से रोकते हैं, जिसका समर्थन बांछित अहिंसा के सिद्धान्त से किया जा सकता हो। अब यह आशा और प्रार्थना करते हुए कि हमारा देश इतना शूरवीर और साथ ही सभ्य और उच्च-हृदय बने जिससे वह उत्कृष्टता की सीमा को पहुंच जाय, हम इस विवाद को खतम करते हैं।"

हीरालाल शेकाभाई वैकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, [illegible], पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी [illegible] [illegible] [illegible] द्वारा प्रकाशित।

परीक्षा

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—कार्तिक सु० १३, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, १३ नवम्बर, १९२१ ई० | अंक १३

युवराज के स्वागत का बहिष्कार

१७ नवम्बर को सारे भारत में हड़ताल

महा-समिति ने आज्ञा प्रकाशित की है कि आगामी १७ नवम्बर, गुरुवार को श्रीमान् युवराज बम्बई में उतरने वाले हैं, उस दिन सारे देशभर में हड़ताल की जाय और स्वागत के जल्सों, उत्सवों, रोशनियों और आतिशबाजी में कोई भी स्वाभिमानी भारतवासी शरीक न हो।

टिप्पणियां

चरखे की उपयोगिता

देहली की अखिल भारतीय महासभा समिति के द्वारा स्वीकृत सविनय कानून-भंग के प्रस्ताव में स्वदेशी से सम्बन्ध रखनेवाली जो शर्तें रक्खी गई हैं उनका बड़ा पक्का विरोध वहां किया गया था। वह इन दो जरूरतों के विषय में था—एक तो यह कि सविनय प्रतिकार करनेवाला, उस प्रस्ताव की योजना के अनुसार, चरखा कातने का ज्ञान रखने के लिए तथा सिर्फ हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी ही पहनने के लिए बाध्य है, और दूसरे यह कि जो जिला या तहसील जनता के द्वारा सविनय कानून-भंग कराना चाहे उसे अपनी जरूरत भर का तमाम सूत और कपड़ा जरूर तैयार करना चाहिए। इस विरोध से यह मालूम हो गया कि लोग अभी तक चरखे के महत्त्व को नहीं जान पाये। भारत-भूमि से दरिद्रता को देश निकाला देनेवाली अगर कोई वस्तु है तो वह चरखा ही है। कंगाल लोग खुशी खुशी कष्ट-सहन नहीं कर सकते। उन्हें समृद्धि की पीड़ाओं का इतना ज्ञान नहीं है कि जिससे वे स्वेच्छा-पूर्वक भूख-प्यास अथवा दूसरे शारीरिक कष्टों को सहन करने के सुख की कदर कर सकें। उनकी दृष्टि में तो स्वराज्य का इतना ही अर्थ हो सकता है कि वे बिना भीख मांगे अपना पेट-पालने के लायक हो जायं। उनके हृदय में अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति असंतोष की भावना तो जाग्रत करना परंतु उसका कारण दूर करने के साधन उन्हें न देना, मानों विनाश, अराजकता, हिंसाकांड और लूट-मार को अपने घर निश्चित रूप से बुलाना है। और इनके खास शिकार होंगे कौन? खुद वे ही बेचारे दीन-दरिद्र। बस, अकेला चरखा ही उनके लिए अपनी आमदनी का दूसरा सहायक साधन हो सकता है। बुनाई के द्वारा बहुतेरे, और धुनकने के जरिये कुछ कम लोग, अपनी गुजर के लायक पूरी आमदनी कर सकते हैं। लेकिन कपड़ा बुनाई का हुनर अभी हवा नहीं गया है। कई लाख आदमी कपड़ा बुनने की विद्या जानते हैं। लेकिन सूत कातना तो, उसके सच्चे मानी में, बहुत ही कम लोग जानते हैं। हां, यह सच है कि आज हजारों लोग चरखा चला रहे हैं पर असल में खूब कातने वाले लोग सिर्फ कुछ ही हैं। चारों ओर पुकार मच रही है कि हाथ-कता सूत अच्छा नहीं आता—इससे खादी अच्छी नहीं बनती। जिस प्रकार अधपकी रोटी, रोटी नहीं होती उसी प्रकार भद्दा, कमजोर धागा सूत नहीं हो सकता। देश में आज जो सूत कत रहा है उसमें सुधार की अभी बहुत जरूरत है और इसके लिए अभी हजारों आदमियों को सूत कातना अच्छी तरह जानने की जरूरत है, जिससे वे अपने अपने जिलों में ऊंचे किस्म का सूत निकलवा सकें। अतएव जो लोग स्वराज्य की स्थापना के लिए सविनय कानून-भंग करें उन्हें अवश्य ही सूत कातना जानना चाहिए। गौर कीजिए, उनसे यह नहीं कहा गया है कि आप रोज सूत काता करें। हां, अगर वे ऐसा करें तो 'अधिकस्याधिकं फलम्।' परंतु उन्हें सूत तो—अच्छा बटदार सूत भी—कातना जरूर जानना चाहिए। विरोध के होते हुए भी उस तरमीम का एक बहुत बड़े बहु-मत के द्वारा नामंजूर हो जाना मेरी दृष्टि में तो एक मंगल शकुन ही है। अस्वीकृति के पक्ष में एक यह दलील पेश की गई थी कि सिक्ख भाई चरखा कातने को एक हीन काम समझते हैं और कपड़ा बुनने को नीची निगाह से देखते हैं। मुझे जरूर यह आशा है कि यह ख्याल उस सारी बहादुर जाति के ख्याल को प्रदर्शित नहीं करता है। जो जाति या समाज एक ईमानदारी की रोजी देने वाले पेशे को तिरस्कार की दृष्टि से देखती है, वह एक ऐसी जाति है जो पतन की ओर अपना कदम बढ़ा रही है। यदि अबतक सिर्फ औरतें ही सूत कातती रही हैं तो इसका सबब यह है कि उन्हें फुरसत अधिक रहती थी, यह नहीं कि वह एक नीचा काम है। इससे जो यह सूचित होता है कि जो शख्स

तलवार घुमाता है वह चरखा क्यों घुमावेगा, सो यह तो सैनिक के व्यवसाय का तोड़ा-मरोड़ा हुआ अर्थ है। जिस तरह सरकार की नौकरी करने वाले सैनिकों से देश की सेवा नहीं होती उसी प्रकार जो तलवार के बल पर अपनी रोजी कमाता है उससे भी अपनी जाति की सेवा नहीं होती। तलवार बांधना तो एक अस्वाभाविक व्यवसाय है और सभ्य जाति केवल असाधारण अवसरों पर सिर्फ अपनी रक्षा भर के लिए उसका अवलम्बन करती है। दूसरों को जान मार कर उस पर पेट पालने की अपेक्षा चरखा कात कर पेट भरने में हर हालत में ज्यादा बहादुरी है। औरंगजेब टोपियां बनाता था। क्या वह कम बहादुर था? सिक्ख भाइयों की जिस वीरता की हम कदर करते हैं वह दूसरों को 'मार डालने की ताकत' नहीं है। स्वर्गीय सरदार लछमनसिंह को आगे की संतान एक 'वीर' के नाम से सम्बोधन करेगी; क्योंकि उन्हें मरने का मर्म मालूम था। ननखाना साहब के महन्त को भावी पीढ़ी 'खूनी' के नाम से पुकारेगी। अतएव मुझे आशा है कि कोई भी सज्जन चरखे की कल्पित हीनता पर हसर रखकर इस सुन्दर जीवन-दायिनी सूत-कातने की कला को सीखने से मुंह नहीं मोड़ेंगे।

(यंग इंडिया)

तहसील का आदर्श

उस आक्षेप के जो कि इस जरूरत के ऊपर किया गया है कि हरएक सत्याग्रही तहसील या जिले को अपना कपड़ा खुद ही तैयार करना चाहिए, तअस्सुब की बनिस्बत कुछ और कारण थे, और अगर हमारा उद्देश इस जरूरत से यह हो कि हरएक तहसील को सार्वजनिक कानून-भंग में शामिल होना चाहिए तो उस जरूरत की पूर्ति होना असम्भव होगा। किन्तु यह उम्मीद तो कोई भी नहीं करता कि इन बाकी थोड़े से महीनों में हरएक जिला या तहसील सविनय कानून-भङ्ग शुरू करने के लिए तैयार, और अतएव अपनी जरूरतें खुद ही पूरी करने के लायक, हो सकेगी। बस, कुछ इनी-गिनी थोड़ी सी तहसीलें ही तैयार हो जायं, तो काफी है। किन्तु अगर कुछ तहसीलें भी पूरी तरह से स्वावलंबी बनकर स्वराज्य के लिए तैयार न हो सकीं तो इस साल में स्वराज्य का पाना असम्भव ही समझना चाहिए। जो तहसील अपना अन्न खुद ही पैदा करती है, अपना सूत खुद ही कातती है, अपना कपड़ा खुद ही बुनती है, और अपनी स्वाधीनता के लिए मुसीबतें उठाने के लिए भी तैयार है, वही वास्तव में इस साल में स्वराज्य स्थापन करने के लिए तैयार है। और अगर एक तहसील ने भी अपने ध्येय को सिद्ध कर लिया तो वह एक प्रदीप की तरह तमाम मकान को अपनी रोशनी से जगमगा देगी। मैं तो सफलता-पूर्वक सविनय कानून-भंग को तबतक नामुमकिन ही समझता हूं जबतक कि प्राय-पूर्ण आदर्श शर्तों का पालन करते हुए कोई ऐसा प्रयत्न नहीं कर लिया जाय जो दूसरे प्रांतों के लिए पथ-दर्शक हो। इसमें कोई शक नहीं कि भारत के कई भाग ऐसे हैं जहां ऊनी तथा छींटों के कपड़ों के सूतकी कताई पूरी तरह करने पर ही होना फिलहाल नामुमकिन है। किन्तु जब उन भागों में जहां कि फिलहाल यह काम हो सकता है पूरी तरह से संगठन हो जायगा तब उन दूसरे भागों की जरूरतों के विषय में कुछ रियायतें करने में कुछ कठिनाई न होगी।

(यंग इंडिया)

हिन्दुस्तानी

अखिल भारतवर्षीय महासभा समिति में हिन्दुस्तानी—अर्थात् सर्व-साधारण की भाषा—बड़ी तेजी के साथ विचार-प्रकाशन का माध्यम होती जा रही है। समिति में ऐसे कई सदस्य हैं जो अंग्रेजी का एक लफ्ज भी नहीं समझते और मद्रास-इलाके के कई सदस्य ऐसे हैं जो हिन्दुस्तानी नहीं समझ पाते। बंगाल के सदस्य कुछ कठिनाई के साथ हिन्दुस्तानी समझ सकते हैं। वे हिन्दी-भाषा में बोलने की आवश्यकता को मानते भी हैं और जब समिति की कार्यवाही हिन्दुस्तानी में चल रही थी तब उन्होंने उसपर नाक-भौंह नहीं चढाई। किन्तु द्राविड-भाइयों के लिए तो वह एक प्रकार का सचमुच त्याग ही था। गत अधिवेशन में मद्रास के सिर्फ एक ही सदस्य उपस्थित थे और मलाबार से भी अधिक लोग नहीं आ सके। किन्तु जब सब द्राविड सदस्य उपस्थित हों तब तो सचमुच बड़ी भारी कठिनाई होगी। परंतु फिर भी उसे हल करने का इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग ही दिखाई नहीं देता कि द्राविड-भाई जितनी जल्दी हो सके काफी हिन्दुस्तानी पढ़लें। जो लोग अंगरेजी नहीं जानते उनसे तो यह अपेक्षा की नहीं जा सकती कि वे अंगरेजी पढ लें, और अब तो सार्वजनिक संस्थाओं की नीति अधिकाधिक यही होनी चाहिए कि उनमें ऐसे ही सदस्य रहें जो अंगरेजी न जानते हों। इसलिए, हिन्दुस्तानी के भावनात्मक अथवा राष्ट्रीय महत्व की बात तो जाने ही दीजिए, यह आवश्यकता तो दिन-ब-दिन अधिकाधिक ही मालूम होती जा रही है कि राष्ट्र के तमाम कार्यकर्ताओं को हिन्दुस्तानी पढ लेना चाहिए और राष्ट्र की तमाम कार्यवाही हिन्दी में ही होना चाहिए। किन्तु, यद्यपि, गत अधिवेशन में यह बात तय हुई थी तथापि द्राविड और बंगाली सदस्य यह मंजूर नहीं करते थे कि उसके अनुसार समिति कोई कड़ा नियम बना दे। हां, वे यह तो खुशी से मंजूर करते हैं कि जिसका जी चाहे वह खुशी से हिन्दुस्तानी में बोले; परंतु वे यह नहीं पसंद करते कि समिति ऐसा प्रस्ताव स्वीकार करके लोगों को मजबूर करे। आखिर यह बात कार्य-कारिणी समिति पर छोड़ दी गई। किन्तु ऐसे द्विधा भाव के होते हुए कार्य-कारिणी समिति के सामने यह बड़ी कठिन समस्या है कि वह एक ऐसी सूचना उपस्थित करे जिसे सब एकमत से मंजूर करलें।

(यंग इंडिया)

कष्ट-सहन किसलिए?

इन कैद की सजाओं का सच्चा मतलब समझने में कहीं गलती न होने पावे। यद्यपि इनसे सरकार सचमुच ही तंग तो होती है; तथापि इनको प्राप्त करने में हमारा हेतु 'सरकार को दिक करना' नहीं होना है। उनका स्वागत तो नियम-बद्धता तथा तपस्या के हेतु किया जाता है। कैद की सजाओं का आह्वान तो हम इसलिए करते हैं कि हम उस सरकार की अधीनता में जेल से बाहर रहना बुरा मानते हैं, जिसे कि हम तमाम बुराइयों से भरी हुई मानते हैं। इसलिए अब हमें कोई भी ऐसा उपाय करने में कसर न रखना चाहिए जिससे यह सरकार भी यह जान ले कि अब हम उसकी अधीनता में किसी प्रकार न रहेंगे। और आजतक किसी भी सरकार ने इतना खुला प्रतिकार-फिर वह चाहे कितना ही आदरयुक्त क्यों न हो-बरदाश्त नहीं किया है। इसलिए यह तो मजेमें कहा जा सकता है कि अगर हम अभीतक जेल की दीवारों के बाहर हैं तो उसका कारण हम खुद भी उतने ही हैं जितनी कि सरकार है। हम एक संस्था के सदस्य की हैसियत से इतनी सावधानी से काम करते जा रहे हैं कि अभीतक उसके कई कानून हम अपनी खुशी से मान रहे हैं। मसलन् मद्रास-सरकार की आज्ञा का भंग करके कैद का स्वागत करने से मुझे कोई न रोक सकता था; किन्तु खुद मैंने ही उसे टाला। इसी प्रकार सिपाहियों की लैनों में बगैर इजाजत जाकर कानून-भंग के लिए कैद होने से भी मुझे

अपनी दूरदर्शिता या कमजोरी के सिवा कोई नहीं रोक सकता। मेरा तो यथार्थ में यह विश्वास है कि वे जेलें राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं; न कि उस सरकार की, जिसे मैं जनता की सच्ची प्रतिनिधि नहीं समझता। इसलिए इन दो बातोंमें कि एक खराब सरकार की जेल से बाहर रहना दुःख-दायक है और दूसरी यह कि ऐसे कारणों से जो बिलकुल नैतिक नहीं हैं, बल्कि अधिकांशमें समयोपयोगी हैं कैद को जान-बूझकर टालना, ऊपर ही ऊपर देखने से विरोध मालूम होता है। इस तरह हम कैद को इसलिए टालते हैं कि एक तो अभी पूर्ण बगावत के लिए राष्ट्र तैयार नहीं हुआ और दूसरे यह कि बुद्धिपूर्वक आज्ञापालन और अहिंसा इन दो बातों ने देश में अभी पक्की जड़ नहीं जमा ली है। और तीसरी बात यह कि हमने अभी कोई ऐसा विधायक संगठन-कार्य नहीं किया जिससे लोगों के दिल में आत्म-विश्वास जाग्रत हो। इसलिए हम सविनय कानून-भङ्ग जो एक शांतिपूर्ण बलवे तक जा पहुंचेगा, अभीतक शुरू नहीं कर रहे हैं। बल्कि महज हमारे कार्यक्रम के अनुसार काम करते हुए और मत-प्रकाशन तथा बगावत से नीचे दरजे के कार्योंकी पूरी स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए कैद की सजाओंसे ही खिलवाड़ कर रहे हैं।

इसलिए यह साफ है कि एक दुष्ट सरकार की जेल से हमारा बाहर रहना तभी तक ठीक कहा जा सकता है जबतक उसके लिए वैसेही असाधारण कारण हों। और हमें पूरा स्वराज्य तो तभी मिलेगा जब या तो हम जेलों में चले जायंगे या सरकार को अपनी इच्छा के सामने झुकावेंगे। फिर सरकार हमारे जेल जानेसे चाहे तंग आती हो चाहे प्रसन्न होती हो। हमारे लिए तो आदरणीय और सुरक्षित स्थान बस एक ही है—जेल। और जब कि यह बात हमें मंजूर है तो फिर यदि हमारे कर्तव्य का पालन करते हुए हमें जेल जाना पड़े तो इससे हमें प्रसन्न ही होना चाहिए; क्यों कि इससे हम अधिक ही अधिक बलवान होते जा रहे हैं: हम अपने उचित कर्तव्य-पालन का कीमत अदा कर रहे हैं। और यदि अपनी सच्ची शक्ति को प्रदर्शित करना उत्कृष्ट आन्दोलन हो तो हमें विश्वास होना चाहिए कि हरएक मनुष्य का जेल जाना जनता को अधिकाधिक शक्ति सम्पन्न कर रहा है और स्वराज्य को नजदीक लाता जा रहा है।

(यंग इंडिया)

अहिंसा का व्यवहार

श्री० त्यागीविषयक मेरे उद्गारों को पढ़कर मोतिहारी से एक सज्जन लिखते हैं कि "आपकी टिप्पणियों को पढ़ कर मै असमंजस मे पड़ गया हूं। मेरी समझ मे नहीं आता कि अगर ऐसा अवसर मेरे सामने उपस्थित हो जाय तो मुझे क्या करना चाहिए।" हां, मुझे स्वीकार है कि इसके लिए कोई सर्वांगपूर्ण नियम बना देना कठिन है। कायरता और शूरता, द्वेष और प्रेम, असत्य और सत्य ये सब हृदय के गुण हैं। सद्गुण को दिखाना आसान है; पर दूसरे के हृदय में रहने वाले सद्गुण को परखना हमेशा ही कठिन होता है। सबसे सुरक्षित मार्ग तो है यह मान लेना कि मनुष्य के वचन जैसा वह कहता है वैसे सच ही हैं। जबतक सबल कारण न हो तबतक किसी की भी बात पर शक न करें। श्री० त्यागी के सम्बन्ध में मुझे अधूरी खबरें मिली थीं और उन्हीं के आधार पर मैंने न्याय-अन्याय का अनुमान किया था। नीचे दी हुई मिसालों से यह जाना जा सकता है कि हमें खुद किस तरह बरतना चाहिए। प्रह्लाद को राम-नाम लेने की मनाई कर दी गई थी। जब मनाई नहीं की गई थी तब तो वह चुपचाप अपने रास्ते चला जाता था; पर जब मना किया गया तब उसने उसका प्रतिकार किया और अत्यन्त कठोर सजा का आवाहन कर के हंसते हंसते उसे सहन किया। डेनियल पहले तो अपने घर के एक कोने में पूजा-पाठ किया करता था। पर जब वह ऐसा करने से रोका गया तब उसने झट् अपने घर का दरवाजा खोल दिया और खुल्लमखुल्ला ठाकुरजी की पूजा करने लगा। वह सावज की गुफामें भेड़ की तरह ढकेल दिया गया। हजरत अली अपने जालिम से भी ज्यादह जोरावर थे। जालिम ने उन पर थूंक दिया, तब उन्होंने उसका हाथ चूम लिया; बहादुर अली जानते थे कि अगर मैं जालिम के साथ हाथापाही करूंगा तो ऐसा करना मानों क्रोध के वश हो जाना होगा। पर, हां, मैं यह जानता हूं कि हम इन प्राचीन साधु-संतों की श्रेणी में नहीं खड़े रह सकते। न तो हममें उनके जैसा विशुद्ध शौर्य है, न उतनी पवित्रता और न उनके जैसी सम्यक् दृष्टि ही हमारे है। हम भय और क्रोध को अभी जीत नहीं पाये हैं। हम तो अभी अहिंसा का रहस्य समझने और निर्भयता सीखने का यत्न कर रहे हैं। हमारी अहिंसा में तो अभी मिलावट है। हमारी अहिंसा अभी अधिकांश में दुर्बलता-मूलक और अल्पांश में सबलता-मूलक है। हमारे लिए तो सब से निष्कंटक मार्ग यही है कि अपने को बलवान् बनाने के प्रयत्न में और अपने बलका साक्षात्कार करते हुए जितने संकट सहने पड़ें उतने सहें। अतएव जब कोई मैजिस्ट्रेट मुझे थप्पड़ लगावे तब मुझे ऐसा बरताव करना चाहिए जिससे मुझे दूसरा थप्पड़ मिले। हां, यह बात जरूरी है कि पहले थप्पड़ के लिए मेरी तरफ से कोई मौका न देना चाहिए। मैं अगर बदतहजीबी से पेश आया हूं तो माफी मांग लूं, गुस्ताखी की हो तो नम्रता धारण कर लूं, जाहिल हूं तो शांत हो जाऊं। अदालत में तो मुझे बा-कायदा और मुनासिब तौर-तरीके से बरतना चाहिए। यह नहीं हो सकता कि कभी तो मुनासिब तरीके से पेश आवें और कभी ना-मुनासिब तरीके से। अदालत में हमारा वही तर्ज तरीक अच्छा हो सकता है जो कुदरती हो। अतएव अगर हमें भरसक जल्दी किला सर करना हो तो अपने कामों में हमसे जो कुछ भूल हो वह अहिंसा की ही तरफ होना चाहिए।

(यंग इंडिया)

कुछ चमत्कार

मेरे कई मित्र आकर कानमें मुझसे कहते हैं कि युवराज के आने के समय हमें कुछ न कुछ ऐसी बात करना चाहिए जिसमें कुछ विशेषता हो, जो सबको चकित करदे।

इसका मतलब यह नहीं कि वह युवराज के दिल पर असर डालने के लिए किया जाय या लोगोंको दिखाने के लिए किया जाय। परन्तु मैं तो युवराज के इस जबरदस्ती आगमन के अवसर का उपयोग हम सबको अधिक कार्यशील बनाने के लिए करना चाहता हूं, जिससे उसका बड़ा उज्वल प्रभाव युवराज के दिल पर तथा सारे संसार पर होगा। क्योंकि हम खुद अपने पर ही उसका असर डालेंगे। स्वराज्य का सबसे नजदीकी रास्ता तो है सामाजिक और वैयक्तिक आत्म-संस्कार, आत्मोद्धार और स्वावलंबन। मुझे यह कल्पना सचमुच बड़ी प्यारी मालूम होती है कि युवराज के आने के पहले हम सब जेलों को भर दें। परंतु मुझे उसके लिए जोरो शोर से स्वदेशी के प्रचार के सिवा दूसरा मार्गही नहीं दिखाई देता। निःसंदेह उस दिशा में हमारी प्रगति तो खूब होगई है, परंतु उसमें क्रांति करने वाली अथवा बिजली के जैसी गति नहीं है। अब इस प्रकार चिउंटी की चाल से हमारा काम नहीं चल सकता; बल्कि दिन दूनी और रात चौगुनी प्रगति की परम आवश्यकता है। केवल स्वदेशी की भावना के स्पर्शसे ही हमारा काम न चलेगा; हमारे यहां तो उसकी बाढ़ आजाना चाहिए। तब हम आपही आप हजारोंकी तादादमें एक झटके के साथ सविनय कानून-भंग

की ओर आगे कदम बढ़ावेंगे। आज पूरा आत्म-विश्वास न होने के कारण हमें एक एक पैर गिन गिन कर रखना पड़ता है और यह ठीक भी है। हां, बेशक अभी तो मुझे यह भी यकीन नहीं हुआ है कि हजारों लोग जेल जानेको तैयार हैं; या अहिंसा के संदेश को वे यहांतक समझ गये हैं कि उकसाने पर भी कभी हिंसा की तरफ न झुकें।

(यंग इंडिया)

खून-खराबी आवश्यक है?

एक सज्जन लिखते हैं-'क्या आप अपने दिल के भीतरी से भीतरी तह में यह विश्वास नहीं करते हैं कि स्वराज्य अन्त को बिना खून-खराबी किये कभी नहीं प्राप्त हो सकता? क्या यह अहिंसात्मक आंदोलन महज वर्तमान समय के लिए अनुकूल उपाय नहीं है, जिससे कि लोगों को आगे की मारकाट और सशस्त्र क्रांति की अवस्था के लिए एक, और तैयार, किया जा सके?' प्रश्न बिल्कुल खुला है। इससे जाहिर होता है कि अब भी कुछ लोगों का विश्वास वर्तमान आंदोलन की सत्यता पर नहीं है। दुनिया में ऐसा कोई सबब नहीं है जो मुझे, अगर अहिंसा हिंसा की तैयारी के लिए है, तो ऐसा कहने से रोक सकता है। जबकि मैंने राज्य के कानूनों के खिलाफ कितने ही काम-गुनाह-किये हैं, तब मुझे ऐसा कहने के लिए हिचपिचाने की क्या जरूरत है कि वर्तमान आंदोलन तो हिंसात्मक कार्यों की पेशबन्दी है' पर सच बात यह है कि अकेला मैं ही निःशस्त्र-रक्तपात-हीन-क्रांति को बिल्कुल सम्भवनीय हीं मानता हूं; बल्कि दूसरे कितने ही लोग इस बात को अच्छी तरह मानते हैं कि हिन्दुस्तान को आजाद करने के लिए 'अहिंसा' आवश्यक है। अलीभाई बिल्कुल वही बात कहते हैं जो उनके दिल में होती है और जो उनके दिल में होती है वही वे कहते हैं। वे शरीरबल के उपयोग को अर्थात किसी किसी हालत में हिंसा को, जायज समझते हैं, लेकिन उनका यह विश्वास है कि हिन्दुस्तान की परिस्थिति के लिए शरीर बल के उपयोग की आवश्यकता नहीं है। जब कि 'एकता और नियम-बद्धता' हो जायगी तब हम, ३० करोड़ लोग, १ लाख अंगरेजों के प्रति हिंसाकाण्ड मचाना अपने गौरव से नीचा और नामर्दाना काम समझेंगे। आज हमारे अन्दर अर्धांतक जो बेकार क्रोध की भावना जाग्रत रह रही है, उसका कारण है धांधे और दहशत के मौकों पर एकांगी विचार, चित्त की शांति और मर्यादाओं का अभाव। और मैंने जो यह कह दिया है कि जब हिंसा भारत का धर्म हो जायगा तब मैं हिमालय की गोद में शरण ले लूंगा, उसका कारण यही है कि मैं "अहिंसा" का पूरी तरह कायल हूं और मानता हूं कि 'हिंसा' भारत के लिए नाशकारिणी है।

(यंग इंडिया)

मेरी गिरफ्तारी का असर

एक महाशय पूछते हैं कि "क्या आप यह नहीं मानते कि सरकार आपको गिरफ्तार करने में हमारे नैतिक विजय के कारण नहीं हिचपिचाती है, बल्कि इसलिए कि उसे यह डर है कि शायद आपकी गिरफ्तारी से क्षेत्र-भर में जन-समूह उत्तेजित हो जाय और खून-खराबी कर बैठे? और क्या आपकी यह धारणा नहीं है कि अगर आप जेल में बन्द कर दिये गये तो यह आन्दोलन रसातल को चला जायगा या तहस-नहस हो जायगा?"

सरकार के दिल का हाल जानना तो कठिन है। मैं तो यह भी नहीं कह सकता कि उसके निश्चय हैं। मेरा अनुमान तो यह है कि सरकार इस आंदोलन के नैतिक बल को अनुभव करती है और हिंसा के उद्रेक से भी डरती है। यह हमारे लिए कोई नेकनामी की बात नहीं है जो सरकार को अब भी हिंसा के उभाड़ से डरना पड़ता है। अगर हम यह यकीन करा दें कि चाहे कैसी ही उत्तेजना और जोश का मौका क्यों न हो, हम कभी हिंसा का आश्रय न लेंगे, तो उसी क्षण स्वराज्य हमारे लिए तैयार है। हां, इस मार्ग में बेशक हम बहुत-कुछ मंजिल तय कर चुके हैं, और इसीसे मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि हम इसी साल में स्वराज्य की स्थापना कर लेंगे। मेरी गिरफ्तारी के बाद यदि आन्दोलन की रफ्तार धीमी पड़ गई या वह नष्ट-भ्रष्ट हो गया तो मुझे अत्यन्त निराशा और क्लेश होगा। परंतु, इसके खिलाफ, मेरी तो यह धारणा है कि मेरी गिरफ्तारी से तमाम काहिलीं दूर हो जायगी और हमारा कदम तेजी के साथ आगे उठेगा।

(यंग इंडिया)

इस प्रकार यद्यपि समिति में पूर्ण मतैक्य रहा है तथापि इससे यह समझना गलत होगा कि उसमें बाधा या विरोध था ही नहीं। महाराष्ट्र-दल एक कार्यक्षम और युद्धाभ्यासी दल है। उसने इस कार्यक्रम को हार्दिक विश्वास की अपेक्षा महासभा के और बहुमत को मानने के नियम के प्रति अपनी भक्ति के कारण ही स्वीकार किया है। इस कार्यक्रम में उसको पूर्ण विश्वास नहीं है; तोभी आजमाइश के तौर पर उसने इसे अपनाया है। हलकी हलकी बाधायें उपस्थित कर के वह अपनी मौजूदगी का अनुभव कराता है। परंतु उसकी देशभक्ति इतनी जाग्रत है कि वह इन बाधाओं को कार्यनाश की सीमा तक नहीं पहुंचने देता। श्रीयुत अभ्यंकर अपनी दिल दहलाने वाली कठोर वक्तृता द्वारा उसकी किलाबन्दी करते हैं, श्रीयुत अणे अपने शांत तर्क-वाद के द्वारा उसकी पुष्टि करते हैं, और श्रीयुत जमनादास मेहता जो इस दल में बड़े भोले ज्ञात हैं। वे अपनी विचार-पटुता और वाक्य चपलता के विकासके लिए सभी। हा बड़े मजेमें उपयोग करते हैं। सभापति उनकी बातों पर संजीदगी के साथ विचार नहीं करती और वे भी आपको बनाते हैं कि उससे वैसी अपेक्षा नहीं रखते हैं। उनकी बात पर सब लोग हंस पड़ते हैं और खुद वे भी उसमें सच्चे दिल से शामिल हो जाते हैं। उनकी बात यहीं खतम हो जाती है। कार्यारम्भ के समय यह प्रश्न उठा कि कार्यकारिणी समिति का कोई सदस्य तैयार न हो तो दूसरे किसको सभापति बनाया जाय। तब आपने खुद अपने को ही सभापति बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया। उससे अच्छा खिलखिला उठा। वे कार्यकारिणी समिति के तमाम सदस्यों को माननीय मानते हैं; और उनके मान की माप यह है कि उनकी राय में वे लोग उन अधिकारों को भी अनुचित रीति से निरंतर अपनी तरफ खींचते हैं, जो उन्हें नहीं हैं। परंतु इससे पाठक यह ख्याल कदापि न करें कि ये सब बातें किसी बुरे भाव से की गई हैं। मैंने किसी सभा-समाज में लोगों को इतनी अच्छी तरह पेश आते हुए और आनन्दविनोद करते हुए नहीं देखा, और मैं महाराष्ट्र-दल को एक ऐसी प्राप्ति मानता हूं जिसका गर्व प्रत्येक राष्ट्र को होना चाहिए। मैंने जो इस दल का उल्लेख किया है वह मेरी इस बात को मजबूत करने के लिए किया है कि महासभा-समिति में ऐसे ऐसे सज्जन हैं जो अपने इरादों को अच्छी तरह से जानते हैं और जिन्होंने इस बात का दृढ़ संकल्प कर लिया है कि भारतमाता को स्वतन्त्रता प्राप्त कराने के काम में हम अपनी सेवाओं का एक अच्छा संग्रह संसार के सामने पेश करेंगे।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, कार्तिक सुदी १३, सं. १९७८.

स्वराज्य की तैयारी

अगले कुछ सप्ताहों में, भारत के किसी न किसी भाग में, सविनय कानून-भंग का प्रत्यक्ष व्यवहार होता हुआ दिखाई देगा। व्यक्तिगत और आंशिक सविनय कानून-भंग के उदाहरणों से तो देश परिचित हो चुका है। पूर्ण सविनय कानून-भंग को 'बगावत' कहना चाहिए; पर वह ऐसी बगावत है जिसमें 'हिंसा' या मारकाट का नामोनिशां तक नहीं है। पूर्ण पक्का सविनय कानून-भंग करनेवाला व्यक्ति राज्य की सत्ता की सिर्फ उपेक्षा करता है। वह बागी होजाता है और राज्य के तमाम नीति-विरुद्ध कानूनों के अनादर करने का दावा करता है। इस तरह, उदाहरणार्थ, वह कर देने से इनकार कर देता है, वह अपने दैनिक व्यवहारों में राज्य की सत्ता मानने से इनकार कर सकता है। वह मदाखलत बेजा-अनधिकार प्रवेश-के राज्य-नियम की अवज्ञा कर सकता है और सैनिकों से बातचीत करने के लिए फौजी लैनों में जाने का दावा कर सकता है, 'पहरा' रखने के विधि-सम्बन्धी बन्धनों को मानने से वह इनकार कर सकता है और मना किये गये मुकामों पर जाकर 'पहरा' रख सकता है। परन्तु इन सब बातों को करते हुए वह बल का प्रयोग कभी नहीं करता और जब उसके खिलाफ बल का प्रयोग किया जाता है तब वह उसका प्रतिकार कभी नहीं करता। सच बात तो यह है कि वह स्वयं अपने खिलाफ कैद तथा बल के दूसरे प्रकारों को निमन्त्रित ही करता है। वह ऐसा इसलिए और तभी करता है जब वह देखता है कि मेरा शारीर स्वातन्त्र्य, जिसका उपभोग मैं बाधित कर रहा हूं, अब एक असह्य बोझ हो गया है। वह अपने दिल के सामने यह दलील पेश करता है कि कोई राज्य सिर्फ वहीं तक व्यक्ति-विषयक स्वतन्त्रता की इजाजत देता है जहां तक कि नागरिक उस के कानून-कायदों के आगे सिर झुकाता है। 'राज्य के कानून को मानना' यह उस आजादी की कीमत देना है जो एक नागरिक को होती है। अतएव किसी पूर्ण या अधिकांश अन्यायी राज्य के अधीन होना, स्वाधीनता के लिए अनीति मूलक बदला करना है। इस प्रकार जो नागरिक किसी राज्य की दुष्ट वृत्ति को समझ जाता है वह उसकी कृपा पर सन्तुष्ट नहीं रहता और इसलिए उन लोगों की दृष्टि में जो उससे मत-भेद रखते हैं, वह समाज के लिए एक व्याधि दिखाई देता है; परन्तु वह बिना नीति का उल्लंघन किये, राज्य को मजबूर करता है कि वह उसे गिरफ्तार करे। इस दृष्टि से सविनय प्रतिकार एक आत्मा की यातना प्रकट करने का और एक दुष्ट राज्य के अस्तित्व के खिलाफ अपनी ऊंची आवाज कारगर तौरपर उठाने का बड़ा ही जोरदार साधन है। क्या संसार के सारे सुधारों का इतिहास ऐसा ही नहीं है? क्या उन सुधारकों ने, अपने साथ वालों के त्रस्त हो जाने पर भी, उन बेचारे स्थूल चिन्हों तक को नहीं छोड़ दिया है जिनका सम्बन्ध बुरी प्रथाओं के साथ था?

जब कि लोगों का एक समुदाय उस राज्य से अपना सम्बन्ध छोड़ देता है जिसमें कि वे अबतक रहते आये हैं, तो इसका अर्थ यह है कि वे करीब करीब अपनी निजी सरकार स्थापित करते हैं। मैंने "करीब करीब" शब्द का प्रयोग इसलिए किया है कि जब राज्य की ओर से वे ऐसा करने के लिए रोके जाते हैं तब वे बल का प्रयोग करने की सीमा तक नहीं पहुँच जाते हैं।

किसी व्यक्ति की तरह उसका 'काम' तो है कैदखाने की कोठरियों में मुंद जाना या राज्य की गोलियां खा कर मर जाना, जबतक कि राज्य उसका पृथक् अस्तित्व स्वीकार न कर ले, या दूसरे शब्दों में, उसकी इच्छा के आगे सिर न झुका दे। इसी प्रकार १९१४ में दक्षिण आफ्रिका में ३ हजार हिन्दुस्तानियों ने, ट्रान्सवाल की सरकार को आवश्यक नोटिस देने के बाद, ट्रांसवाल इमिग्रेशन एक्ट को भंग करने के लिए ट्रांसवाल की सीमा को पार किया था और सरकार को उन्हें गिरफ्तार करने पर बाध्य किया था। जब सरकार उनको मारकाट के लिए उभाड़ने में या दबाने में सफल न हो सकी तब उसने उनकी मांगें कुबूल कर लीं। इसलिए सविनय कानून-भंग करनेवालों का समुदाय एक ऐसी सेना है, जिसके लिए एक सैनिक की पूरी नियम-बद्धता आवश्यक है और जो मामूली सैनिक जीवन में पाई जानेवाली उत्तेजना से शून्य होने के कारण, उससे अधिक कठोर है। और चूंकि इस सविनय प्रतिकार करने वाली सेना में बदला निकालने के विकार का अभाव है अथवा चाहिए, इसलिए उसे थोड़े से थोड़े सिपाही भी बस होते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि सिर्फ एक-अकेला ही—"पूर्ण" सविनय प्रतिकार करने वाला व्यक्ति अन्याय के मुकाबले में न्याय की ओर से युद्ध कर के विजय प्राप्त करने के लिए काफी है।

इसलिए, यद्यपि, अखिल भारतीय महासभा समिति ने प्रत्येक प्रान्त की समिति को खुद उन्हींकी जिम्मेदारी पर सविनय कानून-भङ्ग करने की सत्ता दे दी है, तथापि, मैं आशा करता हूं कि वे 'जवाबदेही' शब्द पर पूरा ध्यान रक्खेंगी और मामूली बात समझ कर सविनय कानून-भङ्ग शुरू न करेंगी। हर एक शर्त का पालन अवश्य पूरी तरह होना चाहिए। हिन्दू-मुसलमान एकता, अहिंसा, स्वदेशी और छुआछूत को दूर करने के उद्देश के मानी यह हैं कि ये अभी हमारे राष्ट्रीय जीवन के अभिन्न अङ्ग नहीं हो पाये हैं। अगर अब भी किसी व्यक्ति-समुदाय के दिल में हिन्दू-मुसलमान एकता के विषय में कुछ भी खटका बाकी रहा हो, अगर अब भी इसमें शक बाकी हो कि हमारे इन तेहरे ध्येय की सिद्धि के लिए अहिंसा की आवश्यकता है, अगर अबतक उन्होंने स्वदेशी का पूर्ण पालन नहीं किया है, और अगर उस समुदाय के हिन्दू अब भी छुआछूत के जहर को अपनाये हुए हों तो वह व्यक्ति या व्यक्ति-समूह सविनय कानून-भंग के लिए तैयार नहीं है। हां, बेशक यह बात बहुत अच्छी होगी कि जबतक उसका प्रयोग एक जगह हो रहा है तबतक वे गौर से देखते रहें और रास्ता देखें। अगर हम उसी सेना की उपमा की भाषा में कहें तो जो टुकड़ी रुकी रहती है, गौर और इन्तजार करती रहती है, वह भी लड़ाई में उतनी ही सक्रिय सहयोग करती है जितना कि वह टुकड़ी जो वास्तव में मुठभेड़ कर रही है। जब कि एक जगह प्रयोग हो रहा है, तब उसके साथ ही व्यक्तिगत कानून-भंग करने का मौका उसी समय आ सकता है, जब कि सरकार स्वदेशी-प्रचार के चुपचाप कार्य में भी बाधा डाले। इस तरह यदि किसी होशियार सूतकार को यह हुक्म दिया जाय कि चरखे के संगठन का या सूत कातने की शिक्षा देने का कार्य मत करो, तो ऐसी आज्ञा का अनादर उसे तुरंत ही कर के जेल जाने की अवस्था उत्पन्न कर देनी चाहिए।

परंतु दूसरी अवस्थाओं में, जहांतक कि मैं मौजूदा हालत में सोच सकता हूं, दूसरे प्रांतों के लिए यह सब से अच्छा होगा कि अबतक एक प्रांत सोच-समझ कर उसमें अग्रसर हो रहा है और राज्य के भरसक तमाम नीति-विरुद्ध नियमों को विचार-पूर्वक तोड रहा है वे ठीक ठीक तमाम आज्ञाओं और हिदायतों को मानते रहें और यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं है कि उस समय अगर दूसरे किसी भी भाग में जरा भी हिंसा का उद्रेक हुआ-लोगों की तरफसे जरा भी खून-खराबी हुई-तो इससे उस प्रयोग की निस्संदह बडी ही हानि होगी और शायद वह बन्द भी हो जाय। प्रयोग-प्रांत के लोग चाहे जेल भेजे जाय, उन पर गोलियां झाडी जायं, या हकिमों द्वारा तरह तरह से सताये जायं; पर ऐसी अवस्था में भी लोगों से बिल्कुल अचल, शांत और स्थिर रहने की उम्मीद की जाती है। हम उनसे यह जरूर उम्मीद करते हैं कि वे हरएक खयाल होने लायक अवसर पर ऐसा व्यवहार करेंगे जो देश के लिए अभिमान और गौरव का कारण हो।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी.

परीक्षा

गुजरात की परीक्षा के दिन नजदीक आ रहे हैं। अब तो गिन्ती के लिए महीने भी नहीं रहे, सिर्फ हफ्तों की बातें है। कुछही समय में दिनों की बात होने लगेगी और फिर घण्टों की गिनती होगी।

एक ओर तो गुजरात को महासभा का समारोह करना है। हमें यह देखना है कि हम अतिथि-सत्कार में, व्यवहार-कुशलता में, उदारता में कम न निकलें।

दूसरी ओर गुजरात ने असहयोग में जो पहले कदम बढाया है, उसकी शोभा देने योग्य काम कर दिखाना है। गुजरात को कम से कम एक तहसील तो ऐसी तैयार करना चाहिए जो मौत की गोद में जाने के लिए तैयार हो और ऐसा सामर्थ्य भी रखती हो।

इसकी शर्तें मैं पहले ही लिख चुका हूं। यह कहा जा सकता है कि महा समिति ने भी उन्हें स्वीकार कर लिया है। ये शर्तें तो ऐसी हैं जो कार्य के रूप में परिणत की जा सकती हैं। परंतु उन बातों का भी विचार हमे कर रखना चाहिए, जिनके विषय में प्रस्ताव तो नहीं हो सकता, परंतु जिनके पाबन्द रहे बिना उन शर्तों का पालन नहीं किया जा सकता। जो शख्स रेखा-गणित के सिद्धांत को बिना समझे ही रट डालता है वह अगर 'बारह' की जगह 'बारहवां' कह दे तो कौन आश्चर्य की बात है? जिसने रटा तो हो 'इसलिए'; परंतु कह जाय 'क्यों कि' तो फिर उसकी क्या गत हो? जिस प्रकार उसकी रटाई की पोल खुल जाती है उसी प्रकार वह शख्स भी जो बिना ही समझे समिति की शर्तों के पालन करने का दावा करता है, दरवाजे से वापस लौटे बिना नहीं रहने का। क्योंकि वह दरवाजे की तरफ जाता तो है, पर उसके खोलने की तरकीब नहीं जानता।

यह लडाई तो धर्म की है। इसे चाहे व्यवहार्य्य कहिए, चाहे अ-व्यवहार्य, राजनैतिक कहिए, अथवा सांसारिक, इसका कुछ भी नाम रख दीजिए, इसका मूल है धर्म। धर्म के खातिर, धर्म के नाम पर, हम यह लडाई लड रहे हैं। अली-भाइयों ने बिल्कुल पक्की बात कही है। उन्होंने कहा-" राज्य के कानून और ईश्वर के कानून, पीनल कोड और कुराने पाक में से किसी का चुनाव करना हो तो हम अपने ईश्वर को और हमारे पाक कुरान को ही पसंद करेंगे।" यह लडाई तो इस बात की है कि मुसलमान, हिन्दू, पारसी, ईसाई आदि सब अपने अपने धर्म को जानें और उसके अनुसार बरतें। सब धर्म के खातिर मरें। जो मरता है वह पार होता है जो मारता है वह मरता है। अगर दूसरों की हत्या करके कोई अपने धर्म का पालन कर सकता तो आज लाखों आदमियों को मुक्ति मिल गई होती।

इसलिए हमें तो बस संकट-समय में ईश्वर को ही याद करना है। जिसे इतना विश्वास नहीं है उसकी गति अंत को रुके बिना नहीं रह सकती। खोटा रुपया चाहे कितनी ही दूकानों पर क्यों न चक्कर लगा आवे, उससे भला कहीं उसकी कीमत बढ सकती है? सर्राफ के यहां से वह लौटे बिना रही नहीं सकता। और इस बीच वह जिन जिन की दूकानों पर भटका है उन सबको भी उसके स्पर्श से थोडी-बहुत छूत लग गई होगी। इसी प्रकार हममें जो लोग 'रंगे सियार' होंगे वे जरूर आखिरी मंजिल से पीछे हटे बिना रही नहीं सकते।

जिसकी इच्छा हो वह मैदान में आवे। जिनसे हो सके वही इसमें कूदें। मैं निमन्त्रण सबको देता हूं। परंतु जो भूखे हों वही थाली पर बैठें। अगर दूसरे लोग बैठ जायँगे तो पछतायँगे। जिसे भूख नहीं है, उसे बढिया बढिया खाने भी अच्छे नहीं लगते। जो भूखा है उसे रूखी-सूखी बिजडे की रोटी भी मीठी लगती है। इसी प्रकार जो लोग अ-सहयोग का अर्थ समझ चुके हैं, जो धर्म्म का मर्म जान चुके हैं वही इसमें टिक सकेंगे। जो समझ चुका है उसके लिए सब बातें आसान हैं। जो समझ नहीं पाया है उसके लिए सब बातें कठिन हैं। अंधे के पास आईना किस काम का?

अवसर कठिन है। बिना बिचारे कदम उठा कर पीछे पछताने का मौका न आवे। अगर कोई भी तहसील तैयार न हो तो गुजरात भले ही हुंडी वापस कर दे। परंतु उस पर सही कर चुकने के बाद तो उसको सिकारे बिना गुजर ही नहीं। अभी गुजरात के लिए मौका है। पर पसंद कर लेने के बाद फिर पीठ न दिखानी होगी। अगर शेखी में आकर बीडा उठा ले और फिर कुछ न बन पडे तो फिर जीते हुए मुर्दे के समान हो जायंगे। आज तो गुजरात को जरा भी घबडाने का या संकोच का कारण नहीं है।

अब यह विचार करना चाहिए की हमारी योग्यता किन किन बातों पर अवलम्बित है—

(१) शान्ति (२) स्वदेशी
(३) हिन्दू-मुसलमान-एकता (४) छुआछूत को दूर करना

ये सब बातें तो आसान हैं।

पर कानून का सविनय भंग? इससे भी हम लोग अनजान नहीं हैं। जेल तो उसके साथ हई है। उसे भोग लेंगे। बडे बडे लोग गये हैं, देख आये हैं, तो फिर हम क्यों ऐसा न कर सकेंगे? अतएव यह तो कोई बडी बात नहीं।

पर—?

मार्शल ला जारी हो जाय तो? गुरखों की फौज आवे तो? गोरी सेना चढ आवे तो? और फिर संगीनें भोंके, गोलियां झाडे, पेट के बल रेंगावे तो? अरे, भले चली आवे। आने दो। देखें पेट के बल चलावे तो? मर मिटेंगे, पर पेट के बल न रेंगेंगे। संगीनें भोंकना हो तो भोंक दे। मौत प्लेग और हैजे से न सही, संगीनों से ही सही। और अगर गोलियां भी दागे तो हम कहीं पीठ दिखाने वाले हैं? अब तो इतना जोर आ गया है कि गिल्ली-डंडे के खेल की तरह, छाती खुली कर के गोलियों को छातियों पर झेल लेंगे। गुरखों को अपना भाई बना लेंगे;

और न हो तो, भाई के हाथों मरने जैसा सुख दूसरा क्या होगा ? ऐसा कहते हुए तो जरूर बदन में खून दौड़ने लगता है। पर करते हुए ?

मुझे तो विश्वास है कि दब्बू गुजरात इस बार कर दिखावेगा। परन्तु यह बात लिखते हुए कलम भारी पड़ जाती है। गुजरात ने बन्दूकों के धड़ाके किस दिन सुने ? गुजरात ने लहू की नदियां कब देखीं ? क्या गुजरात से यह दृश्य देखा जा सकता है कि पटाखों की तरह तड़ातड़ बन्दूकें चल रही हैं और मिट्टी के घड़ों की तरह लोगों के सिर धड़ाधड़ फूट रहे हैं ?

अगर गुजरात औरों के सिरों को फूटते हुए देख सके तो वह 'गर्वी गुजरात' न रहे। अगर गुजरात अपने ही सिरों को टूटते हुए देखे तो अमर-पद को प्राप्त करे। इसके लिए किस तालीम की जरूरत है ?

विश्वास की। यह विश्वास समिति के प्रस्तावों से नहीं मिल सकता। ईश्वर दीन-दुखियों का वाली है; ईश्वर हिम्मत का देने वाला है। "राम राखे तो कोई न चाखे।" यह देह उसीका दिया हुआ है। वह खुशी से इसे ले जाय। देह को सुरक्षित रखने से कहीं वह चिरस्थायी हो सकता है ? रुपये की तरह देह का भी विनियोग अच्छे काम में ही करना उचित है। और देह अर्पण करने के लिए इस अत्याचार से मुक्त होने जैसा सु-अवसर दूसरा क्या होगा ? इस तरह जो सच्चे दिल से मानता है वह तो मुसकराते हुए छाती खोल कर बेधड़क और बे-फिक्र होकर गोलियों को गेंद की तरह झेल लेता है।

इतना अटल विश्वास अगर हो तो गर्वी गुजरात की किसी तहसील को इस रण में सामने आना चाहिए।

सब लोगों को इतना विश्वास न भी हो तो हर्ज नहीं। कमसे कम कितने लोगों को होना चाहिए इसका अन्दाज मैं बता चुका हूं। दूसरे लोगों को गोलियों का स्वागत करने की हिम्मत न हो तो भी हानि नहीं। पर उनमें इतनी दृढ़ता तो अवश्य होना चाहिए कि चाहे उनका सारा घर-बार क्यों न लूट लिया जाय, पर वे हरगिज टस से मस न हों। भले ही घर-बार लूट लिये जायं। जीते रहेंगे तो फिर उन्हींमें जायंगे और उनको लेने का प्रयत्न करते हुए ही मरेंगे। यही स्वराज्य है।

अगर इतना बल किसी एक तहसील में भी न हो तो फिर हम स्वराज्य के योग्य किस तरह हो सकते हैं ? परंतु जिस दिन एक भी तहसील इस परीक्षा में पास हो जायगी बस, उसी दिन अवश्य स्वराज्य है। क्योंकि उसी दिन हिन्दुस्तान दिव्य शस्त्र के उपयोग करने में कुशल माना जायगा।

पर इससे यह न समझना चाहिए कि हममें बहुत बल आ गया है। यह तो आत्मा का स्वभाव ही है। बोअर लोगों की स्त्रियों ने ऐसी बहादुरी दिखाई है। लाखों अंगरेज ऐसी वीरता का परिचय दे चुके हैं, और तुर्क स्त्री-पुरुष तो आज भी उसको प्रकट कर रहे हैं।

परंतु भेद है। वे मारते भी हैं और मरते भी हैं। लेकिन हम जानते हैं कि अमरता तो मरने में ही है। मारने का काम छोड़ कर मरने का ही काम सीखने में क्या कोई कठिनाई है ? मरना सीखने के लिए तो हिम्मत की जरूरत है। और विश्वास रखने वाले में वह निमिष मात्र में आ जाती है। मारना सीखने के लिए शरीर की जरूरत है, बन्दूक चलाने के महावरे की जरूरत है। ऐसे हजारों ढकोसले जानने के बाद कहीं मरना सीखने की नौबत आती है और फिर भी अन्त को "खूनी" लोगों में ही गिनती होती है।

पर कोई हिन्दू-भाई कहेंगे कि ये बातें तो क्षत्रियत्व की हैं। गुजरात से क्षत्रियत्व का क्या वास्ता ? हम तो एक व्यापार-मात्र करना जानते हैं। गुजरात चाहे भले ही ऐसा हो, परंतु हिन्दुत्व ऐसा नहीं। चारों वर्णोंमें चारों गुण अवश्य होना चाहिए। हां, यह सच है कि हरएक में अपना अपना गुण विशेष रूप से होता है; परंतु अगर दूसरे गुण उसमें बिल्कुल न हों तो वह नपुंसक है। जो माता अपने बच्चे के लिए मरना जानती है वह क्षत्रियाणी है, और जो पति अपनी पत्नी के लिए प्राण देता है वह भी क्षत्रिय है। परंतु इन सबका कर्त्तव्य जगत् की रक्षा करना नहीं है; अतएव हम उन्हें क्षत्रिय के रूप में नहीं पहचानते हैं।

इस समय तो जगत् की-हिन्दुस्तान की-रक्षा करना हरएक का धर्म्म है; क्योंकि वह धर्म आज किसी का नहीं रहा है-नहीं दिखाई देता है।

यह तो हिन्दुओं की बात हुई। गुजरात के मुसलमान, पारसी, आदि क्या करें ? हिन्दुस्तान उनका भी है; गुजरात उनका भी है। उन्हें भी हिन्दुस्तान को गुलामी से छुड़ाना है। और वे भी केवल मर कर ही छुड़ा सकते हैं।

अतएव क्या हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई और क्या यहूदी आदि, जो अपने को हिन्दुस्तानी मानते हैं, उन सबको मरने का मंत्र सीखना और उसकी साधना करना है। इस पाठ को तो केवल वही पढ़ सकता है और वही बरत सकता है जो एक मात्र ईश्वर में भरोसा रखता है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

स्वराज्य पार्लियामेंट

गत ४ नवम्बर को देहली में वर्तमान अखिल भारत राष्ट्रीय महासभा समिति की आखिरी बार बैठक हुई। देहली के प्रसिद्ध हकीमजी अजमलखान की देख-रेख में सारा प्रबन्ध था। उनकी तबीयत अलील है और आपको कुछ समय तक आराम करने की सख्त जरूरत है। लेकिन वे इस समय आराम करना नहीं चाहते। उनका विशाल भवन और डाक्टर अनसारी का मकान खासी धर्मशालायें हो रही हैं, जहां महमानों के ठहरने का इन्तजाम किया गया है-फिर वे चाहे हिन्दू हों या मुसल्मान। हिन्दुओं के धार्मिक विचारों का पूरा खयाल रक्खा जाता है। जो लोग मुसल्मान के घर में पानी तक नहीं पी सकते उनके लिए अलहदा स्थान तजवीज किये गये हैं। यहां देहली में हिन्दू-मुसलमान-एकता का प्रत्यक्ष व्यवहार दिखाई देता है। यहां के हिन्दू हकीमजी को कामिल तौरपर कृतज्ञता-पूर्वक अपना नेता मानते हैं और यहां तक कि अपने धार्मिक हितों की रक्षा भी उनके हाथों में सौंप देने में नहीं हिचकते।

अखिल भारतीय महासभा-समिति जनता की पार्लियामेंट है, जिसको वह हर साल चुनती है। उसका महत्व और प्रातिनिधिक स्वरूप प्रतिवर्ष बढ़ता आया है; और आज तो वह उन तमाम बालिग लोगों का 'मुख' हो गई है, जो चाहे किसी मजहब के पाबन्द हों, या किसी दल से ताल्लुक रखते हों; पर सिर्फ ।) देकर महासभा का ध्येय स्वीकार करते हों और जिन्होंने अपना नाम महासभा के रजिस्टर में दर्ज करा लिया हो। प्रतिनिधियों में तो दरअसल हिन्दू, मुसल्मान, सिक्ख और ईसाई लोग हैं और वो भी शायद प्रायः उनकी जन-संख्या के अनुसार ही हैं। पारसी और यहूदी लोग भी शामिल हैं या नहीं, यह मैं नहीं जानता। स्त्री-प्रतिनिधियों की संख्या भी अच्छी है। 'पंचम' प्रतिनिधि भी हैं। अगर किसी

समाज के लोगों के प्रतिनिधि कम हों तो इसमें दोष उन्हींका है। तमाम प्रतिनिधि अवैतनिक हैं—वेतन नहीं लेते—और अपने ही खर्च से अधिवेशनों में शरीक होते हैं और भोजन और स्थान का खर्च भी खुद ही बरदाश्त करते हैं। जो शहर समिति को निमन्त्रित करता है उसके निवासी जो प्रतिनिधियों का स्वागत और सत्कार करते हैं यह उनकी उदारता का लक्षण है। यह विधि अच्छी है। परन्तु महासभा के नियम के अनुसार उनके लिए यह कोई कैद नहीं है। अधिकांश निर्वाचित प्रतिनिधि तीसरे दरजे में सफर करते हैं और मामूली आराम पाकर सन्तुष्ट रहते हैं।

जनता की इस पार्लियामेंट का भवन था मग एक शामियाना; और सजावट का सामान था कुछ पौधे और लता-पत्र। हां, कुरसियां और मेजें लगाई थीं; पर मैं समझता हूं, वह इसलिए कि जहां पेंडाल था वहां धूल उड़ती थी; कुरसियों और मेजों के द्वारा उससे बचाव और सफाई की सम्भावना थी। सभापति की मेज पर पीला रंगा हुआ खादी का कपडा 'टेबुल-क्लाथ' का काम दे रहा था। प्रायः सब प्रतिनिधि—क्या स्त्री और क्या पुरुष—मोटी खादी के कपडे पहने हुए थे; और कुछ इनेगिने लोग, आजकल जिसे बेजवाडा की महीन खादी कहते हैं, उसके कपडे पहने थे। पोशाक सीधा-सादा और और हिन्दुस्तानी था। इन सब बातों की सविस्तर चर्चा मैंने इसलिए की कि अखिल भारतीय महासभा, बहुतेरे लोगों की दृष्टि में, भावी स्वराज्य-पार्लियामेंट का नमूना है। यह हिन्दुस्तान की सच्ची हालत के अनुकूल ही है। यह भारतभूमि की दरिद्रता, सादगी और उसकी आबोहवा की जरूरतों का थोडा-बहुत प्रतिबिम्ब ही है।

अब, इसके साथ वहां शिमला और यहां नई देहली में जो झूठा दिखावा, शान और फजूलखर्ची होती है, जरा उसका मुकाबला कीजिए!

जैसा बाहर वैसा ही भीतर। राष्ट्र का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण काम बहुत ही व्यवस्थित और यथोचित रीति से बारह घण्टों में किया गया। कोई भी ऐसी बात नहीं की गई या करने दी गई जिसकी प्रायः पूरी छान-बीन न कर ली गई हो। कार्यकारिणी समिति और सभापति महाशय के मतभेद से सम्बन्ध रखने वाले प्रस्ताव पर जितना मुमकिन था, शान्ति के साथ वाद-विवाद किया गया। महासभा-समिति ने, अपने अधिकारों की रक्षा के विषय में सावधान होते हुए भी, कार्यकारिणी समिति के निर्णय पर यह व्यवस्था दी कि मौजूदा नियमों के अर्थ करने का अधिकार सभापति की अपेक्षा समिति को ही है। तथापि उसने प्रस्ताव में ऐसी कोई भी बात नहीं रहने दी जिससे, दिमाग लडाने पर भी, वह सभापति महाशय के प्रति अ-शिष्ट मालूम हो।

इस अधिवेशन का मुख्य प्रस्ताव था सविनय कानून-भंग के सम्बन्ध में, जो यहां दिया जाता है—

"चूंकि राष्ट्र के इस निश्चय की पूर्ति के लिए कि 'इस साल के समाप्त होने के पहले स्वराज्य की स्थापना कर लेंगे' अब एक महीने से कुछ ही अधिक समय बाकी रहा है, और चूंकि अली-भाइयों की गिरफ्तारी और सजा दिये जाने के मौकों पर राष्ट्र ने पूर्ण अहिंसा का पालन करके उदाहरणभूत आत्मसंयम की क्षमता का परिचय दिया है, और अब राष्ट्र को यह वाञ्छनीय मालूम होता है कि वह अधिक कष्टसहन और स्वराज्य-प्राप्ति के योग्य नियम पालन की क्षमता का परिचय दे, अतएव अखिल भारतीय महासभा-समिति प्रत्येक प्रान्त को यह अधिकार देती है कि वह अपनी जिम्मेदारी पर, उनके प्रान्त की महासभा समिति जिस ढंग से उचित बतावे, सविनय कानून-भंग करे, जिसमें लगान न देना भी शामिल है। पर इसके लिए नीचे लिखी शर्तों का पालन करना आवश्यक है।—

(१) व्यक्तिगत कानून-भंग की अवस्था में, प्रत्येक व्यक्ति को चरखा कातने का ज्ञान होना चाहिए और कार्यक्रम के अनुसार अपने अपने कर्तव्यों का पालन पूरे तौर पर कर चुकना चाहिए अर्थात् प्रत्येक मनुष्य ऐसा हो जिसने विदेशी कपडों का इस्तैमाल बिल्कुल छोड दिया हो और केवल हाथ का बुना कपडा पहनता हो, हिन्दू-मुसलमान की एकता को तथा भारत की भिन्न भिन्न मतावलम्बिनी जातियों की एकता को 'अटल सिद्धान्त' की तरह मानता हो, खिलाफत और पंजाब के अन्यायों की क्षतिपूर्ति और स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अहिंसा को पूर्ण आवश्यक मानता हो और अगर वह हिन्दू है तो अपने निजी व्यवहार के द्वारा यह दिखलाता हो कि 'छुआछूत' राष्ट्रीयता के माथे पर एक कलंक है।

(२) आम कानून-भंग की अवस्था में, एक जिला या तहसील राष्ट्र का एक 'घटक'—पूर्णअंग—समझा जाना चाहिए, वहां के अधिकांश निवासी पूर्ण स्वदेशी का पालन करते हों, उसी जिले या तहसील में हाथ के कते सूत से करघों पर बने कपडे पहनते हों और अ-सहयोग की दूसरी तमाम मदों के मानने वाले हों।

इसके अलावा, कानून-भंग करने वाले व्यक्ति को सार्वजनिक चन्दे की रकम से निर्वाह करने की आशा न रखनी चाहिए। सजा पाने वाले व्यक्तियों के परिवार वालों से यह उम्मीद की जाती है कि वे चरखा कातने, धुनकने, कपडा बुनने तथा दूसरे किसी जरिये से अपना निर्वाह कर लेंगे।

अगर कोई प्रान्तिक समिति दरख्वास्त करे तो कार्यकारिणी समिति को यह अधिकार है कि वह अगर अपना इत्मीनान कर ले तो सविनय कानून-भंग की किसी शर्त को उसके लिए ढीला कर दे।"

जो लोग कानून-भंग के लिए बहुत आतुर थे उन्होंने तरमीमों का तांता बांध दिया। तरमीमों की ताईद उन्होंने बडी चतुराई के साथ की। उनके भाषण इतने मुख्तसिर थे कि वे उसके नमूना कहे जा सकते हैं। पूर्ण वाद-विवाद के बाद हरएक तरमीम नामंजूर हो गई। वाद-विवाद करने वालोंमें मौलाना हसरत मोहानी मुख्य थे। वे कानून-भंग के लिए बहुत अधीर थे। इससे वे उन कसौटियों का मर्म नहीं समझ सके, जो भावी कानून-भंग करने वाले के लिए लगाई गई थीं। सिक्ख प्रतिनिधियों के कहने से सिर्फ एक, और एक मात्र, बात और जोड दी गई। वे अपने विशेष अधिकारों के विषय में बहुत अधीर थे। ऐसी अवस्था में अगर हिन्दू-मुसलमान-एकता की रक्षा की जाती है तो पंजाब में हिन्दू-मुसलमान-सिक्ख की एकता पर जरूर ही जोर दिया जाना चाहिए। तब दूसरे लोगों को कहना लाजिम था कि फिर और दूसरी जातियों का भी नाम क्यों न लिखा जाय? फल यह हुआ कि दूसरी तमाम भिन्न भिन्न धर्मावलम्बिनी जातियों की एकता का भी उल्लेख किया गया। यह तरमीम अच्छी है। क्योंकि इससे यह जाहिर होता है कि हिन्दू-मुसलिम एकता कोई डरावनी बात नहीं है; बल्कि [illegible] जातियों की एकता का प्रत्यक्ष चिह्न है।

(शेष पृष्ठ १०० पर)

शंकरलाल बेंकाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, सूरी ओळ, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी [illegible] कार्यालय से [illegible]

लोहे के चने

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मासका	,, २)
एक प्रतिका	,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक	,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—अगहन ब. ५, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, २० नवम्बर, १९२१ ई० | अंक १४

श्री गांधीजी की प्रतिज्ञा

सविनय कानून-भंग मुल्तवी

युवराज के स्वागत-बहिष्कार के अवसर पर बम्बई में लोगों की तरफ से गहरा उपद्रव और मारपीट हो जाने के कारण श्री गांधीजी ने प्रतिज्ञा की है कि जबतक बम्बई के हिन्दू-मुसलमान, पारसी ईसाई और यहूदियों के साथ तथा असहयोगी सहयोगियों के साथ सुलह न कर लेंगे, **मैं कुछ न खाऊंगा और न पानी के सिवा कुछ पीऊंगा।**

श्री० गांधीजी ने यह भी घोषणा की है कि जबतक स्वराज्य न स्थापित होगा मैं हर सोमवार को २४ घण्टे तक उपवास करूंगा।

आपने यह भी प्रकट किया है कि ऐसी अशांति का उद्रेक हो जाने की परिस्थिति में सार्वजनिक रूप से कानून का सविनय भंग नहीं शुरू किया जा सकता।

टिप्पणियां

मेरी बे-मेल बातें

एक सज्जन कुछ युक्ति-संगत प्रश्न इस नोखे ढंग से करते हैं.—

"जब जुलू लोग अपनी आजादी के लिए अन्याय से अपना कब्जा कर लेने वाले ब्रिटिश लोगों के खिलाफ उठ खड़े हुए थे तब आपने उनके उस 'बलवे' को दबाने के लिए अंगरेजों की मदद दी थी। क्या विदेशी शासन के जूए को फेंक देने का प्रयत्न करना बलवा है? क्या जान डि आर्क बलवाई थी? क्या जार्ज वाशिंगटन बागी था? क्या डि वेलरा भी ऐसे ही हैं? आप कहेंगे कि जुलू लोगों ने मार-काट का अवलम्बन किया था। तब मैं पूछता हूं कि उनका उद्देश्य बुरा था या साधन? साधन चाहे भले ही बुरे रहे हों पर उद्देश्य तो हरगिज बुरा नहीं था। अतएव आप कृपा करके इस पहेली को समझाइए। इस पिछले महाभारत में भी जहां कि जर्मन और आस्ट्रियन वीर संसार की संयुक्त शक्तियों से ऐसी वीरता के साथ लड़ रहे थे, आपने अंगरेजों के लिए रंगरूट इकट्ठा किये। किसलिए? जिन राष्ट्रों ने भारत का कुछ भी अहित नहीं किया था उनके साथ लड़ने के लिए। जब कभी दो जातियों में युद्ध छिड़ता है तब, किसी के पक्ष में या विपक्ष में निर्णय करने के पहले, दोनों दलों की बातें सुनना पड़ती हैं। इस पिछले संग्राम में हमें सिर्फ एकतरफा बातें मालूम होती थीं और सो भी उस राष्ट्र के द्वारा जो अपनी सचाई और ईमानदारी के लिए हरगिज मशहूर नहीं है। आप हमेशा से ही सत्याग्रह और अहिंसा की तरफदारी करते आये हैं। तब आपने लोगों को ऐसे युद्ध में शामिल होने के लिए जिसकी बुराई और अच्छाई का उन्हें पता भी नहीं था और ऐसी जाति को ऊपर उठाने के लिए जो कि साम्राज्यवादिता के कीचड़ में बुरी तरह लोट रही है, क्यों उत्साहित किया? आप कहेंगे कि अंगरेजी नौकरशाही पर आपका भरोसा था। भला क्या ऐसे विदेशी लोगों पर कोई भरोसा रख सकता है जिनकी तमाम करतूतें उनके अभिवचनों के खिलाफ इतनी साफ साफ हुई हैं? और आपके सदृश उच्च गुण-संपन्न व्यक्ति से तो ऐसा हो ही नहीं सकता था। अतएव आप कृपया इस दूसरी पहेली का भी उत्तर दीजिएगा।

अब एक दूसरी बात पर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं। आप अहिंसा के प्रतिपादक हैं। वर्तमान परिस्थिति में तो हमें कड़ाई के साथ अहिंसा का पालन करना चाहिए। पर जब हिंदुस्तान आजाद हो जायगा, तब भी, किसी दूसरे राष्ट्र के हम पर चढ़ाई करने पर भी, क्या हमें हथियार को दूर ही रखना होगा? जब कि रेलवे, तार और जहाजों के द्वारा हमारे देश की पैदावार का दूसरे देशों को अधिकाधिक भेजा जाना बन्द हो जायगा तब भी क्या आप इन वस्तुओं का बहिष्कार ही करेंगे?"

मैंने अपनी असंगति के कई इल्जाम पढ़े और सुने हैं। परंतु मैं उनका जवाब नहीं देता; क्योंकि उनका असर अकेले मेरे सिवा किसी दूसरे पर नहीं होता। तथापि इन सज्जन ने जो प्रश्न किये हैं वे आमतौर पर मार्के के और उत्तर दिये जाने के योग्य हैं। हां, वे मेरे लिए नये तो किसी भी तरह से नहीं हैं। परंतु मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने 'यंग इंडिया' में कभी उनका जवाब दिया है।

महायुद्ध में मैंने सहायता क्यों दी?

सिर्फ जुलू जाति के बलवे के समय ही मैंने अपनी सेवायें अर्पण नहीं की, बल्कि उसके पहले, बोअर-संग्राम के समय भी, मैंने सेवा की है। और गत महायुद्ध के समय ही सिर्फ मैंने रंगरूट भरती नहीं कराये, बल्कि १९१४ ईसवी में लंदन में एक एम्बुलन्स कोर का भी संगठन किया था। इसलिए ऐसा कर के यदि मैंने पाप

किये हों तो मेरे पापों का घड़ा अब पूरा भर चुका है। सरकार की सहायता देने का कोई अवसर मैंने कभी नहीं गवांया। उन समस्त कठिन प्रसंगों पर दो सवाल मेरे मन में उपस्थित हुआ करते थे। साम्राज्य के नागरिक की हैसियत से—क्यों कि मैं पहले अपने को इस सल्तनत का नागरिक मानता था—मेरा क्या कर्तव्य है, और अहिंसा-धर्म के कट्टर अनुगामी की हैसियत से मेरा क्या कर्तव्य है?

अब मैं समझ गया कि उस समय जो मैं अपने को इस साम्राज्य का नागरिक समझता था, वह मेरी गलती थी। किन्तु उन चारों मौकों पर मेरा यह सच्चा विश्वास था कि यद्यपि मेरे देश में अभी कितनी ही बातों की खामियां हैं और उनका कटु अनुभव उसे हो रहा है तथापि वह स्वतंत्रता के मार्ग पर बराबर आगे बढ़ रहा है। और यह भी विश्वास था कि लोगों की दृष्टि से सरकार बिलकुल ही बुरी नहीं है तथा अंगरेज शासन-कर्ता संकुचित दृष्टि और जड़ होने पर भी सच्चे हैं। मेरे विचार ऐसे थे। अतएव उस समय मैंने वैसे ही काम किये जैसे कि एक साधारण अंगरेज उस परिस्थिति में करता। उस समय मुझे इतना ज्ञान और महत्व प्राप्त नहीं हुआ था कि मैं स्वतंत्रता के साथ किसी काम को करता। मुझे ब्रिटिश सचिवों के निर्णयों पर विचार करने या अदालत की तरह उनकी छानबीन करने का उस समय कोई प्रयोजन नहीं था। बोअर-युद्ध, जुलू बलवे या गत महायुद्ध के समय मैंने ब्रिटिश सचिवों पर 'दुर्भाव' का लांछन कभी नहीं लगाया। मैंने यह कभी नहीं खयाल किया और न अब भी करता हूं कि अंगरेज लोग ही दूसरे मनुष्यों से खास तौर पर खराब या बदतर हैं। मैं पहले भी मानता था और अब भी मानता हूं कि वे उतने ही उच्च उद्देश रख सकते हैं और उच्च कार्य कर सकते हैं और साथ ही उतनी ही गलतियां भी कर सकते हैं जितनी कि कोई भी अन्य मनुष्य-समूह। इसलिए मैं मानता था कि मैंने स्थानिक अथवा सामान्य आवश्यकता के समय इस साम्राज्य को अपनी क्षुद्र सेवायें अर्पण कर के, एक मनुष्य और साम्राज्य के नागरिक की हैसियत से अपने कर्तव्य का पालन काफी तौर पर किया है। और ठीक इसी तरह मैं हरएक हिन्दुस्तानी से यह उम्मीद करूंगा कि स्वराज्य स्थापन होने पर वह भी इसी तरह देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करे। अगर हरएक खयाल होने लायक मौके पर हममें से हरएक आदमी खुद ही अपने लिए कानून बन जायगा और हमारी भावी राष्ट्रीय मंडल के प्रत्येक कार्य्य के सोने का कांटे में तौलेगा तो मुझे अत्यन्त दुःख होगा। मैं तो अधिकांश मामलों में अपना निर्णय राष्ट्रीय प्रतिनिधियों के हवाले कर दूंगा—हां, उन प्रतिनिधियों के चुनाव में अलबत्ते मैं खास तौर पर सावधान रहूंगा। मैं समझता हूं, दूसरे किसी तरह, कोई भी प्रजासत्ताक सरकार एक दिन भी नहीं टिक सकती है।

पर अब तो मेरी दृष्टि में सारी स्थिति बदल गई है। मेरी आंखें, मैं समझता हूं, अब खुल गई हैं। अनुभवों ने मुझे अधिक होशियार बना दिया है। अब मैं वर्तमान शासन-प्रणाली को बिलकुल बुरी समझता हूं और मानता हूं कि इसको मिटाने या सुधारने के लिए देश को खास तौर पर कोशिश करने की जरूरत है। खुद उसमें इतनी ताकत नहीं है कि वह स्वयं अपना सुधार कर ले। हां, अब भी मैं यह जरूर मानता हूं कि कितने ही अंगरेज पदाधिकारी सच्चे आदमी हैं। परंतु उनसे मुझे मदद नहीं मिल सकती; क्योंकि मैं समझता हूं कि वे भी वैसे ही अंधे हो गये हैं और भ्रम में पड़े हुए हैं, जैसा कि मैं था। इसलिए इस सल्तनत को अपना कहने में, या अपने को इसका नागरिक कहने में मुझे जरा भी अभिमान नहीं मालूम होता। बल्कि, इसके विपरीत, मैं तो अच्छी तरह देख रहा हूं कि मैं इस साम्राज्य में एक अछूत और बहिष्कृत आदमी हूं। अतएव जिस तरह कि एक हिन्दू-समाज से बहिष्कृत किये गये मनुष्य का हिन्दू-धर्म या हिन्दू-समाज के मूलतः पुनस्संगठन या सर्वनाश के लिए ईश्वर से प्रार्थना करना सर्वथा न्याय्य है उसी तरह मुझे भी इस साम्राज्य के मूलतः पुनःसंगठन या सर्वनाश के लिए परमात्मा से प्रार्थना किये बिना दूसरी गति नहीं है।

अब अहिंसा को लीजिए। यह और भी पेचीदा है। अहिंसा का जो अर्थ मैं समझता हूं वह तो मुझे प्रायः इन तमाम हलचलों से जिनमें आज मैं लिपटा हुआ हूं, अलग ही रखने की प्रेरणा करता है। इधर मेरी आत्मा तबतक संतुष्ट नहीं होती जबतक कि मैं एक भी अत्याचार को या जरा भी दुःख को दीन होकर चुप चाप खड़ा खड़ा देखता रहूं। लेकिन मुझ जैसे एक दुर्बलचित्त अशक्त और दुःखी प्राणी के लिए हरएक अन्याय को दूर करना या उन तमाम अत्याचारों के दोष से, जिन्हें मैं देखता हूं, अपने को मुक्त रखना, मुमकिन नहीं है। मेरा आत्मभाव मुझे एक तरफ ले जाता है और देहभाव उसके दूसरी तरफ खींचता है। हां, इन दोनों शक्तियों के चंगुल से मनुष्य आजाद हो सकता है, परंतु वह स्वतन्त्रता धीरे धीरे और एक के बाद एक कष्ट-कर साधनों द्वारा प्राप्त होती है। किसी यन्त्र की तरह अपने कर्म को बन्द कर के मैं उस आजादी को नहीं पा सकता; बल्कि वह तो सारासार-विचार के साथ कर्म करते हुए निवृत्त होते होते ही प्राप्त होगी। इस युद्ध का यही निश्चित परिणाम है कि देह-भाव निरंतर क्षय होता चला जाय, जिससे आत्मा पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो जाय।

कुछ और बातें

फिर मैं एक मामूली नागरिक था। मैं अपने साथियों से अधिक समझदार नहीं था। मैं तो अहिंसा का मानने वाला था; पर दूसरे जरा भी उसके कायल नहीं थे। सरकार को मदद देना उनका कर्तव्य था। उसका पालन वे नहीं करते थे। क्योंकि वे क्रोध और द्वेष के भाव से प्रेरित थे। वे अपने अज्ञान और दुर्बलता के कारण मुंह मोड़ रहे थे। अतएव एक साथी के नाते यह मेरा कर्तव्य हुआ कि मैं उन्हें ठीक ठीक मार्ग बताऊं। मैंने उनको उनका कर्तव्य बताया, उन्हें अहिंसा का सिद्धान्त समझाया। उन्हें जो ठीक लगा वही उन्होंने किया। अहिंसा-शास्त्र के अनुसार मुझे अपने कार्यों का जरा भी अफसोस नहीं। क्योंकि स्वराज्य में भी मैं उन लोगों को जो हथियार बांधना और अपने देश की रक्षा करना चाहेंगे उन्हें ऐसा करने की सलाह देने में जरा भी न हिचकूंगा।

भविष्य में क्या होगा?

इससे एक दूसरा प्रश्न मेरे सामने उपस्थित होता है। मेरे स्वप्नगत स्वराज्य में तो शस्त्रास्त्र की कतई जरूरत नहीं है। लेकिन मैं यह उम्मीद नहीं करता हूं कि यह स्वप्न, इस वर्तमान प्रयत्न का फल-स्वरूप, सोलहों आने सच्चा हो जायगा। इसका पहला कारण तो यह है कि यह आंदोलन इस ध्येय को अपना नजदीकी लक्ष्य बना कर नहीं किया जा रहा है और दूसरे, मैं अपने को इतना पहुंचा हुआ नहीं समझता कि राष्ट्र के सामने ऐसा सविस्तर व्यवहारक्रम उपस्थित कर सकूं जिसके अनुसार वह उसकी तैयारी कर सके। मैं खुद अभी इतना विकार-ग्रस्त हूं और मुझमें मनुष्य-स्वभाव की इतनी कमजोरियां हैं, जिससे मुझे ऐसी प्रेरणा का या मता का अनुभव नहीं होता। मैं अपने लिए अगर किसी बात का दावा कर सकता हूं तो सिर्फ इसी बात का कि मैं

अपनी कमजोरियों को दूर करने का निरंतर प्रयत्न कर रहा हूं। मुझे विश्वास है कि मैंने अपनी इन्द्रियों को दमन करने और उनके वेग को शिथिल करने की क्षमता बहुत-कुछ प्राप्त कर ली है; परंतु अभी मैं इस लायक नहीं हुआ हूं कि कोई पाप मुझसे न बन पड़े-अर्थात् मैं इन्द्रियों से प्रेरित न हो सकूं। हां, मैं इस बात को मानता हूं कि प्रत्येक मनुष्य ऐसी मंगलमय अवर्णनीय पापरहित अवस्था को प्राप्त कर सकता है, जिसमें वह अपने अंतःकरण में, दूसरी सब बातों को दूर कर के, केवल एक परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। और, मुझे मंजूर है, कि अभी वह दृश्य बहुत दूर है। अतएव मेरे लिए देश को पूर्ण अहिंसा के व्यवहार का अभी कोई मार्ग बताना सम्भवनीय नहीं है।

रेल्वे और तारघर

जिस महान् सिद्धान्त का विवेचन मैंने ऊपर किया है उसके मुकाबले में यह रेल और तार का प्रश्न बहुत ही न-कुछ है। मैं खुद अपने लिए इन सुविधा-साधनों से परहेज नहीं करता हूं। मैं राष्ट्र से भी जरूर ही यह उम्मीद नहीं करता हूं कि वह इनका उपयोग छोड दे और न मैं स्वराज्य हो जाने पर भी उनके व्यवहार-त्याग की अपेक्षा करता हूं। लेकिन हां, स्वराज्यान्तर्गत राष्ट्र से मैं यह जरूर चाहता हूं कि वह इस बात पर विश्वास न करे कि इन सुविधा-साधनों से अवश्य ही हमारी नैतिक उन्नति की वृद्धि होती है या ये हमारी भौतिक प्रगति के लिए अनिवार्य हैं। मैं राष्ट्र को यह सलाह दूंगा कि वह इन साधनों का उपयोग कम मात्रा में करे और हिन्दुस्तान के साढे सात लाख गावों में तार और रेल बिछा देने के लिए बेतरह लालायित न हो। राष्ट्र जब आजादी की दमक से दमकने लगेगा तब जान जायगा कि हमारे शासकों को उनकी आवश्यकता हमारे अज्ञान-अंधकार को दूर करने के बनिस्बत हमें गुलाम बनाने के लिए ही अधिक है। प्रगति लंगडी है। वह फुदकते हुए ही आ सकती है। आप उसे तार या रेल के द्वारा नहीं भेज सकते। (यंग इंडिया)

देशी रियासतें

महासभा-समिति ने महासभा की परा-राज्य-सम्बन्धी नीति निश्चित कर दी है। उसको देखकर यह बात भी पेश हुई कि हमारी देशी-रियासत-सम्बन्धी नीति का भी निर्णय हो जाना चाहिए। यह स्वाभाविक ही था। नागपुर की महासभा में इस विषय की स्थूल रूप-रेषा बनाई गई थी-अर्थात् यह बात तय पाई थी कि इन रियासतों के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप न किया जाय। देशीराज्य खुद भी इससे ज्यादह बेहतर या ज्यादह स्पष्ट बात नहीं चाह सकते थे। और महासमिति तो सिर्फ उस प्रस्ताव की चहार-दीवारी के अंदर ही अंदर अपनी नीति निश्चित कर सकती है। महासभा के कार्य्य-कर्ताओं ने ठीक ठीक उस प्रस्ताव के अनुसार कार्य किया है। वे असहयोग का संदेश देशी-राज्यों में नहीं ले गये। हां, उसके चिरस्थायी, आत्मशुद्धि करने वाले या आर्थिक भाग इसके मुस्तसना हैं; और वे बातें तो अ-सहयोग के बिना भी हितकर ही साबित होंगी। वे क्या हैं?—शराबखोरी छुडाना, स्वदेशी का इस्तैमाल करना, हिन्दू-मुसलमान की एकता बढाना, अहिंसा का अवलम्बन करना और छुआछूत को देश निकाला देना। महासभा तो इन राज्यों के प्रति जबतक कि वहां की प्रजा के साथ अच्छा सलूक हो रहा है, सद्भावना ही रख सकती है। और उनके साथ दुर्व्यवहार होने पर भी महासभा लोक-मत के सिवा किसी दूसरे बल या दबाव का प्रयोग नहीं कर सकती, न करेगी। और, इसलिए, जब जब आवश्यकता होती है, राष्ट्रीय दल के पत्र किसी राज्य की प्रजा के दुख-दर्द की पुकार पर कडी आलोचना करने में नहीं हिचकिचाते। एक मिसाल लीजिए। सेठ जमनालालजी और उनके कुछ साथी बीकानेर राज्य में गये थे। वहां वे महज स्वदेशी-प्रचार का उद्योग करना चाहते थे। पर राज्य की ओर से उनके साथ नादानी का और मनमाना बुरा बरताव किया गया। इस पर पत्रों में बडी मर्मान्तर्ग टिप्पणियां हो रही हैं। वह ठीक ही है। जो राज्य प्रागतिक हैं वे महासभा से हरतरह के उत्साह की आशा रख सकते हैं और जो प्रतिगामी हैं—पीछे हटते हैं—वे अपनी कार्य-प्रणालियों और कार्य-साधनों की कडी से कडी नुक्ताचीनी की। इसके सिवा महासभा इन देशी-राज्यों की इस दर्दनाक हालत में उनके साथ हमदर्दी रखने के सिवा और क्या कर सकती है? साम्राज्य-शक्ति ने अपनी आर्थिक लूट-खसोट की बाजी में उन्हें अपनी मोहरें बना रक्खा है। समय समय पर जो नाजायज और दाव-पेंच भरा दबाव उन पर डाला जाता है और उन्हें सहना पडता है इसको रोकने की बहुत ही कम जुरत उनमें है। अतएव उन्हें यह जानना चाहिए कि जन-सत्ता की बढती का अर्थ है मेरे बताये हुए इस दीन बनाये रखने वाले प्रभाव की कमी होना। (यंग इंडिया)

खादी कफ़्नरोजा है

एक सज्जन पूछते हैं,-'जब आप कार्य्यक्रम के दूसरे भागों को हाथ में ले लेंगे और स्वदेशी-हलचल की ओर आपका ध्यान कम हो जायगा, तब क्या खादी की कदर फिर कम न हो जायगी और लोग फिर वही महीन मलमल पहनने न लग जायंगे? जब विद्यार्थियों को स्कूल-कालेजों से उठा लेने की आंधी चली थी तब सरकारी स्कूलों और कालेजों को बडा धक्का पहुंचा था। परन्तु पीछे से फिर झुंड के झुंड विद्यार्थी उन्हीं स्कूल-कालेजों में घुसने लग गये। इससे भी क्या पूर्वोक्त अनुमान नहीं निकाला जा सकता?'

इन महाशयने मिसाल अच्छी नहीं ढूंढी। शिक्षा-संस्थाओं के बहिष्कार की हलचल से सरकारी मदरसों और कालेजों की शान को जो धक्का पहुंचा है उससे फिर उनका ऊंचा सिर हुआ ही नहीं है। हां, जिन्होंने महज आवेश और जोश में आकर बहिष्कार किया था वे फिर अपने पहले स्थानों पर पहुंच गये हैं। पर जरा सर आशुतोष मुकर्जी के अश्रुपात पर तो नजर डालिए, जो उन्होंने बंगाल के कालेजों की हानि पर, किया है। इन पत्र-प्रेषक महाशय को शायद यह खबर न होगी कि इस हलचल का असर आज भी काम कर रहा है। परंतु शिक्षा-संस्थाओं के त्याग के आन्दोलन का सम्बन्ध तो अल्पसंख्यक लोगों से ही था और फिर वह आन्दोलन स्थायी भी नहीं था। लेकिन स्वदेशी का सम्बन्ध तो प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बालक से है और वह है भी स्थायी। स्वराज्य प्राप्त होने पर स्वदेशी का त्याग नहीं हो सकता और स्वराज्य तो स्वदेशी के बिना असंभव ही है। फिर विदेशी महीन कपडों को फिर से धारण करना खर्च का काम है। अतएव मैं कह सकता हूं कि यद्यपि मुझे मंजूर है कि, कुछ लोग केवल दिखावे के लिए ही स्वदेशी कपडा इस्तेमाल करते हैं और अन्त में उनके फिसलजाने का डर है तो भी बहुत बडी संख्या तो पक्के तौर पर स्वदेशी को अपनाये ही रहेगी। स्वदेशी केवल साधन ही नहीं है। यह तो साधन और साध्य दोनों है। (यंग इंडिया)

गुजरात प्रांतिक समिति ने बरडोली और आणंद इन दो तहसीलों को सविनय कानून-भंग अर्थात् सांघिक सविनय कानून-भंग करने की सत्ता दे दी है।

लोहे के चने

गुजरात का सविनय कानून-भंग के लिए सबसे पहले कदम बढाना लोहे के चने चबाने से भी कठिन है। परंतु यदि एक भी तहसील इसमें से पार हो जाय तो स्वराज्य हस्तामलकवत् है। इसमें मुझे जरा भी संदेह नही। इसका अर्थ यह है कि एक तहसील में एक सत्याग्रही सेना तैयार हो जाय। मैं पहले कह चुका हूं कि सत्याग्रही सेना में औरत मर्द, जवान बूढे, लूले लंगडे, दुर्बल सबल, हिन्दू मुसल्मान, पारसी ईसाई यहूदी, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र भंगी चमार, सब भरती हो सकते हैं। प्रह्लाद की तरह कोई बालक भी आजाय तो वह भी दाखिल हो सकता है। और मां-बाप अपने लडके-बालों को भी भरती करा सकते हैं। यह खासा पचमेल मेला ही है; पर फिर भी वह सामने की सेना के मुकाबले में बहुत ही ज्यादह काम कर सकता है और उसका खर्च भी क्या होगा? इस सेना के सिपाहियों में एक गुण जरूर होना चाहिए—निर्भयता। उनमें मरने की शक्ति होना चाहिए अर्थात् उस सिपाही के पास आस्तिकता होनी चाहिए।

जिन दूसरे गुणों की आवश्यकता मैने बताई है वह हमेशा के लिए नहीं है। वे गुण तो सिर्फ आज की परिस्थिति के ही लिए आवश्यक हैं।

परंतु यद्यपि इस तरह लिख देना तो आसान है तथापि जबतक मनुष्य उसे समझ नहीं पाता तबतक वह कठिन मालूम होता है। जो तहसील बीडा उठावे उसमें गहरा परिवर्तन अवश्य ही हो जाना चाहिए। उस तहसील के सिपाही एक पल भी बे-काम न बैठें। इससे जब युद्ध शुरू होगा तब प्रत्येक सत्याग्रही या ग्रहिणी या तो जेल जाने के लिए किसी जगह सविनय भंग करते दिखाई देंगे या सूत कातते हुए, खादी बुनते हुए, या रुई धुनकते और कपास लोढते हुए पाये जावेंगे। कोई छिन भर भी बे-काम नहीं बैठ सकता। फिर चाहे वह धनी हो चाहे भिखारी। सिपाहीगिरी में सधनता और निर्धनता का भेद नहीं रहता। पंचमार्ज जब जहाज में काम करते थे तब वे भी औरों की तरह जमीन पर लेटते और बिना दूध के चाय पीते तथा चोकर मिली मोटी रोटी खाते थे। ऐसा ही होना चाहिए।

इसलिए जिस तहसील को तैयारी करनी हो उसे तथा जो तैयार हो गई हो उन्हें भी अपनी तहसील के गावों का एक एक पत्रक-नकशा तैयार करना चाहिए। उसमें नीचे लिखा ब्योरा हो:-

१ गांव का नाम

२ पडाव से उसका फासला

३ आबादी। उसमें स्त्री, पुरुष, सोलह वर्ष के अंदर के लडके-लडकियां, हिन्दू मुसलमान, पारसी, ईसाई, भंगी, चमार की तादाद बताई जाय

४ तादाद चरखा

५ तादाद करघा

६ तादाद तांत

७ कपास का संग्रह

८ मदरसा और तादाद हाजिरी

९ तादाद पुलिस

१० सरकारी हुकूमत के चिह्न

११ जेल में जाने के लिए तैयार लोगों की तादाद

१२ शराब की दुकानों की तादाद

१३ सहयोगी लोग हों तो उनकी तादाद

अगर हम एक सेना के रूप में बदल गये होंगे तो हरएक गांव में प्रजा का प्रतिनिधि और प्रजा-पंच होना चाहिए। हर बीस आदमियों की एक टुकडी होना चाहिए और उनमें एक उसका मुखिया होना चाहिए। जहांतक हो सके, इसमें हिन्दू, मुसल्मान अथवा दूसरे ऐसे दल न बन जाना चाहिए। कायदा तो यह है कि पडोसियों में ही ऐसी टुकडी बन जाय। जहां लोकमत संगठित हो चुका है वहां तो इसमें जरा भी कठिनाई न होनी चाहिए। ऐसा संगठन लोकमत की तैयारी का एक बडा लक्षण है।

यदि हरएक गांव में अच्छे काम करने वाले लोग हों तो यह काम बिना हि मिहनत के दो दिन में हो सकता है। हमारे यहां के गांवों की बस्ती बडी नहीं होती। एक दिन सबेरे उनकी सभा करके यह काम पूरा किया जा सकता है। जिस तहसील में मुझे जाना होगा वहां मैं पूर्वोक्त तमाम बातों की जानकारी मिलने की आशा रक्खूंगा।

ऐसे छोटे से काम का शीर्षक मैंने "लोहे के चने" क्यों रक्खा? इसलिए कि हम सिपाहीगिरी भूल गये हैं। हम परमार्थ को भूल गये हैं। न जाति के रहे, न देश के रहे। हमें अपने लिए नहीं मरना है। हमें तो जनता के लिए मरना है। और जनता के लिए मरने के पहले जनता का तैयार हो जाना जरूरी है वर्ना उसको तैयार करते हुए हमें मर मिटना होगा।

हां सच, हम उद्यम की आदत भूल गये हैं; अथवा ऐसे-वैसे कामों में अपना समय बिता रहे हैं जिससे हमें लोक-सुख अथवा लोक-संग्रह का खयाल नहीं होता। कुटुम्ब से आगे हमारी नजर पहुंचती ही नहीं। हम सबका धर्म तो हमें यही शिक्षा देता है कि व्यक्ति कुटुम्ब के लिए, कुटुम्ब गांव के लिए, गांव तहसील के लिए, तहसील जिले के लिए, जिला प्रान्त के लिए, प्रान्त भारतवर्ष के लिए, और अंत को भारतवर्ष सारे जगत् के लिए मरने को तैयार हो जाय। इस स्वदेशाभिमान के लिए मैं जी रहा हूं, और उसको प्रकट करने के लिए मर मिटना मुझे जीवित रहने के बराबर ही प्रिय है। उसके बिना जीवित रहना मृत्यु के ही समान है। संसार में अगर कोई सुख है तो वह है पर-दुःख के लिए दुखी होना और दूसरे की रक्षा के लिए स्वयं मर जाना। ऐसा करने वाले आसानी से सुख का उपभोग करते हैं। यह सब करने के लिए कोई भारी काम करना पडे, सो बात नहीं। सिर्फ हृदय को बदल देने की जरूरत है। जरा विचार करने की जरूरत है। इसमें देर न होनी चाहिए। क्यों कि अपने पडोसी के लिए मरना तो आत्मा का सहज-स्वभाव ही है।

तैयार हुई तहसील अगर इस तत्व को समझ गई हो तो जो काम लोहे के चने चबाने से भी कठिन मालूम होता है वह मुझ जैसे बु के लिए बनाये मुलायम चने चबाने से भी अधिक आसान मालूम होगा।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

पत्र- पाठक महाशयो

आप हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, अंगरेजी इनमें से किसी भी भाषा में पत्र लिखें, परन्तु वह **सुवाच्य जरूर होना चाहिए**। अन्यथा उसका उत्तर मिलना कठिन होगा।

अंक न मिलने की शिकायत करने वाले सज्जनों को अपना **ग्राहक नम्बर** और पूरा पता—**डाकखाना, जिला, आदि**— साफ साफ लिखना चाहिए। नहीं तो हम उनकी शिकायत दूर करने में समर्थ न हो सकेगें।

मनीआर्डरों के कूपन पर भी अपना **पूरा पता बिलकुल साफ साफ** लिखने की कृपा किया करें

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, अगहन ब ५, सं. १९७८.

निरपराध बनाम अपराधी

जब आदमी खुद अपने बनाये हुए कानून का खुद ही जान–बूझकर भंग करता है तब वह कानूनभंग अपराध में शामिल होता है। क्योंकि वह अपने प्रति नहीं बल्कि किसी दूसरे के प्रति अपराध करता है, और न केवल इस जुर्म की सजा से ही बचता है—क्योंकि कानून–निर्माता ने कोई दूसरा सजा देने वाला बनाया ही नहीं है—बल्कि उस कानून के पालन से होनेवाली असुविधाओं को भी टालता है। जो बात व्यक्ति के विषय में चरितार्थ होती है वही संस्थाओं के विषय में भी होती है। हम देख रहे हैं कि आज इसी प्रकार यह सरकार अपने ही बनाये कानूनों का भंग भारतमें चारो ओर कर रही है। ताजीरात हिन्द और जाब्ता फौजदारी की धाराओं का मनमाना दुरुपयोग किया जा रहा है। और चूंकि अधिकारियों की दी हुई आज्ञाओं के विषय में पूछताछ करना असहयोगियों ने छोड दिया है, इसलिए अब खुल्लमखुल्ला बडी बुरी तरह से गैरकानूनी कार्रवाइयां हो रही हैं। हमने देखा है कि इस प्रकार की कार्रवाइयां बुलंदशहर, चटगांव और तमाम सिंधप्रान्त में हुई हैं। और जैसी सिलसिलेवार तथा जानबूझकर बेजाब्ते मदरास–प्रदेश में की गई हैं ऐसी तो कहीं भी नहीं देखीं। जनाब याकूबहसन ने ठीक ठीक तौर से यह दिखा दिया है कि उनकी गिरफ्तारी और सजा बडे लाट साहब की प्रतिज्ञा के भावों के खिलाफ है। और सच पूछिए तो वह केवल लार्ड रीडिंग के अभिवचन के भावों के ही खिलाफ नहीं, बल्कि भूतपूर्व बडे लाट के भी उस सूचना–पत्र के अक्षरशः खिलाफ है जिसमें उन्होंने यह जाहिर किया है कि दमननीति का अवलम्बन तबतक नहीं किया जायगा जबतक कि असहयोग शान्तिमय बना रहेगा। और जनाब याकूबहसन पर तो यह दोषारोपण कोई भी नहीं कर सकता कि उनके उस तंजावर वाले भाषण में जो उन्होंने खासखास चुने हुए प्रतिनिधियों के सामने किया था, उन्होंने लोगों को हिंसा के लिए भडकाया। और न कहीं तंजावर जिले भर में उनके उस भाषण से खून–खराबी या झगडा–फसाद हुआ हो है। देश-भक्तन् के सम्पादक श्री० अय्यर के मामले में तो मजिस्ट्रेट ने प्रत्यक्ष कबूल किया है कि जिन लेखों पर दोषारोपण किया गया है उनमें हिंसा के भावों का नामोनिशान तक नहीं। इतनाही नहीं, बरन् उनमें तो उलटा अहिंसा के विषय में उपदेश और अनुरोध किया गया है। इसी प्रकार कोइम्बतूर के प्रधान वकील, श्री० रामस्वामी आयंगार, महज इसलिए पकडे गये हैं कि उन्होंने "हिन्दू" में एक जोशीला पत्र छपाया था, यद्यपि उसमें जरा भी हिंसा के भाव नहीं थे। इसी तरह डा० वरदराजलू और श्री० गोपालकृष्णय्या भी भाषण और लेखों के लिए गिरफ्तार कर लिये गये हैं, यद्यपि उनके विषय में यह कहा जाता है कि वे हिंसा के भावों को तो उत्तेजित करते ही नहीं हैं; बल्कि उत्तेजना के होते हुए भी उनका प्रभाव ऐसा होता है कि लोग शांति धारण किये रहते हैं। ऐसी हालत में जब कि सरकार इस प्रकार चारों ओर दमन करने पर तुल गई है, अगर कोई यह अनुमान करे कि सरकार लोगों को झगडा फसाद करने के लिए उकसाना चाहती है, तो कौन आश्चर्य की बात है? इन पूर्वोक्त उदाहरणों में एक भी ऐसा नहीं है जहां किसी के उन लेख या भाषणों के कारण कहीं भी हिंसा का उद्रेक हुआ हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि सरकार खुद अपने ही बनाये कानूनों का भंग करने की गुनहगार हो रही है। और उन पीडित दुखी व्यक्तियों के पास सरकार के खिलाफ कौनसा कानूनी उपाय है? सचमुच जब किसी नीच उद्देश की पूर्ति के लिए कोई सरकार अपने बनाये कानून का खुद ही व्यभिचार करती है तब कानून में उसके खिलाफ आवाज उठाने के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिए जब सरकार कानून की अवहेलना करके संगठित रूप से मनमानी करने लगती है तब विशेषतः उन लोगों के लिए सविनय कानून भंग एक पवित्र कर्तव्य हो जाता है जिनका कि हाथ उस सरकार को या उसके कानून को बनाने में नहीं था। हां; एक दूसरा भी उपाय है और वह है—सशस्त्र बलवा। और इम सविनय कानून–भंग को उसका पूरा, कारगर और शांतिमय–रक्तपात–हीन स्थान–पूरक समझिए। और यह भी अच्छा ही है कि हमने उदाहरणीय संयम और नियम–बद्धता के द्वारा जोकि उन केवल अन्याय–युक्त ही नहीं बल्कि गैरकानूनी हुक्मों का भी पालन करने में दिखाई है ठीक वैसी ही परिस्थिति तैयार कर ली है जो सविनय कानून–भंग के लिए आवश्यक है। इसका फल यह हुआ है कि एक ओर तो इस सरकार की जुल्मी प्रवृत्ति अधिक जाहिरा तौर पर दिखाई देने लग गई है और दूसरी ओर बखुशी आज्ञापालन करके हमने स्वयं अपने को सविनय कानूनभंग के लिए योग्य बना लिया है।

साथ ही यह भी उतनी ही अच्छी बात है कि अबभी सविनय कानून–भंग का क्षेत्र भरसक मर्यादित ही किया जा रहा है। हां, हमें मानना होगा कि जिस तरह कोई भ्रष्ट और प्रजा–निन्दित सरकार किसी सभ्य–समुन्नत समाज में रोग की तरह एक अस्वाभाविक वस्तु है उसी प्रकार कानून का सविनय भंग भी एक असाधारण स्थिति है। इसलिए जिस नागरिक ने राज्य के कानून का स्वेच्छापूर्वक पालन करने के विषय में पूरी पूरी तालीम पाई है वही बिरले प्रसंगों पर जान–बूझकर परंतु विनय–पूर्वक कानून का भंग करके सजा प्राप्त करने का अधिकारी हो सकता है। इसलिए यदि हमें थोडे से थोडे समय में अधिक से अधिक काम करना हो तो जबतक एक परिमित क्षेत्र में भयंकर से भयंकर कानून–भंग चल रहा हो तबतक दूसरे भागों में कानून का पूरा पालन होना चाहिए, जिससे कि देश की स्वेच्छापूर्वक आज्ञा पालन की शक्ति और सविनय कानून–भंग की खूबी की जांच एक ही साथ हो जाय। इसलिए देश के किसी भी दूसरे भाग मे अगर आवश्यक अधिकार और इजाजत मिले बिना कानून–भंग की थोडी भी शुरूआत होगी तो उससे हमारे कार्य्य को बडी हानि पहुंचेगी और सविनय कानून–भंग के सिद्धांतों के सम्बन्ध में हमारा अक्षम्य अज्ञान प्रकट होगा।

हमें यह जरूर ध्यान में रखना चाहिए कि सरकार अपनी सत्ता के इस भंग का जो कि शीघ्र ही शुरू किया जाने वाला है, दमन करने के लिए कठोर से कठोर उपायों को काम में लावेगी; क्योंकि उसका सारा अस्तित्व उसीपर अवलम्बित है। निरी "आत्मरक्षा" की स्वाभाविक प्रेरणा ही उससे ऐसी दमन–नीति का अवलम्बन करावेगी जो उसके मिटाने तक के लिए काम देगी और यदि उसने ऐसा न किया तो सरकार का सर्वनाश निश्चित है। अर्थात् या तो उसे देश के लोकमत के सामने सिर झुकाना होगा या विसर्जित हो जाना पडेगा। उकसाये जाने पर भी कहीं हिंसा का जरा उद्रेक हो जाय तो यही सबसे बडा खतरा है। अगर ऐसा

हो तो इससे हमारी अहिंसा की प्रतिज्ञा का तो भंग निश्चित रूप से होगा ही; परंतु इस प्रकार एकबार सोच-समझकर इराद करके जालिम से लडाई ठान कर कठोर से कठोर दमन का आह्वान करने के बाद, उससे उत्तेजित होकर उन्मत्त होजाना केवल अनुचित ही नहीं, बल्कि हमारी मर्दानगी को भी बट्टा लगानेवाला है। शायद मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊं और, साथ ही, इस शान्तिमय बलवे में भाग लेने वाले दूसरे हजारों भाई भी गिरफ्तार किये जायं, जेलखानों में डाले जायं और उनको भीषण यातनायें भी दी जायं, तथापि भारत के दूसरे भागों को अपनी विचार-शक्ति न खो बैठना चाहिए। समय आते ही वे भी सविनय कानून-भंग शुरू करें और गिरफ्तारी, कैद, और जुल्मों का आह्वान करें। हमें तो केवल निरपराध लोगों का ही बलिदान करना है। केवल ऐसे बलिदान ही परमात्मा के यहां मंजूर होंगे।

इसलिए उस भारी जंग के पहले जो देश में शीघ्र ही छिडने वाला है हरएक असहयोगी से बार बार मेरा यही हार्दिक अनुरोध है कि वह देहली के प्रस्ताव की हरएक शर्त का अक्षरशः पालन करके सविनय कानून-भंग करने की योग्यता प्राप्त करें और चारों ओर अहिंसा और शांति का वायुमंडल तैयार कर दें। हमें केवल इतने पर ही संतोष न मानना चाहिए कि हम व्यक्तिशः शांति भंग न करेंगे। हम तो यह दावे के साथ कहते हैं कि असहयोग तमाम हिन्दुस्तान में फैल गया है। और हम यह भी कहते हैं कि हमने भारत के उन निरंकुश लोगों के दिलपर भी इतना अधिकार कर लिया है कि उनको भी हम हिंसा से हटा सकते हैं। तो हमें अपनी बात सच्ची कर दिखाना चाहिए।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

कलम या तलवार?

लाहौर की माल रोड पर जान लारेन्स (भारत के एक भूत पूर्व बडे लाट) का एक पुतला है। पुतले की सूरत बडी घुडकीली है और उसके दाहने हाथ में कलम और बायें में तलवार है। उसके नीचे लिखा है-" तुम कलम की हुकूमत चाहते हो या तलवार की? " कला-कौशल की दृष्टि से तो, कहते हैं, वह एक अच्छी चीज है। लेकिन उसको देख देख कर लाहौर के लोगों की तबीयत जरूर दुख जाया करती है। अगर जबरदस्ती दी जाय तो न उन्हें कलम दरकार है न तलवार।

पुतला म्युनिसिपालिटी की सम्पत्ति है। वह १८८० ई० के आसपास खडा किया गया है। उस समय लोगों में स्वाभिमान का तेज उतना जाग्रत नहीं था जितना कि आज है। तथापि, मुझे मालूम हुआ है कि, उस समय भी कुछ नागरिकों ने इससे होने वाली गौरव-हानि को बुरी तरह से अनुभव किया था। अब, हाल ही में, लाहौर की म्युनिसिपालिटी ने बहुमत से यह प्रस्ताव पास किया है कि फिलहाल, ता फैसला, वह पुतला उस जगह से उठवा कर टाउन हाल की इमारत में रखवा दिया जाय। जैसे कि दूसरे प्रस्ताव भेजे जाते हैं वह प्रस्ताव भी बाजाब्ता सरकार के पास मामूल के मुआफिक भेजा गया। तीन-चार दिन के बाद म्युनिसिपल्टी की ओर से वहां एक इंजिनियर भेजे गये कि वह पुतला वहां से किस तरह उठाया जा सकता है। इसपर, वहां के डिप्टी कमिश्नर ने, म्युनिसपल्टी को नोटिस दिये बिना ही, एक पुलिस के दल को भेज दिया कि उस इंजिनियर को और उसके आदमियों को वहां से हटा दो। और जब म्युनिसिपल्टी ने पूछा कि यह बेजा दस्तन्दाजी क्यों और कैसे की गई, तब कमिश्नर ने यह हुक्म जारी किया:-

" इसी महीने की ८ ता० को लाहौर म्युनिसिपल्टी के आम जल्से में, लारेन्स साहब के पुतले के मामले में, नीचे लिखा प्रस्ताव पास हुआ है—

(१) पुतला वहां से हटा दिया जाय,

(२) फिलहाल वह वहांसे उठाकर टाउन हाल की इमारत में रखवा दिया जाय,

(३) एक उप-समिति नियुक्त की जाय, जो इस बात का फैसला करे कि आगे इस पुतले की क्या तजवीज की जाय।

इस मामले में अबतक जो कुछ पुराने कागजात मेरी नजर से गुजरे हैं उनका मुलाहिजा करने से फिलहाल मेरा यह खयाल हुआ है कि यह पुतला पंजाब सरकार की बिना मंजूरी अपनी मौजूदा जगह से नहीं हटाया जा सकता।

दूसरे, इस मसले पर समिति में जो तकरीर हुई है उसके लहजे को देखते हुए मैं यह खयाल करता हूं कि, मुमकिन है, वहां से हटा दिये जाने के बाद, पुतले के साथ बा-अदब सलूक न किया जाय और इसका नतीजा यह हो कि कितने ही लाहौर के बाशिंदगान की तबीअतों को रंज पहुंचे।

इन वजूहात से, और इस मामले में सरकार के क्या क्या हकूक हैं, इसका फैसला सरकार की जानिब से अभीतक जेर तजवीज होने के सबब से, इस प्रस्ताव के पहले दो हिस्सों को, जिनका ता क पुतले को तुरन्त ही हटा देने से है, मैं अमल में लाना मुल्तवी करता हूं। "

इंजिनियर वहां बाकायदा अपना कर्तव्य पालन करने के लिए गये थे। उनको हटाने के लिए पुलिस भेजकर डिप्टी कमिश्नर ने साफ तौर पर हमले का जुर्म किया है। कमिश्नर का यह हुक्म कलम के मानी का नमूना है। कमिश्नर की कलम में उतना अत्याचार भरा हुआ है जितना कि डिप्टी कमिश्नर की तलवार में है। कमिश्नर को अदालती अख्यारात नहीं हैं। पर उसके पास तलवार है। इसलिए उसने उनका प्रयोग कर डाला। म्युनिसिपल्टी को खुद अपनी चीज को हटाने-धरने का अख्त्यार है या नहीं, इसका फैसला करना तो काम अदालत का है। पर म्युनिसिपल्टी पर 'दुर्भाव' की तोहमत लगाने का अख्त्यार कमिश्नर को कहां से आ गया? बात यह है कि कमिश्नर इस बात को गवारा नहीं कर सकता कि उस पुतले से जो भावना प्रदर्शित होती है वह उस बढिया मुकाम से लोप हो जाय। इसलिए उसने म्युनिसिपल्टी को कानून सिखाने में आगापीछा नहीं सोचा।

इस तरह म्युनिसिपल्टी के मामले की एक मामूली घटना, जो कि इस नयी जागृति के अनुकूल ही है, अब बडे से बडे सार्वजनिक महत्व की बात हो गई है। लाहौर के नागरिकों और कर देनेवालों को अवश्य ही आम सभायें कर कर के उन म्युनिसिपल्टी के सदस्यों की तरफदारी करना चाहिए जिन्होंने उस प्रस्ताव को पास कराने में मदद दी है। और उन सदस्यों को भी चाहिए कि वे इस मामले में तुरन्त कदम बढावें और अगर अबतक न दिया हो तो अब एक नोटिस सरकार को दें कि अगर सरकार अपने पक्ष के समर्थन में कोई कारण न पेश करेगी तो म्युनिसिपल्टी को जरूर अपना फर्ज अदा करना होगा और उस पुतले को वहां से हटाना होगा।

कमिश्नर ने, अनजान में ही, लाहौर के सत्याग्रहियों को यह बडा शुभ अवसर दे दिया है, जिसमें वे साफ साफ और जोर के साथ सविनय कानून-भंग की आजमाइश कर सकें। अगर सरकार म्युनिसिपल्टी को ललकारे और अपने पशु-बल के द्वारा पुतले का न हटाने दे तो, सरकार को आवश्यक नोटिस

देकर, वीर सत्याग्रही उस पुतले को उखेड़ने के इरादे से उस मुकाम पर जायं और गिरफ्तार हो जायं और अगर सरकार चाहे तो उनकी गोलियां खाकर वीर-गति को प्राप्त हो जायं।

लेकिन इस आखिरी काम के लिए सिर्फ वही लोग आगे बढ़ें जिन्होंने इसकी अच्छी तैयारी कर ली हो। यह काम उसी वक्त किया जा सकता है जब लाहौरी लोग एक हो कर, एक आदमी की तरह, काम करने को तैयार हों। कुछ लोग, फर्ज कीजिए पांच, एक बार में वहां जा सकते हैं। उनमें से एक आदमी उनका मुखिया हो। वे न तो गुल-गपाडा करें, न कोई दलील करें; बल्कि सीधे वहां चले जायं और गिरफ्तार हो जायं। क्योंकि उस समय उनका उद्देश होगा पुतले को हटाना नहीं, बल्कि गिरफ्तारी को निमन्त्रण देना। हां, अगर काफी पुरुष और स्त्री अपने को वहां बलि चढाने के लिए मुस्तैद हों तो उसका जरूरी फल होगा उस पुतले का वहां से हट जाना। ऐसे कानून-भङ्ग में सफलता तभी मिल सकती है जब कि लोगों में सोलहों आना शांति और अहिंसा की भावना का साम्राज्य हो। मैं यह सविनय कानून-भङ्ग की उग्र दवा बताता तो हूं; पर साथ ही लाहौर के नागरिकों को यह भी चिताये देता हूं कि बिना खूब सोचे-समझे इस दवा का इस्तेमाल हरगिज न करें। लाहौर के जन-समूह का मुझे तो यह तजरिबा हुआ है कि वह सोचने-विचारने की परवा नहीं करता। वह नियम-पालन तो जानता ही नहीं। स्वयंसेवकों को एक कायदे के साथ काम करना चाहिए जिससे वे शांति का और नियमों का पालन करा सकें। पिछली ९ ता. को राष्ट्रीय-शिक्षा-मंडल की ओर से जो उपाधि-वितरण-समारम्भ हुआ था उसमें कितने ही लोग बिना ही टिकट और बिना ही इजाजत के ब्रेडला हाल में घुस गये थे। मुझे यह देखकर बड़ा दुःख हुआ। यह केवल बद-तहजीबी ही नहीं, बल्कि ऐसी अवज्ञा है जिसे जुर्म कहना चाहिए। क्योंकि वे ऐसी जगह घुस गये जहां वे जानते थे कि यहां बल को कोई बल-पूर्वक नहीं रोकेगा। ऐसे शख्स सविनय कानून भंग के लायक नहीं। सविनय कानून-भंग में तो यह पहले से मान लिया जाता है कि लोग उन तमाम कानून-कायदों को जो नीति के विरुद्ध नहीं हैं, स्वेच्छापूर्वक ठीक ठीक मानते हैं। उस पदवियां देने के जल्से के व्यवस्थापकों के बनाये नियमों की तरह, सार्वजनिक संस्थाओं के कानून-कायदों को मानना, राज्य के कानूनों को स्वेच्छा-पूर्वक बिना दरेग मानने की पहली सीढी के सिवा और कुछ नहीं है। अविचार-पूर्वक अवज्ञा करने के मानी तो हैं समाज को छिन्न-भिन्न कर देना। अतएव जो लोग सविनय कानून-भंग की आकांक्षा रखते हों उनका पहला काम यह है कि वे सार्वजनिक संस्थाओं के, यथा महासभाओं, परिषदों तथा दूसरी सभा-समितियों के, कानून-कायदों को बखुशी मानने की विद्या सीखें। इसी प्रकार वे राज्य के कानूनों को भी मानना सीखें-फिर चाहे वे उन्हें पसंद करते हों चाहे न करते हों। सविनय कानून-भंग की अवस्था बे-आईनी और मनमानी की अवस्था नहीं है; बल्कि उस में कानून को मानने की प्रवृत्ति और साथ ही आत्मसंयम का अन्तर्भाव पहले ही से गृहीत माना जाता है।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

महासभा के मंडप के भीतरकों के वर्ग के नाम दर्ज करना बन्द कर दिया गया है। परंतु ३००० टिकट बिकने तक जो अपने नामके साथ रुपये भेजें देंगे उन्हें टिकट दे दिये जायंगे। इसके लिए किसी तरह के फार्म भरने की जरूरत नहीं है। १) और ३) वाले टिकट १० दिसम्बर से मिल सकेंगे।

गाली किसे कहते हैं?

संयुक्त प्रान्त से एक महाशय लिखते हैं—

"आजकल चारों तरफ बड़ी बुलन्द आवाजों में सरकार की मलामत करने की बाढ सी आ रही है। प्रायः सभी उसे गालियां देने में मशगूल हैं। उनकी गालियों का खजाना खुटता ही नहीं। जिसे देखिए वही उसे दुष्ट, असभ्य, और क्या क्या नहीं, बताता है ऐसा मालूम होता है कि मानों हर आदमी इस बात की कोशिश करता है कि सरकार को गालियां देने में मैं दूसरे लोगों से आगे किस तरह बढ जाऊं। सच पूछिए तो हर एक व्याख्यान बदजबानी और बददुआओं से भरा रहता है। एक भी भाषण ऐसा नहीं होता जिसमें व्याख्याता अपने दिल का गुब्बार नहीं निकालता और सरकार की लानत-मलामत नहीं करता। और फिर भी, दिल्लगी यह कि, ऐसे व्याख्यान बड़े जोशीले और तबीयत फड़का देनेवाले माने जाते हैं। थोडे में, यह बात हद दर्जे को पहुंच गई है। ऐसा करने का मानों रवाज ही पड गया है।

मुझे तो ऐसी वाहियात बात पर दिल से नफरत होती है। मेरे खयाल में तो इस प्रकार गुस्सा दिखाना और गर्जन-तर्जन करना कमजोरी का ही चिह्न है। इससे ऐसा जाहिर होता है कि उन व्याख्यानबाजों के पास सच्चे काम करने की शक्ति का कोसों पता नहीं है और इसलिए वे गाली-गुफ्तों से भरे व्याख्यान झाड झाड कर अपने श्रोताओं के सामने उस पर परदा डालना चाहते हैं। इस बारे में मेरी दुरुस्त राय तो यह है कि कोई भी गुस्साभरी बात, यहांतक कि सरकार के भी खिलाफ, न कही जाय। हां, यह सच है कि हमारा राष्ट्र आज पीडित है और इस पर हमें क्रोध होना ठीक भी है। परन्तु क्या हमें गालीगलौज कर के अपना गुस्सा निकालना चाहिए? क्या इस रास्ते में हमें अपनी कार्यशक्ति खर्च करना उचित है? या, इसके खिलाफ, क्या हमे अपनी उस कार्य-शक्ति का, जो महज गाली देने में खर्च होती है, उपयोग सारयुक्त काम करने में करके उससे लाभ न उठाना चाहिए? निस्सन्देह गालियां बकना कोई वास्तविक कार्य्य करना नहीं है, और न यह मातृभूमि की सेवा करना ही है।

मेरी दृष्टि में हिंसा केवल दूसरों पर प्रत्यक्ष हमला करना और उन्हें मार डालना ही नहीं है; बल्कि बुरी बात मुंह से निकालना भी हिंसा में दाखिल होता है। अगर यह ठीक है तो मेरी समझ में नहीं आता कि आप खुद जो इस सरकार को 'शैतानियत से भरी हुई' 'राक्षसी' और 'जंगली' उपाधि प्रदान किया करते हैं उसका समर्थन आप किस तरह से करेंगे। इस बात में रत्ती भर शक नहीं है कि इन शब्दों का समावेश हिंसा में होता है; परन्तु आप तो ठहरे अहिंसा के आचार्य्य। अतएव यह स्वप्न में भी खयाल नहीं हो सकता कि आप हिंसा-पूर्ण शब्दों का प्रयोग करेंगे।

यह तो गाली-गलौज की बात हुई। अब मैं दूसरे सवाल को पेश करता हूं। आप हमेशा कहते हैं कि मैं और मेरे साथी लोग तो अंग्रेजी सरकार के खिलाफ लडाई का साज-सामान तैयार कर रहे हैं, न कि अंगरेजों के खिलाफ। आप इस शासन-प्रणाली के तो विरोधी हैं और इसे सुधारना या मिटाना चाहते हैं; परंतु खुद अंगरेजों के प्रति आप के दिल में किसी तरह का बुरा खयाल नहीं है। इससे यह साफ ही है कि यद्यपि आप इस शासन-पद्धति को तो मटियामेट कर देना चाहते हैं, पर अंगरेजों को निकाल देना नहीं चाहते। अगर ऐसा ही है तो यह ऊंचा सिद्धांत अभी उन लोगों के भी हृदय पर पूरी तरह अंकित नहीं हो गया है जो आपके सच्चे अनुयायी होने का दम भरते हैं। इसकी एक मिसाल लीजिए। आगरा में अभी हाल ही में संयुक्त प्रांत की जो

राजनैतिक परिषद हुई थी उसमें पण्डित जवाहरलाल नेहरू का भाषण हुआ था। विदेशी कपडे के बहिष्कार पर बोलते हुए आपने कहा कि मैं उन लोगों में से हूं जो सरगर्मी के साथ अंगरेजों को भारत से भगा देना चाहते हैं और इसके लिए अगर मुझे कोई जयों हाथ लगा है तो वह है स्वदेशी। यह बात अखबारों में भी आया हो चुकी है और, मैं समझता हूं, आपकी नजर से भी गुजरी होगी। ऐसी हालत में क्या यह कहा जा सकता है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने आपके उस सिद्धांत का मर्म समझ लिया है जिसके द्वारा हम मनुष्य और उसके कार्यों का भेद समझ जायं, ताकि हम उसके कार्यों का तो तिरस्कार कर सकें परंतु उस मनुष्य के प्रति किसी तरह का दुर्भाव न रक्खें? इस मामले मे तो मैं जोर के साथ यह कह सकता हूं कि नेहरूजी की बात किसी तरह से वाजिब नहीं कही जा सकती। तथापि मैं यह जानना चाहता हूं कि आया, आप उसे पसंद करते है या ना-पसंद।"

अगर असहयोगी लोग **गालियों** का व्यवहार करते हैं तो वे निस्संदेह हिंसा करते हैं और अहिंसा के व्रत का भंग करते हैं। लेकिन मैं इस बात को नहीं मान सकता कि 'हरएक भाषण में महज बदजबानी और बददुआयें भरी रहती हैं।' मैं लेखक महाशय को यकीन दिलाता हूं कि व्याख्यानों में क्या सरकार की और क्या खुद हमारी दोनों की निन्दा की जाती है और उनमें निन्दा की अपेक्षा अहिंसा, हिन्दू-मुसलमान-एकता और स्वदेशी की दलीलें ही अधिक रहती हैं। और इन तीनों बातों को लोगों की ओर से जो इतना आश्चर्यजनक प्रत्युत्तर मिला है वह मेरे इस कथन का शायद सबसे बढिया सबूत है। फिर लोगों को यह इतनी प्रगति, बिना ही उन्हें बार बार कहे-सुने, नहीं हो गई है।

लेकिन आखिर गाली कहते किसे है? गाली का अर्थ है-अनुचित प्रयोग, कु-प्रयोग, बुरा प्रयोग। अतएव अगर हम चोर को चोर और बदमाश को बदमाश कहें, तो यह गाली नहीं है। कोढी को कोढी कहने से वह बुरा नहीं मानता। हां, यह जरूर है कि ऐसे विशिष्ट शब्द का प्रयोग उसी नीयत से होना चाहिए और प्रयोग करनेवाले को उसे प्रमाणित करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इस दशा में मैं इन हर जगह और हर मौके पर होने वाले शब्दों के प्रयोग को बुरा नहीं कह सकता और न ऐसे बुरे कहे जाने योग्य विशेषणों का प्रयोग हमेशा ही हिंसा का लक्षण हुआ करता है। मैं यह बात अच्छी तरह से जानता हूं कि उचित विशेषणों का प्रयोग भी हिंसा का लक्षण हो सकता है। पर कब? जब कि उस व्यक्ति के प्रति जिसके लिए उनका प्रयोग किया गया है, हिंसा की उत्तेजना देने के लिए उनका उपयोग किया गया हो। जब कि किसी व्यक्ति की लानत-मलामत इसलिए की जाती है कि वह अपनी बुरी आदत को छोड दे या थोना उसकी सोहबत छोड दें तो ऐसी भर्त्सना बिल्कुल जायज है। हिन्दू-शास्त्र तो दुराचारियों के निन्दा-वचनों से भरे पडे हैं। उन्होंने तो उन्हें कोसा तक है—शाप तक दिये हैं। तुलसीदास तो मूर्तिमान् दया के अवतार थे। उन्होंने अपनी रामायण में श्रीरामचन्द्र के शत्रुओं को ढूंढ ढूंढ कर बुरे विशेषण लगाये हैं। यही क्यों, उन पापाचारियों के जो नाम चुने गये हैं वे भी उनके गुणों के ही सूचक हैं। ईसामसीह उन लोगों पर दैवी कोप का प्रहार कराने में नहीं हिचके जिनको वे 'दुष्टों, धूर्तों, और मुरदारों की औलाद,' कहते थे। बुद्ध ने उन लोगों को नहीं छोडा जो धर्म के नाम पर निरपराध बकरों का बलिदान करते थे। और न कुरान, न जेन्दा-अवस्था ही ऐसे प्रयोगों से बचे हुए हैं। हां, उन सब ऋषियों और पैगम्बरों की कोई बद-नीयत उनके प्रयोग करने में नहीं थी। उन्हें तो जो लोग और जो चीज जैसी थी वैसा ही उनका वर्णन करना था और ऐसी भाषा का अवलम्बन करना था जिससे हम लोग अच्छे और बुरे की पहचान कर सकें। हां, इस बात में मैं लेखक से सहमत हूं कि हम सरकार और लाट लोगों के वर्णन में जितना ही अधिक किफायत से काम लेंगे उतना ही हमारे लिए अच्छा है। अभी हमारे अन्दर इतने विकार और इतनी बुराई भरी हुई है कि जिससे हमारे मुंह से बराबर जी दुखाने वाली बात निकला ही करती है। इस सरकार का हम जो अच्छे से अच्छा उपयोग कर सकते हैं वह यह है कि हम इसके अस्तित्व को अस्वीकार करते रहें और यह विश्वास करके कि इसका सम्पर्क भ्रष्ट करने वाला और नीचा गिराने वाला है, जहांतक हो सके हम इसे अपने जीवन से अलहदा रखते रहे।

मैं बार बार यह बात कहता आ रहा हूं कि इस आन्दोलन का उद्देश अंगरेज लोगों को निकाल देना नहीं, बल्कि उस शासन-प्रणाली को सुधारना या मिटा देना है जो उन्होंने हम पर जबरदस्ती लाद दी है। मैंने पण्डित जवाहरलाल नेहरू का वह व्याख्यान नहीं पढा है, जिसका जिक्र पत्र-प्रेषक महाशय ने किया है। लेकिन मैं उनसे इतना अच्छी तरह परिचित हूं कि जिससे मुझे यह विश्वास नहीं हो सकता कि उन्होंने वैसी बात कही होगी, जिसकी तुहमत उन पर लगाई गई है। मैं जानता हूं कि वे मनमानी मौजके खातिर उनका चला जाना नहीं चाहते और वे उन अंगरेज सज्जनों को सबसे पहले अपने हार्दिक मित्र की तरह गले लगावेंगे जो भारत के प्रेमी हैं और जो उसके सेवक बनकर यहां रहना चाहते हैं। और न स्वतन्त्र भारतवर्ष में भी हम इस बात का ख्याल तक करेंगे कि जो अंगरेज सज्जन हमारे (भावी आशान्वित) राज्य से तय हुई शर्तों के अनुसार हमारे यहां रहना चाहेंगे वे न रहने दिये जायं।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

महासभा-समाचार

महासभा के मंडप की तैयारी हो रही है। प्रतिनिधियों और दर्शकों के रहने के लिए भी "खादी नगर" बनाया जा रहा है। वहां पानी, बिजली की रोशनी, डांक और तार घर का प्रबन्ध खास तौर पर रहेगा।

महासभा के मंडप के पास ही एक दूसरा मंडप बनाया जा रहा है जिसमें प्रायः सभी नामी नामी कांग्रेस-वक्ताओं के व्याख्यान होंगे और महासभा के प्रस्तावों का विवरण सुनाया जायगा।

महासभा की बैठकें २७, २८ और २९ दिसम्बर को और विषयनिर्णायक समिति (महासभा-समिति) की बैठकें २४, २५,[illegible] दिसम्बर को होंगी।

स्वदेशी-प्रदर्शिनी भी होगी। उसकी फीस सिर्फ ।) रक्खी गई है।

संगीत के जल्सों की भी व्यवस्था की गई है। भारत के तमाम नामी नामी गवैयों को निमंत्रण भेजे जा रहे हैं।

कार्य-कारिणी समिति की बैठक आगामी २२ नवम्बर को सूरत में होने वाली है।

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, [illegible], पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से [illegible] प्रकाशित।

नीति का बल

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—अगहन व. १३, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, २७ नवम्बर, १९२१ ई० | अंक १५

बम्बई में शान्ति

श्री. गांधीजी ने उपवास छोडा

बम्बई के असहयोगियों और सहयोगियों; हिंदुओं, मुसलमानों, पारसियों और ईसाइयों के नेताओं के सम्मिलित प्रयत्न से [illegible] रोज में पूर्ण शान्त हो गई। श्री. गांधीजी ने उपवास उस [illegible] आरम्भ कर के गत मंगलवार [illegible] छोडा।

वे अच्छे हैं। आज सांझ बम्बई से अहमदाबाद आयेंगे।

टिप्पणियां

मौलाना की कमी

मेरी इस महा-परीक्षा के दिनों में मुझे अपने साथी मौ० शौकतअली की कमी बार बार और पग पग पर मालूम हो रही है। मुसलमान-भाइयों पर उनकी तरह मेरा क्या असर पड सकता है? वह तो मुसलमान-भाई के ही जैसे पड सकता है। हां, ऐसे कितने ही बहादुर और शरीफ मुसलमान भाई हैं जिनसे मेरा परिचय है; परन्तु मौलाना शौकतअली जिस तरह मेरे दिल को पहचानते हैं उस तरह दूसरा कोई मुसलमान भाई मुझे शायद ही पहचानता हो। अब तो मैं देखता हूं कि उनका काम भी मुझे खुद ही कई बार करना पडता है और वे सब बातें मुसलमानभाइयों को खुद मुझे ही कहना पडती हैं जिन्हें मैं खास तौर पर उनके लिए रख छोडता था। मैं देखता हूं कि मेरे एक प्रार्थना-पत्र* का उलट-पुलट अर्थ पहले ही लगा लिया गया है। इस समय अगर मौ० शौकतअली मेरे साथ होते तो अपने प्रार्थना-पत्र में मुझे मुसलमानों के सम्बन्ध में खास तौर पर कुछ न लिखना पडता। अरे, अगर १७ ता. को वे बम्बई में होते तो शायद यह दंगा कतई न हुआ होता। कितनी ही बातें जो हुई हैं वे न हो पातीं। अगर मियां छोटाणी भी १७ ता. को बम्बई होते, या श्री० अहमद हाजी सिद्दीक भी रोग-शय्या पर न पडे होते, तो भी बातें बहुत कुछ पलट जातीं। पर बीती हुई बातों पर रोने की मुझे इच्छा नहीं। मौ० शौकतअली का जिक्र मैंने यहां अपने मुसलमान मित्रों को यह विश्वास दिलाने के लिए किया है कि मौ० शौकतअली के हिस्से के काम का भी भार अपने सर पर लेने को मैं तैयार हूं। पर उसके बदले में मैं उनसे सिर्फ यही चाहता हूं कि वे मेरे कथन का अर्थ कुछ का कुछ न समझ लिया करें। उनके हितों को मैं अपने जिम्मे की हुई चीज समझता हूं और जानबूझकर मुझसे उनका विश्वास-घात हर्गिज न हो सकेगा। इसी प्रकार मित्रों से भी मेरा अनुरोध है कि जहां वे मुझे भूल करता हुआ देखें वहां निःसंकोच मुझे अपनी भूल बतावें। और मैं उन्हें यकीन दिलाता हूं कि अगर मुझे अपनी भूल के विषय में संदेह न रहेगा तो मैं उसको स्वीकार करने में कभी पीछे हटनेवाला नहीं। पर मैं उन्हें सिर्फ इतना जताये देता हूं कि मैं आम तौर पर जल्दी में अथवा बिना काफी आधार के कोई बात नहीं करता हूं। अतएव अगर मैं अपनी भूलों को चट-पट कुबूल करने में आना-कानी करूं तो इस पर वे चकरावें नहीं। मुझे जो इस विषय पर इतना लिखना पडा है, इससे भी यही सूचित होता है कि अब भी दोनों जातियों को एक दूसरे के विषय में बडी सावधानी के साथ लिखना पडता है। यह है तो बरफ के पतले तह के ऊपर चलने की कसरत करने जैसा दुःखदायी परंतु हमें तो बात जैसी है वैसी ही ग्रहीत करना चाहिए और उसीमें से अच्छे से अच्छा नतीजा निकालना चाहिए।

(यंग इंडिया)

अच्छा और बुरा

बम्बई के दंगे के समय मेरे पास अच्छी और बुरी दोनों तरह की खबरें आती थीं—असहयोगी पागल हुए हैं! हिन्दू और मुसलमान पारसियों पर हमला कर रहे हैं! पारसी उन पर गोलियां झाड रहे हैं! ईसाई खादी की टोपी और कपडे पहनने वालों पर टूट पडे हैं! हिन्दू और मुसलमान ईसाइयों पर आक्रमण कर रहे हैं! इन खबरों के बीचबीच में यह खुशखबरी भी आती जाती थी कि पारसी दूसरे पारसियों के हाथों से हिन्दू और मुसलमानों की जानें बचा रहे हैं, कुछ ईसाई भी हिन्दू-मुसलमानों को बचा रहे हैं, और हिन्दू-मुसलमान दोनों को आश्रय दे रहे हैं, असहयोगी अपनी जान तक को जोखों में डाल कर शान्ति की स्थापना के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसी तीव्र और परस्पर-विरोधी भावनाओं की टक्कर में कुचल जाने का दुर्भाग्य मुझे पहले

---

*बम्बई के उपद्रव के समय लोगों को शान्त करने के लिए श्री गांधीजी ने तीन-चार प्रार्थना-पत्र लोगों के नाम छपाकर प्रकाशित किये थे।

कभी नहीं किया था। और फिर भी ऐसी नाजुक और विकट स्थिति में मित्रों को दौड़ाना, उनको मौत के जबड़े में धकेलना और साथ ही अपने को मौत से बचाये रखना! कितनी दुःखदायिनी स्थिति!

ऐसे कठिन अवसर पर, बस, उपवास ही मेरा बाहरी सहारा और हार्दिक प्रार्थना ही मेरा आन्तरिक बल हो गया था। १७ ता. को तो मानों मेरी सारी ताकत ही चली गई। मेरे हृदय में विचारों का तुमुल युद्ध हो रहा था। लोगों के झुण्डों पर मेरा चिरस्थायी असर न होने का क्या कारण हो सकता है? मेरा अहिंसा का सामर्थ्य कहां चला गया? मेरा कर्तव्य क्या है? हताहत लोगों को मैं यह तो कह नहीं सकता था, और कही कैसे सकता हूं, कि सरकार की मदद लो? हमारे यहां पंचायत भी नहीं, जो इन्साफ करे। ऐसा कोई नहीं दिखाई देता जिसके पास मैं जाऊं और कहूं और जो बीच में पड कर सुलह-शांति करा दे। तो क्या मैं ऐसी टुकड़ी खड़ी करूं जो शरीर-बल का मुकाबला शरीर-बल से करके शान्ति रक्षा कर सके? यह तो मुझसे होही कैसे सकता है? तो अब, मैं उन लोगों को किस तरह आराम और सेहत पहुंचाऊं जिनको उपद्रवियों ने बेहाल कर डाला? तब क्या मैं उन पारसियों या ईसाइयों की क्रोधाग्नि में, जिनका कुपित होना बेजा नहीं था, खड़ा रहकर भस्मीभूत हो जाऊं? पर इससे तो उलटा खून की नदियां ही बह चलेंगी। एक सिपाही की हैसियत से तो मुझे एक भी अनिवार्य्य संकट को पीठ दिखाना लाजिम नहीं था; परन्तु दूसरी दृष्टि से मुझे अंधे की तरह चुप हो कर गर्दन कटा लेना भी ठीक नहीं था।

तो अब मुझे करना क्या चाहिए? आखिर यह उपवास मेरी मदद के लिए दौड़ा और इसने मेरी आत्मा को तसल्ली दी। अगर मनुष्यों के हाथों कटकर मर जाना मेरे लिए उचित नहीं है तो जबतक मेरी अर्जी प्रभु के यहां मंजूर न हो तबतक अनशन-व्रत लेकर मुझे ईश्वर से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि प्रभु इस चोले को लेजा। मुझ जैसा दिवालिया दूसरा क्या कर सकता है? मैं लोगों की निर्दोषता पर व्यापार न कर सका। १७ ता. को मैंने खुद अपने हाथ से उन्हें हुंडी दी, वह नहीं सिकरी और उनके हाथों उसकी दुर्गत हुई। अब तो मुझे हर हालत में खोयी हुई साख फिर से बैठाना पड़ेगी या उसके लिए कोशिश करते हुए मर मिटना होगा। अब तो मेरे लिए ईश्वर ही एक ऐसा स्थान रहा है जहां मैं उसका काम चलाने के लिए हुंडी लिखूं। उसके दरबार में मैं किस तरह अपनी साख जमाऊं? अंदर की आवाज ने कहा 'नम्र होकर, उसके सामने धूल में साष्टांग दण्डवत् कर के, और जबतक तेरी अर्जी कुबूल न हो तबतक उसका दिया अन्न खाने से इनकार करके'। मुझे हजारों तरह से अपनी व्याकुलता उस पर प्रकट करना चाहिए और उससे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि परमात्मन् अगर मैं तेरा काम करने के लायक न साबित हुआ हूं तो मुझे वापस बुला ले और अपनी योग्यता और तेरी इच्छा के अनुसार नये सिरे से मुझे बना। और इसीलिए मैंने अनाहार-व्रत लिया है। अब यह खबरें सुन सुन कर कि मेरे साथियों के चोटें लगी हैं या लड़बच्चों के जख्म आ रहे हैं, मेरा चित्त अस्थिर नहीं होता। मेरा तो एक मात्र सहारा मेरी निजी अहिंसा ही है। अगर वह असर नहीं कर सकती तो मुझे उसके लिए चिन्ता करना उचित नहीं। भारत के दूसरे भागों में हजारों लोग मरते हैं। उनकी मृत्यु से मेरे हृदय को दुःख होता है; पर उनके लिए मैं मर नहीं जाता। उसी प्रकार इस मामले में भी जब कि मैं जो कुछ जानता हूं सब कह चुका हूं, तब फिर उसके लिए चिन्तित और व्याकुल होना अनावश्यक ही है। इस प्रकार यह उपवास मेरे लिए प्रायश्चित्त, आत्मशुद्धि और भूल की दुरुस्ती सबकुछ हो गया है। यह कार्यकर्ताओं को एक चेतावनी भी है कि इस संग्राम में वे मेरे साथ खिलवाड़ न करें। इस युद्ध में सिर्फ वही लोग शामिल रहें जो सच्चे दिल से अहिंसा के कायल हों। ऐसे सच्चे और पक्के कार्यकर्ता अगर इने-गिने ही होंगे तो भी यह लड़ाई बे-खटके और बिना उलझनों के चलाई जा सकेगी। पर कार्य्यकर्ता अगर नेक और सच्चे न हों, तो उनकी संख्या बहुत होने पर भी, उनसे इस आन्दोलन को हानि ही पहुंचेगी। और अन्त को यह उपवास शीघ्र शान्ति स्थापित कराने में भी सहायक सिद्ध होगा। पर यह अन्तिम बात तो गौण है। इसका मुख्य हेतु तो है प्रायश्चित्त, आत्मशुद्धि और भूल-सुधार। उस भक्त-भयहारी के द्वारा मेरा संकट दूर करने के लिए भेजी हुई यह सम्पत्ति है।

कार्य्यकर्तागण सावधान!

उपवास छोड देने के सम्बन्ध में मुझसे अनेक तरह से अनुनय-विनय किया जा रहा था। कितने ही लोगों ने तो मेरे दुःख से दुखी होकर खुद भी उपवास करना आरम्भ कर दिया था। मैं ऐसे सब सज्जनों को यह सूचित करना चाहता हूं कि वे भूल कर रहे थे। मेरे लिए तो अनशन-व्रत जरूरी था। मैं तो अपराधी था, दिवालिया था। मेरे लिए प्रायश्चित्त एक आवश्यक बात थी। दूसरे लोगों का काम तो यह है कि वे स्थिति को समझें, अपने अन्दर अगर हिंसाभाव का लेश मात्र भी बाकी रह गया हो तो उसे त्याग कर दें, दूसरों में अहिंसावृत्ति का संचार करें और यह अच्छी तरह याद रक्खें कि हिंसा का तिल-मात्र भी उद्रेक हमारे कार्य को बिगाड़ने वाला है। वे तो बस चरखे को अपनी प्रिय वस्तु बना लें और अकेली हिन्दू-मुसलमान की एकता ही नहीं; बल्कि तमाम जातियों में एकता स्थापित करने के लिए प्रयत्न करें। हिन्दू-मुसलमान एकता का अर्थ अगर इतना ही हो कि वे दोनों जातियां अपने स्वार्थ के लिए छोटी जातियों के हितों पर दृष्टि न रक्खें तो ऐसी हिन्दू-मुसलमान एकता एक दिन के लिए भी काम की नहीं। भारत-भूमि में पैदा हुए ईसाई और यहूदी विदेशी नहीं हैं और पारसी तो विदेशी हो ही कैसे सकते हैं? हमें उनसे मित्रता करना, उनकी सेवा और सहायता करना एवं उनकी रक्षा करना आवश्यक है। इसी प्रकार असहयोगी कार्यकर्त्ताओं को सहयोगी लोगों के साथ भी मेल-जोल रखने की आवश्यकता है। वे चाहे अंगरेज हों चाहे हिन्दुस्तानी हों, हमें उनके लिए अपने मुंह से एक भी बुरी बात न निकालना चाहिए। हमें तो अपने स्वीकृत कार्य्य की सचाई में और अपने कष्ट-सहन की शक्ति में ही विश्वास रखना उचित है। कमसे कम हाल के लिए तो हमने ईश्वर को साक्षी कर के दुनिया को यह जाहिर किया है कि हम किसी भी अंगरेज बच्चे को किसी तरह से नुकसान न पहुंचावेंगे, फिर चाहे उसने भले ही हमारे साथ कुछ भी क्यों न किया हो। इस प्रकार दुनिया के सामने ऐसी प्रतिज्ञा कर के अगर उसकी ओट में हम किसी भी अंगरेज या हिन्दुस्तानी सहयोगी के बदन को एक अंगुली भी लगावेंगे तो हम ईश्वर के दरबार में और दुनिया के सामने गुनहगार होंगे। (यंग इंडिया)

उपवास के बाद

यह टिप्पणी मैं अपने उपवास छोडने के बाद लिख रहा हूं। 'यंग इंडिया' के बहुतेरे लेख उपवास-समय में ही लिखे गये हैं। उन दिनों जो विचार मेरे मनमें आये उनमें और आज जो विचार कर रहा हूं उनमें मुझे कोई भेद नहीं नजर आता। उपवास के पहले के मेरे विचार ज्यों के त्यों बने हुए हैं।

एक परिवर्तन

सिर्फ एक बात में फेर-बदल हुआ है। परन्तु इसका कारण उपवास नहीं है। बल्कि जो दृश्य मैंने १० ता. गुरुवार को बम्बई में देखा, तथा शुक्रवार और शनिवार को जिन जिन दुर्घटनाओं का हाल सुना, उसके बदौलत हुआ है। अब मैं यह देख सकता हूं कि सविनय भंग के लिए हम अभी तैयार नहीं। ऐसी अवस्था में बारडोली मे सविनय भंग करना अपनी बाजी हार जाना है। सविनय भंग का प्रयोजन तो यह है कि हमें स्वराज्य मिले, हम खिलाफत का निपटारा करालें और पंजाब के मामले में सरकार से माफी मंगालें। इन तीन में से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति वर्तमान अवस्था में कानून-भंग करने से, नहीं हो सकती। बम्बई और बारडोली-आणंद में इतना निकट सम्बन्ध है कि एक को दूसरे को मदद करने की शक्ति है और इच्छा है। इधर हम बारडोली और आणंद में तो सविनय भंग शुरू करें और उधर बम्बई अशान्त कर बैठे तो, जरा ही गौर करने से ख्याल में आ सकता है कि, बम्बई से हमको मदद नहीं मिल सकती-यही नहीं, बल्कि बम्बई हमारे संग्राम को हानि भी पहुंचा सकती है।

कानून के मनमाने भंग के मानी तो सरकार के साथ पूरे सहयोग के सिवा दूसरे कुछ नहीं हो सकते। क्या हम अभीतक नहीं समझे हैं कि यह सरकार महज हमारी कमजोरियों पर, कानून को मनमाने तौर पर भंग करने की हमारी आदत पर, हमारी मारकाट पर, अपना जीवन निर्वाह कर रही है? वकीलों के अ-सहयोग से सरकार जितनी कमजोर हुई है उससे अधिक कमजोर वह हमारी शान्ति के बदौलत हुई है। वकीलवर्ग के सहयोग से सरकार को जितना बल मिलता है उससे अधिक बल उसे हमारे शान्ति-भंग से मिलता है। क्योंकि इससे सरकार को अत्याचार करके, लोगों को भय-कम्पित करके, अपनी सत्ता अधिक मजबूत करने का मौका मिलता है। अतएव एक जगह तो अविनय हो और दूसरी जगह विनय, ऐसा होना पहाड़ खोद कर चूहा निकालने जैसा है, धो कर फिर से मैल चढाने जैसा है। फूटे लोटे में चाहे कितना ही पानी क्यों न डाला जाय, वह कभी ठहर ही नहीं सकता। उसी प्रकार विनय-रहित वायुमण्डल में चाहे कितना ही विनय का संचार करते रहिए, वह व्यर्थ गये बिना नहीं रह सकता। पहले तो हमें सारे हिन्दुस्तान में विनयपूर्ण—शांत—वायुमंडल उत्पन्न करना चाहिए। सद्भाग्य से अथवा दुर्भाग्य से हम तो यह दावा करते हैं कि सारा हिंदुस्तान हमारे साथ है-अ-सहयोगी है। हम यह दावा करते हैं कि महासभा के पत्रकों में दर्ज लाखों आदमी हमारे साथ हैं—यही क्यों, दूसरे करोड़ों आदमियों पर हमारा इतना प्रभाव हो गया है कि वे भी हमारे साथ ही हैं। ऐसा दावा किये बिना हमारी गति ही नहीं। अगर लोग हमारे साथ न हों तो फिर स्वराज्य किसके लिए प्राप्त किया जाय? अगर लोग सरकार के साथ हों तो क्या बल-पूर्वक उनको आजाद कर सकते हैं? हमारी इस वर्तमान स्वराज्य की हलचल का, खिलाफत और पंजाब की हलचल का आधार ही इसी बात पर है कि हम लोगों के दुःख-दर्द को प्रकट कर रहे हैं और उन्हीं साधनोंका उपयोग कर रहे हैं जिन्हें लोगोंने पसंद किया है। इसका अर्थ यह हुआ कि लोग शान्ति के साथ विजय प्राप्त करना चाहते हैं।

अगर मेरी यह पूर्वोक्त बात गलत हो तो मैंने—हमने-बड़ी गहरी भूल की है। अगर हम, शान्ति को सच्चे दिल से मानने और चाहने वाले, मुट्ठीभर ही हों तोभी हमारे पास इलाज है। परंतु उस अवस्था में हमारा संगठन दूसरे प्रकार से होना चाहिए। फिर कोई अ-सहयोगी चाहे जेल जाय, चाहे मर जाय, उसके पीछे झुण्ड के झुण्ड लोगों को जेल न जाना चाहिए। यदि सहयोगियों की तरह लोगों में हमारी भी प्रतिष्ठा न होती तो हम पेट भर कर सविनय भंग कर सकते। क्योंकि उस अवस्था में हमारे नाम पर कोई शान्ति भंग नहीं कर पाता।

भेद

गुजरात में हम जो शीघ्र ही सविनय भंग करने के मनसूबे बांध रहे थे, वह भंग सारे हिन्दुस्तान के लिए था। उस भंग के बल पर हम खिलाफत को ताकत पहुंचाने की और स्वराज्य प्राप्त करने की आशा रखते थे। अतएव सारे हिन्दुस्तान के लिए शान्ति-रक्षा की, उसमे सहमत होने की, जरूरत है। पर स्थानिक कष्टों और दुःखों के लिए हर आदमी सविनय भंग कर सकता है, जैसा कि आज चिराला पिराला में और मूळशी पेठा में चल रहा है। उनके साथ हमारी हमदर्दी भी है, और हो सके तो हम उनकी सहायता भी करें। परंतु हम खुद तो तटस्थ ही रहें। लेकिन अशान्ति का असर इतना बुरा है कि अगर हम चिराला पिराला के नाम पर बम्बई में अशान्ति कर बैठें तो चिराला पिराला को अधिक भोग भोगना पड़ें।

बड़ी आवश्यकता

इसलिए बड़ी से बड़ी आवश्यकता यह है कि हम हर जगह तुरन्त शान्ति फैला दें। अगर खुद हमारे मनमें भी कुछ शक बाकी रह गया हो तो उसे दूर कर दें। हमें उपद्रवी लोगों को अपने काबू में कर लेना चाहिए। वे भी हमारे भाई हैं। हम उन्हें छोड़ नहीं सकते। उसी प्रकार हम उनके अधीन भी नहीं हो सकते। अगर हम उनके वश होकर काम करें तो हिन्दुस्तान में स्वराज्य नहीं होगा, गुण्डों का राज होगा। गुण्डों का राज होने देना मानों उनकी और हमारी दोनों की मौत है। परन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि गुंडों के राज्य को लोग जरा देर भी नहीं सहन कर सकते। गुण्डों के राज में रहने वाले जानोमाल के तात्कालिक नुकसान के भय को अंगीकार करने के बजाय सरकार के तात्कालिक रक्षण को खुशी खुशी कबूल कर लेंगे। अतएव हमें चाहिए कि हम इन उपद्रवी लोगों से जान पहचान करें, बातचीत करें, उन्हें धर्म का और देश का हित समझावें और उनसे कहें कि भाई, अपनी अशान्ति के द्वारा देश के कार्य में विघ्न न डालो। कोई यह ख्याल न करे कि अरे, यह तो बड़ा लम्बा कार्यक्रम है। बम्बई में यह काम सिर्फ पन्द्रह दिनों में हो सकता है। उपद्रवी लोगों को मैं सीधे-भोले, परन्तु कर्म के वश हो कर उलटा मार्ग पकड़ लेने वाले, भाई मानता हूं। उन्हें हमने अपने अन्ध स्वार्थ के लिए बुरा बनाया अथवा बना रक्खा है। अतएव ऐसी स्थिति सहज ही बनाई जा सकती है जिसमें वे हमारे धर्मयुद्ध में रुकावट न डालें। अ-सहयोग के समय उन्हें अपनी मार-काट की या लूट-मार की कुटेव का प्रयोग न करना चाहिए। अगर हम उनपर अपना इतना भी असर न डाल सकें तो हम स्वराज्य के अयोग्य सिद्ध होंगे। मान लीजिए कि अंगरेजी सत्ता हिन्दुस्तान से चली गई, तो फिर इन उपद्रवी लोगों की आदतों से हमें कौन बचावेगा? यह शुद्धि स्वराज्य के बाद नहीं होगी, बल्कि यह शुद्धि होना तो स्वराज्य प्राप्ति की एक शर्त है। यदि हम उन्हें अपने प्रेम के द्वारा अपने वश न कर सके तो उन्हें वश करने के लिए आवश्यक तलवार-बल तो हमारे पास है ही नहीं। और मुझ जैसे लोग तो उनकी तलवार से टुकड़े टुकड़े हो जाना पसंद करेंगे; पर उन्हें तलवार के घाट उतार कर जिन्दा रहने का प्रयत्न-तक न करेंगे।

इसमें विघ्न

यह सुधार होना है तो आसान, पर हमारे रास्ते में बाधायें हैं। हमारे देश में आज छः मत प्रचलित हैं—

(१) जो यह मानते हैं कि हत्याकाण्ड के बिना स्वराज्य कभी नहीं मिल सकता। इसलिए वे शांति का उपयोग अशांति फैलाने के काम में करते हैं।

(२) जो यह समझते हैं कि शांति और अशांति दोनों एक साथ जारी रखने में ही कल्याण है। इसी से वे अशांति का भी स्वागत करते हैं। इनका हेतु आत्म-शुद्धि नहीं, बल्कि केवल सरकार को परेशान करना है।

(३) अशांति को रोकते हुए भी अगर वह जारी ही रहे तो भी शांति के किसी प्रयोग को बन्द करने की इच्छा न रखने वाला वर्ग।

(४) यह मानने वाले कि उतना ही काम करना उचित है जितना कि सरकार के साथ रह कर किया जा सके।

(५) जो शांति को आजमायश के तौर पर, मस्लहत-पालिसी—के तौर पर मान कर उसका प्रचार करते हैं और जब वह आजमाइश होती है तब दुखी होते हैं।

(६) जो शांति को ही हिन्दुस्तान की मुक्ति का और हिन्दू-मुसल्मान की एकता का मार्ग समझ कर काम करते हैं और इसलिए अनजान में भी लोगों की तरफ से होने वाले उपद्रवों को पसंद नहीं करते हैं।

जरा ही विचार करने से हमें यह मालूम हो जाना चाहिए कि पांचवें और छठे वर्ग के लोग ही हमारे सहायक हैं और केवल इन्हीं लोगों से हमारा काम चल सकता है। शेष सब मतों के लोग हमें नुकसान पहुंचाने वाले हैं। उन्हें हमें विनय से, दलील से, सेवा से अपना बना लेना है। परंतु चौथा वर्ग—सहयोगियों का—उतना भयानक नहीं है जो हमें बहुत नुकसान पहुंचा सके। फिर हम उस वर्ग को पहचानते हैं। उसका भेद है। उसकी हलचल प्रकट रूप से होती है। पहले तीन मत के लोगों का कोई भेद नहीं। उनकी कोई संस्था नहीं, कोई मंडल नहीं। वे देश में सब दूर बिखरे हुए हैं और जब लाभ देखते हैं तभी, और पैदा कर सके तभी, लोगों पर अपना असर डालते हैं। वे लोग तितर-बितर हैं, इसलिए उनतक पहुंचना मुश्किल है। परंतु अब जब उपद्रव होते हैं तब वे मैदान में आते हैं और लोगों में अशांति फैलाते हैं। इनमें से कितने ही लोग शुद्ध हेतु से, परन्तु अज्ञानता-वश, असहयोगी-मंडलों में सम्मिलित हो कर अपना मत चलाने का प्रयत्न करते हैं। तब उनकी यह हलचल अधिक हानिकारक सिद्ध होती है। ये सब लोग बम्बई में गुरुवार से रविवार तक काम करते थे। यही कारण है जो हमें तरह तरह की अफवाहें सुनाई दीं। और यही वह दल है जो बात समझकर बिखर जाना चाहता था परंतु दूसरों के बहकाने में आकर फिर पलटा फिरा।

छिपी पुलिस

कुछ लोग कहते हैं कि यह सब काम छिपी पुलिस का ही था। मैं ऐसा बिल्कुल नहीं मानता। हां, यह ठीक है कि छिपी पुलिस के कितने ही लोग इसमें शामिल थे। छिपी पुलिस के कितने ही लोगों को उपद्रव के बिना चैन ही नहीं पड़ती। परंतु छिपी पुलिस के सिवा वे बिखरे हुए लोग भी जो खुद अपना मत रखते थे, काम कर रहे थे। और उनमें वे उपद्रवी लोग भी थे जिनका तो पेशा ही लूटना-आदि ठहरा। इसलिए वे तो खूब ही झूठी अफवाहें उड़ा उड़ा कर अपना काम बना रहे थे।

एक ही उपाय

इसके लिए अपने पास एक ही उपाय है। हमारा रास्ता सीधा है। हमें इन सबके ऊपर अपना असर डालना चाहिए। ये सब जब लोगों को अपने हाथ का खिलौना बना रहे हों तब अगर लोग ठीकठीक यह समझें कि हमें तो असहयोगियों की ही बात मानना चाहिए तो उन्हें ऐसे उपद्रवों में शामिल न होना चाहिए। जब हम ऐसा कर सकेंगे तभी शान्ति फैल सकती है। और शान्ति का फैल जाना इस बात को बताता है कि हममें उसके फैलाने की, उसकी रक्षा करने की शक्ति है। **हमें सच्चे और उद्यमी होना चाहिए।** अपने साधनों के प्रति हमें पूरा विश्वास होना चाहिए। हमें **सावधान रहना चाहिए।** बम्बई के कार्यकर्ताओं को ख्याल न रहा। वे गफलत में रहे। उन्होंने मान लिया कि अब तो लोग हमारी बात को इतने समझ गये हैं कि उनसे उपद्रव हो ही नहीं सकते। इसमें उन्होंने शाहजादे के स्वागत के बहिष्कार की तैयारियां खूब कीं; परंतु पूर्ण शान्ति की रक्षा के लिए पहले ही से जितने प्रयत्नों की जरूरत थी उतने न कर पाये। परिणाम जो हुआ सो हमने देखा ही। चाहे जो हो, पुलिस की जबरी कोशिश होते हुए भी जब हममें शान्ति रक्षा करने की शक्ति आ जाय तभी हम सरकार से बड़े-बड़े माने जा सकते हैं, तभी हम स्वराज्य के लायक माने जा सकते हैं। पुलिस के साथ लड़ कर अगर हम उसको फंसाते रहेंगे तो हम हार बैठेंगे। दुश्मन जब हमें गिरा कर डाले, ख्याल में न आने लायक बातें कर गुजरे, तब यदि हम ऐसा कहें कि "दुश्मन तो हमें जीतने ही नहीं देता, हमें हम लड़ने ही नहीं देता, तो फिर हम लड़नेवाला किस बात के?" दुश्मन जो चाहे किया करे; पर फिर भी जब हम यह सिद्ध कर दिखावें कि हममें लड़ने की शक्ति है, तभी हमें जीतने की आशा रखनी चाहिए। सरकार सब कुछ कर सकती है। पर इतना होने पर भी हम शांति की रक्षा कर सकते हैं। जबतक हम ऐसा न कर सकेंगे तबतक जीत जाने की आशा छोड़ ही रखना चाहिए।

आत्म-निरीक्षण

अतएव पहिला ही फल मिलाने के बाबत हमारा धर्म तो यही है कि हम अपनी ही भेद लें। हम ऐसे भोले क्यों हो गये कि हमने हर तरह की अफवाहें मान लीं? हमने जबरदस्ती की या नहीं? हमने ट्राम-गाड़ी जलाई या नहीं? शराब की दुकानों में आग लगाई या नहीं? हमने दूसरों को नुकसान करते हुए देख कर उनमें हाथ बंटाया या नहीं? हमने अपने मन में मैल रखा या नहीं? अगर हमने यह सब किया हो—और मैंने देखा है कि हमने ऐसा किया है—तो हमें ईश्वर के नजदीक हाथ जोड़ कर माफी मांगना चाहिए, हमको आत्मशुद्धि करना चाहिए; और अब आगे ऐसा न करने की प्रतिज्ञा करना चाहिए। "आप भले तो जग भला" इस कहावत में भारी सिद्धांत छिपा हुआ है। हमारे दिल में मैल है और हम डरपोक हैं। तभी तो हम हरएक हाकिम और पुलिस को अपना दुश्मन मानते हैं। हम अगर डर को निकाल कर दूर रख दें तो न छिपी न खुली किसी भी पुलिस से डरें। न किसी के बहकाने से बहकें ही। हम तो केवल अपने आंतरिक बल से ही जूझना चाहते हैं। और वह बल किसी के दिये से हमें नहीं मिल सकता। वह तो ईश्वर से ही मिल सकता है। बस अपनी कमजोरियों को जीतने की देर है कि स्वराज्य हथेली में रक्खा है।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

आगामी ३० दिसम्बर को, महासभा के अधिवेशन के पश्चात, राजपूताना मध्यभारत सभा की बैठक अहमदाबाद में होगी।—मंत्री

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, अगहन व. १३, सं. १९७८.

साथियों के प्रति—

ये पिछले कुछ दिन हमारी अग्नि-परीक्षा के दिन थे, और हमें परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिए कि हममें से कितने ही लोग उसमें कच्चे नहीं साबित हुए। मेरे आस-पास गोरे हुए ये घायल लोग तथा जिन लोगोंकी लाशों का हाल मैंने विश्वस्त सूत्र से सुना है, इस बात के काफी प्रमाण हैं। कई कार्यकर्ताओं ने शान्ति स्थापित करने के तथा अपने उन्मत्त देशभाइयों के कोप को शांत करने के कार्य में अपनी जानें गवाई हैं, हाथ-पैर गवांये हैं, और गहरी चोटें खाई हैं। ये मृत्युयें और ये चोटें यह साबित करती हैं कि यद्यपि हमारे अनेक देशभाई भूल कर बैठे हैं तथापि हममें कुछ लोग ऐसे जरूर हैं जो अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्राणतक न्यौछावर करने पर कटिबद्ध हैं। अगर हम सब लोगों के हृदय में अहिंसा का रहस्य अच्छी तरह अंकित हो गया होता, या थोड़े ही लोगों ने हृदयंगम किया होता, पर दूसरे लोग सिर्फ निरुपद्रवी ही बने रहते तो किसी तरह की खून-खराबी न होती। किन्तु होनहार ऐसा नहीं था। ऐसी हालत में किसी न किसी की तो स्वेच्छापूर्वक अपना खून बहाना आवश्यक ही है जिससे बंबईका शान्तिमय वायुमंडल कायम हो जाय। और जबतक खून-खराबी कर बैठने वाले दुर्बल लोग हमारे अंदर मौजूद रहेंगे तबतक दूसरे ऐसे कमजोर लोग भी निकलेंगे जो ऐसे लोगों की सहायता लेते रहेंगे जो किसी मार-काट की विद्या में अधिक निपुण हैं या जिनके पास उसके अधिक साधन हैं। इसीलिए तो पारसियों और ईसाइयोंने सरकार की सहायता मांगी और वह उन्हें मिली भी-यहांतक कि सरकार ने खुल्लमखुल्ला पक्ष किया और उनको हथियार लेकर उलटा खून-खराबी करने में उत्तेजना दी और उन लोगोंमें से किसी एक की भी जान बचाने की जरा भी परवाह नहीं की जो शुरुआत में तो दरअसल गुनहगार थे, परन्तु पीछे से पारसियों, ईसाइयों और यहूदियों के उस क्षम्य कोप के शिकार हो गये थे। इस तरह यह सरकार शान्ति की रक्षा के लिए नहीं, पर चोट खानेवाले खून-खराबी पर तुले हुए अपने तरफदारों के उपद्रव जारी रखने के लिए, खून-खराबी करती हुई अपने नग्न रूप में नजर आ रही है। हां, यह सही है कि ईसाइयों का क्रोध सकारण था। परन्तु जब वे बे-कसूर लोगों की सफेद टोपियां छीनने लगे और अपनी टोपियां न देने वाले लोगों को ठोंकने-पीटने लगे, अथवा जब पारसी लोग आत्मरक्षा के लिए नहीं, पर केवल इसीलिए कि अमुक मनुष्य हिन्दू या मुसलमान या असहयोगी है, उन पर हमला करने और गोलियां दागने लगे, तब सरकारी पुलिस और फौज पत्थर की तरह खड़ी खड़ी लापरवाही से मुंह ताकती थी। मैं उन क्रुद्ध और पीड़ित पारसी और ईसाइयों को तो क्षमा कर सकता हूं; परंतु पुलीस और फौज ने सरेदस्त तरफदारी करते हुए जो जुर्म के जैसा बरताव किया है, उसकी सफाई का कोई कारण नहीं दिखाई देता।

इसलिए असहयोगी कार्यकर्त्ताओं का तो यही कर्तव्य है कि वे सरकार तथा अपने इन भूले-भटके देश-भाइयों के हाथों की चोटें सहन करें। बस, दंगा-फसाद के भावों को निष्प्राण करने का यह एक ही रास्ता हमारे लिए खुला है। शीघ्र स्वराज्य-प्राप्ति का मार्ग तो यही है कि हम हिंसा के भावों पर अपना अधिकार कर लें—सो भी अधिक हिंसात्मक उपायों के द्वारा नहीं बल्कि नैतिक प्रभाव डाल कर। क्योंकि हमें यह सूरज की रोशनी की तरह साफ साफ दिखाई देना चाहिए कि हमारे लिए तो पशु-बल की इतनी तैयारी कर लेना और इतनी साधन-सामग्री जुटा लेना असम्भव ही है कि जिससे हम इस वर्तमान सरकार के अस्तित्व को मिटा सकें।

कई लोग यह सवाल करते हैं कि आखिर ठीक उस १७ तारीख को ही यह दंगा-फसाद खड़ा होजाने से शाहजादे के स्वागत के प्रति जनता का तीव्र रोष जिस प्रकार प्रकट हुआ है उतने कारगर तौर से वह दूसरे ढंग से शायद ही होता। इस दलील से जितना अज्ञान प्रकट होता है उतनी ही दुर्बलता भी सूचित होती है। अज्ञान तो इस बात का कि हमारा लक्ष्य स्वागत को हानि पहुंचाना नहीं था, और दुर्बलता इस बात की कि अब भी हम अपने बल के ज्ञान से संतुष्ट रहने की अपेक्षा उसे दूसरों पर जाहिर करने के पीछे मरे जाते हैं। मैं हरएक कार्यकर्ता को यह किस तरह समझाऊं कि ऐसा करके हमने खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य सम्बन्धी अपने इस त्रिविध कार्य की प्रगति को निश्चित रूप से पीछे हटा दिया है?

किन्तु यदि कार्यकर्ता लोग अपनी जवाब-देही को समझ कर उसके अनुसार कार्य करें तो अब भी बाजी हाथ से गई नहीं है। हमें बम्बई के उन उपद्रवी लोगों के हृदय पर अधिकार कर लेना चाहिए। हमें मिल-मजूरों से परिचित होजाना चाहिए। वे या तो सरकार का साथ दें या हमारा अर्थात् या तो मार-काट में शामिल हों या ऐसे उपद्रवों का सामना शान्ति के साथ करें। इसमें बीच का रास्ता हो ही नहीं सकता। उन्हें हमारे कामों में दखल हरगिज न देना चाहिए। या तो वे हमारे प्रेम के अधीन होजायं या असहाय होकर संगीनों का भोग हो जायं। किन्तु मारकाट के लिए वे अहिंसा के झंडे का आश्रय नहीं ले सकते। अपना यह संदेश उन तक पहुंचाने के लिए हमें एक एक मिल-मजदूर के पास जाना चाहिए और उसे अपने संग्राम का रहस्य समझा देना चाहिए। इसी प्रकार हमें दूसरे गुंडे लोगों से भी मिलना चाहिए, उनसे मेल-मुहब्बत करना चाहिए और उन्हें इस धर्म-युद्ध के धार्मिक भावों को समझने में मदद देना चाहिए। हम उन्हें भुला नहीं सकते; पर उन्हें अपने सिर पर भी नहीं चढ़ा सकते। हमें तो बस उनके सेवक बन जाना चाहिए।

हम पैबन्द लगी हुई शान्ति नहीं चाहते। हमें तो सरकार की सहायता के बिना, और कभी तो उसका ओर से प्रत्यक्ष विरोध होते हुए भी, टिक रहने वाली शान्ति के इत्मीनान की जरूरत है। हमें तो हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई और यहूदी इन सबके हृदयों की एकता की जरूरत है। हां, ये आखरी तीन जातियां पहली दो जातियों का अविश्वास कर सकती हैं और शायद करेंगी भी। इन हाल की घटनाओं ने ऐसे अविश्वास को मजबूत बनाने के कारण उपस्थित कर दिये हैं। इस अविश्वास को हटाने के लिए हमारी तरफ से खास तौर पर प्रयत्न होने चाहिए। अगर वे पूरे असहयोगी न बनना चाहते हों, या स्वदेशी को न अपनावें या सफेद टोपी न पहनें तोभी हमें उन्हें परेशान न करना चाहिए। अगर वे हरवक्त

सरकार की ही तरफदारी करें तो भी हमें चिढ उठने की जरूरत नहीं है। हमें तो निरी प्रेम-भरी सेवा के बल पर ही उन्हें अपना बना लेना है। वर्तमान स्थिति में यही हमारी आवश्यकता है। यह पसंद न हो तो दूसरा उपाय है-आपस में लड मरना। और यह पारस्परिक संग्राम भी ऐसी दशा में कि जहां एक तीसरी विदेशी सत्ता कभी एक का और कभी दूसरे का पक्ष लेकर, अपनी सत्ता की जड अधिकाधिक मजबूत करने के लिए घात लगा कर बैठी हुई है, इस समय तो असम्भव ही होना चाहिए।

और जो बात छोटी जातियों के विषय में सच है वही सहयोगियों के विषय में भी उतनी ही सच है। हमें उनके प्रति भी अधीर न होना चाहिए। उनकी हरकतें सहन करना चाहिए। अगर हम सरकार के साथ असहयोग करने के लिए अपने को स्वतन्त्र मानते हैं तो फिर सरकार के साथ सहयोग करने की उनकी आजादी का भी कायल हमें होना चाहिए। अगर हमारी संख्या कम होती और सहयोगी, अधिकसंख्यक होने के कारण, हम पर जोरो-जब्र करने लगते तो हम उसे कैसा समझते? अहिंसामय असहयोग ही एक मात्र ऐसा उपाय दुनिया को मालुम है जो अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त करने के लिए रामबाण है। और हमारे इस संग्राम का रहस्य इसी बात में है कि हम अंगरेजों-सहित अपने हरएक प्रतिपक्षी को इसी उपाय से अपने पक्ष में मिला लें। और यह हम कमजोर से कमजोर को लेकर बलवान् से बलवान् तक प्रत्येक मनुष्य के प्रति द्वेष-भाव का त्याग कर के ही कर सकते है। यह महान् कार्य्य हम उसी अवस्था मे कर सकते हैं जब हम अपने अन्तःस्थित सत्य के खातिर उन लोगो का जो उस सत्य को नहीं देख सकते है, शिरच्छेद न करें बल्कि उनके लिए खुद मरने को तैयार हो जायं।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

बम्बई में कार्य्य-समिति

इसी सप्ताह बम्बई में महासभा की कार्य्य-समिति की बैठक हुइ। उसमें बम्बइ के उपद्रव पर खेद प्रकट किया गया और उससे दुःख पाने तथा हानि उठाने वाले लोगों के साथ सहानुभूति दिखाइ गइ। यह माना गया कि इस उपद्रव के कारण हतोत्साह होने की आवश्यकता नहीं। हर प्रांत में स्वयंसेवक-सेना तैयार करने की आवश्यकता बताई गइ और स्वराज्य-स्थापना के प्रयत्नों के लिए पूर्ण अहिंसात्मक वायुमंडल होने पर जोर दिया गया। महासभा के दफतरों की लिखा पढी हिंदुस्तानी में करने की बात तय हुइ और प्रान्तीय समितियों का काम उनके प्रांत की भाषा में होना स्थिर किया गया।

नीति का-बल

ज्योंही हमसे नीति का सहारा छूटा कि हमारे धार्मिक जीवन का अंत हुआ समझिए। धर्म और नीति में विरोध हो ही नहीं सकता—जैसे-मनुष्य झूठा, निष्ठुर या संयमहीन होते हुए ईश्वर का कृपा-पात्र कभी नहीं हो सकता। बम्बई में उन असहयोग में हमदर्दी रखने वाले लोगों ने नीति की मर्यादा तोड दी। वे उन पारसियों और ईसाइयों पर टूट पडे, जो युवराज के स्वागत-समारम्भ में शरीक हुए थे और उन्हें इसका 'मजा चखाने' की कोशिश की। उन्होंने वैर और बदले को न्यौता दिया और वह उन्हें मिला। १७ ता. के बाद तो वह मारकाट की एक खासी बाजी ही हो गई, जिसमें फायदा तो वास्तव में किसी का भी नहीं हुआ, हां, हानि अलबत्ते दोनों की हुई।

स्वराज्य का यह रास्ता नहीं है। हिन्दुस्तान को बोलशेविजम की जरूरत नहीं। यहां के लोग तो इतने शान्तिप्रिय हैं कि वे अराजकता को सहन ही नहीं कर सकते। वे तो उसीके आगे अपना घुटना टेक देंगे जो 'शान्ति' की स्थापना के लिए आगे बढेगा। हिन्दुस्तानियों की इस मनःस्थिति को आप अस्वीकार नहीं कर सकते। शान्ति के पीछे इस तरह पड जाना नेक है या बद, इसकी छानबीन की जरूरत हमें यहां नहीं। आम तौर पर हिन्दुस्तान के मुसल्मान दुनिया के दूसरे मुल्कों के मुसल्मानों से बिल्कुल ही दूसरी तरह के हैं। हिन्दुस्तान के वायुमंडल में रहने के कारण वे अपने बाहरी इसलामी भाइयों की बनिस्बत किसी बात को जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। वे अपनी जानोमाल की हानि की छाया तक को बरदाश्त नहीं कर सकते। और हिन्दू-लोगों की सिधाई की तो कहावत ही मशहूर है। वह तो प्रायः तिरस्कार करने के लायक है। पारसी और ईसाई भी कलह की अपेक्षा शान्ति के ही अधिक प्रेमी हैं। और धर्म को तो हमने प्रायःशान्ति का एक सहायक साधन ही बना लिया है। हमारी यह मनोदशा जैसे हमारी कमजोरी है वैसे ही हमारा बल भी है।

हमारी इस मनःस्थिति का जो उत्तम भाग है-धार्मिक भाव है उसीका पोषण हमें करना चाहिए। 'धर्म के मामले में सख्ती न होना चाहिए।' क्या हमारे लिए स्वदेशी व्रत का पालन करना, अतएव खादी पहनना, धर्म नहीं है? परन्तु अगर दूसरे लोगों का धर्म यह न चाहता हो कि वे स्वदेशी को अपनावें, तो हमें उन्हें उसके लिए मजबूर न करना चाहिए। ऐसा करके कुरान के विभजनीन सिद्धान्त के प्रतिकूल काम किया है। और उस सिद्धान्त का यह अर्थ नहीं है कि धर्म को छोड कर दूसरे मामलों में जबरदस्ती की जाय। उस आयत के मानी तो यह है कि जिस मजहब पर हमारी पक्की श्रद्धा हो उसके लिए दूसरों पर जबरदस्ती करना अगर बुरा है तो उससे कम दरजे के मामलों में ऐसा करना तो और भी बुरा है।

इसलिए हम तो अपनी प्रतिपक्षियों को दुखिया और सबौले पेश करके ही समझा सकते हैं। और अधिक से अधिक हम अहिंसात्मक असहयोग उनके साथ कर सकते हैं, जैसा कि सरकार के साथ कर रहे हैं। लेकिन खानगी मामलों में हम उनके साथ असहयोग नहीं कर सकते; क्योंकि हम उन मनुष्यों के साथ तो असहयोग कर ही नहीं रहे हैं जो सरकारी काम करते हैं, बल्कि उनकी चलाई उस शासन-प्रणाली के साथ कर रहे हैं। गवर्नर की हैसियत से सर जार्ज लाइड को हम सरकारी काम में मदद देने से इनकार कर सकते हैं; परन्तु एक अंगरेज-भाई के नाते हम सर जार्ज लाइड को सामाजिक सेवाओं से वंचित कभी नहीं कर सकते।

मुझे यह कहते दुःख होता है कि यह शरारत खुद हिन्दुओं और मुसलमानों में ही पैदा हुई। लोग परस्पर विक करते थे, जबरन् रोकते थे। हां, मुझे मंजूर है कि मैंने हमेशा ही इन बातों की उतने जोर के साथ निन्दा नहीं की जितनी कि मैं कर सकता था। जब कि यह प्रवृत्ति आम तौर पर फैलने लगी तब मैं उससे अपने को अलहदा कर सकता था। पर हमने शीघ्रही अपने मार्ग को सुधारा। हम अधिक सहनशील हुए। परन्तु सूक्ष्म रूप से जबरदस्ती रोक-थाम अभी बाकी ही थी। मैंने इसे चलने दिया-सोचा था कि यह आप ही अपनी मौत मर जायगी। परन्तु बम्बई में मैंने देखा कि वह मरी नहीं थी। १९ ता. को तो उसने बड़ा ही उग्र रूप धारण कर लिया था।

हमने अपने हाथों अपने पांव पर कुल्हाड़ी मार ली। हमने खिलाफत के काम को और उसके साथ ही पंजाब और स्वराज्य के काम को नुकसान पहुंचाया। अब हमको अपनी भूल सुधारना होगी और छोटी छोटी जातियों को अच्छी तरह यकीन दिलाना होगा कि हम उनको इस तरह जरा भी दिक न करेंगे। अगर ईसाई लोग हैट लगाना और अंगरेज बन कर रहना पसंद करते हैं तो उन्हें ऐसा करने की आजादी होनी चाहिए। अगर पारसी अपने फेंटे को ही पहनना चाहें तो उन्हें ऐसा करने का हर तरह से हक है। अगर ये दोनों सरकार के साथ रहने में ही अपना हित समझते हों, तो हम उन्हें सिर्फ उनकी तर्क-शक्ति की ही आराधना करके उनकी गलती से विमुख कर सकते हैं, उनको ठोक-पीट कर नहीं। जितना ही अधिक जबरदस्ती से रोकने का प्रयत्न किया जायगा उतना ही अधिक हम सरकार को उसकी रक्षा का मौका देंगे। क्योंकि हमारी अपेक्षा सरकार के पास जबरन् रोकने का साज-सामान अधिक कारगर है। और हमारे लिए सरकार से बढ़कर जबरन् रोकने का प्रयत्न करना भारत-माता को अब से भी अधिक गुलामी में जकड़ना है।

स्वराज्य का अर्थ है-हरएक को आजादी मिले,-छोटे से छोटे लोग भी अपनी मर्जी के मुताबिक चलें और रहें-उनकी स्वाधीनता में किसी तरह से बलपूर्वक हस्तक्षेप न किया जाय। और यह अहिंसात्मक असहयोग स्वतन्त्र लोकमत तैयार करने और उसको कार्यरूप में परिणत करने का ही उपाय है। यह स्पष्ट ही है जब देश में पूर्ण मत-स्वातन्त्र्य होगा तब बहुमत के अनुसार काम चलेगा। यदि हमारी संख्या कम हो तो जबरदस्ती रोके जाने पर भी हम अपने धर्म पर आरूढ़ दृढ़ कर सच्चे धर्मनिष्ठ सिद्ध हो सकते हैं। [illegible] बहुमत के दबाव को मान कर भी अपने धर्म पर [illegible]। और ज्यों ही बहुमत उनकी ओर हुआ उन्होंने [illegible] दिया कि "मजहब के मामले में [illegible] न होना चाहिए।" [illegible] चाहिए कि न तो जबान से और न [illegible] हजरत मुहम्मद के उपदेश के खिलाफ [illegible] और [illegible] अपनी प्रभुता की [illegible]।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

बंबई निवासियों को सूचना.

"हिन्दी-नव जीवन" की फुटकर बिक्री बम्बई शहर में बन्द रक्खी गई है। इसलिए वहां वालों को ४) मनीआर्डर द्वारा भेज कर ग्राहक होना चाहिए।

व्यवस्थापक,
"हिन्दीनवजीवन" [illegible]

सत्य क्या है?

अंगरेजी धर्मशास्त्र में एक कथा है। उसमें एक न्यायाधीश ने प्रश्न किया है-'सत्य क्या है?' उसका उत्तर उसे नहीं मिला। हिन्दू-धर्म-ग्रंथों में सत्य के लिए हरिश्चन्द्र ने सर्वस्व अर्पण कर दिया और खुद स्त्री-पुत्र-सहित चाण्डाल के हाथ बिक गये। इमाम हसन और हुसेन ने सत्य के खातिर अपने प्राण दे दिये।

ऐसा होते हुए भी उस न्यायाधीश को सत्य का जवाब नहीं मिला। हरिश्चन्द्र जिसे सत्य समझते थे उसके लिए तरह तरह के संकट सह कर अमर हो गये। इमाम हुसेन ने जिसे सत्य जाना उसके लिए अपना प्यारा देह तक खो दिया। हरिश्चन्द्र और इमाम हुसेन का सत्य ही चाहे हमारा सत्य हो या न हो। लेकिन इस परिमित सत्य के अतिरिक्त एक शुद्ध सत्य है। वह अखंड है, सर्वव्यापक है। परंतु वह अवर्णनीय है। क्योंकि सत्य ही ईश्वर है। अथवा परमेश्वर ही सत्य है। दूसरी सब चीजें मिथ्या हैं अर्थात् दूसरों में इसी परिमाण में जो कुछ सत्य हो वही ठीक है।

अतएव जो सत्य जानता है, मन से, वचन से और काया से सत्य का आचरण करता है, वह परमेश्वर को पहचानता है। इस से वह त्रिकालदर्शी हो जाता है। उसे इसी देह में मुक्ति प्राप्त हो जाती है। ऐसा एक भी सत्याचरणी यदि ३१ दिसम्बर के पहले तैयार हो जाय तो स्वराज्य आज मौजूद है।

हममें से कितने ही तो केवल सत्याग्रही हैं-सत्य का आचरण करने का आग्रह रखने वाले हैं। और वे भी वाणी के सत्य तक ही पहुंच पाये हैं। ऐसा विचार करते हुए सत्य का पालन कोई आसान बात नहीं है।

एक मित्र ने मुझसे पूछा-आप तो सत्य-व्रत के पालन करने वाले हैं। फिर भी आपने श्रीयुत दास के तार का अर्थ अपने पक्ष में लगा लिया और बंगाल के १५ के बजाय २५ लाख प्रकट कर दिये। क्या इसमें आपने सूक्ष्म असत्य का आचरण नहीं किया? मैंने अपने पक्ष में अर्थ लगाने का तो प्रयत्न किया ही नहीं था; अपनी रुचि के अनुकूल अर्थ लगाने की मुझे आदत ही नहीं। वह तार रात को बारह बजे के बाद मिला। यह बात मैं अपनी सफाई के लिए नहीं कह रहा हूं। बल्कि यह बताने के लिए कह रहा हूं कि सत्य तो सूली पर चढ़ाये जाने पर भी ज्यों का त्यों ही झलकना चाहिए। जो तीनों काल में सत्य का ही आचरण करने की इच्छा रखता है उससे ऐसी जल्दी नहीं हो सकती। फिर सत्यवादी तो अनजान में भी न असत्य कहता है, न करता है। वह असत्य कहने और करने में असमर्थ हो जाता है। इस व्याख्या के अनुसार मैंने सत्य का भंग अवश्य किया है।

पर मुझे सिर्फ इसी बात का संतोष है कि मैं सत्य का आग्रह रखने के अतिरिक्त इस व्रत के विषय में अधिक दावा करता ही नहीं हूं। जान-बूझ कर मुझसे असत्य भाषण हो ही नहीं सकता। एक बार अपने पू० पिताजी को धोखा देने के लिए मैं जानबूझ कर झूठ बोला था। इसके सिवा दूसरा कोई अवसर मुझे अपनी जिन्दगी में याद नहीं आता। सत्य कहना और करना मेरा स्वभाव ही हो गया है। पर हां जिस सत्य को मैं परोक्ष रीति से जानता हूं उसके पालन करने का दावा मैं नहीं कर सकता। मुझसे अनजान में भी अत्युक्ति हो सकती है, आत्मश्लाघा हो सकती है, अपने किये कामों के वर्णन में अत्युक्ति हो सकती है। [illegible]

सकते। जिसका जीवन सत्यमय है वह तो शुद्ध स्फटिक मणि की तरह हो जाता है। उसके पास असत्य जरा देर के लिए भी नहीं ठहर सकता। सत्याचरणी को कोई धोखा दे ही नहीं सकता; क्यों कि उसके सामने झूठ बोलना अशक्य हो जाना चाहिए। संसार में कठिन से कठिन व्रत सत्य का है। लाखों आदमी कोशिश करें तब कहीं उनमें से एकाध भले ही इसी जन्म में पार उतर सके।

मेरे सामने जब कोई असत्य बोलता है तब मुझे उसपर क्रोध होने के बजाय स्वयं अपने ही उपर अधिक कोप होता है। क्यों कि मैं जानता हूं कि अभी मेरे अंदर—तह में असत्य का वास है।

सत्य शब्द की उत्पत्ति सत् से हुई है। सत् का अर्थ है होना। तीनों काल में एक ही रूप में अस्तित्व एक मात्र परमात्मा का ही है। जिस सज्जन ने ऐसे सत्य की भक्ति कर के के उसे अपने हृदय में सदा के लिए स्थान दे दिया है उसे मेरा सौ करोड बार नमस्कार है। इस सत्य की सेवा करने के लिए मैं जी जान से कोशिश कर रहा हूं। मुझे विश्वास है कि उसके लिए हिमालय की चोटी से कूद पडने की हिम्मत मुझमें है। फिर भी मैं यह जानता हूं कि अभी मैं उससे बहुत दूर हूं। ज्यों ज्यों मैं उसके नजदीक पहुंचता जाता हूं त्यों त्यों मुझे अपनी अशक्ति का ज्ञान अधिकाधिक होता जाता है और त्यों त्यों यह ज्ञान मुझे नम्र बनाता जाता है। हां अपनी निर्जीवता को न जानना और अभिमान रखना सम्भवनीय है। परंतु जो जानता है उसका गर्व दूर होजाता है। मेरा तो कभी का दूर हो गया। तुलसीदासजी ने अपनेको 'शठ' की उपमा दी है। उसका मर्म मैं ठीक ठीक समझ सकता हूं। यह मार्ग शूर-वीरों का है, कायरों का यहां काम नहीं। जो चौबीसों घण्टे प्रयत्न करता है, खाते, पीते, बैठते, सोते, सूत कातते, शौच आदि प्रत्येक काम करते हुए जो केवल सत्य का ही चिंतन करता है वह अवश्य सत्यमय हो जाता है। और जब किसीके अंदर सत्य का सूर्य सम्पूर्णतः प्रकाशित होता है तब वह छिपा नहीं रहता। तब उसे बोलने बतलाने या समझाने की जरूरत नहीं रहती। या उसके बोल में इतना बल होता है, इतना जीवन भरा होता है, कि उसका असर लोगों पर तुरंत होता है। ऐसा सत्य मुझमें नहीं। हां, इस मार्ग में अलबत्ते मैं विचरण कर रहा हूं। अतएव "हम नहीं नहं [illegible] प्रधान" की तरह मेरी यह दीन दशा है।

सत्य में प्रेम होता है। सत्य में अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय आदि का समावेश हो जाता है। पांच यम तो केवल सुबिधा के लिए बताये गये हैं। सत्य को जान लेने के बाद जो हिंसा करता है। वह सत्य का त्याग करता है। सत्य को जानने के बाद जो व्यभिचार करता है वह तो मानों सूर्यके रहते हुए अंधेरे की हस्ती को मानता है। ऐसे शुद्ध सत्य का पूरी तरह पालन करने वाला एक मनुष्य भी इस वर्ष के अंत के पहले निकल आवें तो स्वराज्य मिले बिना नहीं रह सकता। क्योंकि उसका कहना सबको मानना ही पडे। सूर्य का प्रकाश किसी को बतलाना नहीं पडता। सत्य स्वयं-प्रकाशमान् है और स्वयंसिद्ध है। ऐसा सत्याचरण इस विषम काल में कठिन तो है पर अशक्य नहीं। यदि कुछ ही लोग कुछ ही अंश में ऐसे सत्य के आग्रही हो जायं तो भी स्वराज्य प्राप्त करलें। ऐसे सत्य के मस्त आग्रही अगर हम कुछ लोग ही हो जायं तोभी स्वराज्य मिल जाय। पर हम सच्चे हों। सत्य के बदले सत्य का ढोंग नहीं काम देगा। [illegible] सत्य में एक आना हों, पर हों सके। इस थोडे बहुत-सत्य में कोई भी भूले-चूके, जान में अनजान में वाणी के असत्य का समावेश तो हरगिज न करें। मेरी तो यह महत्वाकांक्षा है कि इस धर्मयज्ञ में हम सब लोग सत्य का सेवन करने वाले हो जायं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

सुलह का अर्थ

मैंने अपने दूसरे प्रार्थना-पत्र में सुलह का जो जिक्र किया है उसका अर्थ कुछ मित्रों ने कुछ का कुछ लगा लिया है। मैं तो असहयोगियों के द्वारा सुलह कराना चाहता हूं। इसका अर्थ यह नहीं है कि मिल जुल कर काम करने के लिए अपने सिद्धान्तों को या नीति को उनके हवाले कर दें। मेरी राय में तो यह एक अनहोनी बात है; क्योंकि हर एक समाज की कार्यपद्धति मूलतः एक दूसरे से बहुत भिन्न है। जब कि एक दल तो धारा-सभाओं का सदस्य होने में देश का भला समझता है और दूसरे दल के लोग उनसे दूर रहने में, तो दोनों के मेल के लिए स्थान ही कहां रह जाता है? परन्तु इसलिए कि हमारा परस्पर मतभेद है, हमें एक दूसरे के साथ बदसलूकी करने की जरूरत नहीं है और न हमें एक दूसरे के सिर फोडने की ही जरूरत है। हां, अहिंसा-धर्म यह तो कहता है कि अपनी जगह पर डटे रहो, पर यह नहीं चाहता कि जैसे के साथ उसी तरह पेश आवें। मुझे दृढ निश्चय है कि यदि हम सहनशीलता का वायुमंडल तैयार कर सकें, तो हमारा क्षेत्र इतना विस्तृत हो जाय कि उसकी सीमा ही न रहे। आज हम खुद अपनी ही शंका-कुशंकाओं और संशयों के कारण कूप-मंडूक हो रहे हैं। हमें इस बात का विश्वास नहीं होता कि इन सभाओं में जमा होने वाले हजारों आदमी किस तरह अहिंसाधर्म का पालन कर सकेंगे। अगर हम, लोगों को, इतने प्रिय न होते तो हमारा पहले से और भी बहुत अधिक प्रभाव हो गया होता। और इसके लिए जो परम आवश्यक बात है वह यह कि हम अपने प्रतिपक्षियों के विषय में अपने हृदय में सद्भावना ही रक्खें। हमें सरकार की या उसके हिमायतियों की भूलों और गलतियों की भी चर्चा करने की जरूरत नहीं। हम तो बस रागद्वेष छोड कर अपनी तमाम ताकत, अपनी जबान, अपनी कलम और अपने काम, अपने कार्यक्रम को पूरा करने में ही लगा दें। हमें तो गुण्डों और शरारती लोगों पर अपना असर जमाने की देर है कि [illegible] की बात में स्थापित हो जायगा।

(य. इंडिया)

[illegible] वेलाभाई वैकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, सूकी बोक, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से [illegible] द्वारा प्रकाशित।

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मासका	,, २)
एक प्रतिका	,, -)॥
विदेशों के लिए वार्षिक	,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—अगहन सुदी ५, संवत १९७८, रविवार, सायंकाल, ४ दिसम्बर, १९२१ ई० | अंक १६

टिप्पणियां

सफेद झूठ

बम्बई की इन हाल की दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में मैंने यह कहा है कि उस समय पुलिस और फौज ने मुकम्मल पतन किया और उन्होंने नहीं, बल्कि बम्बई के निवासियों ने शान्ति स्थापित की। बम्बई की सरकार ने मेरे इस वक्तव्य को असत्य बताया है। उसकी इस बात पर मुझे खेद होता है। मुझे इसका ख्याल तक नहीं हो सकता था। मैं तो अपनी बात पर ज्यों का त्यों कायम हूं। और एक आदमी के ... जोड़ कर सारे ... पूरा करके देता हूं। पुलिस और फौज लोगों के जान और माल की रक्षा करने में असमर्थ थी। १७ ता. को मैंने देखा कि वह जलती हुई ट्राम और मोटर गाड़ियों को न बचा सकी। भिंडीबाजार में शराब की दुकान जल कर खाक हो गई, पर पुलिस और फौज उसके बचाव का कोई प्रबन्ध न कर सकी। और १८ तथा १९ ता. को भी उन्होंने इसमें बेहतर कुछ नहीं किया। आग लगाई जा रही थी, लूट-मार भी जारी थी, पर पुलिस और फौज मुह ताकती थी। जब किसी ने कुछ मदद चाही तो उससे साफ साफ कह दिया गया कि अब अधिक जवान हमारे पास नहीं हैं; शाह जादे के स्वागत के इन्तजाम में तमाम लोग लगे हुए हैं।

जब कि पुलिस और फौज उपद्रव के स्थानों पर किसी के भी जानमाल की रक्षा न कर पाई तब वह शान्ति की स्थापना क्या कर सकती थी? शान्ति की स्थापना की नेकनामी का दावा अकेले असहयोग के ही लिए नहीं किया जाता है। मैं तो सहयोगी और असहयोगी—दोनों के लिए, हिन्दुओं, मुसलमानों, पारसियों, ईसाइयों के लिए भी, जिनमें अंगरेज भाई भी शामिल हैं, यह दावा करता हूं। यदि बम्बई के तमाम शान्ति-प्रिय लोग साथ न देते तो शान्ति की स्थापना नहीं हो पाती। मियां छोटाणी का इसका श्रेय है। २० ता. को सर फिरोज सेठना के ही प्रयत्न से फौज एक झुण्ड पर गोली चलाने से रुकी और डाक्टर सावगी तथा श्री० बैंकर की कोशिशों का यह फल था जो वह भीड़ पांच ही मिनट में छंट गई। बिना मन और दल का ख्याल किये मैं कितने ही ऐसे उदाहरण दे सकता हूं जिनमें बम्बई के लोगों ने इस तरह भीड़ को तितर-बितर किया है। श्रीमती सरोजिनी नायडू से तो कई बार फौज के लोगों ने कहा है कि भीड़ हटाने में हमें मदद दीजिए। इसमें कोई शक नहीं कि दोनों, सहयोगी और असहयोगी, पारसियों ने यदि सहायता न दी होती तो शान्ति का स्थापन करना असम्भव था। शान्ति की स्थापना के बाद जिस दिन कितने ही बम्बई के सज्जनों के साथ मैंने फलाहार किया उस दिन श्री० एच पी० मोदी ने शान्ति-स्थापना के लिए नगर-वासियों को ही श्रेय प्रदान किया। श्री० पुरुषोत्तमदास ने यद्यपि असहयोगियों की आरम्भिक उत्तेजना के लिए बड़ी तीव्रता के साथ भर्त्सना किया, तथापि उन्होंने लोगों की ओर से इस श्रेय को अ-स्वीकार नहीं किया कि लोगों ही ने शान्ति की स्थापना की। श्रीयुत नटराजन ने भी उन लोगों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की जिन्होंने शान्ति फैलाई। श्री० के० जे० पाल और श्री० जेगलस ने भी उनकी कुछ कम तारीफ नहीं की। श्री० जीमादलाल ने तो उपसंहार में धन्यवाद देते हुए मियां छोटाणी का नाम खास तौर पर लिया था।

अब, पक्ष करने के विषय में लीजिए। एक तो पुलिस पारसियों की रक्षा करने में असमर्थ रही और दूसरे, ऐसे कितने ही पारसियों ने मुझसे कहा है कि जब कि पारसी हुल्लड़बाज हत्याकाण्ड मचा रहे थे तब पुलिस खड़ी खड़ी तमाशा देखती रही। लेकिन मैं इस बात पर जोर देना नहीं चाहता। मेरी इच्छा नहीं है कि मैं पुलिस और फौज के आदमियों पर व्यक्ति के नाते दोषारोपण करूं। मैं तो उन्हें किसी दिन सत्य और निर्दोषता के पक्ष में मिला लेने की आशा करता हूं। वे हिन्दुस्तानी हैं। और मैं तो अंगरेज लोगों से भी इस बात में निराश नहीं हूं कि वे भी अन्त को हमसे आ मिलेंगे; पर तभी जब असहयोगी लोग अपने अहिंसा-धर्म का पालन सच्चे हृदय से करें। अब मैं मलाबार और मदरास का उदाहरण दे कर इस अध्याय को समाप्त करता हूं। लोग मलाबार में काम करने के लिए नहीं जाने दिये गये, इससे वहां अभीतक झगड़ा चल रहा है। इसी तरह मदरास में भी कोई दो महीनों तक जो हड़ताल वाले स्थानों में मार-काट जारी रही उसका कारण यह है कि वहां भी लोगों के द्वारा काम नहीं हुआ या वे कर नहीं पाये। हां, बम्बई की सरकार, अगर पसंद करे, तो यह श्रेय ले सकती है कि जब लोग शांति फैलाने की चेष्टा कर रहे थे तब उसने उनके काम में किसी तरह दखल नहीं दिया!

मूल कारण कौन था ?

ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो कहते हैं कि यह सारी आफत खुफिया पुलिस की खडी की हुई है और उसीने इसके जोर को बढाया। मुझे यहां, भारत में, आये कोई छः साल हुए। तबसे मैं बराबर खुफिया पुलिस की निन्दा सुन रहा हूं। मैं खुद भी उस की नजर से नहीं बचा हूं। लेकिन मैं उन तमाम अंधाधुन्ध अफवाहों को मानने में असमर्थ हूं जो उसके विषय में चारों ओर फैलती रहती है। हां, मैं मानता हूं कि वह पतित है और उसपर बहुत से इल्जाम सच भी हैं; पर उनमें अत्युक्ति बहुत है। अगर ये तमाम आरोप सच हों तब तो बडी भयंकर बात होगी। और वह हमारी पहले दरजे की कायरता का सबूत होगा। इस महकमे के सम्बन्ध में जितनी गन्दी बातें सुनी जाती हैं वे उन्हीं लोगों में हो सकती हैं जिनमें न तो बहादुरी हो और न आत्मसम्मान ही हो। बम्बई के उपद्रव के दिनों में कई भले और प्रतिष्ठित आदमियों ने कहा है कि श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा मेरे और दूसरे लोगों पर हमला होने की तथा मसजिदें, गिरजाघर आदि को हानि पहुंचाने की अफवाहें खुफिया पुलिसवालों ने ही फैलाई थीं। यह कहा गया कि आगें लगाना और ट्राम गाडी नाश करना [illegible] की करतूत थी। मैं इन सब बातों पर विश्वास करने में असमर्थ हूं। और अगर ये सच हैं तो कहना होगा कि बम्बई के लोग बडी आसानी से दम-झांसे में आ जाते हैं और अपने नागरिकत्व के अधिकारों का भी उपयोग करना नहीं जानते। स्वराज्य-प्राप्ति के योग्य बनने के लिए हमें जिन गुणों की जरूरत है उनमें एक यह गुण भी अवश्य ही आवश्यक है--खुफिया पुलिस को शहमात देने की योग्यता। अगर हम ऐसे काम करने के लिए आसानी से उकसाये जा सकें जिनसे हमें हानि पहुंचती हो, या उन बातों पर हमारा विश्वास कराया जा सके, जिनको हमें मानना न चाहिए, तो हम अपने ध्येय तक कभी नहीं पहुंच सकते। यदि हम खुल्लम खुल्ला और सच्चे दिल से शांतिमय बने रहें, तो हमसे सहसा कोई अत्याचार नहीं हो सकता; फिर चाहे खुफिया पुलिस, चाहे हम, अपने आततायी लोगों को भले ही उकसाया करें। यदि हम उसे काबू में नहीं रख सकते तो हमें इस खयाल को कि हमें शीघ्र ही आजादी मिल जाय, बस नमस्कार ही कर लेना चाहिए।

अफवाहों से होशियार रहो

इन घटनाओं से हमें अनेक शिक्षायें मिलती हैं। उनमें एक यह है कि हमें अफवाहों पर कभी विश्वास न कर लेना चाहिए और हरएक बडे बडे मुहल्ले और बडी सडकों पर महासभा और खिलाफत का एक एक दफ्तर होना चाहिए, जहां आकर लोग अफवाह की सचाई और झुठाई का इत्मीनान कर सकें। यदि हम लोग एक आदमी की तरह एक-दिल से काम कर रहे हैं--और यदि हमें सफलता प्राप्त करना है तो हमें ऐसा लाजिमी ही है--तो हमें यह जरूर जानना चाहिए कि महज अफवाहों के भरोसे बिना सोचे-समझे कोई काम न करें। इस अचानक हत्याकाण्ड का तीन-चौथाई कारण है यही कुटिल अफवाहें। अगर लोगों को यह मालूम हो कि मन्दिर-मसजिद आदि तोडे गये हैं और कुछ बडे नेता मारे गये या घायल हुए हैं तो इससे क्या हो सकता है? उन्हें बिना सलाह-मशवरा के काम न करना चाहिए। क्या कोई सैनिक जब यह सुन लेता है कि उसके सेना-नायक की मृत्यु हो गई या उसकी मसजिद या मन्दिर भ्रष्ट कर दिया गया तो वह उस समय अपनी ही मर्जी से कोई काम कर बैठता है? यदि वह ऐसा करे तो अपने स्वीकृत काम को हानि पहुंचाये और गोलीतक मार देने के लायक समझा जाय। फिर हम तो शांति की सेना के सैनिक हैं। अपनी ही खुशी से हम इसमें दाखिल हुए हैं। शस्त्र-सज्जित सैनिकों की अपेक्षा हममें आत्मसंयम की क्षमता अधिक है। फिर हमें तो कोई एकाध ऐसी-वैसी लडाई नहीं लडना है, बल्कि हमें देश की और धर्म की आजादी के लिए संग्राम ठानना है। तब तो हमारे लिए यह और भी आवश्यक है कि हम पूरी एकता से काम करें।

कौनसी अत्युक्ति आवश्यक है ?

अत्युक्ति तो हमेशा ही तिरस्कार करने योग्य है; परन्तु इस नियम में सिर्फ एक ही अपवाद है। स्वयं अपने अपराधों के सम्बन्ध में अत्युक्ति अवश्य ही करनी चाहिए। हमें अपने दोष बहुत छोटे दिखाई देते हैं और जब वे हजार गुना बडे दिखाये जाते हैं तभी उनका सच्चा रूप हमारी नजर में आता है। परन्तु दूसरों के दोष हमें हमेशा बडे ही नजर आते हैं। अतएव यह आवश्यक है कि हम दूसरों के दोषों को कम ही दिखावें। और यदि हम इन दोनों रीतियों के अनुसार एकही साथ विवेक-पूर्वक चलें तो हम उन दोनों के सुन्दर मध्यस्थान पर पहुंच सकते हैं। मेरे इस कथन पर कि इस दंगे में मुसलमान-भाइयों ने ही आगे कदम बढ़ाया है, कुछ मुसल्मान मित्रों ने मुझसे शिकायत की है। और मेरे इस वक्तव्य पर कि हिन्दुओं और मुसल्मानों ने पहले आक्रमण किया है अतएव दोष के भागी वही हैं, हिन्दू और मुसल्मान दोनों ने एतराज किये हैं। इन दोनों आक्षेपों पर मैंने खूब अच्छी तरह से विचार किया, और फिर भी मैं इसी नतीजे पर पहुंचा हूं कि मुझे अपने पहले ही कथन पर दृढ रहना चाहिए। जबतक हमें अपने विपक्ष में तमाम सच सच बातें मालूम न होंगी तबतक हम अपने को शुद्ध नहीं कर सकते-अपने दोषों को अपने अंदर से निकाल नहीं सकते। मैं जो कुछ जानता हूं या जो कुछ अनुभव करता हूं उसे यदि मैं न कहूं तो मैं मुसल्मान भाइयों के साथ बेईमानी करता हूं और यदि मैं उनकी प्रीति खो जाने के डर से अथवा किसी दूसरे कारण से, सच बात न कहूं तो मैं हिन्दू न रहूंगा। यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं है कि कानून की दृष्टि से ऐसे कथन का क्या परिणाम होगा, यह सोचना मेरा काम नहीं है। सरकार जो चाहे सो करे। यदि पारसी और ईसाई लोग समझदार होंगे तो वे उसके हाथ के खिलौने न बन जायंगे। परंतु एक अ-सहयोगी की हैसियत से मुझे कानूनी नतीजों से कोई वास्ता नहीं। जिन जिन लोगों ने नुकसान किया है वे या तो असहयोगी थे, या उनसे हमदर्दी रखने वाले थे या महज बदमाश लोग थे। पहले दो लोग तो, यदि बेकुसूर होते हुए सजा पावें तो उन्हें खुशी ही होना चाहिए; क्योंकि हम तो बेगुनाहों को जेल भेजना चाहते ही हैं। पर यदि उन्होंने वास्तव में अत्याचार किया है तो फिर उन्हें सजायाब होने पर रंज करने की जरूरत नहीं। और बदमाश लोग तो मुझसे किसी तरह के बचाव की आशा ही न रक्खें। अतएव मेरे पास जो अच्छे से अच्छा रक्षा का साधन है और जो अच्छी से अच्छी सेवा मैं कर सकता हूं वह यही है कि बिना नतीजे का खयाल किये सच सच बात कह दूं। यह एक भारी संग्राम है। करोडों आदमियों का ताल्लुक इसके असर से है। नित नई स्थिति और अनिश्चित बातें पैदा होती हैं और उसका सामना करना पडता है। ऐसे विकट युद्ध का संचालन किसी दूसरे प्रकार से--दूसरी शर्तों पर--सम्भवनीय नहीं। ऐसी अनिश्चित अवस्थाओं में हमारे पास अगर कोई अमोघ शस्त्र है तो वह है सत्य और अहिंसा!

जेल जाने का डर

हां, हमने जेल के डर को बहुत-कुछ दूर भगा दिया है, पर फिर भी जेल जाने की कुछ कुछ अ-प्रवृत्ति और उसको टालने

की चिन्ता अभी नजर आ ही रही है। हमें एक ओर जहां नेक और शर्म तथा शान्तिमय रहना चाहिए तहां दूसरी ओर हमें सरकारी जेलों के अंदर पहुंचने के लिए प्रायः उत्सुक भी रहना चाहिए। जिस सरकार को हम सुधारना या मिटाना चाहते हैं उसकी अधीनता में मिलने वाली हम नाममात्र की आजादी का उपभोग करते हुए हमें दुःख और वेदना निश्चय ही होनी चाहिए। हमें जरूर यह अनुभव करना चाहिए कि अपनी आजादी को कायम रखने के लिए हमें कुछ अन्याय्य और भारी कीमत देनी पड़ रही है। अतएव यदि हम निरपराध होते हुए जेल भेजे जायं तो हमें हर्ष होना चाहिए; क्योंकि इससे जरूर ही हमारे मनमें यह भाव उठना चाहिए कि अब आजादी नजदीक है। जो सैकड़ों लोग अपनी मातृभूमि के लिए हंसते हुए जेल गये हैं क्या उनको आजादी अधिकाधिक नजदीक नहीं आ रही है? बम्बई के असहयोगियों के लिए इससे बेहतर बात और क्या हो सकती है कि निरपराध होते हुए भी वे अपराधियों के लिए जेल की यात्रा करें?

विशुद्ध हृदय

लेकिन मेरे ये उद्गार उन्हीं लोगों को अच्छे मालूम होंगे जिन्होंने अपने दिल को बदल दिया है,—उन हिन्दुओं और मुसलमान भाइयों को नहीं, जो अब भी यह मानते हैं कि हिन्दुओं और मुसलमानों की बनिस्बत पारसियों और ईसाइयों का ही अधिक दोष है। मेरे कथन के विरोध में मेरे पास कितने ही पत्र आये हैं। उनसे मालूम होता है कि बहुतेरे हिन्दू और मुसलमान-भाइयों का यह विश्वास है कि पहला वार पारसियों और ईसाइयों ने किया। पर यद्यपि मेरा विश्वास इसके प्रतिकूल है तथापि मैं यह मानने के लिए तैयार हूं कि आरम्भ उन्हीं की ओर से हुआ। तोभी क्या हिन्दू और मुसलमान अपनी प्रतिष्ठा के नाम पर, अपनी संस्था के नाम पर और अपने धर्म के नाम पर बैर और बदला निकालने से विमुख होने तथा उनसे मेल-जोल करने और उनकी रक्षा करने के लिए बाध्य नहीं हैं? फिर ऐसा करने के लिए उन्हें विशेष प्रयत्न करना पड़े तो हर्ज नहीं।

मौलाना बारी का फतवा

अच्छा, मौलाना अब्दुल बारी की बात सुनिए। बम्बई के उपद्रवों का सविस्तर हाल जानने पर उन्होंने एक फतवा जारी किया था। उसमें आप फरमाते हैं:—

"हम यह हरगिज नहीं चाहते कि शाहजादे की बेइज्जती की जाय, या उनके जिस्म को नुकसान पहुंचाया जाय। हम तो सिर्फ उन्हें नौकरशाही के हतवे के धोके से बचाना चाहते हैं और उन्हें हिन्दोस्तान की और उसके लोगों की सच्ची भावनायें दिखलाना चाहते हैं। इसके लिए जो जरिया हमने तजवीज किया है वह है हड़ताल, ऐसी हड़ताल जिसमें हिंसा का नामोनिशां तक न हो। हमने बहुत सोच-विचार के बाद 'अहिंसा' के उसूल को कबूल किया है। हमारी राय में कामयाबी का यही एक रास्ता है। बदकिस्मती से कुछ लोग ऐसे हैं जो इस बात के कायल नहीं हैं, लेकिन जाहिरा तौर पर हमारे साथ काम कर रहे हैं। हम इस दल के लोगों से इस्तदुआ करते हैं कि जबतक वे हमारे साथ काम करते हैं तबतक वे हमारे उसूल को अख्त्यार करें या जबतक हमारे तरीके बेकार न साबित हों तबतक इन्तजार करें और खुद अपने उसूलों के मुताबिक काम करने से बाज आवें।

"बम्बई की खून-खराबी का हाल जान कर मुझे निहायत रंज हुआ। उसका नतीजा यही हुआ है कि हमारे मशहूर मशहूर पेशवाओं की गिरफ्तारी के वक्त लोगों ने जो खामोशी और आत्मसंयम दिखलाया उसका असर कम होगया है। हम इस बम्बई के दंगे को सिर्फ हमारे राजनैतिक अकीदह के ही नहीं बल्कि शरियत के भी खिलाफ समझते हैं। हमारे मजहबी कानून के मुताबिक कोई भी मुसलमान किसी गैर-मुस्लिम की शराब को नहीं बिगाड़ सकता। उसके नुकसान को चुका देना उसके लिए लाजिमी है। जब कि शराब के बारे में शरीयत में इतना कड़ा कायदा है तब हम अच्छी तरह कयास कर सकते हैं कि दूसरी चीजों के बाबत उसका क्या हुक्म हो सकता है। इस वक्त तो हमारा झगड़ा अंगरेजी नौकरशाही से है, हिन्दुस्तान में दूसरे किसी से नहीं। ऐसी हालत में किसी शख्स के फिर वह चाहे मुसलमान हो, हिन्दू हो, पारसी हो, यहूदी हो, या ईसाई हो, जानोमाल का नुकसान हमारे हाथों न होना चाहिए। हमें अपने मजहब के फरमानों पर अच्छी तरह कायम रहना चाहिए। अगर आयन्दा ऐसे दंगे-फसाद न रुके तो मुझे अन्देशा है कि छोटी कौमों के लोगों का भरोसा हिन्दुस्तान की कौमी हुकूमत से उठ जायगा और उन्हें अपने बचाव के लिए गैर मुल्कवालों पर हसर रखना होगा। साथ ही मैं इन छोटी कौम के लोगों से भी दरख्वास्त करता हूं कि वे नौकरशाही की उस इमदाद के धोखे में न फंसे जो अपने मतलब के लिए यह उन्हें दे। उन्हें यह याद रखना चाहिए कि बैर और बदला निकालने की उमंग का कितना बुरा नतीजा हो सकता है और इसलिए उन्हें अपने को संभाल लेना चाहिए।"

छोटी जातियों के हक

इसलिए जबतक हम पारसियों या यहूदियों के निस्बत अपने दिल में रत्तीभर भी बुरा ख्याल रहने देंगे तबतक हमारी कार्य-सिद्धि कभी न हो सकेगी। छोटी जातियों के लोग हमारी राज-नैतिक अथवा दूसरी बातों को मानें तभी हम उनकी रक्षा करें, यह बात नहीं हो सकती। इसे रक्षा नहीं कहते। सच्ची रक्षा तो वही है जो मत-भेद होते हुए और यहां तक कि छोटी जातियों का विरोध भी होते हुए, की जाय। अगर हम इस देश में पूर्ण मत-स्वातन्त्र्य रखना चाहते हैं तो हमें छोटी जातियों के स्वत्वों की रक्षा सबसे बढ़कर करनी चाहिए। यहांतक कि एक बालक भी अपनी राय की आजादी के साथ प्रकट कर सके। बहुमत का नियम यदि छोटी जातियों को कुचलने के काम में लाया जाय तो यह तो जंगली लोगों की तरह जबरदस्ती होगी। स्वतन्त्र भारत में हम यह नहीं चाहते कि लोग दब कर समान-रूप हो जायं। यह तो निर्जीव समानता होगी। बल्कि हम तो यह चाहते हैं कि लोग अपनी जुदा जुदा रायें रक्खें, उनके व्यवहार में भी भिन्नता रहे परन्तु उनमें बोलबाला उसीका हो जिसकी बात सबसे बढ़कर अच्छी और लाभकारक हो और सोभी लाठी के बल पर नहीं बल्कि न्याय के बल पर। सत्ता के दबाव से तो हम बहुत दिनों से कराह रहे हैं। और बहुसंख्यक लोगों के दबाव में उतनी ही पशुता हो सकती है जितनी कि अल्पसंख्यक लोगों की गोलियों में है। अतएव यदि हम आजाद होना चाहें तो हमें अपने पारसी और ईसाई-भाइयों के साथ धीरज से काम लेने की जरूरत है। पारसियों और ईसाइयों के सम्बन्ध में जो अंध दुर्भाव दिखाई देता है वह तो मुझे खुद हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए भी हानिकारक मालूम होता है। यदि हम पारसियों या ईसाइयों के मत-भेद आदि को नहीं सहन कर सकते तो इस बात का क्या इत्मीनान है कि हिन्दू भी, जब वे पाशविक शक्तियों में अपने को बढ़कर पावेंगे, तब अल्पसंख्यक मुसल्मानों को अपनी अंगुली पर न नचावेंगे, या जब मुसल्मान अपने को बढ़कर पशु-बल का प्रयोग

कर्ते की अवस्था में पावेंगे तब वे कमजोर हिन्दुओं को, उनकी संख्या के अधिक होने पर भी, न धर दबावेंगे?

बंगाल से प्रतिध्वनि

बंगाल से एक मित्र ने एक पत्र भेजा है। उसमें भी खिलाफ ही बातें लिखी है। पत्र-प्रेषक महाशय इस विषय के जानकार हैं। वे कहते हैं:—

"मैं आपको यह कह देना चाहता हूं कि यदि पूर्वी बंगाल में सविनय भंग शुरू हुआ तो इसका नतीजा और भी अधिक बुरा होगा। वहां मुसल्मानों की तादाद ७० फी सदी से भी ज्यादह है। उनमें ज्यादहतर लोग झुलड़बाज हैं। जहां ये लोग जोश पर चढे कि हिन्दुओं पर टूट पड़ेंगे, बड़ा जोरोजुल्म कर बैठेंगे और हिन्दू जमीदारों और सेठ-साहूकारों को भय-कम्पित कर छोड़ेंगे। इनमें जो शांत-चित्त और शरीफ लोग हैं वे भी उनको काबू में न रख सकेंगे। हिन्दू-मुस्लिम एकता तो टूटे ही टूट जायगी। कलकत्ते में भी हालत बहुत ही खराब हो जायगी। मैं आपसे सच्चे दिल से अनुरोध करता हूं कि आप हिन्दुस्थान के लोगों और बातों को आशा-पूर्ण दृष्टि से देखने की मात्रा बहुत-कुछ कम कर दें। आप दक्षिणी आफ्रिका के लोगों और बातों को जितना अधिक पहचानते हैं उतना इस भारतभूमि के लोगों और बातों को नहीं पहचानते। इस स्पष्टोक्ति के लिए मुझे माफ कीजिएगा। अब आप सविनय भंग शुरू करने के खिलाफ जान पड़ते हैं। पर यदि आपने अपना इरादा बदल दिया तो मुझे इसके सिवा दूसरा नतीजा नहीं दिखाई देता कि चारोंओर भय और आतंक छा जायगा। आपके उच्चतम आदर्श चौपट हो जायंगे और देश और भी अधिक पीड़न और आपत्तियों का शिकार हो जायगा। इन दिनों में आपने जो कुछ किया-कराया है वह सब मिट्टी में मिल जायगा।"

इस किस्म की यह एकही चेतावनी मुझे नहीं मिली है। बम्बई एक भारी प्रधान स्थान है। अतएव उसके बदौलत लोग स्वभावतः ही विकल हो उठे हैं। अल्पसंख्याक लोगों की रक्षा का अर्थ है—अशक्त की रक्षा। और अशक्त की रक्षा के मानी हैं-बूढे लोगों, बालकों और अबलाओं तथा उन सब लोगों की रक्षा जो दीन और दुखी हैं। और यदि आज हिन्दू और मुसल्मानों की एकत्र शक्ति का उपयोग पारसियों और ईसाइयों के खिलाफ किया जाता है तो कल ही वह एकता तृष्णा के अथवा मिथ्या धार्मिकता के दबाव से टूट सकती है। यह तो किसी तरह स्वराज्य का अच्छा चिन्ह नहीं है। भारत को यदि स्वतन्त्र होना है तो उसके लिए पूर्ण और सच्ची अहिंसा के सिवा दूसरा मार्ग ही नहीं है। अतएव अहिंसा का उपयोग हिंसा की तैयारी के लिए बिल्कुल न होना चाहिए। इसको समझना स्वराज्य का और स्वधर्म का साक्षात्कार करना है। हिन्दू और मुसलमान सावधान रहें, गीता और कुरान का गलत अर्थ न लगावें। और आजमायश के तौर पर अपने संयुक्त बल को छोटी जातियों की रक्षा में लगावें। इससे वे एक दूसरे की रक्षा करना सीखेंगे।

(यंग इंडिया) मो० क० गांधी

पवित्रता की हद

मैंने यह कई बार कहा है कि खादी की पवित्रता केवल उसके स्वदेशीपन में ही है। गेहूं पवित्र अन्न है। पर उसे संन्यासी भी खाते हैं और चोर भी खाते हैं। इसी प्रकार पवित्र खादी को पाखण्डी और पुण्यवान् दोनों पहनते हैं। हिन्दुस्तान के शरीर का जो धर्म्म है उसका जो लोग त्याग करते हैं वे भूल करते हैं और भारत को हानि पहुंचाते हैं। इस संक्रमण-काल में खादी पर दूसरे गुणों का आरोपण हो रहा है और पाखण्डी लोग खादी पहन कर अपने ढोंग-ढकोसले का पोषण करते हैं। यह सच है। पर यह सिलसिला अधिक समय तक नहीं चल सकता। जब खादी पहनना हमारा सहज-धर्म हो जायगा तब उसकी वही कीमत आंकी जायगी जो वास्तव में उसकी होगी। जो लोग खादी पहनने तथा उसे पैदा करने के धर्म का मर्म समझ गये हैं वे तो खादी का दुरुपयोग होते हुए भी अपने-उसे पहनने के-धर्म्म को कभी न छोड़ेंगे।

एक मित्र ने कुछ धर्म-संकट के प्रश्न उठाये हैं। उनको हल करने में अब दिक्कत नहीं हो सकती। यह सद्भाग्य है जो देश में अब विवाह तथा मृत्यु के अवसरों पर खादी का उपयोग करना आवश्यक माना जाने लगा है। अहमदाबाद में हाल में ऐसे कितने ही विवाह हुए हैं जिनमें गोलहीं आना तो नहीं, पर प्रधानतः खादी का ही उपयोग किया गया था। सुनते हैं कि एक दूल्हराज ने तो यहांतक निश्चय किया था कि यदि दुलहिन को खादी की साड़ी न पहनाई जायगी तो मैं शादी ही न करूंगा। प्रश्न यह उत्पन्न हुआ है कि क्या हमें खादी को उत्तेजना देने के लिए आक्षेपयोग्य विवाहों में भी जाना उचित है? न जाने से कहीं उन वर-वधू को दुःख हो और वे खादी का त्याग कर दें तो? इस प्रश्न में भीरुता है। खादी का स्वीकार हम घूस के तौर पर तो कर ही नहीं सकते। हर चीज की कीमत उसके गुण-दोष को तौल कर ही आंकनी चाहिए। साठ वर्ष का बुड्ढा यदि बारह वर्ष की कन्या को गेरुई खादी पहना कर, अपने गले में रुद्राक्ष की माला डाल कर और ललाट पर खौर मढ़ कर विवाह करने लगे तोभी, खादी को उत्तेजना देने के खातिर, उस विवाह में शरीक होकर उसकी सादगी की तारीफ न करना चाहिए। उसी प्रकार यदि २५ वर्ष का युवक अपनी पत्नी का स्वर्गवास होते ही स्मशान में दूसरी स्त्री के साथ सगाई करे और दूसरे ही दिन ब्याह की तैयारी करे तो वहां भी न जाना चाहिए। खादी का तथा विवाह का नैतिक स्वरूप भिन्न भिन्न है। जिस प्रकार हम उचित विवाह में यदि खादी का उपयोग न हो तो जाने में आनाकानी करें उसी प्रकार खादी से सजे हुए अनुचित बेजोड़ विवाहोत्सव में भी हमें न जाना चाहिए।

इसी विषय पर एक और मित्र ने पत्र लिखा है। उसमें वे लम्बी सांस खींच कर लिखते हैं-"खादी की महिमा तो जाना। पर ऐसी जगह क्या करना चाहिए जहां विवाह-मण्डली तो खादीमय हो, स्त्रियां भी खादी-मण्डित हों पर वे ऐसी गालियां और सीठने गाती हों कि जिनके मारे कान के देवता कूच कर जाते हों? खादी के खातिर इन गालियों को सुनें या खादी की पोशाक का ख्याल न करके इन सीठनों से अपने कानों को अपवित्र होने से बचावें?" यह सवाल मैंने जवाब देने के लिए नहीं उद्धृत किया है। पत्र-लेखक ने जवाब की गरज से उसे पूछा भी नहीं है। उन्होंने तो चर्चा के मिस इस कुप्रथा की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है। वे कहते हैं कि जहां छोटी छोटी बालिकाओं को ऐसी गंदी शिक्षा मिलती है वहां धर्म-राज की क्या आशा करें? प्रश्न दुःखकारक है। स्त्रियां जब अश्लील गीत गाती हैं तब उन्हें उनकी अश्लीलता का ध्यान शायद ही रहता हो। इन कुप्रथाओं के अबतक न मिटने के दोष-भागी पुरुषलोग ही हैं। पुरुष-वर्ग ने इस बात का विचार ही नहीं किया है कि हमें जिस बात का ज्ञान या ध्यान है वह स्त्रियों को भी करावें। ऐसी बातों में पुरुष-वर्ग आसानी से बहुत सत्याग्रह कर सकते हैं। यह जमाना तो नौजवानों का है। वे यदि नीतिमान् और नम्र हों तो इन दोषों को तुरंत दूर कर सकते हैं। पढी-लिखी स्त्रियां भी इन रवाजों के खिलाफ सत्याग्रह करके उन्हें दूर कर सकती हैं। हरएक पाठिका इन बातों को ग्रहण करके ऐसी कुप्रथाओं का विरोध कर सकती हैं। समझदार स्त्रियां यदि ऐसे कामों में शरीक ही न हुआ करें तो यह कुरीति तुरंत दूर हो जाय (नवजीवन)

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, अगहन सुदी, ५ सं. १९७८.

स्वयं-सेवक-दल पर कुठार

बम्बई ने प्रान्तिक सरकारों को यह मौका दे दिया है कि वे एक नियम के साथ दमन का जोर दिखावें और अ-सहयोग की जड काटने की कोशिश करें। बंगाल, संयुक्त प्रान्त, पंजाब और देहली की सरकारों ने स्वयं-सेवक-मण्डलियों को छिन्न-भिन्न कर देने की जो सूचनायें प्रकाशित की हैं वह बम्बई को सरकार का जवाब ही है। मैं अपनी तरफ से तो इन सूचना-पत्रों का स्वागत ही करता हूं। ये सविनय कानून-भंग को जोर के साथ जारी करने की जरूरत को ही रफा किये देते हैं। यदि हम सरकार के इस आह्वान को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, तो हम जल्द ही अपनी ताकत आजमा सकते हैं। सत्याग्रही अपने युद्ध का अवसर स्वयं आप ही पसंद करता है। क्योंकि जबतक वह अपने लिए कानून-भंग करना उचित नहीं समझता तबतक उसे ऐसा करने की आवश्यकता नहीं। सरकार अपनी तरफ से उसे कितना ही उत्तेजित क्यों न करे, वह उससे सविनय भंग नहीं छेड बैठता। यही तो सविनय भंग की खूबी है।

ऐसी अवस्था में यदि वे प्रान्त जहां ये विज्ञप्तियां प्रकाशित हुई हैं, तैयार हैं तो उन्हें सिर्फ अपनी स्वयंसेवक-मंडलियां तोडने से इनकार करना काफी है। हरएक स्वयंसेवक अपने को जेल में पहुंचा दे। लेकिन हमें पहले अपनी बुनियाद अच्छी तरह देख लेनी चाहिए। इन मंडलियों पर जो आरोप लगाया गया है वह यह है कि वे ऐसी संस्थायें हैं जो बल-प्रयोग करती हैं और शान्ति की रक्षा नहीं करतीं। अतएव हमारा पहला फर्ज यह है कि हम इस इल्जाम की जांच करें और अगर वह किसी भी अंश में हम पर घटता हो तो अपने दोष को बिल्कुल निर्मूल कर डालें। जिन जिन स्वयंसेवकों ने जबरदस्ती की हो या अपने वचनों और कार्यों के द्वारा बल-प्रयोग की धमकी भी दी हो तो वे अवश्य अपने काम से हटा दिये जाने चाहिए।

दैवयोग से कार्य-समिति ने भी इसी मौके पर स्वयंसेवक मंडलियां निर्माण करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया है। मुझे आशा है कि प्रत्येक प्रांत की महासभा और खिलाफत-समितियां इस काम को तुरंत उठा लेंगी और तमाम स्वयंसेवक-मंडलियां एक सूत्र में ग्रथित हो जायंगी तथा जो स्वयंसेवक अहिंसा के सिद्धांत का कायल न हो वह उसमें न रहने पावेगा। तब यदि इन संस्थाओं के काम में किसी तरह हाथ डाला गया तो हम लडाई छेड सकते हैं। पर इस मुठभेड की शर्त यह है कि जब स्वयं-सेवकों को सजायें दी जायं तब शेष सब लोग खामोश रहें और शान्ति बनाये रक्खें। ऐसे आनबान के अवसर पर तो हमें बिना शोरोगुल के, बिना भीड-भब्बड के जेलों को भर देना चाहिए। यदि हम चुपचाप कष्ट-सहन करने के महत्व के कायल हों तो हमें अपनी गिरफ्तारी सरकार के लिए आसान कर देनी चाहिए। जब हर दफा हम उसका प्रदर्शन करते हैं और जलूस निकालते हैं तब सरकार को हमारी गिरफ्तारी करना कठिन हो जाता है। जेल की सजायें तो हमारे मामूली दैनिक व्यवहार की बात हो जाना चाहिए! जब हम हवाखुरी को जाते हैं या वनभोजन आदि को जाते हैं तब कहीं भीडभडक्का और समारोह नहीं होता। मैं कहता हूं कि ऐसी ही उदासीनता जेल जाने के विषय में भी हमारे मन में हो जानी चाहिए। मैं अदालत में बयान देने के सम्बन्ध में श्री० जयकर के इस नियम को बहुत अच्छा समझता हूं कि एक मसविदा बनालें और सब लोग वैसा ही बयान दें। अगर बयान देने या न देने में से किसी बात को पसंद करना हो तो मैं देने के विपक्ष में अपना मत बिना हिचकिचाहट के दे दूंगा। जेल जाने से किसी तरह की सनसनी न फैलना चाहिए; क्योंकि सनसनी से उत्तेजना बढती है और उत्तेजना से दंगेफसाद की नौबत आ सकती है और उपद्रव शुरू होजाने से निरपराध लोगों के लगातार जेल जाने के क्रम में गडबडी होती है।

जेल जाने के बनिस्बत भी शांतिमय वायुमण्डल बनाये रखना अधिक महत्वपूर्ण है। अतएव सरकारी आज्ञाओं का उल्लंघन कर के हिंसा के उद्रेक की जोखिम उठाना और जेल जाने की जल्दी मचाना किसी भी प्रांत के लिए ठीक न होगा। अहिंसा को स्थायी रूप देने तक यदि हमें देर भी लगे तो उससे अंतमें हमारी कुछ भी हानि न होगी। हमारी स्वराज्य की क्षमता इसी बात में है कि हम उन हरएक तजवीजों और बन्दिशों को जो हमसे हिंसा-काण्ड मचवाने के लिए की जा रही हों, पहले ही से ध्यान में ले आवें और उनकी दाल न गलने दें; फिर वे चाहे खुफिया पुलिस के द्वारा की गई हों, अथवा और किसी की करामात हो।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

आगामी महासभा

श्रीगांधीजी "नवजीवन" में लिखते हैं कि अगली महासभा अपने ढंग की निराली ही होगी। उसमें स्वराज्य का उत्सव यदि न हो तो स्वराज्य सदृश बातें जरूर करनी होंगी। अर्थात् हरएक बात में स्वराज्य की योग्यता बतानी होगी। हमें व्यवस्था में अपनी कुशलता, विवेक में पूर्णता, और निर्भयता तथा स्वतन्त्रता में किसी तरह की खामी नहीं, दिखानी होगी। खादी-नगर स्वच्छता का आदर्श पदार्थ-पाठ होना चाहिए। स्वयंसेवक किसी गरीब का भी अपमान न करें। सिपाहियों की तरह हुक्म न करें। दुकानदार महमानों को लूटने की इच्छा न करें।

असहयोगी-नामधारी और सच्चे-दोनों का भारी जमघट होगा। वे यह न समझें कि पृथिवी के राज्य का परवाना हमी को मिल गया है। बल्कि यह समझें कि हमारा जन्म तो केवल सेवा करने के लिए हुआ है। हमें यह आशा रखनी चाहिए कि सब लोग खादी पहन करके ही आवेंगे। परन्तु जो महमान, यात्री अथवा तमाशबीन दूसरी पोशाक में आवें तो कोई उनका अपमान न करें। जो सहयोगी माने जाते हैं उनकी बात विनय-पूर्वक सुनें। बालक को भी कोई न रोके। किसी भी अन-जान आदमी को कहीं भटकना न पडे।

महा-सभा में संगीत

श्रीगांधीजी 'यंगइंडिया' लिखते हैं कि इस महासभा का एक अंग संगीत भी रक्खा गया है। सारे भारत के निमन्त्रित गायनाचार्यों का एक जलसा होगा। गांधर्व महाविद्यालय के श्री० खरे इस व्यवस्था में लगे हुए हैं। मुझे आशा है कि इस काम में सारे भारत से एक आवाज में प्रतिध्वनि उठेगी। जिला और प्रांतिक समितियों के मन्त्री इस काम में सहायक हो सकते हैं। इसके साथ ही भारत के बने हुए बाजों की एक नुमाइश भी होगी। मुझे आशा है कि भारत के संगीत-रसिक शीघ्र ही श्री. खरे से चिट्ठी-पत्री शुरू कर देंगे।

बड़ी चाबी

ताप त्रिविध प्रेम-आप दूर ही करे।

—तुलसीदास

बड़ी बड़ी संस्थाओं में तमाम कोठड़ियों के लिए एक चाबी रहती है। वह सब कोठड़ियों के दरवाजों को लगती है। उन कोठड़ियों की अलग अलग चाबियां तो रहती ही हैं; पर वे सिर्फ उन्हीं कोठड़ियों का काम देती हैं। परंतु व्यवस्थापक के पास एक ऐसी चाबी रहती है जो सबमें लग जाती है। उसे अंगरेजी में 'मास्टर की' कहते हैं। 'बड़ी चाबी' उसीका तरजुमा है।

धारा-सभाओं के बहिष्कार से कौन्सिलों में जानेवाले रुक सकते हैं, मदरसों के बहिष्कार से मदरसे जानेवाले, और अदालतों के बहिष्कार से मुकदमेबाज लोग; और जब इन सब पर पूरा असर नहीं पड़ता है तब उन कार्यों के परिणाम के विषय में शंकायें की जाती हैं।

परंतु इन सबकी बड़ी चाबी—महा मात्रा—प्रेम है।

जिस अ-सहयोग में प्रेम नहीं वह राक्षसी है, जिसमें प्रेम है वह ईश्वरी है। हजरत मुहम्मद ने जो तेरह वर्ष तक मक्का के अरबलोगों के साथ अ-सहयोग किया वह प्रेम के ही वश होकर किया है। मक्का के अरब लोगों की आंखें उन्होंने प्रेम के बल पर ही खोलीं। मीरा बाई ने राणा कुम्भ के साथ जो असहयोग किया उसमें द्वेष नहीं था। राणा कुम्भ द्वारा दिये गये कठोर दण्ड उसने प्रेम-पूर्वक स्वीकार किये। हमारे असहयोग का मूल भी प्रेम ही है। उसके बिना सब फीका, सब खाली है। प्रेम केवल मुख्य चाबी ही नहीं परंतु केवल एक ही चाबी है। शिक्षालयों का त्याग करने वाले लोग यदि त्याग न करने वालों का द्वेष करें तो त्याग करने वालों का त्याग शुष्क माना जाय। यदि धारा-सभामें जाने वालों का द्वेष करें तो हमारा धारा-सभा का त्याग बेकार हो जाय। जो हमारे मत को न मानें उन्हें प्रेम से जीतना तो धार्मिक वृत्ति है; और उनपर रोष करना राक्षसी, नास्तिक वृत्ति है।

हमें शरम के साथ कुबूल करना चाहिए कि हमारे त्याग में कुछ न कुछ रोष और जहर बाकी रहा है, और इसीसे यह त्याग पूरी तरह फला नहीं और फूला भी नहीं। जितने आदमियों ने त्याग किया है उन्होंने यदि त्याग न करने वालों का द्वेष न किया होता तो हमारी हालत आज बहुत ही अच्छी होती और हम स्वराज्य स्थापना की अवस्था में होते।

अतएव हमारा बड़े से बड़ा काम यही है कि चारों ओर प्रेम का छिड़काव कर दें। प्रेम बरसाने का अर्थ यह नहीं कि हम उनमें मिल जायं। इसे तो मोह कहते हैं, राक्षा कहते हैं। हम अपने विरोधियों के साथ भी प्रेम रक्खें, उन्हें मूर्ख न मानें, उनकी सेवा करें—यह प्रेम है। हिन्दू यदि हिन्दू के साथ प्रेम दिखावें तो इसमें कौन बड़ाई है? पर हिन्दू मुसलमान के साथ भी उतना ही प्रेम करें, उनके रीतरवाजों को बरदाश्त करें—इसीमें भलाई है। सहयोगी सहयोगी के साथ मेल-जोल रक्खे तो इसमें कौन खूबी है? परन्तु असहयोगी सहयोगी के साथ, तीव्र मतभेद होते हुए भी, मुहब्बत करे, धीरज रक्खे, यह वीरता है, यह नम्रता है। उनको बदनाम करना, तुच्छ मानना, उनको धिक्कारना, इसमें बड़प्पन नहीं। बल्कि उनके घर नंगे पैर जाकर उनकी सेवा करने में बड़प्पन है।

यह काम हमने उचित तौर पर नहीं किया। मैंने इसके विषय में लिखा है और कहा भी है। परन्तु जितना चाहिए उतना जोर नहीं दिया, इससे अब मैं पछताता हूं। बम्बई के अनुभव ने मेरी आंखें खोल दी हैं। बम्बई के अनुभव ने मेरी सहिष्णुता की कमजोरी मुझे बता दी है। जब जब सहयोगियों के ऊपर शारीरिक आक्रमण हुए हैं, तब तब यदि मैंने कड़ाई से काम लिया होता तो आज हमारी उन्नति बहुत अधिक हो गई होती। जब कभी किसी ने जबरदस्ती किसी की टोपी छीन ली है तब यदि हर बार मैंने उसका विरोध किया होता तो आज बड़ा ही अच्छा फल मिला होता। ऐसे महान् संग्राम के नायक-पद का उपभोग तो करना परन्तु पूरे तौर पर जाग्रत न रहना महा पाप है। यह मैं जानता हूं। इस युद्ध के नायक के अन्दर यदि हीनता, दुर्बलता, और लाचारी हो तो उसे अपना पद छोड़ देना चाहिए।

जहां से भूले हैं अब तो फिर वहीं जाकर लौटना होगा।

अब हमें अपने मन से सहयोगियों के प्रति, पारसियों और ईसाइयों के प्रति, तथा अंगरेजों के प्रति रोष को निकाल डालना चाहिए। उन्हें भी भाई समझना चाहिए। उनका बहिष्कार न करें। उनके पानी, नाई आदि को न रोकें। उन्हें खाना खिलाकर खावें, उनकी सेवा करके प्रसन्न रहें। यदि हम हरएक धर्म के इस नियम का रहस्य समझ सकेंगे तो, और तभी, स्वराज्य जल्दी और आसानी से मिल सकेगा। अतएव जहां जहां कानून के सविनय भंग की तैयारियां हो रही हैं वहां वहां हमें सबसे पहले यही काम करना है कि वहां जितने सहयोगी हैं, सबके साथ मेल-मुहब्बत करलें और मतभेद रहते हुए भी मित्रता प्रकट करें।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

स्वराज्य जल्दी किस तरह आ सकता है?

श्री गांधीजी ने "नवजीवन" में बारडोली और आणंद तहसील के लोगों के नाम एक पत्र लिखा है। उसका कुछ अंश यहां दिया जाता है:—

"मैं जानता हूं कि आपके दुःख की सीमा नहीं रही। आपने बड़ी आशा की थी। आपने इसी वर्ष में अपने यज्ञ-कुरबानी-के के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने का, मुसल्मान-भाइयों के और पंजाब के घावों को सुखाने का और अली-भाई इत्यादि कैदियों को छुड़वाने का जिम्मा लिया था।

पर ईश्वर ने कुछ और ही सोचा था। सच कहा है कि 'मनुष्य यदि कुछ निर्माण कर सके तो संसार में कोई दुखी न रहे'। हम में निर्माण करने की शक्ति ही नहीं। हमें तो इच्छा करनी चाहिए और उसके लिए परिश्रम करना चाहिए। जब श्री रामचंद्र जैसों को राजगद्दी मिलने के समय वनोवास मिला तो फिर हमारी क्या कथा?

कुछ बिगड़ नहीं गया है। हम बाजी हार नहीं गये हैं। हम तो दुःख में से सुख पैदा कर सके हैं। अशांति हो गई थी, परंतु ऐसा मालूम होता है कि उसमें से हमने शांति हस्तगत करली है। ईश्वर ने छोटा-सा दुःख देकर हमें बड़े दुःख से बचा लिया है। × × ×

आपसे मैं शुद्ध से शुद्ध यज्ञ की इच्छा करता हूं। ईश्वर के दरबार में शुद्ध बलिदान ही मंजूर होता है। बिना मांगे जो अवसर हाथ लगा है उसमें अपनी तमाम ऐबों को ढूंढ ढूंढ कर निकाल दो। सब चरखा-धर्म का खूब पालन करो। ऐसी तजवीज़ करो कि हर घर में अच्छा, मजबूत, बिना गर्द का सूत रोज कते, कोई भूखों न मरे, किसी के घर में विदेशी कपड़े का मैल न रहे। मेरे बताये नकशे को खामापुरी करके तैयार करो।

अगर किसीने जबरदस्ती कपड़े छीने हों तो उनसे माफी मांगो। सहयोगियों के प्रति मन में जरा गुस्सा न रक्खो। उनके दुःखों में उनकी सेवा करो। सरकारी कर्मचारियों की खुशामद न करो। पर उनसे डरो भी नहीं। पुलिस का डर छोड़ दो।

उन्हें भी अपना भाई समझ कर उनपर प्रेम करो। अब भी अगर आपके लड़के-लड़की सरकारी मदरसों में जाते हों तो उन्हें उठा लो। और अ-सहयोग को बढाते हुए बल-प्रयोग न करो। आपके गांव में अगर एक भी सहयोगी हो तो उसके साथ वैरभाव न रक्खो; बल्कि यह समझो कि हमें अपने मत रखने का जितना हक है उतना ही उन्हें भी अपने मत रखने का है। आपके गांवों में आपस में दुश्मनी हो तो उसे हटा दो। सत्याग्रही गांवों में वैर-भाव के लिए जगह हई नहीं। आपके मन में अगर भंगी-चमारों के प्रति तिरस्कार की भावना रही हो तो उसे निकाल दो। उनके लड़कों को अपने मदरसों में प्रेम के साथ रक्खो, पुलाओ। उनके रहने के स्थानों की देख-भाल करो और पानी आदि की सुविधा न हो तो करो। उन्हें जूठन की भिक्षा न दो; पर उसके बदले या तो वेतन बढा दो या कच्चा अथवा पका हुआ अन्न दिया करो।

आप के गांवों में जो लोग शराब पीते हों, उन्हें प्रेम-पूर्वक कह-सुनकर, समझा-बुझाकर, इस बुरी आदत से छुडाओ। न मानें, तो भले ही पिया करें। शराब की दूकान हो तो दूकानदार को भी नम्रतापूर्वक समझाओ। उसपर रोष न करो। उसपर रहम करो। आपके गांवों में कोई बदमाश, उपद्रवी या चोर-डाकू रहता हो तो उससे न तो खुद डरो और न उसे डराओ। उसे भी अपना भाई समझ कर मिलो और उसे उसकी हालत समझा कर उसकी आदत छुडाओ। ऐसे चोर डाकुओं के दिल को बदलने का प्रयत्न करो और साथ ही उसके जोर-जुल्म से बचने और अपने-बाल बच्चों को बचाने, तथा अपने धन-माल की रक्षा करने की शक्ति प्राप्त करो। यह शक्ति प्राप्त करने के लिए आप अपने ही चौकीदार रक्खो। उन्हें चोरों के साथ लडने की जरूरत न पडे। चौकी होने पर चोर नहीं आ सकते। जगते को भय नहीं। तोभी संभव है कोई हाथ मार जाय। तो उससे निडर रहना। अपनी तहसील के बदमाश लोगों का हाल आपको अवश्य मालूम होना चाहिए।

आप निश्चय रखिए कि यदि असहयोगी सभी हो जायं, उनमें प्रेम उत्पन्न हो जाय तो सब लोग उस प्रेम के वश में अवश्य हो जायंगे। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि जो आपकी दोनों तहसीलें असहयोग के समस्त अंगों का सर्वांश में अब भी पालन कर सकें तो इसी वर्ष में स्वराज्य लीजिए। और अगर आप सोचें तो यह जरा भी कठिन नहीं। अगर आप सब लोगों के दिल पर चोट पहुंची हो तो यह बिल्कुल आसान है। अगर आप बिना समझे और द्वेष-भाव से काम कर रहे होंगे तो फिर कठिन है।

मैं कितनी ही बार कह चुका हूं कि अ-सहयोग का मूल प्रेम है, वैर नहीं। आत्म-बल प्रेम-बल है और जगत् इस बल के अधीन है। आपको अपने बल से भारत को मुक्त करना हो तो आप प्रेम बरसाओ। आप को पर-दुःखभंजन कहलाना हो तो आपके अंदर सहनशीलता, शौर्य, सत्य इत्यादि मूर्तिमान् होना चाहिए। केवल दिखावे से स्वराज्य नहीं मिलने का।

बम्बई में जो खामी दिखाई दी उसके रहते हुए भी अगर आपको इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त करना है तो आपको जितनी है उससे बहुत ही अधिक आत्मशुद्धि करनी पडेगी। अर्थात् आपको सच्चा हिन्दू, सच्चा मुसलमान, सच्चा पारसी और सच्चा ईसाई होना पडेगा।

कहीं भूल न जाना। अपने यहां के पारसियों और ईसाइयों से मिलना। उन्हें अपने प्रेम के बल पर निर्भय कर देना। मेरी आशा आप न छोडना। और ऐसा जरूर करना जिससे मुझे आपकी आशा न छोडनी पडे।

हृदय का सुधार

जिस सुधार की मुझे जरूरत है, जिस सुधार से आणंद-बारडोली विजय प्राप्त कर सकते हैं, वह सुधार यदि ऊपरी होगा तो व्यर्थ जायगा। वह अंदर पैठना चाहिए। लोगों का हृदय बदल जाना चाहिए। भीतियुक्त शांति का स्वांग नहीं, बल्कि ज्ञान-पूर्वक उसका पालन होना चाहिए। खादी का दिखावा नहीं, बल्कि उसका शौक पैदा होना चाहिए। चरखे की पूजा नहीं, बल्कि हर घर में धर्म मान कर उसका उपयोग होना चाहिए। तभी हमारी जीत होगी। मन में गुलामी का सेवन करते रहेंगे तो स्वतन्त्रता कभी नहीं मिलने की।

अनोखी लडाई

यह सत्याग्रह की अर्थात् सत्य के आग्रह की कसौटी है। जगत् में किसी राष्ट्र ने आजतक केवल सत्य का दावा करके स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त की है। जिसतरह बन पडा उसी तरह स्वतन्त्रता, नहीं दूसरों पर अपनी सत्ता, प्राप्त कर ली है। इंग्लैंड स्वतन्त्र नहीं। वह तो सत्तावान् है। उसने हमें गुलाम बनाया है। गुलाम को अपना मालिक स्वतन्त्र-सा ही मालूम होता है और वह गुलाम भी उसीके जैसा होने का प्रयत्न करता है— अर्थात् दूसरों को गुलाम बनाने में दिलचस्पी लेता है। यह गुलाम स्वतन्त्र नहीं हो सकता। बल्कि हमेशा अपनेसे जबरदस्त का गुलाम बनता है।

सत्य का अर्थ सत्य

लेकिन मैं पाठकों को इतना गहरा नहीं ले जाना चाहता। जैसी हो वैसी ही स्वतन्त्रता सत्याग्रह के द्वारा प्राप्त करने का बीडा हमने उठाया है। अतएव बनावट से तो वह मिलने की ही नहीं। और जो लोग बिना समझे अथवा समझते हुए कपट से सत्याग्रह में शामिल हुए होंगे, वे न तो खुद ही संतुष्ट रहेंगे न जनता को संतोष दे सकेंगे और अंत को खाली हाथ नजर आवेंगे और रहेंगे। क्या भंगी-चमारों का हृदय से तो तिरस्कार करते हुए, परंतु उनसे छूने का केवल ढोंग रच कर हम छुआछूत के पाप से मुक्त हो सकते हैं? जबतक हम अपने मन का मैल धोकर उन्हें अपने भाई-बहन न समझेंगे और उनके दुःख से दुखी न होंगे तबतक हम आजाद नहीं हो सकते। क्योंकि तबतक हम आजादी के लायक ही न होंगे। वही लोग हमारी प्रगति को रोकेंगे। बुखार के न होने का स्वांग बनाकर शक्ति होने का विश्वास दिखा कर मनुष्य कितने कदम चल सकेगा? यदि हम भय के कारण हिन्दू-मुसलमान की एकता का ढोंग कर रहे होंगे तो हम आखिरी दम तक कभी साथ नहीं रह सकते। और सच्चे वक्त पर हमारे दिल का मैल ऊपर तैर आवेगा। पूरे कसौटी पर उतरे बिना स्वराज्य कैसे मिलेगा? शायद अंगरेज अधिकारी धोखा खा भी जायं, परंतु ऐसी हालत में हिन्दू-मुसल्मान आपस में ही लड-पडेंगे। स्वराज्य का श्रीगणेश ही न कर सकेंगे। आरम्भ में ही एक दूसरे का द्वेष करने लगेंगे और डरने लगेंगे। अतएव यदि यह मित्रता सच्ची होगी तभी हमारा कदम आगे बढ सकेगा।

हमारी स्थिति

मैं स्वयं स्वराज्य लेने के लिए जितना अधीर हूं उतना ही धीरजवान् भी हूं। और हरएक को यही सलाह देता हूं कि वे भी मुझ जैसे ही हो जायं। जो उपाय हमने निश्चित किये हैं यदि उनका अवलम्बन हम ठीक ठीक करें तो स्वराज्य प्राप्त करना सहल है। उन उपायों के बिना इस वर्ष में तो क्या, पर दूस

जमाने में भी, स्वराज्य प्राप्त करना मैं बिल्कुल असम्भव मानता हूं।

हमारी स्थिति दूसरे तमाम राष्ट्रों से विचित्र है। यह बात हमें बर-जबान याद कर रखना चाहिए। हमारी यह इतनी संख्या ही हमारा बल है और यही हमारी निर्बलता भी है। किसी भी देश में हिन्दुस्तान की तरह ऐसे भिन्न भिन्न धर्म के लोग नहीं हैं जो आजतक एक दूसरे को अपना दुश्मन मानते हैं। किसी भी देश का इतना बड़ा भाग शस्त्र-विद्या का अनभ्यासी नहीं है। किसी भी देश में हिन्दुस्तान के भंगी-चमारों की तरह मनुष्यजाति का तिरस्कार नहीं किया जाता। अतएव हमारे देश के दुःखदर्द का इलाज भी जुदा ही होना चाहिए।

कहीं भूल न हो

मैं चाहता हूं कि हिन्दुस्तान कहीं भूल में न रहे। लकडी की तलवार से हमारा काम नहीं सधने का। सत्याग्रह की तलवार फौलाद की तलवार से भी अधिक मजबूत और तेज होती है। यह लडकों का खिलवाड नहीं, बल्कि सच्चा खेल है। इसमें बनावट के लिए कहीं भी गुंजायश नहीं है। यदि हम सच्चे बन जायंगे तो इस वर्ष स्वराज्य पावेंगे। परन्तु स्वराज्य मिल जाने से कहीं हमारा व्यवहार थोडे ही बदल जायगा? हमारी कठिनाइयां कम नहीं हो जायंगी। आज तो हमारा अधिकांश भाग लडने में अर्थात् चोटें खाने में जाता है। परन्तु फिर तो हमें रचना करनी होगी, सूक्ष्म बातों का निपटारा करना होगा, शासन-कार्य का संचालन करना होगा। क्या तब हम छूआछूत को फिर से रायज कर देंगे? तब हम खादी कम पहनेंगे या अधिक पहनने लगेंगे? तब हम चरखों को जला डालेंगे या अधिक चलाना पडेगा? क्या फिर हिन्दू मुसल्मानों को और मुसल्मान हिन्दू को तथा दोनों ईसाई और पारसी को भूल जायंगे और ऐसे हो जायंगे कि मानों एक दूसरे को पहचानते ही नहीं? क्या उस समय हमें शिक्षालयों का संचालन छोड देना होगा या आज सरकारी की जानेवाली शिक्षा संस्थाओं का भी काम चलाना पडेगा? क्या तब हम अदालतों में इसी तरह जमघट लगाये रहेंगे या वकालत के तरीके को बदल कर आज की अदालतों की रचना में माके के फेर-बदल होंगे? कोई अपने दिलमें यह भरोसा तक न रक्खे कि फिर तो हमारे पास कार्य्य-दक्ष मनुष्यों की झडी लग जायगी। यदि आज उनका अभाव है तो उस समय और भी अभाव होगा। काम हमाको चलाना होगा। उसका बीज तो हमने नागपुर में ही बो दिया है। और जैसा बोया है वैसा ही काटना होगा।

साल के बाद

इसलिए जो लोग ऐसा मानते हों कि दिसम्बर के बाद तो हम सैर को चल निकलेंगे तो इससे बढकर भूल दूसरी नहीं हो सकती। स्वराज्य चाहे अभी मिले अथवा पीछे से, हमारे व्यवहार में बहुत कम परिवर्तन होगा। फिर भी शुद्धि तो जारी ही रहेगी। आज जो अधूरा रह गया है उसे उस समय पूरा किये बिना छुट्टी नहीं। अतएव भारत के जो जो भाग लडना चाहते हों वे समझ रक्खें कि एक बार मैदान में उतरे बाद चाहे एक साल लगे अथवा सालों लग जायं, पर वे पीछे पाव न रख सकेंगे। और जब वे सामने पर आवेंगे तब जिस प्रकार उन्हें जय प्राप्त होने की सम्भावना है उसी प्रकार आज विपत्तियां सहन करने का भी निश्चय करना होगा। वे पैर न रक्खेंगे तो कोई कुछ न कहने का। पर यदि पैर रख दिया तो फिर जहां रख दिया वहां से या तो मर मिटने पर या विजय मिलने पर ही छुटकारा हो सकता है। इतना शौर्य्य और धैर्य्य तो आवश्यक ही है।

निराशा नहीं

ये बातें मैं लोगोंको निराश करने के लिए नहीं लिख रहा हूं। बल्कि यह बताने के लिए लिखता हूं कि उनका कर्तव्य क्या है और उनकी जिम्मेदारी क्या है? कहीं ऐसा न हो कि लोग सफलता (?) में रह जायं, यह समझ कर कि अजी, इसमें क्या है, मैदान में आ डटें, और फिर पीठ दिखाकर हंसी के पात्र बनें, इस ख्याल से लिखता हूं। जो इस युद्ध का रहस्य समझ चुके हैं, जो सत्य और शान्ति का सेवन कर रहे हैं वे तो मेरी इस बात से चौंक ही नहीं सकते। पर जो लोग इसका मर्म न समझे हों उन्हें पूरी तरह से समझाने के उद्देश से मैंने स्पष्ट से स्पष्ट शब्दों में यह चेतावनी दी है।

(नवजीवन) मो. क. गांधी

पतित बहनें

पाठक यह जानकर खुश होंगे कि बरीसाल में 'पतित बहनों' के सुधार का काम उत्साह के साथ शुरू हो गया है। डाक्टर राय लिखते हैं कि कितनी ही बहनों के घर जाकर चरखे दाखिल कराये गये हैं। बाबू अश्विनीकुमार दत्त के स्कूल के निरीक्षक जगदीश बाबू ने उन युवक कार्यकर्ताओं के रहनुमा होने का अभिवचन दिया है, जिन्होंने इस जवाबदेही की सेवा का भार ग्रहण किया है। मुझे आशा है कि जिन लोगों ने इस परम आवश्यक सेवा-कार्य को अपने सिरपर उठाया है वे इसे अधूरा ही न छोड देंगे। उन्हें बार बार की निराशाओं का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्हें धीरे ही धीरे प्रगति की उम्मीद करनी चाहिए। सिर्फ ऐसे ही कार्यों में, जिनमें न तो किसी तरह की उत्तेजना के लिए जगह है और न शीघ्र ही प्रसिद्धि की सम्भावना है, सच्चे सेवा-प्रेम की परीक्षा होती है। मैं बरीसाल के इस नमूने को इस लायक मानता हूं कि दूसरे शहरों के लोग भी उसका अनुसरण करें। स्वराज्य के बाद भी यह आत्म-शुद्धि का काम तो जारी ही रहेगा। हां, हरएक आदमी इसे नहीं कर सकता। सिर्फ वही लोग इस बढते हुए पापाचार को मिटाने के लिए आगे बढें जिनका दिल इसके लिए उत्सुक हो और जिनकी आत्मा काफी पवित्र हो। इस आंदोलन की स्वभावतः दो शाखायें हैं—एक तो पतित बहनों का सुधार और दूसरा, पुरुषों को इस नीचे गिरानेवाले पाप से विमुख करना। इसी पाप के बदौलत मनुष्य अपनी बहन को कामदृष्टि से देखता है और उसे उसका शिकार बनाता है। दोनों शाखाओं में काम करने के लिए एक से ही गुणों की जरूरत है। दोनों दिशाओं में साथ ही साथ काम होना चाहिए। तभी वह सफल हो सकता है।

(यंग इंडिया)

एजंटों के लिए सुविधायें

"हिन्दी नवजीवन" की एजन्सी के नियमों में कुछ परिवर्तन किया गया है। परिवर्तित नियमों में मुख्य दो नियम इस प्रकार हैं—

(१) ४० से अधिक प्रतियां मंगाने वालों को डाक या रेल-खर्च न देना पडेगा।

(२) १०० से अधिक प्रतियां मंगाने वालों को सोल एजन्सी दी जा सकती है।

अधिक ब्योरा जानना हो तो पत्र-व्यवहार कीजिए।

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, सूकी ओळ, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से [illegible] प्रकाशित।

असली रंग

वार्षिक	मूल्य४)
छः मासका	,, २)
एक प्रतिका	,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक	,, ७)

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—अगहन सुदी ११, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, ११ दिसम्बर, १९२१ ई० | अंक १७

नौजवानों के प्रति-

देशबन्धु चित्तरंजन दास ने कलकत्ते के विद्यार्थियों के नाम नीचे लिखी विज्ञप्ति प्रकाशित की है—"लालाजी पकड़ लिये गये हैं। यह घटना हमारे राष्ट्रीय संग्राम के इतिहास में नवीन युग के आरम्भ की सूचना है। मेरी दृष्टि में तो यह धर-पकड़ अर्थ-पूर्ण है। नौकरशाही हमारे आन्दोलन की सफलता से अब विकल हो उठी है। इसका दिमाग घूम गया है और अब इसकी उछल-कूद शुरू हुई है। आजतक तो यह अधिकांश में छुप-छुप कर वार किया करती थी; अब इसने सब तरह के संकोच को ताक पर रख-कर सीधा आक्रमण आरम्भ किया है। यह सीधा वार है। लालाजी राष्ट्रीय महासभा के एक स्तम्भ-रूप हैं। उन पर वार कर के सरकार ने महासभा के ही ऊपर वार किया है।

मैं इस सीधे आक्रमण का स्वागत करता हूं। यह महासभा और नौकरशाही के बीच खुली कुश्ती है; और महासभा के वर्ष की समाप्ति के समय ही इसका निपटारा होजाना बिल्कुल उचित है।

बंगाल में भी धर-पकड़ की कमी नहीं है। पीर बादशाह मियां और डाक्टर सुरेश को हथकड़ी पहनाकर, दोनों को एक जंजीर से ही कसकर लिवा ले गये, जिससे कि हिन्दू-मुसल्मान दोनों को बेड़ियां और दोनों को एक करने वाली एकता की जंजीर का ज्ञान संसार को अत्यंत निश्चित रूप से हो जाय। श्री० सेनगुप्त ने जेल में जाकर चटगांव की तेजस्विता और विजय को सिद्ध कर दिखाया है। दूसरे लोकप्रिय अध्यापक नरेन्द्र भी उसी गौरव से भूषित हुए हैं। रंगपुर के अध्यापक वीरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय एक हजार स्वयंसेवकों का दल लेकर सरकार की जेल में जा पहुंचे हैं और दूसरे बीस हजार लोगों को, जेल के महद्भाग्य की राह देखते हुए, अपने पीछे छोड़ गये हैं। कोमिला का ब्राह्मणबारिया हमारे शासकों की मांग से भी बहुत ज्यादह शिकार लेकर तैयार बैठा हुआ है।

परंतु कलकत्ता कहां है? यह प्रश्न मुझे रातदिन व्यथित कर रहा है। अभीतक सिर्फ पांच ही हजार स्वयंसेवकों के नाम दर्ज हुए हैं। जिस विशाल शहर में ऐसे ऐसे स्कूल और इतने कालेज हैं वहां सिर्फ पांच ही हजार स्वयं-सेवक! आज इनमें से छः नौजवान पकड़े गये हैं। वे महासभा के खादी बेचने का और चरखे के प्रचार का काम कर रहे थे। इससे मालूम होता है कि नौकरशाही ने महासभा के कार्य को नष्ट-भ्रष्ट कर डालने का संकल्प कर लिया है। इस तरह जहां महासभा के काम को तहस-नहस कर डालने की करतूतें हो रही हैं तहां इतने बड़े कलकत्ते शहर से सिर्फ पांच ही हजार स्वयं-सेवक!

क्या कलकत्ते के विद्यार्थियों को इससे कुछ मतलब ही नहीं? क्या यह पढ़ाई का समय है? कला-कौशल, और साहित्य और विज्ञान और गणित-अरे! जब कि मातृभूमि एक ओर पुकार पुकार कर बुला रही है, तब ये सब उसके लिए न दौड़ पड़ें तो इस लज्जा का वर्णन मैं किस तरह करूं?

इस विस्तृत नगर में मानों मैं अकेला रह गया हूं! जहां जाता हूं वहां हजारों नौजवानों का घेरा अपने आसपास देखता हूं। परंतु मैं देखता हूं कि दुनियावी समझदारी से उनके चेहरे खोखले पड़ गये हैं और उनके अन्तःकरण मुरझाकर मुर्दा हो गये हैं। मेरा मन तो यह चाहता है कि यदि ईश्वर ने मुझे शक्ति दी होती तो मैं उनके हृदय में फिर से एक बार जीवन की ज्योति प्रकट कर दूं और उनको फिर से नौजवान बना दूं। हर समय और हर देश में नवयुवक ही स्वतन्त्रता के संग्राम में आगे बढ़े हैं। नौजवान ही हमेशा अधिक निष्पाप तेजस्वी और आत्मबलिदान के लिए अधिक तैयार होते हैं।

मैं तो दिन पर दिन बूढ़ा होता जाता हूं, अशक्त भी होता जाता हूं; और स्वतन्त्रता का संग्राम तो अभी शुरू ही हो रहा है। सरकार ने मुझे अभी पकड़ा नहीं है। परंतु मैं तो आज भी अपने हाथों में हथकड़ियों और शरीर पर जंजीरों का भार अनुभव कर रहा हूं। गुलामी क्या ऐसी-वैसी व्यथा है? "पराधीन सपने सुख नाहीं।" सारा हिन्दुस्तान यदि आज एक विशाल जेल खाना नहीं तो क्या है! इसमें मेरे पकड़े जाने या बचे रहने की क्या बिसात है!

एक बात निश्चित है। मैं चाहे मर जाऊं या जीवित रहूं, महासभा का काम तो जारी ही रखना होगा। इतने बड़े शहर में से केवल पांच ही हजार स्वयंसेवक, और महासभा का कार्य्य तो बन्द करने की तैयारियां! मैं फिर फिर यही पूछता हूं कि क्या कलकत्ते के विद्यार्थियों के कानों तक मेरी आवाज पहुंच रही है?

चित्तरंजन दास

टिप्पणियां

दास पकड़े गये ?

देशबन्धु दास के पकड़े जाने के विषय में गर्म अफवाह उड़ रही है। मैं नहीं मानता कि वे गिरफ्तार कर लिये गये हैं। पर हां, कर्नल प्रतापसिंह के यहां आने की अपेक्षा देशबन्धु की गिरफ्तारी की संभावना अधिक सच हो सकती है। जहां दमननीति हमेशा बढती जा रही है, और भारत के बादल का रंग बदलता रहता है वहां हम क्या कह सकते हैं कि कौन कब पकड़ा जायगा ? पर साथ ही यह जानने की भी हमें क्या जरूरत कि 'कौन पकड़ा गया है' चाहे तमाम अगुआ लोग क्यों न पकड लिये जायं, हमें अशांत होने का कोई कारण नहीं। यदि हम उनके आत्मीय हों तो काम में जुट जायं, यदि नेताओं की मौजूदगी में इस खेल को खेलने की इच्छा हमें होती हो तो उनकी गैरहाजरी में हमें खुद जवाबदेही अपने सिर पर लेकर अगुआ हो जाना चाहिए। हमारे इस संग्राम में सबको अग्रणी होने का अधिकार है। क्योंकि नेता वही है जो सबसे अधिक सेवा करे। सेवा की पेशवाई में द्वेष किस बात का ?

सो, यदि देशबन्धु दास गिरफ्तार हो जायं तो हमें खुश होना चाहिए, निराश न होते हुए अधिक उत्साहवान् होना चाहिए। और यह आशा रखनी चाहिए कि अब हमारी विजय नजदीक आती जा रही है। कसौटी पर चढे बिना हमें कुछ भी नहीं मिल सकता और यदि बिना कसौटी के मिल गया तो वह रहनेवाला नहीं। जिस प्रकार बिना भूख के खाया हुआ भोजन नहीं पचता उसी प्रकार बिना दुःख के सुख भी नहीं पच सकता। ज्यों ज्यों हमारे बन्धन हमारे आंतरिक बल से एक के बाद एक टूटते हैं त्यों त्यों हमारा जोर बढता है। परंतु यदि बंधे हुए मनुष्य को कोई एकाएक छोड दे तो बन्धन टूटते ही वह अपंग की तरह दिखाई देता है और वह होता भी है, वही हाल हमारा भी हो सकता है। अतएव हमारे नेताओं का जेल जाना मानों हमारी स्वतन्त्रता के प्रभातकाल की सूचना है।

महासभा में भले ही हमारे नेता लोग न आ पावें। उनका शरीर चाहे न रहे पर उनकी आत्मायें तो हमारे साथ ही रहेंगी। वे हमारे पराक्रम को देखेंगी। हमारी परीक्षा लेंगी। वे जांचेंगी कि हम उनके बलिदान के लायक हैं या नहीं ? लडवैया घायल होजाने से घबराते नहीं। वे तो समझते हैं कि घाव खाने से तो अपना बल सिद्ध होता है और बल सिद्ध करना मानों विजय प्राप्त करना है। हमें यह दृढ विश्वास होना चाहिए कि जो जेल से बाहर रहकर सेवा करता है, वह जब निर्दोष होते हुए भी जेल जाता है, तब अधिक सेवा करता है। (नवजीवन)

निराशा की जरूरत नहीं

कुछ लोगों ने चिन्ता के साथ यह सवाल किया है कि पंजाब में लाला लाजपतराय गिरफ्तार हो चुके हैं और शायद शीघ्रही जेल के महमान हो जायंगे, आसाम में श्रीयुत फूकन और बारदोलाय पहले ही जेल का स्वागत कर चुके हैं और इसी तरह से अजमेर की प्रान्तीय समिति और खिलाफत कमिटी दोनों के सभापति मौलाना मोहियुद्दीन गिरफ्तार कर लिये गये हैं, इस अवस्था में इन प्रांतों में अब आगे काम कैसे होगा ? मैंने यह जवाब दिया कि इन अगुओं के जेल जाने से हमारे कार्य्य की प्रगति ही होगी। इन लोगों की सजाओं के फल-स्वरूप मैं तो यही उम्मीद करता हूं कि उन उन प्रांतों के लोग अधिक आत्म-संयम और अपनी जवाबदेही के अधिक ज्ञान का परिचय देंगे। वहां और भी ज्यादह खादी तैयार होगी, वहां विद्यार्थियों और वकीलों में और भी अधिक जागृति होगी। यदि हम अपना शासन आप करने के लायक होंगे तो इन नेताओं की वीरता का प्रभाव अवश्य ही चारों ओर दिखाई देगा। दमन के साथ ही साथ हमें भी अधिकाधिक ऊपर उठना चाहिए, उसके बाद नहीं। जबजब लोग सरकार के पशुबल से दब जायंगे तबतब उसका लाभ ही होगा, फिर अन्त में चाहे भले ही लोग नवबल प्राप्त कर लें। जो सरकार पशु-बल पर अपनी हस्ती कायम करती है वह चार दिनों तक ठहरती है और केवल दमन के ही बलपर जीती है। और ज्योंही उसके जोर-जुल्म के हथियार अपना काम दिखाने में बेकार हुए कि उसकी मौत अपने आप आजाती है। अपने नेताओं के हमसे अलग कर दिये जाने के बाद यदि हमने खुद अपने अंदर और अपने द्वारा उनके तेज और उत्साह को प्रकट नहीं किया तो कहना चाहिए कि हम उनके अनुगामी होने के लायक ही नहीं हैं।

सभापति दास को चेतावनी

बंगाल के लाट, लार्ड रोनाल्डशे, ने उस दिन अपने एक भाषण में आगामी महासभा के निर्वाचित सभापति देशबन्धु दास को कुछ नसीहत की बातें कहीं और साथ ही यह चेतावनी दी कि यदि अहमदाबाद की महासभा में देशबन्धु ने उसके अनुसार आचरण नहीं किया तो लाट साहब उनको इसका मजा चखावेंगे। यदि सभापति महाशय इस मजे को न चख सके तो मैं जानता हूं, इसमें उनका दोष नहीं है। उन्होंने अपने देश के नाम पर अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। वे ऐसे समय में सभापति के जैसे ऊंचे पद पर विराजमान हो रहे हैं, जो इस देश के इतिहास में अत्यन्त आनबान का, और बडा ही नाजुक समय है। वे बंगाल में अपने अविराम प्रयत्नों के द्वारा नया जीवन फूंक रहे हैं। वे क्या मौका और क्या बे-मौका बराबर अहिंसा के मंत्र का प्रचार कर रहे हैं और खुद भी उसका आचरण कर रहे हैं। उनके इस विकट काम में हमें हर तरह से उनका साथ देना आवश्यक है। यदि हरएक प्रतिनिधि इस तैयारी से और इस निश्चय के साथ आवेगा कि चाहे कैसा ही संकट क्यों न उपस्थित हो, हम विजय-श्री को प्राप्त किये बिना एक पग पीछे न हटेंगे, तो सभापति का काम कुछ हलका हो जायगा।

प्रतिनिधियों के सम्बन्ध में

मैं यह आशा कर रहा हूं कि प्रतिनिधियों का निर्वाचन भी हर हालत में महासभा के संगठन के अनुसार ही हुआ होगा। इस प्रकार चुने हुए सज्जन ही अपने मतदाताओं के सच्चे प्रतिनिधि होंगे। मतदाता तो वही लोग हो सकते हैं जिनके नाम महासभा के पत्रकों में दर्ज हैं। जहां किसी प्रतिनिधि को जेल जाना पडा हो वहां साधारण चुनाव के द्वारा उसकी खाली जगह के लिए दूसरा प्रतिनिधि चुना जाना चाहिए। आवश्यक प्रस्तावों को स्वीकार करने के समय सब प्रतिनिधियों को उपस्थित रहना चाहिए। प्रतिनिधि का जो आदर्श मेरे सामने है वह इस प्रकार है—उसका निजी और सार्वजनिक जीवन निष्कलंक है, महासभा के कार्य्यक्रम के अनुसार उसे अपने जिले की जानकारी है, वह सूत-कातने में इतना होशियार है कि दूसरे को सिखा सकता है, वह हाथकती खादी पहनने का आदी हो गया है, वह अपने राष्ट्रीय प्रेम को सिद्ध करने के लिए तथा हिन्दू मुसल्मान सिख पारसी ईसाई यहूदी एकता को चिरस्थायी रूप देने के लिए अहिंसा को अपना धर्म मानता है, असहयोग के कार्यक्रम के जो जो अंग उस पर घटित होते हों उनके अनुसार वह व्यवहार करता है, उसने जेल जाने की तैयारी कर रखी है और यदि सारा नहीं तो अपना अधिकांश समय उसने देश-कार्य्य के लिए दे डाला है। इसके

अलावा यदि वह हिन्दू है तो उसने छूआछूत का त्याग कर दिया है और इस साल में अपने जिले के अछूत लोगों की कुछ न कुछ सेवायें की हैं। छः हजार कट्टर, सच्चे और निर्भीक तथा दिन-रात काम करनेवाले लोगों से अपने ३० करोड देश-भाइयों की सेवा की इतनी उम्मीद रखना कुछ अजायब नहीं है। मैं मुसलमान और सिक्ख प्रतिनिधियों की संख्या की भी इसी परिमाण से आशा करता हूं। मैं यह भी आशा करता हूं कि प्रत्येक प्रान्त से महिलायें तथा 'अछूत' प्रतिनिधि भी काफी तादाद में आवेंगे।

बारडोली

बारडोली तहसील के लोग बडी उत्कण्ठा से मेरे आने की राह देख रहे थे। अंतको मौलाना आजाद सोबानी के साथ मैं वहां गया। बारडोली तहसील की आबादी कोई एक लाख है। उसमें कोई १४० गांव हैं। वहां लगभग ६५ सरकारी मदरसे थे। उनमें से ५१ तो राष्ट्रीय पाठशाला के रूप में परिणत हो गये हैं। जहां कहीं सरकारी मदरसे जारी हैं उनमें लडकों की तादाद हाजरी १० से भी कम है। राष्ट्रीय पाठशालाओं में छः हजार से ऊपर विद्यार्थी पढ रहे हैं। उनमें कुछ सौ लडकियां भी हैं। इन तमाम पाठशालाओं में सूत कातना अनिवार्य है। हां, अभी नियम के साथ उसकी शिक्षा नहीं दी जारही है और न उसका अभ्यास कराया जाता है। अधिकांश मदरसे तो इन पिछले तीन महीनों में राष्ट्रीय बनाये गये हैं। तमाम गांवों में मैंने देखा कि स्त्रियां भी इस राष्ट्रीय आंदोलन में बडी दिलचस्पी ले रही हैं।

हम वहां दो रोज ठहरे। इस बीच छः गांवों में दौरा किया और हजारों आदमियों से मिले। अधिकांश लोग शुद्ध-हाथकती-खादी पहने थे और औरतों की बहुत बडी तादाद भी उसी लिबास में थी। जो लोग खादी नहीं पहने थे उन्होंने इस बात की शिकायत की कि हमें खादी नहीं मिलती। परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि वहां के स्त्री-पुरुषों ने अपने पुराने विदेशी कपडों का सर्वथा त्याग कर दिया है। मुझे दुःख के साथ कहना पडता है कि कितने ही लोग अब भी घरेलू काम-काज के समय उन्हीं कपडों को बरतते हैं। खादी की तैयारी का काम अभी बहुत-कुछ होना बाकी है। बारडोली तहसील में चरखे तो बहुतेरे हैं पर करघे बहुत ही थोडे हैं। यहां की खास पैदावार कपास है। पाठक यह जान कर दुखी होंगे कि अबतक सारी पैदावार बाहर भेजी जाती थी। यहां हिन्दू और मुसल्मानों में पूरा मेल-जोल है। सहयोगियों और असहयोगियों का भी भेदभाव नहीं है। अछूत लोग बे-धडक सभाओं में आते हैं। फिर भी मैंने यह जता दिया है कि यह स्थिति तबतक संतोषजनक नहीं कही जा सकती जबतक राष्ट्रीय पाठशालाओं के व्यवस्थापक 'अछूत' लडकों को अपनी पाठशालाओं में भरती करने का प्रयत्न विशेष रूप से नहीं करते और गांव के लोग अपने इन दबे हुए भाइयों के कल्याण के लिए खुद अपनेतई दिलचस्पी नहीं लेते। कितनी ही शराब की दुकानें कजक हो गई। मुझे जो कुल ब्योरा मालूम हुआ है उसके अनुसार बिनाही, अथवा बहुत थोडी डर-धमकी दिखाये ही, इतना आश्चर्य-जनक फल दिखाई दे रहा है। सिर्फ दो या तीन मिसालें ऐसी मिलती हैं कि स्वयं-सेवक गांववालों के यहां गये और जबतक उन बेचारे लोगोंने तंग आकर अपने लडके सरकारी मदरसों से नहीं उठा लिये तबतक वे उनके दरवाजे धरना देकर बैठे रहे और उपवास करते रहे। मैंने कार्य्य-कर्ताओं को सूचित किया कि इस प्रकार का दबाव भी हिंसा का ही अंग है। क्योंकि हमें अन्न-त्याग करके लोगों को अपनी राय के अनुसार चलाने का कोई हक नहीं है। हां, अपने हक को प्राप्त करने के लिए तो उपवास करना ठीक हो सकता है; परंतु दूसरों को अपनी अंगुली पर नचाने के लिए नहीं।

एक शराब के दुकानदार ने शराब न बेंचने का वचन दिया था। पर उसने उसे निबाहा नहीं। अतएव समाज की ओर से उसका बहिष्कार कर दिया गया था। परंतु मैंने लोगों को ऐसे बहिष्कार न करने की सलाह दी है; क्योंकि यहां की प्रजा तो बेचारी योंही असहाय है। वर्तमान अवस्था में तो हमारी भीतरी बुराइयों के सुधार का एक मात्र इलाज 'प्रबल लोक-मत' ही हो सकता है। सामाजिक बहिष्कार-जैसे नाई, पानी आदि बन्द कर देना, तो निस्सन्देह एक तरह की सजा है। पर वह स्वतन्त्र समाज में ही लाभकारक हो सकती है। और जो देश बरसों से पशु-बल के द्वारा शासित हो रहा है उसमें तो लोग इससे उलटा अधिक दब जायंगे।

बारडोली तहसील के जीवन के अनेक अंगों में जो इतना गहरा सत् परिवर्तन होगया और सोभी प्रायः बिल्कुल शांति-पूर्वक, उसे देख कर मुझे सचमुच बडा कुतूहल हुआ। एक और भी बडी अच्छी लेकिन साथ ही ताज्जुब की बात यह है कि यहां इस आंदोलन का कार्य-भार ऐसे ऐसे बूढे आदमी उठा रहे हैं जिन्होंने कभी देश के राजनैतिक जीवन में भाग नहीं लिया था। पाठक यह सुनकर खुश होंगे और आश्चर्य करेंगे कि बारडोली में यह इतना बडा काम ऐसे स्वयं-सेवकों द्वारा हुआ है जिन्होंने उसके लिए एक कौडी भी नहीं ली है। बारडोली एक ऐसी तहसील है कि जिसमें कंगाल लोग बहुत ही कम हैं और वहां के अधिकांश निवासियों के जीवननिर्वाह के साधन आसान हैं। यहां के सार्वजनिक जीवन के इस प्रशंसनीय दृश्य रूप का यही कारण है और इसका प्रधान साधन है उन सुयोग्य और उत्साही कार्य्यकर्ताओं की पूर्ण निस्वार्थ सेवा जो केवल यही बात जानते हैं—'देहं वा पातयामि कार्यं वा साधयामि'। परंतु इतना महान् कार्य्य हो जानेपर भी, अपनी इच्छा के विपरीत, मुझे यही फैसला देना पडा कि एक महान् साम्राज्य की सत्ता को ललकारने के पहले बारडोली को अपने स्वदेशी के कार्यक्रम को पूर्ण कर देना चाहिए-यहांतक कि अपनी जरूरत का कपडा उसे खुद ही कातना और तैयार करना चाहिए, अपने राष्ट्रीय विद्यालयों में अछूत लडकों को बिला हिचकत भरती करना चाहिए और इतनी कडाई के साथ अहिंसा का पालन और शान्ति की रक्षा होनी चाहिए कि जिससे निहत्थे और अकेले सहयोगी, और अंगरेज तथा दूसरे हाकिम अपने को यहां हरतरह से सुरक्षित पावें। मौलाना आजाद सोबानी भी मेरी बात से सहमत हुए और वहां के उच्च हृदय कार्यकर्त्ता-दल ने भी उसे स्वीकार किया। और यदि ईश्वर ने चाहा तो बारडोली के उत्साही लोग कुछ ही महीनों में इन शर्तों को पूरा कर दिखावेंगे। एक वृद्ध सहयोगी सज्जन ने कहा है कि छः महीने में सब तैयारी हो जायगी। एक उत्साही नवयुवक ने जो कि उन बातों का जानकार था, कहा कि नहीं जी, एक ही महीने में हो सकता है। अब मैं पाठकों को यह सूचना देते हुए बारडोली यात्रा की अपनी इस सुखकर स्मृति को खतम करता हूं कि कितने ही सहयोगी-भाइयों ने जिन जिनसे मैं मिला, इस बात की तसदीक की है कि स्वयंसेवकों ने इस तहसील में बडी शान्ति और झपाटे के साथ काम किया है। आइए, हम आशा करें कि यदि आवश्यकता हुई तो, इस तहसील को सरकार से युद्ध ठानने का सौभाग्य प्राप्त हो।

भारत-प्रेम का पारितोषिक

कोट गढ-शिमला के श्री० स्टोक्स, पिछली ३ दिसम्बर को, लाहौर की छावनी में पकडे गये। उन्होंने 'ट्रिब्यून' में कुछ लेख लिखे थे। वे

"सम्राट् के भिन्न भिन्न प्रजा-वर्ग में द्वेष और राजद्रोह फैलाने" वाले माने गये हैं और इसी सिलसिले में उनकी गिरफ्तारी हुई है। जिला मजिस्ट्रेट ने उन्हें जमानत पर छोड़ना चाहा; पर श्री० स्टोक्स ने इस तरह छूटने से इनकार कर दिया। सरकार का यह काम अपनी जोड़ नहीं रखता। श्री० स्टोक्स अमेरिकन हैं। परंतु आपने अपने को ब्रिटिश प्रजाजन बना लिया है। भारत को तो आपने अपना घर ही बना लिया है और सो भी ऐसे ढंग से जैसे कि शायद ही किसी भी अमेरिकन या अंगरेज ने आजतक किया हो। पिछले महाभारत के जमाने में उन्होंने सरकार की उत्कृष्ट सेवा की है और बड़े बड़े लोग आपको सरकार का शुभचिन्तक मानते हैं। उन पर कोई भी यह सन्देह नहीं कर सकता कि वे सरकार की बुराई चाहते हैं। लेकिन हिन्दुस्तानियों की तरह और उनके साथ रहना और उनके जैसे खयालात रखना तथा उनके दुख-दर्द में शरीक होना और इस संग्राम में कूद पड़ना सरकार के लिए एक आपत्ति होगई है। उनका आजाद रहना और सरकार की बुराइयां दिखलाना नौकरशाही को सहन नहीं हुआ और उनका गोरा चमड़ा उनके बचाव में समर्थ नहीं होपाया। सरकार इस आंदोलन को हर हालत में तहस-नहस करने पर तुल गई है। लेकिन ऐसा करना उसकी ताकत के बाहर है। श्री० स्टोक्स की गिरफ्तारी से सरकार की जितनी कमजोरी जाहिर होती है उतनी शायद लालाजी की गिरफ्तारी से भी नहीं होती। लालाजी को युद्ध में सेवायें करने का श्रेय प्राप्त नहीं है। लालाजी 'एक आंदोलनकारी' माने जाते हैं। वे गोरे चमड़ेवाले भी नहीं हैं। अतएव जब श्री० स्टोक्स तक की आजादी पर हाथ डाला गया है तब बाहरी आदमियों के भी दिल में इस बात पर प्रबल सन्देह होना है कि सरकार के पक्ष में सद्भावना कहांतक है!

(यं० इं०) मो० क० गांधी

पधारिए कर्नल प्रतापसिंहजी

कोई एक हफ्ते से मैं सुन रहा हूं कि महासभा के समय सरकार अहमदाबाद का कब्जा कर्नल प्रतापसिंह तथा उनके सिपाहियों को सौंप देगी और कर्नल प्रतापसिंह ने महासभा के प्रतिनिधियों को दण्ड देने का काम अपने सिर पर लिया है। मैं इस अफवाह को बिल्कुल झूठ मानता हूं। सरकार इतनी डरपोक नहीं, बिल्कुल इतनी नीच नहीं, और इतनी बेवकूफ भी नहीं। सरकार के पास महासभा के प्रतिनिधियों को दबाने के पूरे साधन हैं। मैं यह नहीं मानता कि सरकार कर्नल प्रतापसिंह की मदद पर अपना काम चलाना चाहती है। पर ऐसा होते हुए भी मैं यह सुन रहा हूं कि बेचारे सीधे-सादे मजदूर लोग अशांत हो गये हैं और डर गये हैं। ऐसी अफवाहें किसी को न सुनना चाहिए। यदि सुनलें तो उसे आगे न बढ़ाना चाहिए। किसी भी प्रकार के डर का अंदेशा होगा तो महासभा की तरफ से सूचना मिलेगी। मनचाही अफवाह से घबरा जाना भीरुता का चिह्न है और भीरु लोग न तो स्वराज्य ले ही सकते हैं और न उसे कायम ही रख सकते हैं। फिर यह नास्तिकता का भी चिह्न है। अतः यह समझकर कि 'जो ईश्वर को मंजूर होगा सो होगा,' हमें शांत क्यों न रहना चाहिए?

पर मान लीजिए कि कर्नल प्रतापसिंहजी अपने दल-बल को लेकर यहां पधारे। तो डर किस बात का? वे भी हमारे ही हैं। उनके सिपाही भी हमारे ही हैं। हमें उनके आगमन को सहन करना चाहिए, उनका स्वागत करना चाहिए और उनके सिपाहियों की गोलियां भी बरदाश्त करनी चाहिए। हम उन्हें गोलियां चलाने का मौका ही क्यों दें? क्या वे रास्ते चलते हुए को छेड़ेंगे? छेड़ें तो छेड़ते रहें-हमे अपने रास्ते जाने से काम। क्या हमारी खादी की टोपी उतरवावेंगे? यदि उतारें तो हम टोपी न छोड़ें और मार का स्वागत कर लें। इतने पर भी उतार लें तो दूसरी टोपी पहन कर निकलें और अधिक मार खावें। आततायी थक जायंगे। जिन्हें मार खाने की शक्ति न हो वे ऐसे रास्ते न जायं, पर सफेद टोपी छोड़ें हरगिज नहीं। जिस प्रकार अ-मांसभोजी उन देशों को नहीं जाता जहां मांस खाये बिना गुजर ही नहीं, जैसा कि उत्तर ध्रुव के पास। परंतु यदि उत्तर ध्रुव तक जा पहुंचा तो चाहे प्राण भले ही चले जायं पर मांस भक्षण नहीं करता। धर्म तो उसीको कहना चाहिए जिसका पालन मरणान्त तक किया जाय, नहीं तो उसे या तो सुविधा या विनोद कहना चाहिए।

यदि हमने गोरे सिपाहियों के डर को छोड़ देनेका निश्चय किया हो तो फिर हमें कर्नल प्रतापसिंह के गेहुंए रंग के सिपाहियों का डर क्यों रखना चाहिए?

डर रखने से तो हमारी अशान्ति, हमारे बैर-भाव की सूचना मिलती है। जिसे हम दुश्मन मानेंगे वह तो जरूर ही हमारा दुश्मन हो जायगा। यदि हम दुश्मन को भी अपना मित्र मानकर उसके साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे तो वह समय पाकर जरूर ही मित्र हो जायगा। मनुष्य जैसा विचार करता है वैसा ही बनता है। करे तो मित्रता परंतु पावे दुश्मनी, यह कभी होही नहीं सकता। हमारा असहयोग तो शत्रु को भी मित्रता के द्वारा जीतने का साधन है।

यह केवल हिन्दुओंका ही धर्म नहीं है। इस्लाम भी यही शिक्षा देता है। इस्लाम में धैर्य को सबसे ऊंचा पद दिया गया है। युद्ध के लिए विधान तो है; पर वह तभी जब दूसरे सब उपाय थक गये हों और जालिमकी अपेक्षा हमारी संख्या कम हो तथा न लड़ना कायरता का चिह्न माना जाता हो एवं युद्ध के लिए प्रोत्साहित करनेवाला कोई ऐसी उज्ज्वल आत्मा हो कि जिस पर सबका भरोसा हो और जिसने हर तरह के स्वार्थ को तिलांजलि दे दी हो। हिन्दुस्तान की अवस्था ऐसी नहीं और हो भी नहीं सकती। हमारी तादाद बहुत है। हमें लड़ाई में प्रेरित करनेवाला कोई नहीं। हमारा युद्ध अपनी मर्दानगी का चिह्न नहीं, हम तो खुद ही अभी दूसरे उपायों से थक नहीं गये हैं। हम अभी शान्ति का पाठ पूरा पूरा नहीं पढ़े। हमने अभी स्वदेशी-व्रत का पूरा पालन नहीं किया। हम अभी सच्चे नहीं हुए। हम हिन्दू-मुसलमान ने अभी अपने मन का मैल पूरा पूरा धोया नहीं है। अभी हमारे बहुत से लोगों को सरकार का साथ देना प्यारा मालूम होता है। ऐसी स्थिति में युद्ध ठानना 'जेहाद' नहीं बल्कि 'फसाद' माना जा सकता है। मैंने कितने ही आलिमों के मुंहसे यह बात सुनी है।

अतएव हम प्रत्येक धर्म का विचार करते हुए एक ही निर्णय पर आ सकते हैं। हमें दुश्मन को प्रेम के बल पर जीतना है। सो, चाहे गोरीसेना आवे चाहे काली, उसके साथ हमारा व्यवहार एक ही सा होना चाहिए। अतएव, यद्यपि मेरी यह धारणा है कि कर्नल प्रतापसिंहजी हमें दण्ड देने के लिए आने वाले नहीं हैं, तथापि मान लीजिए कि वे आवें अथवा और कोई कर्नल अपनी टुकड़ी लेकर आवें तो हम कह सकते हैं-"पधारिए कर्नल साहब।"

(नवजीवन) मो० क० गांधी

—पत्र छपते समय खबर मिली कि देशबन्धु दास की पत्नी, बहन, भतीजी तथा कुछ घण्टे रोक कर और चेतावनी देकर रात को छोड़ दी गई।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, अगहन सुदी ११, सं. १९७८.

असली रंग

पंजाब में लाला लाजपतराय, मलिक लाल खान, श्री० सन्तानम् और श्री० गोपीनाथ, आसाम में श्री० फूकन और बरदोलाय, बंगाल में बाबू जितेन्द्रलाल बनर्जी, अजमेर में मौलाना मोहियुद्दीन तथा दूसरे सज्जन और लखनऊ में पण्डित हरकरणनाथ मिश्र तथा अन्य सज्जन, इनकी गिरफ्तारियों से सूचित होता है कि सरकार अब अपना सच्चा रंग दिखा रही है। यह पकड़-धकड़ केवल यही नहीं दिखलाती कि सरकार सरगर्मी से काम ले रही है, बल्कि यह भी कि अब वह अ-सहयोग आन्दोलन को सहन नहीं कर सकती; अब यह केवल मार-काट को दबाने का ही विषय नहीं रह गया है,—बल्कि लोगों को सहयोग के लिए विवश करने का प्रयत्न है। ठीक है, ऐसा ही चाहिए भी था। किसी न किसी दिन तो सरकार को अपना असली रूप प्रकट करना लाजिमी ही था। युवराज का जैसा स्वागत यहां हो रहा है वैसा किसी युवराज का कहीं न हुआ होगा। और इसलिए चुन चुनकर नेता लोगों की स्वाधीनता का हरण किया जा रहा है जिससे लोगों पर सरकार का रोब गंठ जाय, वे उसके बताये ढंग से चलें, और जहां जहां शाहजादा जाय वहां वहां उसके पहुंचने के दिन हड़ताल न होने पावे।

भारत सरकार को, अपने वर्तमान संगठन के अनुसार, यह सब कुछ करने का अधिकार है। वह उसका दावा भी करती है और समय समय पर अपने अधिकारों का प्रयोग भी करती है। और इसीलिए हम उसके साथ अ-सहयोग कर रहे हैं। उसका वह हक क्या है? यही कि लोगों को अपनी इच्छा के अनुसार जबरदस्ती चलाना और प्रजा को उसकी इच्छा के अनुसार चलने से रोकना। जनता को यह बात मंजूर न हो तो वह जेल में जाकर सड़ा करे। मामला साफ है, और लारेन्स साहब के पुतले के मामले ने उसे बिल्कुल ही साफ तौर पर प्रकट कर दिया है। वह पुतला लाहौर की म्युनिसिपल्टी की सम्पत्ति है। कानूनन् उस पर लोगों का स्वामित्व है। तोभी सरकार उसे वहां से उठाकर दूसरी जगह नहीं रखने देती। वह या तो कलम के द्वारा शासन करेगी या तलवार द्वारा। एक बार फिर लोगों को पसंद करने का यह निमंत्रण दिया जाता है। अब लोग अपने मान और गौरव पर कायम रह कर सरकार की तलवार का स्वागत करेंगे या उसकी कलम के शासन के सामने सिर झुकाकर अपने को नीचे गिरावेंगे?

लोगोंको असहयोग का पाठ पढते पढते १५ महीने हो गये। इतने पर भी यदि वे यह न जान पाये हों कि इस समय हमें क्या करना चाहिए तो उन्हें शिकायत के लिए जगह नहीं है। हां, सबसे अच्छी बात जो वे कर सकते हैं, वह है कि वे कुछ न करें-अर्थात् वे जैसे थे वैसे ही बने रहें और अपने तमाम काम इस तरह करते रहें मानों कोई असाधारण बात हुई ही नहीं है। लार्ड किचनर के मर जाने से इंग्लैंड ने युद्ध से मुंह नहीं मोड़ लिया। उसका तो यही सिद्धान्त-वाक्य था-'जो काम जैसा चल रहा है वैसा ही जारी रहे।' उसका हिंसाबल सुसंगठित था-इतना कि बिना ही सेना-नायक के, अथवा लगातार एक के बाद दूसरे सेना-नायक को प्राप्त करके अपना काम चला सके। क्या हमारे अहिंसा-बल का इतना संगठन हो गया है कि हम बिना ही नेता के अर्थात्-लगातार एक के बाद दूसरा नेता प्राप्त करके, अपना युद्ध जारी रख सकें?

लाला लाजपतराय को गिरफ्तार क्या किया, सरकार ने हमारे एक बड़े से बड़े मुखिया को पकड़ लिया है। उनका नाम भारत के बच्चे बच्चे की जबान पर है। अपने स्वार्थ-त्याग के कारण वे अपने देश-भाइयों के हृदय में उच्च स्थान प्राप्त कर चुके हैं। अहिंसा के प्रचार के लिए और उसके साथ ही लोकमत को संगठित और प्रकट करने के लिए उन्होंने जितना परिश्रम किया है उतना बहुत ही थोड़े लोगों ने किया है। उनकी गिरफ्तारी से सरकार की नीति या वृत्ति का जितना सच्चा पता चलता है उतना दूसरी किसी बात से नहीं।

पंजाब ने तुरंत ही उनकी जगह पर अपना दूसरा नेता चुन लिया। उन्होंने आगा सफदर को अपना अगुआ बनाया है। पंजाबी-भाइयों को उनसे अच्छा नेता नहीं मिल सकता था। वे एक सच्चे मुसल्मान और एक वीर हिन्दुस्तानी हैं। उन्होंने जितनी सेवायें की हैं वे सब अज्ञात-रूप से की हैं। मुझे इस बात में जरा भी संदेह नहीं है कि लोग लालजी की तरह ही सच्चे हृदय से उनका साथ देंगे। पंजाबी-भाई लालाजी का बड़े से बड़ा गौरव जो कर सकते हैं वह यह है कि वे यही समझकर कि लालाजी हमारे साथ ही हैं, उनका काम बराबर आगे बढ़ाते रहें। वह प्रेम जो कि अविनाशी आत्मा को धारण करने वाले इस कलेवर के कुछ दिनों के लिए अथवा हमेशा के लिए जुदा हो जाने के बाद छूट जाता है, अंधा, मूढ और स्वार्थी प्रेम है। संभव है, पंजाबी भाई हमेशा ही लालाजी की जगह पर किसी आगा सफदर को अपनी रहनुमाई के लिए न पावें। मुमकिन है कि हमारी धारणा से भी पहले ही वे हम लोगों से जुदा कर दिये जायं। जिन संस्थाओं का संगठन अच्छा होता है वहां नेताओं का चुनाव केवल कार्य की सुविधा के लिए किया जाता है, किसी असाधारण गुण के लिए नहीं। नेता क्या है? अपने बराबरी वालों में आगे रहने वाला आदमी। किसी न किसी को तो आगे रखना ही चाहिए। परंतु यह कोई जरूरी बात नहीं है कि वह जंजीर की तमाम कमजोर से कमजोर कड़ियों से भी अधिक मजबूत ही हो। परंतु एक बार चुनाव कर लेने के बाद हमारे लिए उसका अनुसरण करना लाजिमी है; अन्यथा जंजीर टूट जायगी और सब कुछ नष्ट हो जायगा।

हमें अपने ध्येय तक पहुंचने के लिए अब बहुत-कुछ करना बाकी नहीं रहा है। मैं अपना यह विश्वास लोगों के दिल में पहुंचा देना चाहता हूं। हमारा रास्ता बिल्कुल साफ है। आगामी महासभा के निर्वाचित सभापति देशबन्धु दास ने उसे असंदिग्ध शब्दों द्वारा बताया है-"मेरा पहला और आखिरी निवेदन आप से यही है कि आप लोग शांतिमय अ-सहयोग के आदर्श से कभी च्युत न हों। मैं जानता हूं कि इस धर्म का पालन करना कठिन है। मैं यह भी जानता हूं कि कभी कभी उत्तेजना इतनी अधिक होती है कि विचार, वाणी और कृति के द्वारा शांतिमय बने रहना अत्यन्त कठिन है। तथापि इस आंदोलन की सफलता तो इसी महान् सिद्धान्त पर अवलम्बित है।"

इस उच्च तत्व के अनुसार हमें अपना जीवन बनाने की शक्ति प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उन तमाम मौकों को टालते रहें जिनसे उत्तेजना फैलने की संभावना हो।

अतएव अब हमें न तो जलूसों की जरूरत है, न विराट् सभाओं की। जो लोग जाग्रत हो गये हैं, बस हम तो उन्हें ऐसा तैयार कर दें कि वे उत्तेजना के समय भी स्थिर रह सकें, और धुनकना, सूत कातना, बुनना आदि विधायक राष्ट्रीय कार्यों के संगठन में लग जायं, जिससे राष्ट्र के लाखों बेकार लोगों को रोजी और उसके साधन मिलते रहें। हिन्दू-मुसलमान एकता हमारा अटल सिद्धान्त है। इसको प्राप्त करने या प्रकट करने का एक ही द्वार है और वह है राष्ट्रीय उत्थान के लिए सब लोग एक साथ मिल-जुल कर काम करें। और इसके लिए उन्हें अपना सारा समय अकेले खादी की तैयारी में लगा देना चाहिए।

ज्योंही हम विदेशी कपडे का पूरा बहिष्कार कर चुकेंगे और अपने अपने प्रान्तों और गांवों के लिए आवश्यक खादी वहीं तैयार करना शुरू कर देंगे, हम बहुत करके बिना ही सार्वजनिक सत्याग्रह का अवलम्बन किये आजाद हो सकेंगे। इसलिए हमें आप होकर सविनय भंग को कमसे कम उस अवस्था तक तो टालना ही चाहिए जबतक कि हम विदेशी कपडों का पूरा बहिष्कार करके हाथकती खादी तैयार करने के योग्य न हो जायं। हां, अपने आन्दोलन को आगे बढाते हुए जबजब हम कानून भंग करने पर बाध्य हो जायं तब तब हमें उसका हृदय से स्वागत करना चाहिए।

इन गिरफ्तारियों और सजाओं के बदौलत यदि हमारा दिल टूट गया या हम नीति से भ्रष्ट हो गये, तो यह हमारी कमजोरी का और स्वराज्य-विषयक अयोग्यता का स्पष्ट चिह्न होगा। जो सिपाही मरने से डरता है या सिर देने से जी चुराता है वह सच्चा सिपाही नहीं है। सच्चे सिपाही को तो जितना ही अधिक जूझने का अवसर मिलता है उतना ही अधिक खुशी से वह सब से आगे बढता है सरकार अपनी जेलों में हम से जो जो काम करावे वह सब हमें करना चाहिए। हमारे लिए इस बात को समझ लेना और इस पर कायम रहना आवश्यक है। मुझे इस बात का यकीन हो चुका है कि दलीलों के द्वारा नहीं, बल्कि बे-गुनाह लोगों के कष्ट-सहन के द्वारा ही सजा देनेवाले और सजा पाने वाले दोनों के दिल पर गहरा असर होना है। ऐसे कष्ट-सहन को देख देखकर एक ओर तो देश अपने आलस्य और उदासीनता को त्याग कर उठ खडा होगा और दूसरी ओर सरकार को भी अपनी कठोरता का त्याग करना पडेगा। परन्तु यह कष्ट-सहन उन लोगों का होना चाहिए जो बहादुरी के साथ खुशी खुशी उसे उठावें, उन लोगों का नहीं जिनका दिल कमजोर हो और जो लाचार होकर शर्माशर्मी उसके लिए तैयार हुए हों। जो लोग जेल जा चुके हैं या जाने की तैयारी में हैं वे कह सकते हैं—'बस, हमारा काम खतम हुआ।' लेकिन हम लोगोंको जो अभी जेलों के बाहर हैं, उनके खतम किये हुए काम के लायक सिद्ध होना है। यह किस तरह? जबतक हम उन्हें आजाद न कर दें या उनके साथ जेलों में शामिल न हो जायं तबतक बराबर उनका काम जारी रखते हुए। जो अधिक से अधिक कष्ट-सहन करता है वही अधिक से अधिक सेवा करता है।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में श्री-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

द्वेष नहीं, प्रेम

प्रयाग से एक तार मिला है कि पण्डित मोतीलाल नेहरू, उनके इकलौते पुत्र पं० जवाहरलाल नेहरू उनके भतीजे पण्डित श्यामलाल नेहरू, पं० मोहनलाल नेहरू और प्रयागके अंगरेजी दैनिक पत्र इंडिपेंडेंट के संपादक श्री० जार्ज जोसफ आदि गिरफ्तार कर लिये गये हैं। गत ७ ता० की रातको ११ बजे वह तार मुझे मिला। निश्चय ही इस खबर को सुनकर मेरा हृदय हर्ष से फूला न समाया। मैंने इसके लिए परमात्मा को धन्यवाद दिया।

मैंने पण्डित जी के पकडे जाने की आशा नहीं की थी। हमारी बातचीत में मैं पण्डित जी से कहा करता था कि आपकी गिरफ्तारी तो सबके पीछे चाहे हो। सर हारकोर्ट बटलर आप पर हाथ उठाने की हिम्मत न करेंगे। यदि आप गिरफ्तार हों तो आपके मित्र, महमूदाबाद के राजा साहब, अपने पद पर रहना मंजूर न करेंगे। सर हारकोर्ट बटलर के इस निष्काम साहस को देखकर मुझे ताज्जुब हो रहा है। पण्डितजी बडे बडे विघ्नों से टक्कर लेते हुए काम कर रहे थे। दमा तो उनका पुराना शत्रु है। वे बराबर उसके साथ युद्ध करते आ रहे हैं। अपने धनी मुवक्किलों के लिए तथा पीडित पंजाब के लिए भी उन्होंने उतना काम नहीं किया जितना कि इस कंगाल भारत के लिए उन्होंने जी-जान से किया है। मैंने उनसे कहा था कि आप कुछ दिन तक आराम कीजिए। लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया। अब इस खयाल से मुझे बडा आनंद होता है कि अब वे अपनी थकावट दूर कर सकेंगे।

लेकिन इस खयाल से कि, बम्बई के पाप के कारण मैं इस साल के पहले ही जिस बात के न होने से डरता था वही अब हमारे देश के बडे से बडे और अच्छे से अच्छे निरपराध लोगों के कष्ट-सहन के कारण हो रही है, मुझे और भी अधिक हर्ष हुआ। इन बिल्कुल निर्दोष लोगों की गिरफ्तारी ही सच्चा स्वराज्य है। अब अली-भाई तथा उनके साथी जेल में ही रहें तो कोई शर्म की बात नहीं है। भारत उनके बलिदान के अयोग्य नहीं निकला।

मेरी तरह हजारों लोग इस आनन्द का अनुभव करते होंगे। पर मेरे इस हर्ष की एक शर्त है। वह यही कि हमारे नेताओं के एक एक करके हमसे छुडा लिये जाने के समय चारोंओर पूरी शांति छाई रहे। **गिरफ्तारियों के होते हुए भी यदि सब दूर शांति का पूरा साम्राज्य रहा तो बस हमारी फतेह बनी बनाई है। पर यदि हम तमाम उपद्रवी लोगों को अपने काबू में करके शांति-रक्षा न कर सके तो निश्चय ही बुरी तरह शिकस्त खानी पडेगी।** हम तो बिना किसी की जान पर हाथ उठाये मर मिटने के लिए कटिबद्ध हुए हैं। हमने तो बिना क्रोध और संताप के जेल जाने की शर्त ही की है। अतएव हमें अपनी ही बनाई शर्तें पर मुंह फुलाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

बल्कि, इसके विपरीत, हमारी अहिंसा तो कहती है कि अपने शत्रुओं पर भी प्रेम करो। शांतिमय अ-सहयोग के द्वारा हम अंगरेज हाकिमों और उनके सहायकों के रोष को जीतना चाहते हैं। हमें चाहिए कि हम उनके साथ प्रेम करें और परमात्मा से प्रार्थना करें कि जो गलती हमें उनकी दिखाई देती है, उसे देखने की बुद्धि उन्हें दे। पर यह प्रार्थना दुर्बल-हृदय की प्रार्थना न हो, बल्कि एक बलवान् की प्रार्थना हो। अपने बल का अनुभव कर के हमें उस जगत्पिता के संमुख नम्रता धारण करना ही उचित है।

यह काल हमारी परीक्षा का और हमारी विजय का काल है। इस समय मैं यह बताना चाहता हूं कि किन किन बातों पर मेरा विश्वास है। मैं अपने शत्रुओं पर प्रेम करने का कायल हूं। मैं मानता हूं कि भारत के हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, पारसी, ईसाई और यहूदियों का एक मात्र शरणोपाय अहिंसाही है। मेरा यह विश्वास है कि कडे से कडे पत्थर के दिल को भी पानी पानी कर देने की ताकत कष्ट-सहन में है। इस युद्ध का आधार पहली तीन जातियों पर होना चाहिए। पिछली तीन जातियां तो इन अगली तीन जातियों के सम्मिलन से डरती हैं। हमें अपने सद्-व्यवहार के द्वारा उन्हें दिखा देना चाहिए कि हम उन्हें अपना सगा-संबन्धी मानते हैं। हमें अपने आचरण के द्वारा प्रत्येक अंग्रेज-भाई को यह दिखा देना चाहिए कि वह भारत के सुदूर कोने में भी उतना ही सुरक्षित है जितना कि वह मशीन गन के बल पर अपने को समझता है।

क्या इसलाम, क्या हिन्दू-धर्म, क्या ईसाई-मजहब, क्या जरदोस्ती धर्म और क्या यहूदी-मत-सच पूछिए तो साक्षात् धर्म की ही यह परीक्षा है। या तो हम यह दिखावें कि हम ईश्वर की और उसकी न्यायशीलता को मानते हैं या यह प्रकट करें कि नहीं मानते। मुझे बडे बडे उच्च-हृदय मुसलमान-भाइयों के सहवास का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उससे मुझे यह मालूम हुआ है कि इसलाम का प्रचार तलवार के बल पर नहीं, बल्कि लगातार एक के बाद एक दरवेशों और फकीरों के प्रेम और ईश्वर-प्रार्थना के द्वारा हुआ है। हां, इसलाम में तलवार खींचने का भी विधान किया गया है; परन्तु उसके लिए जो शर्तें रक्खी गई हैं वे इतनी कडी हैं कि हरएक आदमी उनका पालन करने की क्षमता नहीं रखता। क्या हमारे पास कोई ऐसा सेना-नायक है जो कभी भूल न करता हो? फिर जेहाद का फरमान कौन निकाल सकता है? वह कष्ट-सहन, वह प्रेम और वह शुद्धता कहां है, जो तलवार खींचने की कल्पना करलेने के पहले प्राप्त करलेना आवश्यक है? भारत के मुसल्मानों की तरह हिन्दू भी इसी तरह के बन्धनों से बंधे हुए हैं। सिक्खों के पास तो उनका ताजा स्वाभिमानपूर्ण इतिहास हई है जो उन्हें शस्त्र-प्रयोग करने की चेतावनी दे रहा है। जैसा कि मौलाना शौकतअली कहा करते थे, अभी तो हम इतने अपूर्ण, इतने अ-शुद्ध और इतने स्वार्थी हैं कि ईश्वर के काम के लिए सशस्त्र युद्ध कर ही नहीं सकते। और क्या भारत को, आत्मशुद्धि कर चुकेगा, तब, तलवार उठाने की कभी आवश्यकता रहेगी? और आत्मशुद्धि की रीति तो वही है जो हमने पिछले साल ही कलकत्ते से शुरू कर दी है।

तो हमें क्या करना लाजिमी है? बस, पूर्ण शान्तिमय बने रहें, और फिर भी इतने दृढ और अटल रहें कि सरकार जेलों के लिए जितने चाहें उतने लोग बलिदान के लिए खुशी खुशी आगे बढते रहें। घडी की तरह हमारा काम नियम के साथ चलता रहे। हरएक प्रान्त खाली जगह पर अपना नेता चुन ले। तमाम आवश्यक प्रबन्ध करके लालाजी ने बडा बढिया उदाहरण पेश कर दिया है। प्रत्येक प्रान्त में सभापति और मन्त्री को, असाधारण समय के लिए, सब अधिकार दे दिये जायं। कार्य्य-समिति छोटी से छोटी हो। प्रत्येक महासभा का सदस्य अवश्य ही स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखावे।

एक ओर जहां हमें गिरफ्तारी को टालना न चाहिए, तहां दूसरी ओर, हमें अनावश्यक जुर्म भी न करना चाहिए।

जबतक कि हम अपनी जरूरत भर की तमाम खादी हाथ-कते सूत से तैयार करने का संगठन और विदेशी कपडे का पूरा बहिष्कार न कर चुकें तबतक हमें स्वदेशी-आन्दोलन को जोर-शोर के साथ जारी रखना चाहिए।

एक एक करके चाहे हमारे सभी नेता क्यों न गिरफ्तार कर लिये जायं, हमें हर हालत में महासभा का आगामी अधिवेशन करना ही चाहिए। यदि सरकार बल-प्रयोग करके उसे भंग कर दे तो बात दूसरी है। पर यदि हम डर कर दब न जायंगे होंगे और न उत्तेजित होकर खून-खराबी कर बैठेंगे, बल्कि अपना राष्ट्रीय कार्य्य बराबर जारी रक्खेंगे, तो बस फिर स्वराज्य में कोई संदेह नहीं। क्योंकि दुनिया में ऐसी कोई ताकत नहीं है जो एक शान्तिमय, प्रण पर अडी हुई, और दैवी भाव से युक्त प्रजा के बढते हुए कदम को रोक सके।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

सालभर का वादा

एक तरफ तो मैंने यह धमकी दी है कि यदि इस साल के अखीर में स्वराज्य न मिला तो मैं हिमालय को चल दूंगा। इस पर मुझसे यह अनुरोध किया जा रहा है कि स्वराज्य के न मिलने पर भी आप ऐसा न करें। दूसरी तरफ से मुझे यह कहा जाता है कि स्वराज्य न मिलने पर आप लोगों को क्या मुंह दिखावेंगे? लोग बेचारे कितने निराश होजायंगे? वादा करके अब आपको हाथ मलना पडेंगे।

मेरा ख्याल है कि हमारे पाठकों के दिल में ऐसे विचार न उठते होंगे। पर मैं यह भी जानता हूं कि कुछ कुछ लोग ऐसे विचार करते हैं। मेरा वादा शर्तों पर है। मैंने ऐसी ही शर्तें पेश की थीं जिनका पालन किया जा सकता है, और कह दिया था कि "इन शर्तोंका पालन करो और स्वराज्य लो।"

परंतु इस पर मित्र-लोग यह कह सकते हैं व्यवहार-कुशल मनुष्य जब शर्तें पेश करे तब उसे पालन करने वाले लोगों की शक्ति का अंदाज करके बात करना चाहिए। यह बात सच है। मैं व्यवहार-कुशल होने का दावा भी रखता हूं। यदि मुझसे यह दावा न बन पडे तो मुझे सार्वजनिक जीवन से अलग होजाना चाहिए।

अतएव यदि वर्ष के अंत में लोगों को यह पूछना पडे कि 'स्वराज्य कहां है?' तो कहना होगा कि मेरी व्यवहार-कुशलता सिद्ध नहीं हुई और मुझे हिमालय की राह ले लेनी चाहिए। पर यदि उन्हें निश्चित रूप से यह दिखाई दे कि स्वराज्य का रास्ता वही है जो मैंने लोगों को बताया है, और उन्हें यह मालूम हो कि उस रास्ते को तय करते हुए वे बहुत दूर-लगभग अंततक आ पहुंचे हैं, तो उन्हें मुझे ताना मारने की जरूरत न रहे—और न मुझे हिमालय भाग जाने की ही आवश्यकता रहे। यह स्वराज्य मिलने के बराबर है। जिसे मोक्ष का मार्ग मिल गया है वह यम-नियम आदि का पालन करता जाता है। जो हमेशा यह देख रहा है कि मेरे बंधन लगातार टूटते जा रहे हैं वह मोक्ष को प्राप्त करने वाले पुरुष के समान ही है। वह अपने मार्ग से इधर-उधर नहीं भटकता। वह दिन पर दिन बलवान् होता जाता है। उसे मार्ग-दर्शक की आवश्यकता नहीं रहती। जिसे संदेह है उसका कहीं ठिकाना नहीं। उसका नाश निश्चित है। वह रास्ते चलते हुए भी नहीं चलता है; क्योंकि वह जानता ही नहीं कि मैं कहां हूं।

इसीप्रकार यदि दिसम्बर में आनेवाले समस्त प्रतिनिधि बिना दलील के यह कबूल करले कि स्वराज्य-प्राप्ति का मार्ग यही है, हम स्वराज्य की झांकी बना रहे हैं, जितना काम इस वर्ष में हुआ है उतना पिछले किसी वर्ष में

नहीं हुआ है और हम तो इसी मार्ग से जाना चाहते हैं तो मैं कहूंगा कि यह स्वराज्य मिल जाने के बराबर हो गया है। जो कुछ काम अधूरा रह गया है उसका कारण है हमारे परिश्रम की कमी। जहां जरा ज्यादह मिहनत की कि बस काम पूरा हुआ।

जो लोग यह मान बैठे हैं, अथवा जिन्होंने लोगों को ऐसा समझा दिया है कि स्वराज्य तो गांधी जिस तरह बन पडेगा उस तरह कर के दिसम्बर के पहले दिला देगा, तो वे दोनों अनजान में स्वयं अपने तथा देश के दुश्मन हैं। वे स्वराज्य का अर्थ ही नहीं समझे। स्वराज्य का अर्थ है स्वावलम्बन। मेरे द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने का अर्थ तो है केवल परावलम्बन। मैं तो उसके लेने का रास्ता बताने वाला हूं। लेना तो लोगों के ही हाथ में है। मैं वैद्य हूं, दवा बताता हूं। खाने की विधि, उसका अनुपान, तादाद इत्यादि बताताहूं। पर अन्त में पुरुषार्थ तो रोगी को ही करना पडेगा।

यदि एक वर्ष के अंत में लोगों को यह प्रत्यक्ष अनुभव न हुआ हो कि स्वराज्य शांति के द्वारा, हिंदू मुसलमान सिख पारसी ईसाई यहूदी की एकता के द्वारा, स्वदेशी और अस्पृश्यता के नाश के द्वारा ही मिल सकता है तो मेरी व्यवहार-कुशलता में पूरी खामी रही और मुझे हिमालय भाग जाना चाहिए।

हां, यह सच है कि मेरी आशा तो इससे अधिक थी- हम इस वर्ष में केवल इतना ही नहीं कि मार्ग देख लेंगे, बल्कि स्वराज्य की प्रतिमा भी हमारे सामने खडी हो जायगी, हम शासन-कर्त्ताओं के साथ सुलह भी कर लेंगे और अ-सहयोग का शमन होकर शुद्ध सहयोग शुरू हो जायगा। पर अब मुझे डर है कि इन शेष दिनों में हम शायद इस स्थिति का अनुभव न कर सकें। बल्कि, इसके विपरीत, हमारे अ-सहयोग का वेग और भी तीव्र हो जायगा और ऐसा मालूम होगा कि मानों अब योग होने की संभावना ही नहीं रही। परंतु यही अनुभव सहयोग को नजदीक लानेवाला होगा। प्रभात के पहले का अन्धकार घोर से घोर होता है। प्रसूति के पहले की वेदनायें असह्य होती हैं और इसलिए स्वयं प्रसव के ही विषय में मां के मन में संदेह उत्पन्न होता है। उसी प्रकार हमारा प्रसूति-काल भी कठिन से कठिन होगा।

बम्बई ने उसमें विघ्न डाल दिया। हमने खुद होकर जो जोर लगाना चाहा था, हमने जो दुःख खुद प्राप्त कर लेना चाहा था, उसे बम्बई ने बन्द करा दिया। परंतु सद्भाग्य से सरकार ने ही हमारे लिए जोर करने का, दुःख भोगने का दरवाजा खोल दिया है। क्योंकि उसने दमन का वेग बढा दिया है। यदि हम निर्भय होकर इस दरवाजे में प्रवेश करेंगे तो स्वराज्य की प्रतिमा को खडा होने में जरा भी देर नहीं लगेगी।

पर अभी मैं निश्चय-पूर्वक यह क्यों नहीं कह रहा हूं कि इस वर्ष में स्वराज्य की प्रतिमा खडी हो ही जायगी? इसलिए कि मुझे ठीक ठीक बात मालूम नहीं है। मैं त्रिकालदर्शी नहीं। मैं देवता नहीं। मैं श्रद्धावान् हूं। मैं ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानता हूं। हमारे हृदय में वह कब बडा उथल-पुथल कर डालेगा, यह कौन कह सकता है? १७ नवम्बर को जिस समय मैं बडे आशावाद का उच्चार कर रहा था उसी समय निराशा-जनक कार्य हो रहे थे, इसकी खबर क्या मुझे थी? जब कि मुझे भी इतने दिनों में प्रतिमा खडी होजाने में संदेह है तब यदि ईश्वर प्रतिमा तैयार कर रहा हो तो मैं क्या जानूं? जिस प्रकार मैं वैद्य हूं, उसी प्रकार रोगी भी हूं। जो स्वराज्य मुझे लेना है उसे मैं ले नहीं पाया। मुझे रास्ता मिल गया है, उसे मैं छोडने का नहीं। पर मेरा स्वराज्य तो नजदीक है। इसी महीने में मैं उसे पाजाऊं तो मुझे आश्चर्य नहीं हो सकता। हां, पाठकों को यह विश्वास दिलाता हूं कि मैंने अपने प्रयत्न में किसी बात की कोर कसर नहीं रक्खी है। मेरी तो यही धारणा है कि भारतीय स्वराज्य को प्राप्त करने के प्रयत्न में ही मेरा मोक्ष है। यदि मुझे ऐसा मालूम होगा कि मोक्ष प्राप्त करने के बजाय मैं तो बंधन जकड रहा हूं, बढने के बजाय गिर रहा हूं, तो फिर मैं किसी के रोके से रुकने वाला नहीं। अभीतक तो मुझे ऐसा नहीं मालूम होता कि मैं अधिक बंधता जा रहा हूं। हां, यह मैं निश्चय-पूर्वक कहता हूं कि जनवरी की पहली तारीख को मेरे मनकी दशा कैसी होगी, यह मैं नहीं जानता। इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि स्वराज्य मेरी साधना है, मेरे मोक्ष का द्वार है। मेरा आन्दोलन केवल स्वार्थ-मूलक है और ऐसा ही रहेगा।

इस दृष्टि से मैं यह नहीं चाहता हूं कि इस वर्ष में स्वराज्य की प्रतिमा खडी हो जाय। **मैं तो अपने विषय के तमाम भ्रम से बचना चाहता हूं।** मैं लोगों को यह समझाना चाहता हूं कि मैं तो एक अल्पजीव हूं। अपने को महाप्राणी समझने देने में मैं लोगों की तथा अपनी हानि ही देखता हूं। भले ही मेरा अनुमान गलत माना जाय, भले ही मैं बेवकूफ ठहरूं, भलेही मैं अव्यावहारिक आदमी माना जाऊं। अभीष्ट तो यही है कि लोग यह मानने की अपेक्षा कि मेरे बल के द्वारा कुछ मिला है, यह मानें कि जो कुछ मिला है वह उन्हीं के बल के द्वारा, उन्हींकी तपश्चर्या के द्वारा, उन्हींकी आत्म-शुद्धि के द्वारा मिला है। अपने संबन्ध में तो मैं बस इतनी ही श्रद्धा का भूखा हूं-' जिस समय उसे जो सत्य दिखाई दिया वही उसने निर्भय हो कर लोगों के सामने उपस्थित किया।' इससे अधिक प्रमाण-पत्र मुझे दरकार नहीं। और न इससे अधिक के लायक मैं हूं।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

बहनें गिरफ्तार

स्वराज्य-यज्ञ में आहुतियां

स्वराज्य के वीर योद्धाओं के बलिदान की खबरें निजी तौर पर तथा अखबारों में धडा-धड आ रही है। माता के ऐसे कितने ही सपूतों की गिरफ्तारी या जेल जाने का उल्लेख इस अंक के भिन्न भिन्न लेखों में आ चुका है। गत ८ और ११ ता. के बीच की कुछ नवीन आहुतियां इस प्रकार हैं:—

प्रयाग—श्री० कपिलदेव मालवीय, तथा उनके छः साथी, मौ० कमालुद्दीन जाफरी, पण्डित गौरीशंकर मिश्र, बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन (प्रयाग-म्युनिसिपाल्टी के सभापति)-**लखनऊ** मौ० सलामतुल्ला तथा कितने ही दूसरे लोग-**आसाम** मौ० मुनाविर, **कलकत्ता**-देशबन्धु चित्तरंजन दास की पत्नी, विधवा बहन, भतीजी तथा अन्य ५० बहनें और देशबंधु के पुत्र श्री० चिररंजनदास तथा कितने ही स्वयंसेवक **देहली**—लाला शंकरलाल, लाला हनवंतलाल, श्री० सूरजबल, **अमृतसर**—डाक्टर सत्यपाल, डा० गुरबक्षराय, **अलीगढ**—श्री० निसार अहमद शेरवानी, **रंगून**—श्री० एम० ए० एम० तैयबजी, **लुधियाना**—लाला हंसराज, लाला दुर्गादास।

देशबन्धु दास पकडे गये

आखिर महासभा के सभापति देशबन्धु चित्तरंजन दास पर भी नौकरशाही ने वार किया ही। उनकी गिरफ्तारी की खबर यहां तार द्वारा आजही आई है।

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूडी ओळ, सारंगपुर ..., अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से ... प्रकाशित।

बडे लाट की उलझन

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—पौष बदी ३, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, १८ दिसम्बर, १९२१ ई० | अंक १८

वीर-पत्नी और वीर-माता का संदेश

पण्डित मोतीलाल जी नेहरू की धर्मपत्नी और पण्डित जवाहरलाल नेहरू की सौभाग्यवती माता ने नीचे लिखा सन्देश प्रकाशित किया है—

प्यारे भाइयो और बहिनो,

अपने प्यारे मालिक और एकलौते बेटे को आखिर जेल भेज कर मैं अपूर्व सौभाग्य प्राप्त कर चुकी हूं। मै यह नहीं कहूंगी कि उनके जेल जाने से मेरे दिल में दुःख नहीं है। दुःख हृदय मे भरा हुआ है, क्योंकि मुहब्बत बुरी चीज है। उन दोनों का जीवन जेल के काबिल नहीं था। जेल में उनके कैसे हाल होंगे, यह सब सोच के मेरा दिल जरूर रो रहा है। लेकिन मेरा अंतरात्मा फिर भी यह कह रहा है कि जिसमें उन दोनों ने आनन्द और सुख माना उसमें आनन्द और सुख पाना मेरा भी कर्तव्य है। मैं दुःख बताके, रोके, अपने मालिक और बच्चे को बे-इज्जत कभी नहीं करूंगी। हमने तो जीवन में देख लिया है कि जो रेशम की गद्दी पर सोते हैं वह शायद ही सुख पाते है। कष्ट और तप में कुछ अजब सुख है। जवाहरलाल के कष्टमय जीवन का जब मैं विचार करती हूं तब मेरा जी कांपता है। लेकिन उन सब कष्टो के सहन करने की शक्ति उसको प्राप्त हुई। वह तो बडे बडे महापुरुषों के भाग्य मे भी नहीं है। तप के पंथ से ही पूर्वकाल में रामचन्द्र जी ने व राजा नल ने सुख पाया, और जगत् को सुख दिया। क्या रामचन्द्र जी के दिल से सीता जी दूर थीं? नहीं, लेकिन प्रभु ने असल में जगत् के सुख के लिये रामचन्द्र जी को सीता के मिस तपस्या करवाना चाहा। यह सब बात सोच के अपने मालिक और बच्चे की गिरफ्तारी में मैं आनन्द मान रही हूं। आप भी मानियेगा। मेरा एकलौता बच्चा जेल गया। उस बात के लिये इतना दुःख मैं कैसे कर सकती हूं? महात्मा गांधी जी ने मुझे कहा है कि औरो के भी तो एकलौते लडके हैं। समय ऐसा आ रहा है कि आप सब को अपने लडके, पत्नी, परिवार को जेल में भेजना पडेगा। आज ही मैने सुना कि देशबन्धु दास का समस्त परिवार गिरफ्तार हो गया है। मैं आशा करती हूं कि जो सौभाग्य श्रीमती वासन्ती देवी दास, व श्रीमती उर्मिला देवी सेन को कलकत्ते में प्राप्त हुआ है वही मुझे और मेरी प्रिय बहू चि० कमला को भी प्राप्त होगा। मैं आप को और क्या संदेश दे सकती हूं सिवा उसके जो कि मेरें मालिक ने दिया है:—"जाओ, और हमने जो किया है वह करो। हजारों लाखों स्त्री-पुरुष प्रांतिक स्वयं-सेवक-दल में अपना अपना नाम चढवा कर जेल चले जाओ"। जिनको ऐसा मौका न प्राप्त हो वे घर बैठें और शान्ति रक्खें। अगर सरकार के दमन को सहन कर थोडे दिनो तक ही हम उसका सामना दृढ सत्याग्रह से कर सके तो स्वराज्य इसी मास के भीतर ही हमारे सामने खडा है।

मैं फिर कहती हूं कि मेरा जी प्रार्थना कर रहा है कि मेरे मालिक और बच्चे को जेल फूल की तरह हो जाय। मुझे विश्वास है कि यह युद्ध धर्म का युद्ध है और पवित्रता से सोसे हुए कष्ट को अवश्य कामयाबी मिलेगी। आज ईश्वर ने तुमको छोटा सा कर्तव्य करके स्वराज्य लेने का अवसर दिया है। उसे तुम आनन्द से कर दोगे तो शायद ही तुमको अपने प्राण देने का बडा कठिन कर्तव्य करना पडे। तो मेरी प्रार्थना है कि इस अमूल्य अवसर को आप में से कोई भी हाथ से न जाने दें। क्योंकि गोसाई तुलसीदास जी ने कहा है कि—"समय चूकि पुनि, का पछताने"

आपकी—स्वरूप रानी नेहरू

टिप्पणियां

सभापति की गिरफ्तारी

हमारे मनोनीत सभापति की गिरफ्तारी से हमें डांवाडौल होने की जरूरत नहीं। उनका शरीर नहीं तो उनकी आत्मा हमारे अध्यक्षपद पर विराजमान होगी। उन्होंने अपने देश को जो संदेश दिया है वह तो हमें मालूम ही है। वे खुद उसीकी जीती-जागती मूर्ति हो गये हैं। अब हमें जो बचे-खुचे लोग कांग्रेस में आने के लिए जेल के बाहर रहने दिये जायं उन्हींमेंसे किसी को सभापति का काम चलाने के लिए चुन लेना चाहिए। जैसी शुभ साइत में यह महासभा हो रही है वैसी आजतक कोई महासभा नहीं हुई। जो बात असम्भव दिखाई देती थी वही सरकार की इस स्वागत-योग्य दमन-नीति के द्वारा प्रायः सम्भवनीय नजर आ रही है। हमारे जितने ही बडे से बडे और अच्छे से अच्छे लोगों का जेलों में होना ही स्वराज्य है। यदि सरकार महज हरएक अ-सहयोगी को यह फरमान भेज दे कि तुम २६ दिसम्बर को या इसके पहले अपने नजदीकी पुलिस थाने में हाजिर होकर गिरफ्तार हो जाओ और जेल चले जाओ और उन्हें तबतक न छोडे जबतक कि या तो वे खुद ही अपने असहयोग के लिए माफी न मांग लें या सरकार को अपनी करनी पर पश्चाताप न हो, तो मैं इस स्थिति को पूर्ण स्वराज्य कहूंगा। यद्यपि श्र० वल्लभभाई पटेल तथा उनके निष्ठावान् साथी गुजरात की राजधानी अहमदाबाद को शोभा देने योग्य प्रतिनिधियों और दर्शकों के स्वागत की तैयारियों में दिन-रात परिश्रम कर रहे हैं तोभी मैं महासभा के विसर्जन को मंजूर कर लूंगा। क्योंकि मेरी दृष्टि में तो सरकार का ऐसी आज्ञा देना पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना होगा। इस तरह से सरकार भी असहयोगियों के झगडे से मुक्त हो जायगी और असहयोगियों का भी मनोरथ पूरा हो जायगा। इसमें दोनों का लाभ है। असहयोगियों का तो यह सिद्धान्त ही है कि या तो स्वराज्य मिले या जेल। परन्तु यदि सरकार हमें इस नव वर्ष के आगमन के उपलक्ष्य में ऐसा कोई प्रेमोपहार भेट न करे तो उसने जिन थोडे से लोगों पर यह दयादृष्टि की है उसीके लिए हमें अवश्य उसका कृतज्ञ होना चाहिए।

आगामी महासमिति

अखिल भारतवर्षीय राष्ट्रीय महा-समिति की बैठक आगामी २४ दिसम्बर को होने वाली है। वह अपने ढंग की अनोखा महत्वपूर्ण होगी। इस बैठक के निर्णय पर भविष्य के तमाम कार्य-क्रम का आधार रहेगा। मुझे आशा है कि प्रत्येक सदस्य इस बैठक में अवश्य उपस्थित रहने का प्रयत्न करेगा। यह भी आशा है कि प्रत्येक सदस्य बिना किसी तरह के संकोच के अपना मत पूरी आजादी के साथ प्रकट करेगा। और मत देने का अर्थ तो यह है कि उसके अनुसार व्यवहार हो। हमारे राष्ट्रीय इतिहास के इस युग में निर्जीव यन्त्र के जैसा बहुमत किसी काम का नहीं। यदि हम किसी खास कार्यक्रम के पक्ष में अपना मत दें तो उस पर हमारा विश्वास-हमारी श्रद्धा होनी चाहिए और प्राण पण से उसको पालन करने की तैयारी होनी चाहिए। हमें जेल के दरवाजों को अपनी भीड से खोल देना चाहिए और ऐसे हर्ष के साथ जेलों में दाखिल होना चाहिए जैसे कि दुलहे को भांवर के समय होता है। स्वतन्त्रता का पाणिग्रहण तो, धारा-सभाओं में या अदालतों में या स्कूल-कालेजों के कमरों में नहीं, बल्कि कैदखानों की दीवारों में और कभी कभी तो फांसी के तख्ते पर चढ कर ही किया जाता है। स्वतन्त्रता इस संसार में सब से अधिक चंचल और स्वच्छन्द स्त्री है। वह दुनिया में सब से बडी मोहिनी है। इसको प्रसन्न करना बडा कठिन काम है। वह अपना मंदिर जेलखानों में तथा इतनी ऊंचाई पर बनाती है कि जहां जाते-जाते आंखों में अंधेरी छा जाती है और, हमें जेल की दीवारों पर चढते हुए तथा हिमालय की चोटी के सदृश ऊंचाई-पर बने इस मन्दिर तक जाने की आशा से कंटीले-कंकरीले सीढ़ों में लहुलुहान पैरों से मंजिल तय करते हुए देखकर खिलखिलाकर हंसती है।

अतएव महासमिति के लिए आनेवाले सदस्यों को चाहिए कि वे अपने मत और विचार निश्चित करके आवें। यदि हमारी हिम्मत जेल जाने की न हो तो सरेदस्त यह बात कहनी चाहिए और दूसरे उपाय सुझाना चाहिए। मैं तो आज भी तथा हमेशा, यदि जेल के रास्ते में मेरा विश्वास न हो तो, एक अकेला रहजाने पर भी, उसके पक्ष में अपना मत कभी न दूं। इसी प्रकार यदि मैं उसका कायल हूं तो उसके पक्ष में भी अपनी राय देने से कभी पीछे न हटूं और यदि एक भी आदमी मेरी बात का समर्थन करने वाला न निकले तो जरा भी खेद न करूं।

इस समय हम जिस आनबान की और नाजुक परिस्थिति में से गुजर रहे हैं उसका मुकाबला करने के लिए ऐसा कोई कार्यक्रम नहीं हो सकता जिसके अनुसार फुरसत से काम हो सके। हम लोग जो जेलों के बाहर हैं वे जेलों की जीवन-दायिनी दिवारों के अंदर पहुंच जाने वाले लोगों के ट्रस्टी हो गये हैं। और हम उनके इस विश्वास का पालन सिर्फ एक ही तरह से कर सकते हैं-वह यह कि शान के साथ अपने सिद्धान्तों का पालन करते हुए जेलों में दाखिल हो जायं और अपना बोझ पीछे रह जाने वालों पर छोडते जायं।

आयर्लैंड और भारत

लार्ड रीडिंग ने आयरलैंड को हमारे मुंह पर फेंक मारा है। आइए, जरा देर के लिए हम उस अद्भुत राष्ट्र का ध्यान करें। आयर्लैंड को आज जो यह जैसी-तैसी स्वाधीनता मिली है वह आयरिश लोगों के द्वारा की गई दूसरों की खून-खराबी के बल पर नहीं मिली है; बल्कि जो मनों खून उन्होंने स्वयं अपना बहाया है उसीकी महिमा का फल है। पाठक इस बात पर विश्वास रक्खें। इंग्लैंड को जो अपनी इच्छा के विपरीत उनकी बात मानना पडी है उसका कारण यह नहीं है कि वह और अधिक जानें कटवाने से डरता है; बल्कि वह शर्म है जिसके मारे वह एक ऐसे राष्ट्र को अब अधिक पददलित नहीं कर सकता, जो अपनी स्वाधीनता को दुनिया की सब चीजों से बढकर चाहता है। इस फैसले का मूल आयरिश देशभक्तों का घोर आत्म-बलिदान ही है। स्वर्गीय बोअर राष्ट्रपति क्रूगर ने जब अंगरेजी सल्तनत के खिलाफ अपना झंडा खडा किया और उसे आखिरी चेतावनी दी तब उनके साथ उनके मुट्ठी भर देश-भाई थे और तोभी युद्धाभ्यासी नहीं। उस समय उन्होंने कहा था कि मैं मनुष्यता को थर्रा दूंगा! उनके कहने का मतलब यह था कि मैं हर एक बोअर पुरुष, स्त्री, और बच्चे को बलिवेदी पर चढा दूंगा और एक भी बोअर हृदय को गुलामी के लिए बाकी न छोडूंगा और तब, इन बोअर शहीदों के खून से रंगी हुई दक्षिण आफ्रिका की ऊजड भूमि पर खुशी के साथ अंगरेजों को घूमने दूंगा। अंगरेजों की छावनियों में बोअर रमणियां और बालक पतंगों की तरह बे-मौत मर गये और जब इंग्लैंड जगह जगह लडते लडते तंग आ गया और जब बोअरों की दी हुई खून की दावत से उसका पेट भर गया तब कहीं जाकर उसने उसके आगे सिर झुकाया। इसी प्रकार आयर्लैंड भी गत कई वर्षों से मनुष्यता को थर्रा रहा है। और इंग्लैंड ने उस समय उसकी बात मानी जब कि उसकी आंखें हजारों आयरिश देशभक्तों की नसों से खून की नदियां बहने के बीभत्स

हृदय को देखते देखते थक गई। मैं निश्चय-पूर्वक यह बात जानता हूं कि हमारे मनोरथ की पूर्ति कानूनी चतुराई, न्याय के बौद्धिक वाद-विवाद, या कौन्सिलों और सभा-समाजों के प्रस्तावों से होने वाली नहीं। दक्षिण आफ्रिका और आयर्लैंड की तरह हमें भी मनुष्यता का हृदय भरी देना होगा। परन्तु दक्षिण आफ्रिका और आयर्लैंड के इतिहास की पुनरावृत्ति करने के बजाय असहयोगी इन दो राष्ट्रों के जीवित उदाहरणों से अपने विरोधी के खून का एक भी कतरा न गिराते हुए स्वयं अपने खून की नदियां बहाने का पाठ सीख रहे हैं। यदि वे ऐसा कर सके तो वे थोडे ही दिनों या महीनों में स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। परन्तु यदि वे आंखमूंद कर दक्षिण आफ्रिका और आयर्लैंड का अनुकरण करना चाहते हों तो भगवन्, भारत की बांह पकडो। उस अवस्था में दिनों या महीनों की बात तो दूर रहे, मौजूदा पुश्त में भी स्वराज्य नहीं मिल सकता। और मैं कह सकता हूं कि जिस स्वराज्य का अभिवचन मि० माण्टेगू ने दिया है वह अंत को एक भ्रम और जाल ही सिद्ध होगा, फिर वह चाहे कितनी ही नेकनीयती से क्यों न दिया गया हो। कौन्सिलें वज्र हृदय मनुष्य तैयार करने का कारखाना नहीं हैं; और जबतक वज्र हृदय उसकी रक्षा के लिए मौजूद न हों तबतक आजादी एक अत्यन्त दूषित वस्तु की तरह है।

जेल की उपयोगिता

हम सब लोगों के जेल जाने की आवश्यकता और उपयोगिता के विषय में हमें सन्देह न होना चाहिए। यदि हमको अपनी मांग के अनुसार लोगों की ओर से जवाब न मिले, तो हममें इतना पुरुषार्थ होना चाहिए कि हम अल्पसंख्यक रहते हुए भी विश्वास के साथ अपने कार्यक्रम को पूरा करते हुए अपने को बहुसंख्या में परिणत कर लें और सो भी कोरे उपदेशों के द्वारा नहीं बल्कि अपने उपदेशों को अपने आचरण के द्वारा सिद्ध करते हुए। हमें इस सिद्धान्त की महिमा को अच्छी तरह जान रखना चाहिए कि एक आना आचरण एक अशर्फी उपदेश का काम देता है। नवीन साधन-सामग्री की खोज में धन और काल व्यतीत करने की अपेक्षा उपलब्ध साधन-सामग्री का उपयोग करना ही सच्चा मितव्यय है। अपने मौजूदा साधनों का उपयोग करते रहने से नये नये साधन अपने आप आ जाते हैं। तथापि कल्पना कर लें कि हमारे आन्दोलन को अब आगे लोगों ने नहीं अपनाया, तो हम इस बात का निश्चय समझलें कि जो लोग जेल जाने से हिचकते हैं वे किसी दूसरे तरीके से देश का काम करेंगे। वे कमसे कम सचाई पर तो कायम रहेंगे ही। भारत के जिस भाग के लोग कष्ट-सहन के द्वारा असहयोग करने के कायल हैं, वह तो अपना कर्त्तव्य पूरा पूरा पालन कर चुकेगा। यदि हम बीसों दफा जेल जायें और फिर भी जेल जाने वालों की तादाद न बढे तो मैं तो उस समय भी यही कहूंगा कि "हमको अपना उद्योग तबतक बराबर जारी रखना चाहिए जबतक कि अपने सिद्धान्त की सत्यता हम सारे भारत के न जंचा पावें।" इसके सिवा धर्म का दूसरा मार्ग हई नहीं। हम उन लोगों के लिए स्वराज्य चाहते हैं जो आजादी के चाहने वाले हैं और जो उसके लिए कष्ट-सहन करने को उद्यत हैं। हम ऐसे ही लोगों के द्वारा खिलाफत की रक्षा करना चाहते हैं; क्योंकि वेही सच्चे हिन्दू, सच्चे मुसलमान और सच्चे सिख हैं।

उम्दा खूबी

अपने इस कार्यक्रम की खिजाई को समझ लेना मानो उसकी सभी खूबी को जान लेना है। हमें चरखा कातने और जेल को निमन्त्रण देने के सिवा कुछ भी नहीं करना है। सूत तो हम जेल में भी जाकर कातें, यदि ऐसा करने दिया जाय। सूत कातने और जेल जाते समय हमें अपनी चित्त-वृत्ति बहुत सम रखना चाहिए। अर्थात् हमें पूर्ण शान्तिमय बने रहना चाहिए और भिन्न भिन्न मतों और सम्प्रदाय वालों के साथ मैत्री-भाव रखना चाहिए। यदि हम अंगरेज-भाइयों तथा उन भाइयों के प्रति जिनका मन हमारे मत से नहीं मिलता है, द्वेष रखना छोड दें, यदि हम एक दूसरे के प्रति अविश्वास रखना और एक दूसरे से डरना छोड दें और यदि हम कष्ट-सहन करने का निश्चय कर लें और सारे राष्ट्र की रोटी के लिए काम करने पर, अर्थात् सूत कातने पर, कटिबद्ध हो जायं तो क्या हम नहीं जान सकते कि दुनिया की कोई ताकत हमारे सामने नहीं ठहर सकती? और हमें यदि अपने पुरुषार्थ पर विश्वास है, तो क्या मुजायका है, चाहे हम मुट्ठीभर हों या ज्यादह, अथवा हम गिरफ्तार हो जायं या जालिम की गोलियों के शिकार हो जायं। और निश्चय मानिए, मैंने अबतक जो कुछ कहा है उसमें ऐसा कार्यक्रम बता दिया है जिसे समर्थ लोग नहीं, बल्कि दुनियादार आदमी पूरा कर सकता है। पर वह हो भला, सच्चा और बहादुर आदमी। यदि हम भले, सच्चे और बहादुर आदमी तक नहीं हो सकते, तो क्या फिर भी हमें स्वराज्य और धर्म के गीत गाने का कोई अधिकार है? क्या हम अपने को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, सिख, पारसी, कहला सकते हैं? यदि हमसे इतना भी नहीं हो सकता तो क्या फिर खिलाफत और पंजाब के नाम लेने का हमें कुछ भी प्रयोजन है?

सरकार का असहयोग

श्री० राजगोपालाचारी और आगा सफदर के द्वारा मुझे यह मालूम हुआ है कि उन्हें पूरे तार नहीं भेजने दिये गये। सो यदि हम अपने कार्य्य-क्रम के कायल हैं तो हमें सरकार के इस अ-सहयोग का जरा भी खयाल न करना चाहिए। भले ही वह छोटी सी छोटी बात में भी हमसे असहयोग क्यों न करे। मुझे तो इसी बात पर ताज्जुब हो रहा है, जो वह हमारे तार एक जगह से दूसरी जगह पहुंचने देती है और हमें इधर-उधर जाने और एक दूसरे से मिलने देती है। मैंने तो इस सरकार से बुरे से बुरे व्यवहार की आशा कर रक्खी है। अतएव यह सरकार हमारी हलचल को रोकने या तोडने के लिए उसका दिल चाहे सो किया करे मुझे न तो आश्चर्य ही हो सकता है और न सन्ताप ही। वह तो अपनी खास हस्ती की ही रक्षा के लिए लड रही है और, मैं समझता हूं कि, यदि मैं उसकी जगह पर होता तो मैं भी वैसा ही करता जैसा कि यह सरकार कर रही है। शायद मैं और भी बुरी बातें कर डालता। हम उससे ऐसी आशा ही क्यों करें कि वह अपने अधिकारों का उपयोग न करे? हमारा काम तो सिर्फ इतना ही है कि हम उसकी बिना किसी प्रकार की सहायता के अपने निर्वाह का और अपने असहयोग को जारी रखने का मार्ग खोज निकालें। यदि एक प्रांत से दूसरे प्रांत को हमारी खबरें भेजना बन्द कर दी जायं तो भी हमें अपने चित्त को शान्त रखने की आवश्यकता है। हमारा कार्यक्रम तो सब प्रांतवालों को अच्छी तरह मालूम हुई है। बस; वे लोग अपना अपना काम करते रहें और अपनी हलचलों को जारी रक्खें। बल्कि मैं तो इसमें एक फायदा ही देखता हूं। इस तरह जब खबरें भेजना बन्द कर दिया जायगा तब हम दूसरे प्रान्तों की बुराइयों के प्रभाव से बचे रहेंगे। जैसे-यदि गुजरात वाले कुछ कमजोरी दिखावें और उन्हें अपने शरीर और आत्मा को सरकार के हवाले कर देना पडे या, मान लीजिए कि आसाम के लोग पागल हो जावें

या अचानक हिंसाकाण्ड कर बैठें तो इसका बुरा प्रभाव दूसरे प्रान्तों पर न पड़ने पावेगा। हां, पाठक इस बात को सुनकर डर न जायं; क्योंकि न तो गुजरात में और न आसाम में कहीं ऐसी सम्भावना दिखाई देती है। आसाम तो गहरी उत्तेजना के होते हुए भी अजब शान्ति का परिचय दे रहा है और गुजरात, मुझे आशा है, कि शीघ्र ही अपना पौरुष प्रकट कर दिखावेगा। और प्रान्तों की सरकार की अपेक्षा बम्बई की सरकार शायद अपने काम को अच्छी तरह करना जानती है। निश्चय ही वह अधिक सहनशील और कार्यकुशल है। वह असहयोगियों को उतना ही मैदान दे रही है जितना कि वे चाहते हैं। परन्तु अपनी अभीष्ट वस्तु न मिलने की अवस्था में असहयोगी तो फांसी तक पर चढ़ जाने को राजी हैं; अतएव वे अधिकाधिक मैदान घेरते जाते हैं। लेकिन यह तो प्रसंग के बाहर की बात हुई। भारत का वायुमंडल विलक्षण है। यहां के आकाश में एक अंगूठे बराबर बादल तरह तरह के आकार बदलता है और अचानक भयंकर रूप धारण कर लेता है। मैं जो बात आपसे कहना चाहता हूं वह यह है कि हमें तमाम उलझनों का स्वागत और सामना करने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। उनको देखकर हम कभी विचलित न हों, कभी न घबरावें और जब कि हमारी मनचाही बात हो रही हो तब तो एक कदम भी हरगिज पीछे न हटें।

शनैः शनैः परन्तु निश्चय के साथ

यदि तार का आराम हमसे छीन लिया जाय तो हमें डाक की मार्फत अपना काम चलाना चाहिए। यदि डाकखानों का दरवाजा भी हमारे लिए बन्द कर दिया गया तो हमें कासिदों से काम लेना चाहिए। इधर-उधर आने जाने वाले मित्र हम पर यह कृपा कर सकेंगे। जब रेलवे के फाटकों पर भी हमारा जाना रोक दिया जाय तो हमें मोटर, तांगा, आदि का उपयोग करना चाहिए। बाहरी रुकावटों से यदि हमारे काम की गति धीमी भी पड़ गई तो उससे हमारा काम जरा भी नहीं रुक सकता। पर शर्त यह है कि हमें अपनी अन्तःशक्ति का पूरा निश्चय हो। हर धर्म में ईश्वर के प्रति विश्वास और श्रद्धा को प्रधान स्थान दिया गया है। यदि हम केवल परमात्मा को ही अपना सहारा मानें और अपने को उसकी गोद में छोड़ दें तो हम सरकार की तमाम अग्नि-परीक्षाओं से बे-दाग बाहर निकल आवेंगे—हमारे बाल को भी आंच न आने पावेगी। "जानकीनाथ सहाय करे तब कौन बिगाड़ करे नर तेरो।" यदि उसकी इच्छा और आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता तो इसबात पर विश्वास करने में कौनसी दिक्कत है कि वह इस सरकार के द्वारा ही हमारी परीक्षा न कर रहा हो? मैं तो बस अकेले उसीको अपने दुःख-दर्द की कहानी सुनाऊंगा, और वह जो इतनी बेरहमी के साथ हमारी परीक्षा ले रहा है इसके लिए उसीपर गुस्सा होऊंगा। और यदि हम सिर्फ उसपर पूरा भरोसा भर रक्खेंगे तो वह हमें अवश्य सान्त्वना देगा और हमें क्षमा कर देगा। जालिम के सामने अविचल खड़े रहने की रीति यह नहीं है कि हम उस पर द्वेष करें या उस पर हाथ उठावें; बल्कि यह है कि हम अपने उस दुःख और क्लेश के समय ईश्वर के दरबार में नम्र होकर सच्चे दिल से पुकार मचावें।

जेल का जीवन

मेरे एक परम मित्र पूछते हैं कि अब तो सरकार ने हजारों लोगों को जेल जाने का मौका दे दिया है और हजारों लोग जेल खानों को जा भी रहे हैं, तब क्या यह बेहतर न होगा कि कैदी लोग जेल में काम करने से ही इनकार कर दें? मुझे यह अन्देशा होता है कि इस सूचना का मूल अ-सहयोग-सिद्धान्त के नैतिक पक्ष को यथार्थतः न समझने में है। हमने जेल-संस्था को भंग करने का बीड़ा नहीं उठाया है। स्वराज्य में भी हमें जेलें तो कायम रखनी ही होंगी। इसलिए हमारा सविनय कानून-भंग देश के अनीति-मूलक कानून को भंग करने की सीमा से आगे न बढ़ना चाहिए। कानून-भंग सविनय तभी हो सकता है जब जेल के नियमों का पालन खुशी खुशी और पूरा पूरा किया जाय। क्योंकि किसी खास नियम का भंग करने में उस नियम को तोड़ने के लिए आवश्यक सजा का अपनी मर्जी से कायल हो जाना आवश्यक है। और जब कोई आदमी किसी नियम के लिए तथा उसके भंग करने की सजा के लिए, झगड़ा करता है तब वह विनयशील नहीं रहता और अव्यवस्था तथा अराजकता का कारणीभूत होता है। सत्याग्रही तो, यदि उसे ऐसा दावा करने दिया जाय, एक परोपकारी और राज्य का मित्र है। अराजकतावादी राज्य का शत्रु अतएव जन-शत्रु है। मुझे तो यह दुःख की भाषा इसलिए लिखना पड़ती है कि यह रीति जो वैध कहलाती है, बिल्कुल बेकार साबित हुई है। लेकिन मैं तो दृढ़ता के साथ इस मत पर कायम हूं कि सविनय-कानून भंग शुद्ध से शुद्ध ढंग का वैध आन्दोलन है। यदि उसका विनीत अर्थात् शान्तिमय स्वरूप एक आभास मात्र हो तो वह निश्चय ही निषिद्ध है और उससे हमारा अधःपात होगा। यदि अहिंसा की प्रामाणिकता मान ली जाय तो तीव्र से तीव्र कानून-भंग की निन्दा के लिए, इसी कारण से कि उससे हिंसा-काण्ड मच जानेका अन्देशा है, स्थान नहीं रह जाता। किसी भी बड़े या शीघ्र आन्दोलन का संचालन बिना भारी जोखिम उठाये नहीं किया जा सकता और जीवन में यदि बड़े बड़े जोखों का सामना न करना पड़े तो फिर वह धारण करने के योग्य ही न रहे। क्या हमें संसार का इतिहास नहीं बतलाता कि यदि जोखों का अस्तित्व न होता तो जीवन में कुछ भी अनूठापन न रह जाता? हमको जो गण्यमान्य लोग और समाज के नेता, संकट का जरा भी चिह्न दिखाई देते ही या जरा भी मारकाट की ध्वनि कान में पड़ते ही, हाहाकार करके अपने हाथ ऊपर उठाते हुए दिखाई देते हैं, यह हमारे समाज की पतित अवस्था का ही सबूत है। हम यह तो जरूर चाहते हैं कि मनुष्य के अन्दर से पशुभाव दूर होजाय; पर हम उसे इसके लिए पौरुष-हीन कर देना नहीं चाहते। और मनुष्य के अपना वास्तविक स्थान प्राप्त करते हुए, समय समय पर उसके पशुभाव का भद्देरूप में प्रकट होना अवश्यम्भावी है। बुद्धिगम्य परिस्थिति में खूनखराबी के दृश्य को देखकर मेरा दिल नहीं दहलता; बल्कि जब मैं देखता हूं कि कोई असहयोगी या उसका सहायक अपनी प्रतिज्ञा के खिलाफ मार-काट कर बैठता है तब मैं जीता हुआ भी अधमरे जैसा हो जाता हूं। मेरा तो ख्याल है कि ऐसे मौके पर प्रत्येक सच्चे असहयोगी की ऐसी ही हालत होगी।

अतएव हमें सत्याग्रही की हैसियत से अपने को सार्वत्रिक नियमों के भंग से बचाये रखना चाहिए। जबतक स्वयं जेल का शासन बिगड़ा हुआ या नीति-विरुद्ध न हो या जबतक वह हमें ऐसा न दिखाई दे तबतक हमें जेल के नियमों का पालन करना आवश्यक है। लेकिन आराम का न मिलना, बन्धनों का लगाया जाना तथा ऐसी ही दूसरी असुविधाओं से जेल का शासन बिगड़ा नहीं कहा जा सकता। ऐसा तो वह तभी हो सकता है जब कैदियों के साथ बुरीतरह ज्यादती की जाती हो, उनके साथ बेरहमी का बरताव किया जाता हो—जैसे कि उन्हें गन्दी कोठरियों में रखना, या मनुष्यों के न खाने लायक खाना देना, आदि। मैं यह जरूर ही आशा करता हूं कि जेल में असहयोगियों का बरताव बिल्कुल

अच्छा, गौरव-पूर्ण और फिर भी नम्रतायुक्त रहेगा। हमें जेलरों और वार्डरों को अपना दुश्मन न मानना चाहिए; बल्कि अपने ही जैसा मनुष्य मानें और यह समझें कि उनमें सहृदयता का बिलकुल ही अभाव नहीं है। हमारे सभ्य और शिष्ट व्यवहार के कारण हर तरह का सन्देह और कलुषता मिटे बिना नहीं रह सकती। हां, मैं जानता हूं कि एक ओर तो नियमों के पालन और दूसरी ओर घोर कानून-भंग का यह पथ बड़ा दुर्गम है; परन्तु **स्वराज्य के लिए सुगम राजमार्ग तो संसार में हई नहीं।** देश ने बहुत सोच-विचार के उपरान्त इस तंग लेकिन सीधे रास्ते को पसन्द किया है। सीधी रेखा की तरह यह पथ छोटे से छोटा है। परन्तु जिस तरह सरल रेखा खींचने के लिए किसी सिद्ध-हस्त और तजरिबेकार आदमी की जरूरत है उसी तरह से यदि हम अपने स्वीकृत मार्ग में बिना भटके आगे बढ़ना चाहते हैं तो धैर्य के साथ नियम-पालन की और अपने उद्देश पर अटल रहने की बड़ी आवश्यकता है।

मैं इस बात को अच्छी तरह से जानता हूं कि जेल किसी भी सत्याग्रही को फूलों की सेज की तरह सुखदायी नहीं हो सकती। और जब मैं पण्डित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरंजन दास के सुखमय जीवन की याद करता हूं तब मेरा सिर चक्कर खाने लगता है और दिल दहलने लगता है। कहां उनके सजे हुए सुन्दर कमरे, बीसियों दास-दासी, और हर तरह के आराम और ऐश्वर्य के साधन, और कहां ये जेल की गंदी, भद्दी और बीभत्स कोठरियां! कहां उनके अन्तःपुर का मधुर संगीत और कहां ये कैदियों की बेड़ियों की कर्कश कड़कड़ाहट!! लेकिन मेरी अंतरात्मा कहती है कि स्वराज्य तो ऐसे ही वीर रत्नों के आत्म-यज्ञ के द्वारा मिलता है। तब मेरा दिल फौलाद की तरह कड़ा हो जाता है। जो आत्म-बलिदान हम कर रहे हैं और करना चाहते हैं उससे तो बहुत अधिक कुरबानियां दक्षिण आफ्रिका, कैनेडा, इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी के देशभक्तों को करनी पड़ी हैं।

इस्तीफों का तांता

आजकल अखबारों में सरकारी नौकरी से इस्तीफा देने की खबरें बराबर आ रही हैं। हर मुहकमे के लोग इस्तीफे दे रहे हैं। ऐसे एक इस्तीफे की नकल बेलगांव (करनाटक) से मुझे मिली है। यह आरोग्य-विभाग के असिस्टंट डायरेक्टर के हेड क्लर्क का है, और उन्होंने करनाटक के नेता देशभक्त गंगाधर राव देशपाण्डे के जेल भेजे जाने के विरोध में पेश किया है। अपने इस्तीफे में उन्होंने कुछ अपनी शिकायतों का भी जिक्र किया है; लेकिन वह उनके सरकारी नौकरी छोड़ने का गौण कारण है। आसाम में भी, वहां की सरकार की दमन-नीति के विरोध में, कई वकीलों ने वकालत बन्द कर दी है। मुझे भरोसा है कि इस तरह और अनेक इस्तीफे पेश होंगे और अनेक वकील वकालत बन्द कर देंगे।

सिक्खों का बलिदान

हमारे सिक्ख-भाई खूब अपनी और सारे भारत की समस्याओं को हल कर रहे हैं। अपने मत और विश्वास के नाम पर तमाम बड़े बड़े सिक्ख अपने को बलिवेदी पर चढ़ा रहे हैं। सच्चे सिपाहियों की तरह वे एक के बाद एक जेल में आ रहे हैं और सो भी बिना भीड़-भव्बड़ के, बिना तड़क-भड़क के और बिना जरा भी दंगा-फसाद के। यदि वे बराबर ऐसा ही साहस, और ऐसी ही शान्ति दिखाते रहे तो वे उसके द्वारा बिना किसी संदेह के अपनी समस्याओं को हल कर डालेंगे और भारत की गुत्थियों को सुलझाने में भी सहायक होंगे। सिक्ख-भाई इस समय जो अपने धर्म-प्रेम का परिचय दे रहे हैं उसकी ओर सारा भारत उत्सुकता के साथ टकटकी लगाकर देख रहा है।

(यं. .) मो. क. गांधी

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, पौष बदी ३, सं. १९७८.

बड़े लाट की उलझन

लार्ड रीडिंग उलझन में पड़ गये हैं और उनकी बुद्धि चक्कर में पड़ गई है। ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन और बेंगाल नेशनल चेम्बर आफ कामर्स के अभिनन्दन-पत्रों का उत्तर देते हुए उस दिन बड़े लाट साहब ने फरमाया कि "हां, जब मैं जनता के एक विशेष समुदाय की हलचल पर विचार करता हूं तो मैं आज भी, जबसे मैं यहां भारत में आया हूं तबसे बराबर उसका मनन करते रहने पर भी, उलझन में पड़ जाता हूं, मेरी बुद्धि चकरा जाती है। मैं अपने मन में कहता हूं कि यों सरकार को चुनौती देने के उद्देश से तथा उसे गिरफ्तारी पर मजबूर करने के लिए प्रत्यक्षतः कानून-भंग करने से आखिर हाथ क्या आवेगा?" इसका मौखिक उत्तर तो पंडित मोतीलाल नेहरू ने अपनी गिरफ्तारी के बाद यह उद्‌गार प्रकट करके दे दिया है कि "मैं स्वतन्त्रता के मन्दिर में जा रहा हूं।" हम गिरफ्तारी इसलिए चाहते हैं कि यह नाममात्र की आजादी वास्तव में गुलामी ही है। हम इस सरकार की सत्ता को इसलिए चुनौती देते हैं कि हम उसकी शासन-प्रणाली को बिलकुल बुरी मानते हैं। हम इस सरकार को नष्ट कर देना चाहते हैं। हम उसे लोकमत के आगे झुकने पर मजबूर कर देना चाहते हैं। हम यह दिखाना चाहते हैं कि सरकार का अस्तित्व प्रजा की सेवा के लिए होता है, प्रजा सरकार की सेवा के लिए नहीं। इस सरकार के राज्य में स्वतन्त्रता-पूर्वक जीवन व्यतीत करना असह्य हो गया है; क्योंकि इस आजादी के लिए हमें जो कीमत अदा करनी पड़ती है वह बहुत ही जियादह है, सोभी इस तरह कि लोगों को उसकी कल्पना तक नहीं हो सकती। हम चाहें अकेले हों चाहे हमारे साथ बहुतेरे लोग हों, हम अपने आत्मसम्मान और अपने निश्चित सिद्धान्तों को बेंचकर आजादी नहीं खरीद सकते। मैंने देखा है कि छोटे छोटे बच्चे भी जब उनके निश्चित उद्देश को भंग करने का प्रयत्न किया गया है, अपने पण पर अड़ गये हैं, जरा भी नहीं झुके; फिर उनके मां-बाप की दृष्टि में यह बात चाहे कितनी ही हलकी क्यों न हो।

लार्ड रीडिंग को यह बात अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि असहयोगी लोग सरकार के साथ संग्राम कर रहे हैं। और जिस दरजे तक सरकार ने मुसलमानों के साथ विश्वासघात किया है, पंजाब की बे-इज्जती की है, और जो लोगों को जबरदस्ती अपनी इच्छा के अनुसार चलाने का दुराग्रह कर रही है और अपने किये विश्वासघात का सुधार करने तथा पंजाब के अत्याचारों का प्रायश्चित्त करने से मुंह मोड़ रही है, उस दरजे तक हमने उसके खिलाफ बलवा शुरू किया है।

लोगों के लिए दो मार्ग खुले थे—एक तो सशस्त्र बलवा और दूसरा शांतिमय बगावत। इनमें से असहयोगियों ने—कुछ लोगों ने अपनी कमजोरी के कारण और कुछ ने अपनी सबलता के कारण—शांति का मार्ग अर्थात् स्वेच्छा-पूर्वक कष्ट-सहन, पसंद किया है।

यदि देश इन कष्ट-सहन करनेवाले वीरों के साथ होगा तो सरकार को या तो झुक जाने या मटिया-मेट हो जाने के सिवा दूसरी गति नहीं। यदि लोगों ने उनका साथ न दिया तो उन्हें कम से कम इस बात का तो सन्तोष होगा कि हमने अपनी आजादी बेंच नहीं डाली। सशस्त्र युद्ध में आम तौर पर विजयी ही अधिक खून-खराबी करता है। परन्तु शान्ति और कष्ट-सहन शीघ्र लोकमत तैयार करने का सबसे सुगम उपाय है और इसलिए इसके द्वारा प्राप्त की हुई विजय, सत्य के खातिर विजय कहलाती है। लार्ड रीडिंग की जिन्दगी अदालतों के वायुमण्डल में गुजरी है। अतएव उन्हें सत्ता के शांतिपूर्वक प्रतिकार की कदर करना कठिन मालूम हो रहा है। परंतु जब यह युद्ध समाप्त हो जायगा तब बड़े लाट साहब इस बात को जानेंगे कि इन अदालतों से भी बढ़कर कोई न्यायालय है और वह है अन्तरात्मा की अदालत। वह दूसरी तमाम अदालतों से श्रेष्ठ है।

लार्ड रीडिंग चाहें तो इन तमाम कष्टसहन करने वाले लोगों को अपने हिताहित का कुछ भी खयाल न रखने वाले पागल समझ सकते हैं। इसलिए उन्हें उन लोगों को 'हानिकर मार्ग' से हटा देने का भी अधिकार है। यह व्यवस्था पागलों के लिए तो बिल्कुल ठीक है और यदि सरकार के भी अनुकूल पड़ती हो तो फिर तो यह आदर्श अवस्था ही है। हां, यदि असहयोगी लोग, खुद ही जेल जाने की स्थिति प्राप्त करने पर उसके लिए नाक भौंह चढ़ाते हों, या मुंह फुलाते हों अथवा जैसा कि लालाजी ने कहा है 'सरकार से दया और कृपा की भिक्षा' मांगते हों, तो अलबत्ते वाइसराय को शिकायत का मौका है। असहयोगी का बल तो इसी बात में है कि बिना किसी तरह की शिकायत किये जेल चला जाय। यदि खुद ही जेल का आव्हान कर के, उसका पारितोषिक पाते ही, वह कुड़कुड़ाने लगे जो अपनी बाजी हार जाय।

बड़े लाट साहब ने जो धमकी है, वह नाजेबा है। यह युद्ध तो आखिरी फैसला हुए बिना रुक ही नहीं सकता। यह लड़ाई तो पशु-बल के राज्य और लोक-मत के बीच है। और जो लोग लोकमत की ओर से लड़ रहे हैं वे पशु-बल के सामने छाती खोल कर खड़े रहने का निश्चय कर चुके हैं—वे अपने मतों को छोड़ देने के लिए हरगिज तैयार नहीं हैं।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

अहमदाबाद का जाड़ा

प्रतिनिधियों और दर्शकों का ध्यान इस बात की ओर दिलाया जाता है कि अहमदाबाद में जाड़ा न तो बम्बई की तरह कम और न देहली या अमृतसर की तरह तेज होता है। अतएव उन्हें मामूली जाड़े के कपड़े और बिछौना आदि लाना चाहिए। महासभा के मंडप में कुरसियां नहीं रक्खी जायंगी। अतएव जूतों को रखने के लिए खादी की थैलियां नाममात्र के मूल्य पर दी जायंगी। लोग अपनी अपनी थैलियें भी ला सकते हैं। मण्डप के बाहर जूते रखना मुनासिब न होगा। स्वागत-समिति ने भी बहुत सोच-विचार के उपरान्त जूतों की हिफाजत के लिए किसी तरह का प्रबन्ध न करना ही तय किया है। खिलाफत परिषद् में तो जूतों को कागज में लपेट कर अथवा दूसरी तरह से साथ रखने का सिल्सिला हुई है। लेकिन इस कठिनाई को दूर करने के लिए थैलियां रखना बड़ा अच्छा उपाय है। स्वागत-समिति बिजली की रोशनी, पानी के नल, टट्टी इत्यादि का बहुत अच्छा और खास तौर पर इन्तजाम कर रही है जिससे कि प्रतिनिधियों की तन्दुरस्ती अच्छी रह सके और उन्हें सुविधा हो। लेकिन मुझे स्वागतसमिति के द्वारा आराम और सुविधा मिलने का भविष्य कथन न करना चाहिए।

(यंग इंडिया)

देशबन्धु दास

लार्ड रीडिंग ने आखिर अपने वचन को निबाहा। देश के शिरोमणि नेता भी गिरफतारी से नहीं बचे। लार्ड रोनाल्डशे के भाषण से लोग यह समझ रहे थे कि देशबन्धु दास महासभा के अधिवेशन के पहले शायद न पकड़े जायंगे और उसके बाद भी तभी, जब वे उनकी चेतावनी के अनुसार बरताव न करें। लेकिन लार्ड रीडिंग की धमकी उसके बाद की बात है। और इसलिए लार्ड रोनाल्डशे की राय उससे कट गई। जब कि सभापति स्वयं-सेवकों के नाम दर्ज कर रहे हैं और उन्होंने घोषणा-पत्र भी प्रकाशित किये हैं तब उन्हें भी क्यों आजाद रहने देना चाहिए? कलकत्ते में शाहजादे के आगमन के दिन हड़ताल करने के लिए जो हल-चल हो रही थी, वह किसी तरह बन्द नहीं होती थी। मेरे खयाल में ऐसे ही किसी कारण या विचार से सभापति महोदय की गिरफतारी की गई है। उनके साथ ही दूसरे कितने ही प्रधान कार्यकर्त्ता भी पकड़े गये हैं। मौलाना अबुल कलाम आजाद जोकि मुसल्मान उल्माओं में बड़े आलिम आदमी हैं, मौलवी अकराम खां जोकि खिलाफत कमिटी के मंत्री हैं, श्री० ससमल जोकि बंगाल प्रान्तिक समिति के मंत्री हैं, बाबू पद्मराज जैन, जिनका प्रभाव कलकत्ते के मारवाड़ी-समाज पर है, जेल में सभापति महाशय के साथी हुए हैं। यह साफ प्रकट होता है कि ये गिरफ्तारियां हड़ताल को रोकने के लिए हुई हैं। इन गिरफ्तारियों से यह नतीजा निकलता है कि नौकरशाही शान्ति के साथ लोगों को समझाने-बुझाने और हड़ताल के लिए राजी करने को भी बरदाश्त नहीं कर सकती। वह सचमुच यही चाहती है कि जबरदस्ती दुकानें खुली रक्खी जायं। वह कर्नल जानसन की तरह लोगों को धमका-धुड़का कर दुकानें खुलवाना और वहां सिपाहियों का पहरा बिठा देना नहीं चाहती; बल्कि नेताओं को पकड़ पकड़ कर और जेल में ठांस कर डरपोक दुकानदारों को भयभीत करके उनपर अपना असर डालना चाहती है। सो कलकत्ते के व्यापारियों के लिए अब यह अवसर आ गया है कि वे, अपने नेताओं के उनसे अलहदा कर देने पर भी, उस दिन हड़ताल रखकर अपने निश्चय और अपनी स्वतन्त्र-वृत्ति का परिचय दें। अब तो २४ ता० को कलकत्ते में हड़ताल रखना पहले से भी अधिक आवश्यक हो गया है। शाहजादे के स्वागत के प्रति विरोध प्रदर्शित करने की भावना अब गौण हो गई है। अब तो हमारे नेताओं के गौरव और सम्मान के लिए कलकत्ते के लोगों को पूरी हड़ताल करना आवश्यक हो गया है। यह इस बात का भी सबूत होगा कि वे अपने नेताको कितना मानते हैं और वे अपने स्वतन्त्र मत के अनुसार किस तरह बरतते हैं। मैं आशा करता हूं कि कलकत्ते की जनता आगामी २४ दिसम्बर को अपने इस स्पष्ट कर्तव्य का पालन करने में जरा भी कोर-कसर न रक्खेगी। और अब जब कि हमारे नेता जेल जा चुके हैं तब हरएक असहयोगी शान्ति-रक्षा के लिए अपने को ही नेता बना लेगा। वे तो बस २४ ता० के दिन सब अपने अपने घरों में रहें, सिर्फ स्वयं-सेवक लोग ही बाहर रहें। स्वयंसेवकों का कर्तव्य यह होगा कि वे उन लोगों को किसी तरह की हानि पहुंचने से बचावें, जिन्होंने उस दिन दुकान खोल रखना पसन्द किया हो। मैं यह बात माने लेता हूं कि महासभा और खिलाफत समितियों के नये कर्मचारियों का चुनाव हो गया होगा। हमारी सच्ची कसौटी का समय तो यही है। आज नेता-पन ग्रहण करना वैसा ही है जैसा कि आयर्लैंड के स्वर्गीय शहीद मैक्स्विनी का लार्ड मेयर का पद ग्रहण करना था। क्योंकि नेता-पद पर प्रतिष्ठित होने के साथ ही साथ तुरन्त जेल जाने की पात्रता भी आजाती है। यदि

राष्ट्र का उत्थान सचमुच हो गया होगा तो नेताओं का और उनके अनुगामियों का प्रवाह बराबर उमड़ता रहेगा। सरकार जितनी आहुतियां चाहे उतनी ही हम उसे बराबर देते रहें। और ज्योंही हम सरकार की मांग की पूर्ति कर देने के लायक अपनी साख जमा देंगे, बस त्योंही विजय हमारे पास है।

बंगाल का कर्त्तव्य स्पष्ट है। उसे सभापति महोदय तथा दूसरे चुने चुने नेताओं की गिरफ्तारी का समुचित जवाब देना है। महासभा के मनोनीत सभापति की गिरफ्तारी की तरह मौलाना अबुल कलाम आजाद की गिरफ्तारी भी एक महत्वपूर्ण घटना है। मौलाना अबुल कलाम आजाद सारे भारत में मशहूर हैं और मुसल्मानों में तो उनकी ख्याति विशेष रूप से है। वे एक पुराने सिपाही हैं और रांची में सालोंतक नजर बन्द रह चुके हैं। इसलाम के उल्माओं में उनका बड़ा ऊंचा स्थान है। उनकी गिरफ्तारी से हिन्दुस्तान के मुसल्मानों के दिल को गहरा सदमा हुए बिना नहीं रह सकता। बंगाल के हिन्दू और मुसलमान इसका क्या उत्तर देंगे? कार्य्य का उत्तर तो उसके प्रतिकार्य्य के ही द्वारा हो सकता है। हम जानते हैं कि क्या जवाब देना चाहिए। क्या हजारों बंगाली हिन्दू और बंगाली मुसलमान स्वयंसेवक-दल में अपना नाम लिखाकर गिरफ्तार हो जायेंगे? क्या बंगाल सिर्फ खादी को ही पहनने का व्रत धारण करेगा? क्या बंगाली विद्यार्थी सभापति महोदय की हृदयस्पर्शिनी अपील का उत्तर उनकी अपेक्षा के अनुसार ही देंगे?

मैं इस बात को भी गृहीत किये लेता हूं कि कलकत्ते के हिन्दू और मुसलमान विशेष करके और बंगाल सामान्यतः पूर्ण शान्ति धारण किये रहेगा। यदि वर्तमान शांति भावी स्थिति का सूचकचिन्ह हो तो बम्बई का पाप प्रायः पूरा धुल गया समझिए। बम्बई की दुर्घटना से लोगों ने खूब नसीहत ली है। पर यह हमेशा के लिए पक्की होना चाहिए। बंगाल के नवयुवक अपने बचे-खुचे नेताओं की सहायता के लिए दौड़ पड़ें। वे आतुर न हों। अपने चित्त को शांत रक्खें और उनके हाथ हमेशा चरखों पर नजर आवें। प्रत्येक असहयोगी फिर वह चाहे पुरुष हो या स्त्री, अपना नाम स्वयं-सेवक-दल में अवश्य लिखावें और उनके नामों की सूची रोज पत्रों में प्रकाशित हुआ करे, जिससे सरकार को, जिसे वह चाहे उसकी गिरफ्तारी करने में आसानी हो जाय। बंगाल की उज्ज्वल भावुकता, हमारे राष्ट्रीय इतिहास के इस अत्यन्त नाजुक और कठिन अवसर पर, उच्च से उच्च कोटि की शान्त कार्य्य-शक्ति में परिणत हो जाना चाहिए। न हुल्लड़ हो, न धूम-धाम हो, न बहादुरी का दिखावा हो। हो क्या? सिर्फ अपने अंगीकृत कार्य के प्रति धार्मिक भाव से श्रद्धा और यह दृढ़ निश्चय कि-कार्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि। (यं॰ इं॰) मो॰ क॰ गांधी

पुलिस के मत्थे मढ़ने की आदत

गुलामी में जिन्दगी बसर करनेवालों की तथा कायरों की एक ऐसी आदत होती है कि वे अपनी भूल को कुबूल करते हुए डरते है और इसलिए, वे हमेशा दूसरों की ही गलतियां बताया करते हैं। बम्बई की दुर्घटना के सम्बन्ध में मेरे पास अनेक पत्र आये हैं। उनमें एक किस्म के पत्र ऐसे हैं जिनमें उस दुर्घटना का सारा दोष पुलिस के ही मत्थे मढ़ा गया है। इन पत्रों में यह बताया गया है कि यदि पुलिस ऐसी सक्रिय है तो इसमें हमारा ही दोष है। ऐसे अत्याचारों को सहन करने वाले हमीं है, या दूसरे लोग? पुलिस के लोग भी हमारे ही भाई हैं। और यदि हम सारी पुलिस को अपना दुश्मन मानें और किसी भी बदमाश के लिए हम अपने को जबाबदेह न मानें तो फिर हम राज्य का संचालन किस तरह करेंगे? ऐसी रद्दी पुलिस और बदमाशों को स्वराज्य में कौन काबू में रक्खेगा? अंग्रेज तो स्वराज्य की अवस्था में प्रजा के नौकर के रूप में होंगे, हमारे भाई के मुताबिक रहेंगे। उस समय तो उनके ऊपर निर्दोष लोगों को बचाने की जवाबदेही नहीं छोड़ी जा सकती। तो फिर इनको अपने अंकुश में कौन रक्खेगा?

जरा ही विचार करने से हमको मालूम होगा कि जबतक हम पुलिस पर तथा जिन्हें हम बदमाश और शरीर लोग मानते हैं उन पर अपना असर न डाल सकेंगे तबतक हम स्वराज्य प्राप्त कर ही नहीं सकते। सरकार तो उनको दबा कर अपना राज्य चला सकती है। पर हम स्वराज्य का संचालन तभी कर सकते हैं जब या तो उन्हें अपने प्रेम के अधीन कर सकें या हम उनसे अधिक बदमाश और अत्याचारी हो जायं। तीसरा मार्ग है उन्हें दण्ड दे कर अपना राज्य-कार्य चलाना। परन्तु ऐसा करने की हमें इच्छा होने पर भी वह शक्ति हमारे पास नहीं। अतएव या तो उतनी शक्ति प्राप्त करने के लिए हम दो सौ चार सौ वर्ष ठहरें और फिर स्वराज्य का विचार करें या उन्हें अपने प्रेम के वश करें।

हुल्लड़बाजों की मौजूदगी अधर्म और पाखंड के प्राधान्य की सूचक है। इस पाखंड की वृद्धि कर के तो हम स्वराज्य प्राप्त कर ही नहीं सकते। हम तो इस अधर्म को धर्म के द्वारा दूर कर के ही भारत में शांति का उपभोग कर सकते हैं। अंगरेजी राज्य को जो हम सहन कर रहे हैं उसका कारण यही है कि यह अनेकांश में बदमाश जातियों को अपने दबाव में रख कर दुर्बल प्रजा का बचाव करता है। परन्तु मैं जो इस सल्तनत के खिलाफ आवाज उठाता हूं उसका कारण यह है कि इस बचाव की ऐसी कीमत वह प्रजा के पास से लेती है कि जिससे वह बदमाशों के राज्य के जैसी हो गई है। अर्थात् इस रक्षा की कीमत के रूप में हमें अपना सम्मान और गौरव दे देना पड़ता है। इस अत्याचार से बचने के लिए यदि हम बदमाश लोगों की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करें तो भी मौत है और उनका तिरस्कार करें तो भी मौत है। हमें तो उनकी खुशामद किये बिना उन्हें अपने प्रेम के बल जीतना चाहिए। उनका डर छोड़ देना चाहिए। मतलब यह कि उन्हें धर्म का आचरण सिखाना चाहिए। यदि कुछ ही बदमाश लोग धर्मनिष्ठ हो जायं तो दूसरे लोगों का सुधार होने में देर न लगे। जो न्याय उन पर घटता है वही पुलिस पर भी घटता है। हम पुलिस से किस लिए डरें? वे सफेद टोपी पहन कर आवें तो भी किसे धोखा देंगे? "आप भले तो जग भला।" हम ऐसे बुद्धू क्यों हो जायं, जो धोखा खा जायं? मान लीजिए कि पुलिस ने खादी के कपड़े पहन कर किसी पर अत्याचार किया। तो इससे हम उत्तेजित क्यों हो जायं? हम उसको समझावें। न माने तो रखा रहे। यदि हममें इतना बल हो तो उसे अत्याचार करने से रोकने का प्रयत्न करें और मर मिटें। इसमें हमारी बहादुरी है। पुलिस जरूर हमारी इस बहादुरी को देख कर अपना सुधार करेगी। नामर्द के मारने से पुलिस भ्रष्ट होती है। और मर्द को मारने से डरती है। लाहौर से एक मित्र लिखते हैं कि हट्टे कट्टे जवान भी पुलिस का सामना नहीं करते। इससे वह डरती है। उन पर हाथ उठाने की उसे हिम्मत नहीं होती। हो ही नहीं सकती। मुझे तो ऐसे अनुभव कई बार हो चुके हैं। यह निडरता सिखाने से नहीं आती। खुद अभ्यास करने से ही आती है। अतएव जानना चाहिए कि बदमाश लोगों को अपने काबू में करना तो हमारा काम ही है। पर यदि हम उनको भैय्या दादा करके

अपने वश में कर लेना चाहते हों तो पानी में से निकलकर आग में जा गिरेंगे। हां, वे हमारे भाई तो हैं; पर वे बीमार हैं। हम उनकी सेवा-शुश्रूषा करें। उनसे नीचे जाने का हमें प्रयोजन नहीं। जिस दिन हम पुलिस का डर छोड देंगे उसी दिन पुलिस हमारी दोस्त हो जायगी। डर छोडने अर्थ यह नहीं है कि हम उसे मारें-पीटें और गाली दें; बल्कि उसकी गालियों को सर-आंखों पर चढावें—जिस तरह कि देशबन्धु दास के बहादुर लडके ने मार सहन की। वे पुलिस को पीट सकते थे। उनके साथी सब हट्टे-कट्टे थे। परन्तु उन्होंने सहन किया। गाली खाना एक बात है। यह असहयोग है। परन्तु एक गाली के जवाब में दो गालियां देना सहयोग है; क्योंकि हमने उसके देनेवाले की तरह काम किया। गाली के वश हो जाना तो उसकी गुलामी है। गाली खाने का अर्थ यह नहीं है कि हम गाली देने वाला जैसा कहे वैसा करें। गाली खाने का मतलब तो यह है कि गाली देनेवाले की इच्छा के अधीन न हो जाना। गाली देकर यदि कोई ईश्वर का नाम भी जपावे तो हम न जपें। गाली देने वाला हमें पेट के बल रेंगने के लिए कहे तो हम सीधे खडे रहकर चलें। गाली देनेवाला कहे बैठो, तो हम खडे हो जायं और उसकी पिस्तौल के सामने छाती खुली कर दें। बस, उसकी पूरी हार हुई। क्योंकि उसका मनोरथ पूरा न हुआ। वह हमें दबाना चाहता था, हम न दबे। रावण सीता को अपने कंधे पर बिठा कर ले तो गया। परन्तु सीता ने उसकी एक न सुनी। इससे उसे उसका वाहन होना पडा। परन्तु फिर भी ऐसी सती के स्पर्श से पवित्र न हो पाया और निन्दित हुआ; पर सीता अबला होते हुए भी जगदम्बा हो गई। अतएव निर्भयता के साथ गाली खाना, मार सहन करना तो सच्ची बहादुरी है। जो मनुष्य मार के डर से गाली खाकर बैठ रहता है वह न तो मनुष्य है, न पशु है। भारत इस समय मर्द बनने का पाठ पढ रहा है। यदि पूरा पाठ पढले तो स्वराज्य हथेली में रक्खा है।

धन्य खुरशेद बेगम !

ख्वाजा साहब राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय के मुख्य व्यवस्थापक थे। मैं उन्हें एक अत्यन्त शुद्ध मुसलमान मानता हूं। जैसे वे धर्माभिमानी हैं वैसे ही देशाभिमानी भी हैं। वे एक अमीर घराने के हैं। बैरिस्टर की हैसियत से उनका खूब वैभव था। आज वे अपने देश और धर्म्म के लिए फकीर हो गये हैं। उनके भी जेल भेजे जाने का तार उनकी बेगम साहबा की तरफ से मुझे मिला है। उनका नाम है खुरशेद बेगम। वे लिखती हैं—"आप सुनकर खुश होंगे कि मेरे पति को सरकार ने कैद कर लिया है। विश्वविद्यालय का काम मैं चलाऊंगी।" यह तार जिस समय मुझे मिला, मेरे शरीर में सेर भर खून बढ गया; क्योंकि एक तरफ ख्वाजा साहब की पाक कुरबानी, और दूसरी तरफ उनकी बेगम का धीरज और बहादुरी। जहां ऐसी घटनायें होती हैं वहां स्वराज्य को कौन रोक सकता है? खुरशेद बेगम को अपना काम चलाने में जरा भी कठिनाई नहीं पडने की। विश्वविद्यालय के बहादुर सच्चे विद्यार्थी खुरशेद बेगम की सहायता को दौड पडेंगे और संभव है कि जो काम वे ख्वाजा साहब के लिए न करते हों वह बेगम साहबा के खातिर करेंगे। हां, खुरशेद बेगम विद्यार्थियों को सूत कातने की तालीम तो जरूर ख्वाजा साहब से भी अधिक अच्छी देंगी।

बस, जहां ऐसी ही हिम्मत भारत की बहुतेरी स्त्रियों में आई कि हमारी विजय है। इस महान् जागृति के समय में बहनों से मेरी यही विनती है कि उन्हें भी एक साथ मिल कर काम करना चाहिए। और इसका सीधा रास्ता यह है कि एक दूसरे पर टीका-टिप्पणी करने के बदले वे अपने अपने कामों में ही मशगूल हो जायं। जो सेवा को ही अपना सर्वस्व समझते हैं उन्हें टीका-टिप्पणी की फुरसत ही नहीं रहती।

शंखध्वनि के साथ

देशबन्धु दास की गिरफ्तारी के समय का वृत्तांत पढने योग्य है। वे अपने घर पर ही पकडे गये। शाम के कोई चार बजे पुलिस का दल उनके घर पहुंचा। सब चाय पी रहे थे। मंत्री श्री० ससमल पुलिस से मिलने नीचे उतरे। अपना नाम बताते ही वे पकड लिये गये। फिर देशबन्धु भी नीचे उतरे।

"आप मुझे गिरफ्तार करना चाहते हैं ?"

"जी हां।"

"लीजिए मैं तो तैयार ही था।"

यह कह कर देशबन्धु अपनी पत्नी से भी मिलने ऊपर नहीं गये और पुलिस के साथ हो लिए। जब उनकी गाडी रवाना हुई तब बाहर के लोगों ने बडा हर्ष-घोष किया और ऊपर से स्त्रियों ने शंखनाद। बंगाल में जब किसी का स्वागत किया जाता है अथवा किसी को मंगल कार्य के लिए विदा किया जाता है तब शंख बजाया जाता है। यह एक मंगल शकुन माना जाता है। जब स्त्रियां अपने पति, पुत्र और पिता के जेल जाने पर शोक करने की अपेक्षा यह समझ कर कि उनके कैद होने से हमारे देश और धर्म का भला है, हर्षित होंगी, तभी धर्म का प्रसार होगा और अधर्म का अवश्य नाश होगा। इसलिए इस शंखध्वनि को मैं भारत का विजय चिह्न ही समझ रहा हूं।

तीन भय

श्री० देशबन्धु दास के जो लेख उनके जेल जाने के पहले प्रकाशित हुए हैं वे उनकी उन्मत्त दशा के सूचक हैं और मनन करने योग्य हैं। उनके ये वाक्य 'मन, वचन और काया से शान्ति ही रखिएगा।' 'नरम दल को भी अपने विनय से जीतिएगा' अमर वाक्य हैं। ऐसे समय में उनके मुखसे उनका निकलना अधिक भूषणास्पद है। उनके वे वचन भी ऐसे ही हैं जिनमें तीन भयों का वर्णन किया गया है। वे कहते हैं कि हमने जेल-भय को तो जीत लिया। मानों उन्होंने अपने बेटे को ही सम्बोधन कर के कहा हो, दूसरा भय मार का। उसे भी हम जीतने की बिल्कुल तैयारी में ही हैं। तीसरा डर गोली का। उसको जहां जीता कि बस स्वराज्य है। यही स्वराज्य की कुंजी है। यदि मार-पीट और मृत्यु का भय छोड दें तो न सरकार ही हमें दबा पावे न बदमाश-लोग ही। और यदि इन तीन भयों को जीतने वाले लोग मौजूद होंगे तभी हमें स्वराज्य मिलेगा, अन्यथा मिल ही नहीं सकता।

पत्र-प्रेषक महाशयो

आप हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, अंगरेजी इनमें से किसी भी भाषा में पत्र लिखें, परन्तु वह **सुवाच्य जरूर होना चाहिए**। अन्यथा उसका उत्तर मिलना कठिन होगा।

अंक न मिलने की शिकायत करने वाले सज्जनों को अपना **ग्राहक नम्बर और पूरा पता—डाकखाना, जिला, आदि—** साफ साफ लिखना चाहिए। नहीं तो हम उनकी शिकायत दूर करने में समर्थ न हो सकेंगे।

मनीआर्डरों के कूपन पर भी अपना **पूरा पता बिलकुल साफ साफ** लिखने की कृपा किया करें

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूडी ओल, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित ॥

सरकार सुलह करे!

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—पौष बदी ११, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, २५ दिसम्बर, १९२१ ई० | अंक १९

टिप्पणियां

दमन का उद्देश

एक मित्र सूचित करते हैं कि सरकार जो स्वयं-सेवक-दल का दमन कर रही है उसका कारण यह है कि उसे इस बात का इत्मीनान नहीं है कि ये दल शान्तिमय बने रहेंगे। आप आगे लिखते हैं—उनका खयाल है कि आज तो आपके आदेशानुसार वे शान्ति का अवलम्बन कर रहे हैं; परन्तु क्या ठिकाना किस दिन आपका या आपके उत्तराधिकारी लोगों का मन बदल जाय और स्वयं-सेवकों को शस्त्र देकर एक खासी सेना बना ली जाय और वह सरकारी फौज का सामना करने लगे।" एक दूसरी बात जो उन्होंने सुझाई है वह यह है कि सरकार सशस्त्र बलवे की अपेक्षा आपकी इस अहिंसा से ज्यादह भय खाती है। पुलिस अफसर परेशान हैं। लोग उलट कर हाथ उठाते नहीं। ऐसों को जब सताने का हुक्म मिलता है तो उनपर पुलिस का हाथ ही नहीं उठता। कुछ अफसरों ने तो यह कह तक डाला कि 'भाई, यह अहिंसा तो बडी आफत है। इसका मुकाबला करना बडा कठिन है। हां, खून-खराबी की बात तो समझ में आ जाती है और हम उसकी तनिक भी परवा नहीं करते। लेकिन ऐसे शख्स पर हाथ उठाते समय जो खुद खामोश रहता है, मनुष्य अपने को कितना गिरा हुआ अनुभव करता है!" सच बात तो यह है कि ये दोनों बातें ठीक हैं। सरकार को भविष्य का डर है और इसलिए वह ऐसा उपाय करना चाहती है जिससे लोग शक्ति संग्रह कर के सशस्त्र प्रतिकार न करने लगें। वह हमारे इस शांतिमय बल को बढता हुआ देख कर भी घबडाती है। संक्षेप में, वह न तो हमें पुरुष ही बनने देना चाहती है न स्त्री ही। वह तो हमारे नपुंसकलिंग में शुमार होने से ही खुश है।

बडे लाट का हाथ

आज भारतवर्ष में हिंदुस्तानियों को सदा के लिए मनुष्यत्व-हीन कर डालने की जो साजिश हो रही है उसमें, मुझे शक होता है कि, लार्ड रीडिंग भी शामिल हैं। पर एक मित्र ने एक दूसरी बात सुझाई है। वे कहते हैं कि हां, लार्ड रीडिंग उन धमकियों के लिए तो जरूर जिम्मेवार हैं जो हाल ही में उन्होंने अपने भाषणों के द्वारा दी हैं; परन्तु उन्हें इस बात की खबर नहीं होगी कि हमारे मातहत अधिकारी इस तरह कानून-कायदे का खून कर डालेंगे, अथवा उनका कुछ बस न चला हो—नीचे के अधिकारियों ने उनकी इस इच्छा की कि कानून की मर्यादा का उल्लंघन जरा भी न किया जाय, परवाह न की हो। लेकिन मैं इन दोनों बातों को नहीं मान सकता। लार्ड रीडिंग यदि लोगों की बे-आईनी को न्यायानुसार दबाने का प्रयत्न करते हों तो वे अपनी इस हलचल की गति का जिसे वे 'दमन' कहने तक नहीं देना चाहते अच्छी तरह मनन करें और उसे विधिवत् चलावें। दमन में उनके मातहत अफसरों का स्वार्थ है। अतएव वे यदि उनके हाथ से निकल गये हों तो लार्ड रीडिंग को तुरन्त इस्तीफा दे देना चाहिए। कम से कम वे जाहिरा तौरपर ऐसी बेकायदा कारवाई और मार-पीट तथा हमलों की निन्दा अवश्य करें—'कठिन समय' की दुहाई देकर उनके बचाव की कोशिश तो हरगिज न करें।

इस सम्बन्ध में एक बात मैंने सोची है। हां, बडे लाट साहब हमारी उच्च आकांक्षाओं से हमदर्दी रखते हैं। वे अपने देश-भाइयों की स्थिति से खूब वाकिफ हैं। अतएव वे इस बात की आवश्यकता समझते हैं कि सुलह करने के पहले हमारी खूब कडी परीक्षा कर देखें। सो वे कठोर दमन का प्रयोग कर के यह जांच लेना चाहते हैं कि हम उसे कहांतक सहने को तैयार है अर्थात् आजाद होने की हमारी इच्छा कहां तक सच है। इस तरह वे बतौर हमारे वकील के अपने मवक्किल का पक्ष मजबूत करके फिर किसी ठहराव पर आना चाहते हैं। तथापि मुझे अन्देशा है कि बात ऐसी नहीं हो सकती। मनुष्य-स्वभाव की यह रीति नहीं है। लार्ड रीडिंग बिल्कुल सोलहों आना स्वार्थ से खाली नहीं हैं। और यदि वे ऐसे हों तो ऐसी सरकार के यहां ठहर ही नहीं सकते जिसके वर्तमान संगठन के अनुसार प्रजा के दुख दूर हो ही नहीं सकते। अतएव मुझे अपनी इच्छा के अत्यन्त विपरीत यह अनुमान करने पर बाध्य होना पडता है कि लार्ड रीडिंग इस तरह भाषण-स्वातन्त्र्य तथा लोक-संस्थाओं का बल-पूर्वक गला घोंट कर भारतवर्ष को पौरुष-हीन करने का प्रयत्न कर रहे हैं। हां, यह मानने को मैं तैयार हूं कि वे जो कुछ कर रहे हैं वह यही समझ कर कर रहे हैं कि इसमें हमारा भला है और अभी हम सच्चे पुरुष और स्त्री कहलाने के योग्य नहीं हैं। पर लार्ड रीडिंग की आंखें शीघ्र ही खुल जायंगी। वे जो चाहें सो माना करें। उसके लिए हमें झगडने का कोई प्रयोजन नहीं। और न हमें चिन्ता ही करनी

की जरूरत है। हम तो बस सच्चे पुरुष और स्त्री की तरह अपना फर्ज अदा करें। फिर हम देखेंगे कि हर बात हमारे अनुकूल हो जायगी और हर आदमी हमारी तरफ झुक जायगा।

पहरे का हक

बम्बई वालों ने शराब की दूकानों से अपना पहरा उठा लिया है। यह देख कर सरकार ने सोचा होगा कि और तमाम जगहों पर भी ऐसा ही होगा। लेकिन पूना ने यह दिखला दिया है कि पहरा रखना हमारा हक है और बिना उचित कारणों के वह छोडा नहीं जा सकता। वहां पहरा रखने की मुमानियत का हुक्म निकलते ही, केसरी के सम्पादक श्रीयुत केलकर लिखते हैं कि, "हमने इस हुक्म को तोडने का निश्चय किया। आज सुबह जिला मजिस्ट्रेट को नोटिस दे दिया गया है कि हम फलां जगह पर जाकर फलां वक्त आपकी आज्ञा को भंग करेंगे। पहली टुकडी में मैं, मेरा लडका, श्रीयुत भोपटकर, (संपादक लोकसंग्रह) श्रीयुत गोखले (सम्पादक मराठा), श्रीयुत परांजपे (सम्पादक स्वराज्य) तथा १५-१६ दूसरे सज्जन रहेंगे। हमारे पीछे और लोग भी टुकडियां बना बनाकर आवेंगे। देखें, पूना इस विषय में क्या कर दिखाता है।" निश्चय के अनुसार वे लोग वहां गये और गिरफ्तार भी कर लिये गये। पर सिर्फ उनके नाम लिख कर छोड दिये गये। उसके पश्चात् एक के बाद एक टुकडी वहां जा रही है और उसी तरह नाम लिखा कर छोड दी जाती है। निश्चय ही महाराष्ट्र कष्ट-सहन में कभी पीछे नहीं रह सकता। महाराष्ट्र में जैसे साहसी और कठिन कार्यकर्ता हैं वैसे सारे भारत में नहीं हैं। देश में चारों ओर पहली पंक्ति के नेता बडे से बडे जोखों को सिर पर ले रहे हैं। यह दृश्य बडा कुतूहल-प्रद है। श्रीयुत केलकर तथा उनके साथियों को तो जेल का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ; परन्तु अजमेर के लोग उनसे अच्छे रहे। वहां तो बस मनाही का हुक्म निकलते ही कार्यकर्त्ता लोग दौड पडे, चुनौती का स्वागत किया और अपना 'धार्मिक हक' समझ कर पहरा देने लगे। कुंवर चांदकरण शारदा लिखते हैं कि-"तमाम शराब की दूकानों पर स्वराज्य-सेना के स्वयं-सेवक तैनात किये गये। सरकार की तरफ से भी हर दूकान पर पुलिस के जवान तथा घुड-सवार तैनात किये गये। उन्हें स्वयं-सेवकों को गिरफ्तार कर लेने का हुक्म भी दे दिया गया था। एक दल के पकडे जाते ही दूसरा दल वहां जा पहुंचा। पुलिस ने सिर्फ १० स्वयं-सेवकों को गिरफ्तार किया। सरसरी में उनपर मामला चलाकर उन्हें पौने पांच महीने की सख्त कैद की सजा दी गई।" उन्होंने अपनी सफाई नहीं दी। इसके बाद अजमेर से गिरफ्तारी की खबर नहीं आई। जहां बिना दंगा-फसाद के तथा दूकानदार और शराब पीनेवालों के प्रति दुर्भाव न रखते हुए, पहरा रक्खा जा सकता हो वहां तो वह हमारा नैतिक कर्तव्य ही है। शराब-खोरी बन्द करने में इसने जितनी सहायता दी है, उसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। अभी उस दिन करमसद (गुजरात) के ईसाइयों तथा हिन्दू ढेडों (चमारों) ने मुझसे बडी कृतज्ञता के साथ कहा कि आपके पहरे के बदौलत हमारी शराब पीने की आदत छूट गई। बम्बई ने पहरा देने का अपना हक कुछ समय के लिए खो दिया है। उसने ता० १७ को पारसियों की शराब की दुकानें बुरी तरह १८ और तोड-फोड डालीं और ईसाइयों और पारसियों के साथ बडा बदसलूक किया। तीन रोज तक बराबर यही हिंसा-काण्ड होता रहा। उसीका यह फल है। मैं आशा करता हूं कि जहां कहीं पहरा रखने की तजवीज की गई हो वहां यह काम ऐसे भाई और बहनों के सिपुर्द किया गया होगा जिनके चाल चलन पर कोई उंगली नहीं उठा सकता तथा वे अपना काम बिल्कुल मित्र-भाव से करते होंगे। हम पशुबल का प्रयोग करके लोगों को नीतिमान् बनाना नहीं चाहते।

नौकरशाही की हरकतें

सिन्ध, बिहार, आसाम, और लाहौर में नौकरशाही के द्वारा मारपीट, खाना-तलाशी आदि भिन्न भिन्न प्रकार के दुर्व्यवहारों, ज्यादतियों और बेकानूनी कार्रवाइयों का वर्णन करके उन पर श्री गांधीजी अपने विचार "यंग इंडिया" में इस प्रकार प्रकट करते हैं—

"इस वर्णन से यह मालूम होता है कि यदि हम इस व्यवहार को सहन करते हुए ज्यों के त्यों बने रहे तो स्वराज्य हमारे हाथ में रक्खा है। बस, हम बहादुरों की तरह उसका सामना करते रहें-अपनी तबीयत को जरा भी न भडकने दें। यह शासन-प्रणाली तो अब मौत के दरवाजे पर खडी है। उसके संचालकों को कहने दीजिए-"हमने कोशिश कर देखी। लेकिन काम न बना।" जब पतंग दीपक के आसपास जोर-शोर से चक्कर लगाता है तब जानना चाहिए कि वह निश्चय ही मौत के मुंह में जा रहा है। ऐसा ही हाल इस सरकार का हो रहा है। यह भी खुद अपने पशु-बल के बोझ से दब कर मर ही जाना चाहती है। किसी के घर की या सभा-समाजों के दफ्तरों की तलाशी लेना पागल-पन नहीं तो क्या है? क्या नौकरशाही नहीं जानती कि ऐसी जगह चीजें छुपा कर नहीं रक्खी जाती हैं? क्या वह नहीं जानती कि असहयोगियों के यहां दबाव-छिपाव नहीं रक्खा जाता? अच्छा, तो इन तलाशियों का उद्देश क्या था? यही कि लोगों को दिक किया जाय। वे आराम से न रहने पावें। एक सज्जन कहते हैं कि जेलों में तो पहले ही जरूरत से ज्यादा भीड हो गई है। जेल के कर्मचारियों को खबर भी नहीं थी कि इतने लोग धडाधड जेलखानों में ठूंसे जायंगे। वहां अब न तो इतनी जगह है और न इतना काम ही। तब क्या किया जाय? भय दिखाने का कुछ दूसरा उपाय सोचना लाजिमी था। सो हमें इससे अधिक मार-पीट खाने के लिए तैयार रहना चाहिए। कुछ लडकों को बेंतें मारी गई। यह क्या कम ज्यादती है? मैं अब भी आशा करता हूं कि यह बात असत्य होगी। मैंने यह खबर 'ट्रिब्यून' में पढी है। इस पत्र की गणना भारत के अत्यन्त प्रामाणिक पत्रों में है। इस खबर से फौजी कानून के राज्य की याद आ जाती है। उन दिनों लाहौर में लोगों को कोडे लगाये गये थे। पहले तो यह बात कुबूल नहीं की गई; लेकिन पीछे से कर ली गई। पाठकों को याद होगा-कर्नल जानसन ने कहा था कोडे फटकारना बडी अकसीर सजा है। जब दूसरी सजा बेकार साबित हो जाती है तब यह काम देता है। इससे सजा का मतलब बडी जल्दी और अच्छी तरह से पूरा होता है। खैर। यह खबर चाहे सच हो या झूठ। हमें तो बुरी से बुरी बात के लिए तैयार रहना चाहिए। आजादी के लिए चाहे कैसे ही और कितने ही कष्ट क्यों न भोगना पडें! उनके लिए आजादी मंहगी नहीं है। यदि हम उसके लिए भारी से भारी कीमत अदा करेंगे तो वह हमें अधिक से अधिक प्यारी मालूम होगी।

बारपेटा (आसाम) में एक मन्दिर पर कब्जा कर लिया गया। ऐसा करना लोगों को व्यर्थ के लिए गहरा उत्तेजित करना है। लेकिन ऐसी गहरी उत्तेजना के समय भी लोगों को अहिंसाव्रत से एक इंच भी न डिगना चाहिए। याद रखिए, हमने अहिंसा की प्रतिज्ञा बिना किसी शर्त के की है। हमें हर हालत में उसका पालन करना होगा। किसी के जबरदस्ती घुस जाने से कोई मन्दिर अपवित्र नहीं हो सकता। वह तो एक ही तरह से अपवित्र हो सकता है-केवल उसके पुजारियों की अयोग्यता से। मौलाना अबुल

कलाम आजाद के शब्दों में हम इससे भी बड़े मन्दिर, इस भारत, का ध्यान करें। अरे, यह तो सदियों से हमारी गुलामी के मारे अपवित्र हो रहा है। पर हम इतने बरसों से इस अपवित्रता को देखते आ रहे हैं। तब फिर हमें इन स्थानिक मंदिरों में नौकरशाही के अनधिकार प्रवेश पर तथा उनके द्वारा उसका दुरुपयोग होने पर चिढ़ उठने या बिगड़ जाने की जरूरत नहीं है। क्या हम मामले में भी लार्ड रीडिंग यह कहने के लिए तैयार हैं कि क्या करें, हाकिम बेचारों को बड़े कठिन समय में पेचीदा काम करना पड़ते हैं। ऐसे समय में अक्सर ऐसा होही जाता है।

बाबू भगवानदास

जब काशी विद्यापीठ के अध्यापक किपलानी और उनके विद्यार्थी पकड़े गये, मैंने अपने मित्रों से कहा था "क्या अच्छा हो, यदि बाबू भगवानदास गिरफतार हो जायं। आखिर अ० किपलानी बनारस के रहने वाले हैं। लेकिन बाबू भगवानदास नहीं पकड़े जायंगे।" उस समय मुझे यह पता नहीं था कि बाबू भगवानदास ही उस पुस्तिका के रचयिता थे जिसे अ० किपलानी बेंच रहे थे। पुस्तक लिखने में लेखक ने बड़ी सावधानी से काम लिया था। दूसरे ही दिन उनके पुत्र का शुभ-संवाद मुझे मिला कि बाबूजी पकड़े गये। गिरफ्तारी पर वे सन्तुष्ट थे। बाबू भगवानदास असहयोगी हैं। ऐसे असहयोगी जो मनसा, वाचा, कर्मणा हमेशा हिंसा से दूर रहते हैं। आप संस्कृत-साहित्य के अच्छे पण्डित हैं। बड़े ही धर्मनिष्ठ हैं। जमींदार हैं। श्रीमती बेजेंट यदि सेंट्रल हिन्दू-कालेज की जन्मदात्री हैं तो बाबू भगवानदास उसके निर्माता हैं। अतएव उनकी गिरफतारी एक ऐसा बलिदान है जो ईश्वर को रुचिकर हुए बिना नहीं रह सकता। और वह पतित-पावनी विश्वनाथ-पुरी इससे अच्छा बलिदान और क्या करती? अखबारों के पढ़ने वाले लोग जानते ही होंगे कि बाबू भगवानदास महासभा के द्वारा स्वराज्य की योजना तैयार कराने का प्रयत्न कर रहे थे। उसके लिए आप स्वयं भी दीर्घ परिश्रम कर रहे थे। आपने मुझे कितने ही सूचक प्रश्नों की एक लम्बी सूची भेजी है, जिस पर मैं इन वर्तमान घटनाओं के कारण अभीतक कोई कार्रवाई न कर सका। दंगा-फसाद न होने देने की वे बड़ी चिन्ता रखते थे। यदि उनकी गिरफतारी से भी सरकार की हिंसा-कांड को न्यौता देने की उत्सुकता का पता न चलता हो तो मैं नहीं कह सकता कि किस बात से चलेगा। मनुष्य के लिए यह बड़े भाग्य की बात है जो ईश्वर उसकी योजनाओं को अक्सर उलट-पलट देता है। और आजकल जो नित नई घटनायें हो रही हैं उनसे तो यह अधिकाधिक निश्चित होता जाता है कि भगवान् इस सरकार की तमाम योजनाओं को उलट रहा है। इतना होते हुए भी लोग शान्त बने हुए हैं।

द्राविड़ देश का बलि-भाग

मदरास और आन्ध्र-देश शनैः शनैः परन्तु निश्चय के साथ आगे बढ़ रहा है। कोई ताज्जुब नहीं यदि द्राविड़ लोग बंगाल की बराबरी पर आ जायं। बंगाल अभीतक १५०० आदमियों का बलिदान कर चुका है। द्राविड़ देश में भी, मद्यपान-निषेध के सम्बन्ध में, अकेले इरोद ने बहुत-कुछ कर दिखाया है। इसका पारितोषिक स्वरूप श्री० रामस्वामी नायकर को एक मास की सादी कैद की सजा दी गई है। इस छोटे से मुकाम पर पिछले पन्द्रह दिनों में ६९ आदमियों को सजायें ठोकी जा चुकी हैं। और अब श्रीमती नायकर तथा श्रीयुत नायकर की बहन ने पहरा रखने पर कमर कसी है। क्रिमिनल ला अमेंडमेंट एक्ट अभी हाल ही वहां जारी किया गया है। मद्रास के गवर्नर लार्ड विलिंग्डन ने अपनी नीति का खुलासा कर दिया है। सर हारकोर्ट बटलर की तरह वे भी 'कानून और व्यवस्था के प्रति आदर की रक्षा' करना चाहते हैं। अतएव, जहां अभी केवल मंद वायु के झोंके आते हुए दिखाई देते हैं तहां गिरफतारियों का खासा पूरा तूफान उमड़ पड़ना बहुत सम्भवनीय है। श्रीयुत राजगोपालाचारी (महासभा के एक मन्त्री) तीन मास सादी कैद की सजा पाचुके हैं और सुब्रह्मण्य शास्त्री के नाम समन पर मामला चलाया गया है। कार्रवाई प्रायः खतम हो चुकी है। श्री० राजगोपालाचारी ने अधिक से अधिक सजा चाही थी। उनके अस्वस्थ शरीर की चिन्ताओं का भार उनके मित्रों से हट कर कुछ समय के लिए जेलर के सिर पर चला गया। उनके अस्वास्थ्य से उनके साथियों को हमेशा चिन्ता बनी रहती है। जबसे असहयोग का श्रीगणेश हुआ है तबसे श्री० राजगोपालाचारी भी, पण्डित मोतीलाल जी की तरह, अपने शरीर को आराम नहीं लेने देते हैं। अब कांग्रेस के मन्त्रियों में अकेले डाक्टर अनसारी ही बच रहे हैं। लेकिन मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि उन्हें भी अपनी सुयोग्य सेवाओं के प्रतिफल का इन्तजार बहुत दिनों तक नहीं करना होगा। सरकार तो लोगों को इस अन्तिम घोषणा के लिए तैयार कर रही है कि कांग्रेस और खिलाफत कमिटियां गैर-कानूनी संस्थायें हैं। यह घोषणा हो जानेपर जो जो शख्स इन संस्थाओं से सम्बन्ध रखते हैं वे सब गिरफतारी के पात्र हो जायंगे। और ऐसी घोषणा कोई अजीब बात नहीं होगी। यदि महासभा को अपना शान्तिमय काम बराबर करने दिया गया तो वह निश्चय ही सरकार की जड़ को उखाड़ डालेगी-यह एक ऐसी आकस्मिक घटना है जिसका ध्यानतक सरकार सपनेमें भी नहीं कर सकती। महासभा यदि जीवित रहने के लायक है, तो उसे अपने मार्ग से इंच भर भी न हटना होगा और यदि वह इस कठिन कसौटी पर सच्ची उतरी तो इसका कारण सरकार की कृपा नहीं, बल्कि जनता पर स्वयं उसके अद्वितीय प्रभाव का फल है। इस दृष्टि से विचार करें तो सरकार की इस चुनौती के बाद कांग्रेस का जीवित रह जाना ही स्वराज्य है।

हार्दिक उद्गार

इस कष्ट-सहन की ज्वालाओं के बदौलत कुछ दिव्य विचार सुन्दर भाषा के वेष में प्रकट हुए हैं। आजतक कितने ही विचार पूर्ण भाषण हुए। कितने ही अभिनन्दन पत्र पढ़े गये। उनसे मेरे कानों को भी सुख हुआ, चित्त को भी आनन्द हुआ। परन्तु यह बात कुछ और ही है। लालाजी के घोषणा-पत्र को देखिए, पण्डित मोतीलाल जी के सन्देश को पढ़िए, या मौलाना अबुल कलाम के पैगाम को सुनिए, उनकी खूबियों पर मुग्ध हुए बिना कोई रही नहीं सकता। परन्तु हमारे सभापति महाशय के सन्देशों और लेखों में जितनी हृदयाकर्षता, जो तल्लीनता, जो फलोत्पादकता भरी हुई है वह किसी में नहीं। उनके ये छोटे छोटे सन्देश बड़े चटकीले हैं। ये सीधे उनके हृदय से आ रहे हैं। क्या अच्छा हो यदि कोई पुस्तक प्रकाशक इन्हें संग्रह कर के पुस्तक-रूप में प्रकाशित कर दे। परन्तु उनके एक सन्देश के दो वचन यहां उद्धृत करने के लोभ को मैं नहीं रोक सकता। ये प्रोफेसर जितेन्द्रलाल बनर्जी को दो साल की कैद की सजा का हाल सुनने पर लिखे गये सन्देश से लिये गये हैं। पहला वचन खुद जितेन बाबू के ही जोरदार बयान में है, जो उन्होंने अदालत में पेश किया है। वह इस प्रकार है—

"यदि अपनी आत्मा के पूरे बल और वेग के साथ अपने देश-भाइयों के लिए आजादी चाहना पाप है तो मैंने बेशक बड़ा भारी पाप किया है-ऐसा पाप किया है जो न माफी से मिट

सकता है न पश्चाताप से कष्ट सकता है और मुझे बड़ा हर्ष है कि मुझसे ऐसा पाप बन पड़ा। यदि अपने देश-बन्धुओं से यह कहना कि भाई ये गुलामी की बेड़ियां तोड़ डालो—अरे, ये हमारी मनुष्यता को नीचे गिरा रही हैं, ये उसकी बढ़ती को रोक रही हैं! गुनाह है तो मैं दुनिया में एक बड़ा भारी गुनहगार हूं और मुझे बड़ा आल्हाद होता है कि परमेश्वर ने मुझे ऐसा अपराध करने का साहस और दृढ़ता दी। और जिस तरह कि आजतक उस दयामय ने मुझे अपने अन्तःस्थित सत्य को शब्दों द्वारा प्रकट करने का साहस और सामर्थ्य प्रदान किया उसी तरह मुझे आशा है कि वह मुझे भविष्य में भी उन यातनाओं को सहन करने की शक्ति देगा जो मनुष्य के कुकर्म दे सकता है।"

और यह अंश देशबन्धु दास की अपील का अन्तिम अंश है—

"समझते हो, जितेन्द्रलाल बनर्जी क्या हैं? मैं विद्यार्थियों से कहता हूं, उनके जीवन के मर्म को समझो। शब्द उसे कैसे प्रकट कर सकते हैं? उनके वे काम, उनका वह जीवन, उनके बुद्धि और अन्तःकरण के सद्गुण, और इन सबका एक महान् आत्म-यज्ञ की सीमा तक पहुंच जाना ये सब जितनी अच्छी तरह से—जिस प्रभावशाली ढंग से उसे प्रकट कर रहे हैं—उसके आगे मेरे मुंह के शब्द फीके पड़ जाते हैं।

"मैं फिर पूछता हूं कि समझे, जितेन्द्रलाल बनर्जी क्या थे! मैं चाहता हूं कि कलकत्ते के विद्यार्थी यह जानें कि इस प्रश्न का उत्तर किस तरह दें। मैं अपनी पूरी हार्दिक लालसा से उनकी ओर देख रहा हूं। जितेन बाबू ने अपना सारा जीवन अपने प्रिय विद्यार्थियों के कल्याण के लिए अर्पण कर दिया। क्या आज यहां कोई ऐसा विद्यार्थी नहीं है जो उनके इस बलिदान का अर्थ बतावें? जोशीली बातों से नहीं, व्यर्थ के आंसू बहाकर नहीं, बल्कि उस काम को अपने सिर पर उठाकर, जो उन्हें इतना प्यारा था और खुद अपने को बलिवेदी पर चढ़ाकर उनके अंगीकृत कार्य्य का वेग बढ़ाते हुए।

"केवल जिन्दा रहना ही भला कोई जीवन है? क्या अच्छा हो जो मैं यह कह सकूं, 'यहां कलकत्ते के विद्यार्थी मनुष्यों की तरह जिन्दगी बसर करते हैं—वे जितेन्द्रलाल बनर्जी की तरह जीवित हैं। अब उनका शरीर तो कैद-खाने में है। क्या कलकत्ते के इतने विद्यार्थियों में ऐसा कोई नहीं है जो उनकी आत्मा की इस पुकार को सुनने का हृदय रखता हो?"

इन अपीलों को महज भावुकता के मद में ढकेल कर कोई इनका महत्व कम न समझें। अब, आगे, बंगाल की भावुकता को कोई हलकी बात न समझें—उसकी दिल्लगी न उड़ावें। बंगाल आज माता की पुकार पर दौड़ पड़ा है। उसपर मेरा दृढ़ विश्वास होते हुए भी खुद मैंने उससे इतनी आशा नहीं की थी। यह चमत्कार अकेले कलकत्ते या चटगांव में ही नहीं दिखाई दे रहा है; बल्कि उन सभी स्थानों पर है जहां जहां दमन ने अपना ज़ोर दिखाया है। कोरी अपीलों से अथवा महज भावुकता के वश कोई संसार में ऐसा कष्ट सहने को तैयार नहीं होता। बंगाल ने सिद्ध कर दिया है कि उसकी भावुकता में पुरुषार्थ भरा हुआ है।

(यंग इंडिया) मो० क० गांधी

कांग्रेस में "हिन्दी-नवजीवन"

कांग्रेस-हंगाम में "हिंदी-नवजीवन" का सालाना चन्दा प्रदर्शिनी के अहाते में (दुकान नं. १०६) जमा किया जाता है। फुटकर अंक भी वहां से मिल सकते हैं। व्यवस्थापक.

स्त्रियों का खादी बेचना

कलकत्ते में देशबन्धु दास की धर्मपत्नी श्रीमती वासन्ती देवी दास तथा देशबन्धु की बहन उर्मिला देवी सेन ने सड़कों पर घर घर जाकर खादी बेंचना आरम्भ किया है। दूसरे प्रान्तों में भी यही सिलसिला शुरू हुआ है। श्रीमती सरला देवी चौधरानी लिखती हैं—"मैं अभी शहर में जा कर यह तजवीज करने वाली हूं कि ४० स्त्रियां खादी बेंचने के लिए भेजी जायं। दो दो स्त्रियों का एक दल रहे और हर दल के साथ दो दो स्वयंसेवक हों। इस तरह ये २० दल २० भिन्न भिन्न रास्तों पर भेजे जायं।' मदरास में भी ऐसी ही व्यवस्था हो रही है। मेरी राय में सूत कातने के अलावा यह स्त्रियों के लिए एक अच्छा पेशा है। इससे खादी का प्रचार भी होगा। व्यर्थ के अभिमान तथा व्यर्थ की लज्जा को दूर करने की तैयारी का यह बहुत बढ़िया साधन है। और यह पुलिस को भी खासी बिना खटके की चुनौती है कि यदि उसकी हिम्मत हो तो गिरफ्तार कर ले। परन्तु यह रवाज प्रचलित तभी हो सकता है जब अच्छे अच्छे घर की प्रौढ़ स्त्रियां इसका सूत्र-संचालन करें। साथ ही किसी प्रकार की धूम-धाम न होना चाहिए। यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं है कि बेजा दबाव डाल कर उनसे खादी न खरीदवाई जाय। उनको तंग करने की जरूरत नहीं। हमारा काम तो सिर्फ इतना है कि हम उनके दरवाजे यह उपयोगी राष्ट्रीय कपड़ा ले जायं-उनकी मर्जी हो तो खरीदें, न मर्जी हो न सही।

(यंग इंडिया)

स्त्रियों की महिमा

ख्वाजा साहब की गिरफ्तारी पर उनका तथा उनकी धर्मपत्नी खुरशेद बेगम का अभिनन्दन करते हुए श्री-गांधीजी 'यंग इंडिया' में लिखते हैं—"बेगम महम्मद अली ने अंगोरा-फण्ड के लिए जहां जहां से रुपया प्राप्त किया है वहां से शायद मौलाना साहब भी न ले पाते। यह बात मैं पहले ही कह चुका हूं कि उनका भाषण तो मौलाना साहब से भी बढ़िया होता है। अब मैं पाठकों को एक रहस्य और सुनाता हूं। बंगाल में आज यह आग किसने सुलगाई? श्रीमती वासन्ती देवी और उर्मिला देवी ने। वे खुद गली गली खादी बेंचती फिरीं। यह उनकी गिरफ्तारी का प्रभाव है जो बंगाल का ध्यान इस तरफ गया। देशबन्धु दास के प्रचण्ड आत्मत्याग ने भी ऐसा चमत्कार नहीं दिखाया। मेरे पास एक पत्र वहां से आया है। उससे यही मालूम होता है। यह बात गलत नहीं हो सकती। क्योंकि स्त्री क्या है? वह साक्षात् त्याग-मूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काम में जी-जान से लग जाती है तो वह पहाड़ को भी हिला देती है। हमने अपनी स्त्रियों का बड़ा दुरुपयोग किया है। हमसे जहांतक हो सका हमने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। लेकिन परमात्मन्, तुझे धन्यवाद!—यह चरखा उनके जीवन को बदल रहा है। जरा सरकार हमारे रहे सहे तमाम नेताओं को जेल का सौभाग्य प्राप्त तो करा दे, फिर देखिए कि भारत की देवियां किस तरह मैदान में आती हैं और पुरुषों के अधूरे काम को अपने हाथों में लेकर उनसे भी अधिक उमंगी और खूबी के साथ उनका संचालन करती हैं!"

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में श्री-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, पौष बदी ११, सं. १९७८.

राउंड टेबल कान्फ्रन्स

भिन्न भिन्न प्रकार के विचार वाले पुरुष जब किसी एक ऐसी बात का निपटारा करने के लिए बैठते हैं जो सबके लिए आवश्यक होती है तब उसे "राउंड टेबल कान्फरन्स" कहते हैं।

सरकार क्या सोच रही होगी, इस बात की छानबीन के लिए 'यंग इंडिया' में बहुत कम लिखा जाता है। उसका विचार करना तो व्यर्थ ही है। किन्तु चूंकि आजकल समाचार-पत्र इस कान्फरन्स के विषय में चर्चा कर रहे हैं तथा उसके विषय में वाद-विवाद करते हुए अपनी अपनी राय जाहिर कर रहे हैं, मुझे भी अब यह उचित मालूम हो रहा है कि भारत में यह चारों ओर जो नाटक खेला जा रहा है उसके नायक की मानसिक स्थिति का कुछ निरीक्षण 'यंग इंडिया' में भी किया जाय। मेरा तो ख्याल यह है कि कान्फरन्स का होना तबतक निरर्थक ही है, जबतक कि बड़े लाट के दिमाग से यह भ्रम दूर नहीं हो जाता कि असहयोग तो कुछ भूले-भटके हुए उत्साही लोगों का खेल-मात्र है। यदि उनकी यह इच्छा हो कि उनके साथ सहयोग किया जाय और देशमें शांति-सन्तोष फैले तो उन्हें चाहिए कि वे असहयोगियों को शांत करें—उनसे सुलह करे। उन्हें यह जान लेना चाहिए कि असहयोग स्वयं कोई रोग नहीं है। यह तो एक रोग का मुख्य लक्षण है। खास रोग तो भारत की जनता पर जो तीन प्रकार से मर्माघात किया गया है वही है। और जबतक उस रोग की जड नहीं काटी जायगी तबतक इन ऊपर के सब उपायों से रोगी को जरा भी चैन नहीं पडने की। खिलाफत और पंजाब के मामलों का उचित निपटारा और जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा तैयार की गई योजना के अनुसार स्वराज्य की मांग पूरी करना, ये बातें यदि छोड दी जायं तो चाहे भले ही दमन किसी प्रकार के निपटारे का एक आसान और सीधा साधन दिखाई दे। हां, मुझे मंजूर है कि कोई भी बड़े लाट ऐसे आन्दोलन को भरसक न बढने देंगे। मैं मानता हूं कि जिस बात के लिए सविनय कानून-भंग शुरू किया गया हो उसे मिटाने को यदि वे तैयार नहीं हैं तो उन्हें सशस्त्र बलवे की तरह सविनय कानून-भंग को भी दबाना ही होगा। सत्य के कोरे सिद्धान्त का तबतक कुछ भी महत्व नहीं रहता जबतक वह उन मनुष्यों में जो उसकी हिमायत के लिए अपने प्राणों का भी यज्ञ करने को तैयार रहते हैं, मूर्त स्वरूप नहीं प्राप्त कर लेता। हम पर होनेवाले अन्याय और अत्याचार दुनिया में अभीतक इसीलिए टिके हुए हैं कि हम उस सत्य के सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं। अपने इस दावे को सिद्ध करने का एक ही मार्ग है, वह यह कि हम अपने जिम्मे किये गये काम के लिए हर तरह के कष्ट सहने को तैयार रहें। और हम तो इस उच्च कर्तव्य की साधना की बहुत-कुछ मंजिल तय भी कर चुके हैं। किन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि हमने इस बात का कोई निश्चायक प्रमाण अभी दिया है। यदि कैद में कोडों की मार पडे और दूसरी अनेक प्रकार की यातनायें सहनी पड़ें, तब, कौन कह सकता है कि हम जेल से भी न घबड़ा उठेंगे? कौन जानता है कि फांसी पर लटक जाने के लिए हममें से कितने आदमी तैयार हैं?

इसलिए मेरा तो ख्याल यह है कि ऐसी कान्फरन्स से जिसमें कि सरकार के भी प्रतिनिधि हों, लाभ तभी होगा जब वह पेट भर के असहयोगियों की शक्ति की जांच कर चुकेगी और उनकी कड़ी परीक्षा ले चुकेगी।

किन्तु असहयोग लोक-मत तैयार करने का एक उपाय है। इसलिए यदि सहयोगी और असहयोगियों की कान्फरन्स हो तो मैं जरूर उसका स्वागत करूंगा। मुझे यकीन है कि वे भी खिलाफत और पंजाब के अन्यायों और अत्याचारों का परिमार्जन चाहते हैं। मैं यह भी जानता हूं कि जैसे असहयोगी देश के लिए स्वतंत्रता चाहते हैं वैसे ही वे भी चाहते हैं। सरकार की इस दमन-नीति का निषेध करीब करीब सभी नरम-दल वाले समाचार पत्रों ने किया है। यह देखकर मुझे बड़ा संतोष हुआ। इससे कम की मैंने आशा भी नहीं की थी। मैं कह सकता हूं कि यदि असहयोगी आत्मसंयमी बने रहें, हिंसा से दूर रहें, अपने विरोधियों के प्रति कुवचनों का प्रयोग न करें, तो एक एक सहयोगी असहयोगी हुए बिना न रहेगा। यही क्यों, अंग्रेज-भाई भी असहयोगियों के दल में आ मिलेंगे और सरकार को हमारी शरण लेनी होगी। फिर वह इसके सिवा और कर ही क्या सकती है। असहयोग की इस विधि का परिणाम यही हो सकता है। इसी उद्देश से वह आरंभ भी किया गया है और उम्मीद है कि यही होगा भी। इसके बदौलत विरोध और अनबन कम ही होते हैं। और यदि आज उसका परिणाम विपरीत दिखाई दे रहा हो तो उसका कारण यही है कि असहयोगी सिर्फ अभी अभी यह मानने लगे हैं कि केवल कार्य में ही अहिंसा होना काफी नहीं, वाचा और विचार का भी अहिंसामय होना उतना ही आवश्यक है। असहयोगी के लिए तो शत्रु के प्रति भी बुरे भावों को दिल में आने देना अनुचित है। हमारे विरोधियों को सबसे भारी आशंका तो यही है कि इस अहिंसा के आवरण में हिंसा का उद्भव असंयत-रूप से छिपा हुआ है। उन्हें हमारी अर्थात् हममें से अधिकतर लोगों की हृदय-शुद्धि पर विश्वास नहीं है। उन्हें तो उसमें गोलमाल और सर्वनाश के सिवा कुछ दिखाई ही नहीं देता। इसलिए यह दमन तो हमारे लिए एक ईश्वरीय वरदान-रूप होकर ही आया है। यह उनको और हमको दोनों को दिखा रहा है कि जनता पर हमारा इतना असर हो गया है कि उत्तेजना देने लायक परिस्थिति में भी वह शान्त बनी रह सकती है। किन्तु हमारे इस संयम की अभी इतने अधिक समय तक परीक्षा नहीं ली गई है कि जिससे हम यह समझ लें कि यह शांति हमेशा ऐसी ही रह सकेगी। अब भी हमारे दिल में धुकधुकी लगी ही रहती है। सियालकोट के लोगों ने आखिर रास्ता छोड ही दिया—फिर वह चाहे कितना ही थोडा क्यों न हो। ऐसी छोटी छोटी कितनी ही गलतियां हमसे हो चुकी हैं जिनसे यह मालूम होता है कि अभीतक हमको इस बात का कि दूसरों के जान-माल की रक्षा करना कितना आवश्यक है इतना ज्ञान नहीं हो गया है कि जिससे बाहरी आदमी के हृदयपर भी प्रभाव पडे और उसके चित्त में इस आन्दोलन के प्रति विश्वास और श्रद्धा उत्पन्न हो जाय। अतएव साधारण कारणों के लिए तथा असहयोगियों का ठीक ठीक स्वरूप दिखाने के लिए सहयोगियों से मिलने के हरएक प्रसंग का मैं अवश्य स्वागत करूंगा। सरकार ने खुद असहयोग को ही दबाने का इरादा जाहिर कर के अपने सच्चे स्वरूप को अधिक स्पष्टतया प्रकट कर दिया है। अबतक वह हिंसा

के तथा उससे सहानुभूति रखने वालों के या उसके लिए उत्तेजित करने वालों के दमन की कोशिश कर रही थी तबतक तो उसका करना ठीक था। इसलिए मुझे तो कोई शक ही नहीं है कि सहयोगी भी सरकार के इस पागलपन के-विचार-प्रकाशन को तथा अपने दुखदर्द को दूर करने के उद्देश से उठाये गये आन्दोलन को दबाने के इस निरर्थक प्रयत्न के-खिलाफ आवाज उठावेंगे। किन्तु मैं अपने मित्रों को यह चेतावनी दिये देता हूं कि जबतक वे यह यकीन नहीं कर लेते कि सरकार सचमुच पश्चात्ताप कर रही है और जनता के दुखों के साथ सहानुभूति रख रही है तबतक वे ऐसी कान्फ्रन्स का खयाल न करें। शाहजादे के स्वागत के बहिष्कार तथा सार्वजनिक सभायें करने के अधिकार, या स्वयंसेवक-दल के संगठनों के विषय में यह कान्फरन्स तबतक न की जानी चाहिए जबतक कि इन संस्थाओं का उद्देश हिंसा करना नहीं है। स्वागत का बहिष्कार तो रुक नहीं सकता और तबतक होना ही चाहिए जबतक कि जनता की इच्छायें, सार्वजनिक सभायें तथा वे संस्थायें पद-दलित की जायेंगी जो हमारे ऐसे अत्यंत साधारण अधिकार हैं जिनके विषय में किसी प्रकार के वाद की जरूरत ही नहीं। हमें उन अधिकारों के लिए झगडना ही होगा।

साथ ही यह भी ध्यान में रहे कि असहयोगी अभी उस प्रकारका सविनय कानून-भंग नहीं कर रहे हैं जैसा कि वे चाह रहे हैं। सार्वजनिक सभायें करने के तथा उनके संगठन के लिए वे जो आग्रह दिखा रहे हैं उसे सविनय कानून-भंग के नाम से विभूषित न करना चाहिए। असहयोगी तो अभी सिर्फ बचाव में ही लगे हुए हैं। अभी उन्होंने आक्रामक स्वरूप तो आरम्भ भी नहीं किया है, जोकि पूरी तरहसे अहिंसात्मक परिस्थिति हो जाने पर वे अवश्य धारण करने वाले हैं। सरकार ने उन्हें अपनी शक्ति की परीक्षा का यह मौकाकर उनपर अनुग्रह ही किया है।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

सरकार सुलह करे!

लार्ड रोनाल्डशे (बंगाल के लाट) ने धारा-सभा में जो भाषण किया है उसे मैंने पढा। उसमें मेल-मिलाप की जो बातें कही गई हैं वे तो ठीक हैं, वे तो मुझे अच्छी लगीं परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि वह भ्रमोत्पादक है। उनके भाषणों के जो अंश खुद ही आलोचना के योग्य हैं उनपर मैं यहां टीका-टिप्पणी नहीं करूंगा। मैं तो सिर्फ यह कह देना चाहता हूं कि यह वर्तमान स्थिति खुद लार्ड रोनाल्डशे की तथा वाइसराय की कृति का फल है। मैं हृदय से चाहता हूं कि मैं भारत-सरकार तथा प्रांतीय सरकारों को इस सन्देह की दृष्टि से न देखूं कि वे लोगों के साथ टक्कर लेने के लिए आतुर हो रहे हैं। परन्तु अबतक मैंने जो कुछ पढा और सुना है उससे मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि मेरे सन्देह के लिए अवश्य कारण मौजूद हैं। हां, मैं इस बात को नहीं छिपाता कि कुछ लोग थोडा-बहुत दबाव डालते होंगे और डराते-धमकाते भी होंगे; परन्तु मैं यह जोर के साथ अस्वीकार करता हूं कि १७ नवम्बर को उस अद्भुत हडताल के दिन कलकत्ते में वहां की महासभा या खिलाफत समितियों के द्वारा अथवा उनकी तरफ से किसी भी प्रकार के डर और दबाव की तैयारी की गई और लोग डराये या धमकाये गये। बल्कि, इसके विपरीत, मुझे तो निश्चय होता है कि इन संस्थाओं का प्रभाव हर तरह के डर और दबाव से बचने में ही काम आता था। हां, इसमें नैतिक दबाव अवश्य था। पर कोई भी महान् आन्दोलन उससे बच नहीं सकता। लेकिन यह बात तो साधारण बुद्धि रखने वाले की भी समझ में आ जायगी कि ऐसी सोलहों आने हडताल,-जैसी कि १७ नवम्बर को कलकत्ते में हुई थी-महज डर और दबाव से होना असम्भव है। पर, अच्छा, मान लीजिए कि डर और दबाव से काम लिया गया था। तो इसके लिए स्वयंसेवक-दलों को छिन्न विच्छिन्न करने की, सार्वजनिक सभायें रोकने की और ऐसे ऐसे कानून जारी कर देने की क्या जरूरत थी जो मौत की गोद में पडे हुए आखिरी सांस ले रहे थे? डर और दबाव का कोई सबूत भी दिया होता। मिसाल भी तो दी होती! हां, कसम खाने को बंगाल के बडे लाट साहब ने कलकत्ते में एक जगह तलवारों और गुप्तियों का आविष्कार किया है। यह देख कर मुझे बडा दुःख हुआ। पर इससे क्या बडी बडी सार्वजनिक संस्थाओं पर धब्बा लग सकता है? पण्डित मोतीलाल नेहरू आदि नेताओं की गिरफ्तारी पर प्रयाग में कैसी घोर हडताल हुई थी! वहां लोगों को किसने डराया-धमकाया था? बल्कि कहा जाता है कि उलटा सरकारी नौकरों ने ही दूकानदारों पर दूकानें खोलने के लिए बेजा दबाव डाला था और गाडीवाले भी तंग किये गये थे। फिर भी वहां अद्वितीय हडताल हुई। फिर लाट साहब फरमाते हैं-" यदि हम यह मानें कि इन घटनाओं से यही सूचित होता है कि लोग सचमुच तहे दिल से अपनी उन्नति चाहते हैं तो उसके लिए अनुकूल परिस्थिति होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में यों कहें कि किसी भी कान्फ्रेंस के लिए दोनों ओर से शांति होना पहली आवश्यक बात है। यह तो सबको मानना पडेगा। यदि अ-सहयोग के मुख्य मुख्य नेता यह निश्चय दिलाने के लिए तैयार हों कि हां, यही बात दरअसल है, तब मैं कहूंगा कि हमें भी ऐसी स्थिति दिखाई देना चाहिए थी कि जिससे कि सरकार को अपनी बात पर पुनर्विचार करना ठीक जंचता। लेकिन एक बात है। कोरी बातें नहीं काम भी वैसा ही होना चाहिए। यदि मुझे इत्मीनान हो जाता कि लोग आम तौर पर कान्फ्रन्स करना चाहते हैं और असहयोग के प्रधान नेता लोग उसके अनुसार बरतने को तैयार हैं तो मैं अपनी सरकार को यह सिफारिश करता कि अब इस बदली हुई स्थिति के अनुसार कार्यवाही करना चाहिए।" यह कथन अत्यन्त भ्रमोत्पादक है। इसमें जहां जहां 'असहयोग के नेता' शब्द आये हैं वहां वहां यदि ' सरकार " शब्द रख दिया जाय और यदि यह सारा वक्तव्य किसी असहयोगी के मुंह से निकले तो उससे सच्ची स्थिति का ज्ञान हो सकेगा। सच पूछिए तो असहयोगियों को तो कुछ भी करने की जरूरत नहीं है; क्योंकि उन्होंने कोई काम बिना सोचे-समझे नहीं किया है। वे तो जरूरत से ज्यादा सावधानी से काम ले रहे हैं। लोग आक्रामक सविनय कानून-भंग शुरू करने के लिए कितने उत्सुक थे? किन्तु बम्बई के उपद्रवों के कारण उनकी इच्छाओं को जबरदस्ती दबाना पडा। पर आजकल सविनय कानून-भंग का प्रयोग भी बहुत गलत अर्थ में हो रहा है। मैं दावे के साथ कहता हूं कि असहयोगी लोग आजकल जो कर रहे हैं वही सहयोगी भी कल ही ऐसी परिस्थिति प्राप्त होने पर करने लगेंगे। जब भारत-सरकार या प्रांतिक सरकार हमारे राजनैतिक जीवन और आन्दोलन को नष्ट करने पर तुल जाय- फिर वह चाहे कितना ही शांतिमय क्यों न हो, तब क्या हमें अपनी शक्तिभर ऐसे प्रयत्न का विधिवत् प्रतिकार न करना चाहिए? मुझे तो इससे अधिक विधिवत् कोई बात नहीं दिखाई देती कि हम अपने स्वयं-सेवकों की प्रवृत्ति हिंसा की ओर से हटाने की की कोशिश करते हुए सार्वजनिक सभायें करते रहें और ऐसा करने का जो फल भोगना पडे, उसे खुशी से भोगें। क्या सरकार की

आपत्तियों के मुकाबले में अपने प्रारम्भिक अधिकारों की रक्षा करते हुए सैकडों जवानों का तथा बूढे आदमियों का अपने बचाव के लिए बिना कुछ भी कहे-सुने, बगैर शिकायत किये, सरकार के सजा देने के भय के होते हुए भी, चुपचाप जेल चला जाना उनकी कानून का आदर करने की प्रवृत्ति का काफी परिचायक नहीं है। इसलिए अगर किसी को कान्फरन्स के लिए तथा अंतिम निपटारे के लिए अपनी सची सची इच्छा जाहिर करने की जरूरत है तो वह सरकार को ही है। सरकार के लिए आवश्यक है कि वह अपने को उस रास्ते से संभाले, जिसपर कि दमन उसे ले जा रहा है। अब तो असहयोगियों के कान्फरन्स में शामिल होने की आशा करने के पहले सरकार को ही अपने शुद्ध हेतु के विषय में अपनी प्रामाणिकता सिद्ध कर दिखानी होगी। जब सरकार ऐसा करेगी तब उसे चारों ओर शांति ही शांति दिखाई देगी। असहयोग-अहिंसात्मक असहयोग से जब कि सरकार हिंसा-काण्ड के सिवा दूसरी बातों का प्रतिकार न करती हो, कोई बुराई नहीं हो सकती। भला असहयोगी बन्द किस बात को करें? क्या लडकों को फिर से कहें कि भाई चलो, जाओ सरकारी विद्यालयों में पढने? या वकीलों से कहें कि आप वकालत शुरू कर दीजिए? क्या लोगों से कौन्सिलों के उम्मेदवार होने की सिफारिश करें? उपाधिधारियों से कहें कि भाई अपने खिताब और तगमें वापस मांग लो! यह सब तबतक नहीं हो सकता जबतक कोई निपटारा वास्तव में न हो जाय या उसकी गेरंटी न मिले। इन सब बातों के देखते हुए, यह स्पष्ट ही है कि, असहयोगियों को कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। हां, मैं अपनी तरफ से यह जरूर कह सकता हूं कि यदि कान्फरन्स करने की सचमुच इच्छा हो तो मैं आक्रामक सविनय कानून-भंग को तुरन्त आरंभ कर देने की सलाह एकाएक न दूंगा। पर यदि ऐसा न हुआ तो मैं तो इरादा कर ही चुका हूं कि ज्योंही इस बात का पक्का विश्वास हुआ कि लोग अब अहिंसा का रहस्य समझ गये हैं, आक्रामक सविनय कानून-भंग छेड दूं। यहां मुझे यह भी कह देना चाहिए कि इन पिछले १५ दिनों की घटनायें यह दिखला रही हैं कि लोग उसकी अकल्पित महिमा को अच्छी तरह समझ गये दिखाई देते हैं। सो यदि सरकार यह मानती हो कि अब असहयोगी खिलवाड नहीं कर रहे हैं, और अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए वे हर तरह से अमर्याद कष्ट सहने को प्रस्तुत हैं, तो सरकार बिना किसी शर्त के ठीक रास्ते पर आ जाय, स्वयं-सेवक दलों को भंग करने की तथा सार्वजनिक सभायें बन्द करने की आज्ञाओं को रद कर दे और भिन्न भिन्न प्रान्तों के उन तमाम लोगों को जिन्हें इस कहने भर के सविनय कानून-भंग के लिए अथवा असहयोग की व्याख्या में आने वाले किसी भी उद्देश के लिए, सजायें दी गई हैं, छोड दिया जाय-हां, जिन्होंने हिंसा-कांड मचाया हो या उसका इरादा किया हो उनकी बात जाने दीजिए। सरकार हिंसा-कांड को अथवा उसकी उत्तेजना को दबाने के लिए खुशी से अपनी सत्ता का प्रयोग करे; लेकिन हमारे इस हक को कि अपना मत बेधडक प्रकट किया करें और तमाम विधिवत् तथा शांतिमय उपायों से जनता को शिक्षा देकर लोक-मत तैयार करें, किसी तरह का जरा भी धक्का न पहुंचना चाहिए। इसलिए अगर किसी को बिगडी बात बनाना है, अत्याचारों का परिमार्जन करना आवश्यक है तो वह सरकार ही है। और वह चाहती हो तो वायुमण्डल को अनुकूल बना कर कान्फरन्स करे। हां, जहांतक मेरा संबंध है, मैं यह कह देता हूं कि असहयोग के साथ पेश आने के साधनों और मार्गों की चर्चा के लिए मैं कोई कान्फरन्स नहीं चाहता। इस अवस्था में यदि किसी कान्फरन्स से लाभ हो सकता है तो वह यही कि जिसमें वर्तमान असन्तोष-अर्थात् खिलाफत और पंजाब के साथ किये गये अन्याय और अत्याचार और स्वराज्य के कारणों का विचार और उपाय किया जाय। फिर वह ऐसी ही जिसमें केवल वही लोग न बुलाये जायं जिन्हें सरकार चाहे; बल्कि जनता के सचे प्रतिनिधियों की कान्फ्रेन्स हो। तभी वह सफल हो सकती है-तभी उससे लाभ हो सकता है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

मर्माघात

सरकार की आज्ञाओं का भंग करनेवालों को-फिर वे छोटे हों या बडे-कैद करना, उनको साधारण मुजरिमों की तरह रखना, उनको कारावास की सुविधाओं से भी वंचित रखना, ये सब बातें तो इनसान की समझ में आने लायक हैं। मैं उसे असद्व्यवहार नहीं कहूंगा। अगर हम अपनेसे किसी ऊंचे अधिकारी को-अथवा जिसके अधिकार में हम थोडी देर के लिए भी हों, रुष्ट कर बैठें तो हमारे आज्ञा-भंग के लिए हमें सजा मिलना अनहोनी बात नहीं है। किन्तु अगर वह हमारे बचों को बुरी तरह दबावे, ऐसी बातें जबरन् करावे जिन्हें हम और वे दोनों बुरी समझते हैं और जिन्हें करने के लिए हम कानूनन् बाध्य नहीं है, या हमारे साथ मिट्टी-कंकड से भी बुरा बर्ताव करे तो यह हमें कभी बरदाश्त नहीं हो सकता। कहते हैं कि कोकोनाडा में मजिस्ट्रेट ने स्वराज्य और खिलाफत के झंडों को उखडवा डाला, उसने यह हुक्म जारी किया कि एक सप्ताह तक ऐसे झंडे न खडे किये जायं। यह भी सुनते हैं कि एक पाठशाला के बालकों से युनियन जैक (ब्रिटिश झंडे) को जबरदस्ती सलाम कराया गया। हमने यह भी पढा है कि कलकत्ते के एक विख्यात प्रोफेसर अपने विश्वविद्यालय का चोगा पहने बाहर जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने कई निरपराध मनुष्यों पर पाशविक अत्याचार होता हुआ देखा। वे अत्याचार बंद करने की इच्छा से फौजी अफसर के पास जा रहे थे कि उनके सिर्फ यह पूछने पर कि भाई ये पढे-लिखे लोग हैं, नौजवान हैं, बहादुर हैं, इन्हें आप जूतों की ठोकरों से क्यों मार रहे हो? आप तो अभी इनके सरपरस्त हैं, वे बेचारे बुरी तरह पीट दिये गये। ये बातें ऐसी हैं जो दिल में चुभ जाती हैं। इन अत्याचारों का तो मतलब यही है कि हमारे शासक अभीतक ज्यों के त्यों बन हुए हैं-उनके हमारे प्रति बर्ताव में जरा भी फर्क नहीं पडा। वह ओडॉयरी ठसक अभीतक नहीं मरी। फिर लॉर्ड रोनाल्डशे उन पिटे गये प्रोफेसर साहब को बुलावें, उनसे मीठी मीठी बातें करें, उन्हें यह आश्वासन भी दें कि अब ऐसा न होने पावेगा तो इनसे होना जाना क्या? " फिर ऐसा न हो पावेगा!" क्या न होने पावेगा? क्या प्रोफेसर साहब फिर न पीटे जायंगे? हां, यह तो मानी हुई बात है कि इस नाजुक समय में तो फिर उन पर हाथ न उठाया जायगा। खुद प्रोफेसर साहब भी उस विश्व-विद्यालय के चोगे के भरोसे किसी पदाधिकारी को कई दिन तक न छेडेंगे। किन्तु, देखिए, उस पदाधिकारी के हृदय में उन प्रोफेसर साहब के प्रति रत्तीभर भी आदर है। वे खुद अपने लिए तो उसके पास गये ही नहीं थे। वे तो अत्याचार-पीडित मनुष्यों की हिमायत करने गये थे। क्या इन लाट साहब के उस आश्वासन के कारण भविष्य में भारत के मनुष्यत्व की रक्षा होगी? क्या नौकरशाही भारतीयों को आदर की दृष्टि से देखेगी? बात यह है कि सिपाहियों को तालीम ही ऐसी दी जाती है। यही ध्यान देने योग्य है। उसके द्वारा एक सिपाही एक क्रूर पशु बन जाता है और मौका मिलते ही निरपराध मनुष्यों पर टीक

दिया जाता है। आज इतने "दास" और "आजाद" इसी लिए जेल गये हैं कि फिर ऐसे नीच और पाशविक अत्याचार कहीं नजर न आवें। उन्होंने जेल का स्वागत इसीलिए किया है कि बुरे से बुरे अपराधी की भी ऐसे निर्घृण अत्याचारों से रक्षा हो-उसके भी स्वाभिमान को कहीं धक्का न लगने पावे। सिर्फ एक संस्था के हाथ से निकल कर किसी दूसरी संस्था के हाथ में सत्ता चली जाय, इसीलिए वे जेल नहीं गये हैं। वे जो चाहते हैं वह है शासन-प्रणाली में आंतरिक परिवर्तन। जिस बात के लिए लालाजी बरसों से अपना शरीर सुखा रहे है, जो आराम-तलब मोतीलाल जी नेहरू का प्राण-रूप बन गई है, और जिसके पीछे वे पूरे फकीर बन गये हैं, वह लॉर्ड रोनाल्डशे की क्षमा-प्रार्थना से-फिर वह चाहे कितनी ही सद्भाव-पूर्ण क्यों न हो, नहीं बन सकती और न खुद लॉर्ड रीडिंग की मीठी बातों से ही तथा उनकी इस निजी चिन्ता से ही कि अधिकारीगण कानून की मर्यादा का उल्लंघन न करें, बन सकती है। उनकी मनोकामना तो आन्तरिक परिवर्तन से ही पूर्ण हो सकती है। और आन्तरिक परिवर्तन का उपाय बस एक ही है। वह है कष्ट-सहन, जिसके लिए जनता अब परमात्मा की कृपा से तैयार हो गई है। एक दक्ष मित्र ने मेरे आशावाद को मर्यादित करने के हेतु से मुझे कहा कि कष्ट-सहन की अभी तो शुरुवात भर हुई है। हमें अपने ध्येय की सिद्धि के लिए तो इससे भी कई गुनी बडी कुरबानियां करनी होंगी। वे तो सचमुच यह भी खयाल करते हैं कि हमें कई "जालियां वाला" की आवृत्ति करनी होगी। हमें उसी गली के कोने तक जोकि पेट के बल रेंगने के लिए मशहूर हो चुकी है, जाना होगा; पर डर के मारे कांपते हुए नहीं, अपनी इच्छा के विरुद्ध नहीं; बल्कि आनंदित चित्त से और धीर गति से। हम पेट के बल हरगिज न रेंगेंगे; पर इन्कार करने के लिए कोडों की कडी मार जरूर सहन करना होगी। हां, ठीक तो है; और मैं उनको विश्वास दिलाता हूं कि मेरे आशावाद में इन सब तथा इनसे भी इतनी खराब बातों के लिए गुंजायश है जिनकी कि उन्हें कल्पना तक न होगी। किन्तु साथ ही मैं यह भी वचन देता हूं कि अगर भारत ने शांति बनाये रक्खी, चित्त को अविचलित रक्खा, और दिल में प्रति-हिंसा का विचार भी न आने दिया (जो मैं मानता हूं कि सचमुच बडी कठिन बात है, किन्तु साथ ही यह भी कहूंगा कि भारत की वर्तमान उग्र स्थिति में उतनी कठिन नहीं है) तो हमारी इस तैयारी ही और साथ ही प्रतिक्रिया के अभाव के कारण, पाशविक वृत्ति पोषक द्रव्य न पाकर, अपने आप मर जायगी और लॉर्ड रीडिंग को भी अपनी लंबी-चौडी बातें अलग रख कर पश्चात्ताप के मानवी उद्गार प्रकट करते हुए भारतीय वायुमंडल में किसी नई राज-नीति का अवसर मिलेगा। परन्तु इसके प्रतिकूल अगर हम अपने वचन को और अपनी स्थिति को भूल गये तो हमें हजारों "जालियां वाला" के दृश्य देखने होंगे और तमाम देश को एक विशाल बूचडखाना बना हुआ अपनी आंखों देखना होगा। किन्तु राष्ट्रीय महासभा के सभापति ने हमें इस नौबत तक पहुंचने के लिए पहले ही से तैयार कर दिया है। उन्हें यह यकीन हो गया है कि कैद का डर तो हमारे दिल से दूर हो गया है। उन्हें अपने पुत्र तथा उसके साथियों को देख कर यह भी विश्वास हो गया कि हम मार-पीट खाने की परीक्षाओं में भी उत्तीर्ण हो सकेंगे। किन्तु वे तो हमें साक्षात् मृत्यु का भी डर दूर कर देने की आशा दे रहे हैं। अगर वह दिन देखना हमारे नसीब में बदा होगा तो मुझे उम्मीद है कि तब भारत में ऐसे काफी शांति-निष्ठ असहयोगी निकलेंगे जिनके विषय में सुवर्णाक्षरों में यह लिखा जा सकेगा कि-"उन्होंने बिना किसी क्रोध के और अपने मुंह से उस नादान खूनी के लिए भी प्रार्थना करते हुए बंदूक की गोलियां खाईं"। हां, जो खबरें मिली हैं वे यदि सच मानी जायं तो दो आसामी स्वयं-सेवकों को कोडे लगाये गये हैं। लाहौर के स्वयं-सेवकों ने उनपर किये गये मनमाने अत्याचारों को बडी शांति के साथ सहन किया। यह लडाई मजाक नहीं है। हम गत बारह महीनों से बराबर तैयारी कर रहे हैं और अंततक हमें इसी तरह नियमों का पालन करना होगा। बीच में कहीं पीछे फिरने का नाम तक न लेना चाहिए।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

विद्यार्थियों का विरोध

वकीलों की ही तरह विद्यार्थियों का भी हाल है। बंगाल के कितने ही कालेज खाली ही से हो गये हैं। कुछ विद्यार्थियों ने कुछ समय के लिए हडताल कर दी है और कुछ ने अनिश्चित समय तक। लाहोर के दयालसिंह कालेज के लडकों ने गत १२ ता० से सिर्फ खादी ही पहनने का तथा शाहजादे के स्वागत के बहिष्कार का निश्चय किया है। उन्होंने उन नेताओं को जो जेलमें जा चुके हैं बधाई भी भेजी है। दयालसिंह कालेज के विद्यार्थियों का यह काम बहुत ठीक हुआ है। यद्यपि श्रीमती वासन्ती देवी की हृदय-स्पर्शिनी अपील से विद्यार्थी-वर्ग का हृदय इतना अभिभूत नहीं हो गया है कि वे कालेज छोड दें तथापि उनसे यह आशा की जा रही है कि वे इस शक्तिशाली आन्दोलन में जो कि दिन पर दिन प्रबल होता जाता है और शक्तिसंग्रह करता जाता है, अपने योग्य हाथ अवश्य बटावेंगे। कलकत्ते के एक पत्र से एक खबर नीचे दी जाती है। उस पर उनका ध्यान जाना चाहिए।

"छतरिया राष्ट्रीय पाठशाला के दो लडकों को—रामप्रसाद ९ सालका और हरिवंश मिश्र १० सालका—जिला मजिस्ट्रेट की आज्ञा से उनके अर्दलीने उनके सामने बडी बेरहमी से बेंतें लगाईं। उनका कुसूर यह था कि वे सरकारी नौकरी छोडने के सम्बन्ध में फतवे पढ रहे थे। परन्तु उन बहादुर लडकों ने मजिस्ट्रेट से कहा कि जितनी तुमसे हो सके उतनी बेंतें लगाओ। चाहे हमारी कमर टूट जाय, चाहे पसली टूट जाय; पर हम फतवा पढना तो छोड नहीं सकते।" (यं. इं.)

"हिन्दी-नवजीवन" आधे मूल्य में

हिन्दी-नवजीवन के प्रकाशक श्रीयुत सेठ जमनालालजी बजाज ने निम्न-लिखित सूचना भेजी है—

"जो विद्यार्थी, शिक्षक अथवा महासभा के प्रचारक अपने स्थान के कम से कम ५ भाई-बहनों को "हिन्दी-नवजीवन" नियमित रूप से पढ कर सुनावेंगे उन्हें "हिन्दी-नवजीवन" आधे मूल्य में दिया जायगा। विद्यार्थियों और शिक्षकों को अपने विद्यालय के प्रधान अधिकारी तथा प्रचारकों को अपने स्थान की महासभा-समिति के मन्त्री का प्रमाणपत्र भेजना चाहिए। फरवरी के अन्ततक जिनके प्रार्थना-पत्र आ जायंगे उन्हीं पर विचार किया जायगा।"

व्यवस्थापक

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूडी ओल, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित॥

राष्ट्र का निश्चय

वार्षिक ... [illegible]
छः मासका ,, [illegible]
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—पौष सुदी ३, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, १ जनवरी, १९२२ ई० | अंक २०

राष्ट्र का निश्चय

[अहमदाबाद की ऐतिहासिक महासभा पिछले सप्ताह में बड़ी शान्ति और उत्साह के साथ पूरी होगई। राष्ट्र के इस महा-मेले को देखकर कितने ही संदिग्ध-हृदय जनों का सन्देह दूर हो गया और सारे भारत के प्रतिनिधियों ने देश की स्वाधीनता के संग्राम का गम्भीर शंख-नाद किया। उसका निश्चायक प्रस्ताव केवल ११ विरुद्ध मत से पास हुआ। यह प्रस्ताव तथा उसपर हुए कुछ भाषण नीचे दिये जाते हैं। उप-सम्पादक]

अ-सहयोग का प्रस्ताव

चूंकि महासभा के पिछले अधिवेशन के समय से भारतवर्ष के लोगों ने प्रत्यक्ष अनुभव से यह जान लिया है कि शांतिमय अ-सहयोग के अवलम्बन करने के बदौलत देश ने निर्भयता, आत्म-त्याग और आत्मसम्मान के सम्बन्ध में बहुत प्रगति की है, और चूंकि इस आन्दोलन से सरकार की शान को बहुत धक्का पहुंचा है और चूंकि समष्टि-रूप से समस्त देश स्वराज्य की ओर तेजी के साथ आगे बढ़ रहा है, यह महासभा कलकत्ते के विशेष अधिवेशन में गृहीत और नागपुर में पुनर्वार स्वीकृत प्रस्ताव को स्वीकार करती है और अपना यह दृढ़ निश्चय प्रकट करती है कि जबतक पंजाब और खिलाफत के दुःखों का निवारण न हो और स्वराज्य की स्थापना न हो तथा बेजवाबदेह संस्था के हाथों से निकलकर भारतीय सरकार का कब्जा भारत के लोगों के हाथों में न आ जाय, तबतक शांतिमय अ-सहयोग का कार्यक्रम, प्रत्येक प्रांत अपनी अपनी तजवीज के अनुसार, और भी अधिक जोर के साथ जारी रक्खे।

और चूंकि बड़े लाट साहब ने अपने हाल के भाषणों में जो धमकियां दी हैं उनके कारण, तथा उनके फलस्वरूप भारत-सरकार ने भिन्न भिन्न प्रांतों में स्वयंसेवक-दल को छिन्न-भिन्न करके, तथा सार्वजनिक सभाओं और यहांतक कि कमिटी की सभाओं को भी गैर-कायदा तथा अत्याचारपूर्ण तरीके से जबरदस्ती बन्द करके, तथा कितने ही प्रांतों के बहुतेरे महासभा के कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करके जो दमन शुरू किया है उसके कारण, और चूंकि इस दमन का स्पष्ट उद्देश यह है कि महासभा और खिलाफत की हल-चलों का दम बन्द कर दिया जाय और जनता उनकी सहायता से वञ्चित रक्खी जाय, यह सभा निश्चय करती है कि जिस कदर आवश्यकता हो, महासभा के दूसरे तमाम काम बन्द रक्खे जायं और सब लोगों से अपील करती है कि वे पिछली २३ नवम्बर की बम्बई की कार्य-समिति के प्रस्ताव के अनुसार सारे देश में संगठित होने वाली स्वयंसेवक-सेना में भरती होकर शांति-पूर्वक तथा बिना किसी तरह की धूम-धाम के अपने को गिरफ्तारी के लिए अर्पण कर दें। परन्तु जो लोग नीचे लिखे प्रतिज्ञा-पत्र पर सही न करें वे उस सेना में भरती न किये जायं—

ईश्वर को हाजिर और नाजिर जान कर मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि,

(१) मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक-सेना में भरती होना चाहता हूं।

(२) जबतक मैं इस सेना में रहूंगा तबतक मैं वचन और कर्म से अहिंसा का पालन करूंगा और सरगर्मी के साथ इस बात की कोशिश करूंगा कि अपने इरादे में भी अहिंसामय बना रहूं, क्योंकि मैं मानता हूं कि भारत की वर्तमान परिस्थिति में केवल अहिंसा के ही द्वारा खिलाफत और पंजाब को सहायता मिल सकती है और स्वराज्य को प्राप्त हो सकती है तथा भारत की तमाम जातियों में-हिन्दू मुसल्मान सिख पारसी ईसाई और यहूदियों में-एकता स्थापित की जा सकती है।

(३) मैं ऐसी एकता का कायल हूं और हमेशा उसकी वृद्धि के लिए प्रयत्न करूंगा।

(४) मैं मानता हूं कि भारत की आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक मुक्ति के लिए स्वदेशी बिल्कुल आवश्यक है, और दूसरे सब किस्म के कपड़ों को छोड़ कर सिर्फ हाथ-कते और हाथ-बुनी खादी ही पहनूंगा।

(५) यदि मैं हिन्दू हूं तो मैं मानता हूं कि छुआछूत की बुराई को दूर करना आवश्यक और न्याययुक्त है और जबजब अवसर आवेगा मैं अन्त्यज जातियों के साथ मिलू-जुलूंगा तथा उन की सेवा करने का प्रयत्न करूंगा।

(६) मैं अपने अफसरों की आज्ञाओं का और उन समस्त कानून-कायदों का पालन करूंगा जिन्हें स्वयंसेवक-समिति, या

कार्यसमिति, अथवा महासभा द्वारा संस्थापित दूसरी कोई संस्था तैयार करेगी और जो इस प्रतिज्ञा-पत्र के तत्व के विरुद्ध न होंगे।

(७) मैं अपने देश और धर्म के खातिर बिना गुस्सा लाये जेल के कष्ट सहने, मार-पीट सहने और मौत तक को अपनाने के लिए तैयार हूं।

(९) मेरे जेल चले जाने की अवस्था में मैं महासभा से अपने कुटुम्बियों तथा आश्रित जनों के लिए किसी तरह की सहायता का दावा न करूंगा।

महासभा को यह विश्वास है कि १८ वर्ष तथा इससे अधिक की अवस्था वाले तमाम लोग तुरन्त स्वयंसेवक-सेना में भरती हो जायंगे।

सार्वजनिक सभाओं की बन्दी की घोषणाओं के होते हुए और कमिटी की सभाओं को भी सार्वजनिक सभाओं में शामिल करने की कोशिश की जाने के कारण यह महासभा यह सलाह देती है कि कमिटी की सभायें और सार्वजनिक सभायें बन्द जगहों में टिकट लगाकर और पहले ही से खबर करके की जायं। जहांतक मुमकिन हो वही वक्ता भाषण करने पावे जिसका नाम पहले से जाहिर कर दिया गया हो और वह लिखा हुआ भाषण सुनावे। हर हालत में इस बात की चिन्ता रखनी चाहिए कि कहीं उत्तेजना न फैल जाय और उससे लोग हिंसा-काण्ड न मचा बैठें।

इस महासभा का यह भी मत है कि किसी व्यक्ति अथवा संस्था के द्वारा होने वाले उसकी सत्ता के स्वेच्छाचार और अत्याचार-पूर्ण तथा पौरुष-हीन कर देने वाले उपयोग को रोकने के लिए, दूसरे तमाम उपायों के आजमा लिये जाने के बाद, शस्त्र बलके के बदले सविनय कानून-भंग ही एकमात्र सभ्यतापूर्ण और अक्सीर इलाज है। इसलिए महासभा उन समस्त कार्यकर्ताओं को, जो शांतिमय उपायों को मानते हैं और जिन्हें यह इत्मीनान है कि इस वर्तमान सरकार को भारतवासियों के प्रति अपनी इस पूर्ण बे-जवाबदेह स्थिति से स्थान-च्युत करने के लिए, किसी न किसी प्रकार के आत्म-त्याग के सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है, यह सलाह देती है कि वे व्यक्तिगत सविनय-भंग को ग्रहण करें और जब कि जन-समूह अहिंसा की पूरी तालीम पा चुके और दिल्ही की पिछली महासमिति की बताई दूसरी शर्तों का पालन करने के योग्य हो जाय तब सामुदायिक कानून-भंग भी शुरू कर दे।

इस महासभा का यह मत है कि सविनय कानून-भंग की ओर शक्ति एकाग्र करने के लिए, 'फिर चाहे व्यक्तिगत हो चाहे सामुदायिक, चाहे हमले के स्वरूप का हो चाहे रक्षक स्वरूप का हो, जो उचित सावधानी रखते हुए तथा कार्य-समिति अथवा प्रान्तीय समितियों की ओर से समय समय पर निकलने वाली सूचनाओं के अनुसार किया जाय, महासभा की दूसरी तमाम हलचलें जब कभी, जहां कहीं और जिस हदतक आवश्यकता हो, बन्द कर दी जायं।

यह महासभा १८ और इससे अधिक उम्र के विद्यार्थियों को, विशेष करके उन विद्यार्थियों को जो राष्ट्रीय विद्यालयों में पढ़ते हैं तथा उनके अध्यापक-वर्ग को, निमन्त्रित करती है कि वे पूर्वोक्त प्रतिज्ञा-पत्र पर तुरन्त सही कर दें और राष्ट्रीय स्वयं-सेवक सेना में भरती हो जायं।

महासभा के कार्य-कर्ताओं के एक बड़े भाग की गिरफ्तारी के सिरपर मंडराने के कारण यह महासभा, अपने मामूली तन्त्र को, जब कभी हो सके तब मामूली तौर पर उसका उपयोग करने के लिए अखंड जारी रखते हुए, महात्मा गांधी को, दूसरी सभा निकलने तक, अपना मुख्तारआम मुकर्रर करती है और महा-समिति के तमाम अख्त्यारात उन्हें देती है। इनमें महासभा के, महासमिति के अथवा कार्य-समिति के विशेष अधिवेशन कराने के अधिकार का भी समावेश किया जाता है। इन अधिकारों का उपयोग वे महासमिति की किसी दो बैठकों के बीच की अवधि में ही कर सकते हैं। किसी आकस्मिक आवश्यकता के समय अपने स्थानपर किसी को मुख्तार-आम मुकर्रर करने का भी अधिकार उन्हें है।

महासभा ऐसे उत्तराधिकारी मुख्तारआम को तथा उनके पीछे जो जो उत्तराधिकारी मुकर्रर होते जायंगे उन तमाम मुख्तारआमों को पूर्वोक्त सब अधिकार देती है।

पर इसमें शर्त यह है कि इस प्रस्ताव की किसी बात से महात्मा गांधी को अथवा किसी भी पूर्वोक्त उत्तराधिकारी को यह अधिकार नहीं है कि वे भारत-सरकार अथवा ब्रिटिश सरकार से, महासमिति की मंजूरी लिये बिना अथवा उस मंजूरी को उसके लिए विशेष-रूप से किये गये महासभा के अधिवेशन में पास कराये बिना, किसी तरह की सुलह करें; और एक शर्त यह भी है कि जबतक महासभा की आज्ञा पहले न प्राप्त कर ली जाय, महात्मा गांधी या उनके उत्तराधिकारी मुख्तारआम महासभा के ध्येय को न बदलें।

यह महासभा उन समस्त देशभक्तों को बधाई देती है जो अपनी अन्तरात्मा की पुकार के लिए अथवा अपने देश के लिए कारावास भोग रहे हैं और यह मानती है कि उनके आत्म-बलिदान ने स्वराज्य के आगमन की गति को बहुत तेज कर दिया है।

श्री गांधीजी का भाषण

इस प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए श्री-गांधीजीने जो भाषण अंगरेजी और हिन्दी में किया उसका मुख्य अंश इस प्रकार है—

पन्द्रह मास के निरन्तर उद्योग के बाद भी यदि आप, प्रतिनिधि-भाइयो, अपना खयाल न बना सके हों तो फिर मैं समझता हूं कि अपने दो घण्टे के भाषण से भी आपको विश्वास नहीं दिला सकता। और यदि आज के भाषण के द्वारा ही मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहूं तो मैं समझता हूं, आप पर मेरा विश्वास ही न रह जाय; क्योंकि उससे यही साबित होगा कि आप अपनी आखों के सामने की चीज को भी नहीं देख सकते।

इस प्रस्ताव में ऐसी कोई बात नहीं है जिस पर हमने आजतक विचार न किया हो और जिसे हम आजतक करते नहीं आये हैं। उसमें कोई बात चौंक उठने लायक नहीं। जिसने हर माह होने वाली कार्य-समिति के काम-काज का मनन किया है वह आसानी से समझ सकता है कि यह प्रस्ताव तो हमारी हल-चलों का स्वाभाविक परिणाम ही है। सरकार की वर्तमान दमन-नीति को देखकर तो आपको इसी नतीजे पर आना होगा कि किसी भी आत्मसम्मान-प्रिय राष्ट्र की ओर से वाइसराय को तथा उनकी दमननीति को वैसा ही जवाब दिया जा सकता है जैसा कि इस प्रस्ताव के द्वारा दिया जा रहा है।

यह प्रस्ताव इस बात को सूचित करता है कि हम अब निराधार और आश्रित अवस्था को पार कर गये हैं। जनता ने एक ईश्वर को छोड़ कर दूसरे किसी की सहायता के बिना अपने ध्येय को सिद्ध करने का संकल्प किया है। इस प्रस्ताव में अपने हक को स्थापित करने का, दुनिया में ऊंचा सिर कर के चलने का राष्ट्र का दृढ़ निश्चय और अडग धैर्य दिखाई देता है। यह प्रस्ताव सरकार से कहता है कि तुमसे जितना हो सके उतना हमको सताओ,

उससे कुछ भी होना-जाना नहीं। एक दिन ऐसा आवेगा कि तुम्हें लाचार होकर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। मौके पर चेतो, और हिन्दुस्तान के ३० करोड़ बाशिन्दों को हमेशा के लिए अपना कट्टर दुश्मन न बना लो। इस प्रस्ताव में सरकार के लिए हमारा दरवाजा खुला है। नरम दलवाले मित्रों को भी यदि खिलाफत के और पंजाब के, अतएव भारत की स्वतन्त्रता के, झण्डे के नीचे आना हो, यदि सरकार की नीयत इन्साफ करने की हो, यदि लार्ड रीडिंग न्याय करना चाहते हों, यदि वे यह सब करना चाहते हों तो मैं उन्हें ईश्वर को साक्षी रख के सच्चे दिल से कहता हूं कि उनके लिए इस प्रस्ताव में दरवाजा खुला है। परन्तु यदि उनकी नीयत साफ न हो तो दरवाजा बन्द है। इसमें इस बात की गुंजायश है कि हम सब मिलकर कान्फरन्स कर सकें और उसमें मैं शामिल हो सकूं; परन्तु यह उसी दशा में जब कि उसमें बराबरी के हक से बैठने का अवसर हो, हमें भिखारी बनके वहां न जाना पड़े। हम मेहरबानी की तौर पर कुछ भी नहीं चाहते। फिर हमारे एक बड़े भाग को चाहे बलिवेदी पर चढ़ जाना पड़े तो परवा नहीं। परन्तु यदि उनकी नीयत अच्छी हो तो मैं राष्ट्र की ओर से उन्हें विश्वास दिलाता हूं कि इस प्रस्ताव में उनके लिए दरवाजा खुला हुआ है।

इस प्रस्ताव के द्वारा हम जाहिल होकर युद्ध नहीं पुकार रहे हैं; पर जो सत्ता जहालत पर तुल गई है उसे हम जरूर ललकार रहे हैं। जो सत्ता अपनी रक्षा करने के लिए विचार-स्वातन्त्र्य तथा सभा-समाज के संगठन के स्वातन्त्र्य को पैरों तले रौंद डालना चाहती है—राष्ट्र के इन दो फेफड़ों को ही दबाकर उसे स्वतन्त्रता की प्राण-वायु से वञ्चित रखती है उसे मैं आपकी तरफ से नम्र परन्तु अमोघ आव्हान करता हूं। यदि कोई ऐसी सत्ता इस देश में हो तो मैं उसे आपकी तरफ से यह कहना चाहता हूं कि या तो वह सत्ता मटियामेट हो जायगी अथवा इस महान् कार्य को करते हुए भारत का प्रत्येक नर-नारी तबतक दम न लेगा जबतक इस पृथिवी-पटल से वह नेस्त नाबूद न हो जायगा।

इस प्रस्ताव में दृढ़ता, नम्रता और निश्चय तीनों बातें हैं। यदि मैं कान्फरन्स में शरीक होने की सलाह दे सकता तो जरूर देता। अकेला परमात्मा ही जानता है कि मुझे शान्ति कितनी प्रिय है। परन्तु मैं जिस तरह बन पड़े उसी तरह शान्ति नहीं चाहता। मैं पत्थर की शांति नहीं चाहता। मैं स्मशान की शांति नहीं चाहता। मैं तो वह शांति चाहता हूं जो सारी दुनिया की गोलियों की बौछार के सामने छाती खुली करके ईश्वर के भरोसे फिरने वाले मनुष्य के हृदय में होती है।

मैं किसी के दीन में दखल देना नहीं चाहता। मजहब के सम्बन्ध में मैं जो कुछ करता हूं वह बहुत सोच-समझ कर ही करना चाहता हूं।

विषय-निर्धारिणी समिति में स्वयंसेवकों के लिए तैयार किये गये प्रतिज्ञापत्र पर खूब चर्चा हुई। वचन से और कर्म से शान्ति रखना तो सब मंजूर करते हैं, परन्तु, विचार में-इरादे तक में अहिंसा किस तरह से रक्खी जाय? मैं कहता हूं कि आज तक हम लोगों ने अपनी जबान को ठीक नहीं रक्खा। खिलाफत और पंजाब के सवालों के लिए हम शांति की कसमें खा चुके हैं। परन्तु हम अपनी जिव्हा को शुद्ध न रख सके। जबतक हम अपने दिल के गुस्से को न रोकेंगे, दिल के मैल को न हटावेंगे तबतक वचन और कर्म के द्वारा शांति रखना असम्भव है। मैं आपसे पूछता हूं कि मां अपने बच्चे को जब जब गालियां देती हैं तथा पीटती तब वह कहां से आता है? दिल से ही।

आप यदि सचमुच भारत को आजाद बनाना चाहते हैं, हिन्दू-मुसलमान सिख पारसी ईसाई यहूदी सब भाई बनकर रहना चाहते हैं तो आपको शांति का स्वीकार करना लाजिमी है। शांति के बिना हिन्दू-मुसलमान चार रोज भी इकट्ठे नहीं रह सकते। निमिष मात्र में एक दूसरे का दिल मैला हो जायगा। पागल हिन्दू कहेंगे कि सोमनाथ के मन्दिर का क्या हुआ? पागल मुसल्मान कहेंगे कि हमारे दीन का क्या हुआ? तुर्कस्तान, अफगानिस्तान जैसी शक्तियां हमारे हैं। हम क्यों हिन्दुस्तान के साथ रहें? मैं भविष्यद्वाणी कहता हूं कि यदि आप अहिंसा को छोड़ देंगे तो मर जायंगे, तो हिन्दुस्तान आजाद नहीं हो सकता। मैं हर जगह और हर समय के लिए शांति की बात यहां नहीं कहता; परन्तु इस समय तो शांति के बिना काम चल ही नहीं सकता। यदि हिन्दुस्तान में आप सब लोग प्रेम से रहना चाहते हों तो किस तरह रह सकेंगे? यदि हरबार तलवार की ही धार पर निपटारा करने की बात सोचा करेंगे तो कबतक काम चलेगा? सिक्ख-भाई अंगरेजों के पास चले जायंगे। पारसी तो जरूर ही चले जायंगे। हिन्दू और मुसल्मान कहेंगे कि हम भी आते हैं—अंगरेजी सल्तनत में और कुछ न हो तो हम ऐसे मंडप बनाकर शांति के साथ महासभा का अधिवेशन तो कर पाते थे! हमारी औरतों की इज्जत तो बचती थी! मैं तो आपसे इतना ही अभिवचन चाहता हूं कि जबतक आप इस असहयोग-आन्दोलन में शामिल हैं, जबतक आप स्वयंसेवक-सेना में भरती हैं तबतक आपको शान्ति का पालन करना होगा।

हमें एक कसम लेना है। वह यह कि हम जेलों के कष्ट तथा अलीगढ़ के बहादुर नौजवानों की तरह मार-पीट सहन करने के लिए तैयार हैं, उसी तरह मौत को भी सहन करने के लिए तैयार हैं। और वह किस लिए? हमारे देश के लिए, हमारे धर्म के लिए। उसके साथ ही दूसरी शर्त यह है कि ऐसा करते हुए भी हम अपने गुस्से को रोकेंगे। सहन करने का तो अर्थ ही यह है कि मेरे गाली देने पर भी आप उलट कर गाली न दें। हजरत अली पर किसी पागल ने थूंक दिया। वे उठे; पर क्या देखते हैं कि उन्होंने उस थूकने वाले का चुम्बन किया और उसे माफी बख्शी। उन्होंने भी उलट कर उसपर थूंक दिया होता तो इस्लाम आज इस अवस्था में न होता। यह पुराना तरीका है। यह केवल गीताजी में, भागवत में, या कुरान शरीफ में अथवा ग्रन्थ साहब में ही नहीं है। समस्त धर्मों में यही बात कही गई है कि जो सहिष्णुता का अवलम्बन करेंगे उनकी भूल को खुदा माफ कर देगा-खुदा उनका कल्याण करेगा।

मैं हमेशा के लिए आपकी तलवार को छीन लेना नहीं चाहता। हां, आज तो मैं जरूर छीने लेता हूं। यह आत्महत्या नहीं। आत्महत्या हिन्दू और मुसल्मान दोनों धर्म में हराम है। जो मनुष्य पर-स्त्री पर कुदृष्टि रखता हो-उसपर अत्याचार करता हो तो उस पागल को अवश्य साबरमती में डूब कर मर जाना चाहिए। इसी प्रकार स्त्री भी उस अवस्था में खुद-कुशी कर सकती है जब उसके सतीत्व की रक्षा करने का दूसरा उपाय न रहा हो? परन्तु यदि देश के खातिर सहिष्णुता का अवलम्बन करते हुए मृत्यु का सामना करना पड़े तो यह आत्महत्या हरगिज नहीं।

अब भी यदि आपको कुछ समझाना बाकी रह गया हो तो आप भी पागल हैं और मैं भी पागल हूं। १५ महीनों के अनुभव को सामने रख कर देखिए कि शांति से, असहयोग से, आपको लाभ हुआ है या नहीं? आज मुझसे कोई यह सवाल नहीं कर सकता कि स्वराज्य क्यों नहीं मिला? स्वराज्य तो आपकी जेब में

पडा है। कीमत दो और लो। आप मक्खीचूस हो गये हैं। मक्खीचूस को स्वराज्य नहीं मिलता। आज शौकत अली यहां होते तो आपसे कहते कि आपको अपने स्त्री-पुत्र आदि सबको छोडना होगा, फकीर बनना होगा। अब भी यदि आप न समझ पाये हों तो मैं अपने मुंह से अब कुछ नहीं समझाना चाहता। बल्कि मैं यह चाहता हूं कि आप ईश्वर की प्रार्थना करें। अपने दिल पर ऐतबार रख कर उससे पूछिए। एकांत स्थान में जा कर उसकी आराधना कीजिए और आपकी अन्तरात्मा से पूछिए कि मैंने जो बात कही है वह सच है या नहीं। सच न मालूम हो तो इस प्रस्ताव को रद कर दीजिए। सच मानते हों तो अच्छी तरह उसकी कदर कीजिए और तैयार हो जाइए। यदि जनवरी में मैं अथवा आप जेल के बाहर रहे तो मैं आपसे पूछूंगा। जो बाहर रहेगा उसे कारण दिखाना होगा। यदि कारण होगा तो ठीक, वर्ना आपकी और मेरी फजीहत होगी। ईश्वर हमें बल प्रदान करे जिससे हम अपने जेल गये हुए भाइयों को छुडा लावें, खिलाफत का निपटारा करा लें, पंजाब के जख्म को भरवा दें और स्वराज्य को प्राप्त कर लें।

श्री० विट्ठलभाई पटेल का भाषण

मैं केवल इस प्रस्ताव का ही समर्थन नहीं करता हूं, बल्कि गांधीजी के भाषण के प्रत्येक अक्षर का समर्थन करता हूं। वाइसराय लार्ड रीडिंग, जो शुद्ध न्याय के हामी बनकर भारत में आये हैं, थोडे ही दिन पहले कलकत्ते में कह चुके हैं कि स्वराज्य तो सिर्फ दो ही उपायों से मिल सकता है—एक तलवार, और दूसरा दान। हमारा यह प्रस्ताव उसका उत्तर-स्वरूप है। इन दो के अलावा तीसरा रास्ता भी है। और वह है सविनय कानून-भंग का।

इस प्रस्ताव का मैं सिर्फ एक ही अर्थ करता हूं कि हम प्रत्येक स्त्री-पुरुष या तो जेल चले जायं या मर-मिटें और या स्वराज्य प्राप्त कर लें। जिन्हें जेल जाने की अथवा प्रसन्न-चित्त से मरने की हिम्मत न हो वे भले ही इसके खिलाफ अपना मत दें। स्वयं अपने को तथा दुनिया को धोखा न दें। परमेश्वर को तो कोई धोखा दे ही नहीं सकता।

अब, इस जगह से, मैं अपनी पूरी जिम्मेवारी को जानते हुए, सरकार से पूछता हूं कि बताइए, आपके और हमारे बीच में बाधा कौनसी है? हम स्वतन्त्रता—स्वराज्य चाहते हैं। आपने अनेक अवसरों पर स्वराज्य देने के अभिवचन दिये हैं। फर्क इतना ही है कि आप अपने वचनों का पालन नहीं करते। आप पर हमें विश्वास नहीं। यदि सवाल केवल समय का ही हो, आप पांच-दस वर्ष बाद स्वराज्य देना चाहते हों, तो इस वर्तमान दमननीति के लिए जगह कहां है? यदि आप इस आन्दोलन को दबावेंगे, तो इसका फल आपको भोगना पडेगा। हमारे नेताओं को जेल में ठूंस देने के बाद यदि दंगा-फसाद उठ खडा हो तो इसका जिम्मेवार कौन है? आपको हिन्दुस्तानी फौज और पुलिस पर भरोसा नहीं और गोरा तो यहां की दस लाख आदमियों में एक है। अतएव हमारे शान्तिमय रहने पर भी उसे रातभर जागना पडता है और उसके लिए हम तीस करोड लोगों को जागरण करना पडता है।

नरम दल वाले भाइयों से मैं कहता हूं कि हमारे भाई-बहनों को सरकार ने हजारों की संख्या में जेलों में बन्द कर दिया है। इस सरकार के साथ आप असहयोग कीजिए। यदि आप असहयोग के सिद्धान्त के कायल न हों तो महासभा के साथ भले ही सहयोग न करें। पर इस जुल्मी, पापिनी, दुष्ट, सरकार के साथ तो अवश्य ही असहयोग कीजिए और इन कौन्सिलों को छोड दीजिए।

श्री० सरोजिनी नायडू

ने कहा—मेरे लिए ऐसा कहना शायद धृष्टता होगी, पर तो भी मैं इस धृष्टता के आरोप को सर चढा कर कहती हूं कि मैं आज किसी प्रांत की, किसी पन्थ की, अथवा—स्त्री जाति की प्रतिनिधि की हैसियत से बोलने के लिए खडी नहीं हुई हूं। आज मैं नवीन भारत के प्राण की हैसियत से बोलना चाहती हूं। भारत आज स्वतन्त्रता के मार्ग पर कूच कर रहा है। दुनिया में ऐसी कोई शक्ति नहीं जो उसकी गति को रोक दे। अपने पति, अपने पुत्र, तथा अपने पिता को जेल में भेज कर जब निर्बल देह वाली स्त्रियां इस सभा में उनके स्थान पर बैठने लगी हैं तब हमें समझना चाहिए कि भारत में अब एक नवीन ही चैतन्य प्रकट हुआ है। प्रभात में यदि सूर्य के उदय होने के विषय में सन्देह रहता हो, तो यह सन्देह हो सकता है कि भारत के लोग स्वतन्त्रता के लिए किसी भी तरह के बलिदान से मुंह मोडेंगे; भगवती भागीरथी का प्रवाह यदि रुक जाय तो भारत की स्त्रियां भारत-माता के लिए कुरबानी करते हुए रुकें; मध्य-रात्रि में यदि तारागण अपना जगमगाना बन्द कर दे तो भारतवर्ष के नवयुवक देश के लिए स्वयंसेवक-सेना में भरती होते हुए रुकें। १७ नवम्बर को बम्बई में जो उपद्रव हुआ वह किसकी वजह से रुका? यह न समझिए कि एक महात्मा के अपनी मढिया में बैठ कर उपवास करने से रुका हो। यह तो हमारे नौजवान स्वयंसेवकों के अपूर्व परिश्रम का फल था। आसपास खून की बौछारें उड रही थीं। आग की लपटें भभक रही थीं। उसमें उन्होंने अपनी जानों को जोखों में डाल कर जो काम किया उसका परिणाम था। जिस देश में ऐसा नवजीवन प्रकट हो रहा है उसको अपने विजय के पथ में कूच करने से रोकने वाला संसार में कोई नहीं। (नवजीवन)

आशाप्रद चिह्न.

सरकार के वर्तमान दमन के कारण सारे भारत के वकीलों और विद्यार्थियों में खलबली मच गई है। कलकत्ते के कितने ही वकील बडे लाट के स्वागत में शरीक नहीं हुए। पंजाब के बार एसोसियेशन ने लाला लाजपत राय तथा उनके साथियों के मुकदमों के जेल के अन्दर चलाये जाने पर तथा लालाजी के घरवालों को छोड कर और लोगों को वहां उपस्थित रहने की मनाही पर अपना तीव्र असन्तोष प्रकट किया है। बिहार और आसाम के कितने ही वकीलों ने वकालत बन्द कर देने की सूचना दी है। देहली से डा० अनसारी लिखते हैं—

"सबसे अधिक आशाप्रद चिह्न तो यह है कि हमारी सेवाओं का बडा अच्छा असर वकीलों और धनी लोगों पर हुआ है। उन्होंने एक संघ बनाया है। उसके द्वारा वे उन लोगों के कुटुम्बियों की सहायता करेंगे जो जेल जा चुके हैं। कितने ही लोगोंने इसमें अच्छी अच्छी रकमें दी हैं। अबतक कोई २०००) मासिक चन्दा जमा हो चुका है। उन लोगोंने यह सब बिना ही हमारे अनुरोध के या हमारे इच्छा प्रकट किये, किया है। केवल परोपकारके भाव से प्रेरित होकर ही उन्होंने यह व्यवस्था की है।" (यं. इं.)

पत्र-प्रेषक महाशयों

आप हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, अंगरेजी इनमें से किसी भी भाषा में पत्र लिखें, परन्तु वह **सुवाच्य जरूर होना चाहिए।** अन्यथा उसका उत्तर मिलना कठिन होगा।

अंक न मिलने की शिकायत करने वाले सज्जनों को अपना **ग्राहक नम्बर और पूरा पता—डाकखाना, जिला, आदि—** साफ साफ लिखना चाहिए। नहीं तो हम उनकी शिकायत दूर करने में समर्थ न हो सकेंगे।

मनीआर्डरों के कूपन पर भी अपना पूरा पता **बिलकुल साफ साफ** लिखने की कृपा किया करें

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, पौष सुदी ३, सं. १९७८.

बडे लाट की बातें

बडे लाट साहब ने पण्डित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में गये शिष्ट-मंडल को जो उत्तर दिया उसे पढ़कर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। श्रीमान् युवराज के भारत-आगमन के सम्बन्ध में उन्होंने महासभा और खिलाफत की मनोदशा को जिस विपरीत रूप में, और मुझे कहना होगा कि कुटिलता-पूर्वक, पेश किया है उसकी मुझे जरा भी आशा नहीं थी। दोनों संस्थाओं में आजतक इस सम्बन्ध में जितने प्रस्ताव पास हुए हैं तथा जितने वक्ताओं ने भाषण किये हैं उन सबने इस बातपर अधिक से अधिक जोर दिया है कि इसमें शाहजादे के प्रति दुर्भाव प्रकट करने की या उनकी तौहीन करने की कोई बात नहीं है। उनके स्वागत का बहिष्कार तो एक बिल्कुल सिद्धान्त की बात है और उसका उपयोग सिर्फ उसी बात के खिलाफ किया जा रहा है जिसे हम नौकरशाही के अंधाधुन्ध तौर-तरीक मानते हैं। मैं बराबर यह मानता आ रहा हूं और अब भी मानता हूं कि शाहजादा भारत में इसी गरज से बुलाया गया है कि वह इस सिविल-सर्विस-मंडल अर्थात् नौकरशाही के आधिपत्य को, जिसने हिन्दुस्तान को दरिद्रता और राजनैतिक गुलामी की हालत में ला छोड़ा है, और भी मजबूत कर दे। यदि मेरा यह खयाल कि उनके इस आगमन का यही कुटिल हेतु है, गलत साबित हो जाय तो मैं बड़ी खुशी के साथ माफी मांग लूंगा।

इसी तरह बडे लाट साहब का यह कहना भी एक दुर्भाग्य की ही बात है कि शाहजादे के स्वागत के बहिष्कार का अर्थ है ब्रिटिश जनता की तौहीन करना। वाइसराय साहब नहीं जानते कि वे अपने देश-भाई और भारत के ब्रिटिश शासकवर्ग दोनों को एक में शामिल कर के ब्रिटिश जनता के साथ कितना घोर अन्याय कर रहे हैं! क्या वे यह चाहते हैं कि भारत अपना यह ख्याल बनावे कि यहां का ब्रिटिश शासकवर्ग ब्रिटिश जनता की प्रतिमूर्ति है और जो आन्दोलन इस नौकरशाही के खिलाफ किया जाता है वह मानों ब्रिटिश जनता के खिलाफ किया जता है? और यदि बडे लाट साहब का यही अभिप्राय है और यदि नौकरशाही के तौर-तरीक के खिलाफ कोई अकसीर आन्दोलन उठाना और उसका सचा रंग-रूप ज्यों का त्यों प्रकट करना ब्रिटिश जनता की तौहीन करना है तो मुझे डर है कि मुझे अपने को अपराधी मानना होगा। परन्तु, उस अवस्था में, मुझे अपनी पूरी नम्रता के साथ यह कहना होगा कि बडे लाट साहब ने भारत में होने वाली इस महान् राष्ट्रीय जागृति को बिल्कुल उलटी आंखों से देखा और उलटी तरह समझा है। मैं सैकडों हजारों बार इस बात को दोहराता हूं कि यह आन्दोलन किसी भी देश या किसी भी मनुष्य-समूह के खिलाफ नहीं उठाया गया है; बल्कि यह तो बडे विचार-पूर्वक उस शासन-प्रणाली के खिलाफ उठाया गया है जिसके द्वारा आज भारतीय सरकार का परिचालन हो रहा है और मैं यह प्रतिज्ञा-पूर्वक कहता हूं कि किसी भी तरह की धमकी से अथवा धमकी के साधनों के अमलदरामद से, फिर वह चाहे वाइसराय साहब की तरफ से हों चाहे किसी व्यक्तिसमूह की तरफ से हों, इस आन्दोलन का गला नहीं घुट सकता और इस जागृति की ज्योति नहीं बुझ सकती।

मैंने लार्ड रोनाल्डशे के भाषण के उत्तर में कहा है कि हम ने तो अभी आक्रमण शुरू ही नहीं किया है, हम अपनी किस हलचल को बन्द करें? दरअसल तो सरकार को अपनी उग्र और आक्रामक हलचल को बन्द करना चाहिए, जो हिंसाकाण्ड के खिलाफ नहीं बल्कि एक बाकानून, नियमबद्ध, कठोर परन्तु पूरी तरह शांतिमय आन्दोलन के खिलाफ उठाई गई है। शांतिमय परिस्थिति तो केवल और एकमात्र सरकार को ही, यदि वह चाहती हो तो, पैदा करनी चाहिए। उसने अपनी कृतियों से बनाई बारूद में खुद आग बरसाई। परन्तु लो, धुंवा तक नहीं उठा। अब वह हैरान है कि अरे, यह बारूद भी नहीं भभक उठती। वर्तमान प्रश्न अब यह नहीं है कि पञ्जाब, खिलाफत और स्वराज का मांग की गलतियां दुरुस्त की जायं; बल्कि इस समय तो जो सवाल दरपेश है वह है सार्वजनिक सभायें करने का अधिकार और शांतिमय हेतु से संस्थाओं के संगठन करने का अधिकार। और इस अधिकार की रक्षा के लिए हम केवल असहयोगियों की ही तरफ से यह लडाई नहीं लड रहे हैं बल्कि ठेठ किसान से लेकर राजा तक, सारे भारत के लिए, और हर तरह के राजनैतिक दल वालों के लिए, हम यह संग्राम ठान रहे हैं। किसी भी सजीव पदार्थ की वृद्धि की यह शर्त है; लेकिन वाइसराय के उद्गारों में इसके विपरीत सिद्धान्त पर जोर दिया गया है, जिसकी रचना पूर्वकाल के एक स्वाधीनता के पक्षपाती ने अपने को ऐसी हालत में पा कर की थी, जहां कानून और शांति के रक्षक समझे जाने वाले लोगों के दिल में कानून और शांति के विषय में बहुत थोडा आदर-भाव था। मैं सिर्फ उन्हीं के छेडे-छाडे हमलों का जिक करता हूं जो कहीं एक आध जगह नहीं, एक आध आदमी पर नहीं, बल्कि सारे बंगाल, पञ्जाब और संयुक्त प्रान्त में हो रहे हैं। मुझे इस बात में शक नहीं है कि यदि यह दमन अपने इसी उन्मत्त रूप में जारी रहा तो यह सारा दुखी देश भय के साम्राज्य से कम्पित हो उठेगा। परन्तु चाहे यह चढाई सभ्यता-पूर्वक की जा रही हो अथवा असभ्यता-पूर्वक, जहां तक मैं साच सकता हूं, मुझे तो असहयोगियों के लिए, नहीं, मैं तो यह भी मानता हूं कि सारे भारत के लोगों के लिए, बस, एक ही मार्ग खुला है। इस सार्वजनिक सभायें करने के अधिकार के विषय में या सभा-समाज कायम करने के विषय मे कभी सिर झुकाया ही नहीं जा सकता। हमने तो अपनी किश्ती दरया मे डाल दी है और जबतक कि मनुष्य-जाति के इस प्रारम्भिक अधिकार की रक्षा नहीं हो जाती तबतक हमें उसको आगे चलाने ही रहना होगा।

अब मैं जरा खुद अपनी हालत को साफ तौर पर समझा दूं। मैं निपटारे के लिए बहुत उत्सुक हूं। मैं चाहता हूं कि राउंड टेबिल कान्फ्रेन्स हो। मैं चाहता हूं कि जो लोग हमारे पक्ष को जानना चाहते हैं वे हमारी हालत को साफ साफ जान जायं। मैं कोई शर्त उगाना नहीं चाहता। लेकिन जब कि किसी कान्फ्रेंस के होने के पहले मुझ पर कोई शर्त लगाई जाती है तब मुझे उन शर्तों के जांचने का मौका जरूर मिलना चाहिए और यदि वे शर्तें मुझे आत्मघातिनी दिखाई दें तो यदि मैं उन्हें मंजूर न करूं तो उसके लिए मुझे माफी मिलनी चाहिए। जो कुछ बिगाड पड गया है उसे मिटाने की जिम्मेवार अकेले सरकार ही है; क्यों कि आक्रमण पहले उसीने किया है।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

आदर्श कैदी

कलकत्ते के एक अ-सहयोगी मित्र ने एक तार भेजा है—"क्या असहयोगियों को जेल-खानों में जेल के नियमों के खिलाफ 'वन्दे मातरम्' का घोष करना चाहिए, जिससे मामूली कैदियों को दंगा-फसाद की उत्तेजना मिल सकती है? क्या असहयोगियों को अच्छा भोजन-पान पाने तथा दूसरी सुविधाओं के लिए अन्न-त्याग कर देना चाहिए? क्या हड़ताल के तथा दूसरे दिनों में उन्हें जेल के अन्दर काम बन्द कर देना चाहिए? क्या असहयोगियों को इस बात का हक हासिल है कि वे जेल के नियमों को, जब तक कि वे उनकी अन्तरात्मा को चोट न पहुंचाते हों, तोड़ डालें?"

भारत के एक दूसरे प्रान्त से भी एक असहयोगी मित्र ने यह सुनने पर कि असहयोगी कैदी जेल की मर्यादा के अनुसार नहीं बरतते हैं, मुझे सूचना दी है कि आप जेल की मर्यादा के पालन की आवश्यकता के सम्बन्ध में कुछ लिखें। परन्तु इसके विपरीत, मुझे तो यह मालूम है कि कहीं २ असहयोगी कैदी जेल की मर्यादा का पालन सुयोग्य रीति से ठीक ठीक कर रहे हैं।

अब जब कि हजारों आदमी जेलों को जा रहे हैं, यह समझ लेना आवश्यक है कि असहयोगी कैदियों को अपनी अहिंसा की प्रतिज्ञा के अनुसार किस तरह बरतना चाहिए। जब हम असहयोग के क्षेत्र की सीमाओं को नहीं मानते तब वह एक कर्तव्य होने के बजाय सब कुछ करने का एक खुला परवाना, अतएव एक जुर्म, होजाता है। अच्छे और बुरे का भेद बतलाने वाली रेखा प्रायः इतनी महीन होती है कि उसकी पहचान ही नहीं की जा सकती। लेकिन यह रेखा ऐसी है जो न तो तोड़ी जा सकती है और न उससे किसीको भ्रम ही हो सकता है।

तब उन लोगों में जो कि अच्छे कामों के लिए जेल गये हैं और जो कि बुरे कामों के लिए जेल गये हैं, क्या फर्क है? दोनों अक्सर एक से कपड़े पहनते हैं, एकसा खाना खाते हैं और बाहरी तौर पर दोनों को एक ही तरह जेल की मर्यादा का पालन करना पड़ता है। परन्तु जहां ये दूसरे, बुरे कामों के लिए जेल जाने वाले लोग, जेल की मर्यादा का पालन अत्यन्त अनिच्छापूर्वक करते हैं और उसे दबेछुपे अथवा होसके तो खुले-आम भंग कर देते हैं; तहां पहले, अच्छे कामों के लिए जेल जाने वाले लोग, खुशी खुशी और अपनी पूरी योग्यता के साथ जेल की मर्यादा का पालन करते हैं और अपने जेल से बाहर रहने की अवस्था की अपेक्षा अपने को अधिक सुयोग्य और देश की सेवा के अधिक योग्य सिद्ध करते हैं। हम देख ही रहे हैं कि इनमें जो बड़े बड़े प्रसिद्ध कैदी हैं, उनके जेल में रहने से उनके द्वारा देश की जितनी सेवा हुई है उतनी उनके बाहर रहने से नहीं। जितनी कड़ाई के साथ जेल की मर्यादा का पालन किया जायगा उसी परिमाण में उनकी सेवा की मात्रा बढ़ती जायगी।

हमें यह याद रखना चाहिए कि हम खास जेलों को ही तोड़ देना नहीं चाहते हैं। मैं तो समझता हूं कि शायद स्वराज्य में भी हमें जेलों को क़ायम रखना होगा। यदि हम सबे अपराधियों के दिमाग में यह बात भर देंगे कि स्वराज्य की स्थापना के बाद वे लोग अच्छी दशामें हो जायंगे तो हमें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। युवा कैदियों के सुधार के शिक्षालयों में भी मर्यादा का पालन तो करा ही लेना होगा और मैं तो स्वराज्य में इन जेलों को वही स्वरूप देना चाहता हूं। अतएव यदि हम मर्यादा-भंग की प्रवृत्ति को उत्तेजना देंगे तो इससे वास्तव में स्वराज्य की गति उलटी हो जायगी। हां, यह स्वराज्य का तेज चाल वाला कार्य-क्रम तो इसी विश्वास के आधार पर तैयार किया गया है कि हम सुसंस्कृत लोग हैं और इसलिए हम थोड़े ही समय में अपने अन्दर ऊंचे दरजे की नियम-बद्धता का विकास कर सकते हैं।

सच बात तो यह है कि एक ओर जहां सविनय कानून-भंग उस राज्य के जिसे हम नष्ट कर देना चाहते हैं, अन्याय-मूलक तथा अनीति-मूलक कानूनों के अनादर करने का अधिकार देता है, तहां दूसरी ओर वह यह कहता है कि उस कानून के अनादर की सजा नम्रता और राजी-रजामन्दी के साथ कुबूल करो और अतएव, जेल के कानून-क़ायदों का प्रसन्न-चित्त से पालन करो और उससे होनेवाले दुःखों और कष्टों को सहन करो।

इससे यह बात बिल्कुल साफ तौर पर जाहिर हो जाती है कि जेलमें जाते ही सत्याग्रही का प्रतिरोध बन्द हो जाता है और आज्ञापालन फिर से शुरू हो जाता है। जेल के अन्दर रहते हुए वह किसी तरह की रिआयत का दावा नहीं कर सकता-इस बिना पर कि कानून का अनादर विनय-पूर्वक किया है। जेल के अन्दर रहते हुए वह तो खुद अपने आचरण को उदाहरण-भूत बना कर अपने आस-पास के मुजरिमों का भी सुधार कर सकता है, वह जेलर के तथा दूसरे अधिकारियों के हृदय को मुलायम कर सकता है। ऐसा नम्रता-पूर्वक व्यवहार, जिसका उद्गम अपने बल और ज्ञान से हुआ हो, अन्त को जालिम के जुल्म को मिटाये बिना नहीं रह सकता। केवल इसी बिना पर मैं यह दावा करता हूं कि स्वेच्छा-पूर्वक कष्ट-सहन बुराइयों और अन्यायों को दूर करने की रामबाण दवा है।

अतएव यह प्रकट है कि किसी असहयोगी के लिए जेल की मर्यादा को भंग करते हुए 'वन्दे मातरम्' आदि घोष करना उसका चुपके चुपके जेल के नियमों को भंग करना नाजायज है। असहयोगी ऐसा कोई काम नहीं करेगा जिससे उसके साथ के कैदी नीति-भ्रष्ट हों। खुल्लमखुल्ला जेल के नियमों को भंग करने का या अन्नत्याग का मौका सिर्फ तभी हो सकता है जब या तो उन्हें बुरी तरह दबाने का प्रयत्न किया जाता हो, या वार्डर्में लोग खुद ही कैदी को आराम पहुंचाने के नियमों को तोड़ते हों, जैसा कि वे अक्सर करते हैं, या जब कि खाना इतना खराब दिया जाता हो जिसे मनुष्य नहीं खा सकता, जैसा कि प्रायः दिया जाता है। हां, जब किसी अपनी धर्म-विधि में बाधा डाली जाय तब भी जेल के अन्दर सविनय कानून-भंग किया जा सकता है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

"हिन्दी-नवजीवन" आधे मूल्य में

हिन्दी-नवजीवन के प्रकाशक श्रीयुत सेठ जमनालालजी बजाज ने निम्न-लिखित सूचना भेजी है—

"जो विद्यार्थी, शिक्षक अथवा महासभा के प्रचारक अपने स्थान के कम से कम ५ भाई-बहनों को "हिन्दी-नवजीवन" नियमित रूप से पढ़ कर सुनावेंगे उन्हें "हिन्दी-नवजीवन" आधे मूल्य में दिया जायगा। विद्यार्थियों और शिक्षकों को अपने विद्यालय के प्रधान अधिकारी तथा प्रचारकों को अपने स्थान की महासभा-समिति के मन्त्री का प्रमाणपत्र भेजना चाहिए। फरवरी के अन्ततक जिनके प्रार्थना-पत्र आ जायंगे उन्हीं पर विचार किया जायगा।"

व्यवस्थापक

पत्र और सन्देश

वासन्ती देवी का पत्र

"पूज्य महात्माजी,

मुझे बड़ा दुःख है कि मैं महासभा में उपस्थित नहीं हो सकती। मेरा यहां बंगाल में रहना अत्यन्त आवश्यक है। हम बंगाल में दिलोजान से लड़ रहे हैं और इस युद्ध को अन्ततक ले जाने का हमने निश्चय कर लिया है। सो युद्ध के ऐसे नाजुक समय पर मेरे लिए बंगाल से बाहर जाना कठिन मालूम होता है। लड़ाई अकेले कलकत्ते में ही नहीं छिड़ रही है; बल्कि बंगाल के तमाम जिलों में फैल गई है। मुझे आशा है कि आप मेरी कठिनाइयों पर ध्यान देकर मुझे क्षमा करेंगे।

आपको यह बात जरूर ही मालूम हुई होगी कि यहां कलकत्ते में हमारे और सरकार के बीच में श्री मालवीयजी के मार्फत सुलह की बात-चीत हुई थी। लार्ड रीडिंग ने इसके लिए अपनी कार्यसमिति की बैठक की थी। आपने देखा ही होगा कि एक प्रभावशाली शिष्टमंडल—डेपुटेशन-लार्ड रीडिंग के पास गया था और उसने राउंड टेबल कान्फरन्स की जरूरत बताई थी। आपने लार्ड रीडिंग का जवाब भी पढ़ा ही होगा। इस मामले में आपके साथ भी कुछ लिखा पढ़ी हुई थी। बंगाल के असहयोगियों ने, आप के तार के अनुसार, श्री मालवीयजी के मार्फत लार्ड रीडिंग को कुछ शर्तें पेश की थीं। शर्तों की खास बात यह थी कि कान्फरन्स की तारीख और उसमें शामिल होने वाले लोगों के नाम पहले तय होजाना चाहिए। यह कहा गया था कि कान्फरन्स जनवरी मास में होना चाहिए और उसमें तीन प्रश्नों पर विचार होना चाहिए—स्वराज्य, खिलाफत, पंजाब और इनके अलावा दूसरी आवश्यक बातें। कान्फरन्स के लिए महासभा के २१ नेताओं के नाम महासभा के प्रतिनिधि के तौर पर सुझाये गये थे, जिनमें मौलाना महम्मद अली, शौकत अली, डाक्टर किचलू के नाम थे। कैदियों को छोड़ देने तथा जारी किये हुक्मों को रद करने की जो शर्तें तार में कही गई थीं उनपर जोर दिया गया था और कहा गया था कि यदि ये सब बातें हों तो हम काम-चलाऊ सुलह कर सकते हैं और हड़ताल बन्द रख सकते हैं। मुझे मालूम हुआ है कि लार्ड रीडिंग ने ये शर्तें कुबूल कीं—इस बिना पर कि हमारी कौन्सिल यहां हाजिर नहीं है और शर्तों की कुछ बातों पर प्रान्तीय सरकारों की राय लेना है। इस सम्बन्ध में आपको यह भी मालूम होगा कि बिहार-सरकार ने पहले ही से इन शर्तों के आधार पर एक सूचना-पत्र भी प्रकट कर दिया है। लार्ड रीडिंग देहली चले गये हैं; परन्तु जाने के पहले इन शर्तोंपर सुलह की बातचीत करने की कोई तजवीज नहीं कर गये हैं। यहां जो कुछ हो रहा है वह बतलाने के लिए मैंने आप को यह सब लिखा है।

आप देखेंगे कि बंगाल से बहुत ही कम नेता महासभा में आ पाये होंगे। इस लड़ाई के लिए हमें उनकी यहां जरूरत है। यही कारण है जो हम कुछ ही नेता वहां भेज पाये हैं। यहां के स्वयं-सेवकों की गिरफ्तारियों के तथा यहां जो कुछ काम हुआ है उसके सम्बन्ध में आपको मेरी नन्द श्रीमती उर्मिला देवी से पूरी बातें मालूम होंगी।

सरकार ने फिर मेरे पति का मुकदमा ५ तारीख को रक्खा है। मुझे मालूम हुआ है कि उनपर यह अभियोग लगाया गया है कि उन्होंने महासभा-समितियों की तथा दूसरी ऐसी संस्थाओं की व्यवस्था और सहायता की है।

अ-सहयोग के प्रस्ताव के सम्बन्ध में, यदि मैं कोई बात सुझा सकूं, तो वह यह कि स्वयं-सेवकों की पात्रता तथा प्रतिज्ञा से सम्बन्ध रखने वाला भाग कुछ अधिक व्यापक होना चाहिए। बंगाल के इस संग्राम में सहयोगी और अ-सहयोगी दोनों एक हो गये हैं और एक ही उद्देश के लिए लड रहे हैं। हमने इस विषय में अपने नेताओं की एक सभा यहां की थी और उनकी भी यही राय है।

मैं देखती हूं कि युद्ध तो सारे भारत में छिड़ रहा है; लेकिन मेरा ख्याल है कि यह होगा लम्बा, कठिन और विकट। और मुझे यकीन है कि आपके नेतृत्व में हम विजय प्राप्त करेंगे। यद्यपि मैं तथा मेरे पति महासभा में उपस्थित न हो सकेंगे तथापि हमारी आत्मायें वहां आपके साथ होंगी। परमात्मा आपको सफलता प्रदान करें।"

(य० इं०) वासन्ती देवी दास

'युद्ध का कैदी'

[प्रयाग के 'इंडिपेंडेंट' के सम्पादक श्री० जार्ज जोसेफ के जेल चले जाने पर श्री० महादेव हरिभाई देसाई ने उसका डिक्लेरेशन पेश किया। प्रेम एक्ट मौत की राह देख रहा है। पर फिर भी प्रयाग के जिला मैजिस्ट्रेट ने दो हजार की जमानत का अड़ंगा लगा देना मुनासिब समझा। पत्र को जारी रखना आवश्यक था। जमानत दे कर पत्र निकला। दो ही बार अंक निकलने पाये थे कि सरकार दो हजार की जमानत को डकार गई और दस हजार के लिए मुंह फैलाया। ये दस हजार भी बेचारे के दिन चलेंगे, यह समझकर महादेवभाई ने हाथों लिखा अनरजिस्टर्ड दैनिक पत्र निकालना शुरू किया। पिछले सत्याग्रह के दिनों में श्री० गांधीजी ने बम्बई से 'सत्याग्रही' नामक एक ऐसा पत्र निकाला था। उस पर, हमें मालूम हुआ है कि, सरकार को यह सलाह दी गई थी कि छपा हुआ पत्र ही अखबार कहा जा सकता है और उसीका प्रकाशन कानूनन् बेजा माना जा सकता है। पर हाथों लिखा दैनिक इंडिपेंडेंट संयुक्त प्रांतवालों के लिए एक नई चीज थी। लोग उसे अपनाने के लिए दौड पड़े। संयुक्त प्रान्त की सरकार को यह कब सहन हो सकता था? वह तो श्री० देसाई पर खार खाये बैठी थी। फलतः उन्हें इसी बातपर १ साल के लिए सरकार के कैदखाने की महमानदारी मंजूर करना पड़ी।

महादेवभाई श्री० गांधीजी के स्नेह-भाजन और एक शान्त उत्साही साथी हैं। 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के पाठक उनकी लेखनी से अच्छी तरह परिचित हैं। उन्होंने अदालत में जो अपना लेखी बयान पेश किया है वह अपने ढंग का निराला ही है। उसका हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जाता है—उपसम्पादक]

"साफ बात तो यह है कि हमारे और आप के बीच युद्ध चल रहा है और मैं आपके सामने युद्ध के कैदी की हैसियत से खड़ा हूं! अगर हम असहयोगी आपकी तरह पशुबल के हामी होते तो मैं जुर्रत के साथ कहता हूं कि आपके भी कितने ही लोग आज हमारे युद्ध के कैदी होते। पर भगवान् ऐसा न करे कि किसी मनुष्य को हम लोग युद्ध के कैदी की तरह पकड़ कर परमात्मा के गुनहगार हों।

मैं अपने पहले जेल गये हुए साथियों की कृति के विपरीत, आपको मदद देता हूं; परन्तु आपपर उपकार करने के लिए नहीं, बल्कि जेल में अपनी सहायता के लिए। हम सब लोग बकवाई हैं और यह बड़े ही ताज्जुब की बात है कि आप छोटे गुनाह की बिना पर हम लोगों पर मुकदमा चलाते

है डाला कि मैं तो आप के किसी भी कानून-कायदे को नहीं मानता हूं। मैं सिर्फ क्रिमिनल ला एमन्डमेन्ट एक्ट को ही नहीं बल्कि गवर्नर जनरल आफ इन्डिया इन कौंसिल के सारे कानून-कायदों को नहीं मानता हूं। मैं यहां इसलिए खडा हूं कि आप जो सख्त से सख्त सजा दे सकते हों दें। मैं उसे बरदाश्त करने को तैयार हूं। मुझे अन्देशा सिर्फ इसी बात का है कि आप चाहे जिस दोजख की गहरी खाई में मुझे गिरा दीजिए; पर आप अपने प्रति मेरी बगावत की वृत्ति को मेरे दिल से किसी तरह नहीं निकाल सकेंगे। और न आप हमसे यह ढोंग ही करवा सकेंगे कि हम आपके इस सडियल राज्य-तन्त्र के प्रति वफादार हैं।

और इसके पहले कि आप मुझे किसी न किसी जेल के महमान के तौर पर स्वीकार करें, मुझे कृतज्ञता की दो बातें आपसे कहना हैं। आज मैं छुटकारे की दृढ भावना के साथ जेल में प्रयाण करूंगा। सरकार की करतूतों की सचाई के साथ परन्तु द्वेष-रहित आलोचना करने के कठिन कर्तव्य से मैं मुक्त हूंगा। यह शक्ति तो केवल मेरे उस्ताद को ही प्राप्त है। सचमुच मैं सरकार का कृतज्ञ हूं कि अब मुझे रोज सबेरे उठकर अपनी अधम वृत्तियों के साथ इस तरह युद्ध न करना पडेगा। मैं इसलिए भी आपका कृतज्ञ हूं कि यदि आपके जेल के नियम करने देंगे तो मैं जो काम यहां करता हूं उनसे अच्छे कामों में-जैसे सूत कातने में, अपना समय बिताऊंगा। और आपके नियम चाहे कैसे ही हों तथापि मैं अपने अन्दर जो कुछ भक्ति-भाव है उसके द्वारा अपने सिरजनहार का चिन्तन तो वहां अवश्य करूंगा। मैं आपको धन्यवाद देता हूं।" (यं. इं.)

जेल का हाल

"नवजीवन" में महादेवभाई के जेल का हाल इस प्रकार प्रकाशित हुआ है—"कल हम महादेवभाई से मिलने जेल में गये थे। पर हमें मिलने की इजाजत न मिली। हम उनके लिए खाना तथा ओढने के लिए कपडे और कुछ पुस्तकें ले गये थे। वे भी जेलर ने लौटा दीं। पर आज सुबह उनसे मुलाकात हो सकी।

वे मामूली कैदियों की पंक्ति में रक्खे गये हैं। जेल के तमाम नियम उनपर आरम्भ से ही लगा दिये गये हैं। जेल के कपडे पहना दिये गये हैं। एक काली नेमास्तीन और चड्ढी। ये कपडे बडे ही मैले, बदबू-भरे थे। उनमें चीलें पडी हुई थीं। दो कम्बल दिये गये हैं। उन्हें महीनों पानी का स्पर्श तक न हुआ होगा। उनमें भी चीलें भरी पडी थीं।"

पानी के लिए एक जंग खाया लोहे का बरतन दिया है। पानी जंग की वजह से जहरीला हो जाता है। रात को पीने के लिए तो उस बरतन में पानी रक्खा ही नहीं जा सकता। सुबह उसका रंग पीला हो जाता है।

एक मैले पानी के कुंड में नहाया जाता है। वही पानी पीने के काम में लाया जाता है! पता नहीं कि नहाने के लिए बाल्टी आदि दी जाती है या नहीं। नहाती दफा एक लंगोट पहनना पडता है। पर शरीर पोंछने के लिए कोई कपडा नहीं। धूप में शरीर सूख जाने पर फिर वही उतारे हुए कपडे पहने जाते हैं। यहां के जाडे को देखते हुए महादेवभाई जैसी तबीयत वाले आदमी के लिए कपडे धोकर सूखने तक लंगोट पहन कर नंगे बदन रहना कठिन ही है।

खाना भी जेल ही का। कल घर से खा कर गये थे; पर शाम को वहां कुछ नहीं खाया। आज सुबह कुछ दलिया जैसी चीज दी गई। बस वही खाई। उसके अन्दर कंकर और मिट्टी का तो पूछना ही क्या!

टट्टी के लिए दिन में बाहर जाना पडता है। आब-दस्त के लिए वही पानी पीने का बरतन। रात को पेशाब के लिए एक मिट्टी का बरतन कोठडी में रक्खा जाता है। वह भी पानी की तरह खुला ही रहता है। अभी बेडियां डालना बाकी है।

जेलर से मेरी खूब बात-चीत हुई। मैंने उनसे कहा कि आप छः महीने तक न मिलने देंगे, यह तो ठीक; पर याद रखिएगा 'मैं तो कैदी होकर मिल सकूंगा।' उन्होंने कहा— 'आइए, बहुत जगह है।'

"जेल जाना बडा आनन्ददायी है"

श्रीयुत सी. राजगोपालाचारी सालेम से श्री गांधीजी को एक पत्र में लिखते हैं—

"आपके पत्र और तार मिले। जेल जाना बडा ही आनन्ददायी है। जब मैं आपकी चिन्ताओं पर ध्यान देता हूं और यह सोचता हूं कि अब आप अकेले रह गये हैं तब मुझे ऐसा मालूम होता है कि आपको छोड कर जेल जाने में मैंने आपका अपराध किया है। आशा है, आप मुझे क्षमा करेंगे। जेल तो मेरे घर बैठे आई है।

मेरा हृदय आशा-पूर्ण है। बस, सरकार इसी नीति पर कायम रहे। जरा भी उसे ढीला न करे। नरम दलवालों में भी खलबली मच गई है। वे कान्फरन्स के लिए आवाज उठा रहे हैं। मैं समझता हूं, अभी इसका वक्त नहीं आया। आज की हालत में समझौता या कान्फरन्स करने से कुछ अधिक हाथ आने की उम्मीद नहीं। हमारी कुरबानियां अभी इतनी कम हो पाई है कि आज ही निपटारा करने मे कोई बडी चीज नहीं मिल सकती।

अब आप अकेले रह गये हैं; परन्तु हमारी तरफ से तो ईश्वर आपके अन्दर मौजूद ही है। वह आपको बल देगा।

हमारे कार्यक्रम में किसी तरह की गडबड न होने देनी चाहिए। बस, एक सविनय कानून-भंग की बात और जोड दी जाय। हम सब लोग तो जेल में हैं। इससे मेरा खयाल है कि नरम दलवाले भाई इस युद्ध की तीव्रता कम करने की भरसक कोशिश करेंगे। पर अब किसी तरह का रद्दोबदल करना मरने के बराबर है। चारोंओर नवीन उत्साह और नवीन बल का संचार हो रहा है और सविनय कानून-भंग बडा आशापूर्ण दिखाई देता है।

डाक्टर राजन यहां का काम चलावेंगे।

क्रिमिनल ला अमेंडमेंट एक्ट ने यहां बडे अच्छे प्रतिकार का खासा मौका दिया था। मदरास सरकार इस बात को समझ गई और उसने उसको जारी करना बन्द कर दिया, यद्यपि प्रान्त में उसको जारी करने की आज्ञा उसने प्राप्त कर रक्खी थी।

मोपलाओं के स्थानों से अंगरेज सिपाही लौट रहे हैं। उनसे मैंने बात की है। वे कहते हैं कि मोपला लोग दो बडे पहाडों पर भगा दिये गये हैं और उन्हें चारों ओर फौजो ने घेर लिया है। उनका खयाल है कि वे एकाध महीने में भूखों मर जायंगे। काम-चलाऊ सुलह की कोई बात ही नहीं है। यह लडाई तो इष्ट-सिद्धि हुए विना खतम होही नहीं सकती। (यं० इं०)

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, सूकी चौक, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित।

स्वतन्त्रता की पुकार

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—पौष सुदी १०, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, ८ जनवरी, १९२२ ई० | अंक २१

महासभा और उसके बाद

सारांश

महासभा का सप्ताह बड़े हर्ष और महोत्सव का सप्ताह था। किसीको भी यह न मालूम हुआ कि स्वराज्य नहीं प्राप्त हुआ है। यह दिखाई देता था कि प्रत्येक मनुष्य इस बात को जानता है कि हमारा राष्ट्रीय बल किस प्रकार बढ़ रहा है। जिसे देखिए उसीके चहेरे पर विश्वास और आशा के भाव झलकते हुए दिखाई देते थे। स्वागत-समिति ने एक लाख मनुष्यों का समावेश होने योग्य महासभा के मण्डप बनाये थे; परन्तु आगत सज्जनों की संख्या का अनुमान कम से कम २ लाख तक जा पहुँचता है। भीड़ इतनी अधिक थी कि सीजन टिकट या प्रवेश टिकट तक देना असम्भव हो गया। और यदि कुछ झूठी अफवाहें न उड़ाई गई होती जिनसे लोग डर गये तो दर्शकों की संख्या आश्चर्य करने योग्य बढ़ जाती। नेताओं के तथा कार्य-कर्ताओं के कारावास और उनके साहस ने लोगों के हृदयों में एक नई आशा और नई उमंग पैदा कर दी है। इसी भावना की हवा बह रही थी कि लोगों को यह मालूम हो गया कि आजादी प्राप्त करने की तथा अपनी आजादी में रुकावट डालने वाली बड़ी से बड़ी ताकत के टुकड़े टुकड़े कर डालने की रामबाण दवा बस कष्ट-सहन ही है।

महासभा के संगठन के अनुसार एक साल तक काम हुआ है और मेरी विनीत सम्मति में वह पूरा सफल हुआ है। विषय-निर्धारिणी समिति में चारों ओर गम्भीरता और 'काम से काम रखने' की प्रवृत्ति दिखाई देती थी। उसमें प्रत्येक बात की खूब छानबीन की जाती थी। फिर उसके सदस्यों का चुनाव तत्काल ही, जैसा बन पड़ा वैसा, नहीं किया था; बल्कि वे अपने मतदाताओं की ओर से बहुत सोच-विचार के उपरान्त निर्वाचित किये गये थे। मतदाता भी ऐसे जो यह जानते हैं कि हम क्या कर रहे हैं। खुद महासभा का दृश्य भी प्रभावशाली था। देशबन्धु चित्तरंजन दास की जगह पर हकीमजी अजमलखां साहब ने सभापति के आसन और धैर्य को खूब निबाहा। प्रतिनिधियों ने बिना विचारे अपना मत नहीं दिया, उन्होंने खूब अपनी शंकायें रफा कर लीं। प्रत्येक बात को और पूरी कार्रवाई को जानने का वे बारबार प्रयत्न करते थे।

स्वागत-समिति के सभापति श्रीयुत [illegible] पटेल ने अपना भाषण हिन्दी में पढ़ा। वह इतना छोटा था कि कोई १५ मिनिट में खतम हो गया। सभापति महोदय का परिचय कराने के लिए एक भी भाषण नहीं हुआ। यह कार्रवाई महा-समिति के ही [illegible] कर डाली। इससे बारह हजार प्रतिनिधियों और [illegible] के कम से कम दो घण्टे बच गये। सभापति महोदय का भाषण भी करीब २० मिनिट में पूरा हो गया था। महासभा में प्रत्येक वक्ता ने अपने प्रतिपाद्य विषय पर ही भाषण किया। वे अपने विषय से इधर उधर भटके नहीं। एक भी मिनिट व्यर्थ के कार्यों में नहीं लगाया गया।

स्थिति ही ऐसी थी कि इसके सिवा दूसरी तरह से काम अच्छे प्रकार नहीं हो सकता था। तमाम प्रस्तावों का सम्बन्ध राष्ट्र से था और वे राष्ट्र के ही सामने पेश भी किये गये। उन के द्वारा जनता के सामने ऐसा कार्य-क्रम रक्खा गया जिसके अनुसार, यदि देश यह चाहता हो कि संसार में उसे अपना उचित स्थान प्राप्त हो, तो उसे बड़े उत्साह और जोश के साथ काम करना होगा। इसलिए विषय-निर्धारिणी समिति तथा महासभा में इस बात पर असाधारण रूप से ध्यान दिया गया था कि प्रत्येक प्रस्ताव को लोग खूब अच्छी तरह समझ लें और फिर उस पर अपनी राय दें।

महासभा के काम-काज के सम्बन्ध में इतना ही बस है।

प्रदर्शिनी

महासभा का प्रदर्शन-विभाग भी कम प्रभावशाली नहीं था। खुद मण्डप ही बड़ा भव्य और शानदार था। वह चारों ओर खादी से आच्छादित था। कनातियां भी खादी की और विषय-निर्वाचक समिति का मंडप भी खादी ही का। मण्डप के सामने ही एक सुन्दर फौवारा था, जिसके आसपास हरी घास की पटरियां बड़ी सुहावनी मालूम होती थीं। महासभा के मंडप के पीछे एक बड़ा भारी मंडप और था जिसमें महासभा के वक्ता आ आकर महासभा की कार्रवाई का हाल उन हजारों नर-नारियों को सुनाया करते थे, जो द्रव्य अथवा प्रेम के कारण महासभा के मंडप में न जा पाये थे।

रात के समय यह सारा मैदान बिजली की रोशनी से चका चौंध हो जाता था। यह स्थान साबरमती के किनारे है। एलिस-पुल के खतम होते ही शुरू हो जाता है। पुल से तथा नदी के दूसरे किनारे से देखने वाले हजारों तमाशबीनों के लिए यह बड़ा उज्ज्वल और भव्य दृश्य था।

प्रदर्शिनी का स्थान बस पुल के पास ही था। झुंड के झुंड लोग प्रदर्शिनी में टूटे पड़ते थे। प्रदर्शिनी के काम में बड़ी सफलता हुई। लोगों की आमदरफ्त तो अनुमान से भी बाहर निकली। कोई ४० हजार से कम प्रेक्षक हर रोज वहां नहीं गये। भारत में क्या क्या चीजें तैयार हो सकती हैं इसका यह अद्वितीय प्रदर्शन था। चिकाकोल (आन्ध्र-देश) के कुछ कारीगर आये थे। वे कपास की समस्त क्रियायें खुद करके बताते थे। १०० नम्बर तक का सूत हाथ से कात कर दिखाते थे। यह दृश्य बड़ा चित्ताकर्षक था। किसी भी तरह के यन्त्र-साधन से शायद ऐसी बर्फ के जैसी सफेद पूनी नहीं बनाई जा सकती जैसी कि उन आन्ध्र की महिलाओं ने अपने सीधे-सादे हाथों से बनाकर दिखाई। जितना बढ़िया धागा उन आन्ध्र-महिलाओं की कोमल उंगलियों से निकलता था उतना किसी यन्त्र से नहीं निकल सकता। तकुआ चक्कर खाता हुआ अपने संगीत का जैसा सुर छेड़ता था वैसा दूसरे किसी प्रकार से नहीं निकल सकता। एक कमरे में हर तरह की खादी के नमूने रक्खे थे। उससे यह जाना जा सकता है कि हम एक वर्ष में खादी के जीवन में कितना विकास हुआ है। कविवर रवीन्द्रनाथ के शान्ति-निकेतन से तथा दूसरी जगहों से कुछ चित्रकला और रंग साजी के नमूने आये थे और कुछ नक्शी की कारीगरी के भी सुन्दर नमूने रक्खे गये थे। उन्हें देखकर मामूली आदमी को तथा उस विषय के ज्ञाता को भी कुछ नई बातें मालूम हो सकती थीं। संगीत के जल्से भी हुए थे। भारत के समस्त प्रान्तों के अच्छे अच्छे गवैया एकत्र हुए थे। उसे देखने के लिए हजारों लोग बे-तरह उमड़ते थे। जल्सों के अन्त में अखिल भारतवर्षीय संगीत-परिषद् का पहला अधिवेशन हुआ। उसके सूत्र-संचालक थे गांधर्व महाविद्यालय के संस्थापक पण्डित विष्णु दिगंबर पलुस्कर। परिषद् का उद्देश यह था कि राष्ट्रीय सभा-समितियों में संगीत का प्रवेश और प्रचार करना तथा भजन-मंडलियों का संगठन करना।

खादी का प्रत्यक्ष प्रमाण

खादी-नगर, उसके पास का मुस्लिम-नगर और उसके पड़ोस ही में खिलाफत मंडप, ये हिन्दू-मुसल्मान-एकता के सब से बड़े उदाहरण थे तथा खादी की लोक-प्रियता के प्रत्यक्ष प्रमाण थे। स्वागत-समिति ने सिर्फ गुजरात में ही बनी खादी से काम लिया है। साढ़े तीन लाख रुपये की कुल खादी मंगाई गई और उसके उपयोग के लिए पचास हजार रुपया खर्च किया गया। प्रतिनिधियों और दर्शकों के तमाम डेरों पर तथा एक बड़े भारी रसोई-घर और सामान-घर पर खादी ही खादी लगी हुई थी। कोई दो हजार हिन्दू-मुसलमान स्वयंसेवक थे। उनमें कुछ पारसी और ईसाई भी थे। खादी-नगर तथा मुस्लिम नगर में ठहरने वाले तमाम महमानों के सत्कार और प्रबन्ध का भार इन्हीं पर था।

आगत सज्जनों की आरोग्यरक्षा के लिए विशेष-रूप से प्रबन्ध किया गया था। टट्टी-पखानों के लिए छोटी छोटी खन्दकें खुदवाई थी और हर एक बैठक के चारों ओर खादी की दिवारें बनाई गई थीं। हरएक सज्जन के टट्टी फिर के बाहर निकलते ही मैले पर साफ मट्टी डाली जाती थी। इससे जब कभी कोई टट्टी जाता तो वह उसे साफ ही नजर आती। टट्टी-पखानों पर दाम देकर मेहतर नहीं रक्खे गये थे; पर हर जाति और हर मजहब के स्वयंसेवक लोग तैनात थे। टट्टी-पखाने की सफाई क्या कम आवश्यक है? पर इसके लिए उन्हीं स्वयंसेवकों की योजना की गई थी जिन्हें इस काम से अरुचि नहीं थी। पाठक शायद इस बात को न जानते होंगे कि यह विधि कितनी अच्छी और समयोपयोगी है। इससे सफाई खूब रहती है। इससे मैला साफ करने वाले को न तो मैले को ही छूना पड़ता है और न उस पर पड़ी हुई मट्टी को ही। उसे बस कुछ बेलचे साफ मट्टी उस पर डाल देने की और उससे अहतियात के साथ मैले को ढक देने की जरूरत रहती है। इस जरा से और मामूली अहतियात का यह फल हुआ कि आसपास के मुकाम बड़े साफ और सुहावने बने रहे और मक्खियों की भिनभिनाहट से और उनके दोष से बचे रहे। तमाम मुकामों पर बिजली की रोशनी की तजवीज की गई थी।

महिला-परिषद्

मैं महिला-परिषद् का उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता, जिसकी कि सभानेत्री अली-भाइयों की वीर माता बी-अम्मा थीं। उसका दृश्य देखकर दिल में खलबली मच जाती थी। मैं यह नहीं कहता कि वहां जो कुछ हो रहा था उसका रहस्य सभी की समझ में आ गया। लेकिन मैं यह जरूर कहता हूं कि वे इतना अपने दिल से जानती थीं कि यहां क्या बात हो रही है। वे जानती थीं कि उनकी इस सभा ने भारत की उद्देश्य-पूर्ति में बड़ी सहायता पहुंचाई है और उन्हें मालूम था कि हमें भी अब पुरुषों के साथ ही साथ अपनी कृति का चमत्कार दिखाना है।

इस तमाम भीड़-भड़क्के में, जहांतक मुझे पता है, किसी तरह की कोई दुर्घटना नहीं हुई। पुलिस ने किसी के काम में दखल नहीं दिया, किसी से छेड़-छाड़ नहीं थी। यह उसके लिए नेकनामी की बात है। पुल से महासभा की ओर सारा प्रबन्ध महासभा तथा खिलाफत के स्वयं-सेवकों के सिपुर्द था।

बुरा दृश्य

यहां तक तो मैंने महासभा के चित्र का अच्छा दृश्य दिखाया। परन्तु अन्य सभी चित्रों की तरह इस चित्र में भी तरह तरह की छायायें दिखाई देती हैं। हां, लोगों में उत्साह तो खूब प्रबल था; पर प्रेक्षकलोग कभी कभी नियमों का भंग कर देते थे। उनका अधैर्य इतना बढ़ गया कि एक दो बार तो मण्डप में जाने के लिए जबरदस्ती फाटक में घुस पड़े। उस समय तो कुशल रही; परन्तु उससे बात बढ़ कर झगड़ा खड़ा हो सकता था, जिसका फल भयंकर ही होता। हममें इतनी योग्यता अवश्य होनी चाहिए जिससे हम ऐसे कार्यों को पूर्ण शांति के साथ निर्विघ्न पूरा कर सकें। और यह उसी दशा में सम्भवनीय है जब कि जन-समूह कुदरती तौर पर और अपने आप अपने ही भाई-बिरादरों की हिदायतों के मुताबिक बरतें। आत्मसंयम स्वराज्य अर्थात् आत्म-शासन की कुंजी है। प्रतिनिधि-भाई भी नियमों का पालन करने में शिष्टाचार का ध्यान नहीं रखते थे। कुछ लोग तो अपने प्रांत के लिए नियत स्थान को छोड़ कर दूसरी जगह बैठ गये। कुछ भाइयों ने तो बिना हिचकिचाहट के यहांतक कह डाला कि हम तो सविनय (!) कानून-भंग के लिए कमर कस चुके हैं, अतएव जहां हमारा जी चाहेगा वहीं बैठेंगे। महा-समिति के भी कुछ सदस्य ऐसे असद् दण्ड-योग्य कानून-भंग से बरी नहीं थे। कुछ प्रतिनिधियों ने अपने स्थान का किराया और भोजन के दाम भी देना नहीं चाहे। और मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि एक गुजराती भाई, यह जानते हुए भी कि प्रेक्षकों के टिकट दूसरे के काम नहीं आ सकते, जालसाजी करके अपने एक मित्र का टिकट ले कर आते रहे। इस बात से मेरा

हुआ और भी बढ़ जाता है कि वे प्रांतिक समिति के एक प्रसिद्ध सदस्य हैं।

अब आगे

जब मैं इस बुरे दृश्य का ध्यान करता हूं तो मेरा कलेजा टूक टूक हो जाता है। हमें अपने ध्येय की पहचान करने में क्यों देर हो रही है, यह मैं जानता हूं। परन्तु जब मैं उसके अच्छे दृश्य की ओर देखता हूं तो चित्र इतना मनोहर मालूम होता है कि इन छायाओं से उसकी सुन्दरता स्थूल रूप से कम नहीं हो सकती। पर साथ ही हमें इन बातों को भूल जाना तथा बीकमने पन में गफलत करना ठीक नहीं है। इस आन्दोलन की सफलता अकेले हमारे नैतिक बल के विकास पर ही अवलम्बित है। जिस प्रकार संगीत में एक सुर के बिगड़ जाने से सारा मजा किरकिरा हो जाता है उसी प्रकार हमारे इस आन्दोलन के जैसे महान् आन्दोलन को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए एक ही आदमी बस है। हमे याद रखना चाहिए कि हमारी सब बातों का आधार है सत्य और अहिंसा। दूसरे लोग जिन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा नहीं की है चाहे जो किया करें; पर यदि हम अपनी ही विचारपूर्वक की गई प्रतिज्ञाओं को तोड़ने लगें तो इससे सर्वनाश हुए बिना न रहेगा। इसलिए, जैसा कि मैं अक्सर कहा करता हूं, महासभा के संगठन के अनुसार कामिल तौर पर काम करने से ही स्वराज्य की स्थापना अपने आप हो जायगी। देखें, कैसे होता है?

महासभा का कोष

महा-समिति के पास तो अभी एक अच्छी रकम शेष है; परन्तु प्रांतीय समितियां अवश्य ही अपने पास का सब रुपया लगा चुकी होंगी। उनके पास आमदनी का जरिया क्या है। उनकी आमदनी अपने आप बंधी हुई है। महासभा के हरएक सदस्य को ।) फी साल चन्दा देना आवश्यक है। तभी उसका मत देने का अधिकार कायम रह सकता है। अतएव यदि प्रत्येक प्रांत में यथेष्ट सदस्य हों तो कम से कम दो लाख महासभा-पत्रक में दर्ज सदस्यों के पचास हजार रुपये उसके पास जमा हो सकते हैं। मुझसे कहा गया है कि यह तो केवल मृग-तृष्णा है; क्योंकि इतने रुपये वसूल करने में खर्च मूल से भी अधिक हो जाता है। जो सरकार अपनी आय से अधिक खर्च करती है वह स्वेच्छा चारिणी या भ्रष्ट सरकार होती है। महासभा के लिए तो यह दावा किया जाता है कि लोग उसका संचालन स्वेच्छा-पूर्वक करते हैं। और यदि हम बराय नाम के खर्च पर उसका चन्दा वसूल नहीं कर सकते तो हमें जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं। स्वराज्य हो जाने पर हम लगान-वसूली के खर्च को २॥ सैकड़ा से अधिक उम्मीद न कर सकेंगे और सो भी बल-प्रयोग करके नहीं, बल्कि लोगों की इच्छा के अनुसार। अतएव प्रत्येक प्रान्त से हमें कम से कम इतनी आशा करनी चाहिए कि वसे अब अपने कोष की पूर्ति खुद ही करना चाहिए। फिर कम से कम एक करोड़ सदस्य अर्थात् २५ लाख रुपये सारे भारत से सदस्यता के चन्दे के रूप में प्राप्त करना कौन कठिन बात है? यदि हमारा संगठन या यों कहें कि सरकार दिन पर दिन अधिकाधिक लोकप्रिय होती जाती होगी तो हमारे सदस्यों की संख्या दूनी हो जानी चाहिए। हमारे पास ऐसे सुयोग्य और ईमानदार अवैतनिक स्वयंसेवक काफी तादाद में होने चाहिए जो सिर्फ चन्दा वसूल करने का ही काम करें। यदि ऐसा न हो तो हमें अपना दिवाला निकाल देना चाहिए। यदि महासभा देश के उत्तम और स्वाभाविक संवर्धन का लक्षण हो तो किसी भी प्रकार की कोशिश के बिना ही यह नाम-मात्र का तावान व्यक्तिगत रूप वसूल हो जाना चाहिए। और जो बात स्वयं महासभा के विषय में चरितार्थ होती है वही उसकी दूसरी संस्थाओं जैसे महाविद्यालय, पाठशालायें, बुनाई के कारखाने, आदि पर भी घटती हैं। जो संस्था स्वयं अपने नैतिक बल पर अपने स्थान की जनता से सहायता नहीं प्राप्त कर सकती वह जीवित रहने के योग्य नहीं है। अपने ही जिले की सहायता से जो संस्था चलती है वही उस जिले के लिए आवश्यक हो सकती है। पादरियों की कई बड़ी बड़ी संस्थायें हैं। उनको इंग्लैंड या अमरीका से रुपया मिलता है। पर हैं वे लोगों पर आरूप ही। जनता का तन-मन उनके साथ नहीं है। यदि पादरी लोग आरम्भ से ही लोगों की श्रद्धा और सहायता पर अपना आधार रखते तो उनके द्वारा आज भारत की अपरिमित सेवा हुई होती। इसी प्रकार यदि महासभा-समितियों तथा महासभा से सम्बन्ध रखने वाली दूसरी संस्थाओं को उसके मध्यवर्ती मंडल की ओर से सहायता मिलने लगे तो बहुत सम्भव है कि वे उन बीजों की तरह हो जायं जो बाहर से लाकर कहीं लगाई जाती हैं और उनसे शायद ही जनता का हित हो। अतएव यह एक सामान्य नियम बनाया जा सकता है कि जिस संस्था को स्थानिक लोगों की ओर से सहायता नहीं मिलती उसे जीवित न रहना चाहिए। आत्मावलम्बन आत्म-शासन की क्षमता की अचूक कसौटी है। हां, यह हो सकता है कि ऐसे स्थान और प्रान्त अभी होंगे जिन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान न हुआ हो। आरम्भिक अवस्था में उन्हें उनके विकास में सहायता देनेकी आवश्यकता होगी। सरकार के साथ संग्राम की जो बन्दिशें हम करें उनमें उनकी गिनती नहीं की जा सकती। इस वायुवेग वाले युद्ध में हमें केवल उन्हीं स्थानों पर अपना आधार रखना होगा जिनके राजनैतिक चैतन्य का विकास हो चुका होगा। अतएव मध्यवर्ती मंडल से बहुत ही थोड़ी स्थानिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता मिलने की आशा रखनी चाहिए।

छूआछूत

इसी तरह हमको छुआछूत के विषय में भी भगीरथ प्रयत्न करना चाहिए। जबतक कि खुद अछूत लोग ही हिन्दूधर्म के इस सुधार को तसदीक न करें तबतक क्या हम उनके लिए कुछ करने का दावा कर सकते हैं? इस विषय में मुझे आन्ध्र जैसे अत्यन्त प्रगतिशील और खूब जाग्रत प्रान्त में भी गलतफहमी मालूम हुई। यह देखकर मुझे कुछ आश्चर्य और भीति हुई। छुआछूत का दूर करने का अर्थ है पांचवीं जाति को संसार से उठा देना। अतएव यदि कोई पंचम जाति का लड़का किसी सार्वजनिक कुए से पानी खींचे या सार्वजनिक मदरसे में पढ़े तो लोगों को उसपर कोई आपत्ति न होनी चाहिए। एक अ-ब्राह्मण जितने काम कर सकता है उतने सब काम करने का अधिकार उसे होना चाहिए। धर्म के नाम पर हम हिन्दुओं ने बाहरी बातों का खूब आडम्बर मचा रक्खा है और धर्म को केवल भोजन-पान का विषय बना कर उसका अधःपात कर दिया है। ब्राह्मण-धर्म्म को जो अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है उसका कारण है ज्ञान से प्रदीप्त निस्पृहता, अन्तःकरण-शुद्धि और तीव्र तपस्या। हिन्दू लोग यदि भोजन-पान और स्पर्शास्पर्श के आध्यात्मिक प्रभाव को अनुचित महत्व देंगे तो इसका कुफल उन्हें मिले बिना नहीं रह सकता। हमारी आन्तरिक परीक्षा का समय है। हम मोह से लिप्त हैं। घोर से घोर अस्पृश्य और पाप-पूर्ण विचारों का प्रवाह हमें स्पर्श कर रहा है और अपवित्र बना रहा है। ऐसी दशा में हम अपनी पवित्रता के घमण्ड में मस्त हो कर अपने उन भाइयों के स्पर्श के प्रभाव को तिल का ताड़ न बनावें जिन्हें हम अक्सर अपने अज्ञानवश और उससे भी अधिक अपने बड़प्पन की ठसक से

अपने से नीच समझते हैं। उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा के दरबार में हमारी पहचान इस बात से नहीं होगी कि हमने क्या क्या खाया-पिया है और किन किन के साथ स्पर्शास्पर्श किया है; बल्कि इस बात से होगी कि हमने किन किन को सेवा किस किस तरह से की है। यदि हमने किसी एक भी विपत्ति-ग्रस्त और दुखी-दर्दी मनुष्य की सेवा की होगी तो वह अवश्य हम पर कृपा-दृष्टि करेगा। जिस प्रकार हमें बुरे लोगों और बुरी बातों के संसर्ग से बचना चाहिए उसी प्रकार शराब, अफीम और गंदे भोजन-पान से भी दूर रहना चाहिए। परन्तु हमें इन नियमों की महिमा वास्तविकता से अधिक न बढ़ानी चाहिए। हमें अपने कपट-जाल, धूर्तता और पापाचरणों को छिपाने के लिए व्रत, उपवास आदि का आडम्बर कभी न रचना चाहिए। और इस आशंका से कि कहीं उनका स्पर्श हमारी आध्यात्मिक उन्नति में बाधक न हो, हमें किसी पतित या गन्दे भाई-बहन की सेवा से हरगिज मुंह न मोड़ना चाहिए।

हिन्दू-मुसल्मान-एकता

हिन्दू-मुसलमान-एकता के विषय में भी अभी बहुत कुछ होना बाकी है। इस एकता को अभी लोग सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। उन्हें डर है कि इससे छोटी जातियों के स्वतन्त्र अस्तित्व तथा उन्नति को बाधा पहुंचेगी। हम सावधान रहें। हमें अपनी पिछली भूलों को फिर न दोहराना चाहिए। हमें अपने नरमदल के तथा स्वतन्त्रता चाहनेवालों के साथ भाई-चारे का बरताव रखना चाहिए। उन्हें यह न समझने देना चाहिए कि इन लोगों के साथ रहने में हमारी खैर नहीं है। हमें अपनी सहिष्णुता को खूब बढ़ाना चाहिए-इतनी कि जिससे उनके और हमारे आदर्शों को जोड़ कर उनके दिल का तमाम शको-शुबह और विरोध दूर हो जाय।

सविनय कानून-भंग

हमें केवल सविनय कानून-भंग पर ही अपने विश्वास को दृढ़ न रखना चाहिए। यह एक ऐसा चाकू है जिसका उपयोग हमें बहुत ही किफायत के साथ करना चाहिए। जब मनुष्य बराबर बे-रोक काटता ही चला जाता है तो वह उसकी जड़-बुनियाद को भी काट डालता है और जिस बात के लिए वह ऊपर के फजूल अंश को काटना चाहता था वह भी उसके साथ कट जाती है। सविनय कानून-भंग का प्रयोग केवल उसी दशा में अच्छा, आवश्यक और असरदार होगा जब हम मनुष्य की उन्नति के दूसरे तमाम नियमों पर अटल और दृढ़ रहें। अतएव हमें कानून-भंग के बनिस्बत उसके 'सविनय' विशेषण पर पूरा पूरा जोर देना चाहिए। विनय, नियम-बद्धता, विवेक और अहिंसा के बिना कानून-भंग करने से सिवा सर्वनाश के और कुछ नहीं हो सकता। प्रेम के साथ किया गया कानून-भंग प्राणदायी और जीवन-वर्द्धक है। सविनय कानून-भंग तो उन्नति का बड़ा बढ़िया लक्षण है; यह मृत्यु का चिह्न हरगिज नहीं।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

पत्र-प्रेषक महाशयो

आप हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, अंगरेजी इनमें से किसी भी भाषा में पत्र लिखें, परन्तु वह सुवाच्य जरूर होना चाहिए। अन्यथा उसका उत्तर मिलना कठिन होगा।

अंक न मिलने की शिकायत करने वाले सज्जनों को अपना ग्राहक नम्बर और पूरा पता—डाकखाना, जिला, आदि—साफ साफ लिखना चाहिए। नहीं तो हम उनकी शिकायत दूर करने में समर्थ न हो सकेंगे।

मनीआर्डरों के कूपन पर भी अपना पूरा पता बिलकुल साफ साफ लिखने की कृपा किया करें।

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

एकता का उपाय

हिन्दू-मुसलमान-एकता के सम्बन्ध में श्री० गांधी जी "नवजीवन" में लिखते हैं—"यद्यपि हिन्दू-मुसलमानों के दिल साफ होते जाते हैं तथापि अभी हमारे दिल से डर दूर नहीं हुआ। अभी हमारे रास्तों में कंकड़, कांटे, झाड़ियां और ढोंके साफ करना हैं। इसके कुछ उपाय ये हैं—

१ हम एक दूसरे के सुख-दुःख में शरीक हों २-एक दूसरे की भावनाओं का ध्यान रक्खें ३-परस्पर डर को दूर कर दें ४-ऐसी बातों का संग्रह करें जिसमें दोनों का हित मिला हुआ हो। खिलाफत ने हमें पहली शर्त के पालन करने का रास्ता दिखा दिया है, हिन्दू-मुसल्मान दोनों की धार्मिक विधियों में दखल न देते हुए हम अपनी अपनी हमदर्दी दिखा सकते हैं। हिन्दुओं की संख्या अधिक होने के कारण मुसल्मान न डरें। हिन्दू लोग भी इस डर को छोड़ दें कि मुसल्मानी राज्यों की सहायता लेकर मुसल्मान हिन्दुओं को दबा देंगे। स्वदेशी-चरखा में सबका समान स्वार्थ है। उसकी खूबियां और उसके लाभ यदि हिन्दू-मुसल्मान एक सा समझ लें तो एकता खूब बढ़ जाय। परन्तु एकता बढ़ाने का सब से आसान उपाय यह है कि हिन्दू और मुसल्मान दोनों छोटी जातियों की रक्षा करने में तत्पर हो जायं। दोनों जातियां, पारसी, ईसाई और यहूदियों के साथ प्रेम करें, उन्हें आदर की दृष्टि से देखें, उनकी रक्षा करें, स्वप्न में भी उन्हें तंग करने का या उनके साथ जबरदस्ती करने का खयाल न करें। इससे परस्पर एक दूसरे की सहायता और सेवा करने की आदत पड़ जायगी। जिस दरजे तक हमारे अन्दर सेवा-भाव की वृद्धि होगी उसी दरजे तक हम एक-दिल होंगे। हिन्दू-मुसल्मान यदि एक दूसरे के सरपरस्त या मेहरबान बनने की कोशिश करेंगे तो जरूर अन्त में दुश्मन हुए बिना न रहेंगे। पर यदि एक दूसरे के सेवक हो जायंगे तो यह स्नेह-गांठ दिन पर दिन मजबूत होती जायगी-फिर वह न किसी के तोड़े टूटेगी, न जलाये जलेगी और न गलाये गलेगी।"

"हिन्दी-नवजीवन" आधे मूल्य में

हिन्दी-नवजीवन के प्रकाशक श्रीयुत सेठ जमनालाल जी बजाज ने निम्न-लिखित सूचना भेजी है—

"जो विद्यार्थी, शिक्षक अथवा महासभा के प्रचारक अपने स्थान के कम से कम ५ भाई-बहनों को "हिन्दी-नवजीवन" नियमित रूप से पढ़ कर सुनावेंगे उन्हें "हिन्दी-नवजीवन" आधे मूल्य में दिया जायगा। विद्यार्थियों और शिक्षकों को अपने विद्यालय के प्रधान अधिकारी तथा प्रचारकों को अपने स्थान की महासभा-समिति के मन्त्री का प्रमाणपत्र भेजना चाहिए। फरवरी के अन्त तक जिनके प्रार्थना-पत्र आ जायंगे उन्हीं पर विचार किया जायगा।"

व्यवस्थापक

जरूर पढ़िए

पूर्वोक्त सूचना के अनुसार हमारे पास कितने ही पत्र आये हैं; परन्तु बहुतेरे लोगोंने उनके साथ प्रमाण-पत्र नहीं भेजे। अतएव हम उन सब महाशयों का तथा अब आगे पत्र भेजनेवाले सज्जनों का ध्यान नीचे लिखी बातों की ओर दिलाते हैं—

१ जो सज्जन प्रमाण-पत्र नहीं भेजेंगे उनके पत्र पर विचार नहीं किया जायगा न उसका कोई उत्तर ही दिया जायगा।

२ जो सज्जन इस रिआयत के मुस्तहक हो चुके हों वे मनीआर्डर के कूपन पर रिआयत का उल्लेख जरूर करें।

व्यवस्थापक

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, पौष सुदी १०, सं. १९७८.

स्वतन्त्रता की पुकार

मौलाना हसरत मोहानी ने महासभा में तथा सभापति की हैसियत से मुस्लिम लीग में बड़ी हिम्मत के साथ आजादी के लिए लड़ाई ठानी; लेकिन दोनों बार उन्होंने बड़े मजे में मुंह की खाई। मौलाना साहब क्या चाहते थे, इसके विषय में किसी का खयाल गलत नहीं हो सकता। बराबर की और हिस्सेदार की हैसियत से भी तथा खिलाफत का निपटारा अच्छी तरह हो जाने पर भी, वे अंगरेज लोगों के साथ किसी किस्म का ताल्लुक रखना नहीं चाहते। यह कहना ठीक नहीं होगा कि कामिल आजादी के बिना खिलाफत के मसले का निपटारा कभी हो ही नहीं सकता। हम यहां सिद्धान्त की चर्चा कर रहे हैं। यदि कामिल आजादी के बिना खिलाफत का सवाल हल नहीं हो सकता अर्थात् यदि अंगरेज लोग मुसल्मानी दुनिया की उच्च आकांक्षाओं के प्रति विरोध-भाव ही रखते रहे, तो हमारे लिए पूर्ण स्वतन्त्रता का आग्रह किये बिना दूसरा उपाय ही नहीं है। यदि मुसल्मानी दुनिया के साथ बरतानिया का दोस्ताना ताल्लुक कराने में सफलता न मिली तो भारत बरतानिया को अपनी नैतिक सहायता भी नहीं दे सकता और खुद उसे भी बिरतानिया की नैतिक और भौतिक सहायता के बिना अपना काम चलाना होगा।

परन्तु फर्ज कीजिए कि ग्रेटब्रिटन ने अपने रुख को बदल दिया—जैसा कि, मैं जानता हूं, वह हिन्दुस्तान को बलवान् पाकर, बदलेगी—तब भी पूरी आजादी के लिए जोर देते रहना धार्मिक दृष्टि से नाजायज होगा। क्योंकि वह प्रतिहिंसा और शक होगी। ऐसा करना खुदा को न मानना होगा; क्योंकि उस अवस्था में उनसे किनारा-कशी करने का आधार इस खयाल पर होगा कि अंगरेज लोग मनुष्य के देव-भाव को पहचानने और उसे अपनाने की क्षमता नहीं रखते। ऐसी स्थिति को न तो श्रद्धावान् हिन्दू ही और न श्रद्धावान् मुसलमान् ही कुबूल कर सकता है।

भारतवर्ष की कीर्ति इस बात में नहीं है कि वह अंगरेज भाइयों को अपने खून का प्यासा दुश्मन माने, जिसे कि मौका मिलते ही सबसे पहले हिन्दुस्तान से निकाल बाहर कर दें; बल्कि इस बात में है कि उन्हें उस साम्राज्य-पद से हटा कर, जिसकी भित्ति पृथिवी के कमजोर और अनुन्नत राष्ट्रों तथा जातियों की आर्थिक लूट पर, और इसलिए आखिरकार पशु-बल पर है, एक ऐसे नये साधारण-तन्त्र में बदल दें जिसमें वे और हम मित्र की और हिस्सेदार की हैसियत से रहें।

जरा हम इस बात पर विचार करें कि ऐसे स्वराज्य का जिसमें अंगरेजों के साथ सम्बन्ध रहे, अर्थ क्या है? इसका निस्सन्देह यही अर्थ है कि भारत यदि चाहे तो स्वतन्त्रता की घोषणा कर सके। अतएव स्वराज्य कोई ब्रिटिश पार्लियामेंट से मिलने वाला तुहफा का नाम नहीं होगा। वह भारत के पूर्ण आत्मोद्धार की घोषणा होगी। हां, यह सच है कि वह पार्लियामेंट के एक कानून के द्वारा ही घोषित किया जायगा। लेकिन वह तो भारतीय प्रजा के प्रकाशित मत की बाजाब्ता स्वीकृति मात्र है। दक्षिण आफ्रिका की यूनियन के विषय में भी ऐसा ही हुआ था। हाउस आव् कामन्स के द्वारा यूनियन की योजना का एक अक्षर इधर से उधर न हो सका। हमारे मत की स्वीकृति तो सन्धि के रूप में होगी और बिरतानिया उसका एक अंग होगा।

ऐसा स्वराज्य चाहे इस वर्ष न आवे, इस पुश्त में भी न आवे। लेकिन मैंने इससे कम का विचार नहीं किया है। जब कभी निपटारा होगा तब ब्रिटिश पार्लियामेंट नौकरशाही के द्वारा प्रकाशित भारतीय प्रजा के मत को नहीं बल्कि भारत के आजादी के साथ चुने गये प्रतिनिधियों के द्वारा प्रकाशित मत को स्वीकार करेगी।

कोई एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र को स्वराज्य बतौर दान के नहीं दे सकता। यह तो ऐसा निधि है जो देश के अच्छे से अच्छे पुरुषों के रक्त से ही खरीदा जा सकता है। और जब हम उसकी बहुत बड़ी कीमत दे चुकेंगे तभी वह हमारे लिए दान-रूप न रहेगा। बड़े लाट साहब ने यह कहा है कि स्वराज्य यदि तलवार के द्वारा नहीं मिलेगा तो पार्लियामेंट के द्वारा ही मिल सकता है। यहां वे गड़बड़ा गये हैं। ऐसा कह कर श्रोताओं को यह अनुमान करने का मौका देना कि इंग्लैंड में कष्ट-सहन के नैतिक दबाव को मानने की क्षमता नहीं है, उनके देशवासियों की बड़ाई करना नहीं है और यदि उन्होंने उपस्थित जनों को यह समझने देना चाहा हो कि ब्रिटिश-पार्लियामेंट तो जब उसकी इच्छा होगी तभी स्वराज्य देगी; उसे हिन्दुस्तान की उच्च आकांक्षा और अभिलाषा से कोई-गरज नहीं, तो उन्होंने उनकी बुद्धिमत्ता का अपमान किया है। सच बात तो यह है कि स्वराज्य लगातार परिश्रम और कल्पनातीत कष्ट-सहन के बल से ही प्राप्त होगा।

परन्तु बड़े लाट साहब को यह पता नहीं है कि तलवार की स्थान-पूर्ति के लिए कोई दूसरा साधन भी है और इसलिए शायद वे यह खयाल करते हैं कि धारा-सभाओं में अपनी वाद-विवाद-कुशलता का प्रयोग करते करते किसी न किसी दिन हम ब्रिटिश पार्लियामेंट के दिल में यह बात जंचा सकेंगे कि भारत को स्वराज्य प्रदान करना कितना वाञ्छनीय है।

लेकिन उन्हें जल्द ही मालूम हो जायगा कि तलवार की स्थान-पूर्ति का साधन एक उससे भी बढ़िया और अकसीर है और वह है—सविनय कानून-भंग। अब यह दिन पर दिन अधिकाधिक स्पष्ट प्रकट होता जाता है कि सविनय भंग कष्ट-सहन का वह मार्ग तैयार करेगा जिसमें से भारत को अपने लक्ष्य तक पहुंचने के पहले अवश्य गुजरना होगा।

अभी हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाये हैं। मुसल्मानों और हिन्दुओं में अब भी अविश्वास कायम है। अछूत-लोगों को अभी हिन्दुओं के स्पर्श की ऊब नहीं पहुंची है। भारत के पारसी और ईसाइयों को अभी यह निश्चय नहीं है कि स्वराज्य मिलने पर उनका भविष्य क्या होगा। अभी हम अपने ही बनाये कानून-कायदों की पाबंदी रखना नहीं सीखे हैं और न उसकी जरूरत को ही महसूस करते हैं। चरखे ने अभी हमारे घरों में सदा के लिए स्थान नहीं पा लिया है। खादी अभीतक स्वदेशी-पोशाक नहीं हो पाई है। दूसरे शब्दों में यों कहें कि अभी हम आत्म-रक्षा की कला और शर्तें नहीं समझ पाये हैं।

अभीतक भारत में एक ऐसा जन-समाज मौजूद है जिसकी संख्या तो कम ही रही है पर जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, जो यह मानता है कि बस अकेले मारकाट और खून-खराबी के ही द्वारा स्वराज्य प्राप्त हो सकता है और इसलिए कहता है कि अहिंसा के साथ ही साथ हिंसा-काण्ड भी जारी रहने देना चाहिए

अर्थात् हमारी यह अहिंसा या शान्ति, मारकाट का पूर्वरूप और पैगम्बरी समझी जानी चाहिए। जो लोग इन विचारों के कायल हैं वे शायद यह न जानते होंगे कि ऐसा करना सारे संसार को धोखा देना है। हमारी प्रतिज्ञा तो कहती है कि जहां हम उससे बंधे हुए हैं वहां हम इस बात पर विश्वास भी करते हैं कि अहिंसा ही शीघ्र स्वराज्य प्राप्त करने की दवा है। ज्योंही हमारा यह विश्वास हो जाय कि स्वराज्य तो अहिंसा के द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता या केवल हत्याकांड से ही प्राप्त हो सकता है, त्योंही हमें अपनी प्रतिज्ञा रद कर देनी चाहिए-ऐसा करने के लिए हम बाध्य हैं। जबतक हमने अहिंसा की प्रतिज्ञा ले रक्खी है तबतक वह हमारे लिए धर्म है। अभी अहिंसा की आजमाइश हो रही है। इसलिए वह कार्योपयोगी भी है। परन्तु जबतक हम अपनी प्रतिज्ञा से बद्ध हैं तबतक हम केवल अपने ही लिए अहिंसा को मानने और उसका पालन करने के लिए बाध्य नहीं है; बल्कि हम दूसरों को अहिंसा के पालन के लिए तैयार करने और हिंसा-काण्ड मचाने वालों का निषेध करने के लिए भी उतने ही बाध्य हैं। मुझे तो अब और भी अधिक विश्वास हो गया है कि हम अभी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाये हैं। क्योंकि खुद हम सब लोगों ने भी, जिन्होंने कि महासभा के ध्येय को स्वीकार किया है, हमेशा न तो शब्दों और कृति के द्वारा शान्ति का पालन किया है और न विचारों और इरादों में शान्ति धारण करने का प्रयत्न किया है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

देशी राज्यों में शाहजादा

मुझसे यह सवाल किया गया है कि जब शाहजादा देशीराज्यों में जाय तब वहां की रिआया को क्या करना चाहिए? मैं समझता हूं कि देशी-राज्यों की प्रजा अपने राज्यों के साथ अ-सहयोग नहीं कर रही है। ऐसी अवस्था में उसे ऐसा व्यवहार न करना चाहिए जिससे देशी राज्यों की स्थिति बेढंगी हो जाय। हां, वे इस बात के लिए बाध्य नहीं है कि राज्य के अतिथि का स्वागत सत्कार करें। परन्तु उन्हें उनके स्वागत के खिलाफ आन्दोलन खड़ा करने का हक प्राप्त नहीं होता। अतएव जब देशी-राज्यों में शाहजादा जाय तब वहां की प्रजा को हड़ताल न करना चाहिए। सभा आदि का आयोजन न करना चाहिए। परन्तु समझदार प्रजा-जनों का भारत के दूसरे भागों से तो निकट सम्बन्ध अवश्य होना चाहिए। अतएव वे जहांतक हो सके, शाहजादे के स्वागत-सत्कार में शरीक न हों। देशी-राज्यों में प्रजासत्ता जैसी बात तो बहुत ही कम है अथवा है ही नहीं। वहां राजा के प्रत्येक कार्य में प्रजा के शामिल होने की जरूरत नहीं रहती। वहां तो प्रजा उन्हीं कामों में शामिल होती है जिन्हें या तो वह खुद अच्छा समझती है या जिनमें उसे जबरदस्ती होने का डर रहता है। इन सब बातों में यदि व्यक्ती-स्वातन्त्र्य का उपयोग विनय-पूर्वक किया जाय तो वह फबता है। देशीराज्यों में राजा और प्रजा का सम्बन्ध स्वार्थ-मूलक है। राजा यदि अच्छा हो तो वह प्रजा का हित-साधन करता है। यदि बुरा हो तो फिर प्रजा के पास शस्त्र अथवा सत्याग्रह के सिवा दूसरा साधन नहीं। अंगरेजी भारत में ऐसा ही सम्बन्ध हो गया दिखाई देता है, जिससे सरकार ऐसे ऐसे काम कर रही है जो प्रजा के कल्याण के विरोधक हैं। इसीसे यहां सत्याग्रह शुरू हुआ है। देशी-राज्यों की स्थिति आज इतनी विकट है कि वहां की प्रजा के लिए अपने राज्यों के साथ सत्याग्रह आरम्भ करना बड़ी गम्भीर बात कही जा सकती है और वह तो केवल उन्हीं राज्यों में किया जा सकता है जहां असह्य अत्याचार होते हों और जहां प्रजा में सामाजिक आत्मबल का विकास हो चुका हो।

ईसाइयों में जागृति

मैं देखता हूं कि ईसाई-भाइयों में भी असहयोग ने खूब जागृति कर दी है। समस्त भारतवर्ष के ईसाइयों की एक सभा कुछ दिन पहले लाहौर में हुई थी। उसके सभापति थे श्री० मुकरजी। उसमें स्वदेशी तथा शराबखोरी के सम्बन्ध में अच्छे अच्छे प्रस्ताव पास किये गये हैं। उसके प्रत्येक काम में स्वराज्य की ध्वनि सुनाई दे रही है। भाषण-कर्ताओं ने खादी पहनने पर खूब जोर दिया। अब सब लोग इस बात को समझ गये हैं कि खादी गरीबों के लिए जीवन-रूप है, चरखा गरीबों के घर की बरकत है। अतएव अब ईसाई-भाइयों ने भी उसको अपना लिया है। इस परिषद् के सभापति ने यद्यपि असहयोग के खिलाफ अपने उद्गार प्रकट किये हैं तथापि स्वराज्य तो वे भी चाहते हैं। उन्होंने अपने भाषण में सरकार की दमननीति की खूब खबर ली है।

कुछ प्रश्न

मुझसे तरह तरह के अनेक सवाल पूछे जाते हैं। यदि मैं उन सबका जवाब देता रहूं तो मुझे दूसरे कामों के लिए फुरसत ही न मिले। अतएव जहां जवाब दिये बिना काम ही नहीं चलता वहीं मैं जवाब देता हूं। एक गुमनाम पत्र में कुछ प्रश्न पूछे गये हैं। उनका जवाब मैं यहां इसलिए नहीं देता हूं कि वे आवश्यक हैं; बल्कि यह दिखलाने के लिए देता हूं कि अभी लोगों में कितना अज्ञान फैला हुआ है और इस हेतु से कि उन्हें भी ज्ञान प्राप्त हो।

"आप स्वराज्य को ले कर क्या करेंगे?"

"मुझे जो प्राप्त करना है उसका प्रयत्न तो मैं पृथक् रूप से कर रहा हूं। परन्तु जो समाज को दरकार है उसको तो समाज ही प्राप्त कर सकता है।

"जो इतने रुपये जमा किये हैं इनका क्या कीजिएगा?"

"प्रत्येक प्रान्त की महासभा-समिति उसका उपयोग कर रही है। उसकी एक पाई भी खर्च करने का अधिकार मुझे नहीं। उसका हिसाब भी प्रकाशित हो गया है।"

"आप के मर जाने के बाद स्वराज्य कौन करेगा?"

"स्वराज्य का अर्थ है अपना राज्य। सब अपना अपना राज्य करें। जब सब लोग अपने अपने ऊपर राज्य करने लगेंगे तब सबका-जनता का-राज्य होगा। उसके साथ मेरे जीवन-मरण का क्या सम्बन्ध? मैं तो सिर्फ हकीम हूं।"

"आप अंगरेजी भाषा में लेख क्यों लिखते हैं?"

"इसलिए कि मैं अपनी पूंजी को देश के लिए अदा देना चाहता हूं।"

"रेल-गाड़ी में क्यों बैठते हैं?"

"सरकार की यह मेहरबानी है। उससे लाभ उठा कर मैं अपना काम निकाल लेता हूं।"

"आप सबको खादी पहनाना चाहते हैं। पर वह तो मंहगी मिलती है।"

"विदेशी कपड़ा अगर मुफ्त मिलता हो तो भी मंहगा है। खादी मंहगी मिलने पर भी सस्ती है। क्योंकि खादी के लिए खर्च किया सारा रुपया भारत के गरीबों के घर में जाता है। फिर खादी अधिक दिनों तक चलती है। और उसके साथ रहने वाली सादगी हमारे जीवन के दूसरे भागों में फैल कर उसकी सुगन्ध से राष्ट्र का जीवन सरल और शुद्ध होता है।"

"आप लोगों को किसलिए मरवाते हैं?"

"मैं नहीं मरवाता। लोगों को मरने में मजा आता है। इस लिए वे अपने देश और धर्म के लिए मरते हैं।"

"आपके साथी लोग होलबूट और अंगरेजी पहनाव क्यों पहनते हैं?"

"इससे मेरी सहिष्णुता सूचित होती है। और उन सज्जनों का साथ करते हुए भी मैं उन्हें प्रेम-पूर्वक यह बताना चाहता हूं कि भारतवर्ष में न तो होलबूट की जरूरत है और न अंगरेजी पहनाव की"

"आप लोगों के धर्म में क्यों दखल देते हैं?"

"मैं तो किसी के धर्म में दखल नहीं देता। लोग भी ऐसे ओछे-आले नहीं हैं जो मुझे दखल देने दें। हां, सब धर्मों के जो सामान्य सिद्धान्त हैं उन्हें जरूर मैं लोगों के सामने उपस्थित करता हूं और करते रहना चाहता हूं।

हवामें उड न जाय!

कानून के सविनय भंग की तेज हवा मालूम तो बड़ी अच्छी और पुष्टिकारक होती है; परन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि इस हवा में कहीं खादी तन न जाय और सूत उड न जाय। जो लोग खादी-प्रचार का काम कर रहे हैं उन्हें स्वयं-सेवक सेना में तो अपना नाम अवश्य ही लिखाना चाहिए; परन्तु वे चरखे और खादी को भूल न जायं। उन्हें आगे बढ़कर गिरफ्तार हो जाने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें चौकीदार की तरह काम करना है। जब रक्षा करने का समय आवे तब वे झपट पडें। तबतक अपने जिम्मे किये काम में लगेलिपटे रहें। जो लोग स्वदेशी-प्रचार में दत्तचित्त हैं वे तो चाहे खादी बेचते हुए अथवा चरखा कातते हुए भले ही पकडे जायं। यदि दूसरे काम में लगे हुए जेल जाने वालों की संख्या कम पड जाय और स्वदेशी काम वाले मदद के लिए दौड पडें, तो वह दूसरी बात है। सच्चा सिपाही तो वही है जो अपनी जगह पर ही काम करता हुआ मर मिटे। "स्वधर्मे निधनं श्रेयो परधर्मो भयावहः।" अर्थात् अपने कर्तव्य का पालन करते हुए मरजाना ही श्रेष्ठ है; दूसरे के काम में हाथ डालना खतरनाक है।

खादी की प्रतिज्ञा

महासभा ने स्वयंसेवकों के लिए जो कितनी ही प्रतिज्ञायें नियत की हैं उनमें से, आश्चर्य की बात है कि, खादी पहनने की प्रतिज्ञा बहुतों को कठिन मालूम होती है। सच पूछिए तो कठिन बात तो है विचार में भी शान्ति धारण किये रहना और मार-पीट होते हुए भी मन में क्रोध न लाना। फिर भी खादी पहनने की बात विषम मालूम होती है। इसका कारण तो यही हो सकता है कि इस प्रतिज्ञा का भंग यदि हो जाय तो वह हम सबको दिखाई दे सकता है और इससे हम किसी दूसरे को अथवा स्वयं अपने को धोखा नहीं दे सकते। मेरी सलाह तो यह है कि खादी पहनने के विषय में जो सावधानी रखना आवश्यक है वही दूसरी प्रतिज्ञाओं के सम्बन्ध भी रखना चाहिए। खादी वाली प्रतिज्ञा का अर्थ कुछ अनिश्चित रह गया है। पर उसका अर्थ तो एक ही है। हमारे पहनने के कपडों पर ही यह प्रतिज्ञा घट सकती है। हमारे घरोंमें चादरें-तकिये आदि यदि विदेशी या मिलों के सूत के हों तो उन्हें भी हमें त्याग तो देना ही चाहिए; परन्तु यह बन्धन इस प्रतिज्ञा में नहीं है। यहांतक तात्कालिक शुद्धि करने में कठिनाइयां हैं। कितने ही मनुष्यों को तो यह खर्च भी असह्य हो सकता है। परन्तु जब पहनाव बदल जायगा तब घर में दूसरे कामों के लिए भी कोई खादी को छोड कर दूसरा यन्त्र का बना कपडा इस्तेमाल न करेगा। पहनाव भर के लिए खादी पहनने में तो अब जरा भी कठिनाई नहीं रह गई। यदि कोई बहुत ही गरीब हो तो वह खादी की लंगोटी लगा कर काम चला सकता है; पर दूसरा वस्त्र तो हरगिज न पहने।

इस विषय में एक और सवाल भी किया गया है। खादी सिर्फ स्वयंसेवक का काम करते समय ही पहने या हरवक्त? जबतक स्वयंसेवक सेना में किसी का नाम है तबतक तो प्रतिज्ञा करने वाले को घर-बाहर सब दूर खादी ही पहनना चाहिए।

वीरमाता

महासभा-सप्ताह में मुझे बम्बई के श्री गोविंदजी वसनजी मिठाईवाला की माता के पत्र मिले थे; पर उसी समय मैं उनका उपयोग "नवजीवन" में न कर सका। श्री. गोविंदजी पर बम्बई की अदालत में एक फौजदारी मुकदमा चल रहा है। उसकी बातें बम्बई के अखबारों में आ गई हैं। उनकी चर्चा मैं यहां नहीं करना चाहता। इस मुकदमे में श्री. गोविंदजी की माता श्रीमती साकरबाई की जो वीरता दिखाई देती है उसीकी तरफ मैं पाठकों का ध्यान दिलाना चाहता हूं। साकरबाई बडी हिम्मत के साथ पुलिस के पास गईं। अदालत में भी अपने बेटे के पास कैदियों के कटघरे के सामने खडी रहीं, जिससे अपने बेटे के चित्त में किसी तरह की कमजोरी न आने पावे। श्री गोविंदजी का लालन-पालन बडे ऐशो-आराम में हुआ है। बम्बई के दंगे के समय उन्हें जो चोटें आई थीं वे तो अभी दुरुस्त ही नहीं हुई हैं। उन्हें जेल की यातनायें सहने का कभी इत्तिफाक नहीं हुआ। मित्र लोग उनको जमानत पर छुडवाने का प्रयत्न करते हैं। वह कहकर कि यह मुकदमा तो खानगी है, राजनैतिक नहीं, सफाई पेश करने की प्रेरणा करते हैं। इन सब भयों से बचाने के लिए तथा सत्य की रक्षा के लिए साकरबाई अपने बेटे के पिंजडे के सामने खडी रहीं। अपनी उपस्थिति से मानों उसको सुरक्षित कर दिया। साकरबाई की हिम्मत तो देखिए, उन्होंने खुद ही श्री. गोविंदजी को जमानत पर छुडाने से इनकार कर दिया। वे बहन जानती थीं कि असहयोग की प्रतिज्ञा करने वाला मनुष्य अदालत में अपनी सफाई दे ही नहीं सकता; फिर मुकदमा चाहे खानगी हो चाहे सार्वजनिक, सच्चा हो या बनावटी। सो उन्होंने इस प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिए अदालत में जानेका साहस किया। ऐसी मिसालें दूसरी जगहों से भी आ रही हैं। माता पुत्र को, बहन भाई को, पत्नी पति को तरह तरह से मदद कर रही हैं, हिम्मत और धीरज दे रही हैं। ऐसी दृढता और हिम्मत में मैं स्वराज्य की झांकी बना रहा हूं। चाहे स्त्री हो या पुरुष, आज तो वे अपनी शिक्षा के द्वारा नहीं, बल्कि अपने सत्य-व्रत और निर्भयता के द्वारा ही भारतवर्ष को उज्ज्वल कर रहे हैं।

दूसरी मिसाल

श्री० महादेव देसाई की धर्मपत्नी प्रयाग में हैं। वे खुद भी स्वयंसेविका हुई हैं, सेवा करने के लिए जगह जगह जाती हैं, दूसरे स्वयंसेवकों को खाना पका कर खिलाती हैं और दूसरी तरह से उनकी सहायता करती हैं, रोज चरखा कातती हैं। श्री० महादेवभाई के गिरफ्तार होते ही उन्होंने मुझे एक पत्र भेजा, जिसे पढ कर पाठक प्रसन्न होंगे। इसी ख्याल से उसे यहां प्रकाशित करता हूं—

"आप यह जान कर प्रसन्न होंगे कि आप और वे जो बात चाहते थे वही हुई। उन्हें एक वर्ष की सजा और सौ रुपया जुर्माना हुआ। जुर्माना न दें तो एक मास अधिक कैद। यह समाचार तो आपको मिल ही चुका होगा। मैं तो आपको सिर्फ इसीलिए यह लिख रही हूं कि आप मेरी चिन्ता न करें। इस समय तो मुझे कुछ भी दुःख नहीं हुआ; पर नहीं कह सकती, कह

हालत कबतक कायम रहेगी। क्योंकि मन तो स्वभावतः ही चंचल ठहरा। इससे वह कभी सुख और कभी दुःख मानकर व्यर्थ दुःखी होता है।

देवीदास भाई जबतक जेल के बाहर हैं और वहां काम कर रहे हैं तबतक तो मैं वहीं रहूंगी। उनके पकडे जाने के बाद मैं आश्रम को (सत्याग्रहाश्रम, साबरमती) आऊंगी।

यह पत्र कल लिख कर वैसा ही छोड दिया था। आज मैं और देवीदास भाई उन्हें मिलने गये थे। उनका हाल देवीदासभाई ने आपको लिखा ही है, अतएव उस विषय में मैं कुछ नहीं लिख रही हूं। जेल में उनके साथ जिस तरह बरताव किया जाता है, उसका हाल जान कर, मन के धर्म के अनुसार, मुझे कुछ दुःख हुआ। पर अब उसका असर बिल्कुल नहीं है। जब जब मैं सोचती हूं तब तब यही मालूम होता है कि ऊपर से उन्हें चाहे कितना ही कष्ट दिया जाय, पर यदि ईश्वर की कृपा होगी तो उन्हें और मुझे उसके सहन करने का बल प्राप्त होगा। आप मेरी चिन्ता न कीजिएगा। क्योंकि यदि आपकी लडकी ही इतने से दुःख से दुखी हो कर रोने-पीटने लगे तो फिर आपको इस संग्राम में विजय ही कैसे प्राप्त हो? मैं आपसे इतना तो जरूर चाह सकती हूं कि आप यह आशीर्वाद कीजिए कि ईश्वर मुझे यह सहन करने का बल दे।"

मेरी आशीष तो हई है। पर मैं आशीर्वाद करने वाला कौन? भारत की महिलायें तो अपने ही तपोबल से साहस प्राप्त कर रही हैं। एक-दो आदमी तो जेल गये ही नहीं है। कितने ही लोग गये हैं और बहुतों की धर्मपत्नियां हिम्मत और धीरज धारण कर रही हैं और खुशी खुशी अपने पति को तथा दूसरे रिश्तेदारों को जेल में भेज रही हैं और खुद भी जाने को तैयार होती हैं। मुझे यह खबर मिल गई है कि श्री० देसाई के साथ जो निष्ठुर व्यवहार किया जा रहा था वह अब बन्द कर दिया गया है। धीरज तथा विनययुक्त बरताव से अनुचित दुःख का निवारण हुए बिना रह नहीं सकता। पर ऐसा हो चाहे न हो, जेल के दुःख तो चाहे कितने ही भयानक क्यों न हों, उन्हें हमें सहन किये बिना दूसरी गति ही नहीं है।

मालवीय जी का पुत्र

पण्डित मदन-मोहन मालवीय जी के सब से छोटे पुत्र गोविंद तथा उनके भतीजे कृष्णकान्त मालवीय एक बार पकडे गये, सजा पाई और छोड दिये गये। व्याख्यान देने के कारण अब दुबारा गिरफ्तार किये गये हैं और उन्हें डेढ डेढ वर्ष की कठोर कैद की सजा दी गई है। इसे मैं भारतवर्ष का सद्भाग्य मानता हूं। श्री मालवीयजी के पुत्र का असहयोग के कारण जेल जाना तो हमें अपने प्राचीन धर्म्म की याद दिलाता है। श्री गोविंद ने मालवीयजी से आज्ञा प्राप्त करने में किसी बात की कसर नहीं रक्खी। जहांतक उनसे रहा गया तहांतक उन्होंने अपने पूज्य पिताजी की इच्छा का आदर किया। पिता ने भी पुत्र को पूरी आजादी दे रक्खी थी। जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू आदि के पकडे जाने पर श्री गोविंद से न रहा गया तब उन्होंने अपने पिता को एक बडा ही विनय-पूर्ण पत्र लिखा और आप रणांगण में कूद पडे। मैं मानता हूं कि गोविंद की पितृभक्ति में जरा भर भी कमी नहीं हुई। मुझे दृढ विश्वास है कि पण्डित जी के दिल में भी गोविंद की इस कृति के विषय में जरा भी रोष नहीं है। इन पिता-पुत्र का सम्बन्ध वैसा ही मीठा रहा है और रहेगा। इस प्रकार इस स्वराज्य-यज्ञ में सब लोग अपनी अपनी अंतरात्मा की पुकार के अनुसार काम कर रहे हैं और हम पिता-पुत्र को जुदा जुदा विभाग में देख रहे हैं। ये सब धर्मजागृति के-लक्षणों के ही चिह्न हैं।

जेल में नवजीवन

श्री० गोविंद की जो कहानी अभी सुनाई उससे जो ज्ञान हमें मिलता है उससे भिन्न प्रकार का, परन्तु वैसा ही कल्याणकारी ज्ञान काशी की जेल से अध्यापक किपलानी हमें दे रहे हैं। उनके भतीजे लिखते हैं—

"बनारस जेल से मेरे चचाजी का पत्र आया है। वे लिखते हैं कि जेल में भी हमने आश्रम का कार्यक्रम जारी रक्खा है। अर्थात् वे सवेरे चार बजे उठते हैं और ७ बजे तक सुबकोई प्रार्थना करते हैं। छ बजे दरवाजा खुलता है, तब सबलोग शौच-स्नान इत्यादि से निवृत्त होते हैं। साढे नौ बजे भोजन मिलता है। उसके बाद २ बजे तक कुछ निजी अध्ययन। इसके पश्चात् एक घण्टेतक चचाजी सबको "ईश का अनुकरण" नामकी पुस्तक पढाते हैं। तीन बजे से खेल शुरू होते हैं और चार बजे शाम को खाना मिलता है। वे अपने ही कपडे पहनते हैं और अपने ही बिछौने पर सोते हैं। ऐसी सजा भला किसे पसन्द न होगी? मैंने कहा कि मैं भी उनके साथ होता तो क्या अच्छा था?"

(नवजीवन) मो० क० गांधी

असहयोगी और नरमदल

महासभा की विषय-निर्धारिणी समिति में असहयोग के प्रस्ताव पर बोलते हुए श्री-गांधीजी ने नरम दलवाले मित्रों के सम्बन्ध में कहा—

"मैं आप सब लोगों से अनुरोध करता हूं कि आप नरम दलवाले, वकील, शिक्षक, सरकारी नौकर तथा खुफिया पुलिसवाले भाइयों के प्रति सद्भाव ले कर यहां से जाय। नरम दल के लोग हमारे भाई हैं। आज वे हमारे आसपास जमा हो रहे हैं। और जब उन्होंने देखा कि देश की स्वाधीनता वास्तव में खतरे में है तब वे अपने विचारों को बेधडक हो कर प्रकाशित कर रहे हैं। "लीडर" और "बंगाली" के आजकल के अग्रलेखों को पढ कर किस की आत्मा को सुख नहीं होता? और फिर भी क्या हम सर सुरेन्द्रनाथ बनरजी की पिछली तमाम सेवाओं को पानी में बहा देना चाहते हैं? जब कभी कोई बात उनके विषय में बुरी कही जाती है तब मेरी आंखों में आंसू आये बिना नहीं रहते। मैं आपसे विनती करता हूं कि महाराष्ट्र-दल के भाइयों ने जिस उदारता-पूर्वक अपने से मतभेद रखने वालों के साथ सहिष्णुता धारण करने का समर्थन किया है उसको समझें।"

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीवाड, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित।

आगे गोलियों की बौछार

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मासका	,, २
एक प्रतिका	,, -)
विदेशों के लिए वार्षिक	,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—माह वदी २, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, १९ जनवरी, १९२२ ई० | अंक २२

टिप्पणियां

लालाजी का पत्र

आखिरकार लाला लाजपतराय, पण्डित सन्तानम्, मलिक लालखान और डाक्टर गोपीचन्द के मुकदमे का फैसला हो गया। लालाजी तथा पण्डित सन्तानम् को अठारह अठारह महीने और मलिक लालखान और डा. गोपीचन्द को सोलह सोलह महीने की कैद की सजा दी गई। मुलजिमों के बहुतेरा विरोध पर करने भी सरकार ने जबरदस्ती उनके बचाव के लिए एक वकील नियुक्त किया था। इस तमाशे के होते हुए भी उनको सजा दी जाना तो निश्चित ही था। सजा का हुक्म सुनाये जाने के जरा पहले ही लालाजी ने मुझे एक पत्र लिखा। उससे उनके चित्त की प्रसन्नता टपकी पड़ती है। वह इस प्रकार है—

"आपने जो स्नेहपूर्ण टिप्पणी लिखी है तथा रामप्रसाद और पुरुषोत्तमलाल के द्वारा जो सन्देश भेजा उनके लिए आपको बहुत बहुत धन्यवाद। मैं बहुत मजे में हूं। मैंने अन्न-त्याग नहीं किया था। मैं अपने आराम के लिए शोरोगुल मचाने के खिलाफ हूं। हम यहां इसलिए नहीं आये हैं कि किसी तरह की सुविधायें या रिआयतें चाहें। सच्चा हाल अखबारों में जाहिर हुआ है और आशा है कि वह अब आप तक पहुंच गया होगा। हम सब लोगों का चित्त बहुत प्रसन्न है और मैं राष्ट्रीय पाठशालाओं तथा महाविद्यालयों के लिए भारतवर्ष का इतिहास, हिन्दू-काल, की रचना में लगा हुआ हूं। सन्तानम् संस्कृत के तथा धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन में अपने समय का खूब सदुपयोग कर रहे हैं। अहमदाबाद में जो कुछ हुआ है उसके तथा सर्व-पक्षीय परिषद् राऊंड टेबल कान्फरन्स—के हालात मुझे मालूम होगये हैं। हमारी "तकलीफों" की वजह से हमारे सिद्धान्तों के निर्णय में बाधा न होने दीजिएगा। आप यकीन मानिए, हम अपने मनोरथ को पूरा करने के लिए जबतक चाहिए तबतक और जितनी चाहिए उतनी तकलीफें बरदाश्त करने को हर तरह से तैयार हैं। और अब जब कि उसी के लिए हम यहां आये हुए हैं तो हमें उसे आखीर तक निबाहना चाहिए।"

हमें आशा करनी चाहिए कि लालाजी और पंडित सन्तानम् को उनका अध्ययन जारी रखने दिया जायगा। मैं उन्हें तथा उनके साथियों को यह भी सूचित करने का साहस करूंगा कि वे मौलाना शौकतअली और श्री राजगोपालाचारी तथा उनके साथियों का अनुकरण करें अर्थात् वे साहित्य-सम्बन्धी उद्योगों के साथ ही साथ चरखा कातने पर भी ध्यान देंगे। मैं अभिवचन देता हूं कि बीच-बीच में चरखा कातते रहने से लालाजी के इतिहास-लेखन तथा पण्डित सन्तानम् के संस्कृत-अध्ययन में हानि न होगी।

सर्वपक्षीय परिषद के सम्बन्ध में लालाजी ने जो उद्गार प्रकट किये हैं उनकी ओर मैं उन देश-सेवकों का ध्यान दिलाता हूं जो मनुष्य की सर्वोत्कृष्ट स्वाभाविक प्रेरणा से प्रेरित हो कर, अपने देश के साथ प्रेम करने तथा अपनी अन्तरात्मा की पुकार के अनुसार आचरण करने के अपराध के कारण जेलों में चले जाने वाले कैदियों को छुडाने के उद्देश से कोई निपटारा जल्दी करने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारी प्रतिष्ठा के अनुकूल कोई निपटारा होता हो तो उसके रास्ते में हमें कांटे न बखेरना चाहिए; पर यदि हम अपने जेल जाने वाले देश-भक्तों के शरीर-सुख के खयाल से कोई असन्तोष-जनक सन्धि कर बैठेंगे तो ऐसा करना उनके प्रति अन्याय करना होगा। यदि हम अपनी ही इच्छा से निमन्त्रित किये गये कष्ट-सहन को कम करने के लिए जरा भी अनुचित रीति से झुक गये तो ऐसा करना देश की हार्दिक अभिलाषा को ठीक ठीक न जानना होगा।

मालवीय परिवार

यह असहयोग संग्राम अपने ढंग का निराला ही है। कितने ही परिवारों में इसके बदौलत मत भेद और कृतिभेद उत्पन्न हो गया है। यह इसका सबसे अद्भुत प्रभाव है। और तिसमें भी मालवीय परिवार में इसने जो द्विधा-भाव उत्पन्न कर दिया है वह तो विशेष-रूप से उल्लेख-योग्य है। मेरी राय में तो यह भारत-वासियों के लिए सहिष्णुता और सविनय कानून-भंग का खासा वस्तु-पाठ ही है। श्रीमालवीयजी की सहिष्णुता तो वास्तव में अनुपम है। मैं इस बात को जानता हूं कि वे जेल को निमन्त्रण देने के खिलाफ हैं। मैं यह भी जानता हूं कि यदि वे उसके कायल होते तो वे ऐसे आदमी नहीं हैं जो उससे दुम दबाते। और जब उनके दुःख की मात्रा हद दर्जे तक पहुंच जायगी और जब कि मेरी तरह उनका भी विश्वास ब्रिटिश न्याय से पूरा पूरा उठ जायगा तब यदि वे जेल को निमन्त्रण देने में सबसे आगे बढ़ जायं तो मुझे

जरा भी आश्चर्य न होगा। परन्तु यद्यपि वे आज स्वयं सविनय कानून-भंग के खिलाफ हैं तथापि उन्होंने कभी उन लोगों के भी संकल्पों में हस्तक्षेप नहीं किया जो उनके आत्मीय हैं और जिन पर अपने प्रेम अथवा बड़े-बूढ़े होने के कारण उनकी अदम्य सत्ता है। बल्कि इसके विपरीत उन्होंने अपने पुत्रों को अपनी अपनी इच्छा के अनुसार बरतने की पूरी आजादी दे दी है। गोविन्द के सविनय कानून-भंग का उदाहरण मेरी दृष्टि में एक संग्रहणीय रत्न के सदृश है। पण्डितजी ने अपने मृदुल मधुर ढंग से अपने उस वीर पुत्र को इस मार्ग से हटाने का बहुत-कुछ प्रयत्न किया। गोविन्द ने भी अंततक अपने पू० पिता की इच्छा के अनुसार चलने का भरसक प्रयत्न किया। उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि मुझे मार्ग बता। वह 'परस्पर' विरुद्ध कर्तव्यों की कैंची में फंस गया। नेहरू-परिवार की गिरफ्तारी का गोविन्द पर बड़ा असर हुआ। और अपने विशाल-हृदय पिताजी की आशीष प्राप्त करके उसने इस रणक्षेत्र में कूद पड़ने का निश्चय किया। जेलों ने भी गोविन्द से बढ़कर हर्ष-पूर्ण हृदय शायद किसी का न देखा होगा। यह साहस के साथ कहा जा सकता है कि अपनी इस सविनय कानून-भंग की कृति के द्वारा गोविन्द ने अपने देश की तरह अपने पू० पिताजी के प्रति भी अपनी कर्तव्य-परायणता सिद्ध की है। बालकों के कर्तव्य-परायण सविनय कानून-भंग में गोविन्द की यह कृति हमारे समय के लिए एक नमूना है। मुझे यकीन है कि इससे पिता-पुत्र के बीच किसी तरह की अनबन नहीं है। बल्कि शायद मालवीयजी, गोविन्द के जेल को स्वीकार करने के पहले की अपेक्षा, अब उसके विषय में अधिक अभिमान रखते होंगे। ऐसे ही सत्य-युक्त कार्यों के द्वारा मुझे इस युद्ध की धार्मिक प्रकृति का प्रमाण मिलता है। गोविन्द ने अदालत में जो साहस-पूर्ण बयान पेश किया है उसे पाठकों के सामने उपस्थित करने के मोह को मैं नहीं रोक सकता—

"आप पहिले ही फैसले का निश्चय करके यहां बैठे हैं। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि आपका उद्देश अपराधी को दण्ड देना नहीं है, किन्तु अपने क्षयोन्मुख बल से आप एक राष्ट्र की कानूनी आकाक्षाओं को कुचलना चाहते हैं। इसलिए मैं आपके कानून को नहीं मानता हूं और आपसे एक शब्द भी कहने की मेरी इच्छा नहीं है। जैसे आप हमें कुचलने पर तुले हुए हैं, वैसे हम भी आप लोगों को, संसार को तथा अपने को यह दिखा देना चाहते हैं कि, ३२ करोड़ भारतवासियों के आत्मिक-बलरूपी शस्त्र से आपके सरकार का शस्त्र, पाशविक-बल जरा भी मजबूत नहीं है। इस विश्वास के आधार पर मैं आप से तथा आपकी सरकार से यह कह देना चाहता हूं कि, मेरे ऐसे साधारण कार्य-कर्ता तथा बड़े से बड़े नेताओं को पकड़ने से हमारा कार्य बंद नहीं हो सकता। आप हमारे पार्थिव शरीर पर अवश्य अपना अधिकार जमा सकते हैं, लेकिन हमारी आत्मा और हमारी दृढ़ प्रतिज्ञा जो हमें दिन प्रति दिन स्वराज्य के समीप पहुंचा रही है, उसे पकड़ना आपके अधिकार के बाहर है। जिस भाव से प्रेरित होकर आज हम खुशी से यहां आ रहे हैं, वह केवल हमारा ही नहीं है वरन् वह समस्त देश का है। हमारे पार्थिव शरीर को कैद कर आप मुझे और मेरे देश-भाइयों को अधिक नैतिक बल संचय करने में सहायता कर रहे हैं। यदि अपनी अधोमुख-नीति को कुछ काल के लिए आपने और जारी रखने की कृपा की तो, मैं आपको तथा और लोगों को यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि, हम लोग वर्तमान शासन प्रणाली का नाश करेंगे और अपने देश में स्वतन्त्र और सुखी होकर रहेंगे। इस आशा पर कि, आप ऐसा ही करेंगे और हमारी अमूल्य सहायता करेंगे, मैं अपनी तथा अपने देश-भाइयों की ओर से आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

वंदे मातरम् "

मैं पिता-पुत्र दोनों को बधाई देता हूं। मैं पाठकों को भी निमन्त्रण देता हूं कि वे इसमें मेरा साथ दें। देश को दोनों का अभिमान होना चाहिए। और जहां के युवा लोग गोविन्द की तरह साहस दिखाते हैं वहां युद्ध का वाञ्छित फल मिले बिना रही नहीं सकता।

प्रतिनिधियों का ब्योरा

स्वागत-समिति के मन्त्री की कृपा के कारण मैं यह नीचे के अंक प्रकाशित कर सका हूं कि किस प्रान्त के कितने प्रतिनिधि महासभा में आये थे।

प्रतिनिधियों की संख्या

नंबर	प्रान्त का नाम	संगठन के अनुसार कितने प्रतिनिधि हैं?	आये कितने?
१	आन्ध्र	३२०	३८३
२	केरल	१६०	३३
३	महाराष्ट्र	२९२	२६३
४	करनाटक	३२०	३०४
५	गुजरात	१८५	१७५
६	बम्बई	१८	१७
७	ब्रह्मदेश	१[illegible]०	५२
८	पंजाब और सीमाप्रान्त	५४०	५१८
९	सिन्ध	७१	६३
१०	देहली	१[illegible]	९२
११	राजपूताना	[illegible]	३९९
१२	उत्कल	[illegible]	१०८
१३	मध्यप्रान्त (मराठी)	५०	४४
१४	आसाम	६३	१७
१५	बरार	६१	५८
१६	मद्रास	४१०	१६२
१७	बंगाल	९८६	३७३
१८	संयुक्तप्रान्त	७६०	८८८
१९	मध्यप्रान्त (हिन्दुस्तानी)	२०९	२०५
२०	बिहार	५८८	५५८
		६,१७३	४,७२६

उपस्थित प्रतिनिधियों का पृथक्करण

नम्बर	महिलायें	मुसलमान	पारसी	सिख	अन्त्यज	शेष
१	८	१०				३६५
२		१				३२
३	१	९				२५३
४		२९				२६६
५	११	२२	५		२	१४५
६	३	२				१५
७		२				५१
८	१७	६७		५४		३८०
९	१	११				५१
१०	७	१३		४		६८
११	११	१८				३७५

१२		३				१०५
१३	१	५				३८
१४		२				१५
१५	२	५				५
१६	२	१३				१४५
१७	१०	३६		[illegible]		३२३
१८	१०	११४		३		५६१
१९	६	२९				१५०
२०	७	८३				६१८
	१०६	४६९	५	६०	२	४,०१९

इससे यह मालूम होता है कि कुल आने योग्य ६,१७३ में से ४,७२६ प्रतिनिधि महासभा में आये। अबतक ऐसा होता था कि महासभा के प्राचीन संगठन के अनुसार कोई भी आदमी सिर्फ १०) देकर प्रतिनिधि हो सकता था और इस तरह स्थानीय प्रतिनिधि ही बहुतेरे स्थान हड़प जाते थे। इस बार श्री मालवीयजी तक प्रतिनिधि नहीं माने गये; क्योंकि वे प्रतिनिधि निर्वाचित नहीं हुए थे। अतएव यह वास्तविक संख्या ४,७२६ अच्छी संख्या थी। संयुक्तप्रान्त और बंगाल में हजारों की संख्या में गिरफ्तारियां हुईं। तिसपर भी उन प्रान्तों से क्रमशः ८८३ और ३७३ प्रतिनिधि आये थे और सुदूर आसाम और उत्कल प्रान्तों से क्रमशः १७ और १०८। इससे यह दिखाई देता है कि लोग राष्ट्रीय महासभा में कितनी दिलचस्पी ले रहे हैं। प्रायः सभी प्रान्तों से कुल १०६ स्त्री-प्रतिनिधि भी आये थे। यह भी कोई कम महत्व की बात नहीं है। सिक्ख प्रतिनिधियों की उपस्थिति भी बिलकुल सराहनीय है। दो वर्ष पहले मुश्किल से कुछ ही सिक्ख भाई महासभा में आते थे। परन्तु अब सिक्ख जाति राष्ट्रीय आन्दोलन में चारों ओर कदम बढ़ा रही है। ४६९ मुसलमानों की संख्या भी अच्छी है; परन्तु जबतक पूरी तादाद में जो कि १५०० से भी अधिक होगी, वे लोग न आवें तबतक हमें सन्तोष नहीं हो सकता। मुझे यकीन है कि 'अन्त्यज' प्रतिनिधि २ से अधिक आये होंगे। मैं खयाल नहीं कर सकता कि पंजाब और आन्ध्र प्रांतों से ऐसे प्रतिनिधि न आये होंगे। पारसियों के प्रतिनिधियों की निश्चित संख्या उनकी संख्या के हिसाब से २ है। अतएव ५ प्रतिनिधियों का उपस्थित होना उनकी संख्या से बहुत अधिक है। मैंने कई बार कहा है कि पारसी भाई अपनी संख्या के लिहाज से क्या त्याग, क्या उपस्थिति, क्या योग्यता और क्या उदारता में बहुत ऊंचा स्थान रखते हैं। मुझे मालूम हुआ है कि कम से कम २ ईसाई प्रतिनिधि भी थे। और यदि श्रीयुत स्टोक्स और श्रीयुत जार्ज जोसेफ आज जेल के बाहर होते तो वे अवश्य आये होते। परन्तु यह हिन्दुओं और मुसलमानों का काम है कि वे ईसाई-जाति के हृदय में इस आन्दोलन के प्रति आम तौर पर प्रेम पैदा करने का दिलोजान से प्रयत्न करें।

प्रेक्षकगण

प्रतिनिधियों की उपस्थिति तो बहुत सन्तोष-जनक थी ही; परन्तु प्रेक्षकों की संख्या भी उससे कम नहीं थी। देश की कष्ट-मय स्थिति होने के कारण बड़े बड़े धनी लोग न आ पाये। इससे पांच हजार रुपयेवाला एक भी टिकट न बिक सका। तो भी एक हजार रुपयेवाले २१ टिकट बिके, २० आदमियों ने पांच पांच सौ के खरीदे, १६२ ने सौ सौ के, ८१ ने पचास पचास के और १,६८३ ने पचीस पचीस के टिकट खरीदे। इस तरह कुल ९३,४००) आया। स्वागत-समिति की ओर से निश्चित से अधिक रकम आई-७८,६२५) तीन तीन रुपये के ११,२६१ सीजन टिकट बिके। इनको लेकर महासभा की लोच कर सब दूर जाया जा सकता था। २४,४९९ टिकट चार चार आने वाले बिके। और सीजन तथा प्रवेश टिकट तो, जैसा कि मैं पहले बता चुका हूं, भीड़ के कारण जारी ही नहीं किये जा सके। २,४९,५२७) भिन्न भिन्न फीस के रूप में स्वागत-समिति को प्राप्त हुए। [यं. इं.] मो. क. गांधी

देश-बन्धु की गर्जना

लालाजी जिस तरह पंजाब में आदर्श कैदी हो रहे हैं उसी प्रकार बंगाल में देशबन्धु दास हैं। जब उनका मुकदमा अब इजलास में पेश हुआ तब उनकी खादी से-उनकी सादगी से आकर्षित हो कर तमाम वकील लोगों से खड़े हुए बिना न रहा गया। कुछ ही महीने पहले वे तो बंगाल के वकीलों के शिरोमणि थे। वकील लोग क्यों न खड़े होते? अदालत ने उन्हें बैठने के लिए कुरसी दी। उन्होंने विनय-पूर्वक इनकार किया-'मुझे कुरसी की जरूरत नहीं।' तमाम वक्त वे कटघरे में खड़े रहे। कुरसी उनके आगे रक्खी गई, पर वे उसपर नहीं बैठे।

इस प्रकार चारों ओर से शौर्य और सहनशीलता का अमृत बरस रहा है। इसमें गुजरात की भी गिनती कब होगी, इस बात के लिए मैं अधीर हो रहा हूं।

पूने की बहादुरी

पाठक शायद यह बात न जानते होंगे कि पूने पर मैं मोहित हूं। जब १९११ में मैं इंग्लैंड से लौटा तभी मैंने अपने उद्गार प्रकट किये थे। पूने का बलिदान ज्ञानमय है। जितनी विद्वत्ता पूने में है उतनी दूसरी जगह नहीं। पूने से आधुनिक समय में संस्कृत के अध्ययन का संचार हुआ। पूने को लोकमान्य और गोखले ने अपना घर बनाया। पूने ने कष्टसहन में कोई बात उठा नहीं रक्खी। पूना तो बहुत-कुछ कर सकता है। अब भी मुझे विश्वास है कि पूना बलिदान में शायद सबके आगे बढ़ जायगा। श्री० नरसिंह चिन्तामण केलकर अपना काम होशियारी के साथ आगे बढ़ा रहे हैं। सरकार भी चालाकी के साथ उनको आजमा रही है। शराब की दुकानों का पहरा बड़ा उत्तम स्वरूप धारण कर रहा है। अच्छे से अच्छे अ-सहयोगी पहरा दे रहे हैं। श्री० केलकर का तो सारा परिवार ही पहरे के लिए आगे बढ़ा है। सरकार अभी जुरमाना ही कर रही है। जब कि सरकार किसी को पकड़ती ही नहीं तब पूने के असहयोगी क्या करें? उन्होंने अब स्त्रियों को पहरे के लिए भेजा है। इस पर मेरे दिलमें रश्क होता है। मुझे तो यह आशा थी कि गुजरात की महिलायें ही पहले कदम बढ़ावेंगी। बंगाल ने तो आरम्भ किया, पर सरकार ने बढ़ा नहीं उठाया। पूना की स्त्रियों ने तो, सुना है कि ऐसा काम शुरू किया है जिससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि या तो सरकार उन्हें गिरफ्तार करे या अपने हुक्म को वापस ले। श्रीमती केलकर, श्रीमती गोखले, श्रीयुत गोखले की बहन, श्रीमती इन्दुमती नाइक, श्रीमती यशोदाबाई फड़के, तथा दूसरी चार [illegible] बहनें शराब की दूकानों पर पहरा देती हैं। उन्हें पुलिस वाले [illegible] लिवा ले गई और वहां जाकर छोड़ दिया। ऐसे [illegible] अब बलात्कार की बूतक नहीं आ सकती। [illegible] भी कोई शक नहीं कि इस पहरे के बदौलत शराब [illegible] दुकानें भी नहीं चल सकतीं। पूना के कार्य्य-कर्ता [illegible] है। पूना की स्त्रियां चतुर और दृढ़-चित्त हैं। उनके [illegible] के विषय में मुझे जरा भी सन्देह नहीं। यह [illegible] नहीं रह सकती। और इसमें सरकार को अवश्य हार [illegible] पड़ेगी। महाराष्ट्र के

योद्धाओं ने शान्ति-मार्ग का अवलम्बन व्यवहार-नीति के तौर पर किया है। अतएव वे शान्ति-रक्षा करते हुए अपना काम करेंगे, इसके विषय में भी मुझे शक नहीं। और, जहां शान्ति, बलिदान और न्याय की त्रिपुटी हो जाय, वहां विजय के सिवा दूसरा फल मिल ही नहीं सकता।

स्वतन्त्र तो हो ही गये

श्रीयुत पीअर्सन जो शान्ति-निकेतन में कविवर श्री रवीन्द्रनाथ के साथ रहते थे, हालही में, पांच वर्ष तक भारत के बाहर रहने के बाद, यहां आये है। उन्होंने भारत की देश के लिए कष्ट-सहन करने की शक्ति को देख कर, जिसका अनुभव उन्हें पहले भी नहीं हुआ था, श्री एंड्र्यूज के मार्फत अपना सन्देश नीचे लिखे अनुसार भेजा है—

"स्वतन्त्रता के लिए आप जो भव्य लडाई लड रहे हैं उसमें मैं आपके साथ ही हूं। आपके आन्दोलन का फल मिल चुका है। क्योंकि भारत स्वतन्त्र हो गया है। हिन्दुस्तान की आत्मा अब गुलाम नहीं रही। एक कवि ने कहा है. 'ऐ कैदी, अपनी आंख खोल कर देख! तेरी बेडी कहां है? तेरी बेडी तेरे मन से अलग नहीं। तेरा मन यदि आजाद है तो अपने पांव को भी आजाद ही समझ।' यह उक्ति आज भारतवर्ष पर चरितार्थ हो रही है। क्योंकि हम देख सकते हैं कि भारत की आंखें खुल गई हैं और इससे वह स्वतन्त्र हो गया है। इसके विषय में मुझे रत्ती भर भी सन्देह नहीं। और मैं तो पांच वर्षतक बाहर रहकर आया हूं इससे स्पष्ट रूप से यह बात देख सकता हूं।"

इस बात के साक्षी आज सैकडों कैदी लोग हैं। खुद होकर अंगीकार किये कारावास ने भारत को स्वतन्त्रता-देवी की झांकी दिखा दी है। जबसे मौलाना शौकतअली, पं. मोतीलालजी नेहरू, लालाजी, देशबन्धु दास, मौलाना अबुल कलाम आजाद जेल मे पहुंचे तभी से भारत की बेडियां टूट पडी। अब भले ही जब कभी समझौता होना हो तब हुआ करे। यह कौन जानता है कि समझौते में सुख है, या खूब लडने में, खूब कष्ट-सहन करने में है। समझौता तो प्रमाण-पत्र है। प्रमाण-पत्र की आवश्यकता तो मन्दबुद्धि विद्यार्थी को होती है। जिसे अपने ज्ञानपर भरोसा है उसे क्या वह प्रमाणपत्र के द्वारा सिद्ध करता है? तन्दुरुस्त के लिए डाक्टर के सर्टिफिकट की क्या जरूरत? महासभा में आनेवाले हजारों लोग स्वतन्त्रता की लहर का आनन्द लूटते थे। यदि वे ऐसा न कर पाये हों तो पीअर्सन साहब का पत्र भी उनके लिए व्यर्थ है। परन्तु जिस प्रकार महाशय पाल रिशार को 'नवीन युग के प्रारम्भ' का अनुभव हुआ उसी प्रकार हजारों लोगों को हुआ है। यदि हमारे दिल में इस बात पर विश्वास हो तो समझौते के लिए हमें बेफिकर रहना चाहिए।

एक ऋषि का आशीर्वाद

कविवर रवीन्द्रनाथ के पिता महर्षि के नाम से विख्यात थे। मैने देखा है कि उसी तरह उनके बडे भाई भी जिनकी उम्र इस समय ८० वर्ष से अधिक है, महर्षि की पदवी के योग्य हैं। [illegible] भी उनकी शक्ति तेजस्वी बनी हुई है। भारत की उन्नति [illegible]ार की उन्नति देख रहे हैं। वे असहयोग को धर्म-युद्ध [illegible] रहे हैं। जब जब उनके पत्र आते हैं तब तब मैं [illegible] समझकर उनका स्वागत करता हूं। कभी कभी उनका [illegible] पाठकों के भी सामने उपस्थित करता हूं। महासभा के [illegible] एक तार भेजा था। पर इतने से उन्हें सन्तोष न हुआ। [illegible] एक पत्र भेजा है उसका सार यहां दिया जाता है—

"कितने ही विचारशील जनों ने असहयोग के साथ जुडे हुए 'शान्तिमय' पद की योग्यता के विषय में जटिल समस्या खडी की है। वे कहते हैं कि शान्ति का स्वांग बनाने और जालिम सत्ताधारियों के प्रति मन में द्वेष-भाव रखने की अपेक्षा तो हिंसात्मक वृत्तिको आजादी दे देना अधिक अच्छा है। वे मानते हैं कि हम सब हजरत मूसा के मतानुयायी हैं और यह मानते हैं कि हम आंख के बदले आंख फोडना चाहते हैं और दांत के बदले दांत तोडने की इच्छा करते हैं। ऐसा होते हुए भी हम हजरत ईसा की धर्म-शिक्षा के अनुसरण करने का स्वांग दिखा रहे हैं।

इन मित्रों से मैं पूछता हूं कि आप क्या चाहते हैं? क्या आप यह चाहते हैं कि हम अपने विरोधियों को मारें और उनके हाथों मरें? अथवा आप यह चाहते हैं कि हम उन्हें क्षमा करें और अपनी स्वतन्त्रता उनके चरणों में अर्पित करके उनके अत्याचारों में हिस्सेदार बनें?

मैं तो सूर्यप्रकाश की तरह स्पष्ट देख सकता हूं कि दुष्ट को क्षमा करने का अर्थ यही होता है कि उसका बुरा न चाहें। परन्तु संसार की वर्तमान स्थिति को देखते हुए सब के एकाएक संयम का पालन किये बिना हजरत ईसा या बुद्ध के सदृश ऋषि बन जाने की आशा हम नहीं रख सकते। जब कि जालिम लोग जरा भी पश्चात्ताप किये बिना हमारे भाइयों को कुचल रहे हैं तब उन्हें लोगों का अपना कट्टर शत्रु मानना स्वाभाविक है। अतएव जिन लोगों ने अपनी दुर्बलतायें दूर करके अपने अन्तःशत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लिया है वे अपनी सम्मति तथा आचरण के द्वारा दूसरों को अपने राग-द्वेषादि को वश में करने का मार्ग बतावें, उन्हें अपने क्रोध की लगाम ढीली करना न सिखावें, बल्कि क्रोध को धीरे धीरे शान्त करने की विद्या सिखावें।

मैं तो निश्चित रूप से जानता हूं और मेरे आक्षेप-कर्ता मित्रों को भी जानना चाहिए कि ऐसा आप मन से, वाचा से और काया से कर रहे हैं। मेरा विश्वास है कि यह आपका निजी काम नहीं। बल्कि हिन्दुस्थान को चिरकाल के बन्धन से मुक्त करने के लिए ईश्वर आपको अपना साधन बना रहा है।"

सिक्खों की बहादुरी

सिक्खों की बहादुरी का पारा दिन पर दिन चढता जा रहा है। ज्यों ज्यों उनकी बहादुरी बढती जाती है त्यों त्यों उनकी सहन-शक्ति अर्थात् शान्ति बढती जाती है। अमृतसर के सुवर्ण-मन्दिर की चाबी सरकार ने छीन ली थी। उसे अब वह गुरुद्वारा-प्रबन्धक समिति को लौटा देने पर तैयार हो गई है। परन्तु जबतक गिरफ्तार किये गये समस्त सिक्ख नेताओं के छोड देने के लिए सरकार तैयार न हो तबतक प्रबन्धक-समिति ने चाबी लेने से इनकार कर दिया है। इससे सरकार की "भई गति सांप-छछूंदरि केरी।" यदि वह सिक्ख सरदारों को छोडती है तो उसकी हंसी होती है और सिक्खों का जोर दूना बढ जाता है और यदि न छोडे तो सिक्खों का बल दस गुना बढता जा रहा है। अब सरकार को यह सोचना है कि समझदारी किस बात में है? सिक्खों को न छोड कर उनका बल दस गुना बढने देना उचित है या छोडने से होने वाली हंसी को सहन करते हुए उनकी बलकी दूनी वृद्धि से मिलने वाला सन्तोष प्राप्त करना ठीक है? (नवजीवन) **मो. क. गांधी**

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, माह बदी २, सं. १९७८.

आगे गोलियों की बौछार

"के" नामधारी एक सज्जन ने 'यंग इंडिया' में "आगे क्या?" नाम के एक लेख में अमृतसर, आसाम, बुलन्दशहर, काशी आदि स्थानों में नौकरशाही के द्वारा होनेवाले एक नये ही पाशविक और लोमहर्षण दमन का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। हां, यह सम्भव है कि उन घटनाओं के वर्णन में कुछ अत्युक्ति से काम लिया गया हो; परन्तु असहयोगियों की तरफ से आजतक जितनी रिपोर्टें आई हैं वे इतनी ठीक ठीक साबित हुई हैं और उनकी अस्वीकृति इतनी झूठ, कि मैं "के" के द्वारा सुचित्रित वर्णन में कुछ कमोबेशी नहीं कर सकता। "के" ने उन अत्याचारों का वर्णन मेरे पास आये हुए संवाद-पत्रों तथा अखबारों के आधार पर किया है।

पुलिस में तो ज्यादातर हमारे ही देशभाई हैं; परन्तु यह सिद्ध है कि वे अपने बाला अफसरों की हरकतों का रुख देखकर बे-कानूनी कामों के करने पर आमादा होजाते हैं। जब कि हुल्लड़ बाज लोग निरंकुश हो जाते हैं तब उन के सिवा कोई अच्छी बात उनके दमाग में ही नहीं आती। पर जब पुलिस निरंकुश हो जाती है तब वह जो कुछ करती है सोच-समझ कर करती है और इसलिए उसका काम अक्षम्य होता है। हुल्लड़बाजों के पागलपन की तो दवा हो सकती है पर पुलिस की सनक तो बेचारे बेखबर लोगों के लिए तबाही का ही सामान हो जाती है। इतने बरसों से तो हम इसके कष्टों से कराहते आ रहे थे। पर अब, ईश्वर को धन्यवाद है, कि आज भारतवर्ष सरकार का सुव्यवस्थित उन्मत्तता का मुकाबला करने के लिए तैयार है।

'डराने और धमकाने वाले' कहे जाने वाले लोगों पर जो कहने भर के 'मामूली कानूनों' का व्यवहार किया जाता है उसके ऊपर का परदा हमें हटा देना चाहिए। इससे तो सीधा फौजी कानून ही अच्छा। हमें उसको निमन्त्रण देना और उसका स्वागत करना चाहिए। ओडायर-शाही और डायरशाही का बचाव चाहे किसी तरह न किया जा सके; पर वह आदर्श है प्रामाणिक। परन्तु आज जो कुछ भारत-वर्ष में दिखाई दे रहा है वह तो अवर्णनीय पाखण्ड के सिवा और कुछ नहीं।

यदि यह सच है कि कुर्की के बहाने पुलिस काशी में हमारे घरों के अन्दर घुस गई है और घर के दूसरे लोगों के भी गहने-पत्ते उठा ले गई, यदि यह सच है कि बुलन्दशहर में शान्ति की रक्षा के नाम से लोगों के घरों में घुसकर उन्होंने उनपर हमला किया है, यदि यह सत्य है कि कुर्की के लिए उन्होंने मुजरिमों के कपड़े-लत्ते तक छीन कर उन्हें प्रायः नंगा कर दिया, तो अब हमारे लिए भयंकर से भयंकर और उग्र से उग्र रूप के आक्रामक सविनय, परन्तु साथ ही शान्तिमय, कानून-भंग का समय आ पहुंचा है। हम उस दिन तक के लिए जब कि निरीह और निहत्थे लोगों पर गोलियां झाडी जायं, इन्तजार नहीं कर सकते और महज बचाव की स्थिति में रहते हुए लोगों के धैर्य पर अनुचित भार नहीं डाल सकते तथा सरकार के हस्तकों को हमारे घरों में लूटमार नहीं करने दे सकते। हमें अब गोलियां झेलने के लिए और सो भी जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी तैयार हो जाना चाहिए। हम लोग जो कि प्रधान कार्यकर्त्ता हैं, निरपराध लोगों पर होने वाले इन संताप-क्रोध-कारक दण्ड-योग्य हमलों को निष्काम शान्ति के साथ नहीं देख सकते, यद्यपि वे लोग स्वयंसेवक हैं और उन्होंने कष्टों को खुद ब खुद अंगीकार किया है।

एक युरोपियन 'युवक' (क्या युरोपियन युवकों को हथियार दिये गये हैं?) के द्वारा एक मुसल्मान युवक को गोली से मार दिया जाना—इस बात के लिए कि वह खादी टोपी पहने था या बेचता था, (जैसी स्थिति रही हो) एक ऐसी घटना है जिस पर चुप नहीं रहा जा सकता। इस अत्याचार का बदला यदि आवश्यक हो तो हमें जरूर चुकाना चाहिए। पर किस तरह? स्वयं अपने सिरों पर गोलियां खाकर!

सरकार हमको या तो मारकाट के लिए या घृणायोग्य आत्म-समर्पण के लिए उत्तेजित करना चाहती है। परन्तु हमें दोमें से एक भी काम न करना चाहिए। हमें इस ढंग का सविनय कानून भंग शुरू करना चाहिए जिससे सरकार को गोलियां चलाने पर मजबूर होना पड़े।

सरकार प्रजा-जनों के बीच युद्ध छिड़ाना चाहती है। हमें उसके जाल में फंस कर उसके हाथके खिलौने न हो जाना चाहिए। आन्तरिक संग्राम के लिए सरकार की अपने पक्ष का बल बढ़ाने की खुल्लम खुल्ला तयारी का नमूना लीजिए। अलीगढ के मजिस्ट्रेट ने अलीगढ जिले के रईसों के नाम नीचे लिखा हुक्मनामा भेजा है—

"आप लोग इस बात को अच्छी तरह जानते ही हैं कि स्थानिक सरकार ने घोषणा की है कि खिलाफत और महासभा के स्वयं-सेवक-दल गैर-कानून हैं और उनके दमन के लिए हुक्म भी जारी हुए हैं। अलीगढ में ये लोग बहुत भाधला मचा रहे हैं और किसी दिन शायद हाथरस में भी ऊधम मचावें, यानी दुकानों पर पहरा रक्खें, लोगों को डरावें धमकावें और लोगों को तथा सरकार को नुकसान पहुंचावें और दिक करें।

"मेरे मातहत पुलिस की तादाद थोड़ी है। और इस तरह के मामले में जबतक कि उसके जर्ये दर असल शान्ति-भंग न हो या दंगा-फसाद न हो, फौज को मदद के लिए बुलाना मेरे मन के बहुत विरुद्ध है।

"इसलिए मैं अपने जिले के कितने ही बड़े बड़े रईसों तथा दूसरे सज्जनों से लिखा-पढ़ी कर रहा हूं कि यदि यह झगडा इतना फैला कि पुलिस उसे न संभाल सके, वह तंग आजाय और दिक हो जाय तो आप लोग मुझे सहायता दें। यदि आप इस मामले में मुझे मदद देने के लिए तैयार हों तो मैं आपसे चाहता हूं कि आप कृपा करके अपने पास ५० हट्टे-कट्टे आदमी और आसामी चुनकर तैयार रक्खें और जब मैं आपको खबर करूं तब आप उन्हें मेरे पास भेज दें और वे बतौर स्पेशल पुलिस के भरती हो जायं।

"फिलहाल तो इतना ही जरूरी है कि आदमी चुन भर लिये जायं और उनके नाम-गांव आदि की एक फर्द तैयार कर ली जाय जिससे जब वे बुलाये जायं तो फौरन् जमा किये जा [illegible]।

"आशा है आप समय पर ही इसका उत्तर दे[illegible]गा।"

(सही) जे. सी स्मिथ

हमें इस फन्दे से बचना चाहिए। रईस लोग झांसे में आ जायं तो उन्हें आने दीजिए। उनका जो जो चाहे सो करें। हम तो ऐसे ढंग का सविनय कानून-भंग करें जिससे हमारे ही

भाई-बिरादरों की मुठ-भेड़ का मौका न आवे-फिर वे हमारे देश-भाई चाहे 'सिविल गार्ड' के रूप में हों, चाहे अब भी मामूली गृहस्थ की हैसियत में हो। यदि अटल साहस से काम लिया गया और पूर्ण शान्ति रक्खी गई तो एक ही महीने के अन्दर इस युद्ध में विजय प्राप्त हो सकती है। ईश्वर भारत को ज्ञान और साहस प्रदान करे।

मैंने तो ख्याल किया था कि मृत्यु का मुकाबला करने की प्रतिज्ञा अभी दूर की बात है। पर मालूम होता है कि ईश्वर चाहता है, हमारी पूरी और अच्छी तरह परीक्षा ले ली जाय। उसीके भरोसे इस युद्ध का श्री-गणेश हुआ है। वही हमें उस में से पार होने का बल देगा।

(यं॰ इं॰) मोहनदास करमचंद गांधी

लेखन और मुद्रण-स्वातन्त्र्य

दिन ब दिन परिस्थिति के अनुसार सरकार के वे असत्य आश्वासन कि नये सुधारों के अनुसार जनता को अधिक स्वतन्त्रता और दे दी गई है और उसके अधिकार बढ़ा दिये गये हैं, खोखले पड़ते जा रहे हैं। वे सत्य तो तभी साबित हो सकते हैं जब वे कड़ी से कड़ी परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो जांय। वाकस्वातन्त्र्य का मतलब तो यही है कि उसके अधिक से अधिक मर्म-भेदक होनेपर भी उसपर आक्रमण न किया जाय। और मुद्रण-स्वातन्त्र्य के सच्चे सम्मान का भी अर्थ यही है कि उससे कड़ी से कड़ी टीका-टिप्पणियां की जा सकें तथा यथार्थ बातें भी उलटपुलट तरह से समझा दी जा सकें। हां, इन बातों से रक्षा तो अवश्य होनी चाहिए। किन्तु वह इस तरह नहीं कि ऐसे लेखों का छापना कानून द्वारा ही बंद कर दिया जाय, या छापखाने पर ही वार करके उसे बंद कर दिया जाय। वह तो मुद्रणालय को स्वतंत्र रखते हुए सच्चे अपराधी को सजा देकर ही होना चाहिए। इसी प्रकार सम्मेलन के महत्व का सच्चा सम्मान रखना तो उसीको कहा जा सकता है जब आम तौर पर सम्मिलित हो कर बड़ी बड़ी क्रांति-कारक बातोंपर भी विचार कर सकें। सरकार का आधार तो लोकमत और सिविल पुलिस पर ही रहना चाहिए, न कि उन पाशविक सेनाओं पर, जिनके बलपर लोकमत को और उसकी प्रतिनिधि सरकार को चक्कर में डालने वाली किसी क्रान्ति का सचमुच कहीं उद्भव होते ही वह नष्ट कर दी जाय।

भारत सरकार तो अपनी स्वेच्छाचारिता तथा दुर्दमनीयता सिद्ध करने के लिए अब और एक बार, और सौभाग्य से आखरी बार ही, लोकमत को जाग्रत और सुसंस्कृत बनाने वाले इन तीन शक्तिशाली, और महत्व के साधनों को नष्ट करने पर तुली हुई है। और स्वराज्य, खिलाफत तथा पंजाब के दुःख-निवारण के लिए लड़ने का अर्थ यही है कि सब से पहले इस त्रिविध स्वतंत्रता के लिए लड़ना।

"इन्डिपेन्डेन्ट" अब छपकर नहीं निकलता। वही हाल "डेमोक्रेट" के है। और अब लाहौर के "केसरी" और "प्रताप" पर भी तलवार उठी है लालाजी के अपत्य "वन्दे मातरम्" ने तो दो हजार की जमानत जमा करके फिलहाल [illegible] को टाल दिया है। पहले दो पत्रों की एक बार दी हुई जमानत तो [illegible] की गई है और अब उन्हें १०, १० हजार की जमा [illegible] करने के लिए या पत्र बन्द करने के लिए दस दिन की [illegible] गई है। मुझे आशा है कि दस दस हजार की जमानतें दे[illegible]ने से वे इन्कार करेंगे।

मुझे मालूम है [illegible] कि यदि जनता कुछ आन्दोलन उठाकर इस रोग के कीटाणुओं की [illegible] से न रोकेगी तो जो संयुक्त प्रान्त में और पंजाब में हो रहा है वही धीरे धीरे और जगह भी होगा!

पहले तो मैं पूर्वोक्त पत्रों के सम्पादकों से यही आग्रह करूंगा कि वे "इन्डिपेन्डेन्ट" की तरह अपने विचार लिखकर ही प्रकाशित करते रहें। मुझे विश्वास है कि जिस संपादक के पास कुछ बातें कहने लायक है तथा जिसके लेखों को लोग चाव से पढ़ते हों वह जबतक उसका शरीर स्वतंत्र है तबतक आसानी से चुप नहीं रक्खा जा सकता। वह जहां जेल में गया कि उसने अपना सन्देश पूरा दे दिया। स्व॰ लोकमान्य के शब्द उनके छपे हुए केसरी के द्वारा उतने प्रभावशाली नहीं निकलते थे जितने प्रभाव-पूर्ण वे मंडाले की जेल से निकलते थे। और जब वे छूटकर आये तब उनके भाषणों का और लेखनी का प्रभाव पहले से जब कि वे जेल नहीं गये थे, हजार गुना बढ़ गया। और अब उनकी मृत्यु हो जाने पर तो लोगों ने उनके जीवन के ध्येय को प्राप्त करने का जो पवित्र निश्चय कर लिया है उसके द्वारा बिना भाषण और लेखनी केही वे अपने पत्र का सम्पादन कर रहे हैं। आज अगर वे जीवित होते और स्वयं ही अपने मंत्र का प्रचार करते तो भी वे इससे अधिक और क्या कर सकते थे? मुझ जैसे टीकाकार तो अब भी उनके शब्दों में दोष निकालते ही रहते। किन्तु आज सब टीकायें बंद हैं और केवल उनका मंत्र ही करोड़ों भारतीयों के हृदय में बैठकर उनको स्फूर्ति दे रहा है जिन्होंने लोकमान्य के ध्येय को अपने जीवन में सिद्ध करके उनका अक्षय स्मारक बनाने का निश्चय कर लिया है।

इसलिए पहले तो सीसे के टाइप और यंत्र-रूपी मूर्ति को हमें फोड़ डालना चाहिए। हमारी कलम ही टाइप बनाने वाली फाऊंडरी का काम देगी और खुशी खुशी से नकल करने वालों के हाथ छापने के यंत्र का। हिन्दु-धर्म मूर्तिपूजा को वहींतक महत्व देता है जबतक कि वह किसी ध्येय को कायम रख सकती हो। किन्तु जब वह मूर्ति ही हमारा ध्येय बन बैठती है तब वह एक पापमय आडम्बर हो जाती है। इसलिए जबतक हम अपने विचारों का प्रकाशन स्वतंत्रता-पूर्वक कर सकें तभीतक यंत्र सामग्री का उपयोग करें। किन्तु जब कभी वह "प्रजा वत्सल" सरकार जो बड़ी चिंताकुल होकर मुद्रण-यन्त्र और तरह तरह की अक्षर-रचना पर बड़े गौर से पहरा देती है और उसपर अंकुश गाड़े हुए है, हमारे हाथसे यंत्र-सामग्री को निकाल ले तो हमें लाचार और दीन न होजाना चाहिए।

किन्तु मैं कहूंगा कि हस्त-लिखित समाचार-पत्र भी असाधारण समय के लिए एक असाधारण यथोचित उपाय है। फिलहाल हम मुद्रणालय से और कम्पोजीटर की स्टिक से इस प्रकार उदासीन होकर बाद उनको फिर स्थापन कर के हम हमेशा के लिए उनका उपयोग कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त हमें और भी कुछ करना चाहिए। हमें बड़ी बड़ी समस्याओं को हल करने का विचार करने के पहले इसी अधिकार की पुनः प्राप्ति के लिए सविनय कानून-भंग का उपयोग करना चाहिए। वाक्-स्वातंत्र्य, सम्मेलन-स्वातंत्र्य और मुद्रण स्वातन्त्र्य इन तीन अधिकारों की पुनः प्राप्ति ही करीब करीब स्वराज्य के समान है। इसलिए बम्बई में पण्डित मालवीयजी आदि प्रमुख देश-पुत्रों के उद्योग से होने वाली सभा से मैं तो यही आदर-पूर्वक आग्रह करूंगा कि वह खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य की अपेक्षा इन्हीं बाधाओं को दूर करने के लिए प्रधान तया विचार करे। इन बातों में हम सबकी हार्दिक एक-वाक्यता होगी। हमें इन छोटी छोटी बातों का पहले निपटारा कर डालना चाहिए। इनके हल होने पर वे बड़ी बड़ी जटिल समस्यायें आपही आप हल हो जायंगी।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

एक अंगरेज महिला की स्वीकारोक्ति

अंगरेजों पर भी असहयोग का मीठा प्रभाव बढता जा रहा है। इसमें कोई शक नहीं। मेरे पास तीन पत्र आये हैं। उनमें एक अंगरेज महिला का लिखा हुआ है। लेखिका ने अपना नाम-ठाम सब लिखा है। पर वह अपना नाम प्रकाशित करना नहीं चाहती। उनके पत्र का सार इस प्रकार है—

" एक अंगरेज महिला तथा नाम की ईसाइन की हैसियत से मैं आपके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करना तथा आपके काम की स्तुति करना चाहती हूं। मैं यह इसलिए करती हूं कि मैं समझती हूं कि इस विषम काल में किसी भी अंगरेज की सहानुभूति प्रकट होने से कदाचित् इस प्रजाकीय आन्दोलन में कुछ सहायता मिले। असहयोग को मैं हमेशा के सिद्धान्त के रूप मे तो नहीं स्वीकार कर सकती; क्योंकि मैं यह नहीं मानती कि मेरे देशवासियों के साथ सहयोग करना हमेशा ही निरर्थक है। परन्तु आपके सदृश जो लोग यह मानते हैं कि हमारे साथ का सारा राज-काज-विषयक सम्बन्ध छोड देने से भारतीय राष्ट्र के संगठन के लिए जिस सम्मान और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की आवश्यकता है वह प्राप्त होगा, उनकी प्रामाणिकता और एक-निष्ठा की कदर मैं कर सकती हूं।

अतएव मेरे कितने ही देश-वासियों के निन्द्य अज्ञान और गलत-फहमी पर मुझे बहुत दुःख होता है। मैं मानती हूं कि इस समय ब्रिटिश राष्ट्र ईश्वर के न्यायासन के सम्मुख खडा किया जा रहा है। यहूदियों का इतिहास हमे यह बताता है कि ईश्वर प्रत्येक राष्ट्र को निष्पक्ष होकर पूरा पूरा न्याय-दान करता है। मैं मानती हूं कि मेरे देश-वासियों के खिलाफ ईश्वर आपको फरियादी और साक्षी बना रहा है। आपसे वह हमारे लिए चाबुक की तरह काम ले रहा है और आपको वह हमारे लिए 'दर्पण'-रूप बना रहा है कि जिसमें हम हजरत ईसा-मसीह के मतानुयायी होने की अपनी निष्फलता को देख सकें। मैं मानती हूं कि आप हजरत ईसा के धर्मोपदेश का रहस्य जान पाये हैं और हमारी अपेक्षा आप अधिक अच्छी तरह और नियमित रीति से उसका पालन कर रहे हैं। मैं मानती हूं कि आज हिन्दुस्थान के लोग यह बता रहे हैं कि उनके हृदय-मन्दिर का प्रभु कौन है; क्योंकि आप उनको उसका प्रभाव हमसे अधिक सच्चे तौर पर बता रहे हैं।

मैं भारत में पांच वर्ष से हूं। मुझे मदरास, ट्रावणकोर बम्बई और कलकत्ता में इसका अनुभव हुआ है। कुछ हिन्दुस्तानियों के साथ मेरी मित्रता भी हुई है। एक को तो मैं अपना आत्मीय मित्र मानती हूं। परन्तु इन पांचों वर्षों का सारा समय बस एक ही पाठ के पढने में बीता है और वह यह कि मैं अपने दिल के प्रमाण के आधार पर यह जान सकती हूं कि ईश्वर आज हमारे भीतरी तहमें रहने वाले गर्व के लिए हमारा इन्साफ कर रहा है। मैंने अपनी सहानुभूति प्रकट की है। मैं प्रेम और विश्वास की पात्र हो सकी हूं और भारतवासियों को अपने प्रेम तथा विश्वास का पात्र मान सकती हूं। परन्तु मुझे याद है कि मैं इस तमाम वक्त में अपने मन में अपनी उच्चता आप लोगों से अधिक मानती रही हूं। आप के लोगों से मैं कटु परन्तु सत्य वचन सुनने के लिए तैयार नहीं रहती थी और मै जानती हूं कि यह हमारी बडी त्रुटि है। आपने हमें अपनी भूलों को सब लोगों के सामने प्रकट करने का श्रेष्ठ और सच्चा मार्ग दिखाया है। आप अपने लोगों से उनकी खामियों के लिए पश्चात्ताप करने को [illegible] हि. रू. से करते हैं। हम आपकी इस आदत का रहस्य नहीं समझ सकते। क्योंकि भूल को कुबूल करना तो हमने पढा ही नहीं। ईश्वर हमें समय निकल जाने के पहले ही क्षमा प्रदान करें और पश्चात्ताप करना सिखावें।

मैं मानती हूं कि मेरे देशवासी आज सत्य, न्याय, विवेक और सभ्यता के रास्ते जाना चाहते हैं। जिस प्रकार उन्हें आयर्लेंड के विषय में करना पडा है उसी प्रकार वस्तु-स्थिति उन्हें यहां के लिए भी करने पर बाध्य करेगी। परन्तु हम लोग कितने ही समय से कानून को सिर झुकाने और शान्ति की रक्षा करने के योग्य संगठन कर रहे हैं। हमने उस संगठन के अधीन रहकर व्यवहार करने का प्रयत्न किया है। इस समय हम उसी संगठन-यन्त्र के भार से दब रहे हैं। उसी प्रकार यहूदी लोग अपने कानून के ही बोझ से दब गये। उनके कानून तो श्रेष्ठ माने जाते थे। जिसने लार्ड रोनाल्डशे और लार्ड रेडिंग के भाषण पढे हैं वे जान सकते हैं कि वे इस यन्त्र की पुष्टि कर रहे हैं। हां, वे दुष्ट कैफास की तरह नहीं, बल्कि सरल निकोडीयस और गेमालियस की तरह उनकी पुष्टि कर रहे हैं। पर इससे क्या? अतएव ज्योंही मैं अखबारों को पढ कर नीचे रखती हूं त्यों ही मेरा दिल सन्तप्त हो उठता है और कहता है, 'हे ईश्वर हमारी आंखें खोल जिससे हम देख सकें।'

सम्भव है कि आपका रास्ता उत्तम हो। यह भी सम्भवनीय है कि वही एकमात्र रास्ता हो। यदि ऐसा ही हो तो ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि वह आपको सत्य-परायण ही बनाये रक्खे। आपको निस्वार्थ बनाये रक्खे। आपकी दृष्टि को निर्मल करे। हजरत ईसा-मसीह, जिस की सेवा मेरी समझ में आप कर रहे हैं, आपको राजकाज सम्बन्धी झगडों के स्पर्श से और लोक-प्रियता के लालचों से बचावे। हम सबको सत्यरूप परमेश्वर मार्ग दिखावें।"

इस पत्र की प्रत्येक पंक्ति मे सरलता झलक रही है। वह बहन मेरे समस्त कार्य मे हजरत ईसा-मसीह का हाथ देखती है। भावुक हिन्दू को राम-कृष्ण का और मुसलमान को खुदा का और उसके पैगम्बर का हाथ दिखाई देता है। मेरे लिए तो यदि उसमें सत्य का हाथ हो तो बस है। सत्य में ईश्वर अपने सहस्र नामों सहित समाया हुआ है। और मुझे यकीन है कि यदि हम अन्ततक सत्य और शान्ति पर दृढ रहेंगे और असत्य तथा अशान्ति से दूर रहेंगे तो हम देखेंगे कि हम दिन पर दिन उन्नत हो रहे हैं और अन्त मे जो अंगरेज-भाई हमें अपने शत्रु जैसे मालूम होते हैं वे ही हमारे मित्र और राष्ट्रवादी हो जायंगे।

स्त्रियां भी जेल की तैयारी करें

श्री-गांधीजी " नवजीवन " में लिखते हैं कि यदि एक सरकार को नष्ट करके दूसरी सरकार को स्थापित करने की बात होती तो मैं स्त्री-जाति को आगे बढने की सलाह न देता। मैं देख चुका हूं कि ऐसे काम में बहुत बुराइयां हैं। पर इस संग्राम के अंत में तो राम-राज्य होने की आशा है। इस युद्ध के अन्त में गरीबों को आश्रय मिलने की आशा है। इस युद्ध के अखीर में स्त्रियों के सुरक्षित रहने की आशा है। इस समर के अन्त में भारत के भूखों मरने वाले लोगों की भूख शान्त होने की आशा है। इस युद्ध के पश्चात् चरखे के पुनरुद्धार होने की आशा है। इस युद्ध के अन्त में अस्पृश्य मानी जाने वाली जाति की अस्पृश्यता दूर होकर उनके भाई की तरह माने जाने की उम्मीद है। इस युद्ध के अन्त में शराब खाने और शराब की आदत मिट जाने की आशा है। इस लडाई के अखीर में खिलाफत और गाय की रक्षा होने की

आशा है। इस संग्राम के अन्त में पंजाब के जख्मों के अच्छा होने की आशा है। इस युद्ध के अन्त में प्राचीन सभ्यता को अपना स्थान मिलने की तथा प्रत्येक घर में चूल्हे की तरह कामधेनु चरखे की प्रतिष्ठा होने की आशा है।

जिस आन्दोलन में ऐसी शुभ आशायें हैं उसमें स्त्रियां कैसे विमुख रह सकती हैं? इसीलिए मैं स्त्रियों से यह विनती कर रहा हूं कि वे भी आगे बढ़कर अपना हिस्सा चुकावें। वैसी आशा से ही मैं देखता हूं कि भारत की स्त्रियों में उत्साह का संचार हो रहा है।

तो भी इस उत्साह के वशवर्ती हो कर क्या मैं स्त्रियों को जेल जाने की भी सलाह दूं? मैं समझता हूं मुझसे दूसरी बात हो ही नहीं सकती। यदि मैं उन्हें उत्तेजना न दूं तो हिन्दुस्तान की स्त्रियों पर मेरी जो श्रद्धा है वह मुरझा जाय। स्त्रियों के बिना यज्ञ अधूरा रहता है। पुरुषों को निर्भयता की जितनी जरूरत है उतनी ही स्त्रियों को भी है। इससे मैंने सोचा कि स्त्रियां भी अपना नाम लिखाकर शौक से जेल की बातों की ओर जेल के खयाल की आदत डालें। फिर मैंने यह भी सोचा कि यदि स्त्रियों को जेल के खयाल से घबराहट न हो तो पुरुषों के जेल जाने का मार्ग साफ हो जायगा।"

निर्भयता की आवश्यकता

इस युद्ध में निर्भयता की आवश्यकता है। जहां पवित्रता है वहीं निर्भयता हो सकती है। हमारा मन इतना मलिन हो गया है कि हमें स्त्रियों की पवित्रता के विषय में भय ही रहा करता है। इससे हम संसार को बदनाम करते हैं। स्त्रियों को हम इतनी न-कुछ समझते हैं कि वे तो मानों अपनी पवित्रता की रक्षा करने के योग्य ही नहीं हैं। और पुरुषों को हम इतने पतित मानते हैं कि मानों वे पर-स्त्रियों को केवल अपनी बिलज्ज दृष्टि से ही देखा करते हैं। दोनों ख्याल हमें शर्म दिलाने वाले हैं। और यदि हम स्त्री-पुरुष दोनों ऐसे ही हों तो हमें मानना होगा कि हम स्वराज्य के बिलकुल अयोग्य हैं! हमें यह मान लेने का कोई कारण नहीं है कि अंगरेज स्त्री-पुरुष मर्यादा की रक्षा करते ही नहीं। अंगरेज महिलायें अनेक सेवा-कार्य करती हैं। यदि हमें एकाध नर्स की जरूरत हो तो उसका भी पाना हमारे लिए कठिन हो जाता है।

यदि स्वराज्य सचमुच ही नजदीक आ रहा हो तो स्त्रियां अपनी पवित्रता की रक्षा करने के लिए दिन पर दिन अधिकाधिक तैयार होती जायंगी। उनके मन से डर दूर होना चाहिए। यह ख्याल गलत है कि स्त्रियां अपनी पवित्रता की रक्षा करने के योग्य नहीं हैं। यह अनुभव के भी विरुद्ध है और स्त्री-पुरुष दोनों के लिए लज्जास्पद है। हां, ऐसे नरपशु संसार में अवश्य हैं जो बलात्कार करते हैं। पर जिस स्त्री को अपनी पवित्रता का ख्याल है उसपर बलात्कार करनेवाला पुरुष न तो आजतक पैदा ही हुआ है और न होगा ही। हां, यह बात सच है कि प्रत्येक स्त्री में इतना वीर्य-बल, इतनी पवित्रता नहीं है। और इसके न होने का कारण हमी लोग हैं। लडकियों को आरम्भ से ही हम ऐसी तालीम देते हैं कि जिससे वे अपने सतीत्व की रक्षा करने में समर्थ नहीं होतीं। अन्त को बड़ी होने पर इस शिक्षा अथवा कुशिक्षा का इतना असर उसके दिल पर हो जाता है कि वह यही मानती है कि स्त्री तो किसी भी पुरुष के हाथों में अपंग है। परन्तु यदि सत्य और पवित्रता जैसी कोई वस्तु दुनिया में हो तो मैं निःशंक हो कर कहना चाहता हूं कि स्त्री में अपनी रक्षा करने की पूरी पूरी शक्ति मौजूद है। जो स्त्री दुःख के समय में भगवान् की याद करेगी उसकी रक्षा वह अवश्य करेगा। जो स्त्री मरने के लिए तैयार है उसे कौन दुष्ट एक शब्द भी बोल सकता है उसकी आखों में ही इतना तेज होगा कि सामने खड़ा हुआ व्यभिचारी पुरुष जहां का तहां ढेर हो जायगा।

मरने की शक्ति तो सब में है; पर सबको उसकी इच्छा नहीं होती। जब कोई पुरुष किसी स्त्री को अपवित्र करने का प्रयत्न करता है, जब पुरुष पशु बनकर विषयासक्त होने लगता है तब दोनों को आत्मघात कर लेने का हक है-दोनों का कर्तव्य है कि ऐसा करें। जिसकी आत्मा में बल होता है वह आत्महत्या आसानी के साथ कर सकता है। स्त्री या पुरुष चाहे कैसे ही बलवान् के पंजे में क्यों न आ फंसे हों, अपनी जीभ को दबा कर अथवा हाथ खुले हों तो अपना गला दबाकर प्राणत्याग कर सकते हैं। जो पुरुष अथवा स्त्री मरने के लिए तैयार हैं वे चाहे कितने ही जकड कर बांध दिये जायं, पेड से बांध दिये जायं, तो भी वे यदि, हड्डियां टूटजाने की परवा न करें तो उसमें से छूट सकते हैं। बलवान् दुर्बल को क्यों अपने वश में कर लेता है? इसलिए कि दुर्बल को अपना प्राण प्यारा होता है। इससे वह मरजाने के लिए आवश्यक बल नहीं दिखा सकता। गुड पर चिपका हुआ चिउंटा अपने पांव को टूटने देता है; पर हमारे बल के वश में नहीं होता। बालक जब बहुत जोर लगाता है तब मां-बाप उसके हाथ को छोड देते हैं; क्योंकि यदि न छोडें तो बच्चे के हाथ टूटने का डर रहता है। प्रत्येक मनुष्य में अपने किसी न किसी अंग को तोड डालने की शक्ति होती है। परन्तु उसमें होनेवाला-प्राण जाने से होनेवाला-दुःख सहन करने लिए मनुष्य तैयार नहीं होता। परन्तु ऐसी तैयारी करना तो स्वराज्यवादी का-प्रत्येक स्त्री-पुरुष का धर्म है। यदि हम ऐसी शक्ति के लिए परमात्मा से रोज प्रार्थना करें तो वह अवश्य मिलती है। प्रत्येक बहन से मेरी प्रार्थना है कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर यह निश्चय करे-" ईश्वर, तू, मुझे पवित्र बनाये रख। अपनी पवित्रता के लिए आवश्यक बल तू मुझे दे। और मुझे ऐसी शक्ति दे जिससे मैं प्राणत्याग करके भी अपनी पवित्रता की रक्षा कर सकूं। तेरे जैसा रखवाला होने पर मुझे भय किस बात का?" सद्भाव से की गई ऐसी प्रार्थना अवश्य प्रत्येक स्त्री की रक्षा करेगी।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, सूकी ओल, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय के व्यवस्थापक द्वारा प्रकाशित।

फौजी कानून का बाबा

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—माह बदी १०, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, २२ जनवरी, १९२२ ई० | अंक २२

मालवीय परिषद्

बम्बई में श्री मालवीय जी आदि ने जिस मध्यस्थ परिषद् का आयोजन किया था वह हो गई। उसमें सफलता हुई भी और नहीं भी हुई। जहांतक उसका सम्बन्ध उपस्थित-सज्जनों की इस अभिलाषा से था कि इस वर्तमान झगडे का निपटारा शान्ति के साथ किया जाय, तथा जहांतक उसके द्वारा परस्पर भिन्न मत रखने वाले लोग एक ही छत्रच्छाया में लाये जा सके तहांतक तो उसके काम में सफलता हुई है। परन्तु यद्यपि उसमें कुछ प्रस्ताव तो स्वीकृत हुए तथापि वह मेरे चित्त पर यह भाव अंकित न कर सकी कि जो लोग यहां एकत्र हुए हैं वे समष्टि रूप से वास्तविक प्रश्न की गम्भीरता और गुरुता को अनुभव करते हैं। इस दृष्टि से वह अ-सफल हुई। भाषण-स्वातन्त्र्य सम्मेलन-स्वातन्त्र्य तथा मुद्रण-स्वातन्त्र्य के हकों पर जोर देने की अपेक्षा, जो कि प्रजा के अधिकार हैं और जोकि सर्वपक्षीय परिषद् से भी अधिक हैं, परिषद् का चित्त सर्वपक्षीय परिषद् की आयोजना की ही ओर अधिक खिंचता हुआ दिखाई दिया। जो लोग निष्पक्ष हैं उनसे मैंने यह अपेक्षा की थी कि वे अपना यह मत दृढता के साथ प्रकट करेंगे कि असहयोग की कार्य-विधि के सम्बन्ध में हमारा चाहे कितना ही मत-भेद, क्यों न हो, प्रजा की स्वतन्त्रता तो हम सब की एकसी जायदाद है और इस स्वत्व की कायमी स्वराज्य के [illegible] के बराबर है और इसलिए यदि आवश्यकता पडेगी, तो हम कानून का सविनय अनादर करके भी उसकी रक्षा करना चाहेंगे।

परन्तु सर्व-पक्षीय परिषद को छोड कर इस विषय पर परिषद् का ध्यान आकर्षित न किया जा सका; अतएव इसी बात पर वाद-विवाद हुआ कि ऐसी परिषद की आयोजना के लिए कौन कौन सी बातें परम आवश्यक हैं।

स्वयं मेरी स्थिति तो स्पष्ट थी। एक व्यक्ति की हैसियत से, बिना किसी शर्त के, मैं किसी भी परिषद् में जा सकता हूं। मैं तो सुधारक हूं; और सुधारक की हैसियत से मेरा यह हेतु ही है कि जो लोग मेरा कथन सुनने के लिए तैयार हों उनके पास मैं जाऊं और जिन विचारों को मैं ठीक समझता हूं उनका कायल उन्हें भी करूं। पर जब मुझसे यह कहा गया कि सर्व-पक्षीय परिषद् तभी सफल हो सकती है जब देश का वायुमण्डल उसके अनुकूल हो; अतएव ऐसी अनुकूलता के लिए जिन जिन शर्तों की

भारत-गीत

सुनो, सुनो, भारत-सन्तान!
हिन्दू, मुसलमान, सब भाई, निज नवीन जय-गान!
हरी-भरी जिस पुण्यभूमि पर बहती है गङ्गा की धार
वैष्णव, बौद्ध, जैन आदिक हम उसपर हिंसा करें कि प्यार?
सत्याग्रह है कवच हमारा, कर देखे कोई भी वार
हार मान कर शत्रु स्वयं ही यहाँ करेंगे मित्राचार
नहीं मारने में, मरने में है विक्रम, यश, मान!
सुनो, सुनो, भारत-सन्तान!

भय ही नहीं किसी का है जब करें किसी पर हम क्यों क्रोध?
जिये विरोधी भी, विरोध ही पावेगा हम से परिशोध
अस्त्र अपूर्व, अमोघ हमारा निश्चित है निष्क्रियप्रतिरोध
प्रतिपक्षी भी, रण में, हम से पावें प्रेम, प्रसाद, प्रबोध
रक्तपात वीरत्व नहीं, वह है बीभत्स-विधान!
सुनो, सुनो, भारत-सन्तान!

जब कि मुक्ति के अधिकारी हैं; रह सकते हम नहीं अधीन
अमर आत्मबल के आगे क्या पशुबल हो सकता है पीन?
सत्य हमारे हैं समान जब रहें कहो, फिर हम क्या दीन?
कर, पद, मन, मस्तक, दृग रहते सोचो, हम हैं किससे हीन?
होगा, होगा, निश्चय होगा नित्य नया उत्थान!
सुनो, सुनो, भारत-सन्तान!

मैथिलीशरण गुप्त

आवश्यकता है वे पेश कीजिए। तब मुझे कुछ शर्तें लिखाना पडीं। और मैं मंजूर करता हूं कि प्रस्ताव-समिति ने मेरी बातों को अधिक से अधिक सहानुभूति के साथ सुना और समझा तथा मुझे शामिल करने की हर तरह से चिन्ता की। परन्तु इसके साथ ही मैंने देखा कि उसने सरकार की कठिनाइयों पर भी खूब ध्यान दिया। उसकी यह प्रवृत्ति स्तुत्य ही थी। यदि परिषद् में सरकार की ओर से भेजे गये राज-प्रतिनिधि उपस्थित होते तो इसमें कोई शक नहीं कि उस अवस्था में सरकार के पक्ष की बातें इस से अधिक अच्छी तरह नहीं पेश की जा सकती थीं।

इसका फल हुआ समझौता। सरकार का नये हुक्मों को वापस ले लेना और उनके अनुसार जिन जिन लोगों को सजायें दी गई हैं उनको तथा फतवा कैदियों को अर्थात् अली-भाइयों तथा दूसरे सज्जनों को जिन्हें फौजी नौकरी-सम्बन्धी फतवे के मामले में सजा दी गई है, छोड देना तो हम दोनों को मंजूर था। परंतु समिति से यह भी कहा गया था कि कुर्की के वारण्ट मन्सूख कर दिये जायं, जो जुरमाना लोगों से वसूल कर लिया गया है वह लौटा दिया जाय, तथा मामूली कानून की आड में जिन लोगों को अहिंसात्मक तथा दूसरे सीधे-साधे काम करने के कारण सजायें दी गई हैं वे भी, उनके कार्य्यों के अहिंसात्मक होने के प्रमाण मिलने पर, छोड दिये जायं। समिति ने देखा कि इस सूचना मेंभी सार है। इसके लिए मैंने यह सूचना पेश की कि यह परिषद एक समिति नियुक्त कर दे और वह समिति इनका फैसला करे। परंतु प्रस्ताव-समिति ने यह प्रकट किया कि सरकार के लिए ऐसी अनियन्त्रित सिफारिशों को मंजूर करना कठिन होगा। तब मैं पंचायत सिद्धान्त पर राजी हो गया, जैसा कि उस प्रस्ताव में प्रथित किया गया है। दूसरा समझौता हुआ है पहरा रखने के सम्बन्ध में। मेरा कहना यह था कि यदि सर्वपक्षीय परिषद् के होने का निश्चय हो तो विरोधक ढंग की जितनी अ-सहयोग की हलचल है वह सब बन्द रक्खी जाय तथा जिस शांतिमय पहरे का सद्हेतु सिद्ध है उसको छोड कर सब तरह का पहरा रखना भी मुल्तवी कर दिया जाय। पर कबतक? जबतक परिषद् का फल न प्रकट हो। परन्तु विरोधक हलचलों की जटिलता मुझे इतनी भयंकर मालूम हुई कि यह बात शायद ही मंजूर होती। अतएव मैंने खुद अपनी ही तजवीज वापस ले ली और सद्हेतु-पूर्ण शान्तिमय पहरा रखने की बात भी छोड दी। यद्यपि ऐसा करते हुए मुझे बहुत अफ़सोस हुआ। पर मैंने मन में कहा कि शराबखोरी को मिटाने के उद्देश से जो सज्जन शराब की दूकानों के पहरे के काम में लगे हुए हैं वे इस थोडे दिन की कार्य्य-हानि पर ध्यान न देंगे।

मैंने यह बात भी मंजूर कर ली है कि मैं महासभा की कार्य-समिति को यह सलाह दूंगा कि महासभा के द्वारा स्वीकृत सामान्य सामुदायिक सविनय कानून-भंग ३१ जनवरी तक स्थगित कर दिया जाय जिससे समिति और परिषद सरकार के साथ सुलह की बातचीत कर सके। हमारे उद्देश की सचाई सिद्ध करने के लिए मुझे यह परम आवश्यक मालूम हुआ। जबतक कि परिषद् की बात-चीत जवाबदेह लोगों द्वारा हो रही है तबतक हम कोई नया काम आक्रामक स्वरूप का शुरू नहीं कर सकते। मैंने कार्य-समिति को यह सलाह देना भी कुबूल कर लिया कि यदि सर्वपक्षीय परिषद् होती हो तो जबतक वह होती रहेगी, तमाम हडतालें बन्द रक्खी जायं। इसे मैं अनिवार्य मानता हूं। हडतालें नौकरशाही के प्रति अपना विरोध प्रकट करने का साधन है। पर जब हम उसके साथ सुलह करने पर राजी हैं तो हम हडतालें जारी नहीं रख सकते। कार्य्य-कर्ता लोग इस बात पर ध्यान दें कि सामान्य सामुदायिक सविनय कानून-भंग को छोडकर अखिल महासभा की ओर कोई हलचल बन्द नहीं की गई है। बल्कि, इसके विपरीत, स्वयंसेवक के नाम दर्ज करना तथा स्वदेशी-प्रचार का कार्य्य बराबर वैसाही जारी रहना चाहिए। जहां जहां पूर्ण शान्तिमय ढंग से काम किया जाता हो वहां शराब की दुकानों पर पहरा जारी रक्खा जा सकता है। जहां जहां अ-कारण ही पहरा रखने की मनाही कर दी गई है वहां वहां भी 'पहरा' अवश्य ही जारी रहना चाहिए। इसी प्रकार पाठशालाओं और विदेशी कपडों की दुकानों पर भी पहरा जारी रह सकता है। परन्तु एक ओर जहां हमारा कार्य्य उत्साहपूर्वक चलाया जाय तहां दूसरी ओर हमें अधिक से अधिक संयम से काम लेना चाहिए और हिंसा तथा अ-सभ्यता या अशिष्टता को लेश-मात्र भी हमारे पास न फटकने देना चाहिए। जब शक्ति के साथ संयम और शिष्टता का योग हो जाता है तब उसके प्रभाव को कोई नहीं रोक सकता। सविनय कानून-भंग तो हमारा अनिवार्य स्वत्व है। अतएव उसकी तैयारी तो सर्वपक्षीय परिषद् के होते रहने पर भी जारी ही रहेगी। और सविनय कानून-भंग की तैयारी में इतनी बातें शामिल हैं—

१ स्वयंसेवकों के नाम दर्ज करना,

२ स्वदेशी-प्रचार करना,

३ छुआछूत को दूर करना,

४ शब्द, कृति और विचार तक में अहिंसा का पालन करने की तालीम देना और

५ भिन्न भिन्न जातियों और सम्प्रदायों में एकता स्थापित करना।

मुझे मालूम हुआ है कि भारत के विभिन्न भागों में ऐसे भी कितने ही लोग स्वयं-सेवक सेना में भरती कर लिये गये हैं जो न तो खादी ही पहनते हैं और न पूर्ण 'अहिंसा' के ही कायल हैं अथवा यदि वे हिन्दू हैं तो यह नहीं मानते हैं कि छुआछूत का कायल होना मनुष्य-जाति का अपराध करना है। मैं बार बार यह बात लोगों को कहांतक समझाऊं कि अपने ही बनाये नियमों का पालन न करना अपनी प्रगति की गाडी को पीछे धकेलना है। परमेश्वर हमारे कार्य की उत्कृष्टता से खुश होगा उसकी मिकदार से नहीं। जो लोग केवल जबान से अपने को मुसल्मान और हिन्दू कहते हैं उन्हें ईश्वर के दरबार में स्थान नहीं मिल सकता। सच्चे और अच्छे से अच्छे मुसल्मान से बढकर इस्लाम में और क्या शक्ति है? हमारे नाम-मात्र के हिन्दू-धर्म के अनुयायी जो अपने विश्वास और श्रद्धा के अनुसार व्यवहार नहीं करते हैं वे उसको कलंकित करते हैं। यदि हिन्दू-धर्म का एक ही सच्चा और पूरा अनुयायी हो तो वह अकेला ही हमेशा के लिए और सारी दुनिया के मुकाबले में उसकी रक्षा के लिए बस है। उसी प्रकार एक सच्चा और पूरा अ-सहयोगी लाखों असहयोगी कहलाने वालों की अपेक्षा हमेशा ही अच्छा है। सविनय कानून-भंग की अच्छी से अच्छी तैयारी है विनयशीलता को अर्थात् सत्य-भक्ति और अहिंसा-वृत्ति को स्वयं अपने तथा अपने सहवासियों के अन्दर जाग्रत करना।

हमारी मांगें

इस खयाल से कि 'महासभा की मांगें क्या क्या हैं' यह अच्छी तरह जानते हुए सब लोग सर्वपक्षीय परिषद् में शरीक हो सकें, मैंने अपनी तरफ की सब बातें साफ साफ पेश कीं और खिलाफत, पंजाब तथा स्वराज्य-सम्बन्धी अपना दावा परिषदमें उपस्थित किया। उसे मैं यहां देता हूं—

(१) जहांतक मैं अपनी याददाश्त के आधार पर पर लिख सकता हूं, कुस्तुन्तुनिया, एड्रियानोपल्, एनेटोलिया तथा स्मर्ना और थ्रीस तुर्क लोगों को वापस दे दिये जांय। अरब, मेसोपोटेमिया, पैलेस्टाइन, और सीरिया से तमाम गैर-मुस्लिम सत्ता हटाली जाय और इसलिए इन प्रदेशों से तमाम ब्रिटिश सेना, फिर वह चाहे अंगरेजी हो चाहे हिन्दुस्तानी, वापस बुला ली जाय।

(२) महासभा की उप-समिति की सम्मति के अनुसार पूरा पूरा व्यवहार किया जाय और इसलिए सर मायकल ओड्वायर की, जनरल डायर की तथा दूसरे अफसरों की, जिनकी बरखास्तगी की राय समिति ने दी है, पेन्शन बन्द कर दी जाय।

(३) यदि पूर्वोक्त मांगें मंजूर की जाती हों तो स्वराज्य से हमारा अभिप्राय है पूरा औपनिवेशिक स्वराज्य। इस स्वराज्य की योजना उन प्रतिनिधियों के द्वारा तैयार होनी चाहिए जो महासभा के संगठन के अनुसार निर्वाचित किये गये हों। इसका अर्थ है-४ आने पर मत देने का अधिकार। हरएक बालिग हिन्दुस्तानी, स्त्री हो या पुरुष, जो चार आने देता है और जिसने महासभा के ध्येय को स्वीकार किया है, मतदाता होने का अधिकार रखता है। इन्हीं मतदाताओं के द्वारा स्वराज्य-संगठन के लिए प्रतिनिधि चुने जायंगे। इसको कार्यरूप में परिणत करना होगा। ब्रिटिश पार्लियामेंट इसमें कुछ भी रद्दोबदल न कर सकेगी।

इस पर टीका-टिप्पणी करने वाले लोग पूछते हैं कि यदि महासभा का कार्यक्रम ऐसा पक्का और कठोर है, तो फिर परिषद् की आवश्यकता ही कहां रह जाती है? पर मेरी राय में आवश्यकता है और हमेशा रहेगी।

अब इस बात पर विचार करें कि इन मांगों की पूर्ति किस रीति से की जाय। हो सकता है कि सरकार के पास इन दावों के लिए युक्तिसंगत और विश्वासनीय उत्तर हों। महासभा ने यह कम से कम मांग की है; लेकिन कम से कम मांग करने का अर्थ यही है कि उसे अपने ध्येय के न्याय-मूलक होने में जितना विश्वास है उससे अधिक नहीं। इसका यह भी अर्थ है कि इस में सौदा करने की गुंजायश नहीं है। अतएव इसमें किसी की कमजोरी या असमर्थता की दुहाई नहीं दी जा सकती। सिर्फ युक्ति और तर्क का ही सहारा लेना होगा। यदि वाइसराय परिषद् की आयोजना करते हों तो इसका मतलब यही है कि या तो वे इन दावों के न्याय्य होने के कायल हैं, या महासभा के लोगों को तथा दूसरों को उनकी अन्याय्यता सिद्ध करने की आशा करते हैं। इन दावों को रद करने या कम करने का जो विचार वे करें उनकी न्याय्यता के विषय में तो उन्हें विश्वास होगा ही। यह अर्थ है मेरी उस परिषद् का जिसे मैं 'बराबरी वालों की परिषद्' कहता हूं। उसमें बल प्रयोग का कहीं नामों निशां तक न हो और ज्यों ही एक को अपने पक्ष में अन्याय देख पड़े त्योंही वह उसको छोड़ दे। मैं श्रीमान् बड़े लाट साहब को तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यकीन दिलाता हूं कि महासभा के लोग तथा असहयोगी दुनिया के या भारत के समझदार लोगों की तरह ही समझदार हैं; क्योंकि किसी भी न्याय्य बात को ना मंजूर कर देने के फल-स्वरूप जो कष्ट-सहन करना पड़ेगा वह उन्हींको करना होगा।

मैंने यह आपई के साथ कहते हुए सुना है कि खिलाफत के लिए तो साम्राज्य-सरकार कुछ नहीं कर सकती। वह बात तो उसकी शक्ति के बाहर है। मैं चाहता हूं कि सरकार मुझे ऐसा विश्वास करा दे। अगर ऐसा हो और अगर साम्राज्य-सरकार इस मामले को अपना ही काम समझ कर भारत के मुसलमानों का साथ देने को तैय्यार हो तो मुझे बड़ा संतोष होगा। और मैं साम्राज्य-सरकार की हार्दिक सहायता लेकर दूसरी शक्तियों को भी खिलाफत के दावे की न्याय्यता जंचाने का प्रयत्न करूंगा। और दावे की न्याय्यता के स्वीकृत होनेपर भी उसकी पूर्ति के विषय में तो बहुत-कुछ विचार करना बाकी ही रहेगा।

उसी प्रकार पंजाब के विषय में भी। सिद्धान्त मान लेने पर भी छोटी छोटी बातें तय करना बाकी ही रह गया है। बरखास्त किये गये मुलाजमों की पेन्शन बंद करने के विषय में भी तो अनेक कानूनी कठिनाइयां पेश की गई हैं। पाठक शायद यह न जानते होंगे कि मौलाना शौकतअली की पेन्शन (मेरा ख्याल है कि उनकी स्थिति भी वैसी ही थी जैसी कि सर मायकेल ओड्वायर का) तो बगैर किसी प्रकार की जांच के या बगैर उनको पहले नोटिस दिये ही बंद कर दी गई थी। मुझे विश्वास है कि सर्विस रेग्युलेशन्स में यह साफ साफ लिखा है कि किसी भी पदाधिकारी का नाम, फिर वह चाहे कितना ही उच्च क्यों न हो, यह पाये जाने पर कि उसने अपने कर्तव्य की घोर अवहेलना की है अथवा किसी प्रकार का राजद्रोही काम किया है पेन्शन-सूची में से एकदम निकाल दिया जायगा। किसी भी तरह सरकार, इन अफसरों की पिछली सेवाओं की दुहाई को छोड कर पंजाब की मांगों को ना मंजूर करने के कारण तो सिद्ध करे। यदि यह भी मान लिया जाय कि भारत की और साम्राज्य की सेवा भिन्न भिन्न हैं तो भी उन्होंने भारत को जो हानि पहुंचाई है उसे देख कर मैं यह नहीं मान सकता कि उन्होंने साम्राज्य की कुछ सेवा की है।

स्वराज्य-योजना भी निःसन्देह एक ऐसी बात है जिसपर कई प्रकार के भिन्न भिन्न मत होंगे। और यह तो मुख्यतः एक ऐसी बात है जिसपर एक सभा में विचार होना आवश्यक है। और वहां भी सदको अपने अपने विचार साफ साफ प्रकट कर देना चाहिए। किसीको कोई बात अपने दिल में न रख छोडना चाहिए। 'भारत की स्वतंत्रता' यही एक सर्वोच्च हेतु सबके दिल में होना चाहिए। ब्रिटिश जनता को चाहे इस तरफ ध्यान देने की फुरसत न हो, हाउस आफ कामन्स चाहे इस विषय में उदासीन हो, और हाउस आफ लार्ड्स चाहे विरोध-भाव रखता हो, पर इससे इसमें कोई बाधा न होनी चाहिए। भारत का एक भी आदमी जो सच्चा देशभक्त है वह अपने विषय से बाहर की इन बातों के झमले में न पडेगा। उसका ध्यान तो सिर्फ एक ही बात पर रहेगा। वह तो सिर्फ यही सोचेगा कि क्या भारत जो कुछ चाहता है उसके लिए तैयार है? या वह एक बालक की तरह किसी ऐसी वस्तु को मांग रहा है जिसे पचाना उसकी शक्ति के बाहर है? इस बात का निश्चय तो केवल भारतीय ही कर सकेंगे, बाहरी लोग नहीं।

इस दृष्टि से सोचने पर पूरे स्वराज्य की योजना तैयार करने के लिए एक ऐसी सभा करने के विचार को मैं अवश्यही अपरिपक्व मानता हूं। भारत अपनी ऐसी शक्ति का परिचय अभी नहीं दे पाया है जिसका सामना करना प्रतिपक्षी की शक्ति के बाहर हो। *माना कि उसने भारी कष्ट-सहिष्णुता दिखाई है; किन्तु अभी अपने* ध्येय के गौरव की दृष्टि से उसे और भी कष्ट-सहन करना बाकी है। अभी उसे और भी अधिक नियम-बद्ध होने की आवश्यकता है परिषद् के प्रस्तावों से असहयोगियों को अलग रखने के लिए मुझे खास तौर पर ध्यान रखना पड़ा था; क्योंकि अभी हममें बहुत कमजोरियां हैं। जब भारत में नियमबद्धता के साथ बल का

संचार हो जायगा तब मैं खुद ही वाइसराय का दरवाजा खटखटाऊंगा और कहूंगा कि परिषद् कीजिए। और मुझे मालूम है कि वाइसराय, फिर वे चाहे कोई प्रसिद्ध कानून-दां हों चाहे बड़े नामी फौजी पुरुष हों, प्रसन्नता के साथ इस अवसर को गले लगावेंगे। मुझे हमारी कमजोरी का ज्ञान है, इसीलिए मैं सीधा उनके पास नहीं जाता हूं। परन्तु चूंकि मैं विनयशील हूं, इसलिए मैं नरम अथवा दूसरे मित्रों के द्वारा यह साफ बतला रहा हूं कि मैं प्रामाणिक परिषद या परामर्श के एक भी अवसर को हाथ से जाने देना नहीं चाहूंगा। और इसलिए मैंने असहयोगियों को यह सलाह देने में आगापीछा नहीं किया कि निष्पक्ष दल के भाइयों की सभा में हमें सधन्यवाद जाना चाहिए और जिस तरह वे उचित बतावें उस तरह अपने से जो कुछ बन पड़े वहां सेवा करनी चाहिए। और यदि वाइसराय अथवा कोई दूसरे लोग कोई परिषद् करना चाहें तो उसमें जाने से इनकार करना असहयोगियों के लिए बेवकूफी की बात होगी। असहयोगियों के पक्ष की सफलता लोकमत की सहायता पर अवलम्बित है। दूसरा कोई बल उनकी सहायता के लिए नहीं है। यदि वे लोकमत से हाथ धो बैठें तो कहना होगा कि उन्होंने कमसे कम आज तो ईश्वरी सहायता से अपने को वंचित कर लिया है।

इस विषय में कि स्वराज्य-योजना किस तरह से तैयार की जाय, मैंने सिर्फ वही उपाय सुझाये हैं जो मुझे बहुत ही व्यवहार्य मालूम हुए हैं। न तो महासमिति ने और न कार्य-समिति ने ही उनपर विचार किया है। महासभा के मताधिकार को ही ग्रहण करलेने की सूचना भी मेरी ही है। परन्तु इसमें मैंने जिस मूलभूत सिद्धान्त का आधार लिया है वह वास्तव में ऐसा है जिसपर कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता। स्वराज्य-योजना तो वही हो सकती है जो लोक-प्रतिनिधियों के द्वारा तैयार हुई हो। तब शासन-शास्त्र के उन विशेषज्ञों तथा दूसरे लोगों के विषय में क्या करना चाहिए, जो लोगों के द्वारा न निर्वाचित हो सकें? मेरी राय में तो वे भी उसमें शामिल हों और उन्हें मत देने का भी अधिकार रहे। पर उनकी संख्या थोड़ी हो। वे अपनी युक्ति-संगत बातों और सूचनाओं के द्वारा सभा को लाभ पहुंचावें, और बहुमत पर अपना असर डालें। यदि सर्व-पक्षीय परिषद् में परस्पर विश्वास और आदर से काम लिया गया तो उसके द्वारा सन्तोष-जनक और सम्मान-योग्य सन्धि हुए बिना न रहेगी।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

"हिन्दी-नवजीवन" आधे मूल्य में

हिन्दी-नवजीवन के प्रकाशक **श्रीयुत सेठ जमनालाल जी बजाज** ने निम्न-लिखित सूचना भेजी है—

"जो विद्यार्थी, शिक्षक अथवा महासभा के प्रचारक अपने स्थान के कम से कम ५ भाई-बहनों को "हिन्दी-नवजीवन" नियमित रूप से पढ़ कर सुनावेंगे उन्हें "हिन्दी-नवजीवन" आधे मूल्य २) में दिया जायगा। विद्यार्थियों और शिक्षकों को अपने विद्यालय के प्रधान अधिकारी तथा प्रचारकों को अपने स्थान की महासभा-समिति के मन्त्री का प्रमाणपत्र भेजना चाहिए। फरवरी के अन्ततक जिनके प्रार्थना-पत्र आ जायंगे उन्हीं पर विचार किया जायगा।"

व्यवस्थापक—"हिन्दी-नवजीवन"

टिप्पणियां

अप्रिय घटना

मालवीय परिषद् में सर शंकरन् नायर बिना कारण नाराज हो गये। एक तो मेरे व्यवहार से। मैंने एक के बाद दूसरी शर्तें पेश कीं। यह उन्हें पसन्द नहीं हुआ। उसीपर उन्होंने चले जाने की इच्छा प्रकट की। परन्तु जब मालवीयजी, श्री० जिना आदि ने उन्हें समझाया तब वे शान्त हो गये। परन्तु जब फतवा कैदियों को छोड़ने की चर्चा उठी तब तो उनसे न रहा गया-उठकर चले ही गये।

वे स्पीकर अर्थात् सभा के मुख्य नियुक्त किये गये थे। सभापति तो किसी का पक्ष ले सकता है परन्तु स्पीकर को ऐसा अधिकार नहीं रहता। स्पीकर की नियुक्ति तो केवल सभा का संचालन बा-कायदा करने के लिए की जाती है। स्पीकर को अपनी राय देने का अधिकार ही नहीं है। सो सर शंकरन नायर को तो चुप ही रहना उचित था। इसके बजाय वे बीच बीच में दखल देने लगे और अन्त को कुरसी छोड़ दी। इससे सब को रंज हुआ। पर लोग निराश होकर लाचार नहीं हो गये। उनके चले जाते ही पंडितजी ने सर विश्वेश्वरय्या को नियुक्त करने की सूचना की और उन्होंने स्पीकर का स्थान ग्रहण किया। एक वर्ष पहले सर शंकरन् जैसे मनुष्य के अध्यक्ष-पद छोड़ देने से भारी खलबली मच जाती और लोग उन्हें मनाने के लिए दौड़ पड़ते। पर अब तो राष्ट्र स्वतन्त्रता-प्रिय हो गया है। अब वह अपने हकों को और मर्यादा को समझता है। अतएव ऐसे मौकों को धैर्य के साथ निबाह लेता है।

(न० जी०)

बड़ी धारासभा में सर्वपक्षीय परिषद्

बम्बई की मध्यस्थ परिषद पर "नवजीवन" में लिखते हुए देहली की बड़ी धारासभा में सर्वपक्षीय परिषद् की जो चर्चा हुई है उसके सम्बन्ध मे श्री-गांधीजी ने नीचे लिखे उद्गार प्रकट किये हैं—"देहली की बड़ी धारासभा में तो ऐसी चर्चा हुई है कि मानों वहां के कितने ही सभासदों को देश की स्थिति का पता ही नहीं है। ऐसी धारा-सभाओं में जाने का आग्रह हमसे किया जाता था। यह धारा-सभा ऐसी नहीं है जो लोक-मत के अधीन हो कर चले। बल्कि हम देख सकते हैं कि यह तो सत्ता-मत का अनुसरण करने वाली है। कोई यह न समझें कि वर्तमान सभासदों के स्थान पर यदि कोई दूसरे-असहयोगी ही-सभासद होते तो इससे अधिक अच्छा फल निकलता। उनके भी यही हाल होते। मान लीजिए कि कदाचित् उन दूसरे समस्त सभासदों का एकमत हो जाता, तो भी सत्ता तो अपना मनचाहा ही करती। जबतक सत्ता का मद दूर नहीं हुआ है तबतक धारासभा के एक भी सभासद से कुछ नहीं हो सकता। जबतक धारासभा और सत्ता ये दो जुदी जुदी चीजें रहेंगी तबतक कोई अच्छा नतीजा निकलने की सम्भावना नहीं। जबतक सेना और पुलिस पर हमारा अधिकार नहीं है तबतक हमें पराधीन ही रहना होगा। और हमारे कितने ही सीधे-भोले लोग अभी यह मानते हैं कि सेना और पुलिस का अधिकार अपने हाथों में लेनेके लिए हमें खुद फौजी कवायद सीखना चाहिए और उसके द्वारा हुल्लड़बाजों पर अपनी सत्ता करनी चाहिए। परन्तु हमारे असहयोग की लड़ाई हमें यह बताती है कि यदि हम सेना का डर छोड़ दें तो हम बन्दूक की कवायद के बिना ही उन पर सत्ता कर सकते हैं। उनको अपने अधीन करने के लिए हमें शान्ति का पाठ पढ़ना चाहिए, हिन्दू-मुसलमान के दिल साफ होना चाहिए, हमारी नीतिमत्ता बढ़नी चाहिए और हमारा आत्म-विश्वास बढ़ना चाहिए।"

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, माह वदी १०, सं. १९७८.

फौजी कानून का बाबा

जबतक यह जंगली दमन जारी है तबतक मुझे उसकी विश्वसनीय कहानियां पाठकों को सुनानी ही होंगी। हां, जब भारतवर्ष अपने सर्वोपरि बलिदान के द्वारा उसकी 'इति श्री' कर डालेगा, तब यह क्रम अपने आप बन्द हो जायगा। मैं इस दमन को 'जंगली' इसलिए कहता हूं, कि इसमें बुद्धि से काम नहीं लिया जाता है, खूब मनमानी की जाती है, इसमें असभ्यता और निर्दयता भरी हुई है। अच्छा मान लीजिए कि कुछ असहयोगियों ने हडताल के मौके पर अथवा दूसरे कामों में लोगों को डराया-धमकाया और हिंसाकाण्ड भी मचाया, तो क्या अपराधियों का पता लगाना और उनको सजा देना कोई कठिन बात है? यदि सरकार को गवाह लोग न मिलते हों तो क्या इससे यह नहीं मालूम होता कि तमाम जनता ऐसे डराने और धमकाने की मदद पर है? कोई काम कितना ही दूषण-योग्य क्यों न हो, जब सारा राष्ट्र उसे करने लगता है तब वह अपराध नहीं रह जाता और उस देश के कानून के अनुसार उस पर कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती। अतएव वह दमन जो कि एक बे-जवाब देह सरकार के द्वारा किया जा रहा है, हरगिज लोक-प्रिय काम नहीं हो सकता और न वह 'लोगों की रक्षा के लिए किया गया काम' ही हो सकता है। परन्तु आज यहां तो दमन इसलिए किया जा रहा है कि लोगों का बढता हुआ आन्दोलन ही दबा दिया जाय-वह आन्दोलन जो कि इस सरकार के कृष्ण-कृत्यों के खिलाफ खडा किया गया है। और इसलिए यह दमन तो दुगुना अ-क्षम्य है।

अस्तु। परन्तु इस लेख का हेतु यह नहीं है कि इस दमन का असमर्थनीय स्वरूप लोगों को दिखाया जाय; बल्कि यह दिखाना है कि यह कितना पाशविक है, किस तरह फौजी कानून से भी बदतर है।

इसके मुकाबले में पंजाब का फौजी कानून तो एक तरह से दमन का एक सभ्यता-पूर्ण साधन था। और उसका नाम चूंकि मार्शल ला था इससे उसके बदौलत कमसे कम लोगों का दिल थर्रा तो उठता था। परन्तु अब मामूली कानून की छत्रच्छाया के नीचे, परन्तु वास्तव में बिना किसी कानून-कायदे के, जो जो काम हो रहे हैं, उनकी अंधाधुध गति को तो कोई रोकने ही वाला नहीं है। भला फौजी कानून में कुछ तो सभ्यता को स्थान है; पर इस मुल्की बे-आईनी में तो इसका भी कहीं ठिकाना नहीं है।

फरीदपुर के जेलखानों की मार-पीट का हाल सुनिए। डाक्टर मैत्र कलकत्ते के एक सुप्रसिद्ध डाक्टर हैं। उनका सम्बन्ध किसी दल से नहीं है। वे फरीदपुर जेल को देखने गये थे और उन्होंने वहां कैदियों को कोडे लगाये जाने के दृश्य का बडा रोचक वर्णन किया है। दो भद्र पुरुष, जिनमें एक हेडमास्तर थे, एक साथ एक कोडे लगाने के तख्ते से बांध दिये गये और उन्हें खूब कोडे लगाये गये। अपराध? जेल के अफसरों को सलाम न करना। जब डाक्टर मैत्र ने जेल का मुलाहिजा किया तब इस सजा का उल्लेख तक रजिस्टर में नहीं किया गया था। उन्होंने कितने ही मुल्जिमों को जिनका मुकदमा अभी जेर तजवीज था सारी रात हथकडी पहने हुए देखा। एक कैदी के बराबर तीन दिनतक खडी हथकडी पडी रही। 'कैद की कोठरियों में जितने कैदी की जगह निश्चित है उससे प्रायः दूने एक साथ ठूंस दिये गये! जाडे का मौसिम! पर न उनके खाने, न ओढने और न बिछौने की ओर किसीका पूरा ध्यान था!' इस पर बंगाल की सरकार क्या कहेगी? वह इन घटनाओं को तो हजम कर नहीं सकती। बस, 'जेल की मर्यादा की रक्षा' ही उसके समर्थन का आधार हो सकता है। सरकारी सूचना-पत्र में कहा गया है कि 'इन सजाओं का अभीष्ट प्रभाव हुआ है और तब से जेल की मर्य्यादा का पालन हो रहा है।'

अच्छा, अब चालिए, प्रयागराज की सफ़र करें। संयुक्तप्रांत की सरकार ने अपने बर्ताव के विषय में श्री० महादेव देसाई का एक प्रमाण-पत्र पेश किया है। महादेव भाई का कहना यह है कि अब मेरे साथ मनुष्य के जैसा व्यवहार किया जा रहा है। यह सच बात है। पर पाठक जरा महादेवभाई वर्णित ("नवजीवन" का पिछला या "यंग इंडिया" का ताजा अंक देखिए) नैनी जेल के कैदियों की दुर्दशा, कोडों की बेदम कर देने वाली मार और उनके साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार की रोमांचकारी कहानी को भी पढें।

सीतामढी से समाचार आये हैं कि वहां के लोगों पर २५,०००) जुरमाना लाद दिया गया है और प्युनिटिव-दण्ड देने वाली-पुलिस नवीन में बैठा दी गई है। सीतामढी बिहार का एक सब-डिविजन है। इस जुरमाने और प्युनिटिव पुलिस का अर्थ है सीतामढी के लोगों की लूट-खसोट। "मदरलैंड" (श्री० मजहरुल हक-सम्पादित अंगरेजी साप्ताहिक पत्र) में सिहुलिया, चन्द्रपुर और भरथवा नाम के गांवों में हुई लूट-पाट का वर्णन प्रकाशित हुआ है-'खबर मिली है कि घुडसवार पुलिस, कमांडिंग अफसर तथा फैक्टरी मैनेजर भी लूट-पाट में शरीक थे। उन ग्राम-वासियों का अपराध यह बताया गया है कि उन्होंने 'हार' और 'बेगार' देने से इनकार किया। अवध बिहारी शरण (महासभा के कार्यकर्ता) चारपाई से बांध दिये गये। * * * * फैक्टरी के जमादार ने घुडसवार पुलिस से कहा कि इनको (स्वयंसेवकों को) बैंते लगाओ। हरएक स्वयंसेवक के बैंते लगाई गईं, उनकी टोपियां और उनके बिल्ले छीन लिये गये।'

सिन्ध का हाल भी इससे बेहतर नहीं है। सिन्ध की महासभा-समिति के एक पत्र से मालूम होता है कि रहमत रसूल नाम का पंजाब फौजी कानून का एक कैदी तथा उसके दो साथी हैदराबाद की सेंट्रल जेल में बन्द किये गये हैं। वे पिछले नवम्बर में अन्दमान जेल से वहां लाये गये और एक कोठरी में बन्द कर दिये गये। यह कोठरी उन कैदियों के लिए थी जिन्हें मौत की सजा दी जानी है। उन्हें तीन दिनों तक किसी तरह का खाना नहीं दिया गया। फिर जब जब सुपरिंटेंडेंट वहां आता तब तब उनसे कहा जाता कि हाथ उठा कर (जैसा कि मुसलमान लोग नमाज पढते वक्त करते है) कहो—"सरकार एक है।" रहमत रसूल ने कहा कि मेरे मजहब में अकेला खुदा ही एक है और मैं अकेले उसीकी इबादत कर सकता हूं। तब सुपरिंटेंडेंट ने अंकडकर जवाब दिया-'मैं सरकार का प्रतिनिधि हूं। और इसलिए जेल में मैं ही तुम्हारा खुदा हूं।' फिर भी रहमत रसूल अपने धर्मपथ से विचलित नहीं हुआ। यहांतक कि जेल कमिटी

के दबाने पर भी उसने सिर नहीं झुकाया। उसकी इस धार्मिकता का इनाम उसे यह मिला कि उसे पांच तरह की सजायें दी गई—३० कोड़े, छः महीने तक एकान्तवास, छः महीने तक टाट के कपड़े पहनना और छः छः महीने तक तरह तरह की बेड़ियां डालना। महासभा के एक कार्य-कर्ता श्री० हासानन्द से जब कुछ लोग मिलने गये तो उन्हें सिर्फ पांच मिनिट की इजाजत दी गई, यद्यपि कानून में १५ मिनिट की आज्ञा है।

पिछली जुलाई में पुलिस ने मतियारी में गोलियां चलाई। उससे एक आदमी मरा और कितने ही घायल हुए। और जिस सब-इन्स्पेक्टर की यह सारी करामात है वह अब मजे में कम्बर में गुल छर्रे उडा रहा है-सर्वसत्ताधारी और निरंकुश बन बैठा है।

हाल ही में वह जुरमाने की रकम वसूल करने के लिए एक असहयोगी मुजरिम के घर में घुस गया; परदानशीन औरतों से जो घर में थीं, माल असबाब जबरदस्ती छीन लिया। मुजरिम के भाई की औरत की नाक से सोने की नथ तक खींच ली। एक भले आदमी उस परदानशीन औरत की मदद के लिए पहुंचे तो वे भी पिट गये। पुलिस अफसर घर में घुस ही गया और उजड्डता के साथ उन औरतों तक जा पहुंचा।

सो इस सरकार की नजर से न तो मनुष्य बचे, न उनका माल असबाब, और न पुरुष, न स्त्री। और न जेलों में जीवित रहना ही आसान है। केवल शरीर को बन्धन में रहने देने से सरकार की तृप्ति नहीं हो रही है। लोगों को तरह तरह की पीडायें दिये और उनका मान-भंग किये बिना उसकी आत्मा को संतोष नहीं हो सकता।

इस प्रकार यह जालियांवाला बाग-रहित फौजी कानून ही है। और वह उससे भी खराब है। जालियांवाला बाग-काण्ड यद्यपि घृणित काण्ड था, तथापि उससे सरकार का इरादा तो साफ साफ मालूम हो जाता था और उससे हमें अभीष्ट धक्का तो पहुंचा। वह एक खुला व्यवहार था। पर अब जो कुछ हो रहा है वह कैदखानों की अंधी कोठरियों में अथवा छोटे छोटे अप्रसिद्ध देहात में और इससे वह किसी को सहसा मालूम भी नहीं होने पाता। इसलिए हमारा स्पष्ट रूप से यह कर्त्तव्य है कि हम फौजी कानून का आवाहन करें, इस "मनहूस वाहियात हरकत" का नहीं और अपने अन्दर ऐसा साहस उत्पन्न करें जिससे हम बन्दूक की गोलियों का स्वागत कर सकें-१९१९ की तरह अपनी पीठ पर नहीं, बल्कि बिना रत्तीभर मसक्के, खुशी खुशी अपनी छातियां आगे तानकर!

(य० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

जरूर पढ़िए

"हिन्दी नवजीवन आधे मूल्य में"

इस सूचना के अनुसार हमारे पास कितने ही पत्र आये हैं, परन्तु बहुतेरे लोगों ने उनके साथ प्रमाण-पत्र नहीं भेजे। अतएव हम उन सब महाशयों को तथा अब आगे पत्र भेजनेवाले सज्जनों का ध्यान नीचे लिखी बातों की ओर दिलाते हैं—

१ जो सज्जन प्रमाण-पत्र नहीं भेजेंगे उनके पत्र पर विचार नहीं किया जायगा न उसका कोई उत्तर ही दिया जायगा।

२ जो सज्जन इस रिआयत के मुस्तहक हो चुके हों वे मनीआर्डर के कूपन पर रिआयत का उल्लेख जरूर करें।

३ यह रिआयत व्यक्तियों के लिए है; लायब्रेरियों, सभा-समाजों, विद्यालयों आदि संस्थाओं के लिए नहीं।

४ जब तक इस कार्यालय से प्रार्थना-पत्र की स्वीकृति की सूचना न मिले तबतक कोई सज्जन रुपया भेजने का कष्ट न उठावें। इस बात पर वे विशेष रूपसे ध्यान दें।

व्यवस्थापक—"हिन्दी-नवजीवन"

स्वराज्य कहां है?

भगवान् जाने क्या हुआ, जब से लालाजी, दास, नेहरू, मौलाना अबुल कलाम गिरफ्तार हुए, तब से लोगों ने मुझसे यह पूछना ही बन्द कर दिया कि स्वराज्य कहां है? मेरे मन में जो चिन्ता रहा करती थी वह दूर हो गई और मैं तो यही समझता हूं कि अब मुझसे कोई पूछने वाला रहा ही नहीं। लोगों ने तो मुझे तार तक भेज दिये कि 'स्वराज्य-प्राप्ति के लिए आपको बधाई है।" महाशय पाल रिशार ने यहां आकर ३१ दिसम्बर को व्याख्यान दिया कि नवीन युग का आरम्भ हो गया है। पीयर्सन साहब ने शान्ति-निकेतन से पत्र भेजा कि "मैं तो पांच वर्ष बाद आकर क्या देखता हूं कि भारत तो स्वतन्त्र हो गया है।'

स्वराज्य तो मनोदशा है। जब इस मनोदशा की प्रतिष्ठा हमारे हृदय में होगी तभी उसकी प्रतिमा स्थापित होगी। पर जब से हमारी मनोदशा बदल गई, बस, तभी से स्वराज्य तो मिल ही चुका है।

मैं समझौते के एक भी अवसर को खोने वाला आदमी नहीं हूं: पर हिन्दुस्तान की शक्ति को मैं पहचान चुका हूं। इसलिए समझौता करते हुए डरता हूं। पूरे पूरे संस्कार होने के पहले ही यदि समझौता हो जाय तो फिर हमारी कैसी गत हो? नव मास गर्भ में रहने के पहले ही पैदा हो कर थोडे ही दिनों में मर जाने वाले बालक की तरह हालत हो सकती है। पोर्टुगाल में थोडे ही समय में विप्लव हुआ तथा राज्यक्रान्ति हो गई। इससे अब वहां विप्लव ही विप्लव हुआ करते हैं। किसी भी राज्य-प्रणाली की जड वहां जमने ही नहीं पाती। तुर्कस्तान में जब १९०६ में अचानक राज्य-क्रान्ति हुई तब सब लोगों ने उसे बधाइयां दीं; पर वह तो चार दिनों की चांदनी होकर रह गई। वह परिवर्तन स्वप्नवत् हो गया। उसके बाद तो तुर्कस्थान को बहुत दुख उठाना पडा है और कौन कह सकता है, उस बहादुर राष्ट्र को अभी और कितना संकट उठाना पडेगा?

इन घटनाओं को देखते हुए मैं कई बार असमंजस में पड जाता हूं और समझ नहीं पडता कि कौनसी बात ठीक है। इस समय तो अवश्य ही मेरा कलेजा कांप रहा है। यदि समझौता हो जाय तो फिर हम कहां जायंगे?

अभी लोगों की समझ में यह बात साफ साफ नहीं आ रही है कि स्वराज्य-प्राप्ति तो ऐसे यन्त्र के द्वारा हो सकती है जिसे एक अपढ़-कुपढ़ देहात का बढई भी बना सकता है और जिसे एक निर्दोष कुमार-कुमारिका आसानी के साथ चला सकते हैं। ऐसा होते हुए भी मुझे दिन पर दिन यह विश्वास होता जाता है कि उसी यन्त्र के बदौलत स्वराज्य प्राप्त होगा, उसके बिना हरगिज नहीं।

अभी हमें इस बात का यकीन कहां हुआ है कि सच्ची सार्वजनिक शिक्षा अक्षर-ज्ञान में नहीं; बल्कि शील में और शारीरिक परिश्रम में है। हिन्दुस्तान के मां-बाप के दिल से अभी अक्षर ज्ञान का मोह दूर नहीं हुआ है। वे अभी अक्षरज्ञान के स्थान को नहीं पहचान पाये हैं। वे अभी इस बात को स्वीकार नहीं करते कि बालकों को पहले नीति की शिक्षा देनी चाहिए, फिर उनके शरीर को मजबूत बनाना चाहिए और आजीविका के साधन के तौर पर कुछ उद्योग-धन्धा या कला सिखाना चाहिए और इसके बाद उनकी मनःशक्ति का विकास करना चाहिए और अलंकार के तौर पर उन्हें अक्षरज्ञान से आभूषित करना चाहिए। मुझे मालूम हुआ है कि अभी बहुत से मां-बाप सरकारी स्कूलों से अपने लड़कों को

उठा लेने के लिए तैयार नहीं है। अभी भारत के समस्त मां-बाप अपने लड़कों को उन राष्ट्रीय पाठशालाओं में भेजने के लिए जहां विद्यार्थियों की मनोदशा का सुधार होता है अथवा उनमें मिलने वाली स्वतन्त्रता की तालीम की महिमा जानने के लिए तैयार नहीं है।

वकीलों का तो पूछना ही क्या? अदालतों का मोह उनसे अभी कहां छूटा है? घर ही में अपने लड़ाई-झगड़ों का निपटारा हम कहां करने लगे हैं? अभी हमने यह कहां जाना है कि न्याय महंगा न होना चाहिए। अभी तो बड़े धर्म-स्तम्भ-रूप माने जाने वाले साम्प्रदायिक जैसा धार्मिक झगड़ों का फैसला प्रिवी कौन्सिल में कराने की आशा रखते हैं। वकीलों के दिल से बड़ी बड़ी फीस ऐंठने का मोह अभी दूर नहीं हुआ है। इससे न्याय अभी सोने और अशर्फियों से तौला जाता है। ऐसी अवस्था में यदि आज सुलह हो जाय तो अदालतों में प्राण संचार करना बाकी ही रह जाय और सुलह हो जाने के बाद तो कौन किस की बात पूछने लगा? अदालतों का हाल जो आज है वही आगे भी रह जायगा। तो फिर यह राम-राज्य कहां रहा? राम-राज्य में न्याय की बिक्री नहीं हो सकती।

क्या हिन्दुओं और मुसल्मानों में अभी पूरी एकता हो गई है? एक दूसरे के दिल का शक दूर हो गया है? एक दूसरे के देश-विषयक आदर्श भी एक हो गये हैं? दोनों को मित्रता करने की आवश्यकता तो मालूम होती है; पर दोनों के दिल अभी एक नहीं हुए। हां, होते जरूर जा रहे हैं। समझौता हो जाने पर यह क्रिया बन्द हो सकती है। अतएव जहांतक दोनों में एकता स्थापित नहीं हो गई है तहांतक स्वराज्य की बात में कुछ दम नहीं। एक वचन है कि "जबतक आत्मतत्व को नहीं चीन्हा तबतक सब साधनायें व्यर्थ हैं।" यह स्वराज्य पर सर्वांश में चरितार्थ होता है। आत्मा की जगह स्वराज्य शब्द रख दीजिए, बस अर्थ ठीक ठीक व्यक्त हो जायगा। अभी हमें स्वराज्य का तत्व जानना बाकी है। हिन्दू-मुसल्मान की मित्रता का अर्थ यदि पारसी, ईसाई और यहूदी की दुश्मनी हो तो वह सारे संसार के लिए नाश-कारिणी हो जाय। इसलिए जहांतक हम हिन्दू-मुसल्मान की मित्रता का अर्थ अच्छी तरह नहीं समझ पाये हैं तहांतक समझौते की इच्छा करना ही भूल कही जा सकती है।

और इस साधना की ओषधि है शान्ति। उसे अभी हमने कहां प्राप्त किया है? अभी हम यह कहां मंजूर करते हैं कि असहयोग शान्तिमय है और वह हमारे बल का सूचक है? हम तो शान्ति को दुर्बल का शस्त्र समझकर इस शस्त्र की महिमा को पहचानते ही नहीं और उसे लज्जित कर रहे हैं। यह तो अशर्फी को धेला समझकर चलाने के बराबर मूर्खता है। शान्ति बलिष्ठ का शस्त्र है और उसीके हाथ में उसकी शोभा होती है। शान्ति का अर्थ है क्षमा और क्षमा वीर का भूषण है। जिस मनुष्य के पास खाने के लिए कुछ न हो वह यदि भोजन न करे तो उसे वहीं उपवास का पुण्य मिल सकता है? जिसे मारने की शक्ति नहीं है, वह यदि किसी को न मारता हो तो कोई पुण्य नहीं करता। मजबूरी से जो काम करना पड़ता है उससे पुण्य मिल ही नहीं सकता। बारडोली और आणंद के जो योद्धा संग्राम की तैयारी कर रहे हैं वे जब एक भी पारसी, एक भी अंगरेज, और एक भी सहयोगी भाई को न सतावें, उनके प्रति वैर-भाव न रक्खें, तब वे 'शान्ति के युद्ध की सेना के योग्य हुए' कहे जा सकते हैं। जो लोग शान्ति के नाम पर अशान्ति के काम करते हैं वे देशद्रोही तो हुई हैं; पर सारे संसार के भी द्रोही हो रहे हैं। क्योंकि संसार आज हमारे शान्ति-शस्त्र के उपयोग को तृषातुर की तरह एकटक हो कर देख रहा है। जबतक हिन्दुस्तान शान्ति का उपयोग बलवान् के शस्त्र की तरह करना न सीखेगा तबतक सुलह को अस्पृश्य समझ कर उससे सौ कोस दूर रहना चाहिए।

और हिन्दू-पाठकों से मैं क्या कहूं? हिन्दू लोग जबतक भंगी-चमारों को अपने सगे भाई की तरह न मानेंगे तबतक, मैं यह कहने की धृष्टता करता हूं, कि वे हिन्दू ही नहीं हैं। और यह बात मैं अपने को एक कट्टर हिन्दू समझकर कहता हूं। जिस दिन हिन्दू भंगी-चमारों से प्रेम के साथ गले मिलेंगे उस दिन आकाश से सुमन-वृष्टि होगी। और उसी दिन सच्ची गो-रक्षा होगी। मनुष्य का तिरस्कार और दया ये बातें एक साथ रहती ही नहीं। भंगी-चमारों के दूषणों को हम प्रेम के बल पर जीत सकते हैं। अध्यापक ध्रुव के शब्द मेरे कानों में हमेशा गूंजते रहते हैं। हमारे हृदय में जो भंगी-चमार भरे हुए हैं वे हमारे शत्रु हैं और वे अस्पृश्य हैं। जिन देह-धारियों को अस्पृश्य मानने का पाप हम कमा रहे हैं वे तो हमारे प्रिय जन हैं। उनके स्पर्श से, उनकी सेवा से तो हमें पुण्य प्राप्त होगा। जब कोई वैष्णव किसी भंगी-चमार के सांप के काटे ज़हर को चूसकर बिना स्नान किये अपनी कोठी में आवगा तब वह कोठी पवित्र मानी जायगी। यह तो मानों कृष्ण के घर सुदामा या विदुर पहुंच गये। जबतक छुआछूत-रूपी अश्वत्थ को हम जड़मूल से न उखाड़ डालेंगे या अध्यापक ध्रुव की तरह अस्पृश्यता का सच्चा अर्थ न करेंगे तबतक सुलह का ख्याल तक न करना चाहिए।

ऐसे महान् कार्य्य, ऐसी आत्म-शुद्धि तो हम कष्ट-सहन के ही द्वारा कर सकेंगे। जो अपने मोक्ष के लिए मरना जानता है वही मोक्ष प्राप्त करता है। बिना इच्छा के मरने वालों को अवगति प्राप्त होती है। इच्छा-पूर्वक मरनेवाला आज मोक्ष के योग्य हो गया है। इसी प्रकार हम जब पूर्वोक्त साधनों पर दृढ रहते हुए मरने तक का भय छोड़ देंगे तभी स्वतन्त्रता-स्वराज्य प्राप्त करेंगे। देशबन्धु दास, लालाजी, मोतीलालजी, मौलाना अबुल कलाम इत्यादि हमें मरने का मन्त्र सिखा रहे हैं। ऐसा मालूम होता है कि हम उसे सीख भी गये हैं। इसीसे कोई यह नहीं पूछता कि स्वराज्य कहां है? सब यही कहते हैं कि जहां हममें स्वेच्छा-पूर्वक मरने का बल आया कि बस स्वराज्य हुई है। और सब तो मृग-जल की तरह है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

हस्त-लिखित अखबार

अंगरेजी 'इंडिपेंडेंट' की तरह प्रयाग से एक दूसरा हिन्दी अखबार "स्वराज" भी हाथ से लिखकर प्रकाशित किया जाने लगा है। "स्वराज" की जमानत जब्त कर ली गई। इससे उसका प्रकाशन बन्द हो गया था। इस नये रूप में उसका पहला अंक मेरे सामने है। चार पृष्ठ हैं। इनमें तो सम्पादक जितना कुछ लिखना चाहें लिख सकते हैं और जितने निर्दोष अपराध करना हो कर सकते हैं। नौकरशाही की दृष्टि से तो मुझे इसमें अपराध ही दिखाई देता है। तथापि जबतक तमाम लेखकों को सरकार गिरफ्तार नहीं कर लेती तबतक तो यह अखबार निकलता ही रहेगा। और ज्यों ज्यों नकल करने वालों की मदद मिलती जायगी त्यों त्यों उसका प्रचार भी बढ़ता ही जायगा।

(नवजीवन)

टिप्पणियां

मदरास में हुल्लड

मदरास की हडताल और हुल्लड पर डा० राजन ने श्री. गांधीजी को एक पत्र लिखा है। उसमें वे लिखते हैं कि मदरास की हडताल पूरी तरह सफल हुई, किन्तु कहीं कहीं हुल्लड भी खडे हो गये। बेढंगे लोगोंका समूह दुधारी तलवार का सा होता है। लोग [illegible] सेनाओं को देखकर कभी कभी उत्तेजित हो जाते हैं। माउंट रोड पर एक पारसी सीनेमा थिएटर को भी हुल्लडबाजों ने भारी हानि पहुंचाई। सर त्यागराज चेटी के मकान को भी कई लोगों ने जा घेरा था जिससे वे युवराज के स्वागत में सम्मिलित न हो सके।

इस पर श्री-गांधी जी 'यंग इंडिया' में लिखते हैं—

" डॉ. राजन् का पत्र मैंने मदरास में मनाई गई पूरी हडताल का अभिनन्दन करने के हेतु से उद्धृत नहीं किया, किन्तु हडताल के दिन जो हुल्लड खडा होगया उसपर खेद प्रकट करने के हेतु से किया है। उस रोज तो यदि हडताल और हुल्लड दोनों न होते तो ही अच्छा था। " वह मनमानी तोड-फोड करना हुल्लडबाजों का काम था " यह भी कोई बचाव है? क्योंकि वह तो मदरास के असहयोगियों की स्वराज्य-विषयक अयोग्यता का खासा प्रमाण है। जो लोग अपनी योग्यता का दावा करते हैं उनमें हरप्रकार की हुल्लड-बाजी को रोकने की शक्ति होनी चाहिए। उस हडताल को शान्तिमय नहीं कह सकते; क्योंकि जो हालत उस बेचारे सीनेमा वाले की हुई वही औरों की भी होती, यदि वे भी अपनी दुकानें खुली रखने की हिम्मत करते। मैं तो उस गोली चलाने वाले सीनेमा वाले की हिमायत ही करूंगा; क्योंकि अगर वह गोली नहीं चलाता तो उसका थिएटर ही नष्ट कर दिया जाता। लोगों का बेतरह बिगड खडा होना आखिर क्या है? उनके हुल्लड का जो उचित दण्ड उन्हें सीनेमा वाले की ओर से मिला उसपर आग-बबूला होजाने की गुस्ताखी करना। सर त्यागराज चेटी के घर को घेर कर उनकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता में बाधा डालना भी कायरता नहीं तो क्या है! लोगों ने सर त्यागराज को सम्मान करने देने से रोक कर खुद अपना अपमान किया और सर साहब के उस सम्मान को जो कि वे युवराज का करने वाले थे किन्तु रोक दिये गये, और भी उच्च कर दिया। यह काम हुल्लडबाजों के योग्य भले ही कहा जा सकता हो; किन्तु असहयोगियों के अर्थात् गम्भीरता से काम लेने के योग्य कभी नहीं कहा जा सकेगा।

मदरास की हडताल को शान्तिमय बनाये रखने के लिए डॉ. राजन् और उनके साथियों ने कुछ भी उठा नहीं रक्खा। इसलिए उनको तो हरप्रकार से धन्यवाद। किन्तु बम्बई की तरह मदरास भी हमें एक पाठ पढाता है। अभी हमें बहुत कुछ करना बाकी है। तभी स्वराज्य के योग्य परिस्थिति होगी। या तो हम यह मानें कि शान्तिमय क्रान्ति सफल हो सकती है या यह मानें कि अहिंसा हिंसा की पूर्वतैयारी मात्र है। अगर हमारी सभी परिस्थिति ऐसी ही हो तो हमें अपने ध्येय को बदल देना चाहिए। किन्तु मैं तो काफी आशा-वादी हूं और यह भरोसा कर सकता हूं कि भारत ने अहिंसा के रहस्य को अपने हृदय में अच्छी तरह अंकित कर लिया है। वह अनुकरणीय आत्मसंयम जो कि अमृतसर, लाहौर, अलीगढ, अलाहाबाद, कलकत्ता, बरीसाल आदि, कहां तक गिनाऊं, कई स्थानों ने दिखाया है यही सिद्ध करता है कि जहां जहां सच्चे प्रतिज्ञाबद्ध असहयोगी काम करते हैं वहां के लिए हम यह विश्वास रख सकते हैं कि वहां शांति का भंग न होगा। किन्तु जहां अनाडी लोग इकट्ठे हो जाते हैं, जैसे कि मदरास में हुए थे, असहयोगियों की नहीं चलती। किन्तु हम निराश न हों। मदरास के जैसी हुल्लडबाजी भी फिर न होने पावे, ऐसा उपाय हमें खोज निकालना चाहिए। हरदोई में उस दिन श्री० बेकर पर आक्रमण किया गया। पर सौभाग्य से वे बच गये। यह दुर्घटना भी उतनी ही लज्जास्पद है। ऐसे कहीं कहीं होने वाले हिंसा कृत्य को ढूंढना या उनपर कोई कार्रवाई करना कठिन है। मुझे विश्वास है कि वह काम तो किसी ऐसे अज्ञात शख्स का है जिस का असहयोग से कोई सम्बन्ध नहीं। किन्तु हमें ऐसे लोगों का भी ठीक बन्दोबस्त करना चाहिए। अहिंसा के साम्राज्य में तो ऐसी बातें बिलकुल असम्भव हो जानी चाहिए। किन्तु यह तो मानना होगा कि वह आवश्यक परिस्थिति अभीतक तैयार नहीं हो पाई है। वह तो तभी हो सकती है जब हम हिंसा को अपने विचार तक से दूर कर देंगे।

कर देने से इनकार

कर देने या न देने के सम्बन्ध में सारे भारत में चर्चा चल रही है। पर मेरी राय में हम अभी इस योग्य नहीं हो गये हैं कि कर देना बन्द कर दें। जो शख्स रुपये बचाने के लिए कर न देना चाहता हो वह तो चोर है, और चोर की मार्फत हमें स्वराज्य नहीं प्राप्त कर सकते। वह तो चोर-राज्य होगा। जिनके द्वारा हम स्वराज्य प्राप्त करेंगे वह उनके जैसा और उनका राज्य होगा। इसीसे मैं लोगों से कहता हूं कि मेरी मार्फत भी आप स्वराज्य प्राप्त न करें। गांधी-राज्य भी स्वराज्य न होगा। अतएव मुझे तो यही लालसा लगी रहती है कि सब लोग मुझ जैसे अर्थात् कम से कम जितना संयमी मैं हूं उतने संयमी, सत्यवादी, दृढ, आग्रही, उद्योगी, शान्त, और निर्भय हो जायं। इससे हम जान सकते हैं कि हमें सहायता लेने में भी विचार करना चाहिए। मैं कई बार अपने साथियों को चेताया करता हूं कि आतुर होकर जिस किसी की मदद न लेना चाहिए। हमें अपने साधन शुद्ध से शुद्ध रखना चाहिए। जो शस्त्र-वैद्य अपने शस्त्रोंको ठीक नहीं रखता, उनकी धार को तेज बनाये नहीं रखता वह कभी तो रोगी का ही प्राण ले बैठेगा और हमेशा उसे व्यर्थ के लिए कष्ट पहुंचाता है। इससे हमें समझना चाहिए कि जबतक किसान लोग शान्ति-पूर्वक अपना बलिदान करने की और देश-कार्य में रस लेने की शिक्षा नहीं पा लेंगे तबतक उन्हें कर न देने का रास्ता दिखाना महापाप है और उसका फल हमीको भोगना पड़ेगा।

अतएव मेरी सलाह यह है कि व्यक्तिगत रूप से लोग विचार-पूर्वक जो चाहे सो करें; परन्तु बारडोली और आणंद के सिवा दूसरे सब लोग लगान अदा करें। इसीमें देश का हित है। कानून का सविनय भंग सुख-पूर्वक करने के दूसरे कितने ही साधन हमारे पास हैं। कर न देना तभी उचित है जब न देने वाला असहयोग की दूसरी तमाम शर्तों का पूरा पूरा पालन कर चुका हो।

" स्वराज्य-आश्रम "

सिलचर (आसाम) की जेल से श्री० फूकन ने एक पत्र भेजा है। उसमें उन्होंने जेल का नाम रक्खा है-' स्वराज्य-आश्रम '। वे कहते हैं कि जो लोग स्वराज्य चाहते हों उन्हें जेल-रूपी स्वराज्य आश्रम में दाखिल किया जायगा। वे लिखते हैं कि जबतक मान-सहित सुलह न हो तबतक हम जेल-निवासी लोग सुलह मुतलक नहीं चाहते। स्वतन्त्रता क्या चीज है, इसका चित्र जेल के अन्दर बड़ा ही सुन्दर खिंचता है। (नवजीवन)

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूडी ओल, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित।

उत्तर-दक्षिण

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—माह सुदी २, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, २९ जनवरी, १९२२ ई० | अंक २४

पंजाब का शौर्य

अम्बाला, रोहतक, अमृतसर, और लाहौर की जनता असहयोग-संग्राम में किस उत्साह और श्रद्धा के साथ योग दे रही है, लोग किस प्रकार शान्ति और धैर्य के साथ माता की स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपनी आहुतियां चढाने को उत्सुक हैं, इसका वर्णन उन स्थानों के संवाद-पत्रों तथा समाचार-पत्रों के आधार पर करते हुए श्री-गांधीजी उन पर "यंग इण्डिया" में इस प्रकार टिप्पणी करते हैं—

पंजाब तो सचमुच बडा आश्चर्यजनक काम कर रहा है। वहां आज जो शान्तिमय वायुमण्डल तैयार हुआ है उसका पूरा श्रेय सिक्ख-भाइयों को ही है। उनके दृढ आग्रह, ननकाना साहब के सम्बन्ध में उनकी कुरबानियां, उनके बडे बडे और अच्छे से अच्छे नेताओं का जेल जाना, और सरकार का पूर्ण रूप से आत्म-समर्पण, इन बातों ने पंजाब के हृदय में अभिमान और आशा का तथा बलिदान और अहिंसा की भावना का संचार कर दिया है।

लाला दुनीचंद अम्बाले से लिखते हैं कि सारे जिले में मानों बिजली दौड गई है। चारों ओर कुरबानी और आत्म-शुद्धि के अनुपम भाव फैल रहे हैं। मां-बाप अपने प्यारे बच्चों को धडाधड जेल के अर्पण कर रहे हैं। २६ नम्बरदारों ने इस्तीफे दे दिये हैं। कपडे के दूकानदार भी विदेशी कपडा मंगाना बन्द कर रहे हैं। लाला दुनीचंद ने बरसों तक अम्बाले का पालन-पोषण किया है। इस असहयोग-काल के पहले उनकी वकालत खूब चलती थी। भारी आमदनी थी। उसका अधिकांश आप सार्वजनिक कामों में लगाते थे। इसी कारण से उन्हें अपने साथ काम करने के लिए स्वार्थ-त्यागी नवयुवक-दल प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती थी। आज तो वे जेल जाने के लिए भी बिना कठिनाई के मिल रहे हैं। स्वराज्य क्या है? आत्म-बलिदान का तात्कालिक प्रत्यक्ष फल। अतएव अम्बाला के लोग अनुभव कर रहे हैं कि स्वराज्य तो दौडता हुआ आ रहा है। पंजाब की स्त्रियों में भी अद्भुत जागृति हो गई है। उसकी महिमा का अनुमान हम आज पूरी तरह से नहीं कर सकते। यदि सच कहें तो लाला दुनीचन्द के बलिदान का रास्ता तैयार करने वाली उनकी धर्मपत्नी हैं। उन्होंने उन्हें तैयार किया। केवल यही ऐसा उदाहरण नहीं हैं। मुझे ऐसी कितनी ही बहनों के जानने का सौभाग्य प्राप्त है जिनके बदौलत उनके पति-देवों को महत्ता प्राप्त हुई है।

रोहतक का भी हाल अम्बाला की ही तरह है। लाला श्यामलाल के बलिदान से तो पाठक परिचित ही हैं। उन्हें बडी कठिनाइयों से युद्ध करना पडा था। लेकिन उन्होंने उन सबको सहन किया। अब उन्हें अपने दूसरे मित्रों के साथ गिरफ्तार होने का सम्मान प्राप्त हुआ है। देश को इन लोगों पर गर्व है। वे धर्मान्ध नहीं। पक्के व्यवसायी हैं। पर उन्होंने अपने देश और धर्म के खातिर उसको त्याग दिया है। वे शांति का भंग करने वाले लोग नहीं हैं। वे तो उसके रक्षक हैं। और जो सरकार ऐसे नागरिकों को जेल में भेजना आवश्यक समझती है, अवश्य ही उसका दिवाला निकलना चाहता है।

अमृतसर में भी महासभा और खिलाफत संस्थाओं के प्रधान लोगों को सजायें दी जा चुकी हैं। अपराध? उन्होंने सभाबन्दी की अवहेलना कर सभा करने की ढीटता दिखाई। अमृतसर कितने ही बलिदान कर चुका है। अब तमाम सभापति कैद कर दिये गये हैं। पर खूबी यह है कि आप कहीं भी देखिए, कोई समिति पदाधिकारियों से खाली नहीं है। लोगों ने जान लिया है कि किसी भी सुव्यवस्थित संस्था में पदाधिकारी की कमी नहीं होती, चाहे उसके एक एक पदाधिकारी मर जायं, जेल चले जायं या और कुछ हो जाय। यह कल्पना वास्तव में भव्य है और उससे यह मालूम होता है कि मनुष्य की और उसकी संस्था की परस्पर कितनी एकता है।

लाहौर में, लाला दुनीचन्द के पत्र से मालूम होता है, कि भले भले घर की कोई ३,००० महिलाओं का जलूस निकला। सब स्त्रियां खादी पहने थीं और लोगों को खादी पहनने का ही उपदेश देती जाती थीं। कोई १० हजार आदमियों की एक सभा भी हुई। उसमें कुमारी लज्जावती, बीबी पूरन देवी तथा बीबी पारबती (लालाजी की पुत्री) के भाषण हुए। ऐसे काम से लोगों में नवीनता का संचार हुए बिना नहीं रह सकता। इससे आश्चर्य नहीं, जो

पंजाब सरकार को फिक्र पड गई हो और उसे उसका सामना करने के लिए 'अधिक व्यवस्थित और अधिक कठोर उपायों का अवलम्बन करने' की धमकी देनी पडी हो। इस नोटिस में सरकार कहती है कि यदि सविनय कानून-भंग सफल हो गया तो उससे लोगों को जुर्म करने की शिक्षा मिलेगी और फिर वे किसी भी सरकार पर उसका प्रयोग करने के लिए स्वभावतः तैयार रहेंगे। उसने इसे भयंकर जहर भी कहा है। परन्तु सविनय कानून-भंग का प्रवेश अपराध-प्रिय मनुष्यों के दिमाग में नहीं किया जा सकता। शिक्षित वर्ग, महिलायें तथा विद्यार्थी शायद ही जुर्म-पसन्द होते हों। यहांतक कि किसानों को भी अपराध-प्रिय नहीं कह सकते। यदि लोग शान्तिमय बने रहने का पाठ न पढ चुके होते तो उन हमलों और अपमानों को सहन नहीं कर लेते जिनका रोचक वर्णन डाक्टर गोकुलचंद नारंग तथा उनके साथियों ने किया है। दूसरे, सविनय कानून-भंग तमाम वर्तमान या भावी सरकारों के खिलाफ नहीं उठाया गया है। यह तो केवल इस वर्तमान सरकार के ही खिलाफ स्वीकार किया गया है जिसने कि सारे राष्ट्र के मत को बुरी तरह कुचल डाला है। तीसरे, लोगों से यह कहना कि जिस सरकार ने सुव्यवस्थित रीति से हमें पौरुष-हीन कर दिया है उसकी आज्ञाओं का पालन न करो, किस तरह दुष्टता या जहरीली बात हो सकती है? क्या एक बे-जवाबदेह नौकरशाही के द्वारा की गई अपनी अवमानना में लोगों को योग देते ही रहना चाहिए? जरा डाक्टर नारंग की रिपोर्ट पढिए। मेरी राय में लोग यदि आजाद मनुष्यों की तरह रहना चाहते हों तो, उसमें नियम-बद्ध सविनय कानून-भंग के समर्थन के काफी प्रमाण भरे हुए हैं। जहां कानून की ओट में जुर्म किये जाते हों वहां लोग क्या करें? क्या वे दब कर चुप-चाप आत्महनन करें? या उन हुक्मों को न मान कर, उसकी सत्ता का अनादर करके अपने आत्माभिमान का परिचय दें? यदि डाक्टर नारंग वर्णित घटनायें लाहौर जैसे शहर मे हो सकती है तो फिर बेचारे गरीब देहातवालों की कितनी मट्टी पलीद होती होगी? यदि अखबार पढनेवाले लोग ग्राम्य जीवन से बिल्कुल अपरिचित न हों और देहातवालों की मुसीबतों से उदासीन न रहते हों तो इस 'कानून और शान्ति' का सारा पाखण्ड, जिसके नाम पर आज अवर्णनीय अत्याचार किये जा रहे हैं, बहुत पहले ही नष्ट हो गया होता। सविनय कानून-भंग के युद्ध का उद्देश है सच्चे कानून और शान्ति का प्रादुर्भाव करना, जिसके आगे सिर झुकाने में लोग अपना सौभाग्य मानेंगे।

"हिन्दी-नवजीवन" आधे मूल्य में

हिन्दी-नवजीवन के प्रकाशक श्रीयुत सेठ जमनालालजी बजाज ने निम्न-लिखित सूचना भेजी है—

"जो विद्यार्थी, शिक्षक अथवा महासभा के प्रचारक अपने स्थान के कम से कम ५ भाई-बहनों को "हिन्दी-नवजीवन" नियमित रूप से पढ कर सुनावेंगे उन्हें "हिन्दी-नवजीवन" आधे मूल्य २) में दिया जायगा। विद्यार्थियों और शिक्षकों को अपने विद्यालय के प्रधान अधिकारी तथा प्रचारकों को अपने स्थान की महासभा-समिति के मन्त्री का प्रमाणपत्र भेजना चाहिए। फरवरी के अन्ततक जिनके प्रार्थना-पत्र आ जायंगे उन्हीं पर विचार किया जायगा।"

व्यवस्थापक—"हिन्दी-नवजीवन"

टिप्पणियां

अंगरेज रमणी की आशीष

'एक अंगरेज महिला' ने कलकत्ते से एक पत्र भेजा है। उसमें उन्होंने अपना नाम और पता भी दिया है। आप लिखती हैं—'श्री-गांधीजी जिस अनोखे ढंग से हमें सत्य का दर्शन करा रहे हैं और हमारी आंखें खोल कर हमें अपनी उच्च-हृदय कहलाने वाली सरकार के कृष्ण-कृत्य देखने का अवसर दे रहे हैं उसे देखकर मन मुग्ध हो जाता है। एक 'अंगरेज पादरिन' ने जो पत्र उन्हें भेजा है वह भी प्रशंसनीय है। मेरा खयाल है कि ऐसे और भी कितने ही लोग होंगे; पर अभिमान-वश वे गांधीजी के उच्च कार्य को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उनका धैर्य और कार्य्य एक गहरे पृथिवी-पेट में छिपे हुए झरने की तरह है। संसार चाहे किसी बात का उपदेश करता रहे, परन्तु ईश्वर उन्हें उनकी आशा से भी [illegible] सफलता देगा। जो लोग शान्ति के साथ चुपचाप [illegible] करते हैं वही सफलता के अधिकारी होते हैं। लाखों आदमी आज उनपर दृष्टि जमाये हुए हैं और उनके विषय में विचार कर रहे हैं। परन्तु इन सबसे बढकर एक शक्ति है जो उनके दैनिक जीवन के युद्ध को बडे गौर से देख और विचार रही है और जब उनके ये दीर्घ परिश्रम और युद्ध के दिन समाप्त हो जायंगे तब उनका काम और नाम संसार में अमर हो जायगा। उनके कठोर परिश्रम के द्वारा जिन लाखों लोगों को आजादी मिलेगी वे उनके नाम की पूजा करेंगे। परमात्मा उन्हें तथा उनकी धर्मपत्नी को आशीर्वाद दें, उन्हें चिरायु करें और नैरोग्य तथा बल प्रदान करें जिससे वे इस युद्ध में शीघ्रही जय-लाभ करें।"

पाठकों के सम्मुख इस पत्र को उपस्थित करते हुए मुझे संकोच हो रहा है। व्यक्ति-विषयक न होते हुए भी यह कितना व्यक्ति विषयक है। परन्तु मेरा खयाल है कि मैं अहङ्कार से लिप्त नहीं हूं। मैं समझता हूं कि मैं अपनी दुर्बलताओं को खूब जानता हूं। परन्तु मेरे हृदय में ईश्वर के, उसकी शक्ति के और उसके प्रेम के प्रति जो श्रद्धा है वह अटल है, अविचल है। मैं तो उस जगत्कर्ता के हाथ का एक खिलौना मात्र हूं। और, इसलिए, भगवद्गीता की भाषा में कहूं तो, ये सब स्तुति-स्तोत्र उसीके चरणों में समर्पित करता हूं। हां, मैं मानता हूं कि ऐसे आशीर्वचनों से शक्ति का संचार होता है। परन्तु इस पत्र को प्रकाशित करने में मेरा उद्देश यह है कि इससे प्रत्येक सच्चे असहयोगी को अपने अहिंसा के पथ में बढते हुए उत्साह मिले और बनावटी लोग अपनी गलतियों से बाज आवें। यह एक सच्ची लडाई है—भयंकर सच्ची लडाई है। यद्यपि इसमें द्वेष करने वाले लोग शामिल हैं तथापि इसका आधार द्वेष पर नहीं है। इस संग्राम की भित्ति तो शुद्ध और निर्मल प्रेम पर है। यदि अंगरेज-भाइयों के प्रति या उन लोगों के प्रति जो '*अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः*' की तरह नौकरशाही के पिट्ठू बने हुए हैं, मेरे मन में जरा भी द्वेष-भाव होता तो मुझमें इतना साहस अवश्य है कि मैं इस संग्राम से अलग हो जाऊं। जिस मनुष्य के मन में ईश्वर के अथवा उसकी दयालुता अर्थात् न्याय-परायणता के प्रति जरा भी श्रद्धा है, वह मनुष्यों के प्रति द्वेष-भाव रख ही नहीं सकता—हां, उनके कुकार्यों का तिरस्कार तो उसे अवश्य करना चाहिए। परन्तु वह मनुष्य खुद भी तो बुराइयों से बरी नहीं है। उसे हमेशा दूसरे की दया की आवश्यकता

रहती है। अतएव उसे उन लोगों का द्वेष कभी न करना चाहिए जिनमें वह बुराई पाता हो। सो इस युद्ध का तो उद्देश ही यह है कि अंगरेजों के साथ, और सारे संसार के साथ, भारत की मैत्री हो। यह हेतु झूठी खुशामद से सिद्ध नहीं हो सकता; बल्कि तभी होगा जब हम भारत के अंगरेजों से साफ साफ कहेंगे कि भाइयो, आप कुमार्ग पर जा रहे हैं और जबतक आप उसे न छोडेंगे तब तक हम आपके साथ सहयोग नहीं कर सकते। यदि हमारा यह खयाल गलत हो तो ईश्वर हमें क्षमा कर देगा; क्योंकि हम उनका बुरा नहीं चाह रहे हैं और उसके लिए हम उनके हाथों कष्ट भोगने को भी प्रस्तुत हैं। यदि हम सचाई पर हैं, मेरा यह टिप्पणी लिखना जितना निश्चित है उतने ही निश्चय के साथ यदि हम सच्चे हैं, तो हमारे कष्ट-सहन से उनकी आंखें खुल जायंगी–ठीक उसीतरह जिस तरह कि 'इन अंगरेज महिलाओं' की खुल गई हैं। यह एक ही उदाहरण ऐसा नहीं है। सफर में अक्सर बीसियों अंगरेज-भाइयों से मेरी मुलाकात होती है। मैं उन्हें नहीं पहचानता; पर वे बडे शौक से मुझसे हाथ मिलाते हैं, मेरी सफलता चाहते हैं और चले जाते हैं। हां, यह सच है कि जहां बीसियों अंगरेज मुझे आशीर्वाद करते हैं तहां सैकडों ऐसे भी हैं जो मुझे शाप देते हैं। इन शापों को भी हमारे यहां उसीके चरणों पर चढा देने की आज्ञा दी गई है। इसका कारण है उनका अज्ञान। कितने ही अंगेरज-भाई तथा कुछ हिन्दुस्तानी भी मुझे तथा मेरी हलचलों को दुष्ट और कुटिल समझते हैं। ऐसे लोगों के साथ भी अ-सहयोगियों को सहिष्णुता धारण करना चाहिए। यदि उन्होंने क्रोध को और वैर-भाव को अपनाया तो युद्ध में हारे ही समझिए; पर यदि वे उन्हें सहन करते रहे तो उनकी जय निश्चित है, उसमें विलम्ब नहीं। मुझे निश्चय हो चुका है कि इस सारे विलम्ब का कारण है हमारे कर्त्तव्य-पालन में त्रुटियां। हम हमेशा ही शान्तिमय नहीं बने रहे हैं। हमने, अपनी प्रतिज्ञा के खिलाफ, दुर्भाव को अपने हृदय में स्थान दिया है। हमारे प्रतिपक्षी, अंगरेज शासकवर्ग, उनके साथ सहयोग करनेवाले, तालुकेदार तथा राजालोग हम पर अविश्वास रखते आये हैं और हमसे भय खाते आये हैं। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हम उनको हर तरह से सुरक्षित रखने के लिए बाध्य हैं। हां, हमें उनको दीन-दुर्बल लोगों की आर्थिक लूट में तो किसी तरह सहायता न देना चाहिए; परन्तु हमें उन्हें किसी तरह नुकसान भी न पहुंचाना चाहिए। यद्यपि उनकी संख्या बहुत ही कम है तथापि हमें अपने मध्य में उन्हें संगीनों की सहायता की अपेक्षा अधिक सुरक्षित कर देना चाहिए। यदि हमारी संख्या मुट्ठीभर होती तो हमारी स्थिति अधिक आसान रही होती–बहुत पहले ही हम अपने धर्म की सचाई सिद्ध कर पाते। परन्तु हमारी संख्या तो बहुत बढी-चढी है और इसीसे हम दिक हो जाते हैं। वर्तमान राज्य से तो हम दोनों असन्तुष्ट हैं, परन्तु अहिंसा में दोनों की श्रद्धा एक सी ज्वलन्त नहीं है। हमें तबतक दम न लेना चाहिए जबतक हम मदरास के जैसी शर्म दिलानेवाली दुर्घटनायें असम्भव न कर दें। 'अहिंसा' का जप करते हुए हमें अदालतों की कार्रवाई में बाधा न डालनी चाहिए। या तो हम जेलों का आवाहन ही करें या उससे मुतलक दूर रहें। यदि हम ऐसा चाहते हैं तो सरकार हमें जितनी जल्दी उठा ले जाना चाहे उतनी जल्दी उसे उठा ले जाने देना चाहिए। जिस हद तक हम अहिंसा की उलझनों को न समझेंगे उसी हद तक इस युद्ध की उम्र बढती जाती है। (यं० इं०)

स्वयंसेवकों की भर्ती

स्वयंसेवकों की भर्ती का काम जिस जोर के साथ चलना चाहिए वैसा चलता हुआ नहीं दिखाई देता। कोई कहते हैं कि खादी पहनने की शर्त उडा दी जाय तो भर्ती तेजी के साथ हो सकती है। मैं इस बात को नहीं मानता। जो दिल से स्वयंसेवक बनना चाहता है वह खादी की ओर उंगली नहीं दिखा सकता। स्वयंसेवक तो मरने की प्रतिज्ञा करना चाहता है। फिर यह कैसे हो सकता है कि वह खादी पहनने में आगा-पीछा करे या पांच-दस रुपये की खादी न खरीद सके? इतने रुपये तो उधार लेकर भी मनुष्य स्वयंसेवक बन सकता है। अपने व्यसनों के पोषण के लिए कितने मनुष्य कर्ज नहीं करते? तो फिर स्वयंसेवक होना भी हमारे लिए एक व्यसन ही क्यों न होना चाहिए?

कुछ लोग कहते हैं कि अस्पृश्यता की प्रतिज्ञा हटा लीजिए, फिर देखिए कितने स्वयंसेवक भरती हो जाते हैं। यह बात भी ठीक नहीं। मैं समझता हूं, इसमें न तो खर्च की बात है न असुविधा की। मुख्य बात है हृदय को बदलने की। अछूत लोगों को छोड कर हम स्वराज्य रूपी स्वर्ग में जा ही कैसे सकते हैं? परन्तु ऐसे उज्र पेश करना तो 'नाच न जाने आंगन टेढ' वाली बात है।

फिर शर्तों से छुटकारा करने की ताकत न तो मुझे है न कार्य-समिति को ही है। यह तो महासभा का प्रस्ताव है। महासभा ही उसमें परिवर्तन कर सकती है। और मैं तो फेर-बदल करने की बात को ही कायरता मानता हूं।

फिर इस प्रतिज्ञा में केवल सिद्धान्त ही तो प्रथित किये गये हैं। सिद्धान्तों में भला परिवर्तन किया ही कैसे जा सकता है? देहली की बैठक में शर्तें ढीली कर देने की जो गुंजायश रक्खी गई है वह तो सिर्फ उसी जिले के हाथ-बने कपडे पहनने की शर्त से सम्बन्ध रखती है। पंजाब का कोई जिला यदि ऊन के कपडे न बना सके तो वहां के लिए दूसरे जिले या प्रान्त से हाथ का कता ऊन लाने की इजाजत मिल सकती है। परन्तु क्या अस्पृश्यता, या शान्ति की प्रतिज्ञा अथवा हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि की एकता के विषय में भी भला कहीं छुटकारा मिल सकता है! जो सचमुच स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखाना चाहते हैं, जो जेल जाने का उत्साह रखते हैं, वे तमाम शर्तों का पालन आराम के साथ कर सकते हैं।

सो यदि गुजरात में थोडे ही स्वयंसेवकों के नाम आवें तो मैं यही समझूंगा कि या तो अधिक लोग अपना नाम लिखाना चाहते ही नहीं है या जिस तरह यह युद्ध चल रहा है उस तरह उसे चलने देना बहुतों को पसन्द नहीं है।

परन्तु प्रतिज्ञा की शर्तों को न मानते हुए नाम लिखाने की अपेक्षा तो उनको न मान सकने के कारण नाम न लिखाना बहुत अच्छा है। लोग थोडे ही क्यों न हों, पर हों अपनी प्रतिज्ञा की शर्तों का पूरा पूरा पालन करने वाले। ऐसे थोडे सच्चे स्वयंसेवकों से तो बहुत से हो जाने की सम्भावना है। परन्तु ज्यों त्यों बनाये गये बहुतेरे स्वयंसेवकों से हमें लाभ होने वाला नहीं। कारीगर का यही काम है कि वह इमारत बनते समय नाप-जोख किया करे और देखता रहे कि अभीष्ट मकान यथेष्ट-रूप से बन सकेगा या नहीं (नवजीवन)

होशियार !

मदरास की हुल्लड़बाजी पर एक सज्जन ने यंग 'इंडिया' में एक पत्र प्रकाशित कराया है । उसका सार इस प्रकार है-"मदरास के असहयोगियों की करतूतें देखकर तो सब लोगों के दिल दहल उठे । ट्राम-गाड़ियां रोक दी गईं और अंदर बैठनेवालों को पत्थर मारे गये । गालियां दी गईं । कई स्त्रियों पर तो जोकि ट्रामों में बैठ कर जा रही थीं थूंका भी गया । उनको बुरी बुरी गालियां दी गईं । और राम जानें किस किस बुरी तरह से वे सताई गईं । आपने ऐसे कैसे अहिंसावादी असहयोगियों पर अपने आन्दोलन का भार सौंप रक्खा है जो लोगों को संभाल तक नहीं सकते ? क्या आपके ऐसे अनुयायियों के नीच और दुष्ट कार्योंसे असहयोग जैसे उच्च आदर्श से जनता की सहानुभूति हट न जायगी ? "
इस पर श्रीगांधीजी लिखते हैं-

इस पत्र को मैं खुशी के साथ, जिसमें कुछ दुःख भी मिला हुआ है, प्रकाशित करता हूं । यह तो स्पष्ट मालूम होता है कि वहां की हुल्लड़बाजी ने आगे चलकर बड़ा शोचनीय स्वरूप धारण कर लिया । डॉ. राजन ने तो आरम्भ की घटनाओं का वर्णन किया था । पत्र-प्रेषक महाशय का असहयोगियों पर दोषारोपण करना बिलकुल ठीक है ।

जब कि सैकड़ों हजारों आदमी गाड़ियों की तोड़-फोड़ में, निरपराध मुसाफिरों को बुरी तरह गाली-गलौच करने में तथा एक सिनेमावाले को धमकाने-चमकाने में लगे हुए होते हैं तब उनमें कितने असहयोगी थे और कितने हुल्लड़बाज, यह पहचानना बड़ा कठिन है । असहयोगी इतने थोड़े नहीं है कि वे ' उठाई रोटी और लगे चुपचाप शांति से खाने । ' वे तो यह दावा करते हैं कि हम लाखों, करोड़ों हैं । वे यह भी दावा करते हैं कि लगभग सारा भारत हमारी मदद पर है । अगर ऐसा है तो या तो हमें अपनी कार्य-विधि को अपने स्वीकृत सिद्धान्त के अनुसार नियमित कर लेना चाहिए, या हमें सामुदायिक आन्दोलन मचाना कतई छोड़ देना चाहिए, फिर चाहे उसके बदौलत हमें उस समाज से अलग क्यों न हो जाना पड़े । अभी तो हमें और भी कई जगह हड़तालें करना है । देहली, नागपुर और अन्य शहर अब इन घटनाओं से सबक ले ले और होशियार हो जायं । मेरा तो उनसे यही कहना है कि अगर उन्हें यह पूरी तरह विश्वास न हो कि हम ऐसा प्रबन्ध कर सकते हैं जिससे बम्बई और मदरास की तरह दुर्घटनायें हमारे यहां न हो सकेंगी, तो वे हड़तालों के झगड़े में बिल्कुल न पड़ें । मुझे विश्वास है कि मदरास की महासभा-समिति इस बात की अच्छी तरह तहकीकात करेगी और जहां अपनी गलती दिखाई देगी, उसे स्वीकार करके शिरोधार्य करेगी । बम्बई की भयानक दुर्घटनाओं के प्रत्यक्ष अनुभव के होते हुए तो मदरास में इस बात का पूरा प्रबन्ध होना चाहिए था जिससे वहां ऐसा हुल्लड़ बिलकुल न होने पाता ।

क्या पुरुष, क्या स्त्री और क्या बालक, सरकार ने किसीको भी नहीं छोड़ा; इसलिए मैं उसकी आलोचना करने में जरा भी नहीं हिचकता । किन्तु उसने कहीं अहिंसा-व्रत थोड़े ही धारण किया है जिससे वह अपनी गति को कुण्ठित करे । आखिरकार पशु-बल तो उसका धर्म्म बना ही हुआ है । किन्तु असहयोगियों के विषय में तो किसी के भी दिल में सन्देह के लिए जगह न रहना चाहिए । अगर उन दोनों पत्रों में लिखा हाल बिलकुल ठीक ठीक हो तो अभी मदरास को बहुत कुछ करना बाकी है । मुझे तो मुख्य मुख्य बातों की सत्यता में जरा भी सन्देह नहीं । तब तो असहयोगियों ने तथा उनके साथियों ने अपने दुष्कृत्यों से क्या, स्त्री, क्या पुरुष, और क्या बालक किसी को भी नहीं छोड़ा । किन्तु युवराज के स्वागत में उनका भाग लेना चाहे कितना ही उत्तेजक क्यों न हो, स्त्रियों के कामों में बाधा डालना, उन बेचारे बालबच्चों को इस तरह सताना तथा जनता की स्वतंत्रता का इतनी बुरी तरह से अपहरण करना, यह तो स्वराज्य का बड़ा बुरा शगुन हुआ !

हमें तो सरकार के अत्याचार तथा गलतियों के बनिस्बत खुद अपनी ही गलतियों से तथा हिंसा-वृत्ति से अधिक डरना चाहिए । सरकार की भूलों से तो, यदि हम उनका अच्छा उपयोग करें तो, हमें फायदा ही होता है जैसा कि अभी तक हुआ है । किन्तु अगर खुद हमारे अन्दर हिंसा या असत्य का अंश हुआ तो वह मृत्यु की तरह हमारा घातक होगा । यदि खुद अपने ही घरका बन्दोबस्त हम न कर सके तो हम अपने ही हाथों अपना सत्यानाश कर लेंगे, और असहयोग का नाम लेते ही लोग छी-थू करने लगेंगे ।

' रंगून डेली न्यूज ' से मालूम हुआ है कि रंगून के निजामुद्दीन नामके किसी गाड़ीवान ने युवराज के स्वागत में भाग लिया और गाड़ी चलाई तथा दूसरों को भी चलाने के लिए कहा, इसलिए उसकी स्त्री ने अपने पति को तिलाक दे दी ।

मैं इसपर यह कहने की धृष्टता करता हूं कि अगर यह खबर सच है तो जिस किसी ने तिलाक देने की इजाजत दी हो उसने इस्लाम के कानून और सभ्यता के खिलाफ काम किया है-उसने बड़ी शोचनीय भूल की है । इसलाम में ऐसी छोटी छोटी बातों पर कभी तिलाक नहीं दे दिया जाता । अगर हड़तालें ऊपर लिखे तरीकों से मनाई जा रही हों तो वे किसी काम की नहीं । ऐसी हड़तालें जनता के विचारों को स्वतन्त्रता-पूर्वक नहीं जाहिर कर सकतीं । और मुझे हड़ताल जैसे थोड़े समय के लिए स्वीकृत किये हुए उपाय का उतना ख्याल नहीं कि जितना दीने इस्लाम की और अ-सहयोग जैसे उच्च सिद्धान्त की नेकनामी का है । असहयोग का कानून तो विरोधी विचारों के और कार्यों के प्रति पूरी सहनशीलता रखने की तथा उनका आदर करने की आज्ञा देता है । और इस्लामी कानून भी, जहांतक कि एक गैर-मुस्लिम अपनी राय दे सकता है, इतनी ही कड़ी सहनशीलता की आज्ञा करता है । पैगम्बर साहब को भी इतना दुःख किसी बात से न हुआ होता जितना कि उन्हें अपने नये धर्म के प्रचार करने के आरम्भिक काल में मक्का के लोगों की असहन-शीलता से हुआ होगा । इसलिए उन्होंने कभी असहनशीलता के साथ अपनी सहानुभूति नहीं दिखाई होगी । " धार्मिक बातों में जबरदस्ती से काम न लिया जाय " यह उन्हें तभी कहना पड़ा होगा जब उनके नये नये शिष्य नये धर्म-प्रचार के समय नमकहरामी के बनिस्बत उत्साह अधिक दिखाने लगे होंगे ।

हम चाहें हिन्दू हों, या मुसलमान हों अथवा और कोई क्यों न हों, उसकी कोई बात नहीं । प्रजासत्ता का सिद्धांत, जिसका कि हमें भारत में प्रचार करना है, हिंसा के बलपर नहीं फैलाया जा सकता, फिर वह वाचिक हो या कायिक, प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष ।

पत्र-प्रेषक महाशयो

आप हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, अंगरेजी इनमें से किसी भी भाषा में पत्र लिखें, परन्तु वह सुवाच्य जरूर होना चाहिए । अन्यथा उसका उत्तर मिलना कठिन होगा ।

अंक न मिलने की शिकायत करने वाले सज्जनों को अपना ग्राहक नम्बर और पूरा पता—डाकखाना, जिला, आदि—साफ साफ लिखना चाहिए । नहीं तो हम उनकी शिकायत दूर करने में समर्थ न हो सकेंगे ।

मनीआर्डरों के कूपन पर भी अपना पूरा पता ' बिलकुल साफ साफ लिखने की कृपा किया करें

व्यवस्थापक " हिन्दी नवजीवन "

हिन्दी नवजीवन

रविवार, माह सुदी १, सं. १९७८.

उत्तर-दक्षिण

मुझे सरकार की सचाई पर अविश्वास है। इसलिए इस मौके पर किसी तरह की शांति-परिषद् होने की बात पर मुझे भरोसा नहीं होता। उस दिन धारा-सभा और राष्ट्र-सभा में जो बहस हुई उससे मेरे इस अविश्वास को साफ तौर पर पुष्टि मिलती है। सरकार-पक्ष का समर्थन करने वाले लोग महासभा की मांगों को असम्भव मानते हैं तथा असहयोग को नष्ट करने का एक ही उपाय बताते हैं—दमन। यदि मेरी भी ऐसी ही धारणा होती कि महासभा की मांगें अ-सम्भव हैं और इन अ-सम्भवनीय आदर्शों की प्राप्ति के उद्योग का नाश करने के लिए पशु-बल ही युक्त उपाय है तो मुझे भी सरकार के पक्ष में अपना मत देना उचित था। इस दशा में मुझे सरकार के अथवा उसके पृष्ठ-पोषकों की गति-विधि को समझने में और उसका गुण भी मानने में कोई कठिनाई नहीं है।

लेकिन मैं तो सरकार की गति-विधि का रहस्य खूब जानता हूं। इसीलिए उसका विरोध करता हूं और उसपर अविश्वास रखता हूं। सरकार जिस रास्ते भारत को ले जाना चाहती है उस रास्ते उसे हरगिज आजादी नहीं मिल सकती।

आइए, जरा देखें यह किस तरह ठीक है।

खिलाफत-सम्बन्धी मांग भला क्यों अ-सम्भव है? महा-सभा जो कुछ चाहती है वह तो सिर्फ यही कि यदि भारत-सरकार और साम्राज्य-सरकार यह चाहती हो कि लोगों का सहयोग उनके साथ कायम रहे तो उन्हें इन मांगों की पूर्ति में लोगों के साथ काम करना चाहिए। अतएव उन्हें अपने उतने कर्तव्य का अवश्य पालन करना चाहिए जितना स्वयं उन्हींसे सम्बन्ध रखता है, तथा शेष बातों के लिए, अपना निजी दुख-दर्द समझ कर, जोर-शोर के साथ प्रयत्न करें। यदि फ्रान्स इंग्लैंड से डोवर छीन लेने का प्रयत्न करे और यदि भारत गुमरूप से फ्रान्स को मदद करे, या जाहिरा तौर पर इंग्लैंड के प्रति, डोवर पर उसका अधिकार कायम रखने के प्रयत्न में, उदासीनता अथवा विरोध-भाव दिखावे तो उस समय साम्राज्य-सरकार क्या करेगी? सो, जब कि खिलाफत के जीते हुए के टुकडे टुकडे किये जा रहे हों तब क्या भारत से खामोश बैठ रहने की आशा की जा सकती है?

अच्छा, पंजाब की मांगों में भी कौनसी बात असम्भव है? इस प्रकरण की कानूनियतों पर वे क्यों जोर दे रहे हैं? यदि वे उसके नैतिक बलाबल पर ध्यान देंगे तो कानूनी बलाबल अपना निपटारा आप कर लेगा। लड़कपन में मैंने एक कानूनी सिद्धान्त पढा था कि जब कानून और न्याय में विरोध उत्पन्न हो तब न्याय को प्रधानता दी जानी चाहिए। मेरे लिए, वह सिद्धान्त 'पोथी के बैंगन' नहीं है? पर मुझसे कहागया है कि पेन्शन बन्द कराना अनीति-युक्त है। क्योंकि वह तो मुल्तवी किया हुआ वेतन है। फिर सरदार गौहरसिंह क्यों 'मुल्तवी किये हुए वेतन' से वंचित रक्खे गये और क्यों दूसरे पेन्शनरों को धमकियां दीगई कि यदि वे इस आन्दोलन में शरीक होंगे तो उनकी पेन्शनें बन्द कर दी जायंगी? क्या जो नौकर अपने मालिक को कलंकित करता है उसे कहीं वेतन या पेन्शन मिलती है? क्या सर मायकेल ओड्वायर या जनरल डायर ने अपनी 'समझ की भूल' को कहीं मंजूर किया है? जालियांवाला बाग में जिन लोगों का खून किया गया, या जिन लोगों को पशुओं की तरह पीटा गया, या पेट के बल रेंगाया गया, यद्यपि उन्होंने कोई अत्याचार नहीं किया था, उनकी सन्तान क्यों उन लोगों के वेतन के लिए रुपया दे जो इन तमाम असभ्य कार्यों के लिए जिम्मेवार हैं? जो नौकर पश्चाताप नहीं करते उनको पेन्शन जारी रखने के पक्ष में मुझे एक भी नैतिक सिद्धान्त नहीं दिखाई देता। हां, "जिसकी लाठी उसकी भैंस" के सिद्धान्त की बात दूसरी है। सो दोनों दलों के दृष्टि-बिन्दुओं में उत्तर और दक्षिण ध्रुव का भेद है। जो बात एक को न्याय्य और नीति-युक्त दिखाई देती है वही दूसरे को अन्याय्य और अनीति-युक्त मालूम होती है। मैं यह दावे के साथ कहता हूं कि महासभा की पेन्शन बन्द कर देने की मांग बिलकुल न्याय्य है; उसमें बदला चुकाने की कोई बात नहीं है। वह उनपर मुकदमा चलाने के अपने हक का उपयोग करना नहीं चाहती। वह उन्हें सजा दिलाना भी नहीं चाहती। उन्हें पेन्शन देते रहना अन्याय है। बस उसमें अब आगे शामिल रहना वह नहीं चाहती। और सच बात तो यह है कि सरकार अब भी उन दोनों अपराधियों को साम्राज्य के गण्य-मान्य पदाधिकारी मानती है। यह प्रवृत्ति बदलनी होगी। तभी पंजाब-कांड की पुनरावृत्ति असम्भव हो सकती है, उसके पहले नहीं।

और जो बात पंजाब के विषय में है वही स्वराज्य के भी विषय में है। जो चीज भारत की है वह उसे लौटा देना सरकार को असम्भव मालूम हो रहा है। उसका तो सिद्धान्त-वचन है "धीरे धीरे सुधार"। इसके मूल में जो भाव है वह यह कि जबतक अत्यन्त आवश्यक न हो जाय तबतक कुछ भी न देना। यह मत-भेद इतना अधिक है कि खिलाफत और पंजाब के दुःखों के दूर होने के पहले स्वराज्य का खयाल तक करते हुए मेरा कलेजा कांपता है। ये दोनों प्रश्न यों तो सीधे-सादे जान पडते हैं; परन्तु वे स्वराज्य से कम मुश्किल नहीं हैं; क्योंकि उनका परिशोध करना भारतीय लोकमत के आगे सिर झुकाना है।

यह तो रूखा युक्ति-वाद है। इन मांगों में कोई बात ऐसी नहीं जो असम्भव हो। असम्भवनीयता और कहीं नहीं, बस, सत्ताधारियों की अपनी सत्ता-वह सत्ता जो उनके हाथों में हरगिज न होनी चाहिए थी-न देने की इच्छा में है।

यदि सरकार सिर्फ अपने कर्तव्यों का पालन करती रहे तो दमन की आवश्यकता ही क्यों रहे? अच्छा, मान लीजिए कि यदि सामुदायिक सविनय कानून-भंग जल्दी में शुरू किया गया तो हिंसाकांड मचे बिना न रह सकेगा। तो क्या हिंसाकांड के डर से लोगों को अपने हकों से दूर रखना चाहिए? जब हमारे सहयोगी भाई सत्याग्रहियों के मत्थे यह दोष मढते हैं कि वे जल्दी मचाकर बडी कठिन और नाजुक स्थिति पैदा कर रहे हैं, तब यह बात उनके ध्यान में नहीं आती कि ऐसा कह कर हम सत्याग्रहियों के प्रति अन्याय कर रहे हैं और इतना ही नहीं बल्कि उनका अपमान भी करते हैं। सत्याग्रही नहीं, सरकार ही जान बूझ कर कठिन स्थिति को न्यौता दे रही है। जिन लोगों का जनता पर कुछ भी प्रभाव है, जो जनता को शान्तिमय बनाये रख सकते हैं ऐसे हरएक पुरुष को जेल भेज भेज कर सरकार तो खुद ही हिंसा-काण्ड के लिए जल्दी मचा रही है। सहयोगी-भाई यह नहीं देखते कि सरकार का यह कार्य उस आदमी की तरह है जो भूखे को भोजन देने से इनकार करता है और जब

वह खुद ही अपनी भूख बुझाने की कोशिश करता है तो बन्दूक से उसका प्राण ले लेने की धमकी देता है।

भारत का वर्तमान वायु-मण्डल मनुष्य को योद्धा बना देने वाला है। इसमें अ-सहयोगियों का कर्त्तव्य उनके सामने स्पष्ट है। उन्हें आदर्श धैर्य रखना चाहिए। किसी के भड़काने से उन्हें जल्दी में कोई काम न कर बैठना चाहिए। जिस जगह वे सामना करने के लिए तैयार न हों वहां उन्हें संग्राम न छेड़ना चाहिए। हमें शांतिमय बनाना अथवा शांतिमय बने रहने में मदद देना सरकार का काम नहीं है। हिंसा-काण्ड को रोकने के उसके उपाय भी इतने हिंसात्मक हैं कि उनपर क्रोध आये बिना नहीं रह सकता। पर, हां, एक बात में हमें अवश्य उसका कृतज्ञ होना चाहिए। सरकार जो कुछ प्रतिवाद करती है अथवा टीका-टिप्पणी करती है उसका सार यही है कि हम, अर्थात् असहयोगी लोग, अपने ध्येय के अनुसार काम करना नहीं जानते तथा यदि हम चाहें भी तो सफलता के साथ हिंसा-काण्ड की अर्थात् शस्त्रास्त्र के प्रयोग की योग्यता नहीं रखते। हमें ये दोनों दलीलें मान लेना चाहिए। हमें अपने ध्येय अर्थात् अहिंसा पर अटल रहना चाहिए। तब सरकार को भी अपने शस्त्रास्त्र एक ओर रख देना होंगे। क्योंकि शान्ति तो दोनों को अभीष्ट है। और जो लोग अहिंसा के कायल नहीं हैं वे कमसे कम यह समझ लें कि **भारत वर्ष न तो पशु-बल का मुकाबला पशु-बल के द्वारा करने के लिए तैयार है और न वह ऐसा चाहता ही है।** क्या अच्छा हो, यदि वे लोग जो यह मानते हैं कि हथियार उठाये बिना भारत को आजादी मिल ही नहीं सकती, जरा मेरे कथन की सत्यता को अनुभव करें। वे यह कदापि न सोचें कि हम शस्त्र ग्रहण करने के लिए तैयार और उत्सुक हैं इसलिए भारतवर्ष भी उसी तरह तैयार या उत्सुक है। मैं दावे के साथ कहता हूं कि भारत इसके लिए तैयार नहीं है-इसलिए नहीं कि वह दीन और असहाय है; बल्कि इसलिए कि वह चाहता ही नहीं। इसीलिए अहिंसा-धर्म की गति आशा से भी अधिक दिन पर दिन बढ़ रही है और हिंसा-धर्म, मानवी स्वभाव की दुहाई दिये जाते हुए भी, असफल हो जाता। भारत के जन-समाज को प्राचीन समय से पशु-बल के खिलाफ शिक्षा मिलती चली आ रही है। भारतवर्ष के मनुष्यों में मानवी भाव की इतनी अधिक प्रगति हो चुकी है कि यहां के अधिकांश जन-समूह के लिए पशु-बल की अपेक्षा अहिंसा-धर्म ही अधिक स्वाभाविक हो गया है। हां, हमें यह भी याद रखना चाहिए कि बम्बई और मदरास के अनुभवों से मेरा ही कथन सिद्ध होता है। यदि हत्या-काण्ड भारत के लोगों का स्वभाव-धर्म होता तो बम्बई और मदरास में इतनी सामग्री मौजूद थी जिससे ऐसी आग धधक उठती कि किसी के बुझाये न बुझती। गन्दी चीज की तरह थोड़ा भी दंगा-फसाद शान्तिमय या स्वच्छ स्थान को क्षुब्ध और गन्दा कर देने के लिए बहुत काफी है। पर दोनों विजातीय वस्तु हैं, अतएव शीघ्र ही दूर कर दी जाती हैं। भारत को पशु-बल की शिक्षा दे कर फिर शस्त्रास्त्र के द्वारा स्वराज्य बल-पूर्वक छीनना तो युगों की बात है। मैं सचमुच मानता हूं कि आज भारत में जो आश्चर्य-जनक कार्य-शक्ति और राष्ट्रीय चैतन्य प्रकट हो रहा है वह केवल अहिंसा-धर्म की प्रगति का ही फल है। लोगोंने अपनी शक्ति पहचान ली है। अब हमें जल्दी में ऐसा काम न कर बैठना चाहिए जिससे हमारी प्रगति की गति रुक जाय।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

कर न देने का प्रश्न

कर न देने की भावनायें भारत के वायु-मण्डल में छा रही हैं। भारत के दूसरे भागों की अपेक्षा आन्ध्र-देश ने हमें उसके घोष से अधिक परिचित कर दिया है। महासभा ने जब प्रत्येक प्रान्त को प्रान्तिक स्वाधीनता प्रदान की उस समय मैंने यह चेतावनी देने की धृष्टता की थी कि जबतक मैं स्वयं अपनी देख-रेख में कहीं कर न देने का प्रयोग न कर देखूं, तबतक दूसरे प्रान्तवालों को इसमें हाथ न डालना चाहिए। मैं इसी चेतावनी पर कायम हूं। मैं इस बात पर भी लोगों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं कि ३१ जनवरी तक अथवा इससे पहले जबतक मालवीय-परिषद्-समिति की सुलह की बातचीत का फल न मालूम हो और उसके पास यह समाचार न आ जायं कि अब सर्वपक्षीय परिषद नहीं होगी, हमें आक्रामक सविनय कानून-भंग शुरू नहीं करना है। अतएव वर्तमान अवसर पर यदि कर बन्द कर दिया जाय तो उससे यही समझा जायगा कि हमारा कदम कम से कम तबतक के लिए पीछे हट गया जबतक कि सुलह की बातचीत का कोई फल प्रकट न हो जाय। लेकिन ३१ जनवरी अब नजदीक आ रही है। अतएव यह आवश्यक है कि कर न देने के प्रश्न पर सांगोपांग विचार कर लिया जाय।

इस विषय पर एक मित्र, जो कि इस राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ गहरी सहानुभूति रखते हैं और जिन्होंने उस पर अच्छी तरह चिन्तन-मनन किया है, इस प्रकार अपना सन्देह प्रकट करते हैं-

"मैं इस विषय पर प्रायः विचार करता रहता हूं कि जब कर न देने के रूप में सविनय कानून-भंग शुरू किया जायगा तब यह अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन किस हदतक धार्मिक मर्यादा से आगे बढ़ जायगा। मैं शान्तिमय अ-सहयोग को पूर्ण रूप से आध्यात्मिक आन्दोलन की दृष्टि से देखता हूं। मुझे यह भी मालूम है कि गांधीजी भी इसे ऐसा ही समझते हैं। कर न देने का कार्यक्रम धार्मिक मर्यादा के आगे तो नहीं बढ़ जायगा? इससे हिंसाकांड तो नहीं मच जायगा? इस आंदोलन में ऐसे ऐसे लोग तो शरीक न हो जायंगे जिनमें अहिंसा सिद्धान्त ने लबालब घर न कर लिया हो? क्या गांधीजी अपने इस आध्यात्मिक आन्दोलन में, जिसके द्वारा वे सरकार पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, भौतिक प्रलोभन का प्रयोग-अनजान में ही क्यों न हो-नहीं कर रहे हैं? हाल की घटनाओं ने यह दिखला दिया है कि हमारे समाज के जीवन में से अभी हिंसावृत्ति का या हिंसा के प्रति श्रद्धा का लोप नहीं हो गया है। इस दशा में यदि सविनय कानून-भंग शुरू कर दिया जाय तो ऐसा करना मानों अंधेरी खाई में कूदना होगा, जिसके फल बड़े भयंकर और नाशकारी होंगे। सो, मैं इस बात के लिए बहुत उत्सुक हूं कि *गांधीजी कर न देने के रूप में सविनय कानून-भंग को अभी शुरू न करें।*"

इस आक्षेप की सत्यता इस बात में है कि कर न देने के आन्दोलन के बदौलत इस युद्ध में ऐसे ऐसे लोग सम्मिलित हो जायंगे जो अहिंसा की भावना में तल्लीन नहीं हो गये हैं। यह बहुत सच है, और चूंकि यह सच है, कर न देने में अवश्य भौतिक आमिष से काम लिया जा रहा है। इससे हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि इस ख्याल और आशा से कि इसमें लोग तुरन्त हाथ बटावेंगे, हमें कर न देने की हलचल न उठानी चाहिए। शीघ्र तैयारी बड़ा घातक

मोह है। इस प्रकार से कर न देना न तो विनयपूर्ण ही होगा और न शांतिमय ही; उससे हिंसा-काण्ड के उद्रेक होने की भी पूर्ण सम्भावना रहेगी। हमें पण्डित जवाहरलाल नेहरू के अनुभव को याद रखना चाहिए। किसान लोग अहिंसा का व्रत धारण कर चुके थे। पर फिर भी एक मौके पर उन्होंने कह दिया कि यदि आप (पं. जवाहरलाल) हुक्म दें तो हम अवश्य मार-काट के लिए तैयार हो जायंगे। किसान लोग जबतक अच्छी तरह विनय-पूर्वक कर न देने के कारण और गुण को न समझने लगें और शान्त चित्त होकर विरक्त भाव से अपने धन-माल की जब्ती (जो कि चन्द रोज के ही लिए होगी) तथा जानवरों का और दूसरी चीजों का छीन कर नीलाम किया जाना आदि दृश्यों को देखने के लिए तैयार न हों तबतक उन्हें कर देना बन्द करने की सलाह न दी जानी चाहिए। पवित्र पैलेस्टाइन के लोगों पर जो कुछ बीती है उसका हाल उन्हें अवश्य सुनाना चाहिए। वहां जिन अरबों पर जुरमाना किया गया था उन्हें चारों ओर से सिपाहियों ने घेर लिया। हवाई जहाज सर पर मंडराने लगे। उन हट्टे-कट्टे लोगों के चौपाये छीन लिये गये। वे एक जगह घेर कर बन्द कर दिये गये; न चारा दिया गया न पानी। बेचारे अरब मूढ और लाचार हो गये। अन्त को उन्होंने जुरमाना अदा कर दिया। मानों उन्हें उपहास्य बनाने के लिए सजा के तौर पर कुछ और रकम भी उनसे ली गई। तब जाकर कहीं उनके वे मृतप्राय जानकर उन्हें लौटाये गये। यहां, भारत में, निश्चय जानिए, इससे भी अधिक भयंकर बातें हो सकती हैं। क्या हिन्दुस्तान के किसान पूर्ण शान्तिमय बने रह कर अपने पशुओं को अपनी आंखों के सामने से ले जाते हुए और बिना दाना-पानी के उन्हें मरते हुए देखने को तैयार हैं? मैं जानता हूं कि आन्ध्र-देश में ऐसी घटनायें पहले ही हो चुकी हैं। यदि आम तौर पर किसान लोग जानते हुए और सोचते-समझते हुए ऐसे कठिन समय में भी शान्तिमय बने रहे तो समझना चाहिए कि कर न देने के लिए वे करीब करीब तैयार हैं।

मैं कहता हूं "लगभग तैयार हैं" क्योंकि कर न देने का हेतु तो यह है कि नौकरशाही के हाथों से निकल कर सत्ता हमारे हाथों में आ जाय। अतएव केवल इतना ही काफी नहीं है कि कृषक लोग शान्तिमय बने रहें। "अहिंसा" का पालन करना अवश्य ही इस युद्ध का बहुत बडा भाग है; परन्तु यही सब कुछ नहीं है। किसान लोग शान्तिमय तो चाहे बने रहें, पर शायद अछूत लोगों को अपने भाई के बराबर न मानते हों, वे हिन्दुओं, मुसल्मानों, ईसाइयों, यहूदियों और पारसियों को, जैसा कि मौका हो, अपना भाई न समझते हों, वे चरखे और खादी की आर्थिक और नैतिक महिमा न जान पाये हों। यदि उन्होंने यह सब न किया हो तो वे स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकते। यदि इन बातों को वे आज नहीं कर रहे हैं तो स्वराज्य प्राप्त होने पर नहीं करेंगे। उन्हें यह बताना चाहिए कि इन सब राष्ट्रीय गुणों को प्राप्त करना ही स्वराज्य है।

इस तरह यह सविनय कर न देने का सौभाग्य उन्हीं लोगों को प्राप्त हो सकता है जो पूर्वोक्त सब बातों की खूब कडी शिक्षा पा चुके हैं। और जिस प्रकार उस आदमी के लिए जो राज्य के कानूनों के खिलाफ गुनाह करने का आदी है, सविनय कानून-भंग करना कठिन बात है उसी प्रकार सविनय कर न देना भी उन लोगों के लिए मुश्किल चीज है जिन्हें जरा जरा सी बात पर बार बार कर रोक रखने का मुहावरा पडा हुआ है। इस अ-सहयोग युद्ध में सविनय कर न देना तो आखिरी सीढी है। सो जबतक हम सविनय कानून-भंग के दूसरे अंगों को न आजमा देखें तबतक हमें इस पर न तुल जाना चाहिए। इस आरम्भिक अवस्थाओं में बडे बडे तथा बहुतेरे प्रान्तों में इसका प्रयोग करना बहुत ही बडी नादानी की बात होगी।

मैं जमींदारों को भी लगान न अदा करने की बातें सुन रहा हूं। सो हमें यह बात हरगिज न भुलाना चाहिए कि हम जमींदारों के साथ, फिर वे चाहे हिन्दुस्तानी हों चाहे विदेशी हों, अ-सहयोग नहीं कर रहे हैं। हम तो इस एक बडे जमींदार—नौकरशाही—से युद्ध में भिडे हुए हैं, जिसने क्या हम और क्या इन जमींदार, सब को अपना गुलाम बना रक्खा है। हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे ये हमारे पक्ष में हो जायं और वह बडा जमींदार अकेला एक तरफ रह जाय। यदि वे लोग हमारी तरफ न हों तो हमें धीरज से काम लेना चाहिए। हमें उनकी सामाजिक सहायता जैसे धोबी, नाई इत्यादि, बन्द न करना चाहिए। सो जहां 'स्थायी कर-व्यवस्था' हो वहां कर न देने का आन्दोलन न उठाया जाना चाहिए, हां जहां सीधा सरकार को रुपया अदा किया जाता हो वहां भले ही खडा किया जाय। लेकिन जमींदारों का उल्लेख तो यहां उन कठिनाइयों को दिखाने के लिए किया गया है जो कर न देने के उद्योग में खडी होती हैं। इसलिए सब बातों पर विचार करते हुए मेरी तो यही राय है कि महासभा की उद्देश-पूर्ति के लिए कर न देने की हलचल का भार फिलहाल गुन्नी पर छोड दिया जाय। इस बीच दूसरे कार्यकर्ता अपने अपने जिलों में विधायक ढंग के कामों की पूर्ति करें। सामुदायिक सविनय कानून-भंग करने के दूसरे अनेक उपाय वे पैदा कर सकते हैं और फिर जब कि लोग शुद्ध और प्रबुद्ध हो जायं, कर न देने के लिए आगे कदम बढावें।

पर आन्ध्र देश में तो बहुत बडे पैमाने पर पहले ही से तैयारियां हो चुकी हैं। सो मैं वहां के कार्यकर्ताओं के उत्साह को ठंडा करना नहीं चाहता। यदि उन्हें यह इत्मीनान हो चुका हो कि उन चुने हुए स्थानों में देहलीवाली तमाम शर्तों को लोग पूरा कर चुके हैं, और बिना वैर या बदला लिए असीम कष्टों को सहन करने की शक्ति प्राप्त कर चुके हैं तो फिर मुझे कुछ भी कहना-सुनना नहीं। मैं तो बस यही कहूंगा कि "परमात्मा आन्ध्र के वीरों को आशीष दें।" पर वे याद रक्खें कि यदि किसी किस्म की दुर्घटना हुई तो उसकी जिम्मेवारी उन्हीं पर है। हां, यदि वे कर न देने की शुरूआत न करेंगे तो कोई उन्हें बुरा न कहेगा।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

सभ्यता की लड़ाई

शत्रु के भी गुणों को देखने में लाभ है। उससे शिक्षा तो मिलती ही है। पर जो गाफिल प्राणी यह मानता है कि शत्रु में तो कुछ गुण नहीं हो सकता वह हार खा बैठता है।

सरकार जानती है कि बारडोली में युद्ध का रंग खूब जमने की सम्भावना है। सो वहां के कलक्टर साहब ने लोगों के नाम एक 'विज्ञप्ति' प्रकाशित की है। इस शिष्ट नाम के बदले वह उसे 'घोषणापत्र' कह सकती थी। इस 'विज्ञप्ति' में सरकार ने जिस विनयशीलता से काम लिया है उससे अधिक विनय प्रांतिक समिति की पत्रिका में नहीं हो सकता। दलीलें भी वैसी ही दी गई हैं जैसी कि अ-सहयोगी दिया करते हैं।

इस पर सही है 'एन्. बी. शिवदासानी' की। वे तो 'हमारा ही खून' हैं। पर यदि इस 'विज्ञप्ति' की भाषा किसी अंगरेज अधिकारी की पसन्दगी से लिखी गई हो तो इसे मैं एक मार्के का परिवर्तन मानता हूं और हमारे संग्राम का शुभ श्रीगणेश मानता हूं। दोनों पक्ष अपने अपने क्षेत्र पर डंटे रहते हुए भी विनय पूर्वक बिना जंगलीपन के लड सकें, यह कुछ कम बात नहीं है। हम तो यही चाहते हैं कि ऐसा युद्ध अनन्त काल तक चलता रहे। राम-रावण-युद्ध के वर्णन में हमारे कवियों ने सभ्यता की पूरी रक्षा की है। मन्दोदरी का परिचय उन्होंने सती के रूप में कराया है। मेघनाद की मृत्यु के बाद रामचन्द्र ने सुलोचना को सब तरह की सुविधायें कर दी थीं। आदि कवि वाल्मीकि ने तथा भक्त कवि तुलसीदास ने रावण आदि की तपश्चर्या की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

मेरी महत्वाकांक्षा तो यही है कि ऐसा ही सभ्य युद्ध हम करें। असहयोगी को दूसरी बात शोभा ही नहीं देती। असभ्यता एक प्रकार की हिंसा है। और जबतक हम लोग जो कि अहिंसा व्रत के पालन करने का दावा करते हैं, इस प्रतिज्ञा से बंधे हुए हैं तबतक हम चाहें हिन्दू हों या मुसलमान, सभ्यता का पालन करने के लिए बंधे हुए हैं। और यदि एक पक्ष भी अन्त तक सभ्य बना रहे तो उसका असर प्रतिपक्षी पर पड़े बिना नहीं रह सकता। उस सभ्यता का आरम्भ इस 'विज्ञप्ति' में देखने की इच्छा मुझे हो रही है। सरकार सभ्यता के साथ भले ही हमारे खेत छीन ले—भले ही हमें गोलियों से भून डाले।

(नवजीवन)

अप्रिय मुक्तता

सरकार ने काशी के बाबू भगवानदास को सजा की मीयाद पूरी होने के बहुत पहले ही, बिना किसी शर्त के छोड दिया। मेरी उनके साथ हार्दिक सहानुभूति है। मैं तो जनता को यह खबर सुनाने की आशा ही करता रह गया कि बाबू भगवानदास कारावास के एकान्त में साहित्य-परिशीलन में लगे हुए हैं और वहां वे बडे सुखी हैं। सरकार ने उनके साथ जो यह जान-बूझकर रियायत की है वह बाह्यतः तो उनके अनुकूल जान पडती है; पर सच पूछिए तो ऐसा करके सरकार ने उनको बड़ी हानि पहुंचाई है। और उसे वे अनुभव भी कर रहे हैं। यदि वे छोड दिये जाने योग्य थे, जैसा कि वे अपनी खुली चिट्ठी में लिखते हैं, तो दूसरे अनेक लोग भी तो वैसे ही हैं। और बनारस में गिरफ्तार किये गये लोगों में तो प्रधान अपराधी वही थे। हडतालवाली नोटिस का मजमून उन्हींका बनाया था, उन्हींने उसको छपाया और उसे शहर में बांटने के लिए प्रो० किपलानी को उत्साह भी आपही ने दिया था। जो इस सारी शरारत का मूल उत्पादक है वही अपनी मीयाद खतम होने के पहले ही क्यों छोड दिया जाना चाहिए? इस प्रकार बडी खूबी के साथ बाबू भगवानदास ने अपना कथन उपस्थित किया है। किन्तु मुझे तो विश्वास है कि उन्हें ऐसे अनेक मौके मिलेंगे जिसमें वे फिर अधिकारियों का ध्यान अपनी ओर खींच सकेंगे। बंगाल, पंजाब और अन्य स्थानोंपर जबरदस्ती सभायें भंग करने का जो नया तरीका निकला है उससे सरकार के दिमाग की स्थिति का जो कुछ पता चलता है वह अगर ठीक हो तो अभीतक जितनी आग में हम तप चुके हैं उससे कई गुनी अधिक आंच में अभी और तपना होगा। हमारे साथ जो व्यवहार किया जा रहा है वह तुर्की-स्नान-पद्धति का सा है। कहीं हम अधिक गरम कमरे से घबडा न जायं इसलिए सरकार हमें धीरे धीरे एक के बाद दूसरे अधिकाधिक गरम कमरों में ले जा रही है। (यं. इं.)

प्रवासी भारतीय

श्रीमान् सम्पादक जी,

वर्तमान समय केवल भारत के ही लिये नहीं बल्कि प्रवासी भारतीयों के लिये भी संकटपूर्ण है। दक्षिण आफ्रिका, कैनिया तथा फिजी के हिन्दुस्तानी इस वक्त अनेक कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं। यद्यपि इस समय, जब कि देश में स्वतंत्रता के लिये संग्राम हो रहा है, भारतीय जनता से यह उम्मेद तो नहीं की जा सकती कि वह प्रवासी भाइयों के लिये भरपूर उद्योग कर सके, तथापि कम से कम इन दुःखों की ओर जनता का ध्यान तो बराबर आकर्षित होना चाहिये।

इसी उद्देश को सामने रख कर हमने यह निश्चय किया है कि प्रवासी भारतीयों के लिये यह कार्य्य सुसंगठित रूप से किया जाय। आपके पत्र के द्वारा हम प्रवासी भारतीयों से यह प्रार्थना करते हैं कि वे अपने समाचार हमारे पास बराबर भेजते रहें। उनका यथोचित उपयोग किया जायगा।

इस विषय में जो सज्जन अपनी सम्मति देंगे उनके हम कृतज्ञ होंगे।

आश्रम, साबरमती } तोताराम सनाढ्य, बनारसीदास चतुर्वेदी

जरूर पढिए

"हिन्दी नवजीवन आधे मूल्य में"

इस सूचना के अनुसार हमारे पास कितने ही पत्र आये हैं; परन्तु बहुतेरे लोगों ने उनके साथ प्रमाण-पत्र नहीं भेजे। अतएव हम उन सब महाशयों का तथा अब आगे पत्र भेजनेवाले सज्जनों का ध्यान नीचे लिखी बातों की ओर दिलाते हैं—

१ जो सज्जन प्रमाण-पत्र नहीं भेजेंगे उनके पत्र पर विचार नहीं किया जायगा न उसका कोई उत्तर ही दिया जायगा।

२ जो सज्जन इस रिआयत के मुस्तहक हो चुके हों वे मनीआर्डर के कूपन पर रिआयत का उल्लेख जरूर करें।

३ यह रिआयत व्यक्तियों के लिए है; लायब्रेरियों, सभा-समाजों, विद्यालयों आदि संस्थाओं के लिए नहीं।

४ जब तक इस कार्यालय से प्रार्थना-पत्र की स्वीकृति की सूचना न मिले तबतक कोई सज्जन रुपया भेजने का कष्ट न उठावें। इस बात पर वे विशेष रूप से ध्यान दें।

व्यवस्थापक—"हिन्दी-नवजीवन"

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूनी ओक, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित।

आखिरी चेतावनी

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ५)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—माह सुदी ८, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, ५ फरवरी, १९२२ ई० | अंक २५

"गोली से मरना चाहता हूं"

"अब जेल जाने की मुझे जरा भी चाह नहीं रही; अब तो मैं गोली से मरना चाहता हूं। और मेरी यह इच्छा है कि अनेक गुजराती भी ऐसा ही चाहें। बहुत समय से मैं ईश्वर से यही चाह रहा हूं कि इसी सरकार के हाथों मेरी मौत हो।

"आज भारत के भिन्न भिन्न भागों में भारतवासी जो दुःख भोग रहे हैं उसको सुनना और सहन करना कठिन हो गया है; किसी का धन-माल लूटा जाता है और किसी को कोड़े फटकारे जाते हैं। ठोंक-पीट कर कर के सरकार सभाओं को भंग कर रही है। यह सब कैसे गवारा हो सकता है ?

"इसको दूर करने का उपाय जेल नहीं; इसका उपाय तो जालियांवाला बाग है। और मैं यह चाहता हूं कि यदि सरकार का यह उपद्रव तुरन्त बन्द न हो तो हम गुजरात में जालियांवाला बाग की कितनीही आवृत्तियां कर डालें।

"कई बार मेरे मन में यह बात उठा करती है कि जबतक हम खुद मर कर एक साथ मरने की शक्ति नहीं दिखावेंगे तबतक हम अपने हृदय के कितने ही मलों और भयों को न मिटा सकेंगे।

"हम जान-बूझ कर गोलियां खावें। भले ही कोई जनरल डायर हमें बिना सावधान किये गोलियां झाड़े। पर आप लोग जिस प्रकार आज शान्ति के साथ बैठे हुए हैं उसी प्रकार उस गोलियों की झड़ी में बैठे रहें। आपके कान मेरी तरफ हों, आपकी पीठ मेरी तरफ हो, और आपकी आंखें और आपकी छातियां हों गोलियों की तरफ और वे गोलियों का स्वागत करती रहें। बस, यही गुजरात की इच्छा हो।" (सूरत में भाषण)

मोहनदास करमचंद गांधी

ओ, बारडोली !

[हिन्दी के विख्यात कवि श्री बाबू मैथिलीशरण गुप्त यहां भारत-कला-परिषद् के मन्त्री राय कृष्णदासजी के साथ टागोर-कला-संग्रह-सम्बन्धी काम से पधारे हैं। हमारे अनुरोध करने पर आपने यह कविता "हिन्दी-नवजीवन" के लिए लिखने की कृपा की है।

—उप-सम्पादक]

ओ, विश्रुत बारडोली, ओ, भारत की 'थर्मापोली',
नहीं, नहीं, फिर भी सशस्त्र थी ग्रीक सैनिकों की टोली।
'हल्दी घाटी' के रण की भी यही पूर्व-परिपाटी थी,
बढ़ बढ़ कर वैरी की गर्दन वीर-वरों ने काटी थी ॥
पर तू है निःशस्त्र तपस्विनि, फिर कैसे समता होगी ?
उपमा आप बनेगी तू यदि क्षोणी में क्षमता होगी।
लोहे को बलि-दान मान कर तूने स्वीकृत किया नहीं,
शुद्धों का अवलम्ब मान कर लकड़ी को भी लिया नहीं ॥
खड़ी नहीं तू कि जो बुरा है उसे नष्ट कर देने को,
तुली हुई है किन्तु बुरे को आज भला कर लेने को,
धन्ये, सफलता दें तुझको हरि, यही प्रार्थना है मेरी;
स्वयं सिद्धि से भी बढ़ कर है साधु साधना यह तेरी ॥
फिर भी अपनी शक्ति तौल तू और विपक्षी का बल भी,
बन्दूकें, मेशीन गनें, बम और उधर है कौशल भी,
न हो विजय का निश्चय जिनको, साक्षी हो कर हट जावें,
बढ़ कर पग न हटें फिर पीछे, चाहे सिर भी कट जावें !

करती है कानून-भङ्ग तू, पर किनके कानून भला ?
उनके, न्याय न्याय कह कर जो यहाँ घोंटते रहे गला !
खौल उठेगा खून न किसका ऐसे अत्याचारों से !
संयम तुझे दिखाना है पर निज विनीत व्यवहारों से !
आज महात्मा-द्वारा तूने आत्मा का बल जाना है,
परमात्मा ने दिया जिसे यह सत्याग्रह का बाना है।
भय दे सकता है क्या तुझको घोर आयुधों का घेरा !
प्रतिपक्षी के लिए 'सहन' है 'प्रहरण' से भीषण तेरा !
सावधान ! बाधायें तुझको व्रत से विचलित कर न सकें,
झेले आयें वार हँस हँस कर, रुकें विपक्षी और थकें !
शोणित चाहें तो इतना लें-हिंसक उसमें डूब उठें,
घृणा करें अपने ऊपर वे और आप ही ऊब उठें ॥
सूरत में ही कोठी पहले नौकरशाही ने खोली,
सूरत से ही चली हटाने अब तू उसे बारडोली।
पर संगम गोरों से अपना गङ्गा-यमुना-तुल्य रहे,
दोनों के भीतर समता की सरस्वती का स्रोत बहे ॥

मैथिलीशरण गुप्त

अंगद्–बसीठी

सभ्यतापूर्ण युद्ध का यह नियम है कि जब योद्धा में संपूर्ण बल का विकास हो जाता है तब वह पूरे तौर पर नम्र हो जाता है। उस अवस्था में तो वह विनय को छोड़ता ही नहीं। प्रत्येक युद्ध के आरम्भ में वह प्रतिस्पर्द्धी को अवश्य चेतावनी देता है, उसे सावधान करता है और उसे अपनी भूल को सुधारने के लिए अथवा युद्ध का कारण दूर करने के लिए अनुरोध करता है।

राम ने रावण के साथ ऐसा ही विनय दिखलाया था। जब रामचंद्र सेतुबन्ध रामेश्वर पहुंच गये तब उन्होंने अपनी वानर–सेना को एकत्र किया और सोचने लगे कि अब रावण को चितौनी देने के लिए किसे भेजें? कितने ही वानरों को यह व्यवस्था आवश्यक न मालूम हुई। कितनों ही को यह कमजोरी दिखाई दी। रावण जैसे अभिमानी के साथ विनय दिखलाना उसके अभिमान को उत्तेजना देने के बराबर है। राम ने इन दलीलों को गौर के साथ सुना और सेना को समझाया कि राम की सेना को इस चिन्ता से कोई मतलब नहीं कि इस शिष्टाई का असर रावण पर कुछ होगा या नहीं। राम की सेना तो सिर्फ अपनी सभ्यता का खयाल करे। यदि इससे रावण का गर्व बढ़ेगा तो वह अधिक गाफिल रहेगा। इससे राम का क्या बिगड़ेगा? राम तो जब चेतावनी देता है तो इस धर्माचरण से राम का तो बल बढ़ेहीगा। सो, राम ने बलवान्, धीरजवान्, विनयवान् अंगद की तजवीज की और अंगद ने रावण के दरबार में शिष्टाई की। रावण तो बिगड़ उठा। वह भला कहीं मनाया मानने लगा? आखिरकार राज–पाट से हाथ धो बैठा।

सभ्यता के इसी प्राचीन नियम के अनुसार हमने वाइसराय महोदय को बसीठी–पत्र भेजा है। यदि वे न मानें तो इससे हमें क्या? पर यदि न मानें तो इससे हमारा बल खूब बढ़ेगा संसार भी हमारी ओर अधिक झुकेगा। हमारा जगत् तो हैं हमारे भाई, जो हमें भूला–भटका समझ कर सरकारको मदद दे रहे हैं

इस बार मुद्दा बदल गया है। खिलाफत, पंजाब या स्वराज्य का निपटारा करने के पहले हम सरकार से और उनके साथियों से एक बात तय कर लेना चाहते हैं।

इस सरकार ने अपनी सत्ता हमेशा लोगों का ध्यान भुला कर कायम रक्खी है। रोग होता है कुछ और समझाया जाता है कुछ और। बंगालियों को बंग–भंग की बीमारी थी। उससे उन्होंने बम गोले बनाये और फेंके। बस, सरकार ने बमगोले को बीमारी बताकर असली रोग को भुलावा देने का प्रयत्न किया। और बमगोलों के बहाने ऐसी योजना तैयार की जिससे बे–गुनाह लोग तंग हों और सर्वसाधारण धीरजहीन। वैसा ही यह रौलट–कानून का रोग है। इस रोग की धुन में पंजाब को सन्निपात हुआ। इस सन्निपात को मिटाने के लिए हत्याकाण्ड की रचना की गई और असली रोग को छिपाने की कोशिश हुई। अब खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य, इस त्रिविध ताप से भारत दुखी हो रहा है। व्यथा और पीड़ा से उन्मत्त हो उठा है। अन्तरग्नि के उत्ताप से कभी कभी पागलपन कर बैठता है। सरकार इस पागलपन को असली रोग समझकर दमन का चक्र चलाती है। इस प्रकार असली रोग को भुलवाना, उसके परिणाम को रोग बतलाना और उसे मिटाने के लिए दमननीति जारी करना, यह रवाज ही पड़ गया है।

अब हम अनुभव से यह जान गये हैं कि सरकार को ऐसा मौका ही न देना चाहिए जिससे वह लोगों की आंखों में धूल झोंक सके। असली रोग को मिटाना या न मिटाना तो एक ओर रह सकता है। परन्तु अब हम उसे ऐसा प्रयत्न तो हरगिज न करने दें जिसके द्वारा वह असली रोग से उत्पन्न उपद्रवों को वास्तविक रोग बताकर उन्हें दबाने की कोशिश करे। ऐसे प्रयत्नों के बल पर सरकार ने आजतक अपनी सत्ता की जड़ जमा रक्खी है। अब हम इस बात को गवारा नहीं कर सकते कि सरकार की भूलों से या स्वेच्छाचारिता से लोगों को कष्ट हों, उससे लोग कहीं कहीं अपने आपेमें न रहें और सरकार उन्हें दबाने के प्रयत्न में अपनी स्वेच्छाचारिता को भुलवा दे। यदि उसका यह बल सदा के लिए छीन लिया जाय तो फिर वह स्वेच्छाचारिणी रही न सके। जहां दमन–नीति बन्द हुई कि बस फिर स्वेच्छाचारिता के बदले लोकमत का राज्य होने लगेगा।

सद्भाग्य से सरकार ने ही दमननीति शुरू करके इस प्रश्न को उत्पन्न किया है, बस हमें बीड़ा उठा ही लेना चाहिए। सरकार जितना जी चाहे हमें कष्ट दे, पर हमारी तीन मांगों में यह एक, चौथी मांग हो गई। और यह तो सर्वोपरि होनी ही चाहिए। हमें ऐसा समय ला देना चाहिए कि सरकार दमननीति जारी कर– ही न सके।

दमन–नीति क्या है? हमारा मुंह बन्द कर देना, हमारे सभा–सम्मेलन भंग कर देना, और हमारे अखबारों को बन्द कर डालना। वह लालाजी के 'बन्दे मातरम्' का गला घोंट डाले, भला यह कहीं सहन हो सकता है? मजहर–उल–हक साहब का– 'मदरलैंड' बन्द कर दे, यह कहीं देखा जा सकता है? जाफर-अली खां का 'जमीनदार' बन्द, हसरतमोहानी का 'सियासत' बन्द, राधाकृष्ण का 'प्रताप' बन्द! 'इन्डिपेंडेंट' तो बन्द हुई है। प्रयाग का 'स्वराज्य' भी बन्द ही है। इन सबकी दवा हमारे पास अवश्य होनी चाहिए। यह दमन–नीति अब न चलने देनी चाहिए।

जो सरकार लोकमत के अधीन नहीं होना चाहती वह हमेशा प्रजा की पुकार का दम बन्द कर देने का प्रयत्न करती है। जब वह ऐसा नहीं कर सकती तब उसकी हार हो जाती है। इसलिए बारडोली की ओर से जो शिष्टाई की गई है उसमें दमननीति बन्द करने की बात को प्रधान पद दिया गया है। जब हमारी जबान खुल जायगी, जब हमारे अखबार छपने लगेंगे और हम आजादी के साथ सभा सम्मेलन कर सकेंगे तब हम आजाद जैसे ही हैं। समझना चाहिए कि तब तीन–चौथाई स्वराज्य स्थापित हो गया। प्रजा की पुकार ही सरकार को बाध्य करने के लिए बस हो जायगी। स्वराज्य का एक अर्थ यह हुई है कि हम अपनी इच्छा के अनुसार व्यवहार कर सकें। उस समय सिर्फ हत्या–कांड पर अंकुश रहेगा। हत्या–कांड का हक तो हमें स्वराज्य में भी नहीं मिलेगा।

उस बसीठी–पत्र में यह कहा गया है कि यदि सरकार शान्त कार्यों के लिए गिरफ्तार किये गये कैदियों को छोड़ दे और दमन–नीति बन्द कर दे तो हम फिलहाल सविनय भंग बन्द कर देंगे। तीव्र सविनय भंग उसे कहते हैं कि जिसमें व्यक्ति अथवा समुदाय जान–बूझ कर सत्ता का अनादर करने के लिए निर्दोष मनुष्यकृत कानूनों का भी मर्यादा के साथ भंग करे। जो भंग हम आजसारे देश में कर रहे हैं यह तो अनिवार्य अतएव शीत भंग हैं। उसके बिना तो काम चल ही नहीं सकता। अर्थात् सरकार के द्वारा हमारा मुंह बंद किये जाने पर भी हम बोलें, सभा बन्द किये जाने पर भी सभायें करें, अखबारों के बन्द कर देने पर भी हम उन्हें लिख लिख कर प्रकाशित करें। यह सब शीत सविनय भंग है। और जबतक ऐसे बे–हूदे हुक्म निकलते रहेंगे तबतक यह भंग किया ही जायगा। परन्तु इसके अलावा जो

भंग बचाव के रूप में नहीं, बल्कि सरकार को छेड़ने के लिए किया जाता है, जो बदले के रूप में है, उसे यदि सरकार दमननीति बन्द कर देगी तो हम बन्द कर देंगे। मैं समझता हूं कि इस शर्तपर हमें यह बन्द कर देना चाहिए। क्योंकि यदि सरकार हमारी वाचा, हमारी कलम और हमारे सभा-सम्मेलन को स्वातन्त्र्य हो जाने दे तो फिर उसे हमारी मांगें थोड़े ही दिनों में स्वीकार किये बिना छुटकारा नहीं।

अतएव, इस समय बारडोली पर जो भार है वह यही कि हमारे योद्धा लोग छुड़ा लिये जायं और दमन-नीति बन्द करा ली जाय। बारडोली यदि इतना कर सके तो कहा जायगा कि उसने अपना काम पूरा पूरा कर दिया। पर यदि वाइसराय इतना भी न करें तो फिर वह क्या करेगी? और यदि लोकमत प्रकट करने का हक भी कुबूल न करें तो फिर तीव्र सविनय भंग किये बिना कैसे रहा जा सकता है? एक हद तक तो मनुष्य अपना बचाव करता रहता है पर फिर तो उसे चढ़ाई भी करनी पड़ती है। तीव्र भंग एक प्रकार की शान्त चढ़ाई ही कही जा सकती है।

यह सब शिष्टाई हम वाइसराय महोदय के साथ कर चुके हैं। इतनी शिष्टाई करके हमने पूरी सभ्यता प्रदर्शित की है। इसका अर्थ यह है कि यदि ११ फरवरी तक बड़े लाट साहब बारडोली के मार्फत की गई मांगों को स्वीकार कर लें तो बारडोली के सविनय भंग की आवश्यकता बहुत कम रह जायगी। हमारी मांग का दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता। इससे मेरा यह मत है कि वाचा, कलम और संघ की स्वतन्त्रता का स्वीकार किया जाना प्रायः असम्भव है।

बारडोली को जी-जान से अपनी तैयारी करने की आवश्यकता है। अभी जो जो खामियां रह गई हों उनकी पूर्ति कर डालें और प्रत्येक नर-नारी ईश्वर से यह प्रार्थना करें कि हे सर्व शक्तिमान्, हमें जान और माल के नुकसान को सहन करने की पूरी शक्ति दे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

टिप्पणियां

एक पादरी का भ्रम

मदरास में हुल्लड़बाजी के समय एक पादरी साहब भी पिट गये। इस पर बिगड़ कर उन्होंने श्री गांधीजी को एक लम्बा-चौड़ा पत्र लिखा। वे कहते हैं कि देखिए आपके असहयोग-आन्दोलन का यह फल! पंजाब, बम्बई, मलाबार और मदरास की दुर्घटनाओं को देख कर भी आपकी आंखें क्यों नहीं खुलतीं? आप गलत रास्ते पर जा रहे हैं। क्रान्ति से नहीं, बल्कि क्रमशः विकास से देश का उत्कर्ष होता है। इन सारी आफतों के जिम्मेवार आपही हैं। सो, हे महात्मा! यदि आप सचमुच महान् आत्मा हैं तो अपना रास्ता ठीक कीजिए। इस पत्र को 'यंग इंडिया' में उध्दृत करके उसका जवाब श्री गांधीजी ने इस प्रकार दिया है-

"पिछले दो अंकों में मैंने जो दो अंगरेज महिलाओं के पत्र प्रकाशित किये हैं उनसे यह पत्र विपरीत प्रकार का है। वे भी ईसाई पादरिन थीं। इन पादरी साहब के पत्र से यह साफ प्रतीत होता है कि उन्होंने असहयोग-आन्दोलन का न तो मनन ही किया है न चिन्तन ही। जो सब लोगों को धर्म का उपदेश करता है उसे तो यह जानना चाहिए कि एक उदाहरण को लेकर उससे किसी सामान्य सिद्धान्त को स्थिर कर लेना बहुत भयावह है। हां, इसमें कोई शक नहीं कि मदरास के हुल्लड़बाजों के द्वारा पादरी साहब पर आक्रमण किया जाना कायरता का सूचक है और प्रत्येक समझदार आदमी ने उसका निषेध किया है। प्रत्येक समझदार आदमी मानता है कि इस दुर्घटना के बदौलत हमारे कार्य्य को बहुत हानि पहुंची है। क्योंकि जिस असहयोग का मुख्य आधार अहिंसा है उसीके प्रति मिथ्या सहानुभूति के कारण यह हिंसा-काण्ड हुआ था।

परन्तु क्या जो घटनायें बम्बई, मदरास आदि जगहों पर हुई हैं वे संसार के इतिहास में कोई नई बात है? क्या योरप में ऐसी घटनायें बार बार घटित नहीं हुई हैं? क्या इंग्लैंड और स्काटलैंड में ये बातें नहीं हुई हैं? क्या कुपित और वह जन-समूह के द्वारा ठीक ठीक बम्बई और मदरास के जैसी हरकतें नहीं होती हैं? क्या आयर्लैंड के लोगों ने बम्बई और मदरास के हुल्लड़बाजों से भी अधिक बुरी बातें नहीं की हैं? और क्या इसी हुल्लड़बाजी के बदौलत उन्होंने स्वराज्य का बहुत-कुछ भाग प्राप्त नहीं कर लिया है?

मैं मदरास और बंबई की घटनाओं को हृदय से ना-पसन्द करता हूं। परन्तु दूसरे कारणों से। मैं आयर्लैंड वालों की हुल्लड़बाजी से भी घृणा करता हूं। परन्तु आयर्लैंड की हुल्लड़बाजी में और बम्बई, मदरास की हुल्लड़बाजी में भेद है। आयरिश हुल्लड़बाजी अमली और प्रामाणिक थी। अमली तो इसलिए कि वह आयर्लैंड की परिस्थिति के अनुकूल थी और प्रामाणिक इसलिए कि उन्होंने अपने सिद्धान्तों को छिपा नहीं रक्खा। परन्तु भारतीय हुल्लड़बाजी न तो अमली ही है और न प्रामाणिक ही। क्योंकि जहांतक हिन्दुस्तानियों की मनःस्थिति को मैं जान पाया हूं, भारत में हुल्लड़बाजी कभी फल-फूल नहीं सकती। भारतवासियों की मनोभूमि उसके अनुकूल नहीं है। वह अप्रमाणिक इसलिए है कि भारतीय अपने आन्दोलन को पूर्णतः शान्तिमय कहते हैं, यद्यपि समयोपयोगी समझ कर उन्होंने उसका अवलम्बन किया है। असहयोगियों को उन बातों में पड़ना ही नहीं चाहिए जिनको वे शान्तिमय न रख पावें।

लेकिन पादरी साहब तो मदरास की हुल्लड़बाजी से इतने डर गये हैं कि वे भारत को स्वराज्य के अयोग्य बताते हैं। पर इसके विपरीत मैं तो यह मानता हूं कि इस वर्तमान अस्वाभाविक और अप्रामाणिक अवस्था से तो यह हुल्लड़बाजी की अवस्था भी अच्छी हो सकती है। इसका अन्त तो जिस तरह हो सके उसी तरह हो जाना चाहिए। पर, हां, भारत के वर्तमान नेता हिंसात्मक आन्दोलन में नहीं पड़ सकते। अधिकांश लोग न तो इसकी इच्छा ही रखते हैं और न योग्यता ही। वे इस आन्दोलन को शान्तिमय बनाये रखने का भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं।

पादरी साहब दावा करते हैं कि वर्तमान शासन-प्रणाली के बदौलत भारत को बहुत लाभ पहुंचा है। मेरी राय में तो उस की हरकतों का फल हुआ है भारत की नैतिक, भौतिक और राजनैतिक हानि। लोगों की नैतिक अवस्था आज पहले से गिरी हुई है। हां, आज की अनीति पहले से मंजी हुई है और इसलिए धोखा देने वाली और भयंकर है। भारत की दरिद्रता भी आज पहले से बहुत बढ़ी हुई है। राजनैतिक दृष्टि से तो भारत इतना पौरुषहीन हो गया है कि उसे अपने अधःपात का भी ख्याल बहुत कम हो पाता है।

राष्ट्रों की उन्नति विकास और क्रान्ति दोनों के द्वारा हुई है। दोनों एक-से आवश्यक हैं। मृत्यु, जो कि शाश्वत सत्य है, क्रान्ति है और जन्म तथा जीवन धीरे धीरे और स्थिर रूप से होने वाला विकास है। मनुष्य की उन्नति के लिए स्वयं जीवन जितना आवश्यक है उतनी ही आवश्यक मृत्यु भी है। ईश्वर

सबसे बड़ा क्रान्तिकर्ता है। संसार ने ऐसा क्रान्तिकारी न आज तक देखा है और न आगे देखेगा। वह जल-प्रलय करता है। वह ऐसी ऐसी जगहों में विकट तूफान उत्पन्न करता है जहां कि एक ही मिनिट पहले शान्ति ही शान्ति थी। वह बड़े बड़े पर्वतों को मैदान बना देता है जिनको उसने अत्यन्त चिन्ता और अपार धैर्य के साथ निर्माण किया था। हां, मैं आकाश को देखता हूं और उसको देखकर मेरा हृदय भय और आश्चर्य से भर जाता है। क्या भारत और क्या इंग्लैंड, दोनों के गम्भीर नील गगन में मैंने बादलदल को घिरते हुए और प्रकोप के साथ बरसते हुए देखा है, जिसे देखकर मैं अवाक् रह जाता हूं। इतिहास में सुव्यवस्थित कही जाने वाली उन्नति की अपेक्षा क्रान्ति के ही उदाहरण अधिक मिलते हैं। इंग्लैंड के इतिहास में ये उदाहरण जितने अधिक मिलते हैं उतने और कहीं नहीं। और मैं पादरी महाशय को यह सूचित कर देना चाहता हूं कि मैंने लोगों को धीरे धीरे पहाड़ पर चढ़ते हुए देखा है और साथ ही लोगों को ऊपर आकाश में एकदम उड़ जाते हुए भी देखा है।

स्वराज्य भारत का जन्मसिद्ध हक है। इस ब्रिटिश शासन-पद्धति ने उसे उससे वंचित कर रक्खा है। भारत अपनी खोयी हुई स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए लड़ रहा है और ऐसा करते हुए वह इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं, बल्कि नये इतिहास की सृष्टि करने का प्रयत्न कर रहा है। अन्त में मैं पादरी साहब को तथा उनके सदृश विचार रखने वाले दूसरे सज्जनों को यह यकीन दिलाता हूं कि यह आन्दोलन किसी के प्रति मनोमालिन्य करने के लिए नहीं बल्कि सबके प्रति सद्भाव की वृद्धि करने के लिए उठाया गया है। समय ही केवल इसकी सत्यता को सिद्ध करेगा। इसके गर्भ में जो नूतन तथ्य छिप हुआ है उसे यन्त्रणा हमें देखने नहीं देती है। आइए, हम ध्यान करें, ठहरें और प्रार्थना करें।"

बलिया की कष्ट-कथा

[बलिया से चि० देवदास गांधी ने एक पत्र भेजा है। उस में उन्होंने बलिया के कष्टों का हूबहू चित्र खींचा है। उसका सार नीचे दिया जाता है। बलिया संयुक्त प्रान्त का एक गरीब जिला है। वहां के लोग उत्साही और सीधे-भोले हैं। वे स्वदेश-प्रेमी हैं। मैंने कई बार वहां जाने का प्रयत्न किया; परन्तु न जा सका। वह बिहार की सरहद पर है, इससे वहां के लोग बिहारियों से अधिक मिलते-जुलते हैं। उनके कष्टों का चित्र मेरी आंखों के सामने खड़ा हो सकता है। जब मैं उसे याद करता हूं तो मेरा दिल रो उठता है। मैं वहां न जा सका, इस से मुझे दुःख होता है। यदि इस दुःख के अन्तसक मैं जिन्दा रहा तो बलिया को एक यात्रा-स्थली मान कर वहां जाने की आशा करता हूं। यह आशा बलिया के लोगों के लिए शान्ति-दायी हो। बलिया जैसे गांवों का बलिदान इस देश को अवश्य मुक्त करेगा। परमात्मा उन्हें और अधिक सहनशक्ति प्रदान करें। बलिया का उदाहरण गुजरात को दुःख सहन करने के लिए अधिक उत्सुक बनावे।

मो० क० गांधी]

"बलिया के सत्ताधारियों का स्वभाव बहुत ही खराब है। महासभा समिति के सभापति, मन्त्री अथवा किसी भी पदाधिकारी को टिकने ही नहीं देते। बात की बात में लोग पकड़ लिये जाते हैं। इस बात के सबूत लेने का विचार तक नहीं किया जाता कि कोई आदमी स्वयं-सेवक है या उसने दूसरों को स्वयंसेवक बनाया है अथवा नहीं। अबतक वहां चार मन्त्री गिरफ्तार हो चुके हैं। पुलिस वहां बहुत ही धूम मचाती है। जिला-समिति के दफ्तर में प्रायःरोज ही चढ़ाई होती है।

आज (२७-१-२१) यहां एक सभा सफलतापूर्वक हुई। कोई २० हजार आदमी जमा हुए थे। कोतवाल सिपाहियों सहित हाजिर था। सभा में मेरे पहुंचते ही मेरे साथ का एक नवयुवक गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद जब मैं प्रयाग जाने की तैयारी में स्टेशन पर खड़ा था कि वे सज्जन जो अपना कानून का अध्ययन छोड़ कर प्रयाग से यहां आये थे और जिला समिति के मन्त्री की हैसियत से काम कर रहे थे, पकड़ लिये गये। उन्होंने मुश्किल से कोई १५ दिन काम किया होगा।

गाड़ी आई। मैं एक कदम आगे बढ़ा कि मोटे-ताजे और विकराल चेहरेवाले कोतवाल ने उन मन्त्री का हाथ पकड़ कर पूछा "आपका नाम क्या है?" "श्रीनिवास उपाध्याय।" एक दूसरे बहादुर आदमी का हाथ थाम कर पूछा-"आपका नाम विश्वनाथसिंह है?"-"हां" यह नाटय देखकर मैं वापस लौटा। मेरे मित्र मारे हर्ष के फूल रहे थे; पर मैं खिन्न हो रहा था। मैंने मन में कहा-क्या अभी मैं काफी सेवा नहीं कर पाया? मैं श्रीनिवास उपाध्याय से मिला। वे ऊंचे स्वर से विदा मांग रहे थे; पर यह कहते हुए कि "बलिया को न छोड़िएगा" उनका स्वर मन्द पड़ गया। इस समय मेरा भी कंठ भर आया। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि मैं बलिया को अकेला नहीं छोड़ूंगा।

पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने मेरी गिरफ्तारी का हुक्म लेने का खूब प्रयत्न किया; पर मेरे दुर्भाग्य से यहां के महाराष्ट्र कलेक्टर श्री साठे ने बाधा डाल दी। कहते हैं, उन्होंने मेरी गिरफ्तारी के लिए साफ इनकार कर दिया। इसी तरह बहुत बार शुभचिन्तक लोग बाधा-रूप हो जाते हैं!

महासभा के मन्त्री के बिना लोग अपने को निराधार मानते हैं। मैंने उनसे कहा है कि जबतक मैं यहां रहूंगा तबतक मैं आपका मन्त्री रहूंगा। अथवा मैं सभापति बनकर मेरे एक साथी को मन्त्री बनाऊंगा।

यहां बिना ही वारण्ट के गिरफ्तारी कर ली जाती है। कहते हैं कि दफा १७ बी. वाला जुर्म है। सो बिना ही वारंट के गिरफ्तारी हो सकती है। प्रयाग में तो १७ और ११७ दोनों जुर्मों के लिए वारंट जारी करने की प्रथा है। पर यहां तो तलाशियां आम तौर पर बिना ही वारंट दिखाये ली जाती हैं। कई बार तो रात को एक एक बजे लोगों को जगा कर खानगी घरों की तलाशियां ली जाती हैं। लोगों को धक्का दे कर भी चाहे तहां घुस जाना तो मामूली बात हो गई है। एक आदमी इसलिए पीटा गया कि उसने डिप्टी कलेक्टर से कहा कि 'तुम' न कहिए। असहयोगियों के मुकदमे के समय किसी को अदालत में हाजर नहीं रहने दिया जाता। एक आदमी ने अपने कैदी लड़के को अदालत के मैदान में फूल-माला पहना दी! इसलिए उसे पीठ पर बेंत लगाई गई।

यहां से शायद ही कोई पत्र बिना फोड़े आगे रवाना किया जाता होगा। यदि कांग्रेस का नाम लिखा हो तो तो शायद जा ही न सके। तार की तो बात ही दूर है।" (नवजीवन)

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, माह सुदी ८, सं. १९७८.

बारडोली का निर्णय

बारडोली ने बड़ा गम्भीर और गुरुतर निर्णय किया है। उसका यह अन्तिम निश्चय है, वह बदला नहीं जा सकता। बारडोली तहसील-परिषद् की बैठक उस दिन हुई। सभापति का पद श्री० विट्ठलभाई पटेल ने ग्रहण किया था। उन्होंने अपने भाषण में लोगों को खूब सावधान किया। इसका असर भी उनपर हुआ। उन्होंने साफ साफ बातें कहीं-कोई बात छिपा कर नहीं रक्खी। कोई ४ हजार प्रतिनिधि खादी पहने उपस्थित थे। ५०० स्त्रियां भी थीं। उनमें अधिकांश स्त्रियां खादी पहने थीं। उन्होंने सभा के काम में खूब दिलचस्पी ली और बड़ी उत्सुकता के साथ वे सब बातें सुनते थे। समस्त पुरुष और स्त्रियां शांत, विचारवान् और जवाबदेह थीं और सबके चेहरे से निश्चय का भाव टपकता था।

श्री विट्ठलभाई के बाद मेरा व्याख्यान हुआ मैंने महासभा द्वारा निर्धारित प्रत्येक शर्त को समझाया। प्रत्येक शर्त पर मैंने लोगों से पृथक् पृथक् राय ली। उन्होंने हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई एकता के तात्पर्य को समझ लिया था। वे अहिंसा-तत्व की महत्ता को जानते थे। उन्होंने 'छुआछूत' को दूर करने का मतलब समझ लिया था। वे केवल 'अछूत' लड़कों को राष्ट्रीय पाठशालाओं में भरती करने को ही तैयार नहीं थे, बल्कि उन्हें ला ला कर भरती करने को भी तैयार थे। अपने गांव के कुओं में से 'अछूतों' के पानी लेने पर उन्हें कोई ऐतराज नहीं था। वे जानते थे कि जिस प्रकार हम अपने किसी बीमार सहवासी की सेवा-शुश्रूषा करते हैं उसी प्रकार इन बीमार 'अछूतों' की भी परिचर्या हमें करनी चाहिए। वे जानते थे कि जबतक हम अपनेको मेरे बताये ढंग से शुद्ध न कर लेंगे तबतक वे लगान न देने अथवा सविनय कानून-भंग के दूसरे अंगों को शुरू करने का सौभाग्य न प्राप्त कर सकेंगे। वे यह भी जानते थे कि अभी हमें बहुत उद्योगी बनना है, अपने लिए आवश्यक तमाम कपड़ा-खादी-बुनना और सूत कातना है। और, आखिरी बात यह कि, वे अपनी जंगम सम्पत्ति, अपने मवेशी और अपनी जमीन तक की जब्ती के लिए तैयार थे। वे जेल जाने के लिए तथा, यदि आवश्यकता पड़ जाय, तो मौत तक का सामना करने के लिए तैयार थे और यह सब वे करना चाहते हैं बिना किसी तरह के मलाल या क्रोध के। हां 'छुआछूत' के सवाल पर एक बूढ़े आदमी ने अपना मत-भेद प्रकट किया था। उन्होंने कहा कि हां, सिद्धांत के रूप में तो आपका कहना यथार्थ है; पर एकदम इस रवाज को तोड़ देना कठिन है। मैंने अपना आशय उन्हें खूब स्पष्ट करके समझाया; लेकिन उपस्थित जन तो उसे दूर करने का इरादा कर ही चुके थे। इस बड़ी सभा के पहले मैं कोई ५० प्रमुख कार्यकर्ताओं से मिला था। इस मुलाकात के पहले, श्री विट्ठलभाई पटेल, कुछ कार्यकर्ता तथा मैं, सबकी यह राय हुई थी कि ऐसा प्रस्ताव किया जाय कि १५ दिन के बाद बारडोली अपना निर्णय प्रकट करे, जिससे इस अवधि में स्वदेशी की तैयारी और भी पूरी तरह हो जाय तथा छुआछूत का निवारण अधिक निश्चित हो जाय अर्थात् तमाम साठों राष्ट्रीय पाठशालाओं में अछूत लड़के दर हकीकत भरती हो जायं। लेकिन बारडोली के उन बहादुर और सच्चे उत्साही लोगों ने निर्णय को स्थगित करना पसन्द न किया। उन्हें विश्वास था कि ५० फी सदी से भी अधिक हिन्दू लोग छुआछूत के सम्बन्ध में बिल्कुल तैयार हैं और इस बात का भी यकीन था कि अब आगे हम जितनी जरूरत होगी उतना कपड़ा सब यहीं तैयार कर सकेंगे। वे तो सरकार के साथ आखिरी फैसला करने की कोशिश पर तुले हुए थे।

श्री विट्ठलभाई पटेल ने जितने ऐतराज उठाये उन सबका खंडन वे करते गये। सफेद दाढ़ी वाले और सर्वदा प्रसन्न मुख रहने वाले वृद्ध अब्बास तैयबजी ने उन्हें सावधान किया। लेकिन वे अपने निश्चय से एक इंच भी हटना नहीं चाहते थे। इसका फल-स्वरूप नीचे लिखा प्रस्ताव एकमत से स्वीकार किया गया—

"सविनय कानून-भंग को शुरू करने के लिए आवश्यक शर्तों को अच्छी तरह सोच-समझ लेने के बाद, बारडोली तहसील के निवासियों की यह परिषद् निश्चय करती है कि यह तहसील सामुदायिक सविनय कानून-भंग के लिए तैयार है।

इस परिषद् की यह राय है कि—

(अ) भारत के कष्टों को दूर करने के लिए हिन्दू, मुसलमान, पारसी ईसाई तथा भारत की दूसरी जातियों में एकता स्थापित करना बिल्कुल आवश्यक है।

(आ) इन कष्टों को दूर करने के लिए अहिंसा, धैर्य और सहनशीलता ही एकमात्र उपाय है।

(इ) हरएक घर में चरखा चलाया जाना और हर व्यक्ति को दूसरे कपड़ों को छोड़ कर सिर्फ हाथ-कता और हाथ-बुना कपड़ा ही पहनना भारत की स्वतन्त्रता के लिए अनिवार्य है।

(ई) हिन्दुओं के द्वारा पूर्णरूप से छुआछूत दूर हुए बिना स्वराज्य असम्भव है।

(उ) प्रजा की उन्नति के लिए तथा स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए, तमाम स्थावर और जंगम सम्पत्ति के बलिदान की, जेल जाने की तथा यदि आवश्यकता आ पड़े तो अपने प्राणों तक को न्यौछावर कर देने की तैयारी परम आवश्यक है।

"यह परिषद् आशा रखती है कि पूर्वोक्त बलिदान के लिए बारडोली तहसील को ही यह सौभाग्य सबसे पहले प्राप्त होगा और इस प्रस्ताव के द्वारा यह परिषद् कार्य-समिति को सूचित करती है कि यदि कार्य्य-समिति इसके विपरीत फैसला न करे और यदि प्रस्तावित सर्वपक्षीय परिषद् की आयोजना न हो तो यह तहसील श्री गांधीजी तथा इस परिषद् के सभापति की सम्मति और संकेत के अनुसार तुरन्त सामुदायिक सविनय कानून भंग शुरू कर देगी।

"यह परिषद् इस बात की सिफारिश करती है कि इस तहसील के जो लोग महासभा द्वारा निर्धारित सामुदायिक सविनय कानून-भंग की शर्तों का पालन करने पर राजी और तैयार हों वे जबतक दूसरी सूचना न मिले तबतक सरकारी लगान तथा दूसरे कर अदा न करें"

कौन जानता है, क्या होगा? कौन जानता है कि बारडोली के नर-नारी, सरकार के दमन शुरू करने पर, उसका मुकाबला कहांतक कर सकेंगे? यह तो अकेला ईश्वर ही जानता है। उसीके नाम पर यह युद्ध-भार उठाया गया है। वही पार लगावेगा।

सरकार अबतक बड़े ही आदर्श ढंग से पेश आ रही है। वह इस परिषद् को बन्द कर सकती थी। पर उसने ऐसा नहीं

किया । वह कार्यकर्ताओं को भी जानता है । बहुत पहले ही वह उन्हें वहां से हटा ले जा सकता था । पर उसने यह भी नहीं किया । उसने उन्हें हर तरह की तैयारियां करने दीं । सरकार के इस व्यवहार को देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है । उसकी यह रीति प्रशंसनीय है । यह लेख लिखते समय तक दोनों पक्ष के लोग प्राचीन शूर-वीर योद्धाओं की तरह परस्पर व्यवहार कर रहे हैं । यह तो शान्ति-युद्ध है । इसमें इससे भिन्न व्यवहार होना ही नहीं चाहिए । यदि यह युद्ध इसी रीति से जारी रहा तो इसका अन्त एक ही तरह से हो सकता है । विजय उसीकी होगी जिसके पक्ष में बारडोली के ८७,००० नर-नारी होंगे ।

(यंग इंडिया)

कार्य-समिति की बैठक शीघ्रही होनेवाली है और वह बारडोली के इस निर्णय पर अपना फैसला प्रकट करेगी । वाइसराय को अब भी मौका है और एक बार भी मौका उन्हें दिया जायगा । जल्दी का, तैयारी या विचार न करने का, अशिष्टता और असभ्यता का इल्जाम बारडोली के लोगों पर लगाना किसी तरह मुमकिन नहीं ।

इसलिए—

सुख-पूर्वक ले चल करुणामय ! सुख-पूर्वक ले चल !
आगे, हां, इस तिमिर प्रान्त से, सुख-पूर्वक ले चल !
रात अंधेरी है, गहरी है, घर से हूं अति दूर;
दे कर भगवन्, पथ-दर्शक हो, बस, आगे ले चल !

मोहनदास करमचंद गांधी

आखिरी चेतावनी

माननीय वाइसराय महोदय,

देहली

महाशय,

बम्बई-प्रान्त के सूरत जिले में बारडोली नाम की एक छोटी सी तहसील है । उसकी आबादी कुल मिलाकर कोई ८७,००० है ।

गत २९ जनवरी को श्री विट्ठलभाई पटेल के सभापतित्व में वहां एक सभा हुई थी और उसने सामुदायिक सविनय कानूनभंग शुरू करने का प्रस्ताव पास किया । देहली में गत नवम्बर मास के प्रथम सप्ताह में राष्ट्रीय महासभा-समिति द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव में निर्दिष्ट शर्तों का पालन करने की योग्यता इस तहसील ने सिद्ध कर दिखाई है । शायद बारडोली के इस प्रस्ताव के लिए प्रधानतः मैं उत्तरदायी हूं, इसलिए जिस स्थिति में यह प्रस्ताव किया गया है उसका खुलासा आपके तथा जनता के सामने कर देना मेरा कर्तव्य है ।

महा-समिति के प्रस्ताव के अनुसार सामुदायिक सविनय भंग करने के लिए बारडोली को प्रथम पद देने का विचार था । इस प्रकार सविनय भंग के द्वारा यह दिखलाना था कि खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य-सम्बन्धी भारत के निश्चय को बिल्कुल न मानने के सरकार के पक्के दुराग्रह से प्रजा सन्तप्त हो उठी है ।

इसके बाद बम्बई में १७ नवम्बर को भारत के दुर्भाग्य से दुःखदायक हुल्लड मच गया और उसका फल यह हुआ कि बारडोली को अपना पूर्वोक्त विचार स्थगित रखना पड़ा ।

इस बीच भारत-सरकार की सम्मति से बंगाल, आसाम, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, देहली और एक तरह से बिहार, उड़ीसा आदि जगहों में घोर दमन-नीति शुरू हुई । उन उन प्रान्तों में सत्ताधारियों ने जो जो काम किये हैं उन्हें 'दमन' कहा गया है । मैं जानता हूं कि यह आपको पसन्द नहीं हुआ है । मेरा मत तो यह है कि जब किसी स्थिति का मुकाबला करने के लिए आवश्यकता से अधिक तेज उपायों से काम लिया जाता है तब वह अवश्य 'दमन-नीति' कही जाती है । लोगों का माल-असबाब लूट लेना, निरपराध लोगों को मारना-पीटना कैदियों के साथ घातक रीति से बरताव करना, उन्हें कोड़े लगाना, ये बातें किसी भी तरह से बा-कानून, सभ्य अथवा आवश्यक नहीं मानी जा सकतीं । इस प्रकार जब सत्ताधारी ही मर्यादा का उल्लंघन करते हैं तब उसे अमर्यादित दमन-नीति कह सकते हैं । हां, यह माना जा सकता है कि असहयोगियों तथा उनके साथियों ने कुछ हदतक हड़तालों के सम्बन्ध में तथा पहरों के सम्बन्ध में लोगों को दबाने की नीति अख्त्यार की है; परन्तु इससे कहीं उस पद्धति का बचाव किया जा सकता है जिसके द्वारा शान्त स्वयंसेवक-मंडल अथवा वैसी ही शान्तिमय सभायें भंग की जा रही हैं । फिर ऐसा करने के लिए उन असाधारण कानूनों का दुरुपयोग किया गया है जो उन आन्दोलनों के लिए तजवीज किये गये हैं जिन में जान-बूझकर हिंसाकाण्ड के लिए निश्चित रूप से स्थान था । फिर हमारे कितने ही लोगों की यह धारणा है कि साधारण कानून का भी बे-कायदा उपयोग बे-गुनाह लोगों को दबाने के लिए किया गया है । ऐसे दुरुपयोग के लिए यदि 'दमननीति' विशेषण का प्रयोग न किया जाय तो फिर दूसरे किसका किया जाय ? फिर जिस कानून को रद करने का इरादा सरकार जाहिर कर चुकी है उसकी रू से तथा गैर-अदालती हुक्म से समाचार-पत्र बंद किये गये हैं, इसे भी 'दमन' नहीं तो और क्या कहें ?

इससे इस समय देश के सामने जो कर्तव्य उपस्थित हो गया है वह यह है कि भाषण करने, सभा-समाज का संचालन करने और अखबार निकालने का जो अधिकार जनता को है उसको नष्ट न होने देना ।

सरकार के वर्तमान रुख को देखते हुए तथा ऐसी स्थिति में जब कि उपद्रव करने वाली शक्तियों पर अपना अंकुश रखने के लिए लोग पूरी तरह से तैयार नहीं है, असहयोगी मालवीय परिषद् से किसी तरह का सम्बन्ध रखना नहीं चाहते थे । और उस परिषद् का उद्देश यह था कि सब पक्षों का एक सम्मेलन करने के लिए आपको राजी किया जाय । परन्तु मैं इस बात के लिए उत्सुक था कि जितना कष्ट-सहन रोका जा सके उतना रोका जाय; इसलिए मैंने मालवीय-परिषद की सिफारिशों को मंजूर करने की सलाह महासभा की कार्यसमिति को देते हुए आगा-पीछा नहीं किया । और यद्यपि मेरी राय में उस परिषद् की शर्तें आपके कलकत्ते के भाषण के तथा दूसरे तौर से मैं जो आपकी इच्छायें जान पाया हूं उसके अनुसार थीं, तो भी आपने बिना कारण बताये ही उस सभा के प्रस्ताव को ना-मंजूर कर दिया ।

ऐसी अवस्था में जनता की मांगों का तथा भाषण, लेखन और सम्मेलन के सामान्य हकों का अमल कराने के लिए लोगों को किसी न किसी शान्तिमय उपाय का अवलम्बन किये बिना छुटकारा ही नहीं था । मेरी नम्र सम्मति के अनुसार तो आज सरकार की तरफ से यह जो कुछ हो रहा है उससे यह सूचित होता है कि आपने उस समय जब कि अली-भाइयों ने अपनी उदारता और शूर-वीरता दिखलाने वाली माफी बिना किसी शर्त के पेश की थी, जो सभ्य नीति अख्त्यार की थी उसका

साफ साफ तौर पर किया गया है। उस समय भारत-सरकार ने यह निर्णय प्रकट किया था कि असहयोग की हलचल जबतक वाचा में और कार्य में शान्तिमय बनी रहे तबतक उसमें हस्तक्षेप न किया जाय। यदि सरकार इसी निष्पक्ष नीति पर दृढ रही होती, लोक-मत को परिपक्व होने दिया होता और उसका पूरा प्रभाव पडने दिया होता तो जबतक महासभा उपद्रव करने वाली शक्तियों पर अपना पूरा अंकुश न कर पाती और उसके लाखों अनुयायी अधिक मर्यादाशील न हो पाते तबतक तीव्र सविनय भंग रोका जा सकता था। परन्तु इस अभागी देश के इतिहास में कहीं न मिलने वाली इस प्रचलित अमर्यादित दमन-नीति ने सामुदायिक सविनय भंग शुरू करना देश का आवश्यक कर्तव्य बना दिया है। महासभा की कार्य-समिति ने उसकी मर्यादा बांध दी है और उस हद को निश्चित करने का अधिकार मुझे दे दिया है। उसके अनुसार फिलहाल तो बारडोली में ही सामुदायिक भंग शुरू होगा।

मुझे जो यह अधिकार दिया गया है इसके बल पर शायद मुझे गन्तूर जिले के १०० गांवों के एक समूह को इजाजत देनी पडे। हां, शान्तिरक्षा, भिन्न भिन्न जातियों में एकता, सूत कातना खादी पहनना तथा अस्पृश्यता-विषयक शर्तों का पालन तो उन्हें भी पूरा पूरा करना पडेगा।

परन्तु बारडोली में सविनय कानून-भंग होने के पहले मैं भारत सरकार के सर्वोच्च अधिकारी की हैसियत से आप से नम्रता-पूर्वक निवेदन करता हूं कि अब आखिरकार आप अपनी नीति को बदलिए, उन तमाम असहयोगी कैदियों को छोड दीजिए, जो शान्तिमय आन्दोलनों के सम्बन्ध में गिरफ्तार अथवा कैद किये गये हैं तथा यह निश्चित रूप से प्रकट कीजिए कि देश में जो जो शान्तिमय हलचलें हो रही हैं उनमें सरकार कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करेगी-फिर चाहे वे हलचलें खिलाफत, पंजाब, या स्वराज्य-सम्बन्धी हों अथवा दूसरे किसी काम के लिए हों और चाहे वे शान्त हलचलें गुनाहों से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी दमनकारी कानून के अन्दर आ जाती हों। इसी प्रकार वर्तमानपत्रों पर जो अदालती अंकुश है वह भी दूर हो जाना चाहिए तथा उनके सम्बन्ध में जो अर्थदण्ड किया गया है और जप्तियां की गई हैं वह रकम वापस दी जानी चाहिए। मेरी यह मांग उन देशों की प्रथा से अधिक नहीं है जहां, यह माना जाता है कि, सभ्य राजनीति प्रचलित है। यदि इस घोषणा-पत्र के प्रकाशित होने के सात दिन के भीतर आप यह प्रकट कर देंगे कि मेरी मांगें स्वीकार की गई हैं, तो मैं तबतक तीव्र सविनय भंग स्थगित करने की सलाह देने के लिए तैयार हूं जबतक कि जो देश-सेवक आज कैदखाने में हैं वे छूट कर नये सिरे से परिस्थिति का विचार न कर सकें। यदि इस प्रकार सरकार मेरी मांगों को स्वीकार करे तो मैं यह मानूंगा कि वह लोकमत का आदर करने की शुभेच्छा रखती है और इस लिए मैं लोगों को यह सलाह दूंगा कि आप किसी भी तरफ से अंकुश लगाये बिना लोकमत तैयार करने में लग जाइए और यह विश्वास रखिए कि उसके द्वारा देश की निश्चित मांगें स्वीकृत हो सकती हैं; और ऐसा होने पर तभी सविनय कानून-भंग शुरू किया जाय जब कि सरकार सम्पूर्णतः निष्पक्ष नीति का त्याग करे अथवा भारत की जनता के स्पष्टता के साथ प्रकट किये गये बहुमत का आदर न करे। (नवजीवन)

बारडोली,
१ फरवरी, १९२२

आपका,
विश्वासपात्र नौकर और मित्र
मोहनदास करमचंद गांधी

आन्ध्र में जागृति

नीचे लिखा लेख लिखने के पहले तक आन्ध्र से दो तार आये थे। उनका सार नीचे दिया जाता है—

१-"आन्ध्र-प्रान्तिक कार्यकारिणी समिति की बैठक कल हुई थी। उसमें उपस्थित प्रतिनिधियों ने अपने अपने स्थान की स्थिति का वर्णन किया और इस आशय का प्रस्ताव पास किया कि कर न देना सब दूर एकदम शुरू न किया जाय। इसके लिए प्रथम तो योग्य स्थान चुने जायं और उनमें भी यह देख लिया जाय कि देहली वाली शर्तों का पूरी तरह से पालन उन उन स्थानों में किया जा रहा है या नहीं। इस जांच के अनुसार जो जो स्थान योग्य समझे जायं वहींपर "कर न देना" शुरू किया जाय।"

२-"परसों और कल गन्तूर महासभा-समिति की बैठक हुई थी। प्रतिनिधियों ने अपने अपने हलके की तैयारी का वर्णन किया। कई जगह लोगों की तैयारी बहुत अच्छी बताई गई, कई स्थानों पर अस्पृश्यता पूरी नहीं मिटी। और कई जगह पूर्ण अहिंसा-युक्त परिस्थति की आवश्यकता है। श्री प्रकाशम् ने सभा का ध्यान इस ओर खींचा कि वह इस महत्वपूर्ण काम को हाथ में लेने के पहले अपनी जवाबदेही को पूरी तरह समझ ले। इसके बाद श्री गांधीजी का वह पत्र जो २५ तारीख के "बाम्बे क्रानिकल" में प्रकाशित हुआ था पढकर सुनाया गया, और हरएक स्थान में कितनी तैयारी हुई है यह देखने के लिए एक समिति का संगटन किया गया, फिर सभा समाप्त की गई।"

गन्तूर में सरकार की ओर से दमन की खूब सशक्त तैयारियां हो रही हैं। मेरे ख्याल में तो सरकार को दमन के इन सब उपायों से काम लेने का पूरा हक है। उसे तो यह भी अधिकार है कि यदि उसको कहीं कर देना बंद होने की भीति हो तो वह साधारण कानूनों को भी स्थगित कर दे। हां, यह तो सत्य ही है कि कोई भी समझदार सरकार लोकमत को यहां तक तो कभी क्षुब्ध नहीं करेगी कि जनता कर देने से भी इंकार करने लग जाय। किन्तु हमें ऐसी आशा न करनी चाहिए कि जो सरकार लोकमत की इतनी अवमानना करती है वह बगैर कठिन प्रयत्न ही नष्ट कर दी जा सकेगी। वह कम से कम अपने कर लेने का बन्दोबस्त तो अवश्य करेगी। और कर न देने वाली जनता की जमीन को वह जो पतित जातियों को दे देने की आयोजना कर रही है उसमें भी उसे दोष देने लायक कोई बात नहीं दिखाई देती। यह तजवीज तो दोनों पक्षों को ठीक मालूम होनी चाहिए। असहयोगियों ने तो अहिंसा का व्रत ही धारण कर लिया है। उन्होंने तो अपने ध्येय की सिद्धि के लिए अपने सर्वस्व तक का त्याग करने पर कमर कस ली है। अतः वे तो अपनी जायदाद खुशी खुशी से नीलाम होने देंगे। और विपक्ष में सरकार, यदि कर पावे, तो इस कर न देने की हलचल को नष्ट-भ्रष्ट कर देने का तथा कर वसूल करने के लिए हर तरह के उद्योग करने का प्रयत्न अवश्य करेगी। जप्त की गई जमीनें अछूत जातियों को दे दी जाने और उनके द्वारा खरीदी जाने का प्रस्ताव है तो एक आदर्श बात। इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है कि जिन लोगों को हम बुरी स्थिति से उठा कर उन्नत बनाने का यत्न कर रहे हैं, वे जप्त की गई जमीनें कुछ समय के लिए उन्हींके कब्जे में रहें?

मैं "कुछ समय" के लिए इसलिए कह रहा हूं कि उन जमीनों पर अभी जिनका अधिकार है उनको अपने अंगीकृत कार्य में पूरा विश्वास होना चाहिए कि हर हालत में हमें स्वराज्य

देना है। और स्वराज्य मिलने पर उन्हें फिर अपना पद सम्मान से भूषित करके सौंप दिया जायगा। और अगर पुराने मालिकों को उनकी जमीन फिर लौटा दी गई तो इससे उन पतित जातियों को जिनका कि सरकार इस समय शतरंज की प्यादियों का सा उपयोग मात्र कर रही है, कुछ भी बुरा न मालूम होगा। क्योंकि स्वराज्य होते ही पहले उनको आबाद और सुखी और सन्तुष्ट करना स्वराज्य-सरकार का प्रथम कर्तव्य होगा।

सरकार जो दमन की नई आयोजनायें कर रही है उसके लिए इतना ही कहना काफी होगा। किन्तु इन उपायों के करने में उसे जो डर और घबराहट मालूम हो रही है यह उसके दिल के पाप का ही दृश्य-स्वरूप है। कर वसूल करने के लिए उसे अपनी लोक-प्रियता पर तो जरा भी विश्वास नहीं। इसके लिए तो उसे संगीन की नोक तथा ऐसेही दूसरे उपायों का आश्रय लेना पडता है। वह लोकमान्य नेताओं को गिरफ्तार कर रही है और इस प्रकार लोगों को हिंसाकांड के लिए भडका रही है जिससे उसे अपने इन 'खूनी' उपायों के समर्थन करने का मौका मिले।

और इसीमें आन्ध्र की परीक्षा है। वे अभीतक तो बडी बहादुरी के साथ काम करते आये हैं। त्याग भी उन्होंने खूब बताया है। उनके चुने चुने सब नेता जेल चले गये हैं। उनके मवेशी भी उनसे छीन लिये गये हैं। किन्तु अब भी वे शान्त हैं। पर सबसे बुरा दृश्य तो अभी देखना ही बाकी है। जब सरकार की फौज उनपर गोलियों की बौछार शुरू करेगी तब वे उसे कैसे झेलेंगे? धैर्य और हर्ष के साथ अपनी आगे बढी हुई छातियों पर, न कि कायरों की तरह अनिच्छा से अपनी पीठ पर और यह भी प्रतिहिंसा की अथवा रोष की छाया तक अपने दिल में न आने देते हुए। उन्हें चाहिए कि वे अपनी चालियां, लोटे, आदि खुशी से ले जाने दें और खुद द्रौपदी और प्रह्लाद की तरह उस परमात्मा की प्रार्थना करते रहें और उसके प्रति अपनी श्रद्धा को अटल सिद्ध करते रहें।

कर न देना हमारा स्वत्व है। इसका उद्देश यह नहीं है कि उससे अ-सहयोगी श्रीमान् हो जायं। बल्कि उसका उद्देश तो इच्छापूर्वक स्वयं गरीब बनकर देश को धनवान् करना है। और वे इस अधिकार के पात्र तो आत्मशुद्धि करने से ही हो सकते हैं, यह सौभाग्य पाने की पात्रता तो विदेशी कपडा छोडकर हाथ से कती-बुनी खादी पहनने से और अस्पृश्यता का धब्बा धोकर पतित भाइयों को अपने भाई बनाने से ही आ सकती है। हमें किसी पतित-भाई को अनिच्छा से नहीं छूना चाहिए। उसे तो प्रेम से अपना कर आलिंगन देना चाहिए और उसकी सेवा करनी चाहिए और यह भी उसके प्रति अपने पिछले व्यवहार के लिए हृदय से प्रायश्चित्त करते हुए, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि हम सरकार से उसके द्वारा हमपर किये गये अत्याचारों के लिए चाहते हैं। आवश्यक कर्तव्य का अनिच्छापूर्वक पालन करने से परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता। हमें तो अपने हृदय में ही पूरा परिवर्तन करना चाहिए। हमें उनके साथ पाठशालाओं में सम्मिलित होना चाहिए और सार्वजनिक स्थानों में भी उन्हें भाग लेने देना चाहिए। उनकी रुग्णावस्था में हमें अपने भाई की तरह उनकी सेवा करनी चाहिए। हमें अपने को उनका आश्रयदाता,—अन्नदाता नहीं समझना चाहिए। हमें उनके खिलाफ अपने धार्मिक ग्रन्थों की दुहाई न देना चाहिए। जिन प्राचीन ग्रन्थों के रचयिता का ठीक ठीक पता न हो, तथा जिनका अर्थ पतित जातियों के मनुष्योचित स्वत्वों के खिलाफ लगाये जा सकते हों उन सबका संशोधन कर डालना चाहिए। ऐसी प्रथाओं को भी प्रसन्नता-पूर्वक उठा देना चाहिए जो युक्तियुक्त, न्याय्य और मानवी हृदय के स्वाभाविक धर्म के खिलाफ हों। हमें किसी भी कुप्रथा का इतना गुलाम न बन जाना न चाहिए कि आखिर को जब हमें किसी दबाव के कारण अथवा अनिवार्य प्रसंग के उपस्थित होने पर उसे छोडने के लिए मजबूर होना पडे तभी, एक कृपण की तरह, अपनी बुरी कमाई के धन को लाचार होकर छोडें—फिर चाहे वह अज्ञान-पूर्वक हो या किसी अन्य भ्रममूलक विचार से हो।

अस्पृश्यता के सम्बन्ध में मुझे यहां इतना इसलिए लिखना पडा कि मुझे "आपको वहां की महासभासमिति के अस्पृश्यता-विषयक आश्वासनों पर विश्वास न रखना चाहिए" इस आशय के कई तार मिले हैं। वे मुझे यह कह रहे हैं कि आन्ध्र अभी अस्पृश्यता को छोडने के लिए तैयार नहीं है। मैं वहां के नेताओं से यह आग्रह करता हूं कि आप इस बात का पूरा खयाल रक्खें। महासभा के आज्ञानुसार आपके कर्तव्य में जरा भी गलती न रहने पावे। उसके बताये हुए सीधे रास्ते को जरा भी छोडने से हम अपने स्वीकृत कार्य में इतनी भयंकर हानि पहुंचावेंगे कि जिसे हम फिर कभी सुधार ही न सकेंगे। अत्यंत पवित्र बलिदान ही परमात्मा को प्रसन्न कर सकता है। ईसाई-धर्म्म तथा इस्लाम के साथ साथ हिन्दू-धर्म की भी परीक्षा का यह समय है। हिन्दू-लोग अपने धर्म और उपनिषदों के झूठे प्रतिनिधि कहे जायंगे; क्योंकि वे तो मनुष्य की योग्यता को छोड कर दूसरे अधिकार को स्वीकार ही नहीं करते और जो बात हृदय तथा बुद्धि को युक्तियुक्त नजर नहीं आती उसे मानते ही नहीं।

आन्ध्र के लोग बहादुर और अपने प्राचीन गौरव के अभिमानी हैं। वे बडे धार्मिक हैं और बलिदान की क्षमता रखते हैं। देश उनसे बहुत भारी उम्मीद रखता है। और मुझे विश्वास है कि वे उसे अवश्य पूरा करेंगे। अगर उन शर्तों का पूरी तरह पालन करने को वे अभी पूर्णतया तैयार न हों तो जरा ठहर जाने में उनकी कुछ भी हानि न होगी। किन्तु अगर वे पूरी तरह तैयार न होने पर भी लडाई छेड बैठेंगे तो अपना सर्वस्व खो बैठेंगे और देश को हानि पहुंचावेंगे।

(यंग इंडिया)　　मोहनदास करमचंद गांधी

जरूर पढिए

"हिन्दी नवजीवन आधे मूल्य में"

इस सूचना के अनुसार हमारे पास कितने ही पत्र आये हैं; परन्तु बहुतेरे लोगों ने उनके साथ प्रमाण-पत्र नहीं भेजे। अतएव हम उन सब महाशयों का तथा अब आगे पत्र भेजनेवाले सज्जनों का ध्यान नीचे लिखी बातों की ओर दिलाते हैं—

१ जो सज्जन प्रमाण-पत्र नहीं भेजेंगे उनके पत्र पर विचार नहीं किया जायगा न उनका कोई उत्तर ही दिया जायगा।

२ जो सज्जन इस रिआयत के इच्छुक हों कृपा करके वे मनीआर्डर के कूपन पर रिआयत का उल्लेख जरूर करें।

३ यह रिआयत व्यक्तियों के लिए है; लायब्रेरियों, सभा-समाजों, विद्यालयों आदि संस्थाओं के लिए नहीं।

४ जब तक इस कार्यालय से प्रार्थना-पत्र की स्वीकृति की सूचना न मिले तबतक कोई सज्जन रुपया भेजने का कष्ट न उठावें। इस बात पर वे विशेष रूप से ध्यान दें।

व्यवस्थापक—"हिन्दी-नवजीवन"

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूडीओल, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित॥

सरकार का जवाब

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका „ २)
एक प्रतिका „ -)।
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—माह सुदी १५, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, १२ फरवरी, १९२२ ई० | अंक २६

जेल में तपस्या

कराची से डाक के जर्ये एक तार आया है। उससे मालूम होता है कि जेल में मौलाना महम्मदअली का वजन ३५ पौंड कम हो गया है। मजिस्ट्रेट और डाक्टर के कहने पर भी उनके कमरे में रोशनी नहीं की जाती। उन्हें मधु-मेह की बीमारी है। इसके लिए डाक्टर की बताई सुविधायें उन्हें पूरी पूरी नहीं मिल रही हैं।

मौलाना शौकतअली, डाक्टर किचलू, मौलवी नासिर अहमद, पीर गुलाम मजदिद को कहा गया कि अपनी जामा तलाशी देनी होगी। इसमें बदन पर एक लंगोटी भर रहने दी जाती है और अपनी बगल और मुंह भी खोल कर दिखाना पड़ता है। उन्होंने इस तरह बे-इज्जत होने से इनकार किया। इस पर जबरदस्ती उनकी जामा तलाशी ली गई और एक महीने तक काल-कोठरी में रहने की सजा दी गई। मौलवी नासिर अहमद की तलाशी नमाज पढ़ते वक्त ली गई। पूर्वोक्त सज्जनों ने जेल के अधिकारियों से कहा कि इस मामले को सरकार तक पहुंचा [illegible] पर उसने इनकार कर दिया। मौलाना शौकतअली का वजन [illegible] पौंड कम होगया है।

इससे यह सिद्ध है कि सरकार की ओर से ऐसा संकेत किया गया होगा, जिससे विवेक के साथ काम करने की नीति के बजाय जेल के कानून-कायदों को सख्ती के साथ बरतने की नीति काम में लाई जा रही है। जरा ख्याल कीजिए, मौलाना शौकतअली या दूसरे उच्च-हृदय पुरुष जेलर के अथवा एक-दूसरे के सामने प्रायः नंगे खड़े रहें और उनकी जामा तलाशी ली जाय—कितनी बेइज्जती! हां, पक्के मुजरिमों की जामा-तलाशी लेना कितना आवश्यक और उपयोगी है, यह तो मैं समझ सकता हूं और जेल के ये मामूली कानून-कायदे उन्हीं लोगों के लिए बनाये भी गये हैं; परन्तु ऐसे लोगों से जो, [illegible]क आन्दोलन की बात छोड़ दीजिए, सभ्य नागरिक माने जाते हैं और जिनमें से कुछ लोग तो विख्यात देश-सेवक समझे जाते हैं, ऐसे कानून-कायदों का पालन जबरदस्ती करवाना सिवा पागलपन के और क्या हो सकता है? ऐसे कैदियों पर इन मौजूदा नियमों का अमल करना असली बात की अवहेलना करना है और आपत्तियों को न्यौता देना है। हां, जेल की मामूली मर्यादा का पालन तो बड़े से बड़े आदमी से भी, जब कि वे जेल में आवें, जरूर कराया जाय और जब वे जान-बूझ कर जेल को स्वीकार करते हैं तब तो और भी अधिक उसका पालन उनसे कराना चाहिए। जेल के जीवन में जो जो कष्ट हैं वे तो उन्हें अवश्य भोगना चाहिए और उसपर उन्हें नाकभौंह न चढ़ाना चाहिए। यदि वे स्वेच्छापूर्वक और खुशी के साथ जेल के अधिकारियों से अदब से पेश न आवें तो यह उनसे जरूर कराया जाय। परन्तु मर्यादा-पालन बे-इज्जती के रूप में न परिणत हो जाना चाहिए। कष्ट, यन्त्रणा का रूप न धारण कर ले और अदब का अर्थ 'पेट के बल चलाना' न हो जाय। और इसलिए अ-सहयोगी कैदियों को चाहिए कि वे, बेड़ियों और हथकड़ियों से, कालकोठरी में रहने से, चाहे कितना ही कष्ट क्यों न हो या चाहे उन्हें गोली ही क्यों न मार दी जाय, 'मर्यादा' के नाम पर भी कभी जेलर के सामने नंगे न हों, जेल के कष्ट के नाम पर मैले, बदबूदार कपड़े हरगिज न पहनें और गंदा या हजम न होने लायक खाना न खावें और इसी तरह 'अदब' के नाम पर हाथ न जोड़ें, दब कर न बैठें और जब कोई जेल अफसर आवे तब अपने मुंह से हरगिज न कहें कि 'सरकार एक है' या 'सरकार सलाम।' और यदि सरकार अब जेलों में हमें आग पर चलाना चाहती हो और हमें झुकाने के लिए शारीरिक कष्ट दे, तो हमें अदब के साथ इस तरह बे-इज्जत होने से इनकार करना चाहिए और ईश्वर पर अपना भरोसा रखना चाहिए कि इस जान-बूझकर की जाने वाली बे-इज्जती का मुकाबला करने और उसके बदले में मिलनेवाली शारीरिक यातनाओं को सहन करने का बल वह दे। अच्छा है, वीर अली-भाइयों और उनके साथियों को कराची जेल की शुद्धि करने दीजिए। स्वाभिमानी सिंधी अध्यापक किपलानी काशी के कैदखाने को पवित्र करें। मुझे मालूम हुआ है कि बनारस जेल में असहयोगी कैदियों की ऐसी बेइज्जती की जा रही है जिसे जबान बयान नहीं कर सकती और अध्यापक किपलानी तथा उनके विद्यार्थियों के लिए, जो कि बनारस जेल में सजा भोग रहे हैं, उसका सामना करना असम्भव हो गया है। यह बात समझ में नहीं आती कि संयुक्तप्रान्त में जहां कि राजनैतिक कैदियों के साथ सरकार का बर्ताव आदर्श-रूप माना जाता है, एक ओर सामान्य

और लखनऊ में तो वैसा ही है जैसा कि होना चाहिए, परन्तु दूसरी ओर बनारस में तथा अन्यत्र उसके विपरीत हो। क्या इसका यह अर्थ है कि स्थानीय अधिकारी बस के बाहर हो गये हैं और बाला अफसरों के हुक्म की परवाह नहीं करते तथा खुद ही कानून बन बैठे हैं? इन घटनाओं से लोग इस बात का अनुमान कर लें कि भारत की जेलों में अपराधी लोग किस तरह कष्ट भोगते होंगे, जिनका पता हमें नहीं है। मैं यह नहीं मानता कि केवल राजनैतिक कैदियों के साथ ही ऐसा व्यवहार किया जाता है। बल्कि, इसके खिलाफ, मेरी तो यह धारणा है कि सच्चे मुजरिमों के साथ तो और भी बुरा बर्ताव किया जाता है; क्योंकि वे तो जेलों में आसानी से दबा दिये जा सकते हैं। जेलर और वार्डर तो प्रायः बे-जवाबदेह होते हैं। वे मनमानी करते हैं और अपराधियों के साथ बडी निर्दयता से व्यवहार करते हैं। हम लोगों को, जिन्होंने कि आजतक अपने अज्ञान अथवा स्वार्थ के वश इस शासन-प्रणाली को सहायता पहुंचाई है जिसमें कि एक मुट्ठी भर लोगों ने लाखों मनुष्यों को अपना गुलाम बना रक्खा है, उस जगत्कर्ता के सामने उन तमाम भीषण कार्यों के लिए-वे दुष्कृत्य जो दिन-दहाडे नहीं किये गये हैं और यदि आज इतने असहयोगियों का बलिदान न हुआ होता तो जिनका हाल किसी को न मालूम हो पाता-जवाब देना होगा, जो कहने को तो कानून और शान्ति के नाम पर, परन्तु वास्तव में इन मुट्ठीभर लोगों के स्वार्थ के लिए, मनुष्य-जाति के खिलाफ किये गयें हैं।

अस्तु; जैसा कुछ सलूक हो, होता रहे। जो लोग जेलों के बाहर हैं उनका कर्तव्य स्पष्ट है। हमें इससे बिगड न उठना चाहिए और जल्दी में अथवा गलती से कोई काम न कर बैठना चाहिए। हमें ऐसी शासन प्रणाली से काम पड गया है जो सड गई है और उसमें से मवाद बह रहा है और उसने सारी मनुष्य जाति, क्या अंगरेज और क्या भारतीय, को नीचे गिरा दिया है। हम तो सचमुच रोग का इलाज कर रहे हैं। मैं यह नहीं मानता कि अंगरेज या हिन्दुस्तानी दोनों में से कोई भी बुद्धि-पूर्वक ऐसे पैशाचिक कार्य करते हैं। बल्कि, इसके विपरीत, मुझे तो विश्वास है कि वे जानते ही नहीं हैं कि हम क्या कर रहे हैं। यह तो निश्चित है कि वे यह ख्याल नहीं करते हैं कि हम कोई बुरा काम कर रहे हैं। और यह भी बहुत मुमकिन है कि बहुत से लोग यह भी सोचते हों कि बाज मौके पर इस तरह भय दिखाना भी सदय व्यवहार का ही एक अंग है, जैसे कि हम में से कितने ही लोग अधीर हो कर मामूली व्यवहारों में ऐसी ऐसी बातें कर बैठते हैं जिनका समर्थन हम 'आवश्यकता' के नाम के सिवा, जो कि सत्य का आभास-मात्र है, दूसरी तरह नहीं कर सकते।

इतना लिख चुकने पर मालूम हुआ कि अली-भाइयों की जामा तलाशी जबरदस्ती ली गई और उन्हें कालकोठरी की सजा दी गई। जो शख्स वहां तैनात है वह उनके साथ बुरी तरह पेश आता है। यदि यह सब सच हुआ तो मुझे अत्यन्त दुःख होगा। यह समझा जाता था कि सरकार नामी नामी देश-सेवकों के साथ जेलों में पूर्ण भलमन्सी का बर्ताव करेगी और वहां किसी तरह उनका अपमान न किया जायगा। पर यदि अली-भाइयों के प्रति किये गये दुर्व्यवहार की बात सच निकले तो इसका फल-स्वरूप यदि सरकार के खिलाफ उग्र से उग्र आन्दोलन खडा हो जाय तो सरकार को इसके लिए खुद अपने को ही धन्यवाद देना होगा।

मालूम होता है कि ईश्वर असहयोगियों की पूरी पूरी परीक्षा कर लेना चाहता है। मैं जानता हूं कि अली-भाई बडे बहादुर हैं और, वे इस अग्नि-परीक्षा में अटल रहेंगे और बे-दाग निकलेंगे। कराची में जितने कैदी हैं वे सब चुनीदा लोग हैं और अपना निपटारा आप करने का सामर्थ्य रखते हैं। तोभी अली-भाइयों, डा॰ किचलू, पीर गुलाम मजदिद तथा दूसरे सज्जनों का जो अपमान किया जा रहा है उससे लोगों का दिल दहले बिना न रहेगा। परन्तु इस सब निरर्थक सन्ताप और उत्तेजना के होते हुए भी हमें संयम से काम लेना चाहिए। हमारी मुक्ति तो आखिरकार हमारी प्रतिज्ञा के पूर्ण पालन पर ही अवलम्बित है। यदि हमको इस बात से दुःख होता हो तो हम और भी अधिक शान्ति-परायण हों, कम नहीं; सविनय कानून-भंग में अपनी शक्ति अधिक एकाग्र करें, सविनय भंग के लिए आवश्यक शर्तों की पूर्ति करने में जरा भी देर न लगावें। हिन्दू-मुसल्मान तथा दूसरी जातियां परस्पर अधिक एक हो जायं, अब भी जो कुछ विलायती कपडे हमारे पास हों उन्हें त्याग दें, अधिक खादी बुनने और चरखा कातने में लग जायं। व्यर्थ के लिए झलाने और बक-झक करने में हमारा एक मिनट भी न जाना चाहिए। हमारी प्रगति तो अपने कार्यक्रम के अनुसार चुपचाप काम करने पर अवलम्बित है। जो लोग जेल में हैं उनके साथ होने वाले दुर्व्यवहार पर हमें हैरान और परेशान न होना चाहिए। व्यवहार के सम्बन्ध में सरकार ने हमसे कोई शर्त नहीं कर ली है। हमने तो बिना किसी शर्त के अपने शरीर उसके अर्पण कर दिये हैं-वह चाहे तो उनके टुकडे टुकडे कर डाले और यदि ईश्वर हमें शक्ति दें तो, हम सी तक न करें। चाहे जो हो जाय, पर हमें अपने आपे से बाहर न होना चाहिए। ('यंगइन्डिया')

लालाजी फिर पकडे गये

पंजाब सरकार इतना-सा पश्चात्ताप भी खूबी के साथ न कर सकी। उसे यह सलाह दी गई कि जिस जज ने लालाजी तथा उनके साथियों को सजा दी है उसने कानून की मंशा नहीं समझी थी। इसलिए सरकार को उन्हें छोड देने पर मजबूर होना पडा। पर सब लोग एक ही साथ नहीं छोडे गये, बल्कि अलग अलग और कुछ तो आधी रात को छोडे गये। परन्तु यही कोई भारी बे-खूबी की बात नहीं हुई। मुक्ति पाते ही लालाजी फिर गिरफ्तार कर लिये गये। सरकार के इस कार्य से प्रकट होता है कि वह पश्चात्ताप करने की अपेक्षा बदला लेने पर ही अधिक तुली हुई है। छोडे बिना तो उसका चारा ही नहीं था और न वह अपनी क्षुद्रता से ही बाज आ सकती थी। वह लालाजी को एक पल के लिए भी आजाद रखना नहीं चाहती थी सो उसने उन्हें फिर से पकड लिया। अभी वे मुल्जिम की हैसियत में है। तोभी उनके रिश्तेदार लोग, यहांतक कि उनका लडका भी, उनसे मिलने नहीं दिया गया। यदि लालाजी समन के जर्ये तलब किये जाते तो वे 'न्याय' से वंचित नहीं रह सकते थे। सरकार इस बात को जानती थी। पर ऐसी स्वाभाविक और शिष्ट कार्रवाई पंजाब-सरकार के लिए बहुत सीधी-सादी कार्रवाई न हो जाती? मैं लालाजी को उनकी दुबार गिरफ्तारी पर बधाई देता हूं और पंडित संतानम्, मलिक लालखां और डा. गोपीचन्द के साथ, उनकी समय से पहले हुई मुक्ति पर, सहानुभूति प्रकट करता हूं। (यं. इं.)

चक्कर में

उस दिन बंगाल की धारा-सभा की बैठक में एक प्रस्ताव इस आशय का पेश हुआ था कि सरकार अपने तमाम दमनकारी नोटिसों को उठा ले और उनकी रू से जितने लोग कैद किये गये हैं उन्हें छोड़ दे। इस प्रस्ताव पर बहस होते समय सर हेनरी व्हीलर ने कहा, यह तो 'अत्यन्त अवास्तव बात है।' ऐसा कह कर सर हेनरी व्हीलर ने हमें बंगाल-सरकार की और इसलिए भारत-सरकार की भी स्थिति का वर्णन करने के लिए बहुत मौजू साधन दे दिया है। वे खुद तो शायद ही यह बात जानते होंगे कि बंगाल में क्या हो रहा है; हां, उनके मातहत लोग जो कुछ खबरें उनतक पहुंचा देना पसन्द करते हैं उतनी ही बातें चाहे वे भले ही जान पाते हों। ऐसों के खयाल में चाहे धारा-सभा की वह चर्चा 'अत्यन्त अवास्तव बात' हो। परन्तु उन पचास सभासदों को तो स्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञान था। वे सर हेनरी की वक्तृता से कैसे गुमराह हो सकते थे? उनकी दृष्टि में तो बंगाल-सरकार ने जो गति-विधि अख्त्यार की है वही 'अत्यन्त अवास्तव बात' है। सर हेनरी व्हीलर ने देश में जिस बे-आईनी के होने का वर्णन किया है वह उनकी कल्पना-सृष्टि में भले ही हो। पर सभासदों की राय में तो बंगाल में दर-असल जो कुछ हो रहा था उसके लिए बंगाल सरकार को उन उपायों से काम लेने की आवश्यकता नहीं थी। वे लोग जानते थे कि बंगाल में जो बे-आईनी कही जाती है वह मर्यादाबद्ध, सविनय और शान्तिमय थी तथा खुद नौकरशाही के ही अविचार-पूर्ण कृत्यों ने उसकी आवश्यकता उत्पन्न कर दी है। सर हेनरी व्हीलर सभासदों को यह न समझा पाये कि देशबन्धु चित्तरंजन दास, मौलाना अबुल कलाम आजाद, बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती और नये शिकार बाबू हरदयाल नाग, बंगाल प्रान्तीय समिति के वृद्ध सभापति, का कोई दुष्ट हेतु था। इन विश्वस्त नेताओं के तथा कितने ही बे-गुनाह कार्यकर्ताओं के कैद किये जानेका चित्र उनके दिमाग में था। इससे सर हेनरी व्हीलर ने स्थिति का जो डरावना खाका खींचा वह सभासदों को उतना ही अवास्तव दिखाई दिया जितना कि शायद वह था और न वह उन्हें भयभीत ही कर सका जिससे वे उस प्रस्ताव को नामंजूर कर देते। राय जाहिर करने की आजादी के लिए बंगाल-धारासभा के इन सदस्यों ने जो साहस दिखलाया है उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। क्योंकि जिस बे-आईनी की शिकायत सर हेनरी व्हीलर ने की है वह और कुछ नहीं, सरकार के मनाई हुक्मों का अनादर करते हुए भाषण-स्वातन्त्र्य और संघ-स्वातन्त्र्य के अपने हक के अनुसार व्यवहार करने का आग्रह है।

शान्तिमय सभाओं को बल-पूर्वक भंग कर देना, महासभा और खिलाफतवादी समाचार-पत्रों की तलाशियां लेना और चीजों को जबरदस्ती उठा ले जाना, तथा सर्वसाधारण पर आक्रमण करना और मार-पीट करना ये बातें सभासदों के लिए तो इतनी भयंकर सत्य थीं कि उस प्रस्ताव का समर्थन करने के सिवा उनका कोई चारा ही नहीं था। फिर यह बात ध्यान देने योग्य है कि सर हेनरी व्हीलर ने उस प्रस्ताव में जो तरमीम पेश की थी वह किसी तरह ऐसी नहीं थी जिसपर कोई समझौता न हो सकता था। उन्होंने एक गैर-सरकारी कमिटी की तजवीज करना चाहा था, जो इस मामले का निपटारा कर दे, परन्तु सभासदों ने इस समझौते से बिलकुल मुंह मोड़ लिया और यह उन्होंने ठीक ही किया। वे इस बात के लिए तैयार नहीं थे कि उनकी बुद्धि और ज्ञान जो गवाही दे रहे हैं उसकी नाप-जोख कोई कमिटी करे। अब बंगाल-सरकार जरूर चक्कर में पड़ गई होगी। यदि वह उन निरपराध कैदियों को छोड़ती है और अपने बहुमोल नोटिसों को उठाती है तो महासभा और खिलाफत समितियां दूने वेग से अपना काम बढ़ाये बिना मानेंगी नहीं। यदि वह उस प्रस्ताव के अनुसार कार्य करने से इनकार करती है तो वह कितने ही नरमदल वालों की सहायता से विमुख रहे बिना न रहेगी। हां, निस्सन्देह वह उनकी सहायता के बिना भी रह सकती है, जैसी कि बरसों से आज तक रहती चली आई है। पर वह जरूर जानती होगी कि भारत में नवीन युग का अरुणोदय हो चुका है। लोग अब दमन को किसी तरह सहन नहीं कर सकते। अब उन्हें दिन पर दिन अपने बल और सामर्थ्य का अधिकाधिक ज्ञान होता जाता है। कष्टसहन के वे अधिकाधिक आदी होते जा रहे हैं। दुनिया में कोई सरकार ऐसी नहीं है जो दमन के द्वारा उन लोगों को झुका सके जो कष्ट-सहन की शक्ति और इच्छा रखते हैं।

जो बात बंगाल में हुई वही बिहार में भी हुई। बिहार की धारा-सभा ने भी साफ साफ बातें कहीं। संयुक्तप्रान्त की धारा-सभा ने समझौता कर लिया। पर वहां भी सरकार का पक्ष गिरा ही है। भारत के प्रायः कोने कोने से रोमांचकारी दमन की इतनी खबरें आ रही हैं कि उन सब के लिए मेरे पत्रों में स्थान ही नहीं रहता। अब बात केवल जेल और कैद तक ही नहीं रही है। यह तो दमनकारी कानूनों की भी बड़ी लज्जाजनक अवहेलना और तोड़-मरोड़ हो रही है।

सर हेनरी व्हीलर ने हमें एक और भी अच्छा भाव प्रकट करने का साधन दे दिया है—"शब्दों और पदों का जुल्म"। 'दमन' शब्द को सुनकर वे चौंक उठना नहीं चाहते। वे फरमाते हैं कि कानून तो सभी दमनकारी हैं। लोग इस शब्द को सुनकर भयभीत न हों। बल्कि उन्हें असलियत पर ध्यान देना चाहिए। तो, आइए, हम असलियत का ही मुकाबला करें और "कानून और शान्ति" इस पद के अत्याचार की नस को परखें। सर होरमसजी वाडिया ने मालवीय परिषद् में प्रभावशाली शब्दों में कहा था कि "कानून और शान्ति" के पवित्र नाम पर फ्रान्स में बोरबन्स के जमाने में (फ्रान्स-राज्यक्रान्ति के समय) और दूसरी जगह भी कितने ही कृष्ण कृत्य किये गये हैं। यदि हम इन दो शब्दों के मोहन मन्त्र से अपना पीछा छुड़ा लें तो हमें पता लगेगा कि इस 'कानून और शान्ति' के रक्षकों ने अपनी करतूतों के द्वारा भारत के जान और माल को अरक्षित कर दिया है। अब लोग और यहांतक कि धारासभा के सभासद भी, 'शब्दों और पदों के अत्याचार' में रहना नहीं चाहते और न सरकार की अत्यन्त अवास्तविक स्थिति से धोखा ही खा जाना चाहते हैं। यह समय की महिमा है। यह असहयोग इस समस्या को हल करने का बड़ा तेज साधन है। और हम शीघ्र ही देखेंगे कि सरकार और प्रजा दोनों आशापूर्ण वास्तविक बातों के साथ परस्पर गले मिल रहे हैं और उन अत्यन्त अवास्तविक बातों के झमेले से मुक्त हो गये हैं जिनमें दोनों आज तक फंसे हुए हैं।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

१) न भेजें

"हिन्दी नवजीवन" के प्रेमियों से निवेदन है कि वे चन्दे में १) न भेजा करें-२ या ४) भेजा करें।

व्यवस्थापक

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, माह सुदी १५, सं. १९७८.

सरकार का जवाब

बसीठी-पत्र का उत्तर सरकार ने दे दिया । उसे पढकर दुःख होता है । क्योंकि वह बेशर्मी से भरा हुआ है । उसमें न तो कहीं पश्चात्ताप दिखाई देता है और न कहीं अपनी भूलों की स्वीकृति । बल्कि अथ से इति तक सरकार ने उसमें अपने को निर्दोष बताया है और असहयोगियों को ही दोषी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है ।

इस उत्तर को पढने के बाद मेरे दिल में दो विचार उठे—या तो जान-बूझकर इसमें झूठी बातें लिखी गई हैं या उत्तर का मसविदा बनाने वालों और अधिकारियों पर सरकार का इतना अधिक विश्वास है कि वह इस बात को मानती ही नहीं कि वे लोग कभी भूल कर सकते हैं । मनुष्य-जाति के सम्मान के खातिर मैंने पहले विचार को छोड दिया और दूसरे को कायम रखता हूं ।

दोनों बातें भयंकर हैं । जान-बूझकर झूठ बोलना और करना अथवा अपने दोष को देख ही न पाना और इसी भ्रम में रहना कि मैं तो बेदाग हूं, इन दोनों दोषों से मनुष्य को बचना चाहिए ।

मैं दूसरे दोष को मानता हूं; क्योंकि मैं समझता हूं कि मनुष्य अनजान में बहुत भूलें करता है । असहयोगी जैसे अपनी भूलें नहीं देख पाते हैं वैसे ही सरकार के सम्बन्ध में भी हम क्यों न खयाल करें ? हमारा धर्म तो यह है कि हम अपने दोषों को देखने के लिए सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र से काम लें और दूसरों के दोष दूरबीन के द्वारा देखें । केवल उसी अवस्था में हम बडे प्रयास के बाद अपने दोष देख सकते हैं । जो नर-नारी या समाज इस नीति के अनुसार व्यवहार करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं । जो अपने दोषों को पर्वत के बराबर मानता है उसे दूसरों की भूलें खोजने के लिए बहुत कम समय रहता है । सो फिर तो मनुष्य को स्वयं अपने ही दोषों से दुखी होना रह गया । और दुखी होने की इच्छा तो वह स्वभावतः ही नहीं करता । इससे वह अपने पहाड जैसे दिखाई देने वाले दोषों को जल्दी दूर कर डालता है ।

मैं इसी नियम का अनुसरण करना चाहता हूं और सरकार के दोष देखने के लिए आंखों के सामने दूरबीन रख लेना चाहता हूं । दूरबीन की एक खूबी पाठकों को याद रखना चाहिए । दूरबीन हमें केवल दूर की ही वस्तुओं को, सो भी छोटे ही रूपमें, दिखाता है; और नजदीक की चीजें तो उससे दिखाई ही नहीं देतीं । मुझे याद है कि मैंने सरकार की छोटी छोटी भूलों पर तो ध्यान ही नहीं दिया है । पर अब तो सरकार ने हद कर दी । उस उत्तर में सरकार ने अपनी कितनी ही भूलों को गुण के रूप में दिखाया है । और जिन भूलों को गुण नहीं बताया जा सकता उनको वह हजम कर गई है । सभाबन्दी और जबानबन्दी के जो नोटिस इजरा किये गये हैं उनके विषय में वह लिखती है कि यह बन्दी तो असहयोगियों की बदमाशी के लिए करनी पडी है । पर सच बात यह है कि ऐसा एक भी सुबूत सरकार ने पेश नहीं किया है जिससे इस मनाई की आवश्यकता सिद्ध हो । परन्तु इस मनाई के लिए तो कुछ दलील मिल सकती थी; इसलिए सरकार ने गुण के रूप में उसका परिचय कराया । परन्तु लूट-पाट का, मार-पीट का, खादी जला देने का, महासभा के दफ्तरों में चढाई करने का बचाव किस तरह किया जा सकता है ? लोग जी चाहे सो गुनाह करते रहें; पर इससे क्या सरकारी कर्मचारी भी कानून के खिलाफ लूट या मार-पीट कर सकते हैं ? इसलिए इस बात को सरकार ने टाल ही दिया है । इसी तरह उत्तर में दूसरी गम्भीर बातों के विषय में अत्युक्ति अथवा मौन की नीति का अवलम्बन किया गया है । उनकी छानबीन में मैं पाठकों को उलझाना नहीं चाहता । उत्तर तो मिलने ही वाला था । मेरा यह भी खयाल था कि उसमें कोई भारी बात न होगी । परन्तु जो बेशर्मी उसमें मुझे दिखाई देती है उसके लिए मैं तैयार नहीं था । मैं यह सोचता था कि उसमें नरम दल को कुछ तो शान्ति दी जायगी; पर वे सूखे ही रक्खे गये और असहयोगियों के लिए तो जो बात पहले से चली आ रही है वह हुई है । सरकार की अस्पृश्यता के सम्बन्ध में समझदार आदमी के लिए इस उत्तर से बढकर और क्या प्रमाण हो सकता है ?

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

श्री गांधीजी का प्रत्युत्तर

सरकार के पूर्वोक्त पत्र का नीचे लिखा प्रत्युत्तर श्री गांधीजी ने प्रकाशित किया है—

श्रीमान् वाइसराय के नाम मेरे लिखे पत्र का जो उत्तर सरकार ने दिया है उसे मैंने बडे गौर के साथ पढा है । इस उत्तर में असली बातों के सम्बन्ध में जो काला-काला बताया गया है उसके लिए मैं तैयार नहीं था । सरकार ने जिन जिन बातों का इनकार किया है उनमें से पहली ही बात को मैं लेता हूं । सरकार उत्तर में कहती है " वह (सरकार) जोर के साथ इस बात का इनकार करती है कि उसने बे-कानूनी दमन-नीति का अवलम्बन किया है और वह इस बात को भी नामंजूर करती है कि वर्तमान सविनय कानून-भंग का आन्दोलन असहयोग दल को लेखन-स्वातन्त्र्य, भाषण-स्वातन्त्र्य और संघ-स्वातन्त्र्य के प्रारम्भिक हकों की प्राप्ति के लिए मजबूरन् उठाना पडा । " मेरे पत्र को सरसरी तौर पर ही देखने से यह मालूम हो जाता है कि यद्यपि देहली में महासमिति ने सविनय कानून-भंग की सत्ता दे दी थी तो भी वह शुरू नहीं हुआ था । मैंने अपने पत्र में यह बात भी साफ साफ प्रकट कर दी थी कि बम्बई की दुःखप्रद दुर्घटना के कारण प्रस्तावित सामुदायिक सविनय-कानून भंग अनिश्चित समय तक स्थगित कर दिया गया था । वह निर्णय यथासमय प्रकाशित कर दिया गया था और सरकार तथा जनता दोनों को यह बात मालूम है कि अब भी लोगों में जो कुछ हिंसा की प्रवृत्ति बाकी रह गई है उसको [illegible] के लिए अनिरुद्ध प्रयत्न किया जा रहा था । यह बात भी सरकार और जनता दोनों को मालूम है कि स्वयंसेवकों से एक खास किस्म के प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत कराये जाने की तजवीज की गई है, जिसका उद्देश यही है कि शुद्ध चरित्र लोग ही भरती होने पावें—दूसरे सब लोग अलग रह जायं । इस स्वयं-सेवक-दल का मूल उद्देश यह था कि वह जनता को अहिंसा के सिद्धान्त की शिक्षा दे और असहयोग के कार्यों के समय शान्ति कायम रक्खे । दुर्भाग्यवश बम्बई की दुर्घटना पर, [illegible] उससे भी अधिक [illegible] उसी दिन की कलकत्तेवाली पूर्ण हडताल पर, भारत-सरकार अपने आपे से बाहर हो गई । मैं इस बात से इनकार नहीं करता

कि कलकत्ते में थोड़ा-बहुत डराने-धमकाने की नीति से काम लिया गया होगा; परन्तु मैं यह कहने की धृष्टता करता हूं कि, इस डराने धमकाने की वजह से नहीं, बल्कि कलकत्ते की पूर्ण हड़ताल से उत्पन्न सन्ताप के बदौलत भारत-सरकार और बंगाल-सरकार का दिमाग खौल उठा। दमन तो इसके भी पहले से शुरू था ही; पर उसके खिलाफ न तो कुछ कहा ही जाता था और न कुछ लिखा ही जाता था। परन्तु स्वयंसेवक दल के विच्छेद और सभाबन्दीके नोटिसों के रूप में जो दमन शुरू हुआ वह तो असहयोगी समाज में बम के गोले की तरह फट पड़ा। तब भी, मैं फिर कहता हूं कि इन नोटिसों ने तथा बंगाल में देशबन्धु दास, मौलाना अबुल कलाम आजाद, संयुक्त प्रान्त में पंडित मोतीलाल नेहरू तथा उनके साथी और पंजाब में लाला लाजपतराय तथा दूसरे सज्जन इनकी गिरफ्तारियों ने यह आवश्यकता पैदा कर दी कि आक्रामक तो अभी नहीं, पर बचाव के स्वरूप का सविनय भंग अर्थात् निष्क्रिय प्रतिरोध शुरू किया जाय। यहां तक कि सर होरमसजी वाडिया को भी यह कहना पड़ा कि यदि बम्बई की सरकार ने भी बंगाल, संयुक्तप्रान्त और पंजाब की सरकार का पदानुसरण किया तो मुझे ऐसी आज्ञाओं का अवश्य प्रतिकार करना पड़ेगा अर्थात् अपना नाम स्वयंसेवकों में लिखावेंगे या सरकार की ऐसी आज्ञा को भंग करने के लिए जो सभायें की जायंगी उनमें सम्मिलित होंगे। इस तरह, यदि सरकार अपनी इस नीति को न बदले, जिसके बदौलत भारत के कितने ही भागों में सार्वजनिक सभायें, सार्वजनिक संस्थायें तथा असहयोगी अखबार बन्द हो गये हैं, तो सविनय कानून-भंग की बुनियाद पूरी तरह तैयार हो चुकी है।

अब इस कथन पर विचार करता हूं कि सरकार ने "बे-कानूनी दमन-नीति अख्त्यार नहीं की है।" 'कानून और शान्ति' के नाम पर सरकारी अधिकारियों द्वारा होनेवाले जंगली कामों पर अफसोस प्रकट करने या क्षमा मांगने के बजाय, खेद है कि, सरकार अपने उत्तर में बे-कानूनी दमन का स्पष्ट इनकार करती है। इस सम्बन्ध में मैं सरकार और जनता दोनों से आग्रह करता हूं कि वे नीचे लिखी बातों पर गौर के साथ विचार करें, जिनकी सारभूत बातों पर कोई सवाल नहीं उठाया जा सकता—

(१) कलकत्ते में इनसली मुकाम पर सरकारी अधिकारियों का गोली चलाना और यहांतक कि मुर्दे के साथ भी घृणित बरताव करना;

(२) सिविल गार्डस के पाशविक अत्याचार, जो स्वीकार किये जा चुके हैं;

(३) ढाका में एक सभा का बलपूर्वक भंग किया जाना और बेगुनाह लोगों का टांग पकड़ कर खींचा जाना, यद्यपि उन्होंने किसी को हानि नहीं पहुंचाई थी और न उसके कारण ही पैदा किये थे

(४) इसी प्रकार का सलूक अलीगढ़ के स्वयंसेवकों के साथ किया जाना;

(५) लाहौर में सर्वसाधारण पर तथा स्वयंसेवकों पर जो पाशविक और अकारण आक्रमण किया गया या उसके सम्बन्ध में डाक्टर गोकुलचन्द नारंग की अध्यक्षता में हुई कमिटी की तहकीकात का फल;

(६) जालन्धर में स्वयंसेवकों तथा सर्वसाधारण के साथ निर्दय और दुष्ट व्यवहार किया जाना;

(७) देहरादून में एक बालक पर गोली चलाया जाना और बेरहमी के साथ सार्वजनिक सभा को बलपूर्वक भंग कर देना;

(८) एक अफसर का और उसके सिपाहियों का बिना किसी की इजाजत के बिहार के गांवों को लूट लेना, जिसे बिहार की सरकार ने कुबूल किया है, मगर जिसके सम्बन्ध में असहयोगी कहते हैं कि एक लैटर के इशारे पर किया गया, तथा सोनपुर में महासभा की खादी तथा कागजों को जला डालना और स्वयंसेवकों पर हमला करना;

(९) महासभा और खिलाफत के दफ्तरों में आधी रात को तलाशी लेना और गिरफ्तारी करना।

सरकारी अधिकारियों की बे-कानूनी और जंगली करतूतों के ऐसे कितने ही 'अचूक सबूत' हैं। यहां तो उनमें से कुछ ही पेश किये गये हैं। यह तो उन सब बातों का दसवां हिस्सा भी नहीं है जो कि सारे भारत में हो रहा है, और मैं यह बिना किसी खंडन की आशंका के बताना चाहता हूं कि भारत के इन सब भिन्न भिन्न प्रान्तों में जो बे-कानूनी करतूतें हो रही हैं वे यदि हम जालियांवाला बाग के हत्याकांड और पेट के बल चलने के हुक्मों की बात मानें तो पंजाब के अमानुष अत्याचारों को भी फीका कर देती हैं। यह मेरा निश्चित विश्वास है कि पूर्वोक्त गंदे व्यवहार के मुकाबले में तो जालियांवाला बाग का हत्याकांड स्वच्छ व्यवहार था और इसमें भी दुःख और तरस की बात यह है कि चूंकि इस वक्त लोगों पर गोलियां नहीं झाड़ी जा रही हैं और उनकी गर्दनें नहीं मारी जा रही हैं, ये हजारों निरपराध मनुष्यों की यन्त्रणायें हमारे दिल को हिला नहीं पातीं जिससे देश का हर आदमी इस सरकार के खिलाफ उठ खड़ा हो। परन्तु मानों इन बे-गुनाहों के साथ पुकारा गया यह जंग काफी नहीं था, जेलों में भी बागडोर खींची जा रही है। हम कुछ नहीं जानते कि आज करांची जेल में क्या हो रहा है, साबरमती जेल में उस अकेले कैदी का क्या हाल हो रहा है और बनारस जेल में एक दल पर क्या बीत रही है। ये सब लोग उतने ही बे-गुनाह होने का दावा रखते हैं जितना कि मैं रखता हूं। उनका जुर्म यही है कि उन्होंने अपनेको अपने राष्ट्रीय सम्मान और गौरव का ट्रस्टी बनाया। मैं आशा कर रहा हूं कि वे स्वाभिमानी और तेजस्वी आत्मायें अधिकारियों का स्वांग बनाने वाले इन गुस्ताख लोगों के आगे झुक न जायंगी। मैं कहता हूं कि इन सत्ताधारियों को कोई हक नहीं है कि वे इन उच्च आत्माओं को अपने सामने प्रायः नंगा हाजिर होने पर मजबूर करें, या किसी गुलाम की तरह हाथ जोड़ कर सलाम करावें या यह कह कर कि 'सरकार एक है' अपना अदब करावें। ईश्वर से डरने वाला कोई भी शख्स यह दूसरा काम नहीं करेगा; फिर चाहे उसे काठ में लगा कर कितने ही दिनों तक चौबीसों घंटे क्यों न खड़ा किया जाय, जैसे कि बंगाल के एक स्कूल मास्टर के विषय में खबर आई है।

मनुष्य-जाति के गौरव की रक्षा के लिए, मैं यह अभियोग करता हूं कि लार्ड रीडिंग और उनके पत्र का मसविदा बनाने वाले उन बातों को नहीं जानते हैं जिन्हें मैंने उपस्थित किया है; या वे इस बात के कायल हैं कि हमारे कर्मचारी तो गलती करते ही नहीं, और इसलिए वे उन बातों को मानने से इनकार करते हैं जिन्हें लोग 'ईश्वरीय सत्य' मानते हैं। यदि मेरी इन बातों में जरा भी अत्युक्ति हो तो मैं उन्हें सब के सामने उसी तरह वापस ले लूंगा और क्षमा याचना करूंगा जिस प्रकार कि आज मैं उन्हें कह रहा हूं। परन्तु मैं तो इन हरएक इल्जाम की मुख्य मुख्य बातों को, न कि प्रत्येक अक्षर को, किसी भी ऐसे न्यायाधीशों के सामने जिनसे सरकार का कोई सरोकार न हो, सिद्ध करने के लिए

तैयार हूं। मैं श्री मालवीयजी तथा उन दूसरे सज्जनों से जो कि सर्वपक्षीय परिषद् के लिए कोरा प्रयत्न कर रहे हैं, अनुरोध करता हूं कि वे इन आरोपों की जांच के लिए एक निष्पक्ष कमीशन बैठावें जिसके निर्णय के अनुसार मेरी हार या जीत हो।

मनुष्य-जाति के साथ यह जो पाशविक दुर्व्यवहार-शारीरिक कष्ट-किया जा रहा है, इसीके कारण मुझे तथा मेरे कितने ही साथियों को जीवन धारण किये रहना भी कठिन हो गया है और इन बातों के होते हुए मैं सर्व-साधारण का समय उन बातों की तफसील में नहीं खर्च करना चाहता जिनसे मेरा अभिप्राय है देश के साधारण कानून का दुरुपयोग। परन्तु बम्बई के दंगे के सम्बन्ध में लोगों का एक गलत खयाल हो जाने की सम्भावना है अतएव उसका संशोधन किये बिना नहीं रह सकता। हां, वह घटना लज्जाजनक और निन्दनीय तो थी ही; परन्तु यह याद रखना चाहिए कि जिन ५३ आदमियों की जानें उसमें गई हैं उनमें से ४५ से अधिक आदमी असहयोगी या उनसे सहानुभूति रखने वाले हुल्लड़बाज थे और जिन ४०० आदमियों को चोटें पहुंची हैं उनमें १५० से ऊपर आदमी इसी जमात के थे। मैं शिकायत नहीं करता। उन असहयोगियों की तथा उनके हिमायती हुल्लड़बाजों की वही गत हुई जिसके लायक कि वे थे। उन्होंने हिंसाकाण्ड शुरू किया-उसका फल उन्होंने पाया। और यह बात भी भूल न जाना चाहिए कि, बम्बई सरकार की राय के खिलाफ, असहयोगी लोगों ने ही सहयोगी और निष्पक्ष दल के लोगों की समुचित सहायता से, उस गोलमाल को ठंढा करके शान्ति स्थापित की थी।

सरकार यह आरोप करती है कि "क्रिमिनिल ला अमेंडमेंट एक्ट सिर्फ उन्हीं संस्थाओं पर लागू किया गया है जिनके बहु संख्यक सभासद स्वभावतः हिंसा-कार्य करते और डराते-धमकाते थे।" यह आरोप असत्य है। भारत के जेलखानों में आज कुछ लोग तो ऐसे हैं जिन्होंने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा है और शायद ही कोई ऐसा शख्स हो जिसने हिंसा-वृत्ति का या डराने-धमकाने की नीति का अवलम्बन किया हो और जिनको उस कानून की रू से सजा दी गई हो। इस कथन को प्रमाणित करने के लिए अनेक सबूत दिये जा सकते हैं और इस बात के लिए भी कि प्रायः जहां जहां सभायें भंग की गई हैं वहां हिंसा-काण्ड होने का कोई डर नहीं था।

भारत-सरकार इस बात को अस्वीकार करती है कि अली-भाइयों की माफी पर वाइसराय ने यह सभ्य नीति अख्त्यार की थी कि जबतक अ-सहयोग आन्दोलन शान्तिमय बना रहेगा तबतक सरकार उसमें दखल न देगी। सरकार की इस अस्वीकृति पर मुझे हद दर्जे का दुःख हो रहा है। सरकार ने अपने उत्तर में उस कम्यूनिक का जो अंश उद्धृत किया है वही मेरी राय में इस बात का काफी प्रमाण है कि सरकार ऐसी हलचलों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहती थी। सरकार उससे यह अनुमान कर लेने देना नहीं चाहती थी कि "वे भाषण जिनसे राजद्रोह फैलता हो और हिंसा की प्रेरणा कम होती हो कानून के अनुसार गुनाह में दाखिल नहीं हो सकते।" मैंने यह कभी नहीं कहा कि किसी भी कानून का भंग करना कानून की रू से गुनाह नहीं है। बल्कि मैंने तो यह कहा है, और अब भी कहता हूं, कि उस समय सरकार का यह विचार नहीं था कि शान्तिमय हलचलों के लिए अभियोग चलाये जायं, यद्यपि कानून की भाषा में उनके द्वारा कानून का भंग होता हो।

सर्वपक्षीय परिषद् के सम्बन्ध में सरकार अपने उत्तर में मेरे पत्र के इन शब्दों को 'तथा दूसरे अर्थों से' जो 'कलकत्ते के भाषण' के बाद आये हैं, बिल्कुल उड़ा देती है। मैं फिर कहता हूं कि वे शर्तें, जो कि मालवीय परिषद् के प्रस्तावों में रक्खी गई थी लगभग वही थीं जिन्हें कि मैं 'कलकत्ते के भाषण से तथा दूसरे अर्थों से' जान पाया था। असहयोग-दल की जो हलचलें गैर कानूनी कही जाती हैं वे तो उन नोटिसों के उठा लिये जाते ही अपने आप बन्द हो जातीं; क्योंकि उन क्षोभ-कारक नोटिसों के रद्द किये जाते ही स्वयंसेवक-दल का संगठन और सार्वजनिक सभायें करना खिलाफ कानून रही नहीं सकता था। जब कि कलकत्ते में सुलह की बातें हो रही थी तब भी फतवा कैदियों की रिहाई की बात पेश की गई थी और मैं यहां फिर वही बात कहता हूं जिसे मैं पहले कई जगह कह चुका हूं कि यदि यह कहना राजद्रोह है कि वर्तमान शासन-प्रणाली में फौजी अथवा दूसरी नौकरी करना ईश्वर के और मनुष्य जाति के सामने पाप है, तो मुझे कहना होगा कि ऐसा राजद्रोह तो अवश्य होना चाहिए।

सरकार ने इस कम्यूनिक में मुझ पर यह आरोप किया है कि मैं प्रस्तावित सर्वपक्षीय परिषद् केवल 'अपने निर्णय को स्वीकार कराने के लिए' चाहता हूं। यह कह कर सरकार ने मेरे साथ बड़े निष्ठुरता-पूर्वक अन्याय किया है। हां, मैंने महासभा की मांगें जितने स्पष्ट शब्दों में हो सकीं, जरूर पेश कीं, जिससे कि किसी तरह की गलत-फहमी न होने पावे और यह मेरा फर्ज भी था। अपनी बात साफ साफ कहे बिना कोई महासभावादी किसी परिषद् में नहीं जा सकता था। मैंने तो यह आशा की थी कि मैं या कोई भी महासभावादी तर्क और दलील के अयोग्य न समझे जायंगे-यह मामूली शिष्टता तो हमारे साथ की जायगी। कोई भी आदमी आकर मुझे विश्वास दिला सकता है कि खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य-विषयक महासभा की मांगें अनुचित हैं; मैं अवश्य ही अपना कदम पीछे हटा लूंगा और अपनी तरफ से भूल को सुधार लूंगा। भारत-सरकार इस बात को जानती है कि मेरी सदा से यही वृत्ति रही है।

कम्यूनिक में काफी जोर के साथ कहा गया है कि मेरे घोषणापत्र में जो मांगें की गई हैं वे कार्य-समिति की मांगों से भी बढ़ कर हैं। पर मैं दावे के साथ कहता हूं कि वे कार्य-समिति की मांगों से बहुत कम हैं। क्योंकि आज तो मैं आक्रामक ढंग के सविनय कानून-भंग को बन्द कर देने के बदले में सिर्फ इतना ही चाहता हूं कि यह वाहियात दमन बन्द कर दिया जाय, उसके अनुसार जिन लोगों को सजायें दी गई हैं वे छोड़ दिये जायं और इस नीति की साफ साफ घोषणा कर दी जाय। कार्य-समिति ने तो सर्वपक्षीय परिषद् को भी चाहा था। मैंने अपने पत्र में सर्वपक्षीय परिषद् की चाह नहीं की है। यह सच है कि सर्वपक्षीय परिषद् की बात प्राप्त अवसर से लाभ उठाने के खयाल से नहीं उठाई गई है; बल्कि यह तो हमारी वर्तमान कमजोरी की स्वीकृति है। मैं बिना संकोच के इस बात को मानता हूं कि जबतक भारत की रग रग में अहिंसा की भावना पैवस्त न हो जायगी और नियमबद्धता के साथ बल का संचार न होगा, जो कि केवल अहिंसा के ही द्वारा प्राप्त हो सकता है, वह अपनी मांगें पूरी नहीं करा सकता। यही कारण है जो अब मैं कहता हूं कि लोगों का सबसे पहला काम यह है कि वे इस अन्ध दमन को दूर करावें और फिर अधिक पूर्ण संगठन और अधिक विधायक कार्यों में अपनी शक्ति एकाग्र करें। और यहां फिर सरकार ने सिर्फ यह कह कर कि

"आक्रामक ढंग का सविनय भंग तबतक मुल्तवी कर दिया जायगा जबतक कि जेल वाले नेता छूट कर सारी स्थिति पर नये सिरे से विचार न कर लें" और मेरे पत्र का नीचे लिखा आखिरी भाग छोड़ कर मेरे साथ अन्याय किया है—

"यदि सरकार ऐसी घोषणा कर दे तो मैं उससे यह समझूंगा कि वह लोकमत का आदर करने की शुभ कामना रखती है और इसलिए बिना हिचपिचाहट के लोगों को यह सलाह दूंगा कि वे बिना किसी भी तरफ से अंकुश लगाये लोकमत तैयार करने में लग जायं और विश्वास रक्खें कि इसके द्वारा अपनी मांगें पूरी हो जायंगी। तथा आक्रामक सविनय भंग केवल उसी अवस्था में शुरू किया जाय जब सरकार अपनी पूर्ण निष्पक्ष नीति का त्याग कर दे या देश के स्पष्ट प्रकाशित लोकमत का आदर न करे।"

मैं यह दावा करने की धृष्टता करता हूं कि पूर्वोक्त बातों के प्रतिपादन में मैंने हद दर्जे की युक्ति-संगतता और नरमी से काम लिया है।

सो, अब लोगों के सामने, यह सवाल नहीं है जैसा कि सरकारी कम्यूनिक में बताया गया है-अर्थात् बे-आईनी अच्छी है, जिसका कि फल ऐसा घातक है, या उन सिद्धान्तों की रक्षा करना अच्छा है जो हरएक सभ्य सरकार के आधार-भूत है?" सरकार आगे कहती है-"सामुदायिक भंग राज्य के लिए इतना खतरनाक है कि उसका सामना कठोरता और दृढता के साथ किया जायगा।" बल्के लोगों के सामने यह सवाल है कि खतरनाक होते हुए भी सामुदायिक सविनय भंग शुरू किया जाय या प्रजा की बाकायदा हलचलों का बे-कानूनी दमन जारी रहने दिया जाय? मेरी तो यह धारणा है कि किसी भी स्वाभिमानी पुरुष के लिए यह असम्भव है कि वह भावी अज्ञात खतरों की आशंका से चुपचाप बैठा रहे और सारे देश में 'कानून और शान्ति' के नाम पर जो बे गुनाह लोगों का माल असबाब लूटा जा रहा है और उन पर हमला किया जा रहा है, इसका कोई अकसीर इलाज न करे।

(अंग्रेजी से अनुवादित) मोहनदास करमचंद गांधी

जरूर पढ़िए

"हिन्दी नवजीवन आधे मूल्य में"

इस सूचना के अनुसार हमारे पास कितने ही पत्र आये हैं; परन्तु बहुतेरे लोगों ने उनके साथ प्रमाण-पत्र नहीं भेजे। अतएव हम उन सब महाशयों का तथा अब आगे पत्र भेजनेवाले सज्जनों का ध्यान नीचे लिखी बातों की ओर दिलाते हैं—

१ जो सज्जन प्रमाण-पत्र नहीं भेजेंगे उनके पत्र पर विचार नहीं किया जायगा न उसका कोई उत्तर ही दिया जायगा।

२ जो सज्जन इस रिआयत के मुस्तहक हो चुके हों वे मनीआर्डर के कूपन पर रिआयत का उल्लेख जरूर करें।

३ यह रिआयत व्यक्तियों के लिए है; लायब्रेरियों, सभा-समाजों, विद्यालयों आदि संस्थाओं के लिए नहीं।

४ जब तक इस कार्यालय से प्रार्थना-पत्र की स्वीकृति की सूचना न मिले तबतक कोई सज्जन रुपया भेजने का कष्ट न उठावें। इस बात पर वे विशेष रूप से ध्यान दें।

व्यवस्थापक—"हिन्दी-नवजीवन"

टिप्पणियां

घर का दुश्मन

डाक्टर राजन और शास्त्री मदरास के दो बड़े कार्यकर्ता हैं। उनको तथा दूसरे दो सज्जनों को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया है। अपराध? मद्य-पान-निषेध। मदरास-सरकार ने महासभा और खिलाफत के अंग-भंग करने की एक निराली ही रीति निकाली है। वह क्रिमिनल ला अमेंडमेंट एक्ट और राजद्रोही सभाओं के कानून का आश्रय लिये बिना ही अपना मतलब सिद्ध कर रही है। वह बंगाल और संयुक्त प्रान्त से बेहतर रहना चाहती है। वह पूर्वोक्त कानूनों का व्यवहार करने की बदनामी से बचना चाहती है; क्योंकि उनपर अब देश में खूब टीका-टिप्पणी हो रही है। मैंने तो सुना है कि मदरास में लार्ड विलिंग्डन की अपेक्षा *सर त्यागराज चेट्टी* (जस्टिस पार्टी के मुखिया) ही इन संस्थाओं को छिन्न-भिन्न करने पर अधिक तुले हुए हैं। सर त्यागराज अपने प्रतिपक्षी के लिए एक भयंकर पुरुष हैं; पर असहयोगी लोग तो साधनों और कार्यों के खिलाफ हैं, किसी व्यक्ति के खिलाफ नहीं। सो उनके लिए तो उन कार्यों का करने वाला चाहे अंगरेज हो, चाहे हिन्दुस्तानी, दोनों एक ही बात है। मुझे तो यह निश्चय-पूर्वक विश्वास है कि स्वराज्य-सरकार के समय में जो अंगरेज नौकर रहेंगे वे उतनी ही अच्छी तरह से रहेंगे जितने कि हिन्दुस्तानी। और हम दुःख के साथ देख ही रहे हैं कि इस वर्तमान शासन-प्रणाली में हमारे देश-भाई भी किसी अंगरेज ही की तरह बुरे शासक हो सकते हैं। सो हमारा यह युद्ध तो शासन-प्रणाली के साथ है-उसके सूत्र-संचालक और सहायक चाहे कोई हों। हम तो कोई चार-पुश्तों से द्विमुख कानूनों के शिकार हो रहे हैं-अंगरेजों के लिए एक मुख और हिन्दुस्तानियों के लिए दूसरा। सो हमें खुद इसी अपराध का अनुसरण कदापि न करना चाहिए। अच्छी बात है, मदरास की परीक्षा और आत्मशुद्धि सर त्यागराज चेटी के ही राज में हो।

यदि हम अपने सिद्धान्त के और अपने मत के सच्चे हों तो हम अपने प्रतिपक्षियों के साथ सफलता-पूर्वक व्यवहार कर सकें; फिर चाहे वे हमारे ही देश-भाई हों-चाहे अंगरेज हों। परन्तु डाक्टर राजन ने अपनी गिरफ्तारी के पहले जो पत्र मुझे भेजा है उससे यह नतीजा निकलता है कि हमें अपने प्रतिपक्षियों की अपेक्षा खुद अपने ही लोगों से अधिक सावधान रहना चाहिए। हां, इस बात में कोई शक नहीं है कि हम लोगों में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अहिंसा की प्रतिज्ञा कर लेने पर भी उसके लोकहो अपना कायल नहीं हैं। अर्थात् वे हिंसा-काण्ड मचाने वालों की सहायता को बुरा नहीं समझते। मालूम होता है, वे यह समझते हैं कि शान्ति और अशान्ति दोनों के प्रयोग साथ साथ चल सकते हैं और दोनों मिलकर देश को उसकी लक्ष्य-सिद्धि में सहायता देते हैं। यह खयाल देश के हित में हानिकर है। यह कपट-मूलक तो है ही। दो परस्पर विरुद्ध शक्तियां साथ साथ काम चाहे कर सकें पर वे दोनों एक ही दिशा में नहीं काम कर सकतीं। यदि अहिंसा एक आडम्बर-मात्र हो या हिंसा-काण्ड की पूर्व तैयारी हो तो उसका आकस्मिक या जान बूझकर किया गया उद्रेक, आजमाइश के तौर पर, अहिंसा के जारी रहते हुए भी, एक बड़ा लाभ माना जा सके। पर यह भारत का धर्म-युद्ध नहीं हो सकता। ईश्वर सबका साक्षी है और वह इतना न्यायवान् भी है कि द्विधा व्यवहार के लिए हमें उचित दण्ड दे सके। इस समय तो हमारा विश्वास यह है कि भारत को हिंसा-कांड के द्वारा किसी प्रकार का लाभ नहीं हो

सकता और केवल अहिंसा के ही द्वारा, बिना किसी प्रकार के हिंसा-कांड की सहायता के, वह अपने त्रिविध ध्येय को अवश्य प्राप्त करेगा। अतएव यदि हम विजय चाहते हैं तो असहयोगियों को प्रत्येक हिंसा-कार्य के प्रति, जो उनके ध्येय की सहानुभूति के कारण किया गया हो, सच्चे दिल से स्पष्ट भाषा में तीव्र निषेध करना चाहिए। जो लोग अहिंसा के कायल न हों या यह मानते हों कि दोनों का प्रयोग साथ साथ किया जा सकता है, अपना दल अलग बना लें और सरकार से लडें। हां, इससे असहयोगियों का काम कुछ कठिन तो हो जायगा, पर उतना कठिन नहीं जब कि उन्हें अपने ही घर में छिपे शत्रु से लडना पडता है। उनकी कार्य-विधि अवश्य ही शुद्ध रहनी चाहिए। जरा भी आन्तरिक मल रह जाने से वह आन्तरिक रोग का रूप धारण कर लेगा और वह खतरनाक भी हो सकता है। परन्तु बाहरी आक्रमण कभी खतरनाक नहीं हो सकता। इसलिए हमारी सफलता की पहली और एक-मात्र शर्त यह है कि हम अपने सिद्धान्त और प्रतिज्ञा के सच्चे बने रहें। यदि असहयोग के द्वारा ठीक ठीक और पूरी आत्मशुद्धि न हो तो कहना होगा कि अ-सहयोग एक बुरा और भ्रष्ट सिद्धान्त है, सचमुच एक मनहूस शब्द है। हमारी आन्तरिक भ्रष्टता का प्रतिकार यदि दृढता और आग्रह के साथ किया जाय तो वही सरकार के प्रतिकार के लिए बस है। जहां आत्म-शुद्धि की विधि पूर्ण हुई नहीं कि हमें उस प्रणाली का नामोनिशां तक न दिखाई देगा जिसके साथ आज हम युद्ध ठान रहे हैं।

सविनय भंग में सावधानी

रोहतक से लाला श्यामलाल पूछते हैं कि उन जिलों में जहां कि सरकार गिरफ्तारियां नहीं कर रही है लोग आप हो कर गिरफ्तार हों या नहीं? मेरा तो ख्याल था कि मैंने पिछले अंकों में इस बात को अच्छी तरह साफ साफ समझा दिया है। हां, अपने कर्तव्य का पालन करते हुए यदि गिरफ्तार होने का मौका आवे तो हमें उसे न टालना चाहिए पर हमें अपना काम छोडकर सरकार को अपनी गिरफ्तारी पर मजबूर भी न करना चाहिए। ऐसा करना या तो आक्रामक सविनय कानून-भंग समझा जायगा या अविनीत कानून-भंग कहा जायगा। इस दूसरे की तो हमें बात भी न करनी चाहिए। किन्तु आक्रामक सविनय भंग तो एक ऐसा अधिकार है जिसका उपयोग हम आवश्यकता के अनुसार, अपनी पूरी तैयारी होने पर ही, कर सकते हैं। इतना ही नहीं किन्तु अगर परिस्थिति वैसी ही विकट हो और साथ ही हमारी तैयारी भी हो, तब तो इस अधिकार का उपयोग करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। पर यह आक्रामक सविनय कानून भंग फिर वह चाहे वैयक्तिक हो या सामुदायिक हमारे पास के तमाम शान्तिमय उपायों में है तो सबसे अधिक भयंकर किन्तु साथ ही सबसे अधिक परिणाम-कारक शस्त्र। मैं स्वयं तो जानता हूं कि देश सामुदायिक रूप से अभी इस प्रकार अपने स्वत्वों के लिए झगडने को तैयार नहीं हुआ है। इसके लिए तो हमें इससे भी महान् और कडी नियम-बद्धता की जरूरत है। कष्टकर और घृणित मालूम होनेवाले कानून और नियमों के भी पालन का ठीक ठीक महत्व— नहीं मैं तो आध्यात्मिक महत्व कहने वाला था—हमें समझ लेना चाहिए। आक्रामक सविनय भंग तो एक ऐसा अधिकार है जो कठिन तपस्या करने पर ही प्राप्त हो सकता है। हमारी तपस्या अभी इतनी उच्च नहीं हो पाई है। इसलिए यदि अधूरी तैयारी पर ही हम आक्रामक सविनय भंग शुरू कर बैठें तो हम एक ऐसी क्रान्ति कर डालेंगे जिसकी न तो हम आशा करते हैं और न इच्छा ही। इतना ही नहीं, बल्कि ऐसी क्रान्ति है तो हमें हर प्रकार से बचने की ही कोशिश करनी चाहिए। अतएव हमें कम से कम इतना तो अवश्य करना चाहिए कि हम तबतक ठहरे रहें जबतक कि मैं खुद इस प्रयोग को कर के उसका फल न देख लूं।

मुझे अभी यह सन्देह है कि देश में कई स्थानों में हाथ कती और हाथ-बुनी खादी पहनने की शर्त का पालन अच्छी तरह नहीं हो रहा है। इसी प्रकार अस्पृश्यता के दोष से भी हम बहुत सी जगह मुक्त नहीं हुए हैं। मेरा तो ख्याल यह है कि सिर्फ जेल जाने का सामर्थ्य उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि हिन्दू-मुस्लिम-सिख-पारसी-ईसाई एकता, अस्पृश्यता को मिटाना, और हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी पहनना आदि शर्तों के पालन करने की तैयारी तथा सामर्थ्य है। यदि हम इन शर्तों को पूरा किये बिना ही जेल चले जायं तो उससे कोई लाभ नहीं। वह तो खाली बहादुरी बताना है और अपनी शक्ति को व्यर्थ गवांना है। जेल जानेका खास हेतु यह नहीं है कि सरकार को दिक किया जाय। उसका मूलभूत उद्देश्य तो आत्मशुद्धि है। सरकार को दिक करना तो गौण बात है। इस बात का तो मुझे पूरा पूरा यकीन है कि सरकार किसी निरपराध, अज्ञात और शुद्ध पुरुष पर अत्याचार करने से या उसे जान से मार डालने से चाहे किसी प्रकार न घबराय, पर उसका अंत तो उसी समय हो चुका समझिए। गहरे से गहरे अंधकार को केवल एक ही दीपक नष्ट कर देता है। इसलिए मेरी इच्छा है कि हर जगह असहयोगी लोग सविनय कानून-भंग की तमाम शर्तों को पूरा करने पर जोर दें। सविनय कानून भंग तो हरएक शख्स कर सकता है, यदि वह काया, वाचा, मनसा अहिंसा का पालन करता हो, हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी को अपना पवित्र कर्तव्य समझ कर पहनता हो, अस्पृश्यता को एक असहनीय बुराई समझ कर उससे दूर रहता हो और यह सच्चे दिल से मानता हो कि भारत की तमाम कौमों और जातियों में एकता होना भारत में स्वराज्य स्थापित करने तथा उसे चिरस्थायी रखने के लिए सदैव आवश्यक है। हां, ऐसा कोई भी शख्स सविनय कानून-भंग कर सकता है, फिर वह चाहे वकील हो, उपाधिधारी हो या कौन्सिल का सभ्य भी क्यों न हो। (यंग इंडिया)

गोरखपुर का गुनाह

गोरखपुर की दुर्घटना के सम्बन्ध में श्री गांधीजी "नवजीवन" में लिखते हैं—"इस दुर्घटना का हाल सुनकर मेरा और प्रत्येक समझदार आदमी का सिर नीचे झुक जाता है। बारडोली के शुभ आरम्भ के लिए यह अपशकुन है। जो लोग शान्ति के पुजारी हैं उन्हें अशान्ति की पूजनेवाली सरकार और लोक-समाज दोनों से असहयोग करना पडेगा। जब हमारे आदमी मरते हैं तब मेरा दिल नहीं धडकता अथवा यदि धडकता है तो मैं उसे दबा सकता हूं। पर जब किसी एक भी सहयोगी का खून हो जाता है तब मुझे शर्म मालूम होती है और हमारी उन्नति के विषय में भय उत्पन्न हो जाता है।

यह संग्राम नये ढंग का है। जो शान्ति के मानने वाले हैं उन्हें अपनी आत्मा की जांच करनी पडेगी। उन्हें शान्ति का विस्तार करना पडेगा। इस लडाई का उद्देश वैर बढाना नहीं, वैर घटाना है। यह लडाई मनुष्यों को जुदा करने के लिए नहीं बल्कि एकत्र करने के लिए शुरू की गई है। गोरखपुर जिले के लोगों के इस पाप का सब से बडा जिम्मेदार मैं हूं। पर प्रत्येक शुद्ध असहयोगी भी है। हम सबको उसका सूतक मनाना पडेगा। ईश्वर, भारतवासियों की और असहयोगियों की लाज रख!

मो० क० गांधी

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूडी ओल, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित॥

घर का वार

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रति का -)
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—फाल्गुन वदी ८, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, १९ फरवरी, १९२२ ई० | अंक २७

टिप्पणियां

महासभा के दफ्तर भी बे-कायदा !

फरीदपुर से महासभा के मन्त्री लिखते हैं कि यहां के जिला मैजिस्ट्रेट ने पुलिस के द्वारा जिले के प्रायः तमाम महासभा के दफ्तरों को बन्द करा दिया है। स्वयंसेवक खूब पीटे गये; पर वे पूर्ण शान्तिमय बने रहे। जिन मकानों में महासभा के दफ्तर थे उनके मालिकों को भी जेल भेजने की धमकियां दी गई हैं। मेजिस्ट्रेट अपने हुक्म में लिखते हैं कि महासभा-समितियां भी बे-कायदा ठहराई गई हैं और जो कोई कर न देने तथा सरकारी नौकरों के बहिष्कार करने पर कुछ कहे सुनेगा एवं सरकारी कामों में उपद्रव करेगा उसे कानून फौजदारी के अनुसार सजा दी जायगी। ऐसी बे-कायदा सभा-समाजों के लिए जो अपने मकान किराये पर देंगे वे भी सजा के पात्र होंगे।

जब इस रीति से लोग भय-कम्पित किये जा रहे हों तब उन्हें यह बताना कि क्या करना चाहिए, आसान बात नहीं है। यह बात तो सिर्फ अपने तहस-नहस न हो जाने की है। मुमकिन है कि मकान-मालिक इस नोटिस से डर जायं और हमें अपने मकान किराये पर न दें। तो इस दशा में जबतक हम आजाद हैं तबतक खुली जगहों में अपने दफ्तर रक्खें। यदि वे हम सब लोगों को जेल में ले जायं और एक जगह पर रक्खें तो हम वहीं आपस में बातचीत और सलाह-मशवरा कर लिया करें और जेलों में स्वराज्य के विकास का प्रयत्न करें, जैसा कि आगरे में हो रहा है। इसके लिए हमें वहां चरखा कातना चाहिए, सबलोगों को मिल कर ईश्वर प्रार्थना और स्तोत्र-पाठ करना चाहिए तथा सब लोग मिल-जुलकर ऐसे ही दूसरे काम करें जो जेल के नियमों के विपरीत न हों। जब जेल के अधिकारी हमें मारते मारते थक जायंगे तब निश्चय ही वे हम पर गोलियां दागेंगे। और जब वे ऐसा करेंगे और हम उससे पस्त हिम्मत न हो जायंगे बल्कि कहेंगे—"नजर सामने" बस, तभी स्वराज्य स्थापित हुआ रक्खा है; क्योंकि उस दशा में हम कष्ट-सहन की असीम क्षमता प्राप्त कर चुकेंगे।

"जैसा कि दूसरे देशों में"

मैंने सरकार के बे-कानूनी दमन के कितने ही सबूत पेश किये थे। बड़े लाट साहब ने तो इस दमन से ही साफ साफ इनकार कर दिया था। अब भारत-सरकार के होम मेम्बर सर विलियम विन्सेन्ट ने भी मेरे प्रायः तमाम इल्जामों की सफाई पेश की है। बड़ी खबर है। यदि उन्होंने ऐसा न किया होता तो मैंने ऐसी भद्दी आशा का चित्र न खड़ा किया होता। अबतक अरुचिकर बातों की सोलहों आना लीपापोती की जाया करती थी। अब यह स्पष्ट प्रकट होता है कि इस तरीके को छका देना आवश्यक मालूम होने लगा है। अब तो लोग बड़े साहस के साथ सरकारी अत्याचारों की पोल खोलने के लिए आगे बढ़ने लगे हैं। अतएव सरकार के लिए अब ऐसी लीपापोती करना असम्भव हो गया है। सो अब उसने उन तमाम दुष्कृत्यों का समर्थन करने की रीति अख्त्यार की है। मालूम होता है कि सर विलियम धारा-सभा के सदस्यों को खास तौर पर चकमे में आ जाने वाले समझते हैं। पहले तो उन्होंने उनके सामने आम तौर पर उन बातों का इनकार किया; कहा कि धारा-सभा के अधिकार की बात नहीं है कि प्रान्तीय शासन की बातों का नये सिरे से विचार किया जाय। फिर आपने भारी से भारी आरोपों का भी समर्थन इस प्रकार किया है—

"दो खास इल्जाम ऐसे हैं जिनकी ओर मुझे आपका ध्यान आकर्षित करना चाहिए। एक तो यह कि बे-कानूनी सभा-समितियों को बल-पूर्वक भंग कर देना और मैं आपको यह साफ साफ बता देना चाहता हूं कि यह सरकार का इरादा है कि जहां कहीं सरकारी हुक्म होने पर सभायें भंग न हों वहां जब जब आवश्यक हो, उन्हें बल-पूर्वक भंग कर देना, जैसा कि दूसरे तमाम मुल्कों में होता है। ऐसी दशाओं में बल-प्रयोग ही एक मात्र इलाज है। दूसरे यह कि श्री गांधीजी ने अपने वक्तव्य में रात को तलाशियां और गिरफ्तारियां करने की बात कही है। सो भारत-सरकार ऐसा आश्वासन देना नहीं चाहती कि, जहां कहीं आवश्यकता होगी, वहां दिन को या रात को तलाशियां या गिरफ्तारियां न की जायंगी।"

यह जवाब बिलकुल साफ है। बल का प्रयोग सो भी निहत्थे लोगों पर और आधी रात को घरों में घुसना आदि बातें मामूली कार्रवाई के नाम पर की गई हैं। कुछ हानि नहीं। इससे तो उलटा इस आरोप की पुष्टि होती है कि यह सरकार मामूली तौरपर खराब है और लोग इसको गवारा नहीं कर सकते। यह खुली स्वीकृति तो आवश्यक ही थी। क्योंकि अब लोगों के दिलों से जेलों का डर तो दूर हो गया। सो उन्हें भयभीत करने का दूसरा साधन हुआ शारीरिक दण्ड और जानमाल लूट-मार,

जिससे लोग यह समझ लें कि सत्ताधारियों की इच्छा के आगे सिर न झुकाने का क्या फल मिल सकता है। सो अब शारीरिक दण्ड और रात की चढ़ाइयां अधिक ही अधिक होंगी, कम नहीं। जब हमारे लिए ये भी मामूली बात हो जायंगी तब इसके बाद की कुदरती सीढ़ी है रात और दिन गोलियां चलाना। और आज तक तो मैं असहयोगियों को इसी बात के लिए तैयार कर रहा हूं कि वे उस अन्तिम पारतोषिक की आशा करते रहें जो कि आजादी को चाहने वाले लोगों के ही लिए रिजर्व रक्खा जाता है। स्वेच्छा के साथ मरना ही मोक्ष है। हिन्दू-मत के अनुसार तो स्वतन्त्रता का सर्वोपरि स्वरूप अर्थात् मोक्ष उसी अवस्था में सम्भवनीय है जब कि मनुष्य स्वेच्छापूर्वक अपने शरीर को अर्पण कर दे और शारीरिक आवश्यकताओं के विषय में बिल्कुल उदासीन हो जाय। और यह नियमबद्ध राजनैतिक स्वतन्त्रता क्या है? उस प्रकार की आजादी की पेशबंदी। अतएव यह ठीक ही है कि हम अपनी तमाम चीजें और शरीर तक अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए स्वेच्छापूर्वक इस सरकार के हवाले कर दें।

सर विलियम हमलों और लूट-पाट की सफाई इस बिना पर पेश करते हैं कि "दूसरे तमाम देशों में ऐसा ही किया जाता है"। पर मैं कहता हूं कि बात हरगिज ऐसी नहीं है। शान्तिमय सभायें, फिर चाहे वे कितनी ही बे-कानूनी क्यों न हों, कभी दूसरे देशों में बलपूर्वक भंग नहीं की जाती और न भारत में ही इससे पहले कभी की गई। ऐसे मौकों पर तो सभाओं के संचालक और यदि आवश्यकता हो तो श्रोता भी तलब किये जाते हैं और जेल में रख दिये जाते हैं। सरकार को सभ्य बनाने की पहली सीढ़ी यह है कि शारीरिक दण्ड की प्रथा बिल्कुल उठा दी जाय। लोग इस बात को याद रक्खें कि ये सभायें हिंसाकांड मचाने या उसका प्रचार करने के लिए नहीं की जाती हैं; बल्कि जनता के बहुमूल्य अधिकार की जांच करने के लिए की जाती हैं। व्याख्यानदाता और प्रेक्षक लोग गिरफ्तार चाहे भले ही किये जायं; पर उनपर हमला तो हरगिज न होना चाहिए; न वे पकड़ पकड़ कर खींचे ही जाना चाहिए।

सर विलियम को अपनी पाशविक स्वीकृति पर शर्म मालूम हुई। इससे उन्होंने अपनी सबल सफाई के उपसंहार में व्यर्थ ही गोरखपुर की दुर्घटना को घसीट डाला। यह सिद्ध करने के लिए कि अहिंसा की प्रतिज्ञा करने वाले स्वयंसेवक भी सब शान्तिमय नहीं रहे। चौरी चौरा के लोगों के उस पाशविक व्यवहार की सफाई तो किसी तरह नहीं दी जा सकती। पर पता नहीं, उसमें स्वयंसेवक भी थे या नहीं। अच्छा तो जिन स्वयंसेवकों ने हिंसाकांड मचाया हो या जो मचाते हों उन्हें शौक से सजा दीजिए; पर इसके लिए निरपराध और निरुपद्रव लोगों पर बल-प्रयोग करना कैसे जायज हो सकता है?

लेकिन असहयोगियों को सरकार की ऐसी बे-कानूनी बातों से कुपित न होना चाहिए। वे सावधान रहें। उन्हें धैर्य के साथ कष्ट-सहन करते हुए उसे परास्त करना है। उनके मन तक में 'बदले' का विचार न आना चाहिए। सरकार जितना ही अधिक बल-प्रयोग करे उतना ही अधिक हम उसे सहन करने के लिए तैयार रहें। तभी हम पशुबल पर स्थित सरकार के बजाय लोकमत पर स्थित सरकार की स्थापना कर सकेंगे। हां, बल का प्रयोग तो लोक-संचालित सरकार में भी करना पड़ेगा; पर उस अवस्था में उसका प्रयोग 'जैसा कि दूसरे देशों में होता है' सिर्फ उन्हीं लोगों पर होगा जो बल के द्वारा लोकमत का विरोध करना चाहेंगे। मि. मांटेगू यह कह कर कि तमाम यूरोप की सरकारें बल पर ही स्थित हैं, नरम दल वालों को गलत रास्ते ले गये हैं। लन्दन या पेरिस में शान्तिमय जन-समूह को, यद्यपि वे किसी कानून का भंग करने के लिए एकत्र हुए हों, बलपूर्वक बिखेर देना असम्भव होगा। हां, वे बल-प्रयोग करने या उसका प्रचार करने के लिए एकत्र हों तो बात दूसरी है।

क्या क्या स्थगित?

लेकिन चौरी चौरा ने असहयोगियों के सामने एक नया ही कर्तव्य उपस्थित कर दिया है। उस दिन बारडोली में कार्य-समिति की एक बैठक हुई। उसमें यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि, असहयोगी लोग फिलहाल सविनय कानून-भंग की तमाम हलचलें, क्या सामुदायिक और क्या वैयक्तिक, स्थगित कर दें। महा-समिति की बैठक देहली में आगामी २४ फरवरी को होगी। तबतक क्या आक्रामक और क्या रक्षक सभी कानून-भंग बन्द हो जाना चाहिए। मैं आशा कर रहा हूं कि महा-समिति कार्य-समिति के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी। मेरी राय में तो सामुदायिक भंग बहुत समय तक-कम से कम इस साल के अन्त तक-बन्द रहना चाहिए। यह साफ जाहिर होता है कि हम अभी जन-समाज को अच्छी तरह अपने वश में नहीं कर पाये हैं। वैयक्तिक आक्रामक भंग भी कुछ समय के लिए बन्द रहना चाहिए। लेकिन महासभा की दूसरी तमाम मामूली हलचलों को जो कि हमारे उद्देश-साधन के लिए आवश्यक हैं कार्य-समिति ने नहीं छुआ है। फिर सरकार उन्हें बन्द भले ही कर दे। सो हमें स्वयंसेवकों की भरती अवश्य करना चाहिए। पर अपनी प्रतिज्ञा पर पूरा पूरा ध्यान रहे। यह भरती मनाई-हुक्मों का भंग करने के लिए नहीं; बल्कि महासभा के वास्तविक कार्य के लिए हो। इसी तरह हमें खादी-प्रचार भी बराबर करते रहना चाहिए। कार्य-समिति ने विदेशी कपड़ों पर पहरा रखना भी फिलहाल कम कर दिया है। उसने सिर्फ शराब की दूकानों पर ही पहरा रखने की इजाजत दी है और सो भी शुद्ध चरित्र लोगों के द्वारा। अतएव मैं आशा करता हूं कि तमाम कार्यकर्ता सच्चे दिल से कार्य-समिति के प्रस्ताव का अनुसरण करेंगे और उत्साह के साथ उसके बताये विधायक कार्यों में लग जायंगे। इस विधायक कार्यक्रम के द्वारा तमाम दलों में जिनका एक ही लक्ष्य है-खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य, एकता हो जानी चाहिए।

अहमदाबाद और सूरत

अहमदाबाद और सूरत की म्युनिसिपालिटियां सरकार के द्वारा बन्द कर दी गई हैं-इसलिए नहीं कि उनका काम अच्छा नहीं चलता था, बल्कि इसलिए कि बहुत अच्छा चलता था और वे बहुत आजादी के साथ अपना काम करती थीं। ये दो तथा नड़ियाद की म्युनिसिपालिटी बड़ी व्यवस्थित लड़ाई वीरता और गौरव के साथ सरकार से लड़ रही हैं। सरकार उनके कार्यों में हस्तक्षेप करती है और अनुचित रूप से उन पर अपना अंकुश रखना चाहती है। इसी पर यह लड़ाई खड़ी की गई है। इन म्युनिसि-पालिटियों का अपराध यह है कि उन्होंने प्रारम्भिक पाठशालाओं को सरकार के अंकुश से मुक्त कर दिया है। उन्होंने सरकारी सहायता लेना बन्द कर दिया। यह खयाल में रखने की बात है कि उनके निर्वाचित सदस्य जिनका वहां बहुमत है, हमेशा कर-दाताओं से सलाह-मशवरा करके काम करते रहे हैं। पर इसी बात को सरकार नहीं चाहती। इससे लोकमत प्रभावशाली होता है।

म्युनिसिपल्टी के सदस्यों और मतदाताओं का कर्तव्य बहुत सरल है। वे अब भी प्रारम्भिक पाठशालाओं पर अपना कब्जा

बनाये रक्खें। कर-दाता लोग उन समितियों को कर न दें जो सरकार के द्वारा नामजद की जायं और जिनका बोझ लोगों पर ख्वामख्वाह डाल दिया जाय पर अपने लड़कों को राष्ट्रीय शिक्षा दिलाने के लिए उन्हें अवश्य रुपया देना चाहिए। सदस्य लोग एकत्र बने रहें। जहां तक व्यवहार्य्य हो यह समझ कर कि मानों वह राष्ट्रीय म्युनिसिपल्टी ही है, काम करते रहें। मेरी राय में तो शायद ही कोई ऐसा महकमा होगा जहां शिक्षित और प्रबुद्ध लोगों को सरकार से सहायता की जरूरत पड़ती हो। दुनियां में ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे अहमदाबाद, सूरत और नड़ियाद के लोग बिना सरकार का मुंह ताके अपने शहरों के रास्ते न साफ कर सकें और रोशनी का प्रबन्ध न कर सकें, खुद अपने लड़कों की शिक्षा की व्यवस्था न कर सकें, रोगियों का इलाज न कर सकें और लोगों को पानी न पहुंचा सकें। हां, पुलिस की सत्ता उनके पास नहीं है। उन्हें सिर्फ एक ही बात में सरकार की सहायता की जरूरत होगी। कर वसूल करना। सो बल पर स्थित सरकार की जगह पर लोकमत पर स्थित सरकार को रख दीजिए; बस आपको कर वसूल करने की मंजूरी मिल जायगी। अहमदाबाद में सत्ता के बल पर कर वसूल करने की अपेक्षा स्वेच्छापूर्वक चंदे से ही अधिक रुपया प्राप्त हुआ है। इन जाग्रत स्थानों में लोग नामजद समितियों और लोक-निर्वाचित प्रतिनिधियों का द्वन्द्व युद्ध बड़े चाव के साथ देखेंगे। (यं. इं.)

गोविंदजी वसनजी का मामला

बम्बई के मशहूर मिठाईवाले श्री गोविन्दजी वसनजी आज जेल में विराजमान हो रहे हैं। इस मामले पर मुझे इसके पहले ही टिप्पणी करनी चाहिए थी। पर मेरे पास इस मामले के कागजात नहीं थे। इससे मैं ऐसा न कर सका। कागज-पत्र मुझे हाल ही में मिले हैं।

श्री गोविन्दजी को छः महीने तक जेल में आराम करना है। सख्त कैद की सजा है। इसको तो मैं और भी स्वागत करने के योग्य मानता हूं। सादी सजावाले जेल नहीं भोगते। यह मेरे अनुभव की बात है। सख्त सजावाले ही सचमुच जेल भोगते हैं। सादी कैद वालों के जी ऊब उठने की सम्भावना बनी रहती है। सख्त कैदवालों के दिन आनन्द के साथ कट जाते हैं। मन जेल को महल बना सकता है। मन यदि दिनरात कैदखाने का ही विचार करता रहे तो वह कष्टदायी भी हो सकता है। असहयोगी को यदि जेल कष्टदायी मालूम हो तो उसे असहयोगी नहीं कह सकते। मीरांबाई को जहर का प्याला अमृत की तरह मालूम हुआ। सुकरात ने अपने हाथ में विष का प्याला लेकर अपने प्रिय शिष्य को आत्मा की अमरता पर ऐसा व्याख्यान सुनाया जो संसार में सदा अमर रहेगा। जहर का प्याला देने वाले दारोगा के प्रति अथवा विष पान करने की सजा देने वाले न्यायाधीश के प्रति उसके दिल में जरा भी द्वेष या रोष नहीं था। उसकी मधुर भाषा ही इस बात को सिद्ध कर दिखाती है। संसार के इतिहास में ऐसे कितने ही उदाहरण दिखाई देते हैं। असहयोगी लोगों को अदालतों का त्याग केवल राजनैतिक अपराधों के ही लिए नहीं करना है। हम पर चाहे कैसा ही गंदा इल्जाम क्यों न लगाया जाय; पर असहयोगी तो त्याज्य अदालतों में अपनी सफाई दे ही कैसे सकता है? दुःख अपराध करने में है। इसबात में नहीं है कि संसार हमें अपराधी मानेगा। कितने ही पापी लोग अपने पापों को छुपाकर संसार में धर्मधुरंधर माने जाते हैं और पृथ्वी पर भार रूप होकर विचरते हैं। पर इससे उनकी विजय नहीं होती। उन्हें हम संसार के ठग मानते हैं। अदालतों में जिन जिन लोगों को सजा दी जाती है उन सब को हम अपराधी नहीं मानते। हरएक अनुभवी मनुष्य को मालूम है कि कितने ही निर्दोष आदमी अदालतों में सजा पाते हैं और अपराधी साफ छूट जाते हैं। एक वकील की हैसियत से भी मैंने ऐसे अनेक उदाहरण देखे हैं। अदालत में जाना चौपड़ की बाजी की तरह है। किसी का दांव सीधा पड़ जाता है और किसीका उलटा। जिसका दांव सीधा पड़ जाता है उसके लाचक जाने जाने का कोई कारण नहीं। जिसका दांव हमेशा उलटा पड़ता है उसके भरसक दांव गिराने का भारी प्रयत्न करते रहने पर भी, सफलता नहीं मिलती। प्रत्येक चौपड़ के खिलाड़ी के सामने ऐसे दृश्य खड़े हो जायंगे। दुर्योधन जो जीत गया और पांडव हार गये, इसका कारण यह नहीं था कि पांडवों को चौपड़ खेलना याद नहीं था। बेचारे युधिष्ठिर ने अपनी तरफ से मिहनत करने में कोर-कसर न रक्खी। परन्तु पांडवों को तो अमर होना था। उन्हें यह फिर एकबार सिद्ध करना था कि धर्म के साथ हमेशा दुःख रहा करता है। इससे पांडव हार गये। परन्तु जगत् आज उन हारे हुए पांडवों की पूजा करता है।

श्री गोविंदजी का जगत् उनका मित्र-मण्डल है। उनके मित्रगण उनके विषय में क्या खयाल करते हैं? अभी तक मैंने उनका एक भी ऐसा मित्र नहीं देखा है जो उन्हें अपराधी मानता हो। मेरे सामने तो उनका आंसू से भरा हुआ मुख-मण्डल अभी तक खड़ा है। जब कि उन्हें यह खयाल भी नहीं था कि मेरे ऊपर मुकदमा चलाया जायगा या क्या होगा, तभी उन्होंने मेरा शक दूर करने के लिए, बीमार होते हुए भी, मेरे पास आ कर रोदन करते हुए मुझसे कहा कि मैंने किसी को भी नहीं भड़काया। मैं पारसियों के साथ उठता-बैठता हूं। पारसी लोग मेरे ग्राहक हैं। उन्हींसे मैं मालदार हुआ। फिर मैं यदि उन्हीं पारसियों के खिलाफ एक भी आदमी को उभाडूं तो संसार और ईश्वर के सामने अपराधी होऊं। आप विश्वास मानिए कि इतना तो ज्ञान और ध्यान मुझे अवश्य है। ये शब्द उस दिन गोविंदजी ने गद्गद् कंठ से मुझे कहे थे। ऐसी कितनी ही दूसरी बातों से भी उन्होंने मुझे अपने निरपराध होने का निश्चय करा दिया। यदि उन्होंने अपनी सफाई दी होती तो मेरा खयाल है कि वे अवश्य बरी हो जाते। अच्छे अच्छे वकीलों ने उन्हें कहलवाया कि हम इस मामले में लड़ेंगे। पर उनकी वीर माता ने इनकार कर दिया। "मेरा पुत्र सत्याग्रही है। मैं जानती हूं कि वह निरपराध है। सम्भव है कि सफाई न देने से उसे सजा हो जाय; पर यदि वह अपनी प्रतिज्ञा को भंग कर दे तो मुझे और अपने कुल को लज्जित करे। मैं उसकी सफाई दिलाना नहीं चाहती।" यह कह कर उस वीर माता ने अपने पुत्र को बचा लिया। माता का बल और माता का आशीर्वाद न होता तो कदाचित् गोविंद जी ललचा जाते। पर उन्होंने जेल को स्वीकार कर के अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा की। ऐसी घटना यें बहुत नहीं हुई हैं कि जिनमें बदनामी करने वाले इल्जामों के होते हुए भी असहयोगियों ने अपनी सफाई न दी हो। श्री गोविंदजी वसनजी धन्यवाद के पात्र हैं। मैं उनके इस उदाहरण को अनुकरणीय समझता हूं।

मैंने जो यह कहा है कि गोविंद जी सफाई दे कर छूट जाते, इससे कोई यह न समझे कि अदालतों का त्याग क्यों किया जाय? दूसरे अपराधों में बचाव क्यों न किया जाय? इस प्रकार के लालचों से ही जगत् में असत्य, छल-कपट आदि की बन पड़ी है। यह तो कोई नहीं कहता कि अंगरेजी अदालतों में किसी भी दिन न्याय नहीं होता। पर कौन भारतवासी यह नहीं जानता कि राजनैतिक मामलों में तो इन अदालतों में न्याय पाना प्रायः असम्भव है। तिलक

महाराज ने अब सफाई दी उस समय हम इस बात के कायल नहीं थे कि सफाई न दी जाय। उस समय तो बचाव करना ही धर्म था। पर वे बच न पाये। लाला हरकिशन लाल आदि ने पंजाब में वकीलों के लिए पानी की तरह रुपया बहाया। पर क्या उनका बचाव हुआ? और हम जानते ही हैं कि लाला लाजपत राय, देशबन्धु दास, मौलाना अबुलकलाम आजाद आदि बिल्कुल निरपराध हैं। हम यह भी जानते हैं कि यदि उन्होंने पैरवी की होती–वकील किये होते–तो भी वे बरी न हो पाते। इसीलिए जहां राज्यसत्ता मदान्ध हो जाती है वहां उससे होनेवाले थोड़े फायदों का भी त्याग करना धर्म माना जाता है। अदालतें राज्य-सत्ता का एक बड़ा भारी स्तम्भ है। हां, हो सकता है कि मामूली हालत में लोग इस स्तम्भ की भी मदद लें। पर समझदार आदमी ऐसी सहायता के प्रलोभन में नहीं फंसते।

ढसा के दरबार का सत्याग्रह

काठियावाड़ में ढसा नाम का एक गांव है। श्रीयुत देसाई गोपालदास वहां के दरबार (ठाकुर) हैं। वहां के लोग बड़े ही सरल हैं और आराम के साथ जिंदगी बसर करते हैं। दरबार और प्रजा में पिता–पुत्र के जैसा शुभ सम्बन्ध है। ढसा में स्वदेशी–प्रचार, अस्पृश्यता नाश आदि की हलचल पूरे जोर के साथ चल रही है। देसाई एक पाटीदार (पटेल) हैं। अतएव जब श्री अब्बास तैयबजी ने खेड़ा जिले का भार ग्रहण किया तब देसाई जी अपने को रोक न सके और ढसा का कामकाज अपनी धर्मपत्नी के सिपुर्द कर के आप खेड़ा जिले में आ पहुंचे। बंबई के लाट साहब की मुलाकात के लिए हाजर रहने के सम्बन्ध में काठियावाड़ के पोलिटिकल एजंट के और देसाई जी के बीच में जोरदार लिखा–पढ़ी हुई थी। देसाई जी के लिखे प्रत्येक पत्र में उनका सत्याग्रह स्पष्ट झलकता है। ऐसे ही त्याग के बल पर प्रजा की उन्नति होती है। जापान के सरदारों और उमराओं ने जब अपनी जागीरें और अपना सर्वस्व प्रजा के अर्पण कर दिया तब जापान का वायुमंडल देखते देखते बदल गया। गरीब लोग भी इस त्याग का महत्व समझ गये और सब लोग राष्ट्रकार्य में निमग्न हो गये। इस प्रकार कितने ही दरबार और जागीरदार जब लोकहित के लिए त्याग करने लगेंगे तब धनी और निर्धन का ऐसा संगम हो जायगा कि संसार उसे देखता ही रहेगा। आज तो इस असहयोग के संग्राम में प्रधानतः गरीब और मध्यम श्रेणी के ही लोग योग दे रहे हैं। इसमें देश के लिए कुछ भय भी रह जाता है। यदि धनिक लोग भी इसमें पूरा पूरा हाथ बटावें तो आज जो कितनी ही जगह बेढंगी स्थिति उपस्थित हो जाती है वह न हो। इसके लिए जरूरत है साहस की और क्षत्रियत्व की। देसाईजी ने उसका परिचय दिया है। मैं आशा करता हूं कि दूसरे लोग उनके इस उदाहरण से नसीहत लेंगे।

कैदियों का क्या होगा?

एक सज्जन ने एक लंबे–चौड़े पत्र में लिखा है कि आज जो हमारे कितने ही पूज्य नेता और दूसरे कम से कम १२ हजार देश–भाई जेलों में विराजमान हैं उनके विषय में भारत–भूषण मालवीय जी के दिल में कुछ बुरा मालूम होता है? क्या उन्हें जेलों में रहने दे कर पण्डित जी सुलह कराने पर राजी हुए हैं? ऐसी शंका से सूचित होता है कि अभी ऐसे संशयवान लोग इस धर्मयुद्ध का रहस्य या खूबी समझे नहीं हैं। श्री मालवीय जी पर जो आक्षेप किया गया है वह तो केवल अज्ञानमूलक ही है। सविनय भंग बन्द कराने में पंडित जी का बिल्कुल हाथ नहीं है। यह निश्चय तो मेरे मन में तभी हुआ जब मैंने बारडोली में गोरखपुर की घटना का हाल सुना। इसके बाद मैं बंबई गया। कोई आश्चर्य नहीं जो पण्डितजी ने भी वही बात चाही। परन्तु जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है वह तो मेरा और कार्यसमिति का स्वतन्त्र है।

अब गुण–दोष का विचार करें। क्या अपनी प्रतिज्ञा का भंग करके भी कैदियों का छुड़वाना हमारा धर्म है? सत्याग्रह तो इसीका नाम है कि चाहे राज–पाट, कुटम्ब, जान सब चला जाय, पर सत्य को न छोड़ें। सत्य को छोड़ कर यदि हम कैदियों को छुड़ावें तो खुद वही शर्मिन्दा होंगे। वे तो स्वराज्य मिलने पर छूटना चाहते हैं। सम्मानपूर्वक छूटना चाहते हैं। वे कष्ट–सहन करने के लिए जेल में गये हैं। वे दुःख को सुख मानते हैं। बाहर रहने में जो सुख है उसे वे दुःख मानते हैं। अतएव हम अपने इस निश्चय को उनके भी खातिर छोड़ नहीं सकते।

फिर क्या सविनय भंग को जारी रख कर हम उन्हें छुड़ा सकते? उन्हें छुड़ा लाने की हमारी शक्ति तो हमारी शान्ति पर अवलम्बित थी। बारडोली का बल तो तभी दिखाया जा सकता था जब दूसरी सब जगह शान्ति की रक्षा की जाती। शान्ति और अशान्ति दोनों एक साथ नहीं चल सकतीं। रात और दिन एक साथ नहीं रह सकते। चाहे जिस दृष्टि से सोचिए, एक ही जवाब मिलता है–सविनय भंग बन्द किये बिना दूसरी गति नहीं थी।

इसका अर्थ यह नहीं है कि अब हम हाथ पर हाथ रख कर बैठ रहें। क्षत्रिय एक रास्ते से काम न बनता हो तो दूसरा रास्ता खोज निकालता है। जहां से वह रास्ता भूलता है वहीं फिर आ कर अपने बल को आजमाता है। बस, यही हमें भी करना है। कैदियों को तो कोई भुला ही नहीं सकता।

पण्डितजी की आत्मा कितनी व्याकुल हो रही है, यह मैं जानता हूं। वे उन्हें छुड़ाने के लिए उतने ही उत्सुक हैं जितने कि हम हैं। वे भी हिंदुस्तान का मुख उज्ज्वल रख कर ही कैदियों को छुड़ाना चाहते हैं। (नवजीवन)

आगा महम्मद सफदर

लाला लाजपत राय के उत्तराधिकारी आगा महम्मद सफदर एक बार गिरफ्तार हो चुके हैं। स्यालकोट के मजिस्ट्रेट के इजलास में उनपर मुकदमा चल चुका है और वे रिहा भी किये जा चुके थे। पर यह उम्मीद नहीं की जा सकती थी कि वे अधिक दिनों तक आजाद रह सकेंगे। अब वे फिर से गिरफ्तार किये गये हैं और लाहौर में उनपर अभियोग चलाया जायगा। स्यालकोट से कोई १८ मील पर एक गांव है–धरताल। वहां वे एक सभा में व्याख्यान देने वाले ही थे कि गिरफ्तार कर लिये गये। एक हजार से अधिक प्रेक्षक वहां उपस्थित थे। अशान्ति कहीं नहीं थी। उनके पकड़े जाने के बाद उनके साथियों ने सभा का काम पूर्ववत् चलाया, मानों कहीं कुछ हुआ ही न हो। (यं. इं.)

(आखरी पृष्ठ के आगे)

[सूचना—असहयोगी, अपने ध्येय पर दृढ़ रहते हुए भी, हर शख्स की फिर वह चाहे अंग्रेज हो या हिंदुस्तानी, बीमारी या दुर्घटना आदि के समय पर सेवा करने में अपना सौभाग्य मानेगा।]

(८) तिलक–स्वराज्य–फंड को जारी रखना और प्रत्येक महासभा के सदस्य या उसके साथ सहानुभूति रखने वाले सज्जन से उसकी वार्षिक आमदनी का कम से कम सौवां हिस्सा सन १९२१ के लिए प्राप्त करना। प्रत्येक प्रान्त तिलक–स्वराज्य–फंड का चौथाई भाग हर मास महासमिति को भेजे।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, फाल्गुन बदी ८, सं. १९७८.

घर का वार

परमात्मा मुझपर असीम दया करता आया है। उसने मुझे तीसरी बार चेतावनी दी है कि भारत अभीतक उतना सत्यव्रत और अहिंसापरायण नहीं हुआ है जितना कि उसे होना चाहिए। वह तभी सविनय भंग के योग्य कहा जा सकेगा जब वह पूरी तरह सत्य और अहिंसापरायण हो जायगा। सविनय-भंग की हालत में तो उसे विनयशील, सत्यव्रत, नम्र और सज्ञान होना चाहिए। यद्यपि वह हरएक काम जानबूझ कर करे तथापि उन प्रत्येक काम में प्रेम टपकना चाहिए। अपराध और द्वेष का कहीं नामोनिशान तक न हो।

उसने पहले पहल मुझे १९१९ में चेताया, जब कि रौलट ऐक्ट का विरोध करने के लिए आन्दोलन उठाया गया था। अहमदाबाद, वीरमगांव और खेडा ने गलती की। वही गलती अमृतसर और कसूर ने दुहराई। और मैंने अपना पैर पीछे हटा लिया। मेरे हाथ से हिमालय जैसी भारी गलती हो गई, यह मैंने कबूल किया। परमात्मा और मानव-जाति के सामने विनम्र होकर अपना सिर झुकाया और न केवल सामुदायिक सविनय कानूनभंग स्थगित कर दिया, बल्कि अपना वैयक्तिक कानून-भंग भी जो कि सविनय और अहिंसात्मक ही होने वाला था, स्थगित कर दिया।

इसके बाद दूसरी चेतावनी मुझे बम्बई में मिली, जब कि परमात्मा ने मुझे बडी डरावनी तरह से सचेत किया। इस बार तो उसने १७ नवम्बर के दिन बम्बई के हुल्लडबाजों की करतूतें अपनी आंखों दिखाई। हुल्लडबाजों ने तो ऐसा करने में असहयोग की भलाई सोची। किन्तु उसका फल यह हुआ कि शीघ्र ही बारडोली में जो सामुदायिक सविनय कानूनभंग शुरू होनेवाला था उसे आगे ढकेलने का विचार मुझे जाहिर करना पडा। इस बार मेरी भद १९१९ से कई गुना अधिक उडी। किन्तु उससे मेरा भला ही हुआ। और मुझे तो यकीन है कि उस समय उस आन्दोलन के स्थगित कर देने से राष्ट्र का भी भला ही हुआ। उस समय अपना कदम पीछे हटाकर भारत ने संसार को यह दिखा दिया कि वह सत्य और अहिंसा को सबसे अधिक चाहता है।

पर तब भी मेरी बुरी से बुरी फजीहत न हुई थी। वह तो अभी होनेवाली थी। मदरास ने आवाज दी, पर मैंने उसे सुनी अनसुनी कीया। पर परमात्मा ने चौरी चौरा से और भी जोर से आवाज लगाई। मुझे मालूम हुआ है कि जनता उन पुलिस के जवानों द्वारा, जो बुरी तरह नोंच काट कर मारे गये थे बहुत उकसाई गई थी। उनके इन्स्पेक्टर ने यह वचन किया था कि पुलिस लोगों को तंग न करेगी। उसका भंग उन्होंने किया। किन्तु जब जुलूस निकल चुका तब कुछ पीछे रहने वालों से उन पुलिस के जवानों ने कुछ छेड-छाड और गाली-गलौच किया। इसपर वे पीछे रहने वाले सहायता के लिए चिल्लाये और सारा जनसमूह का समूह पीछे उमड पडा। यह देख पुलिस ने गोली चला दी। किन्तु उनके पास मसाला अधिक न था। वह शीघ्र ही खतम हो गया और वे बचाव के लिए भागकर थाने में घुस गये। ऐसा मेरे संवाद-दाता का कहना है। पर जनता ने इसपर थाने में ही आग लगा दी। सिपाहियों को जिन्होंने अपने को अन्दर बन्द कर लिया था, लाचार हो, जान ले कर बाहर भागना पडा। और ज्योंही वे बाहर आये त्योंही उनके टुकडे टुकडे कर के वे आग की धधकती हुई भीषण ज्वालाओं में फेंक दिये गये। यह भी कहा जा रहा है कि इस पाशविक कृत्य में असहयोगी स्वयं-सेवकों का भी हाथ था।' और जनता भी केवल उसी घटना से उत्तेजित न हो उठी थी बल्कि उस जिले में जनता पर किये गये पुलिस के बहुत से अत्याचारों से परिचित थी। पर कुछ भी हो, उन निराश्रित और लाचार हो कर जनता की शरण आये हुए मनुष्यों की इस तरह हत्या होना तो किसी हालत में ठीक नहीं कहा जा सकता, फिर जनता चाहे कितनी ही क्यों न उकसाई गई हो। और जनता का यह खून-खराबी कर बैठना उस हालत में तो और भी भारी अपशकुन है जब हम यह दावा कर रहे हैं कि हमने अहिंसाव्रत धारण किया है और अहिंसा द्वारा हम भारत को स्वतंत्रता-देवी के सिंहासन पर बिठाने जा रहे हैं। मान लीजिए कि परमात्मा बारडोली को सविनय-भंग में विजय से विभूषित कर दे, और यह भी मान लीजिए कि सरकार भी बारडोली के विजयी वीरों के पक्ष में देश के शासन से अपना हाथ निकाल ले, तो इस निरंकुश जनसमूह को, जो अच्छी तरह उकसाये जाने पर उसे ऐसे अमानुष कृत्य कर बैठना है, संभाल कर शान्त रखने का भार किस पर जा गिरेगा? अहिंसात्मक स्वराज्य का मार्ग भी अहिंसात्मक ही होगा। अतएव जनता के निरंकुश हिस्से को भी अहिंसाद्वारा ही हमें अपने वश में लाना है। अहिंसात्मक असहयोगी तो तभी विजयी कहे जायंगे जब वे देश के हुल्लडबाजों को अपने वश में कर लें। अथवा दूसरे शब्दों में यों कहिए कि जब वे भी कम से कम तबतक तो देश-सेवा की दृष्टि से या धार्मिक भाव से अपने हिंसात्मक कृत्यों से बाज आना सीख जायं जबतक असहयोग का जंग चल रहा है। इसलिए चौरी चौरा की दुर्घटना ने तो मेरी आंखें पूरी तरह खोल दीं।

पर शैतान की आवाज ने मेरे कानों में कहा "जनाब आपने बडे लाट को आखिरी चेतावनी दी और उनका उत्तर मिलने पर फिर बडा लंबा-चौडा प्रत्युत्तर दिया उसका क्या करेंगे? बस हो चुका सब?" इस फजीहत को बरदाश्त करना सबसे अधिक कठिन बात है। सचमुच, बडे जोश और गैर के साथ सरकार को धमकियां दे कर तथा बारडोली के लोगों को बडे बडे आश्वासन देकर, दूसरे ही दिन पीछे कदम हटा लेना कायरता तो जरूर कही जा सकती है। इस समय तो सत्य, धर्म और अतएव परमात्मा से भी मुंह मोड लेने के लिए शैतान बुला रहा है। मैंने तो अपनी सब शंका-कुशंकायें और कठिनाइयां कार्य-कारिणी समिति तथा मेरे दूसरे साथियों के सामने जो कि उस समय उपस्थित थे, रख दीं। पहले पहल वे सब मुझसे सहमत नहीं हुए। और कोई कोई तो अब भी शायद मुझसे सहमत नहीं हैं। पर मैं तो यही कहूंगा कि जैसे विचारशील और क्षमावान साथी पाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है ऐसा शायद ही कभी किसी को मिला हो। वे मेरी कठिनाइयों को समझ गये और मेरे विचारों को शान्ति के साथ सुनते गये। उसका फल आज कार्य-कारिणी समिति के प्रस्तावों के रूप में जनता के सामने उपस्थित है। करीब करीब तमाम आक्रामक कार्यक्रम का एकदम पीछे ले लिया जाना राजनैतिक दृष्टि से भलेही अदूरदर्शिता तथा बुद्धिमत्ता-शून्य काम समझा जाय। पर यह तो निःसन्देह सत्य है कि वह धार्मिक दृष्टि से

बड़ा ही अच्छा और विचारपूर्ण काम हुआ । और जिनके दिल में इस विषय में जरा भी सन्देह हो उन्हें मैं यकीन दिलाकर कहता हूं कि हां, मेरी यह फजीहत तो हुई और मुझे अपनी भूल भी कबूल करनी पड़ी, पर देश का इससे भलाही होगा ।

मैं अगर किसी सद्गुण का दावा करना चाहता हूं तो वह सत्य और अहिंसा-परायणता ही है । मैं अपनेमें किसी दैवी शक्ति होने का दावा नहीं करता । और न मुझे वह दरकार ही है । मेरा शरीर भी उसी एक दिन नाश पानेवाली मिट्टी का बना हुआ है जिसका कि मेरे एक कमजोर से कमजोर भाई का बना हुआ है । और इसीलिए मेरे हाथ से भी वे सब गलतियां होने की संभावना है जो कि उसके हाथ से हो सकती हैं । मेरी सेवायें अत्यंत परिमित और अपूर्ण हैं । किन्तु उन अपूर्णताओं के होते हुए भी अभीतक उन्हें परामात्मा ने अपना कर मुझपर असीम कृपा की है ।

क्योंकि, अपनी गलती को स्वीकार करना एक बड़ी अच्छी बात है । वह एक झाड़ू का काम करता है । जिस प्रकार झाड़ू तमाम गंदगी हटाकर जमीन को पहले से भी अधिक साफ कर देता है उसी प्रकार अपनी गलती को स्वीकार करने से हृदय हलका और दिल साफ हो जाता है । इसीलिए अपनी गलती स्वीकार करने से ऐसा अनुभव कर रहा हूं और मुझमें अधिक बल आ गया है । इस पीछे हटने से हमारे कार्य की भी उन्नति ही होगी । सीधी राह को छोड़ देने से मनुष्य अपने उद्दिष्ट स्थान को कभी नहीं पहुंच सकता ।

कोई कोई यह भी कहते हैं कि चौरी चौरा का असर बारडोली पर नहीं गिर सकता । वे कहते हैं कि " अगर बारडोली स्वयं अपनी कमजोरी के कारण चौरी चौरा की घटना से विचलित हो कर कहीं हिंसा में प्रवृत्त हो जाय तभी खतरे की बात है । " बारडोली का तो मुझे पूरा विश्वास है । मेरे ख्याल में तो बारडोली के लोग भारत में सबसे अधिक शान्त हैं । पर बारडोली तो भारत का एक अत्यंत छोटासा हिस्सा है न ? जबतक दूसरे भागों से उसे पूरा सहयोग न मिलेगा तबतक वह अपने प्रयत्न में कैसे सफल हो सकता है ? बारडोली का कानून-भंग तो तभी सविनय और शांतिमय रह सकता है जब उस समय अन्य प्रांतों में भी पूर्ण शांति हो । नमक की एक छोटी सी डली तमाम दूध को कैसे बेकाम कर देती है ? ठीक उसी प्रकार बारडोली चाहे कितनी ही शांति से क्यों न काम करे चौरी चौरा का विष उसके तमाम काम को मिट्टी में मिला देगा । क्योंकि जसे बारडोली भारत के भावों को जाहिर करता है वैसे ही चौरी चौरा भी तो भारत का ही एक हिस्सा है न । वह भी तो उसके उद्दंड भावों को दर्शाता है ।

चौरी चौरा तो देश की हिंसावृत्ति का एक परिणत चिन्हमात्र है । मेरा भी यह ख्याल तो अभीतक नहीं था कि जहां जहां दमन जारी है वहां वहां हिंसा, मानसिक या कार्य में, हुई न होगी या होती ही न होगी । मेरा तो यह विश्वास था और अब भी है कि जिस तरह से दमन हो रहा है वह सीमा से बहुत बाहर है और वहां जनता की ओर से जो कुछ हिंसा हुई होगी वह अत्यंत थोड़ी और दमन के मुकाबले में नगण्य होगी । जहां सभायें करने की मुमानियत है वहां निश्चय करके सभायें करना इसको मैं हिंसा नहीं कहता । हिंसा तो मैं जहां कहीं ईंट-पत्थर फेंके गये, जनता को धमकियां दी गईं, कहीं कहीं लोगोंपर जबरदस्ती की गई, उसको कहता हूं । सच पूछिए तो सविनय-भंग में उत्तेजना होनी ही न चाहिए । सविनय-भंग तो मुकाबला-असहयोग की तैयारी मात्र है । उसका प्रभाव धीरे धीरे हो, और एकदम न दिखाई दे तो क्या हुआ ? वह प्रभाव तो आश्चर्यजनक होता है । किन्तु मेरा यह भी ख्याल था कि कुछ उत्तेजना तो रहेगी, वह बिलकुल नहीं निकाल दी जा सकती । मेरा यह भी ख्याल था कि कहीं कहीं हिंसा भी होगी ही, किन्तु जान-बूझकर नहीं, अर्थात् कुछ कुछ अपूर्ण स्थिति में सविनय कानून भंग का होना मुझे असंभव नहीं नजर आया । क्योंकि पूर्ण तैयारी होनेपर तो सविनय भंग मालूम ही नहीं होता है । पर अभी इतनी प्रतिकूल परिस्थिति में इस आंदोलन का छेड़ना तो सचमुच महाभीषण प्रयोग होगा ।

सचमुच, चौरी चौरा की दुर्घटना एक भारी संकेत-चिन्ह है । वह यह दिखा रहा है कि अगर शीघ्र ही कोई खासा प्रतिबंधक उपाय न किया जाय तो देश किस ओर बड़ी आसानी से झुक सकता है । अगर हमें अहिंसा में से हिंसा का विकास नहीं करना है तो यह साफ है कि हमें अपने कदम तेजी से पीछे हटा लेना चाहिए, और फिर शांति स्थापित कर देनी चाहिए । फिर अपना नया कार्यक्रम बना लेना चाहिए और तबतक सामुदायिक सविनय कानून-भंग शुरू करने का ख्याल भी न करना चाहिए जबतक कि हमें यह पूरा विश्वास और निश्चय न हो कि सामुदायिक सविनय कानून-भंग शुरू होने पर तथा सरकार के जनता को हजार उकसाने पर भी हम जनता की शान्ति भंग न होने देंगे । सिवा इसके हमें यह भी विश्वास होना चाहिए कि वे प्रान्त बीचमें ही सविनय कानून-भंग शुरू न कर बैठें जिन्होंने उसकी शर्तें पूरी कर के पहले योग्यता और आज्ञा प्राप्त न कर ली है ।

अभी तो कांग्रेस-रचना भी अपूर्ण ही है । और उसकी आज्ञाओंका पालन भी ऊपर ऊपर हो रहा है । हमने अभी हरएक गांव में और मौजे मौजे में कहां महासभा की शाखायें खोली हैं ? और जहां जहां वे खुल भी गई हैं वे सब कांग्रेस की आज्ञाओंका कहां अच्छी तरह पालन कर रही हैं ? अभी तक एक करोड़ से अधिक सदस्यों के नाम भी तो हमारे महासभा के रजिस्टर में दर्ज नहीं हुए हैं । अभी फरवरी महीना चल रहा है; पर अभी तक बहुतों ने इस साल के वार्षिक चन्दे के चार आने भी नहीं दिये हैं । स्वयंसेवकों के नाम दर्ज करते समय भी उचित ध्यान नहीं रक्खा जाता । वे अपने प्रतिज्ञापत्र की तमाम शर्तों का पालन नहीं करते । वे हाथकती-बुनी खादी भी तो नहीं पहनते हैं । सब हिन्दू स्वयंसेवकों ने अहिंसा का पाप अभी कहां धो डाला है ? इस प्रकार वे सब अभी पूरी तरह अहिंसापरायण कहां हो गये हैं ? केवल उनके जेल जाने ही से कहीं हम स्वराज्य थोड़े ही प्राप्त कर सकते हैं ? न उससे खिलाफत जैसे पवित्र कार्य की सेवा कर सकते हैं या बेईमान नौकरों की पेन्शन बन्द कर देने की योग्यता ही प्राप्त कर सकते हैं ? कई तो लाचारी से भूलें कर बैठते हैं । पर कई ऐसे हैं जो जान बूझ कर पाप करते हैं । वे जानते हैं कि अहिंसा का पालन वे न कर रहे हैं और न करना ही चाहते हैं पर तो भी वे स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखा देते हैं । इस प्रकार जैसे हम सरकार को झूठी कह रहे हैं ठीक वैसे ही हम भी हैं । केवल मुंह से ऊपरी ऊपर सत्य और अहिंसा की जय जयकार करनेसे हम स्वतंत्रता-देवी के साम्राज्य के अन्दर कभी नहीं दाखिल हो सकते ।

सामुदायिक कानून-भंग का स्थगित होना, और स्वयं उत्तेजना का रोकना हमारी प्रगति के लिए अत्यंत आवश्यक है । सिर्फ यही नहीं बल्कि हम यह न करते तो अभीतक जो कुछ हमने किया था वह सब व्यर्थ होने की भारी संभावना थी । इसलिए मैं आशा करता हूं कि महासभा का हरएक कार्यकर्ता दुखी दुखाय न होगा । इतना ही नहीं, बल्कि वह इसलिए समाधान ही

मानेगा कि राष्ट्रीय पातक और असत्यता का भार हमारे हृदय से दूर हो गया।

हमारे प्रतिपक्षी तो हमारी इस फजीहत और पराजय को देखकर फूले न समायेंगे। वे तो बड़े प्रसन्न हो रहे होंगे। होने दो। अपनी प्रतिज्ञा को झूठी सिद्ध करके परमात्मा के सामने पापी ठहरने से यह बहुत अच्छा है। दुनिया इसे कायरता और कमजोरी कहे तो भले ही कहने दो। हमारी अंतर्देवता के प्रति असत्य होने के बनिस्बत दुनिया को हम असत्य दिखाई दें तो वह लाख गुना अच्छा है।

इसलिए सामुदायिक सविनय कानून-भंग का तथा दूसरी अनेक हलचलों का, जिनके शुरू रहने से जनता में उत्तेजना और जोश बना रहता, स्थगित कर देना मेरे प्रायश्चित्त के लिए काफी नहीं है। क्योंकि चौरी चौरा की दुर्घटना का, चाहे कितना ही अप्रत्यक्ष रीति से क्यों न हो, मैं निमित्त कारण जरूर हुआ हूं।

इसलिए मुझे किसी प्रकार काफी प्रायश्चित्त जरूर करना चाहिए। मुझे एक ऐसा यंत्र बन जाना चाहिए कि जिसमें अपने आसपास के नैतिक वातावरण में कहीं जरा भी फर्क हो तो उसका असर मेरे हृदय पर फौरन् दीख पड़े। मेरी प्रार्थना और भी अधिक सत्यपूर्ण तथा विनम्र होनी चाहिए। और मेरे लिए तो निरशन और उसके साथही साथ आवश्यक मानसिक सहयोग के जैसा उपयोगी और हृदय को शुद्ध करने वाला दूसरा उपाय ही नहीं।

मैं जानता हूं कि मानसिक अवस्था ही सब कुछ है। क्योंकि जैसे प्रार्थना किसी पक्षी के कलरव की तरह भक्तिशून्य हो सकती है वैसे ही उपवास भी शारीरिक कष्ट के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता। इन ऊपरी उपायों का महत्व हृदय-शुद्धि के लिए कुछ भी नहीं है। उसी प्रकार जैसे प्रार्थना के केवल गायन से कंठ अच्छा हो सकता है वैसे ही उपवास से भी देह-शुद्धि हो सकती है। किन्तु आत्मा पर तो दोनों का असर कुछ नहीं होगा।

किन्तु जब पूर्ण आत्म-प्रकाशन के हेतु से उपवास किया जाता है, जब शरीर पर आत्मा का प्रभुत्व प्रस्थापित करने के हेतु से उपवास काम में लाया जाता है तब मनुष्य की प्रगति में वह अत्यंत महत्वपूर्ण भाग हो जाता है। इसलिए पूरी तरह विचार कर लेने पर मैंने पांच दिन का सतत उपवास-निरशन व्रत शुरू किया था। मै सिर्फ पानी पीता रहा। यह रविवार सुबह से शुरू किया और शुक्रवार शाम को खतम हो गया। कम से कम इतना तो मुझे करना ही चाहिए था।

शीघ्र ही अखिल भारतवर्षीय महासभा-समिति की बैठक होने वाली है। यह मेरे ध्यान में है। मैं जानता हूं कि कितने ही मित्रों को इस मेरे पांच दिन के उपवास से भी बड़ा दुःख होगा। पर मैं अब इसे आगे न ढकेल सका और न कम ही कर सका।

मैं अपने सहयोगियों से आग्रह करता हूं कि वे मेरा अनुकरण न करें। उन्हें उपवास करने का कोई कारण नहीं। सविनय कानून भंग के उत्पादक वे थोड़े ही हैं। एक वैद्य को जैसे किसी कठिन, --असाध्य रोग की चिकित्सा करते करते किंकर्तव्य-मूढ हो कर अपनी लाचारी पर दुःख होता है ठीक वैसी दुःखद अवस्था मेरी हुई है। इस समय या तो मुझे इसे छोड़ देना चाहिए या अधिक कौशल प्राप्त करना चाहिए। इसलिए यह वैयक्तिक प्रायश्चित्त मेरे लिए केवल आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी था। साथ ही कार्य-कारिणी समिति ने देश के लिए जिस आत्म-संयम की सिफारिश की है वह देश के हरएक पुत्र और पुत्री के लिए निःसन्देह काफी प्रायश्चित्त है। वह कुछ थोड़ा प्रायश्चित्त नहीं है। वह तो अगर दिल के साथ किया जाय तो उपवास से कई गुना अधिक सच्चा और उपयोगी हो सकता है। सचमुच, अहिंसा की प्रतिज्ञा का खूब बड़े पैमाने में कार्य में परिणत होने तथा उस सिद्धान्त का अच्छी तरह प्रचार होने, से बढ़कर उपयोगी और क्या बात हो सकती है। इसलिए यह देख कर कि मेरे सब मित्र व्यर्थ वाद-विवाद में समय न खोते चुपचाप कार्य-कारिणी समिति के निर्दिष्ट किये हुए विधायक कार्यक्रम को पूरा करने में लगे हुए हैं, मुझे वैसी ही तृप्ति हो सकती है जो अन्न खाने पर होगी। इसी प्रकार मुझे यह देखकर भी प्रसन्नता होगी कि वे यकीन कर कर के ऐसे ही स्त्री-पुरुषों के नाम महासभा के सदस्यों में दर्ज कर रहे हैं, जो यह भली भांति समझते हैं कि महासभा का ध्येय सत्य और अहिंसा द्वारा ही स्वराज्य की प्राप्ति करना है; अपना धर्म समझ कर रोज नियत समय तक चरखा कात रहे हैं, उसी प्रकार उस सुख समृद्धि तथा स्वतंत्रता के देनेवाले चक्र का घर घर में प्रचार कर रहे हैं, वे अपने अस्पृश्य भाइयों के घर जा जाकर उनकी खबर लेते हैं तथा उनसे पूछते हैं कि उनकी आवश्यकतायें क्या क्या हैं। वे राष्ट्रीय पाठशालाओं में जा जाकर अस्पृश्यवर्ग के बालकों को उनमें पढाने के लिए आग्रह कर रहे हैं; उसी प्रकार, वे किसी ऐसी समाज-सेवा करने की योजना कर रहे हैं जिसमें हरएक वर्ण के और दर्जे के स्त्री-पुरुषों को काम करने का मौका मिल सकता हो; वैसे ही जिन गृहों की श्री शराब से जा रही हो वहां जा जाकर उन शराबी भाइयों को प्रेम से शराब की हानि समझा रहे हैं, तथा सच्ची पंचायतों की और राष्ट्रीय विद्यालयों की गांव गांव में अच्छी तरह स्थापना कर रहे हैं, आदि देख कर मुझे जो सन्तोष और सुख होगा वह मेरे अन्न-ग्रहण से किसी प्रकार कम नहीं, बल्कि अधिक ही होगा। उपवास करने की बनिस्बत कार्यकर्ता इससे अधिक देशसेवा कर के उसका भला करेंगे। इसलिए मैं आशा करता हूं कि मिथ्या सहानुभूति से अथवा उसके आध्यात्मिक लाभ के गलत ख्याल से कोई भी मेरी तरह उपवास न करें।

सब प्रकार के उपवास और तपस्या जहांतक हो सके गुप्त ही रहना चाहिए। किन्तु मेरा यह निरशनव्रत तो तपस्या भी है और सजा भी। और सजा तो जाहिरा तौर पर होनी चाहिए। वह तपस्या तो मेरे लिए है और सजा उनके लिए, जिनकी सेवा करने की मैं कोशिश कर रहा हूं, जिनके लिए मैं जीना और मरना भी चाहता हूं। उन्होंने महासभा के नियमों के खिलाफ भूल से पाप किया है। वे यद्यपि महासभा के प्रत्यक्ष अनुयायी नहीं तथापि उससे वे सहानुभूति रखते थे। शायद उन्होंने मेरा ही जय जयकार करते हुए उन कान्स्टेबलों-पुलिस के सिपाहियों-अपने ही देशभाइयों को काट काट कर मारा हो। अपने प्रिय जनों को दण्ड देने का एकमात्र उपाय खुद ही कष्ट-सहन करना है। मैं यह भी नहीं इच्छा कर सकता कि वे गिरफ्तार किये जायं। किन्तु मैं उन्हें यह कह देना चाहता हूं कि उन्होंने महासभा के नियमों का भंग किया है, सो उनके लिए मुझे प्रायश्चित्त करना होगा। मेरा तो उन लोगों को जिन्हें यह मालूम हो रहा हो कि हमसे अपराध हो चुका है और अब पछतावा भी हो रहा हो यही सलाह है कि वे स्वयं सजा पाने के लिए स्वेच्छा से अपने को सरकार के स्वाधीन कर दें और जो कुछ किया हो सब साफ साफ कबूल कर लें।

मैं आशा करता हूं कि गोरखपुर के तमाम कार्यकर्ता सच्चे अपराधियों का पता लगाने में कुछ भी उठा न रक्खेंगे और उनसे आग्रह करेंगे कि वे आप हो कर सरकार के हवाले हो जायं। पर

उन हत्यारों को मेरी सलाह पसंद हो या न हो, किन्तु मैं उन्हें यह बता देना चाहता हूं कि उन्होंने स्वराज्य-आन्दोलन में बड़ा भारी विघ्न डाल दिया है। बारडोली के सविनय कानून-भंग के आगे रुकेले जाने का मूल कारण बनकर उन्होंने उस कार्य को गहरी हानि पहुंचाई जिसको कि शायद वे सहायता करना चाहते थे। मैं यह भी चाहता हूं कि वे यह भी जानलें कि यह आन्दोलन हिंसा को न तो छिपाने के लिए उठाया गया है और न वह उसकी पूर्व तैयारी ही है। मैं हर हालत में हर तरह से अपने बदनामी को, हर तरह की यन्त्रणाओं को सहलूंगा, जाति और समाज से बहिष्कृत होना और मृत्यु तक को अपना लेना कुबूल कर लूंगा; पर इस आन्दोलन को हिंसावृत्ति से या उसके हिंसा के साधनाभूत होने से बचाये बिना न रहूंगा। मैं अपने इस प्रायश्चित्त को सब के सामने प्रकट इसलिए भी करता हूं कि अब जेल में रहने वाले देश-भाइयों के साथ जेल में रहने का अवसर मैं गवां रहा हूं। मौका फिर हाथ से निकल गया है। अब हम उन मनाई हुक्मों को रद कर देने या कैदियों को छोड़ देने पर जोर नहीं दे सकते। चौरी चौरा के इस अपराध का फल उन्हें और हमें भोगे बिना छुटकारा नहीं। हम मानें चाहे न माने यह दुर्घटना अद्भुत रीति से मनुष्य जाति की एकता को सिद्ध करता है। सब लोगों को, यहां तक कि शासकवर्ग को भी, इसका फल भोगना होगा। इसके बदौलत सरकार अकड़ जायगी, पुलिस और अंधाधुन्धी मचावेगी, और इससे लोगों को जो कष्ट और दुःख होगा उससे वे अधिकाधिक कर्तव्य भ्रष्ट होंगे। कानून-भंग स्थगित कर देने तथा मेरे इस प्रायश्चित्त के कारण हम फिर उसी स्थिति को जा पहुंचेंगे जिसमें कि इस दुःखान्तक घटना के पहले हम थे। कड़ाई के साथ नियमों के तथा मर्यादा के पालन से एवं आत्म-शुद्ध से हमें उस नैतिक विश्वास की प्राप्ति होगी जिसके द्वारा हम इन नोटिसों को रद करा सकेंगे और अपने देश-भाइयों को जेलों से छुड़ा सकेंगे।

इस शोकान्तक घटना से यदि हम पूरी पूरी नसीहत लेंगे तो हम इस शाप को आशीर्वाद के रूप में परिणत कर सकेंगे। क्या भावना और क्या कृति के द्वारा सत्यव्रत और अहिंसा-परायण होते हुए, और स्वदेशी अर्थात् खादी-प्रचार के कार्यक्रम को पूरा करते हुए हम बिना किसी एक भी आदमी के सविनय भंग किये स्वराज्य की स्थापना कर सकते हैं तथा खिलाफत और पंजाब के दुःखों को निवारण कर सकते हैं।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

कार्यसमिति के प्रस्ताव

१ चौरी चौरा के अमानुष अत्याचारों पर खेद-प्रकाशन।

२ जबतक पूर्ण अहिंसामय वायुमंडल न तैयार हो जाय तबतक सामुदायिक सविनयभंग मुल्तवी रक्खा जाय। सरकारी कर जो रोक रक्खे गये थे वे जमा कर दिये जायं। तीव्र भंग की तैयारियां बन्द की जायं।

३ खुद हो कर जेल जाने का आन्दोलन बन्द किया जाय। महासभा की केवल मामूली हलचलें जारी रहें। शुद्ध चरित्र और महासभा के पसन्द किये हुए लोगों के ही द्वारा शराबखानों पर पहरा दिलाया जाय। दूसरे तमाम पहरे बन्द रक्खे जायं।

४ सभाबन्दी के कानून को भंग करने के लिए जो जलूस निकाले जाते हैं और सभायें की जाती हैं वे बन्द किये जायं। हां, महासभा की खानगी सभायें तथा दूसरी मामूली सभायें भले ही की जायं।

५ कृषिकारों को समझाया जाय कि वे जमींदारों का लगान न रोकें। महासभा के आन्दोलन का हेतु यह नहीं है कि जमींदारों के बा-कायदा हकों पर आघात पहुंचाया जाय।

नया कार्यक्रम

(१) महासभा के कम से कम एक करोड़ सदस्य बनाये जायं।

[सूचना—(अ) चूंकि शान्ति (अहिंसा) और सत्य महासभा के ध्येय का प्राणरूप है, ऐसा कोई शख्स महासभा का सदस्य न बनाया जाय जो इस बात का कायल न हो कि अहिंसा और सत्य स्वराज्य प्राप्ति के लिए अनिवार्य है। अतएव हर आदमी को महासभा का ध्येय अच्छी तरह समझा दिया जाय।

(आ) कार्यकर्ताओं को यह याद रखना चाहिए कि जो लोग वार्षिक चंदा न दें वे महासभा के सदस्य न माने जायंगे। अतएव तमाम पुराने सदस्यों को सलाह देनी चाहिए कि वे अपने नाम फिर से दर्ज करावें।]

(२) चरखे का प्रचार करना और हाथ-कती तथा हाथ-बुनी खादी तैयार करने का संगठन करना।

[सूचना-इसके लिए महासभा के तमाम कार्यकर्ताओं और कर्मचारियों को खादी के ही कपड़े पहनना चाहिए और उनसे यह सिफारिश की जाती है कि वे खुद कातना सीखें जिससे दूसरों को उत्साह मिले]

(३) राष्ट्रीय पाठशालाओं का संगठन करना।

[सूचना-सरकारी पाठशालाओं पर पहरा न रक्खा जाय; बल्कि तमाम महत्वपूर्ण विषयों में राष्ट्रीय पाठशालाओं की श्रेष्ठता पर आधार रक्खा जाय, जिससे उनमें विद्यार्थियों की संख्या-वृद्धि हो।]

(४) अछूत जातियों के जीवन को अधिक अच्छा बनाने, उनकी सामाजिक, मानसिक और नैतिक दशा का सुधार करने और अपने लड़कों को राष्ट्रीय पाठशालाओं में भेजने के लिए उन्हें उत्साहित करने तथा दूसरे लोगों की तरह उन्हें मामूली सहूलियतें देने के लिए संगठन किया जाय।

[सूचना-जहां अब भी अछूत जातियों के प्रति मलिनता का भाव ज्यादा हो वहां महासभा के कोष के द्वारा उनके लिए अलग मदरसे खोले जायं। उनके लड़कों को राष्ट्रीय पाठशालाओं की ओर आकर्षित करने तथा लोगों को समझाने का हर तरह से प्रयत्न किया जाय जिससे वे उन्हें गांव के कुओं से पानी लेने दें।]

(५) जिन लोगों को शराब पीने की आदत पड़गई है उनके घर घर जा कर उनकी शराब छुड़ाने का संगठन किया जाय; और 'पहरा रखने' की अपेक्षा शराबी को उसके घर में ही समझाने बुझाने पर अधिक आधार रक्खा जाय।

(६) गांव और कस्बा-पंचायतों को संगठन करना जिनके द्वारा लोग अपने तमाम खानगी मामले निपटा लिया करें। इसमें केवल लोकमत और पंचायत के फैसले की सचाई के बल पर ही आधार रक्खा जाय, जिससे लोग निश्चयपूर्वक उनके फैसले को मानें।

(७) एक समाज-सेवा-विभाग खोला जाय जिसके द्वारा बिना किसी राजनैतिक मतभेद के लिहाज के, सब लोगों को बीमारी या दुर्घटना आदि के समय सहायता दी जाय। इससे सब जातियों और श्रेणियों में एकता और सद्भाव की वृद्धि होगी, जिसकी स्थापना करना ही असहयोग आन्दोलन का उद्देश है।

(शेष २१२ पेज में)

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूड़ी ओळ, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित॥

गर्जन-तर्जन

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—फाल्गुन बदी ३०, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, २६ फरवरी, १९२२ ई० | अंक २८

"मेरी इज्जत चली गई"?

लाहौर से एक सज्जन ने एक गुमनाम पत्र भेजा है, जिसको पढ कर मानो दिल दहल उठता है। वे लिखते हैं कि सविनय-भंग मुल्तवी होने की खबर पाते ही एक मित्र ने मुझसे कहा कि महात्माजी इस आन्दोलन से अलग हो जाना चाहते हैं। उन्होंने प्रान्तिक समितियों को सलाह दी है कि आगे स्वयंसेवकों की भरती न की जाय। पहरा रखना भी तबतक बन्द कर दिया जाय जबतक महासमिति कोई निर्णय न कर दे। लोगों की यह राय है कि अब आपने अपना मुंह मोड लिया है। आपका चित्त डांवाडौल हो गया है। अब वे बिना हिचपिचाहट के सरकार के साथ सहयोग करेंगे और शाहजादे के स्वागत-समारंभों में शरीक होंगे। कुछ लोग तो कहते हैं कि हम हडताल भी नहीं करेंगे और दिल के साथ लाहौर में शाहजादे का स्वागत करेंगे। कुछ व्यापारियों का यह खयाल हो गया है कि आपने शराब की दुकानों तथा विदेशी कपडों की तमाम कैदें उठा ली हैं। सच कहें तो लाहौर में तमाम लोग बाजारों में और अपने अपने घरों में एकत्र हो हो कर चर्चा कर रहे हैं और वे महासमिति के इस निर्णय की निन्दा कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में मैं आपसे नीचे लिखे सवाल पूछता हूं—

(१) क्या आप इस आन्दोलन का नेतृत्व छोड देंगे? यदि हां, तो क्यों?

(२) कृपया बताइए कि आपने तमाम प्रान्तीय समितियों को ऐसी सूचनायें क्यों दी हैं? क्या आपने श्री मालवीय जी को सर्वपक्षीय परिषद के लिए यह मौका दिया है, जिससे कोई निपटारा हो जाय या पण्डित जी इस बात पर तैयार हो गये हैं कि यदि सरकार अपना वचन पूरा न करे तो वे इस आन्दोलन में शामिल हो जायंगे?

(३) मान लीजिए कि कोई ऐसा समझौता होता हो कि पंजाब और खिलाफत के दुःख दूर कर दिये जायं और स्वराज्य के सम्बन्ध में सरकार सिर्फ और अधिक शासन-सुधार कर दे तो क्या इससे आप सन्तुष्ट हो जायंगे अथवा जबतक पूरा औपनिवेशिक स्वराज्य न मिले, आप अपनी हलचलें जारी रक्खेंगे?

(४) फर्ज कीजिए, कोई फैसला न हो पाया। तो क्या श्री मालवीय जी तथा दूसरे तमाम सज्जन जो इस परिषद् से सम्बन्ध रखते हों, आपके पक्ष में मिल जायंगे या इसी तरह बीचमें रक्खे रहेंगे?

(५) यदि कोई फैसला न हो पाया तो क्या आप, यदि हिंसाकाण्ड का भय हो तो, सविनय-भंग का खयाल छोड देंगे?

(६) क्या अब आपका यह इरादा है कि स्वयंसेवक-सेना तोड दी जाय और सिर्फ वही लोग भरती किये जायं जो सूत कातना जानते हों और हाथ-कती तथा हाथ-बुनी खादी पहनते हों?

(७) कल्पना कीजिए कि आपके सविनय-भंग शुरू कर देने पर कहीं हिंसाकांड का उद्रेक हो गया, तो उस समय आप क्या करेंगे? क्या आप उसी दम अपनी हलचल बन्द कर देंगे?

इस पत्र में इससे भी बहुत अधिक आलोचना की गई है। पत्र-लेखक महाशय कहते हैं कि लोग इतने दिक हो गये हैं कि अब वे सहयोगी होने की धमकी देते हैं और यह खयाल करते हैं कि मैंने लाला लाजपतराय, देशबन्धु चित्तरंजन दास, पण्डित मोतीलाल नेहरू और अली-बंधु आदि को बेंच डाला है और यदि मैं नेतापन छोड दूंगा तो हजारों आदमी आत्महत्या कर डालेंगे। सो मैं खास तौर पर लाहौर के और आम तौर पर पंजाब के लोगों को यह यकीन दिलाता हूं कि मैं उस पर भरोसा नहीं करता हूं जो कि उनके विषयमें कहा गया है। फौजी कानून के जमाने में भी, सविनय-भंग बन्द कर देने के कारण, मेरे पास ऐसे ही पत्र आया करते थे; पर मैं उन तमाम खबरों के बहुत थोडे अंश को सच मानता रहा और जब अक्तूबर में मैं पंजाब पहुंचा तो मैंने देखा कि पंजाब के लोगों की चित्त वृत्ति का जो अनुमान मैंने किया था वह ठीक ठीक था और मुझे मालूम हुआ कि मेरे उस कार्य के औचित्य पर किसीने सवाल नहीं उठाया। अब तो कार्य-समिति के निर्णय के औचित्य पर मुझे और भी अधिक विश्वास है; पर यदि मुझे यह मालूम हुआ कि देश मेरे कार्य्य का विरोध करता है तो मैं इसका कुछ खयाल न करूंगा। मैं तो सिर्फ अपने कर्तव्य का पालन करूंगा। जो नेता अपनी अन्तरात्मा की पुकार को नहीं सुनता वह किसी काम का नहीं; क्योंकि उसके आसपास तो हर किस्म के विचार रखने वाले लोग रहा करते हैं। यदि वह अपने अन्तरनाद पर अटल न रहे और उसके संकेत के अनुसार न चले तो वह बिना

लंगर वाले जहाज की तरह न जाने कहां वह निकले। और इन सब से बढ़ कर, यदि संसार मुझे न अपनावे तो इसे तो मैं सहन कर लूंगा; पर ईश्वर से मुंह मोड़ना तो मेरे ख्वाबोख्याल में नहीं आ सकता। और यदि संग्राम के इस आनबान के अवसर पर मैंने यह सलाह न दी होती तो मैं ईश्वर और सत्य दोनों से मुंह मोड़ लेता। भारत के कोने कोने से, क्या सहयोगी और क्या असहयोगी सब की तरफ से—मेरे पास धड़ाधड़ तार और पत्र चले आ रहे हैं। वे बारडोली के निर्णय पर मुझे धन्यवाद दे रहे हैं। मालूम होता है कि लाहौर के इन सज्जन ने किसी गर्मागर्म बाजारू बातचीत को जरूरत से ज्यादह महत्व दे दिया है। बारडोली के इस निर्णय ने पहले के तमाम अनुमानों पर पानी फेर दिया है। इससे लोगों में ऐसी खलबली मच जाना स्वाभाविक ही था। हां, यह खबर सुनते ही लोगों के दिल को जो धक्का पहुंचा होगा उसका खयाल मैं कर सकता हूं। पर मुझे यह भी विश्वास है कि जब लोग अहिंसा का तात्पर्य समझने लगेंगे तब वे इसके सिवा दूसरे नतीजे पर पहुंच ही नहीं सकते।

अब मैं पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तर देता हूं—

(१) जबतक मुझे स्पष्ट रूप से यह न मालूम हो जायगा कि लोग मुझे नेता बनाये रखना नहीं चाहते हैं तबतक मेरे नेतापन छोड़ देने की कोई सम्भावना नहीं है। ऐसी इच्छा प्रकट करने की एक विधि है—कार्यसमिति अथवा महासमिति के मेरे का निर्णय के खिलाफ अपना मत देना।

(२) मैं सर्व-साधारण को यह निश्चय दिलाता हूं कि मेरे इस निर्णय में श्री मालवीय जी का बिलकुल हाथ नहीं है। मैंने अक्सर पण्डित जी की बातें मानी हैं और जहां जहां तक मैं उनकी बात मान सका वहां तक उसे मानने में मुझे आनन्द ही हुआ और जब कभी मुझे उनसे अपना मतभेद रखना पड़ा तब तब मुझे अवश्य दुःख हुआ है। श्री मालवीय जी ने देशकी अनुपम सेवा की है। वे साक्षात् त्याग-मूर्ति हैं। परन्तु सविनय भंग मुल्तवी रखने का निर्णय तो खुद मैंने ही चौरीचौरा की दुर्घटना का ब्योरा ''क्रानिकल'' में पढ़ कर किया था। बारडोली ही से कार्य-समिति के सदस्यों को तार किये गये और वहीं से मैंने उनपर सविनय भंग स्थगित कर देने की अपनी इच्छा प्रकट की। इसके बाद श्री मालवीय जी के बुलाने से मैं बंबई गया। वहां उन्होंने तथा मालवीय-परिषद् वाले दूसरे मित्रों ने भी यही बात पेश की और उन्हें यह जान कर सानंद आश्चर्य हुआ कि मैंने खुद तो पहले ही से ऐसा निश्चय कर लिया है; पर कार्य-समिति के सदस्यों से भी इसकी पूरी चर्चा कर लेना चाहता हूं। सर्वपक्षीय परिषद् अथवा किसी निपटारे की कोई बात इस बन्दी से सम्बन्ध नहीं रखती। मेरी राय में तो सर्वपक्षीय परिषद् निष्फल ही सिद्ध हो कर रहेगी। उसके लिए तो लार्ड रीडिंग से बहुत ज्यादा मजबूत दिल के वाइसराय की जरूरत है, जो स्थिति को अच्छी तरह समझ सके और उसे ठीक ठीक प्रकट कर सके। मैं तो अवश्य ही यह अनुभव करता हूं कि श्री मालवीय जी पहले ही से इस आन्दोलन में शामिल हो गये हैं। उनके लिए अपने को महासभा से अथवा खतरे से दूर रखना सम्भवनीय नहीं है; परन्तु बारडोली का निर्णय तो इस नवीन परिस्थिति का ही फल है और यदि चौरीचौरा की इस दुर्घटना ने जिसने कि पूर्णाहुति का काम किया है, मेरी हिम्मत पस्त न की होती तो मैं अपने पहले विचार से कभी नहीं डिगता।

(३) खुद मुझे तो पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य से जरा भी कम में सन्तोष नहीं हो सकता। और यदि खिलाफत और पंजाब के अन्यायों का परिमार्जन नहीं किया गया तो पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद से कम में मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकता। लेकिन उसका यथार्थ स्वरूप मुझ पर अवलम्बित नहीं है। मैंने कोई पूर्ण और निश्चित योजना नहीं तैयार की है। वह तो जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा तैयार की जायगी।

(४) इस वर्तमान अवस्था में तो निपटारे का कोई सवाल ही नहीं है। अतएव यह सवाल कि पंडित जी अथवा दूसरे सज्जन क्या करेंगे, यदि प्रसंग-विरुद्ध नहीं तो समय के पहले अवश्य किया गया है। पर मान लीजिए कि पण्डित जी ने ऐसी किसी परिषद् की आयोजना की और उसके प्रस्ताव पर सरकार ने ध्यान न दिया तो पण्डित जी तथा दूसरे सज्जन ऐसा ही कार्य करेंगे जैसा कि ऐसी स्थिति में स्वाभिमानी पुरुष करते हैं।

(५) मैं सविनय भंग का खयाल तो नहीं छोड़ सकता- फिर हिंसाकांड का चाहे कितना ही खतरा क्यों न हो, पर जबतक हिंसा-काण्ड का भय निश्चित रूप से है तबतक सविनय-भंग शुरू करने का खयाल अलबत्ते मैं छोड़ दूंगा।

(६) किसी भी स्वयंसेवक-दल को तोड़ देने की कोई बात नहीं है। हां, जो लोग महासभा की निश्चित प्रतिज्ञा का पालन नहीं करते हैं उनके नाम अवश्य ही निकाल दिये जायं। तभी हम प्रामाणिक बने रह सकते हैं।

(७) यदि हम अहिंसा के परम आवश्यक अंगों को अच्छी तरह समझ गये हों तो हम सिर्फ एक ही नतीजे पर पहुंच सकते हैं। वह यह कि यदि कहीं भी व्यापक हिंसाकांड हो—और मैं इसीलिए चौरीचौरा का दुर्घटना को व्यापक कहता हूं—तो सामूहिक सविनय भंग अपने आप बन्द हो जायगा। हां, देश के दूसरे कितने ही भागों ने अहिंसा के रहस्य को समझ लिया है; पर यह इतना काफी नहीं है कि सामुदायिक भंग जारी रह सके। क्योंकि यदि एक आदमी भी उपद्रव खड़ा कर दे या हिंसा-कार्य कर बैठे तो सारी अत्यन्त शान्तिमय सभा में गोलमाल हो उठता है। यही हाल सामुदायिक भंग का है। वह तभी सफल हो सकता है जब चारों ओर पूर्ण शान्तिमय वायुमंडल हो। एक ही छोटे से स्थान में उसे शुरू करने का कारण यही है कि जिससे दूसरी किसी जगह हिंसा का उद्रेक न होने पावे। अतएव, इससे यही अर्थ निकलता है कि किसी विशेष स्थान में सामूहिक भंग उसी दशा में सम्भवनीय है जब दूसरे तमाम स्थानों के लोग पूर्ण शांतिमय बने रहें और इस तरह निष्क्रिय रूप से उसके साथ सहयोग करें। (यंग इंडिया)

पाठकों के प्रति

'हिन्दी-नवजीवन' का आरम्भ बतौर आजमायश के किया था। शुरूआत में यह आशंका रही थी कि यह अधिक दिनों तक जीवित रह सकेगा या नहीं। अतएव सालाना चन्दे के साथ ही छःमाही चन्दा लेने का भी नियम रक्खा गया था। पर अब ईश्वर की कृपा से वह अपने पैरों पर खड़ा हो गया है। अतएव छःमाही चन्दा लेने का नियम उठा लिया गया है। अब से प्रेमी पाठक वार्षिक मूल्य ४) ही भेजें।

व्यवस्थापक

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में श्री-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए ''हिंदी-नवजीवन'' के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

मिल का कपडा

एक सवाल अक्सर पूछा जाता है-" यदि हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी ही, फिर वह चाहे रुई की हो, ऊन की हो अथवा रेशम की हो, इस्तैमाल करना वर्तमान काल का धर्म हो तो फिर देश की आर्थिक व्यवस्था में मिल के कपडे का कौनसा स्थान है? " यदि देहात में रहने वाले लाखों लोग आज चरखे का सन्देश पा सकें, उसका रहस्य समझ सकें और उसका व्यवहार भी कर सकें तो मैं कह सकता हूं कि हमारी घरेलू आर्थिक व्यवस्था में मिल के कपडे के लिए-फिर वह चाहे विदेशी हो चाहे हिन्दुस्तानी-कहीं भी जगह नहीं है और यदि ऐसा हो तो मिल के कपडे के इस पूर्ण अभाव से देश की दशा बेहतर ही होगी।

इस कथन का सम्बन्ध न तो यन्त्र-सामग्री से है न विदेशी कपडे के बहिष्कार के प्रचार से है। यह तो केवल भारतीय जनता की आर्थिक स्थिति का प्रश्न है।

परन्तु जबतक वह जगदीश्वर सहायता के लिए हाथ न बढावे और सहसा चमत्कार दिखा कर लोगों का ध्यान चरखे की ओर न खींचे और वे उसे अपना आश्रय-स्थान समझ कर न दौड पडें, हिन्दुस्तानी मिलों को कुछ न कुछ खादी कुछ साल तक अवश्य ही तैयार कर के देनी होगी। लोग सच्चे दिल से यह चाहते हैं कि भारत के बडे बडे मिल-मालिकों से यह विनय अच्छी तरह की जाय कि मिलों के उद्योग को आप एक राष्ट्रीय ट्रस्ट समझिए और आपको यह भी जानना चाहिए कि इसका उचित स्थान क्या है। मिल-मालिक जनता को हानि पहुंचा कर रुपया पैदा करने की इच्छा नहीं कर सकते। बल्कि इसके विपरीत उन्हें अपने व्यवसाय को आदर्शरूप और राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल बनाना चाहिए और उस निन्दा के कारणों को दूर कर देना चाहिए जिसका आरोप बंग-भंग के आन्दोलन के समय उन पर किया गया था और जो ठीक भी था। अब भी कलकत्ते से तथा दूसरे स्थानों से ऐसी शिकायतें आ रही हैं कि हिन्दुस्तान की मिलें अपनी धोतियों के दाम मैंचेस्टर वालों से भी अधिक लेती हैं, यद्यपि उनकी धोतियां मैंचेस्टर वालों से हलके दरजे की हैं। यदि यह खबर सच हो तो यह बडी देश-धर्म के विपरीत बात है और इस धन खींचने की नीति से देश और देश-कार्य दोनों को हानि पहुंचने की सम्भावना है। ऐसे समय में जब कि भारत-माता प्रसव-वेदना से पीडित हो रही है, असाधारण दाम लेना निंद्य नहीं तो और क्या है? ऐसा करना केवल इस लोकप्रिय आन्दोलन से अलग खडे रहना ही नहीं, बल्कि सचमुच बुरी तरह उससे उदासीन रहना है।

मिल-मालिक लोग, यदि स्थिति का विचार व्यापक दृष्टि से करेंगे, तो खादी के आन्दोलन का रहस्य समझ जायंगे, उसकी कद्र करेंगे और उसका पोषण करेंगे तथा लोगों की जरूरतों को जान कर देश की नवीन आवश्यकताओं के अनुसार माल तैयार करेंगे।

पर वे लोग ऐसा करें चाहे न करें, देश की आजादी की गति किसी संस्था पर अथवा मनुष्य-मंडल पर अवलम्बित नहीं रह सकती। यह तो जनता के हृदय का प्रतिबिम्ब है। जनता मुक्ति की ओर तेजी से दौड रही है और इन पूंजी-पतियों की मदद उसें मिले चाहे न मिले, उसकी गति तो रुक ही नहीं सकती। अतएव यह आन्दोलन पूंजी-पतियों से बिल्कुल अलग रह कर चलना चाहिए; पर फिर भी उनका विरोध इसमें न होना चाहिए। पर यदि पूंजीपति लोग जनता की सहायता के लिए आगे बढ आवें तो इससे उनकी कीर्ति भी बढेगी और भावी सुख के दिन जल्दी नजदीक आ जायंगे।

पहले यहां यही हालत थी। भारत के इतिहास में कभी पूंजीपति और श्रमजीवियों का सम्बन्ध बुरा नहीं रहा है। चार वर्णों की यह व्यवस्था केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से भी की गई है। और मुसल्मानी संस्कृति के मिश्रण से भी उसकी स्थिति खराब नहीं हो गई है। क्योंकि मुसल्मानी संस्कृति अनिवार्यतः धार्मिक अतएव गरीबों के लिए कल्याणकर है। इसलाम जिसप्रकार नाजायज सूदखोरी को मना करता है उसी प्रकार वह पंजीपति बनने के भी खिलाफ नजर आता है।

और इस वर्तमान समय में भी यह कहना सम्भवनीय नहीं है कि पूंजीपति लोग इस आन्दोलन से दूर रह रहे हैं। तिलक स्वराज्य-फंड में इस उदारता से रुपया किसने दिया? विनयशील पूंजीपतियों ने ही। लेकिन यह बात भी दुःख के साथ कुबूल करना पडती है कि दुर्भाग्यवश अधिकांश मिल-मालिक इससे अलग ही रहे हैं। इस देश में सबसे बडा उद्योग अगर कोई है तो वह है "पीरा गुड्स" तैयार करना। अब समय आगया है कि वह अपना मार्ग निश्चित कर ले। वह इसे अपनावेगा या इससे दूर रहेगा?

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

मोतीलाल तेजावत और भील लोग

'यंग इंडिया' में श्री मोतीलाल तेजावत तथा भीलों के सम्बन्ध में एक टिप्पणी पहले प्रकाशित हो चुकी है। इस विषय की खोज करने के लिए श्री मणिलाल कोठारी मेरी सूचना के अनुसार सिरोही इत्यादि स्थानों में गये थे। उन्होंने जो समाचार भेजे हैं उनसे यह मालूम होता है कि श्री मोतीलाल तेजावत ने खास कर के मद्यपान-निषेध, मांसाहार-त्याग आदि काम भील लोगों में किये हैं। उनकी हलचल से भीलों में जागृति हुई है, इसमें कोई शक नहीं। यदि वे भीलों की टोलियों को ले ले कर न फिरते और वे इस तरह रहते कि जहां से दूर जिले के लोग उनसे मिल पाते तो आलोचना का कोई कारण ही नहीं रहता। उन्होंने श्री मणिलाल के साथ मुझे एक पत्र भेजा है। वह यहां दिया जाता है—

"मैं जिस जगह काम कर रहा हूं, सत्याग्रह का काम करता हूं। मैं कोई बेजा काम नहीं करता हूं। असल बात यह है कि जिस तरह से आप के सत्य काम के पीछे सारा हिन्दुस्तान चलता है उसी तरह से मेरे पीछे भील-गरासिया लोग चल रहे हैं। इनके पास तीर-कमठा और तलवार है जो उनके पुश्त दर पुश्त से चले आते हैं। ये पहाडी जमीन को जोतते हैं। शांति-प्रिय हैं। सत्यवादी और आचारवान हैं। बिल्कुल भोले हैं और धर्म के प्रेमी हैं। जब मैंने इनमें सत्याग्रह शुरू किया तो इन लोगों ने बडी श्रद्धा से मेरा साथ दिया। इस बात से राज-कारभारी लोग नाराज हुए। भीलों को डरा कर मार पीट कर और लालच देकर दबाना चाहते हैं। पर वे बडे अटल हैं। अपनी भलाई को समझते हैं। अब मेरी अर्ज न तो राज सुनता है और न अंग्रेज आपही मेरे सहायक हैं। सहायता कीजिए। मैं इन गरीब लोगों के लिए मरने को तैयार हूं। कोई प्रचारक आप जरूर भेजें। यहां के लोग अजान हैं। सीधे-सादे हैं। श्री मणिलाल कोठारी इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं। मेरी अर्ज पर जरूर ध्यान दीजिए। ता. ११-२-२२"

इस पत्र में कितना ही अज्ञान दिखाई देता है। इससे अंगरेज का तो कोई संबंध ही नहीं। और जो उचित बात हो वह तो राज्यों के सामने पेश होनी ही चाहिए। श्री मणिलाल कहते हैं कि मुझे पालणपुर, दांता और सिरोही में राज्यों की तरफ से पूरी पूरी मदद मिली, श्री मोतीलाल ने तथा भीलों ने भी उनकी बात को सुना और वे शान्ति के ही साथ काम लेना चाहते हैं। मुझे आशा है कि यदि रियासतें भीलों की शिकायतों पर ध्यान देकर उनके साथ न्याय करेंगी तो भील सुखी होंगे। श्री मोतीलाल से यदि कुछ अपराध हुआ हो तो उस पर ध्यान न देते हुए भीलों पर उनका जो प्रभाव है उसका उपयोग कर के भीलों की स्थिति का सुधार करने की ओर राज्य ध्यान दें तो इससे राजा और प्रजा दोनों का भला होने की संभावना है। (नवजीवन)

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, फाल्गुन वदी ३०, सं. १९७८.

गर्जन-तर्जन

जब कि ब्रिटिश-सिंह अपना खूनी पंजा फैला कर हमारे मुंह पर टटकता है तब कोई समझौता हो ही कैसे सकता है? लार्ड बरकनहेड हमें याद दिलाते हैं कि ब्रिटेन का 'कठिन भुजबल' जरा भी कम नहीं हो गया है। माण्टेगू साहब साफ साफ जबान में फरमाते हैं कि ब्रिटिश लोग संसार भर में अपने निश्चय के बडे पक्के हैं। वे अपने उद्देश में बाधा डालना कभी गवारा नहीं कर सकते। रूटर ने आपके कथन को इन शब्दों में प्रकट किया है—

"यदि हमारे साम्राज्य के अस्तित्व को ललकारा जाय, यदि भारत के प्रति ब्रिटिश सरकार की जो जवाबदेहियां हैं उनके अनुसार काम करने में रुकावट डाली जाय और यदि इस गलत भरोसे पर कि हम लोग चुपचाप भारत से चल देंगे मांगें की जायं, तो भारत ऐसे आह्वान में-संसार के अत्यन्त निश्चयी लोगों को ललकारने में-सफल-मनोरथ नहीं हो सकता। ब्रिटिश लोग ऐसे आह्वान का जवाब अपने पूरे बल-वीर्य और निश्चय के साथ दिये बिना न रहेंगे।"

लार्ड बरकनहेड और माण्टेगू साहब दोनों इस बात को बहुत कम जानते हैं कि भारतवर्ष उस तमाम "कठिन भुजबल" के मुकाबले लिए तैयार है जो कि सात समुद्र पार से यहां लाया जा सकता है और उसने तो सितम्बर १९२० में ही कलकत्ते से अपना आह्वान शुरू कर दिया है एवं वह स्वराज्य से रत्ती भर कम में तथा बिना खिलाफत और पंजाब का पूरा दुःख दूर हुए किसी तरह सन्तुष्ट नहीं हो सकता। इसमें अवश्य ही ब्रिटिश साम्राज्य को ललकारने का समावेश हो जाता है, और यदि ब्रिटिश साम्राज्य के वर्तमान रक्षक लोग उसे शान्ति के साथ स्वतन्त्र राष्ट्रों के सये प्रजा-संघ के रूप में, जिसमें सब के बराबर हक हों और इच्छा होने पर अलहदा हो जाने का अधिकार हो, परिणत करने में सन्तुष्ट न हों तो 'संसार के उन अत्यन्त निश्चयी लोगों' का तमाम बल-वीर्य और निश्चय तथा 'कठिन भुजबल' उन्हें भारत में खर्च करना पड़ेगा। पर भारत में जो आत्मतेज जाग्रत हो चुका है उसे मटियामेट करने का प्रयत्न करना निष्फल होगा। उस आत्मतेज को न तो कोई दबा ही सकता है, न भंग ही कर सकता है। हां, यह सच है हम भारतवासियों के पास 'कठिन भुजबल' नहीं है। भारत के लोग तो भात खानेवाले छोटे-नाटे और दुबले-पतले हैं। परन्तु उन लाखों लोगों ने अब अपने भाग्य का फैसला अपने आप करने का दृढ निश्चय कर लिया है। उन्हें न तो अब किसी की संरक्षकता दरकार है और न वे शस्त्रास्त्र को ही छूना चाहते हैं। स्वर्गीय लोकमान्य के शब्दों में यह उनका 'जन्मसिद्ध अधिकार' है और वे उसे प्राप्त किये रहेंगे-फिर चाहे उसके लिए कितने ही 'कठिन भुजबल' का प्रयोग उन पर किया जाय और वह चाहे कितने ही बल-वीर्य और निश्चय के साथ किया जाय। भारतवर्ष इस गुस्ताखी का जवाब गुस्ताखी के ही साथ नहीं दे सकता और न देगा ही। परन्तु यदि वह अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहा तो उसकी यह प्रार्थना कि हे ईश्वर, इस बला से हमारा छुटकारा कर, कभी व्यर्थ न जायगी। इस पृथिवी-पटल पर ऐसा कोई साम्राज्य अधिक दिनों तक नहीं टिका है जो अपनी सत्ता और दुर्बल जातियों की लूट-पाट के मद में उन्मत्त हो गया हो। और यदि इस विश्व का शासनकर्ता कोई न्यायी ईश्वर हो तो यह ब्रिटिश साम्राज्य जो संसार की दुर्बल जातियों की सुसंगठित आर्थिक लूट पर तथा पशु-बल के निरन्तर प्रयोग पर अपनी हस्ती रखता है, कभी जीवित नहीं रह सकता। ब्रिटिश राष्ट्र के प्रतिनिधि कहलाने वाले ये लोग इस बात को भी कम जानते हैं कि भारत ने तो पहले ही अपने कितने ही अच्छे से अच्छे आदमी ब्रिटिश सरकार के हवाले कर दिये हैं कि लीजिए शौक से अपने 'कठिन भुज-बल' को आजमाइए। राष्ट्रीय बलिदान के इस समान प्रवाह में यदि चौरीचौरा ने बाधा न डाली होती तो इस सिंह के सामने और भी अधिक तथा रुचिकर शिकार पेश किये जाते; परन्तु ईश्वर कुछ और ही चाहता था। पर फिर भी डाउनिंग स्ट्रीट और व्हाइट हाल वाले ये प्रतिनिधि शौक से जो बुरे से बुरा कर सकते हों करें। कोई उनको रोकने वाला नहीं है। मैं जानता हूं कि समुद्र-पार से जो धमकी गुस्ताखी के साथ आई है उसके विषय में मैं बहुत कडी बात लिख रहा हूं। लेकिन ब्रिटिश लोगों को यह बात एकबार समझ लेना चाहिए कि १९२० में जो संग्राम आरम्भ हुआ है वह अब रुक नहीं सकता-वह तो आखिरी फैसला कर के ही शान्त होगा-फिर चाहे इसमें एक मास लगे या एक साल अथवा कितने ही माह लगें या कितने ही साल और चाहे ब्रिटेन के प्रतिनिधि गदर के जमाने के तमाम भीषण शस्त्रास्त्रों को तथा दूसरे अवर्णनीय साधनों को दूने बल के साथ काम में लावें अथवा न लावें। मैं तो सिर्फ यही आशा और प्रार्थना करूंगा कि परमात्मा भारत को काफी नम्रता और बल प्रदान करें जिससे वह अन्ततक शान्तिमय बना रहे। पर अब ऐसी गुस्ताख ललकारों के अधीन हो जाना जैसी कि समुद्र-पार से यथासमय आया करती हैं, किसी तरह सम्भवनीय नहीं।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

(पृष्ठ २२४ से आगे)

है; परन्तु जबतक हम इस शासन-प्रणाली से छुटकारा न पा लें जो कि भय-प्रयोग पर अपना आधार रखती है, जैसा कि दिन पर दिन अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है, यह कोई खास बात नहीं है कि बंगाल आगे रहे, या बारडोली। देश की जो मनोदशा इस समय है उसमें तो, जैसा कि मौलाना साहब को डर है, असहयोगी कैदियों की रिहाई के क्षणिक सुख के आगे देशहित का त्याग कर देने का भय नहीं है। (यंग इंडिया)

टिप्पणियां

सभापति को सिर्फ छः ही महीने

मौलाना आजाद को एक साल की सजा हुई। इस पर खुद मौलाना साहब तथा उनकी बेगम साहबा ने इस बात की शिकायत की है कि बस, एक ही साल-यह तो बहुत ही ना-काफी है। तब महासभा के सभापति और उसके श्रद्धावान् साथी को श्री ससमल सहित सिर्फ छः महीने की सादी कैद का हुक्म सुनने पर क्या मालूम हुआ होगा? यदि ऐसी ही प्रभावहीन सजा देना अभीष्ट था तो फिर अभियोग चलाने की और बारबार फैसले मुल्तवी रखने की ही क्या आवश्यकता थी? यह तो सरकार सिर्फ जबानी हुक्म दे कर ही कर सकती थी। मुझे तो रेल के जर्ये यह खबर मिली थी कि सरकार मौलाना और देशबन्धु दोनों को छोड देने का कोई मौका ताक रही है। एक और भी खबर मिली है जोकि विश्वस्त सूत्र से आई मानी जाती है; पर मैं उसे प्रकट करना नहीं चाहता। और पाठकों के लिए उसका जानना भी कोई मार्के की बात नहीं है। हमें तो जैसा मौका आ पडे उसीका सामना करना चाहिए। कुछ कुछ लोग पत्र भेज भेज कर मेरी चुटकियां ले रहे हैं। वे मुझ पर भोलापन, संगदिली, कमजोरदिली तथा दूसरी कमजोरियों का इल्जाम लगाते हैं। कुछ सज्जन कहते हैं कि मैंने जेलस्थित देश-सेवकों के अंगीकृत कार्य को बेच डाला। कुछ लोगों का कथन है कि मैंने महासभा के सभापति महोदय के साथ बेईमानी की है। परन्तु सौभाग्यवश इस कितने ही वर्षों की सार्वजनिक सेवाओं की बदौलत मेरा कलेवर अच्छा मजबूत हो गया है और ये तीर उसमें घुस नहीं पाते। परन्तु मैं इन तमाम अधीर पत्र-प्रेषकों को यकीन दिलाता हूं कि इन प्रस्तावों के द्वारा असहयोग-सिद्धान्त के अणु-मात्र का भी त्याग नहीं किया गया है। बल्कि, इसके विपरीत, प्रकृति की ओर से चेतावनियां होते हुए भी, सामूहिक भंग करने से मुंह मोडना असहयोग के मूलभूत सिद्धान्त का पूर्णरूप से त्याग करना होता। कैदियों को छोड देने की बात तो जब कि वह राष्ट्रीय सम्मान का प्रश्न हो गया, मैंने ही जान-बूझकर पेश की थी; क्योंकि त्रिविध लक्ष्य-स्वराज्य, खिलाफत और पंजाब-की शीघ्र प्राप्ति का प्रश्न बदलकर त्रिविध स्वातन्त्र्य-भाषण, लेखन और सम्मेलन-की शीघ्र प्राप्ति का प्रश्न उपस्थित हो गया था। इससे कैदियों को छोड देने की बात उसका स्वाभाविक परिणाम हो गया। लेकिन चौरीचौरा ने एक दूसरा ही प्रश्न उपस्थित कर दिया है अर्थात् भयङ्कर प्रायश्चित्त और उग्र रीति से आत्मशुद्धि करना और इस प्रायश्चित्तात्मक आत्मशुद्धि के लिए जेल में स्थित कार्य-कर्त्ताओं के बलिदान की तथा कुछ समय तक हमारी कितनी ही हलचलों के, जिनके बदौलत राष्ट्र में नवीन जीवन का संचार हो गया है, बलिदान-त्याग-की आवश्यकता है। लेकिन ऐसी बातें तो तमाम युद्धों में होती हैं। और आध्यात्मिक युद्ध में तो, जैसा कि हम अपने आन्दोलन के होने का दावा करते हैं, और भी अधिक होती हैं। मैं इसे आध्यात्मिक इस भाव में कहता हूं कि हमने अपने ध्येय की सिद्धि के लिए निश्चय-पूर्वक शारीरिक बल का प्रयोग न करना स्वीकार किया है। हम अपने लंगर आदि को [illegible] कर बह निकलने के खतरे में थे और इसलिए हमें वापस लौटना आवश्यक था-पर वापसी का मतलब केवल इतना ही है कि हम अधिक शुद्ध हो जायं, हमें अधिक ज्ञान हो जाय और हममें अधिक बल आ जाय, और यदि असहयोगी लोग इस राष्ट्रीय संग्राम के सिद्धहस्त योद्धा बनना चाहते हों तो वे निस्सन्देह प्रतीक्षा और तैयारी का मूल्य समझेंगे। जो शख्स तैयारी तक अथवा दूसरी कमी के लिए ठहरा रहता है वह भी उतनी ही सहायता करता है जितनी कि वह योद्धा जो मोरचों में तीन फीट गहरा खडा रहता है। यदि हम युद्ध-शास्त्र के, फिर वह चाहे शारीरिक हो या आध्यात्मिक, इन तत्वों को न समझें तो हमारा यह सारा बलिदान व्यर्थ चला जायगा।

आदर्श पिता-पुत्र

कुछ सप्ताह पहले मैंने तीन मालवीयों के जेल जाने पर कुछ लिखा था और यह दिखलाया था कि गोविन्द मालवीय ने, जब कि वे अपनी मनोदेवता की प्रेरणा को न रोक सके, किस नम्रता और अपने पिताजी के प्रति किस भक्ति-भाव से, पण्डितजी की इच्छा के विपरीत, जेल को स्वीकार किया था। अब गोविन्द ने मुझे पण्डित जी का एक पत्र भेजा है जो उन्होंने गोविन्द के नाम भेजा था। उसमें पण्डित जी लिखते हैं कि मैं तुमसे नाराज नहीं। हां, माडर्न हाईस्कूल पर पहरा रखना मुझे पसन्द नहीं था। परन्तु तुम्हारा और कृष्ण का सार्वजनिक सभा में जाना और उपस्थित जनों को महासभा का सन्देश सुनाना बिल्कुल ठीक था। सरकार ने जो नीति स्वीकार की है वह बिल्कुल बेजा है। अपने को पूर्ण प्रसन्न बनाये रखना। इसी तरह पण्डित जी ने श्री कृष्णकान्त मालवीय को भी एक पत्र लिखा है। उसमें उन्होंने लिखा है कि उस सभा में तुम्हारा भाषण करना बिल्कुल ठीक था। इस ख्याल से अपने चित्त को दुखी मत करना कि मुझे तुम्हारा यह काम अच्छा नहीं मालूम हुआ है। मैंने अहमदाबाद की महासमिति में, बल्कि विषयनिर्धारिणी समिति में, यह कहा था कि यदि सरकार अपने उन नोटिसों को जिनके अनुसार स्वयंसेवक-दल कानून-विरुद्ध ठहराये गये हैं, वापस न ले तो ऐसे स्वयंसेवकों का उस आज्ञा का अनादर करना और जेल जाना ठीक ही होगा। पूर्ण प्रसन्नचित्त रहना। अपने जेल के किसी भी साथी का यह ख्याल न होने देना कि तुम्हारी सजा सादी और छः महीने की करा देने में मेरा कुछ हाथ है। मैंने तुम्हारी सजाओं के विषय में किसी से जरा भी शिकायत नहीं की। हां, मुझे इन सजाओं की पाशविकता पर दुःख जरूर हुआ है।

मेरी दृष्टि में तो ये दोनों पत्र बडे मूल्यवान् हैं। ये इस बात के उदाहरण हैं कि कौटुम्बिक जीवन कैसा होना चाहिए। मालवीय-परिवार के भिन्न भिन्न व्यक्तियों में कितनी परस्पर सहिष्णुता है तथा छोटे लोग किस प्रकार अपनी स्वतन्त्रता को कायम रखते हैं और किस प्रकार बडे लोग उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त इस पत्र से पण्डित जी की कितनी उच्च-हृदयता प्रकट होती है। यदि आज वे जेल में नहीं हैं तो इसका कारण यह नहीं है कि वे जेल से डरते हैं; बल्कि यह है कि अभी उन्हें जेल का मार्ग ठीक नहीं दिखाई दिया है। उनके निकट सहवास में रहने वाला ऐसा कौन पुरुष है जो यह नहीं जानता है कि वे आजकल परस्पर विरुद्ध कर्तव्यों की कैंची में किस बुरी तरह कट रहे हैं और कितने चिन्ताग्रस्त रहते हैं? मुझे अक्सर यह खयाल हुआ करता है कि यदि वे जेल में पहुंचा दिये जायं तो इन लगातार चिन्ताओं और झंझटों से जो कि उनके जैसे सार्वजनिक जीवन व्यतीत करने वाले के पीछे पड रही हैं, उन्हें निश्चय-पूर्वक छुटकारा मिल जाय।

मैंने इन दोनों पत्रों का आशय इसलिए प्रकाशित किया है कि असहयोगी लोग आम तौर पर सहिष्णुता का महत्व समझ जायं। मेरी यह धारणा है, और मैं चाहता हूं कि पाठक भी इस पर विश्वास करें कि यद्यपि श्री मालवीय जी के सदृश देश की सेवा

करने वाला कोई भारतीय आज मौजूद नहीं है तथापि तटस्थ तथा नरम दल में ऐसे भी लोग हैं जिनका चित्त हमारी तरफ से खिंच आता है-इसलिए नहीं कि वे दुर्बलचित्त हैं; बल्कि दृढ़ कर्त्तव्य-बुद्धि उन्हें मजबूर करती है। यदि हम सिर्फ अपने प्रतिपक्षियों के प्रति आवश्यक नम्रता, उदारता और सहनशीलता के भावों को अपने हृदय में स्थान दें और अनुचित दुर्भावों का आरोपण उनपर न करें तो मैं कह सकता हूं कि हम कितने ही ऐसे सज्जनों को अपनी ओर कर सकेंगे जो आज हमारी असहिष्णुता के बदौलत हमारे खिलाफ आवाज उठा रहे हैं। जब बहुसंख्यक लोग असहनशील हो जाते हैं तब लोग उनसे डरते हैं, उनका अविश्वास करते हैं, और अन्त को उनसे घृणा करने लगते हैं और यह ठीक भी है। यदि असहयोगियों के पक्ष में जनता का बहुत बड़ा भाग हो, जैसा कि मुझे विश्वास है कि है, तो अवश्य ही उनके लिए यह उचित है कि वे अल्पसंख्यक लोगों के साथ सहनशीलता, दया और आदर का बर्ताव रक्खें-फिर वे लोग अपने मतों पर चाहे कितने ही दृढ़ क्यों न बने रहें। असहिष्णुता एक प्रकार की कमजोरी है और उसके द्वारा इस आरोप की पुष्टि होती है कि यद्यपि इस आन्दोलन का उद्देश तो द्वेष पैदा करना नहीं है पर उससे द्वेष फैलता अवश्य है। मुझे आशा है कि पूर्वोक्त दोनों पत्र असहयोगियों को अपनेतईं सावधान कर देंगे।

यह गोरखपुर की दुर्घटना असहिष्णुता के सबल उदाहरण के सिवा और क्या है? हम अक्सर इस बात को भूल जाते हैं कि हमारा एक कर्त्तव्य यह भी है कि हम पुलिस और फौजवालों को भी अपने मत में बदल लें। हम भय-प्रयोग करके ऐसा कभी नहीं कर सकते। लोगों के उन अमानुष कार्यों ने पुलिस की अंधाधुंधी को और भी बढ़ा दिया है और अब तो मारपीट और आक्रमण शुरू हो गये हैं जिससे हमारा दिल धड़कने लगता है। हमें यह बात सदैव अपने ध्यान में रखनी चाहिए कि भ्रष्ट सरकार और भ्रष्ट पुलिस का होना इस बात को पहले से ही सूचित करता है कि सरकार और पुलिस की भ्रष्टता के सामने सिर झुकाने वाले लोगों में भी भ्रष्टता भरी ही हुई है। और अन्त को 'यथा राजा तथा प्रजा' की तरह इस कथन में भी बहुत कुछ सत्यता है कि 'यथा प्रजा तथा राजा' इस बात के जानने के लिए कि हम पुलिस और फौज को जिनमें ज्यादातर हमारे ही देश भाई हैं, दयालुता, सहनशीलता के द्वारा और यहां तक कि उनकी पशुता के भी अधीन होते हुए अपनी तरफ कर लेना चाहते हैं, इस बात की कोई आवश्यकता नहीं है कि हम धार्मिक दृष्टि से अहिंसा-सिद्धान्त के कायल हों। निश्चय ही अधिकांश दशाओं में वे बेचारे जानते ही नहीं हैं कि हम यह क्या कर रहे हैं।

हमारी ढीलपोल

काशी, प्रयाग, कलकत्ता और रोहतक आदि से मेरे पास शिकायतें आई हैं कि स्वयंसेवकों को भरती के सम्बन्ध में कार्य-समिति की शर्तों का पालन पूरा पूरा नहीं किया गया है। बहुत से स्वयंसेवक खादी नहीं पहनते; बहुत से सिर्फ ऊपर खादी पहन लेते हैं। कितने ही शराब पीते हैं। और अहिंसा के पूरे पूरे कायल नहीं हैं। सैकड़ों स्वयंसेवक जो आज जेलों में हैं, प्रतिज्ञा का हाल नहीं जानते। वे महासभा के कार्यकर्ताओं का कहना भी नहीं मानते। आदि। संयुक्तप्रान्त में ९६ हजार स्वयंसेवकों की भरती की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है पर यदि पूर्वोक्त शिकायतों का १/१० भी ठीक है तो ऐसे स्वयंसेवक केवल निरुपयोगी ही नहीं बल्कि उससे भी अधिक खराब हैं। और मुझे डर है कि हम इस आश्चर्यकर जागृति का मुकाबला और महासभा में आने वाले इन नये लोगों की संभाल भली भांति न कर सके। पर हां, इसमें दोष किसी का नहीं हो सकता [illegible] कर के हमारे लिए कठिन अवसर उपस्थित कर दिया था। उसकी चुनौती का स्वीकार करना था और वह की गई। नये और अनुभवहीन लोगों के सिर काम की जिम्मेवारी आती गई और उन्हें ऐसे कठिन प्रसंग का सामना करना पड़ा जिसमें जेल चले जाने वाले उन अनुभवी लोगों को भी बड़ी कठिनाई के साथ काम करना पड़ता।

इस दलील की पुष्टि तो बहुत कुछ की जा सकती है। इसके लिए किसी पर दोषारोपण करने की आवश्यकता नहीं। लेकिन हमें वस्तुस्थिति पर आंख न मूंद लेनी चाहिए। बल्कि हमें दृढ़ता और साहस के साथ उसका सामना करना चाहिए और हमें अपने घर की व्यवस्था अच्छी तरह करनी चाहिए। संसार में ऐसी किसी सेना को आजतक विजय नहीं प्राप्त हुई है जिसमें आवश्यक गुणों से युक्त सैनिक न हों। शांति सेना के लिए तो सैनिकों में निश्चित गुणों की और भी अधिक आवश्यकता है। यह कहने से काम नहीं चलेगा कि आदर्श बहुत ऊंचा है। जो अफसर आदर्श से कम दरजे के लोगों को जान बूझ कर भरती करता है वह अपने को अप्रामाणिकता का दोषभागी बनाता है। यदि निश्चित शर्तों पर रंगरूट न मिलें तो उसे प्रधान दफ्तर में सूचना कर देनी चाहिए; उनका उल्लंघन तो उसे कदापि न करना चाहिए।

यदि केवल ३०० स्वयंसेवक ऐसे हों जो शर्तों को खूब अच्छी तरह समझते हों और उनका पालन करते हों तो उतने ही मेरे लिए बस हैं; पर इसके बजाय यदि ३० हजार स्वयंसेवक ऐसे हों जो न तो शर्तों को जानते ही हों और न उनकी परवा ही करते हों तो मुझे उनकी सहायता पर किसी लड़ाई का नेतृत्व स्वीकार न करना चाहिए। कारण स्पष्ट ही है। पहले दशा में मेरे पास ३०० ऐसे पक्के सिपाही होंगे जो मेरी सहायता करेंगे और दूसरी दशा में ३० हजार लोगों का भार मुझे वहन करना होगा जो कि मुझे उलटा पीछे खींचेंगे। अतएव हमें कार्य-समिति के तमाम प्रस्तावों के अनुसार पूरी तरह काम करने का निश्चय कर लेना चाहिए। मैं तमाम महासभा और खिलाफत-समितियों को जोर के साथ सलाह देता हूं कि वे अपने अपने प्रान्तों में तमाम शर्तों के पूरे पूरे पालन पर अवश्य ध्यान दें। यदि वे ऐसा न करेंगी तो वही आन्दोलन को खतरे में डालने की कारणीभूत होंगी, दूसरे लोग नहीं। अपने भविष्य को बिगाड़ना या बनाना हमारे ही ऊपर अवलम्बित है।

(यंग इंडिया) मो० क० गांधी

छावनियों में वकालत

एक सज्जन लिखते हैं-'सुनते हैं, [illegible] यह सलाह दी है कि छावनियों में असहयोगी वकील वकालत कर सकते हैं। क्या यह बात सच है?' मैंने ऐसी सलाह किसी को नहीं दी। हां, काठियावाड़ में हाल में श्री [illegible]लाल मेहता और मणिलाल कोठारी के मामले चल रहे [illegible] उनके सम्बन्ध में मैंने यह अवश्य कहा है कि वे छावनी की अदालत में लड़ सकते हैं तथा वकील कर सकते हैं वे दोनों देशी राज्यों की प्रजा हैं। दोनों देशी राज्यों में अपने तथा दूसरों के हकों की रक्षा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। देशी राज्यों की परिस्थिति से सम्बन्ध रखने वाले मामलों में वे असहयोगी नहीं हैं। सो यदि वे देशी राज्यों के मामलों में पड़ना चाहते हों तो उन्हें अदालतें इत्यादि में जाना पड़ेगा; नहीं तो उनकी स्थिति 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः' जैसी हो जाने का भय है।

पर इसका यह अर्थ नहीं है कि असहयोगी वकील छावनियों में वकालत करने जायं, इसका यह भी अर्थ नहीं है कि असहयोगी जान बूझ कर छावनियों की अदालतों में जायं; इसका यह भी अर्थ नहीं है कि यदि उन्होंने असहयोगी की हैसियत से छावनियों में कोई काम किया हो तो उसके विषय में वे वकील कर सकते हैं; पर इसका यह अर्थ अवश्य है कि यदि किसी असहयोगी का रुपया देशी-राज्यों में पावना हो तो उसके लिए वह देशी-राज्यों की अदालत में जा सकता है और वहां वकील कर सकता है। हम देशी-राज्यों अथवा उनकी अदालतों के साथ असहयोग नहीं कर रहे हैं। अतएव देशी-राज्यों की अदालतों के साथ सम्बन्ध रखना सर्वथा त्याज्य नहीं है।

परन्तु इन सब कामों में झंझटें हैं। इससे असहयोगी अपने को ऐसी बेढंगी स्थिति में न पडने दें। और इसीसे मैंने कई बार कहा है कि देशी राज्यों के असहयोगियों को देशी राज्यों के मामलों में अभी भरसक न पडना चाहिए अन्यथा उनके उन्हींमें फंस रहने की सम्भावना है। परन्तु जिन्हें ऐसा करने में कोई बाधा नहीं है अथवा जो अनायास ऐसे झगडों में आ पडे हैं उनके लिए बा-कायदा लडना असहयोग की आज की स्थिति में मैं अनुचित नहीं मानता।

दोनों सज्जन देशी राज्यों के मामलों में गिरफ्तार किये गये थे। देशी राज्यों की प्रजा के हकों पर छावनी के हाकिमों ने आक्रमण किया है। अतएव उनके लिए बा-कायदा कार्रवाई करने में मुझे कोई बाधा न दिखाई दी। वे दोनों, ब्रिटिश भारत में असहयोगी होते हुए, यदि काठियावाड में गिरफ्तार हों तो जमानत दे कर छूट सकते हैं और मामले की पैरवी कर सकते हैं।

यह प्रश्न पैदा हो सकता है भी छावनियां भी अंगरेजी सल्तनत का अंग हैं। कोई कह सकता है कि हां, देशी-राज्यों की अदालत तक जाने की बात तो समझ में आ सकती है, परन्तु छावनी की अदालतों की बात नहीं समझ में आती। इसमें दो पक्ष हैं। छावनियां जिस प्रकार अंगरेजी सल्तनत का अंग हैं उसी प्रकार देशी-राज्यों का भी अंग हैं। देशी राज्यों की हस्ती पर ही छावनियों की हस्ती अवलम्बित है। अतएव देशी राज्यों के मामलों के लिए तो अदालतों में जाना चाहिए; पर असहयोग के मामलों के लिए उनका त्याग करना चाहिए। कल्पना कीजिए कि श्री मणिलाल कोठारी शिकार बन्द कराने के लिए न गये होते, बल्कि छावनी में असहयोग प्रचार के लिए गये होते और उसके लिए पकडे जाते तो वे पैरवी न कर पाते और न जमानत पर ही छूट पाते। और इसीलिए मैंने शुरू से ही यह सलाह दी है कि देशी राज्यों में असहयोग का प्रवेश न किया जाय। वहां तो केवल स्वदेशी इत्यादि ऐसी हलचलों का ही प्रचार करना चाहिए जिनके विषय में आक्षेप का कोई कारण नहीं है और जो भी आर्थिक तथा नैतिक दृष्टि से ही। इसीलिए वहां महासभा की समिति आदि स्थापित न की जाय। हां, जो लोग महासभा में शरीक होना चाहते हैं वे ब्रिटिश राज्य की किसी भी समिति के सदस्य हो सकते हैं।

इस सारे धर्म-संकट में से भली भांति मुक्त होने की एक कुंजी है। उसका प्रयोग करने से कभी भूल नहीं हो सकती। यदि हम किसी डर या स्वार्थ की प्रेरणा से, जैसे कि जेल न जाने की जरूरत से, कोई कार्रवाई करना चाहें तो हमें ऐसा न करना चाहिए। असहयोगी को निडर और निस्वार्थ होना चाहिए। सत्यपरायण, अहिंसक, निडर और निस्वार्थ असहयोगी भूल करता दिखाई देता है, पर भूल नहीं करता। वह तो अपनी अन्तरात्मा को पूछ कर सुख से आगे बढता चला जाता है।

इसके विपरीत

पूर्वोक्त टिप्पणी में उन उदाहरणों का विचार किया जो असहयोग से भिन्न मालूम होते हैं। पर इन्दौर से एक संवाद दाता लिखते हैं कि वहां घटनायें इससे उलटी हुई हैं। जब इन्दौर में श्रीमान् युवराज आने वाले थे तब इन्दौर की छावनी में रहने वाले तीन सज्जन पं. आर्यदत्त, सेठ छोटालाल तथा सेठ बद्रीनारायण को छावनी छोड कर चले जाने का हुक्म दिया गया। उन्होंने इसका अनादर किया। उन्होंने न वकील किया न पैरवी की। वे एक मास की सादी कैद की सजा भोग रहे हैं। इस प्रकार यहां महासभा के द्वारा निश्चित असहयोग का कार्य करते हुए लोग गिरफ्तार हुए और जेलों में गये। वही संवाददाता सूचित करते हैं कि दूसरे चौदह स्वयंसेवक गिरफ्तार किये गये हैं और एक पं रामनारायण नामके पहलवान को एक सोल्जर ने बुरी तरह पीटा; तिस पर भी वे शान्ति धारण किये रहे, यद्यपि वे इतने ताकतवर थे कि उस सोल्जर के लिए काफी हो सकते थे।

विदेशी कपडे का पहरा

सविनय भंग की याद दिलाने के लिए जो पत्र झरिया से मेरे पास आया है उसमें एक दुःखदायिनी खबर भी है। कहते हैं, वहां के व्यापारियों ने विदेशी कपडा न खरीदने की जो प्रतिज्ञा की थी उसे उन्होंने तोड डाला है। मालूम होता है कि प्राचीन काल में व्यापारियों की प्रतिज्ञा की कीमत जितनी थी उतनी ही अधिक कम इस समय हो गई है। इस प्रकार प्रतिज्ञा-भंग की खबरें कलकत्ते से भी आई हैं। ऐसे समय यह प्रश्न उपस्थित होता कि लोग 'पहरा' न रक्खें तो क्या करें? शान्ति के साथ 'पहरा' रखने का हमें हक है। इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं। हां, यह मैं जानता हूं कि शान्तिमय पहरा भी हमेशा शान्तिमय नहीं होता है और इसीलिए मैं इस पहरे के खिलाफ आवाज उठाया करता हूं। फिर जबतक लोग आम तौर पर विदेशी कपडे के खिलाफ न हो गये हों तबतक 'पहरा' रखना अनुचित दिखाई देता है। जिस रिवाज के खिलाफ लोकमत पूरा पूरा तैयार न हुआ हो उसे दूर करने के लिए यदि पहरा रक्खा जाय तो सम्भव है लोकमत उसे सहन न कर सके। यह एक पक्ष हुआ।

दूसरा पक्ष यह कि जहां प्रतिज्ञा-भंग होता है वहां भंग करने वाले को शरमाने के लिए तथा भंग करने वाले से लोगों को सावधान करने के लिए तो कोई न कोई इलाज हमारे पास होना ही चाहिए। उनमें ये दो इलाज विवेक-पूर्ण हैं। एक पहरा और दूसरा सम्बन्ध-त्याग। दोनों का भाव एक ही है, जो व्यापारी हुंडी न सिकारे उसके साथ व्यवहार बन्द करने का हक समाज को है। इस सम्बन्ध-त्याग में जाति-बहिष्कार का समावेश नहीं होता, केवल व्यापार-त्याग का अन्तर्भाव होता है। ऐसा त्याग हमेशा ही सम्भवनीय नहीं होता; इसलिए पहरा रखना ही एक व्यवहार्य और सरल मार्ग रह जाता है। मैं यह टिप्पणी महा-समिति की बैठक के पहले (मंगलवार को) लिख रहा हूं। समिति का निर्णय अभी देखना बाकी है; पर झरिया के लोगों को मैं इतनी ही सलाह देता हूं कि जहां निश्चित रूप से प्रतिज्ञा-भंग हुआ है वहां केवल शान्तिमय पहरा रखने का अधिकार उन्हें है। इस अधिकार का उपयोग करने के पहले वे उन सज्जनों के पास जायं जिन्होंने वचन-भंग किया है और उनसे विनय करें और उन्हें सावधान कर दें। यह आवश्यक है। तमाम मनाइयों के विषय में यह याद रखना चाहिए कि ये मनाइयां शान्ति-रक्षा के लिए की जाती हैं।

जहां शान्ति भंग होने का जरा भी भय न हो वहां मनाई होते हुए भी पहरा रक्खा जा सकता है। रामजस बाबू जैसे प्रतिष्ठित पुरुष को वचन-भंग करने वाले व्यापारियों की दुकानों पर पहरा रखने से कौन रोक सकता है? हां, यह शर्त जरूर रहेगी कि वे भी हजार स्वयंसेवकों को साथ रख कर पहरा नहीं रख सकते। जिस पहरे का हेतु भय पैदा करना नहीं, बल्कि शरम दिलाना है, उसके लिए अनेक पहरेदारों की नहीं, सिर्फ दो-चार की जरूरत है और वे भी समझदार और चरित्रवान् हों।

पर मेरी तो तमाम व्यापारियों से दीनतापूर्वक यह प्रार्थना है कि वे जनता को अथवा महासभा के सेवकों को पहरे की इस उपाधि में या जवाबदेही में न पडने दें। विदेशी कपडे का त्याग देश में खूब हो रहा है। देश के लाखों रुपये उससे बच गये हैं। उनमें से हजारों रुपये गरीबों के घर में पहुंच गये हैं। ऐसी अर्थ और धर्म-लाभ की हलचल को उन्हें अपने स्वार्थ के लिए वचन-भंग करके क्यों रोकना चाहिए? उनकी दुकान पर पहरा रखना पडे, यह बात खुद उन्हींको कैसे सहन हो सकती है? व्यापारी और पतिव्रता स्त्री दोनों की एक सी स्थिति होनी चाहिए। दोनों को अपने पहरे से लज्जित होना चाहिए। पतिव्रता स्त्री जब अपने सतीत्व को भंग करती है तब जनता को भारी आघात पहुंचता है। उसी प्रकार व्यापारी जब वचन-भंग करते हैं तब वे राष्ट्र पर भारी प्रहार करते हैं। क्या व्यापारियों को इस धर्म-युद्ध में इतना भी भाग न लेना चाहिए कि वे अपने वचन का तो पालन करते रहें?

झरिया में सविनय भंग

महासभा सप्ताह में जो प्रतिनिधि आये थे उन्हें मैंने यह सलाह दी थी कि झरिया के लोगों को तीव्र सविनय-भंग के फेर में न पडना चाहिए। मैंने यह भी कहा था कि "नवजीवन" में मैं इस पर टिप्पणी भी करूंगा। पर मैं भूल गया। सो उन भाइयों से क्षमा चाहता हूं। वहां हजारों मजदूर रहते हैं। उन्हींके साथ गुजराती, मारवाडी, बंगाली, धनी लोग तथा दूसरे व्यापारी दल के लोग रहते हैं। वहां तीव्र सविनय भंग करना मानों मजदूर लोगों को डांवाडौल करना है। व्यक्तिगत भंग करने में भी मजदूर-दल के भडक उठने की सम्भावना है। इसलिए मैंने यह सलाह दी कि अभी ऐसी जगहों में सविनय भंग शीघ्र ही नहीं किया जा सकता। मैंने कहा, मजदूर-दल को तीव्र सविनय भंग में शामिल करना मानों शान्ति-भंग को निमन्त्रण देना है। अतएव ऐसे स्थानों में खादी, चरखा, मद्यपान-निषेध, आदि कामों का खूब विस्तार किया जाय तथा झरिया जिस प्रकार कोयले की खानि है उसी प्रकार तथा उस कारण से धन की भी खानि है। अतएव बिहार की तमाम हलचलों के लिए जितने धन की आवश्यकता हो उतना एकत्र करके झरिया उसे दे। रामजस बाबू इत्यादि वहां के धनवान सज्जन ऐसे कामों में पूरी सहायता दे सकते हैं और यदि वे बिहार की महासभा-समिति के आर्थिक कष्ट को दूर कर दें, खुद चरखा कातें और मजदूरों को कातना-बुनना सिखावें, मजदूरों का शराब पीना छुडवावें तथा उन्हें अपने कर्त्तव्यों और अपने हकों का ज्ञान करा दें तो कहा जायगा कि उन्होंने असहयोग की पूरी सेवा की है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

मौलाना अबुल कलाम आजाद

बेगम अबुल कलाम आजाद ने मुझे नीचे लिखा तार-संवाद डाक के द्वारा भेजा है—

"मेरे मालिक मौलाना अबुल कलाम आजाद के मामले का फैसला आज सुनाया गया। उन्हें सिर्फ एक ही साल सख्त कैद की सजा दी गई है। यह तो मेरी आशा से बहुत ही कम सजा हुई। यदि सजा और जेल ही देश-सेवा का पुरस्कार हो तो आप इस बात को मानेंगे कि इतनी सी सजा दे कर उनके साथ बडा अन्याय किया गया है। यह तो उनकी कम से कम लियाकत के भी लायक नहीं है। मैं आपको यह खबर देने का साहस करती हूं कि उनकी अदम मौजूदगी से बंगाल के राष्ट्रीय कार्य्यकर्त्ताओं में जो स्थान खाली हुआ है उसकी पूर्ति करने के लिए मैं तैयार हुई हूं। उनके तमाम स्वीकृत कार्य उसी तरह जारी रक्खे जायंगे। मेरे लिए यह बोझ है तो भारी; पर खुदा की इमदाद पर मेरा पूरा पूरा भरोसा है। इसमें कोई शक नहीं कि उनकी अदम मौजूदगी से जो कमी हुई है वह केवल बंगाल में ही नहीं बल्कि तमाम भारत की हलचलों में काम कर रही है। तथापि सारे भारत की कमी को पूर्ण करने का प्रयत्न करना मुझे जैसे दुबले-पतले शरीर के बस के बाहर की बात है। इसके पहले उनकी चार वर्ष की नजरबन्दी के समय मैं पहली बार कसौटी पर चढ चुकी हूं। और मुझे विश्वास है कि इस दूसरे इम्तहान में भी मैं खुदा की महरबानी से फतह हासिल करूंगी। पिछले छः वर्षों से मेरी तन्दुरुस्ती बहुत खराब हो गई है और मानसिक श्रम मेरे लिए यातनारूप हो गया है। यही कारण है जो आजतक मौलाना साहब मुझे अपनी हलचलों तथा मुल्क की खिदमत के कामों में न पडने का इसरार करते रहे हैं। पर अब जब कि उन्हें कैद की सजा दी जा चुकी है, मैंने कस्द कर लिया है कि अपनी तमाम ताकत कौम और मुल्क की खिदमत में पूरी तरह दिल खोल कर लगाऊंगी। आज से मैं अपने भाई की मदद ले कर बंगाल प्रान्तिक खिलाफत समिति से तालुक रखने वाले तमाम फरायज को अदा करूंगी। मेरे मालिक ने आपको प्रेम और श्रद्धा के साथ सलाम कहा है और यह पैगाम भेजा है—'मौजूदा हालत में दोनों-सरकार और मुल्क-तरफ के लोग किसी तरह के समझौते के लिए बिल्कुल तैयार नहीं है। हमारा फर्ज तो सिर्फ यही है, कि हम अपने को तैयार करें। बंगाल इस दूसरी अवस्था में भी अपना कदम आगे ही रक्खेगा, जैसा कि आज रख रहा है। बारडोली तहसील के साथ महरबानी करके बंगाल का भी नाम जोड दीजिए। और यदि कभी निपटारा होने लगे तो आप हम लोगों की रिहाई को इतना महत्व न दीजिएगा, जितना कि बदकिस्मती से आज दिया जा रहा है। निपटारे की शर्तें तय करते समय सिर्फ हमारी राष्ट्रीय उच्च-आकांक्षाओं पर ही दृष्टि रखिएगा-हमारी रिहाई के सवाल का खयाल ही न कीजिएगा।'"

यह कोई कम तसल्ली की बात नहीं है कि बडे बडे घरानों की महिलायें एक के बाद एक उन खाली स्थानों की पूर्ति के लिए आगे बढ रही हैं जो राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के जेल जाने से खाली हो गये हैं। मैं बेगम मौलाना अबुल कलाम आजाद को तहे दिल से मुबारकबादी देता हूं जो उन्होंने कौम और मुल्क की खिदमत के लिए अपने को सौंप दिया है। मौलाना साहब के सन्देश को पाठक अपने हृदय पर अंकित कर लें। यह बात बिलकुल सच है कि न तो सरकार ही और न देश ही आज किसी समझौते के लिए तैयार है। सरकार तबतक तैयार न होगी जबतक हम अधिक दिनों तक और भी अधिक कष्ट-सहन न कर लेंगे। बंगाल ने अवश्य ही इस मामले में सबसे पहले कदम बढाया है। बारडोली ने तो अभी बहुत ही थोडा काम किया है। निर्दय प्रकृति ने दो बार उसके इस सौभाग्य को छीन लिया

(शेष पृष्ठ २३० में)

[illegible] घेलाभाई [illegible] द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूडी ओल, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से [illegible] बजाज द्वारा प्रकाशित ॥

महा-समिति

वार्षिक .. मूल्य ४)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—फाल्गुन सुदी ६, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, ५ मार्च, १९२२ ई० | अंक २९

टिप्पणियां

अनावश्यक घबडाहट

मैं अहिंसा का पूरा कायल हूं। मैं जोरशोर से उसका प्रचार कर रहा हूं। *इसके सम्बन्ध में मैं किसीसे समझौता नहीं करता।* यह देख कर कुछ हिन्दू मुसलमान दोनों घबडा रहे हैं। उनका खयाल हो गया है कि मैं तो उनके धर्ममतों की जड में सुरंग लगा रहा हूं और इस अहिंसा-प्रचार के द्वारा भारत को ऐसी हानि पहुंचा रहा हूं कि फिर उसकी पूर्ति होना असम्भव है। मालूम होता है कि वे हिंसा को अपना धर्म मान रहे हैं। यदि मैं उनके सामने पूर्ण अहिंसा की बात करता हूं तो उनके कोमल भावों को आघात पहुंचता है। वे धडाधड महाभारत और कुरान के वचन पेश करने लगते हैं कि देखिए इनमें हिंसा को जायज माना गया है और उसकी आज्ञा दी गई है। महाभारत के सम्बन्ध में तो मैं बिना हिचपिचाहट के अपनी राय जाहिर कर सकता हूं: लेकिन मैं समझता हूं, श्रद्धावान् मुसलमान भाई भी इस बात को अस्वीकार न करेंगे कि हजरत पैगम्बर के सन्देश को समझने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है। मैं यह साहस के साथ कहता हूं कि हिंसा किसी भी सम्प्रदाय का धर्म नहीं है। बल्कि समस्त धर्मों में अहिंसा का पालन ही बहुत बातों में आवश्यक-धर्मरूप-*माना गया है और हिंसा को तो महज कुछ कुछ बातों में* जायज बताया गया है। लेकिन मैंने तो भारतवर्ष के सामने अहिंसा का अंतिम रूप रक्खा ही नहीं है। महासभा के मंच से जिस अहिंसा का प्रचार मैं करता हूं वह तो बतौर एक व्यवहार-नियम के है। लेकिन व्यवहार-नियम पर भी तो मन, वचन और काया से दृढ रहने की आवश्यकता है। यदि मैं इस बात को मानता हूं कि प्रामाणिकता सर्वश्रेष्ठ व्यवहार-नियम है, तो जबतक मैं ऐसा मानता हूं तबतक मन, वचन और काया से प्रामाणिक रहना मुझे उचित है, अन्यथा मैं पाखण्डी रहूंगा। अहिंसा व्यवहार-नियम है। अतएव जब वह असफल या बेकार सिद्ध हो जाय तब यथासमय सूचना देकर उसका त्याग किया जा सकता है। लेकिन यह तो एक साधारण नीति-नियम है कि जबतक हम एक व्यवहार-नियम को मान रहे हैं तबतक सच्चे दिल से उसके अनुसार हमें चलना चाहिए। एक निश्चित मार्ग से जाना तो साधारण व्यवहार-नियम हुआ। पर जो सिपाही बराबर कदम रख कर नहीं चलता है वह तुरन्त ही निकाल दिये जाने के लायक होता है। जो जब लोग मुझसे अहिंसा के सम्बन्ध में सन्दिग्ध चित्त से बातचीत करते हैं या अहिंसा शब्द का उच्चार करते ही घबडाने लगते हैं तब मेरे दिल में अविश्वास होने लगता है। यदि उनका यह विश्वास है कि अहिंसा से हमारा काम नहीं निकल सकता तो उन्हें उसका त्याग कर देना चाहिए, यह नहीं कि हृदय में उसके प्रति विरोध-भाव होते हुए उसकी उपयोगिता के कायल होने का दावा करें। यदि मैं हिंसा में शस्त्र-प्रयोग में-यहांतक कि उसके समयानुकूल होने में भी विश्वास न रखते हुए, मान लीजिए, एक हिंसक दल में शामिल हो गया और एक तोप के सामने खडा हो गया, मगर मेरा दिल तो डांवाडोल हो रहा है, तो बताइए, यह कितनी घातक बात है? यदि मैं कहूं कि मैं एक मक्खी को मार सकता हूं, तो पाठक इस बात को अवश्य मान लेंगे। लेकिन मैं तो मक्खी तक के मारने का कायल नहीं हूं। अब, फर्ज कीजिए, मैं मक्खी मारने की चढाई में उसको समयोपयोगी समझ कर शामिल हो गया। तो क्या उस धावे में शामिल होने की अनुमति मिलने के पहले मुझसे यह आशा न की जायगी कि जबतक मैं उस मक्खी मारने वाली सेना में शामिल हूं तबतक विनाश की तमाम उपलब्ध शस्त्र-सामग्री का उपयोग करूंगा? यदि वे लोग जो कि महासभा और खिलाफत समितियों में हैं इस साधारण सत्य सिद्धान्त को समझ जायं तो हम निश्चयपूर्वक या तो इसी वर्ष इस युद्ध में विजय प्राप्त कर लेंगे या अहिंसा से हमारा जी इतना ऊब उठेगा कि हम उसका पीछा छोड देंगे और किसी दूसरे कार्यक्रम की योजना करेंगे।

मेरा मत है कि स्वामी श्रद्धानन्द जी पर उनके उस प्रस्ताव के लिए जो वे उपस्थित करना चाहते थे, व्यर्थ ही टीका-टिप्पणी की गई है। उनकी दलील बिल्कुल उचित थी। वे खयाल करते है कि हम सामूहिक रूप से व्यवहार-नियम के तौर पर भी अहिंसा को दरहकीकत नहीं मानते हैं। अतएव हम अहिंसा के कार्यक्रम की पूर्ति हरगिज नहीं कर सकते। सो उनका कहना था कि चलो कौन्सिलों में ही चलें और वहां से जो कुछ टुकडे मिल जायं उन्हींको ले लें। वे उन लोगों की स्थिति की अयथार्थता बताना चाहते थे जो अहिंसा को केवल जबान से मानते हैं, पर वास्तव में जो अन्तिम छुटकारे के लिए हिंसा-काण्ड की आशा लगाये बैठे हैं। मैं जोर देकर कहता हूं कि यदि महासभावादी इस व्यवहार-नियम को पूरी तरह नहीं मानते हैं तो अपने को उसका अनुयायी बताकर वे देश को हानि पहुंचा रहे हैं। यदि भावी सरकार की नींव हिंसा पर रक्खी जाने वाली हो तो कौन्सिलर लोग निःसन्देह तब से

अधिक चतुर हैं । क्योंकि इन कौन्सिलों के मार्फत उन्हीं साधनों और तजवीजों से जिनके द्वारा हमारे वर्तमान शासक हम पर राज्य कर रहे हैं, कौन्सिलर लोग उनसे अधिकार छीन लेने की आशा करते हैं । मुझे इस बात में कोई शक नहीं है कि जो लोग अपने दिल में हिंसा के भावों का पोषण करते रहते हैं, वे देखेंगे कि अहिंसा की कोरी बातें बनाने से कोई लाभ नहीं हो सकता । इसलिए मैं अपने पूरे बल के साथ आग्रह करता हूं कि जो लोग अहिंसा के कायल नहीं हैं उन्हें महासभा और असहयोग से अपना नाता तोड लेना चाहिए और कौन्सिलों के लिए उम्मीदवार हो जाना चाहिए, अथवा फिर से अदालतों में और सरकारी कालेज-स्कूल में दाखिल हो जाना चाहिए, जैसी कि हालत हो । हां, इस बात में कोई जरा भी सन्देह न करें कि 'अहिंसा' के द्वारा जिस स्वराज्य की स्थापना होगी वह उस स्वराज्य से अवश्य ही भिन्न होगा जो सशस्त्र बलवे के द्वारा स्थापित किया जायगा । स्वराज्य हो जाने पर भी पुलिस और दण्ड तो रहेगा ही । पर उस समय न तो सरकार ही और न लोग ही ऐसे पाशविक अत्याचार कर पावेंगे जैसे कि हम आज अपनी आंखों से देख रहे हैं । और जो लोग, फिर वे चाहे अपने को हिन्दू कहलाते हों चाहे मुसल्मान, अहिंसा को व्यवहार-नियम के तौर पर पूरी तरह नहीं मानते हैं उन्हें असहयोग और अहिंसा दोनों का त्याग कर देना चाहिए ।

मेरी दृष्टि में तो, मुझे निश्चय है, कि न तो कुरान में और न महाभारत में कहीं भी हिंसा को प्रधानपद दिया गया है । यद्यपि कुदरत में हमको काफी अपकर्षण दिखाई देता है तथापि वह आकर्षण के ही सहारे जीवित रहती है । पारस्परिक प्रेम के ही बदौलत कुदरत का काम चलता है । मनुष्य संहार पर अपना निर्वाह नहीं करते हैं । आत्मप्रेम के बदौलत औरों के प्रति आदरभाव अवश्य ही उत्पन्न होता है । राष्ट्रों में एकता इसलिए होती है कि राष्ट्रों के अंगभूत लोग परस्पर आदर-भाव रखते हैं । किसी दिन हमारा राष्ट्रीय न्याय हमें सारे विश्व तक व्याप्त करना पडेगा, जैसा कि हमने अपने कौटुम्बिक न्याय को राष्ट्रों के-एक विस्तृत कुटुम्ब के-निर्माण में व्याप्त किया है । ईश्वर का यह आदेश है कि भारत को ऐसा ही राष्ट्र होना चाहिए । क्योंकि जहां तक युक्ति और तर्क की गति पहुंच सकती है, भारत सशस्त्र बगावत के द्वारा पुश्तों तक आजाद नहीं हो सकता । भारत तो सिर्फ राष्ट्रीय हिंसा से दूर रह कर ही आजाद हो सकता है । भारत अब ऐसे शासन से थक गया है जो हिंसा-काण्ड पर अपना आधार रखता है । मेरे लिए तो मैदान में रहनेवालों का यही सन्देश है । मैदान के लोग नहीं जानते कि संगठित सशस्त्र युद्ध करना क्या चीज है ! और उन्हें आजाद तो जरूर होना चाहिए; क्योंकि वे आजादी चाहते हैं । उन्हें यह अच्छी तरह मालूम हो गया है कि हिंसा-काण्ड के द्वारा प्राप्त अधिकार का फल यही होगा कि हम और अधिक पीसे जायंगे ।

इसी कारण परम्परा के द्वारा इस अहिंसा धर्म की नहीं, पर व्यवहार-नियम की उत्पत्ति हुई है । और जिस प्रकार एक मुसल्मान या एक हिन्दू हिंसा में विश्वास रखता हुआ भी अपने परिवार के लिए अहिंसा-धर्म का ही व्यवहार करता है उसी प्रकार उन दोनों से कहा जाता है कि इस अहिंसा के व्यवहार-नियम को आप लोग अपने पारस्परिक व्यवहार में तथा भिन्न भिन्न जातियों (जिनमें अंगरेज-भाई भी शामिल हों) और श्रेणियों के व्यवहार में अपनाइए । जो लोग इस व्यवहार-नियम के कायल न हों और जो उसके अनुसार पूरा पूरा बर्ताव करना न चाहते हों उनका हुक्म उल्लंघन के अन्दर रहना इसकी गति को कुण्ठित करना है ।

प्रान्तीय समितियों को सलाह

इससे यह स्पष्ट है कि मैं प्रान्तीय संस्थाओं से क्या बात चाहता हूं । फिलहाल उन्हें जहां तक मुमकिन हो सरकार के कानूनों का भंग न करना चाहिए । जबतक वे अपने हृदय की खोज न कर लें तबतक उन्हें कोई कदम आगे न बढाना चाहिए । बल्कि पूर्ण शान्तिमय वायुमंडल तैयार करना चाहिए । क्रोध के आवेश में जो लोग जेल गये हैं उनसे हमें कोई लाभ नहीं हुआ है । मैं मुसल्मानों के इस विचार से जो कि हिन्दुओं का भी विचार है कि महज जेल जाने के ही लिए जेल न जाना चाहिए, सहमत हूं । जेलों में जाना तो तभी उपयोगी हो सकता है जब धर्म या देश के लिए वहां जाया जाय और जब वही लोग जायं जो खादी पहने हों और जिनके दिल से हिंसा और क्रोध का भाव निकल गया हो । यदि प्रान्तों में ऐसे स्त्री-पुरुष न हों तो उन्हें सविनय भंग सुतरां शुरू ही न करना चाहिए ।

विधायक कार्यक्रम

इसीलिए इस विधायक कार्यक्रम की रचना की गई है । इससे हमारा चित्त स्थिर और शान्त होगा । इससे हमारी संगठन-शक्ति जाग्रत होगी, हम परिश्रमी और उद्योगी बनेंगे, हम स्वराज्य के योग्य होंगे, और हमारा उबलता हुआ खून शान्त होगा । हां, सम्भव है कि लोग हम पर छीः थू करें, हंसें, कसमें डालें, ठोकरें मारें और बुरी तरह कोसें । हमें इन सब बातों को उस हद तक तो अवश्य सहन करना चाहिए जिस हद तक हमने अहिंसा की प्रतिज्ञा धारण करने के उपरान्त भी अपने हृदय में हिंसा-भाव को कायम रक्खा हो । मुझे यह बात साफ साफ कह देनी चाहिए कि जबतक हम जान-बूझकर अपने कार्य को न सुधारेंगे, अहिंसा वृत्ति को जाग्रत और खादी तैयार न करेंगे तबतक हम न तो खिलाफत की अच्छी सेवा कर सकते हैं, न पंजाब के अन्यायों का परिमार्जन करा सकते हैं और न स्वराज्य ही प्राप्त कर सकते हैं । यदि मैं अपने साथियों को तथा सर्वसाधारण को इस बात का निश्चय न करा सकूं कि इस विधायक कार्यक्रम के अनुसार जोरशोर से काम करने की अत्यन्त और तुरन्त आवश्यकता है तो मेरा नेतापन बिल्कुल बेकार है ।

हमको यह देखना चाहिए कि हमें सारे भारत से १ करोड नर-नारी मिल सकते हैं या नहीं, जो इस बात को मानते हों कि हमें शान्तिमय सत्य साधनों के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना है ।

हमें स्वदेशी-प्रचार के लिए रुपया अवश्य एकत्र करना होगा और हमें यह जानना होगा कि भारत में ऐसे कितने लोग हैं जो सचाई के साथ तिलक-स्वराज्य-फंड में अपने पिछले साल की आमदनी में से १) फी सैकडा रकम देने के लिए तैयार हैं । इस चन्दा की उम्मीद समिति महासभावादी तथा उसके साथ सहानुभूति रखने वाले लोगों से करती है ।

हमें पानी की तरह रुपया बहाकर चरखे का प्रचार घर घर में करना चाहिए, तथा खादी तैयार करना और जहां जहां जरूरत हो तहां तहां उसे भेजना चाहिए ।

हम अपने 'अछूत' भाइयों की उपेक्षा तो वास्तव में बहुत समय से कर रहे हैं । वे कितने बरसों से हमारी गुलामी करते आये हैं । अब हमें उनकी सेवा जरूर करनी होगी ।

शराबखानों के पहरे से कुछ लाभ जरूर हुआ है; पर वह पक्का नहीं । हम तबतक इस विषय में सच्ची प्रगति न कर सकेंगे जबतक कि हम हरएक शराब पीने वाले के घर न जावेंगे । हमें यह जानना चाहिए कि वह क्यों शराब पीता है । उसके [illegible]

इस दूसरी कौनसी वस्तु उसे दे सकते हैं ? हमें भारत के तमाम शराब पीने वालों की गणना करनी होगी।

समाज-सेवा-विभाग को लोगों ने बड़ी हेय दृष्टि से देखा है। यदि असहयोग आन्दोलन का कोई दुष्ट उद्देश नहीं है तो इस विभाग की अत्यन्त आवश्यकता है। हम तकलीफ और मुसीबत के मौके पर हरएक की-शत्रु और मित्र दोनों की-समान भाव से सेवा करना चाहते हैं। इसके द्वारा हम अपने राजनैतिक मत-भेद और कार्य-भेद के रहते हुए भी परस्पर मीठा सम्बन्ध रख पावेंगे।

लोग हंसते हैं

समाज-सेवा तथा शराब खोरी छुड़ाने को स्वराज्य-युद्ध का अंग बताने पर लोग हंसते थे। इससे यह दिखाई दिया कि स्वराज्य की आवश्यक बातों के सम्बन्ध में कितना दुःखदायक अज्ञान भरा हुआ है। मैं दावे के साथ कहता हूं कि मानवी स्वभाव और मानवी समाज के सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक विभागों के बीच में ऐसी लोहे की कठिन दीवारें नहीं हैं कि जिनमें से पानी का एक बूंद भी इधर से उधर न जा सके। हरएक का घात-प्रतिघात एक दूसरे पर होता है। अधिक क्या, ये हिन्दू और मुसलमानों के ही बहुसंख्यक लोग इस युद्ध को धार्मिक समझ कर इसमें शामिल हुए हैं। जनता इसमें इसीलिए शरीक हुई है कि वह खिलाफत और गाय की रक्षा करना चाहती है। मुसल्मानों की खिलाफत को सहायता करने की आशा तोड़ दीजिए-वे महासभा से अलग हो जायंगे। हिन्दुओं से कहिए कि आप महासभा में रह कर गोरक्षा नहीं कर सकते-एक भी हिन्दू उसमें न ठहरेगा। नैतिक सुधारों पर तथा समाज-सेवा पर हंसना मानों स्वराज्य, खिलाफत और पंजाब पर हंसना है।

यहांतक कि पाठशालाओं के संगठन पर भी लोग हंसे। आइए, जरा सोचें इसका मतलब क्या है? हमने सरकारी विद्यालयों की शान तो मट्टी में मिला दी है। पहरा रखना तथा लड़कों की पढ़ाई पर ध्यान न देना १९२० में तो कदाचित् आवश्यक था; पर अब तो सरकारी विद्यालयों पर पहरा रखना तथा राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं की उपेक्षा करना अपराध है। अब तो हम उसी अवस्था में अधिक लड़के लड़की अपनी ओर खींच सकते हैं जब हमारे वर्तमान राष्ट्रीय विद्यालय सरकारी स्कूलों से बेहतर हालत में हों। उन्हें उन संस्थाओं में रहने का तो लाभ प्राप्त हो रहा है जहां का वायुमण्डल स्वतन्त्र है और जहां उनकी शक्तियां दबा नहीं दी जाती हैं। परन्तु इसके साथ धुनकने, सूत कातने और बुनने की क्रिया तथा देश की आवश्यकताओं के अनुकूल बौद्धिक शिक्षा की भी व्यवस्था होनी चाहिए। हम अपने प्रयोग में सफलता प्राप्त कर के यह दिखा सकेंगे कि राष्ट्रीय विद्यालयों में अधिक अच्छी शिक्षा दी जाती है।

और पंचायतों को भी लोगों ने उपहास्य समझा। वे लोग शायद इस बात को जानते ही नहीं थे कि भारत के कितने ही भागों में सर्वसाधारण ने सरकारी अदालतों में जाना छोड़ दिया है। यदि हम प्रामाणिक पंचायतों की स्थापना न करेंगे तो वे अवश्य ही फिर से उन्हीं सरकारी अदालतों की शरण ले लेंगे।

राजनैतिक परिणाम

इनमें से कोई बात ऐसी नहीं है जिसका राजनैतिक परिणाम बहुत व्यापक न हो। खादी के कामिल तौर पर तैयार होने और उसके सर्वत्र उपयोग होने से एक तो विदेशी कपड़े का बहिष्कार सदा के लिए हो जायगा और दूसरे ६० करोड़ रुपये हर साल गरीब लोगों में बंट जायंगे। शराब और अफीम के दुर्व्यसनों के सदैव के लिए लोप हो जाने से लोगों के १७ करोड़ रुपये बचेंगे और सरकार की इतनी आमदनी कम होगी। अछूतों के लिए रचनात्मक कार्य करने से महासभा को छः करोड़ नर-नारियों का लाभ होगा, जिनका चिर सम्बन्ध महासभा से बना रहेगा। यदि समाज-सेवा-संघ की स्थापना हो गई और वह जीवित रहा तो उसके बदौलत सहयोगियों (चाहे भारतीय हों या अंगरेज) और असहयोगियों की अनबन दूर हो जायगी। अतएव इस पूरे विधायक कार्यक्रम के अनुसार काम करना मानों अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेना है। इसमें गफलत करना मानों सविनय भंग की तमाम आशाओं को दूर ही दूर हटाना है।

(यंग इंडिया) मो० क० गांधी

महासभा का कर

जिसकी दुहाई फिरा करती है उसको कर हमेशा मिला करता है। भारत में कितने ही बड़े बड़े मन्दिर हैं। उनका खर्च यहां के भावुक लोग बिना ही मिहनत के चलाते हैं। काशी-विश्वनाथ के मन्दिर पर सोने का कलश है। उसके लिए क्या स्वयंसेवक लोग घूमते फिरे थे? श्रद्धावान लोगों ने खुद होकर दान दिया। अमृतसर में सिक्खों के गुरुद्वारा में बिल्लौर की फर्श है, चांदी के दरवाजे हैं, गुम्बज पर सोना चढ़ा हुआ है, इसीसे वह सुवर्णमन्दिर कहलाता है। इसमें जो धन लगा है वह भी भावुक सिक्ख लोगों ने आप होकर दिया है। ये आलीशान मसजिदें हम जगह जगह देख रहे हैं। उनके लिए भी धन बिना ही घर घर गये एकत्र हुआ है। इसी तरह महासभा का कर जमा होना चाहिए। यदि लोग महासभा को धर्म का और कर्म का साधन मानते हों, यदि मुसलमान भाई यह मानते हों कि महासभा-राज्य का अर्थ है खिलाफत का छुटकारा और मुसल्मानों की स्वतन्त्रता, यदि हिन्दू लोग यह मानते हों कि महासभा-राज्य का अर्थ है गो-रक्षा और हिन्दुओं की स्वतन्त्रता, यदि पारसी भाई मानते हों कि महासभा-राज्य का मतलब है अग्यारी की रक्षा और पारसियों की आजादी, यदि भारत के ईसाई यहूदी ऐसा ही मानते हों तो वे सब अपना स्वार्थ और धर्म समझ कर महासभा का पोषण करें। महासभा का पोषण करने के मानी हैं उसको कर देना। यदि यह संस्था लोक-प्रिय हो तो उसे धन की कमी होनी ही न चाहिए। इस बात का पता थोड़े ही दिनों में लग जायगा कि यह संस्था लोक-मान्य है या नहीं।

इस बार महासभा ने कर ही लगाया है। एक कर तो पहले से था-यह कि जो लोग उसके सभासद होना चाहते हैं, मतदाता होने की इच्छा रखते हैं उन्हें प्रतिवर्ष ।) देना चाहिए; दूसरा कर ऐसा है जिसे सब लोग-सरकारी नौकर लोग भी-फिर वे चाहें सभासद हों या न हों, जो महासभा को पसन्द करते हैं यह कर दें। जो तिलक महाराज को पूजते हैं वे लोग दें, जो यह मानते हैं कि उनके नाम का बड़े से बड़ा स्मारक स्वराज्य प्राप्त करना है वे लोग दें।

वह कर क्या है? पिछले वर्ष की आमदनी का सौवां हिस्सा। अर्थात् जिसे सालाना सौ रुपया वेतन मिलता है उससे महासभा १) चाहती है। यह कर हलके से हलका कहा जा सकता है। सरकार तो बही-दस्तरा जांचती है; पर महासभा हृदय की जांच करेगी। जिसकी जैसी आमदनी हो उसके अनुसार रकम वह महासभा के दफ्तर में पहुंचा दे।

सब लोग सचाई के ही साथ अपनी अपनी आमदनी का भाग देंगे। हां, अधिक जितना चाहें उतना दें। कम किसीको न देना चाहिए। जो कम देना चाहते हों वे भेंट के तौर पर जो चाहें सो दें। कर के तौर पर तो तिलक-स्वराज्य-फण्ड में कम से कम प्रति सैकड़ा १) ही देना चाहिए, अधिक भले ही जितना चाहें

उतना दें। जो लोग अधिक दे सकते हैं वे अधिक जरूर दें जिससे न देने वाले लोगों की रकम का बदला महासभा को मिल जाय, यह मान लिया जायगा कि अधिक देने वाले उन लोगों के बजाय दे रहे हैं।

इस धन का उपयोग फिलहाल तो प्रधानतः तीन बातों में किया जायगा। जिसकी जो इच्छा हो उसके अनुसार वह अपनी रकम को आंक सकता है। खादी अथवा चरखे का प्रचार, शिक्षा और अन्त्यज सेवा। इस साल शिक्षा का काम अच्छी बुनियाद पर चलाना है। सरकारी विद्यालयों में एक भी लडके का रहना मैं हमारे लिए शरम की बात मानता हूं। हम अपने शिक्षालयों की हालत अच्छी बनाकर प्रत्येक बालक-बालिका को उनकी ओर खींच सकते हैं। यदि एक भी बालक ऐसा निकले जो पाठशाला में न जाता हो तो उसे भी मैं शर्म दिलाने वाली बात समझूंगा। ये दोनों विभाग ऐसे हैं कि यदि अच्छी तरह चलाये गये तो कर देने वाले को तथा समस्त जनता को दस गुना बदला मिल जाय। इस साल अन्त्यज-सेवा में अधिक धन लगाना पडेगा। सो यदि भारतवासियों को महासभा का कार्य सन्तोषजनक मालूम हुआ हो तो वे अधिक ही धन देंगे, कम नहीं और उसे वसूल करने में कभी मिहनत करावेंगे। महासभा की दुहाई की यह पहली कसौटी है। मैं आशा करता हूं कि सब लोग बिना एक दूसरे की राह देखे आप ही कर इस कर को अदा कर देंगे। (नवजीवन)

महासभा को मूर्ति न बनाइए

हमें महासभा को कोरी पत्थर की मूर्ति न बना डालना चाहिए। मुझे यह अच्छा मालूम होता है कि प्रत्येक नर-नारी महासभावादी हों और समझ के साथ तथा खुशी खुशी उसके प्रस्तावों के अनुसार व्यवहार करें। पर केवल इसी खयाल से कि महासभा एक पुरानी संस्था है, या महान् संस्था है, उसके सभासद होना अथवा ऐसे प्रस्तावों के अधीन होना जो उन्हें पसन्द हों या न हों, यह बात जरा भी पसन्द करने लायक नहीं। बहुमत का नियम एक हद तक ही लागू हो सकता है। छोटी छोटी और तफसील की बातों में ही बहुमत के अधीन होना उचित है। बहुमत के हर किसी प्रस्ताव के अधीन हो जाना तो गुलामी कहलाती है। जैसे-जिसको धारा-सभा थोडे-बहुत अंशों में भी कल्याणकारक संस्था मालूम होती है उसका केवल महासभा के प्रस्ताव के खातिर ही उस से अलग हो जाना या उसके लिए उम्मेदवार न होना मैं अनुचित मानता हूं। उसी प्रकार केवल इसीलिए कि महासभा कहती है, वकालत बंद कर देना भी किसी वकील के लिए बुरा है। प्रजा-सत्ता का अर्थ यह नहीं है कि लोग भेडों की तरह बरतें। प्रजा-सत्ता में तो व्यक्तिगत विचार तथा कार्य की स्वतन्त्रता की रक्षा सावधानी के साथ होनी चाहिए। इससे मेरा यह मत है कि अल्पमत वालों को वहांतक अपनी रुचि के अनुसार काम करने का पूरा अधिकार है जहांतक वे महासभा के नाम पर कोई काम न करें। वकालत करने वाले वकील महासभा के सभासद हो सकते हैं, पर वे असहयोगी नहीं कहे जा सकते। वे महासमिति के सदस्य नहीं हो सकते और उन्हें होना भी न चाहिए। उसी प्रकार जो शुद्ध खादी न पहनते हों, जो खिताब धारण किये हों, अथवा जो धारासभा के सभासद हों, वे महासभा के दफ्तर में अपना नाम लिखा सकते हैं, पर वे असहयोगी नहीं माने जा सकते।

महासभा का सभासद उन प्रस्तावों से बंध नहीं जाता है जो उसे स्वीकार न हों; यही नहीं बल्कि मेरा तो मत है कि उससे भी आगे बढ जाने का हक उसे है। पर इसमें शर्त सिर्फ इतनी ही है कि उसका काम महासभा के सिद्धान्त के विरुद्ध न होना चाहिए और वह महासभा के नाम पर न किया जाना चाहिए। मान लीजिए कि महासभा की शर्तें किसी एक प्रान्त के अनुकूल नहीं हैं, और उस प्रान्त ने अपना मत भी उसके प्रतिकूल दिया है, तथा उस प्रान्त को यह मालूम होता हो कि हम तो अपना काम चला सकते हैं, तो ऐसे प्रान्त को इस बात का पूरा हक है कि वह आगे बढ जाय, उसमें सफलता प्राप्त करके यह दिखा दे कि उसका यह प्रतिकूल कार्य करना उचित था। महासभा के प्रस्ताव सारे देश के लिए महत्तम समापवर्तक की तरह हो सकते हैं। यह समझा जा सकता है कि किसी निश्चित प्रान्त की जरूरतों के लिए वे काफी न हों। ऐसा प्रान्त यदि पूरा विश्वास रखता हो और उसका कार्य महासभा के हित का विघातक न हो तो अपनी जिम्मेवारी पर अपने ढंग के अनुसार, वह बेशक आगे बढ सकता है। महासभा यदि उसके साहस को बुरा बतावे, तो उसके लिए उसे तैयार रहना चाहिए। मेरी राय में तो प्रजासत्ता का रहस्य यही है। यह पूर्वोक्त उदाहरण कौटुम्बिक सविनय कानून भंग का है। इसी के अनुसार चल कर हम इस कोरी 'मूर्ति पूजा' से बच सकते हैं। (यंग इंडिया)

व्यापारियों की चिन्ता

ऐसा दिखाई देता है कि व्यापारी लोग आज कल घबडा रहे हैं। उनका खयाल है कि वर्तमान आन्दोलन से व्यापार का सत्यानाश हो जायगा। यह खयाल सच नहीं। यह आन्दोलन न तो व्यापार के और न व्यापारियों के खिलाफ उठाया गया है। बल्कि यह तो व्यापार के लिए खडा किया गया है। आज व्यापारी लोग सौ रुपये के पीछे सिर्फ पांच रुपये पैदा करते हैं और बाकी बाहर भेजते हैं। इस आन्दोलन के सफल हो जाने पर सौ के सौ ही रुपये व्यापारियों के घर में रहेंगे या वे पांच रुपये अपने घर में रख कर पचानवे गरीबों के घर में पहुंचावेंगे।

व्यापारियों को सिर्फ निर्भय होने की आवश्यकता है। कुछ विश्वास रखने की जरूरत है और कुछ साहस दिखाने की आवश्यकता है। सरकार व्यापार कराती हो, सो बात नहीं। वह तो गुलामी और अधिक हुआ तो दलाली कराती है। यदि वह एक हिंदुस्तानी को करोडपति होने देती है तो उसके पीछे योरप में सौ करोडपति बनाती है जो व्यापारी इस सीधे हिसाब को समझ जाय वह तो इस युद्ध में कूद पडे, और यदि व्यापारी वर्ग अपना पाठ पूरा पढ लें तो यह लडाई शीघ्र ही समाप्त हो जाय और वे तथा देश शान्ति के साथ अपने अपने काम में लग जायं।

कपडे के व्यापारियों को अधिक से अधिक हिम्मत दिखाने की आवश्यकता है। विलायती कपडे का तथा मिल के कपडे का व्यापार छोड कर उन्हें शुद्ध खादी का ही व्यापार करना चाहिए। खादी का रोजगार भी प्रामाणिकता के साथ करके सैकडों आदमी उसके द्वारा अपनी जीविका चला सकते हैं तथा लोककल्याण हो सकता है। यह मानने का तो कोई कारण नहीं है कि व्यापारी लोग सचाई नहीं रख सकते। अनुभव से व्यापारी लोग देखेंगे कि यदि वे अपने लोभ की एक हद बांध लें तो उन्हें असत्य के अवलम्बन करने की जरा भी जरूरत न रहे (नवजीवन)

पाठकों के प्रति

'हिन्दी-नवजीवन' का आरम्भ बतौर आजमायश के किया था। शुरूआत में यह आशंका रही थी कि यह अधिक दिनों तक जीवित रह सकेगा या नहीं। अतएव मासाना चन्दे के साथ ही छःमाही चन्दा लेने का भी नियम रक्खा गया था। पर अब ईश्वर की कृपा से वह अपने पैरों पर खडा हो गया है। अतएव छःमाही चन्दा लेने का नियम उठा लिया गया है। अब से प्रेमी पाठक वार्षिक मूल्य ४) ही भेजें। व्यवस्थापक

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, फाल्गुन सुदी ६, सं. १९७८.

महा–समिति

देहली में उस दिन महासमिति की बैठक हो गई। कुछ बातों में तो वह खुद महासभा से भी बढ कर याद रखने लायक हुइ। देश में भीतर ही भीतर ज्ञानतः और अज्ञानतः इतना हिंसा का प्रवाह बह रहा है कि मैं वास्तव में ईश्वर से यह प्रार्थना कर रहा था कि इस बार मेरी गहरी हार हो जाय। मेरे साथ हमेशा ही बहुत थोडे लोग रहे हैं। पाठक इस बात को नहीं जानते हैं कि दक्षिण आफ्रीका में जब मैंने लडाई छेडी, सब लोग मुझसे सहमत थे; पर पीछे केवल ६४ आदमी और आगे चल कर तो अकेले १६ सज्जन मेरे साथ रह गये; पर फिर बहुमत मेरी ओर हो गया। उन्हीं दिनों में जब कि अल्पमत मेरी तरफ था, अच्छे से अच्छा और पुख्ता काम वहां हो पाया था।

सरकार अगर किसी बात से डरती है तो इसी बडे भारी बहुमत से जो मेरी ओर दिखाई देता है। पर शायद यह नहीं जानती कि मैं तो उससे भी अधिक इस बहुमत से डरता हूं। झुंड के झुंड लोग बिना सोचे–बिचारे जहां मैं जाता हूं वहां उमड पडते हैं। मैं तो इससे सचमुच तंग हो गया हूं। अच्छा होता यदि वे लोग मुझे छाः थू ! कर दिया करते–इससे मुझे अपनी स्थिति का तो निश्चय हो जाता। उस अवस्था में न तो हिमालय के जैसी अथवा दूसरी गलत–अन्दाजों कुबूल करने की आवश्यकता पडती, न पीछे कदम हटाना पडते, न फिर से व्यवस्था करनी पडती।

परन्तु होनहार ऐसा नहीं था।

एक मित्र ने मुझे सावधान किया कि कहीं आप अपने 'सर्वाधिकारीपन' का दुरुपयोग न कर बैठिएगा। पर वे नहीं जानते हैं कि मैंने उस अधिकार का उपयोग आजतक नहीं किया है: क्योंकि उसके उपयोग करने का बा–कायदा मौका ही अबतक पेश नहीं आया। इस 'सर्वाधिकारीपन' का उपयोग तो सिर्फ उसी समय किया जा सकता है जब सरकार की ओर से महासभा के हाथ–पांव तोड दिये जायं और वह बेकार कर दी जाय।

पर अपने 'सर्वाधिकारीपन' का दुरुपयोग करना तो दूर रहा, मुझे तो आश्चर्य होता है कि कहीं मेरे अनजान में खुद मेरा ही 'दुरुपयोग' न किया जा रहा हो। मुझे अब इस बात का इतना डर मालूम होने लगा है जितना पहले कभी नहीं हुआ था। पर मेरी ढाल तो सिर्फ मेरी निर्लज्जता है। मैंने महासमिति वाले मित्रों को जता जता कर कह दिया है कि मुझे एक खास बीमारी है। उसका कोई इलाज नहीं। वह यह कि जब जब लोगों से भूल होगी तब तब उसे कबूल किये बिना मुझसे नहीं रहा जाता। मैं इस दुनिया में अगर किसी जालिम के आगे सिर झुकाता हूं तो वह है 'अपना अन्तर नाद'। और यद्यपि मेरा साथ देनेवालों की संख्या घटते घटते मेरे अकेले ही रह जाने की सम्भावना हो तो भी मुझे विश्वास है कि उस अवस्था में भी रह सकने का साहस मुझमें है। मेरे लिए तो सत्य स्थिति केवल यही हो सकती है।

पर आज मैं पहले से अधिक दुखी और, मैं समझता हूं, अधिक समझदार हूं। मैं देखता हूं कि हमारी अहिंसा ऊपरी है। हम मारे क्रोध के जल रहे हैं। सरकार अपने नादान कृत्यों के द्वारा उसमें घी डालने का काम कर रही है। प्रायः ऐसा मालूम होता है कि सरकार भारत–भूमि को खून से लथपथ, आग की ज्वालाओं से भभकती हुई और लूट–मार से संत्रस्त देखना चाहती है जिससे कि उसे लोगों को दबा डालने की अपनी पूरी और केवल अपनी ही योग्यता का दावा करने का फिर मौका मिले।

अतएव ऐसा मालूम होता है कि हम केवल असहाय अवस्था के कारण अहिंसा को अपना रहे हैं। प्रायः ऐसा दिखाई देता है कि हम अपने दिलों में इस अभिलाषा को स्थान दे रहे हैं कि मौका मिलते ही सबसे पहले बदला निकालें।

क्या इस निर्बल की जबरदस्ती मानी जाने वाली और दिखाऊ अहिंसा के अन्दर से सच्ची और स्वेच्छा-पूर्वक अहिंसा उत्पन्न हो सकती है? तो क्या यह प्रयोग जिसे मैं कर रहा हूं बेकार नहीं है? यदि लोग कोप से आग बबूला हो उठें, किसी भी स्त्री, पुरुष और बालक की जान महफूज न हो और एक भाई का हाथ दूसरे भाई की गर्दन पर उठने लगे, तो क्या हो? ऐसी आफत खडी हो जाने पर यदि मैं उपवास करते करते मर भी जाऊं तो उससे क्या लाभ होगा?

तो इसका उपाय क्या है? झूठ बोलना और उस बात को अच्छा कहना जिसे मैं बुराई समझूं? यह कहना कि बनावटी और जबरदस्ती के सहयोग के अन्दर से सच्चा और स्वेच्छा–पूर्वक सहयोग पैदा होगा, ऐसा कहने के बराबर है कि अंधेरे में से प्रकाश उत्पन्न होगा।

सरकार से सहयोग करना उतनी ही दुर्बलता और उतना ही पाप है जितना कि व्यवहार-नियम के तौर पर स्थगित रक्खी गई हिंसा को अपनाना।

यह कठिनाई तो ऐसी है जिसको पार करना असम्भव है। ऐसी दशा में ज्यों ज्यों इस बात का ज्ञान बढता जाता है कि यह अहिंसा तो केवल दिखाऊ है त्यों त्यों मुझसे बराबर गलतियां होंगी और मुझे बार बार पीछे लौटना होगा, जैसे कि कोई मनुष्य ऐसे जंगल से जहां रास्ते का पता नहीं है, अपना रास्ता खोजते हुए टटोलता जाता है, पीछे हटता जाता है, ठोकरें खाता जाता है, उसके पैर छिल जाते हैं और खून भी बहने लगता है।

मैंने सोचा था कि हां, लोग थोडे बहुत उत्साह–हीन, निराश और नाराज होंगे; पर इतने भीषण विरोध का तो मैंने अनुमान भी नहीं किया था। यह साफ साफ मालूम हो गया कि कार्यकर्ता लोग कोई भी गम्भीर विधायक कार्य करने को तैयार नहीं थे। विधायक कार्यक्रम उनको चित्ताकर्षक न मालूम हुआ। वे समझते थे कि हम सामाजिक सुधार के किसी संघ में थोडे ही हैं। वे इस मनहूस सामाजिक सुधार के द्वारा सरकार से सत्ता नहीं छीन सकते थे। वे तो 'अहिंसामय' घूंसा जमाना चाहते थे! यह सब बहुत थोथा मालूम होता था। वे इस बात को सोचना भी नहीं चाहते थे कि हम इस प्रकार बच्चों की तरह गुस्सा दिखा कर चाहे सरकार को परास्त कर भले ही दें, पर बिना गम्भीरता और परिश्रम के साथ संगठन और विधायक कार्य किये देश का शासन–संचालन एक दिन के लिए भी नहीं कर सकते।

हमें जेलों में, जैसा कि मौ० महम्मद अली कहा करते थे 'गलत खयाल बना कर' न जाना चाहिए। हर तरह से जेल जाने से स्वराज्य नहीं मिल सकता। हरबार के कानून भंग से भी हममें आज्ञापालन और मर्यादापालन की भावना नहीं उदीस

हो सकती। पक्के मुजरिमों के लिए जेल 'स्वाधीनता का द्वार' नहीं है। वे तो केवल निर्दोष-मूर्ति लोगों के ही लिए 'स्वतन्त्रता के मन्दिर' हैं। सुकरात की फांसी ने हमारे लिए अमरता को प्रत्यक्ष प्रमाणित कर दिया। पर यों तो आजतक अगणित खूनी फांसी पर लटक चुके! भला कहीं हम ऐसे हजारों लोगों को जो नाम मात्र के लिए शान्तिपरायण हैं पर जिनके दिलों में तो द्वेष, वैर, और हिंसा-भाव भरे हुए हैं, जेल भेज कर स्वराज्य को चुरा सकते हैं?

हां, यदि हम शस्त्र ले कर लड़ते होते और प्रहार करते तथा प्रहार सहते होते तो बात दूसरी थी। डरा-धमका कर, हमला कर और खून कर के जेल जाने से अवश्य ही सरकार परेशान तो होगी और जब वह थक जायगी तब सिर भी झुका देगी, जैसा कि दूसरी जगह उसने किया है। पर आज जो लड़ाई हम लड़ रहे हैं वह तो ऐसी नहीं है। हमें तो सत्य पर अटल रहना चाहिए। पर यदि स्वराज्य 'बल दिखाने' से आ सकता हो तो हमें 'अहिंसा' का त्याग कर देना चाहिए और हम जैसा बन पड़े वैसा हिंसा-काण्ड मचावें। तब तो यह हमारा कार्य पुरुषोचित, प्रामाणिक और विचारपूर्ण होगा-जैसा कि संसार में आजतक होता चला आया है। उस अवस्था में हम पर कोई ढोंग और पाखंड का भीषण इल्जाम तो नहीं लगा सकता।

लेकिन अधिकांश लोगों ने मेरी बात को न सुना। मैंने उन्हें खूब सावधान किया, सच्चे दिल से कहा कि यदि आप अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए 'अहिंसा' को अनिवार्य न मानते हों तो मेरे प्रस्ताव को नामंजूर कर दीजिए। तिस पर भी उन्होंने उसमें कोई सुधार किये बिना ही उसे स्वीकार किया है। सो मैं कहता हूं कि उन्हें अपनी जवाबदेही को पहचान लेना चाहिए। वे घर जाते ही सविनय भंग शुरू करने के लिए बंधे हुए नहीं हैं। बल्कि उन्हें चुपचाप विधायक काम में लग जाना उचित है। मैं उनसे आग्रह करता हूं कि आप फौरन् काम करने के कोहराम की ओर ध्यान न दें। अभी जो काम करना है वह जेल जाना नहीं, और न भाषण, लेखन और सम्मेलन-स्वातन्त्र्य ही है; बल्कि क्या है? आत्म-शुद्धि, आत्म-निरीक्षण, चुपचाप संगठन। हमारे पांव छुट गये हैं। यदि हम इसकी चिन्ता न करेंगे तो हम इस अगाध सागर में न जाने कहां आ कर डूब जायंगे।

जेल-स्थित देश-सेवकों की चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं। मैंने तो ज्यों ही चौरीचौरा का हाल सुना, कुछ समय के लिए उन्हें अपनी उद्देश-सिद्धि पर न्यौछावर कर दिया। मैंने इसे सब से पहला प्रायश्चित माना। वे जेल में इसलिए गये हैं कि जनता के सामर्थ्य से छूटें-निस्संदेह वे इसी आशा से गये हैं कि स्वराज्य पार्लियामेंट का पहला काम होगा जेलों के फाटक खोलना। किंतु परमात्मा ने कुछ और ही ठान रक्खा था। हम बाहर रह जाने वालों ने कोशिश तो की; लेकिन नाकामयाब हुए। अब तो उन्हें पूरी सजा भोगने से ही लाभ होगा। जो लोग भूल से, भ्रम से अथवा इस आन्दोलन के सम्बन्ध में किसी गलत खयाल से जेल चले-गये हों वे माफी मांग कर या दरख्वास्त दे कर रिहा हो सकते हैं। इस घुलाव से इस आन्दोलन का बल ही बढ़ेगा, घटेगा नहीं। जिन लोगों का दिल मजबूत है वे तो इस अनायास प्राप्त अधिक कष्ट-सहन से आनन्दित ही होंगे। हजारों रूसी कैदी बरसों से रूस के जेलखानों में आजतक सड़ रहे हैं। बेचारे आजतक आजाद नहीं हो पाये। स्वाधीनता बड़ी मानिनी है। उसे राजी और प्रसन्न कर लेना बड़ा ही कठिन है। हमने कष्ट-सहन के सामर्थ्य का तो परिचय दे दिया है। पर हमने अभी काफी कष्ट-सहन नहीं किया है। यदि आम तौर पर लोग अप्रत्यक्ष रूप से शान्त बने रहें और कुछ थोड़े ही लोग प्रत्यक्ष रूप से सचाई के साथ जानते-बूझते हुए मन, वचन और काया से शान्तिमय बने रहें तो हम जल्दी से जल्दी और कम से कम कष्ट-सहन करते हुए अपने ध्येय तक पहुंच सकते हैं। परन्तु यदि हम ऐसे लोगों को जेल भेजेंगे जो अपने दिलों में हिंसा को अपनाये हों तो हम अपने ध्येय से न जाने कबतक दूर ही दूर रहते रहेंगे।

अतएव बहुमत वालों का अब यह कर्तव्य है कि वे अपने अपने प्रान्तों में लोगों के ताने-उलहने का खयाल न करें, अपमान को सहन करें; और साथी लोग छोड कर चले जायं तो उसे भी बरदाश्त करें; पर सत्य मार्ग से एक इंच भी न हटते हुए निश्चय के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते चले जायं। नौकरशाही भूल से इसे हमारी कमजोरी समझ कर चाहे भले ही हमें और अधिक पीड़ित क्यों न करे, हमें उसे सहन करना चाहिए। यहां तक कि हमें बचाव के स्वरूप का सविनय भंग भी छोड देना चाहिए और आर्थिक तथा सामाजिक सुधार में अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए। यह सुधार कार्य चाहे अरुचिकर हो; पर है बलदायी। हमें अत्यन्त विनय-पूर्वक अपने नरम दलवाले भाइयों को यकीन दिला देना चाहिए कि वे हमसे जरा भी भय न खायें, हमसे उन्हें जरा भी नुकसान न पहुंचेगा। हमें जमींदार भाइयों को भी निश्चय दिला देना चाहिए कि हमारे दिल में आपके लिए जरा भी बदी नहीं है।

औसत दरजे के अंगरेज घमण्डी होते हैं। वे हमको नहीं पहचानते। वे अपने को उच्च और श्रेष्ठ जीव मानते हैं। वे समझते हैं कि हम भारतवासियों पर राज्य करने के लिए पैदा हुए हैं। उनको अपने किलों और तोपों का बड़ा भरोसा है। उन्हींको वे अपनी रक्षा का साधन मानते हैं। वे हमको तुच्छ समझते हैं। वे हमसे जबरदस्ती सहयोग अर्थात् गुलामी कराना चाहते हैं। उन्हें भी हमें जीतना है; पर उनके आगे घुटने टेक कर नहीं, बल्कि उनसे अलग रह कर, परन्तु साथ ही न तो उनसे द्वेष करते हुए और न उन्हें हानि पहुंचाते हुए। उन्हें दिक करना-सताना कायरता है। चूहे का खैर तो बिल्ली से दूर रहने में ही है। उस समय तक जब बिल्ली उसे अपने पंजे और दांतों में धर न दबा ले चूहा उसके साथ रही नहीं सकता। इसके साथ ही हमें उन अंगरेज-भाइयों का खयाल रखना चाहिए जो जाति-अभिमान के रोग से खुद अपनी तथा अपने अंगरेज-भाइयों की मुक्ति करना चाहते हैं।

अल्पमत वालों का आदर्श दूसरा है। उन्हें इस कार्यक्रम में विश्वास नहीं है। क्या उनके लिए यह उचित और देशभक्ति की बात नहीं है कि वे एक नये दल और नवीन संगठन की सृष्टि करें? उसी अवस्था में वे देश को वास्तव में अपने मत की शिक्षा दे सकते हैं। जिन्हें महासभा के ध्येय में विश्वास न हो उन्हें अवश्य ही महासभा से अलग हो जाना चाहिए। राष्ट्रीय-संस्था का भी कोई ध्येय तो होना ही चाहिए। उदाहरण के लिए-जो स्वराज्य का कायल नहीं है उसके लिए महासभा में जगह नहीं है। उसी तरह जो 'शान्तिमय और जायज तरीकों' को नहीं मानता वह भी महासभा में नहीं रह सकता। महासभावादी असहयोग का कायल न होते हुए तो उसके अन्दर रह सकता है; परन्तु हिंसा और असत्य को मानते हुए वह महासभावादी नहीं रह सकता। सो जब मैंने देखा कि महासभा के ध्येय-विषयक प्रस्ताव की टिप्पणी का विरोध हो रहा है तब मेरे हृदय को गहरा आघात पहुंचा और जब मैंने

लोगों को 'शान्तिमय' और 'जायज' शब्दों के पर्यायशब्द 'अहिंसा' 'सत्य' का भी विरोध करते हुए पाया तब तो मुझे और भी गहरी व्यथा हुई। इन पर्यायशब्दों की योजना करने के लिए मेरे पास कारण थे। मुझसे संजीदगी के साथ यह कहा गया था कि महासभा के ध्येय में यह आग्रह नहीं किया गया है कि अहिंसा और सत्य स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अनिवार्य है। दुःखकारक वादविवाद को टालने के लिए मैंने अपने पर्यायशब्दों को हटा लिया; पर मेरे दिल को यह जरूर लगा कि यह सत्य की छाती में छुरा भोंका गया है।

हां, मुझे यह तो निश्चय है कि विरोध करने वाले भाई भी देशभक्ति के भावों से उतने ही पूर्ण हैं जितना कि मैं होने का दावा करता हूं: वे स्वराज्य के लिए भी उतने ही उत्सुक हैं जितने कि दूसरे तमाम महासभावादी हैं; लेकिन मैं यह जरूर कहूंगा कि उनकी देश-भक्ति के भाव इस बात को चाहते हैं कि वे अहिंसा और सत्य पर सच्चे दिल से पूरे पूरे दृढ रहें और यदि वे इनके कायल न हों तो उन्हें उचित है कि महासभा से अपना सम्बन्ध हटा लें।

क्या यह अच्छा नहीं है कि तमाम आदर्शों का अर्थ ठीक ठीक निश्चित हो जाय और लोग अपने अपने आदर्शों के अनुसार अलग अलग काम करें? क्या इससे देश के समय-शक्ति आदि की बचत न होगी? उस अवस्था में जो आदर्श अधिक से अधिक लोकप्रिय होगा उसका बोलबाला अपने आप होगा। यदि हम प्रजामत्ता के सच्चे भावों का विकास चाहते हों तो हम बाधक नीति के द्वारा नहीं, बल्कि अलग रहने की नीति के ही द्वारा ऐसा कर सकते हैं।

महासमिति की यह बैठक इस बात का जबरदस्त उदाहरण था कि सरकार नहीं, बल्कि हमी देश के स्वराज्य तक पहुंचने में विलम्ब कर रहे हैं। सरकार की हर एक गलती से हमें सहायता मिलती है। पर जब जब हम अपने कर्तव्य की अवहेलना करते हैं तभी तब उससे हमारी प्रगति रुकती है।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

स्वदेशी बनाम खादी

'स्वदेशी' शब्द अत्यन्त परिचित है। यह शब्द व्यापक है। ऐसे शब्द का असर अच्छा भी होता है और बुरा भी। समुद्र व्यापक है। वह न हो तो हमें प्राणवायु ही न मिले। परन्तु समुद्र अग्नि की तरह सर्वभक्षी है। उसमें गंदगी तो इतनी मिलती रहती है कि उसका पार ही नहीं। पर फिर भी वह विशुद्ध ही बना रहता है। किनारा छोडते ही उसका पानी आईने की तरह पारदर्शक दिखाई देता है। सूर्य की किरणों में उसके फेन हीरे-मोती की तरह चमकते हैं, हीरे मोती का तेज उसके आगे तो कोई चीज ही नहीं। समुद्र पर नौका तैरती है। पर यदि उसका पानी कोई पी ले तो कै हुए बिना न रहे। पीने का पानी तो कुए-बावली में, छोटे छोटे पोखरों में, मीठे से मीठा मिलता है। इसी प्रकार स्वदेशी भी एक समुद्र है, महासागर है। उसके सहज पालन से देश तर सकते हैं। व्याख्या में यह शब्द सुन्दर मालूम होता है। पर आज तो ऐसा है कि यदि हम स्वदेशी-समुद्र में कूद पडें तो डूब जायं। आज तो यह हमारी शक्ति के बाहर की बात है।

स्वदेशी के नाम पर कोई कहते हैं हम तो स्वदेशी ताले ही लगावेंगे या लेंगे चाहे के नहीं। कोई राजेस चाकू को छोड कर ऐसा आदि-चाकू जो [illegible] नहीं चलता, पसन्द करते हैं अथवा नये चाकू बनाने का प्रयत्न करते हैं। कोई स्वदेशी कागज चाहता है, कोई रोशनाई, कोई होल्डर और कोई आलपीन। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी इच्छा के अनुसार स्वदेशी वस्तु की चाह प्रकट कर के उसकी भावना का पोषण करता है। पर उससे देश का काम नहीं चलता। इससे तो स्वदेशी का काम और नाम दोनों भ्रष्ट होते हैं।

मकान बनाने वाला कारीगर पहले ही से झरोखे, खिडकियां-दरवाजे, सजावट आदि के फेर में नहीं पडता। पहले तो वह बुनियाद डालता है। फिर दिवार चलाता है और जब इमारत पूरी हो जाती है तब उस पर चूना-कली चढाता है। यही हाल स्वदेशी की रचना का है।

हम अब स्वदेशी का रहस्य इस हद तक समझ गये हैं और उसका अमली फायदा इतना जान चुके हैं कि अब उसका सच्चा और विशेष अर्थ हम जान पाये हैं। स्वदेशी के नाम पर हमने आज तक अपने को धोखा दिया, कुछ लौट-फेर किये। पहली सीढी थी स्वदेशी के मानी हैं देश में तयार हुआ कपडा। फिर देखा कि विदेशी सूत का देश में बना कपडा सच्चा स्वदेशी नहीं है। उससे देश को बहुत ही थोडा लाभ होता है।

दूसरी सीढी यह हुई कि यदि सूत देशी मिलों का ही कता हुआ हो और देशी मिलों में ही कपडा तैयार हो तो काम दे सकता है। पर अधिक अनुभव होने पर देखा कि इससे भी अभीष्ट अर्थ सिद्ध नहीं होता। उसका एक कुफल यह हुआ कि मिल के कपडों का भाव खूब तेज हो गया और ऐसा समय आ गया कि कपडे की तंगी पडने लगी।

तीसरी सीढी यह थी कि सूत चाहे भले ही देशी मिलों का हो पर वह बुना हाथ करघों पर जाना चाहिए। इससे भी हम स्वदेशी का मर्म नहीं समझ पाये थे।

अब मालूम होता है कि हम यह चौथी सीढी जान गये हैं कि स्वदेशी के मानी हैं हाथ कते सूत की हाथ-बुनी खादी इस को छोड कर दूसरी सब बातें गलत और निरर्थक हैं।

खादी का मतलब है चरखा। चरखे बिना खादी कहां से तैयार हो सकती है? खादी स्वराज्य की तरह हमारा जन्मसिद्ध हक है और आजन्म केवल उसीका उपयोग करना हमारा कर्तव्य है। जो इस कर्तव्य का पालन नहीं करता वह स्वराज्य को नहीं पहचानता।

स्वदेशी का और स्वराज्य का यही हेतु हो सकता है, यही है कि उसके द्वारा भारत के भूख से पीडित लोगों को भोजन मिले, भारत से दुर्भिक्ष का काला मुंह हो जाय, भारत की महिलाओं के सदाचार की रक्षा हो, भारत के बच्चों को दूध की बूंदें मिलें।

जबतक भारत में चरखा चूल्हे की तरह सर्वव्यापी न हो जायगा तबतक भारत का फिर से आबाद हो जाना मेरी समझ में असम्भव है।

फर्ज कीजिए कि आज हिन्दुस्तान को स्वेच्छापूर्वक व्यवहार करने की आजादी मिल गई, मान लीजिए कि भारत ने बाहर से सस्ते से सस्ता कपडा मंगाया, भारत ने अपनी तथा बिलायत की परिस्थिति के विरोध पर विचार किये बिना 'फ्रीट्रेड' मुक्तद्वार-व्यापार शुरू किया तो भारत की दशा आज से भी अधिक खराब हो जायगी।

भारत को यदि कोई मुफ्त में पका कर खाना दिया करे तो जिस प्रकार उसके चूल्हे उखाड फेंकना अनुचित है उसी प्रकार चरखे को भी [illegible] देना लाभदायक नहीं हुआ। 'चूल्हे में

कितना बखेड़ा! घर घर चूल्हा और घर घर आग, कितना अनर्थ! हर एक गृहिणी को सुबह हुई कि धुंवा खाना पड़ता है, कितना अत्याचार!' ऐसी मनोमोहक दलीलों के धोखे में आकर यदि हम चूल्हे को उखाड़ फेंके और हर गाव में लोग भोजनालयों में ही भोजन किया करें तो कैसा हो? तो भारत के बच्चों को दर दर भटकना पड़े, इसमें तिलमात्र सन्देह नहीं। चूल्हे का नाश अर्थशास्त्र नहीं, यह तो अनर्थवाद है। उसे तो शास्त्र का नाम भी नहीं शोभा देता।

चरखे को नष्ट करके हमने भूख और व्यभिचार को अपने घर बुला लिया है। चूल्हे को हटाना मानों मौत को बुलाना है। यदि हम चरखे की पुनः स्थापना करें तो हमारे खंडहरवत् होजाने वाले टूटे-फूटे घर फिर से दमक उठें।

इसलिए इस समय हमारा विशेष और सर्वोपरि धर्म खादी है। खादी की बिक्री घी की तरह होना चाहिए। हाथ का कता सूत दूध की तरह कीमती समझा जाना चाहिए। चरखा भी एक पूजनीय गाय है। जिस प्रकार गाय के बिना घर की शोभा नहीं उसी प्रकार बिना चरखे के घर शोभित नहीं। गाय दुहने को घर के छोटे-बड़े कोई हलका काम नहीं मानते। उसी तरह छोटे-बड़े सब लोगों को चरखा कातने में कोई हलकापन न मानना चाहिए, बल्कि गृहस्थीपन मानना चाहिए। गाय तो कभी कभी मार बैठती है, खली-भूसी चाहती है। पर चरखा तो ऐसा परोपकारी है कि वह कभी किसी को मारता ही नहीं और न कुछ खाने को ही मांगता है। उसके पास से सफेद दूध की तरह सूत जब चाहे तब ले लीजिए। गाय तो अपनी शक्ति के अनुसार दूध देती है; पर चरखा तो हमारी शक्ति के अनुसार सूत देता है। जो लोग चरखे की रक्षा करना चाहते हैं उन्हें ऐसी ही खादी काम में लाना चाहिए जिसमें ताना और बाना दोनों का सूत हाथ-बना हो।

लोगों को खादी बेंचने के लिए विज्ञापन देने पड़ते हैं। इस से मुझे शरम मालूम होती है। हर एक को शरम मालूम होना चाहिए। परदेशी अथवा मिल के बने कपड़े का तो बिकना पर खादीका पड़ा रहना भारत के उदय का चिह्न नहीं कहा जा सकता। यह तो गेहूं को छोड़ कर भूसी खाने जैसी बात हुई।

चरखे के उद्धार के बिना गो-रक्षा प्रायः असम्भव हो गई है। भारत के किसानों के पास धन नहीं। इससे वे अपने मवेशी बेच डालते हैं अथवा बेचारे भूखों मरते हैं। भारत के आदमी जिस प्रकार दुर्बल हैं उसी प्रकार मवेशी भी दुर्बल हैं। क्योंकि भारत की हालत दिवालिये की सी हो रही है। भारत के जीवन का अवलम्ब है उसकी निजी पूंजी। इससे वह पूंजी दिन पर दिन कम होती जाती है। भारत को काफी प्राण-वायु ही नहीं मिल रही है। इससे उसका दम घुट रहा है। भारत को कम से कम चार मास बेकार रहना पड़ता है। इस प्रकार जिसे निरुद्यमी रहना पड़ता हो उसका नाश न हो तो क्या हो? भारत के करोड़ों लोगों के लिए अपने खेतों में सहायक उद्यम चरखे का ही है, दूसरा नहीं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

रिआयत बन्द

'हिन्दी नवजीवन' आधे मूल्य में देने की रिआयत सिर्फ फरवरी तक पत्र आ जाने वालों के लिए रक्खी गई थी। अतएव अब कोई सज्जन उसके लिए प्रार्थना-पत्र भेजने का कष्ट न उठावें।

व्यवस्थापक

महासमिति का प्रस्ताव

देहली में महासमिति की जो बैठक २४-२५ फरवरी को हुई उसमें इस आशय का प्रस्ताव किया गया कि यह समिति बारडोली के कार्यसमिति के प्रस्तावों को मंजूर करती है तथा उसके सिवा यह प्रस्ताव करती है कि खास खास जगहों में निश्चित कानूनों का भंग, फिर चाहे वह तीव्र हो अथवा रक्षक रूप का हो, प्रान्तिक समिति की आज्ञा लेकर, शुरू किया जा सकता है। पर इसके लिए महासभा, या महासमिति अथवा कार्य-समिति की शर्तों का पूरा पूरा पालन होना आवश्यक है।

बारडोली के प्रस्ताव में शराब के पहरे के लिए जो नियम बनाये गये हैं उन्हीके अनुसार विदेशी कपड़े पर भी पहरा रक्खा जा सकता है।

बारडोली की कार्यसमिति के प्रस्ताव का अर्थ यह नहीं है कि असहयोग का असली कार्यक्रम छोड़ दिया जाय।

महासमिति की राय में सविनय भंग करना प्रजा का हक और कर्तव्य है।

सूचना—व्यक्तिगत सविनय-भंग उसे कहते हैं जिसमें एक व्यक्ति अथवा पहले से निश्चित कुछ व्यक्ति कानून का सविनय-भंग करें। अतएव ऐसी सभा जिसमें जाने वाले लोग पहले से टिकट निकाल कर निश्चित कर दिये गये हों और जिसमें बिना इजाजत के कोई न जा पावे, मनाई होते हुए भी करना, व्यक्तिगत सविनय भंग का उदाहरण है। पर मनाई होते हुए भी ऐसी सभा करना, जिसमें बिना किसी तरह की रुकावट के आने की इजाजत हो, सामुदायिक सविनय भंग का उदाहरण है। यह भंग रक्षणात्मक तब कहा जायगा जब मना की गई सभा मामूली काम के लिए की जाय, फिर भले ही उसके सम्बन्ध में गिरफ्तारियां हों। परन्तु यदि सभा केवल गिरफ्तार होने और जेल जाने के ही उद्देश से की जाय तो वह तीव्र सविनय भंग कहा जायगा।

'हिन्दी नवजीवन' के विशेष अंक

'हिन्दी नवजीवन' में 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में श्री गांधीजी के लिखे समस्त महत्वपूर्ण लेखों और टिप्पणियों का समावेश न हो सकने के कारण हम समय समय पर उसके विशेष अंक निकालने का प्रबन्ध कर रहे हैं। जब जब लेख सामग्री अधिक होगी तभी तब विशेष अंक निकाले जायंगे। उसकी योजना इस प्रकार की जायगी—

१—जब जब आवश्यकता मालूम हो तब तब विशेष अंक सप्ताह में किसी दिन छाप लिया जाय और उसके बाद वाले अंक के साथ क्रोड़पत्र के रूप में ग्राहकों की सेवा में भेजा जाय।

२—जो सज्जन विशेष अंकों को लेना चाहें उनसे २) बतौर अमानत के पेशगी लिया जाय। उसमें से विशेष अंकों का उचित मूल्य वसूल कर लिया जाय और रकम खतम हो जाने पर उन्हें उसकी सूचना देदी जाय।

३—जिन जिन स्थानों में 'हिन्दी नवजीवन' की एजन्सियां हैं वहां वह 'विशेष अंक' फुटकर बिक्री के लिए उसी दिन रवाना कर दिया जाय जिस दिन यहां प्रकाशित हो।

४—यह विशेष अंक कब से प्रकाशित होने लगेगा, इसकी सूचना शीघ्र ही दी जायगी।

५—जब विशेष अंक निकालना आवश्यक समझा जायगा तब उसकी सूचना उसके पहले के अंक में दी जाया करेगी।

व्यवस्थापक "हिन्दी नवजीवन"

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूड़ी ओल, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित॥

ताण्डव

वार्षिक ४)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—फाल्गुन सुदी १४, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, १२ मार्च, १९२२ ई० | अंक ३०

श्री गांधीजी पकडे गये!

देश भर में शान्ति रहे — **हड़ताल कहीं न हो**

राजद्रोह का अभियोग

मामला दौरा सुपुर्द किया गया

आजकल आजकल करते करते आखिर गत शुक्रवार को १०॥ बजे श्री गांधीजी के नाम श्रीमान् सम्राट् के घर से निमन्त्रण आ ही पहुंचा। यों तो उनके पकडे जाने की अफवाहें कई बार उड चुकी थीं; पर इस बार उसके सच होने की सम्भावना अधिक दिखाई देती थी और अन्त को वह सच भी हो गई। श्री गांधीजी अपने सत्याग्रहाश्रम में राजद्रोह (दफा १२४ अ ताजीरात हिन्द) के अपराध में 'यंग इंडिया' में लिखे लेखों के लिए गिरफ्तार किये गये हैं। 'यंग इंडिया' के मुद्रक श्रीयुत शंकरलाल बेंकर भी इसी अपराध में पकडे गये हैं तथा इसी सिलसिले में उसी रात को १२ बजे से ले कर १॥ बजे तक नवजीवन मुद्रणालय की तलाशी ली गई। पुलिस सुपरिटेंडेंट श्री गांधीजी के हस्तलिखित लेखों की कुछ प्रतियां, जो उन्होंने १९२१ और १९२२ में लिखे हैं, ले गये।

गिरफ्तारी किस प्रकार हुई?

गिरफ्तारी की अफवाहें सारे शहर में फैल रही थीं। बस यही एक चर्चा लोगों की जबान पर थी। ९ तारीख को पकडे जाने की खबरें इधर उधर जोरों पर थीं। श्री गांधीजी ८ तारीख को ही खिलाफत परिषद् के लिए अजमेर रवाना हो चुके थे। ९ ता. को शहर में यह खबर फैल गई थी कि बम्बई से श्री गांधीजी की गिरफ्तारी का हुक्म तार के जरिये आया है और वह अजमेर रवाना किया गया है। श्री गांधीजी १० ता. को तीसरे पहर अजमेर से लौटे। शाम ही से आश्रम में खबरें आने लगीं कि आज रात को अवश्य गिरफ्तारी होने वाली है। श्री गांधीजी अपनी स्वाभाविक शान्ति के साथ रात को दस बजे तक, मामूल की तरह, पत्रों के उत्तर लिखाते रहे। कुछ ही देर पहले श्रीमती अनसूया बहन तथा श्री० शंकरलाल बेंकर श्री गांधीजी से मिलने आये थे। मौलाना हसरत मोहानी भी जो कि अजमेर से श्री गांधीजी के ही साथ आये थे, आ पहुंचे और उन्होंने श्री गांधीजी को अभिवचन दिया कि मैं अहिंसा का ही अवलम्बन करते हुए महासभा के कार्यक्रम का [illegible]। श्री बेंकर लौट कर आश्रम से कुछ ही दूर गये थे कि शहर से पुलिस सुपरिंटेंडेंट श्री० हेली की मोटर उन्हें मिली। पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने अपनी मोटर खडी कर के श्री. शंकरलाल बेंकर से पूछा—क्या आप शंकरलालजी हैं? उत्तर मिला-हां। तब पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने कहा-मुझे आप को भी गिरफ्तार करना है। बस, दोनों मोटरें आश्रम की ओर रवाना हुईं। पहुंचते ही श्री. हेली ने श्री गांधीजी को वारंट की खबर भिजवा दी और कहलाया कि वे तैयारी के लिए जितना चाहें समय ले सकते हैं। पर खुद आश्रम के बाहर ही खडे रहे। श्री. गांधीजी सोने के इरादे में थे, आश्रमवासी अपने अपने स्थानों में पुलिस के आने की बाट जोह रहे थे। तुरन्त सब लोग एकत्र हो गये। श्री गांधी जी तो तैयार ही थे। दो ही मिनट में वे हंसते हुए कुटीर से बाहर हो गये। मुक्ति माया के घर जाने के लिए निकली! उस समय आश्रमवासिनी महिलाओं ने गुजरात के आदि भक्त कवि नरसी मेहता-रचित श्री गांधीजी का यह प्यारा भजन एकस्वर से गाया—

> वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीर पराई जाणे रे।
> पर दुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे॥
>
> सकल लोकमां सहुने वंदे निंदा न करे केनी रे।
> वच, काया, मन निश्चय राखे धन धन जननी तेनी रे॥
>
> सम दृष्टि ने तृष्णा त्यागी परस्त्री जेणे मात रे।
> जिह्वा थाकी असत्य न बोले पर धन नव झाले हाथ रे॥
>
> मोह-माया व्यापे नहिं जेने दृढ वैराग्य जेना मनमां रे।
> राम नामशु ताली लागी सकल तिरथ तेना मनमां रे॥
>
> वण लोभी कपटरहित छे काम क्रोध निवार्या रे।
> भणे नरसैयो तेनुं दरशन करतां कुळ एकोतेर तार्या रे॥

उनके स्वर में करुणा और निश्चय था। सारे आश्रम में मानों शान्त बिजली फैल गई थी। सब के चेहरे प्रफुल्लित थे। एक मोटर में श्री गांधीजी, और श्री० बैंकर तथा उनके साथ श्रीमती गांधी और श्रीमती अनसूया बहन और बहन दूसरों में कुछ आश्रमवासी बैठकर साबरमती जेल की ओर रवाना हुए। यह जेल आश्रम के बिल्कुल निकट ही है। लोकमान्य तिलक महाराज भी १९०९ में गिरफ्तार हो कर पहले पहल इसी जेल में लाये गये थे। आश्रमवासियों ने हर्षपूर्ण स्वर में 'वन्दे मातरम्' का घोष किया। सब के हृदयों ने कहा-आज भारत का भाग्य जाग उठा। सरकार ने बुरी तरह मुंह की खाई। चलते समय श्री गांधीजी ने आश्रमवासियों को यह सन्देश कहा कि खूब काम करो; आलस्य को पास तक न फटकने दो।

हमारी जवाबदेही और कर्तव्य

श्री गांधीजी तो अपनी परीक्षा में सोलहों आना पास हो गये। वे तो अपनी अच्छी कमाई का सुफल पाने के लिए चले गये। अब हमारी परीक्षा का समय है। मुकदमे का फल तो स्पष्ट ही है। हमारी परीक्षा के फल की ओर जेल में वे बड़ी चाह से देखते रहेंगे। वे तो अपनी तमाम जवाबदेहियों से मुक्त हो गये। अब हम पीछे रह जाने वालों के कन्धों पर वह भार आ पड़ा। इस समय सामान्यतः भारत के बच्चे बच्चे को और प्रधानतः प्रत्येक असहयोगी को इस जवाबदेही का अनुभव होता होगा। इस नौकरशाही ने अपने स्वार्थ के लिए आजतक हमारे कितने ही छन्डे बड़े नेताओं को हमसे अलग कर दिया है। आज उसने हम सब के सिरताज को छीन लिया है। इससे लोगों के चित्त को गहरी चोट पहुंचना स्वाभाविक है। पर इसके लिए हमें नौकरशाही अथवा उसके सहायकों-सहयोगी भाइयों-पर रोष करने की आवश्यकता नहीं। रोष तो कमजोरी है। अज्ञान और स्वार्थ रोष के पात्र नहीं, पर दया के पात्र हैं। अतएव हमें श्री गांधीजी के ही शब्दों में 'घड़ी के कांटे की तरह नियम से तथा पंजाब एक्सप्रेस के (और हो सके तो बिजली के) वेग से' अपने अंगीकृत कार्यक्रम की पूर्ति में तन मन से लग जाना चाहिए। इसी संख्या में श्री गांधीजी का एक लेख-यदि मैं पकड़ा जाऊं-प्रकाशित किया गया है। उसमें बताई चतुःसूत्री-अहिंसा, सब जातियों की एकता, छुआछूत का त्याग और शुद्ध खादी का प्रचार-को अपने हृदय पर अंकित कर लेनी चाहिए। यही हमारा तरणोपाय है। यही भारत के भाग्य की कुंजी है। यही श्री गांधीजी तथा दूसरे नेताओं को छुडाने, स्वराज्य प्राप्त करने तथा पंजाब और खिलाफत के दुःख-मोचन की रामबाण दवा है। श्री गांधीजी के वियोग से जिनको दुःख हुआ है, उनके कार्यों के साथ जिनकी सहानुभूति है, जो शान्ति के उपासक हैं, स्वराज्य के लिए उत्कंठित हैं, खिलाफत और पंजाब के घाव जिनके हृदयों में अभीतक हरे हैं, जिनको अपने इस तेजोभंग का खयाल है, देश की दरिद्रता पर जिनका हृदय आंसू बहाता है, जिनको अपना देश, अपना धर्म, अपनी इज्जत प्राणों से भी अधिक प्यारी है, उनके लिए यह समय कठिन और कड़ी परीक्षा का, कठोर कष्ट-सहन का, और ज्वलन्त तपस्या का है। उन्हें अब सुखचैन, आमोद-प्रमोद, विहार-विलास कैसा? वे तो प्रण करेंगे माता की वेदी पर बलिदान हो जाने का। वे तो निश्चय करेंगे सारे भारत को खादीमय कर देने का। वे तो प्रतिज्ञा करेंगे अपने देश और धर्म के लिए, अपने पूज्य और प्यारे नेताओं के खातिर, सादा, शुद्ध और [illegible] जीवन व्यतीत करने की। वे तो देश की बिखरी हुई शक्तियों को इस छोर से ले कर उस छोर तक कर्ममय बनाने में लगावेंगे। वे तो कहेंगे-अरे, गांधीजी की गिरफ्तारी पर रोना-पीटना, हाय हाय करना, हड़तालें करना, कोरा सभायें करना, बस लम्बाचौड़ा खोंचे झाड़ना, जलूस निकलना केवल अनर्थक हैं। यह तो उस विभूति का अपमान करना है। यदि उसकी इज्जत करना चाहते हो तो उसका अनुकरण करो। प्रत्येक गांधी बन जाओ। प्रत्येक आगे बढ बढ कर कहे-मैं गांधीजी के स्थान की पूर्ति करूंगा। बस, ऐसा होते ही भारत का बेड़ा पार है। परमात्मा हमारी आत्मा में बल, हृदय में प्रेम और मन में निश्चय दें जिससे हम भारतवासी अपनी इस नई जिम्मेवारी के गुरुतर भार को सफलतापूर्वक वहन कर सकें तथा भारत-माता को स्वतन्त्रता-मंदिर में प्रतिष्ठित करके प्रेम, शांति, और सत्य का झंडा सारे संसार में फहरावें।

उपसम्पादक

यदि मैं पकडा जाऊं-

यह अफवाह फिर जोरों पर उठी है कि मेरी गिरफ्तारी बस होने ही वाली है। कहा जाता है कि कुछ अफसर लोग कहते हैं, भूल हुई; गांधी को तो ११ या १२ फरवरी को ही पकड़ लेना चाहिए था; बारडोली के निर्णय को देख कर सरकार को अपना कार्यक्रम न बदलना चाहिए था। यह भी कहा जाता है कि अब सरकार के लिए उस आन्दोलन को सहन करते रहना असम्भव है जो कि लन्दन में मेरी गिरफ्तारी और देश-निकाले के लिए दिन पर दिन बढ़ता जाता है। मैं खुद भी नहीं देख सकता कि यदि सरकार व्यक्तिगत अथवा सामूहिक सविनय भंग को हमेशा के लिए बन्द कर देना चाहती है तो मेरी गिरफ्तारी को किस तरह टाल सकती है।

मैंने जो कार्य-समिति को यह सलाह दी थी कि बारडोली में सामुदायिक भंग बन्द कर दिया जाय सो उसका कारण यह था कि वह भंग सविनय न हो पाता; और आज जो मैं तमाम प्रान्तिक कार्यकर्ताओं को सलाह दे रहा हूं कि व्यक्तिगत कानूनभंग भी बन्द ही रक्खा जाय तो इसका सबब यह है कि मैं जानता हूं, इस अवस्था में वह सविनय नहीं बल्कि उद्धत होगा। सविनय-भंग के लिए शान्तिमय वायुमंडल का होना अनिवार्य शर्त है। भारत में आज जगह जगह हिंसा के भाव भरे हुए हैं तथा संयुक्त प्रान्त की सरकार को ईजाद पुलिस भरती करना पड़ी है जिससे कि चौरी-चौरा-काण्ड की पुनरावृत्ति कहीं न होने पावे। इन बातों को देख कर मेरा सिर नीचा झुक जाता है। मैं यह नहीं कहता कि वहां वे सब बातें हुई हैं- जो कि कयास की जाती हैं पर उन सब प्रमाणों को न मानना भी असम्भव है जो कि यह बता रहे हैं कि उस प्रान्त के कुछ हिस्सों में हिंसा के भाव बराबर बढ़ते जा रहे हैं। पंडित हृदयनाथ कुंजरू से राजनैतिक बातों में मेरा मतभेद है। तथापि मैं यह मानता हूं कि वे जानबूझ कर सत्य का अपलाप करने वाले आदमी नहीं हैं। मैं उन्हें एक अत्यन्त योग्य देशसेवक मानता हूं। वे ऐसे शख्स नहीं हैं कि आसानी से किसी के कहने में आ जायं। ऐसी अवस्था में जब खुद वे किसी बात पर अपनी राय जाहिर करते हैं तो तुरन्त उस पर मेरा ध्यान जाता है। उनका रुख सरकार की तरफ रहा करता है, इसलिए चौरी-चौरा सम्बन्धी उनके फैसले का कुछ अंश नमकमिर्च समझ कर छोड दें तो भी उनकी रिपोर्ट ऐसी नहीं समझी जा सकती कि उस पर विचार ही न किया जाय। और न उन चिट्ठी-पत्रियों की ही उपेक्षा की जा सकती है जो कमिश्नरों तथा दूसरे लोगों की तरफ से मेरे पास भेजी गई हैं जिनमें यह

दिखलाया गया है कि संयुक्त प्रान्त के लोगों के विचार किस तरह हिंसामय हो रहे हैं तथा वहां के ना-समझ लोगों में किस तरह अंधाधुंधशाही फैल रही है। मेरे सामने बरेली की रिपोर्ट भी रक्खी हुई है जिस पर वहां के महासभा-मन्त्री की सही है। हां, एक ओर जहां हाकिम लोगों ने पागलों का सा काम किया है और क्रोधावेग में अपने को भुला दिया है तहां हम भी, यदि रिपोर्ट की बातें सच मानी जायं, तो दोष से खाली नहीं हैं। वह स्वयंसेवकों का जुलूस कोई सविनय दृश्य नहीं था। खुद हमारे ही घर में तीव्र मतभेद होने पर भी जलूस निकालने की जिद की गई। यद्यपि जो लोग वहां एकत्र हुए थे उन्होंने कोई हिंसा-कार्य नहीं किया तथापि उस जलूस के भाव निस्सन्देह हिंसात्मक थे। वह अपने सामर्थ्य का एक निष्फल प्रदर्शन था, जिसकी हमारे उद्देश की सिद्धि के लिए कोई आवश्यकता नहीं थी और जो सविनय भंग का शुभशकुन भी मुश्किल से था। हां, यह बहुत सच है कि अधिकारी लोग जलूस के साथ हमसे अच्छी तरह पेश आ सकते थे; उन्हें स्वराज्य-झण्डे से छेड़-छाड़ न करनी चाहिए थी, उन्हें टाउन हाल के उपयोग में बाधा न डालनी चाहिए थी: क्योंकि टाउन हाल में महासभा के दफ्तर थे और वह कस्बे की चीज थी और टाउन कौन्सिल की इजाजत से महीनों से उसमें वे दफ्तर थे। लेकिन हमने तो अधिकारियों से सामान्य बुद्धि और विवेक के उपयोग करने का खयाल ही छोड़ दिया है। बल्कि, इसके प्रतिकूल हम तो उनसे विवेकहीनता और हिंसा की आशा रखते हैं और इसीलिए हम उनकी मुखालिफत के लिए खड़े हो उठे हैं। सो हम तो यह जानते ही थे कि वे इससे अच्छा सलूक कर ही नहीं सकते, अतएव हमें इस जलूस के झगडे से बाज आ जाना चाहिए था। यह बात कोई नई नहीं है कि युक्त-प्रान्त की सरकार तिल का ताड़ बना रही है और वह अपनी तथा उन चौरी-चौरा के मार डाले गये लोगों की तरफ से दी गई उत्तेजना को गिनती में ही नहीं लेती। मैं जो कहना चाहता हूं वह यह कि हम इस बात का दावा नहीं कर सकते, कि हमने उन्हें किसी तरह का मौका नहीं दिया है। अतएव यह सविनय भंग केवल प्रायश्चित्त के लिए बन्द किया गया है। पर यदि वायुमण्डल साफ हो जाय, लोग 'सविनय' पद का पूरा पूरा महत्व समझ जायं, और उनके भाव तथा कार्य्य दोनों वास्तव में अहिंसात्मक हो जायं, और यदि मैं देखूंगा कि अब भी सरकार लोकमत के आगे झुकना नहीं चाहती तो अवश्य ही मैं ही सब से पहले व्यक्तिगत या सामुदायिक भंग की, जैसी कि उस समय आवश्यकता होगी, घोषणा किये बिना न रहूंगा। जबतक लोग अपने जन्मसिद्ध अधिकार को छोड़ देने के लिए तैयार न हों तबतक इस कर्तव्य का पालन किये बिना छुटकारा नहीं।

अंगरेज लोग, जो कि जन्मजात योद्धा हैं, जब सविनय भंग के खिलाफ ऊंची आवाज उठाते हैं, मानों वह कोई ऐसा आसुरी अपराध हो जिसके लिए कड़े से कड़ा दण्ड दिया जाय, तब मुझे उनकी सचाई पर सन्देह होने लगता है। जब कि वे सशस्त्र बलवे का गुणगान किया करते हैं और उन्होंने समय समय पर उनका अवलम्बन किया भी है, तब सविनय प्रतिरोध के खयाल मात्र से बहुतेरे लोग क्यों तलवार खींचने लगते हैं? हां, उनके इस कथन को तो मैं समझ सकता हूं कि भारत में अहिंसामय वायुमंडल होना वस्तुतः असम्भव है मैं इस बात को मानता तो नहीं हूं; पर मैं ऐसे एतराज की कद्र जरूर कर सकता हूं। पर जो बात मेरे खयाल में नहीं आती है वह यह कि सविनय भंग के सिद्धान्त के खिलाफ, मानों वह कोई नीति-विरुद्ध बात हो, यह मृत्यु का मुकाबला करने के सदृश तैयारी क्यों? मुझसे यह आशा करना कि मैं सविनय भंग का प्रचार करना छोड़ दूंगा मानों मुझे शांति का प्रचार करना छोड़ने के लिए कहना है, जो मुझे आत्महत्या करने के लिए कहने के बराबर है।

अब की बार, कहते हैं, सरकार मेरे 'यंग इंडिया,' 'गुजराती नवजीवन' और 'हिन्दी नवजीवन' इन तीनों साप्ताहिक पत्रों का गला घोंट देने की फिराक में है। मुझे आशा है कि इस अफवाह में कुछ दम नहीं है। मैं दावे के साथ कहता हूं कि मेरे इन तीन पत्रों ने लगातार सिवा शांति और सद्भाव के दूसरी किसी बात का प्रचार नहीं किया है। इस बात का असाधारण खयाल रक्खा जाता है कि सिवा सत्य के, जैसा कि मैं उसको समझता हूं, दूसरी कोई बात पाठकों को न पहुंचाई जाय। जब कभी कोई गलत बात असावधानी से छप जाती है, फौरन् मान ली जाती है और उसका सुधार कर दिया जाता है। तीनों पत्रों की ग्राहक-संख्या प्रतिदिन बढ़ रही है। उनके संचालक लोग स्वेच्छा से काम कर रहे हैं; कुछ लोग तो वेतन मुतलक नहीं लेते और कुछ अपनी गुजर के लायक रकम ले लेते हैं। जो कुछ मुनाफा होता है वह पाठकों को किसी न किसी रूप में लौटा दिया जाता है या किसी शिक्षात्मक राष्ट्रीय अथवा दूसरे सत् कार्यों में लगा दिया जाता है। मैं नहीं कह सकता कि यदि ये तीनों पत्र बन्द हो गये तो मेरे हृदय को व्यथा न होगी। लेकिन सरकार के लिए तो उनकी जान ले डालना बायें हाथ का खेल है। उनके प्रकाशक और मुद्रक सब लोग मेरे मित्र और साथी हैं। मेरा ठहराव उनके साथ यह है कि जिस घड़ी सरकार उनसे जमानत मांग बैठे उसी घड़ी वे पत्र बन्द हो जायंगे। मैं उन्हें इसी धारणा पर चला रहा हूं कि सरकार मेरे कार्यों को चाहे किसी दृष्टि से देखती हो; पर वह कम से कम मुझे इस बात का तो श्रेय अवश्य देगी कि इन पत्रों के द्वारा मैंने सिवा शुद्ध से शुद्ध अहिंसा और सत्य के, जैसा कि मैं इन्हें अपने विचार में समझता हूं, दूसरी किसी बात का प्रचार नहीं किया है।

इतना होने पर भी, मैं आशा करता हूं कि, चाहे सरकार मुझे गिरफ्तार कर ले या चाहे वह मेरे इन प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष साधनों-तीनों पत्रों-को बन्द कर दे, लोग इससे विचलित न होंगे। सरकार का इस डर से मुझे न गिरफ्तार करना कि इससे सारे देश में उपद्रव खड़ा हो जायगा, और उस अवस्था में भीषण हत्याकांड मचेगा, मेरे लिए न तो अभिमान की, न खुशी की बात है, बल्कि इससे तो उल्टा मेरा सिर नीचा हो जाता है। यदि मेरा कैद हो जाना इस बात का चिह्न हो जाय कि सारे देश में तूफान उठ खड़ा हो तो वह मेरे अहिंसा के उपदेश पर पानी फिर जायगी और महासभा तथा खिलाफत की अहिंसा की प्रतिज्ञा मट्टी में मिल जायगी निश्चय ही यह इस बात का प्रमाण होगा कि भारत शान्तिमय बलवे के लिए तैयार नहीं है। वह नौकरशाही के विजय का दिन होगा और इस बात का प्रायः अन्तिम प्रमाण होगा कि नरम दल वाले मित्रों की ही बात ठीक है अर्थात् यह कि भारत कभी अहिंसात्मक अवज्ञा के लिए तैयार नहीं किया जा सकता। इसलिए मैं आशा करता हूं कि महासभा तथा खिलाफत के कार्य-कर्तागण यह दिखलाने के लिए कोई उपाय बाकी न रख छोड़ेंगे कि सरकार के तथा उसके सहायकों के दिल में जो डर है वह बिलकुल अकारण है। मैं प्रतिज्ञा कर के कहता हूं कि इस आत्मसंयम के द्वारा हम अपने निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर मीलों आगे बढ़ जायंगे।

अतएव मेरे पकड़े जाने पर न तो हड़तालें हों, न बड़ी बड़ी सभायें की जायं, न जलूस निकाले जायं, न शोकसूचक मनाया जाय।

उस अवस्था में पूर्ण शान्ति धारण किये रहने को मैं अपनी बड़ी से बड़ी इज्जत समझूंगा। और इस बात को बड़े प्रेम के साथ निहारूंगा कि महासभा का विधायक काम घड़ी की तरह नियम के साथ बराबर और पंजाब एक्सप्रेस की चाल से चल रहा है। हां, मैं इस बात को भी बड़े चाव से देखूंगा कि जो लोग आजतक पीछे रह रहे हैं वे आगे बढ़ रहे हैं, अपने विदेशी कपड़ों का त्याग कर रहे हैं और उनकी होलियां जला रहे हैं। जहां उन्होंने बारडोली का निश्चित रचनात्मक कार्यक्रम पूरा किया कि वे न केवल मुझे तथा दूसरे कैदी-भाइयों को ही छुड़ा लावेंगे, बल्कि स्वराज्य का भी महोत्सव मनावेंगे और खिलाफत और पंजाब के अन्यायों का भी परिमार्जन करावेंगे। वे स्वराज्य के इन चार स्तम्भों को जरूर याद रक्खें- अहिंसा, हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदी एकता, छुआछूत का पूर्ण त्याग और विदेशी कपड़े का पूर्ण बहिष्कार तथा उस के स्थान पर हाथकती और हाथबुनी खादी तैयार करना।

मैं नहीं कह सकता कि लोगों के बीच से मेरे अलहदा किये जाने से लोगों को लाभ न होगा। इससे एक तो लोगों का यह अन्धविश्वास दूर हो जायगा कि मुझमें कोई दैवी शक्ति है। दूसरे, यह विश्वास कि लोगों ने असहयोग का कार्यक्रम महज मेरे प्रभाव में आकर मंजूर किया है, खुद उन्हें इसमें विश्वास नहीं है, असत्य सिद्ध हो जायगा। तीसरे, इस कार्यक्रम के खास उत्पादक के भी हमसे अलहदा हो जाते हुए हम अपने कार्यों को योग्यता के साथ चलाते हुए यह सिद्ध कर पावेंगे कि स्वराज्य की क्षमता हममें है। चौथे, और मेरे स्वार्थ की दृष्टि से, मेरे शरीर को आराम और चित्त को शान्ति मिलेगी, जिसका कि अधिकारी मैं हूं।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

ग्वालियर राज्य में 'गांधी टोपी'

एक सज्जन ने मुझे ग्वालियर-राज्य के एक नोटिस की एक प्रति भेजी है। नोटिस पेशी अफसर की सही से प्रकाशित हुआ है। एक अखबार के कोई पांच कालम में नोटिस खतम हुआ है। यह खादी के विषय में एक खासा लेख ही है। उसमें कहा गया है कि हां, ग्वालियर के बाशिन्दा खादी शौक से पहनें, वे तो बराबर पहनते चले आ रहे हैं और इस गरानी को देखते हुए लोगों का खादी पहनना कोई ताज्जुब की बात भी नहीं है। पर यह नोटिस कहता है कि लोगों को खादी पर व्याख्यान न देना चाहिए और न ऐसे व्याख्यानों में जाना ही चाहिए। अन्त को उसमें 'गांधी टोपी' पहनने की मनाई की गई है। उसके अन्तिम अंश का आशय इस प्रकार है —

"लेकिन यहां पर यह बता देना जरूरी है कि खादी की एक खास किस्म की टोपी जारी हुई है, जो किश्तीनुमा है, जिसके दो कानें हैं, और वे तहाई जा सकती हैं। बात यह है कि ऐसी टोपियां कपड़े की बचत के खयाल से नहीं पहनी जाती हैं; बल्कि वह एक खास पार्टी का निशान बन गई है और एक खास किस्म के खयालात के साथ उनका इतना गहरा ताल्लुक हो गया है जिससे यह माना जाता है कि उनके पहनने वाले उस किस्म के खयालात रखते हैं। इन वजूहात से ऐसी टोपी का पहनना नामुनासिब है। इसमें दूसरी किसी किस्म की टोपियां शामिल नहीं हैं-फिर वे चाहे खादी की हों चाहे और किसी चीज की।"

यह तो बेचारी सीधी-सादी सस्ती खादी टोपी के निस्बत ख्वामख्वाह बदगुमानी है। इसपर मुझे अफसोस है। मैं ग्वालियर के हाकिमों को यह बता देना चाहता हूं कि हां, यह तो सच है कि बहुतेरे असहयोगी लोग 'गांधी टोपी' को पहनते हैं; पर हजारों आदमी ऐसे हैं जो उसे केवल सुविधा-जनक और सस्ती होने के खयाल से पहनते हैं; पर वे खुद पेशी अफसर साहब की अपेक्षा अधिक असहयोगी नहीं हैं।

(यंग इंडिया)

अदालत में श्री गांधीजी

कल शनिवार को १२ बजे बाद अहमदाबाद के जिला मजिस्ट्रेट के इजलास में श्री गांधीजी तथा श्री० शंकरलाल बैंकर का मामला शुरू हुआ। फरयादी पक्ष की गवाहियां हो चुकने के बाद मैजिस्ट्रेट के पूछने पर श्री गांधीजी और श्री बैंकरने कहा कि समय आने पर हम राजद्रोह का प्रचार करने के सम्बन्ध में अपने को अपराधी कुबूल करेंगे। श्री गांधीजी ने 'यंग इंडिया' के सम्पादक तथा श्री बैंकर ने मुद्रक होना स्वीकार किया। तब दोनों पर ताजीरात हिन्द दफा १२४ ए के अनुसार अभियोग लगाया गया और मुकदमा दौरा सुपुर्द किया गया।

होली की छुट्टियों के बाद मुकदमे की पेशी शुरू होगी। दोनों अभियुक्त साबरमती जेल में ही हैं।

शहर में खूब सनसनी लेकिन साथ ही गहरी शान्ति है।

(आखरी पृष्ठ से आगे)

मुझ पर छोड़ दिया है। मैं आशा करता हूं कि पहला 'बुलेटिन' अगले सप्ताह में प्रकाशित हो जायगा और प्रति सप्ताह प्रकाशित हुआ करेगा। बुलेटीन 'यंग इंडिया' के प्रत्येक ग्राहक के पास भेजा जायगा और बराय नाम के उसका लागतमात्र मूल्य उनसे लिया जायगा। 'यंग इंडिया' की ग्राहक-संख्या २५ हजार से अधिक है और दुनिया के प्रायः सभी भागों में वह जाता है। कितने ही अखबारों के परिवर्तन में वह देश-विदेश जाता है। बुलेटीन की कीमत पीछे बताई जायगी। इस उपाय से महासभा का खर्च भी बच जायगा और बुलेटिन का प्रचार भी खूब होगा। 'यंग इंडिया' में तो मेरे निजी तथा मेरे साथियों के विचार रहते हैं; पर 'बुलेटीन' में किसी व्यक्ति विशेष के खयालात न रहेंगे। उसमें खास कर के महासभा के कार्यों का ब्योरा तथा दोनों पक्षों के अखबारों की रायें रहा करेंगी। उसमें खिलाफत का भाग अलग रहेगा जिसमें खिलाफत के कार्यों का विवरण रहा करेगा। इस काम में तभी सफलता मिल सकती है जब महासभा तथा खिलाफत के तमाम कार्यकर्ता इसमें सहायता दें। अतएव जो सज्जन इस कार्य्य में दिलचस्पी लेते हों वे अपनी सूचनायें और खबरें 'सम्पादक कांग्रेस बुलेटिन C/o यंग इंडिया' को भेजने की कृपा करें। इस विषय की तमाम चिट्ठी-पत्रियों पर "कांग्रेस बुलेटिन के लिए" ये शब्द जरूर लिखे जायं ताकि 'यंग इंडिया' की और बुलेटिन की चिट्ठियों में गड़बड़ न हुआ करे। सब से पहले मैं हरएक प्रान्तीय समितियों से चाहता हूं कि वे अपने अपने प्रान्तों के सदस्यों की संख्या, राष्ट्रीय मत के अखबारों के नाम और पते, राष्ट्रीय शिक्षासंस्थाओं की संख्या और पिछले छः महीनों में उनकी औसत हाजिरी, पंचायतों की तादाद तथा असहयोग आन्दोलन सम्बन्धी तमाम बातें लिख कर भेजें।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, फाल्गुन सुदी १४, सं. १९७८.

ताण्डव

भारत-सरकार ने बजट में कमी पडने के कारण नमक पर दूना तथा जीवन की दूसरी आवश्यक चीजों पर भी कर बढा ने का प्रस्ताव किया है। इस पर चारो ओर से एकस्वर से निषेध और निन्दा की ध्वनियां उठ रही हैं। मैं कहता हूं, यह क्यों? और इस बात पर भी आश्चर्य प्रकट किया जा रहा है कि इधर तो साठ करोड का भयंकर फौजी खर्च बढाया गया और तिस पर भी अब की बार खेद तक नहीं प्रकट किया गया! क्षमा-याचनात्मक दो शब्द भी नहीं कहे गये! पर बात यह है कि जिसके किये बिना कार्य चल ही नहीं सकता उसके लिए क्षमा मांगना असम्भव है। राष्ट्र में ज्यों ज्यों चैतन्य बढता जायगा त्यों त्यों फौजों का खर्च भी बढे बिना नहीं रह सकता। फौज की जरूरत भारत की रक्षा के लिए नहीं है। बल्कि उसकी आवश्यकता तो है अंगरेज लोगों को भारत के द्वारा जबरदस्ती आर्थिक तथा दूसरे लाभ कराने के लिए। साफ साफ सच बात तो यही है। श्री मांटेगू ने बेढंगे तरीके से लेकिन सचाई के साथ यह कह दिया है। बंगाल चेम्बर आव् कामर्स के उन सभापति ने भी यही बात कही है और बम्बई के लाट साहब ने भी उसको दोहराया है। वे हमारे साथ व्यापार तो करना चाहते हैं। पर हमारी शर्तों पर नहीं, उनकी शर्तों पर।

बात तो यही है, चाहे हम खुले हाथों करें, चाहे मौजे डाल कर करें। ये कौन्सिलें उनके हाथ के मौजे हैं। हमें उन मौजों के खर्च के लिए रुपया दिये बिना चारा नहीं। ये शासन-सुधार हमारी छाती पर काल की तरह लटकते हैं। यह खून चूसने वाले नमक के कर की तरह कितने ही दोष उनके पेट में समा जाते हैं।

वे हमें कहते हैं-'तुम चाहो अथवा न चाहो हम तो हिन्दुस्तान को छोडने वाले नहीं।' हमारा यह विश्वास है कि यह सब हमारे भले के ही लिए है। हम समझते हैं कि अंगरेजों की शरणच्छाया के बिना हम आपस में लडे-कटे बिना रही नहीं सकते। और इसलिए, अपने भाई के हाथों मर जाने के डर से, हम गुलामों की तरह रहने पर राजी हैं।

इन कौन्सिलों और असेम्बलियों की धोखे की टट्टियों की ओट में छिपी सर्वतन्त्र-स्वतन्त्रता के बनिस्बत तो फौजी राज हजार गुना बेहतर है। उनसे एक तो दर्द की उम्र घटती है और दूसरे खर्च भी बढता है। यदि हमें जीवित रहने की उत्कंठा ही है तो यह डींग हांकने की अपेक्षा कि हम धीरे धीरे आजाद हो रहे हैं यही अधिक इज्जत की बात है कि हम सत्य का सामना करें और उन सूत्र-संचालकों के चरणों पर सिर रख दें, इससे हमारी विकलता तो दूर हो जायगी। धीरे धीरे आजादी? यह तो अद्भुत बात है! आजादी तो जन्म की तरह एक क्रिया है। जबतक हम पूरी तरह आजाद नहीं हो जाते तबतक हम गुलाम ही हैं। जन्म तो एक क्षण मात्र में ही होता है।

महासभा का डर क्या चीज है?-इसी आती हुई आजादी का डर। महासभा अब एक भीषण सत्य घटना हो गई है। और इसीलिए उसके जिस तरह बन पडे उसी तरह, कानून-कायदा भाड में जाय, नष्ट-भ्रष्ट कर देने की तैयारी हुई है। यदि लोगों के दिल भय से काफी अभिभूत कर दिये गये तो चाहे सौ पचास बरसों तक और यह लूट जारी रह सकेगी। हां, यह दूसरी बात है कि इस बढते हुए भार से दब कर भारत तबतक जीवित रह सकेगा या लोग इस बीच पतंगों और भुनगों की तरह मर मिटेंगे? जब कोई आदमी नारियल खाने लगता है तब वह अन्दर की गिरी के साथ दया-माया नहीं दिखलाता। जब वह उसका सारा अंश कुतर चुकता है तब उस नारियल की खोपडी को फेंक देता है। हम इस कृति को हृदयहीनता नहीं कहते। व्यापारी भी इस बात का अधिक विचार नहीं करता कि मैं इस निरीह खरीदार से क्या ले रहा हूं। कैसी हृदयहीनता-अरे, इसके तो हृदय हई नहीं! व्यापारी जो कुछ लेना होता है लेकर चल देता है। अरे, यह तो सब सौदागरी है।

कौन्सिलों के समासदों को उनका किराया और भत्ता चाहिए, मन्त्रियों को उनके वेतन चाहिए, वकीलों को मिहनताना, मुकदमे बाजों को डिग्रियां, मा-बापों को अपने लडकों के लिए ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे वे मौजूदा जीवन में एक नामीगिरामी आदमी बन जायं, लखपतियों और करोड-पतियों को सब तरह की सुविधायें चाहिए जिससे वे अपने लाखों और करोडों को अरबों-खरबों तक पहुंचा सकें और बाकी लोगों को निःसत्व शान्ति। ये सब मिल कर बडी उमंगों के साथ उस मध्यवर्ती संस्था के आस पास मटकते हैं। यह एक चक्करदार नाच है। कोई उससे अपने को मुक्त करने की चिन्ता नहीं करता। और इसलिए ज्यों ज्यों उसका वेग बढता है त्यों त्यों हृदय को अधिक हर्षोन्माद मालूम होता है। मगर वे नहीं जानते कि यह तो कृतान्त का ताण्डव है और उनको जो हर्षोन्माद मालूम होता है वह उस मरीज के हृदय की तेज धडकन की तरह है, जो अपनी जिन्दगी की अन्तिम सांस खींच रहा है।

जबतक यह नृत्य जारी रहेगा तबतक यह खर्च बढे बिना रही नहीं सकता। ताज्जुब नहीं, यदि यह बढती असहयोगियों के विशाल कंधों पर भी लाद दी जाय। उनके लिए तो बस एक ही पाठ है। यदि वे अपने धर्म पर आरूढ रहना चाहते हों तो उन्हें इस वृद्धि को निष्काम शान्ति की दृष्टि से देखना चाहिए। इसको रोकने का सिर्फ एक ही मार्ग है,-'अहिंसा'। क्योंकि असहयोग का सब से अधिक भाग तो यही है कि सरकार के इस सुसंगठित पशु बल से, जिस पर कि उसकी सारी बुनियाद है, अपना सम्बन्ध हटा लेना। यदि हम सरकार के पशु-बल को हटाने के लिए पशु-बल का ही संगठन करना चाहें तो हमें इससे भी अधिक खर्च उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए। हम चाहें उन तमाम नर्तकों के दिलों में इस भीषण भविष्य का इतमीनान न करा सकें; पर हमें सर्व साधारण को तो जो कि इस नाच में शामिल हैं और बराय नाम की शान्ति को खरीदने के लिए अपनी प्यारी आजादी को बेंच डालते हैं, जरूर यकीन दिला सकते हैं। और ऐसा करने का एक ही उपाय है-उन्हें यह दिखला देना कि आजादी का साधन अहिंसा ही है-गुलाम की जबरदस्ती मंजूर कराई अहिंसा नहीं, बल्कि वीर और आजाद पुरुष की राजी रजामन्दी के साथ स्वीकार की गई अहिंसा।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

अहिंसा

जब कोई मनुष्य कहता है कि मैं अहिंसापरायण हूं तब उससे यह आशा की जाती है कि जब उसे कोई हानि पहुंचावेगा तब वह उसपर क्रोध न करेगा, वह उसका नुकसान न चाहेगा; बल्कि उसकी भलाई ही चाहेगा। वह न तो उसे गाली-गलौज करेगा और न उसके बदन को किसी तरह की चोट ही पहुंचावेगा। वह तो अन्याय-कर्त्ता के द्वारा किये गये हर तरह के नुकसान को सहन ही करेगा। इस तरह अहिंसा मानो पूर्ण निर्दोषिता ही है और पूर्ण अहिंसा का अर्थ है प्राणिमात्र के प्रति दुर्भाव का पूर्ण अभाव। सो वह तो मनुष्य से नीची श्रेणी के जीवों, यहांतक कि विषैले सर्पों और हिंस्र पशुओं को भी गले लगाता है। उनकी सृष्टि इसलिए नहीं हुई है कि उनके द्वारा हमारी विनाशक प्रवृत्तियों का पोषण हुआ करे। यदि हम सिर्फ उस जगत्कर्त्ता के हेतु को ही जान लें तो हमें इस बात का पता लग जाना चाहिए कि उसकी सृष्टि में उन जीवों का कौनसा उचित स्थान है। अतएव अहिंसा का क्रियात्मक रूप क्या है? प्राणिमात्र के प्रति सद्भाव। यही शुद्ध प्रेम है। क्या हिन्दू शास्त्रों, क्या बाइबल और क्या कुरान, सब जगह मुझे तो यही दिखाई देता है।

अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्य-जाति इसी एक लक्ष्य की ओर स्वभावतः, परन्तु अनजान में, जा रही है। मनुष्य जब अपने तई निर्दोषिता की साक्षात् मूर्ति बन जाता है तब वह दैवी पुरुष नहीं हो जाता। वह तो उस अवस्था में सच्चा मनुष्य बनता है। आज की अवस्था में तो हम कुछ अंशों में मनुष्य और कुछ अंशों में पशु हैं। हम घूंसे के बदले में घूंसा जमाते हैं और हमारे क्रोध का पारा भी उतना ही डिग्री चढ़ जाता है। और इसे हम कहते हैं कि हमने मनुष्य-जाति के उद्देश की पूर्ति की है, अपने कर्त्तव्य का पालन किया है! यह तो अज्ञान, नहीं अहंकार भी है। हम कहते हैं, प्रतिहिंसा तो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हम तो इसके कायल हैं। परंतु इसके विपरीत धर्मशास्त्रों में तो हम देखते हैं कि प्रतिहिंसा कहीं भी आवश्यक कर्त्तव्य नहीं माना गया है, बल्कि सिर्फ वह जायज बताई गई है। आवश्यक कर्त्तव्य तो है संयम। प्रतिहिंसा के लिए तो बहुतसे नियमों और शर्तों के पालन करने की जरूरत है। संयम तो हमारे जीवन का नियम ही है। क्योंकि बिना पूर्ण संयम के मनुष्य पूरी पूर्णावस्था को पहुंच ही नहीं सकता। इस प्रकार कष्ट-सहन मनुष्य-जाति का विशेष लक्षण है।

ध्येय तो हमेशा आगे ही आगे बढ़ता जाता है। ज्यों ज्यों अधिक प्रगति होती जाती है त्यों त्यों मनुष्य अपने को अधिकाधिक अयोग्य मानता जाता है। सन्तोष तो प्रयत्न में है, अभीष्ट-सिद्धि में नहीं। पूर्ण प्रयत्न ही पूर्ण विजय है।

अतएव यद्यपि मैं पहले से भी अधिक इस बात को जानता हूं कि मैं अपने ध्येय से कितना दूर हूं, तथापि मेरे लिए तो पूर्ण प्रेम का नियम ही अपने जीवन का नियम है। जब जब मुझे असफलता प्राप्त होगी तभी तब मैं और भी अधिक निश्चय के साथ प्रयत्न करूंगा।

लेकिन मैं इस अन्तिम सिद्धान्त की बात तो महासभा और खिलाफत कमिटी के द्वारा कर ही नहीं रहा हूं। मैं अपनी त्रुटियों को खूब अच्छी तरह जानता हूं। मैं जानता हूं कि ऐसा उद्योग असफल हुए बिना नहीं रह सकता। सारे मनुष्य-समाज से यह आशा करना कि वे सब एकाएक इस सिद्धान्त के अनुसार चलने लगेंगे, इस बात को न जानना है कि मनुष्य-समाज का काम किस प्रकार चलता है। लेकिन हां, महासभा के मंच से मैं उस सिद्धान्त के फल-स्वरूप नियमों का प्रचार अवश्य करता हूं। महासभा तथा खिलाफत-समिति ने तो इस सिद्धान्त के तात्पर्य का एक भाग-मात्र स्वीकार किया है। यदि कार्यकर्ता लोग सच्चे हों तो थोड़े ही समय में यह बात जानी जा सकती है कि विशाल जन-समूह पर थोड़े परिमाण में उसका प्रयोग किस तरह हो सकता है। लेकिन वह थोड़ा परिमाण भी सभी अवस्थाओं में [illegible] है जब कि वह पूरे सिद्धान्त की कसौटी पर चढ़ चुके। एक बूंद पानी में वे सब गुण धर्म होने चाहिए जो एक तालाब-भर पानी में हों। अपने भाई के साथ मैं जिस अहिंसा का व्यवहार करूंगा वह सारे विश्व के प्रति मेरी अहिंसा से भिन्न नहीं हो सकती। जब मैं अपने भ्रातृ-प्रेम को सारे विश्व तक व्यापक करूं तो उस अवस्था में भी वह सत्य ही सिद्ध होना चाहिए।

जब किसी नियम का व्यवहार देश और काल की मर्यादा से बांध दिया जाय तब उसे व्यवहार-नियम या व्यवहार-धर्म कहते हैं। अतएव उच्च से उच्च व्यवहार-नियम का पालन ही उस सिद्धान्त का पूर्ण रूप से पालन करना है। लेकिन हम प्रामाणिकता का व्यवहार चाहे व्यवहार-धर्म समझ कर करें चाहे सिद्धान्त समझ कर करें, जबतक वह हमारा व्यवहार-नियम है, एक ही बात है। ईमानदारी को व्यवहार-नियम के तौर पर मानने वाला दूकानदार भी वैसाही और उतने ही गज कपड़ा देगा जितना कि ईमानदारी को धर्म समझने वाला दूकानदार देगा। दोनों में फर्क केवल इतना ही है कि राजनैतिक दूकानदार अपनी ईमानदारी को उस समय छोड़ देगा जब उससे उसे लाभ न दिखाई देगा और उसमें श्रद्धा रखने वाला दूकानदार अपना सर्वस्व गवां देने पर भी उससे मुंह न मोड़ेगा।

पर असहयोगियों की राजनैतिक अहिंसा बहुतांश में इस कसौटी पर सही नहीं उतरती। इसीसे इस युद्ध की उम्र बढ़ती जा रही है। अंगरेजों का यह स्वभाव है कि वे झुकते नहीं। इसपर उन्हें कोसने की आवश्यकता नहीं। हमारे प्रेम की आग से उनके 'कठोर से कठोर बाहु दण्ड' पिघले बिना नहीं रह सकते। मैं इस बात को जानता हूं। अतएव अपनी इस स्थिति से हट नहीं सकता। यदि अंगरेजों की अथवा दूसरे लोगों की तबीअत पर इसका यथेष्ट असर नहीं होता है तो इसका अर्थ यही है कि या तो वह आग ही हमारे अन्दर नहीं है या उस तेजी के साथ नहीं धधक रही है।

अच्छा, हमारी अहिंसा चाहे बलवान् की अहिंसा न हो, पर सच्चे लोगों की अहिंसा जरूर होना चाहिए। यदि, हम अहिंसा-परायण होने का दावा करते हैं तो जबतक हम ऐसा दावा करें तबतक अंगरेज अथवा सहयोगी भाइयों को हानि पहुंचाने का इरादा तक हमें न करना चाहिए। लेकिन हमारे तो अधिकांश लोगों ने उनका नुकसान जरूर चाहा है और हम ऐसा करने से इसीलिए रुक रहे हैं कि हम कमजोर हैं या इस गलत खयाल से कि केवल शारीरिक हानि न पहुंचाने से ही हमारे अहिंसाव्रत का पालन हो जाता है। हमारी अहिंसा की प्रतिज्ञा में तो भविष्य में प्रतिहिंसा करने की सम्भावना रही नहीं जाती। दुर्भाग्यवश हमारे कुछ लोगों ने तो बदला चुकाने की तिथि सिर्फ आगे बढ़ा भर दी है।

हां, कहीं मेरे आशय का गलत अर्थ न लगा बैठएगा। मैं यह नहीं कहता कि व्यवहार-नियम के तौर पर अहिंसा को मानने में, हम नीति का त्याग कर चुकने पर भी, प्रतिहिंसा की संभावना नहीं रह जाती। पर हां, यदि संग्राम में हमारी विजय हुई तो इसमें आगे प्रतिहिंसा की सम्भावना अवश्य ही नहीं है। इसलिए

जबतक हम अहिंसा को व्यवहार-नियम के तौर पर मानते हैं तब तक हम असली तौर पर अपने अंगरेज हाकिमों तथा उनके सहयोगियों के साथ मित्रता का बरताव करने पर बाध्य हैं। जब यह सुना कि भारत के कुछ स्थानों में अंगरेजों अथवा प्रख्यात सहयोगियों का जानोमाल महफूज नहीं है, उनके लिए घूमना फिरना भी मुश्किल हो रहा है, तो मुझे बड़ी शर्म मालूम हुई। उस दिन मदरास की एक सभा में जो लज्जाजनक दृश्य दिखाई दिया वह अहिंसा के पूर्ण अभाव का सूचक था। जिन लोगों ने यह समझकर कि उस सभा के सभापति ने मेरा अपमान किया; उनकी छीछालेदर की उन्होंने न केवल खुद अपने को ही बल्कि अपनी नीति को भी नीचा दिखाया। उन्होंने अपने मित्र और सहायक श्री [illegible] के हृदय को चोट पहुंचाई। उन्होंने खुद अपने ही काम को धक्का पहुंचाया। यदि उन सभापति महाशय का यह मत था कि मैं एक दुरात्मा हूं तो उनका ऐसा कहना बहुत ठीक ही था। अज्ञान उत्तेजना नहीं है। पर असहयोगी तो गहरी से गहरी उत्तेजना को भी सहन करने की प्रतिज्ञा से बंधे हुए हैं। यदि मैं किसी दुरात्मा की तरह काम करूंगा तो उत्तेजना तो अवश्य ही होगी। पर यदि कोई असहयोगी यह मानता हो कि मैं उसे गलत रास्ते ले जा रहा हूं तो वह इस प्रतिज्ञा से मुक्त हो सकता है तथा मेरे प्राणतक ले सकता है।

हां, यह भी हो सकता है कि जीवन को इतने मर्यादित रूप में अहिंसात्मक बनाना भी अधिकांश रूप में असम्भव हो। यह भी हो सकता है कि हम लोगों से महज उनके स्वार्थ के खयाल से भी यह आशा न करें कि वे जहां अपने प्रतिपक्षी को हानि नहीं पहुंचा रहे हैं तहां हानि पहुंचाने का इरादा तक न करें। तब हमें उचित है कि हम अपने इस युद्ध के सम्बन्ध में 'अहिंसा' शब्द का उच्चार तक न करें, तभी हम प्रामाणिक बने रह सकते हैं। इसका उपाय यह नहीं है कि तुरन्त ही हिंसाकाण्ड मचा बैठें। पर उस अवस्था में लोगों से अहिंसा सम्बन्धी नियमों के पालन की बात कोई न कहेगा। तब मुझ जैसे मनुष्य को यह न मालूम होगा कि चौरीचौरा की जिम्मेवारी मेरे सरपर है। इस मर्यादित अहिंसा का सम्प्रदाय तो उस एकान्त अवस्था में भी फलता-फूलता ही रहेगा और भला यह होगा कि उसके सिर से जवाबदेही का वह भीषण भार उठ जायगा जिसे वह आज वहन कर रहा है।

परन्तु यदि अहिंसा ही इस राष्ट्र का व्यवहार-धर्म निश्चित रहा तो हम उसका अक्षरशः तथा ठीक ठीक पालन करने के लिए बाध्य हैं। तभी उसका तथा मनुष्य जाति का शुभ नाम कायम रह सकता है।

और यदि इस व्यवहार-नियम के अनुसार चलने का इरादा हम करते हों, यदि हम उसके कायल हों, तो हमें तुरन्त ही अंगरेज तथा सहयोगी-भाइयों से मेल-मिलाप कर लेना चाहिए। हमें इस बात में कि वे लोग हमारे बीच में अपने जानोमाल को पूरापूरा सुरक्षित समझते हैं और उनके हमारे विचारों में तथा राजनीति में जमीन-आस्मान का फर्क होते हुए भी वे हमें अपना मित्र समझते हैं, खुद उन्हीं का प्रमाणपत्र हासिल करना चाहिए। हमें अपनी सम्मवर अतिथि के तौर पर अपनी राजनैतिक सभाओं में उनका स्वागत करना चाहिए। जिन सभाओं का सम्बन्ध किसी दल या मत से न हो उनमें हम और वे साथ साथ काम करें। हमें ऐसी सभाओं की आयोजना भी करनी चाहिए। हमारी अहिंसा का फल हिंसा, द्वेष और दुर्भाव न होना चाहिए। दूसरे मर्त्य मनुष्यों की तरह हमारी पहचान भी अपने कार्यों से ही होगी। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक कार्यक्रम बनाने का मतलब है अपना काम अहिंसात्मक रीति से चलाने की योग्यता। इसका अर्थ है आज्ञापालन के भाव को हृदय पर अंकित करना। श्रीयुत चर्चिल का, जो कि केवल पशु-बल के ही मन्त्र को पहचानते हैं, यह कहना बहुत ठीक है कि आयरलैंड का प्रश्न भारत के प्रश्न से भिन्न प्रकार का है। उनके कहने का आशय यह कि आयरलैंड वालों ने हिंसाकांड के बल पर लड़ लड़ कर स्वराज्य प्राप्त किया है, अतएव वे यदि आवश्यकता पड़ी तो हिंसा-बल के द्वारा उसकी रक्षा भी कर सकेंगे। पर, इसके खिलाफ, यदि भारत वास्तव में अहिंसा के द्वारा स्वराज्य प्राप्त कर ले तो उसे प्रधानतः अहिंसात्मक उपायों के ही द्वारा उसकी रक्षा भी करनी होगी। और इसे श्री चर्चिल तभी सम्भवनीय मानेंगे जब भारत इस सिद्धान्त को अपने उदाहरण द्वारा प्रत्यक्ष करके दिखा दे। और यह बात तबतक अशक्य है जबतक समाज में अहिंसा का इतना प्रवेश नहीं हो गया है कि जिससे लोग अपने सामुदायिक अर्थात् राजनैतिक, जीवन में अहिंसा को अपना लें, दूसरे शब्दों में फौजी हुकूमत के बजाय देश में मुल्की हुकूमत की प्रधानता हो जाय।

अतएव अहिंसात्मक साधनों से स्वराज्य प्राप्त करते हुए गोलमाल और अराजकता को स्थान मिल ही नहीं सकता। अहिंसा के बल पर प्राप्त स्वराज्य तो उत्तरोत्तर शान्तिमय क्रान्ति होगी; यथा एक संकुचित संस्था के हाथ से सत्ता का जनता के प्रतिनिधियों के हाथों में जाना उतना ही स्वाभाविक कार्य है जितना कि अच्छे पर्वरिश किये हुए पेड़ से पूरे पके फलका गिर पड़ना। मैं फिर कहता हूं कि ऐसी बात का पाना शायद बिल्कुल असम्भव हो। लेकिन मैं जानता हूं कि अहिंसा का तात्पर्य तो इससे कम नहीं है। और यदि वर्तमान कार्यकर्तागण इससे अधिक शान्तिमय वायुमंडल तैयार होजाने की सम्भावना को न मानते हों तो उन्हें चाहिए कि वे अहिंसात्मक कार्यक्रम को तिलांजलि दे दें और दूसरा इससे बिल्कुल भिन्न कार्यक्रम तैयार करें। यदि हम इस खयाल को मन में रखते हुए कि अन्त को तो हम शस्त्रास्त्र के बल पर अंगरेजों से अधिकार छीन ही लेंगे, इस कार्यक्रम को उठावेंगे तो हम अपने अहिंसा के दावे के प्रति झूठे ठहरेंगे। यदि हमें अपने इस कार्यक्रम पर विश्वास है, तो हम यह मानने के लिए भी बाध्य हैं कि अंगरेज लोग जैसे कि शस्त्र-बल के अधीन हो जाते हैं उसी प्रकार प्रेम-बल के अधीन न होने वाले भी नहीं हैं। जो लोग इसके कायल नहीं हैं उनके लिए दो रास्ते हैं-कौन्सिलें, जो कि उनकी दृष्टि में विद्या और अनुभव के मन्दिर हैं और उनका वह भावी कार्यक्रम जिससे पद पद पर उनका तेजोवध होता है और जो आगे कुछ पुश्तों तक पूरा न हो सके; अथवा तेजी के साथ होने वाली परन्तु खूनी क्रान्ति-ऐसी क्रान्ति जो पृथिवी-पटल पर शायद अबतक न देखी गई हो। ऐसी क्रान्ति में शरीक होने की मुझे जरा भी इच्छा नहीं। मैं उसकी तैयारी में साधनरूप भी होना नहीं चाहता। अतएव मेरी राय में सवाल यह है कि या तो हम असहयोग के साथ प्रामाणिक अहिंसा को जो असहयोग का सहज फल है, अवलम्बन करें या प्रतिबंधी सहयोग को अर्थात् विरोध के साथ सहयोग को अपनावें।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में श्री-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

विदेशों में प्रचार

कार्य्य-समिति ने विदेशों में प्रचार करने का जो काम अपने सिर पर उठाया है, मैं देखता हूं कि उसके कार्य्यक्षेत्र के सम्बन्ध में बहुत-कुछ गलत-फहमी फैल रही है। इस विषय में कार्य-समिति को जो रिपोर्ट पेश की गई है वह प्रकाशित नहीं की गई। मैं देखता हूं कि यह गलती हुई। खैर। गत २१ जनवरी को सूरत में कार्य-समिति की जो बैठक हुई उसमें इस आशय का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था कि विदेशों में महासभा के कार्य का प्रचार करने के लिए मैं कोई तजवीज तैयार करूं। उसके अनुसार इस विषय के तमाम कागज-पत्रों को देख कर मैंने अपनी रिपोर्ट कार्य-समिति को पेश की। उसमें मैंने लिखा था कि "वर्तमान अवस्था में भारत की राजनैतिक स्थिति को प्रकट करने के लिए किसी भी बाहरी देश में कोई समाचार-एजन्सी स्थापित करना मेरी राय में अनावश्यक है और शायद हानिकर भी सिद्ध हो। क्योंकि इससे एक तो भारत की जनता का ध्यान बंट जायगा और केवल अपने ही बल पर खड़े होने के बदले बाहरी देशों के कार्यों के फलाफल की तथा सहायता की ओर उनका ध्यान दौड़ने लगेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि हमें दुनिया की सहायता दरकार नहीं है। बल्कि उस सहायता प्राप्त करने का मार्ग यह है कि हम खुद अपने ही कार्यों की शुद्धता पर अधिक जोर दें और इस बात पर भरोसा रक्खें कि सत्य का प्रचार अपने आप होता है।

दूसरे, यह मेरे तजरिबे की बात है कि जब कोई एजेन्सी किसी खास उद्देश से स्थापित की जाती है तब कुछ हद तक उसका निष्पक्ष-भाव कम हो जाता है और लोग यह खयाल करते हैं कि यह बात तो हेतु-विशेष रखने वाले लोगों की तरफ से आई है। अतएव वे उसको उतना महत्व नहीं देते।

तीसरे, महासभा ऐसी एजन्सियों पर आवश्यक निगरानी न रख सकेगी और इस बात का डर है कि इस आन्दोलन के सम्बन्ध में कहीं गलत खबरें और गलत खयालात अधिकारी रूप से न पहुंचा करें।

चौथे, देश की वर्तमान अवस्था को देखते हुए यह मुमकिन नहीं है कि कोई गण्य-मान्य पुरुष यहां से विदेशों में भेजा जा सके जो वहां जाकर केवल खबरें भेजने का ही काम करे; क्योंकि यहां काम करने के लिए बहुत थोड़े लोग हैं।

अतएव मेरी यह राय है कि यदि आवश्यक हो तो 'कांग्रेस बुलेटिन' के काम का संगठन अच्छी तरह कर लिया जाय। मेरा तो यह अनुभव है कि महासभा जितना ही अधिक पक्का काम करेगी और देश के लोग जितना ही अधिक कष्ट-सहन करेंगे उतना ही अधिक प्रचार, बिना कोई खास प्रयत्न किये, हमारे काम का होगा। 'यंग इंडिया' सम्बन्धी चिट्ठी-पत्रियों से जो दुनिया के तमाम हिस्सों से मेरे पास आती-जाती रहती हैं, मैं देखता हूं कि दुनिया भर में भारत के मामलों पर आज जितना ध्यान दिया जा रहा है उतना पहले कभी नहीं दिया जाता था। इससे यह सिद्ध होता है कि जितना हमारा कष्ट-सहन अधिक होगा उतना ही उनका ध्यान इस ओर अधिक जायगा। इसलिए यहां की राजनैतिक स्थिति के सम्बन्ध में सच्ची खबरें भेजने का सबसे बढ़िया तरीका तो यही है कि महासभा का काम अधिक शुद्ध, अधिक सुसंगठित रूप से चलाया जाय और कष्ट-सहन की तैयारी अधिक की जाय। इससे केवल बाहरी लोगों की जिज्ञासा ही नहीं बढ़ती; परन्तु स्थिति की असलियत को तथा उसकी भीतरी बातों को समझ लेने की भी उत्कंठा बढ़ती है।"

इस सम्बन्ध में जो कागज-पत्र मुझे दिये गये थे, तथा जो जो दलीलें उसके पक्ष और विपक्ष में पेश की गई थीं मैंने उन सब को ध्यान से पढ़ा और सुना; पर फिर भी मेरी तो यही निश्चित राय हुई कि कम से कम आज तो भारत के बाहर कोई समाचार-एजेन्सी स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है। हां, हम यह तो जरूर चाहते हैं कि इस युद्ध में संसार हमारे साथ हो; पर हम विदेशों में एजन्सी खड़ी कर के इस काम को नहीं कर सकते। हम तो सिर्फ उन्हीं लोगों को सच्ची सच्ची खबरें भेज दिया करें, जो उन्हें सुनना चाहते हों। यदि कोई बाहरी देश किसी विशेष देश की किसी खास हलचल के हालात जानने के लिए खुद ही अपनी कोई एजेन्सी नहीं रखता तो मेरी दृष्टि में यह इस बात का सबूत है कि उसे इससे कोई वास्ता नहीं है। कोई १५ महीनों से हम काम कर रहे हैं, लन्दन में हमारी कोई समाचार-एजन्सी नहीं। पर मैं कहने का साहस करता हूं कि १५ महीने के पहले से आज इस विषय में हमारी हालत खराब नहीं है। हमारी हालत इसीलिए और उतने ही दरजे तक अच्छी है जितने दरजे तक हमने खुद भारत में ही असली काम किया है। संसार में आज जितने आदमी भारत की बातों में दिलचस्पी लेने वाले हो गये हैं उतने इससे पहले कभी नहीं थे। इसलिए उनके प्रति हमारा इतना कर्त्तव्य अवश्य है कि हम सच्ची सच्ची खबरें उनतक पहुंचा दें, बस हम अपना फर्ज अदा कर चुके। मेरे सामने इटली के एक इटालियन पत्र के सम्पादक का पत्र रक्खा हुआ है जिसमें वे लिखते हैं कि इटली के लोग भारत के इस आन्दोलन में कितना गहरा रस लेते हैं और इसलिए इटली के अखबार भारत की बातों का ज्ञान इटली वालों को करा रहे हैं। इसे मैं कहता हूं स्वाभाविक और अपने आप विकास पाने वाली हलचल। पर अगर इस खबर के बल पर हम इटली में कोई एजेन्सी खोल कर वहां के लोगों का भाव अधिक बढ़ाना चाहें तो इसस काम बनाने के बजाय अति करके हम बिगाड़ ही बैठेंगे। इसलिए बेहतर है कि हम अपनी ही शक्ति और सामर्थ्य पर अपना आधार रखते हुए अपने हिताहित का विचार करें। हमारा बल अपनी कथा खुद ही कह लेगा।

इसके अलावा यह असहयोग आन्दोलन स्वावलम्बन की नींव पर खड़ा किया गया है। इसका तो मूल-मन्त्र है–'जितना बल हममें होगा उतनी ही सफलता हमें मिलेगी, अधिक नहीं' हमारी योग्यता के सम्बन्ध में संसार के दिये प्रमाण-पत्र से हमें सफलता नहीं मिलने की। उसे तो हमें अपनी एड़ी-चोटी का पसीना बहाकर प्राप्त करना होगा। चाहे कितनी ही निन्दा और निषेध इस आन्दोलन का क्यों न किया जाय, इससे इसका अन्त नहीं हो सकता। वह तो तभी मुमकिन है जब हम खुद ही उस निन्दा से भड़क कर अस्थिर-चित्त हो उठें और उसे छोड़ बैठें। इसलिए हमें अपने स्वीकृत कार्य से कदापि मुंह न मोड़ना चाहिए। हम तो बस सिर्फ अपने उसी काम पर अटल हो कर डटे रहें और विश्वास रखें कि, हमारे बिना ही कोशिश किये, संसार अपने आप उसकी ओर झुकेगा। मुझे तो यह बात भी दरअसल अखर रही है कि कुछ नवयुवकों को अपने कामों से छुड़ा कर 'कांग्रेस बुलेटिन' के काम में लगाया जाय। पर हमारे पास तो इस बात का भी कोई लिखित और अधिकारी साधन नहीं है कि प्रति सप्ताह हमारा काम कितना आगे बढ़ा है। इस दशा में यह 'कांग्रेस बुलेटिन' क्या भारत में हमारे कार्यकर्ताओं के लिए तथा क्या हमारे विदेशी मित्रों के लिए, बड़े काम की चीज होगी।

कार्य-समिति इस कार्य्य के आरम्भ के लिए प्रायः अधीर हो रही है। इसलिए उसने इस 'बुलेटिन' का काम सब तरह से

(शेष पृष्ठ २३६ में)

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूड़ी ओल, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित॥

लेखी बयान

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)॥
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—चैत्र बदी ६, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, १९ मार्च, १९२२ ई० | अंक ३१

महात्मा गांधी को छः वर्ष सादी कैद!

उनका अमर लेखी बयान

श्री शंकरलाल बैंकर को १ वर्ष सादी कैद और एक हजार रुपया जुरमाना

गत १८ मार्च शनिवार को श्री गांधीजी का मुकदमा अहमदाबाद के दौरा जज की अदालत में पेश हुआ। जिनके पास टिकट थे वही अंदर आ पाते थे। बारह बजने के कुछ पहले पूज्य गांधीजी तथा श्री शंकरलाल बैंकर को लेकर पुलिस सुप्रेन्टेन्डेन्ट आये। गांधीजी के प्रवेश करते ही हर एक आदमी स्वाभाविक आदरभाव से प्रेरित होकर खड़ा हो गया। एडवोकेट जनरल मि० स्ट्रैंगमन ने अदालत में आते हुए सिर झुका कर महात्माजी का अभिवादन किया। दौरा जज श्री ब्रूमफील्ड के आ जाने पर मुकदमे का काम शुरू हुआ। मुलजिमों को इस्तगासा पढ़ कर सुनाया गया। इसके बाद जज साहब ने राजद्रोह, अप्रीति इत्यादि शब्दों का कानून की भाषा में अर्थ बता कर महात्माजी से पूछा कि आपको अपराध मंजूर है या आप मुकदमा आगे चलाना चाहते हैं?

महात्माजी खड़े हुए। अदालत में अपूर्व शान्ति छा गई। शान्त स्वर में उन्होंने कहा — मुझे प्रत्येक इलजाम मंजूर है। नीचे की अदालत ने सम्राट् के प्रति अप्रीति उत्पन्न करने का जो इलजाम मुझ पर लगाया था वह इस इस्तगासे में नहीं रखा गया; यह ठीक ही हुआ। श्री शंकरलालजी से भी यही प्रश्न पूछा गया और उन्होंने भी 'हाँ' कर ली।

एडवोकेट जनरल ने अदालत के पूछने पर कहा "मुलजिम ने इन्हीं तीन लेखों के द्वारा अपराध नहीं किया है, बल्कि ये तो उस खुली और व्यवस्थित लड़ाई के अंश मात्र हैं जो उन्होंने राज्य के खिलाफ शुरू की है।" कड़ी सजा देने के पक्ष में दलील पेश करते हुए कहा कि "जब किसी भाग में एक ही प्रकार के अपराध अधिक होते हैं तब प्रधान अपराधी को ऐसी सजा करनी चाहिए जिससे वह दूसरों के लिए उदाहरण-रूप हो। फिर मुलजिम तो ऊंची शिक्षा पाये हुए हैं और लोगों के माननीय नेता हैं। यद्यपि उन्होंने अहिंसा पर निरन्तर जोर दिया है; परन्तु जहां व्यवस्थित रीति से अप्रीति पैदा की जाती है वहां अहिंसा के उपदेश का क्या मूल्य? मुलजिम की लड़ाई के ही फल स्वरूप बंबई, मद्रास और चौरीचौरा में भयंकर हत्या-काण्ड हुए हैं।"

अब महात्माजी के लेखी बयान पढ़ने का समय आ गया। बैठे ही बैठे अपना बयान पढ़ने की इजाजत अदालत से लेकर उन्होंने कहा कि—"मैं अदालत से कोई बात जरा भी छिपाना नहीं चाहता। प्रचलित शासन-पद्धति के प्रति अप्रीति उत्पन्न करने की मुझे धुन ही लग गई है। 'यंग इंडिया' के साथ जबसे मेरा सम्बन्ध हुआ है, तभी से मैं अप्रीति उत्पन्न करने लगा हूं सो बात नहीं, यह काम तो बहुत पहले से ही शुरू हुआ है। मेरे लिए यह बड़ा दुःख कारक कर्तव्य है, परंतु मेरे सर पर जो जवाबदेहियां थीं, उनको देखते हुए उस कर्तव्य का पालन करना आवश्यक था। चौरी-चौरा के राक्षसी हत्याकाण्ड अथवा बंबई के हुल्लड़बाजों के अत्याचारों के साथ मेरा कोई सरोकार नहीं, यह कहना मेरे लिए असंभव है। अपने प्रत्येक काम के परिणाम का खयाल मुझे बराबर था। मैं जानता था कि मैं संकट को निमन्त्रण दे रहा हूं, मैं आग के साथ खेल खेल रहा हूं। पर, फिर भी मैं कहूंगा; यदि मैं आजाद कर दिया जाऊं तो फिर मैं वही काम करूंगा।

मैं अशान्ति को टालना चाहता था, अब भी चाहता हूं। अहिंसा मेरे धर्म का पहला मंत्र है और पिछला मंत्र भी है। परंतु मुझे तो दो बुराइयों में से एक को पसंद करना था। या तो मैं उस शासन-पद्धति के अधीन हो सकता था जिससे मेरे देश को अगणित हानि पहुंच रही है, अथवा अपने देश की वास्तविक स्थिति को जानने के बाद ऐसी जोखम उठा सकता था जिससे मेरे देश भाइयों का खून उबल उठता। मेरे देश-भाइयों ने कई बार पागलपन किया है। इस पर मुझे बहुत दुःख भी हुआ है। इसीलिए मैं अधिक सजा चाहता हूं। मैं दया नहीं चाहता। मैं कोई ऐसी दलील भी पेश करना नहीं चाहता जिससे मेरा अपराध कम माना जाय। कानून की दृष्टि से जो इरादतन जुर्म माना जाता है पर मेरा दिल तो जिसे नागरिकों का एक बड़ा से बड़ा कर्तव्य बताता है उसके लिए मैं आपसे सख्त से सख्त सजा चाहता हूं। मैंने अपने लेखी बयान में यह कहा है कि यदि आप इस कानून को बुरा समझते हों, और इसलिए मुझे निर्दोष—बे गुनाह करार देते हों तो आपके लिए यही मार्ग शेष रह जाता है कि

आप अपना इस्तीफा पेश कर दें और इस बुराई से अपना पीछा छुडावें। मैं यह खयाल नहीं करता हूं कि ऐसा परिवर्तन आपके दिल में हो सकता है। परंतु इसके पहले कि मैं अपना बयान सुनाऊं, आपके दिल में इस बात की कुछ कल्पना हो जायगी कि कौन कौन खयाल मेरे दिल में उठ-बैठ रहे थे जिनके द्वारा एक समझदार आदमी को ऐसी भारी जोखम उठाना पडी।"

इसके बाद महात्माजी ने अपना लेखी बयान पढ कर सुनाया, जोकि इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित किया जाता है। फिर श्री शंकरलाल बैंकर ने कहा "हां, इन लेखों के छपने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। मुझ पर लगाये गये इल्जाम मैं कुबूल करता हूं।"

इसके अनन्तर फैसला सुनाया गया। जज साहिब ने कहा "गांधीजी! आपने अपराध स्वीकार करके एक तरह से मेरा काम बहुत आसान कर दिया है। परंतु यह निर्णय करना सहल नहीं है कि आपको कितनी सजा दी जाय। मैं नहीं समझता कि इस देश में किसी भी जज के सामने इतना कठिन काम कभी उपस्थित हुआ हो। कानून की नजर में न तो कोई छोटा है और न बडा। अबतक मुझे जिन २ लोगों का फैसला करना पडा है अथवा भविष्य में करना पडेगा उन सब की अपेक्षा आप भिन्न ही कोटि के पुरुष हैं। इस बात को मैं अपने ध्यान से नहीं हटा सकता। आप अपने करोडों देश-भाइयों की दृष्टि में महान् देशभक्त हैं, महान् नेता हैं, इस बात को भी मैं अपने खयाल से अलग नहीं कर सकता। जो लोग राजनैतिक मामलों में आपसे अलग रहते हैं, वे भी आपको आदर्शवान् मानते हैं। वे केवल आपको अलौकिक ही नहीं, वरन् साधु कोटि के पुरुष मानते हैं।

पर मुझे तो आपका विचार एक ही दृष्टि से करना है, एक कानून के अधीन मनुष्य की तरह ही आपका इन्साफ करना है-ऐसे अपराध के लिए जो कानून की दृष्टि से गंभीर है, और जिसे अपराधी खुद कुबूल करता है। मैं इस बातको नहीं भूलता हूं कि आपने हिंसा-काण्ड के खिलाफ बहुत कुछ उपदेश किया है। और यह भी मानने के लिए तैयार हूं कि कितने ही मौकों पर आपने हिंसा-काण्ड को रोका भी है। परंतु आपके राजनैतिक उपदेश के स्वरूप को देखते हुए और वह उपदेश जिन लोगों को दिया गया है उन लोगों के स्वभाव को देखते हुए यह बात मेरी विचारशक्ति के बाहर है कि आपकी हलचलों के बदौलत हिंसा-काण्ड न होगा यह आशा आप कैसे कर सकते हैं? भारत में शायद ही कोई लोग ऐसे हों जिन्हें इस बात का सचमुच दुःख न हुआ हो कि आपने किसी भी सरकार के लिए अपने को स्वतंत्र रखना असंभव कर डाला है। पर आपने वह स्थिति ला दी। मैं इसी बात का विचार कर रहा हूं कि आपके साथ न्याय भी हो और सार्वजनिक हित की भी रक्षा हो, इन दोनों बातों का मेल कैसे बैठे? आपको सजा करने के विषय में मैं कोई बारह बरस पहले के ऐसे ही एक मुकदमें का अनुकरण करना चाहता हूं। श्री बाल गंगाधर तिलक को इसी दफा की रूसे सजा दी गई थी। उस समय उन्हें अंत को छः बरस सादी कैद की सजा भोगनी पडी थी। मुझे विश्वास है कि मैं यदि आपको भी तिलक की जोड में बिठाऊं तो यह आपको अनुचित न दिखाई देगा। अतएव आपको हरएक अपराध के लिए दो दो बरस की सादी कैद अर्थात् सब मिला कर छः बरस की सादी कैद की सजा देना मुझे अपना कर्तव्य मालूम होता है। यह सजा देते समय मैं इतना और कहना चाहता हूं कि भविष्य में यदि भारत का राजनैतिक वायुमंडल शान्त हो और सरकार आपकी सजा कम करके आपको मुक्त कर सके तो उस दिन जितना आनंद मुझे होगा उतना शायद ही और किसी को हो।"

फिर उन्होंने श्री बैंकर को एक बरस की सादी कैद और एक हजार रुपये जुर्माने की सजा सुनाई।

अंत को श्री गांधीजी ने दौरा जज से कहा "मैं सिर्फ एक शब्द और कहना चाहता हूं। मुझे फैसला सुनाते समय आपने स्वर्गीय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के मुकदमें की याद दिला कर मेरी बडी इज्जत की है। उन महान् पुरुष के नाम के साथ मेरे नाम का जोडा जाना मैं बडा से बडे भाग्य और बडी से बडी इज्जत समझता हूं, और मुझे जो सजा दी गई है वह तो मुझे हल्की से हल्की मालूम होती है।"

महात्माजी को सजा हो गई। छः बरस की सजा हुई। जज सा० ने आशा प्रकट की है कि देश में ऐसी स्थिति प्रकट हो कि जिसमें सरकार उन्हें जल्दी से जल्दी छोड सके। हम भी यही चाहते हैं कि देशमें ऐसी स्थिति उत्पन्न हो कि जिससे सरकार को उन्हें छोडना लाजिम आवे। महात्माजी को छुडाने का एक ही उपाय है और वह यह कि हिंदू, मुसलमान, पारसी सिक्ख, ईसाई यहूदी आदि समस्त जातियां एक होकर महात्माजी के उपदेश के अनुसार चर्खे का सेवन करें, खादी पहनें और शांति की रक्षा करके प्रेम के प्रवाह में वैर और अविश्वास की अग्नि को शान्त करें। महात्माजी क्या हैं? शांति, प्रेम और सत्य।

गांधीजी का लेखी बयान

नीचे लिखा लेखी बयान श्री गांधीजीने ता० १८-३ को दौरा जज की अदालत में पेश किया—

भारत के प्रति तथा ब्रिटिश जनता के प्रति जिसको सन्तोष दिलाने के लिए प्रधानतः यह मुकदमा चलाया गया है, अपने धर्म का विचार करते हुए मुझे यह मालूम होता है कि मैं यह खुलासा करूं कि एक कट्टर राजभक्त तथा सहयोगी होते हुए आज मैं कट्टर अप्रीति पैदा करने वाला और असहयोगी किस तरह हो गया। मुझे अदालत को भी यह बताना है कि भारत में कानून के द्वारा स्थापित सरकार के प्रति अप्रीति फैलाने के अपराध को मैं किसलिए कुबूल करता हूं।

मेरा सार्वजनिक जीवन दक्षिण आफ्रिका में सन १८९३ में विषम परिस्थिति में शुरू हुआ। और उस देश में अंग्रेजी सत्ता के साथ पहले पहल मेरा जो संबंध हुआ वह सुखदायी नहीं कहा जा सकता। मुझे वहां मालूम हुआ कि एक भारतीय और मनुष्य की हैसियत से मुझे कुछ भी अधिकार न थे। इससे भी अधिक ठीक ठीक मुझे यह मालूम हुआ कि केवल इसीलिए कि मैं भारतवासी हूं मेरे मनुष्योचित अधिकार भी वहां मारे जाते थे। पर इससे मैं हिम्मत नहीं हार गया। मैंने सोचा कि अंग्रेजों का भारतीयों के प्रति ऐसा दुर्व्यवहार तो उस राज-तन्त्र पर ऊपर से लगा हुआ मैल है, राजतन्त्र तो स्वभावतः और अधिकांश में अच्छा है। इसलिए सरकार के साथ मैंने स्वेच्छा-पूर्वक और सच्चे दिल से सहयोग किया और जहां जहां मुझे उसमें दोष दिखाई दिया तहां तहां मैंने उसकी नुक्ताचीनी भी दिल खोल कर की; पर उसको नष्ट करने की इच्छा कभी न की।

फलतः सन १८९९ में जब कि बोअर युद्ध के समय साम्राज्य की हस्ती संकट में आ पडी तब मैंने साम्राज्य को अपनी सेवायें अर्पण कीं। घायलों की सेवा-शुश्रूषा करनेवाली स्वयं-सेवकों की एक टुकडी खडी करके लेडीस्मिथ के बचाव के लिए की गई कितनी ही लडाइयों में मुझसे जो कुछ हो सकता था वह किया। उसी तरह जुलू बलवे के समय मैंने जखमी आदमियों को ढोने के लिए एक टुकडी तैयार की और जबतक बलवा खतम नहीं हुआ तबतक सेवा करता रहा। इन दोनों प्रसंगोंपर मुझे तमगे

लिये और सरकारी खरीतों में भी मेरे काम का उल्लेख किया गया। दक्षिण आफ्रिका में जो काम मैंने किया उसके उपलक्ष्य में लार्ड हार्डिंज ने केसरे-हिंद नामका सुवर्ण-पदक मुझे दिया। १९१४ में जब इंग्लैंड और जर्मनी के बीच युद्ध छिड़ा तब भी लंदन में उस समय रहने वाले भारतीयों का जो कि प्रधानतः विद्यार्थी ही थे, मैंने एक एम्बुलन्स कोर बनाया। वहां के अधिकारियों ने उसके का को मूल्यवान कह कर सराहा और आखिर को सन १९१८ में भारत में भी देहली की युद्धसभा में जब लार्ड चेम्सफोर्ड ने रंगरूटों की भरती के लिए एक खास अपील की थी, तब स्वास्थ्य खो कर भी उसका कोई खयाल न करके मैंने खेड़ा में एक सैन्य-पथक खड़ा करने के लिए जी-जान से कोशिश की। जनता की ओर से उचित सहायता भी मिलना शुरू हो चुकी थी कि इतने ही में उधर युद्ध स्थगित होगया और यह आज्ञा प्रकाशित हुई कि अब रंगरूटों की जरूरत नहीं है। साम्राज्य की सेवा करने के इन सब प्रयत्नों के करते समय यही विश्वास मेरे दिल में बसा रहा करता था और उसीके जोर पर मैं यह सब कर रहा था कि इन सेवाओं के जरिये मेरे देश-भाइयों को साम्राज्य में पूर्ण समानता का पद प्राप्त करा देना असम्भव नहीं।

किन्तु मेरी उन आशाओं पर पहला पहल जबरदस्त आघात रौलट कानून के रूप में लगा। और उसके खिलाफ मुझे तीव्र आन्दोलन उठाना पड़ा। इसीके बाद पंजाब में उन घोर अत्याचारों की शुरूआत हुई जिनका आरंभ जलियांवाला बाग की उस कत्ल से हो कर अन्त उन पेट के बल रेंगने के हुक्म तथा आम रास्तों पर कोड़े मारना आदि अनेक अवर्णनीय अपमानों में हुआ। मुझे यह भी मालूम हुआ कि टर्की तथा इस्लाम के दूसरे पवित्र स्थानों पर हाथ न डालने के विषय में भारतीय मुसलमानों को दिये गये प्रधान सचिव के अभिवचनों के पूरे होने की भी अधिक संभावना नहीं है। पर इन सब अशुभ लक्षणों के दिखाई देते हुए तथा मित्रों के द्वारा गंभीर चेतावनियां दिये जाते हुए भी १९१९ में अमृतसर की महासभा में मैंने सरकार के साथ सहयोग करने तथा मांटेगू-चेम्सफर्ड-सुधारों को ही स्वीकार करने के पक्ष में झगड़ा किया। और यह सब मैंने इसी आशा से किया कि प्रधान सचिव भारतीय मुसलमानों को दिये अपने अभिवचनों की पूर्ति अवश्य करेंगे, जख्मी पंजाब को सेहत पहुंचावेंगे।

पर मेरी ये तमाम आशायें देखते ही देखते छिन्न-भिन्न हो गईं। खिलाफत के विषय में दिया हुआ अभिवचन पूरा न किया गया। पंजाब के अत्याचारों पर सफेदा पोता गया। और उन गुनहगारों को सजा करना तो एक ओर रहा उलटा वे अपने अपने पद पर कायम रहे, या भारत के खजाने से पेन्शन पाते रहे और किसी किसी को तो उनकी उस सेवा के उपलक्ष्य में पारितोषिक तक प्रदान किये गये। मैंने यह भी देखा कि उन सुधारों से शासकों के हृदय में जो परिवर्तन होने की आशा की गई थी, वह भी न हुआ और इतना ही नहीं बल्कि मुझे तो यह दिखाई दिया कि यह तो भारत का धन अधिक चूसने की तथा उसकी गुलामी की अवधि बढ़ाने की एक नई तदबीर थी।

आखिर मुझे अपनी इच्छा के विपरीत इस नतीजे पर पहुंचना पड़ा कि इस अंगरेजी शासन ने भारत को क्या आर्थिक और क्या राजनैतिक दोनों दृष्टियों से इतना मोहताज और लाचार कर दिया है कि जितना वह पहले कभी न हुआ था। आज यह निःशस्त्र भारत किसी भी आक्रमणकारी के साथ अगर शस्त्रयुद्ध करना चाहे तो उसमें उसके प्रतिकार करने तक का सामर्थ्य नहीं। और उसकी यह लाचारी इस हद तक पहुंच गई है कि हमारे कई अच्छे से अच्छे आदमी भी कहते हैं कि भारत को पूर्ण औपनिवेशिक स्वातंत्र्य प्राप्त करने के लिए भी अभी कई पुश्तों बिताना पड़ेगी। उसकी मुफलिसी इतनी बढ़ गई है कि उसमें अब अकालों के सामने टिक रहने की भी शक्ति नहीं रही है। अंगरेजों के भारत में आने के पहले भारत के करोड़ों घरों में सूत काता और बुना जाता था, जिससे खेती के द्वारा होनेवाली साधारण आजीविका में रही कमी की पूर्ति हो जाती थी। पर भारत का यह छोटासा घरेलू धन्धा, जो उसके जीवन का आधार-रूप था, इतने निर्दय और अमानुष उपायों से नष्ट किया गया कि उनपर हमें विश्वास तक नहीं हो सकता जिनका वर्णन अंगरेजों की गवाहियां करती हैं। शहर के लोगों को शायद ही इस बातका पता हो कि भारत के अधपेट रहनेवाले करोड़ों प्रजाजन किसतरह दिन पर दिन मृतप्राय होते जा रहे हैं। उन्हें यह पता तक नहीं है कि उनके ये क्षुद्र ऐशो-आराम और कुछ नहीं, भारत को चूसने वाले विदेशी पूंजीपतियों का घर भरने की जो मिहनत वे करते हैं उसकी दलाली मात्र है। और उनका सारा मुनाफा तथा इनकी दलाली दोनों भारत की गरीब प्रजा को निचोड़ कर निकाली गई चीज है। वे यह जानते तक न होंगे कि भारत में कानून के अनुसार स्थापित सरकार इन असहाय भारतीयों का खून चूसने ही के लिए चलाई जा रही है। हर किसी तरह के वितंडवाद से अथवा अंकों और ब्यौरों से तथा हर किसी तरह के मायावी नकशों से वह सबूत उड़ा नहीं दिया जा सकता, जो भारत के देहात आज अपने चलते-फिरते नर-कंकाल को केवल आंखों के सामने पेश कर के दे रहे हैं। मेरे दिल में तो रत्तीभर शक नहीं कि ईश्वर के सदृश यदि कोई मालिक दुनिया के ऊपर हो तो उसके दरबार में इंग्लैंड तथा भारत दोनों के समस्त शहरों में रहने वालों को इस अपराध के लिए—मानव जाति के प्रति ऐसे अपराध के लिए जिसका सानी इतिहास में शायद ही मिल सके—जवाब देना पड़ेगा। स्वयं कानून का भी उपयोग इस देश में भारत को चूसने वाले विदेशियों की सेवा के ही लिए किया जाता है। पंजाब फौजी कानून के मुकदमों की जो जाँच मैंने तटस्थ-भाव से की है उससे मेरे दिल पर यह भाव अंकित हो गया है कि सौ में कमसे कम पचानवे सजायें बिल्कुल अन्याय्य थीं। भारत के राजनैतिक मुकदमों के अपने अनुभव से मैंने देखा है कि उनमें सजा पाये हुए फी दस लोगों में ९ बिल्कुल निर्दोष थे। उनका अपराध था बस स्वदेश-प्रेम। भारत की अदालतों में यूरोपियनों के खिलाफ मामला चलाने वाले सौ हिन्दुस्तानियों में नव्वानवें लोगों के साथ न्याय नहीं किया जाता। इस चित्र में अत्युक्ति कहीं भी नहीं है। जिन जिन भारतवासियों को ऐसे मुकदमों से काम पड़ा है उन सबका यही अनुभव है।

सब से बड़ी दुर्भाग्य की बात तो यह है कि अंगरेज लोग तथा देश के कार्य-संचालन में उनका साथ देने वाले भारतीय इस बात को नहीं समझ सकते हैं कि वे मेरे बताये पूर्वोक्त अपराध को कर रहे हैं। मैं जानता हूं कि कितने ही अंगरेज तथा हिन्दुस्तानी अधिकारी सचमुच ऐसा मानते हैं कि हम तो दुनिया के एक अच्छे से अच्छे राज्य-तन्त्र का संचालन कर रहे हैं और उसके द्वारा भारत धीरे धीरे परन्तु निश्चित रूप से प्रगति कर रहा है। उन्हें पता नहीं है कि एक ओर तो लोगों को कम्पित कर डालने की एक अदृश्य परन्तु प्रभावकारक कार्यपद्धति के तथा पशु-बल के व्यवस्थित प्रदर्शन के द्वारा और दूसरी तरफ प्रतिकार करने की अथवा आत्मरक्षा की सारी शक्ति छीन लेने से सारी प्रजा नपुंसक हो गई है और उसमें दंभ तथा पामरता पैदा

गई है और इस भयानक कुटेव के बदौलत शासनकर्ताओं का अज्ञान और आत्मवंचना बढ़ गई है। जिस १२४ अ धारा का अभियोग सद्भाग्य से मुझपर लगाया गया है वह शायद उन राजनैतिक धाराओं में सर्वोपरि है जो भारतीय नागरिकों की स्वतंत्रता को कुचल डालने के लिए रची गई हैं। प्रीति ऐसी चीज नहीं है जो कानून के बलपर पैदा की जा सकती हो अथवा नियमों से जकड़ कर रखी जा सकती हो। यदि किसी मनुष्य के दिल में किसी शख्स अथवा वस्तु के प्रति प्रीति न हो तो जबतक वह खून-खराबी का इरादा न रखता हो अथवा उसके लिए लोगों को न उभारता हो तबतक उसे अपनी अप्रीति प्रकट करने का पूरा पूरा अधिकार होना चाहिए। परंतु जिन धाराओं के अनुसार श्री शंकरलाल पर तथा मुझ पर अभियोग चलाया गया है उसके अनुसार तो अप्रीति फैलाना भी अपराध है। इस धारा के अनुसार चलाये गये कितने ही मुकदमों की जांच मैंने की है और मैं जानता हूं कि भारत के कितने ही बड़े से बड़े देशमान्य लोगों को इस धारा की रू से सजायें दी गई हैं। और इसलिए इस धारा के अनुसार मुझपर अभियोग चलाया जाना मैं अपने लिए बड़ी इज्जत की बात समझता हूं। ऊपर मैंने अपने अप्रीति के कारणों की रूपरेखा संक्षिप्त में दिखाने की कोशिश की है। जब किसी भी अधिकारी अथवा हाकिम के आतखास के प्रति मेरा वैरभाव नहीं, फिर सम्राट् के प्रति तो मेरे दिल में अप्रीति हो ही कैसे सकती है। पर जिस सरकार ने पिछली समस्त सरकारों की अपेक्षा समष्टिरूप से भारत का अहित ही अधिक किया है उसके प्रति अप्रीति को तो मैं एक अच्छी बात मानता हूं। इस अंग्रेजी राज में भारत के पौरुष का जितना लोप हुआ है उतना इससे पहले कभी न हुआ था। इसलिए ऐसी सरकार के प्रति मनमें प्रीति रखना मैं पाप मानता हूं। और इसलिए इस बातपर मैं अपना अहोभाग्य मानता हूं कि उन लेखों में, जो कि मेरे खिलाफ सबूत के तौर पर पेश किये गये हैं जो कुछ लिखा गया है उसे मैं लिख सका।

सच पूछिए तो मैं यह मानता हूं कि जिस अस्वाभाविक स्थिति में आज इंग्लैंड और हिन्दुस्थान स्थित है उसमें से निकल जाने का मार्ग अर्थात् असहयोग का मार्ग दिखा कर मैने दोनों की सेवा ही की है। मेरी नम्र सम्मति मैं तो बुराई के साथ असहयोग करना मनुष्य का वैसाही कर्तव्य है जैसा कि नेकी के साथ सहयोग करना। परन्तु आजतक तो दुनिया में बुराई करने वाले के साथ ज्ञानपूर्वक हिंसा का अवलंबन करके ही असहयोग करने की प्रथा चली आ रही है। मैं अपने देशवासियों को यह दिखाने का प्रयत्न जी तोड़कर कर रहा हूं कि हिंसा-वृत्ति के द्वारा किया गया असहयोग सब मिलाकर दुनिया में बुराई को घटाने के बदले बढ़ाने का साधन बन जाता है, और बुराइयों के पोषण करने के एक मात्र साधन हिंसा का तो बिलकुल त्याग करना ही उचित है। ऐसी हिंसावृत्ति में उस दंड की स्वेच्छापूर्वक स्वीकृति का समावेश हो जाता है जो बुराई के साथ असहयोग करने से भोगना पड़ता है। अतएव मैं यहां इसलिए उपस्थित हूं कि कानून की दृष्टि में जो जान-बूझ कर किया हुआ अपराध माना गया है परंतु मेरी दृष्टि में जो एक सर्वोपरि धर्म है उसके लिए मैं कड़ी से कड़ी सजा आपसे चाहूं और उसे आनंदपूर्वक सर चढ़ाऊं। जज साहब, आपके लिए अब यही एक गति है कि यदि आप यह मानते हों कि जिस कानून के व्यवहार करने का काम आपके सिपुर्द हुआ है वह कानून ही यदि वास्तव में बुरा है और मैं दरअसल निरपराध हूं तो आप अपना इस्तिफा पेश कर दें और इसतरह पाप में हाथ बटाने से बाज आवें। और यदि इसके प्रतिकूल आपका यह विश्वास हो कि जिस शासनपद्धति को चलाने और कानून का व्यवहार करने में आप सहायता दे रहे हैं वह भारत की प्रजा के लिए हितकर है और इसलिए मेरे कार्य सार्वजनिक हित को हानि पहुंचाने वाले हैं तो आपको चाहिए कि आप मुझे कठोर से कठोर दंड दें।

(अंग्रेजी से अनुवादित) मोहनदास करमचंद गांधी

जेल में श्री गांधीजी से बातचीत

'नवजीवन' (गुजराती) के प्रकाशक श्री० इन्दुलाल याज्ञिक एकदिन गांधी जी से साबरमती जेल में मिले थे। उनके लिए वहां सब तरह के आराम और सुविधा की व्यवस्था की गई है। बातचीत के सिलसिले में श्री गांधीजी ने कहा "मेरा तो एक ही सन्देश है, और वह है खादी। तुम हाथों में खादी रक्खो, बस मैं तुम्हारे हाथों में स्वराज्य सौंप दूंगा। अन्त्यजों का उद्धार भी इसीमें आ जाता है तथा हिन्दू-मुसलमान की एकता का भी आधार खादी ही है। शान्ति का भी वह भारी साधन है। इसका अर्थ यह नहीं है कि आज मैं धारासभा तथा अदालतों का बहिष्कार नहीं चाहता हूं। पर लोग सभासदों तथा वकीलों के प्रति द्वेष न रक्खें। इसलिए मैं चाहता हूं कि धारासभा के सभासदों तथा वकीलों की मदद से भी खादी का काम आगे बढ़ावें। नरम दलवालों को खूब खुश रखना। इनके साथ प्रेम और दोस्ती बढ़ाना। जिस क्षण वे निर्भय हो जायंगे उसी क्षण वे हमारे हो हैं। अंगरेजों के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए।"

श्री मालवीय जी के विषय में बात निकलने पर उन्होंने कहा-"वे तो अब बहुत-कुछ कर दिखावेंगे। उन्होंने मुझे कहा है कि जब आप जेल में चले जायं तब मेरा काम देख लीजिएगा।"

महात्माजी का आखिरी संदेश

अदालत से बिदा होते समय महात्माजी ने कहा—

"मुझे अब संदेशा देने की आवश्यकता नहीं। मेरा संदेश तो लोग जानते ही हैं। लोगों से कहिए कि हरएक हिन्दुस्तानी शांति रक्खे। हर प्रयत्न से शांति की रक्षा करे। केवल खादी पहनें और चर्खा कातें। लोग यदि मुझे छुड़ाना चाहते हों तो शान्ति के ही द्वारा छुड़ावें यदि लोग शान्ति छोड़ देंगे, तो याद रखिये मैं जेल में ही रहना पसंद करूंगा।"

कार्य-समिति के प्रस्ताव

१७ मार्चको सत्याग्रहाश्रम में कार्यसमिति की बैठक हुई। उसमें इस आशय के प्रस्ताव पास हुए—

(१) गांधीजी की गिरफ्तारी पर शान्ति धारण करने के लिए लोगों को धन्यवाद देना। (२) गांधीजी की गिरफ्तारी से बारडोली और देहली के कार्यक्रम में अन्तर न पड़ना और रचनात्मक कार्यक्रम को स्वीकार करना। (३) सविनयभंग को शुरू करने की जल्दी न करना। (४) चरखा और शुद्ध खादी का सर्वत्र प्रचार करना। मियां छोटाणी तथा जमनालालजी बजाज को पूर्ण सत्ता दी जाय कि वे महाजनों से मिलकर खादी-प्रचार का उद्योग करें।

महात्माजी को सजा हो चुकने के बाद फिर कार्य-समिति बैठक हुई। उसमें यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि महात्माजी को जेल क्या हुई उसके सर्वत्र विश्वासपात्र और प्यारे नेता की रहनुमाई से वह वंचित हो गई। परंतु उसे इस बात पर हर्ष होता है कि भारत अपनी गुलामी की अवस्था में भी उनके द्वारा संसार को सत्य और अहिंसा का अपना प्राचीन सन्देश भेज रहा है।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, चैत्र वदी ६, सं. १९७८.

सेनापति जेल में

संसार का सारा उपलब्ध इतिहास इस एक ही शब्द में आ जाता है–'युद्ध'–मनुष्य का मनुष्य के साथ–भाई का भाई के साथ युद्ध। यह कभी अपने स्वार्थ के लिए, कभी अपनी आसुरी महत्वाकांक्षा की तृप्ति के लिए और कभी धर्म-तत्वों की रक्षा के लिए किया जाता है। पहले दो मनुष्य–जाति के लिए कलंकरूप हैं। उनसे उसके पशुभाव की वृद्धि, अतएव अधोगति, होती है। तीसरे से मानुषभाव का विकास होता है; अतएव उससे मानव–जाति का उत्कर्ष होता है और वह उसके लिए वरदान–रूप है। वह धर्मयुद्ध है।

आज भारत का अंगरेज सरकार के साथ धर्मयुद्ध शुरू है। यों तो स्वयं युद्ध शब्द में भी कुछ पशु-भाव भरा हुआ है। मनुष्यों में युद्ध कैसा? पर संसार अभी मनुष्यता के गौरव को कहां पहुंच पाया है? वह तो अभी नर–पशु ही बना हुआ है। पर हमारा तो धर्म–युद्ध है। हम मनुष्यों के शत्रु नहीं, न कोई मनुष्य हमारा शत्रु ही है। हम तो पापों और बुराइयों के दुश्मन हैं। हम प्रतिपक्षी का नाश नहीं चाहते, उसका तेजोवध नहीं चाहते। हम तो उसकी कुप्रथा को, उसके दुर्गुणों को, उसके पशु–भाव को, उसकी स्वार्थबुद्धि को मिटा देना चाहते हैं। हम यह बात स्वप्नमें भी नहीं भूलते हैं कि प्रतिपक्षी हमारा भाई है। वह हमारा प्रतिपक्षी केवल इसीलिए है कि हमारी समझ में वह गलत रास्ते जा रहा है और अपने स्वार्थ के लिए हम को भी बल–पूर्वक उसीमें घसीटता ले जा रहा है। हम नहीं चाहते कि जायं। हम अड गये। हमने कहा, हम तुम्हारा साथ छोड देंगे, पर आगे एक कदम न बढेंगे। वह अपनी सत्ता और पशुबल का जोर दिखाता है; हम सत्य और अहिंसा अर्थात् प्रेम के बल से उसका सामना कर रहे हैं। वह हमें नाना प्रकार के कष्ट देता है और हम उन्हें सहन करते जाते हैं। इसलिए नहीं कि हम कमजोर हैं, हमारी कलाई में ताकत नहीं, बल्कि इसलिए कि शरीर बल पशु–बल है। वह समझता है, इन कष्टों से डर कर, घबडा कर, ये झुक जायंगे। हम मानते हैं, हमारे प्रेम–बल से, हमारे कष्ट–सहन से, हमारे त्याग से, इनकी मति ठिकाने आ जायगी। आखिर तो मनुष्य हैं, दिल और दमाग रखते हैं। कभी तो उन्हें अपने स्वार्थ और अन्याय पर लज्जा आवेगी। क्राइस्ट के अनुयायी कहलाते हैं। कभी तो पशुभाव की जगह मानुषभाव की प्रधानता होगी। यदि एक व्यक्ति के प्रेम और अहिंसा–बल से शेर और बकरी एक घाट पानी पी सकते हैं तो इतने बडे भारतीय समाज का कष्ट–सहन क्या मनुष्य को भी मनुष्य नहीं बना सकता? यही अहिंसात्मक असहयोग–संग्राम है।

पर अब यहां की सरकार अपने पूरे बल का प्रयोग करने पर तुली हुई है। वह खिलाफत और पंजाब के पापों का प्रायश्चित्त नहीं करना चाहती। वह अपनी कु–शासन–प्रथा को हटाना नहीं चाहती। उसे अपने कानूनों, संगीनों, मशीनगनों और बम के गोलों का बडा अभिमान है। इन्हींको वह अपना अन्तिम और अमोघ शस्त्र समझती है। उसीके नशे में मस्त हो कर उसने हमारी सेना के अली–भाई, देशबन्धु दास, लालाजी, पं० मोतीलालजी नेहरू, मौलाना अबुलकलाम आजाद आदि अतिरथी–महारथियों को तथा कितने ही शूर सैनिकों को अपना बन्दी बना लिया है। ब्रिटिशसिंह को इतने निर्दोष शिकारों से तृप्ति न हुई। इनको तो वह पचा ही नहीं पाया था कि उसने सिंह–स्वभाव के अनुसार, उनके स्वादिष्ट खून से ललचा कर, अब की बार अत्यन्त पवित्र और निर्दोष शिकार पर अपना खूनी पंजा मारा है। उसने हमारे स्वराज्य की शान्ति–सेना के प्रधान सेनापति, भारत के अभिमान, भारतीय संस्कृति के सर्वोच्च जीवित प्रतिनिधि, तपोनिष्ठ महात्मा गांधी को अपने जेल का महमान बनाया है। आज वे उसकी छावनी में कैद हैं। ब्रिटिशसिंह और इंग्लैंड के स्वार्थी व्यापारी आज इसपर चाहे फूले न समाते हों; पर उन्हें याद रखना चाहिए कि यह शिकार पचने वाला नहीं है; सिंह के कठिन पेट को चीर कर बाहर निकल आने का दिव्य तपोबल और आत्मतेज उसमें है। उन्हें न भूलना चाहिए कि अपने कुशासन के सर्वनाश के लिए पिछले १५ वर्षों से जो महायज्ञ उन्होंने, शायद अपने अनजान में, आरम्भ किया है उसकी यह पूर्णाहुति है।

और इसके कुछ कुछ चिह्न दिखाई भी देने लगे हैं। माण्टेगू साहब के इस्तीफे का सम्बन्ध क्या यहां, और क्या विलायत में, गांधीजी की गिरफ्तारी से भी लगाया जा रहा है। लार्ड रीडिंग के इस्तीफे की भी राह बहुतेरे लोग देख रहे हैं। सूरत के उत्तरी प्रान्त के असिस्टंट कलेक्टर श्रीयुत शिवदासानी ने तो तुरन्त ही इस्तीफा देकर अपने स्वाभिमान और देश–प्रेम का परिचय दे दिया है। ये महाशय सविनय कानून–भंग के आन्दोलन का मुकाबला करने के लिए बारडोली में तैनात थे। आज वे अपने इस्तीफे में गांधीजी को 'इस युग के क्राइस्ट' लिखते हैं और कहते हैं कि ऐसी सरकार का नमक खाकर मैं अपने को कलंकित नहीं करना चाहता। इंडियन सोशल रिफार्मर (बम्बई के एक निष्पक्ष अंगरेजी साप्ताहिक पत्र) के सम्पादक श्री नटराजन् ने, गांधीजी से मतभेद होते हुए भी, महासभा में शामिल होकर काम करने का निश्चय प्रकट किया है। सर बी. सी. मित्र जैसे नरम दल के अग्रणी ने भी इस मौके पर सरकार की बुद्धिमानी पर सन्देह प्रकट किया है। यही हाल गांधीजी के विचारों के विकट विरोधी मदरास के 'न्यू इंडिया' का है, कौन्सिल आव् स्टेट के एक सभासद श्री के. वी. रंगास्वामी आयंगार ने इस पर अत्यन्त दुःख प्रकट किया है। संयुक्त–प्रान्त की धारा–सभा में भी एक सदस्य ने इसके विरोध में प्रस्ताव करने की सूचना की है। देश ने इस समय जो असाधारण शान्ति का परिचय दिया है, उससे भी सरकार की आंखें खुल जानी चाहिए। उसे यह भूल न जाना चाहिए कि क्षय बुरी तरह उसके पीछे पड गया है। इसकी तो अब एक मात्र 'औषधं जाह्नवी तोयं' और 'वैद्यो नारायणो हरिः' है। बस, उसे पुनर्जन्म की तैयारी करनी चाहिए। अबतक वह प्रधान–रूप से दमन की दवा पी रही है। अबतक उसने गांधीजी को छोड कर छोटे–मोटे कितने ही डोज चढाये। रोग कुछ कम न हुआ। चैतन्य के बजाय शिथिलता ही दिखाई दी। अब की बार उसने इस 'रिजर्व डोज' को भी पी डाला है। अच्छी बात है, देखके, इसका भी असर देख लें। हमारा तो खयाल यह है कि घबडाये हुए डाक्टरों ने असाधारण तेज डोज पिला दिया है। क्या पुनर्जन्म, अर्थात् मित्रों और बराबरी वालों के प्रजा–संघ के निर्माण, के लिए यही तो काफी न हो जाय?

श्री गांधीजी को जेल भेजना मानों सत्य, धर्म और अहिंसा को जेल भेजना है। उनको अदालत में देख कर क्राइस्ट, सुकरात, प्रह्लाद और मीरा बाई की स्मृति हठात् हो आती थी। श्री गांधीजी की शारीरिक स्वतन्त्रता को हरण करना मानों भारत के व्याकुल नर-नारियों की त्रिविध मांगों को ठोकर मारना है। सरकार से हमने बुरे से बुरे की आशा की है। अतएव इस घटना पर हमें आश्चर्य अथवा रोष तनिक भी नहीं। हां, सरकार के इस भ्रम पर दुःख अवश्य है कि यह सब आफत इसी गांधी की पैदा की हुई है। देश ने गांधीजी को जो आशा दिलाई है उससे उन्हें विश्वास है कि भारतवासी विधायक कार्यक्रम को प्रत्यक्ष कर दिखा के सरकार के इस भ्रम को शीघ्र ही उन्मूलित कर देंगे। उस दिन ब्रिटिश साम्राज्य के रखवाले और भारत की नौकरशाही के पुतले वर्तमान जगत् के इस एकमात्र अहिंसापरायण महापुरुष के तथा इन हजारों बे-गुनाह लोगों के साथ अन्याय करने के लिए प्रायश्चित करते हुए पश्चात्ताप के स्वर में कहेंगे–'भारतवासियो, हमारे अन्यायों और अत्याचारों को भूल जाओ' और यहां का प्रत्येक बालक प्रेम से गद् गद् होते हुए कहेगा–अजी वाह! आप हम तो भाई भाई हैं–आओ प्रेम से मिलजुल कर रहें। वह मिलन संसार में भरत-भेट का नवीन सशोधित संस्करण होगा और उस दिन केवल अखिल भारत को ही नहीं, बल्कि सारे संसार को 'किसान और जुलाहे' गांधी का अभिमान होगा तथा आसुरी सम्पत्ति के स्थान पर दैवी सम्पत्ति का साम्राज्य दिखाई देगा।

ह०

जनता का जवाब

"सरकार यह मानती है कि कर्ता-हर्ता मैं ही हूं। यदि मेरा नाश हो जाय या मैं लोप हो जाऊं तो सरकार और लोग आराम से रहें। ऐसी स्थिति में प्रजा की परीक्षा सरकार किस तरह कर सकती है? सरकार को यह कैसे मालूम हो सकता है कि लोग मेरी सलाह को समझते हैं या केवल मेरे इशारों पर चलते हैं? मुझे गिरफ्तार करके ही वह जनता की शक्ति की नाप कर सकती है।"

पूर्वोक्त शब्दों में गांधीजी ने इस बात का मर्म समझाया है कि वे क्यों गिरफ्तार किये गये हैं। आजतक हमने गांधीजी के कहने के अनुसार चलने का प्रयत्न किया। हमने गांधीजी पर असीम आशा रक्खी और गांधीजी के दिल में भी हमने अपने विषय में खूब आशा पैदा की। गांधी जी को लगा कि अब जनता में नवीन चैतन्य आ गया है: जनता स्वराज्य के लिए प्राणतक समर्पण करने के लिए तैयार है। यदि खिलाफत का फैसला न हो तो भारत की धर्मनिष्ठ प्रजा को जीवित रहने में आनन्द नहीं आ सकता। पंजाब जैसे अन्याय की पुनरावृत्ति न होने देने के लिए वह जो कुछ कर सकती है उसके करने को तैयार है। लोग अब इतने कायर नहीं रह गये हैं कि अपनी स्त्रियों की—माताओं की बे-इज्जती को सहन कर सकें। स्वराज्य के जन्मसिद्ध अधिकार का अन्त लोकमान्य के अवसान के साथ ही नहीं हो गया। इस धारणा के बल पर ही उन्होंने बारडोली में कानून का सविनय भंग करना चाहा था। इसी विश्वास के बल पर उन्होंने भारत की तरफ से वाइसराय को वह पत्र लिखा और चौरीचौरा के हत्याकांड से लोगों की तैयारी में त्रुटि देखते ही इसी विश्वास के बल पर अर्थात् लोग थोड़े ही दिनों में देश में आवश्यक अहिंसात्मक वायुमंडल फिर से तैयार करके स्वराज्य-प्राप्ति के लिए आवश्यक तैयारी कर लेंगे, सविनय भंग की सारी हलचल बन्द रखने की भी सलाह दी। यदि उनके दिल में लोगों की तरफ से निराशा ही होती तो कुछ चुने हुए लोगों को ही लेकर सरकार से टक्कर लेना उनके लिए बिलकुल आसान बात थी। पर इससे तो यही सिद्ध होता कि उन्हें स्वयं अपने तथा कुछ दूसरे लोगों के विषय में तो विश्वास है; परन्तु सारी जनता के विषय में वे निराश हो गये हैं।

मुसाफरी में हम रास्ते में ठहरकर उन्हीं लोगों की राह देखा करते हैं जिनके थक जाते हुए भी हमारे साथ चलने की आशा होती है। जो बिल्कुल थक जाता है उसको तो हम पंचतन्त्रवाले बैल की तरह त्याग कर देते हैं। सविनय भंग स्थगित कर देना इस बात का सूचक है कि गांधीजी का कितना विश्वास लोगों पर है। यही सरकार के लिए एक भारी बात हो गई है। इसीसे सरकार को उन्हें पकड़ना पड़ा।

पर यदि ऐसा विश्वास अकेले गांधीजी के ही मन में होता तो उन लोगों की बात का कुछ मूल्य होता जो उस विश्वास को गलत बताते हैं। बल्कि भारत के प्रत्येक प्रान्त के नेताओं के हृदयों में लोगों के प्रति ऐसा विश्वास पैदा हो चुका है। लोग अब कायर नहीं रहे, वे जाग्रत हो गये और राष्ट्र की आज्ञा के अनुसार काम करने के लिए उत्सुक खड़े हैं, इसी विश्वास से देशबन्धु दास जेल गये हैं। लालाजी भी पंजाबियों में ऐसा ही विश्वास देख कर कि चाहे कुछ हो जाय, पर हम ऐसे पेट के बल रेंगने वाले नहीं, जेल का सेवन कर रहे हैं। अलीभाई इसी यकीन से कि इसलाम की रक्षा के लिए मुसलमान लोग अपने प्राणों को भी कोई चीज न समझेंगे जेल के अपमान को मान समझ कर अपमान की घूंटें शान्ति के साथ पी रहे हैं। अलीभाई तो मानों अटल मूर्तिमती धर्मनिष्ठा ही हैं। धर्म के लिए उन्होंने अपनी सारी जिन्दगी अर्पित कर दी है। मौलाना अबुल कलाम आजाद भारत के साथ ही साथ सच्चे आजाद होने के लिए जेल गये हैं। श्री गंगाधरराव देशपाण्डे इसी विश्वास को साथ लेकर येरोडा में कारागृहवास भोग रहे हैं कि मेरे बाद मेरा करनाटक पीछे पांव न रक्खेगा। तथा श्री राजगोपालाचार्य, कोंडा वेंकटप्पया, डाक्टर राजन, आदि विद्वान् कार्यकर्ता भी इसी भरोसे पर जेल गये हैं कि मौका आने पर लोग अवश्य बल-सयंम का परिचय देंगे। पण्डित मोतीलालजी नेहरू भी ऐसे ही विश्वास पर जेल को महल मान कर उसमें सुख समझ रहे हैं कि मेरे पीछे हमारी एक भी हलचल बन्द न रहेगी, बल्कि लोग दूने उत्साह से सब काम चलावेंगे। ये समस्त नेता विद्वान्, व्यवहार-कुशल तथा सार्वजनिक जीवन में पूरी तरह सिद्धहस्त हैं। जनता ने सब को यह आशा दिलाई है कि वह अवश्य आवश्यकता के अनुसार काम करेगी। आरम्भ में तो इसके साथ ही साथ यह डर भी था कि लोग कहीं उलटा काम न कर बैठें; फिर धीरे धीरे वह कम होता गया। जितने लोग जेल गये हैं वे 'असहयोग की जय' बोलते हुए ही जेल गये हैं। अब 'असहयोग की जय' सिद्ध करने का अवसर सरकार ने हमें दे दिया है। यदि असहयोग की जय न हो तो न तो गांधीजी की ही जय हो सकती है और न हिन्दू मुसल्मान-एकता की ही।

महासभा के, असहयोग के, और गांधीजी के सच्चे जय जयकार करने का एक ही उपाय है। जिनकी हम जय बोलते थे उन्हें तो सरकार ने जेल में बन्द कर दिया है। इस दशा में उनकी जय तभी हो सकती है जब हम सब उन्हीं कामों में लग जायं जिन्हें वे कर रहे थे या करना चाहते थे। जब तमाम मुसलमान भाई खादी पहन कर असहयोग की दीक्षा लेंगे तभी अलीभाइयों की जीत समझी जायगी। इसी प्रकार गांधीजी की जय तभी

समझी जायगी जब असहयोग करते हुए पूर्ण शान्ति धारण करके क्या सहयोगी और क्या सरकारी सब लोगों के साथ प्रेम का व्यवहार करने में हम सफलता प्राप्त कर लेंगे। विदेशी कपडे पहन कर गांधीजी की जय बोलना अथवा शान्ति के अनन्य पुजारी गांधीजी के नाम पर अशान्ति कर बैठना तो गांधीजी की विडम्बना करने के बराबर है। उनकी सच्ची जय तो इसी बात में है कि हम सब लोग उनके बताये कार्यक्रम को पूरा करने में तत्पर हो जायं। सरकार को हमें बता देना चाहिए कि गांधीजी चाहे जेल में रहें चाहे बाहर, हमारे लिए दोनों बराबर हैं। गांधीजी को जेल भेज कर आपस में भेद डाल कर हुकूमत करने की आपकी पुरानी नीति अब नहीं चल सकती।

और ईश्वर की कृपा से इस बार देश के सामने कार्यक्रम भी रामबाण परन्तु अत्यन्त सादा है। अंगरेज सरकार का शासन-कार्य कोई भी मनुष्य चला सकता है; क्यों कि उसमें शुद्ध स्वार्थ और सुव्यवस्था है। हमारे कार्यक्रम के भी साथ शुद्धधर्म और सादगी है। अतएव वह भी उतना ही सुव्यवस्थित रीति से चलना चाहिए। एक मांटेगू के इस्तीफा दे देने पर इंडिया आफिस का काम चलाने वाला दूसरा कोई न कोई आदमी मिल ही जायगा और यदि पुरानी नीति को बदलने की जरूरत न हो तो उसीके अनुसार वह काम चला ही ले जायगा। उसी प्रकार हमें भी चाहिए कि जबतक सरकार अपना सुधार न करे तबतक असहयोग की हलचल को आगे बढाते ही चले जायं। एक ग्रामीण मनुष्य भी जो कि सच्चा विश्वास रखने वाला हो असहयोग की हलचल को चला सकता है।

इमारत को बनाने का काम उसे तोडने के काम की तरह विचित्र और जोशीला नहीं होता; पर उसकी कीमत अधिक से अधिक होती है। सरकार यह जानती है और इसीलिए तो उसने इस रचनात्मक कार्य में लग जाने तथा जनता को लगाने का निश्चय करने वाले गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया है।

तो अब हमें यह रचनात्मक काम गांधीजी जिस प्रकार चाहते हैं उसी प्रकार नियमित तथा तुरन्त कर डालना चाहिए। कितने ही अन्त्यजों को यह मालूम होता है कि हमारा दर्द तो अकेले गांधीजी को ही है। इन लोगों को हमें यह दिखा देना चाहिए कि हरएक भारतवासी और उसमें भी प्रत्येक असहयोगी अंत्यजों को अपने सगे भाई की तरह मानता है।

सरकार तथा सर्वसाधारण जब यह देखेंगे कि अली-भाइयों के और गांधीजी के जेल में होने पर भी हिन्दू-मुसलमान की एकता दूज के चांद की तरह बढ रही है तब लोगों के दिल का शक और डर तथा सरकार की लोगों पर अपनी सत्ता चलाने की आशा अंधियारे के चन्द्र की तरह क्षीण होती जायगी।

सरकार ने अहमदाबाद में अहमदाबाद के गांधीजी को पकडने और जेल भेजने की धृष्टता की है। ज्ञान-पूर्वक गम्भीर शान्ति रखकर केवल अहमदाबाद ने ही नहीं, बल्कि सारे भारत ने उसका जवाब दिया ही है। पर इतने से बस नहीं हो सकता। गांधीजी की गिरफ्तारी पर भारत के लोगों को विदेशी कपडे पहन कर फिरना कैसे सुहा सकता है? हर एक आदमी को सिर से पांवतक खादी के कपडे पहन कर सरकार को अच्छा उत्तर देना चाहिए। लोकमान्य जब मंडाले से पूना लौटे तब उनसे मिलने जाने वालों के लिए सरकार ने पहरा बिठा दिया। उसके जवाब में दूसरे ही दिन पांच हजार लोग लोकमान्य से मिलने गये! लोकमान्य से मिलने जाने वालों के नाम लिखना मानों पूना की मर्दुमशुमारी करना हो गया। सरकार को तुरन्त ही पहरा उठा देना पडा। गांधीजी को पकड कर सरकार जिस आन्दोलन को दबा देना चाहती है वह उनकी गिरफ्तारी पर भी, यही नहीं बल्कि गिरफ्तारी से ही, उलटा बढ निकले तो सरकार भौंचक रह जाय, उसे कबूल करना पडे कि आज का राष्ट्रीय नवजीवन अकेले गांधीजी का नहीं बल्कि सारी जनता का है। राष्ट्रीय देह में आज जो जीवन दिखाई देता है वह गांधीजी का पैदा किया हुआ बाहरी जोश नहीं है; वह तो भीतर से ही स्फूर्ति पाने वाला गरम और शुद्ध खून है। ऐसे शुद्ध लहू में विजातीय वस्तु अथवा पर-राज्य रूपी रोग-जन्तु के लिए स्थान हई नहीं। उसकी स्वाभाविक स्थिति तो स्वराज्य ही है।

(नवजीवन)

विद्यार्थियों के प्रति

प्यारे भाइयो,

तुम भारत के अभिमान, देश की आशा और राष्ट्र के भविष्य हो। तुम भारत-माता की गोदी के लाल हो। देखते हो न उस पर होने वाले अत्याचार। खिलाफत और पंजाब की कथा याद तो है न? तुम्हारी जननी जन्मभूमि आज शारीरिक और मानसिक गुलामी के कष्टसाध्य रोग से बुरी तरह पीडित है। क्या नैतिक, क्या धार्मिक, क्या आर्थिक, क्या शारीरिक और क्या राजनैतिक उसके प्रायः सभी अंग जर्जर हो गये हैं। वह करुणाभरी आंखों से तुम्हारे मुंह की ओर देख रही है। दादाभाई नवरोजी, लोकमान्य तिलक महाराज तथा महात्मा गोखले आदि ने भिन्न भिन्न उपायों से उसे आराम करने का भरसक प्रयत्न किया। उसी प्रयत्न में उन्होंने अपने प्राण भी दिये। अब की एक नामी वैद्य दक्षिण आफ्रिका से आया। भारत को गुलाम बनाये रहने में जिन स्वार्थियों का हित था उनकी एक टोली से वहां उसकी मुठ भेड हो चुकी थी। वह विजय-श्री से विभूषित हो कर यहां आया। उसने भारत की नाडी देखी। उसने अपना नया ही नुसखा लिखा। अनुपान भी निश्चित किया। वह नुसखा है असहयोग और अनुपान है अहिंसा। इसका प्रयोग होते ही भारत की नसों में खून दौडने लगा। चेहरे पर तेज झलकने लगा। नौकरशाही बिलबिला उठी। इसी अपराध में आज वह अनोखा वैद्य जालिमों के जेलखाने में कैद है।

क्या तुम इसका रहस्य समझते हो? हां, समझते न होते तो आज हजारों विद्यार्थी इन स्वतन्त्रता-मन्दिरों में तपस्या क्यों करते? तुमने खूब किया है और वह भारत का धन्वतरी यही आशा लेकर गया है कि अब भी तुम खूब करोगे-अरे, सुपुत्रों से कहीं माता की व्यथायें देखी जा सकती हैं?

पर देखते हैं, तुम लोगों में कुछ गलतफहमी फैल रही है। बारडोली के विधायक कार्यक्रम से मानों कुछ लोगों का जोश ठंडा पड गया है। वे समझ गये हैं कि अरे, यह तो सारी नीति ही बदल गई। कल एक बात कहते थे, आज दूसरी कहने लगे। पर बात ऐसी नहीं है। असहयोग का सिद्धान्त या नीति नहीं बदली गई है, सिर्फ उसका तरीका बदला गया है। असहयोग का असली कार्यक्रम तो वही है जो कलकत्ते में ग्रहण किया गया, तथा नागपुर और अहमदाबाद में भी मंजूर किया गया। उसके अनुसार आज भी पदवियों और पदकों का त्याग किया जा सकता है, विद्यार्थी सरकारी स्कूल-कालेजों को छोड सकते हैं, आदि। अबतक यह काम आक्रामक रूप में होता रहा। अब चौरीचौरा की दुर्घटना के बाद, बारडोली के रचनात्मक कार्यक्रम के अनुसार, उसीको रक्षात्मक रूप में करना है। आक्रामक रूप में वह तभीतक किया जा सकता था और है जबतक पूर्ण अहिंसामय वायुमण्डल हो। आज यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि देशमें मनसा, वाचा,

कर्मठा शान्तिमय परिस्थिति नहीं है। हां, यह सच है कि श्री गांधीजी की गिरफ्तारी के प्रहार को लोगों ने शान्तिपूर्वक सहन कर लिया है। पर यह तो निष्क्रिय शान्ति हुई। क्रियात्मक शान्ति या अहिंसा की कसौटी तो वही बारडोली का रचनात्मक कार्यक्रम है। हमारे कुशल कर्णधार की भी यही आज्ञा और एक मात्र इच्छा है कि देश का बचा बचा इसीमें जुट पड़े। सो महासभा तथा देश के हित के नाम पर क्या तुम लोगों से यह आशा न की जाय कि तुम हजारों की तादाद में निकल कर इस कार्यक्रम को देखते देखते पूरा कर डालोगे? क्या व्यथिता, पीड़िता माता की यह पुकार तुम लोगों को विधायक कार्य्य का महत्व न समझा सकेगी? क्या स्वराज्य की रक्षा बिना विधायक कार्य करने की शक्ति का विकास किये हो सकेगी?

आजतक देश ने विघातक काम खूब कर दिखाया। सरकारी अदालतों और स्कूल-कालेजों की इज्जत आज कुछ भी नहीं है। वहां जाने वालों का सिर अपने आप नीचा हो जाता है। यह क्या कम बात है? हां, भारत को इस बात का अभिमान है कि उसके युवक विद्यार्थियों ने बराबर उसकी पुकार सुनी है। बंगाल का ताजा स्फूर्तिकर दृश्य हमारी आंखों में नाच रहा है। हम एक इमारत को प्रायः ढहा चुके। अब हमें दूसरी, उससे अधिक उपयोगी, इमारत बनाना है। हमें राष्ट्रीय स्कूलों और पंचायतों का संगठन करना है। इसमें हमने अपनी विधायक शक्ति का परिचय दे दिया कि बस, सरकार की इमारत अपने आप ढह जायगी।

अहिंसा का रहस्य तो तुम समझ ही गये होगे। आज जिस अहिंसा का उपदेश महासभा के मंच से किया जा रहा है, और जिसके बिना स्वराज्य का प्राप्त होना और टिक रहना अगली दो चार पुश्तों तक असम्भव है, वह आदर्श अहिंसा नहीं, राजनैतिक अहिंसा है। आज देश ने एक समय तक ही उसके पालन करने का निश्चय दिखाया है। पर उस समय तक तो उसका पालन तन, मन और वचन से होना ही चाहिए। अनुपान में गड़बड़ होने से भला दवा कहीं अपना असर कर सकती है! इस दृष्टि से तो दवा की अपेक्षा अनुपान का ही महत्व विशेष है। उसके अभाव में दवा बिना मणि के फणि की तरह अथवा बिना गांडीव के अर्जुन की तरह बलहीन है।

तो, भाइयो, क्या तुम अहिंसा के आत्मिक कवच को धारण करते हुए अपने अटूट उत्साह और नई जवानी के शुद्ध खून का चमत्कार दुनिया को न दिखावोगे? यदि दिखाना है और भारत के इतिहास को बनाना है, उसके दिव्य तेज से संसार को चकाचौंध करना है, यदि यह समझते हो कि गांधीजी ने तुम्हारी और तुम्हारे देश की कुछ सेवा की है, उनके जेल जाने पर तुम्हारा हृदय बिलबिला रहा है, तो आओ, दुःख और मोह की झूठी कल्पनाओं को छोड़ कर, भय और निराशा के भूतों को ललकार कर, विधायक कार्यक्रम का बीड़ा उठा लो, और देखो, संसार में ऐसी कौनसी ताकत है जो तुम्हारे स्वराज्य में रोड़ा डाल सकती है, जो तुम्हारी माता की गुलामी के बन्धन सदा के लिए तोड़ने से तुम को रोक सकती है, जो खिलाफत और पंजाब का निपटारा तुम्हारी इच्छा के अनुसार कराने से तुम्हें मना कर सकती है?

तुम्हारा मित्र—ह०

श्री गांधीजी का सन्देश

मेरे दिल में यह खयाल बराबर उठा करता है कि यदि मैं पकड़ा जाऊं तो लोग क्या करेंगे? अतिशय प्रेमी लोग प्रेम के वश हो कर यदि न करने लायक काम कर बैठें तो भारत का क्या हाल हो? खुद मेरी क्या हालत हो? सरकार के द्वारा किये गये खून की नदियां तो मुझे नहीं डरा सकतीं। पर मेरे नाम पर अथवा मेरे लिए दी गई एक गाली भी मुझे कड़ी चोट की तरह मालूम होती है। मेरी गिरफ्तारी पर पागल हो उठना तो मानों मुझे लांछन लगाना है। मुझ पर आधार रख कर भी लोग आगे नहीं बढ़ सकते। लोगों की उन्नति की सम्भावना तो इसी बात में है कि वे मेरे बताये मार्गों को समझ कर उनके अनुसार चलें।

अतएव मैं यह चाहता हूं कि मेरे जेल जाने पर लोग शांति रक्खें और उस दिन आनन्द मनावें।

सरकार मेरी शत्रु नहीं। क्योंकि मेरे दिल में उसके प्रति रत्तीभर शत्रुता नहीं। पर सरकार का यह खयाल है कि कर्ता-हर्ता मैं ही हूं। यदि मेरा नाश हो जाय अथवा मैं लोप हो जाऊं तो जनता और सरकार सुख से रह सकें।

तो फिर जनता की परीक्षा सरकार किस तरह कर सकती है? लोग मेरी सलाहों को समझते हैं या केवल मेरी बातों में आ जाते हैं, यह सरकार को मालूम कैसे हो? मुझे गिरफ्तार करके ही वह हमारी शक्ति की नाप कर सकती है। लोग यदि डरकर और घबड़ा कर बैठ रहें अथवा खून-खराबी कर बैठें तो मानों सरकार की मनचाही बात हो जाय। उसके हवाई जहाज आस्मान से बम के गोले बरसावें, उसके डायर लोग लोगों पर गोलियां चलावें, उसके स्मिथ औरतों के बुरके उठावें, दूसरे अधिकारी लोगों से नाक रगड़ावें, उन्हें पेट के बल रेंगावें, कोड़े फटकारें। ये दोनों परिणाम बुरे ही हैं। इससे स्वराज्य हरगिज नहीं मिल सकता। हां, दूसरे देशों में शस्त्रास्त्र के बल पर राज्यों की उथलपुथल हुई है, पर भारत उस प्रयोग के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने का सामर्थ्य नहीं रखता। कई बार मैं यह बात सिद्ध कर चुका हूं। तो, मेरे जेल जाने पर लोग क्या करें? अब तो इसका उत्तर सहल है—

(१) लोग पूरी तरह शांति रक्खें। (२) हड़ताल हरगिज न करें। (३) सभायें भी न करें। (४) बल्कि लोग अधिक जाग्रत हो जायं। (५) तमाम सरकारी मदरसे बन्द हो जाने की आशा मैं जरूर रक्खूंगा। (६) वकील लोग अधिक संख्या में वकालत छोड़ें। (७) जो मामले अदालतों में दरपेश हैं उनके फैसले पंचायतों में करावें। (८) अनेक प्रजाकीय पाठशालायें तथा विद्यालय खुलें। (९) प्रत्येक नर-नारी विदेशी कपड़े का त्याग कर के केवल हाथकती और हाथबुनी खादी का ही इस्तैमाल करें और जो विदेशी कपड़ा घर में हो उसको भी या तो विदेश भेज दें या जला डालें। (१०) सिपाहियों में न कोई भरती हों और न सरकारी नौकरी के लिए उम्मीदवार हों। (११) जो अपनी औकात बसर करने की कुव्वत रखते हों वे सरकारी नौकरियां तथा सिपाहीगरी भी छोड़ दें। (१२) प्रजाकीय कामों के लिए जितनी जरूरत हो उतना धन दें। (१३) खिताबों का त्याग अधिक हो। (१४) जिन्होंने धारासभा के लिए उम्मीदवार होने का विचार किया हो वे उसे छोड़ दें और जो गये हैं वे इस्तीफा देदें। (१५) जिन मतदाताओं ने अभी निश्चय न किया हो वे निश्चय करें कि धारासभा में किसी को भी भेजना पाप है। (१६) लोग यदि ऐसा करके निश्चय करें तो एक वर्ष तक भी लोगों को स्वराज्य की राह न देखनी पड़े।

लोगों के इतना बल प्रकट करने पर स्वराज्य मिला ही हुआ रक्खा है। यदि ऐसा स्वराज्य मिले तो जनता के हुक्मनामे के द्वारा मैं जेल से छूटूं।

मोहनदास करमचंद गांधी

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय, चूड़ी ओल, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन-कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित ॥

हकीमजी के प्रति

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—चैत्र बदी १३, संवत् १९७८, रविवार, सायंकाल, २६ मार्च, १९२२ ई० | अंक ३२

लौकिक अदालत में अलौकिक पुरुष

धर्म अधर्म के कैदखाने में

(पहली पेशी)

इजलास में

शनिवार ता. ११ मार्च को गांधीजी का मुकदमा मजिस्ट्रेट श्री ब्रुकन आइ. सी. एस्. के इजलास में पेश हुआ। कमिश्नर के दफ्तर में अदालत लगी थी। यह स्थान शहर के बाहर छावनी में है। साबरमती से वहां रेल के द्वारा आसानी से जाया जा सकता है। मुकदमे की बात गुप्त रक्खी गई थी। तो भी कितने ही दर्शक मजिस्ट्रेट की इजाजत ले कर आ पहुंचे थे। डि० सु० पुलिस श्री हेली, बम्बई हाईकोर्ट के रजिस्ट्रार श्री दीनशा बरछा, अहमदाबाद के जिला मजिस्ट्रेट श्री चेटफील्ड एक सब इन्स्पेक्टर और एक खुफिया पुलिस के कर्मचारी इन पांच आदमियों की गवाहियां करवाई गई अर्थात् सरकार पक्ष की ओर से हुईं। दो मसले थे—(१) यह सिद्ध करना कि सम्पादक श्री गांधीजी थे और (२) लेख राजद्रोह फैलाने की नीयत से लिखे गये थे। इन्हींको साबित करने के लिए ये गवाहियां ली गई थीं तथा 'यंग इंडिया' के लेख पढे गये थे। दोनों मसले इतने मामूली थे कि उनके लिए कितने ही कीमती घण्टे व्यर्थ ही खर्च किये गये-सिर्फ जाब्ता कार्रवाई पूरी करने के लिए। स्वयंसिद्ध बात को सिद्ध करने के लिए इतना समय लगाना अनावश्यक नहीं तो वृथा है? तमाम कार्रवाई में बनावटीपन और दिखाव भरा हुआ था। मजिस्ट्रेट ने अपने मित्रों, साथियों और अफसरों के बयान लेते समय जिस शान और तटस्थ भाव का अवलम्बन किया वह देखते ही बनता था। इसी प्रकार इस बात का खयाल न करते हुए कि इस समय न्यायाधीश कौन पुरुष है, न्यायासन के प्रति गवाहों ने भी जो अदब और सम्मान दिखलाया वह भी एक देखने की बात थी। शायद यह तो रिवाज की बात है, और जो लोग दिनरात ऐसे ही काम करते रहते हैं उन्हें उसका अभ्यास पड जाता है। परन्तु यह दृश्य चाहे कितना ही रौबदार, गम्भीर और शानो-शौकत वाला दिखाई देता हो; पर एक बाहरी आदमी को तो वह अनावश्यक, अप्रासंगिक और अस्वाभाविक ही मालूम होता है।

"किसान और जुलाहा"

जब श्री गांधीजी से उनका पेशा पूछा गया, उन्होंने धीमे, स्पष्ट और सजीव स्वर में कहा 'किसान और जुलाहा'। मजिस्ट्रेट मानों जरा चौंके; क्योंकि जवाब कुछ अ-साधारण था। लिखने के पहले वे जरा रुके, शायद इस बात का निश्चय कर लेने के लिए कि गांधीजी वास्तव में यही लिखाना चाहते हैं। पर वे शायद ही इस बात को जानते हों कि श्री गांधीजी के कर्म और जीवन के सिद्धान्त का सारा रहस्य इन तीन शब्दों में आ जाता है और वे पश्चिम वालों के द्वारा होने वाली भारत की साम्पत्तिक लूट और भारत में छाई हुई पश्चिमी सभ्यता और पश्चिमी जीवन के खिलाफ भारत के उठाये झंडे के ध्येय-वचन हैं।

पारस्परिक सद्भाव

श्री गांधीजी की गिरफ्तारी और मुकदमे के सम्बन्ध में जो सब से बडी ध्यान जाने योग्य बात है वह यह कि दोनों पक्षों में पूरी पूरी शान्ति और सद्भाव रक्खा गया। ऐसा मालूम होता है कि श्री गांधीजी के सौजन्य और अहिंसावृत्ति के द्वारा सारी अदालत का वायुमंडल तथा वे लोग जिनका साबका उनसे पडा, उन्हीं भावों से आच्छादित हो गये थे। अहमदाबाद इस बात में विशेष भाग्यवान् मालूम होता है जो उसे जिला मजिस्ट्रेट श्री चेटफील्ड तथा डि० पु० सु० श्री हेली जैसे उम्दा हाकिमों की जोडी प्राप्त है। श्री गांधीजी की गिरफ्तारी के समय किसी प्रकार सत्ता का बल नहीं दिखाया गया। श्री हेली आश्रम के बाहर ही खडे रहे। उनके साथ सिर्फ एक ही आदमी था। कहां उनकी वह फौजी वर्दी, और कहां उनका शान्त चेहरा और नम्र व्यवहार! जब वे श्री गांधीजी और श्री बैंकर को मोटर में जेल की ओर ले गये तब यह मालूम ही नहीं हो पाया कि यहां किसी की गिरफ्तारी हुई है। ऐसा मालूम हुआ मानों वे किसी मित्र के साथ कहीं गये हों। इसी प्रकार अपनी गवाही खतम हो जाने के बाद बयान देते समय श्री चेटफील्ड के व्यवहार में जो सज्जनता और शिष्टता दिखाई दी उससे अदालत के प्रत्येक आदमी का दिल झुक गया। यह सब अनुभव हमें सिखलाता है कि व्यक्ति राज-तंत्र

से पृथक् किस प्रकार है तथा इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण दिखाता है कि राजतंत्र के साथ घोर युद्ध करते हुए भी उसके चलाने वाले लोगों के साथ किस प्रकार दुर्भाव या द्वेष नहीं रक्खा जा सकता है। उससे यह भी शिक्षा मिलती है कि किस प्रकार अंग्रेज और हिन्दुस्तानी दोनों एक दूसरे के हृदय के गुणों की कदर कर सकते हैं। इससे यह देखने की उत्सुकता बढ गई कि वर्तमान कुशासन के दूर हो जाने तथा स्वराज्य स्थापित होने पर यह गुणग्राहकता ठीक ठीक और अच्छी तरह बढ रही है। (यंग इंडिया)

(दूसरी पेशी)

मंगल दिन

गत १८ मार्च शनिवार भारत और बिरतानिया दोनों के लिए मंगल दिवस था। भारत के लिए तो इस तरह कि उस दिन भारत की एक पवित्र से पवित्र आत्मा सत्य और धर्म के लिए, विश्व की सेवा के लिए, बालवेदी पर कुरबान हुई ब्रिटेन के लिए उसकी दृष्टि में इस तरह कि उसकी आंख का कांटा, उसके स्वार्थ का अतएव उसके साम्राज्य का शत्रु उसका कैदी हो गया। अब वह सुख की नींद सोवेगा। पर हमारी दृष्टि में इसलिए कि उसकी इस आसुरी सरकार की नींव का आखरी पत्थर भी गिर पड़ा तथा उसके पापों के अन्त होने का और उसके सच्चे कल्याण का शिलारोपण महोत्सव उस दिन दौरा जज ब्रूमफील्ड के हाथों से हो गया। ब्रिटेन की दृष्टि वर्तमान पर है; हमारी आसन्न भविष्य पर। निस्संदेह उस दिन भारत का सिर संसार में ऊंचा हो गया। देवता आकाश में इस आर्यभूमि के गौरव को देख कर फूले न समाये होंगे। शैतान के घर भी मंगलाचार हुए होंगे। पर इस अवसर पर हमारे हृदय से तो यही प्रार्थना निकलती है—

मंगलं दिशतु नो विनायको मंगलं दिशतु नः सरस्वती।
मंगलं दिशतु नो महेश्वरो, मंगलं दिशतु नः समुद्रजा।

ब्रिटिश साम्राज्य मुल्जिम

भारत के हित के लिए अंगरेज कूटनीतिज्ञों के बनाये कानून के अनुसार महात्मा गांधी पर राजद्रोह अर्थात् अंगरेज सरकार के प्रति अप्रीति फैलाने का इल्जाम लगाया गया था। एडवोकेट जनरल ने गांधीजी के अपराध की गम्भीरता अदालत को समझा कर उन्हें इतनी और ऐसी सजा देने की सलाह दी जिससे दूसरे लोगों को नसीहत मिले। गांधीजी ने अपना जबानी भाषण शुरू किया, उस समय ऐसा मालूम होता था कि मानों अदालत के रूप में ब्रिटिश साम्राज्य मुल्जिम के तौर पर खड़ा है और महात्मा गांधी उस पर असत्य, अन्याय, अत्याचार और अधर्म का आरोप सारे संसार के सामने एक देवदूत की तरह कर रहे हैं। उनका लेखी बयान मानों ब्रिटिश-साम्राज्य के खिलाफ ईश्वर की ओर से एक अत्यन्त निर्मलहृदय, पवित्रात्मा साधु की आंखों देखी गवाही थी। इस लौकिक मुकदमे का तो फैसला अंगरेजी अदालत में उसी दिन हो गया। अब ईश्वर के दरबार से देखें क्या फैसला होता है? हमारी तो परमात्मा से यही प्रार्थना है कि यदि ब्रिटिश साम्राज्य अपना अपराध स्वीकार कर ले और क्षमा-प्रार्थी हो तो उसपर दया की जाय। केवल भारतीय जातियों के ही प्रति नहीं, बल्कि संसार की कितनी ही जातियों के प्रति उसने प्रत्यक्षतः और अप्रत्यक्षतः अपराध किये हैं। तो भी हम भारतवासी तो यही चाहेंगे कि इसे दण्ड के बदले सन्मति और सद्गति दे।

अपूर्व सत्यनिष्ठा

एडवोकेट जनरल ने अपने भाषण में कहा कि मुल्जिम ऊंची शिक्षा पाये हुए हैं। उनका जनता पर बड़ा प्रभाव है। उनके उपदेशों से बम्बई, मदरास और चौरी-चौरा के भयंकर हत्याकांड हुए हैं। अतएव उन्हें काफी सजा मिलनी चाहिए। गांधीजी ने अपने भाषण में कहा हां, एडवोकेट जनरल ने बहुत सच कहा है। उन हत्याकांडों का दोष-भागी मैं अवश्य हूं। मुझे अवश्य कड़ी से कड़ी सजा मिलनी चाहिए। उस समय दर्शकों को भ्रम होने लगा कि हम स्वप्न देख रहे हैं या स्वर्ग की अदालत में बैठे हुए हैं। सत्य की ऐसी कदर भला हरिश्चन्द्र की धरती पर भी न हो तो फिर कहां हो? पर ब्रिटिश साम्राज्य ने महात्मा जी की सत्यनिष्ठा की जो कदर की वह प्रकट ही है। "A valet cannot appriciat a hero." 'गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणो'। असत्य और कुटिलता जिस दुनिया की नस नस में भरी हुई है वह यदि सत्य और निर्मलता की कदर झट करने लगे तो कलियुग में सत्ययुग की झलक दिखाई देने लगे। स्वार्थ से जिनकी आंखें अन्धी हो गई हैं यदि वे सत्य की कदर तुरन्त कर लें तो स्वार्थ और सत्य की परिभाषा ही बदल देनी पड़े। 'सत्यमेव जयते' कहने का अधिकार तो इसी ईश्वर की क्रीड़ा-भूमि को है। गांधीजी की अपूर्व सत्यनिष्ठा देख आज भारत के अभिमान की सीमा न रहेगी। गांधीजी के बदौलत जगत् आज सत्य और धर्म के विषय में श्री-सम्पन्न हो गया है।

चमत्कार

दौरा जज ब्रूमफील्ड अदालत में आये तो बड़े रौबदौब के साथ; परन्तु महात्मा जी के पावित्र्य ने ऐसा जादू कर दिया कि वे लट्टू हो गये। शायद उनके लेखी बयान ने जज साहब की आंखें खोल दीं। उनके मुंह से गांधीजी की स्तुति निकलना चमत्कार नहीं तो क्या है? इस अवसर पर हमें गांधीजी के राजनैतिक प्रतिपक्षी माननीय श्री निवासशास्त्री का वह संस्कृत वचन याद आ जाता है जो उन्होंने अमेरिका के 'प्रेसिफिक सर्वे' नाम के पत्र में 'गांधी दि मैन' नाम के लेख के अन्त में उद्धृत किया था। उसका भावार्थ यह है कि व्रत, तीर्थाटन और पत्थरों की पूजा करने से तो बरसों में फल मिलता है पर साधुजन के तो एक दृष्टिपात मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है।

गांधीजी को एक ओर भारत में जहां बहुतेरे लोग 'आधुनिक बुद्ध' मानते हैं तहां यूरप अमेरिका में उनकी तुलना क्राइस्ट के साथ की जाती है। वे कहते हैं कि "अपने शत्रु पर भी प्रेम करो। तलवार को न छुओ; जो तलवार उठावेगा वह खुद ही उससे मर मिटेगा।" यह क्राइस्ट का उपदेश था। इसी झंडे को गांधी आगे बढा रहे हैं। सो चमत्कार यह कि उसी क्राइस्ट के अनुयायी कहलाने वालों के न्यायमन्दिर में आज, सत्य, अहिंसा और प्रेम-मूर्ति आधुनिक क्राइस्ट को राजद्रोह (!) के अपराध में सजा दी जाती है! जिस सिद्धान्तों के लिए क्राइस्ट सूली सूली मूली पर चढ गया उन्हींकी हत्या इस तरह दिन दहाड़े अपने अनुयायियों के द्वारा होते-हुए देखकर उस ईश्वर-पुत्र की आत्मा को कितना दुःख होता होगा। पर 'स्वार्थी दोषं न पश्यति।'

कानून के अधीन

जज साहब ने अपने फैसले में फरमाया, मैं तो आपको एक कानून के अधीन मनुष्य मान कर सजा देता हूं। बहुत अच्छा, आपका कानून है, दे दीजिए। पर हम पूछते हैं क्या यह कानून भारत की प्रजा का बनाया हुआ है? जिस कानून के द्वारा प्रजा की इच्छा के खिलाफ उसका प्रजात्व कुचला जाता हो उसे मानने के लिए प्रजा बाध्य है? देश का कानून देश के धर्म से भिन्न नहीं हो सकता। राज्य की आज्ञा प्रजा की आज्ञा से भिन्न नहीं हो सकती। राज्य का हित अथवा द्रोह प्रजा के हित अथवा द्रोह

से विरुद्ध नहीं हो सकता। क्या भारत की प्रजा महात्मा गांधी को एक देवता की तरह नहीं पूजती? क्या उन्होंने सचमुच राजद्रोह अर्थात् प्रजाद्रोह किया है? फिर तीस करोड प्रजा के अधिनायक को जेल भेज देना जबरदस्ती और प्रजा का गम्भीर अपराध नहीं तो क्या है? क्या ऐसी जालिम सरकार का अन्त या सुधार कर देना प्रजा का धर्म नहीं है?

'माकबूल आदमी'

अंगरेजी सरकार पर भारत का यह आरोप है कि उसके द्वारा भारत का धन चूसा जा रहा है। उसका एक नमूना खुली अदालत में देखने को मिला। एडवोकेट जनरल ने श्री शंकरलाल बैंकर को सजा देने के विषय में भाषण करते हुए कहा—ये धनवान् आदमी है। इससे जुरमाने में एक अच्छी रकम लेनी चाहिए। इधर गांधीजी का अपने लेखी बयान में डंके की चोट सरकार पर भारत को चूसने का आरोप करना और इधर अदालत में ही उसका सबूत मिलना कैसा सुन्दर संयोग है!

एक पहेली

गांधीजी पर अपराध एक राजद्रोह का; उसके सबूत में तीन लेख पेश किये गये। जज ने हरएक लेख के लिए दो दो वर्ष की सजा दी। यदि १० लेख पेश किये जाते तो शायद बीस वर्ष की सजा ठीक होती। क्या जज साहब के गांधीजी-विषयक आदर-दर्शक उद्गारोंमें और सजा देने के इस विशिष्ट प्रकार में असंगत नहीं है? क्या यह एक पहेली नहीं है? यदि यह दण्ड सत्यनिष्ठा, अहिंसापालन, और देशभक्ति का ही पुरस्कार हो तो जज साहेबने केवल छः वर्ष सादी कैद की सजा देकर गांधीजीका अपमान किया है। रोमन साम्राज्य का जो अपराध क्राइस्ट से किया था उससे कम अपराध शायद गांधीजी ने ब्रिटिश साम्राज्य का नहीं किया है। क्या वर्तमान सभ्य सरकार सीजर के इतना भी न्याय नहीं कर सकती?

जनता की भक्ति

सजा सुना देने के बाद जनता का भक्ति-प्रवाह उमड पडा। उसने प्रेमाश्रु से गांधीजी के चरण पखारे। अंगरेजी न्याय ने जिसे अपराधी बताया भारत की जनता उसी के पैर पूजती है। जो सरकारी वकील अदालत में उन्हें अपराधी सिद्ध करता है वही उस अपराधी को सिर नमाता है। कानून, न्याय और न्यायालय की क्षुद्र कृत्रिमता और इससे अधिक क्या दिखाई दे सकती है? जो अंगरेजों के कानून द्वारा स्थापित सरकार का कैदी है वही आज भारत की तीस करोड प्रजा का हृदय सम्राट् है।

ब्रह्मानन्द

गिरफ्तारी के बाद और खास करके सजा सुनने के बाद गांधीजी को जितना प्रसन्न लोगों ने देखा उतना शायद ही कभी देखा हो। उनके कितने ही आत्मीय और सखा अधीर और विकल हो उठे थे। वे अपने प्रेम के आवेग को न रोक सके वियोग के समय आंखें अपना सर्वस्व गांधीजी को अर्पण कर रही थी। पर वे अविचल और प्रसन्न ही नहीं बल्कि आनन्दित थे। मानों उन्हें परमपद मिल गया, ब्रह्मानन्द मिल गया। वे लोगों को शान्ति और हर्ष के साथ उत्साहित कर रहे थे। वह दृश्य अलौकिक था। सरकार और कुछ कुछ लोग यह समझते हैं कि यह स्वराज का प्रयत्न भी गांधीजी का ही है। अब लोग सरकार की इस भूल को अच्छी तरह सिद्ध कर दिखावेंगे। शायद इस खयाल से उन्हें इतना आनन्द हुआ हो। गांधी के प्रयत्न से मिला स्वराज तो गांधी-राज होगा। अब तो स्वराज केवल लोगों के ही प्रयत्न से मिलेगा। अतएव वह सच्चा और प्रजाका स्वराज होगा। उसी स्वराज्य की आशा से मैं जेल से मुक्त हो कर स्वतन्त्र भारत में जल्द ही पैर रक्खूंगा। शायद इस विचार से उन्हें इतना हर्ष हुआ। जबतक पाप का घड़ा पूरा भर नहीं जाता तबतक पापी का अन्त नहीं होता। शिशुपाल ने जबतक सौ गालियां नहीं दे दी तबतक कृष्ण का सुदर्शन नहीं चला। रावण ने सती सीता को चुराकर जबतक घोर पातक नहीं किया तबतक उसका सर्वनाश नहीं हुआ। दुर्योधन ने साध्वी द्रौपदी का भरी सभा में अपराध कर के अपने पाप से भूमंडल को कँपा नहीं दिया तबतक उसके विनाश की सामग्री तैयार नहीं हुई। हजरत ईसा को सूली पर चढा कर सीजर ने अत्याचार की पराकाष्ठा नहीं कर दी तबतक रोमन साम्राज्य के अन्त की बुनियाद नहीं पड़ी। इसी तरह जबतक गांधीजी जैसे पवित्रमूर्ति साधुपुरुष विश्व-मित्र को कैद करके इस वर्तमान सरकार ने अपने पापों की परमावधि नहीं कर दी थी तबतक शायद गांधीजी को इसके शीघ्रनाश या शायद के विषय में शंका रही होगी। पर अब उनके आनन्द का पार न रहा। जो हो। सरकार आज चाहे माने या न माने; पर अब यह ईश्वर-निर्मित है कि उसे अपने पापों का प्रायश्चित्त शीघ्र ही करना पडेगा। मनुष्य का कानून चाहे बदला करें यहां चाहे पुण्य के लिए सजा और पाप के लिए पुरस्कार मिलता रहे—पर ईश्वर के नियम अटल हैं। हमारी तो एक मात्र यही प्रार्थना है की ईश्वर, तू पाप को तो संसार से दूर कर दे पर पापी पर दया कर। कम से कम तेरे राज्य में तो दण्ड-विधान न होना चाहिए। और इसलिए हम भारतीयों की तो यही मंगल कामना रहा करती है—

> "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः
> सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्."

गांधीजी को कैसे छुडा सकते हैं?

महात्मा गांधी को सजा क्या दी, सरकार ने हमारे आजादी और आत्मसम्मान के साथ रहने के अधिकार को चुनौती दी है। इस कार्य के द्वारा सरकार ने केवल भारत की आजादी को ही नहीं बल्कि सारे संसार की आजादी को धमकी दी है। क्या साम्राज्य सत्ता मनुष्यजाति को गुलामी के बन्धन में जकडा रखने पावेगी? भारत को इसका जवाब दिये बिना दूसरी गति नहीं। संसार की आंखें आज हमारी तरफ लग रही हैं और हमारे पूर्वजों की आत्मायें उत्सुकता के साथ हमें निहार रही है। आज एक एक सच्चे भारतवासी के घर की छत से सत्य की ऊंची आवाज उठे और वह इस अन्यायी और दुष्ट सरकार से अपनी सहायता हटा ले। आज देश की इज्जत और आसन्दा नस्ल की आजादी खतरे में है और हरएक शख्स फिर चाहे वह अंगरेज हो या हिन्दुस्तानी जो इस सरकार की मुल्की या फौजी नौकरी कर रहा है, मनुष्य जाति के प्रति अत्यन्त घृणित अपराध करने का अपराधी है। तमाम सरकारी मुलाजिम अपनी अपनी नौकरी छोड दें। तभी वे यह साबित कर पावेंगे कि वे ईश्वर को मानते हैं। सब लोग विदेशी कपडों को छोड दें और खादी पहनें। विदेशी कपडों की तमाम दुकानें बन्द हो जायं। महासभा के एक करोड नये सदस्य बनावें, पूर्ण अहिंसा का पालन करें और वास्तविक और सच्ची हिन्दू-मुसलमान-एकता को दृढ करें। इस तरह जहां हमने संगठन किया कि ईश्वर चाहेंगे तो छः ही महीने में हम महात्मा गांधी को तथा भारत-माता के दूसरे हजारों हिन्दू और मुसल्मान सपूतों को छुडा लायेंगे, जो अपने देश और धर्म के लिए जेलों में कष्ट-भोग रहे हैं।

अनसूया साराभाई

श्रीमती कस्तूर बा गांधी का सन्देश

प्रिय भाई-बहनो

गांधीजी को सरकार ने छः वर्ष की सजा दी है। इसका आघात मुझे न पहुंचा हो, यह तो मैं कैसे कह सकती हूं; परन्तु मुझे केवल इसी खयाल से शांति हो रही है कि मेरे देश-भाई तथा बहनें उनके उपदेश को हृदय में धारण करके तदनुसार काम करेंगे और उन्हें बहुत जल्दी छुड़ावेंगे।

जिन्हें मेरे दुःख के साथ कुछ भी सहानुभूति हो तथा गांधीजी के प्रति आदर-भाव हो वे उनके आजादी तथा शांति के संदेश को निबाहें और बहनों से मेरी प्रार्थना है कि वे विदेशी कपड़ों का त्याग करें, खादी पहनें तथा चरखा चलावें। मुझे आशा है कि बारडोली तथा दिल्ली में जो कार्यक्रम तैयार हुआ है उसीके अनुसार सबलोग काम करेंगे; क्योंकि वह काम भी सत्याग्रह के समान ही रामबाण है और अंत में उसीसे देश का भला है। गांधीजी तथा देश को मुक्त करने का केवल एक ही उपाय है और वह हमारे ही हाथ में है। अदालत में अंत समय तक गांधीजी ने खादी का उपदेश दिया था। खादी से ही देश की रक्षा होगी एवं खिलाफत का निपटारा, पंजाब का इन्साफ तथा स्वराज्य प्राप्त होगा।

इसी रीति से गांधीजी छूटना चाहते हैं। और किसी रीति से छूटना न तो वे ही पसंद करेंगे और न मैं ही। देशभाई तथा बहनें गांधीजी के काम को गिरने न देंगे यही विश्वास रख कर मैं अपने दुःख को सुख मानती हूं।

कस्तूरबाई गांधी

मौलाना अब्दुल बारी का सन्देश

महात्मा गांधी को छः साल की सजा हुई है। वे तो अपनी मुराद को पा गये। मुझे यकीन है कि तमाम राजनैतिक कैदी बराबर बराबर जेल भोगेंगे; जिसने जैसी अपने मुल्क की खिदमत की है उसी लायक सजा उसे मिली है। महात्मा गांधी तो छः साल से अधिक सजा पाने के लायक थे। अब देखें, देश निकाले या फांसी की सजा किसे होती है? अब अ-सहयोग के अधिक जड़ पकड़ने की पूरी उम्मीद है। मैं सच्चे दिल से लोगों को सलाह देता हूं कि वे धीरज रखकर कष्टों को बरदास्त करें, खादी के सिवा दूसरा कोई कपड़ा न पहनें और चरखे को घर घर में दाखिल कर दें। लेकिन मैं सबसे अधिक जोर इस बात पर देता हूं कि हिन्दू-मुसलमानों में पूरी एकता रक्खी जाय तथा सब जातियों और कौमों में पूरा पूरा मेल-मिलाप रक्खा जाय। जबतक यह शर्त पूरी न होगी, कोई भी आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। मैं खुदा से दुआ मांगता हूँ कि वह हमें मदद दे जिससे हम लोग एक बने रहें।

अब्दुल बारी

व्यापारियों को महात्माजी का आदेश

साबरमती जेल, १८-३-२२

भाई [illegible],

केवल आर्थिक दृष्टि से मैं कह सकता हूं कि परदेशी सूत और कपड़ों का व्यापार करने वाले यदि अपने व्यापार को नहीं छोड़ेंगे और जनता विदेशी कपड़े के मोह को न छोड़ेगी तो मुल्क की यह बीमारी कुछ हरगिज नहीं हट सकती। मुझे आशा है कि आप व्यापारी खादी और चरखा के प्रचार में पूरा हिस्सा देंगे।

मोहनदास करमचंद गांधी

[illegible] की कही, ता. १८-३-२२

उपवास और हड़ताल करो

सत्याग्रह सप्ताह मनाओ

महासभा की कार्य-समिति ने आज्ञा प्रकाशित की है कि पिछले साल की तरह इस वर्ष भी आगामी ६ एप्रिल से १३ एप्रिल तक सारे भारत में राष्ट्रीय सत्याग्रह सप्ताह मनाया जाय। उस सप्ताह में खादी का प्रचार किया जाय, महासभा के सदस्य बनाये जायं, तिलक-स्वराज्य फंड के लिए रुपया एकत्र किया जाय तथा स्वराज्य-सम्बन्धी अन्य काम किये जायं।

६ अप्रैल का उपवास और प्रार्थना तथा १३ को सारे देश में हड़ताल की जाय।

गांधीजी कहां हैं?

खबर मिली है कि महात्मा गांधी धुलिया (खानदेश) और श्री शंकरलाल बैंकर रत्नागिरी (दक्षिण) की सेंट्रल जेल में रक्खे गये हैं।

(आखरी पृष्ठ से आगे)

झगड़ा-फसाद न करने दें। प्रतिपक्षी जब क्रोधोन्मत्त होकर आवे तब हम नम्र बन कर उसके सामने आवें। इस शीतल जल से उसकी क्रोधाग्नि तुरन्त शान्त हो जायगी। उसका तामस गुण अर्थात् पशु-भाव दूर होकर सात्विक गुण अर्थात् मनुष्य-भाव का संचार उसमें होने लगेगा। शान्ति की स्थापना हम स्वयं शान्त रह कर ही कर सकते हैं। शान्ति के बिना सुख नहीं, समृद्धि नहीं। फिर हमारा तो युद्ध ही शान्ति-युद्ध है। हमें प्रतिपक्षी के अशान्ति उत्पन्न करने वाले तमाम साधनों को अपनी अचल और गहरी शान्ति के द्वारा बेकार कर देना है। यदि हम इतनी बातों को हमेशा याद रक्खें तो हम से कभी शान्ति भंग होने ही न पावे—(१) हमारा झगड़ा तरीके के साथ है, व्यक्तियों से नहीं। (२) अज्ञानी और स्वार्थी रोष के नहीं पर दया के पात्र हैं। (३) अहिंसा अर्थात् प्रेम मनुष्य-मात्र का धर्म है। आग से आग उलटा बढ़ती है और पानी से वह बुझती है अर्थात् पशु-बल का नाश मनुष्य-बल के ही द्वारा हो सकता है।

कहीं गलत फहमी न हो

यहां हम पाठकों को सावधान कर देते हैं कि कहीं वे हमारे आशय का गलत अर्थ न लगा लें। नौकरशाही के हस्तकों—एजेंटों—अर्थात् सरकारी कर्मचारियों तथा उनके पिट्ठू सहयोगी-भाइयों के साथ—फिर वे चाहे अंगरेज हों चाहे हिन्दुस्तानी हम जो प्रेम और सद्भाव रखने की सलाह दे रहे हैं उसके मानी यह हरगिज नहीं है कि हम उनके कार्यों या उनकी चलाई शासन-प्रणाली को पसन्द करते हैं। उनके साथ तो हमारा पूरा पूरा असहयोग है। यदि गोरखपुर के कमिश्नर हमसे कहें कि सरकारी महकमों के लिए, या अदालतों के लिए या पुलिस अथवा फौज के लिए फलां काम करो तो हम अदब के साथ कह देंगे, साहब, माफ कीजिए, इसमें हम आपको जरा भी मदद नहीं दे सकते। पर यदि वे बीमार हों अथवा उनके बीबी-बच्चे किसी संकट में आ पड़े हों, तो हमारा फर्ज होगा कि बिना बुलाये उनके घर दौड़े जायं और अपना भाई समझ कर उनकी दवा-दरपन करें तथा उनको संकट से छुड़ाने का प्रयत्न करें। व्यक्ति और उसके कार्य अथवा तरीके के बीच का भेद हमें हमेशा याद रखना चाहिए। हमारा असहयोग उनके सरकारी कामों और शासन-पद्धति से है, स्वयं उनसे जाती तौर पर नहीं।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, चैत्र बदा १३, सं. १९७८.

चरण-चिह्न

महात्माजी तो जेल जा कर अपने अभीष्ट को पा गये। भारत को अपना अभीष्ट सिद्ध करना है। वे रास्ता दिखा कर गये हैं। भारत ने भी खूब समझ लिया है कि हां, यही एक रास्ता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह मार्ग अहिंसात्मक असहयोग है।

इसी अहिंसात्मक असहयोग का प्रचार करने के लिए 'हिन्दी-नवजीवन' का जन्म हुआ है। पर निपट बाल्यकाल में ही उसे अपने पालक का विरह सहना पड़ा। यह उसकी कम हानि नहीं है। उसका तो रहनुमा ही उससे कुछ काल के लिए दूर हो गया। आज उसकी वैसी ही दशा हो रही है जैसी कि रामचन्द्रजी के वनोवास के बाद भरत की हुई थी। हिन्दी-नवजीवन के लिए यह तो बेशक संकट की बात है कि उसमें अब प्रति सप्ताह महात्मा जी की प्रासादिक वाणी न आ पावेगी; परन्तु इस आपत्काल में महात्माजी की स्थापित सत्य, अहिंसा और निर्भयता की परिपाटी पर ही अनन्य-भाव से दृढ़ रहने और उसी प्रकार जनता की सेवा में लगे रहने का प्रयत्न 'हिन्दी-नवजीवन' करेगा। वह अपने कर्त्तव्य से नहीं डिग सकता। उसे तो अब भी यही मालूम होता है कि महात्माजी की आत्मा की छत्रच्छाया मुझ पर है। उनका वरद हस्त जिस प्रकार उसके लिए एक स्फूर्ति थी उसी प्रकार उनका वियोग भी उसके लिए स्फूर्ति ही है। आश्रम से जेल विदा होते समय दिया उनका उपदेश "खूब काम करो, आलस्य को पास तक न फटकने दो" आज भी उसके कानों में गूंज रहा है और गूंजता रहेगा।

अपनी त्रुटियों का हमें पूरा पूरा खयाल है। हम यह भी जानते हैं कि महात्माजी की तरह निर्वैरभाव से विरोधियों के दोष की छानबीन करना अथवा उनपर टीका-टिप्पणी करना कितना कठिन काम है। और इसीलिए हिन्दी-नवजीवन के सम्पादक की गद्दी महात्माजी के लिए सुरक्षित रखकर जिस झंडे को उन्होंने उठाया है उसको फहराते हुए, उनके चरण-चिह्न देखते हुए, हमें आगे बढ़ने का निश्चय किया है, अबतक जिस प्रकार महात्माजी के तीनों पत्रों 'यंग इंडिया' तथा 'गुजराती नवजीवन' और 'हिन्दी नवजीवन' की एकसी नीति रही है उसी प्रकार आगे भी रहेगी।

अब महात्मा जी की इच्छा यही है कि बारडोली के कार्यक्रम के अनुसार तो काम किया ही जाय; परन्तु सबसे अधिक जोर खादी के प्रचार पर दिया जाय। उन्होंने कहा है कि तुम खादी मेरे हाथ पर रक्खो, मैं तुम्हारे हाथ पर स्वराज्य रख दूंगा। इसी आशय का एक पत्र भी उन्होंने भारत के व्यापारियों के लिए लिखा है, जो अन्यत्र प्रकाशित किया जाता है। सो स्वराज्य की जड़ है खादी और खादी का अर्थ है स्वराज्य। अतएव हमें निश्चय होता है कि 'हिन्दी-नवजीवन' के प्रेमी पाठक और खास कर व्यापारी भाई खादी और चरखे का प्रचार करने में कोई बात उठा न रक्खेंगे। खुद सपरिवार एक नित्य धर्मविधि समझ कर चरखा कातेंगे और खादी पहनने में आत्माभिमान तथा राष्ट्राभिमान समझेंगे। यही महात्माजी को तथा उनके समस्त साथियों और देश-सेवकों को जेल से छुड़ा लाने की कुंजी है, यही खिलाफत और पंजाब के घावों का ठंढा मरहम है। परमात्मा हमें बल और ज्ञान दें जिससे हम अपने पूजनीय नेता के योग्य अनुयायी सिद्ध हों।

जमनालाल बजाज

हरिभाऊ उपाध्याय (उप-सम्पादक)

हकीमजी के प्रति

साबरमती जेल,

११ मार्च, १९२२

प्रिय हकीमजी,

मेरी गिरफ्तारी के बाद पता लगाने पर मुझे मालूम हुआ कि जबतक मुझे सजा न हो जाय तबतक मैं जितने चाहूं उतने पत्र लिख सकता हूं। सो यह पहला ही पत्र आपको लिख रहा हूं। आप यह तो जानते ही होंगे कि श्री शंकरलाल बैंकर भी मेरे साथ हैं। मुझे इस बात से खुशी होती है कि वे मेरे साथ हैं। सब लोग इस बात को जानते हैं कि मेरे साथ उनका कितना निकट सम्बन्ध हो गया है। अतएव हम दोनों के साथ पकड़े जाने से हमें हर्ष होना स्वाभाविक ही है।

यह पत्र मैं आपको महासभा की कार्य्यसमिति का सभापति अतएव हिन्दू-मुसल्मान दोनों का और सच पूछिए तो सारे भारत का नेता समझ कर लिख रहा हूं।

मुसल्मानों के एक महान् नेता मान कर और इसलिए अपना एक परम मित्र समझ कर भी आपको यह पत्र लिख रहा हूं। १९१५ ईसवी से आपके परिचय का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। ज्यों ज्यों आपका परिचय अधिकाधिक होता गया त्यों त्यों आपकी मित्रता रूपी खजाने का मूल्य विशेष मालूम होने लगा। स्वयं कट्टे मुसल्मान रहते हुए भी आपने अपने जीवन के द्वारा यह दिखला दिया है कि हिन्दू-मुसल्मानों की मित्रता क्या चीज है!

बिना हिन्दू-मुसल्मान की एकता के हम अपनी आजादी नहीं प्राप्त कर सकते। यह बात आज हम इतनी अच्छी तरह जानते हैं जितनी कि इससे पहले नहीं जान पाये थे। और मैं तो यहां तक कहता हूं कि बिना इस मित्रता के भारत के मुसल्मान खिलाफत की वह सेवा नहीं कर सकते जो कि वे चाहते हैं। फूट से तो हम हमेशा ही गुलाम बने रहेंगे। हिन्दू-मुसल्मान की एकता के धर्म को ऐसा सुविधा का धर्म नहीं बनाया जा सकता कि जबतक चले तबतक ठीक, जिस दिन न बनेगी उस दिन छोड़ देंगे। हम उस एकता को उसी दिन तिलांजलि दे सकते हैं जब स्वराज्य हमारे लिए भाररूप हो जाय। हमारी तो यही निश्चित नीति अथवा धर्म होना चाहिए कि हर समय और हर स्थिति में हिन्दू-मुसल्मान की एकता कायम रक्खी जाय।

फिर यह एकता पारसी, ईसाई, यहूदी अथवा बलवाली सिक्ख जैसी दूसरी छोटी जातियों के लिए कदापि भयरूप न होना चाहिए। यदि हम इनमें से किसी एक भी जाति को दबाने का विचार करेंगे तो किसी दिन हम आपस में ही एक दूसरे के साथ लड़ मरेंगे।

आपके प्रति मेरा जो यह सुहृद्-भाव है उसका खास कारण यह है कि आप यह मानते हैं कि हिन्दू-मुसल्मान की एक मित्रता तो अनिवार्य है।

मेरी राय में तो हम लोग जबतक अहिंसा को व्यवहार-नीति के तौर पर दृढ़तापूर्वक न स्वीकार करेंगे तबतक हिन्दू-मुसल्मान में एकता स्थापित होना असम्भव है। मैं व्यवहार-नीति इसलिए

चाहता हूं कि अहिंसा-धर्म का स्वीकार हम हिन्दू-मुसलमान-एकता की रक्षा करने के लिए कर रहे हैं । पर इसका परिणाम तो यही निकलता है कि एक खास समय तक नहीं, परन्तु सदा के लिए एकता के साथ सगे भाई की तरह रहने वाले हिन्दू-मुसलमानों का भारत सारी दुनिया के साथ टक्कर ले सके और ऐसे तीस करोड़ लोग यहां के अंगरेज शासकों से अपना निपटारा कराने के लिए हिंसा-मार्ग को ग्रहण करना केवल कायरता मानें । आजतक तो हम अपनी सिपाही के कारण उनसे और उनकी बंदूकों से डरते रहे । पर जिस घड़ी हम अपनी एकता का बल प्राप्त कर लेंगे उसी घड़ी उनसे डरना और डर कर उन पर हाथ उठाने का विचार करना हमें बिल्कुल नामर्दी दिखाई देगी । इसीलिए मैं इस बात के लिए आतुर और अधीर हूं कि कब मेरे देशभाई अहिंसा को कमजोरी की नहीं बल्कि जोर और ताकत की दृष्टि से देखने लगेंगे । पर मैं और आप दोनों जानते हैं कि अभी हम सबलता की अहिंसा नहीं पैदा कर सके हैं । और इसका कारण यही है कि अभी हम हिंदू-मुसल्मान-एकता को व्यवहार-नीति ही मान रहे हैं—इससे आगे नहीं बढ़ पाये हैं । अभी हमारे आपस में एक दूसरे के प्रति इतना अधिक अविश्वास है कि जिससे डर मालूम होता है । पर मैं निराश नहीं हूं । इतने समय में हमने जो प्रगति की है वह अद्भुत है । एक जमाने का काम हमने डेढ़ बरस में कर डाला है । पर अभी बहुत काम करने की जरूरत है । क्या जनता और क्या शिक्षित समाज दो में से किसीकी नस नस में यह बात नहीं पैठ गई है कि यह एकता हमारे लिए प्राण-रूप है ।

पर मैं समझता हूं कि इस परिपक्वता का आधार संख्या पर नहीं बल्कि विश्वास के परिमाण पर है । भारत के हिन्दू-मुसल्मानों की एकता पर दिखाने की तरह विश्वास रखने वाले थोड़े भी हिन्दू-मुसलमान यदि हों तो उससे सारी जनता में ऐक्य की भावना को फैलते हुए जरा भी देर न लगे । हममें से कुछ लोगों को तो पहले पहल यह ठीक ठीक समझ ही लेना चाहिए कि मन, वचन और कर्म से पूर्ण अहिंसा का पालन किये बिना हमारी इतनी प्रगति नहीं हो सकती जिससे हमारी राजनैतिक आकांक्षायें पूर्ण हो सकें । मेरी इस ऊपर बताई कुंजी पर जिन कार्यकर्ताओं का विश्वास न हो वे हमारे दल में न रहने पावें । मैं आपसे तथा कार्यसमिति से अनुरोध करता हूं कि आप इस बात की चिन्ता रखिएगा । प्रबल विश्वास बहुमति के कानून से कहां उत्पन्न हो सकता है !

मेरी दृष्टि में तो सारे हिन्दुस्तान की ऐसी एकता की, अतएव राजनैतिक आकांक्षा की सिद्धि के लिए अहिंसा को अनिवार्य साधन के तौर पर जनता के द्वारा माने जाने का साक्षात् चिह्न चरखा-खादी है । जो लोग अहिंसावृत्ति तथा हिन्दू-मुसल्मान में शाश्वत एकता कायम करने के कायल होंगे वे रोज नियम के साथ चरखा चलेंगे । मेरी दृष्टि में तो भारत की राष्ट्रीय एकता का तथा अहिंसा का यही पक्का सबूत है कि घर घर सूत काता जाया करे और सब लोग हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी पहना करें । यही चीज इस बात को सिद्ध करेगी कि भारत के करोड़ों मूक प्राणियों के साथ हमारा कुटुम्ब-भाव है । लोगों के नित्य-नियम के तौर पर चरखा कातने तथा धर्म और पूजा-भाव से खादी पहनने से ही भारत की जातियों में अटूट ऐक्य की भावना उद्भूत होगी और देश में नया खून दौड़ने लगेगा । ऐसा काम दूसरी किसी बात से नहीं हो सकता ।

हां, मैं यह जरूर चाहता हूं कि जिन लोगों ने अभी अपने खिताब नहीं छोड़े हैं वे छोड़ दें, वकील लोग वकालत छोड़ दें, विद्यार्थी सरकारी स्कूल-कालेज छोड़ दें, धारासभा के सभ्य धारासभायें छोड़ दें, सिपाही और सिविलियन अपनी नौकरियां छोड़ दें । तथापि मैं इस बात पर विशेष जोर देना चाहता हूं कि मैंने जो काम ऊपर बताया है उसमें तथा अबतक जो काम हो चुका है उसे पक्का करने में लग जायं तथा देश से मैं आग्रह करता हूं कि जिस शासन-तंत्र को सुधारने या मिटाने का यत्न हम कर रहे हैं उसका त्याग कराने के विषय में हम स्वयं अपने ही बल पर विश्वास रक्खें ।

फिर काम करने वाले लोग तो अंगुलियों पर गिनने लायक हैं । अतएव ऐसे समय, जब कि रचनात्मक काम का ढेर हमारे सामने पड़ा हुआ है, मैं नहीं चाहता कि खंडनात्मक अर्थात् विघातक कार्य में हमारा एक भी आदमी लग रहे । पर विघातक कार्य के खिलाफ बड़ी से बड़ी दलील तो यह है कि देश में आज ऐसा असहिष्णुता का जोश उमड़ पड़ा है जैसा पहले कभी नहीं उमड़ा था और असहिष्णुता क्या है ? हिंसा ही है । सहयोगी-भाई हमसे अलग हो गये हैं । वे हमसे चौंकते हैं । वे कहते हैं कि हम तो वर्तमान नौकरशाही से भी खराब नौकरशाही तैयार कर रहे हैं । हमें चाहिए कि हम उनकी इस चिन्ता का प्रत्येक कारण जड़-मूल से उखाड़ कर फेंक दें । उन्हें जीत कर अपना बनाने के लिए यदि हमें थोड़ा बहुत दबना झुकना पड़े तो इसमें कोई हर्ज नहीं । हमें अंगरेज-भाइयों को अपने भय से मुक्त कर देना चाहिए । यह बात कि अहिंसा की प्रतिज्ञा धारण करने से हम अपने कड़े से कड़े विरोधी के भी प्रति नम्रता और सद्भाव रखने के लिए बाध्य हैं, जितनी आपको और मुझको स्पष्ट दिखाई देती है उतनी यदि सब लोगों को दिखाई देती होती तो मुझे इतने विस्तार के साथ इसकी चर्चा ही न करनी पड़ती । यदि मेरे बताये रचनात्मक काम में देश ठीक ठीक लग जायगा तो इस भावना का प्रचार अपने आप हो जायगा ।

मुझे इस बात का मोह है कि मेरी कैद हमारे काम के लिए बहुत समय तक काफी है । मेरी यह नम्र धारणा है कि मेरा किसी के साथ वैरभाव नहीं । कितने ही मित्रों को यह बात अच्छी नहीं मालूम होती कि जितने दरजे तक मैं अहिंसा-धर्म का पालन करता हूं उतने दरजे तक वे भी करें । पर हमारा तो यही इरादा था कि केवल वही मनुष्य जेल जायं जो बिल्कुल निर्दोष हों । और यदि मैं बिल्कुल निर्दोष होने का दावा कर सकता हूं, तो यह स्पष्ट ही है कि दूसरा कोई भी पुरुष मेरे पीछे जेल जाने का प्रयत्न न करे । हां, हम इस सरकार का नाश करना तो जरूर चाहते हैं; पर धमकी के द्वारा नहीं बल्कि अपनी निर्दोषता के अमोघ सामर्थ्य के द्वारा । जिस तरह बन पड़े उसी तरह जेलों को भर देना मेरी राय में तो धमकी ही है । और जबतक यह न मालूम हो जाय कि जो शख्स सबसे अधिक निर्दोष माना जाता है उसका जेल जाना भी काफी नहीं है, तबतक दूसरे निर्दोष लोगों को जेल जाने की कोशिश क्यों करना चाहिए ?

मेरे इस कथन का कि अब और लोगों को जेल न जाना चाहिए, यह अर्थ नहीं है कि जेल से हम दबाई जाय । यदि सरकार क्रुद्ध हो कर प्रत्येक असहयोगी को गिरफ्तार कर ले तो इसका तो मैं स्वागत ही करूंगा । मेरा अभिप्राय सिर्फ इतना ही है कि तीव्र अथवा सौम्य किसी भी प्रकार का सविनय-भंग करके हमें जेल न जाना चाहिए । उसी प्रकार मैं यह आशा करता हूं कि जो लोग इस समय जेलों में हैं उनके लिए देश दुःखित न होगा । जेल में रहने वाले लोग यदि अपनी पूरी मीयाद तक सजा भोगते रहे तो इससे स्वयं वे तथा देश दोनों को लाभ ही

होंगे। शोभा तो इसी बात में है कि मीयाद खतम होने के पहले वे स्वराज्य की धारासभा के ही हाथों जेल से छूटें और मेरी दृढ धारणा है कि यदि तीस करोड़ भारतवासी खादी पहनने लग जायं तो यही स्वराज्य है।

५ छुआछूत के मैल को धो डालने के विषय में मैं यहां कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझ सकता। मुझे निश्चय है कि प्रत्येक समझदार हिन्दू यह बात मानता है कि इस मैल को तो धो ही बहाना चाहिए। छुआछूत को दूर करने की बात भी इतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि हिन्दू-मुसल्मान की एकता है।

मैंने आपके सामने ऐसा ही कार्यक्रम रक्खा है जो मेरी राय में सर्वोत्तम है और जल्दी से जल्दी पूरा किया जा सकता है। जो भाई खिलाफत के विषय में अत्यन्त अधीर हों वे भी इससे अच्छा कार्यक्रम नहीं तैयार कर सकते। मेरी प्रार्थना है कि ईश्वर आपको ऐसा आरोग्य और ज्ञान प्रदान करें जिससे आप देश को निश्चित ध्येय तक पहुंचा सकें।

आपका मित्र

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

अब आगे?

प्रत्येक उन्नति-प्रिय, महत्वाकांक्षी और आदर्शवान् व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र के जीवन में प्रायः ऐसे विकट अवसर उपस्थित होते रहते हैं जब उसे सोचना पड़ता है, "अब आगे?" यही उनकी जीवन-शक्ति और कार्य-शक्ति का प्रमाण है। भारत के इस सुदीर्घ जीवन में आजतक कितने ही उतार-चढाव ऐसे आये हैं जब कुछ विकल और विषण्ण हो कर उसे सोचना पड़ा है अब आगे? पौराणिक काल में पाण्डव, ऐतिहासिक काल में प्रणवीर प्रताप, छत्रपति शिवाजी महाराज वीर रणजीतसिंह तथा वर्तमान राजनैतिक संग्राम में स्वर्गीय लोकमान्य के जीवन-समय में तो भारत को पद पद पर अपने मन से पूछना पड़ा है अब आगे? और सब समय उसे एक ही उत्तर मिला है—"मामनुस्मर युध्य च!" अर्थात् मेरा ध्यान करके अपने अंगीकृत कार्य को करता रह।

आज महात्मा गांधी की छाया कुछ काल के लिए भारत के सिर से उठ गई है। उसके सामने फिर प्रश्न उठा है अब आगे? घर के बड़े-बूढे अनुभवी आदमी की अनुपस्थिति में, अथवा वियोग-काल में, उसके स्त्री-पुत्र आदि कुटुम्बी जनों की जो अवस्था होती है उसीका अनुभव आज भारत, १४ वर्ष बाद, फिर कर रहा है। वह उन्हें सब कुछ समझा-बुझा, सिखा-पढा जाता है; पर फिर भी इस नये बोझ को उठाते हुए उन्हें हिचकिचाहट मालूम होती है, उन्हें आशंका लगी रहती है कि हममें न इतनी बुद्धि है, न शक्ति, न कौशल, न अनुभव। अरे, हम इस काम को कैसे चला सकेंगे? पर कुदरत ने प्राणिमात्र के अन्दर एक ऐसी शक्ति निर्माण कर रक्खी है कि वह यों तो प्रायः हर वक्त सोयी रहती है पर ऐसे अवसरों पर जाग्रत होकर मनुष्य को अपूर्व सहायता देती है। उसका नाम है संकटों का प्रतिकार करने की शक्ति। हम देखते ही हैं कि काल्पनिक सृष्टि में सुख-दुःख, भय, चिन्ता आदि को मनुष्य जितना अनुभव करता है उतना सत्य सृष्टि में नहीं। चोर के आने की अथवा शेर के अचानक मिल जाने की कल्पना करने से मनुष्य को जितना भय मालूम होता है उतना प्रत्यक्ष चोर का या शेर का सामना हो जाने पर नहीं मालूम होता। उस समय तो उलटा उसमें एक अद्भुत चैतन्य प्रकट हो जाता है और एक ही क्षण में वह उस संकट के प्रतिकार का उपाय सोच लेता है। यह इसी प्रतिकारक शक्ति का प्रभाव है। इसीको भक्त लोग ईश्वर की कृपा कहते हैं।

भारत तो ईश्वर की लीला-भूमि है। उसे ईश्वर की कृपा का अनुभव कई बार हो चुका है। बिल्कुल ताजा उदाहरण लीजिए। १७ नवम्बर को बम्बई में हुल्लड़बाजों ने देश की की-कराई सारी मिहनत मट्टी में मिला दी। लोग चिन्तित और विकल हो उठे थे। पर ईश्वर की कृपा से भारत-सरकार को बंगाल, पंजाब और युक्तप्रान्त में नये नये नोटिस जारी करने की बुद्धि सूझी, और इस छोर से उस छोर तक देश में वह चैतन्य की लहर फैली कि लार्ड रीडिंग दंग हो गये। उनकी अकल चकरा गई। कलकत्ते में जो दृश्य अपनी आंखों के सामने उन्होंने देखा, वह शायद अपनी जिंदगी भर में कहीं न देखा होगा।

अब चौरी-चौरा की दुर्घटना, सविनय भंग का स्थगित होना, 'उत्साह और जोश से खाली' कार्यक्रम का उपस्थित किया जाना और शायद सबसे बढ कर महात्माजी को जेल हो जाना, इन एक के बाद एक अधिक 'चिन्ता और निराशा उत्पन्न करने वाली' घटनाओं को देख कर लोग फिर असमंजस में पड गये हैं। कुछ लोग कहते हैं—देखो, तिलक महाराज छः साल के लिए चले गये थे, देश में आन्दोलन बिल्कुल बंद पड गया था। यही हाल अब भी होगा। बस, गांधीजी के ही बदौलत यह सारा खेल था। कुछ भाई कहते हैं—अरे, राज्य तो तलवार से मिलता है। खादी और चरखे से किसी ने किसी से आजतक स्वराज्य लिया है? यह तो गांधीजी की सनक थी। अब सब लोग फिर से सस्ता विलायती कपडा पहनने लग जायंगे। कुछ लोग कहते हैं—भाई, हम तो सविनय भंग की आशा पर काम करते करते अब थक गये; गांधीजी ने न जाने कहां का ढीला-ढाला सुस्त कार्यक्रम बनाया। और तिस पर भी वे हमसे जुदा हो गये। पूरी पूरी आफत है। कुछ लोग कहते हैं—भाई, हमें बडी शर्म मालूम होती है। लोग हमसे पूछते हैं, क्यों स्वराज्य मिल गया? जिनके सिर पर प्रत्यक्ष कार्य का भार आ पड़ा है उनमें से भी कुछ लोगों के मुंह पर कभी कभी चिन्ता की छाया दिखाई देती है। पर जो इस संग्राम का रहस्य समझ गये हैं, जो यह जानते हैं कि हम सत्पथ पर जा रहे हैं, यह तो ईश्वर का कार्य है, हम उसके साधन मात्र हैं, हम तो कर्म करने के अधिकारी हैं, फलाफल की चिन्ता हम क्यों करें? अच्छे कार्य का फल अवश्य ही अच्छा होगा, उन्हें ईश्वर की इस कृपा का अनुभव शीघ्र ही होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वे शीघ्र ही अनुभव करने लगेंगे कि हमारी वह सुप्त प्रतिकारक शक्ति जाग्रत हो रही है और हम दिन-दूना रात-चौगुना काम कर रहे हैं। वे जो काम करें, ईश्वर के लिए करें; बस फल की चिन्ता ईश्वर अपने आप करेगा।

पूर्वोक्त शंकाओं का कारण या तो नास्तिकता है, या अश्रद्धा है, या अज्ञान है। जिन्हें खिलाफत के लिए दर्द होता है, जिन्हें पंजाब की बेइज्जती का दुःख है, जिन्हें स्वराज्य की लालसा है, उनके लिए ये तीनों बातें शापरूप हैं। इनके रहते हुए उन्हें अपने त्रिविध लक्ष्य की सिद्धि की आशा न रखनी चाहिए।

महात्माजी का शरीर चाहे कहीं रहे; पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनका आत्मा, उनकी स्फूर्ति, हमारे साथ है। वे स्वराज्य के फाटक की ताली हमें दे गये हैं। उसका प्रयोग भी हमें बता गये हैं। सो हमें चिन्ता का तो कोई कारण ही नहीं। बस अब आगे हमारा काम तो सिर्फ इतना ही है कि कुंजी लगा कर ताला खोल लें और फाटक में प्रवेश करें। वह ताली है अहिंसा, सब जातियों में एकता, स्वदेशी प्रचार और छुआछूत का त्याग। और उसका सरल प्रयोग है खादी और चरखे का प्रचार। इसमें मु...

मतभेद के लिए जगह है, न मुठभेड़ के लिए। पारस्परिक स्नेह का उपयोग करने से यह कुंजी बड़ी जल्दी लग जायगी और भारत में रामराज्य का झंडा फहरने लगेगा। सहयोगी-असहयोगी, अंगरेज-हिन्दुस्तानी के बीच का द्वेषभाव मिट कर सब एक ही विशाल परिवार के कुटुम्बी हो जायंगे।

टिप्पणियां

चौरी-चौरा के प्रान्त में

चौरी-चौरा-काण्ड के बाद गोरखपुर जिले में पुलिस का जधम बढ़ना अस्वाभाविक नहीं है। सारे देश में यह रोग और भी फैल उठे तो ताज्जुब नहीं। सविनय-भंग बंद कर दिया गया। बिलकुल सीधा-सादा विधायक कार्यक्रम देश के सामने रक्खा गया। इसे शायद असहयोगियों की कमजोरी समझ कर इस आन्दोलन को कुचल डालने का शुभ संयोग सरकार ने सोचा हो। महात्मा गांधी की गिरफ्तारी और छः वर्ष की सजा शायद सरकार की इसी भावना की सूचक हो। सरकार का बल तो है भय और दमन। गोरखपुर जिले से ऐसे समाचार आ रहे हैं जिनसे मालूम होता है कि वहां के सरकारी कर्मचारी लोगों पर बड़ा जुल्म कर रहे हैं। चौरी-चौरा के लोगों ने पुलिस वालों के साथ जो अमानुष अत्याचार किया उससे उस जिले के कई स्थानों के पुलिस तथा दूसरे सरकारी नौकर खूब कुपित हो उठे हैं। एक पत्र से मालूम होता है कि पिपराबाजार, पुरन्दरपुर, बुजमनगंज के कुछ लोग अत्याचारों से तंग आकर मारे डर के भाग निकले। उन्हें तरह तरह से धमकियां दी जाती हैं। स्वयंसेवक दल से नाम कटवाने के लिए कहा जाता है। अमनसभा के भी कुछ लोग इनमें शामिल बताये जाते हैं। स्वयंसेवक पीटे जाते हैं। फौज की रसद के लिए मार-पीट कर रुपया वसूल किया जाता है। घरों में से औरतों तक को पकड़ मंगाया और रुपया लिया गया। आदि। संयुक्त प्रान्त और बंगाल-आसाम से अबतक जो अत्याचारों के समाचार मिले हैं उनको ध्यान में रखते हुए पूर्वोक्त बातों पर अविश्वास करने को जी नहीं चाहता। ऐसे जुल्म तो इस राज्य में अब एक मामूली बात हो गई है।

अपने पत्र के अन्त में संवाददाता लिखता है कि इन जुल्मों का संग्रह किया जाय तो एक बड़ी पोथी तैयार हो सकती है। फिर वह मानों त्रस्त होकर ये सवाल पूछता है—इन जुल्मों का क्या इलाज है? अहिंसा का पालन कहां तक हो? शान्तिमय-वायुमंडल कैसे तैयार हो? इनका उत्तर क्रमशः नीचे दिया जाता है।

इन जुल्मों का क्या इलाज है?

पुलिस अथवा सरकारी कर्मचारी जुल्म क्यों करते हैं? या तो स्वार्थवश या अज्ञानवश। स्वार्थवश जो लोग सरकार की नौकरी करते हैं और पेट के लिए जुल्म करते हैं उनकी दवा खादी और चरखा है। यदि सब लोग खादी पहनने और चरखा कातने लग जायं अर्थात् यह धन्धा काफी आमदनी देने लगे तो एक तो उनका विदेशी कीमती कपड़ों के लिए बढ़ा हुआ खर्च घट जाय और दूसरे उन्हें सरकारी नौकरी छोड़ कर इसी निष्पाप उद्योग के द्वारा कुछ रकम पैदा करके अपनी गुजर करने का मौका मिले। जो लोग अज्ञानवश जुल्म करते हैं, उनकी दवा है प्रेम, सहनशीलता और नम्रता। चाहे अंगरेज हों, चाहे हिन्दुस्तानी, हैं आखिर मनुष्य-हमारे भाई। हां, यह सच है कि आज वे हमें भाई नहीं समझ रहे हैं, भाई का सा बरताव हमारे साथ नहीं कर रहे हैं। पर क्या हम भी उनके साथ दिल से भाई की तरह पेश आते हैं? यदि एक भाई अपने धर्म या कर्तव्य का पालन भूल से, अज्ञान से, या स्वार्थ से नहीं करता है तो क्या दूसरे भाई को यह उचित है कि वह भी अपना धर्म छोड़ दे? जब कर्तव्य का पालन सापेक्ष भाव से नहीं निरपेक्ष भाव से ही किया जाता है तभी उसका नाम कर्तव्य या धर्म है, नहीं तो उसे सौदा, बदला या रोजगार कहते हैं। सौदे की जड़ में स्वार्थ और धर्म-पालन की जड़ में परमार्थ होता है। स्वार्थ से कलह और अशान्ति की वृद्धि होती है। सो यदि हम उनके अत्याचार करते हुए भी उनके साथ प्रेम करें, उनके संकट के समय उन्हें मदद दें, उनके अज्ञान और स्वार्थ पर दया दिखलावें तो इससे उनकी आंखें जितनी जल्दी खुल जायंगी उतनी जल्दी दूसरे उपाय से नहीं। इससे हमारे सद्गुणों की वृद्धि होगी और उनके दुर्गुणों की घटती। फिर अन्याय और अत्याचार के लिए जगह ही कहां रह सकती है?

अहिंसा का पालन कहांतक हो?

अहिंसा मनुष्य-मात्र का धर्म है। धर्म का पालन तो आजन्म होना चाहिए। अहिंसा का अर्थ है प्रेम। शत्रु की भी बुराई न चाहना, न करना अहिंसा है। और यह तभी सम्भवनीय है जब हमारा हृदय प्रेममय हो। प्रेम एव परो धर्मः। प्रेम की अद्भुत महिमा है। यदि हमारे हृदय में अखूट प्रेम का भंडार भरा हुआ है तो संसार में कौन हमारा शत्रु रह सकता है? आज हम जो इस सरकार से लड़ रहे हैं वह इसलिए नहीं कि यह सरकार अर्थात् अंगरेजों की चलाई शासन-प्रणाली, या उसके चलाने वाले अंगरेज अथवा हिन्दुस्तानी हमारे शत्रु हैं। व्यक्तियों से तो हमारा कोई झगड़ा ही नहीं है। हमारे दुःखों का मूल कारण तो उनका चलाया यह तरीका है। वे उस बुरे तरीके का पक्ष करते हैं, इसलिए हमें उनसे झगड़ना पड़ता है। इस तरीके से आज मुट्ठी भर लोग सारे भारत के प्रभु बने हुए हैं और तीस करोड़ लोगों को अपनी अंगुली पर नचाते हैं। हम कहते हैं ऐसा तरीका जारी करें कि तुम और हम मित्र और भाई भाई बन कर रहें। न तुम हम पर जबरदस्ती करो न हम तुम पर करें। इसमें वे अपनी स्वार्थ-हानि समझते हैं। बस यही हमारी उनकी लड़ाई की बुनियाद है। क्या समझदार भाई नादान भाई पर हाथ उठावे? क्या शस्त्र चलावें?

> क्षमा बड़ेन को उचित है छोटेन के उत्पात।
> काहि कृष्ण को घटि गयो भृगु ने मारी लात?

सो हमने यह अहिंसात्मक असहयोग का ऐसा रास्ता अख्त्यार किया है जिससे हमारे धर्म का भी पालन होता रहे और वे भी धर्म के रास्ते पर चलने लगें। अतएव अहिंसा-धर्म का पालन तो मनुष्य को तबतक उचित और आवश्यक है जबतक उसके मनुष्यत्व का पूरा विकास होकर वह चिदानन्द में लीन न हो जाय। परन्तु जो इस तरह अहिंसा को मनुष्य का धर्म न मानते हों, जो हिंसा अर्थात् पशु-बल को भी मनुष्य का धर्म मानते हों उनको कम से कम तबतक तो अहिंसा का पालन करना ही होगा जबतक वे महासभा के सदस्य हैं। सत्य और अहिंसा महासभा का धर्म है। उसका पालन किये बिना हमारे त्रिविध लक्ष्य की सिद्धि आगे कुछ पुश्तों तक सम्भवनीय नहीं।

शान्तिमय वायुमंडल कैसे तैयार हो?

अपने संयम और नम्रता के बल पर। उत्तेजना के अवसर पर हम अपने मनोवेग को रोकें और दूसरों को भी आवेग में कोई—

(शेष पृष्ठ आगे २५२ में)

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर द्वारा नवजीवन मुद्रणालय सूदा ओल पानकोर नाका अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित ॥

हिंसा और अहिंसा

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका ,, -)॥
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

सम्पादक—मोहनदास करमचंद गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—चैत्र सुदी ५, संवत् १९७९, रविवार, सायंकाल, २ अप्रैल, १९२२ ई० | अंक ३२

राष्ट्रीय सत्याग्रह—सप्ताह

६ अप्रैल को उपवास और प्रार्थना — १३ को शान्तिपूर्ण हड़तालें

सारे देश में खादी का प्रचार करो

६ और १३ अप्रैल

अप्रैल की छठी तारीख को भूलना हमारे लिए तो असम्भव है। उसीने तो तमाम देशभर में नये जीवन का संचार किया। उसी प्रकार अप्रैल की तेरहवीं तारीख को भी हम कभी नहीं भूल सकते। क्योंकि उसी दिन कितने ही बे-गुनाह भारतीयों का खून बहाया गया था, जिसके कारण पंजाब तमाम भारतवर्ष के लिए एक नया तीर्थ-स्थान हो गया है। अप्रैल की छः तारीख को भारत में पहले पहल सत्याग्रह शुरू किया गया था। सविनय-कानून भंग के विषय में जोकि उसका एक अंशमात्र है, भले ही मतभेद हो: पर सत्य, प्रेम, और अहिंसा के सिद्धान्त के विषय में तो जो कि उसका आवश्यक भाग है, मतभेद हो ही कैसे सकता है? सत्य के अहिंसायुक्त पालन के द्वारा हम तमाम संसार का सिर अपने पैरों पर झुका सकते हैं। सच पूछिए तो सत्याग्रह, सत्य और अहिंसा का राजनैतिक और राष्ट्रीय जीवन में प्रयोग करने के सिवा और है ही क्या? इसलिए सत्याग्रह की प्रतिज्ञा चाहे भले ही कोई करे या न करे पर इसमें कोई शक नहीं कि सत्याग्रह के तत्त्व को जनता ने अपने हृदय में अच्छी तरह अंकित कर लिया है। मेरे पंजाब के प्रवास में हजारों पंजाबियों से मुझे जो काम पड़ा उससे मेरा तो यही अनुभव है।

उसी प्रकार हिन्दू-मुसलमान-एकता तथा स्वदेशी के विषय में भी निश्चित रूप से कार्य छठी अप्रैल से ही शुरू हुआ।

रौलट-कानून के अन्तर्गत भावों को भंग कर के उसे नष्टप्राय करनेवाली भी छठी अप्रैल ही थी। और तेरहवीं अप्रैल ने हमें सिर्फ उस भीषण हत्याकांड का ही दृश्य नहीं दिखाया, बल्कि उस दिन के कत्ले आम में जो हिन्दू-मुसलमानों का खून एक धारा में अच्छी तरह बहा उसने इन दो जातियों के बीच की एकता पर मानों मुहर लगा दी।

पर हमें इन दो महान् राष्ट्रीय घटनाओं की स्मृति जाग्रत रखने के लिए इनका उत्सव किस तरह मनाना चाहिए? मेरी समझ में तो जो लोग इस उत्सव को मनाना चाहते हों वे छठी अप्रैल को दिन उपवास (२४ घण्टे तक अन्न न ग्रहण करना) और प्रार्थना में बितावें।

और छः अप्रैल से शुरू होनेवाला सप्ताह किसी ऐसे काम में बिताया जाय जिसका संबंध तेरहवीं अप्रैल की दुर्घटना से हो।

अब रही अप्रैल की तेरहवीं तारीख। उस चिरस्मरणीय दिन भी उपवास और प्रार्थना करनी चाहिए। उस दिन किसी भी प्रकार का अशुभ चिंतन अथवा क्रोध न करना चाहिए। हमें तो सिर्फ उन निरपराध मृतों की स्मृति को याद रखना है। हम उस घटना की दुष्टता को ध्यान में नहीं लाना चाहते। राष्ट्र का सच्चा अभ्युदय तो त्याग और तपस्या में है, न कि प्रतिहिंसा की तैयारी करने में। मेरी यह भी इच्छा है कि राष्ट्र उस दिन प्रक्षुब्ध जनता द्वारा किये गये अत्याचारों को याद कर ले और उनके लिए हृदय से पश्चात्ताप करे।

मेरा यह भी आग्रह है कि उस दिन हरएक स्त्री या पुरुष सत्याग्रह, हिन्दू-मुसलमान-एकता और स्वदेशी को अपने आचार में लाने का पहले से भी अधिक प्रयत्न तन-मन से करे। और एकता पर अधिक ध्यान देने के लिए मैं यह सिफारिश करता हूं कि १० अप्रैल को शाम के पांच बजे हिन्दू-मुसलमानों की सम्मिलित सभायें की जायं और उनमें यह आग्रह किया जाय कि खिलाफत का निपटारा मुसलमान भाइयों की न्याय्य भावनाओं के अनुसार होना चाहिए।

इस प्रकार यह राष्ट्रीय सप्ताह आत्मशुद्धि, त्याग, श्रेष्ठ संयम और हार्दिक राष्ट्रीय भावों के प्रकाशन का सप्ताह हो। द्वेष और शारीरिक हिंसा का कहीं नामोनिशान तक न हो। पूरी निर्भयता और धीर-गम्भीरता रहे।

मुझे विश्वास है कि भारत की तमाम जातियां और सब दलों के लोग इस राष्ट्रीय सप्ताह को मनाने में अपने अपने ढंग से भाग लेंगे और इसे राष्ट्रीय जागृति में सच्ची और निश्चित उन्नति का संयोग बनाने में सहायक होंगे।

(यं. इं. १० मार्च, १९२१) मोहनदास करमचंद गांधी

सत्याग्रह–सप्ताह

आगामी पवित्र राष्ट्रीय सप्ताह के कार्यक्रम में मैंने सब से अधिक महत्त्व उपवास और प्रार्थना को दिया है। हमारे राष्ट्रीय जीवन की प्रगति के लिए ये दोनों विषय कितने महत्त्वपूर्ण हैं यह मैं पहले ही अच्छी तरह बता चुका हूं। और इसका तो मुझे स्वयं भी खूब अनुभव है। एक दिन अपने एक मित्र को प्रार्थना के विषय में लिखते समय प्रसिद्ध अंगरेजी कवि टेनिसन का एक सुंदर काव्य–प्रबंध मुझे दिखाई दिया। शायद इसके द्वारा मैं ईश्वर प्रार्थना की असली महिमा में काफी विश्वास पैदा कर सकूं, इस खयाल से उस सुंदर रत्न का हिन्दी–अनुवाद यहां दिया जाता है—

"परमात्मा की सच्चे हृदय से प्रार्थना करने से इस संसार में इतनी बातें हो सकती हैं जिसकी कल्पना भी करना हमारे लिए कठिन है। इस लिए तू एक फौवारे की तरह उस जगत्पिता के प्रति मेरे लिए रातदिन आवाज उठाता रह। क्योंकि यदि मनुष्य परमपिता को जानते हुए भी अपने लिए तथा उनके लिए जिन्हें कि वे अपना सुहृद,–मित्र समझते हैं, अपनी आवाज उस परम पिता की प्रार्थना में न उठावें तो फिर मनुष्य और पशुओं में जिनका जीवन ज्ञानहीन होता है, अंतर ही क्या रहा? क्योंकि इस पृथ्वी पर रह कर परमात्मा के कृपापात्र होने का एक मात्र सर्वश्रेष्ठ साधन प्रार्थना ही तो है।"

मेरी तमाम सफरों में जो कि मैंने भारत भर में की हैं, मुझे समस्त धर्मानुयायियों से, बहनों स्त्रियों से, हजारों विद्यार्थियो से, मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैंने उन सब के साथ राष्ट्रीय प्रश्नों पर इतने चाव के साथ चर्चा की है कि जिसका मैं बयान नहीं कर सकता। उससे मुझे यह मालूम हुआ कि हमें अभी तक राष्ट्र की दशा का यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ है। और न हममें वह संयम अभी तक आया है, जो उस अवस्था को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। और मैं यह सूचित करने की धृष्टता करता हूं कि उस आवश्यक संयम, स्वार्थ–त्याग की तैयारी विनम्रता, और निश्चय–दृढता को, जिनके सिवा मनुष्य की सच्ची प्रगति होना असम्भव है, प्राप्त करने का सब से बढ़िया साधन उपवास और प्रार्थना ही है। इसलिए मुझे आशा है कि देश भर में लाखों स्त्री–पुरुष हार्दिक प्रार्थना और उपवास कर के ही इस सत्याग्रह सप्ताह को आरंभ करेंगे।

पर सत्याग्रह के उस सविनय कानून–भंगात्मक भाग पर इस सप्ताह में मैं जोर देना नहीं चाहता। मैं तो सिर्फ यही चाहता हूं कि हम सत्य और अहिंसा का ही खूब चिन्तन करें और उसकी अजेयता को अच्छी तरह समझ लें। सच तो यह है कि अगर हम सब सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के अनुसार ही अपना जीवन बनालें तो सविनय या और किसी प्रकार के प्रतिरोध की आवश्यकता ही न रहे। सविनय प्रतिरोध तो तभी शुरू होता है जब मनुष्य थोडी भी संख्या में बडी भारी शक्ति के सामने सत्य पथ पर जाने का प्रयत्न कर रहे हों। सत्य को पहचानना तथा सविनय प्रतिरोध द्वारा उसकी रक्षा कब करना चाहिए और उसे करने में कहीं गलती से भी हिंसा–काण्ड न होने पावे यह कैसे टालना चाहिए, ये सब बातें जानना कठिन हैं। और इस राष्ट्रीय उत्थान के लिए नियत किये गये सप्ताह में जब कि हम सबका, फिर वे चाहे जिस पक्ष, धर्म और जाति के क्यों न हों सहयोग चाहते हैं, तब सविनय कानून–भंग को एक धर्म समझ कर उसका प्रचार करने के सम्बन्ध में मतभेद भी हो सकता है।

(यं. इं. ३१ मार्च, १९२०) मोहनदास करमचंद गांधी

आत्मशुद्धि

असहयोग आन्दोलन आत्म–शुद्धि का आन्दोलन है। आत्म–शुद्धि का अर्थ है अपने हृदय के दुर्विकारों को, अपने दिल की बुराइयों को दूर करना। इसमें मनुष्य ज्यों ज्यों सफलता प्राप्त करता जाता है त्यों त्यों वह व्यक्तिगत स्वराज्य का तो अधिकारी होता ही जाता है; परन्तु सामाजिक स्वराज्य की भी नींव डालता जाता है। सामाजिक स्वराज्य समाज के प्रयत्न पर अवलम्बित है।

आज १८ महीनों से भारत आत्म–शुद्धि करने में लगा हुआ है। जिस हद तक इसकी आत्म–शुद्धि हुई है उस हद तक भारतीय स्वराज्य नजदीक आ गया है। यह प्रगति इतने वेग से हुई है कि सदियों का काम महीनों में हो गया है। इसके बदौलत कई महान् व्यक्तियों के जीवन में अद्भुत परिवर्तन हो गया है। सैकडों हजारों लोग आज जेलों के निवासी हो गये हैं; पर बहुतों के दिल में जालिम के प्रति वैरभाव नहीं रहा है। वे समझ गये हैं कि व्यक्तियों से हमारा कोई झगडा नहीं, हमारे अहित का मूल तो उनकी चलाई राज्य–पद्धति है। उन्हें यकीन हो चुका है कि पाप से घृणा करना चाहिए, पापी पर तो रहम करने की जरूरत है। मनुष्य पाप क्यों करता है? जालिम जुल्म क्यों करता है? अज्ञानवश। स्वार्थ अज्ञान नहीं तो क्या है? अज्ञानी पर क्रोध करना, उसको अपना वैरी मानना केवल अज्ञान ही नहीं, बल्कि मूर्खता है। अज्ञान की दवा दण्ड नहीं, ज्ञान–दान है। दूसरे शब्दों में, क्रोध नहीं दया है। अज्ञान एक प्रकार का मानसिक रोग है। क्या रोगी को दण्ड देना उचित है? रोगी का तो प्रेम और दया के साथ इलाज होना चाहिए। तभी रोग दूर हो सकता है।

दया धर्म को मूल है पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाडिए जबलग घट में प्राण॥

यह दया–धर्म अहिंसा का दूसरा नाम है। इस प्राचीन तत्व का रहस्य यदि आज भारत कुछ हद तक न समझा होता तो इतना शुद्ध बलिदान वह पापी का पाप धोने के लिए, जालिम की आंखें खोलने के लिए, पशु को मनुष्य बनाने के लिए, क्यों करता? महात्मा गांधी की गिरफ्तारी और सजा की खबर को अपूर्व शान्ति के साथ सहन कर लेना किस बात का प्रमाण है? आज गांधीजी भारत को अपने प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं। यदि वे पशु–बल के हामी होते और भारत को उसका उपदेश देते तो क्या भारत रण–चण्डी का लीलास्थल न हो जाता? पर भारत सत्पथ पर जा रहा है। उसकी मनुष्यता दिन पर दिन बढती जा रही है। वह ईश्वर की दृष्टि में अधिकाधिक प्रिय होता जा रहा है। निस्सन्देह महात्माजी की कुरबानी भारतीय स्वराज्य की स्वागत–दुंदुभि है। इससे देश का जितना हित हो सकता है उतना दूसरी किसी बात से शायद ही होता।

हां, इस गम्भीर शान्ति को–ज्ञानपूर्वक बल–मूलक शान्ति को–ऐसा मालूम होता है, कि कुछ लोग शिथिलता या निराशा समझ रहे हैं। पर उन्हें जानना चाहिए कि चौरी–चौरा के हत्याकाण्ड के रूप में भारत जो कुपथ्य कर बैठा उसके स्वरूप और कारण की मीमांसा कर के चतुर वैद्य ने नुसखे में कुछ घटा–बढी कर दी है। तेज और उत्तेजक दवा को, जिसके धोखे में रोगी बार बार बदपरहेजी कर बैठता था, निकाल कर सीधी–सादी ठंडी पर पौष्टिक दवा उसमें शामिल कर दी है। इससे रोगी ऊपर से चाहे तेज–तर्रार न नजर आता हो; पर बुद्धिमान् मनुष्य समझ सकता है कि भीतर से और स्वाभाविक रीति से उसकी ताकत शान्ति के साथ बढ रही है। पर वैद्यक–शास्त्र के इस मर्म को न समझ कर

यदि रोगी आतुर हो उठे, वैद्य की योग्यता और नुसखे के असर को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे तो फिर उसे याद रखना चाहिए कि अभी उसके भाग्य में और बीमारी भोगना बदा है।

पर भारत को अब अपनी स्थिति का खूब ज्ञान हो गया है। वह नौकरशाही अथवा हमारे भूले-भटके भाइयों के दम-झांसे में नहीं आ सकता। उसने समझ लिया है कि किसमें किसका कितना स्वार्थ है और कौन मेरा हितचिन्तक है। खादी और चरखे का घर घर में प्रचार कर के वह शीघ्र ही दिखला भी देना चाहता है कि इस वर्तमान शान्ति का सच्चा अर्थ क्या है।

आत्मशुद्धि के लिए प्रधानतः द्वेष और धर्म-विरुद्ध स्वार्थ वृत्ति को निर्मूल करना होगा। द्वेष की जड़ अधम स्वार्थ में है। अतएव घृणित धर्म-विरुद्ध स्वार्थ-भाव जबतक कम या नष्ट न होगा तबतक आत्मशुद्धि न होगी। हम खिलाफत के लिए क्यों जमीन-आस्मान के कुलावे एक कर रहे हैं? क्यों पंजाब के दुःखों का परिमार्जन चाहते हैं? क्यों स्वराज्य के लिए सब कुछ गवां देने को तत्पर हैं? क्या अपने अधम स्वार्थ के लिए? यदि हां, तो फिर हमें अंगरेजी सत्ता अर्थात् वर्तमान शासन-प्रणाली के खिलाफ झण्डा उठाने का कोई अधिकार नहीं। पश्चिमी सभ्यता को कोसने का कोई हक नहीं। वर्तमान सरकार सिवा स्वार्थ-साधना के और क्या कर रही है? अन्याय, अत्याचार, भय, दमन, बल-प्रयोग, ये तो स्वार्थ के साधन ही हैं। इस सरकार में यदि कोई दोष या बुराई है तो वह यही कि आत्यन्तिक स्वार्थ उसका ध्येय है और पशु-बल और भय-प्रयोग उसका आधार है। इस सरकार के साथ असहयोग करने के मानी हैं आत्यन्तिक स्वार्थ, पशु-बल, और भय-प्र[illegible] [illegible]सहयोग करना। पशु-बल के साथ असहयोग करने का अर्थ है अहिंसा, भय-प्रयोग के साथ असहयोग करने का अर्थ है प्रेम और एकता तथा अधम स्वार्थ से असहयोग करने के मानी हैं सच्चा भारतीय स्वराज्य स्थापित करना अर्थात् सारे भारत को एक सुसंगठित विशाल परिवार के रूप में परिणत करना। पर यदि इसके विपरीत हम केवल सत्ता के लिए अर्थात् राजनैतिक स्वराज्य के लिए लड़ें तो इसका फल चाहे यह भले ही हो कि आज जो सत्ता कुछ अंगरेजों के हाथ में है कल वह कुछ हिन्दुस्तानियों के पास आ जाय। पर उसके तीनों प्रधान दोष-अधम स्वार्थ, पशु-बल और भय, ज्यों के त्यों कायम रहेंगे। उस अवस्था में असहयोगियों को देशी नौकरशाही के साथ असहयोग-युद्ध जारी रखना पड़ेगा जैसा कि आज विदेशी नौकरशाही के साथ करना पड़ रहा है।

अतएव हम सामान्यतः सारे भारत को और विशेषतः असहयोगियों को सावधान कर देना चाहते हैं कि वे अपने लक्ष्य को स्पष्ट रीति से दृष्टि में रक्खें, उसे जरा भी आंखों से ओझल न होने दें एवं अपने पथ से डावां-डौल न हों। आत्मशुद्धि के विना असहयोग आन्दोलन व्यर्थ है। आत्मशुद्धि के विना भारत का उद्धार असम्भव है। आत्मशुद्धि के विना सारे संसार का वर्तमान घृणित जीवन-कलह मिटना और जगत को सच्चा कल्याण मार्ग मिलना असाध्य है।

आसाम हिन्दी-प्रचार-कार्यालय की ओर से राष्ट्र-भाषा हिन्दी द्वारा शिक्षा देने के लिए गौहाटी नगर में हिन्दी-विद्यालय स्थापित किया गया है।

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में श्री-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" के एजंटों की हर [illegible] और [illegible] में [illegible] है।

सच्ची सान्त्वना

आजतक करोड़ों भारतवासी जिनकी जयजयकार करते आ रहे हैं उन्हें सरकार ने जेल भेज दिया है। सच पूछिए तो यह इस महान् देश का तथा उसकी जागृति का अपमान है। जेल जाने से गांधीजी को चाहे अपने कर्तव्य के पालन करने का सुख भले ही होता हो, स्वर्ग में देवता लोग भले ही इस प्रकार जालिमों के पुण्य के ढेर को जल कर भस्म होते हुए देखकर आनन्दोत्सव मनाते हों; पर हमारी सान्त्वना तो इससे हो ही नहीं सकती। गांधीजी ने ऐसा कौनसा नीति-विरुद्ध कार्य किया जिससे वे जेल के पात्र समझे जायं?

गांधीजी के जेल जाने से जो दुःख हमें हुआ है उसकी दवा क्या है? जिस प्रकार मिठाई-पकान्न खा कर हम शोक प्रदर्शित नहीं करते उसी प्रकार हम राष्ट्र के इस अपमान का भी स्मारक स्वच्छन्द होकर नहीं कर सकते। ज्यों ज्यों हम पर संकट आता जाय त्यों त्यों हमें अधिकाधिक संयमी होना चाहिए। खून-खराबी अथवा दंगा-फसाद करने से राष्ट्र का अपमान मिट जाने के बदले उसमें गांधीजी का तथा राष्ट्र का अधिक अपमान है। इस बात को हम समझ चुके हैं। इसीसे आज हम यह आदर्श शान्ति रख सके हैं।

शान्ति तो हमारे दुःख को प्रकट करने का एक मार्ग हुआ। पर इतने से हमारा काम नहीं चल सकता। शान्ति की रक्षा करने से, हिंसा-काण्ड न करने से तो हमें इतना ही जस मिलेगा कि हमने वह बात नहीं की जो हमें न करनी चाहिए थी। जो हमें न करना उचित है वह तो कभी न करना चाहिए; परन्तु हमारी सच्ची सच्ची हमदर्दी तो तभी प्रकट होगी जब हम वे सब बातें करेंगे जो हमें करना आवश्यक हैं।

आज हम भारत के प्रत्येक प्रान्त में, हिन्दू और मुसलमानों में तथा ईसाइयों और पारसियों में एक ही रीति से गांधीजी के प्रति, स्वराज्य और खिलाफत के प्रति, एकता और प्रेम के प्रति हमारी सहानुभूति प्रकट कर सकते हैं-और वह है खादी का प्रचार घर घर में कर के। खादी स्वराज्य की कसौटी है। क्या हमने अपने मुंह से हिन्दू-मुसलमान की जय बोली थी? यदि बोली हो तो खादी पहर कर और चरखा कात कर उस जय को सच कर दिखाना चाहिए। क्या 'वन्दे मातरम्' हमारा पवित्र मन्त्र है? यदि हो तो माता की लाज रखने के लिए हम खादी तैयार करें। 'सरकार अकबर नहीं, अल्लाह ही अकबर है' यह हम तभी सिद्ध कर सकते हैं जब हम विदेशी कपड़ों का त्याग करके, सरकार के अप्रीति-पात्र होकर भी, खादी का इस्तेमाल करें। एकमात्र खादी ही राम और रहीम के उपासकों का लिबास है।

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

पाठकों के प्रति

'हिन्दी-नवजीवन' का आरम्भ बतौर आजमायश के किया था। शुरुआत में यह आशंका रही थी कि यह अधिक दिनों तक जीवित रह सकेगा या नहीं। अतएव सालाना चन्दे के साथ ही छःमाही चन्दा लेने का भी नियम रक्खा गया था। पर अब ईश्वर की कृपा से वह अपने पैरों पर खड़ा हो गया है। अतएव छःमाही चन्दा लेने का नियम उठा लिया गया है। अब से प्रेमी पाठक वार्षिक मूल्य४) ही भेजें। व्यवस्थापक

हिन्दी

नवजीवन

रविवार, चैत्र सुदी ९, सं. १९७९

हिंसा और अहिंसा

हिंसा मृत्यु का नियम है, अहिंसा जीवन का नियम है। हिंसा विघातक है, अहिंसा विधायक है। हिंसा पशु-बल है, अहिंसा मनुष्य-बल है। हिंसा आसुरी सम्पत्ति है, अहिंसा दैवी सम्पत्ति है। अतएव हिंसा अधर्म है, 'अहिंसा परमो धर्मः'।

हिंसा का कारण है आत्यन्तिक स्वार्थ, अहिंसा का कारण है आत्यन्तिक सुखशान्ति। हिंसा का फल है निरन्तर कलह, वर्धमान कलह; अहिंसा का फल है-मनुष्य का विकास, समाज की उन्नति। अतएव हिंसा त्याज्य है, अहिंसा ग्राह्य है।

स्वार्थ और ज्ञान परस्पर विरुद्ध हैं। जहां केवल स्वार्थ है, वहां ज्ञान का अभाव होता है और जहां अज्ञान होता है केवल वहीं आत्यन्तिक स्वार्थ सम्भवनीय है। पशु और मनुष्य में किस बात का भेद है? "ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषो, ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः"। सो ज्ञानहीन, अतएव स्वार्थमय, मनुष्य पशु के बराबर है। हिंसा का कारण है केवल स्वार्थ, अतएव हिंसा पाशविक है और इसके विपरीत अहिंसा मानुषी है।

हिंसा का दूसरा नाम है द्वेष अथवा युद्ध। अहिंसा का दूसरा नाम है प्रेम अथवा एकता। मनुष्य के लिए कौनसी बात स्वाभाविक है? युद्ध अथवा प्रेम? मनुष्य तो क्या पर पशु के लिए भी प्रेम ही स्वाभाविक मालूम होता है। द्वेष-भाव तो दोनों में तभी जाग्रत होता है जब उनकी स्वार्थ-हानि होती है या स्वार्थ साधने की इच्छा प्रबल होती है। प्रेम-भाव मनुष्य का जन्मजात गुण है; द्वेष-भाव आगन्तुक है। अतएव अहिंसा मनुष्य की प्रकृति है, हिंसा विकृति है: अतएव रोग है, कुसंस्कार है।

मनुष्य का स्वभाव-धर्म या स्वाभाविक प्रवृत्ति या तो अच्छी हो सकती है, या बुरी अथवा ऐसी जो अच्छाई के संसर्ग से अच्छा और बुराई के संसर्ग से बुरी हो जाती है। यही तीन मत मनुष्य के स्वभाव के विषय में प्रचलित भी हैं। यदि मनुष्य को स्वभावतः सत्प्रवृत्त मानें तो हिंसा उसका स्वभाव-धर्म हो ही नहीं सकता। यदि स्वभावतः असत्प्रवृत्त मानें तो फिर वह परमात्मा का अंश या परमात्मरूप नहीं हो सकता। यदि उसको स्वभावतः सत्प्रवृत्त और असत्प्रवृत्त दोनों मानें तो कहना होगा कि मनुष्य स्वभावतः नर-पशु है। हां, आज वह नर-पशु है, इसमें तो कोई सन्देह नहीं; परन्तु वह स्वभावतः नर-पशु है, यह कहना और मानना मनुष्य-जाति का अपमान करना है, उसके विकास और उन्नति की सब आशायें छोड़ देना है। यदि ईश्वर है, सृष्टि की उत्पत्ति उसीके द्वारा हुई है, और मनुष्य उसीका अंश है, ईश्वर ही से उसकी उत्पत्ति और ईश्वर ही में उसका लय है, अर्थात् उसकी आत्मा का विकास होते होते परमात्मरूप प्राप्त होना है, तो मानना होगा कि मनुष्य स्वभावतः सत्प्रवृत्त ही है। संसर्ग और कुसंस्कारों के कारण असत्प्रवृत्त हो जाता है। अतएव अहिंसा ही मनुष्य का स्वभाव-धर्म है, हिंसा तो कुसंस्कार या उसका फल मात्र है। हिंसा को मनुष्य का स्वभाव-धर्म मानना ईश्वर के स्वभाव में हिंसा-धर्म का आरोप करना है।

संसार के सभी धर्म-मतों में प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः अहिंसा ही मनुष्य का धर्म बताया गया है, हिंसा तो केवल आपद्धर्म सूचित किया गया है। धर्म में मार-काट और हत्याकांड को प्रधानपद मिल ही कैसे सकता है? क्योंकि धर्म विधायक है और हिंसा विघातक है।

पर अभीतक बहुतेरे लोग हिंसा को मनुष्य का स्वभाव मानते हैं और इसलिए कहते हैं कि यह अहिंसात्मक कार्यक्रम तो अव्यवहार्य है। उनके इस हिंसा-प्रेम के दो कारण हैं—एक तो सामान्यतः संसार के इतिहास में विजय-श्री का प्रधान साधन हिंसा-कांड माना जाना और दूसरे विशेषतः वर्तमान अंगरेजी साम्राज्य की दुर्दमनीय वृद्धि, जिसका मूलाधार हिंसाकाण्ड है। पर यद्यपि संसार का तमाम हिंसाकाण्ड और संग्राम-संचालन शांति और समृद्धि के नाम पर किया गया है तथापि क्या आज उन उपायों के बदौलत शांति स्थापित हुई है? अत्याचार कम हो गया है? पाप की पूंजी घट गई है? अन्याय का तेज हीन हो गया है? स्वार्थ-वृत्ति सीमाबद्ध हो गई है? जब से यह वर्तमान सुसंगठित और सशस्त्र हिंसाकाण्ड आधुनिक जगत् में प्रादुर्भूत हुआ है तब से इन दुर्वृत्तियों और दुर्गुणों की अमर्याद वृद्धि नहीं हुई है? मनुष्य अधिक मनुष्य होने के बजाय अधिक पशु नहीं हो गया है? अपने बाहु-बल और शस्त्र-बल का उपयोग दीन-हीन लोगों की रक्षा के लिए करने की जगह वह उन्हींका रक्तमांस चूसने के लिए नहीं कर रहा है? क्या उच्च नैतिक गुणों का विकास होने के बजाय क्षुद्र भौतिक भोगों का विस्तार नहीं हुआ है? यदि यह सब हुआ है और पूर्वोक्त सुसंगठित स-शस्त्र हिंसा-कांड के विस्तार के साथ साथ इन अनिष्ट बातों का भी विस्तार होता जा रहा है तो क्या हमें अब भी आंखें मूंद कर हिंसा-कांड का हामी बने रहना उचित है? क्या यह मनुष्य-जाति के अर्थात् स्वयं अपने ही प्रति घोर अपराध नहीं है?

दूसरे, वास्तव में देखा जाय तो हिंसा-कांड में जो सफलता दिखाई देती है उसका कारण केवल हिंसा-कांड नहीं, बल्कि सुसंगठन और सुव्यवस्था है। यदि संग्रामशास्त्र में से सुसंगठन और सुव्यवस्था को निकाल दें तो हिंसा-कांड व्यर्थ हो जाता है। युद्ध-शास्त्र के दो ही भेद हो सकते हैं—हिंसात्मक और अहिंसात्मक। सुसंगठन, सुव्यवस्था और युद्ध-संचालन-शिक्षा की आवश्यकता दोनों में है। इनके बिना दोनों निरुपयोगी हैं। सशस्त्र अर्थात् हिंसात्मक युद्धों से तो संसार का सारा इतिहास भरा पड़ा है। निःशस्त्र अर्थात् अहिंसात्मक युद्ध का इतिहास भारत में १८ महीने पहले से शुरू होता है। सशस्त्र युद्धों का फल हमारे सामने है; निःशस्त्र संग्राम का फल अभी भविष्य के गर्भ में छिपा हुआ है। सिद्धान्त-दृष्टि में और कौटुंबिक क्षेत्र में तो उसका सुफल स्पष्ट और निश्चित है पर सामाजिक और राष्ट्रीय संसार या यों कहें कि वर्तमान श्रद्धा-हीन व्यावहारिक जगत् अभी अपने दुराग्रह और अभिमान को कम नहीं करना चाहता। वह परिणामवादी है। वह नीति और धर्म को परिणाम की कसौटी पर कसता है। वह शायद अपने को परिणाम का प्रभु भी मानता है। वह नीति और धर्म का पालन केवल नीति और धर्म के पालन के लिए नहीं करना चाहता। वह नहीं मानता कि सत्य और धर्म के पालन का फल हमेशा अच्छा ही होता है। तात्कालिक फल और वास्तविक फल के भेद पर उसकी दृष्टि नहीं जाती। फिर यह अहिंसात्मक संग्राम १८ महीने का तो बच्चा है। और उसकी परवरिश भी ठीक ठीक नहीं की गई है। भला अभी से उसके फलाफल का निर्णय कर बैठना हानिकर जल्दबाजी और

अदूरदर्शिता नहीं तो क्या है? कहां संसार की उम्र के बराबर पूर्ण सशस्त्र युद्धों की उम्र और उनका फलाफल, और कहां चन्द दिनों का अहिंसात्मक संग्राम और उसका फलाफल!

ऊपर कह चुके हैं कि दोनों प्रकार के युद्धों में सुसंगठन और सुव्यवस्था की आवश्यकता है। भारत आज अहिंसात्मक संग्राम पर कटिबद्ध है। सो सुसंगठन, सुव्यवस्था और सु-शासन के बिना उसे जय-लाभ कदापि नहीं हो सकता। माना कि हिंसात्मक युद्ध अहिंसात्मक युद्ध से आसान है। यह भी मान लें कि भारत ने समयोपयोगी समझ कर अहिंसात्मक युद्ध का अवलम्बन किया है। यह भी मान लेते हैं कि आज वह सारे विश्व के हित के नाम पर नहीं केवल अपने निजी लक्ष्य के लिए लड़ रहा है। पर इस कारण वह हिंसात्मक युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकता। आज सफल हिंसात्मक संग्राम के योग्य संगठन, व्यवस्था और शासन उसके पास कहां है? यदि वह इस दिशा में प्रयत्न भी करे तो फल-प्राप्ति में कितने साल लगें? कौन उन्हें यह विद्या सिखावें? क्या अंगरेज? साधन-सामग्री कहां से पावें? क्या योरप-अमरीका जापान से? आखिर फल क्या हो? क्या या तो सर्वनाश, अधिक और चिर गुलामी तथा कायरता नहीं? क्या वह पश्चिम की पूर्व पर-भौतिकता की आध्यात्मिकता पर-चिर विजय न होगी? क्या यह संसार के कल्याण के मार्ग में एक महान् संकट न होगा?

इसके विपरीत अहिंसात्मक युद्ध के सब साधन आपके पास हैं। कहीं से मांगने या मंगाने की जरूरत नहीं। गुरु भी ईश्वर ने हमें दे दिया है। १८ महीने के इस प्रयोग से देश को लाभ ही हुआ है। शान्ति, प्रेम और एकता की दिशा में प्रगति ही अधिक हुई है। राष्ट्र में जीवन का संचार ही अधिक हुआ है। प्रतिपक्षी पर हुआ उसका असर हमें मूर्तरूप में चाहे न दिखाई देता हो; पर अभी अच्छा संग्राम ठना ही कहां है? रंग जमते ही जमते रह गया। हमारे संगठन, व्यवस्था और शासन की अपूर्णता के कारण हमें कुछ पीछे हटना पड़ा। अतएव सब वीरों का अब यही कर्तव्य है कि वे अपनी सेना की गलतियों का सुधार तुरंत करें, अपनी त्रुटियों की पूर्ति का प्रयत्न अविराम आरम्भ कर दें। यह बारडोली के विधायक कार्यक्रम की पूर्ति के ही द्वारा हो सकता है। याद रहे कि हमारा प्रधान शस्त्र है प्रेम—भारत की सब जातियों में प्रेम, सहयोगी-असहयोगियों में प्रेम, अंगरेजों और हिन्दुस्तानियों में प्रेम। और इसका एक मात्र साधन और चिह्न है-खादी और चरखा। जबतक हम घर घर में खादी और चरखे का प्रचार न करेंगे तबतक इस अहिंसात्मक युद्ध में विजय पाना कठिन है। और यह स्पष्ट दिखाई देता है कि खादी प्रचार अधिक आसान, पूर्ण निष्पाप, अधिक व्यवहार्य और अधिक शान्ति तथा इच्छाकारक है या नाशक शस्त्रास्त्र का संग्रह करके हिंसात्मक युद्ध ठानना।

डाक्टर महमूद

खिलाफत सेंट्रल कमिटी के सेक्रेटरी डाक्टर महमूद बम्बई में गिरफ्तार किये गये हैं। पटना में उनपर राजद्रोह का मामला चलेगा। आप पटना में बैरिस्टरी करते थे। खिलाफत की पुकार पर आप उसे छोड़ कर अपने मुल्क और मजहब की खिदमत में लग गये। आप सेंट्रल खिलाफत कमिटी के एक स्तम्भ थे। जिस अपराध में आप पकड़े गये हैं उसका अपराधी तो आज भारत का बच्चा बच्चा और प्रत्येक असहयोगी है। देखना है, सरकार एक से एक अच्छे कार्यकर्ताओं को जेल भेज भेज कर कहांतक खिलाफत पंजाब और स्वराज्य के काम को हानि पहुंचा सकती है। ऐसे प्रत्येक आघात के अवसर पर यदि हम अपने मत पर अधिक दृढ़ रहने का संकल्प करें, अपने खादी-प्रचार आदि के कार्यक्रम में अपनी पूरी शक्ति लगावें तो सरकार को अपनी भूलों का प्रायश्चित्त शीघ्र ही करना पड़े।

अब क्या करें?

महात्मा जी जेल चले गये और हमें अपनी सम्मति से सहायता देने के लिए अब उनका शरीर स्वतंत्र नहीं है। इसलिए लोग आपस में यही पूछ रहे हैं कि "अब हम क्या करें?"

महात्मा जी ने इस प्रश्न का उत्तर गिरफ्तार हो जाने के एक दिन पहले 'यंग इंडिया' (मार्च ९, १९२२) के एक लेख में दे दिया है। लेख का शीर्षक है—"यदि मैं पकड़ा जाऊं।" इस लेख में उन्होंने असहयोगियों से अपना अंतिम निवेदन किया है। जैसी परिस्थिति में हम लोग पड़ गये हैं उसके अनुकूल हमें क्या क्या करना चाहिए उसकी आज्ञा उन्होंने उस लेख में दी है। वह इस प्रकार है—

"हड़ताल न होनी चाहिए, भीड़-भड़क्के का कोई आन्दोलन न होना चाहिए और जलूस न निकालने चाहिए। मेरे देशवासी मेरी गिरफ्तारी पर पूर्णतया शांति रक्खें तो मैं उसे अपने लिए प्रतिष्ठा का चिह्न समझूंगा। मैं प्रीतिपूर्वक देखना चाहता हूं कि कांग्रेस का विधायक कार्यक्रम घड़ी के समान व्यवस्थित और डाकगाड़ी के समान तीव्र गति से चलता रहे। मैं चाहता हूं कि जो लोग अबतक पीछे रहे वे स्वयं विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करें और उनकी होलियां जलावें। बारडोली में जो विधायक कार्य्यक्रम निर्धारित किया गया है यदि वे उसे पूरा कर देंगे तो न केवल वे मुझे तथा अन्य कैदियों को छुड़ा लेंगे बल्कि स्वराज्य भी स्थापित कर लेंगे और खिलाफत तथा पञ्जाब के अत्याचारों के प्रति न्याय भी करा लेंगे।

स्वराज के जो चार स्तम्भ हैं वे उन्हें याद रखने चाहिए-अहिंसा, हिन्दू-मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई और यहूदी लोगों की एकता, अस्पृश्यता का सम्पूर्ण नाश, और हाथ के कते हुए और हाथ के बुने हुए खद्दर की इतनी तैयारी करना कि जिससे वह विदेशी कपड़े का स्थान पूर्णतया ले ले।"

एक ऐसा ही प्रश्न महात्मा बुद्ध से पूछा गया था, जब कि वे अपने शरीर का परित्याग करके अपनी आयु के ८० वें वर्ष में निर्वाण प्राप्त करने वाले थे। उनके शिष्य रो रहे थे। उन्होंने पूछा कि—'जब आप निर्वाण प्राप्त कर लेंगे तो हमें कौन शिक्षा देगा?'

महात्मा बुद्ध का उत्तर इस प्रकार था—"दुःखी मत हो, रोओ मत। इस हाड़-चाम के शरीर की रक्षा मैं क्यों करूंगा? क्योंकि ईश्वर के महान् कानून का शरीर तो जीवित ही रहेगा। मैं अपने निश्चय पर दृढ़ हूं। जो काम मुझे दिया गया था उसे मैंने पूरा कर दिया, अब मैं आराम करना चाहता हूं!"

"मार्ग को तलाश करते हुए परिश्रमपूर्वक स्वयं उद्योग करना चाहिए। मेरा दर्शन करना पर्याप्त नहीं है; जैसे मैंने आज्ञा दी है वैसे चलो; विषाद के फन्दे से मुक्त हो जाओ; लक्ष्य की ओर तेजी से मार्ग में बढ़ो। एक रोगी केवल औषधि के गुण से ही अच्छा हो सकता है और सब कष्टों से मुक्त हो सकता है चाहे वह चिकित्सक से मिले भी नहीं। वह मनुष्य मेरा दर्शन व्यर्थ करता है, जो मेरी आज्ञा के अनुसार नहीं चलता। इससे कोई लाभ नहीं होता। जो मनुष्य मेरे पास रहता है परन्तु है अनाज्ञाकारी तो वह मुझसे बहुत दूर रहता है। परन्तु वह मनुष्य जो धर्म का पालन करता है वह सदा मेरी उपस्थिति के आनन्द का अनुभव करता है।" (गास्पिल आव् बुद्ध डा० पाल रचित ६ठी आवृत्ति १८९८ पृष्ठ २१७-२१८)

जिन लोगों का महात्माजी से गहरा सम्पर्क रहा है—जो उनके साथ एक ही घर में रहे हैं, जिन्होंने लम्बी लम्बी सफर की है,

दो दो घण्टों के अन्तर से होने वाली सभाओं में जो उनके साथ उपस्थित रहे हैं, सम्पूर्ण भारतवर्ष में होने वाली सभाओं, कान्फ्रेंसों, परिषदों में रातों उनके साथ बैठ कर जागरण किया है, जिन लोगों ने देखा है कि भिन्न भिन्न प्रांतों से आये हुए भिन्न भिन्न दलों के प्रतिनिधि किस प्रकार उनको घेरे रहते थे, जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, वर्किंग कमेटी और कांग्रेस की बैठकों में उनके साथ बैठते उठते रहे हैं, इसके अतिरिक्त जिन लोगों ने उन्हें अपने दोनों साप्ताहिक पत्रों में लेख लिखते हुए और पत्र-व्यवहार करते हुए देखा है—वही भले प्रकार जानते हैं कि उनके शरीर पर कितना भारी बोझ पड़ गया था। सच बात तो यह है कि हम लोग जो उनके अनुगामी हैं, यदि कुपात्र सन्तान नहीं हैं, और हमारे हृदय यदि पत्थर के बने हुए नहीं हैं तो हमें इसी विचार से कि महात्माजी को जेल की दीवारों के अन्दर कुछ काल के लिए आराम मिल जायगा, हर्ष मनाना चाहिए और उनकी अंतिम आज्ञा और निवेदन के अनुसार काम करके उनको प्रसन्न रखना चाहिए। जबतक उनका शरीर स्वतन्त्र था तबतक हमने उन्हें क्षणभर भी आराम न करने दिया। परन्तु अब हमें उनके उन शब्दों को भली भांति समझ लेना चाहिए जोकि उन्होंने "यदि मैं पकड़ा जाऊं" शीर्षक वाले लेख की समाप्ति में लिखे हैं—"चौथा लाभ उसमें (महात्माजी के पकड़े जाने और जेल जाने से) यह होगा कि मुझे शारीरिक शांति और आराम मिलेगा जिसका कि शायद मैं अधिकारी हूं।"

निःसन्देह हममें से बहुतों के लिए जेल अभी तक जेल ही है अर्थात् वह एक त्याज्य वस्तुओं में है। परन्तु महात्माजी के लिए और उन लोगों के लिए जो सत्य और असत्य के संग्राम में लड़ रहे हैं, जिनकी आत्मा स्वतन्त्र तथा निरपराध है, जेल स्वतन्त्रता का सच्चा घर है। परन्तु उन लोगों के लिए जिनमें संयम नहीं है और जो क्रोध की वासना को रोक नहीं सकते, जेल का जीवन हर तरह से संयम का जीवन है, यदि हम केवल इतनी बात जान जायं कि कब और किस प्रकार हमें आत्मिक अपमान का प्रतिवाद करना चाहिए जिसके कारण हमारे मनुष्यत्व का पतन होता है और जो हममें दैवी अंश है।

सिन्ध का एक 'शुद्ध' बलिदान

डाक्टर चौतराम सिन्ध के प्रसिद्ध कार्यकर्ता हैं। आप सिन्ध-प्रान्तीय-समिति के सभापति और महासभा की कार्य-समिति के सदस्य थे। राजद्रोह की दफा में फांस कर सरकार ने उन्हें १८ महीने सख्त कैद की सजा दी है। उन्होंने अदालत में अपना जो केली-बयान पेश किया है वह अहिंसात्मक असहयोग के रहस्य तथा एक निर्भय देशभक्त की निर्मलहृदयता का एक स्पष्ट चिह्न है। उसमें उन्होंने कहा है कि लाला लाजपतराय के देश निकाले के जमाने से मैं पक्का अंगरेजों का शत्रु था तथा हर किसी उपाय से अंगरेजी सल्तनत को उखाड़ फेंकने के मत का अनुयायी था। पर पिछले १८ महीनों से मेरे हृदय का द्वेष-भाव कम होते होते अब किसी भी अंगरेज के प्रति मेरे दिल में शत्रुभाव नहीं रह गया है। मुझे खुशी है कि आज मैं उस अवस्था में सरकार का कैदी हुआ हूं जब कि मैं अधिक शुद्ध हो चुका हूं। सो जबतक डाक्टर चौतराम अंगरेजों को अपना दिली दुश्मन मानते रहे तबतक सरकार उनको अपना बन्दी न बना सकी और आज जब वे प्रायः वैरभाव-हीन हो गये तब उसे उनको सजा देने की सूझी, यह ईश्वर के [illegible] का संकेत-चिह्न हो तो कौन आश्चर्य की बात है?

टिप्पणियां

राष्ट्रीय सप्ताह

'हिन्दी-नवजीवन' का यह अंक पाठकों के हाथों में पहुंचने के बाद ही भारत का राष्ट्रीय सत्याग्रह सप्ताह आरम्भ हो जायगा। ६ और १३ अप्रेल भारत के राष्ट्रीय उत्थान के इतिहास में अमर हो गई हैं। सत्य और अहिंसा के प्रकाश के लिए जालियांवाला बाग में हुई सैकड़ों निरपराध आहुतियों की स्मृति केवल भारत के ही हृत्पटल पर नहीं, बल्कि, यदि हम वर्तमान आत्मशुद्धि के अहिंसात्मक संग्राम में सत्य और अहिंसा के सच्चे प्रतिनिधि बन कर, विजय प्राप्त कर सके तो सारे संसार के मनोमन्दिर में सदा के लिए अमर रहेगी। इस स्मारक की आवश्यकता और इसका महत्व इसलिए *नहीं है कि हमारे दिलों में उन खूनी जालिमों के प्रति द्वेष है या* हम उसे जाग्रत करना चाहते हैं। बल्कि यह तो उन बे-गुनाह भाइयों की स्मृति में दुःख और प्रेम के दो आंसू बहाने का तथा जिन उच्च सिद्धान्तों के लिए उनका यह बलिदान हुआ उनके चिन्तन-मनन करने का निमित्त है। यह सप्ताह केवल भारत के ही नहीं, बल्कि सारे जगत् के भाग्य-चक्र को पलटने का सप्ताह है। संसार को इस बात का अनुभव कराने के ही लिए इस समारोह की आवश्यकता है। इसके मनाये जाने के विधि-विधान के सम्बन्ध में स्वयं महात्मा गांधी के ही दो लेख अन्यत्र उद्धृत किये जाते हैं, जिनको ध्यान में रखते हुए लोगों को कार्य-समिति की सूचना के अनुसार यह उत्सव मनाना चाहिए।

इस पवित्र अवसर पर हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारा युद्ध धर्म-युद्ध है. प्रतिपक्षी हमारे शत्रु नहीं, पर भाई हैं। हमारे और उनके बीच सिद्धान्त का झगड़ा है। यदि सारी सृष्टि का कर्ता एक ही ईश्वर है, यदि हम एक ही ईश्वर के सब पुत्र हैं—तो भाई भाई का शत्रु हो ही कैसे सकता है? हां, मत-भेद, कृति-भेद, मार्ग-भेद से प्रतिपक्षी भले ही हो सकता हो। सो यह संग्राम भाई-भाई के बीच, प्रतिपक्षियों के बीच है, शत्रुओं के बीच नहीं। हां, यह सच है कि हमारे प्रतिपक्षी भाई आज हमें शत्रु समझ रहे हैं और हमारी जड़ काटने में कसर नहीं कर रहे हैं; पर यह उनका अज्ञान है, भ्रम है। हमारा वर्तमान धर्म-युद्ध इसीकी दवा है। सत्य सिद्धान्तों के लिए लड़ना ईश्वर के लिए लड़ना है। सो हमारा पक्ष ईश्वर का पक्ष है। ईश्वर हमारे साथ है। यदि हम इसी विश्वास पर अटल रहे तो शीघ्र ही हमें ईश्वरी चमत्कार का अनुभव होगा। वह दिन हमारी—केवल हमारी ही नहीं बल्कि उनकी भी—विजय का दिन होगा। क्यों कि उस दिन वे भी अपने अज्ञान और भ्रम आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेंगे।

सो यह सप्ताह हमारे लिए आत्मशुद्धि और कर्तव्यलीन होने का सप्ताह है। हम परमात्मा से प्रार्थना करें कि हमारे तमाम भीतरी दुर्गुण और पाप, जो हमारे सच्चे शत्रु हैं, दूर हो जायं और सत्य और अहिंसा का सच्चा प्रकाश हमारे हृदय में हो जिससे हम इस धर्म-युद्ध में सफल हों और अपने मार्गदर्शक के हृदय में प्रीति और अभिमान की वस्तु होते हुए संसार के सामने सच्चे भ्रातृभाव का उदाहरण पेश करें।

द्वेष या प्रेम?

प्रत्येक नये आन्दोलन के आरम्भ में लोग उसके उद्देश का प्रायः अनर्थ किया करते हैं। इस असहयोग आन्दोलन के १८ महीने के दिन-रात भगीरथ प्रचार होने पर भी नौकरशाही के हल्कों से तथा सहयोगियों की जबानियों से यह [illegible]

करती है कि असहयोग आन्दोलन तो अंगरेजों का द्वेष करने के लिए खड़ा किया गया है। पर बात ठीक इसके उलटी है। यह आन्दोलन राजनीति को अनीति या कुनीति से जिसमें वह अभी बहुत बुरी तरह-फंसी हुई है, छुड़ाना चाहता है। इसलिए उसका आदर्श वर्तमान पश्चिमी राजनैतिक चालें नहीं हो सकता; बल्कि वे ही सिद्धान्त और तत्त्व हैं जो सदा अबाधित रहते हैं। आइए, हम यही देखें न कि इसका जन्म कैसे हुआ। यह पाया गया कि सरकार अपनी उस चाल को छोड़ना मंजूर ही नहीं करती जिसे कि क्या असहयोगी और क्या सहयोगी दोनों मानवोचित जीवन के लिए हानि-कारक मानते हैं। तब इसके मूल में द्वेष का आरोप कैसे किया जा सकता है? जब तक हमारा हेतु सरकार को किसी अन्याय्य काम करने से रोकना है तब तक द्वेष पैदा हो ही नहीं सकता। द्वेष तो तभी हो सकता है, जब हमारा युद्ध नैतिक नहीं, बल्कि जाति-विषयक हो। जनता सरकार से यह उम्मीद करती थी कि वह पंजाब और खिलाफत का न्याय्य और सन्तोष-जनक निपटारा कर देगी। पर उसे निराश होना पड़ा। राजनैतिक दृष्टि से जो लोग अ-सहाय हैं उनके दिल को इससे कितनी कड़ी चोट पहुंच सकती है? उससे जालिम के प्रति उनके मनमें द्वेष भी उत्पन्न हो सकता है। पर हमें तो ऐसे द्वेष को, यदि हो भी तो, नष्ट ही करना था। और इसीलिए राजनीति की नीची सीढ़ी से उठाकर हमें इस आन्दोलन को नीति और आध्यात्मिकता के उच्च वायुमंडल में ले जाना पड़ा। अतएव यह स्पष्ट है कि इसका उद्देश द्वेष नहीं, प्रेम ही है।

कानून-भक्ति!

पश्चिमी संसार के लोग बड़े भारी कानून-भक्त हैं। वे तो पद पद पर देखते हैं कि कहीं कानून-भंग तो नहीं हुआ। इस प्रकार कानून की बेहद इज्जत करना तो एक दुर्गुण-सा है। यह सत्य है कि कानून के द्वारा व्यक्तियों के जीवन और पारस्परिक सम्बन्ध में एक प्रकार की एकरूपता रहती है; पर साधारणतः कानून का जितना ध्यान व्यवस्था की ओर है उतना न्याय की ओर नहीं। और कानूनों का आधार तो न्याय ही होना चाहिए। इसलिए जहां जहां कानून न्यायसंगत नहीं होते वहां उनके प्रति आदर रखना भी अन्याय्य ही है। पर मनुष्य-जाति के उत्कर्ष के लिए उसकी नैतिक और धार्मिक उन्नति के लिए कानून का न्याय्य और धर्ममूलक होना परमावश्यक है। और ऐसे ही कानूनों को मानना मनुष्य का कर्तव्य भी है।

पर आजकल की राजनीति कानून की बड़ी भारी मूर्तिपूजक हो गई है। वह यह तो देखती ही नहीं कि उसकी उस-कानूनों की मूर्ति में धर्म और न्याय की प्रतिस्थापना की गई है या नहीं। वह तो सिर्फ इतना मानती है कि जो पुरुष उस कानून की मूर्ति के सामने सिर झुकाता है वही भक्त और भला आदमी है और अन्य सब पाखंडी तथा नास्तिक हैं। इसीलिए पश्चिमी राजनीति का दिन ब दिन अधःपतन हो रहा है। क्योंकि वहां जो धर्म और नीति की प्रवर्तक धर्म-संस्थायें हैं उनके मुंह बंद कर दिये गये हैं-इस डर से कि वे कहीं कानून के-धार्मिक और आध्यात्मिक नहीं-राज्य के कानूनों के साम्राज्य पर आक्रमण न करने लगें। ऐसा करके से तमाम आधुनिक संसार का जो कि नैतिक और धार्मिक नियमों को छोड़ कानून की इन निर्जीव मूर्तियों के सामने सिर झुकाता है, दिन ब दिन अधिकाधिक अधःपतन होता जा रहा है। केवल कानून तो मनुष्य-जाति का ध्येय कभी हो ही नहीं सकता। उसका ध्येय तो है सात्त्विक उन्नति। कानून तो उसका मार्ग हो सकते हैं और वहीं उनका मानना मनुष्य-जाति के लिए कल्याण-प्रद भी है। पर जहां के कानून न्याय्य न हों वहां की सरकार को उचित है कि वह उन्हें न्याय्य बनावे।

इसलिए जहां कानून धर्म्य और न्याय्य हों वहां तो उनको शिरोधार्य करना चाहिए, उनकी रक्षा करनी चाहिए; और आदर-सन्मान के साथ उनका पालन करना चाहिए। पर जहां उनका उपयोग श्मशान-शान्ति फैलाने के लिए किया जा रहा हो, जहां उनके पालन से मनुष्यजाति का अधःपतन हो रहा हो, जहां उनके बलपर मनुष्यजाति अन्याय और अत्याचारों से पीड़ित की जा रही हो, और जहां उसके जन्मसिद्ध अधिकार ठुकराये जा रहे हों, वहां तो हर शांतिपूर्ण और न्याययुक्त प्रयत्न से इन अनीति-युक्त कानूनों से उत्पन्न होनेवाली दासता को नष्ट करना ही मनुष्य-जाति का सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

"मरने को तैयार हूं"

एक सज्जन महात्मा गांधी के कारावास पर सन्तप्त, दुखी और निराश-से हो कर अपने लम्बे-चौड़े पत्र में लिखते हैं कि मैं देश के लिए मरने को तैयार हूं। लोकमान्य को जब सजा हुई थी उस समय भी ऐसे दो आदमियों ने आत्महत्या कर ली थी। यह प्रवृत्ति इस बात की तो सूचक अवश्य है कि ऐसे लोग देश-नायकों को कितनी प्रेम और पूज्य दृष्टि से देखते हैं, देश के प्रति उनके हृदय में कितनी भक्ति है और उन देश नायकों के जेल जाने से उनके चित्त को कितना गहरा आघात पहुँचा है। परन्तु यह उनकी बड़ी भारी आत्मिक कमजोरी का भी स्पष्ट लक्षण है। देश के हित के लिए मरना उतना कठिन नहीं है जितना कि जीवित रहना। आत्महत्या तो सिवा कायरता के और कुछ भी नहीं। देश के हित का प्रयत्न करते हुए-देश-सेवा के लिए काम करते हुए मर मिटना तो बेशक बहादुरी है; पर दुःखावेग में अकर्मण्य हो कर मर जाना कायरता है। यदि हम सचमुच अनुभव करते हैं कि महात्माजी को कैद करके सरकार ने हमारे देश को और हमारी देशभक्ति को अपमानित किया है तो हमारा धर्म होना चाहिए कि हम महात्माजी के बताये और चलाये कामों में तनमन से जुट जायें। उन्हींको करते हुए अपना शरीर छोड़ दें। ऐसा जीवन स्वागत-योग्य जीवन है; ऐसी मृत्यु गौरवपूर्ण मृत्यु है।

चमारों की शुद्धि

शिकारपुर, जिला मुजफ्फरनगर, संयुक्तप्रान्त, से एक भाई लिखते हैं—"यहां के चमार उठना चाहते हैं। ईश्वर के भक्त बनना चाहते हैं। मैं अपने इर्द-गिर्द देखता हूं कि उनके मांस छोड़ने, शराब छोड़ने तथा मरे हुए पशु को न उठाने पर हिन्दू-मुसलमानों ने उनका बायकाट कर दिया है। उन्होंने हरएक काम का झूठा खाना छोड़ दिया है और असली हिन्दू हो गये हैं। दरयाफ्त करने पर मालूम हुआ कि वे मरे जानवरों को इसलिए नहीं उठाते कि कहीं मांस खाने की आदत फिर न लग जाय। इसका फल यह हुआ है कि लोग उनपर सख्ती कर रहे हैं। जंगल से घास खोदना, उनके मवेशियों को पानी पिलाना, बाजार से सौदा लाना कई जगहों में बन्द कर दिया गया है। यहांतक कि पाखाना जाना बन्द करने की भी धमकी दी जाती है। + + + +"

तो इस सम्बन्ध में चमार-भाइयों से तो हमे इतना ही कहना है कि उनका मांस और शराब को छोड़ देना तो बहुत ठीक है; पर मरे मवेशी को न उठाने से गांव में बदबू और बीमारी फैलेगी और इससे समाज की हानि होगी। इसलिए सफाई और तन्दुरस्ती के खयाल से उन्हें मरे जानवर तो जरूर

उठाना चाहिए। यह तो समाज और देश की बड़ी भारी सेवा है। यदि उन्होंने मांस खाने और शराब पीने की बुराइयां अच्छी तरह समझ ली हैं और उनके त्याग को अपना धर्म मान लिया है तो फिर उन्हें इस बात से न डरना चाहिए कि फिर से यह आदत लग जायगी। उन्हें अपने प्रण पर अटल रहना चाहिए। और उन गांव वालों को हमारी सलाह यह है कि उन्हें अपने गिरे हुए भाइयों के साथ दुर्व्यवहार न करना चाहिए। आपस में प्रेम और एकता किये बिना हमें स्वराज्य न तो मिल ही सकता है न मिलने पर ठहर ही सकता है। वो उनके साथ दया और प्रेम का बरताव करें और उन्हें अपना, अपने देश का अंग समझें और संकट के समय उनकी सहायता करें।

गर्मी की छुट्टियां

भारत के वर्तमान आन्दोलन के साथ सहानुभूति रखनेवाले सज्जनों के लिए आगामी गर्मी की छुट्टियां बड़ा अच्छा अवसर है। उन दिनों में अगर वे चाहें तो बहुत कुछ कार्य करके दिखा सकते हैं। शीघ्र ही तमाम विद्यालय, न्यायालय, आदि को छुट्टियां मिलेंगी। तब केवल विद्यार्थी ही नहीं, बल्कि वकील-बैरिस्टर, न्यायाधीश, शिक्षकवर्ग आदि सब को कम से कम एक माह के लिए तो अवश्य ही खासा समय मिलेगा। देश के इस संकट-काल में उन्हें अपनी मातृभूमि की सेवा करने का जो यह अमूल्य अवसर हाथ लगनेवाला है उसका उपयोग क्या वे न करेंगे?

हम देखते हैं कि आजकल शहरों में तो कार्यकर्ता काफी तादाद में हैं। पर देहात में अब भी खूब काम करने की जरूरत है। भारत के सच्चे प्राण, उसकी सच्ची शक्ति तो देहातों में ही सुप्त हैं। हमें तो उसीको जगाना है। वर्तमान शासन-प्रणाली से सब से अधिक पीड़ित वही तो हैं। और सब से अधिक दुर्भाग्य की बात भी यही है कि वे ही अपनी अवस्था के विषय में सब से अधिक अंधेरे में हैं। यदि उन्हें परिस्थिति का ज्ञान करा दिया जाय तो राष्ट्र की शक्ति एकदम कितनी बढ़ जाय! और अगर सच्चे दिल से काम किया जाय तो उन्हें तैयार करने के लिए एक माह हमारे लिए कम न होगा। कार्यकर्तागण पहले ही से अपने अपने काम तथा कार्यक्षेत्र निश्चित कर लें, जैसा कि मनुष्य-गणना के समय करते हैं। और छुट्टियां मिलते ही अपने अपने काम पर जा डटें। वे देखेंगे कि केवल एकही माह में वे भारत को खूब आगे बढ़ा देंगे।

सबसे पहले हमें स्वदेशी का ही काम हाथ में लेना चाहिए। स्वदेशी का महत्त्व केवल राजनैतिक ही नहीं है; बल्कि अगर सच पूछा जाय तो उसका आर्थिक और अतएव नैतिक तथा धार्मिक महत्त्व ही इतना है कि राजनैतिक महत्त्व उसके सामने गौण मालूम होता है। आज चरखा भारत के करोड़ों दुखी-दरिद्रों के लिए कामधेनु-सा वरदायी है। भारत के वर्तमान नैतिक, धार्मिक और राजनैतिक पतन का एक प्रधान कारण स्वदेशी अर्थात् चरखे का त्याग है। हरएक घर में उसकी स्थापना होते ही निर्धनता का सारा अंधकार बात की बात में नष्ट हो जायगा। महात्मा गांधीजी के प्रति अपना भक्ति-भाव प्रकट करने का भी इससे बढ़िया दूसरा साधन नहीं है।

सर्व जातीय ऐक्य (अर्थात् हिंदू-मुसलमान-सिख-पारसी-ईसाई) तथा अस्पृश्यता-निवारण भी हमारे लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। पर केवल खादी प्रचार के साथ साथ ही हम इन दोनों कर्तव्यों का पालन बड़ी आसानी के साथ कर सकते हैं। अतएव हमें आशा है कि इन आगामी छुट्टियों को लोग सैर-सपाटे में न बितावेंगे; माता के विपत्काल में किस सपूत को आनन्द-विहार प्रिय हो सकता है? वे तो इस पतिता करके उसकी पुकार के अनुसार उसका दुःख दूर करने में डट जायंगे और संसार के सामने इस बात का उदाहरण पेश करेंगे कि जननी जन्मभूमि की, सत्य और धर्म की, सेवा किस तरह की जाती है।

मध्यप्रान्त क्यों पीछे रहे?

असहयोग-आन्दोलन के आरम्भ-काल में अपने पराक्रम का परिचय दे कर मध्यप्रान्त की सरकार नम्र हो रही थी। पर अपनी दूसरी सहयोगिनी सरकारों को दमन की सड़क पर तेजी से दौड़ते हुए देख कर उसके लिए अधिक समय तक शान्ति रखना शायद असम्भव हो गया। रायपुर की महासभा-समिति के मन्त्री श्री पं० रविशंकर शुक्ल की सहसा गिरफ्तारी बहुत कर के इसी बात की सूचक है। समाचार मिला है कि पुलिस उन्हें हथकड़ी डाल कर ले गई। इस पर चौंकने की आवश्यकता नहीं। क्यों कि असहयोगियों ने तो सरकार को बुरे से बुरा करने की चुनौती दे रक्खी है। बहुत दिनों में मध्यप्रान्त का भाग्य पर फिर जागा। इसके लिए उसको बधाई!

जबलपुर के व्यापारी

खबर मिली है कि जबलपुर के कुछ व्यापारियों ने महात्मा गांधी के कारावास के उपलक्ष्य में छः महीने तक और बिलायती कपड़ा न मंगाने की प्रतिज्ञा की है। व्यापारी-समाज की यह जागृति अवश्य ही उत्साहवर्द्धक है। भारत तथा असहयोग-आन्दोलन अब इस अवस्था को आ पहुंचा है कि व्यापारी-वर्ग अब अपने कर्तव्य—पालन में विमुख रही नहीं सकता। ज्यों ज्यों वे खादी और चरखे का रहस्य समझते जायंगे त्यों त्यों वे केवल विदेशी कपड़ा मंगाने से इनकार ही नहीं करेंगे; बल्कि स्वदेशी खादी के तैयार करने में भी दत्तचित्त होंगे। भारत के व्यापारियों को अधिक निर्भयता और दूरदर्शिता का परिचय देने की आवश्यकता है। समाज के लाभ के लिए व्यक्तियों को स्वार्थ-त्याग किये बिना चारा नहीं। व्यापारी भाई खादी तैयार कराने में पूंजी लगावें और थोड़े ही परन्तु सन्मार्ग से प्राप्त धन पर सन्तुष्ट रहें तो इसमें उनका तथा देश का भी स्वार्थ है।

राष्ट्रीय सप्ताह नजदीक आ रहा है। क्या हम आशा करें कि इसमें देश का व्यापारीवर्ग अपना पूरा हिस्सा लेगा?

गांधी जी येरोडा जेल में

अब हमें अधिकारी रूप से समाचार मिले हैं कि महात्मा गांधी येरोडा (पूना के पास) जेल में रक्खे गये हैं। वे सकुशल हैं।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का बारहवां अधिवेशन लाहौर में श्री पं. जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के सभापतित्व में १४-१६ अप्रैल १९२२ को होने वाला है।

विशेष अंक के सम्बन्ध में

जब महात्माजी का शरीर स्वतन्त्र था तब वे 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' (गुजराती) दोनों में खूब लिखा करते थे। और दोनों पत्रों के तमाम विषय पढ़ने की उत्सुकता पाठकों को रहना स्वाभाविक थी। अतएव हमने 'गुजराती नवजीवन' की तरह विशेष अंक प्रकाशित करने की व्यवस्था की थी पर अब वर्तमान रूप में ही 'हिन्दी-नवजीवन' को उस योग्य बनाना हमारा पहला कर्तव्य है। अतएव विशेष अंक निकालने का विचार स्थगित कर दिया गया है। जिन सज्जनों के रुपये पेशगी आये हैं वे या तो उन्हें वापस मंगा सकते हैं या 'हिन्दी-नवजीवन' के अगले वर्ष के चन्दे में जमा करा सकते हैं। —व्यवस्थापक

जयकृष्ण प्रभुदास भनसाली द्वारा नवजीवन मुद्रणालय सूकी ओल, पानकोर नाका, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित ॥

चरखे से स्वराज्य

वार्षिक मूल्य [illegible]
एक प्रति का [illegible]
विदेशों के लिए वार्षिक [illegible]

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद चैत्र सुदी १, संवत् १९७९. रविवार, सायंकाल, ९ अप्रैल, १९२२ ई० | अंक [illegible]

टिप्पणियां

नौकरशाही की कुटिलता

महासभा के एक मन्त्री श्रीयुत सी. राजगोपालाचारियर तथा महात्मा गांधी के सुपुत्र भाई देवदास गांधी हाल ही में महात्माजी से जेल में मिलकर यहां आये थे। उनसे मालूम हुआ कि जेल में महात्माजी के साथ मामूली कैदी की तरह व्यवहार किया जा रहा है और जेल के तमाम नियमों का पालन सख्ती के साथ कराया जा रहा है। बकरी का दूध, रोटी, दो सन्तरे और दो खट्टे नीबू तो उन्हें खाने के लिए दिये जाते हैं, पर न तो अपना बिछौना उन्हें दिया गया है, न तकिया, न किताबें। पाखाने के लिए एक कूंडा कोठरी में रख दिया जाता है। रात में उन्हें कोठरी में बन्द रक्खा जाता है। जबतक बातचीत होती रही तबतक सब को खड़ा ही रहना पड़ा, हालां कि जेल के अधिकारी कुर्सी पर डटे रहे। बातचीत में अधिकारी इस रीति से दखल देते जाते थे जो कि बड़ा अपमानजनक था। उन्हें अखबार से मिलने नहीं दिया जाता। महात्मा जी ने अपने जेल-जीवन के सम्बन्ध में यद्यपि सावधानी के साथ चर्चा की तथापि उनके इशारों और जेल के अधिकारियों के रंगढंग से अन्दर का असली हाल उनसे छिपा न रहा। श्री राजगोपालाचारियर ने 'यंग इंडिया' में अपनी बातचीत का संयत वृत्तान्त प्रकाशित किया है। उसमें वे कहते हैं कि सरकार के इस व्यवहार से हमें बड़ी निराशा हुई। कहां जज ब्रूम्फील्ड के मुंह के स्तुति-स्तोत्र, उस से उत्पन्न जनता के मन में यह अपेक्षा कि सरकार महात्माजी के साथ तो अवश्य सभ्यता और बुद्धिमानी का व्यवहार करेगी, और कहां यह उसकी भलाई का दिवाला! कोई भी असहयोगी जेल को महल समझ कर वहां सुख भोगने के लिए नहीं गया है। हां, जेल के भीषण कष्टों को वे महलों का सुख मान कर आज कृतार्थ अवश्य हो रहे हैं। फिर महात्मा जी सरकार से विशेष व्यवहार की आशा रक्खेंगे अथवा उसके दुर्व्यवहार की शिकायत करेंगे, यह कल्पना करना मानों महात्माजी को न पहचानना है। और उन्होंने सचमुच राजगोपालाचारियर से कहा भी कि मेरे जेल-जीवन की चर्चा सर्वसाधारण में न की जाय। वह जेल में [illegible] हैं। यदि बात कहीं पर जाहिर हो जाती तो हमें इस पर आक्षेप करने सुनने की आवश्यकता नहीं थी; पर बम्बई की सरकार ने एक प्रेस नोट प्रकाशित करके श्री राजगोपालाचारियर की [illegible] करने का हास्यास्पद और व्यर्थ प्रयत्न किया है। उसने कितनी ही बातों से तो साफ इनकार किया है और कुछ बात [illegible] वह बिल्कुल हजम कर गई है। पर जो लोग वर्तमान सरकार की कुटिल-नीति से परिचित हैं वे समझ गये हैं कि इसके क्या मानी लेना है। श्री राजगोपालाचारियर ने 'यंग इंडिया' ही में [illegible] भण्डा-फोड़ कर दिया है। उन्होंने एक [illegible] जवाब देकर साबित कर दिया है कि उनकी बातचीत के [illegible] गांधी जी के साथ ठीक वैसा ही बरताव किया जाता था जैसा कि उन्होंने वर्णन किया है। हां, [illegible] उन्होंने जेल-अधिकारियों को आड़े हाथों लिया तब उनका ऐसा [illegible] हो गया था कि शायद अब आगे ऐसी हालत न रहे। यदि उन्होंने [illegible] की चर्चा होने के बाद शर्मिन्दा होकर अथवा प्रजा-संक्षोभ के भय से सरकार ने वे सुविधायें कर दी हों और उनके बल पर इसने खंडन किया हो तो यह तो 'उलटा चोर कोतवाले डांटे' वाली मसल हुई। हम यह तो कैसे कहें कि भारत के हृदय-सम्राट् के साथ ऐसे दुर्व्यवहार और उस पर भी इस चालबाजी से भारत के हृदय को गहरा आघात न पहुंचा हो; पर यह अवश्य कहते हैं कि उससे उत्तेजित हो उठना मानों महात्माजी की आज्ञाओं की अवहेलना करना है। वे तो हमारे पापों का प्रायश्चित्त करने ही के लिए वहां गये हैं। अब यदि हमें अपने पापों पर पछतावा होता है, तो उसके हमारे तथा महात्माजी के छूटने का एक ही उपाय है—शांतिपूर्वक चरखा और खादी का प्रचार। विदेशी कपड़ों से शरीर को सजाकर महात्माजी के प्रति सहानुभूति प्रकट करना उनका बराबर अपमान करना है। यदि हम सच्चे हों, महात्माजी के प्रति सच्ची श्रद्धा और आदर रखते हों तो हमारे तन पर एक भी विलायती धागा दिखाई न देना चाहिए।

१३ अप्रैल की हड़ताल

महासभा की कार्य-समिति ने आज्ञा प्रकाशित की है कि आगामी १३ अप्रैल को सारे भारत में शांतिपूर्ण हड़ताल की जाय। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सारा भारत इस आज्ञा को शिरोधार्य करेगा। महात्मा गांधी की गिरफ्तारी और सजा का [illegible] [illegible] [illegible] किया है [illegible] [illegible] [illegible] हागी। हां, [illegible]

है कि सरकार ने हमारे अधिनायक को कैद करके हमारे हृदयों में दावाग्नि सुलगा दी है और जेलखाने में मामूली कैदी की तरह उनके साथ अपमानजनक व्यवहार करके नौकरशाही आग में घी डाल रही है, तथा पंजाब और संयुक्त-प्रांत में निरंकुश दमन के द्वारा जले पर नमक छिड़क रही है; पर हमारी शांति की सच्ची कसौटी तो यही है, हमारे संयम की पहचान तो यही है। ज्यों ज्यों हमें अधिक कष्ट दिया जाय, अधिक उत्तेजना फैलाने का प्रयत्न किया जाय, त्यों ही त्यों उसका जवाब अधिक शांति के साथ देकर हमें सरकार के सब दांव बेकार कर देना चाहिए। सो इस आगामी हड़ताल के अवसर पर कार्यकर्ताओं को शांति-रक्षा का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। हड़ताल के लिए किसीपर दबाव न डाला जाय। उत्तेजना के मौके पर पूर्ण संयम से काम लिया जाय। पूरी पूरी शांति रखना स्वराज्य की मंजिल को बहुत कुछ नजदीक लाना है। पूर्ण तैयारी होने तक अभी सविनय कानून-भंग मुल्तवी रक्खा गया है। अतएव सब लोगों को सावधान रहना चाहिए कि कहीं भी कानून-भंग न हो। मजिस्ट्रेट का हुक्म बेकायदा हो तो भी उसका भंग न किया जाय। यही राष्ट्र के बल को बढ़ाने का तथा प्रकट करने का सुगम मार्ग है। इसमें सफल होने से हम मीलों आगे बढ़ जायंगे; असफल होने से आशा दुराशा हो जायगी।

रायपुर में नौकरशाही की कु-चेष्टा

रायपुर, मध्य-प्रान्त, जिला परिषद् के समय पुलिस की असाधारण तैयारी होना, वहां के पुलिस अधिकारियों का परिषद् के मंडप में जबरन् घुसने का प्रयत्न करना, शांतिपूर्वक इसका प्रतिकार करते हुए स्वयंसेवकों के कप्तान पं० रविशंकर शुक्ल का गिरफ्तार कर लिया जाना, उनके हाथों में हथकड़ी भर देना, परिषद् के जल्से को सार्वजनिक सभा करार देने और मुफ्त के टिकट ले कर अन्दर जाने के विषय में मजिस्ट्रेट का जिद पकड़ना, पीछे से मजिस्ट्रेट आदि का टिकट खरीद कर परिषद् में आना और अन्त को ४२ घण्टे बाद शुक्ल जी को रिहा कर देना—ये सब बातें इस बात को साबित करने के लिए बस हैं कि 'कानून और शान्ति' की दुहाई देने वाली और उसके नाम पर हजारों बेगुनाहों को अपना बन्दी बना लेने वाली नौकरशाही खुद 'कानून और शांति' की कितनी परवाह करती है तथा लोगों में अकारण अशांति फैलाने का बीज किस तरह बोती है। इससे यह भी प्रत्यक्ष हो जाता है कि वर्तमान नौकरशाही नहीं बल्कि जनता ही सच्ची शांति की इच्छुक है। रायपुर के जन-समाज ने इस सनसनी के मौके पर जो शांति और साहस का परिचय दिया वह वर्तमान भाव और बल-मूलक, शान्त, गंभीर, शान्ति का सच्चा अर्थ प्रकट करता है।

जेल-यात्रियों का स्वागत

जब लोग यात्रा करके आते हैं तब उनका वन्दन करने की प्रथा हमारे देश में है। हम भी आज हाल ही स्वराज्य के तपोवन में तपस्या पूर्ण करके आने वाले मध्यभारत के देश-भक्तों का स्वागत करते हैं। मधुर, सरल, सहृदय माखनलाल जी, तेजस्वी, मध्यप्रान्त के विद्यार्थियों के जीवन, सुन्दरलाल जी, भारत की भलाई के लिए अत्यन्त आतुर और उत्सुक अर्जुनलाल जी, आइए, आपका स्वागत है। आपकी अन्तरात्मा ने बलिदान के लिए पुकार की। आप गौरव के साथ दौड़ पड़े। आज तपस्या की आंच में तप कर आप अधिक सात्विक, अतएव आशा की प्रीति के, स्वराज्य के स्वागत के अधिक अधिकारी हो गये हैं। हां, आप चाहते थे कि स्वतन्त्र भारत में स्वतन्त्र होवें; पर आप देखेंगे कि भारत की आत्मा तो स्वतन्त्र हो चुकी है। भौतिक स्वतन्त्रता का भौतिक मूल्य भारत अभी दे नहीं पाया है—इसीसे उसे प्रमाण-पत्र अभी नहीं मिला है। आपका काम होगा कि आप भारत के इस मोह को दूर करने के प्रयत्न में सहायता दें। देश के सामने इस समय जो रचनात्मक कार्यक्रम उपस्थित है और जो भारत के अन्तर्यामी नाड़ी-परीक्षक हमारे सिरताज के मार्मिक निदान का फल है, उसकी पूर्ति ही उस सहायता का स्वरूप है। भारतीय स्वराज्य-अनुष्ठान के मान्त्रिक की यही अन्तिम अव्यर्थ मन्त्र-योजना है। परमात्मा आपको आयु, आरोग्य और अपरिमित बल प्रदान करें और आपके द्वारा भारत-माता की ऐसी वन्दनीय सेवा हो जिससे उसके हृदय में आपका अभिमान निरन्तर बढ़ता रहे।

'एका'-आन्दोलन

संयुक्त-प्रान्त में जमींदारी और ताल्लुकेदारी की प्रथा है। वहां के किसानों को बराबर इस बात की शिकायत रहती है कि उनके जमींदार और ताल्लुकेदार उनपर हमेशा जुल्म करते हैं—वाजिब से ज्यादह लगान लेते हैं, जितना रुपया लेते हैं उतने की रसीद नहीं देते, बेगार लेते हैं, आदि। जमींदार और ताल्लुकेदार स्वार्थ-वश उनकी बातों को सुनी-अनसुनी कर दिया करते। यह राष्ट्रीय जागृति का युग है। किसानों की भी आत्मा दब न सकी। उन्होंने आपस में 'एका' करके ताल्लुकेदारों और जिमींदारों के खिलाफ आन्दोलन खड़ा किया। यही 'एका'-आन्दोलन है।

हमारी सरकार को तो भारत का 'फूट और बैर' मेवा बहुत गुणकारी और फलदायी हुआ है। ऐसे मौके पर वह हमेशा बलवान् को अपनी ओर फोड़ कर निर्बल को कुचलवा देती है और स्वार्थी बलवान् को अपना उपकृत बना लेती है। संयुक्तप्रान्त में भी सरकार ताल्लुकेदारों और जिमींदारों का पक्ष लेकर किसानों को दबा देना चाहती है। अधिकांश ताल्लुकेदार और जिमींदार अपने तात्कालिक स्वार्थ के लिए भावी दूरवर्ती हिताहित पर विचार नहीं करते।

यह किस बात का परिणाम है? पश्चिमी संस्कृति के संसर्ग और पश्चिमी शासन-प्रणाली के व्यवहार का। अन्ध अधम स्वार्थ भारत-आदर्श के लिए विजातीय वस्तु है। अधर्म्य स्वार्थ भारत का ध्येय कभी नहीं रहा। अंगरेजी शासन-प्रणाली और सभ्यता के आने के पहले भारत में ऐसा स्वार्थ का सभ्य साम्राज्य नहीं था। यह तो हमारे पश्चिमी भाइयों की देन है। उनके विजय-वैभव से हमारी आंखें चौंधिया गई। हम अन्ध होकर उनके पीछे चलने लगे। स्वार्थ-साधक कूट-कपट-युक्तियां उनसे सीखीं। आज अपने देशभाइयों पर ही हम वह जहरीली छुरी चलाते हुए नहीं सकुचाते। यही भारत का अधःपतन है; यही भारत के सामने भयंकर समस्या है।

क्या ताल्लुकेदार, क्या जमींदार, और क्या भारत के राजे-महाराजे तथा धनी और निर्धन सब एक जहाज में बैठे हुए हैं। कप्तान उसे अपनी अभीष्ट दिशा में ले जा रहा है। उसने उसकी पेंदी में भी छेद कर दिया है। इसका फल है या तो मरण या चिर दासता। यदि डूबना होगा तो सभी को डूबना होगा और गुलामी की बेड़ियां भी सभी को नसीब होंगी। कोई इससे बच नहीं सकता। ऐसी अवस्था में आपस में लड़ना स्वार्थों के अधिकाधिक वश होते जाना है।

अतएव ताल्लुकेदारों और किसानों दोनों का धर्म है कि वे आपस के कलह-कारणों को प्रेम के साथ मिलकर दूर कर

डालें। ताल्लुकेदार लोग अपने स्वार्थ की मर्यादा बांध लें और किसान लोग छोटी छोटी बातों के लिए उन्हें तंग न करें। उनका यह दुःख तो प्रकट ही है। पर एक इससे भी बढ़ कर और भयंकर कष्ट उन्हें है, जो घुन की तरह भीतर ही भीतर उन्हें खोखला बना रहा है। वह है भारत की गुलामी-पराधीनता। सबसे पहले हम सब को मिलकर इसकी दवा करनी चाहिए। और वह है-चरखा और खादी। यदि इस जागृति के समय में वे एकता और खादी के रहस्य पर ध्यान देकर अपना कपड़ा खुद अपने ही घर और गांव में पैदा कर लिया करें तो उनका सिर संसार में ऊंचा हो जाय और वे फिर से 'जगत के तात' हो जायं।

धार-राज्य और 'गांधी टोपी'

मध्य-भारत में धार नाम की एक छोटी देशी रियासत है। भारतीय विद्या-कला के परम भक्त इतिहास-प्रसिद्ध पराक्रमी राजा भोज की राजधानी यही धारा नगरी थी। वर्तमान धार-नरेश उन्हीं के वंशज कहे जाते हैं। एक पत्र से मालूम होता है कि वहां के राज-कर्मचारी 'गांधी टोपी' से बेतरह नाराज हैं। वे न तो अपने राज्य में किसी के सिर पर यह सफेद सस्ती छोटी टोपी देखना ही चाहते हैं और न किसी खादी टोपी वाले को राज्य की सीमा में घुसने देना चाहते हैं। वहां के दीवान साहब ने पुलिस को हुक्म दे रक्खा है कि कोई सफेद टोपी वाला शहर में न घुसने पावे। यदि यह खबर ठीक हो तो अब ग्वालियर की सरकार मैदान में अकेली न रही। हम यह तो अच्छी तरह जानते हैं कि मित्रता की सन्धि होते हुए भी देशी-राज्य किस तरह ब्रिटिश साम्राज्य के हाथ की कठ-पुतली हैं और किस तरह एजंट साहब का इशारा उनके लिए जादू की पुड़िया है। पर यह नहीं जानते थे कि सभ्य स्वार्थ मनुष्य के मनुष्यत्व के पतन का यहां तक कारणीभूत हो सकता है। हमें मालूम है कि देशी-राज्यों की हालत पेचीदा और नाजुक है; पर हम यह भी देख रहे हैं कि भारत में कितने ही छोटे-बड़े देशी-राज्य हैं और वहां खादी का व्यवहार बराबर हो रहा है। इस मौके पर यह एक प्रश्न ही है कि हम धार की प्रजा के प्रति सहानुभूति दिखावें या धार-राज्य के प्रति। जहां अपनी पसन्द का कपड़ा तक पहनने में राज्य की ओर से बाधायें डाली जाती हैं वहां की प्रजा की शांति 'श्मशान-शांति' के सिवा और क्या हो सकती है?

रहस्यमय छुटकारा

जिस सरकार की जड़ में न्याय और धर्म होते हैं वही संसार में कायम रह सकती है। आज तक कितनीही सरकारें इसी तत्व के अभाव में नेस्त-नाबूद हो गईं। पर आश्चर्य तो यह है कि प्रत्येक सरकार अपने विनाश का कारण जानते हुए भी, स्वार्थवश, उसे नहीं छोड़ती। इसका परिणाम क्या होता है? घोर अधःपतन। राजा बली यद्यपि था तो राक्षस; पर उसके राज्य में नीति का लोप नहीं हो गया था। वह धर्म पराङ्मुख नहीं हो गया था। इसीलिए प्रत्यक्ष भगवान् को भी, अपने प्रीतिपात्र देवताओं को संतुष्ट रखने के लिए, उसके दरवाजे जा कर भीख ही मांगना पड़ी और उसके बदले में उसका द्वारपाल होना कबूल करना पड़ा। पर दूसरे असुरों के विनाश के लिए उसे इतना विचार करना भी पड़ा? क्यों? उनके साम्राज्य से धर्म और नीति चल बसे थे। हमारी वर्तमान सरकार ने भी नीति-धर्म को तलाक दे डाला है। पाठकों ने यह तो कई बार पढ़ा होगा कि आजतक कितने ही कैदी सजा की मीयाद पूरी होने के पहले ही छोड़ दिये जाते हैं। पर उनमेंसे कितने ही के कारण बड़े रहस्यमय होते हैं।

परतापगढ़ (युक्तप्रान्त) सेएक सज्जन-श्रीकृष्ण वर्मा-लिखते हैं कि मेरे साथ फैजाबाद जेल में धोकाबाजी और जाल-साजी की गई। उनके एक रिश्तेदार उन्हें जेल में मिलने गये। आपने कहा कि मुझे अपने चचाजी से मिलना जरूरी है। अगर मैं इन से अभी मिल लूंगा तो फिर तीन माह तक दूसरे किसी से न मिल पाऊंगा। जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उन महाशय को कैदी का संदेशा सुना दिया और एक सादे कागज पर उर्दू में कुछ लिखकर कैदी के सामने रखकर कहा अगर आप मिलना न चाहते हों तो इस कागज पर अपने दस्तखत कर दीजिए। वर्मा जी उर्दू नहीं जानते थे। सुपरिन्टेन्डेन्ट के कहने से आपने उस कागज पर दस्तखत कर दिये। उन्हें यह स्वप्न में भी ख्याल न था कि वे जिस कागज पर दस्तखत कर रहे हैं वह दर असल में माफीनामा है। दूसरे दिन यह कहकर कि "कल जो आपसे मिलने आये थे, डिप्टी कमिश्नर से माफी मांग कर आपकी रिहाई मंजूर करा आये; इसलिए आप रिहा किये जाते हैं" वे अचानक मुक्त कर दिये गये। इसपर सुपरिन्टेन्डेन्ट और डिप्टी कमिश्नर से शिकायत की तो किसी ने दाद न दी। वे अब भी जेल में जाकर अपनी सजा पूरी करने के लिए तैयार हैं।

भारत में इस पवित्र तथा धार्मिक आन्दोलन का असर किस प्रकार पड़ रहा है यह दिखाने के लिए यह एकही उदाहरण पर्याप्त होगा। यह नैतिक धैर्य का विकास भारत के आसन्न भाग्योदय का एक भारी और महत्वपूर्ण शुभ चिन्ह है। अगर यह सब हाल यथार्थ हो (और हमें विश्वास है कि इसमें कुछ भी असत्य न होगा क्योंकि संयुक्तप्रान्त में ऐसी घटनायें हो चुकी हैं) तो हमें नौकरशाही की इन चालबाजियों पर दुःख है। क्या दुर्योधन की इस उक्ति की तरह कि "जानामि पापं न च मे निवृत्ति." उसकी अनुकम्पनीय स्थिति हो गई है? हम वर्माजी को यह सलाह देना चाहते हैं कि वे अब खूब जोरोशोर के साथ किन्तु विनय-पूर्वक चरखा, खादी और स्वदेशी के प्रचार में लग जायं। और ऐसा करते हुए यदि जेल जाना पड़े तो जरूर चले जायं। वर्तमान स्थिति में काम करते हुए जेल जाना ही उचित है। जिस सरकार के नैतिक बल का इतना दिवाला निकल चुका है वह कितने दिनों तक अपनी खैर मना सकती है?

शादियों में खादी

आजकल जिधर देखिए उधर भारत भर में शादियों की तथा दूसरे कितने ही मंगल कार्यों की खूब धूम-धाम है। इन मंगल-उत्सवों में हजारों, लाखों, करोड़ों रुपयों का कपड़ा हमें लेना पड़ता है। अभीतक तो हम अज्ञानवश इन विवाहोत्सवों पर कीमती विदेशी कपड़ा ही खूब ले ले कर अपने ही करोड़ों भाइयों को भूखों मार कर दुर्भिक्षों को न्यौता देते आते थे। पर क्या हम अब भी वही करेंगे? यह कैसे हो सकता है! अब तो हमारी आंखें खुल गई हैं। अब तो हम इन अनर्थों का मूल कारण जान गये हैं। अब हमसे यह कैसे हो सकेगा? अब तो विवाहेच्छु वधूवर अपने विवाहोत्सव में पवित्र-हाथ-कती-बुनी खादी ही पहनने की प्रतिज्ञा करेंगे। अब तो जिन भाग्यवान् सज्जनों को अपने पुत्रों तथा कन्याओं का विवाह महोत्सव देखने का सौभाग्य मिलेगा वे उन मोहक विदेशी वस्त्रों को छोड़ कर पवित्र खादी ही उस महोत्सव के लिए खरीदेंगे। वे तो जानते हैं कि उस खादी के रूप में कितने ही दीन-हीन भाइयों की सेवा

[illegible] की तथा आशीर्वादों को ही वे पा रहे हैं। वे वधूवरों को खादी के ही उत्तम वस्त्र पहनावेंगे। वे मानों को भी खादी ही अर्पण करेंगे। मेहमान भी खादी का ही वस्त्र उपहार उन वधूवरों को देंगे। माताएं भी विवाह-मंडप में जब शुद्ध पवित्र खादी पहन कर अपने पुत्र-पुत्रियों को मंगल आशीर्वाद देंगी उस समय के आनंद का वर्णन कौन कर सकता है? ऐसा दिखाई देगा मानों प्रत्यक्ष महालक्ष्मी और महासरस्वती स्वर्ग से उतर कर आई हों और इन मनुष्यों के मंगल उत्सवों में भाग ले रही हों। उनके दिये हुए हार्दिक आशीर्वाद वधूवर के लिए तो प्रत्यक्ष वर-प्रदान ही होंगे। उन्हींसे उनका सच्चा कल्याण होगा, न कि उन विदेशी कपड़ों से जिनके अंग में अनेक क्षुधार्त दीन-हीन भारतीयों की आत्मायें विवश हाल से हमारी महान चेष्टाओं को देखकर उनपर अफसोस प्रकट कर रही हों। इसलिए क्या हम इस मंगल अवसर पर खादी ही पहन कर अपने करोड़ों भाइयों के आशीर्वाद प्राप्त नहीं करेंगे? क्या हम उत्सवों पर हमारे देशभाई खादी ही खरीद कर इन उत्सवों को अपने बच्चों के लिए सच्चे मंगलप्रद न बनावेंगे? विवाह के उपलक्ष्य में विदेशी कपड़े खरीद कर देश को फाके-कशी का नहीं, बल्कि खादी मंगाकर सुख शांति-[illegible] का निमन्त्रण न देंगे?

माताओं और बहनों के प्रति

पूज्य माताओं और बहनो,

स्त्री-जाति संसार की माता है। वह तो आदि-शक्ति है। गौरव और उत्तम संस्कृति का खजाना है। सहनशीलता की मूर्ति है। त्याग की प्रतिमा है। धैर्य और उत्साह की खानि है। उसकी समयोचित कार्य-कुशलता एवं तत्परता अकथनीय है। दया और प्रेम का तो सागर ही आपके हृदयों में लहरा रहा है।

भारत को आपका बड़ा अभिमान है। उसकी प्राचीन संस्कृति और गौरव को जीवित रखने वाली आप ही हैं। उसकी पवित्रता की रक्षा करने वाली आप ही हैं। समय समय पर विपत्काल में आपने जो उसकी अद्वितीय सेवायें की हैं उनकी कथाओं से सारे देश का इतिहास भरा पड़ा है। आपके अद्वितीय पतिव्रत के लिए तमाम संसार को अभिमान है। आपके अलौकिक प्रेम और दया की कथायें सुनकर हृदय आनंद से भर आता है। आपके अपरिमित कष्ट सहन की कथायें सुनकर आंखों से सहसा आंसू टपक पड़ते हैं। आपके असामान्य और अद्वितीय त्याग को देखकर संसार चकित हो जाता है। आपकी समय सूचकता देखकर संसार दांतों में उंगली दबाने लगता है। रणवीरता देखकर रण-धुरंधर वीरवर भी स्तम्भित हो जाते हैं। बुद्धिमत्ता देखकर पंडित लोग भी सिर झुका देते हैं। शासन-कर्म में निपुणता देखकर संसार के राजनीतिज्ञ भी प्रशंसा के पुल बांध देते हैं। भारत की वीर माताओं, वीर-रमणियों ने जो कुछ किया उससे अतीत में वह सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। उसका गौरव विश्व-विख्यात था। वर्तमान काल में भी भारत को आपका कम अभिमान नहीं है। वह किस के त्याग, तपस्या और पुण्य का [illegible] है जो आज भी—इस विपन्नावस्था में भी—सारे संसार की आंखें इस महान् देश की ओर लग रही हैं? आज भी संसार यह क्यों कह रहा है कि भारत ही स्वतंत्रता संसार में [illegible] का क्षेत्र होगा। केवल इसीलिए कि हमारा देश धर्मयुद्ध है। हमारी लड़ाई नीतियुक्त है। इसमें कई वीर-माताओं की तपस्या की शक्ति सहायता कर रही है। उनके आशीर्वाद से यह भारतीय आन्दोलन सुरक्षित है। हजारों वीर-माताओं ने अपने प्राण-धन पुत्रों को सहर्ष भारतमाता के अर्पण कर दिया है। हजार वीर-रमणियों ने आनंदाश्रु बहाते बहाते अपने प्राणप्रिय पतियों को देश-माता के चरणों पर हंसते हंसते चढ़ा दिया है। पर माताओ, अभी तो हमारे युद्ध का आरंभ ही हो पाया था कि हमारे प्रतिपक्षियों ने हमारे सरदार को गिरफ्तार कर लिया। वे हमसे जबरदस्ती छीन लिये गये। युद्ध का रंग जमने ही वाला था कि हमारे सेनापति कहीं अदृश्य हो गये। पर क्या इसके लिए हमें अधीर होकर घबड़ा जाना चाहिए? क्या हमें अपने हथियार अलग रखकर कायरों की तरह रोना चाहिए? क्या इस प्रकार रोने से, हमारे प्रति वा हमारे सेनापति का न्याय देंगे? इससे तो वे और भी ऐंठेंगे। हमें पराजित मानकर और भी घोर अत्याचार करेंगे। अनाथ समझकर और भी झुकावेंगे। हमारे सेनापति को छुड़ाने का तो एक ही विधि-विहित और सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। वह यह कि हम इस अहिंसात्मक युद्ध में और भी शक्ति, और भी उत्साह, के साथ लड़ें। हमारा संग्राम इतना भीषण, पर साथ ही इतना शांतिपूर्ण हो कि विरोधी को लाचार होकर शरण ही आना पड़े। हमारे पास शस्त्रास्त्रों की भी कमी नहीं है। इस समय कौनसा अस्त्र सबसे अधिक सफलता दे सकता है, यह हमारे सेनापति हमें पहले ही से बतला गये हैं। वे दे गये हैं उसका प्रयोग करने को। हमारा अचूक और अमोघ बाण है खादी और चरखा उसका तरकस है। जहां जहां चरखा, खादी और अहिंसा है बस, वहां फतह ही समझिए।

आजतक संसार में जितने युद्ध हुए उनमें से एक में भी स्त्रियों की प्रत्यक्ष सहायता की इतनी आवश्यकता न थी जितनी इस युद्ध में है। इसमें तो पुरुष स्त्रियों के बिना एक पैर भी नहीं बढ़ सकते। यह युद्ध तो ऐसा है कि जिसमें स्त्री-पुरुषों को साथ ही साथ लड़ना पड़ता है।

पूज्य माताओ और बहनो, क्या इस धर्मयुद्ध में आप हम लोगों का साथ उसी उत्साह और प्रेम के साथ न देंगी जैसे कि हमारी स्वर्गीय माताओं ने भूतकाल के युद्धों में दिया था? पूज्य महात्मा जी तो सदा आपके आशीर्वाद और सहायता के लिए लालायित रहा करते हैं। वे तो कहते हैं कि हमारी माताओं के पुण्य और शुभ आशीर्वाद तथा सहानुभूति हमारे साथ न होंगे तो हम संसार में कुछ भी नहीं कर सकते। आज वे जेल में [illegible] परन्तु उनकी आत्मा हमारे साथ ही काम कर रही है। क्या आप उनकी आकांक्षाओं को पूरा न करेंगी?

अगर उनकी आत्मा को हमें प्रसन्न करना है तो उसका एक ही मार्ग है। हमें आजही से विदेशी वस्त्रों का मोह छोड़ देना चाहिए। हमारी परतंत्रता का मूल कारण यही विदेशी वस्त्रों और वस्तुओं का मोह है। इसी मोह के कारण हम आज इतने दीन-हीन हो गये हैं। इसी मोह के कारण आज हमारे करोड़ों भाई भूखों मर रहे हैं। यही मोह उन अनेक दुर्भिक्षों की क्रीड़ा के रहा है। यही अनेक रोगों का पिता है, जिसके कारण अगणित भारतीय हर साल मृत्युमुख में जा पड़ते हैं। यही मोह हमारी तमाम आपदाओं का जनक है।

इसलिए अगर हमें शीघ्र ही स्वराज्य प्राप्त करके श्री महात्मा जी को छुड़ाना है तो आज ही इस मोह को छोड़ दीजिए। महीन और भड़कीले विदेशी वस्त्रों को आज ही जला दीजिए। शुद्ध पवित्र खादी ही धारण कीजिए। यही सर्व आपदाओं को

(शेष पृष्ठ २७० में)

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, चैत्र सुदा, १२ सं. १९७९

चरखे से स्वराज्य

सारे भू-मण्डल के इतिहास में बिना शस्त्रास्त्र के स्वराज्य मिलने का उदाहरण नहीं मिलता। यह सच है; पर हम पूछते हैं कि आजतक संसार के किसी भी देश के सामने ऐसा विकट प्रश्न उपस्थित हुआ था? ३१ करोड़ शान्ति-प्रिय निवासियों के देश को इतिहास में उसके किसी भी राजा ने या सरकार ने निःशस्त्र, निर्बल, पौरुष-हीन, निर्धन, पराश्रित, स्वाभिमान-हीन बना डाला था? क्या जगत् में आजतक किसी भी इतने बड़े विशाल परन्तु धर्मप्राण, शान्तिप्रिय, अशिक्षित देश को कूट-कपट-निपुण प्रभुओं से इतने जमाने तक साबका पड़ा था? यदि नहीं पड़ा था और यदि आज भारतवर्ष की परिस्थिति संसार के सब भूत तथा वर्तमानकालीन देशों से भिन्न है, तो उससे मुक्त होने का उपाय भी भिन्न ही हो सकता है। भारत के बड़े बड़े बुद्धिमान् हिन्दू मुसल्मान् देशभक्तों ने अच्छी तरह समझ लिया है कि भारत के उद्धार का मार्ग अहिंसात्मक असहयोग के सिवा दूसरा नहीं है और हम इस संग्राम में तबतक सफल नहीं हो सकते जबतक देश में घर घर चूल्हे की तरह चरखे की स्थापना न हो और छोटे-बड़े सब लोग खादी का ही व्यवहार न करने लगें।

हमारे विरोधियों और आलोचकों को यह बात अद्भुत् मालूम होती है। उनकी समझ में यह बात नहीं आती कि बिना-शस्त्र के युद्ध कैसे किया जाता है और चरखा 'मशीनगन' किस तरह है? इतिहास भी इसमें उनकी सहायता नहीं देता। पर वे इस बात को भूल जाते हैं कि हम अपनी विद्या-बुद्धि का उपयोग खंडन आलोचना, और बाधा डालने ही में अधिक करते हैं; इस आन्दोलन का रहस्य समझने में तथा यह जानने में कि भारत इस समय इतिहास का अनुकरण नहीं कर रहा है, बल्कि नवीन इतिहास की रचना कर रहा है। यदि महासभा के समस्त कार्यकर्ता और सदस्य भी चरखे के मन्त्र की महिमा पूरी पूरी समझ गये होते तो बारडोली के कार्यक्रम का देशभर में दिल-जान से स्वागत होता और आज महात्मा गांधी को हमलोगों के पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए जेल न जाना पड़ता; बल्कि इसके विपरीत स्वराज्य का महोत्सव मनाने की तैयारियां देखी जातीं और कहीं कहीं दिखाई देनेवाली निराशा या शिथिलता के बदले चेहरे पर प्रफुल्लता और तेज झलका पड़ता। यदि हम बुद्धि, साहस, उत्साह और परिश्रम से काम लें तो अब भी सब कुछ बिगड़ा नहीं है; अब भी बाजी हमारे हाथ में है; अब भी हमारी पौ-बारह आसानी से हो सकती है।

इस समय भारत में 'स्वराज्य' शब्द प्रायः तीन अर्थों में व्यवहृत होता है—व्यक्तिगत स्वराज्य, राजनैतिक स्वराज्य और आदर्श स्वराज्य। तीनों प्रकार के स्वराज्य चाहने वाले लोग इस आन्दोलन में शामिल हैं। व्यक्तिगत और आदर्श स्वराज्य-वादियों के, साधनों में कोई मत-भेद नहीं; राजनैतिक स्वराज्य वाले कुछ लोग अहिंसा पर नाक-भौंह सिकोड़ते हैं हालांकि व्यवहार-नीति के तौर पर उन्होंने भी उसे मान लिया है। उन्हें चरखे की स्वराज्य-सम्बन्धी उपयोगिता में भी अधिक विश्वास नहीं है। अतः, आइए, हम यह समझने का प्रयत्न करें कि चरखा या खादी तीनों प्रकार के स्वराज्य के लिए किस प्रकार उपयोगी और फलदायी है।

पहले अधिक लोक-प्रिय होने के कारण राजनैतिक स्वराज्य को लीजिए। राजनैतिक स्वराज्य का अर्थ है-अंगरेजों के हाथ से निकल कर स्वराज्य-सत्ता हिन्दुस्तानियों के हाथों में आ जाय। यह चरखे से किस तरह सिद्ध हो सकता है? दुनिया-संसारकी वर्तमान समस्त राज्य-सत्ताओं की कुंजी क्या है? व्यापार। जिस राज्य या राष्ट्र का जितना अधिक व्यापार फैला हुआ है, वह राजनैतिक दृष्टि से उतना ही बलिष्ठ है। अंगरेजी सरकार के भारत में आने का इतिहास तो प्रकट ही है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापार का इतिहास तथा वर्तमान आर्थिक लूट की कथा कौन शिक्षित भारतवासी नहीं जानता? भारत के स्वदेशी-आन्दोलन को बढ़ता हुआ देखकर मैंचेस्टर और लंकाशायर वालों के होश-हवास बिगड़ जाने का क्या कारण है? आज भारत में कोई १५० करोड़ से ऊपर रुपयों का माल विदेशों से आता है। उसमें सबसे अधिक, कोई ६०-७० करोड़ का, सिर्फ कपड़ा आता है। यहां की राज्य-सत्ता अंगरेजों के हाथों में होने के कारण इंग्लैंड से ही यहां बहुत सी चीजें आती हैं-कपड़ा तो प्रायः सारा ही वहीं से आता है। अंगरेजों को भारत से भूमि-कर के द्वारा उतना लाभ नहीं है जितना कि व्यापार के द्वारा। यह व्यापार ही उनकी सत्ता की जड़ है, और भारत की गुलामी का कारण है जिस देश का कच्चा माल विदेश जाता है और वहां से पक्का बन कर फिर उसी देश में खपता है, उसकी दुर्दशा का कोई ठिकाना है? उसके सर्वनाश में कोई शक है? उसकी दरिद्रता और पराधीनता की कोई सीमा रह सकती है? भारत ने इस जड़ को पहचान लिया। पहले उसने कपड़े के ही सवाल को हाथ में लिया। उसने हाथ की कती और बुनी खादी पहनने का संकल्प किया।

यदि वह अपनी प्रतिज्ञा को निबाहे, घर घर में चरखा दाखिल कर दे तो विदेशों से एक धागा भी यहां न आने पावे और ६०-७० करोड़ रुपया देश के गरीब लोगों के झोपड़ों में पहुंच जायं। सो यद्यपि इसमें हमारा उद्देश तो यही है कि देश स्वावलम्बी हो, उसकी जरूरत का पक्का माल यहीं तैयार हो; क्योंकि यही स्वाभाविक मार्ग है; पर इससे विदेश वालों का, खास कर इंग्लैंड का कपड़े का व्यापार डूब जायगा और इसके आश्रय पर चलने वाला, नमक, कलें, आदि का दूसरा व्यापार भी अपने आप गारत हो जायगा। ब्रिटिश पार्लियामेंट, वास्तव में देखा जाय तो, इंग्लैंड के व्यापारियों की मुट्ठी में है। उनका व्यापार डूबते ही उनकी राज्य-सत्ता की जड़ भी हिल जायगी। हमारा उद्देश तो अपने राष्ट्रीय धर्म अपने स्वदेशी धर्म का पालन करना है; पर इससे अन्यों की हानि होती हो तो हम क्या करें? हमारा क्या दोष? स्वार्थी लोग अपने अन्ध स्वार्थ की रक्षा के लिए भले ही द्वेष की पुकार मचाकर आकाश-पाताल एक करें हमारे स्वदेशी आन्दोलन को कुचल डालने के लिए दबे-छुपे उसकी जड़ में सुरंग लगाने का प्रयत्न करें—पर उन्हें याद रखना चाहिए कि हम सारे संसार का संचालक ईश्वर है और वह उनको और हम को दोनों को अच्छी तरह पहचानता है। मनुष्य मनुष्य को धोखा दे सकता है, पर उसकी सूर्य के सदृश तेजस्वी आंखों से कोई नहीं बच सकता।

आदर्श स्वराज्य का अर्थ है—धर्म-राज्य, राम-राज्य। राजनैतिक स्वराज्य में तो वर्तमान अंगरेजी शासन-प्रणाली के मूलभूत दोष-स्वार्थ, भय और बल, रह सकते हैं; पर आदर्श स्वराज्य में उनके लिए बिल्कुल स्थान नहीं। राजनैतिक स्वराज्य का ध्येय केवल स्वतन्त्रता है और आदर्श स्वराज्य का लक्ष्य सामाजिक सुख-शान्ति। स्वतन्त्रता के मूल में यदि सुख-शान्ति की भावना न हो तो वह व्यर्थ है, अनिष्टकारिणी है: पर भारत की वर्तमान अपमानमय और पौरुषहीन दीन अवस्था से तो शायद वह भी श्रेयस्कर हो। वास्तव में देखा जाय तो राजनैतिक स्वराज्य आदर्श स्वराज्य का फाटक है। चरखे का विघातक फल है राजनैतिक स्वराज्य और विधायक फल है आदर्श स्वराज्य. अर्थात् एक तो उससे बाहरी देश का व्यापार नष्ट होगा, जिससे बाहरी सत्ता की जड खोखली पड जायगी और दूसरे देश के भीतरी और शुद्ध व्यापार का पुनरुद्धार होगा, देश के दुखी-दरिद्र लोगों की रोटी का और स्त्रियों की लज्जारक्षा का सहारा होगा, जिससे आदर्श स्वराज्य नजदीक आ जायेगा। "बुभुक्षितः किं न करोति पापम्?" भारतीय धनी समाज तथा नौकर-पेशा लोगों में जो स्वार्थ की बदबू फैल रही है उसका प्रधान कारण है पश्चिमी आदर्श का ध्यान और पश्चिमी संस्कृति का संसर्ग तथा सर्वसाधारण के कुछ भागों में जो दुराचार बढ रहा है उसका मुख्य कारण है फाकेकशी। सो यह चरखा और खादी दोनों की रामबाण दवा है-इससे पहले की स्वार्थवृत्ति दबेगी और दूसरे की आचारिक उन्नति होगी-यही आदर्श स्वराज्य अर्थात् रामराज्य की बुनियाद है।

अब रहा व्यक्तिगत स्वराज्य। इसका अर्थ है आत्मोन्नति। वह वासना के नाश से होती है। वासना के नाश का उपाय है संयम। सादगी संयम की दवा है। पवित्र शुद्ध मोटी खादी सादगी का उज्ज्वल उदाहरण है। चरखा कातने से चित्त को एकाग्र करने में सहायता मिलती है। उसके संगीत में अपने आन्तरनाद को मिलाकर मनुष्य नाद-ब्रह्म को पहचान सकता है।

घर का या हाथ का बनाया भोजन अधिक शुद्ध और पवित्र होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से उसका बहुत महत्व है। उसी प्रकार हाथ का कता और बुना कपडा भी पवित्र और आत्मोन्नति कारक है।

व्यक्तिगत स्वराज्य का दूसरा अर्थ है व्यक्तिगत स्वाधीनता। आज हम अन्न और जल के विषय में व्यक्तिशः जितने स्वाधीन हैं उतने वस्त्र के विषय में नहीं। यही तीन वैयक्तिक स्वाधीनता के मूल स्तम्भ हैं। चरखे से हमें वस्त्र-विषयक स्वाधीनता प्राप्त होगी।

अतएव चरखा ही भारत का तरणोपाय है। चरखा ही भारत के त्रिविध स्वराज्य और त्रिविध ध्येय की सिद्धि का साधन है। चरखा भारत का भाग्य-विधाता है। चरखा महात्मा गांधी का तथा दूसरे हजारों कैदियों का मुक्तिमन्त्र है। चरखा देश के दुर्भिक्षों के लिए सुदर्शन-चक्र है। चरखा भारत के लिए स्वराज्य-कामेष्टि-यज्ञ है, कामधेनु है।

(पृष्ठ २६८ से आगे)

हरण करेगा। यही आपके करोडों भाइयों को भीषण दुर्भिक्षों से बचायेगी और आपको स्वराज्य प्राप्त कर देगी। यही महात्माजी को छुडाने का एकमात्र साधन है।

अब अपने आमोद-प्रमोद को छोडिए। शृंगार-विलास भूल जाइए। समय की गंभीरता को ध्यान में लाइए। कर्तव्य की गुरुता को मन में लाइए। और चरखे को हाथ में लीजिए। यही हमारा जीवनदाता है।

राम-नवमी

रामजन्म का आनन्द अपूर्व है। राम-जन्म के पहले की स्थिति का वर्णन आदि-कवि वाल्मीकि ने किया है। विश्वामित्र जब धर्म की रक्षा के लिए दशरथ से दो विद्यार्थियों का याचना करते हैं तब राजा मोहवश हो कर पहले तो इनकार करते हैं; परन्तु कर्तव्य की स्मृति होते ही तुरन्त अपने प्राणसमान प्रिय पुत्रों को ऋषि के हवाले कर देते हैं।

अब रामचन्द्र की दैनिक शिक्षा बन्द हो जाती है। राजपुत्र की शिक्षा बहुविध होती है। अनेक विषय उन्हें पढना पडते हैं। कुलपति वसिष्ठ ने तो उन्हें इस हेतु से शिक्षा देने का विचार किया था कि उनकी समस्त इन्द्रियों का विकास हो; परन्तु विश्वामित्र ने आकर गडबड कर दिया। विश्वामित्र रामचन्द्र को यात्रा के लिए ले गये। वहां उन्होंने प्रकृति के साथ उनका परिचय कराया। देश की स्थिति अपनी आंखों से देखी। रामचन्द्र पूछते हैं—इस प्रदेश में इतनी नदियां बहती हैं, इतनी प्राकृतिक समृद्धि है, फिर भी यहां आबादी क्यों नहीं? और जो कुछ थोडी-बहुत है वह ऐसी भयभीत दशा में क्यों है?'

विश्वामित्र फिर उस प्रदेश का इतिहास कहना शुरू करते हैं कि एक समय यह प्रदेश सुखी था, समृद्ध था; पर पीछे से यहां प्रजाभक्षक असुरों का राज्य हुआ, जिससे लोगों की यह दशा हो गई है। और अपने तेजस्वी नेत्रों से राम-लक्ष्मण को निहार कर वे राजर्षि कहते हैं—'युवको, यह सारा संकट दूर करने का भार तुम्हारे सिर पर है।' शाम हो जाने पर विश्वामित्र उन राजपुत्रों को रघुकुल की उज्वल कीर्ति की कथा सुनाते, राजा दिलीप का दिग्विजय, भगीरथ का महातप, सब का वर्णन करते। प्रातःकाल उठकर नहा-धो कर जब राम-लक्ष्मण वन्दन करने आते तब वे उन्हें देश के दुःख को दूर करने की खूबियां, उपाय, मन्त्र और अस्त्र आदि की शिक्षा देते।

इसी यथार्थ स्थिति का वर्णन काव्यमय भाषा में दूसरी जगह वाल्मीकि ने किया है। प्रसंग राम-जन्म के पहले का है। असुर लोग उन्मत्त हो गये हैं। शूर्पणखा सारे देश को अपने तीक्ष्ण नखों से विदीर्ण कर रही है। खर और दूषण देश भर में अनीति की वर्षा कर रहे हैं। कुम्भकर्ण प्रजा के बडे बडे भाग को सहज ही खा जाता है। सात्विक-बुद्धि बिभीषण रावण के दरबार में धर्म के नाम पर अरण्य-रोदन करता है। साम्राज्य-मद से उन्मत्त राक्षस लोग उसकी सलाहों का मजाक उडा कर टाल देते हैं। वह यह निर्णय नहीं कर सकता कि अपने भाई के साथ सहयोग करूं या असहयोग। और रावण अपने राज्य के दश विभागों के द्वारा एक-मुखी जो-हुकमी चलाता है। कुदरती शक्तियां तो बेचारी ठीक, पर नवग्रह तक, उसके घर पानी भरते और झाडू-बुहारा करते हैं। लोगों के मन में यह सन्देह उत्पन्न होता है कि दुनिया का मालिक ईश्वर है या रावण। अपने द्वीप में रहते हुए वे सारे देश के कोने कोने तक को देख सकते हैं। रावण से कोई बात छिपी नहीं रहती।

रावण के अभिमान की सीमा न रही। रावण अपने मन में तथा अपने दरबार में भी जाहिरा तौर पर कहता है—

"इन एक शत्रु का संहार मैंने किया। इसी प्रकार औरों को भी हनन करूंगा। मैं सब से श्रेष्ठ हूं। मैं ही सुखोपभोग करूंगा। समस्त सिद्धियां मेरी दासी हैं। मेरा बल सब से सर्वोपरि है। सब से बडी जाति भी मेरी ही है। मेरी ही संस्कृति सर्वश्रेष्ठ है। संसार के भले करने का भार मेरे ही

सिर पर है। मैं ही दानी हूं। सब तरह के सुख मेरे ही लिए हैं।" इन गर्वोक्तियों से ही केवल रावण को सन्तोष नहीं होता। लोगों के मुंह से भी वह अपने ये गुण-गान कराता है। सब लोग उसके बन्दीजन हो रहे हैं। पण्डित लोग उसकी इच्छा के अनुसार शास्त्रार्थ कर दिखाते हैं। पुरातत्वविद् उसका यश इतिहास-भूगर्भ आदि से ढूंढ निकालते हैं। प्रत्येक गुणीजन इतना पामर हो गया है कि वह अपनी शक्ति को उसके चरणों में अर्पण करने में ही अपने को धन्य मानता है।

ऐसी दशा में दीनहीन होकर पृथ्वी सिरजनहार के पास जाती है और कहती है-'प्रभो! अब तो यह भार असह्य हो गया। मानव की मांगल्य से श्रद्धा उठ गई है। लोग तपस्या छोड़ कर सुरा-सेवन कर रहे हैं। लंका की राष्ट्र-देवी प्रतिदिन असंख्य प्राणियों की आहुतियां ले रही है। शराब की तो रोज कोठियां खाली होती हैं। देवताओं के सारे व्यवहार बन्द हो गये हैं। यह दशा कबतक रहेगी?' सिरजनहार कहते हैं-"हे पृथिवी! तू श्रद्धा न छोड़। चराचर में व्याप्त ईश्वर तत्व के शरण जाने से समस्त दुःख दूर होते हैं। राक्षस तथा मनुष्य जिन्हें जंगली वानर कहते हैं, अनार्य कहते हैं, जिन्हें राक्षसी संस्कृति का स्पर्श नहीं हुआ है, और इस शंका से कि मनुष्य हैं या नहीं 'वा-नर' कहलाते हैं, ऐसी सीधी-भोली प्रजा में यह ईश्वरी शक्ति प्रकट होगी। इसके द्वारा इस रावण का पराभव होगा। आर्यावर्त की मातायें पहाड़ों पर बैठ कर जो तपश्चर्या कर रही हैं वह अवश्य सफल होगी और वज्रकाय, वज्रकौपिन बालक देश में पैदा होंगे। फिर से धर्म की जागृति होगी और परमात्मा स्वयं अवतार लेंगे।" पृथिवी के मन में यह शंका उत्पन्न होती है कि यह कैसे जानें कि परमात्मा का अवतार हो गया या नहीं? तब सिरजनहार कहते हैं—'जब देश में ब्रह्मचारी पैदा होंगे, जब गृहस्थ एकपत्नित्व का पालन करेंगे, जब विद्यार्थी धर्म-रक्षक गुरुओं के अधीन रहेंगे, जब माता-पिता अपना मोह छोड़ कर अपने पुत्रों को मख (यज्ञ) की रक्षा के लिए सौंप देंगे, जब भाई भाई अपूर्व प्रेम से एक दूसरे के साथ रहेंगे, जब उच्च कुल के लोग पतित स्त्रियों का भी उद्धार करेंगे, जब राजपुत्र भील और गुहक लोगों के साथ समान-भाव से मैत्री करेंगे, जब ब्राह्मण अपने अभिमान की ऐंठ छोड़ेंगे, जब ब्रह्मचर्य का तेज सत्य और धर्म की सेवा का स्वीकार करेगा और जब प्रजा में श्रद्धा उदय होगा, जब उच्च कुल के युवक नगर-जीवन के विलासों को छोड़ कर गांव गांव और जंगल जंगल घूमेंगे तब ऐसा मानना कि ईश्वर का अवतार हुआ है। पृथिवी को सन्तोष हुआ, दिलासा मिला, और वह स्वस्थ तथा शान्त हुई।

दशरथ ने तपश्या की। धर्म की अग्नि प्रकट की। यज्ञ-पुरुष ने पायस-रूपी चैतन्य प्रदान किया। दुनियां राह देखने लगी। परिस्थिति भी अनुकूल होने लगी। ग्रह और उपग्रह परस्पर अनुकूल हुए। पाप की घड़ी पूरी हुई। पुण्य का उदय हुआ और रामजन्म हुआ।

उसी दिन प्रजा ने आनन्दोत्सव मनाया। अभी तो रावण-राज्य नष्ट नहीं हुआ था, अभी कांचनमृग मारिच की माया की पोल नहीं खुली थी, तो भी प्रजा ने उत्सव मनाया; क्योंकि रामजन्म हो चुका था। जिस प्रकार किसान आकाश के मेघ में सोलहों आना फसल देख लेता है उसी प्रकार प्रजा ने मेघश्याम रामचन्द्र में स्वतन्त्रता को देखा, धर्मराज्य को देखा, मुक्ति को देखा। उस दिन से लेकर आजतक लोग चैत्र शुक्ल नवमी को उत्सव मनाते आ रहे हैं; क्योंकि उस दिन मनुष्य के मन में सत्य, ब्रह्मचर्य और धर्म के प्रति श्रद्धा जाग्रत हुई। (नवजीवन)

बारडोली में क्या हो रहा है?

गांधी जी तो जेल में जा बिराजे। उनके पीछे बारडोली में क्या हो रहा है, यह जानने की इच्छा लोगों के दिल में होना स्वाभाविक ही है। भारत के इस धर्मयुद्ध का यह नवीन कुरुक्षेत्र ऐतिहासिक पुरातन कुरुक्षेत्र से विलक्षण है। यह युद्ध स्वराज्य का युद्ध है, सेना-राज्य का युद्ध नहीं। वह तो सेनापति की अनुपस्थिति में भी जारी ही रहता है। इसीसे बार बार उसका परिचय 'अन्तःशुद्धि का युद्ध' के नाम से कराया गया है। प्राचीन कुरुक्षेत्र में अनीतिमान् राज्य-पक्ष का नमक खाने वाले सेनापति धर्म-धुरन्धर होते हुए भी अन्तरात्मा की आवाज को दबा कर पुण्यवान् विरोधियों पर शस्त्र-प्रहार करते थे। पर यहां उसमें कितने ही परिवर्तन दिखाई देते हैं। राज्य-पक्ष के कितने ही नायक अन्तरात्मा के वश हो कर उसका त्याग कर बैठे हैं। असिस्टन्ट कलेक्टर साहब ने इस्तीफा दे दिया। (कहीं कहीं इस्तीफा वापस लेने की अफवाह उड़ रही है, पर मालूम हुआ है कि वह निर्मूल है) उनके पश्चात् एक एक करके कोई १५-२० पटेलों ने इस्तीफे दे दिये। कितने ही लोगों ने अभी दिये नहीं हैं। सरकार भले ही समझा करे कि उन्हें सरकार की सेवा पसन्द है। ऐसी भी खबर मिली है कि इस्तीफा भेज देने वाले कितने ही भले पटेलों के पोस्टकार्ड को सरकार इस्तीफा मानने के लिए ही तैयार नहीं। इन सीधे-भाले पटेलों को यह किसीने नहीं सिखाया कि इस्तीफा रजिस्ट्री कर के भेजना चाहिए। पर सुना जाता है कि किसी गांव में इस पापी माने गये पद का त्याग करने वाले पटेल के स्थान के लिए दूसरे लोग तैयार हो रहे हैं। यह भी सुनने में आया है कि किसी पुरानी अदावत का प्रभाव इस नई पटेली का कारण है। मैं तो इतना ही कहता हूं कि यह नया कुरुक्षेत्र विलक्षण है। हां, यह सच है कि यह दैवी और आसुरी सम्पत्ति का युद्ध चल रहा है; परन्तु आसुरी सम्पत्ति का बल यहां प्रजा के हृदय में समष्टि रूप से कम ही है। इसमें सन्देह नहीं। ऐसा दिखाई देता है कि मानों गांधीजी का कारागृहवास आसुरी सम्पत्ति के अन्तःपुर में घुन की तरह मर्म कुतर रहा है।

पूज्य कस्तूर बा

बारडोली के स्वराज्य-आश्रम से चार पांच दिन पहले देहात में भ्रमण करने के लिए रवाना हो गई हैं। दो-तीन दिनों तक समाचार नहीं मिले कि वे किस गांव में हैं। सूबेदार के सदृश पूज्य गंगा बहन मजमुदार अंगरक्षक की तरह उनके साथ ही रहती हैं। वे पुरुषों और स्त्रियों को महासभा के सभासद बना रही हैं, चरखे के स्वर को गुंजा रही हैं, खादी के श्वेत शृंगार की महिमा लोगों के हृदय में अंकित कर रही हैं और अन्त्यजों को अपनाती जा रही हैं। कहीं ज्वार की मोटी रोटियां और कहीं खिचड़ी खा कर कूच करती जा रही हैं। मानों उन्होंने यह निश्चय कर लिया है कि या तो गांधी जी की तरह जेल में जा बिराजें या प्रजा की आत्मशुद्धि को बढ़ा कर गांधीजी को जेल से छुड़ा लावें।

कस्तूरबा (श्रीमती गांधी) एक सामान्य स्त्री जैसी हैं। वे पढ़ी लिखी पण्डिता नहीं हैं। वे व्याख्यान देना नहीं जानतीं। पर वे भीषण तपस्या करना जानती हैं। उनकी तपश्चर्या का पूरा हाल जन-समाज को मालूम नहीं हुआ है। दक्षिण आफ्रिका के आखिरी विग्रह में सबसे पहले जेल जाने वाली टुकड़ी की वे अगुआ थीं। वे गांधीजी के सामने प्रतिज्ञा करके निकली थीं कि जेल ही में [illegible] के लिए दूसरी कोई [illegible] खाऊंगी।

उनकी तबीयत ठीक नहीं थी। इस लिए गांधीजी ने उनसे यह प्रतिज्ञा चाही थी और उन्होंने हर्षचित्त होकर प्रतिज्ञा की थी तथा उसे उसी प्रकार निबाहा भी। कुछ दिनों तक उपवास करने के बाद उन्हें कुछ केले, दो-एक खट्टे नींबू, पुराना और बिगड़ा जैतून का तेल और कभी कभी एक प्रकार के अचार दिये जाने लगे। बस, इसी एक प्रकार की खुराक पर उन्होंने तीन मास निकाले। उन्हें सख्त कैद की सजा दी गई था। नरसिंह मेहता के तथा वैसे ही दूसरे भजन गाना और सुनना उनके लिए जेल में एक आनंद का कारण था। तीन मास पूरे हो जाने पर जब वे जेल के फाटक के बाहर निकलीं तब उनकी रक्त-मांस-हीन हाड़-चाम की पुतली जैसी मूर्ति का दर्शन कर के हजारों हिन्दुस्तानी भाई-बहन आश्चर्य और प्रेम के आंसू बहाते हुए उनके चरणों पर गिरते थे। पर मैं तो दूसरी बात में उलझ गया। यहां की बात अभी खतम नहीं हुई है।

यहां की राष्ट्रीय पाठशालायें

जिन राष्ट्रीय पाठशालाओं की दशा अच्छी नहीं है उनकी जांच करने तथा शिक्षकों और गांव के अगुओं से चर्चा करने के लिए मेरे आश्रमी भाई श्री नरहरि द्वारकादास परीख साबरमती के राष्ट्रीय विद्यामन्दिर को छोड़ कर आजकल यहां के गांवों में भ्रमण कर रहे हैं। इस तहसील के कडोद विभाग में वराड नाम के गांव को इन्होंने अपना प्रधान स्थान बनाया है। अपने विभाग का विवरण वे स्वयं ही किसी बार देंगे; अतएव मैं

स्वदेशी

का वर्णन करूंगा जिसके लिए साबरमती के वस्त्र-विद्यालय के कुछ भाई-बहन यहां उद्योग कर रहे हैं और जिनके साथ मैं यहां काम कर रहा हूं। हमारे मंडल ने बारडोली को अपना मध्य स्थान बना कर वराड, बालोड और सरभोण इन तीन जुदे जुदे विभाग के तीन गांवों में शाखायें स्थापित की हैं। हमारा पहला काम तो यह है कि लोगों को अपने घर में कपास संग्रह करने की आवश्यकता समझावें तथा उसे घर ही में लोढ़ना, धुनकना और अच्छी तरह सूत कातना सिखावें। काम अच्छा चल रहा है। कुछ गांव सुस्त रहता है, जहां अभी लोग जाग्रत नहीं हुए हैं। परन्तु इस धर्मयुद्ध में इस बात का हिसाब नहीं लगाया जा सकता कि कौन सा गांव कब और कितना जाग उठेगा। धर्म की जागृति धीरे धीरे होती है। उसका प्रादुर्भाव बिजली की चमक की तरह होता है। पर वह अकस्मात् नहीं हो जाता। वह तो शान्ति के साथ होने वाले कर्मों के विपाक-रूप में होता है। अधिकांश में तो कार्यकर्ताओं की त्रुटियां और अभाव इन अपवाद-रूप गांवों के अपवाद का कारण हैं।

फी आदमी २० सेर कपास एकत्र करने की सलाह दी गई। उसके अनुसार काम सन्तोषजनक हो रहा है। पुराने पड़े लोढनों (रेंटा) को लोगों ने सजीव किया है। नये एक हाथ से चलने वाले लोढने लगभग ७५ गांवों में पहुंच गये हैं। अभी मांग पर मांग आ रही है। एक घर का लोढना आस-पास के पांच-दस घर के लोगों के काम में आता है। मैंने खुद जाकर देखा है कि प्रातःकाल से ले कर रात के १०-११ बजे तक लोढना चलता है—एक के बाद एक पड़ोसी आता है और लोढ ले जाता है। खांभ नाम के गांव की राष्ट्रीय पाठशाला के एक शिक्षक ने अभी एक लोढने की फरमायश की है। वे कहते हैं कि "लोगों ने कपास इकट्ठा किया है। लोढनों में खुद लोढते या लुढवा लेते हैं। पाठशाला में चोर है। यहां लड़कों से धुनवाते हैं। पूनी भी अच्छी बनती है। इससे सूत भी अच्छा निकलता है।" यही हाल मैं खुद दूसरे कितने ही देहात में जाकर देख आया हूं।

वस्त्र-विद्यालयों में विद्यार्थी तथा स्वयं-सेवक लोग कपास लोढन, छोटी तांतों पर रुई धुनकने और १५-२० नम्बर तक का एकसा बराबर सूत कातने लगे हैं। वहां सीख चुकने पर वे अपने अपने गांवों में एकसा ऐसा महीन सूत कतवाने का तजवीज करेंगे जिससे जनानी धोतियां तैयार की जा सकें। कितनी ही जगह सूत अच्छा निकलने लगा है। वहां से अब बुनने की तैयारी करने के तकाजे आ रहे हैं। उसकी तजवीज हो रही है।

दो-तीन गांवों में स्वदेशी का काम सदा के लिए नियमित रूप से चलता रहे, इस उद्देश से खास स्थानिक मंडल स्थापित करने की तजवीज हो रही है। उसमें ऐसी व्यवस्था सोची गई है कि खादी पहनने वाले कुटुम्ब अपने कपड़े के वार्षिक खर्च में से कुछ अंश एकत्र कर के पूंजी जमा करें और उसके द्वारा एक अनुभवी वेतनिक कार्यकर्ता रखकर उसके मार्फत उन गांवों में सूत कतने और खादी पहुंचाने की तजवीज की जाय। यदि प्रत्येक गांव में ऐसे मंडल स्थापित हो जाय तो स्वदेशी का काम आसान और अचल हो जाय।

खाना-पत्रक

को खानापुरी पहले ही से करना शुरू किया गया है। उसमें इतनी बातें दर्ज की जाती हैं—प्रत्येक गांव के घरों की संख्या, हर घर के मनुष्यों की संख्या (इसमें उनके घर के नौकर-चाकर भी आ जाते हैं) चरखों की तादाद, लोढना, तांत, करघा रखना चाहते हों या मौजूद हों तो उसका खुलासा, अपना सूत कातेंगे या मजदूरी पर कातेंगे, फी आदमी आवश्यक कपास संग्रह करेगा या नहीं इत्यादि ब्योरा। कोई पचास गांवों के नकशों की खानापुरी हो चुकी है। कितने ही गांवों में अभी कपास की बिनाई हो रही है, इससे वहां खानापुरी का काम देर से शुरू हुआ है कितने ही गांवों में अभी काम करने वालों की कमी के कारण खानापुरी शुरू नहीं हुई है।

कपास का मुट्ठी-फण्ड

भी जारी है। जहां जहां जाते हैं वहां परगना-समिति के प्रमाण-पत्र वाले स्वयंसेवक खड़े रहते हैं और कपास की गाड़ी वाले उदार देहाती-भाई तौल होने के पहले ही अपने अपने उत्साह के अनुसार स्वयंसेवकों के थैलों में कपास डालते हैं। कोई कोई जीन के मालिक स्वयंसेवकों की सेवा को बचाकर खुद ही कपास एकत्र करके भेज देते हैं। यह तजवीज बढ़िया है। इसके बदौलत वस्त्र विद्यालयों को आवश्यक कपास काफी तादाद में मिलता रहता है।

श्री. प्रागजी देसाई, श्री. खुशालभाई पटेल तथा दूसरे दक्षिण आफ्रिका के जेल के यात्री जो इस जिले के निवासी हैं, अनेक काम यहां कर रहे हैं। यहां निराशा के दृश्य न हों सो बात नहीं। पर ये लोग इस ज्ञान का प्रत्यक्ष पाठ कि निराशाओं में आशायें छिपी रहती हैं, गांधीजी के पास पढ़ चुके हैं।

(नवजीवन) मगनलाल खुशालचंद गांधी

जयकृष्ण प्रभुराम भन्साली द्वारा नवजीवन मुद्रणालय में रंगपुर, सरखीगरनी वाड़ी अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से वमनलाल पंजाबी द्वारा प्रकाशित।

बापू का रहस्य

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका ,, -)
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—वैशाख वदि ५, संवत् १९७९, रविवार, मार्च काल, १६ अप्रैल, १९२२ ई० | अंक ३५

गांधी-दिवस

१८ तारीख–प्रार्थना और बलिदान का दिन

१८ तारीख को महात्मा गांधी कैदी हुए। इसी दिन (कुदरत के) कानून के परमभक्त और शान्ति के सच्चे उपासक महात्मा जी को 'कानून और शान्ति' की रक्षा के नाम पर छः साल के लिए जेल भेज कर भारतीय नौकरशाही ने अपने आराध्य देव ईसा-मसीह को ईश्वर के सामने नीचा दिखाया। इसी दिन एक ओर तो अपूर्व शान्ति रखकर और दूसरी ओर अपने हृदय-सर्वस्व का अत्यन्त पवित्र बलिदान देकर भारत ने सत्य, धर्म और अहिंसा का प्रत्यक्ष पाठ जगत् को पढ़ाया। यह दिन केवल भारत के ही राष्ट्रीय और धार्मिक इतिहास में नहीं बल्कि सारे संसार की सच्ची उन्नति के इतिहास में अजर-अमर हो गया है। इसदिन भारत के पितरों और उसके प्राचीन गौरव के रक्षक महापुरुषों की आत्मायें हर्ष से फूली न समाई होंगी और भारत की भावी सन्तानों के लिए यह दिन एक महापर्व होगा। इस पुण्य दिवस के स्मारक के लिए महासभा की कार्य-समिति ने यह आज्ञा प्रकाशित की है कि हर महीने की १८ तारीख को भारत का बच्चा बच्चा ईश्वर की प्रार्थना करे और उस दिन की अपनी आमदनी तिलक-स्वराज्य-कोष के अर्पण करे। अपने सूचना-पत्र में उसने लिखा है कि यह हर महीने का क्रम महात्मा गांधी के कारागार से मुक्त होने तक रक्खा जाय। राष्ट्रीय सप्ताह की आशा-उत्साह-वर्धिनी सफल समाप्ति और शान्तिमय भारतव्यापी हड़ताल को देखते हुए, महात्मा गांधी के प्रति लोगों की जो अटल अपूर्व श्रद्धा है तथा उनके उपदेशों की जो कदर आजतक उन्होंने की है उसे देखते हुए, अपनी प्रातिनिधिक राष्ट्रीय संस्था महासभा के प्रति उनका आत्मभाव देखते हुए, १८ तारीख के कार्यक्रम की सफलता के विषय में किसी को शंका रही नहीं सकती।

इस कार्यक्रम का उद्देश तो स्पष्ट ही है; पर महात्मा जी की मुक्ति का अर्थ हमें अच्छी तरह समझ लेने की आवश्यकता है। महात्मा जी जेल किसलिए गये? खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य के लिए—सत्य, धर्म और अहिंसा के लिए। इन तीनों विषयों में सरकार भारत के लोकमत की परवाह करना नहीं चाहती। वह किसी तरह पश्चात्ताप करने के लिए तैयार नहीं। जब देख कि गांधी सहयोगी से असहयोगी हुए-भक्त विरोधी हो गया। उन्होंने उग्र से उग्र उपायों का उपदेश किया। सविनय कानून भंग की तैयारी हुई। शाहजादे तक के स्वागत का बहिष्कार हुआ। हिन्दू-मुसल्मान एक-दिल होने लगे। अहिंसा का आतंक नौकरशाही के दिल पर छाता गया। स्वदेशी के प्रचार से गोरे बनियों का मुंह सूखने लगा। वे इंग्लैंड में आकाश-पाताल एक करने लगे। मिथ्या मान और प्रतिष्ठा की भावना से ब्रिटेन और भारत की नौकरशाही का दिल खौल उठा। अपनी मातृभूमि के दिल में 'कपूत' ठहरने की कल्पना से वह आग-अभूका हो गई। इधर खिलाफत की भारतीय मांगों का दबाव मन्त्रिमण्डल पर पड़ा। महात्माजी की आजादी को उसने खिलाफत की ताकत समझा। बस, अपने मण्डल-सहित महात्माजी को उनकी देशभक्ति का यह प्रसाद दुनिया को देशभक्ति का पाठ पढ़ाने की महत्वाकांक्षा रखने वाली सरकार की ओर से मिला। अपने देश और धर्म की सेवा करना ही उनका अपराध है। अतएव उनकी मुक्ति का अर्थ है हमारे त्रिविध ध्येय की सिद्धि। महात्माजी के भारतीय जीवन से हमारे राजनैतिक इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ है। उनके जेल जाने के दिन से हमारी जवाबदेही और हमारे पुरुषार्थ की कसौटी के काल का भी गणेश होता है। इस थोडी ही अवधि में उन्होंने हमें शिक्षा तो खूब दे दी है, मार्ग भी स्पष्ट कर दिया है। अब हमारा काम इतना ही है कि हम ध्येय से दृष्टि न हटावें और पथ से डांवाडोल न हों। महात्माजी के प्रति अपने प्रेम और भक्ति के आवेश में हम आतुर और अधीर न हों। उन्हें जेल से जल्दी छुड़ाने के मोह में अकर्मण्य न कर बैठें। उन्हें छुड़ाने और त्रिविध ध्येय को प्राप्त करने के उपाय भिन्न भिन्न नहीं हैं। यदि हमने उनके बताये रचनात्मक कार्यक्रम को खूब उत्साह और विश्वास के साथ शीघ्र ही पूरा कर डाला तो हमसे दोनों काम सिद्ध हो जायंगे। इससे भारत और ब्रिटेन की नौकरशाही पर इतना जोर पड़ेगा कि उसे हमारी मांगों के आगे सिर झुकाने के सिवा दूसरा कोई चारा न रहेगा। पंजाब, खिलाफत और स्वराज्य की सिद्धि के

बिना महात्माजी के छुटकारे में कोई शोभा नहीं और न महात्मा जी ही इससे सन्तुष्ट होंगे। यह तो उनके इस बलिदान का असली अर्थ न कहा जायगा। अतएव, आओ, हम सब मिल कर ऐसी कार्य-शक्ति का परिचय दें जिससे महात्माजी के दिल में हमारे लिए अभिमान हो और हमारे हृदयों में प्रतिष्ठित होने में वे अपना गौरव मानें। ऐसी ही मुक्ति उनकी सच्ची मुक्ति है। महात्मा जी की गिरफ्तारी की चर्चा कुछ समय पहले पार्लियामेंट में हो रही थी। उस समय एक सदस्य ने कहा था कि 'मुक्त गांधी की अपेक्षा कैदी गांधी अधिक बलवान् होगा।' आइए हम उनके इस वाक्य को सच कर के दिखा दें। पूर्ण जाग्रत, बल-सम्पन्न, तेजस्वी, कार्यरत, शान्त और शुद्ध भारत में स्वतन्त्र होते समय महात्मा जी को जो सुख और आनन्द होगा वही उनके सच्चे अनुयायी होने की हमारी पात्रता का प्रमाण होगा।

टिप्पणियां

कृपाण-काण्ड

भारत के आक्रमणों के इतिहास में पंजाब का स्थान 'रक्षक द्वार' का स्थान रहा है। और इसलिए देश के हित कष्ट सहने का सबसे अधिक सौभाग्य भी उसीको प्राप्त हुआ। अंगरेजों के आगमन-काल से द्वार की महिमा बम्बई को प्राप्त हुई है। पर उसका काम आक्रमण से रक्षा करना नहीं, बल्कि भारत की राजनैतिक, आर्थिक और मानसिक आपत्तियों का स्वागत करना भर हो गया है। रौलट एक्ट के युग के आरम्भ से पञ्जाब को फिर अपने कटु कर्तव्य पर आमादा होना पड़ा है। तबसे तो वह दमन का क्रीडास्थल ही हो गया है। भारत में आज जो देश-व्यापी राष्ट्रीय जागृति देख पडती है वह उसीका प्रसाद है, उसीके आंखों के तारों के पवित्र रक्त की महिमा है।

पञ्जाब की सिक्ख-जाति अपनी धर्मनिष्ठा और शूरवीरता के लिए इतिहास-प्रसिद्ध है। गुरु गोविंदसिंह और वीर रणजीत सिंह से सिक्खों को ही नहीं, पंजाब को ही नहीं, सारे भारत को स्फूर्ति मिली है और मिल रही है। गुरु गोविंदसिंह के ही जमाने से कृपाण-छोटी तलवार-बांधना प्रत्येक सिक्ख का धार्मिक कर्तव्य चला आया है और अंगरेज सरकार के कानून ने भी उसको मान लिया है-हथियार न रखने की धारा में उसे अपवाद रक्खा है। सिक्खों की संख्या-वृद्धि के साथ ही साथ कृपाणों की तादाद का बढना अनिवार्य है। इस मांग की पूर्ति के लिए सिक्खों को कृपाण बनाना पडते हैं। अब सरकार इन कृपाणों के कारखानों को कानून के खिलाफ समझने लगी है और उसके फलस्वरूप उसने कोई १२००-१३०० सिक्खों को गिरफ्तार कर लिया है और तलवारें ठोक रही है।

पहले गुरुद्वारा की कुंजी के मामले में सरकार बुरी तरह हार खा चुकी है। अतएव इस बार उसने धारा-सभा की मार्फत इस मामले को निपटाने की इच्छा प्रकट की और एक बिल-गुरुद्वारा बिल—के रूप में शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्ध-कमिटी जो सिक्खों की प्रतिनिधि-संस्था है, उसका सहयोग चाहा। वह राजी हुई। दोनों ओर से यह तय हुआ कि जबतक इस बिल पर विचार होता रहे तब तक दोनों पक्षों में शान्ति रक्खी जाय। इस पर गुरुद्वारा-प्रबन्ध-कमिटी लिखती है कि सिक्ख लोग तो अपने वचन पर कायम रहे पर सरकार ने इस परिस्थिति से फायदा उठा कर दमन शुरू कर दिया। एक तो सरकार की नीतिपर लोगों का पहले ही से अविश्वास बढता जाता है। इस दमन ने आग में घी डाल दिया। शि० गु० प्र० कमिटी ने इसपर सहयोग करने से इनकार कर दिया। अब तो दमन ने दारुण रूप धारण कर लिया सरदार खड़कसिंह शि० गु० प्र० कमिटी के सभापति और सिक्खों के अगुआ कृपाण बनाने का अपराध लगाकर १ साल के लिए जेल भेज दिये गये। मास्टर तारासिंह, एक प्रसिद्ध सिक्ख कार्यकर्ता, भी गिरफ्तार किये गये हैं। प्रायः रोजही गिरफ्तारियों के समाचार आ रहे हैं। पंजाब में हाहाकार सा मच गया है। सिक्ख भी तुल गये हैं। वह वीर और धर्मप्राण जाति अपने धर्म पर आघात पहुंचना कैसे सह सकती है? सारे देश की आंखें इस युद्ध की ओर लग रही हैं। शान्तिप्रिय सिखजाति पूर्ण शांति का अवलंबन कर रही है। इससे उसका आत्मबल स्पष्ट ही प्रकट है। यदि वह इसी प्रकार वीर शांति का परिचय देती रही तो कुंजी के मामले की तरह इस बार भी उसकी विजय निश्चित है।

सरकार पर हमें दया आती है। उसे तो बस दमन का ही रास्ता मालूम है। हमारी बात उसके दिमाग में घुसती ही नहीं। और उसे खुद दूसरा रास्ता सूझ नहीं पडता। इसीसे दिन पर दिन उसकी हालत नाजुक होती जा रही है। ठोकर खाकर भी वह संभलेगी तो, पर उस समय जब कि उसका फल उसके लिए अफसोस और शर्म के सिवा दूसरा न रहेगा। यही उसकी परम्परा सी हो गई है।

यह प्रश्न केवल धार्मिक और प्रान्तिक नहीं, बल्कि राष्ट्रीय होता जारहा है। शि. गु. प्र. क. ने हकीम अजमलखान और मा. मालवीयजी से सम्मति चाही है। सिक्खों का यह आत्म बलिदान व्यर्थ जाने वाला नहीं। देश-धर्म के लिए किया गया बलिदान अत्यन्त शुद्ध होता है और वही ईश्वर के दरबार में मंजूर होता है। उन्हें विश्वास रखना चाहिए कि ईश्वर का न्यायदण्ड उठ चुका है—और वह उन्हें अवश्य न्याय दान करेगा।

दमन का दौर दौरा

देश में प्रायः चारों ओर दमन का दौर-दौरा है। महा-समिति ने कितने ही प्रान्तों के दमन का विवरण प्रकाशित किया है। बंगाल, पंजाब और संयुक्त प्रान्त के समाचार पत्रों में प्रायः नित्य ही दमन की कथायें छपती हैं। यह दमन कानून के अनुसार हो तो भी एक बात थी; परन्तु कई जगह के दृश्य तो थोडे-बहुत अंशों में नादिरशाही की याद दिला देते हैं। कोमिला जिले में दिलू नाम का एक आदमी बिना ही वारण्ट के गिरफ्तार कर लिया गया। गांववालों ने उसे पुलिस से छुडा लिया। पीछे महासभा समिति के मन्त्री के समझाने से गांव के लोग दिलू को पुलिस के हवाले करने को तैयार हो गये। पर ५-६ रोजबाद कुछ योरोपियन और ५० सिपाहियों सहित जिला मजिस्ट्रेट उस गांव में पहुंचे। दिलू और उसके साझीदार अबदुल गनीके घरमें घुस गये। घर के लोगों को बाहर हटा कर लकडी की सन्दूकें और मिट्टी के बरतन तोड फोड डाले, उनकी चीजें नष्ट-भ्रष्ट कर दीं। जब वह घर से कुछ दूर एक खेतमें निकल गया तब कहीं से एक मिट्टी का ढेला वहां आगिरा। बस, उन्होंने गोलियां दागना शुरू कर दिया। तीन आदमी उसीदम मर गये। २ कुछ देर बाद मर गये। ४ घायल हुए।

सिव सागर के फारेस्ट सुपरिंटेंडेंट अपनी मोटर में जा रहे थे। एक हिन्दुस्तानी लडके ने 'गांधीजी की जय' बोल दी। साहब ने मोटर रोक दी और उसे पकडने के लिए दौडे। लडका अपने घरमें घुस गया। साहब वहां पहुंचे और उसकी मांसे कहा-उस लडके को मेरे पास लाओ वह हमारे दुश्मन की जय बोलता है। साहब ने लडके को मां के पास से खींच लिया, अपने चरणों पर उसका सिर रखाया, अपने हाथों से उसको रगडा और कई बार जोर से उसके कान मले।

सिलहट के अधिकारियों ने वहां कोई १०० गुरखे तैनात किये हैं। उन्होंने कुछ दूकाने लूट ली हैं और लोगों को बहुत सताते हैं। एक रोज बाबू चन्द्र-कुमार दे, एम्. ए. बी. एल. वकील अदालत से आ रहे थे। एक गुरखे ने उन्हें अपना छाता बन्द करने का हुक्म दिया। उन्हों ने यह जानना चाहा कि यह किस का हुक्म है। इस पर एक दूसरा गोरखा आया उसने उनके हाथ से छाता छीन कर रास्ते पर फेंक दिया। इसी तरह दो और वकील भी छाता बन्द करने के लिए तंग किये गये। एक रोज उन्हों नें गर्ल्स स्कूल की गाडी को रोक कर बन्दूक के कुन्दों से उसे ठोंका। लडकियां मारे डर के रोने-चिल्लाने लगीं।

कामरूप जिले में १०-१५ बरस की उम्र के कुछ विद्यार्थी गौहटी का हाथ से लिखा 'कांग्रेस' नाम का अखबार पढने के लिए ३-३ महीने कडी जेल भेजे गये।

आसाम प्रान्त की एक जेल में कुछ स्वयंसेवक कैदी अपना काम छोड कर कुछ खेल खेलने लगे। नौ जवान ठहरे। एक गिर पडा और कुछ देर के लिए बेहोश हो गया। इस पर हर एक को १५ कोडे मारने का हुक्म दिया गया। वे इस बे रहमी से पीटे गये कि जेलके बाहर उनकी फटकार सुनाई देती थी। लोग त्राहि त्राहि करने लगे। डिप्टी कमीश्नर से कहा गया तो उन्होंने जेल के सुपरिंटेंडेंट की ही करतूत का समर्थन किया।

गन्तूर के जिला मैजिस्ट्रेट ने तीन आदमियों को अदालत में गांधी टोपी पहन कर आने के अपराध में दस रोज सादी कैद की सजा दी। इसे आपने अदालत की मानहानि बताया।

आगरा की जेल में भी बडी सख्तियां और जुल्म करने की खबरें आई हैं।

इस का फल

यदि ये सब बातें सच हों तो लार्ड रोनाल्डशे और उनके भाई-बन्द चाहे भले ही अ-सहयोग को कोसा करें और सहयोग तथा शांति के मधुर गीत गाया करें, पर जबतक वे खुद अपने बचनों और कार्यों में एकता को प्रत्यक्ष न कर दिखावेंगे तबतक असहयोगियों से सहयोग की आशा व्यर्थ है। भारत की नौकर-शाही जबतक अपना यह आसुरी चोला पहने है तबतक उसके साथ का असहयोग पत्थर की लकीर की तरह है। हां, हम मानते हैं कि कोमिल्ला जिले के उन लोगों ने दिल्लु को पुलिस से जबरदस्ती छुडवा कर और किसीने मिट्टी का ढेला फेंक कर अहिंसात्मक असहयोग के विरुद्ध काम किया है। परन्तु इससे पढे-लिखे कानून-दां, जवाबदेह सरकारी अधिकारियों की नादिरशाही की गुरुता कम नहीं हो जाती।

अपने देश-भाइयों से हमारा यही कहना है कि यह हमारी तपस्या का काल है। विपत्तियां तो उसीपर आती हैं जो ईश्वर का प्यारा होता है—जिसको वरदान देना ईश्वर को मंजूर होता है। हमने घोर से घोर कष्ट-सहन करने का व्रत धारण किया है। नौकरशाही इस मौके पर हमें तपोभ्रष्ट करने पर तुली हुई है। पर हमारे सामने तो ध्रुव और प्रह्लाद का उदाहरण है। उसका आदर्श है भय और हमारा आदर्श है तप। भयभीत न होना तो तप का पहला पाठ है। हमारा आदर्श ऊंचा है। हमें अपनी उन्नति करना है और उसके द्वारा सारे संसार को सन्मार्ग दिखाना है। हमें गुलामी से छूटना है और जगत् को मुक्ति का सच्चा रास्ता दिखाना है। अतएव हमें दृढता, निश्चय और धीरज के साथ अपने अंगीकृत कार्य में बराबर लगे रहना चाहिए। प्रसूति के पहले असह्य वेदना हुआ ही करती है। वर्षा के पहले तीव्र ताप हुआ ही करता है।

एकता का प्रयत्न

असहयोगियों को एकता का महत्त्व ठेठ नये सिरेसे समझाने की आवश्यकता नहीं है। संसार में यों भी सुख-शान्तिसे रहने के लिए मनुष्य को इसकी भारी आवश्यकता है। और हमारी ध्येय सिद्धि का तो यह प्राण ही है। इसलिए हम तो इसकी ओर कभी कम महत्त्व की दृष्टि से देख ही नहीं सकते। जिस प्रकार भारत की स्वराज्य-सिद्धि के लिए तमाम जातियों की (हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई आदि) एकता की आवश्यकता है उसी प्रकार तमाम दल के लोगों में भी एकता परमावश्यक है। राष्ट्रों के विपत्काल में तो एकता ही राष्ट्र का बल है। "जहां सुमति तहं सम्पति नाना, जहां कुमति तहं बिपति निदाना।"

इस राष्ट्रीय सप्ताह के कार्यक्रम और कार्यविधि तथा १३ अप्रैल की स्वेच्छापूर्वक शान्तिमय हडताल ने यह दिखा दिया है कि असहयोगी बराबर अपनी आत्म शुद्धि में लगे हुए हैं। असहिष्णुता और दुर्भाव का अभाव उनमें होता जारहा है। द्वेष और रोष से वे अपना पिंड छुडाते जारहे हैं। यह सन्तोष की बात है। पर हमारा कार्य तो तभी सिद्ध होगा जब महात्माजी के कथनानुसार हमारी आत्मशुद्धि का प्रमाण-पत्र हमें अपने नरम-उदार दलवाले भाइयों से मिल जाय। हमारे नरम भाई आज सरकार के सहयोगी क्यों हैं? क्यों वे असहयोग से चिढते हैं? क्या उन्हें खिलाफत और पंजाब का दुःख नहीं है? क्या स्वराज्य उन्हें प्रिय नहीं है? क्या उन्हें भारत माता की दुर्दशा पर दर्द नहीं होता? बात यह है कि उनके दिल में यह बात जम गई है कि इस असहयोग से अराजकता और अव्यवस्था देश में फैल जायगी। दुर्भाग्यवश बम्बई, मदरास, चौरी-चौरा आदि के हिंसाकाण्ड ने उनका सन्देह और बढा दिया। अतएव हमारा कर्तव्य है कि अब अपने आदर्श व्यवहारों द्वारा उनके मन के मैल को धो डालें। हम अपनी सभाओं में उन्हें प्रेमपूर्वक बुलावें। रोग, संकट आदि के समय पर उनकी सेवा शुश्रूषा करें। अंगरेजों से तो हमारा दूर का रिश्ता है, पर हमतो उनके साथ भी भाई-चारा करने को तैयार हैं। फिर ये तो हमारे मा-जाये भाई हैं। मतभेद और मार्ग-भिन्नता को उनके हमारे बीचमें दीवार न खडी करने देना चाहिए। एकता का साधन है प्रेम, और प्रेम की कसौटी है कष्ट-सहन, सहिष्णुता और त्याग।

खुशी की बात है कि मध्यस्थ दल के नेता भी इस एकता के लिए परिश्रम कर रहे हैं। भारत-भूषण मालवीयजी ने अपने प्रयाग के भाषण में सहयोगी भाइयों से कहा "अब हमारे आपस में भेद भाव रखने का समय नहीं रहा। अब तो एक पक्ष के अपमान को दूसरे पक्ष को अपना अपमान समझना चाहिए"। यह बात असहयोगियों को भी याद रखने लायक है। बम्बई के निष्पक्ष बॅरिस्टर जयकर और श्री नटराजन भी इसी प्रयत्न में लीन हैं। महासभा ने तो अहमदाबाद से ही नरम भाइयों के लिए स्वागत-द्वार मुक्त कर दिया है। असहयोगी अपने कर्तव्य पर डटे हुए हैं तो एकता और प्रेम के पुजारी हैं वे नरम भाइयों की वर्तमान बेरुखी का खयाल न करें। उनके प्रेम के प्रवाह में वह न जाने कहां बह जायगी।

महात्माजी का पत्र

श्री एण्ड्रूज साहब ने महात्माजी को एक पत्र लिखा था। उसमें आप लिखते हैं—

मुझे दुःख है कि रेलवे की हडतालों के काम को छोड कर मैं आपका मुकदमा खतम होने के पहले वहां न आ सकूंगा। इसके उत्तर में महात्माजी ने नीचे लिखा उत्तर लिखा था—

साबरमती जेल, १७ मार्च

परम प्रिय चार्ली,

तुम्हारा पत्र मुझे अभी मिला। तुम अपना काम छोड़ कर यहां न आये, यह अच्छा ही किया। गुरुदेव के पास तो तुमको जरूर जाना और जबतक वे चाहें उनके पास रहना चाहिए। समय मिलने पर यदि तुम आश्रम (साबरमती) पर भी जाकर कुछ दिन वहां रहो तो मुझे सचमुच खुशी होगी। मैं यह नहीं चाहता कि तुम जेल में मुझसे मिलने आओ। मैं यहां एक पक्षी की तरह प्रसन्न हूं।

जेल-जीवन का मेरा आदर्श और खास कर कानून का सविनय भंग करने वाले की हैसियत से तो यही है कि बाहरी संसार से किसी तरह का संबन्ध न रक्खूं। बाहरी आदमियों से मिलने की इजाजत होना एक प्रकार की रिआयत है। पर सत्याग्रही न तो रिआयत चाह सकता है और न उसका उपभोग ही कर सकता है। इन रिआयतों का त्याग करने से तो जेल-जीवन का धार्मिक महत्व और भी बढ़ जाता है। और इस आगामी कारावास को मैं राजनैतिक दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण और लाभ-दायक नहीं समझता जितना कि धार्मिक दृष्टि से मानता हूं। अगर यह बलिदान कहा जा सकता हो तो मेरी इच्छा है कि यह विशुद्ध बलिदान ही हो।

तुम्हारा स्नेहांकित
मोहन

व्यापारियों में जागृति

जबलपुर के व्यापारियों की प्रतिज्ञा को पाठक भूले न होंगे। हमें कानपूर से भी खबर मिली है कि वहां के करीब ९० व्यापारियों ने एक साल तक विदेशी कपड़ा न मंगाने की प्रतिज्ञा की है। इन्दौर में भी अग्रवाल महासभा में तथा माहेश्वरी महा सभा में स्वदेशी को एक प्रस्ताव द्वारा अपनाया गया है।

यह संतोष का विषय है कि व्यापारी-समाज में भी धीरे धीरे देश के प्रति अपने कर्तव्य-पालन की भावना जाग्रत हो रही है। देश के लिए यह शुभ चिन्ह ही है कि यह समाज अपने धर्म पर आरूढ़ होने लगा है। भारतीय व्यापारी-समाज पहले ही से अपने धर्म-पालन के लिए मशहूर है। यों तो प्रत्येक व्यक्ति का स्थायी धर्म निश्चित ही है। पर समय समय पर भिन्न भिन्न धर्म की महिमा रहती है। आज भारत के इस विपत्काल में स्वदेशी-धर्म ही सर्वोपरि है। क्योंकि स्वदेशी से ही स्वराज्य है-और स्वराज्य ही से हम गो-रक्षा तथा अपने अन्य धर्मों का पालन कर सकेंगे। देश की प्रत्येक जाति और श्रेणी के लोग अपने अपने कर्तव्य-पालन का प्रयत्न कर रहे हैं। पर आम तौर पर यह शिकायत थी कि व्यापारी-समाज अभीतक अपने कर्तव्य का पालन अच्छी तरह से नहीं कर रहा है। पर अब ऐसी आशा होने लगी है कि यह भी इस समय पीछे न रहेगा। देश की इस संकटमय दशा में क्या व्यापारी-समाज और भी उत्साह के साथ उसकी सेवा न करेगा? क्या वह इस बहती हुई गंगा में हाथ धोकर पुण्य न लूटेगा? कौन कह सकता है कि उसके लिए अपनी मातृभूमि की सेवा करने का ऐसा अवसर फिर कब हाथ आवेगा?

चरखा और मिल

एक देहाती भाई पूछते हैं कि 'हिन्दुस्तान की मिलों का बना कपड़ा भी तो स्वदेशी ही है। फिर उसे पहनने में क्या हानि? घर घर चरखे चलाने का आग्रह क्यों?' यह शंका ठीक है। हमारे कितने ही देहाती भाई इसी भ्रम से अभी मिलों का कपड़ा पहन रहे हैं। घर घर में चरखा कातने से एक तो स्त्रियों और कितने ही पुरुषों को भी फुरसत के समय में एक अच्छा और आसान काम अपने घरही में मिल जाता है और कुछ आमदनी भी हो जाती है। घर घर में भोजन बनाकर खाना जितना स्वाभाविक और सुखकर है उतना ही स्वाभाविक और सुखकर चरखा कातना भी है। अनाथों, विधवाओं और अकालपीड़ितों का तो यही एक अवलम्ब है। इसमें वे इज्जत के साथ अपनी रोजी कमा सकते हैं। मिलका बना कपड़ा होटल के बने भोजन की तरह है। यदि घरघर में रोटी बनाना छोड़ कर हर गांव में एक बड़ा होटल बना दिया जाय और वहां से लेकर रोटी, दाल, भात घर घर बांटा जाय तो बताइए, कितनी दुर्दशा हो! कितनी परतन्त्रता हो जाय! क्या हरएक को अपने अपने समय पर अपने मन की चीज मिल सकती है? इसी तरह एक बड़े कारखाने में कपड़ा बनाकर लोगों को देना भी कुदरत के कानून के खिलाफ और हानिकर है। फिर मिलें छोटे छोटे गांवों में तो खड़ी की ही नहीं जा सकतीं। उनकी यन्त्र-सामग्री भारत में नहीं मिलती। टूट-फूट हो जाने पर विलायत का मुंह ताकना पड़ता है। वहां से बन कर आवे तब काम चले। दूसरे उस यन्त्रकला के जानकार भी हर गांव में नहीं मिल सकते। जब शहरों में ही मिलें चलाने में कई झंझट हैं तब गांवों में उनकी स्थापना कैसे हो सकती है? इसका फल यही होता है कि गांववालों को शहरवालों का मुंह ताकना पड़ता है और उनको मनचाही कीमत देकर कपड़ा खरीदना पड़ता है।

बरसात के समय वर्षा की अनन्त धारायें पृथ्वी पर पड़ती हैं। उनसे तमाम रास्तों में कीचड़ हो जाता है, मकानों में पानी टपकता है, नदियों में बाढ़ आती है, हम बाहर आ-जा नहीं सकते, चार महीने तक कितने ही काम बन्द रखना पड़ते हैं। पर यदि इससे घबड़ा कर हम कहें कि परमात्मा तेरे यहां ऐसी कोई कम्पनी नहीं जो हमारे लिए इस वर्षा का तमाम पानी एक ही जगह एकत्र रक्खे और वहां से नहरोंद्वारा वह हमारे खेतों और कुओं में पहुंचा दिया करे। तो ऐसी व्यवस्था कितनी कृत्रिम और असुविधा-जनक होगी?

स्वाभाविक जीवन हमेशा ही सुख-स्वास्थ्यवर्द्धक और अस्वाभाविक जीवन हानिकर होता है। स्वतन्त्रता स्वाभाविक जीवन में ही है। चरखा हरएक गांव में आसानी से बन सकता है; मरम्मत भी थोड़े ही दामों में हो जाती है। उससे सूत निकालने की क्रिया भी आसान है। और अंगरेजी राज्य के आरम्भ तक हमारी मातायें और बहनें उससे इतना महीन और नफीस सूत कातती थीं कि दुनिया के कारीगर दंग रह जाते थे। ढाका की मलमल की करामात को संसार अबतक नहीं भूल पाया है।

सो, सुविधा, स्वतन्त्रता, आमदनी, कला-कौशल और स्वाभिमान की दृष्टि से चरखा कातना और हाथ का कता-बुना कपड़ा पहनना ही परम आवश्यक है। वही शुद्ध स्वदेशी कपड़ा है।

"खादी तो मंहगी मिलती है"

वही भाई दूसरा सवाल करते हैं 'हाथ-कती-बुनी खादी तो मिल की खादी से मंहगी पड़ती है। हम तो गरीब लोग ठहरे। ज्यादह पैसे कहां से लावें?' उनका कहना यथार्थ है। मिलके कपड़े से हाथ-कती-बुनी खादी महंगी होने के कारण हैं। एक तो चरखा कातने का अभ्यास लोगों का छूट गया। नया नया सूत निकालने से सूत मजबूत और एकसा नहीं निकलता और वह खराब बहुत जाती है। सूत बराबर न होने से बुनाई में समय और

(शेष पृष्ठ २८० पर)

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, वैशाख वदि, ५ सं. १९७९.

दमन की दवा

राजा का धर्म है प्रजा का पालन करना। जो राजा इस धर्म का पालन करता है वही प्रजा का पिता कहलाता है। जो इस धर्म का पालन नहीं करता वह राजा राजा रही नहीं सकता। राजा को हमारे प्राचीन साहित्य में जो पिता की उपमा दी गई है उसका तात्पर्य यही है। कवि-कुल-तिलक कालिदास की नीचे किसी उक्ति से भी यही सिद्ध होता है। महाराजा दिलीप की प्रशंसा में वे कहते हैं—

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।

अर्थात् प्रजा का भरण, पोषण शिक्षण और रक्षण करने के कारण प्रजा का सच्चा पिता तो दिलीप ही था, उनके जनक तो केवल जन्म देने भर के निमित्त थे।

परन्तु राज्य-सत्ता और राज्य-लक्ष्मी ये दोनों बड़ी मोहिनी और साथ ही बड़ी चंचल हैं। जिस पर ये अपना जादू डालती हैं उसको ऐसा उन्मत्त बना देती हैं कि वह धर्म-अधर्म, भले-बुरे का कुछ ख्याल नहीं करता; बस इन्हीं के फेर में पड़ा रहता है, इनके लिए लोगों को तबाह करता है, बद्दुआयें लेता है, और सब का अप्रिय हो जाता है। तिस पर भी अफसोस यह कि ये भली-मानुस किसी के पास नहीं ठहरतीं, पहले पागल और अन्त को पतित बना कर उसे अकेला छोड़ देती हैं! इसलिए राजा भोज ने अपने वध पर तुले हुए राज्याभिलाषी चचा को क्या ही अच्छा उपदेश किया था—

यौवनं धन-सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।

अर्थात् जवानी, धन-सम्पत्ति, प्रभुता और अविवेकता इन चारों में से यदि एक भी किसी के पास हो तो वहां अनर्थ हो जाता है, फिर जहां चारों ही हो वहां कौन सा अनर्थ न होगा!

कौन कह सकता है कि हमारी वर्तमान सरकार की भी यही दशा नहीं हो रही है? भारत की राज्य-सत्ता और राज्य-लक्ष्मी के पीछे वह पागल हो रही है। हिरण्यकशिपु, वेन, रावण और दुर्योधन आदि की कथायें उसके लिए चाहे 'सात समुद्र पार' की और 'अन्धकार-युग' की बातें हों; पर उसके नैहर के ही आसपास फ्रान्स की राज्यक्रान्ति, रूस की जारशाही का नाश, अमेरिका की स्वतन्त्रता, रोम और यूनान का उत्थान-पतन और इंग्लैंड में ही चार्ल्स का फांसी लगाया जाना, इन मोटी मोटी प्रधान घटनाओं से उसकी आंखें खुल जानी चाहिए। पर मालूम होता है 'अन्यदिरं चिन भक्षिष्यति'। वह शायद समझती हो कि पूर्वोक्त अवसरों पर तो शत्रुओं के पास काफ़ी शस्त्रबल और हैसियत था, इससे उनकी विजय हो पाई। यहां भारत में तो हमने पहले ही 'मूले कुठारः' कर डाला है। इन डेढ़ सौ वर्षों में हमने भारतवासियों को केवल शस्त्र-हीन ही नहीं, धन-हीन भी कर डाला है। अब तो हमीं हम हैं—क्या मजाल कि कोई हिन्दुस्तानी सिर उठा पावे। जहां किसी ने उठाया कि हमारे कानूनों की धारायें यमराज की तरह उन पर टूट पड़ेंगी, बस हमारा मैदान साफ़ है। उसके राज्य-मद और ऐश्वर्य-मद की यही आसुरी लीला हम अपनी आंखों आज देख रहे हैं। स्वच्छन्द नौकरशाही के मन में एक तरंग उठी, बस हजारों भारत के लाल जेलखानों में रख दिये गये। उसने सोचा, यह गांधी बड़ी आफत का पुतला है, भेज दिये गये वे छः बरस के लिए जेल। उसने देखा, अकाली सिक्ख पंजाब में हमारे इशारों पर नहीं चलते हैं, कोई दो ही सप्ताह में १२००-१३०० वीर कैदी बना लिये गये! उनके सरदार सरदार खड़कसिंह ५ साल के लिए चक्की पीसने भेज दिये गये। जेल खाने खचा-खच भर गये हैं—कैदियों को खाना-दाना भी पूरा नहीं मिलता, ओढ़ने-बिछौने के भी लाले पड़ रहे हैं-पर इससे हमें क्या? हमारे कानून का—हमारी आज्ञाओं का-निरादर तुमने क्यों किया? हमारा रुख देख कर तुम क्यों नहीं चलते। हमारे शाहजादे की बेइज्जती तुमने क्यों की? ब्रिटेन के 'कठिन बाहु-बल' के सामने तुम सिर उठाने की जुरत करते हो? लो, चख लो मजा! हम दुनिया के महान् विजयी कौम हैं? देखते नहीं हो, हमने जर्मनी को कैसा पछाड़ा है? तुम दास का घमण्ड करते हो? लाजपतराय पर अकड़ते हो? अली-भाई के बल पर कूदते हो? नेहरू का जोर रखते हो? गांधी का डर दिखाते हो? लो, देखो, हमारी आंख के एक इशारे भर से उनकी दशा देख लो। अब भी हमको नहीं पहचानते? हमारी मशीन गन, हवाई जहाज, संगीनों की मार भूल गये? अपनी और अपने मुल्क की खैर चाहते हो तो हमारे पीछे पीछे चले चलो। तुम्हारे उद्धार के ही लिए भगवान् ने हमें यहां भेजा है।

बूढ़ा भारत इस पर हंसता है, कहता है—अपनी जिन्दगी में मैंने ऐसे कितने ही खेल देखे हैं। 'कठिन बाहुबल' मेरे लिए नई बात नहीं है। राज्य-मद की गर्वोक्तियां बहुत सुनी हैं-उसका परिणाम भी मेरी आंखों में नाच रहा है। सच्चा कानून तो कुदरत का या ईश्वर का कानून है। मैं खुदा का बन्दा हूं। उसके इशारे पर चलता हूं। उसकी आज्ञा की देर है, हजारों गांधी कुरबान हो जायंगे। तुम्हारी ताकत हो तो मेरे ३० करोड़ बच्चों को कैदी बना डालना। हां, दमन का डर दिखाते हो। डायरशाही की याद दिलाते हो। मुझे निःशस्त्र समझ कर फूले न समाते हो। पर मुझे शस्त्रास्त्र की निस्सारता और पाशविकता का अनुभव हो चुका है। तुम चाहे जो समझते रहो, पर मैं तुम्हें अपना भाई समझता हूं-भूला भटका भाई समझता हूं। मैं तुम पर क्या हाथ उठाऊं? मैंने अपनी भूल समझ ली है। शस्त्रास्त्र से संसार को शान्ति और स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। यदि तुम्हें ईश्वर का डर होगा तो तुम जल्द ही इस सत्य का अनुभव करोगे। रही तुम्हारे शस्त्रास्त्रों की बात, सो इन्हें तो मेरे बच्चे फूल की तरह झेलेंगे। जरा उन्हें प्रेम के रंग में खूब रंग जाने दो, एकता का प्रत्यक्ष पाठ पढ़ लेने दो, स्वदेशी-धर्म पर आरूढ़ हो जाने दो, फिर भी तुम्हारा यह नशा कायम रहा तो अपना सारा पशु-बल आजमा लेना—देख लेना हिंसा की विजय होती है कि अहिंसा की। और जर्मनी की ओर क्या उंगली दिखाते हो? इसका रहस्य तो सारा संसार जानता है। मेरा हरएक सिपाही जानता है।

तुम मेरे उद्धार की चिन्ता छोड़ दो। मुझे तो अपना रास्ता मालूम है। तुम्हारी सदिच्छा के लिए तुम्हें धन्यवाद। पर मेरी समझ में नहीं आता कि यह निष्ठुर दमन और सदिच्छा दोनों एक साथ कैसे चल सकते हैं?

मेरे प्यारे बेटो, बस इस वर्तमान देशव्यापी दमन का रहस्य इसी प्रश्न में है। तुम जिस शान्ति और निर्भयता से इसका मुकाबला कर रहे हो इससे मेरा हृदय पुलकित हो उठता है। मेरे स्वराज्य और विश्व-कुटुम्ब के मनोराज्य के सफल होने की आशा दृढ होती जाती है। जहां तुम पूरी तरह द्वेष और रोष से हीन हुए कि यह दमन तुम्हारा दास हो जायगा। यह राज्य-सत्ता तुम्हारे चरणों पर झुक जायगी। तुम्हारा स्वदेशी-धर्म अथवा खादी और चरखे का प्रचार तुम्हारे इन प्रतिपक्षी दिखाई देने वाले भाइयों की आंखों में अंजन का काम देगा-इन्हें सत् ज्ञान होते ही, भर्तृहरि की उक्ति के अनुसार, इनका मद ज्वर की तरह उतर जायगा और ये आजन्म तुम्हारे ऋणी रहेंगे। बस, इस दमन की यही रामबाण दवा है।

बापू का रहस्य

('बापू' शब्द गुजराती है। इसका अर्थ है पिता। महात्मा गांधी को उनके आत्मीय और सखा 'बापू' संबोधन करते हैं।-उप-सम्पादक)

आज तमाम भारतीय जनता के हृदय पर बापूजी का जो इतना प्रभाव दिखाई दे रहा है उसका क्या रहस्य है? भारतीय जनता पर उनका असीम प्रेम। अपने देश-भाइयों पर इतना प्रेम करने वाला शायदही कोई भारतीय आज हो। उनके लिए वे जो अविराम और अनन्त परिश्रम कर रहे हैं उसका रहस्य भी इसी प्रेम में है। अपने ऊपर पड़े हुए गुरुतर भार को संभालने के लिए अपने को असमर्थ तथा अयोग्य समझकर जो वे लंबे लंबे उपवास और प्रार्थनाओं द्वारा शांति-पूर्वक देह छोड़ने को लालायित थे उसका कारण भी उनका अपने करोड़ों दीन-हीन भाइयों के प्रति प्रगाढ प्रेम ही था। चौरी-चौरा तथा बम्बई की दुर्घटनाओं का हाल सुनकर उनके हृदय में जो घोर अन्तर्वेदनायें हुईं, तथा उन दुर्घटनाओं के कारणभूत अपने उन अपराधी भाइयों के, जिनके लिए वे इतना परिश्रम करने पर भी उन्हें मुक्त न कर सके, पापों के प्रक्षालन करने को-फिर वह उन पापों का कितना ही छोटा सा अंश क्यों न हो, वे जेल जाकर कड़ी सजा भुगतने के लिए जो दिन-रात अधीर हो रहे थे, उसका भी रहस्य यही असीम प्रेम था। इसी अपने दीन-हीन दारिद्र्यग्रस्त भाइयों के प्रति अनन्य भक्ति के कारण ही उन्होंने कौपीन भी धारण की थी और उनके उत्थान के लिए अनन्त कष्टों को सहन करते हुए उनकी आत्मा परमात्मा से निरन्तर प्रार्थना किया करती है।

बापूजी दुःख और पाप को तो-फिर वह कहीं भी हो, देख ही नहीं सकते। पर सच पूछा जाय तो प्रचलित अर्थ के अनुसार वे देशभक्त भी नहीं हैं। वे तो किसी के खिलाफ अपनी उंगली तक नहीं उठावेंगे, स्वयं अत्याचारी या प्रजापीडक निर्दय राजा भी उनके सामने क्यों न आकर खड़ा हो जाय।

क्योंकि वे इस बात को तो अपने दिल से भूल ही नहीं सकते कि वह तो उनका एक मार्ग-भ्रष्ट, दुर्विनीत, दुराचारी और अधिक से अधिक एक दुष्ट भाई ही तो है। बापूजी तो साथ ही साथ देशभक्त, तमाम चराचर भूतमात्र पर दया करने वाले तथा भगवद्भक्त भी हैं। बापूजी के हृदय में तो किसी भी व्यक्तियों के प्रति द्वेष-भाव नहीं है; क्योंकि वे खुद अपनी गिनती भी उन्हीं में करते हैं। बापू भारत के भक्त हैं; क्योंकि संसार में यही ही वर्षों से अनेकविध दुःख भोग रहा है यही सबसे अधिक निर्धन, दरिद्र-ग्रस्त है; यही सबसे अधिक पौरुष-हीन कर दिया गया है, और यही सब से अधिक पद-दलित और दीन भी है। पर वे भारत पर इसलिए भी असीम प्रेम करते हैं कि उन्हें यह मालूम हो रहा है कि जहां भारत अपने पैरों पर खड़ा रहना सीखा कि वह संसार के सामने एक ऐसी उच्च संस्कृति उपस्थित करेगा जो संसार के लिए आदर्शभूत हो रहेगी।

बापूजी के हृदय में भारत के लिए जो दुःख है और उसके लिए वे जो कष्ट-सहन-तपस्या-कर रहे हैं वह तो मानों स्वर्गीय है। क्योंकि उनके हृदय में इन दो बातों के साथ साथ द्वेष का तो लेश मात्र भी नहीं है। और इसलिए वे भारत के आत्मिक उत्थान का प्रधान कारण हैं और भविष्य में भी रहेंगे एवं इसीलिए परमात्मा भी हम लोगों के अपराधों पर उन्हें दंड भी दे रहा है। क्योंकि वे हमें प्रेम करते हैं। हिन्दू-मुस्लिम-एकता में उनकी जो हार्दिक श्रद्धा है तथा अस्पृश्यता का वे जो घोर निषेध करते हैं वह तो उनके हृदय में स्थित समस्त मनुष्य-जाति के प्रति स्वाभाविक प्रेम का फल है। वे तो मनुष्यमात्र पर समान प्रेम करते हैं फिर वह मित्र हो या शत्रु, उच्च हो या नीच। बापू जी की राजनीति में कृत्रिमता का तो लेश भी नहीं, जो आज-कल की सभ्य राजनीति में पाई जाती है। तथापि उन्हींकी राजनीति से हमें लाभ हुआ है और होगा भी। यथार्थ में तो उनके मत के अनुसार वह उच्चनीति ही---यह प्रेममय तथा भूतदयात्मक भावना जो दूसरों के लिए अनन्त कष्ट उठाने से तथा त्याग करने से प्रकट होती है, संसार का कल्याण कर सकती है। सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक जटिल प्रश्नों के हल करने में उसका प्रयोग करने से पथ-भ्रष्ट संसार को वह फिर अपने स्थान पर ला सकती है। और भारत का राजनैतिक स्वराज्य भी बापूजी के लिए क्या है? नीच स्वार्थ और लोभ की गर्त में नहाते हुए संसार के उत्थान के लिए एक नया और अत्युत्तम मार्ग।

बापूजी के चरित्र में इतनी विशेषतायें होने पर भी अगर वे अपने को महात्मा नहीं समझते हैं तो इसका कारण क्या हो सकता है? यही कि अनेक श्रेष्ठ महात्माओं की तरह वे भी अपनी आत्मा की महानता को अनुभव नहीं करते हैं। वे तो केवल प्रेममय, दयामय हैं; उनका हृदय मधुरता से भरा हुआ है। और हम लोगोंमें बैठे बैठे अनेक कठिन परिश्रम करते हुए भी वे स्वानंद-सागर में मग्न हो रहते हैं, अपने को भूल जाते हैं। यह आत्मिक महानता तो सचमुच ईश्वरीय है। और हमारे जैसी छोटी छोटी आत्मायें तो केवल अपने अपने दृष्टि-कोण से उनके गुणों की ओर आश्चर्य-तिमित दृष्टि से केवल देख ही सकती हैं, तथापि एक अत्यंत तेजस्वी तारे की तरह उनकी आत्मा हममें से अत्यंत मन्द और आलसी मनुष्य को भी बहुत दूर से अपनी ओर बलात् खींच रही है और हम भी आप ही आप उनकी ओर खिंचते जा रहे हैं। बापू तो मानों एक शक्ति, नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति हैं और यद्यपि वे अपने जीवन के इस परिमित समय में इस पतित भ्रान्त संसार का उत्थान न कर सके तो भी उनकी वह शक्ति अनन्त कालतक रहेगी और अनेक जातियों को तथा राष्ट्रों को प्रभावान्वित करेगी। क्योंकि बापूजी के साथ परमात्मा की वह महाशक्ति है जो उनको तथा उनके कार्यों को सदा पूरा करती रहेगी। और यह भी हो सकता है कि परमात्मा अपना ही अभीष्ट सिद्ध करने के लिए उनका उपयोग कर रहा हो।

(यंग इंडिया) बापू का एक भक्त

मुजफ्फरपुर का समाचार है कि डा॰ महमूद के कारावास के कारण वहां के डिप्टी जेलर श्री शफीक और असिस्टंट जेलर श्री वसि एहमद ने अपने इस्तीफे पेश कर दिये। एक मुसलमान और एक हिन्दू जेल वार्डरने भी इस्तीफा दे दिया है। अफवाह है कि और भी कुछ लोग इस्तीफा देने वाले हैं।

प्रार्थना और उपवास

प्रार्थना का अर्थ है सच्चे हृदय से, अपनी पूरी शक्ति से, ईश्वर तक अपनी पुकार ले जाना और अपना अभीष्ट मांगना। परमात्मा से अनुनय-विनय करने की हमें क्या आवश्यकता? यदि आप आस्तिक हैं तो मानना होगा कि यह सृष्टि परमात्मा की लीला का चमत्कार है—जड़-चेतन सब उसीके संकेत पर चलते हैं, उसकी सहायता और शक्ति के बिना मनुष्य का व्यापार बेकार है। वह हमें प्रेरणा करता है और हम काम में जुट जाते हैं। हम तो उसके हाथ के खिलौने हैं। हमारा काम तो सिर्फ उसकी-अपनी अन्तरात्मा की आज्ञा के अनुसार काम करना है। सत्कर्म का असत्फल कभी नहीं मिल सकता। अंगूर का बीज बोने पर बबूल नहीं पैदा हो सकता। हमारे कर्म का फल हमें मिलेगा-पर समय पर-नियम के अनुसार; हमारी इच्छा होते ही, हमारी आज्ञा के साथ नहीं।

यदि आप नास्तिक हैं तो अभी ठहरिए, संसार की रगड़ खाइए, और अनुभव कीजिए, अपनी अपूर्णता का ज्ञान होते ही आप सीधे रास्ते पर आजायंगे। किसीने सच कहा है कि मनुष्य पैदा भले ही नास्तिक हो कर हो; पर वह मरता आस्तिक हो कर ही है। यह बड़े तजरिबे की बात है।

ईश्वर का अंश होते हुए भी मनुष्य अज्ञान और कुसंस्कारों के कारण दीन और दुर्बल हो जाता है। विपत्ति के समय धर्म हीन हो जाता है। अहंकार प्रबल हो उठने पर मदोन्मत्त और अत्याचारी भी हो जाता है। संसार निर्बल और सबल दो बड़े भागों में बट जाता है। भाई-भाई का युद्ध ठनता है—कृष्ण और शंकर को परस्पर लड़ना पड़ता है।

इस अनिष्ट और अस्वाभाविक स्थिति से बचने या उसे दूर करने का उपाय है प्रार्थना। हे ईश्वर मुझे सत् ज्ञान दे। मेरे मन के दुर्विकारों को दूर कर। मेरे हृदय को प्रकाशमय बना। मेरी दुर्बलता हरण कर। मेरी नाड़ियों में तेरा रक्त बहने दे। मुझे ऐसी बुद्धि दे कि अपनी शक्ति का उपयोग अपने भाइयों की रक्षा के लिए करूं। मुझे तेरे प्रेमामृत का स्वाद चखा। तेरे आनन्द और शांति के दो घूंट पिला। निर्मल हृदय से की गई ऐसी प्रार्थना से मनुष्य में वह ज्ञान और वह बल का स्रोत उमड़ पड़ता है कि जो कल 'नर' था आज वही 'नारायण' मालूम होने लगता है। अत्याचारी विनीत हो जाता है और दलित पीड़ित की नसों में पौरुष बहने लगता है।

प्रार्थना के द्वारा हम अपनी अन्तर्वृत्ति को ईश्वर के साथ मिलाते हैं और उससे अभीष्ट शक्ति, ईश्वरीय अंश प्राप्त करते हैं। ईश्वर को सद्गुण और सत्कार्य के लिए की गई प्रार्थना ही उसके दरबार तक पहुंचती है। ईश्वर दीन-दयालु है। अतएव दीन-दुर्बल दुखी उसे अधिक प्रिय होते हैं। उनकी प्रार्थना वह पहले सुनता है।

भारत धर्म-धरा, अतएव ईश्वर की प्रिय भूमि है। हमारे पापों के कारण आज यहां अधर्म का राज्य है। आज भारत क्रीत-दास हो रहा है। एक ईश्वर का प्यारा आया और उसने उसे सार्वजनिक प्रार्थना का प्रयोग बताया। भारत को उससे शक्ति मिली। सत्याग्रह-सप्ताह का आरम्भ और अन्त प्रार्थना के ही द्वारा हुआ। एक साल के बाद भारत ने फिर अपनी पुकार परम पिता के कानों तक पहुंचाई। यदि वह सच्चे दिल की और सद्भाव और पूरे प्राण के साथ की गई होगी तो ईश्वर को मदद छोड़ कर दौड़ना पड़ेगा।

गांधी-दिवस—हरमास की १८ तारीख—को नियम के साथ परमेश्वर की प्रार्थना करने का प्रण भारत ने किया है गांधीजी के कारावास से भारत को कितनी चोट पहुंचाई है यह हम जानते हैं। पर इसके कारण उसको प्रार्थना में दोष और द्वेष की छाया न रहनी चाहिए। हम यह न चाहें कि "ईश्वर जालिमका सत्यानाश कर" बल्कि यह प्रार्थना करें कि प्रभो उसे शुभ मति दे और हमें उसके अत्याचार से बचने का बल दे ऐसी निर्दोष और सात्विक प्रार्थना से हमारा पक्ष ईश्वर के इजलास में पुष्ट होता रहेगा और अन्त में हमारी जीत होगी।

उपवास प्रार्थना का साधन-अंग है। एक ही शक्ति हमारे शरीर के सब चक्रों को चलाती है। शरीर के दो भाग हैं जड़ और चेतन। यदि जड़ भाग में उस शक्तिको अधिक काम करना पड़ा तो चेतन-भाग में उसकी कमी पड़ जायगी। जड़ वस्तुओं से शरीर के जड़ भाग की और चेतन वस्तुओं से चेतन भाग की पुष्टि होती है। हमारा आहार अर्थात् भोजन-सामग्री जड़ वस्तु है और इससे शरीर के जड़ भाग का ही पोषण होता है। शुद्ध विचार चेतन वस्तु है और उससे चैतन्य की वृद्धि होती है। हम प्रत्यक्ष ही अनुभव करते हैं कि जब अधिक या गरिष्ठ भोजन करते हैं तब विचार-शक्ति मन्द पड़ जाती है। इसका अर्थ यही है कि शरीर में जड़ भाग की वृद्धि होने से उस शक्ति का व्यय जड़ भाग में पाचन-क्रिया के रूप में अधिक होता है और चेतन भाग में उसकी पहुंच कम हो जाती है।

चिन्तन और ध्यान ही के द्वारा तो प्रार्थना की जाती है। ये दोनों चेतन-साधन हैं। उस अनन्त चैतन्य-सागर तक प्रार्थना-पत्र पहुंचाने का साधन चेतन ही हो सकता है। उपवास से शरीर में भोजन के रूप में नवीन जड़ भाग नहीं जाता, इससे वह शक्ति चेतन भाग में लगी रहती है और चिन्तन-ध्यान के द्वारा प्रार्थना में सहायक होती है। उपवास से चित्त एकाग्र करने में बड़ी मदद मिलती है। भूख मालूम होने पर थोड़ा ठंडा जल पी लेने से बड़ा चैतन्य आ जाता है, बुद्धि अधिक निर्मल और तीव्र हो जाती है। सो उपवास से प्रार्थना के अनुकूल चित्त की परिस्थिति उत्पन्न करने में खूब सहायता मिलती है।

आरोग्य-शास्त्र की दृष्टि से तो उपवास का महत्व स्पष्ट ही है। हमारे वर्तमान आन्दोलन में उपवास और प्रार्थना का राज-नैतिक महत्व भी कम नहीं है। इससे राष्ट्र के नियम-पालन का और कष्ट-सहन और त्याग की तैयारी का पता लग सकता है। यह लोकमत प्रगट करने का भी निर्दोष और शान्तिमय साधन है।

प्राचीन समय में उपवास और प्रार्थना अर्थात् कन्द-मूल-फल और ध्यान के द्वारा ही बड़े बड़े महापुरुष और बली राजा ईश्वर से अतुल शक्ति प्राप्त करते थे। एकादशी, सोमवार, प्रदोष, आदि पर उपवास करने की जो प्रथा भारत में प्रचलित है उसका मूल इसीमें है। जब वैयक्तिक प्रार्थना और उपवास के चमत्कारों के अनेक उदाहरण मिलते हैं तब इस हमारे सार्वजनिक प्रयोग के सुफल के विषय में कोई सन्देह नहीं हो सकता।

ता. १२ अप्रेल को लाहोर की महासभा-समिति की सभामें श्री मालवीयजी व्याख्यान देने वाले थे। पर वहां के जिला मॅजिस्ट्रेट ने उसे रोक दिया। इसके जवाब में श्री मालवीय जी ने १३ ता. को लिखा कि आज फिर उसी स्थानपर महासभा-समिति की सभा होगी। और मुझ से फिर उसमें भाषण करने के लिए अनुरोध किया गया है।

अबतक यह समाचार मिला है कि जिला मॅजिस्ट्रेट ने सभा को फिर रोक दिया है और सभास्थान के आसपास पुलिस ने घेरा डाल रक्खा है।

दुखियों का दर्द

मेरा सन्देश जिन लोगों के हाथों में पहुचेगा वे तो खा-पी कर सुखी होंगे; परन्तु देश का बड़ा भाग तो फाकेकशी कर रहा है। यदि यह देखना चाहें कि आज हमारे देश की हालत कितनी गिर गई है तो हमें देहात का दृश्य देखना चाहिए। बम्बई कानपुर, आदि बड़े शहरों के जिन मुहल्लों में गरीब लोग रहते हैं वहां जाकर यदि हम देखें तो हमें पता लग जाय कि हमारे देश की कैसी दुर्दशा है।

यदि यही दशा रही तो आज जिसको खाना मिल रहा है उसे भी कल मिलना बन्द हो जायगा। देश में फाकेकशी क्षय रोग की तरह बढ़ रही है। गरीब लोग इसको कबतक सहन करेंगे? यह हिन्दुस्तान है। इसीसे लोग इतना भी सहन करते हैं। अब भी यदि हम सावधान न होंगे तो नहीं कह सकते, देश की क्या दशा होगी?

हमें अपने जीवन में परिवर्तन करना चाहिए। धनी और निर्धन सब को शारीरिक परिश्रम करना चाहिए और सादगी धारण करना चाहिए। धनी लोगों का गरीब लोगों के साथ मिलना चाहिए। उनके दर्द से दुखी होना चाहिए।

प्रजा के भले में राज्य का भला है। सरकार इस बात को नहीं जानती। सरकार को विपरीत बुद्धि सूझी है। यदि धनवान् लोग भी सरकार की तरह लापरवाह हो जायं तो इस देश का नाश ए दिन न रहे। स्वार्थ का विचार कौन नहीं करता? हमें परमार्थ का भी विचार करना चाहिए।

हमें लड़के-लड़कियों को शिक्षा भी नये ढंग से देना चाहिए। हमें अपने देश की चीजें खरीदना चाहिए। विदेशी चीजों का व्यवहार करने से तो देश में फाकेकशी ही बढ़ेगी।

बहनें इस बात का विचार क्यों नहीं करतीं कि विदेशी कपड़ा पहनने में कितना पाप है? महीन कपड़े बिना यदि काम न चलता हो तो उन्हें खुद महीन सूत कातना चाहिए। धर्म की रक्षा का आग्रह तो स्त्रियों में ही अधिक होता है। भावी सन्तान को यह कहने का मौका तो हमें हरगिज न देना चाहिए कि स्त्रियों के बनाव-श्रृंगार के बदौलत भारत का स्वराज्य मिलते मिलते रुक गया।

(नवजीवन) कस्तूरबाई गांधी

(२७६ से आगे)

दाम ज्यादह लगता है। तीसरे कुछ लालची व्यापारी गरम तवे पर अपनी रोटी सेंक लेना चाहते हैं। पहले दो कारण तो सूत कातने के अभ्यास बढ़ने के साथ साथ दूर होते जायंगे। और तीसरे कारण के लिए व्यापारी समाज में देशभक्ति और धर्म की भावना जाग्रत होने की आवश्यकता है। हम स्वार्थ और लोभ में इतने फंस गये हैं कि धर्म-अधर्म, लोक-परलोक सब का खयाल छोड़ बैठे। स्वार्थी अंगरेजी व्यापारियों की देखा-देखी हम भी कुमार्गगामी हो रहे हैं। यह भारतवासियों के लिए सचमुच शर्म की बात है।

माल की बिक्री ज्यों ज्यों ज्यादह बढ़ती है त्यों त्यों माल ज्यादह तादाद में तैयार हो सकता है और वह सस्ता भी पड़ता है। यदि हमारे देहाती भाई कुछ कसर खाकर भी कुछ समय तक खादी पहनते रहें तो थोड़े ही दिनों के बाद खादी सस्ती मिलने लगेगी। हम अपने लड़के को पढ़ाने लगते हैं, या लड़की का पालन-पोषण करने लगते हैं, अथवा शिवालय या ठाकुरद्वारा बनवाते हैं तब इस बात का खयाल करते हैं कि यह रुपया मुफ्त ही जा रहा है, हमें तो आज इससे कुछ भी लाभ नहीं? घर की बनी रोटी यदि महंगी पड़ती हो और होटल में दाल-भात सस्ता मिलता हो तो क्या हम घर के चूल्हे को फेंक कर होटल से खाना मंगवा लेंगे और घर की चीज से नफरत करने लगेंगे? फिर हम कितने ही व्यर्थ के कामों में, शराब, अफीम, नाच-गान, आदि में कितना ही रुपया नहीं बहा देते हैं? जिस प्रकार इन दुर्व्यसनों के त्याग से धन और धर्म दोनों की रक्षा होती है उसी प्रकार विदेशी वस्त्र के त्याग से भी होगी। हमें तात्कालिक लाभ के लोभ से दूरवर्ती सच्चे और स्थायी लाभ से हाथ न धो बैठना चाहिए। धर्म समझ कर हमें हाथ की कती और बुनी खादी पहनना चाहिए। व्यापार में अथवा खेती में पहले पूंजी लगानी पड़ती है, धीरज के साथ प्रयत्न और इन्तजार करना पड़ता है, तब लाभ होता है। अधीरता और जल्दबाजी से मूलधन भी नष्ट हो जाता है। इस बात को हमें याद रखते हुए कुछ महंगी होते हुए भी शुद्ध खादी ही पहनना चाहिए। एक वर्ष यदि भारत में विदेशी कपड़ा न आवे तो ६०-७० करोड़ रुपया भारत के मजदूरों के और किसानों के घर में बच रहें। दूसरे ही साल इसका असर खादी की तैयारी पर होकर खादी शायद आज के मिल के कपड़े से भी सस्ती मिल सके। इसलिए हमारे देहाती भाइयों को लोभ और मोह छोड़ कर शुद्ध खादी ही बरतना चाहिए। महासभा की तरफ से जहां जहां दुकानें खुली हों वहां से खादी लेने में माल की मजबूती, उत्तमता और सस्ताई के विषय में धोखा नहीं हो सकता।

"स्वर्ग है तेरी धूरि समान"

जयति जय जय भारत भगवान-स्वर्ग है तेरी धूरि समान।
हिमालय चिर ऊंचाही रहे, गोद-गंगा से अमृत बहे;
महासागर नित चूमें चरन, तपोवन भूमि भुवन-मन-हरन;
न ऐसी तीन लोक में शान, स्वर्ग है तेरी धूरि समान ॥१॥
चढ़ा कर दिव्य वस्तु सुख-मूल, धान्य, धन, मणि, जल, दल, फल, फूल;
पूजती प्रकृति रात-दिन तुझे, जान कर जगत शिरोमणि तुझे;
अलौकिक रत्नों की तू खान, स्वर्ग है तेरी धूरि समान ॥२॥
सती, दुर्गा, लक्ष्मी, शारदा, अनेकों होतीं तुझसे सदा;
छोड़ कर स्वर्ग, मान मन-मोद, देवता आते तेरी गोद;
पुत्र तेरे बनते भगवान, स्वर्ग है तेरी धूरि समान ॥३॥
देह तेरी चारों फलमयी, विश्व-विजयी अतुलित बल-मयी;
करोड़ों आत्मशक्ति-धारिणी, सदा रिपु-दल-बल-संहारिणी;
नहीं सह सकता तू अपमान, स्वर्ग है तेरी धूरि समान ॥४॥
बनी तेरी रज से यह देह, गोद में पली समेत सनेह;
नसों में बहता तेरा रक्त, आत्मा में है तेरी शक्ति;
हृदय में है तेरा अभिमान, स्वर्ग है तेरी धूरि समान ॥५॥
एक तू है हम सबका धर्म, इष्ट, आशा, अभिलाषा, कर्म,-
भाग्य, गौरव, भविष्य, सुख, उदय, बुद्धि, विद्या, वैभव, बल, विजय
हमारा प्यारा जीवन प्रान, स्वर्ग है तेरी धूरि समान ॥६॥
शान्त, स्वाधीन, शक्ति-सम्पन्न, विजय-श्री-सेवित, परम प्रसन्न-
बसो उर तेरी मूर्ति उदार, करूं पद वन्दन बारंबार;
चरण पर तन-मन-धन बलिदान, स्वर्ग है तेरी धूरि समान ॥७॥

"नन्दीगण"

जयकृष्ण प्रभुदास भनसाली द्वारा नवजीवन मुद्रणालय स रंगपुर, सरखीगरानी वाडी, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से रचनात्मक जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित।

शौर्य क्या है ?

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—वैशाख वदि १२, संवत् १९७९, रविवार, २३ अप्रैल, १९२२ ई० | अंक ३६

स्वराज्य का महा-मन्त्र

"बस खादी ही पहनो!"

"भारत आज पंजाब और खिलाफत के घावों से बेचैन है—दुखी है। वे जखमें केवल खादी से ही अच्छी हो सकती हैं।

"हमारे करोड़ों अर्ध-नग्न और क्षुधा-पीड़ित भाइयों के लिए चरखा एक अपूर्व और अमोघ जीवन-दाता हो गया है। उसे हमारे घरों से कौन नष्ट करना चाहेगा? उसकी रक्षा करना तो हमारा धर्म है। मैं खुद व्यापारी हूं। और अपने व्यापारी-भाइयों से सआग्रह अनुरोध करता हूं कि आप विदेशी वस्त्रों का व्यापार छोड़ दें। आप अभी तक हरएक धार्मिक आन्दोलन में खुले हाथों से सहायता देते आये हैं। मैं आशा करता हूं कि इस महान् धार्मिक आन्दोलन में भी आप उसी प्रकार तन, धन, मन से देश को सहायता देंगे।

"तमाम शरीर को दुःख देकर कोई एक ही अवयव पुष्ट होना चाहे तो यह असम्भव है। शायद इससे क्षण भर भले ही सुख मालूम हो। पर आखिर तो उसका नाश निश्चित है। इसलिए स्वार्थ की दृष्टि से भी हमारे राष्ट्र की उन्नति के लिए यत्न करना हमारा धर्म है।"

जमनालाल बजाज

* * * *

"जो महा-पुरुष अहिंसा-धर्म का प्रचार करते आये हैं, और जिनकी रगरग में पावित्र्य, सादगी और निर्दोषता मूर्तिमान् विराज रही हैं, उन्हें संसार में इतनी लंबी सजा मिलना अंग्रेजी-राज्य की एक आश्चर्यमय समालोचना है। सचमुच विधि की गति विचित्र है।

"बीसवीं सदी के इन महात्मा की तरह अब तक किसी भी आदमी ने पहले ऐसी आवाज नहीं उठाई थी। उन्होंने तो हमारे विचारों में एक क्रांति कर डाली। अब उनकी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करना उनके देश-भाइयों के हाथ है। हमारे धर्म-ग्रंथों ने कहा है:—

'उसे (परमात्मा को) जो बात प्रिय है उसे करने का यत्न करना ही उसकी पूजा है।'

"खुद मेरे प्रान्त में अस्पृश्यता के कलंक को नष्ट करने के [illegible] हूं। और आज-कल तो अपनी रसायन-शाला में बैठ कर आविष्कार करने का महत्वपूर्ण काम छोड़ कर मैं देहात में ही घूमता फिरता हूं और चरखा और खादी का प्रचार कर रहा हूं। मुझे आशा है कि मेरे देश-भाई भी उन शब्दों को जो कि हमारे हृदय-सम्राट् महात्मा जी ने जेल जाते समय कहे थे अच्छी तरह याद रखेंगे।

(डाक्टर) प्रफुल्लचन्द्र राय

* * * *

"बढ़ो, बढ़ो, आगे बढ़ो, पीछे न हटो! अपने कर्तव्य पथ पर बढ़ते ही चलो! बस, [illegible] विजय तुम्हारी ही है। अपने कर्तव्य-पथ से जरा भी हटे, जरा भी हिचकिचाये अथवा रुके कि पराजय है, सर्वनाश ही समझिए।

"युद्ध का, अपनी पूरी ताकत से युद्ध करने का, यही समय है। देखिए, वह विजय-श्री आपके [illegible] में जयमाला लिये तुम्हें पहनाने को उत्सुक हो रही है। बस, खादी पहनिए। वही इस युद्ध में प्रहारों से हमारी रक्षा करेगी। उसे पहन कर इस अहिंसा की रण-स्थली पर निर्भयता-पूर्वक खड़े हो जाइए। बन्दूक की गोलियां आपको छू तक न सकेंगी। तीखे तीरों की भी उसमें घुसने की ताकत नहीं। आजकल के व्यापारी इंग्लैंड पर दूसरी किसी भी बात से इतना असर नहीं पड़ सकता जितना उसके व्यापार का पतन उसको ठीक ठिकाने ला सकता है। और आपकी स्वदेशी-प्रतिज्ञा से बढ़ कर उसका भारतीय व्यापार नष्ट करने का साधन भी दूसरा नहीं है।

"अगर आपको इस गुलामी से, जो कि दिन ब दिन आपको ज्यादह ज्यादह मिट्टी में मिलाती जा रही है, अपना पिंड छुड़ाना है तो विदेशी कपड़ों को बिलकुल छोड़ दो। अगर आपको पंजाब और खिलाफत के अन्यायों को दूर करना है, हमारे जेल-निवासी महात्माजी के शब्दों का आदर करना है, तो खादी ही पहनो और पहनाओ और बच्चों को भी खादी ही पहनाओ"

[illegible] चौधरी

"देश की दूर एक जेल के पत्थर और ऊंची ऊंची दीवारें आशा के मधुर संदेश ऊंची आवाज से सुना रही हैं, और आजादी का रास्ता दिखा रही हैं। मैं भी उसीको दोहराने के अतिरिक्त कुछ नहीं कह सकता, जो कि हमारे सुयोग्य नेता कह रहे हैं। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि खादी में ही हमारी विजय और हमारे करोडों भूखों मरने वाले भाइयों की मुक्ति है।"

जवाहरलाल नेहरू

टिप्पणियां

बगुला-भक्ति

पिछली ९ फरवरी को लार्ड रीडिंग ने एक तार विलायत भेजा। उसका सार तारद्वारा यहां आया है। उसमें उन्होंने अपनी नीति का खुलासा किया है और भारत में अपनी नीति को सहन शीलता की नीति बताया है। आप कहते हैं "हमने तेज और तीक्ष्ण उपायों से तो काम ही नहीं लिया। ब्रिटिश शासन भारत में अबतक प्रजा के सहयोग से ही हो रहा है। आगे भी उसकी सफलता के लिए इस सहयोग की आवश्यकता है। अतएव असहयोग के खिलाफ जो कार्रवाइयां की गई हैं उनके लिए भारत वासियों की सम्मति हमारे पक्ष में होना बड़ा कामनी है। भारत की धारासभा में हुई चर्चा से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि इसमें कितनी अधिक सफलता हमें हुई है।" बड़े लाट साहब के इस वक्तव्य से विलायत के लोग भले ही धोखे में आ जायं। क्योंकि उन्हें तो यहां की स्थिति का ज्ञान बहुत थोडा होता है, और जो भी उलट-पलट होता है। पर भारत के लोग इसका अर्थ खूब समझते हैं। जिन्होंने हजारों की तादाद में गिरफ्तारियां देखी हैं, जेलों में कोडों की बेहद मार खाई है, पुलिस और फौज के द्वारा जो बुरी तरह सताये गये हैं और जा रहे हैं, वे इस सहन-शीलता की नीति को खूब पहचानते हैं। जिन्होंने बिहार और बंगाल की धारासभाओं को चर्चा का हाल पढा है, जिन्होंने धारा सभाओं के चुनाव के समय का दृश्य देखा है, और वर्तमान सदस्यों को किस तरह कितने वोट मिले हैं, यह हाल भी जिन्हें मालूम है, जिन्होंने मालवीय परिषद में सरकार के नवीन दमन पर असन्तोष देखा है, वे भली भांति जानते हैं कि भारत का और कुछ धारा-सभाओं का भी मत सरकार के अनुकूल है या प्रतिकूल। भारत के लोग लार्ड रीडिंग की सरकार से परिचित हो गये हैं। उन्होंने देख लिया है कि जो सरकार महात्मा गांधी जैसे अहिंसामूर्ति तपोधन को कैद कर सकती है वह कौन अधर्म नहीं कर सकती। विलायत में भी जिन्हें आंखें और बुद्धि होगी वे इस एक ही उदाहरण से भारत सरकार की नीति का पता लगा सकते हैं। भारत-सरकार की इस करतूत को देख कर हमें एक प्रसंग की याद हो आती है। रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण के साथ पंपा सरोवर को देखने के लिए गये हैं। उस प्रसन्न सरोवर के किनारे एक बगुला ध्यान लगाये बैठा है। रामचंद्र उसका ध्यान देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने कहा—

"पश्य लक्ष्मण पंपायां बकः परम धार्मिकः"

"लक्ष्मण देखो, इस पंपा सरोवर का यह बगुला कितना धार्मिक है।" बक की यह स्तुति सुनकर जलाशय से एक मछली बोली महाराज—

"सहवासी विजानाति सहवासि विचेष्टितम्"

पडोसी ही पडोसी की लीला को जानता है। जिस बगुले की आप तारीफ कर रहे हैं इसने तो मेरे सारे कुल को नष्ट कर डाला है।

मालवीय जी भी न बचे

आपने चिराग को गुल होते हुए देखा है न? बुझने के पहले उसका प्रकाश खूब बढ जाता है। इसी प्रकार किसी कार-खाने में आग लगने की या उसके बायलर बिगड जाने का भी दृश्य आपने कभी देखा है? फूटने के पहले बायलर में खूब भाफ हो जाती है। और भाफ का नियामक यंत्र टूटते ही भाफ बहुत परिमाण में आने लगती है और चक्रों की गति बढ जाती है। अनाडी आदमी को तो यही मालूम होता है कि यह यंत्र कैसा राक्षसी है! कितनी शक्ति है! क्या मनुष्य इतनी शीघ्रता से काम कर सकता है? पर उसके जानकार को तो फौरन मालूम हो जाता है कि इस कारखाने का विनाश-काल आ पहुंचा है।

इसी प्रकार भारत की शासन-व्यवस्था का कारखाना भी बिगड गया है। जिधर देखिए उधर दमन का दौर-दौरा है। कलपुर्जे सब घूम रहे हैं; पर इतने उलट-पुलट कि तमाम कार-खाने में आग बढती ही जा रही है। जानकार और सावधान काम करने वाले बुद्धिमता से धन के लोभ को छोडकर कारखाने से बाहर भाग रहे हैं।

जो सरकार विवेक-भ्रष्ट हो जाती है उसका अधःपतन निश्चित है। भारतीय सरकार की अवनति के प्रमाण पद पद पर मिलते हैं। उस दिन लाहौर के मजिस्ट्रेट ने महासभा की खानगी सभा को सार्वजनिक सभा करार दे कर सभा बन्द कर दी। उसमें भारत-भूषण मालवीय जी वर्तमान परिस्थिति पर कुछ कहने वाले थे। शान्ति-प्रिय मालवीयजी पर भी अशान्ति फैलाने की शंका होने लगी। मध्यस्थता करने वाले मालवीय जी की भी जबान बन्द करने का यह अप्रत्यक्ष प्रयत्न नहीं तो क्या है? यह बात तो लाला जी की पहली गिरफ्तारी के समय से स्पष्ट हो चुकी थी कि ऐसी सभा सार्वजनिक सभा नहीं मानी जा सकती। व्यक्ति की अपेक्षा यह पद्धति का ही अधिक दोष है। इस शासन-यन्त्र में लगे हुए व्यक्तियों की दशा तो कोल्हू के बैल की तरह हो रही है। कोल्हू का बैल समझता है, मैं तो सीधा ही जा रहा हूं। पर कोई भी देख सकता है कि वह गोलाकार घूम रहा है। अतएव श्रेष्ठ मार्ग तो उससे अलग रहना ही है। पर बैल को अपनी अवस्था का सच्चा ज्ञान और उससे मुक्त होने की बुद्धि तभी हो सकती है, जब परमात्मा की कृपा उस पर हो। भगवान् सब पर दया करें।

एकता का स्वरूप

एक ओर श्री मालवीय जी बॅरिस्टर जयकर आदि मध्यस्थ नेता देश के सब दलों को अपने भेद-भाव अलग रखकर एक होने के लिए अनुरोध कर रहे हैं। पर दूसरी ओर से यह आवाज उठती है "एकता कैसे हो? आज जो लोग महासभा के बाहर हैं उनके लिए असहयोगियों के सिर्फ आदर बतलाने ही से महासभा के सदस्य थोडे ही हो सकते हैं? अगर किसी का यह ख्याल हो तो उसका अर्थ तो यही होता है कि वे महासभा के कार्य-क्रम में वैयक्तिक कारणों के लिए भाग नहीं ले रहे हैं। पर यह तो सरासर भूल है। महासभा के सदस्यों में तथा नरम दल वाले लोगों में वैयक्तिक बातों के लिए भेद नहीं है। भेद तो दोनों के सिद्धान्तों और आदर्शों में ही है। आदर्शों और सिद्धान्तों में एकता होते ही उदारमतवादी नरम दल वाले महासभा के सदस्यों से भिन्न नहीं रह सकते"

एकता के लिए सिद्धान्तों के त्याग की आवश्यकता नहीं होती। ध्येय की एकता दो पक्षों या दो जातियों की एकता के लिए बहुत काफी है। दिन पर दिन बढने वाली हिन्दू-मुसलमान-एकता का [illegible] लीजिए।

चार साल पहले जो दशा मुसलमान-भाइयों की थी आज वही नरम-भाइयों की है। हिन्दुओं के साथ मुसलमानों के ध्येय की अर्थात् खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य की, एकता होते ही दोनों में आदर्श मैत्री हो गई। क्या सहयोगियों और असहयोगियों में ऐसी मैत्री नहीं हो सकती? क्या दोनों के ध्येय एक नहीं है? क्या सहयोगी पंजाब और खिलाफत का निपटारा नहीं चाहते? क्या उन्हें स्वराज्य दरकार नहीं? स्वराज्य के स्वरूप का प्रश्न भी अनावश्यक है। सहयोगी भी औपनिवेशिक स्वराज्य चाहते हैं और महात्मा गांधी भी यह स्पष्ट कर चुके हैं कि यदि खिलाफत का फैसला मुसल्मानों की इच्छा के अनुसार हो जाय तो फिलहाल औपनिवेशिक स्वराज्य से काम चल जायगा।

अब रही सिद्धान्त की बात। सो दोनों अपने अपने सिद्धान्त के अनुसार काम करते रहें। एक को दूसरे के मार्ग से भय न उत्पन्न होना चाहिए। जब एक को अपने सिद्धान्त की भूल मालूम हो जायगी तो वह खुद ही दूसरे में मिल जायगा। आज सहयोगी डरते हैं कि असहयोग से अराजकता और अव्यवस्था फैल जायगी तथा खून-खच्चर मच जायगा। असहयोगियों को चाहिए कि अपने प्रेमपूर्ण और शान्तिमय व्यवहार द्वारा उनके भय को दूर कर दें। इसी प्रकार असहयोगियों की छावनी से कभी कभी यह आवाज उठा करती है कि सहयोगी तो सरकार के हाथ के खिलौने बन गये। हजारों भाइयों की और महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के अंश-भागी वे भी हैं। सो सहयोगियों को चाहिए कि वे निर्भयता और आत्म-तेज को प्रकट करके इस आरोप से मुक्त होने का प्रयत्न करें।

दोनों के लिए बारडोली का कार्यक्रम अच्छा साधन है। उसकी चार मदों का—अहिंसा, एकता, छुआछूत को दूर करना और स्वदेशी—तो सहयोगी-दलने भी स्वागत किया था और—आज असहयोगियों का तो यही विजय-सूत्र हो रहा है। महात्मा गांधी तो कह गये हैं कि यदि खादी का ही घर घर में प्रचार हो जाय तो बिना ही सविनय कानून—भंग किये स्वराज्य तैयार है। अतएव सहयोगियों को सविनय कानून भंग के नामसे भी चौंकने की आवश्यकता नहीं। यदि वे सचमुच उस दिन को न देखना चाहते हों तो उनका अत्यन्त पवित्र कर्तव्य है कि वे खादी के प्रचार में जुट जायं। खादी के आर्थिक महत्व के तो वे भी कायल हैं।

अतएव उनका यह आग्रह करना कि असहयोगी और सहयोगी में तो एकता तभी हो सकती है जब असहयोगी वर्तमान शासन-यन्त्र का उपयोग करने लगें, भ्रमपूर्ण है। यदि दोनों का हृदय परस्पर शुद्ध हो, दोनों एक-दूसरे को भिन्न भिन्न मार्गों के जानेवाले भाई मानें और तदनुसार व्यवहार करें, जिन बातों में दोनो मिलकर काम कर सकते हैं उनमें मिलकर करें तो यह एकता हस्तामलकवत् है।

भीलों के कष्ट

राजपूताने के सिरोही, उदयपुर, दांता, पालनपुर आदि देशी राज्यों के निवासी भीलों की जागृति का हाल पाठक श्री मोतीलाल तेजावत के पत्र के द्वारा जान ही चुके हैं। कुछ समय से इस प्रश्न ने बहुत गम्भीर रूप धारण कर लिया है और समाचार आये हैं कि भोमट (उदयपुर-राज्य) में भीलों पर गोलियां चलाई गईं। हताहत की संख्या के विषय में सरकार और प्रजा के सूचना-पत्रों में बड़ा मतभेद है। वर्तमान समय में यह कोई अनोखी बात नहीं है।

भील लोग धर्म-निष्ठ, सरल-प्रकृति, सीधे-सादे और शूरवीर होते हैं। अशिक्षित होने के कारण अपने इन सद्गुणों का दुरुपयोग कर बैठना उनके लिए बहुत स्वाभाविक और असम्भव नहीं। देशी राज्यों में अक्सर प्रजा को राजा की ओर से अधिक लगान बढ़ाये जाने की शिकायत रहती है। भीलों के बिगड़ उठने का भी मूल कारण यही लगान-वृद्धि है। हमारे पास अबतक जो समाचार अधिकारी रूप से आये हैं उनसे मालूम होता है कि भीलों के दुःखों और शिकायतों के मूल कारणों का उन्मूलन करने के बजाय हाकिम लोगों ने अनावश्यक भय और बल-प्रयोग किया है। देशी-राज्यों की अपेक्षा अंगरेजी हाकिमों की ही ज्यादती इसमें अधिक नजर आती है। अब भी आबू के पास भीलों के अंगरेजी सेना के द्वारा घेरे जाने और बीच बीच में दोनों ओर से कुछ हिंसा-काण्ड होने के समाचार आ रहे हैं। मोतीलाल तेजावत का कहीं पता नहीं है और उसके अस्तित्व के विषय में भी सरकार के और प्रजा के सूचना-पत्रों में जुदी जुदी बातें हैं। वर्तमान कुशासन-प्रथा में कृत्रिमता की महिमा इतनी बढ़ गई है कि सत्य की खोज करना अत्यन्त कठिन हो गया है। अंगरेजी नौकरशाही की प्रतिष्ठा अब भारतीय लोगों की दृष्टि में बहुत गिर गई है। तथापि श्री० मणिलाल जी कोठारी ने यह आशा प्रकट की है कि राजपूताना एजेन्सी के रेजिडेंट और सिरोही के दीवान पं. रमाकान्त मालवीय बुद्धिमत्ता और सहानुभूति के साथ इस प्रश्न का निपटारा करें। हम भी राज-कर्मचारियों को यही सूचना देते हैं कि भय और बल का प्रयोग करके अथवा भीलों के पौरुष और तेज को दबाकर मामला निपटाने से किसी का भला नहीं है। प्रजा का सुख-स्वातन्त्र्य राज्य के 'सु' होने की कसौटी है। हमें आशा है कि राज्याधिकारी प्रजा-पक्ष के श्रीयुत कोठारी और वी. एस. पथिक की सहायता का उपयोग कर के शान्तिपूर्वक निरीह भीलों के साथ न्याय करेंगे और उनकी जागृति को राज्य की शक्ति समझेंगे।

प्रेम कैसे हो?

असहयोगी लोग एक ओर तो कहते हैं-" प्रेम करो, अंग्रेजों को अपना भाई समझ कर उनसे प्रेम करो, द्वेष को अपने हृदय से निकाल दो," और दूसरी ओर अंग्रेजी संस्थाओंसे धड़ाधड़ असहयोग करते जा रहे हैं, पुलिस, सेना आदि में काम करने वाले भारतीयों को इस्तीफा देने का उपदेश कर रहे हैं, सरकारी पाठशालायें, न्यायालय आदि का बहिष्कार करा रहे हैं। यह देखकर अंग्रेज तथा कितने ही नरम-भाइयों को बड़ा आश्चर्य होता है। वे कहते हैं ये तो असहयोगियों की दुरंगी चालें हैं। ये तो ढोंगी हैं, मक्कार हैं। प्रेम का पाठ तो कोरा जबानी है, असल में तो वे द्वेष फैलाना चाहते हैं।

इधर कई असहयोगी भी यह सुनकर बड़े असमंजस में पड़ जाते हैं। उनके दिल में यही सवाल खड़ा होता है कि जिस जाति ने भारत के व्यापार को, कलाकौशल को, संस्कृति को, स्वतंत्रता को नष्ट-प्राय कर दिया, जिसने दुर्बल को दबाकर लूटने की अपनी नीति ही बना रक्खी है, जिसका राजनैतिक महामंत्र "Divide and rule" है, जो इतनी बुराइयों की बुनियाद है, उसके साथ अगर आप प्रेम करने की बात कहें तो यह कैसे हो सकता है?

शत्रु अथवा प्रतिपक्षी के साथ भी प्रेम-भाव रखने की बात हिंदुस्थानियों के लिए तो बिलकुल नई नहीं है। हां, इस देश को सालों से उनकी आत्मा पर जो अनार्य संस्कार डाले जा [illegible]

वे इस सत्य को भूल बकर गये हैं। पर उनके लिए दुःखित हो कर बैठ रहने की जरूरत नहीं है। थोड़े और प्रयत्न की देर है कि यह सत्य उनके हृदय में ऐसा अंकित हो जायगा कि फिर वहां से कई सदियों तक वह न निकल सकेगा।

अंगरेजों की समझ में यह बात इसलिए नहीं आती कि उनकी और हमारी संस्कृति और परिस्थिति ही भिन्न है। नरम दल वाले भाइयों की समझ में भी यह बात इसीलिए नहीं आती कि अंगरेजीपन के साथ उनकी करीब करीब एकतारी हो गई है। अंगरेजी-पश्चिमी संस्कृति में वे बिलकुल रंग गये हैं। पश्चिमी समाज-रचना सदोष है। अहिंसात्मक असहयोग द्वारा भारतीय स्वराज्य का एक यह भी अवश्यंभावी परिणाम होगा कि उससे पश्चिमी समाज-व्यवस्था तथा संस्कृति में गहरा परिवर्तन हो जायगा।

पश्चिमी समाज-व्यवस्था तथा पूर्वी-भारतीय समाज-व्यवस्था के मूल-भूत सिद्धान्तों में ही भेद है। वे जड़वादी हैं, हम अध्यात्मवादी हैं। उनके समाज का ध्येय है शारीरिक सुख; हमारे समाज का ध्येय है आध्यात्मिक सुख-परमात्म रूप हो जाना-'अहं ब्रह्मास्मि' के पद पर पहुंच जाना। उनके ध्येय का मार्ग भौतिक उन्नति है; हमारा मार्ग है आध्यात्मिक प्रगति। अतएव उनकी उन्नति का साधन है अर्थ, धन; हमारी उन्नति का साधन है धर्म, नीति।

हमारे इतिहास के मुकाबले में उनका इतिहास कलका बच्चा है। उनके यहां केवल एकही बड़े धर्माचार्य, महात्मा मसीह, हुए हैं। वे दया, समता और अहिंसा के उपदेशक थे। पर उनकी समकालीन समाज-अवस्था इतनी असुन्नत थी कि उनके उज्वल सिद्धान्तों को वह समाज ग्रहण न कर पाया। अज्ञान का साम्राज्य अटल रहा। समता, दया, ज्ञान और अहिंसा की किरणें उज्वल होते हुए भी उनके अन्तःकरण में प्रवेश न कर पाईं। स्वार्थ, द्वेष बढ़ते ही गये। निरन्तर ही युद्ध होते रहे। पर आजतक किसी को ठीक रास्ता नहीं मिला। मसीह की आत्मा चिल्ला चिल्लाकर कह रही है कि "ऐ भले-मानसो जरा आंखें तो खोल कर देखो! क्यों अपने विनाश की ओर दौड़े जा रहे हो?" पर किसी ने एक न सुनी। अब इस योरोपीय महायुद्ध ने कई लोगों की आंखें खोल दी हैं। वे चकित होकर देखने लगे हैं कि हैं? हम यहां कहां पहुंच गये?

योरोप के समाज-सुधारकों को अब दिखाई देने लगा है कि साम्राज्य-वाद सचमुच एक बला है। देश की संपत्ति कुछ इने-गिने लोगों के हाथ में दे देना समाज के लिए बड़ा हानिकर है। सोशियालिज़म्, और बोलशेविज़म्, पैदा हुए। इनका गुरु था मार्क्स। पर दुःख की बात यह है कि इन नये वादों का भी मूल सिद्धान्त है धन-विभाग ही, जो सारे अनर्थों की जड़ है। क्यों कि अर्थ ध्येय होने से अब भी लोभ और भोग की वृद्धि ही हो रही है। इससे कहीं द्वेष और कलह का साम्राज्य थोड़े ही जल्दी नष्ट हुआ चाहता है? कूट-नीति की जड़ थोड़े ही उखड़ सकती है? वहां तो राज्य-संस्था भी धन के अधीन है और उसकी इन महत्वाकांक्षाओं के खिलाफ कहीं धर्मोपदेशक आवाज न उठावें इस हेतु से उन्होंने धर्म की भी आंखों पर पट्टी बांध रक्खी है और मुंह पर ताला लगा दिया है। शांति और सुख के देने वाले धर्म को तो उन्होंने कैद ही कर रक्खा है। नीति को प्रायः देशनिकाला देकर कूट-नीति से नाता जोड़ा है। प्रेम को स्वार्थ-साधन बना रक्खा है। जिस समाज की यह हालत है वहां के लोग पूर्वी महात्मा के इस उपदेश में कि अपने शत्रु पर भी प्रेम करो छल, कपट देखें तो क्या आश्चर्य! उनका यह अविश्वास असम्भव कोटि की बात नहीं है। स्वार्थ के कीच में फंसे हुए संसार के लिए यह कोई असाधारण बात नहीं है। जो जैसा चश्मा लगाता है वैसा ही उसे संसार दिखाई देता है।

इसके विपरीत हमारी संस्कृति धर्म-मूलक है। उसके आगे सत्ता अर्थात् राज्य और अर्थ,-धन की सत्ता नहीं चलती। धनी और सत्ताधीश उसके अधीन हैं। यहांपर राज्यसत्ता और धर्म धन के अधीन नहीं है। वहां तो राज्य और धन का उपभोग धर्म और नीति की रक्षा के लिए किया जाता है। हम तो लोभ का और सत्ता-मद का जन्म होना भी बरदाश्त नहीं कर सकते। अतएव हमारे यहां भोग को कम और दान को अधिक महत्व दिया गया है। इसका परिणाम कलह-नाश और चिरस्थायी शांति होता है।

यद्यपि पश्चिमी संस्कृति आसुरी सम्पत्ति है तथापि मनुष्य अपने विवेक और ज्ञान के बलपर उससे भी बच सकता है। लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, देशबंधु दास आदि महानुभावों ने भी पश्चिमी शिक्षा ही पाई थी। तथापि वे अपनी असाधारण योग्यता के कारण उसके बुरे असर से संभल गये। इतना ही नहीं वरन् खास अंगरेजों में भी ऐसे कई महानुभाव हैं जिनपर यह मायावी संस्कृति असर न कर पाई। महामना पाल रिशार, एंड्रूज, पीयर्सन स्टोक्स आदि कितने ही सज्जन उन्हीं में से हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि मनुष्यता उस मोहक संस्कृति से नष्ट नहीं हो जाती। मनुष्य को निराश न होना चाहिए। वह सुप्त या ग्रस्त अवश्य हो जाती है पर प्रयत्न करने पर उससे हम उसे अवश्य बचा सकते हैं।

और इस अहिंसात्मक असहयोग का उद्देश यही है कि इसके द्वारा हमारी तथा हमारे प्रतिपक्षियों की सुप्त अथवा कुसंस्कार-ग्रस्त मनुष्यता जाग्रत हो जाय। अनार्य, अधर्म तथा अनीतियुक्त संस्कार नष्ट हो जायं। ऐसी उच्च और स्वाभाविक बुद्धि उनमें जाग्रत हो जाय जिससे मनुष्य मनुष्य को अपना भाई समझने लगे। हमारे हृदय में अपने प्रतिपक्षी के लिए भी प्रेम है वह हम उसके कुपथ पर चल कर नहीं बता सकते। क्योंकि ऐसा करने से हम दोनों कुमार्ग-गामी होंगे। इसीलिए हम अपने सन्मार्ग पर खड़े रह कर उन्हें भी सन्मार्ग पर लाने का यत्न कर रहे हैं। अतएव हमारे व्यवहार में असंगति नहीं कही जा सकती। ऊपर ही ऊपर देखने वालों को वह भले ही विचित्र दिखाई देता हो पर हमारे असहयोग का अहिंसात्मक होना ही यह स्पष्ट रूप से बता रहा है कि हमारे हृदय में प्रतिपक्षियों के लिए प्रेम है। अब यह बात रही कि प्रेम कैसे हो? सो यह दलीलों का सवाल नहीं है। यह तो हृदय की निर्मलता का प्रश्न है। हृदय की निर्मलता आचार से ही जानी जाती है। आज भारत का हृदय कुछ अंश में भी निर्मल, प्रेममय नहीं होता तो क्या भारत में भी योरप की तरह इस समय हमारी हृदय-निर्मलता पर शंका करने वालों को रणचंडी का प्रचंड नृत्य न दिखाई देता! क्या ऐसे सामूहिक त्याग, बलिदान सहनशीलता, और प्रतिपक्षी के साथ धीर-उदात्त व्यवहार के उदाहरण वे संसार के इतिहास में अन्यत्र दिखा सकते हैं?

अतएव जो प्रेम का महत्व जानते हैं और उसकी कदर कर सकते हैं उनके लिए प्रेम का पाठ सीखने का मार्ग है—'आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत्'। अर्थात् जो व्यवहार हम दूसरे से न चाहें वैसा व्यवहार हम खुद किसी के साथ न करें। हर कोई आ कर देख सकता है कि भारत इसी रास्ते जा रहा है और यदि इंग्लैंड भी इस मार्ग पर चलने लगे तो पूर्व और पश्चिम के बीच की खाई मिट जाय और दोनों प्रेम के सूत्र में सदा के लिए बँध जायें।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, वैशाख वदि, १२ सं. १९७९

शौर्य क्या है?

शौर्य एक आत्मिक गुण है—आत्मा का धर्म है। या यों कहें कि आत्मिक तेज और सामर्थ्य के प्रकाशन का नामही शौर्य है। यह दो तरह से प्रकट किया जाता है—आत्मा के द्वारा और शरीर के द्वारा। जब वह आत्मा के द्वारा प्रकट होता है तब वह अहिंसा कहलाता है और जब शरीर के द्वारा प्रकट होता है तब वीरता। वीरता का प्रयोग जब किसी को दुःख या हानि पहुंचाने के लिये किया जाता है तब वह वीरता नहीं रहती। तब उसका नाम हिंसा हो जाता है। जब शारीरिक मोह अथवा स्वार्थ के लिए हिंसा की जाती है तब उसका नाम होता है दुष्टता अथवा कायरता।

मोह और स्वार्थ अज्ञान के पुत्र हैं। अतएव अज्ञानी मनुष्य ही दुष्ट और कायर होते हैं। कायरता से तो हिंसा भली। क्योंकि हिंसा क्या है? विकृत वीरता। वह तो कायरता से हजार गुनी अच्छी। उसमें देह का मोह और स्वार्थ इतना नहीं होता। वह एक प्रकार के, फिर वह चाहे कनिष्ठ ही क्यों न हो, साहस और युद्ध-कौशल का प्रदर्शन होती है। पर वह भी श्रेष्ठ कभी नहीं कही जा सकती। उसमें भलाई इतनी ही है कि वह सिर्फ कायरता से कुछ उच्च बुराई है। बुराई इसलिए कि उससे दूसरे को दुःख अथवा पीड़ा पहुंचती है और "आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत्" के विपरीत है।

हिंसा के केवल दो हेतु हो सकते हैं—आत्मरक्षा अथवा दूसरे की रक्षा। आत्मरक्षा मनुष्य क्यों करता है? या तो मृत्यु के भय से अथवा अपने जीवन को उपयोगी समझ कर। सो मृत्यु-भय तो कायरता है। वह अज्ञान-जन्य है। अतएव उससे मनुष्य का पतन ही होता है। वह तो हर हालत में त्याज्य ही है; जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। पर जब अपने जीवन को उपयोगी अतएव आवश्यक समझकर कोई हिंसा करता है तब उसमें कुछ अर्थ होता है।

कल्पना कीजिए कि एक मनुष्य आप पर आक्रमण करने आ रहा है। आप कायर नहीं हैं—शरीर अथवा प्राण का मोह आपको नहीं है। लेकिन आप अपने जीवन की उपयोगिता उसके जीवन की अपेक्षा अधिक मानते हैं। तो आप उस पर प्रहार करके, आवश्यक हो तो उसका प्राण-घात करके, अपनी रक्षा कर लेते हैं। क्या यह हिंसा अनुचित है? सो, आइए, इस पर विचार करें। एक तो मनुष्य स्वभावतः किसी पर अकारण ही आक्रमण नहीं करता। जो करते हैं वे या तो चोर-डाकू के दल के हो सकते हैं, या अत्याचार और व्यभिचारी की श्रेणी के। दोनों दशाओं में मूल कारण अज्ञान ही होता है। इस अज्ञान अथवा पाप का दोष-भागी कौन है? हम ही, अर्थात् हमारा समाज ही। हमने उनको ज्ञान-दान करने का प्रयत्न नहीं किया; पर हम अपने इस अपराध का दण्ड उन्हें देते हैं। क्या यह न्याय है? दूसरे, उसको मृत्यु से एक दुराचारी या अत्याचारी का नाश भले ही संसार से हो जाय। पर उससे उत्पन्न होनेवाली प्रतिहिंसा की भावना दूसरे अनेक अत्याचारी पैदा कर देगी। क्या इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि हमने अपने एक उपयोगी जीवन की रक्षा करके कितने ही दुराचारियों की संख्यावृद्धि की? इसके विपरीत हम यदि अहिंसात्मक साधनों से अपनी रक्षा करते हुए असफल हो जायं—उसके हाथों मर जायं—तो क्या हमारी इस कुरबानी से संसार को अधिक प्रकाश न मिलेगा? यदि तत्काल उस अत्याचारी के चित्त पर इसका प्रभाव न पड़ा तो क्या कुछ समय के बाद,—उसका सिर ठंडा होने पर—उसका पशुभाव मन्द होने पर भी, न पड़ेगा? क्या इसके प्रभाव से समाज में अत्याचार की वृत्ति का वेग कम न होगा? थोड़े ही विचार से बुद्धिमान् मनुष्य जान जायगा कि इस बलिदान से संसार की कितनी सेवा हुई और ऐसी अवस्था में हिंसा करने से समाज की कोई भलाई नहीं। फिर ऐसे मामले में प्रहार का नम्बर तीसरा है—पहला क्षमा या सहनशीलता, दूसरा उद्बोधन। जब ये दो निष्फल हों तब तीसरा आघात। पर आघात से भी श्रेष्ठ मार्ग है आत्म-बलिदान। यही अहिंसा है। यही सच्चा शौर्य है।

अहिंसा में कायरता के लिए स्थान है ही नहीं। अहिंसा का तो पहला पाठ है निर्भयता। सहिष्णुता, क्षमा, धैर्य, ये अहिंसा के ही अंग हैं। निर्भयता और कायरता का निवास एक ही स्थान में असम्भव है। शस्त्रसंचालन-कौशल को अथवा हिंसा को शौर्य समझना भूल है। उसी प्रकार केवल अत्याचार सहन करने का नाम भी अहिंसा नहीं हो सकता। दोनों की कसौटियां भिन्न भिन्न हैं। पहले की कसौटी है अहिंसा और दूसरे की कसौटी है निष्क्रिय **प्रतिरोध**। अहिंसा-शून्य शस्त्र-संचालन कायरता है। उसी प्रकार निष्क्रिय-प्रतिरोध-शून्य अत्याचार-सहन भी कायरता ही है। क्योंकि जैसे सच्चे शौर्य की परीक्षा उसके अहिंसायुक्त प्रयोग से होती है उसी प्रकार सच्चे अहिंसाव्रती की परीक्षा निष्क्रिय प्रतिरोध के द्वारा अत्याचारी के तमाम अत्याचारों का आव्हान करके उनको बहादुरी के साथ हंसते हंसते सहने में है। हां यह याद रखना चाहिए कि अहिंसा-व्रती का कष्ट-सहन स-शस्त्र प्रतिरोध से कई गुना अधिक असर डालने वाला होता है। अपनी मूक सहन-शक्ति के द्वारा अत्याचारी की हृतंत्री के उन तारों को हम छेड़ देते हैं जहां तक शस्त्रबल—पशुबल के पहुंचने की भी ताकत नहीं हो सकती।

अतएव जब दो प्रतिस्पर्द्धियों के जीवन-मरण का सवाल खड़ा होता है, तब हमें अपनी आत्मा से यह पूछना चाहिए कि एक अत्याचारी का संसार से उठ जाना उसके लिए अधिक हितकर होगा या एक विशुद्ध आत्मा का पवित्र बलिदान। अधिक जागृति कौन फैला सकता है? हमारे मत में तो एक विशुद्ध आत्मा का अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिए, संसार के कल्याण के लिए, मर जाना संसार में एक अत्याचारी के नाश से हजार गुनी अधिक जागृति फैला सकता है। उससे संसार अधिक सत्प्रवृत्त हो सकता है। स्वयं अत्याचारी की भी वह आंखें खोल सकता है। और इससे वह भी उस सिद्धान्त का अनुयायी होकर संसार का पहले से भी अधिक भला कर सकता है। ज्ञानी का अज्ञानी पर हाथ उठाना कायरता नहीं तो क्या है? अपने देह और प्राण के मोह में आकर दूसरे पर हाथ उठाने के बजाय एक पवित्र आत्मा का अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए मरजाना ही अधिक लाभ दायक है। वही संसार के लिए अधिक शिक्षाप्रद होगा। यही दूसरे की रक्षा के लिए हिंसा करने की बात। सो पर-रक्षा के लिए हमें दूसरे के प्राण लेने का क्या अधिकार? हमारा शरीर हमारी चीज है। उसका बलिदान हम कर सकते हैं।

हम कहते हैं कि हमें गो-माता बहुत प्यारी है। पर क्या हमने उसके लिए अपना सच्चा प्रेम, सच्ची भक्ति दिखाई है? गो-हत्या करने वाले के सामने खड़े होकर यह हमने कभी वीर दिलीप की तरह कहा है कि "ऐ ज़ालिम, इस असहाय गरीब गो-माता को मारने के पहले मेरी गर्दन को इस शरीर से अलग कर दे"। क्या स्त्रियों का सतीत्व भंग होते समय किसी अत्याचारी को ललकार कर हमने कहा है कि "रे पापी, मेरे देखते तू इस बहन पर अत्याचार नहीं कर सकता। पहले मेरी गर्दन उतार तब आगे बढ़!" हम तो हिंसा का बदला हिंसा से लेते हैं। आग में घी डाल कर उसे और अधिक प्रज्वलित ही करते हैं। हम यह नहीं जानते कि "अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेव विनश्यति।" जिन महान् अत्याचारों के लिए आजतक संसार में लाखों-करोड़ों नर-हत्यायें हुई हैं उनके लिए अगर १०-१० भी ऐसे विशुद्ध बलिदान हो जाते तो आज संसार की स्थिति-गति कुछ भिन्न ही होती। हज़रत मसीह जीवित रहकर शायद ही संसार की इतनी सेवा कर सकते जितनी उनके पवित्र बलिदान के द्वारा उनकी आत्मा आज कर रही है।

अतएव सच्चा शौर्य अहिंसा ही है और अहिंसा से ही भारत का अतएव संसार का अधिक भला हो सकता है। यदि संसार में साम्प्रदायिक तथा राजनैतिक अहिंसा-व्रत का दूसरा कोई उदाहरण नहीं मिलता तो क्या हुआ? क्या हम उसके इतिहास में एक नया पाठ आरंभ नहीं कर सकते? आप कहते हैं, आजतक संसार हिंसा-शस्त्र-बल के ही रास्ते गया है। ठीक है, पर उससे उसका कितना लाभ हुआ है? यही न कि सदा एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से चौंकता ही रहता है? स्थायी शान्ति का नाम नहीं! जहां शान्ति नहीं वहां सुख कहां से हो सकता है? युगों से युद्धों की थपेड़ें खाते खाते नर-समाज थक गया है, अब ज़रा उसे अहिंसा का भी प्रयोग करके देख लेने दीजिए। प्रयोग को आरम्भ हुए अभी १८,१९ महीने तो हो पाये हैं। पर इतने ही में उसकी विजय-चर्चा संसार में चारों ओर होने लग गई है। सारा संसार आदर और आश्चर्य की दृष्टि से भारत की ओर आंखें लगाये उसके विजय की राह देख रहा है और उसे वह इस नये और शान्तिदायी प्रयोग के लिए बधाई दे रहा है।

पर कई लोगों को इसकी विजय के विषय में भय है। वे इस सिद्धान्त की सत्यता के विषय में तो शंका नहीं करते। पर उसके व्यवहार्य होने के विषय में उन्हें बहुत शंकायें हैं। पर वे जब सिद्धान्त की विजय को मानते हैं पर उसके व्यवहार्य होने की शंका करते हैं तो हम उन्हें यह सवाल करते हैं कि सिद्धान्तों का भी जन्म आखिर कैसे हुआ? वे मनुष्यों के हित के लिए कहीं आकाश से तो टपक ही नहीं पड़े। वे भी तो व्यवहार से ही-अनेक उदाहरणों के प्रयोग से ही निश्चित किये गये हैं। अगर वे व्यवहार-जात ही हैं तो वे अब व्यवहार्य क्यों नहीं हो सकते? कुटुम्ब का ही उदाहरण लीजिए। कुटुंब की सुख-शान्ति हिंसा पर अवलम्बित है या अहिंसा पर? समाज कुटुम्बों के समूह के सिवा और क्या है? अतएव उसकी सफलता निश्चित है। विजय अनिवार्य है। न्यूनता है हमारे तदनुसार व्यवहार की। अगर हममें काफी शान्ति है तो हमें विजय के विषय में सन्देह होना ही न चाहिए। इसके विपरीत हमने ज़रा भी अधीरता की तो हमारा बना बनाया तमाम काम बिगड़ जायगा। इसी लिए इस समय-जब कि हम अपनी विजय के नज़दीक पहुंच चुके हैं हमें शान्ति की और भी आवश्यकता है।

हमारी विजय का दूसरा प्रमाण यह है कि जिस शौर्य का अवलंबन हमनें किया है वह हमारे प्रतिपक्षी में नहीं है। सामान्य युद्धशास्त्र का यह नियम भी है कि प्रायः वीर लोग उसी शस्त्र का प्रयोग करते हैं जिसका सामना प्रतिपक्षी नहीं कर सकता। आज भारत अपने प्रतिपक्षी का मुकाबला शस्त्र-बल से नहीं कर सकता। पर हमारे पास यह अहिंसा-बल है, जो सच्चा शौर्य है। प्रतिपक्षी इससे शून्य है। अतएव इस अमोघ अस्त्र का प्रयोग करते ही प्रतिपक्षी को हमारे पैरों पर झुकना ही पड़ेगा। इसके अतिरिक्त इस अस्त्र के सफल प्रयोग से संसार में एक ऐसी शांतिमयी क्रांति फैल जायगी जिससे न केवल भारत का वरन् सारे संसार का कल्याण होगा।

गजेन्द्र-मोक्ष

(लेखक-अध्यापक दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर)

"ईश्वर हमारा परम पिता है"-यह तो हर कोई मानता है। लेकिन हम सब भाई भाई हैं, इस बातका विश्वास हरएक को नहीं होता है। सत्याग्रही 'वसुधैव कुटुंबकम्' के नियम का पालन करने वाला होता है। इसलिए उसका कोई शत्रु नहीं होता। इस का अर्थ यह नहीं है कि कोई उसके साथ शत्रुता नहीं करता। उसके शत्रु बहुत हो सकते हैं। धर्म के अनुसार चलने वाला हर आदमी अधर्म से चलने वाले आदमी के रास्ते में विघ्न-रूप मालूम होता है। लेकिन सत्याग्रही अपने मन में किसीके विषय में प्रेम के सिवा और कोई भाव नहीं रखता। जब वह अपने भाई को कुवासना के वश देखता है तब वह सत्याग्रही ज़रूर उसका प्रेम से विरोध करता है। प्रेम समय पर कठोर हो सकता है। प्रेम में दुर्बलता की या मोह की मृदुता नहीं होती। लेकिन विरोध में भी वह अपने भाई का हित ही चाहता है। और उसका विरोध तो स्वयं कष्ट सहन करके ही प्रकट किया जाता है। प्रेम-मूलक विरोध हमेशा सफल ही होता है। हां, कुछ देर भले ही लगे; परंतु विजय तो उसीकी है। और वास्तव में देखें तो प्रतिपक्ष की भी विजय है। वह बेचारा जो कुवासना से अभिभूत था सो छूट गया। अपनी आत्मा को फिर पा सका। यह भी एक असाधारण जीत ही है। सत्याग्रह का युद्ध धर्म-युद्ध होता है। इसलिए उसका परिणाम सर्व-कुशल ही होता है। जब दो आदमी परस्पर विरुद्ध स्वार्थ वश हो कर लड़ते हैं तब एक की जीत और दूसरे की हार होती है और ईश्वर तटस्थ हो कर देखता है तथा कर्म का कानून निर्णय करता है। लेकिन जब एक पक्ष स्वार्थ को छोड़ कर धर्म पर स्थित होता है तब परमात्मा स्वयं उसका पक्षपाती होता है। क्योंकि परमात्मा हमेशा सत्य का पक्षपाती है। कठिन बात है स्वार्थ छोड़ कर धर्मानुसरण करने की। धर्मनिष्ठ आदमी की जांच भी ईश्वर कुछ कम नहीं करता। धर्मनिष्ठ का और उसका विरोध करने वाले दोनों का हित करना ईश्वर की नीति होने के कारण धर्म-संग्राम की उम्र बहुत बड़ी होती है। धर्मनिष्ठ पक्ष के निष्पाप होने पर ही उसे सफलता प्राप्त होती है। और सफलता का मुख्य भाग तो इसीमें है कि विरोधियों का विरोध मिट कर वे दोनों फिर पहले जैसे एक-प्राण भाई-भाई हो जायं। यही सिद्धान्त पुराणों में "गजेन्द्र-मोक्ष" की कथा में बताया गया है।

इन्द्र के दरबार में हाहा और हूहू दो गायक भाई थे। जब तक उनके हृदय में मत्सर ने प्रवेश नहीं किया था तबतक वे बड़े प्रेम से रहते थे। लेकिन उनके दुर्दैव से उनके दिल में स्पर्धा बढ़ गई। प्रत्येक के मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि मैं श्रेष्ठ हूं। मुझे श्रेष्ठ स्थान मिलना चाहिए। उनके स्वामी इन्द्र ने भी उनको यही कहा कि "ईश्वर के घर में सब समान हैं। मैं तो तुम दोनों में कुछ भेद नहीं देख सकता हूं।" तो

भी उनको सन्तोष न हुआ। अन्त को इन्द्र ने उन्हें देवल ऋषि के पास भेज दिया। देवल महाज्ञानी थे। सब कुछ जानते थे। लेकिन सम्पूर्ण ज्ञानी अक्सर मौनी ही होते हैं। उनका मौन देख कर ईर्ष्या और मत्सर से भरे हुए दोनों गायक कहने लगे यह गँवार है। कुछ नहीं जानता। मुनि ने अपना मौन छोड कर के दयाभाव से कहा— कैसे पागल हो? स्पर्द्धा और असूया से तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। तुम्हारे भाग्य में क्या बदा है, यह तुम नहीं जानते हो। अगर यह जानते तो इतना मद नहीं रखते। परमात्मा ने हरएक से उसका भविष्य छुपा रक्खा है। लेकिन कर्म का सिद्धान्त बताने के लिए कुछ क्रूर हो कर के तुम्हारा भविष्य जहांतक मैं देख सकता हूं, तुम्हें सुना देना चाहता हूं। भाई होते हुए भी तुम आपस में मत्सर रखते हो। इसका नतीजा यही होने वाला है कि स्वर्ग से गिर कर तुम दोनों त्रिकूट पर्वत के पास पशु-योनि में जन्म लोगे। एक होगा जंगल का हाथी और दूसरा होगा सरोवर में रहने वाला मगर। और वहां पर तुम अपना वैर पशु-भाव से पाओगे—भाई भाई के शत्रु बन जाओगे।

बस, दोनों का मद उतर गया। दोनों को क्षणिक पश्चात्ताप हुआ। दोनों ने ऋषि के पैर पडे और कहने लगे आप हम पर कुछ दया नहीं कर सकते? ऋषि ने कहा कर्म का कानून अटल है। इसमें कोई दया नहीं कर सकता। लेकिन कर्म का कानून स्वयं कल्याणमय भी है। वह जितना कठोर है उतना दयामय भी है। कर्म का फल दण्ड-रूप नहीं है। परन्तु बिगडे का सुधार करने की उसमें गुंजायश है। तुम दोनों में से एक के हृदय में पश्चात्ताप जाग्रत रहेगा और वह धर्म के पथ पर चलेगा। कठिन समय पर उसे ईश्वर का स्मरण होगा। दूसरा जिसके हृदय में मत्सर बढा हुआ है वह नीचे ही गिरता रहेगा। लेकिन उसका भी उद्धार होगा। अपने भाई का विरोध करते हुए उसके हृदय में भाई की श्रद्धा प्रवेश करेगी। उसमें भी आस्तिकता आ जायगी। और आस्तिकता से उसका भी उद्धार हो जायगा।

भविष्य का इतना परदा खोल कर के मुनिराज अपने मौन में डूब गये। और हाहा और हूहू कर्मवश स्वर्ग से गिर पडे। एक हो गया हाथी का राजा और दूसरा सरोवर का बडा मगर। दोनों अपने पूर्वजन्म को भूल गये। अपना भाईपन भूल गये। मगर हाथी को खाना चाहता था और हाथी मगर से डरता था। हाथी अपने पशु-जीवन के अनुसार विलास में मग्न था। अपना शत्रु कहां पर है और शत्रु का बल किसमें है, यह बात विलास के नशे में भूल गया और रूपवती हथिनियों के साथ सरोवर में प्रवेश किया। बस, ग्राह को मौका मिल गया। उसने गजराज की टांग पकड ली। गज ने छूट जाने का बहुत यत्न किया। वह रो रो कर चिल्लाने लगा। हथिनियां भी चिल्लाने लगीं लेकिन पानी में हाथी का बल नहीं चल सकता। हाथी धरती की तरफ दौडने लगा और ग्राह पानी की ओर खींचने लगा—गजो आकर्षते तीरं ग्राहश्चाकर्षते जलम्। सदियों (दिव्य वर्ष सहस्रकम्) तक दोनों का युद्ध चला। अन्त को अव्यक्त-मूर्ति ग्राह ने उस विशाल गज को पंकज-वन में कीचड में खींच लिया। ईश्वर तो आशा न रही। अब एक हृदयस्थ परमात्मा ही बचा सकता है। यह ज्ञान गज को हुआ। गजराज न तो शास्त्र पढा था और न वेद ही जानता था। लेकिन उत्तम कुल में जन्म होने से वह नारायण-परायण था। उसने उसका ध्यान किया—

> अनाश्रयाय देवाय निस्पृहाय नमोनमः
> नमो जगत्प्रतिष्ठाय गोविन्दाय नमो नमः
> विश्वेश्वराय देवाय शिवाय हरये नमः
> नारायणाय परलोक परायणाय...कालाय लोकैक नाथाय।
> हितात्मकाय आर्तिविनाशनाय नमस्करोमि।
> अच्युतं आत्मवन्तं प्रभुं प्रपद्ये।
> सनातनं लोकगुरुं नमामि।
> शरण्यं शरणार्तानां प्रपद्ये भक्तवत्सलं
> प्रपद्ये मुक्तसंगानां यतीनां परमां गतिम्।
> एकाय लोकनाथाय परतः परमात्मने।
> नमः सहस्रशिरसे अनंताय नमोनमः

ध्यान पूरा होते ही आत्म-शक्ति प्रकट हो गई। श्रद्धा हृदय में ठस गई।

> तावन्नुदति मे दुःखं चिन्ता-संसार-सागरे
> यावत्कमल पत्राक्षं न स्मरामि जनार्दनम्॥

ईश्वर कमलपत्राक्ष है। उसकी दृष्टि कमल की तरह अनासक्त रहती है। गजराज पानी में पूरा पूरा डूब चुका था। सांस लेने की सूंड का अग्रभाग पानी के ऊपर रहा था। उसीसे एक कमल को पकड कर उसने भक्ति-भाव से ईश्वर को अर्पण किया। कमल तो अनासक्ति का प्रतीक है। कीचड में उसका जन्म है। पानी में उसका निवास है। तो भी वह अत्यन्त शुद्ध, पवित्र रहता है। पानी में रहते हुए पानी से अलिप्त रहता है, और प्रकाशमान् प्रतापशाली सूर्य का ध्यान करता है। कमल की दृष्टि धारण कर के गजराज ने कमल अर्पण कर दिया। तब भगवान् को दौडना पडा। परमात्मा ने दोनों को कीचड से बाहर खींच लिया।

पृथ्वी पर आते ही ग्राह की शक्ति और उसकी दुर्बुद्धि दूर हो गई। स्वार्थ छूट जाने से उसे भी पश्चात्ताप हुआ। और अप्रमेय परमात्मा ने दोनों का उद्धार किया। भगवद्दर्शन होने के बाद किसी की दुर्गति हुई है? दोनों का हृदय पवित्र हो गया। एक ही परम-पिता के हम पुत्र हैं। भाई भाई हैं। सम-समान हैं। एक ही हैं।

> स्कन्द-धर्ममूलो वेद-स्कन्धः पुराण-शाखाढ्यः
> क्रतु-कुसुमो मोक्ष-फलो मधुसूदन-पादपो जयति॥*

महाभारतकार लिखते हैं, गजेन्द्र-मोक्ष की यह कथा सुनने से दुष्ट स्वप्न का नाश होता है। और ऐसा क्यों न हो? ईश्वर भले और बुरे दोनों का कल्याणकर्ता है। सुर और असुर दोनों उसके पुत्र हैं। दोनों अपने अपने ढंग से उसीकी चरण-पूजा करते हैं—

> सुरासुरैरर्चित पादपद्म सनातनं लोकगुरुं नमामि।

---

*धर्म जिसका दृढ मूल है, आध्यात्मिक ज्ञान जिसका धड है, प्राचीन इतिहास जिसकी शाखा है, स्वार्थ-त्याग जिसका पुष्प है, और स्वतन्त्रता जिसका फल है ऐसे परमात्म-रूपी कल्पवृक्ष की हमेशा जय ही है।

समाचार

कलकत्ता में कार्य-समिति ने यह निश्चय किया है कि अखिल भारतीय महासभा का आगामी अधिवेशन गया में होगा।

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में श्री-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" के एजंटों की हैर जगह और ज्यादा से ज्यादा है।

गंगावतरण

सगर-कुल के उद्धार के लिए सुरसरी श्री गंगाजी को मृत्यु-लोक को लाने में भगीरथ की तपस्या सफल हुई। उसी प्रकार भारत के उद्धार के लिए चरखा और खादी की पुनः स्थापना की, जो तीन साल पहले उपहास-पात्र समझी जाती थी, आज अनेकों को पावन करती हुई, अनेकों का उद्धार करती हुई, गंगा की तरह बह रही है।

जनता पश्चिमी वैभव को आदर्श की दृष्टि से देख रही थी। यंत्रों की प्रतिष्ठा उसकी ओर देखने वालों की आंखों को चका चौंध कर देती थी। मानवजाति की अवगणना उसमें होते हुए भी वह उसे दिखाई नहीं देती थी। कुबेर सृष्टि का ईश्वर माना जाने लगा था, यद्यपि उसमें ईश्वर के प्रेम और दया का अभाव था। और जीवन की एक-मात्र सहचरी कृत्रिमता हो गई।

जब महात्माजी आफ्रिका-इंग्लैंड में थे तभी आपने कई रातें इसी दीन दशा पर विचार करते हुए बिताईं। अन्त को वे इस नतीजे पर पहुंचे कि खादी-रूपी गंगा के पवित्र जल से पहले सारे देशभर को पावन करना चाहिए। इससे प्रजा के जीवन में समता और स्वाभाविकता लाना चाहिए। उसके बिना इस वैभव की सारी मोहकता व्यर्थ है। भारत में आते ही आपने इस बात के लिए कि भारत इस स्वाभाविक आदर्श को स्वीकार कर ले भगीरथ तपस्या आरंभ कर दी।

स्वदेश में आते ही आपने प्रथम यात्रा बम्बई से बढ़वाण की। अंधेरी स्टेशन से पैदल गये। वृद्ध दादाभाई के दर्शन किये और फिर देशभर में घूमना शुरू किया। इस यात्रा से देश की दरिद्रता का जो चित्र आपके कोमल करुण हृदय पर अंकित हुआ उसे बड़े बड़े अंक-शास्त्री, टाटा के उद्योग-शास्त्री तथा सरकार के विवरण-शास्त्री न मिटा सके।

भारत की आर्थिक दीनदशा-विषयक आपकी हृदयस्थ वेदना इतनी प्रबल थी कि उसके सामने राजनैतिक सुधार प्रजा का अक्षर-ज्ञान, आदि सब उन्हें गौण दिखाई देता था। क्या रंक, क्या करोड़-पति, क्या अंगरेज, क्या मुसाफिर, क्या पारसी भाई-बहन, क्या साधु-बैरागी, उन सब के हाथों में, जो उनके पास देश की बातें करने के लिए आते थे, वे चरखा रखते जरा भी न हिचकिचाते। और इसीलिए जब आपकी महान् तपस्या आरंभ हुई तब खादी और चरखे का इतना उपहास होते हुए भी जो कोई आपके सामने भले-बुरे किसी भी हेतु से आते वे उनका आंतरिक हृदयस्थ धर्म के सामने टिकने न पाते थे! एवं आखिर को तो अश्रद्धालुओं के दिल भी पिघल कर पानी हो गये। खादी के महत्व ने उनके हृदय में प्रवेश किया, देश की दरिद्रावस्था का ज्ञान हुआ, और उन्हें यह दिखाई दिया कि देश का तरणोपाय खादी ही है।

इस धर्म का स्वल्पाचरण भी पुण्यप्रद है और प्रजा को भय से बचाने वाला है। इसमें किसी का विरोध नहीं है। यह तो सबके लिए समान कल्याणकारक है। जिन्हें अपने ही दृष्टि दोष से उसमें विरोध दिखाई दिया और जिन्होंने उसके प्रवर्तक को दबाने का यत्न किया उन्हें वह अपनी भूल दिखाई देगी।

पर तबतक इस अवसर को शीघ्र लाने के लिए भारत क्या करेगा?

(नवजीवन) [illegible]

मौलाना हसरत मोहानी

कानपुर के मशहूर मौलाना हसरत मोहानी पिछली १५ अप्रैल को कानपुर में खिलाफत दफ्तर में पकड़े गये। आप संयुक्त प्रान्त की महासभा-समिति के सभापति थे अपना लड़की की शादी का जरूरी काम छोड़ कर आप खिलाफत के जलसे के लिए मोहान से कानपुर आये थे। आप पर दफा १२१ और १२४ अर्थात् सम्राट् के खिलाफ जंग करने और राजद्रोह फैलाने का इलजाम लगाया गया है। अगली २६ अप्रैल को आप पर अहमदाबाद में मुकदमा चलेगा। आपने मुस्लिम लीग के सभापति की हैसियत से जो भाषण पिछले दिसम्बर में अहमदाबाद में किया था उसी पर यह आरोप लगाया गया है।

मौलाना साहब की देशभक्ति और स्वार्थ-त्याग से लोग अच्छी तरह वाकिफ हैं। निर्भयता की तो मानों आप मूर्ति ही हैं। हिन्दू-मुसलमान-एकता के आप बड़े हिमायती हैं और बड़े पक्के मुसलमान हैं। इसके पहले आप २ साल तक जेल की जिन्दगी बसर कर चुके हैं और ब्रिटिश सल्तनत से किसी तरह का ताल्लुक न रखने के पक्षपाती थे। तथापि महात्मा गांधी को आपने अभिवचन दे दिया था कि मैं महासभा के कार्यक्रम का ही समर्थन करूंगा। गिरफ्तारी के समय आपने शहर कोतवाल से कहा कि मैं इस सरकार को नहीं मानता। अतएव मैं अपने आप गिरफ्तार न हूंगा। तब कोतवाल ने अपने पशु-बल का प्रयोग करके उन्हें मोटर में बैठाया।

इसी मौके पर मौलाना साहेब की गिरफ्तारी क्यों हुई? सरकार का उद्देश स्पष्ट है। वह किसी न किसी तरकीब से मुसलमानों को फाड़ लेना चाहती है। उसने अपने एक तरीके द्वारा, जिसके बदौलत माण्टेगू सा. को इस्तीफा देना पड़ा, मुसलमानों की कुछ मांगें पूरी करने पर जोर दिया था। पर भारत के मुसल्मान सब से असन्तुष्ट ही हैं। अतएव वह जिन लोगों का आजाद रहना अपने इस काम की सिद्धि के लिए हानिकर समझती है उन्हें जेल भेज रही है। महात्माजी के कारावास का एक कारण यह भी है। मौलाना साहब ने तो साफ ही जाहिर कर दिया था कि इन सिफारिशों से भारत के मुसल्मानों को तसल्ली नहीं हो सकती। बस, आप बन्दी बना लिये गये। पर सरकार को याद रखना चाहिए कि वह मौलाना साहब को कैदी बना कर अपना फायदा नहीं कर सकती। इस तरह तो वह अपनी मौत को और भी नजदीक बुला रही है। एक ओर तो उसके कल-पुरजे कहते हैं देखो, हम ऐसे ऐसे भाषणों को सहन करते जाते हैं और दूसरी ओर उन्हीं भाषणों पर मुकदमा चलाया जाता है। जहां इस प्रकार ईमानदारी का खून किया जाता है, वहां यदि ईश्वर का कोप न प्रकट हो तो दुनिया से धर्म लोप हो जाय। मुसल्मान-भाइयों का कर्तव्य स्पष्ट है। वे अपने मजहब और अपने मुल्क के लिए हर तरह की तकलीफों और कुरबानियों के लिए तैयार रहें। धर्म का रास्ता आसान नहीं है। जालिम का जोर सच्चे धर्मनिष्ठ को पथ-च्युत नहीं कर सकता। जेलखाने की दीवारें आजादी और खुदा के नूर को कैद नहीं कर सकतीं। अगर मुसलमानों को खिलाफत के साथ सच्ची हमदर्दी और मौलाना साहब के साथ सच्ची मुहब्बत हो तो उनका फर्ज है कि वे महासभा के कार्यक्रम को पूरा करने में अपना तन, मन, धन लगावें और विदेशी कपड़ों की होलियां जला कर-एक मात्र शुद्ध खादी ही पहन कर-मौलाना साहब की गिरफ्तारी का अच्छा जवाब सरकार को दें।

जयकृष्ण प्रभुदास भन्साली द्वारा नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर, सरकीगरानी वाडी, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से [illegible] द्वारा प्रकाशित ॥

'परिवर्तन' का प्रयत्न

वार्षिक
एक प्रतिका
विदेशों के लिए वार्षिक

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद—वैशाख सुदि ३, संवत् १९७९, रविवार, सायंकाल, ३० अप्रैल, १९२२ ई० | अंक ३७

चरखा—स्वराज्य का ॐ

सरकार का भय

एक मित्र बड़े प्रेम-भाव से पूछते हैं कि आपने "चरखे से स्वराज्य" नाम के लेख में यह समझाने का प्रयत्न किया है कि चरखे से त्रिविध स्वराज्य किस प्रकार मिल सकता है; पर मुझे एक बड़ी शंका है। जिस राष्ट्र ने पिछले-योरोपीय महाभारत में करोड़ों रुपये खून की नदियों में बहा दिये उस पर ६०–७० करोड़ रुपये के धक्के से क्या असर पड़ेगा? क्या वह किसी दूसरे मार्ग से इतनी हानि की पूर्ति न कर सकेगा? क्या वह इतना बेवकूफ है कि इतने से दबाव से डर कर आपको स्वराज्य दे दे?" प्रश्न मनोरंजक है और सार्वजनिक रीति से उत्तर देने के योग्य है।

चरखा स्वदेशी-धर्म का व्यापक अंग है। स्वदेशी-धर्म का मूल है स्वावलम्बन। स्वावलम्बन में ही स्वतन्त्रता है।

स्वदेशी के दो अंग हैं—एक विघातक और दूसरा विधायक। अंगरेजी व्यापारियों की हानि और उसके द्वारा वहां की पार्लियामेंट पर दबाव पड़ना स्वदेशी का विघातक अंग है। देश में खादी की पैदावार होना, ६०–७० करोड़ रुपये की बचत होना और उसके जरिये देश के गरीब-गुरबों को रोटी का सहारा होना, उसका विधायक अंग है। यही असहयोग आन्दोलन का हेतु है। विघातक अंग तो उसका अवश्यम्भावी फल मात्र है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि इसके—विधायक अंग के—द्वारा विदेशी व्यापारियों की असीम स्वार्थ-वृत्ति को धक्का पहुंचेगा। यह तो दूसरी बात है कि वे उसे सहन कर सकेंगे या नहीं। क्योंकि भारतीय स्वराज्य की जड़ स्वदेशी के विधायक अंग में है। हां, विघातक अंग भी उसमें किस प्रकार सहायक हो सकता है यह पहले लेख में बताया ही जा चुका है पर यदि उससे हमें सहायता न भी मिले तो हमारा स्वराज्य रुकने वाला नहीं। स्वदेशी का विधायक अंग स्वराज्य प्राप्ति में हमारा भीतरी बल है और विघातक अंग बाहरी बल है। पर सच्चा बल तो भीतरी बल ही होता है; बाहरी बल तो उसका एक स्थूल अंग मात्र है।

अच्छा, तो स्वदेशी से हमें यह भीतरी बल कैसे मिलेगा? ६०–७० करोड़ रुपयों का लाभ तो स्पष्ट ही है। इससे भूखों को भोजन मिलेगा—उनकी नसों में ताजा खून बहने लगेगा, उनकी हड्डियों पर मांस दिखाई देगा। दूसरे ही साल खादी अधिक सस्ती हो जायगी जिससे दूसरे लोगों को भी आर्थिक बचत या लाभ होगा। इससे जनता समझ जायगी कि हमारा सच्चा पालक, सच्चा हितचिन्तक, मुसीबत के समय में हमें मदद देने वाला, हमारी औरतों की लाज रखने वाला अगर कोई है तो यह चरखा अर्थात् महासभा है। जो सरकार हमारी रक्षा का दम भरती है वह तो विलायत के बनियों की एजंट है। वे महासभा को सच्चे दिल से, हार्दिक प्रेम से, अपनी चीज समझेंगे, प्राण-पण से उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ेंगे। सोचिए, महासभा का बल कितना बढ़ जायगा। और महासभा का बल बढ़ाना ही स्वराज्य का सच्चा-सीधा तरीका है। ज्यों ज्यों लोग महासभा के अधिकाधिक अनुयायी होते जायंगे, त्यों त्यों वर्तमान नौकरशाही की जड़ खोखली पड़ती जायगी त्यों त्यों स्वराज्य दौड़ता हुआ आवेगा। आज जनता सरकारी हुक्मों का धड़ाधड़ निरादर कर रही है और महासभा की आज्ञाओं का पालन कर रही है—यह क्या है? यही स्वराज्य है।

स्वराज्य के इस मर्म को चाहे भारतवासी अच्छी तरह न समझे हों; पर हमारी चतुर सरकार उसे खूब समझ गई है। इसीलिए वह दबे-छुपे और जाहिरा तौर पर मौका पा पा कर महासभा के बल को तोड़ने की कोशिशें कर रही है। वह अच्छी तरह जान गई है कि मेरी मौत की कुंजी—चरखा—असहयोगियों के हाथ लग गई है। वह दमन और भय-प्रयोग के द्वारा अपनी जान की रक्षा करना चाहती है; पर यदि भारत ने इस कुंजी को न छोड़ा तो उसे विफल हुए बिना दूसरी गति नहीं।

अतएव स्वदेशी अर्थात् चरखे के विघातक फल से चाहे स्वराज्य न मिले पर विधायक फल से वह मिले बिना नहीं रह सकता—उसे ईश्वर भी नहीं रोक सकता। यही चरखे की महिमा है। इसीलिए कहते हैं कि चरखा स्वराज्य का प्रणव ॐ—है। इसके द्वारा भारत के दोनों हाथ लड्डू हैं।

टिप्पणियां

कौन्सिलों का मोह

महासभा के वर्तमान कार्यक्रम के परिवर्तन के प्रयत्न के साथ ही साथ महाराष्ट्र से कौन्सिलों में जाने की भी आवाज उठ रही है। इधर श्रीमती वासन्ती देवी ने भी अपने भाषण में कौन्सिल में जाने का उल्लेख किया है वे कहती है "हम कौन्सिलों में जा कर सरकार के साथ सहयोग नहीं करेंगे; उसके अच्छे और बुरे प्रत्येक काम में बाधा डालेंगे। महाराष्ट्र के कुछ लोग कहते हैं कि "हम कौन्सिलों में सरकार को हैरान कर देंगे और अन्त को उसे अपने पैरों पर झुका लेंगे। आज कौन्सिलों में तमाम नरम दल के लोग भरे पड़े हैं। उनको अपना हथियार बना कर नौकर-शाही आज देश में मनमाना दमन कर रही है"। इसको वे 'सहयोग' नहीं मानते 'प्रतिकारी असहयोग' कहते हैं। पर वे भूल जाते हैं कि शतरंज के दो खिलाड़ी यद्यपि एक दूसरे को हमेशा बाधा ही डालते हैं तथापि उस शतरंज की बाजी को कायम रखने के लिए दोनों एक दूसरे का सहयोग अवश्य करते हैं। हमारे आन्दोलन का मुख्य हेतु है वर्तमान सरकार को बे-कार कर देना। यह शुद्ध असहयोग के ही द्वारा हो सकता है, 'बाधाकारक सहयोग' अथवा 'प्रतिकारक असहयोग' के द्वारा नहीं।

इसके अलावा हमें यह भी याद रखना चाहिए कि श्रीमती वासन्ती देवी ने कौन्सिलों में जाने का तो उल्लेख मात्र किया है। उन्होंने उसकी आवश्यकता पर जोर नहीं दिया। इसका अर्थ यही है कि वे महासभा के कार्यक्रम में परिवर्तन कराने के लिए आतुर नहीं है। उनका यह उल्लेख तो इस बात का सबूत है कि स्वराज्य के लिए वे कितनी अधीर हो रही हैं। वे चाहती हैं कि जिस तरह हो सके उसी तरह स्वराज्य जल्द मिल जाय। यदि वह कौन्सिलों में जाने से जल्दी मिल सकता हो तो वहां जाकर भी लेलो; पर अब स्वराज्य के बिना चैन नहीं। और इसीलिए उन्होंने अच्छे बुरे सब कामों में बाधा डालने की बात कही है। पर यह भी ध्यान देने की बात है कि इस उल्लेख मात्र को बंगाल सहन न कर सका। चटगांव में ही उनकी बात का विरोध करके महासभा के कार्यक्रम पर श्रद्धा प्रकट की गई।

दूसरे, लोकमान्य तिलक ने वर्तमान सुधारों को यद्यपि अपनाया तो था पर साथ ही उन्हें 'निराशाजनक' और 'अपूर्ण' भी कहा था। सरकारका वर्तमान दमन और कौन्सिलों की दीन दशा उनके इन विशेषणों को स्पष्ट सिद्ध कर रही हैं। ऐसी अवस्था में उन्हीं कौन्सिलों में जाने का प्रयत्न करना क्या नौकरशाही को यह कहने का मौका देना नहीं है कि देखो, यह सुधारों की महिमा। लोग लौट लौट कर फिर कौन्सिलों में आ रहे हैं। तीसरे, देश की वर्तमान नाजुक अवस्था में कौन्सिलों में जाना या अपने प्रतिपक्षी के शरण जाने के बराबर नहीं है? चौथे, जो शक्ति हमारी वहां खर्च होगी वह यदि इसी रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति में लगाई जाय तो क्या जनता में अधिक और स्थायी जागृति न होगी और उसका प्रभाव या दबाव सरकार पर अधिक न पड़ेगा? पांचवें, आजतक कौन्सिलों में रह कर क्या हमारे भाई सरकार की नीति पर अपना जरा भी असर डाल पाये हैं? उलटा क्या वे देश की शक्ति और तेज को दबाने में सरकार के सहायक नहीं हुए हैं? छठे, बंगाल में एक ओर से मोती बाबू और दूसरी ओर से सुरेन्द्र बाबू क्या कहते हैं, यह भी ध्यान देने लायक हैं। वृद्ध और अनुभवी मोती बाबू कहते हैं कौन्सिलों में जाने से वहां के जहर का असर हुए बिना नहीं रह सकता। और सुरेन्द्र बाबू ने लार्ड रोनाल्डशे के गुण गान करते हुए कहा है— "बंगाल के कुछ लोग कौन्सिलों में आना चाहते हैं। वे सरकार को बेकार कर देना चाहते हैं। हम उनके दांव को खूब समझते हैं। हम सावधान हैं। आवें तो।" पूने का 'सर्वेंट आफ इन्डिया' यही सुर अलापता है। सो, कौन्सिल के मोह को जो लोग नहीं रोक सकते वे इस बात को खूब याद रक्खें कि सर सुरेन्द्रनाथ वहां उनका किस तरह स्वागत करेंगे। अतएव पूर्वोक्त समस्त कारणों पर विचार करते हुए कौन्सिल में जाने की इच्छा और प्रयत्न करना मानों अपने पैरों पर खुद ही कुल्हाडी मार लेना है, वे या जिस डाल पर हम बैठे हैं उसी को काटने की बुद्धिमानी करना है।

महाराष्ट्र में परिवर्तन का विरोध

एक ओर जहां महाराष्ट्र, बरार और मराठी मध्यप्रान्त के कुछ नेता यह पुकार उठा रहे हैं कि वर्तमान कार्यक्रम तो ना काफी है, इसमें परिवर्तन होना चाहिए, तहां दूसरी ओर नागपुर, वर्धा, सितारा आदि स्थानों में लोग सभायें कर कर के वर्तमान कार्यक्रम के प्रति अपना विश्वास प्रकट कर रहे हैं। पूर्वोक्त तीनों प्रान्तों के कुछ नेताओं की यह हरकत कोई नई चीज नहीं है। वे अपने को न तो दिल से असहयोगी ही मानते हैं और न इस कार्यक्रम के पूरे कायल ही हैं। वे तो केवल महासभा की आज्ञा को शिरोधार्य करने के लिए इस दल में शामिल हुए हैं। महासभा के प्रति उनकी यह भक्ति निस्सन्देह सराहनीय है और मत-भेद होते हुए भी देश की आज्ञा और इच्छा के आगे सिर झुकाने की इस तत्परता में सचमुच राष्ट्र का बल भी है। पर इस बल का लाभ देश को तभी मिल सकता है जब हम देश के कार्यक्रम को अपना ही कार्यक्रम समझ कर उसकी पूर्ति में तन, मन, धन से लग जावें। इसके विपरीत यदि ऐसी स्थिति है कि एक ओर तो इस कार्यक्रम में हमारा विश्वास नहीं, अतएव हमसे उसके अनुसार पूरा पूरा काम नहीं होता और दूसरी ओर महासभा की आज्ञा नहीं अतएव हम अपने विश्वास के अनुसार दूसरा काम भी नहीं करना चाहते। तो इसका अर्थ स्पष्ट है। महात्मा गांधी तक इस बात के कायल हैं कि महाराष्ट्र-दल में निश्चयी और अभ्यस्त योध्दा हैं। इस गुण में उनकी बराबरी भारत का कोई प्रान्त नहीं कर सकता। इस दल की प्राप्ति को वे एक कीमती चीज मानते थे। हम भी मानते हैं कि महाराष्ट्र का सारे देश को अभिमान है। पर आजकल का उसका रुख हमारी समझ में नहीं आता। हम नहीं समझते, इस रुख के द्वारा वे देश की सेवा कहां तक कर रहे हैं? यह भी मान लें कि व्यवहार-नीति के तौर-पर प्रयोग के लिए उन्होंने महात्माजी को यह एक मौका दिया है, तो क्या प्रयोग की अवधि महात्माजी जेल जाते ही खतम हो गई? क्या किसी सिद्धान्त के नवीन प्रयोग के लिए साल-डेढ़-साल बस है? क्या यह अधीरता और आतुरता नहीं? हम मानते हैं कि महात्माजी के प्रति उनके हृदय में उतना ही आदर-भाव है जितना कि लोकमान्य तिलक महाराज के प्रति है। वे उन्हीं को अपना नेता भी मान रहे हैं। पर ऐसी अवस्था में महात्माजी के कारावास के बाद क्या उनपर इस प्रयोग को जारी रखने की अधिक जिम्मेदारी नहीं आ पड़ती? महात्माजी की अनुपस्थिति में भी जब सारा देश आज इसी कार्यक्रम को पसन्द कर रहा है तब क्या महाराष्ट्र का भी यह धर्म नहीं है कि वह

भी अपनी पूरी ताकत इसी को सफल करने में लगावे और परिवर्तन की बात छेड़ कर शक्तियों को बंट जाने और बिखर जाने में सहायक न हो? अपना मत-भेद प्रकट करते रहने के लिए कोई किसी को मना नहीं करता पर ऐसे समय में जब कि सेनापति कैद हो गया है, प्रतिपक्षी का मुकाबला अधिक एकता और बल के साथ करना चाहिए, या सैनिकों को अपनी अपनी राह लेनी चाहिए? क्या इस आपत्काल में अपनी अपनी खिचड़ी अलग पकाने में देश का सच्चा हित है? सहयोगी और असहयोगी-दलों की एकता का प्रयत्न हो रहा है तो असहयोगियों के ही घर में फूट-भेद का दिखाई देना क्या हित है? फिर जब वहां भी स्वयं जनता भी उनके इस कार्य का विरोध कर रही है तब भी परिवर्तन का आग्रह करते रहना क्या महाराष्ट्र जैसे व्यवहार-कुशल और दूरदर्शी लोगों के लिए उचित है? हमें पूर्ण विश्वास है कि अकोला-परिषद आदि के अवसर पर जिस प्रकार जनता का विरोध देखकर महाराष्ट्र ने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया उसी प्रकार वह इस-उस से भी अधिक कठिन और नाजुक—मौके पर अपनी चतुराई प्रकट करके देश के साथ आने में ही देश का कल्याण और महाराष्ट्र की कीर्ति समझेगा।

ओडॉयर बोले

लार्ड क्लाइव जहां भारत में ब्रिटिश-राज्य के संस्थापक माने जाते हैं तहां सर मायकेल ओडॉयर और जनरल डायर उसके 'रक्षक' माने जाते हैं। रौलट कानून के आन्दोलन के जमाने में भारत अंगरेजों के हाथ से निकला जा रहा था और ब्रिटिश वीर ओडॉयर और डायर ने उसको बचा लिया! ओडॉयर साहब आजकल विलायत में तशरीफ रखते हैं और भारत के अपने गंभीर ज्ञान और अनुभव का लाभ अपने देशवासियों को दिया करते हैं। गांधीजी को आजाद रहने देने के लिए आप लार्ड रीडिंग से बहुत नाराज थे। अगर आप इस समय बड़े लाट होते तो शायद गांधीजी को और सारे असहयोगियों को तोप के मुंह पर बांध कर उड़ाये बिना न रहते। ब्रिटिश-राज्य के खिलाफ इतनी गुस्ताखी! शुद्ध ब्रिटिश खून इस तेजोभंग को कैसे सहन कर सकता है! पर लार्ड रीडिंग ने भी गांधीजी को कैद कर के ब्रिटिश सल्तनत को बचाया है या उसकी जड़ और हिला दी है इसका अनुभव सर मायकेल ओडॉयर को, ईश्वर ने चाहा, तो शीघ्र ही हो जायगा।

बजट में कमी पड़ने के कारण भारत-सरकार ने यहां कितनी ही वस्तुओं पर नया कर बढ़ा दिया है। इससे भारत में चारों ओर खलबली मच गई। कौन्सिल के सदस्यों-नरम-भाइयों ने भी विरोध किया। पर ओडॉयर साहब विलायत में बोले हैं कि फजूल चिल्लाते हैं हिन्दुस्तानी। दुनिया के किसी मुल्क में इतना कम कर नहीं है जितना कि भारत में है। उन्होंने अंकों का ब्योरा भी बता दिया। और समझा बस, हिन्दुस्तानियों की पुकार व्यर्थ साबित हो गई। पर अगर ओडॉयर साहब दूसरी आंख से भी काम लेते तो मारे शर्म के उनकी गर्दन नीचे झुक जाती। क्या वे बता सकते हैं कि दुनियां में भारत से अधिक कंगाल मुल्क कोई है? फी आदमी -)। रोज आमदनी वे किसी दूसरे देश के इतिहास में बता सकते हैं? क्या वे साबित कर सकते हैं कि इस 'मंगलमय' ब्रिटिश राज्य के पधारने के पहले भी कभी भारत इतना दीन, दुखी और दरिद्र था? स्वार्थ की कुछ भी तो हद हो। ईश्वर का डर तो कर हो। अफसोस इतना ही है कि ब्रिटिश मन्त्री-मण्डल में गुणग्राही लोगों की बहुत कमी है। तभी वाइसराय-पद के अधिकारी नेकनाम ओडॉयर साहब ही क्यों न समझे गये।

शब्द और कार्य में भेद

सज्जनों के शब्द और कार्यों में एकता होती है। इटली ने अपनी भलाई का फिर एक बार परिचय दिया है। सेवरेस की अन्यायमय सुलह के अनुसार उसे अदालिया मिला था। पर उसने उसे अस्वीकार कर अन्याय में सहयोग देना ठीक न सोचा और अपना हक छोड़ दिया।

टर्की के प्रति सद्भाव रखने का फिर वह एक सबूत दे रही है। रूटर खबर करता है कि सिंयाडर की तराई से उसने अपनी तमाम फौज हटाने का निश्चय किया है और तदनुसार अंगोरा सरकार को सूचना भी दे दी है। इसके बाद जो खबर मिली है वह तो यह साफ जाहिर करती है कि उसने फौज हटाना आरंभ भी कर दिया। अब जरा दूसरी ओर भी देखिए। ब्रिटिश सरकार अभीतक यूनान को लड़ाई का मावजा दिलाने के लिए तथा टर्की से पूर्वी थ्रेस का अधिकतर भाग तथा गेलीपोली का सारा प्रायद्वीप छुड़ाने का यत्न कर रही है। वह अब भी तुर्की सल्तनत पर मन माना अंकुश रखने की कोशिश कर रही है। पर चाहिए क्या था? ब्रिटिश सरकार ने भारत के मुसलमान-भाइयों को यह वचन दिया था कि तुर्कों से एशिया मायनर, थ्रेस और उसकी ऐतिहासिक राजधानी कुस्तुन्तुनिया छुड़ाया न जायगा। उसे चाहिए था कि वह सबसे पहले इस दिशा में प्रयत्न करती अपने लोभ का, असीम साम्राज्य की महात्वाकांक्षाओं का संवरण करती और अपनी सचाई का परिचय भारत के मुसलमानों को तथा संसार को देती। पर वह कर क्या रही है? बेशर्मी और बेईमानी। अपने कौल को पूरा न करना बेशर्मी और बेईमानी नहीं तो क्या है?

इटली और फ्रान्स तो तुर्की से सन्तोषजनक सुलह करने को तैयार हो जायंगे पर सबसे भारी विघ्न इंग्लैंड ही है। वह अपनी शक्ति और लोभ के मारे मदांध हो रहा है। तो इंग्लैंड चाहे कितनी ही भूल-भूलैया और वाग्जाल क्यों न फैलावे संसार उसको पहचान गया है। इटली की इस आखरी कृति ने तो यह स्पष्ट कर दिया है कि भले और बुरे आदमियों में कितना फर्क होता है। कहिये ऐसी सरकार के साथ जो विश्वासघात और दुष्टता करने पर तुली हुई है सहयोग हो ही कैसे सकता है?

मौलाना हसरत मोहानी मुकदमा

तारीख २६ अप्रैल को अहमदाबाद में जिला मॅजिस्ट्रेट मि० मेटकॉल्फ के इजलास में मौलाना हसरत मोहानी का मुकदमा पेश हुआ। उनपर अहमदाबाद की महासभा में दिये भाषण के लिए ताजरात हिंद, दफा १२४ अर्थात् राजद्रोह का और मुस्लीम लीग के सभापति की हैसियत से दिये भाषण पर १२४ और १२१ अर्थात् सम्राट से युद्ध ठानने का जुर्म लगा कर मामला दौरा सुपुर्द कर दिया गया।

अदालत की कार्रवाई शुरु होने के पहले मौलाना साहबने कहा "यह अदालत न्याय करने वाली अदालत नहीं है। यह तो बाला अफसरों के हुक्म की तामील करने वाली संस्था है। मैं इसे अदालत मानने के लिए तैयार नहीं हूं। इस सरकार में मेरा जरा भी विश्वास नहीं है। इसलिए मैं अदालत की कार्रवाई में जरा भी तवज्जह न दूंगा" और अपने इसी निश्चय के अनुसार मौलाना साहब ने अंत तक मजिस्ट्रेट के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया और चुप बैठे रहे। आगामी दो मई को दौरा अदालत में मामला चलने वाला है।

कलकत्ते में कार्य-समिति

गत २१ अप्रैल को कलकत्ते में कार्य समिति की बैठक हुई थी। उस में खादी-प्रचार के लिए एक मार्के की तजवीज पेश की गई थी। वह इस प्रकार है—

१ खादी प्रचार के लिए हरएक प्रान्त को कुछ रकम मिलना चाहिए और उतनी ही रकम खुद वह भी एकत्र करे।

२ एक मंडल की स्थापना की जाय, जिसके चार विभाग हों। उन विभागों का यह काम हो कि वे खादी की पैदायश तथा बिक्री की देखरेख करे और सलाह दे। जिस प्रान्त में अधिक पैदायश होती हो वहां से उसे अन्य स्थानों में भेजने का प्रबंध करे। इस मंडल के अधिकार में इस काम के लिए १७ लाख रुपये दिये जायं।

ऊपर लिखी तजवीज बम्बई में शीघ्र ही होने वाली कार्य-समिति की दूसरी बैठक में पास हो जाने के बाद प्रकाशित की जायगी।

कार्य-समिति में नीचे लिखे मुख्य मुख्य प्रस्ताव पास हुए।

१—जिन वकीलों ने वकालत छोड़ दी है उनकी गुजर के लिए सेठ जमनालाल जी बजाज ने इस साल फिर एक लाख रुपयों का दान दिया है। वह स्वीकार किया जाय। इन रुपयों का उपयोग करना सेठ जी के ही अधीन रक्खा जाता है। सिर्फ ऐसे ही वकील सहायता के लिए प्रार्थना-पत्र भेजें जिन्होंने अपनी वकालत कतई छोड़ दी हो तथा जो अपना पूरा समय महासभा के कार्यक्रम में ही लगा रहे हो।

२—महासभा को अधिक प्रातिनिधिक तथा व्यापक बनाने के लिए मजदूर-दल के तथा गिरी हुई जातियों के सभासद अधिक बनाये जायं। इस पर कार्य-कर्ता विशेष ध्यान दें।

३—महासभा की कोई संस्था अपने भांडार में पवित्र हाथ-कती-बुनी खादी के सिवा अन्य किसी प्रकार का कपड़ा न रक्खे। और शुद्ध हाथ-कती-बुनी खादी के सिवा दूसरे किसी तरह कपड़े के लिए महासभा का धन खर्च न करे।

४—कुछ खास खास मौकों को छोड़कर प्रान्तीय कामों के लिए महा-समिति से धन न मिल सकेगा। आर्थिक बातों में भी प्रान्तीय समितियों को स्वावलंबी होने का यत्न करना चाहिए। वे अपना काम आसानी से तथा स्वतंत्रता-पूर्वक चला सकें, इसलिए अब उनसे सैकड़ा २५ के बदले सिर्फ पांच ही रुपये महासमिति लेगी।

५ जबतक महात्माजी जेल में हैं तबतक हर एक मास की १८ तारीख गांधी-दिवस मानी जाय, वह त्याग और प्रार्थना का दिन समझा जाय। और हर एक भारतीय उस दिन की अपनी आमद तिलक-स्वराज्य-कोश में दे दे। कार्य-समिति ने यह भी आज्ञा की है कि हर एक हिन्दुस्तानी को अपनी सालाना आमद का सौवां हिस्सा तिलक-स्वराज्य-कोष में दे देना चाहिए।

हमें क्या क्या करना चाहिए ?

सेनापति जेल में हैं। विजय का सीधा रास्ता हमारे सामने सामने है। हम आशा, उत्साह और धीरज के साथ कदम बढाते चलें। एक मिनिट भी व्यर्थ न खोवें। सफलता हमारे सबे प्रयत्न पर ही अवलम्बित है। कार्यकर्ताओं का ध्यान नीचे लिखी बातों पर विशेष कर से रहना चाहिए —

१ सब से अधिक और खादी को देशव्यापी बनाने में देना चाहिए।

बारडोली तथा देहली में जो सामुदायिक कानून-भंग स्थगित कर दिया गया उसका क्या कारण था? हमारे संगठन तथा संयम में अपूर्णता अब उसे फिर शुरू करना या न करना तो भविष्य की बात ठहरी। पर महात्माजी तो यह छाती पर हाथ रख कर कहते हैं कि केवल अहिंसा और खादी का कार्यक्रम ही अगर पूरा कर दिया जाय तो भी हमारी विजय निश्चित है। पर यह भी निश्चित है कि यदि हमें सविनय कानून-भंग का आश्रय लेना ही पड़ा तो हमें पहले यह देख लेना होगा कि देश अहिंसा का पूरा पालन कर सकेगा। और लोग भी आम तौर पर महात्माजी के सन्देशों को अच्छी तरह समझने और उनके अनुसार चलने लग गये हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि अगर कार्यकर्ता तथा नेता लोग इस काम में लगेंगे तो जनता की ओर से भी उन्हें उचित उत्साह मिलेगा। वे महात्माजी के जेल जाते समय के शब्दों को जरूर पूरा करेंगे।

२ देशभर में प्रत्येक गांव में महासभा-समितियों की स्थापना की जाय और जितने अधिक तथा जितनी जल्दी हो सके, महासभा के सदस्य बनावें।

कार्यकर्ता लोगों के नाम महासभा के सदस्यों में लिखते समय इस बात का जरूर यकीन कर लें कि वे महासभा की शर्तों का अच्छी तरह पालन करेंगे। उनकी योग्यता तथा संख्या इतनी हो कि वे अपने अपने स्थान में शान्ति कायम रख सकें। महासभा के सदस्य के लिए कार्यकर्ता यह याद रखें कि यह कोई आवश्यक बात नहीं कि वह असहयोग तथा सविनय कानूनभंग का कायल हो। वे अगर हरएक शान्तिमय तथा न्याय्य उपायों के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हों तो भी वे महासभा के सदस्य हो सकते हैं।

इस समय महासभा के सदस्यों की वृद्धि होना महासभा का काम जल्दी पूरा करने की दृष्टि से ही केवल आवश्यक नहीं है। वह तो महात्माजी की गिरफ्तारी पर सरकार को हमारी ओर से एक जवाब भी होगा।

३ तिलक-स्वराज-कोष के लिए चन्दा बहुत तेजी से एकत्र करना; क्यों कि महासभा के तमाम कामों का दारोमदार इसी पर है। बगैर बीज बोये अनाज कैसे पैदा हो सकता है? उसी प्रकार हम भी अगर देश के उत्थान के लिए कुछ खर्च न करें तो हम अपना ध्येय किस तरह सिद्ध कर सकेंगे?

४ हर गांव में खास चुने हुए ऐसे स्वयं-सेवकों का एक दल होना चाहिए जो अपने प्रतिज्ञा पत्र का अक्षरशः पालन करते हों।

इन्दौर में देश-निकाला

खबर है कि श्रीयुत श्रीधर सोमेश्वर व्यास, श्री भानुदास शाह और श्री सूरज-मल जैन इन तीन महाशयों को इन्दोर के प्रधान सचिव की ओर से २४ घंटे के अंदर इन्दोर राज्य से निकल जाने का हुक्म मिला है। उन पर न कोई अपराध लगाया गया न मुकदमा चलाया गया। यह खबर सुन कर हमें जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ। क्यों कि यह घटना वर्तमान इन्दोर-सरकार की परम्परा के विपरीत थोड़े ही है—

रघुकुल-रीति सदा चलि आई।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, वैशाख शुदि, ३ सं. १९७९

परिवर्तन का प्रयत्न

मत-भेद राष्ट्र का बल है; परन्तु कृति-भेद राष्ट्र की कमजोरी है। देश के संकट-समय में तो यह बात और भी अधिक सच होती है। कौन कह सकता है कि आज भारत पर विपत्ति के भीषण बादल नहीं मंडरा रहे हैं? भारत के सामने जीवन-मरण का प्रश्न नहीं उपस्थित है? प्रतिपक्षी अपने सम्पूर्ण मायावी शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करने पर तुला हुआ है। उसके लिए भी यह जीवन-मरण का मसला हो गया है। इसलिए वह भी प्राण-पण से हमें कुचल डालने का प्रयत्न कर रहा है। उसके पास सत्ता-बल है, बाहु-बल है, धन-बल है और हमारे कुछ भाइयों का सहयोग-बल है। पहले तीन बलों की भारत को जरा भी चिन्ता नहीं। चौथे बल को देख कर उसकी दुखी आंखों से खून के दो आंसू टपक पड़ते हैं। क्योंकि भारत समझता है कि यह केवल प्रतिपक्षियों का बल ही नहीं, बल्कि मेरी निर्बलता भी है। और प्रतिपक्षी 'कण्टकेनैव कण्टकम्' की नीति का अनुसरण कर के देश में एक प्रकार के मानसिक और बौद्धिक 'सिविल वार' की परिस्थिति उत्पन्न करने में लगा हुआ है।

महात्मा गांधी ने इस नीति की भयंकरता को खूब पहचाना। उसका फल हिन्दू मुसलमान-एकता, सर्व जातीय एकता, सहयोगियों के साथ मित्रता करने के उपदेश के रूप में हम देख ही रहे हैं। इस समय वास्तव में तो दो ही दल होने चाहिए थे-एक नौकरशाही और दूसरा असहयोगी; पर देश के दुर्भाग्य ने एक सहयोगी-दल भी बना रक्खा है और अब असहयोगियों में से भी कुछ लोगों को वर्तमान कार्यक्रम में परिवर्तन कराने के लिए बे-चैन देखते हैं तब भारत के दुर्भाग्य का बड़ा ही भीषण और दुःखप्रद चित्र आंखों में खिंचने लगता है। प्राचीन रोम और बेबिलोनिया की स्मृति हो आती है और हृदय धड़कने लगता है कि भगवन् कहीं भारत की भारतीयता और आर्य-संस्कृति भी केवल प्राचीन इतिहास की वस्तु न रह जायं और उसकी भावी सन्तान केवल कभी आश्चर्य की दृष्टि से उस इतिहास पर नजर न डालें। क्योंकि भारत के जीवन में यह इतना कठिन और आपत्तिपूर्ण समय है कि यदि भारत के सब दलों ने एक दिल से प्रतिपक्षी का सामना नहीं किया तो भारत का सर्वनाश निश्चित है। भारत शैतान के अभिमान की चीज भले ही हो जाय; पर ईश्वर की दृष्टि में वह पतित हुए बिना न रह सकेगा। इस समय यदि आपस की फूट से भारत की हार हुई-और केवल इसीसे भारत की हार हो सकती है-तो या तो भारतीय जाति दुनिया के पर्दे से मिट जायगी या 'Kingdome of God' की स्थापना के नाम पर अपनी आसुरी साम्राज्य-लालसा को तृप्त करने वाले लोगों की चोटनशीन हो जायगी। दोनों दशाओं में भारत भारत न रहेगा।

कार्यक्रम चाहे कितना ही व्यापक, कितना ही सुन्दर और सर्वांगपूर्ण क्यों न हो; पर यदि उसके अनुसार सोलहों आना काम न किया जाय तो वह निष्फल हुए बिना न रहेगा। जो लोग वर्तमान कार्यक्रम के लिए अ-सफलता की दुहाई देते हैं उनसे हम पूछते हैं कि हम अपने दिल पर हाथ रखकर कहें कि क्या हमने सचमुच सच्चे दिल से उसकी पूर्ति का प्रयत्न किया है? यदि किया हो तो हम राष्ट्र के सामने उसका विवरण और अपनी असफलता के कारण पेश करें। यदि नहीं तो फिर हमारा यह परिवर्तन कराने का प्रयत्न क्या आत्मघात नहीं है?

निराशा और अधीरता के बराबर सफलता और विजय का शत्रु दूसरा कोई नहीं। जबतक हम अपने आत्मतेज के द्वारा श्रद्धा-पूर्वक अपने मार्गपर दृढ़ न रहेंगे, बारबार चंचलता का परिचय देते रहेंगे, तबतक प्रतिपक्षी की दृष्टि में हास्यास्पद बनते रहेंगे और उसके अधिकाधिक पंजे में फंसते जायंगे।

हमारा वर्तमान संग्राम अपूर्व है। इसमें आत्मिक बल हमारा बल है। अनुकूल लोकमत हमारी सेना है। महात्मा गांधी इस की कल्पना के उत्पादक और आचार्य हैं। वे ही हमारे सेनापति हैं। उनके तेज, पराक्रम, पावित्र्य, निर्मल-हृदयता, देश-प्रेम, अपूर्व त्याग, शान्ति और निर्भयता पर अकेला भारत ही नहीं, विदेशों के भी विचारवान् पुरुष लट्टू हैं। राष्ट्र के लिए यह युद्ध-कला बिल्कुल नई है। हिंसात्मक युद्धों में भी यदि सेनापति के बताये पथ पर सेना न चले तो विजय असम्भव है। फिर इस युद्ध के आचार्य तो अबतक अकेले महात्मा जी ही हैं। उन्होंने डेढ़ ही वर्ष में जो चमत्कार कर दिखाया है वह राष्ट्र के सामने है। ऐसी अवस्था में उनके दिखाये पथ से राष्ट्र को अलग ले जाने का प्रयत्न करना मानों इन अठारह महीनों के अद्भुत आशामय इतिहास को ठुकरा देना है। आज वे जेल में हैं। इसी कार्यक्रम के अनुसार कम से कम हमारे २५ हजार भाई जेलों की यातनाओं को महलों के सुख समझ रहे हैं। उनकी गैरहाजरी में उसमें परिवर्तन करना क्या उनके प्रति अकृतज्ञता नहीं है?

परिवर्तन का प्रश्न मत प्रकट करने से डरने हार मानने या महात्माजी के प्रति अश्रद्धा रखने का प्रश्न नहीं है। यह तो राष्ट्र की आवश्यकता का और उसके हानिलाभ का प्रश्न है। क्योंकि वैद्यक-शास्त्र की भाषा में कहें तो गांधी जी के नुसखे से थोड़े ही दिनों में भारत की बीमारी की जड़ जितनी अधिक कटी है, उसमें जो बल और चैतन्य आया है, उसकी जोड़ भारत के आधुनिक इतिहास में नहीं है। उन्होंने भारत के बच्चे बच्चे की हृदय-तन्त्री के उस सच्चे तार को छेड़ दिया है जो सदियों से मंद पड़ा हुआ था और जिससे उसके आनन्द और सुख का लोप हो गया था। यदि हमें नियत अवधि में ही पूरा पूरा लाभ नहीं हुआ तो यह दोष दवा का या हकीम का नहीं है-हमारा ही है हमने बदपरहेजी की-हमने अनुपान ठीक ठीक नहीं रक्खा। जो रोगी वैद्य के कहने के अनुसार औषधि-सेवन नहीं करता, बार बार वैद्यों को बदलता है उसे जल्दी आराम कभी नहीं होता। अतएव हम भारत को सावधान किये देते हैं कि वह घबड़ा कर, आतुर हो कर, कुछ तर्कवाद का शिकार होकर, इस नुसखे को-वर्तमान कार्यक्रम को वैद्य की अनुपस्थिति में छोड़ने की या उसमें घटा-बढ़ी करने की भूल न करे, नहीं तो उसके प्राणों के लिए पूरा पूरा भय है।

बुद्धि और भावना दोनों मिलकर मनुष्य बना है। भावना आत्मा का खास अंग है और बुद्धि का उपयोग उसकी भावना की सहायता के लिए होना चाहिए। जो लोग भावना का निरादर करके

बुद्धि को ही सबकुछ समझते हैं वे मानों नीति और धर्म की अवहेलना करके व्यवहार–नीति को प्रधानता देते हैं। भावनाहीन मनुष्य बुद्धिमान् पत्थर है। बुद्धि का कार्य है कर्तव्य और अकर्तव्य का निर्णय करना। पर वह बिना आधार के नहीं हो सकता। वह आधार है हमारा आदर्श। और आदर्श सिवा भावना के दूसरी क्या चीज है? अतएव भावना की उपेक्षा करना आदर्श को ठोकर मारना है। इसलिए हमें चाहिए कि केवल बुद्धि–जाल में फंस कर हम हृदय के सब गुणों की अवहेलना न करें–रुखे अंकों का हिसाब लगाकर जनता की भावना के साथ अत्याचार न करें।

अतएव हमें समय की गम्भीरता, परिस्थिति की आवश्यकता, देश की भावना, प्रतिपक्षी की कुटिल गति–विधि, हमारे सेनापति का एक मात्र विधान, पिछले १८ महीने के अनुभव, हमारे २५ हजार जेलनिवासी भाइयों की मनोदशा, और त्याग इन सब बातों को अच्छी तरह ध्यान में रखते हुए इस समय परिवर्तन की चर्चा से बिल्कुल अलग रहना चाहिए। इस चर्चा और प्रयत्न में देश की शक्ति को बांट देना अपने आन्दोलन की गति को भारी धक्का पहुंचाना और प्रतिपक्षी को मौका देना है। इसके विपरीत हमें अपनी सारी शक्ति अपने रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति में लगा देना चाहिए। जो रोगी कड़वी दवा पीने से जी चुराता है उसका रोग असाध्य हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। हम पहले भारत की सब जातियों में एकता स्थापित कर दें, पूर्ण शान्ति का साम्राज्य फैला दें, छुआछूत का कलंक भारत के सिर से मिटा दें और सारे भारत को शुद्ध श्वेत खादी से आच्छादित कर दें— फिर यदि स्वराज्य हाथ जोड़ता हुआ आप के पास न आवे तो आप खुशी से सारे कार्यक्रम को रद्द कर डालेएगा और दूसरा नया कार्यक्रम बनाइएगा। उस के पहले ऐसा करना अत्यन्त आत्मघातक अदूरदर्शिता और जल्दबाजी होगी।

सच्चा कार्यक्षेत्र

भारतवर्ष शहरों में नहीं, देहात में बसता है। यहां शहर तो कोई ७५० हैं; पर देहात हैं सात लाख। शहरों में अधिक तर व्यापारी, सरकारी नौकर, वकील, डाक्टर और मजदूर रहते हैं। पर देहात में प्रायः ९५ फी सदी खेती करने वाले अथवा उसमें सहायता पहुंचाने वाले लोग रहते हैं। इन्हीं देहात के बल पर शहरों के लोग मूंछ मरोड़ कर रहते हैं और सरकार भी लाल–गुलाल बनी रहती है।

शहरों के व्यापारी–समाज को अपने मुनाफे कमाने से फुरसत नहीं; अदालतों में गये और साहबों से हाथ मिलाये बिना चारा नहीं, देश की बात की वहां क्या गुजर? खादी वहां कैसे पहुंचे? सरकारी नौकरों की दुर्गति का तो हाल ही न पूछिए। पढ़े लिखे होते हैं। अखबार–पुस्तकें पढ़ते हैं। सभाओं में भी चले जाते हैं। घर में अकेले बैठ कर देश की दुर्दशा पर दो आंसू बहा लेते होंगे; पर समय होते ही कचहरी में साहब की पेशी के लिए दौड़ जाना पड़ता है। भगवान् ने 'पेट दियो बड़ो पाप लगायो,'। सरकारी नौकर का स्वतन्त्र अस्तित्व तो होता ही नहीं। वह तो सरकार के हाथ बिका गुलाम हो जाता है। भला वे कैसे खादी पहनें? पर उनका कलेजा चीर कर देखिए—उसमें खून की कलम से खींचा हुआ भारत की दीन–दशा का चित्र मौजूद है। उनकी आत्मा निर्बल है, रोटी का दूसरा सहारा नहीं, इसीलिए उन्होंने अपनी आत्मा को बेच दिया है और अपने देश की विपत्ति में सहायक रूप हो रहे हैं।

वकील–डाक्टर अधिक आजाद हैं। अधिक आगे बढ़े हुए हैं। इसका अर्थ इतना ही कि वे सरकार के प्रत्यक्ष गुलाम नहीं। पर अपने धन्धे और अपने स्वार्थ के वे भी इतने गुलाम हो गये हैं कि कितने ही के दरवाजे भारत–माता खादी का सन्देशा लेकर पहुंची; पर उसे खाली वापस लौटना पड़ा।

मजदूर तो प्रायः निरे अपढ़ होते हैं। वे कल कारखानों के और शहरों की बुरी आदतों के पक्के गुलाम हैं। मिल का सस्ता कपड़ा छोड़ कर खादी कौन पहने?

यद्यपि शहरों की सामान्य अवस्था ऐसी है तथापि उन्होंने ही देश की जागृति में सबसे पहले कदम बढ़ाया है। उन्हीं ने देश में चैतन्य की ज्योति फैलाई है। कितने ही व्यापारी–भाइयों ने तिलक–स्वराज्य–कोष में चन्दा दिया है, *विदेशी कपड़ा न खरीदने की प्रतिज्ञा की है, कुछ कुछ लोग खादी भी पहनते हैं। इसी प्रकार कितने ही वकील–डाक्टरों ने भी खादी के प्रचार में तथा देश–हित के कार्यों में बहुत–कुछ हाथ बंटाया है और आज भारत के नेताओं में इसी वर्ग के लोगों की संख्या अधिक है। कुछ सरकारी नौकरों ने भी सरकारी नौकरी को लात मार कर अपनी सजीवता का परिचय दिया है। मजदूरों में भी राष्ट्रीय भावनाओं का प्रवेश होता जाता है और बहुतेरे लोगों के सिर पर सफेद टोपियां दिखाई देती हैं। मतलब यह कि शहरों में घूमने वालों को तो भारत की जागृति के चिह्न दिखाई दे जाते हैं। पर यदि हम देहात में भ्रमण करें तो जहां तहां हमें वर्तमान शासन–प्रणाली का सच्चा और नग्न रूप दिखाई देता है। रस चूस लिये गये गन्ने अथवा आम की तरह सारहीन क्षुधा–पीड़ित देहात का करुण दृश्य देख कर हृदय रोने लगता है। यद्यपि वहां भी महात्मा गांधी का नाम बच्चे बच्चे की जबान पर सुनाई देता है, यद्यपि अपनी दुर्दशा का उन्हें स्वयं अनुभव है, राष्ट्रीय भावों का संचार थोड़ा–बहुत उनके हृदयों में हुआ है; पर उनका आत्मतेज और कार्य–शक्ति इतनी जाग्रत नहीं हुई कि देश की वास्तविक आवश्यकता को समझ कर उसके अनुसार दृढ़ होकर निश्चित मार्ग पर बराबर कदम बढ़ाते रहें। हमारे कार्यकर्ताओं को शहरों में काम करने का जितना मौका मिला है उतना देहात में नहीं। और देहात ही तो हमारा सच्चा कार्यक्षेत्र है। वही तो हमारी शक्ति का उद्गम–स्थान है। देहात के लोग स्वभावतः सरल और सात्विक होते हैं, शहरों की दूषित वायु भी अभी वहां बहुत नहीं पहुंची है। शहरातियों की तरह उन्हें बहुत सी पढ़ी–सीखी अनिष्ट बातें भूल कर फिर नई बातें सीखने के लिए इतना परिश्रम नहीं करना है। क्षेत्र तैयार है; बस बुआई की देर है। डाक, सिका मुजफ्फरनगर, युक्त प्रान्त, से एक भाई ठीक ही लिखते हैं—

"बड़े नेताओं को ग्रामों की ओर अधिक दृष्टि करनी चाहिए। क्योंकि इधर काम करने वालों की बहुत कमी है। अगर जेल से बचे हुए नेता लोग ध्यान दें तो इधर गांवों से तिलक–स्वराज्य–फंड अधिक संख्या में वसूल हो सकता है। इधर गांवों में अच्छी तरह काम किया जाय तो यह इलाका बारडोली की तरह तैयार हो सकता है। जहां से यह पत्र मैं आपको लिख रहा हूं उस ग्राम में कांग्रेस कमेटी कायम है। कमेटी ने चरखा शुमारी की थी। इस गांव में २० जुलाहे हैं और हर हफ्ते ५०० गज कपड़ा तैयार होता है और ६०० चर्खे चलते हैं।"

यदि यह वृत्तान्त ठीक हो तो एक ओर तो यह देहात की तैयारी का सूचक है और दूसरी ओर अधिक सुसंगठित रीति से वहां काम करने की आवश्यकता भी प्रकट करता है। भारत का कोई गांव ऐसा न रहने पावे जहां गांव–कांग्रेस कमिटी न हो

और जहां पंचायत के द्वारा लोग अपने मामलों-मुकदमों का निपटारा न करा लेते हों। शांति और निर्भयता का पाठ लोगों को बराबर पढ़ाया जाय। खादी के प्रचार तथा तैयारी के लिए तो जितनी अनुकूलता देहात में हो सकती है उतनी शहरों में नहीं हो सकती। हिन्दू-मुसलमान-एकता तो देहात में पहले ही से है। वर्तमान अवस्था में उसका कितना महत्व है यह जान जाने पर उसकी जड़ और भी पुख्ता हो जायगी। छुआछूत का जितना बखेड़ा मदरास की तरफ है उतना दूसरी ओर नहीं। पर उत्तरी भारत के देहात से तो यह बीमारी थोड़े ही प्रयत्न से हट सकती है। देहात में कार्यकर्ताओं की भी कमी नहीं रह सकेगी। शहर और कस्बों के एक-एक दो-दो कार्यकर्ता पहुंच कर वहां सिखा-पढ़ा कर नये कार्यकर्ता तैयार कर दें। उन्हें महासभा का ध्येय, अहिंसा का महत्व, ये दो बातें खास तौर पर समझा दें। इस सम्बन्ध में हम कार्यकर्ताओं का ध्यान "हमें क्या क्या करना चाहिए" इस टिप्पणी की ओर खींचना चाहते हैं। यदि कार्यकर्ता उत्साह के साथ आगे बढ़ें तो दो ही महीने में देहात में इतनी तैयारी हो सकती है कि सरकार के लिए महात्मा गांधी को तथा हमारे दूसरे नेताओं और कार्यकर्ताओं को जेल में रखना असम्भव हो जाय। और जहां हमारा खादी का कार्यक्रम पूरा हुआ कि इन्हीं निर्बल देहात से वह अद्भुत शक्ति प्रकट होगी कि स्वराज्य दौड़ता हुआ हमारा चरण चूमने आवेगा और खिलाफत और पंजाब के घावों का ठंढा मरहम यही सरकार हमें घर बैठे दे जायगी।

कपड़े की कुंजी

कपड़ा तो उसका नाम जिससे शरीर ढंक सकता हो। फिल हाल तो प्रजा की स्थिति दोनों प्रकार से नग्न ही है। एक वर्ग तो विलास और शोभा के पीछे इतना पागल हो रहा है कि वह कपड़े पहनते हुए भी नग्नवत् ही रहता है। यही स्थिति दूसरे वर्ग की कपड़े के अभाव में हो रही है।

भारत में शायद ही कोई ऐसी बस्ती हो जिसमें अपने लिए कपड़ा बनाने लायक कच्चे माल की भी कमी हो।

कपड़ा बनाने के लिए जिन जिन साधनों की जरूरत होती है वे नीचे लिखे जाते हैं—

जमीन, रुईओटी, तांत, चरखा और करघा और इनके साथ साथ किसान, कपास ओटने वाला, धुनिया, चरखा कातने वाले, और जुलाहे।

अगर फसल अच्छी हो तो हरएक एकड़ में २००, पौंड कपास पैदा हो सकती है। पर भारत में कपास पैदा होने की औसत फी एकड़ सौ पौंड गिनी जाती है।

साल भर में अगर काम करने के दिन ३०० गिने जायं तो एक आदमी रुईओटी पर हाथ से ३००० पौंड रुई तैयार कर सकता है उसी प्रकार एक धुनिया भी ३००० पौंड रुई धुनक उसकी अच्छी पूनियां बना सकता है।

अगर रोज ४ घंटे भी आदमी काम करे तो एक आदमी १० नंबर का ५० पौंड सूत एक ही चरखे पर एक साल में कात सकता है। और उसी सूत का (१० नंबर के) २७ इंच अर्ज का ७५० पौंड कपड़ा जुलाहे का कुटुंब एक साल में बुन सकता है।

अगर सूत महीन हो तो वजन की तादाद अवश्य ही घटेगी। पर इधर उसी अंश में उसकी लंबाई बढ़ जायगी। एक आदमी को साल भर में करीब १० पौंड कपड़े की आवश्यकता होती है। इस हिसाब से २०० स्त्री-पुरुषों की आबादी में अगर

३० एकड़ जमीन में कपास की उपज हो,

१ आदमी कपास ओटने वाला हो,

१ धुनिया हो,

६० चरखे नित्य चार घंटे चलते रहें, और चार जुलाहों के कुटुंब हों तो उस बस्ती से कपड़े के नाम पर एक पाई भी बाहर नहीं जा सकती।

यही हिसाब आर्थिक दृष्टि से नीचे दिया गया है—

३० एकड़ जमीन पर फी एकड़ १० रुपये के हिसाब से लागत खर्च रु.	३००
फी एकड़ २रुपये के हिसाब से लगान	६०
३००० पौंड की पूनियां बनाई दो आना पौंड के हिसाब से रु.	३७५
३००० पौंड की सूत कताई छः आना पौंड के हिसाब से	११२५
३००० पौंड सूत की बुनाई आठ आना पौंड के हिसाब से	१५००
कुल	३३६०-०-०

कपास की ओटाई इस लिए नहीं गिनी गई कि उसकी कीमत के बिनौले बच जाते हैं

इस प्रकार ३३६० रुपये में २०० आदमियों की बस्ती को ३००० पौंड कपड़ा मिल सकता है। अर्थात् कपड़े का भाव १-२-० पौंड हुआ

अथवा जो आदमी रोज २ घंटे के हिसाब से काम करके एक घंटे में १। तोला कपास धुनक, कात, और बुन सकता हो, रुई के भाव में कपड़ा प्राप्त कर अच्छी तरह अपने शरीर की रक्षा कर सकता है।

अगर महीन कपड़ा तैयार करना हो तो कातने और बुनने की मजदूरी अधिक गिनना होगी। और चरखे तथा करघों की संख्या बढ़ानी होगी। और उसी हिसाब से उसकी कीमत भी अधिक होगी।

हरएक स्वराज्यवादी को चाहिए कि वह अपने गांव की तुलना ऊपर बताई दृष्टि से कर ले और उसे जिस किसी साधन की कमी बेशी मालूम हो उसकी खबर फौरन अपनी प्रान्तीय महासभा-समिति को दे दे जिस से उस कमीबेशी का वह उचित प्रबंध कर सके।

(नवजीवन) लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

पंजाब में दमन

पंजाब में दमन-चक्र की गति अभी तक रुकी नहीं और न कुछ ऐसे चिन्ह ही दिखाई देते हैं। अभी तक कोई १५०० गिरफ्तारियां हुई हैं। इनमें गुरुद्वारा समिति के कोई ३० सदस्य हैं और बाकी सब प्रायः सभ्य, सार्वजनिक कार्यकर्ता, अकाली जथाओं के पदाधिकारी तथा गुरुद्वारा-सुधार आन्दोलन के साथ सहानुभूति रखने वाले उसके सहायक ही हैं। कहीं कहीं तो गुरुद्वारा-समिति के प्रायः सब के सब सदस्य गिरफ्तार कर लिए गये हैं। यह सब हाल विश्वसनीय मालूम होता है। यह खबर खुद गु. प्र. स के ही द्वारा आई है। और सरकार ने इसका खंडन भी नहीं किया है।

सरकार अपने कम्युनिक में कह रही है कि इन गिरफ्तारियों का संबंध सिर्फ राजनैतिक हलचलों से है। वह सिख धर्म के तथा कानून के पाबंद सिखों के साथ पूरी सहानुभूति रखती है। पर हमारी समझ में यही नहीं आता कि यह बात हो ही कैसे सकती है। क्योंकि दूसरी ओर वह कहती है कि सरकार के कानून तथा जनता की शान्ति को भंग करने वाले को वह कभी क्षमा कर ही नहीं सकती। गिरफ्तारियां सिख-जाती के लोगों की ही हो रही हैं और उन लोगों का व्यवहार वहां कैसा है यह श्री सन्तानम् के पत्र से जिसका सार आगे दिया गया है, स्पष्ट होता है। सरकार अपने ७ मार्च १९२२ के कम्यूनिक में सिख जाति पर साफ तौर से इलजाम मढती है। उनके भी मुंहतोड़ जवाब उस पत्रमें हैं। जब यह हालत है, कि सरकार तो कानून का भंग तथा प्रजा की शांति का भंग करनेवाले मानती है पर खास पंजाब के लोग उन्हें ऐसे नहीं मानते तब सरकार के ख्यालात गलत क्यों न माने जायं? सरकार का कहना है कि इन गिरफ्तारियों को करते हुए सरकार ने इस बात पर ध्यान रक्खा है कि सिक्खों के धार्मिक भाव पर कहीं आघात न होने पावे; उनका संमान करने की ओर ही विशेष ध्यान दिया है। पर गु. सुधार समिति तो लिखती है कि न केवल सिखों के धार्मिक भावों की अवहेलना ही नही की गई है बल्कि उन्हें उत्तेजित भी किया गया है। वह ऐसे कई उदाहरण पेश करती है जिसमें सिक्खों की डाढी और सिर के बाल खींचे गये हैं। सिक्ख इसे बहुत गहरा धार्मिक अपमान मानते हैं। दूसरी जगह बरायम नंगाल जिला (अमृतसर) में वे अमृत-संस्कार कर रहे थे। उसमें सरकार की ओरसे बाधा डाली गई। यदि सरकार का उद्देश शुद्ध हो तो वह इन बातों के खंडन करने का साहस क्यों नहीं करती?

सरकार का यह कहना कि वह गुरुद्वारा-सुधार आन्दोलन के खिलाफ नहीं है, कहांतक सत्य है, यह हम बता चुके हैं। अब सरकार के उस कम्यूनिक का सार जिसमें वह सिक्खों पर अशांति फैलाने का आरोप मढती है, नीचे देते हैं। "कई आदमियों के झुंडों ने —जो खुद को अकाली कहते हैं, प्रजामें अशांति फैला रक्खी है। वे फौज की तरह अपने झुंडों की रचना कर लेते हैं और हथियार लेकर घूमा करते हैं। कभी कभी तो ये मुसाफरों को अपनी तलवारें खींच कर डराते हैं। कई रेलों पर बगैर टिकट ही चढ जाते हैं। कई सरकारी अधिकारियों को धमकाते फिरते हैं। छुट्टी पर जो सिपाही होते हैं उन से छेडछाड करते हैं, डराते हैं और उनकी अनुपस्थिति में उनकी स्त्रियों से छेडछाड करने का डर दिखाते हैं, और सैनिक नौकरी छोडने के लिए उन पर दबाव डालते हैं"।

आगे सरकार यह कहती है कि "प्रजा में इस प्रकार उपद्रव मचाने वालों को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया है और मौका देखेगी तो उनकी और भी खबर लेगी"। फिर यह यह आश्वासन देती है "कानून-भक्त सिक्खों के प्रति सरकार की सहानुभूति और उनके धर्म की रक्षा करने की उसकी इच्छा जरा भी कम नहीं हुई है"।

अब हम श्री सन्तानम् के पूर्वोक्त पत्र का सार यहां देते हैं जिसमें उन्होंने सरकार के इन समस्त आरोपों का खंडन किया है—

"इसमें कोई शक नहीं कि सिखों में आश्चर्यजनक जागृति फैल गई है। वे नियम के बडे पाबंद हैं। अपने नेताओं की आज्ञाओं का वे अक्षरशः पालन करते हैं। शिरोमणि सिक्ख सभा का सिक्ख समाज पर बडा प्रभाव है। वे बडे बहादुर हैं और बुरे से बुरे चरित्र वाले मनुष्यों के चरित्र में भी धार्मिक और राजनैतिक जोश के कारण बडा आश्चर्य कारक परिवर्तन हो गया है।

आज जो सरकारी कम्यूनिक निकाला गया है उसमें बहुत सी बातें सरसरी तौरपर कही गई हैं पर मैं जानता हूं कि उनका सिद्ध करना सरकार के लिए कठिन है। उन आरोपों का जवाब मैं नीचे देता हूं।

१ "हथियार लेकर घूमना" ठीक है। वे अपने कृपाण और मफजन्न लेकर गुरुद्वारा आन्दोलन के लिए घूमते हैं? पर यह कोई नई बात नहीं है। यह रिवाज तो सदियों से चला आया है। और मैंने आजतक ऐसा नहीं सुना कि इनमें से किसीने दूसरे को राजनैतिक कारणों के लिए मारा हो। न वह कम्यूनिक ही इसका उल्लेख करता है।

२ "रेलपर बगैर-टिकट चढना":—हां, इसके भी कुछ उदाहरण मैंने सुने हैं। पर यह अपराध केवल उन्हींका नहीं है। रेलवे कर्मचारी गण से तीसरे दर्जे के मुसाफरों को बहुत तकलीफें होती हैं। टिकट देनेका प्रबंध इतना खराब होता है कि कईबार भीड में टिकट मिलना असम्भव हो जाता है और मुसाफिरों को लाचार होकर बगैर टिकट ही गाडी पर चढना पडता है। मैं उसकी हिमायत नहीं करता। तथापि-मैं यह अवश्य कहूंगा कि यह कानून-भंग बहुत बार जानबूझ कर नहीं किया जाता।

३ "छुट्टी पर आये हुए सिपाहियों को डराना तथा उनकी स्त्रियों से छेडछाड करने की धमकी देना।" यह तो सरासर झूठ है। अभी तो गुरुद्वारा समिति ने सिक्ख सिपाहियों को फौजी नोकरी छोडने का कहा ही नहीं है अगर वह यह करती तो उसे आश्चर्यजनक सफलता मिलती। यह बात जरुर है कि जालंधर की दो रेजिमेन्टों ने मेसोपोटामिया में जाने से इन्कार कर दिया था। इस आरोप की जड में यही बात होगी। स्त्रियों से छेड छाड करने का जो आरोप उनके सिरपर मढा गया है उसपर तो मैं विश्वास ही नही कर सकता। मुझे पूरा विश्वास है कि सिक्ख लोग ऐसी नीचता कर ही नहीं सकते।

"अधिकारियों को तथा मेजिस्ट्रेटों को धमकाना" यह आरोप मढनेकी तो सरकार को आदत ही पडगई है। राजनैतिक मामलों को सुनने के लिए बहुत से लोग जाते हैं। अदालतें बहुत बार कृपाण बाहर रखने की दुआ देती हैं। बस, इसे वे नहीं मानते और बाहर ही खडे रहते हैं और "सत् श्री अकाल" का जयघोष करते रहते हैं। कानूनभंग या अधिकारियों के धमकाने का तो एक भी उदाहरण मैंने नही सुना। हां, कई लोगोंने सरकारी अधिकारियों को यह जरुर कहा है कि हम आपका हुक्म नहीं मानेंगे बल्कि हमारे सरदार खडक सिंहका ही हुक्म मानेंगे।

सिक्ख-राज वाली बात में भी कुछ दम नहीं है। वह तो सरकार की चाल है कि वह हिंदुस्तान की जातियों में लडाई के बीज बोने के लिए ऐसे सोर बीच में छोड दिया करती है। उन लोगों में एक गाना ऐसा है जिसका उलटा अर्थ भी लगाया जा सकता है। पर वह तो जातीय गान है। उसका आरंभ इस प्रकार है।

"राज करेगा खालसा, एके रहे ना कोई।

मैंने जेल में इस गायन को कईबार हिंदू-मुसलमानों को प्रेम से गाते सुना है।

जयकृष्ण प्रभुदास भनसाली द्वारा नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर, सरकीगरानी वाडी, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित॥

किसानों के प्रति

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ५)

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ } अहमदाबाद—वैशाख सुदि ११, संवत १९७९, रविवार, सायंकाल, ७ मई, १९२२ ई० { अंक ३८

टिप्पणियां

परिवर्तन की पुकार

बंगाल में तो महासभा के कार्यक्रम में फेर-फार करने की पुकार इसी समय से बन्द पड़ गई है; पर महाराष्ट्र, बरार और मराठी मध्यप्रान्त के कुछ नेता बराबर मैदान में अड़े हुए हैं। इधर जो समाचार मराठी मध्यप्रान्त और महाराष्ट्र-प्रान्त से आये हैं उनसे यही सिद्ध होता जाता है कि कार्यक्रम में फेर-बदल चाहने वाले कुछ इने-गिने नेता लोग हैं। जनता तो हृदय से महात्मा गांधी के और महासभा के साथ है। नागपुर, भंडारा, चांदा में बड़ी बड़ी सभायें परिवर्तन का विरोध करने के लिए हुईं। उनमें परिवर्तन के प्रेमी श्रीयुत अभ्यंकर डाक्टर मुंजे आदि भी उपस्थित थे। उन्होंने भरसक अपने पक्ष का समर्थन किया। पर नागपुर में कोई २० और भंडारा में सिर्फ २ हाथ उनके पक्ष में उठे। इसी तरह रत्नागिरी जिले के आकवण नाम के स्थान पर भी राजनैतिक परिषद हुई थी। वहां की जनता ने भी महासभा के कार्यक्रम को सच्चे दिल के साथ अपनाया और महात्मा गांधी के प्रति अटूट भक्ति दिखाई। वहां केवल ३ मत विरुद्ध थे। सितारे की सभा का जिक्र हम पहले ही कर चुके हैं। हां; बरार की खबरें इसके विपरीत हैं। वहां तीन-चार स्थानों में सभाओं के द्वारा परिवर्तन की आवश्यकता बताई गई है। इस से मराठी मध्यप्रान्त और महाराष्ट्र प्रान्त की जनता के हृदय का हाल स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। महाराष्ट्र-प्रान्त में तो नेताओं में भी गहरा मतभेद है। इसके विपरीत सारा भारत शान्त है। वह महासभा के साथ है। वह महात्मा गांधी के ही पद-चिन्ह को देख कर चलना चाहता है। उस दिन पंजाब ने बटाला में परिषद् कर के महासभा के कार्यक्रम पर अपनी पूरी भक्ति प्रकट की। इस समय दमन का दौर-दौरा जितना पंजाब में है उतना दूसरी जगह नहीं। तिसपर भी वह अपने पथ से हटना नहीं चाहता। उसने समझ लिया है कि केवल पंजाब की नहीं, बल्कि सारे देश की मुक्ति इसी रास्ते में है।

यह स्वाभाविक भी है। देश ने इस कार्यक्रम को क्यों पसन्द किया है? देश महात्मा गांधी पर क्यों मुग्ध है? जनता का इस पर और महासभा पर इतना गहरा विश्वास क्यों है? इसीलिए कि देश को उससे अद्भुत चैतन्य मिला है, सच्चा जीवन मिला है, स्वराज्य की झांकी दिखाई दी है। कार्यक्रम में केवल अन्वेषण या उपयोगीपन से काम नहीं चलता, उसके साथ घोर तप, त्याग और पवित्र चरित्र की भी आवश्यकता है। केवल उंगली से रास्ता दिखा देना काफी नहीं होता; बल्कि छाती पर हाथ रख कर कहना पड़ता है—चलो, इसी रास्ते से स्वराज्य मिलेगा। चलो मैं खुद तुम्हारे साथ चलता हूं। जनता को विश्वास तो उसी पर होता है जिसकी सच्चरित्रता, साधुता, सत्यता, और त्याग की परीक्षा वह कर चुकी हो। महात्मा गांधी सब तरह की आंच में काफी तप कर खरे सोने साबित हो चुके हैं। यही कारण है जो हजारों भाई आज उनकी बातपर जेलों में तपस्या कर रहे हैं। यही कारण है जो आज कुछ कार्यकर्ताओं के मुंह से पथ छोड़ने की बात सुनते ही जनता उनके विरोध के लिए खड़ी हो जाती है।

हां, मत प्रकट करने की या चर्चा करने की आजादी सबको है। पर इस आजादी का उपयोग करते समय देश, काल, पात्र के विचार करने की भी जरूरत है या नहीं? जब हमारा मन चाहे तभी, जब हम मौका देखें तभी, उसका उपयोग करते रहना क्या बुद्धिमानी है? देहली की महासमिति में असहयोग के फलाफल की जांच करने वाली समिति संबंधी सूचना पर काफी चर्चा नहीं हुई? क्या वहां राष्ट्र ने उसको गैर जरूरी नहीं समझा? क्या आप शुरू से अब तक कार्यक्रम में परिवर्तन की चर्चा नहीं करते आये हैं? क्या देश ने आपका साथ दिया है? फिर बार बार पिसे हुए को पीसने से क्या लाभ? यह हानि अलबत्त है कि देश की जो शक्ति कार्यक्रम की पूर्ति में खर्च होनी चाहिए वह बिखर रही है, अखबारों के कालम रंगे जा रहे हैं, विरोध सभायें हो रही हैं और जहां मिठास है वहां कड़ुआपन पैदा होने का भय होता जा रहा है। कुछ पत्रों में इस विषय पर जिस भाषा में चर्चा हुई है उसे देखते हुए दुःख के साथ कहना पड़ता है कि वह अप्रियता की सीमा तक पहुंच गई है। जहां सरमदक वालों के साथ मित्रता करना है तहां घर के ही झगड़ों से हमें छुट्टी नहीं! घर में आग लग रही है, देश की नौका कर्णधार के अभाव से डगमगा रही है, जालिम चारों ओर तरह तरह के जाल फैलाता जा रहा है, और हम आपस में तू तू मैं-मैं करना पसन्द करते हैं। चर्चा से लाभ है, पर कब? साधारण समय में। असाधारण समय में तो कोरी चर्चा के समय जितना अपने

काम को धक्का पहुंचाना है। हां, जिसे यह रास्ता पसन्द न हो, वह उसे छोड़ देने के लिए आजाद है; वह दूसरा रास्ता तलाश करे और खुद चल कर जनता को दिखावे। जनता को श्रद्धा होगी तो वह उस पर चलेगी। पर एक रास्ते पर खड़े हो कर दूसरे रास्ते की चिल्लाहट मचाना व्यर्थ नहीं तो क्या है? दोनोंका समय और शक्ति फजूल खोना नहीं तो क्या है?

मुळशी पेटा में सत्याग्रह

पूना जिले में मुळशी पेटा नामकी एक तराई है वहां मुळा और नीला नदी के पानी को रोक कर सह्याद्रि पर्वत—पश्चिमी घाट—पर एक बनावटी जलप्रपात बनाकर उसके द्वारा बिजली पैदा करने और उसे बम्बई की मिलों, ट्राम-गाड़ियों तथा रेलों को पहुंचाने का प्रयत्न बम्बई की मशहूर ताता कम्पनी ने आरम्भ किया है। मुळशी पेटा की आबादी कोई १०–१५ हजार है और उसमें कोई ५४ छोटे बड़े गांव हैं। वहां १०० वर्गमील का पानी एकत्र कर के ताता कम्पनी १६ मील के घेरे का एक बड़ा भारी तालाब बनाना चाहती है। तालाब बन जाने से मुळशी पेटा के पूर्वोक्त सब गांव सदा के लिए जल-मग्न हो जायंगे।

मुळशी पेटा के वर्तमान निवासी वहां कोई ८०० बरसों के पहले से अर्थात् बहमनी राज्य के पहले से रह रहे हैं। वे मावळे कहलाते हैं। वे वीर, साहसी और अपनी वपौती का अभिमान रखने वाले हैं। टाटा कंपनी में ६० फी सदी रुपया विदेशी लोगों का है। इस बिजली के कारखाने से फायदा यह बताया जाता है कि कोयले की बचत होगी और समय पर कोयला न मिलने से मिलों, रेलों आदि की जो हानि होती है वह न होने पावेगी। पर मावळों का कहना है कि यह धरती हमारी वपौती है। यह शिवाजी महाराज के स्वराज्य का प्रधान भाग है। मरते दम तक हम इसे गारत न होने देंगे। फिर लोगों को डर है कि तालाब और जल प्रपात ही यह एक ही तजवीज नहीं है, बल्कि सह्याद्रि की घाटियों पर ऐसे कितने ही कारखानों के खुलने का अन्देशा है। तब न जाने कितने गांवों का जल-प्रलय में डूब जाना होगा।

सरकार ताता कम्पनी की तरफदार है। मिलों, रेलों और कम्पनियों में सरकार का स्वार्थ स्पष्ट ही है। कोयले के सवाल में खुद वह भी अपना गहरा स्वार्थ रखती है। पिछले यारोपीय महाभारत में सरकार को कोयले की कमी से जिन दिक्कतों का सामना करना पड़ा उसे सरकार भूल नहीं सकती। जब मावळों ने ताता कम्पनी के इस इरादे का विरोध किया तब सरकार ने लैंड एक्विजिशन एक्ट के अनुसार उस सारी जमीन को अपने कब्जे में कर लेने की ठानी। इस कानून के अनुसार सरकार हर किसी की जमीन का उचित मुआवजा देकर सर्व साधारण के भले के लिए अधिकार में कर सकती है। पर मुळशी पेटा के लोगों का यह उज्र है कि इसमें सिवा किसी खास कम्पनी या खुद सरकार के सर्व साधारण को विशेष लाभ नहीं है। अतएव १०–१५ हजार लोगों से उनकी पैतृक सम्पत्ति छीन लेना कानून के नाम पर सरासर अन्याय करना है।

मावळों के विरोध की जब कम्पनी ने परवा न की तब उन्होंने पिछले साल रामनवमी से सत्याग्रह के अमोघ शस्त्र से काम लेने का निश्चय किया। औरत-मर्द मिलकर उन जगहों पर जा कर बैठ गये जहां कम्पनी के लोग तालाब का बांध तैयार कर रहे थे। उन पर उन्होंने पंप से गरम पानी छोड़ा। नेता और मावलों का बदन उससे भुन गया पर वे टससे मस न हुए। तब कम्पनी ने अपने काम को कुछ समय तक मुल्तवी कर दिया।

अब कुछ दिनों से फिर कम्पनी ने काम शुरू किया है। लोग भी संग्राम के लिए सज्जित हो गये हैं। महाराष्ट्र के प्रायः सब प्रसिद्ध नेता उनके साथ हैं। सरकार १४४ दफा के द्वारा कम्पनी की मदद कर रही है। वीर सत्याग्रहियों ने इस धारा के तोड़ने का संकल्प कर लिया है। कम्पनी ने अपनी ओर से कितने ही गुंडे वहां रख छोड़े हैं। वे सत्याग्रहियों और उनके नेताओं के साथ बुरी तरह मारपीट तक करते हैं। स्त्रियों के केश और आंचल पकड़ कर खींचते हैं। हाल के समाचार हैं कि गुंडों ने नेताओं और सत्याग्रहियों को खूब पीटा है। लोग बेहोश तक हो गये हैं। उनके एक नेता श्री० करंदीकर को उनके पांच साथियों सहित ३ महीने सख्त कैद और ५०) जुर्माना की सजा दी गई है। १४४ दफा को तोड़ने वाले कोई १५० लोगों के नाम पुलिस लिख कर ले गई है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध नेता, प्रो० मराठे बापूकाका, दामले, दास्ता आदि रणस्थल पर मौजूद हैं और अपूर्व शान्ति के साथ युद्ध का संचालन कर रहे हैं।

ईश्वर सत्य और न्याय का तरफदार है। वह 'दीनन दुख हारी' है। उसके नाम पर मावलियों ने युद्ध आरंभ किया है। यदि वे शांति के साथ अपने व्रत पर अटल रहे तो विजय उनकी है। निर्दोष और शुद्ध बलिदान से जालिम का जोर नष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। जो सरकार लोगों की इच्छा के बजाय अपने शस्त्र-बल और सत्ताबल पर घमंड रखती है उसका नाश निश्चित समझिए। सुराज्य में प्रजा और सरकार की इच्छा में भिन्नता नहीं हो सकती। पर विदेशी सरकार का स्वार्थ प्रजा के स्वार्थ से कैसे मेल खा सकता है? कुछ व्यक्तियों के लाभ के लिए १०–१५ हजार आदमियों की इच्छाओं व अधिकारों को, कुचलने का प्रयत्न करना विदेशी राज्य में ही मुमकिन हो सकता है। और इसीलिए भारत स्वराज्य के लिए इतना कटिबद्ध है। बिना स्वराज्य के भारत का त्राणोपाय नहीं। और स्वराज्य बिना शांतिमय असहयोग के मिलना कठिन है।

एक लाख का दान

लाड बजार की लुहाणा जाति के कच्छ कोठड़ा वाले श्री० कांनजी कल्याणजी, नागजी विश्राम कोठारी दुकान के मालिक ने, श्री महात्माजी के नाम एक लाख रुपये भेजे हैं। आपने गये साल भी दस हजार रुपये तिलक स्वराज्य-कोष में दान किये थे। इस साल आपने अपनी शक्ति के अनुसार देशसेवा के लिए एक लाख रुपये भेजे हैं। आपने "धर्म-कर्म के मार्गदर्शक परम पूजनीय" श्री महात्माजी के नाम "निर्भय स्थल" (येरोडा जेल) के पते पर एक पत्र भी भेजा है। उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है—

गये साल तिलक स्वराज्य-कोष के लिए दस हजार रुपये आपके चरण में अर्पण करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। उसी समय कुछ और भी आपकी सेवा में अर्पण करने की मेरी अभिलाषा थी; पर कितने ही योगायोग के कारण आप अपनी मातृभूमि के उद्धार के लिए जेल चले गये, इसलिए उसे मैं पूरा न कर सका।

इस रकम का उपयोग करना आप ही पर छोड़ रहा हूं, जिससे आप उसका उपयोग देश के इस धर्म-युद्ध के समय में अच्छे से अच्छे काम के लिए कर सकें। यह दान दे कर मेरे हृदय में अभिमान या अहंकार का प्रवेश न होने पावे इसलिए

मैं हृदय से परमात्मा की प्रार्थना करता हूं। आप, देशभक्त लालाजी, पं. मोतीलालजी, मौलाना शौकत अली, मौ. महम्मद अली, आदि देशभक्तों ने मातृभूमि के लिए अपने प्राण भी अर्पण कर दिये हैं देश की स्त्रियां और पुरुष ही नहीं बल्कि विद्यार्थियों ने भी जेल जा कर अपने को मातृभूमि की बलिवेदी पर चढ़ा दिया है। कहां वे अलौकिक सेवायें, स्वार्थत्याग और आत्मोत्सर्ग के दिव्य उदाहरण और कहां मेरी यह छोटीसी द्रव्य-सेवा आप तो प्राणिमात्र में से हिंसा-वृत्ति को निकाल कर उन्हें प्रेम और आत्मशुद्धि का मार्ग दिखाने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। इस सत्य-मंथन में ही अमृत है। इस अमृत को जो हिन्दू, मुसलमान, अंगरेज पीयेंगे वे मुक्त हो कर स्वराज्य का उपभोग करेंगे। आप तो "निर्भय स्थल"—यरोडा जेल में बैठे हैं। तथापि आपकी कुशल के विषय में कई लोगों को शंका है। पर आप वहां नारियल की चोटी की रस्सी बना २ कर उन्हें बता रहे हैं कि वे तो अपनी भीतरी हिंसावृत्ति के कारण ही रस्सी को सांप समझ रहे हैं। उसी प्रकार हिंदुस्तान की प्रजा में अब भी जो भेद और फूट दिखाई दे रही है उसे आप रस्सी का एक एक धागा जोड़ कर एकता का पाठ पढ़ा रहे हैं। आप तो हिंदुस्तानी तथा अंगरेजी दोनों प्रजाओं को बोध दे रहे हैं। परमात्मा से मेरी यह प्रार्थना है कि आप जो अलौकिक आत्म-त्याग कर रहे हैं उससे प्रजा पर जितने उपकार हो रहे हैं यह प्रजा समझे और आपके आज्ञानुसार सेवामार्ग में तथा महासभा के रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने में तन, मन, धन से जुट जाय।

दमन का दौरदौरा

दमन के बेढंगे समाचार प्रायः रोज आते हैं। भारतीयों को रोज अपने देश के प्रति भक्ति रखने तथा स्वतंत्रता की उपासना करने के गहरे अपराध के लिए कड़ी कड़ी सजायें सुनाई जा रही हैं। स्वतंत्रता की उपासना तो दूर की बात है बल्कि उस भावना के उच्चार को भी यह सरकार बरदाश्त नहीं कर सकती।

खादी टोपी पहनने तथा वन्देमातरम् का जयघोष करने को भी वह पाप समझती है। वह अपने नौकरों से कहती है कि अपने असहयोगी रिश्तेदारों से भी संबंध तोड़ दो उनको अपने घर में मत रक्खो। दमन की आलोचना न करो, सरकार की बेजा कानूनों पर रंज भी प्रकट मत करो। एकबारगी पत्थर बन जाओ जिधर ठोकर मारे उधर लुढ़क जाओ। धूलि पर भी जोर से पैर पटकारने पर वह उड़कर सिर पर बैठ जाती है; पर सरकार तो चाहती है कि लोग उससे भी बदतर होजायं। उस रोज बिलासपुर के प्रसिद्ध मालगुजार काजी महमूद बेग अपने किसी रिश्तेदार से भेंट करने पुलिस अहाते में गये। उन्हें देखते ही पु. सु. उनपर टूट पड़े। उन्हें खूब डांटा। उनकी गांधी टोपी छीन ली, उसे पैरों से कुचल डाला और जला दिया। इस पर शहर में सभा हुई और नागरिकोंने साहब बहादुर की करतूत का तीव्र निषेध भी किया। काजी साहब ने वाइसराय को तार भी दिया है। देखना है "न्यायमूर्ति" वाइसराय क्या करते हैं। वही पु. सु. सैंबर्थस्ट साहब एक दिन अपने मित्र के साथ मोटर में जा रहे थे कि एक बच्चे ने "वन्देमातरम्" की आवाज की। साहब ने मोटर रोक दी पर लड़का रफूचक्कर हो गया। आखिर साहब बहादुर ने कितने ही निरपराध लोगों पर अपना रोष निकाला फिर गाड़ी में सवार होकर चल दिये।

पंजाब के समाचार हैं कि झेलम की पलटन नंबर ४५ के दो सिपाहियों ने इस दमन के विरोध में इस्तीफा देने का विचार प्रकट किया तथा दूसरे सिपाहियों को भी कहा। बस, इस अपराध के लिए एक को १४ साल की और दूसरे को ८ साल की कड़ी कैद की सजा ठोंक दी गई।

मदरास के समाचार हैं कि गंजम के सरकारी वकील को मदरास सरकार से यह हिदायत दी गई है कि चूंकि तुम्हारा लड़का श्री सी. वी. गिरि बैरिस्टर असहयोगी हो गया है और तुम उसे अपने यहां रहने देते हो, इसलिए तुमको अपने पद का इस्तीफा दे देना चाहिए। अगर अपने पद पर पूर्ववत् काम करना चाहते हो तो लड़के को घर से बाहर कर दो और अपने असहयोगी सम्बंधियों से संबंध छोड़ दो! वकील साहब मान धनी हैं। उनसे यह अपमान न सहा गया और तुरन्त अपने पद का इस्तीफा दे दिया।

गई २५ अप्रैल को फतहपुर की महासभा-समिति के मन्त्री श्रीअमीरुद्दीन तथा एक दूसरे सज्जन को ९ माह की सख्त कैद की सजा दी गई। आपका अपराध यह था कि आपने एक दुकानदार से हड़ताल के दिन दुकान बंद रखने का अनुरोध किया था।

इस दमन के ताप का फल पश्चिमी क्षितिज पर मानो प्रलयकारी बादलों के रूप में प्रकट होना चाहता है। परमात्मा संसार की रक्षा करें!

मशीन का सिला कपड़ा

लाक जिला मुजफ्फरनगर (युक्तप्रांत) से एक भाई नीचे लिखे सवाल करते हैं—

१ मशीन से कपड़ा सीया जाय या नहीं?

२ महासभा का सदस्य या कोई अधिकारी मशीन से कपड़ा सीये या नहीं?

३ अगर सीया जाय तो विदेशी कपड़ा ही सीया जाय या शुद्ध खादी या हिंदुस्तानी मिलों का ही।

४ महासभा के कार्यकर्ताओं को मशीन का सिला कपड़ा पहनना चाहिए या नहीं?

इन सवालों से यह जाना जाता है कि छोटे छोटे मुकामों के लोग भी स्वदेशी-धर्म में कितनी दिलचस्पी ले रहे हैं।

महात्माजी का कहना है कि मशीन का कता-बुना कपड़ा, फिर वह हिंदुस्तान में ही बना हुआ क्यों न हो, न पहनना चाहिए। ऊपर लिखे सवाल भी हमारे खयाल में इसी बात पर प्रश्न-कर्त्ता के दिल में उठे होंगे। हां, तो महात्माजी यह क्यों कहते हैं कि मशीन का कता बुना कपड़ा न पहनना चाहिए? इसके कारण दो हैं—

१ मशीन का कता-बुना कपड़ा अगर विदेशी हो तो उसके खरीदने से देश का तमाम धन विदेश जाता है, इससे देश कंगाल होता है।

२ अगर वह हिंदुस्तान की ही मिलों में बना हो तो उससे भी देश की हानि प्रायः उतनी ही है। क्योंकि देश की अधिकतर जनता उसी प्रकार बेकार अतएव भूखी रहती है। शराब से विवेक से जाती है। उसी प्रकार मिलों में काम करने वाले मजदूरों में अधर्म, अनीति और रोग बढ़ते हैं।

अब हमें यह देखना है कि क्या यही हालत मशीन पर कपड़ा सीने से भी होगी? कभी इस तक कोई भी काम जहांतक हो कम समय में हो सके यह तो हम भी चाहते हैं। संसार में

यंत्रों का आविष्कार भी इसीलिए हुआ। कुए से पानी खींचने का रेंहट, आटा पीसने की चक्की और सूत कातने का चर्खा आदि भी कुछ हदतक यंत्र ही कहे जा सकते हैं। पर महात्माजी ने इन्हें छोड़ कर हाथ से पानी खींचना, हाथ से ही पत्थर पर अनाज पीसना और बिना चरखे के हाथ से ही सूत कातने का उपदेश नहीं दिया। इसका कारण यह है कि इन छोटे छोटे यंत्रों में वे बुराइयां नहीं है जो बड़ी बड़ी यंत्रशालाओं में होती हैं। सीने की मशीन भी एक ऐसाही छोटासा यंत्र है, जो चरखे की तरह घर घर बैठे बैठे चलाया जा सकता है। इससे न रोग, अनीति और अधर्म फैलते हैं और न इससे धनका असमान विभाग होता है। जो उसपर काम करता है उसीको उसकी मज्दूरी मिल जाती है। नफा खाने वाला कोई तीसरा आदमी नहीं होता।

इतना नुकसान जरूर है कि इसकी कीमत के तथा औजारों के रुपये विदेश जाते हैं। पर इसका इलाज यह है कि अगर कोई भारतीय कारीगर एक ऐसी ही कल का आविष्कार कर दे तो वे रुपये भी बाहर न जाने पावें। ऐसे यंत्र का भारत में आविष्कार होने पर हम अगर विदेशी मशीनें काम में लावें तो जरूर अधर्म होगा। इसलिए फिलहाल मशीनों पर कपड़ा सीना तथा उसे पहनना हानिकर नहीं। पर जो कपड़ा हम सीयें या पहनें वह हाथकता-बुना जरूर होना चाहिए। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि हाथ का सीया कपड़ा इससे भी अधिक शुद्ध और पवित्र है।

अहिंसा का असर

अपने ध्येय की सिद्धि के लिए दूसरे को मारने में नहीं, बल्कि खुद मरजाने में सच्ची शूरता है। यह अहिंसा का आदर्श है। हां, यह सच है कि आज महात्मा के मंच से जिस अहिंसा की पुकार की जाती है वह आदर्श अहिंसा नहीं, बल्कि व्यावहारिक या राजनैतिक अहिंसा है, तथापि हम देखते हैं कि भारत के लोग आदर्श अहिंसा की ओर भी तेजी के साथ आगे बढ़ रहे हैं। शहरों के पढ़े-लिखे पंडित तो अभी बुद्धि-युद्ध में ही लगे हुए हैं। पर देहात के भाई उसके अनुसार आचरण भी करने लग गये हैं—देवरिया, जिला फैजाबाद, (युक्तप्रान्त) से एक सज्जन लिखते हैं-"जिला फैजाबाद तहसील अकबरपूर के हज्जाम भाई हर तीसरे साल भगवती की पूजा करते हैं। उस समय वे हवन तथा भेड़-बकरे का बलिदान भी किया करते हैं। इस साल भी वे पिछली ११ अप्रेल को भगवती की पूजा के लिए रवाना हुए। यह बात दो स्वयं सेवकोंने-जगदेवप्रसाद और रामदयाल मुराव ने-सुनी। वे दोनों उनके साथ हो लिये। वहां पहुंचते ही देवी के भक्तों ने-उन हज्जाम भाइयों ने-पूजा के बाद भेड़-बकरे का बलिदान भी करना चाहा। स्वयंसेवकों ने उन्हें बहुत ही नम्रता के साथ समझाया, दलीलें पेश की, हाथ-पैर भी जोड़े; पर उन्होंने एक न मानी। आखिर वे दोनों खुद बलिदान के लिए तैयार हो गये। उन्होंने कहा "माता की वेदी पर भेड़-बकरा न मारा जाय; बल्कि उनके बदले में हमलोगों का बलिदान करो।" उन की यह तैयारी देखकर माता की पाषाणमयी मूर्ति करुणा और पुत्र-वात्सल्य से मजबूर हो गई होगी। हज्जाम-भाइयों की हृदयस्थ देवता भी जाग उठी। वे दंग रह गये। इस आत्मोत्सर्ग की तैयारी का उनके चित्त पर इतना गहरा प्रभाव हुआ कि उन्होंने प्रतिज्ञा की कि आजसे हम यह हिंसा करना तथा मांस आदि खाना भी छोड़ देते हैं। उसी समय एक प्रतिज्ञा-पत्र लिखा गया, जिस पर सब भाइयों ने कसम खा खा कर दस्तखत किये और उनके चौधरी ने आतिमर में हिंसा तथा मांस मछली खाना भी बंद कर दिया। प्रतिज्ञापत्र में सब हज्जामों के दस्तखत मौजूद हैं।

देहात के सरल-चित्त लोगों पर अहिंसा-धर्म का जो इतना असर हुआ उसका कारण यह है कि एक तो शहरातियों की तरह उनके हृदय बनावटी संस्कारों से बिगड़ नहीं गये हैं; इसलिए वे अपने बुरे संस्कारों को नष्ट करने की मिहनत से बच जाते हैं। दूसरे उनका जीवन अधिक कुदरती होता है इससे कुदरत के कानून को वे बड़ी जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। यदि हमारे शहराती और बनावटी जीवन के आदी लोग गांव में जाकर रहें और स्वाभाविक जीवन का सौन्दर्य समझ जायं; तो उनकी बुद्धि अधिक निर्मल हो जाय और उन्हें कुदरत के कानून का ज्ञान बहुत ही सहज हो जाय। इस मिसाल से यह भी साबित होता है कि संसार में हिंसा चाहे दिखाई भले ही देती हो और हो भले ही रही हो; पर उसकी स्वाभाविक गति अहिंसा की ही ओर है। दूसरे यदि ऐसी ही बलिदान की और अहिंसा की वृत्ति राजनैतिक बातों में-अधिक तर देहातों में भी दिखाई देने लगे तो भारत का उद्धार बायें हाथ का खेल हो जाय।

मध्यप्रान्त में अछूतों का उद्धार

मध्यप्रान्त में खादी का धंधा वहां के अछूतभाइयों के ही हाथ में है। उनको वहां महार कहते हैं। महारों की दो कौमें हैं-एक कातने वाली और एक बुनने वाली। खादी के पुनरुद्धार के पहले यहां इन लोगों की हालत बहुत खराब थी। पर अब तो वे अच्छी तरह अपनी रोजी कमा सकते हैं। और रोज महात्माजी की जय बोलकर दोनों जून खा-पी आनन्द करते हैं। वे कहते हैं "भारत को स्वराज्य मिला हो या न मिला हो पर हमें तो आज ही महात्माजी ने स्वराज्य दे दिया। पहले जब हमारे यहां मेहमान आते थे तब तो हमें बड़ा संकट मालूम होता था; पर अब तो उनके ना-ना कहने पर भी उन्हें बढ़िया खाना खिलाने को जी चाहता है।

पर जब इन्होंने महात्माजी की गिरफ्तारी की बात सुनी तब तो वे सरकार पर बड़े नाराज हुए। और पूछने लगे "अब हमारी खादी को कौन पूछेगा? अब हमें रोटी कौन देगा? स्वयं-सेवकों ने कहा "भाइयों महात्माजी के जेल चले जाने से तो तुम्हारी रोटी और चमकेगी। अब तो सारा देश खादी पहनेगा। अब तुम और भी अच्छी खादी बनाते जाओ। तुमको भूखों नहीं मरना होगा?।"

आज तक ये लोग सौदा लेने को दूर दूर के बाजारों में सस्ता मिलने की आशा से जाया करते थे। पर अब वे ऐसा नहीं करते। अब तो वे पास के दुकानदारों को ही अधिक दाम देकर सौदा खरीद लेते हैं। वे कहते हैं कि हाट जाने से तो आधा दिन यों ही-व्यर्थ जाता है। उसके बजाय अगर उतनी ही देर घर पर चरखा कातें तो खासी कमाई भी कर सकते हैं। इस से बनिये को भी दो पैसे मिल जायंगे और हमें भी धूप में न भटकना पड़े।

सचमुच शहरों में बैठे बैठे हम नहीं जान सकते कि खादी हमारे गरीबों के लिए किस तरह आशीर्वाद रूप हो गई है और किस तरह करोड़ों का अन्नदाता होने की शक्ति उसमें है।

राष्ट्रीय सप्ताह में इन लोगों की एक सभा की गई थी। उसमें इनको देश की स्थिति, महात्माजी का कार्य और खादी की महिमा समझाई गई थी। सभाओं में ये लोग अपने अपने चरखे भी ले जाते हैं। वक्ताओं के व्याख्यानों के साथ साथ चरखों का सुर भी चलता रहता है। व्याख्यान खतम होते ही चरखे की जय बोली जाती है।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, वैशाख सुदि, ११ सं. १९७९

किसानों के प्रति

प्यारे भाइयो,

संसार पर किसानों के जितने उपकार हैं उतने और किसीके नहीं। किसान तो उसके अन्नदाता हैं। इसीलिए महात्माजी आपको "जगत् के तात" अर्थात् पालक कहा करते हैं। अहा, कितना गौरवपूर्ण और साथ ही कितना यथार्थ नाम है। यह केवल आपका बड़प्पन ही नहीं बताता, बल्कि यह भी बता रहा है कि आप इस संसार-रूपी कुटुंब के लिए कितनी मुसीबतें उठाते हैं। कुटुंब के किसी लड़के और अजान बच्चे को यह पता भी रहता है कि किसी चीज को बहार से लाकर देने मे पिता को कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं, कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है? उसी प्रकार आपको संसार के लिए अन्न पैदा करने में कितनी मुसीबतें उठानी पड़ती हैं, कितना स्वार्थ-त्याग करना पड़ता है, कितने कष्ट सहना पड़ते हैं, यह बात ऐशो आराम और ठाठ-बाट में पले हुए ऊंचे दरजे के लोग क्या जानें! अगर किसान को हम अन्नदाता कहें तो सरकार को गृहिणी कहना अनुचित न होगा। क्योंकि उसका काम भी करीब करीब गृहिणी का सा ही है। गृहिणी का यह धर्म है कि वह अपने स्वामी की सहधर्मचारिणी रहे तथा उसकी शुभचिंतक हो। पर क्या यह सरकार ऐसा कर रही है? क्या यह अपने भरण-पोषण करने वालों के प्रति कृतज्ञता का व्यवहार रखती है? जब से इस देश का शासन-भार इस सरकार के सिर पड़ा है तब से दिन ब दिन यह दुर्बल और निर्धन ही होता जा रहा है। पर सब से ज्यादा दुर्बल तो किसान समाज हो गया है। भारत धन-धान्य और वस्त्र का आगर है। और इन सबके मालिक हैं किसान। पर वे ही सबसे अधिक नंगे और मोहताज हो गये हैं। किसान किन किन अत्याचारों के शिकार होते हैं, यह तो आप को कहने की आवश्यकता ही नहीं। यह तो आपके रोजाना तजरिबे की बात है। पटवारी से ले कर बड़े से बड़े हाकिम तक सबका खुश करते करते आप तंग हो जाते हैं। जो तमाम संसार का अन्नदाता है उसके यहां फाकेकशी हो रही है। और जो अपने वस्त्रों से संसार भर के स्त्री-पुरुषों का शरीर ढांकना जानता है उसकी स्त्री और बच्चे फटे-टूटे चिथड़े पहनते हैं या अध-नंगे मारे मारे फिरते हैं! जब भारतमाता अपने प्यारे बच्चों को नंगे बदन से वैशाख-ज्येष्ठ की धूप में दुबले बैलों के पीछे खेत में तन तोड़ते हुए देखती होगी तब उसके कलेजे के टुकड़े टुकड़े हो जाते होंगे, उसकी आंखों में खून भर आता होगा। पर भारत-माता का एक सच्चा पुत्र निकला बहादुर; अपने भाइयों के दुःख को अपना दुःख मानने वाला माताका एक लाडला निकला। उसने आपको रूखी सूखी रोटी खाते देखा और अपने कीमती खानों को छोड़ दिया। उसने आपको नंगे बदन से धूप में घूमते देखा और खुद भी कीमती कपड़े छोड़ कर लंगोटी लगाली। न दिन देखा न रात। देशभर अविराम घूमा, और अपने देश और दुःखी किसान-भाइयों के दुःख का उपाय खोजता रहा। कई दिनों तक विचारों में मग्न रहा और अन्त को उसने रामबाण दवा खोज निकाली। वह है आपकी पुरानी बाप-दादे के जमाने की बापकी बपौती, शुद्ध हाथ से कती और बुनी खादी। जब से आप और हम इस खादी को भूल गये तभी से हमपर मुसीबत का पहाड़ आ टूटा; हमारा व्यापार गोरे बनियों के हाथ जाता रहा और हम रोटियों और कपड़ों के लिए उनके मोहताज हो गये। अभी १०-१५ बरस पहले जहां किसान नमक को छोड़ कर कोई चीज बाजार से नहीं खरीदते थे वहां आज उन्हें चौगुनी कीमत दे कर विदेशी नापाक चीजें खरीदना पड़ती हैं, और इस तरह देश के गरीबों का सारा धन विलायत के लखपतियों के घर में घुसता चला जाता है। यह दुर्गत देख कर महात्मा गांधी ने आप से कहा— भाइयो, जालिम के जुल्मों से दबते और पिसते रहना पाप है। पाप दोनों के लिए है। आपके लिए भी और जालिम के लिए भी। आपके लिए इस तरह कि आप अपनी आजाद आत्मा को दबाकर आत्म-हनन का घोर पातक कर रहे हैं। जालिमों के लिए पाप इस तरह कि आप जितने ही अधिक डरते और दबते जायंगे उतने ही अधिक वे और जुल्म पर तुलेंगे। इसका नतीजा यह होगा कि उनका और भी अधिक पतन होगा। यह पाप भी आपके ही सिर चढ़ेगा। इसलिए आप निडर हो जाइए। अपने और अपने बालकों के भले के लिए धीरज और हिम्मत के साथ खड़े हो जाइए। विदेशी कपड़ों को छोड़ कर शुद्ध खादी को पहनने की प्रतिज्ञा कीजिए। पूरी तरह शान्ति रखिए। अन्यायों का प्रतिकार कीजिए। आपकी शक्ति की सीमा नहीं है। संसार में इतना बड़ा जन-समूह कभी अपनी इच्छा के खिलाफ गुलाम तथा पद्दलित नहीं रह सकता। उसकी आजादी के रास्ते में—सन्मार्ग में—रुकावट डालने वाला बड़ा से बड़ा राज्य-शक्ति के कठिन से कठिन बाहुबल को उसके असाधारण आत्म-तेज के सामने अवश्य सिर झुकाना होगा—अपने अन्यायों से बाज आना होगा; —कुमार्ग से हट जाना होगा।

खादी में अपार शक्तियों की स्थापना इस जमाने में परमात्मा ने कर दी है। वही हमारा बल है; वही इस सरकार की मौत है। वही स्वतंत्रता है, वही स्वराज्य है। उसीमें हमारी सब जातियों की एकता है और उसीमें अछूत भाइयों का उद्धार भी है। उसीमें धन-धान्य की वृद्धि है और उसीमें अनेक रोगों की दवा भी है। आप लोग साल में चार महीने बेकार रहते हैं, आपकी स्त्रियां, माताएं और बहनें भी अपनी फुरसत का वक्त फजूल गवां देती हैं। उस समय में चरखा कातिए, उसके सुर में सुर मिला कर अपनी दुःखी आवाज परमात्मा के दरबार में पहुंचाइए। इससे आपको आर्थिक और आत्मिक दोनों तरह का बल मिलेगा और आपका और आपके साथ सारे भारत का उद्धार होगा।

देखिए, स्वराज्य के लाल बादल पूर्व में दिखाई दे रहे हैं। गुलामी की रात का अंत हुआ ही चाहता है। पर इसी समय असुरों की असीम माया भी बढ़ती है। यही समय धैर्य के साथ डटने का है, बस थोड़ी देर और है कि हमारी विजय तैयार है। अगर आप अपने भाई महात्मा गांधी को—उस गांधी को जो अपने को किसान कहने में बड़ा गौरव मानता है—जेल से जल्द छुड़ाना चाहते हैं, अगर हमारे दूसरे २५ हजार भाइयों को भी जेल से छुड़ा कर रामराज्य कायम करना है, अगर इज्जत के साथ दुनिया में रहना है और अपनी मा-बहनों की इज्जत को बचाना है तो—

१—कांग्रेस के मेम्बर हो जाइए

२—तिलक स्वराज्य-कोष में चन्दा दीजिए
३—खादी पहनिए, चरखा कातिए
४—आपस में एका रखिए और

५—पूरी तरह शान्ति की रक्षा कीजिए। बस, इतना ही करने से आपकी सब विपत्तियां दूर हो जायंगी, आप अपने घर के सच्चे मालिक हो जायंगे और भारत-माता के सिर से गुलामी का कलंक सदा के लिए मिट जायगा।

आनाकानी

असहयोग-आन्दोलन प्रेम का आन्दोलन है। इसमें हम प्रतिपक्षी पर अपने अटल और निर्मल प्रेम के द्वारा विजय प्राप्त करना चाहते हैं। वह भले ही हमारा द्वेष करता रहे, हमें शत्रु समझता रहे। प्रेम-युद्ध में, सच पूछिए तो एक पक्ष की विजय कभी नहीं होती। जब होती है तब दोनों की जीत होती है। प्रेम-युद्ध में कठोरता चाहे हो, पर प्रतिपक्षी के विषय में दुर्भाव नहीं होता। इसीसे प्रेम की विजय को संसार की कोई शक्ति नहीं रोक सकती।

जेल जाते समय महात्माजी जो यह कह गये हैं कि नरम दल वालों और सहयोगियों के साथ खूब मित्राचारी करना, इसका रहस्य यही है कि वे असहयोगियों के दिल में तिल भर भी द्वेष और दुराग्रह नहीं रहने देना चाहते। कुछ ना-समझ असहयोगियों या उनके साथ हमदर्दी रखने वालों की बेजा करतूतों से सहयोगियों और नरम दल वालों के दिल में यह भय पैठ गया है कि यह आन्दोलन तो एक बला है। इसके मारे देश तबाह हुए बिना न रहेगा। बारीक नजर से देखें तो शायद असहयोग के उसूल में उन्हें कोई बुराई न दिखाई दे; पर उसके अमल करने की रीति में कुछ भूलें हो जाने से उसके कुफलों को देख कर वे डर गये हो गये। ऐसे मार्कें के विषय पर दो चार घटनाओं या उदाहरणों को देख कर उसके मूल-भूत सिद्धान्तों के विषय में कोई सामान्य निर्णय कर बैठना भूल है। फिर ऐसी अवस्था में जब कि असहयोगियों ने कदम कदम पर अपनी भूलें कुबूल की हैं, उनके लिए अफसोस जाहिर किया है, माफी तक मांगी है, नरम दल वालों की ओर से मित्रता की उपेक्षा देखी जाती है तब किस भारतवासी को दुःख हुए बिना नहीं रहेगा? अबतक तो नरम दल के लोग तथा पत्र असहयोगियों पर यह ऐतराज करते जाते थे कि देखो, इन्होंने फलां सभा में फलां को बोलने नहीं दिया, फलां की बे-इज्जती की, फलां जगह दंगा-फसाद कर दिया। असहयोग का तो आधार है आत्मशुद्धि। आत्मशुद्धि तो उनका धर्म ही है। वे तुरन्त चमके। अपने हृदय के मैल को धोने का प्रयत्न किया। आज उनके दल में प्रतिपक्षी के प्रति जो आदर-भाव और प्रेम-भाव दिखाई देता है, उसका सानी आधुनिक सभ्य संसार के इतिहास में कहीं नहीं मिलता। अब प्रतिपक्षियों के भाषण शान्ति के साथ सुने जाते हैं। उनके विचारों पर ध्यान के साथ विचार किया जाता है। यहां तक कि बंगाल और पंजाब की प्रान्तीय परिषदों में तो उन्हें प्रेम-भाव से निमन्त्रण भी भेजा गया और बटाला (पंजाब) की परिषद के सभापति पं. सन्तानम् ने तो उनके नाम एक बड़ा ही नम्रता और भ्रातृ-भाव से भरा हुआ पत्र प्रकाशित कराया था। पर अब हम देखते हैं कि नरम दल के कुछ मुख-पत्र अपना रुख ही बदल रहे हैं। भारत-भूषण मालवीयजी की पुकार बेकार सी हो रही है। पटेल साहब की बात भी ध्यान से नहीं सुनी जाती है। असहयोगी धर्म और प्रेम के पथ पर चलना चाहते हैं। धर्म का पालन और प्रेम की प्राप्ति होती हो तो उन्हें मान-अपमान, सुख-दुःख, हर्ष-शोक और निन्दा-स्तुति की परवाह नहीं। अपनी गलती देखते ही वे तुरन्त झुक गये। वे सत्याग्रही हैं। सत्याग्रही सत्य और धर्म के पक्ष में तो सिंह की तरह लड़ते हैं; पर असत्य और अधर्म को अपने पक्ष में देखकर बकरी हो जाते हैं। इसे शायद नरम दल के पत्रों ने असहयोगियों को चित कर देने का अच्छा मौका समझा हो। अब वे कहने लगे हैं "भाई, तुमसे हमारी दोस्ती कैसे हो सकती है? तुम्हारी महासभा में तो आजादी चाहने वाला दल भी शामिल हो सकता है। तुम्हारी महासभा का ध्येय संदिग्ध है। ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में यदि न रह सके तो हमारा-तुम्हारा निबाह कैसे हो? फिर तुम तो बार बार सविनय भंग का अमंगल नाम ले ले कर हमारी आशा पर पानी फेर देते हो। और सब से बड़ी बात यह कि अगर हम तुमसे मिल गये तो तुम्हारी जीत हो जायगी। हम जो इन सुधारों की तारीफ कर रहे हैं उसका क्या होगा? तुम्हारी नेकनामी और हमारी बदनामी! ऐसे बेवकूफ हम नहीं हैं। यदि तुमको हमसे दोस्ती करना मंजूर हो तो हमारे साथ कौन्सिलों में बैठो। वर्तमान शासन-यन्त्र से काम लो। उससे दूर न भागो। तभी तुम्हारी और हमारी बन सकती है"

नरम पत्रों की इस आनाकानी को देख कर असहयोगियों को एक ओर तो दुःख होता है और दूसरी ओर उनका निश्चय बढ़ता जाता है। दुःख इस बात पर कि ये नरम-पत्र मित्रता के लिए असहयोगियों को अपना सिद्धान्त ही छोड़ देने का आग्रह कर रहे हैं। वे मित्रता और एकता को हृदय की नहीं, बल्कि दिमाग की चीज समझते हैं। वास्तव में तो ध्येय की एकता ही मित्रता के लिए काफी है। यदि एक ही ध्येय सबको उत्साहित करनेवाला हो तो वही हृदय की एकता के लिए बस है। पर उसके लिए, क्षुद्रता और दुराग्रह को छोड़ देने की आवश्यकता है। हमें खुशी है कि असहयोगी इस दिशा में बराबर प्रगति कर रहे हैं।

निश्चय इस बात के लिए कि अब नरम पत्रों ने मोरचा बदल दिया है। एक तरह से, छुपे छुपे, उन्होंने असहयोगियों को इस बात का प्रमाण-पत्र दे दिया है कि अब वे प्रतिपक्षियों के साथ प्रेम और आदर का बर्ताव करते हैं। इससे असहयोगी अबतक तथा सहयोगी लोगों के प्रति प्रेम की वर्षा करने में अधिक ही दृढ़चित्त होते जाते हैं। उन्हें अपने प्रयोग की सफलता में विश्वास होने लगा है। वे सहयोगी-भाइयों का दर्द लिख तो जान गये, उसपर उन्होंने प्रेम का मरहम भी लगाया, उससे उन्हें ठंडक भी हुई; पर बात नेकनामी और बदनामी पर आकर अड़ गई है। वहां भी इस आफत के पुतले ब्रिटिश-राज्य ने विघ्न डाल दिया है। हम पूछते हैं, उन्हें ब्रिटिश-राज्य स्वराज्य से भी इतना प्यारा क्यों है? क्या यदि वर्तमान ब्रिटिश-राज्य से भी अधिक अच्छा कोई राज्य उनकी नजर किया जाय तो वे उसे ब्रिटिश-राज्य पर न्योछावर कर देंगे? आजादी से वे इतने नाखुश क्यों हैं? क्या आजादी से यह ब्रिटिश-राज्य अधिक मंगलमय है? क्या समाज का सुख शान्ति पर अवलम्बित नहीं है? क्या बुराई से असहयोग करना धर्म नहीं है? क्या असहयोग में शान्ति प्रधान नहीं है? क्या वर्तमान शासन-प्रणाली बुरी नहीं है? यदि नहीं तो फिर आप भी स्वराज्य क्यों चाहते हैं? यदि है तो उसका साथ क्यों देते हैं? क्यों उससे हम उसका साथ छोड़ने वालों से क्यों लड़ते हैं? वे प्रेम से हाथ बढ़ाते हैं तो उसे झटकर पीछे क्यों हटते हैं? असहयोग यदि पाप है तो आप चाहे पाप न

दीजिए; पर भाई भाई मिलकर एक घर में तो रहिए; एक दूसरे का डर तो छोड दीजिए ।

महासभा का ध्येय तो महात्मा गांधी स्पष्ट ही कर चुके है । अब यदि आजादी चाहने वाले भी उसमें शामिल हों तो बुराई क्या है ? हरएक महासभा का दस्य शान्ति की रक्षा के लिए तो बंधा हुआ हई है । इससे बढकर और क्या चाहिए ? शान्ति और आजादी यदि दोनों आपको दी गई तो क्या आप उसे फेंक देंगे ? फिर औपनिवेशिक स्वराज्य स्वराज्य, स्वतन्त्रता इन में सिवा किसी के और क्या भेद है ?

सविनय भंग की आवाज से चौंकने की आवश्यकता नहीं । यदि बारडोली का कार्यक्रम पूरा हो गया तो आप निश्चय रखिए सविनय भंग का जमाना आपको न देखना होगा । फिर हमारी समझ में नही आता कि यदि रचनात्मक कार्यक्रम की चारों बातें आपको पसन्द हैं तो आप नेकनामी–बदनामी के चक्कर में क्यों पडते है ? आप तो देश के हित को मद्दे नजर रखिए । यदि इन चारों बातों को आप देश के कल्याण के लिए बुरा समझते हों तो हम कभी नही चाहते कि आप उसमें हाथ बढावें यदि आप उसे अच्छा समझते हैं तो सुधारों की नेकनामी और बदनामी के मोह–जाल से अपने को बचाइए । हमारे सरदार महात्मा गांधी ने तो जिस बात में देश का हित समझा उसे करने के लिए मान–अपमान, नेकनामी, बदनामी का कुछ ख्याल न किया; खुले आम अपनी गलतियां कुबूल की, कार्यकर्ताओं के रोष को अपने सिर लिया और जनता के पापों का प्रायश्चित्त खुद किया । यही सच्ची देशभक्ति की कसौटी है । हमें विश्वास है कि यदि नरम–भाई इस बात पर गौर से विचार करेंगे तो उन्हें अपने और असहयोगियों के हृदय में भेद न दिखाई देगा । जो मलिनता ऊपर से पैठ गई है, वह तुरन्त धुल जायगी तथा दोनों के उच्च आदर्शों का मिलाप हो कर भारत की बेडियां सदाके लिए टूट जायंगी ।

देशी रियासतें और स्वदेशी

[स्वदेशी का कार्यक्रम इतना सीधा, लाभदायी और निरुपद्रवी है कि उसमें देश तथा प्रजा का हरएक सच्चा शुभचिंतक आसानी से भाग ले सकता है । कुछ इनी–गिनी रियासतों को छोडकर बाकी अनेक रियासतों में स्वदेशी का प्रचार जोरों से हो रहा है । यद्यपि कितने ही शासकों को इसमें असहयोग की बू आती है । असहयोग से इसे महत्व भले ही मिला हो । पर इसका महत्व तो यों भी कम नहीं है । इससे आर्थिक नैतिक और औद्योगिक लाभ ही इतने हैं कि कोई भी बुद्धिमान नरेश इसके प्रचार को रोक कर अपनी प्रजा की गरीबी को और भी बढाना उचित नहीं समझ सकते । इतना ही नहीं किन्तु कई स्थानों पर तो नरेशों की ओर से उत्तेजना न मिलते हुए भी प्रजा ही इसके असाधारण फायदों से आकर्षित हो रही है और स्वदेशी को अपना रही है ।

इस समय हम अपने पाठकों का ध्यान महात्माजी के एक लेख की ओर आकर्षित करते हैं जो उन्होने काठियावाड की देशी रियासतों के लिए लिखा था । सह–सम्पादक]

रियासतों का फर्ज–

अगर देशी रियासतें मन में धारें तो नीचे लिखे काम बडी आसानी से कर सकती है । उनसे और उनके प्रधान मन्त्रियों से यह मेरी विनयपूर्वक सूचना है ।

१ देश के हाथ–बुने कपडे पर तथा हाथ–कते सूत पर अगर चुंगी हो तो उसे उठा लेना ।
२ किसानों को कपास बेच डालने के लिए नहीं बल्कि उसका संग्रह करने के लिए उत्तेजना देना ।
३ कपास की पैदायश बढाने का उद्योग करना । यह तो आसानी से हो सकता है ।
४ रियासत के कते सूत का रियासत में ही कपडा तैयार करवाने की तजवीज करना ।
५ प्रजा को चरखे तथा करघों की बनवाई दे कर उन्हें स्वदेशी के लिए सहायता देना ।
७ प्राथमिक पाठशालाओं में चरखे और करघों की स्थापना करना तथा उनको चलाने की शिक्षा देना । यह अनिवार्य होना चाहिए ।

प्रजा का फर्ज

पर अगर सिर्फ प्रजा ही दिल से चाहे तो वह भी बहुत कुछ कर सकती है । मसलन:—

१ जुलाहों को ढूंढ कर उन्हे काम देना
२ किसानों को कपास का संग्रह करने के लिए तैयार करना
३ अपने रिश्तेदारों की स्त्रियों को सूत कातने के लिए उत्साहित करना ।
४ यह काम करने के लिए उन्हें चरखे देना । पूनियाँ देकर सूत लेना और उनकी कताई चुकाना, आदि
५ बाद में बुनने के लिए सूत देना, और जुलाहों से उतने ही वजन का कपडा लेकर बुनाई चुकाना

यह काम करने के लिए उद्योगी और सच्चे कार्य–कर्ताओं की जरूरत होती है । बगैर पैसे के कोई काम नहीं हो सकता । इस लिए सच्चे कार्यकर्ताओं को देखकर उनकी आजीविका के लिए वेतन देने की भी व्यवस्था करनी चाहिए । इस कार्य में स्वयंसेवक–गण अच्छी सहायता दे सकते हैं । इसलिए कुछ सभ्य तथा काम करने वाले स्त्री–पुरुषों की एक समिति बना लेना चाहिए । वह इस काम को बडी अच्छी तरह और शीघ्रता से कर सकती है ।

स्त्रियों का कर्तव्य

पर जबतक औरतें इस काम में आगे न बढेंगी तबतक इस हलचल में काफी सफलता नहीं मिल सकती । क्योंकि सूत तो खासकर स्त्रियां ही कातती हैं । उन्हींके पास तो अखूट खजाना है । उनको समय खूब मिलता है । क्या पैसे लेकर अपने समय का उपयोग कर के भी वे देशसेवा न करेंगी ?

भारत में जहां जहां जाता हूं तहां तहां मैं असीम प्रेम का अनुभव करता हूं । इसी असीम प्रेम की निशानी के बतौर छोटे, बडे, संभावित, सामान्य, राजा, प्रजा आदि सब से सिर्फ एक ही बात मैं चाहता हूं । वह यही कि वे सब इस सरल, पवित्र और लाभदायक स्वदेशी–धर्म का पालन करें । देश में चतुर स्त्रियों और कुशल जुलाहों का अब भी अभाव नहीं हो गया है । हैं तो अब भी बहुत पर उन्हें ढूंढ कर उद्योग में लगाने वालों की जरूरत है ।

जब मैं एक प्रान्त के लोगों को दूसरे प्रान्तों में आजीविका के लिए जाते देखता हूं तब मुझे बडा दुःख होता है । वे अपने ही प्रान्त में नहीं कमा सकते इसीलिए उन्हें दूसरी जगह जाना होता है । पर जो लोग हर साल करोडों रुपयों की आमद–रफ्त करते हैं उन्हें अपना प्रान्त छोडने की जरूरत ही क्या ?

भारत में ऐसे बहुत थोड़े प्रदेश हैं जिन्हें मनुष्य को अपनी आजीविका के साधनों के अभाव के कारण छोड़ना पड़ते हों। रेलों में इधर उधर दौड़ने वाले मुसाफिरों की संख्या देश की आबादी की निशानी नहीं कही जा सकती, यह मैं भली भांति जानता हूं। स्वदेशी का त्याग हमारी निर्धनता का सबसे बड़ा कारण है। इसके पुनः स्वीकार से ही हमारा जीवन स्थायी हो सकेगा।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

असहयोग का रहस्य

महात्मा गांधी के एक पादरी मित्र का एक पत्र और उसका उत्तर पिछले 'यंग इंडिया' में छपा है। उसमें पादरी साहब लिखते हैं—पर फिर भी मैं यह कहूंगा कि असहयोग के उपदेशों से मैं सहमत नहीं हूं। क्योंकि मैं इस बात का पूरी तरह कायल हूं कि हम सब को—भले और बुरे सब को—सब के भले के लिए परस्पर सहयोग करना चाहिए।" इसका उत्तर 'यंग इंडिया' में इस प्रकार दिया गया है—

पूर्वोक्त कथन से मालूम होता है कि पत्र-प्रेषक महाशय का यही खयाल है कि दूसरों की अच्छी सेवा करने का सिर्फ एक ही मार्ग है और वह है सहयोग। पर हमारा कथन यह है कि कभी कभी हम असहयोग के द्वारा भी मनुष्य-जाति की उच्च कोटि की सेवा कर सकते हैं। पर उस हालत में हमारा असहयोग अत्यंत पवित्र होना चाहिए। द्वेष, प्रति-हिंसा, अथवा गर्व (अर्थात् दूसरों से अपने को श्रेष्ठ मानना आदि का नामो-निशान तक न होना चाहिए। फर्ज कीजिए कि राजनैतिक दृष्टि से आप किसी शक्ति की अधीनता में हैं। यह भी मान लीजिए कि उसके द्वारा आपके निजी अथवा मानवी अधिकार भी छीने जा रहे हैं या पद-दलित हो रहे हैं तथा आपके चरित्र का भी पतन हो रहा है। आगे यह भी फर्ज कीजिए कि आपके लिए उसके चंगुल से बचने का दूसरा एक भी साधन नहीं बचा है और उसके सहयोग से आपका पतन दिन ब दिन अधिक ही अधिक होता जा रहा है, तो इस हालत में अगर आपके पास कुछ थोड़ा भी नैतिक बल बचा रहे और आप उस शक्ति के साथ तबतक असहयोग करें जब तक परिस्थिति बदलकर आपकी उन्नति के अनुकूल नहीं हो जाती तो निःसन्देह उससे आपका भला होगा। पर यह याद रखना चाहिए कि यहां हमारा प्रधान हेतु दूसरों की सेवा करना नहीं है। जैसा उस अर्थ में जिसमें कि इस शब्द का आम तौर पर उपयोग किया जा रहा है। हमारा प्रधान उद्देश तो पहले आत्म-रक्षा है। तथापि इस असहयोग के द्वारा-पीड़ित के अत्याचारी से जुदा होने से तो दूसरे पक्ष का भी निःसन्देह भला ही होता है। जब अत्याचारी को अत्याचार-पाप-करने के मौके ही नहीं दिये जाते तो निःसन्देह इससे उसका भी लाभ ही होता है। इस प्रकार असहयोग प्रतिपक्षी को भी अप्रत्यक्ष रीति से सच्चा फायदा ही पहुंचाता है। पर उससे अत्याचार करने वाली शक्ति के साथ उचित तौर पर असहयोग करने से असहयोगी को तो सच्चा और प्रत्यक्ष फायदा ही होता है। और इससे उसका नैतिक उत्थान भी हो सकता है। जब वह यह अनुभव करता है कि इस असहयोग के द्वारा मुझे अपने पैरों पर खड़े रहने की तथा उन घातक शक्तियों के साथ जिन्होंने कि मुझे अभी तक दबा रखा था, तथा जो मुझे लूट लूट कर बरबाद कर रही थी, लड़ने की ताकत आ गई तब तो उसका नैतिक बल बढ़ने लगता है। जब तक वह अपने को लाचार, पतित और पूरी तरह से पराधीन समझता है तबतक इस बल का जन्म भी नहीं होता। हां, यह जरूर है कि ऐसा करने से वह अपने प्रतिपक्षी के जिसका कि वह अधीनस्थ था, रोष का पात्र अपनेको बना लेता है। इस बात का खयाल असहयोगी को होता है जरूर। पर अगर वह दमन से डर न जाय तो दूसरी ओर नैतिक दृष्टि से उसे फायदा भी बहुत होता है। क्या मनुष्य-जाति की सभी उन्नति इसी राहपर चल कर नहीं हुई? पर महात्मा गांधी ने तो इसमें एक ऐसी बात और जोड़ दी है जिससे असहयोग संसार के लिए हर प्रकार से लाभ दायक हो गया है। जब असहयोगी नम्रता के साथ प्रतिपक्षी या अत्याचारी के रोष और क्रोध का साक्षात् करता है, और स्वेच्छा-पूर्वक प्रतिपक्षी के सब वारों को त्याग और कष्ट सहन कर जब वह प्रतिहिंसा की भावना भी दिल में नहीं लाता, पर साथ ही कायरता तथा नैतिक पतन से दूर रहता है, जब वह दमन का जवाब कष्टसहन से देता है, पशुबल की परवाह न कर अपने अंतरात्मा की आज्ञा पर दृढ़ रहता है, अन्यायों को अपनी श्रद्धा पर अधिकार नहीं करने देता, और जो 'सर्वं अस्यपि सत्यम्' के अनुसार आचरण करता है तब तो असहयोग संसार का बेहद भला कर सकता है। उससे न केवल उस अधिकार-लोलुप प्रतिपक्षी की ही उन्नति होती है, बल्कि संसार में सब के लिए वह हितकर होता है। यही सच मार्ग है। क्योंकि यदि असहयोग में प्रतिपक्षी के दमन करनेपर हिंसा करने की आज्ञा होते तो उससे इतना भला नहीं हो सकता। उससे तो प्रति-हिंसा के अंकुर पैदा होते रहते हैं, जो भावी संतान के लिए बहुत हानिकर हैं। इसी योरोपीय हिंसात्मक महायुद्ध की ओर देखिए और उससे संसार में पैदा हुए अत्याचार और विद्वेष की कल्पना कीजिए।

अत्याचारी और पीड़ितों के लिए तो अहिंसात्मक असहयोग जीवन का धर्म है। सहयोग भी जीवन का धर्म है पर किस के लिए? समान दरजे वाले लोगों के लिए। सत्ता के मद से भरे बड़े और पद-दलित लोगों के बीच सहयोग असम्भव है। इसलिए हम पादरी साहब के इस कथन से कि "हम सब को क्या भले और क्या बुरे सब को सब के हित के लिए सहयोग करना चाहिए सहमत तो हैं; पर हम उन्हें यह भी कह देना चाहते हैं कि हम सहमत नहीं रह हैं कि भले और बुरे में सहयोग तभी तक हो सकता है जब तक कि वे दोनों बराबरी की हालत में हों। भारत में जनता और सरकार के बीच सहयोग होने के लिए जिस स्थिति की जरूरत है उसका अभाव है। इस दशा में जनता तथा अधिकारियों में फिर सहयोग तो तभी स्थापित हो सकता है जब जनता ही आपस में सहयोग कर के पूरा बल प्राप्त कर ले। इसलिए तब तक तो असहयोग हमारे लिए एक प्रकार का कर्तव्य ही है और वह दूसरे की तथा मनुष्य-जाति की नैतिक सेवा ही है। और अगर इस प्रकार के असहयोग का पूर्व-हेतु नैतिक तथा सामाजिक अधःपतनसे बचना ही हो तो असहयोगी का मार्ग उसी प्रकार सरल भी होना चाहिए, जिससे वह जब अपने पूर्व बल को प्राप्त कर ले तब उसका उसी प्रकार नैतिक अधःपतन न होने पावे जिस प्रकार कि उसके अत्याचारी का हुआ था।

मौलाना हसरत मोहानी को दोनों धाराओं में ज्यूरी के 'बे-कसूर' कहने पर भी दौरा जज ने १२४ ए के लिए २ साल सख्त कैद की सजा दी और १२१ ए के लिए मामला हाईकोर्ट में भेज दिया।

स्वामी आनंद ... द्वारा नवजीवन मुद्रणालय ..., ... में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से ... द्वारा प्रकाशित ।

सभ्य नादिरशाही

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका)।
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद— ज्येष्ठ वदि ३, संवत् १९७९, रविवार, सार्यकाल, १४ मई, १९२२ ई० | अंक ३९

श्रीमती गांधी का कार्य

"विदेशी कपड़ा स्वराज्य-प्राप्ति में विघ्न है।"

महात्माजी के जेल जाने के कारण पूज्य कस्तूरबा—श्रीमती गांधी का हृदय व्यथित है। तथापि वे अपूर्व धैर्य के साथ खादी-प्रचार कर रही हैं। क्योंकि वे जानती हैं कि महात्माजी को तथा इस महान् देश को इस कैद से छुड़ाने का यही एक उपाय है। गुजरात में घूम घूम कर वे जनता को सचेत करने तथा काम में लगाने के लिए अति-लोक परिश्रम कर रही हैं। गुजरात भी उनकी सेवाओं से अपने को अत्यंत अनुगृहीत मानता है। उसने पूज्य बा को गुजरात की छठी प्रान्तीय परिषद की अधिनेत्री बनाया है। समय समय पर पू० बा के पवित्र तथा वत्सलता-पूर्ण उपदेशों को सुनने के लिए वह सदा लालायित रहता है। हाल ही में भावनगर (काठियावाड़) ने दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी-भवन के बाल-मंदिर को खोलने के लिए उन्हें आश्रम-वासियों सहित बुलाया था। यह शिक्षण-संस्था गुजरात में एक आदर्श संस्था है। और वहांपर बालकों को मांटेसरी की प्रसिद्ध पद्धति के अनुसार शिक्षा दी जाती है। उस अवसर पर वहां नगर-वासियों की एक विराट् सभा भी हुई थी। सभा में पू० बा ने भी एक छोटीसी पर सार-गर्भित वक्तृता दी। उसका सार नीचे दिया है—

"आपके बताये इस असीम प्रेम के लिए मैं आपकी अनुगृहीत हूं। पर इस प्रेम के कारण ही मैं आपको कुछ कहना भी चाहती हूं। हमारी स्वराज्य-प्राप्ति के मार्ग में अगर कोई सब से बड़ा विघ्न है तो वह है विदेशी कपड़ा। जो लोग विदेशी कपड़ा पहनते हैं वे स्वराज्य की प्राप्ति में विलंब कर रहे हैं। पर कपड़ा पहनने वालों के बनिस्बत विदेशी कपड़े का व्यापार करने वाले व्यापारियों का दोष अधिक है। देहात के लोग तो स्वदेशी कपड़े पहनते ही हैं। इन शादियों के मौसम में मैंने देहात में कितनी ही शादियों में खादी ही देखी, पर शहरों में तो खादी बहुत ही कम दिखाई देती है। वहां तो लोग इस प्रकार विदेशी वस्त्र पहनते ही जा रहे हैं, मानों कुछ हुआ ही न हो।

गांधीजी ने तो अनेक दुःख और कष्ट सहन किये हैं। दक्षिण आफ्रिका में तो वे दो बार इस बुरी तरह पीटे गये कि बड़ी मुश्किल से जिन्दा रह पाये। परमात्मा ने ही उनकी रक्षा की। उन्होंने तो शरीर को अच्छी तरह अपने वश कर लिया है। वे तो जेल के कष्ट अब भी सहन कर रहे हैं और कर भी लेंगे। पर पंडित मोतीलाल नेहरू तथा देशबन्धु दास जैसे पुरुष भी जिन्होंने अपने हाथ से लोटा भर कर पानी तक पिया न होगा, आज जेल के कष्ट भोग रहे हैं। हमें उनके इन कष्टों का विचार करना चाहिए। और अगर हम इनके कष्ट पर विचार करें तो विदेशी कपड़ा फूटी आंखों से भी देखना पसन्द न करेंगे।

अगर व्यापारी-समाज ही निश्चय करे तो आज ही वह सारे देश को खादीमय कर सकता है। वे अपनी व्यावहारिक बुद्धि का उपयोग खादी की पैदावार में कर सकते हैं। पर आज तो कुछ और ही हो रहा है। देहाती लोग अगर खादी पहनना शुरू भी करें तो शहराती उलटे उन्हें पीछे खींचने का यत्न कर रहे हैं। जब वे शहर के पढ़े-लिखे, समझदार, लोगों को विदेशी वस्त्र पहने हुए देखते हैं तब उनका उत्साह भी ठंडा पड़ जाता है। विदेशी कपड़े के व्यापारी इतने दिन तक यह बहाना करते थे कि जो माल पहले ही से खरीदा हुआ पड़ा है उसे क्या करें? इसका भी उत्तर है। पर मैं अधिक गहरे पानी में पैठना आवश्यक नहीं समझती। मैं तो उन विदेशी कपड़े के व्यापारियों से यह पूछना चाहती हूं कि गांधीजी "खादी" "खादी" चिल्लाते हुए जेल में चले गये, पर फिर भी उनपर प्रेम रखने का दावा करने वाले आप व्यापारी लोग जो विदेशी कपड़ा खरीद लाये इसका जवाब आपके पास क्या है? इसका तो अर्थ यही होता है कि मुंह से "स्वराज्य स्वराज्य" चिल्लावें, पर करने धरने के नाम से "राम का नाम!"

आपके इस विदेशी कपड़े के व्यापार से देश का कितना नुकसान हो रहा है इसका ख्याल आपको यहां आराम से बैठे बैठे नहीं हो सकता। पर दूसरे प्रान्तों की फाकेकशी और दरिद्रता को देखने से आपकी आंखें फौरन् खुल जायंगी।

मैं जब चंपारन में थी तब वहां की बहनों की जो दशा मैंने देखी वह जब जब मुझे याद आती है तब हृदय भर आता है। वे लोग बेचारे मेंगड़े यानी चने, गेहूं और जौ के आटे का कोरा

सत्तु पानी में सान कर नमक के साथ खा कर दिन काटते हैं। और वह भी दो जून कहां से लावें ? २४ घंटे में सिर्फ एक ही बार ! उनके बदन पर भी सिर्फ एक ही कपड़ा और वह भी रसोई घर की धोती से अधिक मैला और खराब। मैंने उनसे पूछा "बहनो, तुम इतनी मैली क्यों रहती हो ? इस धोती को धोती क्यों नहीं ?" उन्होंने कहा "मां, क्या करें। इसे धोते समय पहनने के लिए दूसरी धोती हमारे पास नहीं। हमें दूसरी धोती दो, महात्माजी से कहकर हमें दूसरी धोतियां दिलाओ, आटा सस्ता कराओ।" सारा देश इतना कंगाल हो गया है कि वह दरिद्रता के समुद्र में मानों डूब रहा है। गरीब लोगों को न तो पेट भर खाना मिलता है और न अपनी लाज रखने के लिए बदन भर कपड़ा। मैं जब जगन्नाथपुरी की तरफ गई तब वहां के लोगों को मैंने देखा तो बेचारों के बदन पर हड्डियों के सिवा कुछ न दिखाई देता था। वे मुझे पीठ से चिपके हुए अपने पेट की ओर उंगली करके दिखाते थे। उस करुणामय दृश्य का चित्र मैं किस तरह खींच के दिखाऊं ?

कहते हैं कि यहां महाराजा साहब का राज्य है और हिन्दुस्थान में अंग्रेज सरकार का। पर मुझे तो यह दिखाई देता है कि सारे देश पर विदेशी कपड़ा राज्य कर रहा है। यह विदेशी कपड़ा तो सरकार के करों से भी ज्यादा पैसा खींच ले जाता है। आप लोग हमें बैठने के लिए मोटरें भेजते हैं, अपने विदेशी कपड़े के व्यापार से कमाये हुए धन में से तिलक स्वराज्य--कोष में दान देते हैं। हमें भी उसे लेना तो पड़ता है; क्योंकि देश के काम के लिए आज धन की बड़ी जरूरत है। पर जबतक देश को मिट्टी मे मिलाने वाले इस व्यापार को आप जारी रक्खेंगे तबतक वह हमें जरूर खटकेगा।"

* * * *

दूसरे दिन आपका एक भाषण भावनगर की महिला--सभा में भी हुआ था। उसमें आपने कहा--

"आज मुझे इस सभास्थान पर चारों ओर गादी तकिये पंखे आदि सब खादी के नजर आते हैं। पर इन बहनों के शरीर पर खादी नहीं दिखाई देती। यह कितने दुःख की बात है ? बहनो, अब तो आपको भी यह बात समझना चाहिए। देश की क्या हालत हो रही है, कितनी ही बहनों के पति, पुत्र, भाई आज जेलों के कष्ट सह रहे हैं ? यह आपको समझना चाहिए। चटकीले विदेशी कपड़े पहनने के विचार भी हमारे दिल में इस समय कैसे आ सकते हैं ? इस मोह में तो महा पाप है। इससे तो हमें अब अवश्य पिंड छुड़ाना चाहिए। देवी सीता जैसी सती को भी वनवास के दिनों में पेड़ों की छाल पहनना छोड़ कर सोने के हिरन के चमड़े की कंचुकी पहनने का मोह हुआ था। पर जानती हो न आप को उसका क्या फल मिला था ? उन्हें रावण जैसे दुष्ट राक्षस के यहां कितने ही दिन काटना पड़े थे। उसी प्रकार, याद रखिए, आप जितनी ही अधिक इस मोह में फसेंगी उतना ही अधिक दुःख आपको होगा और आप अपने देश की पराधीनता की बेड़ियां अधिक मजबूत करेंगी। पीछे प्रायश्चित करने से कुछ फल न होगा। इसलिए सचेत हो जाइए और आज ही से शुद्ध खादी पहन कर अपने शरीरकी शोभा को बढ़ाइए। पिछले यौरोपीय महा-समर के समय अंगरेजी स्त्रियों ने अपने पति और पुत्रों को लड़ाई के मैदान में भेजा था और खुद युद्ध की सामग्री तैयार कर रही थीं, जखमी सिपाहियों की शुश्रूषा करती थीं और उनके लिए कपड़े सी सी कर भेजती थीं। रात रात भर जागरण करके वे इन कामों को किया करती थीं। पर आपको तो आज यह कोई नहीं कह रहा है कि अपने पति तथा पुत्रों को मरने और गोलियां खाने के लिए भेजो। आपसे तो सिर्फ यही विनय की जाती है कि चरखा चलाओ तथा शुद्ध खादी पहनो। क्या आपसे यह भी नहीं बन पड़ता ? बारडोली में कितनी ही शादियां शुद्ध खादी में ही होती हुई मैंने देखी हैं, क्या आप इतनी प्रतिज्ञा नहीं कर सकती ?"

पूज्य मा की यह हृदय--स्पर्शी अपील सुन कर कई बहनें गद्गद हो गई और उन्होंने उसी समय खड़े होकर शुद्ध खादी पहनने की प्रतिज्ञा की।

गरीबों की दुनिया

मनुष्य--जाति का इतिहास क्या है ? भिन्न भिन्न जातियों के सामने भिन्न भिन्न प्रसंगों पर जो अनेक प्रश्न खड़े हुए तथा उन को हल करने के लिए उन्होंने जो प्रयत्न किये उनका वर्णन। इस दृष्टि से अगर देखें तो इस समय यूरोप के इतिहास का अवलोकन हमारे लिए बड़ा फायदेमंद होगा। क्योंकि पिछली सदी में यूरोप ने सारे संसार पर अपने बाहु--बल से प्रभुत्व स्थापित कर लिया है।

अंधकार के परदे से बाहर आये हुए यूरोप के इतिहास में हमें अधिकतर भिन्न भिन्न राज--वंशों के अभिमान, महत्त्वाकांक्षा और षड्यंत्रों के सिवा कुछ दिखाई नहीं देता। सामान्य प्रजा जनता--का मानों इतिहास में अस्तित्व ही न था। महाभारत में जैसे अठारह अक्षौहिणी सेना के एकत्र होने तथा कट--मरने के सिवा प्रायः कुछ दिखाई नहीं देता अथवा यह कहें तो अनुचित न होगा कि किसी चित्र के धारण करने के लिए ही जैसे पट होता है वही दशा वहां जनता की भी थी।

रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया इन तीन राज्यों ने अपनी जनता के साथ बड़े २ अन्याय किये; पर उसने उसे ऐतिहासिक महत्त्व दे दिया। जिस दिन पोलंड के भिन्न भिन्न भाग किये गये उसी दिन यूरोप में राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। इटालियन देश--भक्त मैजिनि ने अपने तत्त्वज्ञान तथा उग्र तपस्या के द्वारा राष्ट्रों का नामकरण संस्कार किया, तब से यूरोप के युद्ध और सुलहनामे अर्थात् संधि विग्रह राष्ट्रों के नाम से होने लगे।

यह युग औद्योगिक उन्नति का युग है। इसलिए राज्यसत्ता किसी तरह व्यापारीयों के हाथ में आ रही है। और व्यापारी लोग अपने स्वार्थ के लिए भोली--भाली प्रजा में राष्ट्रीय अभिमान, द्वेष और ईर्ष्या की आग सुलगाकर उन्हें लड़ा--भिड़ाकर उससे होने वाले आर्थिक लाभ को तो खुद आप डकार जाते है; पर इन युद्धों से होने वाली आपत्तियां बेचारी गरीब प्रजा को सहना पड़ती हैं।

यूरोप का शासन जबतक राज्य--वंशों के हाथमें था तबतक उनका बाहरी दुनिया के साथ इतना घनिष्ठ संबंध न हुआ था। पर औद्योगिक युग का आरंभ होते ही यूरोप के झगड़े तमाम दुनिया के लिए बाधक होने लग गये।

जैसे सारे संसार की प्रजा यूरोप के झगड़ों के मारे तंग आगई है, उसी प्रकार यूरोप का मजदूर--वर्ग भी उनसे परेशान हो गया है। उसका यह कहना है। कि आज यूरोप में अठारह राष्ट्र हैं, यह कहना भूल है। यूरोप में तो सिर्फ दो ही राष्ट्र हैं। एक धनवानों का और दूसरा निर्धनों का। धनवानों का राष्ट्र समर्थ और संगठित है। और निर्धनों का असहाय और छिन्न--भिन्न है। इसीलिए तो धनवान् लोग निर्धनों को अपने अधिकार मे

कर के उनका खून चूस सकते हैं। अगर निर्धनों का दल भी सुसंगठित हो जाय, आपस में एकता कर के अपनी उन्नति के लिए यत्न करे तो उनके पास मनुष्य-बल इतना है तथा लोक-जीवन की एक एक बात उनके हाथ में इतनी है कि वे जिस समय चाहें अपना अभीष्ट सिद्ध कर सकते हैं। मजदूरशाही या बोल्शेविज़म् का उत्पादक यही विचार है। यूरोप में आजकल सधन और निर्धनों के बीच भारी जंग छिड़ गया है। यह जंग कब और कैसे बंद होगा, यह कहना कठिन है।

श्री शंकराचार्य ने जब कहा कि "अर्थमनर्थं भावय नित्यम्" (अर्थात् धन को सदा आफत का पुतला ही समझ) तब उनके वचन का इतना व्यापक और भीषण अर्थ उनके मन में शायद ही आया हो। जबतक लोग धन के लिए लड़ते रहेंगे तबतक मनुष्यजाति को सुख और शान्ति नसीब न होगी। अद्वैत की तरह इसमें भी 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' जबतक ये दो रहेंगे, लड़ाई चलती ही रहेगी। सर्वनाश को निमंत्रण दिये बिना इस प्रकार की लड़ाई खतम हो ही नहीं सकती।

पर श्रद्धा कहती है कि मनुष्य-जाति सर्वनाश के लिए पैदा नहीं हुई है। भगवान् मसीह ने कहा है कि "यह दुनिया गरीबों के लिए है"। पर गरीब का मतलब ऊपर लिखे निर्धनों से नहीं। क्योंकि सच पूछा जाय तो ये सधन और निर्धन दोनों धन प्राप्ति के लिए पागल हो रहे हैं। एक धन के मद से पागल हो रहा है तो दूसरा उसके लोभ से। धन का रोग दोनों को है। अतएव दोनों सधन हैं। यह दुनिया धनवानों की नहीं पर गरीबों की है।

इस दृष्टि से तो सारा यूरोप धनवान है। पूंजीवाले भी धनवान और बोल्शेविक भी धनवान। क्योंकि दोनों धन-परायण हैं।

ये दोनों प्रकार के धनी चाहे जितने वर्षों न लड़ें, कानून-दां लोग चाहे जिस प्रकार संपत्ति-विभाग कर देखें, पर इससे दुनिया में शान्ति होना असम्भव है।

यूरोप में थोड़े ही लोगों के हाथों में धन है। इसमें कोई शंका नहीं कि यह स्थिति विषम है। पर उसे दूर करने के लिए अगर निर्धन लोग धनिकों की संपत्ति की ओर भूखे भेड़ियों की तरह देखा करें तो उससे विषमता हटने के बजाय और भी बढ़ेगी। इस बात को सधन लोग नहीं जानते। धनिकों की संपत्ति हरण किये बिना भी धनिकों और उनके बीच की विषम स्थिति नष्ट करने का दूसरा मार्ग हो सकता है यह मानने की श्रद्धा उनमें आनी चाहिए।

निर्धन लोग लोभ छोड़ कर संतोष रक्खें, अपनी फिजूल जरूरतें घटा लें और स्वाभाविक जरूरतों को स्वावलंबन के द्वारा पूरा करना सीख जायं तो धनवानों के हाथ में इतना धन आना तथा एकत्र होना बंद हो जाय। बड़े से बड़े परिमाण में चीजें पैदा करके उन्हें देश-विदेश में फैलाना—अथवा थोड़े में कहना चाहें तो विराट् रूप से श्रमविभाग करना—ही इस विषम परिस्थिति का मूलभूत कारण है। इस विषम स्थिति को दूर करने के लिए ही स्वदेशी-धर्म का अवतार हुआ है। स्वदेशी-धर्म के पालन से कोई भी आदमी धनी नहीं हो सकता। उसी प्रकार इससे न किसी के निर्धन होने का भी भय हो सकता है। क्योंकि एक स्थान पर हमें अगर मिट्टी का ढेर बनाना है तो दूसरी जगह गड्ढा करना ही पड़ेगा। इसलिए जहां सधनता का अभाव होगा वहीं निर्धनता का भी अभाव अवश्य होगा। संपत्ति और दारिद्र दोनों सनातन पड़ोसी हैं। दोनों का नाश एक साथ ही हो सकता है। और यह बोल्शेविज़्म के द्वारा नहीं, स्वदेशी के द्वारा ही हो सकता है।

अगर ईश्वर की कृपा होगी तो अब भविष्य में जनता के दो ही विभाग होंगे। एक धन-परायण और दूसरा सन्तोष-परायण। एक होगा साम्राज्य-वादी और दूसरा स्वराज्य-वादी। एक होगा सत्तावादी और दूसरा सत्य-वादी। एक होगा रौब जमाने की इच्छा रखने वाला और दूसरा दयाभाव से वर्तना चाहेगा। एक होगा ऐश्वर्य-परायण और दूसरा स्वधर्म-परायण। एक अहंकारी, और दूसरा स्वदेशी।

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

महाराष्ट्र में खलबली

बंगाल और पंजाब के आत्मबल को आजमा कर अब सरकार महाराष्ट्र के तेज को परखना चाहती है। लार्ड रोनाल्डसे और खुद लार्ड रीडिंग ने कलकत्ते में अपने 'रामराज्य' की जैसी इज्जत देखी वैसी उन्होंने अपनी जिन्दगी में शायद ही कहीं देखी हो। ब्रिटिश-राज्य के रक्षक सर माइकेल ओड्वायर के गद्दीनशीन सर मेकलगन पंजाब के सूते सिंहों को छेड़ छेड़ कर ब्रिटिश-राज्य की जड़ जैसी कुछ मजबूत कर रहे हैं यह उनका दिल ही जानता होगा। पर बम्बई के सर जार्ज लाइड का ढंग कुछ निराला ही है। जिस काम के लिए दूसरे प्रान्तों के गवर्नर दुम दबा लेते हैं, उसे वे हंसते-खेलते कर डालते हैं। अलीभाई, महात्मा गांधी, मौलाना हसरत मोहानी आदि देश की चोटी के लोगों को मामूली कानून की रू से पकड़ कर सजा ठोंकने की बहादुरी और चतुराई के लिए भारत सरकार और भारत की प्रजा आपको सदैव याद रक्खेगी। और आजकल टाटा कम्पनी की ओट में गोरे महाराष्ट्र से जो वे दो-दो हाथ कर रहे हैं उसके द्वारा तो वे सारे हिन्दुस्तान का ध्यान अपने प्रान्त की ओर खींचे बिना न रहेंगे। बंगाल और पंजाब के लाट साहबों को तो जनता के संक्षोभ का सीधा सामना करना पड़ा था—उनका काम ज्यादा जोखिम का था—पर बम्बई के गवर्नर को ताता-कम्पनी खूब हाथ लग गई है। ताता-कम्पनी पूंजी वालों की प्रतिनिधि है और बम्बई की सरकार साम्राज्यवाद की। दोनों की दोस्ती तो अटूट हुई है। मौत है बेचारे गरीब लोगों की—निर्धन लोगों की—महाराष्ट्र की गोदी के लाल मावलों की।

पर साम्राज्य-वाद और पूंजी-वाद की इमारत अन्ध स्वार्थ की बालू पर खड़ी है। जनता में जागृति और राष्ट्रीय चैतन्य की धारा बहते ही वह मिट्टी में मिले बिना नहीं रह सकती। मालूम होता है कि महाराष्ट्र के मावली इसे बहुत कुछ सच कर के दिखा देना चाहते हैं। ब्रिटिश साम्राज्य-वाद यद्यपि भारत के पौरुष-नाश के लिए लगातार कोशिश कर रहा है तथापि महाराष्ट्र की नस में आज भी महाराज शिवाजी का खून दौड़ रहा है। आज भी समर्थ रामदास की आत्मा उनमें संचार कर रही है। आज भी वे अपने देश के मान और बपौती को अपने प्राणों से भी अधिक मानते हैं। वे हंसते हंसते माता की बलिवेदी पर कुरबान होना जानते हैं। यदि ताता कम्पनी और बम्बई-सरकार की आंखें जल्द ही न खुलीं तो भारत में पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के इतिहास में मावलियों के खून से शायद शीघ्र ही एक अध्याय लिखा जायगा और मुलशी पेटा भी जालियांवाला बाग की तरह भारत का राजनैतिक तीर्थस्थान हो जायगा।

इस युद्ध में आत्मिक बल ही महाराष्ट्र का प्रधान शस्त्र है। एक समय लोकमान्य के साथ महाराष्ट्र के अगुआ होने वाले प्रोफेसर परांजपे, लोकमान्य के मित्र, चित्रशाला प्रेस के मालिक, वासूकाका, केसरी के उपसम्पादक श्री करंदीकर, डाक्टर फाटक, महाराष्ट्र के नामी लेखक श्री. वामके आदि कितने ही मावलों के नेता जेल जा चुके हैं। कितने ही को कम्पनी के गुंडों ने बुरी तरह पीटा है, धड़ाधड़ गिरफ्तारियां हो रही हैं, पर फिर भी एक समय में शत्रु के खून के प्यासे मावले आज आदर्श शान्ति दिखा रहे हैं। अब तक ५० से ऊपर खास खास नेता जेल जा चुके हैं। उनके सब से बड़े मुखिया श्री बापट बड़े विकट पुरुष हैं। बंगाल को बम बनाने की शिक्षा सिखलाने वाले गुरु यही हैं। उन्हें सरकार भी खूब पहचानती है। इसी मुलशी पेटा के मामले में आप ३ मास की जेल भोग आये हैं। आपने आम तौर पर यह जाहिर किया है कि हम ५ वर्ष तक बराबर लड़ते रहेंगे। १०,००० आदमियों को जेल भेज देंगे। १०० के प्राणों की आहुति दे देंगे और ५लाख रुपया खर्च कर देंगे। बस, यहांतक हमने अपने शान्तिमय संग्राम की सीमा बांध ली है। यदि साम्राज्य-वाद और पूंजीवाद में मानवी-भाव के लिए कुछ भी जगह होगी तो यह चेतावनी ताता कम्पनी के मालिकों और बम्बई सरकार के विवेक को जाग्रत किये बिना न रहेगी।

खबर है कि बम्बई सरकार लैंड एक्वियिजिशन एक्ट में कुछ सुधार कर रही है और वह सुधरा हुआ कानून मुल्शी पेटा में जारी किया जायगा। बहुत मुमकिन है कि उसमें मावलों के हितपर कुछ अधिक ध्यान रक्खा गया हो। पर मावलों की मांगों तथा उनकी दृढ़ता और निश्चय को देखते हुए ऐसा मालूम होता है कि यह मामला थोड़ी सी रिआयतों से निपटने वाला नहीं है। यह तो निर्बलता और सबलता तथा प्रजासत्ता और राज्यसत्ता के झगड़े का रूप धारण कर रहा है। यदि शीघ्र ही ताता-कम्पनी और बम्बई-सरकार ने लोकमत के आगे सिर नहीं झुकाया तो महाराष्ट्र की तैयारी को देख कर ऐसा खयाल होता है कि शायद महाराष्ट्र का आधुनिक इतिहास ही बदल जाय। हम ताता-कम्पनी के मालिकों को सावधान कर देना चाहते हैं कि इस मामले में उनका जिद पकड़ना बहुत ही खतरनाक है। इस युद्ध ने यदि उग्र रूप धारण किया तो बम्बई और महाराष्ट्र ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तान में हाहाकार मच जाय तो आश्चर्य नहीं। जहर को खाकर परीक्षा करना बुद्धिमानों का काम नहीं। हम यह नहीं कहते कि ताता कम्पनी के मालिक जान बूझ कर मावलों को सताना चाहते हैं; या उनके साथ उनकी कोई खास दुश्मनी है। वे अपने असीम स्वार्थ और सार्वजनिक हित के भ्रम से ऐसा कर रहे हैं। पर वे समझ सकते हैं कि केवल मुलशी पेटा की १०-१५ हजार जनता ही नहीं बल्कि सारे महाराष्ट्र की प्रजा के दृढ़, निश्चय के आगे न तो पूंजी-बल ठहर सकता है और न सत्ता-बल। यदि वह और सरकार सारे महाराष्ट्र को जेलखाना या श्मशान-भूमि बना देने के लिए तैयार हो तो बात दूसरी है। पर उन्हें याद रखना चाहिए कि उस हालत में दुनिया के परदे पर सारी मनुष्य-जाति कराह उठेगी और पूंजी-वाद तथा साम्राज्य-वाद की फांसी अवश्य के गले से छूट कर टाटा-कम्पनी, सम्पत्ति-वाद के नाश के इतिहास में अजर-अमर हो जायगी!

खबर मिली है कि भाई श्री देवदास गांधी को १८ माह सादी कैद की सजा दी गई।

दो और बलिदान

राम, कृष्ण, बुद्ध, और कबीर की भूमि संयुक्त प्रान्त-में सत्य, धर्म, और स्वराज्य की बलि-वेदी पर इसी सप्ताह में दो और कुर्बानियां हुई हैं। एक है उस प्रान्त के लाडले त्यागी युवक पंडित जवाहरलाल नेहरू और दूसरे महात्मा गांधी के चौथे पुत्र भाई देवदास गांधी। पं. जवाहरलाल ताजीरात हिन्द की दफा १२४ ए और ५०६ तथा भाई देवदास क्रिमिनल ला एमेंडमेंटएक्ट दफा १७ और ताजी रात हिन्द दफा ११७ के अनुसार पकड़े गये हैं। पंडित जवाहरलाल यदि बीच ही में न छोड़ दिये जाते तो अभी जेल ही में अपने बीस हजार भाइयों के दुख-सुख में शरीक रहते। अभी वे जेल के जीवन को जरा भी न भूले होंगे कि फिर से तपस्या का निमन्त्रण आ पहुंचा। भाई देवदास को तो यथा सुख जेल में ही मिल सकता है। उनकी प्रार्थना ईश्वर के दरबार में कबूल हुई। गिरफ्तारी के समय वे प्रसन्न और प्रफुल्ल थे। दोनों वीर युवक भारत के दो नर-रत्नों के लाल हैं। संयुक्त प्रान्त में दोनों की सेवायें खूब मशहूर हैं। वहां के तमाम छोटे बड़े अगुआओं के पकड़ लिये जानेके बाद भाई देवदास उस प्रान्त के एक बड़े सहायक हो गये थे। इन्डिपेन्डेन्ट को तूफानों और आंधों की चपेट में जीवित रखना उन्हीं का काम था।

संयुक्त प्रान्त की यह जय, विजय की जोड़ी सरकार की आंखों में खुजली तो बहुत दिनों से थी, पर अब उसका पाप टला। कसूरी के बे-गुनाह कह देने पर भी जब सजायें ठोकी जा रही हैं, तब इन दोनों पर लगाये जुर्मों का नतीजा अलहदा बतलाने की जरूरत नहीं। सच बात तो यह है कि सरकार असहयोगियों के बीज को भी कायम नहीं रहने देना चाहती। पानी का एक तिनका भी उसका काल नजर आता है। यदि इस सरकार को इस बात का यकीन है कि उसके राज से रिआया दरअसल सुखी है, तो वह इन इने-गिने काम करने वालों से इतना क्यों चौंकती है? जहां सुख और शान्ति की हरियाली लहलहा रही हो वहां आग की दो चार चिनगारियों से, कौनसी हानि हो सकती है? उससे तो वे उलटी बुझ ही जायंगी। परन्तु उसका यह दमन खुद ही साबित करता है कि सरकार के पाप का घड़ा इतना भर गया है कि उसे मरणासन्न कंस की तरह चारों ओर कृष्ण ही कृष्ण-कन्हैया की छाया-दिखाई देते हैं।

(३१५ पृष्ठ से आगे)

कि वे अपनी मातृभूमि का तथा उनके पूज्य नेताओं को पराधीनता से छुड़ालें। इसके बाद दूसरी बात। क्या हमारे घर में जब कोई बीमार होता है तब हम शादी आदि के जलसे कर सकते हैं। फिर यहां तो सारा देश मुसीबत में पड़ा हुआ है, प्रायः तमाम पूज्य नेता-गण जेलों में कष्ट भोग रहे हैं। इस समय हमें शादियों का खयाल भी कैसे हो सकता है। तथापि हम जानते हैं कि अभीतक देश में इतनी जागृति नहीं फैली। जिस दिन भारतीय स्वतंत्रता की आराधना और प्राप्ति के लिए हम अत्यंत आवश्यक लौकिक कार्यों को भी अलग रख देंगे उसी दिन स्वराज्य हमारे पास हाथ जोड़ता हुआ चला आवेगा, तथापि हम उससे कम से कम इतनी आशा तो जरूर कर सकते हैं कि जो इन लौकिक कार्यों के मोह को न रोक सकते हों वे उनमें सिर्फ शुद्ध-स्वदेशी खादी को ही काम में लावें, जैसा कि पूर्वोक्त शादी में किया गया है। भारत-माता की शोचनीय अवस्था की उपेक्षा करना ही पहले तो पाप है, पर अनिवार्य मौकों पर खादी पहन कर हम उसका अंशतः प्रक्षालन कर सकते हैं।

न भूलिए

१८ तारीख-गांधी दिवस
प्रार्थना और त्याग का दिन

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, ज्येष्ठ बदि ३, सं. १९७९

सभ्य नादिरशाही

भारत के पुराण की रावणशाही और इतिहास की नादिरशाही का नाम सुनकर हिन्दुस्तानियों का कलेजा कांप उठता है। पर हम देखते हैं कि १८ वीं सदी की उस व्यक्तिगत और बेढंगी नादिरशाही का अवतार देश में सामूहिक और सुसंगठित नादिरशाही के रूप में हो रहा है। तिस पर भी तुर्रा यह कि वह सभ्यता की ओट में, व्यापार-विस्तार के नाम पर और भारत की भलाई के लिए हजरत ईसा के अनुयायियों के द्वारा की जा रही है। 'शान्ति और कानून' की मारू की नौकरशाही नादिरशाही के भी कान काट रही है। पंजाब, संयुक्तप्रान्त और महाराष्ट्र इस समय उसके लीला-क्षेत्र हो रहे हैं। पंजाब में १ मार्च से पिछले सप्ताह तक कोई २५०० आदमी जेल में ठूंस दिये गये हैं, जिनमें १४७१ तो अकेले सिक्ख ही हैं। इनका कसूर है अपने धर्म-मत की रक्षा करना। नौकरशाही ईसाई-धर्म की तरह भारत के धर्मों को भी अपना कैदी बना लेना चाहती है।

युक्तप्रान्त में भी धर्म पर आघात पहुंचाया जा रहा है। उस दिन 'इंडिपेंडेंट' के स्वदस्थानपन्न रंगास्वामी आयंगार को भगवान् कृष्ण का दिन जेल में मनाने के अपराध में एक मास काल कोठरी की सजा दी गई। सीतापुर और बस्ती से जो समाचार आये हैं उन्हें पढ़कर दिल दहल उठता है। सीतापुर में जो लूट-मार हुई है और हाकिम लोग खड़े खड़े जिसका तमाशा देखते रहे, उसकी ओर हम उन भाइयों का ध्यान दिलाना चाहते हैं जो असहयोगियों के स्वराज्य पर पुरानी लूट-मार की याद दिलाया करते हैं और जो ब्रिटिश-राज्य को भगवान् का प्रसाद मानते हैं। बस्ती में तो खासा चौरी-चौरा-काण्ड का बदला पुलिस ने निकाला। कांग्रेस के दफ्तर की झोंपड़ी जला डाली गई। पुलिस सब इन्स्पेक्टर ने अपने हाथों से दियासलाई लगाई। स्वयंसेवक बेरहमी से पीटते पीटते बेदम कर दिये गये। एक बेहोश स्वयंसेवक को तो जलती आग में घसीट कर फेंकने का प्रयत्न किया गया पर दूसरे स्वयंसेवकों ने बीच में पड़ कर कहा पहले हमें इस आग में फेंक दो। तब वह बच गया। बस, चौरी-चौरा-काण्ड में इतनी ही कसर रह गई। अफसोस और ताज्जुब तो इस बात का है कि चौरी-चौरा में ना-समझ स्वयंसेवकों से जो बे-आइयत हो गई उस पर आकाश-पाताल एक करने वाले और असहयोग आन्दोलन को कोसने वाले भले मानसों के देवता इस समय न जाने कहां छुप कर पड़े हैं। उन्हें आंखें हों और दिल हो तो जरा 'शान्ति और कानून' के ठेकेदारों की करतूतों को देखें। २० हजार भारतवासियों की आजादी छिना देने के अपराध पर जो महात्मा गांधी को गालियां देते हैं—उनके मुंह से इस नादिरशाही पर चूं तक क्यों नहीं निकलता? यदि उन २० हजार भाइयों के साथ सच्ची हमदर्दी है तो किसी एक के भी घर जा कर कम से कम उनके दुखी मां-बाप या बीबी-बच्चों के आंसू तो पोंछ देते। इस पर आकाशवाणी होती है—

"यस्मिन् कुले समुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते।"

अर्थात् जिस कुल में उनका जन्म हुआ है उसमें किसी किस्म का पराक्रम या पौरुष करने की परिपाटी नहीं है।

कुछ भाई के लाल कहते हैं कि असहयोग आन्दोलन तो मर गया। मुर्दे के सिर तो सारा जगत् ही मरा हुआ है। पर अगर वे भीतरी आंखों को तकलीफ दें तो उन्हें असहयोग के बल का पता लग जाय। लोबरतगंज, जिला बस्ती का सब इन्स्पेक्टर जब पं० परमेश्वरदत्त को बे-तहाशा पीट रहा था तब कुछ स्वयंसेवकों को उन्होंने जोश में देखा। वे बेहोश होते होते तक बराबर उन्हें मना करते रहे—खबरदार उंगली तक न उठाना। पिटाई जारी रही, लोग बराबर शान्ति रक्खे रहे। देखा—यह है असहयोग आन्दोलन का बल और यह है आपकी प्यारी सरकार की नीचता और कायरता। यदि कोई दो चार चाबुक या बेंत अपनी पीठ पर लगवा लें तो अच्छी तरह मालूम हो जाय कि इस आन्दोलन की जड़ में कितना बल है।

सरकार को तो अपनी जान की पड़ी है। वह नीति-अनीति, कानून-कायदा, आगा-पीछा क्यों सोचने लगी? मरता क्या न करता? मुफस्सिल में नौकरशाही के अत्याचारों से हाहाकार मच रहा है; पर शिमला के देवता कहते हैं ये बदमाश लोग इसी लायक हैं। वे यह नहीं समझते कि स्वार्थ और सत्ता के मद से हमारी आंखें अन्धी हो गई हैं नौकरशाही का यह मनमाना अत्याचार ही इस बात को साबित करता है कि असहयोग का असली बल बराबर बढ़ रहा है और सरकार उसको रोकने के लिए न्याय-अन्याय कुछ देखना नहीं चाहती है। इससे सरकार की कमजोरी भी साफ जाहिर होती है। सब से पहले उसने असहयोग की अवहेलना की—कहा, यह आप ही अपनी मौत मर जायगा। फिर वह उसका मजाक उड़ाने लगी। उसके बाद सहनशीलता का ढोंग रचा, शाहजादे को यहां बुलाकर भारतवासियों का ध्यान असहयोग की ओर से हटाने का प्रयत्न किया; पर जब इसमें उसने बुरी तरह मुंह की खाई—जब शाहजादे के निमित्त से उलटी आन्दोलन की आग भभक उठी, तब उसके होश फाख्ता हो गये और महासभा की जड़ काटने के लिए स्वयंसेवक-दल को गैरकानूनी बना दिया, सभायें रोक दीं। ज्यों त्यों कर के कानून के रूप में नादिरशाही जारी रही। पर जब देखा कि हजारों लोग कानूनभंग करने को तैयार हैं तब उसका आसन हिल गया। अब किसका कानून और किसका कायदा! लूट-मार और ठोंक-पीट से काम! असहयोगियों के कानूनभंग स्थगित कर देने पर तो बस, उसने समझा—फतह हो गई। विजय के मिथ्या मद में वह विवेक-हीन हो रही है। पर उसे याद रखना चाहिए—

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः

जो लोग इस आसुरी दमन के शिकार हो रहे हैं उनसे तथा उनके घर वालों से हमारा यही कहना है कि आप धन्य हैं। आप भारत के अभिमान हैं। शान्तिपूर्वक कष्ट सहन करके आप भारत के स्वराज्य के इतिहास में अमर हो रहे हैं। देश को इस समय विद्वान पण्डितों की जरूरत नहीं, राजनीति के गहरे खेल खेलने वालों की जरूरत नहीं, करोड़ों की उथल-पुथल करने वालों की जरूरत नहीं, जरूरत है अपने देश की आन पर, स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर मर मिटने वाले आप जैसे शान्ति की सेना

के सैनिकों की, जो भले ही अपढ-कुपढ हों, गवाँर कहलाते हों, पर जो चरखा कातना जानता हो, शुद्ध खादी पहनता हो और जो निर्मल-हृदय से परमात्मा से प्रार्थना करता हो—प्रभो,

> नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
> कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्ति-नाशनम् ॥ *

रावणशाही न रही, नादिरशाही भी न रही—यह नौकरशाही भी नहीं रह सकती। यह दमन हमारे लिए प्रसूति के—स्वराज्य के जन्म के—पहले की पीडा है, वर्षा के पहले का तीव्र उत्ताप है और इस नौकरशाही के लिए है बुझते हुए दीपक की बढी हुई ज्वाला।

राजद्रोह का व्यभिचार

आजकल हम राजद्रोह के कई मुकदमों को देखते हैं। पहले पहल राजद्रोह का मुकदमा लोकमान्य तिलक पर चलाया गया था। अलीभाई तथा महात्माजी भी राजद्रोही कहे जाते हैं। और अभी हाल ही में मुस्लिम लीग के सभापति मौ. हसरत मोहानी भी राजद्रोही करार दिये गये हैं।

पर हमें यह एक बार देख लेना चाहिए कि यह राजद्रोह है क्या बला? राजद्रोह शब्द तो पुराना है। आजकल के जमाने में जब कि राजा के हाथ में कुछ सत्ता ही नहीं होती तथा जब राजा परदेशी और परधर्मी होता है तब राजा के विषय में प्रीति या अप्रीति कैसे हो सकती है? जब राजा इसी देश में पैदा हुआ हो, जब राजा और प्रजा एक ही समाज में बडे हुए हों, जब राजा प्रजा की धार्मिक तथा सामाजिक भावनाओं का आदर तथा पोषण करता हो, तभी राजा के विषय में प्रजा के दिल में प्रीति अथवा भक्ति हो सकती है। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा होता है। अगर ऐसा राजा स्वयं प्रजा को प्रिय न हो तो भी प्रजा के हृदय में उसके वंश के प्रति अभिमान होने के कारण वह राजभक्त रह सकती है। इसी भावना को हम राजगद्दी या तख्त के प्रति भक्ति कहते हैं।

पर जब राजा परधर्मी अथवा परदेशी होता है तब तो ऐसी निष्ठा और भक्ति की हम आशा ही कैसे कर सकते हैं? जब राजा स्वदेशी होता है तब तो उसके पूर्वजों की परंपरा की निष्ठा का हिस्सेदार या वारिस वह हो सकता है। किन्तु परदेशी राजा तो अपनी लोकप्रियता अथवा न्याय-परायणता के द्वारा ही अपने प्रति प्रजा की भक्ति की आशा कर सकता है। पर ऐसी भक्ति या प्रीति को राजभक्ति या राज-निष्ठा कहने के बनिस्बत राज्य-भक्ति कहना ही अधिक उचित होगा। क्योंकि उसमें प्रजा की प्रीति राजा की भलाई के बनिस्बत शासन-प्रणाली की भलाई के कारण ही अधिक होती है। पर इस हालत में अगर राजा के ही हाथ में सारे अधिकार हों तो राज्यनिष्ठा का रूपान्तर राजनिष्ठा में भले ही हो जाय। पर अगर शासन के तमाम अधिकार अधिकारी-मंडल के ही हाथ में हों तो वह सुराज्य की स्थापना करके राजा के प्रति नहीं, बल्कि राज्य के अर्थात् सरकार के प्रति प्रजा में प्रीति पैदा कर सकता है।

पर उसमें भी सुराज्य का मतलब केवल अच्छे शासन-कार्य से ही नहीं। जानो-माल की रक्षा के परे सरकार के अपनी प्रजा के प्रति जो कर्तव्य होते हैं उनका भी पालन करना चाहिए। अर्थात् प्रजा की जो संस्थायें और भावनायें [सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक] हों उनका अच्छी तरह पोषण करके बढाते रहना चाहिए। तभी प्रजा के दिल में राज्य के प्रति प्रीति उत्पन्न हो सकती है। राज्य-निष्ठा कोई कानून के हथौडे से घडी जाने लायक चीज थोडे ही है?

जब कोई सरकार प्रजा के अधिकतर भाग को इस प्रकार प्रिय हो जाती है और फिर जब कोई शख्स उस सरकार के प्रति अप्रीति फैलाने का यत्न करते हैं तब वह गुनाह राज्यद्रोह कहा जा सकता है। क्योंकि ऐसी सरकार के प्रति अप्रीति फैलाना एक दूसरी ही बात होती है। राज्य उस समय अधिकतर प्रजा की संस्थाओं तथा भावनाओं का पोषक होता है। और उस हालत में राज्य के प्रति अप्रीति फैलाना राज्य की नहीं, बल्कि प्रजा की ही नाजुक भावनाओं पर आघात करना है। अतएव ऐसे राज्यद्रोह की ओट में राष्ट्रद्रोह और समाज-द्रोह छुपा हुआ होता है और राज्यद्रोह जब इस तरह का अर्थात् राष्ट्रद्रोह तथा समाज-द्रोह का फैलाने वाला हो तभी वह अपराध भी कहा जा सकता है। और यदि यह गुनाह वैर-भाव से किया गया हो तब तो वह नीति-विरुद्ध और इसलिए अधिक दंड के योग्य भी होता है।

राज्य तथा सरकार जब प्रजामान्य हो तब उसके प्रति अप्रीति फैलाना अपराध कहा जा सकता है। पर जब राष्ट्र के तमाम प्रतिष्ठित और सज्जन पुरुष उस सरकार की निन्दा कर रहे हों तब तो ऐसी सरकार के खिलाफ अप्रीति फैलाना न्यायदृष्टि से कभी अपराध कहा ही नहीं जा सकता। और जो सरकार अधिकतर प्रजा को पसंद ही नहीं वह अगर प्रजा पर अपना आतंक जमाने का यत्न करे तो क्या वह प्रजाद्रोह न होगा? ऐसी सरकार के प्रति तो प्रजा में स्वभावतः ही अप्रीति होना चाहिए, और अगर न हो तो कहना होगा कि प्रजा का ही उसमें कुछ दोष है। इसीलिए शासनशास्त्र का सिद्धान्त है कि सारी प्रजा से राज्यद्रोह का गुनाह तो कभी हो ही नहीं सकता।

इसमें कोई शक नहीं कि भारत की आज यही हालत है। इसका सबूत है महासभा का ध्येय, असहयोग का आन्दोलन, सारे देशभर में हुई हडतालें, सविनयभंग के विषय में जनता की आतुरता, और राजद्रोही लो० तिलक, महात्मा गांधी, अली-भाई आदि देश के महान् नेताओं के प्रति सारी जनता के हृदय में प्रेम का अगाध सागर। आज भारत में इस सरकार के प्रति शायद ही किसी के हृदय में प्रेम हो। भारत की असंख्य जनता के हृदय में तो उसके प्रति अप्रीति—उचित अप्रीति—ही है। इस हालत में जब यह सरकार किसी व्यक्ति के सिर पर राजद्रोह का आरोप मढ कर उसे सजा देती है तब वह दृश्य कितना हास्यास्पद दिखाई देता है।

पर यह नहीं कि हरएक सरकार का आधार प्रजा की पसंदगी पर ही हो। प्रजा की उदासीनता पर तथा उसकी आपस की फूट पर भी कितनी ही सरकार अपना दारोमदार रखती हैं। उसी प्रकार कितनी ही सरकारें अपने पशुबल के भरोसे भी रही हैं। ऐसी सरकार अपनी स्थिति का ज्ञान रखते हुए भी अगर राज्यद्रोह को रोकने का प्रयत्न करने में न हिचकिचावे तो यह अस्वाभाविक नहीं। जो सरकार शुद्ध पशु-बल पर अपनी हस्ती रखती है वह अगर अपना सामना करने वाले आदमी को दंड दे तो यह बात समझ में आ सकती है। पर जब ऐसी सरकार न्याय का झूठा नाटक करके राज्यद्रोह का आरोप सिद्ध करने का प्रयत्न करती है तब तो सचमुच पाखंड की अधमता देख कर हंसी आये बिना नहीं रह सकती।

---

* न मुझे राज्य दरकार है, न स्वर्ग, न मोक्ष। मुझे तो सिर्फ दुखी जनों के दुःख दूर करने की लालसा है।

मौलाना हसरत मोहानी स्वतंत्रता वादी हैं। वे तो साम्राज्य-वाद के—साम्राज्य मात्र के—विरोधी हैं। क्योंकि साम्राज्य के मानी है एक प्रजा पर दूसरी प्रजा का आतंक, जुल्म या अधर्म। और दुनिया की तमाम सरकारों की तरह यह भी शरीर-बल की कायल होती है।

इस में से एक भी बात मौलाना साहब ने छुपा कर नहीं रक्खी। वे अपने विचारों को धर्मशुद्ध मानते हैं और दूसरों को भी उनका उपदेश करते हैं। तथापि महात्माजी की गिरफ्तारी के समय आपने महासभा के अहिंसा के ध्येय के ही सच्चे अनुयायी रहने का आश्वासन दिया था और तब से आजतक वे अपने वचन पर पूरे कायम भी रहे। राष्ट्रीय सभा ने यह ज़ाहिर नहीं किया है कि मौलाना साहब की तरह संपूर्ण स्वतंत्रता ही उसका ध्येय है। उसने तो डोमीनियन स्टेटस् अर्थात् उपनिवेशों के जैसा स्वराज्य मिलने पर भी ब्रिटिश राष्ट्र-संघ में अथवा राष्ट्र-कुटुंब में एक कुटुंबी की हैसियत से रहने की भी अपनी तैयारी उसने जाहिर कर दी है। पर मौलाना साहब जैसे विचार वाले पुरुषों को भी उस में स्थान मिलना चाहिए, इस उद्देश से राष्ट्रीय महासभा के आदर्श में "स्वराज्यप्राप्ति" ये शब्द नागपुर के अधिवेशन में रक्खे गये हैं। ब्रिटन अगर साम्राज्य का आदर्श छोडकर "कॉमनवेल्थ" अर्थात राष्ट्रकुटुंब को आदर्श बना ले तो उससे कतई संबंध छोडने की इच्छा आज हमें नहीं है। पर इसका अर्थ यह भी नहीं है कि भारत अंगरेज सरकार पर आशक है, जिससे वह किसी भी हालत में उससे संबंध छोडना सहन नहीं कर सकता। कष्ट देने से तो प्रेम कभी हो ही नहीं सकता। आज अगर महासभा में और मौ. हसरत मोहानी में कुछ भेद है तो वह इतना ही कि मौलाना साहब ब्रिटेन के साथ किसी तरह का संबंध नहीं चाहते। और महासभा ने यह अभी निश्चित नहीं किया। पर सरकार अगर यह सोच रही हो कि मौलाना साहब को जेल भेजकर उसने उनके पक्ष को कमजोर कर दिया है तो यह उसकी बडी भारी भूल है।

(नवजीवन) स्वामी आनंदानंद

स्वागत

बडे हर्ष का विषय है कि हिन्दी सामयिक साहित्य के क्षितिज पर दो और तारे दिखाई देने लगे हैं। एक का उदय तो भगवान् बुद्ध की लीलाभूमि से हुआ है और दूसरा दक्षिण दिशा से नभोमंडल में प्रवेश कर रहा है। पहला है 'बिहार बंधु' (पटना) और दूसरा है 'भारत-तिलक' (मदरास)। बिहार बंधु तो हिन्दी-संसार का पूर्व-परिचित मित्र ही है। राष्ट्रभाषा की बरसों सेवा करके वह विश्राम के लिए अदृश्य हो गया था। पर अब वह फिर नये उत्साह के साथ

"मरण उपरान्त यदि जन्मूं तो जन्मूं देश भारत में
कि जिससे देश सेवा हो नये तन से नये मन से।"

कहता हुआ कार्य-क्षेत्र में उतर रहा है। 'भारत-तिलक' तो एकदम नई वस्तु है। वह तो ऐसे स्थान से प्रकाशित हो रहा है कि जहां से उसके इतने जल्दी उदित होने का स्वप्न में भी किसी को ख्याल न था। हमें आशा है कि हिन्दी का यह नवजात पुत्र उत्तर और दक्षिण को अधिक निकट और स्नेहबद्ध करके राष्ट्रीय सेवा के उस अंग की पूर्ति करेगा जो अभी तक अपूर्ण ही है। उसका ध्येय वचन है—

बढो, चढो बलिवेदी पर ए नवयुवको हो कर निधडक
शीघ्र कृष्ण के हाथों होगा भारत मां का राज्यतिलक.

हम दोनों सहयोगियों का सहर्ष स्वागत करते हैं

टिप्पणियां

भारत-भूषण मालवीयजी

श्री मालवीयजी की देशभक्ति की प्रशंसा महात्माजी ने कई बार की है। उनका हृदय कोमल है। वे मानते हैं कि अंगरेजी राज्य से भारत की भारी हानि हुई है। तथापि उनसे बिलकुल असहयोग कर देना उन्हें कठोर व्यवहार दिखाई देता है। और इसीलिए असहयोग के अंगों से वे कुछ मत-भेद रखते हैं। तथापि वे देश की सेवा करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। उनका आत्मत्याग निर्मल और वाणी की मिठास गजब की है। उनके लाडले पुत्र और भतीजे जेल में बन्द हैं। पंडितजी ने उनके जेल जाने पर जो सुन्दर पत्र भेजा था उसे पाठक न भूले होंगे। मत-भेद होते हुए भी वे नरम-दल वालों की तरह महासभा से अलग नहीं हो गये; बल्कि जिन जिन बातों में उनका और महासभा का मत मिलता है उनमें मिल कर काम करने के लिए वे हमेशा तैयार रहते हैं। यह उनके चरित्र की खूबी है। यदि यह खूबी नरम भाइयों में भी हो तो आज भारत को संसार के सामने नीचा सिर करके न रहना पडे।

बारडोली के निर्णय के बाद तो आप महासभा के विधायक कार्यक्रम से पूरी तरह सहमत हो गये हैं। इसके बाद महात्माजी के कारावास होने पर तो उन्हें अपने कर्तव्य का बोझ बहुत अधिक मालूम होने लगा है। और तब से आप उस विधायक कार्यक्रम को पूरा करने के लिए अविराम परिश्रम कर रहे हैं। पंजाब का आर्तनाद सुन कर वे फिर पहले की तरह उसकी सेवा के लिए दौड पडे हैं। और आज लाहोर, कल अमृतसर परसों सियालकोट इस तरह लायलपुर, वजीराबाद, गुजरानवाला आदि पंजाब के तमाम खास खास शहरों में घूम घूम कर दुखियों को सान्त्वना दे रहे हैं।

आज वे स्वदेशी, सब जातियों की एकता, अहिंसा, के प्रचार के लिए अपने बस भर कोशिश कर रहे हैं। लोगों को महासभा का सदस्य होने तथा तिलक-स्वराज्य-कोष में देश की सहायता के लिए दान करने का आग्रह, तथा अन्य दलों के भाइयों से एकता के लिए अपील कर रहे हैं।

श्री मालवीयजी इस समय देश-सेवा में इस तरह लगे हैं कि दूसरी तरफ जो कार्यक्रम में परिवर्तन की तथा कौंसिलों में जाने की बातें हो रही हैं वे उनका ध्यान आकर्षित तक नहीं कर सकतीं। मानों वे यही सिद्ध कर रहे हैं कि अब व्यर्थ 'पिष्ट पेषण' का समय नहीं है। देश के सच्चे शुभ-चिंतकों को अब तो जी-जान से रचनात्मक कार्य में ही जुट जाना चाहिए। उनके भाषण के नीचे के इस अंश में उनके हृदय की व्याकुलता स्पष्ट झलकती है—

"मुझे मालूम होता है कि महात्माजी की गिरफ्तारी के कारण आप हतोत्साह से हो गये हैं। पर आपकी यह हालत देख कर मुझे बहुत भारी दुःख हो रहा है। अगर मेरी छाती में कोई भाला भी भोंक दे तो मुझे उतनी पीडा नहीं होगी, जितनी पीडा आपको सुस्त देख कर मुझे हो रही है। हमारे हृदय-सम्राट् महात्मा जी के हम से छीन लिये जाने पर भी हम अगर सुसंगठित होकर तन, मन से कार्य नहीं कर सकते तो यह हमारे लिए बडी शरम की बात है। आज उन्हीं के कारण भारत में इतनी जागृति दिखाई दे रही है। हमें उनका सम्मान ही नहीं बल्कि उनकी भक्ति भी करना चाहिए और उनके जेल चले जाने के कारण जो काम अधूरा रह गया है उसे पूरा करना

शान्ति का उपाय

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रति का /)
विदेशों के लिए वार्षिक ७)

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद, ज्येष्ठ बदि १०, संवत् १९७९, रविवार, सायंकाल, २१ मई, १९२२ ई० | अंक ४०

सन्देश और बधाइयां

पूज्य कस्तूर-बा का सन्देश

मि० देवदास के जेल आने पर मेरे पास चारों ओर से दिलासा के पत्र आ रहे हैं। इस प्रेम के लिए मैं सबकी एहसानमन्द हूं।

मेरे तो केवल दो ही लड़के जेल गये हैं; पर भारत-माता के तो २० हजार बेटे कारागृह में हैं। मैं अपना दुःख क्या गाऊं? मुझे अपनी दुःख-कथा सुनाने का अधिकार भी कहां है?

भारत-माता के नौजवान पुत्रो! आप इस तरह मुर्दा-दिल के कब तक बैठे रहेंगे? अब भी यदि आप न संभलेंगे तो फिर कब संभलोगे? आप खादी का ही काम कीजिए, पर इतनी तत्परता के साथ कीजिए कि या तो आपके भाई फिर आपके पास आ जायं या आप उनके पास जेल में आ पहुंचें।

कस्तुर बाई गांधी

श्री० राजगोपालाचार्य की बधाई:—अभी खबर मिली है कि अहिंसात्मक युद्ध के दो हीरे—महात्माजी के सब से छोटे पुत्र देवदास गांधी और पण्डित मोतीलाल जी के इकलौते पुत्र जवाहरलाल नेहरू—पकड़े गये हैं। श्रीमती कस्तूर-बा गांधी के तो दुःख का पार ही नहीं है। परन्तु जिसे संसार के महान और निर्भय से निर्मल व्यक्तियों को पति और पुत्र के रूप में प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसे इतनी कीमत दिये बिना कहां छुटकारा है? मुझे विश्वास है कि भगवान् इस सती और भारत की ओर देख कर उन्हें इस दुःख को सहन करने की शक्ति देगा। महात्माजी के जेठे पुत्र कलकत्ता की जेल में है। पण्डित मोतीलाल जी अभी जेल में ही हैं। वे जब घर आवेंगे तो उन्हें घर सूना दिखाई देगा। भाई देवदास और जवाहरलाल को पकड़ कर सरकार ने संयुक्त-प्रान्त से अहिंसा और शान्ति के दो बड़े से बड़े जामिन लो लिये हैं।

सी. राजगोपालाचारी

नवयुवकों को

गुजरात के नौजवानो, अबतक मैं आपसे निराश रहा। पर आज मैं अपनी आखिरी आशा आप पर प्रकट किये देता हूं। आपने बहुत कुछ कर दिखाया है। आप कितनों ही को मैं अपना मित्र मानता हूं। कितनों ही से मेरा गहरा परिचय रहा है। इस बिदाई के समय आपसे मेरा एक ही अनुरोध है। इस युद्ध को इसी तरह आगे बढ़ाइये सहिष्णुता और सादा जीवन स्वीकार कीजियेगा। तभी आप स्वराज्य की कुंजी इस खादी के रहस्य को समझ सकेंगे।

देवदास गांधी (हवालात से)

टिप्पणियां

सरकार का इनकार

दो वर्ष पहले हिन्दुस्तानी अखबारों के गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाने पर भी शायद ही सरकार का ध्यान उस ओर जाता था। और उनकी बातों का जवाब देना तो शायद वह अपनी शान के खिलाफ समझती थी। पर आज जमाना बदल गया है। कहीं किसीने सरकारी नौकरों पर जुल्म और जबरदस्ती की तुहमत लगाई नहीं कि सरकार की तरफ से उसका इनकार हुआ नहीं। उनके और अपने कामों की ताईद में वह समय समय पर कम्युनिक भी निकालती है। पर आज भारतवासियों और खासकर असहयोगियों के दिल में इस बात का पूरा पूरा शक है कि उनमें बनावट कहांतक रहती है। जब बीसियों लोगों की आंखों देखी और सत्य का व्रत धारण करने वाले लोगों की लिखी हुई बातों का इनकार नौकरशाही करती है तब तो उसके नैतिक बल पर और उसकी दीनता पर दया आने लगती है। सरकार ने आजतक कितने ही आरोपों से इनकार किया है। पर एक भी निष्पक्ष कमेटी या कमीशन के द्वारा सच-झूठ का निर्णय नहीं कराया।

उस दिन बस्ती जिले के पुलिस के जुल्म का हाल भाई देवदास गांधी ने अखबारों में छपवाया। बस, गोरखपुर के कमिश्नर ने एक चिट्ठी जवाब में छपवा दी। लिख दिया, सब बात झूठ है। जो चमार मर गया है वह तो कुदरती मौत से मरा है। सच बात तो यह है कि शान का और रौब का झूठा अभिमान उन्हें सत्य की खोज करने और उसे कबूल करने से मना करता है। सरकार भले ही अपने दिल में समझती रहे कि सच को झूठ कह देने से मेरी फतह है; पर उसे याद रखना चाहिए कि लोगों की नजर में उसके इन फरमानों की इज्जत रद्दी के बराबर भी नहीं है और इसी अनीति में उसके नाश के बीज भरे हुए हैं।

सत्य अंधेरे में

कमिश्नर ने चाहे जानबूझ कर गोलमोल बात लिखकर धोका खुद खाया हो चाहे नीचे के हाकिमों ने सत्य को अंधेरे में रक्खा

हो–पर जिन लोगों ने अपनी आंखों से यह पिटाई देखी है वे उसे कैसे भूल सकते हैं ? प्रयाग के सहयोगी पत्र लीडर को भी कमिश्नर के पत्र पर भरोसा नहीं हुआ है और उसने उनसे पूछा है— दुबई चमार पीटा गया था या नहीं ? जिस दिन वह पीटा गया उसके दूसरे ही दिन मरा या नहीं ? जलाने के पहले उसकी लाश की डाक्टरी जांच कराई गई थी ? उसकी कोई रिपोर्ट मौजूद है ? किस तरह यह माना गया कि वह कुदरती मौत से मरा है ? उसे कोई खास या गहरी बीमारी थी ? क्या यह झोंपड़ी—कांग्रेस का दफ्तर जला देने की बात सच है ? कमीश्नर इस पर चुप क्यों हैं ? क्या घायल लोग तीन दिनों तक वैसे ही नहीं पड़े रहे ? उन्हें किसने गोरखपुर के अस्पताल में पहुंचाया ? यदि उन्हें गहरी चोट न पहुंची हो तो तीन दिनों तक वहां कैसे पड़े रहे ? किस कानून की रू से पिकेटिंग करने वालों को जबरदस्ती हटाया गया ? कोई गैर–कानून जमाव हुआ था ? और क्या जबरदस्ती हटाने के पहले किसी मैजिस्ट्रेट ने उसे गैर–कायदा करार दिया था ? वे मजिस्ट्रेट कौन हैं ? और उनकी रिपोर्ट कहां है ? इन प्रश्नों में ही सरकारी इनकार की पोल खुल जाती है । कमिश्नर इनका उत्तर दें या न दें, इससे हमें कोई वास्ता नहीं । हम असहयोगियों को तो रत्ती भर विश्वास इस वर्तमान सरकार पर नहीं रह गया है ।

इतनी बे-शर्मी !

पूर्वोक्त टिप्पणियां लिख चुकने पर संयुक्त–प्रान्त की सरकार के समाचार–विभाग के कमिश्नर का खुलासा हमारी नजरों में गुजरा उसमें तो बे–शर्मी की हद कर दी गई है । उसमें कहा गया है कि जब पुलिस के साथ छेड़–छाड़ की गई तब उसने उस महा-सभा के कहलाने वाले दफ्तर को जला डाला । दफ्तर क्या था, नैपाल की सरहद पर कितनी ही जगहों पर जैसी फूंस की झोपड़ियां होती हैं वैसा ही छप्पर था । ' शान्ति और कानून ' की रक्षा का यह तरीका कितना अद्भुत है !

नैपाल की सरहद पर तो डाकखाने भी घास–फूस के बने होते हैं; पर इसलिए यदि उन्हें कोई जला डाले तो क्या उसे माफी मिल सकती है ? ओबोयमा के बलंदा लोगों ने जब अंग्रेजों को कत्ल किया तब उसमें अंगरेज सिर्फ १० ही थे । पर क्या इसके लिए अंगरेजों ने बलन्दा लोगों के साथ जंग छेड़ने में हिचकिचाहट की ? जेकिन्स नामक एक अंग्रेज के स्पेनिश लोगोंने कान काट लिये थे । तब क्या उसके लिए इंग्लैंड ने स्पेन के साथ महायुद्ध नहीं छेड़ दिया था ? कोई शख्स अगर गुस्से में किसी का घर या झोंपड़ी जला डाले तो क्या सरकार उसे अपराध न मानने के लिए तैयार है ?

भाई देवदास लिखते हैं । पुलिस की मार–पीट के कारण परमेश्वरदत्तजी बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े । इसपर समाचार विभाग के कमिश्नर लिखते हैं कि मार खाने पर तो परमेश्वरदत्तजी एक मील तक दौड़ते गये थे । कमिश्नर साहब की बनिस्बत जनता का विश्वास तो भाई देवदास की सचाई पर ही अधिक है । तथापि घड़ी भर यह भी मान लें कि भाई देवदास ने जो समाचार दिये हैं वे गलत हैं और कमिश्नर साहब का ही कथन सत्य है । तो भी यह कहना कि घायल होने के बाद भी आदमी एक मील तक दौड़ता गया, क्या पुलिस की अंधाधुन्धी की सफाई का खास सबूत नहीं है ? दूसरे, यदि दो घायल आदमी भी दवा लेने के लिए तथा डाक्टर को बुलाने के लिए तैयार न हुए तो इसमें भी क्या आश्चर्य ? पुलिस के जुल्म से त्रस्त आदमी अगर अस्पताल की सहायता लेने में घबराएं या डर जायं तो यह कोई नामुमकिन बात नहीं है ।

पुलिस के अत्याचारों के मारे जो आदमी मर गया था उसके विषय में समाचार–विभाग के कमिश्नर साहब डिप्टी मैजिस्ट्रेट के ऐसी बयान की दुहाई देकर कहते हैं कि उस आदमी को मरने के कुछ दिन पहले से बुखार आ रहा था । मैजिस्ट्रेट साहब ने उसकी स्त्री और माता के बयान लिये कि उसको पुलिस की मार से कितनी चोट आई । इन दोनों के बयानों में आपको कुछ भेद दिखाई दिया । बस इसपर मेजिस्ट्रेट साहब ने साफ–साफ फैसला किया कि उसे तो कुछ चोट ही नहीं पहुंची । समाचार–विभाग के कमिश्नर साहब की आखरी दलील यह है कि घटना के चार दिन बाद श्री देवदास गांधी घटना–स्थल पर आये । पर इस बीच किसीने सरकार से फर्याद नहीं की । समझ में नहीं आता, इससे वे क्या सूचित करना चाहते हैं ? हमें तो इसका यही अर्थ मालूम होता है कि बेचारे दुखी लोगों ने जुल्म के खिलाफ अब शिकायत ही करना बन्द कर दिया है । जब प्रजा की ऐसी हालत हो जाय तब तो सुधरी हुई तथा न्यायीपन का दावा करने वाली सरकार को शासन–कार्य से इस्तीफा ही दे देना चाहिए ।

शास्त्री जी की गवाही

सरकार पर से भारतवासियों का कितना विश्वास उठ गया है इसके लिए यदि गवाही दरकार हो तो हम उसके सबसे दुलारे और ' टाइम्स ' के शब्दों में ' राजदूत ' श्री शास्त्री जी को ही खड़ा करते हैं । बम्बई की नरम–परिषद् के सभापति की हैसियत से भाषण करते हुए उन्होंने खुद अपने श्री–मुख से कहा है–इससे पहले सरकार के प्रति लोगों का इतना गहरा अविश्वास कभी नहीं देखा गया था । सरकार के आश्वासनों की कीमत आज लोगों की नजर में जरा भी नहीं रह गई है । उस दिन वाइसराय के सामने भी आपने अपने विदाई–भाषण में इसका उल्लेख किया और सरकारी हाकिमों को अपना चलन सुधारने का उपदेश किया ।

बेवकूफ कौन है ?

फिर समझ में नहीं आता सरकार यह कम्यूनिक निकाल निकाल कर और सच बातों का इनकार कर कर के क्यों पाप कमाती है और गरीबों का धन मुफ्त में बहाती है ? कुछ इने–गिने सरकारी नौकरों और मुट्ठीभर सहयोगी–भाइयों को भले ही उसकी नेक नीयत पर भरोसा हो; पर भारत का एक एक बच्चा उसकी बुराई का कायल हो गया है । उनको इन कम्यूनिकों से कोई गरज नहीं । इतना अविश्वास देखते हुए भी यदि सरकार कोरे कम्यूनिकों से अपने पर उनका विश्वास बढ़ाना चाहती हो तो इसके दो ही अर्थ हो सकते हैं– या तो वह लोगों को बेवकूफ समझती है या वह खुद बेवकूफ है ।

सारा भारत राजद्रोही है

स्वराज्य में देश–भक्ति और राज्यभक्ति दो जुदी जुदी चीज नहीं होती । पर भारत में स्वराज्य कहां है ? तभी तो यहां देशभक्ति राजद्रोह माना जाता है और नौकरशाही के मनमें लहर उठते ही भेड़–बकरों की तरह अच्छे अच्छे कुलीन, शिक्षित, चरित्रवान् लोग जेल में ठूंस दिये जाते हैं और डाकुओं की तरह उनके साथ बरताव किया जाता है । पर सरकार इस बात को शायद देख कर भी नहीं देखती है, कि आज प्रायः सारा भारत राजद्रोही है । और यह बात स्वयं श्रीनिवास शास्त्री महोदय अपने मुंह से वाइसराय के मुंह पर छिपे छिपे कह गये हैं । उन्होंने कहा आज भारतवासियों के दिल में इस सरकार के प्रति गहरा अविश्वास है । जहां अविश्वास है वहां प्रीति कैसे हो सकती है ? और सरकार के प्रति अप्रीति ही तो ताजीरात हिन्द की

कि वे भिन्न मार्ग से जा रहे हैं । वे शुद्ध असहयोग के मार्ग को छोड़ रहे हैं । अतएव वे असहयोगी नहीं बल्कि सहयोगी कहे जायंगे । वे कहते हैं, हम उनके भले और बुरे सब प्रकार के कामों में बाधा डालेंगे । उनका कहना ठीक भी हो सकता है । पर इन कौन्सिलों की रचना ही ऐसी है कि हमें पूरा विश्वास है कि वे ऐसा कर ही न सकेंगे । हम जब कौन्सिलों में प्रवेश करने की इच्छा रखते हैं तब यह कहते हैं कि हम कानून और अपने नैतिक बल के द्वारा विरोध करके उसके कार्य में विघ्न डालेंगे । पर हम कहते हैं यह उनके लिए असम्भव होगा । क्योंकि कानून की रचना ही इस तरह की गई है कि वह कौन्सिल के कार्यक्रम को ही सदा ठीक ठोकता है। इसलिए कानून के द्वारा कौन्सिल के कार्यों में बाधा डालना तो असम्भव है । और नैतिक बलद्वारा भी वे कुछ न कर सकेंगे ? क्योंकि जिनका ध्येय कार्य में विघ्न ही करना है उनका नैतिक बल वहां क्या काम दे सकता है ? अतएव उन्हें लाज नहीं तो फल निराश होकर या तो पूरे तरह बदलना होगा या छोड़ कर फिर असहयोग का आश्रय लेना पड़ेगा । ''

कंगाल भारत

अभीतक हमारे कई भाई विदेशी कपड़े ही क्यों पहना करते हैं ? अभीतक वे पतित जातियों के उद्धार के लिए क्यों नहीं दौड़ पड़े हैं ? क्या उन्हें हृदय नहीं ? क्या वे स्वार्थी हैं ? नहीं, वे धार्मिक कार्यों में विवाह-शादियों में, असंख्य धन-राशी बहा देते हैं । फिर वह कौनसी बात है जो उन्हें अभीतक देशोद्धार के काम में लगने से दूर रख रही है ? वह है अज्ञान, अपने देश की कंगाली का अज्ञान । उन्हें इस बात का भी ज्ञान नहीं कि मनुष्य जाति के जो जन्मसिद्ध अधिकार हैं उनसे भी वे किस प्रकार वंचित रक्खे जाते हैं । इस अज्ञान को मिटाने की दवा है परिस्थिति का निरीक्षण । यह जितना गहरा होगा उतना ही उनका खिंचाव देशसेवा की ओर अधिक बढ़ेगा । महात्माजी इतने विश्राम-काल में देशसेवा में क्यों लगे हुए हैं ? इसका एकमात्र कारण यही है कि वे किताबें पढ़कर ही नहीं बैठ रहे । देश के कोने कोने में घूम घूम कर उन्होंने अपने देश-भाइयों को अपनी आंखों भूख से तड़पते हुए कपड़ों के अभाव से नंगे फिरते देखा है । फिर वे कैसे चैन पा सकते हैं ? हमारे कई देश भाइयों को जो गदगुदे गद्दों पर बैठे रहते हैं उनके गरीब भाइयों को रोजमर्रा जो अपरिमित अपमान सहने पड़ते हैं, मदांध अधिकारियों की गालियां, ठोकरें, हंटर खाना पड़ते हैं—उनका ख्याल भी नहीं होता । हम चाहते हैं कि हमारे ऐसे भाई जरा उठें, आंखें खोलें, अपने ही ऐशोआराम में अंधे न हो जायं, जरा परदे से बाहर निकल कर अपने देश-भाइयों की हालत को भी देखें और उन्हें सुखी बनाने की चेष्टा करें ।

उन्हें यह स्वप्न में भी ख्याल न होगा कि भारत तो सारे संसार में सबसे अधिक कंगाल देश है । हरएक भारतीय की वार्षिक आमदनी सरकारी लिखो के अनुसार औसत दर्जा सिर्फ दो पाउंड है । एक साधारण यूरोपियन घोड़े के लिए एक साल में जितना खर्च करता है उससे भी यह रकम छोटी है । भारत की जेलों में भी हरएक कैदी के खाने कपड़े का खर्च इससे डेढ़ गुना अर्थात सालाना तीन पाउंड गिना जाता है । अगर बेचारे भारतवासी कैदी का जीवन ही पसंद करें और अपनी आवश्यकता को बिलकुल घटाकर सिर्फ अत्यंत खराब अन्न और कुछ ही मोटे कपड़ों तक महदूद रखें तो भी उनका निर्वाह नहीं हो सकता । उनकी औसत दर्जा संपत्ति भी संसार में सब देशों से कम है । हरएक भारतीय की संपत्ति पौं. ९-१०-० है । इंग्लैंड में एक साधारण भिखारी की खुराक के लिए जितना धन खर्च किया जाता है उससे आधी भी यह रकम नहीं है । भारत में धन बड़े असमान परिमाण में विभक्त किया गया है । और खास बात तो यह है कि धन का अधिकतर भाग गैर हिंदुस्तानी ही खींच ले जाते हैं । इससे साधारण जन-समाज की आमदनी की औसत और भी कम निकलती है । इस हालत में कितने ही देश-भाइयों को घरबार की तो बात ही दूर है, पूरा खाना कपड़ा भी न मिले तो क्या आश्चर्य ? एक पादरी महाशय ने यह ठीक ही कहा है:—ये लोग दो दो तीन तीन दिन में केवल एक ही बार भोजन पा सकते हैं ।

हरएक देश में व्यक्तिशः औसत दर्जा आमदनी का कोष्टक नीचे दिया जाता है—

देश का नाम	फी आदमी की सालाना आमदनी पाउन्ड में	हरएक आदमी की संपत्ति पाउन्ड में
आर्जेन्टाइन	२४	१४०
आस्ट्रेलिया	४०	३७०
आस्ट्रिया	१५.५	१०५
बेल्जियम	२८	१३०
डेन्मार्क	२२.५	२३०
फ्रान्स	२७.८	२४०
जर्मनी	३१	१६०
ग्रीस	...	७५
हिन्दुस्तान	२	९.२
इटाली	१२.२	५५
नेदरलैंड्स	२२.६	२४०
रुमानिया	...	९०
रूस	११.५	६०
सर्बिया	...	८५
स्पेन	१६.५	१०५
स्वीडन	२२	१४०
स्विट्जरलैन्ड	१५	१५०
युनाइटेड किंगडम (संयुक्त राज्य) ...	६०	३००
युनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका) ...	४०	२५०

इस कोष्टक को पढ़ते ही हमारे कई भाइयों की आंखें खुल जायंगी। उन्हें यह स्पष्टतया दिखाई देगा कि हमारा देश ही सब से अधिक कंगाल है । निर्धनता ही सब आपदाओं की माता है और इसे मिटाने के लिए चरखे से बढ़कर दवा भारत के लिए तो कदापि कम हो ही नहीं सकती ।

पाठकों के प्रति

'हिन्दी-नवजीवन' का आरम्भ बतौर आजमायश के किया था । शुरूआत में यह आशंका रही थी कि यह अधिक दिनों तक जीवित रह सकेगा या नहीं । अतएव सालाना चन्दे के साथ ही छःमाही चन्दा लेने का भी नियम रक्खा गया था । पर अब ईश्वर की कृपा से वह अपने पैरों पर खड़ा हो गया है । अतएव छःमाही चन्दा लेने का नियम उठा दिया गया है । अब से प्रेमी पाठक वार्षिक मूल्य ४) ही भेजें । व्यवस्थापक

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में श्री-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, ज्येष्ठ वदि १०, सं. १९७९

शान्ति का उपाय

आज भी योरप कलह की लीला-भूमि हो रहा है। दो वर्ष पहले तो वहां कलह का नंगा नाच सारी दुनिया ने देखा ही। इंग्लैंड तो परोपकारी ठहरा। उसका कहना था कि मैं छोटे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और शान्ति के लिए इस युद्ध में शामिल होता हूं। अमेरिका के हृदय में भ्रातृ-भाव उमड़ा। उसकी सहायता से पौ-बारह होते ही इंग्लैंड की साम्राज्य-लालसा ने अपना विकराल और बीभत्स रूप प्रकट किया। जर्मनी को चूस डालने की तैयारियां हुईं। टर्की के टुकड़े टुकड़े कर डालने पर कमर कसी गई। आम तौर पर सारी दुनिया ने और खास तौर पर मुसलमानों ने देखा कि इंग्लैंड के कर्णधार कैसे भले आदमी हैं। यदि वे ब्रिटिश साम्राज्य, अंगरेज जाति, योरप की संस्कृति और ईसाई मजहब के प्रतिनिधि हों तो यह सोचने की बात है कि अपने वचनों का भंग करके लाइड जार्ज ने ऊपर की चारों बातों की इज्जत दुनिया की नजर में कितनी बढ़ा दी है?

कहते हैं, लाइड जार्ज की बुद्धि अनोखी है। राज-नीति के तो वे आचार्य ही हैं। संसार में इन गुणों में उनकी समता करने वाला शायद ही कोई हो। अभी जिनोवा में एक प्रपंच रचा गया था। इंग्लैंड के प्रधान सचिव लाइड जार्ज को योरप के आर्थिक संगठन की बड़ी चिन्ता पड़ी है। योरप आज कंगाल हो गया है। इंग्लैंड को छोड़ कर दूसरे राष्ट्रों के पास नकद रुपया बहुत कम है। नोटों पर सब काम चल रहा है। एक राष्ट्र के नोट दूसरे राष्ट्र में बहुत कम दामों पर बिकते हैं। पूंजी के अभाव में बहुत से कल-कारखाने आराम कर रहे हैं। व्यापार की हालत भारत के अकाल-पीड़ितों की तरह हो रही है। करीब करीब सब राष्ट्र कर्जदार हैं। इंग्लैंड के भी माथे अमेरिका का बहुत कर्ज है। भारत यों तो कंगाल है। पर इंग्लैंड के लिए वह 'अन्नपूर्णा का मन्दिर' है। इसके बल पर ब्रिटिश-सिंह आज योरप के मैदान में दुम फटकार रहा है। जर्मनी और रूस को तो इंग्लैंड योरप में इज्जतदार राष्ट्र मानने के लिए तैयार नहीं थे। वे बेचारे अछूत समझे जाते थे। यह देख कर उन्होंने आपस में सुलह कर ली। इंग्लैंड घबड़ा गया। इटली टर्की के साथ हमदर्दी रखता है। तुर्किस्तान तो अंगरेजों की तरफ कैसे रह सकता है? आस्ट्रिया जर्मनी का पड़ोसी और मित्र ही है। दो तिहाई से अधिक योरप का भाग एक ओर अर्थात् इंग्लैंड के खिलाफ हो गया है। फ्रान्स को जर्मनी का बहुत डर है। इसलिए पुरानी शत्रुता होते हुए भी वह इंग्लैंड के साथ रहना चाहता है। पर जिनोवा-परिषद् में रूस ने जो रुख रक्खा है उससे फ्रान्स और इंग्लैंड में भी कहा-सुनी हो गई है। इंग्लैंड और फ्रान्स चाहते हैं कि किसी तरह रूस और जर्मनी की दोस्ती टूट जाय और लड़ाई के खर्च की रकम का तकाजा करके रूस को दबा लें। पर रूस ने अर्थात् लेनिन की सोविट सरकार ने उस रकम को देने से साफ इनकार कर दिया है और नया कर्ज देने का तथा बोलशेविक सिद्धान्तों का प्रचार योरप के दूसरे राष्ट्रों में करने की सुविधा का अड़ंगा लगा दिया है। इधर इटली और तुर्किस्तान में भी सुलह की बातें हो रही हैं। ये सब बातें इंग्लैंड के खिलाफ जा रही हैं। थोड़े ही दिन पहले लाइड जार्ज ने विकल हो कर कहा था कि यदि जिनोवा परिषद् में सफलता न हुई तो योरप में मेरी ही जिन्दगी में फिर खून की नदियां बहेंगी। कलकत्ते के "इंग्लिश मैन" के एक संवाददाता ने तो जिनोवा से यहां तक लिखा था कि बहुत मुमकिन है योरप में इसी साल फिर जंग छिड़े।

यह रंग देख कर लाइड जार्ज ने परिषद् मुल्तवी करा कर रूस के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक कमीशन बिठाने का प्रस्ताव पास करा लिया है। इसको अंगरेजी अखबार वाले परिषद् की अच्छी सफलता मान रहे हैं। हां, अभी तो यह संसार का संकट टल गया है। आगे की राम जानें।

बारीक नजर से परिषद् की कार्रवाई देखने से यह बात साफ दिखाई देती है कि योरप के सभी राष्ट्र अपने अपने स्वार्थ में बुरी तरह लिप्त हैं। प्रायः सब दूसरे को कमजोर देख कर, दबा हुआ देख कर, अपना मतलब गांठने की धुन में है। इंग्लैंड एक ओर जहां यूनान रूपी शिखंडी को आगे कर के तुर्किस्तान को हड़प जाना चाहता है और दूसरी ओर इंग्लैंड तथा फ्रान्स मिलकर जर्मनी और रूस को युद्ध के खर्च और कर्ज की नींव बता कर, आर्थिक संगठन की मीठी शराब पिला कर, सारे योरप में 'हमी-हम' हो जाना चाहते हैं तहां जर्मनी और रूस अपनी आपस की सुलह से इंग्लैंड को घबड़ाता हुआ देखकर अपने बैर का बदला निकालने और इंग्लैंड के दांत तोड़ने पर तुले हुए हैं। इनमें किस के पक्ष में न्याय और सत्य अधिक है तथा किसके पक्ष में नहीं, इस प्रश्न को छोड़ देने पर भी यह बे-खटके कहा जा सकता है कि प्रायः सब दूसरे का ले लेना ही चाहते हैं देना जरा भी नहीं पसन्द करते।

और ताज्जुब तो यह है कि फिर भी वे शान्ति के स्वप्न देख रहे हैं। योरप से शान्ति की आवाज चाहे सच्चे दिल से निकल रही हो, चाहे साम्राज्यवाद की एक मायावी लीला हो; पर इसमें कोई शक नहीं कि जिस बुनियाद पर शान्ति और सुख की इमारत खड़ी करने की कोशिश हो रही है वह बिलकुल गलत और बेकाम है। जबतक खुदगरजी की हद कायम नहीं हो जायगी, जबतक दूसरों के मालोमाल को लालच की निगाह से देखने की आदत नहीं छोड़ी जायगी, जबतक आपस में सच्चा भाईचारा और कुटुम्ब-भाव का उदय न होगा, तबतक शान्ति और सुलह की पुकार व्यर्थ है। योरोप के मतवाले राष्ट्रों और राजनीतिज्ञों की आंखें इसी पिछले महायुद्ध से खुल जानी चाहिए थीं; पर मालूम होता है कि ईश्वर संसार के अपराधियों पर अपना पूरा पूरा कोप प्रकट करना चाहता है। बड़ी सावधानी के साथ बोलने और लिखने वाले योरप के राजकारणी लोग जब शीघ्र ही योरप के मैदान में रण-चण्डी का नृत्य देखने की आशंका करते हैं तब यह अनुमान करना गलत न होगा कि भगवान् शंकर योरप पर अपना तीसरा नेत्र खोलना चाहते हैं। जिस हद तक भारत आम तौर पर योरप के और खास तौर पर इंग्लैंड के पापों में सहायक हुआ है उस हद तक उसे भी इसका फल भोगना पड़े तो आश्चर्य नहीं।

भारत के लिए तो बस एक ही आशा है। उसने पश्चिमी संसार की गति-विधि देखकर पहले ही से उसके पापों में साझीदार होने से अपना हाथ खींच लिया है—असहयोग आरम्भ कर दिया है। संसार अभीतक जिस शान्ति की खोज और उपासना में गलत रास्ते पर भटकते हुए सच्ची शान्ति के नाके पर फांकी लगा रहा

है वही इस असहयोग का मूल आधार है और उस शान्ति की रक्षा तथा पालन करना प्रत्येक असहयोगी अपना धर्म मानता है। संसार को चाह हो और आँखें हों तो वह यहाँ आ कर उसका प्रयोग देख ले, देख ले कि कौन तो जालिम के अत्याचारों को सहन करते हुए भी अपूर्व शान्ति का आचरण कर रहा है और कौन 'कानून और शान्ति' के नाम पर शान्ति से शत्रुता कर रहा है। योरप की इस भीतरी अशान्ति, कलह और बेचैनी को देख कर हमारा विश्वास अधिक दृढ होना चाहिए। हमारे दिल के परदे परदे में यह बात नक्श हो जानी चाहिए कि बस भारत का एक ही राजमार्ग है— शान्तिमय असहयोग। भारत के इस प्रयोग में सफल होते ही आज के ये मतवाले साम्राज्य उसके पैर पूजेंगे और कहेंगे—

> अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया
> चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।

अर्थात् हे आर्यदेश, तूने हम अन्धों को राह दिखाई। तू हमारा गुरु है। तुझे नमस्कार है।

पर याद रखिए, कोरी 'बात-बहादुरी' से यह अनुष्ठान सफल नहीं होगा। तन तोड़ कर काम करना होगा। इसकी जो सीधी-सादी कसौटी महात्मा जी बता गये हैं उसमें पास होना पड़ेगा। वह है खादी का प्रचार। यदि भारत हाथ की बुनी खादी पहनने को तैयार नहीं है, यदि भारत की मातायें और बहनें सादा जीवन बिताने और चरखा कातने के लिए तैयार नहीं है, यदि भारत के विद्यार्थी गुलामी के गोबर के कीड़े बने रहना और मायावी पूतना का स्तन-पान करना चाहते हैं, सूत कातने, खादी को अंगीकार करने और घर घर उसका प्रचार करने के लिए तैयार नहीं हैं, यदि भारत के धर्म-प्राण व्यापारी विदेशी कपड़े मंगा कर गुलामी के कीड़े घर घर बांटने का पाप कमाने में संकोच नहीं करते हैं, यदि भारत के सरकारी नौकर अपने घर में भी खादी पहनने की जवांमर्दी नहीं दिखा सकते तो भारत संसार में भारत नहीं रह सकता। संसार को रास्ता दिखाने की तो बात दूर रहे, वह खुद ही पापियों के पंजे में दब कर गुमराह हो जायगा और उसकी आगे की पीढ़ी इतिहास में उसकी राष्ट्रीयता के नाश का हाल पढ़ कर चार चार आंसू बहावेगी।

पर भारत का हृदय श्रद्धा से भरा हुआ है। उसके हृदय में ईश्वर की ज्योति जगमगा रही है। उसका मार्ग धर्म का मार्ग है, प्रेम का मार्ग है। उसका शरीर निर्बल है तो क्या हुआ? उसकी आत्मा में तो बल की अखंड धारा बह रही है। वह अधिक समय तक धोखे में नहीं रह सकता। उसकी स्वतन्त्रता का, उसके उद्धार का हुक्म ईश्वर के दरबार से जारी हो चुका है। भारत अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे—बस उसकी बेड़ियां तड़ातड़ टूट जायँगी और वह संसार की बेड़ियों को काट देगा।

श्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू को १८ महीने की सख्त कैद की सजा दी गई है।

अगली २७, २८, मई को हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन लाहौर में होने वाला है।

गुजरात प्रान्तीय परिषद् की बैठक अगली २५, २६ मई को आणंद में होगी।

खेद है, गांधी हिन्दी-पुस्तक-भाण्डार, बम्बई, के संचालक, हिन्दी के सेवक पं. उदयलाल काशलीवाल का स्वर्गवास हो गया।

ब्रह्मचर्य या वैधव्य?

हरएक धर्म ने ब्रह्मचर्य का महत्त्व गाया है। ब्रह्मचर्य ही परम तप है। सामर्थ्य तो ब्रह्मचर्य ही में है। और ब्रह्मचर्य ही से मोक्ष भी प्राप्त हो सकता है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि संपूर्ण ब्रह्मचारी के लिए इस संसार में कोई बात असाध्य नहीं है।

पर ब्रह्मचर्य जितना कल्याणप्रद है उतनाही कठिन भी है। तलवार की धार पर चलना जितना कठिन है उतना ही कठिन ब्रह्मचर्य का पालन भी है। इसीलिए उसे असिधारा-व्रत कहते हैं। वह इतना कठिन है इसीलिए उसके सौम्य और साधारण-जन-साध्य संस्करण भी तैयार करने पड़े। भिन्न भिन्न स्थिति के लोगों के लिए ब्रह्मचर्य की भिन्न भिन्न व्याख्यायें की गईं। विलास में डूबे हुए लोगों को ब्रह्मचर्य का उच्च आदर्श भला किस तरह आकर्षित कर सकता है? इसीलिए उनके लिए तो "स्वयोषिति रतिः" ही ब्रह्मचर्य की व्याख्या हो सकती है। जिस समाज में चाहे जितनी औरतों के साथ शादी करने का रिवाज था उसके लिए चार से ज्यादह स्त्रियों के साथ शादी न करने के लिए मजहबी फर्मान करना भी ब्रह्मचर्य का ही उपदेश है।

विलासिता को हम कुदरती स्थिति मान सकते हैं। लेकिन ब्रह्मचर्य तो धार्मिक स्थिति है। गृहस्थ जीवन दोनों के बीच—मध्यम मार्ग—है। विलासिता एक छोर पर है और ब्रह्मचर्य दूसरे पर। संयमी गृहस्थ-जीवन तो दोनों के बीच समझौता है। उसे भी हम स्वाभाविक कह सकते हैं। क्योंकि उसमें प्राकृतिक वासना और धार्मिक आदर्श दोनों का यथा-साध्य समझौता किया जाता है। संयमी गृहस्थ दिन ब दिन ब्रह्मचर्य के आदर्श की ओर बढ़ता ही जाता है।

इसके विपरीत ब्रह्मचर्य का एक और भी प्रकार है। उसे ब्रह्मचर्य का विकृत स्वरूप कह सकते हैं। वह है वैधव्य। वैधव्य का यहाँ पर व्यापक अर्थ किया गया है। वैधव्य के मानी है बाह्य-ब्रह्मचर्य—मजबूरन् पालन किया ब्रह्मचर्य। वैधव्य में प्रायः मानसिक संयम का अभाव रहता है। सिर्फ शारीरिक ब्रह्मचर्य ही उसमें होता है। और इसी कारण से मनमें विलास-चिंतन बुझुना होता है। इसीलिए हमने ऐसी दशा के लिए वैधव्य नाम ही पसंद किया है।

मनोविकारों के वश होना ही अगर विलासिता हो तो हिंसा भी एक किस्म की विलासिता ही है। और इसी भाषा में अहिंसा को ब्रह्मचर्य कहना चाहिए। हिंसा में वीर्यनाश है। अहिंसा रूपी ब्रह्मचर्य के पालन से देश में अमोघ वीर्य पैदा होगा। इसमें सन्देह नहीं।

भारत में जब से अंगरेजों का राज्य हुआ है तब से लोग अहिंसा का पालन बहुत करते आये हैं। लेकिन वह अहिंसा मानसिक संयम-युक्त नहीं थी। उसमें क्षीण-वीर्यता या वैधव्य दशा ही थी। आज भी देश में कई लोग अहिंसा का पालन वैधव्य-वृत्ति से ही कर रहे हैं। ऐसे लोगों को बाह्य संयम का लाभ तो जरूर मिलता है। लेकिन जबतक मन में हिंसा का चिंतन जारी रहता है तबतक ब्रह्मचर्य का वीर्य, अहिंसा का तेज उसमें आ ही नहीं सकता।

वाणी का संयम भी एक किस्म का ब्रह्मचर्य ही है। पिनल कोड के डर से मुँह बंद कर रखना वैधव्य दशा ही है। अपने विचारों को और उद्गारों को हम जितने काबू में रक्खेंगे उतनी ही अंतःस्फूर्ति और वाचासिद्धि हमें प्राप्त होगी।

ब्रह्मचर्य—सार्वभौम ब्रह्मचर्य—से अलौकिक वीर्य का लाभ होगा लेकिन वह वीर्यलाभ स्वेच्छापूर्वक ब्रह्मचर्य से होगा। समाज में ब्रह्मचर्य स्थापित करने का काम धर्म का है। सरकार—कोई भी सरकार केवल वैधव्य दशा खड़ी कर सकती है।

धर्म के ज्ञान से, धार्मिक भावना के आचरण से, सारे समाज में प्रचण्ड शक्ति उदय हो सकती है। उसके अभाव में समाज में विलासिता, हिंसा, मत्सर, असूया, निंदा, द्रोह आदि दुर्गुण फैलते हैं, और समाज क्षीणवीर्य होकर नष्ट होजाता है।

ऐसे नाश से समाज को बचाने के लिए ही दुनिया की हरएक सरकार ने कानून बनाये हैं जिससे कि समाज विघातक मनोविकारों के वश न होकर आत्मनाश से बच जाय।

लेकिन कानून तो बाह्य आचार का ही नियन्त्रण कर सकते हैं। अर्थात् वे समाज में वैधव्य व्यथा खड़ी कर सकते हैं। सच्चा ब्रह्मचर्य तो मनुष्य–जाति के तारणहार और धर्मकार धर्मोपदेशक से और अपने उदाहरण से समाज में विकसित कर सकते हैं।

(६)

सरकार में और उसके कानून में ब्रह्मचर्य को पैदा करने की शक्ति क्यों नहीं रहती? कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ सरकार इस विषय में इतनी असमर्थ क्यों रहती है? इसका जवाब स्पष्ट है। खुद सरकार का आचरण ही हमेशा विपरीत रहता है। प्रजा में अहिंसा स्थापन करने के लिए हरएक आधुनिक सरकार स्वयं ज्यादह से ज्यादह हिंसक बनती है। आजकल सरकार की हिंसावृत्ति इतनी बढ़ गई है कि अगर कोई उसकी यह परिभाषा करे कि "बड़ी से बड़ी और सुव्यवस्थित हिंसाशक्ति ही सरकार है" तो उसमें बहुत भारी दोष न होगा।

और तिसपर भी जब सरकार परदेशी होती है तब तो पूछना ही क्या? प्रजा की इच्छा के विरुद्ध जहांपर राज्य चलता है, वहां की सरकार जनता के भय, लालच, मत्सर आदि हीन वृत्तियों का पोषण तथा फैलाव करके ही जीवित रह सकती है।

कोई भी विदेशी सरकार किसी देश की जनता पर उसके विरुद्ध जब राज्य करती है तब वह निष्काम भाव से या परोपकार वृत्ति से थोड़े ही ऐसा करती है? अपना स्वार्थ साधने के लिए ही तो सब चालबाजियां चली जाती हैं। इसीलिए स्वार्थी विदेशी सरकार का राज्य सिर पर होना जनता के लिए बड़ी से बड़ी राष्ट्रीय आपत्ति होती है। ऐसे राज्य में हरदम प्रजा का नैतिक अधःपतन बढ़ता ही जाता है। ऐसी बुरी हालत से बचने का मार्ग सिर्फ एकही है। और वह है ऊपर बताया सार्वत्रिक ब्रह्मचर्य।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

बम्बई में कार्य-समिति

महासभा की कार्य–समिति की बैठक ता. १२–१३–१४ मई को हकीम अजमल खां साहब के सभापतित्व में बम्बई में हुई थी। उसमें जो प्रस्ताव पास किये गये उनमें से प्रधान प्रधान प्रस्ताव नीचे दिये जाते हैं।

खादी की योजना

देश के सामने जो विधायक कार्यक्रम रक्खा गया है उसे पूरा करने के लिए हरएक प्रान्त को हाथ–कती–बुनी खादी की पैदाश बढ़ाने के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए।

हरएक प्रान्त को आर्थिक और शास्त्रीय ज्ञान की सहायता देने तथा एक प्रान्त के अनुभव से दूसरे प्रान्त को लाभ पहुंचाने के लिए एक विशेष महकमा खोला जाय। उसे खोलने का काम सेठ जमनालालजी बजाज को सौंपा जाय। और उस महकमे का काम चलाने के लिए समिति १७ लाख रुपये देना मंजूर करती है।

इस महकमे के नीचे लिखे तीन विभाग होंगे—

१ खादी–विषयक शास्त्रीय ज्ञान देने वाला विभाग।

२ खादी का पैदायश–विभाग।

३ खादी का क्रयविक्रय–विभाग।

शास्त्रीय ज्ञान श्री मगनलालजी गांधी सत्याग्रहाश्रम साबरमती से मिलेगा। हरएक प्रान्त को दो दो या तीन तीन विद्यार्थी ६ मास तक आश्रम की वस्त्र–शाला में शिक्षा पाने के लिए भेजना चाहिए। वहां उन विद्यार्थियों को खादी तैयार करने की समस्त क्रियाओं में निपुण हो जाना चाहिए। उनकी शिक्षा समाप्त होते ही उन्हें अपने अपने प्रान्तों में इसी प्रकार की वस्त्रशालायें खोलना होंगी।

पैदायश–विभाग का कार्य श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तमजी के सुपुर्द किया गया है। उनकी सहायता के लिए चार निरीक्षक भी दिये जायंगे। उनका काम होगा कि हरएक प्रान्त का दूसरे प्रान्त से संबंध जोड़कर कपड़ा तथा सूत का दर्जा नियत करना। यह विभाग प्रान्तिक विभागों के सामान्य कार्यों में हाथ न डालेगा।

खादी विक्रय–विभाग का काम यह होगा कि वह ऐसे स्थानों पर खादी के भंडार खोले जहां कि प्रजा को महासभा–समितियां खादी अच्छी तरह नहीं दे सकती। इस विभाग की व्यवस्था श्री विट्ठलदास जेराजानी करेंगे।

इन तीनों विभागों को जोड़कर देश में खादी प्रचार करने की जवाबदेही श्री सेठ जमनालालजी बजाज के सिर पर रहेगी। उनका पद खादी–विभाग के मंत्री तथा कोषाध्यक्ष का रहेगा।

धन सहायता के लिए हरएक प्रान्त को सेठ जमनालाल जी के पास प्रार्थना–पत्र भेजना होंगे, जिन्हें वे अपनी सिफारिश के साथ कार्यसमिति में पेश करेंगे। बहुत जरूरी मामलों में वे खुद ५०००) तक दे सकते हैं और पीछे से कार्य–समिति की मंजूरी ले सकते हैं।

पर आर्थिक सहायता देते समय कार्य–समिति इन दो बातों पर विशेष ध्यान देगी—(१) प्रान्त की जरूरत कितनी है (२) स्थानिक कार्य चलाने तथा मदद देने लायक वह है या नहीं? साथही उस प्रान्त ने इस काम में अपना कितना पैसा लगाया है?

हरएक–विभाग में साथ रखकर निम्न–लिखित तरह खर्च करने की मंजूरी हुई है—

	रु.
शास्त्रीय ज्ञान के लिए	२५,०००
खादी पैदायश के लिए	२०,०००
खादी–विक्रय के लिए	३,००,०००
प्रचार–विभाग, आदि के लिए	१,००,०००
प्रान्तों को आर्थिक सहायता	१२,५५,०००
	रु. १७,००,०००

राष्ट्रीय शिक्षण

देश में राष्ट्रीय शिक्षा देने के लिए भी योजना करना निश्चित हुआ है। उसे तैयार करने तथा चंदा एकत्र करने, बजेट आदि तैयार करने और समिति की आगामी बैठक में इस योजना–संबंधी प्रार्थना–पत्र को पेश करने के लिए निम्न–लिखित चार महाशयों की नियुक्ति हुई है—

हकीम अजमल खां, डा. अनसारी, श्री॰ श्रीनिवास आयंगार, और आचार्य गिडवानी।

यह भी निश्चित किया गया है कि राष्ट्रीय शिक्षा के लिए भेंट तथा कर्ज मांगने के लिए जितने प्रार्थना–पत्र आये हों या आगे आवें वे अभिप्राय के लिए इस मंडल के सामने पेश किये जावें।

बा का भाषण

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)।
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद, ज्येष्ठ सुदि २, संवत् १९७९, रविवार, सायंकाल, २८ मई, १९२२ ई० | अंक ४१

गुजरात प्रान्तीय परिषद्

स्वागत-समिति के सभापति का भाषण

स्वागत-समिति के अध्यक्ष श्री गोपालदास देसाई ने अपना जो भाषण सुनाया उसका सार इस प्रकार है—

प्रतिनिधि भाई-बहनो और माननीय मेहमानो

कारावास-निवासी पूज्य महात्माजी, तथा दूसरे देश-भक्तों को याद करके भारतीय धर्मयुद्ध के इस नाजुक अवसर पर स्वागत मंडल की ओर से तथा इस तहसील की समस्त प्रजा की ओर से आज आप सब भाइयों का स्वागत करते समय मैं अपनेको कृतकृत्य मानता हूं।

हमने पशुबल के खिलाफ यह युद्ध शुरू किया है। हमारा बल है आत्मबल। विजित और विजयी दोनों का सर्वनाश करनेवाला पशुबल महान् है या इन दोनों का सच्चा भला करने वाला आत्मबल सचमुच महान है यह सिद्ध करने का बीड़ा आज भारत ने उठाया है। इतना ही नहीं वरन् उसको सिद्ध कर दिखाने के लिए आज भारत के हजारों नौजवान और बूढ़े पुरुष कारावास के कष्टों को सह रहे हैं। सच तो यह है कि उसके लिए एक महायुद्ध ही छिड़ गया है। और इस महायुद्ध का अभी तो पहला अध्याय ही हो पाया है। तथापि हमें निराश न होना चाहिए। साथ ही हमें अधीर भी न होना चाहिए। एक ओर तो हमारा ध्येय बहुत उच्च है पर साथ ही दूसरी ओर हमारी गुलामी भी उतनी ही गहरी है। इसीलिए अपने ध्येय-मार्ग पर चलते चलते हमें थकावट आ जाती है। और परिश्रम के मारे हम अधीर हो जाते हैं। पर सिद्धांत-वादियों को अधीर कभी न होना चाहिए। सिद्धान्त वादी तो सिर्फ दोही बात जानता है। जीतना या अपने सिद्धान्त के लिए मर मिटना। हारना तो वह कभी जानता ही नहीं। इसलिए बंबई और चौरीचौरा की दुर्घटनाओं से हमें निराश न होना चाहिए। विग्रह के इस दूसरे अध्याय में यह परिषद् मंगलाचरण-रूप है। हमें गुजरात को किस प्रकार अपने कर्तव्य-पथ पर पैर बढ़ाना चाहिए, इसीका विचार करने के लिए आज हम सब सम्मिलित हुए हैं।

मेरा तो अभिप्राय यह है कि महात्माजी का व्यापक-रूप से अभिनन्दन करने ही में हमारा सारा कर्तव्य समा जाता है। महात्मा गांधी क्या हैं—गुजरात के अनेक बरसों के संचित तपोबल की तेजोमयी मूर्ति। ऐसे तपोधन का अगर हम अभिनन्दन करने की धृष्टता करने जा रहे हैं तो हमें सोच-समझ कर ही आगे कदम बढ़ाना चाहिए। क्योंकि उनका अभिनन्दन करने के लिए भी बहुत भारी योग्यता की आवश्यकता है। उस कर्म की मूर्ति को वाणी का सूखा अभिनन्दन कैसे शोभा दे सकता है? जिनकी प्रवृत्ति सर्व देशीय है उनके आगे एक वस्तु कितनी अधूरी दिखाई देगी? गुजरात के गौरव को सदा के लिए अमर रखने वाले इस धर्मात्मा में ब्राह्मण का ज्ञान और त्याग दीपित हो रहे हैं। गुजरात में जितनी मात्रा में आत्मत्याग और सच्चे ज्ञान का उदय होगा उतनी ही मात्रा में वह महात्माजी का अधिकाधिक अभिनन्दन करने योग्य होगी। सेवा-भावी और स्वार्थ-त्यागी पुरुष राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय भावनायें, और उच्च चारित्र्य के गुजरात में उदय होने में सहायक हों तो महात्माजी का आत्मा गुजरात के द्वारा किये अपने अभिनन्दन का सहर्ष स्वीकार करेगा। महात्माजी तो क्षात्र-सौजन्य और निर्भयता के आगर हैं। जब गुजरात अंग्रेजी से क्या का असहयोग के कट्टर विरोधियों को भी अभय कर दे, जब वह ब्रिटेन के कठोर पशुबल, का सामना प्रेमपूर्वक करने को तैयार रहे तभी हमारा प्रणाम महात्माजी को पहुंच सकता है। महात्माजी तो हैं प्रजा का पालन करने वाले पवित्र वैश्य। इस जमाने में लोग धन के पीछे अंधे हो रहे हैं। इसलिए गुजरात के इस अलौकिक व्यापारी के हृदय में संतोष तो तभी हो सकता है जब गुजरात सट्टेबाजी छोड़ दे, अति-विलास की नशेबाजी से भी बाज आवे, पर सेवा-रूपी पवित्र धान्य को ही ग्रहण करे, अन्नपूर्णा के मंदिर, इस देश में कोई भूखों न मरे और न कोई नंगा घूमता दिखाई दे, और जब चरखे की मधुर तान घर घर में सुनाई दे। कहा जाता है कि गुजरात वैश्यवृत्ति प्रधान है। इसलिए इस वैश्य कुलोत्पन्न साधु का आत्मा भी तभी प्रसन्न हो सकता है जब गुजरात की पूंजी खादी के व्यापार में ही लगाई जाय, यहां के व्यापारी खादी का पवित्र तथा कल्याणप्रद व्यापार ही करने लगें, और यहां की जनता खादी से ही अपने शरीर को

आभूषित करे । महात्माजी तो शुद्ध सेवा की मूर्तिमान् अलौकिक शक्ति हैं। अगर गुजरात अस्पृश्यता के निवारण को, गुण, कर्म और सेवा के सिद्धान्त की फिर स्थापना करे तभी इस निष्काम योगी की जन्मदात्री इस भूमि की कीर्ति का आलोक संसार में फैल सकता है ।

आपके सामने मैं केवल बड़ाई किले नहीं बांधना चाहता। कितने ही लोग महात्माजी को सनकी समझते हैं । पर मुझे तो विश्वास है कि आप सब जो उनके गुणों से परिचित हैं मेरे इस कथन से कि उनके जैसी व्यवहार-कुशलता और कार्यदक्षता बहुत ही थोड़े लोगों में पाई जायगी, सहमत होंगे। तैंतीस करोड़ धर्म-संलग्न वाले इस विशाल देश में ऐसी जागृति फैलाना किसी लहरी का भी काम कभी हो सकता है ? उनकी योजना में हमारी हिम्मत, शक्ति और अंतिम ध्येय इन तीनों का विचार पूर्वक समावेश किया गया है । मुझे यह भय है कि हम ध्येय के पीछे अधीर होते जा रहे हैं। हमारे बीस हजार भाई-बहनों का कारावास हमें शूल की तरह हृदय में चुभ रहा है नौकर-शाही प्रतिदिन मदोन्मत्त होती जा रही है । उसकी क्रूरता की प्रबलता हमारी आंखों के लिए असह्य होती जा रही है । ये सब हमारी बची हुई क्षात्रवृत्ति के अवशेष आवेशों के चिन्ह मात्र हैं। इसीलिए हम सविनय-भंग का खड्ग खींचने के लिए इतने अधीर हो रहे हैं । इसीलिए इस विचार से कि 'या तो इस पार या उस पार' हमारी नसें फड़क रही हैं ।

पर भाइयों और बहनो, याद रखिए और अच्छी तरह याद रखिए कि इस महायुद्ध के लिए कुरुक्षेत्र या धर्मक्षेत्र आवश्यक होगा। और उस पर ब्रिटेन के कठिन मुकाबले को परास्त करने के लिए अहिंसा का सात्त्विक और पवित्र खून बहाना होगा। सीखे हुए और अभ्यस्त सिविलियनों का सामना हमारे देशभक्तों को सरल और स्वाभाविक तालीम से करना होगा। इस प्रकार जब व्यक्तिगत स्वार्थों को अहिंसा के परमार्थ में भूलकर धार्मिक एकता प्राप्त कर लोगे तभी इस अहिंसा-रूपी अमोघ शस्त्र का प्रहार करने की क्षमता आपमें आ सकेगी। वह क्षमता आपमें नहीं पाई गई थी इसीलिए बारडोली में सविनय भंग स्थगित रखने का निश्चय देश को करना पड़ा। देश के लिए जेल जाने की आपकी तीव्र लालसा का मैं अभिनन्दन करता हूं; पर सविनय-भंग के उस अलौकिक शस्त्र का फिर उपयोग करने की अभिलाषा यदि आपको हो तो बारडोली का विधायक कार्यक्रम पूरा कीजिए ।

कौन्सिलों में जाने की तो हमें बात भी नहीं करनी चाहिए। वहां जाना तो सरकार की जूठन खाना है। उसके मुंह से जो दो चार बूंद पड़ें उसमें अभिमान मानना है। गुजरात से यह कभी न हो सकेगा। हमें तो अब स्वतंत्र राष्ट्रीय संस्थायें खोलना शुरु करना तथा खुली हुई को स्थायी बनाना चाहिए। उन्हें आदर्श संस्थायें बनाने का यत्न हमें करना चाहिए। राष्ट्रीय विद्या-मंदिर तो हमारी दौलत है। उसकी रक्षा हमें करनी चाहिए। अध्यापकवर्ग की हालत खराब है। उसे शीघ्र सुधारना चाहिए

खादी का तो मंत्रोच्चार ही करते हुए महात्माजी जेल गये। वह तो हमारी पापनाशिनी गंगा है। उसे तो जितनी हो सके पवित्र, निर्मल और कलाविहित बनाने का यत्न करना चाहिए। हमें यह न भूलना चाहिए कि इस देश की मुक्तिदायिनी महाशक्ति यही है। अस्पृश्यता-निवारण की दिशा में भी अभी बहुत कुछ करना बाकी है। सरकारी अदालतों का बहिष्कार भी अभी अच्छी तरह नहीं हुआ है। अगर ये सब कार्य हमें करना है तो महात्मा की शाखायें गांव गांव में खोल कर उसे हमें देश-व्यापिनी बना देना चाहिए। इसके लिए आर्थिक सहायता की जरूरत होगी । उसे देखिए चाहिए। कार्यक्षम तथा भावुक नेता चाहिए । ये सब सवाल किस प्रकार हल करना चाहिए, इसका विचार करने के लिए आज आप सब यहां निमंत्रित किये गये हैं ।

एक और बात मुझे कहना है। उसे कह कर मैं अपना भाषण पूरा करता हूं। हमारे कितने ही देशी परदेशी भाई असहयोग को एक आफत समझ कर चौंकते हुए इससे डरते रहते हैं। आज हमें इस व्याख्यान मंडप से केवल भारत की तमाम जनता को ही नहीं बल्कि संसार के समस्त देशों को और सब वर्ग के लोगों को यह घोषित कर देना चाहिए कि यह हमारा युद्ध किसी व्यक्ति, जाति, वर्ण, धर्म या देश के विरुद्ध नहीं है। यह धर्मयुद्ध तो अन्याय और गुलामी के विरुद्ध है।

अंत में मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं कि आप आज इस परिषद को अधिनेत्री पूज्य बा को बना रहे हैं। मेरा नम्र अभिप्राय यह है कि आज इससे बढ़कर हमारी पसंदगी हो ही नहीं सकती थी। आपने परिषद् के पिता की गैरहाजरी में माता की गोद को स्वीकार किया है। पूज्य बा को अधिनेत्री चुनकर आप भारत के स्त्रीत्व को गौरवान्वित कर रहे हैं। और गुजरात की एक बार फिर घोषणा कर के जाहिर कर रहे हैं कि गुजरात की बारदेवियों की नसों में प्राचीन क्षत्रियों का खून अभीतक बह रहा है

पूज्य कस्तूर-बा का भाषण

गत २५ मई को आणंद में छठी गुजरात प्रान्तीय परिषद का अधिवेशन हुआ। उस समय श्रीमती गांधी पूज्य कस्तूरबा ने परिषद की अधिनेत्री की हैसियत से निम्न लिखित भाषण किया।

ठक्कर के दरबार साहब, भाइयों, और बहनो,

आपने आज मुझे जो इस परिषद् की अधिनेत्री बनाया है, उसके लिए मैं आपकी बहुत एहसानमंद हूं। इस समय मैं आपको क्या सलाह दे सकती हूं और रास्ता भी क्या बता सकती हूं! मैं तो जानती हूं कि आपने इस काम के लिए आज मेरा चुनाव नहीं किया है। रास्ता तो श्री गांधीजी ने सीधा बता रक्खा है। और उस पर आपका विश्वास है, उनकी सलाह आपको मंजूर है, यही बताने के लिए आज आपने मुझे बुलाया है।

देहली तथा बारडोली में महात्मा ने जो रचनात्मक कार्यक्रम देश के सामने रक्खा है उसके अनुसार गुजरात बराबर अपना काम कर रहा है। इसलिए उसे धन्यवाद। और यह भी बड़े सौभाग्य की बात है कि इस विषय में हमारे प्रान्त में जरा भी मतभेद नहीं है।

श्री गांधीजी सारे भारत भर में घूम आये। पर आखिर सविनय-भंग के शांतिमय युद्ध के लिए उन्होंने गुजरात को ही उचित रणक्षेत्र चुना। गुजरात पर उनका बहुत विश्वास है। अब गुजरात का यह कर्तव्य है कि वह सिद्ध कर दे कि वह उस विश्वास के योग्य है।

हमारे इस असहयोग-युद्ध की शर्तें तो बहुत सी हैं; पर गुजरात के लिए सिर्फ ये शर्तें ही रक्खी हैं—

१ स्वदेशी,

२ अहिंसा, और

३ अन्त्यजोद्धार

हमारे यहां हिन्दू-मुसलमान-एकता तो हुई है; क्योंकि वे यहां पर पहले ही से हिलमिल कर रहते हैं। इसीलिए यह शर्त

बढ़ाने न पाई। दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह के युद्ध में तो हिन्दू-मुसलमान दोनों एक हो कर लड़े थे। इसीलिए वहां पर हमारी जीत हुई थी। उसी प्रकार अब भी वहां के हिन्दू-मुसलमानों के साथ साथ खिलाफत के लिए उत्साह-पूर्वक काम कर रहे हैं। यहां तो हम खिलाफत और स्वराज्य दोनों के लिए एक दिल हो कर लड़ रहे हैं। इसलिए हमारी विजय निश्चित है।

शान्ति-रक्षा की बात भी गुजरात अब अच्छी तरह समझ गया दिखाई देता है। एक बार जरूर गुजरात ने इस विषय में अपनी कमजोरी बताई थी। पर अब तो वह उससे कितनी गुनी अधिक कठिन परीक्षाओं में अच्छी तरह उत्तीर्ण हो चुका है। गांधी जी की गिरफ्तारी और सजा के दिवस गुजरात के लिए भीषण परीक्षा के थे पर इन दोनों मौकों पर उसने पूरी तरह आदर्श शान्ति रक्खी। मौलाना हसरत मोहानी तो सजा देने के लिए ठेठ कानपुर से यहां लाये गये। पर उस प्रसंग पर भी यहां शान्ति-भंग न हो पाया। बस, ऐसी ही शान्ति कायम रख कर हमें अपने काम को पूरा करना है।

अस्पृश्यता को दूर करने में भी हमने ठीक प्रगति की है। पर इतने ही से किसी तरह काम न चलेगा। हमें तो और भी बहुत कुछ करना बाकी है। अंत्यज भाई हमारी कितनी सेवा करते हैं? ढेड (एक अछूत जाति) लोग हमें कपड़े बुन कर देते हैं। भंगी गांव को स्वच्छ रखते हैं। उनसे सेवा लेना तो हमें अच्छा लगता है। पर हम फिर भी उन्हें अपने से दूर ही रखते हैं उनके बच्चों को हम अभीतक अपनी पाठशालाओं में नहीं लेते। उनको अपने कुओं पर पानी तक नहीं भरने देते। उन्हें कुओं पर जब दो दो घंटे बैठना पड़ता है तब उन्हें कोई एक घड़ा भर पानी देता है। रेलगाड़ियों में उन्हें कोई पास बैठने ही नहीं देता और यदि वे बैठ जाते हैं तो उन्हें गालियां दी जाती हैं। उनके छूने से हम अशुद्ध और अपवित्र हो जाते हैं। इसलिए वे बेचारे जूतों से पीटे जाते हैं। गुजरात में अभीतक ऐसे दृश्य जहां तहां दिखाई देते हैं। अपने ही भाइयों के अंतरात्मा-परमात्मा-को इस प्रकार दुःख देने से हमें स्वराज्य किस प्रकार मिल सकता है?

यही हाल स्वदेशी का भी है। स्वदेशी में भी दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा तो गुजरात आगे गिना जाता है। पर गुजरात तो सविनय-भंग तक करने के लिए तैयार हो गया था। इतनी थोड़ी मात्रा में स्वदेशी-पालन से उसका काम कैसे चल सकता है? सन्दूकों और आलमारियों में रक्खे हुए विदेशी कपड़ों को छोड़ने को जी ही नहीं चाहता। फिर सविनय भंग के समय तो सब घरबार लूट लिया जायगा। मवेशी छीने जायंगे। खड़ी फसल काट कर खेत मैदान कर दिये जायंगे। तब आप क्या करोगे? वह दृश्य आपसे कैसे देखा जा सकेगा? इसलिए स्वदेशी तो हमारी कसौटी है। जिससे खादी के कपड़ों का भार नहीं सहा जाता उससे जेल की कठिनाइयां सहने की आशा कैसे की जा सकती है? इसलिए खादी पहनो और स्वराज्य लो। खादी में ही स्वराज्य है।

गांधीजी तो "खादी" "खादी" का मंत्रोच्चार करते हुए जेल गये हैं। उन्हें छुड़ा लाने के लिए आप कितने अधीर हो रहे हैं यह मैं जानती हूं। पर वे तो छूटने पर भारत को शुद्ध खादीमय देखना चाहते हैं। जिस दिन सारा भारत खादी-मय हो जायगा उस दिन संसार में किसी सल्तनत की ताकत नहीं कि वह गांधी जी को कैद रख सके।

खादी पहनना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक खादी बुनना भी है।

हरएक आदमी को सूत कात कर अपने लिए खादी बुनवा लेनी चाहिए। अच्छी पूनियों का सूत भी अच्छा होता है। इसलिए ऐसा प्रबन्ध भी होना बहुत आवश्यक है जिससे हरएक गांव में अच्छी पूनियां मिल सकें। यह काम स्वयंसेवकों की सहायता से ही हो सकता है। इसलिए स्वयंसेवकों को सूत कातना और बुनना सीख लेना चाहिए। ऐसा करने से ही वे देहात में जाकर अच्छी तरह कुछ काम कर सकते हैं।

हाल ही में बारडोली और काठियावाड़ में घूम कर आई हूं। यहां मुझे खूब अनुभव हुआ। मैंने देखा कि पूरे समय तक काम करने वाले स्वयंसेवकों की बड़ी आवश्यकता है। बहुत से लोग तो ऐसा सोचते हैं कि सिर्फ नौजवान ही स्वयंसेवक हो सकते हैं। पर ऐसा कदापि न समझना चाहिए। वृद्ध अनुभवी पुरुष भी अगर इस काम को हाथ में लें तो उनका असर भी अधिक गिरे और काम भी अधिक हो।

मैं माता-पिताओं से प्रार्थना करती हूं कि आप अपने उत्साह के साथ साथ अपने बच्चों के भी उत्साह की तुलना कीजिए। इसी से राष्ट्रीय शिक्षा का महत्त्व समझ जाइए। और पैसे की ओर न देख कर अपने बालकों के सच्चे हित की ओर ध्यान दीजिए। राष्ट्रीय पाठशालाओं की ओर विशेष ध्यान दीजिए और उनकी सहायता कीजिए।

बहनों को तो मुझे कहना होगा कि आपने बहुत थोड़ा काम किया है। हम तो पुराने जमाने से सूत कातती आई हैं। इस काम को हमने जब से छोड़ा है तभी से भारत में अकाल और अनीति का जन्म हुआ। मैंने अम्बाला और मदरास में ऐसी स्त्रियां देखी हैं जिनके शरीर पर पूरा वस्त्र भी न था। उन्हें कोई धंधा भी नहीं मिलता था। और जहां कुछ पेट भरने का रोजगार मिलता भी है वहां की भी हालत क्या है? स्त्रियां जब बाहर मजदूरी पर जाती हैं तब उनकी लज्जा की रक्षा नहीं हो सकती। गरीब बहनों के लिए तो आबरू से दिन निकालने का साधन चरखे जैसा दूसरा कोई नहीं। जिन बहनों की हालत अच्छी है उनसे मेरा यही कहना है कि यदि आपके हृदय में अपनी दूसरी बहनों के प्रति प्रेम और दया हो, उनकी इज्जत की रक्षा भी आपको प्यारी हो, तो आप भी चरखा ही चलाइए; आपके हृदय में अपने बालकों के विषय में हित-कामना हो तो वह चरखा ही चाहिए।

हम अपने बालकों को प्यार करती हैं। पर अगर वह हमारा प्यार सच्चा है तो हमें भी स्वराज्य के लिए अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। दूध पीता बालक जब बीमार हो जाता है तब हम उसके लिए कितना जतन करती हैं? फिर क्या हमारे बच्चों को पेट के बल न रेंगने देने के लिए, युनियन जेक्स (अंग्रेजी झंडे) को सलाम न करने देने के लिए, हम विदेशी वस्त्रों का त्याग भी न करेंगी?

गुजरात को अपने तेज के परिचय देने का एक और मौका मिला है। सरकार ने अहमदाबाद और गुजरात की म्युनिसि-पालिटियों को खारिज कर दिया है। नडियाद पर भी उसकी आंख है। इन तीनों शहरों के लोगों से मेरा यही कहना है कि आप अपनी आनबान पर अटल रहें।

कितने ही लोग तो अभी तक कहा करते हैं कि हमें अंग्रेज लोग धीरे धीरे स्वराज्य देंगे। वे कहते हैं कि म्युनिसीपालिटियां तो स्थानिक स्वराज्य हैं। पर वह स्वराज्य भी तो हमें कहां है?

अहमदाबाद की म्युनिसीपालिटी को व्यर्थ चलाने में सरकार ने कुछ उठा रक्खा है ? नडियाद तथा सूरत के लोगों पर कितना जोर–जुल्म किया जा रहा है ! सरकारी कर्मचारी भी तो हैं हमारे ही भाई ! पर यह कैसा मजहब कि वे अपनी ही बहनों की लाज लूटें और निर्दोष भाइयों को उठा उठा कर जेल में ठूंसें ! इसीलिए मैं इन तीनों शहरों के लोगों से यही कहती हूं कि आप अटल रहें । यह आपकी परीक्षा का समय है । और परीक्षा तो सख्त ही होती है । पर वे यह भी याद रक्खें कि यह अवस्था बहुत समय तक नहीं रह सकती । परमात्मा की दया से वह जरूर दूर होगी । पर वह न भी हो तो क्या कष्ट करता है ? अब हम उसकी कसौटी पर सफलतापूर्वक चढ चुके । इसलिए अपनी टेक को कभी न छोडना चाहिए । अच्छे दिन तो फिर लौट आवेंगे; पर एक बार गई आबरू फिर कभी नहीं आती । इसलिए अपनी टेक पर कायम रहिए । परमात्मा आपकी मदद करेगा ।

यह भारत–माता तीस करोड पुत्रों की माता है । उनमें से बीस या पचीस हजार पुत्रों को कैद कर के क्या यह सरकार उसको अपने अधीन कर सकेगी ? इतना बडा विशाल देश पड़ा है । सरकार अपनी मनमानी कर ले । हम भी त्याग और आत्म-बल पर कमर कसे हुए हैं । कम परिश्रम से मिली हुई स्वतंत्रता हम जल्दी ही खो बैठेंगे । हमें तो सच्ची कमाई की स्वाधीनता चाहिए । इसलिए देवी–स्वतंत्रता के खप्पर को तो पूरा भरना ही चाहिए । हमें तो माता-पिता का, बाल–बच्चों का मोह छोड कर समरांगण में जूझना ही पडेगा । बहनों को भी मैं उन वीर–युग के दिनों की याद दिलाती हूं । अपने भाइयों को, पतियों को उत्साहित कीजिए, उनकी पीठ ठोंकिए देश को स्वाधीनता प्राप्त कराने के लिए उन्हें शान्ति–समर में भेजिए, उन्हें इस समर-वेष से (खादी से) आभूषित कीजिए और आप भी वही वेष पहनिए । अभीतक हमारा गुजरात नरम गिना जा रहा था । पर उस बदनामी को दूर करने का हमें यह उत्तम अवसर मिला है । भारत और संसार को हमें यह दिखा देना है कि हमारी यह नरमी तो नम्रता के कारण थी । हमारा सच्चा शौर्य तो अब देखिएगा ।

यों तो स्वराज्य प्राप्त करने का काम सारे गुजरात को मिला है । पर उसमें भी इस शान्तिमय महासमर में सबके आगे सबसे पहले पैर रखने का सौभाग्य तो बारडोली और आणंद को ही मिला है । इस उच्च सम्मान के ठीक अनुरूप ही बनने के लिए तो आपको अविराम परिश्रम करना होगा । पिछली बार जब सविनय भंग के लिए बारडोली तहसील पसंद की गई तब पू० अब्बास तय्यब साहब ने कहा कि आणंद को काफी समय न मिल सका था। अब तो आपके लिए बहुत सा समय है । क्या आप इसका उचित उपयोग न करेंगे ? परमात्मा आपकी सहायता करें ।

वन्दे मातरम् ।

जेल के तपस्वियों का स्वागत

करनाटक के वृद्ध और तेजस्वी नेता श्री गंगाधर राव देशपांडे, कलकत्ते के 'स्वतन्त्र' के अनुभवी सम्पादक और हिन्दी के पुराने लेखक पं. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, 'भारतमित्र' के प्रज्ञावान् युवक सम्पादक पं. लक्ष्मण नारायण गर्दे, कानपुर के 'प्रताप' के वीर और विपत्तियों के प्यारे सम्पादक तथा कानपुर की जागृति के प्राण श्री गणेशशंकर जी विद्यार्थी हाल ही में अपने अपने स्वराज्य–अनुष्ठान को पूरा करके जेलों से लौटे हैं । हम उनका इस कर्मक्षेत्र में सच्चे दिल से स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि वे देश की इस नाजुक स्थिति में उसे किसी भूल होने से बचाने का तथा ठीक आदर्श पर पहुंचाने का प्रयत्न करेंगे ।

जेल में स्वराज्य–वीर का अन्त

गत ७ मई को लखनऊ जेल में गोरखपुर के प्रसिद्ध असह-योगी मुख्तार श्री अवधनारायणलालजी की मृत्यु के हाल पाठकों ने पढे ही होंगे । जिस हालत में उनकी मृत्यु हुई उसके हाल जानकर हृदय व्यथित हो जाता है और आंखों से खून के आंसू निकलने लगते हैं । मृत्यु के दो दिन पहले से रोगी को मर्मान्तक वेदनायें हो रही थीं । पहले पहल तो यह कहा जाने लगा कि रोगी बीमार ही नहीं । व्यर्थ का बहाना कर रहा है । इसलिए किसी प्रकार के इलाज का भी प्रबंध नहीं किया गया । जब रोगी बहुत ही बेचैन होगया तब उसके असहयोगी मित्र दौड दौड कर जेल के फाटक तक जाते, और चिल्लाते कि डाक्टर को बुलाइए पर सुनवाई का नाम नहीं । रोगी भी चिल्ला चिल्लाकर थक गया । वे डॉक्टर जवाहरलाल और मुरारीलाल से जो जेल ही में सजा भोग रहे हैं, इलाज कराना चाहते थे । पर सुनता कौन है ? रोगी की हालत और भी बिगड गई । ७ मई को ४ बजे जेल के डॉक्टर बुलवाये गये । देखते ही उनका चेहरा गंभीर हो गया । रोगी की स्थिति बडी शोचनीय थी । उनसे डॉ० जवाहरलाल को बुलाने के लिए कहा गया । पर आपको साहस न हुआ कि सुपरिन्टेन्डेन्ट को जो बात अप्रिय है उसे कहें या करें । इतने ही में सु० साहब भी पधारे । उनसे आग्रह किया गया । मुश्किल से आपने उन्हें बुलाना मंजूर किया । पर डा० जवाहरलाल के आते ही वे उनसे बडी बुरी तरह पेश आये । उन्होंने डॉ० साहब को सिर्फ रोगी की नब्ज देखने की इजाजत दी और कहा कि "आपको तो एक राजनैतिक चाल चलने के हेतु बुलाया गया है । आपकी दवाई रोगी को नहीं दी जायगी " रोगी की हालत नाजुक देखकर उसे जेल अस्पताल में उठा ले गये । पर उस दवाखाने की भी हालत अबतर थी । रोगी पहले ही असाध्य स्थिति को पहुंच चुका था । वहां जाते ही थोडी देर बाद शरीर से प्राण चल बसे । अवधनारायणजी की आखिरी बात यह थी—"अब हम जाते हैं; अब स्वराज्य का काम ऊपर ही से करेंगे ।" अपनी मातृभूमि के उद्धार के लिए, अपने करोडों दलित पीडित भाइयों के उद्धार के लिए, त्याग कष्ट-सहन और आत्मबल करने का जहां सुअवसर मिलता था ऐसा सुहावना कर्तव्य-क्षेत्र छोड कर जाते समय उनके उच्च आत्मा को कितना दुःख हुआ होगा ! आत्मा की गति तो अकुंठित होती है । उसे कौन रोक सकता है ? अनीति और अधर्म में डूबी हुई इस सरकार ने उनके जड शरीर को कैद कर लिया । उसके सभ्य जेलखानों में उनके इलाज की भी परवा नहीं की गई । पर क्या यह उनकी आत्मा को गिरफ्तार कर सकती है ? क्या अभीतक उसका यह ख्याल है कि असहयोगी इससे दुःखित होकर अपना मार्ग छोड देंगे ? असहयोगियों को इस बात के लिए दुःख तो जरूर हो रहा है कि असहयोग के मणि-माणिक इस प्रकार छूटे जा रहे हैं । पर इससे उनका हृदय जरा भी कमजोर नहीं हो सकता । वे तो अपने दृढ–प्रतिज्ञ भाइयों को इस प्रकार जेल नहीं, स्वर्ग को सिधारते देखकर और भी संगठित हो गये हैं । वे कहते हैं–विपदाओ, आओ ! अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग भारत के वीर पुत्रों पर कर देखो । जिनका परमात्मा पर दृढ विश्वास है उनका तुम बाल भी बांका नहीं कर सकती । पशुबल के नीच प्रयोग का जवाब भी भारतीय वीरता–पूर्वक, अपने त्याग, कष्ट और आत्म-बल से देंगे । संसार में अगर अब

(शेष पृष्ठ ३२८ पर)

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, ज्येष्ठ सुदि २, सं. १९७९

विघ्न का इलाज

स्वदेशी के स्थायी और सार्वत्रिक प्रचार में आने वाले भीतरी और बाहरी विघ्नों का विचार पिछले अंक में किया जा चुका है। अब यहां उनके इलाज का विचार करते हैं।

भीतरी बाधाओं में सबसे पहले खादी के व्यापारी हैं। ग्राहक को खुश रखना, उसकी रुचि के अनुसार कपड़ा उसे देना, तो व्यापार बढ़ाने या मुनाफा कमाने का एक साधन है—व्यापार का एक नियम है। पर उसमें भी धर्म का बन्धन तो हई है। कपड़े के व्यापारी शराब का या मांस-मछली का रोजगार क्यों नहीं करते? क्या उसमें मुनाफा नहीं होता? क्या वह व्यापार नहीं? यदि कोई ग्राहक यह कहे कि सेठ जी आपकी दुकान पर आप मांस भी रक्खा कीजिए, एक ही जगह दोनों चीजें मिल जाया करेंगी। और ऐसा न करने पर वह नाराज हो कर उसकी दुकान से लेन-देन छोड़ देना चाहे तो क्या इसके लिए कोई हिन्दू कपड़े का व्यापारी अपनी दुकान पर मांस रखना मंजूर करेगा? नहीं। क्यों? उसे वह अधर्म समझता है। इससे यह नतीजा निकला कि व्यापारी जिस काम को अधर्म समझता है उसे वह ग्राहक को खुश रखने के लिए भी नहीं करता। जहां धर्म और व्यापार अर्थात् लाभ में विरोध पैदा होता है, वहां वह धर्म को ही श्रेष्ठ मानता है। उसी का पालन करता है और लाभ या लोभ की परवाह नहीं करता। सच्चे धार्मिक व्यापारी की यही रीति होती है और होनी चाहिए।

आजकल के कितने ही व्यापारी जो विलायती कपड़े का रोजगार नहीं छोड़ना चाहते, चाहे कर के भी उसे तोड़ डालते हैं—आर्य हो कर भी अनार्यों का सा काम करते हैं—इसका कारण या तो उनका अज्ञान है या लोभ है। लालच की भी जड़ अज्ञान ही है वे धर्म और अधर्म में क्या, कितना, कैसा भेद है, अधर्म का क्या फल होता है, इसे या तो जानते नहीं हैं, या भूल गये हैं, या लोभ वश देखते हुए भी नहीं देखते हैं। विलायती कपड़े को खरीद करके—उसका रोजगार करके—वे धर्म का गला किस प्रकार घोट रहे हैं, यह बात यदि उनकी समझ में आ जाय तो वे उसे गो-मांस के बराबर अछूत समझने लगें। भारत के व्यापारी समाज में आज भी—अधर्म के इस साम्राज्य में भी—धर्म मर नहीं गया है। धर्म का तेज आज भी उनके मुख-मण्डल पर चमकता है। जिनको वे धर्म-कार्य समझते हैं उनमें हजारों-लाखों रुपया लगाते हैं और लाभ या लोभ के जरा भी अधीन नहीं होते। कु-संग से उनकी धर्म-बुद्धि मलिन भले ही हो गई हो, अधर्म को धर्म भले ही समझने लग गये हों, पर धर्म-भाव आज भी उनके हृदयों में प्रतिष्ठित है। आज भी धर्म ही उनका नेता है। उनकी स्त्रियां तो मानों धर्म के बिना जीवित ही नहीं रह सकतीं। उनका कठोर धर्माचरण आज भी भारत-माता के हृदय में एक अद्भुत चैतन्य और प्रकाश का संचार कर देता है। सो जबतक व्यापारी-समाज से धर्म-भाव का लोप नहीं हो गया है, तबतक भारत को उससे निराश होने की जरा भी जरूरत नहीं।

धर्म-भाव और राष्ट्रीय भाव अथवा धर्म-भक्ति या देशभक्ति दो जुदी जुदी बातें नहीं हैं। सत्य बोलने से देश और धर्म दोनों की भक्ति होती है। झूठ बोलना, दगाबाजी करना, लूटना, न देशभक्ति ही है, न धर्म-भक्ति ही। एक अच्छे काम के सफल होने की आशा से दस बुरे काम करना न तो देशभक्ति के ही कानून में जायज है, न धर्म-शास्त्र में ही। देश के लिए ही धर्म है और देश धर्म के ही लिए जीवित रहता है। धर्म देश का रक्षक है—नेता है और देश धर्म का सेवक है। धर्म सूक्ष्म है, देश स्थूल है। धर्म मूल है, देश सुन्दर सघन वृक्ष है। धर्म का पालन राष्ट्रीयता का अनुसरण है और राष्ट्रीयता धर्म की पतिव्रता सहचरी है—सहधर्मचारिणी है। भूखे को भोजन देना धर्म है। खाते हुए के मुंह से कौर छीन कर खुद खा जाना अधर्म है। खादी पहनना, खादी का रोजगार करना, भारत के लाखों भूखे भाइयों को भोजन देना है। और विलायती कपड़े का रोजगार करके मुनाफा उठाना उनके मुंह का कौर छीन कर खुद खा जाने का पाप कमाना है। भलाई की मदद करना, उसका साथ देना धर्म है, बुराई से बचना बुरों से कोस दूर रहना, उससे किसी तरह का सम्पर्क न रखना भी धर्म है। सज्जनता की सहायता न करना अधर्म है और दुर्जनता से सहयोग करना भी अधर्म है। यदि आप भारत के कपड़े के व्यापार के नाश का इतिहास देखेंगे तो पता लग जायगा कि इस अंगरेजी सरकार ने गोरे बनियों को मालामाल करने के लिए भारत के साथ कितनी दुर्जनता की है, कितना अधर्म किया है, किस बेरहमी से भारत की मनुष्यता का संहार किया है! विदेशी कपड़े के रोजगार में दुहेरा पाप है। एक तो सज्जनता की सहायता नहीं होती और दूसरे दुर्जनता से सहयोग होता है। अपने देश के करोड़ों आदमियों को भूखों मार कर हम अधर्म का घर भरते हैं। यह राष्ट्रीय अपराध ही नहीं, धार्मिक पाप भी है। ऐसे रोजगार से जो रुपया मिलता है वह लक्ष्मी का प्रतिनिधि नहीं है वह तो अपने गरीब भाइयों के निर्दोष खून का पिण्ड-मात्र है—उसमें सुख और सन्तोष की शीतलता नहीं है, बल्कि गरीबों की आहों की लपटें और गुलामी के संक्रामक कीड़े भरे हुए हैं। हमारी आंखों पर लोभ या अज्ञान का परदा पड़ा हुआ है, इससे उन रुपयों का घृणित और भयंकर बीभत्स रूप हमें दिखाई नहीं देता है; पर यदि हम अपने धर्म और देश को साक्षी रखकर, मनुष्यता का चश्मा चढ़ा कर देखें तो विदेशी कपड़े की कमाई के धन से पाला-पोसा यह मोटा-ताजा शरीर ऐसा साक्षात् पाप का पुतला दिखाई दे कि हमें डूब मरने के लिए भी जगह न रहे!

इसलिए अपने धर्म और देश के नाम पर हम अपने धर्म-प्राण व्यापारी भाइयों से अपील करते हैं कि वे लाभ और लोभ की ओछी दृष्टि से इस मसले को न देखें बल्कि सच्चे धर्म और देशभक्ति की गहरी और विशाल दृष्टि से इसका अच्छी तरह समझें और विलायती कपड़े का रोजगार करके अपना लोक और परलोक न बिगाड़ें। भारत तो उठेगा, अपना स्वराज्य वह लेगा, धर्म की स्थापना होगी—इसे तो दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती; पर जिस दिन भारत का स्वराज्य-महोत्सव होगा और संसार को सच्चे स्वराज्य की दिशा दिखाई देगी, उस दिन भारत के व्यापारी-समाज को अपने कर्तव्य और जिम्मेवारी का उत्तर देश को देना होगा। हम हृदय से चाहते हैं कि उस दिन उनका मुंह अभिमान और गौरव के साथ ऊंचा रहे, शर्म और ग्लानि के मारे नीचे न लटका रहे।

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)।
...के लिए वार्षिक „ ७)

सहायता देने के अलावा और कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है। मेरा विश्वास है कि, वही व्यक्ति कांग्रेस का सच्चा अनुयायी है, जो अपने दावे का समर्थन करने के लिए जेल जाने को तैयार है। दावे का समर्थन जितनी ही अधिक संख्या में लोग करेंगे, देश के प्रिय नेताओं का छूटना उतना ही आसान होगा।

हमें गैरकानूनी संस्था के कानून से संग्राम करना है, और मेरी समझ में इस कानून के साथ लड़ने में भारत को जितनी सफलता मिली है उतनी कभी नहीं मिली। मैं नहीं समझता कि मुझे इस दफा के अनुसार सजा मिलने में इतनी देर क्यों हुई। मैंने जो कुछ किया है वह जान-बूझकर तथा पूरी जिम्मेदारी और ज्ञान के साथ किया है। मैंने वास्तव में ही समझदार लोगों से स्वयंसेवक बनने के लिए अनुरोध किया। अब मैं अनुरोध करता हूं कि, इस कानून के अनुसार बड़ी से बड़ी सजा मुझे दी जाय —''

× × × × ×

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने इलाहाबाद के डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट मि. मार्कम की अदालत में जो महत्वपूर्ण बयान पेश किया उसका सार नीचे दिया जाता है। आपने कहा:—

''मैं यह बयान अपनी सफाई देने के लिए नहीं दे रहा हूं; बल्कि अपनी स्थिति की व्याख्या करने और उन कारणों को बताने के लिए दे रहा हूं, जिन्होंने मुझे उन कार्यों को करने के लिए प्रेरित किया है, जिन के लिए मुझ पर अभियोग चलाया गया है। मैं इस अदालत को न्यायालय नहीं मानता। इसलिए इसकी कार्यवाही में मैंने कोई भाग नहीं लिया। जहांतक राजनैतिक अपराधों से सम्बन्ध है वहांतक हिन्दुस्थान की आजकल की अदालत सिर्फ कार्यकारिणी सरकार के आदेशों के अनुसार काम करती है। आजकल तो वे पहले से कहीं अधिक उस सरकार को कायम रखने के लिए काम में लाई जा रही है जिसने बहुत समय से भारत में कु-शासन किया है और जिसकी प्रतिष्ठा सदैव के लिए मिट्टी में मिल गई है। आज से दस वर्ष पहले जब मैं बहुत दिनों इंग्लैंड में रह कर वहां से लौटा था तब मैं पूर्णतया इंग्लिश बातों का पक्षपाती था, परन्तु आज मैं सरकार की वर्तमान शासन-प्रणाली के विरुद्ध बागी की हैसियत से यहां खड़ा हुआ हूं। इस वर्षों में मुझ में यह परिवर्तन हो गया है। क्यों हो गया है इसे प्रत्येक भारतवासी जानता है, महसूस करता है और उसके कारण शरम से अपना सिर नीचा कर लेता है। और यदि उसमें जरा भी जोश है तो उसने भारत के उद्धार की अटल प्रतिज्ञा कर ली है कि जिससे हिन्दुस्तानियों को एक गुलाम जाति के भाग्य में जो कष्ट और अपमान बदे हों वे फिर न सहने पड़ें। आज भारत की वर्तमान सरकार के विरुद्ध राज-विद्रोह हिन्दुस्तानियों का धर्म हो गया है और शासन की इस बुराई के प्रति अभक्ति करना और अभक्ति फैलाना उसका मुख्य पेशा।

एक न्यायानुमोदित उद्देश के लिए शान्त धरना देना यदि कोई जुर्म है तो निःसन्देह मैं वह जुर्म करने की सलाह देने और उस जुर्म में सहायता देने का अपराधी हूं। परन्तु यह बात तो मुझे अभी जाननी है कि ब्रिटिश भारत की कानूनों के अनुसार शान्तिपूर्ण धरना भी एक अपराध हो गया है। हमारा उद्देश कपड़े के व्यापारियों से उनकी प्रतिज्ञा का पालन कराना था। क्या कोई यह विश्वास कर सकता है कि इस काम में दण्डनीय भय-प्रदर्शन और डरा कर रुपया वसूल करने से सफलता मिल सकती है? सब संसार जानता है कि हमारी शक्ति जनता की सहायता; हमारे देश-बन्धुओं की हमारे प्रति सहानु... हमारे शस्त्रास्त्र भय-प्रयोग या अनुचित दबाव हथियार नहीं हैं, बल्कि प्रेम और त्याग के हथियार हैं। ... कष्ट उठाते हैं और अपनी तपस्या द्वारा अपने विपक्षी को अपनी ओर झुकाते हैं। दण्डनीय भय-प्रदर्शन के लिए यह आवश्यक है कि किसीको गैरकानूनी नुकसान पहुंचाने की धमकी दी जाय और धमका कर रुपया वसूल करने के लिए भी यह आवश्यक है कि किसी को गैरकानूनी नुकसान पहुंचाने की धमकी देकर उससे बेईमानी से रुपया वसूल किया जाय। हमने किसको और क्या नुकसान पहुंचाने की धमकी दी? हमसे किसीको क्या गैर-कानूनी नुकसान हुआ? हमने कौनसी बेईमानी की? इन बातों को साबित करना तो दूर, किसी गवाह—सी. आई. डी. तक—ने इन बातों की ओर संकेत तक नहीं किया। तमाम इलाहाबाद में हजारों आदमियों ने धरना देखा होगा; परन्तु उनमें से ऐसा एक भी आदमी निकला जो हमारे बरखिलाफ धमकाने या कटु शब्द कहने तक का दावा करता? हमारी विजय का इससे अच्छा सबूत और क्या हो सकता है? हमारा धरना आदर्श धरना था। यहां तक कि किसी कपड़े के व्यापारी तक ने उसके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं की।

इन बातों से यह बिल्कुल सिद्ध है कि दण्डनीय भय-प्रदर्शन या डरा कर रुपया वसूल करने की कोई कोशिश नहीं की गई। इस समय जो मुकदमा चलाया जा रहा है, दण्डनीय भय-प्रदर्शन और डरा कर रुपया वसूल करने के अपराध के बहाने वह वास्तव में न्यायोचित और शांत धरने को दबाने की कोशिश है। इंग्लैंड की तरह हिन्दुस्तान में भी शान्तिपूर्ण धरना देना कोई जुर्म नहीं है। यह जरूर है कि यहां की सरकार जरा सी कलम चला कर शांति पूर्ण धरने को भी गैरकानूनी करार दे सकती है। वह ऐसा करे या न करे, हम धरना देना कदापि नहीं छोड़ सकते। किसीसे कोई एक काम करने के लिए या कोई काम न करने के लिए प्रार्थना करना, प्रोत्साहित करना या सलाह देना एक ऐसा अधिकार है जिसे सरकार जो चाहे सो करे हम कदापि नहीं छोड़ सकते। इस देश में हमें बहुत कम अधिकार तथा विशेषाधिकार हैं पर उन्हें भी छीनने की कोशिश की जा रही है। हमने संसार को दिखा दिया है कि स्वतन्त्रता-पूर्वक बोलने के अधिकार की रक्षा करने के लिए सरकार द्वारा हजारों आदमियों के जेल भेजे जाने और भाषणा पर भाषणा निकालने पर भी हम अबतक डटे हुए हैं। हम अपने स्वतन्त्रतापूर्वक बोलने के अधिकार को कदापि संकुचित नहीं होने देंगे। चाहे जो कुछ हो, हम भाषण-स्वातंत्र्य के अधिकार को कभी न छोड़ेंगे। मुझे आशा है कि मेरे ऊपर जो अभियोग चलाया गया है उसके कारण लोग विदेशी का पूर्ण बहिष्कार करने के लिए कटिबद्ध हो जायंगे। वे यह जान जायंगे कि चरखे और खद्दर से ही, करोड़ों भूखे देश भाइयों को भोजन मिलेगा, अतः वे विदेशी कपड़ों को फेंक कर उन्हें जला देंगे। इस प्रान्त और शहर की जनता से मैं अपील और प्रार्थना करता हूं कि वे खद्दर पहने और चरखा चलावें। मुझ पर और मेरे साथियों पर भय-प्रदर्शन और डराकर रुपया वसूल करने का जुर्म लगाया गया है। मैं चाहता हूं कि सरकारी और पुलिस अफसर अपने अन्तःकरण की ओर देख कर, अपने हृदय के अन्तस्तल को खोल कर, यह कहें कि पिछले डेढ साल में उन्होंने क्या किया है? प्रान्त भर में डराने और भयभीत करने, रिश्वत लेने और डराकर रुपया वसूल करने का काम जारी है। यह काम सरकारी पिट्ठुओं ने किया है; बहुधा अपने उच्च अधिकारियों की स्वीकृति

और आज्ञाकारी थे, फिर भी उनपर न तो मुकदमा ही चलाया गया है और न उन्हें सजा ही मिली है। उनकी पीठ ठोंकी जाती है और तारीफ की जाती है तथा उनका ओहदा बढ़ा दिया जाता है। स्वयं मैंने और मेरे साथियों ने ऐसे अमानुषिक और भयंकर कामों की जांच की है। सीतापुर और मोहनगंज की घटनायें मशहूर हैं। बलिया के सैकड़ों राष्ट्रीय कार्यकर्ता जेल में भेज दिये गये हैं। किसानों पर तो जो अत्याचार हो रहे हैं वे अकथनीय हैं। राजभक्ति इस कौतीक है। वह इस प्रकार कदापि नहीं ढूंढी जा सकती। न तो वह बाजार में खरीदी ही जा सकती है और न तलवार के बल पैदा ही की जा सकती है। राजभक्ति अच्छी चीज है, परन्तु हिन्दुस्तान में इस समय राजभक्ति के मानी मातृभूमि के साथ विश्वासघात है। राजभक्त वही है जो अपने देश या ईश्वर का भक्त न होकर विदेशी प्रभुओं के पीछे फिरता है। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में इङ्गलैंड ने हिन्दुस्तान को बहुत नुकसान पहुंचाया है। भारत तो स्वतन्त्र होगा, परन्तु यदि इङ्गलैंड स्वतन्त्र भारत की मित्रता चाहता है तो उसे प्रायश्चित्त करना चाहिए। मैं इस बार फिर सहर्ष जेल जाऊंगा। कारागार हम लोगों के लिए पवित्र तीर्थस्थान-स्वर्ग हो गया है। मुझे विश्वास है कि जेल से लौटने पर मैं भारत में स्वराज्य का स्वागत करूंगा। सरकार को मैं इस बात के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूं कि उसने हमें एक महान गौरवशाली संग्राम में लड़ने का अवसर दिया है। किसी भारतवासी के लिए इससे अधिक सौभाग्य और क्या हो सकता है कि या तो हमारा सुन्दर स्वप्न पूर्णतया पूरा हो या हम उसके लिए अपने जीवन की बलि दे सकें"!

वीर-माता का संदेश

दो महीने हुए, मेरा प्यारा लड़का जवाहरलाल लखनऊ के जेल से छूटा था। मैं चाहती थी कि वह कुछ दिन आराम करे। महीनों की मिहनत और तकलीफों के बाद कुछ सुस्ता ले लेकिन उसने मेरी नहीं सुनी; और छूटने के दिन ही से फिर उसी काम में लग गया। फिर दिन रात अपने देश का काम करने लगा। गर्मी और जाड़े में दौड़ा फिरता था। आज वह फिर गिरफ्तार है और सजा पे १८ मास के लिए छूट रहा है। मुझको इससे जो दुःख है उसको मैं कैसे बयान करूं? मेरी आंखों में आंसू है, दिल भरा रहता है। मेरा घर मुझे सुनसान लगता है। मैं आनन्द-भवन में रह कर क्या करूं, जब कि मेरा लड़का जेल में है। लेकिन मुझे खुशी भी इस बात की है कि, जवाहरलाल में हिम्मत और बहादुरी है और अपने देश का प्रेम व धर्म के रास्ते पर चलने में जिन मुसीबतों का सामना करना होता है उनको वह बरदाश्त करता है। मैं हृदय से अपने बेटे को आशीर्वाद दे कहती हूं कि, वह जहां रहे सुख और शान्ति से रहे। परमात्मा उसकी रक्षा करे ताकि, वह थोड़े ही काल में शत्रुओं पर राम की तरह विजय पाकर भारत के लिए स्वराज्य प्राप्त कर आनन्द-भवन वापिस लौटे।

जवाहरलाल किसलिए फिर जेल गया?

इसलिए कि, वह विदेशी-कपड़े के बहिष्कार के लिए पूरी कोशिश कर रहा था। जिन इलाहाबाद के कपड़े के व्यापारियों ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी थी उन्हींकी दुकानों पर पहरेदारी करता था। इसकी शिकायत किसी व्यापारी ने नहीं की, लेकिन अंग्रेजी सरकार को यह बात बरदाश्त न हुई। अब हमारा क्या धर्म है? व्यापारी भाइयों के लिए काम करने से मेरा लड़का जेल गया है। मैं आशा करती हूं कि, हर एक व्यापारी अपनी प्रतिज्ञा पर पूरी तौर से कायम रहेगा और विदेशी कपड़े को अब इलाहाबाद के बाजार में कभी न घुसने देगा। मैं अपने भाई और बहनों से प्रार्थना करती हूं कि वे विदेशी कपड़े को छूना भी पाप समझें। इसमें तो हमारे भाइयों और बहनों का खून लगा है। हम उसे कैसे छू सकते हैं या पहन सकते हैं?

जवाहरलाल पिकेटिंग की वजह से जेल गया। मैं आशा करती हूं कि अगर किसी बजाज ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी और व्यापारी मण्डल की राय हुई तो उसकी दूकान पर फिर से पिकेटिंग अवश्य होगी और इलाहाबाद के रहने वाले अपना फर्ज समझ कर वह पिकेटिंग जरूर करेंगे। अगर जरूरत हुई तो हमारी बहनों को भी साथ देना आवश्यक है। मैं भी चाहती हूं कि मुझे और मेरी बहू को भी पिकेटिंग करने का अवकाश मिले। जिस काम को करने के लिए जवाहरलाल जेल गया वह तो एक मिनट भी नहीं रुक सकता। अगर मर्दों ने इसमें हिम्मत हारी तो औरतें करेंगी। क्या हिन्दुस्तान में जेल सिर्फ मरदों ही के लिए हैं? क्या हमारे देश की औरतों में देश का प्रेम नहीं है?

आनन्द भवन
इलाहाबाद } सरूपरानी नेहरू

(३२४ पृष्ठ से आगे)

भी किसीका यह ख्याल हो कि भारत को हम पशुबल से, नीचता से, कुटिल राजनैतिक चालों से जीत कर, पद-दलित कर उसका खून चूसा करेंगे तो वह सावधान हो जाय। वह अपनी सारी आसुरी और नरकी सेनाओं को सम्मिलित कर के उस पर प्रहार करे; वह उसका जवाब परमात्मा पर श्रद्धा रखते हुए उस अलौकिक आत्मिक शौर्य से देगा जिसे देख कर जड़वादी संसार भी आदर, और भक्ति से नीचा सिर कर के परमात्मा की अथाह लीला का आश्चर्य ही करता रहे।

जयकृष्णनारायणलाल चले गये। वे ईश्वर के दरबार में अपनी आंखों देखी गवाही देंगे। ब्रिटिश-साम्राज्य पर भारत का दावा दायर हो चुका है। वे वहां स्वराज्य की नींव मजबूत करेंगे। नैनी जेल में जब उन्हें चक्की पीसने का काम दिया गया था तब वे चक्की पीसते समय नीचे लिखा अपना चक्की-गान गाया करते थे—

चल चल मेरी चक्की प्यारी!
भारत की तू राजदुलारी, तू प्रतिपालन हारी।
चरखे की तू सगी बहन है, चक्रसुदर्शन धारी॥
हर हर शब्द बुलावै हरि को, आवैं कृष्ण मुरारी।
मोहन तन धरि भारत मैया, देवैं पार उतारी॥
ब्रिटिश-नीति की सत्ता पीसौं, आटे के मिस सारी।
भारत-दुःख-दरिद्र को पीसौं, हो स्वराज्य सुखकारी॥

अब वे जालिम के जेलखाने से निकल कर 'ब्रिटिश-नीति की सत्ता को' सचमुच 'पीसने' के लिए उस सुरक्षित स्थान को पहुंच गये 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते'। परमपिता उनकी इच्छा को पूर्ण करें। उनकी इच्छा तीस करोड़ भारतवासियों की इच्छा है।

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में श्री-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" के एजंटों की हर जगह और शहर में जरूरत है।

जयकृष्ण प्रभुदास भनसाली द्वारा नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर, सरकीगरानी वाडी, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित।

असहयोग का मर्म

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)।
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद, ज्येष्ठ सुदि १०, संवत् १९७९, रविवार, सायंकाल, ४ मई, १९२२ ई० | अंक ४२

"देश को खादीमय कर दीजिए"

पूज्य कस्तूर—बा का भाषण

गुजरात प्रान्तीय परिषद् का कार्यक्रम समाप्त करते समय पूज्य बा ने उपसंहार में यह कहा:—

"अब यहां पर बहुत कुछ कहा जा चुका है। खादी के विषय में, छूत-अछूत के विषय में, राष्ट्रीय शिक्षा के विषय में, सब बातें अच्छी तरह समझा दी जा चुकी हैं। अब यहां से जाकर आप उन्हें भूल मत जाइएगा। आज रात को इन सब बातों पर फिर विचार-मनन कीजिएगा।

देढ़ साल से आपको ये सब बातें समझाई जा रही हैं। अब और कुछ कहने लायक नहीं रहा है। आज फिर आपके सामने वही मसला रक्खा गया है। मुझे तो इसमें कुछ भी न्यूनता नहीं दिखाई देती। अब तो हमें यही विचार करना चाहिए कि हम अपने भाइयों को किस तरह छुड़ा सकते हैं। हमारे बीस हजार भाई जेलों में कष्ट भोग रहे हैं। क्या आपका हृदय उनके लिए बेचैन नहीं हो रहा है? जबतक आप उन्हें छुड़ा नहीं लेते तबतक आपको चैन कहां से मिल सकती है?

यद्यपि इस समय भी हमें कितनी ही स्त्रियों में विदेशी कपड़ा ही दिखाई देता है। क्या आपके हृदयों में अब भी देशप्रेम जाग्रत नहीं हुआ जो आपने अभीतक विदेशी कपड़े को छोड़ा या [illegible] नहीं कर डाला? मेरी तो समझ में नहीं नहीं आता कि कपड़े के व्यापारी भी अपनी दुकानों में से विदेशी कपड़ा निकाल कर उसके स्थान में खादी ही क्यों नहीं भर कर बेचते? उनके हृदय में देश के प्रति जरा भी प्रेम होता तो वे जरूर ऐसा करते।

जो लोग जेल में गये हैं उनके लिए हम प्रेम प्रकट कर रहे हैं। गांधी जी को तो आप लोग पूज्य मानते हैं, देवता की तरह उनकी आदर-पूजा करते हैं, खूब प्रेम बताते हैं; पर यह सब ऊपरी है या भीतरी? अगर भीतरी-सच्चा प्रेम हो तो आपको तमाम देश को खादी-मय कर देना चाहिए। विदेशी को हमारी सीमा से बाहर कर दीजिए। खादी का ही प्रचार कीजिए। खूब सूत कातिए। जुलाहों को बुलाकर उनसे कपड़ा बुनवाइए।

भाई जवाहरलाल कितना काम करते थे? उनके हृदय में कितना देश-प्रेम था? जब वे जेल से लौटे तभी उनकी मां ने कहा कि बेटा थोड़े दिन विश्रान्ति तो ले लो? फिर तुम हो और तुम्हारा काम है; मनचाहा किया करना। पर उन्होंने एक दिन भी चैन नहीं ली। जवाहरलाल तो अपनी मां के इकलौते बेटे हैं। उनके लिए तो हमें रंज होना स्वाभाविक है।

पर हमारे कितने ही भाई व्यापार में कितनी बेइमानी करते हैं? वे कितना पाप कमाते हैं? वे विदेशी को विदेशी नहीं स्वदेशी कहकर बेचते हैं! वे दूसरों को ठगते हैं। पर शैतान उन्हें ठगता है वे गुनहगार पापी हो जाते हैं।

शराब की भी हमें बन्दी अवश्य कर देनी चाहिए। अछूत भाइयों को भी हमें अपने पास बैठा लेना चाहिए। यदि हम उनके साथ दयापूर्ण बर्ताव रक्खेंगे तो उसीमें हमारा उद्धार है। हमारे सिर के इस कलंक को धोने का यही एक मात्र उपाय है।

कितने ही भाइयों का खयाल है कि कौन्सिलों में जाने से ही हमारी फतह है। क्या आपमें से कोई आजतक कौन्सिलों में गये ही नहीं? वहां जाकर अपने मन मुआफिक प्रस्ताव पास करके उन्हें कार्य में परिणत कर देना तो आपके हाथ में ही नहीं। फिर वहां जाकर आप क्या करेंगे? दूसरे, कितने ही भाई सविनय-भंग के लिए उत्सुक हो रहे हैं। पर क्या आप उसके लिए तैयार हैं? अगर हमारी वह तैयारी होती तो जो हमारे हजारों भाई जेल में मुसीबतें झेल रहे हैं उनका सामना ही उन्हें न करना पड़ता? क्या दूल्हा की तरह आज उनके जुलूस नहीं निकाले जाते? अगर वह तैयारी होती तो क्या आज चारों ओर खादी ही खादी नहीं दिखाई देती? फिर ये विदेशी कपड़े क्यों हम लोगों में इतने दिख रहे हैं? साड़ियां भी खादी में ही क्यों नहीं होतीं? अहमदाबाद में तो कारीगरों के बहुत से जुलूस निकले हैं। अहमदाबाद के लोगों ने किया भी खूब है। पहले जहां एक न दिखाई देता था, पर आज जहां तहां चरखे चलते दिखाई देते हैं। खादी भी खूब तैयार हुई।

दूसरे भी बहुत से काम किये। पर साथ ही सरकार ने वहां की विदेशी कपड़ों की बरातों के जुलूस भी खूब देखे। उनके फोटो (छायाचित्र) भी उसने ले लिये और विलायत भेज दिये, यह बताने के लिए कि देखिए गांधी क्या कहते हैं और उनके भाई-बहन क्या कर रहे हैं!

जिनके मकान में हम ठहरे हैं वे बहन आज मेरे पास आई थीं। वे विदेशी कपड़े पहनी थीं इसलिए मैंने पूछा कि आप खादी क्यों नहीं पहनतीं? उन्होंने कहा, आप सब के आने से हमारा घर पुनीत तो हो ही गया है। मैंने कहा, ठीक है घर तो पुनीत हो गया होगा; पर आपने अपना हृदय पुनीत किया? वह तो तभी हो सकता है जब आप अपने हाथ के कते सूत की खादी पहनें और घर के तमाम लोगों को पहनावें।

हम लोग मोती जैसे कपास को विदेशियों के हाथ बेच डालते हैं। परदेशी लोग उसपर कितनी क्रियायें करते हैं? कपड़ा बुनते समय वे मांडी में जानवरों की चरबी का उपयोग करते हैं। पर हमें तो फिर भी वे कपड़े बड़े प्यारे लगते हैं। क्योंकि सीधा बना बनाया माल मिलता है, मिहनत उठाने का नाम नहीं। खादी तैयार करने में तो कितनी सिरपची करना पड़ती है? कपास को लोढना पड़ता है, धुनकना पड़ता है, फिर उसका सूत कातना पड़ता है, यह सब करने की तकलीफ उठानी पड़ती है। वह तो नहीं बनता। पर तैयार माल आता है उसे लेना सबको अच्छा लगता है। फिर उससे हमारा धर्म डूबे या रहे। हमें तो भ्रष्ट माल ही प्यारा लगता है।

कपड़े के व्यापारी भी खादी तैयार करने लग जायं तो कितना अच्छा हो! मिलों में काम करने के लिए जाने वाली बहनों की क्या हालत होती है! बेचारियों को वहां सुबह के छः बजे से शाम के छः बजे तक बराबर काम करना पड़ता है। हम अगर खादी का व्यापार शुरू करें और उन्हें सूत कातने के लिए कपास दें और मजदूरी दे दिया करें तो वे यह काम बड़ी खुशी से अपने घर पर बैठे बैठे करें। पर जबतक हमारे अंतःकरण में अपने करोड़ों दलित-पीड़ित भाइयों के लिए प्रेम की ज्योति जगमगाने नहीं लगती तबतक यह कौन करेगा? जबतक जेल में गये हुए छोटे छोटे बालकों के लिए हृदय नहीं टूटता तबतक कुछ नहीं होगा।

फिलहाल तो आप सब सफेद टोपियां पहने हुए हैं। पर इसके सिवा दूसरा और कुछ नहीं। शुद्ध स्वदेशी धोतियां तो कोई विरले ही पहने होंगे। अभीतक धोतियों के लिए 'ऑर्डर्स' भेजना पड़ते हैं। इसीलिए स्वराज्य में देर हो रही है। खादी तो पहनी जाती नहीं; पर कौंसिलों की और सविनय-भंग की बातें करते थके। एक हाथ में खादी रखिए कि दूसरे हाथ में स्वराज्य आ ही गया समझिए।

बहनों को भी खादी ही पहननी चाहिए। अब तो लाल पीले कपड़े छोड़ ही देना चाहिए। बालिकाओं को भी मैं तो खादी ही पहनने के लिए कहती हूं। हां, सफेद रंग अच्छा न लगता हो तो उसे रंगा लीजिए। उसीको दूसरी और तरह से सजा लीजिए। पर विदेशी का तो नाम भी मुंह से मत निकालिए। जब मुल्क ने युद्ध छेड़ दिया हो तब तो एकता ही से जीत होती है। आप सब खादी द्वारा अपनी एकता को मूर्तरूप दीजिए। जब तक विदेशी कपड़ा आप पहनते रहेंगे तबतक हमारे हृदय पूरी तरह से नहीं मिल सकेंगे। और जबतक ऐसी एकता नहीं तबतक विजय कैसे मिल सकती है? और बगैर विजय के सुख कहां है?

आज हमारी कितनी बहनें रो रही हैं! कितने भाई दुःखी होंगे! फिर हमें तो केवल ठंडी छांह में बैठ कर चरखा ही चलाना है। क्या हमसे इतना भी न हो सकेगा!

पर इसके लिए तो बहनों को ही दौरे पर निकल पड़ना चाहिए। उन्हें बारीक सूत कातने का अभ्यास करना चाहिए। हम बारीक नजर से अपने मकानों को स्वच्छ और सुव्यवस्थित रख सकती हैं। ठीक वैसी ही फिक्र हमें इस की भी रखनी चाहिए। तथापि इस काम के लिए कुशल बहनों को घर घर घूमकर यही काम अपनी दूसरी बहनों को सिखाना चाहिए। तभी हमारी उन्नति हो सकेगी और हम स्वराज्य ले सकेंगे।

हमारे गोपालदास भाई के घर पर तो राज-वैभव है। तो भी वे आज आकर हमारे साथ बैठे हुए हैं। भला इन्हें खादी पहनने का कोई कहे तो कभी यह बात इन्हें रुच सकती है? क्या दूसरे दरबारों को यह बात अच्छी लगती है? पर वे तो खादी ही पहनते हैं और काम भी कितना कर रहे हैं? उनके हृदय में देश-प्रेम की उज्ज्वल ज्वाला दमक रही है। इसीलिए तो उन्होंने राज्य छोड़ दिया है। इस से हमें नसीहत लेना चाहिए।

बस, मुझे तो इतना ही कहना है। मेरे कहे सुने का भला-बुरा मत मानिएगा। पर उसके अनुसार कार्य करने लग जाइए। जबसे हम यहां आये तबसे स्वयं-सेवक बराबर हमारी सेवा कर रहे हैं। स्वयं-सेविका बहनें भी उसी प्रकार खड़ी की खड़ी रही हैं। उन दोनों का काम देख कर मुझे बड़ा आनंद हुआ। मैं उनसे यही चाहती हूं कि इसी प्रकार वे देश का कार्य किया करें।

श्रोताओं ने भी सब कार्यवाही शांति के साथ सुन ली। उनका प्रेम भी मैं भूल नहीं सकती। उनको भी मुझे यही कहना है कि आप अपने प्रेम को स्वराज्य के कामों में लगावें।

आपने मुझे इस परिषद् की अधिनेत्री बनाया, इसलिए मैं आपकी बहुत अनुगृहीत हूं।

कानपुर में स्वदेशी-प्रचार

उत्तर हिन्दुस्थान में कानपुर कपड़े की एक बहुत बड़ी मंडी है। पर वहां जिस संगठन और व्यवस्था के साथ व्यापारियों में स्वदेशी का प्रचार हो रहा है वैसा बम्बई-कलकत्ते में भी नहीं हो रहा है। ४०० व्यापारियों में केवल कुछ दुर्बल व्यापारियों ने ही वहां विदेशी कपड़ा न मंगाने की अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी है। कपड़े के व्यापारी और उनके मुनीम लोग खुद दूसरे विदेशी कपड़े के व्यापारियों की दुकानों पर पहरा देते हैं। सचमुच यह उनके लिए बड़े ही गौरव की और कानपुर के लिए, तथा व्यापारी समाज के लिए अभिमान की बात है। उनकी पहरेदारी का असर केवल हिन्दुस्तानी ग्राहकों पर ही नहीं बल्कि अंगरेज-पुरुषों और रमणियों पर भी हुआ है।

पहरेदारी में यह सफलता देख कर सुदूर कलकत्ते के बंगाल चेम्बर आफ कामर्स के पेट में चूहे कोदने लगे। उसने कानपुर के अपर इंडिया चेम्बर आफ कामर्स को पत्र लिखा कि तुरन्त कलेक्टर साहब को दरख्वास्त देकर पहरा बन्द कराओ, नहीं तो आगरा और देहली तक यह बीमारी शीघ्र ही फैल जायगी और १९२१ के अगस्त दिसम्बर में जो हालत हुई वही होगी। दिल्लगी यह है कि न तो कानपुर की जनता को, न व्यापारियों को, न यू० पी० चेम्बर आफ कामर्स को इसकी शिकायत है। ठेट कलकत्ते से जो इसकी आवाज उठी है उसका अर्थ साफ ही है और उसीमें हमारी सफलता का रहस्य है।

हिन्दू-मुसलिम-एकता

श्रीयुत सी. राजगोपालाचारी 'खिलाफत बुलेटिन' में लिखते हैं—जीवन का सच्चा धर्म आत्मरक्षा नहीं, बल्कि प्रेम है। प्रतिहिंसा और द्वेष इनमें से एक में भी मनुष्य-जाति की उन्नति की सच्ची कुंजी नहीं है। गांधीजी ने भी तो यही पाठ हमें पढ़ाया है। उन्होंने तो हमें कहा कि केवल वैयक्तिक संबंधों में ही नहीं, बल्कि दो धर्मों के बीच भी हमें एक दूसरे धर्म की ओर इसी दृष्टि से देखना चाहिए। भारत ने भी उसे इतनी तत्परता के साथ ग्रहण किया कि मानों उसे यह एकदम आंतरिक स्फूर्ति हुई कि हां, इसी संदेश को लेकर ही मैं आया हूं। शीघ्रही हिन्दू और मुसलमान एक होकर खिलाफत के न्यायम निपटारे के लिए शान्ति के साथ लड़ते हुए दिखाई देने लगे। और आज संसार इस आश्चर्यमय दृश्य को चकित दृष्टि से देख रहा है कि हिन्दू केवल इस्लाम के प्रति सहानुभूति ही नहीं दिखा रहे हैं बल्कि वे इसलाम के लिए लड़ भी रहे हैं।

हिन्दुओं ने तो यह समझ लिया है कि ये सब रास्ते सत्य ही की ओर जाते हैं। और वे यह भी जानते हैं कि अपने मुसलमान भाइयों के धर्म, इस्लाम, की रक्षा के लिए आत्म-बलिदान करते हुए तो हम भगवान् श्रीकृष्ण की ही आज्ञाओं का पालन कर रहे हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों बरसों से यह सोचते हुए आ रहे हैं कि उनकी भिन्न-धर्मीयता तो राष्ट्रीय ऐक्य में सबसे अधिक बाधक है। पर अब वे जान गये हैं कि यह तो हमारे लिए एक परमात्मा की कृपा है। यह भिन्नता तो हमें विशुद्ध स्वार्थत्याग और आत्मयज्ञ करने में सब से अधिक सहायक हो रही है। और इसकी बदौलत हम जो कुर्बानियां करने में समर्थ होते हैं वे हमें, दोनों को उन भावहीन धार्मिक विधियों, तथा पूजा-विधियों की अपेक्षा हजार गुने अधिक प्रेम से बांध देती हैं। अब तो अविश्वास और ना-समझी का स्थान विश्वास, प्रेम और कृतज्ञता ने ले लिया है। आशा ने निराशा को भगा दिया है और आज इस खिलाफत-आन्दोलन के कारण भारत एक संयुक्त-राष्ट्र हो गया है।

योरप के ईसाई राष्ट्रों के लिए भी भारत का यह शान्तिमय खिलाफत संग्राम तुर्क और अंगोरा के सशस्त्र संग्राम से कहीं भिन्न है। अपनी प्रिय वस्तु की रक्षा के लिए हम पशुबल का प्रयोग नहीं कर रहे हैं। भारत अपनी प्रिय वस्तु की प्राप्ति के लिए खून की नदियां बहाने के बदले प्रेम और आत्म-यज्ञ का पवित्र प्रकाश फैला रहा है। भारत के मुसलमान और उनके हिन्दू भाई रक्षा के हेतु घात नहीं करना चाहते। पर वे अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने घरबार का त्याग करके असंख्य यातनाओं को भोगते हुए आत्म-यज्ञ कर देने के लिए भी तैयार हैं। और सो भी बड़े प्रेम के साथ।"

रिपोर्ट (५) दमन की रिपोर्ट—कौन २ से महानुभाव जेल गये उनके नाम पूरे पते, किस तारीख को गये, कितने दिन के लिये गये व किस प्रकार की सजा हुई, किस धारा द्वारा जेल भेजे गये—यदि लौट आये तो जेल की बातें।

नोट— कांग्रेस क०, अपने यहां के सब मुख्य कार्यकर्ता के नाम लिखें जिनके चित्र देना उचित हों, इसी पते पर सूचनाएं आनी चाहियें।

प्रार्थी—केशवराम टंडन
सतरामा स्ट्रीट, फर्रुखाबाद

गरीबों का अन्नदाता

हिन्दुस्तान के लोगों की आयु और आमदनी क्यों कम हो जाती है, इसकी कल्पना शहरों को देखकर नहीं की जा सकती। पर यदि हम भारत के छोटे छोटे गांवों में जाकर देखें; जो कि रेल्वे स्टेशनों से बहुत दूर हैं और जहां न तो शरीर के पोषण के लिए पूरा अनाज ही मिलता है और न उसे ढांकने के लिए वस्त्र ही, और न इन दोनों कामों के लिए कोई उद्यम ही है, तो इसका कारण तुरन्त हमारी समझ में आ जाय। ऐसे ही गांवों में से एक गांव मध्यप्रान्त के भण्डारा जिले की सांकोली तहसील में है। वह भण्डारा रोड से कोई २६ मील दूर है। उस तहसील में चावल की खेती होती है। वहां केवल एक ही—बरसाती फसल होती है। लोग ८ महीने खाली बैठे रहते हैं। फी आदमी की रोजाना औसत आमदनी)॥ से –) तक है। पूर्वोक्त गांव का नाम है किनी। वहां कोई छः महीने से चरखे का पुनरुद्धार हुआ है। उसमें ५० घर महारों के—एक अछूत जाति—के हैं। चरखा और करघा वहां पुराने समय से चले आते हैं। इसलिए आज वे इस उद्यम को बिना कठिनाई के आगे बढ़ा सके। आजकल वहां ५०-६० चरखे चल रहे हैं। इन चरखे और करघों पर हर एक महार ८-१०) मासिक आमदनी कर सकता है। जो चरखा वहां नया बनाया जाता है उसकी कीमत सिर्फ १) होती है। और वह अच्छी तरह काम देता है, हर आदमी दिन भर में ६-८ नम्बर का सूत कोई २०-३० तोला कात सकता है। हर एक आदमी ३८ इंच अर्ज का १० गज का थान एक दिन में बुन सकता है। इसकी बुनाई उसे सिर्फ १।) मिलती है। इस गरीबी के कारण वहां खादी बहुत सस्ती होती है। ३८ इंच अर्ज की खादी ॥) गज मिलती है। इतना सस्ता कपड़ा न तो विदेशों से आ सकता है, न यहां की मिलों में ही बन सकता है। ऐसे गांव उस तहसील में एक ही नहीं, कोई सौ से कम नहीं हैं। सारे भारत में तो ऐसी सस्ती खादी तैयार करने के अनुकूल हजारों और लाखों गांव हैं। खादी को सस्ती बनाये बिना उसका स्थायी प्रचार होना कठिन है। और सस्ती खादी के लिए शहरों का नहीं बल्कि ऐसे गांवो का सहारा लेना होगा। किनी के इस वर्णन से यह नतीजा निकलता है कि भारत के देहात में चरखे को कितना स्थान मिल सकता है वह किस प्रकार गरीबों का अन्नदाता हो सकता है। आवश्यकता है सिर्फ उस तरफ कार्यकर्ताओं का ध्यान जाने की और प्रयत्न करने की। थोड़े ही प्रयत्न में काफी सफलता मिल सकती है।

लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

भारतवर्ष की असहयोग डाईरेक्टरी

असहयोग डाईरेक्टरी में कांग्रेस सम्बन्धी बातें तथा मुख्य कार्यकर्ताओं के और कुछ न होगा। केवल कांग्रेस कमेटियों को बिनामूल्य मिलेगी। अतः प्रांतिक जिला, तहसील तथा नगर कांग्रेस कमेटियों से प्रार्थना है निम्न विषयों की सूचना, अति शीघ्र नीचे पते पर भेज दें। (१) कांग्रेस कमेटी (जिला, तहसील या नगर) कब स्थापित हुई (२) प्रांत से कौन २ महानुभाव स्थापित करने आये (३) कांग्रेस कमेटी की हद में या अधिकार में कितने चरखे चलते हैं, कितना माल हर मास में प्रत्येक द्वारा तैयार होता है (४) का० कमेटी की हद में व अधिकार में कितने, अछूत, राष्ट्रीय विद्यालय हैं—विद्यालयों की अबतक की रीपोर्ट (४ अ) राष्ट्रीय पंचायतो की संख्या व उनकी

हिन्दी

नवजीवन

रविवार, ज्येष्ठ सुदि १०, सं. १९७९

असहयोग का मर्म

असहयोग-आन्दोलन से जो लोग नाखुश हैं और जो इसका विरोध करते हैं वे तीन भागों में बांटे जा सकते हैं-(१) नौकरशाही और उसके एंग्लोइंडियन दोस्त (२) नरमदल वाले और (३) इक के लोगों को विश्व-कुटुम्बी कह सकते हैं। नौकरशाही और उसके भाई-बेटे इसलिए नाराज हैं कि वे असहयोग-आन्दोलन को अपने, अपनी सरकार के और अपने देश के लिए बहुत खतरनाक समझते हैं। वे सोचते हैं कि असहयोगी लोग हमारी मौजूदा सरकार को या तो तोड़ देना चाहते हैं या बदल देना चाहते हैं। दोनों सूरतों में न आज की सी मनमानी हुकूमत ही हमारे पास रह जायगी न हम और हमारे देशी बनिये यहां का धन-माल चूसने पावेंगे। उससे ३० करोड़ भारत-वासियों की गुलामी की बेड़ियां भले ही टूटती हों, भले ही सारे संसार के लिए सच्चे स्वराज्य का और सुख-शान्ति का पथ दिखाई देता हो-पर हमारी तो रोटी चली जायगी-फिर वह चैन की बंसी कैसे नसीब होगी? काले गुलाम हिन्दुस्तानियों के बराबर बनकर यहां रहना होगा। जिनको आज जूतियों के पास खड़ा करते हैं, भेड़-बकरियों की तरह जेलों में ठूंस देते हैं, पशुओं की तरह मारते-पीटते और कष्ट देते हैं उनके बराबर बैठना होगा, उनकी मरजी के मुताबिक चलना होगा। ब्रिटिश वीर और शाही कौम के सुन्दर गौरवर्ण लोग यह बेइज्जती कैसे सहन कर सकते हैं? इसी लिए वे इस आन्दोलन को अपने साम्राज्य का शत्रु मानकर उसका बीज तक न रहने देने की कोशिश कर रहे हैं।

नरम-दल के लोग इस आन्दोलन को 'कानून, व्यवस्था और शान्ति' का बाधक मानते हैं। अंगरेजी साम्राज्य की छत्रछाया के बिना, उनकी राय में, भारत की तरक्की नहीं हो सकती। भारत की इस समय जो हालत है उसे वे तरक्की की हालत कहते हैं और मानते हैं कि यह अंगरेजों के सुराज्य का सुफल है या तो निराशा से या राजनैतिक सूक्ष्म-बुद्धि और दूरन्देशी से वे अंगरेजों की मिन्नत-खुशामद कर के जो कुछ टुकड़े मिल जायं वही ले लेना पसन्द करते हैं। अपना पौरुष और पराक्रम दिखाना वे मुनासिब नहीं समझते। वे कहते हैं-स्वराज्य के देने वाले तो अंगरेज लोग हैं-ब्रिटिश पार्लियामेंट है। उसे नाखुश करने से स्वराज्य कैसे मिलेगा? विलायती कपड़ों की होलियां जलाकर, शाहजादे की बेइज्जती कर के, कानून-भंग की तैयारी कर के असहयोगियों ने ब्रिटिश साम्राज्य और ब्रिटिश प्रजा को बहुत नाराज कर दिया है और भारत में अशान्ति और अराजकता का बीज बो दिया है। इसलिए जितनी जल्दी इसकी मृत्यु हो जाय उतना ही अच्छा। उन्होंने इसमें सरकार का साथ दिया और दे रहे हैं।

तीसरे लोगों को हमने विश्व-कुटुम्बी कहा है। असहयोग-आन्दोलन में पश्चिमी संस्कृति, पश्चिमी भावों और पश्चिमी आदर्शों के प्रति विरोध भाव और खादी पर विशेष जोर देखकर वे चौंक उठे हैं। वे कहते हैं, भारत विश्व-कुटुम्ब-भाव को छोड़ कर संकुचित राष्ट्रीय भाव धारण कर रहा है। वह केवल अपना ही भला चाहता है। दूसरों से तो उसने असहयोग ठान रक्खा है। संसार के देशों ने आजतक एक दूसरे से असहयोग ही किया है। उसका कुफल-परस्पर विद्वेष और कलह-संसार के सामने है। सारे संसार की उन्नति और स्वतन्त्रता पर दृष्टि रखते हुए अकेले भारत की उन्नति और आजादी कोई चीज नहीं है। सच्चा अध्यात्मवादी और परोपकारी तो अपने सुख-दुःख को भूल कर दूसरे के हित में सदा तत्पर रहता है। भारत व्यर्थ ही अपने को गुलाम समझ रहा है। वह अपने को आजाद समझने लगे, बस वह आजाद है। इसलिए सच्ची उन्नति और सच्चे सामूहिक सुख का मूल सहयोग है, असहयोग नहीं। और वह समझ कर वे असहयोग को दूर से ही नमस्कार करते हैं।

हम जहांतक सोचते हैं इस असहयोग-विरोध का कारण या तो गलतफहमी है या अर्थ का अनर्थ कर लेना है। गलतफहमी भूल या भ्रम से होती है और अर्थ का अनर्थ जानबूझ कर, मतलब साधने के लिए, किया जाता है। जहां तक भारतीय नौकरशाही और एंग्लोइंडियन लोगों से सम्बन्ध है वहांतक तो हमारा विश्वास है कि केवल गलतफहमी ही नहीं बल्कि अर्थ का अनर्थ भी किया गया है। क्योंकि इसमें सच्ची स्वार्थहानि केवल उसी दल की है। हां, नरम-दल वालों तथा विश्व-कुटुम्बी लोगों ने असहयोग का अर्थ बिलकुल ही नहीं समझा है। इसके मुख्य दो कारण हमें दिखाई देते हैं-एक तो अपने प्रचलित मतों और सिद्धान्तों के विरुद्ध दूसरे की बातों को शान्त चित्त से सुनने और उनपर निर्विकार भाव से विचार करने के लिए कुछ लोग तैयार नहीं होते और दूसरे साधारण मनुष्यों की दृष्टि जहां वर्तमानकाल पर रहती है तहां नेता भविष्यकाल पर दृष्टि रखता है और उसके अनुसार दिशा और मार्ग बताता है तथा कार्यक्रम की रचना करता है। इससे बहुतेरे लोग सहसा उसकी बातों को समझ नहीं पाते और उसे सनकी या पागल की श्रेणी में ढकेल देते हैं। संसार में आजतक जितनी महान् आत्मायें हुई हैं, आरम्भ में उनकी और उनके विचारों की ऐसी ही इज्जत दुनिया ने की है। और यह असहयोग आन्दोलन तो अभी पूरे दो वर्ष का भी नहीं हुआ है। अतएव इसके विषय में मतभेद होना और बने रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किसीने सच कहा है कि यदि अपने हृदय को चीर कर दिखा देने का सामर्थ्य मनुष्य में होता तो संसार का सारा कलह और-विद्वेष नष्ट हो जाता। इसलिए आज हम पूर्वोक्त सब दल वालों को समझाने के हेतु से यहां असहयोग के सिद्धान्त और उप-सिद्धान्तों का मर्म दिखाने का प्रयत्न करते हैं। क्या हम आशा करें कि वे इस पर पूरी तरह निर्मल-भाव से विचार करेंगे?

१ हमारा असहयोग किसी विशेष जाति, समाज, देश, धर्म, भाषा, व्यक्ति और संस्था के साथ नहीं है; बल्कि बुराई और पाप तथा बुरी प्रथाओं और पद्धतियों के साथ है। वर्तमान अंगरेजी सरकार बुरी है, पश्चिमी संस्कृति और पश्चिमी आदर्श मनुष्य-जाति के लिए अहितकर हैं, इसलिए भारत ने उसके साथ असहयोग किया है, इसलिए नहीं कि वह केवल अंगरेजी या पश्चिमी है।

२ भलाई के साथ सहयोग और बुराई के साथ असहयोग प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। कुटुम्ब में तथा मामूली व्यवहारों में हम इसी तत्व के अनुसार बरताव करते हैं। इस आन्दोलन में यह तत्व जो अबतक व्यक्तिगत और कौटुम्बिक आचरण में आता था सामाजिक और राष्ट्रीय व्यवहार में भी दाखिल किया गया है।

३. इस धर्म का पालन वही कर सकता है जो निर्मल-हृदय हो। इसलिए आत्मशुद्धि इस आन्दोलन का खास अंग है। भूल को स्वीकार करना, उसके लिए पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त करना, प्रतिपक्षी और शत्रु को भी प्रेम करना आत्मशुद्धि के ही अंग हैं। जिसने असहयोग के पिछले कुछ महीनों के इतिहास को देखा है वह तुरन्त जान सकता है कि असहयोगियों ने इस विषय में बहुत प्रगति कर ली है।

४. इसमें असहयोगियों का बल आत्मबल है। इसीको प्रेमबल या सत्य-बल भी कहते हैं। विश्व-कुटुम्ब-भाव इस आत्मिक बल के विकास की एक सीढ़ी है। अभी भारत में सच्चा राष्ट्रीय भाव ही पूरी तरह जाग्रत नहीं हो पाया है। अभी वे विश्व-कुटुम्ब-भाव की बातें रमणीय और भव्य भले ही हों; पर वे 'दुरस्थ वार्ता रम्या' की ही तरह हैं। कल्पना के घोड़े दौड़ाना एक बात है और उसको अपने जीवन में उतारना-चरितार्थ कर दिखाना दूसरी बात है। एक जितनी आसान है दूसरी उतनी ही कठिन है। जबतक भारत स्वतन्त्र और एकराष्ट्र नहीं हो जाता तबतक वह दूसरे राष्ट्र के सामने क्या उदाहरण पेश कर सकता है? भूखा दूसरे को क्या भोजन दे सकता है? गुलाम दूसरे को कैसे आजाद कर सकता है? हां, काल्पनिक संसार में आजादी का अनुभव करना तो आसान है; पर यदि व्यवहार में भी हम उसे अनुभव करने लगें तभी वह आजादी है। हां, गुलाम समझने से मन में भी अपनेको आजाद समझना है जरूर अच्छा।

५. इसमें सत्य-बल है, प्रेम-बल है। इसलिए संकुचित राष्ट्रीय धर्म को इसमें स्थान नहीं।

६. अहिंसा इसका मूल है। इसलिए इससे अ-व्यवस्था और अ-शान्ति की जरा भी आशंका नहीं। अभी प्रयोग-काल है। शिक्षण-काल है। लोग अहिंसा का पूरा महत्व समझे नहीं हैं। इससे कहीं कहीं शान्ति-भंग हो गया जरूर है। पर इसका आदर्श और अन्तिम फल पूर्ण शान्ति और सारी मनुष्य-जाति का ऐक्य है। अहिंसा के ही बल पर यह सम्भवनीय है।

७. इस आन्दोलन का उद्गम धार्मिक भाव से हुआ है। खिलाफत और पंजाब-सम्बन्धी अधर्म को दूर करने के लिए इसका जन्म हुआ था। पीछे से यह अनुभव होने पर कि राजनैतिक सत्ता के मिले बिना ऐसे अन्यायों का भय आगे न होना असम्भव है तब वही राजनैतिक साधन भी मान लिया गया और स्वराज्य भारत का निश्चित तात्कालिक ध्येय हो गया। जिसकी जड़ में धर्म-भाव है, जहां ईश्वर के प्रति श्रद्धा है, उस का फल अराजकता और अव्यवस्था कैसे हो सकता है?

८. स्वार्थ-त्याग और तपश्चर्या से कष्ट-सहन हमारे साधन हैं। हम प्रतिपक्षी को अपना कैदी या गुलाम नहीं बना लेना चाहते; बल्कि उसके हृदय और आत्मा के सब भावों को जाग्रत कर उसे पशु से मनुष्य बना देना चाहते हैं। इसीलिए हम पशु-बल का अवलम्बन न कर के-प्रतिपक्षी के जानोमाल को पूरी तरह सुरक्षित कर के-खुद बलि हो रहे हैं और कष्ट सहन कर रहे हैं। हां, इससे उसकी अन्याय और स्वार्थ-वृत्ति परिमित अवश्य हो जायगी; पर इसमें तो उसका नैतिक लाभ ही है। तो अब इसमें विद्वेष कहां रहा? संकीर्ण भाव कहां है?

९. स्वदेशी-धर्म अर्थात् शुद्ध खादी इस आन्दोलन का एक विशेष लक्षण है। इसका मूल स्वावलम्बन है। यह केवल भारत का ही धर्म नहीं; प्रत्येक देश का धर्म है। केवल भारत के ही लिए विदेशी कपड़ा मंगाना अधर्म और धर्म की हानि नहीं है, बल्कि दूसरे देशों के लिए भी वे चीजें मंगाना पाप और अन्याय की बात है जो उनके यहां तैयार हो सकती हैं। भारत में इस प्रयोग के सफल हो जाने पर संसार में इस धर्म का फैलाना आसान होगा। तभी संसार की आंखें इस ओर खिंचेंगी भी।

१०. असहयोग के कार्यक्रम में सविनय कानून-भंग, अन्तिम और अमोघ अस्त्र है। पर इससे डरने या चौंकने की जरूरत नहीं। कानून-भंग में सविनय पद पर विशेष जोर दिया गया है और उसके अविनय होने की सम्भावना होते ही वह स्थगित भी कर दिया गया है। सिद्धान्त की दृष्टि से जो कानून अनीति-मूलक हैं जो हमारे देश और समाज की परम्परा और हित को ध्यान में रखकर नहीं बनाये गये हैं, जिनकी रचना हमारे प्रतिनिधियों के द्वारा नहीं हुई है, जिनका प्रयोग हमें कायर, भीरु और खोखला बना देने के लिए, हमें अवलम्बित कर देने के लिए, हमारे धन और धर्म को हरने के लिए किया जाता है, उन्हें न मानना कौनसी बुरी बात है? यह तो पौरुष का, मनुष्यत्व का चिह्न है।

असहयोग के तत्वों के विवेचन करने का यह प्रयत्न हमने किया है—इस आशा से कि विरुद्ध पक्ष के लोगों की गलत फहमी दूर हो सके। तथापि हम जानते हैं कि इसका कारगर उपाय तो स्वयं कष्ट सहन कर के उन सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करना है। जिस प्रकार सहयोग जीवन का धर्म है उसी प्रकार अ-सहयोग भी जीवन का धर्म है। सहयोग नेकी के साथ और असहयोग बदी के साथ। यह सनातन नियम है। यदि प्रतिपक्ष के लोग इस रहस्य को समझ लें तो उन्हें असहयोग में कोई बुराई न दिखाई दे।

टिप्पणियां

पंडित मोतीलालजी नेहरू

संयुक्तप्रान्त में असहयोग-आन्दोलन के प्राण, महासभा के महामन्त्री, श्री पं. मोतीलालजी नेहरू 'हिन्दी नवजीवन' का यह अंक पाठकों के हाथ में पहुंचने तक स्वतन्त्रता की तपोभूमि से लौट आवेंगे। उनकी अगवाई की उत्सुकता में श्री सी. राजगोपालाचारी 'यंग इंडिया' में लिखते हैं—"इसी सप्ताह में लाखों लोगों को यह अनुभव होगा कि हमारे जहाज का कर्णधार मिल गया है। कुछ ही दिनों में पंडितजी के आराम की अवधि समाप्त हो जायगी। जेल से बाहर आते ही उन्हें भारत महात्मा गांधी के बिना और 'आनन्द-भवन' जवाहरलाल के बिना सूना दिखाई देगा। बहुत कम लोग ऐसे भाग्यवान् होते हैं जिन्हें घमासान लड़ाई के बीच अपने नौजवान अभिमन्युओं और इन्द्रजितों को युद्ध के मैदान में भेजने का सुअवसर प्राप्त होता हो। श्री मालवीयजी और महात्माजी की तरह श्री नेहरूजी को भी यह गौरव प्राप्त है। देश इस समय जी-जान लगा कर खादी प्रचार का काम कर रहा है और खूब धीरज से काम ले रहा है। अपूर्व शान्ति फैल रही है, जिससे हमारे प्रतिपक्षी बड़े छक रहे हैं और उनकी अक्ल चकरा गई है। वे तो अहिंसा के इस रहस्य को समझ ही नहीं रहे हैं। तथापि क्या अच्छा होता यदि हम पंडितजी का स्वागत करते समय आज की अपेक्षा और भी अच्छा काम करके दिखाते। इससे पंडितजी की तन्दुरुस्ती अच्छी न होते हुए भी उन्हें अपने गुलजार मकान में इस युद्ध का संचालन करते हुए बड़ा हर्ष होता। हमें यकीन है कि हकीम जी साहब, तथा श्री पंडितजी के रहते हुए हमारी राष्ट्रीय सभा को बिना किसी प्रकार की आशंका और सन्देह के, हम इस आजाद-स्थली में महासभा के उस महान मंत्री की अनुपस्थिति पर बिना अफसोस किये अपना रहनुमा मानते रहेंगे।

कौन्सिल का बहिष्कार और दे० देशपांडे

करनाटक और महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध नेता देशभक्त गंगाधरराव देशपाण्डे हाल ही में छ:मास की जेल भोग कर यरवडा जेल से आये हैं। जेल जाते समय आपने अपनी तमाम सम्पत्ति देश के नाम पर लिख दी है। महाराष्ट्र में इन दिनों महासभा के प्रचलित कार्यक्रम में परिवर्तन कराने के सम्बन्ध में जो अप्रिय चर्चा हो रही है उसके निर्णय का भार आप ही पर डाला गया है। हाल ही में 'नवजीवन' के प्रतिनिधि से धारासभाओं के बहिष्कार के सम्बन्ध में आपने कहा है "न तो सिद्धान्त की दृष्टि से और न देश की मौजूदा हालत को देखते हुए ही मैं धारासभाओं में जाने की बात को पसन्द करता हूं। जब कि सरकार अपनी दमन-नीति का चक्र चलाने में किसी तरह से कोर-कसर नहीं कर रही है तब हम अपने कार्यक्रम की पूर्ति में कैसे खामी रख सकते हैं? सरकार तो ऐंठती रहे, पर हम कौन्सिलों में जायं-इसे मैं देश की बड़ी से बड़ी बेइज्जती समझता हूं। महात्मा जी जेल में बन्द हैं। अलीभाई, लालाजी, देशबन्धु, नेहरूजी आदि नेता जेल में हैं, हमारे २०-२५ हजार नौजवान जेल में हैं, ऐसी हालत में हम अपनी टेक कैसे छोड़ सकते हैं? असहयोग-हलचल में धारासभाओं का बहिष्कार बहुत ही सफल हुआ है। उसे जान बूझ कर खो देना अपनी कमाई पर पानी फेर देने के बराबर है। इस समय इस पर जो चर्चा हो रही है उसमें मैं देश की हानि ही देखता हूं। यह चर्चा एकबारगी बन्द हो जानी चाहिए।

धारासभा के चुनाव को अभी डेढ़ साल है और यदि सरकार चाहे तो इस मीयाद को और भी बढ़ा सकती है। अतएव इस झगड़े में समय बिताने की अपेक्षा यदि हम महासभा के रचनात्मक कार्यक्रम में एकचित्त से लग जायं तो चुनाव का समय आने के पहले ही सरकार को झुक जाना पड़ेगा। मुझे तो आज धारासभा की चर्चा करने के बजाय यही विचार करना अधिक जरूरी मालूम होता है कि महात्माजी को उनकी इच्छा के अनुकूल किस प्रकार छुड़ाया जाय।

असहयोगी यदि धारासभाओं में जायं तो सारे देश की बेइज्जती हो। फिर हमारे प्रान्त में ब्राह्मण-अब्राह्मण का मिटता हुआ झगड़ा फिर से खड़ा हो जाय। इसके सिवा हमारे कीमती से कीमती आदमी इन बोगस धारासभाओं के काम में फंस जायंगे जिससे जनता के संगठन का रचनात्मक काम उनकी सेवाओं से वंचित रह जायगा। यही नहीं, बल्कि यदि जनता के प्रतिनिधि हो कर लोग धारासभाओं में बैठें और उस हालत में जनता सविनय भंग शुरू करे तो उसका नैतिक प्रभाव भी बहुत कम हो जायगा। जिस डाल को हमें काट गिराना है उसी पर हमारे आदमी कैसे बैठ सकते हैं?

दो वर्ष की इस हलचल के अनुभव से तथा छ: महीने तक एकान्त सेवन कर बाहर आने पर मैं निश्चित रूप से यह देख रहा हूं कि असहयोग आन्दोलन किसी तरह से असफल नहीं साबित हुआ है। क्या जेल के बाहर और क्या भीतर, जिन लोगों ने इस हलचल में कुछ कष्ट-सहन किया है उनमें जिन जिन लोगों से मैं मिला हूं उन्हें मैंने न तो निराश देखा न अफसोस करते हुए या हिचकिचाते हुए देखा। मैंने तो उनका उत्साह बढ़ा हुआ ही देखा है। मुझे तो निश्चय हो चुका है कि इस आन्दोलन को इसी रास्ते वेग के साथ चलाते रहने में देश का सबसे अधिक कल्याण है।"

भाई देवदास गांधी

जहां जहांतक असहयोग आन्दोलन की पहुंच है वहां वहां भाई देवदास का नाम छिपा नहीं रहा है। संयुक्त प्रान्त कुछ समय तक तो उन्हें महात्मा गांधी के साहबजादे के नाम से पहचानता था; परन्तु अब तो वह उन्हें अपने एक वीर नायक के नाम से पहचानता है। मदरास में उन्होंने एक साल तक हिन्दी-प्रचार का काम किया। वहां के लोग उन्हें एक तेजस्वी प्रचारक के नाम से जानते हैं। परन्तु भाई देवदास की देश-सेवा यहीं से शुरू नहीं होती है। उसके आरम्भ का इतिहास श्री मगनलाल जी गांधी ने 'नवजीवन' में दिया है। हमारा खयाल है कि उनकी किशोर अवस्था की बातें हमारे नौजवानों के लिए बहुत शिक्षा-दायक होंगी।

श्री मगनलाल जी कहते हैं कि देवदास किसी मदरसे में पढ़ने नहीं गया। एक सच्चे विद्या-प्रेमी की तरह वह जहां से मिलती है वहीं से विद्या प्राप्त कर लेता है। लड़कपन तो उसका खेलों में ही बीता। कितनी ही चीजें इकट्ठी कर के अपनी जेब में लिये घूमा करता। बड़े होने पर यह संग्रह करने की आदत ज्ञान का संचय करने और विद्वानों की सेवा कर के उनके चित्त को रिझाने की लालसा के रूप में बदल गई। सेवा देवदास की पाठशाला हुई; सेवा उसका अखाड़ा हुआ, सेवा उसकी खेल-कूद हुई।

दक्षिण आफ्रिका के मद्रासी, हिन्दी, गुजराती, गोरे, काले, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सत्याग्रहियों से बसा हुआ घर बालक देवदास की पाठशाला थी। नियम के अनुसार घर का काम करने में देवदास हमेशा सावधान रहता। कहीं मेरे हिस्से में काम कम न आ जाय और मैं अपने साथियों की ईर्ष्या का पात्र न हो जाऊं, इसका उसे बड़ा खयाल रहता। चक्की पीसना, पानी भरना, लकड़ी लाना, बरतन मलना, आदि सब काम वह अपने साथी लड़कों से कुछ अधिक ही करता। उसके पिताजी के मित्र बड़े नाराज रहते। वे गांधीजी को बराबर चेताया करते कि इन चित्र-विचित्र लड़कों को घर में भर कर क्यों लड़के की जिन्दगी बिगाड़ते हो? इस पर वे जवाब देते कि पौधा अपने स्वभाव के अनुसार जमीन में से रस चूसता है। देवदास की लगन को वे हमेशा जांचते रहते और उसके भविष्य के विषय में निर्भय रहते। कुछ समय तक पढ़ाई चलती; फिर कितने ही दिनोंतक बन्द रहती। शाम की प्रार्थना के समय रामायण, काव्यदोहन, भागवत आदि के चुने हुए अंश पढ़े जाते और उनपर चर्चा होती। बस, इसीमें उनकी शिक्षा के मुख्य भाग का समावेश होता था।

ऐसा करते करते सत्याग्रह संग्राम का आखिरी अंक आ गया। देवदास के बालमित्रों में से १६ वर्ष की अवस्था वाले सब लोग जेल में जा पहुंचे। देवदास खूब चाहता था कि जेल जाय; पर वह १४ वर्ष का था। जेल न जा सका। तब औरों के साथ साथ उसने भी यह निश्चय किया कि जबतक जेली लोग विजय प्राप्त कर के वापस न लौटें तबतक बिना नमक का भोजन किया जाय और छापखाने में काम किया जाय तथा उसी प्रकार इस निश्चय को निबाहा भी। प्रातःकाल ४ बजे उठ कर रात को ८बजे सोने तक बालक देवदास काम में लगा रहता। हाथ मुंह धोकर छोटे बच्चों को जगाता। फिर नाश्ता करके छापेखाने में जाता और वहां कम्पोज करने से लगा कर प्रेस का प्रायः सब काम ८ घण्टे तक बड़े ध्यान के साथ करता। प्रार्थना और ब्यालू के बाद आठ बजे रात तक पढ़ने लिखता। कोई ३ महीने तक यही क्रम रहा। इस बालक की इतनी मदद के बिना वह छापखाना, जो कि

निर्जन हो गया था, कैसे चलता ? यह सब भाई देवदास के लिए एक अच्छ राष्ट्रीय विद्यालय के समान था । उसके बाद जिन जिन संयोगों में से वह गुजरा वे सब पूर्व-शिक्षा के ?‌‌ंशका रूप हुए ।

आज भाई देवदास की पुरानी उत्कंठा तृप्त हुई । उनके हाथ के घट्टे अभीतक मिटे न होंगे । इसीलिए उन्होंने सख्त कैद की सजा न मिलने पर अफसोस प्रकट किया । यह उन्होंने अपनी राष्ट्रीय शिक्षा की प्रगति के लिए ही किया, अपनी बड़ाई दिखाने के लिए नहीं । सच है, भाई देवदास की राष्ट्रीय शिक्षा उनकी राष्ट्रीय सेवा में ही पर्याप्त होती आई है ।

सरकार और सिक्ख

यद्यपि आजकल सरकार अपने विरोधियों को, असहयोगियों को, तथा जाग्रत कोमों को खुले तौर पर दबाने की कोशिश कर रही है, और दिलोजान से कर रही है, तथापि इससे हमें यह जरा भी न समझना चाहिए कि उसने वह अपनी पुरानी नीति-"मुंह में राम बगल में छुरी" वाली नीति-बिलकुल ही छोड़ दी है । उसकी नीति तो अनेक-रूपा है । जहां जो काम दे दे वही सही । वह तो जानती है कि "जो गुड दीन्हे ते मरे माहुर काहे देय ?" इसीलिए पहले छल-कपट, भेद, लालच, आदि का प्रयोग कर देखने पर फिर अन्त को भय का शस्त्र उठाती है । जब वह भी बेकाम हो जाता है तब उदारता का ढोंग रचती है । बात यह है कि पंजाब खूब जाग उठा है । वह उसे अच्छी तरह पहचान गया है । और सरकार भी इस बात को खूब जानती है । पर 'दुनिया के सबसे अधिक निश्चयी कोम' बिना कुछ किये क्यों निराश होने लगे ? पहले पहल उसने अपनी मीठी नीति का प्रयोग कर देखा; पर जब कुछ दाल न गली तब दमन का आश्रय लेना पड़ा । पर अब यह देख कर कि वह वीर प्रान्त तो जरा भी पीछे हटता नहीं दिखाई देता, वह चक्कर में पड गई है । अब वह उदारता का नाट्य कर रही है । अपने छः मई के एक प्रस्ताव में वह महासभा के सदस्यों को फुसलाने के लिए कहती है कि आप तो शांत रहिए । दमन तो सिर्फ अकाली-सिक्खों का ही किया जा रहा है । आगे चलकर वह सिक्खों को यह नेक सलाह देती है, कि आप यह बहुत बुरा कर रहे हैं जो इन आन्दोलन करने वालों का साथ करते हैं, जो सिक्ख नहीं हैं । वह कहती है कि आप ऐसा कर के केवल सिक्ख-जाति को ही आपत्ति में नहीं डालेंगे, वरन् सारे प्रान्तभर को आफत में फंसा-देंगे और उसकी शांतियुक्त प्रगति की राह में एक बड़ा विघ्न खड़ा कर देंगे ।

फिर सरकार सिक्ख-जाति पर अपने किये उपकार गिना कर कहती है-देखो हमने खालसा कॉलेज से अपनी सत्ता जानबूझ कर उठा ली, सुवर्ण-मंदिर की ताकियां दे दी, सिक्ख-जाति को कृपाणों के विषय में कैसे कैसे सुभीते कर दिये हैं, आदि ।

इन सब उपकारों से सिक्ख लोग भली भांति परिचित हैं । वे जानते हैं कि खालसा कालेज से अधिकार निकालने के लिए उसे कितनी सिरपच्ची करनी पड़ी थी । एक मास तक कालेज बंद रहा था । तमाम प्रोफेसर लोगों ने एकदम अपने इस्तीफे पेश कर दिये थे । तब कहीं उसे उस कालेज से अपना हाथ निकाल लेना पड़ा । तबभी बेचारे प्रोफेसर लोगों को तो सरकार का रोषपात्र बनना ही पड़ा ।

सुवर्ण-मंदिर की कुंजी लेने के लिए भी सिक्खों को कितनी आपदाओं का सामना करना पड़ा है उसे वे भूले नहीं हैं । उस मामले में पकड़े गये कई सिक्ख तो सरकार की इस अनोखी कृपा का फल अभीतक जेलों में चख रहे हैं ।

कृपाण के विषय में सरकार ने जो अनुग्रह सिक्ख-जाति पर किया है और कर रही है वह 'हिन्दी नवजीवन' के पाठकों से छिपा नहीं है । वे उसे किसी पिछले अंक के 'कृपाण-काण्ड' में पढ़ ही चुके हैं । सरकार को अच्छी तरह याद रखना चाहिए कि केवल पंजाब ही नहीं सारा भारत इस बात को अच्छी तरह समझ गया है कि सांप चाहे कितना ही टेढा-तिरछा चलता रहे; पर बिल के मुंह तो उसे सीधा होना ही पड़ता है ।

गुजरात प्रान्तीय परिषद् के प्रस्ताव

छठी गुजरात प्रान्तीय परिषद्, आणंद, में जो प्रस्ताव पास हुए उनका सार नीचे दिया जाता है.

१—सत्य, अहिंसा त्याग और कष्ट-सहन ही देश की उन्नति का सच्चा मार्ग है । अतएव सर्व स्त्री पुरुष इन अमूल्य सिद्धान्तों का तन, मन और वचन से पालन करें ।

२—देश के सर्वश्रेष्ठ तथा अनेक छोटे-बड़े नेताओं की गिरफ्तारी पर देश ने जो शांति रक्खी, इसलिए उसे धन्यवाद । शांतिमय असहयोग ही हमारे त्रिविध ध्येय की सिद्धि का सर्वोत्तम साधन है ।

३—बारडोली-देहली निर्णय पर इस सभा का पूरा विश्वास है । रचनात्मक कार्यक्रम जबतक पूरा न हो तबतक गुजरात सविनय-भंग करने के अपने हक का उपयोग न करे ।

४—कौन्सिलों के बहिष्कार पर इस सभा का पूरा विश्वास है । उसीमें प्रजा का हित है ।

५—गुजरात में अभी खादी-प्रचार अच्छी तरह नहीं हो पाया । इसलिए गुजरात के नरनारी उसके लिए जी-जान से कोशिश करें तथा गुजराती की बनी खादी ही पहनें ।

६—छूआछूत को मिटाने के लिए सब समितियां तथा राष्ट्रीय संस्थायें कोशिश करें ।

७—अहमदाबाद तथा सूरत की जनता से यह सभा सिफारिश करती है कि वह परिस्थिति पर गौर से विचार करके सरकारी म्यु. कमिटियों को कर न देने का निर्णय शीघ्र ही करे ।

८—सरकारी तथा सरकारी सहायता से चलने वाली पाठशालाओं पर पहरा रखना अभी आवश्यक नहीं है । पर लोगों के द्वारा खुशी से उनका बहिष्कार करा के नई राष्ट्रीय संस्थायें जरूर खोली जायं । साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार के लिए महासभा के सदस्यों को घर घर घूम कर जनता को राष्ट्रीय शिक्षा का महत्त्व समझाना चाहिए । राष्ट्रीय पाठशालाओं में कातना बुनना आदि बातें जरूर पढाई जायं ।

गोरों का भ्रम

क्या विलायत के गोरे अखबार और क्या यहां के गोरे कर्मचारी भारत की वर्तमान शान्ति का गलत अर्थ लगा रहे हैं । गोरे अखबारों ने इंग्लैंड में यह पुकार मचाना शुरू किया है कि गांधीजी के कैद कर लेने से भारत में असहयोग आन्दोलन आखिरी सांस खींच रहा है । कोई कहता है बस, गांधीराज तो रसातल को चला गया । कोई लिखता है-सुधारों की सफलता स्पष्ट दिखाई देने लगी है । हमारे श्रीनिवास शास्त्री महोदय भी जाते जाते राय देते हैं कि वर्तमान शान्ति का अर्थ यही है कि लोगों ने समझ लिया कि असहयोग से कुछ होता जाता नहीं । दो एक नरम पत्र भी ऐसी ही राय रखते हैं । ऐसी दशा में यहां के गोरे पत्र और गोरे अधिकारी भी ऐसे ही खयाली पुलाव पकाते हों तो क्या आश्चर्य है ? पर यह उनका सरासर भ्रम है । असहयोग-गंगा की कानून-भंग रूपी तेज धारा बारडोली के रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा रोक दी गई है—इस उद्देश से कि काफी शक्ति संचय हो

अत्याचार का उत्तर

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)।
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

हिन्दी नवजीवन

सम्पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १ | अहमदाबाद, आषाढ बदि २, संवत् १९७९, रविवार, सायंकाल, ११ जून, १९२२ ई० | अंक ४१

सूरतमें पूज्य कस्तूर-बा

स्वाधीनता के समरों में बहुत समानता देखी जाती है। मिसर के नेता जगलूल पाशा को देश-निकाला किया गया; पर उनकी बहादुर पत्नी ने उनका काम बराबर जारी रक्खा। भारत में भी यही हो रहा है। अली-भाइयों की बूढ़ी माता ने अपने वीर पुत्रों का काम बंद न होने दिया। इसी प्रकार महात्माजी की गिरफ्तारी के बाद पूज्य कस्तूर बा भी महात्माजी का कार्य उसी प्रकार आगे बढ़ाने के लिए अविराम परिश्रम कर रही हैं। हतोत्साह नौजवानों को भी वे अपने असाधारण परिश्रम से उत्साह प्रदान कर रही हैं।

आणंद की प्रान्तीय परिषद् समाप्त होते ही सूरत के कार्यकर्ताओं का निमंत्रण स्वीकार कर आप वहां गईं और वहां के कार्यकर्ताओं के उत्साह को बढ़ाया।

आपने सूरत की जनता को तापी नदी के पुण्य पुलिन पर जो सदुपदेश दिया उसका सार इस प्रकार है—

भाइयो और बहनो,

करीब डेढ़ मास पहले मैं यहां आई थी। तब मैंने आपसे खादी के विषय में बहुत कुछ कहा था। उसे आप भूले न होंगे और आपने अपने पैर भी कुछ आगे बढ़ाये होंगे। आपको ऐसा ही करना भी चाहिए था। अब वह समय सभायें करने और व्याख्यान देने का न रहा। बार बार सभायें क्या करना? अब तो सच्चा काम कर के ही दिखाना चाहिए।

भारत कितना दुखी है, किस तरह दबा हुआ है, यह आप जानते ही हैं। पंजाब तथा खिलाफत के मामलों से भी आप अपरिचित नहीं हैं। जो भाई जेल में गये हैं उनमें से कितने ही वहां बीमार रहते हैं, यह भी आप को कहने की जरूरत नहीं। जब ही आप को जिस मंत्र की दीक्षा दी जा चुकी है उसी का अनुष्ठान आप कीजिए। हमें न तो बंदूकों की और न बारूद ही की जरूरत है। हमें तो सिर्फ चरखा चलाना, शुद्ध खादी बुनना, और उसीको पहनना है। बस हमें तो इसी प्रकार शुद्ध स्वदेशी को अंगीकार कर विलायती कपड़े को देशनिकाले का दंड देना चाहिए। इन सालियों के दौरान भर सूरत और अहमदाबाद में विदेशी कपड़ा बहुत आया। सालियों में कहीं कहीं खादी देखी तो गई, पर बहुत कम। जब कि हमारे हजारों भाई जेलों में कष्ट उठा रहे हैं तब क्या हमें ऐसा ही करना चाहिए? मुझसे तो यह बात आपकी कहीं तक नहीं जाती। अब तो किसी के कहने की भी जरूरत न होनी चाहिए। हमारे दिल में देशकी हालत पर कुछ दर्द हो तो दिखाई दिये बिना नहीं रह सकता, शरीर पर खादी ही खादी दिखाई देगी।

विदेशी कपड़ा बेचने वाले पैसे का रोना रोते हैं। पर मेरा यह कहना है कि भाइयो, अकाल के समय अथवा व्यापार में नुकसान के समय आप क्या करते हैं? बस, यही समझिए कि यह अकाल का ही समय है। विदेशी को छोड़िए और खुद खादीमय बन जाइए तथा देशको भी बनाइए। इसीसे स्वराज्य मिलेगा। मोती के जैसा कपास हमारे यहां पकता है, उसे आप विदेश भेजते हैं। क्या यह ठीक है? हरएक जिले को अपनी ही बनाई खादी पहननी चाहिए। यही मैंने काठियावाड़ तथा पोरबंदर में भी कहा। भाइयो, जहां सुदामा की झोपड़ी थी उसी जगह महल खड़े हो गये फिर निराशा के लिए स्थान ही कहां है? खादी को अपनाइए, जरूर स्वराज्य मिलेगा।

× × × ×

उसी दिन एक महिला-सभा भी हुई थी। सभाध्यक्ष का स्थान सूरत जिले के नेता, भाई दयालजी, की बूढ़ी माता को अर्पित किया गया था। करीब ३०० बहनें सभा में पधारी थीं। उनमें कोई पचास बहनें तो शुद्ध खादी के ही वस्त्र पहने थीं। एक दो बहनें विदेशी वस्त्र भी पहन कर आई थीं। वहां भी बा ने एक छोटासा पर मधुर भाषण किया। आपने कहा—

बहनो,

जब जापान और रूस के बीच में युद्ध चल रहा था तब तोपों को खींचने की मोटी रस्सियां सब खतम हो गईं। एक भी न बची। जानती हो, उस समय जापान की स्त्रियों ने देश की सहायता किस प्रकार की थी? उन्होंने अपने सिर के बाल—स्त्रियों का सौभाग्य चिन्ह भी रस्सियां बनाये जाने के लिए उतारकर दे दिये

थे। तो क्या हमने अपने देश के लिए चरखा भी न चलाया [illegible] क्या अपने हजारों भाइयों को छुड़ाने के लिए हमसे [illegible] भी न पहनी जायगी?

[illegible] के समय विलायत में जिस तरह बारूद-गोले बनाये जा रहे थे। क्या हमसे सूत रूपी बारूद गोले भी नहीं बनाये जा सकते?

बहनो, भाई जवाहरलाल तो उनकी माँ के इकलौते बेटे हैं। वे जेल से छूटकर आये तब उनकी माँ ने उन्हें कुछ आराम करने के लिए कहा। पर उन्हें आराम कैसे सूझ सकता है? उनके दिल में तो वही अपने बीस हजार जेल निवासी भाइयों के कष्टों से होने वाले दुःख की ज्वाला जल रही थी। उन्हें आराम और विश्रान्ति कैसे सूझे? वे तो गाँव गाँव घूमे। जनता को विदेशी कपड़े छोड़ने के लिए आग्रह किया। और फिर जेल गये। हमें भी ऐसी इच्छा करनी चाहिए कि हमारे पुत्र भी जवाहरलाल बनें।

सूरत में ऐसे कितने ही भाई-बहन हैं जिनकी महात्माजी में बहुत भक्ति है। उन्होंने उनके जेल जाने के कारण कितने ही यम-नियम, त्याग और व्रत करना आरंभ कर दिया है, पर इस त्याग और संयम के साथ साथ कर्तव्य-परायणता भी हो तो स्वराज्य का मार्ग कितना छोटा हो जाय?"

× × × ×

इसके बाद पूज्य बा नवसारी गईं। नवसारी देशीराज्य में है। पर वहाँ खादी प्रचार, महासभा के सदस्य बनाना तथा तिलक-स्वराज्य-कोष में धन देना आदि राष्ट्रीय काम-ठीक चल रहे हैं।

नवसारी में पारसियों की आबादी अधिक है। स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी यहीं के हैं। यहाँ के पारसी राष्ट्रीय काम में अच्छी सहायता देते हैं। वहाँ शामको जो सभा हुई उसमें पूज्यबा ने कहा:—

यह तो दादाभाई का गाँव है। वे जबतक जिंदा थे तबतक वे हाथपर हाथ रखकर कभी बैठे न रहे थे। भारत का धन ब्रिटेन लूट ले जाता है, यह बात उनके दिलमें हमेशा चुभा करती थी। और उसीके कारण स्वराज्य का जप करते करते उन्होंने अपना देह छोड़ा। इतना होते हुए भी पारसी-भाई अभीतक अपने कर्तव्य को पहचानने नहीं लगे, यह देख कर मुझे बुरा मालूम होता है।

पूज्य दादाभाई की पौत्री पेरिन बहन आजकल खादी ही पहनती हैं और बम्बई में देश-सेवा के कामों में लगी हुई हैं। वे रेशमी साड़ी नहीं पहनतीं। इसलिए वे नीचे घराने की नहीं मालूम होतीं। उसी प्रकार यहाँ के पारसी भाई-बहने खादी पहनें तो उनके भी बड़प्पन में धक्का नहीं लग सकता। पारसी बहनें तो दस्तकारी का अच्छा काम कर सकती हैं। फिर मैं यह कैसे मानूं कि आपको चरखा चलाने में सफलता न मिलेगी?

महायुद्ध के समय में आपने सरकार की कितनी सेवायें की हैं? बम्बई में बहन जायजी पेटिट के यहाँ सैनिकों के कपड़े सीनेका कितना बड़ा कारखाना चल रहा था? तब तो आपने कुछ भी करना उठा न रक्खा। फिर आज आपकी आँखें क्यों नहीं खुलतीं? अभीतक आपसे विलायती कपड़ों का मोह क्यों नहीं छूटता? अब चरखा चलाते समय आपको सुस्ती क्यों आ घेरती है? आप अपने कपड़े तो खुद ही सी लेती हो। फिर खुद ही कपड़े बुन भी लो तो कितना अच्छा हो?

अब भाइयों को और मैं क्या कहूं? गांधीजी तथा अली भाइयों ने आपको बहुत कुछ कह-सुन रक्खा है। पर उसका आपके दिल पर कितना असर पड़ा है? मुझे तो मालूम होता है कि शहरों में मानों कोई संक्रामक रोग शुरू हो गया है। कल मैं सूरत में थी। वहाँ मुसलमानों के झुंड खुले आम विलायती कपड़े पहन कर गाड़ियों और घोड़ों पर सवार हो कर ईद के दिन आनन्द मना रहे थे। देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैंने एक लम्बी साँस लेकर मन में कहा "इस तरह भारत को कब स्वराज्य मिलेगा?" भाइयो, अब तो केवल खादी की टोपी से काम न चलेगा। आपको तो मिलों की बनी धोतियाँ भी छोड़ना पड़ेगी। आप तो आज ही से सिर से पैर तक शुद्ध खादी पहनने का व्रत धारण करो।

अली-भाइयों की वृद्धा माता कहती हैं कि वह मैं नहीं चाहती कि स्वराज्य मिलने के पहले मेरे बेटे बाहर आवें। वे बूढ़ी हैं; पर तो भी स्वराज्य के लिए देश के कोने कोने में घूम रही हैं। सो आप तो अपने २० हजार भाइयों को छुड़ाने के लिए खादी का ही जप कीजिए और स्वराज्य मिलने तक दम तक न लीजिए।

परमात्मा आपको सद्बुद्धि दें और मोह से मुक्त करें।

टिप्पणियां

लखनऊ में महा-समिति

लखनऊ की महासभा-समिति की कार्रवाई के सम्बन्ध में अबतक जो समाचार दैनिक पत्रों में आये हैं वे प्रायः अधूरे और अनिश्चित हैं। महासमिति द्वारा अधिकारी रूप से अबतक सिर्फ दो प्रधान प्रस्तावों के पास होने की खबर आई है। वे नीचे दिये जाते हैं—

(१) महात्मा गांधी के कारावास पश्चात् महासमिति की यह पहली ही बैठक है। महात्माजी ने अपने शांति और सत्य के संदेश के द्वारा मनुष्यजाति की जो सेवा की है उसे वह मान्य करती है। भारतीय जनता के अधिकारों को अमल में लाने के लिए महात्माजी के द्वारा प्रवर्तित अहिंसात्मक असहयोग पर वह दुबारा अपना विश्वास प्रकट करती है।

(२) यह समिति स्वामी श्रद्धानन्द, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री इन्दुलाल याज्ञिक और दे० गंगाधरराव देशपांडे की एक समिति नियुक्त करती है। यह समिति अन्त्यज कहलाने वाले भाइयों के उद्धार के लिए एक अमली तजवीज तैयार करे और फिलहाल इसमें ५ लाख रुपया तक खर्च करने की गुंजायश रक्खी जाय।

श्रीमान् पं० मोतीलालजी नेहरू ने सविनय भंग के विषय में नीचे लिखा प्रस्ताव उपस्थित किया है। अभी उस पर विचार और विवाद हो रहा है—

"महासभा की ओर से तमाम आक्रामक हलचलों के बन्द कर देने पर भी देश के भिन्न भिन्न भागों में सरकार की ओर से बड़ा तेज दमन हो रहा है। इसलिए इस समिति की राय है कि

(१) देश को अपनी मांगें पूरी कराने के लिए सविनय-भंग का अवलम्बन करना पड़ेगा और तदनुसार वह प्रान्तीय समितियों से कहती है कि वे ३० सितम्बर १९२२ तक अपने रचनात्मक कार्य को पूरा करने के लिए जोरोशोर से प्रयत्न करें। उस समय पर समिति देश की स्थिति पर विचार करके इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय करेगी कि सविनय-भंग शुरू किया जाय या नहीं।

(२) दूसरे, सभापति महोदय से अनुरोध किया जाय कि वे कुछ सज्जनों को नामजद कर दें जो सारे देश में घूम कर देश की अवस्था को जाँचें और १५ सितम्बर १९२२ तक उसकी रिपोर्ट पेश करें।

गुजरात में फिर " हरिः ॐ "

महात्मा गांधी पर हाथ मारने के कोई २॥ महीने बाद बम्बई-सरकार की मेहर-नजर फिर गुजरात पर पड़ी है। आणंद-परिषद् में गुजरात के निश्चय को देख कर शायद उसका आसन हिल उठा है। गुजरात के कार्य-कर्ताओं ने प्रतिज्ञा की है कि आगामी दिवाली तक खादी-प्रचार का कार्यक्रम गुजरात में पूरा किया जाय। बम्बई-सरकार शायद इसे सहन न कर सकी। उसने सूरत के त्यागी नेता और बारडोली संग्राम के कप्तान श्री दयालजी भाई पर पहले हाथ साफ किया। सूरत के मजिस्ट्रेट ने उनसे पूछा कि क्यों तुम से नेक चलनी के लिए एक हजार का मुचलका और एक एक हजार की दो जमानतें न ली जायं? श्री दयालजी की 'बद चलनी' स्पष्ट ही है। जिस सरकार के यहां देश की सेवा और प्रजा की सम्मति 'बद चलनी' मानी जाती हो उससे असहयोग करना ही धर्म है। जमानत देना तो ठीक, उससे तो सहयोग तक करना राष्ट्रीय पाप है। योरप में भी इतना राष्ट्र-हनन करने वाले लोग शायद ही मिलें। श्री दयालजी ने अपनी सफाई नहीं की। फलतः उन्हें १ वर्ष कैद की सजा मिली। सम्राट् के इस 'वर्ष के आनर' के लिए हम उन्हें बधाई देते हैं।

इसके बाद ही महात्माजी के 'यंग इंडिया' अखबार पर चढाई हुई। 'यंग इंडिया' जिस नवजीवन मुद्रणालय में छपता है उसके सूत्रधार स्वामी आनन्दानंद, मुद्रक प्रोफेसर जयकृष्ण प्रभुदास भणसाली, गिरफ्तार किये गये। 'यंग इंडिया' के भूतपूर्व सम्पादक श्री शैब कुरेशी के नाम भी वारण्ट जारी हो चुका है तथा प्रकाशक प्रोफेसर वालजी भाई देसाई राजकोट से गिरफ्तार हो कर यहां लाये गये हैं। राजद्रोह के अपराध में ये गिरफ्तारियां हुई हैं। 'यंग इंडिया' में महात्मा गांधी तथा मौलाना हसरत मोहानी को सजा दीलाने पर जो दो लेख लिखे गये हैं—Weighed and found wanting और Exciting Disaffection—उनके सम्बन्ध में यह पकड़ा-धकड़ी हुई है। सुनते हैं, अगली १३ ता. को मामले की सुनवाई होगी। नतीजे का अनुमान तो पाठकों ने कर ही लिया होगा। सरकार कानून की ओट में भय-प्रयोग के द्वारा लोगों के हृदयों में राजभक्ति पैदा करना चाहती है। क्या वह नहीं जानती कि दमन और भक्ति का सम्बंध तो ३६ का सा है ?

बालासिनोर में अत्याचार

बालासिनोर में वहां के नवाब साहब द्वारा किये गये प्रजा पर जोरो-जुल्म की बडी बुरी खबरें आई हैं। सुनकर दिल दहल उठता है। बालासिनोर गुजरात मे एक छोटी सी देशी रियासत है। रेवाकांठा एजेन्सी में है। गोधरा के आसपास है। वहां एक नवाब साहब का राज है। जवान आदमी हैं। वहां 'बालासिनोर लोक-समाज' नामकी एक सार्वजनिक संस्था है। बालासिनोर की लोक-जागृति का श्रेय इसी संस्था को है। बालासिनोर में खादी का प्रचार हुआ और चरखे चलने लगे। यह नवाब साहब को सहन न हुआ। उन्होंने लोक-समाज के सात काम करने वालों से जमानतें और मुचलके तलब किये। उन्होंने देने से इनकार किया। वे जेल भेजे गये। अभी मामला दरपेश है।

इस पवित्र कार्य के लिए जरा सा भी घी न मिलने पर कैदियों ने लंघन शुरू कर दिया। गांव वालों ने २१ या २२ मई को हड़ताल डाल दी। ५ दिनों तक [illegible] रही। हिन्दू-मुसलमान सब एक हो गये। मरीजों के [illegible] एक दुकान खुली रही।

वहां के दीवान श्री नारायणदास की जेजा कार्रवाइयों से लोग पहले ही नाराज थे। अब लोगों ने यह जाहिर किया कि दीवान नारायणदास दीवानगीरी से अलहदा कर दिये जायं। बस १७ ता. के सुबह से जुल्म की बाढ आने लगी। गांव के चारों ओर शहरपनाह है। उसके फाटक बन्द कर दिये गये। दरवाजों पर तोपें लगा दी गईं। गांव फौज के अधीन कर दिया गया। पानी का मुख्य कुंआ और तालाब गांव के बाहर हैं। वहां जाना बन्द कर दिया गया और उस पर भंगी बैठा दिये गये। लोगों का नहाना-धोना, पानी लाना, टट्टी जाना सब बन्द हो गया। सारा गांव कोट के अन्दर कैद हो गया।

नवाब साहब फौज की टुकडी के साथ गांव में निकले। एक दुकान से बेंत का बंडल उठा लिया। फिर क्या था? सिपाहियों ने जिसको देखा उसीको पीटना शुरू किया। लोगों से जबरदस्ती दुकानें खुलाई गईं। कोई २००-२५० आदमियों को सख्त और ५००-७०० को मामूली मार पडी होगी। खादी के कपडे छीन कर जला दिये गये। न हिन्दू छूट पाये न मुसलमान। खेडा जिले के एक नामी कार्यकर्ता श्री मोहनलाल पंड्या वहां शान्ति का संदेश लेकर पहुंचे। आप बालासिनोर प्रजा परिषद् के एक पिछले अधिवेशन के सभापति हो चुके हैं। पर वहां आपकी भी दुर्गति की गई; सब कागज-पत्र छीन लिये गये और निकाल दिये गये।

यदि बालासिनोर के नवाब साहब अपने मजहब के पाबन्द हों तो उनसे ऐसा-जोरो-जुल्म नहीं हो सकता जैसा कि अखबारों में आया हुआ है। जो राजा प्रजाभक्षक होता है वही बिना विचारे रिआया को इस बेदर्दी से पिटवा सकता है। फिर पर भी प्रजा ने पूर्ण शान्ति रक्खी। देश में इस समय हिन्दू-मुसलमान दोनों मिल कर शान्ति-युद्ध चला रहे हैं। रात दिन शान्ति का उपदेश दिया जाता है ऐसे समय में एक देशी राजा, देशी दीवान, देशी फौज और देशी पुलिस को अपने ही भाइयों पर इस प्रकार पशुबल का प्रयोग करने की बुद्धि कहां हो सकती है? पर सदियों से जो लोग गुलामी का स्वाद चख रहे हैं उनसे कौनसी बात असम्भव है?

प्रत्येक राजा को इस बात में अपना पुरुषार्थ मानना चाहिए कि अपनी उद्यमी और मानी प्रजा का आदर और विश्वास प्राप्त कर के उसपर राज्य करे। प्रजा तो ऐसा विश्वास कर निःशंक और निःशस्त्र रहती है कि राजा उसकी रक्षा हर तरह से करेगा। अतएव ऐसी प्रजा पर पशुबल का प्रहार करने में कौन सी बहादुरी है? यह तो एक नामर्द भी कर सकता है? पशुबल से एक क्षण के लिए चाहे भले ही मनुष्य दब जाय पर अन्त को वह भी उसका आदी हो जाता है।

बालासिनोर की प्रजा से हमारी यह सिफारिश है। कि वह नवाब साहब को सच्चे दिल से माफ कर दे। जिस प्रकार देशी प्रजा अंगरेजी प्रजा के आन्दोलन से अलहदा नहीं रह सकती उसी प्रकार देशी सरकार अंग्रेजी सरकार के असर से जुदा नहीं रह सकती। और देशी सरकार तो दबी हुई सरकार है, कमजोर है। अपनी कमजोरी को वह जानती है। पशुबल का तो यह नियम ही है कि जितनी ताकत कम, उतना ही गुस्सा अधिक होता है।

चरखे को न भूलिए

स्वदेशी का प्रस्ताव यों तो कलकत्ते में महासभा की विशेष बैठक में ही पास किया गया था; पर उसके अनुसार अच्छी तरह कार्य शुरू होने को अभी सिर्फ १ ही साल हो पाया है। तथापि इस समय हम अगर अपनी प्रगति पर थोड़ी देर ठहर कर विचार कर लें तो आगे पैर बढ़ाने में हमें बड़ी सहायता होगी।

कपड़े की आयात की छान बीन करने पर हमें दिखाई देता है कि कुल कपड़े की आयात का .७० हिस्सा इंग्लैंड से आता है। इससे दूसरा नंबर है जापान का। वह कुल आयात का .२० हिस्सा भेजता है। पर औसत लगाने से भारत सैकड़ा ९० रुपये का कपड़ा विलायत से ही खरीदता है। सैकड़ा पांच रुपये का जापान से और शेष अमेरिका, स्विट्जरलैंड इटाली, हॉलंड, आदि देशों से खरीदता है। पर आजकल जापान ही भारत के बाजारों में पैर जमाता हुआ दिखाई देता है।

सन १९१४-१५ से १९२० तक सूत की आयात घटती ही गई। पर गत दो वर्षों से तो वह इतनी बढ़ गई है कि जितनी पहले कभी देखी नहीं गई थी। यह नीचे दी गई तालिका से पाठकों को स्पष्ट दिखाई देगा

साल	सूत लाख रतलों में
१९१४-१५	४२०.८६
१९१५-१६	४००.४२
१९१६-१७	२९०.५९
१९१७-१८	१९०.४०
१९१८-१९	३८०.०५
१९१९-२०	१५०.०९
१९२०-२१	४७०.३३
१९२१-२२	३७०.१२

पाठक जान गये होंगे यह १९१९-२० में सूतकी आयात सब से कम हो गई थी। पर अगले ही साल वह एकदम तिगुनी बढ़ गई और दूसरे साल में तो करीब चौगुनी तक आ पहुंची। इसका कारण देश के लिये हुए स्वदेशी-व्रत के सिवा और कुछ नहीं। देश में एकदम जिधर देखिए उधर कपड़ा बुनना शुरू हो गया। देशी मिलें और खासकर करघे बड़े वेग से कपड़ा बुनने लग गये। इसका स्वाभाविक फल इसके सिवा क्या हो सकता है कि सूत की आयात बढ़ते ही कपड़े की आयात घट जाय, ठीक हुआ भी यही।

सन १९१४ और, १५ में २४४५०.६६ लाख गज कपड़ा आया था पर अब घटते घटते वह १०८९०.७८ लाख गज तक आ पहुंचा है।

पर इससे हमें यह न समझना चाहिए कि हम काफी विजय पा रहे हैं। इसके दो कारण हैं।

एक तो यह कि इसके बदले सूत की आयात बेहद बढ़ गई और दूसरे यह कि हमारी धनराशि तो अभी तक उसी प्रकार परदेश बही जा रही है। इसका कारण यह है कि सूत तथा कपड़े की कीमत पहले से अब करीब पांच गुनी बढ़ गई है। यह आपको इस तालिका से स्पष्ट दिखाई देगा।

	रतल सूत की कीमत	गज कपड़े की कीमत
	६० पेंस थी	१ पौंड थी
१९१५-१६	१०	८६
१९१६-१७	१५	६४
१९१७-१८	७	४७
१९१८-१९	६.५	३५
१९१९-२०	४	२१
१९२०-२१	३.५	१८
१९२१-२२	५	२६

इसका तो अर्थ यह हुआ कि पहले तो हम ३२.६ करोड़ रुपये सूत और कपड़े के लिए विदेशों में भेजते थे, उसके स्थान पर अब ६०.३ करोड़ रुपये भेज रहे हैं। हां, यह जरूर है कि गये साल की अपेक्षा इस साल हमने कुछ प्रगति जरूर की है। क्योंकि १९२०-२१ में तो भारत १०३.८ करोड़ रुपये अपना शरीर ढांकने के लिए विदेशों में भेजता था। उससे तो यह आधा हो गया। पर उधर सूत की आयात तिगुनी-चौगुनी बढ़ गई है। आज भी भारत कपड़े के विषय में करीब करीब उतना ही पराधीन है। पर निराश होने की कोई बात नहीं है। चरखे ने तब भी कुछ पराक्रम कर ही दिखाया है। क्योंकि उधर विदेशी सूत और कपड़े की कीमत भी गिर गई है। साथ ही आने की तादाद भी आधी हो गई है। ये दोनों बातें चरखे के हक में कुछ कम महत्व की नहीं हैं। पर हमें तब भी गाफिल न रहना चाहिए। क्योंकि विदेशी का तो महंगा बना रहना ही हमारे लिए लाभदायक था। उसका सस्ता होना हमारे लिए एक भारी संकट है। उसके सस्ते होते ही हमारे शुद्ध स्वदेशी कपड़े को बहुत हानि पहुंचेगी। किसी भी चीज को सस्ता करके बाजारों पर अधिकार करना तथा उस देश की तिजारत को नष्ट कर देना तो इन पश्चिमी बनियों की व्यापार-नीति ही है। इसलिए हमें सावधान हो जाना चाहिए। पहले भी इस नीति के हम शिकार हो चुके हैं जिसका नतीजा अभीतक भोग रहे हैं—अपनी स्वाधीनता, गौरव को खो कर इतना बड़ा विशाल देश गुलामी में दिन काट रहा है। उसके करोड़ों पुत्र भूखों मर रहे हैं, नंगे घूम रहे हैं। हमारी कितनी ही मां बहनों को इसके कारण अपनी लज्जा को अलग रखकर पापी पेट के लिए उन राक्षसी मिलों में, सड़कों पर, मिट्टी खोदने, तथा दूसरी कितनी ही जगह मजदूरी के लिए मारी मारी घूमना पड़ता है। और वहां उनपर और कितनी कितनी आफतें आती हैं परमात्मा ही जानें! अस्तु; इन सब बुराइयों की एक मात्र दवा भारत के लिए चरखा ही है। हमें अभी यह तो विचार ही छोड़ देना चाहिए कि खादी महीन हो। हमारा प्रधान उद्देश तो यही होना चाहिए कि परदेश से सूत का एक तार भी भारत में न आने पावे। और यह तभी बंद हो सकेगा जब भारत में चरखा सर्वव्यापी हो जायगा। जब चरखे के सूत के आगे वह सस्ताई में टिक न सकेगा। और वह भी एक दो साल के लिए नहीं क्योंकि इतने से इन विदेशी बनियों की अकल ठिकाने नहीं आवेगी। इतने दिन तो वे नुकसान उठा कर भी—अपनी नाक काट कर भी—हमें अपशकुन करेंगे हमें तो अब चरखे को ही चिरस्थायी बना देना चाहिए जिससे आगे भी कभी उनकी दाल यहां न गलने पावे। और यह बात भारत के लिए असम्भव नहीं है, बल्कि बिलकुल स्वाभाविक है। महीन कपड़ा पहनने वाले भी घबड़ावें नहीं। एक ही दो साल में यही चरखा और करघा आपको इतना सुंदर और महीन कपड़ा दे सकेगा कि आप मुग्ध हो जायेंगे। पर आपको अभी ठहरना होगा। यह युद्ध का असाधारण समय है। अभी पहला ध्येय तो है विजय प्राप्ति उसके बाद सब कुछ। इसलिए सावधान हो जाइए। चरखा खूब चलाइए। इसी में विजय है।

न भूलिए

तारीख १८; गांधी दिवस

त्याग और प्रार्थना का दिन

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, अषाड वदि २, सं. १९७९

अत्याचार का उत्तर

देश में सविनय-भंग के लिए पुकार बढ़ती ही जा रही है। जनता को यह अब अनिवार्य सा मालूम होता जा रहा है। पाठकों के हाथ में इस अंक के पहुंचने के पहले लखनऊ में महासमिति इस प्रश्न पर विचार कर चुकेगी। सरकार इस आन्दोलन के साथ जिस प्रकार सलूक कर रही है वह अब असह्य होता जा रहा है यहां तो नागरिकों के बिलकुल प्रारंभिक और जन्मसिद्ध अधिकारों में भी बाधा डाली जा रही है। देश में चारों ओर ऐसे चिन्ह दिखाई दे रहे हैं कि इन अत्याचारों के कारण कैद को आलिंगन करने के भयों को संयम करने के लिए देहली में डाले गये बंधनों तथा महात्माजी के उपदेश के प्रति जनता की श्रद्धापर बड़ा आघात होता जा रहा है। सहनशीलता की भी एक सीमा होती है। राष्ट्रीय जागृति के युग में जनता के जन्म-सिद्ध अधिकारों में सरकार का हस्तक्षेप कहांतक सहन किया जाय, इसकी भी एक हद होती है। उस सीमा के बाहर जब वह हस्तक्षेप हो जाता है तब तो वह असहनीय हो जाता है। तब तो किसी विधायक कार्यक्रम के न होते हुए भी केवल अत्याचार का जोर ही जनता को जेलों का आलिंगन करने के लिए विवश कर देता है।

रोम के इतिहास में एक बार पेट्रिशियन लोगों के अत्याचारों से लाचार हो कर प्लेबियन लोगों ने रोम शहर को छोड़कर एक टेकरी का आसरा लिया था। यह एक संगठित रूप से असहयोग करने का पुराना उदाहरण इतिहास में है। पर शांति तथा युद्ध के समय भी प्लेबियनों की सेवा तथा सहयोग पेट्रिशियनों को बहुत उपयोगी एवं आवश्यक था। इसलिए उस समय यह पाया गया कि संगठित रूपसे असहयोग एक शांतिमय क्रान्ति पैदा करने के लिए रोम पर तात्कालिक उपाय है। उस समय रोम एक छोटासा राज्य था। ऐसे समय शांतिमय असहयोग तो यही एक रूप धारण कर सकता था कि उसकी प्रजा का एक भाग अत्याचारियों को छोड़ कर इस निश्चय से उनसे अलग जाकर रहे कि जबतक तुम हमारी शिकायतों को रफा न करोगे तबतक हम तुमसे अलग रहेंगे इस्लाम धर्म में जो हिजरत को आज्ञा है उसका भी मूल-भूत सिद्धान्त यही है। अगर किसी मुल्क में मुसलमानों को अपने धर्म की आज्ञाओं के अनुसार चलने की स्वतंत्रता न हो तो वे उस स्थान या राज्य को छोड़ दें और जहां उन्हें ऐसी स्वतंत्रता हो चले जायं। उद्योग और सच्चे नागरिक तो हरएक राज्य की शक्ति होते हैं। इसलिए उनका अत्याचार क्षेत्र से हट जाना ही उन्हें अधिक स्वतंत्र कर सकता है।

हमारे समाज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए दूसरे देशों को चला जाना इस अन्याय और अत्याचार के उत्तर का अब असाध्य उपाय है। दुनिया की मौजूदा हालत में देशान्तर-गमन के लिए उचित स्थान मिलना भी असम्भव है। और बड़े बड़े गोल और झुण्डों को एक देश से दूसरे देश को जाने में जो दिक्कतें और तकलीफें हैं उनका भी सामना नहीं किया जा सकता। हां, यह सच है कि अनिवार्य हो जाने पर आज भी ऐसा देशान्तर-गमन होता है; जैसा कि पूर्वी योरप और एशिया मायनर की घटनाओं से प्रकट होता है; परन्तु भारत के लोगों के लिए तो यह रास्ता बिलकुल रुका हुआ है। पर हां, एक उपाय है और उसकी ओर सरकार यहां की जनता को खुद हो कर खींच रही है। यह है जेलों को भर देना। पर लोग अक्सर इसका गलत अर्थ लगा लेते हैं वे इसे अधिकारियों को परेशान करने की एक चाल समझते हैं। पर असल में देखा जाय तो इसका मूल आधार भी यही असहयोग का तत्व है। यद्यपि आधुनिक समय में देशान्तरवास के लिए किसी दूसरे उचित स्थान का पाना मुश्किल है तथापि इसी विरोधी सरकार के राज्य में भी ऐसे स्थान हैं जहां वे लोग जाकर रह सकते हैं जो यह समझते हैं कि हम राज्य या समाज के अंग बनकर इज्जत के साथ नहीं रह सकते; और ऐसे स्थान खुद कानून ने ही अलग निर्माण कर रक्खे हैं। ऐसी जगहें कौन सी हैं? जेलखाने। वहां जाकर लोग अपनेको अन्याय के सामने आत्म-समर्पण करने से मुक्त कर सकते हैं और अत्याचारी राज्य या समाज से अपनी सेवायें हटा ले सकते हैं। इस तरह एक बड़ी तादाद में अपने मोअज्जिज लोगों के उससे अलहदा हो जाने पर और जेल में चले जाने पर कोई भी सभ्य राज्य अधिक दिनों तक अपना काम नहीं चला सकता। जेल में जो काम जबरदस्ती कराया जाता है वह उन आजाद और मोअज्जिज लोगों के सहयोग का काम नहीं दे सकता और लोगों का सहयोग ही तो राज्य का जीवन है।

व्यक्तिगत सविनय भंग बड़ी उच्च कोटि का धर्माचरण है। इसके लिए प्रेरित करने वाला हेतु जितना ही शुद्ध और उत्कट होगा उतना ही उसका फल अधिक होगा। यदि शुद्ध से शुद्ध रूप में उसका प्रयोग किया जाय तो उसका आध्यात्मिक महत्व इतना प्रचंड है कि वह कठोर से कठोर राज्य या सभ्यता की अनीति और अधर्म का नाश कर सकता है। सविनय कानून-भंग तो एक धर्म-कार्य है। यह केवल बहादुरी दिखाने के लिए अथवा कोरे पक्षाभिमान के आवेश में कर बैठने का काम नहीं है। उस अवस्था में तो वह बिलकुल व्यर्थ होगा। जिस मनुष्य का अंतरात्मा यह कहता है कि 'मैं जो चाहता हूं वह है अपने देश के लिए स्वराज्य, लेकिन बिना स्वराज्य के बाहर रहने या जेल में रहने इन दो बातों में से मुझे तो यह दूसरी बात अपने जीवन के सुख के लिए बेहतर मालूम होती है'—वह व्यक्तिगत कानून भंग के लिए सर्वथा योग्य है और यदि इस भावना से हमारे अच्छे से अच्छे भाई बहन जेलों में प्रवेश करें तो उनकी बेड़ियां सच्चे स्वराज्य के विजय चिह्न हो जायं।

(यंग इंडिया) सी. राजगोपालाचारी

जेल-निवासिओं का पुनरागमन

युक्तप्रान्त के स्वागतार्ह पं. मोतीलालजी नेहरू, भारत सेवक महामना स्टोक्स देशबंधु दास के पुत्र श्री चिरंजन दास, और महात्मा गांधी के पुत्र श्री हरिलाल गांधी जेल से अपनी अपनी कारावास की अवधि पूरी करके फिर अपने २ कार्यक्षेत्र में आ उपस्थित हो गये। हम हृदय से उनका स्वागत करते हैं।

संसार का तारनहार

शिकागो से निकलने वाले "युनिटी" पत्र के प्रसिद्ध संपादक पादरी जॉन हे॰ होम्स ने महात्माजी के गिरफ्तारी के हाल अमेरिका पहुंचने पर, गत १२ मार्च को, शिकागो के प्रार्थना-मंदिर में श्री गांधीजी के माहात्म्य पर एक सुंदर प्रवचन किया था। उसका सार नीचे दिया जाता है—

"पहली बार जब मैंने आपसे एक बार महात्मा गांधी के विषय में कहा था तब संसार में वे इतने विख्यात नहीं हुए थे। पर आजकल तो संसार के तमाम अखबारों के सब से पहले पृष्ठ पर उनका नाम बड़े अक्षरों में पाठकों की दृष्टि को अपनी ओर खींच लेता है। "न्यूयार्क वर्ल्ड" नामक प्रसिद्ध पत्र ने अपना होशियार संवाददाता भारत में इस महात्मा के तथा इसके कार्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजा था। अब वह लौट आया है। और वह हमें भारत के उस अनुपम महात्मा के अद्भुत कार्यों को सुना सुना कर चकित कर रहा है। महात्मा गांधी एक साधारण आदमी थे। इस स्थिति से आज वे संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष कहलाने लग गये हैं। उनकी कीर्ति अमर हो गई है। महात्मा गांधी जनता के नेता और सच्चे प्रतिनिधि हैं।

पंजाब के निर्घृण हत्याकांड के बाद उन्होंने सरकार का साथ छोड़ दिया। तब से वे स्वतंत्रता के सच्चे पुजारी बन गये। आज वे भारत के सर्वमान्य नेता हैं। गत 'महासभा' ने आपका स्वराज्य का कार्यक्रम स्वीकार करके अपना नेतृत्व उन्हें सौंप दिया। आज भारत के भाग्य-विधाता गांधी हैं। गांधी की आवाज भारत की आवाज है। और गांधी की गिरफ्तारी मानों देश की देशआकांक्षाओं का महान् अपमान और अवहेलना है।

सरकार ने दमन-नीति का अवलंबन करके सबसे भारी भूल की है। बल की विजय संसार में कभी हो ही नहीं सकती। यही भारत में भी हुआ। आन्दोलन बढ़ता ही गया।

फिर सरकार को युवराज को बुलाने की सूझी। देश ने युवराज का बहिष्कार किया। संसार को यह विदित हो गया कि भारत ब्रिटिश शासन को बिलकुल नहीं चाहता। बहिष्कार तो उसको इस अमल की प्रदर्शिनी ही थी। साथ ही उसने इस महान् आन्दोलन के नायक को संसार की दृष्टि में ला दिया।

मेरा तो कथन है कि इस पूर्वी महात्मा के ज्ञान से जो धर्म दीक्षा दी जा सकती है वह और किसी से नहीं दी जा सकती। जो उनकी पवित्रता और भक्ति से परिचित हैं उनके लिए तो महात्मा गांधी का नाम तारक-मन्त्र है। पर उनको केवल एक देश के नेता की दृष्टि से देखना बहुत भारी भूल है। भारत का नेतृत्व तो उनके जीवन की केवल एक ही घटना है। कितने ही लोग दूसरे देशों के महान् महान् नेताओं के साथ उनकी तुलना करते हैं। पर यह भी उनकी भूल है। महात्मा गांधी में एक यह विशेषता है कि वे अहिंसा के बल पर स्वराज्य लेने जा रहे हैं। यह बात दूसरे किसी देश के नेता में नहीं पाई जाती। और यह हमें याद रखना चाहिए कि जब आदमी अहिंसा के द्वारा ऐसे महान् कार्य की सिद्धि का प्रयत्न करता है तब उसका माहात्म्य विश्व व्यापी हो जाता है। वह केवल राजनैतिक स्वाधीनता ही नहीं प्राप्त करता, बल्कि तमाम मनुष्य-जाति का आध्यात्मिक उद्धारकर्ता होता है। इसीलिए महात्मा गांधी की तुलना साधारण नेताओं से करना भूल है। वे तो कन्फ्यूशियस, लाओत्से, बुद्ध, जरथोस्त, महम्मद पैगंबर और यथार्थ में तो हजरत ईसा-मसीह की श्रेणि के हैं। एशिया महात्माओं की, धर्माचार्यों की भूमि है। हर युग में समय समय पर ऐसे महात्माओं ने उसे अपने जन्म से पुनीत किया है। इसी तरह आज महात्मा गांधी भी उसे पुनीत कर रहे हैं। महात्मा ईसा-मसीह के प्रति मेरे हृदय में अत्यंत उच्च स्थान है। पर आज मैं इस महात्मा को उन्हीं के साथ अपने हृदय के सर्वोत्तम स्थान पर बैठाता हूं। इन दो महात्माओं के जीवन में आश्चर्य-जनक साम्य है।

इसीलिए भारतीय जनता की इतनी भक्ति उनपर है। वे इस महान् देश के केवल राजनैतिक ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक नेता हैं। इसीलिए ईसा-मसीह की तरह ये भी जहां जहां जाते हैं हजारों, लाखों लोग इनके पीछे पीछे दर्शन के लिए, इनके वाक्सुधा को पीने के लिए, जाते हैं। जनता-विशाल जनता की उन पर आज जितनी भक्ति है उतनी भूतकाल में किसी भी महात्मा पर उसके जीवन-काल में नहीं हुई थी।

इस महात्मा में ऐसी क्या बात है जिसके लिए भारत की तमाम जनता की उनपर इतनी असीम श्रद्धा है? उनका डील डौल भी कोई चित्ताकर्षक नहीं है। बुद्धि में भी वे टाल्स्टाय जैसे असाधारण पुरुष नहीं हैं। वे कोई बड़े भारी वक्ता भी नहीं हैं। पर फिर भी उनके भाषणों का असर वहां की जनता पर जादू का सा काम करता है। तो वह कौनसी विशेषता है जिससे वहां इस तरह उनकी पूजा होती है? वह है उनका अलौकिक शुद्ध चारित्र्य। उनका जन्म एक ऐसे उच्च कुल में हुआ जहां उन्हें हर तरह के ऐशो-आराम मिल सकते थे। शिक्षा भी खासी उच्च ही दी गयी थी। आप विलायत से बॅरिस्टरी का इम्तिहान पास करके आये। पर इसके बाद उन्होंने वह काम किया जो बहुत थोड़े आदमियों ने किया होगा और कर सकेंगे। क्या वे साधारण जन-समूह का त्याग करके बड़ा नाम कमाने के लिए धनोपार्जन तथा कीर्ति की सीढ़ी पर चढ़ने लगे? नहीं, वह तो साधारण आदमी की महत्त्वाकांक्षा है। मोहनदास ने क्या किया? उस दिशा में ऊपर चढ़ने के बजाय वह नीचे ही नीचे उतरने लगा। अपने ऐशो-आराम को छोड़ कर जन-साधारण में मिल कर उनकी तकलीफें-मुसीबतें और आपदायें उठाने में आनंद मनाने लगा। उन्होंने निश्चय कर लिया कि संसार में एक भी ऐसी मुसीबत बाकी न रहने पावे जिसका मैं स्वयं अनुभव न कर लूं, एक भी अत्याचार न बचने पावे जिसे मैं न सह लूं। अछूत जातियों से भी वे दूर रहना बरदाश्त नहीं कर सके। उन्हें भाई बना कर उनसे मिलने जुलने में वे बड़े हर्षित होते। सारांश यह कि मनुष्य जीवन के भीषण से भीषण अनुभवों को उन्होंने खुद अनुभव किया और उनके सुधार का बोझा उठाया। किसी बात को दूसरों को कहने के पहले वे उसे खुद कर दिखाते और जनता, सरकार, समाज, जाति के रोष को धीरतापूर्वक सहन करते। दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह-युद्ध का वर्णन कितना सुंदर है! वहां भी हरएक आपदा का सामना करने के लिए वे ही सबसे आगे होते।

पहले पहल जब उन्होंने लंगोटी धारण की वह घटना भी कितनी हृदय-स्पर्शी है? बात यह है कि जब भारतीय महात्मा गांधी की ओर देखते हैं तब वह उन्हें दूर से रास्ता दिखाने वाला नायक नहीं दिखाई देता। वह तो मानों उन्हें अपना सगा भाई और सच्चा मित्र मालूम होता है, जो हर बात में उनसे भिन्न नहीं, सदा साथ देता है और उत्साह दिलाकर आगे ले चलता है। इसीलिए महात्मा गांधी पर जनता की इतनी प्रगाढ भक्ति है।

महात्मा गांधी ने कष्ट-सहन तपश्चर्या और त्याग के सिद्धान्तों को अपने जीवन के बहुत ही प्रारंभिक काल में समझ लिया था—नहीं खोज लिया था। उन्होंने यह आविष्कार किया कि वही आदमी संसार में सर्वश्रेष्ठ हो सकता है जो दूसरों को कष्ट नहीं पहुंचाता बल्कि स्वयं कष्ट और विपदाओं का सामना करता है। और तब से इस महान् सिद्धान्त को आप अपने चरित्र के द्वारा दर्शाते आ रहे हैं। उन्होंने अपनी धनदौलत, कीर्ति सन्मान,

छोड़ना और जो कुछ उन्हें अपने गरीब भाइयों से अलग रखता था सब छोड़ दिया और उनमें मिल गये। इसीलिए हजारों, लाखों, करोड़ों भारतीयों की इस महात्मा के साथ इतनी आत्मीयता हो गई है। इसीलिए वे उसे पूजते हैं। और सोचिए, जो सरकार ऐसे महात्मा को गिरफ्तार कर के उसे उसके अनुयायियों से-भाइयों से अलग करना चाहती है उसकी मूर्खता की भी कुछ सीमा हो सकती है!

पर इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण उनका विश्व-प्रेम है। इस समय एक भी ऐसा दूसरा आदमी नहीं है जो विश्वप्रेम की सीढी पर इतनी उंचाई तक चढ चुका है। अतीत में भी बहुत थोड़े पुरुष ऐसे हुए होंगे। क्रोध, द्रोह, राग, द्वेष आदि का लेश मात्र उनके हृदय में नहीं है। प्रेम से, अपने भाइयों के प्रति-संसार के तमाम मनुष्यों को वे अपने भाई ही मानते हैं-उनका हृदय-सागर लबालब भरा है। काला, गोरा, शत्रु, मित्र, आदि भेदभाव का नाम नहीं। उन्होंने हिन्दू-और मुसलमान-दो महान् जातियों को प्रेम के मजबूत बंधन से जकड दिया है, यद्यपि ये सदियों से आपस में लडा-झगडा करती थीं। हिन्दुओं में जाति-प्रथा है। उसके आवश्यक अंगों को कायम रखकर बाकी सब फाल्तू बंधनों को भी तोड डाला। वे खुद तो ब्राह्मण और अस्पृश्य दोनों को एक ही बंधु भाव से देखते हैं। अंगरेजों से भी उनकी शत्रुता नहीं है। वे तो कहते हैं कि अंगरेज भी मेरे भाई हैं। मैं तो उनको चाहता हूं, प्यार करता हूं। उन्होंने कईबार अपने खून के प्यासे लोगों का सामना अपने प्रेम-बल के द्वारा किया है। दक्षिण आफ्रिका में उन पर एक हत्यारे ने हमला किया। उनकी जान जाते बच गई। कुछ होश आने पर उन्हें उस हत्यारे पर मुकदमा चलाने के लिए कहा गया। तब आपने कहा, "मैं कुछ नहीं करना चाहता। उसे जो ठीक मालूम हुआ, उसने किया। मेरा तो उसपर बहुत विश्वास है। मैं तो उसको प्यार करके प्रेम से जीत लूंगा। और सचमुच कुछ ही महीनों में उन्होंने उसे उसी तरह जीत भी लिया। वही हत्यारा फिर उनका एक कट्टर अनुयायी हो गया। यही प्रेम वे ज० डायर पर भी करते हैं। वे कहते हैं—मैं उनके साथ सहयोग नहीं करूंगा उनके हुक्म भी हरगिज न मानूंगा। पर अगर वे पीडित होंगे तो उनकी सेवा करने के लिए जरूर दौडता हुआ जाऊंगा। और उन्हें अच्छा करने के लिए हर तरहसे प्रयत्न करूंगा भूतदया और विश्वजनीन प्रेम के तो वे अवतार हैं। वे कहते हैं "राग करने से कुछ भी न होगा। हमें आसुरी शक्ति का सामना दैवी शक्ति से करना चाहिए। असत्य का सत्य से, छल और कपटका सरलता और स्पष्ट वादिता से और भय और अत्याचार का निर्भीकता और धैर्य से।" और यही सिद्धान्त उनकी हरएक कृति में टपकते हैं। इन्ही कारणों से आज संसार उनकी कीर्ति से गूंज रहा है।

भूतदया, त्याग, विश्वबंधुत्व आदि अलौकिक गुणों के कारण वे संसार के उन सर्वश्रेष्ठ विभूतियों के कोटि के पुरुष बन गये हैं जो इस संसार में हजार हजार दो दो हजार बरस में एक एक बार कभी कभी अवतार लेते हैं। पर आज वे जेल में ठूंस दिये गये हैं। जो संस्था या समाज हजरत-ईसा मसीह और गांधी जैसे महात्माओं को भी स्वतंत्र नहीं देख सकता उसका सर्वनाश निश्चित है।

महात्मा गांधी का अहिंसात्मक असहयोग भी उनके इतने माहात्म्य का एक महान कारण है। यों तो अहिंसात्मक असहयोग पहले कितने ही महात्मा कर चुके हैं; पर उसे इतने बडे परिमाण में सामाजिक और राजनैतिक स्वाधीनता के लिए सफलता-पूर्वक प्रयुक्त कर दिखाने का काम आपही ने कर दिखाया। ईसा-मसीह थोरो, टॉल्स्टाय आदि महापुरुषों ने व्यक्तिगत रूप में असहयोग किया था। पर यह महात्मा तो सारे राष्ट्र को इसी महान् मार्ग पर बड़ी खूबी और वीरता के साथ लिए जा रहा है। केवल हमारे ही जमाने में नहीं मनुष्य-जाति के इतिहास में यह सबसे बड़ी आश्चर्य-जनक घटना है। असहयोग केवल ऊपर से देखने वाले को भले ही अ-विधायक मालूम होता हो। पर यथार्थ में भारत की कार्यक्षमता, स्वावलंबन, संगठन, और स्वाधीनता का सबसे बडा द्योतक है। वह तो जनता का यह सब केवल अक्रोध और द्वेष-शून्य हृदयसे ही नहीं बल्कि प्रेम-पूर्वक करने के लिए कह रहा है। इससे बता रहे हैं कि किसी भी जाति को पशुबल के सामने लाचार होने की जरूरत नहीं—आत्मबल ही सर्व श्रेष्ठ बल है यह केवल भारत के ही लिए नहीं बल्कि संसार के लिए एक जीवन-दायी संदेश है। गांधी ने पशुबल के युग को भगा कर शांति और विश्वबंधुत्व के सत्ययुग को शुरू कर दिया है।

एक बात मुझे और कहना है। लोग उन्हें सभ्यता का शत्रु समझ बैठे हैं। लोग कहते हैं गत तीन चारसौ बरसों में जो वैज्ञानिक प्रगति हुई है उसे वे नष्ट करने जा रहे हैं। यह उनकी नितान्त भूल है।

गांधी तो केवल पश्चिमीय जड सभ्यता के, जो भारत के जीवन को नष्ट कर रही है, खिलाफ लड रहे हैं। इसका कारण यह है कि वे देख रहे हैं कि उनका देश दो दो चक्कियों में पिसा जा रहा है। एक तो विदेशी राज्य, और दूसरी विदेशी पूंजी वालों की लूट, जिसे वे पश्चिमी यंत्रों की सहायता के द्वारा भारत में चला रहे हैं। भारत को इस विदेशी-राज्य—नर-चक्र-से बचाना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक उसे इस लूट से भी छुडाना है। केवल परचक्र को नष्ट करके इस लूट को इसी तरह जारी रहने देने से रत्ती भर लाभ नहीं हो सकता। क्यों कि भारत में पराराज्य इसी की बुनियाद पर टिका हुआ है। यह विदेशी लूट और यह पश्चिमी-यंत्र-सामग्री तो देश को मृत्यु की ओर खींचती ले जा रही है। सचमुच यह वैज्ञानिक प्रगति शैतान का मोहजाल है। यह धन के लोभ से हमें सर्वनाश की ओर खींच ले जा रही है।

आज यह महात्मा अपनी असाधारण दूर दृष्टि से अपनी मातृभूमि को इसी शैतानी मोहजाल से बचाने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर रहा है। रोम साम्राज्य होने के पहले ही से वह उसकी रक्षा करने लग गया है। और वह ऐसा करके केवल अपनी मातृभूमि को ही नहीं बचा रहा है, बल्कि सारे संसार को सचेत कर रहा है और छुडा रहा है। रोमन राज्य की भी यही हालत हुई थी। सत्ता और लाभ के मारे वह मदांध हो रहा था। इसी समय उसे उस सर्वनाश से बचाने के लिए एक महापुरुष-भगवान् के लाडले-मसीह ने अवतार लिया था। वही हालत आज हमारी हो रही है। और उसी तरह आज हमें इस सर्वनाश से बचाने के लिए यह महापुरुष पृथ्वी पर आया है।

मेरा पुनर्जन्म में विश्वास नहीं। परन्तु अगर होता तो मैं जरूर कहता कि वही स्वर्गीय महात्मा-मसीह-फिर से पृथ्वी पर आया है। पर काव्य की भाषा का तो हम प्रयोग करके यह कह सकते हैं कि यह महात्मा सचमुच मसीह ही है।

पहले की तरह आज भी यह सवाल नहीं है कि यही मसीह है या नहीं। सवाल तो सिर्फ यही है कि उसे पहचानता तथा उसके उपदेशों को कौन ग्रहण करता है।

श्री दयालजी का लेखी बयान

सूरत के जनमान्य नायक श्री दयालजी भाई ने सूरत के मैजिस्ट्रेट के सामने जो अपना लेखी बयान पेश किया उसका सार नीचे दिया जाता है:—

"मैं आजाद भारत को मानने वाला आदमी हूं। इसलिए देश की प्रतिनिधि-रूप महासभा की सत्ता के सिवा संसार की और किसी भी दूसरी शक्ति को मुझसे यह पूछने का अधिकार नहीं कि तुम अपनी नेक-चलनी के लिए जमानत दो। दूसरा कोई देश चाहे कितना ही सुधरा हुआ हो और मेरा देश चाहे कितना ही पिछड़ा हुआ क्यों न हो, मेरे देश की इच्छा के खिलाफ उस पर उसे अधिकार चलाने का तथा उसकी स्वतंत्रता हरण करने का कोई भी अधिकार नहीं। और ऐसी हालत में जब एक ओर यह कहा जाता है कि इस देश की भलाई के लिए ही यह पर-राज्य चलाया जा रहा है, तब तो उसकी धूर्तता की पराकाष्ठा हो जाती है।

तिस पर भी एक अंगरेज के बदले जब एक भारतीय न्यायाधीश की अदालत में हमें खड़ा किया जाता है तब तो हमें अपनी अधोगति का पूरा पूरा खयाल हो जाता है।

मेरा तो यह पूरा विश्वास है कि भारत दरिद्रता की चक्की में बेतरह पिसा जा रहा है। उसके सुशिक्षित संतानों में भी यह कुवत नहीं कि स्वतंत्रता-पूर्वक अपना पेट भर सकें। अगर ऐसा न होता तो या तो आजकल के न्यायाधीश ऐसे ९९ फी सदी अपराधियों को निरपराध सिद्ध कर के छोड़ देते या वे न्यायाधीश ही खुद ९९ फी सदी न्याय के नाम अत्याचार में शरीक होकर अपने अपने पद से इस्तीफे दे देते। इस प्रकार पशुबल से डरकर उसकी अधीनता में रहना तथा स्वतंत्रता के जन्मसिद्ध अधिकारों के लिए लड़ते हुए दुखों से डरना मैं आत्मघात मानता हूं।

'सूरत से अंगरेज चले जायं' यह कहने से मेरा मतलब अंगरेज-जाति से नहीं बल्कि अंगरेजी सत्ता से था और अब भी है। इस सत्ता को सुधारने या मिटाने के लिए देश ने जो दृढ़ प्रतिज्ञा की है उसे सफल कर दिखाने का सौभाग्य अगर इस शहर को प्राप्त हो तो हमारे पूर्वजों के हाथों दूर-दृष्टि से काम न लेने की जो भूल हुई है उसके पाप से हम मुक्त हो सकें।

जाति-द्वेष फैलाने का जो आरोप मेरे सिर मढ़ा गया है वह बिलकुल असत्य है। असहयोग की इमारत ही सब जातियों की एकता पर खड़ी की गई है। मैं भी उसीको मजबूत करने का यत्न करता आया हूं। पर मुझे तो यह मालूम हो रहा है कि यथार्थ में खुद नौकरशाही ही और हमारे कुछ भाई, जो उसके हाथ में कुल्हाड़ी के दस्ते का काम दे रहे हैं, जाति-विद्वेष का विष फैला रहे हैं। क्योंकि इसमें उनका और उनका स्वार्थ भरा हुआ है।

हम स्वराज्य के भूखे हैं, और नौकरशाही को अपनी सत्ता चलाना है। अर्थात् हम और वह दोनों फरीकैन हैं। भला फरीक सानी कभी न्यायाधीश भी हो सकता है? तथापि नौकरशाही न्याय की तराजू हाथ में लेकर न्याय का कैसा नाटक दिखा रही है? इसलिए इस न्याय नाटक से तो दूर ही रहने से न्याय की तथा हमारे स्वाभिमान की रक्षा हो सकती है। इसीलिए मैंने इस कार्यवाही में भाग नहीं लिया। गुजरात के सेवक की हैसियत से मेरे गुरुदेव महात्मा गांधी के बाद सबसे पहले मेरा सेवा की जो यह कदर हुई इसके लिए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है और इसलिए मैं परमात्मा का उपकार मानता हूं। सूरत से ही इस सत्ता को सुधारने या मिटाने के मेरे मनोरथ की सफलता का सुंदर दृश्य मेरी आंखों के सामने खड़ा होता है।

नरम-दल और महात्माजी की गिरफ्तारी

कुछ दिन पहले नरम-दल वालों की एक परिषद् बम्बई में हुई थी। उसकी विषय-निर्वाचिनी-समिति में एक प्रस्ताव महात्मा गांधी के कारावास पर भी उपस्थित किया गया था। पर वह उड़ा दिया गया। उसके सम्बन्ध में अखबारों में गरमा-गरम लिखा पढ़ी भी हुई। 'इंडियन सोशल रिफार्मर' के सम्पादक श्री नटराजन तथा भारत-सेवक-समिति के श्री देवधर ने यह प्रस्ताव पेश किया था और वह चाहा था कि आरम्भ में ही उसपर चर्चा की जाय। प्रस्ताव नीचे दिया जाता है—

"म० गांधी जैसे महान् देश-सेवक पर मुकदमा चलाने और उन्हें जेल भेज देने की आवश्यकता उपस्थित होने के लिए यह परिषद् गहरा खेद प्रकाशित करती है और सरकार से आग्रह प्रार्थना करती है कि उनके लिए जहां तक जेल के नियम ढीले कर दिये जायं जिस हद तक उनके कैद किये जाने के उद्देश में बाधा न पहुंचे और उन्हें अधिक सहूलियतें दी जायं"

सभापति श्री वाछा महोदय ने कहा—"यदि आप आरम्भ में ही इसकी चर्चा करना न चाहें तो मौका आने पर यह एकमत से पास हो सकता है।" इसलिए उसका नम्बर सबसे आखिरी रहा। बम्बई सरकार के 'कानून और शान्ति' विभाग के मन्त्री सर चिमनलाल सेटलवाड ने इस प्रस्ताव का बहुत विरोध किया। उनकी दलील यह थी कि "यद्यपि इस प्रस्ताव की भाषा बड़ी सावधानी के साथ लिखी गई है तथापि उसमें सरकार पर आक्षेप किया गया है। सरकार ने तो गांधी जी के साथ बहुत धीरज से काम लिया-बड़ी क्षमा-शीलता का अवलम्बन किया। आज भी गांधी जी को उनका मामूली भोजन दिया जाता है। उनके आराम का खयाल रक्खा जाता है और उन्हें पुस्तकें और अखबार पढ़ने के लिए दिये जाते हैं।

इससे वह प्रस्ताव 'अनावश्यक' माना गया और रद्द हो गया।

पिछली २१ अप्रैल को जब पं० गंगाधरराव देशपांडे महात्माजी से जेल में मिलने गये थे तब उन्होंने महात्माजी से पुस्तकों के सम्बन्ध में पूछा था। महात्माजी ने कहा "हां; पुस्तकें तो मिली हैं, पर उनके लिए खूब झगड़ना पड़ा था।"

और अखबारों के विषय में तो हम अच्छी तरह जानते हैं कि यहां से 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' बराबर नियम के साथ महात्मा जी के नाम भेजे जाते हैं और जेल के अधिकारी उन्हें उसी तरह नियम के साथ वापस लौटा देते हैं।

उसी परिषद् में नीचे लिखा प्रस्ताव पास किया गया—

'वैध उपायों से स्वराज्य प्राप्त करने की नीति पर यह परिषद् अपना दृढ़ विश्वास प्रकट करती है और मानती है कि पूर्वोक्त उद्देश की सिद्धि के लिए देश में कानून और व्यवस्था तथा जानमाल की हिफाजत हर तरह के कानूनी उपायों के द्वारा होना चाहिए।"

इस प्रस्ताव पर श्री० नटराजन् ने एक तरमीम पेश की थी। क्योंकि उनकी यह धारणा थी कि इस प्रस्ताव के द्वारा तो सरकार को कानून के मनमाने उपयोग का आम परवाना मिल जाता है। तरमीम यह थी कि जानमाल की हिफाजत के लिए कानूनी उपायों का अवलम्बन करते समय इस बात पर ध्यान रक्खा जाय कि उन उपायों का रूपान्तर लोगों को जिस तरह बनपड़े, कुचल डालने में न होने पावे।

पर इसका भी श्री सर चिमनलाल ने बतने ही जोर के साथ विरोध किया। बस, तरमीम फेल हो गई। धारासभाओं में जाने से शासन-प्रणाली में सुधार होता है या हमारे काम ही बिगड़ जाते हैं!

जयकृष्ण प्रभुदास भनसाली द्वारा नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर, सरकीवाली वाडी, अहमदाबाद में मुद्रित और वहीं हिन्दी नवजीवन कार्यालय से जमनालाल बजाज द्वारा प्रकाशित।

आत्मरक्षा का प्रश्न

महासभा की तथा मुस्लिम लीग की कार्य-समितियों की संयुक्त विचार-सभा में यह प्रश्न उठाया गया था कि महासभा के ध्येय के अनुसार अथवा असहयोग के अहिंसा-नियमानुसार असहयोगी लोगों को खानगी मामलों में आत्म-रक्षा करने का अधिकार रहता है या नहीं रहता है। जिधर देखिए उधर भय का साम्राज्य फैला हुआ है। महासभा तथा खिलाफत से सहानुभूति रखने वाले लोगों के साथ सरकारी कर्म-चारियों का बर्ताव भी बहुत खराब होता जा रहा है। कानून और जनता के जानोमाल के अधिकार दोनों, कुचले जा रहे हैं। इस परिस्थिति में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि असहयोगियों का खानगी मामलों में जानोमाल की रक्षा का अधिकार सुरक्षित है या नहीं? इसमें तो शक नहीं कि जब कोई हमारे जान को, माल को, हमारे स्वाभिमान को अथवा हमारे या हमारे इष्ट-मित्रों के धार्मिक भावों को चोट पहुंचाने की कोशिश करे तब उसका प्रतिकार करने का हक हमें कानून और नीति के अनुसार है। इस प्रकार का प्रतिकार करने के लिए हमें केवल अधिकार ही नहीं है, बल्कि इन मामलों में हम बगैर प्रतिकार किये ही यदि आत्म-समर्पण कर दें तो वह हमारे कर्तव्य की अवहेलना कही जायगी। पर प्रतिकार करने के भी दो भिन्न भिन्न मार्ग हैं।

इस अत्याचार का उत्तर दो तरह से दे सकते हैं। एक तो अत्याचारी को चोट पहुंचाना जिससे वह फिर अत्याचार न करने पावे। दूसरा है निष्क्रिय प्रतिरोध अर्थात् उसे चोट तो नहीं पहुंचावें परन्तु उसका प्रतिरोध कष्ट-सहन द्वारा मरने तक भी करते रहें। फर्ज कीजिए कि किसी मंदिर या मस्जिद को कोई पागल मनुष्य अपवित्र कर रहे हैं, अब उसके जो रक्षक होंगे वे दो प्रकार से आक्रमणकारियों का विरोध कर सकते हैं। एक तो यह कि वे अपने शस्त्र-बल से उन्हें परास्त करके भगा दें, और दूसरा यह कि वे निःशस्त्र होकर उनकी राह में खड़े हो जायं, उनकी तलवारों के, भालों के खुद शिकार हो जायं, एक के बाद एक आत्म-बलिदान करते जायं, पर खुद आक्रमणकारी पर उंगली तक न उठावें। दोनों ही हैं तो प्रतिरोध के प्रकार—शारीरिक या नैतिक आत्म-समर्पण कहीं भी नहीं है। फर्ज कीजिए कि एक आदमी मेरे सामने पिस्तौल कर के कहता है कि ये खादी के कपड़े त्याग दो और चरखा चलाना छोड़ दो नहीं तो अभी मार डालता हूं। मैं भी या तो झपट कर उसके हाथ से पिस्तौल छीन कर फिर उसीके द्वारा उसे परास्त कर सकता हूं या उसे शान्तिपूर्वक कह सकता हूं कि मैं तेरी बात हरगिज न मानूंगा चाहे मुझे तू मार भी डाले। दोनों प्रतिकार के ही तरीके हैं और दोनों में से आत्मसमर्पण नहीं करना। खानगी तौर से जानोमाल की रक्षा के लिए शरीर-बल का या शस्त्र-बल का प्रयोग करना तो हरएक व्यक्ति का कानून तथा नीति के अनुसार हक है। और वे सब लोग जिनका आखिरी सिद्धान्त अहिंसा नहीं है आत्म-रक्षा के लिए शारीरिक बल का प्रयोग करके प्रतिपक्षी को चोट पहुंचा सकते हैं। पर जिनका अहिंसा में ही अटल विश्वास है, और वे जो अहिंसा को शरीर-बल से अधिक कारगर मानते हैं वे दूसरे को हिंसा पहुंचाने के बजाय खुद ही कष्ट-सहन द्वारा असत्य और अन्याय का प्रतिरोध करेंगे। केवल अहिंसात्मक असहयोग का स्वीकार करने से मनुष्य का, अगर वह सच्चा अहिंसावादी न हो तो, या उसके मित्र-रिश्तेदार, या अनुयायियों का बल-प्रयोग से बचाव या रक्षा करने का अधिकार नष्ट नहीं होता। महासभा का अहिंसा नियम तो राजनैतिक क्षेत्र में अर्थात् स्वराज्य-प्राप्ति के लिए ही मनुष्य को अहिंसा का अवलंबन करने को बाध्य करता है। इसका अर्थ यह नहीं कि हरएक मनुष्य अहिंसा को ही आखिरी सिद्धान्त माने। खुद महात्माजी भी चाहते तो हैं कि हरएक मनुष्य अपने तमाम व्यवहारों में इस अलौकिक सिद्धान्त का अवलम्बन करे; पर वे भी इसके लिए महासभा पर जबरदस्ती करना नहीं चाहते। असहयोग का अहिंसा-नियम भी हमारे खानगी मामलों में बल प्रयोग करने के हक को वहांतक नहीं रोकता जहांतक वह इस आन्दोलन की प्रगति में बाधक न हो। इससे हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि वे तमाम असहयोगी जो सत्याग्रह की प्रतिज्ञा से बंधे हुए नहीं हैं, कानून के अनुसार बल का प्रयोग कर सकते हैं। खास कर यह भी इसलिए कि उनके असहयोगी होने से वे सरकारी अदालतों का उपयोग नहीं कर सकते इसलिए गैर कानूनी आक्रमणों से खुद को तथा अपने आश्रितों को बचाने के लिए उनके पास दूसरा उपाय नहीं बचता। पर राजनैतिक मामलों में अथवा उनसे संबंध रखने वाले प्रश्नों पर तो उनको अपने इस अधिकार का उपयोग न करना चाहिए। उस हालत में उन्हें निष्क्रिय प्रतिरोधात्मक सत्याग्रह से ही काम लेना चाहिए। अगर हम ऐसा न करें तो हमारे आन्दोलन की सफलता के लिए जिस शान्ति की हमें आवश्यकता है उसका शायद भंग हो जाय। पर जब जब हमें शंका हो कि वह राजनैतिक है या खानगी अथवा खानगी होकर भी इसका असर राजनैतिक परिस्थिति पर तो नहीं पड़ सकता तब तब हमें अहिंसा से ही काम लेना चाहिए। हमारे आन्दोलन को जितनी शीघ्रता से हो सके सफल करने के लिए शान्तिमय वायुमंडल बनाये रखने की जो जवाबदेही असहयोगियों के सिर पर है वह इस कदर इतनी बड़ी है कि हमें केवल और शुद्ध खानगी मामलों को छोड़ कर हर जगह शान्ति का भंग न होने देने की जवाबदारी रखना अपना सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य समझना चाहिए।

पर इसके साथ ही राष्ट्र की चारित्र्योन्नति चाहने वाले हरएक भारतीय को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि अन्याय के सामने सिर झुकाना केवल पाप है। उससे आत्मा का पतन होता है। इसलिए जहां जहां हम बल-प्रयोग द्वारा अन्याय का प्रतिरोध न कर सकते हों वहां सत्याग्रह द्वारा उसका प्रतिरोध करना हमारा परम कर्तव्य है। अन्याय के सामने सिर झुकाना मानो उसके सहयोग करना अतएव कर्तव्य-भ्रष्ट होना है। इसलिए संक्षेप में हमारी आत्म-रक्षा के नियम हम इस प्रकार बना सकते हैं:—

१ अन्याय के सामने किसी को भी सिर न झुकाना चाहिए। उसका तो हमेशा प्रतिकार ही किया जाना चाहिए। फिर चाहे वह बल प्रयोग के द्वारा हो या सत्याग्रह के द्वारा।

२ पूरे सत्याग्रही कभी खानगी तौर से आत्मरक्षा के लिए भी बल का प्रयोग नहीं करते।

३ किसी भी महासभा-सदस्य को अपने राजनैतिक उद्देश की सफलता के लिए कभी बल-प्रयोग न करना चाहिए।

४ असहयोगी तथा इस आन्दोलन के हित-चिंतक ऐसे किसी भी प्रसंग पर बल का प्रयोग न करें जहां उनका सम्बन्ध महासभा के सदस्य की हैसियत से हो। हां, खानगी मामलों में वे कानून के अनुसार बल का प्रयोग कर सकते हैं।

५ तमाम सन्देह-स्थानों पर—अर्थात् जब हम यह निर्णय न कर सकें कि यह मामला राजनैतिक है या खानगी, अथवा इसका असर देश की शान्तिमय परिस्थिति पर इस प्रकार तो नहीं न पड़ता हो जिससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से इस आन्दोलन पर बुरा असर पड़ता हो, असहयोगियों को कानूनन् बल-प्रयोग से भी काम न लेना चाहिए।

(शेष पृष्ठ ३५९ पर)

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, अषाढ वदि ९ सं. १९७९

अटल विश्वास

लखनऊ के रिफ़ाहे-आम के सुंदर और विशाल सभामंडप में अखिल भारत महासभा समिति की बैठक ता. ७ जून शाम से शुरू हुई। ग्रीष्म ऋतु की प्रखर उष्णता, कितने ही प्रान्तों से लखनऊ का लंबा फासला, तथा वह कठोर दमन, जिसने कितने ही स्थानों पर ऐसी शोचनीय स्थिति पैदा कर दी है कि जिसके कारण प्रान्तीय नेता लोग अपने अपने स्थानों को छोड़ कर नहीं आ सकते थे, आदि कारणों से लखनऊ की महासमिति में अधिक संख्या में नेता लोग आ नहीं सके। तथापि उपस्थित सदस्यों की संख्या भी काफी मोटी थी। करीब १४० प्रतिनिधि आये थे। सभा में हरएक प्रतिनिधि के मुखमंडल पर यही निश्चय व्यक्त हो रहा था कि आगे बढ़ो; पर परिस्थिति का निरीक्षण कर के पूरे विचार के साथ। बंगाल का तो इस बात के लिए सब से अधिक आग्रह था कि अब तो किसी तरह आगे बढ़ना ही चाहिए।

उसके प्रतिनिधियों ने तो एक स्वाभाविक शुद्ध ही इस बात के लिए छेड़ दिया कि अब तो किसी प्रकार का सविनय-भंग शुरू करके इस आन्दोलन को आगे बढ़ा देना ही चाहिए। यह तो सबको अनुभव हो रहा था कि सरकार की इस चुनौती का उत्तर राष्ट्र को उचित रीति से अवश्य देना चाहिए। पर हमें यहां पर यह विचार कर लेना चाहिए कि गत फरवरी में भी करीब करीब इसी परिस्थिति का सामना हमें करना पड़ा था। उस समय हमने क्या किया था? उस समय देश में हिंसा का प्रादुर्भाव होने की संभावना दिखाई देती थी; पर हमारा तो यह विश्वास था कि हमारी प्रगति के तथा स्वतंत्रता के लिए अहिंसा ही एक मात्र और सर्वश्रेष्ठ उपाय है। इसलिए कितने ही प्रलोभनों के होते हुए भी तथा एकदम आगे बढ़ता हुआ कदम पीछे हटाने से जो हानियां होने की सम्भावनाएं थीं उनको पूरी तरह से ध्यान में रखते हुए भी हमने जान बूझकर आक्रमक कार्यक्रम को फिलहाल मुल्तवी रखने का निश्चय किया। अगर हमारे हृदय में जाति-विद्वेष या अराजकता फैलाने का जरा भी इरादा होता तो उसके लिए उस मार्ग को छोड़ कर अधिक उपयुक्त और चौकसा मौका हो सकता था? उस समय जो हम महात्मा गांधी के गिरफ्तार होते ही अपने असहयोग की सारी शिक्षा कह कर एकदम सविनय-भंग की रण-भेरी बजा सकते थे, पर उस समय हमने ऐसा क्यों नहीं किया? हमने तो वे सब आफ़तें सहाईं जो हमारे अहिंसा के सिद्धान्त अख्तियार करने से हमारे सिर पर आ सकती थीं। और हमने तो वह आक्रमक कार्य स्थगित कर ही दिया यद्यपि सभी चारों ओर से चेतावनियां आ रही थीं कि इस से जनता का उत्साह-भंग होगा तथा निराशा फैलेगी। मनुष्यता के प्रेम तथा उदार भावों को पहचानने के योग्य हृदय सरकार को भी होता तो वह भी एक सच्चे सिपाही की तरह दमन को बंद कर देती। पर उसने यही किया देखा कि महात्माजी पैगाम के मामले में अपनी गिरफ्तारी होने पर उनके स्वभाव और प्रीति के नियम ने कह सुके हैं। हमारे आक्रमक कार्यक्रम के स्थगित करते ही उसने भी उसका बुरी तरह से दुरुपयोग कर और कठोर दमन द्वारा जनता के स्वतंत्र भावों को दबाने पर कमर कस ली। हमारे नव सिपाही राष्ट्र को दी हुई इस चुनौती का उत्तर हमें अवश्य ही देना चाहिए। पर वह किस तरह? निर्भयता-पूर्वक कष्ट-सहन द्वारा। जितना दमन हो उससे भी अधिक कष्ट-सहन करने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए। यह ऊपरी ऊपर देखने से भले ही हानिकर दिखाई देता हो पर यथार्थ में यह सफलता प्रदायक है। सरकार की इस चुनौती का यथेष्ट उत्तर देने के लिए ही तैयारी करने का प्रस्ताव लखनऊ की सभा में उठाया गया था। पर साथ ही अपने उत्साह को संयत रखने की तैयारी भी उतनी ही स्पष्ट थी। इसलिए उस सभा में जो प्रस्ताव पास किया गया तथा उस के अनुसार कार्य करने के लिए जो निश्चय दिखाया गया उससे राष्ट्र के निश्चय की शक्ति तथा आत्म-संयम दोनों स्पष्टतया दिखाई देते हैं। उसमें भी सब से अधिक महत्व की बात तो महात्मा जी के शान्ति और सत्य के उपदेश में राष्ट्र का पूरा विश्वास और तदनुसार अहिंसात्मक असहयोग द्वारा भारत में शान्तिमय क्रान्ति कर देने का निश्चय है। सभा के सदस्यों में उस समय जरा भी हिचकिचाहट या शंका न थी, जब वे महात्माजी के प्रति अपनी श्रद्धाभक्ति प्रकट करने के प्रस्ताव को स्वीकृत करने के लिए आदर तथा निश्चय के साथ खड़े हुए।—

(यंग इंडिया) सी. राजगोपालाचारी

तरुण बलिदान

महात्माजी के जेल जाने के बाद हितचिन्तकों के मन में यह शंका आया करती थी की महात्माजी के अखबार किस तरह से चलेंगे। लेकिन महात्माजी ने इस काम पर एक ऐसे ही आदमी की तजवीज की थी कि जनता ही नहीं, लेकिन खुद सरकार भी महात्माजी के अखबार के काम से सन्तुष्ट हो गई है। तीन महीने भी न हुए होंगे कि 'यंग इंडिया' पर सरकार ने अपना दृष्टिपात किया। परमेश्वर का दृष्टिपात बहुत देरी से होता है; लेकिन सरकार का दृष्टिपात तीन महीने के अन्दर ही फलदायी हुआ। 'यंग इंडिया' के लेखों पर ताजीरात हिन्द की सार्वभौम धारा १२४ अ के अनुसार सरकार ने अभियोग चलाया। एक लेख का नाम था—'सरकार की कसौटी हुई और वह बेकस निकली।' और दूसरा लेख था 'राजद्रोह का प्रचार'। मामूली रिवाज के अनुसार सम्पादक और प्रकाशक ही जवाबदेह माने जाते हैं। मुद्रक और मुद्रणालय के अध्यक्ष जिम्मेदार नहीं समझे जाते और यदि माने भी जायं तो उन्हें नाम-मात्र की सजा होती है। लेकिन महात्मा जी के परिवार में छोटे बड़े सब स्थानों पर आत्म त्याग के सेवाभक्त रक्खे जाते हैं। इसका परिचय पाकर विचारक न्यायाधीश ने निष्पक्ष हो कर सब को समान सजा इनायत की।

'यंग इंडिया' के सम्पादक, प्रकाशक मुद्रक और मुद्रणाध्यक्ष सब 'यंग इंडिया' के प्रतिनिधि हैं। सब 'नौजवान' हैं। सम्पादक श्री शुएब कुरैशी अलीगढ़ के एक शरीफ खानदान के सुशिक्षित युवक हैं। अभी उम्र कोई ३० साल की है। छोटे ही में उन्होंने अलीगढ़ की पढ़ाई पूरी करके विलायत की यात्रा भी की है। विलायत में रह कर के उन्होंने वहां पर एक अखबार भी चलाया था। भारतवर्ष से तुर्कस्तान को मदद करने के लिए एक मेडिकल मिशन गया था। उसके साथ शुएब साहब भी गये थे। वहां पर उन्होंने इस्लामी दुनिया की हालत का अच्छी

तरह अध्ययन किया। योरप की राजनीति और इतिहास की स्थिति से वे पूरे पूरे वाकिफ हैं। एक पाक मुसल्मान होने के कारण उन्होंने खिलाफत को बचाने के लिए अपना जीवन-सर्वस्व अर्पण कर दिया है। अत्यन्त धर्मनिष्ठ होने के कारण वे महात्माजी के सत्याग्रह के सिद्धान्त को बहुत जल्दी समझ सके। और यह विश्वास उनके दिल में हो गया है कि दुनिया की मौजूदा हालत में शान्तिपूर्ण असहयोग या सविनय भंग के द्वारा ही स्वराज्य और खिलाफत का आदर्श हम प्राप्त कर सकते हैं। जिन लोगों ने इवेन साहब के जमाने का यंग इंडिया गौर से पढ़ा है वे अच्छी तरह जानते हैं कि वे हिन्दू-मुसल्मान की एकता सच्चे दिल से चाहते हैं और मानते हैं कि इसीके ऊपर दोनों कौम की जिस्मानी और रूहानी तरक्की मुनहसर है।

'यंग इन्डिया' के प्रकाशक तो गुजरात महाविद्यालय के साहित्यशास्त्र के अध्यापक हैं। इनका 'यंग इंडिया' के साथ संबंध बहुत दिनों से है। इनकी योग्यता देख करके सरकार ने इनको एम. ए. पास होने के पहले ही अहमदाबाद के गुजरात कालेज में साहित्य के प्रोफेसर के स्थान पर नियुक्त किया था और थोड़े ही दिनों में अपनी विद्वत्ता और मिलनसारी से वे विद्यार्थियों में बहुत ही लोकप्रिय हो चुके थे। १९१५ ई० में बम्बई में महासभा की जो बैठक हुई उसमें उपस्थित रहना वालजीभाई देसाई ने चाहा। परन्तु सरकार ने उनको इजाजत न दी। और वालजीभाई ने सरकार को लिख भेजा— 'मैं सरकार की अपेक्षा महासभा को श्रेष्ठ समझता हूं। जिस नौकरी के कारण महासभा में मैं न जा सकूं वह मुझे दरकार नहीं।' फिर वालजीभाई बनारस के हिन्दू-विश्वविद्यालय के अध्यापकवर्ग में शामिल हुए। परन्तु वहां पर रहना भी उनकी तकदीर में बदा नहीं था। असहयोग शुरू हो गया। इधर 'यंग इंडिया' में भी एक आदमी की जरूरत थी। वालजीभाई बनारस छोड़कर फिर अपनी जन्मभूमि को आये। तबसे उनका 'यंग इंडिया' के साथ सम्बन्ध शुरू हो गया और इस काल से गुजरात महाविद्यालय में अध्यापक का कार्य भी उन्होंने शुरू किया था।

'यंग इंडिया' के मुद्रक भी कुछ कम नहीं हैं। अध्यापक भणसाली एक धनी कुटुम्ब के नवयुवक हैं। अंगरेजी मुहावरे में कहें तो 'सोने चांदी के चम्मच को मुंह में धारण कर के' ही उन्होंने इस दुनिया में प्रवेश किया है। बम्बई में पारसी लोगों के साथ लड़कपन से इनका ज्यादह परिचय था। अध्ययन और खेल दोनों के साथ उनकी मुहब्बत पहले से ही समान थी। कभी पक्षपात नहीं किया। उनके चेहरे पर सदा ऐसी प्रसन्नता छिटकी रहती है कि उनको देखते ही प्यार करने को जी चाहता है। बी. ए. पास कर के उन्होंने समाज-शास्त्र पढ़ना चाहा। और उनकी योग्यता देखकर बम्बई की सरकार ने विश्वविख्यात अध्यापक पेट्रीक गेडीज के पास समाज शास्त्र पढ़ने के लिए 'फेलोशिप' दी थी। जयकृष्णभाई पेट्रीक गेडीज के प्रिय शिष्य थे। और जब गेडीज साहब इन्दौर गये थे तब जयकृष्ण को भी साथ ले गये थे। इतने में असहयोग की रणभेरी बज उठी। जयकृष्ण के हृदय में कठिन से कठिन दुविधा खड़ी हुई। एक ओर विद्वान् और शिष्य-वत्सल गुरु को किस तरह छोड़ें? और दूसरी ओर, देशका अपमान सुनते हुए सरकारी वजीफा पाकर सरकारी संस्था में किस तरह से पढ़ते रहें? आखिर को देशभक्ति की विजय हुई। और अपने एक पुरातन मित्र के साथ सलाह करके दोनों सत्याग्रह-आश्रम में आ गये। गुजरात महाविद्यालय में अध्यापक का कार्य उन्होंने शुरू किया; लेकिन बम्बई के राष्ट्रीय महाविद्यालय में उनकी जरूरत ज्यादह थी। इसलिए वहां पर उनकी नियुक्ति हुई। ऐसे-आराम में परवरिश पाये हुए जयकृष्ण को एक तरफ तो जंग की चाह थी और दूसरी तरफ सादगी की अभिलाषा भी मन में पैदा हुई थी। इसलिए वे बम्बई के छात्रालय में जाकर रहे। बम्बई में सादगी और अध्यापन तो उनको मिला, लेकिन जंग कहां से मिले? बहुत निराश हो गये जब जब मौका मिला है तब तब भणसाली ने आत्म-बलिदान की तैयारी दिखाई है। कालेज छोड़ दिया—'केरियर' छोड़ दिया; पर जो शख्स अपने प्राणों को हथेली पर लिये लिये घूमता है उसे इतने से संतोष कैसे हो सकता है? बम्बई के दंगे के समय कहीं अपनी मुराद पूरी करने का मौका मिला। क्रोध से आग बबूला होने वाले उपद्रवियों के झुण्डों का सामना करते हुए उन्होंने अपने प्राणों को जोखिम में डालकर भी पारसियों की अगियारी की रक्षा की थी। वहां से बचे तो बारडोली की आशा बंधी। इसी समय बारडोली में संग्राम की तैयारियां हो रही थीं। तब आप अपनी अवैतनिक नौकरी से इस्तीफा देकर बारडोली के रणक्षेत्र में आ बैठे। लेकिन अफसोस! वहां भी उनका मनोरथ उनका मन में ही रह गया। फिर रहा 'यंग इंडिया' उसमें सिर्फ मुद्रक का स्थान खाली हो चुका था। क्योंकि उन्हीं के जैसे महाशय शंकरलाल जी बैंकर ने महात्मा जी के साथ कैद की सजा पाई थी। मुद्रक हों तो मुद्रक ही सही; जयकृष्ण 'यंग इंडिया' के मुद्रक हो गये। और मामूली मजदूर की तरह 'यंग इंडिया' का काम करने लगे। ऐसों की भूख भला १॥ वर्ष की सख्त कैद से कैसे बुझ सकती है?

अब रहे नवजीवन के मुद्रणाध्यक्ष। उनका जीवन इन तीनों महाशयों से कुछ विलक्षण है। और भारतवर्ष के नवयुवकों के लिए कुछ आदर्शभूत भी है, इसलिए उसे कुछ विस्तार से देने की जरूरत है। उपर्युक्त तीनों महाशयों ने विश्वविद्यालय की पूरी पूरी शिक्षा प्राप्त की है। और दुनियावी वायुमंडल में वे आज तक रहे हैं। स्वामी आनन्दानन्द इन सब बातों में उनसे भिन्न हैं। वे उनसे कुछ कम सुसंस्कृत नहीं हैं—लेकिन उन्होंने किसी विद्यालय में जाकर विद्या नहीं प्राप्त की है। अपने निजी पुरुषार्थ के बल पर ही उन्होंने आर्य और पाश्चात्य विद्या का संस्कार ग्रहण किया है। स्वामी आनन्दानन्द को देखते ही मन में ख्याल आ जाता है कि यह कर्मवीर आजादी की प्रत्यक्ष मूर्ति है। यह न किसी को श्रेष्ठ समझेगा न किसी को कनिष्ठ मान कर उससे घृणा करेगा। संन्यासी के योग्य साम्य बुद्धि उनके रगोरेशे में देख पड़ती है। दिल में जो बात नेक मालूम होती है उसीपर दृढ़ रहने के लिए वे न समाज की परवा करेंगे न सरकार की; प्रतिष्ठा से तो उन्होंने पहले ही कम परिचय रक्खा था। बाल्यकाल में उनके पिताजी ने उनका विवाह करना चाहा। उन्होंने केवल अपने पिता से ही नहीं, बल्कि भावी श्वशुर को भी लिखा संकोच छोड़ कर कह दिया कि तुम किस भ्रम में हो? मैं तो शादी करना ही नहीं चाहता। बड़ी हिम्मत के साथ घर-बार छोड़ दिया और धार्मिक क्षेत्र में जा कर संन्यास ग्रहण किया। धार्मिक क्षेत्र में इनके जैसा बाल संन्यासी शायद ही दूसरा हो।

संन्यास के लिया—लेकिन वह ईश्वर-प्राप्ति के लिए नहीं, देश की स्वतंत्रता के लिए। दुनिया में स्वामीजी ने लोकमान्य तिलक का दर्शन किया और उनके साथ सतारा प्रान्त में गये, वहां के देश-सेवकों ने इस बालमूर्ति को अपने पास रख लिया; देखते ही देखते इस बालक ने मराठी भाषा पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया (इनकी जन्मभाषा और जन्मभूमि वही है जो महात्माजी की है)

और लगे व्याख्यान देने। स्वदेशी, बहिष्कार, स्वराज्य की बातें दिन-रात चलने लगीं। स्वामीजी चारों तरफ प्रसिद्ध हो चुके। शहरों में और देहात में इस बाल-संन्यासी का दर्शन करने के लिए और उसका उपदेश सुनने के लिए हजारों लोग आने लगे। सब ने चाहा कि स्वामीजी यहीं रहें। लेकिन 'पानी बहता भला और साधु चलता भला।' बस, सभा का काम छोड़ कर स्वामी जी सम्पादक हुए। बम्बई में 'राष्ट्र-मत' नामका एक मराठी दैनिक पत्र निकलता था। उसका गुजराती संस्करण उनके द्वारा सम्पादित होने लगा। राष्ट्रमत जैसा तेजस्वी अखबार अगर अधिक दिन चले तो ऐसा ही समझना चाहिए कि उसकी कदर नहीं हुई। तिलक-केस के साथ 'राष्ट्र-मत' का जन्म हुआ और तिलक-केस के साथ समाप्ति। 'राष्ट्र-मत' में काम करते हुए स्वामीजी के दिल में धर्मजिज्ञासा का प्रादुर्भाव हुआ। और वे थोड़े ही दिनों में गायत्री-पुरश्चरण करने के लिए हिमालय को चले गये। पुरश्चरण खतम कर के उन्होंने यात्रा की। इन्हीं दिनों अंग्रेजी और संस्कृत, हिन्दी और मराठी साहित्य का अध्ययन भी खूब किया। काश्मीर से लेकर नेपाल तक की पूरी यात्रा की। हिमालय लांघ कर कैलास-मान सरोवर तक गये। कैलास की प्रदक्षिणा कर के भारतवर्ष में लौट आये और फिर देश की दशा का विचार करने लगे। उन्होंने सोचा कि साधु-जीवन तो श्रेष्ठ है परन्तु साधु का वेश देश-सेवा में विघ्न-रूप है। साधु के वेष में मनुष्य लोगों से सेवा ले सकता है; पर सेवा कर नहीं सकता। धर्म का नाम लेकर समाज से अलग रहने पर लोग साधु की तो इज्जत खूब करते हैं—लेकिन धर्म को दूर रखते हैं। धर्म को व्यवहार के साथ मिलाने के लिए धर्म-निष्ठ पुरुष को धर्मवृत्ति रखते हुए दुनियादारी में तल्लीन हो जाना चाहिए। धर्म-निष्ठ पुरुष व्यवहार-कुशल भी हो सकता है, इसका अनुभव होना चाहिए। ऐसा निश्चय होते ही स्वामीजी ने मामूली कपड़े पहन कर बम्बई में भिन्न भिन्न अखबारों में नौकरी करना आरम्भ किया। बम्बई में जब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हुआ था तब स्वामीजी ने उसके उपमन्त्री का स्थान सुशोभित किया था। थोड़े ही दिनों में स्वामीजी ने खूब धन कमाया और उसे खर्च भी कर डाला। फिर वे अपना एक निजी मासिक और एक पाक्षिक पत्र शुरू करना चाहते थे—इतने में वे स्वतन्त्रता की मूर्ति-महात्मा जी—की मोहिनी में फँस गये। महात्माजी को अपने सत्य, अहिंसा के 'नवजीवन' का संचार भारतवर्ष के जीवन में करना था। उसमें सहायता देने के लिए महात्माजी ने स्वामीजी को सूचना की। स्वामीजी ने उसे स्वीकार किया। तब से स्वामीजी की लेखनी का, भाषा-प्रभुत्व का, और कार्य-कुशलता का परिचय हर सप्ताह गुजरात को हो रहा था।

अहमदाबाद जैसे गुजराती शहर में 'हिन्दी नवजीवन' चलाने की महात्मा जी ने जो हिम्मत की वह भी इन्हीं के आधार पर। स्वामीजी के चलाने से देश की प्रगति ऐसी तीव्र वेग से हुई है कि उनके द्वारा मुद्रित तीनों अखबारों की संख्या देखते देखते दुगुनी-चौगुनी हो गई। स्वामीजी के ऊपर कार्य का भार भी उसी मात्रा में बढ़ गया। किन्तु आराम करने का खयाल तक उनके मन में आना असम्भव था। आखिर को परमात्मा ने सरकार के द्वारा उनको डेढ़ वर्ष की छुट्टी दिलाई। वहां पर शरीर मजदूरी तो रहेगी, लेकिन सिर पर भार तो न रहेगा; उनका हृदय में कर्तव्य-पालन का अपूर्व आनन्द रहेगा।

'तरुण भारत' का ऐसा शुद्ध और तरुण बलि-दान देखकर ऐसा विश्वास स्वाभाविकतया हृदय में हो जाता है कि स्वराज्य नजदीक आ रहा है। 'तरुण भारत' के चारों तरुण सहयोगियों का जीवन-चरित उज्ज्वल और स्फूर्तिदायक है। हम आशा करते हैं कि भारतवर्ष के सब तरुणों के लिए यह अनुकरणीय होगा।

सरकार को हम इतना ही विश्वास दिलाना चाहते हैं कि अपनी पाशवीय शक्ति से वह 'तरुण भारत' का सिर चाहे भले ही काट सके लेकिन उसके उन्नत सिर को वह कभी नीचे न झुका सकेगी।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

भयंकर सिद्धान्त

भले और सच्चे आदमियों के कार्य उनके विचारों की अपेक्षा अक्सर अधिक अच्छे होते हैं। मुलशी-सत्याग्रह के नेता श्री बापट ने महाराष्ट्र के नाम जो अपील प्रकाशित की है, उसमें आपने सत्याग्रह के विषय में कई ऐसे विचार उपस्थित किये हैं जो उसके शुद्ध सत्याग्रह के आविष्कर्ता को अगर वे स्वतंत्रता पूर्वक इस अपील को पढ़ते तो पढ़ते ही चकित कर देते। भारत में सुंदर कल्पनाओं को विकृत स्वरूप देने के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। उनसे हम काफी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। श्री बापट ने हाल ही में मुलशी पेठा के सम्बन्ध में एक विज्ञप्ति-पत्र प्रकाशित किया है। उसमें आपने सत्याग्रह की सर्वव्यापी परिभाषा दी है। उसमें तो आपने सत्याग्रह के अर्थ का अनर्थ कर डाला है। आप लिखते हैं "जब किसी एक दल का सामना दूसरे दल को करना होता है, और जब दूसरे दल के मनोभाव में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिए सत्य-पक्ष के द्वारा उठाये सब सत्याग्रह-प्रयत्न पूरी तरह असफल होते जाते हैं तब ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न होती है जब कि अहिंसा को छोड़कर हम सच्चे और शुद्ध सत्याग्रह का प्रयोग कर सकते हैं।" "अहिंसा को छोड़कर" का अर्थ है हिंसा का अवलंबन करके! सत्याग्रह में से अहिंसा को निकाल देने पर वह सत्याग्रह ही कहां रहा? उसे सत्याग्रह कहना उस शब्द का दुरुपयोग मात्र है।

सत्याग्रह का आधार कष्ट-सहन है। और कष्ट-सहन आत्म-बल पर ही अवलंबित है। उसमें शरीर-बल को बिल्कुल अलग ही रक्खा है। क्योंकि उसको शामिल करते ही जिस पक्ष में उसकी अधिकाई होगी उसीकी विजय होगी, न कि केवल सत्य की। यह भी एक दूसरी ही बात है कि सत्य के लिए भी शरीर-बल का प्रयोग करना न्याय्य है या नहीं। हां, कितने ही धर्मों में उसके लिए मनाही नहीं है। पर सत्याग्रह में तो उसके लिए स्थान है ही नहीं। सत्याग्रही तो यह जानता है कि न तो प्रतिहिंसा से और न पशुबल से पैदा होनेवाले द्वेष से किसी कलह का अंत हो सकता है। उसका तो एक-मात्र उपाय प्रेम है। उसके अनुसार मनुष्य जबतक सर्वज्ञ नहीं हो सकता तब तक शरीर-बल के प्रयोग करने का उसे अधिकार ही प्राप्त नहीं होता। शरीर-बल फिर वह सत्पक्ष में हो या असत्पक्ष में, कुछ थोड़े समय के लिए भले ही विजय पा सके। यद्यपि हमें यह पूरा विश्वास हो कि हमारा पक्ष ही सत्पक्ष है और हम उसकी रक्षा के लिए पशुबल का प्रयोग करें, दूसरे को पीड़ा पहुंचावें तथापि कई बार हमें आगे चलकर यही मालूम होता है कि पशुबल का अवलंबन करते समय हमने गलती की थी और हमने दूसरे को जो पीड़ा पहुंचाई थी वह अन्याय किया था। सत्याग्रह में सब से भारी विशेषता तो यही है कि वह असन्मार्ग का अवलंबन कभी कर ही नहीं सकता। अगर हमारे पक्ष में सत्य हो तो कष्ट-सहन से विजय अवश्य ही मिलना चाहिए। और यदि उसमें सत्य ही न हो तो उसकी असत्यता के—गलती के—कारण उसका पराजय निश्चित ही है। पर इसके असफल होने की अवस्था में खुद को छोड़कर दूसरे किसी को हानि होने की भी सम्भावना

नहीं है। संयोगवश कभी कभी अनिवार्य कारणों से दूसरों को भी, जो उस उद्योग में हमसे संबंध रखते हों थोड़ी हानि हो सकती है। पर वह जान-बूझकर तो पहुंचाई ही नहीं जाती। तथापि हमें उसे टाल देने और कम भी करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रतिपक्षी के मानसिक भावों में कुछ परिवर्तन करना हो तो वह उसको हानि या चोट पहुंचाकर नहीं करना चाहिए। उसका साधन तो कष्ट-सहन का अपूर्व आंतरिक बल ही है। सत्याग्रही को यह विश्वास होता है कि मनुष्य स्वभावतः सत्प्रवृत्त होता है। और कष्ट-सहन से प्रतिपक्षी के हृदय में यह प्रवृत्ति अवश्य जाग्रत होती है। उसकी इस प्रवृत्ति को जाग्रत करने का बार बार प्रयत्न करने में भी यही दृढ़ विश्वास छिपा हुआ है। यह मानना कि प्रतिपक्षी को चोट या हानि पहुंचाने से सत्याग्रह की विजय होगी बहुत भारी भूल है। इसी गलत ख्याल के कारण कई लोग सत्याग्रह के नामसे अस्त्रों का अवलंबन कर बैठते हैं। हो सकता है कि कभी कभी प्रतिपक्ष को हानि न होना असम्भव हो। पर जब जब वह होगी तब तब वह सत्याग्रह की एक कमजोरी ही कही जायगी और उससे सत्याग्रह की कामयाबी में बहुत बाधायें खड़ी होंगी। इसके विपरीत जैसे जैसे यह आन्दोलन हिंसा से दूर रहेगा वैसे ही वैसे हम कष्ट-सहन से तथा रोष और द्वेष से शून्य होंगे और हमारा सत्याग्रह अधिकाधिक शीघ्र फलदायी होगा।

मायकाओं ने जो युद्ध छेड़ा है वह है तो न्याय्य और धर्म्य। पर उस में लड़ने के लिए योद्धाओं में जितना अधिक नैतिक बल हो उस सब की जरूरत है। इस युद्ध में जिन उपायों का अवलंबन किया जाय वे अगर हर तरह की विकृति और अशुद्धता से अलग न रक्खे जायं तो इस युद्ध का परिणाम बड़ा ही भयानक होगा। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि इस युद्ध के सेना-नायक तथा उपदेशक सत्याग्रह के मूलभूत सिद्धान्तों को अपनी दृष्टि से अलग न होने दें तथा वे होशियार रहें कि वे कहीं उनका गलत अर्थ न लगा लें या कुछ और ही न समझ जायं।

शायद श्री बापट ने जो इसको सर्व-व्यापी स्वरूप दिया है वह तात्विक दृष्टि से पृथक्करण करने के लिए उनका प्रयत्न ही हो। पर ऐसे महान् आन्दोलनों का धुरीपद धारण करते समय भी हम अहिंसा जैसे महान् सिद्धान्त-धर्म की सीमा से कहीं बाहर न चले जायं इसके लिए असाधारण सावधानी रखनी चाहिए। क्योंकि सत्याग्रह-युद्ध में विजय का एकमात्र गुरु-मूलभूत-सिद्धांत यही है। पिछले साल जब अनेक मास में पहले पहल सत्याग्रह शुरू हुआ था तब महात्माजी ने लिखा था:—

"सत्याग्रहियों का कर्तव्य तो सुवर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। अन्याय्य मामलों में तो सत्याग्रह हो ही नहीं सकता। और न्याय्य मामलों में जब उसके योद्धा दृढ़ निश्चयी और और आखिर तक लड़ने तथा कष्ट-सहन करने के लिए समर्थ न हों तब सत्याग्रह असफल होता है। हिंसा का तिलमात्र प्रयोग भी न्याय्य से न्याय्य पक्ष को असफल कर देता है। सत्याग्रही तो अपने मन, वचन और कर्म सब को हिंसा-शून्य रखता है। अगर हमारा पक्ष सत्य हो, योद्धा कष्ट-सहन के लिए, अनन्त कष्टों को भी सहन करने के लिए तैयार हों, और हम अहिंसामय हों तो विजय निश्चित है।"

इलाहाबाद से युक्तप्रान्त की महासभा समिति का साप्ताहिक मुखपत्र "स्वराज" भी शीघ्र ही इसी मास में प्रकाशित होनेवाला है ऐसा उसके व्यवस्थापक अपने एक पत्र से सूचित करते हैं।

(पृष्ठ ३४८ से आगे)

६ नियम ४ और ५ में लिखे प्रसंगों पर जब हमारे स्वाभिमान या धार्मिक भावों पर किसी व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा चोट पहुंचाने के लिए आक्रमण किया जा रहा हो तब हमें आत्म-समर्पण हरगिज न करना चाहिए। उसी प्रकार अपने अनुयायी रक्षित अथवा सेवकों पर जब कभी आक्रमण किया जा रहा हो तब भी उनकी रक्षा-रूपी अपने कर्तव्य से हमें अपना मुंह कभी न मोड़ना चाहिए। इन मौकों पर दृढ़ सत्याग्रह ही हमारा सर्व श्रेष्ठ कर्तव्य है।

(यंग इंडिया) सी. राजगोपालाचारी

कार्य-समिति के प्रस्ताव

महासमिति की बैठक खतम होते ही लखनऊ में कार्य-समिति की भी बैठक हुई थी। उसके महत्वपूर्ण प्रस्ताव नीचे दिये जाते हैं:—

यह समिति तमाम प्रान्तीय समितियों से अनुरोध करती है कि वे जितना जल्द हो सके निम्न-लिखित बातों की जांच अच्छी तरह कर के सविनयभंग-समिति के विचारार्थ उसका ब्योरा तैयार करें:—

आपके प्रान्त में:—

(१) विधायक कार्यक्रम किस प्रकार चल रहा है?
(२) दमन की गति-विधि और उसका असर कैसा है?
(३) सविनय भंग की आवश्यकता तथा वह कब और किस रूप में किया जा सकता है?
(४) और वे सब बातें जिनके विषय में सविनय-भंग-समिति, जो शीघ्रही महा-समिति के निर्णयानुसार महासभा के सभापति द्वारा संगठित होगी, उनसे पूछताछ करे।

२—यह समिति जैसा कि पहले की महासमिति की एक बैठक में ठीक किया गया है, मलाबार-मोपला-उपद्रव की जांच करने के लिए निम्न-लिखित सज्जनों की एक कमिटी स्थापित करती है। कमिटी में:—श्री. फेज बी. तैयबजी (सभापति), श्री. श्रीनिवास आयंगार, श्री अब्दुल हकीम होंगे और श्री जमनादास एम. मेहता उसके मंत्री होंगे।

३—यह समिति सिंध प्रान्त को खादी प्रचार के लिए ५०,००० रुपये कर्ज देना मंजूर करती है। यह धन कितनी किश्तों में और कब कब दिया जाय यह ठहराना सेठ जमनालालजी बजाज के आधीन रहेगा।

४—श्री गंगाधरराव देशपांडे को यह समिति अछूतोद्धार-समिति का संयोजक नियत करती है। और उनसे अनुरोध करती है कि वे इस समिति की बैठक करने का आयोजन शीघ्र ही करें और उसमें स्वामी श्रद्धानंदजी के पत्र का विचार किया जाय।

बढ़ते चलो !

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका ,, -)॥
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष १] [अंक ४५

सम्पादक-हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक-रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, आषाढ वदि ३०, संवत् १९७९,
रविवार, सायंकाल, २५ जून, १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरानीवाडी

तप करो

नवजीवन के 'स्त्री-अंक' में पूज्य कस्तूर बा गांधी लिखती हैं—'नवजीवन' का स्त्री-अंक निकल रहा है। यह बात मुझे बहुत पसंद हुई। गांधीजी के हृदय में स्त्रियों के प्रति बहुत प्रेम है। और वे स्त्रियों से बड़ी बड़ी उच्च आशायें भी रखते हैं।

आज तो मेरी आंखों के सामने वे चारों भाई घूम रहे हैं। तीन महीने पहले गांधीजी और श्री शंकरलाल बैंकर पर मुकदमा चल रहा था। उस समय अदालत का दृश्य कितना शांत और गम्भीर था! आज उसी कमरे में इन चार नवयुवक भाइयों पर मुकदमा चल रहा था। मैं भी वहां गई थी। उन सब के चेहरों पर म्लानता का तो नाम भी न था। वे तो हंसते थे और मगन थे। न तो कहीं चिंता दिखाई देती थी, और न दुःख।

ये चारों भाई मुझे तो रामदास और देवदास जैसे हैं। उन्हें तो दुःख नहीं होता; पर मुझे बहुत दुःख हो रहा है। अगर उन सब के साथ में मुझे भी सरकार जेल में भेज देती तो इतना दुःख न होता।

प्यारी बहनों, इन भाइयों को जब से मैंने देखा है तब से मुझे तो यही लग रहा है कि बहनों को भी उन्हीं के तरह होना चाहिए। उनकी तरह हमें भी दुःख को सुख मानना चाहिए। हमें भी उन के सदृश तेजस्वी होना चाहिए।

इस समय मुझे दक्षिण आफ्रिका की बहनें बहुत याद आती हैं। इतनी छोटी सी बस्ती में से दो-ढाई सौ बहनें जेल जाने के लिए निकल पड़ी थीं। क्या यहां भी समय पड़ने पर इतनी बहनें जेल जाने के लिए न आगे बढ़ेंगी? मुझे तो सन्देह है। देश के काम में बहनें जिस तरह योग दे रही हैं उसी से मैं यह कह रही हूं। जिनकी जेल जाने की तैयारी होती है उनका ढंग तो कुछ और ही होता है।

प्रिय बहनो, मैं तो आपके सामने उन चार नौजवान भाइयों की मिसाल ही रखती हूं। वे तो अभी बिलकुल नौजवान हैं। क्या उन्हें सांसारिक महत्वाकांक्षायें न होंगी? वे जेल न जाते तो क्या उनके लिए सब काम रुका रह जाता? पर उन्होंने तो स्वराज्य के पीछे सब कुछ छोड़ दिया और मानों संन्यास की कठिन दीक्षा लेली है।

इसलिए बहनो, आप भी अपने देश के लिए ऐसी ही दीक्षा लो। सुखोपभोग की लालसा छोड़ दो। दिनरात चरखा चलाओ। आत्मसंयम करो।

अपनी तमाम आवश्यकताओं को और कामों को कम कर डालो। इससे तुम्हें बहुतसा समय मिलने लग जायगा। बस, वह समय चरखा चलाने में लगाओ। अच्छा बारीक सूत कातो। अपने जेल में गये भाइयों को याद कर करके चरखा कातो। इस प्रकार तप करने से ही तुम अपने को जेल जाने योग्य बना सकती हो। तप से जेल का भय भी दूर हो जायगा। बिना तप के स्वराज्य नहीं मिल सकता। इसलिए 'तप करो'।

कस्तूरबाई गांधी

टिप्पणियां

सविनय भंग की तैयारी

सरकार को दिली हमदर्दी अगर भारतवासियों की उच्च आकांक्षाओं के साथ होती, यदि उसके दिल में सचमुच परिवर्तन हुआ होता तो वह महासभा के रचनात्मक कार्यक्रम में रोड़े न अटकाती। देश की शांति का दुरुपयोग करके उसने जो दमन की लगाम ढीली छोड़ दी उसका फल यह हुआ कि देश में अपने बोलने, मिलने और लिखने की आजादी की रक्षा के लिए चारों ओर से सविनय-भंग की पुकार उठ रही है। लखनऊ की महासमिति के प्रस्ताव के अनुसार १ जुलाई से सविनय-भंग-समिति का दौरा शुरू होने वाला है और रचनात्मक कार्यक्रम की प्रगति, देश की स्थिति तथा सविनय-भंग के लिए उसकी तैयारी की जांच वह करेगी। उसके लिए प्रश्नों की एक मालिका महासभा के मन्त्री डाक्टर अनसारी ने प्रकाशित कराई है। उसमें 'रचनात्मक कार्य की सामान्य अवस्था' 'स्वदेशी प्रचार' 'महासभा के सदस्य,' 'स्वयंसेवक' 'महासभा का कोष' 'राष्ट्रीय शिक्षा' 'पंचायत' 'छुआछूत और मद्यपान-निषेध' 'एकता' 'अहिंसा' 'सविनय भंग' 'दमन' तथा 'देश की सामान्य अवस्था' पर कोई ६५ प्रश्न पूछे गये हैं। उसमें सविनय-भंग पर नीचे लिखे सवाल किये गये हैं—

१ आपका सारा प्रान्त या उसका कुछ भाग सविनय भंग शुरू करने के लिए तैयार है? यदि हां, तो सामूहिक या व्यक्तिगत और रक्षात्मक रूप में या आक्रामक रूप में?

२ यदि आपका प्रान्त सविनय भंग के लिए तैयार हो तो वह हरएक नीति-विरुद्ध कानून को तोडना चाहता है या कुछ ही कानून को ? यदि कुछ ही कानूनों को तोडना चाहता हो तो उनके नाम बताइए ।

३ यदि कोई एक अकेला ही प्रान्त सविनय भंग शुरु कर दे तो उसका असर सारे देश पर कैसा होगा ?

४ क्या आपके खयाल में ज्यादातर प्रान्त साथ साथ सविनय भंग शुरु करने के लिए तैयार हैं ?

समिति का कार्यक्रम शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है । इन प्रश्नों का उत्तर सारे देश की ओर से मिल जाने पर आगामी १५ अगस्त को कलकत्ते में महासमिति द्वारा इस बात का अन्तिम निर्णय होगा कि सविनय-भंग किसी न किसी रूप में शुरू किया जाय या नहीं ।

सविनय-भंग की तैयारी के लिए अब सबसे पहले जरूरी बात यह है कि हरएक प्रान्तीय समिति एक तहसील या उससे भी कम रकबे को अपना कार्यक्षेत्र चुन ले और वहां शान्ति, पर तेजी, के साथ रचनात्मक कार्य में जुट पडे । उस चुने हुए रकबे तथा प्रान्त में उन लोगों की एक सूची तैयार की जाय जो स्वयंसेवकों के प्रतिज्ञापत्र की शर्तें मंजूर करते हों और जब जरूरत हो तब जेल जाने के लिए तैयार हों । वे शर्तें हैं—मन, वचन और कर्म से अहिंसा में विश्वास रखना, हिन्दू-मुसल्मान आदि जातियों की एकता को मानना, खादी के उपयोग और छुआछूत को मिटाने का कायल होना । इस सिलसिले में मुगालता न होने पावे । परवा नहीं, यदि थोडे ही नाम उसमें हों ।

सबसे अच्छी तैयारी जो सविनय भंग की हो सकती है वह है नम्रता या विनयशीलता अर्थात् सत्य और अहिंसा के भावों को प्राप्त करना और कराना । हमें याद रखना चाहिए कि सविनय भंग में 'सविनय' पद प्रधान है । विनयशीलता के अभाव में कानून-भंग शुरू करना अपने पैरों पर आप कुल्हाडी मारना है ।

'नवजीवन' के नवीन सम्पादक

'यंग इंडिया' के राजद्रोही मुकदमे के शिकार हो जाने वाले प्रकाशक और मुद्रक की स्थान-पूर्ति के लिए महात्मा गांधी के तीसरे पुत्र भाई रामदास गांधी आगे बढे हैं । 'हिन्दी नवजीवन' के भी प्रकाशक और मुद्रक का स्थान उन्होंने ग्रहण किया है तथा 'नवजीवन' के सम्पादन की भी जिम्मेवारी आपने अपने ऊपर ली है । देश की सेवा के लिए सारे कुटुम्ब के सर्वथा अर्पण होजाने का पहला उदाहरण भारत को महात्माजी ने ही दिया है और आज हम अलीभाई, देशबन्धु, नेहरू आदि परिवारों को देश के लिए सर्वस्व बलिदान करते हुए देख रहे हैं । भाई रामदास भारत का स्वराज्य-योग सुनकर आफ्रिका से यहां आये और थोडे ही दिनों में उन्होंने इस गुरुतर भार को अपने सिर पर उठा लिया । अपने सम्पादित 'नवजीवन' के पहले ही अंक में उन्होंने अपने आत्मतेज को इस प्रकार प्रकट किया है—

'नवजीवन' 'यंग इंडिया' और 'हिन्दी नवजीवन' ये एक ही कले की तीन टहनियां हैं । एक पर यदि चोट पहुंचाई जाय तो तीनों पर उसका असर होता है । सरकार ने इस कले को काट डालने का प्रयत्न दो बार किया; पर उसका असर उलटा कलम करने जैसा हुआ । सरकार के द्वारा किये गये घावों से यह कला सूखने वाला नहीं, उलटा दिन दिन फैलेगा ।

जिस झरने से इस कले को जीवन मिलता था वह अभी दूर है और उससे इस जीवन की कमी तो बराबर खटकती ही है । जिसमें इस कले की निगहबानी करने वाले चार होशियार मालो भी छूटी पर चले गये । ऐसी अवस्था में इस कले की रक्षा करने का भार मैंने अपने ऊपर लिया है ।

एक दृष्टि से यह मेरी धृष्टता हो सकती है, पर दूसरी दृष्टि से यह मेरा पवित्र कर्तव्य है । ऐसे कितने ही युवक भाई गुजरात में हैं जो मेरा भार हलका कर सकते हैं । इससे निश्चिन्त हो कर मैंने इस काम को हाथ में लिया है । मैं 'नवजीवन' के पाठकों की सहानुभूति और सहायता की आशा रखता हूं ।

जिन सिद्धान्तों की छाया फैलाने के लिए 'नवजीवन' के वृक्ष की उत्पत्ति हुई है उनपर सोलहों आना दृढ रहने की शक्ति परमात्मा हमें दें । यही परमात्मा से मेरी प्रार्थना है ।"

व्यापारियों की कठिनाइयां

मध्यप्रान्त से एक व्यापारी भाई दीनता के साथ लिखते हैं—

"आज मैं अपनी दुःखमय स्थिति के विषय में कुछ पूछना चाहता हूं । आशा है, आप मुझे उचित उत्तर दे कर सन्तुष्ट करेंगे ।

पहले मैं विदेशी कपडे का व्यवसाय करता था । मेरी वार्षिक आमदनी करीब तीन हजार रुपये थी । विदेशी कपडा कलकत्ता और बम्बई से मंगाया करता था । माल बिकता जाता था और धीरे धीरे आढती के पास रुपया भेजता जाता था ।

जब से असहयोग आरम्भ हुआ तब से मैंने अपना पुराना विदेशी माल निकाल करना और नया न मुंगवाना ठान लिया । अब मेरे पास अधिकांश माल स्वदेशी मिल का तथा खद्दर है ।

यह स्टेट है, इसलिए यहां देशी कपडे का अधिक प्रचार नहीं है इसलिए दो चार दिन में कभी कभी पांच दस रुपये का माल बिक जाता है । तिस पर भी तुर्रा यह कि विदेशी कपडे में लाभ अधिक रहता है और स्वदेशी में कम ।

मेरे पास अपनी निजी पूंजी भी नहीं है । इसलिए मैं देशी माल बहुतायत से नहीं रख सकता । चौथाई मूल्य पेशगी भेजने से देशी माल आता है, सो भी वी. पी. से; तिस पर भी यह भय रहता है कि कहीं वह पेशगी रु. हजम न कर बैठे ! और सब से अधिक दिक्कत तो यह है कि एकही जगह से सब किस्म का स्वदेशी माल नहीं मिलता; किसी किस्म का कहीं मिलता है और किसी किस्म का कहीं ! माल का आर्डर देने के एक डेढ मह बाद माल आता है । सो भी आर्डर के मुताबिक नहीं कोई टुकडा कितने गज का और कोई टुकडा कितने गज का । महसूल वगैरह लगा कर खादी मंहगी भी बहुत पडती है । ग्राहकगण दाम पूछ कर कहते हैं बडी, और इतनी मंहगी !

बहुत दिनों से मेरी आर्थिक स्थिति भी बहुत नाजुक हो गई है और मैं कर्जदार हूं । यदि मैं अकेला फक्कडराम होता तो किसी तरह गुजर बसर कर लेता लेकिन मेरे पीछे तो दस कुटुम्बी हैं ।

इस शहर में कपडे की करीब २५ दुकानें हैं । सब दुकानें विदेशी कपडे की हैं । विदेशी कपडा सस्ता और भडकदार होने की वजह से प्रत्येक दुकानदार पचास-साठ रु० का माल रोज बेच लेता है और मैं हाथ पर हाथ रखे बैठा रहता हूं । यदि ८-१० दुकानें भी स्वदेशी कपडे की होती तो भी दूसरी बात थी !

अब मेरी गति सांप-छछूंदर की सी हो रही है । कारण, एक तो देश का प्रश्न सामने है, और दूसरे इस पापी पेट का ! तीसरे लोगों का मुझे देना है ! अब मैं असमंजस में पड गया हूं और मेरी अक्ल काम नहीं करती । बहुतसे महाशय मुझे स्वदेशी-विदेशी

दोनों किस्म के कपड़े रखने के लिए कहते हैं। उनका कहना है कि पहले ग्राहक को स्वदेशी कपड़ा देने की कोशिश करो यदि वह न माने तो विवश हो कर विदेशी कपड़ा दे दो।

इन सब बातों का ख्याल रखते हुए आप ठीक उत्तर दीजिए कि मुझे इस समय क्या करना उचित है, और मेरा क्या कर्तव्य है?"

"पापी पेट!"

पत्र को पढ़ कर लेखक के साथ सहानुभूति उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। देशकी पुकार पर ध्यान देकर उन्होंने स्वदेशी कपड़ा रखने का प्रबन्ध किया, इससे उनका देश-प्रेम और धर्म-भाव प्रकट ही है। पर मुश्किल तो यह है कि दुनिया में लोग सब से बड़ी कठिनाई 'पापी पेट' की बताया करते हैं। पेट बेचारा कभी नहीं कहता कि तुम मेरे लिए अन्याय करो, पाप करो, अधर्म करो। जो कुछ पेट में पहुंच जाता है उसीको दुखिया चुपचाप ग्रहण कर लेता है और उसका सारा रस शरीर के सब अंगों को बांट देता है। वह आपसे बढ़िया और कीमती कपड़े भी नहीं चाहता। अगर हम हलवा-पूरी उड़ाते हैं तो जीभ के स्वाद के लिए और रेशमी और जरी के कपड़े पहनते हैं तो अपने देह को सजाने के लिए, दूसरे की आंखों को रिझाने के लिए। वास्तव में अन्न-वस्त्र की जरूरत शरीर की भीतरी और बाहरी रक्षा भर के लिए है। पर हमने स्वाद और बनावटी सुन्दरता के मोह में फंस कर अपने को जीभ और शरीर का इतना गुलाम बना लिया है कि देश और धर्म के नाम पर जरा भी कठिनाई, जरा ही कष्ट और जरा ही असुविधा सहन नहीं होती। यह फजूलखर्ची यदि कम कर दी जाय तो बताइए एक आदमी के खर्च के लिए भारत जैसे सस्ते देश में कितना रुपया लग सकता है? उसे इस 'पेट पापी' की चिन्ता भला कभी हो सकती है?

'सामाजिक प्रतिष्ठा'

दूसरे, 'सामाजिक प्रतिष्ठा' का भ्रम भी हम पर बुरी तरह सवार है। जात-बिरादरी में हम इज्जतदार माने जाते हैं; इसलिए हमें एक खास तरह से खाना, पहनना और खर्चीला जीवन व्यतीत करना चाहिए। इस गलत ख्याल ने तो पढ़े-लिखे बाबुओं को भी खूब पकड़ रक्खा है। पर असल देखा जाय तो समाज में प्रतिष्ठा हमारे सद्गुणों और नेक कामों से, हमारे त्याग, कर्तव्य-पालन और धर्म-प्रेम के कारण होती है। हमारे बढ़िया खान-पान, भड़कीली वेश-भूषा और ऐशो-आराम में रुपया बहाने से नहीं। भीतरी तत्वों को छोड़ कर हम बाहरी आडम्बर के चक्कर में पड़ गये हैं। इसीसे हमें थोड़े में धर्म के साथ गुजर करना कठिन मालूम होने लगा है। हमारी धर्म-बुद्धि इतनी मलिन हो गई है कि पेट और सामाजिक प्रतिष्ठा की दुहाई दे कर हम अन्याय और पाप की कमाई से पैसा पैदा करने में जरा भी नहीं सकुचाते। यदि धर्म श्रेष्ठ और पूज्य है, यदि धर्म ही समाज और देश का मूल और ध्येय है, यदि हमारे हृदय में धर्म का सच्चा प्रेम और तेज जाग्रत है तो न 'पापी पेट,' न 'मोटा शरीर' और न 'समाज की इज्जत' हमारे धर्म-पालन में रुकावट डाल सकती है। धर्म-निष्ठ मनुष्य के दृढ़ निश्चय के आगे संसार की कोई भी बाधक शक्ति नहीं ठहर सकती।

बड़ा कुटुम्ब

कुटुम्बियों को अपना आश्रित समझना उनका भारी अपमान करना है। जबतक हम अपने माता-पिता, पत्नी, भाई, आदि को अपना आश्रित मानते रहेंगे और उन्हें भी ऐसा समझने देते रहेंगे तबतक हम खुद स्वराज्य के, दूसरे के आश्रय से निकलने के, अधिकारी अपनेको किस मुंह से कह सकते हैं? बात यह है कि हमारी गुलामी और थोदे-पन ने हमारे दिमाग में यह झूठी कल्पना भर रक्खी है कि हम अपने कुटुम्बियों के आश्रयदाता हैं और कुटुम्बियों को भी उसे अपना आश्रयदाता मानने में बुराई और अपमान के बदले अभिमान मालूम होता है। इस अन्धेर का कुछ ठिकाना है? यदि हम केवल धर्म और शरीर-रक्षा के तत्व को ध्यान में रक्खें तो गुजर की चिन्ता किसी भारतवासी को न करनी पड़े। वह बहुत थोड़े परिश्रम में उतनी रकम पैदा कर सकता है। घर की स्त्रियां सीना-पिरोना, कसीदा, सूत कातना, कपड़े बुनना आदि कामों को बड़े मजे में कर सकती हैं। पुरुष धुनकना, पूनी बनाना, खादी बेचना, कपास आदि की खेती करना तथा दूसरे व्यवसाय जो धर्म और देश की आज्ञा के विरुद्ध न हों, कर के अपना पेट पाल सकते हैं। छोटे बालक और बालिका तक कुछ घंटे रोज सूत कातकर थोड़ी बहुत मदद दे सकते हैं। ये कोरी कल्पना की बातें नहीं हैं, न यह असम्भवार्य ही है। झूठी शान, मिथ्या अभिमान और अपने अज्ञान को छोड़ कर अपनी जाति, देश, और धर्म के सच्चे कल्याण की दृष्टि से देखें तो इससे बढ़कर जीवन-निर्वाह का पवित्र साधन दूसरा न दिखाई दे। परमात्मा हमको ऐसी बुद्धि दे।

मुनाफे का सवाल

धर्म के लिए जीवन है, जीवन के लिए धर्म नहीं है। अर्थात् धर्म के लिए जीवन का उपयोग करना चाहिए; जीवन की रक्षा के लिए धर्म को न घसीटना चाहिए। क्योंकि "धर्मो रक्षति रक्षितः"। धर्म की रक्षा से जीवन की रक्षा अपने आप हो जाती है। धर्म की रक्षा ही जीवन की रक्षा है। धर्ममय जीवन ही जीवन है।

"न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः"

भारतवासी प्रत्येक काम धर्म की रक्षा के लिए धर्म के पालन के लिए, करते हैं। विद्वान विद्या-बल और ज्ञान-बल द्वारा, बलाढ्य अपने शरीर-बल के द्वारा, व्यवसायी लोग अपने धन-बल के द्वारा और शेष लोग सेवा-बल के द्वारा धर्म की सेवा या रक्षा करते हैं। वे अधर्म के लिए अपने इन बलों का उपयोग कर ही नहीं सकते। क्योंकि उससे सारी मनुष्यजाति की हानि है, अधःपात है। अतएव कोई भी भारतीय व्यापारी अधर्म कर के मुनाफा नहीं कमा सकता। जो ऐसा करते हैं वे खुद अपने को अपनी जाति को, अपने देश को और सारे मनुष्य-समाज को पतन की राह ले जाते हैं। विदेशी कपड़ा बेंच कर हम एक ओर तो सज्जनता के साथ सहयोग नहीं करते हैं और दूसरी ओर दुर्जनता के साथ असहयोग नहीं करते हैं। नेकी के साथ सहयोग और बदी के साथ असहयोग मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है। खादी का प्रचार करना, उसीका व्यवसाय करना, लाखों भूखे-नंगे भारतवासियों को भोजन और वस्त्र देना है। यह नेकी के साथ सहयोग करना है। विदेशी कपड़ा मंगाकर बेचना, विदेशी बनियों का घर भरना है, जो स्वार्थवश हमें चूसने में किसी तरह की कोर-कसर नहीं रखते हैं। यह बुराई के साथ सहयोग है। यह अधर्म है। अधर्म करके कमाया धन और मुनाफा किस काम का? ऐसा धन और उससे सुख जीवन क्या मनुष्य का चिरकाल तक साथ दे सकता है? नहीं; बल्कि वह तो धर्मनिष्ठा को और आत्मतेज को घुन की तरह भीतर ही भीतर खोखला कर देता है। वह आत्मतीन का पाप है। अतएव यदि विदेशी कपड़े में अधिक मुनाफा होता हो तो भी वह त्याग और उपेक्षा करने के योग्य है। दूसरे,

व्यापारियों को उससे अधिक मुनाफा कमाते हुए देख कर हमारे मन में ईर्ष्या नहीं, बल्कि उनके अज्ञान पर दया उत्पन्न होनी चाहिए। उन्हें सन्मार्ग पर लाने का हमें प्रयत्न करना चाहिए। व्यापारी-समाज से जबतक धर्म-भाव लोप नहीं हो गया है तबतक देश को उससे पूरी पूरी आशा है। हां यह सच है कि पश्चिमी व्यापारियों की देखादेखी वे भी धन के पीछे गुलाम होते जा रहे हैं। भोग-विलास भी इसमें उनकी खूब मदद कर रहा है। पर देश में अब सादगी और धर्म के युग का श्रीगणेश हो गया है। और वह अपने प्रखर प्रताप से इस मलिनता को नष्ट किये बिना न रहेगा।

धर्म और अधर्म साथ साथ ?

पहले स्वदेशी कपड़ा बता कर पीछे विदेशी कपड़ा ग्राहक को बताना देश और धर्म दोनों के लिए हितकर नहीं। इससे धर्म का तो पालन नहीं होता, न देश की आवश्यकता की ही पूर्ति होती है। हां, हम चालाकी से देश और ईश्वर को ठगने का प्रयत्न करके अपने दिल को भले ही समझा लें। इससे पाखण्ड की वृद्धि होगी। धर्म और अधर्म एकसाथ नहीं जा सकते। धर्म और अधर्म में समझौता नहीं हो सकता। यह सलाह खतरनाक है। धर्म की ओट में अधर्म करना सीखने का श्रीगणेश इसी तरह होता है। यह बुरा मोह है। धर्मनिष्ठ मनुष्य इस 'दुरंगी चाल' को कभी पसन्द नहीं करता।

धर्म और धन

धर्म और धन दोनों एक दूसरे के कुछ ही हद तक सहायक हैं। उसके बाद दोनों एक दूसरे के शत्रु हैं। धर्म-प्रेमी को धन का मोह छोड़े बिना गुजर नहीं। धन-प्रेमी को धर्म से नाता तोड़े बिना दूसरी गति नहीं। धर्म का अन्तिम फल है सुख-शान्ति। धन का परिणाम है अशान्ति, कलह, रोग, और अन्त को पतन। यह हमारे रोजाना अनुभव की बात है। धन का लोभ बाहर से अफीम के फूल की तरह सुन्दर और भीतर से उसीके नशे की तरह उन्मत्त कर देने वाला है। यदि विलायती कपड़ा ऊपर से भड़कीला है, सस्ता है, तो क्या इसीलिए उसका खरीदना और व्यवसाय करना हमारे लिए आवश्यक है? पर वह स्वदेशी कपड़े के मुकाबले में चलता के दिन है? 'सस्ता सदा महंगा' होता है। फिर उसमें हमारी गुलामी के कीड़े, हमारी परावलम्बिता की करुणो त्पादक कहानी जो भरी हुई है! विदेशी कपड़ा पहन कर खुश होने, उसके धन पर फूले न समाने में उतनी ही शोभा और कीर्ति है जितनी कि दूसरे के धन पर मूंछ मरोड़ने और दूसरे के दिये टुकड़ों पर पेट भरने में है।

अधिक बिक्री धर्म का लक्षण नहीं है। यदि शराब और मांस की बिक्री अधिक होती हो तो क्या कोई हिन्दू व्यापारी उसके लिए तैयार होगा? शराब और मांस की निषिद्धता हमारे रगों-रेशे में भरी हुई है और विदेशी-कपड़े की भयंकरता अभी हम अच्छी तरह समझ नहीं पाये हैं। बस, दोनों में यही फर्क है। विदेशी कपड़े का व्यवसाय मानों व्यभिचार का व्यवसाय है। विदेशी कपड़े का व्यवसाय करना अपनी बहू-बेटियों की लाज गंवाना है। विदेशी कपड़े का रोजगार करना अपने भाई-बेटों के गले पर छुरी फेरना है। विदेशी कपड़े की कमाई पर पेट भरना अपने देश और धर्म की बिक्री पर पेट भरना है। इस समय तो विदेशी कपड़ा बेचना मांस और शराब बेचने से भी अधिक निषिद्ध है। क्यों कि वह तो हमारे भाई-बेटे और बहनों का मांस और खून बेचने के बराबर है।

नम्र सलाह

अतएव हम तो इन व्यापारी भाई को और इनके द्वारा समस्त व्यापारी-समाज को यही सलाह दे सकते हैं कि पहले तो वे अपने फजूल खर्चों को कम करें। सादगी की आदत डालें। थोड़े, पर धर्म के साथ मिले, मुनाफे पर सन्तुष्ट रहें। लोभ के लिए धर्म और देश का बलिदान न करें। छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सब सूत कातने, कपड़ा बुनने, खादी का प्रचार करने और एक मात्र उसीका व्यवसाय करने में लग जायं। दूसरे पर अवलम्बित रहना और दूसरों को अवलम्बित रखना पाप समझें। यदि बड़े शहर या कस्बे में धर्म-पूर्वक गुजर न होती हो तो देहात में चले जायं। कम खर्च में निश्चिन्त होकर धर्म-पूर्वक जीवन-यापन करने के लिए शहरों की अपेक्षा गांवों की परिस्थिति अधिक अनुकूल होती है। भीमकाय शहर तो मानों माया का बाजार हैं। नरक में जाने की समस्त सामग्री यदि किसी को एक जगह एकत्र पाना हो तो संसार के किसी भी बड़े शहर में चला जाय। भारतवर्ष तो कृषि-प्रधान देश है। व्यापार-उद्योग उसका सहायक व्यवसाय है। कृषि-जीवी और सादगी-पसन्द लोगों के लिए देहात ही उपयोगी हैं। भारत की शोभा उसके शहरों से नहीं है। भारत के जीवनाधार तो उसके साढ़े सात लाख देहात हैं। साढ़े सात सौ शहर तो मानों उसका खून बहा के जाने वाले नल हैं।

देहात में जाकर यदि ये खादी बनाने और बेचने का उद्योग आरम्भ करें तो ये देश और धर्म दोनों की सेवा करेंगे। यदि उनके हृदय में देश और धर्म का प्रेम जीवित और जाग्रत होगा, और हम समझते हैं कि है, तो उन्हें हमारी यह नम्र सूचना अवश्य पसन्द होगी। हमें इन व्यापारी भाई के साथ हमदर्दी है। हम उनकी कठिनाइयों को खूब समझते हैं। और इसीलिए हमने उनकी बीमारी का मूल कारण खोज कर उसका रामबाण उपाय बताया है। यदि निश्चय और धीरज के साथ वे उपयोग करेंगे तो अवश्य फायदा उठावेंगे और सारे व्यापारी समाज के लिए उदाहरण-रूप हो जायंगे।

एक सूचना

भिन्न भिन्न जगहों से माल मंगाने में उन्होंने जिन असुविधाओं का वर्णन किया है उनको दूर करने का एक साधन इस समय है। यदि वे अपने प्रान्त की महासभा-समिति के द्वारा समय पर रुपये की अदाई की गेरंटी दिला दें तो गुजरात-प्रान्तीय समिति (अहमदाबाद) के खादी-भाण्डार से उन्हें उधार पर खादी मिल सकती है। हमें आशा है कि वे इस प्रश्न को हल देखेंगे।

आन्ध्र की खादी से सावधान

'नवजीवन' में एक विश्वसनीय सज्जन अपने प्रत्यक्ष अनुभव के बल पर लिखते हैं कि आन्ध्र देश की जो खादी इस समय भारत में चारों ओर फैलती दिखाई दे रही है वह सब शुद्ध स्वदेशी अर्थात् हाथ-कती-बुनी नहीं है। वहां के व्यापारी देशी और विदेशी मिलों के सूत का उपयोग भी करते हैं और एक सूत हाथ-कता और एक मिल-कता भी लगाते हैं। सो खरीदारों को सावधान हो जाना चाहिए। जो व्यापारी अपने देश और धर्म की आज्ञाओं के खिलाफ ऐसा पापाचरण करते हैं उनकी स्वार्थान्धता पर हमें दया आनी चाहिए। परमात्मा उन्हें सुबुद्धि दें।

लुधियाना (पंजाब) से "युगान्तर" नाम का एक असहयोगवादी हिन्दी साप्ताहिक पत्र शीघ्र ही इस नाम के साथ निकलने वाला है।

मालवीयजी द्वारा आज्ञा-भंग

खबर है कि गोरखपुर जिले में दौरा करते हुए भारत-भूषण मालवीयजी ने मजिस्ट्रेटों की आज्ञा-भंग करके ५ भाषण किये !

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, आषाढ वदि ३०, सं. १९८९

बढ़ते चलो !

सचमुच इस समय हरएक प्रान्त इसी प्रयत्न में लगा हुआ दिखाई दे रहा है कि वह सविनय-भंग समिति को, जो शीघ्र ही देश की स्थिति का निरीक्षण-परीक्षण करने के लिए निकलने वाली है, अपनी कार्य-क्षमता का पूरा पूरा परिचय दे सके। यद्यपि समिति का प्रधान उद्देश तो यही है कि हरएक प्रान्त में जाकर वह देखे कि वहां सविनय-भंग किस किस रूप में शुरू किया जा सकता है, तथापि साथ ही वह यह भी देखेगी कि उन उन प्रान्तों ने विधायक कार्य-क्रम में कहां तक कदम बढ़ाया है। यह तो निर्विवाद है कि पिछले साल की अपेक्षा देश की स्थिति अब कहीं भिन्न है। देश ने जिस परिस्थिति में बेजवाड़ा-कार्यक्रम को स्वीकार करके पूरा किया था वह आज की परिस्थिति से बहुत भिन्न है, जिसमें देश को ब.र.ड.लो का कार्य-क्रम हाथ में लेकर पूरा करना है।

उस समय चारों ओर जनता में उत्साह की लहर फैल रही थी। महात्माजी जैसे महान् पुरुष अपनी अविरत वाणी के द्वारा देश को तेजी से मंजिल दर मंजिल आगे बढ़ाते ले जा रहे थे। पर हमें यह न समझना चाहिए कि ऐसा राष्ट्रीय पुनःसंगठन और खास कर वह भी एक ऐसी ताकतवर विदेशी सरकार के खिलाफ जिसने यह अच्छी तरह समझ रक्खा है कि वह हमारे स्वार्थ पर कुठाराघात करेगा, समान गति से चल सकेगा। हमने जिन उपायों का अवलंबन किया है उनमें न तो कोई छिपाने की बात है और न वह राजनैतिक धूर्तों की चाल ही है। हमने तो जान-बूझ कर इस आन्दोलन को हर प्रकार के हिंसा-भावों से अलग रक्खा है। इसलिए हमें तो अपने नेता के नेतृत्व से उसी क्षण वंचित होने को तैयार रहना चाहिए जिस क्षण हमारा प्रतिद्वंद्वी यह सोचे कि अब इन्हें इस प्रकार आगे कदम न बढ़ाने देना चाहिए और न इनके नेता को स्वतंत्र रखना चाहिए। हमारे आन्दोलन की विशेषता के कारण यह स्थिति हमारे लिए कर्तव्य-रूप है। हिंसात्मक या राजनैतिक कुटिल चालों वाले युद्ध में हमारा कर्तव्य जरूर भिन्न होता। उसमें हम अपनी शक्ति भर यह प्रयत्न कर सकते थे कि शत्रु हमारे सेना-नायक पर कहीं वार न कर दे या उसे कैदी न बना ले। पर नैतिक-शास्त्रों के युद्ध में तो सेना-नायक की हम इस प्रकार किसी तरह रक्षा नहीं कर सकते। इसीलिए आज महात्मा जी हमारे बीच नहीं दिखाई देते। वे जेल में हैं और हमें इसी हालत में देश में संगठन का काम शुरू रखना है। और, अगर हम अपने आन्दोलन के सिद्धान्त अच्छी तरह समझ चुके हों तो हमें इस परिस्थिति पर जरा भी दुःख न होगा। महात्माजी आज यदि कार्य-समिति में होते तो शायद ही देश को इतना आत्म-ज्ञान होता। इसलिए आज हमारे आन्दोलन की सफलता के लिए आजाद गांधी की अपेक्षा कारावास-स्थित गांधी ही अधिक बलशाली हैं। वहां बैठ कर ही वे हमें अधिक स्वावलंबी बना सकते हैं।

हमारी विजय तो सिर्फ दो बातों पर अवलम्बित है—एक तो इस आन्दोलन में हमारी श्रद्धा और दूसरे त्याग। कल्पना-वैचित्र्य, बुद्धि-वाद अथवा ऐसी बातों में जिन्हें बहुत थोड़े लोग समझ सकें सफलता नहीं है। अगर ऐसा होता तो अपने सेना-नायक हमारे बीच से चले जाने पर हमें बड़ा दुःख होता। पर जबतक हमारा युद्ध खुल्लमखुल्ला अहिंसामय और कष्ट-सहन पर अवलम्बित है तबतक तो हमें सीधे निर्भयता-पूर्वक तथा बिना किसी हिचपिचाहट के चले चलना चाहिए, फिर सेना-नायक हमारे बीच हो या न हो। क्योंकि उसने रास्ता तो हमें पहले ही से बता रक्खा है। हमें तो सिर्फ उस मार्ग पर आगे कदम बढ़ाते जाना है। सत्य और अहिंसा हमारे ऐसे पथ-दर्शक हैं जिन्हें हमसे कोई कभी छीन नहीं सकता। अगर हम केवल उनके ही बताये रास्ते पर चले जायं तो हमारी विजय निश्चित है। हां, त्याग जरूर एक कठिन बात है। पर उसके लिए कोई भारी बुद्धि-कौशल की जरूरत नहीं। वह तो केवल निश्चय पर अवलम्बित है। उसके होते ही हमारे भोले-भाई भी अपने कार्य से बड़े बड़े बुद्धिमानों को चकित कर सकते हैं।

इस बार की चढ़ाई के समय अधिक शोरोगुल न मचेगा। अब हम उथले पानी को पीछे छोड़कर गहरे पानी में चल रहे हैं। इसलिए अब उतनी आवाज नहीं हो सकती। पर हमारी शान्ति से किसीको यह न समझना चाहिए कि हम आगे बढ़ते ही नहीं हैं।

यह तो निश्चित है कि इस बार सरकार राष्ट्रीय संगठन में कदम कदम पर विघ्न-बाधायें उपस्थित करेगी, जैसे कि वह अभीतक करती आयी है। तथापि हमें निर्भयतापूर्वक बढ़ते ही चलना चाहिए। शायद हमें स्वराज्य की शानदार इमारत खड़ी करने में हरएक ईंट के साथ कष्ट-सहन का चूना लगाना पड़े। पर इससे तो उसकी मजबूती और भी बढ़ेगी।

अब हमारे साथ उन लोगों की हमदर्दी न रहेगी जो हमारी सेना के पीछे पीछे दल बांध कर घूमा करते थे और जयजयकार मचाया करते थे। हां, उससे उत्साह तो कभी कभी मिलता था पर कई बार वह हमारी प्रगति में बुरी तरह से बाधक भी हुई है। अब तो हमारी अकेली सेना ही चढ़ाई करेगी। आदमी भी थोड़े ही रहेंगे। शेष राष्ट्र तो दूर से ही, जहांसे उसने पहले युद्धनाद किया था, चुपचाप गंभीरतापूर्वक देखता रहेगा। उसके चुपचाप खड़े रहने से क्या हुआ? इस युद्ध के प्रति उसकी सहानुभूति तो उतनी ही है। अब तो अगर हमें अपने सिद्धान्त की सच्चाई में पूरा पूरा विश्वास हो तो हमें दिखाई देगा कि हमारे पीछे खड़े शांत-राष्ट्र की शक्ति, सेना के पीछे घूमनेवाले, शोरगुल मचाने वाले उन टोलों की शक्ति से कहीं अधिक है।

आजतक हम केवल उन राजनैतिक आन्दोलनों में ही लगे हुए थे, जिनमें अधिकतर राजनैतिक चालों और ऊपरी कौशल से ही काम किया जाता रहा था। इसलिए हममें से अगर कोई हमारी इस परिस्थिति को भलीभांति न समझ सके तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस युद्ध में राजनैतिक चालों के लिए तो स्थान रहे नहीं। हमारे युद्ध का तो मूल-मंत्र है-त्याग, केवल त्याग! महात्माजी के जेल चले जाने पर हम अपना बहुत कुछ समय वाद-विवाद में गंवा चुके। हमें जो कुछ करना था वह तो

सामने ही रक्खा रहा और अभी तक यही विचार होता रहा कि यह अच्छा है और यह बुरा है। जब बेजवाड़ा कार्यक्रम देश के सामने रक्खा गया तब तो किसी ने ऐसा नहीं किया था। हमारा यह कार्यक्रम भी हमारी उन्नति के लिए उतना ही आवश्यक है। और इस पर भी अब अधिक वाद-विवाद करने की जरूरत नहीं है। हां, स्वावलंबन का मार्ग छोड़ कर अब यदि परावलंबन का मार्ग ही पकड़ना हो तो बात दूसरी है।

यह विधायक कार्यक्रम, जो इतनी हिचकिचाहट और वादविवाद का विषय हो रहा है, आखिर है क्या? यही न कि हमें महासभा के सदस्य बनाने के लिए कहा जाता है? भाई, जबतक महासभा रहेगी तबतक तो इस आवश्यक कार्य से हम अपना पीछा नहीं छुड़ा सकते। हमें उन प्रतिनिधियों को चुनने के लिए जो अगली महासभा में जायंगे मतदाता तो बनाना ही होंगे। उनके बिना जिला तथा प्रान्तीय महासभा-समितियों का भी काम कैसे चल सकता है, तथा अगले साल के लिए नई नई समितियां भी कैसे स्थापित हो सकती हैं? किसी भी कार्यक्रम को कार्य में परिणत करने के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध कार्यकर्ताओं की जरूरत अवश्य ही रहती है। इसलिए हमें अब भी समय नष्ट न करना चाहिए।

और हमें क्या कहा जाता है? यही न कि, तिलक-स्वराज्य-कोष में धन-सहायता दो! क्या यह अनुचित और अनावश्यक है? भला, इसके बिना हम स्वराज्य-संग्राम में जुझ ही किस प्रकार सकते हैं? यह सच है कि आगे चलकर अंत में हमारा युद्ध ऐसा स्वरूप धारण कर सकता है जब हमें इस प्रकार धन की सहायता के लिए न फिरना होगा। पर अभी तो हम उस स्थिति से दूर ही हैं न? इसलिए इस विषय में भी दो मत नहीं हो सकते। महासमिति के पास जितना धन था, सब खादी-प्रचार के लिए दे दिया गया। अब नये काम शुरू करने के लिए तो धन की आवश्यकता होना स्वाभाविक ही है। जो बचा था वह बम्बई-समिति के द्वारा काम में ले लिया गया; कुछ तो खुद बम्बई की आवश्यकताओं के लिए रख छोड़ा है और शेष खादी-विभाग को दे दिया गया। संहार और रचना दोनों के लिए धन की तो जरूरत हुई है। इस समय जनता को यह निश्चय कर लेना चाहिए की यह स्वाधीनता का आन्दोलन महात्माजी के रास्ते चलाया जाय या सरकार के? अगर महात्मा गांधी का बताया मार्ग जनता की इच्छा का सच्चा प्रतिनिधि हो, तो धनी और गरीब सब को तिलक-स्वराज्य-कोष में धन-सहायता देनी चाहिए। हां, जो दैवी चमत्कारों की राह देखते हों तथा जो कुदरत को अभीतक अपना काम पहले की तरह ही करते हुए देखकर घबरा गये हों उन्हें वैसा ही छोड़ देना चाहिए। पर जो लोग यह मानते हों कि स्वाधीनता के लिए तो खुद हमीं को लड़ना होगा वह किसी दैवी चमत्कार के बल पर आसमान से टपकने वाली चीज नहीं है, उन्हें तो अपनी हैसियत के अनुसार स्वराज्य के लिए अवश्य सहायता देनी चाहिए। मनुष्य और धन, हमारे लिए अत्यंत आवश्यक हैं। विधायक कार्यक्रम में और क्या क्या बातें बाकी रही हैं! भिन्न भिन्न जातियों, और अछूतों में भी प्रेम तथा एकता, खादी और अहिंसा। ये विषय तो वादग्रस्त हुए नहीं, और उनमें तो हम तेजी से आगे बढ़ भी रहे हैं। इसलिए हमें अब व्यर्थ के वाद-विवाद में समय और शक्ति को फजूल न गवांना चाहिए। अब तो हमें यही उचित है कि इसे अपने काम में लगावें और बस, अटल निश्चय के साथ आगे बढ़ते चलें।

(यंग इंडिया) सी. राजगोपालाचारी

सत्याग्रह या हत्याग्रह?

दक्षिण आफ्रिका के प्रवासी भारतीयों के संग्राम में भारतवर्ष को एक नवीन शब्द दिया है—सत्याग्रह। इसके आविष्कर्ता हैं—महात्मा गांधी। रौलट कानून के सम्बन्ध में उठाये आन्दोलन से तो यह शब्द भारत में भी खूब प्रचलित होने लगा और इस अ-सहयोग आन्दोलन में तो सत्याग्रह-शब्द बच्चे बच्चे की जबान पर हो गया। ज्यों ज्यों इस स्वराज्य-संग्राम का रंग जमता जाता है त्यों त्यों सत्याग्रह के सिद्धान्त की ओर विचारक लोगों की दृष्टि खिंचती जाती है। अपनी अपनी भावना के अनुसार लोग उसका अर्थ लगाने का प्रयत्न करने लगे हैं। जून की "प्रभा" में "सत्याग्रह की स्वतन्त्र मीमांसा" नामक लेख के द्वारा प्रो० इन्द्र वेदालंकार ने अपनी धारणा के अनुसार सत्याग्रह के अर्थ करने का प्रयत्न किया है। उनकी मीमांसा महात्मा गांधी की मीमांसा से बिल्कुल भिन्न है। उससे देश में गलतफहमी फैलने की सम्भावना है। अतएव यह आवश्यक है कि हम हिन्दी-संसार के सामने महात्माजी के सत्याग्रह का अर्थ फिर से स्पष्ट कर के रक्खें और यह बतावें कि महाशय इन्द्र की मीमांसा कहांतक उससे भिन्न या विपरीत है।

विचार की सुविधा के लिए हम इन्द्रजी के लेख को दो भागों में बांटते हैं-पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। 'सत्याग्रह का शब्दार्थ' से लेकर 'विघ्न और बाधाएं' के अन्ततक पूर्वार्द्ध और 'निर्बल का सत्याग्रह' से लेकर लेख के अन्ततक उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में 'सत्याग्रह' 'भद्र अवज्ञा (Civil Dis-obedience)' 'निष्क्रिय प्रतिरोध (Passive Resistance)' की व्याख्या करते हुए तथा उनका परस्पर सम्बन्ध बताते हुए आप नीचे लिखे परिणाम पर पहुंचे हैं—

१—सत्य एक अभीष्ट वस्तु है।

२—सत्य पर दृढ़ता के साथ डटे रहने का नाम सत्याग्रह है। यह एक मानसिक स्थिति है।

३—इस स्थिति को तोड़ने के लिए जब कोई जबरदस्त शक्ति तैयार हो तब मनुष्य दो उपायों से इसकी रक्षा कर सकता है—

क—अशान्तिपूर्ण आज्ञाभंग

ख—शान्तिपूर्ण आज्ञाभंग

(४) जब विरोधिनी शक्ति अधिक बल पकड़े और उसे रोकने के लिए केवल सरल आज्ञा-भंग पर्याप्त न हो तब उस शक्ति का प्रतिरोध करना पड़ता है। यह प्रतिरोध भी दो प्रकार का हो सकता है—

क—सक्रिय प्रतिरोध

ख—निष्क्रिय प्रतिरोध

उत्तरार्द्ध में आपने 'निर्बल' के सत्याग्रह और 'सबल' के सत्याग्रह की विवेचना की है और अन्त में अपने सारे वक्तव्य का निचोड़ नीचे लिखे रूप में उपस्थित किया है—

(१) धर्म, सत्य, अधिकार, कर्तव्य, भलाई (Righteousness) यह सब आग्रह करने योग्य वस्तुएं हैं। सब धर्मों और आचार्यों ने कहा है कि दुःख सहकर भी इनकी रक्षा करनी चाहिए। इसी रक्षा के यत्न का नाम सत्याग्रह है।

(२) यदि अत्याचारी अत्यन्त प्रबल हो और उसके हृदय में मनुष्यता शेष हो, सत्याग्रही के दुःख उसकी शक्ति के मददगार रूप में खड़े हो जाने की आशा हो, तो निर्बल का सत्याग्रह करना उचित है। यह निर्बल का बल है। यह कमजोर की ताकत है। इसके नाम 'भद्र अवज्ञा' तथा 'निष्क्रिय प्रतिरोध' हैं।

(३) यदि सत्य की रक्षा करने वाले में पर्याप्त शक्ति है तो वह अपनी दण्ड-शक्ति से अत्याचारी का दमन कर सकता है। यह शास्त्रों के अनुकूल है और युक्ति-नियम से परिपुष्ट है। इसे असत्याग्रह नहीं कह सकते। हां, ऐसे सत्याग्रह करने से पूर्व यह निश्चय कर लेना आवश्यक है कि सफलता अवश्य होगी। अन्यथा व्यर्थ का जन-क्षय है।

(४) यदि किसी निर्बल को निश्चय हो जाय कि वे दो शर्तें विद्यमान हैं, जिनके होने पर शान्तिपूर्ण सत्याग्रह सफल हो सकता है, तो वह उसे प्रयोग में लावे। परन्तु यदि यह सिद्ध हो जाय कि वे शर्तें विद्यमान नहीं हैं तो उसका कर्तव्य है कि वह सबल होने की चेष्टा करे ताकि प्रतिरोधात्मक अशान्तिपूर्ण-सक्रिय सत्याग्रह कर के सत्य की रक्षा कर सके।"

पूर्वार्द्ध के परिणामों में इन्द्रजी ने सत्याग्रह के लिए आज्ञा-भंग और प्रतिरोध के दो भेद—अशान्तिपूर्ण और शान्तिपूर्ण तथा सक्रिय और निष्क्रिय किये हैं। ये महात्मा जी के सत्याग्रह के विपरीत हैं। इसी प्रकार उत्तरार्द्ध में जो सबल के सत्याग्रह और निर्बल के सत्याग्रह की विवेचना की है वह भी भ्रमोत्पादक है और महात्माजी के सत्याग्रह के विरुद्ध है। यदि सूक्ष्म और आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो सत्याग्रह शान्तिपूर्ण आज्ञा-भंग और निष्क्रिय प्रतिरोध के ही द्वारा किया जा सकता है। अशान्तिपूर्ण आज्ञा-भंग और सक्रिय प्रतिरोध के लिए सत्याग्रह में स्थान ही नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो सत्याग्रह अहिंसात्मक ही हो सकता है हिंसात्मक नहीं। जिसमें हिंसा का अवलम्बन किया जाय वह 'सत्याग्रह' नहीं, हमारे एक मित्र के शब्दों में 'हत्याग्रह' है।

अच्छा, तो अब यह देखें कि सत्याग्रह के साथ अहिंसा की इतनी घनिष्ठता—इतना अटूट सम्बन्ध—कैसे है? इन्द्र महाशय सत्य की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—जिस मनुष्य ने जिसे सत्य मान लिया है वही उसके लिए सत्य है। महात्माजी सत्य का लक्षण इस तरह करते हैं—निर्मल अन्तःकरण को जो सत्य प्रतीत हो वही उसके लिए सत्य है। इस पर दृढ़ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति होती है। दोनों की तुलना करने से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि इन्द्रजी की व्याख्या में 'अतिव्याप्ति' दोष है। इन्द्रजी की व्याख्या के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति सत्य-निर्णय का अधिकारी है और महात्माजी केवल निर्विकार हृदय वाले लोगों को ही यह अधिकार देते हैं। शुद्ध या निरपेक्ष सत्य तक पहुंचने के पहले जितने स्टेशनों पर मनुष्य ठहरता है वे सब सापेक्ष सत्य हैं। बुद्धि और हृदय की निर्मलता के बिना वह इन सापेक्ष सत्यों की खोज कैसे कर सकता है? विकार-हीनता जितनी ही अधिक होगी उतनी ही अधिक प्रगति उसकी एक के बाद दूसरे श्रेष्ठतर सापेक्ष सत्य के शोध और आग्रह में होगी। अन्त को अन्तःकरण के पूर्ण निर्मल होने पर वह शुद्ध या निरपेक्ष सत्य के ज्ञान का अधिकारी हो जाता है।

हृदय को निर्मल बनाने के लिए आत्मशुद्धि की आवश्यकता है। आत्मशुद्धि का पहला पाठ है राग-द्वेष से हीन होना। दूसरे शब्दों में मनुष्य-मात्र के प्रति मित्र-भाव या प्रेम-भाव रखना। यह अहिंसा-वृत्ति के द्वारा ही सम्भवनीय है। प्रेम और मित्रता तो अहिंसा-मूलक ही हो सकती है। प्रेम के राज्य में हिंसा कहां किया? दैवी सम्पत्ति में आसुरी सम्पत्ति के लिए स्थान कहां? इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि सत्य का ज्ञान अहिंसा के बिना नहीं हो सकता। सत्य का मूल अहिंसा है। इसीलिए सत्य को अहिंसा से पृथक् नहीं कर सकते। अहिंसा में चाहे सत्य न हो; पर सत्य की स्थिति अहिंसा के बिना सम्भवनीय नहीं। जितनी अहिंसा-वृत्ति अधिक, उतनी हृदय की निर्मलता अधिक और उतनी ही सत्य-ज्ञान की सम्भवनीयता अधिक। और जब तक सत्य का ज्ञान ही नहीं है तबतक उसका आग्रह कैसे और किसपर किया जा सकता है? यह आध्यात्मिक या तात्त्विक दृष्टि से सत्याग्रह के साथ अहिंसा की अभिन्नता की बात हुई।

अब व्यावहारिक दृष्टि से विचार कीजिए। शुद्ध या निरपेक्ष सत्य सबके लिए एक है। वहां किसी का मतभेद नहीं हो सकता। दो निश्चित बिन्दुओं में एक ही सरल रेखा हो सकती है। पर सापेक्ष सत्य अधिकार-भेद से भिन्न भिन्न हो सकते हैं। रामदत्त का सापेक्ष सत्य कृष्णचन्द्र के सापेक्ष सत्य से भिन्न हो सकता है। अपने अपने सत्य की रक्षा तो दोनों का धर्म है। अपने प्राप्त सत्य पर जबतक दोनों की श्रद्धा है तबतक उस पर जमे रहना दोनों के लिए कर्तव्य-रूप है। ऐसी भिन्नता या विरोध की अवस्था में दोनों एक दूसरे को अपने सत्य की प्रतीति कैसे करा सकते हैं? क्या एक दूसरे के साथ जबरदस्ती कर के? एक दूसरे पर आक्रमण और अत्याचार कर के? नहीं; अपने अपने सत्य का पालन करते हुए, उसके लिए स्वयं हर तरह के कष्ट-सहन करते हुए। यदि सत्य के साथ हमारा सच्चा प्रेम है, यदि सत्य ही हमारा अभीष्ट है, यदि अपने सत्य पर हमारी दृढ़ श्रद्धा है तो हम उसीपर अड़े रहेंगे; कठिन से कठिन अवसर पर भी अपनी सत्यनिष्ठा का परिचय उसे देंगे, उसे अपने सत्य से भ्रष्ट करने का प्रयत्न कभी न करेंगे। जब उसे हमारे सत्य का यकीन हो जायगा तब वह खुद ही उसे ग्रहण कर लेगा। सो यहां भी हिंसा से हमारा काम नहीं चल सकता। अहिंसा ही एक मात्र हमारी सहायक है। अहिंसा हमारा निष्क्रिय और कष्ट-सहन सक्रिय बल है।

यदि हम अपने पक्ष में सत्य और विपक्षी के पक्ष में असत्य मानते हों तब तो हमारी अर्थात् सत्य की विजय निश्चित ही है। क्योंकि विजय हमेशा सत्य की ही होती है। यदि हमें विजय का अनुभव न होता हो तो या तो हमारे पक्ष में सत्य नहीं है, या हम उतने सत्यनिष्ठ और सत्याग्रही नहीं हैं जितने कि विजय के लिए आवश्यक है। यदि हमारा पक्ष सत्य है तो फिर भय-प्रदर्शन या पशु-बल के प्रयोग का प्रयोजन ही कहां रह जाता है? सत्य-सूर्य का तेज प्रकट होते ही असत्य-अन्धकार उसी दम तिरोहित हो कर प्रकाश की दीप्ति को बढ़ा देगा और उसका सहायक हो जायगा। सत्य-बल अजेय है। असत्य की आत्मा बल-हीन होती है। वह कायर होता है। सत्य के प्रखर तेज को वह कभी सहन नहीं कर सकता। सत्य का असत्य पर हाथ उठाना मर्द का औरत पर या नामर्द पर हाथ उठाने के बराबर है। उसे भी कायरता के सिवा और क्या कहें?

सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से सत्याग्रह के साथ अहिंसा का अभेद्य सम्बन्ध है। हां, हिंसा-काण्ड के द्वारा अर्थात् शस्त्रास्त्र या बाहुबल के द्वारा प्रतीकार करने का एक मार्ग सनातन काल से चलता अवश्य आया है; पर उसका समावेश 'सत्याग्रह' में नहीं हो सकता। जिस प्रकार मुळशी पेठा के नेता श्री बापट ने अपने सशस्त्र प्रतिकार का नाम 'शुद्ध सत्याग्रह' रख लिया है उसी प्रकार इन्द्रजी को भी अपनी 'स्वतन्त्र मीमांसा' के अनुसार दोनों प्रकार के प्रतिरोधों का कोई दूसरा नाम रख लेना चाहिए। महात्माजी के सत्याग्रह में उसे शामिल कर देना अन्याय्य है।

(अपूर्ण)

पण्डित मोतीलाल नेहरू का भाषण

(श्री मोतीलालजी नेहरू ने गत १२ जून को इलाहाबाद में मौजूदा हालत पर बड़े मार्के का भाषण किया था । उसीका कुछ महत्त्वपूर्ण भाग हम नीचे उद्धृत करते हैं)

" कुछ असहयोगी भाई भी ऐसे हैं जो उतावले हो रहे हैं । वे परिवर्तन के लिए आवाज उठा रहे हैं । परिवर्तन का तो मैं भी ऐसा कट्टर विरोधी नहीं हूं जिससे चाहे जिस परिस्थिति में मैं उसका विरोध करने के लिए खड़ा हो जाऊं । इसके विपरीत उसकी आवश्यकता होने पर सबसे पहले मैं ही परिवर्तन के लिए अपनी पूरी ताकत से लड़ूंगा । पर इस समय मैं इस विषय पर अपनी कोई खास राय नहीं दे सकता ।

पर इतना तो मैं जरूर समझता हूं कि हमें हवा के अनुकूल अपनी पतवार रखना पड़े; लहरों की भीषण गति को देखकर शायद थोड़ा रास्ता भी बदलना पड़े । इतना ही नहीं बल्कि सामने कुहरे को देखकर थोड़ी देर लंगर भी डालना पड़े, जबतक कि फिर आसमान स्वच्छ न हो जाय । पर ध्येय को छोड़ने तथा हमारे जहाज को बदलने के विषय में तो सवाल ही नहीं । हमारा ध्येय तो पूरा स्वराज्य ही रहेगा और हमारा जहाज भी अहिंसात्मक असहयोग ही रहेगा । अहिंसात्मक असहयोग को तो हम तभी छोड़ सकते हैं जब स्वराज्य प्राप्त कर लें । इस सरकार से सहयोग तो अपने देश का शासन उसके हाथ से हमारे हाथ में लेते समय ही होगा ।

हम एक अपूर्व लड़ाई लड़ रहे हैं । इसलिए हमारा मार्ग भी भिन्न है । हमारे शस्त्रास्त्र भी वैसे ही अपूर्व-अद्भुत हैं । इसलिए हमें स्वयं अपनेको सुधारने के लिए अपनी ही गलतियां काम दे सकती हैं । हमें अपनी गलतियां स्वीकार करना चाहिए और यह चेष्टा करनी चाहिए कि आगे ऐसी भूलें फिर हमसे न होने पावें । महात्माजी का श्रेष्ठ उदाहरण हमारे सामने है । अपनी त्रुटियों को मैं जरा भी छिपाना नहीं चाहता । नियम-बद्धता और संगठन की हमें अब भी बहुत भारी आवश्यकता है । सरकार चाहे जितनी प्रबल हो असहयोग के मुकाबले में वह हरगिज नहीं टिक सकती । हमारे आन्दोलन में ऐसी कितनी ही बातें हैं जिनसे हमें सफलता मिल सकती है । हमें न तो आदमियों की कमी है न स्वेच्छापूर्ण त्याग और बलिदान की । और न जनता की सहानुभूति की ।

हमने जेलों को लगातार भर दिया । युवराज के स्वागत का सफलतापूर्वक पूरा बहिष्कार करके यह हमने प्रमाणित कर दिया कि हममें राष्ट्रीय भाव है और उस भाव को प्रकट करना भी हम जानते हैं ।

लोग कहते हैं कि महासभा के मुख्य मुख्य काम सब बंद कर दिये और बारडोली के विधायक कार्यक्रम से सविनय-भंग तो करीब करीब छोड़ ही दिया गया । पर उन लोगों से मेरा यही कहना है कि वे थोड़ा विचार करें । ऐसा करने से उन्हें दिखाई देगा कि यह सब उनका भ्रम है । असहयोग का कौनसा अंग छोड़ दिया गया ? मैं तो हमारे उन विरोधियों को चुनौती देकर कहता हूं कि वे महात्माजी अथवा महासभा के किसी अन्य कार्यकर्ता के किसी लेख या भाषण से ऐसा प्रमाणित कर दें कि अमुक कार्य छोड़ देने की बात उसमें कही गई है । सविनय-भंग तो हमारा अमोघ अस्त्र था, है, और रहेगा भी जिसका उपयोग समय पड़ने पर पूरी शक्ति के साथ किया जायगा । युद्ध का नियम ही ऐसा है कि सभी अस्त्रों का सब समय प्रयोग नहीं होता । आवश्यकता पड़ने ही पर छोटे बड़े अस्त्रों का प्रयोग किया जाता है । यही नियम अहिंसात्मक असहयोग और उसके अपूर्व अद्भुत शस्त्रास्त्रों पर भी घटित होता है । उदाहरण के लिए हम किसी शस्त्र का प्रयोग तबतक अपने प्रतिद्वंद्वी पर नहीं कर सकते जबतक वह उस शस्त्र की कक्षा में नहीं आ जाता । इसी प्रकार हम अपने सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक शक्तिशाली अस्त्र का भी प्रयोग तबतक नहीं कर सकते जबतक हम उसकी उपयोगिता की परीक्षा पहले न कर लें । असल बात तो यह है । महात्मा-गांधी ने जो हमारे सेनानायक थे समझा, और उन्हें यह समझने के लिए पूरा हक भी था, कि अपना सब दल सशक्त और सुसज्जित होगा । पर इन्होंने जब प्रत्यक्ष देखा तो उन्हें दिखाई दिया कि सेना सुसंगठित नहीं है । कितने ही सैनिकों के पास तो अपने अपने हथियार ही नहीं और जिनके पास हैं भी वे ठीक हालत में नहीं हैं । कितने ही के शरीर पर तो युद्ध की वर्दी (खादी) भी नहीं दिखाई दी । इस समय तो उनके लिए अपनी लड़ाई को मुल्तवी रखने के सिवा दूसरा उपाय ही न था । और यही उन्होंने किया भी । सेना को तोड़ कर उन्होंने अपने अपने घर चले जाने की आज्ञा नहीं दी । उन्होंने तो शत्रु की सेना के सामने अपनी सेना को खड़ा कर दिया और कहा कि और भी अच्छी तैयारी कर लो । इतनी तैयारी से काम न चलेगा । बस इसीको हमारे कई भोले भाई समझ बैठे हैं कि महात्माजी ने तो सब लड़ाई बंद कर दी ।

इसके बाद महात्माजी की गिरफ्तारी हुई, जिसके पश्चात् सारे देश की जनता ने अखंड शांति और अहिंसा का पालन किया । इसे मैं देश की सबसे भारी विजय मानता हूं । पर सरकार और नरमदल के भाई यह समझ बैठे हैं कि असहयोग असफल हो गया-नष्ट होगया । कैसा विचित्र तर्क ! जहां कहीं जरा भी किसी कारण से उत्पात खड़ा हुआ कि इन्होंने कहा ही था कि, यह देख लो असहयोग असफल होगया । उसी प्रकार कठोर से कठोर दमन को भी देश शांतिपूर्वक सहन कर लेता है तब भी वे कह उठते हैं कि, अब तो असहयोग मर गया । पर असल बात क्या है ? आइए हम देखें । सन १९१९ में जब सत्याग्रह पहले पहल शुरू हुआ तब महात्मा गांधी देहली से कुछ दूर एक स्टेशन पर अकस्मात् पकड़े गये थे । पर उस समय उसका परिणाम क्या हुआ ? देश भर में अशांति मच गई । बम्बई, पंजाब और अहमदाबाद में उत्पात खड़े हो गये । सन १९२२ में आन्दोलन पूरे जोर-शोर से देश भर में चल रहा था । घड़ी घड़ी पर महात्मा गांधी की गिरफ्तारी की अपेक्षा की जा रही थी । महात्मा गांधी उनके आश्रम से-उनके भक्त-शिष्यों के बीच से गिरफ्तार किये गये । उनके पास ही ऐसे हजारों लोग थे जिनको उनमें बड़ी भक्ति थी । पर कहीं जरा भी शांति का भंग नहीं हो पाया । दोनों प्रसंगों पर महात्मा गांधी भी वे ही थे और जनता भी वही थी । अगर कुछ फर्क हुआ हो तो इतना ही कि सन १९१९ में महात्माजी के अनुयायियों, भक्तों की जितनी संख्या थी उससे इस साल वह कहीं बढ़कर थी । फिर भी जिधर देखिए उधर शांति ही दिखाई देती थी । क्या कोई यह कह सकता है कि आज देश में लाखों नहीं तो कम से कम हजारों आदमी महात्मा गांधी के लिए जानतक देने को तैयार नहीं हैं ? मैं तो जरूर तैयार हूं । (सभा से 'हम लोग भी तैयार हैं' की आवाज) हां, केवल हम ही नहीं लाखों ऐसे हैं । फिर वह क्या बात है जिसके कारण महात्माजी की गिरफ्तारी पर गंभीर शांति कायम रही । कहीं जरा भी शोरोगुल न हुआ ? इसका खास कारण तो बस एक यही है कि जनता ने महात्माजी के अहिंसा और शांति के संदेश को अच्छी तरह समझ लिया है, हृदय पर अंकित कर लिया है, जो उन्होंने कई बार अपने भाषणोंद्वारा तथा लेखोंद्वारा समझाया था । भाइयो, यही हमारी सब से भारी विजय है । हमें असफलता भी मिली । उसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते । पर उसका कारण है केवल नियमबद्धता और संगठन का अभाव । पर उसके कारण हमारे ध्येय में बाधा नहीं हो सकती ।"

अहिंसात्मक और प्रेममय होते ही वह स्वच्छ और ठंडे पानी की तरह स्फूर्तिकर और जीवन का देने वाला होता है।"

फिर चोरी-चौरा की दुर्घटना के बाद वे कहते हैं:—

"मैं देखता हूं कि अहिंसा के प्रेममय सिद्धान्त को हमने अपने हृदय में अच्छी तरह अंकित नहीं किया। हमारा हृदय तो रोषाग्नि से धधक रहा है। और सरकार उसमें अपने विचार-शून्य कार्यों द्वारा घी डाल कर उसे और भी प्रज्वलित कर रही है। केवल जेल जाने से कहीं स्वराज्य मिल सकता है? न केवल कानून-भंग ही हमारे अन्दर नियम-बद्धता तथा आज्ञा-पालन की भावनाओं को जाग्रत कर सकता है। हमें यह हरगिज न समझ बैठना चाहिए कि अपने हृदय में द्वेष, हिंसा की अग्नि को छिपाये रखने वाले हजारों भाइयों के कारावास से हम सरकार के हाथों से स्वराज्य छीन सकेंगे। पर अगर सारी जनता सिर्फ हिंसा से दूर रहे और कुछ थोड़े लोग अहिंसा का रहस्य पूरी तरह समझते हुए मन, वचन, कर्म, से अहिंसामय रहें तो हम जल्द और थोड़े से थोड़े कष्ट से अपने ध्येय को प्राप्त कर सकेंगे। पर अगर हम अपने हृदय में द्वेष और हिंसा को स्थान देने वाले हजारों लोगों को भी जेलों में भेज दें तो हमें कुछ लाभ न होगा। उलटा हमारा ध्येय अनियत समय के लिए आगे सर क जायगा।"

सविनय-भंग-समिति का कार्यक्रम

सविनय-भंग-समिति का कार्यक्रम नीचे दिया जाता है—नीचे लिखे दिन समिति उनके सामने लिखे हुए शहरों में जा कर उस प्रान्त के कार्य और तैयारी की जांच करेगी—

३० जून, देहली, समिति की प्रारंभिक बैठक।

ता. १,२ जुलाई को देहली में जांच, ३ कानपुर. ४, ५, ६, प्रयाग. ७, ८ जबलपुर. ९, १० नागपुर. ११ अकोला. १३, १४ अहमदाबाद. १५, १६, १७ बम्बई. १८, १९ पूना, २१ बीजापुर २३, २४, २५ मद्रास. २६ इरोड. २६, २७ कालीकट या इरोड २९ मद्रास. ३०, ३१ गुन्टूर. १ अगस्त बेजवाडा. २ पुरी. ३ हावडा. ३, ४, ५ कलकत्ता. ६, ७ ढाका. ९, १० सिलहट १२, कलकत्ता।

मालवीयजी का 'मंगलाचरण'!

भारत-भूषण मालवीयजी की शांति-प्रियता देश भर में विख्यात है। तथापि उस दिन गोरखपुर के मजिस्ट्रेट के हुक्म का भंग उन्हें करना ही पड़ा। जिस सरकार से समझौता करने के लिए सौजन्य-वश उन्होंने इतनी मिहनत की, और कर रहे हैं उसीके एक अधिकारी की ओर से उन्हें इस प्रकार हुक्म मिलना अवश्य आश्चर्य की बात है।

श्री मालवीय जी "नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता" की कोटि के पुरुष हैं। सरकार अगर चतुर होती तो उसके इतने जबरदस्त हितचिंतक की वह इस प्रकार कभी अवमानना न होने देती। पर उसके तो समय में ही पलट आया मालूम होता है। उसे अब उलटी ही सूझती जा रही है। इसीलिए उसके एक महाधिकारी को संदेह हुआ कि उनके भाषणों से अशान्ति फैलेगी। न गोरखपुर में न अन्यत्र आजतक उनके भाषण से कहीं अशान्ति के चिह्न तक प्रकट हुए। और श्री मालवीयजी ने उसके हुक्म को न मानते हुए व्याख्यान देकर यह सिद्ध कर दिखाया कि उसका वह केवल भ्रम था।

सरकार और उसके कानूनों की अगर कुछ इज्जत मिलती हो तो वह जनमान्य नेताओं के द्वारा ही। इसलिए सरकार और उसके अधिकारियों को यह जानना उचित है कि जनमान्य नेताओं पर ऐसे हुक्म छोड़ कर वह उन हुक्मों की ही नहीं बल्कि अपनी और अपने कानूनों की भी प्रतिष्ठा खोती है। जब अधिकारी जन विचार-शक्ति को धता बता कर ऐसे दूरदर्शिताशून्य हुक्म छोड़ते हैं तब तो उन्हें तोड़ना प्रजानायकों का फर्ज ही हो जाता है। पर कभी कभी शान्ति की रक्षा के लिए उन्हें लाचार हो कर अप-मानना-भरे हुक्मों को भी मानना पड़ता है, यद्यपि वह उनके लिए मरण से भी अधिक दुखदायी होता है। महात्माजी ने शान्ति के लिए अगर कोई सबसे भारी त्याग और आत्म-बलिदान किया हो तो वह यही कि वे जनता में हिंसा-वृत्ति को देख कर ऐसे आत्मघातक करने वाले हुक्मों को भी मानने के लिए तैयार हो गये।

पर यह घटना तो बिलकुल भिन्न है। श्री मालवीयजी देश में घूम घूम कर सरकार के अत्याचारी स्वरूप से अब भली भांति वाकिफ हो गये हैं। इसीलिए उन्हें अब सरकार का सत्य स्वरूप अपने भाषणों द्वारा प्रकट करना पड़ता है। और भला चोर के लिए उसकी चोरी के साफ साफ हाल कहने वाले मनुष्य की अपेक्षा अधिक बड़ा दुश्मन कोई हो सकता है? इसीलिए सरकार को भी श्री मालवीयजी के सब उपकारों को अलग रखकर उनका मुंह बंद करने के लिए दौड़ना पड़ा। जो हो, दो साल से लोक-प्रतिष्ठा की पर्वा न कर के सौजन्यवश सरकार से समझौता करने की निरंतर कोशिश करते रहने वाले शांतिप्रिय मालवीय जी को ऐसे हुक्म का मिलना और उनका उसे न मानना यह एक ऐसी घटना है जो सरकार की नीति-रीति, मालवीयजी में परिवर्तन और जनता की तैयारी पर खासी टिप्पणी ही है। साथ ही यह एक अत्यन्त धर्मनिष्ठ, ईश्वर-परायण, और निर्मल-हृदय नेता के द्वारा सविनय-भंग का 'मंगलाचरण' भी है।

रावलपिंडी में दमन

गत ९ जून को रावलपिंडी में कई स्वयंसेवक शराब की दुकानों पर धरना दे रहे थे कि पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिए गये। जनता भी उनके साथ साथ हो चली। पर पुलिस से यह देखा न गया। उसने उसको पशुबल का आश्रय ले भग। दिया। बाजारों में हथ्यार-फौज घुमाई गई। पर शहर में कहीं शान्ति का भंग न हो पाया। शाम को गनीमंडी में एक सभा हुई। सभा-पति श्री गोपालसिंहजी थे। ऋषि भगतरामजी का व्याख्यान हो चुका था, जिसमें आपने जनता को महासभा की सहायता करने के लिए अनुरोध किया। स्वामी विश्वानंदजी ने अपना व्याख्यान शुरू किया था कि इतने ही में खिलाफत कमिटी के मन्त्री मौलवी अब्दुल अजीज जिनको पुलिस पकड़ना चाहती थी, आ पहुंचे। जनता ने उनका उच्च स्वर से स्वागत किया। मौलवी साहब भी मेज पर खड़े होकर भाषण करने लगे। इतने ही में पुलिस का एक दल जो सिर से पैर तक सशस्त्र था, सभा के बीच में रौंदता हुआ आया और मौलवी साहब को नीचे खींच कर घसीटता हुआ ले गया। जनता से अब वहां न ठहरा गया। वह भी उनके पीछे दौड़ पड़ी। पुलिस ने उस पर भी अपना हाथ साफ किया। इतने ही में पुलिस असिस्टंट कमिश्नर और मजिस्ट्रेट भी वहां आ पहुंचे। एक अधिकारी ने यह भी धमकी दी कि "याद रक्खो अभी गोली चलाने का हुक्म दे दूंगा" पर जनता जरा भी पीछे न हटी। अपने कार्यकर्ताओं के साथ ही रही। पर बाद कुछ महा-सभा के कार्यकर्ताओं के समझाने पर चुपचाप चल दी।

जैसे कुटुंब में सब से अधिक समझदार भाई की सब से अधिक चिंता होती है, वैसे ही पतित राष्ट्र में भी सबसे अधिक वीर और कष्टिशाली प्रान्त को सबसे उग्र और कठोर दमन का सामना करना पड़ता है। पंजाब भी भारत का सबसे अधिक वीर प्रान्त है। इसलिए वह भी इस उग्र दमन का सामना करता आया है। स्वराज्य-साधना के लिए कष्ट-सहन और त्याग तपस्या के सबसे अधिक सुधरे हुए संस्करण हैं। पंजाब इनका अनुष्ठान जी-जान से धैर्य और दृढ़ निश्चय के साथ करता आ रहा है। इसलिए देवी स्वतन्त्रता को तो इसका जरूर विचार करना होगा।

सरकार के लिए अब नई बात ही कौनसी रह गई है? संसार में ऐसी कौनसी निर्लज्जता और कठोरता की बात बची है जो उसने नहीं की? ठीक ही है। "मरता क्या न करता?" पर भारत भी उसी निश्चय के साथ अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहेगा।

जैसे सरकार ने इस सवाल को अपने जीवन-मरण का प्रश्न समझ लिया है उसी प्रकार अगर सब भारतीयों के ख़याल में भी यह बात अच्छी तरह ठंस जाय कि जीवन तो स्वाधीनता में ही है, इस सरकार के अधीन बने रहना आत्मघात है, तब तो स्वराज्य में हमें जरा भी देर नहीं लग सकती। इतने विशाल जन-प्रवाह के सामने नौकरशाही की शक्ति बालू की दीवार की तरह बह जायगी।

बलिदान की भूखी राजनीति

पाठकों को अब भी याद होगा कि उन दिनों लॉर्ड मेयर मॅक्स्विनी के अनशन-व्रत के समाचार रोज हम किस उत्सुकता के साथ पढ़ते और उनपर आश्चर्य करते थे। ६५ दिन तक उपवास करके वे जब परलोक सिधारे तब हमारी आत्माओं ने उस दृढ़प्रतिज्ञ देश-भक्त की बहादुरी की मन ही मन खूब प्रशंसा की। जड़वाद से थके हुए संसार की आत्मा के बल का कुछ पता लगा और उसके दिल में कुतूहल होने लगा। ६५ दिन के उपवास का हाल सुनकर संसार आश्चर्य से स्तंभित हो रहा था। पर भारत ने उसे मॅक्स्विनी से भी बड़ी आत्मा का पता दिया।

पंडित रामरक्षा को बर्मा षड्यंत्र के मामले में काले पानी की सजा मिली थी। जब वे पोर्टब्लेयर आये तब उनका यज्ञोपवीत बल-पूर्वक निकाल लिया गया। उस समय पंडितजी ने कहा—"मैं ब्राह्मण हूं और यज्ञोपवीत के बिना अन्न-जल ग्रहण न करूंगा।" और तदनुसार किया भी। एक, दो, तीन, चार दिन हो गये। एक सप्ताह बीत गया। उन्होंने न कुछ खाया न पिया।

तब अधिकारियों ने जबरदस्ती नाक द्वारा उन्हें दूध पिलाना चाहा। पर उन्होंने अपने गले में उंगलियां डालकर सब दूध बाहर निकाल दिया। एक बूंद तक पेट में न टिकने दिया।

एक माह इसीप्रकार बीत गया, दूसरा भी खतम हो गया और तीसरा भी इसी तरह बीत गया। ९० दिन तक कुछ न खाया पिया; आखिर ९१, दिन वे परलोकवासी हो गये। आखिर तक अपने धर्म पर डटे रहे।

धार्मिक विषय की अंगरेजी जेलों के नियमों के यहां ऐसे हैं। दण्ड और जेल की तजवीज अपराधियों के सुधार के लिए की जाती है। जेल अपराधियों के लिए विद्यालय होना चाहिए—यमालय नहीं। पर यह वहीं हो सकता है जहां के शासन की बागडोर जनता के प्रतिनिधि के हाथों में हो। अच्छे से अच्छा विदेशी शासन बुरे से बुरे स्वदेशी शासन से भयंकर और हानिकर सिद्ध होता है। अतएव भारत को अंगरेजी सरकार से जरा भी सौजन्य की आशा न करनी चाहिए। अंगरेजी राजनीति की भूख बड़ा प्यासी है। यह हमेशा बलिदान की भूखी रहती है। जब हजारों रामरक्षा उसके आगे कुरबान हो जायंगे तब कहीं भले ही उसकी तृप्ति हो!!

वैष्णवों के आचार्य और स्वदेशी

स्वदेशी प्रत्येक देश का स्थायी धर्म है। भारत का तो यह वर्तमान युग-धर्म भी है। उसकी ओर धार्मिक संप्रदायों के आचार्यों का भी ध्यान खिंचने लगा है। यह इस धर्म की उन्नति के लक्षण हैं. थोड़े दिन पहले सूरत में एक बड़े उत्सव के मौके पर श्रीनाथद्वारा के तथा दूसरे कितने ही आचार्य एकत्र हुए थे। चतुर्थ-पंचम-पीठाधीश्वर गोस्वामी श्री वल्लभाचार्यजी ने उस समय समस्त वैष्णवों को यह आज्ञा की—

"स्वदेशी स्वधर्म है। महात्माजी भी यही कह रहे हैं। स्वदेशी का आदर पैसे बचाने की गरज से नहीं, बल्कि धर्म की रक्षा के लिए ही करना चाहिए। वर्तमान जन-समाज का मन विदेशी हो गया है। विदेशी संस्कारों के कारण स्वदेशी की उत्तम भावना उसपर अंकित नहीं होती। हम जब अपने खान-पान, रहन-सहन वेश-भूषा में स्वदेशी होंगे तभी हम स्वधर्म की रक्षा कर सकेंगे।"

बम्बई के श्री गोस्वामी गोकुलनाथजी ने भी कहा कि नगरठट्ठा की वैष्णव परिषद् में तो स्वदेशी का एक प्रस्ताव पास हुआ है। अब तो वैष्णवों को स्वदेशी कपड़े ही पहनना चाहिए।

एक दूसरे सार्वजनिक मौके पर गो० श्री वल्लभाचार्यजी ने नीचे लिखा संदेश भेजा—

"स्वदेशी के बिना देश का उद्धार असम्भव है। स्वदेशी स्वधर्म का स्तम्भ है। जब हम स्वदेशी को स्वधर्म समझ कर उसका अंगीकार करेंगे तभी उन्नति की सीढ़ी पर पांव रख सकेंगे। वस्त्र के सम्बन्ध में देश स्वदेशी को उत्तम स्थान देने लगा है। प्रत्येक देशवासी के मन में यह आकांक्षा होनी चाहिए कि स्वदेशी वस्त्रों का प्रचार अतिव्यापक हो जाय। वस्त्र की तरह जीवन के प्रत्येक भाग में हम जिस दिन स्वदेशी को स्थान देंगे उसी दिन हमारा ध्येय सिद्ध हो जायगा।"

भूलेश्वर (बम्बई) में खादी-प्रदर्शिनी को खोलते समय गो० श्री कृष्णजीवनजी ने कहा—

"हम तो भगवान् को अपने हृदय में स्थापित करना चाहते हैं। भगवान् तो पवित्र हृदय में ही विराजमान होते हैं। अतएव हम को हर तरह से अपनी पवित्रता की रक्षा करनी चाहिए। जिस प्रकार शुद्ध और सात्विक आहार से हृदय की शुद्धि होती है उसी प्रकार शुद्ध स्वदेशी वस्त्रों से देह-शुद्धि होती है। अपवित्र चरबी लगे विदेशी वस्त्र तो अस्पृश्य हैं। और हमारे स्वराज्य का भी मूल खादी ही है।"

एक दूसरी सभा में गो० श्री गोकुलनाथजी ने कहा—

'लड़ाई के खून के पैसे से तर होकर हम लोग ऐशो-आराम के तामस वायुमंडल के शिकार हो गये और देश में अकाल को निमन्त्रित किया, अनेक विदेशी वस्तुओं के मोह में फँस गये। उसीका फल यह वर्तमान अधोगति है। खादी का प्रचार इस सम्प्रदाय में नया नहीं। भगवान् की सेवा में खादी जितनी शुद्ध मानी गई है उतनी दूसरी वस्तु नहीं। वैष्णव तो खादी के सिवा दूसरा वस्त्र पहन ही नहीं सकते। व्यापारियों को भी ऐसे समय में धोखेबाजी से दूर रहना चाहिए।"

पूर्वोक्त आचार्यों के इस प्रयत्न का फल-स्वरूप वैष्णवों में खादी का प्रचार भी हो रहा है। भारत के प्रत्येक धर्म-सम्प्रदाय के आचार्यों का ध्यान स्वदेशी-धर्म की ओर जाने की आवश्यकता है।

नौजवानों के प्रति

प्रिय भाइयो,

सारा देश आज एक विशाल रणक्षेत्र हो रहा है। वीरवरों के हुंकार से, सुभटों के गर्जन-तर्जन से, वीरांगनाओं के वीरोचित साहस से, बालकों के अपूर्व उत्साह से, देश में आज ऐसा अद्भुत दृश्य दिखाई दे रहा है जो सदियों से यहां कभी देखा नहीं गया था। देश के हृदयाकाश में स्वाधीनता का प्रभात कालीन अपूर्व प्रकाश फैल रहा है। सारा देश तन, मन, से उसके स्वागत की तैयारी में लगा हुआ है।

पर स्वतन्त्रता-देवी की पाद-पूजा का अधिकारी होने के पहले देश को संसार की एक बड़ी मायावी और पाशविक शक्ति का सामना करना है। आज उसके सामने यही एक गम्भीर सवाल है कि वह इसके चुंगल से अपने को तथा संसार के उसके दूसरे उपासकों को किस प्रकार छुड़ा सके। उनके अज्ञानान्धकार को किस प्रकार नष्ट कर सके। उनकी आंखें खोल कर असत्य की आकुलता तथा सत्य का प्रकाश उन्हें किस प्रकार दिखा सके।

यह मायावी शक्ति बड़ी मुस्तैदी के साथ देश को नष्ट करने पर तुली हुई है। भारत के तमाम बड़े बड़े पथ-प्रदर्शकों को उसने कैद कर रक्खा है और करती जा रही है। हजारों कार्यकर्ता उसकी जेलों में सड़ रहे हैं। नौकरशाही, उसके कलपुर्जे, विदेशी बनिये और उनके दलाल देशनाशक लूट को अब भी उसी प्रकार चला रहे हैं जैसे कि अबतक चला रहे थे। फलतः देश के लाखों पुत्र और पुत्रियों को अन्नवस्त्र के अभाव के कारण भूखे और नंगे घूमना पड़ता है।

इसी भीषण अवस्था को मिटाने के लिए यह देशव्यापी स्वाधीनता का युद्ध छिड़ा है। इसलिए आज हम सब अपनी अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार उसकी सेवा करने के लिए दौड़ रहे हैं, और इसीलिए आपका कर्तव्य भी कर्तव्यक्षेत्र में उतरने के लिए आपको आव्हान कर रहा है।

राष्ट्रों की उन्नति के पथ-प्रदर्शक भले ही वृद्ध, अनुभवी, ज्ञानी पुरुष हों, पर उनके भाग्य-विधायक तो उनके नौजवान पुत्र ही होते हैं। अनुभवी नेता अपनी ज्ञान-दृष्टि से राष्ट्रों के लक्ष्य या ध्येयों का निश्चित कर मार्ग बताते हैं पर अपने अदम्य उत्साह, शक्ति, और धैर्य के द्वारा वीरतापूर्वक अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए, राष्ट्रों को ध्येय प्राप्त करा देने की शक्ति तो उन नौजवानों में ही होती है, जिनके शरीर में नया खून दौड़ रहा हो, जिनकी आशा-लता सांसारिक संकटों के उत्ताप से, चिताग्नि की भीषण ज्वालाओं से मुरझा न गई हो, जिनकी शरीर-नौका संसार-सागर की भयानक लहरों की थपेड़ें खा खा कर जीर्ण न हो गई हो। इसलिए देश के नौजवान पुत्र तो उसके प्राण ही हैं। वे जबतक नीचे रहते हैं तबतक देश या राष्ट्र मृतवत् दिखाई देता है। पर उनके जगते ही उसके शरीर में विद्युत्संचार होता हुआ दिखाई देता है। वह बात की बात में ऐसे ऐसे काम कर डालता है कि संसार उन्हें देखकर आश्चर्य और कौतुक से स्तम्भित हो जाता है।

भारत भी आज आपको, अपने पुत्रों को, कर्तव्य-पालन के लिए आव्हान कर रहा है। हर समय और हर देश में नवयुवक ही स्वतन्त्रता के संग्राम में आगे बढ़े हैं। नौजवान ही हमेशा अधिक निष्पाप, तेजस्वी, और अदम्य उत्साहशील अतएव आत्म बलिदान के लिए अधिक तैयार और योग्य होते हैं। अतएव वे ही इस समय देश में नवजीवन और नई आशाओं का प्रचार करने के सर्वथैव योग्य हैं। क्या भारत के नौजवान पुत्र इस विषम परिस्थिति में अपनी मातृभूमि के उद्धार के लिए फिर भी न दौड़ पड़ेंगे? देश में अपने जन्मोचित अधिकारों की रक्षा के लिए सविनय-भंग की फिर से पुकार हो रही है। और उसके पहले रचनात्मक काम पूरा हो जाना आवश्यक है। क्या आप इस समय तन, मन से इस काम में जुट न पड़ेंगे?

हमारा स्वतंत्रता-संग्राम अभूत-पूर्व है। हमें संसार के किसी भी युद्ध के साथ इसकी तुलना करने के भ्रम में न पड़ने की सावधानी रखनी चाहिए। कहीं हम भ्रमवश गलत साधनों का उपयोग करके अपने संग्राम को बिगाड़ न बैठें। हमारा ध्येय भी भिन्न है। केवल सत्ता के परिवर्तन के लिए हम नहीं लड़ रहे हैं। हम लड़ रहे हैं सत्य के लिए, स्वराज्य के लिए, आत्मबल की स्थापना के लिए पशुबल की निःसारता सिद्ध करने के लिए, और प्रेम का साम्राज्य स्थापन करने के लिए। अतएव हमारी ध्येय-सिद्धि के साधन भी भिन्न हैं। कूटनीति, असत्य और पशुबल अथवा राक्षसी बल से हमारा काम नहीं चल सकता। हमें सत्य, सरलता और आत्मबल ही से काम लेना है।

पर सत्य, सरलता और आत्म-बल के साथ साथ संगठन और ऐक्य की भी उतनी ही आवश्यकता है। हमें बार बार यह भ्रम हुआ करता है कि संसार में पशुबल से विजय मिलना आसान है। पर हम उसके भिन्न भिन्न अंगों का पृथक्करण करके यह नहीं देखते कि पशुबल के पक्ष में ऐसी कौनसी बात है जिससे वह बार बार संसार में विजय पाता हुआ दिखाई देता है। पशुबल स्वयं कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिससे कभी उसे विजय मिल सके। वह तो पंगु है। विजय का खास कारण तो है संगठन।

भारत में आज शक्ति और उत्साह का अभाव नहीं है। अगर कमी है तो संगठन की। और इस महत्वपूर्ण अंग की पूर्ति के लिए हमें-देश के नौजवान पुत्रों को-दौड़ पड़ना चाहिए। समय निकाल कर जनता को महासभा के सदस्य बनाना चाहिए और तिलक-स्वराज्य-कोष के लिए चन्दा एकत्र करते रहना चाहिए। ये तो महासभा के दो पांव हैं, इनके बिना देश-सेवा के लिए वह आगे बढ़ ही नहीं सकती।

पर सब से महत्व की बात तो है देश की मनोदशा में परिवर्तन करना-हमारे युद्ध का रहस्य उनके चित्त पर अंकित कर देना। यथार्थ में स्वराज्य की जड़ यही है। अतएव अहिंसा, सत्य, के सिद्धान्तों का प्रचार करने की ओर सब से अधिक ध्यान देना परमावश्यक है। और यह उपदेश के साथ ही उदाहरण के द्वारा सिद्ध हो सकता है। साधारण जनसमूह अक्सर किसी सिद्धान्त के आन्तरिक महत्व की परीक्षा उसके उपदेशक के चरित्र को देखकर ही करता है। इसलिए इस आन्दोलन की महिमा और पवित्रता की रक्षा हमारे हाथों में है। हमारे ही द्वारा वह हमारी महासभा को और हमारे नेताओं को पहचानता है। अतएव देश के लिए, महासभा के लिए, तथा अपने करोड़ों भाइयों के कल्याण के लिए अपने पवित्र चरित्र द्वारा, प्रेमपूर्ण व्यवहार द्वारा, सहानुभूतिपूर्ण उपदेशों द्वारा हमें अपने करोड़ों भाइयों के हृदय में स्वतंत्रता की भावनाओं को जाग्रत कर महासभा के विषय में आदर और अपने अनु-कियों के विषय में प्रेम पैदा करना चाहिए। स्वावलंबन का उपयोगी पाठ उन्हें पढ़ाना चाहिए। "स्वावलम्बी भारत" ही 'स्वतन्त्र भारत' हो सकता है। खादी का प्रचार स्वावलंबन और संगठन का पाठ पढ़ाने का सबसे उत्तम साधन है। खादी के प्रचारक ही अहिंसा और सत्य का भी प्रचार कर सकते हैं।

हमारी विजय के लिए हमें सबसे पहले अहिंसा और सत्य में—हमारे आन्दोलन में विश्वास होना चाहिए। अगर हमी अपने सिद्धान्तों के कायल न हों तो जनता पर हमारे शब्दों का कुछ भी असर न गिरेगा। अतएव हमें निर्भ्रान्त और निःशंक होना चाहिए।

नियम-बद्धता की भी उतनी ही आवश्यकता है। स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता नहीं है। अगर हम एक नियमबद्ध शासन का पालना करना चाहते हैं तो हमें भी उसीकी तरह अपने बनाये नियमों के पाबंद रहना चाहिए।

आपके हाथों में इस अंक के पहुंचने के पहले ही सविनय-भंग समिति देश का निरीक्षण करने के लिए निकल पडेगी। इस लिए तैयार हो जाइए। हमारे सामने विशाल कार्यक्षेत्र पडा है। अपने प्रान्त को देश का सहायक कर दिखाना हमारे ही प्रयत्नों के अधीन है।

महात्माजी को सरकार ने छः साल के लिए कारावास में रखने का निश्चय किया है। पर अगर हम चाहें तो पूरा एक साल भी न होने दें,—छः महीने भी बीतने न पावें। भारत के नौ-जवानों में इतनी शक्ति है कि वे सारे संसार को हिला सकते हैं। सरकारी विद्यालयों के बहिष्कार की हलचल के समय महात्माजी कलकत्ता पहुंचे थे। उस समय कलकत्ता के १५ हजार विद्यार्थियों ने सरकारी विद्यालय छोड दिये थे। मालूम होता था कि स्वराज्य एक साल में क्या एक ही माह में मिला चाहता है।

हमारे महान् ध्येय की सिद्धि के लिए दृढ निश्चय की भी बहुत जरूरत है। हमें उसके लिए अधीर और निराश न होना चाहिए। अमेरिका को घनघोर आन्दोलन और घमसान युद्ध के बाद सात साल में स्वतंत्रता मिली। आयर्लैंड दो तीन सौ साल से लगड रहा है। पर क्या उसने अपना निश्चय छोड दिया? फिर हमारा संग्राम तो अभी शुरू ही हुआ है।

एक और बात आपसे कहना है। आपको अगर स्वतन्त्रता प्रिय हो और इस संग्राम में लडने की इच्छा है तो खूब सोच विचार कर शामिल होइए। भावी आपत्तियों का अच्छी तरह ख्याल कर के ही आगे पैर रखिए। संसार में मनुष्य के लिए स्वतन्त्रता से बढकर मूल्यवान् वस्तु एक भी नहीं। राष्ट्रों ने इसकी प्राप्ति के लिए अनंत कठिनाइयों को सहा है। भारत इस में अपवाद-रूप नहीं हो सकता। माता-पिता, स्त्री-पुत्र, आदि सब का मोह छोड कर अब हमें उसीकी आराधना में लगना होगा। खान-पान, शरीर-सुख, आदि की भी अभिलाषा अभी छोडनी होगी। क्या भारत के नौजवान पुत्र अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए स्वार्थ-त्याग, कष्ट-सहन, और तपस्यामय जीवन को अंगीकार न करेंगे?

यह कैसे हो सकता है? पहले ही से संसार भारत के गौरव गान से गूंज रहा है। पशुबल और जड सभ्यता की निःसारता इसने देख ली है। अब वह सतृष्ण नयनों से इस विशाल-महान् देश की ओर देख रहा है। इस प्रारंभिक क्रान्ति से ही उसके हृदय में सुन्दर सुखद आशायें लहरें मार रही हैं, जिस क्रान्ति का अवलोकन इतना आशापूर्ण और अपूर्व सुखशान्ति का देनेवाला है, उसका पूर्णोदय कितना अद्भुत होगा? इस सवाल का जवाब तो भविष्य ही देगा। भाइयो, आइए, हम तो अपने कर्तव्य-पालन में लग जायं। परमात्मा हमें भक्ति, सत्य, बल, धैर्य, और नम्रता दें और हम अपनी मातृभूमि का उद्धार करें। आपका

एक नौजवान भाई

सत्याग्रह या हत्याग्रह?

(२)

पिछले अंक में यह दिखाया जा चुका है कि अहिंसा किस प्रकार सत्याग्रह का अभिन्न अंग-रूप है। अब इस अंक में हिंसा और अहिंसा के फलाफल का विचार तथा श्री इन्दुजी के लेख की कुछ छोटी-बडी आक्षेपार्ह बातों की समीक्षा कर के इस लेख को समाप्त करेंगे।

महात्माजी के सत्याग्रह में तथा इन्दुजी-प्रतिपादित सत्याग्रह में मुख्य और प्रधान-रूप भेद या विरोध यही है कि महात्माजी सत्याग्रह में हिंसा को बिल्कुल स्थान नहीं देते और इन्दुजी उसे दलबल का खास अंग बता कर उसका गौरव बढाते हैं। जो पिछले लेखांश में सत्याग्रह के साथ अहिंसा की अभिन्नता सिद्ध हो जाने के साथ ही वास्तव में देखा जाय तो इन्दुजी के लेख के आक्षेप भाग का उत्तर खतम हो जाता है। दूसरी बातें यद्यपि इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं, उनका सम्बन्ध सिद्धान्त से उतना नहीं है जितना कि तर्क या अर्थ-वाद से है, तथापि सरसरी तौर पर उन पर भी निगाह डाल लेना उचित है।

जो लोग अहिंसा की उपेक्षा करके हिंसा की शरण लेना पसन्द करते हैं वे तात्कालिक और बाह्य सफलता या विजय के मोह में फंस कर स्थायी और वास्तविक विजय और सुख-शान्ति से दूर हटते हैं। वे मनोवेग के अधीन हो कर सत्य सिद्धान्त की जड पर कुल्हाडी चलाते हैं। हिंसा का अवलम्बन करने में क्रोध और द्वेष ये दो विकार प्रबल रहा करते हैं। इन दोनों के प्रकोप की जड स्वार्थ है। यदि यह मान लें कि राग-द्वेष से हीन कर भी परोपकार तथा देशहित या धर्म-रक्षा के लिए हिंसा का अंगीकार किया जा सकता है तब उस अवस्था में भी हम 'पापी' और 'पाप' अथवा 'बुराई' और 'बुराई करने वाला' यह भेद भुला देते हैं। हमारा शत्रु 'पाप' या 'बुराई' है, व्यक्ति नहीं। यदि ये दोष उस व्यक्ति में से निकल जायं तो फिर उससे हमारा कोई झगडा नहीं। क्या उसकी हत्या कर डालने से 'पाप' और 'बुराई' का नाश हो सकता है? नहीं। पर यदि उसके दोष और उसकी भयंकरता का ज्ञान उसे हो जाय तो अवश्य उन दोषों के दूर होने की संभावना है। यह प्रतीति हम उसे स्वयं कष्ट-सहन कर के, उसके साथ प्रेम-पूर्ण व्यवहार कर के, ही करा सकते हैं। हिंसा का अर्थ है भय और अहिंसा का अर्थ है प्रेम। भय से राष्ट्र निर्बल और कायर होता है; प्रेम से शुद्ध और शूर-वीर। भय निर्बल का शस्त्र है, प्रेम सबल का शस्त्र है। इन्दुजी का यह मानना गलत है कि निर्बल भी सत्याग्रह कर सकता है। वे शारीरिक बल को ही सामर्थ्य बल समझ रहे हैं। पर यह भूल है। बल का उद्गम स्थान आत्मा है। शारीरिक बल आत्मिक बल का ही कनिष्ठ रूप है। यदि आत्मिक बल न हो तो शस्त्रबल भी वृथा है। हिंसात्मक युद्धों में भी सेना अपने बाहु-बल या शस्त्रबल के द्वारा नहीं लडती। भीतरी बल ही जय का एक मात्र सच्चा सहायक है। आत्मिक बल जब शरीर या शस्त्र के द्वारा प्रकट होता है तब वह विकृत, अतएव पाशविक, हो जाता है; क्योंकि उसमें हिंसा-पशु मर्म-भरा रहता है। कष्ट-सहन, क्षमा, उदारता, दया, धैर्य, निश्चय, सहिष्णुता, आदि सब आत्मिक गुणों द्वारा जब वह प्रकट होता है तब वह दैवी होता है—इसीका नाम है शौर्य। सच्चा शौर्य दूसरे को मारने में नहीं, बल्कि खुद मरने में है।

प्रह्लाद के सत्याग्रह को निर्बल का सत्याग्रह कहना प्रह्लाद के महत्व को न समझना है। जिसके पक्ष में सत्य है, उसे हथियार बाँधने की क्या आवश्यकता ? सत्य ही का बल तो बल है। असत्य में बल हो ही कैसे सकता है ? और इसीलिए तो असत्य के पक्षपाती किराये के बल का आश्रय लेते हैं। प्रह्लाद सबल था और हिरण्यकशिपु निर्बल। प्रह्लाद के कष्ट-सहन और अहिंसा की आँच में हिरण्यकशिपु का सारा पाप जल गया। उसकी आत्मशुद्धि हो गई। वह मारा नहीं गया। अहिंसा से दोनों पक्ष की जीत होती है। दोनों में प्रेम और एकता की स्थापना होती है। हिंसा से कलह और संघर्ष बढ़ता है। वर्तमान जगत् इसका जीता जागता उदाहरण है। आज भारतवर्ष ने अहिंसा के महत्व को पूरा पूरा समझा नहीं है उसका कारण यह है कि अभी उसकी बुद्धि गहरी, विशाल और सूक्ष्म नहीं हुई है। किसी अत्याचारी को हम अधिक अत्याचार के बल पर डरा और दबा सकते हैं; पर इसका फल यही होगा कि एक तो हम खुद अत्याचार की सफलता और विजय-मद से अधिक अत्याचारी हो जायंगे और दूसरे वह भी बदला लेने के लिए अधिक अत्याचार-बल बढ़ाने की कोशिश करेगा। दोनों ओर से अत्याचार की वृद्धि होगी। विपक्ष में अहिंसा के द्वारा उसके अत्याचार की आग पर बराबर पानी-सा बरसता रहेगा; उसकी अत्याचार-वृत्ति नष्ट हो जायगी और दूसरी ओर हमारे शुद्ध आत्मिक बल का आशातीत विकास होगा जिसके द्वारा हम सारे संसार के मित्र हो जायंगे।

सत्याग्रह का यही आदर्श महात्माजी ने अभी भारत के सामने उपस्थित किया है। भारतवर्ष चाहे तो इसे सारे संसार के पास पहुंचा सकता है। यह मनुष्यमात्र का सामान्य धर्म है और संसार के वर्तमान घृणित जीवन-कलह के नाश और भावी ऐक्य-संगठन का एक-मात्र अचूक साधन है। महात्माजी चाहते हैं कि भारत का बच्चा बच्चा सत्याग्रही हो। महासभा के द्वारा भारत ने अपने राजनैतिक उद्धार के लिए-राजनीति की दृष्टि से दिखाई देने वाले सत्य की रक्षा के लिए-अहिंसा को अपना लिया है; यदि वह जीवन के प्रत्येक भाग में उसको अनिवार्य बना ले तो भारत फिर एक बार जगद्गुरु के प्राचीन पद पर विराजमान हो सकता है। लक्षणों से तो ऐसा दिखाई देता है कि यह आशा दुराशा नहीं है।

हजरत मुहम्मद ने मक्के में 'निर्बल का सा' सत्याग्रह कर मदीने में 'सबल का सा' सत्याग्रह किया; 'कृष्ण मथुरा से भाग द्वारकापुरी में जा बसे' यह भी 'सत्याग्रह' था; यदि 'राम दण्डकारण्य में बैठकर भूखे प्राण त्याग देते तो उन्हें शायद कोई दुहाई फिलासफर सत्याग्रही कह देता; परन्तु आज वह मर्यादा-पुरुषोत्तम बनकर लाखों और करोड़ों नर-नारियों के पूज्य-अनुकरणीय न बने होते' लेखक के इन शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा पर उनकी श्रद्धा नहीं है और दूसरे अहिंसा और सत्याग्रह का अर्थ समझने में उनसे भारी भूल हुई है पर जिनकी श्रद्धा मानती है कि सत्य आग्रह करने योग्य वस्तु है; सत्य की ही सर्वदा विजय होती है; मनुष्य के आत्मा है; उसे सत्य की प्रतीति करने की शक्ति है; दूसरे के कष्ट-सहन से उसकी आत्मा के शुभ भाव जाग्रत हो सकते हैं; मनुष्य चाहे कितना ही पशुवत् आचरण करे, पर उसकी मनुष्यता मर नहीं जाती है-जो उसे ही आत्म-प्रेम भाव से प्रबल करने पर वह सजग हो सकती है; वे सत्याग्रह और अहिंसा का पालन कर के उसके अनुभव का चमत्कार प्रत्यक्ष देख सकते हैं। हम में से जिनको भी बात पर जिनका विश्वास नहीं है वे सुखी से दयाप लीला करें और अपनी बुद्धि की सिद्धि पर चकित हो लिया करें।

हजरत मुहम्मद, श्रीकृष्ण और राम को यदि हम उन्हें ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हों तो उनके उदाहरण से धर्मतत्वों में कोई बाधा नहीं होती। क्योंकि हिन्दू-धर्म में तो अहिंसा ही परम धर्म माना गया है। दूसरे धर्मों में भी हिंसा जीवन का प्रधान धर्म कहीं नहीं माना गया है। जहां कहीं माना गया है वहां गौण और अपवाद-रूप से, आपद्धर्म समझ कर। उसमें हिंसा का उद्देश प्रवृत्तिपरक नहीं, निवृत्तिपरक है। यदि वे राम और कृष्ण को कल्पित व्यक्ति मानते हों तो उनका उदाहरण किसी तत्व की पुष्टि के लिए अलंकार-रूप है। और मुहम्मद का उदाहरण हिन्दू-धर्म के लिए निरुपयोगी है; फिर भी हमारी धारणा के अनुसार तो मुहम्मद ने इसे आपद्धर्म ही समझा है और कुरान से उसका निवृत्तिपरक होना सिद्ध भी होता है। यदि वे इन तीनों को ईश्वरीय विभूति मानते हों तो ईश्वर, तो उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय तीनों का अधिकारी है। मनुष्य भी ईश्वरत्व प्राप्त होजाने पर चाहे भले हो हिंसा का अधिकारी हो सके—उसके पहले नहीं। ईश्वर का ईश्वरीय विभूतियों की नकल, उनकी महत्ता या अधिकार पाने के पहले, करना ईश्वर का अपराध करना है।

यह ख्याल भी गलत है कि निष्क्रिय प्रतिरोध अर्थात् सत्याग्रह के लिए बहुसंख्यक लोगों की आवश्यकता है। सत्याग्रह में संख्या की अपेक्षा योग्यता की अधिक अपेक्षा रहती है। एक पक्का सत्याग्रही सौ कच्चे सत्याग्रही से अच्छा होता है। एक ही पूर्ण और शुद्ध सत्याग्रही सारे विश्व को अपने पैरों पर झुका लेने के लिए काफी है। एक सूर्य के आगे करोड़ों तारों का तेज तिरोहित हुए बिना नहीं रहता और अंधकार का तो अस्तित्व ही नहीं रह सकता।

'निर्बल का सत्याग्रह' हेत्वाभास-पूर्ण है। जिसके पक्ष में सत्य है वह निर्बल नहीं हो सकता; और जिसके पक्ष में असत्य है उसकी हिम्मत ही सत्य का आग्रह करने की नहीं हो सकती। निर्बल वही है जो असत्य का हिमायती हो। सत्याग्रह के लिए यह कोई शर्त नहीं हो सकती कि 'अत्याचारी के हृदय में दयापूर्ण मनुष्यता की पर्याप्त राशि हो' या 'उसका हृदय पसीज जाय'। सत्याग्रही अत्याचारी के दया-भाव को नहीं, बल्कि मनुष्यता को जाग्रत करना चाहता है और उसका यह विश्वास होता है कि प्रत्येक मनुष्य-प्राणी में, फिर वह चाहे कैसा ही पापी, अत्याचारी और हिंस्र हो गया हो, मनुष्यता कायम जरूर रहती है। वह मानता है कि मनुष्य स्वभावतः बुरा नहीं होता है। उसकी प्रकृति बुरी नहीं है। विकृति नष्ट होते ही उसकी शुद्ध प्रकृति के सत्य स्वरूप का उदय होता है और ऐसे उदाहरण भी संसार में कम नहीं हैं। मनुष्य की मनुष्यता में विश्वास न करना ईश्वर से इनकार करना है, मनुष्य-जाति का अपमान करना है-अपने को मनुष्यता की पहचान के लिए असमर्थ बताना है। जितनी ही सत्याग्रही की सत्यनिष्ठा, अहिंसावृत्ति और प्रेम-भाव अधिक उतनी ही अत्याचारी के मनुष्य-भाव जाग्रत होने की सम्भावना अधिक। सीता के सत्याग्रह का फल यह हुआ कि रावण उसके सतीत्व को तिल-मात्र नष्ट न कर सका। मेक्स्विनी के अनशन-व्रत में प्रेम-भाव की अपेक्षा शत्रु भाव अधिक था। मानसिक स्थित्यन्तर के लिए भाव-शुद्धि अनिवार्य शर्त है। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।' प्रेम के जवाब में प्रेम, क्रोध के जवाब में क्रोध, मनुष्यता के जवाब में मनुष्यता उदय होती है। इसलिए पशुभाव की दवा मनुष्यभाव, क्रोध की दवा प्रेम, और असत्य की दवा सत्य है।

लेख के अन्त में वेदालंकार महाशय जिन चार परिणामों पर पहुँचे हैं उनमें से पहले परिणाम के '......इसकी रक्षा भी करनी चाहिए' में 'भी' के स्थान पर 'ही' होनी चाहिए। 'अधिकार' शब्द से उनका अभिप्राय 'स्वत्व' हो तो कोई आपत्ति नहीं—'हुकूमत' हो तो अर्थ स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

शेष तीन परिणामों में धर्मशास्त्र नहीं, पर व्यवहार-नीति (Policy) का निरूपण किया गया है। धर्मनिष्ठ मनुष्य के नजदीक धर्मशास्त्र और व्यवहार-नीति में भेद या विरोध नहीं हो सकता। व्यवहार-नीति धर्मशास्त्र का अनुसरण करती है। धर्म-शास्त्र परिणामवादी नहीं होता। यदि 'यतो धर्मस्ततो जयः' और 'सत्यमेव जयते' सही है तो धर्म और सत्यशील को सफलता में सन्देह ही कैसे हो सकता है? सफलता और असफलता के द्वन्द्व से दूर रह कर वह तो केवल इसी बात को सोचता है कि मेरे पक्ष में धर्म और सत्य है या नहीं? मुझसे अधर्म और असत्य तो नहीं हो रहा है?

चौथे परिणाम में आपने निर्बल को सबल बनने की सलाह दी है। यदि बल से आपका अभिप्राय शरीर-बल और शस्त्र-बल से हो तो अपने से कईगुना बड़े-बड़े सबल अत्याचारी के मुकाबले में निःशस्त्र और निर्बल अत्याचार-पीड़ित का इतना सबल हो जाना कि वह प्रतिरोधात्मक-अशान्तिपूर्ण सक्रिय सत्याग्रह करके उसे हटा सके, मनुष्य के बस की बात नहीं मालूम होती—हाँ, दैवी चमत्कार की बात दूसरी है।

'भद्र अवज्ञा' के सम्बन्ध में आप लिखते हैं कि 'आज्ञाओं का उल्लंघन तभी किया जा सकता है जब वे आज्ञायें उल्लंघन करने वाले की इच्छा के विरुद्ध हों।' इसमें भी अतिव्याप्ति दोष है। 'उल्लंघन करने वाले की इच्छा के विरुद्ध हों,' के स्थान पर 'धर्म और नीति के विरुद्ध हों' होना चाहिए।

इस लेख से महाशय इन्द्र का सत्य-चिन्तन-प्रेम और सत्य-भक्ति स्पष्ट प्रकट होती है। गुरुकुल के वेदालंकार और अध्यापक के संबन्ध में दूसरी धारणा नहीं हो सकती। हमने अपनी समझ के अनुसार महात्मा जी के सत्याग्रह का रूप उनके सामने पेश किया है। हमें आशा है कि इससे उन्हें सत्य की खोज में अधिक मदद मिलेगी और पाठक इस बात को समझ सकेंगे कि उनकी और महात्मा जी की सत्याग्रह-मीमांसा में कितना भेद और विरोध है।

शुद्ध खादी की शिकायत

धार्मिक और शुद्ध अन्न के प्रेमी कभी यह शिकायत नहीं करते कि होटलों में शुद्ध खाना नहीं मिलता। इसी प्रकार शुद्ध स्वदेशी का व्रत रखने वाला यह शिकायत नहीं कर सकता कि बाजार में शुद्ध खादी नहीं मिलती। शुद्ध और पवित्र खाना पाने के लिए शुद्ध आदमी हाथ से घर पर ही खाना पकाते हैं। इसी प्रकार शुद्ध खादी के सच्चे प्रेमी तो घर पर अपने हाथ-कते सूत की खादी बना लेते हैं। तथापि कितने ही भाइयों की अभी इतनी तैयारी नहीं है कि वे तुरन्त यह सब कर सकें। पर, इसका यह मतलब नहीं कि शुद्ध खादी मिल ही नहीं सकती। अगर शुद्ध खादी के बेचने वाले सच्चे व्यापारियों का उनके गाँव में अभाव ही हो तो उन्हें महासभा-समिति के खादी-भण्डारों से प्राप्त करनी चाहिए। पर अगर उनके गाँव में महासभा-समिति भी न हो तो उन्हें गुजरात प्रान्तिक समिति, अहमदाबाद से मंगा लेना चाहिए। उसके खादी भंडार से उन्हें जितनी चाहें शुद्ध खादी मिल सकती है।

दुरुपयोग की हद!

भारत के व्यापारियों ने अंगरेजी व्यवसायियों के देशभक्ति, सु-व्यवस्था, विनय, दूरदर्शिता, आदि ऊँचे गुणों को प्राप्त करने की चाहे कोशिश न की हो; पर ऊपरी दिखावट, आडम्बर और चालाकी से धन कमाने की कुरीतियों का पूरा पूरा अनुकरण जरूर किया है। अतः झूठी और अत्युक्तिपूर्ण विज्ञापनबाजी, तथा धर्म का अनर्थ करके उसका दुरुपयोग करने की कला में भी वे प्रवीण होते जाते हैं। कुछ समय पहले एक व्यापारी ने महात्मा गांधी के नाम की सिगरेटें निकाली थीं। देश के लिए आवश्यक और उपयोगी वस्तु जिसका प्रचार वे चाहते हैं उसके लिए तो नेताओं के नाम, चित्र, आदि का उपयोग करना चाहे जैसा न हो। पर जिससे वे भी कोस दूर भागते हों ऐसी गंदी चीजों की बिक्री उनके नाम की दुहाई दे कर करना बेशक शठता और धोखेबाजी है। अभी लुधियाना से एक सज्जन ने हमारे पास उर्दू में छपा एक चाय का विज्ञापन भेजा है। उसमें बड़े बड़े हरफों में छापा गया है—

"महात्मा गांधी भी चाय पीते हैं"

'अमृत बाजार पत्रिका' का हवाला दे कर यह विज्ञापन-बाज लिखता है कि 'जेल में महात्मा गांधी को वही खुराक दी जाती है जिसके कि वह आजादी की हालत में आदी थे, यानी बकरी का दूध, रोटी, सन्तरे, चाय और किशमिश'।

इस तरह बम्बई-सरकार के सूचना-विभाग की गलत और झूठी बात का सहारा ले कर महात्मा जी के नाम पर वह चाय को फैलाना और धन कमाना चाहता है। इश्तहार पढ़ने से यह पता नहीं चलता है कि वह किसी हिन्दुस्तानी व्यापारी की करतूत है या अंगरेजी व्यापारी के दिमाग का जौहर है। हिन्दुस्तानी व्यापारियों के लिए ऐसा करना सचमुच बड़ी शर्म और दुःख की बात होगी। आत्मशुद्धि के इस युग में इतना नैतिक पतन!

हम पाठकों को यह साफ तौर पर कह देना चाहते हैं कि महात्मा गांधी ने आफ्रिका में ही चाय पीना छोड़ दिया है। और जेल में उन्हें चाय दी जाने की बात तो बिलकुल झूठ है। यह बम्बई-सरकार के सूचना-विभाग की कपोल-कल्पना मात्र है।

गत २८ जून को मौलाना हसरत मोहानी का दफा १२१ वाला मामला बम्बई की हाईकोर्ट में पेश हुआ था। दोनों पक्ष की पैरवी खतम हो गई। फैसला अभी नहीं सुनाया गया। मौलाना साहब ने खुद अपने मामले की पैरवी की थी।

खबर है कि भारत-सरकार के कानून-सदस्य डाक्टर तेज बहादुर सप्रू ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया है। कारण? जिनका की आलोचना मुआफिक न होने से सम्पुरदारी मिया जाना। यह भी सुना जाता है कि आप प्रयाग में फिर वकालत शुरू करेंगे।

उड़ीसा के नेता पं० गोपबन्धु दास को २ साल सादी कैद की सजा दी गई।

पं. मोतीलालजी नेहरू गोरखपुर गये थे। वहाँ उन्हें व्याख्यान न करने की आज्ञा दी गई। सभास्थान को पहले पुलिस ने घेर लिया था। अधिकारियों का पूर्व तैयारी देख कर अधिकारी इस समय अपमान की घूँट पी कर रह गये।

एजंटों की जरूरत है।

देश के इस संकट-काल में श्री-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का गाँव गाँव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

स्वराज्य का दावा

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका ,, -)
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ५)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष १] [अंक ४७

सम्पादक-हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक-रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, आषाढ सुदि १५, संवत् १९७९
रविवार, सायंकाल, ९ जुलाई, १९२२ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरावी वाडी

राजा महेन्द्रप्रताप का सन्देश

राजो, महाराजो, नवाबो, जमींदारो और व्यापारियो,

मैं आपसे मनुष्यता के हित की दृष्टि से बातचीत करता हू। इस बात का सन्देह भी न कीजिए कि आपकी भलाई के सिवा अन्य कोई हेतु मेरे मन में है। मैं स्वयं एक जमींदार के कुल का हू। नौ वर्ष पूर्व मेरा खानदान राज्य करता था। मैं आपके हित के लिए आपसे साफ कहता हू कि आप संकट की अवस्था में है। वर्तमान समय की आवश्यक परिस्थिति को मैं थोड़ा-बहुत जानता हू। मैंने सारे संसार में भ्रमण किया है और जर्मनी, टरकी, अफगानिस्तान और रशिया में तो मैं कई बार गया हू। सब से बुरे स्वेच्छाचारी शासन से लेकर बढ़िया से बढ़िया सामाजिक प्रजातन्त्र-पद्धति का मैंने अध्ययन किया है।

एक मित्र की हैसियत से मैं आपको सूचित करता हूँ कि आप अपनी वर्तमान उदासीनता, कार्यशून्यता, अथवा दयाभाजी के खुले कार्यों से बच रहें। आपके देशभाई आगे बढ़ रहे है। दुनिया का परिवर्तन हो रहा है। आपको समझ लेना चाहिए कि आप स्वयं या आपकी विदेशी सरकार जर्मनी और आस्ट्रिया के कैसरों या रशिया के साम्राज्य-सरकारों से अधिक बलवान् नहीं है। कैसर दुनिया से भाग गया है, जार की मृत्यु हो चुकी और व्यापारियों का सर्वस्व रशिया में नष्ट हो चुका है। मुझे खेद है कि, यदि आप अपने देश-भाइयों के साथ सहयोग न करें या दुनिया को राजनीति के साथ न रहें, तो यही हाल आपका भी होगा। मैं आपसे प्रार्थना करता हू कि आप महात्मा गांधी, हजरत अली और मालवीयजी महाराज की आज्ञा का पालन करें। आपकी लोक-सेवा से ही आपके भविष्य का निश्चय होगा। आपको यह न समझ लेना चाहिए कि अलग रह कर आप सही-सलामत रह सकेंगे। आप मनुष्यजाति के कुटुम्ब के साथ बँधे हुए है।

मैं आपसे प्रार्थना करता हू कि परमेश्वर के लिए, अपने देश के लिए, अपने कुटुम्ब के लिए, आप जाग्रत हो जाइए और अपना कर्तव्य पालन कीजिए। आप बुद्धिहीन नहीं हैं। इंग्लैंड के सरदारों की अपेक्षा आपमें समझ अधिक है। आप अपनी योग्यता का उपयोग नहीं करते। आप अग्रसोची की दृष्टि से भविष्य की ओर नहीं देखते। मुझे विश्वास है कि हिंदुस्थान शीघ्र ही स्वतन्त्र होगा। परन्तु आपका कर्तव्य यहीं समाप्त नहीं होता। आपको हिन्दुस्थान के अन्तिम ध्येय की पूर्ति करनी चाहिए। पुराने सत्यान से नया भौतिकवादी दुनिया को शिक्षा देनी चाहिए। शीघ्रता कीजिए। समस्त मनुष्य-जाति को सच्चे प्रेम और सुख की शिक्षा देने के लिए एक सगठन तैयार कीजिए। मैं आशा करता हूं कि आप कृपा कर मेरी प्रेम-धर्म और सुख-संचारक-दल की कामना नाम की पुस्तकें भी पढ़ेंगे।

(जर्मनी) (राजा) महेन्द्रप्रताप

महात्माजी की मुलाकात

श्री कस्तूर बा गांधी, उनके दो पुत्र और दो अन्य गत रविवार को महात्माजी से मिलने के लिए यरवडा जेल में गये थे। उनके एक भतीजे श्री मथुरादासजी ने मुलाकात का निम्न-लिखित हाल प्रकाशित कराया है—

"महात्माजी के स्वास्थ्य में कोई उन्नति नहीं दिखाई देती। कुछ समय पहले उनको यह सन्देह हुआ था कि उनके यकृत में कुछ दर्द है। पर डाक्टर के परीक्षा करने पर मालूम हुआ कि कोई खराबी नहीं है। उन्हें श्री शकरलाल बैंकर के साथ अलग, एकान्त में, दूसरे कैदियों के सम्पर्क से दूर, रक्खा है। टहलने के लिए उनके कमरे के सामने एक छोटासा त्रिकोण मैदान है। उन्हें लिखने की सामग्री तथा पढ़ने के लिए किताबें भी दी जाती है। महात्माजी ने दो पत्र भी लिखे थे। एक श्रीमती गांधी को और दूसरा हकीम अजमलखां साहब को। पर लाट साहब ने उनका कुछ 'आक्षेप-योग्य' भाग निकाल डालने की सूचना महात्माजी से की। पर महात्माजी ने ऐसा करने से इनकार किया। फलतः लाट साहब ने भी वे पत्र रोक लिये। तब से महात्माजी ने फिर किसीको कोई पत्र नहीं लिखा। महात्माजी ने एक गुजराती पाठ्य पुस्तक नमूने के तौरपर बनाई थी और उसे उन्होंने अपने मित्रों को दिखाने के लिए भेजना चाहा। पर वह भी न भेजी गई। उन्हें समाचार-पत्र नहीं दिये जाते। उन्हें खाने के लिए हजम होने लायक काफी खाना दिया जाता है। वे दिन भर चरखा कातते-धुनकते और पढ़ते रहते हैं। कातने और धुनकने में वे हर रोज तीन घंटे बिताते हैं। पर अगर शक्ति अधिक होती तो वे और भी समय इस काम में लगाते। जेल सुपरिंटेण्डेण्ट लोक-चाल से भले आदमी मालूम होते हैं। महात्माजी की देख-भाल वगैरह में उनका कुछ हाथ नहीं दिखाई देता।"

टिप्पणियां

"महासभा कर लगावे"

बिहार-प्रान्त की एक कांग्रेस-कमिटी के मन्त्री लिखते हैं— "अब कोई नहीं कह सकता कि यह 'शान्तिमय असहयोग संग्राम' कबतक जारी रहेगा। सब जान चुके हैं कि इस संग्राम का अन्त तभी होगा जब यह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुकेगा। फिर वह चाहे एक वर्ष में हो चाहे दस वर्ष में। शिथिलता की जो पुकार कितने ही स्थानों से आ रही है वह वास्तव में जनता की नहीं, कार्यकर्ताओं की शिथिलता है। कार्यकर्ताओं के दो दल हैं— एक धनी, दूसरा गरीब। ३१ दिसम्बर बीत जाने पर धनी-दल के बहुत कम कार्यकर्ता अपने कर्तव्य पर डटे रहे हैं। शायद वे जोश के खयाल से 'स्वराज्य-संग्राम' में सम्मिलित हुए थे, अपना फर्ज समझ कर नहीं। दूसरे दल को गरीबी इतना तबाह करती है कि उनके पास परिवार का पालन-पोषण कर कांग्रेस का काम करने की गुंजायश नहीं। कांग्रेस एक धार्मिक संस्था है। उसमें वही सम्मिलित हो सकता है जो अपनी जिन्दगी को 'स्वाहा' समझ कर अपना कर्तव्य प्राप्त कर काम करे। 'दो नाव पर पैर' नहीं रखा जा सकता।" इसके बाद आपने महासभा के तिलक-कोष की आमदनी का जिक्र करते हुए लिखा है कि संसार का कोई संग्राम बिना रसद के नहीं टिक सकता। इसलिए आपने महासभा के खर्च अर्थात् तिलक-स्वराज्य-कोष के लिए गल्ला, घी, कोरा कपडे, नमक, मट्टी का तेल, तम्बाकू आदि की भीतरी और बाहरी तिजारत पर कुछ कर लगाने की तजवीज सूचित की है। आपने यह भी ब्योरा भेज दिया है कि किस चीज पर कितनी कटौती काटी जाय। सो सिद्धान्त की दृष्टि से तो आपके इस प्रस्ताव में [illegible] वाले सज्जनों ने की ओरा कुछ रकम देते रहने की तजवीज की है और इस तरह कोई तीन हजार रुपये साल स्थायी आमदनी हो गई है। पर अभी महासभा के इस काम में पडने से हमें लाभ नहीं दिखाई देता। महासभा न तो किसी को दबाना चाहती है और न जबरदस्ती करना चाहती है। यह तो व्यापारी लोगों की महासभा के साथ सहानुभूति और प्रेम पर निर्भर है। और यदि वे लोग स्वराज्य-संग्राम में अपना उज्ज्वल भविष्य देखते हों तो बारडोली वाले रुई के व्यापारियों की तरह खुद ही अपने मंडल या पंचायत बना कर खरीदी-बिक्री पर कटौती काटने का नियम बना लें और वह रकम अपनी तहसील या जिले की ओर से तिलक-स्वराज्य-कोष में दे दें और बेहतर हो कि महासभा की मारफत उसे अपने ही जिले या तहसील में स्वदेशी के प्रचार, मद्यपान-निषेध, छुआछूत की रोक, आदि कामों में खर्च करें। महासभा का शासन तो लोगों के स्वेच्छापूर्वक दिये कर और सहायता पर अवलम्बित है। यदि महासभा को हम अपनी प्रतिनिधि संस्था मानते हैं और उसकी उन्नति हमें मंजूर है, उसमें सारे देश का उद्धार हमें दिखाई देता है तो हरएक जिले में ऐसे व्यापारी मंडल स्थापित होकर तिलक-स्वराज-कोष में एक अच्छी स्थायी रकम जमा हो सकती है। प्रयाग, कानपुर, आदि शहरों में व्यापारियों ने खुद ही अपने अपने मंडल बना कर विलायती कपडे के रोजगार की रोक-टोक का प्रबन्ध कर लिया है। ... केवल खरीदी-बिक्री पर कटौती काटने का संगठन करना ... मुश्किल बात है?

शास्त्रीजी की बातें

माननीय श्रीनिवास शास्त्री उपनिवेशों की यात्रा कर रहे हैं। भारत-सरकार के एजंट की हैसियत से, उसके खर्च से, वे उपनिवेशों में भारतीयों को समान अधिकार दिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं। आप आस्ट्रेलिया का दौरा खतम कर चुके हैं। वहां रह कर आपने एक ढेले से दो चिड़िया मारने की कोशिश की है। एक तो आपने आस्ट्रेलिया की सरकार पर इस बात का जोर डाला कि वे आस्ट्रेलिया-स्थित भारतवासियों को गोरों के बराबर मताधिकार दें। दूसरे आपने असहयोगियों की भी खबर ली है। महात्मा गांधी के निजी व्यक्तित्व पर तो आप लट्टू हैं। दुनिया में आप उनके बराबर पवित्र आत्मा किसीको नहीं पाते। पर राजनैतिक क्षेत्र में आप उन्हें अपना शत्रुवत् मानते हैं। आपकी राय शरीफ में सुधारों के सुमधुर फल में जो देर हो रही है उसका मूल कारण यह असहयोग आन्दोलन अर्थात् महात्मा गांधी है। सो आप भारत से सैकडों कोस दूर जाकर असहयोगियों पर जबान साफ कर रहे हैं। इसमें कोई शक नहीं कि इन दोनों बातों में आपकी खूब लियाकत आप खर्च कर रहे हैं; पर हमें पूरा डर है कि आपकी मनोकामना कहांतक फलेगी। भारत में तो उनके दो चार पिट्ठू पत्रों को छोड़कर क्या देशी, क्या पादरी, और क्या अंगरेजी सब पत्रों ने उनकी इस यात्रा के औचित्य पर सन्देह और निषेध प्रकट किया है। अपने ही घर में जिसकी कोई बात नहीं पूछी जाती वह दूसरों के घर में किस मुंह से समान अधिकार की बात कह सकता है? न जाने क्यों यह साफ और बिलकुल खुली बात भी शास्त्रीजी महोदय की समझ में नहीं आती? ऐसी दशा में या तो शास्त्रीजी भोले हैं या वे उपनिवेश के गोरों को भोला-भाला समझते हैं। एक प्रसिद्ध पादरी-पत्र 'केथोलिक हेरल्ड' ने बहुत ठीक कहा है कि— बेशक शास्त्रीजी को भारत के खर्च से आस्ट्रेलिया न जाना [illegible] नहीं है कि वह दूसरे उपनिवेशों से कुछ पाने का दावा कर सके। वह है तो अच्छी दुधारू गाय—पर उसके पांव बंधे हुए हैं। पहले भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दीजिए, फिर उसी क्षण आस्ट्रेलिया से एक तारद्वारा यह प्रश्न हल हो जायगा—"न भारतवासी आस्ट्रेलिया में रहें न आस्ट्रेलियावासी भारत में"। बस मामला तय हो जायगा। यदि नौकर के दुःख की बात कोई नहीं सुनता तो उसका एक मात्र उपाय यही है कि वह खुद मालिक हो जाय"।

और असहयोग आन्दोलन को शास्त्री जी एक आंख से देखते हैं। वे शायद नहीं जानते हैं कि आज असहयोग आन्दोलन के बल पर ही कौन्सिलों में उनकी बातों की कुछ पूछ होती है। शेष आन्दोलन तो अमरबेल की तरह परोपजीवी है। यदि आज असहयोग-आन्दोलन बन्द हो जाय तो कल ही शेष-आन्दोलन वालों की हवाइयां उडती फिरें। शास्त्रीजी जैसे चतुर और राजनीतिज्ञ माने जाने वाले आदमी को पक्षाभिमानवश वस्तुस्थिति को तथा सारे राष्ट्र की मान-मर्यादा को न भुला देना चाहिए। और उन्हें यह याद रखना चाहिए कि जब कौरव और पांडव आपस में लडते थे तब एक तरफ सौ और दूसरी तरफ पांच थे; पर दूसरे के मुकाबले में वे अपनेको १०५ समझते थे।

महासभा की ओर से सहायता

अजमेर से एक भाई ने एक छोटा सा लेख भेजा है, जिसमें उन्होंने कानपुर जिले के एक असहयोगी भाई के स्वार्थ-त्याग का वर्णन करते हुए उनके परिवार के भरणपोषण के लिए महासभा से सहायता दिलाने की सिफारिश चाही है। क्योंकि असहयोगी भाई इन दिनों जेल में हैं। आपका यह भी कहना

है कि जो लोग अपनी कमी-कमाई नौकरी या रोजगार-धन्धा छोड़कर असहयोग में शामिल होते हैं, जेल जाते हैं और जिनके परिवारवालों की गुजर का कोई जरिया नहीं होता है उन्हें महासभा की ओर से सहायता मिलनी चाहिए। पर महासभा इस विषय में निश्चय कर चुकी है कि जो भाई इस आन्दोलन में शरीक होना चाहें वे महासभा से परिवार के लिए कुछ भी आशा न रक्खें। स्वयं-सेवकों के प्रतिज्ञा-पत्र में इस बात का स्पष्ट-रूप से उल्लेख भी किया गया है। अतएव हमारी समझ में महासभा से इस विषय में आशा न करनी चाहिए। हां, जो सज्जन महासभा के साथ तथा स्वराज्य-संग्राम के साथ हमदर्दी रखते हों उनका यह कर्तव्य अवश्य है कि वे आपस में मिलकर एक रकम जमा कर लिया करें और उन्हें मदद पहुंचावें। कई स्थानों पर ऐसा हुआ भी है और यह कोई बड़ी कठिन बात नहीं है।

मौके की चेतावनी

प्रेम-महाविद्यालय, वृन्दावन, के संस्थापक कुंवर महेन्द्रप्रताप के नाम से कौन भारतवासी अपरिचित होगा? योरपीय महाभारत के जमाने में अंगरेजी-राज्य से बेवफा होने के अपराध में उनकी सारी रियासत जब्त कर ली गई है। अपने प्रेम-धर्म का प्रचार करने के लिए वे विदेशों में घूम रहे हैं। उन्होंने सुख-संस्थापक-दल नाम की एक संस्था स्थापित की है। उसका उद्देश है— "मनुष्य-जाति भर में सुख संस्थापित करना"। सुख का अर्थ आपने इस प्रकार बताया है—"मनुष्य-जाति भर में प्रत्येक व्यक्ति को काफी और स्वास्थ्यप्रद भोजन, आवश्यक कपड़े, और आराम से रहने योग्य घर मिले। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मानसिक योग्यता का पूर्ण विकास करने के लिए पर्याप्त अवसर मिले। प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति ऐसी हो जिससे वह अपनी अन्तरात्मा का विकास कर सके।" और इस उद्देश की पूर्ति आप प्रेम के द्वारा करना चाहते हैं। आपके दल का एक नियम है—'हम खून-खराबी (हिंसा) के विरोधी हैं और मनुष्यता के प्रबल से प्रबल शत्रु के साथ नरमी से व्यवहार करने की कोशिश करेंगे।' भारत के आत्म-भाव की सीमा कामरूप और कराची तथा कन्याकुमारी और काश्मीर तक परिमित नहीं है। उसका आदर्श तो है—सर्वभूत-हित। पर भारत की हड्डी कमर जबतक ऊंची नहीं उठती तबतक उसकी और उसके आदर्श के हिमायतियों की दबी जबान पशुबल के विजय से मदान्ध लोगों और राष्ट्रों के ज्ञान-तन्तुओं को सजग नहीं कर सकती। शायद इसी दृष्टि से कुंवर साहब ने भारत के राजाओं और जमींदारों के नाम एक पत्र छपाया है। वह इसी अंक में अन्यत्र छापा गया है। आशा है वे लोग उस पर अवश्य ध्यान देंगे।

पंडित गोपबंधु दास

इसी सप्ताह उड़ीसा के पंडित गोपबंधु दास को २५ महीने सादी कैद की सजा हुई है। पंडित गोपबंधु दास उड़ीसा के एक तेजस्वी नेता हैं। उड़ीसा बहुत पिछड़ा हुआ था। पर उसमें अब खूब जागृति फैल गई है। अहिंसा और स्वदेशी का भी अच्छा प्रचार हो गया है। उड़ीसा में अभीतक महासभा के कारण कहीं भी शान्ति का भंग नहीं हो पाया। स्वयंसेवकों की भरती तथा उनका संगठन भी बड़ी योग्यता के साथ किया गया है। स्वयं-सेवकों के नाम दर्ज करते समय इस बात की ओर बहुत ध्यान दिया गया है कि वे प्रतिज्ञा की सब शर्तों का पालन कर सकते हैं या नहीं। इससे वहां की जनता अधिक शान्तशील, अधिक निर्भीक और अधिक संयमशील हो गई है।

इन सब बातों का अधिकतर श्रेय पंडित गोपबंधु दास को ही है। उनकी कार्यशैली सुसंगत रही है। यों तो वे महासभा के कार्य से बहुत दिनों से सहानुभूति रखते थे। पर १९२० की महासभा की विशेष बैठक से वे उसके सच्चे अनुयायी हो गये। अहिंसात्मक असहयोग के वे अनन्य भक्त हैं। स्वराज्य का अर्थ है अपने ही हाथों में अपने देश का शासन सूत्र होना। पर वे उसका आध्यात्मिक अर्थ में प्रयोग और अनुसरण करते हैं और उसके लिए लड़ते हैं। राजनैतिक स्वराज्य को तो वे मानसी-स्वराज्य का एक अंग-मात्र मानते हैं।

अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त के आप बहुत दिन से अनुयायी हैं, यद्यपि आपको उसके इस नाम का पता न था। महासभा के वकीलों को वकालत छोड़ने का आग्रह करने के ५ साल पहले से आपने वकालत छोड़ दी थी। बारह साल पहले आपने ठीक राष्ट्रीय सिद्धान्तों के अनुसार एक सत्यवादी स्कूल स्थापित कर दिया था।

तथापि अंगरेजी सरकार पर उनका विश्वास नष्ट न हो गया था। उन्होंने धारासभा में और पटना-विश्व-विद्यालय की सिन्डिकेट में, और महायुद्ध के समय सरकार की सहायता कर देखी। और आखिर उड़ीसा के अकाल के समय सरकार का रुख देख कर तो उनका विश्वास बिलकुल उठ गया। अकाल पीड़ितों के लिए सरकार की ओर से जो कुछ किया जाना चाहिए था और वह कर सकती थी वह भी नहीं किया गया।

पंडित गोपबंधु जानते थे कि स्वयंसेवकों का संगठन करने में कोई बात अनीति-मूलक न थी। वे बराबर स्वयंसेवक भरती करते रहे। सरकार ने भी पहले पहल इसपर कुछ आपत्ति न की। पर अब उसके लिए वह असह्य हो गया। फलतः उन्हें स्वयंसेवकों के संगठन को गैर कानून करार देती रहे। पर स्वराज्य की गति उससे रुकने वाली नहीं। महासभा को जैसे स्वयंसेवकों की जरूरत है यदि वैसे मिलते रहे तो स्वराज्य शीघ्रही सरकार के विरोध करते हुए भी मिले बिना न रहे। ऐसे शुद्ध शुभचिन्तकों को अपना प्रतिपक्षी बनाकर, उनको व्यर्थ ही कष्ट दे कर, सरकार अपने पक्ष को कमजोर अलबत्ते कर रही है।

प्रेमचन्दजी का 'प्रेमाश्रम'

काव्यकला और चित्रकला के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से दो भेद हैं—आदर्श-वाद (Idealistic) और यथार्थ-वाद (Realistic) आदर्श-वादी लेखक आदर्श चरित्रों की सृष्टि करते हैं, यथार्थ-वादी स्वाभाविक चरित्रों की। आदर्श-वाद का विकास भारत के साहित्य में और यथार्थ-वाद का योरपीय साहित्य में विशेष-रूप से हुआ है। उपन्यास की गिनती गद्य काव्य में होती है। प्रेमचन्दजी का नव-प्रकाशित 'प्रेमाश्रम' उपन्यास यथार्थ-वाद का उदाहरण है। प्रेमाश्रम का प्रधान विषय 'जमींदार और किसान' है। किसानों को 'हिन्दी-नवजीवन' 'जगत् का तात' मानता है। उनकी दुख-भरी आहें लेखक के अन्तस्तल में पैठी हैं और उसका द्योतक है यह प्रेमाश्रम। अमेरिका से गुलामी की प्रथा उठा देने में 'टाम काका की कुटिया' ने बड़ी मदद दी है। प्रेमचन्दजी ने भी प्रेमाश्रम के द्वारा भारत के निरीह किसानों के उद्धार करने का प्रयत्न किया है। 'हिन्दी-नवजीवन' में प्रेमाश्रम के गुण-दोष की सविस्तार चर्चा के लिए स्थान नहीं है। तथापि हम यह कहना उचित समझते हैं कि प्रेमाश्रम के गुणों के आगे उसके

(आगे शेष पृष्ठ ३७६ में)

आयर्लैंड में 'यादवी'

यों तो अंगरेजों की अनबन दुनिया के प्रायः हरएक राष्ट्र के साथ है; लेकिन उनके पंजे में फंसे हुए तीन राष्ट्र तो अंगरेज सत्ता के खिलाफ प्राण-पन से कटिबद्ध हो गये हैं। तीनों में और किसी किस्म की समानता नहीं है; केवल तीनों एक ही शक्ति के द्वारा समान रूप से पद-दलित हैं—आयर्लैंड, मिस्र और हिन्दुस्तान। तीनों का स्वराज्य-संग्राम स्वतन्त्रता चाहने वाले व्यक्ति और राष्ट्र के लिए शिक्षाप्रद है। और तीनों देश के भावी इतिहास के अनुसार ब्रिटिश सल्तनत की इज्जत या बे-इज्जती दुनिया की तवारीख में लिखी जायगी। आयर्लैंड को स्वराज्य देने का निश्चय इंग्लैंड ने कभी से किया है। आयरिश स्वराज्य का नाम लेते ही उदारधी ग्लैडस्टन का नाम याद आता है। ग्लैडस्टन गये, कॅम्बेल बैनरमन गये, मिस्टर एस्क्विथ भी पदच्युत हो गये। तो भी आयर्लैंड में शान्ति नहीं होती है।

जबतक आयरिश लोगों के मन में इंग्लैंड पर कुछ विश्वास था तबतक इंग्लैंड को आयर्लैंड को 'होम रूल' देना मंजूर नहीं था। अब आयर्लैंड पूरा पूरा निराश हो चुका है और इंग्लैंड की चाल-बाजी पूरी पूरी समझ गया है। इसलिए इंग्लैंड की कोई भी बात आयर्लैंड को जंचती नहीं। शत्रु प्रबल होने पर भेद-नीति का अवलम्बन करना इंग्लैंड का पुराना रिवाज है जिससे वह अपने लाभ के लिए जिस समाज का चाहे नैतिक अधःपात करने के लिए तैयार हो जाता है। उसी नीति का नतीजा आज हम विलायत में देख रहे हैं। आज आयर्लैंड में भयानक 'यादवी' मच रही है। कृष्ण भगवान् के निज धाम जाने के बाद यादवों में अनाचार बढ़ा और अन्त को वे आपस में लड़ मरे। इसी तरह से आयर्लैंड अपनी शक्ति आपस में कट-मर कर खो रहा स्वतन्त्र रियासत (फ्री स्टेट) रखना 'बचने का दाखिला ?' इसके खिलाफ, जो सचमुच स्वतन्त्रता और पृथक्भाव चाहते हैं वे प्रजासत्ता-वादी कहलाते हैं। और अब स्वतन्त्रतावादी और प्रजासत्तावादी आपस में लड़ रहे हैं। अंगरेजों की कुटिल नीति से आयरिश लोग बहुत पहले से तंग आ चुके हैं। और उन्होंने निराश और नास्तिक लोगों का उपाय अख्तियार किया। आयर्लैंड ने खून-खराबी शुरू की। अगर आयर्लैंड सचमुच स्वराज्य के लिए तैयार होता तो खून-खच्चर की जरूरत ही न थी। लेकिन कितने ही लोग अधीर हो गये, शरीर-बल से अंगरेजों को तंग करना चाहा। सल्तनत की सत्ता जब पशु-बल पर ही स्थित रहती है तब सल्तनत हमेशा यही चाहती है कि दुर्बल लोग तंग आकर खून-खराबी करें ताकि उनके पशुबल के सामने अपने असीम पशुबल को खड़ा कर सकें और निर्बलों को खलास कर दें। ब्रिटिशों ने अल्स्टर वालों का पक्ष ले कर आयर्लैंड को स्वराज्य देने का विचार किया; पर दाल न गली। इधर-सिनफिन पक्ष ने प्रजासत्ताक राज्य स्थापन करने की कोशिश की। पार्लियामेंट में जाने या न जाने के विषय में, हमारी कौन्सिलों की तरह, वहां भी खूब चर्चा हुई। सिनफिन पक्ष के सभासद पार्लियामेंट में गये भी—लेकिन उन्होंने देख लिया कि उससे लाभ तो कुछ नहीं है, उलटा हानि ही हानि है। तब उन्होंने प्रजासत्ताक राज्य की घोषणा की। अंगरेजों को कर तो देते थे, लेकिन उन्होंने अपनी अलहदा न्यायालय स्थापित की और अपनी म्युनिसिपलिटियां भी राष्ट्रीय बनाईं। परन्तु अंगरेजी सत्ता ने दमन शुरू किया। आयरिश देशभक्त धीरज खो बैठे और उन्होंने खून-खराबी शुरू कर दी। अंगरेज सरकार को धीरज खोने का कारण नहीं था; लेकिन हरएक सल्तनत के सिर पर खून का भूत हमेशा सवार रहता है। उसने कहा—आयरिशों के बे-कायदा खून-खच्चर के सामने तुम्हारी बा-कायदा खूनरेजी यदि दूनी न हो तो तुम्हारी बात नहीं बनेगी। हिंसा के सामने प्रतिहिंसा शुरू हो गई। इसे 'रिप्रैसल' कहते हैं। आखिरकार एक दृष्टि से मनुष्य तो निर्दय पशु ही है। हिंसा की प्रतिस्पर्धा में वह शीघ्र पीछे नहीं हटता। आज इंग्लैंड आयर्लैंड को स्वराज्य देने के लिए तैयार है और आयर्लैंड स्वराज्य लेने के लिए आतुर है, तो भी वहांपर शान्ति नहीं स्थापित हो सकती। क्योंकि सारा वायुमण्डल द्वेष और प्रतिहिंसा से भरा हुआ है। बुद्ध भगवान् ने ढाई हजार बरस के पहले यही कहा था कि।

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ती एस धम्मो सनन्तनो॥

अर्थात् वैर से वैर शान्त नहीं होता। क्षमा, प्रेम और निर्वैर-भाव से ही वैर का नाश होता है। कलिंग देश को जीतने के बाद महाराजा अशोक ने इसी सत्य को समझ कर अपना पश्चात्ताप और कलिंग-देश से अपनी क्षमा-याचना कठिन शिला के ऊपर खुदवा कर अनन्त काल के लिए घोषित की। योरप में इतनी धर्म-बुद्धि आज किसी में नहीं है। हरएक दल यही मानता है कि शत्रु ही हिंसा करता है और हम तो केवल प्रतिहिंसा करते हैं और इसलिए हमारा पक्ष ही सत्पक्ष है। राष्ट्रों में परस्पर जो पुराने झगड़े चलते हैं उनमें प्रथम अपराध किसने किया, यह ढूंढना अशक्य है और व्यर्थ भी है। एक अपराध दूसरे अपराध के बदले के रूप में करने से वह क्षम्य नहीं हो सकता और न न्याय्य ही हो सकता है। हिंसा के सामने प्रतिहिंसा पाशवी न्याय है—अथवा सच कहें तो पशु से भी नीच कोटि का न्याय है; क्योंकि पशुओं को सदियों तक अन्याय की स्मृति और उसका बदला करने की वैर-बुद्धि रखने की शक्ति नहीं है। पशुओं में क्षमा भले ही न हो; पर विस्मृति तो है। अगर प्रतिहिंसा का तत्व न्याय्य माना जाय तो हम नहीं समझते कि दुनिया में एक भी आदमी जिंदा रह सकेगा। इसीलिए कविराज कहते हैं—

'दया धरम का मूल है'

आयरिश देशभक्त मैक्स्विनी ने धर्म की चर्चा बहुत की है। उसने अंगरेजों की पाशवी शक्ति का विरोध अपने प्रायोपवेशन (मृत्युसमय तक अनशनव्रत) से किया। ब्रिटिश मन्त्री लाइड जार्ज ने उन्हें मरने दिया। आयरिश जनता को यह सहन न हुआ। और उसने फिर भी खून-खराबी शुरू की जो आजतक कम अधिक मात्रा में जारी है। थोड़े ही दिन हुए इन आयरिश लोगों ने ब्रिटिशों के एक प्रख्यात सेनापति सर हेनरी विल्सन का खून किया और अब, जैसा कि हमने आरम्भ में कहा है, स्वतन्त्रतावादी और प्रजा-सत्तावादी 'यादवी' मचा रहे हैं। इसमें आज तो आयर्लैंड का ही ज्यादह तर नुकसान है। ब्रिटिश सल्तनत तो आराम से उसका तमाशा देख सकती है। अथवा एक पक्ष को मदद कर के दूसरे को मरवा सकती है। लेकिन उसे याद रखना चाहिए कि दूसरे पर अन्याय करने से, दूसरे पर जुल्म करने से, दूसरे को लूटने से अगर एक गुना अधःपात होता हो तो दूसरे का और वह भी एक महान् और पुरातन समाज का नैतिक अधःपात करने से अथवा होने देने से जो पाप होता है उससे होने वाला अधःपात नरक से भी गहरा होता है। आयर्लैंड को भी समझना चाहिए कि दूसरे का खून बहाने से स्वतन्त्रता-देवी प्रसन्न नहीं होती। अपने निज का निर्दोष और निर्वैर खून आत्मत्याग-पूर्वक अर्पण करने से ही वह सन्तुष्ट हो सकती है। क्योंकि स्वतन्त्रता देवी, न्याय-देवता और शान्ति-देवता एकही प्रेम-देवता के तीन अवतार हैं।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, आषाढ सुदि १५, सं. १९७८

स्वराज्य का दावा

कितने ही लोग यह मानते हैं कि बस स्वराज्य मिला कि हम कृतार्थ हुए, हमारे कर्तव्य की इति-श्री हो गई। वे जिस तरह बन पड़े उस तरह अंगरेजों को भारत से निकाल कर भारत के भाग्य का सूत्र-शासनाधिकार अपने हाथों में लेने के लिए आतुर हैं। वे इस राजनैतिक स्वराज्य को ही अपना अन्तिम ध्येय मानते हैं। पर राजनैतिक स्वराज्य तो मानवी जीवन के सम्पूर्ण विकास में एक छोटी सी घटना है। तो भी उसकी प्राप्ति और रक्षा अनिवार्य है, अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि वह जीवन के उत्कर्ष का प्रवेश-द्वार है। वह हरएक के लिए खुला रहना चाहिए। और यदि कोई उसे अपने लिए बन्द पावे तो उसका स्वाभाविक कर्तव्य है कि उसके खोलने का अधिकार अपने पास ले के और उसे खोले। आज भारत के लिए स्वराज्य का फाटक बन्द है। इससे उसके जीवन का स्वाभाविक विकास बन्द हो गया है। भीतर ही भीतर भारत की आत्मा का नाश हो रहा है। यह हत्या लोगों के सिर है—जिन्होंने दरवाजा बन्द कर रक्खा है और मरने-मारने को तैयार हैं, पर खोलते नहीं; और जो भारतवासी उसे खुलवाने की दिलोजान से कोशिश नहीं करते। सो, सम्पूर्ण मानव-जीवन के विकास को देखते हुए, यद्यपि राजनैतिक स्वराज्य एक छोटी चीज है, पर उसकी विशेष स्थिति के कारण उसका महत्व किसी प्रकार उपेक्षा-योग्य नहीं है। और आज तो भारत के लिए वह जीवन और मृत्यु का प्रश्न हो रहा है। इसको हल किये बिना उसके जी को चैन नहीं हो सकती।

तो फिर राजनैतिक स्वराज्य छोटी सी चीज कैसे? सो इसके लिए हमें पहले यह जानना होगा कि मनुष्य के जीवन का उद्देश क्या है? वह किस बात को अपना अन्तिम साध्य मानता है? इसका एक ही उत्तर मनुष्य-मात्र की ओर से मिल सकता है—अखंड सुख-शान्ति। इसे वह किस प्रकार पा सकता है? पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास के द्वारा। जिसके शरीर की शक्तियों का विकास नहीं हुआ, उसका मन कैसे उन्नत हो सकता है? और जिसका मन विकसित नहीं है उसकी आत्मा का उत्कर्ष कैसे हो सकता है? और जबतक शरीर, मन और आत्मा के गुणों और शक्तियों की वृद्धि नहीं हुई है तबतक सुख और शान्ति कैसे मिल सकती है? जिसका शरीर निर्बल है, या रोगी है, जिसका मन क्षीण हो गया है, चिन्ताग्रस्त रहता है, जिसकी आत्मा दुर्बल है, पतित है, उसे सुख और शान्ति कैसे नसीब हो सकती है? जिस मात्रा में इन तीनों का विकास होगा उसी मात्रा में सुख-शान्ति की वृद्धि होगी। पूर्ण विकास होने पर मनुष्य अखंड सुख-शान्ति का अधिकारी हो जाता है।

इस मानवी जीवन के स्वाभाविक पूर्ण विकास का जो मार्ग है, जो नियम है, उसे धर्म कहते हैं। इसके विपरीत जो कुछ है वह सब अधर्म कहलाता है। धर्म आध्यात्मिक शब्द है, कर्तव्य लौकिक या व्यावहारिक। कर्तव्य धर्म का स्थूल रूप है। मनुष्य इस धर्म-मार्ग पर चलने के लिए निसर्गतः स्वतन्त्र है। इस आजादी के बिना वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। उसकी इस आजादी में बाधा डालना उसकी स्वतन्त्रता छीनना है, प्रकृतिदेवी का अपराध करना है और मनुष्य-जाति की उन्नति में बाधक होना है। आजादी धर्म की सहायक है। धर्म आत्म-विकास की कुंजी है। आत्म-विकास सुख-शान्ति का साधन है। इससे यह सिद्ध होता है कि मानवी जीवन के विकास के लिए दो बातें परम आवश्यक हैं—१-धर्म का पालन २-पूरी आजादी।

इस विकास-काल में मनुष्य को कई स्थितियों में से गुजरना पड़ता है। यही जीवन के भिन्न भिन्न विभाग और अवस्थायें हैं। इनमें मनुष्य जो कुछ पाता है, या सीखता है, वही संस्कार है। संस्कृति शब्द संस्कार से बना है। जिसकी संस्कृति जितनी अच्छी होती है उतना ही उसका विकास सुगम और शीघ्र होता है। आज भारत पश्चिमी संस्कृति से इसलिए असहयोग करना चाहता है कि वह धर्म-मार्ग से कोसों दूर चली गई है। उसने धर्म को राजनीति के हाथ बेच दिया है। उसमें पशुवृत्ति की प्रधानता हो गई है। उसकी गति पतन की ओर है।

मनुष्य समाजशील है। जो व्यक्ति का ध्येय है वही समाज का ध्येय है। समाज की स्थिति और रक्षा तथा मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों के लिए जो नियम बनाये गये हैं उनको नीति कहते हैं। वे व्यक्तिगत विकास के बाधक नहीं हो सकते। समाज व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति समाज के लिए नहीं है। व्यक्ति और समाज के हित एक ही हैं। व्यक्ति के विकास-मार्ग से समाज का विकास-मार्ग भिन्न नहीं हो सकता। समाज की रक्षा के नियम समाज के विकास-मार्ग अर्थात् धर्म के नियमों के अनुसार ही हो सकते हैं। अर्थात् नीति धर्म को छोड़ कर नहीं रह सकती। धर्म पति है, नीति उसकी गृहलक्ष्मी है। धर्म जीवन का नियामक और नेता है, नीति उसे धर्म-पालन के योग्य बनाती है। नीति धर्म की अनुगामिनी है। इससे यह सिद्ध होता है कि समाज ऐसा कोई नियम नहीं बना सकता जो धर्म-तत्व के विपरीत हो। और यदि बनावे तो व्यक्ति उसको न मानने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र है। क्योंकि वह नीति नहीं, अनीति है।

स्वराज्य-संग्राम में धर्म, संस्कृति और नीति के नाम पर जो लोग भड़क उठते हैं वे अब देख सकते हैं कि धर्म, संस्कृति और नीति बहिष्कार करने योग्य वस्तुयें नहीं हैं। मानव-जीवन का विकास उनके बिना हो ही नहीं सकता। योरप ने इन तीनों को एक दूसरे से पृथक् करके संसार का बड़ा अपराध किया है। संसार की प्रगति की गाड़ी उसने ऐसे गढ़े में गिरा दी है कि वही अब उसका जीवन-सर्वस्व हो बैठा है। भारत भी चक्कर में आ गया था। पर महात्माजी के संकेत से सीधी राह पर आ रहा है। बचे-खुचे लोग अब भी सँभल जायं। इसीमें खैर है।

राज्य समाज का एक अंग है। समाज का भरण-पोषण, रक्षण और शिक्षण उसका प्रधान कर्तव्य है। समाज ही अपनी सुविधा और आवश्यकता के अनुसार राज्य की सृष्टि करता है। वही राज्य को अपनी सत्ता का कुछ अंश प्रदान करता है। समाज के उद्देश और व्यवस्था के अनुसार काम करना राज्य का कर्तव्य है। इस कर्तव्य का ठीक ठीक पालन न होने पर समाज उस राज्य-संस्था को तोड़ कर दूसरी संस्था कायम कर सकता है। इसीको सरकार कहते हैं। राज्य-नीति, समाज-नीति का एक अंग है। समाज-नीति धर्म-नीति के प्रतिकूल नहीं हो सकती। अतएव राज्य-नीति भी धर्म के शासन से बाहर नहीं जा सकती। राज्य-नीति धर्म की सेवक है। राज्य धर्म के रक्षण

के लिए है, प्रजा के लिए नहीं। वह राज्य या सरकार सबसे श्रेष्ठ है जो समाज पर कम से कम शासन करती हो। जिस राज्य में प्रजा को यह न मालूम हो कि हम पर कोई राज कर रहा है, कुछ बोझ या दबाव हम पर है, वही राज्य सर्वोत्तम है। और जिस राज्य में प्रजा पद पद पर पीड़ित, अपमानित और लुटी जा रही हो वह तो नरक के समान है। उस राज्य के अधीन रहना, अपने मनुष्यत्व को खोना है। वह पाप है।

आदर्श और उत्कृष्ट राज्य वही हो सकता है जिसके संचालक प्रजा के चुने हुए लोग हों, जो प्रजा के मत के अनुसार उसकी भलाई के ही लिए उसे चलाते हों। इसीको स्वराज्य कहते हैं। इसी स्वराज्य के लिए भारत आज अंगरेजी सरकार से लड रहा है। वर्तमान अंगरेजी सरकार भारत के लिए अत्यन्त निकृष्ट सरकार हो गई है। प्रजा उसके अत्याचारों से त्राहि त्राहि कर रही है। ऐसी सरकार को सुधारना या मिटा देना उसका धर्म हो गया है। वहां प्रजा के और उसके हित इतने भिन्न, इतने परस्पर विरुद्ध, हो गये हैं कि उसके साथ सहयोग करना देश के साथ असहयोग करना हो गया है। खिलाफत और पंजाब के अन्यायों ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस सरकार को न तो धर्म की परवाह है, न नीति और न्याय की। इसीलिए भारत वासियों ने अपना स्वराज्य का दावा पेश किया है और वे प्राण-पण से उसे आगे बढा रहे हैं। भारत का यह दावा केवल राज्य-सत्ता के नाम पर नहीं, आजादी के नाम पर, नीति और धर्म के नाम पर, भारतवासियों के और मनुष्य-जाति के जीवन के विकास के नाम पर, और मनुष्यमात्र की अखंड सुख-शान्ति के नाम पर है। उसका दावा केवल राजनीति या राज्य-सत्ता की कच्ची बुनियाद पर नहीं है बल्कि आजादी, जो कि मनुष्य-मात्र का जन्मसिद्ध हक है, जो मनुष्य की स्वाभाविक आन्तरिक अभिलाषा है, समाज का हित, धर्म की रक्षा और मानवी विकास की गहरी और सुदृढ चट्टानों पर खडा है। दुनिया की कोई बडी से बडी ताकत उसे न हिला सकती है, न रद कर सकती है।

इससे वे लोग जो राजनीति को ही अपना जीवन-सर्वस्व समझ कर राजनैतिक स्वराज्य को ही अपना ध्येय मान रहे हैं अपनी भूल को समझ जाय तथा वे लोग भी जो धर्म और राजनीति को भिन्न मान कर या तो राजनीति में धर्म का नाम सुनते ही लाल-पीली आंखें करने लगते हैं या धार्मिक पुरुषों को राजनीति में पडते हुए देख कर 'तोबा तोबा' करने लगते हैं, सीधे सच्चे रास्ते पर आ जाय। राजधर्म धर्म का एक अंग है। स्वराज्य-रूपी एञ्जन के बिना धर्म का कारखाना किसी तरह नहीं चल सकता।

वीर-धर्म

भारत की तमाम समस्याओं में उसकी दरिद्रता की समस्या सबसे बडी और जटिल है। लोगों को जहां पर दिन में दो बार पेट भर खाना भी नहीं नसीब होता वहां उनका चित्त दूसरे सवालों की ओर जा ही कैसे सकता है? सुबह से शाम तक, एक तारिख से लेकर दूसरी तारिख तक, और जन्म से लेकर मृत्यु तक दरिद्र भारत के आगे बस एक यही सवाल खडा रहता है कि इस पेट का गड्ढा किस प्रकार भरा जाय।

देहात में कितनी ही जगह जब मनुष्य बीमार पडता है तब वह न तो एक भी दिन आराम ही और न दवा-दरपन ही कर सकता है। क्योंकि अगर आराम करने जाय तो खाये क्या? और डाक्टर को दवा के लिए तीन आने भी तभी वह दे सकता है जब एक दिन की खुराक बंद कर दे। इसी गरीबी के कारण मनुष्य का तेज भी मर जाता है। वह अन्याय होते हुए अपनी आंखों देखता है, पर उसका सामना नहीं कर सकता। वह बराबर जानता है कि मैं ठगा जा रहा हूं, पर फिर भी उससे बच नहीं सकता। इस दरिद्रता के कारण तो वह लाचार, बेबस हो जाता है,-दया, माया, ममता, सबको उसे छोड देना पडता है। वह अपने बैलों पर, घोडों पर, और दूसरे जानवरों पर पुत्रवत् प्रेम करता है। पर इसी भीषण गरीबी के मारे उसे उनके थक जाने पर भी निर्दयता-पूर्वक उनसे काम लेना पडता है। उन्हें मारना भी पडता है।

पर आश्चर्य की बात यह है कि उसे कई बार महज इसी लिए अधिक खर्च करना पडता है कि वह गरीब है, देहाती है। वह गरीब है, इसीलिए उसे हरएक वस्तु अधिक महंगी मिलती है, इसीलिए उससे अधिक ब्याज लिया जाता है, और इसीलिए रिश्वत दे कर सुधरी हुई बातों का काम उसे करना पडता है अथवा थोडे में कहना चाहें तो, गरीब है इसीलिए उसे अधिक गरीब बनना पडता है।

पर इसका उपाय? उपाय क्या? कानून से तो उसकी रक्षा हो नहीं सकती। शाहजादे से लेकर कमिश्नर तक के जो बडे बडे दौरे देश में हुआ करते हैं उनसे भी गरीबों की हालत सुधर नहीं सकती। उलटे ऐसे मौकों पर बेगार दे दे कर बेचारे अधमरे हो रहे हैं। अदालतें उनको बेघर बनाने का काम कर रही हैं। और पुलिस तो उनको मानों यमदूत ही दिखाई देती है। वकील, कर्ज देने वाले साहूकार, जमींदार, पटेल-पटवारी, नाजायज दस्तूर लेने वाले पण्डे-पुरोहित, साधु-सन्यासी, फकीर सब गरीब काश्तकार पर ही अपना पेट भरते हैं। वह दुनिया को खिलाता है पर उसे खिलाने वाला कोई नहीं मिलता। इसीलिए वह भूखों मरता है।

तो फिर उसे क्या करना चाहिए? इसका उपाय स्वावलंबन के सिवा और हम क्या बता सकते हैं? पर जिस आदमी के ऊपर सारे समाज का भार अवलंबित है उसके सामने स्वावलंबन का नाम लेते हुए हमें सचमुच शरम आनी चाहिए। उसके भी नन्हें नन्हें बालक होते हैं, माता-पिता होते हैं, भाई-बहनें होती हैं। वह यह सब केवल इसीलिए बरदाश्त करता है कि उनकी दुर्दशा न हो। नहीं तो वह कभी का या तो बलवाई हो जाता या घरबार छोडकर अंग में भभूत रमा लेता। पर कोई उसकी सुधि भी लेता है? हम जो कुछ करते हैं वह सब शहरों में ही। बडे बडे व्याख्यान भी शहरों में ही होते हैं। शिक्षा के लिए रुपया भी शहरों में ही खर्च किया जाता है। अखबार भी शहरों ही में पढे जाते हैं। दवा-दरपन की सुविधा भी शहरों में ही होती है। दूसरी सुख-सामग्री भी शहरों ही में मिल सकती है। फिर बेचारे देहाती गरीबों का वाली कौन?

हां, विचार कीजिए "गरीबों का वाली कौन?" गरीबी की दवा तो गरीबी ही है। जहां देश के करोडों लोग भूखों मरते हैं वहां उनकी दरिद्रता-चाण्डाली को मिटाने के लिए हजारों लाखों नौजवानों को स्वेच्छापूर्वक गरीबी अंगीकार करना चाहिए। धार्मिकता-पूर्वक गरीबों के धर्म की दीक्षा लेना चाहिए। इस अंगरेजी शिक्षा-प्रणाली के कारण हम इस बात में बहुत ही कायर बने हुए हैं। मनुष्य को जितना भय मौत, बेइज्जती, धर्मद्रोह, या देश-द्रोह का नहीं होता उतना इस गरीबी का होता है। जिस देश में स्वेच्छापूर्वक गरीबी धारण की जाती थी और उसकी प्रतिष्ठा थी उसी देश में आज हरएक शिक्षित नौजवान गरीबी से कायर की तरह भागता फिरता है।

सन में भीषण अकाल था। लोग अन्नाभाव के कारण धड़ाधड़ मर रहे थे। लोगों की यह नागवार हालत महात्मा टाल्स्टाय से न देखी गई। वे भी अपना घरबार छोड़कर भिखारी हो गये। मामूली दृष्टि से देखा जाय तो इससे उन्होंने क्या लाभ उठाया? वे अकेले गरीबों से शामिल कर के उनकी सेवा भला कैसे कराई। अर्थशास्त्री इसका जवाब नहीं दे सकते; क्योंकि उनके शास्त्र में आत्मा के लिए तो स्थान ही नहीं। महात्मा टाल्स्टाय ने संसार की आत्मा को जाग्रत किया। भोगविलास में डूबे हुए हजारों लोगों को अकाल का और उसके पीछे होने वाले अन्याय का प्रत्यक्ष दर्शन कराया।

नौजवान कहते हैं—"आपका कहना माना। पर हमारे बाल-बच्चों का क्या होगा? जिस स्थिति में वे रहते आये हैं उसमें तो उन्हें रखना ही होगा न? क्या यह उचित है कि हमारे विचारों के लिए वे कष्ट उठावें?" हां, अवश्य उचित है। अगर आपकी दृष्टि में आपकी स्त्री और बाल-बच्चे ही सत्य हों और आपके करोड़ों भूखों मरने वाले भाई भ्रम-मूल हों तो बात दूसरी है। क्या यह उचित है कि हमारी विलासमय आदतों के लिए हमारे असंख्य भाई भूखों मरें? आप ऐसा क्यों नहीं सोचते? 'गरीबी में क्या होगा, कैसे दिन बीतेंगे'! केवल इसी डर से हम कितने कायर हो गये हैं! कितने बे-बस हो गये हैं! पद पद पर हमारा जो तेजोवध हो रहा है उसका कारण यही गरीबी का डर है। हम चुपचाप अन्याय सहते हैं, बे-इज्जती को बरदाश्त करते हैं, हम खुद दूसरों पर अन्याय करने को तैयार हो जाते हैं, या आंख मूंद कर दूसरे के अन्याय से सहयोग कर दिन-रात अपनी आत्मा का अपमान करते हैं। इसका कारण यही, केवल गरीबी का डर, है।

कितने ही भाइयों का कहना है—"इतना स्वार्थ-त्याग तो किसी विरले महात्मा से ही हो सकता है। सर्व-साधारण के लिए यह आदर्श नहीं हो सकता। क्या बाल-बच्चों का विचार कभी छूट सकता है?"

युद्ध में जो हजारों, नहीं लाखों, सैनिक लड़ने के लिए घरबार छोड़ कर जाते हैं क्या वे सब महात्मा ही होते हैं? क्या उनके बाल-बच्चे नहीं होते? १० या १५ रुपये पाने वाला आदमी बच्चों के लिए क्या बचत कर सकता है? हमें अपने स्त्री-पुत्रों को आश्रित की तरह रखने और समझने की खराब आदत पड़ गई है। इसीलिए हमें अज्ञात भविष्य में पैर रखते डर मालूम होता है। हररोज मिहनत के साथ अपनी रोटी पैदा करने और भविष्य की कोई चिन्ता न करने में जो वीर-रस भरा हुआ है उसका मधुर स्वाद और अनुभव हरएक आदमी नहीं जान सकता? सुरक्षित जीवन जीवन को हीन, नवीनता के आनंद से शून्य अतएव जड़-प्राय बना देता है। जीवन का सारा आनंद तो दैनिक अनिश्चित-नित्य नये युद्ध में ही है। इसका आनंद जिसने नहीं पाया उसे अभागी ही कहना चाहिए। जिसका भविष्य निश्चित है, सुरक्षित है, उसमें धार्मिकता का उदय-विकास होना कठिन है। यथार्थ में तो जो सुरक्षित जीवन की इच्छा करता है उसे नास्तिक ही कहना चाहिए। बालक जिस प्रकार अपने माता-पिता पर विश्वास रख कर निश्चिंत रहते हैं उसी प्रकार वीर पुरुषों को भी भगवान पर विश्वास रखना चाहिए। जहां सुरक्षित जीवन है वहां न तो पुरुषार्थ है, न धार्मिकता है, न कला है और न काव्य है।

जो मनुष्य स्वेच्छापूर्वक गरीबी स्वीकार करता है वह अभ्यासी को काल की तरह कराल दिखाई देता है। दीक्षितों को वह कृपा-निधि मालूम होता है। वह बड़ी से बड़ी राज्य-शक्ति का सामना कर सकता है। और उसीके सामने धर्म अपना स्वरूप प्रकट करता है। गरीबी तो वीरता की दीपक है, ईश्वर का प्रसाद है और धर्म का आधार है। देश में जब ऐसे गरीबों की संख्या बढ़ेगी तभी उसकी दरिद्रता नष्ट होगी, अकाल दूर होंगे, जनता में धैर्य का उदय और विकास होगा और आज जो बातें हमें असम्भव दिखाई दे रही हैं वे सब उसके लिए सम्भव और आसान हो जायगी।

भारतीयों के अन्दर देश-भक्ति है; दया-धर्म है; विद्वत्ता भी है। धैर्यवान् और चतुर पुरुषों की तो यह भरत-भूमि खान ही है। ज्ञान का तो यह देश निधि है। इसकी संस्कृति सर्वोच्च है। अब देर है सिर्फ नौजवानों के स्वेच्छापूर्वक गरीबी धारण करने की। आज भी संसार में भारत की जो कीर्ति फैल रही है वह न तो उसके व्यापार के कारण है और उसकी संपत्ति के कारण; वह तो इसीलिए है कि उसके कितने ही पुत्रों ने इस वीर-धर्म की दीक्षा लेकर गरीबी को अंगीकार किया है। देश के करोड़ों भूखों मरने वाले भाई ऐसे ही भाइयों से अपने उद्धार की आशा रख सकते हैं। क्योंकि जिन्होंने गरीबी धारण कर ली है उन्होंने अपना उद्धार कर लिया है और वही दूसरों का उद्धार कर सकते हैं।

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

शर्म है

सिर से पैर तक विदेशी कपड़े पहने हुए अपने मित्र का परिचय देते हुए श्री. — बोले भाई ...... के मकान पर खादी खूब भरी पड़ी है। आप खादी पहनने के कायल भी हैं। पर ये कपड़े तो इसलिए पहनते हैं कि इन्हें मदरासी रूमाल बेचने के लिए योरपीय व्यापारियों के पास आना-जाना पड़ता है।

अपनी शरम को इस प्रकार कबूल करते हुए देखकर मैं तो अवाक् रह गया। इस आघात के असर से अपने को संभालने के लिए मैंने कहा:—भला वे मदरासी रूमाल किसलिए खरीदते हैं?

विदेशी पोशाक पहने हुए उन व्यापारी भाई ने कहा—"मैंचेस्टर भेजने के लिए। उनके सच्चे खरीदार तो आफ्रिका-निवासी हैं। पर उनके लिए बाजार है मैंचेस्टर। मैंने पूछा—"क्या आपका खयाल है कि आप अगर खादी पहने रहें तो वे आपका माल न खरीदें?"।

उन्होंने कहा—"जी हां यही हाल हो।" मैंने फिर उनकी ओर देखा और यह सोचकर कि इतने थोड़े समय में इनके खयालात बदल देना असंभव है, मैं निराश-सा हो गया। मनही मन मैंने एक ठंडी सांस खींची और विषय बदल कर दूसरे विषय पर बातचीत करने लगा।

एक महासभा के कार्यकर्ता जेल जा रहे थे। हम भी उन्हें पहुंचाने के लिए मजिस्ट्रेट की अदालत में पहुंचे। भीड़-भड़क्का न था। जुरमाना देने से इन्कार कर के एक साल के लिए जेल जाना स्वीकार करना अब रोजमर्रा की बात हो गई है। हर रोज इन्हें देखने के लिए कौन जाय? कुछ इने-गिने लोग बरामदे में दिखाई दे रहे थे। उनमें एक दुबला-पतला नौजवान भी था। सहसा मेरी नजर उसपर पड़ी। उसके सिर पर फेल्ट कैप, बदन में डक का कमीज और ऐसे ही किसी विदेशी कपड़े का कोट भी था। पर धोती? वह अलबत्ते खादी की दिखाई दी। मैंने और भी बारीक नजर से देखा। वह शुद्ध हाथकती-बुनी खादी थी। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही! दक्षिण-भारत वासी मलीन धोतियों पर किस प्रकार लट्टू होते हैं यह जिन्हें

मालूम होगा वे मेरे आश्चर्य का कारण भली भांति समझ सकते हैं। यहांपर (दक्षिण भारत में) लोग खादी का कोट पहनेंगे, खादी की टोपी पहनेंगे, खादी का कमीज भी पहन लेंगे पर— पर धोती तो उन्हें वही महीन विदेशी सूत की पसन्द है। वे उसे मरते दम तक न छोड़ेंगे। पर इस भले आदमी की बात इसके ठीक उलटी दिखाई दी। इसीलिए मुझे इतना आश्चर्य-कुतूहल हुआ, और मैंने पूछा,— "भाई यह कैसे?"

उसने कुछ क्षमा-याचना और संकोच के भाव से मुसकुराकर नम्रता से कहा—

"मैं एक फर्म में नौकर हूं"।

मैंने पूछा:—"पर अगर—"

उसने कहा:—"हां, अगर मैं खादी पहनूं तो मुझे वे निकाल दें।"

मैंने कहा:—"पर खादी तो तुम फिर भी पहने हुए हो।"

उसने कहा:—"धोती की ओर उनकी इतनी नजर नहीं जाती। उनकी नजर तो खादी की टोपी, कोट, या कमीज पर फौरन् पड़ती है।"

इससे मैंने कुछ दलील भी की। पर नौकरी से अलग हो जाने और भूखों मरने का डर देश-भक्ति और उनके सिद्धान्त-प्रेम से कहीं अधिक था।

मैं स्टेशन पर आया और रेल में बैठने के लिए एक अच्छा कमरा देखने लगा। एक जवान मुसलमान-भाई अपनी सज्जनता का परिचय देते हुए अपने कमरे में मुझे बुलाने लगे। वे कहने लगे कि "मैं खिलाफत का एक कार्यकर्ता हूं।" उनके बदन पर मैंचेस्टर मलमल की नफीस अचकन पड़ी हुई थी और पैरों में मिल के कपड़े का पजामा। उन्होंने मुझसे मेरा नाम-ठाम जानना चाहा। मैं तो यह सब देख कर चक्कर में पड़ गया था।

मैंने कहा—"मैं एक पागल आदमी हूं।"

मेरे कहने का आशय करीब करीब समझते हुए उन्होंने कहा:—"तो मैं भी एक पागल हूं"

मैंने कहा:—"नहीं आप तो पागल नहीं मालूम होते। अच्छा कहिए, आपका पजामा किस कपड़े का है?"

उन्होंने कहा:—"क्यों? खादी का।"

अब तो हद हो गई! फिर मैंने मुसकुराते हुए पूछा:— "क्या सचमुच यह खादी ही है?"

उन्होंने कहा:—"जी हां; खुद मैंने ही इसे खरीदा है। मैं जानता हूं, यह खास अहमदाबाद की मिल का बना कपड़ा है। शुद्ध स्वदेशी है। इसमें सन्देह हो ही नहीं सकता"।

मैं:—"पर मिल के कपड़े को खादी नहीं कहते।"

मुसलमान-भाई—"जी हां, आपका कहना ठीक है। माफ कीजिएगा साहब। मेरे घर पर तो खादी है। पर बात ऐसी है, मैं हूं एक ठेकेदार। रेलवे के अंगरेज अधिकारी खादी से नाराज रहते हैं। अगर हम खादी पहन कर उनके पास जावें तो वे हमें बहुत दिक करते हैं। और कभी कभी तो हमारे ठेकों को भी रद कर डालते हैं। बहुत से लोगों ने इस तरह नुकसान उठाया है।"

मैं:—"भला अब बताइए, आप पागल कैसे? आप तो बड़े होशियार आदमी हैं। आप तो यह अच्छी तरह जानते हैं कि अपने व्यापार को और खुद अपने को नुकसान से कैसे बचावें?"

आखिर उन्होंने अपना कसूर कबूल किया। और खादी पहनने से ठेकेदारों को किस किस तरह नुकसान उठाना पड़ता है, इसकी बड़ी लंबी-चौड़ी दास्तान सुनाई। उसी कमरे में एक और मुसलमान-भाई थे। बंबई के थे। महासभा और खिलाफत के एक उत्साही कार्यकर्ता थे। वे भी ठेकेदार ही थे। उन्हें भी अंगरेजी दुकानों से काम पड़ता था। इसलिए वे विलायती मलमल के कपड़े पहने थे। खादी तो घर पर ही रख छोड़ी थी।

हा! इस शरम का वर्णन किन शब्दों में किया जाय! अगर आदमी होते हुए भी हममें अपने आत्मगौरव और स्वाभिमान की भी रक्षा करने के लिए काफी पौरुष नहीं तो हमारी खादी, हमारी राजनीति, धर्म, परिवार और देश निर्माण किस काम का? खादी में ऐसा विश्वास रख कर उसे पहनने का साहस न होने से तो अविश्वास और गुलामी की गटर में पड़े पड़े सड़ा करना कहीं—हजार गुना, अच्छा था। कैसा आत्म हनन! कितना देश-घात!!

गुरु शुक्राचार्य का आदेश पाते ही मृत कच जिस प्रकार फिर जीवित होकर उनके सामने आ कर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया, उसी प्रकार चरखा जो कई सालों से मृत था महात्माजी का आदेश पाते ही फिर सजीव हुआ और अपना मधुर संगीत सुनाने लगा। जो उद्योग नष्ट कर दिया गया था उसका पुनर्जन्म हुआ। पर असुरों को यह कब सुहा सकता है? वे इस कच को फिर मारने के लिए यत्न कर रहे हैं।

क्या यह सच हो सकता है कि नौकर रखनेवाले अपने नौकरों को इस तरह जान बूझकर हाथ-कती-बुनी खादी के पहनने वालों को सजा देते होंगे? यह तो इस उद्धत गांधी-टोपी के बदौलत क्रोध से उत्पन्न हुई प्रतिक्रिया नहीं है; बल्कि एक पुनर्जीवित होते हुए उद्योग का गला घोंटने के उद्देश से सोच-समझ कर किया गया प्रयत्न मालूम होता है। अगर यह सच है तो दोनों के लिए शरम की बात है! शरम हमारी कायरता पर, जिससे हम खादी पहनने से डरते हैं, और शरम उन विदेशी दुकानदारों की उस बेहद खुदगरजी पर। उसका वर्णन असंभव है। हमें उन विदेशी सेठों से, और व्यापार, ठेके, उद्यम, आदि के प्रभुओं से जो हमारे व्यापारियों को काम में लगाये रखते हैं, कोई मतलब नहीं। वे अपनी आप संभाल लेंगे। पर हम लोगों को तो हजरत ईसा-मसीह के इन शब्दों पर विश्वास रखना चाहिए "जबतक जमीन पर पड़ा हुआ गेहूं का दाना सड़-गल नहीं जाता तबतक उससे कोई आशा नहीं की जा सकती। पर जब वह सड़ जाता है-मिट्टी में मिल जाता है तब तो उसमें से नया अंकुर फूटता है और तभी वह खूब फलता है।" सौदे, ठेके, नौकरी सब का त्याग देश के लिए करना होगा। उसके बिना शरम और निर्भयता का उदय-विकास हमारे हृदय में होना असम्भव है।

(यंग इंडिया) चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

(पृष्ठ ३७१ से आगे)

दोष चन्द्र में कलंक के समान क्षम्य हैं। 'प्रेमाश्रम' हिन्दी के मौलिक उपन्यास-साहित्य की गौरव-वृद्धि का कारण होगा। प्रेमाश्रम के चरित्र-चित्रण, मनोविकारों के उत्थान-पतन, क्रिया-शक्ति और मार्मिक दर्शनों को देख कर लेखक के मनुष्य-जीवन और समाजा-वस्था के गम्भीर अध्ययन तथा रचना-कौशल पर 'वाह वाह!' निकले बिना नहीं रहता। भाषा सरल परन्तु अर्थ-गर्भित है। पढ़ने में स्थान स्थान पर काव्य का आनन्द आता है। एतदर्थ प्रेमचन्दजी को धन्यवाद।

धर्म या अधर्म ?

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -))
विदेशों के लिए वार्षिक „ ५)

हिन्दी नवजीवन

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष १] [अंक ४८

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय | अहमदाबाद, श्रावण वदी ७, संवत् १९७९ | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी | रविवार, सार्वकाल, १६ जुलाई, १९२२ ई० | सारंगपुर, सरकीगराकी वाडी

महात्माजी के हाथ का सूत

यरवदा जेल से महात्माजी तथा श्री शंकरलाल बैंकर के हाथ का सूत लेकर महाशय ने भिन्न भिन्न बंडलों में बांध कर सत्याग्रहाश्रम को भेजा है। श्री महादेव भाई देसाई (भूतपूर्व संपादक इन्डिपेन्डेन्ट) का कता सूत भी आगरा जेल से आश्रम में आ पहुंचा है। इन तीनों जनमान्य कैदियों के हाथ का सूत जितना पवित्र है उतना सुन्दर भी है सूत बराबर एकसा है। उसकी छोटी छोटी आंटियां बना कर सुव्यवस्थित रखी है। महात्मा जी के हाथ का सूत १२ नंबर का है। श्री शंकरलाल भाई का १३ नंबर का और श्री महादेव भाई का १२ नंबर का है। तीनों सूत ताने के काम में आने लायक हैं। उनका कपड़ा बुनकर उनके गुण दोष की सूचना देने के लिए भी उन्होंने लिखा है।

महात्माजी के सूत कातने की खबर अखबारों को पहले ही से मिल चुकी है और वे तरह तरह की सूचनायें भी प्रकाशित कर रहे हैं। पूना से "केसरी" लिखता है कि इस सूत की कीमत तो उसके बराबर सोने भी अधिक है। उसे तो एक सुंदर चंदन की संदूक में रखकर स्वदेशी समारंभों में रख छोड़ना चाहिए और उसकी पूजा होनी चाहिए। पर यथार्थ में तो उसकी कीमत करोड़ों रुपयों से भी अधिक है।

उस सूत में तो गांधीजी का यह संदेश मूर्तिमान् है कि भारत को हाथ कते सूत के कपड़े पहन कर उन करोड़ों रुपयों को बचाना चाहिए जो हरसाल विदेशी कपड़ों में व्यर्थ नष्ट कर डालता है। उसमें दूसरा यह संदेश है कि जिस प्रकार रुई के बारीक बारीक तंतु मिला कर सूत बनाया जाता है उसी प्रकार भारत की तमाम हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई आदि जातियों को सम्मिलित हो कर एक राष्ट्र बनाना चाहिए। यह सूत तो अनीति, अन्याय और अत्याचार का सामना अहिंसात्मक असहयोग द्वारा करने वालों के लिए 'रक्षा बन्धन' है।

अगर हम इस सूत के इन तीन संदेशों—अहिंसात्मक असहयोग, एकता, और स्वदेशी—को हृदय में अंकित कर उनके अनुगामी बनेंगे तो हम यह सिद्ध कर दिखावेंगे कि महात्मा जी यद्यपि यरवदा जेल के लोहे के दरवाजों के अंदर बंद हैं तथापि वे सारे भारत में व्याप्त हैं।

(नवजीवन) मगनलाल खुशालचंद गांधी

टिप्पणियां

क्या राजनीति में महात्मा के लिए स्थान नहीं ?

माननीय शास्त्री महोदय ने आस्ट्रेलिया में अपने एक भाषण में महात्माजी के आदर्शों की पवित्रता और उच्चता की बड़ी प्रशंसा की। पर साथ ही यह भी कहा कि ऐसा साधु पुरुष तो धार्मिक कार्यक्षेत्र में ही संसार का और अपने देश का अधिक भला कर सकता। उसे राजनीति में सफलता कैसे मिल सकती है ? क्या आत्मोत्सर्ग और साधु-चरित्रता को शास्त्री महोदय राजनीति के लिए अनावश्यक समझते हैं ? धर्म और राजनीति के संयोग से वे इस तरह चौंकते क्यों हैं ? संसार तो शांति के लिए उत्सुक हो रहा है। आजतक संसार की राजनीति में सदसद्विवेक-बुद्धि को स्थान ही न था। वह चाहता है कि उसे योग्य स्थान मिले। राजनीति का उद्देश है मनुष्य-समाज की उन्नति। और अगर यह बात स्वयंसिद्ध है कि मानवजाति की उन्नति सत्य और सत्कार्यों ही से होगी, तो यह मानना होगा कि सिर्फ स्वार्थत्यागी और साधु पुरुषों को ही संसार के नेता होना चाहिए। हम तो परमात्मा को यही धन्यवाद देते हैं कि आज एक ऐसा ही अलौकिक सत्पुरुष जो दया और प्रेम का मूर्तिमान् अवतार है, हमारा नेता हो कर संसार को निर्भयता, सत्य और दयाधर्म का प्राणप्रद संदेश सुना रहा है।

संसार की राजनीति में कुटिल चालों की भी क्षणिक विजय हो सकती है जैसा कि अभीतक होता आया है। पर भारत का तो आदर्श ही निराला है। वह तो अपनी राजनीति को सत्य और प्रेम की बुनियाद पर खड़ी करता है। बूढे राजनीतिज्ञ चाहे जो कहते रहें, पर भारत ने अपने जीवन के ध्येय को समझ लिया है। उसने अपने अनुरूप नेता भी चुन लिया है। उसके नेता तो महात्मा गांधी ही हो सकते हैं और उसकी राजनीति है उनका सत्य, निर्भयता और प्रेम का सन्देश। असहयोग और अहिंसा ये दो महामंत्र उन्होंने संसार को दिये हैं। इनमें कभी फर्क नहीं हो सकता। परराज्य विजित के अज्ञानमूलक सहयोग पर ही निर्भर रहता है। सहयोग के असहय होते ही पर-राज्य का पतन निश्चित है।

भारत ने असहयोग से अपनी गुलामी को जिस प्रकार सदा के लिए मिटा दिया है उसी प्रकार अहिंसा के महामंत्र की भी शक्ति को वह जान गया है। उसके दिल में यह बात जम गई है कि अन्याय का परिमार्जन प्रतिहिंसा या बदले से नहीं हो सकता। उसका मार्ग तो है कष्ट-सहन। भय और द्वेष के पैर अब संसार से सदा के लिए उखड़ गये। सत्य और प्रेम का उदय हो चुका है। ये अब मानव-जाति के पथ-प्रदर्शक होंगे। हिंसा और खून-खराबी की अब कुछ चल ही नहीं सकती। भारत की यह स्वाधीनता का संग्राम अहिंसा को संसार में विजयशालिनी सिद्ध कर उसके लिए नयी आशा उत्पन्न कर देगा।

इसीलिए आज संसार भर के नौजवान इस महान् देश की ओर आंखें लगाये खड़े हैं। राजनैतिक विजय की वे इतनी पर्वा नहीं करते। वे तो यह देखना चाहते हैं कि भारत अपने धर्म पर कहांतक दृढ़ रहता है। और वह संसार के राष्ट्रों के नेतृत्व के कहांतक योग्य है।

महात्माजी जो अहिंसा-धर्म पर स्वराज्य से भी अधिक जोर दिया करते हैं। उसका रहस्य इसीमें है। पर इसमें स्वार्थान्तर नहीं होता। जैसे समाज और व्यक्ति का हित भिन्न भिन्न नहीं हो सकता उसी प्रकार भारत का उन्नति-मार्ग संसार की उन्नति से भिन्न नहीं हो सकता। इस रास्ते में कष्ट जरूर हैं, पर खून-खराबी से संसार को बचाने का यही एकमात्र मार्ग है। कुटिल चालें संकीर्ण क्षेत्र में कुछ समय के लिए भले ही विजयशालिनी दिखाई दें; पर संसार का सच्चा भला तो सत्य और अहिंसा के मार्ग से ही हो सकता है। इसलिए राजनैतिक क्षेत्र में भी चिरस्थायी विजय और सुखशान्ति की स्थापना के लिए महात्माओं की ही जरूरत है। संकीर्ण-हृदय धूर्त राजनीतिज्ञों की नहीं।

जेल में महात्मा गांधी

सिद्धान्त के लिए लड़ते हुए जेल जानेवाले और नीति-विरुद्ध कामों को करके सजा पानेवाले अपराधियों में जमीन-आसमान का अन्तर है। एक सत्य, धर्म्म और देश की रक्षा पर कुरबान होता है और दूसरा अपने पेट के लिए चोरी करता है, डाके डालता है अथवा अपने पाशवी विकारों को तृप्त करने के लिए अपनी बहनों का सतीत्व नष्ट करता है, मार-पीट और खून-खराबी करता है। एक का अपराध सिद्धान्त-मूलक है दूसरे का दुष्कर्म-मूलक। एक अत्याचारी और अनीति-परायण समाज और राज्य के कानून की अवहेलना करता है, और दूसरा नीति और धर्म को ठुकरा कर पाप-भागी होता है। एक स्वार्थी मनुष्यों के बुरे कानूनों को तोड़ता है और दूसरा कुदरत के सुखदायी कानूनों का भंग करता है। सत्य और न्याय की दृष्टि से तो पहले दल के लोग अपराधी कहे ही नहीं जा सकते। पर स्वार्थी और जालिम सरकारों के यहां यह भेद प्रायः नहीं रहता। हमारी अंगरेजी सरकार के जेलखानों में आज हजारों की तादाद में इस कोटि के सज्जन भूमण्डल के एक स्वार्थी समाज के शिकार हो रहे हैं। पर सभ्य सरकार इन दो दलों के कैदियों के साथ व्यवहार में भेद जरूर रखती है। भारत में भी बम्बई-प्रान्त को छोड़ दूसरे प्रान्तों में राजनैतिक और मामूली कैदियों का भेद माना जाता है। राज-नीति और बड़ी होशियारी के खयाल से बम्बई प्रान्त और प्रान्तों से एक ढंग आगे ही होगा। शायद इसीलिए यहां गुड़-गोबर बराबर माना जाता है। महात्मा गांधी जैसे साधु पुरुष और आदर्श प्रतिपक्षी भी मामूली कैदी माने जाते हैं और उनके साथ वैसा ही सलूक किया जाता है। इससे बम्बई-सरकार के हृदय की क्षुद्रता, और दुर्बलता का ही परिचय लोगों को हो रहा है। महात्माजी की महिमा तो तिलभर नहीं घट सकती—कष्टसहन से वे तो उलटा सरकार को भय-रूप होते जायेंगे। और तो ठीक, उन्हें कोई अखबार और किताब तक नहीं दिया जाता। एक प्राणी के साथ जो व्यवहार होता है वह उनके साथ हो रहा है, मनुष्य के जैसा नहीं। फिर भी सरकार यह उम्मीद करती है कि भारत के दिल की आग बुझ जाय!

हमें याद है कि बंबई की लेजिस्लेटिव कौन्सिल में बम्बई-सरकार के कानून-मंत्री सर चिमनलाल सेतलवाड ने बड़े दावे के साथ कहा था कि गांधीजी को सब तरह का आराम और अखबार दिये जाते हैं और इसी बिना पर श्री नटराजन् का प्रस्ताव उड़ गया था। अब सर चिमनलाल बतावें कि खुद उन्होंने कौन्सिल को धोखा दिया या वही धोखे में आ गये?

मौलाना बरी हुए

मौलाना हसरत मोहानी को बम्बई की हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश सर लल्लूभाई शाह और जस्टिस क्रम्प ने सम्राट् के खिलाफ जंग करने के इलजाम से बरी कर दिया। उन्होंने यह राय दी कि मौलाना ने अपने भाषणों में जंग के लिए लोगों को उकसाया नहीं। उन्होंने तो सिर्फ यह कहा कि सरकार की तरफ से जोरो-जुल्म होने पर फलां फलां हालतों में हिंसा-काण्ड का अवलम्बन करना पड़ेगा और यह इस्लाम के कवानीन के मुआफिक है। उनके भाषण का प्रधान उद्देश जंग की तैयारी नहीं, बल्कि मुस्लिम लीग के ध्येय को व्यापक बनाना था, जिसमें हिंसावादी लोग भी उसके भीतर आ सकें। अतएव उनका भाषण १२१ दफा के अन्दर नहीं आ सकता।

इस मौके पर हम मौलाना साहब को बधाई दिये बिना नहीं रह सकते, यद्यपि हम समझते हैं कि 'बरी' मौलाना से देश-निकाले की सजा पाने वाला मौलाना अधिक बलवान् होता और इसीलिए खिलाफत की अधिक सेवा कर पाता। हाईकोर्ट के जज महाशयों को भी उनकी स्वतन्त्र-वृत्ति के लिए धन्यवाद देना हम नहीं भूल सकते, यद्यपि कर्तव्य-पालन के लिए उसे ग्रहण करना वे आवश्यक न समझते होंगे। अंगरेजी अदालतों से असहयोगियों का विश्वास उठ गया है। उन्हें अनुभव हो गया है कि ये केवल बड़े अफसरों के इशारों पर नाचने वाली संस्थायें हैं। न्याय का शब्द तो अदालतों में जरूर उच्चार किया जाता है पर उसकी आत्मा कभी की मर चुकी है। और इसीलिए असहयोगी ऐसी दुष्ट संस्थाओं में न्याय पाने की अपेक्षा अपना बचाव न करते हुए जेलों का कष्ट भोगना बेहतर समझते हैं। पापी का प्रसाद भी पाप-रूप ही है। ऊपर जैसे न्याय के उदाहरणों से न्यायाधीशों की व्यक्तिगत न्यायनिष्ठा के प्रति आदर-भाव भले ही उत्पन्न हो सके; उन संस्थाओं के प्रति नहीं।

न्याय की रक्षा करना राज्य का एक कर्तव्य है। यह काम उसने न्यायालय को सौंप दिया है। प्रतिवादी न्यायालय में दो कारणों से अपनी सफाई देता है—एक तो अदालत को न्याय करने में सहायता देना और दूसरे अन्याय से होने वाली हानि से अपने को बचाना। पर यदि प्रतिवादी अपना बचाव न करे तो भी अदालत न्याय करने से बाज नहीं आ सकती। क्योंकि उसका अस्तित्व तो केवल न्याय करने के लिए है। 'आरोपी के सफाई न देने' के आत्मिक कारण या बहाने पर वह अन्याय को हरगिज नहीं कर सकती। पर जहां सफाई देने, सबूत देने पर भी न्याय का खात दिन दहाड़े किया जाता हो वहां 'सफाई न

देवे' के बहाने लोग धड़ा धड़ जेल में ठूंस दिये जाते हों वहां लोगों का क्या कर्तव्य है? और मिलों की बात जाने दीजिए— सिर्फ राजनैतिक मुकदमों को लीजिए। ऐसे मामलों में तो भारत में न्याय मिलना प्रायः असम्भव हो गया है। तभी तो असहयोगियों को अदालतों से असहकार करना पड़ा। नहीं तो, मुफ्त में जेल के कष्ट भोगने का शौक किसे चर्राता है?

पंच (ज्यूरी) के निरपराध बताने पर वास्तव में देखा जाय तो न्यायाधीश के लिए प्रायः कोई कारण ऐसा नहीं रहता जिससे वह मुल्जिम को अपराधी करार दे सके, यद्यपि कानून के अनुसार ऐसा करने का अधिकार उसे है। पर वर्तमान राजनैतिक संघर्ष ने अदालतों के वायु-मंडल पर इतना जहरीला असर डाल दिया है कि दौरा-जज सिसौदा साहब का मत ज्यूरी के मत के खिलाफ हुआ। पर हाईकोर्ट ने ज्यूरी की ही राय बहाल रक्खी। क्या मजिस्ट्रेट और दौरा-जज साहबान इससे कुछ नसीहत लेंगे?

मौलाना साहब की यह फतह असहयोग के नैतिक बल का फल है। यदि मौलाना साहब ज्यादह धीरज रखते—सफाई न देते—तो शायद उन्हें कष्ट भी उठाना पड़ता, पर विजय पर बैठे उनके गले में माला डाल जाती।

"भगवान गांधी"

भारत भावुक भूमि है। हम भावुकता को आदर की दृष्टि से देखते हैं। भावना-हीन हृदय मरुस्थल है। पर सच्ची भावुकता वह है जो अपने आराध्य के उपदेशों का अनुसरण करती हो। अतिरेक बुरी चीज है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। भावुकता का अतिरेक अन्ध-भक्ति में परिणत हो सकता है। महात्मा गांधी अंध-भक्ति के घोर विरोधी हैं। वे अपने नाम के साथ 'महात्मा' शब्द का प्रयोग किये जाने से बहुत तंग रहा करते थे। अब 'भगवान गांधी' को देखकर उनके चित्त में क्या क्या भाव उदय होंगे इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। 'भगवान गांधी' नाम का एक हिन्दी पाक्षिक पत्र अभी कलकत्ते से निकला है। पत्र के सम्पादक महात्मा गांधी को "ईश्वर का सबसे बड़ा अवतार" मानते हैं और वेद, शास्त्र, स्मृति, कुरान, बाइबिल के आधार पर वे इस बात को सिद्ध कर दिखाना चाहते हैं। निस्संदेह यह इस बात का दृढ़ प्रमाण है कि जनता के हृदय में महात्मा गांधी का आसन कितना ऊंचा है और कारागार-स्थित गांधी नेता गांधी से अधिक बलवान् होता जा रहा है; पर प्रश्न और समय आराध्य के गुणानुवाद का नहीं, उसके उपदेश के अनुसरण का है। दूसरे ईश्वर के अवतार का अस्तित्व न तो धर्मग्रन्थों में ही है और न तार्किक युक्तियों में ही। वह तो स्वयंप्रकाश्य है। सूर्य भगवान् उदय होते हैं और संसार जाग्रत हो जाता है। हमें विश्वास है कि भारत के स्वाधीन हो जाने से महात्मा गांधी को जो सुख और आनन्द होगा वह उनके 'ईश्वर का सबसे बड़ा अवतार' सिद्ध हो जाने से न होगा। उनकी भगवत्ता सिद्ध करने का तो एक ही मार्ग है स्वराज्य। उनके बतलाये अनुसार हम उन्हें जेल से छुड़ा नहीं लाते तबतक उन्हें 'भगवान्' और 'ईश्वर का सबसे बड़ा अवतार' कह कर हम स्वयं चाहे भले ही खुश हो लें; पर संसार हमारी बातों पर हंसे बिना न रहेगा। स्वार्थ, द्वेष, हिंसा, आदि जैसे भावों के रहते हुए, विदेशी सूत का कपड़ा पहनते हुए, देश-हित के लिए कष्ट-सहन से पग पीछे रखते हुए, यदि हम केवल महात्मा गांधी का गुण-गान करते रहें तो यह उनकी केवल विडम्बना है। हम 'भगवान गांधी' के सम्पादक महाशय की भावुकता की तो कदर कर सकते हैं; पर इस अस्वाभाविक अतिरेक पर असन्तोष प्रकट किये बिना नहीं रह सकते।

पाप बोल उठा!

एक कहावत है कि "पाप छत पर चढ़ कर बोलता है।" असहयोग-आन्दोलन को नेस्त-नाबूद करने के इरादे से सरकारी हिंदुस्तानी मन्त्रियों ने वर्तमान दमन में सरकार का जो चोली-दामन की तरह साथ दिया है उसकी कलई अब दिन पर दिन खुलती जा रही है। बंबई की लिबरल कान्फ्रेन्स में जब दबे-छुपे दमन नीति की पीठ ठोंकी गई और महात्मा गांधी के कारावास पर एक शब्द भी न कहा गया तथा श्री नटराजन् का प्रस्ताव उड़ा दिया गया, तब इस नाटक का पहला परदा उठा था। लोगों ने खुल्लम-खुल्ला देख लिया कि २०-२५ हजार भाइयों को, महासभा और खिलाफत के नेताओं को, तथा सब के प्यारे सरदार महात्माजी को जेल भेजने का श्रेय किनको है, यद्यपि 'उलटा चोर कोतवाले डांटे' के अनुसार उन्हीं के शब्दों में इसका दोष महात्माजी के सिर मढ़ा गया था। अब दूसरा परदा भी उठा है। संयुक्त-प्रान्त में इन दिनों ताल्लुकेदार और नरम-दल वालों में एक बात पर कलम-युद्ध ठन गया है। वहां के लाट सर हारकोर्ट बटलर का कार्य-काल थोड़े ही दिनों में खतम हुआ चाहता है। ताल्लुकेदार चाहते हैं कि सर बटलर का समय बढ़ा दिया जाय और नरम-दल वाले कहते हैं कि नहीं कोई दूसरा गवर्नर आना चाहिए। ताल्लुकेदारों का कहना है कि समय नाजुक है; बटलर सा० प्रान्त की दशा से वाकिफ हैं; ताल्लुकेदारों और किसानों के प्रश्नों को उन्होंने खूब अध्ययन किया है। नरम भाई कहते हैं कि अवध-लगान-कानून के मामले में बटलर सा० ने ठीक ठीक न्याय नहीं किया; ताल्लुकेदारों की मुरव्वत की। संयुक्त प्रान्त के 'अन्धे दमन' की भी शिकायत उन्हें है। ताल्लुकेदारों की ओर से जहांगीराबाद के राजा साहब और नरमों की ओर से 'लीडर' महाशय ताल ठोंक कर मैदान में आये हैं। खूब मैं-मैं तू-तू हो रही है। असहयोगियों को जिन कोमल शब्दों और मीठी तोहमतों से "लीडर" याद किया करता है वही तोहफा राजा साहब ने उसे और उसके दल को भेंट किया है और अपने पत्रों में यह बात साफ साफ खोल कर रख दी है कि संयुक्त प्रान्त के दमन में किस तरह हिन्दुस्तानी मन्त्रिमंडल सरकार के साथ है। असहयोगियों को न बटलर सा० के रहने से खुशी ही हो सकती है न चले जाने से गम ही हो सकता है। क्योंकि वे व्यक्तियों को नहीं बल्कि इस कु-शासन प्रणाली को ही सारी खुराफात की जड़ मानते हैं। और न उन्हें देश के आपत्काल में देश का साथ छोड़ कर सरकार का साथ देने के लिए हिन्दुस्तानी मन्त्रियों पर रोष ही है। क्योंकि वे जानते हैं कि यदि असहयोगियों को अपने विचार के अनुसार चलने का हक है तो मन्त्रियों को भी अपने विचार के अनुसार सरकार की सहायता करने का पूरा पूरा अधिकार है। हां, उन्हें एक बात की शिकायत अवश्य है। असहयोगी जिस प्रकार अपनी स्थिति को बराबर स्पष्ट करते रहते हैं उसी प्रकार आम तौर पर सारे नरम-भाइयों को और खास तौर पर हिन्दुस्तानी मन्त्रियों को समय समय पर अपनी स्थिति देश के सामने साफ करते रहना चाहिए था। और छिप कर वार नहीं किया करते। असहयोगी तो जान बूझ कर और सोच-समझ कर अपने देश, धर्म, और मान की रक्षा के लिए हर तरह के कष्ट सहन को उतारू हुए हैं। इसलिए उन्हें किसी बात का अफसोस नहीं है। दूसरे उनकी लड़ाई व्यक्तियों के साथ नहीं, पद्धति के साथ है। इसलिए उनके साथ न रंगभेद है न देश-भेद है। वे तो सिर्फ बुराई और भलाई, पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म का भेद जानते हैं। उनको आज इस पाप का भंडा अपने नरम

भाइयों को केवल यह दिखलाने के लिए किया है कि उनका अग्नि-वर्ग धर्मयुद्ध के नियमों का पालन नहीं कर रहा है। अंग्रेज अग्नि-दल की शिकायत हमने इसलिए नहीं की कि हम जानते हैं— उनकी युद्ध-प्रणाली भारत की धर्म-युद्ध-प्रणाली से बिल्कुल भिन्न अथवा विरुद्ध है।

देशी-राज्य-परिषद्

गत ५ मार्च को बम्बई में देशी-राज्यों के हितैषियों की एक बैठक हुई थी। कुछ बहस के बाद यह स्थिर किया गया कि आगामी अगस्ट या सितंबर में अखिल भारतवर्षीय देशी-राज्य परिषद् की एक महासभा हो। उसमें भारत के तमाम देशीराज्यों की प्रजा की उन्नति के लिए विचार किया जाय। एक समिति का भी संगठन हो चुका, जिसके सभापति श्री डी. वी. शुक्ल (राजकोट) हैं। और श्री. न. चिं. केलकर (पूना) एस. एल. मेहता (भावनगर) पी. एल. चूडगर (राजकोट) जे. आर. घारपुरे (बम्बई) और ए. वही. पटवर्धन (पूना) मंत्री हैं।

इस समिति ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की है जिसमें वह लिखती है कि भारत की हरएक देशी रियासत से अधिक से अधिक संख्या में प्रतिनिधि सम्मिलित हों। वह यह भी चाहती है कि (१) हर एक रियासत के मुख्य मुख्य पुरुषों का नाम लिखकर उसे भेज दिया जाय, जिससे उन्हें स्वागत-समिति के सदस्य होने के लिए प्रार्थना की जाय। (२) ऐसे पुरुषों के नाम भी भेजे जायं जो प्रतिनिधि की हैसियत से परिषद् में आ सकते हों। (३) विचारणीय सवाल भी भेजे जायं; पर समिति ऐसे लेखों को अधिक पसंद करेगी जिसमें यह लिखा हो कि देशीराज्यों की जनता को किस किस प्रकार के दुःख हैं तथा उसे किन किन बातों की शिकायत है।

समिति से पत्र-व्यवहार इस पते पर किया जाय—मंत्री देशीराज्य-परिषद्, चौबे का बाडा, बुधवार पेठ, पूना।

२१ साल के ऊपर का हरएक स्त्री-पुरुष प्रतिनिधि हो सकता है। परिषद् के ध्येय और उद्देश उसकी महासभा में ही निश्चित किये जायंगे।

सविनय-भंग-समिति का दौरा

सविनय-भंग-समिति के सदस्य अबतक देहली, लाहौर, कानपुर, प्रयाग, जबलपुर अकोला, और नागपुर का दौरा खतम कर चुके हैं और कल १५ ता. को यहां पधारे हैं। सेठ जमनालाल जी बजाज के असमर्थता प्रकट करने पर पहले श्रीमती सरोजिनी नायडू का नाम तजवीज किया गया था; पर बीमारी के कारण वे भी शामिल न हो सकीं। अतएव मदरास के 'हिन्दू' पत्र के सम्पादक श्री कस्तूरी रंगा आयंगर जबलपुर से साथ हुए। श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी भी जो अबतक अस्वास्थ्य के कारण समिति का साथ न दे पाये थे नागपुर में आ मिले। यहां का काम खतम कर के १८ ता. को लोग बम्बई जायंगे। वहां कार्य-समिति की बैठक होगी। फिर पूना आदि का दौरा होगा।

पंजाब में समिति को हिन्दू-मुसलमान-एकता की स्थिति पर सन्तोष न हुआ और हकीम अजमल खां साहब तथा पं० मोतीलाल नेहरू जी को अपने सार्वजनिक भाषणों में इसका जिक्र करना पड़ा। कानपुर की गवाहियों से यह पाया गया कि वहां स्वदेशी की प्रगति कम हो पाई है। २०० से अधिक चरखे नहीं चलते। विदेशी कपड़ा भी बहुत आता है। वहां के लोगों और कपड़े के व्यापारियों को भी आम तौर पर चेतावनी दी गई है। जबलपुर में सदस्यों के स्वागतार्थ म्युनिसिपालिटी ने राष्ट्रीय झंडा खड़ा किया था।

बैरिस्टर जिना की सलाह

उस दिन बम्बई के स्टूडन्ट्स ब्रदरहुड में बैरिस्टर जिना का एक भाषण हुआ था। यों तो बैरिस्टर जिना बड़े प्रभावशाली वक्ता हैं। पर उस दिन का उनका भाषण उतना सुंदर नहीं था। पहले ही पहल आपने विद्यार्थियों को यह उपदेश किया कि आप लोग अपने आदर्श के पीछे पागल मत होइए। वस्तुस्थिति को देखकर ही जो कुछ करना हो कीजिए।

पर सच पूछा जाय तो अगर नौजवानों को कोई विशेष हक है तो वह है अपने आदर्श के पीछे पागल हो जाना। हम जब इस शक्ति को खो बैठते हैं तब जिंदगीभर ठंडी सांसें खींच खींच कर पछताया करते हैं। स्वराज्य, देशसेवा, असहयोग या आत्मोत्सर्ग ये आदर्श भले ही हों, भले ही स्वप्न भी हों, पर ये सब कल ही सत्य होने वाले हैं। पर जिना साहब की सलाह के अनुसार ही देखें तो भी विद्यार्थियों का कर्तव्य भिन्न नहीं हो सकता। देश की भीषण गरीबी, प्राणहारक अकाल और स्वाभिमान तथा आत्मगौरव का नाश करने वाली गुलामी एवं हीन संस्कृति को देखते हुए भी हम क्षुद्र प्रलोभनों से अपनी दृष्टि हटाकर सीधे अपने आदर्श की ओर न चले चलें तो हमारी हालत क्या हो!

आगे चल कर श्री. जिना साहब कहते हैं "असहयोग बंद कर के आप लोग सरकारी विद्यालयों में जाइए। वे भी तो हमारे ही पैसे पर चल रहे हैं। वहां जरूर जाइए तो; पर वहां की गुलाम संस्कृति से बचते रहिए"।

दो साल के असहयोग के बाद भी जिना साहब ऐसी सलाह दे सकते हैं यह सचमुच आश्चर्य की बात है! सरकारी पाठ-शालाओं में जा कर वहां की गुलामी से भरी प्रवृत्ति का असर अपने दिल पर न होने देने योग्य शक्ति-बुद्धि विद्यार्थियों में होती तो उन्हें फिर पढ़ने ही की क्या जरूरत रही? यद्यपि यह ठीक है कि सरकारी या सरकार की सहायता से चलने वाली पाठशालाओं तथा कालेजों में भी राजनैतिक चर्चा की जा सकती होगी। पर वह स्वाधीनता नहीं कही जा सकती। छिपे छिपे तो गुलाम भी अपने मालिक को गालियां दे लेता है। पर मनुष्य की स्वाधीन वृत्ति की परीक्षा तो यही देखने से हो सकती है कि वह खुले आम क्या क्या कर सकता है? राष्ट्रीय विद्यालयों में राजनीति की विशेष चर्चा न हो तोभी उनकी पढ़ाई से विद्यार्थियों का मिजाज जितना आजाद और निर्भय हो जाता है उतना दूसरे प्रकार की सरकारी विद्यालयों की शिक्षा से नहीं हो सकता। फिर जिना साहब कहते हैं "आप धारासभा के आठ लाख मतदाताओं को तथा उनके उतने ही मित्रों के पास जा कर उन्हें राजनैतिक शिक्षा दे सकते हैं।"

पर धारासभा के इन मतदाताओं के ही इतने पीछे पीछे घूमने की क्या जरूरत? भारत की जनसंख्या अधिकतर अपढ़ ही है; पर उसके सामने भी अगर भारत की वर्तमान दशा का चित्र खोल कर रक्खा जाय तो वे यह कहे बिना न रहेंगे कि इसकी दवा तो सिर्फ स्वराज्य ही है। इन मतदाताओं के पीछे घूमना ही हो तो महासभा के सदस्यों में जनता के नाम दर्ज कराने ही में क्या हानि है? आठ लाख को राजनीति की शिक्षा देने से महासभा के एक करोड़ सदस्यों को देश की वर्तमान हालत समझा देना क्या बुरी बात है?

काशी के विद्यापीठ के एक अध्यापक श्री धर्मवीर जी क्रिमिनल ला अमेंडमेंट एक्ट की धारा १७ के अनुसार गिरफ्तार किये गये हैं।

मनाइए

तारीख १८; गांधी दिवस

त्याग और प्रार्थना का दिन

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, श्रावण बदी ७, सं. १९७९

धर्म या अधर्म?

धर्म वीर है; पर कायर उसे अपनी बुजदिली की ढाल बनाता है। धर्म निर्भय है; पर डरपोक उसकी शरण अपनी जान बचाने के लिए जाता है। धर्म आजाद है; पर गुलाम उसका उपयोग अपनी बेड़ियां मजबूत करने में करता है। धर्म के नाम पर, धर्म की ओट में, क्या क्या अनर्थ संसार में नहीं होते? धर्म की दुहाई देकर एक देश दूसरे देश को चूसता है; धर्म की रक्षा के लिए आपस में तलवारें चलती हैं—भाई भाई के खून की नदी बहाता है! धर्म तो कहता है, मैं लौकिक और पारलौकिक उन्नति के लिए हूं, सुख-शान्ति के लिए हूं, प्रेम के लिए हूं, सत्य के लिए हूं। पर धर्म के मतवाले उसकी सुनें तब न! बुरे से बुरे पापाचार और अत्याचार धर्म की छाया के नीचे किये जाते हैं। इस उलटी गंगा के दो फल संसार में दिखाई देते हैं—१-धर्म से लोगों की श्रद्धा उठ जाना और २-अधर्म को धर्म समझ बैठना। पहले दल में अधिकतर पढ़े-लिखे सुशिक्षित कहलाने वाले लोग हैं और दूसरे समाज में ज्यादातर कम पढ़े-लिखे या गंवार लोग। ऊपरी गंदगी को देखकर पहले दल के लोग भीतरी सार वस्तु को भी वैसा ही मैला समझ रहे हैं और दूसरे दल के लोग तो उसी गदर गंगा को धर्म मान कर धर्म की विडम्बना करते हैं। एक गेरुआ पहनने वाले को, तिलक-छापा करने वाले को ढोंगी और पाखण्डी मानता है और दूसरा साक्षात् धर्म और ईश्वर का अवतार। वास्तव में देखा जाय तो धर्म तो धर्मतत्वों को समझ कर उसके अनुसार आचार करने में है; तिलक-कंठी-छापा-भभूत गेरुआ आदि तो उसके बाहरी चिह्न-मात्र हैं। वे केवल यह दिखलाते हैं कि धर्म-मार्ग में मनुष्य की प्रगति कहांतक हुई है।

दोनों दशाओं में इसका कारण धर्मतत्वों का अज्ञान है। पश्चिमी लोगों ने धर्म की संकुचित व्याख्या—'ईश्वर अथवा परलोक-विषयक विचार'—कर के और उसे सिर्फ रविवार की छुट्टी दे कर धर्म के रास्ते में खूब कांटे बखेर दिये हैं। इससे उनके यहां धर्म राजनीतिज्ञों का गुलाम हो गया है। पर भारत धर्म को आत्मविकास का मार्ग मानता है, लौकिक और पारलौकिक उन्नति का साधन मानता है। धर्म उसके जीवन का नियामक है, नेता है। धर्म के बिना न उसका जीवन है, न गति है। उसका जन्म, जीवन, और मृत्यु तीनों धर्ममय हैं। उसका समाज-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, नीति-शास्त्र, राजनीति-विज्ञान, सब धर्म की बुनियाद पर खड़े हैं। उसका ध्येय धर्म-पालन है। वर्तमान स्वराज्य-संग्राम को वह इसीलिए धर्म-युद्ध कहता है। स्वराज्य स्वधर्म-पालन का एक बड़ा साधन है। आज उसके अभाव से भारत की आत्मा धर्महीन हो रही है। स्वार्थपरता, अनीतिमत्ता, पापाचार, ये धर्महीनता के फल हैं। और जहां स्वार्थ, अनीति और पाप है वहां घोर पतन के सिवा दूसरा क्या नतीजा दिखाई दे सकता है?

भारत का यह धर्म-युद्ध—यह स्वराज्य-संग्राम—किसके खिलाफ है? अधर्म के खिलाफ, जो सरकार अधर्म का पक्ष लेती है, उसकी प्रतिनिधि बनती है, उसके खिलाफ। पर फिर भी इस धर्म-प्राण भारत-देश के तीसों करोड़ नर-नारी इस धर्म-युद्ध में शामिल क्यों नहीं हैं? इसके तीन कारण मालूम होते हैं (१) राज्य के रोष का डर (२) राजनीति और धर्म को भिन्न मानना (३) धर्म के प्रति अश्रद्धा।

पहले हम भारत के भिन्न भिन्न धर्म-सम्प्रदायों को लेते हैं। सनातन-धर्म, आर्य-समाज, जैन, सिक्ख, मुसलमान, पारसी और ईसाई, ये भारत के प्रधान प्रचलित धर्म-मत हैं। सनातन-धर्मी तो राजनीति को धर्म से पृथक् मान ही नहीं सकते। क्योंकि उनके धर्माचार्य श्री शंकर ने धर्म की व्याख्या इस प्रकार की है—"यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः।" जिससे समाज की भौतिक उन्नति और आत्मलाभ हो वही धर्म है। राज्य समाज की भौतिक उन्नति का मुख्य साधन है। अतएव राज्य धर्म का एक अंग है। राज्य की देख-भाल करना समाज का कर्तव्य है। सनातन-धर्मियों को धर्म के प्रति अश्रद्धावान् कहने का साहस भला कौन करेगा? तो फिर क्या वे राज्य-रोष से डरते हैं? ऐसा कहना भी वर्तमान बड़े बड़े धर्माचार्यों का अपमान करना है; क्योंकि धर्म और डर एक जगह कभी नहीं रह सकते। तो क्या वे धर्म-तत्वों को पहचानते ही नहीं, ऊपरी आडम्बर को धर्म समझ रहे हैं या राजनीति और धर्म में कोई सम्बन्ध नहीं मानते? यदि ऐसा हो तो सचमुच यह सनातन-धर्म के दुर्भाग्य की बात होगी।

मुसलमान-भाइयों के धर्म पर जो कुठाराघात किया गया है—खिलाफत की गर्दन पर जो छुरी चलाई गई है, वह तो अब इतिहास में एक अमर घटना हो गई है और संसार के समस्त मुसलमान अपने मजहब की रक्षा के लिए जान हथेली पर लिये हुए हैं। भारत के मुसलमान-भाई दिलोजान से इस स्वराज्य-संग्राम में लड़ रहे हैं।

सिक्खों के धर्म पर जो बीत रही है उसे भारत का बच्चा बच्चा जानता है। वे भी अपने सिंह नाम को सार्थक करते हुए बड़ी वीरता से जूझ रहे हैं।

अब रहे आर्यसमाजी, जैनी, पारसी और ईसाई। आर्य समाजियों में दो दल हो गये हैं—एक कहता है राजनीति में पड़ना आर्य-समाज के सिद्धान्त के अनुकूल है, दूसरा कहता है नहीं, हमसे और राजनैतिक झगड़ों से कोई मतलब नहीं। आर्य-समाज शुरू से ही एक तेजस्वी संस्था रही है। ऐसे जीवन-मरण के प्रश्न पर उसमें मत-भेद होते हुए देख कर किस भारतवासी को खेद न होगा? पर इस संस्था के उज्ज्वल भूतकाल को देखते हुए यह आशा करना वृथा नहीं है और कि वह देश का साथ नहीं छोड़ेगी। डर और अश्रद्धा ये उसे आर्य-समाजी के पास रही कैसे सकते हैं?

करोड़ों गायों के कटते हुए, दूसरे अगणित पशुओं का वध होते हुए, अकाल, रोग-प्रकोप आदि असत्याह रीति से लाखों आदमियों की हत्या होते हुए, हजारों नर-नारियों के बुरी तरह सताये जाते हुए, जैन-भाइयों के लिए यह बताना बेकार है कि

राज्य और धर्म का कितना निकट सम्बन्ध है—राज्य यदि धर्म पर आघात करता हो तो उसका प्रतिरोध कर के धर्म की रक्षा करना प्रत्येक धर्मनिष्ठ पुरुष का कितना श्रेष्ठ कर्तव्य है। राज्य-रोष के डर से अपने को धर्मनिष्ठ की श्रेणी से गिरा देना है। राज्य-रोष धर्म की अवमानना से बढ़ कर दुखदायी नहीं हो सकता।

ईसाई-भाइयों से हम यही पूछना चाहते हैं कि हजरत ईसा-मसीह की पूजा करने वाली यह सरकार क्या सचमुच उनके उपदेशों के अनुसार चलती है? कुटिल नीति, पशु-बल, निहत्थों पर अत्याचार, असीम आर्थिक लूट, महात्मा ईसा के किस आदेश के अनुसार है? यदि नहीं है, तो वे ईसाई कहलाते हुए इस जालिम सरकार का साथ कैसे दे सकते हैं? कैसे स्वराज्य-संग्राम से दूर रह सकते हैं? जो सरकार अपने धर्म-कर्म को नहीं मानती, उसे पैरों तले रौंदती है और अपनी प्रजा के धर्मों पर भी आघात करती है, वह किस तरह एक धर्मनिष्ठ मनुष्य की सहायता और सहयोग की अधिकारिणी हो सकती है? क्या उसका साथ देना अधर्म की वृद्धि करना नहीं है?

पारसी-भाइयों से हम इतना ही कहना चाहते हैं कि उनका भाग्य भारत के भाग्य से बंधा हुआ है। अपने पड़ोसी धर्मों के संकट में रहते हुए उनका धर्म सुरक्षित नहीं रह सकता। इस स्वराज्य-संग्राम से अलग रह कर उनको सुख-शान्ति नहीं मिल सकती। आज जो उन्हें कोमल कमल दिखाई देता है कल वही सांप बनकर डंस जाय तो ताज्जुब नहीं।

राजनैतिक दलों में जो लोग धर्म के प्रति अश्रद्धा रखते हैं वे स्वराज्य-संग्राम को आर्थिक और सांसारिक दृष्टि से देखते हैं। वर्तमान शासन-प्रणाली के बदौलत भारत का नैतिक और धार्मिक अधःपात कितना हुआ है, इसकी ओर उनकी नजर नहीं जाती। वे सब इतना ही देखते हैं कि भारत कंगाल होता जा रहा है, भारत निर्बल होता जा रहा है। और यदि वर्तमान सरकार ये दो सहूलियतें कर दें तो वे खुश हो जायंगे—फिर भले ही नीति और धर्म का गला घोंटा जाता रहे। नीति और धर्म का बल इनके पास नहीं है; इसलिए ये स्वार्थत्याग अथवा कष्ट-सहन पर आमादा नहीं होते। हाथ-पांव बचा कर मुलायम हरी घास पर चलना इनका मकसद रहता है। जहां कांटे और कंकर आये कि इनका माथा ठनका। इनमें पुरुषार्थ की कमी होती है और राज्य के रोष और स्वार्थ-हानि का बहुत डर रहता है। अतएव ये देश के लिए 'अमानतखयानत' की तरह हैं।

इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि सच्चा धर्मवित् और धर्मनिष्ठ न तो राज्य के रोष से डर सकता है, न राजनीति को धर्म से अलग किया जा सकता है, और धर्म के प्रति अश्रद्धा की तो कल्पना तक उसके चित्त में नहीं समा सकती तथा अपने को धर्मनिष्ठ कहलाने वाला कोई भी भारतवासी, वर्तमान धर्म-हीन सरकार के खिलाफ उठाये गये धर्म-युद्ध में पड़े बिना नहीं रह सकता। एक ओर स्पष्टतः धर्म है और दूसरी ओर अधर्म। भारतवासी फैसला कर लें, उन्हें कौन प्यारा है, कौन अभीष्ट है, कौन स्पृहणीय है, कौन पूजनीय है—धर्म या अधर्म?

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में महात्मा-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों को गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" को एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

मिथ्या समानता

माननीय श्री निवास शास्त्री महोदय ने आस्ट्रेलिया में कई भाषण किये हैं। उनमें आपने उस सिद्धान्त को ठीक बताया है जिसके अनुसार वहां की सरकार ने भारतवासियों को आस्ट्रेलिया में आकर बसने से आने के लिए रोका है। भारत में उनके इन भाषणों पर कहुत-कुछ लिखा-पढ़ी हो रही है। इसमें तो शक नहीं कि यह रोक समानता के उन सिद्धान्तों के बिलकुल विपरीत है जिनकी बुनियाद पर साम्राज्य के राष्ट्र-संघ की इमारत खड़ी की जा सकती है। भारत के लिए जब ऐसा समय आवेगा जब कि उससे पूछा जाय कि वह किस प्रकार का शासन-स्वातंत्र्य चाहता है तब वह जरूर साम्राज्य के अंदर ही रहना पसंद करेगा। पर उसकी ये तीन शर्तें पूरी होनी चाहिए—

गोरे उपनिवेशों की तरह आंतरिक मामलों में उसे पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। उसे यह विश्वास हो जाना चाहिए कि वह बिना कारण अपनी इच्छा के खिलाफ उन जातियों या राष्ट्रों पर आक्रमण करने के लिए न घसीटा जायगा जिनसे कि उसकी प्रधान जातियां धर्म के बन्धन से बंधी हुई हों और किसी प्रकार गहरी सहानुभूति रखती हों। साम्राज्य के दूसरे भागों के साथ अधिकार और दर्जे में पूरी समानता। इन तीन आवश्यक शर्तों का सार इन छोटे छोटे तीन ही शब्दों में समा जाता है—स्वराज्य, खिलाफत और समानता। यदि कोई चाहे कि भारत स्वेच्छापूर्वक साम्राज्य के अंतर्गत रहे तो ये तीन महत्वपूर्ण शर्तें पूरी होनी चाहिए।

पहली शर्त,—स्वराज्य के पूरे अधिकार—के विषय में तो कोई सवाल ही नहीं खड़ा होता। वह तो जगत का सर्व-सम्मत ध्येय है। पर दूसरे सवाल पर विरोध का पहाड़ खड़ा दिखाई देगा। वह तो देश के बाहर के सवालों में हाथ डालना है, जो अधिकार अभीतक ब्रिटिश पार्लमेंट ने सिर्फ अपने ही हाथों में रक्खा था। ब्रिटिश साम्राज्य में स्वतंत्र और समान अधिकार वाले अनेक राष्ट्र हैं वे अगर साम्राज्य के परराष्ट्रीय मामलों में योग देने का दावा करें तो उसमें सैद्धान्तिक दृष्टि से तो कोई दोष नहीं है। पर अगर कोई यह दावा करे कि साम्राज्य के संधि-विग्रह आदि गुरुतर कार्यों के करने का अधिकार सिर्फ इंग्लैंड, स्काटलैंड और वेल्स की जनता को ही है और साम्राज्य के दूसरे भागों की जनता सिर्फ अप्रत्यक्ष रीति से योग दे सकती है तो यह साम्राज्य राष्ट्रसंघ के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है। यह तो साम्राज्य की पुरानी कल्पना के अनुसार भले ही माना जाय। पर यह निर्विवाद है कि वर्तमान सिद्धान्तों के अनुसार पर-राष्ट्रीय मामलों में भारत के हस्तक्षेप करने का दावा दूसरे राष्ट्रों के वर्तमान दावों की अपेक्षा कहीं अधिक सबल और युक्तिसंगत है। पर इसलिए इस दावे का यह कह कर विरोध हरगिज नहीं किया जा सकता कि यह तो 'छोटे मुंह बड़ी बात है'। हां, यद्यपि भारत ने अभीतक अपने आंतरिक मामलों को हल करने के पूर्ण स्वराज्याधिकार न प्राप्त किये हों तथापि इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि वह ऐसे महत्वपूर्ण बाहरी मामलों में हस्तक्षेप न करे। भारत का स्थान और परिस्थिति साम्राज्य के दूसरे अंगों से बिलकुल भिन्न और कठिन है। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, आफ्रिका और कैनेडा की जनता के सामने खिलाफत जैसी जटिल समस्या नहीं है। उनकी जनता का एक बड़ा हिस्सा मुसलमान नहीं है जिससे उनके आर्थिक लाभ ही उन्हें आफ्रिका की साम्राज्य-सत्ता को नष्ट या निर्बल करने से रोक सकते हों।

यह देर क्यों ?

आज महात्माजी को गिरफ्तार हुए चार मास हो गये अभीतक अधीरता, अभिशाप, और खूनखराबी का कहीं नाम तक सुनने में नहीं आया। इसका कारण क्या? क्या अब देश का महात्माजी पर प्रेम कम हो गया? नहीं, आज वह जिस प्रेम, भक्ति और आदर की दृष्टि से महात्माजी को देखता है उतना पहले कभी न देखता था। फिर इस शांति का अर्थ क्या?

इसका कारण स्पष्ट है। पहले का प्रेम अज्ञान-मूलक था और अब का प्रेम है ज्ञान-मूलक। इस प्रेम में वह अंतर है जो एक अबला और वीर पुरुष के प्रेम में होता है। वह अंतर है जो एक मोहांध कुटुंबी और ज्ञानी कुटुंबी के प्रेम में होता है। उस समय भारत को महात्माजी के छीने जाने बाद संसार में अंधेरा ही अंधेरा दिखाई देता था। पर अब उनके तेजोमय उपदेशों से उसका मार्ग प्रकाशित है। वह निर्भय है। उसके हृदय में ज्ञान है और शरीर में बल। उसे विश्वास है कि सरकार ने महात्माजी को उससे छीन लिया तो क्या हुआ, मैं उन्हें अभी छुड़ाता हूं।

पर फिर भी देरी लग ही रही है। यह क्यों? इसका कारण यह है कि हम अब भी उनके सिद्धान्तों के पूरी तरह अनुगामी नहीं बने, यद्यपि हम उन्हें समझने लगे हैं। अब भी हम सत्य के मार्ग से चलने के लिए हिच किचाते हैं। अब भी हम इस दृष्टि से संसार की ओर देखते हैं कि अपने सत्कार्यों के लिए हमारा कुछ गौरव हो। और उसके न मिलते ही सन्मार्ग छोड़ने पर उतारू हो जाते हैं। अब भी सरलता और प्रेम के सामने धूर्त से धूर्त कूटनीतिज्ञों को और महान् से महान् शक्तियों को सिर झुकाना पड़ता है। चाहिए उनपर दृढ रहने का साहस।

पर हमें निराश ज़रा भी न होना चाहिए। हमारी प्रगति निराशा जनक नहीं। जिस बात को करने के लिए कई पुश्तें लगतीं उसे हमने एक ही दो साल में कर दिखाया है। पर इसलिए हमें गर्वित भी न होना चाहिए। हम अपने ध्येय से अभीतक दूर ही हैं। जबतक उसे प्राप्त नहीं कर लेते, हम किस प्रकार आराम कर सकते हैं?

सबसे बड़ा रोग तो है परावलंबिता। इसी कारण हम इस गुलामी में सड़ रहे हैं।

महात्माजी ने इससे हमें बहुत-कुछ छुड़ा दिया है। पर अब भी हम अपनी उन्नति के लिए दूसरों के मुंह की ओर ताकते हैं। अब भी मानों इस निगाह से अपने नेताओं की ओर देखते रहते हैं कि जो कुछ करेंगे हमारे नेता ही करेंगे। सेना को विजय सेनानायक कहीं से लाकर नहीं दे देता। वह तो सैनिकों की ही वीरता का फल होता है। बात यह है कि सैनिक तो अपने काम में इतने मग्न हो जाते हैं कि उन्हें यह खबर तक नहीं रहती कि विजय कब मिल गई। सच पूछा जाय तो जो सैनिक विजय की राह देखते रहते हैं वे तो अपना कर्तव्य कर ही नहीं सकते।

जब साधारण शस्त्र-युद्ध के ये हाल हैं तब हमारे धर्म-नीति-युद्ध की तो बात ही अलग है। हम केवल जड़ दुर्गों को जीतने नहीं जा रहे हैं। हम तो अपने प्रतिपक्षी के हृदय-दुर्ग पर अधिकार जमाने जा रहे हैं। और यह करने के पहले हमें खुद अपने हृदय पर अधिकार कर लेना चाहिए। प्रतिपक्षी के हृदय में तो तभी परिवर्तन हो सकता है जब हमारे हृदय में असाधारण आत्मिक बल हो। स्वराज्य हम उससे छीनने नहीं जा रहे हैं। हम तो दोनों पक्षों में सद्भावों को जाग्रत करके प्रेम और शांति के द्वारा उसे प्राप्त करना चाहते हैं। यह करना हमारे लिए असम्भव नहीं। इसके लिए परमात्मा पर और मनुष्य के सत् स्वभाव में विश्वास चाहिए। ये दोनों हमारे-धर्म युद्ध की सबसे अधिक महत्व पूर्ण बातें हैं। और इन्हींमें हमारी विजय है।

खून-खराबी से न तो भारत अपना स्वराज्य कभी प्राप्त ही कर सकता है और न वह मार्ग उसको शोभा ही देता। वह तो भारत के ही नहीं, मनुष्यमात्र के घोर पतन का मार्ग है। परमात्मा भारत को उससे बचावे।

परावलंबन से तो कभी स्वप्न में भी किसीको विजय नहीं मिली है। अतएव भारत को उसे तो हर हालत में छोड़ना चाहिए। राजनैतिक स्वराज्य की भी पहली सीढी तो व्यक्तिगत स्वराज्य ही है। निर्भीकता और सत्य भी व्यक्तिगत स्वराज्य के ही अंग हैं। अतएव अगर हम अब राजनैतिक स्वराज्य की ओर अपना ध्यान न बढ़ावें व्यक्तिगत स्वराज्य ही प्राप्त कर लें तो काफी है। राजनैतिक स्वराज्य तो व्यक्तिगत स्वराज्य की छाया है। हम छाया को पकड़ने जा रहे हैं, पर असली वस्तु से दूर भागना चाहते हैं इसीलिए हमें देर हो रही है।

हमारा माल खरीदो

'मॉर्निङ्ग पोस्ट' इंग्लैंड का सबसे पुराना पत्र है। वह लिखता है:—

"भारत से तो हमें बहुत काम है। क्योंकि वह संसार का एक मुख्य बाजार है। हम पहले पहल अपने व्यापार के लिए ही वहां गये थे और अब भी हम अपनी राज्य-शक्ति पर चाहे जितना क्यों न अकड़ा करें हमारा मूलाधार तो वही व्यापार है। × × × अगर हम आज ही भारत को छोड़ दें तो केवल भारत की ही हानि न होगी, बल्कि लैंकेशायर के एक करोड़ दो लाख लोग बेकार हो जायंगे। और फलतः हमारे तमाम व्यापार को एक जबरदस्त हानि पहुंचेगी। कुछ भी कहा-जाय पर इस राष्ट्र की तो आखिर किसी तरह गुजर होनी चाहिए? हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या यही है। और यह भी स्पष्ट है कि व्यापार और उद्योग के बिना इन छोटे से द्वीपों के लिए कोई ऐसा साधन नहीं है जिसपर वे अपना उदर-पोषण कर सकें।"

उपर्युक्त अवतरण से यह स्पष्ट है कि अंगरेज इतनी दूर सिर्फ व्यापार के लिए आये और उसीके लिए वे यहां अभीतक हैं भी। ऐसी हालत में यद्यपि महासभा का कार्यक्रम बहुत घटा दिया है तथापि सरकार की ओर से जो भीषण दमन चल रहा है उसका रहस्य पाठकों की ध्यान में शीघ्र ही आ सकता है। सब कार्यक्रम बंद हो गये। सिर्फ स्वदेशी का कार्यक्रम कायम है। पर वह भी अंगरेजों के लिए भीतिप्रद है। और उसे गिराने के लिए यदि उनकी ओर से कठोर से कठोर उपायों का अवलंबन भी किया जाय तोभी इसमें आश्चर्य की बात नहीं। बल्कि हमें तो उसे सहने के लिए सदा तैयार रहना चाहिए और अपने देश के व्यापार को बचाने के लिए देशभक्ति का पाठ पढ़ कर विदेशी कपड़े का बहिष्कार करना चाहिए। भेद इतना ही कि उनका साधन है हिंसा और हमारा होना चाहिए अहिंसा।

साथही हमें यह भी याद रखना चाहिए कि यह विदेशी कपड़े का बहिष्कार स्वराज्य-स्थापना के बाद भी कभी बंद नहीं हो सकता। न खिलाफत और पंजाब का न्यायय निपटारा होने पर भी हम इसे छोड़ सकते हैं। यह तो हमारे देशी व्यापार और कला-कौशल को उन्नति पर पहुंचाने का साधन है।

लक्ष्मी कैसी है ?

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रति का -)।
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष १] [अंक ४९

सम्पादक-हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय | अहमदाबाद, श्रावण बदी १४, संवत् १९७९ | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
मुद्रक-प्रकाशक-रामदास मोहनदास गांधी | रविवार, सार्वकाल, २३ जुलाई, १९२२ ई० | सारंगपुर, सरकीगराकी वाडी

महात्माजी और वर्तमान परिस्थिति

हमारी वफादारी

सिद्धान्त और सामान्य नीतियां तो एक चीज है, पर सिद्धान्त और नीतियों के अनुसार व्यवहार करने की योजनायें दूसरी चीज है। सिद्धान्तों में स्थिर रहने का गुण अधिक है, और योजनायें तो जिस जिस प्रकार लड़ाई का रंग-ढंग बदलता जाता है उस उस प्रकार बदलनी पड़ती है। यह नहीं हो सकता कि महात्माजी फरवरी या मार्च में एक खास योजना कर गये थे और इसीलिए जुलाई माह में उसमें कुछ रद्दोबदल करना हमें उचित और अभीष्ट दिखाई देता हो तो भी वह योजना नहीं बदली जा सकती। उनकी निश्चित की हुई योजना में परिवर्तन करने की सूचना देना अथवा आवश्यक परिवर्तन करना उनके प्रति बेवफादारी नहीं कही जा सकती। उसी प्रकार इस बात में भी महात्माजी के प्रति वफादारी नहीं है कि नई उत्पन्न हुई परिस्थिति को देखते हुए यदि परिवर्तन करना मुनासिब मालूम हो अथवा ऐसी स्थिति स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी हो जो पहले न दिखाई दी हो और इसलिए कुछ सुधार करना जरूरी मालूम हो तो भी पुरानी योजना का पल्ला पकड़ कर बैठे रहें।

हमारी जिम्मेवारी

ऐसी परिस्थिति में यदि महात्माजी बाहर हों तो वे स्वयं ही रद्दोबदल की सूचना करें। इसलिए कि आज हम समय समय पर उनके नेतृत्व का लाभ नहीं उठा सकते, ऐसा न होना चाहिए कि हम अपने सिर पर किसी भी प्रकार के फेर-बदल की जिम्मेदारी लें ही नहीं। नवीन परिस्थिति के अनुसार नये नये सवाल जब हमारे सामने खड़े हुए हों और अपनी सम्मति तथा कृति के द्वारा हमारी रहनुमाई करनेवाला महात्माजी जैसा कोई न हो तो ऐसे समय में सावधानी और दीर्घदृष्टि से विचार कर लेना आवश्यक है। पर यदि इस कारण से कि आज हम महात्माजी के नेतृत्व के सौभाग्य से वंचित हैं, यदि हम कुछ भी कार्रवाई न करें तो हमारी यह लापरवाही देश-द्रोह के समान हो जाय। क्योंकि जिस प्रकार कुविचार से की गई कार्रवाई के द्वारा हम अनिष्ट के गढ़े में गिर जाते हैं उसी प्रकार जरूरत को देखकर तैयार की गई योजनाओं में उचित परिवर्तन करने की जिम्मेवारी यदि हम अपने सिर से टाल दें तो उससे भी हम वैसे ही अनिष्ट के गढ़े में गिर जाते हैं। जब आगे बढ़ने का मुहूर्त आया हो तब हाथ बांध कर बैठ रहने का ख़याल महात्मा जी को कभी न हुआ था।

महात्माजी की आखिरी तजवीज

इसलिए परिवर्तन अथवा आगे बढ़ने के प्रश्न का निर्णय हमें यह सोचकर तथा अपनी पूरी लियाकत के अनुसार करना चाहिए कि यह इस मौके पर उचित है या नहीं। पर ऐसा करने के लिये यह आवश्यक है कि हम उस कार्य-योजना को साफ साफ समझ लें जो महात्माजी ने देश की सेवा से विश्राम ग्रहण करने के पहले हमें दी है और नई योजना तैयार करने के पहले हमें उस पर एक दो बार नहीं, कई बार विचार कर लेना चाहिए।

धारासभाओं का बहिष्कार

पहले अदालतों और धारासभाओं आदि के बहिष्कार को लीजिए। इस विषय पर महात्माजी ने दो बातें साफ साफ रक्खी थीं; एक तो यह कि इस मामले में अब प्रत्यक्ष प्रचार-कार्य में अपनी शक्ति खर्च न की जाय। दूसरे, प्रचार-कार्य न करने पर भी खुद बहिष्कार बन्द न किया जाय। बल्कि, इसके विपरीत, अबतक जो फल-प्राप्ति हुई है वह अधिक पक्की कर दी जाय, और जेल में ऐसा विश्वास रक्खा जाय कि इस कमाई के बल पर बहिष्कार जीता-जागता रहेगा। १२ मार्च १९२२ को उन्होंने यह लिखा था—

"मैं यह तो अलबत्ते चाहता हूं कि और खिताब वाले भी अपने खिताब लौटा दें, वकील लोग अदालतों से नाता तोड़ लें, विद्यार्थी सरकारी स्कूलों और कालेजों से नमस्कार कर लें, धारासभाओं के सदस्य धारा-सभाओं से मुंह मोड़ लें और मुल्की और फौजी लोग भी अपनी अपनी नौकरियां छोड़ दें। तथापि मैं देश से इस बात का अधिक आग्रह करूंगा कि वह ऊपर

बनाये कामों में हमें अबतक जो सफलता मिली है उसीको पक्का करने में लगे रहें और जिस सरकार को सुधारने या मिटाने का हम यत्न कर रहे हैं उसका त्याग करने में हम अपने ही बल पर विश्वास रक्खें।"

तेजी के साथ बहिष्कार का प्रचार न करने के तीन कारण हैं—(१) जो फल अबतक प्राप्त हुआ है उसका नैतिक असर अपने आप होता जा रहा है। (२) कार्यकर्ताओं की कमी है और (३) यदि ऐसा आन्दोलन और बढ़ाया तो लोगों में असहिष्णुता और बढ़ जायगी। इस सम्बन्ध में महात्मा जी कहते हैं—

"फिर काम करने वाले लोग थोड़े हैं। और जब कि हमारे सामने रचनात्मक काम का इतना ढेर पड़ा हुआ है तब विघातक काम में एक भी आदमी को लगाना मैं नहीं चाहता। और विघातक-कर के प्रचार-कार्य में जरा भी समय न बिताने का सबसे भारी सबब तो यह है कि असहिष्णुता का वेग इतना बढ़ गया है कि जितना पहले कभी नहीं था। और असहिष्णुता तो एक तरह की हिंसा ही है"

"सहयोगी लोग हमसे अलग हो गये हैं; वे हमसे डरते हैं। वे कहते हैं कि तुम तो मौजूदा नौकरशाही से भी खराब नौकरशाही कायम कर रहे हो। हमें उनकी चिन्ताओं का हर एक कारण दूर कर देना चाहिए। हमें उन्हें खास तौर पर कोशिश करके अपनी तरफ कर लेना चाहिए। हमें चाहिए कि हम अंगरेजों को अपनी तरफ के भय से मुक्त कर दें।"

जेल भर देने के विषय में

अब जेल जाने के विषय में सुनिए, जो कि एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसका सामान्य सिद्धान्त—जेल को निमन्त्रण देना और उससे जी न चुराना, इसके भेद को जाने दीजिए—महात्माजी के पिछले जून के अन्त में लिखे लेख में प्रथित किया गया है। उसमें उन्होंने इस प्रश्न का कि संग्राम के सैन्य-बल की दृष्टि से क्या यह मुनासिब है कि उपयोगी कार्यकर्ता जेल जायं, उत्तर दिया है—

"पढ़े-लिखे और समझदार लोगों में भी अभी ऐसे लोग मौजूद हैं जिन्हें इस बात में सन्देह है कि भारत के आजाद होने का रास्ता तो है जेल जाना। उनका खयाल है कि सादगी और अच्छे काम करनेवाले लोगों के जेल चले जाने से जनता सुयोग्य कार्यकर्ताओं की सेवा से वंचित रह जाती है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि इस डर से कि हमारे मर जाने से कहीं हमारी सेना हमारी बुद्धि और सम्मति का लाभ उठाने से वंचित न रह जाय, सेना के सबसे शूर-वीर सिपाही अपने प्राणों को जोखिम में न डालें! वे लोग भूल जाते हैं कि लोकमान्य की इतनी लोकप्रियता और प्रभाव का कारण था उनका बारबार जेल जाना। हजरत ईसा ने सूली पर चढ़ कर प्राण गवां दिये। इसीसे वे इतना महान् माने गये। कर्बला के मैदान में इमाम हसन ने जो कुरबानी की उसके बदौलत इस्लाम दुनिया में अजेय हो गया। हरिश्चन्द्र ने सत्य के लिए क्या क्या नहीं सहा? वे अमर हो गये। भारत को तबतक आजादी नहीं मिल सकती जबतक लाखों लोग निडर हो कर बेगुनाह जेल जाने को तैयार न हों। और लाखों की तादाद में लोग तैयार न हों तो हजारों लोगों को तो दर-असल जेलों में जाना ही होगा—तब जाके ही भारत आजाद हो सके।"

'ठहरो' का हुक्म

चौरी-चौरा की दुर्घटना के बाद बारडोली के निर्णय पर आना पड़ा। महात्मा जी, जहांतक इस प्रश्न से सम्बन्ध है, १६ फरवरी के 'यंग इंडिया' में उस निर्णय का सार इस प्रकार देते हैं—

"कार्य-समिति के प्रस्ताव कहते हैं कि असहयोगी फिलहाल सविनय भंग, फिर वह चाहे व्यक्तिगत हो अथवा सामुदायिक, बन्द कर दें। मेरी राय में सामुदायिक आज्ञाभंग बहुत समय तक, कम से कम इस साल के अन्त तक, मुल्तवी कर देना चाहिए। यह साफ जाहिर है कि जनता पर अभी हमारा, जितना कि चाहिए, अधिकार नहीं हुआ है। व्यक्तिगत आज्ञा-भंग भी कुछ समय तक बन्द ही रखना चाहिए। लेकिन कार्यसमिति ने महासभा के उन तमाम बातों में बिल्कुल दखल नहीं दिया है जो कि महासभा के मामूली कामों के लिए आवश्यक हैं। फिर चाहे भले ही उनके लिए भी मनाई का हुक्म क्यों न दे दिया जाय। तो हमें स्वयंसेवकों की भरती अवश्य करनी चाहिए; पर ठीक ठीक प्रतिज्ञापत्र के अनुसार, और सरकारी आज्ञाओं को भंग करने के लिए नहीं, बल्कि महासभा के कामों के लिए। उसी प्रकार हमें खादी का प्रचार काम भी जारी रखना चाहिए।"

पूर्वोक्त वचनों से यह साफ है कि बम्बई और चौरी-चौरा के उपद्रवों के होते हुए भी महात्माजी की यह राय थी कि महासभा के मामूली कामों से सम्बन्ध रखने वाला व्यक्तिगत सविनय भंग, मजिस्ट्रेटों के मनाई हुक्म निकलते हुए भी, स्वीकार करना चाहिए।

देहली में पीछे कदम

इसके बाद देहली में महासमिति की बैठक हुई। उसमें बारडोली के फैसले में कुछ परिवर्तन किया गया। सविनय भंग सम्बन्धी कुछ बन्धन ढीले किये गये। पर दूसरी ओर, खुद महात्मा जी तो बारडोली से भी एक कदम पीछे हट गये। यह महासमिति की प्रवृत्ति का फल था। पर इस घटना का जिसे लोग पीछे कदम रखना कहते हैं, कारण यह है कि बारडोली में जहां महात्मा जी ने देखा था कि इससे सिर्फ धामधूम मचाने वाली कुपित जनता भले ही अहिंसा-पथ से इधर-उधर हो जाय, उसका भले ही मुझे सामना करना पड़े, पर देहली की महासमिति में तो उन्हें अनुभव हुआ कि हिंसा के भाव अर्थात् अहिंसा का विरोध, तो ठेठ नेताओं तक फैला हुआ है और उनकी मनोदशा बिगड़ी हुई है। यह तो हमारे प्रति महात्मा जी के विश्वास का पीछे कदम हटना था और मुझे विश्वास होता है कि इस बात को आम तौर पर लोगों ने नहीं जाना है। इसलिए मैं उनके लेखों के वचन उधृत करके अपनी इस बात की पुष्टि करूंगा कि मेरे विचार के अनुसार महात्माजी को पिछली फरवरी तक किन किन एक के बाद दूसरी स्थितियों में से गुजरना पड़ा। २ मार्च के 'यंग इंडिया' में उन्होंने एक लेख लिखा है। उसमें उनके हृदय की पीड़ा स्पष्ट रूप से झलक रही है. उसमें उन्होंने अपनी स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

"महासभा-समिति का पिछला अधिवेशन कुछ बातों में तो महासभा से भी बढ़कर याद रखने लायक था। उसमें जान तथा अनजान दोनों तरह से हिंसा का प्रवाह भीतर ही भीतर इतना बह रहा था कि मैं प्रार्थना कर रहा था कि हे ईश्वर, इस समय मेरी गहरी हार कर दे।

"मैं देखता हूं कि हमारी अहिंसा महज ओठों पर है। हमारे दिलों में तो कोप की आग धधक रही है। और सरकार अपने अविचार-पूर्ण कार्यों द्वारा उसमें घी डालने का काम कर रही है।"

"हमारी अहिंसा केवल निर्बलता-मूलक दिखाई देती है। प्रायः ऐसा दिखाई देता है कि हम दिल में चाह रहे हैं—कब मौका मिले और हम बदला निकालें"

"क्या इस कमजोर की जबरन् पैदा की गई और ऊपरी अहिंसा से अपने आप पैदा होने वाली और सच्ची अहिंसा का उदय हो सकता है? क्या यह प्रयोग जो मैं कर रहा हूं निष्फल होने वाला नहीं है? ऐसी दशा में यदि लोगों का क्रोध धधक उठे, कोई भी मर्द, औरत और बच्चा सही-सलामत न बचे, और हर आदमी का हाथ अपने दूसरे भाई पर उठ जाय तो फिर?"

दुविधा

इस अवस्था में महात्माजी के सामने यह दुविधा खड़ी थी—या तो सरकार के साथ इच्छा न होते हुए झूठमूठ सहयोग करें या छुपी हुई हिंसा के तत्व के साथ शामिल हो जायं। दोनों के अन्दर कमजोरी और पाप था। इस तरह उन्हें जनता का वायु-मंडल तो असन्तोष-जनक दिखाई दिया ही, पर जिन लोगों पर उन्हें विश्वास था, जिनसे जनता को राह दिखाने और आगे ले चलने की उम्मीद की जाती थी उनकी वृत्ति भी असन्तोषकारक दिखाई दी। फलतः महात्माजी को इस निर्णय पर पहुंचना पड़ा और सलाह देनी पड़ी कि रक्षात्मक व्यक्तिगत भंग भी बन्द कर दिया जाय और राष्ट्रीय प्रायश्चित के तौर पर सिर्फ रचनात्मक कार्य ही किया जाय, यद्यपि वह रुचिकर न हो। उन्होंने लिखा—

सब कुछ मुल्तवी

"हमें रक्षात्मक सविनय भंग भी छोड़ देना चाहिए। अपनी तमाम ताकत अरुचिकर परन्तु जीवनदायी आर्थिक और सामाजिक सुधार में लगा देनी चाहिए।"

"हरतरह जेल जाने से स्वराज्य नहीं मिलता। हरतरह के आज्ञा भंग से हम में आज्ञा और नियम-पालन की प्रवृत्ति और भावना उदय नहीं हो सकती। यह ख्याल करने का कोई कारण नहीं है कि हम ऐसे हजारों आदमियों को जेल भेजकर, जो बराय नाम के अहिंसापरायण हों और जिनके दिल में द्वेष, दुर्भाव और हिंसा की लहरें उठ रही हों, स्वराज्य को प्राप्त कर सकेंगे।"

"यदि हम ऐसे लोगों को जेल भेजेंगे जो अपने दिलों में हिंसा को छुपाये रखते हों, तो स्वराज्य को न जाने कब तक दूर हटा देंगे।"

"उन्हें अब सविनय भंग बन्द कर देने और रचना के शान्तिमय काम को करने के सिवा दूसरी गति नहीं। मैं उनसे आग्रह करूंगा कि वे अब तुरन्त आगे पांव बढ़ाने की पुकार पर उदासीन रहें। अब तो सबसे पहला काम न तो जेल को न्यौता देना है और न बोलने, लिखने और सभा करने की आजादी हासिल करना है, बल्कि आत्म-शुद्धि, आत्मनिरीक्षण, और चुपचाप संगठन करना है।"

"इसलिए बहुमतवालों का यह कर्तव्य है कि वे अपने अपने प्रान्तों में तानों, [illegible], [illegible], को सहते हुए और यदि मौका आपड़े तो अपनी संख्या को कम होने देते हुए भी अपने ध्येय की ओर बराबर विश्वास के साथ आगे बढ़ते रहें, एक इंच भी पीछे न हटें। हो सकता है कि सरकारी हाकिम लोग हमारी इस नम्रता को हमारी कमजोरी समझ कर और भी ज्यादह दमन का दौर चलावें, पर हमें उसको सिर आंखों पर लेना चाहिए।"

९ मार्च को फिर महात्माजी ने अपनी स्थिति को साफ किया है। उन्होंने लिखा—

आकाश साफ होने दो

"पर यदि वायुमंडल साफ हो जाय, लोग 'सविनय' पद की पूरी महत्ता समझ जायं और यदि सचमुच अपनी भावना और कृति में अहिंसा-परायण हो जायं और यदि यह दिखाई दिया कि सरकार अब भी लोकमत के आगे सिर नहीं झुकाती तो मैं जरूर ही सब से पहले सामुदायिक या व्यक्तिगत सविनय भंग की, जैसी जरूरत हो, सलाह दूंगा। इस कर्तव्य का पालन किये बिना तो हमारा छुटकारा ही नहीं है—जबतक कि लोग अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को तिलांजलि देने के लिए तैयार न हो जायं।"

शिथिल योजना

अपनी गिरफतारी के बाद १२ मार्च को महात्माजी ने हकीम अजमलखान साहब को एक पत्र लिखा था। हकीम साहब महासभा के कार्यवाहक सभापति और कार्य-समिति के अध्यक्ष हैं। अतएव उस पत्र में उस शिथिल योजना का होना बिलकुल स्वाभाविक था जिसे उस काल की अवस्था के अनुसार महात्माजी ने मुनासिब समझा था।

कारावास—पोषक तथा बाधक

२ मार्च के लेख में (जिसमें से मैंने बहुत से वचन अभी उद्धृत किये हैं) इस बात को स्पष्ट कर के कि किस तरह का कारावास स्वराज्य को मदद देगा और किस तरह का नहीं। महात्माजी ने हकीमजी को पत्र में इस विषय पर यह लिखा था:—

"हां, हम इस सरकार को जो कि एक शासन-प्रणाली है, बेकार कर देना तो चाहते हैं, पर भय दिखा कर नहीं; बल्कि अपनी निर्दोषता के दुर्दमनीय बल पर। मेरी राय में तो जिस तरह बन पड़े उसी तरह जेलों को भर देना एक प्रकार का भय-प्रदर्शन ही होगा"

एक ही शुद्ध बलिदान बस है

सत्याग्रह का सिद्धान्त तो यह है कि कुछ ही निर्दोष और शुद्ध आत्माओं या एक ही पूर्ण शुद्ध आत्मा के कष्ट-सहन या कारावास का ऐसा नैतिक प्रभाव होता है जिससे हमारे प्रतिपक्षी बेकार हो जावेंगे। पर यदि अशुद्ध लोग सैकड़ों और हजारों की तादाद में जेल चले जायं तो भी सिवा भय-प्रदर्शन के उसका दूसरा कुछ असर नहीं हो सकता। एक मिसाल लीजिए, उस दिन जब श्री मालवीयजी के आज्ञा-भंग का समाचार लोगों ने सुना तो उनके दिल पर क्या असर हुआ? उस एक ही शुद्ध बलिदान में हमें एक भीषण नैतिक प्रभाव की झलक दिखाई दी।

सत्याग्रह के इस सिद्धान्त के अनुसार जो हम सबसे शुद्ध, सबसे पवित्र और सबसे निर्दोष पुरुष है, जिसे पश्चिम में अमेरिका से लेकर पूर्व-किनारे के जापान तक के लोग परम साधु मानते हैं, परम पुनीत मानते हैं, सारे विश्व के प्रति शान्ति और सद्भाव की अमृत-वृष्टि करने वाला मानते हैं, ऐसा पुरुष कैद कर लिया गया है। इस घटना का नैतिक प्रभाव यद्यपि आज अचानक फूट निकलने वाले स्फोट के रूप में अथवा

हमारी राष्ट्रीय लड़ाई के विरोधी दल में भारी फूट के रूप में उसका फल हुआ दिखाई नहीं देता है—और ऐसे अहिंसापरायण महात्मा में ऐसा कुछ न होना स्वाभाविक ही है—तथापि इसका नैतिक प्रभाव इतना वेग-वशाली होगा कि वह किसी के रोके नहीं रुक सकता। दुनिया के दिल में हिन्दुस्तान के साथ हुए इस महान् अन्याय का कुछ ख्याल होने लगा है। उसके चिह्न इतने स्पष्ट हैं कि भूल होने का बिलकुल अन्देशा नहीं।

क्या इस महान् बलिदान को अभाव में हम उसकी सम्पूर्ण पवित्रता और कीर्ति के सहित अकेला ही चमकता रहने देंगे? हमारे अच्छे, बुरे या मिश्र कष्ट-सहन के द्वारा उसका सुधार करते हुए इस ज्योति को हम ढांक तो न देंगे? यह सवाल है। महात्मा जी ने खुद एक तरह से इसका उत्तर दिया है। हकीम जी के पत्र में उन्होंने इस विषय में लिखा है—

महात्माजी का उत्तर

"मुझे ऐसा मोह भी होता है कि मेरी यह कैद अपने काम के लिए बहुत समय तक बस है। मैं नम्रता के साथ यह मानता हूं कि मेरा किसीके साथ वैर-भाव नहीं। हां, जिस दरजे तक मैं पालन करता हूं उस दरजे तक अहिंसा-धर्म का पालन करना कितने ही मित्रों को पसन्द नहीं है। पर हम लोगों का तो यही विचार था कि बिलकुल निर्दोष लोग ही जेल जायं। और मैं बिलकुल निर्दोष होने का दावा कर सकता हूं। तो फिर यह साफ ही है कि मेरे बाद अब आगे कोई जेल जाने का प्रयत्न न करें। जबतक यह न मालूम हो कि एमके निर्दोष मनुष्य का जेल जाना बस नहीं है तब तक दूसरे निर्दोष मनुष्य जेल जाने का प्रयत्न क्यों करें!"

परन्तु सहज-प्राप्त कष्ट का स्वागत करें

"मैंने जो यह कहा कि अब अधिक लोग जेल न जायं इसका अर्थ यह नहीं है कि अब हम जेल जाने से जी चुरावें। सरकार यदि खुद ही हरएक अहिंसात्मक असहयोगी को गिरफ्तार कर ले तो मैं इसका अवश्य स्वागत करूंगा।"

हमारे सामने सवाल

यह लेख कुछ लम्बा हो गया है। परन्तु वस्तुस्थिति को स्पष्ट कर के यह ठीक ठीक समझ लेना आवश्यक है कि महात्माजी आखिर हमें क्या करने के लिए कह गये हैं? अनेक शंकाओं और कठिनाइयों भरे पिछले कुछ महीनों में महात्माजी ने जो सलाहें दी थीं उनके मूलभूत तत्व का विश्लेषण मैंने इसलिए किया है कि जिससे हम अपने निर्णय सत्य सिद्धान्तों पर स्थिर कर सकें, अपनी भावी योजनाओं की शृंखला भूतकाल के साथ बांध सकें। महात्माजी मानते थे कि मुझ अकेले का ही बलिदान बस है; और इसमें कोई शक नहीं कि संसार के नैतिक इतिहास के विशाल क्षेत्र में उसका असर हुए बिना न रहेगा। पर जो महान् प्रश्न अब हमारे सामने है वह यह है—इस महान् घटना को राष्ट्र के साथ और राष्ट्रीय संग्राम के साथ जोड़ने के लिए हम खुद, सम्पूर्णता में कम होते हुए भी, महात्माजी की विशुद्धता की व्याख्या के अनुसार आने योग्य अधिक बलिदान करें या नहीं? और उनके इस राष्ट्रीय आहुति को इस परम आत्मोत्सर्ग के जीवनदायी सम्पर्क में आश्रय रक्खें या नहीं? यदि हमारा जवाब हां, हो तो हमारा बलिदान किस रूप में होना चाहिए?

(यंग इंडिया) चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

पहली अगस्त

क्या बम्बई को उस पहली अगस्त की याद है? पहली अगस्त—पिछले साल का वह ऐतिहासिक दिन जब महात्माजी जो आज हमसे छीन लिये गये हैं, चौपाटी में एक प्लेटफार्म पर खड़े थे, जिसके एक ओर तो नीला दर्या लहरें मार रहा था, और दूसरी ओर सामने जनता का सफेद समुन्दर उमड़ रहा था। लोकमान्य अब संसार में नहीं हैं। उनकी आत्मा स्वर्गीय शांति का अनुभव कर रही है और महात्माजी अंगरेजों की जेल में कैद हैं। एक को मृत्यु ने और दूसरे को सरकार ने हमसे छीन लिया है। पर क्या बम्बई इन दो महापुरुषों के जीवन-कार्यों को तथा देश में नई जान डालने वाले उनके उपदेशों को भूल गई? जब वे हमारे बीच थे, सब लोगों ने उनके प्रति कितना प्रेम बताया! प्रेम क्या, वह तो मानों एक स्वर्गीय शक्ति थी जिसका सामना करना असम्भव था। उस समय तो ऐसा मालूम हो रहा था मानों मनुष्यों के हृदय बदल गये हैं और स्वतंत्रता का उदय हुआ ही चाहता है। क्या इस साल की पहली अगस्त बम्बई को काले भड़के, तथा महीन और बढ़िया रेशमी, सूती कपड़ा पहने हुए देखेगी, जो दूर से ही मानों साफ साफ चिल्लाकर कहते हैं कि हमें खादी मत समझ बैठना? क्या बम्बई लोकमान्य की स्वर्गप्राप्ति का दिन स्वाधीनता के वेश को छोड़ कर पहले के अब के या आगे के सत्ताधारियों से खरीदे हुए रेशमी, महीन कपड़े पहन कर मनावेगी!

मैं बम्बई से अपील करता हूं कि उसने पिछले साल के उस महान् दिन जो प्रतिज्ञायें की हैं उन्हें ध्यान में लावे और अपनी मिथ्या रुचि, झूठी कमखर्ची तथा भूले भटके जीवन के इन चिह्नों को जला दे, या कम से कम छोड़ दे; और उन वस्त्रों को पहने जो हमारे देश को तथा उसके प्राणप्यारे नेता को छुड़ाने में सहायक हों।

केवल बम्बई ही नहीं, बल्कि सारा देश उस दिन मातम मना रहा था। उसने उस दिन यह प्रण किया कि अब हमारी शक्ति का चिह्न खादी ही रहेगी। अगर लोग चरखे का आश्रय लें तो वही उनका उद्धार कर देगा—उनके दिन लौटा देगा और देश को स्वतंत्रता की प्राप्ति करा देगा। तब लोकमान्य की स्वर्गीय आत्माकी कृपाच्छाया में चरखा लेकर्दिवत महात्मा गांधी के हाथ के कते हुए सूत का बना राष्ट्रीय झंडा स्वराज्य-प्राप्ति के दिन फहराया जायगा। पर अगर हमारा हृदय दुर्बल ही रहा तो चरखा दुःख-दारिद्र और निराशा का रोना रोवेगा और महात्माजी का सूत भावी संतति के सामने हमारी पुरुषार्थ-हीनता की दुःखद कथा सुनावेगा।

(यंग इंडिया) चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

ग्राहकों को सूचना

'हिन्दी नवजीवन' का प्रथम वर्ष आगामी १८ अगस्त को खतम हो जाता है। अतएव जिन ग्राहक-भाइयों का वर्ष 'हिन्दी-नवजीवन' के वर्ष के साथ ही शुरू होता है वे कृपा कर के अगले साल का चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा, बिना चूके, भेज दें। वी. पी. भेजने का रिवाज इस दफ्तर में नहीं रक्खा गया है।

व्यवस्थापक हिन्दी-नवजीवन
अहमदाबाद

हिन्दी
नवजीवन

रविवार, श्रावण वदी १४, सं. १९७९

लक्ष्मी कैसी है?

जब कुछ लोग जब जेल में महात्माजी से मिलने गये तब उन्होंने पूछा—"लक्ष्मी कैसी है?" 'लक्ष्मी' से केवल उस अछूत-बालिका से मतलब नहीं जो महात्माजी के आश्रम पर है। वह छोटा सा नाम तो अपने उन सात करोड़ भाई-बहनों और बालक बालिकाओं के लिए है जिन्हें हमने आज गंदा और अछूत समझ रक्खा है। इस लिए महात्माजी के कुशल-प्रश्न का केवल यह अर्थ नहीं कि "आश्रमवाली वह बालिका भली चंगी तो है" बल्कि यह कि हमारे वे सात करोड़ अछूत भाई-बहन कैसे हैं? वे प्रसन्न तो हैं न? अब उनके प्रति हमारे बर्ताव में कुछ फर्क हुआ या अब भी ज्यों का त्यों ही है? लक्ष्मी कैसी है? वह प्रसन्न तो है न? उसे यह तो नहीं मालूम होता कि मैं अपने भाई-बहनों में नहीं हूं? या यही मालूम होता है कि मैं अपने घर में नहीं हूं। मतलब यह कि इन सात करोड़ भाई-बहनों को यह तो मालूम होता है न कि भारत उनकी भी मातृभूमि है। हमारे हृदय में जो परिवर्तन हो रहा है उसे वे जानने लगे या नहीं? उन्हें यह मालूम होने लगा या नहीं कि राष्ट्र उनका भी है और वे राष्ट्र के हैं। वे यह अनुभव करने लगे या नहीं कि जिस स्वराज्य के लिए हम झगड़ रहे हैं वह उनके लिए सुखमय होगा। उसमें उनके भी वे ही अधिकार और जवाबदेहियां होंगी जो दूसरी जातियों की होंगी। जबतक लक्ष्मी की पूछ-ताछ न की जायगी, जबतक 'लक्ष्मी' भली-चंगी और प्रसन्न नहीं होती तब तक सारा परिवार कैसे सुखी हो सकता है?

कितने ही भाइयों को यह डर है कि महात्माजी के जेल जाने के बाद शायद हम अपने कई सिद्धान्तों में ढिलाई कर रहे हैं। जो सचमुच ऐसा समझ रहे हों या अनुभव कर रहे हों उन्हें यह याद रखना चाहिए कि कुछ भी हो जाय, हम 'लक्ष्मी' की अवहेलना कदापि नहीं कर सकते। उसको तो हमें इस तरह रखना चाहिए कि उसके दिल में कहीं यह खयाल भी न आने पावे कि "बापूजी तो जेल चले गये अब मेरी पूछ-ताछ करने वाला कोई न रहा। बापूजी मुझको जितना प्यार करते थे उतना प्यार करने वाला दूसरा कोई नहीं।"

उन सात करोड़ भाई-बहनों को यह खयाल भी होना न चाहिए कि 'अब तो हमारे बापूजी जेल चले गये। अब हमारा हृदय से प्यार करनेवाला—हमारी पूछताछ करनेवाला, कोई न रहा। अपने ही देश में हम पराये हो रहे हैं। क्या करें, कितना दुःख और बेबीलाप सहना पड़ता है।' 'लक्ष्मी' तो हमारा 'लक्ष्मी'—श्री—है उसके बिना विजय और स्वतंत्रता कहां? उसकी मूक वेदनायें और गुप्त अश्रुपात परमात्मा के सामने गवाही देंगे। 'लक्ष्मी' को साफ पानी भी पीने के लिए नहीं मिलता। उसे वह पानी नहीं मिल सकता जिसे दूसरे सब पीते हैं। लक्ष्मी पाठशाला में जाकर दूसरे विद्यार्थियों के साथ बैठकर पढ़ नहीं सकती। लक्ष्मी मंदिरों में भी नहीं जा सकती। जिसे सब लोग भगवान कहकर नमस्कार करते हैं उसे वह एक नजर भी देख नहीं सकती। उसका दर्शन करके वह उनसे यह प्रार्थना भी नहीं कर सकती कि परमात्मन्, मुझे आशा और धैर्य दो।

लक्ष्मी दूसरे बालकों के साथ मिलकर खेल-कूद भी नहीं सकती। वे उसे कुत्ते की तरह गलीज समझते हैं। बेचारी के खयाल में ही यह नहीं आता कि उसकी ऐसी दुर्दशा क्यों हो रही है। वह इस तरह क्यों रक्खी जा रही है। बापूजी कितने साफ और कितने सच्चे थे। वे तो कहते थे "लक्ष्मी, जैसे दूसरे बच्चे हैं वैसी ही तू भी है।"

महात्माजी ने पूछा है—"लक्ष्मी कैसी है?" इसपर राष्ट्र का क्या उत्तर है? केवल शब्दों द्वारा नहीं, कार्य द्वारा और यथार्थ में तो हार्दिक प्रेम के द्वारा।

(यंग इंडिया) चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

पाप धोने का दिन

पिछले गांधी-दिवस के दिन 'नवजीवन' का अन्त्यज-अंक निकला था। उसमें पूज्य कस्तूर-बा लिखती हैं—

"अछूत भाइयो और बहनो, आज का दिन आप किस प्रकार मनायेंगे? आज आप अपने पाप धो डालने का निश्चय कीजिए। आज से आप शराब छोड़ दो। आज से आप परावलंबन भी छोड़ दो। आप आज से दूसरों का जूठा खाना भी छोड़ दो। आज से आप अपने बच्चों को पढ़ाना शुरू कर दो। आज से आप अपनी तमाम मैली-कुचैली आदतों को भी छोड़ दो। गंदे शब्द अब मुंह से कभी न निकालो। गंदे विचारों को भी आप अपने पास मत फटकने दो। आज से हर रोज आप परमात्मा का भजन करो। उनसे प्रार्थना करो कि हे भगवन्, हमें बल और बुद्धि दो जिससे हम अपने पैरों पर खड़े रहकर अपना उद्धार कर सकें।

जुलाहे-भाइयो, आज से आप यही निश्चय कीजिए कि हम अब हाथ-कता सूत ही बुनेंगे। यह सच है कि पेटी के बानी मिल के सूत के कपड़े बुनना शायद अधिक आसान हो; पर उससे सुख और स्वराज्य नहीं मिल सकता। यदि आप खादी बुनने लगेंगे तो आप तमाम देश को बड़े प्यारे हो जायंगे। खादी बुन कर यदि आप देश को स्वराज्य दिलावेंगे तो सारा देश आपकी पूजा करेगा।

मैं तो अपने दूसरे भाई-बहनों से भी यह प्रार्थना करती हूं कि आप भी अपने पापों को भस्म करने का निश्चय कीजिए। छुआछूत सबसे बड़ा पाप है। उसे आज जलाकर अपने ही भाइयों को जिन्हें आप अछूत समझ रहे हैं, अपनाइए। उनको आप अपने कूए-बावड़ियों पर पानी भरने दीजिए। उनके बच्चों को अपनी पाठशालाओं में हिल-मिल कर पढ़ाइए। उनको अपना जूठा मत खिलाइए। उनका अपमान न कीजिए। अब आप उनको स्वराज्य देंगे तभी आपको स्वराज्य मिलेगा।

(नवजीवन) कस्तूरबाई गांधी

एजंटों की जरूरत है

महात्माजी की सुख-सामग्री

जेल में उस दिन महात्माजी से मिलने के लिए पू॰ कस्तूर-बा के साथ जो लोग गये थे उनमें मैं भी था । मेरा ख्याल है कि जनता उनसे सम्बन्ध रखने वाली उन सब बातों को जानने के लिए उत्सुक होगी, जो हमने वहां पायीं और देखीं ।

पहले पहल हमने महात्माजी से पूछा कि आपका दैनिक कार्यक्रम क्या है ? उन्होंने प्रसन्न-चित्त से कहा कि "मैं रोज सुबह ४ बजे उठता हूं । सुबह का सब समय प्रार्थना और ध्यान में ही बिताता हूं, जैसा कि आश्रम में या यात्रा में भी करता था ।" महात्माजी अपने साथियों से सदा यही कहा करते थे कि "जीवन के इस मूल्यवान् समय को—प्रभात-काल—को कभी हाथ से न जाने देना चाहिए ।" पृथ्वी की किसी भी शक्ति का रोब या हुकूमत महात्माजी के इस सब से बड़े आनंद-वैभव को उनसे नहीं छीन सकती । जबतक चारों ओर प्रकाश नहीं फैल जाता महात्माजी कुछ नहीं करते । इसका कारण शायद यह होना चाहिए कि उन्हें बत्ती नहीं दी जाती । दतौन-कुल्ला के बाद महात्माजी अपने प्यारे कामों में-धुनकने, कातने में-लग जाते हैं । जब महात्माजी जेल में न थे तब भी वे रोज कातने के लिए अधिक से अधिक काम होने पर भी भोजन के पहले एक आध घंटा किसी तरह निकाल ही लिया करते थे ।

अपनी दिनचर्या सुनाते समय आपने अपने पैरों की ओर जहां पर रुई के बारीक तंतु लगे हुए थे, देखकर कहा— "मैं अभी धुनक कर आ रहा हूं" यह भी उनका एक सुख-वैभव ही है । महात्माजी को कितने प्रकार के सुख जेल में मिलते हैं यह गिन कर बताना अनावश्यक है । प्रकृति की संपत्ति अपार है । और जिसके हाथ उसके इस अक्षय भंडार की कुंजी आ जाती है उसके आनंद का क्या कहना ?

हम लोग जब तक उनसे बातें करते रहे तब तक वे एकसा खड़े ही रहे । इस बार वहां पर महात्माजी तथा हम लोगों के लिए भी कुर्सियां रख दी गई थीं । हम लोगों ने उनसे कई बार कुर्सी पर बैठने के लिए प्रार्थना की; पर आप खड़े ही रहने में आनंद मान रहे थे । जितनी बार हम लोगों ने उनसे बैठने के लिए प्रार्थना की उतनी बार उन्होंने यही कहा "मैं ऐसे ही बहुत अच्छा हूं" मालूम होता है कि यद्यपि उनके लिए वहां पर कुर्सी रखी गई थी तथापि इस व्यवहार में किसी ऐसी बात की न्यूनता को वे अनुभव कर रहे थे जिसके कारण उन्होंने उस पर बैठना उचित न समझा ।

मुलाकात खतम हो चुकी । महात्माजी अपने तपोमंदिर में जाने के लिए रवाना होने लगे कि सुपरिंटेन्डेन्ट साहब, जो अभीतक अपनी मेज के पास कुर्सी पर गंभीरतापूर्वक बैठे हुए किसी कागज के शायद वह अखबार हो, पढने में मग्न थे, उठकर हमारे पास आये और हमसे कहा—"इस मुलाकात का कुछ भी हाल अखबारों में न जाना जाय ।" आप के स्वर में आज्ञा के स्थान पर क्षमा-याचना का भाव अधिक देख पड़ता था । फिर आपने कहा—"मैं आपको यह हिदायत इसलिए दे रहा हूं कि मुझे बाला अफसरों का यह हुक्म मिला है । अगर आप लोग इस हिदायत पर ध्यान न देकर कुछ छाप देंगे तो उसका फल कैदी को भुगतना होगा । उसे फिर कभी किसी से मिलने न दिया जायगा ।" पर इसकी चर्चा तो हमने अखबारों में कर ही डाली । इसलिए अब महात्माजी की यह सुविधा भी—चार चार महीने में अपने आप्त-मित्रों से मिलने देना—शायद बंद कर दी जाय । पर यदि उनका यह अधिकार छीन भी लिया तो इससे उनकी कौन बड़ी भारी हानि होनेवाली है ? वे इसकी विशेष परवा न करेंगे ।

महात्माजी को तीन माह में एक बार पत्र लिखने का अधिकार है । उन्होंने श्रीमती गांधी और हकीम अजमलखां साहब को पत्र लिखे भी थे । पर सरकार उनको भेजने में इतनी आपत्ति करने लगी कि महात्माजी ने यही सोचा कि इससे तो न भेजना ही ठीक ।

मुलाकात के अंत में जब महात्माजी ने सुपरिंटेन्डेन्ट को हमें यह हिदायत देते हुए देखा कि 'इस मुलाकात का जरा भी जिक्र अखबारों में न आने पावे' तब महात्माजी ने प्रतिपक्षी की दलील, क्रोध, और दुर्भावों को जीत लेने वाली हंसी हंसते हुए कहा—

"क्या उन पत्रों का जिक्र भी न किया जाय जिन्हें जाट साहब ने किसी ऐसे ही कारणों से रोक लिया है जिन्हें आप नहीं भली-भांति जानते हों ?"

"नहीं"

"और क्या यह भी न छापा जाय कि मैं सकुशल हूं ?"

जवाब मिला "नहीं, कुछ भी नहीं"

महात्माजी ने दरवाजे की ओर कदम बढाते हुए कहा, "तो अब मैं यह बात उन्हीं पर छोड़ता हूं कि वे भविष्य में यह मुलाकातें पाने का अधिकार मेरे लिए रख छोड़ें या लो दें ।"

राजर्षि भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है "मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखं" यह कहना कठिन है कि ऐसी महान् आत्मा के लिए कौन सी बात दुःख की है और कौनसी बात सुख की ?

(यंग इंडिया) मगनलाल खुशालचंद गांधी

टिप्पणियां

नौकरशाही के दावपेंच

युवराज के स्वागत के बहिष्कार से नौकरशाही बे तरह चिढ गई है । क्यों कि युवराज को इतनी विषम परिस्थिति में यहां बुलाने में नौकरशाही का जरूर गहरा उद्देश था । पर वह तो सफल नहीं हुआ । अब वह अपने मुंह से यह कैसे कहे कि वह असफल हुआ । सफल हो या असफल; उसे तो यही डींग मारना है कि बस, मूंछ तो ऊंची हमारी ही रही ।

कितने ही लोगों का यह कहना था कि शाहजादे की भारत-यात्रा से राजनीति का कोई सम्बन्ध नहीं है । पर हम जानते थे कि यह नौकरशाही शाहजादे के स्वागत का राजनैतिक दुरुपयोग जरूर करेगी । वह शाहजादे के मुंह से यह कहा कर कि देखो, भारत की जनता नौकरशाही से संतुष्ट है, अपनी योग्यता का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर संसार की दृष्टि में अपने नीचताओं पर परदा डालना चाहती है ।

पर भारत की जनता उसकी इस चालबाजी को ताड गई । उसने युवराज के स्वागत का बहिष्कार किया । पर इतने पर भी सरकार की आंखें नहीं खुलीं ।

युवराज इंग्लैंड पहुंचे । प्रधान सचिव ने वहां आपको प्रीति-भोज दिया । उसमें दोनों के भाषण हुए । भारतीय प्रजा द्वारा युवराज के जो स्वागत हुआ उसकी बड़ी तारीफ की गई । कहा गया—"भारत पूरा राजभक्त है, वाइसराय बड़े होशियार और काबिल आदमी हैं । नौकरशाही का शासन-तंत्र केवल यहीं ही नहीं संसार में अनुपम है । भारत का भला करने के लिए नौकरशाही का हरएक छोटा-मोटा भी तोड़ कर परिश्रम कर रहा है । इसलिए हरएक अंगरेज का कर्तव्य है कि वह भी जी जान से उनकी सहायता करे ।

इस अपारता का भी कहीं ठिकाना है । नौकरशाही सचमुच भारत को प्यार करती है। पर उसके प्यार में फर्क सिर्फ उतना ही है जितना गोपाल और गो-हिंसक में होता है। दोनों गाय को चाहते हैं—पर एक उसे खिला-पिला कर भली चंगी देखना चाहता है और दूसरा उसे मारकर यह देखना चाहता है कि इसका मांस खा कर मेरा शरीर कितना मोटा-ताजा हुआ !

नौकरशाही खूब समझ रक्खे भारत अब उसके दाव-पेंच को खूब समझ चुका है। वह यदि भारत का प्रेम सम्पादन करना चाहती है तो उसे कुचाल छोड़ कर सीधी राह पर आ जाना चाहिए।

दमन की चाट

शेर जब एक दफा मनुष्य के खून का स्वाद चख लेता है तब उसे उसी खून की चाट लग जाती है। यही हाल सत्ता-धारियों के दमन का है। अंग्रेजी सरकार को दमन की पुरानी और ऐतिहासिक चाट है। भारत शस्त्रहीन है। इसलिए शायद उसका हौसला बढ़ता जाता है। पंजाब में बाबा गुरुदत्तसिंह, 'अकाली' के सम्पादक, 'वन्देमातरम्' के सम्पादक आदि, देहली में 'कांग्रेस' के सम्पादक, कानपुर जिले के कुछ खादी-प्रचारक, काशी के धर्मवीर जी, बिहार के नेता मौलवी मजहर-उल-हक, कलकत्ते में पं० माधव शुक्ल, और कटनी के कुछ सज्जन दमन के ताजे शिकार हो रहे हैं। कोई १२४ अ के शिकंजे में, कोई १४४ के पंजे में, कोई मानहानि के चंगुल में और कोई नेकचलनी के फन्दे में जकड़ा गया है। मदरास में भी खासी धूम है। बम्बई शान्त नजर आता है। पर बगुले की तरह घात पा पा कर पंजा मारना इसकी परम्परा होती आ रही है। इधर श्री मालवीय जी के भी शायद शीघ्र गिरफ्तार किये जाने की अफवाह एक दो पत्रों में आई है। मतलब यह कि नौकरशाही भारत के निर्दोष शिकारों का खून पी पी कर मतवाली हो रही है। ऐसा मालूम होता है कि जब तक ऐसे शुद्ध खून के तालाब या नदियां न बहने लगेंगी तबतक शायद उसे अपनी आसुरी पिपासा पर घृणा न आवेगी। भारत की नजर १५ अगस्त पर लग रही है। भगवान् उस पर कृपा करें।

मुगालता और गलतफहमी

असहयोगियों का जीवन-सिद्धान्त है सत्य और अहिंसा। पर उनके विरोधी लोग न तो सत्य के ही कायल हैं और न अहिंसा के ही। उनका तो सारा आधार प्रायः चाल-बाजियों पर है। इस घोर दमन पर भी अभी असहयोग-आन्दोलन लहरें मार ही रहा है। यह देखकर विरोधी दल के लोग उसके विषय में तरह तरह का मुगालता और गलतफहमी फैला रहे हैं। वे अपने भाषणों, लेखों और पुस्तकों में कहते हैं 'यह आन्दोलन तो क्रान्तिकारी है। इसका उद्देश है अराजकता फैलाना। इससे देश में चारोंओर खून-खच्चर का बीभत्स दृश्य दिखाई देने लगेगा। असहयोगी तो अंगरेजी साम्राज्य को मटिया मेट कर देना चाहते हैं। वे ब्रिटिश सल्तनत से किसी तरह का ताल्लुक नहीं रखना चाहते। इससे हिन्दुस्तान तबाह हुए बिना न रहेगा'—आदि। यह कहना बराबर सत्य की तोड़-मरोड़ करना है। जहांतक शासन-प्रणाली के परिवर्तन से सम्बन्ध है वहांतक यह कहा जा सकता है कि असहयोग-आन्दोलन क्रान्तिकारी है। पर जहां शस्त्र उठाने या खून-खराबी मचाने से सम्बन्ध है वहां यह हरगिज क्रान्तिकारी नहीं है। यह एक तिनका तक उठाये बिना पूर्ण शान्ति के साथ वर्तमान कु-शासन-प्रथा को बदल देना चाहता है।

अराजक लोग तो वे कहलाते हैं जो किसी प्रकार की शासन संस्था को चाहते ही नहीं। असहयोग-आन्दोलन तो सिर्फ वर्तमान सरकार में सुधार या परिवर्तन करना चाहता है। इसको 'अराजकता' बतलाना अपने घोर अज्ञान का प्रदर्शन करना है या अपनी दुष्टता का परिचय देना है।

शान्ति के बिना असहयोग एक भी कदम आगे नहीं बढ़ा सकता। फिर उसमें हत्याकांड और खून-खराबी की कल्पना पागलों के ही दिमाग में आ सकती है। यह तो उन्हींके दिल के हत्याकांड और खून-खच्चर की प्रतिध्वनि हो सकती है।

महासभा का ध्येय है—स्वराज्य, फिर वह चाहे ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर हो, चाहे बाहर। असहयोगी इस विषय में तटस्थ हैं। वे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहने में भी खुश हैं और बाहर रहने से डरते भी नहीं हैं। यदि खिलाफत का फैसला मुसलमान-भाइयों की इच्छा के अनुसार हो जाय तो वे बाहर रहना नहीं चाहते। अतएव असहयोगियों को पार्थक्य-वादी कहना बड़ा भारी मुगालता है। यह तो अंगरेजी सरकार के हाथ की बात है कि वह उन्हें साम्राज्य के अन्दर रक्खे या बाहर जाने दे।

असहयोगियों के शान्तिपूर्ण कार्यक्रम में हिन्दुस्तान की तबाही ढूंढना चन्दन में आग की चिनगारियां देखना है। वह तो भारत के ही लिए नहीं, सारे संसार के लिए शान्ति, समृद्धि और सुख का सन्देश अपने हृदय में रखता है। जिन्हें ईश्वर ने आंखें दी हों वे आकर देख लें। जिन्हें न हो वे कम से कम 'आंखों वाले' बनने का ढोंग रच के ईश्वर को धोखा देने का तो प्रयत्न न करें।

बेईमानी और धोखेबाजी

हर समय में दुर्जन और स्वार्थी लोग जनता की भावुकता का बुरा फायदा उठाते रहते हैं। इस सामान्य नियम के लिए हमारा समय भी अपवाद नहीं है। भारत में जनता आजकल खादी की ओर बहुत झुकी हुई है। साथ ही विदेशी और खास कर इंग्लैंड की कपड़े का व्यापार करने वाली कितनी ही कम्पनियों को यह भय होने लगा है कि उनका गुजर किस तरह चलेगा। इन दोनों का, एक के भय का और दूसरे की भावुकता का, बुरा फायदा उठाने की नीच नीयत यहां के कई व्यापारियों को हुई है। उन्होंने इंग्लैंड की कई कम्पनियों को ऐसा माल बनाने के लिए आर्डर्स दे दिये हैं, जिसमें मांडी वगैरह बहुत होने पर भी वह खादी की तरह दिखाई दे। उसमें कपड़े का वजन मांडी का एक तिहाई होता है। ऐसे कपड़े की हजारों गांठें इंग्लैंड से मंगाई गई हैं और वह कपड़ा भोले-भाले लोगों को सस्ते भाव में बेचा जा रहा है। कपड़ा इतना निकम्मा होता है कि एक बार ही धोने से सब मांडी छूट जाती है और बारीक बारीक झिलमिले सूत के तन्तु रह जाते हैं। वह सूत भी इतना कमजोर होता है कि दूसरी बार की धुलाई में मुश्किल से टिक पाता है। कलकत्ते के एक अनुभवी व्यापारी श्री० सीताराम सेठ लिखते हैं कि इस कपड़े की रोज सैकड़ों गांठें जहाज से उतर रही हैं। इस हालत में यह कोई कठिन बात नहीं है कि मंगाने वालों का पता लगा कर उनको ऐसा करने से रोका जाय। आजकल, जब कि खादी की मांग इतनी बढ़ रही है और उतनी शुद्ध खादी मिलना कठिन हो रहा है तब यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कि दुर्बल हृदय के व्यापारी लोभवश इस प्रकार अपना ईमान खोने पर उतारू हो जायं। इसलिए इस समय महासभा-समिति के कार्यकर्ताओं का सबसे जरूरी काम यह है कि वे ग्राहकों को शुद्ध खादी के व्यापारियों की दुकानों पर ले जायं। उन्हें यह बताने

की जरूरत नहीं कि फलां फलां व्यापारी झूठा है या वह नकली माल बेंचता है। इससे उनके कार्य में व्यर्थ की बाधायें खड़ी होंगी। अतएव उनका तो काम सिर्फ इतना ही है कि वे उनको ऐसी दुकानें दिखा दें जहां उन्हें सिर्फ शुद्ध खादी मिल सके। क्या इस कलियुग में अब भी व्यापारी भाइयों को सचाई का उपदेश देने की जरूरत है? क्या वे यह नहीं देख सकते कि ग्राहकों को ठगना भारत को ही और पर्याय से खुद अपने को ही ठगना है?

देशी-राज्यों में अत्याचार की शिकायत

भारत की देशी रियासतों को आज भी कितने ही लोग भारत के प्राचीन शूर-वीर और प्रजा-प्रिय नरेशों की स्मारक संस्था या प्रतिनिधि संस्था मानते हैं। और हमारा खयाल है कि वर्तमान देशी-नरेशों को भी इस पर थोड़ा बहुत अभिमान जरूर होता होगा, यद्यपि आज, समय के फेर से, उनका पूर्व-गौरव केवल इतिहास की वस्तु रह गई है। भारत के देशी राजा कहलाते भले ही 'राजा महाराज' हों, भले ही वे कागजों में अंगरेज सरकार के मित्र अर्थात् बराबरी वाले लिखे जाते हों; पर हैं वास्तव में वे अंगरेजी 'महा प्रभुओं' के हाथ की कठपुतली। महात्माजी देशी-राज्यों की प्रजा को 'गुलामों के गुलाम' कहा करते थे। ऐसी दशा में यदि वहां की प्रजा पर दुहेरे अत्याचार हों तो कौन आश्चर्य की बात है! राजनैतिक आन्दोलन की तो बात जाने दीजिए, कितने ही राज्यों में तो खादी जैसा आर्थिक आन्दोलन भी दबाया जाता है। खैर, इसके लिए भी 'बड़ी आंख के छुपे इशारे' की बात समझ में आ सकती है; पर उनके राज्य में उनके कर्मचारी और अधिकारी जो गरीब प्रजा पर तरह तरह के जोरो-जुल्म करते हैं उनकी क्या सफाई? हो सकता है कि इन अत्याचारों की खबर 'श्रीमंत सरकार' 'हजूर मुअल्ला' और 'दरबार' तक न पहुँचती हो—और जिस वायुमंडल में वे छोटे से बड़े किये जाते हैं तथा बड़ी उम्र में भी जिससे घिरे रहते हैं—उसको देखते हुए यह कोई अनहोनी बात भी नहीं है। पर इस बचाव से कहीं प्रजा की रक्षा और उन्नति हो सकती है? देशी रियासतों के अत्याचारों की खबरें बराबर अखबारों में छापी जाती हैं; पर उनका खंडन या तहकीकात का प्रयत्न राज्यों की ओर से बहुत ही कम किया जाता है। फिर उनके दूर होने की बात तो और भी दूर है। यदि देशी-राज्यों के नरेश इस बात को मानते हों कि प्रजा राजा का बल है तो उन्हें समझ रखना चाहिए कि प्रजा के असन्तोष, कष्ट और दुःख की आहें उनके लिए शाप-रूप हैं और यदि वे प्रजा को कोई चीज ही नहीं समझते तो उन्हें याद रखना चाहिए कि इसी भावना में उनके सर्वनाश के बीज मौजूद हैं। प्रजा की जागृति के साथ ही साथ राजाओं को भी आंखें खोलने की जरूरत है। कितने ही नरेशों के व्यक्तिगत सौजन्य की कदर हम कर सकते हैं; पर जवाबदेह प्रजारक्षक की हैसियत से उनकी इस उपेक्षा या अन्यायवृत्ति पर खेद प्रकट किये बिना नहीं रह सकते। राजपूताने और मध्यभारत के देशी-राज्यों के जुल्म और जबरदस्ती की शिकायतें हम ज्यादह देखते हैं। क्या दीन प्रजा की आवाज उनके कानों तक पहुँचेगी?

यह भी कोई जीवन है?

मध्य-भारत के एक बड़े देशी-राज्य से एक युवक भाई अपने एक पत्र में लिखते हैं—

"+ × देश की दशा का दिग्दर्शन करने के हमारे नेत्र तो जबरन् फोड़ डाले गये। इस विषय का विचार-मात्र ही इस 'अन्धेर नगरी' में कुटुम्ब भर के प्राण संकट में डालना है। आंखें होते हुए भी हम अंधे ही हैं। प्रभात होता हुआ जान कर भी आंखें मूंद कर पड़े रहना यहां लाभदायक समझा जाता है। जोश देने की प्रबल इच्छा के साथ ही हलाक होने का भय भी है। इसी उधेड़-बुन में दोनों दीन से न रहे। "न खुदा ही मिला न विसाले सनम + + +"

यह पत्र आन्तरिक वेदना और करुणा से भरा हुआ है, पढ़ते ही लेखक के हृदय से तादात्म्य हो जाता है। लेखक उस राज्य में रहते हैं जहां के महाराजा सा॰ अपने भाषणों में अपनी प्रजा को अपना 'अन्नदाता' कहा करते हैं। उन 'अन्नदाताओं' के 'निर्भय, निश्चिन्त और सुखमय' जीवन की झलक पूर्वोक्त सतरों में है! भला यह भी कोई जीवन है?

नूतन बंधुओं का स्वागत

संसार को पाशवी सभ्यता से छुड़ा कर दैवी सभ्यता की ओर प्रेरित करने के लिए अहिंसात्मक असहयोग का जन्म हुआ है। यह तो दुनिया के लिए नवजीवन का सन्देश है। इस सन्देश को देश और संसार के कोने कोने में पहुंचाने वाली सब से बड़ी शक्ति वर्तमान समय में समाचार-पत्र हैं। यह हर्ष का विषय है कि भारत में कितने ही समाचार-पत्र यह पवित्र काम कर रहे हैं और नित्य नये पत्रों का जन्म भी होता जा रहा है। कानपुर से दैनिक मातृ-भूमि (हिन्दी) स्वाधीनता के महामंत्र का प्रचार करता हुआ असहयोग के प्रचार-क्षेत्र में कदम रख रहा है। कथर महीनों से जो पत्र बंद हो गये थे वे भी नवजीवन धारण कर रहे हैं। प्रयाग का अंगरेजी दैनिक इन्डिपेन्डेन्ट I change but I cannot die' को सार्थक करता हुआ फिर उसी शान के साथ गौरव-मय जीवन में प्रवेश कर रहा है। गोरखपुर से साप्ताहिक 'स्वदेश' भी "वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं" का घोष करता हुआ असहयोग के प्रचार के लिए कर्तव्य-क्षेत्र में फिर से उतर पड़ा है। प्रयाग का मृत 'स्वराज' भी शीघ्र ही दर्शन देने की प्रतिज्ञा कर चुका है।

असहयोग ने केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही क्रान्ति नहीं की। वह साहित्य, विज्ञान, इतिहास, धर्मनीति आदि में भी बड़ी गहरी क्रान्ति कर रहा है। इन विषयों के प्रचारार्थ भी कलकत्ते से "साहित्य" और रंगून से 'विश्वदूत' इन दो पवित्र मासिक पत्रों का जन्म हुआ है। 'साहित्य' का उद्देश तो उसके नाम से ही स्पष्ट है। और 'विश्वदूत' पूर्वभारत तथा ब्रह्मदेश में राष्ट्रभाषा का प्रचार करने के लिए निकाला गया है। 'हिन्दी नवजीवन' अपने इन नूतन भाइयों का सप्रेम स्वागत करता है। और परमात्मा से प्रार्थना करता है कि वे सत्य, देशभक्ति और विश्वजनीन प्रेम का प्रचार कर देश की चिरकाल तक सेवा करें।

ग्राहकों का धर्म

अजमेर से एक असहयोगी सज्जन लिखते हैं कि "स्वदेशी माल के बेचने वाले व्यापारी लोग अपने घरेलू कामों में सब परदेशी वस्तुयें काम में लाते हैं। इस तरह वे लोग देश का धन बाहर जाने में मदद करते हैं। ऐसों के प्रति ग्राहकों का क्या धर्म है?" हरएक देशवासी का यह धर्म है कि वह अपने देश की ही बनी चीजों को बरते। जो भारतवासी यहां की बनी चीजें मिलते हुए भी विदेशी चीजों को काम में लाते हैं वे अपने धर्म और देश की आज्ञा के विरुद्ध काम करते हैं। ग्राहकों को चाहिए कि ऐसे व्यापारियों को नम्रता के साथ उनकी भूल समझावें और धर्म का ज्ञान करावें। यदि वे न मानें तो वे दूसरे ऐसे व्यापारियों को खोजा करें और स्वदेशी चीजों को इस्तेमाल करते हों। और उन्हींसे सब चीजें खरीदने की प्रतिज्ञा करें। यदि यह भी मुमकिन न हो तो परदेशी माल खरीदने की अपेक्षा उन्हीं व्यापारियों की दुकान से स्वदेशी माल खरीदना बेहतर है। परदेशी चीज लेना तो हर हालत में अधर्म है।

लोकमान्य का तर्पण

वार्षिक ... ४)
छः मासिक ...
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष १] [अंक ५०

सम्पादक-हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय
प्रकाशक-रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, श्रावण सुदी ७, संवत् १९७९
रविवार, सायंकाल, ३० जुलाई, १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगराकी वाडी

पुण्य श्राद्ध

लोकमान्य एक संस्था थे। उनके जीवन का आदर्श था स्वतन्त्रता—स्वराज्य। उनकी मृत्यु का उल्लेख है स्वराज्य। उनका आशीर्वाद था—"स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।" स्वार्थत्याग और कष्ट—सहन उनके जीवन के नियम थे। देशभक्ति उनके रुधिर का धर्म था। निर्भयता और तेजस्विता उनकी आत्मा के गुण थे। राजकर्मियों के तो वे शोला ही थे। अधिकारियों को वे ग्रीष्म के मध्याह्न—मार्तण्ड की तरह लगते थे। राजनैतिक वाग्युद्ध में अथवा लेखन-संग्राम में जब वे अपने शत्रु पर आग्नेयास्त्रों अथवा सम्मोहनास्त्रों का प्रयोग करते थे तब उनके छक्के छूट जाते थे। सर्वाङ्गीण प्रतिभा उनके मस्तिष्क का वैभव था। विद्वत्ता से तो मानों उनकी मित्रता ही थी। सादगी उनके आचार का पहला पाठ था। चारित्र्य तो मानों उनके जीवन की विजय—ध्वजा थी। निस्पृहता की आवाज उनके रोम रोम से आती थी। गीता—रहस्य उनके अध्यात्म—ज्ञान का स्मारक है। नीति तो उनके पीछे पीछे चलती थी। आत्म—सम्मान उन्हें प्राणों की तरह प्यारा था। वर्तमान तीव्र राजनैतिक जीवन के वे जनक थे। राष्ट्र के सिरताज थे। महाराष्ट्र के तो आराध्य देव ही थे। वे नवीन चैतन्य युग के विधाता थे, प्रवर्तक थे। मृत्यु पर्यन्त वे जीवनमान ही रहे। आत्म—विश्वास उनके हृदय का बल था। स्वावलम्बन उनके सारे चरित्र का उपदेश है। दो तीन बार जेल जाकर उन्होंने देश को स्वराज्य का मार्ग दिखा दिया। वे 'स्वदेशी'-मय थे—स्वदेशी ही आचार—विचार, स्वदेशी ही भोजन—पान, और स्वदेशी ही वेश—भूषा। अपनी आर्यता का, भारत के प्राचीन वैभव का, विद्या—कला का, अपने पुरुषार्थी पूर्वजों का उन्हें बड़ा अभिमान था। अपना जीवन उन्होंने राजनीति के—स्वराज्य के अर्पण कर दिया था। कौटुम्बिक अथवा शारीरिक सुख उनके लिए उपभोग की वस्तु थी। वे इस विषय में पूर्ण उदासीन थे, विरक्त थे। उनके निजी जीवन तो था ही नहीं। वे राष्ट्र की सम्पत्ति थे। देश के लिए जिये; देश के लिए मरे। हिन्दू—मुस्लिम—एकता का सूत्रपात लखनऊ में उन्हींके द्वारा हुआ। हिन्दी—भाषा को वे राष्ट्र—भाषा मानते थे। उनके 'केसरी' में कुछ दिनों तक एक कालम हिन्दी का भी रहा करता था।

लोकमान्य अपने समय में एक ही पत्रसम्पादक थे। उनकी निर्भीक और मार्मिक परन्तु दिल दहला देने वाली टिप्पणियों से सरकार भी तिलमिला उठती थी। अंगरेजों की दृष्टि में वे 'भारत की अशान्ति के जनक' थे। राजद्रोह वाले मामले में उनकी की हुई सफाई उनके कानून—चातुर्य का ऐतिहासिक प्रमाण है। उनकी कीर्ति के भौगोलिक सीमा नहीं थी। विदेशियों का उनके साथ विशेष प्रेम था और वे भी, एक विलायत में जाकर उनका ... स्वागत और अतिथि—सत्कार करते थे। एक महात्मा के यहां आश्रय पाकर वे भी अपनेको धन्य धन्य मानती। राज—कोप उनके लिए एक नित्य और उपेक्षा—योग्य वस्तु हो गई थी। वे सरकार की आलोचना और विरोध अपने पूरे बल के साथ करते। सरकार—रूपी पत्थर की दीवार से टक्कर मार मार कर उनका शरीर भी राज—कोप की पहुंच के बाहर कड़ा हो गया था। पहाड़ों पर जिस प्रकार बरसात की बूंदें। इसलिए वे राजमान्य नहीं, लोकमान्य थे। उन्होंने राजमान्यता और लोकमान्यता में विभाजक रेखा खींच दी। यह भेद तो स्वराज्य में ही लय पा सकता है।

लोकमान्य इन्द्रियों के सेवक नहीं, शास्ता थे। युवावस्था की उनकी उग्रता तपस्या की आग से जल कर तेज और शान्ति के रूप में परिणत हो गई थी। गीता—रहस्य लिखने के पहले के तिलक, गीता—रहस्य लिख चुकने वाले तिलक से भिन्न थे। पहला राजस था और दूसरा सात्विक। शत्रु के लिए पहला उग्र और असह्य था; दूसरा शान्त और अजनीय।

लोकमान्य के संकट—साहसमय अद्भुत राष्ट्रीय कार्य को संक्षेप में कहना चाहें तो "संसार ने लोकमान्य को १८५६ का भारत सौंपा और लोकमान्य ने संसार के हाथ में १९२० का भारत दिया।" उनकी मृत्यु के कारण संसार ने विद्वत्ता और राजनीति में अपनी दरिद्रता को अनुभव किया।

परसों इसी 'कर्मयोगी' की 'पुण्य तिथि' है। वे स्वराज्य का जप और ध्यान करते करते मरे। उनकी चिताभस्म से असहयोग आन्दोलन का जन्म हुआ। इस महापुरुष का श्राद्ध भारत किस प्रकार कर सकता है? स्वराज्य—साधना से बढ़कर उनका सच्चा श्राद्ध और और स्वराज्य—प्राप्ति से बढ़कर उनका चिरस्मरणीय स्मारक और क्या हो सकता है? लोकमान्य ने हमें मन्त्र दिया—स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है;

महात्माओं ने हमें उसके आगे का सूत्र बताया–स्वदेशी हमारे जन्म का धर्म है; और बता दी–स्वदेशी में ही और स्वदेशी से ही स्वराज्य है। परसों, पहली अगस्त को, एक की आत्मा तिरोहित हुई और दूसरे की बिजली की तरह प्रकट। भारत यदि अपने दोनों नेताओं के प्रति वफादार है तो स्वदेशी को अपना कर–खादी पहन कर स्वराज्य प्राप्त करना ही उसका एक–मात्र धर्म है। यही महात्माजी का मुक्ति–मंत्र है; यही लोकमान्य का आग्रह है।

हरिभाऊ उपाध्याय

टिप्पणियाँ

गुजरात का एक त्याग–वीर

'हिन्दी–नवजीवन' के पाठक दसा के दरबार, छठी गुजरात प्रान्तीय परिषद् की स्वागतसमिति के अध्यक्ष, श्री० देसाई गोपालदास से अपरिचित नहीं हैं। उनके उस भावमय भाषण को पाठक अभीतक न भूले होंगे। हाल ही में आपने अपनी तीस हजार रुपये साल की आमदनी को तिलांजलि देकर अपने रजवाड़े भाइयों के सामने देशभक्ति और स्वार्थ–त्याग का नया उदाहरण पेश किया है।

दरबार साहब ने राजकुमार कालेज में उच्च अंगरेजी शिक्षा पाई थी। शिष्टाचार के कृत्रिम और हास्योचित सब नाट्याभिनय आप को पढ़ाये गये थे। पर उनकी उच्च आत्मा उनकी कृत्रिमता से अलिप्त ही रही।

कुछ ही दिन की बात है। बम्बई के लाट साहब काठियावाड़ पधारे थे।

श्री० गोपालदासजी इस समय खेड़ा जिले में वयोवृद्ध देशभक्त श्री० अब्बास तैयबजी के आधिपत्य में एक स्वराज्य सैनिक की हैसियत से काम कर रहे थे। वहांपर आपको काठियावाड़ पोलिटिकल एजन्ट का यह हुक्म मिला कि आप लाट साहब के सत्कार के लिए काठियावाड़ चले आवें। पर श्री० गोपालदासजी ने अपने मनोनीत सरदार का ही हुक्म मानना उचित समझा और एजन्ट साहब के हुक्म का अदब के साथ निरादर किया। इसलिए सरकार ने आपके हाथ से तमाम दीवानी तथा फौजदारी अधिकार निकाल लिये। और आखरी हुक्म देने के पहले उन्हें यह हिदायत दी की आप जितना शीघ्र हो सके असहयोग आन्दोलन से अलग हो जायं और लाट साहब के सत्कारार्थ न आ कर आपने जो उनका अपमान किया उसके लिए उनसे माफी मांगे। श्री गोपालदासजी ने अत्यंत सभ्यतापूर्वक माफी मांगना नामंजूर करते हुए यह कहा कि इस स्वाधीनता के संग्राम में यह तो प्रत्येक भारतीय का धार्मिक कर्तव्य है कि वह अपनी मातृभूमि को मुक्त करने के लिए इस स्वाधीनता के संग्राम में अपनी शक्ति भर सहायता दे। फलतः सरकार ने ता. १७–७–२२ से उनके दो गांवों पर जप्ती बिठा दी। पर गांव में इसका परिणाम कुछ और ही हुआ। जिस दिन जप्ती बैठाई गई उसी रोज से जनता में शुद्ध–स्वदेशी व्रत के पालन का तथा अस्पृश्यता के त्याग करने का निश्चय और भी दृढ़ हो गया। बालकों ने सरकारी मदरसे छोड़ दिये और स्त्रियां भय और उदासीनता को छोड़ कर अपने जन नायक की बहादुरी पर मंगल–गीत गाने लगीं।

श्री० गोपालदास भाई आज अपनी मातृभूमि की सेवा के लिए राजपाट छोड़ कर गुजरात की जनता की जागृति कर रहे हैं। वे आज रूखी सूखी रोटी खा कर गांव गांव पैदल घूम रहे हैं और स्वाधीनता के जीवन–मंत्र का उपदेश कर रहे हैं। गुजरात के इस त्यागवीर का हम हृदय से अभिनन्दन करते हैं।

महासभा की चिन्ता?

बिहार के असहयोग आन्दोलन के मुसलमान नायक मौलाना मजहर–उल हक अपने सदाकत–आश्रम को छोड़ कर 'स्वराज्य–आश्रम' की तपोभूमि में अपनी तपस्या की पूर्ति–सिद्धि के लिए जा पहुंचे हैं। उनपर अभियोग चलाया गया था बिहार की जेलों के इन्स्पेक्टर जनरल की मानहानि का। मौलाना साहब उस अभियोग के पात्र हैं या नहीं यह, अनुवाद नक्कल किये उनके तेजस्वी और पवित्रता से भरे हुए लेखी बयान से पाठकों को स्पष्ट हो सकता है। वह बयान नहीं, बल्कि उनकी उच्च आत्मा से निकला हुआ पवित्रता और आत्मशुद्धि का सुन्दर स्रोत है, जिसका केवल दर्शन ही मनुष्य की आत्मा को अन्तर्मुख कर देता है। सरकार ने भी मौलाना साहब के १००० रुपये जुर्माना देने से इन्कार करने पर उन्हें तीन माह की सादी कैद की सजा का उपहार देकर अपनी कदरदानी का खासा परिचय दिया। इसलिए वह सचमुच धन्यवाद की पात्र है। पर उदाराशय सरकार मौलाना साहब की इतनी ही कदरदानी से संतुष्ट नहीं हुई। उनपर अब बक्सर के जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब की मानहानि करने का इल्जाम भी लगाया गया है। मैजिस्ट्रेट ने सिर्फ तीन माह की सजा दी। पर सरकार तो दूरदर्शी ठहरी न। उसे महा–सभा के स्वागत की भी तो चिन्ता है! अतएव हम उसकी इस कदरदानी, और इतना जल्दी स्वागत–प्रबन्ध में जुट पड़ने, के लिए धन्यवाद दिये बिना कैसे रह सकते हैं?

कर्तव्य या प्रायश्चित्त?

भारत का रक्त–शोषण होते होते उसकी केवल हड्डियां भर बाकी है। इस समय अगर कोई पूछे कि हम सरकारी नौकरों का क्या कर्तव्य है? तो उनके लिए इसके सिवा दूसरा और क्या जवाब हो सकता है कि अगर आपके हृदय में इस बूढ़े भारत के प्रति कुछ भी प्रेम और हमदर्दी हो तो बस इतनी ही मिहरबानी कीजिए कि इस रक्त–शोषक यंत्र से अलग हो जाइए। आपका सबसे पहला और सबसे बड़ा कर्तव्य तो हमारी दृष्टि से यही है। पर जब कोई यह पूछे कि 'साहब, इस यन्त्र के अन्दर से पीछा नहीं छूट सकता; हां, इससे अलग न होते हुए अगर मुझसे देश का कुछ भला हो सकता हो तो बताइए' तब यदि यह सवाल कोई विदेशी रक्त–शोषक करता तो हमें उतना दुःख न होता। पर जब हमें यह सवाल किसी अपने ही देशवासी के मुंह से सुनना पड़ता है तब हमारा हृदय दुःख से भर आता है। इस सवाल में भारत के पतन की स्वीकारोक्ति है। गुलामी की जंजीर में इस तरह जकड़े हुए मनुष्य से क्या आशा की जाय? पर हम देखते हैं कि वह हृदय बिल्कुल मरुभूमि नहीं हो गया है। यह दुष्टता–भरे कठोरहृदय से निकला हुआ सवाल नहीं है। वह तो गुलामी से पद–दलित किये गये दुर्बल हृदय की दीनता का, लाचारी का, परिचायक है। वे द्वेष और घृणा के पात्र नहीं, दया करने और उत्साह देने योग्य हैं। मातृभूमि की सेवा करने की कामना उस हृदय से नष्ट नहीं हुई; हां, दलित जरूर हो गई है और मौका पाते ही वह अपनी पूर्ति के लिए फिर उदित होती है। वही हमें अपने उन भाइयों को धीरे धीरे कर्तव्य–मार्ग पर लाने के लिए आशान्वित करती है।

हम देख रहे हैं कि मिथ्या भय ने उन्हें बुरी तरह पकड़ रक्खा है। पर उन्हें इस तरह डरना न चाहिए। खादी की ही मिसाल लीजिए उन्हें अगर यह शंका हो कि कचहरी या दफ्तर में जाते समय हम अगर खादी के कपड़े पहनें तो नौकरी खो बैठने की सम्भावना है, तो उन्हें कम से कम घर पर तो खादी पहनने से कदापि न डरना

चाहिए । उनकी क्रिया तो सरकारी नौकर हुई नहीं । उन्हें खादी पहनने और चरखा कातने में कौनसी हानि दिखाई देती है ? अपने खानगी कामों में—कचहरी के समय को छोड़ कर शेष समय शुद्ध खादी पहनने में कौन हर्ज है ? हम दुहेरा पाप करते हैं—एक तो सरकारी नौकरी करके देश की सम्पत्ति लुटाने में सहायता देते हैं और दूसरे विदेशी कपड़े-वस्तुयें खरीद कर अपने देश की कारीगरी और तिजारत को नष्ट करते हैं । इन दोनों का प्रायश्चित्त दो तरह से हो सकता है । एक का प्रायश्चित्त है सरकार से असहयोग करना और दूसरे का है स्वदेशी को अपनाना और चरखा चलाना । अगर हमारे ये भाई पहली बात अभी न कर सकते हों तो उन्हें दूसरी का पालन कर कम से कम एक पाप से तो अवश्य अलग होना चाहिए । यह कोई बड़े भारी त्याग की बात तो हुई नहीं । उलटा इससे तो जीवन में सादगी, और मितव्ययता आकर हम अधिक उद्यमी होंगे । क्या हमारे वे भाई जो अभी सरकारी नौकरियां नहीं छोड़ सकते इतना करके अपने पाप का प्रायश्चित्त करने को तैयार हैं ? क्या वे यह बताने को तैयार हैं कि उनके हृदय में सचमुच देशप्रेम है ?

अत्युक्ति और लीपापोती

'अत्युक्ति' से हमारा पक्ष जहां निर्बल हो जाता है तहां 'लीपापोती' से हमारी नैतिक स्थिति भ्रष्ट हो जाती है और हमारी आत्मा का पतन होता है । सत्य को बढ़ा कर बताने से प्रधानतः व्यावहारिक हानि है और उसको छिपाना प्रधानतः नैतिक अपराध है । दोनों निन्द्य हैं, दोनों त्याज्य हैं । सामान्यतः अपने दोषों के विषय में अत्युक्ति और दूसरे के दोषों के विषय में न्यूनोक्ति व्यवहार का उपयोगी नियम है । इससे लाभ यह है कि एक तो परस्पर अन्याय नहीं होता और दूसरे एक के प्रति दूसरे के हृदय में आदर उत्पन्न होता है; फिर वे चाहे आपस में मित्र हों या शत्रु । पर आजकल की राजनीति और उसके भक्त इसके ठीक उलटा चलते हैं । राज्य की ओर से जहां बराबर 'लीपापोती' की जाती है तहां लोगों की ओर से कभी कभी अत्युक्ति भी हो जाती है । हमें याद रखना चाहिए कि प्रतिपक्षी के पहाड़ बराबर दोषों से हमारा उतना नुकसान नहीं हो सकता जितना हमारे रत्ती बराबर दोष से हमारा हो सकता है । यह स्थिति केवल अंगरेजी भारत में ही हो तो विशेष दुःख की बात नहीं । क्योंकि अंगरेजों की तो कुल-परम्परा ही ऐसी है; और 'यथा राजा तथा प्रजा' के न्याय से यहां प्रजा में भी यह दोष दिखाई दे तो आश्चर्य नहीं । पर देशी राज्यों का तो भूतकाल सत्यपरता और न्यायनिष्ठा से परिपूर्ण है । आज भी वहां के राजा-प्रजा को उनके सत्यव्रत, प्रजापालक आदर्श नरेशों की स्मृति पुलकित और उत्साहित करती है । उनके वंशजों के राजत्वकाल में, कुसंसर्ग के कारण क्यों न हो, जब 'अत्युक्ति' और 'लीपापोती' की परस्पर शिकायत की जाती है—जब राजा और प्रजा के बीच इतना भेदभाव, इतना वैमनस्य हो, तब किसे दुःख नहीं हो सकता ? सिरोही के भील-कांड के सम्बन्ध में राजस्थान-सेवा-संघ जहां सारा दोष राज्य के सिर पर मढ़ता है और राज्य के अत्याचारों का रोमांचकारी वर्णन करता है तहां वहां के चीफ मिनिस्टर उसे 'अत्युक्ति' बताते हैं और उनकी सफाई को लोग 'लीपापोती' कहते हैं । ऐसी अवस्था में सत्य का निर्णय तभी हो सकता है जब ऐसे मामलों में निष्पक्ष और स्वतन्त्र कमीशन के द्वारा जांच कराई जाय, और ऐसे विवाद का अन्त सदा के लिए तभी हो सकता है जब 'अत्युक्ति' और 'लीपापोती' दोनों आरोपों से बचने की प्रवृत्ति उभय पक्ष धारण करें और शुद्ध हृदय से केवल सत्य के ही सामने सिर झुकाने को सदा तैयार रहें ।

अविश्वास नहीं, विश्वास

भारत के इतिहास में आज हिन्दू-मुसलमान-एकता जिस परिमाण में पाई जाती है उतनी शायद ही पहले कभी इस अंगरेजी शासन-काल में देखी गई होगी । आज हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे को भाई भाई की दृष्टि से देखने लग गये हैं । पर मुसलमान-भाइयों का संबंध तो भारत के आसपास के राज्यों से भी है । वे तो उनके धर्मबंधु ही हैं । वे सब इस्लाम के धर्मबंधनों से मजबूत बंधे हुए हैं । इसीलिए एक दृष्टि से हमारा और उनका सम्बंध भी उन राष्ट्रों से उतना ही होता है । उनको और हमको प्रेम-पाश में बांधने वाले हैं मुसलमान भाई । पड़ोसी राष्ट्रों से इतना प्रेम-संबंध स्थापन करने के लिए दूसरे राष्ट्रों को कितना परिश्रम और त्याग करना पड़ता है ? पर हमें वह कितनी आसानी से मिल रहा है ! पर इधर मुसलमान भाइयों को इस्लाम की रक्षा के लिए इतना परिश्रम करते तथा उस मसले में इतनी दिलचस्पी लेते देखकर हमारे कितने ही दुर्बल-हृदय भाइयों के हृदय में अविश्वास उत्पन्न होने लगा है । मुसलमान भाइयों की इस दिलचस्पी को वे सन्देह की दृष्टि से देखने लगे हैं । उन्हें उनके व्यवहार में 'पैन-इस्लामिज्म' की अर्थात् मुसल्मानी सत्ता बढ़ाने की बू आती है । पर अगर सच पूछ जाय तो उन्हें इससे कदापि डरना न चाहिए । 'पैन इस्लामिज्म' से भारत को किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती । वे अपने मुसलमान-भाइयों पर विश्वास रखें । हमारे मुसलमान भाई यह भली-भांति जानते हैं कि धर्म-भक्ति और देशभक्ति में विरोध नहीं हो सकता । और समस्त मुसल्मान-नेता इस बात को बार बार कह चुके हैं कि यदि बाहरी आक्रमण भारत पर होगा तो हम प्राण-पण से उसका मुकाबला करेंगे । अतएव उन पर सन्देह करना व्यर्थ है । मित्रता की जड़ अविश्वास से नहीं, विश्वास से गहरी होती है ।

कानपुर में स्वदेशी

जिला कांग्रेस-कमेटी, कानपुर, के मन्त्री का नीचे लिखा पत्र हम खुशी के साथ प्रकाशित करते हैं—

"विगत १६ जुलाई के 'हिन्दी-नवजीवन' में प्रकाशित हुआ है कि 'कानपुर में कुल २०० चरखे चलते हैं और स्वदेशी की प्रीति जनता में बहुत कम है ।' किन्तु ऐसी बात नहीं है । यह बात जो जांच कमेटी के सम्मुख कही गई है वह नगर कांग्रेस-कमिटी की ओर से केवल नगर की है । जिला कमेटी की ओर से जांच कमेटी के सम्मुख ६,४९६ चरखों की संख्या कही गई है । और प्रत्येक मास ४०,००० गज स्वदेशी कपड़ा तैयार होता है जिसमें खद्दर एक चौथाई बनता है । यद्यपि यह संख्या भी कानपुर जिले के लिए गौरव की बात नहीं है; किन्तु इसका कारण है । कानपुर जिले में स्वदेशी की प्रीति संतोषजनक है, जो कमी है उसका कारण है । भविष्य में कानपुर जिला इस ओर अपने पैर और भी आगे बढ़ा सकेगा-ऐसी आशा है ।"

हमारी टिप्पणी में यद्यपि 'जिला' शब्द नहीं है तथापि यदि उससे जनता में भ्रम फैलता हो तो उसको दूर करना हमारा कर्तव्य है । आशा है, पूर्वोक्त पत्र से कानपुर जिले की स्वदेशी सम्बन्धी स्थिति स्पष्ट हो जायगी ।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, श्रावण सुदी ७, सं. १९७९

लोकमान्य का तर्पण

उन्नति का सच्चा मार्ग शुरूआत में बहुत कष्टप्रद और निरसता जनक होता है, लेकिन परिणाम में वही मीठा-नजदीकी और अमृतोपम प्रतीत होता है। पिछली सदी के मध्यकाल में जब भारत के देश-हितैषी सोचने लगे कि भारतवर्ष का उत्थान और कल्याण किस तरह हो, तब बहुत से लोगों ने अंगरेजी शिक्षा के मोह में फंसकर निश्चय किया कि भारतवर्ष का उद्धार अंगरेजों ही से हो सकता है; और उन्हींकी कार्य-प्रणाली को अख्त्यार करने से लाभ इस बात को भूल गये कि राष्ट्र का उद्धार राष्ट्र ही स्वयं कर सकता है। इसीलिए महासभा की शुरूआत में हमारे नेतागण अपने देशवासियों को देशस्थिति से वाकिफ करने की अपेक्षा सरकारी हुक्काम, पार्लियामेन्ट के मेम्बर और विलायत की जनता को भारत की हालत से परिचित करने का प्रयत्न करने लगे। बेशक, यह काम तो राजभाषा में ही हो सकता था। देश की महासभा अंगरेजी में बोलने लगी, अंगरेजी में विचार करने लगी, और अंगरेजों ही की ओर देखने लगी। अंगरेजी भाषा द्वारा देशसेवा करनेवालों की प्रतिष्ठा बढ गई और वेही अखिल भारतवर्षीय नेता गिने गये।

लेकिन भारत के सौभाग्य से कुछ लोग पहले से जानते थे कि देश का उद्धार जनता द्वारा ही हो सकता है। जनता को जाग्रत करना, जनता का स्वाभिमान, आत्म-विश्वास और पुरुषार्थ बढाना यही सच्ची देशसेवा है। ऐसे लोग देशी भाषा में अपना कार्य करने लगे। सारे भारतवर्ष में एक भाषा न होने से उनका कार्य एक प्रान्त तक ही व्यापक हो सका। वे प्रान्तिक अगुआ गिने गये। उनकी प्रतिष्ठा अखिल भारतवर्षीय आंग्ल-भाषा-भाषी नेताओं की अपेक्षा कुछ कम सी था।

भारतवर्ष की राजनीति के शुरूआत में यह एक मुख्य भेद था। दूसरा भेद था अंगरेजी राज्य-पद्धति के उद्देश और हेतु के संबंध में। अंगरेज लोग पहले से कहते आये हैं कि हम लोग भारत के कल्याण के लिए यत्न कर रहे हैं। यह बात सत्य है कि भारत के लोगों ने अंतःस्थ कलह मचाकर कितनी ही बार अंगरेजों से मदद मांगी थी और छुद्र राजाओं के झगडे से तंग आई हुई प्रजा कभी कभी अंगरेजों का शासन भी चाहती थी। ऐसी हालत में अंगरेजों का यह जो दावा था कि हम भारत के कल्याण के लिए ही आये हैं उसपर कितने ही लोग बच्चों की तरह विश्वास रखते थे। कुछ लोग ऐसे थे जो यह समझते थे कि यह सब 'दंभ' है। अंगरेजों के इस देश में आनेका प्रयोजन केवल स्वार्थ ही है। जो लोग अंगरेजों के राज्य के उच्च उद्देश पर विश्वास करते थे वे उन दिनों में शिष्ट माने जाते थे और जिनके मन में अविश्वास था वे जाहिल या गरम सिद्ध होते थे।

लोकमान्य तिलक ऊपर बताये दोनों भेदों में दूसरे पक्ष के थे। वे जनता को मानते थे और नौकरशाही को पहचानते थे। देशी भाषा में और अपने ही प्रान्त में उन्होंने काम शुरू किया और पहले ही से नौकरशाही से विरोध शुरू किया। परिणाम यह हुआ कि महाराष्ट्र के बाहर का भारतवर्ष शुरूआत में उन्हें बहुत कम पहचानता था। और जो थोडा-बहुत परिचय उनका हुआ था उससे लोगों में उनके खिलाफ गलतफहमी फैली थी। लोकमान्य तिलक यह सब जानते थे। लेकिन उनका स्वभाव धीरोदात्त, धीरोदात्त था। इस से वे यह सब सहन करते थे। उनको विश्वास था कि उनका रास्ता ही सच्चा रास्ता है और देश को आखिर उसी रास्ते पर आना होगा। और सचमुच हुआ भी ऐसा ही। जिनको लोग १९०७ में महासभा के विध्वंसक मानते थे उन्हींके नाम से १९२१ में विराट् महासभा ने अपना स्वराज्य-कोष कायम किया। महासभा का कार्य अंगरेज अधिकारियों को पढाने का नहीं है, लेकिन जनता को देश की स्थिति से वाकिफ करके अपने हक और कर्तव्य से परिचित कराना है। यह बात भी आज महासभा ने स्वीकृत की है।

कमल की जड जिस प्रकार पानी के नीचे जमीन पर रहती है उसी तरह राष्ट्र का प्राण उसके भूतकालीन इतिहास में रहता है। इतिहास में से पोषक द्रव्य चूस कर वर्तमान नवजीवन से आर्द्र होकर राष्ट्र-कमल अपने आदर्श-रूपी सूर्य की उपासना करता है। इस सिद्धान्त को समझ कर लोकमान्य तिलक ने महाराष्ट्र में शिवाजी उत्सव जारी किया। शिवाजी की धर्मनिष्ठा और अन्याय का तिरस्कार और असहिष्णुता वे देश में दाखिल करना चाहते थे। लेकिन अदूरदर्शी लोग परस्पर अश्रद्धा की शिक्षा पा कर उसका विरोध करने लगे। कहने लगे इससे धर्मान्धता पैदा होगी। हिन्दू-मुसलमान के बीच में झगडा होगा। बस, शंका प्रकट हुई और एकदम फैलने लगी। मुसलमान लोग भी मानने लगे कि लोकमान्य तिलक आखिर तो पूना के ब्राह्मण ठहरे। हिन्दुओं के पक्षपाती हैं। मुसल्मानों का द्वेष करते हैं। गलतफहमी सहन करना पहले से ही लोकमान्य के भाग्य में बदा था। उन्होंने मन में इतना ही विचार किया कि मेरे हृदय में एक और अखंड भारतवर्ष के कल्याण की इच्छा है। मेरे शब्दों से नहीं, पर मेरे कार्यों से गलतफहमी दूर हो जायगी। और सचमुच हुआ भी ऐसा ही। लखनऊ की महासभा के समय जब हिन्दू-मुसल्मान का विरोध मिट गया तब लोकमान्य ने ही मुसल्मानों को मांग के अनुसार अधिकार देने का प्रस्ताव पेश किया। उन्होंने यह भी कहा कि मुसल्मान इससे अधिक मांग लें तो भी मैं देने को तैयार हूं। मुसल्मान हमारे शत्रु नहीं हैं। उनके हाथ में हमारा स्वराज्य सुरक्षित है। जिन लोकमान्य को मुसल्मान लोग अपना विरोधी समझते थे उन्हींकी स्मशान-यात्रा में मुसल्मान अगुआ मौ॰ शौकतअली ने अपना कंधा लगाया था। और पूना के हजारों ब्राह्मण लोगों में से एक ने भी उसका विरोध नहीं किया। खिलाफत-आन्दोलन में लोकमान्य पूरे पूरे अली-भाइयों के साथ थे। तो भी वे कहते थे कि खिलाफत के बारे में जो हिन्दू-मुसल्मान की एकता हुई है वह महात्मा गांधी के ही द्वारा हुई है। उसमें अग्रस्थान महात्माजी का ही होना चाहिए।

सारी जिन्दगी भर लडते लडते भारतवर्ष में अपूर्व जागृति देखकर उन्होंने अपना देह छोडा। देह के साथ उनके सब झगडे छूट गये। अब भारतवासियों के हृदय में प्रवेश करके अपने चैतन्य द्वारा स्वराज्य की प्रेरणा करने का पवित्र काम वे कर रहे हैं। लोकमान्य की स्वदेश पर अपूर्व श्रद्धा थी। मामूली श्राद्ध से उनका तर्पण नहीं हो सकता। जब भारतवासी उन्हींके समान एकचित्त होकर स्वराज्य हासिल करेंगे तभी लोकमान्य का सच्चा तर्पण हो सकेगा। जैसे गंगा के जल से ही सूर्यवंश का तर्पण हो सका वैसे ही हमारे भगीरथ प्रयत्न से प्राप्त स्वराज्य-जल द्वारा ही लोकमान्य का तर्पण हमें करना चाहिए। यह हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य है और उसीमें हमारा उद्धार है।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

प्रण

खिला प्रफुल्ल प्रभात-पुष्प का वैभव नव मनभावी ।
प्राची के प्राणेश पधारे प्रभा-पुञ्ज अति सुखद भी ॥
मानों विश्व-विजय की लिखी कोई दिव्य विभूती है ।
अखिल प्रकृति-परिवार ओर से विविध जय-ध्वनि होती है ॥१॥

एक मनस्वी, तरुण तपस्वी बैठा स्थिरता की मूर्ती ।
रोम रोम से टपकी पड़ती प्रतिभा स्वाभाविक स्फुर्ती ॥
मुख-मण्डल पर तेज-तरणि की किरण अलौकिक आती हैं ।
उत्फुल्लित स्थिर आँखें मानों निश्चय-गाथा गाती हैं ॥२॥

चिन्ता-विनाशक हृदय था उसका भव्य भाव से भरा हुआ,
मानो किसी सिद्धि की धुन के शुभ हर्ष से हरा हुआ ॥
खिंचती जाती थी हृत्पट पर प्रेरक कूँची के द्वारा—
भाँति भाँति के अनिकल उज्ज्वल मंजुल चित्रों की धारा ॥३॥

उठी एक अद्भुत उमङ्ग-तरङ्ग अन्तस्तल में है ।
सर्व-प्राण का स्वागत होता सुन्दर सुघर अन्दर में है ॥
भारत की अतीत-गौरव-स्मृति-मूर्ति नेत्र में नचती थी ।
पुलकित हो कर मान-भावना ज्ञान अनोखे भजती थी ॥४॥

वर्तमान का दृश्य-दुःख सम्पूर्ण हृदय फिर उर आया ।
मानों दैन्य-दुःख की आई है प्रत्यक्ष कृष्ण छाया ॥
साँस रुकी, हृदय भड़कने, आँखों में आँसू आये ।
मानों दुर्बलता तन-मन की देव-दूत बाहर लाये ॥५॥

"जो गौरव-गिरि पर से जग को विजय-दृष्टि से था लखता,
आज वही दुर्गति के तल में पड़ा पड़ा आहें भरता !
जो स्वराज्य की सुख-वर्षा से जगतीतल शीतल करता,
आज वही हो स्वत्व-हीन हा ! हीनों की सेवा करता ! ॥६॥

"विपुल विभव की सौख्य धारा जिस धरती पर थी बहती,
विविध लूट-लीला है जिसकी साक्ष्य-कथा अबतक कहती,
जिसकी श्री-सम्पत्ति के कण से तेज कई श्रीमान हुए,
कोटि कोटि नर आज वही हा ! रंकों से भी हीन हुए ! ॥७॥

"मणि खो कर ज्यों प्राण-भुजग है निस्सहाय, अक्षम, अति दीन,
त्यों भारत विजय-श्री खो कर आज हुआ सौभाग्य-विहीन !
जो पर-जन का आश्रय-दाता, मान-धनी, इतिहास-ख्यात,
पद पद पर पीड़ित अपमानित होता वही पराये हाथ !" ॥८॥

जिसके उच्च उदात्त ध्येय का यशोगान कोविद करते,
जिसके टुकड़े खा खा कर के नाना देश उदर भरते,
वह भारत का अधःपात लख उसका उर भर आता था ।
माता की दारुण-दुर्गति-दुख-ज्वाला से तन जलता था ॥९॥

पराधीनता के ऐसे बहु भाव हृदय में भरते थे ।
ग्लानि, शोक, सन्ताप, अनुकम्प से उर में घर करते थे ॥
भाव-तरंगों पर आन्दोलित था यों उसका मन मानो,
सहसा उत्तेजित हो उसके मुंह से निकली यह बानी— ॥१०॥

"क्या कोई दारुण दुःस्थिति को हरने में तत्पर होगा ?
क्या कोई 'माँ का मतवाला' कल्पित अवतर होगा ?
तर्पण कर के स्वार्थ-दीपक का सेवा-कार्य सिर पर लेगा ?
प्रियजन को व्याकुल कर कर भी, निर्मल हो, निज तन देगा ? ॥११॥

"मैं—हाँ—मैं इस कठिन परीक्षा की तैयारी क्यों न करूं ?
मातृ-भूमि के चरण समर्पण भावी सुख को क्यों न करूं ?
प्रिय भारत का अमर कलंक, क्या हृदय-ज्वाला जलता ?
विकल बिलपती माँ को छोड़ क्या महल तक बैठा रहता ? ॥१२॥

"कुल-कलंक, कायर, कपूत क्या जग के सम्मुख कहलाऊँ ?
आर्य-वंश को विकला कर या भारत-नभ तुम फैलाऊँ ?
पूज्य आर्य-ऋषियों का क्या स्वतंत्र नहीं सुनते आवाहन ?
सच्च, उदात्त ध्येय के सम्मुख तुच्छ वस्तु का त्याग न हम ? ॥१३॥

"बस—बस, लो—यह निश्चय आज सर्वस्व-त्याग में तत्पर है !
माता के मन्दिर में अपना चढ़ा दिया तन, मन, धन है ! !
सुख की प्यारी आशा ! जाओ, माँ के हाथ बिक चुका हूं !
माँ के मुक्ति-मार्ग का यात्री, बस, मैं आज हो चुका हूं ! !" ॥१४॥

× × ×

'दुर्बलता' हंस कर के बोली—"यह है जोश जवानी का—
चार दिनों की चटक चन्द्रिका, बुद् बुद् है यह पानी का ॥
बालू पर है महल बनाना रीति युवक-जन के मन की ।
है आरम्भ-शूरता अच्छी तरह विख्यात ब्राह्मण-जन की ।" ॥१५॥

ले सेना चतुरंग चढ़ी, मनोमन्दिर के आँगन पर ।
ज्यों असुरों का उमड़ा बादल मुनि-मुख-मग्न-मख-तत्पर ।
क्रोध मोह निज दूतों द्वारा माया-जाल पसार दिया,
जिसमें फंस कर बहु नरवर ने निज कर्तव्य बिसार दिया । ॥१६॥

नव नव पदवी-प्राप्त युवक अति उच्च राज्य-पद पाये थे ।
भाव भोग के, धनैश्वर्य के, उनके चित्त समाये थे ॥
पा पद जल्दी, आतुर हो कर, दौड़ दौड़ जन जाते थे ।
मानों सुरपुर-सकल-सम्पदा, पद पा कर, पा जाते थे ॥ १७॥

एक ओर यह सुखद दृश्य था अनुकूलता-लता का फूल ।
निज संस्कृति-गति को, दुःस्थिति को, जाते थे सब उससे भूल ॥
मार्ग दूसरा कठिन, कँटीला, क्लेशद, कंकरीला अति था ।
आवाहन विपदा के तीखे बाणों का सेनापति था ॥१८॥

'विनय-भोग' 'बहु-क्लेश-योग' के जटिल जाल में युवक फंसा ।
चंचलता-नागिन ने आकर धुरके से हा, हन्त ! डंसा ॥
धन-वैभव की लोल लालसा अपना रंग दिखाती है ।
अंध बनाती था, जो माता-दुर्गति-ध्यान भुलाती है ! ॥१९॥

राज्य-मान का मीठी मोहक मस्त महक मन में छाई ।
मन्त्र-मुग्ध जिसके हो कर, लड़-मरते भाई से भाई !
अधिकारों का हर्ष-हिंडोला आसमान पर चढ़ता था ।
सत्ता का सन्देश कान में मन्त्र मनोहर पढ़ता था ! ! ॥२०॥

कहा युवक ने—"विद्य, बुद्ध, क्षम, योग्य सकल-सुविधाधारी—
सज्जन जब हैं पीठ दिखाते, बतलाते हैं लाचारी ।
तब मैं क्यों कर हो सकता हूं इसमें कहो, अहो ! कृतकार्य ?
होना पंक-पूर्ण इस पथ का पथिक मुझे है अस्वीकार्य !" ॥२१॥

पा कर यों 'लघु छिद्र' हाय ! मीठे ठग-दल ने घेर लिया !
इष्ट-सिद्धि के पय-प्याले में विष का पानी गेर दिया ! !
सेवा-मय-अभिलाषा के निश्चय को हा ! हा ! मसल दिया !
अतुल अचल उत्कण्ठित मन को धुरकसे हा ! ठेल दिया ॥२२॥

× × ×

माता के चित्त में चिन्ता का बादल-दल अब घिर आया ।
भावी अशुभाशंका की छाई भयानक गहरी छाया ॥
शोक, दुःख की अविरल वर्षा अश्रु-रूप में होती थी ।
जहाँ तेज की कुछ किरणें थीं, तम का प्रभा होती थी ॥२३॥

हृदय-सरोवर में उसके कुछ कोमल कमल कलित थे ।
कुछ कोमल थीं, कुछ कले थे, कुछ के अंग पलित थे ।

एक सतेज ओजयुत मा अति, आशा-अश्रु भर छिपके,
शैशव के प्रभात में हिम ने वार किया हा ! हिय में ॥२४॥

चक गिरा मानों माता पर; सूखा सारा आशा-सर।
झुका दिया प्रभु के चरणों में उसने अपना सर सत्वर।
कातर, आतुर हो कर करने लगी विनय वह ईश्वर से–
जग-नायक, करुणा-सागर, भव-भय-हर, लीलाधर से ॥२५॥

"भूल गये नट-नागर क्यों इस अपनी लीला-शाला को ?
कालिन्दी, कदम्ब, करील को, वृन्दावन, व्रज-बाला को ?
गायें हे गोपाल ! अनाथा आर्त नाद करती फिरतीं !
गोप नहीं है, ले कर लकुटी, 'आओ ! आओ' ! ! हैं कहतीं ॥२६॥

"रमा-रूप सीता-माता हे रघुवर ! रावण ने हर ली !
सज्जन की सारी सुख-सम्पति उसने अपने कर कर ली !
शैल-मुद्रिका पवन-पुत्र के द्वारा उसका क्लेश हरो !
नर-वानर सेना ले कर मेरा उद्धार हे ईश, करो ! ॥२७॥

"त्रिलोक-मोहन मुरलि-मन्त्र हे मोहन ! मुझको दे जाओ !
मोहावृत इस देश-तिलक को गीता-ज्ञान सुना जाओ ! !
जीवन-अमृत की धारा इस आर्य-धरा पर बरसाओ !
ले कर चक्र सुदर्शन भगवन् ! गरुड छोड, धाओ ! आओ ! !" ॥२८॥

× × ×

"यह संजीवन मन्त्र कहां से कानों में है भनक रहा ?
'क्लैब्यं मास्मगमः पार्थ !' का जय-आवेश प्रसार रहा।"
स्वप्नोत्थित-सा हुआ युवक वह तेज नेत्र में छिटक गया।
कोप-मोह का मानों परदा सहसा उर से खिसक गया ॥२९॥

'मूर्च्छा-विष' के 'मधुर वार' का 'वक्र-ध्यान' का ध्यान हुआ !
माया-मय सुख-'छल-बल'का, 'कुटिल चाल' का, ज्ञान हुआ।
'कुटिल-विभेद-नीति' की गहरी चालों का अनुमान हुआ।
देश-भक्ति के सकल सुप्त सद्भावों का उत्थान हुआ ! ! ॥३०॥

'क्षुद्र हृदय-दौर्बल्य'-दोष है भ्रम-स्मृति से अब दूर हुआ।
मातृ-भक्ति का प्रखर तेज रवि के सदृश भरपूर हुआ ॥
स्वार्थ-उलूक हुआ अन्धा, भय-कोप-भूत की शांत भगी।
हृतन्त्री के भाव-तार सब बोल उठे-"जय भारत की" ॥३१॥

कपिल, कणाद, कण्व कुलपति का महा-तेज सम्मुख आया।
त्याग-मूर्ति तप-रत पूर्वजों का प्रताप नभ ने गाया।
गर्वोन्नत सिर हुआ, विजय-ध्वनि गूंज रही प्रकृती भर में।
बाल तिलक मानी ने ठानी भीष्म प्रतिज्ञा यह उर में—॥३२॥

"पंच महाभूतो ! दिग्देवो ! साक्षी तुम्हें बनाता हूं।
माता का आदेश मान के सिर-आंखों पर लेता हूं ॥
जीवन का उद्दिष्ट कार्य बस एक—"मातृ-सेवा—सेवा !"
लोहू के अणु-अणु से निकले घोष एक—"सेवा-सेवा ! !"॥३३॥

"रोग, शोक, भय के भूतों की सेना सम्मुख आ जावे !
राज-कोप के पावक में यह देह भले ही जल जावे ॥
तन, मन, धन न्यौछावर मेरा माता की वेदी पर आज।
छुड़ा नहीं सकते इस व्रत से मुझे कृतान्त, काल, यमराज ॥३४॥

"शिबि, दधीचि, प्रल्हाद, शिवाजी प्रदर्शक होवेंगे।
अकबर, रामदास, गुरु गोविंद, श्री प्रताप, बल देवेंगे ॥
'सोऽहम्' का बलवान मन्त्र संचार करे निर्भयता का।
सुर-गुरु शुभाशीष दे होवे जय जय गान आर्यता का ॥" ॥३५॥

हरिभाऊ उपाध्याय

ज्वार-भाटा

प्रिय भाई,

मुझे आपके पत्र में कुछ निराशा-सी नजर आती है। पिछले साल आप इस आन्दोलन में बिलकुल नये ही नये शरीक हुए थे। आपमें अकारण उत्साह बहुत था। आपको अपना आत्मोत्सर्ग कुछ अपूर्व-सा दिखाई दे रहा था। मानों यही मालूम हो रहा था कि केवल आपके ही आत्म-बलिदान से स्वराज्य मिल जायगा। आज आप जो इतने निरुत्साह दिखाई दे रहे हैं, यह भी अकारण ही है। राजनैतिक आन्दोलन के ज्यादह नहीं तो कम से कम तीन ज्वार-भाटे मैंने अपनी आंखों से देखे हैं। उस ज्वार और भाटा दोनों का विचार कर के देखा जाय तो हम इसी नतीजे पर पहुंचते हैं कि औसतन् हमारी प्रगति ही हो रही है।

एक और भी सिद्धांत मैंने अपने मन में निश्चित कर रक्खा है। वह यह कि स्वराज्य की कुंजी तो है-शिक्षा। इसीलिए मैं तब से दूसरी सब बातें छोड कर केवल शिक्षा में ही अधिक ध्यान देने लग गया हूं। आज स्वदेशी को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यह भी ठीक ही है। खादी और स्वदेशी के बिना राष्ट्रीयशिक्षा का स्वीकार होना भी कठिन है, फिर उसका प्रचार तो दूर की बात है। जहां स्वदेशी नहीं वहां अगर शिक्षा के पीछे 'राष्ट्रीय' विशेषण लगाया जाय तो भी वह अ-राष्ट्रीय ही है।

यह तो मुझे खयाल भी न था कि देश में खून-खराबी होगी और उसका असर इतना गहरा होगा। क्योंकि मैं पिछले साल अहिंसा का महत्व भली भांति जानता ही न था। तथापि मैं यह तो जानता ही था कि इतने उत्साह के ज्वार के बाद उसका भाटा भी अवश्य ही आवेगा। मैं इस आशा से इस आन्दोलन में शरीक नहीं हुआ कि स्वराज्य तो एक ही साल में मिल जायगा; और इसीलिए मुझे इस बात पर जरा भी आश्चर्य न हुआ कि स्वराज्य एक साल में क्यों नहीं मिला ? हां, यह विश्वास तो मुझे अब भी है कि एक साल में स्वराज्य मिल सकता है; पर हम अभीतक अपने परावलंबन को कहां छोडते हैं ? स्वराज्य का तो अर्थ है स्वावलंबन। जिस दिन हम उसका अवलंबन करेंगे उसी दिन से हमारी स्वराज्य-साधना शुरू हो जायगी।

"स्वराज्य मिला कि बस; फिर तो आराम ही आराम है। एक साल तक खूब परिश्रम करके फिर तो सुख की नींद सोवेंगे। अथवा कहानियों के राजा-रानी की तरह खा-पी कर मौज से राज्य करेंगे," यह कल्पना जबतक हमारे दिमाग में ठंसी रहेगी तबतक न तो स्वराज्य की सच्ची भावना हमारे हृदय में जम सकती न हमारी ऐसी मनोदशा ही हो सकती है। इसमें तो कोई शक नहीं कि हमारी स्वराज्य-स्थिति उन्नत, कल्याण-प्रद, और सम्मान-पूर्ण होगी। पर हमें यह तो जरा भी खयाल न करना चाहिए कि उसमें हमें आज से अधिक सुख-चैन मिलेगा। महात्वाकांक्षा का विचार छोड दिया जाय, मानापमान का खयाल भी न किया जाय, तो आज भी हम अपनी इसी अवस्था में अपनेको सुखी मान सकते हैं। हम तो आज दो हजार साल से यही अभ्यास करते आ रहे हैं कि बुरी से बुरी अवस्था में भी सुख मानना चाहिए। इससे अधिक सुख हमें और कहां मिल सकता है ? आज दीन-हीनोचित सुख तो हमें काफी है। स्वराज्य में इस सुख से हम जरूर वंचित हो जायंगे; और इसीलिए तो कितने ही लोग स्वराज्य प्राप्त करने में स्वराज्य से डरते हैं। उन्हें तो यही डर मालूम होता है कि स्वराज्य के आते ही हमारे पीछे न जाने कितनी उपाधियां लग जायंगी। हमें खुद ही उन सब का सामना करना होगा,

कुछ पुरुषार्थ भी कर दिखाना होगा, देश की रक्षा का प्रबंध करना होगा, प्रयत्न-पूर्वक हरएक कठिनाई का सामना करना होगा और सदा कार्यशील बने रहना पड़ेगा।

पर जब कोई वीराङ्गना किसी वीर-पुरुष के साथ शादी करती है तब वह इस बात को भली भांति सोच विचार के ही शादी करती है कि, मेरे लिए अब भोग-विलास के दिन इने-गिने ही हैं, मैं तो मौत से ही नाता जोड़ रही हूं। पर उसे इसीमें आनंद होता है। मौत से दोस्ती-संकट का सदैव दर्शन,—यही तो जीवन का स्वारस्य है। बिना मौत का जीवन—संकट-साहस-शून्य जीवन तो व्यर्थ है।

क्या आप नहीं देख सकते कि भारत अब धीरे धीरे उद्यम-शील—मौत से बे-परवाह होता जा रहा है। आप अपने आत्मोत्सर्ग से आशान्वित हुए थे। पर अभी अब हद आ गई, इसीलिए फिर निराशा ने आपको आ घेरा है। आप जब खूब उत्साह में थे तब मैं आपकी इस भावी निराशा का चित्र आपके हृदय में देख सकता था। आज जब आप निराश हो रहे हैं तब मुझे विजय का सुदिन नजर आ रहा है। लोकमान्य ने सारी जिन्दगी स्वराज्य का जप करते हुए बिताई। वृद्ध दादाभाई अपने अंतकाल तक उसीकी आराधना करते रहे। असंख्य लोग स्वराज्य के लिए सालों जेल में बिता रहे हैं। लाला लाजपतराय और देशबन्धु दास तो कभी के स्वराज्य-मय हो गये हैं। अली-भाई स्वराज्य का दर्शन कर रहे हैं। महात्माजी जैसे पुण्यश्लोक नरवीर का यह अपूर्व आत्मोत्सर्ग भी स्वराज्य ही के लिए है। जब मेरी आंखों के सामने इतने शुद्ध, सात्विक आत्म-बलिदान के समुज्वल उदाहरण हैं तब मेरे अंतःकरण में निराशा का प्रवेश कैसे हो सकता है? दूसरे, मैं यह देख रहा हूं कि आज करीब पन्द्रह साल से सरकार की राज्य-नीति दिन ब दिन अधिकाधिक चारित्र्य-शून्य होती जा रही है। यह भी स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि सरकार का पुण्यांश अधिकाधिक क्षीण होता जा रहा है। फिर मैं स्वराज्य के विषय में निराश क्यों होऊं? कितने ही नौजवानों ने भोग-विलास छोड़ कर सादगी को अपनाया है। कितने ही भाइयों ने जब तक स्वराज्य प्राप्त नहीं होता, ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की है। यह जानते हुए भी मैं निराश कैसे हो सकता हूं? दिन-रात धन ही की उपासना करने वाले धनिकों ने देशसेवा का पुण्यव्रत धारण किया है। क्या यह कम आशाप्रद है? कितने ही वयोवृद्ध महानुभाव नाम-प्रतिष्ठा के झूठे घमंड को अलग रखकर नौजवानों के साथ उन्हीकी तरह नवोत्साह से देशसेवा करने लग गये हैं। क्या फिर भी मैं स्वराज्य के विषय में निराश होऊं? क्या मैं यह खयाल करूं कि इतने वीरों की तपस्या, यह विशुद्ध आत्मोत्सर्ग, व्यर्थ ही सिद्ध होगा? अगर मैं सचमुच ऐसा सोचूं तब तो उसे पूरी नास्तिकता ही कहना होगा। कर्म के सिद्धान्त में मेरा विश्वास है। मैं दैववादी नहीं हूं। पानी के बर्तन के नीचे अग्नि रखने से जैसे पानी का गरम होना आप निश्चित मानते हैं वैसे ही मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि इतने त्याग और तपस्या के बाद स्वराज्य जरूर मिलेगा। पहले पहल अगर आरंभ में मुझे उसका कुछ तात्कालिक फल न दिखाई देता तो मेरा निराश होना स्वाभाविक था। मैं सोचता कि राम राम! इतना सब त्याग व्यर्थ सिद्ध हुआ। पर यह तो मैंने तीन बार देखा कि जो तपस्या एक आन्दोलन के समय पर्याप्त नहीं होती वही दूसरे आन्दोलन के समय पर्याप्त हो जाती है।

कितनी ही बार तो स्वराज्य-साधना अज्ञान दशामें ही करना पड़ती है। शायद आपकी सेवाओं की कदर आज उचित रीति से न हो। पर भावी संतति—स्वराज्य का उपभोग करने वाली संतति—हमारी इस तपस्या का बराबर यथोचित आदर की दृष्टि से देखेगी। वह जरूर कहेगी कि हम स्वराज्य का उपभोग तो कर रहे हैं पर उसको प्राप्त करने का पुण्यकार्य करने का सौभाग्य हमें न मिला। स्वराज्य तो मीठा ही होता है। पर स्वराज्य-साधना उससे भी अधिक स्वादिष्ट होती है। हम तो अब स्वराज्य-देवता की वेदी पर अपने को चढ़ा चुके हैं। अब हमें स्वराज्य के सिवा दूसरी किस बात की चिन्ता होनी चाहिए?

आपका

(नवजीवन) गुरुभाई

उच्च आत्मा की आवाज

मौलवी मजहरुल हक ने नीचे लिखा बयान अदालत में पेश न करते हुए अपने पत्र 'मदरलैंड' में प्रकाशित किया है—

"परमात्मा ने मुझ नाचीज की दरखास्त पर गौर नहीं किया। उसने मुझे इस संसार में, माया के इस साम्राज्य में, छोड़ दिया कि मैं इधर उधर निरुद्देश घूमा करूं। गत शुक्रवार को जब मैंने अपनेको सरकार के हाथों में सौंपा तब मैं सोच रहा था कि यद्यपि मेरा शरीर बन्धन में होगा तथापि मेरी आत्मा को तो उसी स्वतंत्रता का लाभ होगा जिसकी प्राप्ति के लिए मेरा हृदय बहुत दिनों से इतना व्याकुल हो रहा था। किन्तु उस मालिक की यह मर्जी नहीं थी कि मेरी यह ख्वाहिश पूरी हो। पर हम कामना करें ही क्यों? यह तो तृष्णा हुई। और तृष्णा तो आत्मा को गिरा देती है। महात्मा उसीको कहते हैं जिसने सब कामनाओं का त्याग कर दिया हो। मैं जानता हूं कि लोग मेरे इस खयाल पर मुझे पागल, धर्मोन्मत्त कहेंगे। पर वे ऐसा शौक से कहें। हां, सच्ची, हार्दिक धर्मभक्ति धर्मोन्मत्तता और देशभक्ति पागलपन हुई है। फिर मैं धर्मोन्मत्त और पागल कहाने में बुराई क्यों कर मानूं? मैं तो स्वयं कहता हूं कि मैं धर्म के लिए उन्मत्त और देश के लिए पागल हो रहा हूं।

अदालत में मुझपर जो इल्जाम लगाया गया है वह यह है कि मैंने जेलों के इन्स्पेक्टर जनरल को नाहक बदनाम किया। पर मैं इसका तीव्र विरोध करते हुए यह कहता हूं कि मेरा यह उद्देश कभी न था। जिस लेख के लिए मुझपर यह इल्जाम लगाया गया है उसे लिखने में मेरा उद्देश सिर्फ यही था कि बिहार के जेलों में कैदियों के साथ जो अमानुष व्यवहार किया जाता है उसकी ओर जनता का ध्यान आकर्षित हो और जेलों में कुछ सुधार हो। इसके अतिरिक्त मेरे एक अत्यन्त विश्वसनीय संवाद दाता से मुझे खबर मिली थी कि वहां मुसलमान कैदी नमाज करने से भी रोके जाते थे। यह इस्लाम पर आक्रमण था। इसलिए उसे लिखते समय मुझे इस्लाम की इज्जत का भी खयाल था और मुझे यह कहते हुए बहुत दुःख हो रहा है कि अब पीछे से भी जो समाचार मुझे मिले हैं उनसे तो पहले के समाचारों की और भी ताईद होती है। और मुझे अब यहां यह मजबूरन् कहना पड़ता है कि मैंने उस २६ ता० वाले अंक में जो लेख लिखा है वह अक्षरशः सत्य है। और यथार्थ में पूछा जाय तो उसमें अत्युक्ति नहीं, बल्कि न्यूनोक्ति ही थी। अगर मुझे वही लेख फिर से लिखना पड़े तो अपनी मौजूदा वाकफियत के आधार पर अब मुझे उससे भी कड़ी भाषा का उपयोग करना पड़े। मैंने उस लेख को कई बार पढ़ा है। कानून की दृष्टि से मानहानि करने लायक एक भी बात मुझे उसमें नहीं दिखाई दी। अतएव मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि मैं उस इल्जाम को स्वीकार नहीं कर सकता। इन्स्पेक्टर जनरल साहब से अपने

अपराध के लिए क्षमायाचना और पश्चात्ताप प्रकट करने में मुझे अपरिमित सुख-समाधान होता। पर दुःख है, मुझे वह नसीब नहीं।

तथापि मैं कहां भूल कर गया हूं वह मैं भली भांति देख सकता हूं। यह स्पष्ट है कि मेरी लेखन-शैली से इन्स्पेक्टर साहब के दिल को चोट पहुंची है। नहीं तो वे अदालत में क्यों जाने लगते? मेरे धर्म का अपमान होता हुआ देखकर मैं आपे से बाहर हो गया और अपने पूरे अहिंसाव्रत की प्रतिज्ञा को भूल गया। लेख लिखते समय मैंने अपने ही धार्मिक भावों का ख़याल किया। यह सोचना भूल ही गया कि मैं जो कुछ लिख रहा हूं उससे कहीं पढ़ कर दुर्गादास मनातवाला के हृदय को दुःख तो नहीं पहुंचेगा। पर अब मैं इस बात को कबूल करता हूं कि मेरी यह मानसिक स्थिति मेरे उस पूरे अहिंसाव्रत की प्रतिज्ञा के अनुकूल न थी, जिसकी मुझसे अपेक्षा की गई थी। इसलिए मैं यद्यपि कानून की दृष्टि से मुक्त हूं तथापि नैतिक दृष्टि से मैं जरूर अपराधी हूं और इसलिए मैं अपना हार्दिक खेद प्रकट करता हूं और उससे जो हानि हुई है उसकी पूर्ति के लिए अपनी शक्तिभर प्रयत्न करने के लिए तैयार हूं।

और मैं श्री जानस्टोन साहब से, जिनके इजलास में मेरा मामला किसी कारण से विचारार्थ पेश किया गया है अनुरोध करता हूं कि वे मुझे कड़ी से कड़ी सजा दें। एक भाई-मनुष्य के दिल को दुखाने में जो पाप है उसका प्रक्षालन शायद इससे हो जाय, क्योंकि मेरे ख़याल से नीतिशास्त्र में इससे अधिक बुरा नैतिक अपराध हो ही नहीं सकता। मेरा यह विनम्र विश्वास है कि अब मैं उस स्थिति को प्राप्त कर चुका हूं जिसमें क्षुद्र मनोविकार मनुष्य के हृदय पर अधिकार नहीं कर सकते। कम से कम अब वे मुझे अपने उचित कर्तव्य से पराङ्मुख नहीं कर सकते। मैंने अपने को बहुत समय तक धोखा दिया। अपने हृदय के उदात्त भावों को बहुत भुलावा दिया। शायद इस समय भी शैतान मेरे लिए जाल फैला रहा है, प्रलोभन दिखा रहा है। पर मुझे इस बात पर संतोष है कि मैं जो कुछ कह रहा हूं वह सत्य है और मेरा उसपर विश्वास है। मैं तो अपने धर्म के लिए कष्ट सहने की तैयारी कर रहा हूं।"

अमृतसर के प्रसिद्ध बाबा गुरुदत्त सिंह को धारा १२४ अ अर्थात् राजद्रोह के अभियोग में ५ साल काले पानी की सजा हुई है।

ग्राहकों को सूचना

'हिन्दी नवजीवन' का प्रथम वर्ष आगामी १८ अगस्त को खतम हो जाता है। अतएव जिन ग्राहक-भाइयों का वर्ष 'हिन्दी-नवजीवन' के वर्ष के साथ ही शुरू होता है वे कृपा कर के अगले साल का चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा, बिना भूले, भेज दें। वी. पी. भेजने का रिवाज इस दफ्तर में नहीं रक्खा गया है।

व्यवस्थापक हिन्दी-नवजीवन

अहमदाबाद

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में महात्मा-गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

पारिवारिक अत्याचार

एक भाई बड़े दुखी हो कर अपने गृह-जीवन के सम्बन्ध में लिखते हैं—"जिन सद्गुणों के अंकुर बड़ी कठिनाई से पौधे के रूप में हुए थे वे सब स्वार्थ-बुद्धि के धक-दल में नष्ट हुए जाते हैं। घर के लोगों की ओर से तो केवल स्वार्थ की ही शिक्षा मिलती है और भविष्य में सुख मिलने का साधन भी यही बतलाया जाता है। गले में जंजीर डालने (शादी करने) के समय जो दुःख मुझे हुआ उसके विषय में केवल इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि शादी के ही दिन मुझे लगभग आध घण्टा तक अश्रुपात होता रहा। केवल कुटुम्बियों के संतोष के लिए ही, अनिच्छा होते हुए भी, मैंने यह नाटक किया और उन लोगों के दुखी होने के भय से दुःख होते हुए भी प्रसन्नता दिखलानी पड़ी। इतना होते हुए भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। वे गुलामी की बेड़ी भी पैर में डाल देना चाहते हैं। क्या कुटुम्बियों के इस अधर्ममय अन्ध प्रेम पर अपना जीवन न्यौछावर करना उचित है? इस मोह-जाल में भविष्य बिगड़ा जाता है। इस तरह से तो मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिल सकती। पुरुषार्थ करना तो एक ओर रहा मैं अपने मामूली कर्तव्यों का भी पालन नहीं कर सकता। इस दुःख कथा पर विचार करके आप मुझे उचित कर्तव्य का निदर्शन करावें।"

इस अभागे भारत में ऐसे कौटुम्बिक अत्याचारों के भी उदाहरण कम नहीं हैं। आज हम सरकारी अत्याचारों का मुकाबला कर रहे हैं। पर इसलिए इन अत्याचारों की उपेक्षा नहीं कर सकते। जिन घरों में और जिस समाज में नवयुवकों की आत्मायें इस तरह कुचली जाती हों उसपर मांगल्य की सुदृष्टि कैसे रह सकती है? माता-पिता आदि गुरु जनों की आज्ञा धर्म और कर्तव्य के पालन में बाधक नहीं हो सकती। धर्म सर्वोपरि है। पिता यदि दशरथ हों तो राम उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए १४ वर्ष वन में कष्ट सहते हैं; पर यदि हिरण्यकशिपु हो तो प्रह्लाद उसकी अवज्ञा करते हैं। जहां धर्म और गुरु जनों की आज्ञा या इच्छा में विरोध उत्पन्न हो वहां धर्म की आज्ञा ही पालनीय होती है। माता-पिता और कुटुम्बियों को मोह और स्वार्थ में अन्धे न हो जाना चाहिए। बालकों और नवयुवकों के भी स्वतन्त्र आत्मा होती है और उसका स्वतन्त्र विकास भी होता है। अपने मिथ्या सुख और अन्ध प्रेम के लिए उनकी आत्मा की बढ़तो को रोकना केवल अज्ञान है और इसका फल है दुःख। परमात्मा भारत के माता-पिताओं को ऐसी सद्बुद्धि दे जिससे वे बालकों और नवयुवकों के तन और आत्मा की उन्नति में कंटक न बनें और उन बालकों और युवकों को ऐसा प्रकाश दिखावे जिससे एक ओर तो वे अपनी नम्रता, श्रद्धा और सेवा के द्वारा अपने गुरु जनों को प्रसन्न रख सकें और दूसरी ओर निर्भय चित्त हो उनकी कुवासनाओं की तृप्ति के शिकार बनने से अपने को बचा सकें।

स्वागत

महासभा के मनोनीत अधिनायक देशबंधु चित्तरंजन दास अपना स्वराज्य का अनुष्ठान पूरा करके कल ता. २९ जुलाई को स्वराज्य मंदिर से बाहर आने वाले थे।

महासमिति की बैठक कलकत्ते में १५ अगस्त के बजाय आगामी १५ सितम्बर को होना निश्चित हुआ है।

पूजा का अधिकार

वार्षिक
एक प्रतिका
विदेशों के लिए वार्षिक

हिन्दी नवजीवन

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जल में)

वर्ष १] [अंक ५१

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय | अहमदाबाद, श्रावण सुदी १४, संवत् १९७९ | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी | रविवार, सायंकाल, ६ अगस्त, १९२२ ई० | सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

लोकमान्य और महात्मा गांधी

लोकमान्य मरे नहीं, जीवित हैं

लोकमान्य और महात्माजी दोनों एक ही महत्तत्व के दो भिन्न अङ्ग हैं—दो भिन्न तत्वों के प्रतिनिधि हैं। एक को यदि स्वराज्य का ब्रह्मा कहें तो दूसरे को विष्णु कह सकते हैं। लोकमान्य के जीवन-चक्र का कार्य था भारत-भूमि को जोत कर स्वराज्य के लिए तैयार करना। महात्मा गांधी की जीवन-जाह्नवी का प्रवाह अभी वेग के साथ बह रहा है। उनके इस थोड़े ही भारतीय जीवन ने संसार को चकित-सा कर दिया है। लोकमान्य स्वराज्य की स्फूर्ति को ले कर जन्मे। महात्मा गांधी स्वदेशी का सन्देश ले कर संसार के सामने आये। परिस्थिति ने, समय की आवश्यकता ने, एक को भारत का राष्ट्र-देव बनाया, दूसरे को धर्म-देव या सत्य-रूप। एक ने भारत को उसके उद्धार का पहला पाठ पढ़ाया; दूसरा उसे दूसरा, और शायद आखिरी, पाठ पढ़ा रहा है। एक यदि भारत-माता का प्राण था तो दूसरा आत्मा है। महाभारत की भाषा में एक यदि अर्जुन था तो दूसरा युधिष्ठिर है। गीता के शब्दों में एक यदि राजस-मूर्ति था तो दूसरा सात्विक-मूर्ति है। प्रकृति के साम्राज्य में लोकमान्य जहां सूर्य्य की तरह प्रखर, तेजस्वी और प्रतिभाशाली थे तहां महात्माजी सूर्य की ही अथवा बिजली की तरह तेजोमय, चन्द्रमा की तरह शान्ति-सुधा-वर्षक, और मेघ-मण्डल की तरह जीवन-मांगल्यदायी हैं। नौकरशाही की दृष्टि में एक यदि तोप का गोला था तो दूसरा सुरंग की बत्ती है। एक व्यवहार में

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्"

का कायल था, दूसरा

"अक्रोधेन जिने क्रोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदर्यं दानेन सत्येन अलिकवादिनम्।"

को अपना व्यवहारमन्त्र मानता है। एक स्वयं कीचड में उतर कर भी कीचड में फंसे हुए को उठा कर लाना चाहता था और दूसरा कीचड ही को सुखा कर उसे स्वयं वहां से उठने का बल देना चाहता है। एक राष्ट्रीय-धर्म का आचार्य था और दूसरा सत्य-धर्म का अनुयायी है। एक भारत का बुद्धि-बल था; दूसरा भारत का आत्म-बल है। दोनों भारत-माता के प्यारे पुत्र हैं। दोनों सपूत हैं। दोनों प्रिय हैं। दोनों पूज्य हैं। दोनों का उसे अभिमान है। एक गया तो दूसरे ने आकर आश्वासन दिया। पर आज वह दूसरा भी उससे छीन लिया गया है। एक को परलोक की नौकरशाही छीन ले गई, दूसरे को इस लोक की नौकरशाही ने कैद कर लिया। उसको छुटा लाना हमारे अधिकार की बात है, हमारे पुरुषार्थ पर, पराक्रम पर अवलम्बित है। लोकमान्य ऐसे स्थान को जा पहुंचे हैं—'यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते'। उसी शरीर के द्वारा वे वापस लौटने के लिए नहीं गये हैं। वे तो वहां गये हैं हम पीछे रह जाने वालों का पौरुष-पराक्रम देखने के लिए—हमारी आजमाइश करने के लिए। वे देखते होंगे कि जिस स्वराज्य के लिए मैं प्राण-पण से जूझता रहा, जिस स्वावलम्बन के लिए मैंने सारा जीवन लगा दिया, जिस अन्याय के प्रतीकार के लिए मैंने नौकरशाही के वज्र-प्रहार सहे, मेरे भक्तों के हाथों में उसकी अब क्या दशा है? उनके श्राद्ध के इस अवसर पर भारत के पास इसका क्या जवाब है?

हम लोकमान्य का श्राद्ध करना चाहते हैं, उनकी पूजा करना चाहते हैं। उनकी पूजा का सच्चा और शोभनीय मार्ग महात्माजी ने हमें दिखाया है। वह अन्यत्र उन्हीं के शब्दों में दिया जाता है।

हम आरम्भ में ही कह चुके हैं कि लोकमान्य और महात्माजी दोनों एक ही महत्तत्व के दो अंग हैं। दोनों महामना हैं। दोनों देहभाव और अहंभाव से परे हैं। दोनों की दृष्टि निर्मल थी। अतएव दोनों एक दूसरे को शुद्ध रूप में, सत्य रूप में, देख सकते थे। दोनों एक-दूसरे के गुणों पर, पुरुषार्थ पर लट्टू थे। लोकमान्य ने जहां तहां गांधीजी के गुणों का गौरव किया है और महात्माजी के लिए तो लोकमान्य का गुण-गान मानो स्वराज्य की एक साधना ही हो गई थी। उन्होंने अपने पत्रों और भाषणों में बराबर लोकमान्य का गुण-कीर्तन किया है। महात्मा गांधी को विदेशवासी विद्वान् भी संसार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष मानने लगे हैं। वह महात्मा जिन लोकमान्य की महिमा

पर मुग्ध है उनका जीवन सचमुच कितना उच्च, कितना श्रेष्ठ, कितना पूज्य और कितना स्फूर्तिदायी हो सकता है ? लोकमान्य के स्वर्गारोहण के बाद महात्माजी "नवजीवन" में लिखते हैं—

महात्मा जी क्या कहते हैं ?

"लोकमान्य तो एक ही थे। लोगों ने तिलक महाराज को जो पदवी—जो उच्च स्थान—दिया था वह राजाओं के दिये खिताबों से लाख गुना कीमती था। देश ने आज यह बात सिद्ध कर दिखाई है। यह कहें तो अत्युक्ति न होगी कि सारी बम्बई लोकमान्य को पहुंचाने के लिए उलट पड़ी थी।

"उनके आखिरी दिनों में जो दृश्य मैंने अपनी आंखों से देखा वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। लोगों के उस अगाध प्रेम का वर्णन करना असम्भव है।

"फ्रान्स में कहावत है कि 'राजा मर गये, राजा चिरंजीव रहें।' यह विचार इग्लैंड आदि सारे देशों में प्रचलित है, और जब राजा की मृत्यु होती है तब यह कहावत कही जाती है। उसका भावार्थ यह है कि राजा तो मरता ही नहीं। राजतन्त्र एक मिनिट भी बन्द नहीं रहता।

"उसी प्रकार तिलक महाराज भी मर नहीं सकते, न मरे ही। बम्बई की जनता ने यह दिखला दिया कि वे जीते हैं और बहुत समय तक जीयेंगे। उनके सगे-सम्बन्धियों को भले ही दुःख हुआ हो, उन्होंने भले ही आंखों से मोती टपकाये हों। परन्तु दूसरे लोग तो उत्सव मनाने के लिए आये थे। बाजे और भजन लोगों को चेतावनी दे रहे थे कि लोकमान्य मरे नहीं। 'लोकमान्य तिलक महाराज की जय' ध्वनि से आकाश गूंज उठता था। उस समय लोग इस बात को भूल गये थे कि हम तो तिलक महाराज के देह के दाहकर्म के लिए यहां आये हैं।

"शनिवार की रात को जब मैंने उनके स्वर्गवास की खबर सुनी तब मेरा चित्त कुछ व्याकुल हो रहा था; पर जयघोष सुन कर मेरी बेचैनी जाती रही। मेरी भी यही धारणा हुई कि तिलक महाराज जीवित हैं। उनका क्षणभंगुर देह छूट गया है; पर उनकी अमर आत्मा तो लाखों लोगों के हृदय में विराजमान है।"

"इस जमाने में किसी भी लोकनायक को ऐसी मृत्यु का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। दादाभाई गये, फीरोजशाह गये, गोखले भी चले गये। सबके साथ हजारों लोग स्मशान तक गये थे। पर तिलक महाराज ने तो हद कर दी; उनके पीछे तो सारी दुनिया गई। रविवार को बम्बई बावली हो गई थी।

"यह कैसा चमत्कार ? संसार में चमत्कार नाम की कोई वस्तु ही नहीं। अथवा यों कहें कि जगत स्वयं ही एक चमत्कृति है। बिना कारण के कोई काम नहीं होता। इस सिद्धान्त में कोई अपवाद नहीं हो सकता। लोकमान्य का हिन्दुस्तान पर असीम प्रेम था। उसीसे लोक-प्रेम के भी मर्यादा नहीं रह गई थी। स्वराज्य के मन्त्र का जितना जप उन्होंने किया है उतना दूसरा किसीने नहीं किया। जिस समय दूसरे लोग यह मानते थे कि हां, अब भारत स्वराज्य के योग्य होगा उस समय लोकमान्य सच्चे दिल से मानते थे कि भारत आज ही तैयार है। लोकमान्य की इस धारणा ने लोगों के मन को हर लिया था। ऐसा मान कर वे बैठ नहीं रहे। बल्कि जिन्दगी भर उसके अनुसार काम किया। उससे जनता में नवीन चैतन्य, नया जोश, पैदा हुआ। उन्होंने स्वराज्य प्राप्त करने की अपनी अधीरता का स्वाद लोगों को चखाया, और ज्यों ज्यों जनता को उसका स्वाद मालूम होने लगा त्यों त्यों वह उनकी तरफ खिंचती गई।

"उनपर अनेक तरह की आफतें उठीं, तरह तरह के कष्ट उन्हें सहना पड़े, तोभी उन्होंने उस मन्त्र का अनुष्ठान नहीं छोड़ा। इस तरह वे कठिन परीक्षाओं में भी पास हुए। इससे जनता ने उन्हें अपने हृदय का सम्राट् बनाया और उनका वचन उसके लिए कानून की तरह मान्य हो गया।

"देह के नष्ट हो जाने से ऐसा महान् जीवन नष्ट नहीं होता, बल्कि देहपात के बाद से तो वह शुरू होता है।

"जिसे हम पूजनीय मानते हैं उसकी सच्ची पूजा तो उसके सद्गुणों का अनुकरण करना ही है। लोकमान्य अत्यन्त सादगी के साथ रहते थे। उनके स्मरण के लिए हमें भी अपना जीवन सादा बनाना चाहिए। हमें उस दरजे तक वस्तुओं का त्याग करना चाहिए जिस हद तक हमें कुछ परेशानी हो सके। वे बहादुर थे। हमें उनकी निर्भयता का अनुकरण कर के वही काम करना चाहिए जिसके लिए हमारा मन गवाही देता हो। अपने निश्चित कार्य को करने से कभी पीछे न हटना चाहिए। वे विचारशील थे। हमें भी विचार करके ही बोलना और काम करना चाहिए। वे विद्वान् थे, अपनी मातृभाषा और संस्कृत पर उनका खूब प्रभुत्व था। हमें भी उनकी तरह विद्वान होने का निश्चय करना चाहिए। व्यवहार में विदेशी भाषा का त्याग करके मातृभाषा का काफी ज्ञान प्राप्त करना और उसीके द्वारा अपने विचारों को प्रकट करने का अभ्यास डालना चाहिए। हमें संस्कृत-भाषा का अध्ययन करके अपने धर्म-शास्त्रों में छिपे धर्म रहस्यों को प्रकट करना चाहिए। वे स्वदेशी के प्रेमी थे। हमें भी स्वदेशी का अर्थ समझ कर उसका व्यवहार करना चाहिए। उनके हृदय में अपने देश के प्रति अथाह प्रेम था। हम भी अपने हृदय में ऐसा प्रेम उदय करें और दिन प्रति दिन देशसेवा में अधिकाधिक तत्पर हों। इसी रीति से उनकी पूजा हो सकती है। जिससे इतना भी न हो सके वे उनकी यादगार के लिए जितना हो सके धन दें और वह स्वराज्य के काम में खर्च किया जाय।

"लोकमान्य वर्तमान राज्य-मण्डल के कट्टर शत्रु थे। पर इससे यह न समझना चाहिए कि वे अंगरेजों का द्वेष करते थे। जो लोग ऐसा समझते हैं वे भूल करते हैं। उन्हींके श्री-मुख से मैंने कई बार अंगरेजों की प्रशंसा सुनी है। वे अंगरेजी राज्य के सम्बन्ध को भी अनिष्ट नहीं मानते थे। वे तो सिर्फ अपनेको अंगरेजों के बराबर मनवाना चाहते थे। किसीका भी गुलाम बनकर रहना उन्हें पसन्द न था।

"ऐसे प्रौढ़ देशभक्त के स्वर्गवास का उत्सव हम मना रहे हैं। ऐसे पुरुष का देह चाहे रहे या न रहे, पर वह देश की सेवा तो किया ही करता है। देश को आगे बढ़ाया ही करता है। जिसने अपने कार्य की रूपरेखा बना रक्खी हो, जिसने उसके अनुसार ४५ वर्षों तक काम किया हो, जिसने अपने देह को देश-सेवा के ही अर्पण कर दिया हो, उसके देह का नाश भले ही हो जाय, उसकी स्मृति कभी नष्ट नहीं होती, उसकी मृत्यु कभी नहीं होती। अतएव लोकमान्य तिलक मर कर भी हमें जीवन का मन्त्र सिखा गये हैं।"

हरिभाऊ उपाध्याय

सहयोगियों का स्वागत

प्रेम महाविद्यालय वृंदावन के मुखपत्र प्रेम (साप्ताहिक), नागपुर के अर्द्ध साप्ताहिक 'प्रणवीर' जकोबा, नेटाल, के मासिक 'हिन्दी' लाहोर की मासिक पत्रिका 'ज्योति' का 'हिन्दी नवजीवन' सप्रेम स्वागत करता है।

मदरास के एकमात्र नवजात हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'भारत तिलक' के सम्पादक राजद्रोह का इल्जाम लगा कर गिरफ्तार किये गये हैं।

स्वदेशी आन्दोलन कैसे सफल होगा?

योगी अरविन्द के विचार

गत स्वदेशी आन्दोलन में हम लोग सफल नहीं हुए, इसके दो कारण थे। एक तो यह था कि हम विदेशी माल का धर्मिकार-पूर्ण बहिष्कार न कर सके और स्वदेशी माल के साधनों को उन्नत न बना सके। दूसरा कारण यह था कि हमने ब्रिटन के प्रतिनिधि का शासन विरुद्ध करने के लिए इस आन्दोलन को जारी किया था। विदेशी माल का बहिष्कार करने में हम लोगों का आशय लङ्काशायर और मानचेस्टर के कारखानों को हानि पहुंचाना था। हमने अपनी तत्कालीन दशा को ठीक करने के लिए अपने देश के ही स्वदेशी उद्योग-धंधे की उन्नति का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। ब्रिटिश जाति और पार्लमेन्ट के ध्यान को होश में लाने के लिए उनको हानि पहुंचाने की तो ठान ली, परन्तु अपने कर्तव्य से दूर रहे। यद्यपि हम दूसरों को यह उपदेश दिया करते थे कि अपने पैरों पर आप खड़े हो, परन्तु हमने स्वयं ही इस सिद्धान्त की परवाह न की। ऐसी दशा में कोई काम हो, कभी पूरा नहीं हो सकता है और हमारी विफलता का कारण भी यही दशा हुई। अब देश में फिर स्वदेशी आन्दोलन ने जोर पकड़ा है। परन्तु इसे सफल बनाने के लिए हमें चाहिए कि हम उन गलतियों से बचावें जो हमने पहले स्वदेशी आन्दोलन के समय की थीं। यदि हमने अपनी पिछली विफलता से उपदेश न ग्रहण किया और पिछले आन्दोलन की भूलों को न संभाला तो फिर इस विफलता के लिए हमी उत्तरदायी होंगे जिसका सामना हमें अपनी दुर्बलता और लापरवाही के कारण करना ही पड़ेगा।

स्वदेशी आन्दोलन को सफल बनाने के लिए हमको आन्दोलन के क्रियात्मक कार्यक्रम के अनुसार काम करना चाहिए। यदि देश के कोने कोने में स्वदेशी का प्रचार हो गया और देश की आर्थिक दशा ठीक हो गई तो स्वाधीनता पाने के लिए यही स्वदेशी आन्दोलन राजनैतिक आन्दोलन की अपेक्षा कहीं अधिक उत्तम साधन बन जायगा। कृषि और देशी दस्तकला, बस स्वदेशी के यही दो द्वार हैं। इसी कला की उन्नति के लिए चरखा अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। हमें यह बात सदैव स्मरण रखना चाहिए कि केवल चरखे से ही हमारी आर्थिक दशा जो हमारी सफलता का चिन्ह है, ठीक हो सकती है। अगर हम यह चाहें कि समस्त देश में चरखे का प्रचार हो जाय, घर घर चरखा चलने लगे तो किसी से कहने के पहले हमें स्वयं चरखा कातना आरंभ कर देना चाहिए। महात्माजी का उपदेश यही था कि समस्त भारत चरखा काते। यदि हम हिन्दुस्तान की कपड़ों की मशीनों को राष्ट्रीय बना लें तो कपड़े की आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं। यदि किसी कारण से हम ऐसा करने में सफल न हो सकें तो चरखे से काम लें जो मशीनों के बजाय हमारी कपड़े की आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है। आशय यह है कि हिन्दुस्तान के लिए चरखा प्रत्येक दशा में आवश्यक है। हमारे देश को लोग धनी और सोने की चिड़िया कहा करते हैं परन्तु यह बात अब सर्वथा असत्य है। यहांपर आज दिन लाखों आदमी भूखों मर रहे हैं। ये लोग यदि चरखा कातकर अपना पेट पालें तो बड़ा काम हो। मध्य श्रेणी के लोग भी अवकाश के समय में चरखा कातकर अच्छी बचत कर सकते हैं। भारत की आर्थिक दशा को ठीक करने के लिए ऐसे ही आदमियों की आवश्यकता है।

चरखे का प्रचार होने के लिए नियमानुसार काम होने की आवश्यकता है। प्रत्येक घर में एक चरखा होना चाहिए और जो कातना न जानते हों उन्हें सिखलाने का भी पूरा प्रबन्ध रखना चाहिए। कते हुए सूत को इकट्ठा करने तथा कातनेवालों के पास रुई भेजने की भी आवश्यकता है। बहुत से मध्यश्रेणी के घरों में तो चरखा पहले से ही चलता है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि जहां चरखा न चलता हो वहां चलने लगे। आरम्भ में काम करने वालों को कभी कभी निराशा भी होगी; परन्तु यह निश्चय है कि दृढ़तापूर्वक काम करते जाने से कभी न कभी तो सफलता मिलेगी ही।

खादी सूचना-विभाग

महासभा के प्रधान खादी-विभाग के अध्यक्ष श्री सेठ जमनालालजी सूचित करते हैं कि खादी-विभाग की ओर से एक सूचना-विभाग कायम किया गया है, जिसका उद्देश इस प्रकार है—

(१) हर तीसरे महीने खादी के काम की एक रिपोर्ट प्रकाशित की जाय। उसके लिए हर प्रान्त से खबरें मंगवाना।

(२) भिन्न भिन्न केन्द्रों से जो रिपोर्टें आवें उनका सार चुने हुए स्वदेशी के कार्य-कर्ताओं और महासभा-समितियों के पास भेजना।

(३) खादी की संस्थाओं और काम करने वालों से खादी प्रचार और संगठन-संबंधी सूचनायें मंगाना और उनकी कठिनाइयां दूर करने में मदद देना।

पहले उद्देश की पूर्ति के लिए एक प्रश्न-माला तैयार की गई है और वह महासभा-समितियों के पास भेज दी गई है।

दूसरे उद्देश की पूर्ति के लिए महासभा-समितियों से कहा गया है कि वे स्वदेशी से सम्बन्ध रखने वाले हर किस्म के लोगों की नामावली तैयार करें। जो संस्थायें और सज्जन सूचना-विभाग का सूचना-पत्र पाना चाहते हों वे या तो अपनी प्रान्तिक समिति के द्वारा या सीधे सूचना-विभाग में अपना नाम दर्ज करा लें। वे यह भी बतावें कि वे खादी के सम्बन्ध में क्या काम कर रहे हैं।

सूचना-पत्र अंगरेजी में निकलेगा; पर देशी भाषाओं में उसके अनुवाद और प्रचार का प्रबन्ध प्रान्तिक समितियों के मार्फत किया जायगा।

तीसरे उद्देश के सम्बन्ध में यह मुनासिब है कि पहले लोग अपनी कठिनाइयां स्थानीय समितियों में पेश करें। वहां हल न हों तो सूचना-विभाग खुशी से उन्हें सहायता देगा।

इसके अलावा महासभा के अन्तर्गत अथवा स्वतन्त्र रीति से चलने वाले खादी विभागों के काम को भी यह सूचना विभाग एक साथ ले कर चलाना चाहता है। यह विभाग तमाम खादी के कार्यकर्ताओं से अनुरोध करता है कि वे अपने अपने प्रयोगों की सफलता-विफलता का संक्षिप्त विवरण १८३।८७, कालबादेवी रोड, बम्बई के पते पर मन्त्री खादी-सूचना-विभाग के नाम भेजें।

खूब रही!

बम्बई की लिबरल कान्फ्रेन्स में महात्मा गांधी को अखबार दिये जाने की बात सर चिमनलाल सेटलवाड ने कही थी। अब पूने में धारासभा में एक सदस्य के पूछने पर आपने फरमाया कि मैंने तो कहा था, दिये जा सकते हैं। पर श्री नटराजन् ने जो उनके पास ही कान्फ्रेन्स में उस दिन बैठे थे और जिनके महात्मा गांधी सम्बन्धी प्रस्ताव पर सर चिमनलाल ने पूर्वोक्त बात कही थी और इसीके बल पर वह प्रस्ताव उड़ गया था, यह प्रकट किया है कि नहीं, सर साहब ने यही कहा था कि अखबार दिये जाते हैं! सर चिमनलाल दया दिखाने के पात्र हैं या टिप्पणी किये जाने के?

पवित्र ईद

ईश्वर-भक्ति और कौटुम्बिक मोह दोनों में हमेशा लड़ाई होती आई है। हरएक धर्म में ऐसे भक्त जनों की कथायें हैं जिन्होंने धर्म-पालन के लिए कौटुम्बिक मोह का नाश किया है।

एकादशी-व्रत की एक कथा है कि राजा रुक्मांगद ने अपनी दुलारी रानी को एक वरदान दिया था। राजा परम वैष्णव था और वह एकादशी का व्रत करता था। रानी ने राजा से वरदान मांगा कि या तो व्रत को तोड़ कर भोजन करो या अपने प्यारे बेटे का सिर काट डालो। व्रत को तोड़ना राजा के लिए असम्भव था। पुत्र ने राजा से कहा कि आप मेरा वध कर के अपने वचन का पालन कीजिए। यही धर्म है। मैं मरने को तैयार हूं। राजा शस्त्र उठाता है; परन्तु विष्णु ऊपर के ऊपर ही उसका हाथ पकड़ लेते हैं।

स्त्री-पुत्र को बेच डालने वाले राजा हरिश्चन्द्र और सीता का त्याग करने वाले रामचन्द्र भी इसी कोटि के पुरुष थे। अपने स्वामी के पुत्र की रक्षा करने के लिए अपने बेटे का बलिदान करने वाली पन्ना दाई भी इसी भक्त श्रेणी की थी। ऐसे ही एक भक्तराज के स्मारक के तौर पर मुसलमान लोगों में बकर-ईद का त्योहार प्रचलित हुआ है। इस त्योहार को महम्मद पैगम्बर ने शुरू नहीं किया। वह तो हजरत महम्मद से भी प्राचीन है। ईश्वरनिष्ठ इब्राहिम के दो पुत्र थे। छोटे का नाम इस्माईल था। वह इस्माईल को बहुत प्यार करता था। यह देख कर शैतान ने ईश्वर से कहा कि आपके भक्त की भक्ति मैंने देख ली। यह आपका भक्त नहीं, अपने पुत्र का भक्त है। इसलिए, वह अपने बेटे के पीछे दीवाना हो रहा है। ईश्वर ने स्वप्न में आकर इब्राहिम से कहा कि कुरबानी करो। कुरबानी का कायदा यह है कि जो वस्तु हमें अत्यन्त प्रिय हो, जिसे हम बहुमूल्य समझते हों वह कुरबान की जाय। इब्राहिम ने दूसरे दिन गाय या बकरे की कुरबानी की। परन्तु ईश्वर ने फिर स्वप्न में आकर कहा कि कुरबानी कर। उसने और ज़ियादह बलिदान किया। फिर भी वही स्वप्न आया। तब उसने नम्र हो कर ईश्वर से प्रार्थना की और पूछा कि हे मालिक, तू किसकी कुरबानी चाहता है? ईश्वर ने कहा, तेरे प्यारे पुत्र का।

भक्तश्रेष्ठ इब्राहिम के हृदय को इससे ज़रा भी आघात नहीं पहुंचा। उसने तो अपना सर्वस्व ईश्वर के अर्पण कर दिया था। दूसरे दिन अपने बेटे को लेकर भक्तराज कुरबानी की जगह पर ले चले। शैतान ने बेटे को और उसकी मां को फुसलाने का, बहकाने का प्रयत्न किया। परन्तु उस प्रेममय परिवार में ईश्वर की भक्ति इतनी सच्ची थी कि तीनों में से किसी पर भी मोह का जादू न चला। पिता ने पुत्र की गर्दन पर छुरी रक्खी। पर खुदा ने आकर उसको रोक लिया और इस्माईल की जगह पर एक पशु की कुरबानी कुबूल रक्खी। इब्राहिम, इस्माईल और इस्माईल की माता तीनों की परीक्षा खतम हुई और शैतान की मट्टी पलीद हुई। इसी इस्माईल के वंश में इस्लाम धर्म के नबी महम्मद पैगम्बर का जन्म हुआ।

ऐसे अद्भुत प्रसंग की यादगार में मुसलमान भाई बकरईद के दिन कुरबानी करते हैं। कौटुम्बिक मोह को छोड़ कर ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए, कर्तव्य के सामने मोह को तिलाञ्जलि देनी चाहिए यही धार्मिक सिद्धान्त इस त्योहार के मूल में है। यह सिद्धान्त जितना ही इस्लाम को प्रिय है उतना ही दूसरे धर्मों को भी प्रिय है। स्वार्थ, मोह, लोभ इन सबका नाश करने के लिए अपनी और अपनी प्रिय वस्तु की कुरबानी करना ही सच्ची धार्मिकता है। यही महान् यज्ञ है। इसके स्मारक के रूप में प्रत्येक धर्म में बलिदान की प्रथा प्राचीन काल से चलती आ रही है। पर ज्यों ज्यों हमारे हृदय में जीव-दया का भाव बढ़ता गया त्यों त्यों हम बलिदान में से एक एक भारी वस्तु को कम करते गये। नरमेध छोड़ा, अश्वमेध छोड़ा, मांस का भोग छोड़ा, और अन्त को भैंसे या बकरे के बदले उड़द का पशु बना कर उसका बलिदान हम करने लगे। और आगे चल कर कुम्हड़ा और नारियल चढ़ाने में ही हम सन्तोष मानने लगे। परन्तु बलिदान की कल्पना को हमने जाग्रत रक्खा है। जो लोग मांसाहारी हैं वे यदि बलिदान में पशु अर्पण करें तो इसमें कोई अचरज की या बुरी बात नहीं। हमने मांसाहार छोड़ दिया, इससे पशु का बलिदान भी छूट गया। भारत में दया-धर्म है। जैनियों की तरह हिन्दुओं में भी है। और हिन्दुओं की तरह मुसलमानों में भी है। इस दया-धर्म पर यदि हम विश्वास रक्खेंगे तो सब दूर इसका असर हुए बिना न रहेगा। यह ख्याल कि मुसलमान भाई हिन्दुओं का दिल दुखाने के लिए गोवध करते हैं, गलत है। यदि हम द्वेष छोड़ दें तो हमारे बिना कहे, बिना ही कानून पास कराये, मुसलमान भाई गोवध बन्द कर देंगे। ऐसी गलत ख्याल रखना अपने पड़ोसी भाइयों का अपमान करना है। मुसलमान कौम बड़ी शरीफ है। पड़ोसी धर्म का पालन करने के लिए आजतक इन्होंने कई बार अपनी जान जोखों में डाली है और अनेक बार अपना सर्वस्व देकर बरबाद हुए हैं। मुसलमान भाई भी हमारी ही तरह खेती पर गुज़र करते हैं। हमारी तरह वे भी अपने मवेशी को प्यार करते हैं। गोरों की तरह गो-मांस को उन्होंने अपनी रोज़ाना खुराक नहीं बनाया। गोरक्षा के विषय में मुसलमान हमारे शत्रु नहीं, मित्र हो सकते हैं। और हम इस्लाम पर विश्वास रक्खेंगे तो भारत में ही नहीं सारी दुनिया में उनकी सहायता से हम गोरक्षा कर सकेंगे।

बकरईद का त्योहार अकेले इब्राहिम और उसके स्त्री-पुत्र के याद करने का दिन नहीं है। ईद के पवित्र दिन हमें उन सब धर्मवीरों का स्मरण करना चाहिए जिन्होंने आजतक अपने धर्म के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया है। हिन्दू लोग भी यदि बकर-ईद के दिन इस भक्तराज का स्मरण करें तो इसकी पवित्रता बढ़े बिना न रहे। और बकर-ईद का त्योहार हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय एकता बिगाड़ने के बदले बढ़ा देगा। जिस प्रकार जिल्हज की १० तारीख इब्राहिम की कुरबानी है उसी प्रकार खिलाफत और स्वराज के लिए हिन्दू-मुसलमान के एक हो जाने का भी स्मारक हो जायगी। हमें विश्वास है कि धार्मिक हिन्दू और मुसलमान दोनों इस बात की पूरी पूरी चिन्ता रक्खेंगे कि इब्राहिम जैसे पवित्र पुरुष का स्मारक दिन हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े से कलंकित न हो जाय। एक को दूसरे के हृदय की पहचान हो जाने के बाद झगड़े की जड़ ही नहीं रह सकती। (नवजीवन) **द० बा० कालेलकर**

वर्ण-भेद के शिकार

दक्षिण आफ्रिका में महात्मा गांधी के द्वितीय पुत्र श्री मणिलाल गांधी, पारसी सोराबजी रुस्तमजी और मि० इस्माइल बोरा ये तीन सज्जन गोरों के वर्ण-भेद के शिकार हुए हैं। डरबन के बन्दर पर गोरों और कालों के साथ जो भेद-भाव माना जाता है उसके खिलाफ बन्दर के नियमों के उल्लंघन करने का इल्ज़ाम लगा कर तीनों सज्जनों को १५ पौंड जुर्माना अथवा ७ दिन की कड़ी कैद की सज़ा दी गई। तीनों महाशयों ने जेल जाना स्वीकार किया। जेल में श्री सोराबजी की बण्डी और कुरता भी उतार लिया गया। जान पड़ता है कि अंगरेज़ी साम्राज्य गांधी परिवार को अपने देश और मान की रक्षा के लिए इस तरह के बलिदान देने का श्रेय देना चाहता है। इस क्षुद्रता और असम्मन्यता पर किसे दया नहीं आ सकती?

प्रकट होने तक हमारी तमाम शक्ति रचनात्मक कार्यक्रम में ही लगनी चाहिए। जबतक नींव पक्की न हो तबतक इमारत के शीघ्र ही गिर पड़ने का पूरा भय रहता है। दबाव से की गई आतुरता से अन्त को अभीष्ट की हानि ही अधिक होती है। जिसे अपना लक्ष्य स्पष्ट दिखाई देता है— विघ्न-बाधाओं के आने हुए भी जो पथ-भ्रष्ट नहीं होता, निश्चय के साथ एक एक कदम आगे बढ़ता जाता है उसे अधीरता क्यों हो सकती है? रास्ता भूलने वाले, लक्ष्य को खो देने वाले घबराहट में इधर-उधर दौड़-धूप करते हैं। सो यह भी एक सवाल ही है कि अनशन-व्रत आदि के द्वारा दबाव डालना ठीक है या नहीं। महात्माजी ने दो बार अनशन-व्रत किया है। पर एक बार बम्बई में रक्तपात को रोकने के लिए और दूसरी बार चौरी चौरा के सम्बन्ध में आत्मशुद्धि के लिए।

दूसरे महासभा की संस्थाओं के कार्यक्रम के प्रतिकूल कोई आग्रह करे तो ऐसी अवस्था में महासभा-समिति या कार्य-समिति की सलाह ले लेना ज्यादह अच्छा है। तीसरे पहरा रखने में तन, मन, वचन से पूर्ण शान्ति रखना चाहिए। पहरा रखने वाले स्वयं सेवकों को ग्राहकों से ही अनुनय-विनय करना चाहिए—दूकानदारों को कुछ भी कहना-सुनना अनुचित है। चौथे भीड़-भड़क्का न करें, न होने दें और सारा काम महासभा के जिम्मेदार पदाधिकारियों की प्रत्यक्ष देख-भाल में हो। स्वयंसेवक शुद्ध खादी पहने हों और ऐसे लोग हों जिनका नैतिक प्रभाव ग्राहकों पर हो। मतलब यह कि 'पहरा' आदर्श, और शान्तिमय तथा सुसंगठित रूप में होना चाहिए। तभी वह फलदायी हो सकता है।

वकीलों की दुविधा

भोगमय जीवन मनुष्य की आत्मा को प्रायः कमजोर कर देता है। वह उसे संकट-साहसमय महान् कार्यों के लिए प्रायः असमर्थ बना देता है। भोग-प्रधान जाति के आदर्श की ऊपरी मोहिनी पर लट्टू हो कर भारत का एक समुदाय भोग का भोगी हो गया है। इस श्रेणी के लोग वर्तमान स्वराज्य-संग्राम से सौ कोस दूर रहे हैं और रहते हैं। पर जिनके हृदयों में देश-प्रेम, मातृ-भक्ति, स्वाधीनता, स्वराज्य आदि के ऊंचे भाव जाग्रत हैं वे अपने ऐशो आराम को ठोकर मार कर माता की पुकार के साथ ही मैदान में आ खड़े हुए। वे आज जनमान्य हो रहे हैं और यह उचित ही है। पर इस समय में ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है, जिनके सिर पर आर्थिक असुविधा हमेशा काल की तरह मँडराया करती है। क्योंकि गरीबी के सुख-दुःख का अनुभव गरीब को ही हो सकता है और प्रायः गरीब की ही हमदर्दी गरीबों के साथ हुआ करती है एवं गरीब ही गरीबों के लिए अधिक गरीबी का धर्म अख्त्यार करते हैं। धनी लोग, जिन्हें गरीबों के दुख-दर्द का खयाल है, अनुभव है, अधिक दिन तक धनी नहीं रह सकते। उनका ऐशो-आराम उन्हें कांटे की तरह चुभने लगता है। वे अपने सारे सुखों को तिलांजलि दे कर दरिद्रता का पाणिग्रहण कर लेते हैं। गरीबों में भी जिनके सिर चार छः प्राणियों का भार है, उनकी दुविधा का तो पार ही नहीं। आज यह दुविधा अपने नग्न रूप में कुछ असहयोगी वकील-भाइयों के सामने खड़ी नजर आ रही है। कलकत्ते में कुछ ने तो आर्थिक कष्टों से तंग आकर मजबूरन् फिर से वकालत शुरू कर दी है। महासभा के सिद्धांत के अनुसार वकालत करना सरकार से सहयोग करना है। और सहयोगी महासभा का पदाधिकारी नहीं रह सकता। अतएव श्रीयुत सेनगुप्त ने कार्य-समिति से इस्तीफा दे कर असहयोग के सिद्धान्त के प्रति अपना आदर प्रकट किया है। आप अब भी देश-सेवा के लिए उसी तरह तैयार हैं। महासभा इन देशभक्तों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करने के सिवा और क्या कर सकती है?

'हिन्दी नवजीवन' को चेतावनी

गहन 'प्रभा' ने अगस्त की संख्या में 'हिन्दी नवजीवन' को एक चेतावनी दी है। 'प्रभा' में छपे महाशय इन्द्र वेदालंकार के एक लेख पर 'सत्याग्रह या हत्याग्रह?' नाम देकर कुछ विचार 'हिन्दी नवजीवन' में प्रकट किये गये हैं। वह लेख और 'हत्याग्रह' शब्द 'प्रभा' को खटका है। 'हिंसात्मक सत्याग्रह' के लिए 'हत्याग्रह' को वह बुरा शब्द मानती है और कहती है कि 'आलोचना का यह ढंग सर्वथा आक्षेपहीन और निर्दोष नहीं।' वह यह भी सूचित करती है कि ऐसा करते हुए 'हिन्दी नवजीवन' अपने आदर्श से गिर गया है।

सत्याग्रह 'हिन्दी-नवजीवन' का धर्म है। शंकाओं, आक्षेपों, भूलों का स्वागत करना, उनपर तटस्थ होकर विचार करना, उनसे लाभ उठाना सत्याग्रही अपना कर्तव्य मानता है। इससे उसे आत्म-परीक्षण का मौका मिलता है, जोकि आत्मशुद्धि और आत्म-विकास के लिए परम आवश्यक है। अतएव अपनी निन्दा, अपने दोष, अपनी गलतियां सुनने में सत्याग्रही को खुशी ही होनी चाहिए। फिर 'हिन्दी-नवजीवन' महात्मा गांधी का पत्र है। इसलिए प्रत्येक गांधी-भक्त और गांधी-प्रेमी के लिए उसकी सूक्ष्म से सूक्ष्म गति-विधि पर तीव्र और कड़ी नजर रखना और थोड़े से भी अनौचित्य का असह्य हो उठना बिल्कुल स्वाभाविक है। यह सुविधा भी 'हिन्दी नवजीवन' की प्रसन्नता और अभिमान का कारण है। अतएव 'प्रभा' की इस चिन्ता और चेतावनी के लिए वह उसका कृतज्ञ है।

'हिन्दी-नवजीवन' के पूर्वोक्त लेख में 'हत्याग्रह' शब्द शीर्ष-स्थान को छोड़ कर सिर्फ एक ही जगह आया है। वहां यह कहा गया है कि "जिसमें हिंसा का अवलम्बन किया जाय वह सत्याग्रह नहीं, हमारे एक मित्र के शब्दों में हत्याग्रह है।" हमारा ख्याल था कि 'हत्याग्रह' शब्द के प्रयोग में सार्थकता के साथ जो निर्दोष विनोद है, एक रस है, वह रसज्ञ जनों के कदर करने की चीज है। क्योंकि महात्माजी के सत्याग्रह और अहिंसा का अर्थ और सम्बन्ध बार बार स्पष्ट कर चुकने पर भी जब सत्याग्रह का मनमाना अर्थ लगाया जाता है और उसमें कभी न अपेक्षित हिंसा का प्रवेश किया जाता है तब ऐसा विनोद सूझना अस्वाभाविक नहीं है। पर, देखते हैं, 'प्रभा' के लिए वह 'अत्यन्त खेदजनक' हो गया है। हत्या का अर्थ वध या हिंसा के सिवा दूसरा नहीं हो सकता। हां, विनोद का अंश निकाल देने पर हत्याग्रह में बीभत्सता और कुछ अप्रियता अलबत्ते है। पर उससे अर्थ में, मूल भाव में, बाधा नहीं आ सकती। तथापि यदि यह 'प्रभा' के मानसिक क्षोभ का कारण है तो हम कह देना चाहते हैं कि 'हिन्दी नवजीवन' को 'हत्याग्रह' का आग्रह नहीं है और न वह इस शब्द का प्रचार ही करना चाहता है, यद्यपि वह हत्या शब्द की अपेक्षा हत्या की कृति को जायज मानना अधिक बुरा समझता है। और यदि यही प्रयोग 'उच्च और शिष्ट आलोचना के अनुकूल न' हो तथा 'हिन्दी नवजीवन के आदर्श से नीचा' हो तो इसका निर्णय हम मर्मज्ञ और विचारशील पाठकों पर ही छोड़ना उचित समझते हैं। क्योंकि हमने तो 'प्रभा' की टिप्पणी के बाद उस लेख को फिर खूब गौर से और तटस्थ भाव से पढ़ा; पर हमें उसमें अशिष्टता, अनुदारता, या सहानुभूति और ममता का अभाव, नहीं दिखाई दिया। फिर भी 'हिन्दी-नवजीवन' बहन 'प्रभा' को यकीन दिलाना चाहता है कि यदि उस लेख के किसी अंश में ऐसा भाव निकल सकता हो, तो

आज भी इसे दिखाई नहीं देता है, तो उसे यह पूर्ण निर्दोष समझे। उस लेख में एक भी शब्द दुर्भाव से प्रेरित हो कर नहीं लिखा गया है। दुर्भाव रखना 'हिन्दी-नवजीवन' के धर्म के खिलाफ है। वह उसे यह भी विश्वास दिलाना है कि 'हिन्दी-नवजीवन' के नजदीक महात्माजी के आदर्श से बढ़ कर प्रिय वस्तु दूसरी नहीं है। उसकी रक्षा में वह आगे किसी हितैषी से पीछे नहीं रह सकता।

बाबा गुरुदत्तसिंह

कोमागाटा मारू जहाज वाले मामले के विख्यात बाबा गुरुदत्तसिंह के नाम से हरएक अखबार का पाठक परिचित होगा। अपने अज्ञातवास से वे किस तरह एक दम एक सभा में प्रकट हुए और खुद होकर सरकार के हाथों गिरफ्तार हुए, यह हाल भी पाठक भूले न होंगे। सिक्खों पर बाबा गुरुदत्तसिंह का बड़ा प्रभाव है। इसीलिए अमृतसर के मैजिस्ट्रेट ने उन्हें 'नसीहत देने वाली' सजा—पांच वर्ष कालापानी—ठोंकी। इस मौके पर दस बारह बरस पहले दी गई एक और 'नसीहत देने वाली' सजा की याद हमें हो आती है। बाबा गुरुदत्तसिंह की तरह मद्रास के श्री. चिदम्बरम पिल्ले भी देशी जहाज के मामले में सरकार की आंख के कांटा हो गये थे। उन्हें आजन्म कालापानी का दण्ड मिला था। समझ में नहीं आता कि आज पांच वर्ष कालापानी मिलने पर बाबा गुरुदत्तसिंह को हम धन्यवाद दें या उनके साथ हमदर्दी जाहिर करें?

योगी अरविंद और चरखा

सहयोगी 'आज' से हम अन्यत्र प्रसिद्ध राजनैतिक तत्ववेत्ता और योगी अरविन्द घोष के वर्तमान परिस्थिति पर स्वदेशी-सम्बन्धी कुछ विचार उद्धृत करते हैं। डाक्टर राय जैसे उद्योगशास्त्री और विज्ञानवेत्ता, अरविन्द घोष जैसे राजनीतिवेत्ता, दोनों के चरखे की उपयोगिता स्वीकार करने पर चरखे की सर्वव्यापी महत्ता के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह रही नहीं सकता। अब जरूरत है बातें बनाना छोड़कर उसका प्रचार करने में, स्वयं सूत कातने में जुट पड़ने की। योगी अरविन्द मशीनों को राष्ट्रीय बनाने की सूचना देते हैं। पर यह निर्विवाद है कि—सिद्धान्त की बात जाने दें तो भी—भारत की मौजूदा गुलामी की हालत में इस साधन से हमारा काम नहीं चल सकता। इसका तो मुक्तिमार्ग बस एक चरखा ही है।

गोरक्षा का आदर्श उपाय

कुछ ही दिन हुए कि बम्बई के कार्पोरेशन में एक सज्जन ने यह प्रस्ताव पेश किया था कि बम्बई की सीमा में गोवध न किया जाय। इसपर मुसलमान भाई बिगड़ उठे। उन्होंने सभा कर के यह घोषित किया कि हम अपने धार्मिक हक को नहीं छोड़ना चाहते। परन्तु हिन्दुओं ने महात्माजी तथा श्री मालवीयजी के उपदेश के अनुसार नये दृष्टि-बिन्दु को सामने रख कर अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। इसका यह फल हुआ कि तुरन्त ही मियां छोटानी और खत्री साहबान ने मुसलमानों से सिफारिश की कि बक-ईद के दिन मुसलमान गोवध न करें। हमें हिन्दुओं के भावों की रक्षा कर के हिन्दू-मुसलमान की एकता बढ़ानी चाहिए। मुसलमानी धर्मग्रन्थों में ऐसा फरमान नहीं है कि बक-ईद के दिन सिर्फ गाय की ही कुरबानी की जाय। ऊंट और बकरे की कुरबानी भी हो सकती है। इस प्रकार दोनों ओर से पारस्परिक कर्तव्यों का ही पालन होता रहे— पड़ोसी धर्म का पालन होता रहे— हिन्दू लोग मुसलमानों की नेकनीयती और शराफत पर विश्वास रक्खें और मुसलमान भाई हिन्दुओं की धार्मिक भावना का ख्याल रक्खें तो इससे बढ़ कर गोरक्षा का आदर्श उपाय दूसरा नहीं हो सकता।

चर्चा का तूफान

बरसात में यदि किसान लोग केवल चर्चा करते रहें, तो फसल हाथ न लगे और साल भर भूखों मरना पड़े। लड़ाई के मैदान में यदि फौज ठण्डी बन बैठी रहे, गपशप और चर्चा में वक्त बिताया करे तो हार खाने में कुछ भी सन्देह रहे? महात्मा गांधी के कारावास के बाद चर्चा की अपेक्षा काम की ओर हमारी प्रवृत्ति अधिक होनी चाहिए। पिछले ३० वर्ष की चर्चा से भारत को उतनी प्रगति नहीं हुई जितनी पिछले दो वर्षों के थोड़े से काम से हुई है। केवल चर्चा से यदि स्वराज्य मिल सकता होता तो पिछले ३० वर्ष क्या कम थे? स्वराज्य तो काम से, तप से और बलिदान से ही मिल सकता है। हम जी जान लड़ाकर खादी का प्रचार करें, निर्मम हो कर, हर तरह के कष्ट सहकर अपने निश्चय को पूरा करें और अपनी आत्मा को उच्च और पवित्र बनाते हुए बलिदान के लिए तैयार रहें—बस स्वराज बिना बुलाये दौड़ता हुआ चला आवेगा। चर्चा बहुत हुई, चर्वित चर्वण बहुत हुआ। अब काम का समय है। चर्चा के तूफान में कहीं पिछला किया काम मट्टी में न मिल जाय। घर घर जाओ, महासभा के सदस्य बनाओ। तिलक महाराज के स्मारक में स्वराज्य-कोष में चन्दा दो और दिलाओ। महासभा की शक्ति तुम्हारी सच्ची शक्ति है। यदि तुम्हें सचमुच स्वराज्य की चाह है, महात्मा गांधी के साथ प्रेम है, लोकमान्य के प्रति भक्ति है तो चर्चा कम करो, काम ज्यादह करो—अपनी सुस्ती से स्वराज्य को दूर न ढकेलो, दिनरात अधिक मिहनत कर के उसे पास बुलाओ।

जीवनचक्र

भाई मगनलाल खुशालचन्द गांधी 'नवजीवन' में लिखते हैं—

"जीवनचक्र नाम के एक के बाद एक तीन चरखे बम्बई के श्री पुरुषोत्तम-दास रणछोड़दास ने बनाये हैं। मैंने उन तीनों चरखों पर काम कर के देखा है। पिछला चरखा जिस पर पी. ए. चिह्न है, पसन्द करने लायक है। उसके द्वारा प्रायः पुराने चरखे के बराबर काम निकल सकता है। याद रखना चाहिए कि पुराने चरखे सभी एक से नहीं होते।

२फीट से कम व्यास वाले चक्र के चरखे से पूरा काम नहीं निकलता। बहुत बारीक सूत कातना हो तो व्यास और भी अधिक होना चाहिए। तथा दूसरे अंग भी उसके अनुसार भारी और मजबूत होना चाहिए। कितनी ही जगह ऐसे बेडौल चरखे चल रहे हैं जिनसे सूत बहुत कम निकलता है और यह देख कर लोग चरखे की शक्ति पर सन्देह करने लगते हैं। नवीन ईजाद हुए चरखों में अभीतक ऐसा कोई चरखा नहीं बना है जो पुराने पूरे नाप के मजबूत चरखे की बराबरी कर सकता हो।

पी. ए. जीवनचक्र की मजबूती के सम्बन्ध में अभी परीक्षा होना बाकी है। उसके अलग अलग हिस्से अलहदा भी मिल सकते हैं; क्योंकि वे सब एक नाप के हैं। कद छोटा है। शहरों के लिए जहां जगह की तंगी होती है, खास तौर पर उपयोगी है। कीमत ७) से घटाकर ६॥) कर दी गई है।"

ग्राहकों को सूचना

'हिन्दी नवजीवन' का प्रथम वर्ष आगामी १८ अगस्त को खतम हो जाता है। अतएव जिन ग्राहक-भाइयों का वर्ष 'हिन्दी-नवजीवन' के वर्ष के साथ ही शुरू होता है वे कृपा कर के आगले साल का चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा बिना भूले, भेज दें। वी. पी. भेजने का रिवाज इस दफ्तर में नहीं रक्खा गया है।

व्यवस्थापक हिन्दी नवजीवन

अहमदाबाद

दिव्य जन्म-कर्म

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

हिन्दी नवजीवन

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष १] [अंक ५२

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, भाद्रपद बदी ५, संवत् १९७९
रविवार, सायंकाल, १३ अगस्त, १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

पिछला वर्ष

पिछले जून के अन्त की बात है। महात्माजी बम्बई में थे। महासभा ने निश्चय किया था कि ३० जून तक १ करोड रुपया तिलक-स्वराज्य-कोष में जमा हो जाना चाहिए। बम्बई में उत्साह का तूफान उमड रहा था। बरसात की बढी हुई नदियों की तरह उसका हृदय आशा, अभिमान और गौरव से फूला नहीं समाता था। उसको वैभव बस देखते ही बनता था। महात्माजी केवल बम्बई में ही नहीं, सारे भारत में जीवन-अमृत का छिडकाव कर रहे थे। राष्ट्र की पहली परीक्षा का समय था। स्वराज्य की पहली किरणें देखने के लिए भारत का हृदय उछल रहा था। महात्माजी के विराट् रूप का उदय वेग के साथ हो रहा था। बम्बई स्वराज्य-संग्राम की गति-विधि का केन्द्र बन रहा था। महात्माजी को दम मारने की फुरसत नहीं थी।

इसी समय इन पंक्तियों के लेखक के हृदय में भी भारी तूफान उठ रहा था। राष्ट्र-कर्तव्य, अन्तरात्मा की पुकार, एक ओर खींच रही थी, दुनियादारी का भार दूसरी ओर घसीट रहा था। कोई अज्ञात शक्ति बार बार हृदय में स्फूर्ति और बल का संचार करती थी। अन्त को, पिछले कितने ही अवसरों की तरह, अन्तरात्मा की विजय हुई। मैंने महात्माजी को बम्बई पत्र लिखा कि मैं मध्यप्रान्त से 'यंग इण्डिया' का हिन्दी-संस्करण निकालना चाहता हूं। आप श्री सेठ जमनालालजी से आरम्भ के लिए कुछ सहायता दिला दीजिए। सेठजी भी उन दिनों बम्बई ही थे। वे पहले ही से उत्सुक थे। महात्माजी ने मुझे अहमदाबाद रह कर काम करने की आज्ञा की। स्वयं महात्माजी के सम्पादकत्व और सेठ साहब के प्रकाशकत्व में पिछली १८ अगस्त को 'हिन्दी-नवजीवन' का जन्म हुआ।

अगस्त महीना भारत के राष्ट्रीय पुनरुद्धार के इतिहास में अमर और पवित्र हो गया है। इसी महीने के आरंभ में भारत के एक सेनापति ने अपनी जीवन-लीला समाप्त की और दूसरे को अपना कार्य-भार सौंपा। इसी महीने में भारत ने अपने जन्म-सिद्ध स्वदेशी-धर्म के रहस्य को समझने और उसके परिपालन करने का बीडा उठाया। पिछले साल पहली अगस्त को बम्बई में जिन लोगों ने विदेशी कपडों के पहाड की होली और खादी का सफेद समुद्र देखा होगा उन्हें भारत के निकट भाग्योदय में जरा भी सन्देह नहीं रह सकता था। इसी ऐतिहासिक मास में जन्म लेकर 'हिन्दी नवजीवन' हिन्दी-संसार की सेवा के लिए स्वराज्य-संग्राम के मैदान में बडी आशा और उमंग के साथ आगे बढा।

देश एक वर्ष में स्वराज्य स्थापित करने का प्रण कर चुका था। सेनापति सेना और साज-सामान की तैयारी में लगे। 'यंग इंडिया' के द्वारा अंगरेजी पढे समाज तक और 'नवजीवन' के द्वारा अपने गर्वी गुजरात को वे अपना संदेश भेज ही रहे थे। अब 'हिन्दी नवजीवन' हिन्दी-संसार तक असहयोग आन्दोलन की आवाज पहुंचाने लगा। उसके पहले अंक में ही महात्मा जी ने लिखा था कि "शान्तिमय असहयोग का प्रचार ही इसका उद्देश समझना चाहिए। हिन्दुस्तानी भाषा जानने वाले जबतक असहयोग और शान्ति के सिद्धान्त भली भांति न समझ लेंगे तबतक शान्तिमय असहयोग की सफलता असम्भव सी है। इसलिए 'हिन्दी-नवजीवन' की आवश्यकता थी। परमात्मा से प्रार्थना है कि जो लोग केवल हिन्दुस्तानी ही समझते हैं उन्हें 'हिन्दी नवजीवन' मददगार हो।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत के इस राष्ट्रीय संग्राम में 'हिन्दी नवजीवन' का क्या स्थान हो सकता है।

पिछले वर्ष में इस संग्राम-सागर में किस किस प्रकार से ज्वार-भाटा उठा, और इस समय तक उठ रहा है, किस तरह से निरंकुश सरकार ने बोलने, लिखने और सभा करने की आजादी पर पदाघात कर के भारत की गर्दन मरोडने का प्रयत्न किया, किस तरह भारत के वीर पुत्रों और नेताओं ने उसकी ललकार पर डट कर घृणित और नारकी जेलों को महल और स्वर्ग से बढकर पुण्यभूमि बना दिया, भारत में रामराज्य सिद्ध करने के लिए नौकरशाही ने किस तरह शाहजादे को बुलाने की चाल चली और राष्ट्र ने उसका कैसा मुंहतोड जवाब दिया, नौकरशाही के पुतले देखकर हक्का-बक्का रह गये, किस प्रकार अहमदाबाद की ऐतिहासिक महासभा में स्वराज्य की झांकी देश को दिखाई दी, और अन्त में चौरी-चौरा के हिंसाकाण्ड को अपनी सेना की गुप्त कमजोरी और कम तैयारी का लक्षण अनुभव कर के हमारे सेनापति ने किस तरह 'ठहरो!' का हुक्म दिया, और इस घात को पाकर बुजदिल नौकरशाही ने उन्हें कैद कर के किस

प्रकार अपनी कायरता और दीनता का परिचय दिया, वे बातें प्रत्येक स्वराज्य-प्रेमी के हृदय पर सदा के लिए अंकित हो गई हैं। अब प्रश्न यह है कि अपने अंक के अनुसार भारत में स्वराज्य स्थापित किया या नहीं ? सो स्वराज्य तो भारत के पुरुषार्थ पर अवलम्बित था। जितना पराक्रम उसने दिखाया उतना स्वराज्य का तेज उसे दिखाई दिया। फिर भी हमारी जड़ दृष्टि को आज चाहे बूढ़े ठैयों की तरह स्वराज्य न दिखाई देता हो; पर अन्तर्दृष्टि ने तो स्वराज्य की आत्मा को उसी दिन प्रतिष्ठित देख लिया जिस दिन भारत के दिल से इस नौकरशाही का रौब-दाब उठ गया, उसके कोरोनुस्न का भय भाग गया। आज भारत में जो जीवन, जो जागृति, जो चैतन्य, जो निर्भयता, जो तप और त्याग की तैयारी दिखाई देती है, वही स्वराज्य का उषःकाल है, वही स्वतन्त्रता-मन्दिर का सुनाई देने वाला घण्टानाद है।

आज बारडोली के रचनात्मक कार्यक्रम पर कहीं कहीं से शंका-कुशंकायें की जा रही हैं, तर्क-वितर्क हो रहे हैं, उसके सम्बन्ध में कारागार-स्थित महात्मा की बुद्धिमत्ता पर सन्देह प्रकट किया जा रहा है, बाज बाज बहादुर तो असहयोग आन्दोलन के मर जाने का भी ढिंढोरा पीटते हैं, पर इनमें कोई बात अनहोनी नहीं है, अफसोस करने लायक नहीं है, निराश होने योग्य नहीं है। ईश्वर हमें स्वावलम्बन का सबक सिखाना चाहता है। वह भारत को अपनी कमाई की रोटी देना चाहता है, गांधीजी की कमाई रोटी नहीं। वह जनता को जनता का स्वराज्य दिलाना चाहता है, महात्मा गांधी का दान नहीं। उसने जनता को अपना स्वराज्य लेने का अवसर दिया है। गांधीजी का दिया स्वराज्य गांधी-राज होता, जनता-राज नहीं। अतएव जनता अपने स्वावलम्बन का, अपने पुरुषार्थ का परिचय दे और स्वराज्य ले। यही बारडोली के रचनात्मक कार्यक्रम का रहस्य है, सन्देश है।

महात्माजी का वियोग सारे देश के लिए असह्य हो रहा है। 'हिन्दी नवजीवन' के तो वे पालक ही थे। १८ अगस्त को हिन्दी-नवजीवन का जन्म हुआ। १८ मार्च को वह अनाथ-सा हो गया ! वह 'हिन्दी-नवजीवन' के लिए कोई ऐसा-वैसा आधार नहीं था। महात्माजी उसके जीवन थे। उनके समय में यद्यपि 'हिन्दी नवजीवन' में केवल 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' का अनुवाद रहा करता था तथापि छः ही महीने में वह १२ हजार छपने लग गया। हिन्दी के समाचार-पत्रों के इतिहास में इतनी शीघ्र लोकप्रियता का यह पहला ही उदाहरण है। आज तो उनके पवित्र उपदेश, दिव्य सन्देश, उनका उज्ज्वल और तपोमय पुरुषार्थी जीवन, उसका आधार है। उनका शरीर यद्यपि जेल में है तथापि उनकी छत्रच्छाया से आज भी उसे जीवन मिल रहा है। वे हिन्दुस्तानी भाषा को बड़ा प्यार करते हैं। उसे भारत की राष्ट्र-भाषा स्वीकृत कराने में वे अग्रसर थे। हिन्दी-भाषी भाई-बहनों ने भी 'हिन्दी-नवजीवन' का भरसक आदर किया। इस समय भी वे 'हिन्दी-नवजीवन' को महात्माजी के हिन्दी-प्रेम का स्मारक मानते हैं और कृतज्ञता-भाव से 'हिन्दी-नवजीवन' का प्रचार करना अपना धर्म समझते हैं। 'हिन्दी-नवजीवन' ने स्वराज्य-संग्राम में देश की क्या सेवा की, यह कहने का अधिकार उसे आज नहीं है। वह तो यही विश्वास दिला सकता है कि "जब-तक हरएक हिन्दी-भाषी भाई-बहन के घर में पैठ कर मैं शान्तिमय स्वराज्य-संग्राम का सन्देश नहीं पहुँचा सकता—नहीं, जबतक उनके प्रयत्न से स्वराज्य की मूर्ति को मैं प्रत्यक्ष नहीं देख सकता, खिलाफत के अन्याय का परिमार्जन नहीं करा लेता, पंजाब की अपराधी का प्रायश्चित्त आततायियों से नहीं करा लेता, तबतक मुझे कभी चैन नहीं पड़ सकता। मेरे जीवन का उद्देश तो तभी पूर्ण हो सकता है।" परमात्मा उसे आशीर्वाद दें, प्यारे पाठक उसे आश्वासन दें,—"चिन्ता न कर ! तेरा मनोरथ शीघ्र सफल होगा !"

महात्माजी के तीनों पत्रों में विज्ञापन नहीं लिये जाते हैं। महात्माजी यह प्रयोग करना चाहते हैं कि बिना विज्ञापन की आमदनी प्राप्त किये केवल पाठकों की गुण-ग्राहकता पर कोई पत्र चलाया जा सकता है या नहीं ? जिस हद तक अपना खर्च चलाने के लिए समाचार-पत्रों को विज्ञापन की आमदनी पर दृष्टि नहीं रखना पड़ता उस हद तक वह पाठकों की गुण-ग्राहकता का ही परिचायक है। दूसरे, वे घाटी उठा कर भी अपने किसी पत्र को चलाना नहीं चाहते। उनका मत है कि वही संस्था या पत्र जीवित रहने का अधिकारी है जिसकी जरूरत राष्ट्र को या जन-समाज को है। राष्ट्र या समाज जिसे चाहता है, वह न तो मर सकता है न निराश हो सकता है। इस तरह 'हिन्दी-नवजीवन' एक तरह से तलवार की धार पर चल रहा है। पर एक ओर जहाँ महात्माजी का तपोबल और पुण्य उसको जीवन-दान करता है तहाँ दूसरी ओर हिन्दी-पाठकों की कृतज्ञता, गुण-ग्राहकता, हिन्दी-प्रेम, और स्वराज्य-भक्ति उसके उत्साह का आधार है।

इस अवसर पर 'हिन्दी-नवजीवन' का हृदय अपने उन मित्रों तक दौड़े बिना नहीं रह सकता जो आज यरवडा और साबरमती के जेलों में स्वराज्य-साधना कर रहे हैं। 'हिन्दी-नवजीवन' के मुद्रक भाई श्री शंकरलाल जी बैंकर और भाई जयकृष्ण प्रभुदास भणसाली की याद उसे आ रही है। स्वामी श्री आनन्दानन्द की आनन्द-मूर्ति को तो वह अपने चित्त से हटा ही नहीं सकता। वे यदि उसकी व्यवस्था का भार न उठाते तो १८ अगस्त को 'हिन्दी नवजीवन' का प्रकाशित हो जाना कठिन था।

अन्त में 'हिन्दी नवजीवन' अपने उन हिन्दी, अंगरेजी, आदि सहयोगी पत्र-पत्रिकाओं को धन्यवाद देता है जिन्होंने उसके प्रचार में और शान्तिमय असहयोग के भावों को फैलाने में तरह तरह से उसकी सहायता की है।

नया टाईप तो पिछले ही अंक से लगा दिया गया है। नया और अच्छा कागज भी नये वर्ष से पाठकों को दिखाई देगा।

पाठकों की सुविधा के लिए इस अंक के साथ 'हिन्दी-नवजीवन' के लेखों और टिप्पणियों की सूची भी दी जाती है।

अगले वर्ष के लिए इसी समय क्या कहा जाय ? हां 'हिन्दी नवजीवन' पाठकों को यह विश्वास अवश्य दिलाता है कि वह स्वराज्य के लिए जीयेगा, स्वराज्य के लिए मरेगा और सच्चे हृदय से महात्माजी का पदानुसरण करेगा। हिन्दू-मुसलमान की एकता और खिलाफत की मुक्ति उसे स्वराज्य की ही तरह प्रिय है। जबतक महात्माजी का शरीर आजाद था तबतक वे खुद वर्तमान आन्दोलन के सूत्रधार थे। अतएव वे हर तरह से देश को सच्ची और सीधी राह पर ले जा सकते थे। पर आज तो उनके सिद्धान्त, उनके सन्देश ही प्रधानतः हमारे बेली हैं। अतएव उनके संपूर्ण ज्ञान और प्रचार के ही बलपर इस अपूर्व शान्ति-संग्राम में हमें विजय प्राप्त हो सकती है। 'हिन्दी-नवजीवन' का कर्तव्य होगा कि वह उन सिद्धान्तों के रहस्यों को विशद करे और अपने पाठकों की बौद्धिक और मानसिक कठिनाइयों को, उलझनों को, दूर करते हुए उन्हें निश्चय और उत्साह के साथ स्वराज्य-मार्ग में प्रवृत्त करे।

इस तरह भूतकाल की स्मृति से स्फूर्ति प्राप्त करके भविष्य के आशामय अभिवचनों पर विश्वास करते हुए 'हिन्दी-नवजीवन' वर्तमान की घड़ियों में लीन होता है। प्रभु उसके सिर पर अपना वरद हस्त रक्खें।

हरिभाऊ उपाध्याय

दिव्य जन्म-कर्म

हम चाहे सुखी हों या दुखी, जगते हों या सोते हों, स्वतन्त्र हों या परतन्त्र, जालिम हों या गुलाम, झगड़ालू हों या मिलनसार, जन्माष्टमी तो हर साल आये बिना नहीं रह सकती। जिस प्रकार सूर्य उगता है और डूबता है, चन्द्र की वृद्धि होती है और क्षय होता है, नदी का पानी बहता जाता है, ऋतु-चक्र चलता ही रहता है, ग्रहण लगते और छूटते हैं, काल-प्रवाह बहता रहता है उसी प्रकार जन्माष्टमी नामस्मरण करती हुई आती है और नामस्मरण करती हुई जाती है। जब हम आज़ाद थे तब भी जन्माष्टमी आती थी, जब हमारा पतन शुरू हुआ तब भी वह आती थी। अब जब कि हम फिर से उठने की कोशिश कर रहे हैं तब भी जन्माष्टमी आई है—नामस्मरण करती हुई आई है। उसका उपदेश चाहे आप सुनें या न सुनें, वह तो जरूर ही आवेगी और जावेगी। जो ध्यान देगा वह उसका उपदेश सुनेगा और धन्य होगा।

जन्माष्टमी पुरातन है, सनातन है, फिर भी नित्यनूतन है। क्योंकि वह सम्पूर्ण है। जन्माष्टमी कृष्णावतार का त्योहार है। कृष्णचरित्र अद्भुत है, विविध है और संपूर्ण है—क्षीर-सागर की तरह है। जिसके पास जितनी ताकत हो उतना वह लेकर पी सकता है। लेकिन कोई यह नहीं कह सकता कि मैंने श्रीकृष्ण चरित का पार पा लिया है।

* * *

श्रीकृष्ण का जन्म कारावास में हुआ। माता-पिता के वियोग में उन्हें अपना बालपन बिताना पड़ा। गोपियों के साथ विविध लीलायें खेलने में वे मगन रहते थे। पुराणकारों ने उनका ऐसा चित्र हमारे सामने उपस्थित किया है। परन्तु अपनी माता, अपने पिता, दूसरे के राज्य में कैदी हैं, यह बात श्रीकृष्ण भूले न थे। श्रीकृष्ण ने अपना सारा बालपन गोपियों के बीच बांसुरी की तानें छेड़ने में नहीं बिताया। कसरत कर के वे मल्लविद्या में प्रवीण हुए थे। दुष्टों के दमन करने का पदार्थ-पाठ उन्होंने लड़कपन से ही सीखा था। मथुरा की राजनैतिक गतिविधियों की वे हमेशा खबर रखते थे। अनुकूल समय देख कर उन्होंने कंस को दण्ड दिया, अपने माता-पिता को छुड़ाया और उसके बाद गुरु के यहां विद्या सीखने गये। उन्होंने उस विद्या को पहले सीखा जिससे उनके माता-पिता की मुक्ति हुई। उसके बाद वे आत्मा की भूख मिटाने, ज्ञान खुशाने और विद्यानन्द में निमग्न होने के लिए सांदीपनि के विद्यापीठ में गये। पहले माता-पिता की मुक्ति, फिर विद्या—यह श्रीकृष्ण का जीवन-मन्त्र था। श्रीकृष्ण को इस बात का किसी समय भी पश्चाताप न हुआ कि मुझे माता-पिता की मुक्ति के लिए, स्वदेश की मुक्ति के लिए, अपनी जवानी के दिन व्यतीत करना पड़े। कर्तव्य-पालन के उत्साह से श्रीकृष्ण की बुद्धि इतनी तीव्र हो गई थी कि गुरु के समीप विद्या संपादन करते हुए उन्हें न तो मेहनत ही पड़ी और न समय ही लगा। पहले माता-पिता को छुड़ाया, विद्या समाप्त की, गुरु को दक्षिणा दे दी, फिर श्रीकृष्ण ने शादी की और विवाह के उपरान्त सारी जिन्दगी निरासक्त हो कर परोपकार में लगाई। जब दूसरे सब लोग अपने अपने राज्य का और उत्कर्ष का विचार कर रहे थे तब श्रीकृष्ण सारे भारतवर्ष की राजनीति का और धर्म-संस्थापना का विचार कर रहे थे। 'लोक-संग्रह' का अर्थ श्रीकृष्ण 'लोगों की संख्या का संग्रह' नहीं करते थे। और इसीलिए उन्होंने भयंकर मनुष्य-संहार को देखते हुए भी धर्म पर ही दृढ़ रहने की हिम्मत दिखलाई और स्वयं अनुपम मल्ल होते हुए भी और वश में इतने सारी राष्ट्र-व्यापकारी युद्ध के छिड़ते हुए भी वे अचल और अनुत्तेजित रह सके। जिस समय दुर्योधन और अर्जुन दोनों श्रीकृष्ण के पास मदद मांगने के लिए आये उस समय उन्होंने उन दोनों राजपुत्रों के सामने जो पसन्दगी रक्खी वह अर्थ-पूर्ण है—या तो निःशस्त्र श्रीकृष्ण को पसन्द करो या यादव सेना को पसन्द करो। दोनों ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार पसंदगी कर ली और उसका परिणाम जो हुआ वह हमारे सामने ही है।

* * *

भारतीय युद्ध महान् था; पर कृष्णचरित्र तो उससे भी महत्तर है। महाभारत में गौरीशंकर और धवलगिरि के सदृश दो प्रचण्ड शिखर चमकते हैं। इन दोनों के मुकाबले में दूसरे अनेक उत्तुंग शिखर छोटी पहाड़ी की तरह दिखाई देते हैं। ये दो शिखर कौन हैं? भीष्म और कृष्ण। उस महान् युद्ध में 'कर्तुम् अकर्तुम्' और 'अन्यथा कर्तुम्' शक्ति इन दोनों की ही थी। दोनों एक ही से अनासक्त, एक ही से धर्मनिष्ठ, एक ही से परोपकारी और एक ही से योगी। फिर भी दोनों में कितना अन्तर! दोनों का समाज-शास्त्र भिन्न, दोनों का राजनीति-दर्शन भिन्न, और दोनों के जीवन का कर्तव्य भी भिन्न। भीष्म का विचार था कि प्रचलित राज्य-व्यवस्था कायम रक्खी जाय, उसीके द्वारा जितना हो सके, समाज का हित-साधन किया जाय और वर्तमान काल के प्रति वफादार रहा जाय। श्रीकृष्ण अन्याय के शत्रु, पाप-पुञ्ज के अग्नि और रूढ़ी-राक्षसी के विध्वंसक थे। राजनैतिक मामलों में जहां भीष्माचार्य धारा-नीति का अनुसरण करते थे तहां श्रीकृष्ण हरएक पुराने सड़े-गले धारा-नियम की लाश को गाड़ देने पर कटिबद्ध थे। इसलिए भीष्माचार्य ने सत्ता का पक्ष लिया और श्रीकृष्ण ने सत्य का।

समाज-शास्त्र की सीमा में भी दोनों में यही भेद था। भीष्माचार्य कहते—"राजा कालस्य कारणम्—जैसा राजा बनावे वैसा जमाना"। श्रीकृष्ण कहते—"राजा कहां का जमाना बनाने चला? जमाना तो मैं खुद ही हूं और प्रत्येक रूढ़ी का नाश करने के लिए मैंने अवतार पाया है—"कालोऽस्मि लोकक्षय कृत्प्रवृद्धः"। भीष्माचार्य हमेशा धर्मशास्त्र से दबे रहते थे और धर्मशास्त्र की आज्ञाओं की रक्षा करना ही सम्पूर्णता मानते थे, तहां श्रीकृष्ण धर्म की आज्ञा के मूलभूत धार्मिक रहस्य को समझ कर उसपर दृढ़ रहते थे।

* * *

फिर भी कितना आश्चर्य! भीष्माचार्य ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके भारतवर्ष में राज्यक्रान्ति होने दी और जिस समाज-व्यवस्था पर दृढ़ रहना वे चाहते थे उसीका उच्छेद उन्होंने भारत-युद्ध द्वारा किया। श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा-भंग कर के अपने भक्त के प्राण बचाये और भीष्म को जस दिया।

* * *

शरीर जिस प्रकार अनेक नये नये वस्त्रों को धारण करता है, आत्मा जिस प्रकार नये नये देह धारण करती है, उसी प्रकार धर्म की सनातन आत्मा भी नई नई विधियों को खोजे बिना नहीं रह सकती। जन्माष्टमी हमें यह सिखलाती है कि 'जब इन्द्र की पूजा में कुछ सार न रह जाय तब गोवर्धन की ही पूजा करनी चाहिए और यज्ञ-यागादि के झमेले की अपेक्षा श्रीकृष्ण की शरण जाना ही अधिक श्रेयस्कर है।'

श्रीकृष्ण का चरित्र अभी हमने ध्यान-पूर्वक देखा नहीं है। श्रीकृष्ण की बालपन की लीलायें और बड़े होने के बाद का चमत्कार-कार्य, इतने मनोमोहक और उदात्त हैं और हम श्रीकृष्ण को अवतार मान कर इतने आश्चर्य-मूढ़ हो गये हैं कि

ऐसे पुरुषोत्तम के इस जीवनक्रम की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता जो उसने आदर्श पुरुष के रूप में बिताया था। आजतक हमने जिन नररत्नों के चरित्र पढ़े अथवा देखे हैं उनसे श्रीकृष्ण का चरित्र भिन्न दिखाई देता है। लड़कपन में छींके से उतार कर माखन का चोरी आस्वादन को लगाने के बाद हल, डर से कि यशोदा-माता पकड़ लेंगी, घबराये हुए श्रीकृष्ण की नाटकी लीला को छोड़ दें तो उनके सारे जीवन में दुःख या भय का नामोनिशान कहीं भी नहीं दिखाई देता। उनका सारा जीवन विविध घटनाओं से परिपूर्ण होते हुए भी श्रीकृष्ण किसी समय किंकर्तव्यमूढ न हुए, दुःख से दब नहीं गये और उदासीनता से शिथिल नहीं हुए। जिसे किसी प्रकार की आसक्ति ही नहीं वह उदासीन क्यों होने लगा? जो ब्रह्मानन्द को जानता है वह किसलिए डरे? जो सर्व भूतों में अपनी ही आत्मा को देखता है उसके मन में राग या द्वेष या जुगुप्सा कहां से हो सकती है? यही श्रीकृष्ण का पूर्णत्व है। श्रीकृष्ण को एक ब्राह्मण ने लात मारी। उन्होंने उसे एक अलंकार की तरह धारण किया। गांधारी ने उन्हें घोर शाप दिया। श्रीकृष्ण ने उसे अपने अवतार-कार्य का सहायक समझ कर, उसका स्वागत किया। अभिमन्यु मारा गया, घटोत्कच मारा गया, द्रौपदी के पुत्रों का वध हुआ, अठारह अक्षौहिणी सेना का नाश हुआ, महान् महान् आचार्य हताहत हुए, यादव-कुल का संहार हुआ, परन्तु श्रीकृष्ण ज्यों के त्यों, अविचल, गंभीर महासागर बने रहे!

* * *

भारतीय युद्ध में संग्राम-भूमि पर घायल हुए हजारों मुमूर्षु योद्धा खून के कीचड़ में लथ-पथ हो रहे हैं और उनके बीच श्रीकृष्ण की कारुण्य-मूर्ति प्रत्येक के सिर पर अपना शीतल वरद हस्त रख रही है, ऐसा चित्र कोई समर्थ चित्रकार चित्रित कर सकता है? अन्तिम समय पर श्रीकृष्ण का दर्शन! जिस जमाने को यह अहोभाग्य प्राप्त हुआ वह जमाना धन्य है! उस काल के कवियों ने इस भाव के गीत गाये होंगे—"मरणोन्मुख वीरों का है यह मुरलीधर मोहन विश्राम।"

* * *

भारी संकट को देख कर मैदान में सामने आना अथवा अकेले ही सारे संकट को उठा लेना; और जब राज्य-वैभव अथवा कीर्ति प्राप्त होने का समय हो तब लज्जावती वधू की तरह पीछे रहना, यह श्रीकृष्ण का स्वभाव कितना उदात्त-मधुर है! गोकुल में जितने राक्षस आये उन सबको श्रीकृष्ण ने खुद मारा। जब यमुना में कालिनाग आ कर रहा और सारे वृन्दावन में उसने लोगों को त्राहि त्राहि कर दिया तब श्रीकृष्ण बिना अपने प्राणों का विचार किये कदम्ब के पेड़ से उस संकट के कालीदह में कूद पड़े। सब ग्वाल-बाल डरे। कितने ही घर की ओर दौड़े; कितने ही मूढ होकर काठ की तरह वहीं चिपक रहे। किसीको कुछ न सुझाई दिया। अकेले श्रीकृष्ण ने कालिय के साथ युद्ध किया, उसे हराया, नमाया, और जीवदान देकर छोड़ दिया। कंस-वध में भी सब से आगे बढ़े और जरासन्ध वध में भी अग्रसर रहे। जहां जहां संकट वहां वहां खुद हाजिर।

* * *

इन्द्र ने जब प्रलय-काल के बादल भेजे तब भी श्रीकृष्ण ने गोवर्धन उठाकर प्रजा की रक्षा की। पर उसके साथ प्रजा को यह भी नसीहत दी कि जब हरएक शख्स गोवर्धन उठाने में मदद देगा तभी प्रभु श्रीकृष्ण अपनी उंगली उठावेंगे। शक्ति परमात्मा की, पर प्रयत्न तुम्हारा।

* * *

जन्माष्टमी के दिन हम श्रीकृष्ण से क्या मांगें? प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार मांग ले। पांडवगीता में यह बताया गया है कि भारतकालीन प्रधान व्यक्तियों ने श्रीकृष्ण से क्या क्या मांगा था। कृपण कृपण की तरह मांग लेता है, भक्त भक्त-हृदय से मांग लेता है, अभिमानी अपने अभिमान के लायक वचन निकालता है और अपना पाप भी परमात्मा पर ढकेल देता है। पर यदि मांगना हो तो हमें वीरमाता, धर्ममाता, तपस्विनी कुन्ती ने जो मांगा है वही मांगना चाहिए। भागवत में कुन्ती की प्रार्थना बड़े ही सुन्दर शब्दों में की गई है। कुन्ती माता कहती हैं, "हे भगवन्, मुझे उस वैभव की जरूरत नहीं, जिसमें मैं तुझे भूल जाऊं। तू तो हमें ऐसी विपत्ति दे जिससे तेरा स्मरण रहे, तेरा चिन्तन हो, शरणागतता बढ़े। भगवन् हमें तू आपत्ति दे—आपदः सन्तु नः शश्वत्।

क्योंकि,—विपदो नैव विपदः संपदो नैव सम्पदः।
विपद्विस्मरणं विष्णोः संपन्नारायणस्मृतिः॥

परमात्मा को भूल जाना ही मेरा संकट और नारायण का अखंड स्मरण रहना ही मेरी सम्पत्ति, वही मेरा वैभव, वही श्रेय-प्रेय, वही स्वराज्य, स्वाराज्य और साम्राज्य है।"

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

शुभागमन

२९ जुलाई के बजाय देश-बन्धु चित्तरंजन दास ११ अगस्त को छोड़ गये। देश उनका स्वागत बड़े आदर और उत्साह के साथ कर रहा है। जिस प्रकार लोकमान्य के वियोग के बाद महात्माजी की ओर देखकर देश दारस हुआ उसी प्रकार महात्माजी के वियोग के बाद वह देश-बन्धु की ओर टकटकी लगाये है। देशबन्धु भी आज अपने इस गुरुतर भार को अनुभव कर रहे होंगे। पिछली और शायद अगली दोनों महासभाओं के मनोनीत सभापति देशबन्धु को लिए देश के भाग्य को बनाने का यह अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ है। अपने सर्वस्व तक को तिलाञ्जलि दे कर स-पुत्र छः मास जेल के कष्टों को सहकर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि वे सांसारिक मोहों और संकटों से परे हैं। कारावास होने के पहले के उनके उन सन्देशों को, उन उद्गारों को जिन्हें पढ़ कर दिल मस्त हो जाता है, नसों में बिजली दौड़ने लगती है, जिन्होंने पढ़ा या सुना है वे उनकी उन्मत्त देशभक्ति और भावुकता के कायल हुए बिना नहीं रह सकते। गृहस्थ होते हुए भी देशबन्धु संन्यासी हैं। ऐसे संन्यासी ही भारत के नेता हो सकते हैं, इस शान्तिमय संग्राम के सेनापति हो सकते हैं। यरवडा जेल के संन्यासी के स्थान की पूर्ति का यह सुन्दर अवसर इस दूसरे संन्यासी के लिए प्राप्त हुआ है। देश को उनसे पूरी पूरी आशा है कि वे उसके बिखरे हुए बल को एकत्र करेंगे, गुमराह हो जाने वालों को सीधे रास्ते पर लावेंगे, और जिस प्रकार महात्माजी एक निष्ठ होकर अनन्य भाव से अपना निजी काम समझ कर—एकमात्र जीवन-कर्तव्य मान कर स्वराज्य की लड़ाई लड़ रहे थे उसी प्रकार देशबन्धु भी देश की भाग्य-डोर अपने सुयोग्य हाथों में लेकर देश को इस छोर से उस छोर तक हिला डालेंगे और अंगरेज सल्तनत को दिखा देंगे कि वीरजननी भारत-माता की गोद कभी सूनी नहीं रह सकती—एक जाता है तो दूसरा उससे अधिक उत्साह, अधिक आशा, अधिक वेग, और अधिक बल के साथ देश की आजादी के झंडे को लेकर आगे बढ़ता है; ३० करोड़ लोगों की आजादी की व्याकुलता की बाढ़ को खुद ईश्वर भी चाहें तो नहीं रोक सकते।

हरिभाऊ उपाध्याय

विषयों की अनुक्रमणिका

लेख-सूची

महात्माजी लिखित

वर्तमान सम्पादक लिखित

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी लिखित

टिप्पणी-सूची

महात्माजी लिखित

वर्तमान सम्पादक-लिखित

फुटकर

पत्र और सन्देश

कविता

स्वराज्य की जड़

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका ,, -)
विदेशों के लिए वार्षिक ,, [illegible]

संस्थापक—**महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी** (जल में)

वर्ष २] [अंक १

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, भाद्रपद बदी १२. संवत् १९७९
रविवार, सायंकाल. २० अगस्त, १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

सुधारों का भाग्य !

कोई दो साल पहले अंगरेजी सरकार ने भारत के शासन में कुछ सुधार किये जो 'मॉटेगु-चेम्सफोर्ड सुधार' के नाम से मशहूर हैं। भारत यद्यपि उनसे असन्तुष्ट है, इन्हें धोखा मानता है, मायाजाल समझता है, तथापि अंगरेज नौकरशाही इतने से ही बिलबिला उठी। उसने पुकार मचाई कि भारत में हमारी हालत खतरनाक हो रही है। हमें बचाइए। उनकी चीख पर लाइड जार्ज का आसन डोल गया। उन्होंने कहा तुम बेफिक्र रहो। सुधारों से डरते क्यों हो? ये तो महज आजमाइश के तौर पर किये गये हैं। तुम्हारी मदद के बिना तो अंगरेजी राज हिन्दुस्तान में टिक ही नहीं सकता। हर हालत में तुम्हारी जरूरत तो रहेगी ही। साम्राज्य सरकार तुम्हारी तरफ है। हां, हिन्दुस्तानियों के सहयोग की भी हमें जरूरत है। क्योंकि उससे भारत पर हमारी हुकूमत ज्यादह मजबूत होगी। मैं जानता हूं कि कुछ लोग महज सरकार को दबाने या उसके काम को रोकने के लिए कौन्सिलों में घुसने की कोशिश कर रहे हैं। पर मैं कहे देता हूं कि उस हालत में सरकार तुम्हारी पूरी पूरी मदद करेगी। असहयोगियों को इस भाषण पर कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। वे अंगरेजी सरकार की मायावी लीलाओं को खूब समझ चुके हैं। उनकी चालबाजियों से तंग आकर ही उन्होंने उससे असहयोग प्रारम्भ कर दिया है। उन्होंने तो अंगरेजी सल्तनत के कानून को अच्छी तरह देख लिया है कि उसे जब गरज होती है, खुशामद होती है, तब उसके वजीरेआजम चिकनी-चुपड़ी बातें करके, झूठे दम-झांसे देकर हमको फुसलाकर अपना काम बना लेते हैं। बस "फोड़ा फूटा और बैद बैरी हुआ"। लड़ाई के जमाने में मुसल्मानों को चिकनी-चुपड़ी कर के तुर्कों से—भाई को भाई से—कटवा दिया। फतह होते ही आंखें बदल दीं। खिलाफत के वादे भूल गये। और अब सुधारों के लिए भी जनाब ने अपने दिल का जहर उगल डाला है। इसपर हमारे नरम भाई बिगड़ खड़े हुए हैं। उन्हें सुधारों से बड़ी बड़ी आशायें थीं। अंगरेजी सल्तनत उन्हें स्वर्ग का नमूना मालूम होता है। इन्हीं के लिए तो उन्होंने अपने भाइयों का साथ छोड़ कर सरकार का साथ दिया। अब उनकी सारी आशाओं पर बिजली टूट पड़ी। कहीं के न रहे। सुधारों को वापस ले लेने की छुपी हुई धमकी! अब मिसेज बेसेंट कह रही हैं, मैं ऐसा जानती तो हरगिज सरकार का साथ न देती। एक पक्के और भारी सहयोगी ने कहा है कि 'गांधीजी का ख्याल सच था। वे इस सरकार की तासीर को खूब समझ चुके हैं।' अब वे सभायें कर कर के, प्रस्ताव पास कर कर के विरोध और खेद जाहिर कर रहे हैं। धारा-सभाओं में प्रस्ताव पेश करने की तैयारियां हो रही हैं।

देश नरम भाइयों के स्वभाव से परिचित है। वह जानता है कि जहां लार्ड रीडिंग ने एक मीठा भाषण किया नहीं कि यह सारा नाटक खतम हुआ नहीं। मियां की दौड़ मसजिद तक। नरम भाइयों को जबानी विरोध के सिवा दूसरा रास्ता मालूम नहीं। सरकार भी उनकी इस कमजोरी को खूब जानती है। वह उससे नाजायज फायदा भी उठाती है। इस पर बाज लोग नरम भाइयों को पुरुषार्थहीन, कष्टों से डरने वाले, त्याग से जी चुराने वाले, कहते हैं। पर हमारे ख्याल में उनका स्वभाव ही सौम्य है। भारत के सौम्य गुण का उनमें अतिरेक हो गया है। सौम्यता कोई बुरी चीज नहीं। पर बेइज्जती सहते हुए, तेजोवध को देखते हुए, और घुड़कियों, चुनौतियों के दिये जाते हुए भी जब हमारी सौम्यता नहीं डिगती तब वह कमजोरी अवश्य मानी जाने लगती है। हमें इस अवसर पर अपने नरम-भाइयों के साथ हमदर्दी है। हम उनके इस स्वभाव में देश की अपरिमित हानि भले ही देखते हों पर हम उनकी देशभक्ति को विश्वास की दृष्टि से देखते हैं और पाठकों से भी यही सिफारिश करते हैं। यदि हम अपने व्रत पर कायम रहें—एक ओर नौकरशाही के पापों से असहयोग करते रहें और दूसरी ओर हमारे आपस में दलादली के दुर्भावों को छोड़ प्रेम बढ़ाते रहें तो एक दिन उन्हें अवश्य अपने सौम्य स्वभाव से घृणा हो आवेगी और वे हमसे बढ़ कर वर्तमान सरकार के शत्रु हो जायंगे।

इस मौके पर हम उन भाइयों को चेता देना चाहते हैं जो असहयोग के कार्यक्रम में परिवर्तन कराकर कौन्सिलों के लिए कमर कस रहे हैं। उनके लिए लाइड जार्ज का यही सन्देश है कि यदि सरकार के हाथ मजबूत करना हो—सरकार के मन्त्रों और विचारों की पुष्टि करना हो—तो आओ, तुम्हारे लिए कौन्सिल के दरवाजे खुले हैं। यदि सरकार को हैरान करना चाहते हो तो हमको असमर्थ मत समझना! सारी नौकरशाही तुम पर टूट पड़ेगी।

असहयोगियों का कर्तव्य स्पष्ट है। वे तो अपने मार्ग में बराबर कदम बढ़ाते चले जायं। सुधार जीत रहें या मर जायं— इससे कोई वास्ता नहीं। हमें तो भीमसेन की भूख लगी है। स्वराज्य के बिना वह नहीं बुझ सकती।

सविनय भंग समिति की यात्रा

मदरास प्रान्त का काम खतम कर के सविनय भंग समिति के सदस्यों ने बंगाल और आसाम की यात्रा की। वहां से बिहार में आये हैं और यह अंक पाठकों के हाथों में पहुंचने तक वे अपना दौरा खतम कर चुकेंगे। अपनी सारी यात्रा और जांच का फल पं० मोतीलालजी नेहरू ने कलकत्ते और पटने के भाषण में यह बताया है कि असहयोग आन्दोलन ज्यों का त्यों जीवित है। उसका तेज सारे भारत में छिटक रहा है। हां, उसके ऊपरी रूप में उतनी चमक-दमक नहीं दिखाई देती है; पर यह हालत तो जरूरत देख कर हमने जान-बूझ कर पैदा की है। कार्यक्रम में परिवर्तन का जिक्र करते हुए आपने फरमाया कि असहयोग के उसूल पर तो हम ज्यों के त्यों अटल हैं। असहयोग पर इतना विश्वास और उत्साह लोगों में है कि उसे बदलने की बात तो हम सोच तक नहीं सकते। हां, कार्यक्रम में कुछ छोटी-मोटी बातें इधर-उधर कर दी जायं तो इसमें कुछ बुराई नहीं है। क्योंकि समय की जरूरत को देख कर ऐसा करना नामुनासिब नहीं है। पटने में तो आपने यह भी फरमाया कि असहयोग मरा नहीं है, मर तो सहयोग रहा है। लार्ड जार्ज का व्याख्यान उसकी मौतको नजदीक ला रहा है।

हकीम अजमलखां साहब ने मुल्क में खादी के प्रचार पर सन्तोष प्रकट किया और हिन्दू-मुसल्मान-एकता को देख कर खास तौर पर खुशी जाहिर की।

समिति की रिपोर्ट भी लिखी जा रही है। समिति ने कलकत्ते में देशबन्धु दास से भी वर्तमान स्थिति पर चर्चा की। १०सितम्बर को तो हमारे जहाज की अगली गतिविधि की दिशा मालूम हो जाने की आशा हुई है। पर इसके लिए हमें तबतक हाथ पर हाथ धर बैठे रहना मुनासिब नहीं है। रचनात्मक काम को बराबर आगे बढ़ाते रहना चाहिए।

देशबन्धु का सम्मान

देशबन्धु दास को पाकर आम तौर पर सारा हिन्दुस्तान और खास कर के बंगाल खुशी के मारे फूल उठा है। मुल्क के हर एक हिस्से से खुशी और बधाई के तार उनके पास भेजे जा रहे हैं। कलकत्ते के दक्षिण भाग ने उनका सार्वजनिक रूप से स्वागत किया। कलकत्ते की म्युनिसिपैलिटी के कार्यवाहक अध्यक्ष श्री मल्लिक ने उन्हें अभिनन्दन पत्र पढ़ कर सुनाया। पं. मोतीलाल जी नेहरू ने कहा कि आज मुझे इतनी खुशी हो रही है कि यदि मुझे नाचना आता तो मैं नाच उठता। यों तो दास मेरे छोटे भाई हैं पर उनकी कुरबानी को देखते हुए वही मुझे बड़े भाई मालूम होते हैं। देशबन्धु आपको वही रास्ता दिखावेंगे जिससे आप स्वराज्य की लड़ाई में जल्दी कामयाब हों।

उत्तर में देशबन्धु ने कहा कि राजनीति से मेरा प्रेम नहीं है। मैं तो सत्य और धर्म का भक्त हूं। इनका प्रवेश महासभा में होने पर मैं उसमें अधिक रस लेने लगा। मैं अंगरेजों का दुश्मन नहीं। उनकी और हमारी सभ्यता, संस्कृति जुदी जुदी है। हम अपनी सभ्यता और संस्कृति पर अड़े रहना चाहते हैं। हम साम्राज्य की नींव में सत्य को स्थापित करना चाहते हैं।

सारे कलकत्ते की ओर से अभिनन्दन पत्र देने का आयोजन भी हो रहा है। प्रसिद्ध खादी-भक्त डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय इसके अगुआ हैं।

देशबन्धु ने बंगाल के वकीलों को वकालत शुरू करने की अनुमति नहीं दी है। पर जिन लोगों ने गुजर के लिए वकालत शुरू की है, उन्हें बुरा भी नहीं कहना चाहते। देशकी स्थिति का अध्ययन-मनन करने के बाद उस पर वे अपनी राय प्रकट करेंगे। यह उचित भी है। उन्होंने दाढ़ी बढ़ाई है और फिर से वकालत करने की अफवाह पर कहा है कि ऐसा सोचना हास्यास्पद है।

गुलामी का फेर

'हिन्दी-नवजीवन' के एक पिछले अंक में सरकारी नौकरों के सम्बन्ध में टीका-टिप्पणी करते हुए लिखा गया था—"गुलामी की जंजीर में इस तरह जकड़े हुए मनुष्य से क्या आशा की जाय? पर हम देखते हैं कि वह हृदय बिल्कुल मरुभूमि नहीं हो गया है। यह दुष्टता भरे कठोर हृदय से निकला हुआ सवाल नहीं है। वह तो गुलामी से पददलित किये गये दुर्बल-हृदय की दीनता का, लाचारी का, परिचायक है। मातृभूमि की सेवा करने की कामना उनके हृदय से नष्ट नहीं हुई है। हां, दलित जरूर हो गई है। और मौका पाते ही वह अपनी पूर्ति के लिए फिर उदित होती है।" इसके बाद हमे एक धर्म और देश-प्रेमी सज्जन का पत्र मिला है। उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है। उससे पूर्वोक्त उद्गारों की पुष्टि भलीभांति होती है।

"हिन्दी-नवजीवन को पढ़ कर मुझे जो आनन्द प्राप्त होता है उसके लिए मैं उसका ऋणी हूं। उसमें अक्सर जो धार्मिक रहस्य से भरे लेख पढ़ता हूं उनको पढ़ कर तो उसके प्रति भक्ति उत्पन्न हो गई है। 'रामबमी' 'स्वराज्य का दावा' 'धर्म और अधर्म' ये लेख ताजे उदाहरण हैं जिन्होंने मेरी धार्मिक भावना को जाग्रत किया है।

यद्यपि मैं हृदय से पूर्ण असहयोगी हूं, खादी के सिवा अन्य वस्त्र नहीं पहनता हूं, सत्य और अहिंसा का भरसक पालन करता हूं, परिग्रह परिमाण और सन्तोष वृत्ति तो मेरी अत्यन्त प्रेम-पात्र हैं तथापि कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र (छः वर्ष), पुत्री (३ वर्ष), और वृद्ध अंध माता के मोह (उत्तरदायित्व के विचार ने भी) मुझको रेलवे दफ्तर में अंगरेजों की गुलामी करने में फंसा रक्खा है और राष्ट्रीय कार्यों में अर्थात् स्वराज्य-आन्दोलन के प्रचार-कार्य में अपना उपयोग होने देने से वंचित कर रक्खा है। अभी इतनी दृढ़ श्रद्धा नहीं हुई है कि कुटुम्ब के ममत्व को, नौकरी को लात मार कर समय-धर्म के पालन करने में लग जाऊं। तथापि चित्त की इस दुर्बलता के कारण सदैव व्याकुलता अवश्य रहती है। आशा है कि आप उचित सलाह देने की कृपा करेंगे।"

पत्र लेखक के हृदय की कथा खुद ही कहता है। भारत में कितने ही लाल आज इस तरह अपने भावों के, अपनी रुचि के, खिलाफ गुलामी के फेर में पड़े हुए हैं। दुनियादारी का पहाड़ उन्हें धर्म और देश-कार्य में प्रवृत्त होने से रोकता है। सच पूछिए तो दुनियादारी का सम्बन्ध धर्म-मूलक है। दुनियादारी धर्म के लिए है। पर आज हमारे समाज की विकृत अवस्था में वह धर्म की बाधक हो रही है। इस स्थिति पर लेखक के हृदय में जो व्याकुलता बनी रहती है वही उन्हें धर्म और कर्तव्य के मार्ग में अधिकाधिक प्रेरित करेगी। जिसे अपनी दुर्बलता का ज्ञान रहता है, और उसके लिए जिसे बराबर दुःख हुआ करता है, उसकी उन्नति निश्चित है। बल प्राप्त होने का यही सरल स्वाभाविक मार्ग है। इन भाई को 'हिन्दी-नवजीवन' यही सलाह दे सकता है कि वे अपना खर्च कम करने का प्रयत्न करें। अधिक सादगी धारण करें। घर ही में सूत कात कर खादी बुनवा लें। इससे खादी और भी सस्ती पड़ेगी। स्त्रियों को गहने-पत्ते और साज-

सिंगार के थोथेपन का ज्ञान बराबर कराते रहें। उनके अन्दर तप, त्याग और कष्ट-सहन की वीर-वृत्ति उत्पन्न करें। स्त्रियों को अज्ञान में रख कर हम लोग खुद ही अपने कर्तव्य-मार्ग में कांटे बखेर लेते हैं। इससे वे धर्म-कार्य में सहायक होने के बजाय उलटा बाधक और भारभूत होने लगती हैं। पर इसमें दोष हमारा ही है। फिर वे दृढ़ता और निश्चय से पक्की दोस्ती कर लें। 'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्।' इसे खूब याद रक्खें। किसी राष्ट्रीय संस्था में नौकरी कर ले। स्वदेशी-प्रचार में अनुराग हो तो श्री सेठ जमनालालजी बजाज ३८२/५ कालबादेवी रोड बम्बई को पत्र भेजें। अपने प्रान्त की महासभा-समिति से भी वे काम और सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करें। सच्चे दिल से कोशिश करने वाला मनुष्य जरूर सफलता पाता है। हां, उसके लिए कष्ट और असुविधायें सहने की तैयारी अवश्य होनी चाहिए।

गो-रक्षा और मुसलमान भाई

गो-रक्षा हिन्दुओं के लिए अपने प्राणों की रक्षा, अपने धर्म की रक्षा है। वे प्राण देकर भी गो-माता की रक्षा करना अपना धर्म समझते हैं। हजारों गायों के नित्य संहार से उनकी आत्मा को जो वेदना होती है उसका वर्णन करना कलम की ताकत के बाहर है। भारत में गो-वध केवल दो जातियों में होता है— अंगरेज और मुसलमान। अंगरेज अपना भक्ष्य समझकर, पेट के लिए गाय कटवाते हैं और मुसलमान धर्म समझकर केवल धर्म-विधि की पूर्ति के लिए, कुरबानी के लिए। अंगरेजों के किये गो-वध के मुकाबले में मुसलमानों का गो-वध समुद्र में बूंद के बराबर है। तिस पर भी जबसे खिलाफत आन्दोलन शुरू हो गया है, हिन्दू-मुसलमान आपस में एका करने लगे हैं तबसे मुसलमानों ने गो-रक्षा की जिम्मेवारी प्रायः अपने ऊपर ले ली है और लेते जा रहे हैं। मित्रता का यही धर्म है। अपना अपना स्वार्थ सोचने के बजाय एक दूसरे के स्वार्थ पर ध्यान रक्खें, दूसरे के हाथों में हम अपना स्वार्थ सुरक्षित समझें और वह भी उसे सुरक्षित रक्खे। यही राष्ट्रीय एकता का चिह्न है। खुशी की बात है कि भारत आज इस एकता का अनुभव कर रहा है। मुसलमानों की खिलाफत का भार हिन्दुओं ने अपने ऊपर ले लिया है और हिन्दुओं की गोरक्षा का काम मुसलमानों ने उठाया है। पर हिन्दुओं की तादाद है ज्यादह, मुसलमानों की कम। दूसरी तरह से मुसलमानों के पास शक्ति ज्यादह है, हिन्दुओं के पास कम। तीसरे अबतक हम आपस में एक दूसरे को अपना शत्रु मानते आते थे। इससे दोनों का दिल बिगड़ा हुआ था। इन कारणों से अब भी कहीं कहीं दिलों में अविश्वास बना हुआ है और मौका पाकर वह जाहिर होता रहता है। बम्बई में गोरक्षा के सम्बन्ध में हिन्दू-मुसलमानों का जो थोड़ा सा वाग्युद्ध हो गया था, पर अन्त में दोनों की अकलमन्दी और दर्यादिली से जिसका निपटारा अच्छी तरह हो गया, उसका हाल पाठक जान ही चुके हैं। कलकत्ते में भी हाल ही में एक घटना हुई है। वहां के कुछ हिन्दुओं ने म्युनिसिपाल्टी में गोवध बन्द करने का प्रस्ताव पेश किया। उन्होंने मुसलमानों के धर्म से जहांतक गाय की कुरबानी का ताल्लुक है वहांतक उन्हें अपने मजहब का पाबन्द रहने की पूरी पूरी आजादी रक्खी। पर इसके अलावा जो बहुतेरा गोवध होता है उसीको बन्द कराने के लिए उनका यह प्रयत्न था। इसपर एक मौलाना सा. ने कहा है कि अगर हिन्दू कानून के द्वारा गोकुशी बन्द करने का उद्योग करेंगे तो हमें अपने धर्म के लिए कसदन् गोकुशी करनी होगी। इसपर हिन्दू लोगों का बिगड़ उठना अस्वाभाविक नहीं है। हमें मौलाना सा. की इस कमजोरी पर खेद है। पर इसका कारण है वही अविश्वास, और हम हिन्दू लोग भी एक दोष से बच नहीं सकते। हमने गोरक्षा के लिए मुसलमानों के साथ इतना झगड़ा किया है कि आज भी वे उसका नाम सुन कर चौंक पड़ते हैं। यह तो निश्चित है कि मुसलमानों की सहायता के बिना हम न मुसलमानों द्वारा होने वाली गाय की कुरबानी और न अंगरेजों का गो-संहार बन्द करा सकते हैं। कानून बनाने में भी उनके अनुकूल मत की तो जरूरत रहेगी ही। अतएव हमें तो हिन्दुओं का पहला फर्ज यह मालूम होता है कि वे मुसलमानों की पूरी मैत्री संपादन करें। अपने प्रेम, अपने सौजन्य के द्वारा उनके दिल का अविश्वास पूरा पूरा दूर कर दें। अपनी उदारता और शराफत पर उन्हें मुग्ध कर लें। बस हर तरह की गोरक्षा को वे अपना काम समझ लेंगे। हमें उनके उच्च और नैतिक गुणों पर विश्वास रखना चाहिए। अपनी ओर से अविश्वास का जरा भी सबब उन्हें न देना चाहिए। हमें इस बात का पूरा ख्याल रखना चाहिए कि गो-रक्षा के प्रश्न को असमय ही हम बेढंगे तौर से खड़ा कर के कहीं हिन्दू-मुस्लिम-एकता के कोमल पौधे को कुचल न डालें।

मालवीयजी का उत्साह

श्री मालवीयजी की गिरफ्तारी की अफवाह अब निराधार बताई जा रही है। इधर उनका उत्साह दिन-दूना बढ़ता जा रहा है। उस दिन तिलक-जयंती के मौके पर आपने काशी में कहा कि असहयोग आन्दोलन दबा नहीं। भारतवासियों के जीते जी वह नहीं दब सकता। मेरा उत्साह तो जबतक दम में दम है तबतक शिथिल नहीं हो सकता।

कुछ समय पहले मथुरा में भी आपने बड़े जोश के साथ कहा था:—'पुलिस और फौज वालो, ईश्वर के लिए अपने निहत्थे भाइयों पर गोलियां मत चलाओ और सरकार और हाकिमों के गैर कानूनी हुक्मों को न मानो। हम एका चाहते हैं। आपस में एका करो। आग-पानी का एका नहीं हो सकता। नेकी बदी का एका नहीं हो सकता एका तो बराबर वालों का होना है।"

भारत के वृद्ध सुपुत्र मालवीयजी के इन उद्गारों को पढ़ कर सचमुच ऐसा कौन मुर्दादिल होगा जिसकी नसें फड़क न उठेंगी?

कानपुर में पहरा

कानपुर में जिन व्यापारियों ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ कर विदेशी माल मंगाना शुरू कर दिया उनकी दूकानों पर फिर पहरा शुरू हो गया है। पहरा इस दृष्टि से किया जा रहा है कि हम अपने लोभ ग्रस्त भाइयों को पापों से, अधर्म से, देशद्रोह से और आत्मघात से बचावें। इस दृष्टि से तो उन व्यापारी भाइयों को जिनकी दूकानों पर पहरा लगाया जा रहा है उन स्वयंसेवकों के, और महासभा समिति के इसलिए एहसानमन्द रहना चाहिए कि वे उन्हें अधर्म से बचाने जा रहे हैं। पर कितने ही व्यापारी भाई स्वयंसेवकों के इस उच्च हेतु को न समझ कर लोभांध हो उन्हें मारने पीटने तक लगते हैं। यहां तक कि कानपुर की नगर-समिति के अध्यक्ष श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल के साथ भी इसी प्रकार का दुर्व्यवहार किया गया है। तथापि पहरे का स्वरूप अभीतक शान्त है। इसके लिए हम कानपुर के पहरे देने वाले स्वयंसेवकों को धन्यवाद देते हैं। खबर है कि वहां इन पहरों का असर अच्छा हो रहा है और कितने ही व्यापारियों ने अपनी भूल पर पश्चात्ताप भी प्रकट किया है। परमात्मा शेष व्यापारी भाइयों की आंखें शीघ्र खोलें।

ह० भा० उपाध्याय

स्वागत

मध्यप्रदेश के वयोवृद्ध राधामोहन गोकुलजी, और साधुपुरुष भगवान दीन जी तथा अजमेर के उत्साही श्री चांदकरण शारदा तपोमंदिर में स्वराज्यानुष्ठान समाप्त कर फिर स्वाधीनता की पुण्यभूमि में आ पहुंचे हैं। हम इन स्वराज्य वीरोंका इस कार्यक्षेत्र में स्वागत करते हैं।

हमारा भूषण

शुद्ध भाषा जिसतरह मुख का भूषण है उसीतरह शुद्ध वस्त्र शरीर का भूषण है। मातृभाषा से बढ़ कर शुद्ध भाषा और अपने हाथ से बने कपडे अर्थात् खादी से बढ कर शुद्ध कपडा दूसरा क्या हो सकता है? फिर हिन्दुस्तानी हिन्दी बोलने वालों की केवल मातृभाषा ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय भाषा भी है; और खादी केवल घर का बना कपड़ा नहीं बल्कि राष्ट्रीय पोषाक भी है। भारत के राष्ट्रीय और पारिवारिक जीवन को उन्नत बनाने के लिए दोनों चीजें, बहुत जरूरी हैं। जिसे अपनी मातृभाषा और देश-भाषा का अभिमान नहीं, प्यार नहीं वह समाज में रहने लायक नहीं। उसी तरह जिसे अपने हाथ के बने कपडे पहनने का शौक नहीं, अपनी राष्ट्रीय वर्दी को अपनाने का उत्साह नहीं, वह भी अपने समाज के लिए भारभूत है।

मुझे खुशी है कि 'हिन्दी-नवजीवन' राष्ट्रीय भाषा के द्वारा शान्तिमय असहयोग का प्रचार करते हुए राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय पहनाव दोनों की सेवा कर रहा है। मुझे आशा है कि पहले वर्ष की तरह इस दूसरे वर्ष में भी वह हिन्दी बोलने वाले भाई-बहनों को मददगार होगा और उनके प्रेम का पात्र बनेगा।

खादी शान्तिमय असहयोग का प्राण है। खादी तो इस समय हमारे भाइयों के स्वराज्य और स्वाभिमान का चिह्न होना चाहिए। बहनों के लिए तो उससे बढ़कर सौभाग्य-चिह्न हो ही नहीं सकता। जिस खादी से लाखों गरीब भाई-बहनों को धर्म की कमाई रोटी मिल सकती है, जिस खादी से हमारी विलासिता और भोगमय जीवन घट कर सादगी आ सकती है, जिस खादी से हमारे स्वराज्य की नीव मजबूत हो सकती है, उस खादी से बढ़कर सौभाग्य-चिह्न दूसरा क्या हो सकता है? गान्धीजी खादी का संदेश दे कर जेल में गये हैं। और वहां भी खादी का ही जप करते हैं। रोज नियम से चरखा कातते हैं। हमारे २० हजार भाइयों के जेलों से भी खादी ही की आवाज आ रही है। अगर हम उनके इस बलिदान की इज्जत करना चाहते हैं, कदर करना चाहते हैं, तो उसका एक ही उपाय है, रोज धर्म-विधि समझ कर चरखा कातना और अपने ही हाथ के कते सूत की खादी बना कर पहनना। पुरुषों के लिए नौकरी छूटने का डर हो सकता है, साहब की नाराजगी का डर हो सकता है, पर बहनों के लिए तो ऐसी कोई भी बाधा नहीं है। उनका हृदय तो पुरुषों की तरह स्वार्थ से कठोर और भय से कमजोर नहीं हो गया है। अगर अकेली वे ही दिल पर धार लें तो भारत का बेडा पार हो सकता है। मैं अपने सब भाइयों और बहनों से आशा करती हूं कि इस कठिन समय में देश की पुकार पर वे जरूर ध्यान देंगे।

मैं अपने हिन्दी बोलने वाले भाई-बहनों से खास तौर पर कहना चाहती हूं कि हिन्दुस्तान में आप ही लोगों की तादाद सब से ज्यादाह है। इसलिए स्वराज्य प्राप्त करने की जिम्मेवारी भी आप पर ज्यादह है। अपनी इस जिम्मेवारी का ख्याल कर के आप खादी को अपने घर का भूषण बनाइए। कम से कम इस जमाने में तो दूसरे सब भूषण वृथा है। खादी के बिना जिसका घर सूना है, मानों उस घर पर स्वतन्त्रता-देवी की कृपा नहीं है।

कस्तूरी बाई गांधी

एजंटों की जरूरत है।

देश के इस संक्रमण-काल में महात्मा गांधीजी के राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिंदी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है। **व्यवस्थापक**

विजय-मन्त्र

छिड़ा भीषण स्वराज्य-संग्राम, दिखा दो अपना अपना काम!
× × ×
सत्य के बख्तर को कस कर, शान्ति के शस्त्रों से सजकर,
बढ़ाते चलो कदम आगे, न मन में लाना किंचित् डर!
(१)
उठी अन्याय-भरी तलवार, वार हैं जिसके जहरीले,
देखना, हो जाना हुशियार! न होना साहस से ढीले!
(२)
काल भी जो आगे आवे, लड़ो जी खोल जान पर खेल!
न लाना जीवन का मन मोह, जगन्नायक का है यह खेल।
(३)
पड़ें वारों पर वार अनेक, ध्यान मत उनपर देना नेक।
फूल हो तुम पर बरसेंगे, देवगण लख कर तरसेंगे॥
(४)
वीर हो, ऋषियों की सन्तान, मौत मत कुत्तों की मरना!
पूर्वजों का मत खोना मान, बहे जिससे गौरव-झरना।
(५)
जिन्दगी है यह दो दिन की, मुसाफिर-खाना है संसार,
किसी दिन तुम भी चल दोगे, राख-मय हो जाओगे यार।
(६)
हिचकते हो क्यों? पैर बढ़ाव! चला है वीरों का समुदाय।
युद्ध के बजते बाद्य अनेक, जय-ध्वनि सब करते हैं एक॥
(७)
इन्हीं में तुम भी मिल जाओ, 'मर्द हैं' यह दिखला देना।
झुकाना मत ऊंचे सिर को, हिन्द का नाम न खो देना!!
(८)
डटे रहना सेना के साथ, बिखर मत जाना शोके पर।
अटल प्रण पर अपने रहना, तभी जय पाओगे-सत्वर॥
(९)
वीर-बाने को धारण कर, तुम्हारे सम्मुख जो दल है,
चमकते अस्त्र-शस्त्र लेकर, नहीं उसमें आत्मिक बल है।
(१०)
फूंक से उड़ जावेगा वह, नीति-पथ-भ्रष्ट हो चुका है।
न डरना बन्दर-घुड़की से, नहीं कुछ दम वह रखता है।
(११)
अनाचारों की वह दीवार, नहीं टिक सकती है अति काल।
गिरेगी वह अवश्य सहसा, झुकेंगे अन्यायी तत्काल।
(१२)
ध्यान से अतः चलो, बढ चलो, सिद्धि में रक्खो पूरा विश्वास।
कर्मयोगी बनकर सखो, "फतह" की सोलह आनों आस"।
(१३)

हरिभाऊ उपाध्याय

ग्राहकों को सूचना

'हिन्दी नवजीवन' का प्रथम वर्ष पिछली १८ अगस्त को खतम हो गया है। अतएव जिन ग्राहक-भाइयों का वर्ष 'हिन्दी-नवजीवन' के वर्ष के साथ ही शुरू होता है वे कृपा कर के दूसरे साल का चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा **बिना भूले भेज दें।**

व्यवस्थापक हिन्दी नवजीवन
अहमदाबाद

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, भाद्रपद बदी १२, सं. १९७९

भावी स्वप्न

भूतकाल बूढ़े लोगों का, वर्तमान काल कर्मवीरों का और भविष्य काल नौजवानों का है। भूतकाल के अनुभव, वर्तमान के उत्साह और भविष्यत् की आशा का जबतक संयोग नहीं होता तबतक कोई महान् कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता। कोई मनुष्य जबतक बूढ़ा, प्रौढ़ और जवान नहीं हो सकता तबतक वह पुरुषार्थी नहीं हो पाता। बूढ़े की तरह भूतकाल के अनुभवों पर शान्त चित्त से विचार किये बिना, नौजवान की तरह भविष्य के स्वप्नों से हृदय को आशामय बनाये बिना वह प्रौढ़ की तरह वर्तमान के कर्त्तव्यों का निश्चय नहीं कर सकता, न वह उत्साह-पूर्वक अपने कार्य-क्रम को पूरा ही कर सकता है। यह त्रिवेणी संगम कार्य-सिद्धि का मूल-मन्त्र है।

भूतकाल जिसे स्वप्न मानता है, वही वर्तमान के लिए सम्भवनीय है और भविष्यत् के लिए तो प्रत्यक्ष ही है। बूढ़े लोग यदि युवकों की महत्वाकांक्षाओं को स्वप्न समझें तो यह उनकी भूल है। युवक यदि बूढ़े लोगों के अनुभवों को उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टि से देखें तो यह उनकी भूल है। पर यदि बूढ़े और जवान दोनों से मिलना न रक्खें, अनुभव और आशा दोनों की उपेक्षा करें तो उन्हें स्फूर्ति ही नहीं मिल सकती, उनका जीवन बेकार है। यह तो आत्मघात है। जो इन तीनों का सम्मेलन तीनों का सामञ्जस्य, अपने जीवन में, अपने चरित्र में, करता है, वही पुरुषार्थी कहलाता है, वही नेता होता है, वही जातियों और राष्ट्रों के भाग्य को पलट देता है।

भारत के सामने आज यही समस्या है। आज उसके जीवन में ये तीनों काल आपस में लड़ रहे हैं। भूतकाल कहता है, जहां है वहीं पड़े रहो, जैसे हैं वैसे ही बने रहो, जो मिलता है उसे ले लो, भविष्य के 'सब्जबाग' पर पागल मत बनो, यह केवल मृगतृष्णा है। भविष्यत्काल कहता है—तू बूढ़ा है, सठिया गया है, डरपोक है, तुझे मेरे चमत्कार का, मेरी करामात का, क्या पता? चुप बैठा रह। मेरे रास्ते में कांटे न बखेर। वर्तमान बेचारा हैरान है। उसकी बात न दोनों नहीं सुनते। दोनों अपनी अपनी धुन में मस्त हैं। इससे वर्तमान कर्तव्य-मूढ़ और कर्तव्य हीन हो रहा है। वह पुरुषार्थ की खोज में है। क्या कोई पुरुषार्थी ऐसा है जो तीनों में समझौता करा दे?—दूर से एक मन्द आवाज तो आती है कि भारत माँ की गोद खाली नहीं रह सकती। उसकी उंगली पूर्व की ओर उठती हुई नजर आती है।

ऐसे विकट समय में 'हिन्दी-नवजीवन' का दूसरा वर्ष आरम्भ होता है। अपनी जिम्मेदारियों के ख्याल से उसका दिल धड़क रहा है। पर भविष्यत् का स्वप्न उसके कदम को बराबर आगे बढ़ाये जाता है। उसे डर नहीं, निराशा नहीं, खेद नहीं। हां, इस बात की चिन्ता अवश्य है कि परमात्मा उसकी लाज किस तरह रक्खेगा। उसका कर्तव्य भारी है। रास्ता टेढ़ा है। रात अंधेरी है। ध्रुव आखिर के जेलखाने में है। परमात्मन्! तेरी ज्योति का प्रकाश हमें दिखा, सत्य की राह से हमें हटने न दे, कांटे इसके लिए फूल हो जायं, आशा और विश्वास इसके हृदय का धर्म हो जाय, कर्तव्य-पालन से होने वाली शान्ति का अनुभव इसे हो।

भावी स्वप्न—भारत का भावी स्वप्न निश्चित है। वह भूतकाल के खंडहर से निकल कर, वर्तमान की उस सीमा पर आ पहुंचा है जहां वह भविष्यत् के गर्भ में लीन हो जाती है। स्वराज्य अब स्वप्न की बात नहीं रही, सम्भवनीयता का भी विषय नहीं रहा, प्रत्यक्ष का अरुणोदय हो रहा है। पूर्णोदय के पहले उसे अभी विरोधियों से युद्ध करना है, उसका युद्ध प्रेम का युद्ध है शान्ति का युद्ध है। अपने पुरुषार्थ की, अपने स्वावलम्बन की, वृद्धि ही उसकी मुख्य शक्ति है। स्वदेशी, अहिंसा, सब जातियों की एकता, और अछूतों का उद्धार, ये चार उसके साधन हैं। यही वर्तमान काल का चतुर्विध पुरुषार्थ है। यही स्वराज्य का अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष है।

स्वराज्य बुद्धि-युद्ध और वाग्युद्ध से नहीं मिलता। कौंसिलों के दरवाजे कमजोरी के दरवाजे हैं। ये हमें जनता में प्रत्यक्ष कार्य करने से रोकती हैं, हमें निकम्मा बनाने की मशीनें हैं। शत्रु के किले के अन्दर जाकर लड़ना बुद्धिमानी नहीं है। कौंसिलें स्वराज्य का संकट हैं। स्वराज्य तो पुरुषार्थ से मिलेगा, तप से और त्याग से मिलेगा। जहां पुरुषार्थ है वहीं सिद्धि है। पुरुषार्थ का अर्थ दांव-पेच नहीं, चाल-बाजियां नहीं। पुरुषार्थ तो सत्य और निष्कपटता का मार्ग है। पुरुषार्थी इस बात से नहीं हिचकता कि मेरा कार्य जन-रुचि के प्रतिकूल है। वह तो जन-रुचि को सुधारता है, बनाता है। वह प्रकृति का गुलाम नहीं, राजा होता है। वह समय के प्रवाह को बदलता है। वह नवीन युग का निर्माण करता है। वह स्वप्न को प्रत्यक्ष कर देता है। वह भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों को एक घाट पानी पिलाता है। भारत का 'भावी स्वप्न' इसी पुरुषार्थ की राह देख रहा है। 'हिन्दी-नवजीवन' के पास भी पाठकों के लिए एक ही सन्देश है, '**पुरुषार्थ**'। यदि भावी स्वप्न को प्रत्यक्ष करना चाहते हो तो पुरुषार्थ करो— "**पुरुष हो पुरुषार्थ करो, उठो!**"

हरिभाऊ उपाध्याय

स्वराज्य की जड़

मूल की रक्षा करने और उसे मजबूत करने से ही पेड़ की रक्षा हो सकती है। आज भारत के सामने स्वराज्य-प्राप्ति का विकट प्रश्न उपस्थित है। पग पग पर 'अब आगे?—अब आगे?' यह समस्या खड़ी होती है। पर वास्तव में देखा जाय तो हमारी सड़क साफ है—हमारा रास्ता सीधा है। यह तो निर्विवाद बात है कि दुनिया में आजतक स्वराज्य किसी को बिना गहरे त्याग और तपस्या के नहीं मिला। चाहे अमेरिका की स्वतन्त्रता के इतिहास को पढ़िए, चाहे चीन की प्रजातन्त्र-प्राप्ति को देखिए, चाहे फ्रान्स की राज्यक्रान्ति का उदाहरण लीजिए, चाहे रूस की वर्तमान क्रान्तियों की ओर देखिए, चाहे आयर्लैंड पर नजर डालिए, चाहे मिश्र की बात सोचिए, सब राष्ट्रों को स्वतन्त्रता के लिए बे-शुमार *त्याग और बलिदान करना पड़ा है, और पड़ रहा है। त्याग और* बलिदान स्वराज्य-वट की सबसे गहरी जड़ है। हां, हमारे त्याग और बलिदान का स्वरूप दूसरे राष्ट्रों के त्याग और बलिदान से भिन्न जरूर है। वे प्रतिपक्षी को अपना शत्रु मानते थे और हम उन्हें अपना भूला-भटका भाई मानते हैं। वे उनसे घृणा और द्वेष करते थे; हम उन्हें अपने प्रेम से परास्त करना चाहते हैं। वे साध्य-शुद्धि को तो आवश्यक मानते थे; पर साधन-शुद्धि के कायल न थे। हमारा सिद्धान्त यह है कि शुद्ध साधनों से ही शुद्ध

साध्य की सिद्धि हो सकती है। इसीलिए जहां वे सशस्त्र प्रतिकार करते हुए त्याग और बलिदान करते थे तहां हम सत्याग्रह के द्वारा–शान्तिमय उपायों के द्वारा उच्च से उच्च त्याग और शुद्ध से शुद्ध बलिदान करना चाहते हैं। ऐसे त्याग और बलिदान में हम दोनों की विजय, दोनों का मंगल, दोनों की मैत्री, देखते हैं। हमारा स्वराज्य–संग्राम अपूर्व है, एक दृष्टि से अलौकिक है। अतएव इसमें विजय पाने के लिए त्याग और बलिदान भी अपूर्व और अलौकिक अर्थात् श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और पवित्र से पवित्र होना चाहिए। ऐसे तीव्र त्याग और निर्मल बलिदान को देख मनुष्य तो क्या पशु भी अपना पशुत्व छोड़ देंगे और देवताओं का भी दिल थर्रा उठेगा।

पर हमारा यह त्याग और बलिदान स्वदेशीमय होना चाहिए। स्वदेशी प्रत्येक देश का अटल धर्म है। स्वदेशी के बिना देशाभिमान उत्पन्न नहीं हो सकता। स्वदेशी के बिना त्याग और बलिदान की उज्ज्वल तथा पवित्र भावना उदय नहीं हो सकती। स्वदेशी—बोल–चाल में स्वदेशी, खान–पान में स्वदेशी, रहन–सहन में स्वदेशी, वेश–भूषा में स्वदेशी,– न हो तो देश की कल्पना, देश का प्रेम, देश–सेवा की इच्छा कहां से उत्पन्न हो सकती है? धार्मिक दृष्टि से स्वदेशी नित्य कर्म है, धर्माचरण है, पुण्यकार्य है; नैतिक दृष्टि से स्वदेशी सादगी, उच्च जीवन, उच्च और निर्मल मनोवृत्तियों को उत्पन्न करने वाली है; आर्थिक दृष्टि से मितव्यय का मार्ग बताने वाली, पाप के धन्धे से पीछे खींचनेवाली, लोभ को दबानेवाली, और राजनैतिक दृष्टि से हमारे प्यारे स्वराज्य का सुदिन शीघ्र ही दिखानेवाली, हमारी सदियों की गुलामी की बेड़ियां तोड़ देने वाली, संसार में हमारा झुका सिर उंचा उठा देने वाली और हमें संसार में एक जीवित, उन्नत और गौरवशील राष्ट्र बना देने वाली है। इन्हीं गुणों पर मोहित हो कर महात्माजी ने स्वदेशी को भारत के सर्वांगीण उद्धार की कुंजी बताया है।

आज स्वदेशी का अर्थ है खादी। जिसके बदन पर खादी नहीं, वह स्वदेशी नहीं; वह स्वदेशी होते हुए भी, स्वदेश में रहते हुए भी विदेशी ही है। जिसे अपनी मां की जरूरतों का खयाल नहीं, उनकी पूर्ति की चिन्ता नहीं, जो अपनी कमाई से, अपने पुरुषार्थ से, उसका पेट नहीं भर सकता, उसका बदन नहीं ढंक सकता वह मातृ–भक्त कैसे कहला सकता है? और उसकी माता को भी उसपर गर्व कैसे हो सकता है? फिर भारत–माता के खजाने में तो, उसके साम्राज्य में तो, सब कच्ची सामग्री मौजूद है, तैयार है; जरूरत है सिर्फ थोड़ा पुरुषार्थ दिखा कर, थोड़ा परिश्रम करके, थोड़ा कष्ट उठा के उनकी पक्की चीजें तैयार कर के माता के लिए हाजिर कर देने की।

स्वदेशी में स्वधर्म, स्वदेश, स्वराज्य सब कुछ है। स्वदेशी से हममें व्यवस्था, संगठन और नियम–पालन की शक्तियों का विकास होगा; स्वदेशी भारत की भिन्न भिन्न जातियों के लिए प्रेम–बन्धन होगी, स्वदेशी छूआ–छूत को दूर करने अर्थात् हमारे पांच करोड़ अछूत भाइयों का उद्धार करने का साधन होगी, स्वदेशी भारत की फाकेकशी मिटाने का अर्थात् लाखों गरीबों को दानापानी पहुंचाने का कारण होगी। स्वदेशी स्वराज्य–भगवान् का विराट–रूप है। स्वदेशी भारत के लिए संजीवनी बूटी है। भारत के घर घर में स्वदेशी का प्रचार होना चाहिए। हरएक भाई–बहन को नियम से धर्म–कर्म समझकर कुछ समय तक चरखा कातना चाहिए। स्त्रियों के लिए तो यह एक प्रकार का सन्ध्या–वन्दन ही होना चाहिए। स्वदेशी वर्तमान युग का धर्म है। इसका पालन किये बिना किया त्याग और बलिदान फीका है।

अतएव यदि अपनी भारत–माता के साथ आपका दिली प्रेम है, हमदर्दी है, हमारे सिरताज महात्मा गांधी आदि नेताओं के वियोग से हम व्याकुल हैं, हमारे दूसरे बीस हजार भाइयों की तपस्या की कदर करना चाहते हैं, यदि हमें सचमुच आजादी प्यारी है, खिलाफत के साथ मुहब्बत है, पंजाब के घाव हमारे दिलोंमें ताजे हैं तो पूर्वोक्त त्याग और बलिदान के द्वारा स्वराज्य का जो बीज बोया गया है उसकी जड़ हम अपने स्वदेशीमय त्याग और बलिदान के द्वारा सुरक्षित और मजबूत करें। इस समय इससे बढ़कर हमारा दूसरा न तो धर्म है, न कर्तव्य है।

जमनालाल बजाज

जन्माष्टमी

आम तौर पर लोगों का खयाल है कि धर्म तो केवल कमजोर लोगों के लिए है। अधिक से अधिक उसका काम एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच पड़ता हो। पर राज्य और सम्राट् तो धर्मातीत हैं। वे जो करें वही धर्म है। साम्राज्य–शक्ति धर्म से परे है। व्यक्तियों का पुण्य–क्षय हो सकता है, पर साम्राज्य तो अलौकिक वस्तु है। ईश्वर की विभूति से साम्राज्य की शक्ति श्रेष्ठतर है। साम्राज्य जब विजय की पताका ले कर घूमता है तब ईश्वर दिन के चन्द्रमा की तरह न जाने कहां छिप जाता है।

मथुरा में कंस की यही भावना थी। मगध देश में जरासंध भी यही सोचता था। चेदि–राज शिशुपाल की भी यही मनोदशा थी। जलाशय में रहने वाला कालिय नाग भी यही मानता था। द्वारका पर चढ़ाई करने वाले कालयवन का भी विश्वास इसी सिद्धांत पर था। महापापी नरकासुर को भी इसके सिवा दूसरा कुछ न सुझाई देता था। और देहली का कौरवेश्वर भी इसी धुन में मस्त था। ये सब पराक्रमी राजा अंध अथवा अज्ञान न थे। इनके दरबारों में इतिहासवेत्ता, अर्थशास्त्र–विशारद और राज्यकार्य–धुरंधर अनेक विद्वान् भी थे। वे सब अपने अपने शास्त्रों का मनन करके उनका सार अपने अपने सम्राटों को सुनाते थे। पर जरासंध कहता—"तुम्हारे इतिहास के सिद्धान्तों को यों ही रखे रहने दो। मैं अपने पुरुषार्थ, अपने बुद्धिबल, और बाहुबल से तुम्हारे सिद्धान्तों को असत्य सिद्ध कर दूंगा। कालयवन कहता—"मेरा तो एक ही अर्थशास्त्र है। दूसरे देशों को चूस कर उनका धन लूट लाना ही धनवान होने का सब से सीधा, सब से सरल और इसीलिए स–शास्त्र–मार्ग है" शिशुपाल कहता—"न्याय–अन्याय की बात तो प्रजा के आपसी झगड़ों में मानी जा सकती है। हम तो सम्राट ठहरे। हमारी तो जाति ही दूसरी है। राज्य–प्रतिष्ठा, राज्य का रौब, यही हमारा धर्म है।" कौरवेश्वर कहता—"संसार में जितने रत्न हैं उन सब के वारिस हमी हैं। वे सब हमारे अधिकार में आना चाहिए। 'यतो रत्नभुजो वयम्'। (क्योंकि हम तो रत्न–भोगी ठहरे, रत्नों का उपभोग करने के लिए ही तो हम पैदा हुए हैं।) दुनिया में जितने तालाब हैं सब हमारे विहार करने के लिए बनाये गये हैं। बिना युद्ध किये किसी को सुई की नोक के बराबर भी भूमि न देंगे।"

पक्षपात–शून्य नारद ने कंस को चेताया भी था कि—"अरे तू बाहर के शत्रुओं को भले ही जीत सका होगा। पर तेरा सब से जबरदस्त शत्रु तो तेरे साम्राज्य में ही, साम्राज्य क्या घर में ही, पैदा होगा। जिस सगी बहन से तू दासी की तरह बरताव करता है उसीके पुत्र के हाथों तेरा नाश होगा; क्योंकि वह धर्मात्मा होगा। उसका तेजोवध करने के लिए जितने प्रयत्न तू करेगा उन सबका उपयोग उसके अनुकूल ही होता जायगा।

कंस ने सोचा ' Forewarned is forearmed ' । चेतावनी इतनी जल्दी मिली है। अब पानी आने के पहले उसे रोकने का प्रबंध न किया तो फिर मेरी इतिहासज्ञता किस काम की? फिर मेरा सम्राट् होना व्यर्थ है। नारद ने कहा--यह तो तेरी ' विनाश काले विपरीत बुद्धिः ' है। मैं जो कह रहा हूं, यह इतिहास का सिद्धांत नहीं है। यह तो धर्म का सिद्धान्त है। यह तो सनातन सत्य है। वसुदेव-देवकी के आठ अपत्यों में से एक के हाथ तेरा विनाश-मरण निश्चित है। बस, तेरे लिए तो एक ही उपाय बच रहा है। अब भी पश्चात्ताप कर और श्रीहरि की शरण जा। अभिमानी कंस ने तिरस्कार की हंसी हंस कर जवाब दिया--" सम्राट् समर भूमि में पराजय पाने पर ही पश्चात्ताप करते हैं।" नारद 'तथास्तु' कह कर चल दिये। कंस ने विचार किया, दूसरे सम्राटों को जो अभीतक विजय न मिली इसका कारण था उन्हींकी गफलत। उन्होंने यह अच्छी तरह नहीं समझा था कि पूरी तरह सावधान किसतरह रहना चाहिए। अगर मैं भी उन्हीं की तरह गाफिल रहूं तो मुझे भी शिकस्त खानी पडेगी। पर इसकी कोई बात नहीं। वीर लोग तो हमेशा जय के लिए प्रयत्न करते हैं और मौका पडने पर पराजय के लिए भी तैयार रहते हैं। मैं हारा तोभी वह कोई बुरी बात नहीं है। पर धर्म के डर से हार खाना तो नामर्दी है। धर्म का साम्राज्य तो साधु, संत, वैरागी और पुजारी ब्राह्मणों के लिए ही मुबारक हो। मैं तो सम्राट् हूं। मैं केवल शक्ति को ही जानता हूं।

कंस ने बडी निर्दयता के साथ वसुदेव के सात नन्हे बच्चों का खून किया। पर कृष्णजन्म के समय ईश्वरी लीला की विजय हुई। कृष्ण परमात्मा के बदले कन्या-इच्छाधारिणी शक्ति कंस के हाथ लगी। कंस ने उसे जमीन पर पछाडा। पर शक्ति से कहीं शक्ति थोडे ही मरने वाली थी। वसुदेव ने श्रीकृष्ण को गोकुल में रक्खा था। पर परमात्मा को कोई बात छिप कर तो करनी ही न थी! उन्हें किसी बात के खुले आम करने से कौन डर था? शक्ति ने लज्जित कंस को अट्टहास्य कर के कहा 'तेरा शत्रु तो गोकुल में दिन-दूना और रात-चौगुना बढ रहा है।' मथुरा से गोकुल-वृंदावन बहुत दूर नहीं, शायद चार-पांच कोस भी न हो। कंस ने कृष्ण को मारने के लिए एक भी प्रयत्न उठा न रक्खा। पर उसे यही न मालूम हुआ कि कृष्ण का मरण किस बात में है? कृष्ण अमर तो थे ही नहीं। पर मरणाधीन भी न थे। धर्म-कार्य करने के लिए वे आये थे। जबतक धर्म का राज्य स्थापित नहीं होता तबतक उन्हें विराम कहांसे मिलने लगता? कंस ने सोचा कि श्रीकृष्ण को अपने दरबार में बुलाकर ही मार डालूं। पर उसकी बाजी वहीं बिगडी। क्योंकि प्रजा ने परमात्म तत्त्व को पहचान लिया था। वह उसके अनुकूल हो गई।

कंस का नाश देखकर जरासंध को चेतना चाहिए था। पर जरासंध ने सोचा कंस से मैं अधिक सावधान और दक्ष हूं। अनेक भिन्न भिन्न अवयवों को जोडकर मैंने अपने साम्राज्य को प्रबल बनाया है। मल्ल-युद्ध में मेरी बराबरी दूसरा कौन कर सकता है? मेरी नगरी का कोट दुर्भेद्य है। मुझे किसका डर हो सकता है? पर जरासंध के भी दो टुकडे किये गये। कालियनाग तो अपने जलाशय को सबसे अधिक सुरक्षित मानता था। उसका विष असह्य था। केवल फूत्कार मात्र से बडी बडी सेनाओं को मार सकता था; पर उसकी भी कुछ न चली। कालयवन चढाई कर के आया। पर वह बीच ही में निद्रित मुचकुन्द की क्रोधाग्नि का शिकार हो कर जल मरा। नरकासुर एक स्त्री के ही हाथ मारा गया; कौरवेश्वर का नाश द्रौपदी की क्रोधाग्नि में पतंगवत् हो गया और शिशुपाल को उसकी भगवत्-निंदा ने मिट्टी में मिला दिया।

ये छहों सम्राट् उस समय षड्रिपु की तरह मारे गये। मर्त्यलोक और सप्त-पाताल सुखी हुए और जन्माष्टमी सफल हुई। तथापि हम अब भी हर साल इस उत्सव को क्यों मनाते हैं? इसीलिए कि अभीतक हमारे हृदय में से उन षड्रिपुओं का नाश नहीं हुआ। वे हमें बडी तकलीफ दे रहे हैं। हम नष्टप्राय हो गये हैं। इस समय हमारे हृदय में श्रीकृष्ण-चन्द्र का जन्म होना चाहिए। 'जहां पाप है वहीं पाप-पुंज-हारी भी है' इस आश्वासन का उदय हमारे हृदय में होना चाहिए। जब मध्यरात्र के अंधकार में श्रीकृष्णचन्द्र का उदय हो तभी निराशा-ग्रस्त संसार को आश्वासन मिलेगा और वह धर्म पर दृढ रह सकेगा। (नवजीवन)

लोकनायक श्रीकृष्ण

कहते हैं कि जिसका कोई सहारा नहीं उसे महादेव के पास आधार मिलता है। अंधे, लूले, लंगडे, पागल, यहांतक कि भूत-प्रेत और विषधर सांप आदि भी महादेव का आश्रय प्राप्त कर सकते हैं। विष्णु की महिमा ऐसी नहीं गाई जाती। तोभी वह दीननाथ है। और श्रीकृष्ण का अवतार तो दीन-दुखियों और हताशों के ही लिए हुआ था। श्रीकृष्ण प्रजाकीय अवतार हैं। दाशरथी राम को हम राजा रामचन्द्र कहते हैं। पर श्रीकृष्ण को राजा श्रीकृष्ण कहें तो कितना अटपटा सा मालूम होता है? श्रीकृष्ण यद्यपि बडे बडे सम्राटों के भी अधिपति थे तो भी वे प्रजाकीय मनुष्य थे।

लडकपन में उन्होंने ग्वाले का पेशा किया, जब बडे हुए तब साईस हो गये। राजसूय यज्ञ जैसे राजनैतिक उत्सव में आपने सबकी जूठन उठाने का काम खुद अपनी तरफ लिया। आज कौन लोकनायक ऐसा निष्पाप जीवन दिखा सकता है? श्रीकृष्ण ने इन्द्र के गर्वज्वर को हरण किया, ब्रह्मा के ज्ञान-गर्व को शमन किया, ऋषियों को अपना रहस्य समझाया, नारद का मोह छुडाया, पर इतना होते भी आप खुद तो गोप-बन्धु ही रहे, गोपीजन-वल्लभ ही नाम आपने पसन्द किया, वनमाला को ही आपने आभूषण की तरह प्रिय समझा; सुदामा के तन्दुल, द्रौपदी के घर का साग-पात और विदुर के घर की सादी मिहमानदारी में ही उन्हें सन्तोष हुआ। कुब्जा की सेवा स्वीकार करने में ही उन्होंने कृतार्थता मानी। वे तो दीनों के देव, "दीनन दुखहरण देव सन्तन हितकारी" थे।

श्रीकृष्ण ने गीता का उपदेश किया किसलिए? युधिष्ठिर को साम्राज्यपद दिलाने के लिए? नहीं नहीं; 'स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः' भी परम गति प्राप्त कर सकते हैं, यह आश्वासन देने के लिए; 'अनन्य भक्तों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूं,' यह विश्वास दिलाने के लिए; 'दुराचारी भी यदि पश्चात्ताप करे तो मुक्त हो जाय,' यह वचन देने के लिए; भक्त अपना हृदय शुद्ध करे तो उसको सभी तरह के पांडित्य--बुद्धियोग--सफल करने का विश्वास दिलाने के लिए! और इस गीता में भगवान् ने तत्वज्ञान भी कौनसा कथन किया है? भगवान् कहते हैं :--" तुम ज्ञानी चाहे भले ही हो जाओ; लेकिन लोकसंग्रह को नहीं छोड सकते। जो सच्चे ज्ञानी हैं वे तो ' सर्वभूत हिते रताः ' होते हैं।"

श्रीकृष्ण ने अवतार ले कर किया क्या? बनावटी प्रतिष्ठा को तोडा; अभिमानी प्रतिष्ठित लोगों का सिर नीचा किया, और निष्पाप हृदय वाले दीन जनों को श्रेष्ठ ठहराया। धर्म को पांडित्य के जाल से बचाकर भक्ति के श्वेत आसन पर बिठा दिया। राजा इन्द्र का गर्व हरण कर के उसको दिया जाने वाला कर

बन्द कर दिया: और प्रजा में गोवर्धन—स्वी देशपूजा को प्रचलित किया। राजाओं को नम्र बनाया और लोगों को उन्नत किया। लेकिन इतना होने पर भी वे लोगों के सरदार न बने। एक बार —सिर्फ एक ही बार—श्रीकृष्ण पर लोगों की श्रद्धा कम हुई थी। लोगों ने समझा कि देश में श्रीकृष्ण के होने से ही जरासंध बार बार हमपर चढाई कर देता है। श्रीकृष्ण ने लोकमत के आगे सिर झुकाकर मध्य-देश को छोड दिया और समुद्रवलयांकित (समुद्र से घिरी हुई) द्वारका में जाकर निवास किया। किन्तु इस काम को उन्होंने लोगों से नाराज हो कर नहीं किया था; बल्कि उस समय आर्योनियन लोग हिंदुस्तान पर चढाई करने की तैयारी में थे, उनका विरोध करने के लिए, उनका हमला रोकने के लिए पश्चिमी किनारे पर एक जबरदस्त फौजी छावनी कायम करने पर ही लोगों की रक्षा हो सकती थी। श्रीकृष्ण ने द्वारावती में जाकर हिंदुस्तान के द्वार की रक्षा की और आर्यावर्त को सुरक्षित किया। ऐसे दीननाथ के सदियों से मनाये जानेवाले जन्म-दिवस का, इस लोकसत्ता के समय में, दूना महत्व है।

(नवजीवन) द० बा० कालेलकर

स्वराट् बनो

पश्चिमी देशों के निवासियों के सम्पर्क से हम लोगों ने उनके गुण तो कम ग्रहण किये हैं, दोष अधिक। हमारे पूर्वजों की सभ्यता का चरम उद्देश था—आत्मचिन्तन और आत्मलाभ। वे आशुतोष थे। उनकी आवश्यकतायें बहुत कम थीं। वे मोटा खाते और मोटा पहनते थे। पर विचार उनके बडे उच्च थे। उनके उन्हीं विचारों की बदौलत हम उनके प्रणीत संख्यातीत ग्रन्थों से लाभ उठा रहे हैं। महाभारत, रामायण, षड्दर्शन, उपनिषद् आदि ग्रन्थ कोट-बूट-धारियों की उपज नहीं: अरण्यवासी, कौपीनधारी और कणभक् विद्वानों ही की उपज है।

अपनी उस सादगी को हम एकदम ही भूल रहे हैं। भूल ही नहीं रहे, प्राय: सम्पूर्ण भूल भी गये हैं। औरों की बात जान दीजिए, स्कूलों और कालेजों में पढनेवाले बच्चों और युवकों ही को देखिए। गरमियों में भी उन्हें तन ढकने के लिए तीन तीन कपडे चाहिए। तेल-फुलेल भी चाहिए। कंघे और आईने के बिना उनका काम ही नहीं चल सकता। जिस साबुन का नाम तक हमारे पूर्वज न जानते थे उसकी कई बट्टियां उन्हें हर महीने दरकार होती हैं। शिक्षाग्राही ब्रह्मचारियों के लिए जैसी वेश-भूषा और जैसी दिनचर्य्या का विधान स्मृतियों में है, आजकल ठीक उसका विपरीत दृश्य देखा जा रहा है। आत्मिक उन्नति का तो ह्रास हो रहा है; बाहरी दिखाव की उन्नति की ओर अनावश्यक और हानिकर ध्यान दिया जा रहा है। इस प्रकार का व्यवहार यों भी त्याज्य है; भारत के सदृश निर्धन देश के लिए तो इससे जो आर्थिक हानि हो रही है उसकी इयत्ता ही नहीं। अन्त:सार-शून्य हो कर भी जो लोग फैशन के फेर में पड कर व्यर्थ धनव्यय करते हैं उनकी भी गिनती एक प्रकार के दीवानों में होनी चाहिए। क्योंकि बुद्धिमान न सही, सज्ञान भी मनुष्य जेठ-बैशाख के महीने में, भारत के सदृश उष्ण देश में, लांग बूट, डबल पतलून, पायपाब और मोजे, नकटाई और कालर धारण कर के बनियाइन, कमीज, वेस्ट कोट और कोट पहन कर गरमी से व्याकुल होने का कष्ट नहीं उठाता।

मनुष्य का आदर उसके गुणों से होता है, केवल कपड लत्तों से नहीं। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महादेव गोविन्द रानडे और तिलक की सादगी का स्मरण कीजिए और देखिए कि बाहरी आडम्बर से शून्य होने पर भी वे कितने मान्य हुए।

भारत की वर्तमान स्थिति कह रही है कि दूसरों के वस्त्राच्छादन और रहन-सहन की नकल छोडो। सादगी से रहो। उच्च विचारों से अपनी आत्मा को उच्च करो। साधारण भोजन से यदि शरीर की यथेष्ट पुष्टि हो सकती हो तो मोहनभोग खा कर अकारण ही रोगग्रस्त न हो। मोटे कुर्ते और धोती से यदि शरीर-रक्षा हो सकती है तो, कीमती कपडे पहन कर व्यर्थ रुपया न बहावो। समर्थों की देखादेखी मामूली गृहस्थों को भी इस तरह फिजूलखर्ची का चसका लग जाने से देश को बडी हानि पहुंच रही है। तुम लोग स्वराज्य चाहते हो। अच्छा तो तुम स्वयं ही पहले स्वराट् बनो। अपने मन को अपने वश में रखना सीखो। फिटन और मोटर, बाग और बंगला, बहुमूल्य वस्तु और अनन्त धनराशि का स्वामी होने से ही कोई स्वराट् नहीं हो सकता। उसके लिए आत्मशुद्धि और आत्मचिन्तन की जरूरत होती है। सादगी से रहने और उच्च विचारों के चिन्तन से ही आत्मशुद्धि हो सकती है।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

महाराष्ट्र में इस्तीफे

महाराष्ट्र से महाराष्ट्र प्रान्तीय महासभा-समिति के अध्यक्ष श्री. न. चिं. केलकर आदि महाशयों के इस्तीफों के समाचार आये हैं। इस्तीफों का कारण प्रधानत: यह बताया गया है कि हकीम अजमलखां सा. ने जांच के समय ऐसे सवाल किये जिनसे यह पाया गया कि महासभा के पदाधिकारी खुले आम महासभा के निर्णयों का विरोध न करें तथा महाराष्ट्र के कई गवाहों ने अपने बयानों में यह लिखा था कि महाराष्ट्र में रचनात्मक कार्यक्रम की शिथिलता का प्रधान कारण यह है कि उस प्रान्त में जो महासभा के पदाधिकारी हैं उनका असहयोग में पूरा विश्वास नहीं। श्री. केलकर और उनके अन्य मित्रों ने इस हालत में अपने पद पर आरूढ रहना अनुचित समझ कर दूसरे कार्यकर्ताओं के लिए स्थान खाली कर दिया जिनका असहयोग के कार्यक्रम में पूरा विश्वास हो। श्री केलकर ने कार्य-समिति से भी इस्तीफा दे दिया है।

वीर-महाराष्ट्र देश के उत्थान में प्राय: आगे रहा है। श्री केलकर आदि महाशय पहले ही से यह कहते आये हैं कि यद्यपि हम असहयोग के सर्व सिद्धान्तों के कायल नहीं तथापि हमें महासभा की आज्ञा शिरोधार्य है। देश में हम फूट मचा कर प्रतिपक्षी को तमाशा दिखाना नहीं चाहते। इस हालत में उनके इस्तीफे पढकर किसीको अविश्वास करने की जरूरत नहीं। यह बिलकुल सरल और स्वयंसिद्ध बात है कि जिनका जिस बात में पूरी तरह से विश्वास नहीं वे उस बात को भलीभांति नहीं कर सकते। श्री केलकर आदि महाराष्ट्रीय नेताओं ने अत्यंत सद्भाव से प्रेरित होकर ही, महज देशहित की शुभ भावना से ही इस्तीफे पेश किये होंगे। पर इस घटना से महाराष्ट्रीय राजनैतिक क्षेत्र में उथल-पुथल मचने की संभावना है। जो हो, यदि इस्तीफे मंजूर हुए तो महाराष्ट्र में महासभा के और असहयोग के जो पूरे अनुयायी हों उनके सिर पर बडी भारी जवाबदेही आ गिरी है। उनका कर्तव्य होगा कि वे फौरन् आगे बढकर महासभा के कार्यक्रम को द्विगुणित उत्साह से चलावें। संग्राम में क्षत सैनिकों के स्थानों की पूर्ति करने में देरी न होनी चाहिए। संग्राम वाद-विवाद का और हिचकिचाहट का क्षेत्र नहीं है।

गांधीजी की वर्षगांठ

२ अक्तूबर को महात्माजी की जन्मगांठ है। उसका उत्सव धूमधाम से मनाने के लिए गुजरात प्रांतिक समिति ने जुलूस निकालने, खादी का प्रचार करने और तिलकस्वराज्यकोष में चन्दा जमा करने का संकल्प किया है।

भय का भूत

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)॥
विद्यार्थियों के लिए वार्षिक „ ३)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष २] [अंक २

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, भाद्रपद सुदी ५, संवत १९७९
रविवार, सायंकाल, २७ अगस्त, १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

विजय-ध्वज जग में फहराओ

पश्चिमी सभ्यता की ऊपरी चमक-दमक से हमारी आखें चौंधिया रही थीं। हम अपने उच्च धर्म-मार्ग को छोडकर जड सभ्यता की खाई की ओर वेग से दौडते जा रहे थे। हमारे दर्शन-शास्त्र उपनिषद्, और गीता—हमारी पैतृक सम्पत्ति—की रचना उन महान् ऋषियों द्वारा हुई थी जिन्होंने सांसारिक सुख-सामग्रियों को, भोग-विलासों को तुच्छ समझकर उनसे मुंह मोड लिया था, जिनकी तेजस्वी जीवन-प्रणाली पर सोने के अक्षरों में लिखा हुआ था "सादा जीवन और उच्च विचार"। पर उसे छोडकर हमने यूरोप और अमेरिका का शिष्यत्व स्वीकार किया। हमारे विचार पलट गये। हमने सोचा—भारत की आर्थिक मुक्ति देश में बडे बडे कारखाने खोलने ही में है। फिर उससे उत्पन्न होनेवाली दूसरी हानियों का विचार हमने जरा भी न किया। बडी बडी कम्पनियां खडी कीं, ट्रस्ट-ब्यूरो खोले, इने-गिने धनिकों की धन-वृद्धि के लिए, उनकी भोग-सामग्री बढाने के लिए, असंख्य गरीबों को लूटने में हमने जरा भी हानि न समझी; और भारत "मुट्ठीभर पढे लिखे, राज्य की रोटियों के लिए लालायित अल्पसंख्याक उच्च जातीय भारतीय और कुशल व्यापारियों का भारत" ही कहा जाने लगा। उन करोडों मूक, गरीब, और अस्पृश्य भाइयों की कहीं गिनती ही न थी, जो अविद्या और कठोर विपदा की गहरी खाइयों में झुकते जा रहे थे। अज्ञान की गहरी नींद में हम भी खुर्राटे भरने लगे। इस गहरी नींद से हमें, सारे देश को जगाने के लिए एक महापुरुष आया। कौन? वही पवित्र-हृदय सर्वश्रेष्ठ महात्मा गांधी। उसने हमारे सारे अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करके देश को नयी आखें दीं और हाथ खींचकर उन्नति-पथ पर ले आया।

प्रफुल्लचंद्र राय

पौरुष पाठ

(१)

आ रहा कठिन भयंकर काल, काल-सा जो है अति विकराल।
ग्रास नित नव नव करता है! पेट तब भी नहिं भरता है!!

(२)

पाशविक बल का जोरों-शोर, धर्म-[illegible] पर छाया है।
सत्य खाकर चोटों पर चोट, पडा [illegible] व्यथित [illegible] है।

(३)

जबां पर तालों की भरमार; क्रिया पर तोपों की धमकार!
कहं तो मारे जाते हैं, नहीं तो हारे जाते हैं!!

(४)

हांकते सब अपनी अपनी, सजाते अपना अपना साज
खेद ऊंचे हलकों में भी, भेद-भावों का जुडा समाज।

(५)

आत्म-बल की दुःखद घटती, मान-गौरव की विस्मृति है।
वचन में कार्य में न एका, इसीसे सारी दुर्गति है!

(६)

महात्मा जन के बस पद-चिह्न, बताते सीधी-सच्ची राह।
बढाते चलो कदम आगे, न रक्खो विघ्नों की परवाह॥

(७)

गिरें दल-बादल चाहें टूट, तडातड कंकड गिरें अनेक।
न होना धैर्य-च्युत हे वीर, न तजना सुध-बुध विमल विवेक।

(८)

सहो सब योगी बन कर के, प्रेम बदले में बरसाओ।
दिखा अपना अपना पौरुष, विजय-ध्वज जग में फहराओ॥

हरिभाऊ उपाध्याय

ग्राहकों को सूचना

'हिन्दी-नवजीवन' का प्रथम वर्ष पिछली १८ अगस्त को खतम हो गया है। अतएव जिन ग्राहक-भाइयों का वर्ष 'हिन्दी-नवजीवन' के वर्ष के साथ ही शुरू होता है वे कृपा कर के दूसरे साल का चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा बिना भूले भेज दें।

व्यवस्थापक हिन्दी-नवजीवन
अहमदाबाद

मुल्शी-पेठा में फिर सत्याग्रह

मुल्शी-पेठा-सत्याग्रह मंडल के मन्त्री श्री दास्ताने ने प्रकट किया है कि आगामी २ सितम्बर से मुल्शी पेठा में श्रीयुत बापट के सेनापतित्व में फिर सत्याग्रह शुरू किया जायगा। ३ वर्ष तक युद्ध करने की तैयारी हो रही है। १,०००) मासिक खर्च होने की सम्भावना है। अभी उनके पास १०,०००) रुपये एकत्र हुए हैं।

टिप्पणियाँ

दौरा खतम

सविनय-भंग-समिति का दौरा खतम हो गया रिपोर्ट लिखने का भार डाक्टर अनसारी के सिपुर्द हुआ है। कहते हैं कि मोटी मोटी बातों पर जियादहतर सब सदस्यों का एक मत होगा, हाँ, कुछ छोटी छोटी बातों में कुछ लोग अपनी राय अलहदा भी देंगे। ३१ अगस्त को बम्बई में कार्य-समिति की बैठक होगी और उसमें रिपोर्ट की आरम्भिक बातों पर विचार किया जायगा।

महाराष्ट्र से श्री केलकर ने सूचित किया है कि कम से कम १५ दिन महासमिति की बैठक मुलतवी कर दी जाय जिससे सभासदों को रिपोर्ट के मनन करने का समय मिल सके।

परिवर्तन का प्रश्न

समिति की रिपोर्ट और महासमिति का निर्णय अभी भविष्य के गर्भ में है। पर एक बात स्पष्ट है। महाराष्ट्र, बरार, और मराठी मध्यप्रान्त के कुछ नेताओं ने वर्तमान कार्यक्रम में परिवर्तन कराने के लिए खासी लड़ाई सी छेड़ रक्खी है। बंगाल में भी एक आध बार आवाज उठी थी। अखबारों से जहांतक मालूम होता है, दूसरे सब प्रान्त वर्तमान कार्यक्रम से सन्तुष्ट हैं। महाराष्ट्रीय परिवर्तन चाहने वालों की स्थिति भंवर में गिरे तिनके की सी हो रही है। कभी वहां से असहयोग के असफल होने की ध्वनि आती है, कभी 'प्रति योगी सहकारिता' की पुकार उठती है। कभी 'विरोधात्मक सहकारिता' की आवाज आती है। इस तरह उनकी नीति 'अनेक रूपा' मालूम होती है। अब फिर यह बात कही जाने लगी है कि हां, असहयोग तो हमको मंजूर है,—पर हम सरकारी शिक्षा-संस्थाओं, अदालतों और कौन्सिलों का बहिष्कार कार्यक्रम में से रद करा लेना चाहते हैं और कुछ समय पहले कौन्सिलों के पक्ष में बहुत जोर दिया जाता था; अब वे समझौता करने के लिए तैयार नजर आते हैं। हम वर्तमान कार्यक्रम में परिवर्तन करना इसलिए बेजा समझते आये हैं कि अभी हमने उसके अनुसार काम करना तो शुरू किया ही नहीं और बस, चौंक खड़े हुए। फिर वह अकेले महाराष्ट्र की ही भूमि के लिए क्यों ना-मुआफिक है, यह भी एक विचारने योग्य बात है। अच्छा, जरा देर के लिए यह भी मान लें कि एकता के महत्व को ध्यान में रख कर असहयोग-सिद्धान्त को कायम रखते हुए कुछ परिवर्तन कर देना बेजा नहीं है, तो सवाल यह खड़ा होता है कि किस बात में परिवर्तन होना चाहिए, या हो सकता है? असहयोग-कार्यक्रम में सरकार से असहयोग तो सिर्फ तीन ही बातों में किया जा रहा है—शिक्षा-संस्थायें, अदालतें और कौन्सिलें। यदि तीनों के बहिष्कार उठा लिये जायं तो फिर सरकार से असहयोग किस बात में रहा? तीनों के बहिष्कार को रद कर ने का दृढ आग्रह रखते हुए यह कहना कि हम 'असहयोग' को कायम रखना चाहते हैं केवल शब्द-च्छल नहीं तो और क्या है?

बेड़ा खतरे में

महा-समिति के सामने यही गम्भीर और जटिल प्रश्न उपस्थित होने वाला है। उसे जहाज को खतरे से बचाकर ले जाना है। एक ओर सरकार निशाना ताके हुए है। दूसरी ओर कुछ मुसाफिर अपनी कमजोरियों को जीत नहीं पाते हैं। काम करना छोड़कर 'मैं मैं-तू तू' में लग गये हैं। इससे कर्णधारों का काम और कठिन हो गया है पर मुसाफिरों को यह न भूल जाना चाहिए कि इस तरह हम सरकार को निशाना साधने का अचूक मौका दे रहे हैं। प्रधान मन्त्री की घुड़की और लार्ड रीडिंग की लीपापोती पर भी हमें चेत जाना चाहिए। ऐसे समय में दबे-छुपे भी असहयोग के नाम से सहयोग की सलाह देना देश के लिए अत्यन्त अहितकर है। हमें आशा करना चाहिए कि महासमिति इस बार बहुत होशियारी, दूरदर्शिता और हिम्मत के साथ अपने बेडे को खतरे से बचा लेगी।

नरम भाइयों की हल-चल

नरम-भाइयों ने मदरास, बम्बई, प्रयाग, काशी, लखनऊ आदि स्थानों में सार्वजनिक सभायें कर के प्रधान मन्त्री के भाषण का जोरों के साथ विरोध किया। इन सभाओं में सहयोगी, असहयोगी, नरम-गरम प्रायः सभी लोग शामिल हुए थे। सब दलों के एक हो कर, महासभा में शरीक हो कर, सरकार का मुकाबला करने पर जोर दिया गया। मदरास के सर शेषगिरी अय्यर और लखनऊ के श्री सप्रू ने जो अपने अपने स्थानों की सभाओं के सभापति थे, कड़ी भाषा में श्री लाइड जार्ज के उद्गारों की समालोचना की। कांगरेस में शामिल होने की खास तौर पर सिफारिश की। हम नरम भाइयों की इस प्रवृत्ति का स्वागत करते हैं। असहयोगियों और नरमभाइयों के ध्येय में तो भेद है ही नहीं। साधनों में भेद है। पर वे कांगरेस के अन्दर रहते हुए भी अपने नरम साधनों से काम ले सकते हैं, महासभा के प्रस्ताव सब के लिए बन्धनकारक तो हैं नहीं। पर उनकी इस हलचल का असर स्थायी रूप से तभी हो सकता है जब वे लार्ड रीडिंग के झांसे में न आ कर महासभा के सदस्य हो जाय। यदि ऐसा हो सका तो भारत को लाइड जार्ज महोदय का अत्यन्त कृतज्ञ होना चाहिए। लार्ड कर्जन और लार्ड चेम्सफोर्ड के बाद भारत को सजग करने का और उसके कुछ भाइयों के भ्रम दूर करने का श्रेय निस्सन्देह श्री लाइड जार्ज को मिल सकेगा।

मजबूर हुए

आखिर लार्ड रीडिंग को प्रधान मन्त्री के भाषण की लीपापोती करनी पड़ी पंजाब के एक शिष्ट-मण्डल को उत्तर देते हुए उन्होंने कहा लाइड जार्ज महोदय की मन्शा वह नहीं थी जो उनके शब्दों से प्रकट होती है। उनका 'आजमाइश' शब्द 'वैध आजमाइश' के अर्थ में था। उन्होंने तो केवल उनलोगों को चेतावनी दी है जो सुधारों को बेकार करने के लिए कौन्सिलों में आना चाहते हैं।

लार्ड रीडिंग किसी न किसी तरह समर्थन करने के लिए मजबूर थे। लाइड जार्ज साहब के वचनों, वचन-भंगों और उक्तियों का मर्म समझना बड़ों बड़ों के लिए मुश्किल होता जाता है। आज वे एक बात कहते हैं, कल मौका देखकर उसके खिलाफ कह उठते हैं। उसमें संगति ढूंढना ही फजूल है और खींचतान कर संगति लगाना तो केवल धूर्तता है। अब देखना यह है कि हमारे नरम भाई बड़े लाट साहब की माया में फंस जाते हैं या अपने तेज को प्रकट करके उन्हें दिखा देंगे कि भारत का कोई भी बच्चा अपने अपमान और नेजोबध को नहीं सह सकता और धूर्तों और लोभियों का भरोसा अब वह नहीं कर सकता।

सत्य से स्वराज्य

भारत के तपस्वी त्यागवीर देशबंधु दास का सम्मान करने के लिए गत बीस अगस्त को कलकत्ते में फिर एक विराट् सभा हुई। इस बार बंगाल ने अपनी श्रद्धांजलि के द्वारा देशबंधु की पूजा की। सभा में महासभा के तथा खिलाफत के बड़े बड़े नेताओं के अतिरिक्त नरम दल के कुछ गण्यमान्य सज्जन भी उपस्थित थे। अध्यक्ष स्थान पर भारत के त्यागी विज्ञानाचार्य श्री प्रफुल्लचंद्र राय विराजित थे। कुछ प्रास्ताविक शब्द कह कर बंगाल की ओर से आपने सम्मानपत्र पढ़ सुनाया। उसके उत्तर में देशबंधु ने नीचे लिखा भाषण किया—

"राजनीति से मेरा कोई संबंध नहीं। जबतक भारतीय स्वराज्य-आन्दोलन केवल राजनैतिक आन्दोलन रहा तबतक मैं उसमें शामिल न हुआ। मैं तो अपने देश को पहचानता हूं, राजनीति को नहीं।

परमात्मा की कृपा से एक दिन ऐसा आवेगा जब संसार से राजनीति का नाम भी उठ जायगा। राजनीति, अर्थशास्त्र और समाज-शास्त्र ये तो योरप की पैदायश हैं। जबतक हम इनके पीछे लगे रहे तबतक हम अपने देश को पहचान नहीं सके। हम तो दूसरी ही ओर बहे जा रहे थे। भगवान ने महात्मा गांधी को भेजा और उन्होंने हमें सीधी राह दिखाई।

भारतीय राष्ट्र के अन्तर्गत कई छोटी छोटी जातियां हैं और उसका मूल सत्य पर दृढ है। जबतक हम पार्लियामेंट पर भरोसा रख कर वैध आन्दोलन के द्वारा यत्न करते रहे तब तक हम अपने देश को और इस सत्य को नहीं पहचान सके। पर अब हम उसे पहचान गये हैं। भारत का भूतकाल गौरवमय था। पर उसके उज्वल भविष्य का भी उदय अब हुआ ही चाहता है। * * * अब संसार की आंखें उसकी ओर लग रही हैं।

अब हम फिर समझ गये कि हमारे राष्ट्र का सच्चा अवलंबन सत्य ही है। * * सत्य की शोध के लिए राष्ट्र की सेवा का नाम ही राष्ट्रीयता है। हमने दूसरे राष्ट्रों का मार्गानुसरण किया, अर्थशास्त्र, समाज-शास्त्र और राजनीति के पीछे लगे, हम अपनी राष्ट्रीयता को भूले और हमारा पतन हुआ। सत्य के बिना न तो पशुबल काम देता है और न राजनीति की गुजर चलती है।

हमारे आन्दोलन में सत्य की शक्ति है। इसलिए आइए, उठिए स्वराज्य का झंडा अपने देश में फहराइए। पर याद रखिए, हिंसा से स्व-राज्य मिलना असम्भव है। अगर आज अंगरेज भारत को छोडकर चले जायं और हम इस शासन-यंत्र को चला भी लें तो उससे देश स्वाधीन नहीं हो सकता। मान लीजिए, महासभा और खिलाफत सभा ने स्वराज्य प्राप्त भी कर लिया तो उससे भी आपका विशेष भला क्या होगा? जैसे दूसरी नौकरशाहियां निरंकुश होती हैं वैसी ही शायद ये भी हों। इसलिए स्वराज्य का अर्थ केवल सत्ता का परिवर्तन नहीं है। वह तो सत्य, स्वावलंबन और प्रेम ही से प्राप्त हो सकता है। हमारी स्वराज्य-प्राप्ति के लिए योरोपीय मार्ग काम नहीं दे सकते।"

देशबंधु का विद्यार्थियों को उपदेश

गत २२ अगस्त को कलकत्ता के विद्यार्थियों ने देशबंधु को अभिनन्दन-पत्र दिया। उसके उत्तर में आपने कहा—"आज कल की शिक्षा से यदि हमारे हृदय में परमात्मा के प्रति भक्ति न उपजे तो उसका त्याग ही करना चाहिए। आप तो सत्य पर विश्वास रखिए और भारतीय आदर्श की ओर कदम बढाइए। जिस देशभक्ति में भगवद्-निष्ठा नहीं वह देशभक्ति ही किस काम की? मैं न तो पार्लियामेन्टरी स्वराज्य चाहता हूं और न अर्थशास्त्रीय। मैं तो सिर्फ यही चाहता हूं कि भारतीय फिर से सच्चे भारतीय हो जायं। अगर आपको यह आन्दोलन असद् मालूम होता हो तो आपको जो राह ठीक जंचे उससे आप जा सकते हैं। पर अगर आपका यह विश्वास हो कि यह सत्य-मूलक है तो आप इसपर दृढ रहिए। आपकी राह की सब विघ्न-बाधायें आप ही दूर हो जायंगी।" आपने अंत में कहा—"अगर आप स्वराज्य चाहते हैं तो झूठी बातों का प्रचार कभी मत कीजिए। यह तो राजनीति—कुटिल राजनीति हुई। जिनका यह ख्याल हो कि स्वराज्य हिंसा के द्वारा स्थापित हो सकता है उनमें अगर इतना नैतिक बल हो कि वे खुल्लमखुल्ला ऐसा कर सकें तो जरूर करें। पर मैं तो यही कहूंगा कि यह आन्दोलन कूट-राजनीति की नींव पर नहीं खडा किया गया है। यह तो स्वयंसिद्ध बात है कि संसार में हिंसा के द्वारा स्व-राज्य कभी स्थापित हुआ ही नहीं।"

देशबंधु का कार्यक्रम

देशबंधु दास ने बंगाल-प्रान्तीय-परिषद् में जो अपना कार्यक्रम पेश किया है उसका सार नीचे दिया जाता है।

महासभा के बताये कार्यक्रम की छोटी छोटी बातों में कुछ परिवर्तन होना देशबंधु आवश्यक मानते हैं। पर इसका अंतिम निर्णय गया की महासभा के निर्णय पर ही छोडना चाहते हैं। तबतक बारडोली-कार्यक्रम को ही शान्ति-पूर्वक पूरा करना वे उचित समझते हैं। बंगाल-प्रान्तीय समिति के लिए उन्होंने निम्न-लिखित सूचनायें पेश की जो मंजूर हो गईं—

१ खादी की पैदायश व्यापारिक ढंग पर न की जाय। हरएक परिवार को अपने पहनने लायक खादी तैयार कर लेनी चाहिए। खादी-प्रचार को उत्तेजना देने के लिए विदेशी कपडे की दुकानों पर शांतिमय पहरा शुरू रहना चाहिए।

२ तिलक-स्वराज्य-कोष के लिए चंदा एकत्र करने का काम अधिक उत्साह से किया जाना चाहिए।

३ आगामी चार महीने में बंगाल में कम से कम ८ लाख महासभा के नये सभासद होना चाहिए।

४ राष्ट्रीय—पाठशालायें, पंचायतें तथा अन्त्यजोद्धार का काम खूब उत्साह-पूर्वक चलाना चाहिए।

देशबंधु वर्तमान परिस्थिति पर अपना मत सविनय-भंग-समिति की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद महासमिति के अधिवेशन में प्रकट करेंगे।

हिंसा नहीं, अहिंसा

श्री राजगोपालाचारी ने 'यंग इंडिया' में एक सुन्दर संवाद दिया है। उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है—

एक युवक ने कहा:—"अगर सुसंगठित रूप से कई स्थानों पर एकदम बलवा खडा कर दिया जाय तो उसका प्रतिकार करना सरकार के लिए आसान बात नहीं है"!

मैं:—पर मान लीजिए, एक ही स्थान पर कठोर, नहीं भीषण दमन से काम लिया जाय तो उसका देशपर क्या असर होगा?

उसी युवक ने कबूल किया—"अगर जनता कष्ट सहने के लिए पूरी तरह से तैयार न हो तो यह स्पष्ट है कि उसका असर अवश्य ही बुरा होगा"।

मैं:—तो यह तो आप कबूल करते हैं, कि यह आशा करने के पहले कि आप अपने ढंग से भी कुछ कर सकें, जनता में ऐसे प्रचार-कार्य की जरूरत है जिससे उसकी कष्टसहन की प्रवृत्ति और निर्भयता बढे। आगे मैं यह पूछता हूं कि क्या आपको यह विश्वास है कि एक ऐसा संगठन जिसे गुप्त रीति से काम करना होता है जनता को तैयार करने में भलिभांति कामयाब हो सकता है? क्या आप यह आशा करते हैं कि इस प्रकार का गुप्त प्रचार-कार्य देश की कहने योग्य सेवा कर सकता है जब कि एक शक्तिशाली सरकार उसको दबाने के लिए कमर कसकर बैठी है।

यु:—हाँ, सच है यह तो नहीं हो सकता। खुले आम प्रचार करने के लिए तो अहिंसा-धर्म को मानना अनिवार्य है?

मैं:—अगर हम चाहते हों कि हम अपना प्रचार-कार्य खुले आम कर सकें तो क्या आप यह नहीं मानते कि हमें सच्चे हृदय से अहिंसा-व्रती होना चाहिए जिससे सरकार को भी यह विश्वास हो जाय कि हम सचमुच अहिंसा-व्रती हैं।

बु:—हां यह भी सच है।

मैं:—आपकी दृष्टि से भी जनता के सुप्त पौरुष, नियम-बद्धता और त्याग-वृत्ति को जाग्रत कर उसे सुसंगठित करने के लिए खुले तौर पर प्रचार-कार्य करने का असर बहुत महत्वपूर्ण है।

बु:—जी हां।

मैं:—फिर क्या आप यह नहीं मानते कि यद्यपि आपको महात्माजी की अहिंसा का अन्तिम ध्येय मंजूर न हो तो भी हमें बहुत समय तक अहिंसा-मार्ग से ही काम करने की जरूरत है।

बु:—जी हां, और मैं तो यह कहूंगा कि हम लोग जो पहले क्रान्ति करना चाहते थे उसमें इसीलिए असफल हुए कि उस समय जनता में प्राय: इतना देश-प्रेम जाग्रत नहीं हुआ था, लोग इतने सच्चे और विश्वासनीय नहीं थे और न उनमें इतना एका था। गांधीजी के आन्दोलन ने तो सारी जनता के नीति-बल और आत्म-बल को एकदम बढ़ा दिया है। अब तो क्रान्ति के लिए भी पहले से अधिक अच्छा मौका है; क्योंकि जनता अब अधिक जाग्रत हो गई है। और वह साधारणतया अधिक सच्ची अधिक त्यागशील और एकता के बंधनों से अधिक बंध गई है।"

अहिंसा के सिद्धान्त को पूर्णतया माननेवाले हमारे मित्र इस आन्दोलन के नैतिक महत्त्व का जो प्रमाण दे सकते हैं यह हमारे इन दो साल के काम का उससे अधिक कीमती प्रमाण है।

हमारे दोष

हम स्वराज्य स्थापना करने की तैयारी कर रहे हैं। स्वावलंबन और प्रेम हमारे स्वराज्य का मूल-मन्त्र है। हमारा असहयोग पवित्रता और आत्मशुद्धि का आन्दोलन है। असहयोग तो हम बुराइयों से कर रहे हैं। अतएव हमें पहले उनसे बचना चाहिए। पर मालूम होता है कि कुछ लोग अभीतक महात्माजी के सिद्धान्तों को भलीभांति समझ नहीं पाये हैं। अब भी कहीं कहीं से ऐसी शिकायतें सुनाई देती हैं कि:—"कांग्रेस-कमिटी के अथवा दूसरी राष्ट्रीय संस्थाओं के कार्यकर्ता मानते हैं मानों हम आसमान से उतर कर आये हैं। हुकूमत खूब चाहते हैं। कमखर्ची की ओर ध्यान नहीं देते। कभी कभी तिलक स्वराज्य-कोष के लिए चंदा इकट्ठा करते समय दुराग्रह तक कर बैठते हैं। कांग्रेस-कमिटियों से जनता खादी मिलने की आशा करती है। पर वहां खादी नाम को भी नहीं मिलती। इस हालत में जनता के लिए शुद्ध खादी पहनना कठिन हो रहा है।" आदि।

इनमें कई बातें ऐसी हैं जिनसे सचमुच हमें लाभ उठाना चाहिए। किसी भी देश की राज्य-व्यवस्था प्रजा के सहयोग पर ही अवलम्बित रहती है। इस सरकार से हमने असहयोग इसलिए किया है कि वह प्रजा के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करती। इस बेजवाबदेह और विदेशी सरकार के चंगुल से देश को छुड़ाने ही के लिए हम स्वराज्य स्थापन करने जा रहे हैं। इस दशा में जो दोष इस सरकार में हैं उन्हींको हम अपने घरों में स्थान देंगे तो हमारा स्वराज्य किसी काम का न रहेगा। हमें उन दोषों को तो छोड़ ही देना चाहिए; पर दूसरे दोषों से भी बचना चाहिए। हमारे व्यवहार में गर्व और अभिमान रहेगा तो हमारे हाथ से जनता की सच्ची सेवा कभी न हो सकेगी। हम तो सेवक हैं। सेवकों को अभिमान हो ही कैसे सकता है? सच्चे दयामय दानी के हृदय में बड़प्पन के मिथ्या अभिमान के लिए स्थान कहां? अगर हम सच्चे हृदय से अपनी मातृभूमि का उद्धार चाहते हैं तो हमारे व्यवहार में नम्रता, प्रेम, और सहानुभूति दिखाई देनी चाहिए। अन्यथा इस आक्षेप के लिए जगह रह जायगी कि हम देश-भक्ति के भावों से प्रेरित हो कर नहीं, बल्कि परोपकार का ढोंग रच कर, प्रतिष्ठा कमाने के लिए देश-सेवा की डींगें मार रहे हैं। यह देश-सेवा नहीं, पतनकारी स्वार्थ होगा।

जनता से जो चंदा हम एकत्र करते हैं उसका सदुपयोग करना हमारा कर्तव्य है। हम तो निःस्वार्थ भाव से काम करना चाहते हैं। जनता हमारे और हमारे कार्य के प्रति विश्वास रखती है, हमारी संस्थाओं को उपयोगी समझती है इसीलिए वह चन्दा देती है। पर इसके लिए हमें दुराग्रह अथवा दबाव से काम लेने की जरूरत नहीं है। जनता खुद समझती है कि हमारी लड़ाई बड़े नाजुक मुकाम पर आ पहुंची है। बिना काफी आर्थिक सहायता के इस संग्राम में भारत को फतह नहीं मिल सकती। पर जो लोग अब भी समय की गंभीरता को न समझे हों उनसे नम्रता-पूर्वक विनय करने और उनके हृदय और बुद्धि को अपील कर के चन्दा लेने के सिवा दूसरा कोई कर्तव्य हमारा नहीं है। दूसरे, हम स्वदेशी सरकार खड़ी करना चाहते हैं। अतएव जनता की सेवा के लिए, समाज को सुव्यवस्थित रखने के लिए, हमें उसी के सदृश दूसरी संस्थायें स्थापित करना हैं। फिलहाल इन संस्थाओं का काम उन्हीं कांग्रेस-कमिटियों को करना होगा। स्वराज्य की नींव तो यही है। अतएव हमें चाहिए कि हम तन, मन से अत्यंत नम्रता-पूर्वक जनता की सेवा करें। इनकी लोक-प्रियता ही स्वराज्य की जड़ है। अतएव कार्यकर्ताओं को चाहिए कि वे अपने कर्तव्य में जरा भी त्रुटि न रहने दें। सच पूछा जाय तो सच्चा कार्यक्षेत्र वही है।

जब कि देश में सब जातियों को प्रेम के बन्धन में बांधने की कोशिशें हो रही हैं उसी समय छोटी छोटी बातों में ब्राह्मण-अब्राह्मण के झगड़े के भूत को न्योता देना दूरदर्शिता और बुद्धिमानी के खिलाफ है। हमें एक ओर जहां पक्षपात के पाप से बचना है तहां, दूसरी ओर सहनशीलता और उदारता दिखाकर छोटे-मोटे मत-भेदों और मन-मुटाव को नष्ट कर देना है। कांग्रेस-कमिटियों के स्थान स्थान पर स्थापन करने का एक बड़ा उद्देश खादी प्रचार भी है। खादी के प्रचार के साथ साथ जनता में स्वराज्य प्रेम, जाति-प्रेम, हिन्दू-मुसल्मान-एकता और अन्त्यजोद्धार का भी अच्छा प्रचार हो सकता है। कांग्रेस-कमिटियां शुद्ध खादी की आदर्श दुकानें-भाण्डार भी हो सकती हैं। इनसे उनका खर्च निकल कर दूसरे समाजोपयोगी काम जैसे कि पंचायत-स्थापना आदि भी उन के द्वारा हो सकते हैं। यह तो कांग्रेस-कमिटी के कर्तव्य की बात हुई। पर जाग्रत जनता की भी जवाबदेही कम नहीं है। उसे खादी प्रचार या किसी भी देशकार्य के लिए दूसरे का मुंह ताकते न बैठना चाहिए। स्थानीय कांग्रेस-कमिटी का प्रबंध ठीक न हो तो उसे सुव्यवस्थित करना उसका धर्म है। उसके कार्यकर्ता ऐसे पुरुष बनाये जाने चाहिए जो हर काम में जनता के अगुआ होने योग्य हों, जो उसकी न्याय, प्रेम, समता और कर्तव्य की भावनाओं को जाग्रत करते रहें, जो जनता की श्रद्धा के अधिकारी हों, जिन्हें जनता को सन्मार्ग पर ले चलने की क्षमता हो। 'स्वराज्य' किसी के दिलाये नहीं मिल सकता। वह तो हरएक के प्रयत्न से मिलनेवाली वस्तु है। उसके लिए कोशिश करना प्रत्येक भारतीय का धर्म है।

नये महमान

भण्डारा के श्री कर्मवीर पाठक और 'भारत-तिलक' (मदरास) के सम्पादक को एक एक साल की सख्त कैद तथा हिन्दी के उत्साही कवि पं. माधवप्रसाद शुक्ल (कलकत्ता) को तीन माह सादी कैद की सजा हुई है। आजमगढ़ की कां. क. के पं. बलदेवप्रसाद को एक साल की और सरायमीर (जि. अलीगढ़) के मोहम्मद इस्माइल और बा. महावीरप्रसाद को भी एक एक साल की सख्त कैद की सजा हुई है। सरकार के इन नये महमानों को बधाई।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, भाद्रपद सुदी ५, सं १९७९

भय का भूत

मनुष्य निर्भय है; पर शेर की तरह हिंस्र या क्रूर नहीं। मनुष्य अहिंसक है; पर खरगोश की तरह सिर उठाते ही चौकड़ी नहीं भरता। निर्भयता और अहिंसा दोनों उसके जन्मसिद्ध गुण हैं। जो निर्भय नहीं वह अहिंसा-परायण नहीं हो सकता। निर्भयता अहिंसा की पहली शर्त है, पहली सीढ़ी है। भारत को दबी बिल्ली की अहिंसा की जरूरत नहीं। वह गजेन्द्र की अहिंसा चाहता है। भारत अपने बच्चे बच्चे को पुरुष-सिंह देखना चाहता है। पुरुष-सिंह निर्भय होते हैं, शूर होते हैं, अहिंसक होते हैं; हिंस्र, क्रूर और भयानक नहीं। हिंसा, क्रूरता, भयानकता तो पशु का धर्म है। मनुष्य को तो देखते ही भय नहीं, प्रेम, अभय और शान्ति का अनुभव होना चाहिए।

पर आज मनुष्य-समाज अभी मनुष्य-नाम को सार्थक करने वाला कहां हो पाया है? अभी तो मनुष्य नर-पशु ही बना हुआ है। हां, मनुष्यता के विकास की दृष्टि से—मनुष्य के मानसिक और आत्मिक गुणों के उत्कर्ष की दृष्टि से—और देशों की बनिस्बत भारत अधिक अभिमान रखने का अधिकारी है। पर आज उसके कुछ कुछ अंगों की विकृत अवस्था को देखकर हृदय सहम उठता है। आज वह गुलाम है। उसके भाग्य का विधाता सात समुद्र पार का मुट्ठीभर मनुष्य-मण्डल है। आज वह इतना ओज-हीन कर दिया गया है कि कभी कभी सन्देह होने लगता है कि भारत जिन्दा है या मर गया—भारत शूर-वीरों का भारत है या कायरों का। उसके कुछ कुछ अंगों में भय का इतना संचार दिखाई देता है कि इस बात पर शक होने लगता है—क्या 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'सोऽहम्' के तत्व का आविष्कार करनेवाले महापुरुष इसी भूमि में पैदा हुए थे? मनुष्य को भय केवल पाप का हो सकता है, ईश्वर का हो सकता है। पर हमारे पीछे तो भय के सैकड़ों भूत लगे हुए हैं। राज-भय, चोर-भय, लोक-लाज का भय, गुरुजनों का भय, पुलिस का भय, हाकिम का भय, शस्त्र का भय, साहब का भय, स्वार्थ-हानि का भय, मृत्यु का भय, रोगों का भय, परिवार का भय, पेट का भय, दगा का भय,—मतलब यह कि तरह तरह के भयों ने हमारी आत्मा को इतना कमजोर कर दिया है कि हम जीते हुए भी मुर्दे की तरह हो रहे हैं। ऐसा न होता तो कुछ सैकड़ा अंगरेज अपनी मशीनगनों के बल पर इतने दिन तक यहां राज कर पाते? उन्होंने सबसे पहले भीतरी और बाहरी प्रयत्नों द्वारा हमें भय-भीत होना सिखाया। उन्होंने हमारी जड़ काटी तो, पर वह पूरी नहीं कट सकती थी। हजारों बरसों की सभ्यता और संस्कृति को उखाड़ फेंकना मनुष्य के बस की बात नहीं। चक्र फिरा। आज इस सरकार के पापों का घड़ा प्रायः भर चुका है। उतनी ही कसर है जितना कि भय हममें बाकी रहा है।

मनुष्य और भय दोनों परस्पर विरोधी शब्द हैं। जो नर नारायण का अंश है—नहीं, स्वयं नारायण ही है—उसके समीप भय कैसे रह सकता है? भय का अस्तित्व तो अज्ञान में है। अरे अज्ञानी, अपने सत्स्वरूप को पहचान। देख—सूरज को देख, यह तेरे ही प्रकाश से तप रहा है। आग की आंच तेरे ही चैतन्य का प्रतिबिम्ब है। चन्द्र तेरे ही शान्ति का प्रतिनिधि है। अरे, तू प्रकृति का—चराचर का राजा है राजा, गुलाम नहीं। दुनिया के बड़े बड़े बादशाह तेरे हाथ के खिलौने हैं—राम बादशाह की माया में तेरी शतरंज के मोहरे हैं। जिन शक्तियों से आज तू डरता है, जिन्हें तू भयंकर भीषण समझता है, वे तेरी हुंकार के साथ लोप हो जायंगी। तू अपने को पहचान तो। तू देखेगा कि सारे संसार में तू ही तू है—सब तेरा है—सबका तू है।

क्या तू इस रहस्य को जानना चाहता है? मनुष्य की करामात, उसकी शक्तियों के अद्भुत चमत्कार देखना चाहता है? तो निर्भयता सीख। भय भूत की तरह है। भूत को जहां माना नहीं कि वह पीछे लगी नहीं। भय मनुष्य जाति का अपमान है। भय खाना और भय दिखाना दोनों मनुष्य-धर्म के विपरीत है। दोनों कायरता के भिन्न भिन्न रूप हैं। जो दूसरों पर भय का प्रयोग करता है—उन्हें डराता है वह खुद निर्भय नहीं हो सकता। उसकी आत्मा कभी नहीं उठ सकती। भय दिखाना पशुता है, भय खाना पशु से भी नीचे गिरना है।

पर आश्चर्य तो यह कि जिसका भय हमें रखना चाहिए उसका भय तो हम रखते नहीं; पर जिनका भय हमारे पतन का, नाश का बीज है उन्हें हमने अपना मित्र बना लिया है। मनुष्य-समाज में पाप का और ईश्वर का भय आज कितना है? दूसरे सैकड़ों भयों ने पाप और ईश्वर के भय को भगा दिया है और वहां अपना अड्डा जमा लिया है। मनुष्य, चेत! तुझे आज चोरी करने का डर नहीं, भोले-भालों को ठगने का, लूटने का डर नहीं, शराब बेचने और पीने का डर नहीं, अपनी बहनों के सतीत्व भंग करने का डर नहीं, गरीबों को सताने का डर नहीं, अपने मतलब के लिए उनपर अत्याचार करने का डर नहीं, झूठ बोलने, प्रतिज्ञा तोड़ने, धोखा देने और बेईमानी करने का डर नहीं,—अरे क्या तुझे अपनी आत्मा के कल्याण का ख्याल नहीं? क्या तुझे सचमुच आंखें नहीं हैं? पर तू डरता है मिट्टी के पुतलों से, लोहे के टुकड़ों से, पत्थर की कंकरियों से, कमजोर और पापी आत्माओं से! अरे, इनमें दम क्या है? तू फूंक मार—फूंक! ये भूसी की तरह उड़ जायंगे। पर पहले तू अपने अज्ञान को छोड़। मनुष्यत्व को जान। उसका अभिमान रख। भय को घर में से निकाल दे। इससे तू अहिंसा के मर्म को समझेगा। तेरे हृदय में निर्मल और दिव्य प्रेम का प्रकाश होगा। संसार तुझे अपना मित्र मानेगा—तेरा चरण चूमेगा। अपनी पाशवी शक्तियों को तुझपर न्योछावर कर देगा।

तू स्वराज्य चाहता है? इससे बढ़कर राज्य, प्रभुता, ऐश्वर्य तुझे और क्या चाहिए? स्वराज्य तो तेरी लीला का भ्रू-संकेत-मात्र है। अपने स्वराज्य की कौन कहे, तू सारे संसार को स्वराज्य की राह दिखावेगा। जिन्हें तू शत्रु मानता है, वे तेरे शत्रु नहीं हैं। शत्रु तो तेरे हृदय का वह भय है, जिसने तुझे कायर और निर्वीर्य बना रक्खा है, जो तेरी आत्मा को पनपने ही नहीं देता। तू भय का खयाल छोड़ दे और संसार में तुझे कहीं भय न दिखाई देगा। तू शरीर और जीवन का मोह छोड़ दे, भय तेरे पास आने की हिम्मत नहीं कर सकता। तू धन पर से प्रेम हटा ले, भय तुझसे स्वयं भय खाने लगेगा। तू स्वार्थ को छोड़, यही तो भय का घर है। अपने हृदय की मलिनता को दूर कर और भय तेरे लिए कामधेनु हो जायगा। यदि तू स्वराज्य चाहता है, आजादी चाहता है, तो पहले भय को छोड़! निर्भय की ही संसार में विजय है। निर्भय ही संसार में जीवित रह सकते हैं। निर्भय का ही जगत् आदर करता है। निर्भय ही जग में मनुष्य है। भीरु को दुनिया में जीने का हक नहीं, वह जी भी नहीं सकता—उसकी संसार को जरूरत नहीं। वह भार-भूत है। इसलिए निर्भय हो।

हरिभाऊ उपाध्याय

असहयोग का बीज

महापुरुषों की दूरदृष्टि आश्चर्य-जनक होती है। जिस अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन ने आज भारतवर्ष में अद्भुत क्रान्ति पैदा कर दी है, जो संसार को अपनी अपूर्वता से चकित कर रहा है, जिसने अपनी अभुतपूर्व सफलता से केवल भारत सरकार ही को नहीं बल्कि साम्राज्य-सरकार को भी स्तब्ध कर रक्खा है, वह महात्माजी के केवल एक दो साल के चिंतन-मनन का फल नहीं है। भारत की पराधीनता को नष्ट करने के लिए बरसों से वे बराबर सोचते आ रहे हैं। उनकी विचार-व्याकुलता का, उनकी दूरदृष्टि का, पता बरसों पहले के उनके खानगी पत्रों से तथा लेखों से अच्छी तरह लग सकता है। जब आप आफ्रिका में थे तब आपने "हिन्द-स्वराज" नामक एक छोटीसी संवादात्मक पुस्तिका लिखी थी। उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है जिससे पाठक भलीभांति समझ सकेंगे कि असहयोग आन्दोलन का बीज कितना पहले बोया जा चुका था और उसकी जड़ कितनी गहरी है। उसमें एक जगह महात्माजी लिखते हैं—

"उन्हें (अंगरेजों से) मैं सम्मान-पूर्वक कहूंगा—मैं मंजूर करता हूं कि आप मेरे शासक हैं। पर यहां इस सवाल पर बहस करने की जरूरत नहीं कि आप भारत पर राज्य अपनी तलवार के बल कर रहे हैं या मेरे सहयोग के बल। मुझे इस बात पर भी कोई आपत्ति नहीं कि आप मेरे देश में रहें। पर यद्यपि आप शासक हैं तथापि आपको जनता का नौकर हो कर रहना होगा। हम आपकी इच्छा के अनुसार कुछ न करेंगे बल्कि आप ही को हमारी इच्छा के अनुसार चलना होगा। इस देश से आप जो धन लूट ले गये हैं उसे आप चाहें तो रख सकते हैं। पर अब ऐसा कदापि न हो सकेगा। अगर आपकी इच्छा ही हो तो आप पुलिस बन कर रह सकते हैं। आपको अब भारत में किसी भी प्रकार के व्यापारिक लाभ की आशा छोड़ देनी चाहिए। आप जिसे सभ्यता कहते हैं उसे हम उसके ठीक विपरीत समझते हैं। हम अपनी सभ्यता को आपकी सभ्यता से कहीं अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। आप भी अगर ऐसा सोचें तो उसमें आपका भला है। पर अगर आप ऐसा न मानते हों तो आप ही की भाषा की कहावत के अनुसार आप हमारे देश में हमारी ही नीति-रीति के अनुसार रह सकते हैं। आपको यहां ऐसी बातें न करना चाहिए जो हमारे मजहब के खिलाफ हों। × × × आपकी चलाई पाठशालाओं और अदालतों को हम निरुपयोगी समझते हैं। हम तो अपने पुराने ढंग की पाठशालायें और अदालतें ही स्थापित करना चाहते हैं। अखिल भारतीय भाषा अंगरेजी नहीं हिन्दी है। इसलिए आपको उसे पढ़ लेना चाहिए।

"आप रेलें और फौज के पीछे व्यर्थ पैसा बहा रहे हैं। हम इस फजूलखर्ची को बरदाश्त नहीं कर सकते। आप चाहे रूस से डरते हों। पर हमें उसका कोई डर नहीं है। वह जब चढ़ाई करके आवेगा तब हम अपने समझ लेंगे। आप भी यदि रहे तो दोनों मिलकर सामना कर लेंगे। हमें योरप के बने हुए कपड़े की जरूरत नहीं। अपने देश की बनी चीजों से हम अपना काम चला लेंगे। मैंचेस्टर और भारत दोनों की चिन्ता से दुबले होने या आपको कोई जरूरत नहीं। हम और आप तो तभी साथ साथ काम कर सकते हैं जब आपका और हमारा स्वार्थ एक हो।

"मैं आपसे यह सब मसखरी के साथ नहीं कहता। मैं जानता हूं कि आपके पास सैनिक बल खूब है। आपका दर्याई बेड़ा लासानी है। अगर हम आपही के क्षेत्र में लड़ना चाहें तो हम जानते हैं कि हम इसमें असमर्थ हैं। पर अगर पूर्वोक्त बातें आपको मंजूर न हों तो हम कह देते हैं, हम आपके अधीन नहीं रहेंगे। आप चाहे हमारे टुकड़े टुकड़े कर डालिए। आप हमें तोप के मुंह उड़ा दीजिए। पर अगर आप हमारी इच्छा के अनुसार न चलें तो हम आपको **शासन में सहायता न करेंगे और यह तो हम भली भांति जानते हैं कि आप भारत में हमारी सहायता के बिना, हमारे सहयोग के बिना, एक पैर भी नहीं चला सकते।**

"शायद सत्ता के मद से आप हमारी ये बातें सुनकर तिरस्कार की हंसी हंसें। हम शायद एकदम आपके इस मद को न उतार सकें। पर अगर हममें अब भी कुछ पौरुष बचा है तो हम आप को दिखा देंगे कि आपका यह मद आपके लिए आत्मघातक है और आपकी वह हंसी मूर्खता-भरी है। हमारा विश्वास है कि आपकी जाति स्वभावतः धर्म-प्रिय है। यह भूमि भी अनेक धर्म-संस्थाओं की जननी है। हम दोनों का मिलाप किस तरह हुआ, इसके विचार करने का यह मौका नहीं। सवाल तो यह है कि हम इस मिलाप का अच्छा उपयोग किस तरह कर सकते हैं।

भारत में रहनेवाले अंगरेजो, आप अंगरेजी राष्ट्र का अच्छा नमूना पेश नहीं करते। और हम भी—अंगरेजी संस्कृति में बिगड़े हुए भारतीय—सच्चे भारतीय राष्ट्र का अच्छा नमूना नहीं कहे जा सकते। आपने जो कुछ यहां पर किया है अगर उसके सच्चे सच्चे हाल आपके राष्ट्र को मालूम हो जाय तो वह उनमें से बहुत सी बातों का जरूर विरोध करे। भारत की अधिकतर जनता से भी आपको कोई काम नहीं पड़ा है। अगर आप अपनी सभ्यता को छोड़कर अपने धर्मग्रन्थों को देखें तो आपको मालूम होगा कि हमारी ये मांगें न्याय्य हैं।

"जब आप इन शर्तों को अक्षरशः पूरा करें तभी आप भारत में रह सकते हैं। और अगर आप इन्हें पूरा कर के भारत में रहें तो फिर हम कितनी ही बातें आपसे सीखेंगे और आप भी हम से बहुत सी नयी बातें पढ़ेंगे। इस प्रकार हम दोनों का और साथ ही संसार का भी भला होगा। पर यह तो तभी होगा जब आपकी-हमारी मित्रता की जड़ 'धर्म-बंधन' पर खड़ी हो।"

इन वचनों से महात्माजी की स्वाभाविक दूरदर्शिता, निर्भीकता और स्पष्टोक्ति का पता सहज ही लग सकता है। उनकी इस पुस्तिका के अक्षर अक्षर से उनकी असीम देशभक्ति और साधुता टपकती है। उनकी गहन विचार-शक्ति का पता सिर्फ इसीसे लग सकता है कि उस पुस्तिका के अखीर में दिये हुए उनके सिद्धान्तों के निचोड़ के कितने ही भाग असहयोग के कार्यक्रम के मुख्य अंग बनाये गये हैं। वे बरसों पहले आफ्रिका के अपने कार्यमय-जीवन में भी यह सोचते रहते थे कि भारत किस प्रकार स्वराज्य प्राप्त कर सकता है। उसे किस राह से जाना चाहिए। उन्होंने बरसों तक सोच कर मार्ग ढूंढ निकाला आप ही उसके पथ-प्रदर्शक भी हुए।

बैजनाथ महोदय

वीर वामनरावजी

बरार के प्रसिद्ध देशभक्त वीर वामनराव जी डेढ़ वर्ष तक सरकार की मिहमानदारी कुबूल कर के फिर इस संग्राम-भूमि में लौटे हैं। अपने शान्तिमय असहयोग के रहस्य और माहात्म्य को खूब अच्छी तरह समझा है। आशा है, आप के आ जाने से बरार ठीक उसी दिशा में प्रगति करेगा जिसकी ओर देश कदम बढ़ा रहा है। हम आपका सप्रेम स्वागत करते हैं। 'नवजीवन' के प्रतिनिधि के आगे आपने वर्तमान कार्यक्रम का समर्थन और कौन्सिल में जानेका निषेध किया है।

ढसा के दरबार

धन, राज्य और सत्ता का मोह कैसा प्रबल होता है, इसका अनुभव उन्हीं लोगों को होता है जो इनके चक्कर में फंस कर फिर बाहर निकले हों। यदि इस त्रिविध मोह ने भारतीय धनी लोगों, राजे-रजवाड़ों तथा राज-कर्मचारियों को लील न लिया होता तो भारत आज इस तरह अपमान, तेजोवध और गुलामी की आग में जलता हुआ न दिखाई देता। जिसने इस मोह को जीत लिया है वह निस्सन्देह वीर है। वही संसार में कुछ पुरुषार्थ कर के दिखा सकता है। वही अपनी मातृभूमि के पैरों के बन्धन काट कर उसे आजाद कर सकता है।

गुजरात के ऐसे एक त्याग-वीर का नाम अब हिन्दुस्तान भर में छिपा नहीं है। थोड़े ही दिन पहले बम्बई की सरकार ने उनके ढसा और रायसांकली नाम के गांवों को जब्त कर लिया है। देसाई श्री गोपालदास अम्बाईदास आज ढसा के दरबार नहीं, सामान्य प्रजाजन हैं। उनके इस बलिदान ने उन्हें भारत का सच्चा सेवक बना दिया है। उनके पूर्वजों की शूरता, उदारता, गम्भीरता, व्यवहार-कुशलता काठियावाड़ में ही नहीं, सारे गुजरात में प्रसिद्ध है। वे नामी राज-पुरुष और सेनापति थे। जब वे बाहर घूमने के लिए निकलते तो ४०० घुड़-सवार उनके अंग-रक्षक की तरह उनके साथ चलते थे।

दरबार श्री गोपालदास भाई, सरकारी तौर पर राजकुमारों की तरह शिक्षा पाने के पहले, बम्बई विश्व-विद्यालय के एफ. ए. तक पढ़ चुके थे। उनपर गुलामी और पराधीनता के संस्कार अंकित नहीं हो पाये। इसके विपरीत वे अपने मित्रों और हितैषियों से यह भली भांति जान चुके थे कि राज्य का काम सत्य और शान्ति के साथ किस तरह किया जा सकता है। धीरे धीरे उन्होंने प्रजा की तरह अपना जीवन-क्रम निश्चित किया। प्रजा में मिलने और उनके खेलों, उत्सवों आदि में शरीक होने लगे। प्रजा के जीवन में अपना जीवन तन्मय कर देने के लिए उन्होंने 'दांडिया रास'* नाम का एक खेल शुरू किया। लोगों में मिलने-जुलने से उन्हें उनके सुख-दुःख आदि का अनुभव होने लगा। उनकी रानी साहबा ने प्रजा के स्त्री-समाज में मेल-जोल बढ़ाया। उन्होंने स्त्रियों की एक रास-मंडली अलग बनाई और कभी कभी खुद भी शरीक होने लगीं।

इस प्रकार प्रजा की नाड़ी-परीक्षा कर के अब वे उनके दुःखों को दूर करने के प्रयत्न में लगे। सबसे पहले उन्होंने बिना कुछ अवजाव लिये किसानों को जमीन का मालिक करार दे दिया। मवेशियों के चरागाह के लिए अपने खजाने से रुपया देकर १५० बीघा जमीन अलहदा खरीदवा दी। किसानों को तकावी आदि में सहायता देने के लिए हजार दो हजार आबादी वाले छोटे छोटे गांवों में सेवक-मंडल और बैंक स्थापित किये। इनमें ½ धन रिआया का और ½ धन राज्य का लगाया जाता है। यह प्रायः अनाज के ही रूप में लिया जाता है। इन संस्थाओं का धन केवल लोकहित में ही लगाया जाता है। सेवक-मंडल में इस समय ६-७ हजार रुपया है।

दरबार श्री ने राज्य की ओर से प्रजा का कर्ज माफ कर के उसे सार्वजनिक बैंकों में जमा करने की तजवीज कर दी। छोटे छोटे गांवों में भी इस फंड की रकम से रास्तों में सफाई आदि की जाती है। अच्छे पुस्तकालय और वाचनालय भी चलाये जाते हैं और किसानों के लिए खेतों पर ही रात्रि-पाठशालायें भी खोली गई थीं।

उन्होंने अपनी प्रजा को स्वराज्य का मार्ग भी दिखाया। ढसा में १६ सज्जनों को राज्य की ओर से विशेष अधिकार दिये गये हैं। उन्हें ढसा-नूर, ढसा-दीपक, ढसा-पुष्प, ढसा-रंजन, इत्यादि पदवियाँ भी दी जाती हैं। जब ये उपाधियां उन्हें दी गई तब एक महीना पहले से लोगों को खबर कर दी गई थी कि यदि एक भी प्रजा-जन को किसी शख्स पर एतराज होगा तो उसे पदवी न दी जायगी। पदवी देने के बाद यदि कम से कम २० प्रजाजन पदवीधारी के खिलाफ आवाज उठावें तो उसकी उपाधि वापस ले लेने का नियम किया गया है। इन उपाधिधारियों को अधिकार और सत्ता भी खूब दी गई है। ढसा-नूर और ढसा-दीपक को 'वेटो' अर्थात् प्रस्ताव रद करने की सत्ता है। यह अंगरेजी राज्य के ठीक उल्टा है। दरबार श्री गोपालदास ने उन्हें यह अख्तयार दे रक्खा है कि यदि खुद दरबार कोई नियम या कानून अपनी मरजी से बनावें तो उसे वे बिना दलील के रद कर दें। जब दरबार ढसा-नूर को पदाधिकारी की हैसियत से बुलाते हैं तब खुद खड़े हो कर उसका—अपने एक किसान—का सम्मान करते हैं। इस सत्ता का उपयोग भी पदवीधारी लोग कर चुके हैं। एक बार एक मामले से दरबार सा० ने अपनी प्रजा पर फी घर १) जुरमाना किया। पदवीधरों ने राजा सा. से इसके खिलाफ प्रार्थना की। उन्होंने न माना। तब उन्होंने अपने अधिकार के बल पर राजा सा० के हुक्म को रद कर दिया। राजा सा० ने खुशी से सारे जुरमाने की रकम खजाने से लौटा दी। यहां यह भी कह देना चाहिए कि वहां जुरमाने में जो रकम वसूल होती है वह सरकारी खजाने में जमा नहीं होती, बल्कि सेवक-मंडल को दे दी जाती है।

अब उन्हें देशभक्ति की धुन समाई। देशबन्धु दास, पण्डित मोतीलालजी नेहरू के अद्भुत त्याग के समाचार पढ़ पढ़ कर इनका चित्त भारत-माता की सेवा के लिए व्याकुल होने लगा। महात्माजी जब तिलक-स्वराज्य-कोष के लिए भिक्षा मांगने काठियावाड़ में गये तब आपने अपना अत्यन्त प्रिय राज्य-चिह्न-रूप पैर का सोने का लंगर महात्माजी को अर्पण कर दिया। फिर वे खादी की ओर झुके। खादी का मोटा कुरता, टोपी और मोटी धोती धारण की। पूरे किसानों में मिल गये। उनके आदर्श को देखकर उनके राज्य में खादी ही खादी दिखाई देने लगी। ढसा-गांव में शायद ही कोई पुरुष ऐसा हो जो शुद्ध खादी न पहनता हो।

धीरे धीरे दरबार साहब अंत्यजों के घर भी जाने लगे। गुजरात में अन्त्यजों की एक जाति है ढेढ़। ये कपड़ा भी बुनते हैं। ढसा के ढेढ़ों ने मिल का सूत छोड़ कर शुद्ध सूत की खादी बुनना शुरू कर दिया। दरबार सा. ने उनका एक कर माफ कर दिया। मवेशियों के मुर्दे उठाने का ठेका दरबार ने उठा दिया। इससे अंत्यजों का दिल पानी पानी हो गया। ढेढ़-भंगियों ने, मांस और शराब को हराम माना। खुद दरबार सा. के कुएं में से ढेढ़ों को पानी भरने दिया गया।

घर घर में चरखा चलने लगा। १८ वर्ष से अधिक उम्रवाला प्रायः हरएक आदमी महासभा का सभासद हुआ।

यह सेवा भी दरबार सा. को कम दिखाई दी। अतएव राज्य-पाट का काम अपनी रानी साहबा को सौंप कर आप स्वराज्य के लिए स्वयंसेवक बन कर काम करने लगे। इस पर प्रजा ने समझा कि दरबार साहब राजा भर्तृहरि की तरह जोगी हो गये। पर दरबार सा. के हाल ही के भाषण से यह जाना जाता है कि उनका ख्याल ठीक नहीं था। उन्होंने फरमाया—

---

*गुजरात प्रान्त में 'दांडिया रास' एक बहुत लोकप्रिय खेल है। अहमदाबाद की महासभा के समय इन्हीं दरबार साहब का रास संगीत-परिषद् में कितने ही लोगों ने देखा होगा।

"जब से मैं महात्माजी के संसर्ग में आने लगा तब से मैं अपने मनमें यह सोचता रहा कि मुझे धर्म की रक्षा करनी चाहिए या अपने राज्य-पाट की ? यदि राज्य-पाट की रक्षा करूं तो मुझे पोलिटिकल एजन्सी के मजिस्ट्रेट से लेकर तीन कौड़ी के सिपाही तक को खुश रखने की कोशिश करनी चाहिए। कट्टर वैष्णव होते हुए भी मुझे गोरे हाकिमों के लिए अंडे, शराब और मांस तक का इन्तजाम करना चाहिए। पोलिटिकल एजंट या गोरे हाकिमों को प्रसन्न रखने के लिए मुझे कुत्तों पर गोलियां चलाना चाहिए। पर इस प्रकार धर्म का बलिदान कर के सरकार का गुलाम बनकर रहने की अपेक्षा तो निर्द्वंद्व होकर अकेला घूमने में ही सार्थकता है। आज सरकार मेरे राज्य को डकार गई है। पर मुझे विश्वास है कि एक दिन आवेगा जब मेरी आज्ञा के बिना सरकार का आदमी मेरे राज्य में पैर न रख सकेगा। आज **भारत में जो ६३८ देशी राजा कहे जाते हैं वे राजा नहीं पर केवल माया हैं।**"

दरबार श्री कट्टर वैष्णव हैं। उनके पूर्वजों ने पांच हजार रु. आय का एक गांव द्वारका के श्री लक्ष्मीजी के मन्दिर को अर्पण कर दिया। ऐसे धर्मनिष्ठ वैष्णव का वंशज धर्म पर होनेवाले आघात को कैसे सह सकता है ?

यद्यपि अपने को सलाम करने के लिए न आने के कारण बम्बई गवर्नर ने उन्हें पदच्युत कर दिया है तथापि उनके राज्य की रिआया तो उन्हींको अपने हृदय का सच्चा दरबार मानती है। पद-भ्रष्ट हो जाने के बाद जब दरबार साहब अपने राज्य में पधारे तब सारी प्रजा उनके स्वागत के लिए दौड़ पड़ी। उनका जलूस निकाल कर अपूर्व आदर किया ! कितने ही प्रजाजन आज उनके लिए बरबाद हो जाने को तैयार हैं।

इस तरह देसाई श्री गोपालदास आज ढसा, रायसांकली के ही नहीं पर सारे गुजरात के दरबार हो रहे हैं और स्वराज्य-संग्राम में एक नम्र स्वयंसेवक की तरह सेवा कर रहे हैं। आप आणंद तहसील परिषद् के सभापति हैं और हालही में गुजरात ने सर्वमत से आपको महासभा का सदस्य चुनकर आपके त्याग का अभिनन्दन किया है। इस भावना से कि देशी राजाओं में कम से कम एक राजा ने तो अपने साहस और त्याग का परिचय दिया, किस स्वराज्य-प्रेमी और भारत-भक्त का हृदय अभिमान से फूल न उठेगा ? **छगनलाल नाथुभाई जोशी**

कपास की खेती

इस छोटी सी पुस्तक को लिख कर मुजफ्फरपुर-जिलावासी श्री लक्ष्मीनारायणसिंह ने वर्तमान स्वदेशी-यज्ञ में एक अच्छी सी आहुति डाली है। कपास बोने वाले प्रांत में इसका विशेष उपयोग न हो तो भी जिस प्रांत या जिले में आजकल कपास की खेती नहीं होती है, वहां इसका उपयोग जरूर होगा। इसमें कपास की खेती के लिए आवश्यक जमीन, खाद, बीज, खेती वगैरह का प्रकार ठीक तौर पर विस्तार के साथ बताया गया है।

अमेरिकन कपास की जो पहचान इसमें दी गई है वह ठीक नहीं मालूम होती, प्रत्येक पेड की (४-५ फांक के बने हुए) और एकड की जो आमदनी बताई गई है वह इस देश की न होगी। गुजरात का अनुभव तो यह है कि इस कपास की खेती के लिए खास परिस्थिति की आवश्यकता है। किसी प्रांत में अगर इसका प्रयोग न हुआ हो तो छोटा सा प्रयोग करके देख लेना चाहिए। देशी कपास की खेती अगर पूरे एहतियात से की जाय तो जितनी पुस्तक में बताई है उससे भी ज्यादा आमदनी की एकड हो सकती है। यह अनुभव की बात है। **मगनलाल खु० गांधी**

पूज्य बा के विचार

उस दिन कलकत्ते के "भारतमित्र" के सम्वाददाता ने पूज्य बा से जो बातचीत की थी उसका सार इस प्रकार है:—

"असहयोग-संग्राम में भारतीय स्त्रियों का भी तो यही कर्तव्य है कि वे चरखा चलावें और खद्दर पहनें। इसीसे भारत का उद्धार होगा। यदि देश के लिए उनके हृदय में प्रेम है, जेलों में गये हुए भाइयों के लिए चिन्ता है तो वे खद्दर पहनें। जब सीता जी पर दुःख पड़ा था तब उन्होंने सब धीरज के साथ सहन किया था और वल्कल पहन लिया था। खद्दर वल्कल से तो अच्छा होता है। जब रामचंद्र वन में गये थे तब भरत ने कितना तप किया था ? इसीतरह स्त्रियों के लिए भी तप करने का समय आ गया है। उनको चूकना न चाहिए। प्रायः स्त्रियां मोटे कपड़े से घबड़ाती हैं। पर बारीक सूत कातना तो उन्हींके हाथ की बात है। उन्हें उसके लिए मिहनत करना चाहिए। बापूजी (महात्माजी) का भी सबको यही सन्देश है कि चरखा चलाओ और खद्दर पहनो।

देश के स्त्री-पुरुषों को मुझसे बहुत प्रेम है, यह मैं जानती हूं। इसलिए मुझे विश्वास है कि वे खद्दर-प्रचार के काम को जरूर उठावेंगे। अब भी वे उठा ही रहे हैं। मेरे इस थोड़े कहे को वे बहुत मानें और मेरे कथन पर ध्यान दे कर वे इस काम को और भी अच्छी तरह करें। यही उनसे मेरी प्रार्थना है"।

कुछ शंकायें

नागपुर जिले के एक गांव से एक मुसलमान दुकानदार पूछते हैं कि "'हिन्दी नवजीवन' पढ कर लोग मुझसे कहते हैं कि तुम अंगरेजी बारूद मत बेचो, पेटंट दवाइयां मत बेचो, अदालत स्टांप मत बेचो। सो मुझे तो इसमें कुछ गुनाह नहीं नजर आता। हां, विलायती बारूद बेचने में तो गुनाह हो सकता है पर दवाइयां और स्टांप बेचने में क्या गुनाह है ? मिहरबानी करके खुलासा कीजिएगा।"

हर मुल्क का यह फर्ज है कि वह अपने ही मुल्क की बनी चीजों को बरते, उसीका रोजगार करे, हां जो चीजें अपने मुल्क में नहीं बन सकती, लेकिन हों तो हमारी जिंदगी के लिए जरूरी वे दूसरे मुल्कों से मंगाई जायं या उनकी तिजारत की जाय तो इसमें कोई गुनाह नहीं है। हिंदुस्तान में बारूद मिलते हुए विलायती बारूद बेचना ठीक नहीं है। पेटंट दवाइयों की अगर हमारी जिन्दगी के लिए जरूरत है तो दूसरे मुल्कों से मंगाना बुरा नहीं है। स्टांप से मतलब अगर अदालती स्टाम्प से हो तो वह असहयोग के-तर्के मवालात के उसूल के खिलाफ है; क्योंकि कांग्रेस ने और खिलाफत कान्फ्रेन्स ने अदालतों का बायकाट किया है और स्टांप बेचना अदालत को इमदाद पहुंचाना है।"

बी-अम्मा का कफन

मौलाना अली-भाइयों की बूढ़ी माता बी-अम्मा देश में जगह जगह भ्रमण करके खिलाफत का प्रचार कर रही हैं। अपने साथ में वे एक कपडा रक्खे रहती हैं। जो खुद उन्हीं के हाथ के कते सूत का बुना हुआ है। पूछने पर उन्होंने फरमाया कि "मैं बूढ़ी हूं। नजाने किस वक्त कहां दम छोड़ दूं। और वहां पाक स्वदेशी कफन मिले गा न मिले। सो अपने कफन के लिए इस पाक कपड़े को अपने साथ लिये लिये फिरती हूं"। क्या हिन्दुस्तान हरएक गांव में शुद्ध स्वदेशी का प्रचार करके बी-अम्मा की चिन्ता को दूर करेगा ?

अश्रु-गद्गद् प्रवचन

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष २] [अंक ३

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, भाद्रपद सुदी १३ संवत् १९७९
रविवार, सायंकाल, ३ सितम्बर १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

श्री गांधी-जयन्ति

आगामी २ अक्तूबर को भारत महात्मा गांधी की वर्षगांठ का उत्सव मनाने वाला है। महात्माजी के जन्म-दिन को अगर हम सत्य-प्रकाश के नये युग का आरम्भ दिवस कहें तो अत्युक्ति न होगी। महात्माजी ने भूले-भटके संसार को सत्य के पुनर्दर्शन कराने का बीड़ा उठाया, उसे फिर अपना सनातन मार्ग दिखाया। भारत का तो उन्होंने काया-पलट ही कर दिया। इसलिए वह उस दिन महात्मा जी की पूजा करेगा। पर ऐसे कर्मयोगी की, देश के भाग्य-विधाता की पूजा करने के लिए पात्रता भी वैसी ही होना चाहिए। महात्मा जी की पूजा यदि हम करना है तो हमें उनके कर्म-मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिए। उनके दिव्य जन्म-कर्मों का ठीक-ठीक अर्थ समझ कर तदनुसार हम भी देश की सेवा करें, यही उनकी सेवा है। जिन आदर्शों के लिए वे आज जेल में हैं उन्हीं की प्राप्ति के लिए हम भी अपना जीवन न्योछावर कर, यही हमारे आराध्य-देव की पूजा है। गुजरात ने इस महोत्सव को विशेष प्रकार प्रकार से मनाने का निश्चय किया है। अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ नाम का एक विश्व-विद्यालय महात्माजी के हाथ से खोला गया है। महात्माजी के लगाये इस वृक्ष की वृद्धि के लिए उसको द्रव्य द्वारा सहायता देना ही गुजरात ने इस महोत्सव पर अपना कर्तव्य समझा है। गुजरात में राष्ट्रीय शिक्षा का जितना प्रचार किया गया है उतना शायद ही दूसरे किसी प्रान्त में हुआ हो। इस विद्यापीठ की केवल दो बड़ी संस्थाओं में मिलकर ७५,०००) कीमत का ग्रंथ-संग्रह है। विद्यापीठ के महाविद्यालय में अभी २५० विद्यार्थी भिन्न भिन्न विषयों पर उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षालयों में कुल मिलाकर ३७,००० विद्यार्थी अभी शिक्षा पा रहे हैं। इनमें एक हाईस्कूल ऐसा है, जो सरकारी अंकों के अनुसार सारे ब्रिटिश-साम्राज्य में सबसे बड़ा हाईस्कूल है। अंगरेजी की केवल ऊपर की ४ कक्षाओं में २,२०० विद्यार्थी उस हाईस्कूल में शिक्षा पा रहे हैं। फिलहाल न तो इतने विद्यार्थियों के लिए विद्यापीठ के निज का भवन है न उतने बड़े ग्रंथ-संग्रह को रखने के लिए ही स्थान है। इसीलिए गुजरात ने इस बार विद्यापीठ की सहायता के लिए अपनी अपनी शक्ति के अनुसार कुछ चंदा देने का निश्चय किया है। जो राष्ट्रीय शिक्षा के प्रेमी हिन्दी-नवजीवन के पाठक गुजरात विद्यापीठ की सेवा करना चाहें वे अपना चन्दा हिन्दी-नवजीवन के पते पर भेज कर महात्मा जी की जयन्ति मना सकते हैं।

आजादी के लिए !

योरप में मनुष्य का मूल्य बहुत कम है। वह तिनके से भी अधिक कीमती नहीं माना जाता। दल-विशेष की अथवा मत-विशेष की सनक पर मनुष्य को तलवार के घाट उतार देना वहां बायें हाथ का खेल समझा जाता है। आजादी की प्राप्ति और रक्षा के नाम पर—अपनी माता—मातृभूमि की सेवा के जोश में वहां भाई भाई का खून करते नहीं हिचकिचाता। इसे वह शूर-वीरता का और मातृभक्ति का चिह्न समझता है। पिछले महायुद्ध में हमने इस आजादी का निघृंण रूप देखा ही है। लाखों माता के प्यारे भेड़-बकरियों की तरह, कीड़े-मकोड़ों की तरह, मशीनगनों की गोलियों से भून डाले गये! पर क्या किसीकी आजादी की रक्षा हुई? पहले से अधिक शान्ति हुई? आज आयर्लैंड में एक ही माता के पुत्र आजादी के नाम पर एक दूसरे को जीवित रहने की आजादी को यमलोक की राह दिखा रहे हैं। श्री डी वेलेरा के प्रजासत्ता के हिमायती दल और श्री ग्रिफिथ और कालिन्स के स्वतंत्र-राज्य के पक्षपाती दल के बीच कोई दो महीने से हिंसाकाण्ड हो रहा है। हाल ही में श्री कालिन्स के खून हो जाने की खबर आई है। वे आयर्लैंड के स्वतंत्र-राज्य के प्रधान मन्त्री और सेनापति थे। उनके साथी सभापति ग्रिफिथ कुछ ही दिन पहले मर चुके हैं। श्री कालिन्स के मारे जाने से उनका दल अनाथ-सा हो गया है। कहना नहीं होगा कि श्री कालिन्स का वध डी. वेलेरा के बलवाईयों के द्वारा हुआ है। इस घटना से आयर्लैंड में बड़ी उत्तेजना और सनसनी फैल रही है। श्री कालिन्स बड़े कार्यक्षम और कार्यदक्ष पुरुष माने जाते थे। पहले वे डी. वेलेरा के ही दल में थे। उनके साथी थे। आज वे अपने मित्र और भाई के दल की गोलियों की मिहमानदारी ग्रहण करते हुए मृत्युलोक को सिधार गये! कैसा करुण और साथ ही बीभत्स दृश्य! केवल राजनैतिक मत-भेद के लिए एक दूसरे की जीवित रहने की आजादी छीन ले, यह कैसा अद्भुत और क्रूर न्याय! क्या यही सच्ची आजादी और उसकी चाह है? आजादी वह है जो खुद भी जीवित रहे और दूसरे को भी जीवित

रहने दे। सच्चा आजाद वह है जो खुद आजाद रहे और दूसरे को आजाद रहने दे। जो अपनी आजादी को पाने और रखने के लिए अथवा खो जाने के डर से दूसरे की बोलने, चलने और जिन्दा रहने की आजादी को छीनता है वह वीर नहीं, कायर है, डरपोक है। वीर तो अपनी आजादी की तरह दूसरे की आजादी की भी कदर करता है; अपने जीवन की तरह दूसरे के जीवन को भी बहुमूल्य समझता है। अपनी तरह दूसरे को भी अपने विचारों के अनुसार माता की सेवा करने का अधिकारी मानता है। डी. वेलेरा और उनके दल की आजादी की चाह की कदर ऐसा कौन मनुष्य होगा जो न करेगा? पर उसके लिए वहां परस्पर जो हत्याकाण्ड हो रहा है वह मनुष्यता के लिए कलंक-रूप है और आजादी के लिए शर्मिन्दगी का बाइस। खून-खराबी से मिलने वाली आजादी मनुष्य की आजादी नहीं, पशु की आजादी होगी जिसकी रक्षा वह दांतों, खुरों और सींगों के बल पर करता है और जो माता की तरह उनको समदृष्टि से गले नहीं लगाती बल्कि कुलटा की तरह कभी एक दल के और कभी दूसरे दल के गले में बांह डालती है।

भारतवर्ष सावधान रहे। उसे अपनी मनुष्यता का पूरा पूरा ख्याल रहे। आयर्लैंड की यादवी से वह नसीहत ले। आपस में लडकर वह तीसरे का अधिकाधिक गुलाम होने से अपने को बचावे।

राजनीति नहीं, धर्म्म

हमारे देश में इस समय एक दल ऐसा है जो राजनीति में धर्म के योग को सहन नहीं कर सकता। वह कहता है, राजनीति से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं। राजनीति व्यवहार के लिए है, राजकाज के लिए है—धर्म परलोक के लिए है। धर्म-प्रधान असहयोग-आन्दोलन पर वे इसीलिए कठोर कटाक्ष करने लगे हैं। वे मानते हैं कि राजनीति में तो 'शठं प्रति शाठ्य' से ही सफलता मिल सकती है। 'शठं प्रत्यपि सत्यम्' तो संसार-शून्य साधुओं की उपज है। इन सज्जनों को देशबन्धु दास महोदय के भाषणों से खासा जवाब मिलता है। उन्होंने कहा कि "पाश्चात्य सम्पत्तिशास्त्र पाश्चात्य समाजशास्त्र और पाश्चात्य राजनीति-शास्त्र की त्रिपुटी ने भारत की अपार हानि की है। जब हम इसका साथ छोड देंगे तभी हम राष्ट्र की आत्मा को पहचान सकेंगे। यदि हम विश्वास के साथ काम करेंगे तो संसार में राजनीति नाम की कोई वस्तु ही न रह जायगी—चारोंओर धर्म ही धर्म दिखाई देगा।" देशबन्धु केवल राजनैतिक नेता ही नहीं, असाधारण विद्वान् हैं, कवि हैं और धर्म का मर्म समझने वाले भी हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो धर्म ही नित्य है। धर्म ही समाज और राज्य का नेता है। पश्चिमी दुनिया में जो राजनीति और धर्म का घटस्फोट हो गया है उसका मूल कारण उनकी धर्म-हीन शिक्षा-पद्धति है। उसीका अनुकरण कर के हमारे भाई भी उल्टे रास्ते जा रहे हैं। वे धर्म की अपेक्षा राजनीति को—मूल की अपेक्षा शाखा-टहनी को और सज्ञान श्रद्धा की अपेक्षा कोरे तर्कवाद को—आत्मा की अपेक्षा शरीर को या भाषा की अपेक्षा व्याकरण को अनुचित और हानिकर महत्व दे रहे हैं। इसका फल यह हो रहा है कि 'शठं प्रति शाठ्यं' का रूपान्तर 'देश-विरोधियों के प्रति शाठ्य'—उससे आगे चल कर 'स्व-पक्ष विरोधियों के प्रति शाठ्य' और आगे चल कर—'अपने विरोधियों के प्रति शाठ्य' इससे भी आगे 'जिस पर अपने विरोध करने का शक हो अथवा जिसकी ओर से विरोध होने की सम्भावना हो उसके प्रति शाठ्य' में धीरे धीरे होता जा रहा है। और अन्त को यह 'प्रत्येक के प्रति शाठ्यम्' का हीन और निन्द्य रूप धारण कर ले तो आश्चर्य नहीं। बिना लंगर का जहाज जिस प्रकार हवा और तूफान जिधर बहा ले जाय उसी तरफ बहता जाता है उसी प्रकार धर्म-शून्य राजनीति कभी मनुष्य को उसके अन्तिम तक नहीं पहुंचा सकती। क्या हमारे वे भाई देशबन्धु के अनुभव और चिन्तन से लाभ उठावेंगे और अपने युद्ध को नीचे क्षेत्र से हटा कर ऊंचे क्षेत्र में ले जाने का प्रयत्न करेंगे?

पंजाब में फिर धर-पकड

पशु-बल के उन्माद से यह सरकार इतनी पागल और शायद मृत्यु-भय से इतनी मूढ हो गई है कि जहां एक ओर दमन के द्वारा वह अपनी जड जमाने का निष्फल प्रयत्न कर रही है तहां दूसरी ओर उसे यह दिखाई ही नहीं दे रहा है कि वह दिन पर दिन खोखली होती जा रही है। जिसे वह शान्तिमय क्रान्ति की जड काटने की कुल्हाडी समझ रही है वही कुदाली बन कर स्वयं उसकी जड को खोद रही है। दुष्टों और पापियों के जीवन में एक समय ऐसा आता है जब उन्हें देखते हुए भी न देखने के लिए, करने की इच्छा न होते हुए भी करने के लिए, मजबूर होना पडता है। ऐसी ही हालत में दुर्योधन ने कहा था—मैं जानता हूं कि यह पाप है, पर अपने को उससे रोक नहीं सकता; मैं जानता हूं कि यह धर्म है, पर कर नहीं सकता। मेरे हृदय में मुझे किसी ऐसी शक्ति का अनुभव हो रहा है जो मेरी इच्छा के खिलाफ मुझसे पाप तो कराती है, पर धर्म नहीं करने देती। यह शक्ति और कोई नहीं, उसके दुष्कर्मों का संचय था। यही हाल वर्तमान सरकार का हो रहा हो तो ताज्जुब नहीं। वर्तमान अन्ध दमन, न्याय और कानून की अवहेलना, इसीका सूचक है। प्रायः कोई दिन ऐसा नहीं जाता है कि भारत के किसी न किसी कोने से किसी के गिरफ्तार होने और सजा पाने के समाचार न आते हों। पुलिस की ज्यादती, अंधाधुन्धी और पशुता की तो ऐसी ऐसी शिकायतें आती हैं कि उन्हें पढते हुए रोंगटे खडे हो जाते हैं। और तुर्रा यह कि यह जमाना खास लन्दन के न्यायाधीश लार्ड रीडिंग बहादुर का है, जिन्होंने महज न्याय की कसमें खाते हुए यहां के शासन की बागडोर अपने हाथों में ली है।

इसी सप्ताह पंजाब से अकालियों के धर-पकड की सनसनी भरी खबरें आई हैं। अमृतसर जिले में अकाली सिक्खों का एक गुरुद्वारा है। उसके लंगर अर्थात् रसोई-घर के लिए 'गुरु का बाग' से अकालियों ने लकडियां काटीं। वहां के स्थानीय हाकिम उन्हें लकडियों का हक करार नहीं देते थे। बस, उन्होंने लकडी काटनेवालों को चोरी में गिरफ्तार कर लिया। अब क्या था! अकाली-सिक्खों के जत्थे के जत्थे आ आ कर लकडी काटने लगे। इधर गिरफ्तारियों का भी तांता लग गया। अबतक ११५ सिक्खों के पकडे जाने के समाचार आये हैं। उनमें शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमिटी के सभापति श्री सरदार महताबसिंग जी भी पकडे गये हैं। आप पहले पंजाब की धारासभा के उपाध्यक्ष थे। अकालियों में खूब उत्साह और उत्तेजना फैल रही है। तिसपर भी अबतक आदर्श शान्ति है। सरकार अपने पशु-बल के द्वारा उनके धार्मिक हकों पर पदाघात कर के सिक्खों की स्वाधीन-वृत्ति को दबाना चाहती है; पर धर्म-हीन सरकार धर्म के प्रेम और भारत के सिक्खों की धर्मनिष्ठा को नहीं पहचान सकती। अतएव सिक्खों और सरकार दोनों का भविष्य स्पष्ट है—यतो धर्म स्ततो जयः। सरकार की नस ढीली करने का एक ही रामबाण उपाय इस समय भारत के पास है—खादी। जितना जोर सरकार दिखावे उससे दूना जोर हम खादी-प्रचार में दिखावें। बस, बरसात की बाढ की तरह सरकार की सारी उछल-कूद जहां की तहां रह जायगी।

सच्चा तेज

नीचे शिरोमणि गुरुद्वारा कमिटी के सभापति सरदार महताबसिंह तथा मन्त्री आदि सज्जनों का घोषणा-पत्र दिया जाता है जिससे इस टक्कर का सच्चा तेज और असली रूप दिखाई देगा—

"हम अपने सद्गुरु और परमेश्वर के लिए जेल जा रहे हैं। इस बात से हमारे हृदय में अत्यन्त हर्ष और सन्तोष हो रहा है कि 'अकाल पुरख' ने हम सेवकों को अपने कार्य की सिद्धि का साधन बनाया है। अबतक हमने अपनी बुद्धि और शक्तिभर अच्छीतरह अपने कर्तव्य का पालन किया है। हमें पूरा विश्वास है कि अब जिन भाइयों के कन्धों पर यह पवित्र काम आ पड़ा है वे गुरुनानक-गुरु गोविंदसिंह के इस झंडे को बराबर ऊंचा उठाते रहेंगे और ऐसा कोई काम न करेंगे जिससे लोगों की नजरों में, फिर वे चाहें हमारे मित्र हों या शत्रु, अपने पूज्य पन्थ का गौरव गिर जाय। अब अन्त में हम एक ही प्रार्थना करना चाहते हैं। हर एक सिक्ख का बच्चा, चाहे मर्द हो या औरत, शिरोमणि प्रबन्धक कमिटी के साथ रहे और उसके संकेत के अनुसार चले। क्योंकि यही कमिटी सिक्खों के जातीय गौरव का जीवित प्रतीक है।"

शहरों में पापाचार

वेश्यागमन को कुछ लोग व्यभिचार का सभ्य रूप समझते हैं। लुक-छिपकर व्यभिचार करने की अपेक्षा वेश्यागमन में कम पाप माना जाता है! इसी समझ का यह फल है कि आज हम भारत के छोटे-बड़े सब कस्बों और शहरों में वेश्याओं का और उनके भक्तों का खासा समुदाय देखते हैं। यह इस बात का सूचक है कि अभी-तक मनुष्य अपनी कुवासनाओं का कहांतक गुलाम बना हुआ है। वह कितना पशु की तरह काम-मूढ़ है। इसका कारण यह है कि उसने अभी अपने मनुष्यत्व को पहचाना नहीं है। मनुष्य का शरीर प्राप्त करते हुए भी वह पशु-भाव को मानुषभाव-पशु के मूढ़ दुर्विकारों को मनुष्य के आक्षेपहीन विकार समझ रहा है। उसे अपनी बहनों पर बलात्कार करते हुए, उन्हें सन्मार्ग से भ्रष्ट करते हुए, उनकी दुर्बलताओं से अपनी अधम वृत्तियों की तृप्ति करते हुए जरा भी संकोच नहीं होता-शर्म नहीं आती! भारत की ही नहीं, सारे भूमण्डल की लाखों पतित बहनें आज पुरुष-समाज की कामांधता का शिकार हो कर ईश्वर के दरबार में उसके खिलाफ दावा दायर करने की पेशबन्दी कर रही हैं! मनुष्य, तू ईश्वर की इन प्यारी पुत्रियों को गिरा कर अपना कल्याण किस तरह चाह सकता है?

शहरों में तो इस पापाचार का ठिकाना ही नहीं। बड़े शहरों को एक दृष्टि से नरक का प्रतिबिम्ब कहें तो अत्युक्ति न होगी। सादा, स्वाभाविक और पवित्र नीतिमय जीवन वहां असम्भव हो गया है। जीवनकलह इतना भयंकर हो गया है कि 'पेट' और 'पैसे' के सिवा दूसरी बात लोगों को सुझाई ही नहीं देती। यह हमारी महरबान अंगरेजी सरकार और पश्चिमी सभ्यता की बरकत है। हमारे अज्ञान और बुद्धिहीनता का कुफल है। शहरों के कृत्रिम भोगमय जीवन का प्रलोभन और संघर्ष ही इस पापाचार की असीम वृद्धि का प्रधान कारण है। दूसरे पापों की बात जाने दीजिए, सबसे भयंकर और स्वास्थ्य, सदाचार और सम्पत्ति की दृष्टि से अत्यन्त हानिकर पाप-वेश्यागमन-को ही लीजिए। भारत की मोह-नगरी बम्बई में इस पापाचार से लोग जब बहुत हैरान होने लगे तब वहां सरकार की ओर से इसकी रोक के उद्देश से एक कमीशन बैठाया गया। उसने अपनी रिपोर्ट अभी प्रकाशित की है। उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। खुले आम वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों की संख्या ५ हजार से ऊपर बताई गई है। और यों तो ३०-४० हजार के बीच कही गई है। बाज बाज वेश्याओं को ३०-४० तक नर-पशुओं की कामतृप्ति करनी पड़ती है! तब उनकी गुजर होती है। भारत जैसी शस्य-सम्पन्न भूमि में उसकी बेटियों को पापी पेट के लिए अपना सतीत्व बेचना पड़े, अपने सतीत्व पर इतना अत्याचार सहन करना पड़े, यह कितनी लज्जा और परिताप की बात है!

कमिशन ने इस दुराचार को रोकने के लिए कुछ उपाय भी बताये हैं; पर वे सब लक्षण-चिकित्सा की श्रेणी के हैं। हमारी राय में निदान-चिकित्सा के बिना इस रोग का निर्मूल होना असम्भव है। जबतक मनुष्य-समाज अपने जीवन में सादगी, स्वाभाविकता, पवित्रता और नीतिमत्ता का प्रवेश नहीं करेगा, जबतक समाज की व्यवस्था आर्थिक नहीं बल्कि नैतिक सिद्धान्तों के मूल पर नहीं रची जायगी, तबतक इस रोग की जड़ कटना कठिन है। आज भारतीय शिक्षित समाज के सामने जो पश्चिमी समाज का अर्थमूलक आदर्श है और जिसका बुरा असर अज्ञात भाव से निचली श्रेणी के लोगों पर हो रहा है वह जबतक लुप्त नहीं हो जाता तबतक दूसरे सब प्रयत्न निष्फल होंगे। वर्तमान शान्तिमय असहयोग-आन्दोलन का जन्म इसी आदर्श-परिवर्तन के लिए हुआ है। इसने हमारे जीवन के कुछ भागों में क्रान्ति की भी है! यदि हमें सचमुच इस तथा दूसरे पापाचारों से घृणा है तो हमें असहयोग-आन्दोलन को तुरन्त अपनाना चाहिए। यही विपन्न भारत और मनुष्य-समाज का तरणोपाय है।

कौन्सिल और जेलजीवन पर कृपलानीजी

कुछ दिन हुए, बनारस गांधी आश्रम के अध्यापक कृपलानी ६ माह स्वराज्य-मंदिर में निवास करके आये हैं। उनकी बातचीत का विवरण 'यंग इंडिया' के गतांक में छपा है। उसका सार नीचे दिया जाता है:—

"युक्त-प्रदेश में तो कौन्सिलें, जहांतक उनसे काम लिया गया है बिकुल्ल असफल सिद्ध हुई हैं। और अब तो कोई भी असहयोगी जो पहले उनमें जाने की बात करता था, किसी को वहां जाने की सिफारिश न करेगा। मैं भी यही राय दूंगा कि कोई भी महासभा का सदस्य कौन्सिल में न जाय। पर अगर इतने पर भी कोई न माने और कौन्सिल में जाना उचित समझे तो मेरी उनसे यही प्रार्थना है कि वे अपने उच्चपद की शान में रचनात्मक कार्यक्रम को न भूलें"। आगे चलकर युक्त प्रदेश के जेलों के विषय में आपने कहा:—"भारत भर में युक्त प्रदेश के जेल राजनैतिक कैदियों के लिए सबसे खराब हैं। उनमें कैदियों के भिन्न भिन्न दरजे ठहराये गये हैं। इससे तो और भी खराब हालत हो गई है। क्योंकि यह दरजे नियत करने का काम भी तो भिन्न भिन्न जिला मॅजिस्ट्रेट की सनकों के अधीन है। कभी कभी मालिक तो तीसरे दरजे के कैदी बनाये जाते हैं और उनके नौकर पहले दरजे के। यद्यपि कहा तो यही जाता है कि यह वर्गीकरण व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति के अनुसार किया जाता है। पर ऐसा नहीं होता। अगर मजिस्ट्रेट किसी व्यक्ति से अधिक असंतुष्ट हो तो वह राजनैतिक कैदी के बदले साधारण कैदी बनाया जाता है। पहले दरजे के कैदियों को सिर्फ खाना कुछ भिन्न तरह का मिलता है। दूसरी तमाम बातों में वे साधारण कैदियों के से ही रक्खे जाते हैं। इस तरह युक्त प्रदेश की सरकार उस वर्गीकरण का बहाना करके लोगों की आंखों में धूल झोंकती है। बात तो यह है कि इतने सब राजनैतिक कैदियों को पहले दर्जे के कैदियों के अनुकूल रखने के लिए आवश्यक खर्च युक्त-प्रदेश की सरकार नहीं उठा सकती। इसलिए वह राजनैतिक कैदियों को भी चोरी, डकैती आदि के इल्जाम लगाकर उनको साधारण कैदियों की श्रेणी में डाल देती है।"

इससे उन लोगों का भ्रम दूर हो जाना चाहिए जो संयुक्त प्रांत के जेल-प्रबन्ध की तारीफों के पुल बांधा करते हैं।

जयन्ति-अंक

आगामी तारीख २ अक्तूबर को महात्मा जी की वर्ष-गांठ के उपलक्ष्य में 'हिन्दी-नवजीवन' का विशेषांक निकलेगा।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, भाद्रपद सुदी १३, सं १९७९

स्वराज्य का रास्ता

स्वराज्य या आजादी प्राप्त करने का अबतक एक ही रास्ता दुनिया को मालूम था—शस्त्रयुद्ध—रक्तपात। आजतक दुनिया के प्रायः तमाम छोटे-बड़े मुल्कों और राष्ट्रों को शस्त्र ले कर शत्रुओं का वध करना पड़ा है और इस रक्त-व्यापार में जिसकी विजय हुई है, राज्यसत्ता और आजादी ने उसीका आश्रय ग्रहण किया है। यह तो जुदी बात है कि इस उपाय से, शस्त्रबल और विजय की इस स्पर्धा से वास्तविक स्वराज्य और आजादी कितने देशों और जातियों को प्राप्त हुई, कबतक वह उनके पास टिकी रही और उससे समाज को, जनता को सच्चा लाभ कहांतक हुआ है। पश्चिमी देशों के जो राष्ट्र आज आजाद, स्वराज्य-प्राप्त, प्रजासत्तात्मक माने जाते हैं, जिनकी नींव का एक एक पत्थर अनेक वीरों और देश-भक्तों के खून से जोड़ा गया है, वहां प्रजा को, जनता को स्वराज्य का सुख कहांतक मिल रहा है, यह भी एक विचारने योग्य बात है। क्या आज इंग्लैंड में लाइड जार्ज महोदय का—उनकी पार्टी का राज्य नहीं है? मैंचेस्टर-लंकाशायर का राज्य नहीं है? क्या कोई कह सकता है कि वहां जनता का राज है, पैसे का नहीं? अमेरिका का राज्यतन्त्र क्या इने-गिने करोड़पतियों के इशारे पर नहीं चलता है? रूस में क्या विपक्षी-भाइयों को जीवित रहने की भी आजादी रक्खी गई है? शायद स्विजरलैंड को छोड़कर कहीं भी थोड़ा बहुत प्रजा का राज नहीं कहा जा सकता। एक मनुष्य के बजाय एक मनुष्य-मण्डल प्रजा का प्रतिनिधि बनकर, उसके हित के नाम पर, प्रजा को अपनी उंगुली पर नचाता है। शस्त्र-बल अर्थात् पशु-बल के द्वारा प्राप्त या स्थित स्वराज्य या आजादी हमेशा उसीके पास रहेगी जो पशुबल में अर्थात् क्रूरता, भयानकता, और हिंस्रता में सबसे बढ़ा-चढ़ा हो। इसका यही फल हो सकता है कि संसार में आजादी और स्वराज्य चाहनेवाले हमेशा इन तीनों गुणों (?) की वृद्धि की स्पर्धा में रत रहेंगे जिससे आखिरकार न उनका भला है न समाज का। और स्वराज्य या आजादी चाहना तो मनुष्य का जन्मसिद्ध गुण और अधिकार है। अतएव सृष्टि के अन्ततक मनुष्य पाशवी भावों के ही उत्कर्ष में लगा रहेगा और स्वराज्य और आजादी के नाम पर समाज और संसार अत्याचार, हिंसाकाण्ड और रक्त-पात की लीलाभूमि बना रहेगा।

तथापि गुलामी और कायरता से तो यह दशा बहुत अच्छी है। गुलामी के पिंजड़े में अत्याचार और दमन की जंजीरों से कसे हुए हतवीर्य होकर पड़े रहने की अपेक्षा तो समरभूमि के धारातीर्थ में स्वाधीनता के लिए प्राण समर्पण करना या शत्रु को अपने पैरों पर झुका लेना ही मानास्पद और वीरोचित है। पर सवाल यह है कि क्या भारत आज शस्त्र के बल पर पशुबल पर स्थित इतनी बड़ी सरकार से अपना राज्य ले सकता है? मनुष्य की बुद्धि जहांतक पहुंच सकती है, यह असम्भव है। तो क्या गुप्त षड्यन्त्र रचकर इस सरकार की जड़ उखाड़ी जा सकती है? यह तो ख्याल तक करना महज हास्यास्पद है। इस उपाय के खिलाफ उन सैकड़ों देशभक्त वीरों की गवाहियां हैं जिन्होंने अपनी जान तक को संकट में डाल कर आजमाइश कर ली है। तो अब भारत किस रास्ते से स्वराज्य प्राप्त करे?

बस, एक ही रास्ता खुला है—शान्तिमय असहयोग। कुछ लोग 'वैध आन्दोलन' नाम का एक और रास्ता बताते हैं; पर वह तो केवल माया है, धोखे की टट्टी है। जो उस पथ के पथिक भारत में हैं वे भी धीरे धीरे अपने भ्रम को अनुभव करते जा रहे हैं। शान्तिमय असहयोग का सीधा-सादा अर्थ है वर्तमान राज्यतन्त्र रूपी विशाल-वृक्ष को जीवन-रस मिलने के जितने रास्ते हैं वे सब बन्द कर दिये जायं। प्रजा की सहायता या सहयोग ही उसका जीवन-रस है। उसके अभाव में यह प्रचण्ड वृक्ष सूख कर अपने आप बेकार हो जायगा। यह मनुष्योचित लड़ाई है, धर्म-युद्ध है। इसमें प्रतिपक्षी की हत्या नहीं होती, पर वह असमर्थ अवश्य हो जाता है और हमारा बल बराबर बढ़ता जाता है। समाज में शान्ति बराबर बनी रहती है। एक पेड़ का सूखता जाना और दूसरे का साथ साथ पल्लवित होता जाना दोनों क्रियायें एक साथ इतनी बेमालूम होती जाती हैं कि दुनिया के सब कारोबार ज्यों के त्यों चलते हुए शासन-यन्त्र का काया-पलट हो जाता है। यह शान्त युद्ध संसार में एक नवीन और अद्भुत प्रयोग है। इसके सफल होने पर संसार का जीवन ही पलट जाय तो आश्चर्य नहीं।

इस प्रयोग में हमें सरकार से धीरे धीरे अपना सारा सहयोग खींच लेना है। दूसरे, हमें उससे किसी प्रकार की सहायता नहीं लेना है, उसके कृपा-प्रसादों से मुंह मोड़ लेना है अर्थात् अपने पैरों पर खड़े रह कर सारी तैय्यारी करना है। इस तरह जहां एक ओर हमें असहयोग करना है तहां दूसरी ओर स्वावलम्बन बढ़ाना है। हमारा स्वावलम्बन जितना ही दृढ़ होगा, असहयोग उतना ही तीव्र और सफल होगा। जिसे हम पापी और बुरा समझ कर सहायता नहीं देते उससे सहायता ले भी कैसे सकते हैं? दोनों पाप हैं।

इसी तत्व के अनुसार सरकारी विद्यालयों में पढ़ना, सरकारी अदालतों से लाभ उठाना, कौन्सिलों में जाना नाजायज ठहराया गया है। फिलहाल इन्हीं तीन बातों में सरकार से सहयोग इस लिए खींचा गया कि ये ही तीन संस्थायें ऐसी हैं जिनके द्वारा सरकार भारतवासियों को बोदा और परावलम्बी बना रही है और अपना राज यहां टिका रही है। हमारे स्वावलम्बन की मात्रा ज्यों ज्यों बढ़ती जायगी त्यों त्यों उसकी दूसरी संस्थाओं से भी असहयोग किया जायगा और अन्त को यह असहयोग इस खूबी के साथ शान्तिमय बलवे के रूप में परिणत हो जायगा कि यह विशाल और भीषण राज्य-यन्त्र देखते ही देखते बेकार हो जायगा और उसके सब पाशवी साधन जहां के तहां कंकर-मिट्टी की तरह रक्खे रह जायंगे।

पर यह तभी हो सकता है जब हम स्वावलम्बन पर अधिकाधिक दृढ़ होते जायं। जबतक हम एक ओर सरकार से जरा भी मदद लेने की इच्छा करते रहेंगे, और दूसरी ओर अपने नेताओं और कार्यकर्ताओं का मुंह ताकते रहेंगे, यह सोचते रहेंगे कि

स्वराज्य तो हमें गांधीजी, देशबन्धु, हकीम साहब या नेहरू जी ला कर दे देंगे तबतक याद रखिए स्वराज्य आपसे बहुत दूर रहेगा। नेता लोग तो हमें रास्ता दिखा सकते हैं, हमारी कुछ सहायता कर सकते हैं, पर मंजिल तो हमीको अपने पावों से तै करनी होगी। वे हमें गोदी में उठाकर स्वराज्य तक नहीं ले जा सकते। इसमें न हमारा गौरव है, न शोभा। और इस तरह नेताओं का दिया राज्य हमारा राज्य कैसे हो सकता है? वह तो उन लोगों का राज्य होगा। भिखारी दान के बल पर कबतक पेट भर सकेगा? और उसके लिए किसी दिन दाता बन ने का मनोराज्य करना तो महज पागलपन है। अतएव यदि भारत सचमुच सचा और अपना राज्य चाहता है तो उसके बचे बचे को स्वावलम्बन और स्वाभिमान का सबक खूब अच्छी तरह सीख लेना चाहिए। दूसरे से सहायता लेना, दूसरे के बल पर चलने की इच्छा रखना, दूसरे की दया और कृपा का भिखारी बने रहना—फिर वह चाहे सरकार हो चाहे हमारे भाई-बिरादर हों अपने मनुष्यत्व का, अपने पौरुष का अपमान करना है और अपने को सदा के लिए निर्बल बनाये रखना है। चन्द्रमा को देखिए—वह सूर्य के बल पर जीवित रहता है। तो क्षय और वृद्धि का रोग बराबर उसके पीछे पड़ा रहता है। कभी चैन नहीं लेने देता। पानीके पौधों को देखिए—दूसरे के बल पर पानी पीने की आदत पड़ जाने से वे कितने अल्पायु हो जाते हैं। जहां पानी मिला नहीं कि उनकी जान के लाले पड़े नहीं। लताओं को देखिए—पेड़ का आश्रय टूटते ही बेचारी किस तरह दुर्दशा हो कर म्लान और क्षीण हो जाती हैं। पराबलम्बिता गुलामी का दूसरा रूप है। गुलाम को दूसरे लोग बनाते हैं, और परावलम्बी खुद बनता है। इसलिए एक तरह से परावलम्बिता गुलामी से ज्यादह खराब है। उसका मूल हमारे ही हृदय में है। घर का चोर, आस्तीन का सांप, हमेशा अधिक भयंकर हुआ करता है। इसलिए, भारत सावधान हो जा। दूसरों का मुंह ताकने की कुटेव छोड़। **मा ब्रूहि दीनं वचः** और याद रख—

"आत्मावलम्ब जिसको कुछ भी न प्यारा
देता उसे न जगदीश्वर भी सहारा।"

हरिभाऊ उपाध्याय

अमेरिका की सहानुभूति

भारत के लिए स्वराज्य चाहने वाले अमेरिकन कमिशन ने सिनसिनाटी नगर से यह प्रकाशित किया है कि, अमेरिकन फेडरेशन आफ लेबर (श्रमजीवी संस्था) ने जो अमेरिका के ४०,००,००० संगठित श्रमजीवी सदस्यों की प्रतिनिधि है, भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के प्रयत्न का समर्थन किया है। उसकी हाल की सभा में मि० जेम्स ओकनेल का यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है— "यह अमेरिकन श्रमजीवी संस्था संसार की सब जातियों के लिए न्याय और स्वतंत्रता चाहती है। भारतवर्ष जो आबादी में संसार का पचमांश है अपने जन्मसिद्ध अधिकार-स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न कर रहा है। भारतीय विदेशी सरकार के शासन से, महात्मा गांधी के आदेशानुसार, असहयोग कर रहे हैं। यह असहयोग आन्दोलन भारतीय महासभा द्वारा चलाया जा रहा है। महात्मा गांधी तथा अन्य हजारों लोग जेलों में इसलिए डाल दिये गये हैं कि, उन्होंने जनता की आकांक्षाओं को प्रकट किया था। इसलिए यह संस्था भारतीयों के प्रयत्नों से सहानुभूति प्रकट करती है।" इस प्रस्ताव की नकल महात्मा गांधी तथा अ० भा० कांग्रेस को भेजी गई है।

अश्रु-गद्गद् प्रवचन

[बंगाल के विद्यार्थियों ने भारत के प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य प्रफुल्लचंद्र राय की अध्यक्षता में देशबंधु को एक सम्मान-पत्र दिया। उसके उत्तर में देशबन्धु ने यह अश्रुपूर्ण प्रवचन किया था—]

आपने मुझे जो अभिनन्दन पत्र दिया है उसके विषय में बहुत लंबा-चौड़ा भाषण करना मैं नहीं चाहता। पर एक बात के विषय में तो मैं जरूर कुछ कहूंगा। आपने मेरे लिए जिन अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है वे बहुत अत्युक्ति-पूर्ण हैं। आपकी दृष्टि निर्मल है। और आपको मैं जैसा दिखाई देता हूं अगर सचमुच मैं वैसा ही हूं तो अपने अहोभाग्य समझूं। मेरी तो परमात्मा से यह प्रार्थना है कि आपके ख्याल में मैं जैसा हूं वैसा सचमुच हो सकूं। मैं आपको यकीनन् कहता हूं कि जिस कोटि में आप मुझे बैठाना चाहते हैं उस कोटि में बैठने लायक तो स्वयं आप भी हैं।

कितने ही भाइयों का कहना है कि विद्यार्थिवर्ग अपने धर्म-पालन में शिथिल है, वह स्वार्थी है, राष्ट्रीय आन्दोलन में उसने कुछ योग नहीं दिया, और जिन थोड़े-बहुत विद्यार्थियों ने योग दिया भी उन्होंने फिर उसे छोड़ दिया। पर मैं शुरू से आपके हृदय में एक महान् आदर्श को देखता आया हूं, और मुझे विश्वास है कि किसी दिन वह जरूर प्रकट होगा। सारे बंगाल में अगर कोई आत्म-बलिदान करने के लिये तैयार है तो वे आप हैं, हम नहीं। (यह कहते हुए देशबन्धु का हृदय भर आया। आंखों से अश्रुधारायें बहने लग गईं, कुछ ठहर कर फिर गद्गद कंठ से आप आगे बढ़े:—)

जब मैं सारे बंगाल में भ्रमण कर रहा था तब शहरों में और देहात में मुझे ऐसे कितने ही विद्यार्थी मिले जिन्होंने-(अश्रुधारायें ही अधूरे वाक्य की पूर्ति कर रही थीं)

उन्होंने कितना आत्मत्याग और कष्ट-सहन किया उसकी सच्ची कीमत मैं आज कर सकता हूं। दिन पर दिन बीतते चले जाते थे पर किसीको खाने-पीने की भी याद न आती (आंखों से अविरल अश्रुधारायें बहती ही जा रही थीं) न कोई उनकी पूछ-ताछ करने वाला था। सैकड़ों संकटों को सहकर, आपत्तियों की जरा भी परवा न करते हुए उन्होंने देश का कार्य किया था। ऐसे केवल पांच ही विद्यार्थी होते तो भी यह विद्यार्थि-वर्ग के लिए गौरव की बात थी। मैं आपमें वही सेवा-भाव और वही कुर्बानी आज देख रहा हूं।

जब मैंने आपको इस आन्दोलन में शरीक होने के लिए बुलाया तब लोग कहने लगे कि आपका यह प्रयत्न व्यर्थ है। आपकी पुकार का उत्तर नहीं मिलेगा। पर मुझे विश्वास था कि मेरी पुकार का उत्तर जरूर मिलेगा। और मैं यह भी जानता हूं कि मेरा वह प्रयत्न निष्फल नहीं हुआ। क्या हमारे बाह्यजीवन में भी हमें आत्मा के स्पर्श का अनुभव नहीं होता? क्या उषा की मनोहर मृदुल अरुणिमा में मध्यान्ह के उग्रताप का बीज नहीं होता? ये शंकाशील लोग जीवन के इस रहस्य को समझ ही नहीं पाये। एक उद्बोन्मुख राष्ट्र के पुरुषार्थ के-इस सत्यशोधन के-मर्म को नहीं पा सके। जो उठ चुके हैं और कुछ आगे भी बढ़ गये हैं वे तो जरूर ही आगे बढ़ेंगे। यह तो स्वराज्य का प्रथम सूत्र है।

फिर हमें निराश भी क्यों होना चाहिए? क्या उस विश्व-नियंता की लीला में हम सत्य के प्रकाश को नहीं देख सकते? उत्तिष्ठत जाग्रत। अपने हृदयस्थ सत्य को ही पहचानो। मर्द बनो, वीर पुरुष बनो और कार्यक्षेत्र में कूद पड़ो। कितने ही भाइयों का कहना है 'तुम तो विद्यार्थी हो, तुम्हारा काम तो है पढ़ना' पर मेरा आपसे यही अनुरोध है कि आप शिक्षा का, पढ़ने का अर्थ पहले समझ लीजिए। क्या विद्या भोगविलास का साधन है?

क्या वह एक ऐसा जेवर है जो शरीर के किसी विशेष भाग में पहना जा सकता है ? जो ज्ञान अपने माता-पिता के प्रति भक्ति पैदा नहीं करता, जिस ज्ञान से हृदय में देश-भक्ति पैदा नहीं होती, जिस ज्ञान से ईश्वर को पहचानने के लिए व्याकुलता उत्पन्न न हो उस ज्ञान की हमें जरूरत नहीं । वह ज्ञान भले ही इस पृथ्वीतल से नष्ट हो जाय, हमें उसकी जरासी परवा नहीं । सच्चा ज्ञान तो वही है जो मनुष्य के हृदय में सत्य का प्रकाश फैला सके । साहित्य, तत्त्वज्ञान, विज्ञान, गणितशास्त्र अगर मातृभूमि की पुकार को हमें न सुनने देते हों तो वे सब व्यर्थ हैं, अस्पृश्य हैं । अगर गणित अथवा साहित्य हमारे हृदय को विशाल नहीं बना सकते तो उनमें से ज्ञान का एक बिन्दु भी नहीं प्राप्त हो सकता । अगर तुम्हें परमात्मा के सामने ऊंचा सिर करके खड़े रहने की ताकत न हो तो तुम्हारा सब ज्ञान केवल माया है, उसका परित्याग कर दो ।

इन दो दिनों से मैं जो कुछ कह रहा हूं उसे बहुत से लोग समझ नहीं पाये । आचार्य राय कहते हैं कि वे देशाभिमान के सिवा दूसरा कुछ जानते ही नहीं । पर मैं कहता हूं कि मैं तो देशाभिमान को भी नहीं जानता । मैं तो ऐसी एक भी बात को नहीं मानता जो परमात्मा के पास पहुंचने में विघ्न-रूप हो । उसकी सेवा करने के तथा उसके पास पहुंचने के अवसर कई रूपों में हमें मिलते हैं । हमें तो सिर्फ उनका उपयोग कर लेना चाहिए ।

" बंग आमार जननी, धात्री आमार " इसका अर्थ क्या है ? यह गीत गाते समय हमारा हृदय फूल क्यों उठता है ? स्वदेश तो जगन्नियन्ता की एक प्रकट कला है, उसकी लीला का एक अंश है । इसीलिए तो जब हम बंग-भूमि की अथवा भारतमाता की प्रार्थना करते हैं तब हमारे हृदय में उस सर्वशक्तिमान् देवाधिदेव की विभूति का मानों संचार हो जाता है । मैं देशाभिमान को नहीं मानता और न मैं देशाभिमानी हूं । जिस देशाभिमान के नाम पर एक देश की प्रजा दूसरे देश की प्रजा का खून करने की परवा नहीं करती उसकी मुझे जरूरत नहीं । ऐसे देशाभिमान से भारत अभीतक कलंकित नहीं हुआ ।

आज एक अंगरेजी अखबार में मैंने पढ़ा कि मैं कहना क्या चाहता हूं, यही उसकी समझ में नहीं आता । ये लोग मेरे कहने का अर्थ ही नहीं समझते । पर मैं तो जो कहता हूं वही चाहता भी हूं । मैं चाहता हूं कि भारतीय परमात्मा की लीला को देख सकें । मुझे आपके पार्लियामेंटी स्वराज्य की बातें नहीं चाहिए, न मुझे देश की केवल आर्थिक मुक्ति में ही सन्तोष है । मैं तो आत्मदर्शी होना चाहता हूं । परमात्मा की लीला के ताल में हमें भी शामिल हो जाना चाहिए । कितने ही लोग मुझसे कहते हैं कि आपको जो कुछ कहना हो स्पष्ट कहिए । मैं अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकता । देश की प्रगति की रेखा को अंकित कर देने वाला मैं कौन होता हूं ? यह तो किसी मनुष्य के अधिकार-शक्ति की बात नहीं है । यह अधिकार तो केवल ईश्वर को है ।

खुद मेरा ही मार्ग स्पष्ट नहीं है । मुझे तो कुछ कुछ प्रकाश मात्र दिखाई देता है । मेरे पास योजनायें नहीं । जो मेरे पास ऐसी योजनायें मांगने के लिए आते हैं उन्हें मैं यही कहता हूं कि मैं वह कुछ नहीं जानता । मैं तो सिर्फ इतना जानता हूं कि हम अपना धर्म-पालन का अधिकार मांग रहे हैं—नहीं, वह हक तो हमारे पास हई है—सिर्फ उसका उपयोग करना बाकी है । हम उन लोगों से कुछ नहीं मांगते और वे हमें देनेवाले हैं भी कौन ? हम तो सिर्फ उस मार्ग के ढूंढने का हक चाहते हैं जो हमें मुक्ति की ओर ले चले-फिर चाहे आप उसे देशाभिमान कहें, स्वराज्य कहें या जो कुछ कहना चाहें कहें । जिनका यह खयाल हो कि वह तो सत्ता से मिल सकता है उन्हें भले ही उसकी आराधना करने दो । पर इसमें तो जरा भी सन्देह नहीं कि स्वराज्य अवश्य आ रहा है । हमें तो उसे परमात्मा का प्रसाद समझकर उसके स्वागत की तैयारी करना चाहिए । हमारा यही धर्म है कि उसके स्वागत की सब तरह से तैयारी कर लें । इसमें अलबत्त जरा भी त्रुटि न रहे, यह देखना काम हमारा है ।

जबतक हमारा यह खयाल रहेगा कि हमारा जीवन भिन्न भिन्न विभागों—जैसे कि आर्थिक, राजनैतिक, आदि,—में विभक्त है तबतक स्वराज्य से हम दूर ही रहेंगे । स्वराज्य का अर्थ यह नहीं । वह तो हमसे सर्वस्व-त्याग की अपेक्षा करता है । मैं भी आपसे यही मांगता हूं । मेरा खयाल है कि गोरे लोग शायद इस बात को नहीं समझ पाये हैं ।

यह तो हमारी कमजोरी है जो हम योजनाओं के लिए अधीर हो रहे हैं । यह तो अंधकार में भटकते हुए की पुकार के जैसा है । जब स्वराज्य का दीपक आपके हृदय में प्रज्वलित होगा तब वह स्वयं ही आपको सत्य का मार्ग बता देगा । यदि नीति के सूत्रों का उपदेश किया जायगा तो लोग उन्हें तोते की तरह कंठस्थ कर लेंगे, पर उन्हें कार्य के रूप में कोई न परिणत करेगा । पर जब परमात्मा की कृपादृष्टि आप पर होगी तब आपके हृदय के द्वार आपही खुल जायंगे । हमें पुरुषों की, गोलहों आना पुरुषों की जरूरत है । बस, वैसे पुरुष आप हो जाइए । अगर आपको यह मालूम हो कि इस आन्दोलन में कृत्रिमता अथवा असत्य है तो आप दूर ही खड़े रहिए । भयभीत चित्त से नहीं, शुद्ध अन्तःकरण से अच्छी तरह सोचिए । पर अगर मेरी ही तरह आपको भी वह सत्य मालूम होता हो तो वीर की तरह विघ्नों की जरा भी परवा न करते हुए कर्तव्य-मार्ग पर अटल रहिए ।

यहां पर असत्य को स्थान नहीं है । जैसा आप सोच रहे हों ठीक वैसा ही कह दीजिए । कितने ही भाई हिंसा-मार्ग को मानने वाले भी हैं । पर उन्हें यह बात खुल्लमखुल्ला कहने की हिम्मत नहीं; क्योंकि वे पुलिस से डरते हैं । अगर आपका भी यह खयाल हो कि हिंसा के बिना काम न चलेगा तो खुल्लमखुल्ला ऐसा कहने की हिम्मत रखिए । अगर आपको इतनी भी हिम्मत न हो तो कहना होगा कि आप कायर हैं । मैं तो सच्चे दिल से कहता हूं कि अभीतक किसी भी राष्ट्र ने हिंसा के द्वारा स्वराज्य प्राप्त नहीं किया । एक जालिम को निकाला होगा तो उसके स्थान पर दूसरा अत्याचारी आ गया होगा । इटाली, फ्रान्स, अमेरिका, इसका प्रमाण हैं । इन देशों में भी सच्चा स्वराज्य कहां है ? मुझे तो दृढ़ विश्वास है कि संसार को स्वराज्य का स्वाद यह भारत चखावेगा ।

धर्म का मतलब है आत्मा का अनावरण । समाज-सुधार और राजनीति उसके अंग हैं । धर्म के टुकड़े टुकड़े कर डालने से उसका साक्षात्कार नहीं होगा ।

मुझे अब अनुभव हो रहा है कि मेरे अंदर असंख्य सेनाओं का बल आ गया है । पर मैं यह नहीं कह सकता कि मैं कुछ कर सकूंगा या नहीं । मैं अगर कुछ करने के लायक न पाया जाऊं और मुझे अलग भी कर दिया जाय तो उसका भी मुझे जरा दुःख न होगा । मेरी तो परमात्मा से यही प्रार्थना है कि ये आंखें, बंद होने के पहले, अपनी मातृभूमि को सत्य-स्वरूप में देख लें । बस, यही एकमात्र कामना है ।

वीर के विचार

बरार के नेता वीर वामनराव हाल ही में जेल से छूटकर आये हैं। 'नवजीवन' के प्रतिनिधि से उनकी जो बातचीत हुई उसका सार नीचे दिया जाता है :—

"कोई भी कार्यक्रम सदा के लिए तो उपयोगी नहीं कहा जा सकता। अगर यह दिखाई दिया कि राष्ट्र में आगे बढ़ने की ताकत आगई है तो इस कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन कर के हम आगे भी बढ सकते हैं। पर इसके विपरीत, यदि ऐसा दिखाई दिया कि मौजूदा कार्यक्रम भी देश की शक्ति के बाहर है तो शायद इसे भी कुछ कम करना पडे। महात्माजी ने जब ऐसी हालत देखी तब खुद ही, जनता की नाराजी का खयाल न कर के, कार्यक्रम में परिवर्तन कर दिया। पर अब तो मौजूदा कार्यक्रम में से कुछ घटाने की जरूरत नहीं। हां, हमें यह भले ही मालूम होता हो कि कार्यक्रम की एक दो बातों को हम भली भांति न कर सके तथापि आम तौर पर तो यही दिखाई देता है कि हमें अपने काम में बराबर विजय मिलती जा रही है।

"कौन्सिलों में जाने की तो अब बात भी न करनी चाहिए। जब कि महात्माजी को सजा हो गई है और देश में चारोंओर जोरों से दमन हो रहा है तब महज सरकार का विरोध करने के लिए भी जो लोग कौन्सिलों में जाना चाहते हैं उन्हें भी अब तो उसका नाम न लेना चाहिए। आज तो कौन्सिल में जाने की बात करने में भी हमारी मानहानि है। कौन्सिलों से तो हम स्वराज्य की ओर एक इंच भी आगे नहीं बढ सकते। यह सोचना अज्ञान-मूलक है कि हम वहां जाकर सरकार के काम को रोक देंगे। सरकार इतनी पागल नहीं कि वह वहां हमें ऐसा करने की आजादी देगी। मैं तो यह मानता हूं कि हम सब को बाहर रहकर ही देश की सेवा करनी चाहिए।

"न मैं विद्यालयों के बहिष्कार को उठाना उचित समझता हूं। इस आन्दोलन के द्वारा हमें जो नैतिक लाभ हुआ है उसे इस बहिष्कार को उठाकर हमें व्यर्थ न कर देना चाहिए। देश में जो राष्ट्रीय संस्थायें खुल गई हैं उनको जीवित रखने के लिए बहिष्कार अत्यंत आवश्यक है। ये राष्ट्रीय विद्यामंदिर तो स्वराज्य की संगोपनशालायें हैं। राष्ट्रीय शिक्षा से बालकों में वीर और स्वातंत्र्य-वृत्ति का उदय और विकास होता है। इसलिए सरकारी विद्यालयों का बहिष्कार और नये राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना बहुत जरूरी है।

"वकील भाइयों ने राष्ट्र की पुकार पर अच्छी तरह ध्यान नहीं दिया। उनसे राष्ट्र इतनी तो जरूर आशा करता था। यह ठीक है कि उनके लिए अपना पेशा छोडना कठिन है। पर खादी-प्रचार के काम को अगर वे हाथ में लेते तो देश की सेवा करते करते अपने उदर-पोषण का भी प्रबन्ध कर सकते थे। तथापि जनता को चाहिए कि वह अपने वकील-भाइयों की ओर निरादर की दृष्टि से न देखे। कम से कम उनकी भूत-कालीन सेवाओं के लिए तो हमें उनका कृतज्ञ ही रहना चाहिए।

"मैं नहीं सोचता कि हम इस आन्दोलन को सरकारी कानून की कक्षा में रख सकेंगे। परमात्मा का कानून मनुष्य के बनाये कानूनों से सदा श्रेष्ठ है। हमें तो उसीके कानून को अनन्यभाव से मानना चाहिए। ज्यों ज्यों हमारा आन्दोलन बढता जायगा त्यों त्यों हमारे लिए अनीति-मूलक कानूनों को तोडना अनिवार्य होगा। फिर बेचारा पेशेवाज वकील हमें इस आन्दोलन में कहांतक सहायक हो सकता है? वह तो सदा यही बताने की कोशिश में रहेगा कि मैं कानून की सीमा के बाहर नहीं गया। यह वृत्ति स्वराज्य की भावना के लिए पोषक नहीं है। मैं नहीं समझता कि आत्मसम्मान और स्वाधीन-वृत्ति को छोडने में समझदारी है।

"महात्माजी ने इस आन्दोलन की नींव जो शान्ति पर रक्खी है यह बिलकुल उचित किया। इसमें उनकी दूरदृष्टि और राजनीति-कुशलता भी दिखाई देती है। शांत-वृत्ति के द्वारा ही जीवन नियमित होता है। पर मैं गीता का अनुयायी हूं। मेरा यह विश्वास है कि राष्ट्रों के भाग्य का निपटारा रणभूमि पर होता है और स्वाधीनता के प्रेम के लिए मनुष्यों को कभी कभी परमात्मा की इच्छा के अनुसार हाथ में तलवार भी लेना पडती है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्य को अपने हृदय में हिंसावृत्ति को स्थान देना उचित है। सुधरे हुए लोग कभी हिंसा को अपना धर्म नहीं मानते। यह आन्दोलन तो शान्ति के रास्ते ही चलना चाहिए। इसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी तरह हिंसा को स्थान न मिलना चाहिए। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि यह आन्दोलन हिंसा के भावों से पूरी तरह दूर रहे।

"हिंदू-मुसलमान-एकता और अस्पृश्यता-निवारण इन दो मसलों का असली महत्त्व शब्दों के द्वारा वर्णन करना असंभव है। महात्माजी ने उन दोनों को जिस कुशलता के साथ हल किया है उसके लिए भारत को उनका सदैव कृतज्ञ रहना चाहिए। चौरीचौरा की दुर्घटना के कारण महात्माजी का सविनय-भंग को स्थगित कर देना बिलकुल ठीक हुआ।

"इस बार स्वदेशी आन्दोलन बडी अच्छी तरह उठाया गया है। परराज्य की तरह मैं पूंजीशाही को भी खराब मानता हूं। पहले स्वदेशी आन्दोलन में पूंजीवालों की खूब बन आई थी। पर वर्तमान स्वदेशी आन्दोलन जनता के और खासकर गरीबों के लिए बहुत फायदेमंद है। राजनैतिक दृष्टि से भी खादी का महत्व बहुत ही ज्यादह है। मुझे खादी बहुत पसंद है। शीघ्र ही मैं भी विदेशी कपडे के बहिष्कार का काम शुरू करने वाला हूं।

प्रधान-मंत्री के कथनानुसार नये सुधार सिर्फ प्रयोग के लिए हैं। यह स्पष्ट बात है। भारत-मंत्री श्री मांटेगू के उस १२ जुलाई के भाषण से भी यही स्पष्ट होता है। यह तो सरकार की चाल मात्र है। सरकार को भारत पर सैनिक खर्च का अधिक भार लादना था। पर यदि यह भारत को कुछ भी दिये बिना करती तो वह एकदम चौकन्ना हो जाता। इसीलिए सरकार ने यह सुधारों का जाल फैलाया। यथार्थ में प्रधान-मंत्री चाहते हैं कि हम कौन्सिल के जाल में फंस जायं। पर एक बार जहां उसमें फंसे कि हमारे साथ किस तरह पेश आये, इसका जोड-तोड उन्होंने पहले ही से कर रक्खा है।"

भूल-सुधार

हमें अत्यन्त खेद है कि कम्पोजीटर और प्रूफ-संशोधक की अ-सावधानी से पिछले अंक के प्रथम पृष्ठ पर विज्ञानाचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय के लेख का नाम गलत छप गया है। उसका नाम है 'भारत का गुरु'। पाठक सुधार लेने की कृपा करें।

'जीवन चक्र' का पता

भाई मगनलाल खु० गांधी 'जीवन चक्र' नाम के चरखे का पता निम्न-लिखित सूचित करते हैं—

"श्रीयुत पुरुषोत्तम रणछोडदास मार्फत पोस्ट बक्स २९२, बम्बई"

पाठकों को याद ही होगा इस चरखे की समालोचना 'हिन्दी-नवजीवन' के किसी पिछले-अंक में निकल चुकी है।

आगामी गया महासभा के अध्यक्ष फिर देशबंधु दास चुने गये हैं।

मध्य-प्रान्त की गति-विधि

'कर्मवीर' के सम्पादक श्री माखनलालजी और भूत 'भविष्य' के सम्पादक श्री सुन्दरलालजी ने जेल से लौटते ही फिर अपना काम शुरू कर दिया है। सुन्दरलाल जी मध्यप्रान्त में म्युनिसिपालिटियों के संगठन में-उन्हें असहयोगी या महासभा-पक्षीय बनाने में-सफलता प्राप्त कर रहे हैं। अभी ये दोनों उत्साही सज्जन प्रचार करते हुए नरसिंहपुर और गाडरवाडा पहुंचे थे। वहां विदेशी कपडों की होलियां जलाई गईं। मारवाडी-भाइयों ने अपनी विदेशी पगडियां तक उतार कर होली में स्वाहा कर दीं।

हमारी जीवन-शक्ति

खादी असहयोग-आन्दोलन की ही नहीं, भारत की जीवनी-शक्ति है। पर आज भी कितने ही लोग इसे 'अत्युक्ति' या 'काव्य' समझते हैं। उनका ध्यान हम लंकेशायर के कपडे की मिलों के श्रमजीवियों की संस्थाओं और संघों के उन प्रस्तावों की ओर खींचते हैं जिनमें उन्होंने यह कहा है कि भारतीय स्वराज्य के तथा तुर्कस्तान की सुलह के साथ हमारी महानुभूति है और इस बात पर बडा जोर दिया है कि शीघ्रही इन दो बातों का निपटारा कर दिया जाय। वे कहते हैं कि भारत के राजनैतिक और धार्मिक अर्थात् स्वदेशी-आन्दोलन के बदौलत यहां के कपडे के बाजार की हालत बडी अबतर हो रही है। यद्यपि हम इसे अधिक महत्व देना नहीं चाहते, क्योंकि एक तो हमारे स्वदेशी-आन्दोलन का उद्देश भारत में स्वदेशी-धर्म का प्रचार करना है और दूसरे, जबतक भारत को ब्रिटिश-सिंह ने अपने जबडे में मजबूत पकड रक्खा है तबतक इससे उदासीन रहना ही उसके लिए भला है, तथापि इससे इतना तो मालूम होता है कि हवा किस रुख को बह रही है और खादी में कितनी शक्ति है। जबतक हमारी खादी का प्रचार बराबर होता रहेगा तबतक भारत का स्वराज्य तेजी के साथ कदम बढाता हुआ आता रहेगा।

हमारा नन्हा भारत

एक आश्रमवासी 'नवजीवन' में लिखते हैं—

"सचमुच देश की महासमिति ने यह भलीभांति समझ लिया है कि गुलामी की जंजीर में पडे हुए भारत को छुडाने लिए-उसे उन्नत करने के लिए परमात्मा ने खादी के रूप में अवतार लिया है। खादी से ही देश की गरीबी मिटेगी, एकता बढेगी, और नीति का प्रचार होगा। सो उस शक्ति की सहायता के लिए हर एक प्रान्त से दो दो तीन तीन चुने हुए भक्तों का एक छोटा सा मंडल हमारे आश्रम में एकत्र हुआ है। यहां पर छः मास तक स्वदेशी के मंत्र-लोढना, धुनकना, कातना, और बुनना आदि-की साधना कर के वे अपने अपने स्थान को लौट जायगे और वहां वे उस मंत्र को सर्व-साधारण में अधिक जोर के साथ फूकेंगे, जिससे सोये हुए जाग उठेंगे, जागे हुए काम में लग जायंगे और जो पहले ही से काम कर रहे हैं वे अधिक उत्साह से काम करने लग जायंगे।

"शांति के इन सैनिकों ने अपने अनुभव के बल पर संसार को यह पाठ पढाने का निश्चय किया है कि ज्ञान और शारीरिक श्रम दोनों के बिना मनुष्य-जीवन अधूरा है। ये भाई यहां पर अपने पूरे समय तक काम कर के मनोरंजन भी करते रहते हैं। विद्यालय की प्रार्थना में अपने अध्यापकों से धार्मिक ज्ञान भी ग्रहण करते हैं। हिन्दी-भाषा के प्रेमी उसका अध्ययन करते हैं। इतिहास का शौक रखने वाले इतिहास के वर्ग में जाते हैं और कभी कभी समय मिलने पर सभायें कर के उनमें विविध विषयों पर चर्चा भी करते हैं।

"हमारे भी अहोभाग्य, कि घर बैठे गंगाजी आ गई। इन भिन्न भिन्न रीति-रिवाज, भाषा, रहन-सहन, और विचार परन्तु समान संस्कृति वाले भक्तों ने हमारे जीवन में भी एक नवीन रस का संचार कर दिया है। इन आत्म-बलिदान के लिए तत्पर रहने वाले प्रेममय और उत्सुक भाइयों के सत्संग से हमें बहुत शिक्षा मिल रही है। देश के हर एक प्रान्त की स्थिति का दिग्दर्शन हमें इन भाइयों के द्वारा हो जाता है।

"प्रार्थना के समय भी साथ साथ, स्नान के समय भी साथ साथ, चरखा कातते समय भी साथ साथ, अभ्यास करते समय भी साथ साथ और सब का ध्येय भी एक ही। इससे हमारा सारा दिन बड आनंद में बीतता है और शरीर में सदा स्फूर्ति बनी रहती है। हम जब एक दूसरे से मिलते हैं तब हमें यही कल्पना होती है कि हम मानों अपने नन्हे से भारत में ही विहार कर रहे हैं।"

अहिंसा अनिवार्य

एक स्थान पर बातचीत में एक भाई ने जरा मुंह बिगाड कर अहिंसा निरादर-सूचक कटाक्ष किया। यह एक साधारण बात है। पर इसपर मैंने उनसे कहा—आपने अहिंसा के विषय में जो शब्द अभी अपने मुंह से निकाले उनके विषय में मुझे आपसे कुछ कहना है।

यु:—भला क्यों?

मैं:—क्या आप इस आन्दोलन में शरीक नहीं हैं?

यु:—नहीं क्यों, जरूर हूं। पर मेरा ख्याल है, अहिंसा को हमने सामयिक नीति समझ कर स्वीकार किया है। अहिंसा तो मनुष्य-स्वभाव के विपरीत है।

मैं:—आपके कहने का आशय यह तो नहीं कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति हिंसा की ओर है और उसका दमन करना कठिन है?

यु:—हां, यही तो है?

मैं:—तथापि मैं तो ख्याल करता हूं कि फिर भी आप यही चाहते हैं कि जनता को अभी अहिंसात्मक उपायों से ही काम लेना है।

यु:—जी हां, चाहता तो यही हूं; क्योंकि मैं खुद इस आन्दोलन में शरीक हूं।

मैं:—फिर क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति हिंसा की ओर है, इसलिये उसे उधर जाने से रोकने का हम अपने बसभर प्रयत्न करें? अहिंसा में जनता का जो विश्वास हो गया है उसे न टूटने देने का एहतियात रक्खें? और क्या आपका यह विश्वास है कि यदि इस तरह आप जैसे लोग ऐसी खानगी बातों में भी अपने और अपने आन्दोलन के प्रति ऐसा अविश्वास प्रकट करते रहे तो हम जनता की, अपनी सामयिक नीति के ही अनुकूल क्यों न हो, इस प्रवृत्ति को दबा कर उसे सुसंगठित कर सकेंगे?

कुछ देर के बाद उन भाई के चेहरे पर नये ही भाव दिखाई दिये। और उन्होंने केवल यह मंजूर ही नहीं किया बल्कि वचन भी दिया कि अब मैं कभी अपने खानगी या सार्वजनिक भाषणों में अपने आन्दोलन के आधारभूत सिद्धान्तों के विषय में संदेह न प्रकट करूंगा।

रा० गो० (यंग इंडिया)

विरोध और असहयोग

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष २] [अंक ४

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय | अहमदाबाद, आश्विन बदी ४, संवत् १९७९ | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
मुद्रक—प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी | रविवार, सायंकाल. १० सितम्बर १९२२ ई० | सारंगपुर, सरकीगरों की वाडी

टिप्पणियां

राक्षसी लीला

इस अंग्रेजी राज्य में सत्ता और अत्याचार इन दो शब्दों का भेद मिट-सा गया है। पशु जिस प्रकार अपने शत्रु को तहस-नहस करने के लिए पागल हो कर दौड़ पड़ता है उसीप्रकार भारत की [illegible] शाही भारत के धधकते हुए तेज को नस्त-नाबूद करने के लिए अपनी सत्ता को आसुरी रूप दे रही है। मुसल्मान आक्रमणकारियों ने जो जुल्म भारत पर किये वे धर्म के नाम पर, अपनी मिजाज के नाम पर किए। पर यह सरकार तो उससे भी बदतर जुल्म भारत की बेहबूदी, कानून और शान्ति के नाम पर कर रही है। ज्ञानवान और हृदयवान मनुष्य जब पशु से भी बढ़ कर अत्याचार करने लगता है तब उसके लिए 'राक्षसी लीला' के सिवा दूसरा नाम और क्या तजवीज किया जाय? कौन कह सकता है कि आज अमृतसर में अकालियों पर रोमांचकारी अत्याचार नहीं हो रहे हैं? पुलिस उन्हें डंडों से पीटती है, उनके मुंह पर कपड़ा बांध देती है, उनके केशों को पकड़ पकड़ कर उखाड़ डालती है, उनपर घोड़े छोड़ दिये जाते हैं, आहत लोगों के पास इलाज का सामान नहीं पहुंचने दिया जाता, सिक्ख वीर मार खाते खाते बेहोश हो जाते हैं! अबतक कोई २०० अकाली घायल हो चुके हैं। पर कानून, शान्ति और न्याय के ठीकेदार बनने वाले भारत के इन रखवालों की कान पर जूं तक नहीं रेंगती। शैतान उनपर इस तरह सवार मालूम होता है कि उनके विवेक की आंख खुलही नहीं रही है। इससे बढ़कर कानून और अदालत के बल का दिवाला और क्या हो सकता है? वीर अकाली, जिनमें कितने ही लोग सरकारी पल्टनों में रह चुके हैं, पुलिस के डंडे खाते हुए भी अपनी जगह से नहीं उठते और न उसपर उंगली तक उठाते हैं। बराबर शान्ति के साथ उनके अत्याचारों को सहते हैं! यह उस शान्त शक्ति का सूचक है जिसके बल के सामने दुनिया की बड़ी से बड़ी अत्याचारी सरकार भी नहीं ठहर सकती।

सिक्खों का इतिहास जीवित है। धर्म ही उनके जीवन का एक-मात्र नेता है। धर्म की रक्षा की प्रतिज्ञा कर चुकने वाला वीर सिक्ख पीछे हटना या मौत से डरना जानता ही नहीं। धर्म के लिए जो जो अमानुष अत्याचार इस जाति ने सहे हैं उनका सानी संसार के इतिहास में नहीं है। ऐसी जाति के धार्मिक भावों और अधिकारों पर पदाघात करना अपने नाश को निमंत्रण देना है। 'गुरु का बाग' में आज सारे पंजाब से खादी की वर्दी चढाये हजारों सिक्खों का आ कर जमा होना किस शक्ति का सूचक है?

सरकार को अपनी शान की पड़ी है, अपने कानून और व्यवस्था की इज्जत की पड़ी है। प्रजा भले ही जहन्नुम को चली जाय! उसके धर्म और मनुष्योचित अधिकारों पर भले ही दिन दहाड़े बलात्कार किया जाय! पर प्रजा के मत की अवहेलना कर के, तिरस्कार करके, उसे अपना शत्रु बना कर, कोई भी सरकार दुनिया के परदे पर नहीं टिक सकी है। राज्य प्रजा के लिए होता है। राज्य-कर्मचारी प्रजा के नौकर होते हैं। पर इस राज में मालिक डंडे खाता है और नौकर मालिक बनकर गुलछर्रे उड़ाते हैं और सच्चे मालिक की छाती पर मूंग दलते हैं। लेकिन अब भारत जाग्रत हो चुका है। उसमें आत्म-सम्मान, आत्मतेज और सत्य-धर्म का प्रकाश दीप्त हो चुका है। वह मर मिटेगा, लेकिन जालिम के आगे सिर न झुकावेगा। सारा भारत भले ही स्मशान-भूमि हो जाय, पर वह अब अपना कदम पीछे नहीं रख सकता। नौकरशाही की आंखें चाहे स्वार्थ अथवा भय से अन्धी हो गई हों; पर हमें तो भारत एक ज्वालामुखी नजर आ रहा है। पुरानी बातों को छोड़ कर, वीर मराठे मावलों का सत्याग्रह, धर्मवीर अकालियों का बलिदान, गन्तूर के स्वयंसेवकों का जवाब, इस सरकार के प्रति अप्रीति की धधकती हुई आग की छोटी छोटी ज्वालायें हैं। सरकार ने यदि शीघ्र ही अपनी आत्मा का सुधार न किया, अपने पिछले पापों का प्रायश्चित न किया और इस प्रकार नये नये पापों के गंधक की थैलियां उसमें छोड़ती गई तो यह ज्वालामुखी दावानल का रूप धारण कर ले तो आश्चर्य नहीं। हम जानते हैं कि सरकार हमारी ताकत को आजमा रही है और उसका स्वार्थ-प्रेम उसके अस्तित्व-नाश तक की नौबत न पहुंचने देगा; पर वह याद रक्खे कि उस समय हालत आज से कई गुना पचीदा हो जायगी। इस धर्म-युद्ध में वह सिक्खों को अकेला ही न समझे। सारा भारत उनके साथ दिखाई देगा। भारत का शरीर आज निर्बल भले ही हो गया हो; पर धर्म-प्रेम और सत्य-बल का खून उसमें उसीप्रकार बह रहा है। उसे आत्म-बल की कसौटी पर चढ़ाना सरकार के लिए हरतरह से खतरनाक है।

लार्ड रीडिंग का नया मन्त्र

धारासभा की कार्रवाई शुरू करते समय लार्ड रीडिंग ने अपने भाषण में धारासभा के सदस्यों को नई मन्त्र-दीक्षा दी। उन्होंने कहा 'अबतक आप असहयोग से बचाव की लड़ाई लड़ते रहे। पर अब इतने ही से काम नहीं चलेगा। अब आपको जा जा कर जनता को और मतदाताओं को यह समझाना पड़ेगा कि सरकार उनकी सच्ची शुभचिन्तक है। स्वराज्य तो जब मिलेगा तब आपको पार्लियामेंट से ही मिलेगा। उसके लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट की रजामन्दी आवश्यक है। यह रजामन्दी सहयोग पर अवलम्बित है। स्वराज्य की किश्तों का निर्णय भी ब्रिटिश पार्लियामेंट ही करेगी'। लार्ड रीडिंग का यह आदेश एक तरह से सारे सहयोगियों को है। सो अबतक जो लड़ाई सरकार और असहयोगियों के बीच हो रही है *उसका रुख लार्ड रीडिंग सहयोगियों की ओर* घुमा रहे हैं। उनकी यह चतुराई कदर करने योग्य है! पर प्रश्न यह है कि क्या हिन्दुस्तानी सहयोगियों और असहयोगियों में यह 'यादवी' मचना सम्भवनीय है? यदि सहयोगियों को स्वराज्य, आत्मसम्मान और आजादी के बनिस्बत ये थोथे सुधार अधिक प्रिय हैं तो इसका उत्तर है-हां, यदि नहीं तो उत्तर है-नहीं। लार्ड रीडिंग के इन उद्गारों का स्पष्ट अर्थ यही है कि भारत स्वराज्य के लिए अंगरेजों का मुंह ताकने पर मजबूर है। उसे अपने आत्मबल से स्वराज्य प्राप्त करने का साहस और बल नहीं। पार्लियामेंट समय समय पर जितने टुकड़े दे दे उतने ही पर उसे सन्तोष मानना होगा। क्या यह खास तौर पर नरम-भाइयों और सहयोगियों के तथा आम तौर पर सारे भारतवासियों के पौरुष और पराक्रम को ललकार नहीं है? क्या यह कह कर लार्ड रीडिंग ने यह सूचित करने का प्रयत्न नहीं किया कि ब्रिटिश लोग या तो पशु-बल के ही आगे सिर झुकाते हैं या दूसरों को गुलाम बनाये रखने में अपना गौरव मानते हैं? क्या यह उस वीर जाति का अपमान नहीं है? वीर और आजाद लोग वीरता और आजादी की कदर करते हैं वे दूसरों को पददलित बनाये रखना कायरों और नीचों का काम समझते हैं।

कर से इनकार

शस्त्र-युद्ध में पशुबल से काम लिया जाता है। उसकी शक्ति है संगठन और नियमबद्धता। उसीसे वह जीतता है। शान्ति-युद्ध की बात जुदी है। उसका बल है आत्मिक बल। उसमें भी यद्यपि नियम-बद्धता और संगठन की तो जरूरत है; पर आत्मिक विकास के लिए व्यक्ति बाहरी नियमों से बंधा हुआ नहीं है। वह जब चाहे तब अकेला भी आगे बढ़ सकता है। अंतरात्मा की इजाजत पाकर पीछे भी कदम हटा सकता है। आत्मा बाहरी नियमों की कक्षा से परे है। अंतरात्मा का हुक्म छूटते ही कर देने की बात में भी मनुष्य किस प्रकार आगे बढ़ सकता है इसका उदाहरण डा. वरदाराजुलू ने पेश किया है। जेल से छूटने के कुछ रोज बाद सालेम (मदरास) में एक सार्वजनिक सभा में आपने अपना नीचे लिखा निश्चय जाहिर किया:—

"स्वराज्य की बात छोड़ दी जाय तोभी जो सरकार एक विभूति का अवतार-कार्य पूरा करने में विघ्न-रूप हो उससे सहयोग करना मेरी समझ में तो महान् पाप है। मेरा हृदय कहता है कि जबतक ऐसी सरकार को मैं एक पाई भी देता रहूंगा तबतक उसके पापों में शरीक होने का पाप मुझे लगता रहेगा। इसलिए इस आम सभा में मैं पंच और परमेश्वर को गवाह रखकर अपना यह निश्चय जाहिर करता हूं कि जबतक महात्माजी जेल से छूट कर नहीं आते तबतक मैं एक पाई भी कर सरकार को न दूंगा। मेरे इस निश्चय के लिए मुझे क्या क्या सहन करना होगा, इसका अनुमान मुझे है, और इसीलिए बहुत सोच-विचार के बाद मैं अपना यह निश्चय जाहिर करता हूं। मैं जानता हूं कि मेरी जायदाद जब्त हो जायगी, मेरे बाल-बच्चों को मारा मारा फिरना पड़ेगा। पर इस सवाल पर विचार करते हुए मैंने कई रातें बिना नींद के काटी हैं और इतने विचार के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं।"

डाक्टर साहब बहुत श्रीमान् नहीं हैं। तथापि उनका यह निश्चय बिलकुल कोरा भी नहीं। उन्हें हरसाल सरकार को १०००) कर देना पड़ता है। परमात्मा उन्हें अपना निश्चय निबाहने की शक्ति दे।

मुलशी में फिर सत्याग्रह

मुलशी पेटा का सत्याग्रह गत २ सितम्बर से फिर शुरू हो गया। सेनापति बापट अपने वीर सैनिकों के दलबल-सहित फिर वहां जा पहुंचे। बांध की नींव को पत्थरों से भरना शुरू कर दिया और काम करते ही करते अपने तेईस साथियों के साथ गिरफ्तार भी हो गये। इस बार उनके साथ दो वृद्धायें भी गिरफ्तार हुई हैं। श्री बापट की कार्यशैली अथवा सिद्धान्तों के विषय में मतभेद भले ही हो; पर उनकी देशभक्ति, कार्यचातुरी, और योजकता तो जरूर प्रशंसनीय है। ऐसा सेनानायक यदि अहिंसात्मक सत्याग्रह का नेतृत्व ग्रहण करे तो वह असाधारण विजय प्राप्त कर सके। अभी खबर आई है कि उन्हें छः मास कठोर कारावास का दंड मिला है।

'प्रभा' का भ्रम

सितम्बर की 'प्रभा' ने 'हिन्दी-नवजीवन' पर 'सत्य की अवहेलना' का जो आरोप किया उससे 'हिन्दी-नवजीवन' के साथ अन्याय हुआ है। अच्छा होता, यदि 'प्रभा' इससे बची रहती। 'हत्याग्रह' की अप्रियता के हम कायल हैं। उससे हमारे कुछ भाइयों के चित्त को दुःख हो सकता है। इसलिए हम पहले ही कह चुके हैं कि हमें उसके प्रचार से प्रेम नहीं है। पर हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि उसमें असत्य का अंश है। हमारी दृष्टि में आज भी वह सार्थक है और उतना ही सत्य है जितना कि प्रयोग करते समय था। हां, उसका प्रयोग अलबत्ते विनोद-भाव से किया गया था। यदि उसमें कोई दोष है तो इतना ही कि वह अप्रिय सत्य है। अपने जिन मित्र से वह शब्द हमें मिला उनका भी वक्तव्य हम अन्यत्र प्रकाशित करते हैं जिससे यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि 'हत्याग्रह' शब्द मौजू और यथार्थ है।

हिंसावादी भाई भले ही हिंसा को 'हिंसा' न मानें, वैदिकी और नैतिक हिंसा को हिंसा न करार दें, वे शुद्ध और अशुद्ध अथवा जायज और नाजायज ये दो भेद हिंसा के करें। पर जो किसी भी कारण से किसी के वध की तो बात दूर रहे, शरीर या मन को भी चोट नहीं पहुंचाना चाहते उन अहिंसावादी लोगों के यहां शुद्ध और अशुद्ध हिंसा, या हिंसा और हत्या में भेद करने की गुंजाइश नहीं है।

जब किसी की इच्छा के खिलाफ उसे चोट पहुंचाई जाय या उसका वध किया जाय तभी वह हिंसा कहलाती है। मोरध्वज-राजा ने अपने पुत्र की रजामन्दी से जो उसका वध किया वह हिंसा नहीं पवित्र बलिदान था। हिंसा और अहिंसा के मर्म को समझने वाला दधीचि और शिबी के आत्मोत्सर्ग को आत्मघात कह कर अपने अज्ञान का परिचय कभी नहीं देगा। सत्य की रक्षा के लिए, सत्य के पालन के लिए, हम अपने तन, मन, धन सब को न्यौछावर कर सकते हैं। शिबि और दधीचि ने यही किया है।

डाक्टर का नश्तर लगाना रोगी की इच्छा के विपरीत नहीं होता। यदि रोगी न चाहे, डाक्टर जबरदस्ती नश्तर नहीं लगा सकता। डाक्टर समझा–बुझाकर प्रेम से रोगी को नश्तर लगवाने के लिए राजी करता है। रोगी का रोना–चिल्लाना वेदना का सूचक है अनिच्छा का नहीं। हिंसा में केवल वेदना ही नहीं अनिच्छा भी होनी चाहिए। हिंसावादी क्या प्रेम से प्रतिपक्षी को समझा–बुझा कर हिंसा–काण्ड के लिए राजी करते हैं? क्या वह मरने या मार खाने के लिए राजी–रजामन्दी के साथ उनके पास आता है?

अब रही मर्यादा–पुरुषोत्तम राम और योगिराज श्री कृष्ण आदि के 'हिंसक' होने की बात। सो इस दलील से इतना ही सार निकलता है कि रामायण, और महाभारत आदि काव्य के रचयिता उस हिंसा को वैदिकी और नैतिक हिंसा मान कर उसे क्षम्य या जायज मानते रहे होंगे।

श्रीकृष्ण के कर्मयोग में हिंसा या हत्या का आग्रह पाना असम्भव है। कर्मयोग का अन्तिम आधार हिंसा–बल नहीं, ज्ञान–बल है, जिसका पहला पाठ है 'अहिंसा'—सत्यमक्रोधम् आदि। हमें तो श्रीकृष्ण के कर्मयोग में हत्याग्रह नहीं नजर आता। हां, उन लोगों की भूल अलबत्ते मालूम होती है जो ज्ञान–प्रधान कर्मयोग में हिंसा ही हिंसा देखते हैं।

'सत्याग्रह' की तरह 'हत्याग्रह' में किस प्रकार छिपा हुआ आग्रह है यह हमारे मित्र के वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है, इसलिए अलहदा विवेचन की आवश्यकता नहीं।

सत्याग्रह–हत्याग्रह

'सत्याग्रह' शब्द में 'सत्य' शब्द की तरफ जितनी दृष्टि जाती है उतनी ही 'आग्रह' शब्द की तरफ भी जानी चाहिए। 'सत्याग्रह' शब्द में आग्रह शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में किया गया है। 'सत्य की ही विजय होती है' इस वेद–वाक्य का अर्थ है 'सत्य की विजय जरूर होती है।' सत्य की विजय के लिए सत्य के सिवा और किसी तत्व की जरूरत नहीं है। असहाय सत्य ही बलिष्ठ है। अन्य तत्वों का झगडा चाहे कितना ही चले, आखिर को सत्य का बल ही विजय पाता है। सत्य के सामने और सब तत्व निर्बल हैं, निर्वीर्य हैं। वीर्य एक सत्य में ही है। इसीलिए अन्त में सत्य की ही विजय होती है। सत्य के साथ दूसरा कोई सत्येतर तत्व मिलने से सत्य की शक्ति बढती नहीं, बल्कि कम होती है, सत्य मलिन हो जाता है। इसलिए सत्य को असम्मिश्र शुद्ध रखना चाहिए। यह सब भाव 'सत्यमेव जयते' इस वेद–वाक्य में है। इसीका जिसमें आग्रह हो वह सत्याग्रह है। सत्य सब नैतिक आचरणों में प्रथम पद में रहे, इसी आग्रह का नाम सत्याग्रह है। सत्य दूसरे दरजे में रहना कभी पसन्द नहीं करता। इतना ही नहीं, लेकिन अपने सिंहासन का कुछ भी अंश दूसरे किसी तत्व को देने के लिए सत्य तैयार नहीं है। बाइबिल की भाषा में कहें तो सत्य 'जेलस गाड' है। महाभारत में लिखा है कि अहिंसा सत्य का ही एक 'आकार' है। हिंसा–तत्व किसी दूसरे की हिंसा करने के पहले सत्य की ही हिंसा कर डालता है। इसलिए सत्य और हिंसा का योग नहीं हो सकता। अतएव 'हिंसा–मिश्रित सत्याग्रह' इस शब्दप्रयोग का अगर कुछ अर्थ हो सकता है तो वह है—'सत्य की हिंसा का आग्रह'। यह सत्याग्रह कैसे हो सकता है?

जब कोई व्यक्ति हिंसात्मक अथवा हिंसा–मिश्रित सत्याग्रह की बात करता है तब उसका अर्थ हम यही समझते हैं कि सत्य के प्रति उनका कुछ पक्षपात है, सत्य को वे प्रसाद की दृष्टि से देखते हैं। लेकिन वे मानते हैं कि सत्य दुर्बल सज्जन है। सत्य सवीर्य पुरुष नहीं है। सत्य की मदद के लिए हिंसा–रूपी कृत्या को लेना ही चाहिए—अथवा प्रसंगवशात् लेना ही पडता है। इसका अर्थ यही होता है कि अन्तिम श्रद्धा या आग्रह तो हिंसा का ही है। अदालत का बेलिफ हमेशा किसी को बल–पूर्वक नहीं पकडता। वह सिर्फ वारंट दिखा कर अपने डंडे से स्पर्श करता है। उसका अर्थ यही है कि उस स्पर्श के पीछे राज्य की पुलिस की सारी शक्ति है। और पुलिस का डंडा भी यही सूचित करता है कि उसके पीछे सरकार की सारी सेना का बल मौजूद है। अन्ततः सरकारी शक्ति फौज के बल पर निर्भर है। इसी तरह से जो लोग हिंसा–मिश्रित सत्याग्रह की बात करते हैं उनकी अन्तिम श्रद्धा हिंसा पर ही रहती है। वे कहते हैं, अगर सत्य का प्रभाव न पडे तो हम हिंसा का आश्रय लेंगे। हिंसा जब अपर्याप्त मालूम होगी तभी हार मानेंगे। सत्य से बडी है हिंसा। हिंसा से बढ कर कुछ नहीं। ऐसी धारणा रखने वालों को यदि हम हिंसाग्रही कहें तो उनको कुछ आपत्ति न होनी चाहिए। हिंसाग्रही का अर्थ यह नहीं है कि किसी बेवकूफ की तरह वे दिन–रात हिंसा ही हिंसा करना चाहते हैं। उनकी अन्तिम श्रद्धा हिंसा पर है, यही उसका अर्थ होता है।

अब रहा 'हत्या' शब्द का झगडा। माकूल लोग हिंसा और हत्या में भेद करते हैं। हत्या में अवैध हिंसा का भाव है। हिंसा में नीति–अनीति का भाव नहीं है। हिंसा हेतु के अनुसार योग्य या अयोग्य होती है। योग्य हिंसा को हत्या कहना अन्याय होगा। व्यवहार

(शेष पहले कालम में)

में यह बात ठीक है। लेकिन जो लोग अहिंसा–तत्व को सम्पूर्ण रूप से मानते हैं उनकी दृष्टि में हर तरह की हिंसा अयोग्य है, नाजायज है, अतएव हत्या है। युद्ध में जो सैनिकों का घात होता है अथवा न्यायाधीश की आज्ञा से जो फांसी पर मनुष्य–वध होता है उसे भी वे लोग 'खून' कहते हैं। 'लीगल मरडर' यह अंगरेजी शब्द–प्रयोग कुछ अपरिचित नहीं है। इस दृष्टि से शुद्ध अहिंसावादी हिंसा–मिश्रित सत्याग्रह को हत्याग्रह ही कह सकता है। ऐसे शब्द–प्रयोग के द्वारा केवल सब प्रकार की हिंसा के प्रति अहिंसक के मन में जो घृणा रहती है वह पूरी पूरी सूचित की जाती है। अहिंसावादी अपने तत्व पर डटा रहता हुआ भी किसीको दुःखित करना नहीं चाहता। इसलिए हत्याग्रह शब्द हमारे भाइयों को अगर अरुचिकर हो तो उसका प्रयोग हम न करें यही हमारा अहिंसा–धर्म हमें कहता है। लेकिन मजबूरन कहना पडता है कि उस प्रयोग में असत्य का अंश नहीं है।

सत्याग्रह और हत्याग्रह के बीच में जो सुलभ अनुप्रास है उसके कारण अगर यह शब्द–प्रयोग रूढ हो जाय तो हम लाचार हैं। अगर लोगों में विनोद–वृत्ति पूरी पूरी हो तो हत्याग्रह शब्द उनको खटकेगा नहीं। हिंसात्मक सत्याग्रह या धर्म्य–युद्ध को माननेवाले मेरे एक सुप्रसिद्ध मित्र को हत्याग्रह शब्द बहुत पसंद आया। लेकिन हम उसे अपनी तरफ से रूढ करना पसन्द नहीं करते।

एक मित्र

जयन्ति–अंक

आगामी तारीख २ अक्तूबर को महात्माजी की वर्ष–गांठ के उपलक्ष्य में 'हिन्दी–नवजीवन' का विशेषांक निकलेगा।

इसी सप्ताह कलकत्ते की प्रसिद्ध अमृतबाजार–पत्रिका के सुयोग्य और वयोवृद्ध संपादक बाबू मोतीलाल घोष की मृत्यु के दुःखद समाचार आये हैं।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, आश्विन वदी ४, सं. १९७९

विरोध और असहयोग

इस समय भारत में स्वराज्य-प्राप्ति का प्रयत्न करने वाले दो दल हैं १-वैध आन्दोलन करने वाला २-असहयोगी। नरम दल के लोग, श्रीमती बेसंट के होमरूल-वादी, श्री पटेल के प्रागतिक दल के लोग— ये सब वैध आन्दोलनकारी हैं अर्थात् मौजूदा कानून-कायदों की सीमा में रह कर, सरकार से मेल-मिलाप और मित्रता रखते हुए, उसकी सहायता से, स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं। आजकल की भाषा में इन्हें सहयोगी कहते हैं। असहयोगियों में भी तीन प्रकार के लोग हैं—(१) शुद्ध असहयोगी (२) विरोधी असहयोगी (३) स्वतन्त्रतावादी और अराजक कहे जानेवाले लोग। शुद्ध असहयोगी वे हैं जिनके दिल और दमाग ने शान्तिमय असहयोग के तत्व को मंजूर कर लिया है और उसके मर्म को समझ लिया है। वे अपने भर उसका पालन करते हैं और अधिक पालन करने की शक्ति बढाते जाते हैं। विरोधी असहयोगी वे हैं जो शान्तिमय असहयोग के सिद्धान्त में और कार्यक्रम में बिल्कुल या पूरा विश्वास नहीं रखते हैं और केवल महासभा में एकता बनाये रखने के लिए, अथवा महासभा के प्रति अपनी भक्ति कायम रखने के लिए, या फिलहाल दूसरा अच्छा रास्ता न दिखाई देता है इसलिए अथवा महात्मा गांधी के प्रभाव से दब कर या मुग्ध हो कर, असहयोग में शामिल हुए हैं और अबतक बने हुए हैं। इनमें कितने ही लोग अहिंसा के सिद्धान्त को मानते हैं और कितने ही नहीं; पर व्यवहार-नीति के तौर पर, समयोपयोगी समझ कर, उन्होंने उसे स्वीकार किया है। स्वतन्त्रता-वादी लोग आज ही से अंगरेजी साम्राज्य से बिल्कुल सम्बन्ध रखना नहीं चाहते। इनमें ज्यादातर लोग हिंसा के मानने वाले हैं और कमजोर की ताकत समझकर अहिंसा को अपनाये हुए हैं। अराजक नाम उन लोगों का रक्खा गया है जो बम बनाकर, गुप्त षड्यन्त्र रच कर, खून कर के स्वराज्य लेना चाहते हैं। इनमें बडे से बडे त्यागी और जीवन-धन के मोह से परे देशभक्त हैं। यद्यपि इनमें से बहुतेरे लोगों ने अपने मार्ग की विफलता का अनुभव कर के असहयोग को ग्रहण कर लिया है तथापि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अभी थोडा-बहुत उसी रास्ते में विश्वास रखते हैं। पिछले तीनों दल के लोगों का अन्तिम बल हिंसा-बल ही है, यद्यपि तीनों में कुछ व्यक्ति ऐसे जरूर होंगे जिनका अहिंसा में पूर्ण विश्वास है या हिंसा में विश्वास रखते हुए भी उसका अवलम्बन न करें। इनमें ऐसे लोग भी हैं जो अहिंसा का चोगा पहन कर उसकी ओट में भीतर ही भीतर हिंसा के भाव फैलाते रहते हैं, कभी मैदान में आकर अपना साफ मत जाहिर नहीं करते। उन्हें हम कमजोर या कायर देशभक्त कह सकते हैं। शान्तिमय असहयोग के लिए सबसे बढकर खतरनाक यही लोग हैं। तीनों दलों में ऐसे लोग भी हैं जो आज असहयोग के कार्यक्रम में से शिक्षा-संस्थाओं, अदालतों और धारासभाओं का बहिष्कार रद कराना चाहते हैं। वे कहते हैं या तो सविनयभंग शुरू करो या कौन्सिल में जाने की छुट्टी दो। शुद्ध असहयोगियों में भी परिवर्तन चाहने वाले लोग हैं; पर वे पीछे हटना नहीं चाहते, आगे ही बढना चाहते हैं। वे मानते हैं कि त्रिविध बहिष्कार को रद कराने का आग्रह करना स्पष्टतः पीछे हटना है। त्रिविध बहिष्कार को हटाने पर जोर देने वाले लोग प्रधानतः विरोधी असहयोगी दल के हैं और इनकी संख्या महाराष्ट्र में ही ज्यादह है। वस्तुतः ये 'प्रतियोगी सहयोग' सिद्धान्त के माननेवाले हैं। आज ये कहते हैं कि हम कौन्सिलों में जा कर विरोध कर कर के वर्तमान सरकार को बे-कार कर देंगे या अपने पैरों पर झुका लेंगे, कौन्सिल में जाते हुए भी हमारी भावना या वृत्ति तो असहयोग की ही होगी, हम असहयोग शब्द को कायम रखना चाहते हैं। इसलिए हमने इन्हें फिलहाल 'विरोधी असहयोगी' नाम से सम्बोधित करना मुनासिब समझा है।

वास्तव में देखा जाय तो विरोध और असहयोग ये दो बातें जुदा जुदा हैं। विरोध 'शठं प्रति शाठ्यं समाचरेत्' का मानने वाला है; असहयोग 'शठं प्रत्यपि सत्यम्' का व्यवहार करने वाला। विरोध शठता का जवाब शठता से देना चाहता है। इसका यही अर्थ हो सकता है कि शत्रु पर विजय पाने के लिए वह उससे अधिक शठता स्वीकार करता है। इसके विपरीत असहयोग शाठ्य का जवाब सत्य-बल से देना चाहता है। इससे असहयोगी का सत्य-बल बढता है और शठों के लिए वह दुर्दमनीय हो जाता है।

> जो तोकों काटा बुवे ताहि बोव तू फूल।
> तोको फूल के फूल हैं वाको है तिरसूल।

इसमें कवि ने असहयोग का सार खींच कर रख दिया है। विरोधी जहां विरोध के भ्रम से, विरोध के उद्देश से, वास्तव में शत्रु के साथ असहयोग करता है, वहां असहयोगी शठता के साथ असहयोग करते हुए उसकी शठता को मनुष्यता का रूप दे देता है। विरोध पंगु है, पराबलम्बी है। सरकार, या प्रतिपक्षी या शत्रु की कमजोरियां ही उसके जीवन का आधार होती हैं, उनकी मूर्खताओं, गलतियों पर ही उसका दांव चल सकता है। बिना नीति की मर्यादा का भंग किये विरोध प्रतिपक्षी की संगठित शक्तियों को नहीं तोड सकता। और नीति-पथ से भ्रष्ट होने के बाद यदि विजय मिले भी तो वह विरोध की नहीं, अनीति की विजय होगी। अनीतिमान मनुष्य समाज और ईश्वर दोनों की दृष्टि में अपने को गिराता है और शत्रु के सामने अपनी ऐसी कमजोरी रख देता है जिसका लाभ उठाकर वह फिर चढ़ी पर बैठता है। इसके विपरीत असहयोग स्वतन्त्र है। अपने सत्य के कवच को धारण कर के वह हमेशा निर्भय रहता है। उसका नीति-बल देख कर प्रतिपक्षी की गर्दन झुक जाती है। प्रतिपक्षी की बुद्धि भले ही, स्वार्थ भले ही, उसपर वार करने के लिए मजबूर करे पर उसकी अन्तरात्मा तो जरूर उसे भीतर ही भीतर कोसा करती है। विरोधी प्रतिपक्षी के तर्क, स्वार्थ या शरीर को भले ही दबाकर कुछ समय के लिए अपने वशीभूत कर ले पर इसके खिलाफ असहयोगी के आगे प्रतिपक्षी खुद ही अपना हृदय-सर्वस्व लाकर रख देता है—जन्मजन्मान्तर के लिए उसका उपकृत और आज्ञापालक हो जाता है, यद्यपि उस अवस्था में असहयोगी उससे बेजा फायदा उठाना नहीं चाहता। विरोधी जहां प्रतिपक्षी के दुर्गुणों और दोषों से युद्ध करने के लिए अपने उन्हीं दुर्गुणों और दोषों की वृद्धि करने में अपनी शक्ति क्षय करता है वहां असहयोगी अपने सद्गुणों के द्वारा, अपनी सच्छक्ति के द्वारा, प्रतिपक्षी के सुप्त सद्गुणों को और सद्भावों को जाग्रत करने में अपनी शक्ति का सदुपयोग करता है। विरोध की विजय क्षणिक होती है, असहयोग की स्थायी। विरोध नीचे क्षेत्र में लडता है, असहयोग ऊंचे क्षेत्र में। विरोध की इमारत छल-कपट, दांवपेंच

की बालू की बुनियाद पर खड़ी रहती है, असहयोग सत्य और निष्कपटता की चट्टान पर अपनी हस्ती रखता है। विरोध प्रतिपक्षी को दबाने की पाश ताक करता है, असहयोग उसे अपनी मित्रता के योग्य बनाना चाहता है। विरोध प्रतिपक्षी को अपने समकक्ष समझ कर उसे दण्ड देने की, उससे बदला लेने की इच्छा रखता है। असहयोगी उसे अपने से नीचे क्षेत्र में समझ कर दया और क्षमा का पात्र मानता है। उसपर हाथ उठाना उसे शौर्य के विपरीत मालूम होता है। विरोध प्रतिपक्षी के मन और हृदय पर होने वाले असर की प्रायः उपेक्षा करता है, उसकी शारीरिक गतिविधि पर उसका प्रधान लक्ष्य रहता है। असहयोगी तो चतुर वैद्य की तरह प्रतिपक्षी को रोगी समझ कर दवा देता है और उसके आरम्भिक चिह्नों या प्रतिक्रिया को देख कर घबड़ाता नहीं। उसका ख्याल रोग की जड़ पर प्रधान-रूप से रहता है। विरोध में स्थिरता, शान्ति अतएव गम्भीर आत्मविश्वास नहीं। विरोध एक प्रकार की लक्षण-चिकित्सा है और असहयोग निदान-चिकित्सा। जो वैद्य रोग का मूल कारण देखकर निर्दोष से निर्दोष दवा का प्रयोग करता है, वह स्वभावतः ही स्थिर और शान्तचित्त होता है। विरोध का त्याग क्षणिक और परिमित होता है, असहयोग तो त्याग-मय होता है। वह सारे संसार को अपनी सम्पत्ति समझता है और अपना तन, मन, धन संसार की चीज। विरोध वस्तुतः वैध आन्दोलन के अन्तर्गत है। वह राज्य की सत्ता को मानता है। असहयोगी तो ईश्वर को अपना राजाधिराज मानता है। उसके कानून के ही आगे वह सिर झुकाता है। विरोध सहयोग है। उसमें राजसत्ता के विरोध में सहायता मिलती है। नरम भाइयों के सहयोग में और विरोधियों के सहयोग में अन्तर इतना ही है कि वे सुधारों को सफल बनाने के लिए सहयोग कर रहे हैं और ये उन्हें निष्फल बनाने के लिए सहयोग करना चाहते हैं। दोनों में किसको सफलता होगी, या दोनों को ही नहीं होगी, यह वैध आन्दोलन के आजतक के इतिहास से स्पष्ट हो सकता है। असहयोग ने दो ही वर्षों में जो चमत्कार दिखाया है उससे उसकी सफलता के विषय में भी पाठक कल्पना कर सकते हैं।

इन दोनों पृथक् तत्वों की खिचड़ी कर के आजकल लोग बड़ी दुविधा में पड़ जाते हैं न बहुत से असहयोगी विरोध के तत्व और हानि-लाभ को पूरा पूरा समझ पाये हैं, और न बहुत से विरोध-वादी ही असहयोग का सच्चा मर्म और प्रभाव समझ पाये हैं इससे वे कार्यक्रम में परिवर्तन चाहते या सुझाते समय दोनों तत्वों का ऐसा गोल-माल कर डालते हैं कि उससे देश की हानि की स्पष्ट आशंका है। एक आदमी या तो विरोधी हो सकता है या असहयोगी। विरोध और असहयोग परस्पर भिन्न हैं। कार्यक्रम या तो असहयोग-मूलक हो सकता है या विरोध अथवा सहयोग-मूलक। दोनों का एक कार्यक्रम कभी सफल और हितकर नहीं हो सकता। दिन और रात का सामञ्जस्य नहीं हो सकता। दूध और नमक का मेल हितकर नहीं हो सकता। देश वैध आन्दोलन और सहयोग की कक्षा से बहुत आगे बढ़ गया है; अब वह फिर से लौट कर पुराने स्थान पर नहीं आ सकता। वह तो आगे ही बढ़ेगा। हां, जबतक आगे बढ़ने की ताकत उसमें न आ जाय तबतक वह अपने मौजूदा स्थान पर भले ही खड़ा रहे। पर उसे पीछे हटाने का आग्रह करना बुद्धिमानी नहीं है। न देश इसके लिए तैयार ही है।

जिन्हें विरोध प्रिय है, अथवा जो वैध आन्दोलन के हिमायती हैं उनमें से बहुत लोग तो पहले ही से असहयोग-कार्यक्रम को अयोग्य और अक्षम बताते आये हैं। और उनका उसमें पूरा सहयोग था भी नहीं। अतएव स्वभावतः ही न उससे उसकी पूर्ति में पूरी सहायता ही मिली न वे उसकी सफलता के कायल ही हो सकते हैं। उन्हें यदि असहयोग की या उसके कार्यक्रम की 'लाश' अपनी नजरों के सामने दिखाई दे तो कोई आश्चर्य नहीं। उनका रास्ता और उनकी आंखें ही जुदी हैं। उनके उद्गारों पर न सच्चे असहयोगियों को क्रोध आना चाहिए, न अपने काम में रुकावट आने देनी चाहिए। देश के आलाकमान नेता लोग सब की बातों पर गौर से और धीरज के साथ विचार कर रहे हैं। स्थूल रूप से सत्य और अहिंसा इन असहयोग के मूलभूत सिद्धान्तों को किसी न किसी कारण से प्रायः सब लोग मान रहे हैं। अब रहा कार्यक्रम का सवाल। तो हमें आशा करनी चाहिए कि इसे भी देश के नेता और कार्यकर्ता १० नवंबर को मिल कर ऐसी तरह हल कर देंगे जिससे तत्वों की या मार्गों की खिचड़ी भी न हो, और सब लोगों को अपनी अपनी रुचि के अनुसार देश-सेवा करने का मौका भी मिले।

हरिभाऊ उपाध्याय

मध्य-प्रान्त का अनुभव

नागपुर की महासभा के बाद मैं दो-तीन बार मध्य-प्रान्त में हो आया हूं। वहां हर वक्त कुछ न कुछ नया अनुभव मुझे मिला। इस बार मराठी मध्य-प्रान्त के चारों जिले के मुख्य शहर मैंने देखे। बरार में भी अमरावती और अकोला की यात्रा की। इन सब शहरों में चांदा और भण्डारे की नगर-रचना में पुरातनत्व अधिक था। अन्य शहरों की अपेक्षा इन दोनों शहरों में शान्ति और खुली जगह भी ज्यादह थी। इस कारण ये दोनों शहर मुझे अधिक प्रिय हुए। शायद यह असर क्षणिक हो। क्योंकि सब जगह पर शान्ति के साथ घूम कर देखने का अवसर मुझे नहीं मिला। इन दोनों प्रान्तों की बोली भोली और मीठी है। जनता भी भोली-भाली और आदरशील है। बेचारे खेती या बागबानी करके अपनी गुजर करते हैं। अपने गाय-बैलों को वे खूब प्यार करते हैं। और गाय-बैल की तरह वे शान्त और श्रम-सहिष्णु होते हैं। लेकिन शहरों में तो इनकी प्रतिष्ठा बहुत कम रहती है। शहर में सरकारी कर्मचारी, वकील, डाक्टर, व्यापारी, रईस और दूसरे बुद्धि-जीवी अथवा आराम-तलब लोगों की आबादी होती है। उदरम्भरण के लिए विद्या का उपयोग जबसे होने लगा तबसे विद्वान् और विद्यार्थी लोग भी शहर में आकर रहने लगे हैं। इसी कारण हरएक शहर में बड़े बड़े स्कूल्स देखने में आते हैं। ऐसी जगह पर लोगों में राष्ट्रीय हलचल का असर कितना हुआ है यह देखने की कसौटी वहां की राष्ट्रीय शालायें हैं। नागपुर में एक बड़ी राष्ट्रीय संस्था है। उसका नाम है 'तिलक-विद्यालय'। इस साल इस विद्यालय को अपना महाविद्यालय भी खोलना पड़ा है। विद्यालय में लगभग एक हजार लड़के हैं। असहयोग शुरू होने के बाद स्थापित हुई-इतनी बड़ी संस्था शायद ही दूसरी हो। इस संस्था के अध्यापक गण के परिचय में मैं अच्छी तरह से आया हूं। उनकी देशभक्ति, कार्य-दक्षता, मिलनसारी और आपस में मेल-मिलाप को देख कर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ। मन में यह विश्वास पैदा हुआ कि यदि जनता का सुदैव होगा तो यह संस्था नागपुर की बहुत-कुछ सेवा करेगी।

नागपुर की दूसरी संस्था वहां का असहयोग-आश्रम है। श्री सुन्दरलालजी भगवानदीनजी और पं. राधामोहन गोकुलजी इन तीनों देशभक्तों का इस आश्रम के साथ घनिष्ठ संबंध है। आश्रम का वायुमण्डल सेवा-पूर्ण और राजनीति-प्रधान है, भक्ति-प्रधान नहीं। आश्रम-वासी त्यागी और देशभक्त हैं। देश-कार्य में बिल्कुल थकते

नहीं। इनको प्रसंगवश राजनैतिक कार्यों में ज्यादहतर पडना पडता है। महासभा का सन्देश घर घर पहुंचाने का काम इन्होंने लगातार आजतक किया है। इसी कारण इनका प्रभाव जनता पर दिन पर दिन ज्यादह पडने लगा है।

नागपुर की मेरी देखी हुई तीसरी संस्था वहां का 'गोविन्द-भवन' है। यह संस्था बुनने का काम सिखाती है। हाथ का ही काता हुआ सूत बुनने का आग्रह जब इस संस्था में होगा तभी यह संस्था पूरी देश-सेवा कर सकेगी।

नागपुर का वायुमंडल बहस और चर्चा से भरा हुआ है। वहां के प्रतिष्ठाप्राप्त नेतागण असहयोग की अपेक्षा विरोधतत्व को अधिक मानते हैं। इसलिए कौन्सिल में जाने या न जाने, अदालतों का और स्कूलों का बहिष्कार जारी रखने या न रखने, की चर्चा वहां पर दिन-रात हुआ करती है। अदालत का त्याग करने वाले कई वकीलों ने अपनी वकालत फिर शुरू की है। लेकिन वहां की राष्ट्रीय-शालायें अच्छी तरह से चल रही हैं। और कौन्सिल-प्रवेश का समय अभी दूर है। तबतक चर्चा तो जाग्रत ही रहेगी।

चांदे में जब हम गये तब बरसात का जोर था। वहां की मिट्टी लाल होने से सारा शहर रक्तवर्ण हो गया था। चांदे में खादी तैयार होती है। लेकिन उसका प्रचार बहुत नहीं है। लोगों में उत्साह खूब है। लेकिन बहुत-सा उत्साह चर्चा ही पी जाती है।

भण्डारा तो मेरे लिए तीर्थस्थान था। भण्डारा के पास किसी नाम के स्थान पर वहां के अन्त्यज महार लोग अच्छी खादी पैदा करते हैं। कातने और बुनने की विद्या में ये लोग प्रवीण होते हैं। इनका चरखा बहुत छोटा होता है और बहुत सस्ता भी होता है। असहयोग-आन्दोलन के कारण ये लोग दो वक्त पेट भर रोटी पाने लगे हैं। भण्डारा के अगुआ देशभक्त पाठक दुबारा जेल गये हैं। उनकी वीर-प्रसू माता का दर्शन कर हमने अपने को पुनीत किया। भण्डारा में एक अच्छी राष्ट्रीय शाला है। शाला में शासन-व्यवस्था बहुत अच्छी थी। विद्यार्थियों ने योगासन लगाने में अपनी प्रवीणता का परिचय दिया। भण्डारे में हम वहां के श्रीमान् रईस पाण्डेयजी के मेहमान हुए थे। इनका भव्य मकान बनारसी ढंग का है और गृह-रचना का एक देखने योग्य नमूना है।

मध्यप्रान्त का चौथा जिला है वर्धा। यह तो सेठ जमनालालजी का सदर-मुकाम है। यहां के सब कार्यालय, चाहे वह महासभा का हो या खिलाफत का, इन्हींकी कोठी में है। वर्धा का खास अलंकार तो वहां का बडा मारवाडी विद्यालय और छोटा सत्याग्रहाश्रम है।

इस बार मेरे मध्य-प्रान्त में घूमने का कारण जेल से छूट कर आये हुए वीर वामनराव का दौरा था। उनकी मुक्तता के निमित्त बधाइयां देने के लिए और उनसे कुछ महत्व-पूर्ण बातचीत करने के लिए मैं नागपुर गया था और अवश हो कर उनके दौरे में मुझे शामिल होना पडा। वीर वामनराव का प्रान्त तो है बरार लेकिन उनका प्रभाव मध्यप्रान्त में भी कुछ कम नहीं है। हरएक जगह पर उनका स्वागत जितनी श्रद्धा-भक्ति के साथ हुआ उतना ही प्रेम के साथ हुआ। इन दोनों प्रान्तों में वामनराव का जो स्वागत हुआ उससे यह विश्वास हुआ कि यहां की जनता वीर-पूजक अतएव वीर्यवान् है, लोगों में अगर मत-भेद और बुद्धि-भेद न हो तो यहां की जनता थोडे ही दिनों में कुछ असाधारण उन्नति कर के दिखा सकेगी।

उमरावती तो बरार-प्रान्त की राजधानी और वामनराव का घर है। वामनराव का स्वागत करने में यहां के लोग मानों पागल हो गये थे। उमरावती का वायुमण्डल राष्ट्रीयता से लबालब भरा हुआ है। यहां पर एक राष्ट्रीयशाला भी है। लेकिन अकोला जैसी बडी नहीं है। अकोला में राष्ट्रीयशाला को अध्यापकवर्ग अच्छा मिला है और उस शाला में बौद्धिक शिक्षा के साथ औद्योगिक शिक्षा भी व्यवस्थित रीति से दी जाती है। इस शाला का भी भविष्य मुझे अच्छा देख पडा। बरार में मैं इन दोनों ही शहरों को देख सका।

मध्य-प्रान्त में कौन्सिल प्रवेश के बारे में जो खींचातानी हो रही है उसमें भाग लेने की मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं थी। और वामनराव को अपने पक्ष की ओर खींचने का प्रयत्न भी मुझे करना नहीं था। वामनराव के विचारों को मैं अच्छी तरह से जानता था और मैं यह भी खूब जानता था कि परिस्थिति से डर कर अपने सिद्धान्तों को छोड देने वाले वामनराव नहीं हैं। वामनराव से यह कहना कि अपने विचार पर डटे रहो, मानों उनका अपमान करना है। परिस्थिति जितनी प्रतिकूल हो उतना ही वीर का वीरत्व अधिक झलकता है। मुझे तो उनके साथ और कुछ विषयों पर बातचीत करनी थी। परन्तु वामनराव पर मेरी जितनी श्रद्धा है उतनी कितने ही लोगों की नहीं थी। बहुत से लोग प्रतीक्षा कर रहे थे कि वामनराव जेल से आकर क्या राय देते हैं? महात्माजी के बताये हुए असहयोग कार्यक्रम को कोई सुयोग्य नेता मिलता है या नहीं? लोगों की यह दशा जानने के कारण मैंने सलाह दी कि आप अपने विचार बिना विलम्ब प्रकट करें। वामनराव के विचार अब जाहिर हो चुके हैं: परिस्थिति को देखकर असहयोग के कार्यक्रम के किस अंश को वे अपने हाथ में लेंगे और किस अंश की उपेक्षा अनुकूलता प्राप्त होने तक करेंगे, यह देखना है।

वामनराव ने जेल के बाहर आते ही अपना कार्य शुरू किया। एक क्षण का भी आराम नहीं चाहा। जनता ने उनका जो हार्दिक उत्साह और कौटुम्बिक प्रेम से स्वागत किया उसका कारण यही है कि वामनराव ने अपनी देश-भक्ति और वीर-वृत्ति से लोगों के हृदय में सदा के लिए स्थान प्राप्त कर लिया है।

मैंने देखा कि मध्यप्रान्त की और बरार की जनता ने महात्माजी के आन्दोलन के स्थूल सिद्धान्त अच्छी तरह से समझ लिये हैं। और यदि उनको ठीक पथ दिखाने वाला मिल जाय तो लोग अपनी शक्ति के अनुसार उसी रास्ते जाने के लिए तैयार है। दुर्भाग्य से आजतक उनको दूसरे ही किस्म की तालीम मिली है। दूसरे का दोष देखना, दूसरे से त्याग की उम्मीद करना, दूसरे की दुर्बलता पर बिगड उठाना, और दूसरे की कुटिलता का बदला लेना, यही तालीम लोगों ने पाई है। सरकार की भूलें तो हम हमेशा सुनते ही रहते हैं: नरम दल को अखबारों में और व्याख्यानों में पुष्पांजलि आजतक मिलती ही आई है। अब बारी आई है वकीलों की। समाज वकीलों की सेवा तो बराबर लेता है और उस सेवा के लिए वकीलों को दक्षिणा भी पूरी पूरी देता है। तोभी लोग यह नहीं समझते कि वकीलों की निन्दा करना अपनी ही निज की भूल प्रकट करना है।

मेरी नम्र धारणा ऐसी है कि वकील लोग व्यक्ति को चाहे जितनी सहायता देते हों, वे समाज का हित नहीं करते। वकीलों के कारण झगडे बढते ही जाते हैं। जिस समय सामान्य मनुष्य लोभ या ईर्ष्या के अधीन अतएव पामर बन जाता है उसी वक्त स्वार्थ, बदला लेने, और दांव-पेच करने की सलाह दे कर वकील लोग समाज का भारी नुकसान करते हैं। आज की स्थिति में यह सब अपरिहार्य है। वकील लोग न्यायप्राप्ति

में मददगार हैं, आदि सब दलीलें मैंने सुनी हैं और उनपर खूब विचार भी किया है। तो भी मैं इसी नतीजे पर पहुंचा हूं कि वकील-वृत्ति समाज के लिए पोषक नहीं है। फिर भी मैं वकीलों को दोष नहीं देना चाहता। समाज ही ने तो वकीलों का वर्ग निर्माण किया है। अथवा यह कहना ठीक होगा कि सरकार ने वकीलों का वर्ग अपनी न्यायदृष्टि की विचित्रता से निर्माण किया और समाज ने उसे अपने सिर चढ़ाया। हरएक देश में वकीलों का वर्ग निर्माण हुआ है। लेकिन भारतवर्ष में इसके लिए एक दूसरी सुविधा थी। श्रुति-स्मृति का शास्त्रार्थ करनेवाला शास्त्रीवर्ग देश में था ही। उन्हींके वंशज ये आजकल के वकील लोग हैं। शास्त्रीलोग धर्मशास्त्र की प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित होते थे, वकील लोग राज-शासन की प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित हैं। इसीलिए वकीलों के लिए राजशासन का त्याग करना इतना दुर्घट होता है। वकील लोग राज्यकर्ता का द्वेष कर सकते हैं, उसकी नीति का तीव्र विरोध भी कर सकते हैं। लेकिन उनका आधार तो राज-शासन ही है। इसलिए वे राजशासन का त्याग नहीं कर सकते। ऐसी दशा में वकीलों की निन्दा करना उचित नहीं। आजतक के आन्दोलन में वकीलों का हिस्सा नगण्य नहीं था। उनकी देश-भक्ति शंकातीत है। परिस्थिति समझने की शक्ति भी उनमें खूब है। इसीलिए राष्ट्रीय महासभा ने उनके पास से त्याग की अपेक्षा की थी। और अब भी राष्ट्र का वह अनुरोध कायम है। लेकिन वकीलों ने अपनी बुद्धि और तर्क-शक्ति के विकास करने में जितनी मिहनत की है उतनी ही मिहनत जब वे भावना और श्रद्धा के विकास के लिए करेंगे तभी राष्ट्र का मनोरथ सफल होगा। तबतक राष्ट्र को उनके प्रति सहिष्णुता और सहानुभूति रखनी चाहिए। वकीलों को तंग करने से उनकी निन्दा करने से, लाभ तो हुई नहीं, उलटे हानि बहुत है। वकीलों जैसे विद्वान् और देश-प्रेमी लोगों को अपना विरोधी बना लेने मे समझदारी नहीं है। वकील लोग समझ गये हैं कि यह त्याग का पर्व है। आत्यन्तिक त्याग की ही आजकल प्रतिष्ठा है। और इसीलिए सच्चे त्यागी के सामने वे अपना सिर झुका रहे हैं। लेकिन आजतक समाज में जिनकी सबसे अधिक प्रतिष्ठा थी वे अपनी सार्वजनिक निन्दा कैसे सहन करें, और त्याग-शून्य लोगों को उनकी निन्दा करने का अधिकार भी क्या है?

× × ×

प्रेम के साथ अगर धीरज न हो तो प्रेम के जैसा अत्याचारी दुनिया में कोई नहीं। लड़का दो ही दिन में सुयोग्य हो जाय इस सदिच्छा से लड़के को तंग करने वाले मां-बाप दुनिया में बहुत हैं। विद्यार्थी को मार-पीट कर विद्वान् बनाने की इच्छा रखने वाले शिष्य-वत्सल (!) गुरु भी बहुत से हैं। अब जनता को डरा कर अथवा तंग कर के देशभक्त और तेजस्वी बनाने वाले उतावले लोगों की देश में बाढ़ आई है। और वह देशभक्ति और तेजस्विता भी हम कहें इसी रूप में प्रकट होनी चाहिए। हमारे पक्ष के ही विचारों और सिद्धान्तों को लोग पसन्द करें। लोग क्यों नहीं समझते कि हमारे ही सिद्धान्त सबसे अच्छे और सीधे हैं? जो लोग उन्हें पसंद नहीं करते हैं अथवा उनपर चलते नहीं हैं वे या तो डरपोक हैं अथवा स्वार्थी हैं अथवा चालबाज हैं, और देशद्रोही हैं। जो लोग मेरे साथ नहीं हैं वे मेरे शत्रु हैं। मैं देशभक्त हूं; इसलिए वे देशद्रोही हैं। आतुर लोगों की यह विचार-परंपरा होती है। जो लोग देश के शत्रु हैं वे शठ हैं। उनके प्रति शाठ्य शास्त्र-विहित है। जो लोग मेरे विरोधी हैं, वे भी देश का नुकसान करने वाले हैं। उनको ठगना कोई पाप नहीं। क्योंकि वह राजनीति है। और विरोधियों को ठगने में मेरा उद्देश प्रत्यक्ष नहीं तो अंततः पवित्र ही है। ऐसी मोह-परंपरा जहां पर प्रचलित है वहां पर प्रेम के विकृत स्वरूप द्वेष का प्राधान्य रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

जनता अगर झट् नहीं मानती है, तो उसपर दबाव डालना चाहिए। समय पर बातें बना कर भी जनता को समझाना चाहिए। मूढ़ जनता के साथ सत्य कैसा? "न बुद्धि भेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्" ज्ञानी असक्त रह कर सदिच्छा से जो कुछ करे वह ठीक ही है। और, देशभक्त तो हरएक विदेही जनक का ही अवतार है।

× × ×

हमें सरकार के पास से अधिकार छीन लेना है। इसके लिए कुछ तैयारी तो अवश्य करनी चाहिए। और तय्यारी की शुरूआत घर ही से होती है। महासभा और उसकी संस्थायें घर की हैं; उनमें येन केन प्रकारेण अधिकार कायम करना राजनीति का प्रथम पाठ है।

यहांतक तो ठीक है। लेकिन जिनके साथ हमारा भिन्न मत है वे हमारे विरोधी हैं, शत्रु हैं। उनको परास्त करने के लिए उनकी निन्दा भी हम कर सकते हैं, उनके साथ चाल बाजी भी कर सकते हैं। ऐसा ख्याल लोगों में पैदा हो जाय तो समाज का नाश हुए बिना न रहे।

× × ×

गो-रक्षा के विषय में मध्यप्रान्त में कुछ चर्चा हो रही है। वहां की सरकार ने पशुवध के विषय में जो कानून बनाये हैं उसपर एक मुसल्मान भाई खफा हो गये हैं। उनको शक हो गया है कि धार्मिक कुर्बानी के हक में यह सरकारी दस्तंदाजी है और इसीको ले कर चर्चा शुरू हो गई है। सरकारी कानूनों में मजहबी कुर्बानी की मनाई मैं नहीं देख सका। तो भी हिन्दू-भाइयों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि जीव-दया अथवा गो-रक्षा कानूनों के द्वारा करने की अपेक्षा सब देश भाइयों को समझाकर उनकी मदद से ही कर लेना अधिक श्रेयस्कर है। हम लोगों को समझ लेना चाहिए कि मुसलमान लोग गो-रक्षा के शत्रु नहीं हैं। क्योंकि वे भी भारतवासी ही हैं। वे यह जानते हैं कि खेती के लिए पशु कितने काम का जीव है।

× × ×

इस मुसाफिरी के अपने अनुभव मैंने किसी एक पक्ष के गुण या दोष को देख कर नहीं दिये हैं। यहां के सामान्य वायुमण्डल में जो कुछ मैंने देखा वही दुःखित हृदय से दिया है। मैं जानता हूं कि आलोचना करने का अधिकार मुझे नहीं है। तो भी जो कुछ देखा वह नम्र और तटस्थ भाव से दिया है। अब इस मुसाफिरी के बाद मुझे जो कुछ विचार सूझे उन्हें यहांपर देता हूं। मैं समझता हूं कि उनको तात्विक रूप में उपस्थित करने से वे अधिक ग्राह्य होंगे। कम से कम इस रूप में उनसे बुरा नतीजा तो नहीं निकल सकता।

तर्क और भावना दोनों मनुष्यत्व के आवश्यक अंग हैं। तर्क-शून्य भावना जितनी दोषरूप है, उतना ही भावना-शून्य तर्क भी दुष्ट है। जब बुद्धि और हृदय दोनों एक साथ हों तभी मनुष्य की यथार्थ उन्नति होती है। यह कहना मुश्किल है कि इन दोनों में से प्रधान किसे कहें और गौण किसे। तो भी इतना तो शास्त्र-शुद्ध और अनुभव-सिद्ध है कि मनुष्य का मनुष्यत्व विशेषतया भावना पर ही अवलम्बित है। 'यह पुरुष श्रद्धामय है। जैसी जिसकी श्रद्धा वैसा उसका जीवन'। यह परमात्मा का

बन्धन है। तर्क में प्रेरणा नहीं है। तर्क में जीवन-रस नहीं है। तर्क प्रेरणा का चौकीदार है। जैसे किसी मुग्ध राजकन्या की रक्षा के लिए जबतक कि वह तेजस्विनी न हो, चौकीदार रखने पड़ते हैं, वैसे ही जबतक प्रेरणा अपने शुद्ध रूप में प्रकट न हो तभी तक तर्क की प्रतिष्ठा है। वास्तव में तो तर्क अप्रतिष्ठित है।

तर्क में शौर्य नहीं, तर्क में वीर्य नहीं, तर्क में कार्यकारी साहस नहीं, तर्क में त्याग नहीं। तर्क हमेशा जाग्रत रहता है। इसीलिए उसकी आंखें तर रहती हैं। तर्क अति सावधान रहता है। इसीलिए वह निर्दय होता है। अकेला तर्क मनुष्य को स्वहितवादी बना कर अधोगति को ले जाता है। तर्क के हाथ में वैश्य-धर्म की तराजू रहती है।

भावना में वीर-वृत्ति है। भावना में दिव्य दृष्टि है। अपने भोलेपन से ही भावना हमेशा सुरक्षित रहती है। भावना के अतिरेक से होने वाला नुकसान क्षणिक और तुच्छ होता है। तर्क के अतिरेक से होने वाली हानि स्वयं आत्मा को ही क्षीण कर देती है।

दुनिया में ऐसा एक भी आदमी नहीं जिसमें तर्क और भावना का मिलाप न हो। लेकिन इन दोनों में से राजपद किसे मिलता है, इसीपर सब कुछ निर्भर है। अगर तर्क राजा बन जाय और भावना को अपनी दासी बनावे तो आदमी धूर्त और विद्वान पशु बन जाता है। भावना का यह ढोंग कर के दुनिया को बहुत दिनों तक ठग सकता है और स्वयं अपने को भी कुछ कम नहीं ठगता।

इसके विरुद्ध अगर हम भावना को अपनी हृदयेश्वरी और तर्क को उसका विश्वासपात्र सेवक बना लें तो हम ऐहिक और पारलौकिक उन्नति प्राप्त कर सकते हैं। हमारे मनुष्यत्व का पूर्ण विकास हो सकता है। और हरएक व्यक्ति समाज का सच्चा स्वरूप पहचान कर उसकी सच्ची सेवा कर सकता है।

इस देश में जो अंगरेजी विद्या अंगरेजों ने शुरू की वह प्रोटेस्टंट-वृत्ति-प्रधान है। उसमें भावना पर उसकी बहुत अश्रद्धा है। भावना मनुष्य के मन में होनेवाला एक विकार है। बुद्धि ही मनुष्य का सार-सर्वस्व है। स्वार्थ-दृष्टि अत्यन्त स्वाभाविक और इसीलिए उचित है, और तर्क की दूरदृष्टि से सधा हुआ स्वार्थ ही सब लोगों का कल्याण करने में समर्थ है। ऐसे विचारों की बुनियाद पर इस प्रोटेस्टंट-विद्या की इमारत खड़ी है। अंगरेजों की विद्या ले कर हम ईसाई तो नहीं बने, लेकिन प्रोटेस्टंट जरूर हो गये हैं। इसी कारण हमारे सामाजिक आन्दोलन में और राजनैतिक हल-चल में आजतक हम लोगों ने ऐहिक सुखोपभोग, स्वच्छन्दता और अपने अपने स्वार्थ को स्वाभाविक समझ कर प्रतिष्ठित किया है। स्वार्थ और सुख-लालसा स्वयं ही इतने प्रबल हैं कि उनको अपमानित करते रहने पर भी उन्हींका प्रभाव मनुष्य के हृदय पर अनेक बार पड़ता है। लेकिन जब उनको सामाजिक प्रतिष्ठा मिल जाती है तब तो उनकी लीला के विस्तार का पूछना ही क्या? बेशक यह प्रोटेस्टंट-वृत्ति अन्तिम लाभ के लिए क्षणिक त्याग और असुविधा सहन करने को तैयार होती है; लेकिन यह तो असुरों की तपस्या है। दैत्य तपस्या में देवों से कम नहीं होते।

× × ×

हमारा मतलब यह नहीं है कि हम तर्क को छोड़ दें। जिस भावना को तर्क काट सके वह शुद्ध भावना नहीं है। वह तो मोह है। उसका त्याग ही उचित है। शुद्ध भावना को तर्क काट नहीं सकता, लेकिन भावना तक पहुंचने की अपनी अक्षमता कबूल कर के पीछे लौट आता है।

'जैसे के साथ तैसा' यह न्याय लोगों को बहुत प्रिय होता है। लेकिन यह किसीने नहीं सोचा कि उसका नतीजा क्या होता है। 'जैसे के साथ तैसा' व्यवहार करने में न्याय का भाव नहीं है, बदला लेने का भाव है। और बदला हमेशा सूद के साथ दिया जाता है। इस प्रमादशील दुनिया में प्रथम भूल किसकी हुई यह निश्चित करना अशक्य है। हरएक को मालूम होता है कि स्वपक्ष तो [illegible] ही है और उसका विरोध करनेवाला पक्ष हमेशा दोषी होता है। इसी हालत में बदले का फिर बदला, फिर उसका बदला, यह तांता अखंड चलता जाता है। और इसका नतीजा यह होता है कि सार्वजनिक जीवन में जो शिष्टाचार रहना चाहिए वह क्षण प्रति क्षण टूटता जाता है। 'जैसे के साथ तैसा' इस तत्व से [illegible] शुरू होती है। एकके नीचता प्रकट करने पर यदि दूसरा उसे मात करने के लिए अधिक नीचता धारण करेगा तो आखिर को समाज की क्या दशा होगी?

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

महासभा के महाध्यक्ष

इस बार भी महासभा के सभापति देशबन्धु दास चुने गये। महात्माजी के बाद देशबन्धु को छोड़ कर अपना कर्णधार और किसे बना सकता था? आज देश में मतभेद छाया हुआ है। कोई कार्यक्रम में परिवर्तन कर के पीछे हटना चाहते हैं और कोई वहीं अटल पर और [illegible] रहे हैं। ऐसे समय जनता को यह आशंका होना स्वाभाविक था कि इस मत-भेद की आंधी में कहीं महासभा के काम में हानि न हो। इस लिए इस साल महासभा को ऐसे अध्यक्ष की जरूरत थी जो समभाव-पूर्वक हरएक पक्ष का कहना सुन ले, और देश की शक्ति और आवश्यकता देखकर उसे उचित रास्ता दिखा सके। साथ ही वह दोनों पक्षों को [illegible] एक ही मार्ग पर चलने के लिए प्रवृत्त कर सके। और यह तो हरएक व्यक्ति को कबूल करना होगा कि आज भारत में ऐसा पुरुष केवल एक ही है— देशबन्धु दास। इसीलिए वे सर्वानुमति से देश के [illegible] ही चुने गये। भारत की यह भी विशेषता है कि उसका सच्चा नेता परमात्मा का भक्त ही हो सकता है। देशबन्धु के अध्यक्ष होने से देश की इस विशेषता की भी पूर्ति हो जायगी। देशबन्धु ने छूटने के बाद जो भाषण किये हैं उनमें उनकी गहरी भक्ति, और उज्ज्वल सत्य-प्रेम प्रकट हो रहे हैं। इस स्थिति में हमारा हृदय हमें आशान्वित करता है कि देशबन्धु के नेतृत्व में देश उचित रास्ते ही से जायगा और उसका कल्याण भी होगा।

देशभक्त सावरकर

पहले स्वदेशी-आन्दोलन के समय सावरकर-बंधु अपनी असीम देशभक्ति के लिए बहुत विख्यात हो गये थे। सरकार से भी उनकी अव्याज देशभक्ति की कदर किये बिना न रहा गया। उसने उन्हें आजन्म कालेपानी की सजा दी थी। दस बरस तक कालेपानी में रख कर अब बड़े भाई गणेश सावरकर को उसने साबरमती जेल में रक्खा था। पर इन दिनों जेल-जीवन की कठोरता के कारण उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। सरकार ने भी सोचा अब उन्हें कैद रखने में भलाई नहीं। इसलिए उसने उन्हें छोड़ दिया। जेल से वे खटिया पर उठाके स्टेशन पर ले जाये गये। उनका रुग्ण और जर्जर शरीर नौकरशाही के पाशविक वैर-भाव की कहानी स्पष्ट रूप से कह रहा था। हम श्री सावरकर का हृदय से स्वागत करते हैं। और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह उनको शीघ्र स्वास्थ्य प्रदान करे।

ललकार का जवाब

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)
विदेशों के लिए वार्षिक „ ५)

हिन्दी नवजीवन

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष २] [अंक ५

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक—प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, आश्विन वदी ११. संवत् १९७९
रविवार, सायंकाल, १७ सितम्बर १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

रण—निमंत्रण

आओ आओ ! वीरो, आओ !
मातृ—भूमि की जय गाओ !
स्वतंत्रता की वेदी पर—
बलि जावें हम मिलकर ॥ १ ॥

स्वतंत्रता है प्राण हमारा,
जीवन का बस एक सहारा,
कैसे उससे दूर रहें !
बेहतर जेलों में न रहें ? ॥ २ ॥

हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, पारसी,
गले मिलें सब भारतवासी,
प्राण जायं पर बंधु सभी—
झगड़ें आपसमें न कभी ॥ ३ ॥

चलो, सभी अब पहनें खादी,
धर्म—युद्ध की वरदी सादी,
चरखा—धारी धरो निशान,
कर लो उस मोहन का ध्यान ॥ ४ ॥

चलो, चलें अब शांति—समर में,
वा निज धर्म—परीक्षा—स्थल में,
मातृ—भूमि को मुक्त करें—
या न्यौछावर प्राण करें ॥ ५ ॥

सत्य—प्रेम है शस्त्र हमारा,
अचल शान्ति है कवच हमारा,
ऐ जालिम, कर ले तू वार—
होगा पशुबल सब बेकार ! ॥ ६ ॥

जय जय जय विश्वशक्ति भवानि,
जय जय जय स्वातंत्र्य—प्रदायिनि,
अब हममें संचार करो !
सत्य—धर्म की विजय करो ॥ ७ ॥

बैजनाथ अ० महोदय

टिप्पणियां

जयंति अंक

आगामी २ अक्तूबर को भारत में महात्माजी के जन्म—दिवस का उत्सव मनाया जायगा । 'हिन्दी—नवजीवन' भी इस उत्सव के उपलक्ष्य में अपना 'जयंति अंक' निकालेगा । इसमें महात्माजी के खानगी और सार्वजनिक जीवन के भिन्न भिन्न अंगों पर कोई बीस लेख और कवितायें होंगी । लेख ऐसे ही सज्जनों के लिखे होंगे जो महात्माजी के पास बहुत समय तक रहे हों और जिन्होंने उनके जीवन और सिद्धान्तों का तात्विक दृष्टि से अच्छा अध्ययन किया हो । इस अंक के साथ महात्माजी का एक बिलकुल नया चित्र भी पाठकों को भेट किया जायगा । उसकी पृष्ठ—संख्या मामूली अंक से दूनी होगी । तथापि उसकी कीमत वही अर्थात् -)॥ ही होगी । एजन्ट लोग जितनी प्रतियां लेना चाहें उनके दाम पेशगी, आगामी २७ सितंबर तक, व्यवस्थापक 'हिन्दी नवजीवन' अहमदाबाद, के पते पर आ जाना चाहिए । एजंटों को फी प्रति -)। से अधिक मूल्य लेने का अधिकार न होगा । ४० से अधिक प्रतियां मंगानेवालों से डाक या रेल्वे खर्च नहीं लिया जायगा । हमें आशा है, जनता और एजन्ट लोग इससे उचित लाभ उठावेंगे ।

जन्म—दिन और जेल—दिन

कल १८ तारीख महात्माजी का कारावास—दिन है; पर हिन्दू तिथि गणना के अनुसार महात्मा जी का जन्मदिन भी है । इस प्रकार उस दिन दो पर्व इकट्ठे हो गये । इसलिए कल यहां सत्याग्रहाश्रम में सूत कातने की चढ़ा—ऊपरी का जलसा किया जायगा । इस स्पर्धा में जिनका पहला, दूसरा और तीसरा नंबर होगा उनको क्रमशः ५०), ३०), २०), नकद अथवा उतनी ही कीमत की असल पूनियां इनाम दी जायंगी । शेष महाशयों को उनके सूत की कताई दी जायगी । आज राष्ट्रीय उत्सवों को मनाने की यह रीति लाभ दायक है । इससे देश को जिस कला की आवश्यकता है उसकी उन्नति बहुत तेजी से हो सकती है । हमें आशा है कि देश में सब राष्ट्रीय संस्थायें इससे लाभ उठाकर धुनकने, कातने और कपड़ा बुनने की चढ़ा—ऊपरी के जल्से शुरू करेंगी । राष्ट्रीय विद्यालयों में इसीके खेल खेले जायं । स्वदेशी ही में देश की मुक्ति है और स्वदेशी—'खादी' ही जेल जाते समय महात्माजी का आखरी सन्देशा था । अतएव खादी के प्रचार से बढ़कर महात्माजी के जन्म और जेल—दिन मनाने का कौनसा तरीका हो सकता है ?

आदर्श सत्याग्रह

पंजाब में अकाली सिक्ख-भाइयों का सत्याग्रह ठीक उसीप्रकार अभीतक चल रहा है। उनका उत्साह तिल भर भी कम नहीं हुआ है। अबतक ११३६ अकाली घायल हो चुके हैं। इधर पंजाब सरकार ने अत्याचार-पूर्वक उन्हें हटाने की बन्दी कर दी है। तो भी अभी पुलिस की पशुता की शिकायतें आ ही रही हैं। दोनों ओर समठनपूर्वक काम चल रहा है। और दोनों अपने अपने ढंग के आदर्श हैं, अद्भुत हैं। न सिक्खों का सत्याग्रह और न शायद सरकार का हत्याग्रह ही संसार में अपना सानी रखता है। मानों देवासुर संग्राम फिर से छिड गया है। एक ओर है अहिंसा, आत्मा, और सत्य का बल और दूसरी ओर है अन्याय और पशुबल। एक के पीछे है जनता की शक्ति, केवल सिक्खों की नहीं बल्कि सारे हिन्दुस्तान की, और दूसरे पक्ष में भारत की नौकरशाही की और शायद दबे-छिपे साम्राज्य सरकार की भी। विजय तो सत्य और धर्म की ही होती है। श्री एंड्रयूज, देशबन्धु, श्री पटेल, श्रीमती सरोजिनी, हकीम साहब आदि महासभा और खिलाफत कमिटी के प्रायः सब प्रधान नेता वहां जा पहुंचे हैं। कार्य-समिति की बैठक भी वहीं तारीख २२-२३ को होगी। अब यह सवाल न सिर्फ जातीय और न प्रान्तीय ही रहा। सिक्खों के उज्वल और आदर्श सत्याग्रह ने उसे आपही सार्वभारतीय स्वरूप दे दिया है।

सिक्ख-जाति बडी बहादुर है। अबतक उसके शस्त्रयुद्ध को देखकर ही लोग उसकी तारीफ करते थे। पर अब तो उसके सत्य, आत्मिक बल, और अहिंसा धर्म ने भी भारत को मुग्ध कर दिया। उस दिन जलियांवाला बाग में श्री मालवीयजी ने अपने भाषण में कहा "इस मनोधैर्य और आत्मिक बल का सानी संसार में नहीं मिल सकता। जो लोग महात्माजी के अहिंसा-धर्म की ओर कष्ट-सहन के सिद्धान्त को सुनकर मुंह बनाते हैं वे यहां आ कर देख लें कि जनता किस तरह उनके उपदेशों का पालन कर रही है, और उसका असर कितना पुनीत और तेजी से हो रहा है।" सचमुच अहिंसा-धर्म और खादी को अव्यवहार्य कहने वाले और अपने को व्यवहार-कुशल राजनीति-वेत्ता मानने वाले सज्जन इस बार पंजाब की सैर जरूर कर आवें। खादीमय सिक्खों के उस पवित्र आत्मोत्सर्ग को देख कर उन्हें अहिंसा और सत्य का यथार्थ महत्व दिखाई देगा। और जखमी सिक्ख वीरों के मुंह से यह सुन कर कि 'अगर खादी पहने हों तो अंदर आइए' उन्हें खादी के महत्व और व्यावहारिकता का पता लगेगा। तब उनकी आंखें खुलेंगी कि पचीस साल के सतत चिंतन-मनन और देश के कोने कोने में घूम कर, उसकी स्थिति का पूरी तरह से अध्ययन करके महात्माजी जिस नतीजे पर पहुंचे हैं वह ठीक है या खुद उन्होंने अपने घर पर बैठे बैठे अखबारों के पन्ने उलट-पुलट कर जो मत स्थिर कर लिया है वह ठीक है।

आर्य बलिदान

आखिर पंजाब की पुलिसशाही स्वामी श्रद्धानन्दजी पर प्रसन्न हुई। अकाल तख्त में भाषण देने के अपराध में वे पकड लिये गये हैं। भाषण में आपने कहा था कि यदि अकाली भाई चाहेंगे तो हजारों हिन्दू-मुसलमान भाई उनके लिए जान देने आ जायंगे। स्वामीजी हकीम अजमलखां साहब के साथ मजलूम अकालियों की सहायता के लिए अमृतसर गये थे। रौलट कानून-सम्बधी सत्याग्रह के जमाने में स्वामी श्रद्धानन्दजी ने जो पराक्रम दिखाया था उसे कोई हिन्दुस्तानी नहीं भूल सकता। मूर्तिमान् पशुबल संगीन ताने खडा था, आत्मबल कह रहा था—भौंक दे! पर उसका हाथ न उठा। स्वतंत्र स्वामी की अनिश्चित कैदी स्वामी अकालियों की अधिक सेवा करेगा। यह आर्य-बलिदान हजारों की आर्यता को बलिदान के लिए स्फूर्ति देगा। देर से ही क्यों न हो पर सरकार उन्हें भूली नहीं—आखिर उनकी कदर उसने की। इसलिए दोनों को बधाई!

तुर्कों की विजय

यह सप्ताह तुर्कों के विजय और मुसल्मान-भाइयों के हर्ष का सप्ताह है। गाजी मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में अंगोरा सरकार ने यूनान पर फतह पाई। यूनान को स्मर्ना देना पडा और अबतक उसने एशिया मायनर भी खाली कर दिया होगा। इससे मित्र-राष्ट्रों की जान सिकुडने लगी है। इस विजय पर भारत में मुसल्मान-भाइयों का हर्षमग्न होना स्वाभाविक ही है। उनके हर्ष में हमें भी हर्ष है। आज १७ सितम्बर सारे भारत में हर्षोत्सव मनाने के लिए निश्चित हुई है। यह अंक पहुंचने तक पाठक उसमें शरीक हो चुके होंगे।

इस विजय पर हर्ष प्रकाशित करते हुए बम्बई की सेन्ट्रल खिलाफत कमिटी की ओर से श्री जफर अली लिखते हैं:—

"इस खुशी के मौके पर हमें यह न भूल जाना चाहिए कि अभी तो हमारी आजमाइश का दिन दूर है। जबतक हम स्वराज्य प्राप्त नहीं कर लेते हम खिलाफत के मसले को खतरे से पूरी तरह बचा नहीं सकते। भारत की कौमों की एकता को हर तरह से तोडने की कोशिश की जायगी। इसलिए हम जबतक स्वराज्य हांसिल नहीं कर लेते हमें चैन नहीं लेना चाहिए। क्योंकि खिलाफत को बचाने का सब से अच्छा उपाय वही है। हमें इस हर्ष के समय अपने सिक्ख भाई इस आपत्ति के समय अपने धर्म और मातृ-भूमि के लिए जिन मुसीबतों का सामना कर रहे हैं उसे भी हरगिज न भूलना चाहिए। परमात्मा उन्हें अपने धर्म और सत्य की रक्षा के लिए बल दे।

ऐ मेरे हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिक्ख और भारतीय ईसाई भाइयो, गाजी मुस्तफा कमाल पाशा की यह फतह सिर्फ मुसलमानों के लिए ही खुशी की बात नहीं है। वह तो हम और आप सबके लिए एक सी खुशी की बात है। वह तो सत्य की असत्य पर और राष्ट्रीयता की साम्राज्यता पर विजय है।"

एकता की जरूरत

असहयोग-आन्दोलन शुरू होने के पहले देश में हिन्दू-मुसल्मानों के झगडे एक स्वाभाविक और मामूली बात थी। ईद, मुहर्रम आदि त्यौहारों पर दंगे के समाचारों से अखबार रंगे रहते थे। पर अब ऐसा नहीं होता। इस साल सारे भारत भर में मुल्तान और हवडा जैसे से—केवल दो स्थानों से—हिन्दू-मुसल्मानों के झगडों के समाचार आये हैं। तथापि हमें इसके लिए अधिक खुश न होना चाहिए। यह हमारे प्रयत्नों की सफलता और त्रुटि दोनों का सबूत है। सफलता अच्छी है; पर त्रुटि भी कम नहीं। कितने ही स्थानों पर हिन्दू और मुसल्मान नेताओं को जनता को झगडों से बचाने के लिए कल्पनातीत परिश्रम भी करना पड़ा है। जबतक हमारी यह स्थिति रहेगी तबतक हम राष्ट्र का कोई महत्त्वपूर्ण काम नहीं कर सकते। जैसे हरएक प्रकार की उन्नति के लिए मनुष्य को आंतरिक शान्ति की जरूरत है वैसे ही राष्ट्र भी आंतरिक शान्ति के बिना एक पैर आगे नहीं बढ सकता। पूर्वोक्त झगडों की खबर पाकर बम्बई की सेन्ट्रल खिलाफत कमिटी के सभापति सेठ छोटानी साहब ने नीचे लिखी अपील प्रकाशित की है:—

"तुर्कस्तान से विजय के शुभ समाचार आ रहे हैं। पर उस आनंद का सारा रस इन झगडों के समाचारों से मारा गया। इस में किस पक्ष का कहांतक दोष है यह कहना कठिन है। तथापि

इस समय मैं यह अपना धर्म समझता हूं कि मैं अपने मुसल्मान भाइयों से यह प्रार्थना करूं कि हमारे और हिन्दू भाइयों के बीच जो प्रेमभाव है उसे बढ़ाने की हमें कोशिश करनी चाहिए। अपने पड़ौसी के साथ सदा प्रेम से मित्रता-पूर्वक रहना और उनके दिल को न दुखाना हमारा राष्ट्रीय धर्म है। धीरज, सहनशीलता और क्षमा ये इस्लाम के बताये सद्‌गुण हैं। हमें तो उन मौकों पर भी आत्म-संयम करना चाहिए जब आवेग के बड़े से बड़े कारण उपस्थित हों।

"हिन्दू-मुसलमान-एकता हमारे आन्दोलन का आधार-स्तंभ है। उसके बिना हमारा वह उद्देश सफल होना असम्भव है, जिसके लिए हम इतनी मुसीबतें झेल रहे हैं। अभी तो अली-भाइयों को और महात्माजी को जेल गये एक साल भी नहीं हुआ। इतने ही समय में हिन्दू और मुसल्मान झगड़ पड़े। कितने दुःख की बात है! देश और दीन दुखियों के लिए आज वे जेल के दुःखों को सहन कर रहे हैं। उन्हें इन दंगों की खबर सुनते ही जो असीम और मर्म-भेदक दुःख हुआ होगा उसका हम खयाल भी नहीं कर सकते। मुझे आशा है कि स्थानीय महासभा-समिति और खिलाफत के कार्यकर्ता प्रेम से मिलजुल कर दोनों पक्षों में मेल-जोल और शांति प्रस्थापित कर देंगे। यह भी सम्भव है कि ये दंगे उन चालाक लोगों की करतूत हों जिन्होंने अपने मतलब के लिए इन दो महान् जातियों में भेदभाव उत्पन्न करने का बीड़ा ही उठा रक्खा है। हम अपने देश-भाइयों को सावधान किये देते हैं कि वे ऐसे लोगों के जाल में कभी न आवें और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह दोनों जातियों को ऐसी बुद्धि दे जिससे वे आपसमें प्रेम और सद्भाव-पूर्वक रहें।"

सेठ साहब ने अपने मुसल्मान-भाइयों से यह अपील की है। पर हमें आशा है कि हिन्दू-भाई भी इससे उचित शिक्षा ग्रहण करेंगे।

स्वर्गीय मोती बाबू

बंगाल के विख्यात पत्रकार और वयोवृद्ध देशभक्त बाबू मोतीलाल घोष का स्वर्गवास गत ५ सितम्बर को हो गया। मोती बाबू अपने स्वर्गीय भाई शिशिर बाबू के साथ साथ करीब गत ५० साल से 'अमृत बाजार पत्रिका' नामक एक समाचार-पत्र चला रहे थे। घोष-बंधु भारतीय संपादन-कला के जनक कहे जाते हैं। उन्होंने जिस समय पत्रिका को शुरू किया उस समय लोग यह भी नहीं जानते थे कि सार्वजनिक जीवन क्या होता है। सरकार का आतंक बहुत भारी था। किसीको अपने मुंह से उसके खिलाफ चू तक करने का साहस न होता था। इस से हम यह अनुमान कर सकते हैं कि एक निर्भीक समाचार-पत्र को शुरू कर के, उसे चलाना, सरकार की कार्रवाइयों पर टीका-टिप्पणियां करना, जनता को जाग्रत कर के उसमें स्वाधीन वृत्ति को उत्पन्न करना कितनी दूर-दर्शिता और बहादुरी का काम था। घोष-बंधुओं की तत्परता भी आश्चर्यजनक थी। भारत में जब पहले पहल देशी भाषाओं के समाचार-पत्रों के लिए प्रेस एक्ट की कुल्हाड़ी बनाई गई तब तो उन्होंने जनता को चकित कर दिया। जिस दिन कानून की घोषणा हुई उसी दिन रात भर बैठ कर दोनों भाइयों ने दूसरे दिन का पत्रिका का अंक अंगरेजी में प्रकाशित किया। तब से अभीतक पत्रीका अंगरेजी में ही नियम से यथा-समय प्रकाशित होती आ रही है। पत्रिका ने दो पीढ़ियों तक बे रुकावट पाठकों की सेवा की है। अत्याचारियों की रक्षा-उन्नति के लिए वह सदा अग्रसर रही है, फिर वह अत्याचारियों का शिकार काश्मीर के नरेश हों या आसाम-बंगाल के कुली। अधिकारीगण पाप-भय से नहीं तो कम से कम उसकी भेदक दृष्टि और कुरहम टीका-टिप्पणियों से तो सदा बचने ही की फिक्र में रहते। बेचारे उसे कांपते कांपते ही हाथ में उठाते। वह तो जिसके पीछे पड़ जाती उसके धुर्रे उड़ा देती। इसके दृष्टिपात के कारण कितने ही उच्च पदाधिकारी मारे मारे फिरने लग गये।

पश्चिमी सभ्यता के असली स्वरूप को, अंगरेजी शिक्षा से होने वाली नैतिक हानि को, अदालतों के दुष्परिणामों को और यंत्र-सामग्री के आसुरी स्वरूप को उन्होंने बहुत पहले से पहचान लिया था। इसीलिए वे उन आगंतुक असुर-सेना की करततों का सामना करने के लिए सबसे पहले कटिबद्ध हो गये थे और देश को जगाने, चेताने लग गये थे। ग्राम-प्रचार तो पत्रिका के जन्म के पहले ही से उन्होंने शुरू कर दिया था। हाथ-बुनावट को भी भारत में फिर से स्थापित करनेवाले वे ही कहे जाते हैं।

सन १९११ में शिशिर बाबू को कैलासवास हुआ। तब से पत्रिका के सम्पादन का सर्व भार मोतीबाबू के सिर पर ही पड़ा। पर उन्होंने उसे बड़ी योग्यता और खूबी के साथ निबाहा।

मोतीबाबू का खानगी जीवन भी बड़ा सादा-सीधा था। उनका स्वभाव निरभिमानी, प्रसन्न और बड़ा ही विनोदशील था। घोष-परिवार पुराने जमाने के भारतीय पारिवारिक जीवन का खासा नमूना था। दोनों भाई बड़े मातृभक्त थे। पत्रिका का नाम उन्होंने अपनी माता अमृता देवी की स्मृति में ही रक्खा था। अमृतादेवी बड़ी देशभक्ता और वीरा थीं। घोष-बंधुओं की देश-सेवा उसी वीर जननी का प्रसाद है।

मोतीबाबू जैसे अनुभवी और दिलेर नेता का देश की इस नाजुक स्थिति में संसार से उठ जाना उसके लिए सचमुच बड़े दुःख की बात है।

महात्माजी के पत्र

श्री राजगोपालाचारी 'यंग इंडिया' में लिखते हैं—

"जब राष्ट्रों में अपने गौरव की रक्षा के लिए युद्ध ठन जाता है तब उनमें प्रायः ऐसे लोग भी हुआ करते हैं जो उस परिस्थिति का उपयोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए कर लिया करते हैं। महान् आन्दोलनों का उपयोग अपने नीच स्वार्थ की पूर्ति के लिए करना सब दूर एक साधारण बात सी है। पर महात्माजी के इस आन्दोलन की नैतिक विशेषता को देखते हुए तो यह आशा की गई थी कि कम से कम इससे तो लोग नाजायज फायदा नहीं उठावेंगे। पर ऐसा नहीं हुआ। ऐसी कई किताबें, समाचार-पत्र आजकल सैकड़ों की तादाद में निकल रहे हैं जिनका उद्देश, या कुछ हद तक फल, अच्छे खयालात का प्रचार है और उनके द्वारा प्रकाशक अच्छा मुनाफा भी उठा रहे हैं। यह तो ठीक; पर कई बार इनकी धृष्टता यहांतक पहुंच जाती है कि ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए प्रकाशक उन किताबों पर बेधड़क 'महात्मा गांधी-लिखित' अथवा इस प्रकार के दूसरे शीर्षक भी छाप दिया करते हैं, मानों खुद महात्माजी ने वे लेख उनके लिए लिखे हों और अपने खर्च से किताबें छपाई हों। पर बात बिलकुल विपरीत होती है। पुस्तक बनाने वाले अपनी रुचि के अनुसार महात्माजी के लेखों में से कुछ लेख चुनकर पुस्तक बना लेते हैं। महात्माजी इन बातों को न खुद जानते हैं न उन पुस्तकों के प्रकाशित कराने से उनका कोई मतलब रहता है। इन किताबों की कीमत भी अकसर इतनी ज्यादा रख दी जाती है कि वह गरीब हिन्दुस्तानी ग्राहकों के लिए भारी बोझ हो जाता है और विदेशियों के लिए तो एक कर रूप है। नतीजा इसका यह होता है कि आन्दोलन के प्रचार में रुकावट आकर किताबों का राष्ट्रीय महत्त्व मारा जाता है। साथ ही उनके प्रकाशक की स्वार्थपरायणता की गहराई का भी परिचय हो जाता है। महात्माजी की तस्वीरों के भी यही हाल हैं। लाखों की संख्या में उन

बेढंगी तस्वीरें निकलती हैं, जिन्हें खरीदने के लिए झुंड के झुंड लोग जाते हैं। और अपने पूज्य नेता की उस बेढंगी तस्वीर के लिए उस स्वार्थी दुकानदार को दो आने देकर अपने को कृतार्थ मानते हैं कि आज मेरे दो आने शुभ काम में, देश के भले के लिए, खर्च हुए। नये नये सस्ते चरखे भी निकलने लगे, सूत कातने के लिए नहीं, बल्कि ग्राहकों के मत्थे मढकर रुपया हथियाने के लिए। 'मिल की खादी,' 'शुद्ध स्वदेशी' और 'शुद्ध खादी' के बडे बडे भाण्डारों की सृष्टि होने लगी और दुकानदार महात्माजी और महासभा के कार्यकर्त्ताओं के नाम पर अपनी जेब गरम करने लगे। जो काम उन्होंने देश के भले के लिए करना चाहा उसका उपयोग नीच स्वार्थ-सिद्धि के लिए होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि बेचारे ग्राहक दुकानदारों के विश्वास पर शुद्ध स्वदेशी अथवा शुद्ध खादी समझकर जिस माल को ले आते हैं उसका पैसा जाता है मैन्चेस्टर के लोभी बनियों के घर में और भारत के मिल मालिकों के यहां। इधर ग्राहक बेचारे यही सोचते रहते हैं कि हम आज कांग्रेस का और देश का भला कर के आये हैं।

पर अब तो दुरुपयोग की हद हो गई। हाल ही में महात्माजी के पत्र अखबारों में और पुस्तकों के रूप में छपने लगे हैं। इस प्रकार की दलील कोई दलील नहीं कही जा सकती। हां, यह सच है कि महात्माजी ने अपने लेखों के छपाने आदि का अधिकार अपने ही पास नहीं रख छोडा है। हर शख्स उनको छाप कर उनके सिद्धान्तों का प्रचार कर सकता है इसके लिए उसे महात्माजी को कुछ देने की भी जरूरत नहीं है। पर इसका मतलब यह नहीं कि जिस तरह मिलें, उनके पत्र प्राप्त कर के उनकी बिना ही इजाजत के छाप डाले जायं। हाल ही में महात्माजी के कुछ पत्र गुजराती में अनधिकार-रूप से पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। दूसरी भाषाओं में भी उनके अनुवाद तेजी से हो रहे हैं। स्वयं महात्माजी के लिए तो कोई बात गुप्त रखने योग्य नहीं है। पर पत्र तो पवित्र वस्तु होती है। वे देशोपकार के सिवा और तब भी लेखक की बिना इजाजत लिए हरगिज न छपने चाहिए। महात्माजी अपने पत्रों को अभी प्रकाशित करने के सख्त खिलाफ थे। हां, यह सत्य है कि एक समय ऐसा जरूर आवेगा जब हमें उनके सब पत्र इकट्ठे कर के अधिकारी-रूप से छापना पडेंगे और तब उससे जरूर राष्ट्रीय हित ही नहीं बल्कि संसार का भी भला होगा। पर अभी महज इसलिए कि महात्माजी जेल में हैं, किसीको कुछ कह नहीं सकते, प्रकाशकों को उनकी जो जो चीजें हाथ लगें उन्हें छाप कर उनके बडे नाम के पीछे पैसे नहीं लूटना चाहिए। इस नीच स्वार्थ के लिए दूसरा शब्द ढूंढना कठिन है। मुझे जनता को यह सूचित करते हुए हर्ष होता है कि मेरे महात्माजी के पत्रों के छापने का निषेध करते ही श्री गणेशन् ने कितना ही नुकसान उठा कर महात्माजी के कुछ पत्रों का अंगरेजी अनुवाद प्रकाशित करना स्थगित कर दिया, जिनका वे विज्ञापन भी प्रकाशित कर चुके थे और उनपर बहुतसा धन भी लगा चुके थे। मैं आशा करता हूं कि दूसरे प्रकाशक ऐसे लेखों और पत्रों को न छापेंगे और शिष्टाचार के नियमों का पालन करेंगे।"

सच्चा असहयोगी

अभीतक असहयोगियों की असहिष्णुता और प्रतिपक्षियों के प्रति अशिष्टता के बर्ताव की शिकायतें आ ही रही हैं। विशेषतः मध्यप्रान्त और महाराष्ट्र में जो लोग परिवर्तन के लिए आवाज उठा रहे हैं उनके प्रति ऐसे व्यवहार की अधिक शिकायतें हैं। वास्तव में सच्चे असहयोगी को असहिष्णु और अशिष्ट न होना चाहिए। सच्चे असहयोगी का नमूना तो श्री रंगा अय्यर ने हाल ही में पेश किया है। हम उन्हींके शब्दों में उनके उस पत्र का सार देते हैं जो उन्होंने अपने नरम भाइयों से उस दिन की मेयो हाल वाली घटना पर दुःख प्रकाशित करते हुए लिखा है। वे कहते हैं—

"उस दिन मेयो हाल में हमारे पक्ष की जो विजय हुई उसके उपलक्ष में मुझे कई मित्रों की ओर से और प्रसिद्ध कार्यकर्ताओं की ओर से बधाइयां आ रही हैं। पर मैं आप सबसे यह कहने की इजाजत मांगता हूं कि उस विजय से मुझे अत्यंत लज्जा और असीम दुःख हुआ। उसके लिए मैंने अपनेको बहुत धिक्कारा। उस रोज मेयोहाल में मैंने क्या बहादुरी की? मेरे एक मुट्ठीभर भाइयों के खिलाफ जिन्होंने "बदनामी से सदा के लिए नाता जोड लिया है" मैंने पहले की तरह जोश में आकर मनमाना मुंह खोल दिया। यह सच है कि मुझे देश की इस कठिन अवस्था में उनकी यह नीति देखकर दुःख—बहुत भारी दुःख—हो रहा था, और मैंने उस दिन के भाषण में अपने उसी दुःख को प्रकट किया था। पर यह भी उतना ही सत्य है कि मुझे अकेले में भी इस बात पर कई बार बहुत दुःख हुआ है कि मेरे नरम भाई हमारी यथार्थ स्थिति को कब पहचानेंगे और कब वीर की तरह देश के लिए लडने को खडे होंगे।

"किन्तु क्या मैंने उस दिन मेयो हाल में यह चेष्टा की कि जिससे वह सुदिन शीघ्र आवे? पर अफसोस! मुझे उस दिन फिर उस पहलेवाले भूत ने आ पछाडा, और मैंने अपने नरम भाइयों को जो पहले ही जनता की दृष्टि में गिर चुके हैं, और भी बदनाम करने के प्रयत्न से सहयोग किया। मुझे तो सिर्फ अपना मत जाहिर कर देना था। दूसरी बातों में पडने की जरूरत ही क्या थी? अगर वे मेरी बातें न सुनते तो मुझे दूसरी सभा करनी चाहिए थी।

"पहले जब मैं अधिक सोचता न था तब राजनीति मेरे लिए आजकल की सभ्यता की दी हुई एक शराब की बोतल थी। पर जब से मैं जेल से छूटा हूं मैंने निश्चय कर लिया कि या तो मैं राजनीति को पूरी तरह धार्मिक-आध्यात्मिक बना डालूं या उसे सदा के लिए तिलांजली दे दूं। और अगर अब मैं पश्चिमी कूट राजनीति के इन अपवित्र और अनुदार भावों से अपने को न बचा सका तो मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं उसमें फिर कभी न भाग लूंगा। उस मेयो हाल वाली घटना पर एक दिन भर खूब अच्छी तरह विचार करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं। मैं अपने देशभाइयों से भी प्रार्थना करता हूं कि वे भी अपने को ऐसे जोश से बचावें। मैं अपने नरम भाइयों से क्षमा मांगता हूं। मुझे उनके दिल को दुखाने का क्या अधिकार था? जितनी देशभक्ति का मैं दावा कर सकता हूं क्या उतना ही वे नहीं कर सकते? जेल जाते समय महात्माजी के आखरी शब्द थे कि 'अपने नरम भाइयों के दिल को मत दुखाना'। पर मैंने उनके वचनों को याद नहीं रक्खा और वही पाप किया। मैं खुले आम अपने इस पाप के लिए-अपने भाइयों का दिल दुखाने के पाप को धोने के लिए-उनकी अत्यंत नम्रता पूर्वक क्षमा मांगता हूं। मैंने एक पत्र तो सभाकर्ता को खानगी तौर से भेज दिया है। पर उतने ही से मुझे संतोष नहीं हुआ। मुझे इस बात की खुशी है कि जेल-जीवन ने मुझे इतना बेशरम बना दिया। मैं अनुभव करता हूं कि उनके हृदय को बहुत आघात पहुंचा होगा और ऐसा होने के लिए कारण भी थे। अब मेरे मार्ग दर्शक केवल सत्य और परमात्मा हैं और यह केवल उन्हींकी विजय का सबूत है कि मैं यह खुले आम अपने नरम भाइयों से अपने अपराध के लिए माफी मांग रहा हूं। मुझे आशा है वे मुझे जरूर क्षमा करेंगे। मैं चोर की तरह अपनी विजय को छिपाना नहीं चाहता"

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, आश्विन बदी ११, सं. १९७९

ललकार का जवाब

अब भारत को शायद 'वीर-विहीन मही' समझने के भ्रम में अंगरेजी सल्तनत के दूत शिमला के शिखर से मानों एक ओर विजय-दुन्दुभि और दूसरी ओर रण-भेरी फूंक रहे हैं। लार्ड रीडिंग ने अपने भाषण में सहयोगियों को जो गम्भीर चेतावनी दी, असहयोग से संग्राम ठानने के लिए जो उत्तेजना दी वह नये युद्ध का—शायद—का मंगलाचरण हो सकता है। उधर राज्य-सभा में श्री काले के प्रस्ताव के उत्तर में होम मेम्बर सर विलियम विन्सेन्ट ने जो जहर उगला वह मानों आत्मबल पर पशुबल की विजय (!) की दुन्दुभि थी। उन्होंने बड़े आवेश के साथ कहा—"भारत की राजनैतिक और औद्योगिक ही नहीं वरन् हर तरह की उन्नति का अगर कोई बड़े से बड़ा शत्रु है तो वह गांधी है।" उनकी यह 'छोटे मुह बडी बात' भारत के लिए असह्य हो सकती है। यह उनकी वीर-वृत्ति का सूचक है या निर्लज्ज प्रभुता का प्रदर्शन? भारत वीर-पूजक है। वह सर विलियम विन्सेंट के वीर-वचनों की कदर कर सकता; पर किसीके पीठ पीछे गाल बजाना उसके यहां वीरता नहीं मानी जाती। हां, यदि विलियम साहब भारत की ओट में शिकार खेलने के बजाय खुले मैदान आकर साफ साफ कह देते कि 'गांधी भारत में अंगरेजी स्वार्थ के शत्रु हैं' तो हम जरूर उनकी वीरता और सचाई की प्रशंसा करते। आज तो वे भारत की नजर में 'पद और स्वार्थ का गुलाम, उसका नमक खानेवाला, एक नौकर' हैं और दुर्भाग्य से उस मंडल की ओर से बोल रहे हैं जिसे भारत अपना प्रतिपक्षी मानता है। कहां बेचारा एक पामर और कहां संसार का तारनहार! हमें एक ओर उनके इस साहस पर जहां हंसी आती है तहां दूसरी ओर पश्चिमी राजनीति की कलुषित संस्कृति पर दुःख होता है। क्योंकि भारत की उन्नति का शत्रु कौन है, उसे देश अब पहचान गया है। सर विलियम ने करोडों भारतवासियों के दिल पर यह एक और गहरा घाव करके, नहीं पिछले घावों पर शोले बरसा कर, ब्रिटिश सल्तनत का बडा भारी अहित किया है। हमें आश्चर्य तो इस बात का है कि जनता के नाम पर कौन्सिलों की कुरसियों को विभूषित करने वाले हमारे भाई राष्ट्रीय गौरव के इस घोर अपमान को नीची गर्दन करके सुनते और सहते रहे। हां, कसम खाने के लिए एक साहब ने फरमाया कि होम मेम्बर साहब ने सर मायकेल ओड्वायर और ओडायर का नाम-निर्देश किये बिना गांधीजी की निन्दा करके बुरा काम किया। इससे बढकर सुधारों की विफलता का, उससे होनेवाले भारत के तेजोवध का बुरा दृश्य और क्या हो सकता है? ऐसी अवस्था में कोई भी सच्चा स्वाभिमानी और अपने देश के मान-गौरव को अपने प्राणों से भी प्यारा माननेवाला भारतवासी इन कौन्सिलों में उस दिनतक कदम नहीं रख सकता जिस दिनतक उसे यह अधिकार न हो जाय कि वह ऐसे गुस्ताख नौकरों की जबान वहीं बन्द कर दे। एक वे दिन थे कि लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी अपने राष्ट्रीय गौरव की रक्षा के लिए वाइसराय के सामने भरी सभा में से उठकर चले गये थे। भारत का इससे बडा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है कि उसे आज यह दिन देखना पडे! सहयोगी भाइयों के लिए यह समय बडे आनबान का है। वाइसराय के आवाहन और सहायता के आश्वासन के बाद वे या तो नौकरशाही के बन कर रह सकते हैं या भारत के। उनके देश-प्रेम और आत्मसम्मान की कसौटी का यही समय है।

जिस शासन-यन्त्र के कल-पुरजों को देश के अत्यन्त अहिंसा-परायण विश्व-प्रेमी नेता के लिए ऐसे नीच उद्गार प्रकट करने की जुरत हो सकती है उसकी अनिष्टता के लिए क्या किसी सबूत की जरूरत है? पर अफसोस इस बात का है कि महात्माजी के कारावास के बाद जहां हमारी घण्टों की तैयारी मिनटों में होनी चाहिए थी तहां हम चर्चा में और बुद्धि-भेद में अपना बहुत कुछ समय बिता रहे हैं। हम शायद इस बात को भूल जाते हैं कि इससे एक ओर तो हम सरकार की जड को जीवन मिलने का मौका देते हैं और दूसरी ओर अपनी सेना को मूढ होने देने का अवसर। धन, जन, शस्त्र और संगठन के बिना संसार में किसी सेना ने विजय नहीं पाई। तिलक-स्वराज्य कोष हमारा धन-बल है, महासभा के सदस्य जन-बल, खादी शस्त्र-बल और शान्ति तथा एकता हमारा संगठन-बल है। यदि हमें सचमुच स्वराज्य प्यारा है, महात्मा गांधी को यदि सचमुच हम अपना नेता मानते हैं, तो लार्ड रीडिंग की इस ललकार और विलयम साहब की गुस्ताखी के बाद एक क्षण भी विराम लेना हमारे लिए पाप-रूप होना चाहिए। अन्यथा इसका अर्थ यही है कि भारत को सजीव राष्ट्र बनकर रहने का अधिकार नहीं है। भारत के लिए जीवित रहने या मर मिटने का समय यही है। यदि वह पुरुषार्थ दिखावेगा, अपनी आन पर डँटा रहेगा तो जी जायगा, नहीं तो अपनी भावी गुलाम सन्तति के लिए श्राद्ध की वस्तु रह जायगा!

राजा जनक ने एक बार कहा था—मैंने समझ लिया, इस पृथिवी में कोई भी वीर नहीं है—"वीर-विहीन मही मैं जानी।" कुमार लक्ष्मण से उसकी यह दर्पोक्ति न सही गई। वह उठ खडा हुआ और बोला-रघुवंश का अस्तित्व रहते हुए किसे यह कहने का साहस हो सकता है कि वीर-वंश नष्ट हो गया है? मैं सारे ब्रह्मांड को गेंद की तरह उठा कर रख सकता हूं। दबे-छुपे यही आवाज अब शिमला-शैल से आई है। भारत खूब जानता है कि इन ललकारों का रहस्य क्या है? यदि जनक ललकारे तो लक्ष्मण उत्तर देता है; पर यदि शिशुपाल बकता है तो श्रीकृष्ण मौन रह कर उसके भविष्य पर हंस देते हैं।

क्या भारत लार्ड रीडिंग की इस ललकार का और होम मेम्बर की इस गुस्ताखी का उत्तर देगा? उसने तो असहयोग शुरू करके पहले ही उत्तर दे रक्खा है। बुझने के पहले दीपक की ज्योति बढ जाती है। प्राण निकलने के पहले मनुष्य अधिक छटपटाता है। हार मानने के पहले कायर खूब गाल बजाता है। जो गाजता है वह बरसता नहीं। भारत सभाओं और प्रस्तावों के द्वारा इसका उत्तर क्या दे? वह तो मौन रहे और अपनी कृति के द्वारा ऐसा उत्तर दे कि जिसे लिखते हुए इतिहासकारों के हाथों से लेखनी छूट पडे। वह है सविनय भंग। यह ललकार और अपमान उसके लिए ईश्वरी प्रसाद और प्रोत्साहन है। वह ऐसा प्रयत्न करे कि अब की बार एक भी उम्मीदवार कौन्सिल में न जा सके और जो जा पहुंचे उनके बनाये कानूनों को मानने से वह इनकार भी कर सकता है। अतएव भारत अपनी सेना को खादी की वर्दी पहना कर, आपस में पूरी और पक्की एकता कर के शान्ति के साथ देखते देखते ऐसी तैयारी करे कि या तो वह स्वाधीन भारत हो जाय या उसका इतिहास यहीं खतम हो जाय।

हरिभाऊ उपाध्याय

गो-रक्षा

ऐसा भी एक समय था जब कितने ही देशों में यह कहा जाता था कि पिता अपने पुत्र का पूरा पूरा मालिक है। पिता यदि अपने पुत्र को मार भी डालता तो लोग कहते हमें उनके बीच पड़ने की क्या जरूरत ? उसका लड़का था, उसने मार डाला। आज अगर मैं अपने बाग में से एक-आध पेड़ उखाड़ डालूं तो क्या मेरा पड़ौसी मुझसे झगड़ सकता है ? हां, अगर वह पेड़ अच्छा हो, उपयोगी हो, तो ज्यादह से ज्यादह उसे बुरा लग लेगा। पर वह यह तो कभी न सोचेगा कि इसके लिए मुझे उसमें उड़ने का हक है। रोमन लोगों में पहले यह चाल थी कि अगर कोई अपने गुलाम को मार भी डालता तो वह जुर्म नहीं माना जाता था। पर जब उनके हृदय में जीव-दया की भावना का अधिक विकास हुआ, उन्होंने गुलामों को जीने का भी हक दे दिया। अगर कोई गुलाम अच्छा वैद्य या अध्यापक होता तो उसको मारने से सारे समाज की हानि होती। इसलिए समाज ने यह एक नियम बना लिया कि किसी भी कारीगर का वध न किया जाय। पुराने कानूनों में अनेक देशों के कारीगरों की रक्षा के लिए खास नियम हैं।

हमारे यहां अधिकार द्वारा अथवा सजा का डर दिखाकर जीवदया का प्रचार करने के बदले धार्मिक पाप-पुण्य की भावनाओं की नींव पर जनता की सामाजिक नीतिमत्ता सुधारने का रवाज चला आया है। बड़ अथवा पीपल जैसे समाज के उपयोगी वृक्षों को काटना भी एक पाप कहा जाता है। काश्मीर में अगर कोई चिनार के पेड़ को काटे तो बहुत बुरा समझा जाता है। चिनार सारे वृक्षों का राजा होता है। उसकी छांह बड़ी शीतल होती है। एक चिनार-वृक्ष चार धर्मशालाओं के बराबर है।

बहुत पुराने जमाने में भारत में भी एक ऐसा समय था जब गोवध निषिद्ध नहीं माना जाता था। सब पशुओं की हिंसा होती थी। पर जब हमारे धर्मकारों के दिल में जीव-दया का तत्त्व पूरी तरह से ठंस गया तब उन्होंने पशुओं के प्रति समभाव अथवा दया-भाव उत्पन्न करने के लिए अनेक उपायों की आ योजना की। जिन जातियों में यह भाव प्रचलित है कि दुनिया में पशु तो हमारे खाने के लिए बनाये गये हैं, उनके दिमाग को सार्वत्रिक जीव-दया की कल्पना एकाएक नहीं जंच सकती। इस कठिनाई का अनुभव तो हम अब भी करते हैं। इसलिए उस समय के ऋषि-मुनियों ने सोचा कि शुरुआत कहांसे की जाय ? बकरे-मुर्गे जैसे प्राणियों को जो महज खाने के ही काम में आते हैं, जीवदया के क्षेत्र में लाना कठिन है। घोड़ा जैसे प्राणी के मांस की अपेक्षा परिश्रम-द्वारा अधिक काम लिया जा सकता है। इसलिए यह तय हुआ कि घोड़ों के वध का निषेध किया जाय। यह तो कुछ हद तक संभवनीय है।

पर घोड़ों से भी अधिक उपयोगी पशु गाय है। वह मनुष्य के परिचय में भी अधिक आता है। गाय-बैल के मांस की अपेक्षा उनकी मजदूरी मनुष्य के लिए कहीं अधिक फायदेमंद है। और गाय से तो हमें दूध, दही, घी आदि भी मिलते हैं। अतएव वह बे-मां के बच्चों के लिए तो साक्षात् मां की तरह पालन करनेवाली हो जाती है। गाय का सात्विक और प्रेमी स्वभाव, उसके दूध की उपयोगिता, बैलों का खेती में उपयोग, आदि सब बातों का ख्याल कर के हमारे स्मृतिकारों ने जीव-दया की शुरुआत गाय से ही की। और वहीं से उसकी शुरुआत हो भी सकती थी। दूसरों की अपेक्षा अपने देश-भाइयों के प्रति अपने हृदय में स्वभावतः अधिक प्रेम होता है। उसीप्रकार जो गाय-बैल हमारे परिचय में सबसे अधिक आते हैं और हमारे जीवन के साथ जिनका सम्बन्ध बहुत गहरा हो गया है उनके प्रति जीव-दया उत्पन्न करना स्वभावतः अधिक आसान था। गाय के लाभों को बताकर यदि गाय की रक्षा करें तो गाय की तो रक्षा हो; पर साथ ही, मनुष्य का स्वार्थ-भाव बढ जाय। दया अथवा आत्मौपम्य इन उच भावों का उदय न हो। और मनुष्य की सची उन्नति तो दया-भाव के द्वारा ही हो सकती है। इसलिए हमारे समाज-व्यवस्थापकों ने हमारे हृदय में गाय के प्रति प्रेम और अभिमान उत्पन्न किया और उसे बढाया। मनुष्य के प्रति अहिंसा-भाव उत्पन्न करना तो बहुत आसान बात है, पर पशुओं के प्रति अहिंसा-भाव उत्पन्न करना कठिन है। यह सोच कर उन्होंने गाय के विषय में हमारे हृदय में पूज्य भाव उत्पन्न किया और यह निर्धारित किया कि गाय की रक्षा करना प्रत्येक हिन्दू का पवित्र कर्तव्य है। इसमें उनका उद्देश यह तो कभी नहीं हो सकता कि गोवध को बंद करने के लिए हम मनुष्य का भी वध कर डाला करें।

अगर हम जबरदस्ती से गोवध बन्द करने जाय तो फिर जैनियों को यह हक क्यों न होना चाहिए कि देवता और देवियों के सामने जो बकरों और मुर्गों का वध किया जाता है उसे वे बल-पूर्वक रोकें ? और यदि इस तरह हम बल-पूर्वक हिंसा रोकने का पेशा अख्त्यार करेंगे तो पशु-हिंसा का रुकना तो दूर रहा उसके लिए उससे भी ज्यादा मनुष्य-हिंसा हो जायगी-अहिंसा के नाम पर अहिंसा-धर्म की ही हिंसा हो जायगी।

इसलिए हम यह तो कहना नहीं चाहते कि हिन्दुओं को गोरक्षा का सवाल छोड़ देना चाहिए। हिन्दू जाति को तो गोरक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना चाहिए, यह तो हमारा परंपरागत धार्मिक हक है। उसको छोड़ देने से हम कुलांगार कहे जायंगे। पर हम गोरक्षा के लिए अपने मुसलमान-भाइयों से बैर तो किसी हालत में नहीं कर सकते। मनुष्य-द्रोह करने से कहीं जीवदया होती है ? यह तो आवेश है, जीवदया नहीं। अभीतक हम कुमार्ग पर चल रहे थे और हमने अपने मुसलमान-भाइयों को बाजी बना रक्खा था। पिछले दो सालों में हमने अच्छे उपायों से काम लिया और हम यह प्रत्यक्ष ही देख रहे हैं कि उनके द्वारा हम गोवध किस कदर बंद कर सके हैं।

मुसलमान-भाई गाय के शत्रु नहीं। अगर हम इतना ही याद रक्खें तो हम उनकी मदद से आज समाज में गोरक्षा कर सकेंगे। पहले तो जब हम हिन्दू-मुसलमान दोनों मिलकर स्वराज्य और खिलाफत को प्राप्त कर लेंगे तब भारत में अंगरेजी फौजों के आहार के लिए जो अपार गोहत्या हो रही है वह आप ही बन्द हो जायगी। अमीर काबुल के हृदय में जो गोरक्षा के लिए प्रेम है वह हमें ज्ञात हो ही चुका है। किसी के धार्मिक रीति-रिवाजों में हम उसकी इच्छा के खिलाफ कभी कोई फेरफार नहीं करा सकते। उसके लिए तो हमें उनके धर्मगुरुओं की धार्मिकता पर ही श्रद्धा रखनी चाहिए। जिस इस्लाम ने सात बकरों के बदले एक गाय की कुरबानी कुबूल कर ली है वह गोरक्षा के लिए कोई रास्ता ढूंढ न निकालेगा, यह नहीं हो सकता। और यह रास्ता तो इस्लाम के धर्मगुरु ही अपनी अंतरात्मा की प्रेरणा से ढूंढ सकते हैं। हमने तो अपने ढंग से धार्मिक आज्ञा और जीव-दया का मेल कई स्थानोंपर बैठा लिया है। शक्ति की उपासना में जहां पशु के बलिदान का विधान किया गया है तहां हम उड़द के आटे का पशु बनाकर उसका अथवा कुम्हड़े का बलिदान दे कर काम चला लेते हैं। परमात्मा ने हरएक मनुष्य के हृदय में जीव-दया उत्पन्न कर रक्खी है। जैसे जैसे वह विकसित होती जाती है वैसे वैसे उसके हृदय

में आप ही पशु-रक्षा के मार्ग खुलते चले आते हैं। यह तो दुनिया का कोई भी धर्म नहीं कहता कि जीवदया धर्म-विरुद्ध है। इसलिए सबसे जरूरी बात तो अभी यही है कि पहले हम खुद जीव-दया-धर्म का आचरण करें और दूसरों के लिए अभी धीरज रक्खें।

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

कुछ प्रश्नोत्तर

जिला मुजफ्फरनगर, संयुक्तप्रांत, के एक वेदालङ्कार महाशय लिखते हैं कि 'मैं महात्माजी का एक भक्त हूं और उनके सब सिद्धान्तों पर—अहिंसा पर भी, पूरी तरह विश्वास रखता हूं। मैं १० महीने से असहयोग-कार्य कर रहा हूं। पर कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिनका उत्तर आपके द्वारा मिलने से वर्तमान स्थिति के समझने में बहुत लाभ होगा, आपके प्रश्न उत्तर-सहित नीचे दिये जाते हैं—

१ प्रश्न—महात्मा गांधी को एक साल में ही स्वराज्य स्थापित करने की जल्दी थी। क्या यह ठीक है?

उत्तर—हमारे खयाल में तो महात्माजी एक क्षण भी भारत को गुलामी में देखना नहीं चाहते थे। वे कहते थे कि "हिन्दुस्तान के आर्थिक और नैतिक दुःखों को मैंने इतना अनुभव किया है कि उसकी लपटों से अगर मैं जल कर भस्म नहीं हो गया हूं तो उसका कारण केवल यही है कि मैं जनता की दिलाई आशा के बल पर जी रहा हूं। मैं तो इसी आशा और केवल इसी आशा के भरोसे घूमता-फिरता हूं कि आज हम आत्मशुद्ध होंगे—आज हमारे करोड़ों भाई-बहनों की हड्डियों में मांस दिखाई देगा।"

२ प्रश्न—"आजकल लोग स्वराज्य के कुछ नये नये अर्थ करते हैं और सिद्ध करना चाहते हैं कि यदि हमें एक साल में स्वराज्य पूरा नहीं तो बहुत-कुछ मिल गया है—जैसे आपने स्वराज्य का अर्थ 'नौकरशाही का रौब-दाब हट जाना' व 'जुल्म-जोर का डर हट जाना' किया है। बाबू भगवानदासजी ने इसका अर्थ 'स्वराज्य का बीज बोया जाना' किया है। क्या महात्माजी का भी स्वराज्य से यही (या कुछ ऐसा ही) मतलब था? अथवा उनका मतलब असली स्वराज्य अर्थात् पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य से जिसमें जब हम उचित समझें अपना संबंध अंगरेजी राज्य से तोड़ सकें अन्यथा (दूसरी अवस्था में) पूर्ण स्वाधीनता से था?"

उत्तर—महात्माजी के स्वराज्य का आदर्श उन्होंने अपने 'हिन्द स्वराज्य' में दिया है। भारतीय स्वराज्य की स्थूल, पर विस्तृत, व्याख्या १८ अगस्त, १९२१ के 'हिन्दी-नवजीवन' में दी गई है। उसमें आप लिखते हैं—स्वराज्य का अर्थ है "देश के आयात और निर्यात पर, सेना पर, और अदालतों पर जनता का पूरा नियंत्रण। इसमें अंगरेजी राज्य के साथ संबंध रखने के लिए जगह है भी और नहीं भी। यदि खिलाफत और पंजाब-कांड का निपटारा न हो तो जगह नहीं।" फिर २८ अक्टूबर १९२१ के अंक में उन्होंने एक प्रश्न के उत्तर में कहा है—'स्वराज्य शब्द ऐसा है कि उसकी परिभाषा नहीं की जा सकती। फिर भी उसकी असली परिभाषा करने का प्रयत्न करता हूं। स्वराज्य का अर्थ है—मत प्रकट करने और कार्य करने की पूरी आजादी-बशर्ते कि दूसरे के मत प्रकाशन के और कार्य करने के अधिकार में दस्तन्दाजी न की जाय। इसीलिए इसके यह मानी हैं कि आमदनी और खर्च के तमाम जरियों पर हिन्दुस्तान का पूरा कब्जा रहे और न दूसरे देश उसके काम में और न वह उनके काम में दस्तन्दाजी कर सके।"

हमने स्वराज्य का अर्थ 'नौकरशाही का रौब-दाब उठ जाना' आदि नहीं किया है। हमने तो यह लिखा था कि—'हमारी जड़ दृष्टि को आज चाहे दूसरे देशों की तरह स्वराज्य न दिखाई देता हो; पर अन्तर्दृष्टि ने स्वराज्य की आत्मा को उसी दिन प्रतिष्ठित देख लिया जिस दिन भारत के दिल से इस नौकरशाही का रौब-दाब उठ गया, आदि आगे लिखा है—'आज भारत में जो जीवन, जो जागृति, जो तप और त्याग की तैयारी दिखाई देती है, यही स्वराज्य का उषःकाल है, यही स्वतन्त्रता-मन्दिर का सुनाई देनेवाला घण्टानाद है।' इसीके ऊपर हमने लिखा है कि स्वराज्य तो भारत के पुरुषार्थ पर अवलम्बित था। जितना पराक्रम उसने दिखाया उतना स्वराज्य का तेज उसे दिखाई दिया।

३ प्रश्न—आप कहते हैं कि हमें आत्मिक विजय पाना है (जिसमें कि वस्तुतः दोनों पक्षों की विजय होती है) तो क्या इस आत्मिक विजय की प्राप्ति 'बिना प्रतिपक्षी के हार्दिक परिवर्तन हुए' भी सम्भव है? यदि सम्भव नहीं तो क्या इसका यह मतलब नहीं कि जब कभी हमें स्वराज्य मिलेगा, परिवर्तित हृदयवाली ब्रिटिश पार्लियामेंट के द्वारा ही मिलेगा? तो क्या महात्माजी के एक साल के वादे का यही मतलब था कि एक साल में हमारी तपस्या से अंगरेजी जनता का (जिसकी प्रतिनिधि ब्रिटिश पार्लियामेंट है) हृदय-परिवर्तन हो जायगा और वे हमें स्वराज्य दे देंगे। हमें इस बीच में केवल तपस्या करते हुए आत्म-शुद्धि करनी चाहिए?

उत्तर—८ जनवरी १९२२ के 'हिन्दी-नवजीवन' में महात्मा जी ने लिखा है—'भारत की कीर्ति इस बात में नहीं है कि वह अंगरेज भाइयों को अपने खून का प्यासा दुश्मन याने-जिसे कि मौका मिलते ही सबसे पहले हिन्दुस्तान से निकाल बाहर कर दें; बल्कि इस बात में है कि उन्हें उस साम्राज्य-पद से हटा कर जिसकी भित्ति पृथिवी के कमजोर और अनुन्नत राष्ट्रों तथा जातियों की आर्थिक लूट पर और इसलिए आखिर को पशुबल पर है, एक ऐसे नये कौटुम्बिक राष्ट्र-सघ में बदल दें जिसमें वे और हम बराबरी के मित्र और हिस्सेदार की हैसियत से रहें। तो अब ऐसे स्वराज्य का जिसमें अंगरेजों के साथ सम्बन्ध रहे, अर्थ क्या है? इसका निस्सन्देह यही अर्थ है कि भारत यदि चाहे तो स्वतन्त्रता की घोषणा कर सके। अतएव स्वराज्य कोई ब्रिटिश पार्लियामेंट से मिलने वाला मुफ्त का दान नहीं होगा। वह भारत के पूर्ण लोकमत की घोषणा होगी। हां, यह सच है कि वह पार्लियामेंट के एक कानून के द्वारा ही घोषित किया जायगा। लेकिन वह तो भारतीय प्रजा के प्रकाशित मत की बाजाब्ता स्वीकृति मात्र है। दक्षिण आफ्रिका की यूनियन के विषय में भी ऐसा ही हुआ था। हाउस आफ कामन्स के द्वारा यूनियन की योजना का एक अक्षर भी इधर से उधर न हो सका। हमारे मत की स्वीकृति तो सन्धि के रूप में होगी और ब्रिटेन उसका एक अंग होगा।' आगे वे लिखते हैं—'कोई एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र को स्वराज्य बतौर दान के नहीं दे सकता। यह तो ऐसी निधि है जो देश के अच्छे से अच्छे पुरुषों के रक्त से ही खरीदी जा सकती है और जब हम उसकी बहुत बड़ी कीमत दे चुकेंगे तभी वह हमारे लिए दामनग न रहेगा। ×× सच बात तो यह है कि स्वराज्य लगातार परिश्रम और कल्पनातीत कष्ट सहन के ही बल से प्राप्त होगा।' इन उद्गारों से 'हृदय के परिवर्तन' 'तपस्या' और 'आत्मिक विजय' का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। 'हार्दिक परिवर्तन' का अर्थ दया नहीं, 'तपस्या' का अर्थ जंगल में जाकर कंद, मूल, फल भक्षण करते रहना नहीं, 'आत्मिक विजय' का अर्थ पुरुषार्थ-हीनता नहीं। आत्मशुद्धि का अर्थ है—अंगरेजों के प्रति द्वेष-भाव को दूर करना, जिन दोषों के लिए हम उनसे लड़ रहे हैं उन दोषों को अपने हृदय से हटा देना। आत्मिक विजय का

अर्थ है पशुबल के बिना केवल आत्म-बलिदान, त्याग और कष्ट-सहन के द्वारा ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देना जिसमें एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र पर बल-पूर्वक राज्य करना असम्भव हो जाय। महात्माजी को देश से यह आशा मिली थी कि देश एक वर्ष में स्वराज्य का काफी मूल्य दे देगा।

४ प्रश्न—यदि स्वराज्य-प्राप्ति का यही क्रम है तो स्वाधीनता का कामी यदि सरकार खिलाफत और पंजाब के अन्यायों का भी निराकरण न करे तो हम अंगरेजी राज्य से अपना सर्वथा संबंध तोड अपना स्वाधीन स्वराज्य स्थापित करेंगे कुछ अर्थ नहीं रहता। क्या ये दोनों बातें स्पष्ट विरुद्ध नहीं हैं ?

उत्तर—स्वराज्य-प्राप्ति के क्रम के संबंध में आपका जो खयाल था वह इससे पहले के प्रश्न के उत्तर से बदल जाना चाहिए। अतएव यह प्रश्न निरर्थक हो जाता है।

५ प्रश्न—इसलिए इससे क्या यह ध्वनि नहीं निकलती कि आत्मिक विजय की कोई ऐसी भी विधि है जिससे कि अपने प्रतिपक्षी का बिना हृदय परिवर्तन किये भी हम स्वाधीनता या स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं ?

उत्तर—स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त करने का दुनिया में केवल एक ही उपाय है—युद्ध। वह दो प्रकार का होता है—शस्त्र-युद्ध और शान्ति-युद्ध। भारत ने शान्ति-युद्ध को, दूसरे शब्दों में शान्तिमय असहयोग को, स्वीकार किया है। यही एक उसका तरणोपाय है। शस्त्र-युद्ध उसके लिए असम्भव और अनावश्यक दोनों है।

(शेष अगले अंक में) हरिभाऊ उपाध्याय

शुद्ध खादी का विस्तृत प्रचार

एक भाई लिखते हैं:—

"संयुक्त प्रदेश के सब जिलों के हर एक छोटे-बडे गांव में पंजाबी भाई (अधिकतर सिक्ख लोग जिन्हें पूर्वी जिलों के गांवों के लोग "मोगल" कहते हैं) ऊनी और सूती कपडे बेंचते हैं। इनके कपडे अमीर और गरीब सभी भाई खरीदते हैं। इन पंजाबी भाइयों से कोई भी झोंपडी नहीं छूटती, जहांपर कि ये लोग कपडे बेच न आते हों। इन लोगों का इन गांवों में बडा मेलजोल और मानजान होती है। ये लोग अपने इन हल्कों मे जमीदारों जैसा प्रभाव रखते हैं। और इन लोगों का बडा रोब-दाब रहता है।

ये भाई लोग अधिकतर कानपुर से कपडे खरीदते है। कपडे विलायती और देशी मिलों के बने हुए होते हैं। यदि ये भाई कृपा कर इन कपडों के बजाय अब शुद्ध खादी के थान, धोती, (मर्दानी व जनानी) दुपट्टा, खोल, कुर्ता, अधबहियां, पायजामा, अंगोछी आदि ले आवें, तो उसीप्रकार उतने ही रुपयों की कपडों की बिक्री हो और उनको मुनाफा भी काफी हो। यदि उतना मुनाफा न हो सके, तो भी इन भाइयों को देश के उपकार के लिए कुछ कम मुनाफे पर ही सन्तोष रखना चाहिए। इससे शुद्ध खादी का बहुत विस्तृत और काफी प्रचार होगा। यदि वे लोग अधिक संख्या में खादी न इकट्ठा कर सकें, तो काँग्रेस कमेटियां पूरी व्यवस्था कर दें।

निवेदन—सब समाचार-पत्रों के सम्पादकों से निवेदन है कि वे इस सूचना को अपने पत्रमें उद्धृत करने की कृपा करें।"

रंगून के डॉक्टर प्राणजीवन मेहता ने ढाई लाख रुपये स्वराज्य कोष में गुजरात विद्यापीठ के लिए प्रदान किये हैं। क्या भारत के दूसरे धनिक भी डॉ. सा. का अनुकरण करेंगे?

'महात्माजी की लडकी!'

वृन्दावन से एक भाई लिखते हैं कि "यहांपर एक महिला आई है जो अपने को महात्माजी की लडकी बताती है। रुपये पैसे को छूती नहीं। पूरी और चाय भोजन में पाती है"। पहले भी एक महिला का अपने को महात्माजी की लडकी बता कर देश में उपदेश करते हुए घूमने के समाचार मिले थे। अतएव हम कह देना चाहते हैं कि यथार्थ में महात्माजी को कोई औरस पुत्री नहीं है। यों भारत की हरएक सुकन्या जिसकी श्रद्धा महात्माजी में हो अपने को महात्माजी की पुत्री मान सकती है।

छिपी हिंसा

यद्यपि अभी अहिंसा और स्वदेशी के बिलकुल साधारण और विशेष व्यवहार पर जोर दिया जा रहा है तथापि जनता में अब उन सिद्धान्तों का असर इतना गहरा पैठ गया है कि वह स्वयं विचार करने लग गई है और धीरे धीरे पूरे स्वदेशी तथा अहिंसा धर्म को समझने के मार्ग में आगे बढ रही है। एक भाई एक पत्र लिखकर इस बात पर दुःख प्रकाशित करते हैं कि आजकल हम पश्चिमी सभ्यता के मोह में फंसकर केवल अपने धर्म ही को नहीं बल्कि जीव-दया जैसे साधारण धर्म को भी किस तरह भूलते जा रहे हैं। चमडे की वस्तुयें पास रखना आजकल सभ्यता का चिन्ह समझा जा रहा है। जूते के अतिरिक्त कई ऐसी चमडे की चीजें हमारे व्यवहार में आ गई हैं कि जिनके न होने पर भी हमारा काम भली भांति चल सकता है। भारत में महज चमडे के लिए असंख्य पशुओं का वध होता है। और अगर कुछ विचार किया जाय तो उसका खास कारण चमडे की वस्तुओं के लिए हमारी बढती हुई रुचि ही है।" आगे चलकर वे महासभा के कार्यकर्ताओं का ध्यान इस और आकर्षित करते हुए कहते हैं कि 'चमडे की वस्तुओं के बहिष्कार की भी आज्ञा महासभा को कर देनी चाहिए।'

उन भाई की सूचना धर्म, नीति, जीव-दया और देशहित की दृष्टि से निःसन्देह फायदेमंद है। पर सवाल यह है कि आज हम अपनी नैया पर कितना बोझ डालें। इतना बोझ तो हरगिज न डालना चाहिए कि नाव के डूबने का अन्देशा हो जाय। पहले भारत को राजनैतिक अहिंसा और कपडे के बहिष्कार में ही सफल हो जाने दीजिए। पर हां, व्यक्तिगत धर्मपालन में यह आवश्यक बात नहीं है कि कोई महासभा की आज्ञा से अधिक काम करके न दिखावे। हर एक व्यक्ति को अपनी अपनी शक्ति, बुद्धि और पहुंच के अनुसार इन सिद्धान्तों के आचरण में महासभा की आज्ञाओं के आगे भी निकल जाने की पूरी स्वतंत्रता है।

आश्रम भजनावलि

महात्माजी के सत्याग्रहाश्रम में जो उत्तमोत्तम भजन प्रार्थना के समय नित्य गाये जाते हैं उनका संग्रह महात्माजी की जयन्ति के दिन प्रकाशित किया जायगा। पृष्ठ-संख्या कोई ३५० होगी। मूल्य लागत मात्र ॥।) । कमीशन नहीं। खादी की जिल्द पाकेट साइज। 'व्यवस्थापक सत्याग्रहाश्रम अथवा नवजीवन' अहमदाबाद के पते पर मिल सकती है।

कलकत्ता में एक निखिल भारत अनाथाश्रम है। देशबंधु चित्तरंजन दास उसके सभापति हैं। उसके अधिष्ठाता सूचित करते हैं कि इस आश्रम की आर्थिक अवस्था इन दिनों खराब है। भारत के उदार-हृदय पुत्र अपने अनाथ भाइयों की रक्षा के लिए सहायता निम्न-लिखित पते पर भेजें—

अधिष्ठाता निखिल भारतीय अनाथाश्रम,
५१ कालीघाट रोड, भवानीपुर, कलकत्ता

मनुष्यता और पशुता

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

हिन्दी नवजीवन

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष २] [अंक ६

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, आश्विन सुदी ४, संवत् १९७९
रविवार, सायंकाल, २४ सितम्बर १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरखीगरा की वाडी

टिप्पणियां

साम्राज्य-प्रदर्शिनी

अंगरेजी साम्राज्य सरकार ने आगामी १९२४ ईसवी में इंग्लैंड में एक साम्राज्य-प्रदर्शिनी करने का निश्चय किया है। साम्राज्य के दूसरे भागों के साथ साथ भारत को भी उसमें शरीक होने के लिए आज्ञा हुई है। भारत कमजोर भले ही हो; पर उसके पुत्रों में इतना तो स्वाभिमान जरूर है कि वे इस मान-भंग करने वाली आज्ञा के खिलाफ आवाज उठा कर अपने स्वाभिमान की रक्षा करें। आखिर साम्राज्य भारत के लिए है ही क्या और इस प्रदर्शिनी से वह भारत को क्या लाभ पहुंचाने का लालच दिखा रहा है? यही न कि दूसरे उपनिवेशों की दृष्टि में अपनी गिरी हालत लाकर अपने दुःखित हृदय को उनके उपहास से और भी दुखावे? या गोरे उपनिवेशों में जो कुछ थोडे बहुत भारतीय रहते हों उनको अधिक से अधिक सिविल स्टेट्स के टुकडे दिलाने के लिए मुंह बना कर भीख मांगे। भला खास प्रदर्शिनी से भी हमें क्या लाभ होगा? प्रदर्शिनी का मतलब ही क्या? यही न कि बताओ, भारत में और कौनसे ऐसे हुनर रह गये हैं जिनके लिए हम नई नई कलें बना कर तुम्हें कंगाल बनावें? क्या आपके देश के किसी कोने में अब भी ऐसा कुछ माल बचा है जिसे खींचकर हम विलायत ले जा सकें?

भारत! साम्राज्य-सरकार तेरे लिए पालक नहीं, घालक है। वह एक राक्षस के समान है जो बकासुर के जैसा धीरे धीरे नहीं पर तेरे पुत्रों को एकदम खाजाना चाहता है। क्या तू उस प्रदर्शिनी में शरीक होगा? देख, सीलोन-लंका ने तो उसे खुल्लमखुल्ला कह दिया कि मैं तेरे इस जाल में न आऊंगा—इस शिकारों के बाजार में बिकने न आऊंगा। क्या तुझमें यह शक्ति नहीं है? मैं बेबस हूं, यह दलील तो लचर है। तेरी इच्छा के खिलाफ क्या तुझसे कोई भी किसी काम को करा सकता है? कपट-पूर्वक सरकार भले ही यहां से चीजें खरीद कर ले जाय। राजा-महाराजाओं द्वारा भी वह कुछ कर सकती है और दुनिया को बता सकती है कि भारत भी प्रदर्शिनी में शरीक है। पर तू तो यह जाहिर कर दे कि मैं प्रदर्शिनी में भाग न लूंगा। महात्मा गांधी के जेल जाने के बाद तू प्रदर्शिनी में कौन मुंह ले कर जा सकता है?

फौजी सिक्खों में खलबली

'गुरु का बाग' में पुलिस ने जो आसुरी अंधाधुन्धी मचा रक्खी थी उसके फल-रूप उत्तेजना और अपमान की आग फौजी सिक्खों तक जा पहुंची है। पंजाब-सैनिक-संघ के सभापति सरदार अनूपसिंह ने, जो एक पेन्शनयाफ्ता रिसालदार हैं, पंजाब सरकार के नाम एक गम्भीर चेतावनी भेजी है। उसमें आप लिखते हैं:—

"मैं 'गुरुका बाग' में स्वयं गया था। वहां के अत्याचारों को देख कर मेरा दिल दहल उठा। मैंने एक घायल सिक्ख को पानी पिलाना चाहा, पर बीटी साहबने रोक दिया। मेरी समझ में तो यह अंगरेजी सल्तनत पर सबसे भारी धब्बा है। और यह तमाम सिक्ख-जाति में सरकार के प्रति घोर घृणा पैदा कर रहा है। पंजाब के सैनिक संघ ने जिसके १५०० सदस्य हैं और जिसका कि मैं सभापति हूं, मुझे यह बात आपकी नजर में लाने के लिए और यह भी साफ साफ कहने के लिए कह दिया है कि अगर अब इससे आगे ये पाशविक अत्याचार इसी प्रकार जारी रहे तो हम लोगों के लिए भी इसके सिवा दूसरी गति नहीं रह जायगी कि हम भी अपने उन भाइयों के साथ कंधे से कंधा लगा कर खडे हो जायं।

"कितने ही पेन्शनयाफ्ता सिक्ख सिपाही तो जत्थाओं में शामिल हो भी गये हैं। पर मैं आपको चेता देना चाहता हूं कि हम सब पेन्शनयाफ्ता अगर संगठन-पूर्वक इस धार्मिक युद्ध में शामिल हो जायंगे तो स्थिति और भी शोचनीय हो जायगी।

"मैं एक ऐसे सिक्ख कुल में पैदा हुआ हूं जो चार पुश्तों से सरकार की एकसा सेवा करता आ रहा है। और सरकार के साथ उसका संबंध भी उतना ही नजदीकी रहा है। तथापि मुझे अब यह कहते हुए असीम दुःख हो रहा है कि सरकार से अपना संबंध तोडने में उन सबसे पहला आदमी मैं ही हूंगा। × × × अपने धर्म-भाइयों पर जो जुल्म होता हुआ मैंने अपनी आंखों से देखा है उसका उदाहरण संसार में नहीं है। आप इसे हजारों सिक्ख सिपाहियों की आवाज समझें।

"मैं हृदय से आशा करता हूं कि सरकार इन अत्याचारों को एकदम बंद करके गुरुद्वारा के मामले का उचित निपटारा करने के उपायों की आयोजना करेगी।"

सैनिक-संघ ने यह दिखला दिया है कि भडैती सिपाहियों और सच्चे सिपाहियों में क्या अन्तर है। सच्चा सिपाही अपने धर्म और ईश्वर को सब से बडा मानता है। इसी प्रकार यह पत्र इस बात का भी सूचक है कि मौजूदा सरकार के प्रति सिपाहियों में भी अप्रीति किस प्रकार फैलती जा रही है और नौकरशाही ही अपनी मूर्खता से किस प्रकार उसे बढाती जा रही है।

स्वराज्य-साधना

कुछ ही दिन की बात है। आश्रम पर भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों से खादी का काम सीखने के लिए आये हुए कितने ही भाई एक मिल देखकर लौट रहे थे। रास्ते में उन्हें एक मैले की गाड़ी दिखाई दी। गाड़ी से बदबू फैल रही थी। उसे देखते ही कुछ विद्यार्थी नाक बंद करके भागने लगे। पर भंगी भी मनचला था। उसने उन्हें भागता देखकर कहा "लीजिए, स्वराज्य लेने वाले और इस कदर भड़कते हैं ?" उन्होंके पीछे के लोगोंने उसके ये शब्द सुने। उन्होंने यह भी देखा कि गाड़ी का पहिया धुरी से निकलना ही चाहता है और उसे बैठाने के लिए दो मेहतर बड़ी मिहनत के साथ यत्न कर रहे हैं। गाड़ी मैले से भरी हुई थी और काम दोनों के बूते के बाहर था। आखिर एक विद्यार्थी ने कहा "हां भाई, हम स्वराज्य तो जरूर लेना चाहते हैं। कहो, क्या हम तुम्हारी किसी तरह सहायता कर सकते हैं ? हम लोग तुम्हें जरूर मदद करना चाहते हैं।"

भंगी ने कहा, 'हां क्यों नहीं' ? बस इतना सुनने की देरी थी कि सब अपनी अपनी आस्तीन चढ़ा कर गाड़ी के पास गये। चाक बैठा दिया। इस कुतूहल को देखने के लिए कितने ही लोग जमा हो गये थे। कई तो इस 'महात्माजी की फौज' की तारीफ करते थे और कई कहते थे कि 'भंगी बड़ा चंडूल निकला! बेचारे सीधे-सादे लोगों को फजूल हलाकान किया।' पर उनकी तत्परता की तो सब ने तारीफ ही की।

जबतक असहयोगियों के दिल से नीचे और ऊंचे काम का मिथ्या अज्ञान नहीं निकल जाता तब तक देश उन्नत नहीं हो सकता। हम तो स्वराज्य के सैनिक हैं। स्वराज्य-साधना के लिए असत्य, अनीति और अधर्म को छोड़ कर जितनी बातें करनी पड़ें सब करने के लिए हमें तैय्यार रहना चाहिए। हाल ही में सूरत ने भी स्वराज्य-साधना का एक अच्छा नमूना पेश किया है। वहां शहर में बहुत गंदगी रहती है। सरकारी म्युनिसिपालिटी से उसको साफ करने का काम नहीं बन सका। आखिर सरकार द्वारा रद की गई पुरानी म्युनिसिपालिटी के असहयोगी सदस्यों ने उसे अपने हाथ में ले लिया। अब वे खुद शहरसफाई का काम स्वयंसेवकों की सहायता से कर रहे हैं। कितने ही वकील डाक्टर और उनके घर की स्त्रियां सड़क का कीचड़ बटोर कर टोकरियां ढोती हैं। इस हृदयस्पर्शी दृश्य को देख कर किसकी आंखों से अभिमान और प्रेम के आंसू न निकल पड़ें! यह है सच्ची सेवा, सच्चा असहयोग और सच्चा स्वावलम्बन! जिस देश के कुलीन कहे जाने वाले युवक-युवती और बड़े बूढ़े तक ऐसी उज्ज्वल सेवा का नमूना पेश करते हैं उसकी आजादी को कौन रोक सकता है? सरकार के आंखें हों तो देख ले कि प्रजा के दिल की सच्ची झलक किधर है।

दंगों से नसीहत

मुलतान और हबड़ा जिले के दंगों के बहुत-कुछ हाल आप मिल चुके हैं। वे हमारी कमजोरी और कायरता के नमूने हैं। यद्यपि उन दंगों का कारण कोई राजनैतिक नहीं था और उस हदतक हमारी कांग्रेस और खिलाफत-कमिटियों पर उसकी जिम्मेवारी नहीं आती है तथापि वे बिल्कुल दोष-मुक्त भी नहीं हो सकतीं। हम तो देश में स्वराज्य स्थापन करने जा रहे हैं। अतएव यह हमारा प्रधान धर्म है कि भिन्न भिन्न जातियों की एकता ऐसा संगठन-पूर्वक करें जिससे तीसरे शासक की जरूरत ही न रहे। भारत की एकता के शत्रु तो ऐसे दंगों को पैदा करने के मौके ढूंढते ही रहते हैं। इसलिए हमें समाज को उनसे बचाने के लिए अधिक संगठन से काम लेना चाहिए। ऐसे समय इन बातों पर खास तौर पर ध्यान रखना चाहिए। अफवाहों को कभी सच न मान लेना चाहिए। स्वयं यह पहले जानने की कोशिश करना चाहिए कि वे कहांतक सत्य हैं। वे सत्य हों या असत्य, जनता को एकदम पागल तो कभी न हो जाना चाहिए। कांग्रेस और खिलाफत कमिटियों के दफ्तर शहरों में तो हर बड़े रास्ते पर और हर मुहल्ले में रहना चाहिए। इतना न भी हो सके तो कम से कम ऐसे मौकों पर तो पहले ही से ऐसे स्थान मुकर्रर कर देना चाहिए जहांपर जनता झूठ-सच का पता बराबर पा सके। मेलों-दंगलों पर तो हमें अवश्य याद रखना चाहिए कि जब-तक भारत की तमाम जातियों में एकता स्थापित नहीं हो जाती, ऐसे मौके आते ही रहते हैं। अतएव उनमें शान्ति रखने के लिए संगठन पूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। आत्म-रक्षा के लिए जबतक हममें स्वयं बल नहीं आ जाता तबतक स्वराज्य असम्भव है। तबतक हरएक व्यक्ति को संकट के समय कायर बनकर अपनी रक्षा के लिए दूसरे का मुंह नहीं ताकना चाहिए। अपनी रक्षा स्वयं करते हुए वीर की तरह मरने की वृत्ति हमको अपने में जाग्रत कर लेनी चाहिए।

सावधान!

ऐसे मौकों पर बड़े अदूरदर्शी लोगों को जातीय दुर्भाव फैलाने का मौका मिल जाता है। जनता को उनसे सावधान रहना चाहिए। इन दंगों में कुछ पागल मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर जो अत्याचार हुए हैं उसके लिए तमाम मुसलमान-जाति को अपराधी बताना अनुचित है। उन अत्याचारों को सुनकर किसी भी सच्चे मुसलमान को अपने भाइयों के अपराध पर घोर दुःख हुए बिना न रहेगा। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं पर जो अत्याचार होते हैं उनके लिए केवल मुसलमान-भाई ही दोषी नहीं हैं। हिन्दू अपनी संस्कृति को उच्च समझते हैं। सदियों से हम मुसलमान-भाइयों के साथ में रहते हुए आ रहे हैं क्या उनको सुशिक्षित, धर्मी और मित्र पड़ोसी बनाने का हमने संगठित रूप से आजतक कुछ यत्न किया है? हिन्दुओं की संख्या भी अधिक है। पर अत्याचारों के शिकार अक्सर वे ही क्यों होते हैं? यह तो कभी नहीं कहा जा सकता कि हिन्दू शारीरिक बल में कम हैं। फिर वह कौनसी बात है जो उन्हें इतना गिराये हुए है। वह है उनका नैतिक पतन। उनको चाहिए कि वे अपने को नैतिक और शारीरिक दृष्टि से इतना उन्नत बना लें कि किसी को उनपर आक्रमण करने की जुर्रत ही न हो। मुसलमान भाइयों में हमें अपने नैतिक बल के द्वारा ऐसा भाव जाग्रत कर देना चाहिए जिससे वे स्वयं जान लें कि ऐसे कायर आक्रमण करना नीचता है, अपने को और अपनी जाति को गिराना है, इस्लाम का द्रोह करना है और अल्ला का गुनाह करना है। इसके विपरीत यदि रास्ता भूल कर मुसलमान संस्थायें मजहब के नाम पर मुसलमानों को हिन्दुओं के खिलाफ दबे-छिपे उभारने का यत्न करती रहेंगी और हिन्दू-संस्थायें हिन्दुओं को धर्म का नाम ले ले कर मुसलमानों के वैर का अपवित्र पाठ पढ़ाती रहेंगी तो हमें कहना होगा कि हम दोनों अनजान में देश को सर्वनाश की ओर ले जायेंगे। भारत-वासियों को ऐसी संस्थाओं से सावधान रहना चाहिए। भारत का भला इन दो महान् जातियों के मेल और पारस्परिक विश्वास पर ही अवलम्बित है। ऐसे अत्याचारों का शिकार होने से बचने का केवल एक ही उपाय है और वह है अत्याचारित के लिए आत्म-बल प्राप्त करना और दूसरे अत्याचारी के मनुष्यत्व को जाग्रत करना। हम इन मौकों पर हिन्दुओं को खास तौर पर सावधान कर देना चाहते हैं कि वे इन दंगों में हुए अत्याचारों के दुःख और रोष से पागल हो कर सारी मुसलमान-जाति को बदनाम करने का और परस्पर दुर्भाव फैलाने का प्रयत्न न करें। यह न तो हिन्दू सभ्यता, संस्कृति और धर्म के ही अनुकूल है और न इनसे हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म की रक्षा ही हो सकती है।

पं० कृष्णकान्तजी का प्रस्ताव

श्री कृष्णकान्तजी मालवीय ने भारत के नेताओं के नाम एक 'खुलापत्र' छपाया है। उसे आपने हमारे पास भी भेजने की कृपा की है। उसमें आप यह पूछते हैं कि असहयोग भारत को स्वतन्त्र करने का साधन है या संसार को एकदम नये सांचे में ढाल देने का यन्त्र ? पं० कृष्णकान्तजी राजनीति को धर्म से-उनके शब्दों में अध्यात्म और नीति से-अलहदा रखना चाहते हैं और दोनों को परस्पर विघातक मानते हैं। आपने 'एक वर्ष' में स्वराज्य पाने की एक विधि भी बताई है। और प्रस्ताव किया है कि इस समय संसार के प्रायः समस्त राष्ट्रों की इंग्लैंड के खिलाफ चित्तवृत्ति का लाभ उठाकर हमें तमाम अंगरेजी माल का बहिष्कार कर डालना चाहिए। बिना इस तरह दबाये इंग्लैंड की अक्ल ठिकाने आने की नहीं। आप यकीन दिलाते हैं कि यदि भारत के बड़े बड़े नेता विदेशों को जाकर एक ओर इस बहिष्कार को सफल बनाने का उद्योग करें और दूसरी ओर देश के लिए आवश्यक वस्तुएं दूसरे देशों से मंगवाने की तजवीज कर लें तो इंग्लैंड स्वराज्य देने पर मजबूर हो जाय। पं० कृष्णकान्तजी हिन्दी-संसार में काफी मशहूर हैं। कोई भी देश-सेवी आपकी सूचना पर विचार किये बिना नहीं रह सकता। हमारे ख्याल में अध्यात्म, या नीति या धर्म के नाम से या उनके राजनीति के साथ मेल से चौंकने की आवश्यकता नहीं। धर्म और राजनीति में विरोध नहीं है। राजधर्म धर्म का ही एक अंग है। धर्म आत्मविकास का साधन है। भारत का धर्म उसकी आत्मा को जाग्रत करना चाहता है, उसे पुरुषार्थी बनाना चाहता है। वह उसकी आत्मा का पतन या नाश कदापि नहीं चाहता। धर्म वीर है, सजीव है। बिना धर्म की राजनीति निष्प्राण है, निकम्मी है। राजनीति का अर्थ यदि छल-कपट ही हो तो उसे भारत का धर्म निर्बल और हीन राजनीति मानता है। फिर यदि भारत आज स्वाधीन होता, स्वराज्य-प्राप्त होता तो दूसरे प्रतिपक्षी राष्ट्र को वह केवल राजनीति के नाम पर चित कर सकता। क्योंकि स्वाधीन राष्ट्रों में जो राजनैतिक और राष्ट्रीय जागृति या चैतन्य होता है वही उसका मुकाबला करने के लिए काफी है। पर क्या भारत में अब भी इतना राष्ट्रीय चैतन्य है ? यहां तो आज भी कितने ही लोग विदेशी राज्य के साथ सहयोग करना अनिवार्य मानते हैं और कर रहे हैं ! स्वाधीन राष्ट्रों के लोग जहां प्रतिपक्षी का बराबर मुकाबला करते हैं तहां हम सहयोग में अपना गौरव मान रहे हैं और असहयोग से दूर रहना चाहते हैं। जबतक लोगों की यह मानसिक कायरता दूर नहीं हो जाती, जबतक उसमें राजनैतिक और राष्ट्रीय चैतन्य का पूरा उदय नहीं हो जाता तबतक उसके लिए राजनीति महज अर्थहीन है। गुलाम की राजनीति क्या होगी ? इस मानसिक मन्दता को दूर करने के लिए, लोगों की पौरुषहीन मनोवृत्ति को बदलने के लिए निर्बल राजनीति नहीं, वीर्यवान् धर्म ही सच्चा सहायक हो सकता है। राजनीति का महत्व राज्यसत्ता के पीछे है। राजसत्ता-हीन राजनीति पदच्युत राजा की तरह है। धर्म स्वतन्त्र है। धर्म में त्याग, बलिदान, कष्ट-सहन का बल है। धर्म के यहां धन और प्राणों का मोह नहीं है। धर्म के यहां देशभक्ति भी है और राजनीति भी है। देश के लिए, स्वराज्य के लिए मर मिटने की अद्भुत स्फूर्ति धर्म के पास है। अतएव यह स्पष्ट है कि वर्तमान अवस्था में भारत धर्म को धता बताकर अपना उद्धार नहीं कर सकता। यदि इसी मानसिक स्थित्यंतर का नाम संसार को नये सांचे में ढालना है तो बेशक असहयोग नया यंत्र है और भारत की उसमें ढले बिना गुजर नहीं।

अब रही बहिष्कार की बात। इंग्लैंड की हर चीज का बहिष्कार करने से अंगरेजी व्यापारियों को कुछ हानि हो सकती है। पर इतने ही से भारत इंग्लैंड के हाथ से स्वराज्य छीन सकेगा या नहीं—यह संदिग्ध है। पर इसके विपरीत दूसरे देशों का माल लेते रहने से भारत की आर्थिक कमजोरी ज्यों की त्यों बनी रहेगी—यह निर्विवाद है। वर्तमान स्वदेशी आन्दोलन का मूल उद्देश हमारी आर्थिक कमजोरी दूर करना है। यदि इससे दूसरों के असीम स्वार्थ को धक्का पहुंचता हो तो हम लाचार हैं। अपने बल को बढ़ाकर हम स्वाधीन हो सकते हैं, दूसरों को कमजोर बनाने का प्रयत्न करके नहीं। फिर दूसरे राष्ट्र इतने मूर्ख नहीं हैं जो कमजोर भारत का साथ देकर बलवान् इंग्लैंड की खुल्लमखुल्ला दुश्मनी मोल लें। इसके सिवा हमें यह न भूलना चाहिए कि वर्तमान धर्महीन राजनैतिक जगत में कमजोर को चूसने ही के लिए लोग कमजोर का साथ दिया करते हैं। फिर यह अव्यवहार्य भी है। इसके प्रत्येक प्रयोग में परावलम्बिता है। भारत-सरकार हमें बाहर न जाने दे तो नहीं जा सकते। विदेशों का माल नहीं लाने दे तो नहीं ला सकते। दूसरे देशों के माल से इंग्लैंड का माल बहुत सस्ता कर के यहां बेचा जा सकता है। और इसमें इंग्लैंड का द्वेष तो स्पष्ट ही है। द्वेष भारत की स्वतन्त्रता के लिए हानिकर ही नहीं, नाशकारी है। इसके विपरीत असहयोग का कार्यक्रम स्वावलम्बी और स्वतन्त्र है। हमारी ही कमजोरियां और कम तैयारी उसे भले ही अव्यवहार्य बना दें। अतएव हमें पण्डितजी के दोनों मत ग्राह्य नहीं मालूम होते। अन्त को हमें उनमें देश की हानि ही दिखाई देती है। भारत की वर्तमान दासता की दवा तो असहयोग ही है। उसकी सफलता में ही हमारी शक्ति खर्च होना श्रेयस्कर है।

स्वदेशी में धोखेबाजी

फर्रुखाबाद से एक भाई शिकायत करते हैं कि "आजकल मिलवाले बहुत धोखाबाजी करने लग गये हैं। थानों के ऊपर लिखते हैं ४० गज, पर नापने से उनमें कपड़ा कई बार ३७ या ३८ गज से अधिक नहीं निकलता। इसकी शिकायत भी उनसे कई बार की गई; पर वे कुछ ध्यान नहीं देते। अगर आप चाहते हैं कि स्वदेशी आन्दोलन की उन्नति हो तो मिलवालों को ऐसी बेईमानी से रोकिए।"

निस्सन्देह देश में जब खासकर आत्मशुद्धि और सचाई का आन्दोलन चल रहा है तब तो कमसे कम मिल-मालिकों को ऐसी असावधानी और असत्यता से अपनेको बचाना चाहिए। कम से कम ऐसी बातों की शिकायतें आने पर तो उनको रफा करना चाहिए। देश की स्वदेशी-भक्ति का उपयोग उनको अपनी नीच स्वार्थ-सिद्धि के लिए न करना चाहिए। यहां पर हम पत्र-प्रेषक तथा दूसरे भाइयों को सचेत कर देना चाहते हैं कि आजकल हाथ की कती और बुनी खादी ही शुद्ध स्वदेशी कपड़ा समझा जाता है। अतएव जो स्वदेशी का प्रचार चाहते हैं उन्हें हाथ कती-बुनी खादी पहनना और उसीका व्यवसाय करना चाहिए। वही भारत की गरीब जनता और देश का भला कर सकती है और करोड़ों रुपया विदेशी बनियों के घर जाने से बचा सकती है। भारत की मिलों के द्वारा मशीनें, सूत आदि में भी बहुतेरा रुपया विलायत को चला जाता है। अतएव मिल का कपड़ा शुद्ध स्वदेशी नहीं है।

आश्रम भजनावलि

जो लोग मंगवाना चाहते हैं उन्हें मूल्य ।।।) और डाकखर्च आदि ।) मिलाकर कुल १) मनीआर्डर द्वारा पेशगी भेजना चाहिए। २५ प्रतियां एक साथ मंगाने से डाकखर्च नहीं लिया जायगा। दाम पेशगी।

व्यवस्थापक हिन्दी नवजीवन

हिन्दी
नवजीवन

रविवार, आश्विन सुदी ४, सं. १९७९

मनुष्यता और पशुता

मनुष्य विकास-मार्ग में पशु से कई दरजे आगे बढ़ चुका है। पशु में भावना और तर्क-शक्ति की बहुत ही थोड़ी झलक पाई जाती है। पशु में प्रेम, रक्षा और दया के भाव हैं तो, परन्तु वे उनके आत्मजों तक, कुछ ही काल के लिए, मर्यादित हैं। मनुष्यों में बुद्धि और हृदय के जिन जिन गुणों का जैसे विवेक, सारासार-विचार, कर्तव्य-पालन-बुद्धि, क्षमा, उदारता, दया, प्रेम, तितिक्षा, संयम, शान्ति आदि का जितना विकास हुआ है उतना पशुओं में नहीं। इसीलिए मनुष्य पशु से श्रेष्ठ माना गया है। मनुष्य के उन्हीं भावों के बदौलत आज हम मनुष्य के यहां कुटुम्ब, समाज, राज्य; व्यवस्था, संगठन, सहयोग आदि पाते हैं। मनुष्य चाहे कितना ही गिर जाय, वह पशु-कोटि में कदापि नहीं पहुंच सकता। हां, यह सच है कि कभी कभी कुछ कुछ बातों में जैसे दुर्व्यसन व्यभिचार, चोरी और हिंसाकाण्ड में मनुष्य पशु को भी शर्मिन्दा कर देता है: पर फिर भी वह पशु नहीं हो सकता। क्योंकि उसमें भूलों से, सबक सीखने की, पापों का प्रायश्चित्त करने की, अपनी आत्मा का सुधार करने की प्रवृत्ति या शक्ति होती है, जो पशु में नहीं पाई जाती। इस अन्तर को न तो हम भुला सकते हैं न इसके महत्व की उपेक्षा की जा सकती है। वर्तमान असहयोग-आन्दोलन में इस भेद की स्वीकृति पर ही, उसकी श्रद्धा पर ही, इसकी विजय का खास तौर पर दारोमदार है।

फिर भी कुछ लोग बराबर इस मत का प्रतिपादन करते आ रहे हैं कि अहिंसा मनुष्य के स्वभाव के विपरीत है। स्वयं कष्ट सहकर दूसरे के मनुष्यत्व को जाग्रत करना आत्मघात है। इस पद्धति से हम स्वयं अपनी ही हानि करते हैं और प्रतिपक्षी को अपनी सज्जनता से बेजा लाभ उठाने का मौका देते हैं। वे कहते हैं कि कष्ट-सहन और आत्म-बलिदान की इस विधि से सरकार पर कुछ भी दबाव नहीं पड़ रहा है; उल्टा हम अपने कितने ही कार्यकर्ताओं की सहायता से वंचित हो गये। चतुराई और बुद्धिमानी तो इस बात में है कि शत्रु का अधिक से अधिक नुकसान हो और हमारा कम से कम। शत्रु को और उसके सैनिकों को कैद करना तो एक ओर रहा-यहां तो उलटे हमारे ही सैनिक और सेनापति सबसे पहले जेल जा बैठे और शत्रु तो अपने घर में उसी तरह सुरक्षित है, नहीं अधिक बलवान् हो गया है। यह संसार के आजतक के अनुभव के खिलाफ है। इतना ही नहीं, दश से इतने कष्ट-सहन और आत्मोत्सर्ग की आशा और आग्रह करना कि जिससे वह सरकार अपनी कुचाल छोड़कर सीधी राह पर आ जाय, मनुष्य के स्वभाव-धर्म के विरुद्ध है। सरकार तो एक यन्त्र है। यन्त्र के कहीं आत्मा होती है? इस सरकार से अपने पापों के प्रायश्चित्त या आत्मा के सुधार की आशा करना पक्की वेश्या से पतिव्रता होने की आशा करना है।

इन विचारों से कोई भी सच्चा असहयोगी सहमत नहीं हो सकता। हां ऐसे उथले विचार रखनेवालों की शोचनीय अवस्था पर सहानुभूति अवश्य हो सकती है। इसमें पहली भूल जो वे लोग करते हैं वह यह कि वे पशु और मनुष्य के पूर्वोक्त अन्तर को भुला देते हैं। दूसरे को पशु मानना अर्थात् पशु की तरह उसे आत्म-सुधार-शक्ति से हीन मानना, मनुष्य-जाति के प्रति अक्षम्य अपराध करना है। यदि हम स्वयं अपनी भूलों का सुधार करते हैं, अपने पापों पर पश्चात्ताप करते हैं, तो हम यह मान ही नहीं सकते कि संसार के किसी भी मनुष्य में यह शक्ति नहीं है—या नष्ट हो गई है। हां, एक समय ऐसा आता है जब पापी मनुष्य की यह शक्ति उसके पाप के अमित बोझ से इतनी दब जाती है कि उसका रहना न रहना बराबर हो जाता है; पर वह अवस्था उसके अन्त की ही अवस्था है। कोई जल्दी संभल जाते हैं, कोई देर से सँभलते हैं। यह तो संस्कारों पर अवलम्बित है। और जो नहीं सँभलते हैं वे अपने आप नष्ट हो जाते हैं। यह प्रकृति का सिद्ध नियम है।

यदि आज हमारे इतने आत्मोत्सर्ग और कष्ट-सहन से अंगरेजी सरकार की मनुष्यता जाग्रत नहीं दिखाई देती है तो हमें हताश होने या धीरज छोड़ देने की जरा भी जरूरत नहीं है। सरकार चाहे एक कल-रूप हो, पर उसके विधाता तो मनुष्य ही हैं और विधाता अपनी सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, लय, परिवर्तन सब की शक्ति रखता है। यन्त्र से उसका विधाता हर हालत में श्रेष्ठ और उच्च होता है। हमारी तो यह धारणा है कि हमारे २५ हजार भाइयों और नेताओं के और खास कर महात्माजी के शुद्ध से शुद्ध बलिदान को यह सरकार कदापि हजम नहीं कर सकती। यदि न कर सकी तो आत्म-सुधार के बिना अर्थात् पाप-पूर्ण साम्राज्य-पद से उतर कर श्रेयस्कर कौटुंबिक राष्ट्र-संघ के रूप में परिणत हुए बिना, उसकी दूसरी गति नहीं। यदि कर सकी तो यह उसके शीघ्र आत्म-नाश की तैयारी होगी। मानस-शास्त्र और नीति-शास्त्र के ये नियम गलत नहीं हो सकते। इसके फलस्वरूप ऐसा संक्षोभ और आन्दोलन उठेगा कि ब्रिटिश साम्राज्य थर्रा उठेगा और उसके वर्तमान पृष्ठ-पोषक ईश्वर के इजलास में मनुष्य-जाति को पद-दलित करने और उसका रक्त चूसने के अपराध में कटघरे में खड़े दिखाई देंगे।

दूसरी भूल वे यह करते हैं कि वे शस्त्र-युद्ध और शान्ति-युद्ध दोनों के सिद्धान्तों और नियमों की खिचड़ी कर देते हैं। सिद्धान्ततः शस्त्रयुद्ध को हम मनुष्योचित युद्ध नहीं मानते। मनुष्य को पशु-बल धारण करते हुए या उसका उपयोग करते हुए देखकर मनुष्यता की दृष्टि में हमारी गर्दन झुक जाती है। अपने स्वार्थ के लिए एक दूसरे का खून करना, एक दूसरे पर अत्याचार और आक्रमण करना बुद्धि और भावना वाले मनुष्य के कानून में जायज नहीं माना जा सकता। हां, सत्य और धर्म-मूलक स्वार्थ की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है। पर वह मनुष्य रह कर ही उसकी रक्षा या प्राप्ति कर सकता है। जब एक ओर स्वार्थ की रक्षा करनी है और दूसरी ओर पशुता अंगीकार करनी पड़ती है, ऐसी अवस्था में सच्चा वीर अपने प्राण रहने तक मनुष्योचित शान्ति के साथ उसकी रक्षा करेगा-उसके लिए अपने प्राण भी गवां देगा, पर पशुता को कभी स्वीकार न करेगा-कभी अपने सामनेवाले कमजोर और पतित भाई पर हाथ उठाकर अपनी निर्बलता का परिचय न देगा। शस्त्र-युद्ध अथवा कठोर सत्य कहें तो पशु-बल के युद्ध में शत्रु को अधिक से अधिक हानि और अपने को कम से कम हानि पहुंचाना वीरता का और खुद बचे रहकर शत्रु को कैद कर लेना बुद्धिमानी का चिह्न समझा जाता हो; परन्तु शान्ति-युद्ध में ऐसा नहीं होता। शस्त्र-युद्ध शत्रु के शरीर पर अधिकार करता है; पर शान्ति-युद्ध प्रतिपक्षी के मन और हृदय पर कब्जा करना चाहता है। और यह स्वयं कष्ट सह कर ही, आत्म-बलिदान कर के ही, किया जा सकता है। शस्त्र-युद्ध वाले अपनेको परस्पर शत्रु मानते हैं।

अतएव वे परस्पर आक्रमण, रक्तपात, को जायज मानते हैं: पर शान्ति-युद्ध वाले अपने प्रतिपक्षी को भूला-भटका मनुष्य-अपना ही एक भाई मानते हैं। इसलिए वे स्वयं कष्ट उठा कर अपना और उसका दोनों का हित करते हैं। जो लोग मनुष्य को मनुष्य मानते हैं, अपनी ही तरह दूसरे को भी भूल और पाप कर सकने वाला और आत्म-सुधार-क्षम मानते हैं वे शान्ति-युद्ध को ही मनुष्योचित युद्ध मान सकते हैं। भारत ने स्वराज्य, खिलाफत और पंजाब के इस महान् प्रश्न को हल करने के लिए शान्ति-युद्ध को अपना कर सचमुच अपने उन्नत मनुष्यत्व और परिष्कृत वीरता का परिचय संसार को दिया है और एक दिन आवेगा जब इस देश के लिए संसार को उसके चरणों पर सिर झुकाना पड़ेगा। मनुष्य-जाति के इतिहास में सामूहिक पशुता के ऊपर सामुदायिक मनुष्यता की विजय की यह पहली तैयारी है। परमेश्वर हमारे पशु-बल और पशु-भाव को दिन-दिन क्षीण करें और हमें मनुष्य के सच्चे बल और भावों को पहचानने और अपनाने में अधिकाधिक अग्रसर करें जिससे अकेला भारत ही नहीं, सारी मनुष्य-जाति पशुता की अंधेरी खाई से निकल कर मनुष्यता के राज-मार्ग पर आ जाय और विकास-कक्षा में अपने मनुष्य नाम को सार्थक करे।

हरिभाऊ उपाध्याय

शौक और सेवा

शौक और सेवा में जमीन-आस्मान का अन्तर है। शौक का सम्बन्ध व्यक्ति की अपनी रुचि से है और सेवा का सम्बन्ध समाज और देश की आवश्यकता से है। मनुष्य की रुचि नदी-प्रवाह के नीचे बहनेवाली रेती की तरह बदलती रहती है। इसलिए शौक का भी रूपान्तर होता रहता है। आज एक बात करने की उमंग होती है, कल दूसरी बात करने की। उसके मूल में रुचि के सिवा कोई तत्व नहीं होता। समाज या देश की आवश्यकता निश्चित होती है। जबतक उसकी पूर्ति नहीं हो जाती तबतक हमें उस बात में समाज या देश की सेवा करना लाजिमी है। शौक का अन्त अपनी ही रुचि की पूर्ति और उससे होने वाले क्षणिक सन्तोष में या असफलता की अवस्था में, चित्त क्षोभ और दुःख में होता है। पर सेवा का अन्त सर्वदा सुख-सन्तोष-दायी होता है। सेवा निष्काम कर्म है। निष्काम कर्म करनेवाला शोक-हर्ष के द्वंद्व से परे रहता है। शौक व्यक्तिगत भावना है सेवा समाजगत। शौक से जो सेवा की जाती है वह शौक पूरा होते ही बन्द हो जाती है। सेवा के भाव से जो सेवा की जाती है वह जबतक आवश्यकता बाकी है तबतक जारी रहती है। शौक अपने लिए है, सेवा समाज के लिए है।

हर समाज और देश में दो तरह के देशभक्त हुआ करते हैं-एक को हम शौकीन देशभक्त और दूसरे को सेवक देशभक्त कह सकते हैं। शौकीन देशभक्त अक्सर यह उज्र किया करते हैं—'साहब, यह काम हमसे न हो सकेगा। इसमें तो ये ये झंझटें हैं। यह हमारी लगन के खिलाफ है।' सेवक देशभक्त तो जिस समय देश की जो आवश्यकता होती है उसीको पूरा करने में अपना तन, मन, धन लगा देता है। वह विचार करता है, मैं अपनी रुचि को देखूं या देश की आवश्यकता को। देश की जरूरत ही उसकी रुचि होती है। शौकीन देशभक्त जनता के सामने बुद्धि-भेद का उदाहरण पेश करता है, सेवक देशभक्त अपनी एकनिष्ठ सेवा के द्वारा एकता के भाव हृदय में अंकित करता है। वीर मावले जैसे एकनिष्ठ देश-भक्त हों तो महाराज शिवाजी स्वराज्य की स्थापना करते हैं, छोटे प्रान्त को महाराष्ट्र बना देते हैं; परन्तु यदि रूसी सिपाहियों की तरह शौकीन देशभक्त हों तो पोर्ट आर्थर जापान के कब्जे में चला आता है।

असहयोग-आन्दोलन की प्रतिष्ठा और विजय, प्रत्येक युद्ध की तरह, सेवक देशभक्तों पर ही अवलम्बित है। इनकी संख्या जितनी ही अधिक होगी उतनी ही शीघ्र विजय-प्राप्ति सम्भवनीय है। देश के सामने इस समय जो कार्यक्रम है वह देश की अनिवार्य आवश्यकता है। उसके बिना देश स्वराज्य-मार्ग में एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सकता। कौन कह सकता है, देश को महासभा के सदस्यों की आवश्यकता नहीं है? तिलक-स्वराज्य-कोष की जरूरत देश को नहीं है? खादी तो आन्दोलन का प्राण ही है। शान्ति उसकी आत्मा और एकता जीवन-शक्ति है। इनकी आवश्यकता स्वीकार करते हुए भी यदि हम अपनी रुचि को क्षीण कर इनकी पूर्ति के उद्योग में अपना सर्वस्व नहीं लगा सकते तो फिर हममें और शौकीन देशभक्त में क्या अन्तर रह गया? शौकीन देशभक्तों से तो किराये के देशभक्त अच्छे! पुरस्कार, कीर्ति या स्वामि-भक्ति आदि के ख्याल से तो वे कमसे कम देश की आज्ञाओं का पालन करते हैं। शौकीन देश-भक्त तो खुद अपने ही बनाये नियमों और प्रस्तावों के अनुसार चलने से इनकार कर देता है। शौकीन देशभक्तों की नीति बिना पेंदी के लोटे की तरह होती है। शौकीन देशभक्त यदि धनी हुआ तो आज देश के लिए कुछ धन दे देगा-कल इनकार कर देगा। यदि स्वयंसेवक हुआ तो जबतक दिल लगा सेवा की, जब जी उचट गया, बिल्ला-पट्टा सौंप अलहदा हुए। यदि कार्य-कर्ता है तो जबतक सनसनी-भरी बातें थीं, जयजयकार था, व्याख्यानों की झड़ी थी, इशारे से काम बनता था, काम करते रहे: जब तन तोड़ कर काम करने का अवसर आया, बहाव धीमा कर दिया गया, कौशल, परिश्रम, धीरज, तितिक्षा की परीक्षा का समय आया-किनाराकशी कर गये। तरह तरह के उज्र और बहाने पेश करने लगे। पर जो सेवक देशभक्त हैं वे उसी तरह शान्त, गम्भीर नदी-प्रवाह की तरह, आज भी काम कर रहे हैं। न असफलता की आशंका उन्हें सताती है, न कार्यक्रम की अव्यवहार्यता उनके रास्ते में बाधारूप है, न नेताओं का कारावास उनके लिए अनुत्साह का कारण है और न भावी विजय के हर्ष से वे उन्मत्त ही हैं। वे अपने निश्चय, संयम, धैर्य और सहनशीलता के बल पर स्वराज्य की किरणें आगे आती हुई देखते हैं और बादलों की छाया को देख कर डगमगाते नहीं। वे जानते है कि युद्ध के समय सेना को केवल शत्रु की सेना पर हमला ही नहीं करना पड़ता, केवल (अगर शस्त्रयुद्ध हो तो) तोपों, गोलियों, और संगीनों की मार ही नहीं सहनी पड़ती; बल्कि घायलों की सेवा, मृतकों का अग्निसंस्कार, भी करना पड़ता है। मौका पड़ने पर खाइयां खोदनी पड़ती है, रेल और सड़क तैयार करनी पड़ती है, रसद पहुंचानी पड़ती है। वर्दी तैयार करनी पड़ती है, कवायत करनी और सीखनी पड़ती है। और बिना चू-चपड़ किये सेनापति की आज्ञा का पालन भी करना पड़ता है। केवल इसी शर्त पर विजय की आशा हो सकती है। हरएक सैनिक अपना तन, मन, धन सेवा के लिए समझता है। शौकीन सैनिकों के लिए वहां जगह नहीं रहती। युद्ध-क्षेत्र न तो चर्चा-समिति है और न फूलों की सेज है। वह तो कार्य-क्षेत्र है, आत्मोत्सर्गका क्षेत्र है। उस क्षेत्र में विचार और विधान का कार्य सेनापतियों के सिपुर्द रहता है और सैनिक-सच्चे सैनिक तो हाथ का काम खतम करके नया हुक्म पाने के लिए उत्सुक रहते हैं।

जबतक इस शान्तिमय संग्राम के सब सैनिक **शौकीन** नहीं, पर सच्चे सेवक देशभक्त नहीं होते तबतक इस बलिष्ठ और सुसंगठित नौकरशाही को मैदान में चित कर देना आसान नहीं है। याद रखना चाहिए कि सौ शौकीन देशभक्तों की अपेक्षा एक सच्चा सेवक देशभक्त कहीं अधिक उपयोगी होता है।

हरिभाऊ उपाध्याय

कुछ प्रश्नोत्तर

(२)

६ प्रश्न—यदि कोई ऐसी विधि है तो क्या इस समय हमें उसका तुरन्त प्रयोग न करना चाहिए? क्या ब्रिटिश पार्लियामेंट और जनता के हृदय पलटे या पलटते हुए दिखाई दे रहे हैं? वे हमें शीघ्र स्वराज्य दे देंगे? अभी हाल के प्रधान मन्त्री के भाषण, 'मार्निंग पोस्ट' की लार्ड रीडिंग की टिप्पणी आदि से क्या सिद्ध होता है? ऐसी हालत में शीघ्र आत्मिक विजय पाने की विधि होते हुए भी उसका प्रयोग क्यों न करें, यदि हमें स्वराज्य पाने की उतनी ही जल्दी है जितनी कि महात्मा जी प्रकट करते हैं?

उत्तर—शान्तिमय असहयोग अर्थात् कष्ट-सहन और आत्म-बलिदान तथा स्वदेशी से बढ़ कर दूसरी कोई विधि हमें नहीं दिखाई देती। इसीकी परिणति सविनय भंग है। कुछ लोग वैध आन्दोलन अथवा पार्लमेंटरी पद्धति और कुछ लोग गुप्त षड्यन्त्र को स्वराज्य या स्वतन्त्रता पाने का साधन मानते हैं; पर ये दोनों पथ मनुष्य को स्वराज्य के अयोग्य बना देते हैं, फिर-स्वराज्य पाना तो दूर की बात है। हां, जनता के हृदय में जरूर परिवर्तन होता हुआ दिखाई देता है। लोग पहले से अधिक कष्ट-सहन, आत्म-बलिदान, अहिंसा का पालन करने लगे हैं। द्वेष-भाव भी कम हुआ है पर उस मात्रा में कम नहीं हुआ दिखाई देता। जनता के इस हृदय-परिवर्तन का असर ब्रिटिश पार्लियामेंट पर हुए बिना रही नहीं सकता। यदि आज ब्रिटिश पार्लियामेंट पर यह असर हमारी धारणा के अनुकूल प्रत्यक्ष न दिखाई देता हो तो इसका कारण हमारी ही त्रुटियां, हमारी ही कम तैयारी है। यदि कोई और अच्छी विधि हो तो आप उसे जनता के सामने रख सकते हैं। शान्तिमय असहयोग जिसका अन्तिम रूप सविनय भंग है, महात्मा जी के कोई २५ वर्ष के सतत चिन्तन-मनन, अनुभव का फल है और देश ने उसको जिस सरगर्मी के साथ अपनाया है यह इस बात का प्रमाण है कि पिछले सब उपायों की अपेक्षा यह देश के स्वभाव, आवश्यकता और परम्परा के अनुकूल है। स्वराज्य दिया नहीं जाता, लिया जाता है। हम स्वराज्य मांग नहीं रहे हैं, स्थापित कर रहे हैं।

७ प्रश्न—और यदि कोई ऐसी विधि नहीं है, अर्थात् हमें उसी क्रम से पार्लियामेन्ट के हृदय को बदलने पर ही स्वराज्य मिलेगा तो हम राष्ट्रीय दलवालों और नरम दलवालों में क्या खास भेद रह गया?

उत्तर—हमारी आत्मशुद्धि और आत्मत्याग का असर पार्लियामेन्ट पर पड़े बिना नहीं रह सकता। हम मानते हैं कि पार्लियामेन्ट के कर्ता-धर्ता मनुष्य हैं, पशु नहीं। यद्यपि स्वार्थ और सत्ता के नशे ने उन्हें पशु-बल का प्रेमी बना रक्खा है तथापि अपनी भूल को समझने और अपने पापों का प्रायश्चित्त करने की क्षमता उनमें है। हमारी समझ में हमारी आत्मशुद्धि और उनके हृदय का परिवर्तन ये दो चीजें नहीं हैं। एक ही शक्ति के दो भिन्न प्रभाव हैं। नरम दल के लोग सरकार से मिलजुल कर, मिन्नत-खुशामद कर के, स्वराज्य मांगना चाहते हैं। राष्ट्रीय दल के लोगों से यदि आपका अभिप्राय आज के गरम दल से है तो वे कौन्सिलों में सरकार का विरोध कर के स्वराज्य लेना चाहते हैं। दोनों वैध आन्दोलन के अन्तर्गत हैं। दोनों सहयोग हैं। यदि आपका अभिप्राय असहयोग-वादियों से है तो वे अपने पुरुषार्थ, स्वावलम्बन और अपने संगठन के बल पर स्वराज्य स्थापित करना चाहते हैं। जबतक सरकार को अपने कु-कृत्यों का पश्चात्ताप न हो वे उससे अपना सारा सहयोग धीरे धीरे हटा लेना चाहते हैं और अन्त को, यदि आवश्यकता हो, तो उसके समस्त अनीति-मूलक कानूनों का सविनय निरादर करना चाहते हैं।

८ प्रश्न—क्या आपकी समझ में दलितों का उद्धार, राष्ट्रीय पंचायतें और विद्यालय चलाना आदि विधायक कार्यों में पूर्ण सफलता हमें कुछ काल में (दो तीन वर्षों में भी) संभव है या इस नौकर-शाही के नीचे रहते हुए कभी सम्भव है? और क्या इन बातों में पूर्ण सफलता बिना पाये भी स्वराज्य होना सम्भव है? यदि ये दोनों बातें नहीं हैं तो क्या हमें स्वराज्य कई सदियों में मिलेगा या मिलेगा ही नहीं? दस वर्ष में तो नरम दलवाले भी स्वराज्य पाने की आशा करते हैं।

उत्तर—विधायक कार्यों की सफलता कार्यकर्ताओं की योग्यता, उत्साह और परिश्रम पर अवलम्बित है। महात्माजी का अनुभव यह है कि अंगरेजी शिक्षा, पश्चिमी संस्कृति का रंग जिन पर गहरा चढ़ गया है अथवा नौकरशाही के संसर्ग से उसके दुर्गुणों का सिक्का जिनपर लग गया है उन लोगों को छोड़कर शेष सब लोग विधायक कार्यों के लिए प्रायः तैयार हैं। उनमें उनकी अनुकूलता के बीज मौजूद हैं। कार्यकर्ता यदि ध्यान के साथ उसका रहस्य समझकर बुद्धि-भेद न करते हुए उस बीज को पल्लवित करने का प्रयत्न करें तो बहुत शीघ्र सफलता मिल सकती है। कार्यकर्ता यदि आत्म-विश्वासी, दृढ़ निश्चयी, और पुरुषार्थी हों तो नौकरशाही की कुटिलता बाधक होने के बजाय हमारे कार्यों में साधक ही होगी। जबतक हम नौकरशाही की सहायता से स्वराज्य पाने की भ्रम आशा भी रखते रहेंगे तबतक हमें उसके रहते हुए विधायक कार्य की सफलता असम्भव या कठिन मालूम होती रहेगी। नौकरशाही का सच्चा बल प्रजा का सहयोग है। यदि प्रजा के हृदय में हमारे लिए स्थान है तो नौकरशाही का पशुबल बेकार है। यदि विधायक कार्यक्रम में हमें पूर्ण सफलता मिल गई तो वही स्वराज्य है। जितनी सफलता मिलेगी उतने ही अंश में हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ समझिए। विधायक कार्यक्रम स्वराज्य का साधन भी है और स्वराज्य भी है। उसकी पूर्ति के साथ ही साथ यदि नौकरशाही की नाड़ी ढीली पड़ती गई तो ठीक ही, नहीं तो सविनय भंग रूपी अमोघ शस्त्र हमारे पास रही है। उस शस्त्र के प्रयोग के योग्य परिस्थिति भी विधायक कार्यक्रम की पूर्ति से ही आ सकती है। हम फिर कहते हैं कि स्वराज्य हमारे पुरुषार्थ पर अवलम्बित है। यदि हम कोरी बातें बनाते रहें और यह आशा करते रहें कि हमारे नेता स्वराज्य लाकर दे देंगे तो सदियों तो ठीक, युगों में स्वराज्य मिलने वाला नहीं। नरम दलवाले जिस स्वराज्य की आशा दश वर्षों में कर रहे हैं वह अगर कभी हुआ भी तो अंगरेजी स्वराज्य होगा, हिन्दु-स्तानी नहीं। आज प्रधानतः अंगरेजी नौकरशाही हमें चूस रही है। दस वर्ष बाद देशी नौकरशाही चूसेगी। उनके स्वराज्य में नौकरशाही से और उसके अत्याचारों से हमारा पिंड नहीं छूट सकता।

९ प्रश्न—क्या आपकी समझ में अब (अब कि एक साल के स्थान पर दो साल यत्न करते हुए हो गये हैं) देश स्वराज्य के लिए तैयार हो गया है या नहीं? यदि अब भी तैयार नहीं है तो आपकी समझ में कभी और कितने समय में तैयार होने की आशा है? यदि अभी अधिक समय अर्थात् बरसों लगने हैं तो क्या महात्माजी को धोखा हुआ कि उन्होंने समझा कि हम एक वर्ष में स्वराज्य ले लेंगे? अथवा उनका ऐसा कहने से (कि हम एक साल में स्वराज्य ले लेंगे) मतलब ही कुछ और था?

उत्तर—जिस हद तक काम हुआ है उस हद तक स्वराज्य का तेज लोगों ने देखा है। कोई भी देश हमेशा स्वराज्य के लिए तैयार रहता है। पर गया हुआ स्वराज्य बिना कीमत चुकाये नहीं मिलता। महात्माजी को देश से आशा मिली थी कि वह एक वर्ष में पूरी कीमत चुका देगा। उसमें कीमत की शर्तों में

भूलें कर दीं। उनके फलस्वरूप स्वराज्य भी दूर चला गया। परिस्थिति बदलने से अब शर्तें भी बदल गईं। महात्माजी वही बात जबान से कहते हैं जो उनके दिल में होती है। जिसने स्वराज्य को पहचान लिया है और उसका मूल्य देने को तैयार है, स्वराज्य उसके सामने खडा है; जो स्वराज्य को मांगना चाहता है, या छीन लेना चाहता है, या उसके लिए दूसरों का मुंह ताकता है, उसके लिए स्वराज्य बरसों की बात है।

१० प्रश्न—क्या (अहिंसात्मक) असहयोग (जो कि हडताल का एक सर्वोत्तम प्रकार है) के द्वारा इस नौकरशाही को बेकार करके विजय पाने का अभिप्राय महात्माजी का था? तब हमने असहयोग कितना किया? प्रति सैकडा कितने लोगों ने उपाधियां, नौकरियां, वकालत छोडीं? कितने सरकारी विद्यालय छात्रों के अभाव से टूट गये? क्या किसी जिले या तहसील की भी कोई एक भी अदालत असहयोग के कारण बेकार हुई? या किसी स्थान का कोई एक छोटे से छोटा महकमा भी नौकरियां छोडने से बन्द हो गया? अथवा हमें वह अभीष्ट ही नहीं था—हम असहयोग के द्वारा इस शासन प्रणाली का नाश करना नहीं चाहते थे (हैं)?

उत्तर—यह खयाल गलत है कि अहिंसात्मक असहयोग हडताल का एक सर्वोत्तम प्रकार है। संघवादियों की हडतालें पशु-बल का एक रूप हैं। क्योंकि उसमें दबाव और भय है। असहयोग तो पशु-बल के खिलाफ लड रहा है। उसमें दबाव और भय के लिए स्थान नहीं। असहयोग इस सरकार को सुधारने या मिटाने के लिए शुरू किया गया है। इसका अर्थ यह हरगिज नहीं है कि सरकार को डराया, धमकाया या हैरान किया जाय। इसका अर्थ तो यह है कि या तो उसके हिमायतियों की बुद्धि ठिकाने आ जाय या वे उससे दूर हो जायं, खुद उन्हींके हृदयों में सच्ची मनुष्यता जाग्रत हो जाय। इस शान्तिमय युद्ध में हम मनोबल, नीतिबल, या आत्मबल का प्रयोग कर रहे हैं। इसका प्रभाव प्रधानतः प्रतिपक्षी के मन, नीति या आत्मा पर होता है। यह प्रभाव शारीरिक क्रियाओं के द्वारा सहसा नहीं दिखाई देता। परिपक्व हो जाने के बाद ही सर्वसाधारण को दिखाई दे सकता है। इसका जो असर भारतीय जनता के मन पर हुआ है वह तो स्पष्ट ही है। आज सरकारी अदालतों, पदवियों, स्कूलों आदि का मान लोगों की दृष्टि में गिर गया है। बिना लज्जित हुए, अपनी कमजोरी कुबूल किये, अधिकांश लोग वहां नहीं जाते। नौकरशाही की अस्थिर नीति—उसकी डांवाडोल मनःस्थिति की स्पष्ट सूचक है। इस युद्ध में संख्या की अपेक्षा योग्यता और श्रेष्ठता तथा बाहरी परिणामों की अपेक्षा मानसिक स्थित्यन्तर पर ही अधिक ध्यान देना चाहिए। यदि सरकारी संस्थायें आज बन्द नहीं दिखाई देती हैं तो यह इसी बात का सूचक है कि हमारे प्रयत्न में अभी खामी रही है।

११ प्रश्न—(अ) यदि हम इस प्रणाली का नाश करना नहीं चाहते थे (हैं) तो असहयोग का और क्या मतलब था (है)?

(आ) यदि नाश करना चाहते हैं तो क्या नाश के लिए असहयोग के साथ साथ स्वराज्य-स्थापना के लिए एक अपनी सरकार (Parallel Government) खडी करना आवश्यक नहीं है? यदि आवश्यक है तो उसके बनाने का प्रयत्न कितनी देर बाद शुरू किया जायगा या किया जाना विचारा गया है या कुछ किया गया है? इसी प्रकार इसके लिए क्या एक देशव्यापी संगठन की आवश्यकता नहीं है? यदि है तो वह कब बनाया जायगा? क्या उसे शीघ्र ही नहीं बनाना चाहिए?

(इ) और यदि किसी Parallel Government या Provisional Government या ऐसे संगठन की जरूरत नहीं है तो इस शासन-प्रणाली के स्थान पर स्वराज्य की शासन-प्रणाली एकदम कैसे स्थापित हो सकती है? इसके सिवा और क्या विधि है? और किस प्रकार स्वराज्य-स्थापना सोची गई है?

उत्तर—(अ) प्रश्न १० के उत्तर के बाद यह प्रश्नांश निरर्थक हो जाता है।

(आ) आप महासभा को अपनी सरकार मान सकते हैं। महासभा की ही समितियां हरएक तहसील और गांव में स्थापित होनी चाहिए। महासभा की ताकत जितनी ही बढेगी उतनी ही इस सरकार की ताकत कम होगी।

(इ) ऊपर (आ) में इसका भी उत्तर आ गया है।

१२ प्रश्न—सविनय भंग एक समय में एक ही जगह किया जाय या समग्र देश में? आपकी वैयक्तिक सम्मति क्या है? और क्यों?

उत्तर—रचनात्मक कार्यक्रम की काफी पूर्ति सविनय भंग की शर्त है। एक ही जगह किया जाय या सारे देश में यह देश की तैयारी और सरकार की मनःस्थिति और दोनों की एक दूसरे के प्रति तत्कालीन प्रवृत्ति पर अवलम्बित है। किसी भी सिद्धान्त को कार्य-रूप में परिणत करने के विषय में पहले से कोई निर्णय नहीं किया जा सकता; क्योंकि वह देश, काल, पात्र की अवस्था पर असर रखता है। इससे अधिक हम अपनी व्यक्तिगत सम्मति नहीं दे सकते।

पूर्वोक्त प्रश्न-माला इस बात की तो सूचक है कि कार्यकर्ता लोग शान्तिमय असहयोग के तत्व, तात्पर्य और उसके प्रयोग पर गम्भीरता के साथ विचार कर रहे हैं। निस्सन्देह यह चिह्न आशा-वर्द्धक है। पर इनमें से शायद ही कोई प्रश्न ऐसा हो जिसका उत्तर 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के चिन्तनशील पाठकों को उन्हींके लेखों और टिप्पणियों में न मिल सके। तथापि जिन भाइयों का समाधान इन उत्तरों से न हो वे यदि महात्मा जी का 'हिन्द-स्वराज्य' 'सर्वोदय' आदि छोटी छोटी पुस्तकें, उनके भाषण तथा लेखों का अध्ययन कर चुकने के बाद हमसे प्रश्न करेंगे तो उनका अध्ययन भी गहरा हो जायगा और हम भी पुनरुक्ति से बच जायंगे। यों तो हरएक भाई अपनी कठिनाई हमारे सामने पेश करने के लिए आजाद हैं और उसे दूर करने का प्रयत्न करना हम अपना कर्तव्य मानते हैं।

हरिभाऊ उपाध्याय

स्वेच्छापूर्वक धर्मपालन अच्छा!

बुहानपुर (मध्य प्रान्त) से समाचार आये हैं कि वहां के व्यापारियों को विदेशी माल का व्यापार करने से रोकने के लिए एक भाई ने अनशन-व्रत शुरू कर दिया था। तीन दिन तक उन्होंने कुछ न खाया। आखिर वहां के व्यापारी-समाज और जनता में खलबली मच गई। नगर में बडी सभा हुई। व्यापारियों और जुलाहों ने विदेशी कपडा और सूत अब न मंगाने की गंभीर प्रतिज्ञा की। और जितना विदेशी माल उनके पास पडा है उसे ६ मास के अंदर खतम करने की भी प्रतिज्ञा की गई।

इन प्रतिज्ञाओं के लिए व्यापारियों को धन्यवाद। यदि इस हालत में भी हमारे व्यापारी भाई न जागते तो बडे ही दुर्भाग्य की बात होती। पर भारत जैसे धर्म-प्राण देश के लिए तो अनशन-व्रत तक की भी नौबत न आनी चाहिए थी।

अच्छा होता यदि बुरहानपुर के व्यापारी भाई इस हद तक इस बात को न आने देते और स्वेच्छा-पूर्वक ही अपने धर्म का पालन कर लेते। मजबूर होकर दबाव से फिर वह सत्ता का हो या नैतिक हो, धर्म पर आरूढ होने की अपेक्षा लोभ-मोह से खुद ही समझकर स्वेच्छा-पूर्वक धर्मपालन हमेशा श्रेष्ठ होता है।

खादी-प्रदर्शिनी

आगामी महासभा की स्वागत-समिति ने गया में खादी की प्रदर्शिनी करने का निश्चय किया है। प्रदर्शिनी सिर्फ खादी और उसको बनाने के लिए जिन जिन उपकरणों की जरूरत होती है उन सब की होगी। खादी से मतलब हर प्रकार का हाथकता-बुना कपडा फिर वह सूती, रेशमी, ऊनी या कांसे का हो। यह भी नहीं कि वह केवल ओढने-पहनने के लिए ही बना हो। वह बिछाने का भी हो सकता है। सब प्रकार के नमूने प्रदर्शिनी में रक्खे जायंगे और कच्चे कपास को लोढने से लेकर बुनने तक की तमाम कियायें भी प्रदर्शिनी में दिखाई जायंगी। प्रदर्शिनी में कपडे बेचे भी जा सकते हैं; पर तैय्यार माल के शुद्ध होने की गेरंटी देनी होगी। हर प्रान्त से नीचे लिखी बातों के विषय में जानकारी चाहिए। कमिटी यह भी जानना चाहती है कि वह आपसे प्रदर्शिनी के सफल बनाने में किस तरह की सहायता की उम्मीद कर सकती है? प्रदर्शिनी में अपना माल रखनेवालों को गया में कोई १५ दिन तक रहना होगा।

१ आपके प्रान्त के धुनकने, कातने और बुनने आदि के देशी यंत्रों की जानकारी। २ भिन्न भिन्न प्रकार के कपास के नमूने और उनकी उपज ३ हाथ का कता सूत, उसकी कमानुसार मजदूरी आदि और उससे बुने हुए कपडे के नमूने। ४ रेशम और ऊनकी भी इसी प्रकार की सब वाकफियत। इन विषयों में पत्रव्यवहार: "मन्त्री प्रदर्शिनी समिति-गया, बिहार" के पते से किया जाय।

मोती बाबू का अन्तिम सन्देश

'अमृत बाजार पत्रिका' के स्वर्गीय सम्पादक श्री मोतीलाल घोष ने अपनी मृत्यु के पहले अपने देश-भाइयों को निम्न-लिखित अन्तिम सन्देश दिया था:-

"मुझे इस खयाल से बहुत दुःख हो रहा है कि मैं अपनी जन्म-भूमि की कुछ भी सेवा न कर सका। तथापि इस लोक से चलते समय मैं अपने हृदय में यह आशा लिये जा रहा हूं कि जो काम हम बूढे लोग नहीं कर सके उसे हमारी मातृभूमि की नई प्रजा जो हमसे अधिक सुपात्र है पूरा करेगी। इस नश्वर शरीर को छोडने पर भी मेरी आत्मा भारत-माता की प्रगति को सतृष्ण नयनों से देखती रहेगी। मातृभूमि के हरएक सेवक को मैं इस समय आशीर्वाद करता हूं। मृत्यु मेरे सामने खडी है। इस समय परमात्मा से मेरी केवल यही प्रार्थना है कि हे परमात्मन्, मेरे देश-भाइयों को इस स्वाधीनता के युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए बल दीजिए।"

मृत्यु के समय आपकी आयु ७७ साल की थी। उस समय भी आपने अपनी मातृ-भूमि की सेवा का व्रत छोडा नहीं था। जीवन के अवसान-काल में भी जिनको यह मालूम हो रहा था कि मैं मातृभूमि की कुछ भी सेवा न कर सका उनके आशीष पाने के योग्य बनने के लिए हमें कितनी सेवा करनी चाहिए?

(नवजीवन)

अमृतसर में कार्य-समिति

गत १७ तारीख को अमृतसर में देशबंधु की अध्यक्षता में कार्यसमिति की बैठक हुई थी। समिति ने सरकार की ओर से जनता पर जो निर्घृण अत्याचार हो रहे हैं उनपर घोर निषेध प्रकट करते हुए सिक्खों को उनके पूरे अहिंसामय सत्याग्रह के लिए बधाई दी। और गुरु का बाग-सत्याग्रह की तहकीकात करने के लिए एक समिति भी बना दी है। समिति में निम्नलिखित सज्जन हैं—मदरास के श्री आयंगार (सभापति) बम्बई के बैरिस्टर जयकर, देहली के मौ० मोहम्मद तकी, चटगांव के बैरिस्टर सेनगुप्त, श्री स्टोक्स (सदस्य) प्रो० रुचिराम सोहनी (मंत्री)। कार्य-समिति की बैठक खतम होते ही देशबंधु वायु-परिवर्तन के लिए काश्मीर चले गये। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है।

अमन-सभा का 'अमन'

शान्ति की प्यासी सरकार ने देखा—असहयोग से देश में बहुत अशान्ति फैल गई है। अतएव उसने देश में अमन की स्थापना के लिए अमन-सभाओं की सृष्टि की। किसी भाई ने एक अमन-सभा का हाल हमारे पास लिख भेजा है। उसका सार हम यहां देते हैं—

"तारीख १२-८-२२ को स्थान सर्धना में तहसील अमन-सभा का वार्षिकोत्सव हुआ। सभापति के पद को जिलाधीश ने सुशोभित किया था। कुछ कांग्रेस के कार्यकर्ता भी तहसीलदार साहब की आज्ञा ले कर अमन-सभा में नोट लेने के लिए गये थे।

पहले तहसीलदार साहब ने कलक्टर साहब को नाना प्रकार से यह विश्वास दिलाया कि तहसील सर्धना में किसी तरह की कोई सभा नहीं होती। और न यहांपर कांग्रेस कमिटी ही स्थापित है। इसके बाद डिप्टी साहब ने भी इसका अनुमोदन किया। अब व्याख्यान शुरू हुआ। व्याख्याता कृषि-विभाग के अधिकारी थे। आपने व्याख्यान में फरमाया 'हमें सरकार के साथ सहयोग करने से ही स्वराज्य मिल सकता है, महात्माजी का साथ देने से अथवा उनके उद्देश की पूर्ति करने से शायद ही मिले। अतएव हमें सरकार की सहायता में तत्पर होना चाहिए और राजविद्रोह को दबाने के लिए तथा मातृभूमि की रक्षा के लिए टेरिटोरियल फोर्स में सम्मिलित होना चाहिये'। व्याख्यान समाप्त हुआ। फिर एक वकील महाशय ने अपना भाषण शुरू किया था कि इतने ही में एक सदस्य ने खडे होकर कहा कि मैं कृषि-विषयक एक शंका का निराकरण करा लेना चाहता हूं।' इस पर

तहसीलदार सा०—आप कोई बात नहीं पूछ सकते।

सदस्य—मैं प्रधान साहब से आज्ञा मांग कर पूछना चाहता हूं।

तहसील०—इस जल्से का प्रधान मैं ही हूं।

स०—आप इस जल्से के प्रधान नहीं हैं। प्रधान तो कलेक्टर हैं। मैं उन्हींसे पूछना चाहता हूं। कलेक्टर साहब की भी निगाह उधर घूमी। वकील महाशय कह रहे थे कि मेरा व्याख्यान हो जाने दीजिए फिर, इस समय के बाद, आपकी शंका दूर कर दी जायगी।

स०—मैं इस बात का समाधान इसी समय इसी जनता के सामने चाहता हूं जिसके कारण जनता भूल में न पडे।

वकील साहब और तहसीलदार—"आप बिलकुल नहीं बोल सकते, बैठ जाइए।"

सदस्य उस समय बैठने के लिए तैयार थे कि जिलाधीश ने कहा कि इनको यहां से निकाल दो। तहसीलदार ने जिलाधीश के आज्ञानुसार उनको वहांसे निकाल देना ही उचित समझा और उस सदस्य को तथा उसके दूसरे साथियों को असभ्यता-पूर्वक वहां से निकाल दिया। इतनाही नहीं, जिलाधीश के सामने ही उन्होंने उस सदस्य को एक घूसा जमा कर अपनी सभा के 'अमन' का परिचय भी दिया।

तहसीलदार साहब का यह व्यवहार देख कर उनके दूतों-साथियों को भी साहस हुआ। फिर उनमें से कितने ही ने उस सदस्य को बडी निर्दयता के साथ पीटा। सदस्य के साथी भी कोरे नहीं छूटे। जनता बहुत उत्तेजित हो रही थी। अशान्ति होने का भय था। पर परमात्मा की कृपा से पूर्ण शान्ति रही। किसी भांति का कोई उपद्रव नहीं हुआ।"

यदि यह घटना ठीक ऐसी ही हुई है तो परमात्मा इस 'अमन' से भारत को बचावे!

जयन्ति-अंक

आगामी तारीख २ अक्टूबर को महात्माजी की वर्ष-गांठ के उपलक्ष्य में 'हिन्दी-नवजीवन' का विशेषांक निकलेगा।

जयन्ति-अंक

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)॥
विदेशों के लिए वार्षिक „ ५)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष २] [अंक ७

सम्पादक—हरिभाऊ विट्ठलनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, आश्विन सुदी १२, संवत् १९७९
सोमवार, २ अक्तूबर, १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

महात्माजी का जीवन-सिद्धान्त

प्रिय भ्राताजी,

मेरे शरीर की स्थिति अब ऐसी हो गई है कि आपके लिए महात्मा गांधी के सिद्धान्त-तत्व पर कोई लेख लिखना असम्भव है। तथापि इस मुबारक अवसर पर मैं हमारे प्रिय महात्माजी के प्रति स्नेहाञ्जलि अर्पित करने से अपने मन को नहीं रोक सकता—फिर वह भले ही विदुर के घर के साग-पात की तरह तुच्छ क्यों न हो।

जिन सज्जनों को महात्माजी के उपदेश, जो उनके जीवन में ओतप्रोत भरे हुए हैं, गूढ और अगम्य मालूम होते हैं उनसे मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि आप ज्ञात से अज्ञात की ओर, फल से मूल की ओर, अथवा दृष्ट से अदृष्ट की ओर जाने के राज-मार्ग का अनुसरण करके उनके सिद्धान्त की जांच कर लें।

महात्माजी सब से ऊंचे और सब से सच्चे अर्थ में कर्मवीर हैं। जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि भारत में एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक किस प्रकार उन्होंने अकेले हाथों मरणोन्मुख लोगों में नवजीवन का संचार किया जिसका कि उदाहरण इतिहास-काल में नहीं मिलता, तब तो किसीके मन में इस बात में सन्देह नहीं रह सकता।

पर महात्माजी सांसारिक या व्यावसायिक दृष्टि से कर्मवीर नहीं हैं। यह बात उनके सादे, निर्मोह जीवन से, उनकी शान्त, निस्पृह वृत्ति से, उनकी सीधी और सरल कार्य-शैली से अच्छी तरह स्पष्ट है।

इसलिए महात्माजी के कार्यक्रम के मूल में समयोपयोगी नीति नहीं, बल्कि अटल सिद्धान्त हैं; इन फलों से ही हम इस बात को पहचान सकते हैं—'**फलेन परिचीयते**।'

पर कितने ही लोग जो हिन्दू और ईसाई—दोनों धर्मों के सिद्धान्तों के खिलाफ फल से नहीं, पर शाखा-पत्तों से पेड को पहचानने का यत्न करते हैं, उनकी ऊपरी जटिलता को देख कर चक्कर में पड जाते हैं और महात्माजी पर असंगति का दोष मढते हैं। पर वे उस समय यह भूल जाते हैं कि एक ही सरल सिद्धान्त-हेतु, प्रतिपक्षी शक्तियों के मुकाबले में, बिखर कर अगणित पद्धतियों का रूप धारण कर लेता है—पर फिर भी वह अपने मूल सिद्धान्त से, उसके असल फल-रूप से, विलग नहीं होता। इसके लिए हम प्राणिशास्त्र का एक उदाहरण लें। भिन्न भिन्न प्रकार की प्रतिरोधक शक्तियों का सामना करने के लिए हरएक प्राणी भिन्न भिन्न रूप से कार्य करता है। कोई प्राणी अपने डैनों के द्वारा, कोई पैरों के द्वारा और कोई अपने हाथों के द्वारा उसी काम को करते हैं।

अपने देश-भाइयों को [illegible] राक्षसों के अत्याचारों से बचाने के लिए महात्माजी खुद कितना ही कष्ट उठाने और हिंसा-काण्ड का त्याग करने में सदा तैयार रहते हैं और उसके बदले में दूसरे को स्वप्न में भी कष्ट नहीं पहुंचाते हैं।

उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि हमारे भौतिक साधन बिलकुल सीधे-सादे हों और यांत्रिक शिक्षा से हमें दूर ही रहना चाहिए; जिससे आत्मा स्वतंत्र रूप से विकास पाती रहे—बाहरी बन्धन उसके मार्ग में बाधक न हों। सच्चे और पवित्र स्वरूप में स्वाधीनता की प्राप्ति कठोर धार्मिक संयम और सिद्ध दुष्ट-तंत्र से कडा असहयोग किये बिना नहीं हो सकती। इसलिए महात्माजी ने इन दोनों बातों को अपने आचार में परिणत करने पर भी बहुत जोर दिया है। 'मुक्ति' जोकि हिन्दू-धर्म का सार-सर्वस्व है, महात्माजी के सिद्धान्त-तत्व की कुंजी है। और उनके कार्यक्रम के ये चार स्तंभ हैं—

अहिंसा—अर्थात् किसी की हानि या हत्या करने की अनिच्छा।

दुर्जन—संग-परिहार—अर्थात् अ-सज्जनों से असहयोग।

न पापे प्रतिपापः स्यात्—अर्थात् पाप का बदला पाप से न चुकाना।

असाधुं साधुना जयेत्—अर्थात् 'जो तोको कांटा बुवै ताहि बोइ तू फूल'—बुराई को भलाई से जीतना।

यह तो हिन्दू-धर्म के शास्त्रों में जो रत्न इधर-उधर पडे हुए थे उनका चुना हुआ संग्रह है। थोडे ही में कहा जाय तो महात्मा गांधी एक ऋषि हैं और उनके सिद्धान्त प्राचीन ऋषि-महर्षियों के सिद्धान्तों से जरा भी भिन्न नहीं हैं।

महात्मा गांधी की जय!

शान्ति-निकेतन,
बोलपुर

आपका शुभाकांक्षी
बड़ा दादा
(द्विजेन्द्रनाथ टागोर)

पुनश्च

मेरे पिछले पत्र में एक जरूरी बात का उल्लेख रह गया था। उसका सम्बन्ध है महात्मा गांधी के जीवन और कार्य से। उसे अब लिख कर भेज देता हू, जिससे किसी प्रकार की गलत-फहमी न हो सके।

महात्मा गांधी ने अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ भाग दक्षिण-आफ्रिका में ही अपने प्रवासी-भाइयों की रक्षा करने में बिताया। वहां के सत्ताधारी सत्य के बजाय सत्ता के पुजारी थे और आज भी हैं। इनके दबाव से उन्हें मुक्त करने में महात्माजी ने परमात्मा की कृपा से असाधारण आध्यात्मिक बल प्राप्त किया। और भारत आने पर तो उन्होंने अपने अत्याचार-पीड़ित देश-भाइयों की रक्षा के लिए बहुत कठोर आध्यात्मिक संयम का अभ्यास आजतक एकसा दृढता-पूर्वक किया। उससे वह बल तिगुना बढ गया। मेरे ख्याल में यह बल शारीरिक बल से इतना श्रेष्ठ है कि उन्होंने उसके द्वारा ऐसी कई आश्चर्यजनक बातें कर डालीं जिनको देखकर वे सब कार्य-कर्त्ता शरमिंदा हो गये जो शारिरीक बल के अतिरिक्त और किसी बल को जानते ही न थे। और अब मैं यह कहना चाहता हूं कि महात्मा गांधी अपने पीछे रहने वाले लोगों से यही अपेक्षा कर रहे हैं कि वे भी सब से पहले इसी आध्यात्मिक बल को प्राप्त करने की कोशिश करें जिससे वे उस अपरिमित सत्ताबल का सामना करने में समर्थ हो सकें जो उन्हें अपने पैरों तले कुचल डालने के मौके की ताक में दिन-रात आंखों में तेल डाल हुए बैठा है। इसके बाद वे शारीरिक बल का अभ्यास करें, जिसे वे उचित नियम-पालन के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। जबतक हम उस आध्यात्मिक बल को प्राप्त नहीं कर लेते तबतक केवल अहिंसा हमें अपने ध्येय तक नहीं ले जा सकती। मैं पाठकों का ध्यान इस बात पर विशेष रूप से आकर्षित करना चाहता हूं कि अप्रतिरोध दो तरह से किया जा सकता है—

१ एक तो वह जिसमें आध्यात्मिक बल हो

२ और दूसरा वह जिसमें आध्यात्मिक दुर्बलता हो।

आध्यात्मिक बल से मेरा मतलब उस बल से है जो सत्य से होता है और जो न्याय्य और कल्याणकारी कार्यों के रूप में प्रकट होता है। और आध्यात्मिक दुर्बलता से मतलब है उस कमजोरी से जिसके कारण मनुष्य इस भय से किसी का प्रतिरोध नहीं करता कि ऐसा करने से कहीं उस शक्ति का कोप-भाजन न बनना पडे। आध्यात्मिक दुर्बलता उसे भी कहते हैं जब कोई किसी शक्ति का प्रसाद संपादन करने के लिए अंधे की तरह उसकी इच्छाओं और आज्ञाओं का पालन किये जाता है।

महात्माजी के इच्छानुसार अहिंसा की सहायता के लिए आध्यात्मिक बल की नितान्त आवश्यकता है। महात्माजी के पूरे आशय को यदि हम थोडे में कहना चाहें तो वह यह है कि 'जो पशुबल के बजाय सत्य-बल के पुजारी हैं' उन्हें अहिंसायुक्त आध्यात्मिक बल की ही उपासना करनी चाहिए।

आपका शुभाकांक्षी

बड़ा दादा

एजन्टों के लिए विशेष सुविधा

हिन्दी-नवजीवन का घर घर में प्रचार करने के उद्देश से एजन्टों के लिए एक विशेष सुविधा कर दी गई है। अबतक बची हुई प्रतियां उनसे वापिस नहीं ली जाती थीं। पर अब से जो प्रतियां उनके पास बची रहेंगी वे उनके खर्चे पर वापिस ले ली जाया करेंगी। आशा है, देशप्रेमी एजन्ट भाई अवश्य इस सुविधा से फायदा उठावेंगे। साथ ही उन्हें यह भी याद रखना चाहिए कि इतनी अधिक प्रतियां न मंगा लिया करें जिससे उन्हें और 'हिन्दी नवजीवन' दोनों को हानि उठाना पडे।

गांधीजी और चरखा

कितने ही मित्र यह सवाल पूछा करते हैं कि गांधीजी को चरखे में हिन्दुस्तान की मुक्ति किस तरह दिखाई दी? वे आशा रखते हैं कि जो उनके पास अधिक समय तक रह चुका है वह इस विचार का मूल बता सकेगा। उनका यह ख्याल स्वाभाविक ही है। परन्तु महापुरुषों की अन्तःप्रवृत्ति गूढ होती है। वह नदी-नालों के छल छल बहते हुए प्रवाह की तरह दृष्टि-पात मात्र में गति की सूचना देनेवाली नहीं होती। वह तो समुद्र के बहाव की तरह प्रचंड परन्तु गम्भीर होती है, जो किसीको दिखाई नहीं देती। इस बहाव का वेग काले बादलों का निमित्त-कारण होता है। वज्रपाती बिजली के प्रकाश और कडकडाहट का वह द्रष्टा होता है। तोभी वह पृथ्वीतल की नित्य नई परन्तु सदा सुन्दर लीला के कारण-रूप में छिप कर निरंतर बहा करता है। नाविक लोग निरीक्षण करके उस बहाव के मार्ग को अंकित करते हैं। परन्तु यह कहने की शक्ति किसे है कि वह मार्ग किस तरह और कहां से पडा? तत्ववेत्ता एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा कारण ढूंढ ढूंढ कर यह नहीं, यह नहीं, कहते हुए चुप रहते हैं और विचार-मूढ हो जाते हैं। लोग उसे प्रभु की माया कहते हैं।

गांधीजी के अन्तर-प्रवाह को समझने का अथवा समझाने का सामर्थ्य यदि उनके सांनिध्य की अवधि पर अवलम्बित हो तो मित्रलोग भले ही इन बातों से सन्तोष मानें और कुतूहल के तौर पर भले ही उसे प्रकट करें।

गांधीजी १८९३ ईसवी में पहले दक्षिण आफ्रिका को गये। वहां सुशिक्षित लोगों की संख्या बहुत थोडी थी। वे वहां तुरन्त ही छिटक उठे। गोरे पादरियों की निगाह उनकी ओर गई। एक ने उन्हें अपने ईसाई-धर्म की ओर खींच लाने में अपना गौरव समझा और उनसे आग्रह किया कि आप बाइबिल का अध्ययन कीजिए। यह काल गांधीजी के हृदय-मंथन का समय होना चाहिए। क्योंकि उस समय उन्होंने खूब पढा और खूब विचार किया। लडकपन से ही माता-पिता की अनन्य-भाव से सेवा करके और उनकी प्रेम-पूर्ण आशीष पा पा कर उनका हृदय सुसंस्कृत हो गया था। उनके इस भारतीय हृदय को बाइबिल के अन्दर भारत के पुरातन तत्वों का प्रतिबिम्ब ही दिखाई दिया। और मूल संस्कारों के अनुसार उसमें से एक-दो सूत्र उन्होंने अपने हृदय में धारण किये 'Resist not evil by force—दुष्ट का दमन दण्ड से न कर' और 'Unto this last—जो पहले सो आगे, यह नहीं; बल्कि जो पीछे सो आगे जैसा ही' ये दो सूत्र उनके अहिंसा-प्रिय हृदय में प्रतिष्ठित हुए।

दक्षिण आफ्रिका में वे अपने हिन्दुस्तानी भाइयों की प्रतिष्ठा-वृद्धि में अपनी प्रतिष्ठा मानते थे। वहां हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान व्यापारियों की आबादी अधिक थी। हिन्दू-मुसलमान में प्रेम-भाव उदय करने के लिए उन्होंने इस्लाम-धर्म के सिद्धान्तों का भी अध्ययन किया। उसमें भी उन्होंने अहिंसा को उच्च स्थान दिया हुआ देखा। अहिंसा की बाढ उनके हृदय में आरम्भ हुई और उसके प्रवाह के लिए ट्रान्सवाल-सरकार का खूनी कानून प्रपात-मार्ग-रूप हुआ। वह गांधीजी के प्रेम का सरोवर हो गया। हिन्दू-मुसल्मान की एकता की रक्षा करने के लिए उन्होंने अपने खून का पानी किया। इसी बीच उन्हें खूनी कानून की लडाई के सम्बन्ध में इंग्लैंड जाना पडा। हिन्दुस्तान में उस समय बंगभंग के आन्दोलन के बदौलत भारत की जनता के मन में अंगरेजों के प्रति द्वेष-भाव बढ रहा था। एक तरफ निर्बल और अन्नाभाव से पीडित प्रजा की दीनताभरी करुणावस्था और दूसरी तरफ कर्ता

के बल से उन्मत्त लोगों की स्वच्छन्दता-इन दो कटुता बढ़ानेवाले तत्वों का दिग्दर्शन उन्हें वहां हुआ। उन्होंने देखा कि यन्त्र के प्रलोभन से दूर रहने और संयमशील जीवन की पुनःस्थापना करने में ही हिन्दुस्तान की रक्षा है। उन्हें वहां यह भी स्पष्ट हुआ कि मैंचेस्टर के मिल-मालिकों का कितना प्रभाव और अधिकार हिन्दुस्तान के शासन-संगठन पर है। इंग्लैंड में जो भारतीय युवकों का समुदाय था उसमें उन्होंने स्वच्छन्दी सुधारकों का बल व्याप्त पाया और राक्षस को मार कर उसकी राक्षसता ग्रहण करने की उनकी नीति से उन्हें मुक्त करने का प्रयत्न किया। ज्यों ज्यों उन्हें वस्तुस्थिति विकराल नजर आती गई त्यों त्यों अपने हृदय में विभूषित Resist not evil by force इस पारस-मणि का प्रयोग अधिक निश्चय के साथ वे करने लगे। इस समय के महा-मन्थन में से चरखा-रूपी रत्न प्रकट हुआ। १९०९ में इन्लैंड से वापस लौटते हुए उन्होंने 'हिन्द-स्वराज्य' नाम की पुस्तिका लिखी। उसमें उन्होंने विदेशी जूए के बन्ध-रूप वकील-डाक्टरों को चरखा कातने की सिफारिश की है। उसके पिछले दो अध्यायों में वे लिखते हैं—

"श्री रमेशचन्द्र दत्त का 'भारत का आर्थिक इतिहास' जब मैंने पढ़ा तब मेरी आंखों से आंसू बह चले थे। जब जब मुझे उसका खयाल आता है तब तब मेरी छाती भर आती है। जबसे इन कल-कारखानों का तांता लगने लगा तबसे भारत बरबाद हो गया। मैंचेस्टर ने जो नुकसान हमारा किया उसका अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। मैंचेस्टर की ही बदौलत भारत की कारीगरी प्रायः नष्ट हो गई। × × पर मैं भूलता हूं। मैंचेस्टर को दोष क्यों कर दूं? जब हमने उसके कपड़े पहने तब उसने बनवाये? कल-कारखानों के बदौलत योरप ऊजड़ होने लगा है और उसकी हवा हिन्दुस्तान में भी बह रही है। कल-कारखाने आधुनिक प्रगति का मुख्य चिह्न हैं और मैं तो अच्छी तरह देख सकता हूं कि यह महापाप है। × × हिन्दुस्तान में मैंचेस्टर स्थापित करने से हमारा धन भले ही रह जाय; पर वह हमारा खून चूस जायगा। क्योंकि वह हमारी नीति को ले जायगा। × × गरीब भारत तो चाहे भले ही छूट जाय पर अनीति से हुआ धनवान् भारत कभी नहीं छूट सकता। धन और विषय का दंश सर्प के दंश से भी बुरा है। सांप के काटने से तो अकेले देह का ही नाश होता है; पर धन और विषय के दंश से तो देह, प्राण, मन सब के नष्ट होने पर भी छुटकारा नहीं होता। हमारे देश में मिलों के होने से हमें खुश न होना चाहिए। × × यह नहीं हो सकता कि मिल-मालिक एकदम मिलों को छोड़ देंगे। पर हम उनसे यह तो प्रार्थना कर सकते हैं कि वे अब इसमें अधिक साहस न करें। वे यदि हित करना चाहें तो वे अपना काम धीरे धीरे कम कर सकते हैं और खुद ही पुराने, प्रौढ़, पवित्र चरखे को घर घर में स्थापित कर सकते हैं। लोगों का बुना हुआ कपड़ा लेकर बेंच सकते हैं। वे यदि ऐसा न करें तोभी लोग खुद ही कल की बनी चीजों का इस्तैमाल करना छोड़ सकते हैं। × × जो वकील हों वे अपनी वकालत छोड़ घर में चरखा कातें और कपड़े बुनें × × जो डाक्टर हों वे भी चरखा चलावें × × और जो धनाढ्य हों वे भी अपना धन चरखे की स्थापना में लगावें और खुद स्वदेशी कपड़े पहन कर, दूसरों को उत्साहित करें × × स्वराज्य का स्वरूप जैसा मैं समझा हूं वैसा समझाने का प्रयत्न मैंने किया है। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि ऐसा स्वराज्य प्राप्त करने के लिए यह देह अर्पण है।"

कबीर साहब ने कहा है—

"कहेणी मिसरी खांड है, रहेणी तत्ता लोह;
कहेणी कहे और रहेणी रहे, ऐसा विरला कोइ।"

गांधीजी 'कहेणी' कर चुके और 'रहेणी' भी रह चुके हैं। गांधीजी के दक्षिण आफ्रिका की लड़ाई खतम करके भारत में आने बाद चरखे का विस्तार किस प्रकार हुआ, यह हिन्दुस्तान अच्छी तरह जानता ही है। इस प्रकार चरखा अहिंसा के समुद्र-मंथन से निकला हुआ रत्न मालूम होता है। अहिंसात्मक असहयोग में खादी को इतना अग्रस्थान क्यों दिया गया, यह समस्या इस तरह हल होती है।

मगनलाल खुशालचन्द गांधी

सत्य-राजनीति का जन्म

हरएक मौलिक कल्पना सम्राट् की तरह होती है। वह अकेली कहीं संचार नहीं करती। अपने सामन्त-परिवार के साथ ही वह विचरती है। और जब विचरती है तब दिग्विजय के लिए। दुनिया में अन्य जितनी कल्पनायें हैं उन्हें या तो उसके शरण जाना चाहिए अथवा प्राणान्त युद्ध करना चाहिए।

हरएक कल्पना अपने में सारे विश्व को प्रतिबिम्बित करती है। अगर किसीने नई कल्पना ढूंढ निकाली तो उसे उसको जीवन के अंग-प्रत्यंग में, सामाजिक जीवन के सब विभागों में, घटा कर दिखाना चाहिए। जब एक नई कल्पना आ जाती है तब उसके अनुसार धर्म में परिवर्तन होता है, सामाजिक जीवन में परिवर्तन होता है और कौटुम्बिक जीवन में भी क्रान्ति होती है। उसका स्वतन्त्र अर्थशास्त्र तैयार होता है। कला का आदर्श बदल जाता है। मनुष्य का पारस्परिक व्यवहार नया स्वरूप ग्रहण करता है। पुरुषार्थों का सापेक्ष मूल्य बदल जाता है। उन्नति-अवनति की दिशा बदलती जाती है। और सारा विश्व नवीन जन्म ग्रहण करता है।

दुनिया में सत्य का प्रादुर्भाव मनुष्य-हृदय के साथ ही हुआ है। अहिंसा का अवतार उसके बाद है। लेकिन इन दोनों का आजतक एक दूसरे के साथ परिचय नहीं था। वास्तव में देखा जाय तो दोनों एक ही सनातन-तत्व की दो विभूतियां हैं। परन्तु आजतक दोनों एक दूसरे से विमुख ही रहे। अब वह शुभ मुहूर्त आ गया है जब दोनों का विवाह मनुष्य के हृदय-मन्दिर में अवश्य होना चाहिए। आचार्य ने सावधान का मंत्रोच्चार कर दिया है। बस अन्तर्पट के खोलने की ही देर है। यह मंगल-विवाह नई सृष्टि को जन्म देनेवाला है।

सच पूछिए तो विवाह हो चुका है। और नई सृष्टि हो रही है। बस, उसके उत्सव की ही देर है। लोग पूछते हैं—इस दम्पति की राजनीति नाम की कन्या का रूप कैसा होगा? जिन्होंने मन्दिर में प्रवेश करके कन्या का दर्शन किया है वे हर्ष-पुलकित हो कर कहते हैं—यह दिव्य कन्या दुनिया की उद्धारक होगी। वह शान्त है, वह जगद्धात्री है, वह दयामयी है, वह विश्वम्भरा है। क्षमा, सरला, अ-कुटिला, धैर्यवती, ये भी उसीके नाम हैं। उसकी आंखों में प्रसाद है। हृदय में कारुण्य है। उसका वदन-कमल पुण्डरीक के समान स्वच्छ शुभ्र है। उसकी गति गज-गति है। जहां पर वह जाती है वहां पर वृक्ष और वनस्पति प्रफुल्लित होते हैं। नदियां स्वच्छ स्रोतस्विनी होती हैं। मनुष्य अपना राग-द्वेष भूल जाते हैं। और ईश्वर का आशीर्वाद उनके पथ पर निरन्तर बरसता रहता है।

× × ×

राजनीति का अर्थ लोग कुछ का कुछ कर डालते हैं। वे कहते हैं, राजनीति का अर्थ है कूट-कपट। राजनीति का अर्थ है, ठगने की विद्या। राजनीति का अर्थ है, स्वयं कम से कम जोखिम उठाकर औरों को परास्त करने की विधि। राजनीति का अर्थ है बाहरी

सज्जनता दिखा कर अपना स्वार्थ साधना । राजनीति का अर्थ है, दूसरे की आंखों में धूल झोंकना । लोग मानते हैं, 'इस तरह हम अपना सदा के लिए कल्याण कर सकते हैं।' पर वे जानते नहीं हैं कि समस्त मनुष्य-जाति एक ही जहाज में बैठी है-- एक को डुबाने के लिए जहाज में अगर छेद किया जाय तो सब को जल-समाधि मिल जायगी । अदूरदर्शी मानव कहता है कि अन्तिम कल्याण की हमें परवा नहीं । कल्याण तक हमारी पहुंच ही नहीं । हमें तो अपना लाभ, अपना मतलब करना है । ऐसे लोगों को श्री व्यासजी कहते हैं:—

" ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चित् शृणोति मे
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥ "

जिससे समाजका कल्याण हो वही नीति है । जिससे धर्म की रक्षा हो वही नीति है । जिसमें किसीको नाहक दुःख न उठाना पड़े, किसीका दास हो कर न रहना पड़े, गरीबों की आहें वायुमंडल को अपवित्र न करें वही नीति है । राजनीति व्यक्तिगत नीति से बदतर तो होनी ही न चाहिए । पर वे लोग सत्य के पथ पर अपनेको सुरक्षित नहीं मानते । क्षमा के सहारे अपना कल्याण नहीं देखते । इसीलिए राजनीति को वे विकृत करते हैं । राजनीति में कुशलता जरूर चाहिए, लेकिन कुटिलता की जरूरत नहीं ।

× × ×

अहिंसा जिसका आदर्श है और सत्य जिसका व्रत है उसकी राजनीति अपने ही ढंग की हो सकती है । गांधीजी की राजनीति में अगर कोई खास विशेषता हो तो वह इस बात में है कि वे अपने सामने विरोध को खडा ही नहीं होने देते । जहांतक हो सकता है विरोधियों की विरोधवृत्ति ही वे उनके पास से छीन लेते हैं । जिसके साथ उनका विरोध हो उसके साथ उचित से भी अधिक रिआयत प्रथम ही कर देते हैं । अपने विरोधियों को अपनी ही तरह शरीफ और बहादुर मान लेते हैं और उसके साथ धर्मयुद्ध करते हैं । हरएक आदमी के हृदय में स्वार्थ, अभिमान, ईर्ष्या-असूया रहती हैं और धर्म-बुद्धि बेचारी एक कोने में दबी रहती है । महात्माजी अपनी उदारता से उस धर्म-बुद्धि को जाग्रत करते हैं और फिर विरोधियों के घर में ही स्वार्थ, क्रोध, आदि रिपुगण का युद्ध उनकी धर्मबुद्धि के साथ शुरू होता है । युद्ध-शास्त्र-विशारद कहते हैं कि युद्ध का क्षेत्र अपने घर में कभी न रहना चाहिए । विरोधियों के क्षेत्र में ही रणांगण की स्थापना करनी चाहिए । गांधीजी ने इस नियम का पूरा पूरा पालन किया है । अफसोस की बात है कि आजकल हमारे कितने ही देशभाई घर में ही वाग्-युद्ध मचा रहे हैं । धर्म और अधर्म के बीच जब युद्ध छिडता है तब धर्मकी ही जीत होती है, इस बात पर उनकी श्रद्धा बैठ ही नहीं रही है ।

× × ×

गांधीजी मानते हैं कि सच्ची राष्ट्र-शक्ति लोक-हृदय में है । पढे हुए लोगों की वाद-कुशलता में नहीं । इसीलिए वे जनता में नवजीवन का संचार करने की हमेशा कोशिश करते हैं । परतन्त्रता की बेडियों में जो खूब मजबूती से जकडे गये हैं उनके पास वे अधिक त्याग की अपेक्षा करते हैं । और हमेशा इस बात की चिन्ता रखते हैं कि हमारी तरफ से किसी के साथ अन्याय न हो । शुद्ध दृष्टि से देखने पर मालूम होगा कि महात्माजी की राजनीति में कुशलता है, कुटिलता नहीं ।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

महात्माजी और स्त्री-जाति

[हिमालय से]

महान किसे कहते हैं ? जो बडा हो, जो विशाल रूप से देश और काल में फैला हुआ हो । जैसे-महादेश-बडादेश, बहुत बडा भू-खंड; महाभारत-बडा भारत; महाकाल-बडा या बहुत समय । इसी प्रकार जो विशाल चैतन्य-प्रदेश में व्यापक हो, जो अनेक आत्माओं से तादात्म्य प्राप्त करता हो वही—महान् आत्मा-महात्मा है । महात्मा जन का आत्मभाव बहुत व्यापक और विशाल होता है । महात्मा गांधी का ही उदाहरण लीजिए । महात्मा गांधी इस लिए महात्मा कहे जाते हैं कि वे अपने करोडों भाइयों की आवश्यकताओं को, असुविधाओं को और दुःखों को अपना ही दुःख मानते हैं और उनसे तद्रूप हो गये हैं ।

महात्मा शब्द का एक दूसरा भी महत्वपूर्ण अर्थ है । महात्मा का अर्थ है वह पुरुष जिसकी आत्मा उन्नत हो । ऐसा कोई भी पुरुष जिसकी आत्मा उन्नत न हो, जिसका चरित्र उच्च, समुज्वल न हो, अपने दूसरे भाइयों के साथ एकरूप नहीं हो सकता । वह उनके सुखों को अपने सुख-दुःख नहीं मान सकता और न उनके लिए त्याग करने में प्रवृत्त ही हो सकता है । इसीलिए हम देखते हैं कि ऐसे महात्मा की ओर, ऐसे सहानुभूतिशील और त्यागशील पुरुष की ओर वे अनेक लोग खिंचते चले आते हैं जिनके सुख दुःखों को वह स्वयं उतना ही अनुभव करता है जितना कि वे खुद करते हैं ।

भारत में हमें कई साधु दिखाई देते हैं । साधु का भी अर्थ है महात्मा । अक्सर स्त्री-पुरुषों का-और अधिकतर स्त्रियों का समुदाय उनके आसपास जमा ही रहता है । वे श्रद्धा-भक्ति के साथ उनकी पूजा-सेवा करते हैं । इसका कारण यह है कि स्त्रियों की अन्तःप्रेरणा स्वभावतः अधिक सूक्ष्म होती है । उनकी संज्ञा-शक्ति अधिक तेज होती है और कभी कभी वे अधिक प्रेम, सहानुभूति और उपदेश पाने के लिए उनके माहात्म्य को पुरुषों की अपेक्षा अधिक जल्दी स्वीकार कर लेती हैं । संसार के किसी भी सच्चे महात्मा ने न तो आत्मा में पुरुष और स्त्री के भेद की कल्पना की है और न प्रत्यक्ष पुरुष और स्त्री में वे भिन्नता रखते ही हैं । यही महात्मा गांधी के विषय में भी सत्य है । वे अपनी देश-भगिनियों की दृष्टि में पूज्य हैं, और पूज्य हैं इसलिए कि उन्होंने अपने इस हृदयस्थ भाव को स्पष्टतया प्रकट कर दिया कि राष्ट्र की उन्नति में स्त्रियों के लिए उच्च और आवश्यक स्थान है ।

महात्मा गांधी का लालन-पालन योरोपीय राजनीति में हुआ है । जब वे दक्षिण आफ्रिका में थे तब वहां बोअर लोगों के तथा दूसरे युद्धों में योरोपीय माताओं और गृहिणियों ने जो काम किया उसे उन्होंने देखा और अनुभव किया है । यह भी बडे सौभाग्य की बात हुई कि दक्षिण आफ्रिका के प्रवासी भारतीयों के धर्मयुद्ध में उनमें से कितनी ही की सहानुभूति और सेवा भी वे प्राप्त कर सके । और वहां जो कुछ थोडीसी भारतीय महिलायें थीं उनकी भी उस धर्म-युद्ध में सहायता प्राप्त करने में सफल हुए । जब वे भारत में आये तब स्वभावतः सबसे पहले उन्होंने अपने प्रान्त की महिलाओं को ही अपने सिद्धान्त और विश्वजनीन बंधु-प्रेम से आकर्षित किया । उन्होंने उन लज्जा और संकोचशील, सुकुमारी और सजावट-प्रिय गुजराती बहनों को एक खासी 'मजदूर-सेना' के रूप में बदल दिया । पर फौजी कानून की घटनाओं के बाद वीर और युद्ध-प्रिय पंजाब ने अपनी पुत्रियों के द्वारा महात्माजी की पुकार का सबसे श्रेष्ठ जवाब दिया । बंगाल ने भी अपने कर्तव्य का पालन किया और अब तो

उनके जादू से सारे भारत की स्त्रियों में राष्ट्रीय चैतन्य और उत्सुकता आ गई है। हां, यह सच है कि वह चैतन्य और उत्सुकता सब जगह एकसी नहीं है।

पर महात्मा गांधी के राजनैतिक क्षेत्र में उतरने के पहले भी भारत में देश के लिए काम करनेवाली स्त्रियों का अभाव न था। राजनैतिक क्षेत्र भी उनसे सूना नहीं था। हां, उनकी संख्या उंगली पर गिनने लायक ही थी और राजनीति में तो उनके नाम पर शायद एक भी उंगली नहीं उठ सकती थी। पर महात्माजी के आते ही उनकी संख्या सैकडों से बढ गई। महात्मा गांधी-कालीन राष्ट्रीय जीवन के क्षितिज में तो स्त्रियों का प्रकाश बहुत अधिक हो गया। महात्माजी के नेतृत्व में राष्ट्रीयता की गंगा का वेग विशेष रूप से तेज हो गया। इस गंगा-प्रवाह में भारत की स्त्रियां भी उतने ही आनंद, गौरव और साहस के साथ स्नान कर रही हैं जितने कि पुरुष। और भारत के पुनरुत्थान के कार्यक्रम में चरखे को इतना महत्त्वपूर्ण स्थान देकर तो महात्माजी ने इसमें स्त्रियों का शरीक होना अनिवार्य बना दिया। महात्माजी ने बड़े से बड़े जो काम किये हैं उनमें यह भी एक है।

मुक्त हास्य

आज महात्माजी की जयन्ति है। आज वे अपने जीवन के ५४ वें वर्ष में पदार्पण करेंगे। आज भारत भर में अनेक लोग उनकी जयन्ति का उत्सव मना रहे हैं। जिनके जीवन-रहस्य का उदय हमारे हृदय में हो जाता है उसीकी जयन्ति हम मनाते हैं। मनुष्य-जाति के शत्रु पर जिसने विजय प्राप्त कर ली है उसकी जयन्ति का उत्सव हम मनाते हैं।

महात्माजी के धार्मिक, राजनैतिक अथवा सामाजिक विचारों से कितने ही लोगों का विरोध है। पर यह स्वीकार करने में तो किसी को उजर नहीं हो सकता कि महात्माजी का ५३ साल का यह जीवन अलौकिक जरूर है। इन ५३ साल में उन्होंने एक भी आदमी से शत्रुता नहीं की। केवल यही एक बात उनके जीवन की अलौकिकता सिद्ध करने के लिए काफी है।

आजतक उनका सारा जीवन छोटे-बड़े संग्रामों में लड़ते लड़ते ही बीता है। ऐसा होते हुए भी उन्होंने एक भी आदमी के साथ बैर-भाव नहीं रक्खा। यह कोई साधारण पुरुषार्थ नहीं।

दक्षिण-आफ्रिका में एक बार उनसे विरुद्ध विचार रखनेवाले कुछ लोगों का शिष्ट-मण्डल जनरल स्मट्स से मिलने के लिए गया था। पर किसीके पास ऐसा भाषा-ज्ञान अथवा कुशलता न थी जिससे वे जनरल स्मट्स के दिल पर अपने कहने का ठीक असर डाल सकते। वे महात्माजी के पास आये और कहा कि आप हमारा इतना काम कर दीजिए। महात्माजी ने उसे कबूल किया और उसे पूरा करके उनको पूरी तरह से संतुष्ट कर दिया। इसमें महात्माजी की शुद्ध-हृदयता और अजात-शत्रुता जितनी तारीफ करने योग्य है उतनी ही अपने विरोधी के गुणों की कदर करके उसके विश्वास पर अपने स्वार्थ को छोडनेवाले उन भाइयों की श्रद्धा भी प्रशंसनीय है। अपनी हार्दिक शुद्धता से महात्माजी ने कितने ही शत्रुओं को मित्र बना लिया है, कितने ही को सज्जनता का पाठ पढाया है और जहां द्वेष, मत्सर और धोखेबाजी का राज्य था वहां धर्मयुद्ध के नियमों को आदर दिलाया है।

आजकल की दुनिया में महात्माजी की यह श्रद्धा तो बिल्कुल अलौकिक है 'कि जबतक हम धर्म के मार्ग पर हैं तबतक हमारी कभी किसी प्रकार हानि नहीं हो सकती।' जब लोग उनसे यह पूछते होंगे कि धर्म की राह पर-सत्य और अहिंसा के रास्ते चलते हुए अगर आपको स्वराज्य न मिले तो आप धर्म को छोड देंगे या स्वराज्य को, तब उन्हें यह सवाल सुनकर कितना दुःख होता होगा-उनके हृदय को कितना भारी आघात पहुंचता होगा? उनकी तो यह दृढ श्रद्धा है कि अगर स्वराज्य कोई इष्ट वस्तु हो, भद्र वस्तु हो तो वह धर्माचरण से बिना विलंब तुरन्त अवश्य ही मिलनी चाहिए। और आजतक उन्होंने अपनी उस श्रद्धा को अपनी शक्तिभर-मनुष्य की शक्ति में जहां तक है,—मूर्तस्वरूप भी दिया है। आज भले सरकार ने उन्हें जेल में ठूस रक्खा है। इस से शायद कितने ही लोगों की श्रद्धा उनके मार्ग से हट गई हो; पर उन्हें तो अब भी देश पर अचल श्रद्धा है।

'मनुष्य प्राणी चाहे कितने ही अन्याय और पाप कर्म करे, वह है आखिर मनुष्य ही। अन्त को उसे धर्म का रास्ता अवश्य सूझता है।' महात्माजी की यह अमर श्रद्धा है। इसी श्रद्धा के बल पर वे सब कुछ सहन कर रहे हैं और दूसरों को श्रद्धान्वित करते जा रहे हैं। उनका वह बालकों के जैसा निर्मल मुक्त हास्य ही उनकी उस श्रद्धा का प्रतिबिम्ब है। लोकवार्ताओं में हम पढते हैं कि पवित्र पुरुषों के हास्य से पुष्प और मोती बरसते हैं। यह बात महात्माजी के हास्य पर बिलकुल चरितार्थ होती है।

किसीके पास विश्वविजयी खड्ग होता है, किसीके पास विश्वविमोहिनी चतुराई होती है, किसीके पास विश्ववशी रूप होता है और किसीके पास विश्वभयकरी सत्ता होती है। महात्माजी के पास यह कुछ भी नहीं है। उनके पास तो केवल एक विश्वप्रेमी हास्य है। उस अकेले हास्य ही में उपर्युक्त सब वस्तुयें समा गई है। इस पवित्र हास्य ने गुरुजनों को वश कर लिया है, यक्षों को वशीभूत कर लिया है; चोर डाकू और खूनी लोगों को समाज का हितेच्छु बना दिया है; धूर्तों को लज्जित किया है; दीर्घसूत्रियों को उद्यमी बना दिया है, दुखियों की आत्मा को संतोष दिया है, परकीयों को आत्मीय बना लिया है, बिगडों को सुधारा है, जिनके आपसमें फूट पड गई थी उन्हें एक कर दिया है और कट्टर विरोधियों को हार्दिक मित्र बना लिया है।

पर इस हास्य में ऐसा कौनसा जादू है? इस हास्य में ऐसी कौनसी रसायन-माधरी है जिसमें ये सब शक्तियां एकत्र हो गई हैं? इस हास्य में कृत्रिमता नहीं, स्वार्थ नहीं, अहंकार भी नहीं। उसमें सत्य है, अहिंसा है, विश्वप्रेम है, आत्मौपम्य है। उसमें कारुण्य है, परवृत्ति-प्रवेश है, अमृत-संजीवनी है। यही जादू उसमें है। यही उनकी सत्ता है, यही उनकी मोहिनी शक्ति है। गंगा का स्वच्छ स्रोत जिस प्रकार अविच्छिन्न बहता है और जरा ही देर बाद कभी गंभीर और कभी तरंगित हो जाता है और कभी कभी शुभ्र सुधाधवल फेन से खलखल हंस देता है उसी प्रकार महात्माजी की पवित्र मूर्ति अनेक वृत्तियों में एक ही विश्व-प्रेम को प्रकट करती है।

तेजस्वी दीपक की प्रभा तो सब दूर फैलती है। पर उस प्रकाश को ग्रहण करके प्रकाशित होने की शक्ति केवल निर्मल रत्नों में ही होती है। उसी प्रकार महात्माजी के अलौकिक तेज का प्रभाव तो पवित्र हृदयों पर सबसे अधिक होगा और उससे विश्वपावनी शक्ति प्रकट होगी। ऐसे पुरुषों के जीवन में उनके रोम रोम से स्वराज्य व्यक्त होगा। उन्हें न तो स्वराज्य मांगने की जरूरत है और न प्राप्त करने ही की।

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

कार्य-समिति ने यह आज्ञा प्रकाशित की है कि २ अक्तूबर को महात्मा गांधी का जन्मोत्सव विशेष धूमधाम से मनाया जाय।

मेरा अहोभाग्य

श्री सम्पादकजी,

'महात्माजी की तरफ मैं क्यों और किसतरह खिंचता गया' इस विषय पर आपने 'हिन्दी-नवजीवन' के 'जयन्ति-अंक' के लिए मुझसे एक लेख चाहा है। सो परिचय की कुछ बातें नीचे लिखता हूं।

× × ×

हृदय के सब भाव लेख के द्वारा व्यक्त नहीं किये जा सकते। हम तो महात्माजी के जन्म-दिन का उत्सव कर रहे हैं और वे स्वयं यरवडा (पूना) में सब तरह के अपमान और कष्ट सहकर स्वराज्य का जप करते हुए रुई धुनक रहे हैं और सूत कात रहे हैं। यह हालत भारतवर्ष के इतिहास में जितनी अपूर्व है उतनी ही हमारे लिए असह्य है! महात्माजी के प्रति अगर मेरा खाली आदरभाव ही रहता तो उनके विषय में मैं कुछ विशेष लिख सकता। पर महात्माजी ने मुझे इस तरह से अपनाया है कि उनके प्रति मेरे मन में पिता और गुरु के समान ही भाव पैदा होता है।

बचपन से ही सार्वजनिक जीवन का प्रेम होने के कारण बहुत से सरकारी प्रतिष्ठित कर्मचारी तथा देश के प्रख्यात नेतागण से मेरा परिचय हुआ। पूज्य लोकमान्य तिलक महाराज और भारत-भूषण मालवीयजी जैसे महान् नरों का परिचय मेरे लिए लाभदायक हुआ। लेकिन महात्माजी ने तो मेरी मनोभूमिका ही बदल दी। (मेरे मन में कई बार त्याग के विचार पैदा हुआ करते थे। उन्हें कार्य-रूप में लाने का रास्ता बता दिया।) उनका निर्मल चारित्र्य, शीतल तेजस्विता, गरीबों की कलक, मनुष्य-मात्र से सत्य-व्यवहार, अनुपम प्रेम और धर्म-श्रद्धा देखकर ही मेरा मन उनकी ओर खिंचता गया और मेरे जीवन की त्रुटियां मुझे प्रतीत होने लगीं एवं यह महत्वाकांक्षा बढ़ने लगी कि इस जीवन में किस तरह महात्माजी के सहवास के योग्य बन सकूं।

महात्माजी के प्रति मेरे मन में प्रेम-श्रद्धा तो अखबारों में उनके आफ्रिका के कामों को पढ कर ही हो गई थी। परन्तु जब वे कोचरब (अहमदाबाद) में आश्रम स्थापित कर के रहने लगे और एक-दो बार मैंने वहां जा कर उनका रहन-सहन, व्यवहार अपनी आंखों से देख लिया तब वह प्रेम-श्रद्धा बढ़ती गई। फिर १९१५ ई० में जब वे बम्बई-कांग्रेस में आये थे तब मारवाडी विद्यालय में ही ठहराये गये थे। उस समय भी उनके परिचय में आने का विशेष अवसर मुझे मिला। उसके बाद कई बार मैं आश्रम में गया। १९१७ में कलकत्ता-कांग्रेस के समय तो महात्माजी वहीं ठहरे थे जहां मेरी तरफ से रहने आदि का प्रबन्ध किया गया था। उस समय उनकी सत्संगति का बहुत लाभ मिला। उसी समय मुझे सरकार की तरफ से राय-बहादुरी की पदवी मिली थी। सुबह होते ही मैंने महात्माजी से कृष्ण-गोशाला जाते हुए रास्ते में पदवी का हाल सुनाया। पहले तो उन्होंने पूछा-तुम्हें पदवी किस तरह मिली? मैंने अपनी समझ के अनुसार कारण बताये। फिर मैंने पूछा-आपकी क्या राय है, पदवी स्वीकार करूं या नहीं? उन्होंने जवाब दिया—जहांतक यह पदवी देश-सेवा में और अपने सिद्धान्तों की रक्षा में मदद देती हो वहांतक स्वीकार करने में हर्ज नहीं। परन्तु जिस दिन इसके कारण देश-सेवा में बाधा आ पडे अथवा सिद्धान्त को हानि पहुंचे उसी रोज इसका मोह छोड देना चाहिए। इसी विधान के अनुसार मैंने मौका आने पर अपनी पदवी का त्याग कर दिया।

× ×

मेरी राय में आज भारत में गरीबों के साथ यदि कोई एकजीव हुआ है तो वह महात्माजी हैं। महात्माजी मानों कारुण्य की मूर्ति हैं। गरीबों के कष्ट दूर करने से अमीरों के साथ भी अन्याय न होने पावे, और भिन्न भिन्न वर्गों के बीच दुर्भाव तनिक भी पैदा न हो-इसकी वे हमेशा चिन्ता रखते हैं। इसीलिए भारतवर्ष के सब धर्म-पन्थ और वर्ग के लोग उनको आत्मीय की दृष्टि से देखते हैं। चातुर्वर्ण्य का तो उनमें मानों सम्मेलन ही हुआ है। भारत वर्ष पर उनका जो असीम प्रेम है उसके लायक यदि हम भारतवासी आजकल बनें तो भारत का उद्धार अवश्य हो जाय।

मेरी समझ में तो महात्माजी का सहवास जिसने किया हो, या उनके तत्वों को समझने की कोशिश की हो, वह कभी निरुत्साही नहीं हो सकता। वह हमेशा उत्साह-पूर्वक अपना कर्तव्य-पालन करता रहेगा। क्योंकि देश की स्थिति के सुधरने में-स्वराज्य मिलने में चाहे भले ही थोडा विलम्ब हो; परन्तु जो व्यक्ति महात्माजी के बताये मार्ग से कार्य करता रहेगा, मुझे विश्वास है कि वह अपनी निजी उन्नति तो जरूर कर लेगा अर्थात् अपने लिए तो स्वराज्य वह अवश्य पा सकता है।

जिस दिन मैं अपने प्रति महात्माजी के पुत्र-वात्सल्य के योग्य हो सकूंगा वही समय मेरे जीवन के लिए धन्य होगा। महात्माजी की अनुपम दया से आज मैं कम से कम अपनी कमजोरियों को थोडा-बहुत तो पहचानने लग गया हूं।

अब अन्त में मेरी यही प्रार्थना है कि महात्माजी की सब आज्ञाओं का पालन अगर हम अपनी कमजोरी से न कर सकते हों तो कमसे कम खादी-प्रचार में जो धर्म भरा हुआ है उसे तो हम भले प्रकार समझ लें और उसका प्रचार करके भी अपने कर्तव्य का पालन करें एवं महात्माजी के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करें।

जमनालाल बजाज

पूज्य बापूजी

दया करणें जें पुत्रासी। तेचि दासा आणि दासी।

तुका म्हणे सांगूं किति। तोचि भगवंताची मूर्ति॥*

जिस महा-पुरुष को कितने ही लोग महात्मा-संत-तपस्वी इत्यादि विशेषणों से सम्बोधन करते हैं, जिसके उदारचरित, अपार प्रेम, सत्य-निष्ठा, और अहिंसोपदेश के केवल समाचार अखबारों में पढ कर विदेशी लोग उसकी तुलना बुद्ध अथवा ईसा के साथ करने के लिए लालायित रहते हैं, उस राजकैदी को 'बापूजी' अर्थात् पिताजी के मधुर और पवित्र संबंध-दर्शक नाम से संबोधन करने का सद्भाग्य हम आश्रम-वासियों को प्राप्त है। पूज्य बापूजी के आश्रम में कितने ही लोग रहते हैं, और रह चुके हैं। उनके प्रति भिन्न भिन्न भावों से प्रेरित हो कर इन्हें पहले पहल आश्रमवासी होने की इच्छा हुई होगी। पर मैं समझता हूं कि थोडे ही समय में ये सब भाव गौण हो कर बापूजी और अपने बीच पिता-पुत्र का सम्बन्ध दृढ कर लेने में ही आश्रम-वासियों को आनन्द और अभिमान मालूम होता होगा।

मातृ-वियोगी बालक को अपने हृदय की मृदुलता से माता की कमी न मालूम होने देने वाले और फिर भी ऐहिक तथा पारमार्थिक जीवन का पाथेय देने के लिए अपने पौरुष को कायम रखने वाले, साधुता की मूर्ति-रूप पिता का दुलारा पुत्र होने का अमूल्य लाभ जिसे बहुत समय तक मिला है वह बापूजी और आश्रम-वासियों के परस्पर पवित्र संबंध को जान सकेगा।

*भावार्थ—जो अपने दास-दासियों पर भी पुत्रों की तरह प्रेम करता है उसे भगवान् का ही रूप समझना चाहिए।

अनेकानेक स्थानों से यात्रा कर के जब बापूजी आश्रम में आते तब सबसे पहले वे आश्रमवासियों के आरोग्य के विषय में पूछ-तांछ करते। यदि किसी के बीमार होने का समाचार मिलता तो तुरन्त वहां पहुंचे ही समझिए। सुबाह-शाम दोनों बार प्रार्थना के समय बीमार लोगों की तबीयत के हाल खोज खोज कर गौर के साथ पूछते। यदि किसीको आश्रम में बीमार छोड़ कर बाहर जाते तो वहांसे भी उसकी तबीयत के समाचार बराबर और बारबार पूछते। उसकी सेवा-शुश्रूषा के संबंध में वे इतनी चिन्ता रखते कि उसे यह मालूम ही नहीं होने पाता कि मैं अपने माता-पिता आदि से दूर हूं। यदि बापूजी उसके पास बैठे हों तब तो रोगी को ऐसा ही मालूम होता कि मानों मैं अपनी माता की गोद में सिर रख कर लेटा हुआ हूं। चाहे छोटा बच्चा हो चाहे बड़ा आदमी हो, चाहे नया आया हुआ हो चाहे अनेक वर्षों का परिचित हो, जो आश्रम में आ कर रहा उसपर बापूजी का वात्सल्य-प्रेम हुए बिना रहता ही नहीं। सारे आश्रम में इनके लिए खास या खानगी कमरा कोई नहीं। जिस जगह बैठ कर वे काम करते उस जगह जाते हुए किसी को रोक-टोक नहीं—न कोई चौकी पहरा ही वहां रहता है। जब कोई उनके साथ एकान्त में बात करना चाहता तब किसी दूसरे के कमरे में जाना पड़ता, पर उनका अपना कमरा तो मानों सार्वजनिक भवन बना रहता। छोटे बालक तो जा कर सीधे उनकी गोदी में ही बैठ जाते।

बापूजी के गिरफ्तार होने के कोई चार मास पहले एक आश्रम वासी को एक खेत में झोंपडी बना कर एकान्तवास करने की इच्छा हुई। बापूजी ने उसे समझाया कि ऐसा न करो, पर वह न समझा। अन्त को उन्होंने इजाजत दे दी। पर शर्त रक्खी—मैं जब चाहूं तब मिल सकूं। उस भाई को एकान्त-सेवन की इच्छा इतनी तीव्र हो गई थी कि अत्यन्त संकोच के साथ उसने उसे स्वीकार किया। उसने यह भी सोचा कि ये ठहरे बहु-व्यवसायी पुरुष। ये कहाँ बार बार मिलने आ सकेंगे? पर जबतक उस भाई ने उनसे मिलने की छुट्टी रक्खी तबतक कभी ऐसा नहीं हुआ कि बापूजी आश्रम में रहे हों और उससे मिलने न गये हों। चाहे अपना मौन-दिन हो, उपवास-दिन हो, कितने ही लोग दूर से आकर बैठे हों, सब बातों को एक ओर रख कर लकडी के सहारे अपने इस पुत्र से मिलने के लिए चल देते। एक बार अनेक कार्यों में निमग्न रहने के कारण ११-१२ बजे तक वे न जा पाये। न तो स्नान ही कर पाये थे न भोजन ही। पर फिर भी पहले वहां जा कर अपने पुत्र से मिले और फिर आकर भोजन किया। जब मिलकर आते तब उन्हें ऐसा आनन्द मालूम होता मानों कोई महान् कार्य सफल हुआ हो। प्रार्थना के स्थानपर इस भाई के विषय में सब आश्रमवासियों को समाचार सुनाते। "उसे नींद अच्छी तरह पड़ी थी, उसका चित्त शान्त था।" ऐसी ऐसी बातें कहकर एक पुत्र-दीवानी माता के वात्सल्य का परिचय देते। यात्रा से लौटते ही पहले उसके समाचार पूछते। जेल में जो लोग उनसे मिलने के लिए गये थे उनसे उसकी खबर सबसे पहले पूछना वे भूले नहीं। महासभा की धूमधाम के समय आप 'खादी नगर' में रहते थे। और उस भाई की इच्छा के अनुसार मिलना बन्द रक्खा था। तो भी वे उसके हाल चाल पूछना भूलते नहीं थे। बारडोली में सविनय भंग की शुरुआत करने के लिए गये थे। अनेक महत्वपूर्ण कार्यों में जी लगा हुआ था। महासभा-समिति की बैठक की गड़बडी थी। उन्हें खबर लगी कि उस आश्रमवासी की भाभी कहीं नजदीक ही है। बस तुरन्त ही उसके देवर की खबर देने के लिए उत्सुक हो गये। मानों सारा रचनात्मक कार्यक्रम उस भाई के आरोग्य और मानसिक शान्ति पर ही अवलम्बित हो, इस तरह सब बातों को अलग रखकर उसकी भाभी को बुलाया और समाचार सुनाने लगे।

क्या कोई जान सकता है कि ऐसे पुत्र-प्रेमी पिता के हृदय में एक साम्राज्य को, यदि न सीजे तो जलाकर भस्म कर देने वाली आग धधक रही है? पर जिसके हृदय में प्रेम की साबरमती बह रही है वह केवल एक कुटुम्ब को अथवा संस्थावासियों को ही तृप्त कर के किस प्रकार रुक सकती है? वह तो अपनी बाढ़ में सब तरह की मलिनताओं को खींच कर सारे देश को तृप्त कर के ही विराम पा सकती है।

एक आश्रमवासी

महात्मा गांधी और स्वराज्य

देश के कतिपय हितैषी जो असहयोग-आन्दोलन की प्रगति से असन्तुष्ट हैं, कहा करते हैं कि जिस स्वराज्य की कल्पना महात्मा गांधी करते हैं वह देश के लिए हितकर नहीं है। क्योंकि उसमें रेल नहीं, कल-कारखाने नहीं, और न डाक्टर-वकील ही रहेंगे। अपनी पुष्टि में वे महात्मा गांधी की 'हिन्द-स्वराज्य' नामक पुस्तक में से, जो उन्होंने दक्षिण आफ्रिका में लिखी थी, कुछ अंश उद्धृत करते हैं और लोगों में यह भाव पैदा करना चाहते हैं कि महात्मा गांधी एक पुरानी लकीर के फकीर हैं और भारतवर्ष को उन्नति के पथ से हटाकर उसे फिर भी एक असभ्य अवस्था में गिरा देना चाहते हैं। इस विषय पर विचार करते हुए महात्माजी ने स्वयं कई बार लिख दिया है कि यद्यपि मैं 'हिन्द-स्वराज्य' में लिखी बातों को अब भी सत्य और ग्राह्य मानता हूं, तथापि अभी भारतवर्ष उसके लिए तैयार नहीं है। और इसलिए इस समय वे भारतवर्ष में ऐसा स्वराज्य चाहते हैं जिसमें ये सब रहेंगे तो; पर वे प्रजा और जनता के सुख और सेवा के लिए रहेंगे न कि उसकी आत्मिक, नैतिक और आर्थिक अवनति के साधन बनकर। यदि रेल रहेगी तो इसलिए नहीं कि यहां के धन को ढोकर दूसरे देशों को धनी बनावे और इसे गरीब बनावे—इसलिए नहीं कि भारतवर्ष को अंगरेजी सल्तनत के पंजे में जकड बन्द कर रखने के लिए फौज को जहां जरूरत हो वहां कम से कम समय में पहुंचाने के काम में लाई जाय; बल्कि इसलिए कि यहां की तिजारत बढे, यहां का धन-वैभव अधिक हो और लोगों को चलने-फिरने का आराम रहे। इसी प्रकार कल-कारखाने भी इसलिए नहीं होंगे कि कुछ लोग तो बहुत धनी हो जायं और अधिकांश जनता भरपेट भोजन से भी महरूम रहे। डाक्टर रहें तो इसलिए नहीं कि लोगों के चरित्र बिगाडने में उनकी विद्या का उपयोग हो, बल्कि इसलिए कि आकस्मिक दुःखों से उनकी हिफाजत और बचाव हो। वकील लोग आपसमें लडाने के साधन न बनकर धर्मशास्त्र के सच्चे ज्ञाता हों और धर्मशास्त्र के अनुसार लोगों के स्वत्वों का सच्चा फैसला करें। आज की तरह डाक्टरी और वकालत पेशा न समझे जायं और पुरानी रीति फिर भी स्थापित हो, जिसमें ये देश-हित के लिए समाज की ओर से नियुक्त किये जायंगे। इसलिए यह कहा जा सकता है कि महात्माजी आज की परिस्थिति को एकबारगी उलट नहीं देना चाहते; पर उसमें सुधार अवश्य चाहते हैं। और कौन भारतवासी है जो इन सुधारों को नहीं चाहता?

एक दूसरे दल के लोग यह कहते हैं कि महात्मा गांधी का ध्येय स्वराज्य नहीं है। वे तो वास्तव में अपने अहिंसा-मत का प्रचार चाहते हैं और भारत को उस धर्म-नीति के प्रचार के काम में ला रहे हैं। वे स्वराज्य को जनता के सामने रखकर उसे भुलावा देकर अपने ध्येय की ओर ले जा रहे हैं जो स्वराज्य से

उतना ही दूर है जितना कि आज की परिस्थिति। अपनी पुष्टि में वे यह कहते हैं कि आजतक किसी देश ने अहिंसा-द्वारा स्वराज्य प्राप्त नहीं किया है। धर्म और राजनीति में बहुत भेद है। और धर्म की बातों को राजनीति में मिलाकर महात्मा गांधी ने देश को बहुत हानि पहुंचाई है। जब महाभारत के समय में स्वयं श्री कृष्ण भगवान् भी सत्य और अहिंसा का पालन नहीं कर सके तब क्या संभव है कि आज के भारतवासी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध इन सिद्धान्तों के अनुसार काम करके सफलता प्राप्त कर सकेंगे?

यदि मान भी लिया जाय कि महात्मा गांधी स्वराज्य नहीं चाहते और संसार में केवल अहिंसा का प्रचार ही उनका ध्येय है, तोभी यह स्पष्ट है कि वे भारतवर्ष में अहिंसा के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करके ही दुनिया को दिखाना चाहते हैं कि निहत्थे हिन्दुस्थानी भी बलवान ब्रिटिश गवर्न्टमेंट के विरुद्ध खड़े हो सकते हैं और उसकी मरजी के खिलाफ भी स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। यदि वे सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के अनुसार काम करके यह दिखा सकेंगे तो यह सहज ही जान पड़ेगा कि इसका कितना प्रभाव पृथ्वी की भिन्न भिन्न जातियों पर पड़ेगा। यह भी मानी हुई बात है कि आज पृथ्वी भर की जनता लड़ाई और मारकाट से, फौज और जंगी तथा हवाई जहाजों की मार से दबी जा रही है। और वह उस दिन की बाट जोह रही है जब यह बोझ उसके सिर से हटने का कोई उचित और सम्यक् प्रबंध हो सके। जिस दिन भारत अहिंसात्मक युद्ध में सफलता प्राप्त कर लेगा उसी दिन उनकी आंखें उसकी ओर फिरेंगी और वही अहिंसा के प्रचार का सबसे बड़ा और सबसे जोरदार साधन होगा। इसलिए महात्मा गांधी का ध्येय यदि अहिंसा-प्रचार भी मान लिया जाय और हिन्द-स्वराज्य केवल उसका एक साधन-मात्र ही मान लिया जाय तोभी यह स्पष्ट है कि इस समय साधन ध्येय से भी प्यारा होना चाहिए; क्योंकि उस साधन की सफलता की प्राप्ति पर ही ध्येय की प्राप्ति निर्भर है।

हम मानव-जीवन को कई अंशों में नहीं बांट सकते। मनुष्य और उसकी प्रकृति का विन्यास करना असम्भव है। वह बहुत प्रकृतियों और भावों का समन्वय है। और धर्म को राजनीति से अलग रखना असम्भव नहीं तो असंगत अवश्य है। कौन कह सकता है कि इस विभेदीकरण के फलस्वरूप आज पृथ्वी की सब जातियों के बीच भेदभाव नहीं फैल रहा है? कौन कह सकता है कि आज पूंजी और श्रम के बीच के झगड़े, राजा और प्रजा के बीच के झगड़े, जैसा भारतवर्ष में देखा जाता है—एक जाति का अन्य जातियों पर अधिकार जमाने का प्रयत्न, ये सब उसीके फल नहीं हैं? इसलिए जबतक हम मनुष्य को फिर कर्तव्य-पथ पर अर्थात् धर्म-पथ पर न ला सकेंगे, संसार के कष्ट दूर न हो सकेंगे। इसको देखना, और उसे समझकर उसका उपाय करना एक महात्मा का ही उद्देश हो सकता था और यह आज भारत का गौरव है कि उसे फिर भी संसार के उद्धार के लिए एक ऐसे महात्मा को अपने गोद में पैदा करके संसार को समर्पित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

राजेन्द्रप्रसाद

(सभापति बिहार प्रान्तीय समिति)

आश्रम-भजनावलि

जो लोग मंगवाना चाहते हैं उन्हें मूल्य ॥।) और डाकखर्च आदि ।) मिलाकर कुल १) मनीआर्डर द्वारा पेशगी भेजना चाहिए। २५ प्रतियां एक साथ मंगाने से डाकखर्च नहीं लिया जायगा। दाम पेशगी।

व्यवस्थापक हिन्दी नवजीवन

महात्माजी का जीवन-सन्देश

कष्ट-सहन के लिए सहानुभूति कहां नहीं होती? पर जब कोई व्यक्ति किसी उदात्त ध्येय की सिद्धि के लिए स्वेच्छा-पूर्वक कष्ट-सहन करता है तब तो उसके प्रति हरएक मनुष्य के हृदय में श्रद्धा और भक्ति पैदा हो जाती है। आज महात्माजी का खयाल हमारे हृदय में आते ही हमारे विचार खुद अपने ही जीवन की ओर झुक जाते हैं। महात्माजी आज प्रकाशमय ज्योति की तरह हैं जो हमारे मार्ग को आलोकित करती है और खतरे से हमें सावधान कर देती है। उनके आसपास अनुभव, कष्ट-सहन और त्याग का जो तेजोवलय है वह उन्हें दीप्त कर रहा है और वही प्रकाश वे संसार को दे रहे हैं। यह सोचना व्यर्थ है कि उनके सिर पर कितना भार है। क्या मयूर को अपना सुन्दर कलाप भार रूप मालूम होता है? महात्माजी के इस कष्ट-सहन-रूपी कलाप के सौंदर्य का रहस्य जिस हद तक हम समझेंगे उसी हद तक हम उनके जीवन-सन्देश को समझ पावेंगे। उनका जीवन मानों एक महान् खुला ग्रंथ ही है। उसमें बड़े बड़े अक्षरों में लिखा है—"जीवन को बाहरी आडम्बर-इन्द्रजाल से मुक्त कर दो। तुम्हें शुद्ध आत्मिक जीवन के स्वरूप का ज्ञान हो जायगा। उसका उद्देश बहुत गंभीर-महत्त्वपूर्ण है। और उसकी सिद्धि के लिए आत्मिक संयम ही की आवश्यकता है। भोगमय जीवन आत्मा को गिरा देता है। इस आत्मप्रतीति का ही अर्थ आत्म-त्याग है। जिनका यह कहना है कि इसका मतलब तो हुआ 'जीवन से उदासीन रहना' तो वे भूल करते हैं। इसका परिणाम अकर्मण्यता नहीं, बल्कि निष्काम कर्म है। यहां आत्मा अपने कर्म-क्षेत्र में शारीरिक और भौतिक हानियों की पर्वा नहीं करती। जब मनुष्य अपने आत्म-तत्त्व को पहचान जाता है तब उसका शरीर उसका आज्ञापालक सेवक हो जाता है। वह अपने अनुचित और अत्याचारपूर्ण प्रभु-पद को छोड़ देता है। यही वह रहस्य है जिसके द्वारा शारीरिक यंत्रणायें आत्मिक विजय के रूप में परिणत हो जाती हैं।

वल्लभभाई जवेरभाई पटेल

(सभापति प्रान्तिक-समिति गुजरात)

तू आया!

भूला था जग, सोये थे जन, विस्मृति-निद्रा मादक थी।
ज्ञान अन्ध था, तर्क दुष्ट था, हृदय-मूढ़ता घातक थी।
सत्य बंद था, दम्भ मस्त था, माया की छाई माया।
कर्म-प्रेरित विश्व-वि **मोहन, आत्म-तेज** ले तू आया ॥ १ ॥

धर्म पंगु था, वर्ण हीन था, नास्तिकता का था सत्कार।
प्रेम-धर्म था हुआ पराजित, पशुबल का था जयजयकार।
ईश्वर सत्ता का सेवक था, शैतानी वैभव छाया।
प्रेरक ताली दी प्रकृती ने **सत्य-शक्ति** ले तू आया ॥ २ ॥

प्रकृति क्षुब्ध थी, विकृति मुग्ध थी, संस्कृति की अति दुर्गति थी।
रक्त-सिक्त रणचण्डी की चहुंओर चमकती दुष्कृति थी।
नर-हृदयों ने क्रूर, हिंस्र, भय-भावों को था अपनाया।
नर को नारायण करने हित **दया-धर्म** ले तू आया ॥ ३ ॥

× × ×

पूरब ने **गौतम** को पाया, पश्चिम ने **ईसा** देखा।
असुर और शैतान-प्रजा ने मूर्तिमान **यम** को देखा।
भारत ने अपना **उद्धारक**, जाग्रत जग ने **गुरु** पाया।
गगन-गिरा ने जय जय गाया—"तू आया है, तू आया!" ॥ ४ ॥

हरिभाऊ उपाध्याय

सच्चा उत्सव

गांधीजी के जन्मदिन के अवसर पर मेरा हृदय सब से पहले गुरु का बाग के घायल वीर अकालियों की तरफ दौड़ जाता है। इस मौके पर २५ हजार जेलवासी भाइयों की याद भी ताजी हो जाती है। इस तपस्या पर जब मैं विचार करने लगती हूं तो भरोसा होने लगता है कि हमारी विजय के दिन दूर नहीं हैं। सिक्ख जैसे बलिष्ठ और शस्त्रधारी लोग जब ऐसी उत्तेजना और मार के पड़ते हुए, अहिंसा को अपने जीवन में उतार कर दिखा सकते हैं तब हमारी विजय में क्या सन्देह है ? क्या खादी को धारण करना इससे अधिक कठिन और कष्टसाध्य है ? फिर भी जब मैं खादी के प्रचार और अहिंसा के पालन पर कभी कभी किसी को शंका करते हुए देखती हूं तो मुझे आश्चर्य होता है। मेरे मन में आता है कि क्या हमारा दिल और दिमाग इतना कमजोर हो गया है कि जो बात हमारे जीवन की जड़ है उसीको हम नहीं अपना सकते ? भारत के हर कुटुम्ब में मुझे तो अहिंसा के ही सिद्धान्त का पालन होता हुआ दिखाई देता है। प्रायः हर घर में मुझे स्वदेशी बातों का प्यार दिखाई देता है। जरूरत है सिर्फ उनके तात्पर्य और राष्ट्रीय रूप को समझ लेने की। यही बात गांधीजी हिन्दुस्तान को बता रहे हैं। इसमें तो कोई शक नहीं कि बिना अहिंसा और खादी के न स्वराज्य मिल सकता है, न टिक सकता है। और बिना स्वराज्य के खिलाफत और पंजाब के अत्याचारों से हम मुक्त नहीं हो सकते। इसी स्वराज्य के लिए गांधीजी जेल में हैं। इसी स्वराज्य के लिए अली-भाई कैद हैं। इसी स्वराज्य के लिए लालाजी कैदी बने हैं। इसी स्वराज्य में गांधीजी के जन्मदिन का महत्व है। यदि गांधीजी ने आपकी कुछ सेवा की है, यदि उनके साथ आपका सच्चा प्रेम है तो उनके जन्मदिन पर यह प्रतिज्ञा कीजिए कि 'आज से मैं विदेशी कपड़े को न छुऊंगा, खुद ही सूत कात कर अथवा अपने ही घर से सूत कता कर उसका कपड़ा करघे पर बुनवा कर वही पहनूंगा।' निश्चय कीजिए कि 'घोर उत्तेजना के मौके पर भी मैं शान्त रहूंगा और दूसरे को शान्त रखने का प्रयत्न करूंगा'। मैंने देखा है कि हिन्दुस्तान के लोग गांधीजी के साथ प्रेम तो बहुत दिखाते हैं पर उनके बताये रास्ते पर चलने में कितने ही लोग हिचकिचाते हैं। उन्हें निःशंक होकर स्वराज्य के रास्ते में कदम बढ़ाना चाहिए। हमको याद रखना चाहिए कि स्वराज्य अपने ही बल पर मिलता है। कौन्सिल में जाने का आग्रह ठीक नहीं है। उसमें देश की शक्ति मारी जाती है। गांधीजी के जेल चले जाने से हमें घबरा कर अपना रास्ता न छोड़ देना चाहिए। आफ्रिका में गांधीजी को तीन बार जेल जाना पड़ा था। पर उनके साथी न तो थके, न हारे। अन्त को विजय उनके पास आई। आज गांधीजी के तथा हजारों भाइयों के जेल में रहने का मेरा रंज ताजा हो रहा है। पर मैं इसी आशा पर अपने मन को धीरज और दिलासा दे रही हूं कि मेरे हिन्दू-मुसलमान भाई-बहन अहिंसा और खादी का रहस्य समझते जा रहे हैं और वे अपने निश्चय और पुरुषार्थ के बल पर स्वराज्य प्राप्त कर के सबको शीघ्र ही जेल से छुड़ा लावेंगे। तभी गांधीजी के जन्म-दिन की सच्ची खुशी मुझे होगी और तभी यह उत्सव सच्चा उत्सव होगा।

कस्तूरी बाई गांधी

× × यह शस्त्र दूसरे ढंग का पर जबरदस्त शक्तिशाली है। सबल और दुर्बल दोनों के लिए यह एकसा उपयोगी है। अंगरेजी सल्तनत को भारत से उखाड़कर स्वराज्य स्थापित करने के लिए महात्मा गांधी ने उसका उपयोग किया है। वहां उसने अपनी शक्ति का काफी परिचय भी दे दिया है। उसका नाम है 'अहिंसात्मक असहयोग।'

रोमैन रौलैंड (फ्रान्स)

व्यवहार-कुशल महात्माजी

दुर्दैव है इस देश का कि महात्माजी की व्यवहार-कुशलता भी सिद्ध करनी पड़ती है !

"महात्माजी आदर्श-सृष्टि में विहार करने वाले एक तरंगी हैं। अजातशत्रु धर्मराज की तरह सब लोगों को वे सज्जन समझते हैं। जो कुछ उनके मन में आता है वह पूर्णतया व्यवहार्य है, ऐसा माननेवाले सनकी हैं। सज्जनता के साथ राजनीति को चलाने की दुराशा रखनेवाले धर्मान्ध हैं। सूत के सहारे स्वराज्य तक पहुंचने की हिम्मत रखनेवाले लालबुझक्कड़ हैं। सारे समाज को ब्रह्मचर्य का उपदेश करनेवाले शेखचिल्ली हैं। अहिंसा के लिए राष्ट्र का सर्वस्व खो बैठने वाले मताग्रही हैं।" ऐसी टीका उनपर कितनी ही हो चुकी है। तोभी सारा राष्ट्र उन्हींकी बात मानता है और टीका करनेवाले सयानों की कोई सुनता ही नहीं। यह कैसी स्थिति है ? ठग-विद्या से ही दुनिया का काम चलता है, ऐसा मानना अगर व्यवहार-कुशलता हो तो बेशक महात्माजी व्यवहार-कुशल नहीं हैं। व्यक्तिगत व्यवहार में जिस आचरण को हम दुराचार कहते हैं और घृणा की निगाह से देखते हैं वही आचरण राष्ट्र-हित के लिए जरूरी और जायज है ऐसा मानना यदि व्यवहार-कुशलता हो तो अलबत्ते महात्माजी व्यवहार-कुशल नहीं हैं। विलास में डूबे हुए इस राष्ट्र में ब्रह्मचर्य के बिना शारीरिक और मानसिक कुवत नहीं आ सकती, ऐसा मानने में अगर व्यवहार-कुशलता का अभाव हो तो महात्माजी में वह जरूर है। सज्जनता में आत्मरक्षण का सामर्थ्य नहीं है, ऐसा मानने में अगर व्यवहार-कुशलता हो तो वह महात्माजी में नहीं है। परन्तु महात्माजी की व्यवहार-कुशलता की चर्चा करने के पहले व्यवहार-कुशलता क्या चीज है, यह देखना चाहिए।

दुनिया में दो किस्म की व्यवहार-कुशलता है—एक वीरों की और दूसरी कायरों की। दोनों में व्यवहार-कुशलता तो पूरी पूरी होती है। एक यह मानता है कि नतीजा चाहे कुछ भी निकले, पर किसी किस्म की जोखिम न उठानी चाहिए। बिना भारी पुरुषार्थ किये जो कुछ मिल सकता है या रह सकता है उसीपर वह संतोष मानता है। दूसरा इस बात का विचार करता है कि अपने पुरुषार्थ का पूरा पूरा उपयोग कर के हम ज्यादह से ज्यादह कितना कमा सकते हैं और ऐसा करने में कहांतक जोखिम उठाना मुनासिब है। हरएक व्यक्ति और समाज में शक्ति और अशक्ति दोनों का मिश्रण रहता है। इन दोनों में से एक को देखना और दूसरे को भूल जाना यह व्यवहार-कुशलता का अभाव है। जो आदमी केवल शक्ति को ही देखता है और अशक्ति को भूल जाता है वह शठ है, वह व्यवहार-कुशल नहीं है। और जो केवल अशक्ति का ही दर्शन करता है, शक्ति को भूल जाता है वह भी कुछ कम अ-व्यवहार-कुशल नहीं है। वह कायर है। महाभारत में उसका वर्णन इस प्रकार किया गया है 'निरुत्साह निरानन्द निर्वीर्यमरिनन्दनम्।' आजकल नास्तिकता का जमाना है। इसलिए आस्तिकवाद को माननेवाले सनकी माने जाते हैं। लेकिन जो पुरुषार्थी हैं वे जानते हैं कि जमाना तो वैसा ही बनेगा जैसा हम बनावेंगे। व्यवहार कुशलता की परिणति अगर निराशा में हो तो वह व्यवहार-कुशलता नहीं है। जिसकी परिणति उत्साह में होती है वही व्यवहार-कुशलता है। व्यवहार-कुशलता मौत के साथ शादी कभी नहीं करती। उसे जीवन की ही रुचि रहती है, पुरुषार्थ की ही रुचि रहती है।

अब हम देखेंगे कि महात्माजी ने व्यवहार का कितना अनुभव किया है। अगर आनुवंशिक संस्कार में कुछ अर्थ है तो राजकाज-पटु काठियावाड़ी एक दिवान के वे पुत्र हैं। अगर तालीम से व्यवहार-कुशलता आती हो तो व्यापार-कुशल अहमदाबाद में मैट्रिक

तक पढने के बाद उन्होंने लाइब आर्जे के देश में अपनी तालीम पूरी की है। अगर महाराष्ट्रियों में व्यवहार-कुशलता है तो महामति रानडे और धारासभा-धुरीण गोखले के सहवास और शिष्यत्व से महात्माजी ने वह भी प्राप्त की है। अगर दुनिया के कटु अनुभवों से आदमी व्यवहार-कुशल होता हो तो दक्षिण आफ्रिका में लाठियों और मार खा कर महात्माजी ने उसे भी अच्छी तरह प्राप्त किया है। मैं मानता हूं कि व्यवहार-कुशलता के बिना कोई आदमी मासिक ५-१० हजार की आमदनी नहीं कर सकता। व्यवहार-कुशल मवक्किल भी व्यवहार-कुशल वकील के ही पास जाते हैं। और अगर धूर्त लोगों से बार बार इत्तिफाक पडने पर व्यवहार-कुशलता आती हो तो जनरल स्मट्स ने महात्माजी को खूब व्यवहार-कुशलता सिखाई है। अगर वर्तमान राजनीति में व्यवहार-कुशलता का उत्कर्ष हो तो बोअर-युद्ध और जुलू-युद्ध में महात्माजी को उसका दर्शन पाने का खूब मौका मिला है। अगर देश में अनेक पक्षों और विपक्षों के होते हुए भी अपने विचारों को देशमें फैलाना व्यवहार-कुशलता हो तो मैं नहीं मानता कि आज महात्माजी से बढ़ कर दूसरा कोई व्यवहार-कुशल है। सदियों से चली आई दुश्मनी दूर करने में व्यवहार-कुशलता हो तो हिन्दू और मुसल्मान दोनों कौमें महात्माजी की व्यवहार-कुशलता की गवाही देंगी। अगर अपनी भूल से भी लाभ ही उठाने में व्यवहार-कुशलता हो तो उसमें महात्माजी कुछ कम नहीं हैं। सत्याग्रह के पहले के राजनैतिक आन्दोलन में जो कुछ अत्याचार हुए उनका नतीजा भारतवर्ष को बहुत सहना पडा। यहांतक कि ५ वर्षों तक देश का राजनैतिक जीवन मूर्छा में ही पड रहा था। इस वक्त जो कुछ अत्याचार हुए उनका परिणाम कम से कम करने में और लोगों की राष्ट्रीय जागृति कायम रखने में महात्माजी ने जो कुछ व्यवहार-कुशलता दिखाई है वह एक ही बात व्यवहार-कुशलता के इतिहास में उनका नाम अजरामर करेगी। महासभा जैसी अंगरेजी लिखे-पढे लोगों की एक संस्था को राष्ट्रीय विराट् महासभा बनाना व्यवहार कुशलता नहीं है, ऐसा कौन कहेगा? और अगर है तो क्या कोई कह सकता है कि उसमें महात्माजी का कुछ हिस्सा नहीं है? दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह-युद्ध, चम्पारन का मामला, और खेडा के कर न देने के युद्ध का तो नामोच्चार ही यहां पर बस है।

अब हम असहयोग-आन्दोलन का विचार करें। हिन्दू-मुसल्मानों को एक करना, सारे भारतवर्ष के हरएक कोने कोने में घूम आना, हजारों ही नहीं, लाखों लोगों से प्रत्यक्ष बातचीत करना, गरीबों की हालत अपनी आंखों से देखना, उनके सहे हुए कष्टों को स्वयं सहना और तीस करोड जन-संख्या के एक महान् राष्ट्र को एक भाव से प्रेरित करना, यह बात तीन हजार वर्ष से आजतक यदि और किसी ने की हो तो वह शायद महात्माजी की व्यवहार-कुशलता पर शंका करने का अधिकारी हो सकेगा। अगर पांच वर्ष के पहले कोई कहता कि चरखे का कता सूत भारत-वर्ष के कोने कोने में दिखाई देगा तो लोग उसे पागलों में गिनते। आज लाखों और शायद करोडों लोग उसी खादी को अभिमान के साथ पहनने लगे हैं। ऐसे परिवर्तन कराने में क्या कुछ व्यवहार-कुशलता नहीं है? बस, गांधीजी में अगर कहीं व्यवहार-कुशलता का अभाव हो तो वह यह कि वे निर्भय वीर की तरह सरकार के जेल खाने में जा बैठे और उन्होंने कितने ही चतुरम्मन्य लोगों को उनकी व्यवहार-कुशलता पर सन्देह करने का मौका दिया!

वास्तव में देखा जाय तो भारत-वर्ष में इस समय दो वर्ग हैं—एक सर्वसाधारण का। उनमें राजनैतिक ज्ञान का तो करीब करीब अभाव है, पर वे ईमान से अपनी रोटी कमाते हैं, और ईश्वरदत्त भावना और अनुभव-प्राप्त ज्ञान के अनुसार अपना जीवन-व्यवहार करते हैं। अगर उन्हें स्वराज्य की संस्थायें दी जायं, तो उन्हें ठीक ठीक चलाने लायक व्यवहार-कुशलता उनमें पूरी पूरी है। इस वर्ग को ब्रिटिश राज्य से दुःख तो बहुत सहन करना पडता है लेकिन ब्रिटिश-राज्य से जितना नैतिक अधःपात और लोगों का हुआ है उतना इनका नहीं हो पाया है। अगर धर्म-बन्धन शिथिल नहीं होता, ब्रिटिश अदालतें राष्ट्र की नीतिमत्ता बिगाड नहीं देतीं, और दूसरे लोग उनका बुद्धि-भेद नहीं करते तो यह वर्ग दुनिया की किसी भी जनता की अपेक्षा स्वराज्य के लिए अधिक योग्य रहता।

दूसरा वर्ग है उन लोगों का जिनका सरकारी शिक्षा से कुछ सम्बन्ध हो अथवा जिनपर सरकारी शिक्षा का कुछ असर हुआ हो। इस वर्ग में ऐशो-आरामी बढी है। पुरुषार्थ कम हुआ है। तेजस्विता उससे भी कम हुई है। क्षुद्र सही-सलामती के वे दास हो गये हैं और अपने देश-भाइयों के विनाश से मिलनेवाले मुनाफे पर जीवित रहने को वे तैयार हैं। इस वर्ग की राजनीति आजतक अश्रद्धा से भरी हुई और तेजस्विता से वंचित रही है। प्रथम वर्ग की अशक्ति अज्ञान के कारण है, व्यवस्था के अभाव के कारण है। वह आसानी से दूर हो सकती है। लेकिन दूसरे वर्ग की दुर्बलता उनके बुद्धि-भेद के कारण, उनकी अश्रद्धा के कारण, उनके संकल्प-सामर्थ्य के अभाव के कारण है। यही लोग ब्रिटिश-राज्य के आधार हैं। उनके मन में द्वेष चाहे कितना ही हो, पर आजीविका और बुद्धि-भ्रंश के कारण उनका सरकार से पूरा पूरा सहयोग रहता है। सरकार को प्रेम की गरज नहीं है। सहयोग की गरज है। तुम्हारे द्वेष से सरकार नहीं डरती तुम्हारे असहयोग से ही डरती है। यह जान कर के सरकार को मिलनेवाला सहयोग बन्द कर देने में ही पूरी पूरी व्यवहार-कुशलता है। यही गांधीजी की व्यवहार-कुशलता है, राजनीति है और राजनीतिज्ञता है। यह तेजस्विता-युक्त है। तेजस्विताहीन व्यवहार-कुशलता तो निरी कायरता है।

एक गुणग्राहक

मोहन, एहि!

एहि पुनः सुर-भूमिम्—मोहन!

मन्दप्रभतारकमयहारा नीलांबरपरिधाना,
निन्दितचन्द्रच्छविवदनैषा प्रातःश्री रतिमुग्धा
त्वामालोकयतीयम् ॥१॥ मो०

हरितसस्यरुचिराम्बरयुक्ता खगरवनूपुरनादा
नानासुमनःशोभितवदना शारद: श्रीः संप्राप्ता
कुसुमैरर्चयतीयम् ॥२॥ मो०

करधृतचक्रा कृशगात्रीयं श्वेतवस्त्रपरिधाना
तपश्चरंती भारतवसुमत्याराधितपरमेशा
त्वामनुपालयतीयम् ॥३॥ मो०

नादय, नादय, मोहन! मुरलीं तां संजीवनदात्रीम्
भीतःसंशयभीतिहरैस्त्वं चनैर्नोदय लोकम्
नाशय मोहं सकलम् ॥४॥ मो०

* * *

येन हि धनसुतदारामोहं त्यक्त्वा त्वामनुगम्य
निजपुरुषार्थबलेन वयं त्वां प्राप्य भवामो धन्याः
दर्शय त्वत्पदमार्गम् ॥५॥ मो०

वैजनाथ ज. महोदय

महात्माजी और संगीत

महात्माजी के जो अनेक प्रिय विषय हैं उनमें एक संगीत भी है। संगीत को वे पवित्र भावना से देखते हैं। वे मानते हैं कि संगीत में एक अनोखी शक्ति है, जो मनुष्य-मात्र को अपना जीवन सुख और आनंदमय बनाने में सहायक होती है। जब मैं पहले पहल महात्माजी के परिचय में आया तभी मुझे मालूम हो गया कि उन्होंने संगीत की रहस्य-माधुरी को बराबर पा लिया है।

एक समय मैंने महात्माजी से कहा—"मेरी अभिलाषा है कि एक बार आपके मुंह से भजन सुनूं" महात्माजी ने कहा 'मेरा कंठ तो ऐसा नहीं जो मैं सब का रंजन कर सकूं तथापि आपकी इच्छा जरूर पूरी करूंगा।' दूसरे ही दिन प्रातःकाल महात्माजी ने बहुत ही धीमी और अणु-मंद्र आवाज में एक भजन और एक गजल मुझे सुनाई। मैं तो उनका संगीत सुनकर चकित हो गया और उसी समय यह बात मेरे ख्याल में आ गई कि सामुदायिक उपासना में संगीत किस तरह प्रचलित किया जा सकता है।

महात्माजी जब आश्रम पर रहते तब रोज प्रातःकाल ४ बजे और सायंकाल ७ बजे प्रार्थना में नियम से उपस्थित रहते और उसी अणुमंद्र आवाज में अपने भजन की धुन चलाते। उन्होंने कितनी ही बार यह भी बताया कि संगीत के श्रवण और गायन से उपासना किस प्रकार फलदायिनी होती है।

बेसुर गायनों के कुफल से भी लोगों को वे बराबर चेताते रहते हैं। उनका कहना है कि सभा-जलसों में बेसुरे गायन के बजाय गायन न भी हो तो अच्छा। संगीत-द्वारा हम श्रोताओं के हृदय पर जो शांतियुक्त असर डालना चाहते हैं वह काम तो शास्त्रोक्त संगीत से ही हो सकता है। नाटकों में आजकल अक्सर जिस प्रकार का संगीत होता है उसे महात्माजी बुरा और समाज के लिए हानिकर मानते हैं। आजकल के नाटकवालों ने उसे बहुत विलासमय और अपवित्र स्वरूप दे दिया है। इसलिए जहांतक मुझे ज्ञात है महात्माजी नाटक और सीनेमा कभी नहीं देखते।

१९१८ ईस्वी में भडौच में गुजरात-शिक्षण-परिषद् का अधिवेशन हुआ था। सभापति महात्माजी ही थे। आपने वहां अपने भाषण में कहा था:—

"आधुनिक शिक्षा-पद्धति में मुझे संगीत के लिए कहां स्थान नहीं दिखाई देता। हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि अज्ञातत: संगीत का असर हमारे जीवन पर कितना गहरा पड़ता है। नहीं तो हम अपने बालकों को संगीत-शिक्षा से अभीतक वंचित नहीं रखते। हमारे वेद संगीतमय हैं। संगीत हृदय के संताप को कोसों भगा देता है। संगीत शांति और स्फूर्ति का देनेवाला है। संगीत कवियों की प्रतिभा को चमकाता है, शूरों को वीर-श्री से उन्मत्त कर देता है और भ्रान्त जनों के सारे परिश्रम को हटा कर उनमें नवजीवन का संचार कर देता है। तथापि हमें अपने बालकों को अशुद्ध, अपवित्र गायनों से बचाते रहना चाहिए। बालक शुद्ध संगीत के अभाव में प्रायः नाटकों के अशुद्ध और अपवित्र गायन गाया करते हैं। उससे उनकी कितनी हानि होती है? अगर उनको शुद्ध संगीत की शिक्षा देने का प्रबंध कर दिया जाय तो वे आप ही नाटकों के अश्लील गायनों से घृणा करने लग जायंगे।

संगीत को लोक-जागृति में भी अवश्य स्थान मिलना चाहिए। इस विषय पर डा. आनंदकुमार के विचार मनन करने योग्य हैं।" आदि।

महात्माजी केवल गायन का ही शौक नहीं रखते। वे सितार, सारंगी, फिडल आदि तंतुवाद्यों के भी बड़े रसिक श्रोता हैं। बम्बई में गांधर्व महाविद्यालय के जलसों में वे कई बार आते और गायनाचार्य पं. विष्णु दिगंबर पलुसकर तथा प्रो. भातखंडे आदि के गायनों से बड़े प्रसन्न होते। रामायण पर महात्माजी की बड़ी श्रद्धा है। एक बार रामायण पर उपर्युक्त पंडितजी का प्रवचन सुनकर तो वे बेहद प्रसन्न हो गये और कहा "पंडितजी, संगीत का ऐसा अनुपम आनंद तो मैंने अपने जीवन में पहले कभी नहीं पाया था"।

इन दिनों महात्माजी को अनेक महत्वपूर्ण काम रहा करते। तो भी जब कोई गायक, वादक या कीर्तनकार आश्रम में आते तब वे किसी प्रकार समय निकाल कर उनका संगीत बड़े प्रेम से सुनते।

पिछले साल अहमदाबाद में राष्ट्रीय महासभा के साथ साथ संगीत की भी राष्ट्रीय परिषद् हुई थी। उसके सभापति महात्माजी ही थे। आपने अपने भाषण में कहा:—

"आज की परिषद् संगीत कला अर्थात्-गायन-वादन आदि की है। यदि संगीत से हमारे स्वराज्य-संग्राम का कोई संबंध न होता तो इस युद्ध-काल में मैं आज यहां न आया होता। संगीत शांतिमय है। अतएव वह शान्ति का सच्चा प्रचारक है। जब हमारे हजारों नौजवान संगीत का पाठ करते हुए देशसेवा करने के लिए शहरों और गांवों में घूमने लग जायंगे तब हमें शांति के प्रचार के लिए अलग प्रयत्न नहीं करना होगा। अभी महासभा में आते समय मेरे आसपास बहुत से आदमियों की भीड़ हो गई। मैं आगे नहीं बढ़ सकता था। तब मुझे पंडित विष्णु दिगंबरजी का सहारा लेना पड़ा। उनके संगीत का जो अद्भुत असर जनता पर पड़ा उसकी मुझे कल्पना भी न थी। संगीत में अद्भुत मोहन-शक्ति है। आजतक हमने संगीत का बहुत दुरुपयोग किया। हमारा कर्तव्य है कि हम अब उसका सच्चा उपयोग करें।

"संगीत की राष्ट्रीय परिषद् भारत में आज पहले पहल ही हो रही है। भारतीय संगीत के पुनरुत्थान की यह नींव है। मुझे विश्वास है कि जब हम दूसरी बार मिलेंगे तबतक इसपर एक सुन्दर इमारत बंध चुकेगी और हम भी अपना काम समाप्त करके बैठे होंगे। संगीत तो हमारा जीवन है। हमारे बोलने, चलने, बैठने और उठने में संगीत ही भरा है। हमारा यह स्वाधीनता का संग्राम भी हमारे जीवन-संगीत का एक विशाल जलसा है। असहयोग का कार्यक्रम उसकी सुरमालिका है। इस सुरमालिका के अनुसार हमें अपने इस धर्म-युद्ध में लड़ना चाहिए। अगर हम ऐसा करेंगे तो स्वराज्य-रूपी इस जल्से की सफलता हमारे हाथों में आई ही समझिए। पर अगर उसके ताल और सुरों को छोड़ कर हम अपना अपना सुर अलग अलग आलापेंगे तो सारा संगीत बेसुरा हुआ समझिए। फिर भारत के लिए संसार से काव्य और संगीत उठ गये समझिए।"

हम भी आज महात्माजी के जन्मोत्सव पर भारत को यही चेतावनी देते हैं कि उसके पुत्र ताल और सुर को छोड़ कर अपना अपना राग अलग अलग न आलापें। **नारायण मोरेश्वर खरे**
(संगीताचार्य, सत्याग्रहाश्रम)

"गोरक्षा का सवाल केवल धार्मिक ही नहीं है। उसमें भारत की आर्थिक उन्नति का समावेश हो जाता है। हम अपनी गोशालाओं को अर्थशास्त्र के अध्ययन करने और इस महान् प्रश्न को हल करने का स्थान बना सकेंगे। × × जिस गोशाला की मैं कल्पना कर रहा हूं वह भविष्य में आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकेगी। ऐसी गोशालायें शहर के अन्दर न रहनी चाहिए। शहर की सीमा पर सैकड़ों एकड़ जमीन ले कर वहां गोशालायें बनाई जा सकती हैं। वहां गायों के लिए अनाज तथा हर प्रकार की घास आदि पैदा हो सकता है। और उनके मल-मूत्र आदि का जो कीमती खाद होता है उससे हम अच्छा काम ले सकते हैं।" **महात्मा गांधी**

गांधीजी का पुण्य कर्म

गांधीजी के दिल में पंजाब के दुःखों की होली धधकी, और उन्होंने एक समय २२ घण्टे काम कर के पंजाब की करुण कथा की अमर पुस्तक लिखी; पर वे केवल देशभक्त नहीं। उन्होंने खिलाफत का झण्डा फहराया और देश-देशान्तर के इस्लामियों की बोह पकडी; पर वे केवल जनसेवक नहीं। उन्होंने स्वराज्य और असहयोग संग्राम छेडा, तो भी वे राजपुरुष नहीं। चरखा और स्वदेशी का प्रचार उन्होंने बिजली के वेग से किया, तो भी वे अर्थशास्त्री नहीं। उन्होंने स्त्रियों की उन्नति के लिए कमर कसी तो भी वे समाज-सुधारक नहीं। सुकरात ने स्वर्ग से तत्व-ज्ञान घर घर और गली गली में बरसाया। बेंजामिन फ्रेंकलिन ने बिजली को आकाश से पृथ्वी पर उतारा। महात्माजी ने भगीरथ की तरह धर्म की अमर गंगा हिमालय के उत्तुंग शिखर से भारत की पुण्य भूमि पर फिर से उतारी—उसकी प्राचीन परन्तु जड हो जाने वाली संस्कृति को फिर से सचेतन किया।

इस प्रकार गांधीजी ने तमाम हलचलों को धर्ममय बनाया। परन्तु अनेकांश में तो उन्होंने पुराने ही संस्कारों और सिद्धान्तों को उज्ज्वल कर के हमें जाग्रत किया। दुनिया के तीसरे भाग में कोई ढाई हजार वर्षों तक कायम रहनेवाला धर्म-साम्राज्य स्थापित करने वाली, अपने मान-गौरव के लिए रामायण, महाभारत जैसे युद्ध लडनेवाली, धर्म-नीति के लिए राजपूताना, दक्षिण, पंजाब आदि अनेक भागों में सर्वस्व की आहुति दे देनेवाली प्रजा का डेढ सौ वर्ष से पराराज्य के जुए को मूक प्राणी की तरह वहन करना उन्हें असह्य मालूम हुआ। बौद्धों और जैनों द्वारा खास तौर पर आदृत अहिंसा के प्राचीन सिद्धान्त को उन्होंने नवीन रूप में प्रकट किया। गाय की रक्षा करने वाले आर्य-धर्म का अनुसरण करके उन्होंने मुसल्मानों के साथ मित्रता की और राष्ट्र में एकता स्थिर की। प्राचीन चरखे का पुनरुद्धार कर के उन्होंने हजारों-लाखों स्त्रियों की रक्षा की और देश के करोडों रुपयों को बहते हुए बचाया।

पर धर्म की आत्मा में सदियों से एक विकार पैठ गया था। उसपर बडी चिन्ता और चतुराई के साथ डाला हुआ अंधेरा परदा उठाकर और सत्य के सूर्य का चमकता हुआ प्रकाश उसपर डाल कर गांधीजी ने आर्य-धर्म के इतिहास में नवीन पृष्ठ पलटा। हां, यह तो मानना ही चाहिए कि पिछले पचास-साठ वर्ष से अन्त्यजों की अस्पृश्यता दूर करने की हलचल धीमे धीमे चल रही थी। पर वह अधिकांश में मनुष्य-जाति के सामान्य हक तथा न्याय और दया की ही नीति पर थी। कितने ही सुधार धार्मिक भी थे। पर उन्होंने धर्म की नई ही शाखा निकाली थी। इससे सनातन-धर्म के नाम पर दलील करने वाले रूढि-पूजकों की बन आती थी। पर गांधीजी तो ठहरे कट्टर सनातनी और वैष्णव और अपने धर्म के दूषण को दूर करने के लिए ही छुआछूत दूर करने का उनका आग्रह। पर केवल इतने ही से वे भारी असर नहीं डाल पाते। उनका मनुष्य-प्रेम, जाति-प्रेम, धर्म-प्रेम-प्रेमधर्म अटल आग्रह और क्षत्रिय को भी लज्जित कर देने वाला शौर्य-इन सबने मिल कर आर्य-जनता के दिल से रूढि के उस भयंकर किले को डगमगा दिया है। बुनियाद हिल गई है। अब किले को ढहते हुए क्या देर लगेगी?

एक अंगरेजी कहावत है कि जो जान-बूझ कर देखना नहीं चाहता उसके जैसा अंधा कोई नहीं। अंगरेजी राज्य की अगाध पोल गांधीजी ने खोल दी है और उसकी प्रतिष्ठा को सदा के लिए मिट्टी में मिला दिया है। पर फिर भी सरकार इस तरह चलने का प्रयत्न अथवा दिखावा कर रही है मानों कुछ हुआ ही न हो। चरखा और स्वदेशी की हलचल से मैंचेस्टर की लूट को सदा के लिए खतरा पहुंचता जा रहा है, पर फिर भी किसी तरह हिन्दुस्तान को फुसलाकर फिर से अंधाधुन्ध व्यापार फैलाने का व्यर्थ प्रयत्न वह कर रही है। एशियाई तुर्कस्तान में दो-तीन बरस से बसे ग्रीक लोगों को एक सप्ताह में गाजी कमाल पाशा ने मार भगाया। और ऐसी हालत हो गई है कि वहां की एक इंच भर जमीन कोई भी योरपियन बचा किसी तरह नहीं रख सकता। यह जानते हुए भी इंग्लैंड अकेले हाथों चनक× को पकडे बैठा है। और सारे योरप में बरबादी मचाने का साहस कर रहा है। उसी प्रकार 'सनातनी' होने का दावा करनेवाले सब लोग इस बात को समझते हैं कि स्वतंत्रता, समानता और राष्ट्रीय जागृति के इस युग में देश के छठे भाग की प्रजा किसी भी कारण से अस्पृश्य नहीं मानी जा सकती। उनके बन्द किये दरवाजों पर वे दिन पर दिन जोरदार आक्रमण होता हुआ देख रहे हैं। उन के बन्द कानों पर अधिकाधिक शब्द-प्रहार किया जा रहा है। उनकी बन्द आंखों पर अधिकाधिक प्रकाश की गरमी पहुंचाई जा रही है। राजी-खुशी से अथवा मजबूरन् ये दरवाजे खोले बिना, उन शब्दों का सिर झुकाये बिना और तेज का स्वागत किये बिना उनका छुटकारा नहीं है।

किन्तु शायद अधिकांश जनता छूआछूत की बेजाइयत को जानती है; पर उसे अमल में नहीं लाती। बुद्धि जाग्रत हो गई है; पर हृदय व्याकुल नहीं हुआ। आज के इस पवित्र दिन यदि उन के हृदय में गांधीजी के प्रति प्रेम-भाव की बाढ आ रही हो तो उन्हें उनकी इच्छा को सादर स्वीकार कर के हमारे अन्याय से दलित, पीडित और जर्जरित होने वाले अन्त्यजों की तरफ उसे बहाना चाहिए।

हिन्दुस्तान का कोई इतिहासकार कहेगा कि गांधीजी ने स्वराज्य का झंडा फहराया, कोई कहेगा कि चरखा चलवा कर देश के कोने कोने से गरीबी दूर कर दी। कोई कहेगा कि जनसमाज को पश्चिम के मोह से मुक्त करा के आर्य-संस्कारों के रास्ते लगाया। परन्तु धर्म का इतिहास-लेखक तो यही साक्ष्य देगा कि गांधीजी ने धर्म के ऐसे पुराने विष को जो उसे समूल नाश कर डालता, दूर कर के शुद्ध सनातन-धर्म का झंडा सारी दुनिया में फहराया है।

इन्दुलाल कनैयालाल याज्ञिक

महात्मा गांधी की जय बोल !

खुली है कूट—नीति की पोल;
महात्मा गांधी की जय बोल !

नया पन्ना पलटे इतिहास,
हुआ है नूतन वीर्य-विकास।
विश्व, तू ले सुख से निःश्वास,
तुझे हम देते हैं विश्वास।

आत्म-बल धारण कर अनमोल;
महात्मा गांधी की जय बोल !

देख कर वैर, विरोध, विनाश,
पड गया है नीला आकाश !
किन्तु अब पशुबल हुआ हताश,
कटेगा पराधीनता—पाश,

उठा ईश्वर का आसन डोल,
महात्मा गांधी की जय बोल !

एक भारतीय हृदय

× तुर्कस्तान के विभाग में आये मारमोरा-समुद्र के एशियाई किनारे पर एक नाके का गांव।

असहयोग का सामर्थ्य

'अहिंसा परमो धर्मः' यह धर्म-सूत्र आधुनिक नहीं है। कई ऋषि-मुनियों के चिंतन, मनन और अनुभव का वह फल है। पर बरसों से हम उसे भूलते जा रहे थे और यदि महात्माजी हमारे उद्धार के लिए न आते तो कह नहीं सकते, हमारी यह गाडी कहां जा कर ठहरती।

उनका असहयोग-आन्दोलन अहिंसा से अभिन्नतया संलग्न है। अथवा यों कहें कि वह अहिंसात्मक-अहिंसामय ही है। आज यद्यपि इसके आविष्कर्ता जेल की ऊंची दिवारों में बंद हैं तथापि वे उसकी अमोघ शक्ति का परिचय संसार को काफी तादाद में दे चुके हैं।

पर अब भी हमारे कितने ही भाई ऐसे हुई हैं जो अभीतक उसकी शक्ति के विषय में संशयित हैं। और इसीलिए हमारे सेनानायक हमारे देखते ही देखते जेल में ठूंस दिये गये हैं। उनका जेल में जाना असहयोग की कमजोरी का नहीं, बल्कि हमारी कमजोरी का प्रमाण है। अगर हम उसका सच्चा रहस्य समझ लें और उसके अनुसार आचरण करने लग जाय तो जेल की दीवारें हमारे देखते ही देखते गिर जायंगी और स्वराज्य-प्राप्ति के लिए एक साल की मीयाद भी हमें असाधारण लंबी दिखाई देगी। अब भी इसकी कामयाबी के विषय में किसीको सन्देह हो तो वे जरा पंजाब में गुरु का बाग की अथवा दक्षिण में मुलशी पेठा की सैर कर आवें और अपनी आखों देखें कि आत्म-बल के आगे शरीर-बल को, सत्य के आगे असत्य को, किस प्रकार सिर झुकाना पडता है।

पर इतनी दूर जाने की भी जरूरत नहीं। यही सोचिए न कि अगर नौकरशाही को ही यह आन्दोलन व्यर्थ-उपेक्षा योग्य-दिखाई देता तो उसे क्या पडी थी जो वह उसका इस तरह अमानुष दमन करने लगती? अगर उसकी सत्ता के लिए खतरा न होता तो वह तो असहयोग की ओर आंख उठा कर भी न देखती। पर उसे तो जहां कहीं असहयोग का बीज भी देख पडा कि वह उसे नष्ट करने के लिए झपट पडती है—फिर वह अहमदाबाद और सूरत की म्युनिसीपालिटियां में हो या भारत-माता के मुकुट-स्थ सुवर्ण-मंदिर में हो।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि अहिंसात्मक असहयोग ही भारत के उद्धार का साधन है। शांति का उपाय अशान्ति, हिंसा-कांड, युद्ध हो ही नहीं सकता। यूरोपीय महायुद्ध हमारी स्मृति में ताजा उदाहरण है। शान्ति और स्वतंत्रता के नाम पर वहां कितनी खून-खराबी, कितनी मारकाट हुई। कितना धन-जन स्वाहा हो गया? उसकी थकावट के मारे योद्धा राष्ट्रों को संभलने के लिए बरसों चाहिए। पर क्या वहां शान्ति की स्थापना हुई? क्या अब भी वहां 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत चरितार्थ नहीं हो रही है? और मेरा तो विश्वास है कि जबतक संसार का विश्वास हिंसा से उठ नहीं जाता तबतक उसकी ऐसी ही दयनीय दशा बनी रहेगी। पर सौभाग्यवश भारत ने संसार को फिर से सावधान कर दिया। वह ऊंचे हाथ उठाकर संसार के राष्ट्रों से कह रहा है "भाइयों, इस राह से चलते हुए आपको कितनी ठोकरें लग चुकी हैं और प्रतिदिन लगती जा रही हैं? अब तो संभलिए। हिंसा के मार्ग को छोड कर अहिंसा के मार्ग पर आइए। पारस्परिक द्वेष को छोडकर अपने हृदय में विश्वप्रेम की स्थापना कीजिए। और असत्य के मायाजाल को दूरकर सत्य के सच्चे प्रकाश को प्राप्त कीजिए। ऐहिक उन्नति ही क्यों न हो, वह अत्याचार से होना असम्भव है। अतएव अत्याचार के मार्गों को छोड कर अहिंसा के मार्ग का अवलंबन कीजिए।"

पर अहिंसात्मक असहयोग केवल ऐहिक उन्नति का ही साधन नहीं। आप उससे पारलौकिक उन्नति भी प्राप्त कर सकते हैं। काम क्रोध आदि मनुष्यजाति के शत्रुओं को भी आप सहयोग से नहीं, कद्दर असहयोग से ही जीत सकते हैं। आत्म-संयम और आत्म-शुद्धि तो असहयोग की कुंजी है।

पशुबल आदि से बचने के लिए तो आपने असहयोग किया है। आपका असहयोग व्यक्तियों से नहीं दुर्गुणों से है। तो क्या आप इस सरकार के दुर्गुणों को—अत्याचार, दम्भ आदि को अपना कर—उनसे सहयोग कर के, शान्ति और स्वराज्य खरीद करने जा रहे हैं? अमृत को विष से खरीदना चाहते हैं!

अत्याचार से-पशुबल से आप कुछ काल तक अपने प्रतिपक्षी को भले ही पराजित कर सकें। पर उसे सहायता मिलते ही वह फिर आपसे उन अत्याचारों का बदला लेने के लिए आ धमकेगा। मनुष्य के हृदय से द्वेष का जबतक उन्मूलन नहीं होगा तबतक अशान्ति, कलह, युद्ध होते ही रहेंगे। विजय और शान्ति तो [illegible] प्रेम से हो सकती है। हमें अत्याचार का बदला अत्याचार से न [illegible], प्रेम से चुकाना चाहिए।

शान्ति की दवा प्रेम और सहानुभूति है। असहयोग हमें यही सिखाता है। यह जरूर है कि उचित संगठन के अभाव में उससे इच्छित फल शीघ्र नहीं मिल सकता। उसके लिए अपरिमित परिश्रम करना पडता है। अगणित कष्ट सहना पडते हैं। पर यदि फल प्राप्ति में देर लगे तोभी उसके आचरण से जो आत्मशुद्धि और चारित्र्य-बल हमें प्राप्त हो जाता है सिर्फ वही हमारे परिश्रमों का काफी फल है। और अन्तिम सिद्धि तो हमेशा के लिए, दोनों पक्षों के लिए कल्याणदायिनी होगी। शांति के, अहिंसा के, और असहयोग के मार्ग से जो शत्रु जीता जाता है उसे पारमार्थिक उन्नति का भी लाभ होता है। इसलिए ऐहिक और पारलौकिक दोनों दृष्टि से देखा जाय तो असत्य का उत्तर सत्य, हिंसा का अहिंसा, क्रोध का अक्रोध अथवा असाधुता का उत्तर साधुता ही से देने में हमारा और संसार का भला है। महात्मा विदुर ने ठीक ही कहा है—

"अक्रोधेन जयेत् क्रोधं असाधुं साधुना जयेत्।
जयेत्कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम्॥"

ज्वलत् महाराष्ट्रीयों की 'शठेषु शाठ्यम्' अथवा 'शठेषु लाठ्यम्' वाली व्यावहारिक नीति को जब हम इस कसौटी पर कसते हैं तब वह बहुत फीकी मालूम होती है। क्योंकि उसमें सर्वगामित्व नहीं है। एक आदमी शठता-अत्याचार करता है। हम उसे अपराधी कहते हैं। पर उसी अथवा उससे भी अधिक शठता का उपयोग हम उसे दबाने में करते हैं। जिसको हम अन्याय्य अथवा दंड्य समझते हैं उसीको न्याय्य बनाकर उसके द्वारा हम उसे दंड देते हैं। इस प्रकार हम उसकी शठता के लिए, और वह हमारी शठता का दंड देने के लिए अधिकाधिक शठता का अवलंबन करता जाता है। इससे शठता घटने के बजाय बढती ही जाती है। संसार का आजतक का इतिहास इसका प्रमाण है।

इसलिए सत्य और अहिंसा अथवा एक ही शब्द में कहें तो असहयोग (व्यक्तियों से नहीं उनके दुर्गुणों से) ही एक ऐसा सर्वगामी सिद्धान्त है जो त्रिकालाबाधित है। यही कलिमल-नाशिनी गंगा संसार के पापों को धोकर उसका कल्याण कर सकती है।

सौ० जानकी बाई ओक

देशबन्धु दास को काश्मीर-नरेश ने अपनी हद में न ठहरने की आज्ञा दी है। अतएव उन्हें भर बुखार में लौटना पडा!

महात्माजी और अन्त्यजवर्ग

महात्माजी पहले किसी बात को करते हैं और फिर कहते हैं। जब से उन्हें यह मालूम हुआ कि अस्पृश्यता कलंक-रूप है तब से कोई न कोई अन्त्यज उनके कुटुंबी के तौर पर उनके साथ रहता आया है। जबतक महात्माजी का शरीर स्वतन्त्र था तबतक तो उन्होंने अन्त्यजोद्धार के लिए जो जो भगीरथ प्रयत्न किये वे किसी से छिपे नहीं हैं। यह अन्त्यजोद्धार की भावना उनके हृदय में किस प्रकार उत्पन्न हुई और आजतक उसे किस प्रकार वे अपने चरित्र में दिखलाते आये हैं, इस बात पर यदि कुछ प्रकाश आज उनके जन्मोत्सव पर डाला जाय तो वह बहुत सार्थक होगा। पहले मैं महात्माजी के ही शब्दों में इस भावना की उत्पत्ति और विकास का कुछ हाल यहां देता हूं—

"अस्पृश्यता को मैं हिन्दू-धर्म में एक महान् पाप मानता हूं। मेरे ये विचार आज-कल के नहीं। दक्षिण-आफ्रिका में जब मेरी हालत पेचीदा हो गई तब इन विचारों की उत्पत्ति हुई, सो बात भी नहीं। और न इनका जन्म मेरी नास्तिकता से हुआ है। कितने ही लोग कहते हैं कि ईसाइयों की सुहबत से, ईसाई-धर्म की पुस्तकों से ये विचार मेरे हृदय में उतरे हैं। पर यह भ्रम है। जिस समय मैंने बाइबल पढ़ी भी न थी, जब मैं ईसाई-धर्म वालों के जरा भी सम्पर्क में न आया था तब के ये मेरे विचार हैं। मैं कोई १२ वर्ष की उम्र से इस बात को समझता था। हमारे घर में 'उका' नाम का एक अन्त्यज मैला साफ करने आया करता। मैं अपनी मां से यह पूछा करता कि उका से छूने में क्या हर्ज है? कभी कभी मैं 'उका' से छू भी जाता। मां मुझे नहाने की आज्ञा करती। मैं नहा भी लेता। पर साथ ही कुछ हंसी भी करता, झगडा भी करता और उससे कहता कि इस बात को तुम नहीं समझतीं। उका से छूने में कोई हर्ज नहीं है।

मैं मदरसे जाता तो वहां भी अन्त्यजों को छू लेता। पर यह बात मैं अपने मां-बाप से छिपा नहीं रखता था। मां मुझे कहतीं कि मुसल्मान से छू लिया करो।* मैं तो मातृ-पूजक ठहरा। इसलिए मैंने ऐसा किया भी। पर केवल मां की आज्ञा का पालन करने के लिए। फिर मैं पोरबंदर चला गया। वहां पहले पहल संस्कृत से मेरा परिचय हुआ। उस समय मैं अंगरेजी मदरसे में भरती नहीं हुआ था। मैं और मेरा भाई एक ब्राह्मण के सिपुर्द किये गये। वहां मैंने **रामरक्षा** और **विष्णु-पञ्चक** पढ़ा। उनके 'जले विष्णुः स्थले विष्णुः' इस वचन को मैं आज भी नहीं भूल सकता। रामरक्षा में मुझे यह न दिखाई दिया कि अन्त्यज से छूना पाप है। हमारे कुटुम्ब में रामायण का पाठ हुआ करता था। मेरे मन में यह बात आया करती कि जिस रामायण में निषाद ने राम को गंगा पार उतार दिया उसमें यह नहीं माना जा सकता कि अन्त्यज पतित है।

उसके बाद मैंने वेद और उपनिषदों का अनुवाद पढ़ा। २१ वर्ष की अवस्था में मैंने दूसरे धर्मों का भी अध्ययन किया। हिन्दू-धर्म पर मेरा विश्वास ज्ञान-पूर्वक दृढ हुआ। उस समय भी मैं यह मानता था कि हिन्दू-धर्म में अस्पृश्यता धर्म्य नहीं मानी गई है।"

अब मैं उन प्रसंगों को यहां देता हूं जिन पर महात्माजी ने अन्त्यजों-सम्बन्धी अपने अपार प्रेम और अपने सिद्धान्तों की दृढता का परिचय दिया है—

पहला प्रसंग—१९१५ ईसवी में अहमदाबाद में सत्याग्रहाश्रम की स्थापना होने के कुछ दिन बाद एक समाज-सुधारक ने एक अन्त्यज को आश्रम में रहने के लिए भेजा। पर साथ ही इस खयाल से कि आश्रम-वासियों के चित्त में किसी प्रकार का क्षोभ न हो और सब काम बिला खरखशे हो जाय, उसको यह भी सिखा दिया कि यदि कोई पूछे तो अपनेको राजपूत बता देना। वह ढेड महात्माजी के पास आया। पर उनके सामने झूठ बोलने का साहस उसे न हुआ। उसने सब सच सच हाल कह दिया। महात्माजी ने उसकी सत्य-वादिता पर उसकी तारीफ कर के कहा कि यदि तुम अपनेको राजपूत कह कर यहां रहे तो उससे अन्त्यजोन्नति कैसे हो सकती है? उससे अस्पृश्यता का दोष कैसे दूर हो सकता है? इससे तो राजपूत की उन्नति होती।

दूसरा प्रसंग—आश्रम में दूदाभाई नाम के एक अन्त्यज सह कुटुम्ब रहने के लिए आये। उस समय आश्रमवासियों में और खास करके स्त्री-वर्ग में खूब असन्तोष फैला। पर गांधीजी ज्यों के त्यों अटल रहे। उनके सुख-दुःख में हमेशा साथ देनेवाली—जो आजकल के जमाने में सीता और दमयन्ती की उपमा के योग्य हैं—उनकी धर्मपत्नी कस्तूर-माताजी को भी यह बात खली। उन्होंने अन्नत्याग कर दिया। दूसरे दिन वे रसोई-घर में काम करने के लिए आईं। यह देखकर महात्माजी ने अपनी न्याय-निष्ठुरता के साथ कहा कि यहां भोजन करने में जिसे आपत्ति हो उसकी सहायता भी आश्रम नहीं ग्रहण कर सकता। यदि सचमुच तुम्हारे धर्म में बाधा पडती हो तो तुम अलग रहो और अपने विश्वास के अनुसार तुम भी एक दूसरा आश्रम खोलो। उस अवस्था में मुझे तुम्हारे प्रति बड़ा ही अभिमान होगा। और यदि मेरे ही साथ रहना हो तो ढेड की घिन अपने हृदय से निकाल डालो।

तीसरा प्रसंग—दूदा भाई के आने के बाद आश्रम के लोग जिस कुए से पानी लाते थे उससे पानी न लेने देने की धमकी गांव के मुखिया ने दी। अपने सिद्धान्त पर दृढ रहनेवाले महात्माजी ने उसी दिन प्रार्थना में कहा कि शायद हमें रहने के लिए यह घर भी न मिल सके। क्योंकि यदि सारा गांव हमारे विचारों के खिलाफ होगा तो वह हमें यहां रहने देने के लिए बाध्य नहीं है। सब ने मिल कर उसी क्षण निर्णय किया कि यदि ऐसा मौका आ जाय तो आश्रम ढेडवाडा-महतरों का मुहल्ला-में जा कर रहे। वहां रह कर अन्त्यज-सेवा अधिक अच्छी तरह की जा सकेगी। सद्भाग्य से ऐसा मौका नहीं आया। आश्रमवासियों की शान्ति और चारित्र्य का असर मुखिया पर हुआ और सब काम ज्यों का त्यों चलता रहा।

चौथा प्रसंग—आश्रम के आरम्भिक दिनों में कितने ही प्रौढ विद्यार्थियों को संस्कृत सिखाने के लिए अहमदाबाद शहर से एक शास्त्रीजी भक्ति के साथ आते। एक दिन महात्माजी को सहसा खबर मिली कि पण्डितजी घर जा कर नहाया करते हैं। महात्माजी ने पण्डितजी से पूछ कर सच-झूठ का निर्णय कर लिया। पण्डितजी ने कहा 'जी हां, मैं नहाता तो हूं। मुझे लोगों के साथ रहना है। इसलिए उनके भावों का आदर मुझे करना चाहिए।' महात्माजी ने कहा कि जिस शिक्षक को यहां से जा कर स्नान करना पड़े उसकी शिक्षा आश्रम न ग्रहण कर सकेगा। क्योंकि अध्यापक के हृदय के विचारों का असर सूक्ष्म रीति से विद्यार्थियों पर पड़ता है। महात्माजी कहते हैं कि 'जब हमारे बड़े-बूढे मर जायंगे तब अन्त्यजों की मुक्ति होगी' यह कायरों का वचन है। हमें तपश्चर्या कर के अपने बड़े-बूढों के दिल में दया और शुद्ध धर्म की वृत्ति जाग्रत करनी चाहिए। इसमें हमारा पुरुषार्थ है। ऐसे एक प्रसंग का जिक्र महात्माजी ने खुद किया है। वह इस प्रकार है—

*अन्त्यज को छूने पर मुसल्मान को छू लेने से शुद्धि हो जाती है, पुराने भावुक लोगों का यह खयाल था। —सम्पादक

पांचवां प्रसंग—"मैं जब दक्षिण आफ्रिका से आया तब विनायक नाम का एक मदरासी अन्त्यज लडका मेरे साथ था। मदरास में श्री नटेशन के यहां मुझे ठहरना था। मुझे कितने ही मित्रों ने कहा कि तुम यह क्या करते हो? नटेशन की माता इतने पुराने खयालवाली हैं कि यदि तुम इस अन्त्यज को उनके घर में ले गये तो बस बुढिया की मौत ही समझना। मैंने कहा कि इस लडके को छोडने की अपेक्षा तो मैं बेहतर है कि नटेशन के घर का ही त्याग करूं। परन्तु श्री नटेशन ने घर जा कर सरल भाव से सच बात अपनी मां से कह दी। माताजी ने कहा—'भले ही आने दो।' वे समझ गईं कि मेरे साथ आनेवाला अन्त्यज गंदा और घिनौना हो ही नहीं सकता। इस प्रकार उनके घर ठहरे और जिस कुए से वे पानी खींचती थीं उसी कुए से हमने भी खींचा। इस घटना से क्या सार निकलता है? यही कि इस प्रश्न का निपटारा अन्त्यजेतरों की सरलता और अन्त्यजों की तपश्चर्या से ही होगा।"

आज भी विनायक की तरह कितने ही अन्त्यज भाई आश्रम में सब के साथ मिल कर रहते हैं। खादी के काम में मदद देकर देश की दरिद्रता दूर करने का प्रयास ज्ञान-पूर्वक कर रहे हैं। दूदा भाई की लक्ष्मी आश्रम में "लक्ष्मी की तरह फिरती है।" उसे अन्त्यज जाति की प्रतिनिधि बना कर महात्माजी जेल से पूछते हैं—"लक्ष्मी कैसी है?"

भारतीय राष्ट्र! इसका क्या जवाब देगा?

अन्त्यज-आश्रम, गोधा] विठ्ठल लक्ष्मण फडके

सच्ची शिक्षा

(महात्माजी के लेखों से)

"सच्चा शिक्षित तो वही मनुष्य कहा जा सकता है जो अपने शरीर को अपने वश में रख सकता हो और जिसका शरीर अपना सौंपा हुआ काम आसानी और सरलता से कर सकता हो।"

"सच्चा शिक्षित वही है जिसकी बुद्धि शुद्ध हो, जो शान्त हो, और न्यायदर्शी हो। उसीने सच्ची शिक्षा पाई है जिसका मन कुदरत के कानूनों का पाबन्द हो, जो इन्द्रियों को अपने वश में रख सकता हो, जिसकी अंतर्वृत्ति विशुद्ध हो, जो नीचता-भरे कामों से नफरत करता हो, जो दूसरों को आत्मवत् समझता हो।"

"अक्षर-ज्ञान की हमें मूर्ति-पूजा-अधपूजा न करनी चाहिए। यह कोई कामधेनु नहीं है। वह तो अपने स्थान में तभी शोभा पा सकता है जब हम अपनी इन्द्रियों को वश कर सकते हों, जब नीति पर दृढ हों, जब हम उसका सदुपयोग कर सकते हों। तभी वह हमारा आभूषण हो सकता है।"

"सब से पहली बात तो यही है कि हमारे बहुत से लोग शिक्षा का सच्चा अर्थ ही नहीं समझते। आजकल जिस तरह हम जमीन का अथवा शेअर्स का भाव देखकर उनकी कीमत करने लग गये हैं उसी प्रकार वे शिक्षा की भी कीमत करने लग गये हैं। लडका हमें खूब धन कमा कर दे, इसलिए हम उसे पढाना चाहते हैं। पर इस बात की ओर ध्यान नहीं देते कि वह सच्चरित्र, सुशील हो। हम तो यह सोचते हैं 'लडकियां कहीं कमाकर नहीं खिलावेंगी इसलिए उन्हें पढाने की जरूरत ही क्या?' मनुष्य ने संपूर्ण वेद और शास्त्रों का अध्ययन भी कर लिया हो तथापि यदि वह आत्मा को न पहचान सके, समस्त बंधनों से मुक्त होने योग्य अपने को न बना सके तो उसका वह ज्ञान व्यर्थ है"

"जो विद्या हमें मुक्ति से दूर ही दूर भगा ले जाती हो वह त्याज्य है, राक्षसी है, अधर्म्य है"

"शिक्षा को आजीविका का साधन समझ कर पढना नीचवृत्ति कही जाती है। आजीविका का साधन तो शरीर है। पाठशाला तो चरित्र-गठन का स्थान है। विद्यार्थियों को यह पहले ही से जान लेना आवश्यक है कि हमें अपनी आजीविका को अपने बाहुबल से ही प्राप्त करना है।"

"देशी भाषा का अनादर राष्ट्रीय अपघात है।"

"माता का दूध पीने से लेकर ही जो संस्कार और मधुर शब्दों द्वारा जो शिक्षा मिलती है उनके और पाठशाला की शिक्षा के बीच संगति होना चाहिए। परकीय भाषा से वह शृंखला टूट जाती है और उस शिक्षा से पुष्ट होकर हम मातृद्रोह करने लग जाते हैं।"

"पिछले साठ सालों से हमारा बहुमूल्य समय वस्तु-तत्वों को ग्रहण करने के बदले अंगरेजी भाषा के अपरिचित शब्द और उनके उच्चारण को रटने ही में नष्ट होता आ रहा है।"

"माता-पिता से हमें जो कुछ शिक्षा प्राप्त होती है उसको आगे बढाने के बदले हम उसे लगभग भूलते ही जाते हैं। इतिहास में इसका दूसरा उदाहरण ही नहीं मिलता। यह तो राष्ट्र के लिए एक भारी आफत है।"

"सारे संसार भर में देख आइए। आपको यही दिखाई देगा कि हरएक राष्ट्र में बच्चों को शिक्षा ऐसी ही दी जाती है जिससे राज्यतंत्र आसानी के साथ चलाया जा सके।"

"जहां राज्यतंत्र उपकारी होता है वहां की शिक्षा-पद्धति भी वैसी ही होती है। पर जहां शासन-शैली मिश्रित होती है जैसे कि भारत में, वहां की शिक्षा-प्रणाली भी बुद्धि-भेद करनेवाली और हानिकर होती है।"

"जो शिक्षा शराब की आमदनी से दी जाती है वह तो बालकों को कभी न दी जानी चाहिए।"

"ऐसी किसको पडी है जो अपने आत्म-गौरव, और स्वत्वों का बलिदान देकर ऐसी नाशकारी शिक्षा प्राप्त करे?"

"आजकल तो गुलाम और नौकर ढालने के लिए शिक्षा दी जाती है। बालकों को स्वावलंबी और जवानी में ही स्वाश्रयी बनाने के लिए तो राष्ट्रीय शिक्षा ही दी जानी चाहिए। इसीलिए हम उन्हें कातने और बुनने की कला सिखाते हैं।"

"हाइस्कूल, कालेज, आदि दिखाऊ संस्थाओं में इस गरीब देश की सहनशक्ति के बाहर खर्च करने के बदले यदि सृष्टि-सौंदर्यमय और आरोग्य-वर्धक स्थानों पर सुशिक्षित, साहसी और नीतिमान् शिक्षकों द्वारा प्राथमिक शिक्षा बालकों को दी जाने का प्रबंध किया जाय तो मुझे विश्वास है कि हम बहुत महत्व-पूर्ण काम करके दिखा सकते हैं।"

"भारत में तो प्रत्येक घर विद्यालय नहीं, महाविद्यालय है। माता-पिता आचार्य हैं। इन आचार्यों ने अपना यह काम छोडकर अपना धर्म ही छोड दिया है। बाहरी संस्कृति को हम पहचान नहीं सके। उसके गुण-दोष ठीक ठीक रीति से नहीं जाने जा सकते। उसे तो हमने किराये पर लिया है। पर हम किराया कुछ भी नहीं देते! अर्थात् हमने उसे चुरा लिया है। इस चुराई हुई संस्कृति से भारत का उद्धार कैसे हो सकता है?"

"उपाधियों के मोह से परीक्षायें पास करने पर ही हमने आधार रक्खा। इससे प्रजा का बहुत नुकसान हुआ है।"

"विद्यापीठ के विद्यार्थियों की परीक्षा उनके पुस्तकी ज्ञान से नहीं, धर्माचरण से ही होगी।"

महात्माजी का अर्थशास्त्र

महात्माजी रस्किन की तरह अर्थशास्त्री नहीं हैं। अर्थशास्त्रियों की तरह वे इस बात को नहीं मानते हैं कि प्रजा के धन की वृद्धि होने से, प्रजा का बाहरी उत्कर्ष बढने से, मनुष्य का कल्याण होगा। उन्होंने ५४ वर्ष की अवस्था तक भंगी, जुलाहा, मोची, दरजी, रसोइया, खेतिहर से ले कर वैद्य, वकील, सम्पादक और भारत जैसे महान् भू-खण्ड के नेता की हैसियत से भिन्न भिन्न काम किये हैं। ऐसा विशाल और विविध अनुभव प्राप्त करके उन्होंने मनुष्य-मात्र की प्रकृति, जाति को पहचान लिया था। इससे उनके विचार कदाचित् किसी विशेष वर्ग को कठिन दिखाई दें। परन्तु उन सब विचारों को भारत तो ठीक ही, बल्कि सारी मनुष्य-जाति जबतक अपने जीवन में चरितार्थ नहीं कर दिखाती तबतक उसे सुख या शान्ति नहीं मिल सकती।

किसानों के लिए खासकर चंपारन और खेडा में, मजदूरों के लिए खास कर अहमदाबाद में तथा अन्त्यजों के लिए सारे भारत में महात्माजी ने जो जो काम किये हैं उन्हें भारत का बच्चा बच्चा जानता होगा। गोरक्षा तो उनका स्वभाव-धर्म ही ठहरा। गोरक्षा में वे सारी दीनजाति की रक्षा मानते हैं। ऐसे जन-कल्याण—प्राणिमात्र के कल्याण के लिए प्रयत्न करनेवाले महात्माजी का अर्थशास्त्र बिलकुल निराला ही हो तो क्या आश्चर्य है ? यहां उन्हीं के शब्दों में उनके अर्थशास्त्र-सम्बन्धी कुछ विचारों को उपस्थित करता हूं।

"दौलत की खोज पृथिवी के पेट और आंतों में नहीं, बल्कि मनुष्य के हृदय में की जानी चाहिए। यदि यह बात सच हो तो अर्थशास्त्र का सच्चा नियम तो यह है कि मनुष्य के तन, मन और प्राण को नीरोग रक्खा जाय। नीतिमान् महान् पुरुष ही देश की सच्ची दौलत है।"

"सच्चा अर्थ-शास्त्र तो न्याय-बुद्धियुक्त होता है। जो राष्ट्र इस शास्त्र को कि प्रत्येक स्थिति में रह कर न्याय किस तरह करें और अपनी नीति की रक्षा किस प्रकार करें, सीखता है वही सुखी होता है। शेष लोग तो व्यर्थ सिर धुनते हैं। उनकी हालत 'विनाश काले विपरीत बुद्धिः' की तरह होती है। जिस तरह बन पडे उसी तरह लोगों को धनवान् होने की शिक्षा देना मानों उन्हें 'विपरीत बुद्धि देना' है।"

"सस्ते से सस्ता खरीदना और महंगे से महंगा बेचना इस नियम के बराबर मनुष्य के लिए कलंकरूप दूसरी कोई बात नहीं है।"

"भारत में प्रत्येक गृहस्थ और दुनियादार आदमी के लिए पांच यज्ञ आवश्यक हैं—चूल्हा, चक्की, मूसल, घडा और चरखा। इसमें जितनी कमी होगी उतनी ही कम बरकत होगी। यदि चूल्हा न जलावे तो खा नहीं सकता—चरखा न चलावे तो पहन नहीं सकता।"

"अर्थशास्त्र यदि चूल्हे का नाश करे तो वह अनर्थवाद है। उसे 'अर्थशास्त्री' नाम शोभा नहीं देता।"

"मैं यह मानता हूं कि कितनी ही अर्वाचीन पाठ्य पुस्तकों की अपेक्षा दुनिया के धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र का ज्ञान कराने के लिए अधिक दृढ और असन्दिग्ध लेख हैं।"

"मैं यह भी मानता हूं कि आर्थिक प्रगति सच्ची प्रगति के प्रतिकूल है।"

"कुबेर और भगवान् की सेवा एकसाथ नहीं हो सकती। यह अर्थशास्त्र का एक अमूल्य तत्व है।"

"सार्वजनिक अर्थशास्त्र का अर्थ यह है कि सच्चे मौके और सच्चे स्थान पर अच्छी और आनन्ददायक वस्तुयें उत्पन्न करें, उनका संग्रह करें और उनका लेन-देन करें। जो किसान यथासमय फसल तैयार करता है, जो राज समय पर दीवार चुनता है, जो बढई लकडी का काम ठीक ठीक करता है, जो स्त्री अपना रसोईघर ठीक रखती है, उन सब को सच्चा अर्थशास्त्री समझना चाहिए।"

"पैसा जहां परमेश्वर है वहां सच्चे परमेश्वर को कोई नहीं पूछता। दौलत और ईश्वर का बे-बनाव है। ईश्वर तो गरीबों के ही यहां रहता है।"

"पैसा पैदा करने से यदि प्रजा का अधःपात होता हो तो वह पैसा काम का नहीं। फिर भी आज जो करोडपति हैं वे महान् अनीतिमय युद्धों के कारण हुए हैं। वर्तमान काल की अधिकांश लडाइयों का कारण धन का लोभ दिखाई देता है।"

"जिस प्रकार एक जगह खून एकत्र हो जाने से शरीर की हानि होती है उसी प्रकार एक जगह धन संगृहीत हो जाने से वह देश के लिए हानिकर हो जाता है।"

"धन कमाने का अर्थ है दूसरे आदमियों पर सत्ता प्राप्त करना। अपने सुख के लिए नौकर की, व्यापारी की, या कारीगर की मजदूरी को खुद छीन लेना।"

"तुम्हारे रुपयों की सत्ता तुम्हारे पडौसी की तंगी पर है। जहां तंगी है वहीं तवंगरी रह सकती है। इसका अर्थ यह है कि जो तवंगर होना चाहे उसे दूसरे को तंगी में रखना चाहिए।"

"कितने ही आदमियों के हाथों में पैसा एकत्र हो जाने से वे उपयोगी काम नहीं करते। और इससे उनके लिए दूसरे आदमियों को मजदूरी करनी पडती है। और अन्त को जिस प्रकार बिल्ली और चूहे के बीच सदा बे-बनाव रहता है उसी प्रकार धनवान् और निर्धन—मालिक और मजदूर के बीच बैरभाव हो जाता है और मनुष्य मनुष्य न रह कर पशु की स्थिति को पहुंच जाता है।"

"सच्चे आदमी ही सच्ची दौलत हैं। जो राष्ट्र नीतिमान् है वही दौलतमन्द है। यह युग आनन्द-भोग का युग नहीं है। यह तो प्रत्येक के लिए भरसक मिहनत करने का युग है।"

"सम्पत्ति के बढने से न्याय में अनीति का राज्य हो गया है। शराब खोरी से होनेवाली मृत्यु की और आत्महत्या की संख्या बढ गई है। अकाल जन्म की औसत की और जन्मजात विकलांगता की वृद्धि हुई है तथा व्यभिचार ने पेशे का रूप धारण कर लिया है।"

गुजरात विद्यापीठ] छगनलाल मथुभाई जोशी

"वस्त्रकला"

अर्थात् कपडा बुनने की किताब, भाग १, लेखक पं० मुरारीलाल शर्मा वैरा, फीरोजपूर, पो. स्याला, पृष्ठ-संख्या ५२। इस पुस्तक के लेखक महाशय ने इस पुस्तक की भूमिका में चरखे को स्वराज्य-प्राप्ति का साधन बताया है। इस कथन के अनुसार इस पुस्तक में मुख्यतया धुनकने, चरखे के सूत के बनाने और बुनने का ही वर्णन होना चाहिए था। पर इसमें तो मिलों के सूत को बुनने की ही विधि दी गई है। चरखे के आन्दोलन के जमाने में मिलों के सूत के बुन लेने को इतना महत्वपूर्ण स्थान देना उचित नहीं जान पडता। सन् १९०७-८ की स्वदेशी और आजकल की स्वदेशी में यही भेद है। देश को बुनना सीखने के बनिस्बत कांतना सीखने की विशेष और पहली जरूरत है।

इस पुस्तक का मूल्य ।||) बहुत अधिक जान पडता है। और कई एक भूलों तथा दूसरी बातों से ऐसा जान पडता है कि पुस्तक के रचयिता महाशय को असली तजरिबा कम है।

मगनलाल खुशालचंद गांधी

पीछे या आगे ?

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रति का)
विदेशों के लिए वार्षिक ,, ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष २] [अंक ८

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय | मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, कार्तिक बदी २, संवत् १९७९ | रविवार, ८ अक्तूबर, १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

देशी राज्यों की रक्षा

धारा-सभा के ना मंजूर करने पर भी वाइसराय ने 'सर्टिफिकेट' दे कर देशी राज्यों की रक्षा का बिल राज्य-सभा में आखिर पास करा लिया। 'गवर्नमेंट आव् इंडिया एक्ट' के अनुसार वाइसराय को ब्रिटिश भारत-सम्बन्धी प्रश्नों पर आवश्यकता के समय किसी प्रस्ताव को रद्द करने या अपना आग्रह दिखा कर उसे पास कराने की असाधारण सत्ता प्राप्त है। ऐसी ही सत्ता पार्लियामेंट के प्रस्तावों के सम्बन्ध में सम्राट पंचम जार्ज को भी है। पर आम तौर पर यह माना जाता है कि यह सत्ता बराय नाम के रहती है। और उसका प्रयोग स्वेच्छाचारिता की सीमा पर पहुंचा हुआ माना जाता है। वाइसराय के इस 'सर्टिफिकेट' दान पर कानूनदां लोगों के खास कर दो आक्षेप हैं—१—ब्रिटिश भारत सम्बन्धी प्रश्नों के लिए जो अधिकार वाइसराय को है उसका प्रयोग उन्होंने देशी-राज्यों के सम्बन्ध में किया; और २—दूसरे साधनों के रहते हुए असाधारण सत्ता से काम लिया गया। हम कानूनी बातों के सम्बन्ध में उदासीन हैं। हम कानून का अर्थ करते हैं दण्ड और भय। हमारा विश्वास है कि दण्ड-भय से अपराध बढते हैं, घटते नहीं। फिर हम दण्ड-भय में मनुष्यत्व की हानि और समाज की अवनति देखते हैं। हम प्रेम को ही सर्वोच्च कानून मानते हैं। अतएव हम कानूनी-लीलाओं को हम बाजीगर का इन्द्रजाल समझते हैं।

पर प्रश्न यह है कि देशी राज्यों की रक्षा के कानून की आवश्यकता क्यों है? इसलिए कि ब्रिटिश-भारत के लोग देशी राज्यों के सम्बन्ध में राजद्रोहात्मक लेख आदि लिखते हैं और इस खतरे से उन्हें दयालु सरकार को बचाना है। हमें तो जहां तक पता लगा है प्रायः सब बड़े बड़े देशी राजा सरकार के इस 'संरक्षण' के खिलाफ थे। वे इसमें अपना तौहीन मानते हैं। फिर देश में राजद्रोह क्यों फैलता है। राजद्रोह करने वालों को जेल के कठोर दुःख सहने और बाल-बच्चों को भूखा मरने देने में कौन स्वर्ग-सुख मिलता है? राजद्रोह का प्रधान कारण है सरकार या नौकरशाही की स्वेच्छाचारिता, प्रजा-पीडन और 'मेरा शब्द ही कानून है' यह अहंकार। जो इस मूल को कायम रख कर जो उसके शाखा पत्तों को कुचलने का प्रयत्न करता है वह उस पौधे के विस्तार करने का ही श्रेयोभागी होता है। ब्रिटिश भारत के राजद्रोह को ऊपर से दबाने का जो प्रयत्न किया गया उसका फल यह हुआ कि कुशासन प्रथा के प्रति राजद्रोह भारत में सर्वत्र फैला जाने लगा। वर्तमान देशी-राज्य-रक्षा-कानून का भी यही परिणाम स्पष्ट है। देशी-राज्यों के सोये हुए लोगों को सुई चुभो कर सरकार ने अपने आप जगाने और अपने मनुष्योचित अधिकारों की रक्षा करने के लिए हर तरह से तैयार होने का यह प्रयत्न किया है। परमात्मा करें यह इसमें सफल हो।

हमें देशी-नरेशों की स्थिति पर विशेष दुःख है। अपनी अंधाधुंधी, मनमानी और कहीं कहीं दुराचार के कारण वे अपने प्राण-स्वरूप प्रजाजन के हृदय में अपने प्रति अभक्ति के बीज बो रहे हैं। एक ओर से वे ब्रिटिश-सिंह की डाढ में दबे हुए हैं, दूसरी ओर से प्रजा-प्रेम रूपी भोजन से भी दिन दिन वंचित होते जाते हैं। उनके पूर्वजों के सद्गुणों और सत्कार्यों के बदौलत अभी प्रजा की सारी सहानुभूति उन से नष्ट नहीं हुई है। उन्हें शीघ्र ही संभल जाना चाहिए। साम्राज्य-लोलुपों का संरक्षण उनके लिए वैसा ही है जैसा कि शेर का संरक्षण बकरे के लिए।

पुलिस बिल

पुलिस को असहयोग-आन्दोलन का कृतज्ञ होना चाहिए कि उसने उसकी रक्षा के लिए सरकार के हाथ में एक विशेष कानून दे दिया है। पुलिस का मुख्य काम है प्रजा के जानोमाल की रक्षा करना। पर हिन्दुस्तान में सरकार और प्रजा एक दूसरे के प्रति-पक्षी हो गये हैं और पुलिस प्रजा की रक्षा के बजाय सरकार की प्राणरक्षा के ही काम में लाई जा रही है। सरकार जहां प्रजापक्षीय होती है वहां सरकार और प्रजा के हितों में भेद नहीं होता। पर जहां की सरकार एक स्वार्थी साम्राज्य वादी मनुष्य-मंडल के चंगुल में होती है वहां भारत की तरह अनर्थ होता है। असहयोग आन्दोलन प्रजापक्षीय आन्दोलन है। उसका उद्देश है सरकार को प्रजापक्षीय बनाना। भारत के अधिकांश पुलिस कर्मचारी हिन्दुस्तानी ही हैं। स्वाभाविक बात तो यह थी कि भारतीय पुलिस प्रजापक्षीय आन्दोलन में योग दे। पर इसके खिलाफ उसे अपने देश-भाइयों से रक्षित रहने के लिए विदेशी सरकार की शरण जाना पडता है। यह समय और स्वार्थ की बलिहारी है।

ब्रिटिश-साम्राज्य का मूल बल है भय-प्रदर्शन। कानून अर्थात् दण्ड-भय उसका एंजन है। पुलिस और सेना एंजन के आगे-पीछे

है और उसकी नाक है बन्दूक। इस तरह ब्रिटिश साम्राज्य भय का ही साम्राज्य है। इसके आदि और अन्त दोनों में भय है। इस भय के कारण एक ओर जहां प्रजा निर्वीर्य होती जाती है तहां दूसरी ओर सरकार मदोन्मत्त। अन्त को दोनों का नाश निश्चित है।

पुलिस की रक्षा के लिए नवीन कानून के व्यवहार के लिए नवीन पुलिस और सेना का संगठन सरकार करती है। इस भय प्रदर्शन के साथ ही उसका प्रतिकार और सामना करने के लिए जनता की शक्ति अधिक जाग्रत होती है। फिर नये कानून, नई सेना और उसका फल-स्वरूप फिर नया आन्दोलन। यही क्रान्ति का क्रम है। यदि प्रजा निर्वीर्य हो तो उसका नाश हो जाता है, यदि वह आत्म-तेज को प्रकट करे तो सरकार और साम्राज्य रसातल को पहुँच जाते हैं।

भारत ऐसे ही क्रान्ति-युग म से गुजर रहा है। वह कब से कड़े कानून और बड़ी से बड़ी सेना के आक्रमण के लिए तैयार हो रहा है। कानून के दण्ड का भय उसके दिल से दूर हो चुका है। पुलिस के डंडों का स्वागत बहादुर अकालियों ने कर के उलटा पुलिस को भय-चकित कर दिया है। अतएव वह इस पुलिस बिल का स्वागत ही करेगा।

उत्तरी और दक्षिणी सत्याग्रह

उत्तर में अकालियों का और दक्षिण म मावलों का सत्याग्रह-संग्राम बराबर जारी है। अकालियों पर पुलिस की डण्डेबाजी यद्यपि अब बन्द है तथापि बीच बीच में उनकी पशुता की खबरें आही जाती हैं। गिरफ्तारियां बराबर जारी हैं। इस माहकी पहली तारीख तक कोई ८९७ गिरफ्तारियां हो चुकी हैं। हजारों सिक्ख गिरफ्तारियों के लिए आतुर हैं। और रोज अस्सी अस्सी की टुकड़ियों का बलि वे चढ़ा रहे हैं। गेहूं की बुआई का समय नजदीक आ गया है। इसलिए गुरुद्वारा प्रबन्धक कमिटी ने यह सन्देश भेजा है कि हरएक सिक्ख भाई को अपने गिरफ्तार हुए पड़ोसी क खेत को जोत कर फिर गिरफ्तारी के लिए अमृतसर आना चाहिए। मुल्शी पेठा में भी धर-पकड़ और सजायें जारी हैं। दोनों जगह खूब संगठन और निश्चय के साथ लड़ाई लड़ी जा रही है।

अमृतसर में 'गुरु का बाग'—प्रकरण की तहकीकात जांच-समिति ने आरम्भ कर दी है। खबर है कि सरकार गुरुद्वारा के प्रबन्ध के सम्बन्ध में ऐसा बिल उपस्थित करनेवाली है जिससे सिक्खों को सन्तोष हो। यह भी सुना जाता है कि इस निपटारे में पहली शर्त है आजतक गिरफ्तार हुए तमाम अकालियों को छोड़ देना। अभी निपटारा भविष्य क गर्भ में है। तबतक देखना चाहिए आसमान क्या रंग लाता है।

मुलतान में सभाबन्दी

हाल ही में भारतभूषण मालवीय जी और हकीम अजमलखान साहब मुलतान गये थे। वहां उन्होंने हिन्दू-मुसल्मानों की एक संयुक्त सभा करने का उपक्रम किया था कि पुलिस सुपरिटेन्डेन्ट का हुक्म मिला—"सभा न की जाय।" क्यों? "यहां के हिन्दू-मुसल्मानों के दिल अभी भड़के हुए हैं।" खूब रही! क्या सचमुच मालवीयजी और हकीम साहब की बनिस्बत मुलतान की पुलिस को या नौकरशाही को हिन्दू-मुसल्मान-एकता की अधिक चिन्ता है? यदि ऐसा ही है तो पुलिस के थानों के कुछ ही गज के फासले पर दंगे क समय को जो अनर्थ हुए उस समय वे कहां सो रहे थे? यदि पुलिस को शान्ति और जन-सेवा या जन-कल्याण की इतनी कसक है तो फिर उसकी हितैषिता के प्रति लोगों के दिल में इतना सन्देह क्यों? पुलिस का नाम उन्हें यमराज के नाम की तरह अप्रिय और अमंगल क्यों? पर जिस शासन-पद्धति के ही मूल मे लोक-सेवा का अभाव है—आभास मात्र है, उसके फल-फूल में असली सुगन्ध और स्वाद कहां से आ सकता है? ठूंठ का कौनसा अंग सीधा कहा जा सकता है?

सविनय भंग का प्रस्ताव

सविनय-भंग-समिति की रिपोर्ट अभी प्रकाशित ही नहीं है तबतक उधर पंजाब की प्रान्तिक परिषद ने सविनय भंग का प्रस्ताव पास कर दिया है। यह अकाली-संग्राम का फल है।

पंजाब की नौकरशाही को इसके लिए अपने आप को धन्यवाद देना चाहिए। सब की आंखें महासमिति के मन्तव्य की ओर लग रही है। जो निकट भविष्य में सविनय भंग चाहते हैं उनका सबसे पहला फर्ज है अकालियों की तरह संगठन, शान्ति और खादी का काफी प्रचार करना।

नये शिकार

दमनासुर का शिकार-सत्र धीरे धीरे परन्तु निश्चय के साथ जारी है। घात पा पा कर वह एक एक को गट करता जाता है। हाल ही में पंजाब के प्रसिद्ध मुसल्मान देशभक्त मलिक लालखां गिरफ्तार किये गये हैं। लाला लाजपतराय आदि के साथ पहले आप एक बार गिरफ्तार हो कर छूट चुके थे। अब दुबारा सरकार उनकी सेवाओं की कदर करना चाहती है।

सिन्ध (हैदराबाद) क हिन्दू पत्र पर वहां के चीफ कमिश्नर की विशेष कृपा दृष्टि है। अबतक उसके कोई ८ सम्पादक जेल में तपस्या कर रह हैं। हाल ही एक और सम्पादक उस धाम को पधारे हैं।

करनाटक के प्रसिद्ध देशभक्त कौजलगी भी एक साल के लिए आराम करने गये हैं। आप करनाटक प्रान्तीय समिति के उपाध्यक्ष थे। अपने लेखी बयान में आपने कहा कि "मैंने आजतक शान्ति का ही प्रचार और व्यवहार किया है। मुझे चाहे कुछ भी सजा दी जाय मैं तो अपने सत्याग्रह धर्म के अनुसार शासक प्रति शुद्ध प्रम-भाव ही रख सकता हू।" जो सरकार ऐसे शान्ति और प्रम क पुजारी को जल क कठोर कष्टों का पुरस्कार देती है उसके प्रति लोक-हृदय में अप्रीति फैलती जाय तो क्या आश्चर्य है?

प्रतिज्ञा पूरी की!

गुजरात प्रान्तिक समिति ने महात्माजी की वर्षगांठ पर गुजरात-विद्यापीठ के लिए १० लाख रुपये एकत्र करने की प्रतिज्ञा की थी। हमें लिखते हुए हर्ष होता है कि बम्बई और गुजरात के विद्या-प्रेमी और गांधी भक्त धनिकों के दान और विद्यापीठ के हितचिन्तकों क प्रयत्न से गुजरात की प्रतिज्ञा पूरी हुई। महात्माजी की जयन्ति क उत्सव के समय श्री वल्लभभाई पटेल ने प्रकट किया कि १० लाख से ऊपर रकम हो चुकी है। गुजरात इसके लिए बधाई और अभिमान का पात्र है।

'तनहाये कफस"

जेल-जीवन कष्टमय होता है। तथापि मनस्वियों के दिल पर उसका असर नहीं हो पाता। वे अपने सिद्धान्त के आगे उसे कुछ नहीं समझते। जैसे बाह्य जीवन में वे आनंद-पूर्वक रहते हैं वैसे ही वहां भी वे जेलों के कष्टों का असर अपनी आत्मिक शान्ति और आनन्द पर नहीं होने देते। बल्कि वहां उन्हें जो एकान्त मिलता है उसम तो वे और भी ऐसे गहन विषयों का चिंतन और अध्ययन कर सकते हैं जिनका करना बाहर क व्यावहारिक जीवन में उनके लिए आसान नहीं होता। इसीलिए जेलों में कितने ही उत्तमोत्तम ग्रन्थों की रचना हुई है।

इस असहयोग के महापर्व ने तो मानों जेलों को एक तपो-भूमि बना दिया है। देश के चुने हुए रत्न अपनी देशभक्ति का

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, कार्तिक बदी २, सं १९७९

पीछे या आगे ?

भारत सदियों का रोगी है। पर पिछले डेढ़–सौ वर्षों से तो उसके रोग ने बड़ा ही दुःखद और घातक रूप धारण कर लिया है। रोग का प्रभाव तो बढ़ता जाता था, पर रोगी को भास होता था मैं चंगा हो रहा हूं। वह रोग है गुलामी। लेकिन भारत अब मोह–निद्रा से जाग्रत हो रहा है। वह समझता जाता है कि धूर्तों ने उसपर जादू डाल दिया था। उसने उसके नाशक प्रभाव से अ–सहयोग शुरू कर दिया। रोग का जोर कुछ दबा। रोगी सचेतन दिखाई देने लगा। धूर्त लोग चौंके। वैद्य को अपने कैदखाने में बन्द कर दिया। पर वैद्य अपनी अमृत–संजीवनी और गुलामी–कुठार नाम की जड़ी भारत को सौंपता गया। अब भारत के [illegible] की परीक्षा हो रही है।

[illegible] या अहिंसा 'अमृत–संजीवनी' है और असहयोग 'गुलामी–कुठार' है। इन जड़ियों ने थोड़े ही समय में रोगी को जितना जीवन–दान किया है वह उसके राष्ट्रीय जागृति के इतिहास में [illegible] हो गया है। पर दुर्भाग्य से उसके कुछ पुत्र दवाओं को और उसके अनुपान को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे हैं। कुछ तो पहले ही से उसपर भरोसा नहीं रखते थे। ये लोग, प्रायः [illegible] लक्षणों को देख देख कर चिकित्सा करनेवालों की श्रेणी के हैं। रोग का निदान करके चिकित्सा करना नहीं जानते, या नहीं [illegible] करते। बरसों से अपनी पद्धति की निरुपयोगिता का अनुभव होने पर भी उनकी आंखें नहीं खुलतीं। महात्माजी के जेल जाने के बाद उनकी [illegible] फिर जाग्रत हो रही हैं। पुराने संस्कार फिर [illegible] और अनुपान में कमीबेशी करने की [illegible] आ रही है। [illegible] कहते हैं—सरकारी शिक्षा–संस्थाओं, अदालतों और धारा–सभाओं का बहिष्कार निष्फल हुआ। न एक सरकारी [illegible] टूटा, न एक अदालत ही बन्द हुई, न धारासभा में [illegible] कमी हुई। [illegible] कार्यक्रम में से यह त्रिविध बहिष्कार [illegible] चाहिए और असहयोगियों को धारासभाओं में [illegible] कर देना चाहिए। ये [illegible] कहते हैं "क्षात्र–तेज की [illegible] कायरता का पाठ पढ़ा [illegible] रक्षा के लिए सेना की [illegible] शस्त्र–संचालन की शिक्षा क्यों न दी जानी चाहिए? उसे [illegible] के कार्यक्रम में क्यों न [illegible] कार्यक्रम को वे [illegible] कर [illegible] नहीं रही। न सरकार [illegible] है। यह तो समाज–सुधार [illegible] स्वराज्य प्राप्त हो जाने पर एक [illegible] किया जायगा"। जो लोग रचनात्मक [illegible] अन्धानुयायी, बुद्धिहीन, दास [illegible] 'प्रमाणम्' मानने वाले या लकीर के फकीर [illegible]

ये कटाक्ष, ये आक्रमण ऐसे ऐसे भाइयों की ओर से हो रहे हैं जिनके सदुद्देश पर सन्देह करना हम पाप समझते हैं। हम उन्हें वैसा ही देशभक्त मानते हैं जैसा कि रचनात्मक कार्यक्रम–वादी, असहयोग–वादी या अहिंसा–वादी भाइयों को मानते हैं। इस बात पर भी हमें ऐतराज नहीं हो सकता कि जिसका जो सच्चा मत है उसे प्रकट करने का उसे पूरा पूरा अधिकार है। इसमें भी कोई शक नहीं कि केवल मत–भेद होने या प्रकट करने के लिए किसी को देश–द्रोही कहना या मानना महज नादानी है। स्वराज्य तो उसी अवस्था का नाम है जिसमें हरएक शख्स को खुलकर बात करने की आजादी रहे और उसकी बात प्रेम और ध्यान से सुनी जाय। पर इन सब बातों के होते हुए भी हमें इन भाइयों की दलीलों में सार नहीं नजर आता, उनकी कार्य–प्रणाली में स्वराज्य नहीं दिखाई देता। सब से पहले स्कूलों के बहिष्कार को लीजिए। यह बात तो अन्धा और बहरा भी नहीं कहेगा कि इसमें बिलकुल सफलता नहीं हुई। जिस हदतक हमने काम किया, मेहनत की, उस हद तक सफलता जरूर हुई है। यदि काफी सफलता नहीं दिखाई देती तो दोष किसका है? हमारा या दवा का? जो रोगी आधी दवा पीता है, आधी उंडेल देता है उसका दवा के गुणों पर सन्देह करना कहां तक युक्तिसंगत है? फिर पेट में पहुंची हुई दवा को कै करा के निकलवा डालने का आग्रह तो और भी हास्यास्पद है। अतएव शिक्षा–संस्थाओं के बहिष्कार को रद करने का आग्रह करना मानों मौजूदा राष्ट्रीय विद्यालयों को तोड़ डालने का ही आग्रह करना है। जो लाभ हमें हुआ है उससे भी हाथ धो बैठना है।

अदालतों के बहिष्कार की सफलता की गवाही वे २७ हजार कैदी दे रहे हैं जो बिना ही सफाई दिये जेलों के कष्ट भोग रहे हैं। यदि दो चार वकीलों ने फिर से वकालत शुरू कर दी है तो सैकड़ों वकील बिना सफाई दिये जेल जा चुके हैं।

धारासभा के बहिष्कार की सफलता तो दीपक की तरह स्पष्ट है। जो लोग आज कौन्सिलों के मेम्बर हैं उन्हें देश आज अपना प्रतिनिधि मान ही नहीं रहा है। वे देश के मुट्ठीभर लोगों के 'येन केन प्रकारेण' चुने गये सदस्य हैं।

एक बात खास तौर याद रखने लायक है। असहयोग का सारा कार्यक्रम स्वराज्य–स्थापना का संपूर्ण नुसखा है। इस कार्यक्रम के जितने अंग हैं उनमें जब हम अनिष्ट सरकार से असहयोग करते हैं तब उसकी जड़ काटते हैं और जब हम आपस में सहयोग करते हैं तब अभीष्ट सरकार की स्थापना करते हैं। यह एक वैज्ञानिक सम्पूर्ण योजना है—स्वराज्य के धर्म–शास्त्र का संपूर्ण सूत्र या मन्त्र है। आवश्यकता के अनुसार हम किसी एक या एकाधिक अंग का प्रयोग कर के शेष अंगों को कुछ समय के लिए स्थगित भले ही रक्खें; पर हम उनका त्याग नहीं कर सकते।

'दूरतः पर्वताः रम्याः' की तरह जो भाई धारा–सभा की तरफ आकर्षित हो रहे हैं वे सदुद्देश से अपनी शक्ति के दुर्व्यय करने का प्रयत्न कर रहे हैं। वे शिकारी के जाल में फंस कर उसके लिए अनुकूल और देश के लिए प्रतिकूल परिस्थिति तैयार करने का बीज बो रहे हैं। आज सुधारों और सहयोग के भक्तों की आंखों में जो अंजन अपने आप गिर रहा है उससे असहयोग की जड़ को पानी मिल रहा है। पर वे वहां जा कर असहयोग के भ्रम से सहयोग की जड़ को पानी सींचेंगे, सहयोगी और विरोधी आपस में लड़ेंगे, शिकारी दाना डाल कर तमाशा देखेगा और हमारी समझ पर मन ही मन हंसेगा। जिस प्रकार अव्यवस्थित शस्त्र–सामग्री के दुर्बल प्रयोग का अन्त घोर दमन और फौजी कानून के रूप में होता है उसी प्रकार धारासभाओं के दुर्बल विरोध का फल एकाध 'शिक्षक शक्ति–कानून' होगा और

उसके बाद फिर से असहयोग में शामिल हुए बिना दूसरी गति नहीं। यह महज 'द्राविडी प्राणायाम' है।

अब हिंसा और अहिंसा के प्रश्न को लीजिए। आज भारत नवीन युग की क्रान्ति की तैयारी कर रहा है। पशु-बल को छोड़ कर मानव-बल के प्रयोग की तैयारी कर रहा है। सामूहिक पशुता के स्थान पर सामूहिक मनुष्यता का उदय हो रहा है। अहिंसा इस क्रान्ति का मुख्य मन्त्र हो रहा है। हम मानते हैं कि इस क्रान्ति का फल-स्वरूप अहिंसा विश्व का मनुष्योचित धर्म होगा। हमारा विश्वास है कि भारतीय स्वराज्य अहिंसा की ही नींव पर, जिसका व्यावहारिक रूप प्रेम है, टिक सकता है। संसार भी यदि पारस्परिक एकता और उन्नति का पिपासु हो तो उसे अहिंसा-तत्व की ही शरण आना पड़ेगा। पर भारतीय स्वराज्य के लिए हमारे बहुतेरे देश-भाइयों ने अहिंसा को व्यवहार-नीति के तौर पर माना है। तो अब हम पूछते हैं कि क्या उस व्यवहार-नीति की मीयाद खतम हो गई? जिस उद्देश से अर्थात् स्वराज्य के लिए आपने अहिंसा की प्रतिज्ञा की थी, उसे प्राप्त कर चुके? क्या अब आपको [illegible] हो गया है कि शस्त्र-बल से स्वराज्य ले लेंगे? क्या आप शस्त्र-बल के प्रयोग के लिए तैयार हैं? यदि इन सब का उत्तर आपके पास 'नहीं' है तो दबे-छुपे लेखों और भाषणों में हिंसा-की झलक दिखाने और 'अहिंसा' की 'तोता रटन्त' से क्या फायदा? क्या यह आपकी शक्ति का दुरुपयोग नहीं है? क्या इससे शान्तिमय युद्ध की तैयारी में बाधा नहीं पड़ती है? क्या इससे जनता का बुद्धि-भेद नहीं होता? हो सकता है कि आप आदत से लाचार हों। पर भाइयो, अपने कार्यों के फलाफल पर भी तो ध्यान देने की जरूरत है या नहीं? विकार पर विचार के प्रभुत्व की आवश्यकता है या नहीं? हिंसा-काण्ड को ही क्षात्र-तेज कह कर मनुष्यता की दृष्टि में वीर क्षत्रियों को नीचा दिखाने का क्यों प्रयत्न करते हैं? पहले स्वराज्य तो प्राप्त कर लीजिए; हर तरह से जकडे हुए कड़े बंधनों से तो मुक्त होइए, मौत से तो बचिए—फिर भले ही क्षात्र-तेज और रक्षक सेना की बात हमारे मुंह से शोभा दे सके। यह तो "कम जोर गुस्सा भारी" वाली नीति हुई।

कुछ लोग यह समझ रहे हैं कि जो रचनात्मक कार्यक्रम का समर्थन कर रहे हैं वे परिवर्तन के विरोधी हैं। महात्माजी के जेल से छूटने तक वे टस से मस नहीं होना चाहते। और इसीलिए वे उन्हें अनेक विशेषणों से विभूषित करते हैं। पर यह वस्तु-स्थिति का पूरा विपर्यास है। हम पूछते हैं आप परिवर्तन क्या चाहते हैं? क्या देश आज सामुदायिक भंग के लिए तैयार है? यदि नहीं तो क्या उसकी तैयारी की जरूरत नहीं है? यदि है तो फिर रचनात्मक कार्यक्रम के बिना आप तैयारी कैसे करेंगे? यदि नहीं कर सकते तो फिर कड़वी दवा पीने से पीछे हटने में क्या फायदा? क्या यह घोर प्रतिकार और संग्राम की तैयारी नहीं है? क्या कौन्सिलों के द्वारा इस संग्राम की तैयारी हो सकती है? कौन्सिलों का आन्दोलन वैध आन्दोलन है, पंगु और निर्बल आन्दोलन है। वह सहयोग है। देश को अब सहयोग से नफरत आ गई है। वह वैध आन्दोलन और सहयोग की कक्षा से निकल कर क्रान्ति के क्षेत्र में आ पहुंचा है। उसे फिर पीछा घसीट कर पुराने गड्ढे में गिरा देना क्या बुद्धिमानी है? आपके परिवर्तन का दूसरा क्या अर्थ हो सकता है? आप आगे बढ़ना चाहते हैं, या पीछे हटना? यदि आगे बढ़ना चाहते हों तो कौन्सिलों का काम छोड़ो, रचनात्मक कामों में प्राण-पण से जुट पड़ो और तैयारी होते ही विगुल बजा दो! घबरा कर पीछे क्यों हटते हो? हरिभाऊ उपाध्याय

रण-भेरी

यह तो स्पष्ट है कि यूनानियों ने अपनी ओर से यूरोपियन राष्ट्रों में दावाग्नि सुलगाने की भरसक कोशिश कर देखी। अन्तर्राष्ट्रीय समाचार-पत्रों में एथेन्स से आई हुई तुर्कों के अत्याचारों की झूठी और उत्तेजक खबरों की बाढ़ सी आ गई थी। अमेरिका के और दूसरे मित्र राष्ट्रों के नागरिकों पर आक्रमण करने के निराधार समाचार और अंगरेजी छावनियों पर कमाल पाशा के साथियों द्वारा युद्धोत्तेजक आक्रमणों की खबरें एन्थेस से रोज भेजी जाती थीं। अंगरेजी प्रधान सचिव भी साम्राज्य के गोरे उपनिवेशों में युद्ध का पुनर्निमन्त्रण भेजकर उनके मंद युद्धोत्साह को जगाने का यथाशक्य प्रयत्न कर रहे हैं। पर फ्रान्स की समझदारी और दृढ़ता ने, ब्रिटेन के मित्र-राष्ट्रों को युद्ध-क्षेत्र में खींचने की कोशिश करते हुए भी, संसार को युद्धानल से बचाये रक्खा है। तथापि स्थिति बड़ी गंभीर और भय-प्रद है। और भारत को चेतकर अभी से अपना मत स्थिर कर लेना चाहिए, जिससे मौका आते ही बिना किसी प्रकार झिझके वह साफ उत्तर दे सके।

जैसा कि तारों से ज्ञात हो रहा है विजयी तुर्कों की मांगें उनके कठोर आत्म-संयम से भरी हुई हैं। उनके जैसी सैनिक विजय से दूसरे किसी लड़ाके राष्ट्र का तो सिर भी ठिकाने न रहता। इतने पर भी और इसके साथ ही साथ यूरोप की स्थिति को देखते अनेक अनुकूल परिस्थितियों के होते हुए भी, वे उस उचित उत्तरदायित्व और निर्लोभता का परिचय दे रहे हैं, जो सच्चे शूर-वीरों के सर्वथैव योग्य है। पर यदि ब्रिटेन संसार में युद्ध की आग सुलगा ही दे तो भारत का क्या कर्तव्य होगा? इस दूसरे मौके पर जब कि भारत को अपने कर्तव्य का निर्णय करना है वह अपने हकों की शर्तों को उसके सामने पेश करने के बजाय क्या वह अपने पुत्रों को लड़-मरने के लिए भेजेगा और क्या वह अपने बच्चों को भूखों मार कर तुर्कों को अपनी मातृभूमि की पुनःप्राप्ति में विघ्न करने के लिए धन-राशि बहायेगा? क्या भारत के मुसल्मान अपनी मातृभूमि के प्राप्त्यर्थ लड़नेवाले तुर्कों से लड़ने के लिए,—कान्स्टांटिनोपल को तुर्कों के हाथ में जाने से बचाने के लिए और खलीफा और एशिया निवासियों पर यूरोप की सत्ता स्थापित करने के लिए हमारे ही दिये हुए करों से दिये जाने वाले बीस रुपये और खाकी वर्दी के लोभ में पड़कर फौज में अपना नाम लिखायेंगे? क्या भारत के हिन्दू, सिक्ख और गुरखा अपनी विवेक-बुद्धि और भ्रातृ-भाव को दबा कर अपने भारतीय मुसल्मान भाइयों के दिलों को और भी गहरी चोट पहुंचाने के लिए खड़े हो जायंगे? पिछली बार हम विश्वास की स्वप्न-सृष्टि में विचर रहे थे, और हमने ऐसे वचनों पर विश्वास किया जिनका हमें ख्याल भी न था कि इतने लज्जाजनक तौर पर भंग कर दिया जायगा। पर मनुष्य को समय के अनुसार अपनी गति-विधि को भी बदलते रहना चाहिए। अब हम उन पर पहले जैसा विश्वास नहीं कर सकते। अब हम ऐसे मनुष्यों के वचनों पर कभी विश्वास नहीं कर सकते जिन्होंने पहले उनका इस तरह से भंग किया है कि जिसकी दुरुस्ती होना असम्भव है। इस बार भारत को अपनी पिछली भूल से सँभल कर दृढ़ता धारण करना चाहिए। यह कोई साम्राज्य की रक्षा का सवाल नहीं है। गाजी कमाल पाशा अंगरेजी साम्राज्य को नष्ट करने की तैयारी नहीं कर रहे हैं। यथार्थ में तो यह साम्राज्यशाही ही इस साम्राज्य के अस्तित्व के लिए भयप्रद है। भारत को अब अपने विवेक और धर्म को ठुकराकर युद्ध में शामिल होने से इन्कार कर देना चाहिए। अब तो मुसल्मान, हिन्दू, सिक्ख, राजपूत और गोरखा सब का बस यह एक ही जवाब होना चाहिए कि इस बार हम न तो लड़ेंगे और न धन देंगे

भी, शायद जार्ज ने जो अपना युद्ध-निमन्त्रण कैनेडा को ही भेजा, यह ठीक ही किया। वे यह भली भांति जानते हैं कि तुर्कों के साथ युद्ध करना भारत के नाजुक भावों से और आकांक्षाओं से युद्ध छेड़ना है। उन्होंने यदि घाव नहीं तो कमसे कम उस पर नमक छिड़कने की मिहरबानी तो नहीं की। यह भी हो सकता है कि भारत सरकार को वह युद्ध-निमन्त्रण मिल भी चुका हो। पर उन्होंने जान-बूझ कर बुद्धिमत्ता-पूर्वक उसे जनता को न सुनाया हो। अगर हम पहले ही से अपने हृदय को देखकर मौके पर किस तरह काम करना चाहिए इसका निश्चय कर लें तो इससे कुछ होना जाना नहीं। सहयोगी भाइयों ने भी आरंभ तो ठीक किया है और यह कहने में कोई हर्ज नहीं दिखाई देता कि कम से कम इस प्रश्न पर तो वे देश में फूट के साधन न बनेंगे।

"आपका और हमारा यह संयुक्त साम्राज्य भयप्रद अवस्था में है, दौड़िए इसे बचाइए! आपके धार्मिक भावों का पूरा पूरा विचार किया जायगा, धन द्वारा सहायता कीजिए! आपको मनमाना सूद दिया जायगा"। आदि करुणा-जनक और लुभावनी पुकार, मालूम तो होता है, इस बार उन्हें मूढ़ नहीं बना सकती। श्री फजलुल हक और श्री अब्दुल कासीम की नोटिस और प्रस्ताव से तो पता चलता है कि वे अधिक बुद्धिमानी और दृढ़ता से काम ले रहे हैं। पर इतनी साफ रीति से चेतावनी देने पर भी अगर हम कठिन परिस्थिति में घसीटे ही गये तो तो हमें समझना चाहिए कि परमात्मा की यही मर्जी है और जिस स्वतंत्रता के लिए झगड़ रहे हैं उसे हमें देने के पहले हमारी परीक्षा ले लेने का यह मार्ग उसने सोच रक्खा है। एकता के बंधन में बंधी हुई जाति का निश्चय अबतक कभी वृथा नहीं गया है। इस बात में चाहे जितना सत्य हो कि अंगरेज ग्रीस को गुप्त रीति से मदद कर रहे हैं पर यह तो निःसन्देह सत्य है कि भारतीयों के भावों को कहीं आघात न पहुंचे इस ख्याल से खुल्लम खुल्ला यूनानियों को सहायता करने से वे रोके अवश्य गये। ब्रिटेन भली भांति जानता है कि उन भावों की शक्ति अभी जरा भी कम नहीं हुई है। पर वह शायद यह सोच रहा हो कि उपद्रव मचाने वाली खास खास व्यक्तियों को तो मैंने बंद कर ही रक्खा है, अब तो भारत से मैं अपने दिल की करा सकता हूं। इसलिए अब इस बात का जवाब देना कि तुर्कों को अपने स्वत्वों की पुनः प्राप्ति होगी या नहीं और भारतीयों को साम्राज्य में कुछ अधिकार और कर्तव्य हैं या नहीं, बहुत कुछ भारतीयों पर ही निर्भर है। एक अंगरेजी समाचार-पत्र, जो कि कहा जाता है कि अधिकतर उच्च पदाधिकारियों के विचारों को ही प्रतिबिंबित करता रहता है, लिखता है कि हमें इस समय पूर्व यूरोप और निकट एशिया में शांति प्रस्थापित करने के लिए जिन कामों को करना अति आवश्यक है, उसका मूल्य भारतीय असंतोष के रूप में हमें चुकाना होगा। अगर बदनसीबी से ब्रिटेन इन मार्गों का अवलंबन करने पर उतारू हो ही जाय, जैसा कि पूर्वोक्त समाचार पत्र के लेखों से सूचित होता है, और भारत का भी यह निश्चय दृढ़ हो कि इस बार वह ब्रिटेन के इशारे पर न नाचेगा, तो हम जानते हैं कि इसका नतीजा उसे किस तरह भुगतना होगा। उसे भीषण दमन का सामना करना पड़ेगा। हमें इन बातों के लिए तो तैयार ही रहना चाहिए कि हमारे तमाम नेता किसी न किसी कारण के लिए जेलों में ठूंस दिये जायंगे और तमाम जनता पर ऐसा भीषण भय-प्रयोग किया जायगा जिससे वह आत्म-समर्पण करने अथवा कमसे कम चुपचाप बैठने के लायक हो जाय। इसलिए अगर जनता अपने थोड़े से नेताओं पर ही अवलंबित रहे तो उसे कभी मुक्ति नहीं मिल सकती। नेता चाहे जेल में हों या बाहर जनता को स्वयं भला-बुरा सोचने की शक्ति रखना चाहिए। उसे अपना कर्तव्य स्वयं जानना चाहिए और उसके अनुसार कार्य करने की शक्ति रखना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य का पथ-प्रदर्शक उसकी अंतरात्मा की प्रेरणा हो। वह परमात्मा के सिवा किसी मनुष्य से न डरे जबतक हिन्दू-मुसलमान-एकता और अहिंसा ये दो महा सिद्धान्त हमारे पथ-प्रदर्शक हैं, तबतक हमारे अदना से अदने आदमी के हाथ भी गलती न होगी और वह बगैर नेता के भी कहीं न रुकेगा। जब कि महात्माजी ने हमारे हाथ में ऐसा मूल्यवान तावीज बांध रक्खा है जो हमें सन्मार्ग पर ले जा सकता है तब तो लाचारी हमें छू तक नहीं सकती।

(यंग इंडिया) च० राजगोपालाचारी

नवीन हितोपदेश

श्वेतमुख के पक्षी

"यह तो श्वेतमुख के द्वारा सुंदर परों के लिए पकड़े गये उन पक्षियों के संदेह जैसा हुआ"।

मृगराज पिंगलक ने जंभाई लेते हुए पूछा:—श्वेतमुख के पक्षी ! दमनक, यह क्या कोई कहानी है? भला सुनूं तो! उस दिन धूप बड़ी तेज गिर रही थी और मृगराज पिंगलक को नींद घेर रही थी।

दमनक ने कहा "क्या हुजूर ने वह कहानी कभी नहीं सुनी"? और करकटक की ओर इस भाव से आंख से इशारा किया कि कहानी कहते समय कहीं असावधान न रहना।

मृगराज ने अधमुंदी आंखों से कहा "नहीं, कभी नहीं, तुम कहो, मैं सुनना चाहता हूं"।

दमनक अपने पिछले पैरों पर बैठ गया और धीरे किसी कहानी कहना शुरू किया। बीच बीच में वह अपनी पूंछ को भी हिलाता रहता जिससे सिंह को कहीं इतनी नींद न आ घेरे कि वह कहानी भी न सुन सके।

"एक दिन श्वेतमुख नाम के बहेलिये ने अपने जाल में कई पक्षी पकड़े और उन्हें अपने पिंजड़े में उनके सुंदर परों के लोभ से बंद कर रक्खा। बेचारे गरीब पक्षियों ने पिंजड़े से निकल भागने के लिए खूब उछल-कूद की; पर वे उस तार के पिंजड़े के बाहर न निकल सके। श्वेतमुख ने उन के पिंजड़े में अनाज पानी रख दिया और उन्हें अपनी भाषा के कुछ कुछ शब्द भी बोलना सिखा दिये। पर कुछ पक्षी तो ऐसे थे जिनका इन बातों से सन्तोष नहीं हो सकता था। वे दुःख के मारे घुल घुल कर मर भी गये, पर दूसरोंने अपने भूतकाल को भूलना और भविष्य का विचार ही न करना सीख लिया। वे तो मजे में वह दाना-पानी खाते-पीते, उस व्याध के सिखाये शब्दों को रटरट कर उसका और अपना मनोरंजन किया करते, उसके लिए अपने सुंदर पर भी झाड़ दिया करते और सुख से रहते थे।

एक दिन उन्हें बड़ा कोलाहल सुनाई दिया। आकाश में पक्षियों के झुंड के झुंड इधर से उधर और उधर से इधर स्वतंत्रता-पूर्वक उड़ते जा रहे थे। श्वेतमुख के पक्षियों ने वह कोलाहल सुना और पक्षियों को भी इस तरह इधर-उधर उड़ते हुए देखा। उनका भी जी उस पिंजड़े में पड़े पड़े ऊब आया। एकाएक हृदय धड़क उठा, और यह इच्छा हुई कि हम भी इसी तरह हवा में खूब मनमाना उड़ें।

व्याध ने उन पक्षियों को इस तरह पंख फड़-फड़ाते हुए देखा। उसने सोचा "यह पिंजड़ा इनके लिए छोटा है" और उनको एक बड़े पिंजड़े में रख दिया; एवं उनको अधिक संतुष्ट करने के लिए उसे लता-पत्रों से भी जरा सजा दिया। पर वे तो फिर भी असंतुष्ट ही रहे। व्याध ने सोचा "शायद इनका तो दिमाग ही बढ़ गया है" और वह कोई जरूरी काम से बाहर चला गया। इन दिनों उसके छोटे भाइयों से उसका बड़ा झगड़ा हो गया था और दूसरे भी कई झंझट उसके पीछे थे।

एक पक्षी जो कि बडा दूरंदेश था, बोला "हम उसका दिया दाना-पानी खाते-पीते हैं, उसीकी भाषा बोलते हैं और आनन्द करते हैं। इसलिए इतने मोटे हो गये हैं। इस पिंजडे की ओर देखो। अगर आज ही से हम उसका दिया दाना न खावें और अपनी हालत पर सच्चे दिल से अफसोस करें तो हम जरूर दुबले हो जायं और तब तो इस पिंजडे के छडों से हम बाहर निकलने योग्य हो जायं। व्याध तो हमें हमारे इन सुन्दर परों के लोभ से रखता है। अगर हम इसी तरह खा पी कर खुश रहेंगे और चर चला करेंगे तो वह हमें कभी न छोडेगा। पर अगर हम उसके किसी काम के न रहें तो वह हमारी कभी न परवा करे।

पक्षियों ने कहा "पर चचाजी हम फाकेकशी कैसे कर सकते हैं? आप तो एक अजीब बात सुना रहे हैं। भला ऐसा भी कभी हुआ है कि हमें भूक लगे और हम दाना न खावें। नहीं नहीं, यहां से निकल भागने का कोई दूसरा रास्ता बताइए।"

बडे पक्षी ने कहा "मेरे भाइयों, अब तो इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं। हां, एक समय तुम्हारे पंखों में और चोंच में वह ताकत थी कि तुम इस पिंजडे के तारों को तोड कर भाग सकते थे। पर अब वह बात न रही। अब तो अगर तुम्हारी यह दिली इच्छा हो कि इस विशाल आकाश मंडल में खूब उडें और उन झाडों के हरे-भरे पत्तों और डालियों में स्वतंत्रता-पूर्वक खूब खेलें-कूदें, मनमाने फल खावें, तब तो इसके सिवा दूसरा एक भी रास्ता नहीं कि हमें आज ही से इस व्याध का दिया दाना खाना छोड देना चाहिए और अपनी हालत पर अफसोस करते हुए दुबले-पतले हो जाना चाहिए। तभी हम इन छडों से निकलकर भागने योग्य हो सकते हैं। अगर हमें हमारे पिता सूर्य का, विशाल नीले आकाश का और उन सुंदर पेडों का सच्चा प्रेम है तो हमसे यह हो ही कैसे सकता है कि हम इस शिकारी का दिया अनाज खावें, उसका पानी पीवें, हृष्ट-पुष्ट बनें, उसके पराये शब्दों को रटने में अपना अहोभाग्य समझें और उसके लिए पर डालें?

सचमुच अगर हम उसके लिए अपने को बेकार ही साबित कर दें तो बहुत मुमकिन है कि वह स्वयं अपने हाथों से हमें छोड दे। हां, सच तो है "स्वारथ लागि करैं सब प्रीति"।

यह बात प्रायः सब पक्षियों को पट गई। उन्होंने कहा "इनका कहना बिलकुल यथार्थ है।" और उसी क्षण से प्रतिज्ञा की कि "आज से बेतमुख का दाना-खाना कभी न भक्षण करेंगे"।

शिकारी को अब पिंजडे में अनाज यों ही पडा रहता हुआ दिखाई देने लगा और उसने पक्षियों को भी बहुत असंतुष्ट और बेचैन पाया।

उसने सोचा "इनका मर्ज तो बढता जा रहा है। पर कोई चिन्ता की बात नहीं; धीरे धीरे वह अपने आप ही मर जायगा।" और वह चला गया। पक्षी तो बराबर दुबले होते जा रहे थे। उनके परों का वह सौंदर्य सब नष्ट हो गया और अब तो वे बिलकुल निस्तेज हो गये।

शिकारी के लडकियां भी थीं। इन पक्षियों के परों को वही इकट्ठा किया करती थीं। पक्षियों की और उनके परों की यह हालत देखकर तो वे बडे चक्कर में पड गईं और बहुत घबराईं। और उन्हों ने यह सब हाल अपने पिता को जा सुनाया। उसने कहा "उन्हें कोई मर्ज हो गया है। घबडाओ मत, वह अपने आप चला जायगा। और तुम्हें फिर वैसेही पर मिला करेंगे"। कई पक्षियों ने गर्दन झुकाकर अपने परों की ओर देखा, तो उन्हें यह देखकर बडा दुःख हुआ कि उनके परों के वे सुंदर रंग न जाने कहां चले गये थे। वे बोले—राम राम, हमारी क्या हालत हो गई है! कैसे बदसूरत हो रहे हैं? शरीर का ढांचा खडा हो गया है?

बडे पक्षी ने कहा—"हां, वे भद्दे पर ही हमें यहां से छुडाकर बाहर ले जायंगे। हमारे उन सुंदर परों ही ने हमें इस पिंजडे में बंद कर रक्खा है।

शिकारी की लडकियों में से एक उन पक्षियों की भाषा—उनकी निजी परमात्मा की दी हुई भाषा जिसमें कि वे हमेशा आपसमें बात चीत किया करते न कि उस शिकारी की पढाई—को समझ सकती थी। पक्षी जो बात चीत अभी आपस में कर रहे थे उसे उसने सुनलिया था और वह उनके सबे मर्ज को समझ गई थी। उसने पूछा "पर तुम लोग अपने आप इस विशाल नीले आकाश में कैसे उड कर जा सकोगे। तुम्हारे पंख तो कमजोर हो गये हैं। हां, गरुड, गिद्ध, या बाज जरूर इतना उड सकते हैं। पर तुम तो बहुत छोटे हो, कमजोर हो, इतने दिन से बंद हो कि अब तुम्हारे पंखों में उडने की ताकत भी नहीं रही। अब तुमसे न तो उडा जा सकता और न तुम पिंजडे के बाहर जीवित ही रह सकते हो।

पक्षियों ने कहा—"पर हम कोशिश करेंगे।"

शिकारी की लडकी ने कहा—'नहीं यह भी नहीं हो सकेगा। वे बडे बडे गरुड और बाज पक्षी तुम्हें फौरन् मार खावेंगे। हम यह भली-भांति जानते हैं कि तुम्हारा भला किस बात में है। तुम्हें यहीं रहना होगा।'

पक्षियों ने कहा "इतने तो छोटे छोटे पक्षी इस नीले आकाश के नीचे और सूर्य भगवान् के राज्य में रहते हैं। इनको तो कोई बडे पक्षी खा नहीं जाते?

शिकारी की लडकी ने कहा "पर अभी कुछ रोज जबतक कि तुम्हारे परों में काफी ताकत नहीं आ जाती और तुम पूरी तरह से अपने पैरों पर खडे नहीं रह सकते तबतक ठहरो।

कुछ पक्षियों ने पूछा "पर इस पिंजडे के अंदर पडे पडे हमारे परों में किस तरह ताकत आवेगी"?

शिकारी की लडकी ने कहा—तुम्हें दिया हुआ अन्न नियम से खाते जाओ। उस पागल बुड्ढे पक्षी के कहने में मत लगो। पागल कहीं के, जिस अन्न से परों में ताकत आती है उसे ही छोड रहे हो। खबरदार, मेरा कहा मानो! ऐसा न करो।" जरा गुस्से में बर्राती हुई वह वहां से चल दी।

कुछ पक्षियों ने सोचा—"हमारे मालिक की लडकी सच तो कह रही है" और वे उस दाने की ओर सतृष्ण नयनों से देखने लगे, जिसे उन्होंने न खाने की प्रतिज्ञा की थी। कुछ पक्षी तो प्रतिज्ञा तोडकर उसे खाने भी लग गये। अब तो बडी गडबडी हो गई, संदेह और फूटका साम्राज्य शुरू हो गया। कुछ पक्षी जिन्होंने पहले ही से उस पागल बूढे पक्षी के उपदेश को न माना था खुशी में पंख फडफडाने लगे और कहने लगे "देखो, हम कैसे रहे? कैसे भले चंगे हैं? तुम तो पागल हो रहे हो। व्यर्थ जान गंवा रहे हो। कभी इन मजबूत छडों से बाहर निकलना संभवनीय भी है? और इसके लिए दाना खाना भी छोड दिया। राम राम। कैसे मूरख लोग"?

यह सब सुनकर बेचारे पागल पक्षी को बडा दुःख हो रहा था।

शिकारी की लडकी ने यह सब हाल अपने पिता को जा सुनाया। उसे इस बात पर विश्वास ही नहीं हुआ कि पक्षी इस तरह बोल सकते हैं और अगर बोल भी सकें तो उसकी समझ में यही नहीं आया कि उसकी लडकी उनकी बातचीत को कैसे समझ पायी। पर उसने इतना जरूर किया कि उस पागल पक्षी को उस पिंजडे से निकाल कर एक दूसरे पिंजडे में अलग अकेला रख दिया।

पागल पक्षी ने जाते समय कहा "अच्छा भाइयो, अब मैं चलता हूं। सूर्य भगवान की प्रार्थना बराबर करते रहना जिससे वह आपके बल की वृद्धि करता रहे। दुबले पतले जल्दी हो जाइए। उन हरे भरे झाडों में खेलने के लिए और उस सुंदर नीले विशाल आकाश में

स्वच्छन्द विहार करने को जाने के लिए बस अब यह एक ही मार्ग हमारे लिए बचा है"।

बस, शिकारी ने तो उस पागल पक्षी को दूसरे पिंजडे में ले जा कर रख दिया। इधर इस घटना से बेचारे उन दूसरे पक्षियों को असीम दुःख हुआ। अब उन्हें धीरज देनेवाला भी कोई न रहा।

दूसरे दिन शिकारी की वह लडकी फिर आई। आज उसने बिलकुल ताजा और नया अनाज उस पिंजडे में फेंका। उसका मधुर सुवास चारों ओर फैलने लगा। मोह अपना जाल फैलाने लगा।

कुछ पक्षियों ने कहा "कोई परवा नहीं इसमें से एक दाने को भी हम न छूवेंगे। चचाजी हमें जो कुछ कह गये हैं उससे एक तिल भर भी न डिगेंगे"।

दूसरोंने कहा "पागल कहीं के। खाना छोडने से कहीं स्वतंत्रता मिली है? खाना खाने का स्वतंत्रता से क्या संबंध? हमारे इन सुंदर परों का पिंजडे से, इस कैद से क्या संबंध? कैसी विचित्र बात! ख्वाह-म ख्वाह बदसूरत और दुबले पतले होना और अपने सुंदर परों को बिगाडना! अरे, दुनिया के सब पक्षी तो सुंदर हैं!"

बस, कहानी आगे न चल सकी क्योंकि इसीसमय एक विचित्र और गंभीर गर्जना सुनाई दी। यह संजीवक-वृषभराज की गर्जना थी। इस विचित्र गर्जना को सुनते ही पिंगलक अपनी अधूरी निद्रित अवस्था से एकदम चमक कर जाग उठा। और अपने मंत्रियों के साथ मंत्रणा करने में लग गया।

(यंग इंडिया) च. राजगोपालाचार

आगामी दिवाली

दिवाली अब करीब है। दिवाली कैसी मनाई जाय इस पर महात्माजी ने पिछले साल जो लिखा था वही नीचे उद्धृत किया जाता है। उनका हृदय आशापूर्ण था। देश के उत्साह को देखते हुए उन्हें यह आशा हो गई थी कि यदि वह मन में लावे तो दिवाली के पहले स्वराज्य की स्थापना करना कोई कठिन बात नहीं है। वे लिखते हैं:—

"दिवाली को अभी डेढ महीना है। इस बीच तो हम स्वराज्य प्राप्त करके सच्ची दिवाली मना सकते हैं। अतएव हम ऐसा करें कि इस मास में विलायती कपडे का पूरा बहिष्कार कर डालें और ऐसी स्थिति प्राप्त करलें जिसमें अपना आवश्यक कपडा चरखे के द्वारा तैयार हो सके और फिर अक्तूबर में स्वराज्य प्राप्त कर के हम शुद्ध दिवाली मना सकते हैं। दिवाली मनाने की असली तैयारी तो यह है कि हम दिवाली के पहले ही स्वराज्य प्राप्त करलें। इतने दिनों में हम स्वराज्य क्यों नहीं प्राप्त कर सकेंगे? इसमें अगर कोई कठिनाई है तो वह है महज हमारी कमजोरी।

पर अच्छा यह मानलें कि पहले स्वराज्य न मिल सके तो फिर हमें क्या करना चाहिए? बस, मातम मनाना चाहिए। न बढिया खाने बनाये जाय, न दावतें दी जायं, न नाच-गान किया जाय। बस संयम के साथ रह कर ईश्वर की प्रार्थना की जाय। भरत ने जब चौदह वर्ष तक तपस्या की थी तब कहीं दिवाली मनाने का समय आया था। अब क्या हम इससे उलटा चलें? कुसमय में गाना किस काम का? बिना भूख के खाना किस काम का? स्वराज्य के बिना जलसा किस बात का? दिवाली के दिन सादे से सादा भोजन करना चाहिए। उस रोज खादी के सिवा दूसरा कोई कपडा बदन पर न डाला जाय। कोई वस्त्र-दान करना चाहे तो वह भी खादी का ही किया जाय। पटाखे तो इसमें छोडे ही किस तरह जा सकते हैं?

इस तरह दिवाली मनाने की दो विधियां हैं—एक स्वराज्य प्राप्त करके दिवाली मनाई जाय और दूसरी, स्वराज्य प्राप्त करने की तैयारी की जाय। हम इन दो में से किस रीति से दिवाली मनावें यह तो हमारी शक्ति के ऊपर है।"

पिछले साल हमारे हृदय में सिर्फ तीन कांटे थे पंजाब, खिलाफत और स्वराज्य। पर इस साल तो हमारा हृदय दुःख-भार से दबा जा रहा है। महात्माजी, अलीभाई, लालाजी आदि देश के महान् उद्धारक तो हमारी कमजोरी के कारण जेलों में ठूंस दिये गये हैं। हम दिवाली किस तरह मनावें! जिस दिन हमारे हजारों वीर भाई जेलों में, और सडकों पर कडी धूप में कठोर परिश्रम करते होंगे, जेल के अधिकारियों के हाथ, तरह तरह के अपमान सह रहे होंगे, जिस दिन वे गुलाम की तरह कंकड-मिट्टी मिला हुआ खाना मिट्टी के बर्तनों में लेकर खा रहे होंगे, क्या उस दिन हम उत्सव मनावें नाच-गान सुनें? हजारों परिवार आज अपने जेल-निवासी पुत्र, पालक, भाई आदि के वियोग में उदास बैठे होंगे, तब क्या हम तरह तरह की मिठाइयां खा कर आनंद मनावें? आज जब कि हमारी लक्ष्मी सात समुन्दर पार दासता की जंजीरों में जकडी पडी है तब यहां पूजा किसकी करें? क्या हमारे हृदय की जखम पर नमक छिडकने वाले, हम अपनी लक्ष्मी को—स्वतंत्रता को—भूल जायं इसलिए हमें भुलावे में डालने के लिए फेंके गये रुपयों की, कागजी सिक्कों की?—हमारी बिकी हुई स्वाधीनता के मूल्यस्वरूप उन विदेशी मुद्राओं की? दीपमाला किसलिए लगावें? किस आनन्द को प्रदर्शित करें? क्या हमारी गहरी जख्मों को अधिक प्रकाश में देखकर अपने हृदयस्थ दुःख को और भी गहरा करें?

दीपावली का उत्सव तो स्वराज्य की स्थापना होने पर ही मनाया जा सकता है। लक्ष्मी-पूजन भी तभी हो सकता है। अतएव अब तो सब मोहों को छोडकर जी जान से स्वराज्य स्थापना के काम में ही जुट पडना चाहिए। इस समय यही हमारा सर्वोच्च कर्तव्य है।

बच्चे पटाखे मांगेंगे; पर हम उन्हें नहीं दे सकते। उन्हें समझाना चाहिए कि "जबतक हमारी भारतमाता पराधीनता में है तबतक हम दिवाली नहीं मना सकते। जब मां रो रही हो, भाइयों के सिर पर मार पड रही हो, तब हम दिवाली किस तरह मना सकते हैं?" उनके दिल में अभी से देश के लिए दर्द पैदा करना चाहिए।

हम अपने बाल-मित्रों को महात्माजी के नीचे लिखे शब्दों पर विचार करने की सिफारिश करते हैं—

"जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं करता, जिस राजा की प्रजा को पीने के लिए दूध, खाने के लिए पेटभर अन्न, और पहनने के लिए कपडे भी नहीं मिलते, जो बिना किसी अपराध के अपनी प्रजा को कत्ल करता है, जो राजा गांजा, अफीम और शराब का व्यापार करता है, जो सूवर का मांस खाकर मुसल्मानों के और गाय का मांस खाकर हिन्दुओं के हृदयों को दुःख पहुंचाता है, उनके धार्मिक भावों को आघात पहुंचाता है, जो राजा घुडदौडों का जूआ खेलता है उसकी प्रजा दिवाली किस तरह मना सकती है?"

दिवाली पर कम से कम इतने काम तो अवश्य न कीजिए—

१ ऐश-आराम न कीजिए
२ जुआ न खेलिए
३ तरह तरह के पक्वान्न न बनाइए और
४ पटाखे न छोडिए

इस से जो पैसे बचें उन्हें स्वराज्य-कोश में दीजिए। यह आपद्-धर्म है। जब हम अपने दिल का स्वराज्य स्थापन कर लेंगे तब हम कितने ही निर्दोष आनन्द मनाना शुरू कर सकते हैं। पर अभी तो हम शोक में हैं। जनता वैधव्य दशा में है इस समय वह रंग-राग में किस तरह भाग ले सकती है"?

बैजनाथ ज० महोदय

स्वतन्त्रता का मूल्य

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष २] [अंक ९

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, कार्तिक वदी ९ संवत् १९७९
रविवार, १५ अक्तूबर, १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरखीगरा की वाडी

टिप्पणियां

महात्माजी के समाचार

श्रीमती पूज्य कस्तूर बा, सेठ जमनालाल जी बजाज आदि गत सप्ताह महात्माजी से मिलने गये थे। महात्माजी सकुशल हैं। आजकल वे प्रतिदिन तीन घंटे रूई धुनकते हैं और एक घंटा चरखा चलाते हैं। खूब पढ़ते और विचार करते रहते हैं। पर अभी कुछ लिखते नहीं। रात को प्रकाश के लिए उन्हें चिराग अभी तक नहीं दिया गया है। उनके चेहरे पर गम्भीर प्रसन्नता दिखाई देती थी।

अजमेर-जिला-परिषद्

इस परिषद् का अधिवेशन पू० कस्तूर बा के सभापतित्व में तीन रोज तक हुआ। कुछ महीनों से अजमेर सूबे के सार्वजनिक जीवन में कार्यकर्ताओं के मत-भेद, अव्यवस्था आदि के कारण यद्यपि कुछ शिथिलता फैली हुई थी तथापि परिषद् का काम उत्साह और आशा के साथ सम्पन्न हुआ। स्वागत-समिति के सभापति पं० अर्जुनलाल जी सेठी का भाषण जीवनप्रद, स्वाभिमान, आत्म-विश्वास, और स्वावलम्बन के भावों से भरा हुआ था। महासभा के वर्तमान कार्यक्रम पर भी आपने आलोचनात्मक विचार प्रकट किये। आपने वर्तमान कार्यक्रम का पूर्ण समर्थन करते हुए, उसकी पूर्ति पर काफी जोर देते हुए, कुछ बातों में अपने विचारों के अनुसार सुधार की आवश्यकता बताई। सभानेत्री पू० कस्तूर बा का भाषण अन्यत्र ज्यों का त्यों दिया गया है। प्रस्तावों में गाजी मुस्तफा कमाल पाशा को, अकालियों को और जेल-निवासी तथा जेलों से छूट कर आये भाइयों को धन्यवाद देना, महासभा के मौजूदा कार्य-क्रम पर विश्वास प्रकट करना, कौन्सिल जाने का निषेध करना, मुल्तान की दुर्घटना पर खेद प्रकट करना ये मुख्य थे। विषय-निर्धारिणी समिति में तथा परिषद् के अधिवेशन में मौजूदा कार्यकर्त्ताओं, प्रतिनिधियों और सभासदों ने शान्ति का परिचय दिया। परिषद् का स्थान ईदगाह में तजवीज किया गया था। यह यहां की हिन्दू-मुसलमान-एकता का परिचायक है। कुछ प्रतिनिधि सविनय भंग शीघ्र शुरू कर देने के लिए आतुर और उत्सुक नजर आये। खादी का प्रचार तथा अन्य रचनात्मक कार्यों में यद्यपि इस प्रान्त में अभी बहुत काम करने की आवश्यकता है तथापि यह उत्सुकता अजमेर सूबे के एक हिस्से की, फिर वह चाहे छोटा ही क्यों न हो, प्रतिनिधि रूप मानी जा सकती है।

जनता में उत्साह की कमी नजर न आई। जय जयकार और दर्शनों की धूम कम न थी। जलसों में तथा अन्य कार्यों में नियम-बद्धता और सुव्यवस्था की ओर स्थानीय कार्यकर्ताओं के अधिक ध्यान जाने की आवश्यकता है। जबानी हमदर्दी का जमाना अब गुजर गया। 'भाषणों की देशभक्ति' अब पुरानी बात हो गई। अब काम करने का युग है। हजार आदमियों के जय जयकार की अपेक्षा एक आदमी का हमेशा के लिए खादी पहन लेना बहुत कीमती है। स्त्रियों में खादी प्रचार की तो इस सूबे में अभी बहुत ही जरूरत है। मिलों की खादी भी कहीं कहीं दिखाई देती थी। आशा है यह परिषद् स्थानीय कार्यकर्ताओं की कठिनाइयों और बाधाओं को दूर करने में मददगार होगी और अजमेर-निवासियों के जीवन में फिर वही ज्योति जगमगा उठेगी जो कुछ महीने पेश्तर थी।

वायु-मंडल

अजमेर के वायुमंडल में अविश्वास, सन्देह और अनुदारता को देखकर हमें दुःख हुआ। मतभेद और मतविरोध के होते हुए भी परस्पर सहयोग कठिन नहीं है। जब कि सब लोग शुद्ध सेवा-भाव से प्रेरित होकर काम करते हैं तब कार्य-रीति भिन्न होते हुए भी परस्पर सहानुभूति, शिष्टता और एक दूसरे की कठिनाइयों का ख्याल किया जा सकता है। कार्यकर्ताओं में जबतक परस्पर सहयोग और विश्वास की भावना काफी तादाद में न हो तबतक हमारा असहयोग सरकार के साथ सफल कैसे हो सकते हैं? प्रत्येक कार्यकर्त्ता यदि अपने ही हृदय के दोषों और मैलों को देखता रहे, गलतियों को सुधारता रहे, दूसरे के ऐबों पर कम ध्यान देने की आदत डाले, उससे अपराध या भूल हो जाने पर सहिष्णुता, क्षमाशीलता, सौजन्य और उदारता का अवलम्बन करे तो इससे स्वयं उसकी और दूसरे की उन्नति होने के साथ ही कार्य-सिद्धि में भी बड़ी अनुकूलता हो जाती है। छोटे छोटे दोषों, भूलों को आपस में प्रेम और सद्भाव के साथ दिखाने और सुधारने के बजाय यदि हम बार बार अखबारों की शरण लिया करें तो हमारा काम घडी भर नहीं चल सकता। फिर अखबारों में भी जब विषैले व्यक्तिगत आक्रमण देखे जाते हैं तब लेखक की सहानुभूति सहृदयता, उद्देश-शुद्धि पर यदि कोई शंका उपस्थित करे तो आश्चर्य की बात नहीं। भाषा हृदय

के भावों की सूचक होती है। साधन उद्देश के रूप के परिचायक होते हैं। मतभेद जाग्रति और स्फूर्ति का संचालक है। पर वैमनस्य, कटुता मनुष्य के सद्भावों के अतएव मनुष्यता के घातक होते हैं। इसलिए आम तौर पर समस्त कार्यकर्ताओं और खास तौर पर अजमेर सूबे के भिन्न भिन्न कार्यकर्ताओं को हम यह संकेत किये बिना नहीं रह सकते कि वे अपने हृदयों के परिवर्तन का, हृदय-शुद्धि का अधिक परिचय दें। अजमेर में अधिक पवित्र, नीति-शुद्ध और उच्च वायुमंडल तैयार करने का जल्दी से जल्दी प्रयत्न करें। पिछली बातों को भूल कर नवीन आशापूर्ण भविष्य के स्वागत की तैयारी में उद्यत हों।

हिन्दू-मुसल्मान-एकता

ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती के अजमेर में हिन्दू-मुसल्मान-एकता पर प्रश्न ही नहीं उठ सकता। ईदगाह में वेद-घोष को देखकर तो हमें बड़ा ही सुख हुआ। मुलतानवाली दुर्घटना पर प्रस्ताव एक मुसल्मान भाई ने ही उपस्थित किया। परिषद् के हरएक काम में मुसल्मान भाइयों का काफी सहयोग नजर आता था। स्वयंसेवकों में ज्यादह तादाद मुसल्मानों की ही थी। तथापि हमें एक इशारा कर देना जरूरी मालूम होता है कि हिन्दुओं को यह बात अपने हृदय में अंकित कर लेना चाहिए कि मुसल्मान हमारे छोटे भाई हैं। जब वे उन्हें किसी बात पर आग्रह रखते हुए देखें तो प्रेम के साथ उन्हें उनकी भूल समझा दें। जो भूल करता है, नादानी कर बैठता है। उसके लिए हमारे हृदय में और भी अधिक प्रेम होना चाहिए। मुसल्मान-भाइयों को हम यह सुझाना चाहते हैं कि वे अपने नुकते नजर को वसीअ करें। हरएक बात को कौमी नजर से ज्यादह देखने की कोशिश करें। खुदा तो सब का एक है। मुख्तलिफ मजाहिब के बाहरी रूप में चाहे भिन्नता दिखाई देती हो पर सब के इब्तिदाई असूल प्रायः एक हैं। हम एक ही जहाज के मुसाफिर हैं। हमें एक ही साथ जीना और एक ही साथ मरना है!

पुष्कर-क्षेत्र

अजमेर से कोई ७ मील वायव्य कोण में पुराण-प्रसिद्ध पुष्कर-क्षेत्र है। यह छोटासा मनोहर तालाब है। सारे भारत में बस इसी एक स्थान पर ब्रह्मा का मन्दिर है। अजमेर के आसपास की पर्वतावलि से होकर रास्ता जाता है। प्रातःकाल ही हरे-भरे पहाड़ों की गोद में से सर्प की तरह घूमनेवाली सड़क पर से जाना बड़ा ही आल्हाददायी मालूम होता है। पुष्कर के कुछ तीर्थ-गुरुओं में खादी के प्रति बड़ा आदर-प्रेम दिखाई दिया। कितने ही तीर्थ-गुरु शुद्ध खादी पहने हुए थे। वहां महासभा-समिति भी है। पू० कस्तूर बा ने एक छोटेसे भाषण द्वारा तीर्थ-गुरुओं और महिलाओं को खादी पहनने का अनुरोध किया। एक पण्डितजी ने जिनका एक अच्छा अनुयायी-मण्डल है, शुद्ध खादी पहनने की प्रतिज्ञा की। ब्रह्माजी के मन्दिर के महन्त ने ब्रह्माजी के लिए खादी की बनी पोशाक दिखलाई। स्नान करते समय एक बड़ी उल्लेख योग्य बात हमने देखी। तीर्थ-गुरु ने संकल्प बोलते समय 'वैवस्वत मन्वन्तरे' के स्थान पर 'गांधी मन्वन्तरे' और 'श्रुतिस्मृति-पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं' की जगह पर 'स्वराज्य प्राप्त्यर्थं' पदों का प्रयोग किया। कौन कह सकता है कि यह बात लोक-हृदय में स्वराज्य-स्थापना की सूचक नहीं है? निस्सन्देह यदि तीर्थ-गुरु लोग अपने यजमानों और यात्रियों को विदेशी कपड़े के व्यवहार के पाप से दूर रहने का उपदेश दिया करें और खुद भी शुद्ध खादी पहना करें तो उनकी द्वारा देश और धर्म की बहुत कुछ सेवा हो सकती है।

मनुस्मृति की पुनर्रचना

आखिर स्वामी श्रद्धानंदजी को सरकार ने एक साल की सजा दे ही दी। स्वामीजी का अपराध यह था कि उन्होंने सत्याग्रही सिक्खों को धीरज दे कर अपने धर्म की रक्षा के लिए उत्साहित किया। सजा सुनाते समय मॅजिस्ट्रेट साहब ने सन्यासाश्रम की व्याख्या की। उस समय आपने मनुस्मृति पर जो व्याख्यान दिया वह सचमुच सुनने ही लायक था। स्वामीजी को आपने सन्यास-धर्म का खासा उपदेश ही किया। उन्हें स्वामीजी का कार्य सन्यास-धर्म के विपरीत दिखाई दिया। पर इस में आश्चर्य ही क्या। गुलामी तो मनुष्य का दृष्टिकोण ही बदल देती है। शब्दों का अर्थ ही उनके लिए भिन्न हो जाता है। उन्हें भूतदया, भूतद्वेष और निर्भयता उच्छृंखलता दिखाई दे तो इसमें उनका दोष ही क्या? स्वामीजी की सत्याग्रही अकालियों के प्रति सहानुभूति में उन्हें सरकार के खिलाफ जनता को उभारने के भाव दिखाई दें तो कौन आश्चर्य की बात है? सरकार अगर सचमुच प्रजाहितैषिणी है तो उसे अप्रीति के प्रचारकों से डरने की जरूरत ही क्या है? सत्य को सिद्ध करने के लिए किसी दूसरी बात का सहारा नहीं लेना पड़ता। वह तो अपने गुणों पर ही कायम रह सकता है। पर जब किसीका अंतःकरण ही अशुद्ध होता है तब तो उसे घड़ी घड़ी पर यह शंका आने लगती है कि कहीं लोग मेरा यथार्थ स्वरूप न जान जायं। उसका हृदय सदा अशान्त रहता है। इस लिए उसे अप्रीति का प्रचार रोकने के लिए नये कानूनों की सृष्टि करना पड़ती है। शास्त्रों को मरोड़ कर अपने स्वार्थ के अनुकूल अर्थ लगाये जाते हैं और नई मनुस्मृतियों की रचना होती है। पर सत्य त्रिकालाबाधित है। अंत में उसी की जय निश्चित है।

सरकार अपने पशुबल पर गांधीजी अलीभाई, लालाजी, और स्वामीजी जैसे सत्यवक्ताओं को जेल में बंद कर के कुछ समय तक भले ही उन का मुंह बंद कर दे पर वह संसार की आंखों में धूल कैसे डाल सकेगी? एक दिन अपने ही पाप भार से उसका नाश निश्चित है। और जलियांवाला बाग और गुरु का बाग भविष्य में सदियों तक उसकी करतूतों की कहानियां भावी संसार को सुनाते रहेंगे।

बंगाल में बाढ

इस साल बंगाल में बड़ी भयंकर बाढ आई है। सैकड़ों वर्ग मील जमीन जलमय हो रही है। हजारों गांव पानी में डूब गये या बह गये हैं। फसल तो सब नष्ट हो गई। गाय, भैंस, बैल आदि तो हजारों की संख्या में डूब कर और बह कर मर गये हैं। उनकी तथा मनुष्यों की भी लाशें जहां तहां पानी पर तैरती हुई दिखाई देती हैं। जिससे रोग फैलने की भीषण आशंका है। लाखों आदमी बे-घरबार के हो कर मारे मारे फिर रहे हैं। उन्हें न तो खाने को अन्न मिलता है और न पहनने को कपड़े। झाड़ों पर, रेल की सड़कों पर, ऊंचे टीलों पर चढ चढकर वे अपने प्राण बचाये हुए हैं। कितनी ही सेवा समितियां दौड़ पड़ी हैं। विज्ञानाचार्य प्रफुल्लचंद्र राय भी विपद्ग्रस्तों की सेवा में लगे हुए हैं। धन और जन द्वारा सहायता मिलने के लिए उन्हों ने तमाम भारत से अपील भी की है। सरकार से भी कुछ सहायता मिलने की लोग आशा रखते हैं।

यद्यपि इस साल की बाढ बहुत भयंकर है तथापि बंगाल में बाढ और अकाल तो एक साधारण बात हो गई है। बेचारी प्रजा यह जानती ही नहीं कि शान्ति और सुख किसे कहते हैं। उसके हृदय में तो हर साल यही चिंता रहती है कि बाढ और अकाल से वह कैसे बचे। सचमुच भारत के लिए यह कितने दुर्दैव की बात है!

क्या इसका कोई उपाय भी है या उसे सदा इसी तरह मुसीबतों की शिकार बने रहना होगा ?

जब तक एक विदेशी सरकार का भारत पर राज्य रहेगा तब तक तो यह हालत सुधरना कठिन है। इन दुःखों का अंत तो स्वराज्य ही में हो सकता है। स्वराज्य ही जनता को इस दीन हालत से उठाकर उसे इन दैवी और मानवी आपत्तियों का वीरता पूर्वक सामना करने की शक्ति दे सकता है। विदेशी शासक अगर किसी की रक्षा भी करता है तो वह अपने ही मतलब के लिए। अर्थशास्त्र, राजनीति और धर्मनीति सब उसके मतलब के सहायक होते हैं। इस हालत में यह अपेक्षा करना कहांतक ठीक है कि वह हमें इस विपदा से बचावेगा। क्या अगर जनता इतनी दीन, हीन, निर्धन न होती तो वह इस विपत्ति का प्रतिकार अधिक अच्छी तरह नहीं कर सकती ? क्या वह कम से कम अपने रहने के स्थानों को अधिक सुरक्षित न बना सकती ? क्या अगर सरकार भी प्रजा पक्ष की होती तो ऐसे स्थानों पर बडे बडे बांध बना कर सदा के लिए अपनी प्रजा को इन प्रलयों से न बचाती ?

खादी की खैरात

आज कल बाजार में, रास्ते पर या रेल गाडियों में जहां तहां लोग पूछते हैं "क्यों भाई साहब, चार आने गज की खादी कब आवेगी ?" खादी का सन्देश घर घर पहुंचने में तो देर लगी। पर यह चार आने गज की खादी की बात तो देखते ही देखते सब दूर फैल गई। स्वराज्य-कोश में धन इकट्ठा कर के अगर उसमें से चार आने गज खादी बेचने से देश की उन्नति हो सकती, अथवा स्वदेशी धर्म का प्रचार हो सकता तो महात्माजी को इतनी मिहनत कभी न उठानी पडती। वह चार आने गज की खादी की बात तो व्यर्थ है। अगर हम अपने घर के आसपास या आंगन में ही बिनौले बो कर कपास पैदा कर के उसे घर में ही पींजें, कातें और जो हाथ के कते सूत का कपडा बुन सकता हो ऐसे जुलाहे से उसकी खादी बुनवालें तो खादी जरूर सस्ती हो जायगी। खादी प्रचार का उद्देश ही यह है कि अन्त में खुराक की तरह वस्त्र भी घर के ही हो जायं। जिस प्रकार हम बाजार की रोटी की अपेक्षा घर की बनाई रोटी को अधिक पसन्द करते हैं और उसमें यह विचार नहीं करते कि यह बाजार से महंगी है या सस्ती, उसी प्रकार हमें खादी के विषय में भी सोचना चाहिए। अपने हाथ के कते सूत की ही खादी पहनने का हमें शौक लग जाना चाहिए। जो स्वयं सूत नहीं कात सकते वे अपने पडौसी से कता लें और आपस में एक दूसरे की सहायता कर के पडौसी-धर्म का पालन करें। यह तो एक प्रकार का मनुष्य-यज्ञ है। कृत्रिम रीति से खादी सस्ती करने में इस हलचल को भारी नुकसान पहुंचेगा, तमाम स्वदेशी आन्दोलन ही टूट जायगा। देश के धन का उपयोग तो तब अच्छा होगा जब हम जिनके पास चरखा नहीं उन्हें चरखा दें, जिनके पास धुनकने के लिए राछ नहीं हैं उन्हें राछ दें और जो बुनना नहीं जानते उनको कपडे बुनने की कला सिखावें। उससे देश का भला जरूर हो सकता है, और उस की कूवत भी बढेगी। पर इस प्रकार खादी की खैरात करने से, तो देश में शक्ति आने के बदले वह उलटा उसी हद में लूला मात्र होगा।

(नवजीवन)

हिन्दी-नवजीवन का आगामी अंक बुधवार ता. २५ अक्तूबर को प्रकाशित होगा।

गत १० तारीख तक १५५७ सिक्ख गिरफ्तार हो चुके हैं।

कर देने से इन्कार

सरकार को कर देने से इन्कार करनेवाले सलेम के डॉक्टर वरदा राजुलू को पाठक भूले न होंगे। अब सरकार ने उनकी २४००० हजार की मालियत पर कर देने के लिए उन पर नोटिस जारी किया है। इसपर आपने नीचे लिखा जवाब भेजा है:—

"मैंने यह पहले ही जाहिरा तौर पर घोषित कर दिया है कि मैं ऐसी सरकार से सहयोग नहीं कर सकता जिसने संसार के श्रेष्ठ और पवित्रतम महात्मा को एक गुनहगार की तरह जेल में बंद कर रखा है। परमात्मा ने दया करके इस पृथ्वी पर, जो कि क्रोध, द्वेष और युद्धों के भार से दबी जा रही है, एक ऐसा आदमी भेज दिया जिसका जीवनोद्देश शांति और प्रेम की पुनःस्थापना करना है। और एक सभ्य सरकार को तो इस बात पर अभिमान होता कि उसके नागरिकों में महात्मा गांधी जैसा एक महापुरुष है। वह उसके जीवनोद्देश के प्रचार और सिद्धि में अपनी शक्तिभर सहायता करती। पर इस सरकार ने तो अपने इस सर्वश्रेष्ठ नागरिक के रहने के लिए एक शान्त आश्रम बना देने के बदले उसे अपने एक मामूली जेल खाने में कैद कर रखा है। मेरी सदसद्-विवेक-बुद्धि मुझे आज्ञा नहीं करती कि मैं ऐसी सरकार को स्वेच्छापूर्वक कर दूं। मैं दूसरों से यह नहीं कहता कि वे भी मेरा अनुकरण करें। मेरा तो उन्हें यही कहना है कि आप सब अपनी अंतरात्मा की प्रेरणा के अनुसार काम कीजिए और महासभा की आज्ञा की प्रतीक्षा कीजिए। पर मैं तो आपको फिर सूचित करता हूं कि इस नोटिस द्वारा आप जो कर मुझसे मांग रहे हैं मैं आपको देना नहीं चाहता। आप चाहें तो बल-प्रयोग द्वारा उसे मुझसे वसूल कर सकते हैं।

एक पत्र

बम्बईनिवासी एक बहन लिखती हैं:—

"हम अभी तक ऐसे ऐसे काम करते हैं कि जिसमें हमको लाभ तो क्या उलटा नुकसान ही होता रहता है। बिना इस बात के निश्चय किये कि हम महात्माजी के दर्शन कर सकेंगे या नहीं मैं और मेरी कई बहनें जिनकी संख्या करीब सौ थी येरावदा गईं। इस में हमारा ५००) खर्च हो गया। वह दिन महात्माजी का जन्म-दिन था। इसलिए हम को वह दिन चरखा कात कर और खादी बेच कर बिताना चाहिए था। सो तो हमने न किया। उलटे रेलवाले को ७००) दे दिया। इस वक्त हमारे पचीस हजार भाई जेल में हैं। तिस पर भी हमने अपने कर्तव्य का पालन न किया और यों ही पूना सैर की तौर पर चले गये। यदि हम ये ७००) रु. विद्यापीठ में देते तो वे शुभ काम में जाते। इसलिए बम्बई की बहनों से मेरी यह प्रार्थना है कि वे फिर ऐसा ऐसा काम न करें। हे ईश्वर! अब भी तो हमें बुद्धि दे कि हम किसी काम के करने के पहिले देश के हानि-लाभ का विचार कर लिया करें। यदि हम को महात्माजी को देखने की बहुत ही उत्कण्ठा हो गई है तो हम वह काम क्यों न करें और उसीमें अपना धन और समय खर्च क्यों न करें जिससे कि हम न सिर्फ महात्माजी बल्कि सारे भारत को स्वतंत्र बना सकते हैं ?

बम्बई में रहने वाली एक
बिहारी महिला"

पूज्य बा का भाषण

गत सप्ताह में अजमेर में राजपुताना-मध्यभारत प्रान्तीय परिषद का अधिवेशन श्री. पूज्य बा के नेतृत्व में हुआ उस समय आपने अध्यक्षस्थान से नीचे लिखा भाषण पढा था:—

प्रतिनिधिगण और अन्य सज्जनो,

देश में जब कि राजनैतिक आन्दोलन ने तीव्र स्वरूप धारण किया है, ऐसे समय में आपको किसी राजनीति में प्रवीण पुरुष को अपने अधिपति का स्थान देने की जरूरत थी। मैं न तो राजनैतिक आन्दोलन करनेवाली हूं और न इस प्रान्त से परिचित। मैं तो इतना ही समझती हूं कि गांधीजी के ऊपर और उनके बताये हुए स्वराज्य के साधनों पर अपना विश्वास और श्रद्धा प्रकट करने के लिए ही आपने मुझे यह स्थान दिया है। मैं अपना धर्म समझ कर गांधीजी का अनुसरण करती हूं और विचार और अनुभव से आजतक मुझे प्रतीत हुआ है कि उनका बताया रास्ता हमेशा सुखदायक और शान्ति देनेवाला है। मैं आज आपको श्रद्धा और विश्वास के सिवा दूसरा क्या सन्देश दे सकती हूं? गांधीजी का सन्देश धर्म का सनातन सन्देश है।

सरकार के साथ आप लोगों ने असहयोग जाहिर किया है। पर वह तभी कामयाब हो सकता है जब आपका आपस में पूरा पूरा सहयोग हो। मैं मानती हूं कि आपस में लोगों का सहयोग ही स्वराज्य है। जब हमारा आपसका सहयोग बिगड जाता है तभी दूसरे लोगों के शासन के आगे हमें सिर झुकाना पडता है।

मैंने सुना है कि आपके प्रान्त में तथा आसपास हाथ का कता हुआ सूत बुननेवाले लोग हैं। उनको मदद कर के आप शुद्ध खादी तैयार कर सकते हैं। आपको अब तो समझना ही चाहिए कि परदेशी कपडे का व्यापार करना देश के साथ दुश्मनी करने के बराबर है। परदेशी कपडा पहनना स्वराज्य का द्रोह करने के बराबर है। यदि गरीब लोगों की कुछ भी दया आपके मन में हो तो आप खादी ही पहनेंगे। मेरी बहनों से मैं यही प्रार्थना करूंगी कि आप शुद्ध खादी ही पहनें। देश के गरीब लोगों को उससे रोजी मिलेगी। गरीब बहनों को अपने सतीत्व की रक्षा करने में मदद होगी और धर्म की रक्षा होगी।

आप ऐसा मत समझिए कि परदेशी कपडा शराब से कुछ कम खराब है। शराब को हटाने के लिए आपने जैसा प्रयत्न किया उससे बढकर काम परदेशी कपडे को हटाने के लिए करना चाहिए और वह परदेशी कपडे पहननेवाले अपने रिश्तेदार और मित्रों के घर घर जाकर।

मैं अभी यरोडा के जेलखाने में गांधीजी से मिल आई हूं। वहां पर वे खादी का ही काम कर रहे हैं-खुद रुई धुनकते हैं और सूत कातते हैं। अगर आप गांधीजी को सन्तोष देना चाहते हों, स्वराज्य के शीघ्र दर्शन करना चाहते हों तो आप को भी खादी तैयार करने, उसीका व्यवहार करने और घर घर में उसका प्रचार करने के लिए कमर कस लेना चाहिए। खादी में हिन्दुओं की गो-रक्षा है और मुसल्मानों की खिलाफत की रक्षा है और खादी में ही हिन्दुस्तान की तमाम जातियों का स्वराज्य है।

आपका नगर एक ऐसे महान् मुसल्मान साधु का स्थान है जिन्होंने सब से पहले हिन्दुस्तान में पांव रक्खा और जिन्हें तमाम हिन्दू और मुसल्मान बडे आदर की दृष्टि से देखते हैं। उनकी साया के नीचे यहां हिन्दू-और मुसल्मान की एकता को बहुत महफूज मानती हूं। यह स्थान तो ऐसा है कि यहां की हिन्दू-मुस्लिम-एकता सारे भारत के लिए नमूना होनी चाहिए।

पंजाब में अभी वीर अकालियों ने पुलिस के अत्याचारों के मुकाबले में जो दृढ शान्ति और धर्म-प्रेम का उदाहरण पेश किया है वह आप के सामने है। इस हालत में शान्ति की कितनी जरूरत हमारी लडाई के अन्दर है और उसका रखना कितना आसान है, यह अलहदा बतलाने की जरूरत नहीं। स्वराज्य का अर्थ अगर तीस करोड हिन्दुस्तानियों की सुख-शान्ति है तो वह शान्ति के द्वारा ही मिल सकता है। अशान्ति के उपायों से शान्ति कभी नहीं मिल सकती।

और एक प्रार्थना आप से है। और वह खास कर के हिन्दू भाई-बहनों से। अपने अछूत भाइयों को अपनाना हमारी धार्मिक फर्ज है। यह बात तो अब सब समझ चुके हैं। लेकिन इसके लिए अभी पूरा प्रयत्न नहीं हुआ है। तीन महीने के बाद अगर मैं गांधीजी को कह सकूं कि अजमेर प्रान्त ने छुआछूत के मैल को दूर कर दिया है तो गांधीजी को स्वराज्य-प्राप्ति के बराबर ही आनन्द होगा।

अपना भाषण समाप्त करने के पहले मैं आपको एक बात याद दिलाना चाहती हूं। गांधीजी से आपने वादा किया था कि आधा अजमेर कम से कम १५ हजार अजमेर-निवासी जब सिर से पैर तक खादी पहनेंगे तब आप गांधीजी को यहां बुलावेंगे। अगर मुझे आप गांधीजी की प्रतिनिधि समझ कर बुला रहे हों तो मैं ऐसा मान लेती हूं कि आपने अपना वादा पूरा कर दिया है।

ईश्वर आपको स्वराज्य के लिए सब तरह के कष्ट-सहन करने की और एक दूसरे के अपराध को क्षमा करने की शक्ति दे। यह प्रार्थना करके मैं अपना छोटासा भाषण समाप्त करती हूं।

कौन्सिलें, स्फूर्ति की दवाई।

नर्स—(घबडाई हुई) देखिए, डाक्टर साहेब, मरीज तो बहुत ही सुस्त हो रहा है। दिन भर सोते रहता है। जल्द कुछ ऐसी दवाई दीजिए जिससे उसके बदन में फूर्ति आ जाय। जरूर उसको कुछ हो गया है।

छोटे डाक्टर—(बडे डाक्टर साहब कहीं बाहर चले गये थे) चिंता न करो। बुखार के बाद तो ऐसा होता ही है। तुम तो उसको खाना बराबर देती जाओ।

कम्पौण्डर:—नहीं साहब, हमें रोगी की ओर से इस तरह ला-परवाह न होना चाहिए। आप तो उसको बरांडी दीजिए बराण्डी। यह लिखिए एक सीलबंद शीशी। इस में से उस जरा अच्छा एक इस्ट्रांग डोज दे दीजिए। सब सुस्ती बात की बात में भाग जायगी।

छो० डॉ०—ब्रैण्डी! नहीं, यह तो सख्त मना की गई है। इसम तो वह मर जायगा। मैं सच कहता हूं। ब्रैण्डी हरगिज न देना।

कम्पौण्डर:—अरे साहब, आप तो किताबों में की बातें करते हो। मैंने तो इस सारी उम्र भर बडे से बडे डाक्टरों के हाथ नीचे काम किया है। वाह! इस बराण्डी ने तो कितनों की जानें बचाई हैं। मेरा कहा मानिए। आप तो बिला किसी हिचकिचाहट के बराण्डी ही दे दीजिए। इस से कुछ न बिगडेगा।

छो० डॉ०—(निश्चय पूर्वक) नहीं, ब्रैण्डी तो नहीं देंगे।

कम्पौण्डर:—(नाराज हो कर) भले ही, न मानिए। आपकी खुशी। पर मैं तो फिर भी कहता हूं बराण्डी दीजिए बराण्डी।

ब्रैण्डी बेचनेवाला:—बहुत ठीक! बेचारा कम्पौण्डर बहुत ठीक कह रहा है। ये सब छोटे डॅाक्टर कुछ नहीं जानते। भला चंगा होने के लिए ब्रैण्डी जैसी कोई चीज भी दुनिया में है?

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, कार्तिक वदी ९, सं १९७९

स्वतंत्रता का मूल्य

स्वतन्त्रता का संग्राम पहाड़ी रास्तों की तरह एक ओर भयंकर और विकट होता है तथा दूसरी ओर आशा, उत्साह और स्फूर्ति का देनेवाला। स्वतन्त्रता देवी बड़ी मानिनी है। बलिदान और कष्ट-सहन के पर्वत-शिखर पर उसका निवास है। वीरों, तपस्वियों और पुरुषार्थियों की ही पहुंच उस तक हो सकती है। सिवा उसके जो अपने हृदय में किसी दूसरे का ध्यान नहीं करता उन्हींको वह अपना सौन्दर्य और वैभव प्रदान करती है।

संसार में आजतक स्वतन्त्रता के अनेक उपासक हो गये हैं। उन्होंने उसे प्रसन्न करने का भगीरथ प्रयत्न भी किया है। पर यह एक प्रश्न ही है कि कोई उसे पूर्ण रूप से प्रसन्न और सन्तुष्ट कर पाया या नहीं? एक कवि की उक्ति है कि स्तुति-कन्या अभीतक कुंआरी ही बनी हुई है; क्योंकि जो पुरुषार्थी होते हैं वे स्तुति की चाह नहीं करते और जो पुरुषार्थी नहीं हैं उनकी चाह वह नहीं करती। इसी तरह हमारी समझ में तो स्वतन्त्रता-देवी भी अभी कन्या ही बनी हुई है। यद्यपि पुरुषार्थी लोग स्वतन्त्रता को केवल चाहते ही नहीं, बल्कि उसके लिए सदा मर मिटने को तैयार रहते हैं तथापि कुछ अन्य गुणों के अभाव के कारण वह उनके गले में वरमाल न डाल सकी। हो सकता है कि कुछ लोगों को उसने अपने दृष्टि-पथ में ला रक्खा हो; पर कड़ी परीक्षा का समय आने पर वे कच्चे निकले हों और इसलिए उसने उन्हें अपनी नजरों से गिरा दिया हो। यह भी हो सकता है कि लोग स्वतन्त्रता की छाया या दासियों को ही स्वतन्त्रता समझ बैठे हों। आजतक के मनुष्य-जाति के इतिहास को देखते हुए कभी कभी यह कल्पना उठती है कि क्या आजतक सच्ची स्वतन्त्रता किसी को मिली है? या आज किसी को प्राप्त है? कुछ लोग शायद कितने ही पश्चिमी राष्ट्रों की ओर उंगली उठावें। पर हम पूछते हैं कि क्या वे स्वतन्त्र हैं? यदि वे किसी दूसरे राष्ट्र या मनुष्य-समाज के गुलाम नहीं हैं तो क्या हुआ? क्या वे विलासिता के, भोगों के, अपने मन के, अपरिमित स्वार्थ के, कुटिलता के, गुलाम नहीं हैं? क्या वे पक्षियों की तरह स्वेच्छा-पूर्वक विहार कर सकते हैं? क्या वन के पुष्पों की तरह उनका स्वतन्त्र विकास हो रहा है? क्या नदियों की तरह उनके जीवन का स्वतन्त्र, शीतल और स्फूर्तिकर प्रवाह है? क्या पर्वत-शिखरों की तरह उनका मस्तक स्वतन्त्रता से उच्च है? क्या वे अपने ही मनोविकारों के दास नहीं हैं? क्या वे लक्ष्मी के हाथ बिक नहीं गये हैं? क्या सत्ता ने उन्हें अपने कठोर कटाक्ष का शिकार नहीं बना लिया है? क्या मद ने उन्हें मूर्छित नहीं कर रक्खा है? यदि यह सब है तो फिर इस कथन में क्या जान है कि वे स्वतन्त्र हैं? यदि वे आजादी के साथ विचार नहीं कर सकते, और यदि कर भी सकते हों तो उन्हें प्रकट नहीं कर सकते, उन्हें कार्यरूप में परिणत नहीं कर सकते, तरह तरह की शक्तियों से—कानूनों से जकड़े रहते हैं तो फिर कौन मान सकता है कि वे आजाद हैं? आजाद है वह जो खुद आजाद रहते हुए दूसरे को आजाद रहने दे। खुद सुखी रहते हुए दूसरे को सुखी रहने दे। सच पूछिए तो दूसरे को स्वतन्त्र रहने देना, सुखी रहने देना ही अपनी सच्ची स्वतन्त्रता का लक्षण है। यदि संसार में स्वतन्त्रता होती तो आज ये कितने ही भिन्न भिन्न परस्पर-विरोधी राष्ट्र क्यों दिखाई देते? इतना असीम सेना-बल, इतनी विनाशक सामग्री, क्यों नजर आती? जहां परस्पर-विश्वास है वहीं सच्ची स्वतन्त्रता रह सकती है। अविश्वास और उससे उत्पन्न होने वाला भय गुलामी का पूर्व-रूप है।

भारत सच्ची स्वतन्त्रता का दर्शन करना चाहता है। वह रत्नों का परीक्षक है, कंकड़ों का नहिं। वह मक्खन का भूखा है, मठे का नहीं। इसके लिए वह तन, मन, धन सब अर्पण करने को प्रस्तुत हो रहा है। इसके लिए आवश्यक पुरुषार्थ, आवश्यक सद्गुण और आवश्यक योग्यता प्राप्त करने में वह जी-जान से लगा हुआ है। वह समझता जा रहा है कि निर्भयता, अहिंसा अर्थात् प्रेम, सहनशीलता, एकता, स्वदेशी का अभिमान, त्याग और कष्ट-सहन के बिना स्वतन्त्रता देवी नहीं रीझ सकती है। वह उन्हीं भावों और गुणों के उत्कर्ष के लिए अविराम प्रयत्न कर रहा है। उसने स्वतन्त्रता के मूल्य को समझ लिया है। वह जान गया है कि जिस के हृदय में उत्साह नहीं है, और यदि है तो वह क्षणिक है, जिस का हृदय क्षुद्र है, जो क्षमाशील नहीं है, जिसे अपने जीवन-धन का मोह है, जिसे सच्ची लगन नहीं है, जो दूसरे के खून का प्यासा है, द्वेष जिसके हृदय को जला रहा है, सत्ता और अधिकार का लोभ जिसके हृदय में बस रहा है, कपट और कुटिलता से जिसे प्रेम है, सत्य से जो उदासीन है, पुरुषार्थ से जिसकी लड़ाई है वह स्वतन्त्रता का प्रेम-पात्र नहीं हो सकता, न स्वतन्त्रता के प्रति सच्चा प्रेम ही उसके हृदय में रह सकता है। सच्ची स्वतन्त्रता का मूल्य भी खरा और तेज होता है। नकली दाम में, खोटे रुपयों में, सच्चा माल तो दूर नकली माल भी नहीं मिल सकता। अतएव स्वतन्त्रता के घोर संग्राम में सच्ची और पूरी कीमत देने वाले शूर-वीर योद्धाओं की आवश्यकता है। बहुत से नकली और कच्चे सिपाहियों की बनिस्बत थोड़े परन्तु पक्के और सच्चे सिपाही ही समर में विजयी होते हैं। अतएव वही लोग इस संग्राम में आगे बढ़ें जो सच्ची स्वतन्त्रता के मतवाले हों, जो त्याग और तप की आग पर चलने को तैयार हों। कमजोरी, अनुत्साह, भय और मोह जिन के हृदय में व्याप्त हैं उन्हें न तो इस क्षेत्र में कदम बढ़ाना चाहिए और न स्वतन्त्रता के प्रेम में फंसना चाहिए। उसे मनुष्य की श्रेणी में अपना नाम भी कटा लेना चाहिए। मनुष्य तो वही है जो स्वतन्त्र हो, स्वतन्त्रता का प्रेमी हो, स्वतन्त्रता के लिए व्याकुल हो, स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने को तैयार हो।

हरिभाऊ उपाध्याय

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नये नियम नीचे लिखे जाते हैं।

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी)। कमीशन दिया जायगा और उन्हें पेपर पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डांक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डांक से भेजी जायं या रेल्वे से।
५. बची हुई प्रतियां वापस नहीं ली जायगी।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

स्वराज्य-धर्म

स्वराज्य के लिए पैसे की जरूरत तो हई है । पर केवल धन के बल पर हम स्वराज्य कभी खरीद नहीं सकते । अगर ऐसा ही होता तो यह नहीं कहा जा सकता कि स्वराज्य की कीमत नकदम चुका कर स्वराज्य खरीद लेनेवाले धनिक इस देश में नहीं निकल सकेंगे पर स्वराज्य इस तरह धन बहाने से नहीं मिल सकता । स्वराज्य तो हमने अपने ऐश आराम के मोह में पड़ कर खोया है । और अगर अब उसे हमें प्राप्त करना है तो हम अपने बल से बलिदान से ही प्राप्त कर सकते हैं ।

पर इसके लिए हरएक आदमी को सन्यास लेनेकी कोई जरूरत नहीं । हां, उसको इतना तो जरूर करना ही चाहिए कि वह ऐसा कोई काम न करे जो स्वराज्य के लिए विघातक हो । उसे अपना जीवन और व्यवहार इस तरह तो जरूर चलाना चाहिए जिससे स्वराज्य-धर्म में कोई बाधा न आवे । यदि हरएक जैन महावीर स्वामी जैसा महात्यागी न हो तो उसकी कोई बात नहीं । पर हरएक जैन से कम से कम यह तो जरूर अपेक्षा की जाती है कि वह हिंसा करके अपनी जीविका तो हरगिज न चलावे । हिंसा के मार्ग का अवलंबन करके जो जीविका प्राप्त हो वह तो उसके लिए हराम ही है । इसी प्रकार हमें भी यह तो प्रण कर ही लेना चाहिए कि विदेशी कपड़े का व्यापार स्वराज्य-धर्म का विघातक है इसलिए हम भी उसके व्यापार-व्यवहार को हराम समझ कर उसका सदा त्याग ही करेंगे । विदेशी कपड़े का व्यापार करके दस लाख रुपये का दान करने की अपेक्षा दस लाख रुपये की आय की परवा न कर के विदेशी कपड़े का व्यापार ही छोड़ देना स्वराज्य की दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ है । वकालत शुरू रख कर स्वराज्य-फंड में रुपये दान करने की अपेक्षा वकालत ही छोड़ने से स्वराज्य को सच्ची सहायता हो सकती है । यही बात कपड़े के व्यापार के विषय में भी कही जा सकती है । अगर यह कहा जाय कि विदेशी कपड़े के व्यापार से भारत का जितना नुकसान हुआ है उतना और किसी से नहीं तो इसमें जरा भी असत्य न होगा ।

दान की अपेक्षा त्याग का महत्त्व कहीं अधिक है । दान से हम गरीबों के कष्ट कम कर सकते हैं पर त्याग से तो हम उनकी गरीबी का ही नाश कर डालते हैं । कई बार दान द्वारा हम सामाजिक पाप का प्रायश्चित भी करते हैं । पर त्याग से तो उस पाप का ही उन्मूलन कर सकते हैं । भारत जब विदेशी कपड़े के व्यापार को महापातक समझने लगेगा तभी उसकी स्वराज्य साधना सफल हो सकती है ।

जिस प्रकार धन से विद्या नहीं खरीदी जा सकती उसी प्रकार केवल धन देकर हम स्वराज्य भी नहीं खरीद सकते । स्वराज्य के लिए तो शुद्ध आत्मोत्सर्ग की जरूरत है । यह केवल सत्ता का नहीं वह तो मनुष्य-हृदय का पूरा आंतरिक और बाह्य परिवर्तन है । इसलिए भारत में जब विदेशी कपड़े का व्यापार बिलकुल बन्द हो जायगा और उसके नौजवान पुत्र निर्भय हो कर देश सेवा के लिए निकल पड़ेंगे तभी स्वराज्य मिल सकता है । आज सिक्ख लोग पंजाब में जो सामर्थ्य प्रकट कर रहे हैं वही सब भारत के नौजवानों को प्राप्त करना चाहिए । और यह निःसन्देह है कि अगर विदेशी कपड़े का व्यापार शीघ्र ही बन्द न हुआ तो एक समय ऐसा जरूर आवेगा जब भारत के नौजवानों को उसके बन्द करने के लिए अकाली सिक्खों के जैसे शौर्य को ही प्रकट करना होगा ।

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

पहेली

कालपुरुषः—आज जिधर उधर ये उत्सव और मेले किस लिए हो रहे हैं?

हिंद-माताः—यह तो मेरे बड़े पुत्र का जन्मोत्सव है ।

कालपुरुषः—तो क्या मैं भी अपनी ओर से उसे आज बधाई दे आऊं?

हिंद-माताः—हाय ! तुम उसे नहीं मिल सकते । उसे तो मेरे मालिक ने कारावास में बंद कर रक्खा है ।

पिछले सप्ताह तीस करोड़ भारतवासी अपने एक भाई का जन्मोत्सव मना रहे थे जिसे सरकार ने जो कि उन पर राज्य करने के लिए 'कानून के अनुसार' प्रस्थापित की गई है अपने एक साधारण जेल में बंद कर रक्खा है । पर ऐसा वह कानून कौनसा है जिसके बल पर एक ऐसी सरकार प्रस्थापित की गई है जो एक ऐसा काम कर सकती है जो प्रजा की इच्छा और नाजुक भावों के इतना विपरीत हो? पर इसके पहले एक दूसरा ही सवाल खड़ा होता है । और वह यह कि "यह सरकार ही किस तरह प्रस्थापित की गई?" यह सवाल तो तभी खड़ा हो सकता है जब जनता और सरकार में विरोध हो । जब ऐसा विरोध उत्पन्न हो तब तो सवाल का उत्तर बराबर मिलना ही चाहिए । इसका उत्तर है "सत्ता-सैन्यबल से" ! पर यह कहना कि यह सरकार तो सैन्यबल द्वारा प्रस्थापित की गई है उसकी बहुत देर तक टिके न रहने की कबूलियत देना है । और ऐसी पशु-बल के द्वारा प्रस्थापित सरकार के प्रति राजभक्ति रखने के लिए कानून बनाना तो असम्भव और मूर्खता होगी । इसलिए उसकी परिभाषा 'कानून के द्वारा प्रस्थापित सरकार' इस तरह करना पड़ी । पर ऐसी वह कौन बाह्य शक्ति है जो भारत के तीस करोड़ निवासियों पर अपना राज्य कायम कर सकती है । दूसरी जाति या राष्ट्र के कानून तो यह अधिकार कभी नहीं रख सकते कि जिसके बलपर वह यहां आकर हमारे देश पर अधिकार कर ले । न हमपर राज्य करने को चाहनेवाली किसी जाति की वह इच्छा जो कानून के शब्दों में प्रकट की गई हो उस सभ्य, कानूनी शब्द रचना के बल पर हमारे लिए कानून हो सकती है । "मैं तुम पर शासन चलाऊंगा" ये शब्द तो कानून को न मानने वाले एक स्वेच्छाचारी सत्ताधारी के मुंह से भले ही शोभा दें, और यद्यपि ये कानूनी सभ्य भाषा में कहे गये हों तथापि यथार्थ में तो ये कभी कानून हो ही नहीं सकते । इसलिए जिसके बल पर किसी जाति पर सरकार प्रस्थापित की जा सकती है वह तो उस जाति की स्वयं इच्छा ही है । और वही सच्चा कानून भी है । फिर यह कैसी अनोखी पहेली है कि एक सारी जाति एक आदमी का जन्मोत्सव मना रही है और अपनी श्रद्धाञ्जलि से उसकी पूजा कर रही है, और वह सरकार जो कि कहा जाता है कि इसी की इच्छानुसार स्थापन की गई है उस आदमी को चोर और हत्यारों के साथ जेल में बंद कर रही है ?

हमें कहा जा रहा है और वह भी जब से महात्माजी कैद कर दिये गये हैं तब से तो और भी ज्यादह कि अब लोक-मत का प्राबल्य बहुत बढ़ गया है और वह बहुत तेजी से वह शक्ति प्राप्त करता जा रहा है जिससे देश के शासन की बाग-डोर उसके हाथों में आ जाय । पर इस कथन पर ये उत्सव कैसी खासी टिप्पणी हैं ? देश भर में जनता हजारों की संख्या में इकट्ठी हो कर उसका जन्मोत्सव मना रही है जिसे वह उसके कारावास से बाहर भी नहीं निकाल सकती । बम्बई की पुत्रियां उसकी पूजा करने के लिए जेल के दरवाजे पर पहुंचती हैं पर पर वहीं रोक दी जाती हैं । और आंसू बहाती लौटती हैं । लोक-मत की सत्ता हमारे लिए दूसरे नहीं प्रस्थापित कर सकते । वह तो हमारे द्वारा ही हो सकती है । और इस जन्मोत्सव और जेल की पहेली को भी हम ही हल कर सकते हैं।

(यंग इंडिया) चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

और एक परीक्षा

उस समय देश में सब को यही चिंता थी कि भारत महात्माजी के इस छः साल के वियोग को किस तरह सह सकेगा ! क्योंकि वह अपने उद्धारक पर असीम प्रेम करता है। पर सात महीने बीत गये। वह उस वियोग को उसी गंभीरतापूर्वक सह रहा है। पर यह तो उसके केवल संयम की परीक्षा हुई उसे अपनी कार्य कुशलता की परीक्षा तो अभी देना ही है। महात्माजी के वियोग को गंभीरतापूर्वक उसने सह तो लिया पर उन्हें छुड़ाने के लिए उसने क्या किया ?

हरएक व्यक्ति, परिवार, संस्था, या जाति जिस के हृदय में महात्माजी और देश के प्रति प्रेम है अपने आपसे यही सवाल पूछे। 'क्या मैंने महात्माजी के आज्ञानुसार महासभा के सिद्धान्तों का अपनी शक्तिभर प्रचार किया और उसकी समितियों का संगठन किया ? क्या स्वराज्य-कोष के लिए धन इकट्ठा करने के लिए मैंने अपनी शक्ति पर प्रयत्न किया ? क्या हिन्दू और मुसलमानों के हृदयों को प्रेम और भ्रातृभाव से अधिक जकड़ने की कोशिश की है क्या अपने तिरस्कृत अछूत भाईयों को मैंने प्रेमपूर्वक हृदय से लगाया है ? क्या मैं शुद्ध खादी पहन रहा हूं ? रोज चरखा कात रहा हूं, और क्या मैंने अहिंसा-धर्म का पूरा पूरा पालन किया है ? सब को जो मुझे अपना शत्रु मानते हैं उन्हें भी भ्रात-भाव की दृष्टि से देखा है' ? यदि हम इन सवालों के उत्तर में खुले हृदय से 'हां' कह सकते हैं तो हम महात्माजी को सच्चे हृदय से प्यार कर रहे हैं। देश को और उनको कैद से छुड़ाने का सच्चे हृदय से प्रयत्न कर रहे हैं। पर अगर हम यह न कर रहे हों तो हमारा प्रेम मोह है, व्यर्थ है, मिथ्या है। हम महात्माजी को और देश को सच्चे हृदय से प्यार नहीं करते। प्यार केवल मुह की बातों से सभा-सोसायटियों में भाषणों की भरमार करने से नहीं व्यक्त होता। इनका जमाना तो अब गुजर गया। अब तो सच्चे काम की जरूरत है।

महासभा को अभी ढाई महीने हैं तब तक हमें देश को खादीमय कर डालना है। अगली महासभा तक किसी भी भारतीय के शरीर पर विदेश का एक सूत भी न दिखाई दे। मुलतान और चौरी चौरा की दुर्घटनायें भविष्य में असंभव हो जायं। अगर महात्माजी के पढाये स्वावलंबन के पाठ को हम ठीक ठीक रीति से समझ गये हों तो इस अन्नपूर्णा के घर में हमें पेट की चिंता होना असम्भव है। पेट के नाम पर अपने देश का खून चूसनेवाली सरकार को अपने घर की संपत्ति लुटाने में सहायक होना तो पाप और कायरता है।

अगर हमने स्वाधीनता के सच्चे स्वरूप को पहचान लिया है तो संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं जो तीस करोड भारतीयों को उसकी प्राप्ति के मार्ग से विचलित कर सके। उसकी इच्छा-शक्ति और आत्मबल के आगे संसार की अधिक से अधिक शक्तिशाली सल्तनत को भी सिर झुकाना होगा। हमारा ध्यान तो सिर्फ अपने कर्तव्य की ओर ही रहे। बटे हुए ध्यान से हम कभी अच्छी तरह काम नहीं कर सकते। इसलिए आइए, आज से हम नये निश्चय और नवीन उत्साह के साथ फिर अपने काम में जी जान से जुट पड़ें। अब प्रत्येक गांधी दिवस हमारी प्रगति को वेग से बढ़ती ही देखे।

निश्चय कीजिए कि जबतक स्वराज्य प्राप्त करके महात्माजी को अली भाइयों को, लालाजी को और हमारे उन २५००० भाइयों को जेलों से नहीं छुड़ा लेते विश्रान्ति न लेंगे। एक एक दिन हमें आगे ही देखे। एक ही दिन ने भगवान रामचंद्र के जीवन स्रोत के मार्ग को बदल दिया था। एक ही दिन में हरिश्चंद्र ने अपने सत्य के लिए सर्वस्व को छोड़ छाड दिया था। और एक ही दिन में युधिष्ठिर राज्य को हार भी गया। मनुष्य और राष्ट्रों के जीवन में एक दिन की कीमत कम नहीं है।

ध्येय कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसको घडीभर पहन लिया और फिर संदूक में बंद कर दिया। ध्येय तो वह है जिसके लिए राष्ट्र और जातियां अपने आपको भूल कर जमानों तक हजारों मुसीबतों से लड़ते रहते हैं। क्या हमें भी अपना ध्येय इसी तरह प्यारा है। अगर है तो मृत्यु और निराशा हमें छू तक नहीं सकती। पापी पेट हमें लाचार नहीं कर सकता और सांसारिक बंधन हमें उसके लिए मरने में रोक नहीं सकते।

वैजनाथ ज. महोदय

सत्याग्रही सिक्ख-धर्म

सिक्ख अकालियों में इतनी निडरता, इतना धर्म-प्रेम और इतनी सहनशीलता कहां से आई ? ऐसा हरएक के मन में आश्चर्य पैदा होता है। धर्म की गति त्वरित है। आग की एक चिनगारी जैसे सारे बन को प्रदीप्त कर डालती है, उसी तरह धार्मिक श्रद्धा मनुष्य में असाधारण बल और निश्चय पैदा कर देती है। धर्म ही मनुष्य का प्राण और वीर्य है। जब धर्म-बुद्धि क्षीण हो जाती है तब ही आदमी कुदरती कमजोरियों को स्वाभाविक और योग्य मानने लगता है।

सिक्ख लोगों ने अपने पुण्य-श्लोक दस गुरुओं के पास से धार्मिक श्रद्धा और मृत्यु का तिरस्कार हासिल किया है। सत्याग्रह धर्म हिन्दुस्तान में जागते ही सिक्ख लोगों की धर्म-वीरता जाग्रत हुई और उन्होंने अपनी प्राचीन झलक थोड़े ही समय में फिर दिखा दी।

कई हिंसावादी लोग मानते है कि सिक्ख लोगों की शूरता गुरु गोविंदसिंह की लड़करी तालीम से पैदा हुई। लेकिन यह ख्याल गलत है। सिक्ख लोगों में जो कुछ खास गुण हैं वे सब प्रथम गुरु बाबा नानक से ही चले आये हैं। सिक्खधर्म कोई साम्राज्यवादियों का बहाना नहीं है। ईश्वर का नाम और गुरु की भक्ति के ऊपर वह रचा हुआ है। गुरु गोविंदसिंह ने स्वयं अपने शिष्य बन्दा को जो अंतिम आज्ञायें दी थीं उनमें सत्य और ब्रह्मचर्य का खास उपदेश था। 'सदा सत्य विचार करना, सत्य बोलना और सत्य पर ही चलना'। यही सिक्ख धर्म का आधार है। सिक्ख जाति जब जुल्म और अत्याचार सहन न कर सकी, जब उसकी सहनशक्ति का अंत आया तब उसने शस्त्र उठाया यह बात सत्य है। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि सिक्ख धर्म सत्याग्रह-धर्म ही है। अगर लोग आखिर तक सब अत्याचार सहन कर सकते तो सिक्ख गुरुओं ने तलवार का आश्रय कभी न लिया होता। गुरु रामदास तक सिक्ख धर्म का राज्यकर्ताओं के साथ कुछ विरोध न हुआ। उसके बाद जहांतक हो सका उन्होंने शांति की नीति ही रक्खी थी। छठे गुरु हरगोविंद देव ने जरूर खड्ग उठाया था। पर वह अपने बचाव पुरता ही था। वह समय ही ऐसा था कि भारत में उत्तर तथा दक्षिण में मुगलों का अत्याचार बहुत बढ गया था। लेकिन तो भी सिक्ख जाति शांतिप्रिय ही रही। गुरु तेगबहादुर को तलवार का अभिमान न था। वे त्याग ही में आनन्द मानते थे। और उन्होंने धर्म के लिए सत्याग्रह करके अपना शिर भी अत्याचारियों की तलवार को अर्पण किया। इनके जमाने में अथवा उनके बाद गुरु गोविंदसिंह और उनके शिष्य बंदा के दिनों में सिक्खों ने अपने धर्म के लिए जितना अत्याचार सहन किया है उतना शायद ही दूसरी किसी जाति ने किया हो। तेगबहादुर, तारूसिंह, मनीराम, हकीकत

राय, और गुरु गोविंदसिंह के दो पुत्र तो धर्म के लिए प्राण अर्पण करके अमर हो चुके हैं। हजारों लोगों ने उन्हीं के मुआफिक अपना प्राण देकर सिक्ख-धर्म की शुद्धता और श्रेष्ठता स्थापित की है। सच पूछा जाय तो तलवार से आजतक किसी जाति पंथ या धर्म का कल्याण हुआ नहीं है। तलवार ज्यों ज्यों डर दिखाती है त्यों त्यों धर्म लोगों में निडरता और श्रद्धा भरता जाता है।

नादिर शाह की चढ़ाई के बाद सिक्ख लोगों को अपने धर्म समवाय को संगठित करने में बहुत दिक्कत पड़ी। अमृतसर के पुण्यतीर्थ में स्नान करना भी बड़ा कठिन काम हो गया था। तथापि सिक्ख धर्म-प्रेम ने मृत्यु का सामना करके भी अमृतसर की यात्रा की है। मालकम साहब ने अपने इतिहास में लिखा है कि "कई लोग गुप्त वेष से चुपचाप यात्रा कर आते थे। लेकिन उस वक्त के एक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि सामान्य तौर पर सिक्ख लोग खुल्लम खुल्ला अपने घोड़े को फेंकते हुए अमृतसर जाते थे और यात्रा करके लौटते थे। बहुत बार इस प्रयत्न में वे मारे भी जाते थे। कभी कभी कैद भी कर लिये जाते थे परन्तु ऐसे समय पर वे कभी भी मौत से डर कर भागते न थे। बड़े हर्ष के साथ शहीद हो जाते। वही इस्लामी ग्रंथकार लिखता है कि ऐसा एक भी उदाहरण नहीं पाया जाता कि जब अमृतसर के किसी सिक्ख यात्री ने अपने धर्म का इन्कार किया हो।"

यही सत्याग्रह है। इसीके कारण दुनिया भर में सिक्ख जाति की कदर होती है। यही सत्व अब सिक्ख अकालियों में फिर जाग्रत हुआ है। जो लोग मानते हैं कि सत्याग्रह से देश का पौरुष नष्ट हो जायगा उनको सिक्ख इतिहास को पढ़ना चाहिए और अकालियों की निडर धार्मिकता को ध्यान में लाना चाहिए। सत्याग्रह तो सर्वोच्च वीरत्व है। उससे राष्ट्र का पौरुष नष्ट नहीं होगा। उलटा अमर ही होगा।

चौरी चौरा के हत्याकाण्ड के बाद बहुत से लोग कहते थे कि आम जनता के लिए अत्याचार के सामने अनत्याचारी रहना अशक्य है। यह मनुष्य-स्वभाव के विपरीत है। गांधीजी दुनिया के सामने एक अशक्य आदर्श रख रहे हैं। सिक्ख अकालियों ने बता दिया है कि लोगों में सच्चा धर्म-प्रेम हो तो मामूली किसान भी चाहे इतने अत्याचारों के अपने पर भी अनत्याचारी रह सकते हैं, अहिंसा-धर्म का पालन कर सकते हैं। अहिंसा सार्वत्रिक, सार्वभौम धर्म है।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

कुछ-रत्न

सत्य

सत्य शब्द की उत्पत्ति सत् से है जिसका अर्थ है 'होना'। केवल परमात्मा ही सदा तीनों काल में एक रूप है। इस सत्-स्वरूप परमात्मा की जिसने भक्ति की है, जिसने उसे अपने हृदय में स्थान दिया है उस पुरुष को सौ सौ बार प्रणाम।

हरिश्चंद्र ने जिसे सत्य समझा उसके लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। इमाम हुसेन को भी जो सत्य प्रतीत हुआ उसके लिए उसने अपना जीवनोत्सर्ग कर दिया। पर हरिश्चंद्र और इमाम हुसेन का जो सत्य था वह हमारा सत्य हो या न भी हो। क्योंकि हरएक व्यक्ति का सत्य परिमित अथवा सापेक्ष सत्य होता है।

पर इस परिमित सत्य के बाद शुद्ध, निरपेक्ष सत्य तो रहे है, जो अखंड और सर्वव्यापक है। वह अवर्णनीय है। क्योंकि सत्य ही तो परमेश्वर है। अथवा परमेश्वर ही तो सत्य है।

इसलिए जिसने सत्य के सच्चे स्वरूप को पहचान लिया है, जो 'काया वाचा मनसा' सत्याचरण ही करता है उसने परमात्मा को पहचान लिया है। और इसीलिए वह त्रिकालदर्शी भी होता है। वह जीवन्मुक्त है।

जिसका जीवन सत्यमय है वह तो स्फटिक-मणि जैसा है। असत्य तो उसके पास एक क्षणभर भी टिक नहीं सकता। सत्याचरणी को कोई ठग भी नहीं सकता। क्योंकि उसके सामने दूसरों को असत्य भाषण करना असम्भव होना चाहिए। संसार में सब से कठिन व्रत सत्यव्रत ही है। सत्य स्वयं प्रकाश और स्वयं सिद्ध है। पर मैं जानता हूं कि ऐसा सत्याचरण इस विषम काल में कठिन है पर अशक्य तो नहीं। इसी प्रकार यदि हम भी अधिक संख्या में कुछ थोड़े बहुत प्रमाण में सत्य का आग्रह करने लगें तो स्वराज्य प्राप्त कर लें।

हमें हरएक कार्य में सत्य ही का दृढता पूर्वक प्रयोग करना चाहिए। सत्य पर पूरी श्रद्धा रखनी चाहिए और जो सत्य मालूम हो उसे वैसा ही कहने में किसी से न डरना चाहिए। सत्य के अभाव में निर्दोषता असम्भव है। अर्थात् सत्याचरण ही हमारी मुक्ति का द्वार है।

यह तो सब को जानना चाहिए कि पश्चिम का अनुकरण करने से भारत में धर्म-राज्य की स्थापना नहीं हो सकती। पश्चिम का संयम तो आवश्यकता और 'पालिसी' पर निर्भर है। पूर्व का तो संयम ही ध्येय है। धर्म वचन यह नहीं कहते कि सत्य बोलने से फायदा होता है इसलिए सत्य कहो। धर्म ने तो माना है कि सत्य ही परमेश्वर है।

मैं तो यह कभी नहीं मानता कि अत्युक्ति से कभी जनता का थोड़ा भी भला हो सकता है। अत्युक्ति तो असत्य का ही एक स्वरूप है। असत्य से अगर प्रजा की उन्नति होती हुई दिखाई दे तो भी हमें तो उसका त्याग ही करना चाहिए। क्योंकि वह उन्नति आखिर अवनति ही सिद्ध होगी।

आधे सत्य को मैं डेढ़ असत्य कहता हूं क्यों कि वह दोनों को भ्रम में डालता है।

मेहतर के शरीर पर जो मैला लगता है वह तो शारीरिक, स्थूल होता है। उसे तो हम फौरन धो सकते हैं। पर अगर किसी पर असत्य, पाखंड आदि का मैल चढ़ जाय तब तो उसे धो डालना बहुत ही कठिन काम है। क्यों कि यह मैल बहुत सूक्ष्म होता है। अगर कोई अस्पृश्य कहा जाय तो असत्य वादी और पाखंडी लोगों को हम भले ही ऐसा कह सकते हैं।

जो सत्य प्रतीत हो उसका आचरण करना इसीका नाम 'सत्याग्रह'।

सत्याग्रही का आधार तो सत्य और अपनी तपश्चर्या है।

सत्याग्रह यथार्थ में प्रजा के जीवन में सत्य और अहिंसा का प्रवेश करानेका प्रयत्न है।

मैं तो जनता की सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक उन्नति जितनी सत्याग्रह में देख सकता हूं उतनी और किसी में नहीं देख सकता।

सत्याग्रह का कार्यक्षेत्र कहीं सरकार और प्रजा के बीच ही समाप्त नहीं हो जाता। दूसरे कितने ही सांसारिक सुधारों के लिए भी हम उसका उपयोग कर सकते हैं। जैसे स्त्रियों की स्थिति सुधारना, कितने ही घातक रिवाजों को मिटाना, हिन्दू-मुसलमानों के बीच जो कितने ही सवाल खड़े होते हैं उनका निपटारा करना और अंत्यजों की दुरवस्था को दूर करना आदि कितनी ही बातों का समावेश उनमें हो सकता है।

(महात्माजी के विचार सागर से)

खिलाफत की विजय

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)॥
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष २] [अंक १०

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, कार्तिक सुदी २. संवत् १९७९
रविवार, २९ अक्तूबर, १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरखीगरा की वाडी

पूज्य बा का पूनावासियों को उपदेश

पूज्य बा जब महात्माजी से मिलने के लिए पूना गई थीं तब वहां पर उन्हों ने एक भाषण किया था। उसका सार नीचे दिया जाता है—

भाइयो और बहनो,

मैं हिन्दी में भाषण नहीं कर सकती। इसलिए मैं आपकी क्षमा चाहती हूं। भाई जमनालाल जी आपको मेरा भाषण हिन्दी में समझा देंगे।

पूना तो एक तीर्थ-स्थान है। यहां पर तिलक-महाराज ने और गोखलेजी ने अपना जीवन बिताया उनके मकान अभीतक हैं। उनका शुरू किया काम अभीतक चल रहा है। इससे अधिक पवित्र स्थान और दूसरा कौनसा हो सकता है? ऐसे तीर्थ स्थान में दया, प्रेम, भक्ति, और स्वदेशी तो होना ही चाहिए।

मेरा हमेशा से यह ख्याल चला आया है कि दक्षिणी लोग बड़े होशियार होते हैं। विद्वत्ता में, आत्म-बलिदान में और शासन व्यवस्था में दक्षिणी भाइयों की बराबरी कोई नहीं कर सकता। गांधीजी का भी दक्षिणी लोगों पर बड़ा विश्वास है। वे जब तब कहते कि भारत में दक्षिणी लोगों का ही नम्बर पहला आवेगा।

पर मुझे तो आज पूना में निराशा हो रही है। मैं जहां जहां गई मैंने इतनी रंग-बिरंगी पगड़ियां और साड़ियां कहीं भी नहीं देखीं। क्या अब ये पगड़ियां पहनने के दिन हैं? ये पगड़ियां अब तो जरा भी शोभा नहीं देतीं। अब तो हमारे बदन पर खादी ही होनी चाहिए। बहनों को भी अब तो खादी की ही साड़ियां पहननी चाहिए।

आज मैं यहां की सूत की कमिटी में गई थी। वहां की बहनें खादी के लिए अच्छा प्रयत्न कर रही हैं। उनका कहना है कि यदि पुरुष मिहनत करें तो बहुत-कुछ काम हो सकता है। पर पुरुष द्रव्य-सहायता नहीं करते। मुझे अपने भाइयों से कहना चाहिए कि यह अच्छी बात नहीं है। आपको तो बहनों की मदद जरूर ही करनी चाहिए। उनकी साड़ियों के लायक खादी बुनवाने का प्रयत्न आपको करना चाहिए, उनको द्रव्य की सहायता भी करनी चाहिए। पूना के भाइयों के लिए यह कोई मुश्किल बात नहीं है। इस तीर्थ में आप प्रेम, भक्ति और दया को भी खूब बढ़ाइए, यही मेरी आपसे प्रार्थना है।

अन्नकूटोत्सव

कल मेरे मालिक के घर पर नवीन वर्ष का अन्नकूटोत्सव था। अन्नदाता ने अपनी मिल के सब मजदूरों को निमंत्रित किया था।

अपने विशाल हाल में से सब फरनीचर निकाल कर स्वामी ने उसमें अन्न का भंडार रक्खा था। सैकड़ों प्रकार के पक्वान्न, मिष्टान्न, मिठाइयां, फल, खटाई आदि के बड़े बड़े ढेर लगे हुए थे।

हमारे लिए खास तौर पर एक विशाल मंडप बनाया गया था। शाम के चार बजे दाता ने हमें उसमें बैठाया। अपने हाथों में पुष्प, चंदन, और अक्षतों का थाल लेकर सेठ मंडप में आये। उन्होंने कहा "भाइयो, कृष्ण भगवान् ने नंदजी से कहा था कि यह गोवर्धन पर्वत और ये गायें हमारा निर्वाह चलाती और रक्षण करती हैं। हमें इनकी पूजा करके अन्नकूटोत्सव करना चाहिए। मेरे प्यारे भाइयो, उसी प्रकार आप भी मेरे अन्नदाता हो। आपही की मिहनत से मेरी मिलें चल रही हैं। मैं आप ही का दिया खाता-पीता हूं। इस नवीन वर्ष की प्रतिपदा के दिन आपको छोड़ कर मैं और किसकी पूजा करूं? आओ, आप ही मेरे गोवर्धन पर्वत हो। आपकी कुछ थोड़ी सी सेवा करने के लिए मैंने जो कुछ तैयारी की है उसका स्वीकार कर के मुझपर प्रसन्न होइए।"

यह कहते कहते तो उन करुणाकंद मालिक ने हमारे सामने दण्डवत् प्रणाम किया। हम इसे नहीं देख सके। हम सबने कहा "नाथ नाथ, हमें परमात्मा के आगे दोषी मत बनाइए। हम तो आपके चरण की रज हैं। हम तो आपके पैरों में बैठने वाले हैं।"

पर मालिक ने जरा भी न सुनी। उन्होंने थाली में कपूर प्रज्वलित किया, घंटा बजाई और हमारी आरती की। हमें

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव'

कह कर अक्षत, पुष्प चढ़ाये और गद्गद् कंठ से हमारी स्तुति करने लगे। यह देखकर हमारी भी आंखों से अश्रुओं की धारा बह चली।

फिर सजल नेत्रों से गरीबपरवर ने कहा—उठिए, मेरे देवो, मेरे इस नैवेद्य को पावन कीजिए। आपही मेरे ठाकुरजी हैं।

हम एक कतार में बैठ गये और उन किंकरों के नाथ ने सब अन्नकूट का भोजन हमें कराया। बची-खुची सामग्री से खुद आपने तथा हमारी माता लक्ष्मी ने प्रसाद ग्रहण किया।

नाथ की सब लीलायें सचमुच अलौकिक हैं!

(नवजीवन) किंकर

टिप्पणियां

महात्माजी कैसे हैं ?

महात्माजी के स्वास्थ्य के संक्षिप्त समाचार पाठक पिछले अंक में पढ़ ही चुके हैं। अब उनका ब्यौरा भी यहां दिया जाता है—

यरवडा जेल में उनका स्वास्थ्य अच्छा है। कहा जाता है कि उनका वजन भी तीन पौंड बढ़ गया है। पूज्य कस्तूर बा ने, जो इस महीने के आरम्भ में उनसे मिलने के लिए गई थीं, उनके चेहरे पर दैवी तेज, गांभीर्य और सन्तोष झलकता हुआ पाया। वे हर रोज अपने तथा भाई शंकरलालजी बैंकर के लिए तीन घंटा धुनकते हैं और एक घंटा चरखा कातते हैं।

(पाठक, आप अपने जीवन का कितना समय अपने इस राष्ट्रीय कर्तव्य के पालन में रोज व्यतीत करते हैं ?)

वे खूब पढ़ते और विचार करते हैं। पर अभी कुछ लिखते नहीं हैं। महात्माजी के विषय में जनता की ओर से जो प्रश्न पूछे जाते हैं उनके संदिग्ध उत्तर देने की तथा टालमटोल करने की अपनी नीति सरकार ने अभी छोड़ी नहीं है। वह कहती है— "महात्माजी ने रात को चिराग दिये जाने के लिए अभी दरख्वास्त नहीं की है। उन्हें मासिक पत्र वगैरा पढ़ने के लिए दिये जाते हैं, समाचार-पत्र नहीं; आदि।" ये और इस तरह के उत्तर प्रश्न करने वालों के हृदय में सन्तोष उत्पन्न करने के बजाय संशय को ही अधिक जाग्रत करते हैं।

कौनसे मासिक पत्र उन्हें दिये जाते हैं ? हिन्दी 'सरस्वती' का सिर्फ एक ही अंक या और कुछ भी ? जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के मिलने के लिए दरख्वास्तों की जरूरत ही क्या है ? इसका जवाब नहीं मिलेगा। इतना होते हुए भी, जेल में जो लोग उनसे, मिलने के लिए गये थे उन्होंने यह देखा कि पहले की अपेक्षा अब जेल का वायु-मण्डल अधिक प्रेम-युक्त है। महात्माजी के संतुष्ट और प्रसन्न रहने के विषय में तो सन्देह हो ही नहीं सकता। क्योंकि यह बात बाहरी परिस्थिति पर नहीं, स्वयं उन्हीं पर अवलम्बित है। इसमें तो सन्देह हो ही नहीं सकता कि जेल का शत्रुत्व, अविश्वास और द्वेष-भरा वायुमण्डल बदल कर उसका स्थान भक्ति और प्रेममय वायुमण्डल ग्रहण करता जायगा। क्योंकि उनके प्रेम की आग के सामने अधिक समय तक कौन ठहर सकता है ? उस स्वर्गीय तेजांश के साथ रह कर बगैर प्रेममय हुए कोई भी नहीं रह सकता। अगर किसी का यह निश्चय ही हो कि मैं तो महात्मा गांधी के प्रति अविश्वास और द्वेष ही रखता रहूंगा तो उसे उनसे बहुत दूर रहने की सावधानी रखनी चाहिए। (यं० इं०)

लाइड जार्ज का पतन

ब्रिटिश साम्राज्य के रंगमंच के मायावी सूत्रधार श्री लाइड जार्ज ने अपना अन्तिम अभिनय कर दिखाया। खिलाफत की विजय ने उन्हें ब्रिटन का एक मामूली नागरिक बना दिया। केवल ग्रेट ब्रिटन ही नहीं, सारा संसार उनकी चालबाजियों से परेशान था। धूर्त मनुष्य अपनी कुटिलता के द्वारा सब लोगों को कुछ समय तक और कुछ लोगों को सब समय तक अपनी उंगली पर नचा सकता है; पर सब को सदा के लिए नहीं। श्री लाइड जार्ज का पतन उनके तुर्किश अन्याय के साथ ही निश्चित था। खिलाफत की शत्रुता ने उस पतन को नजदीक ला दिया।

संयुक्त सरकार टूट कर श्री बोनर ला के हाथ में साम्राज्य की बागडोर आई है। ये कंजरवेटिव दल के आदमी हैं। नया चुनाव होने तक ये अपने नये मन्त्रि-मण्डल के द्वारा साम्राज्य-सञ्चालन करेंगे। खिलाफत के साथ कंजरवेटिव दल की सहानुभूति बताई जाती है। कुछ अखबारों का यह भी अनुमान है कि श्री बोनर ला के शरीर में श्री लाइड जार्ज की ही आत्मा काम करेगी। जो हो। इस परिवर्तन के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के कितने ही महत्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश और प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। भारतीय स्वराज्य को इस पद-परिवर्तन से कुछ आशा न करनी चाहिए। हमें तो स्वावलम्बन और स्व-पुरुषार्थ पर ही दृढ़ रहना चाहिए। वर्तमान राष्ट्रीय और आन्तरराष्ट्रीय स्थिति की नाजुकता और विकटता को देखते हुए हम कह सकते हैं कि यह समय भारत की दूरदर्शिता, बुद्धि-मानी, चतुरता, दृढ़ता और साहस की परीक्षा का है। यदि हम अपने प्रण पर, अपनी टेक पर अड़े रहे, जरा भी ढीले न हुए तो हमारी विजय शीघ्र ही निश्चित है। यदि हमने जरा भी कमजोरी, ओछापन और शिथिलता का परिचय दिया तो दो-तीन वर्ष का सारा काम मिट्टी में मिल जायगा। परमेश्वर हमें सुबुद्धि और साहस दें।

गुजरात में धर्म-युद्ध

स्वदेशी-धर्म के त्याग ने भारत का सत्यानाश किया है और उसका उद्धार फिर उस धर्म का आचरण करने ही से हो सकता है। यह बात अब सब लोग जान गये हैं। जबतक लोग इसे जानते न थे तब तक देश के नेताओं ने उन्हें इसका रहस्य समझाने की कोशिश की। उसका उपदेश करते करते ही उन्होंने अपना जीवन बिताया। पर अब वह काम पूरा हो चुका। अब अगर स्वदेशी-धर्म का पूरी तरह प्रचार न हो तो उसका कारण अज्ञान नहीं बल्कि जनता का मोह, दुर्बलता, तुच्छ भोगविलास-लोलुपता, देश की भलाई की ओर लापरवाही और अपनी सन्तान के प्रति सच्चे कल्याण-भाव का अभाव है।

इस पतित दशा में जबानी उपदेश किस काम का ? इतिहास यह कहता है कि समाज की ऐसी पतितावस्था वीरों के बलिदान से ही दूर होती है। अतएव स्वदेशी-धर्म के प्रति जिनकी श्रद्धा है और जो उसके त्याग में अपना और अपनी सन्तति का नाश देखते हैं उनको अब इस स्वदेशी-धर्म की रक्षा के लिए धर्म-युद्ध की घोषणा किये बिना चारा नहीं। क्योंकि इस स्वदेशी-धर्म के त्याग में देश-द्रोह है, धर्म-द्रोह है, और बन्धु-द्रोह है।

गुजरात ने इस धर्म-युद्ध की तैयारी शुरू कर दी है। स्वदेशी-सेना के सैनिकों को निमन्त्रण दे दिया है। और दिसम्बर के आरंभ होते ही वह युद्ध की घोषणा कर देगा। अभी केवल २५०० सच्चे वीर सैनिकों की मांग उसने की है। हमें आशा है, गुजरात जैसे सजीव और तेजस्वी प्रान्त से इस धर्म-युद्ध के लिए २५०० स्वयंसेवक मिलना कठिन नहीं है। जिस समय देश के कुछ लोगों में परिवर्तन के लिए चर्चा हो रही है उस समय गुजरात एक पैर आगे बढ़ने की तैयारी कर रहा है। यह उसकी श्रद्धा, नवजीवन और उत्साह का परिचायक है। जहां उत्साह है, श्रद्धा है, वहां कुछ भी असंभव नहीं। किसी बात की संभवनीयता अथवा असंभवनीयता हमारी हृदयस्थ श्रद्धा और उत्साह पर ही अवलंबित है। शौर्य तलवार का गुलाम नहीं है वह तो हृदय की वस्तु है। हमें विश्वास है कि गुजरात का यह प्रयोग देश के लिए शिक्षाप्रद होगा।

'इस्लाम-बंधुत्व' पर हकीम साहब

कुरान शरीफ में लिखा है कि 'सब मुसलमान भाई भाई हैं'। इसीका नाम 'पैन-इस्लामिज्म्' अर्थात् 'इस्लाम-बंधुत्व' है। जब कभी मुसलमान गैर-मुसलमानी सत्ता के द्वारा सताये जाते हैं तब 'पैन-इस्लामिज्म्' उनमें बंधुत्व के भावों का संचार करके एकता और शक्ति डाल देता है जिससे मुसलमान अपनी रक्षा कर सकें। पर इन दिनों आधुनिक सभ्यता की छत्रछाया में शब्दों का विपरीत अर्थ करने की कला का ज्यों ज्यों अधिकाधिक विकास होता गया त्यों त्यों स्वार्थी मनुष्य-समाज 'पैन-इस्लामिज्म्' का भी यह

विपरीत अर्थ लगाने लगा कि यह तो संसार के दूसरे राष्ट्रों के खिलाफ संगठन करने का मुसल्मानों का छद्म प्रयत्न है। कुछ हिन्दू भाइयों ने भी पश्चिमी किताबों और समाचार-पत्रों में 'पैन-इस्लामिजम्' का यह विघातक अर्थ पढ़ा और उन्हें यह संदेह होने लगा कि 'पैन-इस्लामिजम्' और हिन्दू-मुस्लिम-एकता ये दोनों बातें साथ साथ कैसे चल सकती हैं? इस विषय पर 'यंग इंडिया' में हकीम अजमलखां साहब लिखते हैं-"मुझे मालूम होता है कि मैं इस समय जनता को यह समझा दूं कि 'पैन-इस्लामिजम्' और हिन्दू-मुस्लिम-एकता में कोई विरोध नहीं है। यह आन्दोलन तो केवल रक्षात्मक है। और इसका प्रयोग केवल उन योरोपीय ईसाई शक्तियों का सामना करने के लिए किया गया है जो इस्लाम से ख्वाह-म-ख्वाह शत्रुत्व का भाव रखती हैं और उसपर आक्रमण करने के लिए आँखों में तेल डाले हुए बैठी हैं। मैं चुनौती देता हूं कि कोई भी यह सिद्ध कर दे कि 'पैन-इस्लामिजम्' का प्रयोग कहीं भी ऐसी जाति या राष्ट्र के खिलाफ किया गया हो जो इस्लाम से शत्रुत्व का भाव न रखता हो। फिर यह मान लेना कहांतक ठीक है कि वह हिन्दू-मुसल्मान-एकता के लिए हानिकर है?

पैगंबर साहब ने तो यहूदी और गैर-मुस्लिम जातियों के साथ भी एक ऐसी सुलह की थी जिसमें उन्होंने न केवल आक्रामक गैर-मुस्लिम जातियों से लड़ने के लिए उन्हें वचन दिया था, बल्कि यह कहा था कि हम तीनों उन मुस्लिम लोगों से भी लड़ कर अपनी रक्षा करेंगे जो हमपर आक्रमण करेंगे। इससे अधिक यह सिद्ध करने के लिए कि पैन-इस्लामिजम् हिन्दू-मुस्लिम-एकता के खिलाफ नहीं है, और क्या प्रमाण दिया जा सकता है?

इस 'इस्लाम-बंधुत्व' के सच्चे महत्त्व और आवश्यकता को हमारे हिन्दूभाई उस हालत में और भी अधिक अच्छी तरह समझ सकते जब भारत के बाहर उनके धर्म-बंधु किसी गैर-हिन्दू कौम द्वारा इसी तरह सताये जाते।

अभी मुसल्मान लोग स्वराज्य की ओर अधिक ध्यान और समय नहीं दे रहे हैं इसका कारण स्वराज्य के लिए उनकी लापरवाही नहीं, बल्कि उनकी अपर्याप्त शिक्षा और दो समान महत्त्व रखनेवाली हलचलों में उनके ध्यान का बंट जाना है।

'पैन इस्लामिजम्' पर जो कुछ मैं ऊपर लिख चुका हूं इससे आशा करता हूं कि अब हिन्दू और मुसल्मान भाई भारत की मौजूदा राजनैतिक परिस्थिति को अधिक अच्छी तरह समझने की कोशिश करेंगे। और दोनों यह अनुभव करने की कोशिश करेंगे। कि चूंकि भारत एशिया का ही एक अंग है, बगैर चीनी और मुसल्मान देशों को स्वतंत्रता की प्राप्ति हुए भारत को स्वराज्य मिलना कठिन है। इसलिए एक ओर हिन्दुओं का यह कर्तव्य है कि वे एशिया के दूसरे राष्ट्रों को भी स्वतंत्रता की प्राप्ति में सहायक हों और मुसल्मानों को यह भली भांति समझ लेना चाहिए कि जबतक भारत की भिन्न भिन्न जातियां स्वराज्य की प्राप्ति के लिए खड़ी नहीं होती तबतक एशिया के दूसरे मुसल्मान राष्ट्र पूरी तरह सुख से नहीं रह सकते।

अगर मुसल्मानों की यह दिली इच्छा हो कि अफगानिस्तान, ईरान, मध्य एशिया और तुर्किस्तान सभी स्वतंत्रता का आस्वादन करें तो उन्हें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि यह तबतक असंभव है जबतक कि भारत भी स्वराज्य प्राप्त नहीं कर लेता और जबतक कि मुस्लिम राष्ट्रों को जीतने और सताने के लिए भारत के धन-जन-बल का दुरुपयोग किया जा रहा है।

मुसल्मानों को यह भी समझ लेना चाहिए कि भारतीय स्वराज्य का केवल एक ही अर्थ हो सकता है और वह यह कि भारत की शासन-व्यवस्था भारत में रहनेवाली तमाम जातियों के सम्मिलित सहयोग से की जाय। मुझे विश्वास है कि मेरे मुसल्मान भाई इस महत्वपूर्ण और नाजुक बात की ओर पूरा ध्यान देंगे और उनकी राष्ट्रीय जागृति उन्हें अपने अंतिम ध्येय की प्राप्ति में लगाने के लिए उसी तरह सहायक होगी, जिस तरह वे खिलाफत के लिए लड़ रहे हैं"।

जांच-समिति की रिपोर्ट

सविनय-भंग-जांच-समिति के सदस्य रिपोर्ट के विषय में अपनी अपनी सम्मति दे चुके। रिपोर्ट ५ नवम्बर तक महासमिति के सदस्यों के पास पहुंच जाने की सम्भावना है। १० नवम्बर के बजाय महासमिति की बैठक की तारीख २० नवम्बर रखने पर विचार हो रहा है। रिपोर्ट पर सब की आँखें लगी हुई हैं। पर उससे भी अधिक ध्यान हमारा अपने कर्तव्य-पालन की ओर लगना चाहिए। राष्ट्र के भाग्य का फैसला तो हमारी कार्य-शक्ति, दृढ़ निश्चय और आत्मोत्सर्ग के बल पर ही होगा।

भाई देवदास

भाई देवदास जब जेर तजवीज कैदी थे तब उन्होंने एक बाम्बे क्रानिकल के सहायक संपादक को जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट के बिनाही हस्ताक्षर कराये भेज दिया था। इस पर रुष्ट हो सरकार ने अब किसीसे मिलने और पत्र लिखने का हक उनसे छीन लिया है, जिसके कारण अब भाई देवदास न तो किसीसे मिल सकेंगे और न किसीको पत्र ही भेज सकेंगे। भाई देवदास का पूर्वोक्त हालत में पत्र भेजना ताजीरात हिन्द के अनुसार तो कोई जुर्म नहीं है। पर यदि वह जेल के कानूनों के अनुसार जुर्म माना भी जाय तो हमें यह कहना होगा कि इस अपराध के लिए उन्हें जो सजा दी गई है वह बहुत कड़ी है। इससे तो सरकार की असहयोगियों को जरा भी मौका मिलने पर किसी तरह दबाने की प्रवृत्ति ही जाहिर होती है। अगर सरकार इससे यह आशा करती हो कि असहयोगी इस अनुचित दबाव के कारण घबड़ा कर उसकी शरण जायंगे तो उसे निराश होना पड़ेगा। असहयोगी अपने आत्मतेज की रक्षा करना भली भांति जानते हैं।

नवीन आहुतियां

स्वराज्य-यज्ञ में प्रतिदिन नवीन आहुतियां गिर ही रही हैं। स्वामी विश्वानन्द, श्री लक्ष्मीनारायण की गिरफ्तारी के समाचार आये हैं। इधर काशी के डाक्टर अब्दुल करीम और सिन्ध के स्वामी कृष्णानन्द को दुबारा स्वराज्य-साधना का निमन्त्रण मिला है। नामधारी सिक्ख सम्प्रदाय के सरदार निधानसिंह भी पकड़े गये हैं। यह अकालियों और नामधारियों को एक सूत्र में बांध देने वाली घटना मानी जाती है। तप और त्याग का फल हमेशा अच्छा ही होता है। हमारे स्वराज्य-अनुष्ठान की सिद्धि तो इसके द्वारा पग पग पर सुनिश्चित होती जा रही है। बस, एक ओर तो हम अहिंसक रहें और दूसरी ओर निर्भय। फिर अस्प्रश्य काल भी हमारे सामने सिर झुकाये बिना न रहेगा।

आन्ध्र में खादी-प्रचार

आन्ध्र में खादी-प्रचार बड़े जोर के साथ हो रहा है। वहां केवल कांग्रेस की ओर से ही उसके प्रचार के लिए काम नहीं किया जा रहा है बल्कि खुद वहां की जनता ही उस काम को बड़ी दिलचस्पी के साथ कर रही है। अभी अखिल भारतवर्षीय खादी विभाग की ओर से उस प्रान्त की जांच करने के लिए एक निरीक्षक गये थे। उनके सिफारिश करने पर १,५०,०००) खादी-प्रचार के लिए कांग्रेस ने उस प्रान्त में देना मंजूर किया है। पंजाब को छोड़कर आन्ध्र खादी के काम में प्रायः सब प्रान्तों से आगे है।

(शेष पृष्ठ ८८ पर)

हिन्दी नवजीवन

रविवार, कार्तिक सुदी २, सं. १९७९

खिलाफत की विजय

योरप की राष्ट्र-शक्तियों के सामंजस्य में भीषण संक्षोभ हुआ, जिसे संसार ने योरपीय महाभारत के नाम से पहचाना। उसके काल-कूट ने प्रायः सारे संसार को त्राहि त्राहि कर छोड़ा और तुर्किस्तान को तो लंगड़ा और लूला बना डाला—खिलाफत के टुकड़े कर डाले! इसके प्रतिघात की लहरें सारे मुस्लिम संसार में फैलीं। भारत के मुसलमानों ने अपनी आवाज बुलन्द की। हिन्दुओं ने उनके कन्धे से कन्धा भिड़ा कर अपना भाईचारा सिद्ध किया। दो बिछुड़े हृदय मिले। भारत का इतिहास बदलने लगा। एक ही कंठ से 'अल्लाहो अकबर' और 'वंदे मातरम्' की ध्वनियां निकलने लगीं। महात्मा गांधी और अलीभाइयों के नेतृत्व में खिलाफत का झंडा खड़ा हुआ। तुर्कों के लिए अनुकूल परिस्थिति तैयार हुई। गाजी मुस्तफा कमाल पाशा आगे बढ़े। सत्य और न्याय के नाम पर उन्होंने लड़ाई का बिगुल बजाया। फतेह दौड़ती हुई उनके पास आई। यूनानियों को स्मर्ना छोड़ देना पड़ा! मुदानिया परिषद् ने थ्रेस भी तुर्कों के हवाले कर दिया। वहां कुस्तुन्तुनिया और एड्रियानोपल भी तुर्कों को सौंप देने का मंगलाचरण हुआ है। शायद नवंबर में स्मर्ना में शान्ति परिषद् होगी। और उसमें मित्रराष्ट्र खिलाफत के अत्याचारों का बहुत-कुछ प्रायश्चित्त कर लेंगे।

इस विजय पर मुस्तफा कमाल पाशा, हिन्दुस्तान के मुसलमान और हिन्दू सब बधाई के पात्र हैं। हिन्दुस्तान को इस बात का कम अभिमान नहीं हो सकता कि उसने सत्य और न्याय की रक्षा के लिए प्राण-पण से खिलाफत का साथ दिया। खिलाफत की विजय पूर्व की पश्चिम पर विजय है, एशिया की योरप पर विजय है। योरप का आसुरी साम्राज्य साधु एशिया को निगलना चाहता था। ब्रिटिश-सिंह खिलाफत-नन्दिनी के पीछे पड़ा था। कमाल पाशा ने उसे सिंह के जबड़े से छुड़ाया। धार्मिक दृष्टि से इस्लाम-धर्म की इज्जत बची। राजनैतिक दृष्टि से एशिया के पांवों में बल आया। भारत ने खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य में से एक बड़े किले को सर कर लिया। हिन्दू-मुसल्मानों का परस्पर विश्वास और मेल पक्का हो गया। पंजाब और स्वराज्य के मुकाबले में खिलाफत की समस्या ही अधिक टेढ़ी और जटिल थी। उसके बहुत-कुछ हल हो जाने पर बाकी दो प्रश्नों का मार्ग भी स्वभावतः साफ हो जायगा। खिलाफत की विजय स्वराज्य का अरुणोदय है।

आगे-पीछे खिलाफत की जीत निश्चित थी। जीत हमेशा उसीकी होती है जिसके पक्ष में सत्य हो, न्याय हो, संयम हो, नीति-बल हो। रामायण और महाभारत-काल का युद्ध-शास्त्र अथवा आधुनिक हिन्दू-काल और मुसल्मान-काल का भी युद्ध-शास्त्र वर्तमान पश्चिमी युद्ध-नीति से श्रेष्ठ इसीलिए माना जाता है कि उसमें संयम और नीति की प्रधानता थी। और हम देखते हैं कि प्रायः हरएक युद्ध में विजय उसी पक्ष की हुई है जिसकी ओर से हिंसाकाण्ड और अत्याचार कम हुआ है और नीति, संयम, सत्य, का अवलम्बन अधिक। युद्ध में आज भी एक पक्ष दूसरे पक्ष की ओर से अधिक अत्याचार और अनौचित्य होने की बातों को फैलाने और सिद्ध करने का जो प्रयत्न करता है उसका रहस्य यही है कि जनता हमेशा उसीका साथ देती है, उसकी दिली हमदर्दी हमेशा उसीके साथ होती है जिसके पक्ष में न्याय, नीति, सत्य और संयम अधिक हो। कमाल पाशा की विजय के मूल में यही बात है। खिलाफत के पक्ष में सत्य और न्याय था, यह तो दीपक की तरह स्पष्ट है। इससे फ्रान्स और इटली पहले ही से उसके साथ हमदर्दी रखते थे। यूनानियों के साथ लड़ाई में तथा उसके बाद अबतक कमालपाशा के व्यवहार में अधिक नीति और संयम के कारण रूस और खास इंग्लैंड का श्रमजीवी दल भी उनके साथ हो गया। उसने घोषणा कर दी कि यदि इंग्लैंड तुर्कों से लड़ेगा तो हम हड़ताल कर देंगे। उन्होंने लाइड जार्ज को अपने पद से हट जाने का भी जोर दिया और अब सुना है कि मन्त्रि-मण्डल का नया चुनाव होने वाला है। आस्ट्रेलिया और कैनेडा ने भी धन-जन देने से किनारा कशी कर ली। भारत से अब इंग्लैंड को कोई आशा ही नहीं हो सकती थी। फल यह हुआ कि इंग्लैंड लाइड जार्ज की बेवकूफी से दुनिया में बदनाम भी हुआ, यह सिद्ध हो गया कि सब लोग खिलाफत के साथ न्याय करना चाहते हैं, सिर्फ इंग्लैंड ही रास्ते में कांटे बखेर रहा है, और हाथ कुछ न आया। अतएव खिलाफत की विजय सत्य, न्याय, नीति और संयम की विजय है।

इस विजय से भारत के मुसल्मानों में और इसीलिए हिन्दुओं में भी कृतार्थता के भावों का पैदा होना स्वाभाविक है। कृतार्थता-जात सुख बड़ा मधुर और शान्त होता है। उसके स्वाद से कभी कभी आत्म-विस्मृति भी हो जाती है। अतएव हम इस विजय-हर्ष के अवसर पर भारत को सचेत कर देना चाहते हैं कि वह अपनी स्थिति को न भूले। स्मर्ना, थ्रेस, कुस्तुन्तुनिया और एड्रियानोपल तुर्कों के हवाले हो जाने पर भी जजीरतुल अरब का सवाल बाकी ही रहेगा। वह प्रान्त जबतक तुर्कों की अधीनता में नहीं आता तबतक खिलाफत की विजय पूरी नहीं कही जा सकती। जजीरतुल अरब का निपटारा अभी भविष्य के गर्भ में है और समय ही उसका रास्ता साफ करेगा। जबतक मुसल्मानों के तीर्थ-स्थान गैर-मुस्लिम कौम के तावे हैं तबतक क्या तुर्क और क्या हिन्दू-मुसल्मान सुख की नींद हरगिज नहीं सो सकते। हमें यह न भूल जाना चाहिए कि अभी हमारे देश के लिए खतरे के तमाम बायस दूर नहीं हुए हैं। बेशक तुर्कों ने यूनान पर फतेह पा ली है; पर अभी बिरतानिया ने तुर्कों के खिलाफ अपनी तलवार म्यान से बाहर नहीं निकाली है। समय के फेर से आज वह दब जरूर गया है; पर जजीरतुल अरब के मामले में खुद उसीसे मुठभेड़ है। यदि आज हम ठंडे पड़ गये, अपनेको कृतार्थ मान कर आराम करने लगे, तो आगे आस्मान क्या क्या रंग लावेगा, नहीं कह सकते। फिर खिलाफत के अलावा अभी दो किले और बाकी हैं। पंजाब के पापों का प्रायश्चित्त जबतक नहीं हो जाता तबतक भारत के हिन्दू-मुसल्मान दम नहीं ले सकते। जबतक भारत में स्वराज्य नहीं स्थापित हो जाता तबतक भारत के हिन्दू-मुसल्मान कहीं के नहीं हैं। खिलाफत की विजय से भारत के मुसल्मानों को धार्मिक सन्तोष हो सकता है; पर राजनैतिक गुलामी तो ज्यों की त्यों मौजूद है। जबतक भारत की सरकार का कानून हिन्दू और मुसल्मानों के मजहबों को ठोकर मारता है तबतक हमें धार्मिक सन्तोष भी कैसे नसीब हो सकता है? मतलब यह कि भारत की राष्ट्रीय दृष्टि से कमाल पाशा की विजय भारतीय आकांक्षाओं के एक महत्वपूर्ण अंश की विजय है। यह विजयोत्सव भारत के भावी पूर्ण विजयोत्सव का मंगलाचरण है। यह विजयोत्सव कृतार्थता

आज दुःख, शान्ति और सन्तोष के बदले हमारे हृदयों में भावी विजय के लिए, अपूर्व उत्साह, अपरिमित कार्य-शक्ति, अदम्य आशा का संचार करे और हमें अधिकाधिक शान्त बलिदान के लिए तैयार करे !

हरिभाऊ उपाध्याय

यरवडा का सन्देश

हमारे धर्मयुद्ध की सफलता किस बात पर अवलम्बित है? राष्ट्र के कार्यकर्ताओं के कार्य पर, न कि उनके विचारों और बातों पर। हमारे विचारों और निषेधात्मक प्रस्तावों से कुछ होना जाना नहीं। सच्चा असर तो हमारे कार्य ही से होगा। और भारत के उत्थान के लिए उठाये गये पिछले आन्दोलनों की अपेक्षा महात्माजी के इस आन्दोलन में जो विशेषता है वह यही है। राष्ट्र का भला चाहने वाले और उसकी उन्नति के लिए प्रयत्न करनेवाले प्रत्येक मनुष्य को अपने दिल से यही सवाल पूछना चाहिए कि "मैं क्या कर रहा हूं?" इस सवाल का यदि संतोषजनक उत्तर मिले तो कहा जा सकता है कि वह सचमुच कुछ कार्य कर रहा है अन्यथा यह कहना अनुचित न होगा कि वह केवल अपना समय नष्ट कर रहा है। सरकार का केवल विरोध करना भला कोई कार्यक्रम कहा जा सकता है? हम उसे चाहे किसी रूप में क्यों न रक्खें उससे जरा भी लाभदायक काम नहीं हो सकता। विरोध तो केवल गति-विरोध है। जिस शासनचक्र को हमें स्वराज्य-स्थापना द्वारा सुधारना या नष्ट करना है उसके लिए तो यह एक आवश्यक वस्तु है। बगैर मार्ग गति-विरोध और ब्रेक के कोई भी गाड़ी नहीं चल सकती। बगैर लगाम और खुर के घोड़ा भी अपने सवार और इक्के को नहीं खींच ले जा सकता। इस प्रकार के गतिविरोधात्मक साधन तो उलटा गाड़ी के ठीक चलने में सहायक होते हैं। इस प्रकार का विरोध तो वही काम देता है जो चीर-फाड़ शल्य-विद्या में और जमीन का बखराना खेती में देता है।

हमारी ध्येय-सिद्धि के लिए असहयोग जैसा सरल, सुरक्षित और रामबाण दूसरा कार्यक्रम नहीं है, न हमारे खयाल में दूसरा आ ही सकता है। पर अभी देश ने कार्यक्रम के लिए अथवा कार्यक्रम ने देश के लिए अपनेको उचित रीति से तैयार नहीं किया। अभी तो हम अस्थिर ही हैं। कभी तो देश की स्थिति के बहुत आगे निकल जाते हैं और कभी अनावश्यक बातों में ही अपनी समस्त शक्ति लगा देते हैं। पर दो बातों के विषय में सन्देह नहीं हो सकता। एक तो यह कि असहयोग ही हमारा एकमात्र शस्त्र है। सवाल सिर्फ यही है कि अंतिम सफलता के लिए उसे किस रूप में काम में लाना चाहिए। और दूसरी यह कि हमारी विजय सुनिश्चित है। इस गुलामी का नाश करके हम पूरी तरह स्वतंत्र हो सकेंगे। हां, यह हो सकता है कि यह भी हमारी कार्यशीलता के अनुसार धीरे या देर से हो। असहयोग को पीस डालने के लिए सरकार जिन प्रयत्नों का अवलंबन करेगी उन सबमें उसकी असफलता निश्चित है। उसी प्रकार अधिक आसान मार्गों के अवलंबन के लिए हम अगर पीछे पैर हटाने का प्रयत्न करेंगे तो हमारी भी निराशा निश्चित है। बालक जब अपने पैरों के बल पर चलने लग जाता है तब वह सहसा गिर नहीं सकता। इसी प्रकार जब राष्ट्र भी अपने निश्चित ध्येय को पहुंचने का प्रण कर लेता है तब उसका भी शासक सरकार से सहयोग करने के लिए पीछे हटना आसान नहीं है।

महात्माजी का माहात्म्य भी उनके मूलभूत सत्य सिद्धान्तों को भलीभांति पहचानने में, एक बार किसी बात का निश्चय हो जाने पर उसके अनुसार निर्भयता-पूर्वक आचरण करने में और वैयक्तिक महत्वाकांक्षा और स्वार्थपरायणता से असंपृक्त रहने के कारण उससे उत्पन्न होनेवाली भूलों से भी परे रहने में है। नीच स्वार्थ-साधना की पूर्ति के लिए जब अधिकार-लोलुपता और कीर्ति-लालसा मनुष्य को आ घेरती है तब बड़े से बड़े पुरुषों की बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है, वे देश के भयंकर शत्रु हो जाते हैं और नेतृत्व के अयोग्य हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त अकर्मण्यता और भय ये दो ऐसी वस्तुयें हैं जो मनुष्य को अपनी अंतरात्मा के निर्णय के अनुसार कार्य करने में और कभी कभी तो उस निर्णय तक पहुंचने में भी असमर्थ कर डालती हैं। अगर महात्माजी दूसरे नेता और महापुरुषों के वर्ग से बिलकुल भिन्न वर्ग के माने जाते हैं तो यह उनके इन दो प्रकार के पापों से दूर रहने ही के कारण। इस संसार में मनुष्य में निस्पृहता और निर्भयता का जितना विकास हो सकता है उतना महात्माजी के व्यक्तित्व में हो गया है। और इसीके कारण महात्माजी अन्य सब मनुष्यों की अपेक्षा वस्तुओं को अधिक स्पष्ट और सत्य रूप में देख सकते हैं और असाधारण दृढ निश्चय के साथ अपने राष्ट्र ध्येयों की प्राप्ति में प्रयत्नशील हो जाते हैं। तीस करोड़ आबाल-वृद्ध सुशिक्षित और अशिक्षित भारत-वासियों के हृदय में उनके लिए जो अतीव उच्च स्थान है उसका रहस्य भी इसीमें है। इस बात में नहीं कि वे कोई ईश्वरी अवतार हैं, जैसा कि बहुत से भोले-भाले लोग अज्ञानवश समझते हैं।

दैवी शक्ति तो आत्मा की शुद्धि में है। और यही नीचे से नीचे नर को नारायण बना सकती है।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि लोग अभी तक स्फूर्ति और नेतृत्व के लिए यरवडा जेल की ओर प्यासी आंखों से देखते हैं। हमारा मार्ग सन्देह की झाड़ियों से अंधेरा है और कठिनाइयों से कंटकाकीर्ण है। उसको तय करने के बहुत से उपाय और तरीके बताये जाते हैं। पर जनता का उनपर विश्वास नहीं बैठता। उसका विश्वास तो केवल उन जेल की दिवारों की ओट में बैठे हुए एक आदमी के शब्दों ही पर है। पर हमें इस बात का जरूर विश्वास रखना चाहिए कि यदि उस विश्राम-स्थान में विचार करते हुए, उन्हें कहीं यह दिखाई दे कि उन्होंने जो आन्दोलन शुरू किया है उसके छेड़ने का कोई ऐसा कारण न था तब तो वे बदनामी के भय की जरा भी परवा न करेंगे और स्पष्टतया अपनी भूल को कबूल करके उसका पश्चाताप कर सकते हैं। और उन्हें यदि मालूम हो कि इस आन्दोलन को इस समय स्थगित करना चाहिए तो वे सरकार के द्वारा एसा एक घोषणा-पत्र प्रकट कर राष्ट्र को युद्ध स्थगित करने की सिफारिश कर सकते हैं। उन्हें न तो संकोच न और कोई मिथ्या कल्पना ऐसा करने से रोक सकती है। सरकार भी परिस्थिति को सुधारने के लिए खुशी से उसे प्रकाशित कर देगी। इसलिए अभी तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं हो सकता कि महात्माजी यही चाहते हैं कि हमारा धर्म-युद्ध उसी प्रकार शुरू रक्खा जाय। और परमात्मा की कृपा से हम भी पीछे नहीं हट सकते; क्योंकि अब विजय निकट है। प्रतिपक्षी का नैतिक बल भी अब बेतरह जर्जर हो गया है। अब तो केवल निश्चयात्मक प्रयत्न की देर है कि विजय आकर हमारे गले में जय-माल डाल देगी।

(यंग इंडिया) च. राजगोपालाचारी

विशेषांक

प्रयाग के 'स्वराज' ने 'असहयोग-अंक' और कानपुर के 'वर्तमान' ने 'विजय-अंक' महात्माजी के जन्म-दिन के अवसर पर प्रकाशित किये हैं। आगरा के 'आर्यमित्र' ने स्वामी श्री दयानन्दजी के श्राद्ध के निमित्त 'ऋष्यंक' प्रकाशित किया है। वर्तमान में चित्रों की संख्या अधिक है। लेखों की श्रेष्ठता और मधुरता की दृष्टि से ऋष्यंक तीनों से बढ़ कर है।

स्वतंत्रता का अपमान

सुख चाहता तो है हरएक मनुष्य, पर विरले ही आदमी सुखी होते हैं। इसीप्रकार स्वतंत्रता को भी चाहता तो है हरएक आदमी तथापि संसार में सच्ची स्वतंत्रता का वास विरले ही स्थानों में होता है। यह क्यों? इसका कारण यही कि स्वार्थी मनुष्य दूसरे का सुख छीन लेते हैं, दूसरे की स्वतंत्रता को हरना चाहते हैं। हां, यह बात हरएक आदमी के अधीन नहीं कि वह स्वतंत्र हो। पर कम से कम यह तो हरएक आदमी के हाथ की बात है कि वह दूसरे की स्वतंत्रता तो न छीन ले।

बहुत से लोग अपनेको स्वतंत्रता का उपासक कहते हैं। पर जो उसका सच्चा उपासक होता है वह तो यही चाहता है कि उस देवी का राज्य सर्वत्र रहे। जैसे अपने घर वैसे ही अपने पडोसी के घर भी, और जैसे अपने पडोसी के घर वैसे ही और किसी दूसरे के घर भी। जो आदमी यह इच्छा करता है कि मेरा मित्र तो स्वतंत्र रहे और शत्रु परतंत्र, तो वह उस देवी का सच्चा उपासक नहीं कहा जा सकता। वह तो स्वतंत्रता को अपने राग-द्वेष दासी बनाना चाहता है।

एक कवि का कहना है—

"मुझे स्वतंत्रता प्रिय है। संसार में एक भी ऐसी वस्तु नहीं जिसके लिए आदमी को अपनी स्वतंत्रता छोडनी चाहिए। तथापि मैं यह मानता हूं कि दूसरे को गुलाम करके रखने की अपेक्षा यह हजार गुना अच्छा है के मैं खुद ही गुलाम हो कर रहूं। दूसरे के पैरों में बेडियों का बंधन डालने की अपेक्षा मुझे यह अधिक पसंद है कि मैं स्वयं ही उस बंधन को सहन करूं"।

स्वतंत्रता की उपासना इसे कहते हैं। भारत जब स्वतंत्रता की उपासना इस तरह करने लगेगा तब उसे संसार का कोई भी जालिम गुलामी में न रख सकेगा। इस मोक्षभूमि में हमने बहुत से लोगों को बंधन में डाल रक्खा है। समझदारी का स्वांग बना कर हमने स्त्रियों को अज्ञान और आश्रित बना रक्खा है। धर्म के नाम पर हमने अनेक जातियों का स्वातंत्र्य मर्यादित कर डाला है। शुद्धि-अशुद्धि के बहाने अंत्यजों को सामाजिक पुरुषार्थ के लाभ से वंचित कर रक्खा है। हमारे हाथ में धन-बल है, इसलिए हम मानते हैं कि दिन में बारह घंटे मजदूरी करनेवाले मजदूर सिर्फ दो रोटी के ही मालिक होते हैं। हरएक परिस्थिति का अनुचित लाभ उठा कर हम दूसरे को अपना आश्रित बनाना चाहते हैं।

जिसके घर में जितने अधिक आश्रित वह उतना ही बडा सेठ या मालिक माना जाता है। पर थोडे ही विचार से हम यह जान जायेंगे कि जिसने सेवकों पर अपना आश्रय रक्खा है, जो दूसरे की सेवा पर अपना आधार रखता है वही सबसे बडा आश्रित है। भारत आज आश्रितों का राष्ट्र बन गया है।

अगर हमारे हृदय में सचमुच ही स्वतंत्रता के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया है तो हमें यह देखना चाहिए कि हम किस किस पर जुल्म कर रहे हैं। यही आत्मशुद्धि है। अगर हम किसीको अपना आश्रित न बना रक्खें तो हमें किसीका आश्रित बनकर रहने की दुर्दशा में भी न रहना पडे। आदमी जब धन इकट्ठा करता है। पैसे में अनेक लोगों को आश्रित बना रखने की शक्ति होती है। किसीके पास धन का संग्रह देखकर ही लोग उसका आश्रित बनकर रहने का अभ्यास करते हैं। और कहते हैं, हमें स्वातंत्र्य चाहिए।

यहां पर कितने ही लोग पूछते हैं "तो क्या संसार में किसीको किसीका काम ही न करना चाहिए? संसार में सेठ और मजदूर ये तो वर्ग तो हर हालत में रहेंगे ही। उनको आप कैसे हटा सकते हैं?" बात तो ठीक है। जब एक काश्तकार दूसरे काश्तकार की मदद करने के लिए आता है तब कौन किसका नौकर? हम वकील और डाक्टर की सहायता लेते हैं। इसमें कोई किसीका आश्रित हुआ? जहां प्रेम और आदर है वहीं सेवा का विनिमय हो सकता है। यही संबंध प्रत्येक जाति और राष्ट्र के बीच होना चाहिए।

पर लोग ऐसी स्वतंत्रता नहीं चाहते। उन्हें तो स्वतंत्रता के नाम पर अधिकार-सत्ता चाहिए। दूसरे का सुख और स्वतंत्रता छीनने का अधिकार चाहिए। और इसीलिए वे उन्मत्त हो कर कहते हैं "हमें तो राजनैतिक स्वातंत्र्य चाहिए। क्या आप हमें धर्मनिष्ठ बनाते जा रहे हैं? क्या आप हमें सज्जन-साधु बनाते हैं? हमने आपके साथ यह इकरार नहीं किया था। हम तो जैसे हैं वैसे ही रहना चाहते हैं। हां, मरने-मारने के लिए यदि कहें तो वह हम समझ सकते हैं। स्वतंत्रता के लिए हम वह तो कर सकते हैं। पर यदि निष्पाप बनने के लिए कहें तो यह हम से न हो सकेगा।" बेचारी स्वतंत्रता, आंखें बंद कर के धीरे से कहती है—"पर पवित्रता का नाम ही स्वतंत्रता है। पवित्रता की हंसी उडा कर तुमलोग मेरा ही अपमान कर रहे हो।"

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

मेरा भ्रमण-सप्ताह

सच्चा मनोरथ

कोई सवा साल तक वही काम उसी रूप में करते करते जी मचल रहा था कि कुछ दिनों के लिए कहीं उड जाऊं। इरादा कर रहा था कि 'जयन्ति-अंक' निकल जाने पर कहीं चल दूं। दुनिया में अक्सर यह अनुभव होता है कि जब कभी हमने किसी बात को सच्चे हृदय से, निर्दोष भाव से चाहा है, उसके लिए हमारा हृदय व्याकुल रहा है तभी हमारा मनोरथ सफल हुआ है। हमारा भाव जितना ही दूषित होगा, हमारी धुन जितनी ही कच्ची होगी उतनी ही देर उसकी सफलता में लगेगी। इसपर कोई यह कह सकता है कि क्या महात्मा गांधी और भारत के दूसरे देश-भक्तों का संकल्प पवित्र नहीं है, दृढ नहीं है? फिर उन्हें भारत के उद्धार में अभीतक यथेष्ट सफलता क्यों नहीं मिल रही है? पर ऐसी शंका करनेवाले यह भूल जाते हैं कि प्रत्येक संकल्प को अपने विरोधी संकल्प से लडना भी पडता है। आज महात्माजी और [illegible] आत्मीय देश-भक्तों की संकल्प-शक्ति के सामने 'दुनिया के कठोर से कठोर निश्चय और मजबूत से मजबूत हड्डियों वाले' साम्राज्य की संकल्प-शक्ति अपने नग्न रूप में खडी है। उसको पराजित कर चुकने के बाद ही सफलता का मुकुट उनके सिर को विभूषित कर सकता है।

रमणी-हृद

'जयन्ति-अंक' निकल चुका। मैं कहीं जाने की उधेड-बुन में ही था कि संदेश मिला पू० बा के साथ अजमेर जाना होगा। मैंने पता पाया। दूसरे दिन सबेरे हम लोग अजमेर जा पहुंचे। पू० बा का जलूस निकला। जलूस देखने के लिए घरों, खिडकियों, छतों पर स्त्री-पुरुषों की खूब भीड थी। 'जयजयकार' कानों को बीमार कर देता था। बीच बीच में घूंघट के नीचे छिपे मुहों से 'महात्माजी कहां हैं?' यह प्रेम और भक्ति-भरा प्रश्न सुन कर मेरे हृदय में तरह तरह के तर्क उठा करते। कभी यह खयाल आता कि यदि भारत की देवियों के हृदय में महात्माजी के [illegible] ने सचमुच स्थान पा लिया है तो भारत का निकट भाग्योदय निश्चित है। फिर यह विचार आता कि यदि महात्माजी इनके हृदयों में विराजमान् हैं तो फिर

है। मशीन सरीखी विदेशी मूर्तियां आजतक बदन पर बैठी रह गयी हैं ? क्या इन मूर्तियों के भाव की तरह इनके हृदय का भी रंग अभी कच्चा तो नहीं है ? रमणी-हृदय कोमल भावनाओं का लहराता हुआ समुद्र है। उसमें जब तक स्वदेशी-धर्म की लहरें नहीं हिलोरें नहीं मारतीं तबतक वह ऊजड़ भूमि की तरह सौन्दर्यहीन है। हृदय की सुन्दरता के बिना रूप की सुन्दरता फीकी है। हृदय की सुन्दरता तो स्वदेशी के, स्वधर्म के पालन से ही प्राप्त हो सकती है।

ख्वाजा सा० की आँखें

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के पास अकस ठहरा। विशाल दरगाह के एक भव्य मकबरे में ख्वाजा साहब का मृत शरीर कयामत की निद्रा में सो रहा है। चांदी और सोने के अमूल्य वैभव ने चाहे उनकी आत्मा के नजदीक इजाजत न पाई हो पर उनके मृत देह की शय्या तो बेशकी मालूम भक्तों के इस प्रेम-भाव को प्रकट कर रही थी। मुझे भास हुआ कि ख्वाजा साहब की पवित्र आंखें मुसलमानों के हृदय में घुस रही हैं। किसी पिपासु की तरह वे वहां खिलाफत के पागल प्रेम को खोज रही हैं। मैं अजमेर के मुसलमान भाइयों से पूछना चाहता हूं कि क्या उनकी प्यास बुझ रही है ? जबतक वे अपने मजहब के लिए, जिस पवित्र मुल्क में ख्वाजा साहब ने सदा के लिए आराम करना मंजूर किया उसके लिए, तन, मन, धन न्यौछावर करने को तैयार नहीं होते तबतक क्या उनकी प्यास शान्त हो सकती है ? जबतक वे उनके बदन पर शुद्ध सफेद खादी, जो पवित्रता और धार्मिकता का चिन्ह है, नहीं देखतीं तबतक क्या उनकी तृप्ति हो सकती है ?

परिषद् पर एक दृष्टि

सभा-समाजों के लिए अजमेर की आबोहवा रात के वक्त मुआफिक होती है। तीनों दिन परिषद् का अधिवेशन रात को कोई १२ बजे तक हुआ। प्रायः प्रत्येक काम में सादगी, कमखर्ची और मिहनत दिखाई देती थी। कार्य्यकर्ताओं में सेठीजी, स्वामीजी, मौ० मोहियुद्दीन, 'शाद' साहब, मास्टर कर्म्मवीरजी नजर आते थे। सेठीजी का तो मानों सारा परिवार ही देश-सेवा के लिए पागल हो रहा था। बाहरी वक्ताओं में नागपुर असहयोग-आश्रम के महात्मा भगवानदीनजी, पंजाब के तेजस्वी ब्राह्मण पं. नेकीरामजी और मेरठ के जेलयात्री मौलाना खुजन्दी मुख्य थे। भगवानदीनजी के भाषण तर्क-युक्ति-प्रधान प्रभावशाली, मौलाना खुजन्दी की गद्य-पद्य मय तकरीर उत्साहवर्द्धक और नेकीरामजी के व्याख्यान शिक्षा-उपदेश-प्रद हृदयस्पर्शी थे।

सेठीजी का भाषण कुछ लम्बा पर सजीव था। पिछला अंश मुझे कम आवश्यक भी मालूम हुआ। पू० बा का भाषण छोटा, सारगर्भित और भावमय था। पू० बा जब व्याख्यान-मंच की ओर बढ़ने लगीं तब, जैसा कि स्वामी नृसिंहदेवजी ने कहा था मुझे ऐसा मालूम होने लगा मानों दुःखी भारत-माता अजमेर-वासियों के फटे दिलों को जुड़ाने और उनके मुरझे मनों में नवजीवन डालने के लिए आशीर्वाद की वृष्टि करने जा रही हैं। भाई रामदास गांधी ने पू० बा का भाषण अपने दक्षिण आफ्रिकन उच्चारण में पढ़ कर सुनाया। जनता का उत्साह अपार था। कार्यकर्ताओं में नवजीवन था। यह शान्ति और जीवन का संयोग 'अजमेर' के लिए एक [illegible] के [illegible] का साधन हो।

खादी-कारखाना

अजमेर में महासभा-समिति की ओर से खादी का एक अच्छा कारखाना है। कोई १०-१२ छोटे और प्रायः इतने ही बड़े करघे वहां काम करते हैं। धुनकने से लेकर कपड़ा बुनने तक सब काम वहां होते हैं। खादी मजबूत और अच्छी होती है। सुन्दर सूती और ऊनी कालीन भी बनाये जाते हैं। दरियां, दुपट्टे, चौताये भी शुद्ध यानी हाथ के कते सूत के तैयार होते हुए। इसके प्रबन्धक और निरीक्षक महाशय उत्साही मालूम होते थे। उन्होंने यह आशा दिखाई है कि सत्याग्रहाश्रम से खादी का काम सीखकर जब उनके विद्यार्थी वहां आ जायंगे और बड़े पैमाने पर खादी निकलने लगेगी तब वह मिल की खादी के बराबर सस्ती पड़ा करेगी। अभी वहां जुलाहे लोग ही कपड़ा बुनते हैं और मजदूरी पर ज्यादातर सूत कताया जाता है। स्वदेशी का सच्चा महत्व उसकी धार्मिकता में है। अजमेरवासी स्त्री-पुरुष जबतक अपना धर्म समझ कर रोज थोड़ा-बहुत सूत न कातेंगे, अपने ही हाथ के सूत का कपड़ा पहनने का व्रत न धारण करेंगे तबतक सच्चे स्वदेशी-धर्म का पालन उनसे होना कठिन है।

'सेवा-संघ' और 'सेवक-मंडल'

अजमेर में 'राजस्थान सेवा-संघ' नाम की एक संस्था है। यह 'राजस्थानियों की मानसिक, शारीरिक, आर्थिक और राजनैतिक उन्नति के लिए प्रयत्न करने' के उद्देश से स्थापित की गई है। इसके प्रधान संचालक हैं श्रीयुत वी. एस. पथिक। पू० बापूर बा के साथ मैंने इस संस्था को देखा। इसके कार्यों और उद्योगों का हाल हिन्दी के प्रायः प्रत्येक अखबार में निकलता रहता है। इस संस्था का एक निजी पत्र भी है नवीन राजस्थान। अतएव इसके विषय में यहां अधिक विवरण की आवश्यकता नहीं।

"अखिल भारतवर्षीय राष्ट्र-परिषद् के निर्देश और नीति के अनुसार देश की सेवा करने और देशी रियासतों में शिक्षा-प्रचार एवं उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करने का उद्योग करने" के हेतु से 'राजस्थान-सेवक-मंडल' नाम की एक दूसरी संस्था हाल ही में श्री अर्जुनलालजी सेठी, कुंवर चांदकरण शारदा और स्वामी नृसिंहदेव सरस्वती ने खोली है। अभी उसके नियमोपनियम ही मैंने देखे हैं। उद्देश दोनों संस्थाओं के प्रायः मिलते-जुलते हैं। नियम और कार्य-विधि में भी कोई कहने लायक अन्तर नहीं दिखाई देता। अतएव एक ही शहर में, एक ही प्रान्त और क्षेत्र में काम करने के लिए समान उद्देशवाली दो संस्थाओं को देख कर हृदय में सहज ही ये प्रश्न उत्पन्न हुए—दोनों संस्थायें परस्पर सहयोगिनी हैं या प्रतिस्पर्द्धिनी ? यदि सहयोगिनी हैं तो एक दूसरी की शाखा-रूप होनी चाहिए—दोनों का संगठन और प्रबन्ध एक और एक ही सूत्र से होना चाहिए। पर अजमेर में रह कर जिस सामान्य स्थिति का तथा भिन्न भिन्न कार्यकर्ताओं की मनःस्थिति का अनुभव मैंने किया उसे देखते हुए यही शंका पुष्ट होती है कि ये प्रतिस्पर्द्धिनी हैं। तो अब प्रश्न यह होता है कि इस प्रतिस्पर्द्धा की आवश्यकता क्या है ? पथिकजी ने अपने संगठन और दृढ़ उद्योग के बल पर जो काम किया है उसे जनता भूल नहीं सकती। इधर सेठीजी ने देश के लिए जो बलिदान किया, कठोर कष्ट सहा, शारदाजी और स्वामीजी ने लेखों और व्याख्यानों आदि द्वारा जो सेवा की वह भी जनता के सामने है। अतएव चारों के सदुद्देश पर सन्देह करना मुझे तो पाप ही नजर आता है। जब कि उद्देश पवित्र है, एक है, तब कार्य-विधि-सम्बन्धी मत-भेदों में क्या समझौता नहीं हो सकता ? क्या इतने ही के लिए अलग अलग संस्थायें खोलने की और खोलने देने की आवश्यकता है ? यह उसी अवस्था का परिणाम हो सकता है जब दोनों पक्षों के लोग 'अति' की सीमा पर अड़े रहते हैं, अपनी भूलों को मानने, उनका प्रायश्चित करने से इन्कार करते और विपक्षी की विरोधक शक्ति को न्यून कल्पना करते हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि हमारा लक्ष्य तो एक ओर कोने में

पड़ा पड़ा तड़पा करता है और हम आपस में लड़ कर अपनी शक्ति बरबाद करते हैं, जनता में बुद्धि-भेद उत्पन्न होता है, और अन्त को उसका विश्वास दोनों पर से उठ जाता है। जब नेता और कार्यकर्ता ही अपनी कृतियों द्वारा उसके सामने कटूक्ति, वैमनस्य, छिद्रान्वेषण, क्षुद्रता और अहंकार का आदर्श उपस्थित करते हैं तब उनके आपस में हम सहयोग और संयोग की कैसे कर सकते हैं? भूल और बुराई किससे नहीं होती? ईश्वर को छोड़कर शायद ही कोई निर्गुण और निर्दोष हो। मेरी समझ में भूलें करना उतना बुरा नहीं है, बुरा है भूलों को न मानना और उनका सुधार न करना। अतएव मैं दोनों संस्थाओं के संचालकों से यही अनुरोध करूंगा कि वे "भूलने और क्षमा करने" की नीति का अनुसरण कर के परस्पर प्रेम के साथ एक ही संस्था की उन्नति में प्रयत्नशील हों, उसके दोषों को दूर कर के उसे लोकप्रिय बनाने में अग्रसर हों।

× ×

मत-भेद के साथ जब क्षुद्रता और केवल व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा का सम्मेलन होता है तभी वह मतविरोध और आगे चलकर द्वेष का रूप धारण करता है। ये दोनों दुर्गुण ऐसे छुपे छुपे हमारे दिल के अन्दर अपना प्रभाव जमाया करते हैं कि यदि हम पूरी सावधानी के साथ आत्मशुद्धि पर ध्यान न दें तो ये मकड़ी की तरह हमारे सारे हृदय-मन्दिर में अपना जाल बिछा देते हैं। और आगे चलकर इनकी परिणति यदि अहम्मन्यता में हो गई तो बस सर्वनाश ही समझिए। अतएव प्रत्येक देश-सेवेच्छु कार्यकर्ता को मैं चेतावनी देना चाहता हूं कि इन ठगों को आप भूल कर भी अपने हृदय में स्थान न दीजिए। आप तो समष्टि के चरणों में अपने आत्म-भाव को समर्पित कर दीजिए। उस समय आपकी आत्मा को जो शुद्ध बलवीर्य प्राप्त होगा उससे आप अपना, अपने देश का और सारी मनुष्य-जाति का कल्याण करने योग्य हो जायंगे। [शेष आगे]

हरिभाऊ उपाध्याय

वहांपर स्त्रियों की एक कांग्रेस-कमिटी भी है, जिसकी संचालिका से जमानत मांगी गई थी। भारत की महिलाओं में यह सौभाग्य सबसे पहले उसीको प्राप्त हुआ था। यह कांग्रेस-कमिटी आन्ध्र में खादी-प्रचार के लिए बड़ा प्रशंसनीय कार्य कर रही है। आन्ध्र में कपास तो पैदा होता है, परंतु उसका भाव बदलता रहता है जिससे चरखा कातनेवालों को जो थोड़ी तादाद में उसे खरीदते है, कपास महंगा पड़ता है। इसलिए कांग्रेस-कमिटी ने उन्हें यह सलाह दी कि वे घर घर ही कपास बोया करें। इसका प्रयोग पिछले साल ही किया गया और उसमें पूरी सफलता भी प्राप्त हुई। आन्ध्र में कताई का सवाल तो खड़ा ही नहीं होता। क्योंकि वहां तो यह कला अज्ञात काल से चली आई है और अभीतक लोग उसे भूले नहीं हैं। प्रायः हरएक घर में चरखा है और २५ नंबर तक का सूत लोग आसानी से कात सकते हैं। कई जिलों में तो ६०-७० नम्बर तक भी लोग कातते हैं। चरखे को प्रधानता देने में यहां जरा भी कठिनाई नहीं पड़ी। हां, हाथकते सूत के बुनने में जरूर कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। करघे तो हजारों की संख्या में चलते हैं; पर उनमें प्रायः मिल के सूत के कपड़े बुने जाते हैं। जुलाहे बहुत गरीब हैं। कई लोग उद्योग के अभाव में अपना पेशा छोड़ कर गिट्टी फोड़ने और दूसरे काम करने के लिए अपने घरबार छोड़कर चले गये हैं। उनको आवश्यक हाथ कता सूत देकर उसका बुना कपड़ा खरीदने की व्यवस्था यदि हो सके तो यह उद्योग यहां पर कल्पनातीत उन्नति पा सकता है। सूत और खादी की रंगाई और छपाई का काम भी यहां पर बड़ा सुंदर होता है। मछलीपट्टन इसके लिए खास तौर पर मशहूर है। अकाल-निवारण के लिए चरखा एक रामबाण दवा पाई गई है। सरकार के चलाये गिट्टी फोड़ने आदि दूसरे उद्योगों की अपेक्षा यह कहीं अधिक श्रेष्ठ है। लोग इसे बहुत अपना रहे हैं। खानगी तौर पर लोग यहां पर बहुत कार्य कर रहे हैं। तथापि और भी कार्यकर्ताओं की बहुत आवश्यकता है। इस प्रान्त में कार्य खूब है। अगर वह संगठन और व्यवस्थापूर्वक चलाया जाय तो खादी पैदा करने में यह सबसे आगे निकल सकता है। खादी-संगठन नाम की एक संस्था यहां खोली गई है। वह अब सबसे पहले कपास को प्रान्त के हर भाग में पहुंचावेगी वह उन लाखों चरखों को फिर से चलाना शुरू कर देगी जो अभी तक यों ही पड़ रहे थे। और जुलाहों को काफी हाथ कता सूत दे कर मिल के कते सूत का बुनना छुड़वा देगी। अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस-कमिटी की ओर से इस प्रान्त को अभी तक करीब ६०,०००) सहायता के रूप में मिले हैं। इसके अतिरिक्त उस प्रान्त की कांग्रेस-कमिटी ने खुद जो खर्च किया है, जिसमें जनता की ओर से खर्च किये गये १,५०,०००) भी शामिल हैं वह अलग ही है।

प्रान्तीय कां० कमिटी की सन १९२१ की रिपोर्ट के अनुसार पिछले साल आन्ध्र में १,१७,७८० चरखे चल रहे थे। इस साल चरखों की संख्या और भी बढ़ गई है। यहां पर ६ नंबर से लगाकर १०० नंबर के सूत की खादी भी बुनी जाती है। बुनाई भी बढ़िया होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि आन्ध्र में इसी तरह उत्साह से काम होता रहा तो वह खादी प्रचार में सब से आगे निकल जायगा।

विदेशी खादी

खादी के नाम पर विदेशी कपड़ा खूब बिका और अब भी बिक ही रहा है। जपान से खादी आई और शुद्ध खादी के नाम पर ही बिक गई। अब सुनाई देता है कि मैन्चेस्टर ने भी खादी बनाना शुरू किया है। मैन्चेस्टर की खादी को बनवाने और मंगाने वाले भी अपने ही भाई हैं। ताने में महीन और बाने में मोटा सूत लगा कर उन्होंने नकली खादी की नकल कराई है। अंदाज है कि यह माल एक दो मास में बम्बई आ पहुंचेगा।

खादी की लोकप्रियता जैसे जैसे बढ़ती जा रही है वैसे ही वैसे उसके नाम पर पाखंड भी बढ़ते जा रहे हैं। पर यह स्वाभाविक है। किन्तु खादी वस्तु ही ऐसी है कि उसके सामने वे पाखंड बहुत दिन तक नहीं चल सकते; क्योंकि जनता हाथ की कती बुनी शुद्ध खादी को ही अधिक चाहती है। और वह इस नकली खादी से कभी छिपी नहीं रह सकती।

आज हम दूसरे कपड़ों की अपेक्षा ड्योढ़ी-दूनी कीमत दे कर भी महीन या मोटी, जैसी मिले वैसी पर खरीदते हैं खादी ही। यह किसलिए? अपनी और अपने देश की उन्नति के लिए, न कि पूंजीवालों का अथवा विदेशियों का घर भरने के लिए। परदेशों में पैसा भेज कर ही तो हम अपने देश को गवाँ बैठे हैं। (नवजीवन)

श्री भुरगी का इस्तीफा

राज्य-सभा के एक प्रभावशाली मुसलमान सदस्य श्री भुरगी ने अपना इस्तीफा पेश कर दिया है। उसमें उन्होंने लिखा है कि तुर्की प्रश्न के सम्बन्ध में ग्रेटब्रिटन ने जो घातक नीति अख्त्यार की है उसे देखते हुए मेरे लिए अब इस सरकार का सहयोग असम्भव हो गया है। उसके विरोध के लिए मैं अपना पद-त्याग करता हूं। देर के बाद क्यों न हो, पर बात उनकी समझ में आ गई! इधर कौन्सिलर इस्तीफा देते हैं उधर हमारे कुछ भाई कौन्सिलों के लिए दौड़ कर रहे हैं!

लाईड जार्ज का इस्तीफा

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रतिका „ -)॥
विदेशों के लिए वार्षिक „ ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष २] [अंक ११

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, कार्तिक सुदी ९, संवत् १९७९
रविवार, २९ अक्तूबर, १९२२ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

आलोचनायें

लाईड जार्ज के पतन के साथ ही उनकी नीति की चर्चा अब अंगरेजी अखबारों में शुरू हुई है। बडे बडे राजनीतिज्ञ अब उसपर आलोचना करने लगे हैं। लॉर्ड फ्रेजर उनकी नीति का वर्णन इस तरह करते हैं।

"तुर्कस्तान में जो अनर्थ और अन्याय हुआ है उसकी प्रत्यक्ष जिम्मेदारी [illegible] लाईड जार्ज के सिर पर है उनकी और किसी के नहीं। वहां पर उन्होंने शांति के नाम पर व्यर्थ ही एक महायुद्ध छेडा दिया। उन्हें हजार समझाया बुझाया पर उसपर जरा भी ध्यान न देकर वे ग्रीस को तुर्कस्तान के खिलाफ उकसाते ही रहे। अगर वे वैध रीति से यह सब काम करते तो उन्हें देश कदापि ऐसे काम न करने देता। वे हमें मेसोपोटामियां में कभी रहने को मजबूर न कर सकते। और न हम उन्हें यूनानियों को कभी हरसाल सहायता देने देते। जनता को अब अपने प्रधान सचिवों के पंख जरा काट डालने चाहिए। × × ×

सन १९१९ से मि. लाइड जार्ज ने सीधा रास्ता छोडा है। और तब से तो अबतक वे एक बिना ड्रायवर की मोटर जैसे हो रहे थे। शहरों, प्रान्तों और सल्तनतों को बनाना बिगाडना, और देना लेना तो उनके लिए शतरंज का खेल था। सचमुच इस बात को सुनकर कि योरप के राजनीतिज्ञ पृथ्वी की जातियों को शतरंज की मोहरों की तरह अपना खेल समझते थे भावी संतान आश्चर्य ही करती रहेगी। × × × × मि. लाईड जार्ज की इस करतूत से तमाम इस्लामी संसार की मित्रता को हम खो बैठे हैं। × × × जरा सोचिए तो कि इससे इग्लैंड के व्यापार को कितनी हानि पहुंचेगी? अगर वे सब अंगरेजी माल का बायकाट कर दें तो हमारे व्यापार की कैसी दुर्दशा होगी? उत्तरी इग्लैंड में अभी जितनी बेकारी फैली हुई है उतनी पहले कभी नहीं थी।"

एक दूसरे राजनितिज्ञ हैमिल्टन ग्रैण्ट साहब लिखते हैं।

"यह कहना ठीक नहीं कि हमारे राजनीतिज्ञों को किसीने सचेत नहीं किया था। क्योंकि अस्थायी सुलह हुई तबसे ही भारत सरकार और दूसरे भी उन्हें बराबर चेताते आ रहे हैं कि ब्रिटेन को तुर्कस्तान से बहुत सोच समझकर काम लेना चाहिए। उसने कई बार जतला दिया है कि इजिप्त से लेकर चीनतक जो मुसलमान राष्ट्र फैले हुए हैं उनके साथ हमारा गहरा संबंध है। और उस संबंध को कायम रखने के लिए हमें इस्लाम की शत्रुताका सम्पादन न कर लेना चाहिए। यह केवल इस्लाम के नेताओं के साथ शीघ्र सुलह कर लेने से और मुसलमानों के साथ उदारता और मित्रता का वर्ताव रख कर ही हो सकता है।

अगर हम ऐसा करते तो इजिप्त मेसोपोटामिया, कुर्दिस्तान, अफगानिस्तान और भारत में जो आज हमें विषम परिस्थितियों का सामना करना पड रहा है वह कदापि न करना पडता।"

और भी कई राजनीतिज्ञो ने अपने विचार प्रकट किये हैं और लाईड जार्ज की नीति की बुराइयां बताई हैं। पर ये लंबी चौडी आलोचनायें अब किस काम की। सच्चे मित्र तो वे ही हैं जो महात्मा गांधी की तरह मौके पर सब से पहले आदमी को सचेत कर देते हैं जैसा कि उन्होंने इस विषय में भी बडे लाट को सन १९२० के जून महीने में एक पत्र भेजकर किया था पीछे से कहने में बुराई नहीं है पर बहादुरी भी नहीं। यह तो दुर्बलता है। फर्ज कीजिए कि अगर कमाल पाशा की विजय से लाईड जार्ज का पराजय होने के बदले वे तुर्कों को ही परभारे यूनानियों द्वारा दबाने में समर्थ हो जाते और एशिया मायनर पर अपना पूरा प्रभुत्व स्थापन कर कर सकते तो कौन कह सकता है कि ये ही धुरन्धर राजनीतिज्ञ लाईड जार्ज की प्रशंसा के पुल न बांध देते? आज भी वे उनकी नीति की बुराई इसलिए नहीं कर रहे हैं कि वह सचमुच बुरी है—अन्याय कारक है, बल्कि इसलिए कि उससे इग्लैंड के व्यापार और स्वार्थ को बहुत भारी धक्का पहुंच रहा है।

सिक्खों का सत्याग्रह

बहादुर सिक्खों का सत्याग्रह अभीतक उसी उत्साह के साथ चल रहा है। गत २४ तारीख तक करीब ३०३३ सिक्ख गिरफ्तार हुए है। सिक्खों का सत्याग्रह उसी प्रकार चल रहा है पर सरकार की नीति में अब परिवर्तन होता चला। वह दिन बदिन अधिक निरंकुश और पाशविक होती जा रही है। निःशस्त्र अकालियों पर अब पुलिस और भी कायर तरह से वार करने लगी है। पहले वह अकालियों को सब के सामने मारती थी। पर अब उसके अत्याचार ने और भी निर्घृण और कायर रूप धारण किया है। खुल्लमखुल्ला उन्हें मारने से पुलिस अब शायद डरने लग गई है। गत तारीख १८ के दिन जो जत्था गिरफ्तार हुआ उसके हरएक आदमी को पुलिस अलग एक तंबू में ले जाती और उसे माफी मांगने के लिए कहती। और उसके ऐसा

करने से इन्कार करते ही उसे खूब पीटती थी। पर एकने भी माफी न मांगी। अकालियों के दृढ निश्चय और कठोर व्रत को तोड़ने के लिए पुलिस अपनी शक्तिभर प्रयत्न कर रही है। पर उसमें सफलता मिलने की अपेक्षा आग बढती ही जा रही है। अब तो पेन्शन याफ्ता फौजी सिक्ख भी जत्था बनाकर गिरफ्तारी के लिए आगे बढने लगे हैं। जब मनुष्य स्वार्थान्ध हो जाता है तब वह उचित अनुचित पहचानने की बुद्धि से भी हाथ धो बैठता है। क्या सरकार की भी यही हालत नहीं हो रही है? अन्यथा जिन सिक्खों की राजभक्ति के बल पर वह स० १८५७ का गदर दबा सकी, जिन वीरों के शौर्य के बल पर उसने गत महायुद्ध में विजय पायी उन्हींकी राजभक्ति के इस तरह टुकडे टुकडे होते हुए वह अपनी आंखों से कभी देख सकती?—अपनी सत्ता के मूल पर ही वह इस तरह कभी कुठाराघात करती? जो हो, पर हमें तो हरएक अकाली सिक्ख का बलिदान देश और धर्म के लिए जिस कुर्बानी की जरूरत है उसकी प्रत्यक्ष शिक्षा दे रहा है। सवाल तो सिर्फ यह है कि भारत के नौजवान उससे कहांतक लाभ उठावेंगे।

सिर्फ आधा घंटा

भारत के हर एक सच्चे देशभक्त की सहायता करने की शक्ति चरखे में है। अगर तीस करोड भारतीय यह निश्चय ही कर लें कि विदेशी सूत का टुकडा भी न खरीदेंगे तो उनके लिए कौनसी बात असम्भव है? अगर हरएक लडका और लडकी जो महात्माजी को हृदय से प्यार करते हैं रोज केवल एक ही घंटा चरखा चलावें तो सोचिए वे कितना सूत पैदा कर सकेंगे? अगर घर के बडे आदमी भी रोज उठते ही नियम से आधा घंटा चरखा चलाते रहें तो घर के लडके बच्चों पर उसका कितना सुंदर असर गिर सकता है? साथ ही देश को भी कितना फायदा पहुंच सकता है? लोग कहते हैं— रोज केवल आध घंटा चरखा चलाने से क्या हो सकता है? और वे यों ही टाल मटोल में समय बिता देते हैं। पर वे समय का और नियम से काम करने के महत्त्व को नहीं समझते। प्रतिदिन आधा घंटा हम चरखा चलाते रहें तो उससे हमें साल में २५ गज कपडा मिल सकता है। घर में अगर १० मनुष्य हों तो सोचिए कितना कपडा होगा? भारत जैसे सुन्दर आबोहवा वाले देश में हमें पहले ही बहुत थोडा कपडा दरकार होता है। फिर यदि हम अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने इतना कपडा खुद ही बना सकें तो विदेशी कपडे को छोडना हमारे लिए कितना आसान है? विदेशी कपडे ने पैदा किये हुए फैशन के मोहजाल को हम तिलांजलि देवें तो बात की बात में हम मैंचेस्टर को अपने पैरों में झुका सकते हैं।

प्रत्यक्ष उदाहरण से दूसरों पर जो असर गिरता है उसे देखकर ही मैं यह सब कह रहा हूं। मैंने देखा कि घर में चरखे यों ही पडे हुए हैं। उनपर मकडियों ने जाले फैला रक्खे हैं। और यद्यपि बच्चों के हृदय में देश के लिए प्रेम है तथापि वे उन्हें चलाना छोडकर इधर उधर अपना समय नष्ट कर रहे हैं। पर ज्यों ही मैंने यह निश्चय किया कि सुबह उठते ही सब से पहले कम से कम आधा घण्टा चरखा चलाउंगा फिर नाश्ता करूंगा, त्यों ही घर में सब अपने अपने चरखे के पास जा बैठे। कोई गुमे हुए भागों को ढूंढने लगा, कोई उसपर छाई हुई धूलि और मकडी के जालों को हटाकर उसे साफ करने लगा, चांक और तकुए को तेल भी दिया गया, और शीघ्र ही सारा घर चरखे की मधुर संगीत से गूंज उठा।

* नागपूर में असहयोग का प्रस्ताव पास होते ही मेरे कई मित्रों ने अपनी वकालत छोड कर देश की पुकार का उचित जवाब दिया। उनमें से एक ने जो बडे बुद्धिमान् थे, बडी देर तक सोच विचार के स्थिर किया कि यंत्र से कपडे बुनने का एक कारखाना खोलना चाहिए। उन्होंने अपने इस निश्चय को कार्य में परिणत करने के लिए अपनी शक्तिभर चेष्टा भी की। पर दो साल खतम होते आये उनकी वह कपडे की मिल अभीतक कल्पना सृष्टि में ही है। अगर मेरे ने भाई इन २८ महीनों को चरखे के प्रचार में लगाते और जिस दक्षता और लगन के साथ उस कल्पना के पीछे लगे हुए हैं उसी लगन के साथ इसमें प्रयत्न करते तो वे सैकडों परिवारों को नितान्त दरिद्रता से उठाकर उनका जीवन सुखमय कर सकते। अपने प्रान्त के कई गांवों के वायुमण्डल को चरखे की सुरीली संगीत-ध्वनि से गुंजा डालते और इतना सूत तैयार कर सकते कि जितना उनकी उस मिलसे भी न निकल सकता।

जो वकील और विद्यार्थी महात्माजी के स्कूल और अदालतों के बायकाट के कार्यक्रम को पूरा करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं वे अपने झूठे संकोच को छोडकर इस पवित्र काम को हाथ में लेवें तो भी देश का कुछ कम भला नहीं होगा।

(यंग इंडिया) च० रा०

एक स्त्री का जवाब

एक बहन नवजीवन में लिखती हैं—

"स्त्रियों के मोह की आप बातें तो खूब करते हैं पर आपने कभी यह भी ढूंढने की चेष्टा की है कि उसका मूलभूत कारण क्या है? हरएक बात में मैं पुरुषों को ही दोष देना नहीं चाहती। स्त्रियों में भी बहुत से दोष हैं। पर जिसे आप स्त्रियों का मोह कहते हैं वह तो आपका ही पैदा किया हुआ है। आपको स्त्रियों को अपने वश में रखना था। जैसा आप कहें उसी तरह स्त्रियां चलें, अपनी ओर से किसी प्रकार का आग्रह न करें इसलिए आपने उनकी खुशामद करनी शुरू की। स्त्रियां तो बेचारी भोली भाली ठहरीं। वे झट से आपकी खुशामद में आ गई। संसार में ऐसा कौन है जिसे अपनी स्वतंत्रता खो जाने पर दुःख नहीं होता हो? स्त्रियों को भी अपनी स्वतंत्रता के चले जाने पर दुःख होने लगा। पर इसे उनके दिल से भुलाने के लिए आप उनके लिए गहने बनाकर लाने लगे? चटकीले रेशमी कपडे खरीद कर देने लगे। तरह तरह की विदेशी साडियां उनको रिझाने के लिए खरीदकर ला दीं और उन्हें इन वस्तुओं के मोह में फंसा दिया। स्त्रियां कहीं बाजार में विदेशी साडियां और गहने खरीदने नहीं गई थीं। यह तो सब आपने ही किया। आपने ही उनकी दुर्बलता का अनुचित लाभ उठाकर उनको मोहजाल में फंसाया है और अब तुम कह रहे हो कि स्त्रियां अपने मोह को छोड नहीं सकतीं।

आज भी आप उन्हें किस तरह की शिक्षा दे रहे हैं? मैं अपने अनुभव की बातों में से ही एक दृष्टान्त कहती हूं। जैसे कितनी-ही मातायें अपने बच्चों को दूध-भात खिलाना छोडकर भात के साथ में खटाई का रस खिलाती हैं, आप भी उसी तरह की शिक्षा हमें दे रहे हैं। आपकी शिक्षा में स्वाद है पर पुष्टि नहीं। पर जबतक आप ही अपनी दुर्बलता नहीं छोड सकते तबतक हमें अच्छी शिक्षा कैसे दे सकते हैं?

मैं यह नहीं कहती कि आपके अपनी दुर्बलता को छोडने से हमें कुछ दुःख न होगा। क्योंकि आज आपकी दुर्बलता ही हमारा आधार है हमारा सर्वस्व-धन है। पुरुष अपनी दुर्बलता को छोडें तो स्त्रियों को भी अधिक स्वतंत्र होना चाहिए। हम स्वतंत्रता तो चाहती हैं पर यह भी जानती है कि उसको लेने के लिए और भी नये नये कष्टों का सामना करना पडेगा। खुद मैं कितनी ही बार स्वतंत्रता से डरती हूं। पर मोह को तो छोडना ही चाहिए। एक दूसरे की दुर्बलताओं के आसरे पर हम कबतक जीवित रह सकती हैं"।

कर्नाटक में खादी-प्रचार

कर्नाटक में प्रधान उपज कपास की ही है। वहां अच्छी किस्म का कपास पकता है। उससे २० से ३० नम्बर तक का सूत आसानी से काता जा सकता है। विशेष सावधानी के साथ काता जाय तो ५० नम्बर का सूत भी इससे काता जा सकता है। और कहीं कहीं तो ८०-१०० नम्बर का भी सूत लोग इसी कपास से कात लेते हैं। पर ऐसे उदाहरण बहुत बिरले हैं। इस प्रान्त में जितना कपास पैदा होता है वह उसकी आवश्यकता के लिए काफी है। फसल के मौके पर जिला-समिति को आवश्यक कपास पहले ही से खरीद कर रख लेना पड़ता है, नहीं तो पीछे से रुई इतने महंगे भाव में खरीदनी पड़ती है कि उसकी खादी बुनकर बेचना लाभ-दायक नहीं होता।

चरखा चलाने की पुरानी कला का यहां पर बिलकुल लोप नहीं हो पाया था कि असहयोग ने उसमें फिर से नवजीवन डाल दिया। चरखे अभी पुराने ढंग के ही हैं। उनके चाक का व्यास बीस इंच होता है। हरएक चरखे की कीमत ३॥) होती है।

जुलाहे तो यहां जितने चाहें उतने हैं। समिति की ओर से यहां पर १९ वर्षों के कारखाने चल रहे हैं। हाथ-कता सूत बुनने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। पर जुलाहों को यह विश्वास न होने के कारण कि उन्हें हाथ-कता सूत सदा मिलता रहेगा वे मिल का सूत छोड़ने पर राजी नहीं होते। बुनाई ≈) से ।≈) तक दी जाती है। खादी भी कई प्रकार की बुनी जाती है, जैसे धोतियां साड़ियां, कोट के लिए, आदि।

कर्नाटक में २२,४०० चरखे चल रहे हैं। हर महीने ४४ हजार पौंड सूत काता जाता है, और १,०६,३७० गज खादी तैयार होती है।

हाथ-कते सूत का कपड़ा बुनना सिखाने के लिए यहां पर ९ वस्त्रशालायें हैं, खादी बुनने के १० केन्द्र हैं और २१ भाण्डार महासभा की ओर से खादी बेचने के लिए हैं।

महासभा के द्वारा नियुक्त खादी-निरीक्षक के सिफारिश करने पर इस प्रान्त को एक लाख रुपये खादी प्रचार के लिए देना कार्य-समिति ने मंजूर किया है। (नवजीवन)

खादी की समस्या

लोग खादी के सस्ती होने की राह बड़ी उत्सुकता के साथ देख रहे हैं। वे सोचते हैं कि कोई दाता कोई ऐसा भारी दान दे दे जिससे खादी सस्ती कर दी जाय। कोई सोचते हैं कि महासभा धन की सहायता देकर खादी सस्ती करेगी। पर खादी सस्ती करने के इन कृत्रिम उपायों की राह देखते हुए जनता को अकर्मण्य न बैठ रहना चाहिए। खादी को सस्ती करने के सच्चे उपाय ये नहीं हैं। उसके लिए इतने दूर जाने की जरूरत नहीं है। वह तो अपने घर पर नियम से सूत कातने से हो हो सकती है। दूसरे का दिया हुआ कपड़ा पहनना तो गुलामी है। यह भी सोचना भूल है कि मिल का बना कपड़ा ही सस्ता हो सकता है। आप अगर बारीक रीति से देखेंगे तो आप को मालूम होगा कि हाथकते सूत के भाव में और मिल के सूत के भाव में जो फर्क है उसका कारण यंत्र द्वारा उस सूत का काता जाना नहीं है। उसका कारण तो है रुई की महंगाई। प्रायः सब मिलवाले फसल के मौके पर ही या उससे भी पहले कपास खरीद लेते हैं। बाद जो बहुत थोड़ा कपास बचता है उसपर साल भर तक दूसरे लोगों को अपनी आवश्यकताओं को पूरी करना पड़ता है। जैसी जैसी आवश्यकतायें कम या ज्यादह होती हैं उसी के अनुसार कपास भी महंगा होता है। इसका परिणाम यह होता है कि हाथ से सूत कातने वालों को, जो अक्सर थोड़े परिमाण में कपास खरीदते है, वह बहुत महंगे भाव से खरीदना पड़ता है। जिस कपास को मिलवाला ||) पौंड के भाव से खरीदता है उसीको इन लोगों को |||) पौंड के भाव से भी खरीदना पड़ता है। यही कारण है कि मिल का सूत ||) या ||≈) पौंड मिल सकता है और हाथ के कते एक पौंड सूत की कीमत हमें १≈) देनी पड़ती है। जबतक कातने वालों को कपास सस्ते भाव से नहीं मिल सकता तब तक सूत और खादी इसी तरह महंगी मिलती रहेगी।

इसके लिए सबसे अच्छा मार्ग कौनसा हो सकता है। विचार करने पर दो बातें हमारे ख्याल में आती हैं। एक तो यह कि महासभा समितियां उन लोगों को कपास पुराने का काम अपने हाथ में ले लें। यह योजना ठीक है पर साथ ही कठिन भी है। महासभा समितियों को कपास के व्यापार आदि का काम करना पड़ेगा। उसके लिए स्थान और धन की जरूरत है। यह सब कहां से प्राप्त हो सकता है? इसके अतिरिक्त जो कार्यकर्ता प्रायः बगैर वेतन के ही काम कर रहे हैं उनको यह जिम्मेदारी भाररूप मालूम होगी। हां, खुद इसके व्यापारी लोग ही इस काम को अपने हाथमें ले लें तो जरूर हो सकता है।

पर इससे भी अधिक आसान एक दूसरी युक्ति है, जिसमें न तो धन की आवश्यकता है और न बड़ी बड़ी गोदामों की। न व्यापार की न सौदे की। हमें सिर्फ इतना ही करना होगा। कि पहले देहातों में गांव गांव घूम कर लोगों को अपने ही घर के आसपास कपास बोने के लिए कहना होगा। कहांपर किस तरह के कपास की उपज अच्छी हो सकती है यह भी देखना होगा। और लोगों को बिनौले बांट कर एकदम कपास की बोनी शुरू कर देनी होगी। हो सकता है कि कई स्थानों पर कपास न भी पैदा हो सकता हो। पर ऐसे स्थान बहुत थोड़े होंगे। हां, यह सब काम करना होगा देहातों में। और महासभा को इसके लिए बिनौले खरीद कर बेचना और कभी कभी तो मुफ्त भी बांटना होगा। पर यह काम उतना कठिन नहीं जितना कपास का खरीदना और बांटना है। अगर हम इतना कर सकें तो दो ही महीनों में भारत के कोने कोने में सब को अपने कपड़े के लिए मुफ्त ही कपास मिल जाय। इसके बाद का तो सब काम सरल है। कपास को लोढ़ना तो हर-एक के घर पर भी हो सकता है, धुनकने की जरूरत भी न रहेगी क्योंकि वे लोग इस कपास को बड़ी हिफाजत के साथ इकट्ठा करेंगे। क्योंकि वे मिलवालों की तरह उनमें सूखे पत्ते या धूलि कपास का वजन बढ़ाने के लिए नहीं मिलाते। और हाथ से ही बिनौले निकाले जायं तो धुनकने की भी जरूरत नहीं रहती। हमारी खादी की महंगाई का एक जबरदस्त कारण तो यह भी है कि हम कारखानों में लोढ़ी हुई रुई को उपयोग में लाते हैं। वह लौढ़ी एक जगह जाती है उसको धुनकता है दूसरा ही, पूनियां और तीसरा ही बनाता है, और उसको कातनेवाला एक चौथा आदमी होता है। यह तो स्पष्ट है कि इस पद्धति में हरएक आदमी उतनी दक्षता के साथ काम नहीं करता जितना कि करना चाहिए। नतीजा यह होता है कि एक आदमी की लापरवाही का फल दूसरे को भोगना पड़ता है और इतने पर भी खादी खराब और महंगी मिलती है। खादी की महंगाई का खास कारण यही है। उसको सस्ती करने का एक ही मार्ग है। और वह यही कि हमें उसे बिलकुल घरेलू धंधा बना डालना चाहिए।

हिन्दी
नवजीवन
रविवार, कार्तिक सुदी ९, सं. १९७९

लॉईड जार्ज का इस्तीफा

इग्लैंड के प्रधान सचिव लाईड जार्ज ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। पर इससे भारत को क्या हानि-लाभ? उनका पतन का खास कारण तो तुर्कों की विजय है। इस्लाम या भारत को इससे तिलभर भी किसी भले की आशा न करनी चाहिए। पर विजित लोगों में प्राय: यह एक चाल ही पड़ जाती है कि वे अपने मालिक या जेताओं की हर बात पर आश्चर्य प्रकट करते रहते हैं। इग्लंड के राजनीतिज्ञों के उत्थान और पतन से हमारा उतना ही वास्ता है जितना एक जमींदार के अपने चिकित्सक या वैद्य के बदलने से उसके असामियोंकी मवेशियों के जीवन और सुख का है। तथापि वे जानवर भी यदि हमारे जैसे समाचार पत्र चला सकते तो वे भी नये वैद्य के गुणों की तारीफ के पुल बांध देते; और पुराने वैद्य की मूर्खताओं और गलतियों के वर्णन में अखबारों के पन्ने के पन्ने रंग डालते। अगर लाईड जार्ज अपनी निकटपूर्वी नीति की दुष्टता पर पश्चाताप करते हुए अपना इस्तीफा पेश करते तो अलबत्ते हम उनके इस्तीफे पर खुश हो सकते थे। पर उनके पतन का खास कारण तो उनकी नीति की असफलता है न कि उसकी दुष्टता। लाईड जार्ज की शान तो कमाल पाशा की विजय ने मिट्टी में मिलाई है, न कि तुर्कस्थान को नष्ट करने की उनकी उन पांच साल की कूटनीति ने। अगर दैव-गति से यूनानियों के पास अधिक सैनिक बल होता, और यदि वे अंगोरा को अपने उस पाशविक बल से पीस डालते, तो न तो ये अंगरेजी समाचार-पत्र जो भूतपूर्व प्रधान सचिव की भूलों पर अभी तड़क रहे हैं, और न वे राजनीतिज्ञ ही जो उनकी मूर्खताओं को धिक्कार रहे हैं, अपने मुंह से एक अक्षर भी निकालते। खुद लाईड जार्ज भी मजे में अपने पद पर काम करते हुए दिखाई देते। इग्लैंड की जनता को लाईड जार्ज की नीति का कहीं आज एकाएक पता नहीं चला है। उससे तो तमाम ब्रिटिश जनता वाकिफ थी और उसमें उसका अव्वल से हाथ भी रहा है। जो लोग लाईड जार्ज की अभी टीकायें कर रहे हैं, उनमें से एक का भी यह कहना नहीं कि कमाल पाशा के स्मर्ना और चनक पहुंचते ही ब्रिटिश केबिनेट के गुप्त कार्य एकाएक उन्हें प्रकट हुए और न वे अभीतक यह समझ रहे थे कि तुर्कस्तान का सुलतान पूर्ण स्वतंत्रता-पूर्वक कान्स्टान्टिनोपल में सुख से राज्य कर रहा है। ब्रिटिश जनता लाईड जार्ज की तुर्की नीति से न केवल सहमत और उसकी सहायक थी बल्कि यह भी सिद्ध हो चुका है कि लाईड जार्ज के प्रधान सचिवत्व के पद पर आने के पहले भी ब्रिटेन की यही नीति थी। श्री लाईड जार्ज के मैन्चेस्टर के भाषण से यह और भी स्पष्ट होता है। उसमें उन्होंने साफ कहा है कि जब उन्होंने अपने पद का काम हाथों में लिया तब उन्होंने पाया कि रूस, फ्रान्स, इटाली और ग्रीस के साथ ऐसी कई सुलहें हो चुकी थीं? जिनके अनुसार तुर्कस्तान का अंगविच्छेद कर के आर्मेनिया, कान्स्टान्टिनोपल और स्ट्रेट्स् रूस को देने का अभिवचन दिया गया था, और तुर्कस्तान के लिए आनाटोलिया का सिर्फ एक टुकड़ा रक्खा गया था। पर यह सब व्यर्थ ही हुआ। क्योंकि रूस में एकाएक क्रान्ति पैदा हो गई। और अब भी लाईड जार्ज की सब सोची सोचाई बातें भी इसलिए व्यर्थ नहीं हुईं कि तुर्कों के प्रति अंगरेजों के हृदय में कोई परिवर्तन हो गया है, बल्कि इसलिए कि कमाल पाशा के बाहुबल ने घटना-चक्र को ऐसी गति दे दी की अंगरेज कुछ भी न कर सके। इसलिए लाईड जार्ज ने तुर्कस्तान के खिलाफ जो कुछ बुराई की उस सब की जिम्मेदारी समस्त इग्लैंड पर है। और अब यद्यपि लाईड जार्ज चले गये और उनके स्थान पर दूसरे प्रधान सचिव आ गये तथापि उससे तुर्कस्तान का भला होने की जरा भी आशा न करनी चाहिए। यह तो आंतरिक क्रान्तियों द्वारा बाहरी पराजय को छिपाने के लिए चली गई साम्राज्यवादी प्रजा की एक आत्मरक्षात्मक और स्वाभाविक चाल है। जब यह सब कोलाहल शान्त हो जायगा तब आप देख लेंगे कि सब जहां के तहां ही हैं। बात तो यह है कि खुद इग्लैंड की जनता ही तुर्कस्तान के खिलाफ है। नहीं तो न तो लाईड जार्ज और न लार्ड ग्रे कैनडा और न्यूजीलैंड आदि स्थानों से संगठन करके साम्राज्य के बल का उपयोग तुर्कस्तान के खिलाफ कर सकते थे। अगर इस्लाम और तुर्कस्तान को संसार में सम्मान और स्वतन्त्रता पूर्वक रहना है तो उन्हें अपने शारीरिक या नैतिक बल का ही प्रयोग करना चाहिए। प्रधान सचिवों के उत्थान और पतन तो उसका परिणाम मात्र है न कि कारण।

(यंग इंडिया) च. राजगोपालाचारी

अनुत्साह का मूल

उत्साह जीवन का धर्म है, अनुत्साह मृत्यु का प्रतीक है। उत्साहवान् मनुष्य ही सजीव कहलाने के योग्य है। उत्साहवान् मनुष्य आशावादी होता है। उसे सारा विश्व आगे बढ़ता हुआ दिखाई देता है। विजय, सफलता और कल्याण सदैव उसकी आंखों में नाचा करते हैं। उत्साहहीन हृदय को दुनिया में अशक्ति ही अशक्ति दिखाई देती है। असहयोग-आन्दोलन उत्साहमय है, जीवनमय है। उस उत्साह और जीवन को देखने के लिए हमारी आंखों में उनके सुप्त बीजों की आवश्यकता है। कुछ लोग आज इस बात की शिकायत करते हैं कि जनता में अनुत्साह फैल गया है। असहयोग-आन्दोलन ठंडा पड़ गया है। वर्तमान कार्य-क्रम से जनता असन्तुष्ट है। उसमें परिवर्तन किये बिना—कुछ तेज दवा पिलाये बिना जनता का जोश कायम नहीं रहेगा। पर हम पूछते हैं कि ये भाव, ये विचार आपके हृदय के हैं या जनता के हृदय के हैं? जनता का हृदय तो अनेक सुप्त भावनाओं का सागर है। उसके जिस भाव को हम जाग्रत करेंगे वही हमें जाग्रत दिखाई देगा। उसके हृदय में तो स्वराज्य भी छिपा हुआ है—सोया हुआ है। हम कार्यकर्ताओं का यह काम है कि उसे जगाकर उसकी प्रतीति जनता को करा दें। जनता का हृदय एक स्वच्छ आईना है। उसमें हम अपने हृदय के भावों को देख सकते हैं। जब हमारे हृदय में उत्साह होता है, आनन्द होता है, आशा होती है तब जनता भी हमें उत्साह-आनन्द-आशामयी दिखाई देती है। जब हम ही दुर्मुख हो कर उसकी ओर ताकते हैं तो वहां से भी वैसा ही उत्तर मिलता है।

कभी कभी यह सन्देह होने लगता है और वह ठीक भी है कि जिस अनुत्साह और शिथिलता की पुकार मच रही है वह वास्तव में जनता के हृदय की चीज है या खुद कार्यकर्ताओं के दिल की? हम आत्मवंचना तो नहीं कर रहे हैं? अपने दिल के अनुत्साह का आरोप जनता पर तो नहीं कर रहे हैं? अपनी ही कमजोरियों

और कुसंस्कारो की बदौलत तो हम वर्तमान कार्यक्रम को अनुत्साह-वर्द्धक नहीं पाते हैं? क्या सचमुच हमारे—कार्यकर्ताओं के हृदय में पिछले साल जैसा कार्योत्साह है? क्या इस साल हमने जनता में काम कर के देख लिया है,—हर तरह से जनता को समझा-बुझा कर हार गये हैं, और इस तरह निराश हो कर ही हम सुस्त पड गये हैं? क्या हमने कस्बे कस्बे और गांव गांव जा कर सभायें की हैं? उनमें जनता का मत लिया है? क्या जनता ने मौजूदा कार्य-क्रम पर अपना अविश्वास प्रकट किया है? क्या उसने इनकार किया है कि इस कार्यक्रम से हमारे अन्दर निर्भयता, साहस और स्वराज्य की भावना जागृत नहीं हुई? हम प्रजा सत्ता के नाम पर अपनी ही सत्ता का प्रयोग तो नहीं कर रहे हैं? प्रजा-सत्ता के स्थान पर अपनी ही सत्ता तो चलाना नहीं चाहते हैं? अपने ही मत को तो हम प्रजा का मत नहीं बता रहे हैं? प्रजा-सता के तत्वों की दुहाई दे कर हम अपनी ही कमजोरियों और कमतैयारी को छिपाना तो नहीं चाहते हैं?

यदि हम तैयार हैं तो दुनिया में मुश्किल कौन बात है? कोई बात कठिन और दुःसाध्य केवल उन्हीं लोगों के लिए होती है जो या तो खुद काम करना नहीं चाहते—दूसरों से करवाना चाहते हैं, या उसके लिए आवश्यक कष्ट और असुविधा सहने को तैयार नहीं होते। सच्ची लगन और व्याकुलता होने पर न तो अनुत्साह ही पास आ सकता है, न असुविधा ही। काम वास्तव में कठिन नहीं होता है हमारी कमजोरी और कमतैयारी उसे कठिन बना देती है। जो मनुष्य अपने पुरुषार्थ से परमात्म-पद तक को प्राप्त कर लेता है उसके लिए कौन बात मुश्किल है? क्या जो बडे बडे हिंस्र, भयानक जन्तुओं को अपना सेवक बना लेता है उसके लिए अपनी गुलामी की बेडियां तोड देना भी कठिन है? यदि हमें घर घर जा कर तिलक-स्वराज्य-फंड एकत्र करना, महासभा के सदस्य बनाना, खादी पहनना और पहनाना, आपस में प्रेम-एकता बढाना कठिन मालूम होता है तो यह कहने में क्या जान है कि हम देश के लिए मरने-मारने को तैयार हैं? छोटी सी परीक्षा के लिए जो हिचकते हैं, उनके लिए कठिन परीक्षा में पास होने की बडी बडी बातें करना क्या स्वयं अपने को और दूसरे को धोखा देना नहीं है?

समय नाजुक है, टेढा है। देश के जीवन-मरण का प्रश्न है। राष्ट्रों के इतिहास के बनने और बिगडने का समय है। हमारा बल, वीर्य, पुरुषार्थ और स्वतन्त्रता-प्रेम कसौटी पर कसा जा रहा है। अलीभाई, लालाजी, महात्माजी हमारी कार्यशक्ति के भरोसे जेल में अपने कीमती दिन काट रहे हैं। घबडाने, पीछे कदम हटाने, दबने, बोदापन दिखाने से राष्ट्र का सत्यानाश हो जायगा। मनुष्य होते हुए अनुत्साह रखना और उसकी शिकायत करना इस धर्म-युद्ध के अवसर पर हमें लज्जा-जनक मालूम होना चाहिए। इससे बढकर दुःख की बात और क्या हो सकती है कि हमारी मातायें और बहनें इस कडवी दवा को पीने के लिए तैयार हैं—वे आगे बढ रही है, और हम मूंछोंवाले मर्द बन कर अनुत्साह और शिथिलता के गीत गाते हुए समय गवां रहे हैं! अतएव भाइयो, सोचो, अपनी आत्मा को टटोलो, उसको कमजोर न होने दो। अपनी कमजोरियों और अनुत्साह का आरोप जनता पर न मढो। यदि हमारी देश-भक्ति हमें बातें बनाने विरोध बढाने आराम करने की ही सलाह देती हो तो बेहतर है कि हम स्वराज्य से निराश हो जायं। पर यदि हम स्वराज्य के लिए मतवाले हैं, आजादी के भूखे हैं तो हमारे रास्ते को दुनिया की कोई रुकावट, कोई विघ्न-बाधा, कोई संकट और अमंगल नहीं रोक सकता। जो शक्ति उसके रोकने का प्रयत्न करेगी वह खुद आप ही नष्ट होगी और हमारा एक एक कदम आगे ही पडेगा। हरिभाऊ उपाध्याय

महासभा में वकील-वृत्ति

मानसी जीवन श्रद्धा और अश्रद्धा का एक विचित्र मिश्रण है। श्रद्धा आदर्श की तरफ खींचती है और अश्रद्धा बोझरूप होकर नीचे की ओर खींचती है। श्रद्धा के लिए एक नियत आदर्श रहता है। अश्रद्धा के लिए आदर्श कहां हो सकता है? श्रद्धा का नियम हो सकता है, अश्रद्धा में अव्यवस्था ही रहती है। असहयोग का आन्दोलन आत्मश्रद्धा की बुनियाद पर खडा है। सरकार के साथ कुछ वास्ता न रखते हुए हम देश की शक्ति एकत्र कर सकते हैं और इस तरह से एकत्र की हुई श्रद्धा के बल से बलिष्ठ हुए देश को कोई भी पार्थिवशक्ति दबा नहीं सकती। ऐसा इस आन्दोलन का निश्चय है। जिनमें यह श्रद्धा नहीं है, या कम है वे असह-योग में जिस बलिदान की आवश्यकता है उस बलिदान के व्यर्थ जाने से डरते हैं। सरकार से दो दो हाथ करने में हमारे दोनों हाथ मशगूल रहेंगे और फिर देश-सेवा के लिए कुछ भी शक्ति नहीं रहेगी, इतना उनके ध्यान में नहीं आता है। यह दुःख की बात है। राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन लोकमान्य तिलक ने ही शुरू किया था। पहले से उन्होंने देखा था कि सरकारी शिक्षा में बुद्धि-भ्रंश करनेवाली एक शराब है। उससे हमें अपने बाल-बच्चों को बचाना हमारा परम कर्तव्य है। सरकारी शिक्षा को वे पूतना कहते थे। सरकारी शिक्षा और हिरण्यकशिपु की शिक्षा एक ही है ऐसा कई बार उन्होंने कहा है। राष्ट्रीय शिक्षा से ही लोकमान्य ने अपना देश-कार्य शुरू किया। स० १९०० के आन्दोलन में 'समर्थ-विद्यालय' द्वारा देश को और स्वराज्य के आन्दोलन को समर्थ करने की उनकी इच्छा थी। देश में अत्याचार शुरू होते ही सरकार ने अत्याचार के बहाने राष्ट्रीय शिक्षा के पेड को छिन्नभिन्न कर दिया। लेकिन लोकमान्य के आदिम और उत्तम तपस्या का फल नष्ट होने वाला नहीं था। इसीलिए इस आन्दोलन में प्रजा ने राष्ट्रीय शिक्षा को तुरन्त हाथ में ले लिया। सरकार आज उसे तोड नहीं सकती। क्या हम ही अपनी अश्रद्धा से उसे तोड डालें?

पिछले जमाने के महाराष्ट्र की राजनीति यदि देखी जाय तो उसमें अत्यन्त तेजस्वी दो व्यक्तियां देख पडती हैं। एक लोकमान्य तिलक और दूसरे माननीय गोखले। कौन्सिलों में जितना हो सकता है उतना माननीय गोखले ने किया। और कौन्सिलों के बाहर जितना जनता में हो सकता है उतना लोकमान्य ने किया। अब कौन्सिलों के दीवानखाने कुछ बडे हो गये हैं। उनमें कुरसियां अधिक रक्खी गई हैं। पहले की अपेक्षा श्यामवर्ण के अधिक लोग उनमें बैठ सकते हैं। तो भी वहां पर सत्ता तो गौरवर्ण के लोगों की ही है। कौन्सिलों में गोखलेजी की परम्परा के नये लोग जाकर बैठें तो उसमें देशहित-अहित कितना भी हो तो उसमें सुसंगति है। लोकमान्य की परंपरा राष्ट्रीय सभा और जनता में काम करने की है। स्वराज्य की जब कभी निश्चित योजना लोकमान्य से मांगी जाती तब वे कहते थे स्वराज्य को तो नजदीक आने दो फिर योजना तैयार करनेवाले सैकडों आदमी मिल जायंगे। सुधारों के दिनों में उन्होंने एक योजना सरकार के सामने पेश की था यह बात सच है। लेकिन साथ साथ वे कहते थे कि "हमारी सच्ची कठिनाइयां स्वराज्य मिलने के बाद ही शुरू होंगी। स्वराज्य मिला नही है तबतक ही स्वराज्य के लिए एक-मत रह सकते हैं। स्वराज्य के बाद स्वराज्य के स्वरूप को निश्चित करने में मतमतान्तर जरूर होंगे, और देशभक्तों में अनेक पक्ष होंगे। इस लिए जबतक स्वराज्य मिला नहीं है तब तक स्वराज्य के रूप का झगडा न छेडना श्रेयस्करही है।" कौन्सिलों के विषय में यही स्थिति है। सरकार को निर्वीर्य बनाने के लिए

और राष्ट्र का बल एकत्र करने के लिए कौन्सिलों का बहिष्कार आवश्यक है। और इस विषय में सारे राष्ट्र का एक मत है। कौन्सिलों में प्रवेश करने का और वहां जाकर लडने का निश्चय यदि किया जाय तो उसमें अनन्त शाखायें पैदा होंगी और राष्ट्रीय दल अव्यवस्थित होगा। सरकार को जो आज मिल रहा है उससे अधिक सहारा मिलेगा। और इन दो-तीन बरसों का आन्दोलन मिट्टी में मिल जायगा। जब बैरिस्टर सावरकर पर सरकार ने अभियोग चलाया था तब उन्होंने फ्रान्स देश में पकडाये जाने के कारण हाईकोर्ट का अधिकार अस्वीकार किया। उन्होंने ऐसा नहीं सोचा कि हाईकोर्ट में मैं अपना बचाव न करूं तो मेरा नुकसान होगा। हम सरकार के साथ असहयोग करना भी चाहते हैं और कौन्सिलों में हमारा पक्ष बलवान हो जाय यह भी चाहते हैं। ये दोनों कैसे हो सकते हैं? कौन्सिलो में नालायक लोग जाकर बैठते हैं यह शिकायत ठीक नहीं। कौन्सिलों के वोट देने में लायक और नालायक सब लोगों के वोट की कीमत गिनने में गरीबी हो लेकिन राजनीति में नालायक लोगों का आधार कुछ काम का नहीं है यह सरकार भी खूब जानती है। थोडे अनुभव से हम देख भी चुके हैं कि सहयोग में विश्वास रखने वाले लोगों की मदद सरकार को कुछ आश्वासन नहीं देती है लेकिन उनका विरोध सरकार को अत्यन्त कष्टदायक होता हैं।

बात यह है कि जो लोग हमेशा अदालत में लडते हैं उनका दमाग ही वकीली ढंग का हो जाता है। एक पक्षी फैसले से वे बहु डरते हैं। जिन लोगों ने अदालत को आखिर तक मानने का ही व्रत लिया है, 'कोर्टो हि परमगतिः' जिनका सूत्र है उनके लिए यही रास्ता रहता है कि अदालत ने अगर कोई अनाचार (कानून-विरुद्ध) काम किया तो वकील लोग अपना निषेध पेश करते हैं, और फिर भी अदालत के साथ सहयोग कर के आगे चलते हैं। एक अदालत में न्याय न मिला तो ऊपर की अदालत में जाते हैं। वहां पर न मिला तो और आगे। आखिर तक वाग्युद्ध ही रहता है। इसीलिए जजों के साथ दिन रात लडने वाले वकीलों को न्याय के मददगार कहते हैं और सचमुच जज के साथ लडने में न्याय की मदद ही होती है। इसी तरह से कौन्सिलों में जा कर अधिकारियों से लडने में भी सरकार की ही मदद होती है। वकीलों को शास्त्रों में Limb of the Law याने कानून का एक गात्र कहते हैं। कौन्सिल में जा कर लडनेवाले लोग भी इसी तरह से Limbs of the Government हैं। कौन्सिल का बहिष्कार करने से सरकार गलित गात्र होगी न कि कौन्सिल में आ कर लडने से।

वकीलों ने दलीलबाजी से देश की स्वराज्य-संचालन की योग्यता तो सिद्ध की है लेकिन अब वाग्युद्ध का काम रहा नहीं है। अब कर्म-युद्ध के दिन हैं। कैवूर के बाद मैजिनी और मैजिनी के बाद गैरीबाल्डी आ सकता है लेकिन गैरीबाल्डी कोई वकील या कौन्सिल-वीर नहीं था। नया गैरीबाल्डी शस्त्र ग्रहण करेगा अथवा निःशस्त्र लडेगा यह बात दूसरी है। लेकिन कौन्सिलों के दिन अब रहे नहीं है, इतना तो समझना ही चाहिए। वकील लोगों के प्रति हमें घृणा नहीं है। 'जैसा युग तैसा योगी।' लेकिन देश-सेवकों को और जनता को अब इतना तो समझना ही चाहिए कि असहयोग का संग्राम वकीली वृत्ति से नहीं चल सकता। महासभा की राजनीति में वकील-वृत्ति अगर फिर दाखिल हुई तो उसी में असहयोग की मौत है। दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

मरना और मारना

संसार के इतिहास के पन्ने इस बात के पूर्णतया साक्षी हैं कि संसार की दशा समय समय पर रूपान्तर में परिणत होती रही है। समय के परिवर्तन के साथ साथ उसके धर्म के रूप में भी परिवर्तन होता गया है। सामाजिक स्थिति बदलती गई। मानव हृदय बदलता गया। कार्यों की पद्धतियों में घोर विरोध और परिवर्तन उत्पन्न हुआ। यह सब हुआ वही जिसका होना अनिवार्य था।

हमारी दृष्टि परिवर्तन की स्वाभाविकता की ओर नहीं देख रही है। उसका लक्ष्य-बिन्दु आज भी वही है जो हजारों और लाखों वर्ष पूर्व था। परन्तु यह हमारी भूल है। हमारा सम्बन्ध जिस समाज के साथ हो, हमें जिस जलवायु में पलना हो, जिस समय की मिट्टी में हमारा जन्म हुआ हो उस समय को पहचानना हमारा धर्म है। उसकी गति का निरीक्षण करना हमारा कर्तव्य है। और उसीके अनुसार अपनी गति में भी परिवर्तन-उत्पन्न हो जाने देना चाहिए। हमें राम के राज्य में नहीं रहना है। परन्तु उनकी मर्यादा को भूल नहीं जाना चाहिए। हम श्रीकृष्ण के समय में भी नहीं रह सकते, क्योंकि वह समय बीत गया। परन्तु उनकी राजनीति को हम भुला देने के पक्षपाती नहीं। हमें अर्जुन और भीम की वीरता को भूल नहीं जाना चाहिए। परन्तु उसकी आवश्यकता और अनावश्यकता का विचार अवश्य है। हमें महाराणा प्रताप और शिवाजी का प्रातःस्मरण करना चाहिए इसलिए कि उन्होंने मातृभूमि की उन्नति के लिए ही जो कुछ करना था समयानुसार किया। परन्तु उनकी पद्धति को अपनेमें ले आने से पहले उनकी उपयोगिता और समय की स्थिति का विचार करना भूल नहीं जाना चाहिए।

प्राचीन भारत में मरने और मारने का भाव बहुत प्रबल रूप में था। इससे किसी को इन्कार नहीं हो सकता। प्राचीन भारतीय जीवन मरने और मारने के भावों से लतपत हो रहा है। परन्तु जिस युग में यह धर्म उत्पन्न हुआ था वह आ कर चला गया। जिस अन्न-जल-वायु से वह तत्कालीन धर्म प्रादुर्भूत हुआ था उनमें तात्विक परिवर्तन हो चुका है। आज तो संसार एक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण धर्म-प्रदर्शन कर रहा है। उस धर्म के मूल में यह शुद्ध-भाव छिपा हुआ है कि—

> दोषाणाम् वृद्धयेनूनम् हिंसा परमसाधनम्।
> तस्माद्दोषान् जिहासूनाम् हातव्या सा हशेषतः॥

अर्थात् मरना धर्म है, मारना अधर्म है। मरना सात्विक प्रवृति है, मारना तामस। मरने में वीरता है, शुद्धता है, और दया भाव का पालन तथा देशभक्ति है मारने में कायरता, अशुद्धता, क्रूरता और देश-अहित संपादन है। एक बीज मरता है, अपने को नष्ट करता है, परन्तु अनेक बीजों के पैदा करने में समर्थ हो जाता है। मनुष्य एक प्राणी को मारता है परन्तु उसके बदले में एक तृण भी उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होता। मरने में दया है, कारुण्य है, नम्रता है, सम्पूर्ण सात्विक सम्पत्तियों का सम्मेलन है। परन्तु मारने में निर्दयता है, कठोरता है और सब पापों का मूल कारण क्रोध सिंहासनासीन है। क्रोधपूर्वक जिस काम का आरम्भ होता है वह कार्य तामस है और पश्चात्तपनीय बन जाता है। भगवान् कहते हैं:—

> "क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
> स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति"

इससे सिद्ध हुआ है कि मारना पाप है। मरना धर्म है। मरने का अन्त शान्तिमय है, तेजस्वी है। मारने के अन्त में अशान्ति, मानसिक खेद और ओजक्षय है।

ऐ मानव हृदय, तू अपनी निर्बलताओं का परित्याग कर। भूत को भुला दे, भविष्य की चिंता कर। युगधर्म प्रवर्तक का स्मरण कर। तू भगवान से प्रार्थना कर "हे प्रभो तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। त्वं वीर्योऽसि अतः वीर्यं मयि धेहि। त्वं बलमसि अतः बलं मयि धेहि। त्वं ओजोऽसि अतः ओजो मयि धेहि। त्वं मन्युरसि अतः मन्युं मयि धेहि। इस प्रकार सम्पूर्ण शक्तियों से युक्त होकर अन्त में वरदान मांग ले कि हे नाथ मैं कृतार्थ हो गया। किसी की शक्ति नहीं कि जो मेरी ओर ईर्ष्या और द्वेष दृष्टि से देख भी सके। त्वं सहोऽसि। आप परम सहनशील हैं, अतः कृपा करके सहो मयि धेहि। मेरे में भी वह सहनशीलता स्थापन करें जिससे संसार निर्भय रह सके"। आज तू अपनी वास्तविक वृत्ति को अन्तर्हित करके संसार को निर्भयता के साम्राज्य में विचरण करने दे। यही मनुष्यत्व है यही धार्मिकता है। एक ब्रह्मचारी (स० आश्रम)

मेरा भ्रमण-सप्ताह

(२)

स्त्रियों को उपदेश

अजमेर में एक 'आर्य कन्या पाठशाला' है जिसके लिए श्रीमती गुलाबदेवी नाम की एक देश-भक्त महिला ने अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया है। स्त्रियों की उन्नति से सम्बन्ध रखने वाले हर एक काम में वे उत्साह दिखाती हैं। उनकी प्रेरणा से वहां स्त्रियों की एक सभा हुई थी जिसमें पू० बा ने उन्हें स्वदेशी-धर्म के पालन और शुद्ध खादी के व्यवहार का उपदेश किया। कुछ मारवाड़ी मित्रों ने निजी तौर पर भी पू० बा को अपने यहां निमन्त्रित कर के अपने समाज और मुहल्ले की बहनों को खादी धारण करने का उपदेश कराया। ये प्रयत्न इस बात के सूचक हैं कि अजमेर-वासी स्त्री-पुरुष खादी धारण करने और कराने के लिए कितने उत्सुक हैं।

कला-कौशल का नगर

अजमेर से मैं जयपुर पहुंचा। जयपुर कला-कौशल का नगर है। वहां का कला-कौशल और सौन्दर्य मुझे जीवनमय दिखाई दिया। पर वहां के जीवन में मैंने सौन्दर्य नहीं पाया। स्वतन्त्रता से बढ़कर जीवन का सौन्दर्य और क्या हो सकता है? वहां मैंने शान्ति भी देखी। पर वह वहां के लता-कुंजों की तरह सजीव नहीं थी। वह निद्रित मनुष्य की शान्ति थी। ग्वालियर के विषय में यह कहावत प्रचलित है कि वहां के लोग गाते तो ठीक ही, पर रोते भी ताल और स्वर में हैं। इसी प्रकार मैंने जयपुर के जीवन में कला-कौशल का प्रेम देखा। पर वहां के लिबास में न जाने क्यों मैं कला को न देख सका। हम वेधशाला देख रहे थे कि एकाएक पीछे से एक आदमी ने आवाज दी—"महाराजा सा० की सवारी निकलने वाली है, दौड़ो, देख लो"। नवीन महाराजा सा० की झांकी देखने के लिए हमारा भी जी लालायित हो गया। महल वाले के सामने रास्ते पर सिपाही इधर-उधर दौड़ कर गाड़ियों और आदमियों को डांट-डपट कर इधर-उधर हटाने लगे। मेरी नई आंखों को यह दृश्य अप्रिय नजर आया। थोड़ी ही देर में महाराजा सा. की मोटर निकली। उनके मुसकुराते हुए गोरे चेहरे पर भी मैंने कला-कौशल की झलक देखी। गलता की पहाड़ी पर से हरी-भरी झाड़ियों से घिरा हुआ जयपुर-नगर बाल-रवि की किरणों में ऐसा मालूम होता था मानों नील-हरित सरोवर में कमल खिल रहे हों या नील नभोमंडल में तारे छिटक रहे हों।

नगर का वेश

जयपुर भारत की प्राचीनता का एक नमूना है। आज भी यहां पगड़ी, साफे और अंगरखे वाली मूरतों को देख कर प्राचीन सादगी के गौरव से हृदय उछलने लगता था। यहां अब भी यह आज्ञा है कि बिना साफा या पगड़ी सिर पर रक्खे कोई महल की सीमा के अन्दर दाखिल नहीं हो सकता। हमारे सिर पर तो थी खादी-टोपी। आखिर एक दरबान ने एक तरकीब सुझाई। हमने टोपी के ऊपर रूमाल बांध लिया। शर्त पूरी हो गई। हमने 'चन्द्र-भवन' के पीछे का बाग, 'बादल महल', और 'ताल-कटोरा' देखा। हमारे रहनुमा ने फौवारों के आसपास होनेवाले नाच-गान का हाल सुनाया। मेरा हृदय सुन्न पड़ता जाता था। ताल-कटोरे में हमने एक अद्भूत दृश्य देखा। उसमें कोई ७-८ बड़े बड़े मगर हैं। राज्य की ओर से दो बकरे रोज उनकी भेंट किये जाते हैं। उनके रखवाले ने आओ! आओ! पुकारा। बस, चारों ओर से मगर दौड़ दौड़ कर आने लगे। उसके संकेत करने पर दो-एक ने अपना विशाल मुंह खोला। एक तो जमीन पर आकर हमारी तरफ झपटा भी। पर रखवाले के मना करते ही ठहर गया। उसने उसके मुंह पर हाथ रख कर उसको पुचकारा भी। मैंने सरकसों में शेर आदि स्थलचर हिंस्र पशुओं पर तो मनुष्य के प्रभाव की लीलायें देखी थीं: पर मगर जैसे भयंकर जलचर को इस तरह वशीभूत होते हुए नहीं देखा। सो भी उसके घर में—उसके क्षेत्र में। उस समय मेरे हृदय में यह भाव उठा कि क्या ब्रिटिश साम्राज्य के कर्ता-धर्ता इन से भी अधिक क्रूर और हिंस्र हैं? यदि मनुष्य का प्रेम, ममत्व और संगोपन शेर और मगर के हिंस्र-भाव को दूर कर सकता है तो क्या हमारा प्रेम-शान्ति-मय यह बलिदान उनके मानव-भाव को जाग्रत न कर सकेगा? कम से कम मैं तो अपने को इतना नास्तिक नहीं मानता जो ईश्वर के दूसरे पुत्रों की मनुष्य पर इतना भी विश्वास न करूं!

हम भी पिंजड़े में ही हैं

महाराजा रामसिंहजी का बनवाया एक विशाल भव्य और रमणीय बाग रामनिवास है। वहां तरह तरह के पशु-पक्षी आदि पिंजड़ों में कैद कर के मनुष्यों के मनोरंजन के लिए रक्खे गये हैं। एक बड़े भारी शेर को हमने देखा। पिंजड़े के पास जाते ही वह हम पर टटका। मैंने मन में कहा 'भाई, अब तुम वनराज नहीं हो। तुम हमारे कैदी हो। हमारी ही कृपा पर तुम्हारा जीवन अवलम्बित है। तुम्हारी भयंकर गर्जना का मूल्य अब कुछ भी नहीं है। वह भय के बजाय मेरे हृदय में करुणा उत्पन्न कर रही है। वह दूसरों के मनोरंजन मात्र का साधन हो रही है'। उस समय मेरे मनमें यह भी ख्याल आया कि क्या हम भी पिंजड़े में कैद नहीं है? क्या सारे भारत के पुरुषसिंह आज इसी तरह विदेशी सत्ता के कैदखाने में जीवन बरबाद नहीं कर रहे हैं? क्या वे दुनिया की नजर में दया और मनोरंजन के पात्र नहीं हो रहे हैं? मैंने कहा—भाई शेर तुम गुलामों के गुलाम हो, कैदियों के कैदी हो। अफसोस तो इस बात का है कि तुम और हम अब भी उस शिकारी के दिये टुकड़ों पर जीना चाहते हैं। तुम शेर की शान भूल गये, हमने पुरुषत्व का मान खो दिया। मेरी दृष्टि में तुम अपराधी हो और तुम्हारी दृष्टि में तो हम दुनिया में मुंह बताने लायक नहीं हैं।

कला-भवन, आमेर के महल, 'राम-निवास,' और अजायब घर निःसन्देह जयपुर राज्य के अलङ्कार हैं और चिरस्मरणीय कीर्ति के आधार हैं। हमारे साथियों के सिवा खादी टोपी तो मैंने जयपुर में कहीं नहीं देखी। विलायती कपड़ों की छटा मैंचेस्टर के प्रभाव की गवाही दे रही थी।

यहां सुना कि महाराजा सा० देशी बातों के शौकीन हैं। राज्य के अंगरेज निरीक्षक के आग्रह से एक बार उन्होंने अंगरेजी लिबास

पहना था, पर उसमें उन्होंने अपने को कैदी पाया। तब से उसे नमस्कार कर दिया। यदि यह घटना सच हो तो जयपुर से निकट भविष्य में स्वदेशी-धर्म के पालन की आशा की जा सकती है। पर "काजर की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय एक रेख काजर की लागि है, पै लागि है" फिर महाराजा साहब तो अभी कुमार हैं।

प्रेम का अमर स्मारक

पांच वर्ष पहले आगरे का ताज महल मुझे कला-कौशल का अद्वितीय नमूना दिखाई दिया था। अब की बार मैंने उसमें प्रेम की अमर मधुर स्मृति का अनुभव किया। अंगरेजों और मुसल्मानों के शासन-भेद, भाव-भेद और व्यवस्था भेद का भी दर्शन मैंने वहां पाया।

तांगेवाला!

रात को कोई ८ बजे मैं ग्वालियर स्टेशन पर उतरा। तांगे की धुन में था कि एक तांगेवाला आता हुआ दिखाई दिया। जाने की जगह के बाद जब उसने मेरा नाम पूछा तब मैं सारा रहस्य समझ गया। मैंने कहा-नाम से मतलब? उसने कहा यहां म्युनिसिपल्टी का कायदा है, मुसाफिर का नाम लिखा जाता है। लेकिन मैं देख रहा था कि मेरे सिवा उसने किसी का नाम-ठाम नहीं पूछा न म्युनिसिपल्टी के एसे किसी कानून की ही बात समझ में आने लायक थी। 'किन्नी नुमा' सफेद खादी टोपी के लिए ग्वालियर-राज्य में कोई छः मास पहले जो नोटिस निकला था वह मुझे याद था। ग्वालियर-राज्य के खुफिया पुलिस की इस बेवकूफी और कमजोरी पर मुझे दुख हुआ। मेरे स्थान पर भी पुलिस ने मेरी पूछ-ताछ की थी।

शान्ति या क्रान्ति

ग्वालियर में इससे पहिले दो तीन दफा आ चुका था। ग्वालियर राज्य के साथ मेरा स्वाभाविक प्रेम है। अब की बार मेरी आंख खुली थीं। वहां के लोगों के दिल मुझे दबे हुए दिखाई देते थे। एक धार्मिक उत्सव में भजन-मण्डली के कुछ लड़कों के सिर पर रंगीन खादी टोपियां नजर आईं। एक सर्राफ ने मुझसे खादी की बातचीत छेड़ी। मैंने पूछा-आप खादी क्यों नहीं पहनते? उन्होंने जवाब दिया-जनाब, हमें महाराजा सा० से शत्रुता नहीं करनी है! इस उत्तर को यदि हम ग्वालियर राज्य की प्रजा के हृदय का प्रतिनिधि मानें तो ग्वालियर राज्य में स्वदेशी-धर्म की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। मैं जहां तक सोचता हूं, जरा भी अक्ल रखनेवाले कोई देशी राजा अपने राज्य की पैदायश का उपयोग करने से अपनी प्रजा को नहीं रोक सकते। फिर प्रजा को खादी धारण करने से इतना कल्पित भय क्यों? इसका कारण मेरी समझ में देशी राजाओं और उनके कर्मचारियों की अंधाधुंधी और अस्थिर नीति, तथा कागजी कानून और व्यवहार के कानून में भेद, है। इससे प्रजा पर एसा रौब और भय बिना जाने छाया रहता है कि वह अपने को निर्वीर्य और निकम्मी समझने लगती है। इस मृतक शान्ति से क्या सजीव क्रान्ति अच्छी नहीं? कायर पुरुष से पुरुषार्थी पुरुष अच्छा नहीं?

कदरदानी!

लौटती बार ग्वालियर स्टेशन पर ज्यों ही मैं ट्रेन में चढ़ा, दरवाजे पर खड़े एक बड़े कद्दे, पठान फौजी मुसल्मान ने कहा-भाई इन्हें आने दो, इनकी तो बड़ी जरूरत है। अन्दर घुसने पर एक आदमी ने मुझसे कहा-यहां नहीं, यहां बैठिए। इस पर फिर उन साहब ने फरमाया-"अजी ये तो एसे लोग हैं कि जहां बिठा दोगे वहां बैठ जावेंगे-ये तो पाखाने में भी बड़ी खुशी के साथ रहेंगे।" मैंने अपने दिल में कहा खां साहब ने खूब कदर की!

दिमाग ही और किस्म का है!

मेरे सामने की पटरी पर एक देहाती भाई बैठा हुआ था। मेरे बैठते ही मेरे पास बैठे हुए एक साधु बाबा ने उसे ललकार कहा-उठ यहां से! चमार सयूर, सब के बराबर बैठता है? मेरे कान इन शब्दों को न सह सके। मैंने चमार-भाई से कहा 'नहीं भाई, तुम आराम से बैठो। यह कोई बात नहीं कि चमार होने से मनुष्य नहीं रह गये हो। फिर मैंने बाबाजी से पूछा—महाराज, इस का क्या अपराध है जो आपने इसे इतना डांटा-डपटा। बाबाजी ने कहा-देखते नहीं हो वह चमार है, गन्दा काम करता है। मैंने कहा-गन्दा काम करता है? यह तो मरे ढोरों को हमारे बीच से उठा कर-अपने आरोग्य को खतरे में डाल कर भी हमारे आरोग्य में सहायता देता है। यह सुनते ही बाबाजी ने झल्लाकर कहा-मैं आपसे बहस करना नहीं चाहता। आप लोगों का तो दिमाग ही और किस्म का है!

खादी क्यों पहनते हो?

बारीकुई जंक्शन पर मैं रात को कोई २ बजे मेल के तीसरे दरजे के डब्बे में घुसा। एक भाई सो रहे थे। डब्बे में जगह खाली थी। मुझे अहमदाबाद तक सफर करनी थी। मैंने आवाज लगाकर उन्हें उठाना चाहा। उन्होंने आंख खोली और त्यौरी चढ़ा-कर भर्त्सना के स्वर में कहा—खादी क्यों पहने हो? विलायती कपड़ा क्यों नहीं पहनते। बड़े सत्याग्रही बने हो! सोते को जगाना कौनसा धर्म है? मैंने कहा-तो भाई, क्या यह भी धर्म है कि एक मुसाफिर सोता रहे और [illegible] को खड़े खड़े कष्ट उठाने दे। उसने और तेज हो कर कहा [illegible] तुम तो धर्म की दुहाई देते हो, लोगों के नेता बनते हो, [illegible] हो, तुम यह अधर्म क्यों कर सकते हो? मैंने कहा—यदि आप बिमार होते, स्त्री होते, बच्चे होते तो मैं हरगिज आपको कष्ट न देता। फिर आपका सोना नियम के भी विपरीत है। इसपर उसने कहा—तुम तो कानूनों को मानते ही नहीं हो, फिर नियम कैसा? और फिर वे मेरी खादी पर टूट पड़े। मैं उनके दिल की कसक को ताड़ गया। मुझे हंसी भी आई और दया भी आई। मैंने कहा—मालूम होता है आप को किसी खादी पहनने वाले ने कहीं तंग किया है (ये विलायती कपड़े का रोजगार करते हैं) और उसका बदला मुझ पर निकाल रहे हैं। सुनते ही उनके दिल की कली खिल उठी। कहा—हां, बात तो आपने बड़े पते की कही। इसके साथ ही उनका स्वर भी कुछ नरम हुआ। बोले—तुमने खादी पहन कर जो अधर्म किया उसके लिये मैं तुम्हारे दिल को चोट पहुंचाना चाहता था। मैं देखना चाहता था कि तुम कितने अहिंसा के पाबन्द हो। हम तो सांप को भी मारना पाप समझते हैं। आपने मुझे सोते से जगाकर कितनी हिंसा की? मैंने कहा—मैं तो दूसरे के दिल को चोट पहुंचाना भी हिंसा समझता हूं। मेरे अहिंसा-भाव की परीक्षा इस बातचीत में आपने कर ही ली होगी। फिर भी मैं आप को खुले दिल से कहता हूं कि आप इससे भी कड़े वाग्बाण मुझ पर छोड़िए—देखिए, मैं एक भी शब्द आपके दिल को चोट पहुं-चाने के उद्देश से कहता हूं। इसपर वे और नरम हुए। थोड़ी ही बातचीत के बाद उन्होंने कहा—साहब, सब आदमी आपके जैसे नहीं होते। मैं सो रहा था। एकदम नींद टूटने से आदमी पागल हो जाता है। माफ कीजिएगा। मैंने कहा—जैसे हम होते हैं वैसा ही हमें दूसरा दिखाई देता है। इसके बाद बैठने की बात तो ठीक मुझे सोने के लिए भी जगह मिल गई!

हरिभाऊ उपाध्याय

यरोडा की कुंजी

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रतिका „ -)।
विदेशों के लिए „ ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक ३

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक—प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, भाद्रपद वदी ७, संवत् १९८०
रविवार, २ सितंबर, १९२३ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

कुरबानी का मतवाला

श्री महादेव भाई ने 'यरोडा की कुंजी' में कहा है—कुरबानी तो मौलाना महम्मद अली का प्राण है। उसके बाद ही मौलाना साहब के झांसी के व्याख्यान की रिपोर्ट पढ़ने को मिली। उसमें मौलाना साहब ने फरमाया है—"महात्मा गांधी के बिना मुझे यहां सूना मालूम होता है। वे हमारे महान् नेता हैं। वे मुझे अपने भाई शौकत अली से भी ज्यादह प्यारे हैं। वे हिन्दुस्तान की रूह हैं। मेरा सब से पहला फर्ज है यरोडा जेल के फाटक को खोलना।" और इसके बाद कहा कि "देहली की महासभा की खास बैठक के वक्त महासमिति में मैं यह तजवीज पेश करने वाला हूं कि महासमिति और कार्य-समिति के हरएक सदस्य को इस प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत करना चाहिए कि मैं मुल्क की आजादी के लिए हमेशा जान तक कुरबान कर देने को तैयार हूं।" और सबसे पहले मैं इसपर दस्तखत करूंगा।

कुरबानी के मतवाले महम्मद अली को ही यह तजवीज सूझ सकती थी। मौलाना साहब के रोम रोम से यही कुरबानी की ध्वनि निकल रही है।

पिता बनाम पुत्र

त्यागमूर्ति पं. मोतीलाल जी नेहरू ने अपने कई भाषणों में नागपुर-सत्याग्रह को कोसा है। वे फरमाते हैं कि यह तमाम कुरबानी फजूल गई। इससे असहयोग की गति एक इंच आगे नहीं बढ़ी। इसमें कहीं असहयोग की जीत नहीं हुई। इधर उनके सुपुत्र पं. जवाहरलाल नेहरू ने केनिया हडताल वाले अपने भाषण में कहा है कि केनिया के अन्याय को दूर करने का एक ही उपाय है स्वराज्य। और उसका रास्ता हमें नागपूर के सत्याग्रह ने बता दिया है। बुढापे और जवानी की दृष्टि में कितना अन्तर है!

राष्ट्रीय संगीत-मंडल

संगीत भारतवर्ष की एक प्राचीनतम कला है। वह जीवन का एक सबसे बडा सौन्दर्य और माधुर्य है। हिन्दू-धर्म की प्रत्येक मंगल और धर्म-विधि में संगीत एक आवश्यक बात है। पर दुर्भाग्य-वश हीन और चरित्रभ्रष्ट लोगों के संसर्ग से यह कला भी हीन समझी जाने लगी और समाज के भद्र नर-नारी उससे चौंकने लगे। धन्यवाद है पं. विष्णु दिगंबर पलुसकर को जिन्होंने शिक्षित और भद्र समाज में संगीत-विद्या के प्रति प्रेम, आदर और अनुराग उत्पन्न किया। उन्हीके शिष्य, सत्याग्रहाश्रम, साबरमती के संगीत शास्त्री पं. नारायण मोरेश्वर खरे के प्रयत्न से अहमदाबाद में राष्ट्रीय संगीत मंडल की स्थापना हाल ही में हुई है। महात्मा गांधी संगीत के बडे रसिक हैं। जेल जाते समय उन्होंने शास्त्री जी को यह सन्देश दिया था कि भारत-भर में संगीत का प्रचार कर दो। उसीके अनुसार प्रथम गुजरात की राजधानी में उन्होंने यह प्रयत्न प्रारंभ किया है और सारे भारत में उसका प्रचार करने की महत्वाकांक्षा वे रखते हैं। और मुझे यह कहते हुए आनन्द होता है कि अपने गुरु के जीवन-कार्य की पूर्ति के योग्य संगीत का उत्कृष्ट शास्त्रीय और व्यावहारिक ज्ञान तथा महात्माजी की इच्छा-पूर्ति के योग्य तप और त्याग के भाव, दोनों का सम्मेलन खरे शास्त्री जी में है, जिससे उनके इस अंगीकृत कार्य में सफलता मिलना कठिन नहीं मालूम होता। जब तक शास्त्री जी गुजरात में राष्ट्रीय संगीत का प्रचार अच्छी तरह नहीं कर लेंगे तबतक यदि उनके गुरुबंधु जो भारत के प्रायः सब भागों में पहुंच गये हैं अपने अपने भाग में राष्ट्रीय संगीत-मंडल स्थापित कर के उसके द्वारा राष्ट्र का सन्देश पहुंचाने का उद्योग करें तो शास्त्रीजी का काम आसान हो जायगा।

मंडल का उद्देश है शहर तथा गांवों के लोगों में संगीत का अनुराग और शौक पैदा करना तथा संगीत के द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन में दिलचस्पी पैदा करना। इसके साधन इस प्रकार रक्खे गये हैं—१. संगीत की तालीम मुफ्त देना २. लौकिक संगीत के पुनरुद्धार का प्रयत्न करना और गुजरात के द्वारा संगीत को पुष्ट करना। ३. व्यक्तिगत संगीत के साथ सामाजिक संगीत के विकास का प्रयत्न करना ४. संगीत-विषय पर शास्त्रीय चर्चात्मक भाषण करना और कराना ५. राष्ट्रीय परिषदों आदि के मौके पर संगीत के द्वारा सहायता करना ६. संगीत परिषद् के द्वारा संगीतज्ञ जनों को समाज के नजदीक लाने का प्रयत्न करना ७. संगीत-विषयक मासिक पत्र निकालना ८. संगीत पुस्तकालय और संग्रहालय स्थापित करना ९. संगीत-संशोधन-संबंधी प्रयत्न करना और १०. देश की संगीत-विषयक संस्थाओं को यथाशक्ति मदद करना।

ह० उ०

सातवीं हिन्दू-महासभा

(२)

सातवीं हिन्दू-महासभा की बैठक निर्विघ्न समाप्त हो गई। पू० मालवीयजी के उपसंहारात्मक भाषण के अनुसार सचमुच इसे पहली हिन्दू-महासभा समझना चाहिए। क्योंकि यह बैठक हिन्दू जाति के जीवन में एक प्रकार के नवीन चैतन्य के उदय होने की शुभ सूचना-रूप है।

महासभा में कुल २१ प्रस्ताव पास हुए हैं। पहले प्रस्ताव में लाला लाजपतराय की रिहाई पर हर्ष प्रकट किया गया है और दूसरे में पं. रामभजदत्त चौधरी की मृत्यु पर खेद। तीसरे में यह चेतावनी दी गई है कि हिन्दू-जाति और धर्म की न्याययुक्त रक्षा और उन्नति के लिए जो कुछ उपाय और यत्न वह करे उसमे इस बात पर ध्यान रक्खे कि वह जाति और देश के आत्यन्तिक हित—भारतवर्ष में शान्ति, सुख और स्वराज्य स्थापित करना तथा उसे अविचल रखना—के विरुद्ध न हो। चौथे में हिन्दू-महासभा की प्रान्तीय शाखायें स्थापित करने के उद्देश से हि० म० सभा की अन्तरंग समिति की एक उपसमिति नियत की गई है। पांचवें में समाज-सेवक दल स्थापित करने का अनुरोध किया गया है। छठे में कहा गया है कि नाभा महाराज के गद्दी से अलग होने का मामला अब कलिंग प्रिंसेस की एक कमिटी के सामने विचार के लिए रक्खा जाय। सातवें में हिन्दुओं को आदेश किया गया है कि वे अपने बालक-बालिकाओं को ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याभ्यास करावें। आठवें में प्रत्येक हिन्दू के लिए हिन्दी सीखने और हिन्दी में ही अपना सारा कारोबार करने की आवश्यकता बताई गई। नवें में गोरक्षा के भिन्न भिन्न उपाय बताये गये—यथा—कसाइयों के हाथ गायें न बेचना, कृपाओं को गो-दान न करना, गोचर-भूमि छुड़वाना, रेल लाइनों पर तार लगवाना, आदि। दसवें में कहा गया है कि स्वदेशी वस्त्र का व्यवहार किया जाय और हाथकते सूत और देश के बने कपड़े का अधिक उपयोग किया जाय। ग्यारहवें में अजमेर के फसादी मुसलमानों की निन्दा की गई। बारहवें में हिन्दू और मुसलमानों से यह आशा की गई है कि वे आरती और नमाज संबंधी झगड़ा न होने दें। तेरहवें के द्वारा मलकानों की शुद्धि का समर्थन किया गया। चौदहवें में विद्वत्परिषत् की सम्मति से विधवाओं की रक्षा, धार्मिक शिक्षा और धर्मानुसार जीवन व्यतीत करने के उपायों की व्यवस्था करने का निर्णय किया गया। पन्द्रहवें में यह तय हुआ कि कन्या का विवाह १२ और पुरुष का १८ वर्ष से पहले न किया जाय। सोलहवें में देहली प्रान्तीय हिन्दूसभा आदि को कुछ रुपया देने, सत्रहवे में प्रवास से लौटे हिन्दुओं को पुराने हक दिलाने और बिरादरी में लेने की तजवीज हुई। उन्नीसवें में कनिया के निर्णय पर असन्तोष प्रकट किया गया। बीसवें में सिक्खों के भिन्न भिन्न फिरकों में प्रेम कराने के लिए एक समिति बनाई जाने की तजवीज हुई। इक्कीसवां प्रस्ताव इस प्रकार है—"हिन्दू महासभा का यह दृढ़ निश्चय है कि अन्त्यज-हिन्दुओं के हृदय में हिन्दूधर्म में श्रद्धा और प्रीति अटल रखने के लिए यह आवश्यक है कि उनको अपना व्यवसाय करते हुए भी, अधिक शुचिता से रहने और नित्य धर्मानुकूल आचरण करने की शिक्षा और उपदेश देने का यत्न किया जाय और उनके बालकों को शिक्षालयों में पढ़ाने, उनको गांव के सर्व साधारण कुओं से जल लेने और देवताओं का दर्शन करने और सर्व-साधारण हिन्दू-सभाओं में स्थान पाने का सर्व-प्रीतिजनक प्रबन्ध महासभा की समिति उस विद्वत् परिषद् की सम्मति से कर निश्चय करें जो शुद्धि के विषय में बनाई गई है।

हिन्दू-महासभा की तमाम कार्रवाई तथा इन प्रस्तावों पर यहां केवल दो दृष्टियों से विचार किया जायगा। एक तो हिन्दुओं की उन्नति और दूसरे हिन्दू-मुसलमानका प्रश्न; क्योंकि पहला तो हिन्दू महासभा का मुख्य उद्देश है और दूसरा इस अधिवेशन का मुख्य प्रेरक कारण। यदि मलाबार और मुल्तान में कुछ फसादी मुसलमान हिन्दुओं पर ज्यादती न करते तो हिन्दू-महासभा को यह रूप न मिला होता। खैर।

मेरी समझ में हिन्दुओं की उन्नति में यदि आज सबसे बड़ी कोई बाधा है तो वह है मौजूदा सरकार। कोई जाति और धर्म तबतक उन्नति नहीं कर सकता जबतक उसे बोलने, लिखने, काम करने, आदि की पूरी आजादी नहीं होती। हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म न केवल आजाद नहीं हैं बल्कि ऐसी अप्राकृतिक शासन-प्रणाली के द्वारा उसका एक एक अंग जकड़ दिया गया है कि वह उफ् तक नहीं कर सकता। हम उसी हद तक अपने धर्म पालन और उन्नति के प्रयत्न में आजाद दिखाई दे सकते हैं जिस हद्तक हम वर्तमान सरकार के लिए बाधक नहीं हो सकते। गुलामी का जहर हमारे मन और बुद्धि में इतना पैठ गया है कि सच्ची उन्नति की कल्पना तक अभी हमें नहीं हो रही है। इसलिए उन्नति के पहले जरूरत है आजादी की। और मैं देखता हूं कि इस विदेशी सरकार की गुलामी से हिन्दू-धर्म और हिन्दू जाति की जान बचाने के लिए हिन्दू-महासभा में कोई उद्योग नहीं हुआ। न स्वागत-सभापति, न अधिवेशन के सभापति, न दूसरे सदस्यों ने कोई तजवीज पेश की न कोई प्रस्ताव पास हुए। जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए हैं उन्हें हम 'हिन्दुओं के सामाजिक हित और बलवृद्धि का प्रयत्न' कह सकते हैं। अधिकांश प्रस्ताव शाब्दिक हैं। प्रान्तीय शाखायें स्थापित करने, समाज-सेवक दल (पू० मालवीयजी की सूचना के अनुसार महावीर दल) गो-रक्षा, सिक्खों के वैमनस्य को मिटाने, शुद्धि, विधवाओं की रक्षा, अछूतों का सुधार केवल इन प्रस्तावों को असली जामा पहनाने में हिन्दू-महासभा कुछ प्रयत्नशील दिखाई देती है। 'करार' और 'ठहरौनी' की प्रथा दूर करने, मन्दिरों तथा महन्तों के सुधार, स्त्रियों की उन्नति, वर्णाभिमान का त्याग, इन अत्यन्त आवश्यक विषयों की ओर, खेद है, हिन्दू-महासभा का ध्यान ही नहीं गया। हिन्दुओं के अन्दर अपने धर्म के उच्च तत्वों के प्रचार, हिन्दुओं के जीवन को सच्चा धार्मिक जीवन बनाने, के लिए भी इस बार कोई प्रयत्न नहीं हुआ। इस अधिवेशन में जो कुछ काम हुआ है उसे हम "हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म की उन्नति या विकास का उद्योग" नहीं कह सकते; बल्कि "हिन्दुओं की सामाजिक एकता, सामाजिक बल और सामाजिक हित की वृद्धि का कुछ प्रयत्न" कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में हिन्दू-जाति की धार्मिक, आत्मिक या आचारिक उन्नति की अपेक्षा हिन्दू-जाति की व्यावहारिक और सामाजिक बढ़ती पर अधिक ध्यान रक्खा गया है और उसमें भी पूर्वोक्त कुछ जरूरी और महत्वपूर्ण विषय बिलकुल ही छोड़ दिये गये हैं। अधिक विचार करने पर यह दिखाई देता है कि ऐसे प्रस्ताव पास किये गये हैं जिनसे हिन्दू-समाज के किसी अंग को—किसी वर्ग को क्षोभ नहीं हो सकता और इसलिए उनकी ओर से किसी प्रकार का ऐसा विरोध नहीं हो सकता जिसका प्रतिकार महासभावादियों को करना पड़े—फिर उस अंग या वर्ग में चाहे कितने ही तेज सुधारों और आमूल परिवर्तन करने की जरूरत हो—यहांतक कि विधवाओं की रक्षा और अछूतों का प्रश्न भी विद्वत् परिषद् के सिपुर्द कर देना पड़ा। हिन्दू-महासभा की इस सावधानी या दूरदर्शिता के लिए उसकी तारीफ करें या उस की साहस-हीनता के लिए उसे कोसें? वर्तमान समय में मुझे

दूरदर्शिता की अपेक्षा साहस ही अधिक पेश और ऐश मालूम होता है ।

इनमें तीन प्रस्ताव ऐसे स्वीकृत हुए हैं जिनका असर हिन्दू-मुसल्मानों की एकता पर हो सकता है । समाज-सेवक दल की स्थापना, शुद्धि-आन्दोलन का समर्थन और हिन्दू-महासभा की प्रान्तिक शाखायें स्थापन करना और पू० मालवीयजी का आरंभिक भाषण मुसल्मानों को चौंका सकते हैं । वे यदि न चौंके तो निस्सन्देह उनकी दानाई और समझदारी है और उनके न चौंकने में ही उनका और सारे देश का हित है । तथापि इस मौके पर मैं इस बात को छिपाना नहीं चाहता कि मुसल्मान लोग तीव्र आलोचना की दृष्टि से हिन्दुओं की इस हलचल को देख रहे हैं । समाज-सेवक दल की स्थापना को वे मुसल्मानों के खिलाफ बन्दिश समझ रहे हैं और शुद्धि-आन्दोलन का समर्थन उन्हें इस्लाम के तीव्र प्रचार के लिए उत्तेजित करे तो आश्चर्य नहीं । समाज-सेवक-दल संबंधी प्रस्ताव की भाषा—"जहां संभव हो यह दल और धर्मानुयायी भाइयों के साथ मिल कर भी शान्ति-रक्षा के लिए काम करें"—स्पष्ट सूचित करती है कि 'सामाजिक सेवा या आत्म-रक्षा के लिए' उन्हें दूसरी जातियों के साथ मिल कर काम करना अनिवार्य नहीं है और सामाजिक सेवा से मतलब महज हिन्दुओं की सेवा से है ।

इन विचारों के खिलाफ महासभा का तीसरा प्रस्ताव—"यह नितान्त आवश्यक है कि भारतवर्ष में बसनेवाली सब जाति और धर्मों के लोगों में परस्पर प्रीति और मित्रता का भाव रहे"—आदि पेश किया जा सकता है और मैं भी उसके मूल्य को कम आंकना नहीं चाहता । खास कर पू० मालवीयजी के आखिरी दिन के भाषण का यह अंश प्रत्येक हिन्दू-मुसल्मान भाई के ध्यान से पढ़ने योग्य है—

"यह कभी न भूलो कि हमारा देश भारत है । इसमें भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी बसते हैं । देश का भला इस बात में है कि सब में परस्पर मेल रहे । यदि यह याद रहा तो ठीक है वरना हिन्दूसभा निष्फल हो जायगी । यह यदि याद रहा तो इससे स्वराज्य पाने में भारी मदद मिलेगी । गिरजे या मसजिद की तरफ यदि हमारी नजर उठे तो आदर की नजर उठे । यदि किसी मुसल्मान या ईसाई के प्रति कोई शब्द निकले तो आदर का शब्द निकले । तुम्हारी बेइज्जती हो तो सह लेना; पर दूसरों का दिल दुखाने वाला शब्द मत बोलना । याद रखो, बलवान् क्षमा: सहन किया करता है और कमजोर को जल्दी गुस्सा आया करता है । यदि इस समय आप बल का ध्यान कर रहे हो तो इसका प्रमाण दो । यदि कुछ भाई मन्दिरों पर भी हाथ उठावें तो आप उनपर उतना ही हाथ उठाना जितना उनकी दुष्टता को दबा सके । और बाकी प्रेम रखो । एक अपनी विवाहिता स्त्री के सिवा अन्य सब को चाहे वे मुसल्मान हों, चाहे ईसाई, अपनी माता के समान समझो । ऐसा न हो कि किसीको यह कहने का मौका मिले कि हिन्दू-सन्तान अपने धर्म को खो बैठी है । अपना चलन ऐसा बनाना कि किसी मुसल्मान या ईसाई को जरा शिकायत न होने पावे । अपना लक्ष्य यही बनाना 'सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः । सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्' । अपनी भी उन्नति हो और दूसरों का भी भला हो ऐसा ही लक्ष्य रखना ।"

हिन्दू-महासभा की इस हलचल को बे-मौका, राष्ट्रीय एकता और स्वराज्य के लिए अहितकर मानते हुए भी मैं मुसल्मान भाइयों को एक इशारा करना जरूरी समझता हूं । बदकिस्मती से चन्द मुसल्मान शोहदों की ज्यादतियों की वजह से ही हिन्दुओं में यह जोश फैला है । इससे आप उलटा सबक न लें । ऐसी कोशिश करने के बजाय कि उन फसादी लोगों को अपने काबू में करके आयंदा ऐसे फसाद करना बन्द कर दें, आप हिन्दू-महासभा के मुकाबले में कोई तेहरीक खड़ी करने की गलती न करें । हिन्दुओं की यह गलती अगर रत्तीभर है तो आपकी सेरभर होगी । इसके खिलाफ यदि आप हिन्दुओं की नाराजगी की जड़ ही काट देंगे, मुसल्मान शोहदों के लिए ऐसी हरकतें नामुमकिन कर देंगे—तो हिन्दुओं की यह हलचल अपने आप ठीक रास्ते पर आ जायगी ।

हरिभाऊ उपाध्याय

शुऐब साहब छूटे

महात्माजी के बाद होनेवाले 'यंग इंडिया' के सम्पादक श्री शुऐब कुरैशी को उनके एक मित्र(?) ने जुरमाने की रकम चुका के से अदा कर के यरवडा जेल से तीन महीना पहले ही छुड़ा लिया है । कहावत ठीक ही है—खुदा ऐसे मित्रों से बचावे ! शुऐब साहब की तन्दुरुस्ती बहुत खराब हो गई है । पर दिल ज्यों का त्यों बहादुर बना हुआ है । पाठकों को याद होगा कि 'महात्माजी की सजा' पर पहला ही लेख शुऐब साहब ने लिखा था और उसीपर तथा एक और लेख पर उन्हें १ वर्ष की सख्त कैद और १०००) जुरमाने की सजा दी गई थी । परमात्मा उन्हें शीघ्र आरोग्य-प्रदान करें और वे हमें पूर्ववत् देश की सेवा नवीन उत्साह के साथ करते हुए नजर आवें ।

ह० उ०

हिन्दी-नवजीवन

जेल-दिन ५४२　रविवार, भाद्रपद बदी ७, सं. १९८०

यरोडा की कुंजी

हाल ही जो वीर-केसरी जेल से छूटे हैं उनकी गर्जना से मुल्क की दशा में एक नई जिन्दगी आ गई है, नया खून और नया जोश उछलने लगा है। पहले डाक्टर किचलू छूटे। उनके एक एक लफ्ज में महात्माजी को छुड़ाने की बेचैनी भरी हुई थी—स्वराज की छोड़ दीजिए, दूसरी तमाम बातें एक तरफ रखिए, फिलहाल इतना ही काफी—पहले महात्माजी को छुड़ाइए। उनके तमाम रागों में बस एक ही अटल भाव, एक ही धुन थी—"एक हि साधे सब सधे।" उसके बाद छूटे लालाजी। उनका भी पहला मकसद महात्माजी को छुड़ाना है। जबतक वे हमारे बीच न आ जायं तबतक काम करने के लिए अलबत्ते उन्होंने अपनी एक तजवीज पेश की है। मौलाना महम्मद अली तो महात्माजी के नाम को रटते हुए ही जेल से निकले हैं। जेल से छूटते ही तुरन्त उन्होंने पू० कस्तूर बा को झांसी से तार दिया—

"आज छूटा हूं। ईश्वर में श्रद्धा और देश-भाइयों पर विश्वास रख कर यरोडा की कुंजी खोज रहा हूं।"

अखबारों के प्रतिनिधियों को भी लंबा-चौड़ा सन्देशा देने की गुंजायश उनके पास नहीं थी—"मैं तो छोटी जेल से निकल कर बड़ी जेल में आया हूं। जी को चैन नहीं है। महात्माजी अभी तक जेल में हैं।" बाजों का हर्ष-नाद भी महात्माजी के बिना उनके कानों को नागवार हुआ, दुःखद हुआ। रामचन्द्रजी के बिना सारा घर, मातायें, अयोध्या, सब को बेकार समझने वाले भरत, राह में जहां कहीं रामचन्द्रजी की टोह लगती वहीं दीवाने की तरह गले मिलते हुए भरत, हर तरह के सुख और आनन्द के साधन का बेरुखी के साथ त्याग करने वाले भरत याद आते हैं।

इस रामायण की कथा में और हमारी कथा में इतना ही अन्तर है कि राम पिता के वचन का पालन करने के लिए चौदह वर्ष की मीयाद बांध कर निकले थे और आज के राम को लोगों ने जेल में भेजा है। आज के राम के वियोग की अवधि लोगों ने बांध दी है, और लोगों को चेतावनी देने के लिए मौलाना महम्मद अली जैसे वीर रामनाम की धुन लगाते हुए जेल से बाहर निकले हैं।

कलियुग के अनेक वर्णन हमारे पुराने काव्यों और धर्मग्रन्थों में मिलते हैं। कलियुग में होनेवाले अत्याचार, अनाचार और अनीतियों का बेहद वर्णन उनमें आता है परन्तु किसी कवि की आर्ष प्रतिभा में कलिकाल में राम के लिए व्याकुल भरत की तरह, हिन्दू गांधी के लिए तड़पते मुसल्मान महम्मद अली और किचलू के अवतार की सूझ नहीं उपजी। हमारा तो न केवल जन्म ही इस जमाने में हुआ है; बल्कि हमने तो इस भाईचारे को अपनी आंखों से निहारा और इनके चरणों में बैठने का सौभाग्य भी प्राप्त किया। इस भाई-चारे से हिन्दू-धर्म और इस्लाम दोनों धन्य धन्य हुए हैं। आज कुछ नादान हिन्दू और कुछ नादान मुसल्मान भले ही एक-दूसरे का सिर फोड़ते हैं—पर इससे इन दोनों धर्मों का तेज किसी प्रकार मलिन नहीं हो सकता। दोनों धर्म के प्रतिनिधि-दोनों धर्म के अवतंस परस्पर किस भाव से रहते हैं, इसी बात को देख कर दोनों धर्मों के तेज की परख हो सकती है। यदि यह कहें तो अत्युक्ति न होगी कि मौलाना महम्मद अली ने जेल से आकर हिन्दू-मुसल्मान-एकता पर लगे घावों को ठण्डा कर दिया है।

और इस प्रसंग में हिन्दू-मुसल्मान-एकता की भी कुंजी मिलती है। हिन्दू-मुसल्मान-एकता की कुंजी है व्यक्ति-पूजा। हिन्दू-धर्म के मूल में ईसाई-धर्म और इस्लाम की तरह, हजरत ईसा-मसीह और हजरत महम्मद पैगंबर की व्यक्ति-पूजा चाहे न हो; पर गांधीजी की तो नस नस में व्यक्ति-पूजा भरी हुई है। मौलाना महम्मद अली की व्यक्ति-पूजा की तो बात ही क्या पूछना? इनके साथ अगर बातें करने लगें तो पैगम्बर साहब की बातें करते करते आपकी आंखों से आंसू की झड़ी लगवा दें। ऐसी प्रबल व्यक्ति-पूजा से, इस पूजा के वीर गांधीजी और मौलाना महम्मद अली दोनों एक दूसरे के साथ बंधे हुए हैं। महात्माजी जब अली-भाइयों के साथ यात्रा करते थे तब इसी व्यक्ति-पूजा को जगह जगह प्रकट करते थे। "हम साथ घूमते हैं—हमें एक दूसरे के काम में मदद करते हुए आप देखते हैं। इसीमें आपको हिन्दू-मुसल्मान—एकता दिखाई देगी" उनके ऐसे वचन उनके भाषणों के हर एक पन्ने में दिखाई देंगे। यही व्यक्ति-पूजा हिन्दू और मुसल्मानों को एकता के सूत्र में बांध सकती है। अच्छे से अच्छे मुसल्मान के प्रति अच्छे से अच्छे हिन्दू का प्रेम हुए बिना रही नहीं सकता। और जब हम दूसरे के मजहब का ख्याल करते हैं तब उसके अच्छे से अच्छे अनुयायी का ही यदि ख्याल करें तो उस धर्म के प्रति हमारा विरोध-भाव, यदि हो तो, तुरन्त ही दूर हो जाय। खुदा-परस्त मौलाना बन्धु अपनेको खुदा के हाथों में सौंप कर कहते हैं—"यदि मैं हिन्दू-मुसल्मानों की एकता न करा सका तो मैं समझूंगा कि मैं अपना फर्ज अदा न कर सका।" परन्तु इन नम्र वचनों में ही हिन्दू-मुसल्मानों की एकता का मूल है—यरोडा की कुंजी की टोह लगाने में ही हिन्दू-मुसल्मान-एकता छिपी हुई है।

यह कुंजी कहां है? स्पष्टवक्ता डाक्टर किचलू ने इसका जवाब दिया सत्याग्रह। कवि-हृदय मौलाना महम्मद अली ने इसका त्वरित उत्तर दिया—"महात्माजी के अहिंसात्मक असहयोग के कार्यक्रम पर मैं अटल हूं। मैंने अपना एक भी विचार बदला नहीं है।" सैयद रजाअली के तार के जवाब में उन्होंने उनसे पूछा:—

"उलेमा लोगों के जिस फतवे के मुताबिक इस्लाम शरीयत की रू से दो साल पहले सहयोग हराम था उसी फतवे की रू से आज वह हलाल कैसे हो सकता है—जबतक कि जजीरतुल अरब पूरी तरह मुसल्मानों के ताबे नहीं हो जाता और इस्लाम की शरीयत के मुताफिक खलीफा का इस्लामी दुनिया के साथ का संबंध कुबूल नहीं किया जाता? मेरी अदम मौजूदगी में आप ब्रिटिश सरकार से हमारे मजहबी फरायज को मंजूर करा पाये हैं?" अर्थात् उनके खयाल में यरोडा की कुंजी सहयोग में नहीं—धारासभा में नहीं; महात्माजी के बताये कार्यक्रम में है। जिस कुंजी ने उन्हें जेल भेजा वही उनके बाहर लाने की कुंजी है। मौलाना महम्मद अली जो कि महात्माजी के नाम का जप करते हुए जेल से निकले हैं, जानते हैं कि महात्माजी क्या कह गये हैं, उन्हें क्या बात प्यारी थी। वे जानते हैं कि कुरबानी के बराबर एक भी चीज महात्माजी को प्यारी नहीं है और कुरबानी तो मौलाना का प्राण है। महात्माजी बहुत पहले कह चुके हैं—

"इसी प्रकार आयर्लैंड भी गत कई वर्षों से मनुष्य-जाति को धर्रा रहा है। और इंग्लैंड ने उस समय उसकी बात मानी जब कि उसकी आंखें हजारों आयरिश देशभक्तों की नसों से खून की नदियां बहने के बीभत्स दृश्य को देखते देखते थक गईं। मैं निश्चय-पूर्वक यह बात कहता हूं कि हमारे मनोरथ की पूर्ति कानूनी चतुराई, न्याय के लिए बौद्धिक वाद विवाद, या

कौन्सिलों और सभा-समाजों के प्रस्तावों से होने वाली नहीं। दक्षिण आफ्रिका और आयर्लैंड की तरह हमें भी मनुष्य-जाति का हृदय थर्रा देना होगा। परन्तु दक्षिण आफ्रिका और आयर्लैंड के इतिहास की पुनरावृत्ति करने के बजाय असहयोगी इन दो राष्ट्रों के जीवित उदाहरणों से अपने विरोधी के खून का एक भी कतरा न गिराते हुए स्वयं अपने खून की नदियां बहाने का पाठ सीख रहे हैं। यदि वे ऐसा कर सकें तो वे थोड़े ही दिनों या महीनों में स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे।"

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

धर्मयुद्ध

बच्चों की एक कहानी है जिसमें दो युवक सूरज और चांद के गुणदोष की चर्चा करते हैं और अन्त को सूरज का दावा सरसरी तौर पर खारिज कर दिया जाता है, इस बिना पर कि सूरज हमें सिर्फ दिन के वक्त ही रोशनी देता है और इसके खिलाफ चांद रात में जब कि उस असल जरूरत होती है हमें रोशनी देता है। सत्याग्रह के अभ्यास से हम जो शक्ति प्राप्त करते हैं वह सूरज की रोशनी की तरह है। सारे समाज के अन्दर वह ऐसी अदम्य और स्थायी ताकत पैदा कर देती है और इस तरह चारों ओर छा जाती है कि हमें इस बात का भान ही नहीं रहता कि रोशनी है भी।

तप अर्थात् कष्ट-सहन के द्वारा किये गये प्रतिकार से समाज में जो शक्ति चुपचाप आती है वह वैसी ही है जैसी कि कसरती मनुष्य की ताकत रोज खूब कसरत करने से बढ़ती है। कसरत करने से रोज उसे पसीना आता है, रोज थकावट मालूम होती है, पर नतीजा यह होता है कि वह पहले से अधिक बोझ उठाने और अधिक मेहनत सहने के लायक हो जाता है। शारीरिक बल प्राप्त करने का यही गुर है। ताकत को खर्च किये बिना हम ताकत नहीं हासिल कर सकते। पर जिस शख्स को आरोग्य के नियमों का ज्ञान नहीं है वह इस बात पर ताज्जुब करता और अपनेतईं पूछता है कि कल अधिक पसीना बहाने और थकावट लाने के लिए आज मुझे पूरी ताकत के साथ पसीना और थकावट लाने की क्या जरूरत है? तोभी हम यह बात जानते हैं कि यद्यपि हम शरीर की रक्षा के लिए कपड़े खरीद सकते हैं और एक डण्डा हाथ में रख कर शत्रु से अपना बचाव कर सकते हैं तथापि नित्य कसरत करने से जो तन्दुरुस्ती और जिस्मानी ताकत हमें मिलती है वह हमेशा अचूक हमारा साथ देती है और हमारी हिफाजत करती है। कसरत करने से व्यक्तियों के रगोरेशे और हड्डियां मजबूत होती हैं और सत्याग्रह उस समाज को जो स्वच्छन्द और गैर-जिम्मेदार सरकार की गुलामी भोग रहा है, अचूक ताकत देता है और उसकी सच्ची हिफाजत करता है। सत्याग्रह के द्वारा भीतरी ताकत हासिल करना वा यही कार्य है।

नागपुर के सत्याग्रह युद्ध में हमारी जो विजय हुई है उसका सुबूत न तो हमें अंगरेजों के चलाये अखबारों के इश्तहार में और न हमारे पत्रों की लंबी-चौड़ी बातों में ढूंढने की जरूरत है। उसका पता न हमें दस्तावेजों में और न सुलहनामों में लग सकता है।

वह तो हमें लोगों के हृदय में—उनकी अन्तरात्मा में मिल सकता है। अपनी नाक रखने के लिए दोनों तरफ के लोग अपनी अपनी जीत के गीत गावेंगे-फिर ऐसी हालत में जब कि इस बात का ऐलान नहीं किया गया है या खास तौर पर जिक्र नहीं किया गया है कि किसकी जीत हुई, ऐसा होना और भी स्वाभाविक है।

विजय की कसौटी तो यह है कि इसके बाद दोनों में से किस तरफ के लोग उसी काम को करने की तैयारी नहीं दिखाते? क्या सरकार की यह जुरत हो सकती है कि अब फिर से वह राष्ट्रीय-ध्वज के संबंध में ऐसे मनमाने हुक्म निकाले? क्या मजिस्ट्रेट लोग अब आगे लोगों की ताकत को चुनौती देने के पहले ठहर कर सैकड़ों बार सोच-विचार न करेंगे, सलाह-मशवरा न करेंगे? यही इस बात की सच्ची कसौटी है कि नागपुर के संग्राम में हमारी फतेह हुई या नहीं?

हम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि सत्याग्रह सत्यमय है—सत्य से परिपूर्ण है—सचाई उसका आधार है, सचाई ही उसका ढांचा है और सचाई ही उसका शिखर है। उसकी विजय का ज्ञान हमें लोगों की बातों से नहीं, बल्कि वस्तु-स्थिति से और लोगों के भावों से होता है। जबतक हमारी शिकायत या तकलीफ सच्ची न हो-हम सचमुच उसे महसूस न करते हों तबतक सत्याग्रह में सफलता नहीं मिल सकती। यदि लोग अपने दिलों में किसी अन्याय के दर्द को, चोट को महसूस न करते हों तो वे शान्तिमय प्रतिकार की परीक्षाओं में अधिक दिनों तक नहीं ठहर सकते। यदि हमारे दुख-दर्द सच्चे न हों, यदि हमारे कष्ट-सहन के निश्चय की सहायता के लिए सच्ची तकलीफें हमारे पास न हों तो अन्याय के सामने हमारा सिर न झुकाना और उसके बदले में जबतक वह अन्याय दूर न हो, हर तरह के कष्टों को सहन की तैयारी, ये अपने आप असफल होंगे। और न धनी-मानी आरामतलब लोग अपने ऐशआराम को छोड़ कर जेलों की राह लेंगे और न निर्धन लोग अपने बाल-बच्चों को तकलीफ उठाने और दरिद्रता के भोग भोगने के लिए छोड़ देंगे-यहांतक कि सर्वसाधारण लोग युद्ध के नाम पर चन्दा तक न देंगे-यदि सचमुच राष्ट्र का गहरा अपमान न किया गया हो, उस गहरी चोट न पहुंचाई गई हो और लोगों को उसका सच्चा और पक्का ज्ञान न हुआ हो। अतएव सत्याग्रह का मूल आधार सत्य होना परम आवश्यक है। सरकार ने सोचा था—"लोगों को झण्डे की क्या पड़ी है?" उसने कहा था-"यह राष्ट्रीय ध्वज नहीं है। तुम्हारे बाप-दादे तो इसका नाम भी नहीं जानते थे।" वह कहती थी-"इससे योरपियन लोगों का दिल दुखता है।" इन तथा कितनी ही और बातों का जवाब दिया जा चुका है-कष्ट-सहन के द्वारा दिया जा चुका है और सत्य कर के दिखाया जा चुका है। यदि यह बात सच थी कि इससे लोगों का दिल दुखता है, तो लड़ाई का अन्त इस तरह नहीं हो सकता था। यदि योरपियन लोगों का दिल दुखता था तो उनकी रखवाली सरकार और भी दृढ़ता के साथ लड़ी होती। उनकी तकलीफ सच्ची नहीं थी-इसीसे उनके विरोध और प्रतिकार के हाथ-पांव ढीले हो गये। और यही कारण है जो हमारे प्रतिकार की विजय हुई। कोई आदमी इस बात को अच्छी और फायदमन्द नहीं समझता कि वह झूठी बातों के लिए लड़े और कष्ट उठावे-फिर वह चाहे लोगों की तरफ हो चाहे दूसरी तरफ। मनुष्य-स्वभाव के इसी मूलभूत गुण की भित्ति पर सत्याग्रह की इमारत खड़ी है।

शान्तिमय युद्ध में न केवल ढांचा ही, बल्कि साधन और रीति भी सच्ची होनी चाहिए। नहीं बड़ी सुगमता से दुश्मन की पौबारह हो जायगी। सत्याग्रह की लड़ाई में हम छलकपट की रीति और फर्जी सामग्री के बल पर कभी शत्रु को परास्त नहीं कर सकते। अपनी कमजोरी को छिपाने की हमारी हजार कोशिशों के होते हुए भी निराशा छावेगी और प्रतिघात हुए बिना न रहेगा और हमें लड़ाई जल्द ही बन्द कर देनी पड़ेगी। अक्सर ऐसा होता है कि कमजोर लोग, खुद अपनी और लड़ाई के संचालकों की गलतअन्दाजी से लड़ाई में घुस आते हैं और उसका कदम पीछे हटाते हैं और कभीकभी तो उसे बरबाद भी कर देते हैं। पर इससे भी अधिक खराब चीज है झूठी बातों पर भरोसा करना। इसमें भी

कमजोरी में जमीन-आस्मान का फर्क है। जो शख्स जेल जाता है उसकी आत्मा ऐसी होनी चाहिए जिसके रोम रोम से उस अन्याय के दर्द की कराह निकलती हो जो उसपर लादा गया है। नहीं तो शीघ्र ही उसकी आत्मा उसीके निर्णय के खिलाफ बगावत की आवाज उठावेगी और उसके लिए अंगीकृत शर्तों को सहन करना गैर-मुमकिन हो जायगा। जो सच्चा सत्याग्रही हो उसकी आत्मा को तो कष्ट-सहन से एक प्रकार की सुख-सान्त्वना मालूम होगी-दुःख और सुख के ऐसे मिश्रण का वह अनुभव करेगी जो दोनों को मधुर और पवित्र बना देता है। जो शख्स मिथ्या अभिमान से वश हो कर अथवा किसी गन्दे भाव से प्रेरित होकर प्रतिकार के लिए उद्यत होता है वह लड़ाई में नहीं ठहर सकता। जो लोग धोखे से या अज्ञान से फौज में भरती होते हैं वे अपने आप मैदान छोड़कर भाग जाते हैं। सत्याग्रह का कांटा बड़ा चोखा और बहुत हलका है। वह खरे और खोटे का ठीक ठीक माप बता देता है।

(अपूर्ण)

(यं. इं.) च० राजगोपालाचार्य

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा"

विलायत से रवाना होने के पहले माननीय श्री श्रीनिवास शास्त्री को होटल सेसिल में सर अली इमाम ने प्रीति-भोज दिया था। वहां केनिया के निर्णय के संबंध में श्री शास्त्रीजी ने जो महत्वपूर्ण भाषण किया था वह बडे गौर के साथ पढने योग्य है—

"केनिया के प्रस्ताव से सारे भारतीय संसार को जबरदस्त असन्तोष हुआ है। पर कितने ही मित्रों ने सलाह दी है कि आज तो इस प्रस्ताव को मंजूर कर लें-पीछे रफ्ता रफ्ता हालत को सुधारने की कोशिश करेंगे।

जाल और घूस

पहले मैं इस बात की जाँच करता हूं कि इस प्रस्ताव से मेरे देश-भाइयों को क्या लाभ और क्या हानि हुई। फायदा तो सिर्फ एक ही बताया जा सकता है-पर वह भी पूरा पूरा नहीं। व्यापार करने तथा रहने की जगहें हिन्दुस्तानियों के लिए अलहदा रखने की जो तजवीज थी वह छोड दी गई है। इसे एक लाभ कह सकते हैं। पर यह लाभ इस अर्थ में है कि जो नुकसान होनेवाला था वह न हुआ। लेकिन 'हाई लैंड्स' (ऊंचे प्रदेश) के संबंध में अलहदा आबादी करने की प्रथा कायम रक्खी जायगी और धारासभा तथा म्युनिसिपालिटी के लिए मत देने के हकों के संबंध में भी अलहदा आबादी करने की प्रथा शुरू की जानेवाली है। दस महीने पहले एक इकरारनामा हुआ था (वूड-विंटर्टन एग्रीमेंट) उसके अनुसार यह तजवीज हुई थी कि दस फी सदी हिन्दुस्तानियों को राय देने का हक दिया जाय। परन्तु इस नये प्रस्ताव के अनुसार दस फीसदी से भी अधिक हिन्दुस्तानियों को मत देने का अधिकार मिलता है। पर इससे यदि कोई यह समझता हो कि हम धोखा खा जायंगे तो वह मनुष्य-स्वभाव को नहीं जानता। मतदाताओं की संख्या अधिक कर देने के बहाने हिन्दुस्तानियों का गोरों को राय देने का अधिकार छीन लिया जाता है। 'हाईलैंड्स' के नन्दन वन से निकाले गये लोगों के सन्तोष के लिए 'लोलैंड्स' (निचले प्रदेश का) कितना ही भाग अलग रक्खा गया है। इस कृपा को हिन्दुस्तानी लोग एक जाल और घूस समझते हैं जो फेंक देने के लायक है।

और अब मैं इसके ठीक ठीक नुकसान बताऊं? 'हाईलैंड्स' के संबंध में निर्लज्जता-पूर्वक जो पक्षपात किया गया है उसपर पहले तो सिर्फ भारतीय मन्त्री ने आनाकानी की थी। पर अब तो ब्रिटिश सरकार, ब्रिटिश पार्लियामेंट की मुहर उसपर लग गई है।

कालों पर तीन घाव

पर काले लोगों के सामने यह एक दीवार नहीं खड़ी की गई है। मत देने की इस नई तजवीज के द्वारा उनपर तीन घाव किये गये हैं। पहला तो यह कि काले और गोरे मतदाताओं की दो अलहदा बस्तियां बनाई गई हैं। मन्त्रि-मंडल नीचे लिखा वचन, जो कि सत्य से कोसों दूर है, किस प्रकार अपने मुंह से निकाल सका होगा यह समझना कठिन है।

"दो जुदी बस्तियाँ करने के संबंध में जो यह कहा जाता है कि इनसे किसी जाति का अपमान होता है, यह निराधार है।"

कैसे निराधार है? केनिया में धारासभा के लिए अलग जातीय मतदाता-संघ बनाने की मांग केवल इसी कारण से की गई है कि गोरे लोग कालों से श्रेष्ठ हैं-फिर उनकी योग्यता चाहे कैसी ही हो। भारतवर्ष में भी अलग जातीय प्रतिनिधित्व है; पर उसका कारण ऊंच-नीच का भेदभाव नहीं, बल्कि यह है कि किसी जाति के साथ अन्याय न होने पावे। 'श्वेत-पत्रिका' में (मन्त्रिमण्डल के प्रस्ताव में) जो दलील पेश की गई है उससे तो यह भी मालूम होता है कि मानों ग्रेट ब्रिटेन के लिए भी जातियों के अलहदा मत देने की प्रथा ठीक और उचित है। जो कुछ हो; पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसका यह विवेचन तो धृष्टता और ढकोसला मात्र है।

'हिन्दुस्तानी निवासियों की दृष्टि से' क्या खूब! हमारा दृष्टि-बिन्दु वे कैसी अच्छी तरह समझते हैं!—'इस योजना के बदौलत उन्हें उससे कितनेही ज्यादह मतदाताओं का हक मिल सकेगा जो मामूली तौर पर मिल सकता था, और इसीलिए प्रत्येक मनुष्य को जो भारत की राजनैतिक प्रगति चाहता है, इसे मंजूर करलेना चाहिए।'

भले आदमी, हमारी दृष्टि की बात करने के बजाय यदि हमसे पूछ लिया होता कि यह बात ठीक है न, तो क्या बेहतर नहीं था?

फिर मुझे उस कमबख्त वूड-विंटर्टन इकरार का जिक्र करना पडता है। इस इकरार के अनुसार एक सामान्य मत-पत्रक होता और नियम तमाम जातियों पर एकसा लागू होते। परन्तु जातीय प्रतिनिधित्व के कारण एक और भेद उत्पन्न होता है। वह यह कि केनिया में हरएक बालिग गोरे को मत देने का अधिकार रहेगा और हिन्दुस्तानियों के मत देने का अधिकार अनेक कानून-कायदे से जकड़ा हुआ रहेगा। और यही बात दूसरे काले लोगों की है। तीसरा अपमान, तीसरा घाव किया गया है हिन्दुस्तानियों के प्रतिनिधियों की संख्या के संबंध में। गोरों की अपेक्षा हिन्दुस्तानियों की संख्या अपार है और अपनी संख्या के ही अनुसार उन्हें कर देना पड़ते हैं। पर फिर भी गोरों को ११ प्रतिनिधि भेजने का हक और हिन्दुस्तानियों को सिर्फ ५ ही प्रतिनिधि भेजने का हक। अब जो दो दूना चार तक भी गिन्ती जानता हो वह भी समझ सकता है कि तिरस्कारपूर्वक समान अधिकार का इनकार करने वाली योजना और क्या हो सकती है?

गूढ दम्भयुक्त तिरस्कार

'श्वेत-पत्रिका' में भरा गूढ दम्भयुक्त तिरस्कार केनिया में प्रवेश करने के हिंदुस्तानियों के हकों के संबंध में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जो सिद्धान्त दिखाया गया है वह तो हिन्दुस्तानियों के अनुकूल है; पर उसका अमल गोरों के अनुकूल होगा। शुरुवात में ही बड़ी बहादुरी के साथ कहा गया है कि प्रवेश के हक के संबंध में रंग-भेद करना ब्रिटिश सरकार की नीति के

बिल्कुल खिलाफ है । पर उसके बाद में दो सिद्धान्त उपस्थित किये गये हैं—

१. निग्रो लोगों की आर्थिक प्रतिस्पर्धा कर के जो लोग उन्हें हानि पहुंचाते हैं उनका प्रवेश तुरन्त कम करना बहुत जरूरी है ।

२. ये प्रतिस्पर्धी लोग हैं छोटे छोटे व्यापारी, सरकारी और खानगी दफ्तरों के कारकुन और मजदूर लोग ।

अब इस बात को सब लोग जानते हैं कि केनिया में पूर्वोक्त काम करने वाले लोग तमाम हिन्दुस्तानी हैं । तब क्या ये सिद्धान्त केवल आकस्मिक हैं ? हमें तो मालूम है कि जब 'वूड-विंटरटन' इकरार गोरों के सामने पेश किया गया तब गोरों ने उसकी ओर आंख उठा कर देखा तक नहीं और कहा कि जबतक हिन्दुस्तानियों का आना रोका नहीं जायगा तबतक हम एक भी बात नहीं सुनेंगे । औपनिवेशिक मन्त्री का मन बदल गया और उसने केनिया के गवर्नर से कहा कि गोरों के प्रतिनिधियों को ले कर आओ । उनका कहना यह था कि हिन्दुस्तानियों को ही आने से रोका जाय । अब जो काम-धन्धा हिन्दुस्तानी लोग केनिया में करते हैं उनपर कैदें लगा कर गोरों का दिल खुश किया गया है । अतएव यदि मैं यह कहूं कि इसमें भी हमारी हार हुई है तो आप मुझे कमजोर न कहियेगा । हमने पिछले १२ वर्षों के अंकों को ले कर यह साबित कर दिखाया है कि योरपियन जातियां हिन्दुस्तानियों की अपेक्षा बहुत ही अधिक तादाद में बढ़ी हैं । पिछले दो वर्षों के अंक ले कर हमने दिखाया कि पिछले दो वर्षों में जितने हिन्दुस्तानी केनिया गये उनसे ज्यादह वहां से वापस लौटे हैं । हमने यह दलील भी की कि प्रतिस्पर्द्धा तो दूर, यदि निग्रो लोगों को किसीने कुछ सिखाया-पढाया है, तालीम दी है तो हमी लोगों ने । हमने यह भी कहा कि जिस दिन प्रतिस्पर्धा का सवाल उठेगा उसदिन निग्रो लोगों की कुशलता ही हिन्दुस्तानियों को हरा देगी । हमने यह भी दिखाया कि सरकार के पास प्रतिस्पर्धा या धंधे आदि के संबंध में न तो अंक हैं न ब्यौरा ही । हमने यह भी जताया कि अकेले गोरों अथवा पादरियों की एकतरफा बातें सुन कर हिन्दुस्तानियों को निग्रो लोगों का शत्रु समझना अन्याय है । पर ये हमारी तमाम बातें, अंक, सबूत, दलील सब बेकार हुए और अन्त को हमारा इस तरह सत्यानाश कर दिया गया ! फिर भी मानों करुणता में कमी हो इस भाव से व्यंग में कहा जाता है कि "आपको तो इस बात के लिए अपनेको धन्यवाद देना चाहिए कि रंग-भेद के कारण नहीं, बल्कि आर्थिक कारण से आप खदेडे जाते हैं !"

अधिक बडा शत्रु कौन ?

निग्रो लोगों के हित का अधिक शत्रु कौन है ? वह छोटा व्यापारी जो प्रतिस्पर्द्धा के सामान्य नियमों के बल पर खदेड दिया जा सकता है, या वह जो बैंक के साथ पड़ा हुआ जमीन को डकार कर कानून के द्वारा जितना हो सके अपनी जेब गरम करता है ? क्या किसी को स्वप्न में भी यह आशा है कि एक बार गोरे जहां इन आधे सुधरे निग्रो पर सवारी कर चुके कि फिर उन्हें राजनैतिक उन्नति का रास्ता दिखा कर स्वराज्य दे कर चले जायेंगे ? आयर्लेंड, मिसर, और हिन्दुस्तान का अनुभव देखते हुए क्या ऐसी आशा की जा सकती है ? इतिहास का एक एक पन्ना इस बात की पुकार कर रहा है कि गोरों का निश्चित कार्य तो है राज्य करना, रौबदाब बढाना, और डकार जाना । फिर भी ग्रेट ब्रिटन का मन्त्रिमण्डल निग्रो लोगों के ट्रस्टी होने के अपने नये कर्तव्य-ज्ञान के कारण गोरों के लिए केनिया में दसों दिशायें खुली करना चाहता है ? हिन्दुस्तानी लोग कितने ही वर्षों पहले पूर्व आफ्रिका में आ कर बैठे हैं । उन्हें स्वराज्य प्राप्त उपनिवेशों में स्थान नहीं और उन्हें जाति-भेद अथवा आर्थिक कारण से ब्रिटिश नागरिकता के हक न देना मानों उन्हें साम्राज्य में अछूत बनने के लिए मजबूर करना है—यह बात तो किसीके दिमाग में जंची हुई मालूम ही नहीं होती ।

वादे कहां उड गये ?

और मनुष्य की स्मरण-शक्ति कितनी कम है ! कुछ ही समय पहले तो युद्ध में हिन्दुस्तानियों के द्वारा की गई सेवाओं का, रण-क्षेत्र में बताई उनकी बहादुरी का, और उनके बदौलत वे जिन अधिकारों के लायक हुए थे उनका वर्णन करने के लिए काफी शब्द भी नहीं मिलते थे । वे तमाम वादे अब कहां चले गये ? साम्राज्य में नागरिकता के सम्पूर्ण हक और सम्पूर्ण समानता और समान हिस्सा देने के वे तमाम वादे कहां उड गये ? और ये वादे किसने किये थे ? खुद सम्राट् ने, खुद जिम्मेदार मन्त्रियों ने अपने भाषणों और लेखों के द्वारा । स्वतन्त्र उपनिवेशों की बातें क्यों करते हैं ? १९२१ ई० में स्वतन्त्र उपनिवेशों के लिए किये गये प्रस्तावों के पहल केनिया जैसे ब्रिटिश सत्ताधीन उपनिवेशों में कितने ही समय से समानता का स्वीकार होता चला आया है ।

क्रूर विश्वासघात

हिन्दुस्तानी तो बेचारे धीरज के घर हैं—उन्होंने खूब राह देखी, समानता (!) के बरताव का सैकडों बार स्वाद चखा, अनेक बार फर्याद और प्रार्थना करने तथा यह ऐलान कर चुकने के बाद कि केनिया के फैसले पर साम्राज्य की नीयत का दारोमदार है, अन्त में बेचारों को यह क्रूर विश्वासघात देखना पडा है । अनेक झूठे वादों का शिकार हो चुकने पर भी, अनेक गंभीर वचनों से धोखा खा चुकने पर भी, हिन्दुस्तानी ब्रिटिश साम्राज्य की न्यायशीलता और निष्पक्षता के प्रति अपना विश्वास छोडने से इनकार करते थे । पर अब उनका यह भ्रम दूर हो गया है ।

उन्हें अब विश्वास हो चुका है कि ब्रिटिश लोगों के एक बडे भाग को, मौजूदा सरकार की पुष्टि करनेवाले लोगों को, 'राष्ट्रसंघ' के हेतुओं और भावनाओं का स्पर्श तक नहीं हुआ है और उन लोगों के विचार के अनुसार तो जिन लोगों के पास वादों का पालन कर लेने की ताकत न हो उसे किये गये वादों का पालन उसी हद तक करना चाहिए जिस हद तक वे अपने मुआफिक हों । और केनिया के इस निर्णय को कराने वाले लोगों का पता 'श्वेत-पत्रिका' में खोजने से नहीं मिलेगा । वह तो बाहर ही मिलेगा । जैसा कि कर्नल वेजवुड ने पहले ही दिन कहा था, इस निर्णय के मूल में तो यह घटना है केनिया के गोरों ने जहां बन्दूक दिखाई तहां हिन्दुस्तानी लोग न्याय की आशा लगाये बैठे रहे । भाइयो, ब्रिटिश सरकार पर आज न्याय और सत्य का नहीं, परन्तु इस बात का असर पडता है कि एक पक्ष आज कितना उपद्रव, कितनी शरारत कर सकता है ।

यह पाठ हिन्दुस्तानियों के हृत्पटल पर खून के अक्षरों से अंकित हो चुका है और हम आशा करें कि वे इन जख्मों को कभी न भूलेंगे ।

दक्षिण आफ्रिका के स्वतन्त्र राज्य पर लडाई लडते समय ग्रेट ब्रिटन ने प्रेसीडेंट क्रूगर को शासन के उच्च और न्याययुक्त सिद्धान्त सिखाने का दावा किया था । आज प्रेसिडेंट क्रूगर के वैर का बदला ठीक ठीक निकल रहा है । 'यूनियन जेक' के नीचे

आज हिन्दुस्तानियों के साथ जैसा व्यवहार किया जा रहा है वैसा पहले कभी नहीं किया गया था—इतना ही नहीं बल्कि दक्षिण आफ्रिका का रंगभेद अब ब्रिटिश साम्राज्य में फैलने लगा है और उसमें अब गोरे लोगों का असर भी मिल गया है। साम्राज्य में न्याय और सत्यपुरःसरता स्थापन करने का जो वचन मजदूर-दल ने न्याय के हिमायती कर्नल वेजवुड के द्वारा दिया है वही हमारे लिए इन काले बादलों में चांदनी की एक रेखा है। हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

क्या भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य की नागरिकता के इस खाक इनकार का स्वीकार करेगा जो श्वेत—पत्रिका के एक एक पन्ने में लिखा है? **इस निर्णय के द्वारा भारतवर्ष की आशा और ब्रिटन की प्रतिष्ठा दोनों एक साथ चूर-चूर हो गये हैं।**

अब क्या करना चाहिए, इसके विषय में सब के मन में, खास कर के भारत के नौजवान दिलों में, खलबली मच रही है। इसके लिए गंभीर विचार और पक्के परामर्श की जरूरत है—उसके बाद ही कार्यक्रम तय हो सकता है। पर एक बार मैं कह चुका हूं और फिर भी कहूंगा कि भारत ने जो अनेक बार अपनी बाजी खोई उसका कारण यही है कि अपमानों का विरोध करने का जो तरीका बलवान प्राबल्य सत्ता की आंखें खोल सकता है उसका अवलंबन उसने आजतक नहीं किया।"

केनिया के संबंध में श्री शास्त्रीजी ने जो बातें ऊपर कही हैं उनसे अधिक और कौन कह सकता है? 'रौलेटबिल' के बाद सरकार की कृतघ्नता पर प्रकट हुआ महात्माजी का पुण्य-प्रकोप शास्त्रीजी के इन वचनों में है। सम्भव है कि शास्त्रीजी का प्रकोप अधिक राजस हो। इस भाषण में उन्होंने जैसे विचार प्रकट किये हैं वैसे इससे पहले किसी भी मौके पर उन्होंने प्रकट नहीं किये थे। और इसीलिए उन्हें इन वचनों में देश के प्रति हुए घोर अपमान का अन्दाज मिल सकता है।

इन विचारों को प्रकट हुए कोई २५ दिन हो गये। इसके बाद शान्त समुद्र-यात्रा उन्होंने की है। पर ऐसा नहीं दिखाई देता कि उनका प्रकोप शान्त हुआ हो। यहां आते ही उन्होंने अपना वह भाषण यहां के समाचार-पत्रों में छपाया और उसके बाद भी उनकी छपाई 'रिपोर्ट' में उनकी निराशा और वेदना टपकती है।

भाषण के कितने ही अंश मैंने जान बूझ कर बड़े अक्षरों में छापे हैं। मैं नहीं मानता कि इन शब्दों की ध्वनि पर वाचस्पति शास्त्री जी का ध्यान न गया हो। यदि ये शब्द किसी के हृदय के पैठ जाय और वह इस सरकार के खिलाफ सशस्त्र बलवा खड़ा कर दे तो इसके लिए हम उसे नहीं बल्कि शास्त्रीजी को जिम्मेवार मान सकते हैं—नहीं, शास्त्रीजी खुद ही इस बात को कबूल करेंगे। मदोन्मत्त सरकार की अकल को गोरे लोग ठिकाने पर ला सकें, हमें उस तरह का विरोध करना याद नहीं जिससे वह ठिकाने आ सके, गोरों के पास बन्दूकें हैं, हमारे पास नहीं। यदि हो तो आज शास्त्रीजी की स्पष्टोक्ति इस प्रकार की है कि वे केवल ध्वनि-वचनों से नहीं, बल्कि स्पष्ट शब्दों में उनके व्यवहार के लिए आवाज उठाते और उसके चारों ओर गूंजने के पहले खुद शान्ति के साथ जेल में जा कर बैठ जाते।

पर वे चक्कर में पड गये हैं। उन्हें सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें। वे अपने दल के साथियों से मिले। वहां तो उनके जैसी दृढता का भी किसीने परिचय नहीं दिया। उन्होंने खुद 'साम्राज्य प्रदर्शिनी' की समिति से इस्तिफा दे दिया। उन्होंने सूचना की थी कि कार्यकारिणी समिति के हिन्दुस्तानी सदस्य इस्तीफा दे दें। वह हवा में ही उड गई। शास्त्रीजी स्वयं प्रिवी कौन्सिलर हैं। पर उनसे किसीने यह नहीं पूछा कि आप खुद इस्तीफा क्यों नहीं देते? हो न हो इस खयाल से कि कहीं उन्होंने इस्तीफा दे दिया तो हम मुफ्त में लद जायंगे।

स्थिति ऐसी है। शास्त्रीजी नहीं चाहते कि केनिया का निर्णय वहां के हिन्दुस्तानी लोग स्वीकार करें। वे चाहते हैं कि उन्हें तोड़-मरोड़ कर फेंक दें। फिर यह समझ में नहीं आता कि वे किस तरह हिन्दुस्तानियों को धारासभाओं में जाने की सलाह देंगे। केनिया के हिन्दुस्तानी ही उनसे पूछेंगे कि 'आप हमें तो असहयोग करने की सलाह देते हैं और आप खुद यहां सहयोग कर रहे हैं?" शास्त्रीजी ने अभीतक इस विषय में कुछ कहा नहीं है। इसमें कुछ रहस्य तो नहीं है?

शास्त्रीजी की इस कर्तव्य-मूढता का कारण है। जो चीज उन्हें अति अप्रिय है—जिस सरकार पर आजतक वे विश्वास कर रहे थे उसपर अविश्वास करने की घोषणा करने का कर्तव्य उनपर आ पड़ा है। उनके पुण्य-प्रकोप की शक्ति उनके दूसरे साथियों में नहीं है। इससे वे अकेले पड गये। अबतक वे जिनको अपना विरोधी बताते रहे उनसे मिलने में सुरुचि के भंग की आशंका भी उन्हें कर्तव्य-मूढ बना रही है।

उनकी इस कर्तव्य-मूढता से हम भारी सबक सीख सकते हैं। उनको निर्णय करने का समय आ पहुंचा है। हमारे सामने तो साधन, सामग्री, दिशा, ध्येय सब तैयार हैं। यदि हम उसे कर दिखाने का सामर्थ्य दिखावें और शास्त्रीजी हमारे हो जायं तो आश्चर्य नहीं। डाक्टर किचलू ने सत्याग्रह की गर्जना कर के वर्तमान अंधकार में नवीन प्रकाश दिखाया है। वे केवल कर्णधार की बाट लगने के लिए सत्याग्रह करना चाहते हैं। यह उनकी अपार नम्रता है।

महात्माजी को छुड़ाने अथवा स्वराज्य हासिल करने का सत्याग्रह के सिवा दूसरा उपाय हई नहीं—नहीं, हरगिज नहीं। शास्त्रीजी का मोह नष्ट हुआ है और स्मृति जाग्रत हुई है। हमारा तो नष्ट होना बाकी था ही नहीं। फिर हम किसलिए कर्तव्य-मूढ हों, शंकाशील हों?

(नवजीवन) **महादेव हरिभाई देसाई**

खादी-समाचार

सच्ची आत्मशुद्धि

खादी के पोशाक के बारे की प्रश्नपत्रिका के जवाब में जो पत्र मिले थे उनमें से एक जिसमें कि हरेक बात बहुत ब्योरे के साथ लिखी है पहले छापना पसंद किया है। वह ब्रह्मदेश में बसनेवाले एक गुजराती महाशय का लिखा हुआ है। उनका नाम-पता छापना उचित नहीं जान पड़ता। ऐसा करने से शायद वे अपनी आत्म-प्रशंसा समझें और छुपे ही रहना पसंद करें—

"मेरे परिवार में अभी हम पांच आदमी हैं। हम स्त्री-पुरुष दोनों करीब तीस तीस बरस के हैं और तीन बालक छः ढाई और सवा बरस के। हमारा वतन काठियावाड और हमारी जाति औदिच्य ब्राह्मण है। मुझे मझले दर्जे का गृहस्थ समझा जा सकता है। एक चावल की मिल में मैं नौकर हूं। मेरी मासिक आमदनी सवासौ रुपये है। पहले मैं जितना कमाता उतना खर्च कर डालता था और विवाहादि कंमौकों पर कर्ज करना पड़ता था, इससे कर्जदार भी हूं। इसलिए तीसरे दर्जे का गृहस्थ भी गिना जा सकता हूं। मेरे रहन-सहन का ढंग तो तीसरे दर्जेवालों का सा ही होता जाता है।

"तीन बरस पहले मेरे परिवार का कपड़े का सालाना खर्च तीनसौ रुपये था। उस वक्त परिवार में आदमी भी तीन ही थे। इस वक्त पांच हैं।

"खादी शुरू करने के पीछे पहले साल का कपड़े का खर्च करीब दोसौ रुपये था। दूसरे साल का सौ रुपये था। और तीसरे साले

मौजूदा साल का करीब पचास रुपये होगा। बचे शुद्ध खादी के अलावा कुछ पुराने, मिल के, करीब करीब फटने को आनेवाले, कपड़े अभी तक पहनते हैं। उनमें कोई कोई विलायती भी हैं। बहुत से जला डाले, तिसपर भी अभी कुछ रह गये हैं। पर अब तो शुद्ध खादी के सिवा दूसरा कोई कपड़ा घर में नहीं आता। हम स्त्री-पुरुष दोनों दो बरस से नियम के साथ कातते हैं। और उसी सूत को बुनवा कर खादी पहनते हैं। पिछले डेढ़ बरस से हमने खादी भी नहीं खरीदी है। रोज तीन चार तोले सूत तैयार होता है और उससे हर महीने करीब दस गज खादी बन जाती है। वह हमारे लिए काफी हो रहती है। आगे पीछे दस बीस गज बची पड़ी रहती है। गद्दे, चादर, तकिये वगैरः में भी ज्यादातर खादी ही पहुंच गई है।

"सूत कातने के लिए दूसरे काम को छोड़ना पड़ा है? इस सवाल का जवाब देते हुए मुझे हंसी आती है। हां, आलस्य को छोड़ना पड़ा है। हम आलसी मिट कर उद्योगी बन गये हैं। ज्यादा आस्तिक बने हैं। स्वावलंबी और स्वतंत्र भी उतने ज्यादा हो गये हैं। परदेशी कपड़े की मोह-रूपी गुलामी में से छूटे हैं। इस तरह कुछ छोड़ देने के बदले कितना ही फायदा हुआ है। पत्र के ज्यादा लम्बे हो जाने के भय से दूसरे फायदे नहीं जताता।

"खादी के बारे में तो मुझे कोई शिकायत नहीं है। बजार में बिकने वाली-शुद्ध कही आनेवाली खादी के लिए शिकायत रहती है सही। उसमें मिलावट होती है; मंहगी भी पड़ती है और चलती भी कम है। लेकिन इसमें दोष तो व्यापारियों और दलालों का है। असहकारियों का भी है। वे क्यों नहीं चौकसी करते-कराते? हम लोगों के 'बापू' जेल में हैं, तो भी क्यों रोज सब कातते नहीं? इस तरह अगर करें तो दूसरों की शिकायत है। मेरा तजरिबा कहता है कि खादी निर्दोष, पवित्र और मनोकामना सिद्ध करनेवाली चीज है। हमारे कर्तव्य के लिए तो बापू सूचना दे ही गये हैं। सब को कातना, धुनकना सीख कर इस काम को अपने जीवन का एक आवश्यक अंग बना डालना चाहिए। जिस तरह धर्म, कर्म, आहार, निद्रा ये रोज के जरूरी काम हैं उसी तरह चर्खा चलाना भी रोज का काम समझना चाहिए।

"किस भाव की खादी पहनते हैं? इसका जवाब यह है कि नजदीक के गांव की हाथचर्खी से ओटी हुई उम्दा रुई आठ नौ आने पौंड मिलती है। वही एक बरस में करीब ३५ पौंड कात सकते हैं। इसलिए उतनी खरीद लेते हैं। उसकी कीमत बीस रुपये के करीब हुई और उसीको हाथों कात कर बुनवा लेते हैं। उसकी बुनाई के २०-२५) हुए। यही कुल खर्च हुआ। बुनाई के भाव यहां पर दो चवाई गुने अधिक हैं। फिर भी हमें जो लाभ खादी से मिलते हैं उनका थोड़ा-बहुत हिस्सा जुलाहे भाई-बहनों को भी मिले, इस खयाल से बुनाई पर कुछ ज्यादा खर्च उठा लेते हैं। और बुनने की कला सीखने के लिए एक करघा भी घर पर लगा रक्खा है। उसपर एक बुढ्ढी धर्मी मा ने सौ सवासौ गज खादी बुन दी होगी। मैं खुद नौकरी में लगा रहता हूं और मेरी स्त्री कुटुंब के काम में पड़ी रहती है। इससे अभी बुनना सीख ही नहीं पाये थे कि बुढ्ढी मा का स्वर्गवास हो गया। अब गांवों में सूत भेज कर कपड़ा बुनवा मंगवाते हैं।

"साल भर में कितने गज खादी लगती है? इस सवाल का जवाब इस प्रकार है:—मर्द के लिए ३० गज, औरत के लिए ५० गज, दो लड़कों के लिए ३० गज और एक लड़की जो अभी सवा बरस ही की है उसके लिए १०' गज। इस तरह १२० गज खादी हमारे कुटुंब के लिए चाहिए और इतनी हमारे अपने ही सूत से तैयार हो जाती है।

"खादी पहनना शुरू करने पर दूसरा खर्च घटा है या नहीं? इस सवाल का जवाब यह है कि भोजन खर्च में, नाटक तमाशों और गाड़ी वगैरः के किरायों के खर्च में कमी हुई है और वह कुल करीब दोसौ रुपये सालाना हुई होगी।

"धुलाई का खर्च घटा है। क्योंकि धोबी के पास धुलवाते थे सो अब घर ही पर साबुन से धो लेते हैं। इससे सालाना २५-३०) का बचाव हुआ है। खादी की जिन्दगी इससे बड़ी मालूम होती है।

"मेरी बचत में से कुटुंबियों की इच्छाओं को पूरा करता हुआ, कर्ज से छुटकारा पाता हुआ, मैं महासभा की आज्ञा के अनुसार तिलक स्वराज-कोष में भी अपनी हैसियत के मुताबिक-बल्कि शायद उससे भी ज्यादा हिस्सा देता रहता हूं। मेरी मनोकामना है कि मैं लक्ष्मीरहित हो कर ग्रामसेवा-देश-सेवा करूं। और इसके लिए अभी अप्रकट रूप से अभ्यास कर रहा हूं।

"'करज करीने[1] वरा[2] भला तमे[3] कीधा[4] मारा[5] फूलणजी[6]' एक प्रसिद्ध गुजराती कविता की इस पंक्ति में वर्णित व्यक्ति के जैसा एक बखत का छोटा फूलणजी अब खादी के प्रताप से कर्ज से छूटता जाता है। इस तरह पैसे का लाभ तो हुआ लेकिन जो नैतिक लाभ हुआ वह बहुत ज्यादा है। दो बरस पहले छल-कपट और दगाबाजी वाली व्यापारी नौकरियां मर्जी बिना मर्जी कर लिया करता था और नौकरी यदि छूटे तो भूक और दुःख का डर लगा रहता था। लेकिन अब तो सेठ, रिश्ते वाले या दोस्तों को खुश रखने के लिए अन्याय में शरीक होने के खिलाफ हठ दिखा सकता हूं। मेरी आत्मशुद्धि हो रही है और इसमें "बापू और चर्खा" मुझे बड़ी मदद करते हैं, ऐसा तजरिबा होता जाता है।"

इस पत्रमें से आत्म-निवेदन का कुछ हिस्सा छोड़ दिया गया है। और कितनी ही जगह वाक्य छोटे किये गये हैं। इसके सिवा बिना कुछ फर्क किये ज्यों का त्यों छापा है।

इस पत्र पर टीका-टिप्पणी करने की जरूरत ही नहीं है। खादी की पवित्रता और उसकी कल्याणकारी कमखर्ची के ऐसे सर सबूत में टिप्पणी के द्वारा और क्या बढ़ाया जाय?

मगनलाल खुशालचंद गांधी

हिन्दू-महासभा

(३)

अब कुछ उन विषयों का विचार करें जिनकी चर्चा हिन्दू-महासभा में की जा सकती है—

गोरक्षा

पहला प्रश्न गोरक्षा का है। हिन्दुओं में कितने ही सम्प्रदाय हैं—किसी किसी के आचार-विचार तो इतने भिन्न हैं कि कभी एक दूसरे का मेल नहीं बैठ सकता। पर एक गो-रक्षा ऐसा विषय है जो तमाम साम्प्रदायिक भेदों के परे है। यह एक ऐसा विषय है कि यदि इसके बारे में हिन्दू-समाज की सुषुप्ति उड़ जाय और भावना तीव्र हो जाय तो वह हिन्दू-समाज का स्वरूप दावानल की तरह बदल दे। यदि यह कहा जाय कि "जो गो-रक्षा को मानता है वही हिन्दू है" तो यह 'हिन्दू' की व्याख्या अनुचित न होगी।

---

१. कर के। २. वावत। ३. तुमने। ४. की। ५. मेरे। ६. घमंड से फूले हुए महाशय।

कुछ हदतक तो आज गो-रक्षा के विषय में हमारी भावना अवश्य तीव्र है; पर इसके मूल में विवेक नहीं है। इस भावना को तो हम अपने हृदय में मुसल्मानों के विरोध के लिए और वह भी एक ही मौके पर, स्थान दे रहे हैं। हम खुद अपने हाथों अपने गाय-बैलों के साथ कितनी बेरहमी से, लापरवाही से बर्ताव करते हैं-रोज कितनी गायें बूचड़खानों में भजते हैं! इस विषय में अभी हमारे भाव पवित्र नहीं हुए। हमारा यह भ्रम है जो हमें मुसल्मान गो-रक्षा के शत्रु मालूम होते हैं। यदि गाय और उसकी सन्तति हमें रोज अपनी माता और भाई-बहन की तरह मालूम हों; उनकी रक्षा को यदि हम अपने बूढ़ माता-पिता या नन्हे बच्चों के पालन की तरह पवित्र समझें, जिस भाव से हम अपनी बूढ़ी माँ को अपने घर का काम करने देते हैं उसी भाव से गाय-बैल को काम करने दें और उनके दुःखों को दूर करन के लिए यदि हम मर मिटने को भी तैयार हो जायं तो हमारे इस भक्ति-भाव का ही इतना बल हो जाय कि एक भी बूचड़खाना रखने की जुरत सरकार को न हो और मुसल्मानों का प्रश्न तो न जाने कहाँ शान्ति के साथ हल हो जाय।

अन्त्यज

दूसरा प्रश्न अछूतों का है। इस प्रश्न का संबंध मुझे दलील से नहीं मालूम होता। अभीतक हमारे चित्त से उनकी घिन दूर नहीं हुई है। श्री मालवीयजी के निवेदन-पत्र में यह सूचित किया गया है कि "इनकी दशा और इनके उद्धार के उपायों पर सहानुभूति पूर्वक विचार किया जायगा।" पण्डित दीनदयालजी का प्रस्ताव इस तरह है—"अछूत लोगों के साथ पहले से अच्छा सामाजिक व्यवहार किया जाय और उनके प्रति प्रेमभाव फैलाया जाय।" ये दोनों बातें गोलमोल हैं।

स्वामी श्रद्धानन्दजी के प्रस्ताव इस विषय में अधिक स्पष्ट हैं—"हिन्दू-समाज के अन्तर्गत दलित जातियों के साथ न्याय करने तथा उन्हें आर्य-जाति के बृहत् शरीर का अंग बनाने और उच्च जाति में समावेश करने के विचार से हिन्दुओं के सर्व सम्प्रदायों का सम्मेलन निश्चय करता है कि—

(अ) दलित जातियों के नीच से नीच माने जानेवाले लोगों को भी आम कुओं से पानी भरने की इजाजत दी जाय।

(आ) प्याऊ आदि पर उन्हें उच्च जातियों की तरह पानी पिलाया जाय।

(इ) सार्वजनिक सम्मेलनों तथा अन्य विधियों में उन्हें उच्च जातियों के साथ एक आसन पर बैठने दिया जाय।

(ई) तमाम पाठशालाओं में उन्हें दूसरे लड़कों के साथ बैठ कर पढ़ने दिया जाय।

मेरी राय में इन प्रस्तावों में न तो अन्याय है, न अधिकता है। फिर भी हिन्दू-महासभा में इनपर कितनी बक-बक होगी इसका ख्याल नहीं किया जा सकता। यदि यह मान लें कि इसपर शास्त्रार्थ न होगा, तोभी इतने से यह प्रश्न हल नहीं हो सकेगा। मैं नहीं मानता कि अन्त्यजों तथा अन्य हिन्दुओं के रास्ते में स्मृतिकार बाधा डालते हैं। हमी खुद अन्त्यजों को नहीं चाहते हैं और इस घृणा के संस्कार इतने दृढ़ हो गये हैं कि बुद्धि के द्वारा न्याय-मार्ग का ज्ञान हो जाने पर भी हम अपने संस्कारों को नहीं हटा सकते। जबतक हमारे दिल में यह भाव न पैदा हो कि एक कौड़ी तक के घिन करने से काम न चलेगा तबतक हमारे अन्दर न्याय करने की शक्ति नहीं आ सकती।

परमात्मा की सृष्टि में नर-देह की सर्वोत्तमता का बखान हमारे शास्त्रकारों ने मुक्तकण्ठ से किया है। यदि शास्त्र इस बात की गवाही न देते तो भी हमें अभीतक मनुष्य से बढ़ कर कोई प्राणी नहीं मिला है। जिसे यह नर-देह प्राप्त हुआ है उसे पशु से भी नीच समझना क्या आश्चर्यकारक नहीं है? चोखामेला, बंका-रंका, सजना कसाई इत्यादि साधु-पुरुष ऐसे हो गये हैं जिनके चरणों की रज यदि ब्राह्मण के भी सिर पर चढ़ जाय तो वह पवित्र हो जाता है। जिस जाति में ऐसे सन्त पुरुषों का जन्म हुआ है उसे नीच मानना हमें मिथ्याभिमान मालूम होना चाहिए।

जैसी साधना हम करते हैं वैसा ही फल पाते हैं। हम अस्पृश्यता की साधना करते हैं, इसलिए संसार के समृद्ध राष्ट्र हमें भी अस्पृश्यता ही दे रहे हैं। यदि परमात्मा का यह नियम हो कि जितने समय तक हमने अन्त्यजों को अछूत रक्खा है उतने ही समय तक हमें अछूतपन की सजा भोगनी पड़े तो अभी हमें कितनी सदियों तक एक अपमानित जाति की तरह जीवित रहना पड़ेगा, इसकी कल्पना करने से दिल धड़कने लग जाता है। परन्तु करुणासागर परमात्मा की काल-गणना सूर्य के अस्तोदय के अनुसार नहीं होती। उसकी सजा की अवधि हमारे अनुताप की तीव्रता के अनुसार कम हो जाती है। जितना दुःख हमने आजतक अन्त्यजों को दिया है, उस पाप का यदि हम एक दिन में तीव्र अनुताप कर लें, अर्थात् हम पश्चात्ताप के भाव से मानसिक दुःख भोग लें तो वह सजा एक दिन में भी पूरी हो सकती है।

पर मुझे भय है कि हम अन्त्यजों के साथ न्याय करके अपना उद्धार न करेंगे। महात्मा गांधी चाहते हैं कि यदि अस्पृश्यता का कलंक हिन्दू-धर्म से दूर न हो तो मेरा जन्म अन्त्यजों के घर में हो। चाहे महात्मा गांधी अन्त्यज के घर में जन्म लें, चाहे अन्त्यज के घर में महात्मा गांधी के सदृश पवित्र आत्मा का जन्म हो-दोनों एक ही बात है। पर यदि हिन्दुओं का उद्धारक कोई अन्त्यज हो तो आश्चर्य की बात नहीं-यदि ऐसा ही हो तो खेद करने का भी कारण नहीं।

वर्णाभिमान

इस विषय में दो बातों की ओर ध्यान खींचने की आवश्यकता मुझे मालूम होती है। पहली यह कि वर्ण का अभिमान हमें अवश्य ही छोड़ना होगा। समाज के हित की रक्षा के लिए हम भले ही जैसी चाहें वर्ण-व्यवस्था रक्खें। परन्तु परमेश्वर की दृष्टि में जिस प्रकार सब मनुष्य समान हैं उसी प्रकार हमें सब वर्णों की श्रेष्ठता स्वीकार करनी चाहिए। अपने धर्म का आचरण करने वाला प्रत्येक वर्ण समान आदर का पात्र है। ब्राह्मण अपने तप और विद्वत्ता के कारण पूज्य माना जाय, पर उच्च नहीं। इसी प्रकार दूसरे वर्णों में, रुची-भेद के अनुसार खान-पान के नियमों में भिन्नता हो सकती है; परन्तु इस भिन्नता के कारण कोई किसीसे ऊंच-नीच नहीं माना जाना चाहिए। समस्त वर्ण समाज-रूप-हाथ की अंगुलियां हैं। वे छोटी-बड़ी, कमजोर, मजबूत चाहे जैसी हों; पर किसी एक अंगुली को ऊंची और किसी को नीची नहीं कह सकते। वर्ण के अभिमान से कोई भी आजतक पवित्र नहीं हुआ। मैं यह कोई नई बात अपनी तरफ से नहीं कहता। तमाम आचार्यों और सन्तों के वचन इसके विषय में मिल सकते हैं। परन्तु यदि वे न भी मिल सकते होते तो भी सच बात यही है। और इसीलिए मैं इसपर इतना जोर देता हूं। (अपूर्ण)

किशोरलाल घ. मश्रुवाला

विशेष अधिवेशन

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रतिका ,, ־)।
विदेशों के लिए ,, ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक ४

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय | मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, भाद्रपद बदी १४, संवत १९८० | रविवार, ९ सितंबर, १९२३ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

नागपुर की पूरी विजय

श्री वल्लभभाई पटेल का वक्तव्य

[सत्याग्रही कैदियों का स्वागत करते हुए जन्माष्टमी के दिन श्री वल्लभभाइ पटेल ने नीचे लिखा वक्तव्य सुनाया]

युद्ध का संक्षिप्त वर्णन

इस मौके पर मैं अपना आखिरी वक्तव्य सुनाना चाहता हूं। हमारे संग्राम के संबंध में जो शंका-कुशंकायें हो रही हैं उन्हें दूर करने के लिए तथा १८ अगस्त को जिस घटना के फल-स्वरूप हमारा संग्राम समाप्त हुआ और हमें विजय-लाभ हुआ उसके संबंध में कितने ही स्वार्थी लोगों की फैलाई भ्रमपूर्ण, शरारती और झूठी खबरों से उत्पन्न झगड़ों को शान्त करने के लिए अपने वक्तव्य को सुनाना मेरे लिए आवश्यक हो गया है। यह तो सब लोग अच्छी तरह जानते हैं कि १ मई १९२३ को जब नागपुर के जिला मजिस्ट्रेट ने, आम सड़क पर निकलने वाले जुलूस पर अपना कब्जा रखने के बहाने, राष्ट्रीय झण्डे के जुलूस को सिविल लाइन्स में जिला अदालत के मकान से आगे ले जाने की मुमानियत की तब यह संग्राम शुरू करना पड़ा था। इस हुक्म को हमने अपने राष्ट्रीय झण्डे को चुनौती देने वाला और उसको हतक करने वाला माना। इस हुक्म के द्वारा, हमारी राय में, हमारे राष्ट्रीय ध्वज को धारण करने, फहराने और आम सड़कों पर उस का शान्त और बाकायदा जुलूस निकालने के हमारे प्रारंभिक हक को मानने से इनकार किया गया था। इसके बाद जो जो घटनायें हुई हैं उन्होंने यह बात निर्विवाद साबित कर दी है कि हमारा यह खयाल बिलकुल सच था। कोई एक महीने तक तो यदि कोई भी अकेला मनुष्य-पुरुष या स्त्री-झण्डा ले कर वर्जित स्थान में जाने का प्रयत्न करता तो वह भी गिरफ्तार हुए बिना न रहता था। गिरफ्तार-शुदा लोगों के झण्डे जब्त कर लिये जाते थे। जब कानून और व्यवस्था के पवित्र नाम पर सरदस्त होने वाले और किसी भी सभ्य देश में न सुने गये कानून के व्यवहारों की कलई खोली गई तब मध्यप्रान्त की सरकार को 'जुलूस' शब्द की कानूनी व्याख्या संबंधी अपना अभिप्राय बदलना पड़ा। फिर भी राष्ट्रीय झण्डे को ले कर जाने वाले किसी भी दो व्यक्तियों को जुलूस मानने का सिलसिला तो ठेठ लड़ाई के अन्त तक जारी रहा। दूसरे एक जिला मजिस्ट्रेट इससे भी आगे बढ़ गये और उन्होंने लोगों को आम तौर पर सलाह दी कि किस दिन तुम्हारे बाप-दादों के पास राष्ट्रीय झण्डा था? इसलिए तुम इस राष्ट्रीय झण्डे के झगड़ों से अपना कोई वास्ता न रक्खो। फिर यदि नागपुर आने वाले प्रतिष्ठित और कुलीन लोगों के पास झण्डा हो तो उन्हें 'बदमाश और गुंडा' बताकर रेल्वे स्टेशनों पर ही पकड़ना शुरू किया। इस प्रकार हमारे संग्राम का उद्देश यह नहीं था कि हम आम सड़कों पर मनमाना घूमे-फिरें या यूनियन जैक का अपमान करें या जनता के किसी भाग का दिल दुखावें। संग्राम का उद्देश तो था राष्ट्रीय झण्डे को मान-रक्षा करना और कानून पुलिस के बहाने हिन्दुस्तान के मध्य-भाग में "उच्च भूमि" बनाने के प्रयत्न का विरोध करना। साढे तीन महीने की लड़ाई के बाद १८ अगस्त को दो पहर में सौ स्वयंसेवकों का राष्ट्र-ध्वज का जुलूस रास्ते के दोनों ओर खड़े हथियार बन्द सेना के आश्चर्यकारक रौब-दाब के होते हुए वर्जित स्थानों में गया और सिविल लाइन्स के बड़े भाग में हो कर गुजरा—किसीने उसे हाथ तक नहीं लगाया। तब मैंने शाम को संग्राम की सफलता-पूर्वक समाप्ति की घोषणा की।

आज मैं तमाम कपोल-कल्पित गप्पों या अफवाहों के जवाब देना नहीं चाहता। पर भाइयो, आप लोग अभी एकान्तवास भोग कर बाहर आये हैं। सो आपकी तथा उन सज्जनों की जानकारी के लिए, जो इस बात की जिज्ञासा रखते हों कि पुलिस के हुक्म के निकलने के बाद यह संग्राम इस प्रकार अचानक कैसे सफलता पूर्वक समाप्त हुआ, मैं परिस्थिति का खुलासा करना चाहता हूं। संग्राम के कार्यक्रम में कुछ भी गड़बड़ करने की मेरी इच्छा तबतक नहीं थी जबतक कि सरकार धारासभा के प्रस्ताव पर कुछ निर्णय न कर ले और इसके कारण स्पष्ट हैं। मेरे मन में तो इस बात पर जरा भी शक नहीं था कि जिस हुक्म के पीछे कार्य-बल नहीं है वह चाहे कितनी ही बल-पूर्वक क्यों न प्रकट की गई हो, यदि खिलाफ होगी तो सिविल लाइन्स में रहने वाले गोरे अधि-

कारियों को उत्तेजित किये बिना नहीं रह सकेगी—बे-जवाबदेह निरंकुश कार्यकारी-मंडल की पीठ मजबूत किये बिना न रहेगी। ज्योंही हलचल पर से धारा-सभा के धुंए के गोले गुजर चुके, मैंने अपनी १६ ता. की विज्ञप्ति प्रकाशित की। उसमें मैंने फिर इस बात का उल्लेख किया कि नागपुर-समिति ने किस खयाल से यह युद्ध शुरू किया है और लड़ाई के मुख्य प्रश्न के संबंध में जो गलतफहमियाँ और झूठी खबरें फैल रही थीं उन सब को साफ कर दिया। और फिर दूसरे दिन १८ ता० के जुलूस का कार्यक्रम निश्चित किया। उसमें जुलूस का रास्ता, समय, तथा तत्संबंधी हिदायतें तय कीं। उस समय लोगों के भाव इतने प्रक्षुब्ध हो रहे थे, धारासभा में हुए शब्द-युद्ध का भी असर था, ये तमाम बातें कार्यक्रम तय करते समय मेरे दिमाग में थीं। इसलिए यह स्पष्ट ही है की कार्यक्रम की तजवीज इस ढंग से की गई जिसमें प्रतिपक्षियों के दृष्टिबिन्दु पर भी भरसक ध्यान रक्खा जाय और उन सिद्धान्तों को भी जरा धक्का न पहुंचे जिनके लिए यह संग्राम शुरू किया गया है। परिणाम यह हुआ कि सरकार ने बिना किसी आपत्ति के जुलूस को निकल जाने देना बेहतर समझा।

गवर्नर की मुलाकात

ज्योंही वर्जित स्थानों में हो कर जुलूस निकला और संग्राम में विजय पाने की घोषणा की गई, सारे देश और खास कर के एंग्लो इंडियन अखबारों में हर तरह की झूठी, भ्रमपूर्ण और शरारती खबरें फैलाई जाने लगीं। उसी प्रकार अखबारों में श्रीमान् लाट सा० के साथ हुई हमारी मुलाकात के संबंध में चर्चा भी होने लगी। यह बात मुझे अधिक महत्वपूर्ण नहीं दिखाई देती कि यह मुलाकात किस तरह हो पाई। असहयोगियों के संबंध में जो आमतौर पर यह खयाल फैला हुआ है कि वे बाह्याचार पर अटल रहने वाले लोग हैं, वह बिल्कुल निराधार है। यदि मुझे परस्पर समझौते की सच्ची इच्छा उनके दिल में दिखाई दे तो मैं खुद तो शिष्टाचार के अनुसार निमन्त्रण आने की भी राह न देखूं। तो भी इस संबंध में किसी समझौते या इकरार की जो बातें और अफवाहें फैली हुई हैं उनसे मैं आज इस स्थान से निश्चित शब्दों में इनकार करता हूं। इन बातों में बिल्कुल सचाई नहीं। हमने न तो सरकार के साथ समझौता किया और न कोई इकरार ही किया या किसी प्रकार का वचन उसे दिया। मुलाकात १३ अगस्त को हुई थी। इसका फल इतना ही हुआ कि हमें परस्पर एक दूसरे के विचार रोबरू पेश करने का मौका मिला।

दरख्वास्त देने की अफवाह

किसीने यह भी खबर उड़ाई है कि मैंने जिला सु० पुलिस को जुलूस निकालने के लिए दरख्वास्त दी। यदि इस शरारती और झूठी खबर को फैलाने के लिए एक उच्च सरकारी अधिकारी (जिसका नाम मैं आगे चल कर बताऊंगा) जवाबदेह न होता तो मैं इस ओर आंख उठा कर देखता तक नहीं। यदि मैं इजाजत ही लेना चाहता तो यह लड़ाई कभी की खतम हो गई होती। यह बात मेरे खयाल से बाहर नहीं थी कि तुर्की सुलह के उत्सव के दिन एक बड़ा जुलूस जिला मजिस्ट्रेट की इजाजत से वर्जित स्थानों में हो कर निकला था। स्थानीय धारासभा के कितने ही सभासदों ने मुझे कई बार कहा कि आप अपने नाम से इजाजत ले लीजिए। मैं जानता था कि मेरी जबानी इजाजत ले लेना ही काफी था। मामूली हालत में ऐसे जुलूसों के लिए इजाजत लेने में भी कोई हर्ज नहीं है। महासभा ने ऐसा करने की मनाई नहीं की है। परन्तु इस हद तक लड़ाई लड़ने के बाद इजाजत लेने जाना मेरे लिए गैर-मुमकिन था। सरकार यदि संगीन की नोक दिखा कर हमसे दरख्वास्त लेने का प्रयत्न करे और ऐसे समय यदि मैं दरख्वास्त दूं तो महासभा की नाक कट जाय। सच पूछिए तो लड़ाई का मोर्चा इसी सवाल पर था। दूसरी बातें थोड़ी-बहुत गौण और तफसीली थीं। यह बात हर शख्स आसानी से देख सकता था कि उस वक्त लड़ाई जम चुकी थी और एक ही बात पर आ कर एकाग्र हो गई थी। वह बात यह कि एक ओर सरकार की भाषा में बा-तरतीब सत्ता का सरेदस्त भंग और अपने तमाम साधनों के द्वारा उसे नष्ट भ्रष्ट कर देने का उसका निश्चय, और दूसरी ओर हर तरह के कष्ट-सहन और बलिदान के द्वारा स्वेच्छाचारी और जालिम सत्ता का सविनय भंग कर के अपने हक को कायम रखने का राष्ट्र का उतना दृढ निश्चय। १८ ता० को मैंने जिला सु० पुलिस को इस बात की खबर की कि मैंने उनके हुक्म के खिलाफ किस प्रकार की तजवीज की है। उसमें ऐसी कोई बात नहीं थी जिससे वह अर्जी मानी जा सके। उलटा उस दिन के कार्यक्रम में यह साफ साफ कही गई थी कि जुलूस इस नये निकले हुक्म को आजमाने के लिए निकाला जाता है। जो हो; परन्तु कार्यक्रम में इतना बड़ा असाधारण परिवर्तन किया जाय और सो भी हमारी लड़ाई शुरू होने के बाद पहली ही मर्तबा और यदि उसकी खबर मैं पुलिस को न देता तो इसमें कोई शक नहीं कि मैं अपने कर्तव्य-पालन से च्युत होता। जिला-मजिस्ट्रेट के रण-क्षेत्र छोड़ कर चले जाने के बाद पुलिस पर एकाएक हमला करना बेजा था। मेरी समझ में ऐसे युद्ध में अचानक धावा करना जायज नहीं है। जुलूस की खबर भेज देने के थोड़ी ही देर बाद वर्जित स्थान पर एक बड़ा पुलिस का दल खड़ा किया गया था। इसका कारण बताना मेरा काम नहीं। परन्तु यह इस बात का पूरा पूरा सबूत है कि पुलिस को खबर देने की जरूरत थी। इतना होते हुए भी यदि इस खबर से अथवा जुलूस के कार्यक्रम के ब्योरे से सरकार को इस प्रतिकूल युद्ध में से निकल जाने की अनुकूलता मिल गई हो तो खुद मुझे तो इस बात से खुशी ही होगी; क्योंकि सिद्धान्त का किसी प्रकार त्याग किये बिना मैंने सरकार की परेशानी कुछ हद तक दूर की और उसे इज्जत के साथ पीछे हटने का रास्ता कर दिया। पर मैं फिर कहता हूं कि न तो सरकार को अर्जी दी गई और न उससे इजाजत मांगी गई और न हुक्म लिया गया।

धारासभा का असर

धारासभा के प्रस्तावों का प्रभाव हमारे संग्राम पर होने के विषय में अखबारों में मैंने कुछ झगड़ा होता हुआ देखा है। इस बात पर अपनी राय प्रकट करने की मेरी इच्छा नहीं है कि धारा-सभा के काम से मुझे सहायता मिली या मेरे काम में रुकावट पैदा हुई; क्योंकि इससे गलतफहमी फैलने की संभावना है। इतना ही कहना काफी है कि पुलिस का हुक्म धारासभा के प्रस्ताव के बाद निकला था। लड़ाई का अन्त होने तक उन प्रस्तावों को भी कार्य-रूप में परिणत नहीं किया गया था; परन्तु लड़ाई के खतम होते ही तुरन्त जेरतजवीज कैदी छोड़ दिये गये। कोई अपने दिल में इस भ्रम को स्थान न दे कि जो सरकार अपना काम खुद अच्छी तरह करना जानती है और जो शारीरिक अथवा नैतिक बल के सिवा दूसरे किसी बल को नहीं पहचानती, कभी मुफ्त में मिली नसीहत को मान लेगी—फिर उसे भले ही धारासभा के प्रस्ताव का बड़ा नाम क्यों न प्राप्त हो गया हो। ऐसे प्रयत्नों के द्वारा तो उलटा उन लोगों पर बेजा और कभी कभी तो घृणित आक्षेप करने का मौका पड़ आता है, जो वहां उनका उत्तर देने के लिए मौजूद नहीं रहते। इन प्रस्तावों से तो सिर्फ इतनाही काम बनता है कि यदि उन्हें एक ओर रख कर काम लिया जाय तो किसी योग्य अवसर पर योग्य काम के लिए उनका अनुकूल उपयोग हो सके।

धर्म-युद्ध

(२)

नागपुर के सत्याग्रह से इस संबंध में कितनी ही नसीहतें मिलती हैं। हाँ, इस युद्ध में शामिल होने वाले कितने लोग कमजोर भी थे, परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह बात अनिवार्य थी। माफी मांग कर तथा दूसरी तरह से कमजोर और अविचारी लोग छूट गये और दूसरों को चेतावनी मिली। प्रकोप के आवेश में तथा देशभक्ति के सौम्य उत्साह में कष्ट भोगना आसान मालूम होता है पर जब सचमुच कष्ट भोगना पडता है तब वह अधिक कठोर मालूम होता है। जब मनुष्य का स्वाभिमान उसे आह्वान करता है तब वह स्वभावतः ही अपने सामर्थ्य के नापने में गलती कर जाता है। विरोधी को तो अपने हथियार देश और काल के अनुसार अनुकूल करने और पसन्द करने का तथा डांटकर कष्ट देने का मौका रहता है। सत्य की कसौटी बडी कठिन होती है, अपनी कमजोरी स्वीकार कर के यदि कोई क्षेत्र से हट जांय तो इसमें किसी प्रकार की बदनामी नहीं।

नागपुर के संग्राम में जो माफियां मांगी गई थीं उनसे तरह तरह के अनुमान निकाले गये थे। सरकार ने तो समझा मानों मुनाफा कमाने के लिए अच्छी पूंजी मिल गई और उसपर उसने शास्त्रीय रीति से व्यापार करना शुरू कर दिया। अगली लडाई में आकस्मिक अथवा अनावश्यक समझ कर जिस चीज का उपयोग नहीं किया गया था, अनुभव मिलने पर उसीका सुव्यवस्थितरूप से अधिक उपयोग किया गया। परन्तु यदि सरकार इन माफियों के संबन्ध में घमण्ड रखती हो तो हम उसे पिछली लडाई के समय भरती किये गये रंगरूटों की याद दिलावेंगे। दोनों के साधन, उद्देश और रीतियां मुकाबला करने लायक हैं। ऊपर से तो यह रंगरूट-भरती देश की लाज रखने, तथा कुटुम्ब और समाज पर उठी आपत्ति से उनकी रक्षा करने के लिए की गई थी। सरकार ने कहा—"तुम्हारे देश को तुम्हारी सेवा दरकार है।" और कितने ही बहादुर लोगों ने इस पुकार को सुना। गिरफ्तार-शुदा सत्याग्रहियों को फुसलाने, धमकाने की जो सुविधा, कुंजी और मनचाहा अवसर यहां के अधिकारियों को प्राप्त हैं वे यदि तुर्कों और जर्मनों को मिले होते तो क्या इसमें कोई शक है कि उन तमाम रंगरूटों को लडाई छोड कर अपने घरबार और खेती-बारी संभालने की बात समझाने में वे सफल न होते? हमारे सत्याग्रही सैनिकों को जैसी तकलीफें दी गई हैं वैसी यदि उन सिपाहियों को दी जाती जो जर्मनी के खिलाफ इंग्लैंड की लडाई में ले जाये गये थे तो वे जितनी दृढता का परिचय देते उससे अधिक ही दृढता हमारी सत्याग्रही सेना ने दिखाई है। सत्याग्रहियों से स्वराज्य का अर्थ पूछ कर अपना मनोरंजन करनेवाले और एसोशियेटेड प्रेस के द्वारा उनका जवाब प्रकाशित करनेवाले मैजिस्ट्रेटों से ही यदि उनके जीवन के आदर्श तथा राजनैतिक विचारों के संबन्ध में वैसे सवाल किये जायं तो वे ज्यादह अच्छे जवाब नहीं दे पाते। उसी प्रकार १९१४ से १९१९ के बीच हिन्दुस्तान में भरती कर के विदेशों को बीमार होने अथवा मर जाने के लिए भेजे गये रंगरूटों से यदि युद्ध के उद्देश अथवा ब्रिटिश साम्राज्य की भावना या उनके कर्तव्य तथा भविष्य के संबन्ध में सवाल किये गये होते तो वे भी अधिक अच्छे उत्तर न दे पाये होते।

सत्य की सिद्धि के अतिरिक्त सत्याग्रह-संग्राम का दूसरा फल नहीं हो सकता। अहिंसात्मक युद्ध के लाभ और हानि इससे अधिक या इससे कम हो ही नहीं सकते। राजनैतिक कूटकपट अथवा अखबारबाजी के द्वारा हम सच्चे लाभ-हानि को नहीं छुपा सकते। नागपुर-संग्राम के फल-स्वरूप जाब्ता फौजदारी की १४४ दफा में तरमीम होना तो कुदरती तौर पर गैर-मुमकिन था। हमारी विजय तो उस दफा के दुरुपयोग करने की सरकार की शक्ति छीन लेने में है। रौलट कानून का जो कि महज अन्याय पूर्ण था, क्या हुआ? जब महात्माजी ने देश को सत्याग्रह के लिए तैयार किया तो वह कानून कानून की किताब में रक्खा रह गया। हाल में धारासभा ने उसे रद किया है। पर यह तो केवल बाह्य आचार था। पहले नहीं किया, अब देर कर के किया। इसी तरह दफा १४४ भले ही कायम रहे, परन्तु सफल सत्याग्रह से उसका दुरुपयोग अवश्य रुकता है। सरकार अब जानती है कि हमारी सत्ता चाहे कितनी निरंकुश हो, हमारे बनाये कानून चाहे कितने सर्वभक्षी हों और हमारे न्यायाधिकारी चाहे कितने ही हमारे इशारे पर चलने वाले हों, पर लोग किसी भी अन्याय के साथ सहयोग करना अथवा उसके सामने झुकना बन्द करने की हलचल बातरतीब कर सकते हैं।

सरकार को बात को दखने का मौका मिला है कि लोगों में कितनी एकता है और संकट सहन करने की पुकार पर दौड पडने की कितनी तैयारी है। यह पुकार और सिद्धान्त ऐसे हैं कि उसका उत्तर देने की ताकत तो सरकार में हई नहीं। इससे संभव है कि वह लोगों के इस उत्तर तथा संग्राम के परिणामों की कीमत को कम आंके और उसे एक ऐसी स्वप्न-सृष्टि समझ कर, जिसका आधार ऐसे सात्विक गुणों और शौर्य पर है जो मानव स्वभाव में नहीं पाये जाते, उसकी उपेक्षा करे। पर अब उसने देख कर नसीहत ली है और लोगोंने भी अब देख लिया है कि ऐसे शूरवीर और पक्के दिल के लोग भी हैं जो हर तरह के संकटों को भोगने को और अपने सिद्धान्त के लिए प्राण तक दे देने को तैयार हैं। दोनों ओर के इस सच्चे अनुभव के बाद हार के इकबाल और जीत के सबूत की कोई जरूरत नहीं। एक ओर नौकरशाही को किसी भी मनमाने काम के करते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि हर एक बे-कायदा कार्रवाई का सारा देश प्रतिकार करेगा। दूसरी ओर हम भी अपनी शक्ति की नाप कर चुके हैं और यह भी देख सके हैं कि हममें कितना बल है।

(यंग इंडिया) च० राजगोपालाचार्य

हिन्दू-महासभा

(४)

स्त्री-शिक्षा

हमारी उन्नति की दूसरी शर्त है स्त्री-शिक्षा। पूज्य मालवीयजी ने विधवाओं का प्रश्न हिन्दू-महासभा में विचारार्थ रक्खा है। परन्तु मेरी राय में तो स्त्री-विषयक हमारी सारी प्रवृत्ति ही विचार करने योग्य है। यहां मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि स्त्री-शिक्षा का अर्थ मैं बी. ए. एम. ए., या वैद्यक या विज्ञान नहीं करता। पुरुषों के लिए भी मैं इसे जरूरी नहीं मानता। पर यह बात तो निश्चित है कि जिस शिक्षा को पुरुष प्राप्त कर सकता है उसे पाने में स्त्रियों के लिए रुकावट न होनी चाहिए। जिस प्रकार ब्राह्मण, आदि जातियों के अभिमान से हमने अन्त्यजों को अपने समाज से नीचे गिरा दिया है उसी प्रकार पुरुष-जाति के अभिमान से हमने स्त्रियों को भी नीचे धकेल दिया है। जिस प्रकार सरकार के कानून-कायदे अंगरेजों का ही अधिक हित-साधन करते हैं उसी-प्रकार हमारे धर्म-शास्त्र भी पुरुषों का ही अधिक हित-रक्षण करते हैं।

खास कर के हमारे उच्च और मध्यम वर्ग की हालत तो सब जगह अस्वाभाविक है। पुरुषों और स्त्रियों की दृष्टि-मर्यादा और

कार्यक्षेत्र में अद्‌भुत अन्तर पड़ गया है और वह दिन पर दिन अधिक बढ़ता हुआ ही देखा जाता है। 'स्त्रियों के लिए गृहकार्य और गृह-व्यवस्था और पुरुषों के लिए सारा ब्रह्माण्ड' यह भेद बांध कर और इसीको अपना आदर्श बताने का प्रयत्न कर के हम इस अन्तर को मजबूत करते जा रहे हैं।

इस अन्तर के दूर करने की सिफारिश का अर्थ इतना ही है कि स्त्रियों और पुरुषों के मुख्य संस्कारों में भेद न होना चाहिए। हमारे समाज में स्त्रियों का बाल्यकाल बहुधा व्यर्थ अथवा बुरी तरह और कुसंस्कारों को प्राप्त करने में जाता है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के बाद तो उनकी उपाधि दिन पर दिन बढ़ती जाती है। पुरुषों में भावना की मात्रा कुछ अधिक होती है और वह दुनिया में घूमने फिरने से, पुस्तकों के अध्ययन से तथा सत्पुरुषों के सहवास से अधिक उन्नत और विकसित हो जाती है। इससे वे जीवन की व्यवस्था इस प्रकार करते हैं अथवा खोज निकालते हैं जिससे उनके निर्वाह की वृत्ति उनकी चित्त-वृत्ति की सहायक होती है। इस प्रकार उनकी प्रवृत्ति को हमेशा पोषण मिला करता है और स्त्रियों की प्रवृत्ति कुण्ठित होती जाती है। और यह अन्तर दिन पर दिन बढ़ता जाता है।

इसका फल यह होता है कि पुरुषों के समाज-सुधार अथवा देश-सेवा के कामों में स्त्रियां उनके बराबर हाथ नहीं बंटा सकती। पुरुष अपनी भावना के बल पर दौड़-धूप करते हैं, जेलों में जाते हैं, गरीबी को अंगीकार करते हैं, ऐश-आराम को ठोकर मारते हैं, कुप्रथाओं को दूर करना चाहते हैं; पर स्त्रियों की समझ में इनके कारण नहीं आ सकते। क्योंकि दोनों की भावनाओं के विकास में अन्तर पड़ गया है और यही उसमें बाधा डालता है।

इसी प्रकार यह खयाल भी कि स्त्रियों को अवश्य पुरुषों पर अवलम्बित रहना चाहिए, ठीक नहीं है। स्वावलम्बन की शक्ति, अभयभाव, समय पड़ने पर पुरुषों के द्वारा पोषण और रक्षण मिलने की अनिच्छा-ये शक्तियां स्त्रियों में अवश्य होनी चाहिए। और इन दोनों बातों के लिए पुरुष और स्त्री दोनों के संस्कारों में और जीवन में समानता होनी चाहिए।

शुद्धि

परन्तु हिन्दू-महासभा में शायद हमारा ध्यान शुद्धि के प्रश्न पर अधिक दिलाया जायगा। शुद्धि किसकी हो सकती है? यदि हम किसी जाति को अपने से नीची मानें तो उसकी शुद्धि की जा सकती है। पर मैं शब्दजाल में पड़ना नहीं चाहता। प्रश्न हमारे सामने सीधा है। अ-हिन्दू को हम हिन्दू-जाति में ले सकते हैं या नहीं?

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, धर्म ईश्वर की खोज का एक साधन है। जिसे परमात्मा की खोज करना हो उसे इसका अधिकार है। धर्म के दरवाजे तक पहुंचने के लिए जुदा जुदा लोगों ने जुदे जुदे संप्रदायों को अंगीकार किया है। जिसकी निष्ठा जिस सम्प्रदाय पर बैठ जाय वह यदि उसे स्वीकार कर ले तो इसमें जाति-संबंधी बाधा न आने देनी चाहिए। इसलिए हिन्दू-धर्म (इसका जो अर्थ वह समझता हो) के पालन करने में किसीके लिए रुकावट न होनी चाहिए। इस दृष्टि से कितने ही मुसलमान वैष्णव हो गये हैं। पर इसके लिए आन्दोलन नहीं किया जा सकता। यह तो अपनी अपनी अन्तरात्मा का प्रश्न है।

हिन्दू-जाति में लेने के संबंध में भी मेरा यही विचार है। हिन्दू-राष्ट्र अनेक जातियों से मिल कर बना है। मूलतः किसी दूसरी जाति के लोग यदि हिन्दू-जाति के संस्कारों को प्राप्त कर ले और हिन्दुओं की तरह उनका रहन-सहन हो जाय तो उन्हें भी एक हिन्दू-जाति मानने में बाधा न होनी चाहिए। हां, यह दूसरी बात है कि उन्हें किसी जाति में शामिल किया जाय या नहीं। इसका निश्चय उन दोनों मिलने-मिलाने वाली जातियों पर अवलम्बित है।

तीसरा प्रश्न है उन लोगों का जिन्हें जबरदस्ती से अपना धर्म छोड़ना पड़ा हो। जहां जबरदस्ती की गई हो वहां किसी शख्स को भ्रष्ट मानना मुझे उचित नहीं मालूम होता। समाज को यही मानना ठीक है कि वह अपनी जाति से पतित नहीं हुआ। उसे यदि कोई अभक्ष्य भोजन करना पड़ा हो और उसके लिए वह यदि सच्चे दिल से प्रायश्चित्त करना चाहता हो तो उसमें रुकावट न होनी चाहिए। इस प्रकार की शुद्धि यदि वह चाहे तो अवश्य करनी चाहिए। पर समाज तो यही समझे कि वह पतित नहीं हुआ है। जो मनुष्य जान-बूझ कर अभक्ष्य भोजन करता है उसकी अपेक्षा उस मनुष्य के लिए जिसे जबरदस्ती अभक्ष्य भोजन करना पड़ा है, कम प्रायश्चित्त होना चाहिए।

परन्तु जिसने किसी दूसरे धर्म को अंगीकार कर लिया है या जो मूलतः अहिन्दू है उसे हिन्दू होने की प्रेरणा करना मुझे व्यर्थ दिखाई देता है। जिसने इस धारणा से हिन्दू-धर्म को छोड़ा हो कि दूसरे धर्म के द्वारा उसे अवश्य ही परमेश्वर की प्राप्ति होगी, तो हिन्दू-धर्म छोड़ने से उसकी अवनति नहीं हो सकती। यदि किसीने किसी दूसरे लालच से अथवा फुसलाहट में आकर हिन्दू-धर्म को छोड़ा हो और उसे उसके लिए पश्चात्ताप होता हो और वह अपने पूर्व समाज में आना चाहता हो तो उसे ले लेना चाहिए। परन्तु इसके लिए आन्दोलन करना मुझे उचित नहीं मालूम होता। जो अपने जीवन का विकास करना चाहता है उसे न तो इस्लाम और न ईसाई-धर्म बाधक हो सकता है। यदि उसकी यह इच्छा न हो और किसी लालच, मोह या दबाव से वह उसकी तरफ झुकता हो तो उसकी दृष्टि से और हिन्दू-धर्म की दृष्टि से उसे मिलाने की आवश्यकता नहीं है।

जैन

पं० दीनदयालजी ने बौद्धों का तो उल्लेख किया है; परन्तु जैनों के संबंध में सारी विज्ञप्ति मौन है। यदि जैनों को हम हिन्दू राष्ट्र का एक अंग न मानेंगे तो हमारी बड़ी भूल होगी।

इस तरह हिन्दू-समाज-संबंधी मुख्य प्रश्नों पर यथामति विचार किया है। मैं फिर इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि हमारी उन्नति केवल पंडिताई से नहीं होगी और उसी हद तक परिषदों से भी नहीं होगी। हमारी उन्नति तो केवल शुद्ध और पवित्र जन ही करा सकते हैं। स्मृतियों और मीमांसा के नियमों की काटछांट करने से उन्नति नहीं होगी; बल्कि धर्म के द्वार में पहुंचे हुए पुरुषों के वचनों में श्रद्धा बैठने से ही होगी। जिस प्रकार राज्यतन्त्र को सुधारने के लिए सरकार के सामने पेश की गई दोष-रहित दलीलें किसी काम में नहीं आतीं, इसके लिए तो शासनकर्ताओं के हृदय का ही परिवर्तन होना चाहिए; उसी प्रकार हमारे समाज-तन्त्र को सुधारने के लिए भी हमारे हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता है।

इस प्रकार जो बातें विवेकपूर्वक ठीक मालूम हुईं वे यहां लिखी हैं जब इनमें भूल दिखाई देगी तब सुधारूंगा। मैं जानता हूं कि सारासार-विचार के द्वारा हम जिन नतीजों पर पहुंचते हैं उनके अनुसार ठीक ठीक बरताव नहीं होता। परन्तु इस श्रद्धा से कि परमात्मा किसी दिन यह बल अवश्य देगा, पूर्वोक्त विचार प्रकट किये हैं।

किशोरलाल घ. मशरूवाला

जलूस को निकल जाने देने के बाद तमाम कैदियों को छोड़ देना सरकार का प्राप्त कर्तव्य था, और उसका पालन करने के लिए मैं मध्य-प्रान्त की सरकार को धन्यवाद देता हूं। मुझे यह देख कर दुःख होता है कि आज छूट कर आये कोई एक हजार जेलवासियों में से अभी सात लोगों को जेल के नियमों के खिलाफ चलने के कारण जेल से नहीं छोड़ा है; पर मुझे विश्वास है कि वे भी थोड़े ही दिनों में छूट कर आ जायंगे। कैदियों को छोड़ने में थोड़ी-बहुत देर हुई है। पर मेरा विश्वास है इस देर के कारण मध्य-प्रान्त की सरकार के बस के बाहर थे। मुझे यह बात प्रकट करते हुए बहुत खुशी होती है कि मेरे भाई भी जो मेरे यहां आने के बाद ही यहां आये और जिन्होंने ठेठ अन्त तक इस संग्राम के संचालन में मेरे साथ पूरा पूरा सहयोग किया, इस मौके के धारा-सभा के प्रस्तावों की निष्फलता के विषय में मेरे साथ पूरी तरह सहमत हैं—यद्यपि इस निष्फलता के संबंध में हम दोनों की दृष्टि एक दूसरे से भिन्न है। सब लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि राजनैतिक मतों में हम दोनों के बीच उत्तर-दक्षिण का अन्तर है, परन्तु हम दोनों नागपुर से अपने अपने राजनैतिक विचार थोड़े-बहुत दृढ़ लेकर वापस लौट रहे हैं।

सच्ची विजय

अब मैं आप सब सज्जनों का जो अपनी खुशी से स्वीकृत एकान्तवास को भोग कर हमारे बीच लौट आये हैं, स्वागत करता हूं। आपकी इस लड़ाई से भी बड़ा युद्ध और अधिक बलिदान आपकी राह देख रहा है।

आज हमारे बीच आपके आ जाने से मैं और भी जोर के साथ अपनी उसी बात को जो मैंने पिछले मौके पर कही थी, फिर से कहता हूं कि नागपुर के झण्डे के सत्याग्रह-युद्ध का अन्त राष्ट्रीय झण्डे की मान-रक्षा के साथ हुआ और हम आम सड़कों पर शान्तिपूर्ण और बाकायदा जुलूस ले जाने के अपने अधिकार को पुनः प्राप्त कर सके। इस युद्ध में सत्य, अहिंसा और कष्ट-सहन को पूरी विजय हुई है।

परन्तु इस बात पर हमें शेखी मारने का कोई प्रयोजन नहीं है। विजय इस बात में नहीं है कि हमने क्या प्राप्त किया और न इस बात में है कि हमने कष्ट उठाया; बल्कि विजय तो अपने अन्तिम ध्येय की सिद्धि के लिए अधिकाधिक कष्ट-सहन करने की हमारी तैयारी में है। सच मानिए कि इस युद्ध का श्रेय मुझे नहीं है; बल्कि आप सब लोगों को है जिन्होंने इसमें कष्ट-सहन किया है उन लोगों को है जो इसके लिए कष्ट-सहन को तैयार थे, तथा नागपुर-कांग्रेस-कमिटी के अथक कार्योत्साह और प्रशंसनीय व्यवस्था और नियमबद्धता को है जो उसने इस युद्ध के संचालन के समय प्रदर्शित की है।

कमिश्नर संवाददाता

एक बात यहां पेश किये बिना यह वक्तव्य मैं पूरा नहीं कर सकता। १८ ता० की घटना की जो शरारती खबरें फैली हैं उनका मूल खोजने की मैं कोशिश कर रहा था। इस खोज में मुझे एक अजब सबूत मिल गया। जून के आखिरी सप्ताह में सेठ जमनालालजी बजाज तथा उनके साथियों की गिरफ्तारी के बाद "टाइम्स आव् इंडिया" में प्रकाशित उन सुप्रसिद्ध चार पत्रों की तथा आरम्भ से अन्त तक 'टाइम्स आव् इंडिया' की इस लड़ाई संबन्धी नीति की कुंजी भी शायद इसी सबूत में मिल जाय। कलकत्ते के 'स्टेट्समैन' पत्र के २१ अगस्त के अंक में नागपुर के कमिश्नर का १९ ता० का भेजा एक तार छपा है। उसका शीर्षक है—"सत्याग्रह बंद होगा"—"नेता लोग सरकार के सामने झुके" "टाइम्स आव् इंडिया" के संवाददाता का उसी तारीख का तार उस पत्र के २० अगस्त के अंक में 'सरकार की सत्ता कुबूल की' शीर्षक दे कर छापा गया है। यह तार 'स्टेट्समैन' में छपे कमिश्नर के तार की शब्दशः नकल है। इन दो तारों को यदि मिला कर पढ़ें तो यह जानना कठिन पड़ता है कि 'टाइम्स आव् इंडिया' का संवाददाता वह कमिश्नर है या नागपुर का कमिश्नर 'टाइम्स आव् इंडिया' का संवाददाता है। संभव है कि 'टाइम्स आव् इंडिया' की तरह 'हमारे विशेष संवाददाता की ओर से' छापने के बदले "नागपुर के कमिश्नर की तरफ से मिला तार" छापने की 'स्टेट्समैन' की गफलत से कमिश्नर साहब की कलई खुल गई हो। इस सबूत के मिल जाने पर भी मैं कितने ही समय तक न मान सका कि ऐसा घोषणा-पत्र कमिश्नर ने प्रकाशित किया होगा। परन्तु खोज करने पर मुझे मालूम हुआ कि यह बात सच है। फिर भी मुझे विश्वास दिलाया गया है कि नागपुर के कमिश्नर ने 'स्टेट्समैन' में जो बात छपाई है उसे प्रकाशित करने का अधिकार उन्हें नहीं दिया गया था। इसके अलावा मैंने यह भी देखा है कि नागपुर के कमिश्नर के अखबारवालों के साथ इस संबंध और हरकत को रोकने का सामर्थ्य मध्यप्रान्त की सरकार के पास नहीं है। पहले भी एक मौके पर, यह हुक्म होते हुए भी कि 'सरकार के काम में आप दखल न दें' इसी लड़ाई के संबंध में उन्होंने अपनी निजी हरकतों से सरकार को कठिनाई में डाला था। इस प्रकार वे महाशय अपने मन की किया करते हैं। मैं इस बात को तुरन्त कुबूल कर लेता हूं कि सरकार की हार्दिक इच्छा थी कि इस लड़ाई की समाप्ति मान-सहित हो तथा कमिश्नर की इस हरकत से सरकार को खेद हुआ है। फिर भी इतना कहे बिना मैं नहीं रह सकता कि अन्त को सरकार कमिश्नर की इस हरकत की जवाबदेही से मुक्त नहीं हो सकती।

समाप्ति

अब हमें परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिए कि ऐसे समय में जब कि देश में व्यक्तिगत राग-द्वेष, दलादली और जातीय झगड़ों के बोझ से परस्पर-सहिष्णुता, राजनैतिक दीर्घदृष्टि और देश का उच्च हित दब गया था और जब कि सन्देह और निराशा के बादल देश को घेर चुके थे उस दयासागर ने हमपर दया की और रागद्वेष तथा कलह के नीचे बहनेवाले राष्ट्र की दृढ़ता, शक्ति और हृदयबल के गूढ़ प्रवाह का नम्रता के साथ परिचय कराने का यह अवसर हमें दिया। मित्रों की तमाम गलतफहमियों तथा शत्रुओं की तमाम झूठी बातों के रहते हुए भी निर्मलता, और निर्भयता के साधनों से छिड़े इस धर्मयुद्ध का स्मरण लोग भविष्य में गौरव के साथ करेंगे और यह धर्मयुद्ध सत्य, अहिंसा, कुरबानी के शस्त्रों की श्रेष्ठता के प्रति लोगों में अधिक श्रद्धा का संचार करेगा। महात्मा गांधी का आदेश है कि सत्य, अहिंसा और कुरबानी ही हमारे राष्ट्र की प्रकृति और संस्कृति के अनुकूल है।

वन्देमातरम्

वल्लभभाई झवेरभाई पटेल

हिन्दी-नवजीवन

जेल-दिन ५४०, रविवार, भाद्रपद बदी १४, सं. १९८०

लालाजी का मत

अन्त में लालाजी को तबीयत खराब होते हुए भी बोलना पडा है और उन्होंने अपनी सदा की रीति के अनुसार अपना विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित किया है। सबसे पहले उन्होंने यह प्रकट किया है कि निराशा दिखाई देते हुए भी आशा न छोडनी चाहिए "निराश होना तो दूर परन्तु बहुत निरुत्साह होने का भी कारण नहीं"। परन्तु एक दो बातों पर ध्यान रखना जरूरी है। सविनय भंग का बडा आन्दोलन महात्माजी के नेतृत्व के बिना नहीं उठाया जा सकता।

"जब कि महात्मा गांधी स्वयं १८ महीने में सविनय भंग को सफल न कर सके—इतनी मीयाद ऐसी योजना के लिए बहुत कम है—तो हम उनकी गैरहाजिरी में अनेक वर्षों में भी उससे ज्यादह नहीं कर सकते। इस हलचल के जोश और धूम-धडाके के कारण रचनात्मक काम रुक जाता है और जिस सिद्धान्त तथा नीति के अनुकूल महात्माजी महासभा को तैयार करना चाहते थे वह काम नहीं हो सकता। अनेक ऐसे लोग घुस गये जिनका आना अच्छा न था और उससे आन्दोलन को हानि पहुंची। इसलिए महात्माजी की गैरहाजिरी में हमारा काम इस प्रकार होना चाहिए—

(१) उनकी रिहाई

(२) तबतक उनके स्थान के योग्य किसी व्यक्ति की खोज

(३) इस बीच लडाई जारी रक्खी जाय और

(४) ऐसी किसी भी कार्य-प्रणाली की उपेक्षा न की जाय जिससे सरकार हमारे साथ समझौता करने पर मजबूर हो।

इसके संबंध में दो बातें कहना जरूरी हैं। लालाजी अभी सिर्फ पण्डित मोतीलालजी से ही मिले हैं। दूसरे पक्ष के किसी भी नेता के साथ उन्होंने चर्चा नहीं की है। यह बात तो बेशक उत्तम है कि सविनय भंग में ऐसे शख्स न शामिल हों जो उसके लिए बाधक हों; परन्तु अहमदाबाद के बाद उस विषय में चौकन्ने हो कर तथा चौरीचौरा-संबंधी महात्माजी के उपवास के बाद चेत कर लोगों ने सरकार के साथ पूर्ण अहिंसा-धर्म का पालन किया है। शायद इस बात पर लालाजी का ध्यान न गया हो। गुरु-का-बाग और नागपुर में ऐसी कोई घटना नहीं हुई जिससे हमें चौंकना पडे। दूसरे महात्माजी को छुडाने की भी बात बडी अच्छी है। पर जिस तरीके से महात्माजी न छूटना चाहते हों उस तरीके से भी उन्हें छुडाना उचित है? तीसरे, लालाजी की चौथी बात में तो तमाम बातों का समावेश हो सकता है—सरकार की मिन्नत-खुशामद से लेकर धारासभा में अडंगा लगाने तक की तमाम बातों का। तो फिर जैसा कि श्री जार्ज जोसफ ने अपने सेलम के भाषण में कहा है हरएक दलवालों को अपनी स्थिति अच्छी तरह स्पष्ट कर देनी चाहिए।

लालाजी को दोनों दल के लोगों की सचाई पर सन्देह नहीं है। उनके सामने उलझन यही है कि दोनों दलों को मिलाया किस तरह जाय? इसलिए एक पक्ष से अर्थात बहिष्कारवादियों से वे इस प्रकार कहते हैं—आपकी बात बिलकुल सच है। पर असहयोग हमारा साधन है, ध्येय नहीं। साधन है। इसलिए उस पर दृढ रहते हुए भी हमें उन तमाम रीतियों का अवलम्बन करना चाहिए जिनसे सरकार पर दबाव डाला जा सके।' स्वराज्य दलवालों से वे इस प्रकार कहते हैं—'भाइयो, धारासभा के साथ मुझे विशेष प्रेम नहीं। मैं नहीं मानता कि उनसे बहुत-कुछ हासिल होगा। परन्तु देश की परिवर्तित अवस्था में मैं यह बात समझ सकता हूं कि आप अपने तरीकों को भी आजमावें। परन्तु कृपा कर के इतनी बात जरूर याद रखिएगा कि वहां जा कर असहयोगियों की तरह रहिएगा और गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम को न भूलिएगा।'

यह उनके कथन का तात्पर्य है। इन दोनों पक्षों का मिलाप करने की गरज से आप नीचे लिखी तदबीर सुझाते हैं—

"पहली तो धारासभा के बहिष्कार की बात छोड देनी चाहिए। दूसरी, जो लोग चुने जायं वे महा-समिति के आदेश के अनुसार धारासभा में रहें और काम करें। तीसरी, जो महासभा में जाना चाहें वे यदि महासभा की शर्तें मंजूर कर के जाना चाहें तो जाने दिये जायं।"

फिर आगे आप फरमाते हैं—

"मैं मानता हूं कि यदि धारासभा में असहयोगियों की तरह नहीं काम किया जायगा तो वे व्यर्थ जायंगी। अब मैं यह नहीं कह सकता कि बहिष्कार-दल को इनमें से कौन-सी तदबीर पसन्द होगी। पर एकता तो हर हालत में होना जरूरी है।"

इस खबर में सिर्फ इतना ही पूछा जा सकता है कि मान लीजिए, असहयोगियों की तरह धारासभा में काम करने के लिए सब राजी हो जायं तो भी क्या यह मुमकिन है? श्री राजगोपालाचार्य के लेखों में यह बात भलीभांति लिखी जा चुकी है कि यह संभव है या नहीं। और भी यदि किसीको देखना हो तो वह श्री जार्ज जोसफ के अन्यत्र प्रकाशित भाषण में देख सकता है। खुद पार्नेल जो स्वराज्य-वादियों की प्रणाली का गुरु था, अपने कार्य-काल के बाद यह बात कह गया है कि यहां एकबार धारा-मंडल में घुसे कि फिर पतन हुए बिना नहीं रहता।

मुसलमानों के फतवे के संबंध में लालाजी फरमाते हैं कि पंजाब में तो कितने ही मुसलमानों ने खुले तौर पर फतवे को ताक में रख दिया है। इन लोगों को गिनती में लेकर निर्णय करना चाहिए। सो इस बात का जवाब तो मौलाना महम्मद अली और डाक्टर किचलू दे ही चुके हैं।

अन्त में लालाजी ने एकता के लिए इस प्रकार प्रार्थना की है—

"दोनों पक्षों का उद्देश अत्यन्त विशुद्ध है। जैसी त्यागमूर्तियां महासभा में एकत्र हुई हैं वैसी अन्यत्र कहां मिल सकती हैं? नेहरू, दास, जमनालाल, राजगोपालाचार्य, अजमलखान, अली भाई (थोडे ही नाम यहां देता हूं) इनके रहते हुए तो चारों ओर हमारी ही आवाज सुनाई देनी चाहिए। इनमें से किसी एक को भी हटा दीजिए कि बस, महासभा एक प्राणहीन ढांचा रह जायगी। हम सब एक हो कर, आत्मविश्वास रख कर आगे कदम बढाते चलें। हमने किसी एक ही रीति अथवा उपाय की कसम नहीं खाई है। यदि हम अहिंसक और नीतिमान् बने रहें तो काफी है।"

इसपर एकता का प्रेमी 'ट्रिब्यून' पूछता है कि क्या इन सब लोगों को एकत्र रक्खा जा सकता है? इनकी रीति-नीति और आदर्श ऐसा है जिससे ये एकत्र किये जा सकें? जब तक दो में से कोई अपने सिद्धान्त को छोड कर दूसरे में मिल न जाय तबतक यह एकता कैसे प्रकार हो सकती है?

और दूसरी बात यह कि हम सब न तो अहिंसक ही हैं और न नीतिबद्ध ही। एक पक्ष जिसे नीति मानता हो, संभव है उसे दूसरा पक्ष नीति न मानता हो। एक पक्ष को धारासभा में जा

कर सम्राट् को कसम खाना महज अर्थहीन शिष्टाचार मालूम होता हो, उसके साथ ईमानदारी का संबन्ध उसे न दिखाई देता हो, और दूसरे पक्ष को कसम खाना दूसरी अन्य बातों के ही बराबर महत्व-पूर्ण और ईमानदारी की कसौटी मालूम हो तो इसका क्या इलाज ?

खूबी तो यह है कि 'ट्रिब्यून' लालाजी की तीसरी शर्त से चौंक उठा है। वह कहता है कि महासभा की शर्तों में बांध कर स्वराज्य-पक्षवालों को धारासभा में जाने देना उनकी स्वतन्त्रता के साथ अन्याय करना होगा। अर्थात् ट्रिब्यून इस बात को साफ साफ कह देता है कि यदि उन्हें स्वतन्त्रता-पूर्वक धारासभा में जाने दिया जाय तभी एकता हो सकती है। परन्तु यदि वे यह साफ साफ कहें कि स्वतन्त्रता पूर्वक जावेंगे तो नरम दल वालों में गिनती होती है और यदि उस तरह नहीं जाते हैं तो खुद उन्हींके पक्ष में एकता किस तरह कायम रह सकती है ? उनकी एकता सब को स्वच्छन्दता के साथ धारासभा में जाने देने पर अवलंबित है। यह है स्वराज्य-दल की दशा। उनके इस गोरख-धन्धे को हल कौन करे ?

हमें आशा रखनी चाहिए कि लालाजी शीघ्र नीरोग हो जायं और उन्हें सब लोगों के साथ मिल कर चर्चा करने का अवसर मिले।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देशाई

विशेष महासभा

पिछली २ सितम्बर को तामिल नाडू की प्रान्तिक परिषद के सभापति की हैसियत से सेलम में श्री जार्ज जोसेफ ने एक महत्वपूर्ण भाषण किया है। उनका विशेष महासभा और वर्तमान दलबन्दियों से संबंध रखने वाले अंश का सार नीचे दिया जाता है—

विशेष महासभा का कर्त्तव्य

"गया के बाद दोनों पक्षों के समझौते के प्रयत्नों के कारण उत्पन्न हुई अव्यवस्था और अकर्मण्यता की वजह से महासभा की खास बैठक होने की आवश्यकता है। हमें यह आशा रखनी चाहिए कि महासभा निश्चित निर्णय करेगी। पर महासभा निर्णय क्या करेगी ? इसी बात का कि असहयोग ज्यों का त्यों जारी रक्खा जाय या फिर से वैध आन्दोलन का रास्ता पकड़ा जाय। यदि वैध आन्दोलन ही मार्ग ग्रहण करना हो तो फिर इस बात में कुछ फर्क नहीं पड़ता कि वह थोड़े समय के लिए किया जाय या सदा के लिए।

असहयोग

इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि असहयोग ने एक नया ही रास्ता निकाला है—ऐसा नया रास्ता निकाला है जिसका आजतक न तो किसीने ख्याल किया था और न जिसे आजतक किसी ने दिखाया ही था। उस समय तमाम पुराण-प्रिय लोगों ने उसके खिलाफ आवाज उठाई, सरकार ने उसका मजाक उड़ाया। परन्तु दमन तथा अनेक प्रकार की दिक्कतों के रहते हुए भी वह अद्भुत रीति से सफल हुआ। हिन्दुस्तान उस समय एक विप्लव के किनारे था। परन्तु चौरीचौरा आया। हमें चेतावनी मिली। तमाम विप्लवकारी लोग जेलों में ठूंस दिये गये। उनके साथी जो उस समय आशा से उन्मत्त हो गये थे वे चक्कर में पड़े और एक दूसरे के साथ तू-तू मैं-मैं करने लगे। सामान्य जनता दिङ्मूढ हो गई और आजिज आ गई। पहले के रटे हुए शब्द अब भी उसकी जबान पर हैं, परन्तु वह आस्था नहीं है। इससे वैध आन्दोलन-वादी, जिनकी बुद्धि को उस समय लकवा मार गया था, अब फिर अपनी असल स्थिति पर आ कर खड़े हुए हैं और महा-सभा को आगामी चुनाव के लिए उम्मीदवार खड़े करने वाला एक दल बनाना चाहते हैं। उनका यह विचार है कि सरकार को दिक कर के उसे धारा-सभा बंद करने पर मजबूर करें और इस प्रकार सार्वत्रिक सविनय-भंग का अवसर खड़ा किया जाय। अर्थात् १९२० में जिस साधन का विचार होता था वहीं वे अबतक बने हुए हैं।

जिनकी आंखें खुल गई हैं

१९२० का असहयोगी यदि आज इस प्रकार विचार करे तो यह बात समझ में आ सकती है—"सब बातें ठीक थीं, महात्मा जी के जमाने में हमने खूब कर दिखाया, पर हमारे दुर्दैव से हम हार गये। अब क्या हो सकता है ? लोक थक गये। मैं भी थक गया हूं। इस प्रकार कहीं जिन्दगी बीत सकती है ?—जेल, गरीबी, बच्चे मारे मारे फिरते हैं, न कहीं पाठशाला का पता है न तालीम के किसी साधन का। भाड़ में जाय यह असहयोग। वैध आन्दोलन ही क्या बुरा है ? जरा बदनामी उठानी पड़ेगी। मेरे धारासभा में जाने से काहिल और अकल के दुश्मन लोग तो वहां न पहुंच पावेंगे। न जेल जाना होगा, और न जी में व्यर्थ ही खटका लगा रहेगा। और फिर यदि आगे कोई तेज कदम बढ़ाने का मौका आवेगा तो देख लेंगे।" इस तरह सैकड़ों लोगों ने विचार किया और उसके अनुसार काम भी कर डाला। यदि खास नामी आदमियों का नाम बताना हो तो वे हैं श्री माधवन् नैर और गोपाल मेनन् जिन्होंने अभी हाल ही वकालत की सनद फिर हासिल की है। ऐसों के लिए मुझे हमदर्दी होती है, अलबत्ते उनकी अन्तिम धारणा पर मुझे शक होता है।

साफ साफ विरोधी

१९२० में जिन लोगों ने असहयोग का विरोध किया था वे ऊपर के विचारों को इस प्रकार और भी जोर के साथ प्रकट करेंगे—"लीजिए, जो हम कहते थे वही आखिर सच हुआ न ? अजी कहीं पत्थर पर सिर पटकने से पत्थर भी फूटता है ? या तो शान्ति के साथ वैध आन्दोलन के द्वारा लड़िए, या लीजिए लाठी और जो हो सके सो कर दिखाइए। परन्तु यह मंझला रास्ता—न इधर न उधर—महज मूर्खता की हद है।" इन विचारों के नमूना विपिन पाल और महाराष्ट्र-दल है। इनके साथ मुझे जरा भी हमदर्दी नहीं। पर उन्हें चाहिए कि वे अपनी स्थिति लोगों के सामने स्पष्ट कर दें। लोग उन्हें बुरा-भला न कहेंगे।

स्वराज्य-दल वाले

परन्तु एक तीसरा दल है जिसकी बात मेरी समझ में नहीं आती और न उसके साथ मुझे हमदर्दी होती है। इसकी दलील इस प्रकार है—"मैं असहयोग को चाहता हूं; अहिंसा को चाहता हूं; परन्तु हम लड़कों को सरकारी स्कूलों में जाने देने से नहीं रोक सकते, वकीलों को अदालत में जाने से नहीं रोका जा सकता, चुनाव के लिए उम्मीदवार अवश्य होना चाहिए, धारासभा में जा कर हर मौके पर अड़ंगा लगाना चाहिए।" यह है स्वराज्य-दल वालों का सिद्धान्त। इसके पहले भाग को तो मैं समझ सकता हूं; परन्तु आखिरी मुझे नहीं पटता। वे समझते हैं कि धारासभा में अड़ंगा लगाने का उपाय नवीन है। पर ४० वर्ष पहले पार्नेल उसको आजमा चुका है। थोड़े दिनों तक तो लोगों ने उसको मनचाहा करने दिया; फिर समझा कि यह सौदा तो महंगा है। तब उसे रोक दिया। यह रुकावट बा-कायदा नहीं थी। पर पीछे से वह बा-कायदा बना दी गई। आज यहां जो कानून-दां लोग पड़े हुए हैं वे कच्चे-पोचे नहीं हैं। उलटा उन्हें तो पिछले ४० वर्षों का अनुभव प्राप्त है। और यदि कुछ खामी रही भी तो वह यहां की नौकरशाही की स्वेच्छाचारिता-मनमानी सत्ता उसे पूरा कर देती है। यहां हिन्दुस्तान में भी यह प्रयत्न नवीन नहीं है। जब श्रीमती बेसेंट नजरबन्द थीं तब उन्हें छुड़ाने

के लिए मुझे धारासभा में अड़ंगा लगाने का उपाय अच्छा दिखाई दिया था। मेरे मित्र रंगस्वामी आयंगार ने मुझे उत्साहित किया था। पर अन्त को हमने देखा कि कानूनों के आगे किसीकी माया नहीं चलने की। हर तरह के मौके का सामना करने के लिए नौकरशाही जो चाहे नियम बना सकती है और यह सत्ता जो १९१७ में थी उससे आज कम नहीं हुई है। परन्तु मुझे इन बातों से क्या गरज कि सरकार को क्या करना चाहिए और क्या नहीं? सच बात यह है कि स्वराज्यवादी वैध आन्दोलन की ओर वापस लौटना चाहते हैं, परन्तु यह बात वे साफ साफ नहीं कह सकते। हां, कुछ लोग तो यह बात साफ साफ भी कह देते हैं; पर कुछ लोग धारासभा के यन्त्र को बन्द कर के सविनय भंग की आशा रखते हैं। अजी, भगवान् का नाम लीजिए! जब्त कर के बाद जो हालत हुई वही हो कर रह जायगी और समय पर कर वे पुराने नरम-दल में मिल जायंगे।

इस तरह, जैसा कि मैं कह चुका हूं, रास्ते दो भिन्न भिन्न हैं। मानिए चाहे न मानिए-परन्तु वैध आन्दोलन को तिलांजलि देने के बाद हमने देश में जो चमत्कार देखा—जो जीवन देखा वह पिछले ४० वर्ष के वैध आन्दोलन के जमाने में कभी नहीं दिखाई दिया था। मानों हम स्वराज्य के आसपास पहुंच गये थे। उस समय जीना अच्छा मालूम होता था। सरकार तथा उसके तमाम कानूनों की हमने सीमा बांध दी थी। जिन करोड़ों लोगों को गांधीजी ने जाग्रत किया वे वैध आन्दोलन वाले नहीं, बल्कि सच्चे असहयोगी हैं। हम थक गये हैं, पर वे नहीं थके पर वे भी दिग्मूढ हो गये हैं; क्योंकि हम आपस मे लड़-झगड कर उनकी आस्था खोने पर उतारू हो गये हैं। जरा धीरज रख कर यदि हम पहिये को दो हाथ लगावें तो गड्ढे में फंसी गाडी तुरन्त चलने लगे। १९२१ के बाद तो सत्याग्रह के दो प्रयत्न सफल हुए—गुरु-का बाग का और नागपुर का। क्या कोई सकता है कि वैध आन्दोलन में क्या सफलता मिली?

समझौते की बातें

तो फिर समझौते की बातें क्यों होती हैं? इसलिए कि हम स्वराज्य-दल वालों को असहयोगी मानते हैं। १९२० में तो हम नरम दलवालों के साथ लडे ही थे-उनके साथ समझौता क्यों न किया? आज भी यदि हम स्वराज्य-दल वालों को अच्छी तरह पहचान लें तो उनके साथ समझौते की बातें न करें। पर वह कौनसी चीज है जो हमें उनसे अलहदा होने से रोक रही है? उनके साथ हमारी नई मित्रता और उनकी सेवाओं के प्रति हमारा आदर-भाव। रत्ती भर डरने की आवश्यकता नहीं। क्या एक-दूसरे के प्रति जो आदर-भाव है वह नष्ट हो सकता है? परन्तु यह राज-काज का तो रास्ता पुरानी मित्रताओं के टुकडों से पथरा हुआ है। इसपर आंसू बहाने से कैसे काम चल सकता है? यदि देश असहयोग से थक कर स्वराज्य-दलवालों का रास्ता पकड ले तो भी मुझे भारी दुःख नहीं होने का और गांधीजी तो इतने महान् हैं कि वे ऐसे दुःखों को हंसते हंसते सहन कर लेते हैं।

महासभा स्वराज्य-दल के हाथों में जाय तो?

तो महासभा धारासभाओं के चुनाव की एक खासी एजंसी बन जायगी। पिछले वर्ष श्री स्टोक्स ने यह बताया था कि अब महासभा को क्या करना चाहिए। जिस तरह उन्होंने सुझाया है, महासभा और खिलाफत के दो जत्थे बना कर, वहां प्रतिनिधि भेजे जायं।

पर यदि असहयोगी ही रहे तो?

तो अच्छी तरह कमर कसना चाहिए। मुझे कहना पडता है कि गया का प्रस्ताव कमजोर था। महासमिति को यह बताना चाहिए था कि धारा-सभा-बहिष्कार को सफल बनाने के लिए किन उपायों का अवलंबन करना चाहिए? पर उसने यह न बताया। १९२० में बहिष्कार तो हुआ था। परन्तु पीछे से दूसरे कामों के कारण, अनुभवहीनता के कारण, हम बैठ रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि हमें कहना पडा प्रतिनिधि हमारे नहीं हैं, सरकार ने कहा-लोगों ने उदासीनता के कारण प्रतिनिधि नहीं भेजे। इस समय जो बहिष्कार की निष्फलता की पुकार उठ रही है उसका कारण यह है कि बहिष्कार को स्पष्ट करने के लिए हमने किसी प्रकार की सूचना नहीं की। ऐसे अमली उपायों के न सुझाने से कुछ गलतफहमी हो गई है।"

ईश्वरी प्रकोप

कानडा, मलाबार, और बिहार के जल-प्रकोप और उससे होने वाली असह्य धन-जन हानि और कष्ट के करुण समाचार अभी बंद हुए ही नहीं थे कि जापान के पूर्व किनारे पर पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि चार महाभूतों के प्रकोप के भयानक और हृदय-विदारक समाचार आये हैं। आखिरी तारों के अनुसार वहां २॥ लाख लोग मरे और कोई ४॥ लाख घायल हुए। सैकडों करोड पौंड की सम्पत्ति मिट्टी में मिल गई। याकोहामा और टोकियो दोनों समृद्ध शहरों का एक बडा भाग नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

पहले भूकंप हुआ, उससे गैस की नलियां फटीं और जलने लगीं और आग नगरों में फैल गई। इधर समुद्र में भारी लहरें उठीं और वे याकोहामा में घुस पड़ीं। ओसामा नामका एक टापू समुद्र में डूब गया और एक नया टापू पैदा हो गया है।

अमेरिका दिलोजान से जापान की मदद के लिए दौड पडा है। सारे संसार को जापान के इस दुःख के साथ हमदर्दी होनी चाहिए। हिन्दुस्तान यद्यपि गुलाम है, तो भी यहां के धनी-मानी जापान के पीडितों की सहायता के लिए अपना हाथ बढा सकते हैं। पर गुलाम राष्ट्र में नीच स्वार्थान्धता का अभाव नहीं होता। सुनते हैं, बंबई और अहमदाबाद के व्यपारी जापान की इस दुःस्थिति पर अपने पौबारह कर लेना चाहते हैं। वे उलटा कपडे का भाव बढा कर अपनी तोंद मुटाने की धुन में हैं। इस अधम भाव से परमात्मा कब हम देश का उद्धार करेगा?

एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव

तामिल प्रान्तिक परिषद् में धारासभा के बहिष्कार पर नीचे लिखा महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुआ है—

(अ) इस परिषद् का यह दृढ विश्वास है कि आगमी चुनाव में शरीक होना तथा किसी भी रूप में धारासभा में प्रवेश करना असहयोग को मटियामेट करना है और उसका फल होगा हमारी हार और हमें नीचा दिखाने वाला सहयोग।

(आ) इस परिषद् की यह भी राय है कि बहिष्कार की नीति के कायम रहते हुए भी महासभा के सभ्यों को चुनाव में प्रतिस्पर्धा करने देना परोक्ष और निष्फल होते हुए भी सच पूछिए तो चुनाव में शरीक होना ही है। और इसका परिणाम बडा हानिकर होगा।

(इ) तामिल प्रान्तिक परिषद् के गया-प्रस्ताव पर अटल बने रहने के प्रस्ताव का यह परिषद् समर्थन करती है।

समझौता या आत्मसमर्पण?

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	„ २)
एक प्रतिका	„ -)।
विदेशों के लिए	„ ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक ५

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय	अहमदाबाद, भाद्रपद सुद ६ संवत् १९८०	मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी	रविवार, १६ सितंबर, १९२३ ई०	सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

दिल्ली में विशेष महासभा

समझौते की कोशिशें! हिन्दू-मुसलमान एकता मजबूत हो रही है!

सन्दिग्ध वायुमण्डल

करीब साल भर से सारे देश का राजनैतिक वायुमण्डल क्षुब्ध हो रहा था। कौंसिलें, हिन्दू मुसलमानों के झगड़े, शुद्धि आन्दोलन आदि हलचलों के कारण किसी जाति या पक्ष को चैन न थी। आज इन्हीं तमाम महत्त्वपूर्ण और वाद-ग्रस्त प्रश्नों का निपटारा करने के लिए सारे देश के प्रतिनिधि और आला दिमाग इस पुराण-प्रसिद्ध एतिहासिक नगरी—दिल्ली में सम्मिलित हो कर विचार कर रहे हैं।

पाठकों के हाथों में यह अंक पहुंचने के पहले दिल्ली में महासभा का विशेष अधिवेशन करीब करीब समाप्त हो गया होगा। अब तक जो समाचार आये हैं उनसे मालूम होता है कि लालाजी और राजगोपालाचार्य को छोड़ कर देश के तमाम बड़े बड़े नेता तथा सभी प्रान्तों के प्रतिनिधि दिल्ली में पहुंच गये हैं। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जाता कि विजय किस पक्ष की होगी। क्योंकि दोनों पक्षों का बल अब तक तो समसमान मालूम होता है। तथापि अधिकांश मुसलमान जबतक खिलाफत के मसले का निपटारा नहीं हो जाता और जझीरत उल अरब मुसलमानों के हाथों में नहीं लौटा दिया जाता कौंसिल-बहिष्कार वाले कार्यक्रम को ही पसंद कर रहे है। कई खिलाफतवादी तो उसके लिए सविनय प्रतिरोध भी शुरू करने के लिए उत्सुक हो रहे हैं। पर इसके लिए सारे देश की सहानुभूति तथा सहायता की आवश्यकता है। जो मुसलमान स्वराज्य दल के पक्ष में हैं उनका कहना है कि जब तक उलेमाओं का फतवा नहीं बदल दिया जाता वे राजभक्ति की शपथ नहीं ले सकते।

* * *

तारीख ११ से ही नेताओं की हिन्दू-मुसलमान एकता और धारासभा के प्रश्न पर खानगी बातचीतें और सभायें हो रही हैं। हिन्दू मुसलमान एकता का सवाल बड़ा ही महत्त्व धारण कर रहा है। ता. ११ को स्वामी श्रद्धानंद का तीन घंटे तक भाषण होता रहा। ता. १२ को भी इसी विषय पर बड़ी देर तक चर्चा होती रही। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने दोनों जातियों के एकता के लिए एक बड़ी ही हृदयस्पर्शी अपील की। आपने कहा 'भाइयो, इन जतीय झगड़ों को छोड़ दीजिए, और दोनों के हित के लिए महासभा में एक होकर इस समय देश की कुछ सेवा कीजिए। स्वराज्य केवल भारत के भले के लिए ही हम नहीं चाहते। इस से तो सारे संसार का भला होने वाला है। और यदि हम इन आपसी झगड़ों में लग जावेंगे तो उसे प्राप्त करने में हम सफलप्रद न किस तरह होंगे? चार घंटे तक बहस होती रही आखिर दोनों जातियों में एकता की शर्तें बनाने के लिए एक समिति की स्थापना हुई।

मौलाना साहब और पंडितजी के विचार

इधर महासभा के दोनों दलों का समझौता करने के लिए भी खानगी और सार्वजनिक सभाओं द्वारा कोशिशें हो रही हैं। ता. १२ को डा. अन्सारी के बंगले पर नेताओं की एक सभा हुई थी। दो घंटे तक बहस होती रही। पर सभा किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सकी। सभा का काम शुरू करते समय मौलाना महमद अली ने एकता के लिए एक जोरदार अपील की। उलेमाओं के फतवे का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि "मुसल्मानों के लिए तो वह एक धार्मिक कर्तव्य के समान है। पर फिर भी वे देश की एकता को इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। महासभा एक सब से अधिक महत्त्ववाली राष्ट्रीय संस्था है। जो उसका निर्णय हो उसे पालन करना हरएक भारतीय का धार्मिक कर्तव्य है"। पंडित मोतीलाल नेहरू ने कहा 'मैं अपनी सदसद्विवेक बुद्धि को ही अपना धर्म मानता हूं। उसकी आज्ञा मेरे लिए महासभा की आज्ञा से भी अधिक महत्त्व रखती है"।

स्वराज्य दल क्या करेगा?

स्वराज्य दल के नेता की हैसियत से देशबंधु को पूछा गया कि यदि धारासभाओं में आप अधिक संख्या में न पहुंच सके तो

आपकी नीति क्या होगी ? श्री दास और उनके कई मित्रों ने कहा कि केनिया के अपमान के उत्तर में हम ब्रिटिश माल के बहिष्कार का प्रस्ताव करेंगे। हमारे कार्यक्रम में इसके अतिरिक्त हिन्दू मुसल्मान एकता, एशियासंघ की स्थापना आदि भी है। पर हम यह नहीं बता सकते कि यदि महासभा का निर्णय हमारे खिलाफ रहा और धारासभाओं में हम अधिक संख्या में न जा सके तो हम क्या करेंगे।

हिन्दू मुसल्मान एकता का प्रयत्न

तारीख १२ शाम को फिर नेताओं की सभा हुई पर इसमें हिन्दु-मुसल्मान एकता पर विचार हुआ। पंडित मदन मोहन मालवीय ने अपने भाषण में बताया कि शुद्धि और संगठन आन्दोलन किसी आक्रामक हेतु से नहीं शुरू किये गये हैं। पंडित जी ने अपने भाषण के अंत में एक ऐसी समिति की स्थापना की सूचना की जो हिन्दु-मुसलमान झगडों के मौकों पर जाकर निष्पक्ष भाव से उसके कारणों और अपराधियों की जांच करे। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने एक कमिटी बनाकर उसे दूसरे दिन निश्चित सूचनायें करने की आज्ञा दी और सभा बरखास्त की। इन सूचनाओं पर बहस होने के बाद दूसरे दिन सात हिन्दू और सात मुसलमान सभ्यों की एक नयी समिति बनाई गई। संगठन आन्दोलन को कतई बन्द कर देने के लिए कुछ मुसलमान सभ्यों ने सूचना की। अखिल भारतीय संगठन—अर्थात् संगठन को सब जातियों के लिए खुला कर देने की सूचनायें भी कुछ मुसल्मान सज्जनों ने कीं। शुद्धि आन्दोलन को स्थगित करके शांति के साथ पुराने तरीकों से धर्म-प्रचार करने की सूचनायें की गईं। हिन्दू नेताओं ने बताया कि शुद्धि संगठन और हिन्दू महासभा का आन्दोलन आत्मरक्षा के भावों को लेकर शुरू किये गये हैं। जब खतरों के समय में कांग्रेस ने हिन्दुओं की सहायता न की, और देखा गया कि हिन्दुओं को इसके लिए बडे कष्ट उठाने पडे, तब उन्हें मजबूरन आत्मरक्षा के लिए संगठन करना पडा। पर यदि हिंन्दुओं को यह विश्वास दिलाया जा रहा हो कि आयंदा उनपर ऐसे आक्रमण नहीं होंगे तो वे संगठन आंदोलन को छोडने को भी तैयार हैं। पर यह आत्मसमर्पण न समझा जाना चाहिए। आखिर दोनों जातियां समझौते के लिए तैयार हो गईं। और समझौते की शर्तें बनाने और महासभा में विचारार्थ पेश करने के लिए एक स्थायी समिति की स्थापना हो गई।

बंगाल के प्रतिनिधियों का झगडा

तारीख १३ को नेताओं को मानपत्र देने के लिए नागरिकों की एक सभा हुई थी। शेष दिन बंगाल के प्रतिनिधियों का झगडा तोडने में बीता। बंगाल से दोनों दल के प्रतिनिधी चुने गये थे। हरएक दल के प्रतिनिधी अपने को न्याय्य और दूसरे को अन्याय्य बताता। आखिर महासमिति ने यह बात डॉ. अन्सारी, हकीमजी, कोंडो वेंकटप्पया और मौ. महमद अली इन चार सभ्यों की एक समिति बनाकर उसकी राय पर उसका निर्णय स्थगित रक्खा। पर बहिष्कार वादी दल इस बात के लिए बडा सचिंत है कि कमिटी में स्वराज्य दल के सदस्य अधिक हैं और यदि उन्होंने अपने ही अनुकूल फैसला दिया तो महासभा में बहिष्कार रद होना अवश्यंभावी है। क्योंकि इधर ३०० सदस्यों की एकदम न्यूनता हो जायगी। इतनी बडी न्यूनता अन्य प्रान्तों से पूरी करना करीब करीब असंभव है।

अनिश्चय

समझौते की कोई सूरत दूढ निकालने की दृष्टि से बहिष्कार वादियों की एक खानगी सभा भी हुई थी। मौलाना महम्मद अली बहिष्कार पर पहले की तरह ही दृढ हैं। वे कहते हैं कि यदि समझौता हुआ भी तो वह सच्चे मुसलमानों के लिए किसी काम का न रहेगा। क्योंकि उसका तो कर्तव्य है कि वह हरएक को यही कहे कि धारासभाओं में जाना और चुनावों में किसी को मत देना हराम है। पर उन्हें इस बात का भी पूरा विश्वास नहीं कि हम सब अपनी बात पर इस तरह दृढ रह सकेंगे।

एक स्थायी समिति की स्थापना होगी

सात हिन्दू और सात मुसलमानों की वह समिति अपनी बैठकें कर रही है। समिति शान्ति और सद्भाव के साथ अपना काम कर रही है। जिस ओर से इन विगत उपद्रवों में अत्याचार हुए हैं उनके लिए दुःख प्रकट किया गया है। एक ऐसी समिति की स्थापना की सूचना की गई है, जो उपद्रवों के स्थानों पर जाय और वहां तहकीकात कर के उसकी रिपोर्ट कोकनद की महासभा में पेश करे। मालूम होता है कि यह समिति अब महासभा का एक स्थायी अंग हो जायगी। जिसका काम रहेगा दोनों कोमों में एकता के लिए यत्न करते रहना। अभी यह मालूम नहीं हुआ कि इस समिति में कौन कौन रहेगा। पर यह तो निश्चित है कि हिन्दू और मुसल्मानों की संख्या बराबर रहेगी।

अब क्या स्थिति है।

यद्यपि बंगाल के प्रतिनिधियों के प्रश्न पर उस छोटी सी समिति में तीव्र वादविवाद हो रहा है तथापि इस समय परिस्थिति दास बाबू के अनुकूल ही मालूम होती है। उधर धारासभा बहिष्कार वादियों की भी सभायें हो रही हैं समझौते के अनेक प्रस्तावों पर विचार हो रहा है। उनमें कई मौ० महम्मद अली के प्रस्ताव भी हैं। पर साधारणतया इस समिति का वायुमण्डल दास बाबू के प्रस्ताव के प्रतिकूल ही है। संवाददाता

अभी तार से यह खबर आई है कि बंगाल के प्रतिनिधियों का झगडा तोडने के लिए जो समिति नियुक्त हुई थी उसने स्वराज्य दल के प्रतिनिधियों के चुनाव को कानून न बताया है। सं.

समझौता या आत्मसमर्पण ?

विशेष महासभा का वातावरण संदिग्ध है। एक दृष्टि से तो विरोध का वातावरण ही लाभदायी है। कलह और झगडों को कोई पसन्द नहीं करता। शान्तिमय जीवन सभी को प्यारा होता है। हिन्दू और मुसल्मानों के झगडे के संबंध में समझौते करना एक अत्यंत आवश्यक बात थी। हिन्दू और मुसलमान जब लडते हैं तब वे मर्तों की गिनती कर के ही नहीं रह जाते। वहां तो फिर खून की नदियां बहती हैं, मकान जलाये जाते हैं, और अवर्णनीय हत्याकांड होते हैं।

पर कौन्सिल बाद की बात दूसरी है। कोई भी मजबूत दिल वाला आदमी इस विषय में समझौते को पसंद नहीं कर सकता। क्योंकि स्वयं यह झगडा ही मिथ्या है। इसके अतिरिक्त दिल्ली महासभा की विशेषता किसी और ही किस्म की है। यहां पर महासभा के पक्षों का प्रयत्न प्रतिनिधियों के नहीं बल्कि एक शख्स का—मौ. महम्मदअली का दिल पकडने के लिए हो रहा है। मौ महम्मद अली का मत पूरी तरह से कायम होना अभी बाकी है। देश का भाग्य उनके हाथों में हो या न हो पर महासभा, जिसने असहयोग को अपना धर्म। बना लिया है—देश की इस सब से बडी राष्ट्रीय संस्था का भाग्य तो जरूर उनकी हथेली में ही है। तीन बातें हो सकती हैं। झगडा, समझौता या आत्मसमर्पण। सब पक्ष मौलाना महमद अली के व्यक्तित्व के महत्व को जानते हैं। अतः

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, यदि उनको चारों ओर से लोग सभाइ उपदेश देकर अपनी ओर झुकाने का प्रयत्न करें। उनका दिल ही ऐसा बना हुआ है कि वह किसी भी सिद्धान्त पर अधिक देर तक दृढ नहीं रह सकता। बैरोमिटर की तरह उन पर ताजे से ताजे वातावरण का असर आप देख सकते हैं। और इसीलिए वे स्वाभाविकतया अस्थिर हालत में हैं।

यों साधारणतया तो उनका झुकाव कट्टर असहयोगियों की ओर है। पर एकबार यदि यह कह दिया कि फिर विश्वास पूर्वक यह कहना भी कठिन है कि आगे वे क्या करेंगे। एक दिन वे स्वराज्य पक्ष वालों के साथ टेठ तक झगडने की बात करते हैं। पर यह किसी कट्टर असहयोगी को मिलने के बाद की बात होती है। दूसरे दिन मध्यवर्ती दल के मतों का असर और पुराने साथियों *को न छोडने की याद आते ही वे झट समझौते* पर राजी हो जाते हैं। स्वयं उनका तो समझौते में विश्वास नहीं है। पर दूसरों का है। और वे उनमें विश्वास करते हैं।

पर अब एक नई परिस्थिति खडी हो गई है। धारासभा बहिष्कारवादी समझौते की अपेक्षा तो इस बात को अधिक पसंद करते हैं कि हम सब हथियार रख दें, और चुपचाप रणक्षेत्र से हट जायं। वे कहते हैं कि यदि स्वराज्यवादियों से मित्रता ही करना उचित है तो उसके लिए बनियों की तरह रिक झिक करना ठीक नहीं। अगर हमारा हृदय शुद्ध होगा और है, तो यह भी एक सच्चे सत्याग्रह का नमूना होगा। और हम लोग यह सत्याग्रह इसलिए नहीं करेंगे कि इसके द्वारा हम उनपर कुछ असर डालें, बल्कि केवल उनकी मित्रता को प्राप्त करने के लिए। यदि इस कार्य में कोई कटुता का सन्देह न हो तो आगे चलकर हममें और उनमें एकमत होना अवश्यं भावी है। यदि इस आत्मसमर्पण के शुद्ध होने और उसकी और सचाई में किसीको सन्देह हो तो वह केवल इसी बात से दूर हो सकता है कि इस प्रस्ताव को श्री जमनालाल बजाज पेश करते हैं। इसका नतीजा यह होगा कि महासभा की कार्यकारिणी श्री दास और मोतीलाल नेहरू के हाथों में चली जायगी। वे उनका चुनावों के लिए उपयोग कर सकते हैं। हां, यह बात सच है कि असहयोगियों के हाथों में से ऐसी एक संस्था निकल जायगी जिसकी शाखायें देशभर में फैली हुई हैं। पर यदि हम में कुछ शक्ति और श्रद्धा है, तो हम अपना काम चलाने के लिए एक स्वतंत्र ऐसी संस्था बना लेंगे। महासभा में हमारी अल्प संख्या होगी। पर इससे भी कोई हानि नहीं। जो कठिनाइयां हमारी राह को रोके हुए खडी हैं उनका सामना करने के लिए शुद्ध सिद्धान्तों का प्रयोग और आचरण हमारे लिए और भी आसान हो जायगा, जो आज नहीं है। पर इस बात का अभी अंतिम निर्णय नहीं हुआ है। मौलाना साहब इस स्थिति को पसंद नहीं करते। पर देश में इस समय जो प्रबल राजनैतिक समुद्र मंथन हो रहा है उसका स्पष्ट और भावी परिणाम तो यही मालूम होता है।

दिल्ली ता. १४ सितम्बर १९२३ संवाददाता

हिन्दी में नवजीवन-साहित्य

टिप्पणियां

महात्माजी

गत सोमवार को यरवडा जेल में महात्माजी से मुलाकात की गई थी। उनकी पिछली बीमारी के बाद से, जो उन्हें तीन महीने पहले हुई थी, वे काफी अच्छा स्वास्थ्य रख रहे हैं। अभी तक उन्हें दूध, रोटी, और फल दिये जाते हैं। और यह खाना अब तक उन्हें मुआफिक भी हुआ है। यद्यपि वे खूब प्रसन्न और स्वस्थ मालूम होते हैं तथापि इतने दिन के जेलवास तथा गंभीर धार्मिक अध्ययन का असर उनके शरीर पर हुए बिना न रहा। अब उनका वजन १०१ पौंड, अर्थात् गिरफ्तारी के समय जो वजन था उससे १३ पौंड कम है। चरखा कातने के अतिरिक्त वे अपना समय वेद, उपनिषद, और उर्दू के अध्ययन में बिता रहे हैं। उर्दू का अध्ययन वे श्री मंजरल सोकाता की सहायता से कर रहे हैं।

अपनी रिहाई की अफवाहों का जिक्र सुनते ही महात्माजी खूब हंसे, और कहा भाई यदि मुझे जल्दी छोड भी दिया जाय तो मुझे उससे खुशी न होगी। क्यों कि इससे मेरे अध्ययन-क्रम में बाधा होगी।

महात्माजी की रिहाई की अफवाहें

पागल दिमागों से निकली हुई अफवाहें सीधे सादे आदमियों को चक्कर में डाल दिया करती हैं। जबतक देश में कुछ भी युद्ध-शक्ति बची हुई है तबतक यह संभव नहीं कि सरकार कृपा करके महात्माजी को छोड दे। सरकार इस बात को भली भांति जानती है कि यदि वह महात्माजी को छोड दे तो उससे हमारी सहायता और उसके स्वार्थ की हानि ही होगी। यदि सरकार यह सोचती हो कि अब हम इतने कमजोर हो गये हैं कि वह महात्माजी को बेखटके छोड सकती है, तो हमें इसे अपने लिए बडे ही दुर्भाग्य की बात समझनी चाहिए। सरकार तो महात्माजी को तभी छोड सकती है अब गांधीजी के सिद्धान्तों पर वैध-आन्दोलन की (संकुचित अर्थ में) पूरी विजय हो जाय। हमें तो अब एक बारगी यह निश्चय कर लेना चाहिए कि अब विजयी होकर ही हम महात्माजी को छुडावेंगे। तब हमें ऐसी अफवाहों की राह न देखना होगा। हमारे कष्ट और परिश्रम, जो महात्माजी को छुडाने का एक मात्र साधन हैं, इन अफवाहों के कितने ही समय पूर्व हमारी आगामी विजय का शुभ समय बता देंगे।

साम्राज्य में नहीं रहेंगे

"सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी" के *मुखपत्र* में श्री चिन्तामणि ने एक मननीय लेख लिखा है। वे लिखते हैं "हम लोगों ने अपना निर्णय कर लिया है। राजनैतिक उपायों में हमारा मतभेद भले ही हो, पर जिस साम्राज्य में हमारी उपेक्षा और तिरस्कार किया जा रहा है उसके अंग बन कर हम अपनी इच्छापूर्वक तो कभी न रहेंगे। कैसी साफ और स्पष्ट बात कही !

आग और पानी का सा सम्बंध

उसी अखबार में श्री सचारियास जो "सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसायटी" के सभ्य है, उतनी ही स्पष्ट और निर्भीक भाषा में लिखते हैं "*यह बात चाहे भली हो या बुरी पर ब्रिटिश साम्राज्य* तो स्वप्न ही सिद्ध हुआ"। वे लिखते हैं कि ब्रिटिश और भारतीय साम्राज्य में आग और पानी का सा सम्बंध है। यदि दोनों अपनी अपनी उन्नति चाहते हों तो वे एक दूसरे से अलग रह कर ही ऐसा कर सकते हैं; शामिल रह कर नहीं। भारत साम्राज्य का अंग होकर नहीं रह सकता इसमें अब कोई छिपाने की बात नहीं। हां, कानून और "सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसायटी" के ध्येय के अनुसार यह राजद्रोह भले ही हो पर है अक्षरशः सत्य। ब० रा०

हिन्दी-नवजीवन

अंक-दिन ५५६, रविवार, भाद्रपद सुदी ६ सं. १९८०

सर्वसाधारण कार्यक्रम

"बदला" इस शब्द का व्यवहार केनिया के प्रश्न के साथ बहुत हो रहा है। यह ऐसा शब्द है जिससे गलतफहमी होने का अंदेशा है। यदि यह कहें कि "उपनिवेशों ने हमारे प्रति जो व्यवहार किया है वैसा ही व्यवहार हम भी उनके साथ करें" तो इस शब्द में छिपे हमारे भाव ठीक ठीक रूप से व्यक्त हो सकते हैं। यह सत्य है कि यह एक स्वाभाविक और सम्मानयुक्त प्रतिक्रिया होगी। साथ ही इससे हमारे स्वाभिमान की सजीवता भी व्यक्त होगी। किन्तु यथार्थ में यह स्वयं कोई उपाय नहीं। यदि बदले का कार्यक्रम दूसरे किसी उपाय के न करने का कारण हो तब तो यह बड़ी ही भयानक नशीली चीज है। हमें यह याद रखना चाहिए कि केनिया का निर्णय किसी औपनिवेशिक सरकार का निर्णय नहीं यह निर्णय ब्रिटिश सरकार का है कि भारत-साम्राज्य का भाग नहीं बना रह सकता। अतः यदि केवल इसी दृष्टि से देखा जाय तो भी यह बदले का कार्यक्रम पर्याप्त बदला नहीं है।

उपनिवेशों के बदले की तैयारी उस हालत में भी उपयोगी हो सकती थी यदि अनुनय-विनय के बाद ऐच्छिक देन के बतौर न्याय प्राप्त करने के लिए लोकमत तैयार करने की आवश्यकता होती। दूसरे, बदला वहीं उपयोगी हो सकता है, जहां वह रचनात्मक हो। ब्रिटिश सरकार और उसकी सहायक भारत सरकार से युद्ध ठानना एक रचनात्मक बात होगी। वह ऐसा बदला होगा जो युद्ध में यदि हम सरकार को पराजित कर सके तो हमें देश का शासनभार उठाने के लिए भी तैयार करता रहेगा। उपनिवेशों के साथ बदले की नीति से हमारा कोई सच्चा फायदा-अर्थात् रचनात्मक काम नहीं हो सकता।

सवाल यह है कि हम साम्राज्य के इस निर्णय को अनुनय-विनय द्वारा पलटना चाहते हैं या स्वराज्य प्राप्ति द्वारा उलटना? यदि पहली बात हमारे दिल में हो तब तो उपनिवेशों के साथ बदले वाली नीति समझ में आने योग्य है। पर यदि वह हमारा स्वप्न खतम हो गया हो तब तो स्वराज्य ही सर्वोत्तम उपाय है। और हमारा कार्यक्रम भी ऐसा ही होना चाहिए जो हमें जल्दी से जल्दी उसी लक्ष्य की ओर ले जाय। एक ओर तो उपनिवेशों के साथ बदले की डींगें मारना, और दूसरी ओर भारत सरकार की कौंसिलों में जाकर उसके साथ सहयोग करना। इसमें क्या अर्थ है?

दिल को समझाने के लिए मुंह से बदले की बड़ी बड़ी बातें करना और उधर आत्मसमर्पण की पुरानी राह पकड़ना यह तो केवल आत्मवंचना है। अभीतक जो कुछ हुआ है उसे देख कर तो देश उन लोगों से कुछ और ही आशायें करता है जिनकी आंखें खुल गई हैं। यह अन्याय तो इतना बड़ा था कि अत्याचारी ने सशस्त्र बलवे तक की आशंका की थी और तदनुसार परिस्थिति को संभालने के लिए फौजी तैयारियां भी कर रक्खी थीं।

इस अपरिहार्य स्थिति को स्पष्ट करने के लिए जिसकी ओर हम सब बिलकुल स्वाभाविक रीति से धीरे धीरे जा रहे हैं मैं इतना न लिखता, पर परिस्थिति ऐसी खड़ी हो गई है कि हम सब को बहुत शीघ्र किसी निर्णय पर आ कर एकता के साथ काम करना शुरू कर ही देना चाहिए। इस समय तो जो कोई सर्वसम्मत कार्यक्रम इस परिस्थिति का सामना करने के लिए देश के सामने रक्खा जाय वह ऐसा होना चाहिए कि शीघ्र ही उसपर अमल किया जा सके और जो सद्यःफलदायी भी हो। और इसकी अपेक्षा अधिक सद्यःफलदायी और कौनसा कार्यक्रम हो सकता है कि हम सब आगामी चुनावों का पूरा बहिष्कार कर दें? तमाम दलों के लिए यही सबसे आसान और सर्वसाधारण कार्यक्रम हो सकता है। ब्रिटिश सरकार ने हमारा जो घोर अपमान किया है, उसकी सबसे सीधी और स्वाभाविक प्रतिक्रिया यही हो सकती है। और अगर नरम दलवाले भाई भी इसमें हमारे सहयोगी हो जायं तो इससे अधिक आसान कोई उपाय हो ही नहीं सकता। यदि माननीय शास्त्री इस बात को बतावें कि भारत सरकार उस बुराई से जिससे कि हम लड़ रहे हैं कोई भिन्न वस्तु नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष उसका एक अंग—नहीं नहीं कार्यकारी प्रतिनिधि ही है, तो नरम दलवाले भाइयों के लिए भी चुनावों का बहिष्कार करना कोई कठिन बात नहीं है। हां, नरम दलवालों को छोड़ कर अन्य पूरे राजभक्तों का एक ऐसा भी दल है जो सरकार का साथ किसी हालत में नहीं छोड़ सकता। पर सरकार इनकी सहायता से चंद सप्ताह से अधिक समय तक अपना काम नहीं चला सकती। फिर किसी भी हेतु को ले कर चुनावों में यदि हम भाग लेंगे तो उसका अर्थ होगा प्रतिस्पर्धा और शक्ति का अपव्यय, जिसके फल के विषय में हमें कोई विश्वास न रहेगा। हां अगर कोई फल होगा तो वह यही कि हम एक जोरदार उपाय को अनियत समय के लिए आगे मात्र ढकेल देंगे। इसके विपरीत यदि नरम, गरम, स्वराज्य और असहयोगी तमाम दल के लोग एक हो कर इन चुनावों का बहिष्कार कर दें तो उसका असर बड़ा भारी होगा। उसके उद्देश और अर्थ के विषय में कहीं दो मत नहीं होंगे।

अन्य राजनैतिक कार्यक्षेत्रों के विषय में बहुत कुछ कहा सुना गया—पर सब के सब इस एक ही बात पर—"विदेशी कपड़े के बहिष्कार" पर आते हैं। खादी के सिवा इस ६० करोड़ के धनप्रवाह को, जो विदेशी कपड़े और सूत के व्यापार मार्ग से भारत के बाहर हर साल बह जाता है एकदम, और शान्त रीति से रोकने वाला दूसरा उपाय ही नहीं। अंगरेजी कपड़े के बहिष्कार के बाद हाथ-कती बुनी खादी ही भारतीय मिलों के कपड़ों की कीमत को सीमाबद्ध और गरीबों की पहुंच के भीतर रख सकती है। माना कि मिलों के संचालक-गण कपड़ों की कीमत को सीमा से अधिक न बढ़ाने के वचन भी दे सकते हैं। किन्तु जहां एक बार विदेशी कपड़े का आना रुका, और हम इनपर अवलंबित रहने लगे कि वे अपने उन वचनों को ताक में रखे बिना न रहेंगे। मिल कारखानों को ही व्यापार-व्यवहार के योग्य कहना और चरखे को भावुकता तथा आदर्शवादियों का खिलौना बताना उन लोगों का काम है जिनके दिमाग में एक तरह के विचार हद से ज्यादह भरे हुए हैं। मिलों के खिलाफ जितनी दलीलें की जा सकती हैं उन सब को यदि कुछ समय के लिए अलग भी रख दें और विचार करें तो मालूम होगा कि यद्यपि चाहे जितनी तेजी से नयी नयी मिलें बनाई जायं, तो भी वे हमारे आज के कपड़े के व्यापार व्यवहार पर असर नहीं डाल सकतीं। इसके विपरीत भारत का हरएक झोंपड़ा मिल का काम कर सकता है। चंद घंटों की नोटीस पर ही दो हाथ और चरखा अपना काम शुरू कर देते हैं। यंत्र और मिलों की ऐसी बात नहीं होती। यदि भारत की तीस करोड़ असंतुष्ट आत्मायें एकदम विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने का निश्चय कर लें तो एक ही सप्ताह के भीतर कमसे कम एक करोड़ चरखों से

संजीविनी तान सुनाई दे सकती है। और इसमें रत्ती भर भी किसी की पराधीनता नहीं। प्रचार कार्य विज्ञापन आदि सब हो चुका है और हो भी सकता है। सिर्फ यदि वे नरम, विनीत, स्वराज्य आदि तमाम दल वाले, जो भारत को साम्राज्य और उससे होने वाले अपमान और अन्याय से बचाना चाहते हैं, एक हो कर खादी के लिए जी-जान से काम करने लग जायं तो हम बात की बात में इस अभिमानी इंग्लैंड को अपने पैरों पर झुका सकते हैं। और केनिया का अन्याय हमारे लिए एक परमात्मा का वर-स्वरूप हो सकता है।

(यंग इंडिया) च. राजगोपालाचार्य

श्री. वल्लभभाई का उत्तर

मध्यप्रान्त के चीफ सेक्रेटरी के कम्यूनिक के उत्तर में श्री. वल्लभभाई पटेल ने नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित किया है:—

मैं दिल्ली जा रहा था। राह में मैंने दो वक्तव्य पढे। एक विठ्ठलभाई पटेल का जो मध्य प्रान्त के होम मेम्बर के हस्ताक्षर सहित था और दूसरा म. प्रा. की सरकार के चीफ सेक्रेटरी का। दोनों में नागपुर युद्ध की सुलह किस तरह हुई इसकी सानुक्रम चर्चा थी। इन दोनों वक्तव्यों को पढने पर मैं इस सुलह की सही सही बातें जनता को समझा देने के लिए बाध्य हूं। दुर्भाग्यवश वह सारा पत्र-व्यवहार जो मेरे भाई और होम मेम्बर तथा मेरे और होम मेम्बर के बीच हुआ अहमदाबाद में पडा हुआ है। पर मैं अपने इस वक्तव्य में जो बातें कहता हूं इनकी सत्यता के विषय में यदि सरकार चुनौती देगी, तो मैं आगे चलकर उस तमाम पत्र व्यवहार को भी प्रकाशित करनेवाला हूं। चीफ से. के कम्यूनिक में लिखी हर बात का मैं यहां पर खंडन करना नहीं चाहता। मैं सेक्रेटरी के कम्यूनीक से केवल दो तीन महत्वपूर्ण बातों को ही लेता हूं। मैं यह पहले ही कह देना चाहता हूं कि होम मेम्बर की अनुमति सहित श्री विठ्ठलभाई पटेल ने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, उसके लिए मुझे कुछ नहीं कहना है। यदि बात वहीं ठहर जाती तो शायद मैं आगे कुछ न कहता। पर चीफ सेक्रेटरी ने अपने कम्यूनिक में जो बातें कही हैं, उनका खंडन किये बिना मैं नहीं रह सकता। श्री. पटेल और होम मेम्बर ने अपने संयुक्त वक्तव्य में ठीक ही कहा है कि कोई भी पक्ष उन बातचीतों का कोई हाल प्रकट न करेगा। पर चीफ सेक्रेटरी ने मुझे इस बंधन से मुक्त कर दिया है। और अब मैं यहां पर जो बातें कह रहा हूं उनमें से एक को भी यदि सरकार नाकबूल करेगी तो मैं न केवल सारा पत्र-व्यवहार, बल्कि उन मुलाकातों का कच्चा कच्चा हाल भी जहांतक मुझे याद है, प्रकाशित कर दूंगा। यह बात समझ में आ सकती है कि किसी भी सरकार से, फिर भारत सरकार की बात कौन कहे, यह आशा न करनी चाहिए कि वह अपनी गलती को कभी कबूल कर लेगी। पर इस बात में मध्य प्रान्त की सरकार ने बडे ही विश्वासघात की बात की है। क्योंकि उसने मुलाकातों में की कई ऐसी बातें प्रकट की हैं जिन्हें उसने स्वयं गुप्त रखने के लिए वचन दिया था, और उन्हें गुप्त रखने के लिए हमें भी कहा था। पर कई बार ऐसी परिस्थिति खडी हो जाती है जब ऐसा विश्वासघात भी क्षम्य माना जा सकता है। पर मैंने यह तो कभी स्वप्न में भी ख्याल न किया था कि वह असल घटनाओं को तोड मरोड कर कहने में तथा अर्थ का अनर्थ करने में भी न हिचकेगी। मध्य प्रान्त से निकलते समय मैं वहां की सरकार के विषय में कुछ कुछ अच्छे खयालात ले कर निकला था। पर उसकी इस कार्रवाई को देख कर तो मुझे बडा ही अफसोस हो रहा है। मैं फिर कहता हूं कि मुझे उस संयुक्त वक्तव्य के विषय में कुछ नहीं कहना है। मैं तो यहां पर चीफ सेक्रेटरी के कम्यूनीक में लिखी दो तीन बातों पर ही अपनी ओर से प्रकाश डालना चाहता हूं। और देखता हूं कि मध्यप्रान्त की सरकार उसपर क्या कहना चाहती है।

पहले, गवर्नर की मुलाकात के विषय में विठ्ठलभाई पटेल को चीफ सेक्रेटरी का एक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने परिस्थिति पर विचार करने के लिए हमें उनसे (चीफ सेक्रेटरी से) मिलने के लिए विनन्ति की थी। तदनुसार हम उनसे मिले। बातचीत में उन्होंने यह सूचना की कि हम गवर्नर से भी मिल लें। इस सूचना पर न तो हमसे कोई उत्तर मांगा गया और न हमने कोई उत्तर दिया हो। दूसरे दिन चीफ सेक्रेटरी का यह पत्र मिला कि यदि आप गवर्नर से मिलना चाहें तो वे आपको कल सुबह ११ बजे रेसिडेन्सी में खुशी से मिलेंगे। तदनुसार हम गवर्नर को मिले और तीन घंटे तक उनसे उपस्थित परिस्थिति पर बातचीत की। हमने गवर्नर को मिलने के लिए कभी कोई जबानी या लेखी प्रार्थना नहीं की थी। पर जिस प्रकार मुलाकात हुई सब ऊपर सही सही लिख दिया गया है।

दूसरे, जुलूस के लिए इजाजत वाली बात को लीजिए। वक्तव्य पर से यह सूचित होता है कि हमने जुलूस के लिए इजाजत मांगी। पर ऐसी कोई बात नहीं है। मैंने जो डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेण्डेन्ट पुलिस को पत्र भेजा है, उससे यह बात स्पष्ट हो सकती है। हमने जो कुछ करने का निश्चय किया था उसका इत्तिला भर उसमें था। इससे अधिक कुछ नहीं। हमारे ख्याल से जुलूस के लिए इजाजत अगर हम मांगते तो भी उसमें कोई बुराई नहीं थी। पर इस मौके की बात ही कुछ और थी। सरकार की तमाम कार्रवाई अन्यायपूर्ण और अनुचित थी। और इस समय यदि हम सरकार से जुलूस की इजाजत के लिए प्रार्थना करते तो वह और लोग दोनों उसे एक प्रकार का आत्म-समर्पण समझते। और यह स्वाभाविक भी था। और सच पूछा जाय तो स्वयं सरकार भी यही चाहती थी। पर हमने ऐसा करने से इन्कार किया। जब विठ्ठलभाई कौन्सिल की बैठक के पहले होम मेम्बर को पहले पहल मिले तब होम मेम्बर ने अपने अन्य साथियों की सलाह ले कर विठ्ठलभाई को लिख दिया कि जुलूस को निकलने देने में सरकार को कोई आपत्ति नहीं। सिर्फ कांग्रेस कमिटी की ओर से कोई डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट से इस विषय में इजाजत प्राप्त कर ले। और यदि ऐसा हो सका तो तमाम सत्याग्रही कैदियों को छोड देने के प्रश्न पर भी अनुकूल रीति से विचार हो सकता है। जुलूस की जन-संख्या अथवा उसके क्रम के विषय में कोई जिक्र ही नहीं था। मुझे भय है कि इस समय मेरे पास वह पत्र नहीं है, पर जो कुछ मैं लिख रहा हूं इसकी सत्यता के विषय में तो कोई सन्देह नहीं। उस पत्र के मिलते ही हमने फौरन उसके उत्तर में लिखा कि हमें ऐसी कोई प्रार्थना उस डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट से करना स्वीकार नहीं जिसके हुक्म पर यह सत्याग्रह हमें करना पडा है। कौन्सिल में प्रस्ताव पास हो जाने के पहले भी सरकार इस मामले को खतम करने के लिए इस तरह चिन्तातुर हो रही थी। चीफ सेक्रेटरी ने अपने वक्तव्य में जो यह सूचित किया है कि हमने जुलूस निकालने की इजाजत मिलने की प्रार्थना की, सो सरासर झूठ और धोखा देने वाली बात है।

तीसरे, चीफ सेक्रेटरी के वक्तव्य में जो यह कहा गया है कि हमारी ओर से यह आश्वासन दिया गया था कि कैदी कुछ निश्चित परिस्थितियों को छोड कर आयंदा नागपुर सत्याग्रह में भाग न

कैसे सो भी सरासर निराधार है और वह उन्हींके द्वारा कई स्पष्ट कारणों से जान बूझकर घुसेड़ दिया गया है ।

चौथे, न तो सरकार ने हमें किसी बात का आश्वासन दिया था और न हमने उसे । यथार्थतः तो, जैसा कि संयुक्त वक्तव्य में लिखा है, उन बातचीत और मुलाकातों से सरकार हमारी परिस्थिति को जान गई थी और हम उसकी । किसी की ओर से कोई आश्वासन या वचन देने लेने का कारण ही नहीं रहा था । अंत में मैं यह कह देना चाहता हूं कि अव्वल से आखिर तक जितनी बातचीत और मुलाकातें हुईं सब विठ्ठलभाई ने कीं, बाद होम मेम्बर के कौन्सिल वाले भाषण के उत्तर में जिसके दो मानी होही नहीं सकते थे और जिसमें, उन्होंने हमें सुलह की बातचीत के लिए एक प्रकार से निमन्त्रित किया था, वर्किंग कमिटी ने हम दोनों को सुलह की बातचीत करने के लिए इजाजत दी तब मैंने भी उन मुलाकातों में भाग लिया था । ये तमाम बातचीतें और सुलह–चर्चा परस्पर विश्वास के आधार पर हो रही थी, और दोनों पक्षों की ओर से यह बात एकबार नहीं अनेक बार एक दूसरे के प्रति स्पष्ट कर दी गई थी । अतः किसी ओर से कोई वचन देने दिलाने की आवश्यकता हो न थी । पर चूंकि अब चीफ सेक्रेटरी ने एकांगी और असल बातों को तोड़ मरोड़ कर प्रकाशित किया है, हम चाहते हैं कि वह फौरन ही हमारे तमाम (न कि एक या दो जिन्हें वह उचित समझे) पत्रों को प्रकाशित कर दे जो सरकार के पास हैं, और अब यदि हम सरकार के भेजे उन तमाम पत्रों को प्रकाशित कर दें जो कि हमारे पास हैं तो उसे भी कोई आपत्ति न होनी चाहिए ।

लज्जाजनक !

श्री ऐण्ड्रयूज बनारस में ज्वर से पीड़ित हैं । इधर इधर उनपर काम का इतना बोझा आ गिरा था कि यदि उसीके कारण उन्हें ज्वर आने लग गया हो तो आश्चर्य नहीं । जब आदमी बेहद काम करने लग जाता है और अपने शरीर को जरा भी विश्रान्ति नहीं देता तब प्रकृति को उसकी सहायता के लिए दौड़ना पड़ता है और वह बीमारियों के रूप में उसे वह विश्रान्ति देती है । श्री. ऐण्ड्रयूज की सी शुद्ध आत्मा, दलित पीड़ितों से सच्चा बन्धुभाव, शुद्ध प्रेम और भलाई से लबालब भरा ऐसा हृदय शायद ही हममें से दूसरे किसीका हो । जबतक ऐसे पुरुष जीवित रहते हैं तबतक उनके विषय में कुछ कहने या लिखने का जी नहीं होता । क्योंकि अपनी स्तुति के शब्द सुनते ही उनके कोमल हृदय को बड़ी चोट पहुंचती है । सुंदर पुष्पों की बहुत नजदीक से सुवास लें तो उनके कुम्हलाने का डर रहता है । श्री ऐण्ड्रयूज बीमार हैं, पर शरीर की व्याधि की अपेक्षा हृदय की आधि उन्हें अधिक दुःखित कर रही है । आज सुबह मुझे उनका एक पत्र मिला है जिसे पढ़ कर मुझे बड़ा ही दुःख हो रहा है । और जो उसे पढ़ेगा उसे ऐसा ही दुःख हुए बिना न रहेगा । पत्र नीचे दिया है । हरएक भारतीय इसे पढ़े और मंगलदास की नासमझी और पाप पर अपना सिर शरम के मारे नीचे झुकावे ।

"जब शत्रु की शक्ति दलित राष्ट्र की शक्ति से भारी परिमाण में अधिक होती है, और जित राष्ट्र गुलामी के भावों को पूरी तरह नष्ट न कर चुका हो, तब हरएक राष्ट्रीय आन्दोलन में एक समय ऐसा आता है जब तमाम राष्ट्र में भय, अविश्वास, और संदेह की बीमारी सी फैल जाती है । जो लोग साधारण समय में समझदार और बुद्धिमान होते हैं वे भी उस समय अपने प्यारे से प्यारे मित्र और सम्बन्धियों को संदेह की दृष्टि से देखने लग जाते हैं । इस समय शत्रु भी हमारी इस कमजोरी का लाभ उठाने के लिए हममें सचमुच गुप्त चर भेज कर हमारी बीमारी को और भी बढ़ाता है, और हालत और भी खराब हो जाती है । साधारणतया युद्ध समय में यह मनःस्थिति अक्सर पाई जाती है । पर कभी कभी, मनोविकारों को जाग्रत और उत्तेजित किया जाता है, और उन से बचने के लिए जब एक नैतिक युद्ध छिड़ता है उस समय भी इस रोग का आविर्भाव होता पाया जाता है । पर इसकी ओर हम अक्सर ध्यान नहीं देते ।

विगत महायुद्ध के प्रारंभ में दक्षिण इंग्लैंड के बेकार निवासियों में भी इसी रोग का विचित्र उपद्रव खड़ा हो गया था । हरएक अपरिचित अतिथि जर्मन समझा जाता था । टिरेन्स मैकस्विनी के आयरिश क्रान्ति पर जो लेख हैं उनमें भी उसने आयरिश प्रजा-सत्ता वादियों में इसी दुःखद रोग के आविर्भाव का एक जगह जिक्र किया है ।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को देखकर मुझे भी इस बात का बार बार आश्चर्य हुआ करता था कि मेरा नाम अभी तक कैसे बचा रहा । क्योंकि मैं सदा सुलहकर्त्ता का काम करता आया हूं, और साथ ही मैं एक अंगरेज भी हूं । इससे जो लोग मुझे नहीं जानते उनके दिल में मेरे विषय में ऐसा कोई सन्देह आना तो और भी स्वाभाविक था । पर अभी अभी तक बड़े सौभाग्य की बात है कि किसी अखबार में मुझ पर सन्देह प्रकट नहीं किया गया था । हां ऐंग्लो इंडियन पत्रों ने जरूर मुझ पर कई बार सन्देह व्यक्त किया था । पर वह बिलकुल स्वाभाविक था । अतः वह कोई अनपेक्षित बात न थी । पर अब वह समय आ गया । और सो भी एसे स्थान से जहां से मुझे कोई ऐसी आशा न थी । नैरोबी के एक मात्र भारतीय पत्र 'डेमाक्रेट में नीचे लीखी बातें प्रकाशित हुई हैं । लेख श्री मंगलदास के नाम से प्रकाशित हुआ है । श्री मंगलदास एक बढ़े हुए ख्यालात् के आदमी हैं, मैं पूर्व आफ्रिका में गया था तब वे मेरे साथ मित्रभाव से रहे थे और जबतक मैं वहां रहा मुझे मित्र की तरह ही रखता था । लेख इस तरह है:—

'हमारे स्थानीय शत्रु वे हैं, जो श्रीटन के खास लड़के हैं; और जो चाहते हैं कि सारा संसार उन्हींके हाथों में रहे । पर हमें यह कहना होगा कि वे हमारे सब से अधिक साफ शत्रु हैं । वे जो कुछ सोचते हैं या करना चाहते हैं सब हमें साफ साफ शब्दों में कह देते हैं । ऐसे लोगों से लड़ने में आनन्द भी आता है । क्योंकि हमें मालूम होता है कि हम किससे लड़ रहे हैं, कहां हैं, आदि । यदि हमारे पास भी उतनी ही शक्ति या युद्ध साधन हो, जितना कि उनके पास है, तो शायद उनमें और हममें कोई युद्ध ही न हो ।

पर हमारे कई शत्रु एक दूसरे ही प्रकार के होते हैं जो बड़े विश्वासघाती और मक्कार होते हैं । वे हैं खिलैया–इंधौत करनेवाले, ऊपर से बड़ी नम्रता दिखानेवाले गोरे साधू, जो खादी पहनकर नंगे पैर हमारे पास आते हैं और पराजय प्राप्त करने में हमें सहायता करते हैं । अब यह सवाल नहीं कि इन भौंदुओं को कैसे ढूंढ निकालें । सवाल यही है कि अब तो भी हमें अपने मकान को संभाल लेना चाहिए । क्योंकि जबतक हम यह नहीं पहचानेंगे कि हमारा शत्रु और मित्र कौन है, तबतक हमारे स्वत्वों की प्राप्ति के लिए हम जो युद्ध ठाननेवाले हैं उसमें हमें वे हमें बात की बात में मार गिरायेंगे । ' इसके बाद वे साफ साफ मेरा नाम ले कर मुझे सरकार का गुप्त चर और धोखेबाज आदि कहते हैं ।

उन अक्षरों को पढ़ते ही मैं तो सुन्न हो रहा । मुझे कबूल करना होगा कि ऐसे आक्रमणों को सहन करना मेरे लिए एक कठिन परीक्षा ही है । सवाल यह नहीं कि मैं आक्रमण करनेवाले

का बदला लेना चाहता हूं। यह तो मेरा स्वभाव ही नहीं। पर यह पढ़कर तो यही जी होता है कि मैं एकदम कहीं एकान्त में उस मालिक के चरणों की शरण लूं जो जानता है कि ये बातें कैसी झूट हैं। इतना होने पर मुझसे पहले जैसा काम होना असम्भव है।

नवी हिन्दविवाह के बाद मैं इसे भारत में प्रकाशित कर रहा हूं। पर आखिर मैंने यही ठीक समझा कि मैं इसे यहां प्रकाशित कर दूं। मैंने यह करना उचित नहीं समझा कि मैं अपने किसी मित्र को यह कहूं कि वह अप्रत्यक्ष रीति से इसका उत्तर दे दे। नहीं, मैंने अपने ही नाम से इसे प्रकाशित करना उचित समझा। और इसका कारण केवल एक ही है। और वह यह है। क्या वैयक्तिक आक्रमणों और व्यक्तियों के सिर बुरे उद्देश्य लगाने से बाज आने का अब भी समय नहीं आया? यह आदत बड़ी भयंकर है। इस समय जब कि उस केनिया के महान अपमान में एकता के लिए मेरी बजाई है, क्या हम इस खराब आदत के पंजे से अपने को नहीं छुड़ा सकते? इस भयंकर बीमारी से जो तमाम देश में विष फैला रही है अपने को नहीं बचा सकते?"

शिव शिव! यह गुलामी कितनी ही ऐसी मानसिक बीमारियों को अपने साथ लेकर आती है जो जुल्मी के अत्याचारों से भी अधिक घातक हैं। क्या हम आशा करें कि अन्याय के आगे सिर झुकाने के अपराध के कारण ही परमात्मा ने यह हमें सजा दी है। मंगलदास के श्री एंड्रयूज पर किये इस मूर्खता भरे और दुष्ट आक्रमण से सारे देश में क्रोध की आग भभक उठेगी। पर श्री एंड्रयूज के कोमल हृदय में मंगलदास के प्रति क्रोध की रेखा भी नहीं आई। उलटा उन्हें हमारी इस दयनीय हालत पर असीम दुःख हो रहा है। उनका साधु हृदय-मंगलदास की इस मूर्खता का कारण ढूंढ रहा है। उनकी क्षमा दुःख से भी आगे दौड़ लगाती है। वे इस बात की खोज में लगे हैं कि किन कारणों और घटनाओं ने मंगलदास को यह आक्रमण करने में प्रवृत्त किया। उनपर इतना झूठा और नीच आक्रमण किया जा रहा है और वे कहते हैं "मैं अंगरेज हूं। मेरे विषय में सन्देह जाग्रत होना स्वाभाविक है। जब मैं सुलह करने में सब से आगे रहता हूं, तो लोगों का मुझसे असंतुष्ट होना भी अस्वाभाविक नहीं"। श्री मंगलदास और डेमोक्रेट जिसने यह मूर्खताभरी बात छापी दोनों को अपने इस अपराध के लिए बड़ा प्रायश्चित करना पड़ेगा। मैं आशा करता हूं कि अभिमान और दुराग्रह उन्हें अन्धा न बनावेगा, बल्कि दोनों अपना दुःख प्रकट करके अपनी आत्मा को शुद्ध करने में देरी न लगावेंगे।

असह्य दुःख में भी श्री एंड्रयूजके अप्रतिम सेवाभाव को देखिए। उनके हृदय का वह जखम अभी वैसा ही है और वे उसीके द्वारा हमें मननीय उपयुक्त शिक्षा दे रहे हैं। वे कहते हैं:—" इस तरह और किसी का दिल न दुखाना। इसे सहन करना महा कठिन है। इससे तुम्हारी भी बड़ी कार्य-हानि होती है। अपने मित्रों पर विश्वास रखो और एक दिल से काम करो"।

"इसके बाद अब मुझसे उसी तरह काम होना असम्भव है। एकदम यही इच्छा होती है कि कहीं एकान्त में चला जाऊं! और मेरे उस मालिक की शरण लूं जो स्वयं खूब जानता है कि ये बातें कितनी झूठ हैं"। श्री एंड्रयूज को जो लोग जानते हैं उनके लिए उनके ये शब्द ज्वालामुखी के द्रव के से हैं। हम अनुभव कर सकते हैं कि कैसे दुःखित हृदय से ये शब्द निकल रहे हैं। आइए हम परमात्मा से प्रार्थना करें कि मंगलदास की इस मूर्खता भरे वार की चोट उन्हें अधिक दुःखदायी न हो।

(यंग इंडिया) च० राजगोपालाचार्य

टिप्पणियां

कष्ट सहन का निश्चय

मालूम तो यह होता है कि अब हमारे उपायों में भी अधिक देर तक भेद नहीं रह सकता। ब्रिटिश साम्राज्य वादियों की इस चुनौती के उत्तर में कि "नामर्द कानूनी विरोधों के अतिरिक्त भारतीय कर ही क्या सकते हैं" श्री चिन्तामणि ने हमारे मार्ग के मूलभूत सिद्धान्तों को जितनी साफ साफ तौर से कहा है उससे अधिक अच्छी तरह मैं नहीं समझता कि कोई भी कट्टर से कट्टर असहयोगी भी कह सकता है। श्री चिन्तामणि कहते हैं "भारत की जनता अपनी कष्टसहन की शक्ति को बढ़ावेगी। पर अब वह कभी अपना सिर न झुकावेगी। श्री चिन्तामणि ने बिलकुल यथार्थ ही कहा है कि भारतीयों में उनके धर्म और तत्वज्ञान के कारण इस लोक की नश्वरता और परलोक में एक प्रकार का अटल विश्वास हो गया है। और इसी के कारण उनमें अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा एक विशेषता है। श्री चिन्तामणि कहते हैं:—इस अहिंसात्मक युद्ध का अंतिम फल, फिर वह चाहे जब हो, यही हो सकता है कि या तो संसार में भारतीय कहीं दिखाई न देंगे, या ब्रिटिश साम्राज्य के अंग हो कर वे नहीं रहेंगे। भारत के अहिंसात्मक युद्ध का इससे अधिक विशद वर्णन हो ही नहीं सकता। आइए हम उस परिस्थिति को नजदीक लाने में लग जायं जिसमें सब दल एक होकर शीघ्रतापूर्वक काम कर सकें।

प्रदर्शिनी

यह बात वर्तमान सरकार की विरुद्ध प्रकृति के अनुकूल ही है कि सरकारी अफसर अब भी साम्राज्य-प्रदर्शिनी के लिए चीजें खरीदने और इकट्ठी करने में लगे हुए हैं। केनिया के फैसले पर दूसरा कुछ हो या न हो, पर यह बात तो निश्चित है कि भारत इस साम्राज्य प्रदर्शिनी में भाग न लेगा। सरकार भले ही जनता के धन से चीजें खरीदती रहे, और भारत को धोखा दे कर उसे उस अवमानना जनक प्रदर्शिनी में भाग लेने पर मजबूर करे, पर भारत की जनता जरा भी उस प्रदर्शिनी में भाग लेना नहीं चाहती। सरकार अब भी यह दावा करती है कि प्रवासी भारतीयों के प्रश्न पर तो वह भारत की आम जनता के साथ ही है। और साम्राज्य सरकार के निर्णय के आगे जो उसे सिर झुकाना पड़ा सो स्वेच्छा-पूर्वक नहीं बल्कि कर्तव्य से बाध्य होकर झुकाया है। पर क्या प्रदर्शिनी में भाग लेने के लिए भी वह इसी तरह बाध्य है? पहले ही बहुत सा धन बरबाद कर दिया जा चुका है। पर यदि अब भी इस पर आगे धन न बिगाड़ा जाय तो नासमझी न होगी।

नागपुर में कौन जीता

अब इस सवाल के ऊपर कि नागपुर में कौन जीता अधिक वाद-विवाद करना शक्ति का अपव्यय करना है। नागपुर का युद्ध किसी पक्ष पर विजय प्राप्त करने अथवा किसी को अनुचित परिस्थिति में डालने के लिए नहीं छेड़ा गया था। यदि सत्याग्रहियों की विजय हुई है—और जिस हद तक वह वाकई हुई है—तो अखबारों में लम्बे चौड़े लेख, वक्तव्य और घोषणापत्र निकाल कर उसे उनसे कोई छीन नहीं सकता। न कोई दलीलों के द्वारा अपनी पराजय को विजय साबित कर सकता। राष्ट्र स्वयं नई शक्ति को और सरकार अपनी प्रतिष्ठा-हानि को खुल्लम खुल्ला अनुभव कर रही है। यद्यपि आसपास की भीड़ पुकार पुकार कर कहे कि यहां कोई मारपीट नहीं हुई है तथापि जिसकी पीठ पर डंडे पड़े हैं वह स्वयं उस बात की सत्यता को जानता है। जब युद्ध एक खेल नहीं होता बल्कि एक सत्य बात होती है तब प्रेक्षकों के

निर्णय का कोई मूल्य नहीं होता। हां, एक बात स्पष्ट कर देनी चाहिए। यह कल्पना गलत है कि सरकार के साथ हमने जो युद्ध छेड़ दिया है इसमें सुलह की बातचीत के लिए स्थान ही नहीं है। सुलह के मानी आत्मसमर्पण नहीं हैं। हिंसात्मक क्रान्तियों और महायुद्धों में जिसतरह दोनों पक्षों के लिए सुलह की बातचीत और शर्तों पर वाद विवाद आदि करने के लिए सम्मानयुक्त स्थान है, वैसे ही हमारे युद्ध में भी है। इसका मतलब असहयोग का परित्याग कभी नहीं माना जा सकता। हां सुलह की शर्तें अवश्य दोनों पक्षों के बलाबल पर अवलंबित रहती हैं। और अंतिम विजय या पराजय इन शर्तों पर से ही देखी जाती हैं न कि इसपर से कि पहले सुलह की बातचीत किसने शुरू की। मैं आशा करता हूं कि अब यह विजय का विवाद यहीं खतम हो, और हरएक आदमी इस युद्ध से मिले हुए लाभों का यथोचित उपयोग करने में लग जाय।

वह भू-कम्प

उन कई भारतीय व्यापारियों, राजनैतिक आश्रितों और विद्यार्थियों की जापान में क्या दशा है, कौन जाने! मालूम तो होता है कि हमें अशुभ से अशुभ समाचार सुनने के लिए भी अपने हृदय को कड़ा कर लेना चाहिए। जापान पर जो महान् दैवी आपत्ति आई है वह केवल कल्पनातीत है। उन दीन दुखियों की सहायता के लिए सारा संसार दौड़ पड़ा है। यदि आज भारत भी स्वतंत्र और वैभवशाली होता तो वह इस समय अपनी दरिद्रता का रोना रोने और आर्थिक सहायता देने में अपनी लाचारी प्रकट करने की अपेक्षा अपनी दुखित बहन के आंसू पोंछने के लिए दौड़ पड़ता और हरतरह उसकी सान्त्वना करता।

महात्वाकांक्षी मनुष्य और राष्ट्रों को जापान से यह पाठ पढ़ना चाहिए कि हम प्रतिपद पर परमात्मा की कृपा पर जी रहे हैं। संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति उसकी तमाम फौज, जहाजें और आधुनिक युद्ध-युग के हर प्रकार के हथियारों के साथ यह दैवी प्रकोप के द्वारा एक महीने के अंदर नेस्तनाबूद हो सकती है। पर साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि जापान का दैवी प्रकोप बड़ा ही भयंकर है, तथापि दुष्ट-प्रकृति मनुष्य ने अपने बनाये संहारक यंत्रों द्वारा जो अनर्थ किया है वह इससे भी अधिक बीभत्स और भयंकर है। युद्धों में जान बूझ कर की गई नरहत्या इन पंच महाभूतों के द्वारा किये इस विनाश से भी अधिक भयानक है। (यं)

नाभा-काण्ड

नाभा-प्रकरण खूब जोर पकड़ता हुआ दिखाई देता है। जब से एक अंगरेज अधिकारी ने नाभा की महारानी सा. को घण्टों तक कैदी सा बना रखने के समाचार आये हैं तब से अकालियों में बड़ी सनसनी फैल रही है। नाभा-राज्य में दीवान के समय कुछ अकाली गिरफ्तार भी हुए हैं। यह भी खबर है कि शिरोमणि गुरुद्वारा प्र० कमिटी की तरफ से वहां सत्याग्रह के लिए एक दो जत्थे भेजे जा चुके हैं। सारा देश एक स्वर से कह रहा है कि नाभा-नरेश के पद-त्याग का यही कारण है कि वे आजाद तबीयत के थे और अंगरेज सरकार की आंखों के कांटा हो रहे थे। गुरुद्वारा प्र. कमिटी के पास इस बात का पक्का सुबूत पहुँच गया है कि उन्हें धमकी दे कर गद्दी से उतारा गया है। पंजाब की प्रसिद्ध बहादुर कौम और पंथ की इज्जत का यह सवाल है। और उसके लिए अन्त तक लड़ना सिक्खों की परंपरा ही है।

स्वराज्य-दल और एकता

स्वराज्य-दल के नेताओं की तरफ से अभीतक यह बात प्रकट नहीं की गई है कि एकता के लिए वे विशेष महासभा के निर्णय को मान लेंगे। देशबन्धु दास ने यद्यपि एकता के पवित्र नाम पर देश से अपील की तथापि उसमें इस विषय पर वे मौन रहे हैं। उनकी एकता का अर्थ अगर कुछ हो सकता है तो यही कि "हम एकता के भक्त हैं, मगर एकता होगी हमारी शर्तों पर।" यदि गया में ही यह एकता हमारे हृदयों में स्फूर्त हुई होती तो आज यह दलादली और धुक्का-फजीहत क्यों होती? पण्डित मोतीलालजी नेहरू के कुछ उद्गारों से लोगों को यह आशा बंधी थी कि कम से कम पण्डितजी विशेष महासभा के निर्णय को मान लेंगे—फिर वह चाहे उनके खिलाफ ही क्यों न हो। पर अब क्या देखते हैं कि पण्डितजी ने अखबारों में एक चिट्ठी छपवाई है जिसमें उन्होंने अपने भाषणों की रिपोर्ट गलत छपने की शिकायत की है, और विशेष महासभा के निर्णय के संबन्ध में फरमाया है, कि यदि निर्णय प्रचण्ड बहुमति के द्वारा हमारे खिलाफ हुआ तो ठीक, नहीं तो महासभा को अपने ऐसे भक्तों की सेवा से वंचित रहना पड़ेगा जो किसी असहयोगी से कम नहीं हैं। एकता हृदय के परिवर्तन का प्रश्न है। जबतक आदर्श भिन्न है, रीति-नीति भिन्न है, एकता के पवित्र नाम पर उत्तर-दक्षिण को एक-मुख बनाने का प्रयत्न करना और जो लोग अपने सिद्धान्त के पक्के हैं, बिना पेंदी के लोटा नहीं हैं, उन्हें फूट के प्रेमी बताना आत्म-वंचना है।

पैदल जेलयात्रा

आज संसार के तारनहार, भारत के महर्षि, खिलाफत के रक्षक और आश्रम के बापु जेल में हैं। इसलिए युगधर्म के अनुसार हम भारतीयों का तीर्थस्थान आज जेल ही है।

संसार के हरएक धर्म में तीर्थयात्रा का बड़ा महत्त्व है। तीर्थयात्राओं में यात्री अपने पापों को धो कर, मुसाफरी की मुसीबतों को सह कर, संयमाग्नि में शुद्ध हो कर घर पर लौटते हैं। इसमें उन्हें भूगोलशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, मानवशास्त्र, आदि अनेक विद्याओं का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने का मौका मिलता है। और यात्री अपनी अपनी शक्ति अनुसार उसे प्राप्त भी करते हैं। पर यह सब लाभ उन्हें तभी मिल सकता है जब यात्री पैदल यात्रा करें। इस तरह अनेक प्रकार से विचार करके मेरे परम मित्र भाई देवदास गांधी ने नागपुर की तीर्थ यात्रा स्वयं पैदल करने का शुभ संकल्प किया, और मुझे भी उसमें शामिल होने के लिए आमंत्रित किया। नागपुर जैसे दूरस्थ स्थान पर जो धर्मयुद्ध चल रहा था उसमें धन के बल से सरकार के साथ लड़ना हमारे लिए नितान्त कठिन था। साथ ही रेल-पंगु भाइयों के हृदय में यह विश्वास उत्पन्न करना था कि रेल जैसे साधनों के बिना भी हमारा युद्ध रुक नहीं सकता।

पर भाई देवदास को स्वयं जाने के लिए आज्ञा न मिल सकी। अतः उन्होंने मुझे ही टुकड़ी का नायक होने के लिए कहा। मित्र-धर्म तथा सैनिक-धर्म से प्रेरित होकर मैंने भी इस भार को उठाने में आनाकानी नहीं की।

अत्यंत आवश्यक किन्तु थोड़ा सामान लेकर हम निकले। बारिश के दिन थे। इन दिनों में नदियों में बाढ़ें आती हैं, और सड़कें अक्सर रबिगड़ जाया करती हैं। पर हमें रास्ते में इतनी तकलीफ नहीं हुई जितना कि हमें डर था।

हमारी टुकड़ी में ३ विद्यापीठ के विद्यार्थी १ आश्रमवासी, २ रांदेर के किसान भाई, ३ सूरतजिला के व्यापारी भाई, और १ अहमदाबाद तथा १ वीसनगर के महासभा-कार्यकर्ता थे। सब के सब सुशिक्षित, सदाचारी कुलीन, और साहसी थे। जीवनसाम्य, आदर्शसाम्य और प्रेम के कारण हम थोड़े ही सहवास से एक दूसरे के मित्र बन गये।

मैं यदि हर गांव के सज्जनों के नाम यहां गिनाऊं तो एक बड़ी भारी पोथी ही बन जाय। हरगांव में दूध के लोटे ले कर लोग हमारी राह देखते हुए ही मिलते। गांव की सीमा में प्रवेश करते ही आकाश जयघोषों से गूंजने लग जाता। कई गांवों में हमारे जुलूस भी निकाले गये। बालकों, बहनों और नौजवानों में अपूर्व उत्साह दिखाई देता। बहनें तो हम जैसे तुच्छ लोगों की भी कुंकुम, अक्षता, और नारियल आदि से पूजा करतीं और शुभ आशीर्वाद देतीं।

नडियाद के बापु को कैसे भूल सकते हैं! उनका वात्सल्य प्रेम, राष्ट्रीय शाला के विद्यार्थियों की सराहनीय शिक्षा-व्यवस्था, नगरवासियों का प्रेम, सब अपूर्व था। "गुजरात के नर" (श्री गोपालदास भाई) और उनकी धर्मपत्नी का आदर्श जीवन और उनका स्वागत भी अनूठा था। वृद्ध अब्बास तैयबजी बीमार थे। तो भी खाट छोड़कर बड़ौदा में हमें उत्साह और आशीर्वाद देने के लिए ठेठ हमारे स्थान पर पधारे। सैनिकों की खोज में निकले हुए हरिभाई अमीन, श्रीमती भक्तिलक्ष्मी तथा श्री छोटालाल पुराणिक के दर्शन हमें आमोद में हुए। जहां जाइए वहां बस नागपुर के सिवा दूसरी बात नहीं। सच्चे देशभक्त किसी न किसी रचनात्मक काम में सब दूर देखे जाते। राष्ट्रीय झण्डे की रण-भेरी की आवाज पहले पहल इन्हींको सुनाई दी थी। अतः जेल में जानेवालों में से अधिकांश एस ही कार्यकर्ता थे। सारी मुसाफरी में चरखे और पुनियों के मनुष्य की मधुर संगीत दो तीन गांवों को छोड़कर और कहीं न सुनाई दी। पूनियां न मिलने के कारण कई स्थानों में काम बन्द पड़ा हुआ है। हमें यह मालूम हुआ कि जबतक जनता के सामने कोई उत्तेजक और सद्यःफलदायी कार्यक्रम नहीं रक्खा जाता, तबतक काम जोरों से नहीं चल सकता। दुःख है कि जनता में अभीतक इतना बल नहीं आया कि वह स्वदेशी को अपना धर्म समझकर उसका पालन करे। कितने ही गांवों में चरखा एक ऐतिहासिक वस्तु हो गई है। चरखा, तांत आदि देखे तो जाते हैं, पर वैसे ही बेकाम पड़े हुए नजर आते हैं, जैसे अजायब घरों में पुरानी तोपें, बन्दूकें, ढालें, तलवारें आदि।

हमारा सच्चा सत्कार तो आणंद और सूरत ने किया। दूसरे लोगों ने तो सिर्फ खिलाया पिलाया। पर आणन्द और सूरत ने क्रमशः २ और ६ वीर सैनिक भेट कर के हमारा सच्चा स्वागत किया।

पैदल यात्रा की जितनी उपयोगिता सोच कर हम लोग निकले थे उससे कहीं अधिक अच्छा काम उसने किया। जितनी मुसीबतों का हमें डर था उनमें से बहुत कम ने हमको तकलीफ दी।

कुल मुसाफरी ३५५ मील की हुई। औसतन प्रतिदिन १९ मील प्रवास हुआ। हमें राह में कहीं भी न तो स्वयं अपना खाना पकाना पड़ा और न किसी प्रकार का काम ही करना पड़ा। सब दूर मुकाम पर पहुंचते ही नियम से आराम मिलता। हां, खाने पीने में हर जगह जुल्म खूब होता।

हम रोज घड़ी घड़ी का हिसाब रखते थे। प्रचार काम करते रहते थे। इसलिए बीच में से ही लौटते समय हमें जरा भी निराशा नहीं मालूम हुई। हमारी इच्छा तो थी कि जेल-तीर्थ में पवित्र हो कर ही लौटें। पर परमात्मा ने सरकार को सुबुद्धि दे दी। यदि वह स्वयं विचारी-विवेकी होना चाहे तो हम उसके लिए यह इच्छा क्यों करें कि वह अन्यायी हो। जबतक देश परतन्त्र रहेगा तबतक हमें ऐसी यात्राओं के अनेक प्रसंग मिलते रहेंगे। और हम भी अधिक उत्साह और साहस के साथ अनेकों की संख्या में कूच करेंगे।

आश्रम—साबरमती] सुरेन्द्रगुप्त

खादी-समाचार

भारतवर्ष में लंकेशायर

मद्रास के दैनिक 'हिन्दू' के ता० २६ अगस्त के अंक में लंदन के उसके खास संवाददाता का एक तार छपा है। उसमें लिखा है कि "लंकेशायर की कपड़े की मिलें भारतवर्ष व एशिया के दूसरे मुल्कों में ले जाने के इरादे सुनकर यहां के मजदूर हैरान हो गये हैं। आजकल ही बिक्री बहुत घट जाने से लाखों मिल के मजदूरों को थोड़े थोड़े घण्टे काम दे कर जैसे तैसे निभाया जाता है। मजदूर लोग समझ गये हैं कि मिल-मालिक तो भारतवर्ष में मिलें ले जाकर वहां की सस्ती मजदूरी से फायदा उठा कर ज्यादा धनी बनेंगे। लेकिन इंग्लिस्तान के मजदूरों का तो इससे भारी (?) बना है। यहां के मजदूर नेता भारतवर्ष की मानों दया खा कर कहते हैं कि ऐसी हलचल वहां के पैसे के अकाल में और ज्यादह अकाल डालेगी।"

मगर २८ अगस्त के उसी दैनिक में एक दूसरा तार लंकेशायर के लिए गुलाबी आशायें बतानेवाला छपा है। उसमें लिखा है कि "भारतवर्ष की स्वदेशी की हलचल बिलकुल टूट गई है। फसल अच्छी होने से पैसे की इफरात होगी। लंकेशायर के माल की लोगों को लालसा होने से फरमाइशों का प्रवाह छूटने की उमीद है"। उस तार के आखिर में लिखा है कि यह बात नाउम्मीदों को उम्मीद बधाने को उड़ाई गई हो तो आश्चर्य नहीं है।

करोड़ों रुपये का देशी मिलों का कपड़ा जब देश में पड़ा पड़ा सड़ता हो, उस वक्त परदेशी माल की लालसा जिस देश के लोगों के दिल में हो उनके बारे में दूसरे देश के लोग क्या समझेंगे!

ऐसी लालसा का दोष आम लोगों के सिर पर डालना तो व्यर्थ है। हजारों लाखों अपढ़ गरीब लोग तो ऐसे हैं कि जिनके सामने जैसा माल रखा जाता है वैसा ही बिक जाता है। देशी मिलों ने स्वदेशी की हलचल के साथ सहानुभूति रखी होती तो परदेशी कपड़ा कब का ही बन्द हो गया होता और वे आजकल की मुश्किलों में से पूरी पूरी नहीं तो बहुत कुछ तो बच गई होतीं।

भारतवर्ष में मिलों में जितना कपड़ा बनता है, करीब करीब उतना ही हाथ-करघों पर तैयार हो जाता है। यह मानी हुई बात है। अगर इन देशी मिलों के मालिकों को करघों में विलायती सूत कितना खर्च होता है यह मालूम न हो तो ताज्जुब की ही बात होगी। बारीक सूत में इनको नफा न रहता हो, या चाहे जो हो मगर इन्होंने यह सारा मैदान विदेशियों के हाथों में ही रहने दिया है।

एक अच्छे पढ़े लिखे महाराष्ट्रीय देश-सेवक ने देशी मिलों का सूत खुद बुन कर, खूब तजुर्बा करने के पीछे उकता कर दो लंबे पत्र लिख कर देशी मिलों के सूत की बड़ी शिकायत की है। उन्होंने अच्छी नामी मिलों के सूत आजमा देखे हैं। किसी मिल को बिना दगावाल न पाया। मिलों के नाम भी लिखते हुए वे कहते हैं कि "हरएक सूत की लच्छी में ८४० गज सूत होना चाहिये इसके बदले सौ दोसौ गज और कभी कभी और भी ज्यादह कम लंबाई देशी मिलों के सूत की लच्छियों में निकलती है। खरीदने वाला लच्छे गिनकर सूत का अंक पहचानता है। और इसमें वह हमेशा धोखा खाता है"। फिर ये शिक्षित जुलाहे महाशय कहते हैं कि करघों के लिये जो सूत बनाया जाता है वह मिलों में काम न आ सकने वाला और खटिया होता है। इस तरह खटिया और दगे वाला माल निकाल कर देशी मिलें अपनी आबरू खोती हैं। इसलिए परदेशी सूत थोड़ा महंगा हो तो भी वही खरीदने को

पसंद किया जाता है और आखिर को वही सस्ता पड़ता है। उसके लच्छे पूरे २ लंबे होते हैं और वह मजबूत भी होता है।

शुद्ध खादी ने अगर देशी मिलों का कुछ मैदान रोका हो तो उससे बहुत ज्यादह लम्बा चौड़ा मैदान उनकी हथेली में पड़ा है। परदेशी सूत व सीने तथा दूसरे काम के धागे लाखों रुपये के विलायत से आया करते हैं। वह सब माल यहीं क्यों न बने? रील के धागे बड़े महंगे बिकते हैं। कोई भी मिलों को ऐसा माल बनाने का सूझा नहीं मालूम पड़ता। कोई कोई मिल में अब सीने के धागे की गड्डियां बनने लगीं हैं। लेकिन माल की उम्दगी पर कामयाबी का आधार रहता है।

देशी मिलों के मालिकों में से थोड़े भी जिनको कि स्वदेशी से कुछ प्रेम हो, अगर इकट्ठे होकर देशी ही रुई लगाने, बने वहां तक देशी सामान ही लगाने, और माल में चर्बी न डालने का निश्चय करके मिल का माल इस्तेमाल करने वाली प्रजा को जाहिर करदें तो इसमें देशी मिलों की सही सलामती है। परदेशी मिलें इस देश पर आक्रमण करें इसके पहले इनको अपना घर ठीकठाक कर लेने का अभी मौका है।

कमला चर्खा

इस नाम के चर्खे बनानेवाली कलकत्ते की एक कंपनी ने आज कल एक यांत्रिक चर्खे का विज्ञापन निकाला है। और इस चर्खे का नाम कमला चर्खा नंबर ५ रखा है। इस विज्ञापन को देखने से इस चर्खे की कामयाबी व फायदे के बारे में पूछताछ आई हैं। इस चर्खे के विज्ञापन में कहा गया है कि ७ तौले सूत फी घंटा उस पर कंत सकता है। किस अंक के ७ तौले यह नहीं बताया गया। इसलिये यह बिल्कुल अधूरा हाल है। छः अंक का ७ तौले सूत अगर निकलता हो तो उसकी लंबाई फी घंटा ८८२) गज होगी (१ अंक का १ तौला = २१ गज ∴ २१ गज × ६ अंक × ७ तौल = ८८२)। कमला चर्खे का विज्ञापन देनेवाले महाशय ने अगर चर्खे की चाल का माप लंबाई में दिया होता तो उचित होता। सादे चर्खे की चाल फी घंटा ५४० गज १५ अंक तक के सूत में देखी गयी है। इससे ज्यादा तेज चालवाला कोई चर्खा अभी तक हमारे जानने में नहीं आया है। कमला चर्खे के विषय में यहां से पत्र व्यवहार हो रहा है। उसका नतीजा मालूम हो तबतक खरीदने वालों को ठहर जाना चाहिए।

सच्ची आत्मशुद्धि

खादी की कमखर्ची के बारे में २३वीं पत्रिका में जो पत्र प्रसिद्ध किया गया था उससे कम ज्यादा वाला तिसपर भी कम जरूरी नहीं ऐसा बम्बई के एक पारसी महाशय की ओर से मिला है, वे लिखते हैं कि "परिवार में दो जने हैं। हमारा सालाना कपड़े का खर्च खादी शुरू करने के पहिले १५०) रुपये था। खादी शुरू करने के पीछे पहिले साल करीब सौ रुपये और पीछे से तो करीब ४० रुपये सालाना खर्च आता है। खादी की शिकायत के बारे में वे कहते हैं कि इसकी बिक्री में दगा होता है यानी मिश्र खादी शुद्ध के नाम से बहुत बेची जाती है।

दूसरे खर्च में कमी होने के बारे में वे कहते हैं कि "शराब के पीछे रु० १५०) रु० २००) का माहवारी खर्च होता था। वह सब अब खादी जिन्दगी शुरू कर देने से बिल्कुल बंद हो गया है"।

धोने का खर्च बढ़ा है? इस सवाल के जवाब में लिखते हैं कि "बंबई में करीब करीब उतना ही होता है लेकिन दूसरी जगह और गांवों में तो करीब करीब कुल खर्च बच जाता है।

इन मुख्तसर जवाबों में बहुत गांभीर्य भरा है। खादी पहनने वालों के दंभ की बातें अखबारों में बहुत दफा आया करती हैं मगर खादी ने गुप्त रीति से धीरे २ लोगों में जो संयम का फैलाव किया है उसकी बातें तो कहांसे आवें? इसका चुपचाप व्याख्यान तो अपने दिल की जांच कर देखने की आदत रखने वाला ही सुन सकता है।

इस पत्र के लेखक महाशय अपने मन पर काबू रखकर १५-२० मजदूर खुशी से गुजारा कर सकें इतना खर्च बचा कर उसको दान देने में लगाते हैं या उतना रुपया कमाने का काम घटा कर अपना वक्त लोक सेवा में बिताते हैं इसके बारे में कुछ प्रकाश डालते तो दूसरों के लिये उपयोगी होता। पारसी कौम तो दानधर्मों के लिये प्रसिद्ध है। ज्यादा कमा कर दान करना यह पूर्व की सभ्यता का लक्षण नहीं है। अर्थशास्त्र के अचूक तराजू में एक तरफ बड़ी कमाई हो तो दूसरी तरफ बड़ी गरीबी नजर आना बिल्कुल जरूरी बात है। इस तराजू का एक पलड़ा नीचा ही रहता हो ऐसे जमाने में बहुत से लोगों का फर्ज है कि बने उतना ज्यादा उत्पादक काम कर के और साथ ही बने उतने कम खर्च से अपना गुजारा कर के इस तराजू का घड़ा करें। धड़ा करने के लिये चर्खा अमोघ वस्तु है। इस बात पर पूरा २ विचार करना हमारा कर्त्तव्य है।

मगनलाल खुशालचंद गांधी

नाभा में गिरफ्तारियाँ

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक ७

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक—प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, आश्विन बदी ५, संवत् १९८०
रविवार, १· सितंबर, १९२३ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

देहली की डायरी

देहली की महासभा का वर्णन कितने ही धारासभा–बहिष्कार वादी पत्रों ने 'गांधी–तत्त्व का अवसान' 'एक घातक खून' तथा 'असहयोग का अन्त' इन भावों में किया है। महासभा में जिन विचारों को प्रधानता मिली थी उनको रखने वाले लोगों की मनोदशा मैंने 'अशक्ति का इकबाल' नामक लेख में चित्रित की है। यह कमजोरी मुझे एक ही पक्ष की नहीं, बल्कि दोनों पक्ष की अब भी दिखाई देती है। इस कमजोरी को हम अवश्य पार कर जावेंगे। हरएक धर्मयुद्ध में ऐसी कमजोरी का समय जरूर आता है और उसको पार कर के योद्धा लोग युद्ध में विजय प्राप्त करते हैं। इस बात में हमारे धर्मयुद्ध का स्वरूप दूसरे युद्धों से भिन्न नहीं है। इसमें भी ज्वार–भाटा तो अवश्यम्भावी हई है। इतना कह चुकने पर अब मैं देहली की दिनचर्या का कुछ वर्णन यहां करता हूं।

११ ता. को सब लोग एकत्र होने लगे थे। १२ को अपरिवर्तनवादी लोगों का सलाह–मशवरा होने लगा। बस, उसी समय से सब लोग मौ० महम्मदअली से मिलने लगे। इन मिलने वालों में परस्पर सूक्ष्म मतभेद था। इस बात में कोई शक नहीं कि सब लोग इसी बात की ताक में थे कि मौ० महम्मदअली क्या करते हैं? कितनों ही का यह खयाल था कि यदि श्री राजगोपालाचार्य आये होते तो बेहतर था। न आकर उन्होंने भारी भूल की। देहली रवाना होने के पहले मैंने उन्हें एक लंबा तार भेजा था; परन्तु उनका उत्तर मिलने पर उनके संबंध में अधिक लिखने की जरूरत नहीं रह जाती। उन्होंने थोड़े में लिखा था कि—"मेरा शरीर जरा भी महनत बरदाश्त नहीं कर सकता। यदि मैं आने लायक होता तो आ जाता; पर लाचार हो गया हूं।" इसके पहले श्री वल्लभभाई तथा दूसरे मित्रों को उन्होंने सूचित कर दिया था कि सब बातें मौलाना पर छोड़ दीजिएगा—वे जो कहें कीजिएगा। इससे श्री वल्लभभाई, गंगाधररावजी, और जमनालालजी ने शुरुआत में ही मौलाना से कह दिया कि सब अधिकार आपको है 'चाहे तारो या मारो'। मैं नहीं समझता कि यदि श्री राजगोपालाचार्य होते तो इस बात में जरा भी फर्क पड़ पाता। क्योंकि वे तो पहले से ही 'तारो या मारो' विचार के थे। मौलाना इस 'तारो या मारो' की बात को सुनकर घबराये। उनका यह वचन—'इस बेवफा की गली में आये क्यूं?' सब को मालूम था। परन्तु सब लोगों को इस बात की आशा नहीं थी कि वे समझौते से साफ इनकार करके बहिष्कार पर दृढ़ रहेंगे। उन्होंने बारडोली के प्रस्ताव के संबंध में महात्माजी की अलौकिक निर्भीकता की बड़ी तारीफ की थी; परन्तु उनके दिल के भीतरी तह में वे मानते थे कि उसमें महात्माजी ने भूल की थी। इसलिए यह कहूं तो अनुचित न होगा कि जिस भाव से प्रेरित होकर स्वराज्यवादी लोगों पर धारासभा में जाने की धुन सवार थी उसमें वे स्वराज्यवादियों से मिलते थे। इतना कह चुकने पर यह कहा जा सकता है कि महात्माजी के प्रति उनकी वफादारी सौ टच की थी। परन्तु वफादारी और समझ ये दो जुदी वस्तुयें हैं। और यदि मैं यह कहूं कि उनकी सिद्धान्त की समझ उतनी गहरी नहीं थी जितनी कि उनकी वफादारी थी, तो उनके साथ अन्याय न होगा। यह बात ब्रिटिश माल के बहिष्कार–संबंधी उनके रुख से स्पष्ट झलकती है। पर यह बात साफ दिखाई देती थी कि इन्हीं मौलाना पर सब बातें छोड़े बिना चारा नहीं था। असहयोग को जन्म देने में जितना हिस्सा महात्माजी का था उतना ही मौलाना का भी था। राजगोपालाचार्यजी ने इस प्रश्न को ठीक ठीक समझ लिया था कि उनके सदृश बिजली की शक्ति और तेजी रखनेवाले और सारी मुसल्मान दुनिया को एक हुंकार के साथ एक करनेवाले पुरुष को छोड़ कर कहां जा सकते हैं? और यदि वे देहली आये होते तोभी यह मानने का कोई सबब नहीं दिखाई देता कि वे मौलाना को अपनी आंख से देखने पर मजबूर करते।

* * *

सब लोग इस बात को जानते थे, परन्तु बड़े–बूढ़े लोग तो इस बात को समझ कर 'मारो या तारो' कहने के लिए तैयार थे; लेकिन कितने ही युवक जैसे तो जहां तक लड़ सकें, लड़ें और अन्त को मौलाना महम्मदअली की बात मानने के लिए तैयार थे; परन्तु कितने ही तो, जिनमें आचार्य गिडवानी और मद्रास के रामस्वामी नायकर के दल के लोग आ जाते हैं, अन्ततक लड़ने का इरादा रखते थे। गिडवानी महासभा में ही लड़ लेना चाहते थे, बाहर नहीं; इसलिए पहले दो दल जिस प्रकार कड़वा घूंट पीने के लिए तैयार थे, उस प्रकार वे भी यहांतक आचार हे

संभव था उसे पी जाने को तैयार थे; परन्तु जहांतक विचार से संभव है, स्वीकारने में जरा देर हुई।

आरंभ में ही मौलाना आजाद सोभानी ने एक सवाल किया था—"अगर मौ० महम्मदअली समझौता करें तो आप लोग क्या करेंगे?" नहीं कहा जा सकता कि इसका उत्तर देने का साहस उस समय कोई कर सकता था। बहुतेरे लोग इस बात को मान चुके थे कि मौलाना महम्मदअली से लड़ना ठीक नहीं है। ऐसे वायुमण्डल में तीन बार आमनी तौर पर सलाह-मशवरा हुआ। पहली बार १२ ता. की रात को—प्रायः सुबह तक होता रहा। उस दिन मौलाना महम्मदअली ने खूब जोश दिखाया। सवाल यह था कि या तो अन्त तक लड़ें या हथियार रख दें। ज्यादह तर लोग लड़ने के पक्ष में थे। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उस दिन कहा था कि समझौते का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। श्री जोसेफ तथा उनके मित्रों को बड़ी आशा हुई थी। परन्तु व्यवहारदक्ष वल्लभभाई ने उन्हें कहा कि "अभी देखो, क्यारी क्यारी पानी जाता है!"

* * *

१३ ता. आई। उस दिन मैं मौलाना से पहले पहल मिला। उस समय उनको घबराहट साफ तौर पर दिखाई पड़ती थी। जब देवदास मेरे साथ उनसे मिले तब तो वे उनसे लिपट गये और बड़ी अधीरता के साथ पूछा—"बापूजी ने मेरे लिए कुछ संदेशा भेजा है?" भाई देवदास ने बापूजी के कथन का मतलब उन्हें सुनाया—

"मैं एक कैदी हूं। मैं आपको कोई सन्देशा नहीं भेज सकता। जब दूसरे कैदी कुछ सन्देशे भेजते थे तब मैं उन्हें डांटा करता था। पर मैं इतना जरूर कहता हूं कि आपकी वफादारी पर मैं मुग्ध हूं। पर आप मेरी वफादारी को अपना लक्ष्य न बनाइए। देश की वफादारी को ही अपना लक्ष्य समझिए। मैं अपने विचार जेल जाते समय प्रकट कर ही चुका हूं और उनपर बराबर अटल हूं। पर यदि आप दूसरे रास्ते को अंगीकार करेंगे तो उससे आपके मेरे प्रेम-भाव में अन्तर नहीं पड़ने का।" तुरन्त ही मौलाना ने कहा—बापूजी क्या संदेश देंगे यह मैं पहले से ही लिख कर दे सकता था। वे किसीकी आजादी छनना नहीं चाहते। वे सब को आजादी देते हैं इसीलिए वे सब के 'डिक्टेटर' होने के लायक हैं। ऐसी चर्चा भी उस दिन हो रही थी कि उन्हें मौ० शौकतअली का भी एक संदेश मिला है और यह भी कहा जाता था कि वे समझौता चाहते हैं। फलतः महात्माजी के संदेशे का अर्थ अपनी मनोदशा के अनुकूल करने में मौलाना को देर न लगी। "नेकी और पूछ पूछ" वाली मसल हुई। सच बात तो यह थी कि हकीम ने कोई नई बात नहीं कही थी। इसके बाद मेरे साथ कोई तीन-चार घण्टे तक बातचीत हुई। अन्त को जब मैं उनसे विदा हुआ तब उन्होंने मुझसे कहा—"स्वराज्यवादियों को तो मैं छोड़ सकता हूं; पर बहिष्कार-वादी मुझसे कैसे छूट सकते हैं? जहांतक वे जायंगे वहांतक मुझे जाना होगा।" इसके बाद श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा दूसरे स्वराज्यवादियों के साथ उनकी बातचीत हुई। जब मेरे साथ बातचीत होती थी तब भी जिनके धर्म और आत्मा के प्रतिकूल न हो उन्हें जाने की छुट्टी देने के प्रस्ताव का मसविदा उनकी जेब में ही था; बल्कि महात्माजी का संदेशा मिलने के भी पहले वह उनकी जेब में था। मैं इसका ऐतराज कर रहा था। उसी अर्थात् १३ की रात को हम लोग फिर एकत्र हुए। मौलाना ने एक लम्बा भाषण कर के अपना वही मसविदा पेश किया। अब चर्चा चली। पहले की तरह मैंने यहां भी कहा कि "यह तो बम्बई के समझौता-प्रस्ताव से भी अधिक अर्थहीन और बेहूदा है।" उसी समय पं० जवाहरलाल ने भी कहा कि यह कहना कोई नई बात नहीं है कि अपने सिद्धान्त के अनुसार जिसे जो अच्छा मालूम हो वह करे। श्री. वल्लभभाई तो उस समय कुछ न बोले; परन्तु श्री मणिलाल कोठारी और हम युवक दल इसके खिलाफ थे। मौलाना ने भी यह देखा। अन्त को सेठ जमनालालजी उठे और उन्होंने रास्ता दिखाया। उन्होंने साफ साफ कहा—"समझौता बेकार है। समझौते से काम नहीं चल सकता। मौलाना साहब फरमाते हैं कि श्री दास और पं. मोतीलालजी की मित्रता के लिए समझौता करना चाहिए—यह बात समझमें आ सकती है। मैं कहता हूं कि उनकी मैत्री समझौते के द्वारा नहीं, बल्कि पूरी तरह आत्म-समर्पण करने से ही प्राप्त हो सकती है। अर्थात् महासभा बिल्कुल स्वराज्य-वादियों के हवाले कर दी जाय, रुपये-पैसे उन्हें सौंप दिये जाय और जो बात हमें उनकी ठीक दिखाई दे उसमें हम उनकी मदद भी करें।" उन्होंने यह भी कहा कि यह बात हम क्रोध या नाराजगी से नहीं बल्कि सच्चे दिल से पेश करते हैं। राजेन्द्र बाबू ने इसकी पुष्टि की। सब लोगों ने इस सूचना को पसन्द किया। पर मौलाना को यह अच्छी न लगी। उन्होंने कहा—मैं इसे किसी हालत में मंजूर नहीं कर सकता। अन्त को तमाम तजवीजों—समझौता, पूर्णरूप से आत्म-समर्पण और लड़ाई लड़ना—पर रायें ली गईं। समझौते के पक्ष में किसीने राय नहीं दी। या तो लड़ाई लड़ी जाय या आत्मसमर्पण कर दें—यह भाव प्रबल था। मौलाना असन्तुष्ट हो कर गये। रात के दो बज गये थे। उनके अन्तिम शब्द थे—"मैं किस तरह आपकी अगुआई कर सकता हूं: आप लोगों ने तो मेरी तजवीज को उठा कर फेंक ही दिया।"

* * *

दूसरे दिन अर्थात् १४ ता० को, क्या जाने किस तरह, देशबन्धु और पंडितजी के साथ बहिष्कार-वादियों के नेताओं की भेंट हुई। देशबन्धु और पण्डितजी की तजवीज वही पुरानी थी—महासभा के जुदा जुदा महकमे बनाना: धारासभा-विभाग, रचनात्मक कार्य-विभाग, सत्याग्रह-विभाग; और जुदे जुदे विभाग जुदे जुदे लोगों के सिपुर्द करना। पर सवाल यह था कि ये परस्पर-विरोधी विभाग एक संस्था के अन्दर चल किस तरह सकते हैं। एक दिल्लगीबाज तो चर्चा के समय यह भी पूछ बैठा कि "इसमें धारासभा-बहिष्कार का भी एक विभाग होगा न?" इस बात पर डाक्टर किचलू के साथ चर्चा हुई थी—मौलाना नहीं आ पाये थे। इस तजवीज को सबने हंसी में उड़ा दिया। यह खुद मौलाना को भी पसन्द नहीं थी।

१५ का सवेरा हुआ। मौ० शौकतअली के सन्देश की खबर गरम थी। सब लोग इस बात को जान चुके थे कि उस संदेशे के खिलाफ मौलाना महम्मदअली नहीं जा सकते। दो पहर तक श्री वल्लभभाई, राजेन्द्रबाबू, गंगाधररावजी, जमनालालजी, अब्बास साहब और गिडवानीजी पिछली रात का चर्वित चर्वण कर रहे थे। गिडवानीजी लड़ाई के तरफदार थे—देहली के बाहर जा कर नहीं बल्कि खुद महासभा में ही—शेष सब लोगों ने निश्चय कर लिया था कि इन दोनों भाइयों तथा मुसलमान-संसार से लड़ने में कुछ सार नहीं, उलटी अदावत बढ़ जायेगी। इसलिए मौलाना को जो जी चाहे करने दें और हम खामोश बैठे रहें। सब लोग इस बात को जानते थे कि यह असहयोग को तिलांजलि देना है। सब देखते थे कि बेढ साल की लड़ाई बेकार हो रही है; सब का कलेजा चूर हो रहा था। न तो किसीको जीत का हौसला था और न इज्जत का ख्याल

कि किसे राय ज्यादह मिलेंगी और किसे कम। सबने यही सोचा कि आखिर लड़ाई की हद कहां तक बढ़ाई जाय। एक बड़े हिस्से को कमजोरी ने दबा लिया है, एक बड़े हिस्से को असहयोग का शस्त्र-शिवजी का धनुष्य-उठाना कठिन हो गया है, उठाने की इच्छा नहीं रह गई है, जो उठाना चाहते थे उनमें शक्ति बाकी नहीं है। राम के बिना उसे कौन उठावे? और राम यदि हों तो सब को रास्ते लगा कर उठा भी लें। पर किसीने अपने को राम अनुभव न किया। सब ने यह सोचा कि आज इस धनुष्य को छोड़ दें, आगे जब अधिक समझ आवेगी, अधिक ठोकर खा कर जब रास्ते पर आवेंगे, सब एक-दिल से कोशिश करेंगे, तब सबका एकत्र बल शायद राम के बल का काम दे दे। अन्त को मौलाना को जाकर यह कह देना स्थिर हुआ कि "हम आपसे लड़ना नहीं चाहते, इसलिए लीजिए हथियार रख देते हैं।"

* * *

श्री राजगोपालाचार्य के तार का हाल तो दूसरे लेखों में आ ही गया है। बस इतने वर्णन में समझौते का प्रायः सारा इतिहास आ जाता है। अब लोग इसमें पाप-पुण्य का बटवारा अपनी अपनी रुचि के अनुसार कर सकते हैं। १५ वी दोपहर को एक बहन ने श्री वल्लभभाई से पूछा—"आपने तो गजब कर डाला! जवाहरलाल वाला समझौता—बंबई वाला समझौता—क्या बुरा था? यह तो उससे भी गया-बीता है।" वल्लभभाई ने गंभीरता के साथ जवाब दिया—"बात सच है; पर बंबई के प्रस्ताव को मंजूर करना महज ढकोसला होता। पर इसमें ऐसी बात नहीं है। बंबई का प्रस्ताव तो एक धटाड़ थी, पर यह तो साफ तौर से आत्मसमर्पण करना है। इसलिए यह स्थिति अधिक शुद्ध और निर्मल है। उस बहन की और साथ ही मेरी भी समझ में यह बात आ गई।

* * *

रात को विषय-निर्वाचनी समिति में समझौता-प्रस्ताव बहुमति से स्वीकृत हुआ। मौलाना ने बापू के संदेश को जिस रूप में पेश किया था उसके खिलाफ बहुत-कुछ कहना मैं चाहता था पर मैंने अपने आवेग को रोका और बाहर निकलते ही मौलाना को व्यथित अन्तःकरण से कहा—एक महा ट्रेजेडी (आकस्मिक घटना) में हम लोग मातम मनाने के लिए यहां एकत्र हुए हैं। ऐसी कांड-घटनाओं के द्वारा ही तैयार होना शायद हमारे नसीब में बदा हो।"

* * *

इस सारी घटना के बाद एक सवाल होता है। जो बात आज हमने कबूल की वही यदि गया में मंजूर कर लेते तो क्या बुरा था? इसका उत्तर देना कठिन है। परन्तु यह निर्विवाद है कि उस समय स्वीकार कर लेना कायरता थी। पर इस समय वस्तुस्थिति का उग्र दृश्य ही निर्णायक तत्व था। पू० कस्तूर बा से किसीने पूछा था—"बा, यदि बंबई का ही प्रस्ताव सबने मंजूर कर लिया होता तो क्या बुरा था? आज अब इस प्रस्ताव को मंजूर करना पड़ता है।" बा ने सरलता के साथ जवाब दिया—"भाई उस वक्त महम्मदअली नहीं थे। आज महम्मदअली जेल से आ गये हैं।" वस्तुस्थिति का इससे अच्छा यथार्थ चित्र और क्या हो सकता है?

* * *

एक आखिरी बात। मौलाना महम्मदअली ने अभी हाल में एक विज्ञप्ति प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने बहिष्कारवादियों के साथ एक अन्याय किया है। उसका जिक्र भी यहीं कर देना जरूरी है। उन्होंने कहा है कि स्वराज्यवादियों में आज्ञापालन और अनुशासन अच्छा दिखाई देता था, परन्तु बहिष्कारवादियों में इन दोनों बातों की कुछ कमी थी। मौलाना बुजुर्ग हैं। उनकी सलाह के मूल में जो सदिच्छा है उसके कारण हमें उसे शिरोधार्य करना चाहिए। पर उनसे एक बात पूछना अनुचित न होगा। स्वराज्यवादियों को अपना अनुशासन दिखलाने का मौका कहां मिला? उनके हाथ में तो लड़ाई का फल पहुंच चुका था। उन्हें लड़ने की जरूरत ही क्या रह गई थी? अब यह देखना चाहिए कि लड़ाई के माल का बटवारा करते समय वे कितने अनुशासन का परिचय देते हैं। एक दृष्टि से बहिष्कारवादियों की शिथिलता को स्वीकार करते हुए भी दूसरी बात को भुलाना न चाहिए। मदरास वाले श्री वरदाचारी के अथवा गुजरात के श्री मणिलाल कोठारी के दल ने जिस स्वतन्त्रता का परिचय दिया है उसका तेज तो हरएक सत्याग्रही को शोभा देने योग्य ही था। जो लोग अपने सिद्धान्तों के लिए मरना जानते हैं वही अपनी लड़ाई को कायम रक्खेंगे और जो लोग यह कहते हैं कि असहयोग तो मर गया उन्हें जवाब देने के लिए मुझ तो इन दलों की इस अधिक दिखाई देने वाली स्वतन्त्रता को ही आगे बढ़ाना ठीक मालूम होता है।

(नवजीवन) **महादेव हरिभाई देसाई.**

महात्माजी की सेवा

सर माल्कम हेलो ने महात्माजी को जो गालियां दी थीं उसे भारतवासी शायद ही भूल होंगे। "दीवाने और सत्ता के लोभी" महात्माजी के विषय में लन्दन 'टाइम्स' उनके "आरोग्य-सम्बन्धी सामान्य ज्ञान" नामक पुस्तक की समालोचना करते हुए इस प्रकार लिखता है—

"गांधीजी ने यदि राजनैतिक हलचल के बजाय समाज-सुधार में अपनी सारी शक्ति लगाई होती तो सब लोग उनका आदर करते। हिन्दुस्तानी उनका जितना आदर करते उतना ही योरपियन लोग भी करते। क्योंकि आरोग्य-विषयक उनकी इस पुस्तक में इतनी सच्ची शिक्षा भरी हुई है कि इंग्लैंड का हरएक डाक्टर उसके एक एक अक्षर को स्वीकार किये बिना न रहेगा। गांधीजी का यह निश्चित सिद्धान्त है कि यह शरीर परमात्मा का मन्दिर है और देव-मन्दिर की तरह भक्ति-भाव-पूर्वक उसकी रक्षा और सेवा करनी चाहिए। वे इस सिद्धान्त की अपेक्षा कि शरीर को इसलिए तन्दुरुस्त रखना चाहिए कि उससे दुनिया का काम-काज अच्छी तरह कर सकते हैं, देव-मन्दिर वाले सिद्धान्त पर ही ज्यादह जोर देते हैं।"

महात्माजी की सब बातें सबको पसन्द हैं, सिर्फ उनकी राजनैतिक हलचल ही बहुतों को पसन्द नहीं आती। सर माल्कम भी उनके समाज-सुधार-संबन्धी सिद्धान्तों की स्तुति करते। जो नहीं, उनके राजनैतिक सिद्धान्तों की भी सब लोग वाह-वाह करते, यदि महात्माजी का देश अंगरेजों के पंजे में न होकर किसी और देश के पंजे में होता और वे उसे उससे मुक्त कराने का प्रयत्न करते। पर आज जो तमाम अंगरेजों की आंख में महात्माजी खटकते हैं उसका कारण यह है कि अंगरेज लोग हिन्दुस्तान को अपनी बपौती समझते हैं, हिन्दुस्तानियों को अपना गुलाम मानते हैं और इस बपौती को छोड़ना और गुलामी को मिटने देना उन्हें बुरी तरह खलता है। (नवजीवन)

हिन्दी-नवजीवन

जेल-दिन ५७०, रविवार, आश्विन वदी ५, सं. १९८०

नाभा में गिरफ्तारियां

क्या ही विचित्र दैवयोग है कि डाक्टर किचलू की सत्याग्रह-समिति के सामने, उसके जन्म के एक ही हफ्ते के भीतर, एक बड़ा ही अच्छा सवाल पेश हो गया है-ऐसा सवाल जिसके खड़ा करने की उसने कोई कोशिश नहीं की, बल्कि जिसे सरकार ने खुद ही उसके सामने ला कर खड़ा कर दिया है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू, आचार्य गिडवानी और श्री सन्तानम् ने नाभा के गैर-जिम्मेदार हाकिम के हुक्म को मानने से इनकार किया और वे गिरफ्तार कर लिये गये। यह एक ऐसी बेजा हरकत है जिसका इलाज सत्याग्रह-समिति और कार्य-समिति को तुरन्त ही मजबूती के साथ करना चाहिए। देश में कुछ ऐसे कमजोर लोग भी हैं जो कहा करते हैं कि देश अभी सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है और जिनकी तैयारी की रीति माण्टेगू साहब की बताई हिन्दुस्तान को स्वराज्य प्राप्त करने की तालीम से मिलती-जुलती है। उनके लिए यह घटना एक सबक का काम दे सकती है। हिन्दुस्तान-सरकार की इमारत ऐसी कमजोर और फिसलने वाली बुनियाद पर खड़ी है कि वह बार बार भ्रम-जाल में फंस जाती है-उसके हाथों लगातार अन्याय हुआ करते हैं। उसके मूल में ही ऐसी खामी है जिससे वह एक से एक बढ़कर गलती और नासमझी के काम करती जाती है। हमारे सामने सबसे मार्के का सवाल यही है कि हमारे पास वह राजनीतिज्ञता, शक्ति और नेतृत्व काफी है या नहीं जिसके द्वारा हम इन लगातार गहरे अन्यायों के संबंध में लोगों की सुस्ती और उदासीनता को दूर कर सकें। जरा गौर कीजिए, महात्माजी को जेल गये अभी कितना थोड़ा अर्सा हुआ है। पर इतने ही में सरकार कितने बड़े बड़े मामलों में गहरी भूलें कर चुकी है—पबलिक सर्विस कमिशन की नियुक्ति, नमक-कर और केनिया। लोगों ने जिस तरह इनपर अपना विरोध प्रकट किया, यह स्पष्ट ही है। और यदि देश में कोई सर्वमान्य नेता होता तो इन हर एक सवाल पर सरकार से टक्कर ली जा सकती। पर अत्यन्त खेद की बात है कि इन चुनौतियों और ललकारों से उत्पन्न लोगों के उत्साह, उत्सुकता और उमंग से कुछ भी काम न किया गया। प्रतिपक्षी के एक ही उलटे काम के बदौलत छोटी छोटी बातों से अच्छा और सच्चा नतीजा निकल सकता है। यदि हम यह कहें तो बे-अदबी न होगी कि गुरु-का-बाग या झण्डे की बनिस्बत नमक-कर और केनिया के सवाल पर सत्याग्रह करने के मौके बहुत ही अधिक थे। लेकिन अकाली और नागपुर के सत्याग्रही अपने मजहब की आजादी और अपने राष्ट्र के सम्मान की कीमत चुकाने के लिए तैयार बैठे थे।

अब सरकार ने नाभा के मामले में फिर भारी गलती की है। नाभा का मसला गुरु-का-बाग और नागपुर के मसले से भी बड़ा और भारी है। देशी-राजाओं और सरकार का पारस्परिक संबंध अबतक एक राजनैतिक पहेली रहा है और महासभा तथा दूसरे सार्वजनिक कार्यकर्ता लोग उससे दूर रक्खे जाते रहे हैं। लेकिन महाराज रिपुदमन सिंह के इस मामले ने यह साफ तौर पर दिखला दिया है कि इन मामलों में भी सरकार और देशी राजा लोग लोकमत के हक के बरखिलाफ नहीं कर सकते। पर-राष्ट्र-विषयक तथा राजनैतिक संबंध बड़े लाट और सेक्रेटरी ही तय कर लिया करते थे—यहां तक कि अपील की भी गुंजाइश नहीं थी। अब सरकार को धीरे धीरे यह मालूम हो रहा है कि देशी रियासतें, राष्ट्रीय और धार्मिक बल के कारण, ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। वे बहुत समय से अपना काम कर रही हैं और अपने निश्चित विकास की गति में वैसा करने का उन्हें अधिकार है। हिन्दुस्तान में धर्म-संस्था मुख्य है या राज्य—संस्था-इस पुरानी चर्चा का तथा इस झगड़े का कि इसके प्रति वफादार रहें या उसके प्रति-एक खास स्थान और इतिहास है। वे स्वेच्छाचारी साम्राज्य की आवश्यकता को हरगिज गवारा नहीं कर सकतीं। हम देख ही चुके हैं कि खिलाफत के मसले ने राष्ट्रीय धर्म और साम्राज्य-सरकार के पारस्परिक संबंध को तोड़ दिया है। और इस मसले पर हमारा राष्ट्र अपने भविष्य की इमारत खड़ी करने का उत्सुक था। इसी प्रकार गुरुद्वारा-प्रबंधक समिति कहती है कि सिक्ख-नरेश सिक्ख-पन्थ के सेवक हैं और उनके उस संबंध में दखल डालने का मजाज दुनिया की किसी शक्ति को नहीं है। जिन्हें आंख हैं उनके लिए इस विवाद का मूलभूत तत्व सचमुच बड़ा भारी है। लेकिन पं० जवाहरलाल नेहरू और उनके मित्रों की गिरफ्तारी ने एक और भी बड़ा सवाल पैदा कर दिया है। वह है राजनैतिक मामलों की जांच करने और उसे प्रकाशित करने का हक। हम समझते हैं कि यह मामला यहीं पर खतम न हो जायगा। छोटे पैमाने और थोड़ी तादाद में सविनय भंग करने के कार्यक्रम को अमल में लाने की सब सामग्री मौजूद है। सरकार के इस काम पर हम सत्याग्रह-समिति को बधाई देते हैं। इसके बदौलत उसे खूब तेजी के साथ काम करने का मौका मिलता है और इस समय देश की हालत ऐसी आदर्श-रूप है कि वह अपनी कष्ट-सहन की शक्ति का परिचय भली भांति दे सकता है। (यं. इं.)

अशक्ति का इकबाल

"कलि की भक्ति देखकर, साधू भये उदास"

महात्माजी के सारे जीवन की रचना व्रतों और प्रतिज्ञाओं पर हुई है। उनके बालिग जीवन का आरंभ तीन प्रतिज्ञाओं के साथ हुआ, और ज्यों ज्यों वे आगे बढ़ते गये त्यों त्यों उन्होंने अपनी प्रतिज्ञायें भी बढ़ाईं और अपने आध्यात्मिक उत्कर्ष की नींव अधिक मजबूत की। सत्य का ख्याल तो उन्हें लड़कपन में ही हो चुका था; दस वर्ष की उम्र से उन्होंने सत्य-पालन का आग्रह शुरू किया। अहिंसा का ज्ञान उन्हें पीछे हुआ। परन्तु यह सिद्धान्त कि दूसरों के उत्कर्ष के लिए भी प्रतिज्ञा ही उत्तम साधन है, उन्हें दक्षिण आफ्रिका में ज्ञात हुआ। वहां के हिन्दुस्तानियों की पतित, अप-मानित दशा को दूर करने का उपाय उन्हें यही दिखाई दिया कि उनसे सत्याग्रह की प्रतिज्ञा कराई जाय। आठ वर्ष तक इस कठिन प्रतिज्ञा का पालन करा के उन्होंने वहां के हिन्दुस्तानियों के लिए वहां की हालत को कुछ सहन करने लायक बनाया। हिन्दुस्तान में आने के बाद उन्हें उसी उपाय को विस्तृत क्षेत्र में आजमाने का अवसर मिला। खेड़ा, अहमदाबाद, चंपारन में उसका प्रयोग सफलतापूर्वक कर के उन्होंने रौलट कानून बनने पर सत्याग्रह का उपाय समस्त देश के सामने उपस्थित किया। सत्याग्रह का सविनय भंग अंग उन्होंने उसके लिए पसन्द किया; परन्तु देश उसके लिए तैयार नजर न आया। फिर पंजाब में अत्याचार हुए। खिलाफत की बे-इज्जती हुई। उन्होंने सत्याग्रह की कठिन विधि-सविनय-भंग की जगह सत्याग्रह की सौम्य विधि-असहयोग देश के सामने

पेश की। लोगों को वह बहुत पसन्द हुई। कलकत्ते की विशेष महासभा में उसे काफी समर्थन मिला, नागपुर में बड़े बड़े नेताओं ने उस उपाय को पसन्द किया और लगातार दो वर्षों तक बलिदान का ऐसा उत्सव देशभर में जारी रहा जैसा देश ने इससे पहले कभी न देखा था। देश की तालीम, अनुशासन और शक्ति को देख कर महात्माजी ने फिर सत्याग्रह का कठोर अंग सविनय भंग देश के सामने रक्खा। परन्तु चौरी-चौरा-काण्ड ने उन्हें देश की कमजोरी की आगाही दी और उन्होंने उठाई तलवार म्यान में रख ली। परन्तु असहयोग को कायम रक्खा। असहयोग में भी जहां जहां अहिंसा के सिद्धान्त के भंग होने की जरा भी सम्भावना थी वहां वहां कार्यक्रम को संकुचित कर दिया। इसके बाद वे जेल गये। उनका संकुचित किया कार्यक्रम-शुद्ध स्वदेशी का सार्वत्रिक प्रचार और धारासभा का बहिष्कार ये दो चीजें-हमारे पास रही थीं। महात्माजी ने यह आशा रक्खी थी कि यदि इन दोनों बातों की प्रतिज्ञा पर देश दृढ़ रहा तो भी वह स्वराज्य प्राप्त कर लेगा। धारासभा के बहिष्कार में न तो भारी त्याग की जरूरत थी और न अहिंसा-तत्व के भंग होने का अन्देशा था। देश को खादीमय बनाने में हिंसा की गुंजाइश ही नहीं हो सकती।

परन्तु महात्माजी के चले जाने के बाद इन दोनों प्रतिज्ञाओं पर देश के दिल में अश्रद्धा पैदा होने लगी। इस बात की जांच करने के लिए कि सविनय भंग हो सकता है या नहीं एक समिति बनाई गई; पर उसके तीन सदस्यों ने केवल यही राय दे कर संतोष नहीं माना कि सविनय भंग नहीं हो सकता, बल्कि असहयोग के स्तम्भ-स्वरूप धारासभा के बहिष्कार उठा देने की भी सिफारिश की और अहिंसा-तत्व के विघातक ब्रिटिश माल के बहिष्कार की भी सिफारिश की। तब से देश चक्कर में पड़ गया। गया में ये दोनों सिफारिशें पेश की गई थीं, परन्तु लोगों ने उन्हें पसन्द न किया। कितनी ही प्रतिज्ञाओं में बाकी रहीं इन दो प्रतिज्ञाओं को छोड़ते हुए देश को संकोच हुआ।

उसके बाद अबतक देश में इन प्रतिज्ञाओं के समर्थकों और विरोधियों में झगड़ा होता चला आया है। और देहली की महासभा ने इन प्रतिज्ञाओं का त्याग कर दिया है। जब व्यक्तियों के लिए भी शुद्ध से शुद्ध प्रतिज्ञाओं को निबाहने में बाधायें आती हैं, व्यक्ति भी शिथिल हो कर उनका भंग कर देते हैं तब राष्ट्र की तो बात ही क्या है?

देहली की महासभा के प्रस्ताव क्या हैं, देश की कमजोरी का इकबाल है। यदि सारी महासभा के काम को कमजोरी का नमूना कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। पहले समझौते के प्रस्ताव को लीजिए। मौलाना महम्मदअली पर तो किसीको यह सन्देह ही नहीं हो सकता कि वे धारा-सभा में जाने के पक्षपाती होंगे। धारा-सभा में जानेवालों को बे-वफा कहकर इस अर्थ की एक गजल कितने ही भाषणों में उनके मुंह से सुनी है कि जिसने हमें धोखा दिया है उसकी गली में हम क्यों जायं? परन्तु उन्होंने देखा कि लोग धारासभा-बहिष्कार की प्रतिज्ञा पालन करने के लिए तैयार नहीं—बड़े बड़े नेता बिगड़ बैठे हैं। वे उलझन में पड़ गये। समझौते का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए जो भाषण उन्होंने किया है उसका एक बड़ा भाग जिसने सुना है उसका दिल कह उठता है कि बहिष्कार के पक्ष में ही राय दे दें।

"महात्मा गांधी के असहयोग-सम्बन्धी मेरे विचारों में एक इंच भी फर्क नहीं हुआ है। बल्कि मेरा तो यह ख्याल है कि चुनाव के लिए खड़ा रहना और धारासभा में जाने तक का विचार करना, परवडा जेल में स्थित हमारे सरदार के प्रति अकृतज्ञता प्रकट करना है। मेरा तो यही मत है कि यह असहयोग-सिद्धान्त के खिलाफ है। मैं अपने मित्रों से हाथ जोड़कर प्रार्थना करूंगा कि आप महात्माजी की वफादारी के नाम पर धारासभा का नाम छोड़ दीजिए, क्योंकि धारासभा क्या चीज है, इसे आप बरसों के अनुभव से जानते हैं। यह देख कर कि हमने उन लोगों को धारा-सभा में जाने की छुट्टी दे दी है जो उसमें जाना चाहते हैं, हमारे दुश्मनों के घर में घी के चिराग जलेंगे। मैं इस बात को अच्छी तरह जानता हूं कि दास-बाबू का दल सरकार को तहस-नहस न कर सकेगा। उलटा वहां जा कर वही खुद टूक टूक हो जायगा। वहां जाने पर उनके दल में फूट पड़ जायगी। तोभी हमें ऐसी आशा करनी चाहिए कि वह सरकार को मटियामेट करने में सफल हो, मकड़ी की तरह अपने ही बनाये जाल में फंस न जाय।

"मैं तो यह आशा रखता हूं कि उनके हार्दिक विश्वास के अनुसार काम करने की छुट्टी मिल जाने का असर उनपर यह होगा कि वे धारा-सभा में न जावेंगे।

"एक मुसलमान के नाते धारा-सभा में जाना मेरे लिए हराम है। मेरी अन्तरात्मा वहां जाने से इन्कार करती है। मौलाना अबुलकलाम आजाद भले ही कहें कि धारा-सभा में जाना हराम नहीं, मगर मैं उनसे इत्तफाक नहीं रखता। पूनावालों को तो मैं यही कहूंगा कि जबतक पूना की नगर-समिति की हद में गांधी नाम का आदमी जेलखाने में पड़ा हुआ है तबतक आपके लिए धारा-सभा में जाना बोरोचित नहीं। मेरी मां तो कहती है कि धारा-सभाओं में जाना मानो थूक कर चाटना है। मैं भी कहता हूं कि धारा-सभा एक मोहिनी है। उनके लिए इतने बेचैन न हूजिए। यह मोहिनी आपको अनजान में अपने पंजे में फंसा लेगी।"

ऐसे विचारों के रहते हुए भी देश के कलह को मिटाने के लिए, शान्ति के लिए, उन्हें समझौते का प्रस्ताव पेश करना पड़ा। डाक्टर किचलू ने उसका समर्थन करते हुए साफ शब्दों में कहा कि "मुझे जरा भी शक नहीं है कि यह प्रस्ताव देश को कमजोर बनावेगा; पर फिर भी एकता के खातिर मैं इसकी पुष्टि करता हूं।" बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने अपने हृदय को पानी पानी कर देने वाले भाषण में कहा कि मेरे विचारों में रत्ती भर परिवर्तन नहीं हुआ है; परन्तु मुझमें इतनी ताकत नहीं कि महासभा को तोड़ डालूं। मेरे कन्धों में इतना बल नहीं कि इसका भार वहन कर सकूं। इस प्रकार एक पक्ष अपनी कमजोरी को अनुभव कर रहा था और दूसरे पक्ष की तो इस प्रतिज्ञा पर श्रद्धा ही नहीं थी। उस अश्रद्धा के मूल में भी उस प्रतिज्ञा को पालन करने की कमजोरी ही थी।

दूसरे प्रस्ताव-सविनय भंग को लीजिए। यह मानने की कोई वजह नहीं कि इसके द्वारा हमारी शक्ति का परिचय मिलता है। तीन महीनों तक तो ज्यादह तर नेता लोगों के दिमाग में धारा-सभा-प्रवेश के सिवा दूसरा विचार प्रवेश ही न कर सकेगा। और धारासभा में गये बाद वे धारासभा में किये जानेवाले कामों का विचार करेंगे या सविनय भंग का? परन्तु अपनी मनचाही बात हो जाने पर दूसरी बात में विरोध करने की ताकत धारा-सभा-वादियों में न रही। उन्होंने भी इस प्रस्ताव में 'हां' किया और देशबन्धु तथा श्री विट्ठलभाई पटेल सविनय भंग की समिति में दाखिल हो गये। यदि यह कहा जाय कि इस प्रकार धारासभा वादियों के द्वारा इस प्रस्ताव में 'हां' करवा कर धारासभा

विरोधियों ने अपने दिल को एक तरह से फुसलाया है तो उनके साथ अन्याय न होगा।

अब स्वदेशी और बहिष्कार का प्रस्ताव लीजिए। यदि देश सविनय भंग का बड़ा प्रयोग करना चाहता तो उसे ब्रिटिश माल के बहिष्कार का कठिन और खतरनाक प्रयोग करने का समय कहां मिलेगा? नैतिक दलीलों को एक ओर रखिए,—महात्माजी के अहिंसा-सिद्धान्त की व्यापकता की समझ दिन पर दिन कम होती जा रही है। पण्डित मोतीलालजी ने तो कहा कि 'अहिंसा' महासभा का सिद्धान्त नहीं। परन्तु अमली तौर पर भी इस प्रस्ताव का कुछ मूल्य नहीं। देहली में हमने खुद अपनी आंखों देखा कि तमाम मंडप विदेशी अथवा मिल कपड़े से सजाया गया था, स्वयंसेवकों के कपड़े तक खादी के न थे; परन्तु खादी के प्रस्ताव के साथ ही उसका ध्वंसक प्रस्ताव उसमें शामिल करते हुए कोई न हिचका। 'ब्रिटिश माल का बहिष्कार' ये शब्द मात्र लोगों के लिए बस हैं। कितने ही लोग जापानी कपड़ों को बरतेंगे और कहेंगे "यह तो ब्रिटिश माल नहीं है।" लोग अटपटे प्रस्तावों और उनकी बारीकियों को नहीं समझते। पर इस बात को भुला कर हमने इस प्रस्ताव को पास कर डाला। क्या बिरतानिया इस प्रस्ताव से डर जायगा? हर प्रकार की धमकी का मूल है सच्ची ताकत की खामी। और इस प्रस्ताव में सच्ची शक्ति का अभाव था।

यही बात केनिया के प्रस्ताव की है। केनिया के संबंध में अबतक क्या कम लिखा और कहा गया है? परन्तु उसका उपाय—एकमात्र उपाय असहयोग—किसीको न सूझा। केनियावासी हिन्दुस्तानियों को हम यह सलाह दे रहे हैं कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के प्रस्ताव को फाड़ कर फेंक दीजिए, सो भी महज व्याख्यानों द्वारा। *अब हम किस मुंह से अपने लोगों को धारासभा में जाने की छुट्टी दे सकते हैं?* पर यह किसीने नहीं सोचा कि धारासभा के प्रस्ताव के साथ केनिया का भी कुछ संबंध है? और अन्त में केनिया के संबंध में भी एक धमकी का प्रस्ताव पास करके महासभा विसर्जित हुई।

इस प्रकार महासभा के लगभग सभी प्रधान प्रस्तावों में हमारी कमजोरी साफ तौर पर दिखाई देती है। महात्माजी का नाम तो सब की जबान पर था, मौलाना महम्मदअली ने तो यह कह कर कि '*यदि महात्माजी बाहर होते तो एसी ही सलाह देते*' अपना समझौता-प्रस्ताव उपस्थित किया। महात्माजी के कारावास के दिन महासभा ने काम बन्द कर के दो मिनिट तक खड़े रह कर महात्माजी के प्रति, पश्चिमी राष्ट्रों की तरह, सम्मान भी प्रदर्शित किया। पर क्या इसमें कुछ शक है कि यह सारी भक्ति 'ढोंगी' थी? फिलहाल कुछ समय के लिए तो असहयोग का कार्यक्रम अस्त हो गया है। पर देश कितने समय तक इस अस्त को सहन कर सकेगा? अभी तो अपार अपमान और फजीहत उसके भाग्य में बदी होंगी। वे अपमान और वे विडंबनायें अन्त में क्या देश को उसी मन्त्र की ओर नहीं झुकावेंगी, जिसके जादू की करामात वह प्रत्यक्ष देख चुका है? १५ ता. को सुबह श्री राजगोपालाचार्य को एक तार भेजा गया था, जिसमें तत्कालीन परिस्थिति की सूचना उन्हें दी गई थी। उसके उत्तर में जो सलाह तार-द्वारा उन्होंने दी और जिसे आंसू-भरी आंखों और दुःख-भरी आवाज से श्री वल्लभभाई ने विषय-निर्धारिणी समिति में पढ़ सुनाया उसमें वर्तमान और भविष्य का ठीक ठीक चित्र आ जाता है—

"मेरी तो यह सलाह है कि मौलाना महम्मदअली पर सब बातें छोड़ दीजिए। उनकी मरजी के खिलाफ किसी बात पर उन्हें मजबूर न कीजिए। यदि वे समझौते पर ही ज्यादह जोर देते हों तो उन्हें वैसा करने दीजिए। मैं देखता हूं कि देश के भाग्य में अभी कठिन अनुभवों से गुजरना बदा है। दलीलें और फैसले बेकार हैं। हमें अब दूसरों के रास्ते में बाधक न होना चाहिए। जितना हमसे हो चुका उतना हम कर चुके। हमने बहुत लोगों को खोया है, अब हमें मौलाना महम्मदअली को भी न गवांना चाहिए।"

कमजोरी से मौलाना महम्मदअली को नफरत है। देहली में उन्हें दूसरों की कमजोरी का शिकार हो जाना पड़ा है, पर यह हालत अधिक समय तक नहीं रह सकती। थोड़े ही समय में कमजोरी-मूलक इस पैबन्द का कच्चापन यदि उनकी नजर में आ जाय और उनका ज्वालामुखी दूने वेग से धधक उठे तो ताज्जुब नहीं।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

कच्ची एकता

विषय-निर्धारिणी समिति में समझौता-प्रस्ताव पेश करते समय मौलाना महम्मदअली ने धारासभा-प्रवेश से होनेवाली हानि बता कर कहा "तथापि एकता के विषय में कटुता को दूर करने के लिए, जो धारासभा में जाना अपने धर्म अथवा आत्मा के प्रतिकूल न मानते हों वे धारासभाओं में जा सकते हैं"। प्रस्ताव पेश होने पर बिहार के एक मुसलमान सज्जन और मदरास के एक वीर युवक श्री वरदाचारी ने उसका विरोध किया। उन्होंने प्रस्ताव को मूर्खताभरा और बेहूदा तक कहने का साहस किया। इसके बाद बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने प्रस्ताव का विरोध करते हुए अपने भाषण में कहा कि इस प्रस्ताव के खिलाफ मत देकर इसका विरोध इस लिए नहीं करूंगा कि महासभा को तोड़ने की जवाबदही मैं अपने सिरपर नहीं लेना चाहता। श्री वल्लभभाई ने भी बाबू राजेन्द्रप्रसाद के मत का ही समर्थन किया। मत लेते समय बहुत से प्रतिनिधियों ने बाबू राजेन्द्रप्रसाद के अनुसार किसी भी ओर अपना मत नहीं दिया। आखिर श्रीमती सरोजिनी देवी ने जाहिर किया कि "एकता की विजय हुई"। महासभा ने जब इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तब देशबन्धु ने कहा:—'मुझे हर्ष हो रहा है कि महासभा एक दिल से समझौता प्रस्ताव को मंजूर कर रही है"।

आइए, अब हम देखें कि यह ऐक्य कहां तक सच है? मौ. महम्मद अली ने एक वक्तव्य प्रकाशित करते हुए कहा कि "बहिष्कार वादियों ने समझौता-प्रस्ताव का विरोध नहीं किया सो हार के डर से नहीं, बल्कि इस विचार से कि एकता के मार्ग में हम रोड़े न अटकावें"। स्वयं उन्होंने जब प्रस्ताव किया तब उन्हें अल्पमति या बहुमति का कोई ख्याल न था। वे स्वयं इस बात को जानते थे कि बहुत से लोगों ने विरोध नहीं किया, पर उन्होंने उनके पक्ष में मत भी नहीं दिया। क्या महासभा की एकता में कहीं इन लोगों का भी स्थान है या नहीं?

पर यह एकता कितनी कच्ची है इसके ठीक ठीक समझने का समय अभी और आगे आवेगा। समझौता-प्रस्ताव पर धारासभा-पक्ष वालों के ख्यालों के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया। पर इसको स्पष्ट कराने में स्वराज्य-पक्षवालों को कुछ लाभ भी न था। बहिष्कारवादी तो तटस्थ थे। अर्थात् उन्हें तो इस बात की परवा न थी कि समझौता-प्रस्ताव कैसा है। इसका मतलब यह होगा कि धारासभा में जानेवाले अनेक उद्देश और अनेक विचारों से जावेंगे। अब महासभा को इन उद्देश और ख्यालों की जांच करने के लिए कहा जायगा तब मौ. महंमदअली क्या करेंगे? धारासभाओं के प्रति उनके हृदय में जो तिरस्कार है वह कायम रहेगा, या वे महासभा के द्वारा धारासभाओं के लिए नियमों की रचना करावेंगे? ये सवाल आज नहीं तो कोकनद-महासभा में

जरूर खड़े होंगे। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने तो अपने भाषण में साफ साफ कह बताया था कि धारासभाओं में जाकर क्या करना चाहिए, उसका निर्णय दिल्ली में ही हो जाय तो अच्छा है। पर यदि ऐसा न हो सका तो कोकनद में जरूर इस बात का निश्चय करना होगा। देशबन्धु ने समझौता-प्रस्ताव पर भाषण करते हुए कहा था कि हम तो धारासभाओं को तोड़ने के ही लिए जा रहे हैं। धारासभाओं को तोड़ने के सिवा वहां जाने का हमारा अन्य हेतु हो ही नहीं सकता। अगर हमारी अल्पमति होगी तो हम अपनी बैठकें खाली रक्खेंगे। हमारी खाली बैठकें असहयोग के दीपों की तरह जगमगा उठेंगी। पर 'ट्रिब्यून' पत्र ने, जो स्वराज्य वादियों की मनोदशा को ठीक ठीक रीति से जानता है अभी से सलाह देना शुरू कर दिया है कि चूंकि अब उनकी विजय हो गई है, उन्हें चाहिए कि वे अपना एक कार्यक्रम बना लें। धारासभाओं में जा कर केवल विघ्न करने की पहली नीति को छोड़ कर अब धारासभाओं का उपयोग करने की योजना करनी चाहिए। स्वराज्यपक्ष के कितने ही सज्जनों ने तो इस सलाह को मान भी लिया है। अगर देशबन्धु और पंडित मोतीलालजी नेहरू उसे न मानते हों तो उन्हें दूसरों को अपने जैसा बनाना होगा या उनसे अलग होना होगा। दो विरोधी नीतियों में एकता हो ही नहीं सकती। स्वराज्यपक्ष में यदि एकता है तो केवल इसी बात पर कि धारासभाओं में जायं, इसके बाद किसी भी बात में नहीं। जब वे धारासभाओं में काम करना शुरू करेंगे तब यह कच्ची एकता टूट जायगी। अब बहिष्कार वादियों के साथ जो ऊपरी एकता संस्थापित हुई है वह कोकनद से आगे कहांतक कायम रहेगी यह कहना कठिन है। हां, अब यह आशा जरूर कर सकते हैं कि वितंडावाद, झगड़ा तथा व्यक्तिगत टीकाओं के लिए मौका न रहेगा।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

कुछ चित्र

(२)

श्री वल्लभभाई पटेल

अब वल्लभभाई का हाल सुनिए। श्रीमती सरोजिनी का मत है कि वल्लभभाई के जैसा लड़वैया दूसरा नहीं है। उनका भ्रम इस समय दूर हो गया। उन्होंने, राजेन्द्रबाबू ने, श्री गंगाधरराव देशपांडे तथा सेठ जमनालाल जी ने निश्चय कर लिया था कि मौलाना का विरोध करना मानों तमाम मुसलमान-जाति का विरोध, असहयोग के संयुक्त उत्पादक का विरोध करना है। उन्होंने इस बात पर दो दिनों तक विचार किया कि मौलाना साहब का विरोध करना बुद्धिमानी है या नहीं। अन्त में वे इस निश्चय पर आये कि विरोध न करना ही ठीक है। वे विषय-नियामक समिति में बोलने के लिए उठना ही चाहते थे कि श्री राजगोपालाचार्य का तार मिला। तार पढ़ते ही मानों वल्लभभाई के सिर का आधा भार हलका हो गया। राजेन्द्र बाबू की आंखों के आंसू तो मुझे न दिखाई दिये- वे दूर बैठे थे; पर वल्लभभाई की आंसू-भरी आंखें मैंने पहली ही बार देखीं। उनकी अंगुलियां कांप रहीं थीं और उनके आवाज में एक अजीब करुणा थी। उनके भाषण के सब शब्द याद नहीं पड़ते। उनका भाषण राजेन्द्र बाबू से भी छोटा था। उसका सार यह है—

"बड़े-बड़े लोगों के खिलाफ हम लोग अब तक लड़े और अपनी अल्प शक्ति और मति के अनुसार हमने झण्डे को ऊंचा फहराये रक्खा। हम तो सब सिपाही हैं। हममें नेता कोई नहीं। पर एक शख्स है जिसका दिमाग सुलझा हुआ है, जो स्वच्छता के साथ विचार करता है। उसने अपनी बीमारी के बिछौने से एक संदेसा भेजा है जो अभी मुझे मिला है—(यहां तार पढ़कर सुनाया) उसकी बात को हम मानते हैं और मैं अपने पक्ष के तमाम लोगों से प्रार्थना करता हूं कि वे मेरे इस निश्चय को मंजूर कर लें।" भरी सभा में किये उनके भाषण के भी कुछ शब्द यहां दे देता हूं—

"मैंने अपने हृदय को मथ कर देखा है कि मैं मौलाना महम्मदअली की जो कुछ सहायता कर सकता हूं वह यही कि अपना विरोध हटा लूं। वे मुझसे कहते हैं कि आपको उस शख्स की हालत पर गौर करना चाहिए, जो दो साल के कारावास के बाद यहां उपस्थित हुआ है। मैं समझता हूं कि इतने दिनों में उन्हें जेल के बाहर रहनेवालों की कठिनाइयों का भी अन्दाज हो चुका होगा। और मैं आशा रखता हूं कि जिस प्रकार मेरी हमदर्दी उनके साथ है उसी प्रकार उनकी भी हमदर्दी मेरे साथ रहेगी। आपने देखा है कि इस प्रस्ताव से युवक वरदाचारी का हृदय टूक टूक हो रहा है। मैं जानता हूं कि मेरे इस रुख से सैकड़ों हृदय टुकड़े टुकड़े हो जायंगे। मुझे अभीतक इस बात का यकीन नहीं हुआ है कि इस समझौते के बदौलत असहयोग की जड़ न कटेगी। पर वरदाचारी जिस प्रकार भविष्य को निराशामय देखते हैं और कहते हैं कोकोनाडा में महम्मदअली को कोई न पूछेगा और भविष्य में देश के चाहने पर भी वह असहयोग पर आरूढ़ न हो सकेगा, उस प्रकार मुझे निराशा नहीं दिखाई देती। मैं तो यह मानता हूं कि इस थोड़े समय की मौकूफी से लाभ होगा। आज असहयोग के अनुकूल वायुमंडल नहीं रह गया है। एक दूसरे के प्रति सन्देह है, प्रेम-भाव नहीं। यह प्रेम-भाव स्थापित करने का प्रयत्न है। इन कारणों से मैंने यह विचार किया कि न तो इस प्रस्ताव का समर्थन करूं और न विरोध। जो लोग मुझसे सहमत हैं उनसे मेरा अनुरोध है कि वे कम से उतनी अनुकूलता अवश्य दिखावें जितनी मैं दिखा सका हूं। अबतक देश के बड़े बड़े नेताओं का विरोध करने का दुःखद कर्त्तव्य हमें करना पड़ा था और आज उस विरोध को छोड़ देना भी उतना ही दुःखद है। तोभी मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप इस दुखदायी स्थिति से भी गुजरिए। मैं तमाम जिम्मेदारी मौलाना महम्मदअली पर छोड़ता हूं। मेरे मित्र जमनालालजी और गंगाधरराव देशपांडे भी जो अबतक इस विरोध में शामिल रहे हैं, ऐसी ही राय रखते हैं। बैठने के पहले मैं फिर स्पष्ट शब्दों में कहता हूं कि मैं न तो इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं और न विरोध।"

श्री वरदाचारी

यह तो हुई बड़ों-बड़ों की बातें। पर जिनके हृदय के टुकड़े टुकड़े हो जाने का जिक्र श्री वल्लभभाई ने किया है उनका जिक्र यहां न करने से यह चित्र अधूरा रह जायगा।

"हिन्दी-नवजीवन" के पाठक श्री वरदाचारी को नागपुर सत्याग्रह में जेल गये एक तामिल स्वयंसेवक के नाम से पहचानते हैं। उनकी उम्र २४-२५ वर्ष से अधिक न होगी। पर उनकी वाणी का तेज हर शख्स का ध्यान और सम्मान अपनी ओर खींच लेता है। उन्होंने विषय-नियामक समिति में समझौता-प्रस्ताव का घोर विरोध किया। उनका स्वभाव तो संयमशील और सौम्य है, पर इसका विरोध करते हुए उन्होंने बड़े कठोर शब्दों का प्रयोग किया। यह साफ साफ मालूम होता था कि दुःखावेग के कारण वे अपनेको बोलने से रोक न सके। उन्होंने यह कह कर शुरुआत की कि "एलायन्स बैंक जैसे दिवालिया बैंक की इमारत में हम, ऐसा मालूम होता है, महात्मा और

असहयोग का दिवाला निकाल देने के लिए एकत्र हुए हैं।" उन्हों ने प्रस्ताव को बेहूदा और मूर्खतापूर्ण कह कर उसकी मलामत की। इसके बाद श्री राजगोपालाचार्य का तार आया। तार देख कर वे घबराये। पीछे से मौलाना महम्मदअली से जा कर कहा कि मेरे नेता का आदेश आ गया है। इसलिए मैं अब आपका विरोध न करूंगा। रात को घर गये। रात भर जागरण कर के विचार करते रहे। दूसरे दिन निश्चय किया कि नहीं, विरोध तो करना चाहिए। नेता का आदेश भी ठीक नहीं है। दूसरे दिन मौ० महम्मदअली ने समझौते का प्रस्ताव पेश किया और अन्त में टोपी उतार कर विरोध करनेवालों से दरख्वास्त की कि देश के नाम पर आप अपना विरोध हटा लीजिए—इसका पाप-पुण्य मेरे सिर पर है। यदि मौलाना साहब इस तरह प्रार्थना न करते तो शायद वा वरदाचारी बोलने के लिए न भी खड़े होते; परन्तु इस प्रार्थना को एक प्रकार का दबाव मान कर उन्होंने भरी सभा में बड़ी बहादुरी के साथ प्रस्ताव का विरोध किया। उनके भाषण की इस चेतावनी को मौलाना महम्मदअली न भूले होंगे—

"कुछ उद्धत शब्दों का प्रयोग करने की जोखिम सिर पर ले कर हुए भी मैं कहता हूं कि देखिएगा, मौलाना साहब, कोकानाडा की महासभा के समय कहीं आपको दास-नेहरू की महासभा का सभापति न होना पड़े।" इस युवक को देख कर, मैं यह कहूं तो अत्युक्ति नहीं, कि श्री वल्लभभाई ही नहीं बल्कि मौलाना महम्मदअली का भी हृदय फूल उठता था।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

टिप्पणियां

जयन्ति-अंक

पिछले साल की तरह इस बार भी महात्माजी के जन्म-दिन के उपलक्ष में 'हिन्दी-नवजीवन' का 'जयन्ति-अंक' प्रकाशित किया जायगा। हिन्दू-वर्ष-गणना के अनुसार महात्माजी की जन्म-तिथि आश्विन व. १२ है, जो गुजरात में 'रेंटिया बारस' के नाम से विख्यात हो गई है और अंगरेजी काल-गणना के अनुसार ता. २ अक्तूबर को। इस साल आश्विन वदी १२ रविवार का ही पड़ती है, जो कि हिन्दी-नवजीवन के प्रकाशित होने का दिन है। इसलिए यह जयन्ति अंक पिछले साल की तरह २ अक्तूबर को नहीं, बल्कि आश्विन वदी १२, अर्थात् ७ अक्तूबर को, प्रकाशित किया जायगा।

जमनालालजी का उपदेश

सेठ जमनालालजी, जिनको उत्पन्न कर के उनकी जन्मभूमि धन्य हुई है, जिनको प्राप्त कर के देशवासी धन्य हुए हैं, और जिनको वरमाला डाल कर लक्ष्मी धन्य हुई है, इस हफ्ते में अहमदाबाद के महमान थे। उनका अभिनन्दन करने के लिए अहमदाबाद में हुई सभा में किये उनके भाषण का देहली-समझौता-विषयक अंश हृदय में अंकित करने योग्य है—

"देहली के समझौते को समझौता कह नहीं सकते। जिस सिद्धान्त के लिए हम तीन साल तक लड़े, जिस सिद्धान्त को लगातार कलकत्ता, नागपुर, अहमदाबाद और गया की महासभा ने कायम रक्खा और जिस सिद्धान्त पर अटल विश्वास रख कर हम तीन बरस से काम करते आये हैं, उससे हमारे कितने ही नेताओं की श्रद्धा उठ गई थी। श्रद्धा उठ जाने का कारण या तो देश की परिस्थिति होगी या हमारी उदासीनता। इतना होने पर भी हम तो यही मानते हैं कि पुराना कार्यक्रम ही सच्चा कार्यक्रम था और वही हमें सफलता प्राप्त करा सकता है। दूसरा कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। गुजरात से मेरी विनय है कि वह इस समझौते के झगड़े में न पड़े। गुजरात को तो महात्माजी के कार्यक्रम को पूरा करने में ही एक दीवाने की तरह लग जाना चाहिए। गुजरात के लिए तो महात्माजी के कार्यक्रम के सिवा दूसरा कार्यक्रम हो ही नहीं सकता। जिस पुरुष ने गुजरात में नवजीवन का संचार किया है, जिसने गुजरात का गौरव बढ़ाया है, प्रतिष्ठा बढ़ाई है, वह जबतक जेल में है तबतक गुजरात को तो उसीका बताया कार्यक्रम पूरा करना चाहिए।"

श्री पथिक पकड़े गये

श्रीयुत विजयसिंह पथिक को हिन्दुस्तान यथेष्टरूप से नहीं पहचानता। पर राजपूताने के तमाम राज्यों में उनकी आवाज सुनी जाती है। इसका कारण है उनकी अपार सेवा। तीन साल पहले पथिकजी बिजोलिया जिला (उदयपुर-राज्य) की रिआया की कहानी लेकर महात्माजी के पास आये थे। उनकी बात सुन कर महात्माजी ने मुझे जाँच करने के लिए भेजा था। मैंने लगभग १५ हजार की आबादी वाले इन ७०-८० गावों के समूह में पथिकजी का काम देखा। उसे देख कर मैं दंग रह गया। ये तमाम गांव कड़े लगान और कोई ७५-१०० तरह के टेढ़े-मेढ़े लगबाग के बोझ से कुचले जा रहे थे। उन तमाम गांवों को तैयार कर के पथिकजी ने सत्याग्रह छिड़वा दिया। दो साल तक उन्होंने हर तरह के कर देने से इनकार कर दिया, जमीन को पड़त रक्खा-जोता नहीं। कर न देने से जब्तियां हुईं, सैकड़ों किसान जेल में भेजे गये और जब जेल उन्हें अपने मत से न डिगा सकी तब वे छोड़ दिये गये। पर सत्याग्रह जारी रहा। अन्त को पिछले साल थक कर उदयपुर राज्य ने बिजोलिया का प्रायः सभी मतालबा कबूल किया और चम्पारन की तरह वहां सत्याग्रह की विजय हुई। इतनी बढ़िया लड़ाई एक एकान्त कोने में केवल एक व्यक्ति के द्वारा छेड़े जाने की दूसरी मिसाल शायद ही कहीं मिले। महात्माजी ने जब वहां के लोगों की शक्ति की बात सुनी तब उन्होंने मुझे कहा—तो फिर उन लोगों को सहायता देने की जरूरत नहीं। वे तो खुद ही अपना उद्धार कर लेंगे। पर खूबी यह है कि जब से पथिकजी पर राज्य की आंख रहने लगी तब वे वहां से हट गये और ग्वालियर-राज्य की हद में बैठ कर अपने दूतों और गुप्तचरों के द्वारा काम करते रहे। संभव है कि यह कार्य-शैली सत्याग्रहियों के अनुरूप न हो; परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि पथिकजी की विलक्षण बुद्धि और बहादुरी का यह उत्कृष्ट नमूना है। उन्होंने बाहर रहकर सत्याग्रह की विजय को देखा। परन्तु उदयपुर-राज्य उन्हें बराबर शत्रुता की दृष्टि से देखता रहा। कुछ समय से वे राजस्थान-सेवा-संघ स्थापित कर के अजमेर में रहते हुए रियासतों का काम करते थे। समाचार आये हैं कि वे उदयपुर की हद में पकड़े गये हैं। उनपर जुर्म लगाया गया है रियासत में जब्त पत्र 'तरुण राजस्थान' और 'प्रताप' की प्रतियां साथ रखना और राजद्रोह फैलाना। इन जुर्मों की ओट में उनपर यह कायर वार किया गया है और यह उनकी गैर हाजिरी में रिआया को तंग करने की सूचना देता है। परन्तु पथिकजी रैयत को अपने पांव पर खड़े रहना सिखा गये हैं। अतएव पथिकजी को कैद कर के उदयपुर-राज्य अपनी अभीष्ट-सिद्धि न कर सकेगा।

पथिकजी एक राजपूत हैं, सिपाही हैं, बहादुर कार्यकर्ता हैं। वे ऐसे राज्यों में रह कर ही काम करना जानते हैं। अकेले बिजोलिया का ही काम उनकी कीर्ति के लिए बस है। ऐसे शूर-वीर को कैद कर के उसे तरह तरह से कष्ट दे कर कुछ दिनों तक उपवास करने की नौबत जेल के अधिकारियों ने ला दी है। अभी मुकद्दमे का फैसला नहीं हुआ है। इसमें कोई शक नहीं कि पथिक जी जेल से कुन्दन बन कर निकलेंगे। पर क्या देशीराज्य अंगरेजी राज्य की पशुता का ही अनुकरण करते रहेंगे? क्या नाभा-काण्ड उनकी आँखें खोलने के लिए बस नहीं है? म० दे०

जयन्ति-अंक

वार्षिक ... मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए ,, ७)

हिन्दी नवजीवन

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक ८

सम्पादक—हरिभाऊ विठ्ठनाथ उपाध्याय
मुद्रक—प्रकाशक रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, चरखा १२, संवत् १९८०
जेलदिन ५७९, रविवार ७, अक्तूबर, १९२३ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

बापू के चार पत्र

[इन चार पत्रोंमें से तीन उस समय लिखे गये थे जब बापू जेर तजवीज कैदी की हैसियत से साबरमती जेल में थे। चौथा भाई देवदास के नाम लिखा पत्र चौरीचौरा के काण्ड के बाद ही लिखा गया था। वाइसराय को दी गई आखिरी चेतावनी, चौरीचौरा के हत्याकाण्ड, कार्य-समिति का 'ठहरो' का प्रस्ताव, महात्माजी की गिरफ्तारी—इन बाहरी खबरों को लोगों ने देखा और देख कर सब लोग अवाक् रह गये। उस समय कर्णधार अपने बेड़े को कैसे कैसे विचारों से चलाता जाता था, इसकी कुंजी इन आगमी पत्रों में है—

म० दे०]

देवदास के नाम

चि० देवदास, मौनवार

तुम्हारा खयाल हमेशा हुआ करता है। पर तुम्हें पत्र लिखने की फुरसत ही नहीं मिलती।

तुम्हारा तार मिल गया है। बंबई से भेजा मेरा तार भी तुम्हें मिल गया होगा।

मैंने आज से उपवास शुरू किये हैं। शुक्रवार शाम को खतम होंगे। इतना किये बिना काम कैसे चल सकता है? सांप के बिल में हाथ डालना और इस अविनय में सविनय भंग करना दोनों बराबर हैं। मेरे उपवास से तुम चिन्तित न होना। मेरी देखादेखी तो तुम हरगिज न करना। मां को प्रसूति की पीड़ा भोगनी ही पड़ती है। दूसरों का काम यह है कि वे उसे मदद करें। मैं अहिंसा और सत्य-धर्म को जन्म देना चाहता हूं। इसलिए उपवास आदि की पीड़ा भोगने का पात्र अकेला मैं ही हूं। तुम लोग तो सिर्फ उसके लिए शुद्धि करो और अपने नियत काम को करते रहो। तुम तो करते ही हो। इन पापों में तुम्हारा हिस्सा बिल्कुल नहीं है।

वहां से मुझे खबरें बराबर भेजते रहा करो।

यह जान कर तुमको खुशी होगी कि हरिलाल की सजा कम नहीं हुई है। मुझे यह बात अच्छी नहीं मालूम हुई थी। वह वहां आनन्द से है। मालवीयजी कल बंबई गये। वे वर्किंग कमिटी में मौजूद थे।

तुम्हें नीचे लिखा तार भेज रहा हूं—Your wire. Working Committee has indefinitely postponed mass civil disobedience, other miner activities offencive character. Am fasting till Friday even-

भाग्योदय

क्यों प्रफुल्लित हो रही प्राची-दिशा ?
सज रही क्यों आज सुवरण भामिनी ?
क्यों उषा उत्कण्ठिता है देखती ?
कनक-आरति-पात्र के कर-कमल में ?

क्यों विहग-कुल हर्ष से उन्मत्त हो ?
हृदय हैं संगीत से निज खोलते ?
कमल-दल क्यों हंस रहे अति प्रीत हो ?
क्यों लतायें गर्व से हैं फूलतीं ?

वृक्ष क्यों ये सजग सिर ऊंचा किये—
टक लगा अवलोकते हैं पूर्व को ?
मटकते हैं भृंग क्यों गुंजार कर ?
क्यों प्रकृति यह प्रेयसी अठिला रही ?

* * * *

झांकता यह कौन क्षितिज-द्वार से ?
भर रहा उत्साह दिव्य दिगंत में।
पुण्य पावक-गोल सा निर्धूम यह—
कर रहा पावन कमिठ उत्कर्ष से।

* * * *

जीव को जीवन, जगत् को भास्कर,
भक्त को भगवान्, लोचन अन्ध को,
प्रकृति को उसका गया धन मिल गया।
पूर्व का तो धन्य! भाग्योदय हुआ॥

हरिभाऊ उपाध्याय

ing by way of penance and warning people who with my name on lips have brutally hackled constables to death. Strongly advise wrong-doers confess guilt and deliver themselves authorities. Do not fast yourself, do not wory but work and pray. Bapu.

चिट्ठी बराबर लिखा करना। मालवीयजी शायद दो-चार रोज में वहां पहुंच जायंगे। बापू

महादेवभाई के नाम

साबरमती जेल—सोमवार

चि० महादेव, १७-३-२२

शायद बहुत दिनों के बाद यह आखिरी पत्र तुम्हें भेजता हूं। तुम यही समझना कि तुम वहां सेवा कर रहे हो। मेरी सच्ची सेवा यहां से शुरू होती है। मन, वचन और कर्म के द्वारा जितने नियमों का पालन मैं दृढतापूर्वक करूंगा, उतना ही राग-द्वेष आदि को दूर करने का भारी प्रयत्न करूंगा। और यदि मैं सचमुच अधिक निर्मल होता गया तो उसका प्रभाव बाहर भी पड़े बिना न रहेगा। मेरी शांति की तो आज ही सीमा नहीं रह गई है। पर जब सजा हो जायगी और लोगों का आना-जाना भी बन्द हो जायगा तब शान्ति की मात्रा और भी बढ़ जायगी।

एक सवाल यहां पर हो सकता है। यदि इसी प्रकार अधिक सेवा हो सकती हो तो कहीं जंगल में जा कर क्यों न बैठ जाना चाहिए? उसका जवाब सीधा है। जंगल में जा कर बैठना एक प्रकार का मोह है; क्योंकि इसके मूल में इच्छा है। क्षत्रिय के लए तो वही धर्म है जो अपने आप सहज प्राप्त हो जाय। सहज प्राप्त जेल से मिलनेवाली शान्ति से फायदा होता है। ईश्वर की क्या ही खूबी है? बारडोली में पूरी तरह शुद्धि की। देहली में किसी प्रकार की मैल न चढने दी; पर उसी बात को लोगों को पसन्द आने लायक भाषा में प्रकट कर के मैंने अधिक शुद्धि की। क्योंकि दृढता के साथ साथ उसमें मैंने कोमलता का परिचय दिया। इसके बाद भी 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' द्वारा शुद्धि ही की—'अहिंसा' पर लेख लिखा। इस प्रकार अधिकाधिक शुद्धि के समय में 'वैष्णव जन' के गाये जाते हुए गिरफ्तार होकर चला गया। यदि यह कुशलसूचक न हो तो और क्या हो सकता है?

अब तो मैं यह चाह रहा हूं कि अब कोई जान-बूझ कर जेल में न आवे।

यह तो सपने में भी नहीं खयाल होता था कि शंकरलाल मेरे साथ पकड़े जायंगे। परन्तु ईश्वर सब कुछ कर सकता है।

बापू

जमनालालजी के नाम

साबरमती जेल—सोमवार

चि० जमनालाल,

ज्यों ज्यों मैं सत्य की खोज करता जाता हूं त्यों त्यों मुझे यह मालूम होता है कि सत्य में ही सब बातों का समावेश हो जाता है। अहिंसा में चाहे सत्य का समावेश न होता हो; पर मुझे कई बार यह मालूम होता है कि सत्य में अहिंसा का समावेश हो जाता है। निर्मल अंतःकरण को जिस समय जो प्रतीत हो वही सत्य है। उसपर दृढ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति हो जाती है। उसमें मुझे कहीं धर्म-संकट—परस्पर विरोध नहीं दिखाई देता। परन्तु अहिंसा के अर्थ का निर्णय करते समय बड़ी कठिनाइयां पेश होती हैं। जन्तुनाशक पानी का उपयोग करना भी हिंसा है। सो इस हिंसामय जगत् में अहिंसामय हो कर रहना है। यह सत्य पर दृढ रहकर ही हो सकता है। इस कारण मैं तो सत्य में से अहिंसा घटा सकता हूं। सत्य में प्रेम मिलता है। सत्य में मृदुता मिलती है। सत्यवादी सत्याग्रही को बिलकुल नम्र होना चाहिए। ज्यों ज्यों उसकी सत्य-प्रतीति की वृद्धि होती जाय त्यों त्यों वह नम्र होता जाता है। इस बात का अनुभव मैं पल पल पर कर रहा हूं। आज मुझे सत्य की जितनी कल्पना हो चुकी है, उतनी एक साल पहले नहीं थी। आज मैं अपनी अल्पता को जितना अनुभव करता हूं उतना एक साल पहले नहीं करता था।

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।' इस वाक्य का चमत्कार मेरी दृष्टि में दिन पर दिन बढ़ता जाता है। इसलिए हमें हमेशा धीरज रखना चाहिए। धीरज रखने से हमारे अंदर की कठोरता दूर हो जायगी। कठोरता जाने से सहिष्णुता बढेगी। हमारी भूलें हमको पहाड़ के बराबर मालूम होंगी और दुनिया की भूलें राई के बराबर।

शरीर की स्थिति अहंकार के ही बदौलत संभवनीय है। शरीर का आत्यंतिक नाश ही मोक्ष है। जिसके अहंकार का आत्यंतिक नाश हो चुका है वह तो प्रत्यक्ष सत्य की मूर्ति हो जाता है। उसे ब्रह्म कहने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इसीसे ईश्वर का प्रिय नाम है दासानुदास।

स्त्री-पुत्रादि, मित्र, परिग्रह, बंधु ये सब [illegible] अधीन रहना चाहिए। हम सत्याग्रही तभी हो सकते हैं जब सत्य को खोजते हुए हम इन सबके सर्वथा त्याग के लिए तैयार हों।

मैं इस आन्दोलन में इस खयाल से शामिल हुआ हूं कि इसके द्वारा इस धर्म का पालन अनायास हो जाता है। और इसीलिए तुम जैसों को बलि देते हुए मैं हिचकिचाता नहीं। उसका बाह्य-रूप है भारतीय स्वराज्य; उसका सच्चा स्वरूप है प्रत्येक व्यक्ति का स्वराज्य।

अभीतक एक भी ऐसा शुद्ध सत्याग्रही नहीं तैयार हुआ है, इसीसे यह शिथिलता हो रही है। पर इससे जरा भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।............ बापू

श्री प्रकाशम् के नाम

परम मित्र प्रकाशम्,

यदि मैं पकड़ा गया तो इस बात का कि कहीं हिंसा-काण्ड न हो जाय, आपपर तथा दूसरों पर मेरा भरोसा है। केवल इसी तरीके से देश मेरा बड़े से बड़ा सम्मान कर सकता है। मैं चाहे किसी जेल खाने में पड़ा होऊं, पर यदि वहां किसी पहरेदार ने आ कर मुझसे कहा कि फलां असहयोगी ने अथवा उसकी तरफ से किसी दूसरे ने किसीका सिर फोड़ दिया है अथवा किसीकी बे-इज्जती की है या एक भी घर को आग लगा दी है तो मुझे असीम दुःख होगा। यदि लोग और कार्यकर्ता मेरे सन्देश को जरा भी समझें होंगे तो वे अपूर्व शान्ति कायम रक्खेंगे।

मेरी गिरफ्तारी की दूसरी ही रात को यदि हिन्दुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक लोग अपनी खुशी से अपने पास के विदेशी कपड़े एकत्र करेंगे और बिना किसी प्रकार के दबाव के खादी को छोड़ कर दूसरी किसी चीज को न इस्तैमाल करने का दृढ निश्चय करते हुए उन कपड़ों की होली जलावेंगे तो मुझे अत्यन्त आनन्द होगा। जेल में ऐसे समाचारों को मैं बड़े प्रेम से सुनूंगा कि चरखे के लिए लोग चारों ओर चढा-ऊपरी कर रहे हैं—जो कार्यकर्ता कातना नहीं जानते थे उन्होंने नियमपूर्वक सूत कातना शुरू कर दिया है।

मैं ज्यों ज्यों हमारे भावी कार्यक्रम पर विचार करता हूं और ज्यों ज्यों छुपे हुए परन्तु निश्चित रूप से हमारी सेना में फैलने वाले हिंसा-भावों की खबरों को सुनता जाता हूं त्यों त्यों मुझे

निश्चय होता जाता है कि व्यक्तिगत सविनय भंग भी मिथ्या है। हर शख्स अब उसे भूल जाय और हजारों लोगों के नेतापन के अभिमान में मिथ्या काम करने की अपेक्षा सच्चा काम करना ही बेहतर है।

हमारी तादाद चाहे कम हो, चाहे अधिक, जबतक हमारा विश्वास अहिंसा के कार्यक्रम पर है तबतक सम्पूर्ण रचनात्मक कार्य से हमारा छुटकारा नहीं हो सकता। आज उसे पूरा कर दिखाओ और कुल देश सविनय भंग के लिए भी तैयार हो जायगा। यदि महासमिति के तथा प्रान्तीय समितियों के सदस्यों का यह विश्वास हो कि मेरे बताये सिद्धान्त ठीक हैं तो यह काम हो सकता है। खेद इसी बात का है कि उनके पास श्रद्धा नहीं है। नीति—पालिसी—एक प्रकार का धर्म ही है। वह कुछ समय के लिए स्वीकार किया जाता है और उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। परन्तु जबतक हमने उसको अंगीकार किया है तबतक तो उसका पालन उतनी ही दृढ़ता के साथ होना चाहिए जितनी दृढ़ता के साथ धर्म का पालन किया जाता है। शुभेच्छु

मोहनदास गांधी

उनके जीवन का रहस्य

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः

—भगवद्गीता।

बापू के जीवन का रहस्य यदि एक ही वचन में कहना चाहें तो मेरे खयाल में गीता के बारहवें अध्याय का पूर्वोक्त वचन बस है। जिससे लोगों को उद्वेग न होता हो और जिसे लोगों के द्वारा उद्वेग नहीं होता। ऐसे यतचित्तात्मा के इसी वचन में वर्णित गुण का निरूपण श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने विशेष स्पष्टता के साथ किया है—

तरि सिंधुचेनि माजें। जळचरां भय नुपजे।
आणि जळचरीं नुबगिजे। समुद्र जैसा॥

तेवि उन्मत्तें जगें। जयासी खती नलगे
आणि जयाचेनि आंगें। न शिणे लोकु॥

किंबहुना पांडवा। शरीर जैसे अवयवां।
तैसा नुबगे जीवां। जीव पणें जो॥

अर्थात् भगवान् का वचन है कि जिस प्रकार समुद्र के क्षोभ से जलचरों को भय नहीं मालूम होता, और जलचरों का समुदाय बढ़ जाने से समुद्र का जी नहीं ऊबता; उसी प्रकार जिसे उन्मत्त जगत् का खेद नहीं होता और जिसके कारण जगत् को भी दुःख और कष्ट नहीं होता; अधिक क्या, जिस प्रकार शरीर अपने अवयवों से नहीं उकताता, उस प्रकार जो अपनेको सब का प्राण मानकर प्राणिमात्र से नहीं उकताता—वह मेरा भक्त है—मेरा जीवन सर्वस्व है।

ऐसे भक्तराज का चिन्तन कर के उसकी स्थिति के नजदीक पहुंचनेवाले महात्मा गांधी को छोड़ कर जिन का जन्मोत्सव हम आज मना रहे हैं, दूसरा कोई पुरुष इस युगने उत्पन्न नहीं किया। मानों इस वचन को सिद्ध करने के ही लिए उन्होंने सत्य और अहिंसा इन दो महाव्रतों से अपने जीवन को बांधा और स्थूल रूप से भी इन्हीं दो व्रतों के पालन करने का उपदेश इस देश को दिया और जगत् के सामने रक्खा। यही उनके जीवन की सफलता है। चार वर्ष पहले जब "गुजरात नो तपस्वी" नामक काव्य प्रकाशित हुआ तब उसके संबंध में महात्माजी ने मुझे एक पत्र में लिखा था कि "लोग मेरे ब्रह्मचर्य की तारीफ क्या समझ कर करते हैं? मेरे अन्दर यदि कोई विशेषता है तो वह है सत्य और अहिंसा का प्रेम।" यही बात उन्होंने चार वर्ष बाद भाई देवदास के नाम लिखे पत्र में दूसरी तरह से लिखी है। "सत्य और अहिंसा को जन्म देना मेरे जीवन का कार्य है और उसके लिए मुझीको पीड़ा सहन करनी चाहिए"। जमनालालजी के नाम के पत्र में भी उन्होंने सत्य और अहिंसा का गुण गान किया है। और मेरे नाम के पत्र में भी जेल में जा कर इन व्रतों का पालन पूरा पूरा करने की अभिलाषा प्रकट की है।

यह सत्य और अहिंसा आखिर है क्या? इसका रहस्य उसीको दिखाई देगा जो १९१९ के बाद की तथा उससे पहले की राजनैतिक अवस्था की तुलना निष्पक्ष भाव से करेगा। १९१९ से पहले की सारी स्थिति अस्वाभाविक थी। लोग अपने बल को नहीं पहचानते थे—सम्राट् के पास प्रार्थना भेजकर उनके अभिमान की पुष्टि की जाती थी; कई बार बिगड़ बैठ कर लोग उनके कोप को न्यौता दे बैठते; कभी कभी उनके छल-कपट की प्रतिस्पर्धा कर के उन्हें अपने छल-कपट से हराने के हौसले किये जाते—थोड़े में तत्कालीन राजनीति को सत्य और अहिंसा छू तक न गई थी। १९१९ ई० में महात्माजी ने देश से सत्य और अहिंसा-हीन राजनीति के त्याग करने का निश्चय कराया। १९२० ई० में उन्होंने देश की नीति में सत्य और अहिंसा को स्थान दिला दिया। साल के अन्त में उसके चमत्कार से मुग्ध हो कर, कितने ही लोगों ने उसकी नवीनता पर रीझ कर उसका उपयोग किया। १९२२ में जब अहिंसा को प्रकट करने का उत्कट अवसर उपस्थित हुआ तब हमारे दिल में अंदेशा पैदा हुआ। सत्य और अहिंसा के पैर जमाने से जिस दल को राजनीति नीरस मालूम होती थी उसने उनके खिलाफ आवाज उठाई। यह स्वर महात्माजी के जेल जाने के बाद और ऊंचा हुआ। देश के प्रधान नेता फिर १९१९ के पहले की राजनीति की ओर कदम बढ़ाते हुए देखे जाते हैं। इसका कारण क्या है?

कारण स्पष्ट है। लोगों को सत्य और अहिंसा की कीली पर कायम रखनेवाली जो शक्ति थी उसे सत्य और अहिंसा से सौ कोस दूर रहनेवाली सरकार ने लोगों से छीन लिया है।

भगवान् पतंजलि ने योगदर्शन में अहिंसा का माहात्म्य एक ही सूत्र में वर्णन कर दिया है—**अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः**—अहिंसा में प्रतिष्ठा हो जाने पर उस योगी की सन्निधि में वैर का त्याग हो जाता है। वैर का अर्थ टीकाकारों ने स्वभावज वैर बताकर यह निरूपण किया है कि अहिंसानिष्ठ योगी के सामने शेर-बकरी, सिंह-हरिण आदि जैसे स्वभाव से ही परस्पर वैरी प्राणी तक अपना वैर-भाव भूल जाते हैं। केवल पशुओं के वैर का उल्लेख करना मुझे संकुचित दिखाई देता है। हमने तो इसी जमाने में अपनी आंखों देखा है कि हिंसा से भरे इस जगत् को भी महात्माजी की अहिंसानिष्ठा का चमत्कार दिखाई दिया। महात्माजी ने राजा और प्रजा के वैर को देखा है, जातियों के पारस्परिक वैर को देखा है, मालिकों और नौकरों का वैर देखा है, धनिकों और निर्धनों का वैर देखा है—और इन तमाम वैरों का मरण, अहिंसा, को उत्पन्न किया है। इस अहिंसा का प्रत्येक जाग्रत पल में पालन कर के, क्षण क्षण पर अपनी कठोर परीक्षा कर के, वे अहिंसा-धर्म को इस सीमा तक ले गये कि हमें जरा देर के लिए मालूम हुआ मानों देश में चारों ओर परस्पर टकरानेवाले विरोधी तत्वों ने अपने पिछले मत्सर और वैर का त्याग कर दिया है; 'शासकों के प्रति जरा भी द्वेष नहीं रह गया है' यह कहते हुए हजारों आदमी हंसते हुए जेलों में गये हैं, हिन्दू-मुसलमान अपना

महात्माजी के हस्त-लिखित हिन्द-स्वराज्य का पहला पृष्ठ

नागरी-लिपि में

हिंद स्वराज्य

—प्रस्तावना

आ विषय उपर में
वीस प्रकरण लख्यां छे
ते वांचनार आगळ
मुकवानी हिमत करुं छुं.
ज्यारे माराथी नथी
रहेवायुं त्यारेज में
लख्युं छे. बहु वांच्युं, बहु
विचार्युं; वळी विलायतमां
ट्रान्सवालना डेप्युटेशन
साथ चार मास रह्यो
ते मुदतमां माराथी
बन्या तेटला हिंदीनी
साथे विचार कर्या. बन्या
तेटला इंग्रेजोने पण
मळ्यो. जे मारा विचार
छेवटना लाग्या ते
वांचनार नी पासे मुकवा
ए मारो फरज समज्यो.

गैर भूल कर एक दूसरे के गले मिले। पहल कमा न ६५४ १.५ स्वप्न दिखाई दिये।

योगशास्त्र के कर्ता सत्यव्रत के संबंध में कहते हैं—सत्य-प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। सत्यनिष्ठ मनुष्य वाक्सिद्धि प्राप्त कर लेता है, उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। इस वचन की सार्थकता भी हमने इसी अरसे में देखी। लोगों ने महात्माजी के वचनों के अनुसार अपने अनेक ऐशआरामों को तजा, रागद्वेष छोड़े, धन की थैली खोली, जवाहिर निकाले. त्याग और स्वावलंबन का मार्ग ग्रहण किया।

इस प्रकार अहिंसा और सत्य की निष्ठा को नित्य निरंतर बढ़ाने वाला पुरुष जगत् में अपना वायुमण्डल उत्पन्न करने लगा। इस वायुमण्डल के प्रसार में सरकार का श्रेय था। परन्तु सरकार ने उसे न समझा। परिणाम सरकार जानती है। हम भी जानते जानते हैं। अहिंसा और सत्य रूपी अमृत लोगों के सामने से हटा लेने के कारण अनेक प्रकार के विष का प्रवाह बढ़ता जा रहा है। सत्य और अहिंसा दोनों की उपेक्षा हो रही है। कितने ही जगह हिंसा-काण्ड हो रहे हैं, एक जाति दूसरी जाति पर टूट रही है, उपद्रव हुए हैं, गुप्त मारकाट की जो आवाज बंद हुई मालूम होती थी उसकी झनकार कहीं कहीं से सुनाई देने लगी है। यह नहीं कहा जा सकता कि अभी क्या क्या न होगा।

समय आने पर हम अपनी इस भूल को जानेंगे कि अरे, हमने इस अनमोल धन को नहीं परखा था। समय आने पर हमारे अन्दर सच्ची धर्मनिष्ठा उदय होगी और समय आने पर अधिकार के नशे में चूर यह सरकार भी अपने दिल को समझेगी। आज तो वह चार स्थूल दीवारों के अन्दर भव्य शान्ति का उपभोग करनेवाला पुरुष अपने सार्वभौम व्रतों को अधिकाधिक दृढ़ करता जा रहा है, अपने अत्यन्त भीतरी दोष तक को देख रहा है। इसके परिणाम-स्वरूप इन व्रतों का प्रकाश इतना उग्र हो जायगा कि अंधकार का एक एक परदा अपने आप फट जायगा।

इस बीच यदि हम अभिन्न जन और कुछ न कर सकें—अपनी भूलें कुबूल न कर सकें, उन्हें सुधारने का निश्चय न करें तो कम से कम उस जगन्नियंता को इस बात के लिए धन्यवाद अवश्य दें कि उसने सत्य और अहिंसा के अवतार-रूप उस अलौकिक व्यक्ति को "जिससे जगत् को उद्वेग नहीं होता और जो जगत् से उद्विग्न नहीं होता," हम जैसे अनधिकारियों के कल्याण के लिए आजतक कायम रक्खा है और हमसे जिस तरह हो सके उस तरह यह प्रार्थना करें कि इस विभूति का प्रकट प्रकाश अभी अनेक वर्षों तक हमें प्रकाशित करे।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

नवजीवन के 'स्वामी' छूटे

'नवजीवन मुद्रणालय' के स्तम्भ स्वामी आनन्दानन्द, जिन्हें 'यंग इण्डिया' वाले राजद्रोह के मुकदमें में १॥ वर्ष कड़ी कैद की सजा मिली थी, कल दुबह सजा भोग कर छूट गये हैं।

महात्माजी के बायें हाथ से लिखे हिन्द-स्वराज्य का एक पृष्ठ

૨૦૭

પાસે પૈસો છે તેણે તે ફેંકી દેવો એવું સમજાવવાનો
આદિ હેતુ નથી પણ પૈસાને વિષે બેદરકાર રહેવાની
જરૂર છે સત્યાગ્રહનું સેવન કરતા પૈસો ચાલ્યો
જાય તો બેફિકર રહેવું ઘટે છે

સત્યનું સેવન ન કરે તે સત્યનું બળ કેમ
દેખાડી શકે? એટલે સત્યની તો બરોબર જરૂર
પડશેજ. ગમે તેટલું નુકસાન થયું હોય તો પણ
સત્યને નહિ છોડી શકાય. સત્યને કંઈ સંતાડવાનું
નજ હોય એટલે સત્યાગ્રહીને છુપી સેના
નજ હોઈ શકે. આ સંબંધમાં જીવ બચાવવા
જૂઠું બોલવું કે નહિં એવા સવાલ મનમાં ન
લાવવા. જેને જુઠાનો બચાવ કરવો છે તેજ
એવા સવાલ ફોકટ ઉઠાવે છે. જેને સત્યનોજ
રસ્તો લેવો છે તેને એવાં ધર્મ સંકટ આવતાં નથી.
તેવી કફોડી સ્થિતિમાં આવી પડે તોપણ
સત્યવાદી માણસ ઉગરી જાય છે.

અભય વિના તો સત્યાગ્રહીની ગાડી
એક ડગલું પણ નહિ ચાલી શકે અભય સર્વથા
અને સર્વ વસ્તુ બાબત ઘટશે માલનો, ખોટા
માનનો, સગાંસાંઈનો, રાજદરબારનો, જખમનો,
મરણનો અભય હોયત્યારેજ સત્યાગ્રહ પળી
શકાય.

नागरी-लिपि में

२०७

पासे पैसो छे तेणे ते फेंकी देवो एवुं समजाववानो
आदि हेतु नथी पण पैसाने विषे बेदरकार रहेवानी
जरूर छे सत्याग्रहनुं सेवन करता पैसो चाल्यो
जाय तो बेफिकर रहेवुं घटे छे.

सत्यनुं सेवन न करे ते सत्यनुं बळ केम
देखाडी शके? एटले सत्यनी तो बरोबर जरूर
पडशेज. गमे तेटलुं नुकसान थयुं होय तो पण
सत्यने नहिं छोडी शकाय. सत्यने कंई संताडवानुं
नज होय एटले सत्याग्रहीने छुपी सेना
नज होई शके. आ संबंधमां जीव बचाववा
जूठुं बोलवुं के नहिं एवा सवाल मनमां न
लाववा. जेने जुठानो बचाव करवो छे तेज
एवा सवाल फोकट उठावे छे. जेने सत्यनोज
रस्तो लेवो छे तेने एवां धर्म संकट आवतां नथी
तेवी कफोडी स्थितिमां आवी पडे तो पण
सत्यवादी माणस उगरी जाय छे.

अभय विना तो सत्याग्रहीनी गाडी
एक डगलुं पण नहि चाली शके अभय सर्वथा
अने सर्व वस्तु बाबत घटशे माळनो, खोटा
माननो, सगांसांईनो, राजदरबारनो, जखमनो,
मरणनो अभय होय त्यारेज सत्याग्रह पाळी
शकाय.

जयन्ति का उत्सव

हमारे हृदय को आनन्द प्राप्त करने की इच्छा को तृप्त करने के लिए हम किसी न किसी निमित्त की खोज किया करते हैं और ये जयन्तियाँ हमें यह निमित्त देती हैं। इससे जयन्तियाँ मनाना आसान मालूम होता है। पर जब यह विचार करने लगते हैं कि जयन्ति मनाने का अर्थ तो है जिसकी जयन्ति मनाई जाय उस के योग्य होना, तो जयन्ति का उत्साह चला जाता है और उसकी जगह गंभीर मन्थन-चिन्तन की भावना उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती।

बापू की जयन्ति किस प्रकार मनानी चाहिए? शास्त्र का एक वचन है कि देव की पूजा देव बन कर ही करनी चाहिए। इसका अर्थ यही है कि देव जैसे बनना ही देव की सच्ची पूजा मानी जा सकती है। बापू की पूजा करने का मतलब है बापू जैसे हो जाना। बापू के सदृश होने की तीव्र उत्कण्ठा, उनके सिद्धान्त को समझने और उसके अनुसार चलने का प्रयत्न और उनके उदात्त कार्य में एक ओहरा-रूप हो जाने की तैयारी जिस क्षण हम अनुभव करें, समझना चाहिए उसी और उतने ही समय तक बापू की पूजा हमने की।

बापू के उदात्त चारित्र्य के प्रति आदर-भाव रखने वाले संसार में अनेक लोग हैं। जो लोग चारित्र्य को अपेक्षा सत्ता और बाहरी बड़प्पन को अधिक कीमती मानते हैं वे लोग उनके चारित्र्य में आदर-भाव रखते हैं; परन्तु उन्हें वे नेता के तौर पर मानने की इच्छा तभी रखते हैं जब वे उनकी सत्ता और बाहरी बड़प्पन की अभिलाषाओं के अनुकूल हों।

आम तौर पर मनुष्य दूसरे की सहायता लेना नहीं चाहते; और इसलिए जब वे लेने की इच्छा करते हैं तब वे उसके पास से कम से कम कीमत की चीज लेते हैं। जब वह कम हो जाती है तभी वह भारी कीमत की चीज का ग्राहक होता है। यदि मैं सस्ते और महंगे दो प्रकार के चरखे बनाऊं तो अधिक तर अच्छे ग्राहक, हैसियत वाले होने पर भी, सस्ते चरखों को खरीद लेंगे। महंगे चरखों की कद्र करने वाले लोग थोड़े निकलेंगे। और जब मैं सस्ते चरखे बनाना बंद कर दूंगा तभी मेरे बढ़िया माल की बिक्री होगी। दूसरों का उपयोग करने में भी यही नियम चरितार्थ होता है। यदि बापूजी धनवान् होते तो उनके पास आर्थिक सहायता की आशा रखनेवाले जितने लोग आते उतने बुद्धि की गरज रखने वाले नहीं। कितने ही लोग उनसे जरूर यह बात कहते कि आपकी बुद्धि और चारित्र्य को आप अपने पास रखा रहने दीजिए। हमें तो यदि आप अपना धन देंगे तो हम आपको महान् देशभक्त कहेंगे।

धन के न होने से बापू के ऐसे ग्राहक हैं जो देश की स्थिति सुधारने के काम में बापू की बुद्धि का उपयोग कर लेते हैं। इस

की योजना-शक्ति, लोगों पर प्रभाव डालने की शक्ति, उनपर लोगों की श्रद्धा, इन सबका उपयोग जहांतक उनकी योजनायें पूर्ण करने में हो सकता है वहां तक बापू को अपनाने के लिए बहुत से लोग तैयार हैं। हां, इस बात से हमें इनकार नहीं कि उन्हें उनके चारित्र्य के विषय में आदर-भाव हैं; पर इस चारित्र्य की परवा उन्हें कम है। बहुत संभव है कि वह उन्हें बाधक-रूप भी मालूम होता हो। बापू यदि अपने सत्य और अहिंसा का आग्रह छोड़ दें, यदि अस्पृश्यता-निवारण को भूल जायं तो बापू को अपना नायक माननेवालों की संख्या आज से कितनी गुनी अधिक बढ़ जायगी। क्योंकि बापू की बुद्धि की अपेक्षा उनका चारित्र्य अनेक गुना कीमती होने के कारण उनकी बुद्धि के ग्राहकों का अधिक होना स्वाभाविक ही है।

मैं समझता हूं कि यदि बुद्धि को दूर करने का सामर्थ्य बापू में होता तो जिस प्रकार उन्होंने धन का त्याग किया है उसी प्रकार वे बुद्धि का भी कर देते। क्योंकि ऐसा करने से या तो उनके चारित्र्य के गाहक दुनिया में अधिक मिलते अथवा केवल चारित्र्य के ही ग्राहक रहते। पर यह संभव नहीं और इसीलिए बापू की उत्तम वस्तु का ग्राहक केवल वही हो सकता है जो विचार करता है।

दूसरे के धन अथवा बुद्धि से काम लेना मानों देना लेना है। धन यदि दान के तौर पर मिला हो तो भी ऋण का खयाल दिमाग से नहीं जाता। इसी प्रकार मौका पड़ने पर दूसरे को बुद्धि का उपयोग कर लेने से यह नहीं कहा जा सकता कि हमारी अपनी बुद्धि का विकास हो रहा है। दूसरे के धन और बुद्धि का लेना हमारी अपंगता का चिन्ह है।

परन्तु दूसरों के चारित्र्य के ग्राहक होने से, उसका दुरुपयोग न करते हुए, हम स्वयं समृद्ध होते हैं। उसका कुछ घटता नहीं और हमारी संपत्ति बढ़ जाती है। अपने हित के लिए दूसरे के उपयोग करने का यह शुद्ध में शुद्ध तरीका है। जिस प्रकार लोहचुम्बक के ऊपर चाकू की जीभ घिसने से ही लोहचुम्बक की शक्ति कम न होते हुए चाकू की जीभ लोहचुम्बक बन जाती है। उसी प्रकार दूसरे के हृदय के साथ अपना हृदय जोड़ने से कमी न होते हुए अपना हृदय बलवान् होता है।

जिन्हें बापू के निकट सहवास का सौभाग्य प्राप्त हुआ है,—उन्होंने आदि में चाहे किसी उद्देश से उनका सहवास किया हो—उन्हें इतना तो अवश्य मालूम हुआ होगा कि बापू की सर्व संपत्ति—उनका सारा बल—उनकी उदात्त भावनायें हैं—अपने जीवन के लिए स्वीकृत उच्च सिद्धान्त हैं। उनकी भिन्न भिन्न हलचलें तो मानों उनकी भावनाओं का एक मलिन दर्पण-मात्र है। इन हलचलों में प्राप्त सफलता केवल उनका धुंधला प्रतिबिंब है। उन हलचलों तथा उस सफलता के मूल में जो महान् आशय है वही बापू का सच्चा तेज है।

यदि हम पूर्वोक्त बातों को ठीक ठीक समझ उसके और बापू के आशय की दृष्टि से विचार कर सकें तो हमें निश्चय हो जाय कि बापू का प्रतिपादित प्रत्येक सिद्धान्त या विषय जन-कल्याण कर हो है। और यदि हम यह मान लें कि स्वराज्य का सच्चा मार्ग वही है जिससे जन-कल्याण सिद्ध होता हो तो हमें यह मालूम होगा कि प्रत्येक सिद्धान्त में स्वराज्य मौजूद है।

परन्तु केवल शुभ कर्म—शुभ हलचल ही काफी नहीं है। वह तो धर्म कार्य तभी कहा जा सकता है जब उसके मूल में शुभ आशय भी हो। हिन्दू-मुसलमान की एकता बढ़ाना एक शुभ कार्य है; परन्तु यदि वह किसी तीसरी जाति का नाश करने के इरादे से कराई जाती हो तो वह धर्म नहीं कहा जा सकता। जब दो जातियों का वैमनस्य हमें असह्य हो उठे और उन्हें दूर करने के भाव से हम प्रयत्न करें तभी वह धर्म कहा जा सकता है।

इसलिए बापू के पूजकों को यह लाजिम है कि वे केवल इसी बात पर ध्यान न रक्खें कि बापू क्या करने का आदेश देते हैं बल्कि इस बात को समझ कर कि उसमें उनका क्या आशय है, उसे यथाशक्ति अपनाने का प्रयत्न करें।

बापू के सिद्धान्तों अथवा हलचल के अंगों को मैंने जिस हदतक जाना है उसी हदतक मैं उन्हें बता सकता हूं। संभव है कि कोई सिद्धान्त यह लेख लिखते समय याद न आता हो और लिखने से छूट गया हो—

(१) **हिन्दू-मुसलमान-एकता**—अर्थात् मनुष्य-समाज की भिन्न भिन्न जातियों में परस्पर समभाव और उदारता-पूर्ण संबंध।

(२) **अस्पृश्यता-निवारण**—अर्थात् किसी भी मनुष्य को किसी विशेष वर्ग में जन्म पाने के कारण अपवित्र मानने के पाप को दूर करना।

(३) **राष्ट्रीय शिक्षा**—अर्थात् देश के बड़े भाग को उन्नत करने वाली, मातृभाषा को समृद्ध बनाने वाली और राष्ट्र-भाषा का पोषण करने वाली शिक्षा।

(४) **खेती और वस्त्र-कला का पुनरुद्धार।**

(५) **कर्मयोग का प्रचार**—अर्थात् यज्ञ-स्वधर्म-का आचार। शरीर के निर्वाह के लिए अर्थोत्पादक श्रम करने का मत।

(६) **संयम**—अर्थात् सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, और ब्रह्मचर्य का उत्तरोत्तर दृढ़तापूर्वक पालन।

(७) **साधनों की पवित्रता**—अर्थात् केवल शुभ आशय को सिद्ध करने की सामग्री की भी निर्दोषता।

(८) **सत्य अथवा स्वरूप की खोज।**

ये आठ बातें बापू के जीवन में लबालब भरी हुई हैं।

इसी के अंतर्भूत बापू का यन्त्र-विरोध, पश्चिमी सभ्यता का तिरस्कार इत्यादि मत हैं।

जो लोग बापू पर श्रद्धा रखते हैं वे तो केवल एक ही रीति से बापू की जयन्ति मना सकते हैं। वह यह कि उनके किसी भी एक तत्व को अपने हृदय में अंकित कर लेना—उसे अपने जीवन का कार्य बना लेना। उस तत्व को अनुभव और कार्य-रूप में परिणत कर के इस निश्चय के साथ कि यह जगत् के लिए कल्याणदायी है, उसका संदेश जगत् को पहुंचाना। सहजानंद स्वामी अथवा ईसामसीह के प्रचारक शिष्यों की तरह निष्ठा, जोश और उत्साह यदि बापू के किसी भी आशय के संबंध में किसी को हो तो वही बापू की पूजा करने का दावा कर सकता है।

दूसरी एक पूजा-विधि है:—एक जगह एकत्र हो कर उनकी पूजा करना, खूब धूमधाम के साथ उत्सव मनाना, उनके प्रसाद-रूप उनकी किसी वस्तु के प्रति भक्ति-भाव प्रकट करना। यह विधि अत्यन्त गौण है। जिसे हम अपना इष्टदेव कहते हैं—गुरु कहते हैं—नेता कहते हैं—उनके प्रति जो भक्ति-भाव रखता है उसके दिल में अपने सहपुजारियों के प्रति भ्रातृ-भाव अवश्य होना चाहिए। अक्सर यह देखा जाता है कि सगे भाइयों से भी अधिक गाढ़ संबंध गुरु-भाइयों का होता है। और यह अत्यन्त आवश्यक है। जब सह-शिष्यों का परस्पर-संबंध प्रेमहीन हो जाय मानों एक दूसरे से कुछ वास्ता ही न हो—जब सहशिष्यों में ईर्ष्या का प्रवेश हो जाता है तब उस मंडल का नाश निश्चित समझिए। सहशिष्यों को एक-दूसरे की महिमा समझनी चाहिए—एक-दूसरे के प्रति विश्वास और आदर रखना चाहिए। यह गुरु-पूजा का आवश्यक अंग है। बापू के शिष्यों में एक-दूसरे के साथ मिलते

हुए प्रेम का फौवारा उडते हुए दिखाई दें, एक दूसरे पर कुरबान होने की तैयारी दिखाई दे,—गुरु की जयन्ति है, बापू का कोई काम सफल हो, और उसे सफल बनाने के लिए परस्पर खींचातानी हो, इसकी अपेक्षा मैं इस बात को विशेष महत्वपूर्ण मानता हूं कि बापू के प्रामाणिक भक्तों में परस्पर भ्रातृभाव और परस्पर भक्ति-भाव रहे।

तुलसी जाके मुख से भूले ही निकसे राम।
ताके पग की पनहिया मेरे तन को चाम॥

इस प्रकार अपने गुरु की पूजा करनेवाले अन्य की लोग महिमा को हृदय में धारण करें। यही उनकी पूजा का मर्म है। आइए, सब सिक्ख लोग अपने महान् गुरु के आशय के भागीदार बनकर उनकी जयन्ति मनावें।

(नवजीवन) किशोरलाल घ. मश्रुवाला

मो० रौलेन्द और महात्मा गांधी

फ्रान्स के महान् क्रान्तदर्शी डा० मो० रौलेन्द ने महात्माजी पर एक छोटी सी पुस्तक लिखी है—उसका अंगरेजी अनुवाद हमें शुक्रवार को मिला। पुस्तक का नाम 'महात्मा गांधी' है। वह भारतवर्ष को समर्पण की गई है। समर्पण-पत्र शब्दशः यहां दिया जाता है—

"उस प्रभुता और गुलामी के देश को—उस अशाश्वत साम्राज्यों के परन्तु शाश्वत पुण्य विचारों के धाम-रूप देश को—उस काल के सामर्थ्य को न चलने देने वाली जनता को—उसके तारनहार के कारावास के पुण्यदिन पर रचित यह प्रबन्ध समर्पित है। रोमेइन रोलेंद।"

आरंभ के तीस चालीस सफों में महात्माजी का धुंधला रेखा-चित्र और उनके उनके कार्यों का आज तक का इतिहास, देने का प्रयत्न किया है। अन्त में महात्माजी की लोक-शिक्षा के सिद्धान्त का वर्णन किया है। उसकी आलोचना करते हुए मो० रौलेन्द लिखते हैं—

"शिक्षण का यह कार्यक्रम मैंने जरा विस्तार के साथ दिया है। यह गांधीजी की हलचल की उन्नत आध्यात्मिकता दिखलाने के लिए किया है। नवीन भारत तैयार करने के लिए, सभी आवत्व पूर्ण प्रतापी और पवित्र आत्मायें तैयार करनी चाहिए और—प्रचारकों की एक पवित्र सेना—ईसा-मसीह की एक शिष्य-सेना की तरह बनानी चाहिए। गांधी हमारे योरपीय विप्लवकारों की तरह कानून-कायदों की रचना करने वाला नहीं है। वह तो एक नवीन जनता का जनक है।"

१९२१ में महात्माजी की प्राप्त प्रतिष्ठा के संबंध में लेखक लिखता है—

"१९२१ के साल को गांधी के आन्दोलन का मध्याह्न कह सकते हैं। उसका नैतिक बल अपार था। और उसमें भी उसे बिना मांगे, बिना इच्छा किये, असीम राजनैतिक सत्ता मिली। लोग उसे महात्मा समझने लगे। एवं वर्ष के अन्त में देश की महासभा ने उसे संपूर्ण अधिकार दे दिये। अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने को भी सत्ता उसे दे दी। उसके सदृश नायक अभी तक कोई न हुआ था। अब बडे से बडे बलवे की घोषणा कर देने के तमाम अधिकार उसे थे, वह चाहता तो भारी धर्म-युद्ध का आरंभ करने की भी सत्ता उसे थी। उसने दूसरा मार्ग पसंद नहीं किया। यह वह चाहता भी नहीं था। यह नैतिक महत्ता थी या भीरुता? या दोनों? परन्तु सब लोगों के लिए (और खास कर के भिन्न सभ्यता रखनेवालों के लिए) गांधी जैसे पुरुष की अगाध और अतीव कोमल आत्मा की गहराई का पार पाना कठिन है। गांधीजी को जो सत्ता मिली थी वह अपार थी। परन्तु उस सत्ता का उपयोग करने में जो जोखिम उठानी पडती थी वह भी अपार थी। जहां उसका उपदेश हुल्लडबाजों में पहुंचने लगा कि उसे अपनी हलचलों को काबू में रखना अधिक कठिन होने लगा। उसे इस महान् सागर में समता कायम रखना भी मुश्किल जान पडने लगा। आत्मा की नम्रता और अपार दृष्टा-शक्ति के साथ इन हुल्लडबाजों के प्रवाह को किस तरह काबू में लाया जाय? वह नम्र और पवित्र हो कर पल पल प्रभु से प्रार्थना करता और उसकी सहायता चाहता। इस उत्तर में उसे अपने आसपास के हुल्लडबाजों चिल्लाहट भी सुनाई पडती। दूसरों को यदि ऐसी भिन्न आवाज सुनाई जाय तो क्या वे हूनें भी? उनसे कम से कम भय था अभिमान का। **आप उसकी चाहे कितनी पूजा कीजिए उससे उसे अभिमान कभी नहीं होता। पैगंबरों और साधु-सन्तों की तवारीख में पारदर्शक सचाई का अपूर्व नमूना यह गांधी है।** उसे न तो सपने आते हैं, न उसे अगम्य देवताओं के दर्शन होते हैं, न सन्देश मिलते हैं और न वह कोई कठिन कलमा या आयतें सुनाता है। उसके मुख पर विजय की छाया तक नहीं। उसके हृदय को गर्व छू तक नहीं गया। दूसरे मनुष्यों की तरह वह भी एक मनुष्य है और मनुष्य ही रहेगा। नहीं-नहीं-महात्मा शब्द उसे अच्छा ही नहीं लगता। और यह नम्रता ही उसे महात्मा बनाती है।

उसकी नम्रता असीम है, उसके शिष्टाचार और विवेक का पार नहीं। यदि किसी अच्छे काम में भी जबरदस्ती की जाय तो वह सहन नहीं कर सकता। वह जता जता कर कहता है—"सरकार की गुलामी को हटाकर मैं असहयोगियों की गुलामी को दाखिल करना नहीं चाहता।" उसे अपने देश का गर्व नहीं। उसका देशाभिमान भी संकुचित नहीं। वह कहता है—मेरा देशाभिमान जनताभिमान के साथ मिला हुआ है। मैं मनुष्य हूं। और जनता-प्रिय हूं, इसीलिए मैं देशाभिमानी हूं। मैं संकुचितता के पक्ष में नहीं। इंग्लैंड अथवा जर्मनी को नुकसान पहुंचा कर मैं भारत की सेवा करना नहीं चाहता। मेरी योजना में साम्राज्य-वाद के लिए स्थान नहीं। जो देशभक्त जनता-सेवा में ढीला हो उसकी देशभक्ति उतनी ही कम समझना चाहिए।"

महात्माजी के सिद्धान्तों के संबन्ध में कविवर टागोर के विचारों के विषय में इस प्रबन्ध में कितने ही सफे भरे हुए हैं। कविवर के गांधीजी-सम्बन्धी आलोचनात्मक लेखों का एक बडा अंश उद्धृत किया गया है और निष्पक्ष दृष्टि से महात्माजी का भव्य उत्तर भी 'यंग इंडिया' से दिया गया है। कविवर तथा महात्माजी के विषय में लिखते हुए एक मौके पर वे कहते हैं—

"मैंने बातचीत में कविवर से कहा कि गांधी टालस्टाय से बहुत मिलते हैं। टागोर ने कहा—'**पर मुझे टालस्टाय से गांधी अधिक प्रिय है। गांधीजी को मैं टालस्टाय से अधिक महान् मानता हूं।** अब गांधीजी को अधिक जानने पहचानने के बाद मेरा यही मत हुआ है। क्योंकि गांधीजी की तमाम बातें स्वाभाविक, सरल, नम्र और पवित्र हैं—उनकी लडाई पर भी एक प्रकार की शान्ति की झलक छाई रहती है। पर टालस्टाय में तो अभिमान और क्रोध का संगम है। टालस्टाय की तमाम बातें आवेशमय थीं: उनकी अहिंसा भी आवेशमय है।"

इसके बाद "कविवर की चौकी" वाले ऐतिहासिक लेख में वे

हिन्दुस्तान की दरिद्रता से संबंध रखनेवाले लंबे लंबे अंशों को उद्धृत करके रोलैन्द कहते हैं—

"कितने दुःखद और करुण वचन हैं! संसार का दुःख, कला की देवी के सामने खड़ा रह कर आर्त पुकार करता है—'मुझे भूल कर कहां जाओगी?' गांधी की हृदय-भेदक पुकार को कौन नहीं समझ सकता? और उसके दिल को जो सदमा पहुंचा है वह किसे नहीं हो सकता?"

बंबई के दंगों और चौरीचौरा के हिंसाकाण्ड के विषय में प्रो० रोलैन्द इस प्रकार लिखते हैं—

"गांधीजी इतने पवित्र हैं, इतने विकार-रहित हैं कि वे दूसरे के विकारों को नहीं देख सकते। टागोर इस बात को जानते हैं। इन अहिंसात्मक पैगंबरों को दूसरे के हृदय में स्थित हिंसा का खयाल नहीं होता। जो दूसरों का नेतापन करता है उसे केवल अपना ही नहीं बल्कि दूसरों का भी हृदय देखना चाहिए। लोगों से हमेशा होशियार रहना चाहिए। और लोगों को अकेले गांधीजी के उपदेश किस तरह काबू में रख सकते हैं? यदि उपदेशक ईश्वर हो कर बैठे तो शायद लोग उसके कठोर नियमों का पालन करें। गांधीजी की सचाई और विनयशीलता उन्हें ईश्वर नहीं बनने देते। इससे बड़े मानव-सागर के तूफान के लिए एक अति पवित्र आत्मा का एकाकी आवाज ही अंकुश-रूप है। वह आवाज इस तूफान में किस प्रकार सुनाई दे? यह तो एक महा निराशा-मय बोझा है।"

यह बात सच है—पर ऐसी स्थिति अनिवार्य है। दूसरा कोई उपाय नहीं। यदि यह विश्वास रक्खें कि ईश्वर ही सब कुछ कराता है, तो तमाम शंकाओं का समाधान हो सकता है। फिर भी रौलैन्द सा० प्रामाणिकता के साथ कहते हैं कि बंबई के उपद्रव के बाद यहां शाहजादे के स्वागत-बहिष्कार के लिए हर जगह शान्तिपूर्ण हड़तालें हुई थी और कलकत्ते के मुहल्लों में शाहजादा को सुनसान खाली रास्तों में हो कर जाना पड़ा था—इतना तो लोगों ने गांधीजी का उपदेश माना था। इसके बाद अहमदाबाद में महासभा हुई। उसके वर्णन के एकदो वाक्य यहां दे देता हूं—

"इस महासभा का हृदयस्पर्शी गांभीर्य १७८० के फ्रेंच विप्लव के आरंभ में हुई लोकसभा जैसा था। सभापति जेलखाने में थे। तमाम व्याख्यान मुख्तसर हुए थे। महासभा के पहले के तमाम प्रस्ताव कायम रक्खे गये और गांधीजी को सारे भारत के बेड़े की कमान सौंपी गई।"

२२ के आरंभ में बारडोली के सविनय भंग के पहले चौरीचौरा के हत्याकाण्ड तथा उसके बाद के प्रसंगों का वर्णन चमत्कारपूर्ण शैली में किया है—

"इन हत्याकाण्डों में एक भी स्वयंसेवक का हाथ नहीं था। और यदि उनकी तमाम जिम्मेदारी से गांधीजी ने इन्कार किया होता तो कुछ बुरा न होता। पर गांधी तो देश का अन्तःकरण हो गया था। एक भी भारतवासी के अपराध से उसे भारी दुःख होता था और उसने सारे देश का पाप अपने सिर ले लिया। उसकी स्थिति विषम थी। वाइसराय को 'अल्टिमेटम' दे दिया था। उसे लौटाने में हंसी का पात्र हुए बिना कैसे रहा जा सकता था? गर्व-शैतान-उसे एक बात कहता था और आत्मा दूसरी। अन्त को शैतान को दबा कर सच्ची बात के इकबाल करने का निश्चय किया। १६ फरवरी के 'यंग इंडिया' में इस पुरुष के जीवन का एक अतिशय असाधारण लेख प्रकाशित हुआ। उसे एक महान् अपराध का इकबाल कह सकते हैं। शोक और दुःख में भी उसके मुख से पहले ईश्वर के प्रति कृतज्ञता के वचन निकले कि उसने मेरे गर्व को चूर चूर कर दिया।"

इसके बाद इस लेख का कितना ही अंश दे कर अपनी राय इस प्रकार दी है—

"मानव आत्मा के इतिहास में ऐसे उन्नत और पुण्य पृष्ठ शायद ही दिखाई दें। गांधी के इस कृत्य का असर असाधारण हुआ। राजनैतिक दृष्टि से उससे कुछ निराशा फैली—पर गांधी तो बेवकूफ कहलाने के लिए भी तैयार था।"

महात्माजी की गिरफ्तारी पर श्री. रोलैन्द फरमाते हैं—

"सरकार ने गांधीजी को पकड़ने का निश्चय किसलिए किया? दो वर्ष तक खामोश बैठ कर सरकार ने गांधीजी को पकड़ने का यह मौका क्यों पसन्द किया होगा, जब कि महात्माजी खुद ही लोगों के जोश को काबू में करने का प्रयत्न कर रहे थे और जब कि केवल उन्हीं के द्वारा मार-काट रोकी जा सकती थी? क्या सरकार के होश उड़ गये थे? या सरकार को गांधी के बयानक खबर सच साबित करना थे?—"मैं समझता हूं कि सरकार इस देश को खून, लूट-मार, और आग आदि उत्पातों से व्याप्त देखना चाहती है कि जिससे भयंकर दमन करने का मौका उसे मिल जाय।" परन्तु सरकार की स्थिति भी विषम थी। गांधीजी के प्रति सरकार के दिल में आदर था; पर भय भी था। यह नहीं कि सरकार उनके साथ नरमी का व्यवहार न करना चाहती थी; पर जबतक उनका मतालबा वह स्वीकार न करती तबतक वे कहीं उसका पीछा छोड़ते? हिंसा की महात्माजी खूब निंदा करते; परन्तु उनकी अहिंसा हिंसा से भी अधिक उत्पातकारक थी।"

गांधीजी के जेल गये बाद देश में फैली शान्ति के लिए धन्यवाद दे कर, उनके जाने के बाद के समय का संक्षेप में दिग्दर्शन कर के प्रो० रोलैन्द इस प्रकार उपसंहार करते हैं—

"इस आन्दोलन का भविष्य क्या होगा? क्या इंग्लैंड भूतकाल के अपराधों से सबक सीख कर लोगों की जागृति का सदुपयोग करने की अक्लमंदी बतावेगा? लोगों की दृढता तबतक कायम रहेगी? जनता और देशों की याददाश्त बहुत थोड़ी होती है और मुझे संदेह है कि कहाँतक हिन्दुस्तान के लोग बहुत काल तक महात्माजी के उपदेश का पालन करेंगे। परन्तु ये उपदेश तो उस जनता की विशेषता में ही भरे हुए हैं। इसलिए सन्देह का कारण नहीं। मनुष्य अपनी स्वभावज उदात्तता से महान् हो सकता है-फिर उसके उपदेश लोगों की भावनाओं के अनुरूप चाहे हों या न हों। पर वह पुरुष चिरस्थायी प्रभाव तभी डाल सकता है जब वह अपने बंधुओं की भावनाओं की प्रतिध्वनि करता हो—वह काल की आवश्यकता की प्रतिध्वनि करता हो-जगत् की आशा की प्रतिध्वनि करता हो। महात्मा गांधी ऐसे ही पुरुष हैं। उनका अहिंसा का सिद्धान्त भारतवर्ष के हृदय पर दो हजार वर्ष से अंकित है। महावीर, बुद्ध और वैष्णव संप्रदाय ने इस सिद्धान्त का उपदेश करोड़ों आत्माओं को दिया था। गांधीजी ने तो सिर्फ इस सिद्धान्त को पुण्य बनाने के लिए अपने वीरोचित खून को पसीने में बहा दिया है। भूत-काल की अगाध गहराई में भयंकर प्रमाद में पड़ी मूर्तियों को उसने जाग्रत किया है। उसका शब्द सुनकर वे जाग्रत हुई हैं, क्योंकि वे उसमें अपना परिचय पाती हैं। वह एक उपदेश से भी अधिक है, वह स्वयं उदाहरण-रूप है। देश की श्रेष्ठ आत्माओं का वह साक्षात् अवतार है।" म० दे०

जड मकडो

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रतिका	,, -)॥
विदर्भ के लिए	,, ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक ९

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, आश्विन सुदी ५, संवत् १९८०
रविवार १४, अक्तूबर, १९२३ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपर, सरकीगरा की वाडी

खादी ! खादी !! खादी !!!

बंगाल के पूजा-उत्सव के लिए आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय का सन्देश यह है—

"मिल का कपडा सस्ता है और खादी महंगी है; खद्दर मोटा और खुरदुरा कपडा है; खादी जल्दी सूखती नहीं; इसलिए बंगाली लोग खादी पहनने में अधिक उत्सुकता नहीं दिखाते।

लेकिन हमारे तमाम देश-भाइयों को इन तमाम असुविधाओं का सामना करते हुए भी खादी को अपनाना होगा। खादी पहनने में दिक्कतें और खर्च दोनों ज्यादह हैं। पर हमें याद रखना चाहिए कि मांगल्य का मार्ग हमेशा ही कांटों और कठिनाइयों से घिरा रहता है। मुट्ठीभर कायरों और देशद्रोहियों ने इस देश में जो बुराई और विपत्ति उपस्थित की है उसके लिए कई गुरुतें [illegible] और तप-कष्टसहन करना होगा। खादी के लि[illegible] का सामर्थ्य नहीं है।

कपडे के क्या देशी और क्या विदेशी व्यापारियों ने देश के धन-धान्य और समृद्धि को बाहर भेजकर उसे ऊजड कर दिया है। इसलिए, स्वार्थ की दृष्टि से भी, हमें भद्दी, मोटी, खुरदरी, महँगी खादी को अपनाना होगा। तभी हम देश का सत्वर मंगल-साधन कर सकेंगे।

यदि हमारे पास काफी रुपया न हो तो हमारी मनुष्यता चाहती है कि हम कम कपडा इस्तैमाल करें—तीन के बजाय दो ही कपडे से गुजर कर लें। हर हालत में हमारा यही संकल्प होना चाहिए—खादी, खादी, खादी-खादी के सिवा कुछ नहीं।"

प्रफुल्लचन्द्र राय

कुदरत का काम

महात्मा गांधी ने भारतवर्ष को, और उसके द्वारा सारे विश्व को, अहिंसा का सन्देश दे कर प्रकृति के और मनुष्य-जाति के विकास के सनातन नियम का पालन-मात्र किया है। हीन, क्षुद्र और बर्बर भावों, विचारों और कर्मों का त्याग करती हुई मनुष्य-जाति उच्च, उदार और सभ्य भावों और कर्मों की ओर अग्रसर हो रही है। सृष्टि के इतिहास का एक एक पन्ना, मनुष्य-समाज के स्थित्यंतर का एक एक दृश्य, इसी बात को पुष्ट करता है। आदि काल में मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन में निःसन्देह हमें आज की अपेक्षा कितने ही उच्च गुणों और उन्नत भावनाओं का परिचय मिलता है; परन्तु आज की तरह सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में उनका प्रभाव बहुत कम पाया जाता है। तब एक व्यक्ति में केन्द्रीभूत हो जाने के कारण, वे प्रधान और स्पष्ट रूप से हमारी नजर में आ जाते हैं और आज समाज और राष्ट्र में बिखर जाने के कारण वे सहसा दृष्टि नहीं पड़ते। सृष्टि के आदि में हिंसा-भाव की जितनी और जिस रूप में प्रधानता थी उतनी और उस रूप में आज नहीं है और नहीं रहेगा। प्राचीन समय में सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में हिंसा अनेक बातों में कर्तव्य-रूप, धर्म-रूप मानी जाती थी। अब वह अहिंसा के मुकाबले में असभ्य मानी जाने लगी है। आज कोई भी हिंसात्मक युद्धवादी यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि हिंसात्मक युद्ध से अहिंसात्मक युद्ध कहीं श्रेष्ठतर और सभ्यतर है। यह दूसरी बात है कि वे आज अपने तथा अपने समाज के लिए उसे दुःसाध्य मानते हों।

महात्माजी ने भारत को ऐसे समय में अहिंसा का अमोघ अस्त्र दिया जब कि संसार के सर्वश्रेष्ठ दिमाग अवश्यता के युद्ध-साधन और जीवन-सामग्री से ऊब कर सभ्यता के उन्नत जीवन की खोज में थे, जब कि मुट्ठी भर सेनानायकों और चक्रवर्ती बनने की आसुरी महत्वाकांक्षा रखनेवाले सम्राटों के हिंसा-विधान से संसार की प्रजा त्राहि त्राहि कर रही थी, और जब कि भारत के तीस करोड़ बच्चे निःशस्त्र, निर्वीर्य, भयभीत, सदियों के गुलाम और नाम-मात्र के मनुष्य रह गये थे। संसार अपने राजनैतिक महत्वाकांक्षी नेताओं के हिंसा-विधान से और भारत अंगरेजी साम्राज्य के हिंसा-काण्ड से त्रस्त और आर्त हो गया था। महात्माजी के अहिंसा-व्रत ने भारत को अभय प्रदान किया, उसे अपने जीवन में कुछ सार मालूम होने लगा, वह अपनी नजदीकी आजादी के सुख-स्वप्न देखने लगा और संसार को शान्ति और सुरक्षितता की उंगली उठती हुई, प्रकृति का वरद हस्त अभयदान करता हुआ दिखाई दिया। महात्मा गांधी का यह मन्त्र प्रकृति का सन्देश था, ईश्वर का कार्य था, भारत के उत्थान और मनुष्य-समाज के विकास में महात्माजी की अपूर्व सेवा थी।

हिंसा का अर्थ है भय और अहिंसा का अर्थ है अभय। संसार के आदि से, मनुष्य-प्राणी की उत्पत्ति से ले कर आजतक एक ऐसा मनुष्य-दल चला आ रहा है जो अपनी अभीष्ट-सिद्धि अथवा कर्तव्य-पालन के लिए भय-प्रयोग को एक कारगर साधन मानता है। वह समझता है कि "भय बिनु प्रीत न होत।" जो दूसरे पर भय-प्रयोग करता है वही अपने पर भय-प्रयोग होने से भयभीत हो जाता है। क्योंकि वह तो भय का लोहा मानता है। पर जो अभय का प्रयोग करता है उस पर भय का कुछ भी असर नहीं हो सकता। हिंसावादी भय-प्रयोग करके प्रतिपक्षी को दबाना चाहता है और अहिंसावादी अभय-दान करके उसे अपना हितकर्ता बनाता है। भयभीत भारत को अहिंसा का उपदेश देकर महात्माजी ने अभय का मार्ग दिखाया। उसे कहा—

"न किसीके भय-प्रयोग से डरो; न किसीपर भय-प्रयोग करो।" यही अहिंसा का तत्व है। भय और अहिंसा एक साथ नहीं रह सकते। अहिंसा को कायरता समझना ईश्वर को शैतान समझना है। अहिंसा ईश्वरी तत्व है, सनातन तत्व है, मानवता का मूलभूत तत्व है, मनुष्यता का जीवट है, आर्यता का लक्षण है, और उन्नति का मूलमन्त्र है। उसका प्रकाश मनुष्य-जाति की ज्ञानवृद्धि और उन्नति के साथ साथ स्वयंसिद्ध है। उसकी गति किसीके रोके नहीं रुक सकती। मानो प्रकृति ने स्वयं अहिंसा-तत्व को ही महात्मा गांधी के रूप में भारत का मुख उज्ज्वल करने और उसके द्वारा संसार को सन्मार्ग दिखाने के लिए यहां भेजा है।

अहिंसा के इस निरूपण की आज इसलिए आवश्यकता पड़ी कि एक तो महात्माजी के जेल जाने के बाद देश में अहिंसा की बुरी तरह खींचातानी होने लगी है। अहिंसात्मक संग्राम के असफल होने की पुकार मचाई जा रही है और दूसरे जर्मनी के रूहर प्रान्त में असहयोग बन्द कर देने पर अहिंसा की हार की दुंदुभी बजाई जाने लगी है। पाठक इस बात को न भूले होंगे कि यूरोपीय महायुद्ध के बाद, वार्सेल्स की सुलह के अनुसार, फ्रान्स का कुछ मतालबा जर्मनी पर वाजिब था। जर्मनी के उसे अदा करने में असमर्थता दिखाने पर फ्रान्स ने रूहर प्रान्त पर अपना कब्जा कर लिया। इसपर उस प्रान्त के निवासियों ने अहिंसात्मक प्रतिकार शुरू किया था। कई महीनों के बाद अब खबर आई है कि जर्मनी ने अपना प्रतिकार बन्द कर दिया है। इसके कारणों का ब्यौरा अभी ठीक ठीक नहीं आया है। इसलिए नहीं कह सकते कि जर्मनी ने हार कर निष्क्रिय प्रतिकार छोड़ दिया या किसी तरह की सुलह की बातचीत या समझौते का यह परिणाम है। पर यदि मान भी लें कि भारत और जर्मनी दोनों जगह अहिंसात्मक प्रयोग असफल हो गये तो इससे अहिंसा की महत्ता, उपयोगिता, उपादेयता किसी तरह कम नहीं हो सकता। इससे तो यह नतीजा निकलता है और इस बात की निहायत जरूरत मालूम होती है कि जो लोग अहिंसा की श्रेष्ठता, सभ्यता, और उपयोगिता के कायल न हों, या जो कायल तो हों पर आज उसे नाकाबिल अमल मानते हों—मनुष्य-समाज को अभी उसके लायक न पाते हों—वे शौक से अहिंसा का रास्ता छोड़ कर अपने अभीष्ट पथ में गमन करें—अहिंसा का चोगा पहन कर, अहिंसा के नाम पर, अपनी कमजोरी की दुहाई दे कर, उन लोगों की कठिनाइयाँ न बढ़ावें जो अहिंसा के बिना भारत का तरणोपाय नहीं देखते, जो अहिंसा में ही मनुष्य-समाज की और सारे संसार की पूर्ण स्वतन्त्रता के दर्शन करते हैं। पर यदि वे अपनी हरकतों से बाज न आवें तो अहिंसा पर श्रद्धा रखनेवाले लोगों का कर्तव्य है कि बार बार असफलता और निराशा के चिह्न दिखाई देते हुए भी अभय-व्रत का पालन करते हुए—अर्थात् केवल अपनी तपस्या—कष्टसहन के बल पर अपनी श्रद्धा की सत्यता का परिचय उन्हें करावें। उन्हें याद रखना चाहिए कि अपने शरीर के घावों, खून की बूंदों, और हड्डियों के टुकड़ों के द्वारा उन्हें प्रकृति की पुस्तक में भारत की अपूर्व स्वतन्त्रता और संसार की मुक्ति का दिव्य और भव्य अध्याय लिखना है—अपने उग्र तप के द्वारा प्रकृति के एक महान् उद्देश की पूर्ति करना है।

हरिभाऊ उपाध्याय

गोरे का इकबाल

श्री एंण्ड्यूज साहब गोरे हैं। परन्तु उनका इकबाल गोरे का इकबाल नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यदि उनका इकबाल गोरों का इकबाल हो तो दुनिया में कालों और गोरों का झगड़ा बाकी ही न रहे। गोरों को एण्ड्रयूज साहब जैसे अपवाद की परवा नहीं। वे तो एक ही नीति जानते हैं—कालों पर हुकूमत करना, कालों को लूटना, उनको चूसना। इस नीति के प्रमाण समय समय पर बराबर मिलते आते हैं। जनरल स्मट्स की बातों को सब लोग जानते हैं। श्री. एण्ड्रयूज ने हाल में एक गोरे की पुस्तक से कुछ वचन उद्धृत कर के गोरों का इकबाल दुनिया के सामने पेश किया है। यह गोरा है मेजर ग्रोगन—केनिया में उसके बराबर बड़ा-चढ़ा सिर्फ एक ही गोरा है। उसके पास तीन लाख एकड़ जमीन है। इससे यह अन्दाज हो सकता है कि उसके पास कितने लाख हबशी होंगे। उसने आफ्रिका के दक्षिणी से ले कर उत्तरी सिरे तक यात्रा की है और एक पुस्तक में उसका वर्णन किया है। उसमें अपने अवलोकन के परिणाम तथा गोरों के कल्याण के उपाय सुझाये हैं। इस पुस्तक के कुछ वचन ले कर श्री एंड्रयूज ने गोरों की पोल खोली है। एक स्थान पर मेजर ग्रोगन कहते हैं—

"इस पूर्व आफ्रिका के लोग अत्यन्त नीतिमान् हैं। उनकी नीति के नियम ऐसे हैं कि जिनका पालन कर के वे सुख में दिन बिताते हैं। हम उन्हें बेवकूफ मानते हैं; पर वे हमें पागल समझते हैं। पर इसमें क्या कोई शक है कि दो में से उन्हींका खयाल ज्यादह सच है? वे सुखी हैं, उन्हें किसी बात की कमी नहीं। उनमें कोई एक को मार कर दूसरा अपनी तोंद नहीं मुटाता। मेरी समझ में नहीं आता कि हमारे जैसे लोभी भेड़िये किसलिए उनके अन्दर आ कर बसे हैं? मेरे हृदय में उनके प्रति प्रेम उमड़ पड़ता है और आंखों से आंसू गिरने लगते हैं। उन्हें सुधारने का फजूल प्रयत्न हमें क्यों करना चाहिए।"

ये वचन तो तटस्थ भाव से लिखे गये हैं; पर आगे चल कर वही लेखक लिखते हैं—

"परन्तु जो लोग उनसे काम लेना चाहते हैं वे मेरी आंखों से नहीं देख सकते। उनकी सहायता के बिना हम अपंग हैं। हमें उन्हें अपने काम के लायक बनाने के लिए अपने ढांचे में ढालना चाहिए। पर ऐसा करने से वे इनकार करते हैं। लेकिन उनके बिना हमारी गुजर नहीं। या तो उनके देश में व्यापार करना छोड़ दें या उनके पास काम करावें। मैं जगत् को अच्छी तरह जानता हूं—और मुझे रत्ती भर शक नहीं है कि पश्चिमी सभ्यता से आफ्रिकन लोगों का हित न होगा। हमारी सभ्यता उनके समाज का, शरीर का और नीति का सत्यानाश कर देगी। हमने उनकी जमीन तो चुरा ही ली है; अब उनका शरीर भी हम चूसना होगा। देशी लोगों को महज अलग मुहल्ले कर देने से काम नहीं चलेगा। गोरों को उन्हें बिलकुल हटाना ही पड़ेगा। न्यूजीलैंड में ऐसा हुआ है। अमेरिका में यही दशा है, और आफ्रिका में भी यही हुए बिना नहीं रह सकता।"

इस प्रकार मेजर ग्रोगन के शरीर में दो ग्रोगन की आत्मायें बोल रही हैं। एक खुदाई ग्रोगन और दूसरी शैतानी ग्रोगन। श्री एण्ड्रयूज को बड़ा आश्चर्य होता है कि एक सभ्य, शिक्षित, अनुभवी आदमी ऐसी बात ठंडे दिल से किस प्रकार लिख सकता है। पर सच बात यह है कि उसने खुदाई नजर से परिस्थिति का निरीक्षण कर के शैतानी तरीके से उसका परिणाम निकालने का विचार किया है। मेजर ग्रोगन में तो खुदाई अंश भी है; पर जिन अधिकांश गोरों का यह इकबाल है उनका खुदाई अंश मर चुका है और केवल शैतानी हिस्सा ही बाकी रहा है। दक्षिण आफ्रिका के गोरों की शैतानियत उनसे कहलवा रही है—हिन्दुस्तानियों की जड़ काट कर फेंक दो; पूर्व आफ्रिका में ग्रोगन के भाई-बंद इसीकी प्रतिध्वनि कर रहे हैं।

गोरों के मुकाबले में काले लोग गोरों जैसे बन कर नहीं जीत सकते—उन्हें पशुता की चढ़ा-ऊपरी में नहीं हरा सकते। उनके लिए तो यही एक उपाय है जो हिन्दुस्तान को दिखाया गया है। यदि हम उसीपर दृढ़ता से अटल बने रहे तो हम केवल आफ्रिका ही के नहीं बल्कि सारी दुनिया के काले लोगों को उस मार्ग के काम दिखा सकेंगे और उसपर उन्हें आरूढ़ करा सकेंगे।'

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

सत्याग्रह-समिति

डाक्टर किचलू ने सत्याग्रह-समिति की पहली बैठक जालन्धर में आगामी १८ अक्तूबर को करना निश्चित किया है। उसी समय वहां सेंट्रल सिक्ख लीग की भी बैठक होनेवाली है। डाक्टर किचलू सविनय भंग के मसले पर लगातार विज्ञप्तियां प्रकाशित कर रहे हैं। इस विषय पर उनकी कितनी ही वक्तृतायें भी हुई हैं। उनके सामने अपना रास्ता साफ है। ऐसा ही होना भी चाहिए। पर हम एक बात उन्हें सुझा देना चाहते हैं। उन्हें चाहिए कि वे अंगरेजी माल के बहिष्कार के सवाल को सविनय भंग के साथ न मिलावें। इस काम के लिए एक अलहदा समिति बनी ही हुई है। डा० किचलू की कार्य-प्रणाली में हम सावधानी और कामकाजीपन दिखाई देता है। यह और भी अच्छा है। पर इस सावधानी का अन्त कहीं टालमटोल में न हो! उन्हें अनुभव और शीघ्रता का वायु-मण्डल तैयार करना चाहिए। हमें आशा है कि सिक्ख-लीग और सत्याग्रह-समिति की बैठक के अवसर पर मौ० महम्मदअली भी जालन्धर में रहेंगे। हम इस बात को जानते हैं कि मौलाना महम्मदअली के बल पर ही सब बातों का दारमदार रहेगा। समिति के सामने दो बातें प्रधान रहेंगी। दोनों ही जरूरी और मार्के की हैं—नाभा और सार्वत्रिक सविनय भंग। पर सार्वत्रिक भंग को अभी रोक ही रखना पड़ेगा। नाभा के मामले में दो बातों पर अच्छी तरह मशवरा होना चाहिए। एक तो यह कि क्या सिक्ख लोग खुद ही अन्त तक लड़कर विजय प्राप्त करने को तैयार हैं? इसका उत्तर सिक्ख लीग की तरफ से मिलना चाहिए। यदि वह 'हां' कहे तो हमें सत्याग्रह-समिति को यह सलाह देनी चाहिए कि सारा मामला गु० प्र० समिति के सिपुर्द कर दिया जाय। हां, महासभा का एक जिम्मेदार आदमी उनके साथ कर दिया जाय जो उन्हें सलाह मशवरा देता रहे और वहां के हालात से वाकिफ रह कर सूचनायें देता रहे। बस। प्रबन्धक समिति को भी हम यह कह देना चाहते हैं कि उसे सरकार की ताकत को कम न आंकना चाहिए और न अपनी ताकत को ज्यादह। इससे पहले वे बड़े बड़े काम कर चुके हैं; पर अब जो काम उन्होंने हाथ में लिया है वह बहुत ही बड़ा है और सरकार बिना घमासान लड़ाई लड़े सहज में हार मान लेनेवाली नहीं है। पर यदि लीग सत्याग्रह-समिति की सहायता चाहती हो तो उसे अपना इरादा साफ तौर पर जाहिर करना चाहिए। तब सत्याग्रह-समिति इस मसले पर सारे देश में भ्रमण कर के स्वयंसेवकों को भरती करे, महासभा-समितियों की ताकत बढ़ावे और लोकमत को बनावे। हम नहीं समझते कि नाभा कांड दिसम्बर के पहले खतम हो जायगा। न उस समय तक प्रबंधक समिति की ही ताकत चुक सकती है। फिर कोकोनाडा की महा-सभा, जनता की स्वीकृति के बल से सज्जित हो कर नाभा के प्रबंधक-समिति काम का भार अपने सिर पर ले लेगी। (यं० इं०)

हिन्दी-नवजीवन

जेल-दिन ५८४, रविवार, आश्विन सुदी ५, सं. १९८०

जड पकडो

एक अग्रगण्य अंगरेज विचारक ने कहा है कि "यदि हिन्दुस्तान-सरकार हिन्दुओं को गोमांस और मुसलमान को सूअर का मांस खिलाने की कोशिश करे तो वह सफल नहीं हो सकती। क्योंकि इससे उनके दिल को कडी चोट पहुंचती है। ऐसी निकम्मी बातों पर लोगों का जितना ध्यान रहता है उतना अपने कल्याण पर नहीं। यदि ऐसा समय आ जाय कि हरएक आदमी अपने हित का ख्याल करने लग जाय तो उनके मत के खिलाफ काम करने की सरकार की शक्ति कम हो जाय"। यह लेखक गोमांस अथवा सूअर का गोश्त न खाने को एक प्रकार का अन्ध-विश्वास मानता है। उसकी इस बात को यदि छोड दें तो शेष बातें उसने बिल्कुल सच कही हैं। गो-मांस और सूअर के गोश्त की बात जाने दीजिए; पर इससे नीच दरजे की भी कितनी ही बातें हमें मिल सकती हैं जिनके लिए हिन्दू-मुसलमानों के भाव तीव्र होते हैं, वे समय-असमय आपस में लड-मरते हैं, रोमांचकारी खून-खच्चर हो जाता है। ऐसे ही तम्र और उग्र भाव यदि दोनों जातियों के मन में अपनी गुलामी के प्रति हों, अपनी रोज ब-रोज होनवाली बे-इज्जती और तेजोनाश के प्रति हों तो न महात्माजी को जेल जाना पडे और न असहयोग की लडाई की उम्र इतनी लंबी होने पावे। पर लोग इस बात को नहीं जानते कि कौन चीज कम महत्व रखती है और कौन अधिक? महात्माजी ने लोगों को अनेक बार अनेक तरह से यह बता दिया है कि उनका परम कल्याण किस बात में है? पर लोगों के हृदय पर यह बात अंकित हुई नहीं मालूम होती। उन्होंने लोगों को उनके कल्याण का राज-मार्ग दिखाया भी था। पर लोग उसे भूलने लगे। नेता लोग भी उनमें शामिल हो गये। परिणाम ऐसा दिखाई दे रहा है, जो हमारे कान खडे कर देता है। एक ओर हम हिन्दू-मुसल्मान की एकता के लिए दोनों जातियों में मिठास पैदा करने का प्रस्ताव करते हैं और दूसरी ओर अग्रगण्य नेता कहते हैं— "अहिंसा महासभा का सिद्धान्त न कभी रहा, न अब है।" इस वचनों का असर साधारण लोगों पर क्या होता है, इसका अन्दाज करना कठिन नहीं है।

महात्माजी ने स्वावलंबन का रास्ता दिखाया। नेता लोग इससे आजिज आ गये। उन्होंने धारासभाओं के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने का लक्ष लोगों के सामने रक्खा। अर्थात् अभीतक एक ही बाजू से गिरे थे, अब दूसरी बाजू से भी गिर पडे। लोगों के दिल में भी स्वावलंबन के मार्ग से विश्वास कम होने लगा और वे चक्कर में पड गये। पंजाब जैसे खादी के धाम खादीहीन हो गये, संयुक्त प्रान्त से खादी जाती रही। लोग पूछने लगे "खादी से किस प्रकार स्वराज्य मिलेगा"? नौजवान लोग नेताओं से आगे आ गये। इस दशा में कितने ही लोग यदि अहिंसा को ताक पर रख कर हिंसा का विचार करने लगे हों तो क्या ताज्जुब है?

श्री शेषगिरी ऐयर ने एक बार कहा था कि सरकार को नरम दलवालों का तो भय था ही नहीं, अब महासभा का भी भय नहीं रहा। इतना ही नहीं, वरन् ऐसी घटनायें होने लगी हैं जो इधर पांच वर्षों में नहीं होने पाई थीं। रौलेट एक्ट के जमाने से जो आन्दोलन शुरू हुआ था उसमें हजारों लोग पकडे गये और जेल में पहुंचाये गये। परन्तु सरकार को सौ वर्ष की पुरानी मोर्चालगी और टूटी तलवार उठाने की हिम्मत नहीं हुई थी; पर अब सरकार ने न केवल उस जीर्ण शीर्ण शस्त्र को उठाने की हिम्मत की; बल्कि महासभा के कार्यकर्त्ताओं पर उसके प्रहार करने का भी साहस किया है। जिन दस लोगों को इस कानून के अनुसार पकडा गया है उनमें बाबू भूपति मुजुमदार बंगाल प्रान्तिक समिति के मन्त्री हैं और वे तथा बाबू उपेन्द्रनाथ बनरजी दोनों देशबन्धु के श्रद्धास्पद साथी हैं। ऐसों के ऊपर षडयन्त्र करने का इल्जाम लगना असहयोग के लिए एक असह्य स्थिति है, सरकार की धृष्टता की पराकाष्ठा है—नहीं, यह हमारे अधःपात की चरम सीमा है।

"इस प्रकार जहां देखिए तहां आस्मान फट पडा है। कहां कहां टेका दिया जाय?" यह एक ख्याल है। इसका परिणाम यह होगा कि हम फिसलते फिसलते सरकार में मिल जायंगे। दूसरा ख्याल यह है—"यह मानकर कि कुछ बिगडा नहीं है आगे कदम बढाते चले जायें।" यह विनाशकारी है। "आस्मान फट तो बेशक पडा है। अब जितना टेका लगाया जाय उतना लगा कर बैठ रहें?" यह तीसरा खयाल है। इसके मूल में विवेक है। इसमें फिर से खडे होने की आशा है। किसी एक कार्यक्षेत्र को ले कर बैठ जाइए। उसमें सिद्धान्तों की जड को मजबूत बनाइए। लोगों के अन्दर रह कर, लोगों के बन कर, अपने कामों के जर्ये—अपने आचरण के द्वारा उन्हें कल्याण का रास्ता दिखाइए। यह सलाह इस तीसरे प्रकार की मनोदशा से उत्पन्न हुई है। अब हम इस बात पर विचार करें कि यह एक ही सलाह आज क्यों कर पथ्यकर है।

सब लोग विदेशी कपडे के बहिष्कार की बात करते हैं। बहिष्कार यदि पूरा हो सके तो सबकी हालत अच्छी हो जाय, यह बात नरमदल के लोग भी कहते हैं, स्वराज्यवादी भी कहते हैं, तटस्थ लोग भी कहते हैं, और असहयोगी भी कहते हैं। यह बहिष्कार यदि केवल प्रचार और उपदेश से हो सकता होता तो आजतक हो गया होता; क्योंकि उपदेश तो आजतक व्याख्यानों और विज्ञप्तियों के द्वारा बहुत दिया जा चुका है। आज हम देहात में या शहरों में जाकर लोगों को विदेशी कपडे के बहिष्कार का उपदेश दे कर भी सन्तुष्ट नहीं हो सकते। उन्हें विदेशी कपडे के बदले में दूसरा कपडा दरकार है। जवाब हो सकता है कि मिल का देंगे। पर यह बात मिथ्या है। मिल के कपडे से भी पूरा नहीं पड सकता। मिल का सारा कपडा देशी सूत का नहीं होता। मिल के कपडे की सिफारिश होने पर विदेश से वैसे कपडे का आना कोई नहीं रोक सकता। ब्रिटिश सरकार को अपनी मिलों के कपडे भेजने की अनेक तरकीबें याद हैं। इसलिए मिल का कपडा एक धोखे की टट्टी है। कोई शायद यह जवाब दे कि खादी देंगे। हां, यह कहना तो सहल है; पर सचमुच खादी पहुंचाना कठिन है। यदि सारा गुजरात खादी का निश्चय कर ले तो गुजरात का बदन ढांकने लायक खादी हमारे पास नहीं है। हां, यह सच है कि हम बाहर से मंगा सकते हैं। पर यदि हमेशा दूसरे प्रान्तों पर ही दारमदार रखते रहेंगे तो जो हालत इंग्लैंड के संबंध में हिन्दुस्तान की हुई है वही और प्रान्तों के संबंध में गुजरात की होगी। इसलिए अब सिर्फ एक ही उपाय रहा है। वह यह कि खुद ही अपने लिए सूत कातना और कपडा बुनवा लेना। यह उपाय इतना आसान नहीं है कि लोग आसानी से महज उपदेश से करने लगें। इसीलिए महात्माजी चाहते हैं कि लोग एक एक

क्षेत्र में जा बैठें और उसे तैयार करें। महात्माजी का यही मन्त्र ले कर श्री शंकरलाल बैंकर आये। वे बाहर की हालत देखकर हैरान हो गये और मौनव्रत लेकर बारडोली में जा बैठे। रोज चार घण्टे सूत कातने लगे। आज कल वे यहां आये हैं। यहां भी चार घण्टा चरखा काते बिना वे नहीं रहते। उनके साथ दूसरे लोग भी चरखे को लेकर बैठ गये। उनके परिश्रम के फल-स्वरूप उन गांवों के लोग भी, जहां वे जा बैठे हैं, उनके रंग में रंग गये हैं।

बारडोली का अर्थ केवल सूरत जिले का बारडोली ताल्लुका नहीं। बारडोली तो एक प्रतीक-मात्र है। श्री दास्ताने और देव पश्चिम खानदेश में ऐसा क्षेत्र बनाने की तैयारी कर रहे हैं। देहली से ही वे ऐसा निश्चय करके गये हैं। बाबू राजेन्द्रप्रसाद भी इसी निश्चय पर आये हैं। यदि हम एक क्षेत्र तैयार करेंगे तो उसके आसपास के क्षेत्र अपने आप तैयार हो जायंगे। और ऐसी तैयारी के बाद लोगों का आत्म-विश्वास बढेगा, अहिंसा के प्रति शिथिल हुआ विश्वास दृढ होगा, असहयोग पर श्रद्धा बढेगी। जड को पानी पिलाने से मुरझाया पेड बढेगा और फूले-फलेगा—"जो तू सींचे मूल को फूले फले अघाय।"

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

स्वराज्य-दल

एक वचन है कि "जो लोग कांच के मकानों में रहते हैं उन्हें चाहिए कि वे पत्थर न फेंकें"। हम इसका आदर करते हैं। हमें इस बात पर फटकार बताई गई है कि हममें 'मर्यादा-पालन' की कमी है। पर वह 'मर्यादा-पालन की कमी' और कोई बात नहीं सिर्फ मानसिक प्रतिक्रिया का उद्रेक था, जो बरबस प्रकट होता था और अब तो वह शान्त भी हो गया है। पर चूंकि हमारे सिर समझौते की आंशिक नैतिक जिम्मेदारी है, हमें यह अधिकार प्राप्त है कि हम नम्रतापूर्वक यह बात जानना चाहें कि अब स्वराज-दल के लोग अपनी इस विजय का उपयोग देश-सेवा में किस प्रकार करना चाहते हैं। हमें हिदायत दी गई है कि "मुंह न खोलो-बहिष्कार का प्रचार मत करो।" फर्ज कीजिए हमने इसे मान लिया। अब देश को यह जानने का हक जरूर हासिल है कि स्वराज्य-दल के लोग आखिर करना क्या चाहते हैं? यदि कोई स्वराज्य-दल के महीनों पहले प्रकाशित कार्यक्रम की ओर अंगुली दिखावेगा तो उससे देश की दिलजमई न होगी। राजनैतिक कार्यक्रमों की आखिरी हालत और बात पर हमें सन्तोष नहीं होता। पण्डित मोतीलालजी नेहरू ने सविनय-भंग जाँच-समिति में धारासभाओं के कार्यक्रम में जो संभावनायें बताई हैं वे अब पुरानी तवारीखी बातें हो गईं और बंबई और प्रयाग के घोषणापत्रों में मध्य-युग की बू आती है। पर अब असली सवाल यह है कि देहली महासभा की बैठक के बाद स्वराज्य-दल का कार्यक्रम क्या है? क्या वह कौन्सिलों और असेंबली दोनों में अपने भाग्य को आज माना चाहता है? हमने सुना है कि श्री विट्ठलभाई पटेल सिर्फ 'असेम्बली' के लिए कोशिश करना बेहतर समझते हैं। वे 'कौन्सिलों' को अधिक महत्व की चीज नहीं समझते। वे उनकी ओर ध्यान ही नहीं देना चाहते। यह एक भारी सवाल है; पर स्वराज्य-दल ने इसपर अभीतक एक शब्द भी नहीं कहा है। क्या यह बात तो नहीं है कि धारासभा में जानेवाले भिन्न भिन्न मत के लोग तभीतक एक विचारसूत्र में बंधे हुए थे जबतक उनकी अल्प-संख्या महासभा में थी? पर अब, जबकि उनकी अल्प-संख्या नहीं रह गई है, वे उस चिन्ता और कर्तव्य-मूढता के सागर में गोते खा रहे हैं जिसमें तमाम विजयी मित्रों को लूट की चीजों पर आपस में लडते हुए डूबना पडता है? (य. इं.)

टिप्पणियां

श्री पीयर्सन का स्वर्गवास

पीयर्सन साहब की असमय मृत्यु से भारत की जो हानि हुई है उसकी पूर्ति होना कठिन है। उनकी मृत्यु की घटना बडी शोकमयी है। इटली में वे रेल से गिर पडे और पंचत्व को प्राप्त हो गये। उन्होंने भारतवर्ष को अपना घर बना लिया था। और बहुत समय पहले उन्होंने अपनी विद्या-बुद्धि और शक्ति का उपयोग इस भारत-भूमि की सेवा में करने का संकल्प कर लिया था। लडाई के जमाने में, जब कि वे नजरबन्द थे, अपना सारा समय इंग्लैंड की शिक्षा-संस्थाओं के अध्ययन में उन्होंने लगाया और सोभी इसी इरादे से कि अपने अध्ययन और अनुभव का लाभ शान्तिनिकेतन को पहुंचावें। जब वे श्री एंड्रूयूज के साथ दक्षिण आफ्रिका को गये थे तभी से वे महात्माजी की ओर खिंचते चले आये। एंड्रयूस साहब को छोडकर शायद ही कोई भारत-स्थित अंगरेज उनपर इतना मुग्ध हुआ हो। जब वे इंग्लैंड थे, लगातार महात्माजी के पास चिट्ठियां भेजा करते थे और महात्माजी के हिन्दुस्थान में होनेवाले कार्यों की प्रशंसा किया करते थे। 'यंग इंडिया' में भी कोई २ वर्ष पहले उन्होंने कुछ लेख इंग्लैंड से लिखे थे। उनकी मृत्यु से कविवर टागोर, एंड्रूयूज साहब और शान्तिनिकेतनवासी ऋषि द्विजेन्द्रनाथ टागोर की एक व्यक्तिगत हानि हुई है। बडा दादा तो उनके मृत्यु-समाचार सुनकर शोकमग्न हो गये थे। महात्मा गांधी भी यदि यह दुःखद वार्ता सुन पावेंगे तो शोक में डूबे बिना न रहेंगे। (यं. इं.)

स्व० याळगी

ईश्वर की लीला अगम्य है। जिस प्रकार श्री पीयरसन का अवसान भर जवानी में हो गया उसी प्रकार श्री याळगी भी एन जवानी में काल-कवलित हुए हैं। श्री याळगी कर्णाटक के एक अग्रगण्य सेवक और श्री देशपाण्डे के दाहने हाथ थे। सोलह-सत्रह वर्ष की उम्र में उन्होंने देश-सेवा आरम्भ की थी। और पिछले २० वर्ष में कर्णाटक में एक भी ऐसा राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं हुआ जिसमें श्री याळगी का हाथ न हो। इनके जैसी चुपचाप सेवा करने की बिरली ही मिसाल इस देश में मिलेगी। अपने खून का पसीना बहाकर आपने रुपया एकत्र किया था। पर वह था सब देश-सेवा के लिए। देश के कार्यकर्ताओं में चाहे उनका नाम विख्यात न हुआ हो; पर कर्णाटक का प्रत्येक स्वयंसेवक, प्रत्येक विद्यार्थी, प्रत्येक गांव उन्हें पहचानता है और उनकी असमय मृत्यु से शोकग्रस्त है। यदि उनका कोई मित्र उनका जीवनचरित लिखे तो वह बहुत शिक्षाप्रद होगा।

स्व० पं० गोविन्दनारायण मिश्र

पिछले सप्ताह हिन्दी-संसार को उसके एक वयोवृद्ध प्रतिष्ठित सेवक और विद्वान् लेखक का चिर वियोग सहना पडा है। 'विभक्ति विचार' 'सारस्वत-सर्वस्व' के लेखक, 'सार-सुधानिधि' के सहयोगी संपादक, हिन्दी-साहित्य और संस्कृत-भाषा के प्रख्यात पण्डित, सनातन-धर्म के प्रगल्भ वक्ता, दूसरे हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति, हिन्दी-साहित्य-विद्यालय, काशी, के संस्थापक पं० गोविंद नारायण मिश्र अब इस संसार में नहीं हैं! आपके इतना पुराना प्रसिद्ध साहित्य-सेवी अब हिन्दी में शायद ही कोई हो। कितने ही लेखों, ग्रन्थों और कामों को अधूरा छोड जानेवाले मिश्रजी की आत्मा को परमात्मा शान्ति दें और उनके कुटुम्बवालों को धैर्य।

महात्माजी की मुलाकात

इसी सप्ताह पू० बा महात्माजी से मिलने के लिए यरोदा गई थीं। महात्माजी का स्वास्थ्य अच्छा है; वे बहुत प्रफुल्ल दिखाई

दिये। बीच में जेल के सुपरिंटेंडेंट, (ये प्रायः डाक्टर हुआ करते हैं) के कहने से महात्माजी ने फल खाना छोड़ कर (अब तो उन्होंने बहुत दिनों से छोड़ दिया है) केवल बकरी के दूध पर रहने का प्रयोग शुरू किया था। डाक्टर अर्थात् सुपरिंटेंडेंट का कहना था कि इससे आप हृष्ट-पुष्ट हो जायंगे। पर एक ही सप्ताह के बाद महात्माजी का वजन कम हो गया और दूसरे सप्ताह में तो और भी घट गया। उन्हें कब्ज की भी शिकायत रहने लगी। तब फिर से फल खाना शुरू कर दिया है। आजकल सुबह-शाम मिल कर ४ केले, ४० अंगूर, ८ मीठे नीबू लेते हैं। इससे उनका वजन फिर बढ़ने लगा है। मुलाकात के समय वजन १०३ पौंड था।

स्वागतम्

हमारे कितने ही कार्यकर्त्ता अब जेल से लौटने लगे हैं। पिछले सप्ताह में सिन्ध के श्री जयरामदास, स्वामी आनन्दानन्द और श्री जयकृष्ण भणसाली दो और डेढ़ डेढ़ साल की सजा भोग कर आये हैं। श्री जयरामदास सिन्ध के दुलारे पुत्र हैं। अमीरी में परवरिश पाते हुए भी तमाम वैभव का त्याग कर के वे असहयोग-संग्राम में कूद पड़े और सत्याग्रह का मर्म समझनेवाले जिन पांच लोगों का नाम महात्माजी गिनाते थे उनमें एक जयरामदास भी थे। जेल से बाहर आने पर परिस्थिति को देख कर उनका हृदय टूक टूक हो गया। उनके अभिनन्दन के लिए स्त्रियों की एक सभा हुई थी। उसमें एक बहन को विदेशी कपड़े पहने हुए देख कर उनकी आंखों से आंसू बह चले। अभी तो आंसू बहाने लायक और भी दृश्य जयरामदासजी को दिखाई देंगे। पर वे उन लोगों में नहीं हैं जो आंसू बहा कर और कायर हो कर बैठ जायं। वे केवल सिन्ध में ही जीवन का संचार नहीं करेंगे बल्कि सिन्ध के बाहर के प्रान्तों की हालत सुधारने में भी हाथ बटावेंगे।

स्वामी आनन्दानन्द और भणसाली तो हमारे साथी ही ठहरे। श्री बालजी देसाई एक-दो दिन में छूट कर आ जायंगे। इन्हें भी संभव है गुजरात में वह हरियाली नजर न आवे जिसे छोड़ कर वे जेल में गये थे। उनके आ जाने से अब बाहरवाले कार्यकर्त्ताओं का भार कुछ हलका जरूर हो जायगा।

भीलों के गुरु गोविंद भी इस सप्ताह में साबरमती जेल से छूट कर आये हैं। कितने ही भील उनके उपदेश और संग से शराब, चोरी आदि गन्दी आदतों से मुक्त हुए हैं। यही गुरु गोविन्द का कुसूर था। उन्हें दस वर्ष की सजा मिली थी। शाहजादे के आगमन के उपलक्ष्य में छूटे थे, पर फिर पकड़े गये थे; क्योंकि वे मानते थे—"भक्ति को छोड़ दूं तो मुक्ति हाथ से चली जायगी।" (नवजीवन)

समझौते का नतीजा

जब से महासभा में समझौते की चर्चा चली थी तभी से यह बराबर कहा जाता था कि समझौता का रास्ता फिसलन होता है। सिद्धान्त और समझौता ये दो चीजें एक साथ नहीं रह सकतीं। जब बंबई की महासमिति में पं. जवाहरलाल और टंडन जी का समझौता-प्रस्ताव पेश हुआ तब भी यह कहा गया था कि स्वार्थी लोग अर्थ का अनर्थ करेंगे—और लोग यही समझेंगे कि कौंसिल में जाने की छुट्टी मिल गई। देहली में तो केवल बहिष्कार का प्रचार ही मुल्तवी नहीं किया गया बल्कि यह भी कहा गया कि जिनका धर्म और आत्मा मना न करे वे लोग कौंसिलों में जा सकते हैं। उसके बाद ही देश में धारासभाओं में जाने की जो धूम-धाम नजर आती है वह पूर्वोक्त भय को स्पष्ट कर देती है। देहली के पहले तक सिर्फ यही कहा जाता था कि जो जाना चाहें उन्हें जाने दो, जो न जाना चाहें वे उदासीन रहें। अब यह कहा जाने लगा है और तरह तरह से देहली के समझौता के प्रस्ताव का अर्थ समझाया जा रहा है कि धारासभा के उम्मेदवारों को राय न देना समझौता-प्रस्ताव का समर्थन करनेवालों की बेकदरी करना है। उम्मेदवारों के और रायों के अर्थ स्वराज्यवादी भाइयों को मदद न देना—उन्हें बहु-संख्या में वहां न भेजना, उन की फजीहत होने देना है और नरम दलवालों या सरकार को कुर्सियां उड़ाने का मौका देना है। महासभा के आदेश पर कायम रह कर देहली तक जो लोग धारासभा में जाने से मुँह मोड़े हुए थे वे भी अब ढीले पड़ रहे हैं। पंजाब के कितने ही बहिष्कार-वादी लाला लजपतरायजी को आत्मसमर्पण कर चुके हैं और लाला-जी स्वयं स्वराज्य-दल के धारासभा के कार्यक्रम में स्वराज्य-दल वालों से अधिक दिलचस्पी ले रहे हैं। हिन्दी-मध्यप्रान्त में भी हम कुछ बहिष्कारवादियों को धारासभाओं के लिए खड़ा होने की धुन में देख रहे हैं। इधर गुजरात में भी सूरत जिला-समिति के अध्यक्ष श्री दयालजीभाई मतदाताओं से मत दिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं। देहली के प्रस्ताव पर हुए भाषणों में यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि धारासभा में जानेवाले अपनी निजी जिम्मेदारी पर जा सकते हैं, महासभा का मंच और धन का उपयोग वे न कर सकेंगे पर फिर भी हम देख रहे हैं कि तरह तरह से महासभा के प्रभाव और प्रस्ताव का दुरुपयोग हो रहा है—यहांतक कि महासमिति के सभापति श्री कोंडा वेंकटप्पय्या को नीचे लिखा खुलासा प्रकट करना पड़ा है—

"महासभा का प्रस्ताव सिर्फ बहिष्कार के आन्दोलन को बन्द करता है। महासभा की संस्थाओं अथवा धन का उपयोग धारासभा प्रवेश के लिए नहीं हो सकता। केवल इसी शर्त पर समझौते का प्रस्ताव हुआ था और यह बात प्रस्ताव पर बोलनेवाले वक्ताओं ने और खास कर मौ० महम्मदअली ने स्पष्ट कर दी थी।"

देखना चाहिए कोकोनाडा-महासभा तक यह फिसलाहट देश को घसीट कर कहां ले जाती है ?

नाभा में अन्धेर

जिस नाभा के महाराज रिपुदमनसिंहजी को, गुरुद्वारा प्र० समिति के कथन के अनुसार, सरकार ने कुशासन के बहाने गद्दी छोड़ने पर मजबूर किया है उसी नाभा के वर्तमान अंगरेज शासनाधिकारी की न्याय-निष्ठा और सुशासन पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू और उनके मित्रों के मुकदमे ने कैसा जीवित, पर तरस खाने योग्य, भाष्य लिख दिया है! पण्डित जवाहरलाल, आचार्य गिदवाणी, श्री एम् सन्तानम्, कुछ घण्टों के लिए जैतो में होनेवाले हालात को अपनी आंखों देखने के लिए वहां जाते हैं, नाभा-राज्य में प्रवेश कर चुकने पर, वहां के राज्याधिकारी उन्हें १४४ दफा के अनुसार रियासत में न जाने का हुक्म देते हैं—हालांकि वे रियासत में आ चुके थे और इसीलिए उस हुक्म का कुछ भी असर उनपर नहीं हो सकता था। वे उस हुक्म को मानने से इनकार करते हैं, उनके साथ ही उनके दोनों साथी गिरफ्तार कर लिये जाते हैं, जब वे एतराज करते हैं कि हमारे नाम कोई हुक्म नहीं है, फौरन् एक जिला मजिस्ट्रेट मौके पर हाजिर हो जाते हैं, जबानी हुक्म सुनाते हैं और गिरफ्तारी हो जाती है; जब जबानी हुक्म पर एतराज किया जाता है तो मजिस्ट्रेट कहता है यह नाभा स्टेट है, यहां ऐसा भी हो सकता है! फिर हथकड़ी डाल कर पुलिसवाले ले जाते हैं, उनके बारबार कहने पर भी कानूनन् वाजिब उनके मुलाकात करने के अधिकार पर पदाघात किया जाता है—ठेठ वाइसराय तक बजरिये तार दौड़धूप करने पर वयोवृद्ध पं. मोतीलालजी अपने इकलौते से बेटे से मिल पाते हैं। जो हुक्म शुरू से ही गैरकानूनी था उसके तोड़ने का और अकालियों के जत्थे को ले जाने का झूठा

अपराध मढ़ कर, झूठी गवाहियां और बातें गढ़ कर तीनों को पहले जुर्म में छः छः मास और दूसरे में दो दो साल की जिनमें एक साल की सख्त और एक साल की सादी, अलग अलग चलने वाली सजा ठोंक दी जाती है। मुजरिम जेल में बन्द कर दिये जाते हैं। शाम को हुक्म आता है—सजा मुल्तवी कर दी गई, तुम रिहा किये जाते हो। फिर दूसरा हुक्म सुनाया गया फौरन् नाभा छोड़ कर चले जाओ और आयन्दा राज्याधिकारी से पूछे बिना रियासत में कदम न रखना। पिछले हुक्म की नकल मांगी जाती है, जो नहीं दी जाती है। अन्त को तीनों यात्री नाभा से चले जाते हैं। इस सारे प्रहसन में एक से एक बढ़ कर तेज कदम कानून और न्याय का गला घोंटने के लिए बढ़ाया गया है। दिन दहाड़े इस अन्धेर का कुछ ठिकाना है! जिस मुख से नाभा के महाराज के कुप्रबन्ध के गीत अखबारों में गाये जाते हैं उसी मुख और बुद्धि से ये करतूतें अंगरेजी राज्य और शासन-संचालन में तालीम पाये अधिकारी को ही शोभा दे सकती हैं। अंगरेजों की वर्तमान शासन-प्रणाली में, झूठ, फरेब, जाल और बेईमानी का इतना प्रवेश हो गया है कि कभी कभी उसे सुधारने की बनिस्बत मिटा देना ही अधिक आसान और श्रेयस्कर मालूम होता है। देशी राज्यों की आबहवा तो, जोकि दुहेर गुलाम हैं, इन दोषों के फैलाव के लिए और भी अनुकूल हो रही है। नाभा के एक ही राज्याधिकारी की ये अनेक करतूतें राजनीति-प्रेमियों के अध्ययन के लिए खासी विविध सामग्री पेश करती हैं। इस मुकदमे ने नाभा-महाराज का पक्ष लेने वाले अकालियों के हाथ बहुत मजबूत कर दिये हैं और उनके मतालबे का मर्म इसके द्वारा भली भांति प्रकट हो जाता है। यदि नाभा-महाराज ने अपनी खुशी से गद्दी छोड़ी है, यदि उनके बाद नाभा में रामराज्य हो गया है, जैतो में सत्याग्रही अकालियों पर अत्याचार नहीं हो रहे हैं, तो इन यात्री-त्रय को नाभा में न आने देने का क्या रहस्य हो सकता है? जिसे जरा भी बुद्धि है उसके लिए यह रहस्य स्पष्ट प्रकट है।

जरूरी सवाल

अब सवाल यह रह जाता है कि नाभा से वापस लौटने पर पं. जवाहरलाल और उनके साथी नाभा के तथा राज्याधिकारी के उस मनमानियती हुक्म के बारे में क्या करना चाहते हैं? पं. जवाहरलाल आदि नाभा की हालत को अपनी आंखों से देखने के लिए गये थे और वहां के अंगरेज राजा विल्सन की करामात ने उन्हें वे वे दृश्य दिखाये जिन्हें वे दूसरे किसी प्रकार नहीं देख सकते थे। इसके अलावा बिना इजाजत रियासत में पांव न धरने का हुक्म निकाल कर उन्होंने पण्डितजी और उनके मित्रों का कर्तव्य दुहेरा कर दिया है। पण्डितजी और उनके मित्र उसी समय उस हुक्म को नहीं तोड़ सकते थे; पर एक तो वे वहां सत्याग्रह करने के लिए नहीं गये थे—एक मुसाफिर की तरह हकीकत जानने गये थे और दूसरे सत्याग्रह-समिति के पं. जवाहरलाल एक सदस्य हैं। समिति में जोकि शीघ्र ही जालन्धर में होने वाली है, सांगोपांग विचार करने के बाद ही उन्होंने कार्रवाई करना मुनासिब समझा हो। जो हो। हमें आशा करनी चाहिए कि पंडितजी उस समिति में इस विषय पर कुछ निर्णय अवश्य करावेंगे।

झण्डा-गीत पर पुरस्कार

राष्ट्रीय झण्डे पर एक सर्वांग-सुन्दर गीत भेजनेवाले सज्जन को श्री सेठ जमनालालजी की ओर से १०१) पुरस्कार देने का विज्ञापन इस पत्र में प्रकाशित किया गया था। पहली बार जो गीत और कवितायें आई थीं उनका निर्णय 'हिन्दी-नवजीवन' के पिछले वर्ष के किसी अंक में प्रकाशित किया जा चुका है। उसके बाद प्राप्त गीत और कविताओं में भी, यह प्रकाशित करते हुए खेद होता है, कि परीक्षा-समिति एक के भी लिए पुरस्कार देने में सफल न हो पाई। पूर्वोक्त संख्या में ही यह स्पष्ट कर दिया गया था कि ध्वज-गीत किस प्रकार का होना चाहिए। सेठ जमनालालजी यह चाहते थे कि राष्ट्र-गीत "वन्देमातरम्" की तरह राष्ट्रीय झण्डे पर भी कुछ सर्व-प्रिय गीत तैयार हो जाय। पर जो गीत आदि परीक्षा-समिति को प्राप्त हुए वे इस कोटि में दाखिल न हो सके।

हां, कुछ कवितायें ऐसी जरूर मालूम हुईं जो 'हिन्दी नवजीवन' में प्रकाशित की जा सकती थीं, और मैंने चाहा भी था कि वे प्रकाशित की जायं; पर इसके बाद शीघ्र ही झण्डा-संग्राम समाप्त हो गया। प्रायः सभी प्राप्त गीत और कवितायें नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह को संबोधन करके अथवा लक्ष्य में रख कर लिखी गई हैं और सत्याग्रह-संग्राम सफल हो जाने पर उन कविताओं को स्थान देते रहना असामयिक और रस-हानिकर होता। इसलिए उन्हें स्थान न दिया जा सका। इसके लिए उनके कर्ताओं से सिवा क्षमा-याचना के दूसरा कोई उपाय नहीं रह गया है। मुझे दुहेरा खेद है कि एक तो हिन्दी-संसार में एकाधिक लब्ध-प्रतिष्ठ और कुछ होनहार कवियों के होते हुए भी सेठजी की मनोकामना पूरी न हो पाई—राष्ट्रीय झण्डा एक सर्वांग-सुन्दर गीत से अभी वंचित रहा और दूसरे जिन सज्जनों ने परिश्रम करके गीत-कवितायें भेजीं उन्हें भी विफल-मनोरथ होना पड़ा। वे अपनी कविताओं का उपयोग अपनी इच्छा के अनुसार करने के लिए हर तरह से आजाद हैं।

दो विशेषांक

एक तो है **मर्यादा** का 'प्रवासी भारतीय-अंक' जो 'विशेष' होने के साथ हा, खेद की बात है, कि 'अन्तिम' अंक भी हो गया है। बाबू शिवप्रसादजी गुप्त के आश्रय में चला जाना मानों, बहुतों की नजर में, 'मर्यादा' का जीवन-बीमा हो जाना था। पर उनको, उसके सुयोग्य संपादक को, तथा प्रेमी पाठकों को अन्त में उसका वियोग सहना ही पड़ा। हिन्दी-संसार का यह दुर्भाग्य है कि अभी उसकी रुचि उच्च और परिमार्जित नहीं हुई है। चुटकुले, किस्से-कहानी, तथा मनरंजन करनेवाली और जोशीली परन्तु निःसार पठन-सामग्री अभी उसे बहुत प्रिय है। हिन्दी के कुछ पत्र-पत्रिका, लोकरुचि को सन्तुष्ट करने को ही अपना प्रधान कर्तव्य मान कर, उसका संशोधन और संस्कार न करने में सहायक हो रहे हैं। मर्यादा की मृत्यु, (नहीं छुट्टी कहना बेहतर होगा) पर दुःख होते हुए भी मुझे हर्ष इस बात का है वह 'लोकरुचि की उपासक' नहीं थी, बल्कि 'लोकमत को बनाना' उसकी मर्यादा थी। निरर्थक जीवन से गौरवमय मृत्यु सदा ही स्वागत करने योग्य है।

प्रस्तुत 'प्रवासी भारतीय अंक' अनेक चित्रों और पठनीय लेखों से अलंकृत है। इसका संपादन पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने किया है, जो हिन्दी-संसार में प्रवासी-भाइयों की समस्या के सब से अधिक जानकार हैं और जो अपनेको उन्हींकी सेवा के लिए प्रायः अर्पण कर चुके हैं। अंक संग्रह करने और पढ़ने की चीज है।

दूसरा है दक्षिण-आफ्रिका के एक वीर सत्याग्रही पं० भवानी-दयालजी संपादित **हिन्दी** साप्ताहिक पत्र का विशेषांक। यह लोकमान्य के श्राद्ध के उपलक्ष में उनके कुछ चित्रों और चरित्रात्मक लेखों से सज्जित कर के निकाला गया है। सुदूर दक्षिण-आफ्रिका के हिन्दी-प्रेमी संपादक का यह उद्योग अपनाने योग्य है। ह० उ०

पतन के चिह्न

महात्माजी के कारावास के बाद देश में पतन के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगे हैं। सविनय-भंग-समिति ने धारासभा-प्रवेश के रूप में इसका बीज बोया। यह कमजोरी की, आत्मविश्वास की कमी की, पुकार थी। इसने उन गुप्त षड्यन्त्रकारियों और हिंसात्मक क्रान्ति-प्रेमियों को निराश कर दिया, जिन्हें असहयोग और सविनय भंग का क्रान्तिमय राजमार्ग बता कर महात्माजी ने भय और हिंसा-पूर्ण पथ से लौटाया था। उन्होंने उन्हें सभ्य, प्रतिष्ठित, सीधे हमले का सीधा सरल रास्ता दिखाया था। दबछुप कर काम करनेवालों को मैदान में ला कर खड़ा कर दिया था। अब फिर दिमागी कतरब्योंत का जमाना आता हुआ देख कर पुरानी बीमारी जोर पकड़ रही है। पंजाब में बबर अकाली जथे और बंगाल में कुछ लोगों के द्वारा गुप्त षड्यन्त्र और हत्याकाण्ड की खबरें बराबर आ रही हैं। बंगाल-सरकार ने पुराने १८१८ के कानून का सहारा लेकर षड्यन्त्र-कार्यों से संबंध रखने के सन्देह में बंगाल की नवीन प्रान्तीय महासभा समिति के मन्त्री बाबू भूपति मुजुमदार आदि सज्जनों को नजरबन्द कर दिया है। खुफिया पुलिस का आतंक फिर लोगों पर छाता हुआ दिखाई देता है। छिपा कर जो काम किये जाते हैं उनका आदि और अन्त दोनों भय-मय होता है। भय मनुष्य की आजादी और उन्नति के लिए सब से बड़ा पाप है। दण्ड-भय से ही प्रायः लोग छिप कर किसी काम को करते हैं। किसीका उद्देश ऊंचा हो सकता है; पर बात खुल जाने का भय, सन्देह आदि मूलभूत कमजोरियाँ न केवल उसे असफल बनाती हैं बल्कि दूसरों के लिए अनेक नवीन भय भी पैदा करती हैं। पंजाब और खास करके बंगाल में हम भय को, पुलिस के आतंक को बढ़ता हुआ देखते हैं। महात्माजी के सन्देश ने देश को इस भयभीत दशा से हटा कर निर्भयता और निःशंकता के खुले संग्राम में प्रेरित कर दिया था। महात्माजी का अहिंसा-मन्त्र निर्भयता की कुंजी था। बंगाल और पंजाब के कुछ लोगों का यह हिंसा-काण्ड भय के आंसू हैं। हजारों लोगों का खुले-आम अपनेको राजद्रोही बताकर, अंगरेजी सरकार का शत्रु बताकर, जेलों के कष्टों का सहना जाग्रत और पुरुषार्थी भारत की वीरता और निर्भयता का परिचायक था; आज छुपे खून करने की पुनर्जीवित प्रवृत्ति उस गौरवपूर्ण पद से नीचे गिरने के स्पष्ट चिह्न है। यदि देहली महासभा में अंगरेजी माल के बहिष्कार का प्रस्ताव स्वीकृत कर के उन नेताओं ने जो इस प्रस्ताव की स्वीकृति के जिम्मेदार हैं, देश को द्वेष-भाव और हिंसा-भाव की ओर प्रेरित न किया होता तो शायद इस घटना पर अधिक लिखने की जरूरत न होती। देहली-महासभा में उस प्रस्ताव पर हुए अधिकांश भाषणों में देश की इस हीन मनोवृत्ति को उत्तेजित करने का प्रयत्न किया गया था और उसके फलस्वरूप यदि आगे लोगों में द्वेष-भाव बढ़े और उसकी परिणति बुरी हिंसा-वृत्ति में हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। कहाँ महात्माजी की लोगों की उच्च मनोवृत्तियों को उत्तेजित कर के उन्हें और उनके साथ ही उनके प्रतिपक्षियों को ऊंचा उठाने का अवसर देने की पुण्य नीति और कहां देहली-महासभा के नेताओं की क्रोध, द्वेष, वैर, आदि हीन-मनोवृत्तियों को पुष्ट करने की निर्बल नीति। १९२० में इसी निर्बल नीति को परास्त कर के असहयोग ने अपना उग्र रूप दिखाया था, अब काल-चक्र के फेर से वही निर्बल-नीति फिर से देश के वायुमंडल पर उमड़ती हुई नजर आती है। भय, सन्देह, घबराहट, दबछिप कर काम करना, दूसर मार्ग से जाने की इच्छा, बनिया-वृत्ति, ये बातें स्पष्ट ही देश के ऊर्ध्वमुख जीवन के अधोमुख होने के चिह्न हैं। भगवान् भारत की रक्षा करें। ह० उ०

खादी महंगी है ?

श्री मगनलालजी गांधी के पास खादी पहननेवालों के ऐसे कितने ही पत्र आये हैं जिनमें उन्होंने खादी को सस्ता बताया है। महात्माजी की वर्षगांठ के पिछले सप्ताह में श्री जमनभाई के साथ खादी बेचते हुए एक सज्जन एसे मिले जिन्होंने खादी पर बड़ी अरुचि प्रकट की। हमारा उनके घर खादी ले जाना उन्हें एक आफत मालूम हुआ। झुंझला कर उन्होंने कहा-"मैं तो विलायती कपड़े ही पहनता हूं।" मैंने पूछा-"विलायती पहनने की प्रतिज्ञा तो नहीं न की है ?" यह सुनकर जरा ठंडे हुए। फिर कहा-"खादी तो मैंने थोड़ी ली है; परन्तु धुलाई ज्यादह पड़ती है।" "विलायती कपड़े नहीं धुलाते ?" बे-खटके जवाब मिला-"नहीं, धुलाने की जरूरत ही नहीं पड़ती।" सिर पर एक बंगलोर कैप लिये हुए थे। १०-१२) कीमत की होगी। तेल पी पी कर चिकनी हो गई थी। बदन पर काला कोट था। मैंने कहा-"आपका कोट तो बड़ा मैला है-कितने धब्बे लगे हुए हैं!" उन्होंने जवाब दिया "कोई ऐसा मैला नहीं है। अभी दो ही तीन बरस तो हुए हैं। अभी तो चलेगा।" यह है हमारी दुर्दशा की पराकाष्ठा। जो शख्स अपने घर के प्रपंच में ही चौबीसों घण्टे मशगूल रहता हो उसे शायद गुलामी प्रत्यक्ष न दिखाइ दे; पर क्या गंदगी और सफाई का भी होश नहीं रह गया ? १२) की बंगलोर कैप के बदले २४ खादी की टोपियां बनाई जा सकती हैं और वे छः वर्ष चल सकती हैं। बीस रु. के आलपाका के कोट की कीमत में सात-आठ खादी के कुरते बनाये जा सकते हैं। कमीज के बिना कोट पहना नहीं जा सकता और कमीज और कोट के कालर बिना धोबी के यहां धुलाये छुटकारा नहीं। पर सच बात यह है कि खादी पहनने से सिर में तेल डालना, मांग सवांरना, आदि शौक पूरे नहीं हो सकते। और इनमें से किसी भी शौक को छोड़ना चाहते नहीं। हम तो गंदी गुलामी में ही मजा आता है।

नड़ियाद की आत्मशुद्धि

एक ओर महात्माजी की पुण्य जन्मतिथि के दिन कितने ही लोगों को जहां गन्दे विदेशी कपड़ों में ही आनन्द मालूम हुआ तहाँ नड़ियाद (गुजरात के खेड़ा जिले का सदर मुकाम) के लोगों ने सच्ची आत्मशुद्धि की। उस दिन वहां एक जुलूस निकाला गया था, जिसमें नागपुर के सत्याग्रही सब के आगे थे, उनके पीछे अन्त्यजों की एक भजन-मंडली थी। अन्त्यज भाई सन्तराम महाराज के मन्दिर में सब लोगों के साथ शामिल हुए। मन्दिर होता हुआ जुलूस सारे नगर में घूमा। चमार-मुहल्ले में महात्माजी के चित्र की पालकी को दो अन्त्यज भाइयों ने उठाया था, और रात को नौ बजे चमार-मुहल्ले में अन्त्यजों की भजन-मंडली एकत्र हुई थी। उसमें शहर के अग्रणी नागरिक श्री गोकुलदास तलाटी, श्री फूलचंदभाई आदि उपस्थित थे। हां, यह सच है कि नड़ियाद के रहनेवालों की संख्या बहुत नहीं थी; परन्तु आत्मशुद्धि का यह आरम्भ कम नहीं माना जा सकता। यह भी सुना है कि नवरात्र के दिनों में अन्त्यजों की भजन-मण्डली को निमंत्रण मिलने लगे हैं। हरिभक्त अन्त्यजों को अपना कर नड़ियाद दूसरे अन्त्यजों को हरिभक्त बनावेगा और उन्हें अधिक स्वच्छ करेगा और हमें आशा करनी चाहिए कि अन्त को छुआछूत का अन्त कर देगा। (नवजीवन)

नया दावानल

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रतिका ,, -)॥
विदेशों के लिए ,, ५)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक १०

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—रामदास मोहनदास गांधी

अहमदाबाद, आश्विन सुदी ११, संवत १९८०
रविवार २१, अक्तूबर, १९२३ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

राजगोपालाचार्यजी की अपील

[illegible] के समझौता-प्रस्ताव से असन्तुष्ट हो कर तामिल नाड्-प्रान्तीय समिति के दो प्रसिद्ध, स्वार्थत्यागी, उत्साही और असहयोग के अविचल भक्त मन्त्रियों ने इस्तीफा दे दिया है और वे एक नयी संस्था खडी कर के महासभा के प्रस्तावों के खिलाफ प्रचार करना चाहते हैं। इसपर चक्रवर्ती श्री. राजगोपालाचार्यजी ने अपने प्रान्त के नाम एक अपील प्रकाशित की है। श्री. राजगोपालाचार्य का स्वास्थ्य इन दिनों बहुत खराब है। कोई बीस बरसों से दमा उनपर सवारी किये है। पिछले कुछ महीनों तक अविरत परिश्रम करने के कारण अब उनका रोग इतना बढ़ गया है कि उन्हें 'यंग इंडिया' का संपादन भी कुछ समय के लिए छोड देना पडा है और आजकल उनका स्थान श्री. जार्ज जोसेफ ने ग्रहण किया है। हम अपरिवर्तनवादी कहलाने वाले लोगों में महात्माजी के बाद उनके सिद्धान्त का मर्म समझनेवालों में और अपनी अटल श्रद्धा में श्री. राजगोपालाचार्यजी का स्थान बहुत ऊंचा है। अतएव उनकी अपील का कुछ आवश्यक सारांश यहां दिया जाता है। आरंभ में पूर्वोक्त मन्त्रियों के इस्तीफे का जिक्र और समझौते के अबतक के प्रयत्नों का इतिहास बताते हुए वे देहली समझौता-प्रस्ताव के संबंध में लिखते हैं—

"इसके बाद हमारे महान् नेता मौ० महम्मदअली जेल से छूटे। हमने तमाम बडे बडे नेताओं से धारासभा के संबंध में लडाई लडी; पर अबकी हम लोगों ने मिल कर यह तय किया कि मौलाना की सलाह को मान लें। हमारी आजादी की इस लडाई में महात्माजी के बराबर ही जिम्मेदारी अलीभाइयों पर रही है और हमें उनकी राय को मान लेना जरूरी था। इसी भाव से भिन्न भिन्न प्रान्तों के नेता—श्री. वल्लभभाई पटेल, श्री. गंगाधरराव देशपांडे, श्री. राजेन्द्रप्रसाद, सेठ जमनालालजी, श्री कोंडा वेंकटप्पय्या और मैं—ने मौलाना साहब के फैसले को शिरोधार्य किया है-इसलिए नहीं कि हमने धारासभा के संबंध में अपनी राय बदल दी है।"

इसके बाद महासभा के महत्व और आवश्यकता का वर्णन करते हुए आप कहते हैं कि "हमारी आजादी के इस युद्ध में महासभा के बिना देश का काम नहीं चल सकता। हां, उसके लिए हमें कोई बुरा काम अवश्यही न करना चाहिए। यदि महासभा का फैसला हमारी अन्तरात्मा के खिलाफ हो तो हम उसमें मदद न करें; पर हमें उसका विरोध न करना चाहिए। बम्बई समझौता-प्रस्ताव को हमने इसलिए नहीं माना था कि वह एक समिति का फैसला था और यह तो खुद महासभा का फैसला है।"

इसके बाद अपने प्रान्त की एकता और मर्यादा-पालन का जिक्र करते हुए उन्होंने यह अपील की है कि महासभा का विरोध कर के एकता और मर्यादापालन को हानि न पहुंचाइए। फिर उन्होंने दोनों सज्जनों की अमूल्य सेवाओं की प्रशंसा और अपने प्रति अगाध प्रेम का उल्लेख करते हुए और उनके उद्देश को शुद्ध और उच्च बताते हुए यह [illegible] नयी संस्था खडी करने से महासभा-संस्थाओं की शक्ति घट जायगी। मन्त्रिद्वय तथा उनके सदृश विचार रखने वाले सज्जनों की यह दलील है कि जब कि महासभा ने अपने मूलभूत सिद्धान्त को ही छोड दिया है तब उन संस्थाओं से लाभ ही क्या है? मैं कहता हूं उनका खयाल गलत है। हमने इन संस्थाओं को इस गरज से खडा किया कि उनके द्वारा महात्माजी के सिद्धान्तों का प्रचार किया जाय। इसके लिए हमने अपना तन, मन, धन, सब कुछ दे दिया। अब यदि इस घटना के कारण हम नई संस्थायें खडी करेंगे तो हम निराश हुए बिना न रहेंगे।

"महात्माजी ने अपने सामर्थ्य के बल पर महासभा में सुधार किया और नये तौर पर उसका संगठन कर के उसे उन्होंने अपना प्रधान हथियार बनाया। पर अब उसको छोड देना निश्चय ही नादानी है। मेरी तन्दुरुस्ती बहुत खराब हो रही है। ऐसी हालत में मेरे समान उत्साही और शक्तिवान् मित्रों का यह कर्तव्य है कि वे महासभा-संस्थाओं में पूरी व्यवस्था कायम रक्खें।" देहली समझौता का अर्थ बताते हुए आप लिखते हैं—महासभा ने हमें न तो धारासभा में जाने के लिए कहा है और न चुनाव में हाथ बटाने की आज्ञा की है। स्वार्थ-साधु लोग जो चाहें कहा करें। महासभा ने तो सिर्फ यही कहा है कि जो लोग जाना चाहते हों उनके खिलाफ प्रचार न किया जाय।

अन्त में चरखे को अपना सुदर्शन चक्र बताते हुए आप कहते हैं, "यह पूछा जाता है, अब हम क्या करें? क्या हम घुटनों पर अपना सिर रखकर बैठ सकते हैं? क्या हमने इस बात का मर्म नहीं समझा है कि रचनात्मक कार्य ही स्वराज्य का सर्वश्रेष्ठ साधन

है। और लोग चाहे कुछ कहते रहें; पर क्या चरखा हमारा सुदर्शन चक्र नहीं है? दूसरे लोग भले ही उसका मजाक उड़ाते रहें। पर क्या हम महात्माजी के अनुयायी ऐसा कर सकते हैं? क्या हमने चरखे संबंधी अपने कर्तव्य का पालन किया है?

जब कि अभी इतना काम बाकी है तब कोई यह कैसे पूछ सकता है कि हम क्या करें? क्या यह पूछना उचित है? दूसरा तमाम काम हम को बन्द कर के सिर्फ चरखे की ही मीठी तान से सारी भारत-भूमि को गुंजा देनी चाहिए।

हमारे प्रान्त में एक भी टुकड़ा विदेशी कपड़े का न रहे। इस काम में मामूली तक के लोग हमारा साथ दें। फिर वे घर घर में चरखा चला दीजिए। महात्माजी के सच्चे शिष्यों का यही लक्ष्य होना चाहिए। हमें अपने अन्दर की एकता को न तोड़ बैठना चाहिए। हम नई संस्थायें न खोलें। यदि हम एक हो कर खड़े रहेंगे तो आगामी महासभा में जो कि आन्ध्र-देश में होने वाली है, हम महात्माजी के सिद्धान्तों की फतह पावेंगे।"

सरकार की रण-दुन्दुभि

पंजाब-सरकार के अकालियों पर धावा करने के रूप में सारे देश का लोहा आजमाने की ललकार के बाद ही लार्ड रीडिंग ने शिमला शैल के उच्च शिखर से रण-दुंदुभि फूँकी है। एक भोज के समय अपने भाषण में लार्ड रीडिंग ने देश के उन तीनों दल के साथ, जो अपने अपने ढंग से सरकार का सुधार या अन्त करने में लगे हुए हैं, घमासान लड़ाई लड़ने की प्रतिज्ञा की है। कौन्सिलें तोड़ने वालों से वे घुड़ककर कहते हैं-आओ, सरकार हर तरह से तुम्हारा मुकाबला करने के लिए तैयार है। तुम सरकार का बाल भी बांका नहीं कर सकते। वह तो चलेगी ही; हाँ, तुम अपना नुकसान अलबत्त करोगे-सुधारों की ही जान आफत में फंस जायगी। साम्राज्य-प्रदर्शिनी और अंगरेजी माल के बहिष्कार करने वालों को वे समझा कर कहते हैं-देखो, यह बहिष्कार सफल नहीं हो सकता। यदि हो भी गया तो सोचो अंगरेजों और उनकी पार्लियामेंट पर इसका क्या असर होगा? आपको अंगरेजों के न्याय और सचाई पर इत्मीनान रखना चाहिए। इन बहिष्कारों से आपका ही काम उलटा बिगड़ेगा। नाभा के मामले में सिक्खों और सारी दुनिया से वे एक दार्शनिक के दृढ़तायुक्त उपेक्षा-भाव से फरमाते हैं-नाभा के महाराज तो अब गद्दी पर बैठ नहीं सकते-वे तो हमेशा के लिए चले गये-हाँ, टीका सा. को बालिग होने पर गद्दी पर बिठा दिया जायगा। दोनों दल के लोगों को उनकी प्रवृत्ति के अनुसार भिन्न भिन्न भाषा और भावों में लार्ड रीडिंग एकही उत्तर देते हैं-तुम से जो हो सो कर लो, सरकार तो वही करेगी जो उसने ठान ली है; उसका कुछ नहीं बिगड़ सकता; खैर अलबत्ते तुम्हारी ही नहीं है। लार्ड रीडिंग के इस भाषण में जो गंभीर और छुपी लापरवाही, जो मद और जो गुस्ताखी भरी हुई है वह स्वाभिमानी भारत के घायल हृदय पर सैंकड़ों बिच्छुओं के तीव्र दंश की वेदनायें उत्पन्न करेंगी। इस बात में कोई सन्देह करना अपने अज्ञान और बुद्धिहीनता का परिचय देना है कि भारत-सरकार न केवल देश की उचित आकांक्षाओं से हर तरह लड़ाई लड़ने के लिए कमर कस चुकी है; बल्कि सब तैयारी कर के उसने युद्ध का बिगुल भी बजा दिया है। सिक्खों की नई कार्य-समिति ने उसकी इस ललकार का जवाब उसी दृढ़ता, उपेक्षा और गंभीरता के साथ दिया है कि हम भी हर तरह के शान्ति-पूर्वक मुकाबले के लिए तैयार हैं। हमारे गिरफ्तार-शुदा साथियों ने जो किया है वही हम भी करेंगे-उनके काम को बराबर उसी तरह आगे चलावेंगे। उन्होंने शु० प्र० समिति के, जिसे सरकार ने गैरकानूनी जमात करार दीया है, सदस्यों की संख्या बढ़ाना शुरू कर दिया है कि जिससे सरकार की इस आज्ञा के भंग के साथ ही जोरदार लड़ाई हो। अब रहे नरम दल के और धारासभावादी लोग। नरम दलवालों से ऐसे मौके पर हम असहयोगियों का विशेष आशा नहीं हो सकती। धारासभावादी शायद धारासभा के ही द्वारा इसका उत्तर देने से आगे न बढ़ सकें। सत्याग्रही असहयोगी, जिनके नाम यद्यपि यह सीधी ललकार नहीं है, पर जो सबसे बढ़कर सीधे हमले के लिए उत्सुक हैं, जो अपने देश के मान-गौरव और अधिकारों की रक्षा के सामने तमाम कुरबानियों को थोड़ा समझते हैं, इस ललकार का यही जवाब दे सकते हैं कि यह देश के लिए ईश्वर ने अपना प्रसाद भेजा है—सरकार अपनी मौत को आप ही नजदीक बुला रही है। गत १८ को जालन्धर में सत्याग्रह-समिति की बैठक होने वाली थी, उसमें इस बात का बाजाब्ता निर्णय होने की आशा है कि शान्तिमय संस्था और आन्दोलन को करने के जनता के कुदरती हक पर किये गये इस पदाघात के लिए सरकार की अकल किस तरह ठिकाने लाई जाय। हमें आशा करनी चाहिए कि वह निर्णय लार्ड रीडिंग को 'न्याय और सचाई' का सच्चा अर्थ समझा सकेगा।

सिक्खों को मौलाना का आश्वासन

खास कर लॉर्ड रीडिंग के भाषण के बाद अकालियों का सवाल केवल पंजाब प्रान्त और सिक्खजाति का ही नहीं, सारे देश का, देश की तमाम संस्थाओं और जातियों के जन्मसिद्ध अधिकारों का मसला हो जाता है। और मौलाना महम्मदअली ने जालन्धर की सिक्ख लीग में अकालियों की सहायता के लिए अपना विशाल कंधा आगे बढ़ा कर सारे देश की तरफ से उन्हें सहायता का आश्वासन दे कर इस मुठभेड़ के लिए देश की तैयारी का एलान कर दिया है। अबतक के समाचारों से यह मालूम हो गया है कि जालन्धर के मैजिस्ट्रेट ने १४४ दफा के सहारे सिक्ख लीग की बैठक वहाँ न होने दी-सारे मंडप पर पुलिस ने अपना कब्जा कर लिया। तब होशियारपुर जिले की हद के खख्खर गांव में बैठक की गई। मौ. महम्मद अली और डाक्टर किचलू ने सिक्खों को देश की हमदर्दी और सहायता का वचन दिया। पंजाब प्रान्तीय समिति ने पहले ही अपनेको सिक्खों की सेवा के लिए समर्पित कर दिया है।

अब सरदार बहादुर मेहताबसिंग के सन्देश के अनुसार सिक्खों को अपने तमाम तफरकों को भूल कर एकदिल से सरकार का मुकाबला करना चाहिए और हम लोगों का भी उनकी पुकार पर दौड़ पड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए। हिन्दू-मुसल्मानों के झगड़ों, धारासभा-संबंधी मतभेद से उत्पन्न हुई शिथिलता के इस मौके को सरकार ने अकालियों को कुचल डालने का अनुकूल अवसर ताका है। हमें दिखा देना चाहिए कि यदि हम किसी सिद्धान्त के लिए, या किसी हक के लिए आपस में लड़ना जानते हैं तो मौका आने पर एक हो कर सरकार की कुटिलता का सामना करना और उसकी चालबाजी को न चलने देना भी जानते हैं। ह० उ०

राजकोट के ठाकुर सा० का सादर निरादर

राजकोट के ठाकुर साहब श्री लाखाजीराज ने हाल में जो काम किया है उसे देख कर हठात् मुंह में से ये उद्गार निकल पड़ते हैं—इस गांधी-युग में जो न हो जाय वही कम है। ठाकुर साहब ने कितने ही काम लोकहित के किये हैं। लोगों को स्वराज्य की संस्थायें प्रदान की हैं। लोग उनपर मुग्ध हो कर उनका अभिनंदन करने को तैयारी कर रहे थे कि ठाकुर साहब ने अपने साहस से लोगों को विशेष मुग्ध कर दिया है। उन्होंने ऐसे साहस का परिचय दिया है जो पिछली अनेक शताब्दियों में किसी देशी-राजा ने नहीं

दिया है। लार्ड चेम्सफर्ड द्वारा संस्थापित नरेन्द्र-मंडल के अनुसार राज्यों के हित की वृद्धि तथा सरकार के साथ उनका संबन्ध दृढ करने के उद्देश से उन्होंने काठियावाड के राजाओं की परिषद् की आयोजना की, सबको निमन्त्रण पत्र भेजे और साथ ही पोलिटिकल एजंट को भी खबर भेजी।

पोलिटिकल एजंट ने बंबई के गवर्नर को खबर की और तुरन्त ठाकुर सा० को सूचना की कि आप इस काम में न पडिए—सरकार के कोप-भाजन होंगे। स्वतन्त्र-प्रकृति ठाकुर सा० को इससे बडा बुरा मालूम हुआ। उन्होंने अपने स्वाधीन भावों के योग्य और वीरोचित पत्र लिख कर पोलिटिकल एजंट से कहा कि सरकार जो हम जैसे राजभक्त राजों पर, साम्राज्य का श्रेय चाहने वाले राजाओं पर अविश्वास रखती है, यह उसे शोभा नहीं देता। यदि ऐसे एक दूसरे के हितों पर विचार करने के उद्देश से निमन्त्रित जलसे पर भी सरकार आपत्ति करने लगे तो फिर हद हो गई। यही बात उन्होंने दूसरे राजाओं को भी लिखा कि ऐसे अविश्वास के भावों को हम सहन नहीं कर सकते। और इस बात का परिचय देने के ही लिए आप लोग परिषद् में पधारिए। एजंट के पत्र के अन्त में आपने लिखा है कि मैं आपकी सलाह को नहीं मान सकता और यह समझकर कि मानों आपका पत्र मिला ही नहीं मैं अपने निमन्त्रण को कायम रखता हूं।

ठाकुर साहब का यह पत्र प्रकाशित भी हो चुका है। यह नहीं जान पडता कि खुद ठाकुर सा० ने प्रकाशित कराया है। क्योंकि यदि ऐसा होता तो वे अखबार वालों के नाम एक अलहदा पत्र लिखते। और शायद वे उसे सब से पहले "टाइम्स आफ् इंडिया" के पास भेजते। पर यह बात सिद्ध है कि पत्र प्रकाशित हुआ है। अब देखना चाहिए, आगे क्या होता है।

इस बीच नुक्ताचीन लोग नुक्ताचीनी करने लगे हैं। वकील कानून के पन्ने देखने लगे हैं। साहस दिखाने का अपूर्व अवसर यदि उपस्थित हो तो उससे चकित हो कर, वाह वा करना तो दूर, गुलामी के मदरसों में शिक्षा पानेवाले हम इस बात की छानबीन करते हैं कि यह साहस उचित रीति से, कानून के अन्दर रह कर, दिखाया गया है या नहीं। सर ली वार्नर की पुस्तक को पढ कर, मांटेगू चेम्सफर्ड के खरीते को देखकर वकीलों ने भी यह राय दी है कि ठाकुर साहब ने जो किया है वह ठीक है।

अब यह देखना है कि दूसरे राजा लोग क्या करते हैं? आम तौर पर अपने साहस के परिचय देने का उनके लिए यह पहला अवसर है। सरकार के पास तो हजारों जाल हैं और वह निमिष-मात्र में उन्हें चारों ओर फैला सकती है। क्या इस जाल में राजपूत-वीर फंस जायंगे? क्या सरकार के दबाव में आकर वे हिम्मत के हीरे की इस मिसाल को मिट्टी में मिलने देंगे? क्या वे उस शख्स के प्रति अपने को द्रोही साबित करेंगे जिसने उनकी आजादी के लिए यह बुलन्द आवाज उठाई है?

हमें आशा करनी चाहिए कि वे ऐसा न करेंगे। और ठाकुर साहब के लिए तो मुंह से यह कहना तक अपमान-जनक है कि इतना कहने पर वे तो हरगिज पीछे न हटेंगे। ठाकुर साहब हमारे इस अविश्वास पर हमें क्षमा करेंगे और यह साबित कर देंगे कि हमारी आशंका गलत थी।

इसका परिणाम यह हो सकता है कि ठाकुर साहब का राज्य जप्त कर लिया जाय—यह सरकार क्या क्या नहीं कर सकती? तो उस दशा में हमें आशा रखनी चाहिए कि वे आजादी को अपने राज-पाट से अनमोल धन समझेंगे। उनका पूर्वोक्त पत्र आजादी की मुहब्बत से लबालब भरा हुआ है। अवसर आने पर क्यों कर उनका हृदय आजादी के लिए सर्वस्व स्वाहा करने को तैयार न हो जायगा?

शुद्ध हृदय का सन्देश

पण्डित जवाहरलाल नेहरू उन शुद्ध हृदयों में से हैं जिनका अभिमान केवल असहयोगियों को ही नहीं, बल्कि प्रत्येक देशभक्त को हो सकता है। उनका वह भाषण जो उन्होंने सभापति की हैसियत से काशी की प्रान्तिक राजनैतिक परिषद् में भेजा और जिसका एक बडा अंश अन्यत्र प्रकाशित है, आशा, विश्वास और वीरता का सन्देश है। ऐसे समय में जब कि महासभा के भीतरी मतभेदों के कारण उसके दल पर बहुतों की दृष्टि गडी हुई थी, उनका यह भाषण एक आश्वासन के रूप में आता है, और उसकी संक्षिप्त, समयानुकूल, सारगर्भ, वीरोचित शैली हृदय में पैठ जाती है। अहिंसा और असहयोग के विवेचन में आपने जो अपने विचारों की स्पष्टता, और श्रद्धा का परिचय दिया है वह उनके मुंह से-विशेष कर उनकी बीमारी की हालत में-निकलने के कारण दिल को तरोताजा कर देता है। पण्डित जवाहरलाल जी कर्म में विश्वास करने वाले आदमी हैं, और उनके इस भाषण में 'कर दिखाने की उमंग' भरी हुई है। देहली के समझौते को वे बहुत पसन्द नहीं करते हैं; पर उससे अच्छे इलाज के अभाव में वे उसे गनीमत समझते हैं। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया है कि देहली के अधिवेशन के द्वारा असहयोग की मृत्यु नहीं हुई है और कहा है कि जबतक महात्मा गांधी की शिक्षाओं को जानने और उनके अनुसार चलने वाले थोडे भी लोग देश में रहेंगे तबतक असहयोग जैसी महान् हलचल हरगिज नहीं मर सकती। देहली में विषय-समिति में समझौता-प्रस्ताव स्वीकृत होने पर मैंने मित्रों से कहा था कि डाक्टर महम्मदअली ने रोगी असहयोग के शरीर में समझौते के रूप में यह गहरा आपरेशन किया है। कोकोनाडा तक हमें धीरज के साथ रोगी की दशा देखनी चाहिए। दोनों बातें संभवनीय हैं-विकार दूर होने पर रोगी पहले से भी अधिक भला-चंगा और हट्टा-कट्टा हो जाय अथवा कोकोनाडा में दम ही छोड दे। दोनों बातें हमारे रुख पर, हमारे काम पर अवलंबित हैं। हमें इस बात की खबरदारी रखनी चाहिए कि अपनी ओर से रोगी की हालत खराब होने का मौका न पेश आने दें। मैं जानता था कि भारत की विशाल और सात्विक जनता महात्माजी को नहीं भूल सकती—नहीं छोड सकती और कम से कम कुछ शिक्षित कहे जाने वाले लोग भी उनके झण्डे से नहीं हट सकते; पर जिस दिन अंगरेजी माल के बहिष्कार का प्रस्ताव उपस्थित हुआ, अहिंसा पर कठोर आक्षेप हुए, और द्वेष-भाव को उत्तेजना दी गई, मेरे हृदय ने कहा—"हमने महात्माजी को नहीं समझा—महासभा महात्माजी के असहयोग को बोरोदानिस्ता छोड रही है।" और पंडित जवाहरलालजी ने भी अपने इस भाषण में यह कबूल किया है कि देहली महासभा के कुछ प्रस्ताव महात्माजी के सिद्धान्त के प्रतिकूल हुए हैं और इसे पीछे हटना बताया है। मैं इस बात में पण्डित जवाहरलालजी से बिल्कुल सहमत हूं कि 'अहिंसा' और 'असहयोग' सनातन तत्व हैं और जबतक भारत में स्वराज्य की अभिलाषा है, संसार में नेकी और सचाई की कदर है, इच्छा है, तबतक ये तत्व दुनिया से मिट नहीं सकते; पर मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि देहली की महासभा ने महात्माजी के रचे असहयोग कार्यक्रम में ऐसा परिवर्तन कर दिया है जो उसे महात्माजी के दिखाये मार्ग से दूर हटा रहा है और यदि कोकोनाडा में ये भूलें न सुधारी गईं तो मुझे डर है कि महासभा और महात्माजी का असहयोग एक दूसरे को तलाक दे दें। पण्डित जवाहरलाल आशावादी हैं, और जो आशावादी होता है वही आस्तिक और कर्म-वीर हो सकता है। उनका यह भाषण इस आशंका को दूर करने में समर्थ हो। ह० उ०

हिन्दी-नवजीवन

वेद-दिन ५९१, रविवार, आश्विन सुदी १२, सं. १९८०

नया दावानल

असहयोग-आन्दोलन पंजाब और खिलाफत-संबंधी अत्याचारों और स्वराज्य के अभाव से उत्पन्न दावानल को शान्त करने के लिए खड़ा किया गया। इस आन्दोलन में हम जिस हद तक आवश्यक शान्ति और सौम्यता, अविरत धीरज और परिश्रम, और दावानल की लपटें सहने की शक्ति का परिचय न दे सके, उसी हद तक हम उस दावानल के स्फोट को अपने वश में न रख सके। हमारी शक्ति को नाप-जोख कर दावानल सुलगाने वाले लोगों ने दावानल के भड़ाके को बढ़ाने में अपनी ओर से कोर-कसर नहीं रक्खी। पंजाब का यह नया दावानल हमारी उसे शमन करने की शक्ति की अधिक तेज कसौटी है।

पिछले सप्ताह लगभग सभी प्रधान सिक्ख नेताओं और कार्यकर्ताओं को राजद्रोह, षड्यन्त्र, और सम्राट के साथ युद्ध करने का अभियोग लगाकर सरकार ने गिरफ्तार कर लिया है। इससे पहले खालसा कालेज पर धावा हुआ। बाबा हरकिशनसिंग और प्रो० तेजासिंग पकड़ लिये गये। फिर प्रो० निरंजनसिंग को गिरफ्तार किया गया। प्रो० तेजासिंग गु० प्र० समिति के उपाध्यक्ष हैं। इसके बाद सरदार बहादुर महताबसिंग—शिरोमणि गुरुद्वारा कमिटी के सभापति, और कप्तान रामसिंग पकड़े गये। सरदार सा० के घर तो उनके भतीजे की शादी था। (छत्रपति महाराज शिवाजी के साथी तानाजी मालुसरे जब सिंहगढ को विजय करने निकले थे तब उनके यहाँ भी लड़के की शादी था) इसके पश्चात् सरदार तेजासिंग समुंद्री, मास्टर तेजासिंग, सरदार नारायणसिंग बैरिस्टर, सरदार किशनसिंग, मास्टर महताबसिंग की बारी आई। फिर सिक्ख-मिशनरी कालेज के बड़े सरदार साहबसिंग और अकाली जत्थे के सरदार संतासिंग पकड़े गये। ता. १५ के तार की खबर है कि जालन्धर के सरदार हरिसिंग, १८ ता० को होनेवाली सिक्ख लीग की स्वागतसमिति के अध्यक्ष सरदार बाजसिंग और अकाली तख्त के सरदार शेरसिंग त्यागी और सरदार तेजसिंग पकड़े गये।

सरकार ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर के कहा है कि सिक्खों की हल-चल का उद्देश है सरकार को उलट देना। गुरुद्वारा प्र० समिति धर्म के नाम पर राजनैतिक आन्दोलन प्रचलित कर रही थी। इसलिए उसे गिरफ्तार किये बिना दूसरी गति नहीं थी।

पंजाब में "फौजी कानून" के जमाने में जिस प्रकार हवाई जहाज उड़ते थे और हरएक शहर में सरकार का रौब और आतंक लोगों पर जमाते थे उसी प्रकार आज भी जगह जगह हवाई जहाज उड़ रहे हैं और लोगों पर विज्ञप्तियों की वर्षा कर के यह सूचित करते हैं कि गुरुद्वारा प्र० कमिटि ने नाभ के मामले में बड़ी आपत्तिजनक नीति अंगीकार की है, और कठिन होने पर टीका साहब को गद्दी पर बैठा दिया जायगा।

कोई ७५ गिरफ्तारियां हो चुकी हैं और अफवाह है कि कई लोग और पकड़े जायगे। एसोशिएटेड प्रेस यह खबर देता है।

अब हम यह देखें कि सिक्खों पर इसका असर क्या हुआ है? सरदार महताबसिंग ने रिसालदार सुन्दरसिंग को अपना उत्तराधिकारी चुन लिया था। वे अमृतसर आते ही गिरफ्तार कर लिये गये। सारी समिति के सभ्यों के गिरफ्तार हो चुकने पर भी दूसरे नये सभ्य चुन लिये गये हैं और इस बात की भी खबर शीघ्र ही मिलने वाली है कि नई कमिटी की बैठक कहां होगी।

प्रधान नेताओं को गिरफ्तार कर के सरकार ने यह भी घोषित किया है कि शि० गु० समिति और अकाली दल—अर्थात् लड़ाई के लिए रंगरूट भरती करने वाली संस्था-दोनों गैरकानूनी जमातें हैं।

यह तो हुई सरकार की युद्ध-सामग्री की कहानी। अब हमें यह देखना चाहिए कि हम इसका उत्तर किस प्रकार दें। पर इससे पहले इसके मूलभूत सवालों को समझ लेने की जरूरत है।

सरकार कहती है कि हमें किसी भी देशी-राजा को पदभ्रष्ट करने का अधिकार है। वह यह भी कहती है कि हमें अपनी मर्जी के मुताबिक शासन-संचालन करने का हक है। वह कहती है, हमें हर किसी मंडल या संस्था को गैर-कानूनी घोषित करने का हक है। यह इन तीनों हकों का प्रश्न है। प्रथम हक से कोई इनकार नहीं कर सकता। प्रजा का कहना सिर्फ इतना ही है कि हमारी दिलजमई किये बिना आप किसी देशी राजा को पदभ्रष्ट नहीं कर सकते। महाराजा रिपुदमनसिंग अकालियों के हिये के हार हैं। इसलिए सिक्खों का यह मतालबा है कि वे फिर से गद्दीपर बिठायें जायं। पर लड़ाई इस बिना पर नहीं है कि रिपुदमनसिंगजी को फिर से गद्दी पर बिठाया जाय; बल्कि इस बात पर है कि प्रजा को अपने विश्वास में लिये बिना ही उन्हें पदभ्रष्ट कर देने का हक सरकार ने प्रतिपादित किया है। सरकार इस हक को बहुत बरसों से बरतती आ रही है; पर पिछली बार इस हक को बर्ते बहुत साल हो गये। असहयोग के आने तक सरकार के इस अधिकार पर एतराज करना लोग नहीं जानते थे। असहयोग ने तो सरकार के खिलाफत का अपमान करने के हक पर भी एतराज किया और असहयोग का पाठ पढ़ चुकनेवाली सिक्ख जाति ने महाराज रिपुदमनसिंग को बे कायदा पदभ्रष्ट किया गया समझ कर सरकार का विरोध किया है। सरकार जनता के इस विरोध करने के हक को नहीं स्वीकार करती, और उसने उन तमाम विरोध करने वाले दल को गिरफ्तार कर लिया है।

इसी प्रश्न के अन्दर यह उपप्रश्न भी आ जाता है कि लोगों को अंधेरे में रख कर सरकार को शासन-कार्य चलाने का हक है या नहीं। नाभा में जो जत्थे जाते थे वे इसीलिए जाते थे कि इस परदे की अन्दर की कार्रवाई का अन्त कर दें। हो सकता है कि महाराजा रिपुदमनसिंग के गद्दी-त्याग का मसला सिक्खों के अलावा दूसरी जातियों की नजर में अधिक धार्मिक महत्व न रखता हो; पर इस बात पर हम भी सिक्खों की तरह लड़ सकते हैं कि सरकार का काम खुले खजाने होना चाहिए।

दूसरा और तीसरा प्रश्न तो बिलकुल प्रजा से संबंध रखता है। सरकार को यह बिलकुल नागवार होता है कि रोज-ब-रोज पैदा होने वाले सवाल असहयोग के तरीके पर हल किये जायें। इस आखिरी दावानल का उद्देश यही है कि इस लोकप्रिय असहयोग-शस्त्र की धार बिगाड़ दी जाय। उसे न बिगाड़ने देने का सुन्दर अवसर अकालियों को पिछले साल मिला था। यह अवसर तो उससे भी अनमोल है। उन्हें यह ऐसा अवसर मिला है जिसमें वे यह दिखा सकते हैं कि तमाम नेताओं के जेल चले जाने पर भी हम शान्ति और धैर्य दोनों का एकसा परिचय दे सकते हैं।

तीसरा प्रश्न—किसी भी शान्तिमय मंडल को गैरकानूनी करार देने के सरकार के हकों का—सवाल फिर १९२१ की याद दिलाता है। सरकार भी शि० गु० प्र० समिति पर यह इलजाम नहीं लगा सकी कि उसने किसी भी मौके पर किसी भी हिंसात्मक हलचल को अथवा ऐसे आन्दोलन से संबन्ध रखने वाले लोगों को सहायता

दी हो। बबार अकालियों का विवेच कभी से कही भाषा में शि० गु० प्र० समितिने किया है। वह अवतक हमारों वीरों को जेल भेज चुका है। पर कोई भी आजतक किसी अत्याचार या हिंसा-काण्ड का मुजरिम नहीं बनाया गया। फिर भी गु० प्र० समिति और अकाली दल दोनों गैरकानूनी करार दिये गये हैं।

सिक्खों को हजारों और लाखों वीरों को सरकार की जेलें भरने और तोप के गोलों के सामने छाती खोलने का यह शुभअवसर मिला है। पर हमें भी उनको व्यवहार-कुशलता, व्यवस्था, वीरता से सबक सीखने का यह मौका मिला है। परमात्मा इस परीक्षा में सिक्खों को और हम को उत्तीर्ण करें।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

पं० जवाहरलाल नेहरू का भाषण

पिछले सप्ताह हुई संयुक्त प्रांत की प्रांतिक राजनैतिक परिषद के अध्यक्ष के भाषण का आवश्यक अंश यहां दिया जाता है—

× + ×

"कहा जाता है कि दिल्ली कांग्रेस ने दो भिन्न भिन्न विचार के लोगों में सुलह करा दी है और आपस के भेदभाव को खतम कर दिया है। यदि इसमें से आपस का मत-भेद और एक-दूसरे के प्रति वैमनस्य दूर हो जायं एवं हमारी राजनीति में फिर हृदय की उदारता और विचारों में अहिंसा के भाव का समावेश हो जाय तो मैं कहूंगा कि कांग्रेस को बड़ी सफलता मिली; परन्तु मैं समझता हूं कांग्रेस के मुख्य प्रस्तावों को समझौता के प्रस्ताव कहना उचित नहीं है। समझौता वह उसी हदतक कहा जा सकता है जहांतक कि दोनों दल के लोगों ने इसे स्वीकृत किया है। मैं समझता हूं, इन दो प्रकार की विचारशैलियों में जिनमें एक-दूसरे के ऊपर महत्व प्राप्त करने के लिए देश में लड़ाई चल रही है कोई वास्तविक और स्थायी समझौता हो ही नहीं सकता। दोनों सिद्धान्त ही भिन्न भिन्न हैं, दोनों ही मार्ग सम्मानित हैं, और दोनों के माननेवाले बहादुर तथा गंभीर विचार के मनुष्य हैं, परन्तु फिर भी एक-दूसरे के विचारों में मौलिक विभिन्नता है।

कहा जाता है कि दिल्ली कांग्रेस से असहयोग समाप्त हो गया। जिन लोगों ने इधर तीन चार वर्षों से हिन्दुस्तान की हालत देखी है उन्हें ऐसा विचार प्रकट करते देखकर मुझे आश्चर्य होता है। मुझे तो यह बात ध्यान में भी नहीं आती कि कांग्रेस के प्रस्ताव से भी यह वृहत आन्दोलन कैसे समाप्त हो सकता है? यदि हिन्दुस्तान ने महात्मा गांधी की शिक्षा का ग्रहण कर लिया है और यदि थोड़े से लोग भी उस सिद्धान्त पर अटल बने रहें तो असहयोग मर नहीं सकता। यदि हम लोग सभी उस शिक्षा के अयोग्य हैं और उसके अनुसार कार्य करने में असमर्थ हैं तब भी हमारे बाद आनेवाले लोग इस जबरदस्त हथियार को उठावेंगे और संसार के सामने सिद्ध कर देंगे कि सच्ची स्वतन्त्रता पाने तथा आपस के कलह को समाप्त करने का केवल यही और सब से अच्छा मार्ग है। अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन तो मर ही नहीं सकता, यह हिन्दुस्तान की सीमा को पार कर के बाहर चला गया है और अब सारे संसार की सम्पत्ति बन गया है।

मैं दिल्ली कांग्रेस के विषय में कुछ आलोचना करने का साहस नहीं करना चाहता, परन्तु मैं यह जरूर समझता हूं कि इसके बहुत से निर्णय महात्मा गांधी द्वारा बतलाये हुए असहयोग आन्दोलन के विरुद्ध हैं। वे महात्मा गांधी के अनुसार उनके असहयोग आन्दोलन के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं; परन्तु यह कोई कारण नहीं है कि इसीलिए हम अपने कार्यक्रम में कोई परिवर्तन न करें, यदि हमें विश्वास हो जाय कि परिवर्तन करना आवश्यक है। परन्तु असहयोग के मूल कार्यक्रम की दृष्टि से मैं दिल्ली के निर्णय का स्वागत करता हूं। इसका अर्थ पीछे हटना अवश्य है और ऐसी हालत में जब हमें पुराने मार्ग पर पूर्ण विश्वास हो तो पीछे हटना और बुराई होता है; परन्तु मेरा विश्वास है कि यह पीछे हटना, बल्कि दूसरों को पीछे हटने की इजाजत देना, इस समय आवश्यक था। यह सम्भव था कि जिन लोगों का इसमें विश्वास था वे कांग्रेस से किसी प्रकार के भी परिवर्तन के विरुद्ध निर्णय करा देते। परन्तु इससे असहयोग को कोई अधिक लाभ होता या न होता, इसमें मुझे सन्देह है। मुझे आपस के मतभेद से जरा भी भय नहीं है—यह तो जारी रहेगा ही। परन्तु मैं स्वीकार करता हूं कि मुझे इस समय बहुत लज्जा का अनुभव हुआ जब मैंने देखा कि हमारा शुद्ध आन्दोलन जिसकी पुष्टि एवं उच्च आदर्श और कष्ट सहने की तत्परता से हुई है दो दलों में विभक्त हो गया है और हरएक दल अपनी शक्ति और धन ऐसे प्रतिनिधियों के बनाने में खर्च कर रहा है जो अपने दल के नेता के कहने के अनुसार हाथ उठाने को तैयार हों। इन पश्चिमी राजनैतिक चालों के अवलम्बन से हमारे असहयोग-आन्दोलन की उन्नति नहीं होगी। यदि उन्नति होगी तो उसकी अपनी पवित्रता, सरलता तथा हृदयग्राहिता से ही होगी।

मुझे तो ऐसी इच्छा-सी हो रही है कि सन १९२० में कलकत्ता में असहयोग का सिद्धान्त और कार्यक्रम ही कांग्रेस से स्वीकृत न हुआ होता। इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने ने ही हम लोगों को प्रारम्भ से ही दबा दिया और इसके समर्थकों की संख्या ने हमें पंगु बना दिया। यदि यह स्वीकृत न होता तो हम अपने विश्वास में अटल रहकर संघटित रूप में कार्य करते रहते और ठीक मौके पर जनता तथा कांग्रेस को अपने पक्ष में कर लेते-परन्तु सारा तरीका ही उलटा हो गया और इसीलिए हमें उसका फल भोगना पड़ रहा है। असहयोग का मूल ही क्रान्तिकारी मार्ग है और इसका अर्थ बराबर कष्ट सहन करना है। कोई आशा नहीं कर सकता कि बहुत बड़ी संख्या में लोग अधिक दिन तक कष्ट-सहन करते रहें और इस मार्ग का अवलम्बन करते रहेंगे। थोड़े से चुने लोग ही ऐसा कर सकते हैं और जनता उनके साथ सहानुभूति रख सकती है; वे मौके मौके पर थोड़े दिनों के लिए उनका साथ दे सकती है। यदि कांग्रेस भारतवर्ष की जनता की प्रतिनिधि है तो यह स्वाभाविक है कि उसे कभी कभी पीछे हटना पड़ेगा और जब बहुत संख्या में लोग क्रान्तिकारी मार्ग से थक जायेंगे तो किसी न किसी प्रकार के वैध मार्ग का अवलम्बन करना पड़ेगा। परन्तु उत्साही और युद्ध के लिए उत्सुक लोगों के लिए ऐसा करना कष्टकर मालूम होगा, फिर भी निराश होने का कोई कारण नहीं है। हां, उन लोगों पर कार्य का बोझा अधिक पड़ जाता है जिनका कर्तव्य लोगों के सामने हमेशा क्रान्तिकारी मार्ग का रखना होता है। जब कि प्रधान सेना आराम करती है अथवा शान्ति के काम में लगी रहती है तब भी उन्हें लड़ाई जारी रखनी पड़ती है, परन्तु उनको विश्वास रखना चाहिए कि मौका आते ही उक्त सेना भी उनका साथ देने में न हिचकिचायगी, इसीलिए दिल्ली के निर्णय से मुझे सन्तोष है। यदि एक निश्चित निर्णय के लिये जोर लगाया जाता तो उसका फल अच्छा न होता।

तो अब प्रश्न यह है कि हमारा ध्येय क्या है और उसके पाने के साधन क्या है? हमारा उद्देश सीधा सादा है। हां, इसके कई अर्थ अवश्य हो सकते हैं। हम लोगोंने इसे साफ साफ जाहिर कर दिया है कि हम लोग पूर्ण स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं। हम लोगों को प्रादेशिक स्वतंत्रता में अथवा हिन्दुस्तान की हुकूमत

में कुछ नियमों के हस्तान्तरित किये जाने में जरासी भी दिलचस्पी नहीं है। पूर्ण आन्तरिक स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि सेना, पुलिस तथा कोष पर हमारा पूरा अधिकार रहे। जबतक इनपर हमारा अधिकार नहीं होता तबतक हमें स्वतंत्रता नहीं है, कम से कम इतना हम जरूर चाहते हैं। परन्तु इस समय प्रश्न तो यह उठाया गया है कि हम लोग कांग्रेस के विधान में अपना उद्देश स्वराज्य के बदले पूर्ण स्वतंत्रता रखें या नहीं। मैं स्वयं तो उस दिन का स्वागत करता हूं जब कांग्रेस पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा करेगी। मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष का एक मात्र उचित ध्येय पूर्ण स्वतंत्रता है। इससे कम कोई चीज चाहे उसे आप औपनिवेशिक स्वराज्य के नाम से पुकारें, चाहे ब्रिटिश राष्ट्रसंघ के हिस्सेदार के नाम से पुकारें, अथवा और किसी नाम से पुकारें, स्वीकार करना हिंदुस्तान के आत्म-सम्मान के विरुद्ध होगा। हिंदुस्तान और इंग्लैंड के बीच किसी प्रकार की सन्धि अथवा मित्रता तबतक होना असम्भव है जबतक हिन्दुस्तान को बराबरी का पद नहीं प्राप्त हो जाता और यह तबतक सम्भव नहीं है जबतक हिन्दुस्तान ब्रिटिश साम्राज्य का पुछल्ला बना रहेगा। यह हो सकता है कि पूर्ण स्वतंत्रता होने पर भारतवर्ष अपनी इच्छा से इंग्लैंड का मित्र बनना स्वीकार कर ले, परन्तु हिन्दुस्तान के पूर्ण स्वतंत्र होने पर ही यह हो सकता है। इसलिए मैं यह कहूंगा कि साधारणतः हम लोगों को पूर्ण स्वतंत्रता का ही ध्येय अपने सामने रखना चाहिए।

इस मत के प्रतिपादन करने का दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि मेरा विश्वास है कि आजकल ब्रिटिश साम्राज्य बुराई का साधन हो रहा है और इसने संसार को हानि पहुंचाई है और पहुंचा रहा है। यह बड़े पैमाने पर निठुर साम्राज्यवाद का एक अकेला नमूना है। मैं नहीं चाहता कि हिन्दुस्तान किसी प्रकार इस साम्राज्यवाद में भाग ले अथवा एशिया और अफ्रीका की राजनैतिक और आर्थिक लूट में इंग्लैण्ड का साथी बने। हमारा यह कार्य होना चाहिए कि इस साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ें और इसका अंत करें।

पूर्ण स्वतन्त्रता को अपना ध्येय रखने का तीसरा कारण मेरे मत के अनुसार यह भी है कि इससे हमारा दृष्टि-कोण बदलेगा। ब्रिटिश गवनमेण्ट ने अपनी कुटिल चालों से हममें से बहुतों के हृदय में यह भाव पैदा कर दिया है कि हिन्दुस्तान के लिए ब्रिटिश राज्य अनिवार्य है और इसके विरुद्ध लड़ना व्यर्थ है। यद्यपि असहयोग-आंदोलन ने इस भाव को बहुत-कुछ दूर कर दिया है परन्तु फिर भी अब भी कुछ शेष रह गया है और जहां तक जल्द हो सके हमें इस भाव को दूर करना चाहिए। मैं समझता हूं कि कोई भी ऐसा हिन्दुस्तानी नहीं है जो दिल से पूर्ण स्वतन्त्र होने की इच्छा न रखता हो। हां, इतना जरूर है कि बहुत से लोग ऐसा कहने का साहस नहीं करते और बहुत से ऐसे हैं जो इस समय में इसकी घोषणा करना उचित नहीं समझते। हमें इस भाव को, इस डरपोकपन को दूर करना चाहिए। हममें कुछ समय तक अपने उद्देश को सफल बनाने के लिए पर्याप्त शक्ति न हो, परन्तु हममें इसे घोषित करने और इसके लिए कार्य करने का साहस होना चाहिए। इसलिए मैं चाहता हूं कि लोग अपने सामने पूर्ण स्वतन्त्रता का ध्येय रखें और इसके आदी बनें। मैं इस समय कांग्रेस के उद्देश में परिवर्तन कराने के लिए उत्सुक नहीं हूं। इससे बहस छिड़ जायगी और कांग्रेस से कुछ लोग अलग हो जायगे एवं कांग्रेस सीमाबद्ध हो जायगी। हम लोगों को कांग्रेस सब लोगों के लिए खुली रखनी चाहिए। जब सब लोग पूर्ण स्वतन्त्रता के भाव को अच्छी तरह ग्रहण कर लेंगे तो परिवर्तन आप से आप हो जायगा। इसके पहले जबरदस्ती परिवर्तन करना उचित न होगा।

मैंने पहले ही जाहिर कर दिया है कि मुझे महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये असहयोग आन्दोलन में पूर्ण विश्वास है। मेरा यह भी विश्वास है कि भारतवर्ष तथा सारे संसार का उद्धार अहिंसात्मक असहयोग के द्वारा ही होगा। संसार में हिंसा का काफी दौरदौरा रह चुका है। बारम्बार इसकी परीक्षा की गई और इसमें कमी पाई गई। आजकल की यूरोप की दशा इस बात का पूरा सबूत है कि हिंसा के द्वारा सफलता नहीं हो सकती। मुझे विश्वास है कि यूरोप में हिंसा का भाव दिन पर दिन अपनी ज्यादती पर रहेगा और अन्त में उसी अग्नि में जल कर भस्म हो जायगा, जिसे स्वयं उसने प्रज्वलित किया है।

बहुत से लोग हंसते हैं और मजाक उड़ाते हैं कि क्या अहिंसा का भी कभी दुनिया में प्रभुत्व हो सकता है और सब मनुष्य तथा राष्ट्र अहिंसा के द्वारा अपने झगड़े का निपटारा कर सकते हैं? वे मनुष्य-स्वभाव की कमजोरियों तथा संसार में प्रचलित क्रोध, घृणा और हिंसा की तरफ हमारा ध्यान दिलाते हैं। मुझे भय है कि हममें से बहुत कम इन मनोविकारों से मुक्त हैं। मुझे खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि स्वयं मुझ में हिंसा के भाव भरे हैं और बड़ी कठिनाई से मैं अपनेको इस सीधे और तंग रास्ते पर ला सकता हूं। परन्तु जो लोग हंसते और मजाक उड़ाते हैं उनके लिए अच्छा होगा कि वे विचारों की शक्ति पर मनन करें और विशेष कर इस असहयोग के विचार के उन्नति-क्रम का मनन करें। संसार के बड़े बड़े विचारशील पुरुषों का ध्यान इस तरफ आकर्षित हुआ है और हिन्दुस्तान की जनता पर तो इसका आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा है।

असहयोग और अहिंसा इस आन्दोलन के मुख्य अंग हैं। असहयोग का विचार बिलकुल सीधा-सादा है और साधारण दिमाग के आदमी की समझ में भी आ सकता है; परंतु फिर भी हममें से बहुत कम लोगों ने महात्माजी की घोषणा के पहले इसका वास्तविक अभिप्राय समझा था-हां, बंग-विच्छेद के समय की बात जाने दीजिए। बुराई इसीलिए फैलती है कि हम उसमें सहायक होते हैं और उसको सहते हैं। सब से बड़ी स्वेच्छाचारी और जालिम सरकार भी इसीलिए चल सकती है कि वे लोग जिन पर वह अत्याचार करती है उसे स्वीकार करते हैं। इंग्लैण्ड हिन्दुस्तान को इसीलिए गुलामी में रक्खे है कि हिन्दुस्तानी अंग्रेजी सत्ता से सहयोग करते हैं और ब्रिटिश राज्य को मजबूत करते हैं। आप अपना सहयोग हटा लीजिए तो विदेशी राज्य का ढांचा स्वयं गिर जायगा। यह बात स्वयंसिद्ध है, इसके लिए सबूत की कोई आवश्यकता नहीं है।

परन्तु तार्किक दृष्टि से ठीक होने पर तथा फल निश्चित होने पर भी हममें से बहुत से इस स्पष्ट मार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकते। ब्रिटिश राज्य के विष ने हमें शक्तिहीन और डरपोक बना दिया है। हम लोगों में खतरा उठाने का भाव नहीं रह गया और यदि हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता भी मिलती हो तोभी हम उसके बदले में जोखिम उठाने के लिए तैयार नहीं होते। असहयोग का सिद्धान्त अब जड़ पकड़ गया है और जनता में फैल गया है; परन्तु इस सिद्धान्त को कार्य रूप में लाने के लिए सतत परिश्रम और साहस की कमी है। बहुतों के लिए तो यह आर्थिक प्रश्न है। परन्तु हम लोग उन लोगों के विषय में क्या कहें जो बिना इस दृष्टि के भी अपना समय, धन, तथा शक्ति अंग्रेज अफसरों की शान और इज्जत बढ़ाने के लिए बहुत से जलसों का प्रबन्ध करने में खर्च करते हैं। हम लोग इतने गिर गये हैं कि समझदार और शिक्षित

लोग भी अपनी ही बेइज्जती में सहायता करने में शर्म नहीं खाते। मैं अंग्रेज अफसरों की कोई शिकायत नहीं करता। वे बहादुर आदमी हैं और अपनी शक्ति के अनुसार अपने देश की सेवा करते हैं। मैं चाहता हूं कि हम लोग भी वैसे ही बहादुर हों और अपने देश के सम्मान का उतना ही ध्यान रक्खें।

मुझे अहिंसा की शक्ति पर पूरा विश्वास है, परन्तु अहिंसा का कमजोरी तथा डरपोकपन से कोई सम्बन्ध नहीं। महात्माजी ने भी बारम्बार कहा है कि कायरता से तो हिंसा ही अच्छी है। भय और डरपोकपन सब से बड़ा पाप है और दुर्भाग्य से हममें उसकी व्याप्ती है। हमारा क्रोध और घृणा हमारे भय तथा अपौरुष का नतीजा है। अगर हममें से यह भय और कायरता दूर हो जाय तो हममें घृणा अथवा मार्ग की अन्य कोई रुकावट शेष न रहेगी। इसलिए हमें इस डरपोकपन को जड़ से उखाड़ देना चाहिए और इसको किसी प्रकार भी आश्रय नहीं देना चाहिए। इस डरपोकपन को अहिंसा का स्वांग नहीं बनाना चाहिए, जैसा कि प्रायः हुआ है। एक बड़े फ्रांसीसी सज्जन ने कहा है कि बहुत सी बुराइयां एक भी भलाई के स्वांग से अच्छी हैं। हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि हम लोगों में बहुत ज्यादा मुलायिमत और नरमी है एवं हम बुराई करने में असमर्थ होने के कारण ही अच्छे हैं। हम लोगों को पाप करने का साहस नहीं है, यद्यपि उसके बारे में हम बार बार सोचते हैं और करना भी चाहते हैं। यह बड़ी घृणास्पद अवस्था है। यह बेईमानी, अपौरुष और धोखेबाजी है। बुराई करने वाला ईमानदार आदमी जो जानबूझ कर बुराई करता है वह अच्छा है, क्योंकि उसमें शक्ति है। यदि वह सुधर जायगा तो भलाई के लिए वह बड़ा भारी स्तम्भ बन सकेगा, क्योंकि उसकी प्रकृति का मूल आधार मजबूत है। परंतु जो धोखेबाजी से भला बनना चाहते हैं उनसे किसीका हित नहीं हो सकता, उनमें कोई शक्ति नहीं है। उनकी नींव खिसकने वाली बालू पर है, इसलिए डरपोकपन के लिए अहिंसात्मक आन्दोलन में कोई स्थान नहीं है। वह हिंसात्मक आदमी जिसे अपने विश्वास के अनुसार कार्य करने का साहस है, कहीं अच्छा है।

मैं अहिंसा के प्रश्न पर अधिक जोर इसलिए देना चाहता हूं कि उस संबन्ध में हम लोगों की धारणा स्पष्ट होनी चाहिए। कुछ दिन तक स्थगित रहने के बाद बंगाल में हिंसात्मक आन्दोलन पुनर्जीवित सा होता दीख पड़ता है। मैं उन नौजवानों की उत्कंठा तथा बेसब्री की जो स्वतन्त्र होने के लिए उनके दिलों में उठ रही है और जिस कारण से हिंसात्मक कार्य करने में उनकी प्रवृत्ति हो रही है तारीफ करता हूं। मैं उस साहस की भी तारीफ करता हूं जो परिणाम का कुछ ख्याल नहीं करता, परन्तु यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि असंघटित रूप से हिंसा करने पर स्वतन्त्रता हमारे नजदीक कैसे आ जायगी? स्वतन्त्र होना हमारा अधिकार है, पुराने रिवाज और राष्ट्रों के साधारण कानून के अनुसार स्वतन्त्र होने के लिए हमें हिंसा का प्रयोग करने का भी अधिकार है। यदि स्वतन्त्रता का कार्य करने के लिए हमें बुरे मार्ग का अवलम्बन करना पड़े तो वह भी दूषित और कलंकित वस्तु हो जायगी। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि हमारे आन्दोलन के भाग्य में ऐसा न बदा हो। हिंसा करना भी किसी किसी हालत में ठीक है; परन्तु हिंसा खुल्लमखुल्ला, सीधे और साफ साफ तौर पर होनी चाहिए—परन्तु छिप कर मारना, कातिल का खंजर, और अंधेरे में हत्या कर डालना तो किसी हालत में भी जायज नहीं हो सकता। किसी राष्ट्र को भी इन तरीकों से लाभ नहीं पहुंचा, बल्कि इनसे उस राष्ट्र ही कलंकित होता है और संसार की सहानुभूति भी हट जाती है। इसलिए किसी भी हालत में हम बम और खंजर का सहारा नहीं ले सकते, और जो लोग बिना सोचे इस मार्ग का अवलम्बन करते हैं वे अपने ध्येय को हानि पहुंचाते हैं। हम लोग खुल्लमखुल्ला तथा संघटित हिंसा का ख्याल ही नहीं कर सकते। इस मामले में हमारे लिए कोई और चारा नहीं है। यदि हम इसे पसन्द न करें तो भी असहयोग आन्दोलन के सिवा कोई दूसरा मार्ग हमारे लिए नहीं है। बोलशेविज्म और फासिज्म पश्चिम के तरीके हैं। वे दोनों एक समान हैं और व्यर्थ की हिंसा और असहिष्णुता के भिन्न भिन्न रूप हैं। हमें एक तरफ लेनिन और मसोलिनी तथा दूसरी ओर महात्मा गांधी के बीच चुनाव करना है। क्या किसीको इसमें भी सन्देह है कि कौन हिन्दुस्तान की आत्मा का द्योतक है?

तीन वर्ष हुए हिन्दुस्तान ने अपना मार्ग चुन लिया था। उसने अहिंसा और कष्ट-सहन के मार्ग का अवलम्बन किया। उसने शान्तिमय विप्लव के सीधे मार्ग का सहारा लिया। अब उसके पीछे हम हट नहीं सकते। समय समय पर कुछ सुस्ती, कुछ परिवर्तन हो जाना सम्भव है। कभी कभी हम लोगों में निरुत्साह तथा निराशा के भाव भी आ जायं; परंतु एक बार जो बड़ा आदर्श देख लिया गया वह भुलाया नहीं जा सकता तथा एक बड़े आदर्श के लिए जो कष्ट-सहन के मार्ग का अवलम्बन किया गया वह छोड़ा नहीं जा सकता। बारम्बार ऐसे अवसर आयंगे जब बुद्धिमान् लोग बहस करते रहेंगे पर बहादुर लोग बिना नतीजे का विचार किये केवल इसी विचार से प्रसन्नचित्त होते हुए कि हम एक बड़े आदर्श के लिए लड़ रहे हैं, बराबर आगे बढ़ते चले जायंगे। सत्याग्रह की तैयारी के विषय में देश में बड़ी बड़ी बहसें होती रहती हैं। लोगों को संयत बनाने तथा सत्याग्रह की तैयारी के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है परन्तु व्याख्यान और भाषण से जनता में साहस तथा कष्ट-सहने का संकल्प पैदा नहीं किया जा सकता। यह काम केवल व्यक्तिगत उदाहरण से हो सकता है। सम्भव है कि एक साधारण सी बात सारे भारतवर्ष में बिजली दौड़ा दे और हमें एक बड़ा सत्याग्रह आन्दोलन आरंभ करने का अवसर मिल जाय। जबतक वह समय नहीं आता हम लोगों को अपनी शक्ति को दृढ़ करने तथा उसकी परीक्षा करने के लिए बराबर अवसर मिल सकते हैं। हमें इन अवसरों से फायदा उठाना चाहिए और क्रांतिकारी आदर्श तथा व्यवहार को हमेशा जनता के सामने रखना चाहिए। हम लोगों को इन अवसरों के विषय में अधिक चिंता नहीं करनी चाहिए। वे अपने आप आते रहेंगे। हमें ऐसा करना चाहिए कि जब वे अवसर आवें तब हम उनके लिए तैयार रहें।

परन्तु यदि हम अपने जातीय झगड़ों को बुद्धिमत्तापूर्वक तय करने में तथा तास्सुब और भेद-भाव को दूर करने में समर्थ न हो सके तो हमारे कष्टसहन का कोई फल न होगा। थोड़े से लोगों के सिर फूटने में कोई ज्यादा हर्ज नहीं, परन्तु उसके कारण की उपेक्षा नहीं हो सकती। बड़े आश्चर्य की बात है कि छोटी मोटी बात के लिए, तथा बालकोचित अन्ध-विश्वासों के कारण लोग खतरे उठाते हैं और क्रोध के आवेश में बुद्धि से काम लेना भी छोड़ देते हैं। आवश्यक बातें जिनकी अधिक जरूरत रहती है योंही रह जाती हैं, उनपर कोई ध्यान ही नहीं देता। अज्ञानता और धार्मिक आग्रह सारे स्वतंत्र विचारों को नष्ट कर देते हैं। बहस करना तथा दूसरे को विश्वास दिलाना व्यर्थ है। धर्म का पतन हो गया है और इसके नामपर बहुत लज्जाजनक काम किये जाते हैं। सचमुच धर्म बहुत से पाप करने के लिए बहाना मात्र हो गया है। इसमें पवित्रता बहुत कम रह गई है और जगह

बेजगह इसका प्रयोग होने लगा है, सब दलीलें स्वयं खतम हो जाती हैं। हम लोग उस हालत में पहुंच गये से प्रतीत होते हैं जो योरप में "अन्धकार-युग" में प्रचलित थी जब कि स्वतंत्र विचार करना भी बुरा समझा जाता था। मैं समझता हूं कि अब वह समय आ गया है कि वे लोग जो धर्म को उत्तम और पवित्र वस्तु समझते हैं तथा मनुष्य-जाति की उन्नति के लिए स्वतन्त्र विचार आवश्यक समझते हैं अपनी सारी शक्ति से उजड्डपन तथा अज्ञानता का घोर विरोध करें।

अखबारों तथा भाषणों द्वारा जातीय हित की रक्षा के विषय में बहुत कुछ कहा जा रहा है। ऐसी भी खबरें हैं कि इस उद्देश से संस्थायें स्थापित की जा रही हैं। जहां तक मैं समझता हूं इस गर्जन-तर्जन से वास्तविक कार्य का बहुत कम सम्बन्ध है। अपनी असहाय अवस्था के कारण ही हम क्रूर होते हैं और अपने भय को छिपाने के लिए बहादुरी के शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। अपने असली शत्रुओं का मुकाबिला करने में असमर्थ होने के कारण अपने भाइयों और पड़ोसियों पर हमला करते हैं। यही हमेशा से गुलामों का तरीका रहा है। दिल्ली की कांग्रेस ने शान्ति स्थापित करने में बहुत कुछ सहायता की है। आइए, हम लोग कोशिश कर के उन सब आन्दोलनों को बंद कर दें जिनका उद्देश्य दूसरी जातियों पर आक्रमण करने हो और अपने असली उद्देश्य की पूर्ति में ही अपनी सारी शक्ति लगा दें। हम लोगों को आपस में झगड़ने के लिए समय नहीं है।

× × × ×

जो कुछ मुझे कहना था करीब करीब समाप्त कर चुका। मुझे इस बात का स्मरण दिलाने की जरूरत नहीं कि कोई लड़ाई भी जारी नहीं रह सकती, जबतक उसके लिए बराबर तैयारी न होती रहे। यद्यपि यह काम नीरस है तथापि बहुत जरूरी है। हमारी योग्यता और अध्यवसाय की कसौटी विधायक काम के पूरा करने में ही हो सकती है। इसलिए हमें कांग्रेस कमिटियों को मजबूत बनाना चाहिए और खद्दर के संदेशों को घर घर पहुंचा देना चाहिए। महात्माजी ने भी जेल जाते समय यही कहा था। यदि हम उसे भूलेंगे तो हम अपने ही हाथ से अपने ही पांव में कुल्हाड़ी मारेंगे। दिल्ली कांग्रेस ने काम करने के बहुत से तरीके बतलाये हैं। हम सबके लिए, चाहे हमारी राय कुछ भी क्यों न हो, बहुत काफी काम है। काम से छुट्टी पाने के लिए हमारे लिए कोई बहाना नहीं है।

जो कुछ मुझे कहना था मैं कह चुका। मैं ईमानदारी के साथ आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि अब भी मुझे पूरी आशा बनी है। निराशावादियों से मैं सहमत नहीं हूं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिंदुस्तान को राजनैतिक स्वतन्त्रता बहुत जल्द मिलेगी, यदि हमारी कोशिशों से न मिलेगी तो यूरोप और इंग्लैंड की कमजोरियों से मिलेगी। यूरोप की हालत इस समय बहुत ही डांवाडोल है। और यूरोप के विध्वंस का प्रभाव इंग्लंड पर अवश्य पड़ेगा, चाहे वह कितना ही बलशाली क्यों न देख पड़ता हो। लड़ाइयों का क्रम जारी ही रहता है और लड़ाई की अफवाहें एक दूसरी के बाद बराबर आती रहती हैं। यह तब तक चलेगा जबतक सब लोग निजी अनुभव से अहिंसा की शिक्षा ग्रहण नहीं कर लेते। हिन्दुस्तान की आजादी निश्चित है; परंतु मुझे भय है कि कहीं ऐसा न हो कि जब आजादी हमारे पास आवे तब हममें उसका स्वागत करने के लिए वह सच्ची शक्ति और वे गुण न हों जो उसके लिए आवश्यक हैं। और मुझे यह भी भय है कि हमारा देश सारे संसार के लिए उज्वल उदाहरण होने के स्थान में पश्चिम के देशों की एक भद्दी नकल न बन जाय। हमें दूरदर्शी होना चाहिए और अभी से इनसे बचने का उपाय करना चाहिए, साथ ही हिन्दुस्तान को बड़ा और मजबूत बनाने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि वह देश अपने उस बड़े नेता के उपयुक्त बन सके जो हमें ईश्वर ने दिया है।"

बंबई म्युनिसिपालिटी का प्रस्ताव

श्री विठ्ठलभाई पटेल को बंबई-म्युनिसिपालिटी में भारी विजय प्राप्त हुई है। पिछले सप्ताह उनका यह प्रस्ताव बड़ी बहुमति से पास हुआ—

"११ सितंबर की टाउन हाल की सभा के प्रस्ताव के अनुसार इस मंडल की यह राय है कि हिन्दुस्तान को छोड़कर ब्रिटिश साम्राज्य के किसी भी हिस्से में बना किसी प्रकार का माल इस म्युनिसिपालिटी के किसी विभाग में न इस्तेमाल किया जाय और न इसका कोई ठीकेदार उसे काम में लावे—बशर्ते कि वह चीज दुनिया के किसी हिस्से में न मिलती हो।"

इस प्रस्ताव पर खूब चर्चा हुई। और विरोध-पक्ष के कितने ही अंगरेजों ने अंक पेश कर के पूछा कि जिन चीजों को जर्मनी से मंगाने में लाखों रु० ज्यादा लगेंगे, जिस माल को अमेरिका से आने में दस साल लगेंगे और जर्मनी से आते तीन साल दरकार होंगे, उसके लिए आप क्या करेंगे? श्री विठ्ठलभाई ने अंकों की तफसील में न पड़ कर उत्तर दिया कि "लोगों को चाहे कितनी ही मुसीबतें क्यों न झेलनी पड़े, हम तो अंगरेजी माल के बहिष्कार पर तुले हुए हैं।" इससे आगे चल कर आपने कहा—"भारतीय जनता तो इस बहिष्कार के लिए कटिबद्ध हुई है और हम देश के कोने कोने में हर शहर, कस्बे, गांव और झोंपड़ी में घूम घूम कर लोगों के दिल में ऐसे भाव पैदा करेंगे कि जिससे चीज के हाथ में लेते ही वे कह उठें—यह तो ब्रिटिश साम्राज्य की बनी है—इसे हम नहीं छू सकते। यदि हिन्दुस्तानी लोग इस समय कुछ न करना चाहते हों तो उनका जीवित रहना फजूल है। यदि वे इस मौके को खो देंगे तो उनका सत्यानाश ही समझिए।" हां, हम यह जरूर चाहते हैं कि विठ्ठलभाई अपने इन शब्दों को सच करके दिखा दें। तीन बरसों से खादी-प्रचार करते हुए भी हम अब तक हर गांव और शहर के लोगों को खादी की लगन न लगा सके। अब केवल विदेशी कपड़े की ही नहीं, बल्कि तमाम अंगरेजी माल के बहिष्कार की लगन लोगों को लगानी है। फिलहाल इस बात को एक ओर रख कर कि यह बहिष्कार होना मुमकिन है या नहीं, और ब्रिटिश माल को छोड़ कर दूसरे देश के आश्रित बनने की इस नीति में कितना धर्म-भाव है, हम तो श्री. विठ्ठलभाई तथा उनके साथियों से यही प्रार्थना करेंगे कि कृपा कर के लोगों को भरमाइए नहीं, उन्हें एक ही बात पर अटल और दृढ़ बने रहने के बजाय बीसों बातें सुझा कर एक बात के करने से भी न रोकिए। (नवजीवन)

प्रभा का झण्डा-अंक

'प्रभा' हिन्दी की एक राजनैतिक मासिक पत्रिका है। इस बात में वह हिन्दी के तमाम मासिक पत्र-पत्रिकाओं से बढ़ी-चढ़ी है। नागपुर-सत्याग्रह की समाप्ति के एक-डेढ़ महीने के भीतर ही उसने अपना एक राष्ट्रीय झण्डा-अंक प्रकाशित किया है। राष्ट्रीय युद्धों के अवसर पर इस प्रकार विशेषांक निकाल कर इससे पहले भी "प्रभा" ने एक-दो बार हिन्दी-जनता के सामने वांछनीय ज्ञान-सामग्री पेश की थी। यह झण्डा-अंक विषय की सांगोपांगता, सरस और अधिकार युक्त विवरण, चित्र-संख्या, आदि दृष्टियों से एक अभिनंदनीय वस्तु हुई है। यदि किसीको नागपुर-सत्याग्रह-संग्राम के सिद्धान्त, रहस्य, विश्वसनीय विवरण, वीर सैनिकों और सेनानायकों के अनेक चित्र, सब बातें एक ही जगह देखना हो तो मैं उन्हें प्रभा के इस झण्डा-अंक को पढ़ने की सिफारिश करूंगा। इस अंक

अभिमान के वचन

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए ,, ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक ११

सम्पादक—हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, कार्तिक बदी ७, संवत् १९८०
रविवार २८, अक्तूबर, १९२३ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

मौलाना महम्मदअली की मुलाकात

[मौलाना महम्मदअली साहब अजमेर जाते हुए एक दिन अहमदाबाद ठहरे थे। उस समय उनसे मुलाकात करने का अच्छा मौका मिला था। गुरुवार दोपहर को आप 'नवजीवन' के दफ्तर में पधारे थे। 'नवजीवन' के लोग उनके दर्शन के लिए एकत्र हुए थे। उनसे मौलाना साहब ने दो चार हृदयस्पर्शी बातें कही थीं—

"आप लोग एतिहासिक काम कर रहे हैं। पचास वर्ष बाद जब हमारी इस लडाई का इतिहास लिखा जायगा तब लोग उसमें आपके इस काम का वर्णन करेंगे। बापूजी के लिखे लेखों को हाथ में ले कर छापने का सौभाग्य प्राप्त करना कोई ऐसा-वैसा काम नहीं है। यह पैसे का सवाल नहीं है। पैसा तो आपको यहां भी मिलता है और किसी भी दूसरे छापखाने में मिल सकता है। परन्तु एक ऐसे काम में जो इतिहास में लिखा जायगा, हाथ बंटाने का जो सौभाग्य आपको यहाँ मिल रहा है वह दूसरी जगह कहीं नहीं मिल सकता। जिस छापखाने में बापू के हस्ताक्षर छापे जाते हों वहां मैं तो पाई साफ करने का भी काम करने को तैयार हूं।"

इतना कह चुकने पर मौलाना गद् गद् हो गये और वे आगे न बोल सके। शाम को वर्तमान स्थिति पर उनके साथ शान्तिपूर्वक बहुत-सी बातें हुईं, जिनका सार नीचे दिया जाता है—

स० ह० दे०]

सिक्ख-प्रकरण

सवाल—सिक्खों के साथ आप बहुत समय हाल ही में बिता आये हैं। उनकी स्थिति पर आप कुछ प्रकाश डालिएगा?

जवाब—वे लोग बडी हिम्मत के साथ काम कर रहे हैं। एक तो छोटी-सी जाति, फिर तमाम बडे बडे नेता गिरफतार हो चुके। अब अच्छे जानकार आदमी थोडे रह गये हैं। सरकार ने एक-सपाटे में छोटे-बडे सब लोगों को मुंह में डाल लिया है। इससे उनकी हालत नाजुक हो गई है। पर उन्हें सच्ची-तालीम मिली है। इससे उनके यहां वह बात नहीं हो सकती—जो हमारे यहां हो गई। हमारे यहां तो हमारे नेताओं के चले जाने के बाद हममें कुछ भी करने की हिम्मत नहीं रह गई। वहां ऐसा नहीं होगा। वहां तो जितने चाहिए उतने आदमी मिल जायंगे।

खुदा का शुक्र है कि इन लोगों में कोई कानून-दाँ और कानून के गली-कूचों के उस्ताद नहीं हैं। इससे वे काम सीधे तरीके से कर सकते हैं। वे कानून-कायदे का जाल बुनकर उसमें अपनेको फंसाना नहीं जानते। हमारे यहां 'सविनयभंग-समिति' पैदा हुई उससे धारासभा का कोई वास्ता नहीं था। पर उसमें से बिना बाप के बालक की तरह 'धारा-सभा-प्रवेश' निकल पडा। सिक्खों के यहां ऐसा नहीं हो सकता।

सवाल—पर ये ऐसे लोग धारा-सभा में जानेके लिए क्यों तैयार हो गये थे?

जवाब—उनपर हमारे वायु-मण्डल का प्रभाव पडा। और दूसरा कारण यह कि उनके सामने धर्म का सवाल है। उन्हें इस बात का डर था कि ऐसे लोग जिन्हें उनके धर्म की गंध तक नहीं थी यदि वहां चले गये तो उनके धर्म को ले डूबेंगे। उनकी जाति की बात हो चुकी है। उनके सामने यह कौमी सवाल था। पर अब तो यह सवाल रही नहीं गया, सब चले घर जाकर बैठ गये हैं।

सवाल—अब उनका कार्य-क्रम क्या है?

जवाब—प्रबंधक कमेटी हार जाने वाली नहीं है। वह जितने चाहिए उतने आदमी भेज सकती है। मैंने तो उनसे कहा कि अब यही समझिए कि अमृतसर एक बडा जैलो बन गया है। और अमृतसर पर ही अपनी सारी शक्ति लगा दीजिए। उन्होंने कहा कि हमें जैतो में आदमी भेजना अधिक अनुकूल पडता है। वहां आसपास के बहुतेरे लोग मिल जाते हैं और यहां से वहां भेजने की झंझट नहीं करनी पडती। पर मैं समझता हूं कि वे अन्त को अमृतसर पर ही अपनी सारी शक्ति एकत्र करेंगे।

देश को आह्वान

स०—आपकी राय में अब हमारा क्या कर्तव्य है?

ज०—मैं तो समझता हूं, और मैंने उनसे कह दिया है कि यह तो सारे देश को चुनौती है। पहले छोटी जाति को चुनौती दे कर फिर बडी जातियों को सरकार ललकारेगी। कल को मुसल्मान और परसों हिन्दू—इस प्रकार एक के बाद एक जाति की खबर ले कर हमारे तमाम जातियों को तहस-नहस करने का इरादा वह कर रही है। मैंने तो उनसे कहा कि आप हमारी सब से आगे वाली सेना हैं। नेपोलियन जब लडाई के लिए जाता था तब संगठित हो कर बढिया से बढिया चुनींदा सैनिकों को वह सब से आगे रखता था। इसन

कवि नेपोलियन के सैनिकों की तुलना सीजर के बहादुर सैनिकों के साथ कर के कहता कि वे यह कह कर सब से आगे बढते-"जहांपनाह, हम मरने के लिए आगे बढ रहे हैं।" संख्या-बल को वह हमेशा पीछे रखता था और शौर्य-बल को आगे। हम नेपोलियन नहीं। हमें तो लाचार हो कर पीछे 'रिजर्व' में रहना पडा है; पर मैं आपको इतना यकीन दिलाता हूं कि आपमें से यदि एक भी न बच रहे तो यह न समझिएगा कि लडाई खतम हो गई। एक मोरचा खो जाने पर भी लडाई तो जारी रहेगी ही।

"रीडिंग सा. शौक से कुछ 'रन' ज्यादह करें"

सवाल—'टाईम्स' ने आपपर जो टीका-टिप्पणी की है उसे तो आपने देखा ही होगा ?

जवाब—हां, टाईम्स को तो मेरे तमाम कामों और हल-चलों में परस्पर विरोध दिखाई देता है। मेरे यह कहने का कि सरकार को दिक करने की जरूरत नहीं है, आशय यह था कि अब सरकार को खेल दिखलाने का वक्त नहीं है। सरकार की खिल्ली उडाते रहेंगे तो हमें अपने काम के लिए फुरसत कब मिलेगी? हमें तो खुद अब अपने गुण-दोषों को देखने की और अपना सुधार करने की जरूरत है। दो साल से लार्ड रीडिंग दांव खेल रहे हैं। वे अभी और खेलना चाहते हैं। तो हम उन्हें दांव देते रहने के लिए तैयार हैं। उनके 'रन' कम हो गये हों तो शौक से बढा लें!

खुदा की जगह ले बैठे

सवाल—लार्ड रीडिंग का भाषण आपको कैसा मालूम हुआ ?

जवाब—मुझे सरकार के खिलाफ एक भी शब्द नहीं कहना। पर लार्ड रीडिंग तो सम्राट् के प्रतिनिधि होकर आये हैं और ऐसी बातें कहते हैं। इसलिए मुझे कुछ कहना पडता है। दूसरी बातों को जाने दें, पर नाभा के संबंध में उन्होंने जिस ढंग से बात कही है वह तो वैसा ही है जैसा कि फैरो ने मूसा के संबंध में अख्त्यार किया था। तुम्हारा खुदा कौन है? मैं हूं तुम्हारा खुदा। उनके शब्द तो देखिए—मैं आप सबको चेताये देता हूं कि नाभा के महाराज अब हमेशा के लिए गद्दी से उतर गये—अब फिर उन्हें गद्दी नहीं मिल सकती। परमात्मा के सिवा दूसरा कोई इन शब्दों को अपनी जबान से नहीं निकाल सकता। मुझे तो अच्छी तरह मालूम होता है कि **जिस सरकार का प्रतिनिधि ऐसे अल्फाज अपनी जबान से निकालता है उसे मिटाने के लिए असहयोग की जरूरत नहीं, वह तो अपने आप मिट जायगी।** इस्लाम का अल्लाह हासिद (बदला लेने वाला) नहीं है। परन्तु यहूदियों का अल्लाह तो हासिद है। और रीडिंग ने खुद अपने अल्लाह की गद्दी पर बैठने का दावा किया है। इसे वह सहन नहीं कर सकता। ऐसी अभिमान-भरी बातों के लिए उनका अल्लाह उनसे जवाब तलब कर लेगा। मेरा तो खयाल है कि यदि अकाली लोग कुछ भी न करें तोभी यहूदियों का बदला लेनेवाला ईश्वर अपना पूरा पूरा बदला चुका लेगा।

अपने हृदय में प्रकाश डालो

स०—आपने जो अपने हृदय में 'सर्च लाइट' डालने की सलाह दी है उसे जरा विस्तार के साथ समझाएगा ?

ज०—हां, बहुत खुशी से। मैं चाहता हूं कि सब उसे अच्छी तरह समझ लें। ज्यों ज्यों मैं इधर-उधर ज्यादह घूमता हूं, देश के भिन्न भिन्न भागों की हालत देखता हूं और सोचता हूं त्यों त्यों मुझे यह बात सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट दिखाई देती है। स्वराज्य-दल वालों की सचाई और ईमानदारी पर मुझे जरा भी सन्देह नहीं। पर वे पश्चिमी तरीकों में फंस गये हैं। राजनीति उनकी दृष्टि में एक प्रकार की चौसर का बाजी है। राज-नीति को धर्म का स्वरूप देने की बात को वे नहीं समझे, यदि समझे हों तो उन्होंने उसे माना हरगिज नहीं है। हिन्दुस्तान की राज-नीति पश्चिम की गन्दी गटरों में पडी थी। महात्माजी ने उसमें से उसे निकाल कर शुद्ध हवा में रख दिया। **उन्होंने राजनीति की अशुद्ध धातु को अपने पारस-स्पर्श के द्वारा कुंदन बना दिया।** चरखे को वे एक धार्मिक कर्तव्य समझ कर चलाते हैं और लोगों के सामने उसे उन्होंने इसी भाव से रक्खा। लडकों से भी उन्होंने कहा "तुम्हारे रसायन-शास्त्र और कला-कौशल को उठाकर ताक पर रख दो। यदि देश के लिए तुम कर्तव्य समझ कर मिट्टी भी खोदोगे, बरतन भी मलोगे तो इससे तुम्हारा कल्याण होगा।" यह भाव इन लोगों में मुझे कहीं नहीं दिखलाई देता।

हम लोगों में भी त्रुटियों की कमी नहीं है। 'हम लोगों' में मैं भी शामिल हूं—क्योंकि मैं खुद अपनेको 'अपरिवर्तनवादी' मानता हूं—भले ही अपरिवर्तनवादी लोग मेरी नुक्ता-चीनी क्यों न करते रहें। **हमें यह बात जान लेना चाहिए कि हम इस कहावत को चरितार्थ न करें "सांप चला गया और केंचुल रह गई"। आत्मा के बिना परमात्मा नहीं हो** सकते। यहूदी लोग जिस प्रकार बाहरी आचार के पुजारी थे उस प्रकार हमें भी बाहरी बातों के पुजारी न हो जाना चाहिए। हमें चाहिए कि हम अपने हृदय में प्रकाश डालें। हजरत महम्मद साहब ने फरमाया है कि **जब नमाज पढो तब यह मानो कि तुम खुदा को देख रहे हो। अगर तुम इतना न कर सको तो कम से कम इतना मान कर नमाज पढो कि खुदा तुमको देखता है।** यदि हम दो में से एक भी न करेंगे तो कहीं के न रहेंगे। हमें झूठी मूर्ति-पूजा छोड देनी चाहिए।

मैंने सरकार के साथ लडाई बन्द कर देने की बात कभी नहीं कही। सरकार के साथ हमारी लडाई बन्द किस तरह हो सकती है? जहां सिद्धान्तों की लडाई चल रही है, जहां एक पक्ष दूसरे को गुलाम बनाये रखने की कोशिशें कर रहा है तहां दूसरा पक्ष लडाई किस तरह बन्द कर सकता है? मेरा कहना इतना ही है कि हमें लडाई के लिए मजबूत तैयारी करनी चाहिए। हमारी मौजूदा लचर तैयारी से काम नहीं चल सकता। **हमें अपना जिरह बख्तर उतारने की मुत्लक जरूरत नहीं। बख्तर में जहां कहीं छेद हो गये हैं, टूट-फूट हो गई हैं उन्हें हम दुरस्त कर लें और फिर धावा बोल दें।** जहाज में छेद हो गये हैं। उन्हें दुरस्त कर के लडाई लडें—जहाज को छोड कर किनारे बैठ जाने की जरूरत नहीं है।

और खुलासे से कहता हूं। चौरीचौरा-काण्ड के बाद बापू ने कहा कि 'अहिंसा' भाव को बढाओ! जहां देखिए तहां हिंसा-काण्ड हो रहे हैं। हमने उनके कहने के अनुसार 'हिंसा' को छोड दिया पर साथ ही, असहयोग को भी छोड दिया। मैं कहता हूं कि **हिंसा को छोडना बेहतर हुआ, पर असहयोग को छोडना खतरनाक है। असहयोग को छोड देना मानो कायरता का अंगीकार करना है। और कायरता की अपेक्षा तो बापू ने हिंसा को ज्यादह पसन्द किया है।** धारासभा के संबन्ध में मुझे सहयोग ही होता हुआ दिखाई देता है। धारासभाओं का त्याग करने से ही असहयोग हो सकता है। जो ऐसा नहीं मानते वे अपने ईश्वर के दरबार में जवाबदेह होंगे। मुझे उनसे वास्ता नहीं। मैं तो कहता हूं कि कयामत के दिन अल्लाह मुझे उनके साथ नहीं खडा करेगा। मैं खादी पहनने

वालों से भी कहता हूं कि महज खादी पहनने पर सन्तोष मान लेने से काम नहीं चलेगा, अकेले खादी पहनने में देश-सेवा नहीं है, देशद्रोह है, चोरी है। खादी पैदा किये बिना उसे पहनने का उन्हें कोई हक नहीं है।

धारासभा का रास्ता—कहां हो कर?

सवाल—अमृतसर के भाषण में आपने धारासभा-प्रवेश के संबंध में कुछ बातें कहीं हैं। उन्हें जरा स्पष्ट कीजिएगा?

जवाब—इसमें रिपोर्टरों का दोष है। मेरे एक भी भाषण की रिपोर्ट ठीक ठीक नहीं की गई है। कितने ही लोगों को तो मैंने एक एक शब्द लिखवाया है। फिर भी उन्होंने गड़बड़ कर ही दिया है। १९२० में 'पायोनियर' ने मुझे और शौकतअली को एक बात सुझाई थी। उसका उल्लेख मैंने वहां किया था। 'पायोनियर' ने हमारी शक्ति और हमारे नेतृत्व की खूब प्रशंसा करके हम से 'अपील' की थी कि आपके सदृश लोगों को तो धारासभाओं में जाकर जन-समाज को राह दिखानी चाहिए। उस समय मैंने अपने कराची के भाषण में उसका जवाब दिया था और वह अमृतसर के भाषण के समय याद हो आया। अमृतसर की उस गली की याद हो आई जिसमें जनरल डायर ने लोगों को पेट के बल चलाया था और मैंने कहा—धारासभा में जाने का रास्ता उस गली में से होकर है जहां लोग पेट के बल चलाये गये थे। पेट के बल रेंगे बिना वहां नहीं जाया जा सकता। और धारा-सभा के दरवाजे पर वे मनियांवाला की बहनें "गार्ड आफ् आनर" के तौर पर हैं जिन्हें जबरदस्ती घूंघट खुलवा कर बेइज्जत किया गया था।

शुद्धि

सवाल—शुद्धि के संबंध में भी आपके विचार उस भाषण में प्रकट हुए हैं। जरा उन्हें भी तफसील से समझाइएगा?

ज०—'शुद्धि' का मुझे जरा भी डर नहीं। यदि मैं उससे डरता तो सब काम छोड़ कर पहले शुद्धि के खिलाफ काम उठाता—क्योंकि किसी सच्चे मुसल्मान को फुसला कर यदि कोई उससे उसका मजहब छुड़ाना चाहे तो यह कभी गवारा नहीं हो सकता। पर आजकल जिस धर्मान्तर की बातों की पुकार मचाई जा रही है—इसकी मुझे जरा चिन्ता नहीं। हमें जिस बड़े धर्मान्तर के खिलाफ लड़ना है, उसे भूले ही जा रहे हैं। सारी पृथिवी को खुला छोड़ कर हम एक तंग गली में गोते खा रहे हैं। जजीरतुल अरब में क्या हो रहा है, इसका हमें खयाल नहीं। वहां कितने ही ईसाई मिशन मौजूद हैं। वहां अरबों की शुद्धि हो रही है। पैगम्बर साहब की जन्मभूमि में और कब्रस्तान में धर्मान्तर हो रहा है उसका हमें अफसोस नहीं होता; पर यदि मलकाने हिन्दू होते हैं तो उसपर हम बिगड़ उठते हैं। मैंने तो मुसल्मानों से साफ साफ कहा है कि हिन्दुओं का सरदार तुम किसे मानते हो? उसे जिसने नागपुर में महासभा का संगठन किया था, या दूसरे संगठन करनेवालों को? संगठन से डर कर तुम जितने ही भागोगे, जितना शोर-गुल मचाओगे उतना ही तुम हिन्दुओं को डराओगे और संगठन की ओर प्रेरित करोगे। हमारे दरमियान तफरके का समुन्दर खड़ा है। उसमें हम अपने अपने स्वार्थों और बड़प्पन की ठसक में भूल कर और भी ज्यादह पानी उंडेल रहे हैं और सागर को अधिक चौड़ा बना रहे हैं। इस सागर को एकबारगी मैदान बना देना मुश्किल है; पर यदि हम अपने अन्ध स्वार्थों और महत्वाकांक्षाओं को बन्द कर दें तो उस सागर को सुखाने में हम सहायता कर सकते हैं।

सवाल—आगरा, अजमेर और सहारनपुर जैसी खेदजनक घटनाओं को रोकने के लिए आप क्या उपाय बताते हैं?

जवाब—मैं समझता हूं कि हिन्दुओं और मुसलमानों में जो लोग तटस्थ हैं उन्हें अपना जोर अधिक दिखाना चाहिए। उन्हें धर्मान्ध हिन्दुओं और धर्मान्ध मुसलमानों को फटकारें बतानी होंगी। यदि वे तटस्थता न छोड़ेंगे तो धर्मान्धता बढ़ेगी, तटस्थता ज्यों ज्यों बढ़ती है त्यों त्यों धर्मान्धता का जोर भी बढ़ता है। ज्यों ज्यों तटस्थता घटती है त्यों त्यों धर्मान्धता के हाथ-पाँव ढीले पड़ते हैं।

बड़ी बड़ी आशायें

मैं तो हर बात में यह मानता हूं कि जब हम अपने हृदय में प्रकाश डालेंगे, अपनी सच्ची आत्मशुद्धि करेंगे तभी हम कुछ कर सकेंगे। झूठी धमकियों से कुछ होने-जाने वाला नहीं। साम्राज्य से अलग होने की बातें चल रही हैं। कौन शख्स यह न चाहेगा कि देश स्वतन्त्र हो। यह तो कोई मान ही नहीं सकता कि मैं देश की आजादी नहीं चाहता। पर हमारी तैयारी तो जरा भी नहीं है। मेरे गुरु को तो अहिंसामय असहयोग में इतना विश्वास था कि वे कहते कि सरकार को साम्राज्य के ही अन्दर स्वराज्य देने पर मजबूर होना पड़ेगा। हमने उस असहयोग को पूरा करने के लिए कुछ भी नहीं किया—किया है केवल बड़ी बड़ी बातें। आशायें बड़ी बड़ी कर रहे हैं और आपस के लड़ाई-झगड़ों में बरबाद हो रहे हैं। पहले बारडोली-कार्यक्रम पूरा कीजिए और फिर भी यदि सरकार हमारी मर्जी के खिलाफ शासन-संचालन करती रहे तो मैं पहला आदमी हूंगा जो पूर्ण स्वाधीनता का झण्डा ले कर आगे बढ़ जाऊंगा। हम केनिया के लिए शिकायत करते हैं, पर घर की छुआछूत हमसे छोड़ी नहीं जाती। यदि हमें केनिया की हालत पर सचमुच अफसोस है तो हमें इस घर के केनिया को पहले मिटाना चाहिए। पर हम बातें बड़ी बड़ी करना जानते हैं। लखनऊ के एक आला शायर ने कहा है—

तसव्वुर अर्श पर है, और सर है पाये साकी पर
गरज कुछ और ही धुन में इन दिनों मयख्वार बैठे हैं

अर्थात् आँखें तो लगाई हैं हमने खुदा के तख्त पर; लेकिन सिर झुका रक्खा है साकी के पैरों पर। इन शराबियों की तरह हम अजीब नशे में मस्त हो कर बैठे हैं!

'काबा में ही काफिर'

मैं-गुजरात की हालत मैंने आपको सुनाई ही है। वहां तो 'मेनिफेस्टो' निकले हैं। और कितने ही लोग स्वराज्य-वादियों को मत दिलाने की धूम-धाम कर रहे हैं!

मौलाना—ये कौन लोग हैं?

मैं—कट्टर असहयोगी और महात्माजी पर अनन्य भक्ति रखने वाले खेड़ा-सत्याग्रह में लड़ने वाले, नागपुर-जेल में हो आने वाले।

मौलाना—तो मैं आपसे कहता हूं कि यह सुन कर मेरी रूह कांप रही है। यदि मेरे समझौते प्रस्ताव का यह अर्थ हो सकता हो तो मेरे इस प्रस्ताव पर लानत है—ईश्वर मुझे इस पाप के लिए माफी बख्शे, मेरी इस्तदुआ उससे है। दूसरे लोग यदि ऐसा करें तो वह समझ में आ सकता है; परन्तु महात्माजी के खेड़ा के अनुयायी ऐसे 'मेनिफेस्टो' निकालें, अपनेको धारासभा के खिलाफ कहनेवाले लोग स्वराज्य-दल वालों को सहायता करने की बातें करें, यह तो वैसा ही है कि जहां से शुरू किया था वहीं आकर हम खड़े रह गये। यह बात सुन कर मुझे बड़ा अफसोस हो रहा है। स्वराज्य-दल वालों को हम किसी प्रकार की मदद नहीं दे सकते, किसी प्रकार उन्हें उत्साहित नहीं कर सकते। खेड़ा में इन बातों का होना मुझे—

"चोकुफ़ अज काबा बरख़े जद कुजा मानद मुसलमानी" (यदि काबा से ही काफ़र होने की शुरुआत हो तो फिर इस्लाम को बचे रहने के लिए कहां जगह रहे ?) इन शब्दों की याद दिलाता है। यदि सेवा में ही ऐसा होने लगा तो फिर महात्माजी का नामनिशान कहां रहेगा ?

मैं—पर इसका फल हमें भोगना पड़ेगा। कोकोनाडा में हमें देखना होगा।

मौलाना—कोकोनाडा में क्या देखेंगे ? हिन्दू-लोग यदि महात्मा जी को छोड़ना चाहें तो छोड़ दें, मैं उन्हें नहीं छोड़ सकता। मैं समझता हूं, कोकोनाडा में हमें यह समझकर कि पिछले तीन साल की मिहनत बरबाद गई, फिर नागपुर से शुरू करना होगा। हां, यह बात सच है कि फिर असहयोग का सारा कार्यक्रम ज्यों का त्यों रखना होगा—यह समझ कर मानों अभीतक कुछ हुआ ही न था।"

हिन्दी-नवजीवन

जेल-दिन ५९८, रविवार, कार्तिक बदी ४, सं. १९८०

अभिमान के वचन

बड़े लाट के भोज-पश्चात् किये भाषण के संबन्ध में, पाठक उस बात को न भूले होंगे जो महात्माजी ने तीन साल पहले उनके विषय में कही थी—"या तो वे नौकरशाही को निगल जायंगे या नौकरशाही उनको निगल जायगी।" हम लोग किसी सत्कार्य के आरम्भ में उपवास और प्रार्थना आदि करते हैं। बाइबल में भी उपवास और प्रार्थना की महिमा स्थान स्थान पर गाई गई है। सच्चे ईसाई आज भी अपने चित्त की शुद्धि और शान्ति के लिए उपवास करते हैं। पर सरकार को और उसके अधिकारियों को चित्त-शुद्धि की क्या परवाह ? उनके भाषण बढ़िया बढ़िया भोज के उपरान्त, उससे उत्पन्न तन्द्रा की झोंक में, होते हैं। उन्हें यह तरीका पसन्द है। बड़े बड़े हाकिमों की यह एक स्वीकृत प्रथा हो गई है। और भोज-पश्चात् हुए भाषण में गर्व, अहंकार, प्रमाद के वचन निकलें तो आश्चर्य क्या है ?

वाइसराय का पिछला भाषण इसी प्रकार का था। उसकी दो ही बातों की ओर हमारा ध्यान जाने की जरूरत है। एक तो स्वराज्य-दलवालों को धमकी और दूसरी सिक्खों को—और उनकी मार्फत लोगों को धमकी। जब वाइसराय यहां आये तभी महात्माजीने उन्हें चेतावनी के तौर पर दो अल्फ़ाज कहे थे कि "देखना, आप 'लिबरल' बन कर यहाँ आ रहे हैं, एक न्यायाधीश [illegible] के आ रहे हैं, यह सर्वभक्षी नौकरशाही कहीं आपको निगल न जाय।" पर उनके वचन यह साबित कर रहे हैं कि नौकरशाही उन्हें निगल गई है और वह भी इस हद तक कि 'लिबरल' [illegible] अखबार 'मोर्निंगपोस्ट' आज मुक्तकंठ से उनकी [illegible] है और उन्हें शाबाशी देता है।

स्वराज्य-दल वालों को जो धमकी उन्होंने दी है उसका सार यह है कि अगर तुम्हारी मुराद पूरी हुई तो तुम सुधारों का गला [illegible]-सरकार का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। स्वराज्य-दल के लोगों की आशा चाहे पूरी हो या न हो, पर जब वे लोग नहीं थे तब भी लॉर्ड रीडिंग ने अबाध शासन-संचालन करने का प्रयोग कर देखा है—धारासभा को ताक पर रख कर उन्होंने अपनी बाजी खेली है। अब स्वराज्य-दल वालों से वे कहते हैं—तुमही क्यों तुमसे भी बड़े लोग चले भले आवें—हम अपना राज्य चलाना जानते हैं। तुम हमें नहीं रोक सकते। हमारे यंत्र के कील-पुरजे तुम नहीं बिगाड़ सकते। ये वचन किसी समझदार आदमी के नहीं—अनुभव से अक्ल सीखनेवाले शख्स के नहीं हैं। ऐसा मालूम होता है वे अपने १९२१ के चिन्ताजनक दिनों को एक अशुभ स्वप्न की तरह भूल गये हैं। अपने इन वचनों की झनकार तक शायद अब उन्हें न सुनाई देती हो—

"सर्व पक्षीय परिषद् की जाय; पर हम या आप किसी भी पक्ष के लोग यह न कहें कि जीत हमारी हुई।"

इससे यह जाना जाता है कि लार्ड रीडिंग फौजी-राज देश में लाना चाहते हैं। धारासभा की परवा उन्होंने किस दिन की या आज ही कहां कर रहे हैं ? आज तो वे अपनी पुरानी सनक की पुनरुक्ति कर रहे हैं कि धारासभा के बिना भी राज्य करना हम जानते हैं। ऐसा राज्य कितने दिनों तक चलेगा, यह दिखाना लोगों का काम है। आज तो 'लीडर' जैसे अखबार का भी ख्याल बदल गया है और वह कहता है कि "हम चाहते हैं कि कोई फौजी आदमी वाइसराय बन कर यहां आवे जिससे लोगों में अधिक जीवन आवे और आजादी का रास्ता साफ हो जाय।" सो फौजी वाइसराय के आने की जरूरत नहीं रही, सर डगलस हेग जैसों को भेजने की भी जरूरत मन्त्रि-मण्डल को नहीं रही, लार्ड रीडिंग ने मन्त्रि-मण्डल को आश्वासन दे दिया कि "मैं भी फौजी वाइसराय हो सकता हूं।"

नाभा के संबंध में उन्होंने जो बातें कहीं हैं उनपर उससे अधिक क्या कहा जाय जो मौ० महम्मदअली अपनी बातचीत में कह चुके हैं। लार्ड रीडिंग को होश नहीं है। रावण ने भी ऐसे वचन कहे थे—"राम है कौन चीज ?" ऐसे ही गर्व के वचन लार्ड रीडिंग ने कहे हैं—मेरा किया मिट नहीं सकता। नाभा-नरेश अब सदा के लिए गद्दी से उतर चुके। अब वे फिर नहीं बैठ सकते।' मौलाना सा० ने एक ही शब्द में मुझे कहा कि यह 'गाड-लेस' भाषण है—वे खुदा की जगह लेना चाहते हैं।" यह कह कर उन्होंने यहूदियों के इतिहास का एक किस्सा कहा। उसका उल्लेख उनकी बातचीत में हो चुका है। कहानी थोड़े में सुनने लायक है। मूसा ईश्वर का यह आदेश ले कर मिसर के राजा के पास गया कि तू हमारे लोगों को छोड़ दे। मिसर के राजा फेरो ने कहा—यह ईश्वर है कौन, जो मैं उसके इस हुक्म को कि यहूदियों को छोड़ दो, मान लूं। मैं किसी ईश्वर-वीश्वर को नहीं जानता। मैं यहूदियों को हरगिज नहीं छोड़ने का"। फिर ईश्वर अनेक प्रकार के चमत्कारों के द्वारा अपना प्रकोप मिसर पर प्रकट करता है—पानी में खून मिला देता है, विषैले जन्तुओं की वर्षा करता है, अकाल और बीमारियों को भेजता है और अन्त को फेरो को कहना पड़ता है, "मैंने बड़ा पाप किया, ईश्वर न्यायी है, मैं और मेरे लोग दुष्ट हैं।" इन वचनों का उच्चारण करने के बाद फेरो फिर ईश्वर को मानने से इनकार करता है और अधिक कष्ट उठाता है। यहूदियों के वंशज लार्ड रीडिंग के मुंह से फेरो की वाणी शोभा नहीं देती; पर यदि उन्हें अपने इन वचनों पर पश्चात्ताप न होता हो तो मौलाना सा. फरमाते हैं कि यहूदियों का अल्लाह बदला लेने वाला है।

यहूदियों का अल्लाह बदला ले या न ले, इससे हमें कुछ गरज नहीं, हमने तो वैर-भाव छोड़ कर अपनी लड़ाई शुरू की है। ओड्वायर और डायर जैसे भी यदि पेन्शन छोड़कर रहना चाहें तो भले रहें। देश प्रतिज्ञा कर चुका है, वह उनसे बदला नहीं लेगा। इससे पहले कि अंगरेजी सरकार के प्रतिनिधि के मुंह से ये वचन निकलें "मैंने बड़ा पाप किया-ईश्वर न्यायी है, मैं और मेरे आदमी ही

ही दुष्ट हैं।" हमें खुद शुद्ध होने की जरूरत है—शुद्ध असहयोगी होने की जरूरत है—जहां से भूले फिर वहीं से शुरूआत करने की जरूरत है। ईश्वर को सरकार के साथ जो कुछ करना हो करता रहे—अभिमान के सबबों का जो कुछ फल उसे देना हो देता रहे—पर हम ईश्वर-विमुख नहीं हो सकते। हम उसे हमेशा अपनी नजरों के सामने रख कर अथवा इस भाव से कि वह हमें देख रहा है काम करते रहें। बस इसी में सब तरह कुशल है।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

देश-दर्द की कमी

हाल ही में कलकत्ते में एक खादी-मेला किया गया था। उसमें आचार्य श्री प्रफुल्लचन्द्र राय ने कोई एक घण्टे तक अपने हृदय को खोला। चरखा और खादी के संबंध में जो आग उनके दिल में धधक रही है उसका एक अंश भी यदि हम सब लोगों के अन्दर आ जाय तो हम और हमारा देश कृतार्थ हो जायं। उनके उस भाषण का सार यहाँ दिया जाता है—

"खादी और चरखे के संबंध में मैंने अनेक भाषण किये हैं, अनेक लेख लिखे हैं और सारे देश में कोई दो हजार मील के घेरे में घूमा हूं। पर हम लोग अफीमची से हो रहे हैं। हमारी नींद इतनी जबरदस्त है कि उसे छुटाने के लिए बिजली की बैटरी दरकार होती है।

कोई एक साल पहले मैं इसी बड़बाजार से होकर गुजरा था। तब हरएक दुकान में खादी भरी हुई थी। आज मैंचेस्टर और जापान का माल भरा पड़ा है। इसका एक और कारण है। जब योरप का महायुद्ध खतम हुआ तब कमिशन का भाव फी रु. २॥ शिलिंग हो गया। उससे फायदा उठा कर देशी व्यापारियों ने इंग्लैंड को बड़ी बड़ी फरमायशें भेजीं। पर जब यह माल आया तब कमिशन की दर एकदम कम हो गई। बस देशी व्यापारियों ने माल छुडाने से इनकार कर दिया। अंगरेज व्यापारी बड़े फेर में पड़े। और जिस भाव बिके उसी भाव बेचने और जब रुपये की गुंजायश हो तब देने की शर्त पर तमाम माल उधार देने को तैयार हो गये। यह जो विलायती माल इतना भरा हुआ दिखाई देता है उसका कारण यही है.........

हम हिन्दुस्तानी लोग जो इतने अपमानित हैं, और किसी भी साहसिक काम करने की हिम्मत नहीं रखते उसका मूल कारण एक ही है—हमारे दिल में देश का दर्द नहीं। अपनी नाक की नोक के आगे हमारे दिमाग के विचार जाते ही नहीं। हम कुछ लोगों ने मिल कर एक बार एक जहाजी कम्पनी खोली। एक खास बन्दर से दूसरे खास बन्दर तक तक का किराया १) तय हुआ। यह देख कर तुरन्त ही एक अंगरेज कंपनी वहां आ पहुंची और उतने ही फासले का किराया सिर्फ ≈) रक्खा। हमारे देश-भाइयों ने तो सिर्फ एक रुपये और एक आने के बीच का ही फर्क देखा और सब लोग अंगरेजी कंपनी के जहाजों में बैठने लगे। यह है हमारा देशाभिमान! यह है हमारी हालत! इसीलिए हम स्वराज्य चाहते हैं। हमारे देशभाई इस बात को न सोच सके कि अंगरेजी कंपनी ने जहाँ एक बार यह देशी कंपनी रूपी कांटा अपने पथ से निकाल कर फेंक दिया कि दूसरे ही दिन वह बिना संकोच १) की जगह १।) कर देगी; हम मूर्ख हिन्दुस्तानियों से सारा मुनाफा सूद-सहित वसूल कर लेगी। देश की दशा पर किसीको दर्द नहीं होता। महात्माजी तथा दूसरे देश के सैकड़ों युवा कार्यकर्ता जिस चीज की रोज माला फेरते हैं उसकी कदर ही किसीको नहीं है!

कितने ही लोग कहते हैं—खादी मोटी होती है। मैंचेस्टर की मलमल की तरह महीन खादी बनाइए तो हम उसके बजाय इसीको पहना करेंगे। मैं पूछता हूं कि कोई भी शख्स बिना ककहरा पढे कहीं विद्वान् हो सकता है? हम एक महा अधम जाति बन गये हैं—इसीसे खादी से इतना चौंकते हैं। यदि हमारे अंदर तिल भर भी देश का दर्द हो तो हम ऐसी फजूल बात हरगिज न कहें। हम में न उत्साह है, न परिबल—हम तो पत्थर की तरह जड हो गये हैं। हमें नष्ट हुए उद्योग को पुनर्जीवित करने का हौंसला नहीं, व्याकुलता नहीं। केंचुए और कनखजूरे की तरह दुनिया की ओर ताकते हुए बुद्धू जैसे बैठ रहे हैं। चरखे और खादी की करामात को जितना मैं जानता हूं उतना शायद ही कोई जानता हो। उत्तर बंगाल के जल-प्रलय के समय दो-तीन महीना काम कर के हम ढेरों सूत, और वह भी बढिया मेल का, तैयार कर सके हैं। वहां जितने लोग काम करते थे सब की श्रद्धा चरखे और खादी की शक्ति पर बैठ गई है। इस प्रलय के संकट-काल में लोग कितनी खुशी के साथ चरखा चला रहे हैं!

एक बार एक बुढिया मेरे पास आई। उसने अपना सूत दिखा कर कहा—एक हफ्ते में मैंने १३ अंक का ६० तोला सूत काता है। अब इस हफ्ते में ७० तोला कातूंगी। कहने का भाव यह है कि वह बुढिया फी हफ्ते ३-४) पैदा करती थी। ऐसे कंगाल देश में फी आदमी की सालाना आमदनी ३० मानी जाती है। वहां यदि प्रतिदिन ≈) अधिक मिले तो ऐसी-वैसी बात नहीं है।...

लोग मुझसे कहते हैं कि विज्ञान-वेत्ता होकर मिल को छोड यह चरखे के पीछे क्या समझ के पड़े हैं? वे पूछते हैं कि चरखे भला मिलों का मुकाबला कभी कर सकते हैं। पर बात यह है कि मिलों को भी हम नहीं अपना सकते। बजबज से लेकर त्रिवेणी तक हिन्दुस्तानियों की मिलें सिर्फ दो ही हैं। दूसरी कोई ७०-७२ जूट की मिलें हैं; पर वे सब अंगरेज पूंजीवालों की हैं। यदि हम हुगली-नदी के किनारे मिलें बनाने लगें तो क्या अंगरेजी व्यापारी यहां आकर मिलें खोल देना नहीं जानते? ये तमाम मिलें अनीति और बीमारियों का घर हैं, यह बात तो अलग ही। मिलों के आते ही शराब की दुकानें, वेश्याओं की वृद्धि, काबुलियों की आफत उसके साथ आ जाती हैं। यह बात सब लोग जानते हैं कि हमारे देश में मिलों के क्षेत्र में कैसा सन्तापकारक व्यभिचार होता है। और मिलें क्या घर घर पहुंच सकती हैं? एक मिल अधिक से अधिक तीन-चार हजार मजदूरों का पेट पाल सकती है। बाकी के करोड़ों लोग क्या करेंगे? मिलों के द्वारा पूंजीवाले लोग हमें आसानी से चूस सकते हैं। इसके सिवा उनके द्वारा हमारा कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता। चरखा हमारे पांव में ताकत और घर में रोटी लाता है।

देशाभिमान के बिना सब बातें मिट्टी हैं। फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति के समय बाहर के देशों से माल का आना-जाना बन्द हो गया, जिससे वहां शक्कर की कमी पडने लगी। वहां के देशाभिमानी लोगों से कहा गया कि हर उपाय से शक्कर पैदा करो। इसीका यह फल है जो बीट नाम के घास की जड से चीनी बनाने की विद्या निकली। राज्य की बड़ी मदद के कारण यह शक्कर अब सारी दुनिया में फैल गई है। हमारे यहां तो राज्य की सहायता नाम की कोई चीज ही नहीं है। इसलिए हमारे लिए तो देशाभिमान और गृह-उद्योग को पुनर्जीवित करने का एक ही आधार है उमंग। यदि हम एक साल बराबर काम करते रहे तो बहुत सस्ती खादी तैयार कर सकेंगे। इसके सुचिह्न आज भी दिखाई देने लगे हैं। खादी की ताकत तो अब सिद्ध हो चुकी है। जाडे के दिनों में खादी

का एक कुरता और एक चादर फलालैन के कपड़े का काम देती है। दूसरे तमाम कपड़ों से खादी अधिक टिकती है। पर हां, खादी धोबी से हरगिज न धुलाइए। धोबी लोग आजकल सोडा और ब्लीचिंग पाउडर इस्तैमाल करते हैं। और उससे खादी की उम्र बहुत कम हो जाती है। मैं इतना दुबला-पतला और बूढ़ा होने पर भी अपना कपड़ा अपने हाथों धोता हूं।

बंबई में मैंने क्या देखा? वहां के भाटिया पारसियों के देखादेख तीन बरस पहले बड़े शौकीन और फैशनेबल हो गये थे। पर महात्माजी का जादू उनपर पड़ा और वे खादी पहनने लगे। अब उनका सारा ठाठ बदल गया। वह शौक, वह फैशन, वह फजूलखर्ची सब उन्होंने छोड़ दिया। यह है खादी का चमत्कार। धन बचाने के अलावा खादी हमारे सदाचार की रक्षा करती है।

कितने ही लोग कहते हैं कि खादी बहुत वजनदार होती है। क्या खादी उन गरम कपड़ों से भी ज्यादह भारी है जिन्हें हम जाड़े के दिनों में पहनते हैं? मुहावरे से सब बातें साध्य हो जाती हैं। इन तमाम कमजोरियों के मूल में देश के दर्द की कमी है, और कुछ नहीं। कौआ जिस प्रकार मोर के पंख लगा के उसी प्रकार हम विदेशी कपड़ों से अपनेको सजाते हैं। पहले आप खादी पहनिए और फिर देखिए कि सारी आत्मा किस प्रकार चैतन्य प्राप्त करके थिरक उठती है।

हमारे लिए यह कलङ्क की बात है कि कोई राष्ट्रीय पहनाव न हो। आप खादी को ही राष्ट्रीय पहनाव बनाइए। इससे देश का वह धन बच रहेगा जिसे योरप चूस ले जाता है। हम बंगाली लोग बड़े भावना-प्रधान होते हैं। बंगाल से हमें एक साथ १० हजार नौजवान जेल के कष्ट सहने के लिए मिल जाते हैं पर रात-दिन चरखा कातनेवाले १० आदमी भी मिलना कठिन होता है। हमारी इस चंचलता, और कमजोरी को चरखा दूर कर देगा। बंगाल के नवयुवकों से मेरी प्रार्थना है कि काहिली तजो, कमर कसो और तन, मन से चरखे को चलाओ। चरखा रोजगार के अभाव में भूखों मरनेवाले लोगों की रोजी है, चरखा दीन-हीन राष्ट्र की सुख-समृद्धि है।"

पंजाब का रुख

अकाली-आन्दोलन पंजाब के हृदय में हो रहा है। और पंजाब की जनता की अमली हमदर्दी पर उसकी सफलता का ज्यादह दारोमदार है। अकाली-जनता तो, कहते हैं, इस युद्ध को अन्त-तक चलाने के लिए कमर-कस चुकी है, और वह अधीर भी हो रही है। पंजाब की प्रान्तीय महासभा-समिति अपनी हमदर्दी साफ शब्दों में पहले ही जाहिर कर चुकी है। पंजाब के दोनों महान् नेता लालाजी और डाक्टर किचलू अकालियों के कन्धे से कन्धा भिड़ाने को तैयार हैं। लालाजी ने इस मौके पर अकालियों के शान्त-संग्राम में हर तरह की उचित सहायता देने की सिफारिश की है और पंजाब के हिन्दू-मुसलमानों को इस मसले पर एक होकर अकालियों का साथ देने की सलाह दी है। इसके अलावा पंजाब प्रान्त की राजनैतिक परिषद् की बैठक दिसंबर के प्रथम सप्ताह में होना निश्चित हुआ है और उसमें मौ० शौकतअली, मौ० महम्मदअली, डाक्टर किचलू तथा अन्य नेता सम्मिलित होने वाले हैं। उस अवसर पर पंजाब का रुख और भी साफ तौर पर मालूम हो जायगा। सिक्खों का पंजाब सिक्खों के लिए यदि न आगे बढ़ेगा—न मर मिटने को तैयार होगा तो फिर किसके लिए होगा? पंजाब के हिन्दू-मुसलमान यदि अपने पड़ोसी भाई सिक्खों के लिए एक-दिल से न लड़ेंगे तो फिर किस क्षेत्र में अपनी वीरता और देशभक्ति को सफल करेंगे?

ह० उ०

टिप्पणियां

मौ० शौकतअली छूटे

मौ० शौकतअली राजकोट जेल से छूट कर शुक्रवार को सत्याग्रहाश्रम में पधारे। वे तन्दुरुस्त हैं। शुरू में उनका वजन ८० पौंड कम हो गया था। पर पीछे उन्होंने कोई ६० पौंड हासिल भी कर लिया। बाहर की हालत सुन कर वे जेल में ही रहना बेहतर समझते हैं। महात्माजी के बिना उन्हें चारों और सूना मालूम होता है। पू० बी. अम्मा, मौ० महमद अली, भी वहीं आ गये थे।

अकाली संग्राम—नाजुक हालत

प्रौढ और भुक्तभोगी अकाली-नेताओं के गिरफ्तार कर लिये जाने के बाद उनके स्थान पर युवा उत्साही कार्य्यकर्ता आ डटे हैं और सरगर्मी के साथ अपने नेताओं के छोड़े काम को कर रहे हैं। इधर पंजाब-सरकार ने इस आशय की विज्ञप्ति प्रकाशित की है कि गु० प्र० समिति और अकाली-दल गैर-कानूनी जमातें हैं इसलिए उनके भेजे समाचारों को पंजाब के जो अखबारात छापेंगे वे सजा के पात्र होंगे। इधर लार्ड रीडिंग दौरे पर लाहौर पहुंचे हैं और वहां सिक्ख-जमींदारों आदि सरकार-भक्त लोगों की एक परिषद् की जाने की आयोजना हो रही है, जिससे गु० प्र० समिति के स्थान पर दूसरी संस्था खड़ी की जाय और गुरुद्वारा का प्रबंध अपने हाथों में ले ले। इस प्रकार एक ओर गुरुद्वारा प्र० समिति को तोड़-मरोड़ कर, उसकी खबरें तक लोगों तक पहुंचना बन्द कर के उसे मटियामेट करने का और दूसरी ओर गुरुद्वारों के प्रबंध को 'जी-हुजूर' लोगों के हाथों में सौंप देने का—दूसरे शब्दों में अकालियों की शक्ति और तेज को नेस्तनाबूद करने का प्रयत्न हो रहा है। ऐसी हालत में डाक्टर किचलू अपने एक तार के द्वारा इस बात की सख्त जरूरत बताते हैं कि राष्ट्र के नेता युवा अकालियों को रास्ता दिखावें और उनकी सहायता करें। इसके लिए उन्होंने कार्यसमिति की एक बैठक शीघ्र ही अमृतसर में करने की सूचना की है। लाला लाजपतरायजी भी सोलन में अपनी बीमारी के बिछौने पर चौंक पड़े हैं। पंजाब-सरकार के इस दमन और उसके बाद लार्ड रीडिंग के भाषण पर वे बहुत बिगड़े हैं और सलाह दी है कि राष्ट्रीय दल के नेता शीघ्र ही आपस में मिलकर इस विषय का निर्णय करें कि वे किस प्रकार अकालियों की सहायता कर सकते हैं। डाक्टर किचलू तो हालत को बहुत ही नाजुक बताते हैं और कहते हैं कि देर होने से अकाली लोग उग्र सविनय भंग कर बैठेंगे। उनके साथ काफी अकाली जनता है।

कार्य-समिति की स्थिति

लेकिन मौजूदा कार्य-समिति की स्थिति कुछ अटपटी-सी है। देहली के विशेष अधिवेशन तक काम चलाने के लिए इसकी सृष्टि हुई थी, पर वहां समझौता हो जाने से तथा दिसंबर तक किसी गंभीर स्थिति के उत्पन्न होने की संभावना न होने के कारण वही कायम रही। पर ईश्वर तो नौकरशाही पर सवार बना बैठा है। उसके दरबार में उसके पाप असह्य हो उठे हैं। उसने एक नई शानदार हालत पैदा कर दी। नाभा के भारी शिकार को पचाने के लिए नौकरशाही को अकालियों के दमन पर उतारू होना पड़ा। कुंजी-प्रकरण, गुरु-का-बाग-काण्ड की विजय से बढ़ा अकालियों का हौसला नाभा-घटना से उग्र आन्दोलन का रूप धारण करता जाता था। लोकमत उनके साथ था। इस लोक-तेज को वह सरकार कैसे सहन कर सकती है जो अपने को उनका 'मालिक' समझती है और जिसके रखवाले उसकी आजादी के लिए हमेशा पार्लियामेंट और ब्रिटिश जनता का मुंह ताकने की सिफारिश करते हैं, और

शस्त्र तो बला जिसके पास बढते हुए प्रजा-बल को दबाने के लिए अनेकानेक कानूनों, स्वेच्छाचारी अधिकारों के अलावा काफी पशु-बल भी है। इन सब साधनों से सज्जित हो कर मदान्ध नौकरशाही हिरण्यकशिपु की तरह अपने को अजेय और निर्भय बताना चाहती है। ऐसी हालत में यह अत्यन्त आवश्यक है कि कार्य-समिति तथा राष्ट्र के तमाम नेता अकालियों के लिए दौड पडें और सरकार को यह दिखा दें कि सच्चे, शान्त प्रजा-बल को दबाने की शक्ति संसार में अभी उत्पन्न ही नहीं हुई है और अकालियों को यह अमली आश्वासन दिला दें कि नाभा का और अकालियों का प्रश्न सारे देश का प्रश्न है और देश उसके निपटारे के लिए नौकरशाही से जूझना जानता है। देश के प्रायः तमाम बडे बडे नेता कार्य-समिति के बाहर हैं। अतएव कार्य-समिति उन्हें भी वहां निमन्त्रित करके अपनी बैठक करे। कुछ लोगों का खयाल है कि आगामी दिसंबर तक महासभा शायद अकालियों के लिए कुछ न कर सकें। पर जब कि उन्हें नेतृत्व की जरूरत है महासभा की कार्य-समिति का चुप रहना वाञ्छनीय नहीं है।

सत्याग्रह की तैयारी

डाक्टर किचलू इतना ही कर के चुप नहीं रहे। उन्होंने प्रत्येक प्रान्तीय महासभा-समिति से अनुरोध किया है कि वह इस बात की एक फहरिस्त तैयार करें कि कितने स्वयंसेवक वहां से सत्याग्रह करने के लिए तैयार हैं। ८,००० स्वयंसेवक तो गया-प्रस्ताव के अनुसार दर्ज हो ही चुके हैं। बेहतर होगा कि यह तय कर लिया जाय कि कम से कम इतने स्वयंसैनिकों की जरूरत है। फिर उनको संगठन और व्यवस्था की तालीम दी जाय और जबतक सविनय-भंग शुरू करने की जरूरत न पडे तबतक उनसे रचनात्मक काम कराया जाय। इस संबन्ध में डाक्टर हार्डीकर के राष्ट्र-सेवा-मण्डल की ओर डाक्टर किचलू का ध्यान जाना जरूरी है और यदि स्वयंसैनिकों को संगठन और व्यवस्था की तालीम देने का भार उक्त मंडल पर रख दिया जाय तो अधिक आसानी होगी। जबतक कार्य-समिति की बैठक न हो तबतक सत्याग्रह-समिति को अकाली-आन्दोलन की नीति और काम में रहनुमाई करनी चाहिए।

यरवडा की कुंजी—बारडोली-कार्यक्रम

मौलाना महम्मदअली इन दिनों दौरे पर हैं। भुवाली से (जहां कि वे अबतक अपनी लडकी की बीमारी के कारण थे) लखनऊ और झांसी की म्युनिसिपालिटियों के अभिनन्दन पत्र स्वीकारते जालन्धर की सिक्ख लीग की बैठक में सम्मिलित होते, लाहौर-अमृतसर में अकालियों से मन्त्रणा करते, बंबई का स्वागत स्वीकार करते तथा हर जगह अपने भाषणों की वर्षा करते हुए वे मौ. शौकतअली के स्वागत को फिराक में यहां पधारे हैं। इस बीच कितने ही पत्र-निधियों से उनकी बातचीत भी हुई है। उनके व्याख्यानों और बातचीत के प्रायः दो विषय होते हैं—शुद्धि-संगठन-आन्दोलन, यरोडा की कुंजी। मौलाना साहब हिन्दू मुसलमान दोनों की ओर से होनेवाले शुद्धि-संगठन-आन्दोलन के खिलाफ हैं। एक जगह उन्होंने कहा कि मुझसे मुसलमानों की ओर से संगठन करने की दरख्वास्त की गई थी मगर मैंने इनकार कर दिया। आपकी राय में शुद्धि-संगठन को भडकाने वाले हिन्दू-मुसलमान दोनों दल के वे लोग हैं जो गांधी-युग के पहले जातिगत झगडों और वैमनस्य में दिलचस्पी रखते थे और महात्माजी के जेल जाने के बाद उन्हें अपने पुराने अरमान निकालने का फिर मौका मिल गया है। उन्होंने एक जगह कहा कि मुसलमानों की एक जातीय संस्था मुस्लिम-लीग थी वह महात्माजी के राष्ट्रीय मन्त्र के प्रभाव से नहीं के बराबर हो गई है।

आपकी राय में बारडोली का रचनात्मक कार्यक्रम यरवडा जेल की कुंजी है। चरखे की ओर से लोगों का ध्यान हटते हुए देख कर आपको बहुत अफसोस होता है। आप फिर घर घर में चरखा और राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं को अच्छी हालत में देखना चाहते हैं, अदालतों में सफाई देने की प्रवृत्ति को बढते हुए देख कर आपको रंज होता है। आप महात्माजी के तमाम कार्यक्रम को शुरू से ले कर अन्त तक मानते हैं और जिन अंगों में शिथिलता आ गई है उन्हें फिर सचेतन करना चाहते हैं। आप फरमाते हैं कि **हमारा एक मकसद है स्वराज्य, हमारी एक संस्था और संगठन है राष्ट्रीय महासभा. हमारा एक हथियार है शान्तिमय असहयोग और एक सरदार है महात्मा गांधी।** आप चाहते हैं कि कोकानाडा महासभा के पहले देश रचनात्मक कार्य को सरगर्मी से करे। इसमें देश के सब दलवाले एक हैं और उसका एक ही अंग-अकेला चरखा ही स्वराज्य लाने की शक्ति रखता है।

हस्तलिखित "हिन्द-स्वराज्य"

पिछली गांधी-जयन्ति के अवसर पर "नवजीवन-प्रकाशन-मन्दिर" ने एक अपूर्व पुस्तक प्रकाशित की है। वह है महात्मा गांधी के हाथ का लिखा **हिन्द-स्वराज्य**। महात्माजी की गुजराती में लिखी यह पुस्तक इस गांधी-युग में गांधी-गीता के नाम से प्रसिद्ध हो गई है और इसके एकाधिक हिन्दी-अनुवाद भी हो चुके हैं। १९०८ ई० में जब महात्माजी लंदन से दक्षिण आफ्रिका को वापस लौट रहे थे तब 'किल्डोनन कॅसल' नामक जहाज पर, जहाज-कंपनी के ही नोट पेपर पर, उन्होंने इस पुस्तक को लिखा था और सौभाग्य वश वह हस्तलिखित प्रति आजतक सुरक्षित रह पाई। उसके हर एक पृष्ठ के ब्लाक बना कर यह पुस्तक मोटे कागज पर छापी गई है और २७१ पृष्ठों में समाप्त हुई है।

धारा-प्रवाह जैसे एक से अक्षरों को पढता हुआ पाठक बीच बीच में रुकता है और उसे दूसरे किस्म के अक्षर दिखाई देते हैं। ये महात्माजी के बायें हाथ से लिखे अक्षर हैं। लिखते लिखते जब दाहना हाथ थक जाता है तब महात्माजी बायें हाथ से काम लेते हैं। पिछली 'गांधी-जयन्ति' के उपलक्ष्य में प्रकाशित 'हिन्दी-नवजीवन' के 'जयन्ति-अंक' में इस पुस्तक के दो पृष्ठ नमूने के तौर पर पाठकों की भेट किये गये थे, जिनमें एक दाहना हाथ का और दूसरा बायें हाथ का लिखा था।

जहांतक मुझे पता है हिन्दुस्तान के साहित्य में इस प्रकार का यह पहला ही प्रयत्न है। अंगरेजी-साहित्य में कुछ प्रसिद्ध पुरुषों के पत्रों के संग्रह तो उन्हींके अक्षरों में प्रकाशित हुए हैं पर किसीकी लिखी कोई पुस्तक शायद ही प्रकाशित हुई हो। गुजराती में लिखी होने के कारण यद्यपि इसका महत्व कुछ हद तक प्रान्तीय है; परन्तु एक विश्व-विभूति की अपनी मातृभाषा में लिखी होने के कारण इसका विश्व-व्यापी महत्व भी स्पष्ट ही है। फिर नवजीवन-संबंधी किसी भी काम का उद्देश 'व्यापार' हरगिज नहीं है। इन्हीं दो बातों को ध्यान में रख कर इसका परिचय 'हिन्दी-नवजीवन' के पाठकों को कराना मैंने संपादकीय शिष्टाचार के विरुद्ध नहीं समझा।

हस्तलिखित वस्तुओं की महिमा के विषय में नवजीवन-प्रकाशन-मन्दिर के मन्त्री ने बहुत ठीक लिखा है—"मित्रों और सज्जनों के पत्रों का संग्रह और उनकी रक्षा सब लोग करते हैं। अनेक बार उनका स्मरण कर के उन्हें पढते हैं। इन पत्रों की एक एक पंक्ति में, एक एक अक्षर में, मित्र के व्यक्तित्व की छाप दिखाई देती है। छपे हुए लेखों की अपेक्षा लेखक के हाथ से लिखे लेख उसके

व्यक्तित्व को ज्यादह अच्छी तरह प्रकट करते हैं और इसी कारण लोग उसे हिफाजत से रखते हैं। गुजरात और भारत के तारनहार महात्मा गांधी के एक एक अक्षर में लोग उनके व्यक्तित्व को देख सकेंगे और उसके द्वारा नवजीवन प्राप्त कर सकेंगे।"

उन हिन्दी-भाषी भाइयों को, जिन्हें गुजराती-लिपि का ज्ञान नहीं है, जहाज की यात्रा में लिखे महात्माजी के अक्षर और सो भी ब्लाक के द्वारा छपे, पढ़ने में शायद कठिनाई होगी; पर वे हिन्द-स्वराज्य की टाईप में छपी एक प्रति साथ लेकर उसे आसानी से पढ़ सकते हैं और जो गुजराती-भाषा नहीं जानते हैं वे हिन्द-स्वराज्य के हिन्दी-अनुवाद को सामने रख कर लाभ उठा सकते हैं। यह हस्तलिखित हिन्द-स्वराज्य यदि इस प्रकार हिन्दी-भाषियों को महात्माजी की भाषा और लिपि का ज्ञान कराने में सफल हो जाय तो फिर वे महात्माजी के तमाम गुजराती-साहित्य का स्वाद उसके असली रूप में पा सकेंगे और यह कम लाभ नहीं हैं।

खादी-संस्करण का मूल्य २॥) और सादे संस्करण का १।॥) है। खादी-संस्करण में ॥) और सादे में ।) कीमत इसलिए अधिक रक्खी गई है कि वह रकम तिलक-स्वराज्य-कोष में ग्राम-सेवा के कार्य के लिए दे दी जाय। मन्त्री जी कहते हैं कि "महात्माजी के इस प्रिय कार्य के लिए इस पुस्तक पर इतना कर बैठाने का लोभ हो जाना हमारे लिए एक स्वाभाविक बात है।"

पुस्तक के मुखपृष्ठ के आवरण पर महात्माजी की यह प्रतिज्ञा दी गई है—

"हम स्वराज्य का नाम तो लेते हैं; पर मैं समझता हूं कि हमने उसके स्वरूप को नहीं समझा है। उसे मैंने जैसा समझा है वैसा ही समझाने का प्रयत्न किया है। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि ऐसा स्वराज्य पाने के लिए यह देह समर्पित है।"

प्रयाग में वाइसराय के स्वागत का बहिष्कार

कुछ महीने पहले जब 'टाईम्स'ने वाइसराय के मदरास के दौरे का हाल छापा था, तभी वहां उनके स्वागत का बहिष्कार करने की चर्चा चली थी। ट्रावणकोर की महासभा-समिति ने तो बहिष्कार करने का प्रस्ताव भी पास किया था और उसकी सूचना महासभा को कर दी गई थी। उसके बाद ही अखबारों में पढ़ा था कि वाइसराय ने ट्रावणकोर का दौरा मुलतवी कर दिया। उन्हीं दिनों कानपुर में संयुक्त-प्रान्त के लाट आये और लोकमत को ताक पर रख कर वहां की म्युनिसिपल्टी के कुछ सदस्यों ने उनके स्वागत की तैयारी की थी; पर वहां की जनता ने उस दिन हड़ताल कर के अपना विरोध प्रकट किया। अब वाइसराय फिर दौरे पर निकले हैं। पंजाब का दौरा खतम कर के संयुक्त प्रान्त को भी अपने दर्शन का लाभ करावेंगे। उनके कारनामों से भारत की जनता केवल असन्तुष्ट ही नहीं, भारी नाराज है। अपनी धूर्तता और कूट-नीति के द्वारा उन्होंने भारतीय लोकमत और स्वराज्याकांक्षा को जो गहरा आघात पहुंचाया है उसकी कहानी सब पर प्रकट है। दुःख और शर्म की बात है कि आज पंजाब अपने आपुस के झगड़ों में इतना गुमराह हो गया है कि वह अपनी गोदी के लाल अकालियों को कुचलने की नीति के विधाता बड़े लाट को अपनी छाती पर बिना उफ् किये घूमने देता है और उनके स्वागत के बहिष्कार के लिए किसी की आवाज तक नहीं उठ रही है। पर धन्यवाद है संयुक्तप्रान्त की राजनैतिक परिषद् को और इलाहाबाद की म्युनिसिपालिटी को जिन्होंने क्रमशः अपने प्रान्त और नगर में बड़े लाट के स्वागत-बहिष्कार का प्रस्ताव पास किया है और उसके द्वारा यह घोषणा की है कि कोई भी बड़े से बड़ा राज्याधिकारी जो लोकमत की परवा नहीं करता, लोगों से आदर पाने का अधिकारी नहीं है और लोग उसका स्वागत करके अपने अपमान पर शर्म का कलंक नहीं लगने देंगे।

"राष्ट्र-सेवा-मण्डल"

भारत ने नौकरशाही के साथ लड़ाई ठान रक्खी है। नौकरशाही धन, सत्ता, शस्त्र और संगठन में हमसे बहुत बड़ी-चढ़ी है। हमारे पास केवल एक बल है लोकमत। पर संगठन के अभाव से हम नौकरशाही को, जैसी कि चाहिए, गहरी शिकस्त नहीं दे सकते और न अबतक कोई निर्णायक लड़ाई लड़ सके। शाहजादे के आगमन के समय, स्वयंसेवक-दल पर कुठार चलाने के विरोध स्वरूप नौकरशाही से जो हमारे दो दो हाथ हुए उसमें हमारे संगठन के अभाव के ही कारण बार बार हमें उठाया हाथ रोक रखना पड़ा। चौरीचौरा-काण्ड इसी बात का प्रमाण है। नागपुर-सत्याग्रह के समय भी उसके संचालकों ने संगठन का बहुत-कुछ अभाव देखा। उसकी पूर्ति के लिए राष्ट्र-सेवा-मण्डल नाम की एक स्वतन्त्र संस्था स्थापित हुई है। इसके उत्पादक हैं डाक्टर हार्डीकर जो अमेरिका में लाला लाजपतरायजी के साथ भारतवासियों के संगठन का काम कर चुके हैं और जिन्हें संगठन-कार्य का खासा अनुभव है। नागपुर-सत्याग्रह में आपको भी एक साल की सजा मिली थी। जेलखाने में आपको स्वयंसैनिकों की हालत बारीक नजर से देखने का अवसर मिला और बाहर आते ही आपने उनकी त्रुटियां दूर करने और उन्हें अधिक देश-सेवा के उपयोगी बनाने के लिए राष्ट्र-सेवा-मण्डल की आवाज उठाई। इस मण्डल की पहली बैठक देहली में महासभा के विशेष अधिवेशन के समय हुई थी। उसमें कितने ही उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए और भिन्न भिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधियों का एक प्रतिनिधि-मंडल बनाया गया जिसमें प्रायः प्रत्येक प्रान्त के प्रसिद्ध महासभावादी शामिल हैं। राष्ट्र-सेवा-मंडल का मुख्य उद्देश है शान्तिमय असहयोग-संग्राम में लड़ना तथा रचनात्मक कार्यक्रम और अन्य सामाजिक एवं सेवा-सहायता-संबंधी काम करना। इसके लिए कोकानाडा में आगामी महासभा के समय अखिल भारत-स्वयंसेवक परिषद् की आयोजना की गई है। मंडल के सभापति चुने गये हैं नागपुर-सत्याग्रह के एक वृद्ध संचालक वीर श्री नीलकंठ राव देशमुख और मन्त्री हैं स्वयं डाक्टर हार्डीकर। हुबली, जिला धारवाड़ (करनाटक) के पते पर उनसे पत्रव्यवहार किया जा सकता है। मैं इस उद्योग को पसंद करता हूं, इसे आवश्यक समझता हूं, और इसकी सफलता चाहता हूं।

कोकोनाडा की ओर

वार्षिक	मूल्य [illegible])
छ मास का	,, [illegible])
एक प्रति का	,, -)।
विदेशों के लिए	,, ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक १२

सम्पादक—हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय
मुद्रक—प्रकाशक—वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, कार्तिक बदी १०, संवत् १९८०
रविवार, ४ नवम्बर, १९२३ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

मौलाना शौकतअली

अधिकांश लोग जब जेल से बाहर आते हैं तब उनमें कुछ परिवर्तन दख पड़ता है। परन्तु मौलाना शौकतअली इस नियम के अपवाद हैं। न तो मौलाना शौकतअली के शरीर में फर्क हुआ है न स्वभाव में। हां, पहले से उनकी डाढी के कुछ बाल अलबत्ते सफेद हो गये हैं। इसको छोड़कर वे ज्यों के त्यों कुतुब मीनार के सदृश अडग दिखाई देते हैं और जितनी जमीन पर खड़े होते हैं उसे दब देते हैं। जिस प्रकार कि उन्होंने एक चित्रकार से कहा था, उनकी 'बदमाश आंख' भी ज्यों की त्यों हैं, हर बात में वही अभिनय और वही भाव-भंगी है। बातचीत में अनेक शब्दों को निगल जाने और अनेक वाक्यों को एक साथ बोलने की आदत ज्यों की त्यों बनी हुई है। उनकी खुशमिजाजी में जेल का वायु-मण्डल कोई असर न कर सका।

उनकी आंखों के आंसू और गालों की हंसी आज भी वैसी ही सहज, स्वाभाविक है जैसे कि पहले थी। मोटर में हंसते-हंसाते, दिल्लगी-मजाक करते वे विद्यालय (गुजरात राष्ट्रीय महाविद्यालय, अहमदाबाद) में आये। अध्यापक किपलानी ने उनका परिचय कराते हुए कहा—कितनी ही बार मैं दोनों भाइयों के पेट का तकिया बनाकर मोटर में बैठा हूं। सब लोग हंस रहे थे। उस समय मौलाना भी हंसते थे। थोड़ी ही देर के बाद मौलाना सा. बोलने के लिए उठे और सिसक सिसक कर रोने लगे। जरा देर तो किसीको खबर तक न हुई। पर जब वे शान्त हुए तब सब लोग समझे कि महात्माजी की याद आने पर वे अपने आंसू न रोक सके—"हम दो भाइयों के साथ हमारा एक तीसरा भाई भी था जो हम दोनों के शरीर को अपने लिए गद्दा बना लिया करता था, आज वह कहां है?" मौलाना महम्मदअली भी बैठे बैठे आंसू बहा रहे थे।

जेल जाते समय मौलाना शौकतअली का वजन कोई ४ मन था; पहले कराची में और फिर राजकोट जेल में वजन कुछ कम हो गया। पर उनके वजन में कमी-बेशी होती है उनके वजन के हिसाब से ही। जब कम होने लगे तो कोई २५-३० सेर वजन कम हो गया; फिर जब बढ़ने लगा तो कोई १ मन बढ़ गया। इस तरह उनके वजन में भी कोई फर्क नहीं हुआ।

हर हालत में [illegible] आपने दिन बड़े आनन्द में बिताये हैं। राजकोट आने [illegible] शरीर से हो सकता था, काम करते। राजकोट [illegible] जेल के अधिकारियों ने उनकी जामा तलाशी लेने की [illegible] की। उस बेहूदा और वहशी तरीके के विरोध में उन्होंने जेल में हर तरह के काम करने से इनकार कर दिया। इस जामातलाशी के एक दिन का बयान मौलाना साहब बड़े अभिनय और हाव-भाव के साथ करते हैं। उसका यथार्थ वर्णन सिनेमा की फिल्मों के बिना नहीं हो सकता। जामातलाशी के लिए सुपरिंटेंडेंट अपनी फौज के साथ आया। मौलाना आसन जमा कर बैठ गये। जामातलाशी में बदन के कपड़े खुलवाये जाते हैं, लंगोट तक खोल कर देखी जाती है। मौलाना सा. ने कहा 'आपके ताकत हो तो मुझे उठाओ और तलाशी ले लो। आपके जैसे आठ आदमियों के बिना मैं उठाया नहीं जा सकूंगा। किसी समय आप मेरे शरीर के अनेक गड्ढों और ढीलों की तलाशी नहीं ले सकते। क्यों फजूल मिहनत करते हैं?' वे हार कर चले गये और उसी दिन से मौलाना ने काम करने की कसम खाली।

काम करने की कसम खा लेने का यह मतलब नहीं है कि उन्होंने अपना सारा समय फजूल बिताया। मुसकुराते हुए उन्होंने महम्मदअली से कहा—'महम्मद अब मैं तुमको शर्मिन्दा कर सकता हूं। अब मैं तुम्हारी तरह आलिम-फाजिल बन कर लौटा हूं।" नई भाषाओं में गुजराती सीखी है। पुस्तकों में गिबन, अमेरिका की आजादी का इतिहास, सरेसन जाति का इतिहास, भगवद्गीता, महाभारत का अनुवाद, ग्लैडस्टन, डिसरायली, चर्चिल आदि के जीवनचरित, इत्यादि पढ़े हैं। इतनी पुस्तकों की पढ़ाई मेरे लिए काफी है। जेल के बिना इतनी किताबें कहां पढ़ सकता था?'

जेल की कितनी ही मनोरंजक कहानियां वे सुनाते हैं; पर उनके लिखने का यह स्थान नहीं। थोड़े ही समय में वे इसपर एक पुस्तक प्रकाशित करना चाहते हैं। उनका खयाल है कि महात्मा को इस विषय में कुछ नियम जरूर बनाना चाहिए कि जेल में राजनैतिक कैदियों को किन किन नियमों का पालन करना चाहिए चाहिए और किन किन का नहीं। इस संबंध में वे अपने कुछ विचार और सूचनायें पेश भी करने वाले हैं।

जेल की एक घटना का वर्णन किये बिना यहां नहीं रहा जाता। 'म्हावा' नाम का एक भंगी फांसी की सजा पा कर आया

था। उसका किस्सा सुनाते समय मौलाना को बड़ा आवेश हो आता है और सुनने वाले पर उसका बड़ा असर होता है। बेचारा 'म्हावा' शराब के नशे में चूर था और उसी बेहोशी में उसने अपनी गर्भवती पत्नी का खून कर डाला। सजा और अपील हो चुकने के बाद फांसी का दिन निश्चित हो चुका था और इस प्रकार संसार से बिदा होने की राह वह देख रहा था। मौलाना के पास ही उसकी कोठरी थी। मौलाना से उसका साबका पड़ने पर मौलाना ने उससे सब बातें पूछीं। मौलाना सा. कहते हैं कि सच्चे पश्चात्ताप के भाव से उसने तमाम सचसच बातें मुझे सुना दीं। कहा कि मुझे जो सजा मिली है वह बिलकुल ठीक है। अब तो जिंदगी की जितनी घड़ियां बाकी हैं उनमें भगवान का भजन करने में ही मन मगन रहता है। एक दिन रात को नजदीक वाली कोठरी से नाचने और गाने की आवाज आई। 'म्हावा' ईश्वर के भजन में मगन था और नाचता हुआ यह भजन गा रहा था—

" कर के सिंगार चतुर अलबेली,
साजन के घर जाना होगा।
माटी ओढना, माटी बिछौना,
माटी का सिरहाना होगा॥"

इस घटना का वर्णन करते समय मौलाना की आंखों में आंसू भर आये। यह रात उसकी फांसी के दिन की रात थी। फांसी का हुक्म मिलते ही वह एक बहादुर की तरह निकला और फांसी के टीले पर दौड़ता हुआ चढ़ गया। सिर पर फांसी की काली टोपी पहनाते ही उसने पुकारा—"महात्मा गांधी की जय!" जेल के तमाम कैदियों की ओर से जवाब मिला—"महात्मा गांधी की जय!" फिर दूसरी पुकार लगाई—'शौकतअली बापू की जय'—मौलाना को राजकोट में शौकतअली बापू कहते थे—फिर 'राम,' 'राम,' 'राम,'—चौथे 'राम' पर उसका सिर लटक गया। कैदियों ने कहा—पिछले पन्द्रह-बीस साल में ऐसी मौत हमने नहीं देखी। सुपरिंटेंडंटने भी कहा—'ऐसी बहादुरी के साथ मरते मैंने किसीको नहीं देखा।' सुपरिंटेंडेंट ने आश्चर्यचकित हो कर पूछा—"इस भंगी का महात्मा गांधी से क्या ताल्लुक?" मौलाना ने जवाब दिया—"क्योंकि महात्माजी कहते हैं—यदि अब मेरा जन्म हो तो वह किसी भंगी-चमार के घर हो। सारे देश में अकेले महात्मा गांधी के ही हृदय से ये शब्द निकलते हैं।"

एक दिन में तीन बार मौलाना ने यह किस्सा कह सुनाया। और कहा—एक तो महात्माजी के और उनके बाद दूसरा उस बहादुर 'म्हावा' के सामने मेरा सिर झुकता है। इस प्रकार सिर को हथेली में ले कर घूमना हमें आना चाहिए। यदि थोड़े भी ऐसे जवांमर्द देश में निकल आवें तो हमारा काम यों—यों हो जाय। म्हावा को अपने अपराध का सच्चा पश्चात्ताप हो चुका था, उसे खुदा का सचमुच डर था और मरते समय उसने खुदा की ओर को देख लिया था, इसीसे वह इस तरह मस्त हो कर गाता और नाचता था—इसीसे उसे यह मौत एक मीठी नींद मालूम हुई।'

वर्तमान परिस्थिति के संबंध में बातें करते हुए वे कहते हैं

"मैं और कुछ नहीं चाहता—मुझे तो ऐसे शहीदों की जरूरत है जो म्हावा की तरह मरना जानते हों, १९२१ के जून के दिन मैं देखना चाहता हूं। उन दिनों को फिर से लाने के लिए ही मैं जेल के बाहर रहूंगा और ऐसा करते हुए ही यरवदा में जाने की कोशिश करूंगा।"

"महम्मद का भाषण, देहली का प्रस्ताव, यह सब मैंने गौर से पढ़ा है। और मैं समझता हूं कि महम्मद ने जो कुछ किया है उसके अलावा दूसरी कोई बात होना मौजूदा हालत में गैर-मुमकिन था। पर

सवाल—अब आगे क्या?

जवाब—जून १९२१ का कार्यक्रम।

सवाल—यानी नागपुर और बेजवाड़ा का कार्यक्रम?

जवाब—नहीं, १९२१ का कार्यक्रम, जब कि जहां जाते वहां रुपयों के ढेर लगते थे, जहां जाते तहां देवियां अपने गहने उतार कर रख देती थीं, जब हजारों युवक सरकारी मदरसों को छोड़ चुके थे, अनेक लोग खिताब छोड़ चुके थे, जब चरखों की गिनती लाखों से होती थी और हजारों लोग जेल में जाने के लिए जल्दी मचा रहे थे। वे दिन अगर फिर से न आवें तो फिर बाहर रह कर जीना फजूल है।"

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

खादी-समाचार

अपने काते हुए सूत का कपड़ा पहनने वालों के लिए

एक महाशय ने अपने काते हुए सूत का कपड़ा बुना कर पहनने वालों को उत्तेजन देने के लिए सत्याग्रहाश्रम के पास कुछ रुपया भेजा है। उनकी इच्छा के अनुसार निश्चित हुआ है कि उस रुपये में से ऐसे कातने वालों को इस प्रकार मदद दी जाय:—

"गुजरात, काठियावाड़, या कच्छ के किसी भी हिस्से में जहां खादी कार्यालय न होने से अपना सूत कातने वालों को बुनवाने की मुश्किल पड़ती हो उनके लिए सत्याग्रहाश्रम को लिखने से आधी मजदूरी ले कर बुनवा देने का बंदोबस्त कर दिया जायगा।

"बुनवाना चाहने वालों को चाहिए कि पहले ही सूत न भेज दें, बल्कि कागज लिख कर पूछें। कागज आसानी से पढ़ा जा सके इस तरह लिख कर उसमें अपना पूरा पता व नजदीक से नजदीक वाला रेलवे स्टेशन भी लिखना चाहिए। सूत का वजन और अंक भी जताना चाहिए। जो अंक न निकाल सकें वे अट्टी का नाप जाने उसकी गोलाई और उसके सूतों को ठीक गिन कर सब वजन लिख भेजें। आयंदा जो सूत काता जाय उसकी चार फुट के घेरे वाली परेती पर सौ सौ सूतों की पांच पांच लच्छियां वाली अट्टियां बनाई जायेंगी तो बहुत सुभीता होगा। फिर हरएक लच्छी के बीच में एक मजबूत धागे से आंटी लगाते हुए सूत के सिरे उस धागे के साथ रख कर सरकवांधी गांठ से बांध देना चाहिए। इस तरह से बांधी हुई अट्टियां बहुत आसानी से खुलती हैं और सूत बिलकुल खराब नहीं जाता; और अमुक अर्ज वाला अमुक लंबाई का कपड़ा बनाना हो तो उसमें कितनी अट्टियां सूत चाहिए इसका ठीक हिसाब किया जा सकता है जिससे कि सूत घट जाने का या चोरी जाने का डर नहीं रहता। अगर विधिपूर्वक सूत काता जाय और अट्टियां ऊपर लिखी हुई रीति से बांधी गई हों तो हाथ के सूत को बुनने की मजदूरी जो आजकल पड़ती है उससे बहुत कम पड़ेगी।

"कागज के जवाब में सूत कहां भेजा जाय इसकी सूचना दी जायगी। प्रांतिक समिति खादी कार्यालय की किसी नजदीक की शाखा में या श्री० गंगाबहन मजूमदार, बीजापुर (बड़ौदा) वालों के कारखाने में या ऐसी किसी दूसरी जगह जहां बुनवाने वालों को पास पड़ेगा बुनवा देने की तजवीज की जायगी। इसलिए बुनवाना चाहने वाले पहले सूत न भेज कर कागज लिख कर के पूछें और पीछे जवाब में बताई हुई जगह सूत भेज दें। सूत भेजने के एक तरफ का खर्च भेजने वालों को उठाना पड़ेगा। दूसरी तरफ का खर्च उनसे नहीं लिया जावेगा।

"अगर सूत छः से दस अंक तक तक का हो तो जबतक कोई ढेर पक्का न हो तबतक न भेजा जाय और बारह से बीस अंक तक

का हो तो डेढ़ सेर से कम नहीं, इसका ख़याल रहना चाहिए। तीस इंच के आसपास चौड़ा बारह गज़ से कम लंबा थान नहीं बुना जावेगा और बैंतालीस इंच चौड़ा आठ गज़ से कम नहीं।

"अक्सर कातने वाले अपना शुरू शुरू का काता हुआ या उलझी हुई लच्छियों का सूत भेज दिया करते हैं उसे खोलने में बहुत वक्त बिगड़ता है। ऐसी हालत में जितना बेशी खरच पड़े उतना उठाने के लिए सूत भेजने वालों को तैयार रहना चाहिए।"

मददवाला महाशयों के लिए

ऊपर लिखी हुई मदद देने वाले महाशय ने सूचना की थी कि कातने की शर्तें (होड़) करवा कर इनाम दिये जायं, और साथ ही इस विषय में आश्रम की राय भी मांगी थी। उनको यह सलाह दी गई थी कि इनाम बांटने के बदले अपने सूद का कातने वालों की तरह तरह की कठिनाइयां दूर करने में यह रुपया लगाया जाय तो धीरे धीरे कुछ अर्से बाद वे लोग अपने पैरों पर खड़े हो सकें। साथ ही यह भी सूचना की गई थी कि अपने लिए कातने वालों को आधे दामों में रुई या पूनी दिलाने की या काते हुए सूत को बुनवा देने की मदद की जाय। इस तजवीज का उल्लेख यहां करने की गरज यही है कि खादी के काम में तरह तरह से मदद देने वाले स्वदेशी के भक्तों का ध्यान इस तरह की मददों की तरफ खिंचे।

बहुत से कातने वालों को अच्छी साफ़ रुई नहीं मिलने और अगर मिले तो उसके भारी दाम देने में मुश्किल पड़ती है। उनको सस्ते भाव से रुई पहुंचाने की मदद की ज़रूरत है। जिन गांवों को आदर्श गांव बनाने की कोशिश की जा रही है वहां चुने हुए कपास को चर्खी से ओट कर साफ रुई इकट्ठी कर रखने की तजवीज की जा रही है। ऐसे गांवों के कर्मचारी कातने वालों के लिए रुई इकट्ठी कर सकें और कुछ लोगों को सस्ते भाव से दे सकें ऐसा बंदोबस्त कर देने की किसी स्वदेशी के भक्त को सूझे तो इस वक्त जगह जगह इसकी बड़ी ज़रूरत है।

चर्खे के सूत के बने सीने के धागे

बिहार, आन्ध्र, व मांद्र जैसे स्थानों में जहां उम्दा सूत कतता है अगर बारडोली तालुके और उसके आसपास के हिस्सों में उगी हुई उम्दा रुई भेज कर उसमें से बीस से तीस अंक के सूत कतवा कर उसके तीन तारों को एक साथ बंट कर के सीने के धागे बनाये जायं तो इनकी आजकल मांग बढ़ने लगी है।

हाथ के कते हुए सूत के धागे ही से सीने की प्रतिज्ञा रखने वाले एक दर्जी को बम्बई में खूब काम मिल जाता है। उसको खुद पूरा न कर सकने के कारण मदद के लिए दो चार या कभी कभी इससे भी ज्यादा दूसरे दर्जियों को रखना पड़ता है। सादी सफेद खादी की, हाथ से कते हुए धागे की तरह तरह की जाली वाली और हाथ की (कल की नहीं) सिलाई वाली टोपियां कुर्ते चोलियां वगैरः जो वे बनाते हैं उनको पहनने वाले सीने वाले की तारीफ किये बिना नहीं रहते।

स्वदेशी के भक्त कारीगर लोग भी चर्खे के काम को इस तरह खूब मदद कर सकते हैं। बड़े बड़े शहरों में कि जहां सीने की कलें रातदिन चला करती हैं वहां ऐसे कई दर्जी खूब अच्छी तरह अपनी गुज़र कर सकते हैं। यह बात बम्बई के दर्जी ने साबित करके दिखा दी है। खादी की पोशाक में कला ढूंढने वालों को इस बाहरी कला से संतोष हो जाता है। और जो मामूली, मोटी, लेकिन साफ और सादा बुनावट वाली अच्छी खादी के कपड़े में बल्कि उसके हरेक ताने बाने में ही कला देख सकते हों उनको तो हाथ के धागे की हाथ से की हुई सिलाई से बेशी कुछ अच्छा नहीं लगता। खादी की हलचल लोगों में इस प्रकार की रसज्ञता भी पैदा कर रही है।

विलायती धागों के बदले

विलायती धागे की रीलों के गड्डे, गड्डियां, जो कि लाखों रुपये के इस देश में खपते हैं उनके बदले एक देशी मिलने आखिरकार एसा माल बनाना शुरू किया है। धागों के बारे में पिछली पत्रिका में जो उल्लेख किया गया था उसके जवाब में ही एक अहमदाबाद की मिल ने अपने बनाये हुए रील व गड्डों का नमूना इस विभाग के पास भेजा है। धागे अच्छे मालूम पड़ते हैं। मोची में चरबी नहीं देते, इसकी भी पूछ-ताछ कर ली गई है। विलायती धागे से सस्ते भी हैं। रील के धागों में ज़रा मुलायमियत कम है ऐसा एक जांच करने वाले दर्ज़ी ने कहा था। आशा है कि इस बात पर मिल वाले आयंदा ध्यान देंगे। जबतक हाथ ही के कते हुए सूत के धागों का सर्वत्र प्रचार न हो तबतक देशी मिल की रीलें व गड्डे जो अब निकल ने लग गये हैं इस्तेमाल करने में अगर लोग आलस्य करेंगे तो यह बड़े दुःख की बात होगी। खास कर के अब कल में सिलने वाली खादी में विलायती रील लगती हुई देखने में आती है तो बहुतों को इससे हंसी और बहुतों को बड़ा दुःख होता है। इन धागों पर चर्खे की छाप लगी रहती है। इसका तो यही मतलब निकल सकता है कि यह मिल चर्खे को धन्यवाद देती है। यानी यह कबूल करती है कि मिलों का उद्योग चर्खे के (यानी स्वदेशी के) आशीर्वाद से ही चल सकता है। आशा है कि लोग इन देशी धागों को अपनायेंगे। रंगीन धागे भी मिल सकते हैं।

मिलने का पता यह है:—"परचूरण वेचाण विभाग कैलीको मिल। पोस्ट बाक्स नं० २८ अहमदाबाद।"

मंगवाने वाले सीधा उन्हींसे पत्र व्यवहार कर लें।

मगनलाल खुशालचंद गांधी

(पृष्ठ १०० से आगे)

महासभा की कार्य-समिति, और सत्याग्रह-समिति की बैठक १३ ता. को अमृतसर में होने वाली है। भिन्न भिन्न प्रान्तों के नेता भी कार्य-समिति के लिए बुलाये गये हैं। पण्डित मोतीलालजी, देशबन्धु दास जैसों को उन दिनों में वहां जाने की फुरसत कहां मिल सकती है! परन्तु प. जवाहरलाल नेहरू और अलीभाई वहां अवश्य पहुंचेंगे ही। किसी निश्चय पर दोनों समितियां आ सकें तो अच्छा। पर कुछ कह नहीं सकते। धारा-सभा-दल तथा उससे भिन्न दल दोनों ऐसे मामलों में कहांतक एकमत हो सकेंगे यह एक सवाल है। कोकोनाडा में यह सवाल पेश होगा। इस प्रश्न के उपस्थित होने के पहले ही यह जरूरी है कि अपरिवर्तनवादी लोग किसी एक जगह एकत्र होकर अपने सारे कार्य-क्रम के विषय में—उसमें सिक्खों का सवाल भी आ जाय—सलाह-मशवरा कर के अपनी स्थिति का निर्णय कर लें। इस निर्णय के बाद दोनों में टक्कर होने के बहुत ही कम अवसर रहेंगे।

हिन्दी-नवजीवन

जेल-दिन ६०५, रविवार, कार्तिक बदी १०, सं. १९८०

कोकोनाडा की ओर

कोकानाडा की महासभा को अब दो महीने भी नहीं रहे हैं। स्वराज्य-दल की सृष्टि के बाद महासभा के और असहयोग-आन्दोलन के जीवन में जो खींचातानी हुई, धारासभा-प्रवेश के सवाल ने देश में जो कमजोरी, मायूसी और देहली-महासभा के बाद कर्तव्य-मूढ़ता और आत्म-विश्वास की घटती की लहर फैलाई उसको देश का प्रत्येक सच्चा असहयोग-प्रेमी अनुभव किये बिना न रहता होगा। स्वराज्य-दल के नेताओं को अपनी भूल समझने, देश को गलत रास्ता दिखाने, उससे मौजूदा तितर-बितर और अव्यवस्था की हालत पैदा करने और इनके लिए प्रायश्चित्त करने में शायद कुछ समय दरकार हो; पर बंबई-महासमिति के समझौता-प्रस्ताव से बढ़ी उलझनों और हानियों को अनुभव कर के पं. जवाहरलाल नेहरू अभी अफसोस जाहिर कर चुके हैं और देहली-समझौता-प्रस्ताव से उत्पन्न अनर्थ को देख कर मौलाना महम्मदअली भी इसी अफसोस में मुब्तिला हैं। बात असल यह है कि असहयोग-आन्दोलन और कार्यक्रम के सिद्धान्त और व्यवहार की उत्तमता, उपयोगिता और प्रभाव से जहां तक संबंध है देश का एक बड़ा भाग उसका कायल है और गया-महासभा के पहले तक उसके प्रयोग ने उसकी महिमा उनके हृदय पर अच्छी तरह अंकित कर दी है। पर दुर्भाग्य से देश के कुछ ऐसे नेता जो महात्माजी के कारावास के बाद देश की दृष्टि में उनके कार्य के उत्तराधिकारी से थे, उस महान् जिम्मेवारी को अपने कंधों पर लेने में असमर्थ हुए और उन्होंने न केवल धारासभा का अलहदा रास्ता अख्त्यार किया, बल्कि अपने व्यक्तित्व, अपनी पिछली कुरबानी, सेवा, असहयोग और महात्माजी से संबंध, कानूनी और राजनैतिक चतुराई, व्यवस्थित आन्दोलन, के प्रभाव और उससे उत्पन्न लोगों के आदर-भाव के सहारे कमजोर या नरम दिल के लोगों को भी उस ओर खींचा। उनका कार्यक्रम यद्यपि बहुतेरे लोगों की समझ में नहीं आता, उनकी गलत रहनुमाई यद्यपि उन्हें साफ दिखाई देती है, यद्यपि उनके और महात्माजी के तौर-तरीक और उसूल का फर्क उन्हें दिखाई देता है,—वे उनके रंग-ढंग को ना-पसन्द करते हैं, तथापि कोई उनकी धाक से मजबूर है, कोई उनकी मुहब्बत से लाचार है, कोई पीछे हटकर भी, काम को बिगड़ते देख कर भी, उनके पीछे अनिच्छा-पूर्वक घसीटते जाने पर मजबूर हैं। अपरिवर्तनवादियों की यह कमजोरी या नरमी स्वराज्य-दल वालों की ताकत है और उस ताकत का फल है देहली का समझौता-प्रस्ताव जिसका कड़वा घूंट देश की आत्मा को अत्यन्त अनिच्छा-पूर्वक पीना पड़ा। निस्सन्देह यह कमजोरी थी; पर आत्म-शुद्धि के लिए कभी कभी ऐसे तेजोनाश को सहन करना अनिवार्य हो जाता है। इस डेढ़ महीने में हमने अच्छी तरह देख लिया है कि यदि कुछ लोगों में आत्मशुद्धि की प्रेरणा हुई है तो अनेक लोग पथ-भ्रष्ट हो चुके हैं, हो रहे हैं और कोकानाडा महासभा तक शायद और हों। देहली के समझौता-प्रस्ताव और महात्माजी के नाम का जैसा दुरुपयोग हो रहा है, और जिस प्रकार स्वराज्य-दलवालों को धारासभा के लिए कुछ अपरिवर्तनवादियों की ओर से प्रोत्साहन, सहायता मिल रही है, यह उस गलत रास्ते जाने का फल था जिसे दुर्दैवी के रूप में छिपी कमजोरी ने दिखाया था। इन अप्रिय परन्तु कर्तव्य-रूप बातों का वर्णन आज इसलिए करना पड़ा कि मेरी आत्मा को इस खयाल से अत्यन्त क्लेश हो रहा है कि किस प्रकार हम अपनी कमजोरी और नरमी के शिकार हो कर राष्ट्र के एक महान् कार्य में बाधक हो रहे हैं—एक कैदी की तरह सब्ज बाग को उजड़ते हुए देख रहे हैं। पता नहीं, उस माली के दिल की व्यथाओं और उमंगों की हमें याद भी आती है या नहीं जो अपने प्यारे बगीचे को हरा-भरा रखने के लिए अपने खून का पानी पिलाता था। पता नहीं, हम इस बात को भी महसूस करते हैं या नहीं कि हमने क्या समझ कर, किन आशाओं से, उस बाग को सींचने में अपनी नाचीज शक्तियां लगाई थीं और आज हम किस तरह अलिप्त, निःसंग, उदासीन होकर उसकी बरबादी अपनी आंखों देख रहे हैं—अरे नहीं, अपनी उदासीनता से उसकी बरबादी को उग्र और भयंकर बना रहे हैं! मुझे उन स्वराज्य-दलवालों से कभी शिकायत नहीं रही जो महात्माजी की मौजूदगी के जमाने में भी धारासभा के प्रेम-पाश में बंधे हुए थे और समय समय पर अपनी स्थिति जाहिर करते रहते थे—मुझे उन स्वराज्य-दलवालों से भी कोई शिकायत नहीं रहेगी जो तब तो धारासभा के खिलाफ थे; पर अब उसके हामी हैं और फिर भी अपनेको असहयोगी कहते हैं, यदि वे अपनेको असहयोगी कहना छोड़ दें—मुझे उन अपरिवर्तन वादियों से भी कोई शिकायत नहीं रहेगी यदि देहली के पहले वे खुल्लमखुल्ला स्वराज्य-दल में मिल जाते या अब भी मिल जायं और असहयोग को तिलांजलि दे दें और फिर धारासभा में जा कर जो जी चाहें करते रहें। पर मुझे उन लोगों से जरूर शिकायत है, उनके तौर-तरीक पर जबरदस्त एतराज है, जो अपनेको महात्माजी के अनुयायी बताकर, उनके कार्यक्रम में अपना विश्वास प्रकट करके, या तो उदासीन रहते हैं या दोनों घोड़ों पर सवारी करने की कोशिश करते हैं, या दबे-छुपे उस आन्दोलन और कार्यक्रम के लिए आस्तीन के सांप का काम देते हैं। उन्हें न मनुष्य माफ कर सकता है, न ईश्वर।

अब सवाल यह है कि हम क्या करें? इस महान् आन्दोलन की मिट्टी इसी तरह पलीद होने दें, 'जबरदस्त का ठेंगा सिर पर' इस कहावत को चरितार्थ होने दें, या उदासीनता और कमजोरी की केंचुल को फेंक कर सत्य और आत्म-विश्वास के अनुकूल काम को करने के लिए कटिबद्ध हो जायं—चाहे दुनिया हमारा साथ दे चाहे न दे, चाहे हम एक हों या अनेक—जिस बात को हम अपने दिल के तह के अन्दर सच्चा और हितकर समझते हों उसे निर्भय और निस्संकोच हो कर कहें, जो कहें वैसा करें और करने के लिए जो कुछ मुसीबतें सहना हों, सहें—परवा नहीं यदि हमें अपने अजीजों की मुहब्बत से वंचित रहना पड़े, परवा नहीं हम गुस्ताख और ना-समझ माने जायं, परवा नहीं प्रशंसा की जगह हमपर छीः थूः की वर्षा हो और दुनिया हमारा तिरस्कार करने लगे। यह है बलवानों, बहादुरों और सत्य-भक्तों का मार्ग—यह है विजय और आजादी का मार्ग। इसके खिलाफ कमजोरी के समझौते, कमजोरी की एकता का मार्ग कर्तव्य-मूढ़ता, पथ-भ्रष्टता, निराशा और पराजय की ओर बरबस घसीटे बिना नहीं रह सकता। अतएव यदि हमें अपनी मौजूदा अकर्मण्य, मूढ़, शिथिल, अव्यवस्थित, अवस्था से निकलना हो, महात्माजी के असहयोग को उनके छूटने के पहले सफल बनाना तो दूर, उसे जीवित भर रखना हो, एक महान् विश्व-विभूति के योग्य अपनेको साबित करना हो, स्वराज्य के शीघ्र दर्शन करना हो तो एक ही उपाय हमारे पास शेष रह गया है। वह यह कि पहले तो कोकानाडा महासभा में सिर से पूरे

असहयोग-कार्यक्रम में अपना विश्वास प्रकट करें, तीनों बहिष्कारों पर अटल रहें—और धारासभा-वादियों के भावी कार्यक्रम से कुछ वास्ता न रखते हुए एक दिल, एक उसूल के सच्चे श्रद्धावान् लोग महासभा के अन्दर उस कार्यक्रम के अनुसार दिलोजान से काम करें। अतएव अब देहली से अपनी दृष्टि हटा कर हमें कोकोनाडा की ओर—उत्तर हिन्दुस्तान से दक्षिण हिन्दुस्तान की ओर, घुमानी चाहिए और इन थोड़े से दिनों में दिन-रात यह कोशिश करनी चाहिए कि कोकानाडा में किसी तरह अपनी उदासीनता, कमजोरी, हिचकिचाहट का परिचय न दें और अपने सिद्धान्त पर, सत्य पर अटल रह कर सच्चे मनुष्य होने का परिचय दें।

हरिभाऊ उपाध्याय

वीर सुन्दरलाल की आवाज

[हिन्दी मध्यप्रान्त के वीर नायक श्री सुन्दरलाल हाल ही में जबलपुर के झंडा-सत्याग्रह में छः महीने कैद की सजा भोग कर बेतूल जेल से आये हैं। इस सप्ताह कोई ४ दिन आप सत्याग्रहाश्रम में रहे। देहली-महासभा के बाद मौलाना महम्मदअली को छोड़कर आप पहले आदमी मुझे मिले जिनका दमाग भविष्य के लिए बिलकुल साफ था—जहाँ शंका, सन्देह, भ्रम, के लिए जगह नहीं थी और जो अपने मन की बात कहने और कर दिखाने की हिम्मत रखते थे। वे देश-नेताओं से मिलने के लिए दौरे पर निकले हैं। सेठ श्री जमनालालजी से मिलकर यहां श्री वल्लभभाई पटेल, श्री. शंकरलाल बैंकर आदि से मिलते हुए सेलम में श्री. राजगोपालाचार्यजी से मिलेंगे। शुद्ध असहयोग करते हुए यदि अकेला ही रह कर सबसे लड़ना पड़े तो लड़ने की टेक रखते हैं। इन तीन दिनों में वर्तमान राजनैतिक स्थिति, असहयोग-आन्दोलन की अवस्था, सिक्ख और शुद्धि-प्रकरण आदि विषयों पर खूब दिल खोल कर बातें हुईं। उनका आवश्यक सार नीचे दिया जाता है— ह० उ०]

सवाल—आप अभी छः महीने जेल में हो कर आये हैं। इस बीच महासभा के इतिहास में दो बड़ी घटनायें हुई हैं—एक बम्बई महासमिति का और दूसरा देहली महासभा का समझौता-प्रस्ताव। आपके विचार इनके सम्बन्ध में क्या हैं?

जवाब—बंबई-महासमिति और देहली महासभा दोनों के समझौता-प्रस्ताव को मैं महासभा तथा देश दोनों के लिए अत्यन्त हानिकर समझता हूं। हम लोगों को गया ही में इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए था कि जो लोग किसी रूप में भी कौन्सिल-प्रवेश के प्रस्ताव को पास करना चाहते थे उनका विश्वास महात्मा गांधी के शान्तिमय असहयोग-कार्यक्रम से बिल्कुल हट चुका था। गया-महासभा के पहले भी हमें इसके अनेक सबूत मिल चुके थे। ऐसी सूरत में व्यक्ति-विशेषों के लिए हमारे हृदय में हम कितना ही आदर क्यों न रखते रहें,—और व्यक्तियों के लिए इस तरह का आदर बनाये रखना जरूरी है— सिद्धान्तों अथवा कार्यक्रम के विषय में किसी तरह के समझौते की कोशिश का ख्याल तक करना दोनों तरह के कार्यक्रमों का नाश कर डालना है। वास्तव में श्रीयुत दास, पं० मोतीलालजी और उनके पक्ष के लोग इस क्रान्तिकारी आन्दोलन से हट कर पुराने वैध-आन्दोलन की तरफ बढ रहे हैं, उनका विश्वास है राजनैतिक चालों और दलीलों पर। हमारा मार्ग है कष्ट-सहन और स्वार्थ-त्याग से हो कर। महासभा के लिए इनमें से एक मार्ग निश्चित करना अपने लिए जरूरी है। इसलिए बंबई और देहली के प्रस्तावों का नतीजा महासभा के नाम के लिए घातक है और राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अत्यन्त अहितकर हुए बिना नहीं रह सकता।

सवाल—दोनों प्रस्तावों का असर देश पर आप क्या देख रहे हैं?

जवाब—इनका स्पष्ट असर मुझे यह दिखाई दे रहा है कि महासभा की इज्जत जिसे हमने तीन बरस के प्रयत्नों से जनता के अन्दर कायम किया था, एकदम मिटती जा रही है। असहयोग पर से लोगों की श्रद्धा कम होती जा रही है। कार्यकर्ताओं के हृदयों में एक प्रकार का नैराश्य छा रहा है और समस्त असहयोग-आन्दोलन को एक गहरा धक्का पहुंचा है। इसके अतिरिक्त जगह जगह पर दिल्ली-प्रस्ताव का दुरुपयोग करते हुए महासभा के नाम पर धारासभाओं के लिए उम्मीदवार खड़े किये जा रहे हैं। अनेक महासभा-समितियाँ और उनके पदाधिकारी खुले तौर पर खास खास उम्मीदवारों के पक्ष में अपने महासभा-अधिकारों का उपयोग कर रहे हैं—यहांतक कि महात्मा गांधी का पवित्र नाम भी धारासभा-प्रवेश के पक्ष में घसीटा जा रहा है। कहीं कहीं मुझे यह देख कर गहरा सन्ताप हुआ कि जिन स्वयंसेवकों ने नागपुर के पवित्र संग्राम में अपने जीवनों को पवित्र किया था, उन्हें महासभा-समितियों के मातहत कैनवेसिंग के अपवित्र काम में लगाया जा रहा है। इन सबसे जनता की श्रद्धा का डांवाडोल होना स्वाभाविक है और इससे अधिक दुर्भाग्य की बात महात्मा गांधी के पवित्र आन्दोलन के लिए मुझे सूझ ही नहीं सकती।

सवाल—इस हालत को दूर करने और असहयोग-आन्दोलन को सबल बनाने के लिए अब आप क्या उपाय तजवीज करते हैं?

जवाब—मेरे ख्याल में अभी तक इसी स्थिति को सुधारना बिल्कुल हमारे हाथों में है। हमें और हमसे मेरा मतलब उन सब लोगों से है जिन्हें महात्मा गांधी के संपूर्ण कार्यक्रम में पूर्ण विश्वास है,—गया महासभा से इस समय तक अपनी तमाम त्रुटियों और कमजोरियों पर पूरा ध्यान देना चाहिए। और उससे लाभ उठाते हुए कोकनद में फिर से महात्मा गांधी के कार्यक्रम अर्थात् नागपुर-कांग्रेस वाले कार्यक्रम की ओर महासभा को लाने का पूरा और सुसंगठित प्रयत्न करना चाहिए। मुझे विश्वास है कि महात्मा गांधी के प्रति देश की श्रद्धा बजाय अणु-मात्र भी कम होने के दिन पर दिन बढती जा रही है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम स्पष्टता के साथ, बल के साथ और विश्वास के साथ अपने विचार फिर से जनता के सामने रख दें। प्रत्येक प्रान्त के कार्यकर्त्ता इसी तरह अपने अपने प्रान्त में इस बात को स्पष्ट कर दें कि वे कोकनद-कांग्रेस में क्या करना चाहते हैं। और फिर एक सुसंगठित रूप में सब मिल कर इस बात की कोशिश करें कि कोकनद की कांग्रेस बजाय धारासभा के लिए किसी प्रकार का मैंडेट (आदेश) देने के धारासभा के अन्दर किसी तरह के कार्यक्रम को पास करने की अपनी देहली की गलती से हट कर फिर से शान्तिमय असहयोग के अन्दर अपने पूर्ण विश्वास को प्रकट करे।

सवाल—चूंकि आप नागपुर-झण्डा-सत्याग्रह के प्रवर्तन के एक खास कारण हैं इसलिए क्या आप यह बतावेंगे कि उसके अन्त के संबंध में आपका क्या ख्याल है? और आपके प्रान्त पर इसका क्या असर हुआ है?

जवाब—सच यह है कि जिस तरह मैं उस आन्दोलन को ले जाना चाहता था ठीक उस तरह वह बाद में नहीं चल सका। किन्तु मैं समझता हूं, कोई भी आन्दोलन आद्योपान्त उस तरह न चलता होगा जिस तरह शुरू में उसके चलने की आशा की जाती है। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि नागपुर के युद्ध में हमने पूरी और स्पष्ट विजय प्राप्त की। दो ही प्रश्न थे—सिविल लाइन्स में झण्डे

का से जाना और म्युनिसिपालटी की इमारतों पर राष्ट्रीय झण्डे का फहराना। इजाजत का प्रश्न तो केवल अपनी बात रखने के लिए मध्यप्रान्त सरकार को बाद में चढ़ना पड़ा था और इन दोनों बातों में हमारी स्पष्ट विजय हुई। सिविल लाइन्स में झण्डे का जलूस अब रोका नहीं जाता और अभी कुछ दिन हुए वर्धा म्युनिसिपलटी के टाउन हाल पर तीन दिन लगातार राष्ट्रीय झण्डा फहराता रहा; पर किसीने ऐतराज नहीं किया। इस आन्दोलन का प्रभाव मध्यप्रान्त के जीवन पर बहुत ही अच्छा पड़ा है। अगरचे स्वयंसेवकों के अलगाव और उनके नेताओं की कुर्कियों और जानबूझे दमन के जरिये सरकार ने लोगों को कर्तव्य-भ्रष्ट करने में कोई कसर नहीं बाकी रक्खी तथापि मध्यप्रान्त इस तरह के सत्याग्रह के लिए जितना छः सात महीने पहले तैयार था उससे आज कई गुना ज्यादह तैयार है।

सवाल—नाभा-नरेश की पदच्युति के सिलसिले में अकालियों पर जो चक्र सरकार ने चलाया है उसपर आपकी क्या राय है और उसके संबंध में देश का क्या कर्तव्य आप समझते हैं?

जवाब—नाभा-नरेश के साथ अन्याय किया गया—इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं; किन्तु यह कोई असाधारण बात भी नहीं। ब्रिटिश साम्राज्य का पिछले डेढ़ सौ वर्ष का इतिहास इस तरह की बेइमानियों, दगाबाजियों और अन्यायों से पद पद पर भरा पड़ा है। वीर अकालियों के प्रयत्नों की, उनके संगठन की और उनकी कुरबानियों की जितनी भी तारीफ की जाय थोड़ी है। इस शिथिलता के समय में विशेष कर जब कि पंजाब का सारा प्रान्त साम्प्रदायिकों का शिकार हो रहा है, अकाली सिक्खों की करतूतियां उस गलित शरीर पर झूमर की तरह चमकती हैं। सारे देश को उनका अभिमान होना चाहिए। उनके साथ पूरी सहानुभूति होनी चाहिए और किसी क्षण भी मौका मिलने पर कांग्रेस तथा देश को उनका पूरा साथ देने के लिए तैयार रहना चाहिए। मेरी राय में दो-तीन बातें तो अभीसे की जा सकती हैं। एक यह कि महासमिति का एक न एक योग्य प्रतिनिधि बराबर शि० गु० प्र० समिति के साथ बतौर विनीत सलाहकार के रहे। दूसरे लगातार बीस-तीस या पचास योग्य महासभा के स्वयंसेवक साधारण छोटी-मोटी सेवाओं के लिए शि० गु० प्र० समिति के सुपुर्द रहें। और वे भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों से लिये जावें। तीसरे विविध प्रान्तीय तथा जिला महासभा-समितियां अपने अपने इलाकों में गुरुद्वारा-कमिटी की विज्ञप्तियों को छपवा कर प्रकाशित करें और उनका पूरा पूरा ऐलान करें एवं अकाली-संग्राम के लिए अपने अपने यहां की जनता में सच्ची सहानुभूति पैदा करने का काम इसी समय से खास तौर पर अपने हाथों में लें। अर्थात् भारत की कमसेकम ढाई सौ जिला कांग्रेस-कमिटियां शि० कमिटि के लिए एक प्रकार की स्थायी उप-समितियों का काम दे सकती हैं।

सवाल—अब एक आखिरी सवाल और बस। 'शुद्धि-संगठन' आन्दोलन को आप कैसा समझते हैं?

जवाब—मैं 'शुद्धि' आन्दोलन और उससे उत्पन्न संगठन-आन्दोलन दोनों को असत्य और देश के लिए अत्यन्त हानिकर समझता हूं। मुझे विश्वास है कि इंजील, कुरान, अथवा भगवद्गीता, इन तीनों में से किसी एक पुस्तक में भी मनुष्य की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफी से ज्यादह मसाला मिल सकता है। यह मैं अपने अध्ययन के आधार पर कह रहा हूं। मैं तो मान ही नहीं सकता कि कोई हिन्दू अथवा मुसल्मान जिसने अपने धार्मिक ग्रन्थों को खोज ईमानदारी से की हो, हिन्दू से मुसल्मान या मुसल्मान से हिन्दू होने का कभी खयाल तक मन में ला सकता है। हां, एक हालत यह अवश्य होती है जब मनुष्य इन तमाम पृथक् पृथक् मजहबों के तंग दायरों से बाहर निकल जाता है परन्तु उस समय फिर न वह हिन्दू रह सकता है, न मुसल्मान, न पारसी। जो मनुष्य अपने मजहब को शुद्ध और दूसरे के मजहब को अशुद्ध गिनता है, और यही 'शुद्धि' शब्द का अन्तर्गत भाव है, वह न अपने मजहब को समझा है, न दूसरे मजहब को। और सच्ची मजहबी जिन्दगी से तो उसके विचार अभी कोसों दूर हैं। इसीलिए मैंने शुद्धि-आन्दोलन को असत्य कहा है। रहा संगठन का प्रश्न। मुझे आश्चर्य है कि सहारनपुर, अमृतसर, आगरा और अजमेर के आपस के अन्यायों के सामने भी लोग गोरखपुर, बलिया, देहली जालियांवाला, बारीसाल और आसाम के अकथनीय अत्याचारों को जो सहारनपुर और आगरे की अपेक्षा शायद कई गुना बड़े पैमाने पर हमारी आंखों के सामने हुए हैं, किस तरह भूल जाते हैं? मुझे तो देश में एक ही संगठन दिखाई दे रहा है और वह ब्रिटिश शासकों का वह जबर्दस्त संगठन है जो बिना हिन्दू-मुसल्मानों की तमीज किये समस्त भारतवासियों को एक समान निर्दयता के साथ कुचल रहा है। उसका मुकाबला करने के लिए मुझे एक ही संगठन की आवश्यकता दिखाई देती है। और वह ३१ करोड़ भारतवासियों का संयुक्त संगठन है। आजकल के ऐसे समय में सब से अधिक उपयोगिता इस प्रकार के सच्चे भारतवासियों की है जो इन तमाम मजहबी झगड़ों से ऊपर उठ कर पूरी निर्भयता के साथ हिन्दू और मुसल्मान दोनों को खरे खरे शब्दों में उनकी मूर्खता दिखला सकें और अपनी सचाई को साबित करने के लिए इन नाशकारी झगड़ों को मिटाने के प्रयत्न में बीच में कूद कर अपने तईं मिटा देने के लिए तैयार रहें।

टिप्पणियां

अमृतसर में कार्य-समिति

महासमिति के सभापति श्री कोंडा वेंकटपय्या ने सूचित किया है कि सिक्ख-प्रकरण पर विचार करने के लिए कार्य-समिति की बैठक आगामी १३ नवंबर को अमृतसर में होगी। इसी सप्ताह लाहौर में लाला लाजपतराय, पण्डित मोतीलालजी, डाक्टर किचलू, पण्डित मदनमोहन मालवीय, डाक्टर अनसारी, श्रीमती सरोजिनी नायडू ने आपस में मिल कर सिक्ख-स्थिति पर विचार करके यह निर्णय किया कि कार्यसमिति की बैठक १० ता० को अमृतसर में की जाय और तबतक हम लोग अकालियों की भरसक सहायता करें। कुछ अकाली नेता अपनी सफाई पेश करना चाहते हैं; और पण्डित मोतीलालजी, देशबन्धु दास, पण्डित मालवीयजी उनको इस विषय में सहायता देंगे। डाक्टर किचलू और अनसारी ने कार्य-समिति की बैठक होने तक अपनेको इस विषय की सहायता से दूर रक्खा है।

बहुत संभव है, कार्य-समिति को ता० १३ से बदल कर १० कर दी जाय। ५ नवंबर को अकाली-नेताओं के मुकदमे की पेशी होने वाली है। इसको खयाल में रखकर ही शायद १० ता० पूर्वोक्त नेताओंने पसन्द की हो। कार्य-समिति, सुना है, अन्य नेताओं को भी निमंत्रण भेज रही है जो कार्य-समिति के सदस्य नहीं हैं। यह बहुत ठीक हो रहा है। तमाम सदस्यों और निमंत्रित नेताओं का कर्तव्य है कि वे कार्य-समिति के द्वारा कुछ असली और सच्ची हमदर्दी और सहायता दिखाने के लिए कटिबद्ध हो कर जायं। अकाली कर्म के उपासक हैं—कोरी वाणी की सहानुभूति की न उन्हें जरूरत है, न वह उनके योग्य ही है। उन्हें जरूरत है महासभा की कार्य-समिति और नेताओं के द्वारा सच्ची नेतृत्व पद-

बचने के प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन की जो उनके नेता उनके लिए छोड़ गये हैं। इस संबंध में मैं शुरू में श्री सुन्दरलालजी की तजवीजों को पसन्द करता हूं। पर मुझे डर है कि महासभा के अन्दर की कमजोरियां कहीं वीर युवक अकालियों के लिए असन्तोषकर न साबित हों। सफाई देने की तजवीज और उसमें सहायता देने का विचार मुझे इस नतीजे की ओर खींच रहा है कि अकाली लोग कहीं महासभा की वकील-वृत्ति का शिकार न हो जायं। गु० प्र० समिति अथवा अकाली-आन्दोलन महासभा के अन्तर्गत नहीं है। इसलिए कुछ अकालियों का सफाई देने पर आमादा होना चाहे ध्यान देने लायक न हो; पर कार्य-समिति या महासभा के नेताओं के द्वारा इस विषय में उन्हें वह प्रोत्साहन मिलना-अदालत में उनकी ओर से पैरवी करना जो महासभा की नीति के विरुद्ध है, कमजोरी का एक और उदाहरण होगा।

पीछे से मालूम हुआ कि कार्य-समिति की बैठक १३ नवम्बर को ही निश्चित हुई है।

यह रास्ता नहीं

देहली-महासभा के हिन्दू-मुसल्मान-एकता-संबंधी प्रस्ताव ने दोनों के झगड़ों के उग्र रूप को रोक जरूर दिया है। यद्यपि अभी भीतर ही भीतर आग जल रही है पर दोनों दल के लोग अब उसकी हानियां समझने भी लगे हैं। यह तो कहना ही नहीं होगा कि इन झगड़ों में नौकरशाही की खूब बन बैठी है और जहां तहां उन लोगों ने भी या तो अपनी निजी, या मजहबी अदावत निकालने का या सरकार की खैरख्वाही दिखाने का खूब मौका साध लिया है। मुसल्मान कर्मचारी हिन्दुओं से और हिन्दू, मुसल्मानों से और अंगरेज इन दोनों से अपना उल्लू सीधा करते हुए दिखाई देते हैं। इस घृणित स्थिति से बचने का एक ही उपाय है कि समझदार और उदार विचार के हिन्दू और मुसल्मान अपने अपने दल को रोकें, उनकी गलतियां, ज्यादतियां उन्हें दिखावें, उनपर उन्हें शर्मिन्दा करें और पिछली बातों को भूल कर दोनों को परस्पर सद्भाव बढ़ाने की ओर प्रेरित करें। पर इसके बजाय देखते हैं कि अजमेर, सहारनपुर, आगरा आदि में सरकार ने दंगे के अपराध में लोगों को पकड़ रक्खा है, उनपर मुकदमे चल रहे हैं और दोनों दल के लोग उसमें सहायक हो रहे हैं, और समझ रहे हैं कि अब एक दूसरे की अकल ठिकाने आजायगी। पर इस तरीके से झगड़ा और कुदूरत—वैमनस्य-घटने के बजाय बढ़ेगा ही। पहले तो हिन्दू-मुसल्मान आपस में लड़ें, फिर दोनों सरकार की शरण जायं या सरकार दोनों को शरण आने पर मजबूर करे—क्या ये शीघ्र स्वराज्य पाने के लक्षण हैं? क्या सरकार को कमजोर कर के अपने राष्ट्र को बलवान् बनाने का यह तरीका है? एक तो झगड़े का होना ही बुरा—फिर महासभा और उसके नेताओं के द्वारा उनका फैसला होने के बजाय सरकारी अदालतों में उनका जाना और खींचा जाना और भी बुरा है। इससे हम जितनी अपनी ताकत कम करते हैं उससे कितनी ही गुनी ताकत सरकार की बढ़ा देते हैं। खर्च, बेइज्जती, अनेक तरह की परेशानी के सहते हुए भी सच्चा इन्साफ होने की कोई गैरण्टी नहीं। सिवा बरबादी के दूसरा कुछ नतीजा नहीं हो सकता। न यह एकता का रास्ता है, न स्वराज्य का, न किसी मजहब की तरक्की या हिफाजत का। इसका एक ही रास्ता है—पिछली बातें भूल कर-आपस में माफी-तुआ मांग कर, परस्पर गले मिलना और आयन्दा के लिए नसीहत लेना। यदि इन दंगों से अबतक भी हमने नसीहत न ली हो और देश के भाग्य में अधिक कड़ और दुखदायी अनुभव सीखना बदा हो तो बात दूसरी है—उस हालत में परमात्मा ही इस गुलामी से हमारा उद्धार करें तो भले ही, हम तो अपनेको उसके अयोग्य ही साबित करेंगे—वर्ना इसी रास्ते में हमारा, देश का और धर्म का कल्याण है। हिंसा से प्रतिहिंसा बढ़ती है और प्रतिहिंसा की वृद्धि मनुष्य को मानव पशु बना देती है। क्षमा से गलती करने वाला शर्मिंदा होता है, उसका सद्भाव बढ़ता है, और इससे एकता होती है। मनुष्य का सुधार दण्ड-द्वारा भय-प्रयोग करने या कराने से उतना नहीं होता जितना क्षमा द्वारा उसके विवेक को जाग्रत करने से होता है। अतएव तमाम हिन्दू-मुसल्मानों को चाहिए कि वे इन दंगों के मामलों में सरकार को किसी तरह की मदद न दें, अदालतों में गवाही न दें। इससे एक तो सरकार का पक्ष निर्बल हो जायगा और दूसरे इस उदार-भाव का असर अपराधियों पर और तमाम हिन्दू-मुसल्मानों पर अच्छा होगा। प्राण-दान अथवा कष्ट-त्राण के रूप में किये एहसान से बढ़कर मनुष्य के हृदय को जीतने की शक्ति किसी चीज में नहीं। और हिन्दुस्तान के नीच और बदमाश लोगों में भी एहसान को न मानने वाले कृतघ्न बहुत कम हैं।

पथिकजी और बेगूं के मुन्सरिम

श्री विजयसिंहजी पथिक की गिरफ्तारी के समाचार पाठक जानते हैं। गिरफ्तारी के समय वे संग्रहणी से बीमार थे। आरम्भ में पुलिस ने उनके साथ सख्तियां की थीं। अब उनका स्वास्थ्य पहले से कुछ ठीक है, यद्यपि सन्तोषजनक नहीं। जेल की अंगरेजी दवायें उन्हें मुआफिक नहीं होतीं। उदयपुर-राज्य ने, प्रथा न होने का कारण बता कर, किसी बाहरी वकील की सहायता लेने की मंजूरी पथिकजी को नहीं दी। उनपर जुर्म लगाये गये हैं बड़े बड़े-राजद्रोह आदि के। ऐसी हालत में देशी-राज्य का कोई वकील क्या पैरवी करेगा? मेरी राय में तो पथिकजी सफाई के मोह से बचे रहें। उनके खिलाफ जो तैयारियां हो रही हैं उन्हें देखते हुए उनका बरी होना कठिन है। कोई दो महीने होने आये पर अबतक पेशी की तारीख का ही पता नहीं है। देशी-राज्यों का कुछ अजीब हाल है। वहां के हाकिमों को स्वतन्त्रता के प्रेम, जनता के अधिकार के लिए लड़ना, आदि बातों की प्रायः कदर नहीं होती। बेगूं के मुन्सरिम का ही उदाहरण हमारे सामने है। पथिकजी का मामला अभी जेर तजवीज है। पर मुन्सरिम साहब उनपर अनेक तुहमत और इल्जाम लगा कर उनकी फहरिस्त और कच्चा चिट्ठा दुनिया भर में बांट रहे हैं। उनकी भाषा, पथिकजी के संबंध में प्रयुक्त तुच्छ और घृणित शब्द, कानून और जाब्ते की दुहाइयां, खुद जनता के खैर-अन्देश होने की चिन्ता और ठसक, ये बातें देशी राज्यों की नौकरशाही की कनिष्ट मनोवृत्ति और अंधकार-पूर्ण वायुमण्डल की सूचना देती हैं। अनेक कारणों से इन पंक्तियों का लेखक देशी राज्यों की अन्तःस्थिति, वहां के अधिकारियों की अंधाधुन्धी, मनमानी, स्वाधीन भावों को कुचलने की और जनता की जागृति के प्रयत्न को धर दबाने की प्रवृत्ति, आदि बातों से परिचित है और उसे मुन्सरिम सा. के इन विज्ञापनों को पढ़ कर जरा भी आश्चर्य न हुआ। स्वाधीन भावों का ककहरा भी न जानने वाले लोग और खास कर राज्याधिकारी किसी स्वतन्त्रता-प्रेमी वीर आत्मा की इससे अधिक कदर नहीं कर सकते। मेरी राय में मुन्सरिम के ये विज्ञापन पथिकजी के लिए प्रशंसा के पदक हैं और उन्हें जो सजा दी जायगी वह उनकी सेवाओं का पुरस्कार होगी। जो पथिकजी को जानता है, जिसने उन्हें जानने का प्रयत्न किया है, वह उनके कुछ विचारों से चाहे सहमत न हो, पर उन्हें नीच, स्वार्थ-साधु और पाजी कभी नहीं मान सकता और देश-भक्तों पर राजद्रोह, बगावत फैलाना, जनता को बरगलाना आदि इल्जाम तो देश की वर्तमान राजनीति में एक फैशन हो गया है। ह० उ०

सिक्ख-संग्राम

सिक्खों का संग्राम बराबर चल रहा है। गु० प्र० समिति की विज्ञप्तियां अभी तक तो चली आ रही हैं। इससे उस समिति की दृष्टि से अकालियों के समाचार मिल रहे हैं। शि० गु० प्र० समिति के कार्यकर्ता सभ्य अभी पकड़े जा रहे हैं। ज्ञानी गुरमुखसिंग—समिति के एक नये सभ्य-बिना ही वारंट के गिरफ्तार किये गये। जो एक इन्स्पेक्टर उन्हें पकड़ने के लिए आया था उसने कहा कि वारंट की कोई जरूरत नहीं, मेरी जबानी इत्तला काफी है। २५ अकाली जैतो के लिए रवाना हुए थे। वे २३ ता० को फ़ीरोजपुर पहुंचे। उन्हें पुलिस ने खूब जी भर पीटा। अन्त को उनके मुखिया को गिरफ्तार कर के बाकी लोगों को छोड़ दिया। दूसरा एक अकालियों का जथा अखंड-पथ रखता हुआ था। वह गंगसर में पकड़ा गया। पुलिस के हाकिम ने कहा कि तुम अपनेको गिरफ्तार समझो। दूसरा एक जत्था भी इसी तरह पकड़ लिया गया। दोनों जत्थे धर्मशाला में रक्खे गये हैं और उन्हें खाने-पीने की कोई चीज नहीं दी गई।

*   *   *

मुक्तसर—में कितने ही सिक्ख बिना वारंट गिरफ्तार किये गये हैं। गिरफ्तार हुए अकाली पीटे जाते हैं। किसीके घर पर इस मजमून के नोटिस लगाये जाते हैं कि अपने घर में किसी भी अकाली को न घुसने देना और कहीं फोटोग्राफरों के घर की तलाशी ली जाती है और जत्थाओं के फोटो वहां से उठा कर ले जाते हैं।

*   *   *

विश्वस्त सूत्र से खबर मिली है कि अकालियों का एक बड़ा जलूस लायलपुर में निकला था। १४४ धारा के अनुसार दीवान और जलूस की मुमानियत थी। फिर भी दीवान हुआ और जलूस निकला। अन्त को तीन-चार अगुआ पकड़े गये। इस प्रकार शान्ति के साथ सत्याग्रह और सविनय भंग किया जा रहा है, कहीं भी शान्ति का भंग नहीं होता और अगुओं के पकड़ लिये जाने पर भी काम बन्द नहीं होता।

*   *   *

मुक्तसर में पुलिस के दल इधर-उधर घूमा करते हैं। कितने ही गुरुद्वारा में घुस गये और अकालियों के धर्म-भाव को बड़ा आघात पहुंचाया। कोटकपुरा में तो बड़ी तोपें लगा दी गई हैं। अमृतसर के अकाली जत्थे के एक कारकुन-भाई मानसिंग-को पकड़ ले गये। पीछे से मालूम हुआ कि ये तो शि० गु० समिति वाले भाई मानसिंग नहीं हैं। तब वे छोड़ दिये गये। नाम की एकता होने पर बेचारे क्या करें?

*   *   *

शि० गु० प्र० समिति की डांक पर कड़ी नजर न रक्खी जाती हो सो बात नहीं। पर वह उनके पंजे में आती ही नहीं। मुक्तसर से जैतो जाने वाले और जैतो से मुक्तसर आने वाले सिक्ख मुसाफिरों की तलाशी रैलवे पुलिस लेती है। वह इसी शक पर कि कहीं गु० प्र० समिति की डांक तो किसीके साथ नहीं जा रही है। तलाशी भी ऐसी-वैसी नहीं, साफा खुलवाना, बाल बिखरवाना आदि। इस प्रकार तरह तरह से वे दिक किये जाते हैं।

*   *   *

मुक्तसर के दरबार साहब के सामने हसनखान नाम का एक पुलिस कर्मचारी अकालियों पर होने वाले अत्याचार को न सह सका और अपना इस्तीफा पेश कर दिया। फिर पिछले नवंबर के दिन आने लगे हैं। पिछले साल अकालियों पर हुए अत्याचारों के परिणाम-स्वरूप कितने ही गुरखों ने इस्तीफे दे दिये थे।

*   *   *

अमृतसर में अकाली नेताओं का मुकद्दमा चल रहा है। जो असहयोगी नहीं हैं वे अपने मुकद्दमें की पैरवी करेंगे। क्या वे "फौजी कानून" के दिन भूल गये? उन दिनों की अदालतें और उनके इन्साफ का हाल भूल गये?

*   *   *

परन्तु इन मुकद्दमों के नतीजे का अन्दाज अभी से किया जा सकता है। फरयादी पक्ष का दावा १९१९ के दावे की याद दिलाता है। १९१९ के दावे में महात्माजी को 'षडयन्त्रकारी गांधी' कहा गया था और दूसरों को उनके अनुयायी बता कर उनपर इल्जाम मढ़ा गया था। इस दावे में भी यह कहा गया है कि अकालियों के इस उपद्रव की बुनियाद उस समय से पड़ी जब से गांधीजी अमृतसर गये थे। और अन्त को उसका संबंध बब्बर अकालियों से जोड़ा गया है। दावा २५ फूल्स कैप पन्नों और २०० पैराग्राफ में पूरा हुआ है। यह बुनियाद ही सरकार को खटकती है। जहां कहीं कुछ जागृति हुई, वहां महात्माजी का संसर्ग, महात्माजी के उपदेश का संसर्ग, ही कारणीभूत है। इस विशाल क्षेत्र में पड़ी गहरी बुनियाद को उखाड़ फेंकने का जबरदस्त प्रयत्न सरकार कर रही है। पर यह कुदरत के खिलाफ है। भारत के बाहर संसार में जहां जहां महात्मा जी का उपदेश पहुंच चुका है वहां वहां तक सरकार किस तरह पहुंचेगी?

अकालियों का दमन करने में सरकार बब्बर अकालियों की हलचल का सहारा लेना चाहती है। हमें आशा रखनी चाहिए कि सरकार इसमें असफल साबित हुए बिना न रहेगी। यदि बब्बर लोगों के साथ अमृतसर में गिरफ्तार हुए सिक्खों का कुछ भी संबंध होता तो अकाली लोग आज जहां तहां शान्ति के साथ क्यों मार सहन करते? मालूम होता है, गुरु-का-बाग से भी अधिक अमर कीर्ति सिक्खों के नसीब में अमृतसर और जैतो के क्षेत्र में बदी है।

*   *   *

अमृतसर में नई कार्यकारिणी समिति के सदस्य १००-१०० अकालियों के जत्था ले कर घूमते हैं, जगह जगह व्याख्यान देते हैं, कहते हैं हम उस समिति के सदस्य हैं जिसे सरकार ने गैर कानूनी ऐलान किया है। वे पुलिस थानों के सामने ठहर कर गिरफ्तारी का इंतजार करते हैं। पर कोई उन्हें गिरफ्तार नहीं करता। इसपर "टाईम्स" फूला नहीं समाता। वह पंजाब-सरकार की चतुराई को सराहता है कि डाक्टर किचलू का कुछ दांव न चला। नागपुर की तरह यहां धड़ाधड़ गिरफ्तारियां नहीं होतीं। सविनय भंग और सत्याग्रह वाले मन-मसोतस कर रह जाते हैं। इसके अलावा अकालियों के कुछ पत्रों में गु० प्र० समिति की विज्ञप्तियां बराबर छप रही हैं। पर सरकार इसपर भी चुप है। इसे भी शायद वह सरकार की दानिशमन्दी समझता हो। पर समझ में नहीं आता वह इस पहाड़ बराबर प्रत्यक्ष सत्य को किस तरह भूल जाता है कि यदि गैरकानूनी जमात के लोगों को लगातार चुनौती देने पर भी सरकार नहीं पकड़ती, प्रत्यक्ष आज्ञा-भंग करने वाले समाचार-पत्रों पर मुकदमा नहीं चलाती तो इससे उसकी शान और इज्जत मिट्टी में मिलती है या अकालियों की? "ये अंगूर तो खट्टे हैं" कहने वाली लोमड़ी की और पंजाब-सरकार की इस दशा में कोई अन्तर हो सकता है? यदि सरकार मजबूत है तो वह "नेशन" के समाचार के अनुसार अकालियों के गिरफ्तारशुदा नेताओं के पास सुलह के पैगाम क्यों भेज रही है? यदि यह समाचार गलत हो तो उसने अबतक उसका खण्डन क्यों नहीं किया?

*   *   *

(शेष पृष्ठ ९५ पर)

कोकोनाडा की जिम्मेवारी

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	„ २)
एक प्रतिका	„ -)॥
विदेशों के लिए	„ ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक १३

सम्पादक—हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, कार्तिक सुदी ३, संवत् १९८०
रविवार, ११ नवम्बर, १९२३ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

सिक्ख-संग्राम

पंजाब के सिक्ख-संग्राम की गति में पिछले सप्ताह कोई फर्क नहीं हुआ। अपार शान्ति, धीरज और साहस के साथ अपरिमित समय तक लडने की शक्ति सिक्खों में है। उनके साथ सरकार चाहे कितने ही युद्ध-प्रपंच रचे, पर न तो उनकी शान्ति और धीरज ही नष्ट हो सकता है और न वे अपने लक्ष्य से ही च्युत हो सकते हैं। रोज सुबह २५ अकालियों का जत्था जैतो पहुंच जाता है। एक संवाददाता उनकी दिन-चर्या इस प्रकार बतलाता है—तीन बजे रात को अकाल तख्त भजन की धुन से गूँज उठता है। ग्रन्थ साहब का पाठ होता है और फिर सार्वजनिक प्रार्थना होती है। सुबह आठ बजे तो बडी भीड जमा होती है और दीवान होता है। वहां व्याख्यानों में सब से अधिक जोर अहिंसा-पालन पर दिया जाता है। इसके बाद प्रार्थना होती है कि अकालियों को धर्मनिष्ठ और धर्म-सामर्थ्य प्राप्त हो। फिर उन हजारों आदमियों की भीड में से २५ अकाली निकलते हैं, ग्रन्थ साहब और अकाल तख्त के सामने अहिंसा-पालन की प्रतिज्ञा करते हैं। फिर हार-माला से विभूषित हो प्रसाद ले कर और फिर एक बार अहिंसा-पालन और धर्मनिष्ठा के लिए प्रार्थना कर के, दरबार साहब से रवाना होते हैं और मुक्तसर का रास्ता लेते हैं। मुक्तसर से जैतो २८ मील है। मुक्तसर आकर वे फिर अहिंसा-पालन की प्रतिज्ञा करते हैं और फिर जैतो पर चढाई करते हैं। जैतो में पहुंचते ही गिरफ्तार कर लिये जाते हैं और जत्थेदारों से उन्हें अलहदा कर के रेल में बिठा कर २०० मील दूर कूटवाचल नामक जगह पर छोड देते हैं—न उन्हें दाना दिया जाता है न पानी!

* * *

इस तरह छूटने के बाद वे अपना रास्ता खोज लेते हैं। इस प्रकार लडाई नियमित रूप से चल रही है। हां, पहले से अब गिरफ्तारियां कम जरूर हो गई हैं। आखिरी महत्वपूर्ण गिरफ्तारी हुई है अकाली-पत्र के संपादक सरदार मंगलसिंह की। आप हाल ही तीन साल की सजा भोग कर आये थे। आने के बाद गु० प्र० समिति के सभासद बनाये गये थे। जालन्धरवाली पिछली सेंट्रल सिक्ख लीग के सभापति का आसन आप ही ने सुशोभित किया था। वे अपने एक पत्र में लिखते हैं—"अपनी पुरानी जगह—अपनी प्रिय जेल की कोठरी में फिर से प्रवेश करता हूं। ईश्वर आपका कल्याण करें।"

* * *

सरकार का ढंग-ढब ठीक ठीक समझ में नहीं आता। वह सिक्ख-जाति की एकता को तोड कर उसे छिन्न-भिन्न करने पर तुली हुई है। सब से पहले उसने गु० प्र० समिति और अकाली-दल को "गैर कानूनी मजमा" ऐलान किया। इसके जवाब में गिरफ्तार हुए सभ्यों और सेवकों की जगह पर नये सभ्य और सेवक आ गये। वे शान्ति-पूर्वक अपना काम करते जा रहे हैं, अपनी विज्ञप्तियां और फरमान बराबर प्रकाशित किये जा रहे हैं। १०० अकाली रोज अमृतसर-नगर में ऐसे झण्डे लेकर घूमते हैं जिन पर लिखा होता है—"शिरोमणि गुरुद्वारा समिति और शिरोमणि अकाली-दल का गैर कानूनी मजमा।" लाहौर तथा दूसरे मुकामों पर तीन तीन हजार अकालियों के जुलूस समय समय पर निकला करते हैं। पंजाब के अखबारों में प्रबंधक-समिति की विज्ञप्तियों को छापना पंजाब-सरकार ने मना कर दिया है। तिसपर भी वहां के उर्दू अखबार 'अकाली' गुरुमुखी दैनिक "अकाली ते परदेशी," गुरुमुखी दैनिक 'बबरशेर' और 'कृपाण बहादुर' में वे लगातार छपती हैं। इस प्रकार सरकार के जबरदस्त फरमान को सिक्ख-जाति कोई चीज नहीं समझ रही है।

* * *

एक ओर जहां सरकार सरवस्त अपने हुक्मों का निरादर होता हुआ देखती है तहां दूसरी ओर उसकी छुपी कार्रवाइयां बराबर जारी हैं। एंग्लो इंडियन अखबार सरकार के हृदय के प्रतिबिंब हैं। लाहौर के एक अखबार ने एक पत्र प्रकाशित किया है जिसमें लिखा है कि "सिक्खों के गुरुद्वारों को गु० समिति के कब्जे में रहने देना नामुनासिब है। यदि यह संस्था गैरकानूनी है तो फिर उसका कब्जा मन्दिरों पर किस प्रकार रह सकता है? यदि गुरुद्वारा समिति का यह कब्जा छीन लिया जाय तो अकाली-आन्दोलन को जड कट जाय।"

* * *

विज्ञप्ति २८० में लिखा है "नजीमों, जैलदारों, सफेद पोशों, और जागीरदारों ने नाभा के राज्याधिकारी के हुक्म से, एक सार्व-

जनिक सभा की। उसमें यह प्रकट किया कि मौजूदा गु० प्र० समिति सिक्खों की ठीक ठीक प्रतिनिधि नहीं है। इसका अर्थ यह है कि सरकार इन "जी हुक्म" लोगों से यह मतालबा करवाना चाहती है कि गुरुद्वारों के इंतजाम के लिए दूसरी कमिटी बनाइए।" इससे 'सांप छछूंदरि की' सी हालत हो रही है। पंजाब-सरकार न तो अपने हुक्म का अमल-दरामद कर सकती है और न गुरुद्वारों का कब्जा उनसे छुड़ा सकती है। क्योंकि यदि कब्जा छुड़ाती है तो दुराचारी महन्तों से नाता जोड़ना पड़ता है। इसलिए सरकार जरा उससे कम भद्दा रास्ता अख्त्यार करने की धुन में है और वह यह कि एक ऐसी कमिटी बनाई जाय जो उसके इशारों पर नाचती रहे।

* * *

गु० प्र० समिति इन कोशिशों का एक ही जवाब दे सकती है—वही जो सरदार महताबसिंग जेल जाने के पहले अपने संदेश में बता गये हैं—"प्राण चले जायं तो बहतर, पर गुरुद्वारों का कब्जा न छोड़ना।" यद्यपि कितने ही गुरुद्वारा अबतक प्र० समिति के कब्जे में आ चुके हैं; तथापि अभी कुछ महन्तों के कब्जों में भी है। नवीन गु० प्र० समिति ने तमाम महन्तों से सिफारिश की है कि जाति को अधिक मुसीबत के गड्ढे में गिराने की बनिस्बत तुरन्त गु० प्र० समिति का कब्जा सौंप दीजिए।

* * *

इस प्रकार सरकार की ओर से होनेवाले बुरे से बुरे काम का अनुमान कर के, पर उससे जरा भी विचलित या चिन्तित न होते हुए, सिक्ख लोग अपना काम करते आ रहे हैं। यह अन्देशा रखने की कोई जरूरत नहीं है कि इन शूर-वीर और अहिंसा के पुजारी अकालियों को दुनिया का कोई भी विघ्न अपने रास्ते से हटा सकेगा। पर इन अहिंसात्मक रीति से लड़कर सरकार के छक्के छुड़ानेवाले अकालियों के पैरों पर सरकार तभी झुकेगी जब पहले अपार बलिदान ले लेगी। इस संग्राम को परधर्मी लोग तटस्थ रह कर नहीं देख सकते। ऐसा करना मानों आत्मघात करना है। राष्ट्र के तमाम नेताओं को मिलकर इस बात पर विचार करना चाहिए कि आपको किस बात की सुविधा दरकार है, हम आपको क्या धन-सहायता कर सकते हैं?

* * *

कार्य-समिति, सत्याग्रह-समिति, और खिलाफत-कार्य-समिति की बैठकें आगामी १३ नवबर को अमृतसर में होंगी। इनमें शरीक होने के लिए अन्य नेता भी निमंत्रित किये गये हैं। उसी तारीख को, इन परामर्शों में हिस्सा न ले कर, मौ. अबुल कलाम आजाद ने क्या समझ कर देहली में नेताओं की परिषद् की आयोजना की होगी? यह बात नहीं कि देहली में आनेवाले नेता अमृतसर की ओर उपेक्षा-दृष्टि से देखते हों; पर शायद उन्हें अपने कार्य के हित की अधिक चिन्ता हो। मौलाना आजाद को अब इस बात की फिक्र पड़ रही होगी कि कोकोनाडा-महासभा में क्या करना चाहिए, महासभा का आदेश किस तरह प्राप्त किया जाय, किस तरह 'आदेश' लेने का निश्चय प्रकट कर के फिर देश को उसके लिए तैयार किया जाय। पर क्या वे धारासभाओं के चुनाव के होने तक अपनी चिन्ताओं से मुक्त नहीं हो सकते? बड़ी धारासभा का चुनाव तो अभी सब जगह बाकी है। १३ ता. को उन्हें तथा दूसरे नेताओं को अमृतसर जाने में भारी असुविधा न होनी चाहिए थी। नहीं कह सकते, उनके बिना एकत्र होनेवाले नेता किस निश्चय पर आ सकेंगे?

* * *

अकाली नेताओं के मुकद्दमे की पेशी की तारीख १३ नवंबर तक बढ़ा दी गई है। शायद सरकार कार्य-समितियों और सत्याग्रह-समिति के निर्णय को देख लेना चाहती हो। अकाली नेताओं ने अपनी पैरवी करना और सफाई देना इसलिए मुनासिब समझा है कि मुकदमे की कार्रवाई में नाभा-नरेश के पद-त्याग के संबंध में कुछ ऐसी बातें और कागजात पेश कर सकें जिससे सरकार की जबरदस्ती पर काफी प्रकाश पड़े। उन कागजात को पाने की गरज से पुलिस ने अमृतसर में प्र० समिति आदि के दफ्तरों की तलाशी ली; पर कहते हैं कोई मार्के की चीज हाथ नहीं लगी। पण्डित मालवीयजी, पं. मोतीलालजी, देशबन्धु दास के अलावा मदरास के श्री. श्रीनिवास आयंगार भी अकालियों की ओर से पैरवी करेंगे। लाला लाजपतराय, डाक्टर किचलू, पं. जवाहरलाल आदि मुकदमे के समय हाजिर रहेंगे।

* * *

पंजाब-सरकार ने इस खबर का प्रतिवाद छपाया है कि उसकी ओर से कोई सिक्ख जमींदार जेल में सरदार महताबसिंग से सुलह की बात-चीत करने गया था।

खादी-समाचार

कमला चर्खा

पत्रिका के २४ वें अंक में इस चर्खे के बारे में कुछ हाल लिखा जा चुका है। इस चर्खे के इश्तिहार को देखकर इसके विषय में पूछताछ होने से इसको बनानेवाली कंपनी से इसके विषय में कई सवाल पूछे गये थे। लेकिन आजतक उनमें से जो मुद्दे के सवाल थे उनका जवाब नहीं आया। इसके बारे में आखिरी फैसला जानना चाहनेवालों के पत्र रोज आते जाते हैं। इस पत्रिका में कई बार कहा जा चुका है कि विधिपूर्वक बनाये हुए सादे चर्खे से बढ़कर दूसरा कोई चर्खा अभीतक हमारे जानने में नहीं आया है। कमला चर्खा के बारे में भी यही बात समझनी चाहिए।

बंगाल से एक खादीभक्त नेता लिखते हैं कि:—"खादी पत्रिका का २४ वां अंक मिला है जिसमें कि कमला चर्खे के बारे में कुछ लिखा गया है। चर्खे के शुरू के जोश के दिनों से ही कमला चर्खा बनने लगा है और इसने बहुत नुकसान पहुंचाया है। इस हलचल के शुरू में इस चर्खे की खादी आवृत्त ही ज्यादा तर बिकी थी। इसमें चक्कर की जगह एक लकड़ी की गोल तश्तरी सी और तकले पर पीतल की गरारी लगाते हैं। वह तो उसपर माला के फिरने से ही कट जाती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि इस चर्खे के खरीदने वाले सब यह समझने लग गये हैं कि कातने का काम तो धनी लोगों का खेल है। उनमें से बहुतों ने तो कातना बिल्कुल ही छोड़ दिया है। इसी चर्खे के बनानेवालों ने अब एक यांत्रिक चर्खा बेचना शुरू किया है। बम्बई में कुछ वक्ततक जो एक चर्खा चल निकला था बिल्कुल उसीके जैसा है। जीवन चक्र 'ए' का नमूना आपने देखा ही होगा। उसीके जैसा यह यंत्र है। ऐसे चर्खों को जितना धिक्कारा जाय उतना कम है। आपने प्रश्न किया है कि ७ तोले सूत किस अंक का निकलता है। लेकिन इसका जवाब इसके बनानेवाले महाशय जो दें वह काफी नहीं है। मेरी सलाह तो यह है कि आप देखने के लिए यह चर्खा मंगवावें और जांच कर चुकने पर रेलखर्च दे कर वापिस भेज दें।"

इस सूचना के अनुसार यह चर्खा मंगवाया गया था लेकिन उसका कोई जवाब नहीं आया। उसके चित्र को देखने से वह बिल्कुल जीवनचक्र ए के जैसा ही मालूम पड़ता है। जीवनचक्र के बनाने वाले महाशय को बम्बई लिखकर उसके बारे में पूछा था। उनका जवाब

इस प्रकार आया था कि:—"आपकी भेजी हुई तस्वीर से तो वह ए. मॉडल की बिल्कुल नकल मालूम पड़ती है। लेकिन वह कितना ठीक ठीक बना होगा यह तो इसपर से जानना मुश्किल है।"

जीवनचक्र ए के बनाने वाले महाशय के साथ बैठ कर कुछ बर्षों पहले हमने उनके चर्खे की जांच की थी जिससे कि उनको विश्वास बैठ गया था कि वह यंत्र अच्छे सादे चर्खे से ज्यादा काम देनेवाला नहीं है और उन्होंने तब से यांत्रिक चर्खे बनाना बंद करके अच्छी तरह के सादे चलने वाले चर्खे बनाना जारी कर दिया था।

कमला चर्खा इससे किसी तरह बेहतर होगा यह बात हमारी कल्पना में नहीं आती। ताहम अगर उसके बनाने वाले एक चर्खा हमें भेजेंगे तो उसकी जांच करके उसका रेल का किराया देकर हम उसे वापिस भेज देंगे और अभिप्राय प्रकट कर देंगे। उसको खरीदने के बारे में सलाह चाहने वालों को अब यह कह देने की जरूरत नहीं रहती कि इसको खरीदने की सलाह देने के काबिल कोई बात इसमें होने की हमें कोई उम्मीद नजर नहीं आती।

हम इस यंत्र के बनानेवालों का किसी तरह भी अपमान करना नहीं चाहते। उल्टा इस यंत्र के बनाने के लिए उनको धन्यवाद देते हैं। लेकिन हां, इतना जरूर बता देना चाहते हैं कि बिना कुछ आगे बढ़े ही मान लिया गया है कि आगे बढ़े हैं और यह भी कह देना चाहते हैं कि ऐसा मान लेने में और अपनी भूल को न कबूल करने में अपना और देश का नुकसान होता है।

यंत्र के बनानेवालों को सूचना

इस यंत्र के बनानेवाले महाशय को हमारी एक सूचना है। इस चर्खे का इस्तेमाल कातने में करने से फायदा नहीं है, ऐसा जान लेने पर उन्हें निराश नहीं होना चाहिए। हमारा खयाल है कि इस यंत्र में कुछ घटाबढ़ी करके सूत के दो, तीन या चार तारों को बटने के काम में लाया जा सकता है। सादे चर्खे पर तो सूत बंटा ही जा सकता है लेकिन मुमकिन है कि ऐसे यंत्र से यह काम ज्यादा जल्दी हो सके। इस यंत्र के बड़े चक्कर को पैर से चलाने की तदबीर की जा सके तो शायद तेजी बढ़ सकती है। अभी तक जितनी है उससे ड्योढ़ी या दुगुनी तेजी से शायद काता तो न जा सके लेकिन बंटने में उतनी तेजी काम आनी चाहिए। और अगर ऐसा हो सके तो हाथ से कते हुए सूत को बट कर के उसके सीने के धागे, नकशी, गूंथने के धागे, बुनने के बहों (धागे के बने नाके कि जिन में हो कर ताना कंघी के अन्दर पिरोया जाता है) के लिए धागे वगैरः बनाने में फायदा पड़े और हाथ के सूत के लिए बाजार खुले। ऐसे धागों की हमारे पास मांग बराबर आती रहती है, जिससे जाहिर है कि वैसे धागे बनाने की जरूरत है।

सादा चर्खा

बहुत से यांत्रिक चर्खे बनाने वाले महाशय अपने चर्खों की चाल का मुकाबला सादे चर्खे की चाल से करने में एक भूल करते हुए दिखाई देते हैं। वह यह कि वे अपूर्ण सादे चर्खों के काम का और असावधान कातने वाले की चाल का माप ले कर हिसाब करते हैं। चर्खे के सब अंग यदि बिल्कुल ठीक माप के बने हों और उसपर होशियारी से काम किया जाता हो तो डेढ़ या दुगुना काम होता है। यह तजुर्बे की हुई बात है। बहुतसी कातने वाली औरतों को बहुत तेजी के साथ तार निकालते और लपेटते देख कर हमें मालूम होने लगता है कि वह बड़ी तेजी से कातती है। लेकिन अगर माप निकालने बैठें तो वह कम ही निकलती है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि शांति और श्रद्धा से दौड़ने वाला बाजी जीत जाता है उसके अनुसार जो सावधानी से कातने वाले होते हैं वे धीरे धीरे कातते हुए नजर आते हैं। तब भी यह तजुर्बे की हुई बात है कि उनके काम का परिमाण ज्यादा होता है।

यांत्रिक चर्खा खरीदना चाहने वाले महाशय भी ज्यादातर असावधान कातने वालों ही के काम का खयाल करके उस तरफ झुकते हैं। कितनों ही को तो ऐसे कातनेवालों का काम देख कर सादे चर्खे की तरफ से बिल्कुल निराशा हो जाती है। ऐसे सब महाशय सादे चर्खे का पूरा अभ्यास करें तो अच्छा होगा।

सैंकड़ों कातनेवाली स्त्रियां आज भी चर्खे को 'जीवन-जड़ी' समझ कर चलार ही हैं। उनको जीने की आशा दिलाने के लिए हिन्दुस्तान के लोगों को खादी तो जरूर ही पहनना चाहिए; लेकिन यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि उनको सावधानी से कातना सिखा देने में जीने की आशा की जड़ समाई हुई है। चर्खे के लिए जो मिहनत हाल में की जा रही है उसका फल ज्यादा मिकदार में और ज्यादा अच्छा प्राप्त करने का आधार इस सावधानी को जाग्रत कर देने पर है।

कातनेवाली स्त्रियों की कातने की पद्धति को बदलना पहाड़ को संगतराश करने के जैसा मुश्किल मालूम पड़ता होगा। लेकिन यह विचार करने की बात है कि रचनात्मक कार्यक्रम का दर्वाजा उसीमें छुपा हुआ है। जब और जहां उसमें दाखिल हुए। कि प्रजा के दिलों में घुसने की कुंजी और ताकत हासिल होती हुई नज़र आवेगी और उचित रचना करने के रास्ते खुल जावेंगे।

मगनलाल खुशालचंद गांधी

"बड़ा खुश किस्मत हूं"

मौलाना शौकतअली अपनी खुश किस्मती पर फूले नहीं समाते। अहमदाबाद वाले भाषण में उन्होंने कहा—"मैं बड़ा खुश किस्मत हूं। मां मेरी बुढ़िया ७३ साल की है पर कहती है शौकत तुझे अपना सच्चा बेटा तब समझूंगी जब खटिया पर नहीं, बल्कि गोली से या फांसी पर लटक कर मरेगा। छोटा भाई है—वह मेरा सरदार है और आपने उसे अपना सरदार माना है। पर खुदा ने एक बड़ा भाई भी बख्शा, जो हिन्दुओं का सरदार है; लेकिन कहता है शौकत और मैं सगा भाई हूं। खिलाफत और इस्लाम की खिदमत महात्मा गांधी से बढ़कर किसी हिन्दुस्तानी ने नहीं की है।"

"फेफड़ा सड़ गया है"

मौलाना महंमदअली के भाषण की शुरुवात उनकी लड़की की बीमारी के साथ हुई। इससे उन्हें अपने एक तपेदिल के रोगी दोस्त की बात याद आ गई, जिसका एक फेफड़ा सड़ गया था। मौलाना ने कहा—सरकार की भी यही हालत हो रही है। इस फेफड़े के बिगाड़ से ही यह मरेगी। हमारे आपुस के लड़ाई-झगड़े, हमारी कमजोरियां आदि के रूप में यदि उसे शुद्ध हवा न मिल सके तो उसकी मौत टलनेवाली नहीं।"

लार्ड रीडींग ने अपने एक भाषण में हिन्दू-मुसलमान-एकता की बड़ी चिन्ता प्रकट की थी। इस पाखण्ड के जवाब में मौलाना ने कहा—"हिन्दू-मुसलमानों के झगड़ों की खबरें सुन कर हमारे दिल रोते हैं। हमें हमारे बीबी-बच्चों में रहना अच्छा नहीं लगता। पर इन खबरों को सुन कर लार्ड रीडींग को भी कभी ऐसा दर्द हुआ है? पांच मिनिट भी उन्हें नींद हराम हुई है?" ह० उ०

हिन्दी-नवजीवन

जेल-दिन ६१२, रविवार, कार्तिक सुदी ३, सं. १९८०

कोकोनाडा की जिम्मेवारी

कलकत्ते की और देहली की विशेष-महासभाओं से बढ़कर जिम्मेवारी कोकोनाडा की महासभा के सिर पर है। कलकत्ते के विशेष-अधिवेशन ने असहयोग को स्वीकार किया, वैध-आन्दोलन की खाई से निकाल कर देश को क्रान्ति के शिखर पर लाने का रास्ता दिखाया; देहली के विशेष-अधिवेशन ने विघ्न-बाधा-भीति+वैध-आन्दोलन-नीति के साथ शुद्ध असहयोग का समझौता कराया। अब कोकोनाडा के सिर पर यह जिम्मेदारी है कि वह असहयोग को-शान्तिमय क्रान्ति को भला बताता है और धारासभा के कार्य-क्रम को सिर चढ़ाता है या धारा-सभा के कार्यक्रम को महज स्वराज्य-दलवालों के भविष्य पर छोड़कर असहयोग को नवीन चैतन्य प्रदान करता है। भावना-प्रधान बंगालियों के हृदय-कलकत्ता ने क्रान्ति के कार्यक्रम को अपनाया, अनेक सम्राटों और साम्राज्यों के पतन को पत्थर का कलेजा करके सहनेवाली देहली ने उसे पतन का रास्ता दिखाया, अब देखना चाहिए धर्म-क्रान्तिकारी शंकराचार्य की लीला-भूमि, आन्ध्रदेश, क्रान्ति का आदर करता है या वैध-मार्ग को अंगीकार?

धारा-सभा का चुनाव अभी हो ही नहीं पाया है, यह अभी निश्चय हो नहीं हुआ है कि स्वराज्य-दल का बहुमत धारासभाओं में होगा या अल्पमत, पर कोकोनाडा की तैयारी में वे सरगर्मी के साथ मुब्तिला हो गये हैं। जो रास्ता उन्होंने अंगीकार किया है उसके अनुसार वे देहली के समझौते पर सन्तुष्ट रह कर कोकोनाडा की महासभा को उदासीनता या अलिप्तता की दृष्टि से देख ही नहीं सकते। उनका मकसद है धारासभाओं में जाकर औपनिवेशिक स्वराज्य लेना और न मिले तो धारासभाओं को कलई खोलना—उनकी भाषा में उन्हें तोड़ डालना। उनकी सफलता का सारा दारोमदार महासभा की सहानुभूति और सहायता पर है। देहली में महासभा ने उनसे समझौता किया—वे धारासभा के अन्दर जा रहे हैं; अब जबतक वे कोकोनाडा की महासभा का मेंडेट—'आदेश' अपने पक्ष में नहीं ले लेते तबतक उनके मतालबे में बल नहीं आ सकता। यह दूसरी बात है कि महासभा यदि उनको 'आदेश' दे दे—उनके कार्यक्रम को अपने कार्यक्रम का एक अंग बना ले, तो देश का हित अधिक होगा या अहित, स्वराज्य की ओर देश आगे बढ़ेगा या पीछे हटेगा? इसका प्रमाण तो महासभा का वह तीस वर्ष का और इन तीन वर्षों का इतिहास है। पर इसमें कोई सन्देह नहीं है कि स्वराज्य-दलवालों के लिए महासभा का आदेश प्राप्त करने के लिए प्राण-पण से प्रयत्न करना बिल्कुल स्वाभाविक है और उन्होंने उसे देहली के बाद से ही सरगर्मी के साथ शुरू कर दिया है।

इसका फल-स्वरूप मौलाना अबुल कलाम आजाद का वह ऐलान है जो उन्होंने आगामी १३ नवंबर को नेताओं की परिषद् करने के विषय में किया है। इस परिषद् में खास कर इस बात पर विचार किया जायगा कि अब कोकोनाडा-महासभा में क्या कार्यक्रम पेश किया जाय। देहली-महासभा के पहले चाहे बहुतों को यह अस्पष्ट रहा हो—कम से कम मुझे नहीं था—कि मौलाना आजाद धारासभा के हिमायती नहीं हैं; पर उसके बाद उनके भाषण को पढ़ कर किसीको यह सन्देह नहीं रह सकता कि उनमें और स्वराज्य-दल वालों में अगर कोई भेद हो तो सिर्फ इतना ही कि वे बाजाब्ता स्वराज्य-दल के सदस्य नहीं हैं। उनके, उन्हींके-सी स्थिति रखनेवाले लाला लाजपतराय जी, तथा स्वराज्य-दल के नेता पण्डित मोतीलाल जी, हकीम साहब आदि के परामर्श से परिषद् की आयोजना की जा रही है। मेरी धारणा के अनुसार यह स्वराज्य-दल की परिषद् है और इसमें इस बात पर विचार और सलाह होगी कि कोकोनाडा में अपना क्या कार्य-क्रम पेश करें और महासभा में उसे मंजूर करने के लिए क्या क्या उपाय करें।

कोकोनाडा-महासभा का फैसला अकेले स्वराज्य-दल वालों के मत या रुख पर अवलंबित नहीं है। असहयोगवादी और उससे भी अधिक अथवा मुख्यतः समझौता-वादियों के रुख पर अवलंबित है। समझौता-वादी अपनेको असहयोगी और अपरिवर्तनवादी तक कहते हैं; पर हमारे दुर्भाग्य से उनके अस्तित्व का लाभ अबतक स्वराज्यदल वालों को ही मिला है—अपरिवर्तनवादियों को मिली है उनकी ओर से डाँट-फटकार और ताने-उलहने। वह अपरि-वर्तनवादियों को मजबूत बनाने के बजाय कमजोर बना रहा है—स्वराज्य-दल की वृद्धि करने में मंझली सीढ़ी का काम दे रहा है। कोकोनाडा के निर्णय का आधार समझौतावादी हैं। वहां यदि उन्होंने स्वराज्य-दल वालों का साथ दिया या कोई ऐसे समझौते की सूरत निकाली जिससे अपरिवर्तनवादी और भी निकम्मे हो जायं तो फिर कोकोनाडा का भविष्य धारासभा के कार्यक्रम को स्वीकार करने के अनुकूल स्पष्ट है। पर यदि उन्होंने दृढ़ता और हिम्मत दिखाई तो क्रान्तिकारी सिद्धान्तों और कार्यक्रम की विजय स्पष्ट है।

ऐसी अवस्था में मुझे स्वराज्य-दल के बाजाब्ता या खानगी सदस्यों से कुछ नहीं कहना। वे अपने रास्ते जा रहे हैं और आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। हां, समझौतावादी और अपरिवर्तन-वादियों से दो दो बातें करने को अवश्य जी चाहता है। समझौता-वादियों से मैं कहूंगा-भाइयो, आपका विश्वास यदि सचमुच महात्माजी के बताये शान्तिमय असहयोग-कार्यक्रम पर है तो कोकोनाडा-महासभा में आपको अपनी तटस्थ या मध्यस्थ वृत्ति छोड़नी पड़ेगी। वहां अन्तिम समय है आपके विश्वास की दृढ़ता की परीक्षा का। दोनों दलवालों को प्रसन्न रखने की सदभिलाषा या दोनों की नाराजगी की चिन्ता का फल यही होगा और हो रहा है कि आपको दोनों दल अपना मानने में हिचकते हैं—दोनों आपको सन्देह और अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं और आपको दो में से कोई निर्दोष नहीं दिखाई देता। आपके इस रुख से न आप ही कुछ काम कर पाते हैं—न दूसरे दोनों दलवाले आपसे प्रत्यक्ष लाभ उठा सकते हैं। देहली-प्रस्ताव के बाद भी दलबन्दी की भाषा का प्रयोग आपको शायद अच्छा न मालूम हो; पर दलबन्दी दूर नहीं हुई है और न कम से कम महात्माजी के छूटने तक होने की कल्पना ही मैं कर सकता हूं। देहली के समझौता के नायक मौलाना महम्मदअली कोकोनाडा-महासभा-संबंधी अपना रुख अपनी बातचीत में प्रकट ही कर चुके हैं और पं. जवाहरलालजी असहयोग-कार्यक्रम के संबंध में अपना दृढ़ विश्वास काशी की राजनैतिक परिषद् में जाहिर कर चुके हैं। यदि इन दोनों नेताओं का रुख आपके ही रुख को जाहिर करता है तो आप अपने अपने प्रान्तों में ऐसा उद्योग कीजिए जिससे कोकोनाडा में महात्मा गांधी के असहयोग-कार्यक्रम की फतह हो। अब असहयोग के जीवन में आपकी नरमी, कमजोरी या समझदारी के लिए स्थान नहीं है। अब सवाल है या तो असहयोग का जीवन या समझौते का जीवन। हाँ, यह सच है कि अबतक

'सीधे हमले' पर विश्वास रखनेवाले, महात्माजी के सिद्धान्त को समझ लेनेवाले मुट्ठी भर भी आदमी मौजूद हैं तबतक असहयोग नहीं मर सकता; पर 'सीधे हमले' के लिए आपके तटस्थ रह से बढ़ कर बाधक कोई बात नहीं हो सकती।

अपरिवर्तनवादियों से मैं कहूंगा कि अब समय इस बात को देखने का नहीं है कि स्वराज्य-दल ने क्या बिगाड़ किया, या समझौता-वादी आपके लिए क्या कर रहे हैं, या कर सकेंगे। उन्होंने वही किया जो उनके कर्तव्य ने उन्हें ठीक बताया। दोनों से बढ़कर जिम्मेवारी आपके सिर पर है। आप अपने हृदय को जाँचिए और देखिए कि पिछले साल भर में आपको कितना काम करना चाहिए था, आपने कितना किया है, और आप कितना कर सकते थे? क्या आप रोज चरखा कातते हैं? अपने कुटुम्ब में खादी-प्रचार के लिए उद्योग किया है? छुआछूत के पाप को धोने का, अपने कुटुम्ब वालों के दिल से उनके प्रति घृणा को हटाने का प्रयत्न किया है? हिन्दुओं को मुसल्मानों से और मुसल्मानों को हिन्दुओं से प्रेम करने की सलाह दी है? दोनों के झगड़ों के मौकों पर निष्पक्ष हो कर दोनों की सेवा-सहायता की है? महासभा के सदस्य बढ़ाये हैं? तिलक-स्वराज्य-कोष में चन्दा एकत्र किया है? अदालत में जानेवालों को समझा कर रोका है? राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार में कुछ समय दिया है? अपने हृदय को द्वेष और हिंसा-भाव से दूर रखने की कोशिश की है? यदि आपने इनमें से कुछ भी नहीं किया है, या बहुत थोड़ा काम किया है तो आप किस तरह कोकोनाडा में अपने कार्यक्रम के विजय की आशा रखने के अधिकारी अपनेको मान सकते हैं? माना कि पिछले साल आपके रास्ते में बड़ी बड़ी बाधायें थीं—प्रतिपक्षियों के मुकाबले में आपका बहुतेरा समय चला जाता था—पर देहली के बाद और अबसे कोकोनाडा तक आपके पास कम समय नहीं था—नहीं है। अब भी आप कमर बांधकर खड़े हो जायं और परमात्मा का नाम लेकर काम करने लगें तो आप अकेले नहीं रहेंगे। आपमें यदि कार्यबल हो तो समझौतावादी आपसे दूर नहीं हैं। और वे दूर हों या न हों, आपकी सफलता आपके कार्य पर अवलंबित है। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि जनता महात्माजी के साथ है—मुट्ठी भर पढ़े-लिखे बाबुओं की बात जाने दीजिए—और जनता के सच्चे प्रतिनिधि वही हो सकते हैं जो उसके हृदय को व्यक्त कर सकते हैं। जनता के सच्चे प्रतिनिधि ही कोकोनाडा में आवें। बनावटी और भड़ैत लोग नहीं। ऐसे लोग जिसके साथ रहेंगे उसीको ले डूबेंगे। सच्चे और पक्के आदमी चाहे थोड़े हों, पर वे ज्यादह कीमती हैं। बनावटी, कमजोर और कामचोर बहु-संख्या की अपेक्षा सच्ची काम करने वाली अल्पसंख्या ही विजय तक पहुंचाती है। मुझे विश्वास होता है कि आपके थोड़े ही संगठित कार्य से कोकोनाडा में जनता के सच्चे प्रतिनिधियों की बहु-संख्या हो सकती है। पर यदि न हो तो अल्प-संख्या में रह कर भी अपने कार्यक्रम के अनुसार अटल रह कर काम करने की श्रद्धा और हिम्मत आपको होनी चाहिए। जिसको अपने कार्य पर, पुरुषार्थ पर विश्वास है, वह तो विकट से विकट प्रतिकूल परिस्थिति में भी अडग रहता है।

स्वराज्य-दलवाले अपना कार्यक्रम कोकोनाडा के लिए गढ़ रहे हैं। आपके पास तो अद्भुत और सर्वांग-सुन्दर कार्यक्रम है। राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय संगठन, राष्ट्रीय जीवन, और स्वराज्य के प्राप्त करने में जो कमियां और कमजोरियां हमारे अन्दर हैं, उन सबकी दवा उसके अन्दर मौजूद है। हां, आपके साल के लिए उसके अन्तर्गत यदि आपको कोई छोटा कार्यक्रम बनाना हो तो आपके नेता और कार्यकर्ता किसी जगह एकत्र होकर उसका विचार कर लें और वह कोकोनाडा महासभा में पेश किया जाय और हमारा बहुमत हो या अल्पमत हम उसीको पूरा करने के लिए अपनेको अर्पण कर दें।

इस प्रकार कोकोनाडा की जिम्मेदारी महान है; और यदि आप चाहते हों कि वह अपनी जिम्मेदारी का पालन ठीक जनता की रुचि के अनुसार करे तो इसकी कुंजी वही है जो ऊपर बताई जा चुकी है। काम करो और उसका फल चक्खो। यह विश्वास रक्खो कि यदि आप नहीं तो आपकी औलाद जरूर उसका अमृत-स्वाद लेगी और आपकी आत्मा उसके धन्यवाद को सुन कर स्वर्गीय आनन्द और तृप्ति-लाभ करेगी।

हरिभाऊ उपाध्याय

साम्राज्य-परिषद् और प्रवासी भारतीय

प्रारम्भ में ही मैं यह कह देना चाहता हूं कि मैं उन लोगों के साथ सर्वथा सहमत हूं जो यह समझते हैं कि डाक्टर तेज बहादुर सप्रू ने साम्राज्य-परिषद में जा कर कोई निन्दनीय या अनुचित काम नहीं किया। जिस अनथक परिश्रम के साथ उन्होंने अपना कर्तव्य पालन किया है उसकी प्रशंसा प्रत्येक निष्पक्ष आदमी को करनी पड़ेगी। अब रहा यह प्रश्न कि "डाक्टर सप्रू सफल हुए या असफल?" इसपर झगड़ा करना व्यर्थ है। समय डाक्टर साहब की सफलता और असफलता का निर्णय शीघ्र ही कर देगा। डाक्टर साहब के साम्राज्य-परिषद् में जाने से दो काम अवश्य हुए हैं—एक तो यह कि प्रवासी भारतीयों के प्रश्न को बहुत कुछ महत्व मिला है और उसकी खूब चर्चा हुई है और दूसरा यह कि हम लोगों को इस बात का अब अच्छी तरह पता लग गया है कि प्रवासी भारतीयों के उद्धार-कार्य्य में हमें कालोनियल आफिस तथा भारतसचिव से कुछ भी आशा न करनी चाहिए। जनरल स्मट्स ने अपने सिद्धान्तों को साफ साफ प्रकट कर दिया—वे तो पहले से भी ऐसा ही कह रहे थे—यह भी कुछ कम लाभ की बात नहीं है। सारांश यह कि अब वायुमंडल स्पष्ट हो गया है और हम सब वस्तुओं को ज्यों का त्यों देख सकते हैं। इसलिए हमें सामने का खतरा भी अच्छी तरह दीख पड़ रहा है। हमारी यह निश्चित सम्मति है कि प्रवासी भारतीयों के लिए ऐसी संकट का समय कभी नहीं आया था, जैसा कि वह अब आया है। इसके कारण हम आगे चलकर बतलावेंगे।

डाक्टर सप्रू ने इस प्रश्न को चार विभागों में बांटा है—

(१) कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड में १९२१ के प्रस्ताव के अनुसार भारतीयों को समानाधिकार का दिलवाना।

(२) दक्षिण-आफ्रिका-सम्बन्धी प्रश्न।

(३) अन्य उपनिवेशों के प्रवासी भारतीयों का सवाल।

(४) केनिया का प्रश्न।

हमारी सम्मति में ये विभाग भ्रमात्मक हैं। इस प्रश्न को केवल दो विभागों में बांटना चाहिए।

(अ) स्वराज्य-प्राप्त संस्थानों में भारतीय

(ब) कालोनियल आफिस द्वारा शासित-उपनिवेशों में भारतीय

अब हमें यह बात देखना है कि प्रवासी भारतीयों का मुख्य प्रश्न किन स्थानों से सम्बन्ध रखता है।

स्वराज्य-प्राप्त संस्थानों में भारतीयः—कनाडा में भारतीयों की संख्या १२०० है, जिनमें ११०० उसके एक प्रान्त यानी ब्रिटिश कोलम्बिया में ही रहते हैं। आस्ट्रेलिया में २००० और न्यूजीलैण्ड में ६०० हिन्दुस्तानी हैं। दक्षिण-आफ्रिका में भारतीयों की संख्या

१४०७९१ है। इस प्रकार स्वराज्य-प्राप्त संस्थाओं में प्रवासी भारतीयों की संख्या १५३५९१ यानी लगभग डेढ़ लाख है।

बाकी १८॥ लाख प्रवासी भारतीय उन स्थानों में रहते हैं जहां कालोनियल आफिस का शासन है। इस प्रकार यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि प्रवासी भारतीयों का मुख्य प्रश्न उन स्थानों से सम्बन्ध रखता है जहां विलायत का औपनिवेशिक विभाग शासन करता है। अब इन बातों को ध्यान में रख कर हमें साम्राज्य-परिषद् के निर्णय पर विचार करना चाहिए।

कनाडा—साम्राज्य परिषद् में इधर कनाडा के प्रधान मंत्री ने डाक्टर सप्रू के प्रस्ताव से सहानुभूति प्रकट की है उधर ब्रिटिश कोलम्बिया के एक सभासद ने, जो वहां की साधारण जनता के प्रतिनिधि हैं, साफ कह दिया है कि हम हिन्दुस्तानियों को वोट का अधिकार नहीं देंगे। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि कनाडा में जो १२०० हिन्दुस्तानी हैं उनमें से ११०० कोलम्बिया में ही रहते हैं।

आस्ट्रेलिया—प्रधान मंत्री के कथनानुसार दो हजार प्रवासी भारतीयों को समानाधिकार मिलने की आशा है।

न्यूजीलैण्ड—६०० भारतीयों को समानाधिकार मिल जायंगे।

दक्षिण-आफ्रिका—१ लाख, ४८ हजार, भारतीयों को अधिकार मिलने की कुछ भी आशा नहीं।

यदि हम यह मान भी लें कि कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड में शीघ्र ही भारतीयों को समान अधिकार मिल जायंगे तो उसका अर्थ यह होगा कि स्वराज्य-प्राप्त संस्थानों के ११॥ लाख भारतीयों में ३८०० को समान अधिकार मिलने की पूरी आशा है।

अब बाकी १८॥ लाख के लिए साम्राज्य-परिषद् ने यह निर्णय किया है कि भारत सरकार की एक कमेटी उस विषय में कालोनियल आफिस से सीधी लिखा-पढ़ी करे। इस प्रकार साम्राज्य-परिषद् में कुल जमा ३८०० भारतीयों के लिए कुछ काम हुआ, बाकी २० लाख का भाग्य कमेटी के घटाटोप में छिपा दिया गया। केनिया के भाई भी इन बीस लाख के साथ ही डूब गये। कालोनियल मंत्री ने साफ कह दिया कि केनिया के विषय में हमने जो निर्णय कर लिया वह कर लिया। उसे हम बदलेंगे तो नहीं लेकिन आप जो कहेंगे उसे सुन लेंगे। जब केनिया में समानाधिकार नहीं मिले तो फिजी इत्यादि में कैसे मिल सकते हैं? जो सिद्धान्त केनिया के गोरों के लिए मान लिया गया है उसीके लिए फिजी के गोरे तलवार उठाने को तैयार हैं। केनिया में गोरों की संख्या ८ हजार और २३ हजार है, फिजी में गोरे ५ हजार और भारतीय ६० हजार हैं। केनिया के गोरे कहते हैं कि अगर भारतीयों को हमारे बराबरी के हक दिये तो हम बलवा कर देंगे और यही बात फिजी के गोरे भी कह रहे हैं। जो कालोनियल आफिस प्रवासी भारतीयों के सारे दुःखों का मूल है वह भला किसी भारतीय कमेटी की बात क्यों सुनने लगा? केनिया को सब उपनिवेशों की कुंजी इसीलिए कहा गया था कि फिजी, ट्रिनीडाड, जमैका इत्यादि का प्रश्न भी लगभग वैसा ही है। और फिर कमेटी की बात कालोनियल आफिस ने न मानी तो वह कमेटी कर क्या लेगी? हमें तो इस कमेटी के घटाटोप में कुछ भी तत्व नहीं दीखता। इस कमेटी के कारण वर्तमान समय में जो थोड़ा-बहुत आन्दोलन हो रहा है उसके भी शिथिल हो जाने की आशंका है। इस समय तक नरम और गरम सभी एक-स्वर से चिल्लाते रहे हैं कि प्रवासी भारतीयों के लिए भारतीय जनता को कुछ उद्योग अवश्य करना चाहिए। अब देश का एक दल इस कमेटी का पक्षपाती होगा, दूसरा विरोधी। इस प्रकार प्रवासी भारतीयों के प्रश्न पर भी, जहां सब को एकमत होना चाहिए, हम लोगों में फूट हो जायगी।

इसके सिवाय कमेटी की लचर-पोंचों कार्रवाई में वर्षों बीत जावेंगे और वर्तमान उत्साह तबतक ठंडा पड़ जायगा। अगर प्रवासी भारतीयों के लिए कुछ काम हो सकता है तो वह इसी अवसर पर, जब मामला गरमागरम है, हो सकता है। जहां कमेटी के शीतल जल ने हमारी अग्नि को—उस दुःख व सहानुभति की चिनगारी को जो पीड़ित प्रवासी भाइयों के लिए इस समय हमारे हृदय में उठी है—बुझा दिया तो समझ लीजिए कि प्रवासी भारतीयों के भाग्य का दीपक बुझ गया। आवश्यकता इस बात की है कि हम लोग कमेटी के कुचक्र में न पड़ें और निम्नलिखित कार्यक्रम पर विचार कर दृढ़तापूर्वक उसके अनुसार काम करें। (१) विदेशों को मजदूर भेजा जाना बिलकुल बन्द किया जाय। (२) विलायत व साम्राज्य के सामान का बहिष्कार किया जाय (३) बदले की नीति का जोर-शोर के साथ प्रयोग किया जाय और (४) प्रवासी भारतीयों के संगठनार्थ प्रवासी-संघ तथा प्रवासी पत्र की स्थापना की जाय। प्रवासी भारतीयों के कल्याण का मार्ग यही है। नान्यः पंथाः विद्यते।

बनारसीदास चतुर्वेदी

टिप्पणियां

स्वर्गीय अश्विनी बाबू

खेद है, बारीसाल (बंगाल) के पुराने प्रसिद्ध देशभक्त बाबू अश्विनीकुमार दत्त का शरीरांत हो गया। केवल देशभक्त ही नहीं, आप अच्छे विद्वान् और तत्व-चिन्तक थे। बंग-भंग के आन्दोलन के आप एक प्रधान नेता थे और उन प्रसिद्ध नौ निर्वासित देश-भक्तों में एक आप भी थे। असहयोग-आन्दोलन से साथ आप की पूरी सहानुभति थी और जब महात्माजी अपने बंगाल-दौरे के समय बारीसाल गये थे तब आपने उन्हें उसकी सफलता के लिए आशीर्वाद किया था। आपकी लिखी 'भक्तियोग' नामक पुस्तका का हिन्दी-अनुवाद जिन्होंने देखा है वे आपकी विद्वता और विचारशीलता के कायल हुए बिना न रहेंगे।

जजीरत-दिन

खिलाफत-कमिटी ने सारे देश के लिए यह ऐलान किया है कि आगामी १६ नवम्बर जजीर-तुल-अरब-दिन मनाया जाय। उस दिन जजीरत-उल-अरब की आजादी के लिए हजरत पैगंबर साहब के सन्देश को पालन करने का प्रण किया जाय और उसके बाद के पूरा सप्ताह भर खिलाफत-फण्ड एकत्र किया जाय। मौ० महम्मदअली और शौकतअली ने एक लम्बी विज्ञप्ति के द्वारा इस बात का समर्थन किया है। उसका सार यहां दिया जाता है—

"तुर्की ने अपनी आजादी हासिल कर ली। परन्तु पैगंबर सा. के आखिर वक्त के पैगाम के मुताबिक काम करना अभी हमारे लिए बाकी ही है। तुर्की की कामयाबी में हमारी कामयाबी की आशा है। परन्तु तुर्कों ने कितनी कुरबानियां कीं? कितना धन-जन स्वाहा किया? हमने तो उनके मुकाबले में कुछ भी नहीं किया। हमारी आर्थिक सहायता तो उनके बहाये खून के एक बूंद के बराबर भी नहीं। लड़ाई ऐसी-वैसी नहीं है। तुर्कस्तान भी हारता हारता जीता। हालत भी ऐसी ही है। हमारे यहां आज लड़ाई-झगड़ों की हवा बह रही है। पर इससे हमें देश के बाहर की हालत को भुलाना न चाहिए। अपने हिन्दू-भाइयों के विषय में सिर्फ एक ही बात कहूंगा। इक्के-दुक्के हिन्दू जो चाहें करते रहें; परन्तु हमें यह बात न भुलाना चाहिए कि हिन्दुस्तान में खिलाफत और जजीर-तुल-अरब के लिए हमारे साथ जिस तरह महात्मा गांधी लड़े हैं उस तरह कोई मुसलमान नहीं लड़ा। इसलिए जबतक वे आजाद होकर

हम लोगों के बीच में न आ जावें तबतक हमें हरएक हिन्दू को महात्मा गांधी समझना चाहिए। ईश्वर हमें अपनी इस कृतज्ञता का बदला देगा।

धन और खिलाफत-समितियों को चलाने की जरूरत अब पहले से भी अधिक है। हमें आशा है कि हमारे हमदीन लोग अपने फर्ज को समझ कर धन-दान करने में पीछे न हटेंगे। जजीरत-उल-अरब-सप्ताह में हमें जो कुछ द्रव्य मिलेगा वह हमारी भावी फतह की नाप होगा। हमारे जो काम करने वाले भाई लड़ाई में कुछ गोल-माल होने के कारण कुछ पीछे हट गये हैं उनसे हम जोर दे कर कहते हैं कि वे फिर अपनी अपनी जगह पर आ जायं। हमने आजतक एक सिपाही के तौर पर काम किया है और आज सरदार नहीं, बल्कि सिपाही की हैसियत से फिर काम करने के लिए तैयार हैं। हमारी यही टेक है कि जिस तरह हो सके हर हालत में लड़ाई जारी रक्खी जाय। हम हर तरह की तकलीफें, बेइज्जती को सहन करके भी लड़ाई जारी रक्खेंगे—हम नहीं सहन करेंगे सिर्फ एक बात—जजीरत-उल-अरब का गैरों के कब्जे में रहना।"

"गांधी-संघ"

बिहार में प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् के अवसर पर एक गांधी-संघ की स्थापना हुई है। अभीतक इतने ही समाचार मिले हैं कि महात्मा गांधी के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए इसका जन्म हुआ है और इसके सदस्य वही लोग होंगे जो महात्माजी के सिद्धान्त के अनुसार देश के लिए प्राणतक देने को तैयार हों। मैं इस संस्था का हृदय से स्वागत करता हूं। हर एक प्रान्त में जहां एक भी सच्चा और पक्का कार्यकर्ता हो, जिसकी श्रद्धा महात्माजी के सिद्धान्तों और कार्यक्रम में हो, ऐसी संस्था की मैं आवश्यकता समझता हूं। इस काल में जब कि शान्तिमय असहयोग, एक पूजा करने योग्य आदर्श माना जाता हो—अमली राजनीति की चहारदीवारी के बाहर धीरे धीरे ढकेला जाता हो, ऐसी संस्थाओं की और भी ज्यादह जरूरत है। पक्का, ठोस, बुनियादी और भीतरी काम करने के लिए संख्या-बल की अपेक्षा शौर्य-बल, भक्ति-बल, श्रद्धा-बल की अधिक जरूरत होती है। हमारे दुर्भाग्य से पिछले डेढ़ सौ वर्षों से हमें ऐसी शिक्षा मिल रही है जिसने हमारे बुद्धि-बल को, हमारी तर्क-शक्ति को एक खास सांचे में ढाल दिया है, जिससे हममें बोदापन और अश्रद्धा इतनी आ गई है कि कष्ट-सहन और त्याग चाहने वाले कामों को हम लंबे समय तक नहीं कर सकते और दूसरे बुद्धि-बल और तर्क-शक्ति के साथ ही हमारे उच्च भावों और सद्गुणों का विकास नहीं होने पाया। मनुष्य केवल बौद्धिक प्राणी नहीं—वह बुद्धि और भावना दोनों से मिल कर बना है और मनुष्यता की उन्नति में बुद्धि से बढ़ कर स्थान भावना का है। मेरी राय में तो भावना के उत्कर्ष के लिए ही बुद्धि का उपयोग होना चाहिए। असहयोग-संग्राम में जो कुछ लोग त्याग और कष्ट-सहन से थकने लगे हैं और कानूनी-कौशल और दिमागी भूल-भुलैया के बल पर, सरकार से लड़कर स्वराज्य का रास्ता सुगम बनाने की धुन में हैं उनकी इस मनोवृत्ति का मूल इसी कुशिक्षा में है। यह निर्विवाद है कि अब असहयोगियों में दो दल हो गये हैं और इस दलबंदी के मूल में व्यक्तिगत स्पर्द्धा उतनी कारणीभूत नहीं है जितनी कि सिद्धान्तों का, मनोवृत्तियों का, दृष्टिबिन्दुओं का भेद है। ये दोनों दल तब तक कायम रहेंगे जबतक एक को अपनी गलती और दूसरे की सत्यता न मालूम हो जाय। यह प्रतीति, यह परिचय अपने अपने आदर्शों के अनुसार अपनी संस्थायें निर्माण कर के, अपने ढंग और विश्वास के अनुसार देश की सेवा करके ही कराया जा सकता है और इसका 'श्री-गणेश' उस प्रान्त में हुआ है जहां महात्माजी ने सबसे पहले अपने मन्त्र का सफल प्रयोग किया था और जो बिहारवासियों की दृष्टि में अब भी उसी तरह ताजा है। बिहारवासी भाइयों का यह शुभ प्रयत्न दूसरे प्रान्तवालों के लिए उदाहरण का काम दे, उन्हें भी अपने यहां ऐसी संस्था खड़ी करने की प्रेरणा करे।

गांधी-संघ की अपेक्षा यदि 'सत्याग्रह-संघ' नाम दिया जाता तो मेरी समझ में ज्यादह अच्छा होता। महात्माजी का व्यक्तित्व सत्याग्रह-सिद्धान्त से भिन्न नहीं है। महात्माजी स्वयं व्यक्ति-वाचक नाम की अपेक्षा सिद्धान्त-सूचक नाम को पसन्द करेंगे। अस्तु।

दलबन्दी और गुलाम राष्ट्र

पूना के "मराठा" को अब दलबन्दी की बुराइयां सूझने लगी हैं। वह कहता है कि दलबन्दियों से नेताओं की इज्जत लोगों की नजर में गिर जाती है और गुलाम राष्ट्र के लिए दलबन्दी से बड़ी हानि होती है। अब तो देश के सामने ऐसा कार्यक्रम होना चाहिए जिसमें सब तरह के राष्ट्रीय विचारों के लोग सम्मिलित हो सकें और दलबन्दी उठ जाय। दलबन्दी के वायुमंडल में उत्पन्न हुए, पले-पोसे और अबतक स्वराज्य-दल के एक खास आधार 'मराठा' के मुंह से 'दलबन्दी' की निन्दा सुनकर आश्चर्य होता है। मैं तो अबतक "मराठा" को दलबन्दी का आदर्श और आचार्य समझता रहा हूं। मगर देहली में धारासभा-प्रवेश की छुट्टी मिल जाने के बाद और स्वराज्य-दल के घोषणापत्र में लिखी विघ्न-बाधा नीति को पसंद न करने और प्रतियोगी सहयोग के हामी होने के कारण 'मराठा' को यदि अब दलबन्दी खलने लगी हो तो इसमें आश्चर्य की भी कौन बात है? पर मुख्य प्रश्न यह है कि भारत जैसे गुलाम राष्ट्र के लिए दलबन्दी आवश्यक है या नहीं? दलबन्दी की सब से बड़ी बुराई यही है कि उसमें दुहेरी-तिहेरी लड़ाई लड़नी पड़ती है—भिन्न भिन्न दलों को समय समय पर आपस में भी लड़ना पड़ता है और अपने सामान्य प्रतिपक्षी से भी। भारत की मौजूदा हालत में तमाम राजनैतिक दलों का सामान्य प्रतिपक्षी है नौकरशाही। सबल और धूर्त प्रतिपक्षी इस दलबन्दी के कमजोर तत्वों का फायदा उठा कर अपना प्रभुत्व अधिक दृढ करता जाता है और अपनी तरफ से मोर्चा हटा कर उन्हें आपस में लड़ाने के अवसर उपस्थित करता जाता है। ऐसे समय में वे भिन्न भिन्न दल यह महसूस करते हैं कि अरे, हमारी शक्ति का दुरुपयोग होता है और हमारा सामान्य शत्रु तो उलटा मजबूत होता चला जाता है। यही समस्या इन दिनों भारतवासियों के सामने खड़ी हुई है।

भारत में दलबन्दी कोई नई चीज नहीं। नरम और गरम दल महासभा के इतिहास में अच्छी तरह विख्यात हैं। दोनों के लड़ाई झगड़े भी छिपे नहीं हैं। सवाल यह है कि इन दोनों दलों के कारण देश की हानि अधिक हुई है या लाभ? सरकार ज्यादह मजबूत हुई है या जनता? यदि गरम दलवाले नरम दलवालों से समझौता कर लेते तो देश का बल घटता या बढ़ता? देश का बलाबल दल-विशेष के आदर्श, कार्यक्रम, सिद्धान्त, मनोवृत्ति और आत्म-बल, पर अवलंबित रहता है। बलवान् दल देश का बल है, कमजोर दल देश की कमजोरी है। कमजोर दल के साथ समझौता करने में बलवान् दल को उसकी कमजोरी के लिए कुछ रिआयत करनी पड़ती है। दूसरे शब्दों में अपनेको उतना कमजोर बनाना पड़ता है। यदि गरम दलवाले नरम दलवालों से समझौता कर लेते तो गरम दल की गरमी कम हो जाती। उनकी गरमी कम होने से सरकार की ताकत बढ़ जाती। आज गरम दल का स्थान है

किया है असहयोगियों ने। देश में असहयोगी-दल सब से बलवान् दल है। देश के लिए सर्व सामान्य कार्यक्रम बनाने से उस दल को अधिक से अधिक रिआयत करनी पड़ेगी जो सब से अधिक कमजोर है। वैध-आन्दोलन-वादी, विघ्न-बाधा-वादी और क्रान्ति कारी इन दलों का सर्व-सामान्य कार्यक्रम ऐसा शिथिल और इतना कमजोर होगा कि क्रान्तिकारी दल एक क्षण उसके अनुसार काम न कर सकेगा। उस कार्यक्रम में सब से अधिक रिआयत करनी होगी वैध-आन्दोलनवादियों के साथ, उससे कम करनी होगी विघ्न-बाधा-वादियों के साथ। इस समझौते से कमजोर की ताकत कम बढ़ती है, अलबत्ते ताकतवर कमजोर बहुत हो जाता है। इस लिए समझौते की या सर्व-सामान्य कार्यक्रम की पुकार, कमजोरी की आवाज कही जाती है। समझौता-वादी संख्याबल की तरफ अधिक ध्यान देते हैं और शौर्य-बल की महिमा को नहीं देखते। शौर्यबल संख्या-बल का मूल है। महात्मा गांधी के कार्यक्रम को जो इतना संख्याबल मिला उसका मूल कारण है उस कार्यक्रम का शौर्य-बल। संख्या-बल शौर्य-बल के पीछे पीछे चलता है।

जबतक मानवी-स्वभाव में विविधता है तबतक दलबन्दी अनिवार्य है। दलबन्दी बुरी चीज नहीं—दलबन्दी के मुख्य उद्देश्य को भूल जाना बुरी चीज है। दलबन्दी से बुराइयां नहीं पैदा होतीं—बुराइयां पैदा होती हैं हमारे व्यक्तिगत द्वेष, मनोमालिन्य, और अपनी स्थिति को भूल जाने से। यदि भिन्न भिन्न दल उन बातों में बराबर परस्पर सहयोग करते रहें, जहां उनमें मत-भेद न हो और उन बातों में लड़ते-झगड़ते रहें या परस्पर उदासीन रहें जहां मतभेद हो, तो दलबन्दी बुराई की अपेक्षा देश के लिए हितकर ही अधिक हो। दो वकील अदालत में आपस में लड़ते हैं; पर बाहर आते ही एक-दूसरे से हाथ मिलाते हैं; उदारता, क्षमा और सहनशीलता, का अवलंबन करने से दलबन्दी की मौजूदा बुराइयां बहुत कम हो सकती हैं।

फिर केवल सर्व-सामान्य कार्यक्रम बना देने से दल-बन्दी दूर नहीं हो सकती। उस कार्यक्रम के पीछे ऐसा व्यक्तित्व होना चाहिए जो अपने पुण्य-प्रताप से कमजोर दल को तो आगे बढ़ा सके, लेकिन आगे बढ़े हुए को पीछे न लौटना पड़े—अगर ठहरना भी पड़े तो इस कमी को वह शीघ्र ही पूरा सकने की शक्ति रखता हो। मेरी राय में मौजूदा हालत में अकेले महात्माजी ही ऐसे व्यक्ति थे जो दल-बन्दी और उसकी बुराई हटाने में समर्थ हो सकते थे। बारडोली का कार्यक्रम उनकी इसी प्रवृत्ति या इच्छा का परिणाम था। निर्जीव कार्यक्रम नहीं बल्कि सजीव और सहृदय व्यक्तित्व ही दल-बन्दी को मिटाने—कम से कम उसकी तीव्र बुराइयों को कम करने—में सफल हो सकता है। जबतक महात्माजी जेल में हैं तबतक दल-बन्दी मिटाने की इच्छा और कोशिश करना मेरी राय में अपनी कमजोरी के कीटाणु दूसरों के हृदय में भेजकर उन्हें कमजोर बनाने का प्रयत्न करना है। अपने अपने आदर्श के अनुसार भिन्न भिन्न दलों का देश की सेवा करना और ऐसा करते हुए परस्पर सद्भाव रखना—इसमें यदि लाभ नहीं—मेरी राय में तो लाभ ही है—तो उतनी हानि नहीं होगी जो सबको एकत्र करके किसी थोदे कार्यक्रम में लगाने से होगी और सबका सामान्य कार्यक्रम सबकी कमजोरी के सामान्य कार्यक्रम के सिवा और क्या हो सकता है?

बदले की नीति

केनिया के अन्यायपूर्ण फैसले की खबर आते ही भारत में बदले की नीति की आवाज उठने लगी। इसी भाव से प्रेरित हो कर देहली-महासभा ने भी अंगरेजी माल का बहिष्कार करना निश्चित किया। बम्बई की म्युनिसिपाल्टी ने इसीसे उत्तेजित हो कर उसका पदानुसरण किया। पर मुख्य सवाल यह है कि क्या इस बदले की नीति के बलपर प्रवासी भारतीयों को उपनिवेशों में वहां के गोरों के बराबर अधिकार मिल सकते हैं? क्या जबतक भारत-वासी अपने घर हिन्दुस्तान में बराबरी का अधिकार तो ठीक दूर खामी में गुलाम और एक हेय-जाति बने हुए हैं तबतक कोई स्वप्न में भी ख्याल कर सकता है कि मजदूरी या रोजगार की गरज से जाने वाले हमारे भाइयों को समुद्र पार कोई समान अधिकार दे देगा? भारत के हरएक राजनैतिक दल का कोई भी नेता या कार्यकर्ता, जिसमें जरा भी सोचने की शक्ति है, इस बात का कायल है कि जबतक भारत को स्वराज्य नहीं मिलता तबतक प्रवासी भारतीयों का सच्चा कल्याण किसी तरह नहीं हो सकता। पर कहा जाता है कि जबतक स्वराज्य न मिले तबतक क्या बदले की नीति से भी काम न लें? सच पूछिए तो "बैर और बदला" बराबर वालों में ही शोभा देता है और पुर-असर होता है। बदला लेने की नीति उस समय भी सफल हो सकती है जब हमारे मुखालिफ को हमारी कमजोरी का पता न हो। पर यहां तो हम लोग खुद शायद अपनी कमजोरी को उतना न जानते हों जितना हमारे मुखालिफ उसकी रगरग से वाकिफ हैं। ऐसी हालत में हमारी शाब्दिक या कागजी बदले की पुकार का उसपर क्या असर हो सकता है? कसाई बकरे की गर्दन पर छुरी फेरता है। वह मिमियाता है, हाथ-पांव तड़फड़ाता है; इससे कसाई उसको जिन्दा नहीं छोड़ देता। हमारी बदले की पुकार "बकरे का मिमियाना और तड़फड़ाना" है। यह बात इस साम्राज्य-प्रदर्शनी ने अच्छी तरह साबित कर दी है। अन्यत्र प्रकाशित पं. बनारसी दास चतुर्वेदी के लेख से डाक्टर सप्रू की विजय की कलई खुल जाती है। अतएव यदि हमें प्रवासी भारतीयों की बेइज्जती पर सन्ताप होता हो, तो हमें उसके मूल कारण—अपनी कमजोरी, अपनी गुलामी—को मिटाने के लिए कमर कसना चाहिए। मिमियाना और तड़पड़ाना छोड़कर सिंह की तरह दुम फटकार कर खड़ा हो जाना चाहिए। बकरे का चोला उतार कर हमें अपना सच्चा पुरुष-सिंह का रूप दिखाना चाहिए।

कमजोरी दूर होती है बलवर्द्धक काम करने से। संगठन, निर्भयता, कष्ट-सहन, बलिदान, के भावों को हृदय में अंकित करना, मौका पेश आने पर इसे न खोना—उस समय अपनी कृति के द्वारा इन भावों का परिचय देना और ऐसे मौके पैदा करना—यह बल बढ़ाने का तरीका है। दलीलें, बहस, व्याख्यान, प्रस्ताव और कमेटियों से आज तक न किसीका बल बढ़ा है—न किसीको फतह मिली है। काम—काम—काम! प्रतिकार—प्रतिकार—प्रतिकार!! ही बल बढ़ाने और फतह हासिल करने का मुख्य साधन है।

"मेरे ३० करोड़ बेटे"

पू० बी. अम्मा और अली-भाई पिछले सप्ताह में यहां पधारे थे। वे केवल अलीभाइयों की ही माता अपनेको नहीं समझतीं वे सबको 'मेरे बेटे' संबोधन करती हैं। अली-भाइयों को वे तभी तक अपने बेटे समझती हैं जबतक वे धर्म के रास्ते चलते हैं और धर्म के लिए जान हथेली पर रख कर घूमते हैं। अहमदाबाद के व्याख्यान में मौ० महम्मदअली ने अपनेपर हुए सरकार के आक्रमणों का जिक्र करते हुए कहा कि अब फांसी बाकी रही है और मैं उसके लिए तैयार हूं। इसी सिलसिले में विनोद-भाव से उन्होंने कहा कि फिर नजर-बंदी का जोर बढ़ा है। यदि सरकार कहीं मुझे भी नजर-बंद कर दे तो घर बैठे ५००) मासिक मिला करेंगे। इसपर बी. अम्मा गरम कर बोलीं—"ऐसी कमाई मुझे न चाहिए। मेरे तीस करोड़ बेटे हैं। उनसे भीख मांग कर अपना पेट भर लूंगी।" (ह० व०)

हमारा कार्यक्रम

वार्षिक	रु० ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रतिका	,, -)॥
विदेशों के लिए	,, ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक १४

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय | अहमदाबाद, कार्तिक सुदी १०, संवत् १९८० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
मुद्रक-प्रकाशक—वेणीलाल छगनलाल बूच | रविवार, १८ नवम्बर, १९२३ ई० | सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

सारा देश अकालियों के साथ है !

अमृतसर में देश-नेताओं का निश्चय

(हमारे संवाददाता का तार)

अमृतसर में देश-नेताओं का सम्मेलन दो रोजतक हुआ। धारासभा के चुनाव, बीमारी, प्रान्तिक परिषदों आदि के कारण कुछ खास खास नेता न आ सके। तथापि अली-भाइयों का आ-जाना सम्मेलन की सफलता की गैरण्टी थी। उनके अलावा उपस्थित नेताओं में मुख्य नाम ये हैं—श्रीकोंडा वेंकटप्पय्या, लाला लाजपतराय, पं. मोतीलालजी और जवाहरलाल नेहरू, जार्ज जोसफ, टी. प्रकाशम्, श्रीमती सरोजिनी नायडू, मौ० अबुल कलाम आजाद, डाक्टर किचलू, अनसारी आदि। पंजाब के हिन्दू-मुसल्मानों और सिक्खों के प्रतिनिधि भी काफी तादाद में मौजूद थे।

पूर्वोक्त कारणों से कार्य-समिति के सदस्य काफी तादाद में न पहुंच पाये थे, इससे उसकी बैठक न हो पाई—२५ नवंबर को अहमदाबाद में स्थिर हुई है। अतएव नेताओं के सम्मेलन तथा सविनय-भंग समिति ने सिफारिश के रूप में कुछ प्रस्ताव स्वीकृत किये।

नेतालोग अकाली-जत्थों के जुलूसों को देख चुके थे, जोकि खरे हस्त सरकारी हुक्मों का अनादर करते थे। जुलूस के साथ फौजी बैंड था और उसके सिरों पर गुरुमुखी, अंगरेजी, उर्दू में लिखा हुआ था—"गैर कानूनी जमात"। इसका असर सम्मेलन के वायु-मण्डल में काफी था। शुरूआत में मौलाना शौकतअली और पं. मोतीलाल नेहरू का खासा द्वंद्वयुद्ध हुआ। मौलाना चाहते थे कि बिना हिचकिचाये तुरन्त कुछ न कुछ कर दिखाया जाय। पण्डित मोतीलाल जी 'सावधानी' और 'शनैः शनैः' के पक्ष में थे। डाक्टर किचलू चाहते थे कि यदि सविनय भंग-समिति को अधिकार दे दिया जाय तो वह मौका देख कर सब कुछ कर लेगी। अन्त को श्री जार्ज जोसेफ ने कुछ प्रस्तावों का मसविदा पेश किया जो मौ. महम्मदअली, पं. नेहरू आदि की सलाह से कमोबेश होकर नीचे लिखे रूप में सर्वसम्मति से पास हुआ।

१—यह सम्मेलन इस बात को प्रकट करता है कि शि. गु. प्र. समिति और अकाली-दल पर सरकार ने जो आक्रमण किया है वह तमाम भारतवासियों की शान्तिमय हलचलों के अधिकार पर सीधा पदाघात करता है और उसे यह यकीन हो चुका है कि सरकार का यह निशाना आजादी चाहने वाली हरएक हलचल की ओर है। इसलिए यह सम्मेलन सिक्खों के साथ देने का निश्चय करता है और हिन्दुस्तान के तमाम बाशिन्दों, हिन्दुओं, मुसल्मानों, पारसियों, ईसाइयों आदि से कहता है कि वे सिक्खों को मौजूदा संग्राम में यथासंभव हर तरह की सहायता दें।

इस सम्मेलन की यह भी राय है कि एक अकाली सहायता-समिति बनाई जाय जिसमें नीचे लिखे सदस्य हों और उसे और भी सदस्य बढ़ाने का अधिकार रहे—श्रीमती नायडू, च० राजगोपालाचार्य, टी प्रकाशम्, देशपाण्डे, कृष्णस्वामी अय्यर, केलकर, वल्लभभाई पटेल, जयरामदास, जवाहरलाल नेहरू, मोतीलाल नेहरू, किचलू, लाजपतराय, अनसारी, राघवेन्द्रराव, जमनालाल बजाज, अणे, राजेन्द्रप्रसाद, चित्तरंजन दास, फूकन, अली-भाई, अ० क० आजाद, बे० फा० भरूचा, गिडवाणी, जार्ज जोसफ, हकीम अजमल खान, वेंकटप्पय्या, सन्तानम्। इसके अतिरिक्त इस कमेटी के दो सभासद अमृतसर में सिक्खों की सहायता के लिए रहें, महासभा की तरफ से समाचार-समिति का संगठन करें और कार्य-समिति को तथा देश को सिक्खों की हालत से वाकिफ रखते रहें।

दूसरे प्रस्ताव के द्वारा इस प्रस्ताव को स्वीकृत करने की सिफारिश कार्य-समिति से की गई।

सविनय भंग-समिति के प्रस्ताव

१—नेताओं के सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार महासभा के प्रतिनिधि सिक्खों की सहायता के लिए अमृतसर में रहें। समाचार-समिति का संगठन भी किया जाय। यदि वे प्रतिनिधि गिरफ्तार कर लिये जायं या सरकार उन्हें काम करने से रोक दे तो दूसरे प्रतिनिधि वहां भेज जायं।

२—इस बात को ध्यान में रखते हुए कि महासभा-वादियों के लिए अकालियों की सहायता करना और उनके काम में हाथ बंटाना वांछनीय है और समिति को यह खबर मिली है कि अ-सिक्ख भी अकाली-दल में शामिल हो सकते हैं, जोकि गैर-कानूनी करार दे दिया गया है, यह समिति सिफारिश करती है कि महासभावादी अकाली-दल के सदस्य हों और सरकार के उनके खिलाफ कार्रवाई करने पर भी यह सिलसिला बराबर जारी रहे।"

टिप्पणियाँ

"टाईम्स" का फूत्कार

जब से डाक्टर किचलू ने सत्याग्रह की आवाज बुलन्द की है और मौलाना महम्मदअली ने सिक्ख-लीग के अवसर पर सिक्खों को सहायता का आश्वासन दिया है तब से बंबई का 'टाइम्स आफ् इंडिया' दोनों पर बराबर जहर उगल रहा है। उनके छोटे से छोटे काम पर वह जामे से बाहर हो जाता है। डाक्टर किचलू ने कार्य-समिति की बैठक अमृतसर में कमाईकराई, 'टाईम्स' के आगे एक भूत खड़ा कर दिया। वह हैरान है कि ये मुसलमान-नेता क्यों ख्वामख्वाह सिक्खों के मामले में टांग अड़ाते हैं! शुक्र है कि डाक्टर किचलू और मौलाना महम्मदअली को जली-कटी सुनाने और उनकी स्थिति को भद्दा बताने के आवेश में वह गु० प्र० कमेटी के संबंध में ऐसी बातें कह गया है जिससे उसीका पक्ष कमजोर हो जाता है। वह कहता है "हां, अकालियों के प्रतिकार करने की बात तो समझ में आ सकती है, वे चाहे गलत रास्ते भले ही जा रहे हों, पर उनके प्रतिकार के मूल में एक जाग्रत जाति के भाव और धार्मिक चैतन्य अवश्य है। पर मुसलमानों को इससे क्या वास्ता? सिक्खों और पंजाब-सरकार के झगड़े में ये 'बीच में मेरा चांद भाई' क्यों आने लगे? सो कम से कम अकालियों के प्रतिकार के औचित्य को तो 'टाईम्स' ने कबूल कर लिया। अब रहे मुसलमान। समझ में नहीं आता 'टाईम्स' केवल मुसलमानों को ही क्यों कोसता है? वह भूल जाता है कि सिक्खों के पीछे अकेले मुसलमानों की ही नहीं, हिन्दुओं की भी ताकत है। दोनों जातियां सरकार की चालबाजी को खूब समझ रही हैं और टाईम्स के इस मन्त्र का कि "जबतक मुसल्मानों से कोई ताल्लुक न हो उन्हें इसमें न पड़ना चाहिए," मर्म अच्छी तरह जानती हैं। सरकार तो एक एक करके जातियों को कुचलती रहे; और दूसरी पड़ौसी जातियां पर बैठे मुंह ताका करें! यह स्थिति तो उसी दिन से दूर हो गई जिस दिन से हिन्दुओं ने खिलाफत के अन्याय के मुकाबले के लिए मुसलमानों के साथ आगे कदम बढ़ाया। सवाल अकेले सिक्खों का नहीं है बल्कि हर जाति की धार्मिक और इन्सानी आजादी का है। और यदि टाईम्स के ही शब्दों में अकाली-संग्राम में अकालियों के पक्ष में "जाग्रत जाति के भाव और धार्मिक चैतन्य" है, और यदि वह तथा उसके भाई-बेटे अकालियों की अहिंसा-नीति को चुनौती नहीं दे सकते तो यंही सैर के प्रबल कारण है अन्य जातियों के उनके साथ सहयोग करने का। पंजाब-सरकार ने गु० प्र० कमिटी और अकाली दल को गैर-कानूनी जमात करार दे कर केवल सिक्खों के नहीं सारे देश के सभा-समिति करने की आजादी के हक पर पदाघात किया है और जाग्रत भारतीय राष्ट्र चुप रह कर उसे सहन नहीं कर सकता। जो उसे फुसलाना चाहता हो उसे पिछले तीन वर्षों का इतिहास गौर से पढ़ना चाहिए और गुरु-का-बाग और नागपुर-सत्याग्रह की घटनाओं को इतना जल्दी न भुला देना चाहिए।

भय नहीं, क्षमा ही

"यह रास्ता नहीं" नाम की एक टिप्पणी किसी पिछले अंक में निकली है। उसपर अजमेर के एक सज्जन ने पत्र-द्वारा मेरे विचारों पर मत-भेद प्रकट किया है। उस टिप्पणी में मैंने यह प्रतिपादन किया था कि अजमेर और आगरे आदि में हिन्दू-मुसल्मानों के दंगों के संबंध में जो मुकदमेबाजी हो रही है वह हिन्दू-मुसल्मान-एकता का रास्ता नहीं है। दण्ड-द्वारा भय-प्रयोग नहीं, बल्कि क्षमा और उदारता उसका सच्चा उपाय है। इसपर अजमेरवासी महाशय लिखते हैं "जब कि दुर्बल मनुष्य अपने से अधिक बलवान् के अत्याचार सहन कर के उसको क्षमा करता है तब वह क्षमा नहीं कही जा सकती। वह तो अपनी कमजोरी के कारण आइन्दा अत्याचारी से न सताये जाने के लिए किया गया प्रयत्न कहा जायगा।" दूसरे—"क्षमा द्वारा अपराधी मनुष्य का शरमिंदा होना, उसका सद्भाव बढ़ना, एकता उत्पन्न होना, उसके विवेक का जाग्रत होना सदा अनिवार्य नहीं होता।" शारीरिक रोगों की तरह मानसिक रोगों की भिन्न भिन्न अवस्थाओं का जिक्र कर के वे अन्त में लिखते हैं कि "मानसिक रोग का निवारण होना भी न तो दण्ड-प्रयोग पर अवलंबित है न क्षमा पर; किन्तु उस रोग की परिस्थिति के अनुकूल यथार्थ प्रयोग किये जाने पर वह अवलंबित है।

मेरी टिप्पणी का मूल विषय था हिन्दू-मुसल्मानों के वैमनस्य दूर होने का सही रास्ता अपनी समझ के अनुसार दिखाना। मैंने दण्ड-द्वारा भय-प्रयोग की अपेक्षा क्षमा को ज्यादह अच्छा रास्ता माना है। मेरा अब भी यही विश्वास है और अपने कौटुम्बिक जीवन में हम नित्य ही उसका अनुभव करते हैं कि कलह दूर हो कर एकता यदि हो सकती है तो वह क्षमा, उदारता और विश्वास के ही भावों के बल पर हो सकती है—बदला, भय प्रयोग से मन फटता है, मिलता नहीं। एकता मन का विषय है। भय और बदले के बल पर हुई एकता तभी तक रहेगी तबतक भय और बदले का साधन रहेगा। भय के द्वारा हम मनुष्य के शरीर को अपने वश में चाहे भले ही कर लें पर उसका हृदय तो हम क्षमा, उदारता, आदि के ही द्वारा जीत सकते हैं।

निर्बल मनुष्य बदला लेने की इच्छा कर सकता है, क्षमा का भाव उसके हृदय में उत्पन्न नहीं हो सकता। क्षमा वही कर सकता है जो अपराधी से अपनेको अधिक शक्तिशाली मानता है। मैं हिन्दुओं को न शरीर-बल में, न धन-बल में, न विद्या-बल में, न बुद्धि-बल में, न आत्मिक बल में कमजोर मानता हूं। कमजोरी हमारी समझ में है। हां, एक बात में हिन्दू कमजोर हैं—प्रतिकार शक्ति में। प्रतिकार-शक्ति बढ़ाने का उपाय हिन्दुओं को जरूर करना है। पर इसके विस्तार का यह स्थान नहीं।

तात्विक दृष्टि से मैं किसी भी रूप में भय-प्रयोग का कायल नहीं हूं। रोग चाहे शारीरिक हो या मानसिक, भय-प्रयोग उसका इलाज हो ही नहीं सकता। ज्यों ज्यों मनुष्य के मूल-भूत सद्गुणों की पहचान मानसशास्त्रियों को होती जा रही है त्यों त्यों दण्ड द्वारा भय-प्रयोग उन्हें "कच्चे विचारवालों की उपज" मालूम होती जा रही है। अमली दुनिया में, खास कर भय-प्रयोग की छाया में पले लोगों में, चाहे कुछ समय के लिए भय-प्रयोग सफल होता हुआ दिखाई दे, और इसलिए उन्हें उसकी जरूरत भी दिखाई दे, पर ज्यों ज्यों वे अपने मन को अधिक उन्नत, विचारों को अधिक परिपक्व, दृष्टि को अधिक विशाल और परिणाम-दर्शिनी बनाते जायंगे त्यों त्यों उन्हें अपनी भूल अपने आप मालूम होती जायगी।

सोचिए, इन मुकदमे-बाजियों का नतीजा क्या होगा? हिन्दुओं की सहायता और सहयोग से मुसलमानों को और मुसलमानों की सहायता से हिन्दुओं को सजायें हो गई। दोनों के रिश्तेदारों, मित्रों और हमदर्दियों के दिलों में बदले के भाव मजबूत हो जायंगे और मौका पाते ही दोनों लड़-मरेंगे। सजा पानेवालों में कुछ को

अफसोस होगा, कुछ में बदले के भाव रह होंगे। बाहर आने पर अफसोस करने वाले भी बदले के भावों के शिकार होंगे और यह वैर की आग इसी तरह जारी रहेगी। जिन्हें यह अभीष्ट न हो उनके लिए क्षमा के सिवा दूसरा रस्ता नहीं है।

हिन्दू-मुसल्मान-एकता और अली-भाई

जेल से छूटते ही अली-भाइयों ने हिन्दू-मुसल्मान-एकता के लिए जोर-शोर से प्रयत्न शुरू किया है। वे तथा डाक्टर किचलू इस एकता के लिए अपने प्राणतक दे देने का निश्चय प्रकट कर चुके हैं। खेद है कि महात्माजी के बाद किसी हिन्दू-नेता के मुंह से हमने अभी ऐसे निश्चयात्मक वीर वचन नहीं सुने। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुओं ने न केवल वाणी के द्वारा, बल्कि तन और धन के द्वारा भी खिलाफत के मामले में मुसल्मानों की असली सेवा की है और अपनी तरफ से हिन्दू-मुसल्मान-एकता का दरवाजा सदा के लिए खोल दिया है; पर हिन्दू-मुसल्मानों के इस बढ़ते हुए वैमनस्य के दिनों में यदि हिन्दू-नेता भी अली-भाइयों का साथ उसी उत्साह के साथ दें तो यह आग आन की आन में बुझ सकती है। झगड़ों की शुरूआत में देशबन्धु, पण्डित मोतीलाल जी, आदि ने पंजाब में पड़ाव डाल कर एकता के लिए कुछ कोशिश की थी; पर उस समय की असफलता अली-भाइयों के आ जाने, देहली के एकता-संबंधी-प्रयत्नों के बाद अब सफलता के रूप में आसानी से परिणत हो सकती है। इस एकता के लिए अली-भाई जिस हद तक आगे बढ़ गये हैं उस हद तक यदि हिन्दू-नेता भी बढ़ जायं तो एकता होने में देर न लगे। मौलाना शौकतअली ने देहली की सभा में कहा—इन कौमी झगड़ों पर मुझे सख्त अफसोस है। हिन्दुस्तान की आजादी का यह रास्ता नहीं है। हिन्दुओं को तो महात्मा गांधी ही, जो कि मेरे सरदार हैं, राह दिखाने और सलाह देने की योग्यता रखते हैं—मैं हिन्दुओं का सवाल उन पर छोड़ देता हूं; मगर मुसल्मानों से मैं दो अल्फाज जरूर कहूंगा। मुसल्मानों को याद रखना चाहिए कि हम आम तौर पर तमाम हिन्दू भाइयों के और खास तौर पर महात्माजी के भारी एहसानमन्द हैं। खिलाफत के मामले में महात्माजी ने जो मदद की है उसे जबान बयान नहीं कर सकती; और यदि किसी दूसरी वजह से नहीं तो महज इसी वजह से हर एक हिन्दू-भाई हमारी कृतज्ञता का मुस्तहक है। मुसल्मानों को यह बात हरगिज न भूलना चाहिए कि खिलाफत के काम में पहला शहीद एक हिन्दू हुआ है और हिन्दुओं की ओर से जो धन-जन के रूप में सहायता मिली है वह कम नहीं है। इसलिए मैंने इस बात का अहद कर लिया है कि मैं किसी हिन्दू-भाई से बदला नहीं निकालूंगा और न कोई कानूनी कारवाई उसके खिलाफ करूंगा। मैं हर तरह से उसकी हरकत को बरदाश्त करूंगा—भले ही वह हमारी औरतों तक की बे-अदबी करें। मैं हर हालत में उनके मजहबी जज्बात की इज्जत करने, उनके साथ मेल-मुहब्बत रखने की प्रार्थना आप से करूंगा। मैं चाहता हूं कि मेरे मुसल्मान भाई बहादुरों कासा सलूक उनके साथ करें और बुजदिलों की तरह संगदिली को अख्तयार न करें। बहादुर आदमी की तरह उन्हें कमजोर की हिफाजत करनी चाहिए, औरतों की इज्जत करनी चाहिए, मुसीबतजदों की मदद करनी चाहिए और किसी के एहसान को कभी न भूलना चाहिए। अगर हिन्दू लोग मुसल्मानों पर ज्यादती करें तो भी मैं मुसल्मानों से कहता हूं कि बहादुरों की तरह बड़प्पन और धर्मदिली का परिचय दो।"

मौलाना शौकतअली के इन्हीं वीर और उदार वचनों की प्रतिध्वनि यदि हरएक हिन्दू-मुसल्मान नेता के हृदय से निकलने लगे तो देश शीघ्र ही बरबादी से बच जाय।

पत्र-परिचय

पिछले कुछ महीनों के अन्दर नीचे ... और मासिक पत्रों का दर्शन हिन्दी-संसार को ...

मतवाला—यह व्यङ्ग्य और हास्यपूर्ण सचि... कलकत्ते से प्रकाशित होता है। हिन्दी में सामयिक ... और हास्य-साहित्य की पूर्ति का शायद यह पहला ही प्रयत्न इस रूप में किया गया है। मतवाले की भाषा चटपटी, चुटकियाँ मार्मिक, और आलोचना सारयुक्त होती है। "मतवाले की बहक" और "चलती चक्की" बस सुनते ही बनती है। हफ्ते भर की भारत की कोई महत्वपूर्ण घटना 'मतवाले की बहक' और 'चलती चक्की' से शायद ही बचती हो। सारे 'मतवाला' को, विशेष कर अग्रलेखों को सम्पादक की कविता-मस्ती का अखाड़ा ही समझिए। 'मतवाला' का एक ही 'प्याला' थके-माँदे उदास मन को मतवाला बना देने के लिए काफी है।

परमेश्वर करे "मतवाला" की "बोतल" के पूत-पूत आबाद रहें।

नवयुग—"संगठन व राष्ट्रता की नींव को है डालना। एक गति उद्देश का है ऐसम हम को पालना।" इस प्रतिज्ञा के साथ दैनिक "नवयुग" आगरे से पदार्पण करता है। हिन्दी के वृद्ध विख्यात भुक्तभोगी लेखक पं. राधामोहन गोकुलजी का इसके एक संपादक होना, 'नवयुग' के सफल जीवन का आश्वासन माना जा सकता है। "नवयुग का आगमन" नामक लेख में 'राधे' की लेखनी लिखती है—

"हमें दुःख है कि महात्माजी के बिछुड़ते ही एक ओर सबल क्रान्ति का प्रेम फिर अंकुरित हो उठा, परमात्मा की पवित्र मेदिनी पुनः नररक्त से सिंचित होने लगी। जिनको परमात्मा ने संसार को प्रेम के अस्त्र-शस्त्र से विजय करने का भार सौंपा है वे ही पाश्चात्य लड़वाजी के प्रेम में निमग्न होने लगे, दूसरी ओर समाज का लुटेरा हत्यारा और ईश्वर के बहाने शैतान की भक्ति को प्रधानता देनेवाला अंग पड़ोसियों पर हाथ साफ करने के लिए कटिहस्त हो उठा है। इस अनीश्वरवादिनी शक्ति का शमन इस नवयुग में विक्रम की २० वीं शताब्दी में होना चाहिए और न केवल भारत में प्रत्युत् सारे संसार में प्रेम-धर्म्म का डंका बजना चाहिए, इसी एक मात्र भाव को लेकर नवयुग पदार्पण करता है।"

परमात्मा 'नवयुग' को अपनी 'ज्योत्स्ना' फैलाने में कृतार्थ करें।

भारतीय लोकमत—उरई-(संयुक्त प्रान्त) का साप्ताहिक पत्र। यह स्वराज्य-दल का है और पं. मन्नीलाल पाण्डेय तथा श्री. बृजबिहारी मेहरोत्रा के संपादकत्व में निकलता है। ईश्वर करें, यह सच्चे भारतीय लोकमत का प्रदर्शक और समर्थक हो।

उत्साह—उरई से अस्त हो कर यह झांसी से "बुंदेलखण्ड का राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र" हो कर निकलने लगा है। यह भी स्वराज्य-दल का अनुगामी है। सहयोगी के शब्दों में ही भगवान् से विनय है कि "उत्साह" "निर्भय बन कर भारत माँ की सच्ची चाह को प्रकट करे।"

स्त्री-दर्पण—प्रयाग का पुराना प्रसिद्ध स्त्रियोपयोगी मासिक पत्र अब कानपुर से श्रीमती सुमति देवी बी. ए. और श्रीमती फूलकुमारी मेहरोत्रा के संपादकत्व में नवीन सज-धज और उत्साह के साथ प्रकाशित होने लगा है। इसमें हिन्दी के अच्छे अच्छे लेखकों के लेख छपते हैं। इसका यह सिद्धान्त-वचन तुरन्त अपनी ओर सबका ध्यान खींच लेता है—"बिन इंजन की रेल, बिना जल सरिता है ज्यों, दीपक बिन ज्यों तेल, नर बिन वनिता है त्यों।" इसके ऊपर अंकित चरखे का चित्र "नर" शब्द के अर्थ को स्पष्ट कर देता है।

स्त्री-दर्पण का यह नवजीवन दीर्घजीवन हो। ह० ह०

हिन्दी-नवजीवन

जेल-दिन ६१९, रविवार, कार्तिक सुदी १०, सं. १९८०

हमारा कार्यक्रम

हिन्दुस्तान सदियों की गुलामी का रोगी है। गुलामी के जन्तु उसके रगोरेशे में इतने पैवस्त हो चुके हैं कि उसके सामने जिन्दगी और मौत का सवाल खड़ा हो गया है। उसकी हालत इतनी पेचीदा और नाजुक हो गई है कि यदि ताकत की दवा की मात्रा जरा भी बढ़ा दी जाती है तो उसका दिमाग घूम जाता है—वह चौरी-चौरा जैसी गहरी बदपरहेजी कर बैठता है। यदि जोश दिलानेवाली दवा कम कर के केवल दूध जैसी कुदरती ताकत बढ़ाने वाली चीज दी जाती है—बारडोली का रचनात्मक कार्यक्रम पेश किया जाता है तो उसे अपनी ताकत घटती हुई दिखाई देती है—वह जीवन से निराश होने लगता है—जिस वैद्य की दवा से थोड़े ही दिनों में अद्भुत फायदा मालूम हुआ, उसपर से उसके कुछ कुटुम्बियों की श्रद्धा हटने लगती है—हालत गिरने की पुकार मचती है और नई दवा के लिए दौड़-धूप होने लगती है—स्वराज्यदल और उसका कार्यक्रम देश के सामने उपस्थित होता है।

इलाज के दो तरीके होते हैं। एक तो ऊपरी और दूसरा भीतरी। रोगी हकीम के पास जाता है—कहता है, सिर में दर्द होता है। हकीम मलने के लिए एक रोगन दे देता है। फिर रोगी कहता है, पेट फूलता है। हकीम दस्त साफ होने का चूरन दे देता है। फिर रोगी कहता है—आंखों में जलन होती है। हकीम त्रिफला से आंखें धोने की सिफारिश करता है। रोगी दवा करता है। उसे किसी न किसी बात में थोड़ा-बहुत आराम मालूम होता है। यह ऊपरी इलाज है। एक दूसरा हकीम है जो रोगी से बीमारी के तमाम हालात सुन लेता है फिर उसके जिस्म की जांच करके सोचता है कि किस बात के बिगाड़ होने से ये तमाम शिकायतें पैदा हो रही हैं। वह उस मूल कारण को पाता है और उसे दूर करने की दवा देता है। यह भीतरी इलाज है। वैद्यक-शास्त्र में दोनों इलाजों को क्रम से लक्षण-चिकित्सा और निदान-चिकित्सा कहते हैं।

वैध-आन्दोलनवादी अर्थात् नरम दल के और सहयोगी लोग लक्षण-चिकित्सा करते हैं। उन्होंने देखा कि हिन्दुस्तानियों के पास हथियार नहीं हैं—बस अस्त्र-आईन को रद कराने का प्रस्ताव और कानूनी आन्दोलन करने लगे। सरकार ने तलवारें रखने की कुछ सुविधा कर दी। रोगी समझने लगा, आराम हो रहा है। उन्होंने देखा कि सिविल सर्विस की परीक्षा विलायत में होने से हिन्दुस्तानियों को अनेक असुविधायें होती हैं। उन्होंने तकरीरें शुरू कीं, हाकिमों के पास दौड़-धूप मचाई। हाकिमों ने जरा हमदर्दी दिखाई—हमारा दर्द कम होता दिखाई दिया। इस लक्षण-चिकित्सा से दर्द कुछ कम होता भले ही दिखाई दे; पर बीमारी की जड़ नहीं कटती। महात्माजी ने आकर देश को क्रान्ति का नुसखा दिया और कहा कि रोगी की बीमारी कष्ट-साध्य ही नहीं, असाध्य की हद तक पहुंच गई है। ऊपरी इलाजों से काम नहीं चल सकता। क्रान्ति-रूपी जीवन-रसायन ही उसे बचा सकती है। या तो इस सरकार को सुधारो या मिटा दो। यही सब बीमारी की जड़ है। हमने देखा ही कि इसकी रसायन से रोगी को अपूर्व चैतन्य मिला।

पर देश के दुर्भाग्य की बात यह है कि इस निदान-चिकित्सा अथवा क्रान्तिमय कार्यक्रम के लिए रोगी की सेवा-शुश्रूषा करनेवालों को जो मुसीबतें उठानी पड़ती हैं, वे कुछ लोगों को जरूरत से ज्यादह मालूम होने लगीं और उन्होंने ख्याल किया कि एक ऐसा तरीका भी है जिसमें इतनी तकलीफें नहीं होतीं; पर फायदा वैसाही होता है। उन्होंने होशियारी यह की कि दवा का नाम तो वही रक्खा; पर उसकी चीजें, अनुपान, विधि सब बदल दी। दवा की प्रकृति वैध-आन्दोलन की है, पर नाम क्रान्तिकारी है। दवा का गुण उसके नाम से नहीं, उसकी प्रकृति से, उसके धर्म से होता है। देहली-महासभा ने यह इजाजत दे दी कि अच्छा तुम अपनी दवा तैयार करो। महीना पन्द्रह-रोज में उनकी दवा तैयार हो जायगी। अब वे कोकोनाडा-महासभा में यह कहेंगे कि दवा तैयार है—हमारा इलाज शुरू होने दो। धारा-सभाओं के लिए महासभा हमें आदेश दे।

मगर रोगी के कुटुंब में अधिकांश और सेवा-शुश्रूषा करने वालों में कितने ही लोग अभी ऐसे हैं जिन्हें इस नवीन दवा की असलियत मालूम है। जो जानते हैं कि यह असल नहीं नकल है, और इसके प्रयोग से रोगी की हालत खराब हुए बिना न रहेगी। उनके सामने बड़ा भारी सवाल यह है कि अब क्या हो? या तो चुप बैठ कर तमाशा देखते रहें या रोगी को खतरे से बचाने का उद्योग जी-जान से करें।

पहली बात में कायरता है और दूसरी में पुरुषार्थ। यदि हमें पुरुषार्थ पसन्द है तो हमें कोकोनाडा के लिए कमर कसनी चाहिए और अपने कार्यक्रम की रक्षा करनी चाहिए। याद रखना चाहिए कि इसी दवा की रक्षा और प्रयोग पर रोगी की जीवन-शक्ति अवलंबित है। चौरी-चौरा-काण्ड के बाद महात्माजी ने उस दवा का उत्तेजक अंश कम कर दिया था—सविनय-भंग मुल्तवी कर दिया था। उसका कारण था हत्याकाण्ड के उमड़ उठने की संभावना। अब डेढ़ वर्ष के अनुभव ने, गुरुकाबाग-प्रकरण, नागपुर-सत्याग्रह और मौजूदा सिक्ख-संग्राम ने हमको इस बात का यकीन करा दिया है कि देश के राजनैतिक जीवन में अहिंसात्मक वायुमण्डल तैयार हो गया है। अतएव अब सविनय-भंग की तैयारी करने और उसका कार्यक्रम रचने में हानि नहीं। पर सविनय-भंग की सफलता रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति पर अवलंबित है। एक ओर काफी धन-जन और शस्त्र-सामग्री तैयार किये बिना ही हमला कर बैठना अनुचित है और दूसरी ओर हमले को मद्देनजर रक्खे बिना सेना की तैयारी असंभव है। अतएव मेरी राय में अगले साल के लिए अर्थात् कोकोनाडा महासभा के लिए हमारा कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसमें हम सीधा हमला भी कर सकें और रचनात्मक काम अर्थात् धन-जन और शस्त्र-सामग्री एकत्र और ठीक कर सकें। दूसरे शब्दों में महासभा समितियों को मजबूत बनावें, स्वयंसेविक तैयार करें, खादी की पैदाइश और प्रचार बढ़ावें, महासभा के सदस्य और तिलक स्वराज्य-कोष की वृद्धि करें और मौका आते ही धावा कर दें। ऐसे कार्यक्रम में न जरूरत से ज्यादह उत्तेजक तत्व होगा न शिथिलता लाने वाला तत्व होगा। हमारा अगले साल का कार्यक्रम गढ़ते समय मुझे इसी बात पर ध्यान रखने की ज्यादह जरूरत मालूम होती है कि उसमें रोगी की पेचीदा और नाजुक हालत पर खूब गौर किया जाय और उत्तेजना तथा शिथिलता दोनों को बढ़ाने वाले तत्व जरूरत से ज्यादह न रहें।

कोकोनाडा के इस कार्यक्रम पर विचार करने के लिए उन लोगों का जो महात्मा गांधी के तजवीज किये असहयोग-कार्यक्रम के कायल हैं, और चाहते हैं कि उसीको कायम रखना चाहिए, एक खानगी सम्मेलन, सत्याग्रहाश्रम-साबरमती, में इस मास के आखिरी हफ्ते में होने वाला है। हमें आशा रखनी चाहिए कि उसमें अगले साल के

लिए ऐसा ही कार्यक्रम तय होगा जो वर्तमान परिस्थिति के बिलकुल योग्य और अनुकूल हो और जो लोग वहां जावेंगे वे इसी निश्चय से जावेंगे कि कोकोनाडा में महासभा उस कार्यक्रम को चाहे स्वीकार करे या न करे, पर वे तो अगले पूरे साल तक उसीके लिए जीयेंगे और उसीके लिए मरेंगे।

हरिभाऊ उपाध्याय

भव्य असफलता

चार छः महीने पहले भारत के प्रायः प्रत्येक अखबार में जर्मनी के निःशस्त्र प्रतिकार की कुछ न कुछ चर्चा रहती थी और सब कहते थे कि जर्मनी हमारा अनुकरण कर रहा है, हमें जर्मनी से नसीहत लेना चाहिए। पर आज जब कि वह सत्याग्रह बन्द हो गया है, जर्मनी को मजबूर हो कर उसे बन्द करना पड़ा है, तब हम उसके संबंध में बहुत कम विचार करते हैं। वह सत्याग्रह किस प्रकार का था, जर्मनी को उसे क्यों छोड़ देना पड़ा, उससे हमें क्या शिक्षा मिलती है, इत्यादि बातों पर हमें विचार करना जरूरी है।

विजयी फ्रान्स और पराजित जर्मनी का झगड़ा पिछले चार साल से चल रहा है। जर्मनी खुद इस बात को कुबूल करता है कि हां, फ्रान्स की जो भूमि जर्मनी के द्वारा वीरान हुई है उसकी क्षतिपूर्ति हम करेंगे चाहिए। पर आज यह सवाल सारे योरप के दिमाग में घूम रहा है कि वह क्षतिपूर्ति जर्मनी की शक्ति को देख कर कराई जाय या उसकी शक्ति के बाहर भी। विजयोन्मत्त फ्रान्स और उसके सामने घुट कर न देख सकने वाले मित्र राष्ट्रों ने घातक नीति का अवलंबन कर के आज जर्मनी को अवर्णनीय दुर्दशा में फंसा रक्खा है। वार्सेल्स की सुलह के अनुसार यह तय हुआ था कि फ्रान्स को कुछ रकम बतौर क्षतिपूर्ति के—दण्ड के तौर पर नहीं बल्कि नष्ट हुई सम्पत्ति के मावजे के तौर पर—देनी चाहिए। मित्र राष्ट्र किसी न किसी बहाने इस रकम को बढ़ाते गये। इस रकम के अदा करने का एक ही साधन जर्मनी के पास था—अपने यहां बना माल मित्र राष्ट्रों को दे देना। इसके अलावा नष्ट हुए प्रान्तों को जर्मन मजदूरों के द्वारा अपने खर्चे से फिर मरम्मत करा देना जर्मनी ने कुबूल किया था। उन प्रान्तों के लोगों को भी यह बात पसन्द था; परन्तु फ्रान्स के कितने ही व्यापारी-दल का इसमें फायदा न था, इसलिए उन्होंने फ्रान्स को यह शर्त कुबूल न करने दी।

महायुद्ध के पहले जर्मनी ३॥ करोड़ टन कचा लोहा पैदा करता था, १ करोड़ टन बाहर से मंगाता था और यह तमाम ४॥ करोड़ टन लोहा रूर तथा अन्य प्रान्त में उत्पन्न कोयला और कोक के द्वारा माल तैयार करने में इस्तेमाल किया जाता था। फ्रान्स दो करोड़ टन लोहा पैदा करता था। परन्तु उसकी चीजें तैयार करने के लिए ईंधन-सामग्री उसके पास न थी। महायुद्ध के बाद जर्मनी के कुछ हिस्से फ्रान्स के कब्जे में गये। फ्रान्स के पास कोई ४ करोड़ मन लोहा हरसाल पैदा होने लगा। तब क्षतिपूर्ति के लिए कमीशन बठा। उसने सिफारिश की कि चलाने के लिए कोयला और कोक जर्मनी से अधिक लिया जाय। कमीशन ने ठहरा दिया कि इतना कोयला जर्मनी को अवश्य देना चाहिए। जर्मनी उससे कुछ कम कोयला दे पाया। बस इतने ही पर फ्रान्स ने उसपर चढ़ाई कर दी। रूर पर हुई इस चढ़ाई का ऊपरी कारण था—क्षतिपूर्ति का बहाना, तात्कालिक उद्देश था—फ्रान्स के फौलादवालों को रूर के कोयले का कब्जा करा देना और अन्तिम उद्देश था जर्मनी को चूस कर, थका कर, तंग कर, उसकी एकता को तोड़ डालना।

यह तो हुई चढ़ाई की परिस्थिति। अब जर्मनी ने फ्रान्स के साथ निःशस्त्र प्रतिकार शुरू किया। सशस्त्र लड़ाई लड़ने का बल वह कहां से लाता? जर्मनी ने निश्चय किया कि रूर की खानों में कोई भी मजदूर काम करने न जाय, फ्रान्स के मजदूर लाकर भले ही वे रूर से कोयला खोद कर ले जायं। पर हम तो अपनी खुशी से कुछ भी कोयला निकाल कर नहीं देंगे। राष्ट्रों की रक्षा का इतिहास भविष्य में जब लिखा जायगा तब इस निःशस्त्र प्रतिकार को तोड़ने के लिए किये फ्रान्स के प्रयत्नों और साधनों पर काले काजल जैसे प्रकरण लिखे जायंगे। इन साधनों की निष्ठुरता की ओर आंखें मूंद कर बैठे इंग्लैंड को चेतावनी देने वाला एक अंगरेज यह हृदय-विदारक चित्र खड़ा करता है—

"यदि हमारे लंकेशायर की यह हालत हो तो आप क्या करेंगे? सारे रूर प्रान्त को फ्रान्स ने घेर लिया, बिना इजाजत वहां जाने की किसीको भी आजादी नहीं। शहरों और देहात में जहां देखिए तहीं विदेशी फौज का दल भरा पड़ा है। तिसपर उनकी लूट-मार। तमाम काम-धन्धा बन्द। काम करने वाले मारे मारे फिरते हैं। रेल्वे स्टेशनों पर फौजों का पड़ाव। बाहर से अनाजआदि लाने की मुमानियत। अस्पतालों तक पर कब्जा—रोगी बाहर निकाल दिये गये। बच्चों को पीने के लिए दूध नहीं। फौज के सिपाही इज्जतदार लोगों के घरों में अत्याचार करते हैं। मदरसे बन्द-पढ़ाई का कोसों पता नहीं। लोग भूखों मरते हैं। रल्वे के आसपास निकल जाने वालों पर गोली चला देने का हुक्म। तरह तरह के घोषणा-पत्रों के द्वारा उन अभागों की हलचल पर भी रोक-थाम। इनमें बेइज्जती और तरह तरह के कलंको को और जोड़ दीजिए, तब आपको रूर की मौजूदा हालत का सच्चा चित्र दिखाई देगा।"

वे लोग, जो यह कहते हैं कि जर्मनी ने सत्याग्रह बन्द कर दिया, जर्मनी का सत्याग्रह सच्चा नहीं था, इसीसे उसे बन्द कर देना पड़ा, जरा इन बातों पर गौर करें। वे इस बात को भी सोचें कि इस प्राणान्त संकट की अवस्था में जर्मनी ने सात मास तक अपना प्रतिकार किस तरह जारी रक्खा होगा।

हमारे एक मित्र हाल ही जर्मनी से आये हैं। उनकी बातचीत से जर्मनी के प्रयास की उग्रता का पता अच्छी तरह चलता है। रूर के लोगों को ज्यों त्यों करके खाने-पीने की सामग्री तक पहुंचाने के लिए जर्मनी ने दूसरे तमाम प्रान्तों में हरएक व्यवसाय पर कर लगाया और उसकी रकम रूर पहुंचाई। हरएक परिवार ने अपने खाने-पीने की चीजों मेंसे बचत कर के चीजें रूर पहुंचाईं। जो लोग रूर से आते थे, दूसरे प्रान्तों के लोग उनका स्वागत करते थे। अपने काम के दिनों में से कुछ दिन की बचत उन्हें देते थे, महीने में कुछ दिन स्वयं काम पर न जा कर उन्हें काम देते थे। इस तरह अनेक प्रकार के त्यागों के द्वारा जर्मनी ने रूरवालों की सहायता की। क्योंकि जर्मनी हर उपाय से अपनी एकता को कायम रखना चाहता है। पर यह मदद कहां तक चल सकती? मिल-मजदूर हड़ताल कर के कुछ भी पैदा न करें तो बाहरी धन की सहायता पर कहां तक वे अपना काम चला सकते हैं? फिर मिल-मजदूर तो मिहनत कर के भी अपनी रोजी कमा सकते हैं; परन्तु रूर के मजदूरों को तो किसी तरह की मजदूरी की इजाजत नहीं थी। मजदूरी करते भी तो उसका फायदा फ्रान्स ले लेता। इस तरह ऐसा भयंकर घेरा फ्रान्स ने जर्मनी पर डाला जिससे इतिहास अब तक अनजान था। पर जर्मनी ने सात महीने तक उसे सहन किया। पर दुर्दैववश जर्मनी के दूसरे प्रान्तों में भी अनाज बिना लोग भूखों मरने लगे। दरिद्रता दिन पर दिन बढ़ने लगी। ऐसी हालत में लड़ाई कबतक चलती? खर्च चुक जाने से जर्मनी के लोगों को लड़ाई बन्द करनी पड़ी। बीच में जून मास के लगभग जर्मनी ने ३ अरब पौंड देना कुबूल करके किश्त दर किश्त रकम हर साल

देने की तैयारी दिखाई। पर फ्रान्स ने उसे भी स्वीकार नहीं किया। अन्त को लड़ाई अपने आप बन्द हो गई। आज जर्मनी में जगह जगह अव्यवस्था है। परन्तु इस अव्यवस्था के मूल में जर्मनी की एकाग्रता की भावना भरी हुई है।

इस प्रकार के युद्ध की तुलना स्वराज्य-दल की विरोध-नीति से करना भूल है। रूर के लोगों के लिए दूसरी गति ही नहीं थी। हां, यह बात सच है कि रूर के लोग महज कष्ट-सहन करने के लिए कष्ट-सहन नहीं करते थे। परन्तु एक राष्ट्र की हैसियत से कष्ट-सहन करने का यह पहला ही अवसर इतिहास में है। इस कष्ट-सहन की तैयारी के लिए एक बार एक जर्मन सचिव ने कहा था कि अहा, क्या ही अच्छा होता यदि आज जर्मनी में कोई गांधी होता! यदि यह तैयारी होती तो जिस प्रकार महात्माजी बारडोली के संबंध में कहते थे कि बारडोली से मैं हद दर्जे की कुरबानी-पृथ्वी तल से मिट जाने की कुरबानी—चाहता हूं—वैसी कुरबानी रूर कर सकता। जर्मनी की भूमि में रूर के शहीदों की हड्डियों का खाद बनता—परन्तु उस खाद में से ऐसे राष्ट्र का निर्माण होता जिसे संसार ने आज तक नहीं देखा। इस तरह मरकर मिट जाने की शक्ति अभी हममें नहीं आई है। इतना ही नहीं, बल्कि हमें तो जर्मनी के जैसी कुरबानियां करने की भी शक्ति नहीं, श्रद्धा नहीं। है सिर्फ हमारे पास एक अनमोल ध्येय और उस तक पहुंचने का एक अमोघ मन्त्र। मैं समझता हूं कि जर्मनी ने तो एक अधूरे युद्ध को लड़ कर भविष्यत् के पूरे युद्ध की तैयारी की है। रूर की इस असफलता में भावी सफलता की कुंजी है। हम तो ऐसी भव्य असफलता भी नहीं प्राप्त कर सके। अब भी यदि हम अपने ध्येय और मन्त्र का निरंतर ध्यान कर के चेत जायं तो समय बीता नहीं है।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

मूल-भेद

देशबन्धु दास ने हाल ही कलकत्ते से अपना एक अंगरेजी दैनिक पत्र "फारवर्ड" निकाला है। सम्पादक के स्थान पर स्वयं देशबन्धु का ही नाम है और कहना नहीं होगा कि देशबन्धु के और स्वराज्य-दल के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए उसका जन्म हुआ है। नागपुर-महासभा के बाद से आजतक देशबन्धु दास अपनेको अहिंसावादी और असहयोगी कहते चले आये हैं; पर हमारे पाठकों से यह बात छिपी नहीं है कि उनके असहयोग और महात्मा गांधी के असहयोग में जमीन-आस्मान का अन्तर है। अहिंसा के संबंध में देशबन्धु ने यह तो कई बार कहा है कि मैं धर्म-भाव से अहिंसा में विश्वास रखता हूं; पर उनको 'अहिंसा' का अर्थ क्या है, यह उन्होंने आजतक शायद ही लोगों को बताया हो। बहुत संभव है, अभीतक उसके बताने योग्य परिस्थिति न आई हो। 'फारवर्ड' के एक पिछले अंक में 'असहयोग' नाम का एक संपादकीय लेख निकला है, उसमें लेखक ने महात्मा जी के अर्थ के अनुसार असहयोग में विश्वास करने वाले लोगों की कुछ शिकायतें की थीं। सब से बड़ी शिकायत यह थी कि उन्होंने आदर्शों को भुला दिया है और साधनों को आदर्श का स्थान दे दिया है। इसके अलावा यह भी कहा गया था कि इन असहयोगियों ने देश की प्रगति की गति रोक दी और उसको गति देने के लिए स्वराज्य-दल का जन्म हुआ है। अपरिवर्तनवादी कहानेवाले लोगों को 'फारवर्ड' 'लकीर का फकीर' मानता है और स्वराज्य दलवालों को उसने—"लीक छांडि तीनों चलें शायर, सिंह, सपूत" में स्थान दिया है।

'फारवर्ड' की पहली शिकायत सिद्धान्त-मूलक है और उसमें महात्माजी के कार्यक्रम और देशबन्धु के कार्यक्रम के अन्तर का मूल है। दूसरे दो आरोपों के उत्तर का न यह समय है, न स्थान है। केवल भारतवर्ष ही नहीं सारा संसार दोनों मत वालों की रीति-नीति और गति-विधि को गौर से और आलोचना की दृष्टि से देख रहा है। उसके फैसले की राह हमें देखनी चाहिए। हां, पहली शिकायत की छान-बीन हमें अवश्य करनी चाहिए। क्योंकि 'फारवर्ड' के पहले ही अंक में अग्रलेख में संपादक महोदय 'अहिंसात्मक असहयोग'-नीति के संबंध में चुप रहे हैं और साधन के संबंध में लिखते हैं कि "कोई भी साधन जिससे देश की उन्नति होती हो अत्यन्त नीच नहीं हो सकता और कोई भी साधन जिससे देश की उन्नति रुकती हो अत्यन्त पवित्र नहीं हो सकता।"

महात्माजी के और देशबन्धु के कार्यक्रम में अगर कोई मौलिक भेद है तो यही कि महात्माजी शुद्ध साध्य की प्राप्ति केवल शुद्ध साधन के ही द्वारा संभवनीय मानते हैं और देशबन्धु और उनके अनुयायी किसी भी साधन को जिससे देश की प्रगति होती हो अत्यन्त नीच नहीं मानते। 'फारवर्ड' जो असहयोगियों की शिकायत करता है कि उन्होंने साधन को आदर्श का स्थान दे दिया है, उसका मर्म भी यही है। महात्माजी और उनके अनुयायी मानते हैं कि अंधकार से प्रकाश की उत्पत्ति नहीं हो सकती, विष से अमृत पाना व्यर्थ है, पाप के द्वारा पुण्य नहीं मिल सकता, बुराई से नेकी नहीं उत्पन्न हो सकती, देश की उन्नति यदि अच्छी चीज है, ऊंची चीज है, तो वह नीच उपाय से नहीं प्राप्त हो सकती। नीच उपाय का आश्रय लेने से मनुष्य नीचे गिरता है-ऊपर नहीं चढ़ सकता। यदि कोई यह मानता हो कि चोरी करने, डाका डालने, झूठ बोलने, जाल-साजी करने, धोखा देने, खून करने से देश की उन्नति हो सकती है, स्वराज्य मिल सकता है तो या तो वह मूर्ख है या उसका दिमाग ठिकाने पर नहीं है। यदि इन तथा दूसरे नीच और बुरे माने जाने वाले साधनों से भूलकर स्वराज्य मिला भी हो तो वह भलेमानसों का राज्य नहीं होगा, न वह भले मानसों के लिए होगा। वह होगा चोरों, डाकुओं और खूनियों का राज्य और उसमें उन्हींकी तूती बोलती।

जब कि शुद्ध साध्य की प्राप्ति शुद्ध ही साधन पर अवलंबित है और होनी चाहिए, तब साध्य और साधन के आदर्शत्व में क्या फर्क रह सकता है? इस विचार को माननेवाले के नजदीक स्वराज्य पाना जितना कीमती है उतना ही कीमती सच बोलना, धोखा न देना, हत्या न करना आदि है। बल्कि एक हद तक साध्य की अपेक्षा साधन की शुद्धता पर ही उसकी अधिक दृष्टि रहेगी; क्योंकि यदि साधन ठीक है तो साध्य अपने आप ठीक रहेगा। गलत रास्ते से सही मुकाम पर पहुंचने की, नीच उपाय से देश की प्रगति की संभावना करना अपना घोर अज्ञान प्रकट करना है।

धारासभाओं में जा कर सरकार के सहयोग से रचनात्मक काम पूरा करने, देश की सहायता या उन्नति करने की अभिलाषा रखनेवालों से जिस प्रकार महात्माजी या उनके अनुयायी असहयोगी सहमत नहीं हो सकते उसी प्रकार धारासभाओं को तोड़ने के लिए उनमें घुसनेवालों या उस बहाने जाकर फिर किसी न किसी रूप को सहयोग करनेवालों से भी वे सहमत नहीं हो सकते। क्योंकि इस रास्ते में स्वावलम्बन नहीं, स्वाभिमान नहीं, इज्जत नहीं, बड़प्पन नहीं। है क्या? कदम कदम पर तिरस्कार, फटकार, दुतकार और कभी कभी कुछ टुकड़े—सो भी बड़ी मशक्कत और लगाव के साथ प्रदान किये गये। स्वावलंबियों का यह मार्ग नहीं।

देशबन्धु धारासभाओं के अन्दर भी असहयोग कर सकते हैं; पर असहयोग के जनक महात्माजी उसे असहयोग नहीं बल्कि 'विरोध' कहते हैं और उन्होंने तीन साल पहले अपने अनुभव को कह और लिख रक्खा है कि 'विरोध' से तो संस्था उलटे फूलती-फलती है और ब्रिटिश शासन-संस्थाओं के इतिहास की गवाही उन्होंने दी है। विरोध से प्रतिपक्षियों को गति और उत्तेजना मिलती है। उनकी अक्ल ठिकाने लाने का उपाय तो है असहयोग-विरोध या अड़ंगा नहीं। इसपर शायद कोई यह कहे कि असहयोग के अर्थ करने का अधिकार क्या अकेले महात्माजी को ही है? हम अपनी धारणा के अनुसार असहयोग का अर्थ क्यों न करें? जो पिछले जमाने में तो किसी नवीन मत या संस्था के प्रवर्तक के अस्त होने के बरसों बाद उसके मतों के अर्थ की खींचातान होती थी और हो सकती थी; पर अब तो मत-प्रवर्तक के जीवन-काल में ही हम उसके मत का खुद उसीका किया अर्थ मानने के लिए तैयार नहीं हैं! ऐसी आजाद तबीयत की तारीफ भले ही की जा सके; पर क्या इस अर्थ-पद्धति के मूल में सत्यता, शिष्टता और प्रामाणिकता है?

महात्माजी और देशबन्धु के जीवन-सिद्धान्त का यह मूल-भेद ही उनके भिन्न भिन्न कार्यक्रम का मूल कारण है। और जबतक यह तत्व-भेद महासभा के अन्दर रहेगा—एक दल मनचाहे साधनों से काम लेने वाला और दूसरा केवल सही और शुद्ध साधनों से काम लेने वाला—तबतक दोनों का एक कार्यक्रम होना, और यदि हुआ भी तो किसी न किसी अवस्था में उनका जुदा न हो जाना, मुझे तो असंभव मालूम होता है। मेरी समझ में महासभा किसी एक के ही कार्यक्रम को स्वीकार कर सकती है। दोनों के कार्यक्रम की खिचड़ी पकाने या दोनों को स्वीकार करने का फल महासभा और देश के लिए अच्छा नहीं हो सकता।

हरिभाऊ उपाध्याय

खादी-समाचार

कोकोनाडा की खादी-प्रदर्शिनी

महासभा के साथ खादी की प्रदर्शिनी भी होगी, यह बात अखबारों में प्रकट हो चुकी है। यह भी कहा गया है कि उसमें चीजों तथा प्रयोगों के सिवा शर्त (होड़) का विभाग भी रक्खा जायगा। शुद्ध खादी की यह तीसरी प्रदर्शिनी होगी। इससे खादी की प्रगति का खयाल हो सकेगा; और कारीगर लोग तथा खरीदार एक दूसरे को जान सकेंगे। यह भी फायदा होगा। पिछली दो प्रदर्शिनियों (अहमदाबाद और गया) में मिले तजुर्बे का फायदा उठा कर वहां रही कमी को भावी प्रदर्शिनी में पूरा करने का विचार यदि कर लिया जाय तो बहुत अच्छा होगा।

कच्चा माल

हरेक प्रान्त अपने अपने प्रान्त में उगने वाली रुई के नमूने जब बोवें, कपास, व रुई और हो सके तो सूत के नमूनों के साथ भेजें तो उनसे बड़ा फायदा होगा। बोने की मौसम, पकने की मुद्दत, की एकड़ उसका परिमाण, कपास से रुई के उतार का परिमाण, जमीन की किस्म, ये सब बातें विस्तार से बताली जायं तो बड़ी काम आवें।

साहित्य

कातने में किसी तरह की खासियत रखनेवाले चर्खे, धुनकने में सरलता रखनेवाले या अच्छा [illegible] धुनकनेवाले पिंजे, और कपास ओटने के औजारों में जो ख्वास काम देती हों वैसी चर्खियां भी प्रदर्शिनी में रखनी चाहिए। लेकिन इनके रखनेवालों को अपनी अपनी चीजों के जैसी दूसरी चीजों की भी खबर होनी चाहिए। नहीं तो यह खिलौनों कीसी प्रदर्शनी हो जायगी और देश को बहुतसा फिजूल खर्च सहना पड़ेगा।

चीज भेजनेवाले कारीगर और साथ ही प्रदर्शिनी करनेवाली समिति भी व्यर्थ के खर्च से बचे रहें, इसके लिए एक उपाय यह है कि हर प्रदर्शिनी में जो जो ऐसी अच्छी अच्छी चीजें आई हों उनके चित्र लेकर प्रदर्शिनी का विवरण छापा जाय और उसमें वे चित्र दिये जायं ताकि चीजें भेजनेवालों व खोज करनेवालों को आगे बढ़ने की सूचना मिल सके और आयंदा प्रदर्शिनी में न लाने योग्य चीजों की जानकारी हो जाय। गया की प्रदर्शिनी में इसका अमल न हो सका। लेकिन उसमें मिले तजुर्बे का फायदा आयंदा की प्रदर्शिनियों में उठाया जाय तो अच्छा होगा।

बुनने के विभाग में तरह तरह की नकाशियोंवाली खादियां रखी जाती हैं। यह तो ठीक है लेकिन आम लोगों को तो सामान और उनके मिलने के ठिकाने या बनाने की तरकीबें ज्यादा फायदेमंद होंगी। मसलन् कंघी कैसे बंधती है, उसमें किस, किस चीज की सलाइयां इस्तेमाल की जा सकती हैं, बड़े कैसे बंधते हैं, कहीं विलायती ढंग से बड़े बांधे जाते हों तो वे कैसे बंधे, उनपर लगनेवाला रोगन बन सकता हो तो उसमें क्या क्या चीजें पड़ेंगी, वे किस तरह मिलाई जायंगी, देशी व परदेशी ढंग के बड़ों के फायदे, गैरफायदे, तानों को मांडी पिलाने के वक्त जो कुंच फिराये जाते हैं वे किस चीज के—घास या जड़ों के, बनते हैं, कैसे बांधे जाते हैं, वह चीज कैसी जमीन में पैदा होती है, उसके बीज या पौधे कहां मिलते हैं, वगैरह। खादी की कारीगरी के मुताल्लिक अनेक चीजें प्रान्त प्रान्त से आनी चाहिए। खादी के कार्यकर्त्ता लोग इस दिशा में पूरा ध्यान देकर काम करें और प्रदर्शनी को एक विद्यालय बना दें तो राजनैतिक स्थिति का विचार करने के लिए महासभा के बड़े बड़े नेता लोग जिस महत्व के साथ वहां आते हैं उतना ही महत्व पूर्ण उनका भी वहां आना और प्रदर्शनी का अभ्यास करने में तन्मय होना होगा।

रंग की वनस्पतियां

माननीय श्री० आचार्य राय के कथनानुसार देशी रंगाई की विद्या एक पुरातन पैतृक सम्पत्ति की गहन कला है। और वह करीब करीब नष्ट हो गई है। रंग की वनस्पतियां जो कुछ वर्षों पहले कसरत से होतीं थीं और सस्ती मिलतीं थीं उनका पता आजकल बड़ी मुश्किल से चलता है। मजीठ, कुसुम, आल वगैरः जिन चीजों से अच्छे अच्छे रंग बनते हैं वे अच्छी से अच्छी कहां पैदा होती हैं, कहां किस भाव से मिल सकती हैं, उनकी खेती किस तरह की जा सकती है; कैसी जमीन में होती, इन बातों का पता इस प्रदर्शिनी में मिलना चाहिए। अगर ऐसा हो तो प्रदर्शिनी के लिए किया भारी श्रम और खर्च फलदायी होंगे।

व्यवस्था

प्रदर्शनी का उद्देश सफल होने के लिए हर प्रान्त से उपयोगी चीजों और वृत्तान्तों का आना तो जरूरी है ही; पर साथ ही यह भी जरूरी है कि प्रदर्शिनी करनेवाली समिति इन चीजों की नुमाइश करने के सुभीते की व खुद प्रदर्शकों के रहने व खाने-पीने के सुभीते की भी उम्दा व्यवस्था करे। प्रदर्शकों, प्रयोग करनेवालों व शर्त में शामिल होनेवालों के लिए जो इन्तिजाम किया जाय वह वैसा ही हो जैसा कि महासभा के प्रतिनिधियों के लिए किया जाता है।

कमाल के बजाय खादी

खादी के रिवाज के संबंध में रायें मंगाने के लिए इस महकमे की तरफ से पत्रिकायें भेजी गईं थीं। उनके जवाब में आये एक दो पत्र पहले किसी पत्रिका में छापे जा चुके हैं। अब आगे का

मौसम आ रहा है। एक जवाब हमारे पास ऐसा आया है जो जाड़े के मौसम के मुआफिक है। वह नीचे दिया जाता है—

"आपने कपड़े के खर्च के अंक तलब किये हैं। खेद है; मैं नहीं भेज सकता। क्योंकि मैं हिसाब नहीं रखता। हां, यह अलबत्ते मैं आपको लिख सकता हूं कि खादी पहनने से मुझे क्या फायदा हुआ है। उसमें आपके प्रश्नों का भी जवाब आ जायगा।

एक बार मुझे एक ऐसे शख्स के यहां जाना पड़ा जिसका ताल्लुक सरकार से रहा करता था। जिस प्रकार खादी पहननेवाले लोग विलायती कपड़ा पहननेवाले लोगों से पूछते हैं कि भाई आप खादी क्यों नहीं पहनते? इसी प्रकार इन सज्जन ने मुझ खादी पहननेवाले से पूछा आप खादी क्यों पहनते हैं? उनके और मेरे बीच में नीचे लिखी बातचीत प्रेम और सद्भाव के साथ हुई—

सवाल—मिस्टर आप तो बिल्कुल खादी में रंग गये हैं। क्या इस कपड़े के द्वारा आप स्वराज्य लेना चाहते हैं?

जवाब—मैं कोई राजकाजी आदमी नहीं। इससे शायद आप को यह अच्छी तरह न समझा सकूं कि राजनैतिक बातों में खादी का क्या असर होता है। पर मैं व्यापारी और बाल-बच्चोंवाला शख्स हूं। इससे आपको यह जरूर बता सकता हूं कि आर्थिक दृष्टि से खादी के द्वारा क्या फायदा होता है।

सवाल—अच्छा तो आप किस ख्याल से खादी के ऐसे भक्त बन गये?

जवाब—जरा विस्तार के साथ अपना विचार मैं आपसे कहता हूं। पिछले साल जाड़े के मौसम पर बच्चों के लिए मैं भारी कीमत के ऊनी कपड़े लाया था। वे चाहते भी वैसे ही कपड़े थे। सौभाग्यवश इस जाड़े में बच्चों तथा घर के बड़े आदमियों ने खादी लाने की फरमायश की। बस मेरे परिवार में खादी फैलते देर न लगी। मुझे उन्हें ज्यादह समझाने की भी जरूरत नहीं पड़ी। यकीन मानिए, जब से मैंने और हमारे परिवारवालों ने खादी पहनना शुरू किया तब से हमारी कितनी गैर-जरूरी आवश्यकतायें कम हो गईं। और उससे जो बचत हुई उससे मैंने विलायती कपड़ों के बजाय अपने घरवालों को गहने बनवा दिये। अब आप को मानना होगा कि खादी पहनने में मैंने कोई भूल नहीं की।

मेरे जवाबों को सुन कर वे बड़े खुश हुए और मेरे विचारों की तारीफ करने लगे।

मैं समझता हूं कि आपके सवालों के जवाब का रहस्य इस वृत्तान्त में आ जाता है।"

जाड़े की मौसिम शुरू हो चुकी है। जिन्हें यह तजरिबा न हो कि बानात या फलालैन के बजाय खादी कैसी होती है उन्हें हम सिफारिश करते हैं कि वे कच्छ-काठियावाड़ की खादी इस्तेमाल करें। बड़े अथवा छोटे अर्ज की महीन और सस्ती खादी हिन्दुस्तान में कितनी ही जगह तैयार होने और बिकने लगी है। परन्तु कच्छ-काठियावाड़ की गज अथवा सवागज अर्ज की मोटी और मजबूत खादी, जो बानात और फलालैन का काम देती है, दूसरी जगह शायद ही बनती हो। काठियावाड़ खादी-कार्यालय, अमरैली, से ऐसी खादी मिल सकती है। उसका नमूना भी हमें मिला है। २७-२८ इंच अर्ज की धुली हुई खादी अमरेली में ९ आना गज मिलती है। वहां चौतारे तौलिये भी बहुतेरे मिलते हैं। उनका भी नमूना आया है। अर्ज २७ इंच, लंबाई १॥ गज, कीमत अमरेली में ॥।)। छोटे तौलिये अर्थात् रूमाल भी वहां मिलते हैं। हर एक रूमाल की कीमत ।)॥ है। अरविन्द-तत्व-प्रचारक-संघ बीदड़ा, कच्छ के संचालक श्री वेलजी ठाकरसी ने भी हमें सूचित किया है। कि ऐसी खादी उनके द्वारा भी मिल सकती है। उन्होंने खादी के नमूने भी भेजे हैं। अर्ज २७ इंच से कुछ ज्यादह है। बिना धुली खादी का भाव ८ आना गज बंदर-बैठे है।

जो व्यापारी अथवा दूसरे लोग ऐसी खादी खरीदना चाहें वे सीधे उन्हीं से खतकिताबत करें। बेहतर हो कि नमूना और भाव भी वे मंगा कर अपनी दिलजमई कर लें। काठियावाड़-खादी-कार्यालय अमरेली से आपकी राय के किसी भी देसी रंग से रंगी खादी भी, जिसके कपड़े आदि बन सकते हैं, मिल सकती है। डेढ़-खादी के अन्दर तहतों के साथ की मजबूत और रंगीन जाजमें भी वहां तैयार होती हैं।

मगनलाल खुशालचंद गांधी

सिक्ख-संग्राम

सिक्खों को ज्यों ज्यों सरकार मजबूत और अविचल पाती है त्यों त्यों वह उन्हें सताने की नई नई तरकीबें काम में लाती है। इसी अंक में अन्यत्र कर के सत्याग्रह को तोड़ने के लिए फ्रान्स ने कैसे कैसे भीषण निर्दय उपायों से काम लिया उसका वर्णन दिया गया है। यह अंगरेजी सरकार यहां भी ऐसी ही क्रूरता दिखावे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यदि अबतक उसकी निष्ठुरता का परिचय उसने नहीं दिया है तो उसका कारण यह नहीं है कि यह फ्रान्स सरकार से कम हृदयहीन है। बल्कि यह है कि अभी सिक्खों के साथ देश की दूसरी जातियों ने और प्रान्तों ने अपनी वह हमदर्दी नहीं दिखाई है, जो कि जर्मनी के इतर प्रान्तों ने रूर के साथ दिखाई थी। तथापि अभी से ऐसे समाचार जरूर आने लगे हैं जिनसे रूर की थोड़ी-बहुत झलक आ जाती है—

मुक्तसर में तहसीलदार, सब इन्स्पेक्टर और जिलादार इस बात की कोशिश कर रहे हैं कि अकालियों को कहीं से खाना-दाना न मिलने पावे। फिर भी लोग अकालियों की सेवा हर तरह से कर रहे हैं।

ऐसे लेखी हुक्म मुक्तसर तहसील से जारी किये गये हैं जिनमें पटवारियों को हिदायतें दी गई है कि वे सिक्खों की गति-विधि पर बारीक नजर रक्खें और हर तरह की अभीष्ट खबरें सरकार को दें ताकि वह राजनैतिक आन्दोलन करने वाले और उन्हें मदद देने वाले लोगों को उसका मजा चखा सके। अखीर में यह धमकी भी दी गई है कि जो इस बात में लापरवाही दिखावेगा उसकी अच्छी तरह खबर ली जायगी।

मुक्तसर में पुलिस इस बात की कोशिश कर रही है कि किसी तरह अकाली दंगा-फसाद और मारपीट कर बैठें। वे वहीं पहले गुरुद्वारों में जबरदस्ती घुस जाते हैं और तरह तरह की ज्यादती करते हैं।

सरदार कहानसिंग को इसीलिए ४ साल कैद की सजा दी गई है कि उन्होंने सरदार बरकतसिंग को सताने और हैरान करने से इन्कार किया था।

अमृतसर में भी ऐसी नीचतायें सरकार कर रही है। जैतो जानेवाले अकालियों को जो लोग खाना-पानी खिलाते-पिलाते हैं उन्हें भी सरकार तंग करती है। फिरोजपुर के नजदीक कितने ही सिक्ख इस बात पर गिरफ्तार किये गये हैं कि उन्होंने भूखे अकालियों को खाना पहुंचाया था।

फीरोजपुर के हाकिमों ने आसामियों की तसदीक कराने का एक नया तरीका निकाला है। स्टेशन पर ही अकाली गिरफ्तार कर लिये जाते हैं और उनके फोटो उतार लिये जाते हैं। फिर उनके सहारे आसामी को पहचानने के लिए गवाह तैयार किये जाते हैं।

* * *

गिरफ्तारी की खबरें बराबर आती रहती हैं। १३ ता. को अमृतसर में अकाली-नेताओं का मुकदमा पेश हुआ था। ७ आदमियों के पर से मुकदमा उठा लिया गया। पेशियां हो रही हैं।

चिढें या खेतें !

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रतिका	,, =)।
विदेशों के लिए	,, ५)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष १] [अंक १५

सम्पादक—हरिभाऊ सिद्धनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, मार्गशीर्ष बदी २, संवत् १९८०
रविवार, २५ नवम्बर, १९२३ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

मैं गांधी को जिंदा गाड देना चाहता हूं

[श्री. ड्रयू पीअर्सन नाम के एक अमेरिकन प्रोफेसर पिछले सितंबर में सत्याग्रहाश्रम में आये थे। वहां से वे महात्माजी के मकान की दूकान से पूछ गये थे। इस प्रसंग पर बंबई के गवर्नर से उनकी जो बातचीत हुई वह उन्होंने दक्षिण आस्ट्रेलिया के ·एडवरटा[illegible] नामक पत्र में छपाई थी। उसका केवल उतना ही अंश यहां दिया जाता है जिसका संबंध गवर्नर की बातचीत से [illegible] स० ह०]

गांधी-दिवस को—ठीक महात्माजी के कारावास के डेढ़ साल [illegible] हिन्दुस्तान में सब से ज्यादह उनके कारावास का जिम्मेवार है। मैं उसका नाम नहीं खोल सकता। वह हिन्दुस्तान में एक बहुत बड़ा अधिकारी है। उन्होंने महात्माजी के साथ हुई अपनी बातचीत का तथा उन घटनाओं का जिनके कारण उनकी गिरफ्तारी हुई, ऐसा रोचक वर्णन किया जिससे मेरी आंखों के सामने एक चित्र-सा खड़ा हो गया मानों महात्माजी का दुबला-पतला शरीर उनके सामने बैठा हुआ है। उन्होंने जो कहानी सुनाई उसे शायद ही दूसरे लोग जानते हों।

जब कि असहयोग-आन्दोलन खूब जोर-शोर से चल रहा था तब इस बड़े अधिकारी ने गांधीजी को अपने दफ्तर में बुलाया। उन दिनों गांधीजी अंगरेजी कपड़ों की बड़ी बड़ी होलियां जला रहे थे, स्कूलों और अदालतों का बहिष्कार बड़ी सफलता के साथ करा रहे थे और शाहजादे के स्वागत का बहिष्कार इस जोर के साथ करा रहे थे कि जिन जिन रास्तों से उनका जुलूस जाता था सड़कें प्रायः खाली नजर आती थीं।

बड़े अधिकारी ने कहा—उस समय गांधीजी यहां नंगे पैर आये और इसी जगह बैठे जहां आप बैठे हैं। मैंने उन्हें चेताया—"आपको पता नहीं, आप क्या कर रहे हैं? अगर आप अपने इस राक्षसी कार्यक्रम पर ही अड़े रहे तो मैं आपको उस हरएक मर्द, औरत और बच्चे की जान-जाया होने का जिम्मेवार करार दूंगा जो उसमें मारे जायंगे।"

उन्होंने कहा—"जी, एक भी जाना जाया नहीं होगी।"

मैंने जवाब दिया—"हां, जरूर होगी। जो आप अहिंसा का उपदेश दे रहे हैं वे सब खयाली बातें हैं, उनको दुनिया में यह काम नहीं देगा। आपके चलाये इस आन्दोलन में अहिंसा जैसी कोई चीज नहीं है। आप मनुष्य के आवेगों को कब्जे में नहीं रख सकते। [illegible] हथियार से आपको [illegible] डालूंगा।"

इसके बाद उन्होंने मेरी ओर उंगली उठा कर कहा—मानों मैं ही गांधी हो कर उनके सामने बैठा था—

"यह सब हो चुकने के बाद—चौरीचौरा के बाद—बंबई के दंगे और खराबी के बाद—गांधीजी फिर यहां आये और मैंने उनसे कहा—

"मैंने आपसे पहलेही कहा था कि क्या होगा। [illegible] जिम्मेवार आप हैं।" उन्होंने अपने दोनों हाथों से अपना मस्तक पकड़ लिया और कहा—"जी हां, मुझे मालूम है।"

"आपको मालूम है! अच्छा, आपके इस मालूमी की बात है अब इन मर्दों और औरतों की जानें फिर से आ जायंगी? ये लोग, जो कि खोपड़ी आपके उन्मत्त अनुयायियों के पैरों तले टूट गई..."

उन्होंने शोक-पूर्ण स्वर में कहा—"आप मुझे [illegible] डाल सकते हैं।"

"हां, मैं आपको जेलखाने भेजूंगा, लेकिन उसके पहले सब तैयारी कर लूंगा। क्या आप यह खयाल करते हैं कि मैं आपके सिर पर कांटों का ताज पहनाना चाहता हूं?"

उन्होंने कहा—"मैं एक हफ्ते तक उपवास करूंगा।"

भयंकर प्रयोग

यहां वे बड़े अधिकारी कुछ ठहरे और कुरसी पर पड़ गये। फिर जरा कम उत्तेजित स्वर में बोले—

गांधी है तो एक दुबला-पतला अंगुल भर आदमी लेकिन वह ३२ करोड़ आदमियों पर हुकूमत करता था। वे उसके पीछे चलते थे—हुक्म पर चलते थे। उसने अमली बातों की कुछ परवा न की; बस, भारत के आदर्शों और नैतिक सिद्धान्तों का उपदेश देता रहा। आप आदर्शों के द्वारा किसी देश का शासन नहीं कर सकते। फिर भी लोगों पर उसका कब्जा था। लोग

इसे अपना खुदा मानते थे। हिन्दुस्तान को हमेशा कोई न कोई खुदा मिल जाता है। पहले तिलक उसका परमेश्वर हुआ, फिर गांधी, अब कोई और हो जायगा। उसन हमें एकदम चौंकाया। इसके कार्यक्रम ने हमारे जेलों को भर दिया। आप जानते ही हैं, जिन्दगी भर आप लोगों को गिरफ्तार करने में ही नहीं लगे रह सकते—उस जगह तो हरगिज नहीं जहां कोई ३२ करोड़ आदमी रहते हों। और अगर उन्होंने आगे की सीढ़ी पर कदम रक्खा होता और कर न देने से इन्कार कर दिया होता तो ईश्वर ही जाने, हमारी क्या गत हुई होती! दुनिया की तवारीख में गांधी का प्रयोग अत्यन्त भयंकर था और उसके सफल होने में एक इंच की कसर रह गई थी। पर वह लोगों के आवेग को नहीं रोक सका। वे मार-काट कर बैठे और उसने अपना हाथ खींच लिया। बाकी हाल आपको मालूम ही है। हमने उन्हें जेलखाने में डाल दिया। अभी, तीन ही दिन पहले, मैं जेल में उनसे मिला था। वे कुछ खिन्न मालूम हुए मैं समझता हूं वे जेल से छूटना पसन्द करते होंगे। उन्होंने शिकायत की कि आप कोई अखबार मुझे पढ़ने के लिए नहीं देते। मुझे इतनी तक खबर नहीं है कि इंग्लैंड का प्रधान मन्त्री इस समय कौन है? मैंने कहा—"राजनैतिक विषयों से जानकारी रखने का सब से अच्छा उपाय है जेल से छूट जाना। आप यह जान कर खुश होंगे कि मैं कुछ ही महीनों में यहां से विदा हो रहा हूं। हम और आप एक दूसरे के अच्छे मित्र न बने रह सके; पर कम से कम हम एक दूसरे से अपने दिल को नहीं छुपाते रहे हैं।"

यहां पर मैंने बाधा डाल कर उनसे एक सवाल पूछा—जिसके लिए मैं उनसे मिलने गया था। वह था महात्माजी से मिलने के संबंध में।

उन्होंने फट से उत्तर दिया—बिल्कुल नामुमकिन है! गांधी को जेल भेजने का एक ही तरीका है उसे जिन्दा गाड़ देना। यदि हम लोगों को उससे मिलने-जुलने देंगे और शुल-गपाड़ा मचाने देंगे पहनना छ...[illegible] शहीद हो जायगा। और जलसाना दुनिया के लिए कम हो गई ...जायगा। हमने गांधी को इसलिए जेल में नहीं डाला कपड़ों के बज... सिरपर कांटों का ताज रख दिया जाय।

को मानना है; मेरे जवा... उनसे यह पूछा कि छः साल पूरा होने के पहले क तारीफ क... छूटने की कोई सम्भावना है, उन्होंने दृढ़ता के साथ मैं समझ... वृत्तान्त में अ...क मैं यहां हूं तबतक हरगिज नहीं। हां मेरा कार्य-जाने की ...में खतम हो जाता है। मेरे इंग्लैंड वापस चले जाने ...हैं तो कर सकते हैं।"

कि बाबत था ... सिफारिश करते पत्र करें। बड़े ...

गो-हितैषी—देहली का यह पाक्षिक पत्र अब ...में कितनी ही ...कर निकलने लगा है। इसका उद्देश इसके नाम से कच्छ-काठियावा... निस्सन्देह 'गोरक्षा' केवल हिन्दुओं का ही नहीं, मजबूत बाकी... ...का एक आवश्यक कर्तव्य है। मुसलमानों की जगह शायद ...गरेजों से और उनसे भी अधिक स्वयं हिन्दुओं से है ऐसी ...ओं को बचाने की अधिक आवश्यकता है। जबतक स्वयं २७-२८ ...नाम से 'गोरक्षा' का दंभ भरते हुए गायों को दुर्बल रखने, कसाइयों के हाथ बेचने, दूध तो ठीक उनके थन से खून तक दुह लेने और बैलों के साथ अनेक अत्याचार करने से बाज नहीं आते तबतक 'गोरक्षा' होना यदि असाध्य नहीं तो कष्ट-साध्य अवश्य है। आशा है, 'गो-हितैषी' के संपादक इन बातों पर गौर करेंगे। मैं इस पत्र की उन्नति चाहता हूं।

हिन्दू—मोहामपुर (भरतपुर) का श्रीयुत 'निर्मल' द्वारा संपादित हिन्दू-महासभा का मासिक मुख-पत्र है। अभी इसमें उन्नति के लिए बहुत जगह है। हम चाहते हैं कि 'हिन्दू' प्रगतिक और विकसित हो।

अमृतसर का वायुमण्डल

अमृतसर में नेताओं ने सविनय-संग्राम के संबंध में जो निर्णय किया है उसका समाचार पिछले अंक में दिया ही जा चुका है। परन्तु उन निर्णयों के सिलसिले में भाई देवदास गांधी ने "नवजीवन" में वहां के वायुमण्डल का दिग्दर्शन कराया है। उसकी कुछ विशेष रोचक बातें यहां दी जाती हैं—

"अमृतसर का वायुमण्डल बहुत अनुकूल था। पर उसे उत्पन्न करने का श्रेय हिन्दू-मुसलमानों को नहीं—वहां तो शान्त प्रकृति के मुसलमान अभी "काफिर" और उसी ढंग के हिन्दू, शूद्र से भी अधम, पंचम वर्ण के 'कांग्रेसिया' हिन्दू, कहे जाते हैं—बल्कि सिक्खों को प्राप्त है। भिन्न भिन्न प्रान्तों के नेताओं की श्रीमती और अपने अपने प्रान्तों में उनकी आवश्यकता पर दृष्टि रखते हुए अमृतसर में उपस्थित प्रतिनिधियों की संख्या सन्तोषजनक मानी जा सकती है। कोई पचीस प्रतिनिधि उपस्थित थे।

* * *

नेताओं के सम्मेलन के निर्णय पर वहां की परिस्थिति का बाकी असर हुआ है। सिक्खों ने महासभा की राह नहीं देखी थी। महासभा की मदद की आशा पर उन्होंने किसी काम को नहीं रोक रक्खा था। आज अमृतसर में सिक्खों ने "मोरचा" डाल दिया है। नेताओं के आने से उनके कार्यक्रम में जरा भी गड़बड़ नहीं हुआ। नेताओं ने यह हालत खुद अपनी आंखों देखी। वहां के प्रभावशाली दृश्य और उनकी छाप खाली नहीं गई।

* * *

लालाजी ने तमाम देश-नेताओं को एक ही मकान में ठहराया था। स्थान तो विशाल था। पर अब 'असहयोग-युग' में अमीरी और एकान्त-पसन्द लोग भी अपनी पुरानी आदतों को भूलने लगे हैं। इससे तथा चर्चा में आसानी होने के खयाल से दो-तीन आदमी एकही कमरे में सोना-बैठना पसन्द करते थे। एक जमाना था—और वह बहुत दूर नहीं गया है—जब पं. मोतीलालजी के लिए सब लोगों के सामने मोजे पहनना और उतारना कल्पना के बाहर की बात थी। एक बार अगर भूल से कोई उनके कमरे में, बिना बाहर से हलका सा इशारा किये, चला जाता तो वह दूसरी बार ऐसी असभ्यता नहीं कर पाता था। मौलाना शौकतअली ने भी कुछ समय तक ऐसा जमाना देखा था। पर अब वे कहते हैं कि "अब मुझे अपना हरएक काम सभा-मण्डप में करने की आदत हो गई है!" अमृतसर में पं. मोतीलालजी जैसे भी प्रयाग के महल की व्यवस्थित चाय शायद ही निश्चिन्त पी सके हों। अमृतसर में मामूली आदमी भी पं. मोतीलालजी की तैयार की हुई चाय का प्याला पीने का सौभाग्य प्राप्त करता था। अब उन्हें अपने बिछौने पर बैठे दो चार आदमियों के साथ चर्चा करना बुरा नहीं मालूम होता। कभी कभी तो रात को दरवाजा बन्द होने के बाद भी चर्चा चलती रहती होगी। उन्हें अपने दैनिक कार्यक्रम को ठीक समय पर पूरा करने की आदत होते हुए भी वे इतनी आजादी सब को देते थे।

मौ० शौकतअली के कमरे में ये तमाम दृश्य अधिक परिमाण में दिखाई देते थे। उनके कमरे का दरवाजा बन्द ही नहीं रहता था। उनकी आवाज दूर दूर के लोगों को अपने कमरे से वहां खींच लाती। वे खटिया पर बैठे रहते और दूसरे के लिए जगह न रहने पर भी 'आओ बैठो' कहना नहीं भूलते। उनके पास हमेशा दरबार लगा रहता। प्रसंग और विषय के अनुरूप वे कभी कड़े शब्दों में फटकार बता देते, कभी हंसी-दिल्लगी करते और कभी गंभीरता के साथ चर्चा करते। पं. मोतीलालजी तक इनसे नहीं बच पाते थे। पर यह हौंसला और हिम्मत उन्हींको हो सकती

हिन्दी-नवजीवन

जेल-दिन ६२६, रविवार, मार्गशीर्ष वदी २, सं. १९८०

चिढ़ें या चेतें ?

कहावत है कि "पाप घर की छत पर चढ़ कर बोलता है।" अपने पापों के छिपाने की कोई कितनी ही कोशिशें करें पर वह हमेशा नहीं छिप सकता। सरकार की कार्य-कारिणी सभा के सदस्यों के खयाल महात्माजी के संबंध में क्या हैं, यह बात हम उस समय जान पाते हैं जब हमारे परोपकारी नरम-दल के भाई महात्माजी को छुड़ाने का प्रस्ताव उपस्थित करते हैं; पर छोटे लाट या बड़े लाट के दिल का हाल सदा नहीं मालूम हो सकता। फिर चार लोगों के सामने तो मनुष्य सावधानी के साथ बातचीत करता है; पर खानगी में वह उतनी सावधानी नहीं रखता। ऐसी हालत में बंबई के लाट को एक दिन एक अमेरिकन प्रोफेसर ने गांठा और उस को यह बता दिया कि देश की दव-मूर्ति के संबंध में उसके क्या खयाल हैं और वह क्या कहता है।

श्री पीअर्सन और बंबई के लाट की बातचीत के संबंध में कुछ लिखने के पहले वास्तविक घटना के संबंध में कुछ लिखने की जरूरत है। वृत्तान्त को पढ़ने से यह मालूम होता है कि या तो श्री पीअर्सन के सुनने या समझने में कुछ भूल हुई हो या अपनी बहादुरी के वर्णन में लाट साहब इतने गर्क हो गये कि वे यह भी भूल गये कि महात्माजी उनसे कब और कितनी बार मिले। उन्होंने इस बात को याद करने की परवा ही न की हो। दोनों बातें संभवनीय हो सकती हैं। पर यथार्थ बात यह है कि असहयोग शुरू होने के बाद, महात्माजी लाट साहब से कभी मिले ही नहीं-फिर चौरी-चौरा-काण्ड के बाद मिलने की तो बात ही दूर है। श्री पीअर्सन की बातचीत में सब से पहले जिस बातचीत का उल्लेख है उसका समय मुझ ठीक ठीक याद है। १९१९ ई० में सत्याग्रह बन्द होने के बाद, श्री हार्निमन को देशनिकाला होने के पश्चात्, बम्बई के लाट ने महात्माजी को एक बार बुलाया था और फिर कोई दो महीने बाद जब महात्माजी ने यह लेख छपाया था कि "फिर सत्याग्रह क्यों न शुरू किया जाय ?" लाट साहब ने उन्हें खिड़की मुकाम पर बुलाया था। और उस समय के शब्द इस बातचीत में दिये गये हैं। महात्माजी ने मुझसे यह कभी नहीं कहा कि उस समय लाट सा. ने उनके कार्यक्रम को 'राक्षसी' कहने का साहस किया था। परन्तु शेष शब्द यथा—"मैं हरएक मर्द-औरत और बच्चे की मौत का जिम्मेदार आपको मानूंगा" तो श्री पीअर्सन से उन्होंने वही कहे जो उन्होंने महात्माजी से कहे थे। क्योंकि लाट सा. से मिलकर आने के बाद यही शब्द महात्माजी ने मुझसे कहे थे।

चौरी-चौरा-काण्ड के बाद महात्माजी लाट सा. के पास पश्चात्ताप करने के लिए गये और उनके सामने अपनी भूल कबूल की और "श्रीमन्, मुझे जेल में डाल दीजिए" कह कर अपनेको सजा देने की प्रार्थना की—ये सब बातें श्री पीअर्सन की गलतफहमी से पैदा हुई हैं या आत्म-स्तुति करनेवाली नीचता से उत्पन्न हुई है, यह कहना मुश्किल है। श्री पीअर्सन ने दूसरे ही दिन ज्यों का त्यों चित्र खींचने का प्रयत्न किया है। यह उनकी स्मरण-शक्ति की कमजोरी का फल नहीं हो सकता। यदि उनकी समझ का फर्क हो तो वर्णन में बे-मेल बातें आनी चाहिए थीं। पर इसके प्रतिकूल यह असंभव नहीं मालूम होता कि घर में अपनी बीबी के सामने अपनी बहादुरी की डींग मारने वाले वीर की तरह अपने मुंह मियां मिट्ठू बननेवाला शख्स अपनी तारीफ के बहाव में यों बहता चला गया हो। तीस करोड़ के 'ईश्वर', सबको—सारी नौकरशाही को—"त्राहि त्राहि" कर छोड़ने वाले गांधी को मैंने अपने पंजुल में दबा लिया और जेल में ठूंस दिया इस बात का वर्णन करने में श्री पीअर्सन के अज्ञान का फायदा उठा कर झूठी बातें घर घुसेड़ने की अकल उन्हें दिखाई दी हो तो आश्चर्य नहीं। पर यह मानना तो असंभव है कि श्री पीअर्सन ने ऐसे शब्द गवर्नर के मुंह में घुसेड़ दिये हों जो उन्होंने न कहे हों। क्योंकि श्री पीअर्सन का मुझे अच्छी तरह परिचय है।

जो हो; पर पहली और दूसरी मुलाकात में जिस नीचता का परिचय गवर्नर ने दिया है उसे उसने आजतक कायम रक्खा है। इस बात का साक्ष्य उसका एक एक वचन देता है।

और इसमें ताज्जुब की कोई बात भी नहीं। सेंट हेलिना में नेपोलियन की देख-भाल के लिए जो अफसर रक्खा गया था उसके संबंध में श्री एच्. जी. वेल्स कहते हैं कि वह बड़ा illbred कमीना था। इस कमीनेपन का परिचय भारत की जेलों के कितने ही सुपरिंटेंडेंट से हमारे कितने ही भाइयों को मिला है। और आज महात्माजी के जेल के स्वयंभू दारोगा, बंबई के लाट, अपने वचनों में इसी बात का परिचय देते हैं। यदि आप आयर्लैंड के कैदियों की जेलों की डायरी पढ़ें तो उनके एक एक पन्ने में ऐसी नीचता का चित्र दिखाई देगा।

यह नीचता-यह कमीनापन आयर्लैंड में किस हद तक जा पहुंचता था इसका खयाल वीर टोम क्लार्क के १५ वर्ष के जेल के अनुभवों में मिलता है, जिसे आयर्लैंड को आजाद करने के प्रयत्न में सब से पहले गोली मारी गई थी। टोम क्लार्क कहता है—जेल के अफसरों का एक ही उद्देश रहता था-हर उपाय से राजनैतिक कैदियों की मनुष्यता को कुचल डालना। अनेक प्रकार की सजाओं-महीनों तक चुप रखना, काली कोठरी में मूंद रखना, तथा ऐसी सख्तियां जिनका हम खयाल तक नहीं कर सकते—के द्वारा अच्छे अच्छे आदमी पागल बना दिये जाते और टाम क्लार्क के ३-४ साथी बिलकुल पागल हो कर ही जेल से निकले थे। खून के प्यासे चार्ल्स वेट ने तो पिछले साल महात्माजी को तेल डाल कर जला डालने तक की बातें जबान से निकाली थीं। पर बंबई के लाट की नीचता के साथ इतनी चतुरता मिली हुई है कि वे इस तरह की खून की प्यासी इच्छा पर सन्तुष्ट नहीं रह सकते। वे तो महात्माजी को जीता ही गाड़ देना चाहते हैं।

परन्तु इस वृत्तान्त को पढ़ कर क्रोध से लाल हो जाने की जरूरत नहीं है। जो शख्स यह स्वीकार करता है कि तीस करोड़ आदमियों को अपनी इच्छा के अनुसार चलानेवाले गांधी ने, लोगों के शान्ति भंग करने पर, सफलता के शिखर तक पहुंची अपनी महाभारत हलचल को रोक दिया, और जो फिर भी उनके माहात्म्य को न समझ सका, उसपर क्रोध नहीं किया जा सकता। महात्माजी तो ऐसे शख्स को दया का ही पात्र मानेंगे। जिसका प्रातःस्मरण आज करोड़ों लोग कर रहे हैं उससे मिलने के लिए लालायित हो कर एक प्रोफेसर अमेरिका से भटकता हुआ यहां आया। उसे यह कहनेवाले मनुष्य की कि—नहीं, तुम्हें इजाजत नहीं मिल सकती। इस तरह गांधी को कांटे का ताज पहना कर मैं महात्मा नहीं बनाना चाहता—पामरता पर तो तुच्छ से तुच्छ मनुष्य को भी दया आनी चाहिए। उस दिन बड़े लाट ने फैरो के जैसी बातें मुंह से निकालीं, आज हमारे सामने एक लाट का नमूना आया है जो कहता है कि मझा बनाने या न बनाने का

सामर्थ्य मुझमें है। इन वचनों में न केवल हीनता है, न केवल महात्माजी का ही तिरस्कार है, बल्कि महात्मा ईसा का भी तिरस्कार भरा हुआ है—इन्होंने एक ईसाई के मन पर इस ध्वनि की छाप लगाने की कोशिश की है कि यहूदियों ने बेवकूफी करके ईसा को कांटे का ताज पहनाया और उसे महात्मा बनाया, ईसाइयों ने उसे महात्मा माना। मैं ऐसा बेवकूफ नहीं—मेरा बस चलता तो मैं ऐसा न होने देता। आज गांधी को महात्मा न बनने देना मेरे अधिकार की बात है। इसलिए मैं ऐसा कर रहा हूं।" इस ध्वनि के लिए ईसा-मसीह उनकी खबर लेंगे या नहीं यह हम नहीं कह सकते। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि यह पतितता दया की पात्र है।

पर क्या हम स्वयं दया के कम पात्र हैं? सड़े हुए राजतन्त्र में किसी ऐसे गवर्नर का होना कोई ताज्जुब की बात नहीं; परन्तु इस राजतन्त्र को सहन करते रहना, और उस गवर्नर को बिदाई के समय जनता के नेताओं का अभिनन्दन पत्र देने की तैयारी करना इससे बढ़कर दयनीय दशा किसी दूसरे देश की क्या हो सकती है? गवर्नर की हीनता या पामरता हमारी सहायता नहीं कर सकती—उस हीनता और पामरता की चर्चा करना इससे भी बढ़कर निरर्थक है। हमें चाहिए कि हम अपनी दीन दशा को दूर करें—सफलता के किनारे तक आ पहुंचने वाली हल-चल का महत्त्व फिर से समझ कर उसे सफलता की हद तक ले जावें, अपने भेदों को भूलें और यह दिखा दें कि महात्माजी सचमुच हमारे हृदय-देव हैं, उनके शब्द पर चलने के लिए आज तीस करोड़ लोग तैयार हैं। ऐसा करने पर ही हम ऐसे गवर्नर का मुंह नहीं, पर उनका यहां आना ही बन्द कर सकते हैं। उनके मुंह की हमें चिन्ता नहीं।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

च० राजगोपालाचार्य की सलाह

[कोई ३ महीने की बीमारी और आरामतलब के बाद च० राजगोपालाचार्यजी ने अपना पहला सार्वजनिक भाषण करनाटक प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन, बीजापुर, के अध्यक्ष की हैसियत से किया है। कोकोनाडा-महासभा नजदीक है। उसको दृष्टि में रखते हुए उनका भाषण इस समय बहुत महत्त्वपूर्ण और दिशा-दर्शक है। प्रास्ताविक भाग को छोड़कर शेषांश नीचे दिया जाता है—]

"मैं लंबी-चौड़ी तकरीर करके आपका समय नहीं लूंगा। मैं उन तमाम विषयों पर जो लोगों के सामने हैं, यहां चर्चा नहीं करूंगा। बहुत सी बातों पर मैं यहां कुछ न कहूंगा; क्योंकि राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन नजदीक है और उससे एक ही महीने पहले यह मुनासिब न होगा कि ऐसे सवालों पर यहां विचार किया जाय जिनका निर्णय केवल हमारी महासभा में ही हो सकता है। ताहम हम ऐसी परिषद् में कुछ विषयों पर जनता के दूर तक फैले हुए भावों को, बतौर लोकमत के, प्रकट किये बिना नहीं रह सकते; क्योंकि वे महासभा के निर्णयों की रचना करने में सहायक हो सकते हैं। मगर इस परिषद् का मुख्य काम तो यही है कि वह अपने प्रान्त को उस काम के लिए संगठित करे जो आपके सामने है।

देहली का समझौता

देहली में महासभा ने धारासभा-बहिष्कार-संबंधी प्रचार-कार्य रोक दिया और उन लोगों को धारासभा में जाने की छुट्टी दे दी जो उसके फायदे के कायल थे। यह समझौता, एक न टलनेवाली बुराई समझकर कबूल कर लिया गया। हमने अपनी किलाबंदी में जान-बूझकर यह छेद होने दिया। पर अब हमें यह छेद बड़ा न होने देना चाहिए। महात्माजी द्वारा प्रचलित तमाम विधि-विधान में जिनमें असहयोग भी शामिल है, मतभेद की अवस्था में प्रतिपक्षी के प्रति आदर-भाव और सहिष्णुता रखना एक परम आवश्यक बात है। किसी भी शख्स को अपने अकीदः के अनुसार काम करने से हमें न रोकना चाहिए। नरमदलवालों तथा दूसरे सहयोगियों को यह आजादी बराबर हासिल है और स्वराज्य-दल वालों को भी वही आजादी थी। लेकिन वे तो आदर और सहिष्णुता से भी कुछ अधिक चाहते थे। महासभा और असहयोग-कार्यक्रम ने लोगों के दिलों पर जबरदस्त आधिपत्य कर लिया था। इससे उन्होंने हमें अपने विश्वास और अकीदः के अनुसार काम करने से रोकना चाहा ताकि उन्हें अपने विश्वासों को कार्य-रूप में परिणत करने का पूरा मौका मिले। गलत हुआ हो या सही, शान्ति के लिए यह कर दिया गया। परन्तु अब हम उस रास्ते में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते जो कि हमारे यकीन के मुताबिक असहयोग के आवश्यक सिद्धान्तों के खिलाफ है। किसी भी दल के धारा-सभा के अन्दर किये जानेवाले किसी भी काम में शामिल होने की इजाजत हम महासभा को नहीं दे सकते। शान्ति के लिए हमने नमक कर, केनिया और नाभा के अन्यायों का खासा जवाब देने का बढ़िया से बढ़िया मौका खो दिया। शान्ति के लिए हमने मतदाताओं पर अपना कब्जा कायम रखने और उन्हें महात्माजी के उसूलों की शिक्षा देने का खासा अवसर गवां दिया। अगर हम सिर्फ १९२० के बहिष्कार-प्रचार की कीमत लोक-शिक्षा की दृष्टि से आंक कर उसकी तुलना स्वराज्य-दलवालों के धारासभा में पहुंचने के प्रयत्नों के साथ करें तो हमें मालूम हो जायगा कि हमने कितना लाभ छोड़ दिया है। लेकिन गई-गुजरी बात पर अफसोस करने की जरूरत नहीं। वह अब नहीं आ सकती। अब तो हमें भविष्य पर नजर रखनी चाहिए। अब हमें अपनेको उस दूसरे विरोधी कार्यक्रम में और आगे न फंसने देना चाहिए। इसमें कोई शक नहीं कि इस बात का बड़ा खतरा है। हम नहीं जानते स्वराज्य-दल का आगे क्या कार्यक्रम है। मुमकिन है वे अपना पूरा दल-बल पहुंचने तक—अगले चुनाव तक या महासभा के 'त्रिविध बहिष्कार' को जड़-मूल से उठा देने तक धारा-सभा में बैठकर इन्तजार करें। संभव है, वे धारासभा के अन्य मतों के सदस्यों से मिल कर पार्लमेन्टरी तरीकों से यानी वैध-आन्दोलन के द्वारा, काम करें। अर्थात् हर बात में अड़ंगा लगाने से ले कर कहीं सहयोग और कहीं विरोध करें। वे श्रीमती बेसेन्ट के द्वारा प्रस्तावित 'कन्वेंशन' में भी शामिल हो सकते हैं और शायद नये संगठन-विधान के फल की राह देखते रहें। लेकिन महासभा उनके किसी काम में सक्रिय अथवा निष्क्रिय रूप से शरीक नहीं हो सकती। यदि यह बात पक्के तौर पर तय न कर दी जायगी तो महासभा के हाथों इस महान् गांधी-कार्यक्रम के छोड़ दिये जाने का अंदेशा है।

देश की मौजूदा राजनैतिक हालत महासभावादियों के लिए हद दर्जे तक चिन्ता का कारण हो गई है। महात्माजी के द्वारा उठाई बल और उत्साह की वह भारी लहर शान्त होती हुई दिखाई देती है। महात्माजी ने पहले पहल जब देश के सामने अपने आदर्श और साधन उपस्थित किये तब लोगों के हृदयों में घोर परिवर्तन, उथल-पुथल हुआ था। वही आदर्श और साधन अब पिष्ट-पेषण के कारण अपना जादू खोते हुए मालूम होते हैं। हर शख्स रोज कोई न कोई बात नई चाहता है। पुराने सिद्धान्त लोगों के हृदय में अपनी छाप नहीं डालते। शुरू शुरू में जो आशायें और उमंगें

लोगों के दिल में उछलती थीं और जिन्होंने लोगों के अन्दर अपूर्व कार्यशक्ति पैदा कर दी थी उनपर अब निरुत्साह और असफलता के भावों की छाया पड़ रही है। साहस और आशा के स्थान पर संशय और सावधानी का राज्य छा रहा है। वस्तुस्थिति के ज्ञान और अनुभव से लोग एक ओर जहां पहले से ज्यादह समझदार हो गये हैं तहां दूसरी ओर उन्हें असफलता की आशंका ने घेर लिया है और काम करने की इच्छा कम हो गई है।

हमारी क्रान्ति का स्वरूप देखते ही हमारे शत्रुओं को धक्का लगा और वे घबराये। उससे हमारा उत्साह बढ़ा और हमने अपने कार्यक्रम को जोर-शोर के साथ आगे बढ़ाया। पर अब हमारी हालत को देखकर उनके पांव थम गये और वे अधिक मजबूती के साथ हमारे मुकाबले में अपना बचाव करने लगे। इससे लोग अब खयाल करते हैं कि सरकार आज असहयोग की शुरूआत की अपेक्षा ज्यादह बलवान् और मजबूत है। हमारी इस क्रान्ति के आरम्भिक समय में जो हालत थी उससे आज हर बात में वह ज्यादह मुश्किल और खराब है। महात्माजी ने खुद इस कठिनाई को बढ़ते हुए देखा था और वे इसका मुकाबला करने की कोशिश कर रहे थे। फिर उनके हमसे अलहदा कर लिये जाने पर यदि छोटे लोगों को हालत ज्यादह मुश्किल मालूम हो तो क्या ताज्जुब है?

आसान सत्याग्रह

एक ओर जहां उन लोगों के सामने जो महात्माजी के कार्यक्रम के हामी हैं, यह विकट स्थिति खड़ी है तहां दूसरी ओर वे लोग जिनका एतबार कभी महात्माजी के तरीके के अनुसार कष्ट सहन और अहिंसा में नहीं था, इस सुस्ती का फायदा उठाकर फिर अपना सिर ऊपर उठा रहे हैं। जो लोग अपने असली राजनैतिक विश्वासों के खिलाफ राष्ट्रीय उत्थान के अदम्य बल के सामने महात्माजी के कार्यक्रम का ग्रहण करने पर मजबूर हुए थे, उन्होंने उस कष्टदायी आध्यात्मिक बोझ को अपने सिर से फेंक दिया और अपनी तबीयत और विश्वास के अनुकूल उस कार्यक्रम का अर्थ लगा कर उसे इस तरह गढ़ना चाहते हैं जो उनके राजनैतिक विचारों और पद्धतियों का मुआफिक पड़ता हो। ऊपरी ढांचा और नाम वही रक्खा है; पर मूलभूत तत्व बदल दिया है। प्रेम नहीं, बल्कि द्वेष; अहिंसा नहीं, बल्कि हिंसा-ऐसी हिंसा जो की जा सके; स्वयं कष्ट-सहन नहीं, बल्कि इस चतुराई के साथ दुश्मन को तंग और परेशान करना कि जिससे खुद अपनेको कम तकलीफ उठाना पड़े; यह है वह आसान सत्याग्रह जिसका अर्थ नये असली असहयोगी महात्माजी के कार्यक्रम में से निकलना और उसे चलाना चाहते हैं। इन लोगों का मूल सिद्धान्त यह है कि मनुष्य सद्गुण-प्रवृत्त प्राणी नहीं है। वह स्वभावतः स्वार्थी और हिंसक होता है और केवल कष्ट और दण्ड के ही द्वारा मजबूर होकर वह दूसरों का आदर करता है। परन्तु इसके प्रतिकूल महात्माजी के तरीकों का मूलतत्व यह सत्य सिद्धान्त है कि मनुष्य स्वभावतः सत्प्रवृत्त है। वह भय नहीं, बल्कि प्रेम, और दण्ड नहीं बल्कि सहानुभूति के वशीभूत होता है।

जर्मन-सरकार ने भी महात्माजी के सिद्धान्त पर चलने की कोशिश की थी—पर द्वेष और संगठन-पूर्वक फ्रांस को तंग और परेशान करने के सिद्धान्त के अनुसार—जिसमें प्रेम और कष्ट-सहन का महात्माजी का जीवन-दायी तत्व नहीं था। उन्होंने एक बड़े पैमाने पर अहिंसात्मक प्रतिकार करने का आदेश किया। सरकार ने लोगों को सहायता दी और उन्हें कम से कम कष्ट-सहन होने दिया। प्रयत्न बड़ा विशाल था और ऐसा मालूम होता था कि बस सफलता हुई ही; पर असफल हुआ। जर्मन लोगों का प्रतिकार महात्माजी का सत्याग्रह नहीं था—जैसे कि एंजिन अच्छे से अच्छा होने पर भी सजीव वस्तु नहीं कहा जा सकता।

वह असहयोग जिसका अर्थ किया जाता हो केवल राजनैतिक दृष्टि से किसी को तंग करना या सताना, सत्याग्रह से सैकड़ों कोस दूर है। वह असफल हुए बिना या बिलकुल निस्सार आन्दोलन में परिणत हुए बिना नहीं रह सकता। इस किस्म के अहिंसात्मक दबाव को आप कभी सजीव शक्ति का रूप नहीं दे सकते—उसी प्रकार जिस प्रकार किसी बिजली की मशीन से आप सजीव मनुष्य नहीं पैदा कर सकते। वह अहिंसा हिंसा का एक घटिया रूप होगी और उसे अपनी कमजोरी कुबूल करना पड़ेगी। महात्माजी के आन्दोलन को हम उसी हालत में चला सकते हैं और बुरी शक्तियों के खिलाफ अच्छी शक्तियों को बेखटके बेरोक लड़ा सकते हैं जब कि हममें महात्माजी के ही आशय के अनुसार श्रद्धा और साहस हो। कष्ट-सहन—अधिक से अधिक-कम से कम नहीं; शत्रु के साथ प्रेम-युद्ध और सच्चा-वह प्रेम और करुणा जो सूली पर चढ़ते समय ईसा-मसीह की आंखों के आंसुओं में दिखाई देती थी—दबाया हुआ द्वेष-भाव नहीं, जो कानूनबाजी और विधि-विधान का रूप ग्रहण करता है और जो अपने जहर को बराबर फैलाता रहता है इनके बिना असहयोग और सविनय-भंग से कुछ नहीं हो सकता—वे राजनैतिक मन्त्र के रूप में भी बहुत दिनों तक नहीं ठहर सकते।

मेरी राय में मौजूदा हालत में हमारे लिए एक ही रास्ता है—रचनात्मक कार्यक्रम। मौलाना महम्मदअली ने क्या ही उम्दगी के साथ कहा है—फिर नागपुर से शुरू करो! हां, यह ठीक है कि भीगी लकड़ी से निराग जलाना मुश्किल है। मुझे पता नहीं, आप लोगों में कितने लोग ऐसे हैं जिन्हें भीगे ईंधन पर-गीली लकड़ियों पर खाना पकाने का और उससे होनेवाले कष्टों और हताशाओं का अनुभव है। अब रचनात्मक कामों को करना बहुत-कुछ ऐसा ही है। पर अगर हमें खाना पकाना है और घर का काम उसी तरह चलाना है तो उसे किये बिना चारा नहीं है। दूसरे कार्यक्रम चाहे अधिक आकर्षक हों, अधिक शानदार दिखाई देते हों, समय समय पर उनकी आवश्यकता भी दिखाई दे—पर सब से मुख्य वह रचनात्मक काम है जिसकी रचना बारडोली में की गई है। रचनात्मक कामों में भी बहुत सी बातें हैं जिनपर एक साथ जोर-शोर से सारी शक्ति नहीं लगाई जा सकती।

इसलिए मैं लोगों से यह निवेदन करूंगा कि वे इसको फिलहाल और भी संकुचित करें जिससे अच्छी तरह काम किया जा सके और फिर धीरे धीरे उसका विस्तार किया जाय। मैं तो आपके सामने एक ही कार्यक्रम रक्खूंगा—चरखा—हर घर में चरखा दाखिल कीजिए—इसीपर अपनी सारी शक्ति लगा दीजिए। चरखे के प्रचार में अहिंसा, अछूतोद्धार, शराबखोरी दूर करना, समाज-सेवा, हिन्दू-मुसलमान-एकता, और तमाम महात्माजी के चाहे सुधार आ जाते हैं। यह आलंकारिक भाषा नहीं है; बल्कि हम इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। चरखा और अहिंसा के सिद्धान्त के प्रचार के लिए जबरदस्त आन्दोलन ही हमारा एकमात्र कार्यक्रम होना चाहिए। चरखे के संबंध में महज मुंह से बातें न कीजिए—बल्कि दर-असल सूत कातने लगिए और औरों से कताइए।

अहिंसा कमजोर हो रही है

'अहिंसा' का प्रचार हिम्मत के साथ साफ साफ और खूब कीजिए। महात्माजी ने अहिंसा को लोगों के दिलों में जितना मजबूत किया था और स्थायक बनाया था वह अब कम हो रहा है। उसपर तरह तरह के हमले हो रहे हैं। हमें फिर से उसे

लोक-हृदय में स्थापित करना चाहिए। हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुसल्मान-एकता का रहस्य अहिंसा पर ही अवलम्बित है। अहिंसा धर्म ही हिन्दू-मुस्लिम-एकता की बुनियाद को मजबूत बना सकता है। न तो दोनों जातियों की पंचायतें न कोई निपटारे की कमिटी ज्यादह कुछ कर सकती है। मामलों का फैसला करने के लिए पहले से तैयार पंचायतें उलटा झगड़ों को बढ़ावेंगी—जहां कुछ नहीं था वहां झूटे झगड़े खड़े होंगे। अदालतों की स्थापना और उसके फल-स्वरूप मामलों-मुकदमों की बढ़ती का तजरिबा हमारे सामने है। लक्षण-चिकित्सा यहां भी, और बातों की तरह, असफल हुए बिना न रहेगी। अहिंसा के मूलतत्त्व का लगातार प्रचार करना और उसपर जोर देना ही इसका एकमात्र इलाज है और शुद्ध जातिगत जीवन और एकता के लिए प्राण-वायु के समान है। अबतक हमने अहिंसा को गांधीजी की एक सनक माना है। हमने उसे बरदाश्त भर किया है—निबाह भर किया है। उससे अधिक उसके लिए कुछ नहीं किया। पर सच बात यह है कि अहिंसा महात्माजी के सारे कार्यक्रम का मूल है। इसीके बल पर उस कार्यक्रम में एक ओर सरकार के हिंसा-विधान और दूसरी ओर लोगों की मनमानी का विरोध करने का बल आता है। अहिंसा उसका अत्यन्त आवश्यक हृदय-रूप अंग है। उसके बिना दूसरे तमाम अंग नष्ट-भ्रष्ट हुए बिना नहीं रह सकते। हमारे कार्यक्रम के लिए शान्ति और व्यवस्था की आवश्यकता है। महात्माजी की शुरू की हुई इस क्रान्ति का जरूरी तात्पर्य यही है कि देश के मौजूदा अत्याचार के स्थान पर अहिंसा की स्थापना हो। यदि हम अहिंसा के लिए काम न करेंगे तो हम मौजूदा सरकार के जबड़े में इसी तरह फंसे रहेंगे।

मैंने हमारी मौजूदा तकलीफों का बयान कर के अपनी समझ के अनुसार उन्हें दूर करने का सही तरीका भी आपके सामने पेश किया है। इस समस्या की कठिनाई तो जिसे कुछ लोग जटिलता कहते हैं पहलेसे ही देखी जाती थी। यदि शत्रु के आक्रमण में ही हम लड़ाई जीत जाते तो इसका सामना हमें न करना पड़ता। पर अब यह अनिवार्य है। इससे हमें हतोत्साह होने की जरूरत नहीं। हमारा देश आजादी चाहता है, यदि आज वह सुस्त नजर आता हो तो कल उसे अवश्य चाहेगा और जब कि वह आजादी चाहता है तो वह उसे हासिल किये बिना न रहेगा। हमारी कठिनाई इस बात में नहीं है कि हमारे उपाय और तरीके नामुआफिक या ना-काफी हैं। न वह हमारे शत्रु की शक्ति में है। हमारी सच्ची कठिनाई तो यह है कि हमारी आजादी की भूख दबती जा रही है। यही हमारे काम को ज्यादह मुश्किल बना रही है। हम सिर्फ इसी बात पर ध्यान रक्खें, यही हमारी कार्य-शक्ति का उद्गम-स्थान है। शेष बातें अपने आप दुरुस्त हो जायंगी। मैं इस बात का कायल हो चुका हूं कि हमारा देश अपने हित को खुद पहचाने बिना नहीं रह सकता, वह यह जाने बिना नहीं रह सकता कि आजादी ही जीवन है और गुलामी ही फाकेकशी, मुसीबत और अन्त को मृत्यु है। मुझे इस बात का यकीन हो चुका है कि महात्माजी के दिखाये रास्ते के सिवा हमारी आजादी का दूसरा कोई रास्ता नहीं है। मुझे यह भी निश्चय है कि यदि आज नहीं तो कल हमारे देश को उसका अवलंबन किये बिना दूसरा चारा नहीं है। वह आज चाहे कुछ समय के लिए अपने लक्ष्य से भटक गया हो पर वह उसे पाये बिना नहीं रह सकता। निरुत्साह या रंजीदा होने की कोई जरूरत नहीं। असहयोग मर गया—यह खयाल करने से बढ़ कर नादानी और नहीं हो सकती। असहयोग की मृत्यु का अर्थ क्या है? क्या यह है कि इसके द्वारा सफलता न मिलने पर देश ने अपने राजनैतिक शस्त्र के तौर पर इसका त्याग कर दिया, या यह कि भारतीय राष्ट्र ने आजादी के ध्येय को छोड़ दिया? दो में से कोई अर्थ सही नहीं हो सकता।

मुझे यकीन है कि अली-भाई देश में जीवन फूंक सकते हैं और फिर वही पुरानी लहर उठा सकते हैं। वे महात्माजी का नाम ले कर, ओजस्विनी भाषा में, सुस्त और निकम्मे लोगों को फटकार सकते हैं और सच्चे और वफादार लोगों को आशा और बल दे सकते हैं। वे देश की हालत को इस तरह बदल सकते हैं जैसा दूसरा कोई नहीं कर सकता।

नाभा-प्रकरण

मैंने कितने ही विषयों को नहीं छुआ है; पर मैं नाभा के संबंध में दो-चार शब्द कहे बिना अपने भाषण को खतम नहीं कर सकता। नाभा डलहौसीशाही की नीति का आधुनिक संस्करण है। शाही ब्रिटिश सरकार, सार्वभौम सत्ता, सहायक राज्य आदि शब्दों के द्वारा लोगों की आंखों में धूल डाली गई। भारतीय राजे-रजवाड़े दर-असल चाहे कमजोर हों, उनके पास फौज न हो, सुलहनामों के द्वारा उनपर कब्जा कर लिया गया हो और उन्हें पौरुषहीन बना दिया गया हो; परन्तु कानून में वे भारत-सरकार की तरह आजाद और बादशाह हैं। योरप में भी आज ऐसी कितनी ही छोटी रियासतें हैं जो हैदराबाद या मैसोर और नाभा या पटियाला की तरह कमजोर हैं। परन्तु वहां कोई पड़ोसी सरकार वहां की सरकार को शासन की खराबी के लिए हटाने के हक रखने का दावा करने नहीं जाती। यह तरीका पिछले जमाने में तो ब्रिटिश साम्राज्य के अनेक बुरे कामों के साथ गवारा हो सका—यहां तक कि क्लाइव की जालसाजी और हेस्टिंग्ज की जबरदस्ती रुपये वसूल करने की नीति को भी लोगों ने बरदाश्त कर लिया। लेकिन अब जब कि हम अपने जमाने के और उसके नैतिक विधान के मालिक हैं, ऐसी बातों को कभी सहन नहीं कर सकते। मुख्य विषय यह नहीं है कि नाभा-नरेश ने स्वेच्छा से गद्दी छोड़ी या वे छोड़ने के लिए मजबूर किये गये। या तो उनपर बल-प्रयोग किया गया या दम-झांसा देकर गद्दी छीनी गई। किसी न किसी तरह के दबाव से काम जरूर लिया गया है। इस बात से हमें कोई गरज नहीं कि वह दबाव किस तरह का था। यदि शासन में कई खराबी थी तो ब्रिटिश राज्याधिकारी को मुझसे या या आपसे अधिक कोई कानूनी या नैतिक हक उस रियासत की सत्ता को अपने हाथ में लेने का नहीं था। किसी राजा को पद-च्युत करने का तथा उसकी जगह पर दूसरे अधिकारी-मंडल को नियुक्त करने का अधिकार उस राज्य की प्रजा के सिवा दूसरे को नहीं है। और, हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम इस सिद्धान्त को सच कर दिखावें। महासभा लोगों के अधिकार और आजादी की रक्षक है और उसका काम ही यह है कि इनपर यदि आक्रमण होता हो तो वह उनको रोके। उसे चाहिए कि वह ब्रिटिश राज्याधिकारी के नाभा में इस अनधिकार प्रवेश को एक अवैध हमला समझे और उसके प्रतिकार में सहायक हो। सिक्ख लोग बहादुरी के साथ उसके लिए लड़ रहे हैं और जब सारे देश से सहायता की पुकार होगी तब हमारा फर्ज स्पष्ट ही है।

लड़ाई नाभा की हद को लांघ गई है। गु० प्र० कमिटी पर सरकार ने चढ़ाई शुरू कर दी है और अकालियों के संगठन को तहस-नहस कर डालने की धुन उसपर छाई हुई है। लड़ाई का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया गया है और सारा भारतवर्ष शि० गु० प्र० कमिटी के साथ उठ खड़ा होगा।

इस बारे में मुझे एक बात पर दुःख होता है। जिस सिद्धान्त

पर चल कर अबतक सिक्खों ने विजय प्राप्त की है उसकी एक बडी बात को वे छोड रहे हैं। गुरु-का-बाग में लडाई ठीक ठीक महात्माजी के तरीके से अदालतों में बिना सफाई दिये लडी गई थी। उसमें कष्ट-सहन की ताकत पर श्रद्धा थी। लेकिन इस मौके पर वकीलों का आश्रय लेना और सफाई देना निस्सन्देह अपना कदम पीछे हटाना है। गुरु-का-बाग में तो महात्माजी के सिद्धान्त की पूरी और शुद्ध फतह थी। हां, मैं यह जानता हूं कि इससे उनका उद्देश सजा से बचना नहीं, बल्कि सरकार की करतूतों की पोल खोलना है। लेकिन सत्य और कष्ट-सहन स्वयं उनका प्रचार-कार्य है। सफाई देना और कष्ट-सहन का सिद्धान्त परस्पर विरुद्ध है। वकीलों की तजवीज करना और असहयोग एक दूसरे के खिलाफ है। जिस प्रकार असहयोग के स्थान पर विधि-विहित विरोध को स्थापित करना घातक है उसी तरह जिरह के समाचारों के प्रकाशन को सत्य और कष्ट-सहन के स्वयंप्रकाश के स्थान पर स्थापित करना घातक है।"

खादी-समाचार

अहमदाबाद में पूनियां तथा इमदाद मिलने की जगह

अहमदाबाद के कातने वाले लोग अक्सर पूनियां मांगा करते हैं। उन्हें चरखे की मरम्मत आदि की भी बार बार जरूरत पडा करती है। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए मगनभाई की वाडी, घी काटा, वणकर विद्यार्थीआश्रम, में इन्तजाम किया गया है। वहां के बुनाई-शिक्षक श्री दातार को पत्र लिखने या खुद जाने से वे अपने फुरसत के समय में चरखों की मरम्मत कर सकेंगे। सत्याग्रहाश्रम में बनी पूनियां भी वहां मिल सकेंगी। दो पहर को २ से ४ बजे तक वे विद्यार्थी-आश्रम में मिलेंगे। जुदी जुदी रुई की घटिया-बढिया-मेल की पूनी ॥।) से ले कर १=) पौंड तक मिलेगी। यदि कोई अच्छी पूनी कम खर्च में तैयार कर सके और बेंचने के लिए विद्यार्थी-आश्रम में रखना चाहे तो उसका भी इंतजाम हो सकता है।

इन स्थानिक खबरों और सूचनाओं को इस पत्रिका में स्थान देने का कारण यह है कि ऐसा ही या इससे भी ज्यादह और अच्छा इन्तजाम हरएक शहर में होना चाहिए। जिस तरह कातने वाली बहनें अपने हरएक फुरसत के क्षण में सूत कातती हैं उसी प्रकार जिन लोगों ने खादी का काम अपने सिर पर लिया है उन्हें ऐसा इन्तजाम कर देना चाहिए जिससे हरएक चरखा बराबर चलता रहे। सूरत और बंबई शहरों से ऐसी कितनी ही शिकायतें हमें मिलीं हैं कि चरखा चलाना न मालूम होने तथा सामग्री की टूट-फूट के कारण कितने ही चरखे बंद पडे हुए हैं। इससे यह अनुमान आसानी से किया जा सकता है कि दूसरे छोटे-बडे शहरों का क्या हाल होगा। ऐसे स्थानों में यदि खादी-सम्बन्धी तमाम बातों के जानकार एक एक युवक की तजवीज कर ली जाय तो उसका खर्च शहर पर ज्यादह नहीं बैठ सकता। कितने ही कार्यकर्ता देहात को कम से कम जहांतक कपडों से सम्बन्ध है, स्वावलंबी बनाने की धुन में लगे हुए हैं। इसमें कोई शक नहीं कि वे राष्ट्र-रचना की बुनियाद डाल रहे हैं। पर इससे यह न मानना चाहिए कि शहरों में काम करने की जरूरत ही नहीं रह गई है। शहरों में ऐसे कितने ही लोग मौजूद हैं जो ग्राम्य-जीवन के सुख-स्वप्न देखा करते हैं; परन्तु किसी न किसी प्रकार की परिस्थिति के कारण वे देहात में जाने और वहां बसने में असमर्थ रहते हैं। ऐसी भावना रखने वाले स्त्री-पुरुष ज्यादातर चरखे का स्वागत करनेवाले ही होते हैं। ऐसे मुकामों पर मदद पहुंचाने और चरखों को जारी रखने का काम हाथ में लेना परम आवश्यक है।

वार्षिक खादी-रिपोर्ट

अखिल भारत खादी-विभाग की स्थापना पिछले साल के मई महीने में हुई थी। तबसे उसके द्वारा क्या क्या काम हुआ उसका ब्यौरा गया-महासभा के पहले प्रकाशित किया गया था। इस वर्ष का खादी-ब्यौरा कोकोनाडा-महासभा के पहले प्रकाशित होना आवश्यक है। पिछले साल का विवरण पहली बार प्रकाशित हुआ था। उसमें प्रत्येक प्रान्त की स्थिति और शक्ति का ही अंदाज खास तौर-पर दिया गया था। शुरूआत के साल में उससे ज्यादह क्या आशा की जा सकती थी? इस साल की रिपोर्ट में महज अन्दाज होने से काम नहीं चलेगा। यदि वस्तुस्थिति का थोडा-बहुत ठीक ठीक माप इस बार दिया जा सके तो ही रिपोर्ट प्रकाशित करना ठीक होगा। अतएव इस वर्ष की खादी-रिपोर्ट उसी दशा में भली मालूम हो सकती है जब उसमें इतनी बातों का समावेश हो—इस साल कितना काम हुआ? जो काम हुआ उसमें कितनी सफलता मिली? जो सफलता या विफलता हुई उससे भविष्य के लिए क्या बात करने की आवश्यकता मालूम हुई? हरएक प्रान्त में कितने और कौन कौन खादी-के कार्य करनेवाले लोग हैं? उनके मुख्य मुख्य लोगों की पूर्व-कहानी क्या है? ऐसे तमाम ब्यौरे के लिए इस विभाग की तरफ से हर प्रान्त में कोई छः महीने पहले पत्रिका भेजी जा चुकी हैं; पर उनमें सिर्फ ३-४ जगहों से ही उनकी खानापुरी हो कर आई है। जिन्होंने अबतक नहीं भेजी है वे कृपा कर शीघ्रही जितनी हो सके खानापुरी कर के उन्हें भेज दें। जहां कोई खादी के कार्यकर्ता न हो वहां दूसरे सार्वजनिक कार्यकर्ता यदि अपने प्रदेश के खादी के वायुमंडल के हाल लिख कर भेज दें तो वह उपयोगी होगा। उसके साथ ही यदि वे यह भी लिखेंगे कि खादी की पैदाइश बिक्री और इस्तैमाल में क्या क्या फर्क हुआ, तो वह भी फायदे मन्द होगा।

मगनलाल खुशालचंद गांधी

देशभर के खादी के काम का सालाना विवरण पिछले साल की तरह इस साल भी महासभा की कोकोनाडा की बैठक के पहले छापना जरूरी है। यह बात कहने की आवश्यकता नहीं कि इस तरह साल भर के काम का ब्योरा तैयार करने से एक तो इस आन्दोलन की प्रगति को रोकने वाले दोष और कठिनाइयों का पता लगता है और दूसरे लोगों को इसका पूरा पूरा हिसाब मिलने से उनकी इस काम में रुचि और जोश बढता है।

इस बडे काम को पूरा करने के लिए इसमें प्रत्येक प्रान्त के बिना किसी तरह के विलंब के सहयोग और मदद की सख्त जरूरत है। यहां पर यह सिद्ध करने की जरूरत नहीं कि खादी का काम किसी भी पक्ष का निजी काम नहीं है। यह तो मुल्क भर के तमाम पक्षवालों का काम है।

इसलिए सब प्रान्तिक व जिला तथा नगर-समितियों से मेरी अनुरोध-पूर्वक प्रार्थना है कि इस साल के अपने अपने खादी के काम का ब्यौरा शीघ्र ही "नियामक खादी-समाचार-विभाग साबरमती" के नाम भेजने की कृपा करें और हो सके तो पिछले साल के काम के साथ इस साल के काम का मुकाबला करके भी कुछ हाल लिखें।

जमनालाल बजाज मेम्बर, इन चार्ज,
अखिल भारत-खादी-विभाग

कोकोनाडा महासभा

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रतिका	,, -)।
विदेशों के लिए	,, ७)

हिन्दी नवजीवन

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक २०

संपादक—हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, पौष वदी ७ संवत् १९८०
रविवार, ३० दिसंबर, १९२३ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

खादी का संदेश

आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय ने कोकोनाडा की खादी–प्रदर्शिनी का उद्घाटन करते समय जो भाषण दिया उसका सार इस प्रकार है:—

सबसे पहले मैं आपके सामने एक बात के लिए अपना सख्त अफसोस जाहिर कर देना चाहता हूं। वह है हमारा खादी के प्रति शाब्दिक आदर! और अफसोस खास कर हमारी उस लापरवाही,—नहीं—प्रत्यक्ष दुर्भाव के प्रति है जो कि आजकल मुख्यतः चरखे के प्रति और सामान्यतः शांत, गंभीर सच्चे रचनात्मक कार्य के प्रति दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। अफसोस है इस बात के लिए भी कि चरखे का वह मधुर संगीत इस बाजारी और धुआंधार के कोलाहल में डूब रहा है! अफसोस—नहीं,—बहुत भारी–गहरा दुःख मेरी आत्मा को यह देख कर हो रहा है कि हमारी वही पुरानी काहिली, वही जमानों की पुरानी लापरवाही हमें फिर लाचार बनाने लगी है। और उस महान् नेता ने राष्ट्र को जो स्फूर्ति और नेतृत्व दिया था वह अदृश्य होता जा रहा है, यहां वहां होने वाली इस धींगा धींगी और जोश की बाढ में डूब सा रहा है। पर यदि इन जोश–दिखावों के पीछे जनता के लिए और उसके द्वारा किये गये सच्चे और परिणत काम का आधार न हो तो ये सब दिखाव और जोश की बातें न केवल व्यर्थ, बल्कि एक देशभक्त के लिए बडी शर्म की बात और दुश्मन के लिए हंसी का विषय हो जाती हैं। ये अल्फाज मुल्क की मौजूदा हालत देखते हुए ही मेरे मुंहसे निकल रहे हैं। तमाम रचनात्मक कार्य बंद हो रहा है, और एक डेढ साल से तो धारासभा ही हमारी चर्चा का मुख्य विषय बन बैठी है। इसीके पक्ष–विपक्ष की दलीलों से सारा वायुमण्डल भर गया है, मानों चरखा, खादी, राष्ट्रीय शालायें, अस्पृश्यता–निवारण, पंचायत–संगठन और ग्राम–संगठन कुछ भी महत्व न रखते हों—और अगर इनका कुछ मूल्य हो भी तो केवल नामोल्लेख करके फिर भुला देने पुरता!

देश के सामने जो रचनात्मक कार्य है और जिसपर महात्माजी ने इतना जोर दिया है उसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण और जनता की आर्थिक उन्नति के लिए सबसे अधिक जरूरी बात चरखे का सर्व साधारण द्वारा स्वीकार है। वह कौनसा उपाय है जो हरएक व्यक्ति गरीब से गरीब और कमजोर से कमजोर के हाथ में है, और जिसके द्वारा सब नर–नारी अपनी रोजाना आमदनी को अच्छी तरह बढा सकते हैं? वह उपाय एक ही हो सकता है, जिसके द्वारा वे अपनी अत्यावश्यक आवश्यकताओं को पूरी कर सकते हों और जिसका अवलंबन हरएक व्यक्ति के ताकत के भीतर की बात हो। और यह उपाय हमारे प्यारे चरखे के सिवा दूसरा क्या हो सकता है, जिसको कमजोर से कमजोर औरत भी चला सकती है, और जिसे गरीब से गरीब मनुष्य भी खरीद सकता है, बनवा सकता है या मरम्मत करवा सकता है, और जो दरिद्र भारतीय की आय को एकदम दूनी कर सकता है?—और अगर आप कपडे ही की दृष्टि से विचार करना चाहें तो जो एक किसान परिवार के लिए सालभर का कपडा देकर कुछ बचत भी दिखा सकता है? वास्तव में खेती को छोडकर, जो किसान का सारा समय नहीं लेती, ऐसा दूसरा उपाय हो ही नहीं सकता—है ही नहीं। बहुत उदारतापूर्वक गिन्ती की जाय तो भी खेती मनुष्य के आठ महीने और कहीं कहीं तो इससे भी बहुत कम समय लेती है। शेष सारा समय योंही व्यर्थ उद्यम–हीन बीतता है। स्त्रियों के विषय में पूछा जाय तो वे पूरे सालभर रोज कुछ न कुछ समय चरखे पर जरूर बिता सकती हैं, जो सारे कुटुम्ब के सालभर के कपडे के लिए काफी है। केवल दलील के लिए भी यह काफी है। किन्तु मैं अनुभव के बल पर, जो कि मैंने खुलना–अकाल और उत्तर बंगाल की बाढों के समय पीडितों की सहायता करते हुए प्राप्त किया, जोर के साथ कह सकता हूं कि इसमें रत्तीभर भी असत्य नहीं। अगर किसानों के पास अपनी खेती के अतिरिक्त कोई अन्य उपयोगी उद्योग भी होता तो केवल एक साल फसल के न आने से वे इतने लाचार न बन गये होते। ज्योंही हमने उन्हें चरखा और कपास देकर कातने लगाया और उन्हें चरखे का पराक्रम मालूम हुआ त्योंही वे उसे परमात्मा की एक देन समझने लग गये।

अब भी शायद आपको मेरे इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति मालूम होती होगी। पर हाथ–कंगन को आरसी की क्या जरूरत? हरएक भारतीय की सालाना औसतन आय क्या है? स्वर्गीय नौरोजी, मि. डिग्बी, और स्व. रमेश दत्त ने इस सवाल को खूब छान डाला है। लॉर्ड कर्झन ने भी इसपर खूब विचार किया है, और इस सुखद नतीजे पर पहुंचे हैं कि हरएक भारतीय की—जो अंगरेज राज्य में बहुत सुख पा रहा है—सालाना औसतन आय पूरे तीस रुपये हैं, कम नहीं। कहा जाता है कि लाट साहब बडे हिसाबी थे। तो हमें उनपर अविश्वास न करना चाहिए। श्रीमान् लाट साहब की गणनानुसार हरएक भारतीय की रोजाना आय करीब करीब सवा आना या पांच पैसे होती है। अब आइए हम यह देखें कि इस आय में हमारा चरखा कितनी वृद्धि कर सकता है। अगर कोई

अभ्यास आदमी [illegible] बैठे तो प्रतिदिन ८ घंटे काम करने पर रोजाना [illegible] पैदा कर सकता है। पर अगर इसमें भी हम कम कर [illegible] से हम ए० आदमी चरखे के द्वारा अपनी आय को दुगुनी तो अवश्य कर सकता है। इसमें तो संदह के लिए जरा भी स्थान नहीं।

पर अब इस विषय पर अधिक समय बिताने की कोई आवश्यकता नहीं। हिसाब आप ही इस बात की सत्यता को प्रकट कर रहा है। अब दूसरी बात का भी विचार करना जरूरी है। अकेले कातने से ही काम न चलेगा। अगर उसका आम तौर पर एक गृहोद्योग की तरह स्वीकार किया गया तो वह दूसरे अनेक ग्रामोद्योगों का सहारा और उत्तेजक साधन हो जायगा। अगर किसी गांवभर के लोग चरखे का आश्रय कर लें तो वहां के करघे को काफी काम मिल जायगा। और उसके साथ ही साथ रंगरेज और सुतार की आमदनी भी बढ़ जायगी। सच पूछ जाय तो कातना ग्राम-जीवन की उद्योग नाड़ी है। उत्पन्नता की दृष्टि से देखा जाय तो भी यही सब से बढ़िया उद्योग है। फिर यह गांव को अत्यावश्यक जरूरतों के विषय में स्वाश्रयी बनाने में बहुत कुछ काम करता है। इससे उत्पन्न होने वाली साहसवृत्ति, तरी, स्वावलम्बन आदि गुण गांव में नयी जान डालते हैं और उस उस मंद नाश से बचाते हैं जिसका शिकार वह आजकल हो रहा है।

अब हम इसी बात का छोटे परिमाण से चलकर बड़े—राष्ट्र के परिमाण में विचार करें। परिणाम आश्चर्य-जनक मालूम होता है! मान लें कि भारत की जन संख्या स्थूल रूप से ३२ करोड़ है। तो लार्ड कर्जन की गणना के अनुसार भारत की सालाना आय (५,६०,००,००,०००) हुई। अब यदि भारत की जनसंख्या का केवल चौथा हिस्सा स्त्री-पुरुष दिन में केवल २ ही घंटा कातें तो उसकी आय ९० करोड़ बढ़ जायगी। धुनाई-बुनाई, तथा सुतार, लोहार, रंगरेज आदि इसके अनुगामी उद्योगों से होने वाली आय का तो हिसाब ही नहीं लगाया। इसके अतिरिक्त हरसाल जो कपड़े के लिए ६०-७० करोड़ रुपये बाहर जाते हैं वे बचेंगे, और हमारे देश के आम पर रहनेवाले किसानों में जान डाल कर उनकी सम्पत्ति को बढ़ावेंगे सो अलग।

मैं जानता हूं कि कुछ लोग इन अंकों को देख कर हंसेंगे और कहेंगे कि ये ऊटपटांग अंक ही यह सिद्ध करते हैं कि ये सब दिमागी—असम्भव्य बातें हैं। पर हम ऐसों पर केवल दया कर सकते हैं। उनकी कल्पनायें जिस कठोरता से दौड़ती है वे चरखे का एक गृहोद्योग का आमतौर पर स्वीकार किया जाना असंभव दिखाती है। ये बड़ी से बड़ी कम्पनियां आदि, जिनमें अपरिमित धन लगाया जाता है, इस विशाल उद्यम के आगे नकुछ मालूम होंगी। किसी उद्यम का आम तौर पर स्वीकार ही उसे शक्तिशाली बनाता है।

दूसरे, धन-विभाग का सवाल भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। अगर यही सवाल होता कि विदेश में जाने वाले धन-प्रवाह को रोक कर देश के किसी नियत स्थान की ओर फेर देना चाहिए तो ये बड़ी बड़ी पूंजी वाली कम्पनियां खड़ी करके बिजली से चलने वाली राक्षसी मिलें लगाकर भी हो सकता था। पर धन के उचित विभाग का काम कम्पनियां और मिलों से नहीं हो सकता। मिलें तो सिर्फ धन कमाती हैं, उसे बांटती नहीं। और धन-विभाग का सवाल उपार्जन के सवाल से किसी प्रकार कम महत्त्व का नहीं है। अगर इने गिने मिल-मालिक यह अस्वाभाविक नफा प्राप्त कर अपनी तोंद बढ़ाते रहें और देश की करोड़ों गरीब जनता योंही भूखों मरती रहे तो इनसे देश का क्या लाभ हुआ? इससे तो केवल आर्थिक विषमता बढ़ जायगी। भूख और बेकारी का सवाल और भी विकट रूप धारण कर लेगा, और फलतः धनिकों और गरीबों के बीच एक ऐसा और इतने बड़े परिमाण में महायुद्ध छिड़ जायगा जिसको हमने पहले कभी न देखा होगा, और जो हमारी इस शोचनीय हालत को और भी भीषण बना देगा।

पर मेरे कहने का मतलब यह नहीं कि तमाम बड़ी बड़ी कम्पनियों को मैं एकदम तोड़ देना चाहता हूं। यह सब इतनी जल्दी नहीं हो सकता, और अगर मैं चाहूं तो भी वह मेरी शक्ति के बाहर की बात है। पर क्या जो काम ये कम्पनियां कर रही हैं वही अगर किसी ऐसे उपाय द्वारा हो सकता हो जो इनसे बहुत कम हानिकर है तो क्या आप मेरे इस कथन को मंजूर न करेंगे? यह धन-विभाग का सवाल चरखे द्वारा बहुत ही आसानी और स्वाभाविक रूप से हल हो जाता है। यही बात एक बार महात्मा गांधी ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में कही थी:—"पृथ्वी-तल पर बारिश द्वारा जितनी समता पूर्वक पानी बरसा दिया जाता है उतना मनुष्य के किसी प्रयत्न द्वारा नहीं हो सकता। न तो इरीगेशन विभाग, न कोई मानवी-नियम, न परीक्षण-निरीक्षण और न किसी अन्य मानवी साधन द्वारा वह हो सकता है। पर वही काम कुदरती बारिश द्वारा इतनी आसानी और शांतिपूर्वक किया जाता है कि उसकी पूर्णता के कारण वह हमारे ख्याल में भी नहीं आता। उसी प्रकार करोड़ों घरों में धन और काम के विभाग का काम भी चरखा उतनी ही आसानी और शांतिपूर्वक करता है जिसकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते।"

देश की शक्ति को बढ़ाते हुए उसकी संपत्ति को आसानी से और स्वाभाविक रूप से बांटने वाला सर्वोत्तम साधन चरखा ही है। साथ ही वह सम्पत्ति के विभाग को शांतिपूर्वक और अपने आप फैलाने वाला भी साधन है। और सच पूछा जाय तो न वह देश के आर्थिक रोग को दूर करने के लिए सनकी लोगों द्वारा ढूंढा हुआ अननुभूत उपाय ही है। चरखा भारत के लिए कोई नवीन वस्तु नहीं है। वह तो खेती को छोड़कर भारत का शायद सब से पुराना उद्यम है पूरी एक सदी भी नहीं हुई जब गृहस्थों के घरों में उसका निवास एक अपवाद नहीं बल्कि आम नियम सा था।

बड़े जोर के साथ कहा जा रहा है कि इन दिनों में, जब कि जिधर उधर भाफ, बिजली और पट्रोल से बड़ी बड़ी मशीनें चलती हैं और मोटे परिमाण में मनचाहा काम हो सकता है, चरखे की बात करना सरासर आर्थिक दुराग्रह मात्र है। अगर आजकल की इन समय को बचाने वाली बढ़िया मशीनों को अलग रख कर फिर उन्हीं पुराने बदसूरत साधनों को हाथ में लिया जाय तो यह आधुनिक सभ्यता पर एक महान् संकट ढाना है। इन अपूर्ण और पुराने साधनों को फिर स्वीकार करना अपने समय को व्यर्थ खोना है जब कि हम उसका उपयोग अन्य अधिक अच्छे कामों में कर सकते हैं। और अगर किसी प्रकार चरखे का पुनःप्रचार युक्ति युक्त हो तो भी इन मिलों के मुकाबले में उसका ठहरना असंभव है। भारत में ही नहीं बल्कि संसार के अन्य हिस्सों में भी इस यंत्र-युग के पहले हाथचरखे और हाथकरघे ही चलते थे। पर उनके द्वारा अधिक काम नहीं हो सकता था अतः वे अपनी स्वाभाविक मृत्यु के शिकार हो गये। यदि हम इतिहास से कुछ फायदा उठा सकते हों तो यही कहना होगा कि भारत में भी इनका यही हाल होगा। भला गंगा को लौटा कर फिर गंगोत्री भी कोई ले जा सकता है? उसीप्रकार इन दिनों में, जब कि माल को लाने ले जाने के

अधिक और समय को बचाने वाले साधन हो गये हैं, इस तार और टेलीफोन, रेल और जहाज, मोटर और विमानों के जमाने में इन छोटे छोटे स्वाश्रयी, एकान्तमय गांवों की, जो जंगलों में छिपे हुए हैं, और जिनका जीवन केवल अपने ही लिए है, बातें करना कभी न लौटने वाले सतयुग को लौटा लाने की बातें करना है।

हां, दलीलों का तांता बहुत बड़ा और भीषण है। पर मुझे वह नहीं डरा सकता। यद्यपि मैं जानता हूं कि इनमें की कितनी ही दलीलें युक्तियुक्त और सत्य हैं। पर मैं यही अनुभव करता हूं कि ये सब अपने स्थान पर नहीं। पवन-चक्कियों की दिल्लगी उड़ाने के लिए मैं नहीं निकला हूं। न भारत माता के सुंदर वक्ष-स्थल पर खड़ी हो कर धूंआ उगलने वाली इन बदसूरत चिमनियों को गिराने की मैंने प्रतिज्ञा ही ली है। मेरा उद्देश तो इससे आधा महत्त्वाकांक्षी भी नहीं है। और सचमुच मेरा पूर्व-जीवन तो जरूर आपको इस बात का यकीन दिला सकता है कि मैं यंत्रों और पश्चिमी ख्यालों तथा रीतियों का ऐसा मूढ़ और कट्टर विरोधी नहीं हो सकता। अभीतक मैं यूरोप में चार बार हो आया हूं और कम से कम आठ साल केवल इंग्लैंड में रह आया हूं। और एक प्रकार से बंगाल में पश्चिमी सभ्यता का एक अंग प्रचलित करने में साधनी-भूत होने का दावा भी करता हूं।

करीब एक सदी के पहले जर्मनी के विख्यात रसायनशास्त्री लीबिग ने कहा था कि किसी देश की सभ्यता का नाप उसमें खर्च होनेवाले साबुन पर से किया जाता है। उसने यह भी कहा था कि किसी देश की औद्योगिक उन्नति का पता उसके उत्पन्न किये सल्फ्यूरिक एसिड के परिमाण पर से लगाया जा सकता है। और संयोगवश ऐसी कई संस्थाओं से मेरा घनिष्ट संबंध भी है। उनमें से एक इतने भारी परिमाण में साबुन बनाती है, कि वह विदेशों से आनेवाले साबुन की स्पर्धा में अच्छी तरह टोक सकती है। उसी प्रकार एक दूसरी संस्था-बंगाल कमीकल एण्ड फार्मास्यूटिकल वर्क्स है, जो सल्फ्यूरिक एसिड और तज्जनित वस्तुयें पैदा करने वाला भारत का सबसे बड़ा कारखाना है। इन प्रमाण-पत्रों को आपके सामने रखकर जब मैं चरखे और हाथ करघे को हमारी दुखी मातृभूमि की आर्थिक मुक्ति का एक मात्र साधन बता रहा हूं तब तो आप इस बात को जरूर मान लेंगे कि आधुनिक यंत्र सामग्री से जो कुछ हो सकता है उसका पूरा ख्याल रखते हुए, और अच्छी आंखें खोलकर होश में ही मैं ये सब बातें कर रहा हूंगा।

(शेष फिर)

चाहते हैं कि अब वे देश का समय बातों में बीतने देना नहीं चाहते। एकदम सच्चे रचनात्मक कार्य में भिड़ जाना चाहते हैं। एक साल भर में ज्यादह से ज्यादह जितना काम हो सकता है उतना वे आगामी साल में कर डालना चाहते हैं। इसीलिए वे उस प्रस्ताव में "स्वराज्य की शीघ्र प्राप्ति" के बदले "एक साल में स्वराज्यप्राप्ति के लिए" करना चाहते थे। पर किसी कारण ऐसा न हुआ। जो इतनी महत्त्वाकांक्षा रखता है वह अपनी परिस्थिति, शक्ति, और जवाबदेहियों को जरूर जानता होगा। मैं जानता हूं कि राजगोपालाचार्य आज जो अपने अनुयायियों के छोड़ देने की धमकी को भी न मान कर अपने विचार पर इतने दृढ़ हैं तो वे अवश्य ही उसके परिणाम के विषय में सचेत होंगे पर यदि दैव दुर्विपाक से उन्होंने चक्रवर्तीजी की न मानी तो इसका परिणाम स्पष्ट है। पर मुझे अब भी आशा है कि परमेश्वर उन्हें सद्बुद्धि देगा।

महादेव हरिभाई देसाई

भविष्य

पाठकों ने अन्यत्र छपा हुआ समझौता प्रस्ताव पढ़ा ही होगा। अपरिवर्तन वादियों में उसने बड़ा तूफान मचा दिया है। स्वराज्य पक्ष के तमाम पत्र इस पर बड़े प्रसन्न हो रहे हैं। राजगोपालाचार्यजी को इस आपत्ति में देख कर उन्हें बड़ी खुशी हो रही है। सवाल यह है कि क्या दिल्ली में चाहे गलती से हो या कमजोरी के कारण हो, जो कुछ हमने किया है उसे हम असहयोग की नीति के पूर्ण स्पष्टीकरण द्वारा सुधार सकते हैं?

यों तो नेता और अपरिवर्तनवादी लोग इस बात को मानते हैं कि जो कुछ दिल्ली में हो चुका उस पर पानी न फेरा जाय। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि नौजवान लोग दिल्ली के प्रस्ताव से बहुत चमकते हैं। और कुछेक ने अपने दिलों में तो उसके भावों के विषय में बिलकुल ही भिन्न ग्रह कर लिया है। मसलन् 'दिल्ली का प्रस्ताव स्थायी व्यवस्था देता है और यहां उसको कायम रखने का मतलब ही यह होगा कि महासभा ने उस नीति को स्थायी बना ली'। पर यदि उस प्रस्ताव को गौर से देखा जाय तो मालूम होगा कि वह व्यवस्था गत चुनावों पुरती ही थी। और उसमें जो इजाजत दी गई है वह सदा के लिए नहीं। समझौता प्रस्ताव जो अन्यत्र दिया है, मालूम होगा कि उसमें कुछ लोगों को कौन्सिलों में जाने की इजाजत दी जा चुकी है इसके उल्लेख के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और झट नीचे ही दूसरे पेराग्राफ में फिर असहयोग की नीति के समर्थन का मतलब हो यह है कि अब यह बात हो चुकी है।

इस पर यह सवाल पूछा जाता है कि तो आप अहमदाबाद की अपरिवर्तनवादियों की सभा में पास किया हुआ सिरापुर वाला प्रस्ताव ही क्यों नहीं रखते? अमदाबाद के बाद परिस्थिति में क्या फर्क हो गया? फर्क यह हुआ कि देशबंधु से हम जो आश्वासन चाहते थे वह हमें मिल गया। उन्होंने यह स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि स्वराज्यपक्ष नहीं चाहता कि महासभा का कौन्सिलों से जरा भी सबन्ध हो, साथ ही स्वराज्य पक्ष कौन्सिलों में अपना काम इसी तरह से करता रहेगा जिससे रचनात्मक कार्य में कोई खलल न हो। वही इस समझौते प्रस्ताव के मसविदे में भी त्रिविध बहिष्कार के समर्थन द्वारा मिल रहा है। अब सवाल यह है कि इतने आश्वासन मिलने पर भी क्या हम दिल्ली के प्रस्ताव को कायम रखकर स्वराज्य पक्ष से समझौता नहीं कर सकते? राजगोपालाचार्य ने अपने व्याख्यान द्वारा यह बता दिया कि जहां नीति को न छोड़ते हुए सत्य पर कायम रहते हुए समझौता हो सकता है वहां उसे वे कर लेंगे।

मुझे विश्वास है कि यहां इतनी उपस्थिति है कि अगर वे चाहें तो स्वराज्य पक्ष वादियों को महासभा से निकाल सकते हैं। पर इसका फल क्या होगा। वही झगड़ा, वही अशांति, जो गया के बाद से हम देख रहे हैं। क्या अब हम उस परिस्थिति से घबरा नहीं गये? क्या अब भी हम रचनात्मक कार्य को यों ही पड़े रहने देना चाहते हैं? मुझे ख्याल है कि मेरे इस सवाल का उत्तर इस सवाल द्वारा दिया जा सकता है कि यदि हमें समझौता ही आवश्यक था तो पहले ही क्यों न वह कर लिया? मैं इसका जोर के साथ यह जवाब दे सकता हूं कि इस समझौते के लिए आज हमें कोई मूल्य नहीं देना पड़ता। अपनी शक्ति का भरोसा रहते हुए जो शांति मिलती है वह चिरस्थायी होती है। आज राजगोपालाचार्य इसी प्रकार का समझौता हमारे लिए कर रहे हैं। वे उसको इस लिए

सभापति मौलाना महम्मदअली का भाषण

महासभा का हरएक सभापति उपकार माने और अपनी अयोग्यता प्रकट करे यह तो एक प्रथा सी हो गई है। इस विशाल राष्ट्रीय महासभा का सभापति होना मेरे लिए तो कई कारणों से एक धृष्टता की बात है। उनमें से एक यह कि मैं तो महासभा का केवल बालक कहाने योग्य हूं। सन् १९१९ में महासभा से संबंध हुआ, और उसके बाद नागपुर को छोडकर अन्य किसी भी अधिवेशन को मैं देख न सका। जहां महासभा की सेवा करते करते बूढे होनेवालों को ही उसके अध्यक्ष होना चाहिए तहां यदि मेरे जैसा एक बालक इस पद को पाकर अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करे तो आप इसे विनय-विवेक तो अवश्य ही न समझेंगे।

अगर मेरी कोई योग्यता है तो वह महात्माजी के साथी की हैसियत से। आज हम बिनासेनापति के हैं। आज उनकी अनुपस्थिति हमें जितनी खटकती है उतनी शायद ही पहले खटकी हो। और इस समय उनके स्थान पर उनका एक अत्यंत नम्र तथापि प्रेमी अनुयायी बैठे यह ईश्वरेच्छा देख कर मुझे एक अरबी कवी के वचन याद आ जाते हैं।

बडे की मृत्यु के कारण हम जैसे बडे हो गये।

सर लाइड जार्ज क दिल में था कि महात्माजी को जिंदा गाड कर उन्होंने प्रजा में जो नवजीवन डाला है उसे नष्ट कर दूं। पर मुझे तो विश्वास है कि वह नवजीवन महात्माजी का सा ही अमर है। मैं इस समय उस प्राण-उग्र जीवन का आवाहन करता हूं—इस आशा से कि आपने जिस पद पर मुझे बिठाया है उसके बिलकुल अयोग्य न सिद्ध होऊं।

इसके बाद १८५७ से लेकर राजनैतिक विषयों में मुसलमानों ने जो भाग लिया उसका विस्तारपूर्वक वर्णन करके वे स्वराज्य के आदर्श को किस प्रकार स्वीकारने लगे और आखिरकार महायुद्ध के अनुभव से जाग्रत हो प्रजाकीय दृष्टि से वे राष्ट्रीय हिताहित किस तरह समझने लगे आदि बताकर मौलाना साहब ने रौलेट बिल और पंजाब के अत्याचारों के समय एकाएक देश ने महात्मा गांधी में अपना तारनहार पाया। देशविदेशों में सरकार के कष्ट समय में उसकी सहायता करने पर, उसके साथ सहयोग करने पर, आखिर वह तमाम विश्वास खोकर उन्हें उसी सरकार से किस तरह भिडना पडा आदि कहानी तो अब आबाल वृद्ध जानते हैं। १९२१ के हिंसाकाण्डों के समय महात्माजी ने जिस बात को अपनी भूलों में स्वीकार किया उसे तो सरकार और उसके सहायक जहां तहां गाते घूमते हैं। पर यदि महात्माजी रौलेट बिल का विरोध न करते और उसे जनता के सिर मढाने देते तो वह कितना बडा पाप होता? हंसी तो यह देखकर आती है कि जिस सरकार के हाथ जालियांवाला बाग के निर्दोष भाइयों के खून से लाल हो रहे हैं, वही गांधी और उसके अनुयायियों से—जो सरकार और हिंसाकाण्डों के बीच खडे रह कर काम कर रहे हैं, अहिंसा के आश्वासन मांग रही है! गांधीजी ने बम्बई और चौरी चौरा के पापों का बोझा अपने सिर ले लिया इस में भी असहयोग के इन कट्टर वैरियों को असहयोग की नैतिक महत्ता नहीं मिलती। गांधीजी की इन स्वीकृतियों को वे संसार के सामने रखकर उन्हें उनके उपदेश का फल बताते हैं। पर क्या ईसा को पकडने के लिए आये हुए योजकों पर तलवार उठाकर पीटर ने जो उनके कान काट डाले उसे वे ईसा के पर्वत-प्रवचन का फल बतावेंगे? यह तो "उलटा चोर कोटवाले डांटे" वाला हाल हुआ। तभी तो उसने अहिंसा और शान्ति के बडे से बडे प्रचारक को अशांति और हिंसाकाण्डों के लिए जवाबदार बताकर साधारण चोर डाकुओं की तरह जेल में ठूंस दिया है। मैं चुनौती देकर कहता हूं कि कोई मुझे संसार के इतिहास में से ऐसा एक दूसरा उदाहरण ढूंढ कर बता दे जिसमें इतने बडे जनसमूह ने इतने दुःख और मरहत्याओं को सहकर अपनी स्वाधीनता की प्राप्ति पर तुलकर गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय जनता ने बताई हुई शान्ति दिखाई हो।

आज असहयोग के सिद्धान्त को समझाने की आवश्यकता नहीं। पर शत्रुपक्ष ने इसकी इतनी कुत्सित भाव से खींचातानी की है कि उसे बिलकुल संक्षेप में समझा देना नितान्त आवश्यक है। यदि आदमी अन्याय के सामने होकर उसका विरोध न कर सकता हो तो कम से कम उससे अपना अंग हटाकर उस पाप में भाग लेना बंद कर दे। इसी का नाम असहयोग।

यदि जनता आज इतना कर सके तो आज ही इस सरकार की हथ-कड़ियां टूट जायं। तथापि यदि आज इतना करना असंभव हो तो इस तत्व में इतनी रचनाशक्ति है कि आदमी इसका जितना अवलंबन करेगा उतना तो वह जरूर स्वतंत्र हो जायगा। और आज जनता में जो परवशता और पामरता दिखाई देती है वह साफ अदृश्य हो जायेगी? असहयोग केवल खंडनात्मक—विघातक हलचल नहीं इसका यह ज्वलंत प्रमाण है। अगर आपको यह देखना हो कि यह राज्य किस प्रकार हमारी ही सहायता से चल रहा है तो जेलें कैसे चल रही हैं यह देख आइए। आपमें से कितने हि लोग जेलों में हो आये हैं। वहां तो कैदी ही कैदियों का पहरा करते हैं और वेही अन्य कैदियों से काम भी लेते हैं।

जो मुसलमान अपने गैर मुसलमान भाइयों के साथ एकता और सरकार के विषय में हताश हो गये हों और असहयोग में जिनका विश्वास मंद हो गया है उन्हें मैं केवल यही पूछना चाहता हूं कि क्या आप विदेशी राजकर्ताओं का आश्रय ले कर पहले की तरह अपने देशबंधुओं के साथ फिर से युद्ध छेड़ना चाहते हैं?

अंगरेज लोग तो एशिया-मायनर और इस्तंबल यूनानियों को दे देना चाहते थे पर तुर्कों की बहादुरी के कारण वे बच गये तो भी अभी जझीरत उल अरब का सवाल हल नहीं हुआ। और अगर वह हो भी गया होता तो सरकार के साथ किया हुआ असहयोग तथा देश की अन्य जातियों का साथ हम कैसे छोड़ सकते हैं। इससे एक तो जिन गैरमुस्लिम भाइयों ने हमारी सहायता की है उनके प्रति बेवफादारी हो और दूसरे यह सिद्ध हो जाय कि तुर्कस्तान और अरब के स्वराज्य के लिए तो हमें चिन्ता है पर खुद हमारे स्वराज्य की हमें परवा ही नहीं। जो सरकार धार्मिक फरमानों को मानने वालों को सजा देती है और हमारे तीर्थ-स्थानों को गैर मुस्लिमों की अधीनता में रखती है उसके साथ तो हम असहयोग ही कर सकते हैं। दूसरा भी एक रास्ता है जेहाद। पर जो लोग हमारी इस नीति की निंदा करते हैं वे या तो सरकार से डरते हैं या किसी भी प्रकार का आत्म-बलिदान करने से डरते हैं। और इसीलिए जेहाद जैसे जालिम उपाय की वे स्वप्न में भी सिफारिश नहीं कर सकते। इस हालत में हमारी अहिंसात्मक नीति को बदलने में कोई लाभ नहीं।

सरकार के साथ असहयोग न करो तो न सही पर अपने गैर मुसलिम भाइयों के साथ भी सहयोग न करना क्या योग्य होगा? इस्लाम की सेवा करते हुए महात्माजी जेल गये। उसके बाद ऐसा कौन भारी परिवर्तन हो गया जिससे हम उनके जात भाइयों की तरफ से अपना मुंह मोड़ लें। मैं जानता हूं दो साल पहले इन दो जातियों के बीच जितना भाईचारा था उतना आज नहीं। पर इसमें दोनों पक्षों का दोष होगा। मैं इन दोनों पक्षों के झगड़ों का निपटारा करने के लिए एक राष्ट्रीय अदालत की स्थापना के लिए जो सूचना आई है उसे भी ठीक समझता हूं। पर गई गुजरी बातों को भूल कर स्वराज्य के लिए यत्न करना ही सब से अच्छा मार्ग है। इन झगड़ों के कारण इतने तुच्छ होते हैं कि उनका उल्लेख कर जब हमारे शत्रु हमें स्वराज्य के लिए नालायक बताते हैं तब उनका-खंडन करना मुश्किल हो जाता है। धार्मिक प्रथाओं का उपहास तो मैं हरगिज करना नहीं चाहता, पर जब देखता हूं कि ऊंची आने योग्य लंबा बांस निकाल ले जाने के लिए सार्वजनिक रास्ते पर लटकती हुई पीपल की डाल काटने का अथवा नमाज पढ़ते समय मस्जिद के सामने से बाजे बजाते हुए जाने का हक कायम रखने के लिए लोग स्वाधीनता के युद्ध को धता बताने को तैयार हो जाते हैं, तब तो मुझे असीम दुःख होता है। मेरे ख्याल से तो इस सारे दुःख का मूल यही है कि महात्माजी की गिरफ्तारी के बाद अपनी एकता का बलिदान कर हम अपने संकुचित हित और आकांक्षाओं की साधना में लग गये। धार्मिक एकीकरण का प्रयत्न व्यर्थ है। किसी अमेरिकन ने अपने से विरुद्ध विचार रखने वाले से कहा—आप जो कुछ कहते हैं उससे मैं शब्दशः विरुद्ध हूं तथापि उसे प्रतिपादन करने के आपके हक को कायम रखने के लिए मैं मरते दम लड़ने के लिए तैयार हूं। यह सहिष्णुता हममें कब आवेगी?

जातीय विरोध की हरएक बात के लिए रामबाण उपाय हो इतना व्यापक राष्ट्रीय-एकरार नामा बनाना असंभव है। महासभा तो केवल विरोधों के कारण ढूंढ कर नेताओं को समझा कर उन्हें दूर कर सकती है। हमारे घर में कितने ही साल पहले से गोमांस बंद कर दिया गया है। कुरबानी में भी बकरे से ही काम चला लेते हैं। हम दोनों भाई अपने मुस्लिम भाइयों को भी यही सलाह देते हैं। तथापि मुझे यह कहना होगा कि भारत में कई स्थान ऐसे हैं जहां गरीब मुसलमानों को गोमांस खाना ही पड़ता है, क्योंकि उनके लिए मटन बहुत महंगा होता है। इसका उपाय तो भेड़ बकरों की वृद्धि है। स्वराज्य में यह काम लश्करी खर्च में से जो पैसा बचेगा उसके द्वारा हो सकेगा। इसके अतिरिक्त गाय रखने वाले अधिकांश हिंदू ही होते हैं। वे यदि बूढ़ी गायों को न बेचें तो भी बहुत सा गो-वध-बंद हो जाय। प्रजासत्ता में ये—कौमी मतदाता मंडल बंद हो जायं तो मेरे इतना शायद ही कोई खुश हो। पर यह समय अभी जरा दूर है। उसके पहले दो बातें हो सकती हैं। एक तो यह प्रथा डाली जाय कि जातियां दूसरी जाति के सभ्यों को चुनें, और दूसरे पृथक् मतदाता-संघों के बदले मिश्र मतदाता संघ खड़े किये जायं।

हरएक जाति में बदमाश तो होते ही हैं, और रहेंगे भी। और हमारे दुश्मन उनका उपयोग भी करते रहेंगे। पर हर उदाहरण में हिंदू या मुसलमान इनमें से कोई रहता ही है ऐसा हम हमेशा नहीं मान सकते। बहुत से झगड़े तोड़ने का उत्तम रास्ता तो यही है, जैसा कि मैं पहले से करता आया हूं, कि अपनी कौम का पक्ष न किया जाय, और न यह दावा किया जाय कि हम निष्पक्ष पंच हैं। बस अपनी कौम की गालियां सुन लेना। मुझे यह प्रसाद अब धीरे धीरे मिलने लगा है। अर्थात् अब मुझे यह विश्वास होने लगा है कि मैं देशभक्त की पदवी को धीरे धीरे पहुंच रहा हूं।

संगठन के विषय में अंत्यजोद्धार के प्रयत्न हों, इससे मैं खुश हूं। पर यह पतित कौमों की निष्काम सेवा के भाव से ही हो तो अच्छा। किसी दूसरी जाति को नुकसान पहुंचाने अथवा उससे बदला लेने का ख्याल दूर ही रहे।

संगठन में शारिरिक कसरत को भी स्थान दिया गया है। इस के विषय में भी मुझे इतना ही कहना है कि देश में सब दूर जाति-भेदहीन सार्वजनिक अखाड़े बनाये जावें। और वहां सब जातियों के नौजवान जावें।

हर जिले के शहर में हिन्दु-मुसलमान सभ्यों की एक मिश्र समिति हो, जो कौमी झगड़ों का निपटारा करे। इसी प्रकार प्रान्तीय और राष्ट्रीय समितियां भी कायम कर दी जायं। पुनः शांति रक्षा के लिए स्वयंसेवक दल—जातीय नहीं मिश्र—बनाये जावें।

स्वयं मैं तो धर्म-प्रचार का पक्षपाती हूं। मनुष्य जिस बात को सत्य मानता है उसे जबतक सारा संसार स्वीकार न कर ले तबतक उसे संतुष्ट न होना चाहिए। इसी प्रकार हिंदू भी अपने धर्म का प्रचार करने लगें तो मुझे उससे कोई विरोध नहीं। धर्मांतर स्वेच्छा से और ज्ञानपूर्वक होना चाहिए। मोपलाओं ने कायर लोगों की चोटियां काट डालीं और उन्हें भ्रष्ट किया इसे धर्मांतर नहीं

कह सकते। इसी प्रकार किसी सांसारिक दबाव के कारण किसी मनुष्य द्वारा अपने धर्म का स्वीकार करवाना भी उतना ही धर्महीन है। मैं जानता हूं कि दोनों पक्षों की दृष्टि स्वर्ग की ओर नहीं बल्कि जनसंख्या के रजिस्टर में लिखी जातियों की संख्या की ओर रहती है। अस्पृश्य जातियों को पादरी लोग ईसाई बनाते हैं, उन्हें कोई रोकता नहीं, पर जब मुसलमान प्रचारक निकलते हैं तब हिन्दु अखबारवाले कितनी गड़बड़ मचा डालते हैं? एक गृहस्थ मुझे सूचित करते हैं कि हिन्दू और मुसलमान अपने अपने प्रान्त बांट लें और उसमें अपने अपने धर्म का प्रचार करते रहें। "अगर हिन्दू अस्पृश्य जातियों को अपने में शामिल नहीं करेंगे तो दूसरे इन्हें जरूर अपने में मिला लेंगे," आदि बातें लिख लिख कर अखबार वाले जाति जाति के बीच वैमनस्य बढ़ाते हैं यह बड़े ही दुःख की बात है। एक यह भी सूचना किसीने की थी कि एक ऐसी समिति बनाई जाय जो अखबारों को इस विषय में सचेत करे, मनावे और अगर फिर भी न माने तो उनका जाहिर तौर से बहिष्कार करे।

हिन्दू-मुसलमान एकता के बाद दूसरे नंबर का काम है महासभा तथा प्रान्तीय और स्थानीय समितियों के कार्यानुसार भिन्न भिन्न स्थायी विभाग बनाना। यदि तनख्वाह पाने वाले आदमियों के अभाव के कारण महासभा द्वारा मंजूर किये गये प्रस्ताव ऐसे ही पड़े रहें तो उन प्रस्तावों का उपयोग ही क्या हुआ?

अब मैं एक ही बात कहता हूं। भारत में अब यह तो असंभव है कि हिन्दू मुसलमानों को मिटा दें या मुसलमान हिन्दुओं को मिटा दें। अब तो दोनों को हिलमिल कर ही रहना चाहिए। मुसलमानों को चाहिए कि वे अपने हिन्दू भाइयों को विदेशी आक्रमणों के विषय में निर्भय कर दें, और हिन्दुओं को चाहिए कि मुसलमानों के दिल में स्वराज्य में अपनी स्थिति के विषय में जो शंका बनी रहती है उसे निर्मूल कर दें। इस राज्य की अपेक्षा तो मैं हिन्दू राज्य को भी पसंद करूंगा। क्योंकि उसके कारण मेरे पचीस करोड़ मुसलमान भाई आजाद तो हो सकते हैं।

त्रिविध बहिष्कार में मुझे पूरी श्रद्धा है। पर जिसके कारण एक भी देशभक्त राष्ट्रीय महासभा से अलग हो जाय ऐसा एक शब्द भी मैं अपने मुंह से नहीं निकालूंगा। असहयोग में बहुत से लोगों से अल्प त्याग की आशा की है। पर मैं जानता हूं कि छोटे मोटे त्याग और आत्मबलिदान से हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता। और अगर मिला भी तो टिक नहीं सकता। स्वराज्यपक्ष के नेतागण तो बड़े से बड़े त्याग के लिए भी तैयार हैं। अर्थात् वे महासभा से अलग हो जायं ये मैं कभी नहीं चाह सकता।

गांधीजी के जेल जाने के बाद शीघ्र ही हम सविनयभंग कर सकते थे यह मेरा पहले से ही ख्याल है। और अगर मैं बाहर होता तो अपने सरदार की आज्ञा का उल्लंघन करके भी मैं तो वह युद्ध जरूर छेड़ देता। अगर ऐसा होता तो संभव है आज जिस स्वराज्यपक्ष का जन्म हमारी निराशा से हुआ है वह न होता। जो हो पर आज हम स्वराज्य पक्ष की ओर दुर्लक्ष नहीं कर सकते। अगर किसी को यह भ्रम हो कि धारासभा के द्वारा स्वराज्य मिल सकता है तो उसके उस भ्रम को दूर करके हमें स्वराज्य पक्ष को उसके क्षेत्र में कार्य-स्वातंत्र्य दे देना चाहिए। हां, उन्हें मार्ग दिखाने का भार हमें अपने सिर न लेना चाहिए।

रचनात्मक कार्य गुजरात में ठीक हुआ है। इसका श्रेय श्री. वल्लभभाई और उनके साथियों को है। गुजरात यदि सहायता न करता तो अन्य प्रान्तों की बुनी खादी यौंही पड़ी रहती। गुजरात ने सत्याग्रह भी शुरू किया है। पर दूसरे प्रान्त पिछड़े हुए हैं। बारडोली के रचनात्मक काम में ही आज तो हमें लग जाना चाहिए।

कितने ही लोग कहते हैं कि असहयोग निष्फल सिद्ध हुआ। पर सच पूछा जाय तो खुद हम अभी अपने आदर्श की भूमिका तक भी नहीं पहुंच सके हैं। यदि आप फिर से वकालत करना शुरू करना चाहें, या अदालत में जाना चाहें या अपने बच्चे को सरकारी पाठशाला में भेजने का मोह आपको हो तो एक अदने से अदना सिपाही कितने स्वार्थत्याग-कुर्बानी के लिए तैयार रहता है इसे याद कर लेना।

मैं मानता हूं कि आज खादी का सारा काम अपनी बहनें कर सकती हैं। अब दूसरे महकमों की भी शीघ्र ही व्यवस्था होनी चाहिए, और राष्ट्रीय शिक्षा के लिए एक मध्यवर्ती और अन्य प्रान्तीय मंडलों की भी स्थापना हो जानी चाहिए। पर बिना धन के यह नहीं हो सकता। अतः सालभर हमेशा स्वराज्य कोष का चंदा लेने तथा महासभा के सदस्य बनाने का काम भी अव्याहत शुरू रहना चाहिए। जिन्होंने देश के लिए कोई त्याग किया हो उनके निर्वाह की व्यवस्था भी होनी चाहिए और इसलिए महासभा का काम करनेवालों की तनख्वाहें शुरू हो जानी चाहिए।

सरकार ने शिरोमणी गुरुद्वारा समिति तथा अकाली दल को गैरकानून बताकर सारे देश को चुनौती दी है। देश को चाहिए कि वह इसका उचित उत्तर दे। नहीं तो आज सिक्खों पर यह प्रसंग है, कल और किसी कौम की बारी आवेगी। सिक्खों की कुछ सहायता करने का हमने निश्चय तो किया है पर वह काफी नहीं। सविनय भंग के लिए यह खासा मौका है। पर वह भी आसान नहीं। हमें यह मालूम नहीं कि जनता कितना दुःख सहने को तैयार है। पर यदि रचनात्मक कार्य दुगुने जोश से किया जाय तो सविनय भंग हम डट कर सकेंगे। उसके बिना स्वराज्य असंभव है।

मैंने आपके सामने बहुत बड़ा कार्यक्रम रक्खा है। स्वाधीनता के लिए आसान मार्ग तो है नहीं। पर एक मार्ग बिलकुल छोटासा है। हममें से हरएक आदमी मरने के लिए तैयार हुआ कि स्वराज्य मिल ही गया समझ लीजिए। पर यदि मरने की तैयारी न हो और रचनात्मक कार्य में हम दोष निकाला करें तो ध्येय-परिवर्तन की बातें व्यर्थ हैं। स्वाधीनता के लिए खूब परिश्रम करें, मौका आने पर मरने को भी तैयार हो जायं और इस तरह एक साल जो जान से तनतोड़ काम करने पर भी यदि सरकार न झुके तो बिस्मिल्लाह बोल कर निःशंक हो स्वाधीनता का झंडा खड़ा कर दें।

सन १९२१ में हमने अपने को तथा सरकार को एक साल का समय दिया था। पर हम काम न कर सके। अब फिर नागपुर चलिए। नागपुर में हमारे सरदार ने जो कार्यक्रम बताया था उसे पूरा करने में लग जावें। अगर हम उनके सच्चे अनुयायी होंगे तब तो हम खो गई हुई स्वाधीनता को फिर प्राप्त कर विजय के लिए-प्रार्थना-रूप में नहीं विजय प्राप्ति की घोषणा के लिए फिर हमारे पुराने जय घोष से आकाश को गूंजा देंगे—**महात्मा गांधी की जय।** (१३४ पृष्ठों के भाषण का सार)

ता. २७ को महासभा के सदस्य स्वराज्यवादियों की एक सभा हुई थी। सरकार से राष्ट्र के लिए क्या मांगा जाय इस पर विचार हुआ। कहा जाता है सदस्यों में इस विषय पर बड़ा मत-भेद था। श्री विठ्ठलभाई पटेल ने कहा—एकदम स्वराज्य मिलने की मांग की जाय। देशबन्धु ने कहा—पहले सरकार यह दिखा दे कि उसके हृदय में परिवर्तन हो गया है। आखिर यह तय हुआ कि राष्ट्रीय मांग का एक मसविदा बना कर उसे १५ जनवरी को विचारार्थ पेश किया जाय। तबतक महात्मा गांधी के छोड़ने तथा दमन को बंद करने के लिए कहा जाय। और यदि सरकार राष्ट्रीय मांग का स्वीकार न करे तो विरोध और अड़ंगा-नीति पूरी तरह काम में लायी जाय।

स्वागताध्यक्ष का भाषण

हिन्दी नवजीवन के पाठक देशभक्त कोंडो व्यंकटप्पया से अब अपरिचित नहीं। जैसा कि पहले कह दिया जा चुका है उन्होंने अपना भाषण हिन्दी में ही दिया। आन्ध्र देश के इतिहास का संक्षेप में परिचय दे कर आपने कहा कि यथार्थतः यह जिला और खासकर यह शहर ही आन्ध्र देश में महासभा के अधिवेशन के लिए सर्वोत्तम स्थान है। महासभा का अधिवेशन यहां कराने के लिए इस जिले और शहर के लोगों ने बहुत परिश्रम उठाया है। पर यह मंडप भव्य और अनुकूल होने पर भी महात्मा गांधी की अनुपस्थिति के कारण सूना और उदास मालूम होता है। उनका कारावास इस देश की—जिसकी श्रद्धा और मजबूती पर उन्हें इतना विश्वास था—कमजोरी का स्पष्ट चिन्ह है। एक साल में स्वराज्य प्राप्त न होने से कोई असहयोग को दोष नहीं दे सकता। वह तो हमारा ही दोष था। महात्माजी की गिरफ्तारी के बाद मत-भेद और कलह में दो साल नष्ट कर हमने दिल्ली में धारासभा में जानेवालों को छुट्टी दी। पर साथ ही महासभा ने देश को अपनी सारी शक्ति रचनात्मक कार्य में लगाने के लिए कहा था। पर इन चुनावों के शोर गुल के कारण हम कुछ न कर सके।

खैर अब तो चुनाव खतम हो चुके। अब दोनों दलों को एक होकर रचनात्मक कार्य में अपनी शक्तियां लगा देना चाहिए। अब यहां धारा-सभाओं का नाम भी न निकलना चाहिए। जो धारासभाओं में गये हैं अपनी परिषद् बना कर अपना कार्यक्रम निश्चित कर लें। एक सवाल और है। त्रिविध बहिष्कार। कोई इसे फिर से मंजूर कराना चाहते हैं तो कई इसमें परिवर्तन करने का आग्रह कर रहे हैं। ऐसे भी कई महाशय हैं जो इसे बिलकुल छोड़ देने का भी उपदेश करते हैं। यह सत्य है कि रचनात्मक कार्य ने आम तौर से जनता में स्फूर्ति नहीं पैदा की। तथापि जिनकी इसमें अटल श्रद्धा है ऐसे कार्यकर्त्ता इसकी पूर्ति में यदि लग जायं तो उन्हें जनता की ओर से निराश न होना पड़ेगा बल्कि वे देश में नयी जान डाल देंगे और स्वराज्य को सुलभ कर देंगे। त्रिविध बहिष्कार को छोड़ देना स्वयं असहयोग को छोड़ देना है। और जब कि महात्माजी अभी जेल में ही हैं हम तो त्रिविध बहिष्कार को छोड़ने की कल्पना पर विचार तक नहीं कर सकते।

देशभक्तजी ने अकाली आन्दोलन का वर्णन करते हुए कहा "इन्होंने अहिंसा के राजनैतिक शस्त्र होने की खासी मिसाल पेश की है। सरकार ने अपनी ओर से यह बताने का भरसक प्रयत्न किया कि वह उनकी कुछ परवा नहीं करती पर उसे इस आन्दोलन को दबाने की बराबर चिंता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आन्दोलन ठंडा जरूर होता जा रहा है। पर यदि नेता लोग आन्दोलन में श्रद्धा रखते हुए आगे बढ़ जायं तो उन्हें काफी अनुयायी मिल जावेंगे।

जो स्वराज्यवादी धारासभाओं में चले गये हैं उन्हें भी चाहिए कि वे अपने मतभेद अलग रख कर रचनात्मक कार्य में महासभा की सहायता करते जावें। यद्यपि महात्माजी को छोड़कर उनके जैसा जनता के हृदय को अपने अंकित रखने वाला हम में दूसरा कोई नहीं है तथापि ऐसे भी कई पुरुष हमारे पास हैं, जो अपने त्याग और योग्यता के बल पर जनता से काफी काम ले सकते हैं।

संसार के सभ्य राष्ट्रों में भारत के लिए कोई स्थान नहीं है। विदेशों में भारतीयों को एक कुली से अधिक सन्मान नहीं है। केनिया के निर्णय ने भारतीयों को गुलाम बताकर यह साबित कर दिया कि वे गोरों के साथ समानता के अधिकार कभी नहीं पा सकते।

जब सरकार पर खासा आक्रमण होने लगा तब वह हमें यह धमकी देने लगी कि हम सुधारों को वापिस ले लेंगे। और अगर ऐसा सचमुच हो भी जाय तो क्या ही अच्छा हो? क्योंकि महासभा की स्थापना से लेकर आज तक जो लोग हिल मिल कर कार्य करते आये हैं उनमें भेद करने वाले यही सुधार हैं।

समानता उन्हींमें हो सकती है जिनको समान स्वाधीनता हो। अतः जबतक भारत उस स्वाधीनता को प्राप्त नहीं कर लेता तबतक इसे न तो यहां और न बाहर ही समानता के अधिकार मिल सकते हैं। और यह बिना स्वराज्य के नहीं हो सकता, जो हजारों विघ्न-बाधाओं के साथ झगड़ कर स्वाधीनता प्राप्त करने के शान्त किन्तु विचार-पूर्ण निश्चय के बल पर ही प्राप्त हो सकता है।

हमारे मार्ग में सबसे भारी विघ्न आपसी कलह है। हिन्दू और मुसलमानों के झगड़ों का मूल केवल धार्मिक नहीं बल्कि आर्थिक भी है। मि. सय्यद महमद और उनके मित्रों का प्रयत्न इस विषय में सराहनीय है। मैं तो समझता हूं कि देश के तमाम नेताओं को चाहिए कि वे स्थानीय नेताओं से बातचीत कर झगड़े शीघ्र मिटा दें। वे उन्हें राष्ट्रीयता का महत्व समझा दें। साथ ही दोनों जातियों के नेता अपनी अपनी संस्थाओं में विशेष भाग लिया करें जिससे उन्हें यह मालूम होता रहे कि लोग अक्सर कहां गलती करते हैं। महासभा को भी चाहिए कि इस काम के लिए जो समिति बनाई गई थी उसकी सूचनाओं को—राष्ट्रीय एकरार नामे को—आवश्यक परिवर्तनों के साथ मंजूर कर ले।

राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने का एक बढ़िया तरीका हिन्दुस्तानी का प्रचार भी है। खादी और अस्पृश्यता निवारण पर भी खूब प्रयत्न होना आवश्यक है। महासभा की शाखाओं की गांव गांव में स्थापना और तिलक स्वराज्य कोष के लिए कोई स्थायी व्यवस्था का होना भी नितान्त आवश्यक है। साथ ही काम के सुभीते के लिए महासभा के भिन्न भिन्न विभाग-महकमे बनाकर उनमें से प्रत्येक की व्यवस्था कार्यसमिति के हरएक सदस्य के सुपुर्द कर दी जाय।

स्वागताध्यक्ष ने अन्त में मौलाना महम्मदअली को स्वागतों का उल्लेख किया और यह आशा प्रकट करते हुए कि, ऐसे सुयोग्य सभापति की अधीनता में भारत की दो महान जातियों की एकता और उसके द्वारा स्वराज्य की शीघ्र प्राप्ति सुनिश्चित है, उन्हें सभापति का आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की।

वादग्रस्त समझौता प्रस्ताव

"कलकत्ता, नागपुर, अहमदाबाद और गया में जो अहिंसात्मक असहयोग का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ उसे यह महासभा फिर से मंजूर करती है।

चूंकि दिल्ली के प्रस्ताव के कारण महासभा की त्रिविध बहिष्कार विषयक नीति के विषय में सन्देह उपस्थित हो गया है, यह महासभा घोषित करती है कि महासभा की त्रिविध बहिष्कार की नीति और व्यवहार अब भी ज्यों का त्यों है।

यह महासभा यह भी घोषित करती है कि यह त्रिविध बहिष्कार रचनात्मक कार्य का आधार है, और देश से यह अपील करता है कि वह बारडोली में बताये रचनात्मक कार्य को पूरा कर के सविनयभंग की तैयारी करे।

यह महासभा चाहती है कि स्वराज्य अपने ध्येय की शीघ्र प्राप्ति के लिए हर प्रान्तीय शाखा इस कार्यक्रम को पूरा करने की व्यवस्था में लग जाय।"

वातावरण

२५ डीसम्बर

मालूम होता है अहमदाबाद की महासभा ने कुछ रूढियां डाल दी हैं। यहांकी खादी प्रदर्शिनी को देखते ही अहमदाबाद की याद हो आती है। गांधी-नगर और शौकताबाद बांस के टट्टों के बनाये गये हैं। पंडाल का काम अभी पूरा नहीं हुआ। पर उसके रंग ढंग से वह महासभा के मंडप की अपेक्षा किसी सरकस के तंबू कासा अधिक मालूम होता है। अभी कांगरेस को दो दिन हैं। अधिकांश प्रतिनिधि तो आ गये, और शेष आजकल में आ पहुंचेंगे। महासमिति के तमाम सदस्य जो आ सकते थे, आ पहुंचे हैं। उसकी तथा विषय-निर्वाचिनी समिति की बैठकें कल से शुरू होंगी। महासभा के साथ साथ अन्य कितनी ही परिषदें भी यहां हो रही हैं। विद्यार्थियों और संगीत की परिषदें भी होंगी। यहां दो परिषदों का उल्लेख कर देना अत्यावश्यक है।

यहां हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी हो रहा है। सभापति श्री जमनालालजी बजाज हैं। तमाम अन्य भाषा भाषी प्रान्तों में राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार का यत्न हो रहा है, और यह बड़े हर्ष का विषय है कि आज ऐसा ही एक प्रान्त अपने प्रधान नगर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन करा रहा है। जितने कुछ प्रस्ताव स्वीकृत हुए हैं तमाम की मन्शा करीब करीब एक ही—हिन्दी का राष्ट्रभाषा बनाया जाना और दक्षिणी भारत में उसका प्रचार—है। तामिल और तेलगू भाषी सज्जनों का हिन्दी ही में भाषण देने का प्रयत्न बड़ा ही उत्साह को बढ़ाने वाला तथा प्रशंसनीय था।

दूसरी परिषद थी अखिल भारतीय स्वयंसेवक-परिषद। डॉ. हर्डीकर के परिश्रम और प्रयत्नों को धन्य है। परिषद में उपस्थिति खासी थी। सभापति पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपने छोटे से भाषण में स्वयंसेवक दल के संगठन के उद्देश और उसकी जवाबदेहियों को बड़ी ही मार्मिक भाषा में बताया। परिषद् चाहती है कि स्वयंसेवकों का स्थायी रूप से संगठन किया जाय। और यदि जैसी इच्छा है उसी प्रकार कार्य होता रहा तो स्वयंसेवक-दल बहुत कुछ कर दिखावेगा।

आज ही डा. राय के द्वारा खादी की प्रदर्शिनी का उद्घाटन भी हुआ। उनका भाषण खादी के पक्ष में बड़ी ही बढ़िया दलील है। इसके अतिरिक्त वह एक सहृदय मनुष्य के हार्दिक भावों का यथार्थ प्रकाशन था। खादी प्रदर्शिनी जैसे पवित्र कार्य के योग्य इनसे अधिक सुयोग्य पुरुष को ढूंढ निकालना महा कठिन था। उनका भाषण महात्माजी के महान कार्य के प्रति साभूचित आदर से लबालब भरा हुआ था।

हिन्दी-प्रचारकों को सहस्रशः धन्यवाद! इस प्रान्त में हिन्दी का कल्पनातीत प्रचार हो गया है। आपको मुश्किल से ऐसा स्वयंसेवक मिलेगा जो अपने काम पुरती हिन्दी न समझता और बोल सकता हो। लोगों के हृदय में महात्माजी के प्रति बहुत गहरा प्रेम है। बा को देखते ही कई स्त्रियों को मैंने आंसू बहाते हुए देखा है। देवदासभाई कहीं जरा इधर उधर से निकले कि जनता में खलबली सी मच जाती है। यहां की कर्णकठोर भाषा की आड़ में बहुत कोमल और प्रेम से भरा हुआ हृदय छिपा हुआ है।

* * *

२६ डीसम्बर १९२३

अपनी नीति के अनुसार किसी व्यवहार्य प्रस्ताव को गढ़ने के लिए कल शाम को अपरिवर्तनवादी कार्यकर्ताओं की एक सभा हुई थी। सभा ने यह प्रस्ताव बना भी लिया कि "दिल्ली के प्रस्ताव के अस्पृष्ट रहते हुए भी असहयोग का सिद्धान्त और नीति ज्यों की त्यों कायम है और त्रिविध बहिष्कार अब भी उस नीति का सर्वाधार है।" और उसे देशबंधु को विचारार्थ दे दिया गया। देशबन्धु ने कहा मैं पंडित मोतीलाल नेहरू से सलाह कर के अपने प्रस्ताव आपको दे दूंगा। मालूम होता है तदनुसार आज उन्होंने अपनी ओर से कुछ प्रस्ताव बनाकर श्री. च राजगोपालाचार्य को दे भी दिये। आज राजगोपालाचार्य, अलीभाई और देशबंधु की बड़ी महत्त्वपूर्ण बातचीत होती रही। बहुत संभव है कि वे किसी ऐसे नतीजे पर पहुंचें जो दोनों को मंजूर हो।

विषय निर्वाचिनी की बैठकें शुरू हो गईं। पूर्ण स्वाधीनता को ध्येय बनाने पर वादविवाद हुआ था। पर वह प्रस्ताव इस ख्याल से, कि यह ध्येय अच्छा जरूर है पर हमारी मौजूदा शक्ति को देखते हुए उसको स्वीकृत करना हास्यास्पद होगा, बहुत बड़ी संख्या द्वारा अस्वीकृत किया गया।

स्वयंसेवक परिषद ने यह प्रस्ताव मंजूर किया है कि सभापति पं. जवाहरलाल नेहरू की सूचनानुसार महासभा से यह प्रार्थना की जाय कि वह अ. भा. स्वयंसेवक—संगठन संस्था को मंजूर करके उसे यथाशक्ति आवश्यक आर्थिक तथा नैतिक सहायता दिया करे।

* * *

२७ डीसेम्बर १९२३

दोनों दलों में उस देशबन्धु के दिये समझौता प्रस्ताव पर अबतक बातचीत हो ही रही है। दिल्ली समझौते को कायम रखते हुए अहिंसात्मक असहयोग के कार्यक्रम का पुनः मजबूत रहने की घोषणा करने के प्रस्ताव का पं. सुंदरलालजी आदि अपरिवर्तन वादियों में बहुत विरोध कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि नागपुर में स्वीकृत किया गया त्रिविध बहिष्कारात्मक प्रस्ताव फिर से मंजूर किया जाय और रचनात्मक कार्य को पूरा करने के लिए खूब जोर दिया जाय।

कोई कहता है यह तो दिल्ली से भी खराब समझौता है। कोई कहता है यह तो कोई अर्थ ही नहीं रखता। एक ओर दिल्ली के प्रस्ताव को कायम रखते हो और दूसरी ओर कहते हो त्रिविध बहिष्कार अस्पृष्ट कायम है, आदि। यह बात जरूर है कि यहां अपरिवर्तन-वादियों की संख्या बहुत अधिक है और यदि वे चाहें तो अपने मन की कर सकते हैं। पर शक्ति होते हुए भी प्रतिपक्षी के साथ रियायत करने में ही सच्चा भूषण है। पर जो लोग इस प्रस्ताव से असंतुष्ट हैं, इस बात का ख्याल नहीं करते। वे सब श्री. राजगोपालाचार्य से उनकी झोंपड़ी में वादविवाद कर रहे हैं। राजगोपालाचार्य सब को कह रहे हैं कि यद्यपि इसमें स्वराज्य-पक्ष के साथ कुछ रियायत कर दी गई है तथापि हमारा सिद्धान्त तो ज्यों का त्यों है। उलटे वह देश के सामने हमारी शक्ति को बढ़ाता है। इस पर भी जो लोग देहली के प्रस्ताव वाले पैराग्राफ से असंतुष्ट हों वे उसके पक्ष में अपना मत न दें। मैं हरएक पैराग्राफ के लिए अलग अलग मत गिनवाऊंगा। और मैं यह भी कोशिश करूंगा कि सारा प्रस्ताव एक न समझा जाय बल्कि अलग अलग प्रस्ताव समझें जाय। इसमें कोई शक नहीं कि राजगोपालाचार्य को अपने मत पर दृढ़ विश्वास है। तथापि अपरिवर्तन वादियों के मतभेद को देखते हुए परिस्थिति जरा गंभीर ही मालूम होती है।

आज मौलाना शौकत अली के सभापतित्व में अखिल भारतीय खिलाफत परिषद का अधिवेशन भी शुरू हो गया। (संवाददाता)

मांगलिक महासभा

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रतिका ,, -)।
विदेशों के लिए ,, ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक २१

सम्पादक—हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, पोष वदी ३०, संवत् १९८०
रविवार, ६ जनवरी, १९२४ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

खादी का संदेश

(गतांक से आगे)

पर इस विषय में तो मैं महात्माजी की अपेक्षा अधिक अच्छी परिस्थिति में हूं। उन्हें तो टीकाकारों ने यह कह कह कर कि आपने तो यंत्र-सामग्री के खिलाफ धर्म-युद्ध शुरू कर दिया है, परेशान कर रक्खा था। पर इस विषय में उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया था कि मेरा व्यक्तिगत आदर्श चाहे जो हो, पर मैंने यंत्र-सामग्री के साथ जेहाद नहीं छेडा है। उन्होंने लिखा है:—

क्या आप प्रगति की घडी के कांटे पीछे करना चाहते हैं? क्या आप चरखे और हाथ-करघे को मिलों का स्थान देना चाहते हैं? क्या आप रेल बंद कर के उसका स्थान मामूली बैल गाडी को देना चाहते हैं? क्या आप यंत्र-सामग्री को बिलकुल नष्ट ही कर डालना चाहते हैं? "आदि सवाल मुझसे कई समाचार-पत्रवालों और सवाल-लेखकों ने पूछे हैं। इसपर मेरा उत्तर है:—यदि यंत्र सामग्री नष्ट हो गई तो मैं उसके लिए शोक न करूंगा और न उसे कोई विपत्ति ही समझूंगा। पर आज कर यंत्र-सामग्री के खिलाफ ही मैंने कोई प्रतिज्ञा नहीं की है। अभी तो सिर्फ मैं इतना ही करना चाहता हूं कि मिलें देश की मांग को पूरा नहीं कर सकतीं। अतः उस न्यूनता को दूर करें। विदेशों में कपडे के लिए जो करोडों रुपये हम हर साल भेजते हैं, उन्हें बचा कर देश में समतापूर्वक उसका बंटवारा करें। और यह मैं तबतक नहीं कर सकता जबतक देश अपने फुरसत के समय में चरखा कातने नहीं लग जाता।"

सचमुच इस प्रतिस्पर्धा के सवाल का तो हमें डर ही नहीं है, यदि हरएक परिवार अपना कपडा खुद बनाने लग जाय।

यदि खादी कोई बाजारू वस्तु न समझी जाय तो मिलों के बने सस्ते कपडे के साथ प्रतिस्पर्धा करने का कोई सवाल ही न रहेगा।

हम तो उसे एक बिलकुल घरेलू वस्तु बनाने जा रहे हैं। जैसे खाना घर में ही पकाया जाता है, कोई उसे बाजार में लेने के लिए नहीं जाता, ठीक इसी प्रकार कपडे का भी इन्तजाम किया जाय। यदि ऐसा किया गया तो बेचने-खरीदने, कीमत और बढाचढ़ी का सवाल ही नहीं रहेगा। अभी कपास की खेती सब जगह नहीं होती। इसलिए पहले-पहल तो कपास खरीदना पडेगा। पर आगे चल कर हरएक कुटुंब अपने जरूरत लायक कपास अपने अपने घर के आंगन में ही पैदा कर लिया करेगा, उसे कात लेगा और या तो खुद बुन लेगा या गांव के जुलाहे से नाम-मात्र की बुनाई दे कर बुनवा लेगा। अगर इस प्रकार किया जाय, कम से कम अपने रोज पहनने का मामूली कपडा भी हरएक परिवार बना लिया करे, तो बेचने-खरीदने और प्रतिस्पर्धा का सवाल ही बात की बात में अदृश्य हो जायगा।

हां, यदि अधिक सूत तैयार हो जाय और उसका कपडा बुनवा लिया जाय तो वह बाजार में बेच दिया जा सकता है। खरीदने वालों की कभी न्यूनता न रहेगी। क्योंकि ऐसे लोग तो हमेशा रहेंगे जिन्हें कातने और बुनने के लिए काफी समय नहीं मिलेगा, जो अधिक फायदेमंद कामों में लगे रहते होंगे। इस समय मुझे एक आक्षेप की याद हो आई जो खादी के हिमायतियों पर अक्सर किया जाता है। यही कि—हम यही चाहते हैं कि हरएक मनुष्य चौबीसों घंटे कांता ही करे। लंदन का विख्यात साप्ताहिक पत्र 'नेशन' जो अपने उदार विचारों के लिए प्रख्यात है, लिखता है:—

"अब फिर लौट कर चरखे को संभालना तो अवनति है। और जब हरएक नौजवान को अपने हाथों और पैरों से वह काम करने के लिए बुलाया जाता है जो यन्त्रों द्वारा एक घंटे भर में हो सकता है और सो भी ऐसे समय जब कि उनका वह समय किसी विश्वविद्यालय में रह कर अध्ययन करने का होता है तब तो यह प्रयत्न केवल दयनीय ही नहीं बल्कि उपहास्य भी मालूम होता है।"

यथार्थतः यदि हर एक नौजवान को ऐसा काम करने के लिए सचमुच बुलाया जाय तो यह आक्षेप उचित होगा। पर वास्तव में ऐसा नहीं हुआ है। जब किसी नये आन्दोलन को चलाया जाता है तब यह सुशिक्षितों का ही काम होता है कि जबतक आम जनता में वह काफी तौर से फैलकर जड नहीं पकड ले तबतक उसे वे उठा रक्खें। वे इस नई चीज को चला लें। ऐसा करने से आम जनता उस कार्य को नीच और खराब नहीं समझेगी। और इसीलिए इस आन्दोलन के आरंभ में भी सब को—विद्यार्थी, वकील, व्यापारी आदि को, अपने समय में से कुछ समय कांतने में लगाने के लिए कहा गया था। अब इसकी व्यावहारिकता पर हम आवेंगे तब हमें मालूम हो जायगा कि चरखे का यह सन्देश खासकर हमारे किसान और मजदूरों के लिए—

भारत के उन करोड़ों पुत्रों के लिए महत्त्व रखता है जिनके पास उसके लिए काफी समय है। और जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूं यह जो कुछ फायदा पहुंचता है यद्यपि वह धनिकों के लिए एक न-कुछ बात है तथापि उनके लिए तो वह पेटभर भोजन देता है। और भारत के दरिद्रों के लिए तो वह एक तरह का वरदान—मुक्ति ही है।

जब चरखा हर घर में अपना पुराना स्थान प्राप्त कर लेगा, जब हर कुटुम्ब अपने काम के लायक कपड़ा तैयार कर लिया करेगा तब न तो कहीं कपड़े की महंगी का सवाल रहेगा और न प्रतिस्पर्धा का भय।

तथापि जिन लोगों का विश्वास अब भी मिल और कारखानों में हो वे अपने विश्वास के अनुसार काम करने के लिए स्वतंत्र हैं। पर इसके द्वारा हमारे सवाल को वे केवल आधा हल कर पावेंगे। धनविभाग का सवाल ज्यों का त्यों रह जायगा। इतने पर भी यदि वे चाहें तो आगे बढ़ें। पर केवल बातों से ही इतने मिल-कारखाने नहीं बन सकते। उसके लिए तो रुपयों की खासी टकसाल चाहिए और उनके संगठन के लिए अपरिमित समय। तबतक देश ठहर नहीं सकता। हमें कपड़े की जरूरत के सवाल को जितनी शीघ्रता से हो हल करना है। और यह बगैर चरखे के नहीं हो सकता। ऊपर लिखे हुए अन्य कारणों पर यदि न भी विचार किया जाय तो इस व्यावहारिक दृष्टि से भी चरखे को अपना लेना बहुत जरूरी है।

मित्रो, अब आपको यह यकीन हो गया होगा कि यह चरखे की पुकार असमय नहीं है। उपहास कर के या हंसकर आप इसे उड़ा नहीं सकते। अब संसार में यंत्रयुग के लाभों के विषय में भी संदेह उत्पन्न होने लग गया है। यंत्र-सामग्री जो इस बीसवीं सदी में मनुष्य के मालिक का स्थान लेने जा रही थी वही अब धीरे धीरे अपने उचित स्थान पर आ रही है। अब उसकी बुराइयां मनुष्य के ख्याल में आने लग गईं। फिर पुकार उठने लगी कि इन शुष्क, निर्जीव, जड़ यंत्र-राक्षसों से परमात्मा रक्षा करे। "चलो आदमी की ओर ही चलें, अपने देहात ही भलें"। अब तो शुष्क से शुष्क अर्थशास्त्री भी उन शांतिमय देहात में अपने कुटुम्ब के बीच आराम से बैठ कर काम करने वाले देहाती कारीगर के गीत गाने लग गया है। इस समय मुझे इंग्लैण्ड के प्रधान सचिव मि. बाल्ड्विन के वे शब्द याद आ रहे हैं जो उन्होंने गृहोद्योगों की रक्षा को लक्ष्य कर के कहे थे। सुनिए:—

"सरकार न केवल मनुष्यों को देहात में ही रखना चाहती है बल्कि वह उन छोटे छोटे किन्तु पुराने घरेलू धन्धों को—लोहार, चाक दुरुस्त करनेवाला, आदि को—विनाश से बचाने के भी लिए कुछ करना चाहती है —"

अगर इंग्लैंड में यह स्थिति है तो भारत के प्राचीन गृहोद्योगों का नाश हम कैसे देख सकते हैं? अर्थशास्त्र के शुष्क जड़ सिद्धान्तों के लिए हम अपने सर्वस्व की आहुति नहीं दे सकते।

उस दिन मैं एक अमेरिकन अखबार पढ़ रहा था। उसमें लिखा था कि न्यूयार्क बहुत घना बसा हुआ शहर है। वहां पर मजदूरों के बच्चों का वजन देहात के बच्चों की अपेक्षा १५ पौंड कम होता है। इसका कारण शहर का कृत्रिम,—गंदा, वातावरण है। यह निश्चित रूप से समझ लीजिए कि जहां जहां इस यंत्र-सामग्री का प्रभाव बढ़ेगा वहां बेघरबारी, निर्धनता, लाचारी, नीचता, और घोर नैतिक अधःपात गरीब मजदूरों के पीछे लगा ही हुआ है। आधुनिक सभ्यता की बुराइयों के इस भाग का तथा हाथ की बनी चीजों की सजीवता और भव्यता का वर्णन डा: आस्टिन ने बड़े ही अच्छे शब्दों में किया है। विषय वही हमारा हाथ के सूत का बुना कपड़ा है:—

"अगर हम यंत्रों का बुना कपड़ा पहनते हैं तो २-३ साल अधिक नहीं चलता। पर यदि हाथ के कते सूत का हाथ-करघे पर बुना कपड़ा पहनते हैं तो वह आधी जिंदगी निकाल देता है। दूसरे इससे एक प्राचीन गृहोद्योग का पुनरुद्धार हो जायगा। राष्ट्रीय पोशाक के सवाल को एक व्यावहारिक सवाल बनाने के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। हमें यह विचार करने की आदत डाल देनी चाहिए कि जिस किसी चीज को हम खरीदें वह किस जगह और कैसे बनी है, यह जानें। अगर हम ऐसा करें तो हमें हाथ की बनी चीजें खरीदने में अधिक आनंद मालूम होगा। हाथ की बनी चीज में एक प्रकार की सजीवता होती है, जो जड़, भद्दी काली मशीन की बनी चीजों में नहीं हो सकती।"

डॉ. साहब ने बहुत ठीक कहा है। हमें यन्त्रों की बीमारी हो गई है। जबतक हम इस बीमारी को—इस आर्डर भेजने की बीमारी को—दूर कर के अपनी आवश्यकताओं को अपने आप पूरा न करने लगेंगे तबतक न तो हमारी आर्थिक परावलंबिता दूर हो सकती और न राजनैतिक। यह मानसिक लकवे की बीमारी दूर होनी ही चाहिए। इसीका नाम मानसिक गुलामी है। इसका नाश अवश्य करना चाहिए।

हमें कई बार कहा गया है और कहा जायगा कि भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। पर यह बात सरासर झूठ है। वह जिस प्रकार कृषिप्रधान है उसी प्रकार उद्यम-प्रधान भी था। पर बड़ी निर्दयता के साथ उसे इस तरह लाचार बना दिया गया कि वह अपनी कृषि की आमदनी पर ही गुजर करे। महारानी विक्टोरिया के जमाने के साहित्य में जब हम इन निर्दयताओं का वर्णन पढ़ते हैं तब हमारा हृदय दहल उठता है। इंग्लैंड ने भारत के उद्यमों को बढ़ाने की अपेक्षा उनको नष्ट करने में अपनी सारी शक्ति और कौशल लगाया। उन बातों को फिर याद आते ही हृदय दुःख से भर आता है। और वही नीति आज भी वह बराबर अख्तियार करता चला आया है।

अब मैं भारत के पढ़े-लिखों से पूछता हूं कि क्या अब भी आप उसी लैंकेशायर के बने कपड़े पहनना पसंद करेंगे जिसने भारत के उद्योगों को नष्ट किया और जो उसे दिन ब दिन दरिद्र लाचार, दीनहीन बनाता जा रहा है? क्या अब भी ये लैंकेशायर के कपड़े आपको बदन में चुभने नहीं लगे? मैं ये शब्द लैंकेशायर के प्रति द्वेष-भाव से नहीं कहता, बल्कि उन करोड़ों देश-भाइयों के प्रति मेरे हृदय में जो प्यार है वही ये शब्द मेरे मुंह से कहलाता है—वे करोड़ों भाई जिनको यदि आप भारत के पढ़े-लिखे लोग हाथ का कता-बुना कपड़ा पहनने लग जावें तो पेट-भर रोटी मिलने लग जाय। क्योंकि आपको देख देख कर देश के अन्य लोग भी विदेशी कपड़े को छोड़ देंगे। और इससे अवश्यमेव हमारी औद्योगिक, आर्थिक और फलतः राजनैतिक मुक्ति का नवयुग भी शुरू हो जायगा।

यह भाषण समाप्त करते हुए मेरी आंखें यरवडा जेल की तरफ जा रही हैं—जिसमें आधुनिक भारत के देशभक्त साधु का शरीर, उस पवित्रतम और श्रेष्ठ आत्मा का भौतिक कलेवर, उस महापुरुष का देह, जिसने भारत के मुक्ति-मंत्र को देखा और उसका अनुष्ठान किया—कैद है। यद्यपि उनका वहां रहना हमारे लिए बड़े ही दुःख और लज्जा की बात है तथापि हमें यह विश्वास है कि उसकी आत्मा सदा हमारे साथ रहेगी और जब जब हमें अकर्मण्यता की नींद के द्वारा घेरे हुए देखगी फौरन् हमें जगा कर अपने कर्तव्य-पथ में अग्रसर होने को उत्साहित करेगी। स्वाधीनता की खोज में वह आत्मा और उसका उज्ज्वल उदाहरण हमें आगे बढ़ावे, और हम उसके योग्य बनें।

महात्मा गांधी की जय।

महासभा के प्रस्ताव

समझौता-प्रस्ताव

यह महासभा कलकत्ता, नागपुर, अहमदाबाद गया और दिल्ली में स्वीकृत अहिंसात्मक असहयोग के प्रस्तावों को फिर से मंजूर करती है। चूंकि दिल्ली में स्वीकृत धारासभा-संबन्धी प्रस्ताव के कारण जनता को यह संदेह हो गया है कि कहीं महासभा ने अपनी त्रिविध-बहिष्कार-विषयक नीति में परिवर्तन तो नहीं कर डाला, यह महासभा घोषित करती है कि महासभा त्रिविध-बहिष्कार के सिद्धान्त और नीति पर ज्यों की त्यों कायम है। यह महासभा आगे यह भी घोषित करती है कि उक्त सिद्धान्त और नीति ही रचनात्मक कार्य की नींव है और जनता से यह अपील करती है कि बारडोली में जो रचनात्मक कार्य मंजूर किया गया उसे तुरन्त पूरा करके सविनय भंग के लिए तैयार हो जाय।

यह महासभा तमाम प्रान्तीय महासभा-समितियों को आदेश करती है कि वे अपने ध्येय की शीघ्र प्राप्ति के लिए जितनी जल्दी हो सके ऐसे कार्य के करने की व्यवस्था में लग जायं।

श्याम बाबू का संशोधन

यह कांग्रेस महात्मा गांधी द्वारा प्रवर्तित अहिंसात्मक असहयोग के कार्यक्रम को जिसमें तीनों बहिष्कार भी शामिल हैं, स्वराज्य प्राप्ति का एकमात्र उपाय मानती हुई उसका अनुयायी होने की पुनः घोषणा करती है और जनता से इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए इन कार्यों को करने का अनुरोध करती है—(१) जनता पर कांग्रेस का प्रभाव बढ़ाने के लिए देश के सार्वजनिक जीवन का कांग्रेस की ओर से संगठन करना, कौन्सिलों की ओर उदासीन भाव रखना, (२) सब झगड़ों के तस्फिये के लिए पंचायतें कायम करना और सरकारी अदालतों का उपयोग न करना, (३) देश के नवयुवकों की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय विद्यालय खोलना और सरकार के मातहत स्कूल कालेजों में पढ़ने से उनका मन हटाना, (४) खद्दर की उत्पत्ति और व्यवहार बढ़ाना, (५) छुआछूत को दूर करना, (६) विभिन्न जातियों के सब पारस्परिक मामलों में अहिंसा के सिद्धान्त का पूर्णतया पालन कर राष्ट्रीय एकता स्थापित करना, और हिन्दू मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिक्ख आदि में भाईचारा पैदा कराना। (यह गिर गया।)

अकाली संग्राम

सरकार ने शिरोमणि गुरुद्वारा-प्रबंधक समिति तथा अकाली-दल पर जो आक्रमण किया है उसे यह महासभा तमाम भारतीय जनता की अहिंसामय हलचलों के लिए स्वतंत्रता-पूर्वक मिलने-जुलने के हक पर महान् आघात और देश के लिए एक चुनौती समझती है। महासभा को यह यकीन हो गया है कि सरकार की इस चाल का मतलब स्वाधीनता के मार्ग में रोड़े अटकाना है। अतः उसने सिक्खों की सहायता करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। यह महासभा इस देश की तमाम हिन्दू-मुसलमान, ईसाई, और पारसी जनता को यह आदेश करती है कि सब जातियां मिल कर सिक्खों को इस संग्राम में धन-जन आदि हर तरह की सहायता करें। यह महासभा महासमिति को यह अधिकार देती है कि इस प्रस्ताव को कार्य रूप में परिणत करने के लिए जो भी कुछ करना पड़े वह सब करे।

केनिया के हिन्दुस्तानी

इस मत पर कायम रहते हुए कि जबतक हम स्वराज्य हासिल नहीं कर लेते प्रवासी भाइयों के दुःखों और कष्टों का पूरी तरह अंत होना असंभव है, यह महासभा श्रीमती सरोजिनी नायडू, और श्री ज्यार्ज जोसेफ को केनिया में शीघ्र ही होनेवाली पूर्व आफ्रिका वाली प्रवासी भारतीयों की महासभा में अपनी ओर से सम्मिलित होने के लिए भेजती है और साथ ही केनिया की परिस्थिति का निरीक्षण और अध्ययन कर के वहां के भारतीयों को अपने अपमानों तथा और दुःखों को मिटाने के लिए किस तरह झगड़ना चाहिए, आदि बातों पर सलाह देने का भी उन्हें अधिकार देती है।

मजदूरों का प्रश्न

यह देखते हुए कि संसार के भिन्न भिन्न भागों में भारत के मजदूरों के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया जाता है, यह महासभा भारत की जनता से यह सिफारिश करती है कि वह इस प्रश्न पर विचार करे कि अब विदेशों में यहां से मजदूर भेजना बंद किया जाय या नहीं?

यह महासभा कार्य-समिति को यह आदेश करती है कि वह एक ऐसी छोटी-सी समिति बनावे जो मजदूरों को बाहर भेजने के सवाल के तमाम पहलुओं पर विचार करे और महासमिति में अपनी रिपोर्ट पेश करे।

खादी-मण्डल

यह महासभा निर्णय करती है कि तमाम देश भर में खादी का कार्य करने तथा संगठन करने के लिए महासमिति की देखरेख में नीचे लिखे सदस्यों का एक खादी-मंडल बनाया जाय (अध्यक्ष) श्री जमनालाल बजाज (मंत्री) श्री शंकरलाल बेंकर और (सदस्य) श्री वल्लभभाई पटेल, श्री मगनलाल गांधी श्री. वेलगामवाला और मौलाना शौकतअली।

विधायक कार्यक्रम के लिए संगठन

कार्य-समिति कांग्रेस के भिन्न २ कार्यों के लिए अलग अलग विभाग के संबन्ध में योजना तैयार करे जिससे इन विभागों की देखभाल और नियंत्रण में विधायक कार्यक्रम के भिन्न भिन्न अंश अधिक योग्यता, शीघ्रता और बिना रुकावट के कार्यान्वित किये जा सकें। कार्य-समिति इस योजना को महासमिति में पेश करे।

कार्यसमिति राष्ट्रीय वैतनिक कार्यकर्ताओं के सम्बन्ध में भी एक योजना तैयार करे जो भिन्न भिन्न विभागों का कार्य करेंगे और सेन्ट्रल और प्रान्तीय सेक्रेटरियट रखेंगे।

स्वयं सेवक-संघ

अ० भा० स्वयंसेवक-संगठन का संबन्ध कांग्रेस अपने साथ कर के तथा उसे अन्दरूनी मामलों की व्यवस्था में स्वातन्त्र्य रखते हुए अपनी निगरानी में उसका नियन्त्रण किया करे।

राष्ट्रीय ठहराव

'राष्ट्रीय ठहराव' की शर्तों पर विचार कर के यह निर्णय किया जाता है कि यह प्रश्न फिर (देहली में नियुक्त डा. अनसारी तथा लाला लजपतराय की) उपसमिति के सिपुर्द किया जाय और सरदार मेहताबसिंग के जेल में होने के कारण उनकी जगह मुबदला के सरदार अमरसिंग नियुक्त किये जायं। यह समिति इस सवाल पर सब के साथ चर्चा कर के लोगों के आक्षेपों और टीका-टिप्पणियों पर विचार करे तथा मार्च के अन्त तक महा-समिति के सामने अपनी रिपोर्ट पेश करे।

श्री विनायक सावरकर का कारावास

यह महासभा श्री विनायक दामोदर सावरकर को अभी तक जेल में रखने के लिए अपनी सख्त नापसन्दगी जाहिर करती है और उनके भाई डाक्टर ना० दा० सावरकर तथा उनके अन्य कुटुंबियों के प्रति अपनी हमदर्दी प्रकट करती है।

महासभा की भाषा

महासभा के संगठन में यह परिवर्तन किया जाता है कि महासभा के कामकाज की भाषा जहांतक हो सके हिन्दुस्तानी रक्खी जाय।

मौलाना शौकतअली का भाषण

[कोकनाडा खिलाफत-कान्फ्रेंस के दसवें अधिवेशन के अवसर पर सभापति मौ० शौकतअली ने जो भाषण किया उसका आशय इस प्रकार है:]

मौलाना शौकतअली साहब ने इस वर्ष की कान्फ्रेंस का सभापति चुने जाने पर हर्ष प्रकट किया। कहा कि मैं न तो कोई बड़ा उलमा हूं और न राजनीतिज्ञ ही हूं, लेकिन मुसलमानों के भावों को मैं जितना जानता हूं उतना और कोई सहधर्मी नहीं जानता। आपने बताया कि ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध प्रत्येक मुसलमान के क्या भाव हैं? प्रत्येक मुसलमान ग्रेटब्रिटेन को जानता है। पृथ्वी के किसी भाग के मुसलमान से पूछा जाय कि इसलाम का सबसे बड़ा दुश्मन कौन है तो आपको यही उत्तर मिलेगा कि ग्रेटब्रिटन अंग्रेजी राष्ट्र।

इसके बाद मौलाना शौकतअली साहबने कहा कि सरकार सब खिलाफत नेताओं को, उनके हिन्दू समर्थकों को कैद कर सकती है और उन्हें मार भी डाल सकती है। पर वह इस सबसे खिलाफत आन्दोलन को मार नहीं सकती। (हर्षध्वनि) इस प्रकार के सब प्रयत्नों से साम्राज्य का नाश होगा। मैं एक बार फिर दोहराता हूं कि पाक जमीन की १ इंच बल्कि एक जर्रा भी संसार के सब साम्राज्य अपने अधिकार में नहीं रख सकते। ब्रिटिश सरकार को चाहिए कि वह अपनी विदेशी नीति पर पुनः विचार करे और उसमें परिवर्तन करे, नहीं तो कोई मुसलमान शांत नहीं होगा। आज मैं सरकार और साम्राज्य का दुश्मन हूं और जब मैं सरकार से अपना कदम पीछे हटाने को कहता हूं तो मैं उसे जहर नहीं देता, बल्कि मैं ऐसी सलाह दे रहा हूं जिससे ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा हो सकेगी और उसका राष्ट्रीय अस्तित्व कायम रह सकेगा।

मौलाना शौकतअली ने कहा कि सरकार कहती है कि मैं और मेरे भाई को न तो इसलाम से प्रेम है और न हम देशभक्त हैं लेकिन हमें ब्रिटिशों से घृणा मात्र है। मैं सरकार को याद दिलाना चाहता हूं कि मैंने १७ बरस तक अफीम-अफसरी की सरकारी नौकरी की है। मेरी जाति भी अभीतक बहुत राजभक्त रही है और हिन्दुओं के अधिकारों पर कुठाराघात भी हमारी जाति ने किया है। इतना ही नहीं बल्कि हमारी जाति ने अन्य मुसलिम देशों को गुलाम भी बनाया है। वे राजभक्त मुसलमान अब ब्रिटिशों को समझ गये हैं और मैं निर्भ्रान्त रूप से कह सकता हूं कि सर मुहम्मद शफी, सर अब्दुल रहीम और अन्य सरकार के मुसलिम सलाहकार भी खिलाफत की मांग के संबंध में पूरे तौर से सहमत हैं।

सीमा की नीति

इसके बाद मौलाना शौकतअली ने कहा कि मुसलमानों का मुतालिबा है कि संपूर्ण जजीरतुल अरब अरबों और आम तौर से मुसलमानों के लिए छोड़ दिया जाय। आपने इसके बाद कहा कि ब्रिटिशों का यूरोपियन या अन्य यूरोपीय जातियों से अच्छा संबंध नहीं है और हिन्दुस्तान के मुसलमान उन सभी लड़ाइयों का विरोध करेंगे जो किसी मुसलिम देश के साथ की जायंगी। आपने खास तौर से अफगानिस्तान का जिक्र किया और ब्रिटिशों के कार्यों की निन्दा की। करोड़ों रुपये सीमा की लड़ाई में व्यर्थ खर्च किये गये हैं, अफगानिस्तानियों के घरों पर और उनकी स्त्रियों-बच्चों पर बम के गोले फेंके गये हैं। संपूर्ण सीमा-सम्बन्धी-नीति पर पुनः विचार होना चाहिए। अफगानियों को स्वतंत्र जीवन बिताने दिया जाय और उनके कार्य में हस्तक्षेप न किया जाय। किसी प्रकार की धमकी देने या लड़ाई करने से समस्या हल नहीं हो सकती। मैं सरकार से कहता हूं कि वह अफगानिस्तान में देशबन्धु दास और महम्मदअली जैसे शांति-संस्थापकों को भेजे जिससे वे स्थायी शांति स्थापित कर सकें। हर हालत में मैं एक बात कह देना चाहता हूं कि पास के मुसलिम देशों से अगर लड़ाई लड़ी जाय तो वह ब्रिटिश सैनिकों से और ब्रिटिश खजाने के खर्च से लड़ी जाय।

श्री आगाखां का पत्र

श्री आगाखां के पत्र के प्रकाशित होने से जो विवाद उपस्थित हो गया था उसके सम्बन्ध में मौलाना शौकतअली ने कहा कि मैं श्री अमदअली की ईमानदारी पर शक नहीं करना चाहता। लेकिन मेरी सलाह है कि धैर्य और बुद्धि से काम लिया जाय। खिलाफत

सम्बन्धी बातों की जांच करने के लिए हमारा डेपुटेशन शीघ्र ही अंगोरा तथा अन्य स्थानों को जा रहा है। श्री अगाखां का केवल अगर ठीक भी हो तो वह हानिकर है, क्योंकि उससे हिन्दुस्तान का वास्तविक भाव नहीं प्रकट होता। मैं समझता हूं कि अरबों को ब्रिटिशों ने कायरी बना दिया है। मैं अरबों को विश्वास दिलाता हूं कि मुसलमानों को अरब से और अरबवासियों से प्रेम है। पाक जमीन सारे संसार के मुसलमानों की है।

लेकिन खिलाफत-आन्दोलन को सफल बनाने के लिए हमें जगना चाहिए। मैं समझता हूं कि पुनः जागृति हो रही है। यही काम करने का समय है। काम करने वालों की आवश्यकता है। उन्हें खिलाफत-कोष से सहायता मिलनी चाहिए जिससे वे अपना संपूर्ण समय और शक्ति लगा सकें। आपने कहा कि कोष के सम्बन्ध में हमारे शत्रु नीचता के साथ आलोचना करते हैं। मैं आशा करता हूं कि शत्रुओं के ऐसे कार्यों से हम अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होंगे।

जातिगत झगड़े

जातिगत झगड़ों के सम्बन्ध में मौलाना शौकतअली ने कहा कि हिन्दू-संगठन और शुद्धि-आन्दोलन के लिए यह समय ठीक नहीं था; पर आपने इस बात पर खेद प्रकट किया कि मुसलमान लोग इस प्रकार परेशान हो गये और घबरा गये और यहांतक कि 'जमैयतुल उलमा' भी परेशान हो गयी। हमे किसी प्रकार भी खिलाफत के कार्य से अपना मन नहीं हटाना चाहिए। मैं खुद गोहत्या को पूर्णतः बन्द कर देने का पक्षपाती हूं। लेकिन यह तभी हो सकता है जब हमारी राष्ट्रीय सरकार हो जिससे हम एक-दो करोड़ बकरियों का नस्ल बढ़ाने के लिए अलग रख सकें।

अन्त में आपने अपने जातिभाइयों से अनुरोध किया कि वे पाक जमीन को स्वतन्त्र करने के लिए संघटन करें और आपने ब्रिटिशों से भी अपील की कि वे अपनी कार्यप्रणाली में सुधार करें जिससे अमेरिका और आयरलैण्ड जैसी स्थिति न होने पावे।

मांगलिक महासभा

प्रास्ताविक

कोकनाडा का महासभा-अधिवेशन हर तरह और हर अर्थ में मांगल्य-सूचक था। महात्माजी के कारावास के बाद हुई गया महासभा में राष्ट्र ने अपना हृदय व्यक्त कर के भारी बहुमति से महात्माजी के सिद्धान्तों पर अपनी श्रद्धा प्रकट की थी। पर अश्रद्धा ने भी अपनी करामात उसी समय दिखाई। महासभा में दो दल हो गये। देहली तक दोनों बढ़ भर लड़े। देहली महासभा ने दिखाया कि देश आपस की लड़ाई से थक रहा है। महात्माजी के सिद्धान्तों पर कायम रह कर उसने उन लोगों को धारासभाओं में जाने का रास्ता खुला कर दिया, जो वहां जाये बिना देश का उद्धार असंभव मानते थे। पर चुनाव के सिलसिले में देहली के समझौता-प्रस्ताव के मनमाने अर्थ लगाये गये और देश में बड़ा गोलमाल छा गया कि आखिर देहली-महासभा के प्रस्ताव का अर्थ क्या है? उसने पिछली महासभाओं की स्वीकृत त्रिविध-बहिष्कार-नीति को छोड़ दिया या नहीं? इधर गुजरात स्वराज्य-दल ने धारासभा के कार्य-क्रम की देख-भाल के लिए महासभा से एक समिति बनाये जाने का प्रस्ताव स्वीकृत किया। इन कारणों से उन लोगों का जो महात्माजी के कार्यक्रम पर दृढ़ रहना चाहते हैं यह खयाल हुआ कि एक ओर तो लोगों की यह धारणा होती जा रही है कि महासभा ने धारासभा की नीति को अख्तियार कर लिया और दूसरी ओर स्वराज्य-दल देहली-समझौता से आगे बढ़कर धारासभा को महासभा का एक अंग बना देना चाहता है। यह देख कर उन्होंने इस बात का दृढ़ संकल्प किया कि कोकोनाडा-महासभा में महासभा को यह बात स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहिए कि उसे त्रिविध-बहिष्कार-नीति मंजूर है या नहीं। और उन्होंने यह भी सोच रक्खा था कि यदि महासभा महात्माजी के सिद्धान्तों को तिलांजलि दे दे तो हम अपना अलग दल बना कर उस कार्यक्रम को आगे बढ़ावेंगे। इस प्रयत्न का अर्थ स्वराज्य-दलवाले यह लगा रहे थे कि अपरिवर्तनवादी लोग देहली-समझौते को भी मटिया मेट कर देना चाहते हैं और वहां का बदला कोकोनाडा में निकालना चाहते हैं।

आरंभ

इस प्रकार परस्पर सन्देह और उत्तेजना के वायुमंडल में कोकानाडा-महासभा का अधिवेशन शुरू हुआ। इसके पहले ही यद्यपि देशबन्धु ने यह ऐलान कर दिया था कि स्वराज्य-दल देहली समझौते से आगे नहीं बढ़ना चाहता और न धारासभा के काम से वह महासभा का कोई संबंध ही रखना चाहता है तथापि श्री विठ्ठलभाई पटेल बराबर इस कोशिश में रहे कि धारासभा महासभा का अंग बन जाय। पर पीछे से देशबन्धु, राजगोपालाचार्य और मौ. महम्मदअली की बातचीत और सलाह-मशवरे के बाद ऐसा प्रस्ताव तजवीज हुआ जिसमें दोनों दलों के आदर्शों और सिद्धान्तों की रक्षा होने के साथ ही दोनों को अपने अपने विश्वास के अनुसार काम करने के लिए मैदान खुला हो गया। अब स्वराज्य-दल सरकारी धारासभाओं को तोड़ने में अपनी शक्ति खर्च करेगा और अपरिवर्तनवादी दल रचनात्मक कार्य में। इस प्रस्ताव के आधार पर अब जनता से बेशक कहा जा सकता है कि वह धारासभाओं के भरोसे न रहे—काम में अपनी पूरी शक्ति लगावें।

सभापति का भाषण

देहली-समझौते का श्रेय मौलाना महमदअली को ठीक ही मिला है। अवांछनीय होते हुए भी मौलाना उस अवस्था में इसके सिवा और कुछ न कर सकते थे। वही मौलाना कोकोनाडा के सभापति निर्वाचित हुए थे। दोनों दलों की दृष्टि उनके रुख पर लगी हुई थी। १९२४ में देश के नेता बनने की जिम्मेवारी उनके सिर पर थी। दोनों दलों को आपस की लड़ाई से हटा कर काम में लगाने से ही उनका रास्ता साफ हो सकता था। उन्होंने अपनी सारी शक्ति इसी बात में खर्च की कि एक ओर जहां देश महात्माजी के कार्यक्रम को न छोड़े तहां दूसरी ओर स्वराज्य-दल के धारासभा-कार्य में महासभा बाधा न डाले। उनका भाषण इसी बात को मद्दे नजर रख कर लिखा गया था। मुसलमान होने के कारण मुस्लिम दृष्टि से भाषण का पूर्वांश लिखा जाना स्वाभाविक ही था। मौलाना महम्मदअली संक्षेप में नहीं लिख सकते। उनका भाषण अति लंबा पर साथ ही विद्वत्ता, श्रद्धा, आशा और सद्भाव-पूर्ण था।

वस्तुस्थिति का ज्ञान

पिछले डेढ़ साल की आपस की लड़ाई व्यर्थ नहीं गई। दुनिया के हरएक भले-बुरे कार्य में ईश्वर का कोई न कोई अच्छा हेतु हुआ करता है। महात्माजी के जेल जाने के बाद देश में गड़बड़ी मची। यह पता लगना मुश्किल हो गया कि कौन क्या है, और कहां है? महात्माजी के पुण्य और प्रताप-बल से देश बहुत ऊंचा उठ गया था। लोग उनके बल को अपना बल समझ बैठे थे। ईश्वर ने लोगों के इस भ्रम को दूर करने का मौका दिया। महात्माजी के बल-दाब से लोगों का बल बढ़ा जरूर; पर इस बात की पहचान नहीं हो सकती थी कि लोगों का असली बल कितना है और उसमें महात्माजी का बल कितना मिला हुआ है। भारत का स्वराज्य लोगों के अपने असली बल पर अवलंबित है। महासभा के सम-

भेद और दोनों दलों की लड़ाई ने देश का वायुमंडल स्वच्छ कर दिया। लोगों को मालूम हो गया कि कौन कहां, क्या, और कितने पानी में है। देश ने जान लिया कि सरकार के मुकाबले में हममें कितनी ताकत और कितनी कमजोरी है और दोनों दल वालों ने भी परस्पर अपनी ताकत और कमजोरी को नाप लिया। वस्तुस्थिति के इस ज्ञान के बाद दोनों दलवालों ने और समूचे राष्ट्र ने मिल कर कोकोनाडा में जो फैसला किया है—वह देश का शुद्ध और पक्का निर्णय है। उसके मूल में काम कर दिखाने की प्रबल प्रेरणा है—शीघ्र स्वराज्य प्राप्त करने और महात्माजी को छुड़ाने की कुंजी है।

निर्विवाद विजय

कोकनाडा में महात्माजी के असहयोग सिद्धान्त और नीति की निर्विवाद विजय हुई है। गया की विजय सर्वतोमुखी नहीं थी। स्वराज्य-दल उससे सन्तुष्ट नहीं था। देहली में दोनों दल न तो अपनी विजय कह सकते थे न हार। कोकोनाडा की विजय पर सारे राष्ट्र को निर्विवाद अभिमान है। गया और देहली में दलबन्दी के भाव प्रधान थे, कोकोनाडा में कार्येच्छा की प्रबलता। गया में राष्ट्र का विचार और कार्य-प्रवाह भिन्न धाराओं में बंट गया था, कोकोनाडा में जितनी धारायें मिल सकीं मिल गईं और जो न मिली वह मुख्य धारा की बाधक नहीं हो सकती। गया का निर्णय भक्ति-भाव से भरा था और कोकोनाडा का वस्तुस्थिति के यथार्थ ज्ञान से पूर्ण है। गया, देहली, और कोकोनाडा तीनों ने अपने अपने ढंग से कुदरत का काम करते हुए देश-सेवा की। कोकोनाडा से विवाद का अन्त होकर प्रेम और सद्भाव के साथ रचनात्मक कार्य का आरंभ होता है। महासभा के कागजी प्रस्ताव के बनिस्बत सच्चे कार्य की शुद्ध लगन ही महात्माजी के सिद्धान्तों की सच्ची विजय है।

१९२४ का भविष्य

उपसंहार में मौलाना महम्मदअली ने कहा है कि १९२४ में हम आशा, उत्साह और श्रद्धा के साथ प्रवेश करें और आशा रक्खें कि अगली महासभा भारत की पार्लियामेंट हो। अपने भाषण में उन्होंने एक जगह कहा कि मैं काम करना चाहता हूं। मैं नहीं चाहता कि महासभा के प्रस्ताव कागजी प्रस्ताव रह जायं। महासभा के प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए महासभा के दफ्तर का स्थायी प्रबन्ध करने का काम कार्य-समिति को सौंपा गया है और इसी बात को लक्ष्य कर के नई कार्य-समिति की रचना की गई है। महासभा की सारी कार्रवाई से यह जाना जाता है कि १९२४ में महासभा की विघातक नीति गौण रहेगी और रचनात्मक नीति प्रधान। असहयोग के प्रस्ताव में सविनय भंग की तैयारी का उल्लेख करके अकालियों को सहायता का अभिवचन दे कर, तथा डाक्टर हर्डीकर के 'राष्ट्र-सेवा मंडल' को अपना कर महासभा ने यह दिखलाया है कि सरकार के साथ उसकी लड़ाई बराबर जारी है, उसने हथियार रख नहीं दिये हैं और खादी-मंडल की स्थापना करके तथा रचनात्मक काम के लिए समस्त प्रान्तों को आवाहन करके यह साबित किया है कि बुनियादी काम में अपनी तमाम शक्ति लगाने का उसने संकल्प कर लिया है। १९२४ में रचनात्मक कार्य उसका मुख्य अंग होगा और जहां सरकार उसमें छेड़छाड़ करेगी वहां उससे टक्कर लेने से भी वह मुंह न मोड़ेगी। 'केनिया' के लिए अपने प्रतिनिधि भेज कर तथा हिन्दुस्तान से बाहर कुली न भेजने के संबन्ध में प्रस्ताव स्वीकृत करके उसने यह सिद्ध किया है कि इस साल प्रवासी भाइयों के कष्टों को दूर करने में भी वह अपनी शक्ति खर्च करेगी। 'राष्ट्रीय ठहराव' पर हमदर्दी के साथ विचार करके उसने जातीय झगड़ों को मिटाकर राष्ट्रीय एकता निर्माण करने पर कमर कसी है। इस प्रकार १९२४ का भविष्य हर तरह से आशा, उत्साह और जीवनदायी है। यदि हम में सच्ची लगन और कार्यशक्ति है तो हम कोकोनाडा महासभा को स्वराज्य का मंगलाचरण बना सकते हैं। परमात्मा हमें बल और श्रद्धा दें।

हरिभाऊ उपाध्याय

काम या कोलाहल ?

"दिल जोश में ला, फरियाद न कर, तासीर दिखा, तकरीर न कर।
तू खाक में मिल, और आग में जल, जब खिश्त बने तब काम चले,
इन खाम दिलों के अनसरपर बुनियाद न कर, तामीर न कर"

हर शख्स के दिल में यह खयाल उठा करता था कि कोकनाडा महासभा में क्या होगा? खिलाफत-परिषद् के सभापति बड़े भाई और महासभा के सभापति छोटे भाई ने कोकनाडा के वायुमण्डल को लबालब भर दिया था। मौ० शौकतअली धूम-धाम के शौकीन हैं—पर तभी जब उससे असहयोग को, राष्ट्र-कार्य को पुष्टि मिलती हो। पर इस धूम-धाम को देखते हुए भी उनकी दृष्टि अन्तर्मुख रहती है। यह बात मैंने कोकनाडा में देखी। व्याख्यान देते हुए, सभायें करते हुए, 'महात्मा गांधी की जय' बुलंद आवाज से पुकारने वालों को धन्यवाद देते हुए, वे अपनी अन्तरात्मा से पूछा करते हैं कि महात्माजी को छुड़ाने के लिए मैं क्या कर रहा हूं? सोते समय वे हररोज अपने दिल से पूछते हैं कि "आज कितना काम हुआ है, कोलाहल को निकाल दें तो आज कितना काम किया है?" खिलाफत-परिषद् के सभापति की हैसियत से भाषण करते हुए अनेक बार गद् गद् कंठ हो कर उन्होंने इस लेख के आरंभ में उद्धृत अपने अति प्रिय कवि अकबर के वचनों के साथ अपना भाषण खतम किया। उनके जीवन की एकमात्र ध्वनि यही है 'इस देश की इमारत के लिए पक्की ईंट बन कर अपना फर्ज अदा कर'। विषय-नियामक समिति में श्री राजगोपालाचार्य के प्रस्ताव पर दो बातें बोल कर वे बैठ गये और कहने और लगे—'इस झगड़े से हमारा पिंड कब छूटेगा? इस झगड़े से फारिग हो कर हम कब काम में भिड़ जायंगे?' यह कहते हुए उनका गला भर आया—वे सिसकने लगे उन्हें शान्ति दिलाने की कोशिशें बेकार थीं। बहुत देर बाद उन्हें पानी दिया गया और वे शान्त हुए। इस प्रकार "रो रो कर महफिल को गुलिस्तां कर के छोडूंगा" इस वचन को सिद्ध करनेवाले मौ. शौकतअली को यदि कोई कहे कि वे तो असहयोग की जड़ खोदने पर तुले हुए हैं तो उसकी अनुदारता की हद हो कहना चाहिए। श्री च० राजगोपालाचार्य के खिलाफ, परन्तु श्याम बाबू के पक्ष में, बोलने वाले प्रायः हरएक वक्ता ने (सौम्यमूर्ति श्री श्याम बाबू को छोड़ कर) यही इल्जाम सब लोगों पर लगाया। श्री सुन्दरलाल और भगवानदीनजी ने अपने भाषणों में कोई दलील या मिसाल पेश नहीं की। उनके भाषणों का ध्रुव भाव यही था—"असहयोग को मार न डालिए। श्री राजगोपालाचार्य के पक्ष में राय देने वाले असहयोग की मौत के हक में राय देंगे; श्याम बाबू के हक में राय देने वाले असहयोग के जीवन के लिए राय देंगे।" जब से मैंने इन भयानक वचनों को सुना है तब से मैं बराबर अपने दिल से पूछ रहा हूं कि क्या सचमुच मैंने असहयोग के खून का अपराध किया है? क्या राजगोपालाचार्य, वल्लभ भाई और अली-भाई ने भी असहयोग का खून किया और लोगों से कराया?

पर मेरा दिल नहीं कहता कि श्री राजगोपालाचार्य के प्रस्ताव को स्वीकार करके मैंने यह अपराध किया है। इस प्रस्ताव में कहीं भी इस खून की बूंदें नहीं दिखाई देतीं। दोनों प्रस्ताव अन्यत्र

किये गये हैं। श्यामबाबू के प्रस्ताव की भाषा अच्छी है, वह बारडोली के ही प्रस्ताव की भाषा में लिखा गया है। यह बात सच है कि राजगोपालाचार्य के प्रस्ताव की भाषा सुश्लिष्ट नहीं। पर श्याम बाबू के प्रस्ताव की कौनसी बात ऐसी है जो मैं राजगोपालाचार्य के प्रस्ताव के आधार पर देश के सामने न रख सकूं? राजगोपालाचार्य के प्रस्ताव के आधार पर मैं देश से कह सकता हूं कि धारासभा से अलग रहो, पंचायतों की स्थापना करो, राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना करो, अहिंसा का पालन करो, और खादी का प्रचार तथा छुआछूत का निवारण करो। यही नहीं, नागपुर का प्रस्ताव भी कायम रक्खा गया है। इससे तो मैं बोरसद में जा कर सरकारी नौकरों से इस्तीफा भी दिलवा सकता हूं।

इस पर यह सवाल हो सकता है कि तब श्यामबाबू के प्रस्ताव को स्वीकार करने में क्या हानि थी? राजगोपालाचार्य के प्रस्ताव में पूर्वोक्त बातों के अलावा और भी सहूलियतें हैं। एक तो यह कि देशबन्धु और उनका दल हमारे काम में यथाशक्ति सहायता दे सकेगा—कम से कम उसमें बाधा न डालेगा। और दूसरे, और यह निहायत महत्व की बात है कि अली-भाइयों को—महात्माजी के बाद प्रेम-शौर्य की अद्भुत शक्ति रखनेवाले, अपने निर्मल प्रेम से शत्रु को भी जीत लेनेवाले एक ही हिन्दुस्तानी मौलाना शौकतअली को—हम अपनी तरफ कर सकते हैं। वे हमें छोड़ तो सकते ही न थे—यह तो कभी संभवनीय ही नहीं। पर वे इस बात से सहमत न होते थे कि स्वराज्य-दल को नाखुश कर के, उसे महासभा से निकाल कर, हमेशा के लिए विरोधी बना लिया जाय। ऐसा करते हुए उनके दिल को दुःख होता था। और उन को तसल्ली देने के लिए यदि हमें किसी प्रकार अपना सिद्धान्त नहीं छोड़ना पड़ता तो थोड़े शिष्टाचार को स्वीकार लेने में क्या हानि है? मेरी यह पक्की राय है कि राजगोपालाचार्य के प्रस्ताव का पहला भाग जिसमें अन्य पिछली महासभाओं के प्रस्तावों के साथ देहली का भी प्रस्ताव जोड़ा गया है, केवल शिष्टाचार मात्र है; देहली के प्रस्ताव को कायम न रखने में शिष्टाचार का पालन नहीं होता था और हमारी तरफ से शिष्टाचार की कमी का परिचय देना विग्रह और विरोध को मोल लेना था। श्री० राजगोपालाचार्य ने पूछा कि कठोर प्रस्ताव को पास कर के आप कलह मोल लेना चाहते हैं या उसी आशय के परन्तु सौम्य प्रस्ताव को स्वीकार कर के शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं? इस का कोई उत्तर नहीं था। यही हो सकता था कि हम कलह मोल लेना नहीं चाहते।

राजगोपालाचार्य के प्रस्ताव में इन बातों के अलावा विवेक भी है। प्रस्ताव का अन्तिम अंश कहता है कि रचनात्मक कार्यक्रम की बुनियाद त्रिविध बहिष्कार है और वह रचनात्मक कार्यक्रम की भिन्न भिन्न मदों को अपनी परिस्थिति के अनुकूल चुनने की आजादी हर प्रान्त को दे देता है। कहते हैं कि आज पंजाब और सिंध में हिन्दू-मुसलमान एकता के साधन के सिवा दूसरी कोई बात संभवनीय नहीं है। वहां आपके त्रिविध बहिष्कार के कार्यक्रम की बात कौन सुनेगा? इसी प्रकार बोरसद जैसे अनुकूल क्षेत्र में आज तमाम बहिष्कारों का जबरदस्त प्रचार कर सकते हैं। यह बात भी राजगोपालाचार्य के प्रस्ताव में स्पष्ट हो गई है।

पर हां, इस बात में कोई शक नहीं है कि असहयोग को शिथिल करने, उसे जिन्दा गाड़ देने के लिए हम सब लोग कम-ज्यादह जिम्मेवार हैं। हमने खुद काम नहीं किया, न कराया। इससे असहयोग को जो कुछ धक्का पहुंचा हो वह सच है। और इस हानि को हम केवल मनचाहे सख्त, कठोर प्रस्तावों के द्वारा नहीं मिटा सकते। केवल काम कर के ही मिटा सकते हैं। यह मौं. शौकतअली का सन्देश है। इसीलिए विषय-निर्धारिणी समिति में उन्होंने कहा था "भाड़ में जायं तुम्हारे ये प्रस्ताव।" इसीलिए वे महासभा की और खिलाफत की बैठकों में हाजिर रहने के अलावा सुबह खादी-सभा की तमाम बैठकों में हाजिर रहते हैं और कहते हैं कि 'चार बजे सभा हो तो भी बेखटके मुझे बुलाना' तथा बुलाते ही फौरन् पहुंच जाते हैं। इसीलिए वे अखिल भारतीय खादी-मण्डल के सदस्य बने हैं। 'यह काम आज ही, इसी घड़ी होना चाहिए,' यह कह कर वे आज ही प्रस्ताव बना लाये और आज महासभा में उसे पास करावेंगे। असहयोग की सजीव मूर्ति रूप यह शरीर जबतक काम कर रहा है तब तक कौन कह सकता है कि असहयोग बन्द हो गया है? यदि हम असहयोग को न मरने देना चाहते हों तो हमें चाहिए कि मौ. शौकतअली की इस सलाह को मान लें—"कोलाहल नहीं, काम करो, कच्ची नहीं पक्की ईंट बनो।"

महादेव हरिभाई देसाई

खिलाफत-परिषद के प्रस्ताव

१—यह खिलाफत परिषद् घोषित करती है कि मुसलमानों की खिलाफत-संबन्धी मांगें इस प्रकार हैं:—

(अ) तुर्की साम्राज्य को पूर्ण (आ) आजादी, एशिया मायनर का दरिया किनारा लौटाया जाना और (इ) जजीरत-उल-अरब की आजादी।

२—यह खिलाफत परिषद यह मंजूर करती है कि लासेन की सुलह से पहली तीन मांगें तो पूरी कर दी गईं पर जजीरत-उल-अरब का सवाल अभीतक ज्यों का त्यों है। और यही धार्मिक दृष्टि से मुसलमानों की खिलाफत-संबन्धी मांगों में सबसे अधिक महत्व रखता है।

३—यह परिषद अब हमेशा के लिए और स्पष्ट शब्दों में यह घोषित करती है कि अरबस्तान के तमाम प्रान्त अब किसीकी अधीनता में नहीं हैं और इस्लाम की सच्ची मन्शा के अनुसार सुरक्षित हैं।

४—यह खिलाफत परिषद् अपनी पहली मांगों को फिर से दोहराती है और मुसलमानों की ओर से यह घोषित करती है कि मुसलमानों का यह सबसे पहला धार्मिक कर्तव्य है कि वे स्वाधीन और राष्ट्रीय सरकार की स्थापना कर लें।

५—यह परिषद भारत के मुसलमानों को यह याद दिलाती है कि स्वाधीनता के निश्चित मार्ग में कष्ट सहना उनका धार्मिक अधिकार है। अतः मुसलमानों का यह कर्तव्य है कि वे स्वराज्य-संग्राम में न केवल अपने भाइयों के कंधे से कंधा भिड़ाकर लड़ें बल्कि अपने अथक उत्साह और अदम्य शक्ति के साथ उन सबसे आगे बढ़कर अपने भाइयों के आगे अच्छी मिसाल पेश करें।

हिन्दू-मुसलमान एकता पर मजबूत रहने, तमाम अन्य जातियों के पूजा-स्थल तथा मन्दिरों की रक्षा करने, सहनशीलता दिखाने, और हर जाति के बदमाशों के प्रतिकार करने के प्रस्ताव भी मंजूर किये गये।

आगामी अधिवेशन

महासभा का आगामी अधिवेशन करनाटक में होना निश्चित हुआ है। मौ. महम्मदअली ने यह आशा प्रकट की है कि वह बहुत कर के बीजापुर में होगा और उस समय महासभा भारत की पार्लियामेंट के रूप में बदल जायगी।

हिन्दी-सम्मेलन के प्रस्ताव

१ यह सम्मेलन आन्ध्र, तामिल, केरल और कर्नाटक प्रान्त-निवासियों से अनुरोध करता है कि वे अपने बालकों को अपनी मातृ-भाषा के साथ साथ स्कूलों में या घर पर राष्ट्र-भाषा हिन्दी के भी पढ़ाने का प्रबन्ध करें।

२ यह सम्मेलन मैसोर और हैदराबाद-विश्वविद्यालय तथा आन्ध्र देश के भावी विश्व-विद्यालय के अधिकारियों से प्रार्थना करता है कि वे अपने पाठ्यक्रम में हिन्दी को भी स्थान दें और उसके पठन-पाठन का उचित प्रबन्ध करें।

३ यह सम्मेलन अखिल भारतवर्षीय राष्ट्रीय महासभा से प्रार्थना करता है कि देश की पूर्ण स्वतंत्रता को लक्ष्य में रख और अंग्रेजी भाषा की गुलामी को तुरन्त छोड़ राष्ट्रभाषा हिन्दुस्थानी में अपनी कुल कार्रवाई करने का प्रबन्ध करे और इस प्रकार देश के इस कलंक को मिटा कर भाषा-सम्बन्धी स्वतंत्रता के विषय में देश के लिए पथ-प्रदर्शक बने।

४ यह सम्मेलन अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के सभी सदस्यों से प्रार्थना करता है कि वे जिस प्रकार खद्दर पहनना अपना कर्तव्य समझते हैं वैसे ही राष्ट्रभाषा हिन्दी का व्यवहार भी अपना कर्तव्य समझें।

५ यह सम्मेलन मद्रास प्रान्त की म्युनिसिपल कौन्सिलों, जिला बोर्डों तथा और संस्थाओं से अनुरोध करता है कि वे अपने स्कूलों में राष्ट्रभाषा हिन्दी को दूसरी भाषा के तौर पर पढ़ाने का प्रबन्ध करें।

६ यह सम्मेलन दक्षिण प्रान्तीय, जिला ताल्लुका कांग्रेसकमेटियों से अनुरोध करता है कि वे उन संस्थाओं की सहायता करें जिनका उद्देश हिन्दी (हिन्दुस्थानी) का प्रचार है।

७ यह सम्मेलन आन्ध्र, तामिल नाड, केरल और कर्नाटक के निवासियों से अनुरोध करता है कि वे अपने प्रान्त में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करने के लिए एक एक प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के स्थापित करने की व्यवस्था करें।

नयी कार्य-समिति

सभापति-मौलाना महम्मदअली; जनरल सेक्रेटरी-श्री गंगाधरराव देशपांडे, पं. जवाहरलाल नेहरू, डाक्टर किचलू। खजांची-श्री रेवाशंकर जगजीवन जवेरी, श्री सेठजी नप्पू। सदस्य-श्री राजगोपालाचार्य, देशबन्धु दास, वल्लभभाई पटेल, अबुलकलाम आजाद, कोंडा वेंकटप्पय्या, जमनालाल बजाज, शौकतअली, सरदार मंगलसिंह, और शंकरलाल बैंकर।

टिप्पणियां

स्वयंसेवक परिषद्

अखिल भारतीय स्वयंसेवक परिषद् की बैठक पं. जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में हुई। अपने जीवनदायी भाषण में आपने कहा—यह स्वतन्त्रता के वीरों की परिषद् है। अतएव आपके शब्दों की अपेक्षा आपके कामों की ही कीमत अधिक है। अहिंसा भारतीय आजादी की एक विशेषता है। देश के कुछ भागों में चाहे हमारा आन्दोलन असफल दिखाई दे पर नागपुर की विजय ने उस सब की पूर्ति कर दी है। अब हमें यह तजवीज करना होगा कि देश को फौजी सिपाही की तरह नियम और कायदे के साथ चलने वाले सैनिकों की जरूरत है या कष्ट-सहन करने और जेलों में जाने के लिए तैयार सिपाहियों की। मेरी यह राय है कि स्वयंसेवक वही लोग हों जिन्हें बाकायदा कवायद की तालीम मिल चुकी हो। ऐसी तालीम के बगैर बहादुरी से जैसा चाहिए फायदा नहीं उठाया जा सकता। इसलिए ऐसे ही स्वयंसेवक रचनात्मक कार्य तथा सविनय भंग में पड़ें। परन्तु इन जवाबदेही के कामों को सिर पर लेने के पहले उन्हें महासभा निर्धारित स्वयंसेवकों की प्रतिज्ञा करनी होगी। स्वयंसेवकों की इस संस्था को महासभा की पूरी सहायता होनी चाहिए और उसपर उसकी देख-भाल भी होनी चाहिए। इस नीति के अनुसार हर प्रान्त में उसका संगठन होना चाहिए। भारत की स्वयं-सेवक-संस्था का संचालन एक ही नीति के अनुसार होना चाहिए और इसके लिए स्वयंसेवक संस्था का एक अखिल भारतीय मंडल होना चाहिए। हमें यह न भूलना चाहिए कि नियम-पालन में ही शक्ति केन्द्रीभूत है। इसी दृष्टि से काम करने से देश का हित होगा।

महासभा के प्रस्तावों पर नजर डालने से पाठकों को मालूम हो जायगा कि पं. नेहरू की इस सूचना के अनुसार महासभा ने स्वयंसेवक संस्था को अपना आश्रय दे दिया है।

विद्यार्थी परिषद्

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् का अधिवेशन समारोह के साथ हुआ। सभापति देशबन्धु दास थे। अपने भाषण में उन्होंने कहा—"पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण कर के हमने अपनी पुरानी संस्कृति को खो दिया है। पश्चिमी लोगों के और हमारे आत्म-निर्णय तथा स्वराज्य के आदर्श बिलकुल भिन्न हैं। इंग्लैंड और फ्रान्स में भी आज सच्चा स्वराज्य नहीं है। स्वराज्य की सच्ची भावना तो उन तमाम संस्कारों के असहयोग से उत्पन्न होगी जो भारत की प्रकृति से असंगत हैं। नौकरशाही का नाश करना ही इस समय सच्चा रचनात्मक काम है। असहयोग के इस आदर्श को स्वीकार कर के हजारों विद्यार्थियों ने स्कूल-कालेज छोड़ दिये। आपमें जो लोग इस प्रकार असहयोग करने का साहस न दिखा सके उन्हें चाहिए कि दूसरे तरीके से इस काम में भरसक सहायता करें। जो विद्यार्थी इन दिनों सरकारी विद्यालयों में शिक्षा पा रहे हैं वे भी छुट्टियों के दिनों में देहात में जा कर लोगों को कताई-बुनाई आदि का काम सिखा सकते हैं और इस प्रकार स्वराज्य के कार्य में सहायक हो सकते हैं।"

परिषद् के प्रस्ताव अभीतक प्रकाशित नहीं हुए हैं।

खिलाफत-कार्य-समिति

मौ. महम्मदअली, डाक्टर अनसारी, श्री जहूर अहमद, सय्यद हुसेन केरवानी, अब्दुल माजीद, सुलेमान नदवी, अब्दुल बारी, श्री काजी (बिहार) तथा दो और सज्जन।

भारी कसौटी

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रतिका	,, -)॥
विदेशों के लिए	,, ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक २२

सम्पादक—हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, पौष सुदी ७, संवत् १९८०
रविवार, १३ जनवरी, १९२४ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

बोरसद-सत्याग्रह की पूर्णाहुति

बोरसद सत्याग्रह—संग्राम की समाप्ति की घोषणा करते हुए उसके नेता श्री वल्लभभाई पटेल और दरबार गोपालदास अंबाईदास देसाई अपनी विज्ञप्ति में लिखते हैं—

"बोरसद—सत्याग्रह—संग्राम अब समाप्त होता है। सत्य, अहिंसा, और तप की विजय फिर एक बार हुई है। यह विशेष आनन्द की बात है कि यह संग्राम उतनी ही जल्दी समाप्त हुआ है जितना कि हमारे पक्ष में न्याय था। यह विजय अपूर्व है। क्योंकि इस बार दोनों पक्ष की विजय हुई है। सरकार ने हिम्मत और खुले दिल के साथ अपनी भूल स्वीकार की है। अपनी शान के लिए हर तरह की हानि सह कर भी भूल को कुबूल न करने की प्रथा को छोड कर निर्दोष और दलितपीडित लोगों को दोषी और दुःखी बनाने के महान् अपराध से अपनेको बचाकर तथा सत्य को स्वीकार कर खुद सरकार ने भी विजय प्राप्त की है। ऐसे भारी नैतिक बल का परिचय देने के लिए हम सच्चे दिल से नये लाट सर लेस्ली विल्सन सा० को बधाई न दें तो हम अपने कर्तव्य से च्युत होंगे।

हमारी विजय इस बात में नहीं है कि जुरमाने की और जब्ती की रकम वापस देने और ज्यादह पुलिस का खर्च सरकार की तरफ से उठाये जाने की तजवीज हुई है। हमारी सच्ची विजय तो इस बात में है कि हमारे सिर का कलंक सरकार ने मिटा दिया है। पर इससे भी अधिक सच्ची विजय है इसकी महत्ता समझने में और उसे पचाने की शक्ति में। सरकार हमेशा अपनी भूल को स्वीकार करते हुए डरती है। शुद्ध साधनों के द्वारा अन्याय का प्रतिकार करनेवाले लोगों के सामने झुकना भी सरकार अपने लिए खतरनाक समझती है। यह पहला मौका है जब कि सरकार ने अपनी भूल को बिना हिचकिचाहट के लोगों के सामने स्वीकार कर के सत्याग्रह के सामने सिर झुकाया है और यह स्वीकार किया है कि यह संग्राम-विधि 'राजमान्य' है। सरकार की इस सभ्यता का दुरुपयोग न होने का विश्वास अपने शब्दों के द्वारा उसे दिलाने के बजाय भविष्य में अपनी कृतियों के द्वारा दिला देना हम बेहतर समझेंगे।

इस संग्राम की पूर्णाहुति में जो मिठास और जो शोभा है उसे कायम रहने का दारोमदार जितना लोगों पर है उतना ही स्थानीय सरकारी कर्मचारियों और नौकरों पर है। अभी के सिलसिले में जो सख्तियां और ज्यादतियां की गई उनसे कहीं कहीं दोनों पक्षवालों के दिल फट गये हैं। यह स्वाभाविक था। कितने ही पटेलों आदि को इस्तीफे देने पडे हैं, कितनों ही के माल-असबाब को नुकसान पहुंचा है। कितनों ही पर झूठी फरयादें हुई हैं। हम आशा करते हैं कि इस पूर्णाहुति के प्रकरण में दोनों पक्ष एक दूसरे की भूलों को भूल कर सभ्यता और उदारता से काम लेंगे। हमें खुद इस संग्राम में पुलिस की कडी आलोचना करनी पडी है। परन्तु ऐसा करते हुए हमें हर्ष नहीं होता था। पुलिस-विभाग अथवा उसके किसी कर्मचारी से हमारा कोई झगडा नहीं। हमारा और पुलिसविभाग का उद्देश एक ही है। परन्तु हमारे और उसके तरीकों में जमीन-आसमान का फर्क है। दोनों का उद्देश एक है—प्रजा को सुख-शान्ति दिलाना। सरकार ने वर्षों तक अपने तरीकों को बोरसद के धाराला लोगों पर आजमा देखा है। पर उसका फल उलटा निकला। हम इस बात से इनकार नहीं करते कि सरकार का उद्देश अच्छा था। परन्तु सरकार से यह बात छिपी नहीं रही है कि इसका नतीजा बुरा हुआ है। इस दुखी जाति के साथ मिठास और दिलासे से काम लेने की जरूरत है। हमें यह देख कर बहुत दुःख हुआ है कि एक-दो खूनियों और डाकुओं को पकडने में जिन कितने ही लोगों ने अपने प्राण गवांये हैं उनके कुटुम्बों के प्रति दिलासा का एक भी शब्द सरकार की किसी विज्ञप्ति में प्रकट नहीं हुआ है। सरकारी विज्ञप्ति के आखिरी अंश के जवाब के तौर पर हमें मजबूर हो कर इस बात का उल्लेख करना पडता है।"

अन्त में बोरसद-सत्याग्रह-संग्राम के योद्धाओं और सहायकों को धन्यवाद देते हुए वे कहते हैं कि बोरसद—सत्याग्रह—संग्राम अब ईश्वर कृपा से समाप्त होता है। यह प्रकट करते हुए हमें बडा आनन्द होता है। सत्य और अहिंसा की इस विजय के लिए हम परमात्मा के अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

च. राजगोपालाचार्य के भाषण

पिछले अङ्क में प्रकाशित समझौता-प्रस्ताव को पेश करते हुए च. राजगोपालाचार्य ने जो भाषण किया वह इस प्रकार है:—

"असहयोग पर कायम रहना महासभा का दृढ़ निश्चय है। पर हमें इस बात का निपटारा करना है कि इस साल हम असहयोग-कार्यक्रम के किस अंग को हाथ में लें और इन अगले बारह महीनों में हम मौलाना महम्मदअली के नेतृत्व में किस तरीके से काम करें।

रचनात्मक कार्यक्रम

जहांतक खुद मौलाना साहब से ताल्लुक है, हम लोग जानते ही हैं कि वे क्या चाहते हैं। उन्होंने आपसे कल ही कहा है कि हमें बारडोली के रचनात्मक काम में अपनी सारी ताकत लगानी चाहिए—वह महज हमारी कागजी नीति न हो, बल्कि हररोज हम उसके लिए जी-जान से कोशिश करें। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप काम करने के उस कार्यक्रम को स्वीकार करें। और यदि आप ऐसा करेंगे तो मेरे प्रस्ताव का एक भाग आपको अवश्य मंजूर करना पड़ेगा। आपको रचनात्मक कार्य को पूरा करने का निश्चय करना ही पड़ेगा; क्योंकि वह असहयोग कार्यक्रम का एक अंग है।

नीति का खुलासा

मेरे प्रस्ताव का दूसरा भाग वह है जिसमें इस बात का खुलासा किया गया है कि महासभा अब भी त्रिविध बहिष्कार के सिद्धान्त और नीति पर कायम रहती है। मैं थोड़े में अपना आशय स्पष्ट करूंगा और इसलिए सीधे असली विषय पर ही अपना वक्तव्य सुनाऊंगा। मैं चाहता हूं कि आप महात्माजी-प्रवर्तित त्रिविध बहिष्कार के सिद्धान्त और नीति को मान्य करें। पर इस प्रस्ताव के द्वारा मैं आपसे इस प्रकार का त्रिविध बहिष्कार मंजूर कराना नहीं चाहता कि आप तुरन्त दौड़ कर सभायें करें और वकीलों, विद्यार्थियों और धारासभा के सदस्यों को अपनी अपनी जगहों से वापस बुलावें। बहिष्कार के सिद्धान्त को जिस अर्थ में महात्माजी ने समझा था और उसे जारी किया था उसी भाव में हमें उसे रचनात्मक कार्यक्रम के आधार के तौर पर कायम रखना चाहिए। रचनात्मक कार्यक्रम की इस बुनियाद का खुलासा फिर एकबार कर देने की जरूरत इसलिए हुई है कि मैं अनुभव करता हूं कि धारासभाओं के संबंध में हम जो कुछ कह रहे और कर रहे हैं उससे देश के वायुमंडल पर बुरा असर हुआ है। यह नीति का खुलासा और कुछ नहीं, महासभा की महात्मा गांधी निर्धारित नीति की पुनः स्वीकृति है। यह मेरे प्रस्ताव का दूसरा भाग है।

देहली-प्रस्ताव अटल

मेरे प्रस्ताव का एक भाग यह है कि देहली के समझौता-प्रस्ताव में अथवा उन लोगों के कामों में जिन्होंने उसके अनुसार काम किया है, कुछ गड़बड़ न किया जाय। इसका मतलब यह नहीं है कि हम भविष्य के लिए भी इस नीति को अंगीकार कर रहे हैं। इसका मतलब यही है कि हम उस काम में गड़बड़ करना नहीं चाहते जिसे हम पहले ही कर चुके हैं। इन तीन बातों को लेकर यह प्रस्ताव बना है। मैंने तीनों बातों को आपके सामने उनके महत्व के क्रम से पेश किया है।

लड़ाई से किनारा करो

मैंने इस प्रस्ताव को इस रूप में क्यों पेश किया है? इसका कारण महत्वपूर्ण है। वह यह कि इसका समर्थन और अनुमोदन श्री दास तथा उनके मित्रों के द्वारा किया जायगा, जिनसे सहमत न होने का दुर्भाग्य हमें प्राप्त हुआ है। वे क्यों इसका समर्थन करते हैं? इसलिए कि अब वे लड़ना नहीं चाहते। वे सिर्फ इतना ही चाहते हैं कि जो कुछ असली हालत है उसे आप मंजूर कर लें। वे नहीं चाहते कि आप उनके कार्यक्रम को मंजूर करें या नामंजूर। वे इस बात के कायल हैं कि महासभा की नीति आज भी वही है जो पहले थी।

मेरे प्रस्ताव के बजाय पेश होनेवाला एक दूसरा प्रस्ताव भी आपके हाथों में है। उसके संबंध में मुझे ज्यादह कुछ कहने की जरूरत नहीं। मैं आपसे सिर्फ यही जानना चाहता हूं कि आप कठोर प्रस्ताव पास करके लड़ाई मोल लेना चाहते हैं या मेरे प्रस्ताव को मंजूर करके, जिसका आशय यही है, लड़ाई के कु-परिणामों से बचना चाहते हैं? मैं अवश्य ही दूसरी बात को पसन्द करूंगा। मैं आपसे वही नीति स्वीकार कराना चाहता हूं जिसके साथ हमेशा मेरा नाम जोड़ा जाता रहा है। मैं चाहता हूं कि आप खुद अपने बल पर अपना काम करें, दूसरों के भरोसे न रहें। पर आप उन लोगों को रोकें भी नहीं जो आपकी सहायता करना चाहते हों। मैं कहता हूं कि यदि हमारे आपस में एकता असंभव हो तो कम से कम हम कड़वे दिलों की लड़ाई की छीछालेदर से तो अवश्य बच सकते हैं। यदि हम लड़ाई के जोश को ठंडा करके काम में भिड़ जायं तो शायद हमारे बीच एकता भी हो जाय। अब मैं अधिक न कह कर प्रस्ताव को अंगरेजी में पढ़ देता हूं (प्रस्ताव पढ़ा)

प्रान्तीय समितियों का कर्तव्य

रचनात्मक कामों के लिए मैं आज आपके सामने इससे अधिक पूर्ण और सविस्तर कार्यक्रम पेश नहीं कर सकता; क्योंकि इस समय देश के समस्त भागों की दशा एक-सी नहीं है। इसलिए हर प्रान्त को यह सोचना होगा कि हमारे प्रान्त के लिए कार्यक्रम का कौनसा अंग अधिक जरूरी और मुमकिन है? प्रान्तीय समितियों की सलाह ले कर महासभा की कार्य-समिति सविस्तर कार्यक्रम तैयार करेगी। पर एक बात साफ है। हम महासभा के कार्य-सञ्चालकों को यह आदेश करते हैं कि वे अपनी पूरी ताकत रचनात्मक कार्य को—उसके जुदा जुदा हिस्सों को—पूरा करने में लगावें। इस प्रस्ताव के शब्दों और वाक्यांशों पर विषय-समिति में खूब बहस हो चुकी है और उसने इसे इसी रूप में पेश करने की सिफारिश की है। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप लोग, जो कि यहां राष्ट्रीय महासभा के रूप में एकत्र हैं और जो कि काम करने पर तुले हुए हैं, इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लें—अब और इसपर शंका-कुशंकायें तथा चर्चा न करें। कुछ लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या इस प्रस्ताव के द्वारा धारासभा का रास्ता बन्द कर दिया गया है? सो, इसके द्वारा हम गये हुए सदस्यों को धारासभा से वापस नहीं बुलाते हैं। यदि वे चाहें तो बाहर आ सकते हैं—यह उनकी मर्जी की बात है। जो कुछ हम देहली में कर चुके हैं उससे हम न तो एक इंच आगे बढ़ते हैं न पीछे हटते हैं"

च. राजगोपालाचार्य का उत्तर

विरोधकों को उत्तर देते हुए आपने कहा—"श्री. प्रकाशम् ने कहा है कि धारासभाओं से संबंध न रखने का मतलब होगा हमारे उन मित्रों से सरोकार न रखना जो धारासभा में जा चुके हैं। मैं इस से सहमत नहीं। डाक्टर सुब्रह्मण्यम् की भांति मैं तो कहता हूं कि हममें और धारासभाओं से कोई वास्ता नहीं। हमें उनसे सहायता की जरा भी आशा न रखनी चाहिए। पर हम यह नहीं कहते हैं—हमें यह नहीं कहना चाहिए कि हम धारासभा के सदस्यों से कुछ भी संबंध नहीं रखना चाहते। हमने तो धारासभा के सरकारी सदस्यों के संबंध में भी आजतक ऐसा नहीं कहा। हां, धारासभा-संस्थाओं से हमें अवश्य ही कुछ सरोकार न रखना चाहिए। मुझे

इस गलतफहमी की बीमारी पर सचमुच ताज्जुब होता है। मैं अपने प्रस्ताव की मंशा साफ तौर पर बताता हूं। इस प्रस्ताव के द्वारा मुझे धारासभा से कुछ सम्पर्क न रखने का पूरा हक है—महज धारासभाओं से ही नहीं, बल्कि अदालतों और मदरसों से भी। हां, यह बिलकुल दूसरी बात है कि मैं या महासभा यह निश्चय करे कि हम भविष्य में बहिष्कार के प्रचार का आन्दोलन करें या न करें। श्री दास ने इस प्रस्ताव के समर्थन में एक भी शब्द न कहा। यदि इसमें किसी तरह गलतफहमी की संभावना होती तो क्या आप खयाल करते हैं कि श्री दास इस प्रस्ताव के संबंध में अपना आशय स्पष्ट न करते? फिर भी कुछ वक्ताओं ने कहा है कि असहयोग का प्रस्ताव तो श्याम बाबू का संशोधन है और मेरा प्रस्ताव असहयोग की मौत का सूचक है। मुझे इस बात पर आश्चर्य होता है कि जिन सज्जनों ने सचाई के साथ अपने दिल के अकीदः के अनुसार आजतक मेरा साथ दिया है वे यह खयाल कर लेंगे कि आज मैंने असहयोग की मृत्यु के वारण्ट पर दस्तखत कर दिये हैं। मुझसे खुलासा तलब किये बिना ही वे मेरे प्रस्ताव को इस प्रकार धिक्कार रहे हैं। पण्डित सुन्दरलालजी ने अपने भाषण में यही कहा है और मेरे मित्र रामस्वामी नायकर की तामिल वक्तृता भी यही कहती है। मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि मैं उस संशोधन का प्रायः सर्वांश स्वीकार करता हूं; पर मेरी शिकायत यह है कि वे देहली के प्रस्ताव को धता बताये देते हैं। यही कारण है जो मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता। हम असहयोग–कार्यक्रम पर ज्यादह से ज्यादह विश्वास रखने का दावा कर सकते हैं; परन्तु देहली में हमने जो–कुछ किया है उसकी ओर हम कैसे आंख मूंद सकते हैं? या तो हममें यह साहस होना चाहिए कि हम ऐसा प्रस्ताव पेश करें जिसके द्वारा देहली का प्रस्ताव रद हो जाय, या हम उसे मंजूर करें और महासभा में ऐसा प्रस्ताव उपस्थित करें कि हम पुराने त्रिविध बहिष्कार को फिर से स्वीकार करते हैं। इस प्रस्ताव के द्वारा हम यही कहते हैं कि हम देहली के प्रस्ताव को रद नहीं करते, लेकिन हमारी भावी नीति और कार्यक्रम ज्यों का त्यों बना हुआ है। देहली–प्रस्ताव को असहयोग–प्रस्ताव कहने पर ऐतराज किया गया है। डाक्टर पट्टाभि सीतारामैय्या का सारा भाषण इसी एक असहयोग शब्द पर अवलंबित था।

लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि इस असहयोग शब्द के वहां रहने के कारण मेरा कथन और भी पुष्ट और सुरक्षित हो जाता है। हम देहली–प्रस्ताव से इतना घबराते क्यों हैं? इसलिए कि आपका कहना है कि यह असहयोग का एक दूसरा रूप है। यदि वह असहयोग–प्रस्ताव न था तो फिर आपको देहली–प्रस्ताव के झगड़े में पड़ने की क्या जरूरत थी? पर अगर यह असहयोग–प्रस्ताव था तो क्या आपका यह फर्ज नहीं है कि उसके रहते हुए भी हम यह स्पष्ट कर दें कि हमारी नीति वही है जो पहले थी? क्या कोई कह सकता है कि त्रिविध बहिष्कार की नीति जिसे हम पुनः स्वीकार कर रहे हैं वही त्रिविध बहिष्कार की नीति नहीं है जिसे महात्माजी ने प्रवर्तित किया था, बल्कि किसी और शख्स की बनाई है? हम महात्माजी के ही अर्थ में त्रिविध बहिष्कार–नीति की पुनः स्थापना करते हैं। इसलिए नहीं कि श्री दास अथवा उनके दल का कोई सदस्य उस अर्थ को सही मानता है, बल्कि इसलिए कि वे कहते हैं कि हम अब यहां इस बात पर लड़ाई लड़ना नहीं चाहते। वे इस बात को मंजूर करते हैं कि आप और मैं एक नीति को स्वीकार कर चुके हैं और बराबर उसपर कायम हैं। यदि आप श्री दास का अर्थ मंजूर करना चाहते हों तो आपको स्वराज्य–दल का सदस्य होना पड़ेगा। इस प्रस्ताव को स्वीकार करके आप ऐसा नहीं कर सकते। एक के बाद दूसरे वक्ता ने उठ कर स्वराज्य–दल के कार्यक्रम तथा पुराने असहयोग–कार्यक्रम की भिन्नता का मुद्दा फिर आपके सामने खड़ा किया है। आप मेरी बात मानिए कि यदि आप मेरे इस प्रस्ताव के हक में राय दें तो आप यह समझ कर कि हमने स्वराज्य–दल का कार्यक्रम स्वीकार नहीं किया है घर जा कर बाफिक्राम गहरी नींद लें। देहली के पहले हमारी जो नीति थी हम उसीको यहां दुहराते हैं। पर आप अपने उन मित्रों को जो हमसे सहमत नहीं हैं यकीन दिला दें कि देहली में हम जो कुछ कर चुके हैं उसे मिटाना नहीं चाहते। यदि हम महासभा की प्रतिष्ठा की रक्षा करना चाहते हों तो हमें उसकी एकता और एकमता की रक्षा करनी होगी। जो काम हम अच्छी तरह ठोंक–पीट कर कर चुके हैं उसे हमें तबतक न बिगाड़ना चाहिए जबतक कि उसके लिए वैसे ही सबल कारण न हों। यदि हम आज त्रिविध बहिष्कार के प्रचार का तीव्र आन्दोलन उठाना चाहते तो ऐसा करने के लिए सबल कारण हो सकते थे; पर आज आप तीव्र तूफानी कार्यक्रम नहीं चाहते हैं, बल्कि रचनात्मक कार्य की बुनियाद डालना चाहते हैं। मैं अपने विरोधक वक्ताओं को याद दिलाये देता हूं कि तीव्र तूफानी रचनात्मक कार्य के लिए अब समय नहीं रहा है।

उप–चुनाव करने के विषय का भी जिक्र किया गया है। बहिष्कार तभी फलदायी हो सकता है जब व्यक्तियों से उसका संबंध न हो। किसी खास उप–चुनाव का बहिष्कार वैसी ही एक दिल्लगी होगी जैसी कि किसी एक गली में तो हड़ताल मनाई जाय और दूसरी तमाम सड़कों पर धड़ाके से खरीदी–बिक्री होती रहे। उप–चुनाव का बहिष्कार राष्ट्र के लिए हितकारी नहीं हो सकता। इसलिए हमें उप–चुनावों के झगड़े में न पड़ कर महासभा–संस्थाओं को ही यह भार सौंप देना चाहिए कि वह समय समय पर जैसा मुनासिब समझे करे। हम तो सिर्फ सिद्धान्तों का निर्णय कर लें।

इस प्रस्ताव को उपस्थित करते समय मैंने सिर्फ साधारण सिद्धान्त के ही संबंध में थोड़े में विवेचन किया था। ब्योरे की बातें तो समितियों पर ही छोड़ देनी चाहिए। हम लोगों के लिए यह असंभव है कि कानूनी भाषा, पदच्छेद आदि पर विचार करें जिसका कि जिक्र विरोधक वक्ताओं ने किया है। खेद है कि इस उत्तर में मुझे ऐसी कुछ बातों की चर्चा करनी पड़ी। एक लफ्ज और। गलतफहमी का डर कमजोरी से पैदा होता है और हमें उसे दूर कर देना चाहिए। यदि आप मुझपर विश्वास करें तो इस प्रस्ताव में असहयोग अपनी पूरी ताकत के साथ विराजमान है और रचनात्मक कार्य के लिए अधिकारयुक्त आदेश है। यही बात हम इस साल में करना चाहते हैं। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप इस प्रस्ताव को स्वीकार करें और संशोधन को नामंजूर। यदि ऐसा करके हम गलती करते हों तो गलतियां हमेशा दुरुस्त की जा सकती हैं। हमें अपने मौजूदा अकीदः के अनुसार चलना ही चाहिए। (महात्मा गांधी की जय–ध्वनि)

हिन्दी-नवजीवन

अंक-दिन ६७७, रविवार, पौष सुदी ७, सं. १९८०

भारी कसौटी

महासभा ने अपना स्पष्ट और निश्चित आदेश दे दिया है कि रचनात्मक कार्यक्रम में अपनी सारी शक्ति लगा दो। अब यह देखना है कि कार्यकर्त्ता लोग महासभा के प्रति वफादार रह कर उसके आदेश का पालन कहां तक करते हैं? भावी कुछ महीने का समय हमारे इस राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में बड़े आनबान का होगा, इसमें जरा भी अत्युक्ति न समझिए। हमारी सफलता या विफलता का आधार है हमारा इस काम में जुट पड़ना या न जुट पड़ना। इन चन्द महीनों में जोश-तमाशे और धूम-धड़के का नामोनिशान न दिखाई देगा; और इन्हीं दिनों में हमारी कड़ी से कड़ी आजमाइश होगी। क्या भारतवर्ष फिर एक बार असहयोग के झण्डे के नीचे खड़ा हो कर धीरज के साथ अपने उस काम और शक्ति का परिचय देगा जो कि यहां विदेशी आधिपत्य को एकबारगी नामुमकिन कर दे और स्वराज्य को पक्की और गहरी बुनियाद पर खड़ा कर दे? यही एक सवाल है जिसके जवाब पर अब हमारे आन्दोलन का सारा इतिहास अवलंबित है। अत्यन्त निष्ठुर काकदृष्टि रखनेवाला मनुष्य भी इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि हमारे कार्यकर्त्ताओं ने इन पिछले चार वर्षों में किस वीरता और धीरज के साथ मुसीबतों को सहा है, किस श्रद्धा और साहस के साथ दृढ संकल्प हो कर कठिन परीक्षा के दिनों को बिताया है। उनकी वह कृति महा महिमामयी भारतमाता के गौरव के सर्वथा योग्य थी। पर अब उनकी आजमाइश पहले से भी कठिन और तेज होगी। यदि हमें अपनी आजादी के दावे को साबित करने के लिए और भी कठिन परीक्षा से गुजरना पड़े तो इससे वह परमेश्वर जो कि समस्त राष्ट्रों का शास्ता और नियन्ता है, अधिक ही प्रसन्न होगा। इसमें कोई शक नहीं कि हमारा कष्टसहन और आत्म-त्याग अब सहनशक्ति के परे हो गया है। कितनी ही वीर आत्मायें थक गई हैं और पुकार कर कहती हैं— और कबतक जुते रहेंगे? यदि दूसरे लोग लड़ाई के मैदान में उनका स्थान ग्रहण करें तो उन्हें मुबारक होगा; वे कुछ समय अपना झोला उतार कर अपने थके शरीर को कुछ आराम देना पसन्द करेंगे। पर यह कैसे हो सकता है? इस आखिरी और भारी आजमाइश से गुजरे बिना काम नहीं चल सकता। परमात्मा ने यदि चाहा तो अब की बार विजय हमारी है।

अब सिवा रचनात्मक कार्य के दूसरी बात मुंह से न निकालिए। दूसरी बातें चाहे कितनी ही लुभावनी दिखाई दें, कितनी ही मनोमोहक और तेज दिखाई दें; पर वे हमें महासभा के एक मत से स्वीकृत रचनात्मक कार्य के पथ के बाहर नहीं ले जा सकतीं। अभी भाई जैसी बेचैन अरमाओं का, जो कि इसी दम आजादी मिलने की प्यासी हैं और जो कि उसके लिए जो मांगी जाय कीमत देने में आगापीछा नहीं करतीं, स्पष्ट और असन्दिग्ध शब्दों में यह कहना कि रचनात्मक कार्यों में अपनी सारी शक्ति लगा दो, अवश्य ही गहरे विचार और चिन्ता से खाली नहीं है। इस कार्यक्रम की पूर्ति हमें जितनी जल्दी हो सके कर डालनी चाहिए—कोई बात हमारे इस काम में बाधा न डालने पावे। चुपचाप काम करने की शक्ति और हिम्मत के लिए सब तरह से मैदान खुला कर देना चाहिए।

कल ही मुझसे एक थके हुए योद्धा ने कहा—इन तीन साल के राजनैतिक अनुभव से मेरा जी ऊब उठा। अब मुझे किसी देहात में बैठ जाने दीजिए। मैं एक पंचम (अछूत) लड़के को अपने घर में रख लूंगा और रोज चरखा काता करूंगा। मुझे वहीं जाने दीजिए।"

मैंने कहा—"परमात्मा तुम्हारा भला करे! यही करने की इस वक्त जरूरत है।"

तर्क और युक्तिवाद जिस सत्य का अनुभव नहीं कर पाते उसतक शुद्ध अन्तःकरण अपने आप पहुंच जाता है। अब वह समय आ गया है जब कि महासभा का हर एक कार्यकर्त्ता मेरे इस थके मित्र की तरह खुद ही नमूना बन कर औरों के आगे मिसाल पेश करे। पहले किसी एक गांव को चुन लीजिए और वहां आसन जमा कर सारा समय चरखा कातिए। लोगों को अपने कार्य के द्वारा अपनी इस श्रद्धा का परिचय होने दीजिए कि स्वराज्य चरखे के ही द्वारा मिलेगा, जैसा कि बापूजी ने वादा किया था। बस शान्ति के साथ बैठ कर चरखा कातिए। आपको लोगों के यहां जाने की जरूरत नहीं; लोग तो खुद-ब-खुद आपके दरवाजे दौड़ते हुए आवेंगे। देहात में बैठ कर आप स्वराज्य की इमारत को खुद-ब-खुद साफ तौर पर बनते हुए देखेंगे।

कोकनाडा महासभा मेरी दृष्टि में वह महासभा हुई है जिसने चरखा-वर्ष का श्री गणेश किया है। यह वह वर्ष होगा जिसमें बापूजी की अभिलाष-पूर्ति होगी। यह न पूछिए कि कातने से मजदूरी क्या मिलेगी? न अर्थशास्त्र और राजनीति-संबंधी बातें ही पूछिए। बस, सुबह उठ कर धर्म-भाव-पूर्वक कम से कम आधा घण्टा रोज चरखा कातिए। आपके राजनैतिक विश्वास और दैनिक कार्य चाहे कुछ भी हों; पर महासभा के लिए आप कम से कम इतना जरूर कीजिए। मेरे नजदीक तो कोकनाडा-महासभा का यही सबसे बड़ा सन्देश है। चरखा जारी करो। बस, क्या छूत और क्या अछूत सब जातियां उसे देखते देखते अपना लेंगी। उसके मधुर संगीत के बल पर तमाम क्रोध और तमाम ईर्ष्या-द्वेष लुप्त हो जायगा।

मुझे याद है, एक रोज हमारे गुरु-देव ने कहा था—"चाहे मैं और बातों में नाकामयाब हो जाऊं, पर अगर मैं भारतवासियों को भारत का पुराना कपड़ा फिर दे सका तो मैं अपने जीवन के उद्देश को पूर्ण समझूंगा।" आइए, हम इसकी पूर्ति की तैयारी करें और जब वे जेल से छूटें तो इसके द्वारा उनका स्वागत करें।

(यंग इंडिया) च० राजगोपालाचार्य

एक अपील

बहनो और भाइयो, कोकनाडा महासभा की कार्रवाई और वहां के प्रस्तावों का हाल आपको मालूम ही है। मैं जानता हूं कि मेरे कितने ही साथी उससे असन्तुष्ट रहे। उनकी राय थी कि मेरे प्रस्ताव की भाषा में काफी बल नहीं है। पर मैं कहता हूं कि मेरे प्रस्ताव का आशय इन चार बातों में बिल्कुल स्पष्ट है—एक तो हमारा सब से पहला काम है रचनात्मक काम; दूसरे, हमारे कार्यक्रम का मूलाधार अर्थात् त्रिविध बहिष्कार पुनः स्वीकार किया गया है; तीसरे, स्वराज्य दल के साथ हमारा व्यवहार न्याय्य और यथोचित रहा है और चौथे, सुलह को न खोते हुए भी हमने आवश्यक बातें प्राप्त कर ली हैं।

कोकनाडा महासभा ने देश को निश्चित और स्पष्ट रूप से रचनात्मक काम में अपनी सारी शक्ति लगाने की राह दिखाई है। आइए, हम उसमें तुरन्त कूद पड़ें और साल भर लगातार परिश्रम के साथ काम करें। हमें चाहिए कि हम अब अपना समय और शक्ति शंका-कुशंकाओं और चर्चाओं में जरा भी न गवांवें। बस, अकेला चरखा ही हमारा वर्तमान कार्यक्रम है। इसकी पूर्ति ही महात्माजी के प्रति हमारी भक्ति का प्रमाण होगी।

च० राज०

नवीन युग का उदय

लोगों को तो नवीन युग के उदय का अनुभव बहुत पहले से हो चुका है पर कौन जानता था कि सरकार को इसका अनुभव इतना जल्दी होगा ?

बोरसद के लोगों के संग्राम की दिनचर्या को हम रोज पढते थे, और यह देखकर कि वे लोग भी जिनसे तपश्चर्या की अधिक आशा नहीं रक्खी जा सकती, तपस्या में दिन पर दिन आगे बढते जाते हैं, ईश्वर के आगे कृतज्ञता भाव से हमारे सिर झुकते थे। पर यह आशा किसीको न थी कि उनकी तपस्या इतनी जल्दी सफल हो जायगी ? कुछ दिन पहले बंबई-सरकार के समाचार विभाग के अफसर ने उन लोगों को जो बोरसद के लोगों को कर न देने की सलाह देते थे, षड्यन्त्र रचने का अपराधी ठहराया था। उस समय हमनें समझा था कि सरकार कडे उपायों का अवलंबन करेगी। पर सरकार ने शीघ्र ही अपनी भूल को समझ लिया। जिलों के इतिहास में पहली ही बार लाट साहब ने अपने गृह-सचिव को भेजा कि वे जाकर तहसील के लोगों के दुःखों की जाँच करें। उन्होंने न केवल लोगों की शिकायतें सुनीं, बल्कि उन्हें अभिवचन दिया कि लाट सा. के सामने आपकी तमाम बातें पेश करूंगा। उनकी बातचीत वैसी धमकी से भरी हुई नहीं थी जैसी कि पांच वर्ष पहले प्रेट साहब ने घर-बार लूटने की धमकी लोगों को दी थी, बल्कि उसमें सभ्यता और शिष्टाचार था। इसे यदि नवीन युग का उदय नहीं तो क्या कहें ?

उन्होंने सब हाल कहा और लाट साहब ने तुरन्त हुक्म दिया कि कर न लिया जाय और जब्त किया हुआ माल वापस लौटा दिया जाय। इस जमाने में ऐसा न्याय इतनी जल्दी के साथ करने के लिए असाधारण दृढता की आवश्यकता है। बंबई के नये लाट साहब के यह असाधारण दृढता प्रकट करने का रंग यदि भारत सरकार पर भी चढ जाय तो सारे देश के राज्यकर्त्ता-मंडल में नवीन युग का उदय हो जाय। इस शुभ दिन के लिए ईश्वर हमसे कठिन तपस्या चाहते होंगे। आज के लिए तो आइए, हम उसे धन्यवाद दें।

सरकार की विज्ञप्ति की भाषा की छीछालेदर करने में हमारी शोभा नहीं। हमारे लिए तो इतना ही बस है कि लोगों के सिर का कलंक धुल गया। हिंदुस्तान में आज पहली ही बार कर न देने की हलचल राजमान्य हो रही है, यही हमारे लिए काफी है। हम जान सकते हैं कि इतने ही के लिए लाट साहब को कितनी मिहनत उठानी पडी होगी।

लाट साहब ने लोगों से सहायता और सहयोग चाहा है; पर गृहसचिव ने उन्हें यह बताया ही होगा कि सहायता और सहयोग करना लोगों के लिए कितना व्यर्थ और कठिन हो गया है। हम आशा करते हैं कि उस बुराई को जो सहायता और सहयोग को असंभव बना देती है दूर करने के कर्तव्य पर उन्होंने ध्यान दिया ही होगा। एक सारी जाति को जरायम पेशा मान कर उसे कडे-बेडी के एक ही उपाय द्वारा सुधारने की आशा रखने की प्रवृत्ति यदि बदल जाय तो सरकार के द्वारा इस जाति के भविष्य-सुधार की आशा की जा सकती है। नवीन युग के उदय होने पर यह मनोदशा भी बदल सकती है। पर यदि न भी बदले तो लोगों के अन्दर काम करनेवालों का कर्तव्य तो ज्यों का त्यों बना ही हुआ है।

बोरसद के वीर लोगों ने सत्य और अहिंसा की ज्योति को जरा भी न बुझने देते हुए अचल रह कर विजय के साथ इस संग्राम को जारी रक्खा, इसके लिए उन्हें जितने धन्यवाद दिये जाय कम हैं। यदि श्री वल्लभभाई पटेल जैसे नेता उन्हें न मिले होते तो यह सवाल ही है कि उन्होंने इस संग्राम का शंख भी फूंका होता या नहीं। ऐसी अटल आत्मश्रद्धा के साथ इस संग्राम का नेतृत्व स्वीकार करने और उसका सफलतापूर्वक संचालन करने के लिए श्री वल्लभभाई कितने धन्यवाद के पात्र हैं यह कहने की जरूरत नहीं।

यह भय रखने का कोई प्रयोजन नहीं कि लोग इस विजय से फूल उठेंगे। फूल उठना तो दूर रहा, आज तो हर्ष मनाने का भी समय नहीं है। अभी तो हमें लंबी मंजिल तय करना बाकी है। इसका जितना ज्ञान लोगों को है उससे अधिक उनके अन्दर रहने वाले कार्यकर्त्ताओं और श्री वल्लभभाई को है। इस अवसर पर हर शख्स के दिल में यही भाव प्रधान रूप से काम कर रहा है कि इस प्रकार उत्तरोत्तर आजमाइशों से धीरे धीरे गुजरते हुए, ईश्वर के प्रति कृतज्ञता रखते हुए कब हम आखिरी परीक्षा से उत्तीर्ण होंगे और उसके फल-स्वरूप अपने कर्णधार को अपने बीच देखेंगे।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

महासभा की कथा

मौ० शौकतअली

कोकनाडा-महासभा के सभापति मौ. महम्मदअली थे, और मुख्य प्रस्ताव कर्त्ता च० राजगोपालाचार्य और देशबन्धु दास थे; फिर भी यह महासभा तो मौलाना शौकतअली की ही कही जा सकती है। मौलाना महम्मदअली ने देहली के प्रस्ताव के बाद एक विज्ञप्ति में कहा था कि "अभी मेरे बडे भाई जेल में हैं। उनके आने पर सब बातें ठीक हो जायगीं।" बडे भाई ने जेल से आते ही लोगों का ध्यान सिर्फ दो बातों की ओर खींचा। सबसे पहली बात यह कि हमारे सरदार—मौ० शौकतअली के साथ बैठनेवाले शख्स इस बात की गवाही देंगे कि 'मेरे सरदार' ये शब्द मौ. शौकतअली के मुंह से दिन में सैकडों बार निकलते हैं—जेल में हैं, और दूसरी यह कि हमारी लडाई अभी लडना बाकी है और हमारा दुश्मन एक है। इन दो बातों को लेकर देश को इस छोर से उस छोर तक उन्होंने हिला डाला। महासभा होने के पहले ही वे स्वराज्य-दलवालों से मिले। दिसंबर की शुरुआत में हुई उनकी सभा में वे गये। और उनके द्वारा एक विज्ञप्ति प्रकाशित करा के महासभा को अभयदान दिलाया कि स्वराज्य-दल महासभा की नीति को बदलना नहीं चाहता। वे यह भी नहीं मतलब करना चाहते कि धारासभा महासभा का एक अंग बन जाय। शान्ति स्थापित करने के लिए उनका यह पहला प्रयत्न था। दूसरा प्रयत्न था, देशबन्धु से दूसरी विज्ञप्ति प्रकाशित करवाना कि "यदि लोग धारासभा का मुंह ताकते रहेंगे तो बडी भूल करेंगे। धारासभा से स्वराज्य मिलने की आशा न रक्खें।" इस प्रकार दो अभयदान ले कर वे कोकोनाडा आये और वहां उन्होंने श्री राजगोपालाचार्य के पक्ष से स्वराज्य-दल को अभयदान दिला दिया। उन्होंने कट्टर असहयोगियों से यह अभिवचन ले लिया कि देहली में जो हो गया सो हो गया, हम उन्हें धारासभा से वापस नहीं बुलावेंगे और न उनका विरोध करेंगे। इस तरह परस्पर अभयदान दिलाकर उन्होंने शान्ति-स्थापना की। सब लोग इस बात को जानते थे। आप किसी भी सभा में चले जाइए, लोग शौकतअली पीछे पागल नजर आते थे। किसी ऐसा प्रस्ताव के खिलाफ यदि लोगों को तैयार करना हो तो बस शौकतअली को खडा कर दीजिए—काम फतह। सब उनको देख कर हंस उठते, वे सब को देख कर हंस उठते। अपने नोक-झोंक का जिक्र किये बिना तो वे शायद ही कोई बात करते हों। तथापि एक शख्स ऐसा न मिलता था जिसे उनकी

संजीदगी पर कोई शुबह हो। जहां यह सन्देह होने लगा कि तुरन्त उनके मुंह से महात्माजी का नाम निकला और आंखों से सावन-भादों की झड़ी बरसने लगी। मालूम होता है, वे मुंहसे बातें नहीं करते, अपना हृदय चीर कर बातें करते हैं और आपसे भी निष्पाप हो कर बातें करने की आशा रखते हैं। महात्माजी का नाम सब लोगों की जबान पर था; उनकी गैरहाजिरी सबको अखरती थी; परन्तु मौ. शौकतअली को देख कर यह दुःख थोड़ा-बहुत हलका होता था। मानों सबको उन्होंने मन्त्र-मुग्ध कर लिया था और सब से वे अपना चाहा करा लेते थे।

सच्ची भक्ति

देहली महासभा से आकर "हीली भक्ति देख कर साधू भये उदास" यह वचन कहना पड़ा था। कोकनाडा में कहीं भी ऐसा दृश्य न दिखाई दिया जिसे देख कर साधु उदास होते। वह भूमि ही साधुओं से पूर्ण थी। इन साधुजनों के चरित मैं किसी अगले अंक में प्रकाशित करूंगा। यहां तो इतना ही कहता हूं कि देहली का विरोध यदि कहीं देखना हो तो वह कोकोनाडा था। देहली में ऐसा मालूम होता था मानों यहां सब ऐसे लोग एकत्र हुए हैं जो बापूजी के सिद्धान्तों से अब उठे हैं, उनके पंजे से छूटने के लिए व्याकुल हो रहे हैं। सरकारी शिक्षालय में शिक्षा ग्रहण करने वाला विद्यार्थी इस बात का अभिमान नहीं रखता कि मैं सरकारी शिक्षालय में जा कर देश-सेवा करता हूं। वकील लोग भी शायद यह अभिमान न रखते हों कि अदालत में जा कर हम असहयोग की अथवा देश की सेवा कर रहे हैं। पर देहली में इस बात का अभिमान रखनेवाले बहुतेरे लोग देखे गये थे कि हम धारासभा में जा कर देश की सेवा कर रहे हैं। देहली में खादी की भक्ति से भरे शब्द किसी के मुंह से न सुनाई देते थे और न वहां बाहरी रौनक में खादी की बहार दिखाई देती थी। डेरो-खेमों और फर्श की बात जाने दीजिए, वहां तो स्वयंसेवकों के बदन तक पर खादी नहीं दिखाई देती थी। पर कोकनाडा में जहां चले जाइए वहां बस खादी ही खादी। खादी का बड़ा भारी शामियाना २३०००) खर्च कर के बनाया गया था। वह भी जैसे तैसे मोटे-भद्दे सूत के कपड़े का नहीं था, बल्कि आन्ध्र-प्रान्त की ही रुई के आन्ध्र-देश के ही स्त्री-पुरुषों के हाथों सफाई और चिन्ता के साथ कते ऊंचे नंबर के सूत की खादी उसमें लगाई गई थी। फर्श भी जहां देखिए तहां खादी की ही। 'शौकताबाद' में भी खादी और स्वयंसेवक-मंडप में भी खादी। स्वयंसेवकों में जो सभ्यता और मृदुता देखी वह और कहीं नहीं दिखाई दी। दूसरे प्रान्त का एक मामूली से मामूली आदमी भी उनकी दृष्टि में नेता के बराबर था। और एक पांव पर वे उनकी फरमाइश पूरी करने के लिए तैयार रहते थे। केवल १५०० स्वयंसेवक पर ही नहीं, बल्कि १५० स्वयंसेविकाओं पर भी यह बात घटती है।

हर जगह यह साबित होता था कि इन्तजाम में भी गांधी-भक्तों का हाथ प्रधानरूप से था। इसका अधिकांश श्रेय डा० पट्टाभि सीतारामैया, डा० सुब्रह्मण्यम् और श्री सांबमूर्ति को है। जहां जहां कपड़े की जरूरत थी वहां वहां खादी ही इस्तैमाल की गई थी। यही नहीं, इन्तजाम की दूसरी बातों में भी शुद्ध स्वदेशी-सिद्धान्त का पालन किया गया था। सभापति से ले कर साधारण प्रतिनिधि तक सब के लिए विविध पर्णकुटियां—आन्ध्र-देश के ताड़ के पत्तों की—बनाई गई थीं। कमोड भी जहां कहीं थे वहीं के बढ़ई के बनाये तख्तों से तैयार किये गये थे। कमल के और केले के पत्ते पत्तलों का काम देते थे और केल के सूखे छिलकों के दोने और गिलास तैयार किये गये थे। भक्तिभाव से की गई उस शुद्ध व्यवस्था में कला मानों वशवर्तिनी हो कर सर्वत्र नाच रही थी।

इस स्वदेशी और सौन्दर्य का वर्णन करते समय महासभा के एक अपूर्व दृश्य का उल्लेख किये बिना नहीं रहा जाता। उसके मूल में भी भक्ति की ही प्रधानता थी। स्वागत-सभापति श्री वेंकटपैय्या ने अपना भाषण अथ से इति तक हिन्दी में पढ़ा। वे बड़ी ही कठिनता के साथ उसे पढ़ते थे; पर अपने आन्ध्र उच्चारण के द्वारा हिन्दी में ही उसे पूरा करने का उनका संकल्प देख कर महात्माजी के प्रति उनकी इस भक्ति के सामने लोगों का सिर झुक जाता था। महात्माजी द्वारा प्रचलित हिन्दी-प्रचार का काम किस हद तक फलीभूत हुआ है, यह बात केवल कोकनाडा के हिन्दी-साहित्य सम्मेलन से ही नहीं साबित होती, बल्कि श्री वेंकटप्पय्या का भाषण भी उसकी गवाही देता था और हरएक स्वयंसेवक का टूटी फूटी हिन्दी बोल लेना भी इसका साक्ष्य देता था। कितने ही स्वागत-गीत आन्ध्र-वासियों की हिन्दी में रचे गये थे, साहित्य सम्मेलन में कितने ही आन्ध्र-नेताओं ने हिन्दी में ही भाषण किये थे और सुप्रसिद्ध भारतीय राष्ट्रगीत को तो लोग जहां तहां गाते फिरते थे।

काम क्या हुआ?

यदि हम इस बात का विचार करें कि उस देश को जिसने ब्रिटिश जैसे महासाम्राज्य के साथ लड़ाई छेड़ रक्खी है, आठ आठ दिन खर्च करने के उपरान्त कितना काम करना चाहिए, तो कहना होगा कि कोकनाडा में कुछ काम न हुआ। पर यदि हम अपनी मौजूदा परिस्थिति पर गौर करें, संग्राम की मंद गति पर ध्यान दें, तो हमें यह न दिखाई देगा कि यह समय फजूल बरबाद हुआ है। वहां स्वीकृत मुख्य प्रस्ताव की चर्चा पिछले अंक में हो ही चुकी है। यह प्रस्ताव ठीक ही हुआ है। पर वह शख्स भी जो कि इस बात को स्वीकार करता है कि हां, पहले की तरह त्रिविध बहिष्कार का सिद्धान्त और नीति कायम रहे हैं, यह कह सकता है कि सिर्फ इतनी सी बात को साबित करने के लिए इतने लोग इतने दिनों तक पड़े रहे? इसके उत्तर में 'हां' ही कहना पड़ेगा। ऐसे प्रश्नकर्त्ता को १९१९ के एप्रिल-मई की याद दिलानी चाहिए। सत्याग्रह बंद हो जाने के बाद महात्माजी ने अकेले सत्य और अहिंसा की प्रतिज्ञा कराना शुरू किया था। कितने ही लोगों को यह बात बेमानी मालूम हुई। पर ज्यों ज्यों उसपर अधिक विचार करते हैं त्यों त्यों उसका महत्व अधिकाधिक दिखाई देता है। यही स्थिति आज है। पिछले कितने ही महीने ऐसे गोलमाल में बीते हैं कि लोग इस बात को भलाभांति नहीं जानते थे कि त्रिविध बहिष्कार महासभा ने कायम रक्खा है या छोड़ दिया है। इस बात को स्पष्ट करने की जरूरत थी। और यदि हम संग्राम को फिर से तेजी के साथ चलाना चाहते हों तो हमें इसे साफ किये बिना चारा नहीं था। इस बात को महासभा के दोनों पक्ष वालों ने स्वीकार कर लिया और दोनों दलवालों ने त्रिविध बहिष्कार के सिद्धान्त और नीति का समर्थक प्रस्ताव स्वीकार किया, यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं हुई।

एकता या शान्ति

इस प्रस्ताव के विरोधकों ने तरह तरह की दलीलें पेश की थीं। मौलाना आजाद सोबानी का यही एक एतराज था कि यह प्रस्ताव 'समझौता'-प्रस्ताव है, इसीलिए त्याज्य है। मानों महात्माजी कभी 'समझौता' करते ही न थे! मैं समझता हूं कि महात्माजी के बराबर समझौते के लिए तैयार और उचित समझौते को मंजूर

करनेवाला लक्ष्मैय्या शायद ही कोई होगा । मिल-मजदूरों की लड़ाई के बाद और खेड़ा के आन्दोलन के पश्चात् क्या उन्होंने समझौता-कथित समझौता-नहीं किया था ? दूसरी दलील श्री पट्टाभि सीतारामैय्या की यह थी कि समझौता किसके साथ करें ? उन लोगों के साथ करें जिनसे हमारी एक भी बात मेल नहीं खाती ? सी. आर. (अर्थात् चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य) और सी. आर. (अर्थात् चित्तरंजन) दास ये दोनों केवल नाम के आदि अक्षरों के सिवा किसी बात में एक नहीं हैं, फिर दोनों मेल के लिए क्यों व्यर्थ कोशिश करते हैं ? इसमें खास भूल यह मान लेने में थी कि इस समझौते के द्वारा एक सी. आर. दूसरे सी. आर. का कार्यक्रम अंगीकार कर लेने के लिए तैयार हो रहे हैं । पर बात यह नहीं थी । यदि ऐसा होता तो या तो देशबन्धु स्वराज्य-दल को समाप्त कर के राजगोपालाचार्य के साथ मिल जाते अथवा श्री राजगोपालाचार्य महासभा को स्वराज्य दल में मिल जाने की सलाह देते । पर बात एकता की नहीं थी । कोकनाडा महासभा एकता कराने में समर्थ होगी, यह ख्याल तक किसीको न हुआ होगा । हां, यह आशा अलबत्ते रक्खी गई है कि इस प्रस्ताव के द्वारा सुलह रह सकेगी । और यदि प्रस्ताव के विरोधक कार्यकर्ता इस सुलह को तोड़ने का प्रयत्न न करें तो यह आशा निष्फल नहीं हो सकती । यह शान्ति हर कीमत पर खरीदी peace at any price-शान्ति न होगी, अपनी सब बातों को गवां कर प्राप्त की गई शान्ति न होगी; बल्कि अपने कर्तव्य का पालन करके हासिल की हुई शान्ति होगी । यह शान्ति निर्बल की निष्क्रिय शान्ति न होगी; बल्कि सबल की सक्रिय शान्ति होगी । यह शान्ति भविष्य में लड़ने की तैयारी करने वाले दलों की निष्फल शान्ति न होगी, यह तो भविष्य में एक-दूसरे के काम में बाधक न होने का निश्चय करनेवाले दो दलों की सफल शान्ति होगी । इस शान्ति के रहते हुए भी यदि हम काम न कर सके तो फिर दोनों दलवालों को लोगों का नेतापन करने से हाथ धो लेना पड़ेगा । इसमें कोई सन्देह नहीं ।

समरांगण

यह तो हुई दलीलों की बात । अब जरा समरांगण में चलिए । श्री राजगोपालाचार्य के प्रस्ताव और श्री श्यामबाबू के संशोधन का समर्थन करने के लिए दोनों पक्ष के योद्धा एक एक करके समरांगण में भेजे जाते थे । दोनों पक्ष के कितने ही योद्धाओं ने समर्थन करने के बदले उलटा काम बिगाड़ा । निष्पक्ष हो कर यह बात मुझे यहां कह देनी चाहिए । श्री राजगोपालाचार्य के पक्ष के दो-तीन सज्जन यदि बोलने के लिए न खड़े हुए होते तो अच्छा था, और श्री श्यामबाबू की सौम्य मूर्ति के लिए कुछ नाटकी समर्थनों की जरूरत नहीं थी । श्री रामस्वामी नायकर जब श्री श्यामबाबू के संशोधन का समर्थन करने के लिए खड़े हुए तब मैंने मन में कहा, यदि तामिल जानता होता तो अच्छा था । वे तामिल के एक अद्भुत वक्ता माने जाते हैं । कहते हैं, उनकी उपमाओं और रूपकों का मुकाबला कोई नहीं कर सकता । इसलिए उनके एक एक वाक्य का तरजुमा में एक मित्र से कराता जाता था । पांच मिनिट में उन्हें अपना वक्तव्य खतम करना था । इससे उनके सामने 'समय थोड़ा और वक्तव्य बड़ा' यह समस्या खड़ी थी । अपने छोटे से भाषण के अन्त में उन्होंने एक ही बात कही कि आप यह बात खूब समझ रखिए कि समझौते के प्रस्ताव का असर महात्माजी के वजन पर भी हो रहा है । यह निस्सन्देह महात्माजी के प्रति उनकी अपार भक्ति का प्रमाण था; पर धीर-गंभीर समुद्र जैसे महात्माजी के स्वास्थ्य पर समझौते के प्रस्ताव का बुरा असर होता है, यह दलील शायद ही किसीको पटी हो । श्री गंगाधरराव देशपांडे ने देहली के प्रस्ताव को कायम रखने के विषय में एक मनोरंजक दलील पेश कर के कर्नाटक के प्रतिनिधियों को खूब हंसाया । उन्होंने कहा—फर्ज कीजिए कि कुछ भाइयों ने ब्रह्मचारी रहने का निश्चय किया । पर इसके बाद एक भाई को शादी करने की इजाजत दे दी गई । उसे बालबच्चे पैदा हुए । तो क्या ब्रह्मचर्य के प्रस्ताव के द्वारा उस बालक को फेंक दीजिएगा ? देहली के प्रस्ताव के अनुसार कुछ लोग धारासभा में जा पहुंचे । वे गये सो गये—वे हमारी इजाजत से गये हैं, यह माने बिना चारा नहीं । श्री० राजगोपालाचार्य, श्री० श्यामबाबू और श्री० वल्लभभाई पटेल इन तीनों की दलीलें सचमुच प्रभावशालिनी थीं । श्री० राजगोपालाचार्य के दो भाषण अन्यत्र दिये गये हैं । श्री० वल्लभभाई ने एक बात बड़ी हृदयस्पर्शी भाषा में कही—"देहली में आपने इजाजत दी, यही नहीं बल्कि आपमें अधिकांश लोगों ने अपने मत दे कर उन्हें धारासभाओं में भेजा; अब आज आप वह इजाजत वापस ले लेना चाहते हैं, या उनसे कहते हैं कि वापस चले आइए, आपने वहां जा कर भूल की है, यह तरीका आपको जेबा नहीं देता ।" महासभा के व्यासपीठ पर खड़े रह कर संस्कृत सुभाषित शायद पहली ही बार श्याम बाबू ने सुनाये । विषय-समिति और महासभा दोनों में उन्होंने गीता के तीसरे अध्याय का श्लोक "न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्" सुनाया । और लोगों से कहा कि 'लोकसंग्रह' के ही लिए आप मेरा प्रस्ताव स्वीकार कीजिए । उनके कहने का तात्पर्य यह था कि जन-साधारण के सामने दुर्बोध प्रस्तावों को रख कर उन्हें उनका अर्थ समझने की झंझट में डालना, नाहक उनका बुद्धिभेद करना है । श्री राजगोपालाचार्य ने यही दलील श्यामबाबू के खिलाफ इस्तेमाल कर के कहा कि बुद्धिभेद तो आप मेरे प्रताव का विरोध करके कर रहे हैं । मेरे प्रस्ताव के अनुसार तो मैं लोगों के सामने खड़ा रह कर सामिजाज असहयोग कर सकूंगा और समय आने पर त्रिविध बहिष्कार का भी प्रयोग अनुकूल क्षेत्रों में कर सकूंगा । श्यामबाबू ने डा० पट्टाभि सीतारामैया की दलील को बड़े मजेदार रूप में पेश करके संस्कृत जाननेवालों को हंसा दिया । डा० पट्टाभि ने कहा था कि दोनों सी. आर. में सिर्फ नाम का ही साम्य है । श्यामबाबू ने "श्वानं, युवानं, मघवानमाह" की याद दिलाकर कहा कि आप इस समझौते के द्वारा श्वान, युवान और मघवान की एकता करना चाहते हैं । (अपूर्ण)

कोकोनाडा हिन्दी-समेलन

महासभा के अवसर पर कोकनाडा में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का विशेष अधिवेशन भी हुआ था । निर्वाचित सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसादजी अस्वास्थ के कारण न आ सके । उनके स्थान पर श्री सेठ जमनालालजी बजाज सभापति बनाये गये थे । उन्होंने राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता पर कुछ शब्द कह कर बाबू राजेन्द्र प्रसाद की वक्तृता पढ सुनाई । राजेन्द्र बाबू का भाषण भाषा संबंधी राष्ट्रीय आवश्यकता के विचारों से पूर्ण था । आपने राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता बता कर हिन्दी को ही उसके योग्य साबित किया और फिर यह दिखाया कि मदरास, आन्ध्र, करनाटक आदि प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार किस तरह किया जा सकता है ।

आन्ध्रप्रान्त में हिन्दी-सम्मेलन का अधिवेशन होना हिन्दी प्रचार के इतिहास में एक अपूर्व घटना है । तामिल और तेलगू भाषियों का हिन्दी में भाषण करना, हिन्दी गानों की रचना करना, *हिन्दी में लेख लिखना, ये बातें ५-६ वर्ष पहले निरी स्वप्न-सृष्टि समझी जाती थीं* । पं. हरिहर शर्मा, पं. ऋषिकेश शर्मा, पं. प्रताप नारायण तथा अन्य सब कार्यकर्ताओं के परिश्रम का यह सुफल देख कर धन्यवाद के शब्द बरबस मुंह से निकल पड़ते हैं । ह.उ.

टिप्पणियां

बोरसद पर बंबई-सरकार

बंबई-सरकार ने नीचे लिखी विज्ञप्ति प्रकाशित की है—"बंबई के लाट साहब ने होम-मेम्बर के द्वारा इस बात का पता लगाया था कि बोरसद ताल्लुके में लोगों के खर्च पर ज्यादह पुलिस रखने की जरूरत है या नहीं। लाट साहब के अनुरोध से होम मेंबर ने खेडा-जिले में जाकर कुछ दिन रह कर खुद इसकी जाँच की। इस जाँच-पड़ताल के नतीजों पर लाट साहब ने अपनी सभा में विचार किया और वे इस परिणाम पर पहुंचे कि अभी कुछ समय तक ज्यादह पुलिस की एक खासी तादाद की जरूरत है, जो मामूली पुलिस के अलावा हो। लोगों की हिफाजत तथा डाकुओं को दबाने और उनको खदेडने की तैयारी करने के लिए यह जरूरी है। पर इसके साथ ही लाट साहब ने यह भी तय किया है कि इस वक्त जो ज्यादह कर लोगों पर लगाया गया है वह वापस लौटा दिया जाय। हां, यह सच है कि लोगों की उदासीनता का अधिकांश कारण है मशहूर डाकू-सरदारों की कष्टदायी और निष्ठुर गति-विधि। इसके अलावा बारिश की कमी के कारण भी कुछ लोग ज्यादह पुलिस के कर को देने से मजबूर हैं। इसलिए अपनी सभा-सहित लाट साहब ने यह निश्चय किया कि मौजूदा साल के लिए ज्यादह पुलिस का खर्च सरकारी खजाने से किया जाय और उसके लिए धारासभा से मंजूरी ली जाय।

लाट साहब को विश्वास है कि बोरसद के लोगों को ज्यादह पुलिस के फायदों का तजरिबा हो चुका है और वे सरकार की इस उदार-नीति पर ध्यान दे कर सरकार को उन कामों में सहायता और सहयोग देंगे जिनकी जरूरत वह इन भीषण जुर्मों को रोकने के लिए समझेगी।"

अकाली संघर्ष

अकाली-संघर्ष में बराबर ज्वार-भाटा उठा ही करता है। अकाली-नेताओं के मुकदमों का फैसला अभी तक नहीं हुआ है। मुक्तसर में हालत ज्यों की त्यों बनी हुई है। अमृतसर से बराबर २५ अकालियों का जत्था वहां पहुंच जाता है। अब भाई फेरू नामक स्थान के गुरुद्वारा के संबंध में विवाद खड़ा होकर अकालियों की ओर से सत्याग्रह आरंभ हो गया है। कोई १०० अकाली गिरफ्तार हो चुके हैं। इधर अमृतसर में इसी सप्ताह शिरोमणि गु० प्र० समिति के नये सदस्यों की एक बैठक हुई। काम खतम होने पर कोई ६४ सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। अकाली गिरफ्तार करने के लिए सरकार को चुनौती देते फिरते थे। अब जान पड़ता है सरकार के दरबार में उनकी पुकार की कुछ सुनवाई हुई है।

श्री सावरकर की रिहाई

कोई १४ वर्ष कालेपानी की सजा भोग कर बेरिस्टर सावरकर पिछले सप्ताह यरवडा जेल से रिहा कर दिये गये हैं। ये वही सावरकर हैं जो कैदी की हैसियत से जहाज से समुद्र में कूद कर तैरते हुए फ्रान्स के किनारे पहुंच गये थे। सरकार ने उन्हें सम्राट् के खिलाफ युद्ध करने के प्रयत्न के अपराध में आजन्म कालेपानी की सजा दी थी। आजन्म कालेपानी की सजा की मीयाद १० वर्ष की मानी जाती है। पर १४ वर्ष कारावास में रखने के बाद भी सरकार ने उन्हें बेहूदी शर्तें लगा कर छोड़ा है। इन शर्तों के अनुसार सावरकर महोदय रत्नागिरी जिले को छोड़ कर बिना मजिस्ट्रेट की इजाजत के कहीं बाहर नहीं जा सकते। ५ साल तक वे किसी राजनैतिक काम में शरीक नहीं हो सकते। यरवडा जेल के बजाय रत्नागिरी जिला अब उनके लिए एक तरह के जेल का काम देगा। समझ में नहीं आता इस छुटकारे के लिए सरकार को किस तरह धन्यवाद दें। उसने तो अपने इस शुभ कार्य के सारे श्रेय को इन शर्तों की वेदी पर स्वाहा कर दिया है। बंबई-सरकार ने यह भी प्रकट किया है कि श्री सावरकर ने खुद ही अपनी तरफ से यह सर्टिफिकट दिया है कि मुझे उचित तौर पर मामला चलाने के बाद सजा दी गई थी और वह ठीक थी। उन्होंने यह भी इकरार किया है कि अब मैं हिंसात्मक कामों को घृणा की दृष्टि से देखने लगा हूं और सरकार को शासन-सुधारों को सफल बनाने में सहायता दूंगा। यदि यह सच हो तो इसके बाद भी उस वीर आत्मा पर पूर्वोक्त शर्तें लाद कर सरकार ने अपनी क्षुद्रता का ही परिचय दिया है।

देहली-सम्मेलन के सभापति

खेद है कि अस्वास्थ्य के कारण पू. पं. महावीरप्रसादजी देहली में होनेवाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के सभापति-पद को सुशोभित न कर सकेंगे। उनके स्थान पर कविवर पं. अयोध्यासिंहजी उपाध्याय ने इस भार को वहन करने की स्वीकृति दे दी है। उपाध्यायजी के चुनाव पर भी दो मत नहीं हो सकते थे।

कुछ विशेषांक

दक्षिण आफ्रिका के **"हिन्दी,"** आगरा के **"आर्यमित्र,"** ग्वालियर के **"जयाजीप्रताप,"** और कलकत्ता के **"स्वतंत्र"** नामक साप्ताहिक पत्रों के विशेषांक मुझे मिले हैं। मैं चारों अंकों को इस गौर के साथ न देख सका कि उनकी समालोचना कर सकूं। चित्रों की दृष्टि से 'हिन्दी' और लेखों की दृष्टि से 'आर्यमित्र' का नंबर सबसे पहला है। चारों का संपादन योग्यता और चिन्ता के साथ हुआ है। 'आर्यमित्र' में प्रकाशित महर्षि दयानन्दजी के चित्र और 'हिन्दी' में प्रकाशित महात्मा गांधी के कुछ चित्र कला की दृष्टि से भद्दे मालूम होते हैं। 'जयाजीप्रताप' में इस बार कागज न जाने क्यों रद्दी लगाया गया है। 'स्वतन्त्र' का बहिरंग नेत्ररंजक न होने पर भी अन्तरंग उसकी खामी को पूरा कर देता है। खुशी की बात है कि हिन्दी-पत्रों में विशेषांक निकालने का उत्साह बढ रहा है; परन्तु इधर गुजराती 'हिन्दुस्तान,' 'सांजवर्तमान' आदि के जो विशेषांक मेरी नजरों से गुजरे हैं उनके मुकाबले में सजावट कला, और लेख-सामग्री की दृष्टि से हिन्दी के इन विशेषांकों में अभी बहुत उन्नति की गुंजायश है। हिन्दी-संपादक पण्डित भवानीदयालजी को मैं खास तौर पर बधाई दिये बिना नहीं रह सकता कि उन्होंने एक विदेश में 'हिन्दी' के इस विशेषांक को परिश्रम-पूर्वक सुसज्जित करने का प्रयत्न किया है। ह० उ०

भूल-सुधार

बहुतेरे पत्रों में मेरे उस भाषण की, जो कोकनाडा-महासभा में अपने प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए मैंने किया था, यह रिपोर्ट छपी है कि मैंने कहा—"धारासभा का बहिष्कार जिन्दा है मरा नहीं, जैसा कि शिक्षालयों और अदालतों का बहिष्कार है।" यहां पूर्णविराम लगाने में गलती हुई है, जिससे सारा मतलब ही उलट जाता है। मैंने कहा था कि त्रिविध बहिष्कार जीवित है मरा नहीं। मैंने बताया कि शिक्षालयों और अदालतों का बहिष्कार तो तबतक कायम रहेगा जबतक हम राष्ट्रीय शिक्षालयों और पंचायतों को कायम रखना चाहते हैं। हां, उनके संबंध में हमने उग्र आन्दोलन अलबत्ते बन्द कर दिया है। इसके बाद मैंने एक अलग वाक्य में कहा कि जिस प्रकार शिक्षालयों और अदालतों का बहिष्कार पहले से चला आता है उसी प्रकार धारासभाओं का बहिष्कार भी है; क्योंकि सरकारी धारासभाओं से अलग रह कर हम महासभा को एक यथार्थ और सबल राष्ट्रीय संस्था बनाना चाहते हैं। च० राजगो०

बापूजी का संदेश

सम्पादक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक २३

सम्पादक—हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय | अहमदाबाद, पौष सुदी १४ संवत् १९८० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
मुद्रक-प्रकाशक—वेणीलाल छगनलाल बूच | रविवार, २० जनवरी १९२४ ई० | सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

राष्ट्र का संकट टला

महात्माजी की बीमारी

आँत के फोड़े में नश्तर — **अब आराम हो रहा है**

देश भर में चिन्ता और प्रार्थना

कल के समाचार

१९ ता० (दो पहर) का तार कहता है—'कल की रात वैसे अच्छी गुजरी। बुखार उतर गया। ताप-मान ९७ और नाड़ी ठीक है। घाव अभीतक बह रहा है। अच्छा होने के लिए कुछ समय दरकार है। यों हालत अच्छी है। डाक्टर जीवराज आज दो पहर को चले गये। अस्पताल के डाक्टर हर उपाय से जल्दी आराम करने की कोशिश कर रहे हैं। यहां के डाक्टर-मित्र इलाज को सन्तोषजनक समझते हैं।

बीमारी का विवरण

गत ८ जनवरी को श्रीमती अनसूया बहन श्री इन्दुलाल याज्ञिक से मिलने यरोडा जेल में गईं थीं। वे १० ता को यह समाचार लाईं कि महात्माजी को १०२ डिग्री तक बुखार आता है। इसपर भाई रामदास गांधी ने ११ ता. यरोडा जेल के सुपरिंटेंडेंट से तार द्वारा महात्माजी की तबीयत के हालात पूछे।

गत १२ ता० शुक्रवार को जेल से जवाब आया कि महात्माजी को कुछ कुछ बुखार आता है। मगर चिन्ता का कोई कारण नहीं है। दूसरे दिन, अर्थात् शनिवार शाम को पांच बजे एकाएक सुपरिंटेंडेंट ने तार द्वारा खबर दी कि महात्माजी पूना के सासून अस्पताल में पहुंचाये गये हैं। रविवार सुबह को सिविल अस्पताल के सर्जन से तार और फोन के द्वारा समाचार मिला कि कल रात महात्माजी को 'अपेंडिसाइटस' का आपरेशन किया गया। नश्तर ठीक ठीक लगा और उनकी हालत अच्छी है।

शनिवार की ही रात को हमारे खास प्रतिनिधि यहां से पूना रवाना हो चुके थे। महात्माजी से मिल कर उन्होंने १४ ता. को सुबह तार द्वारा खबर भेजी कि ता ५ शनिवार से महात्माजी को बुखार आता था। पेडू के दाहिनी ओर दर्द भी होता था। गत शुक्रवार को पूना के सिविल सर्जन उनको देखने जेलखाने में गये थे। फिर दूसरे शनिवार को जब गये तब उन्हें यह शक हुआ कि दर्द के मुकाम पर मवाद पड़ गया होगा। और उसी समय (दो पहर को) अपनी मोटर में बिठा कर सासून अस्पताल में ले आये।

डाक्टरों ने मिल कर सलाह की और महात्माजी के खून की जांच कर देखी। महात्माजी ने उस मुकाम को बताया जहां बार बार दर्द उठा करता था। उस मुकाम पर जांच करने से मालूम हुआ कि Appendix में अर्थात् बड़ी आंत के साथ लगी हुई एक फाजिल नली में मवाद बाकर जमा हो गया है और वह फूल गई है। डाक्टरों ने तय किया कि नश्तर लगाया जाय। महात्माजी के कहने से बंबई डा. दलाल को और बडोदा डाक्टर जीवराज मेहता को तार और टेलीफोन कर के बुलाया, पर वे समय पर न पहुंच पाये। तब रात को करीब सवा दस बजे सिविल सर्जन ने नश्तर लगाया। क्लोरोफार्म सुंघाने के बाद एकाएक बिजली की बत्तियां बुझ गईं। तुरन्त दूसरी रोशनी मंगवा कर काम चलाया गया। इस बीच दस मिनिट रुक रहना पड़ा था।

महात्माजी के शरीर का ताप-मान मामूली है। नाड़ी ठीक ठीक चलती है। बहुत कमजोर मालूम होते हैं। वजन कोई ९० पौंड होगा। भोजन की जगह शकर का तैयार किया एक रस दिया जाता है।

ता १४

१४ता के दोपहर के तारों में खबर थी कि महात्माजी को कल रात अच्छी नींद पड़ी। चेहरे पर ताजगी मालूम होती है। बुखार नहीं है। पेशाब ठीक ठीक होता है पर दस्त नहीं हुआ। बहुत धीरे धीरे बोलते हैं। कमजोरी बहुत है, फिर भी खूब प्रसन्नचित्त हैं।

इसके बाद के समाचार से मालूम हुआ कि पिचकारी लगाने से कुछ दस्त हुआ। २ दफा करके पाव आध दूध उन्हें दिया गया।

बुद्ध की तरह सुशील

१५ ता. को हमारे प्रतिनिधि पूना से लौटे। उनके जबानी मालूम हुआ कि महात्माजी को अब बुखार नहीं आता।

जिस मुकाम पर नश्तर लगाया गया है वहां दो इंच घाव है। पर मवाद नहीं बहता और ऐसे चिह्न दिखाई देते हैं कि घाव जल्द ही सूखने लगेगा। महात्माजी तरोताजा तो नजर आते हैं; पर फिर भी कमजोरी खूब है। यह नहीं मालूम होता कि बिछौने पर कोई सोया हुआ है। बुद्ध के ४९ उपवास करने के बाद की अवस्था के जो चित्र देखे जाते हैं, उनकी तरह हड्डी का ढांचा भर नजर आता है। शरीर में खून बहुत कम है। नश्तर लगाने के पहले से ही शरीर बहुत कमजोर हुआ मालूम होता है। अब तो उनकी ओर देखा तक नहीं जाता। बहुत धीरे धीरे पर अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता के साथ बातें करते हैं। हमसे कुशल-समाचार पूछते हैं! उनकी बातों का मुख्य विषय होता है अस्पताल के अधिकारियों के द्वारा की गई अपनी सेवा-शुश्रूषा का वर्णन! रवाना होने के दस मिनिट पहले मैं उनके कमरे में गया था। सो रहे थे। अभी नहीं कह सकते कि खतरा निकल गया। व्याधि-शय्या से उठने को तो अभी कमसे कम तीन हफ्ते लगेंगे।

१५ ता.

खतरा कम

बापूजी को रात में बहुत शान्त और देर तक नींद पड़ी। ताप-मान साधारण है। नाड़ी भी ठीक है। खतरा कम होता जाता है। मामूली खुराक लेने की छुट्टी दी गई है। अभी खुराक लेना शुरू नहीं किया है।

कर्नल मेडोक ने भी इस आशय की सूचना भेजी कि महात्मा जी की हालत सन्तोषजनक है।

कृतज्ञता का सन्देशा

बीमारी की खबरें सुन कर देश के कोने कोने से चिन्तातुर व्यक्तियों और संस्थाओं के तार वहां धड़कने लगे। यह हाल डाक्टर फाटक ने महात्माजी को सुनाया। उसपर उन्होंने नीचे लिखा सन्देशा उन्हें लिखवा कर भिजवाया—

"स्वास्थ्य खराब होने पर मेरे प्रति स्वदेशवासियों ने जिस प्रेमभाव का परिचय दिया है उसका मेरे हृदय पर बहुत प्रभाव पड़ा है। अब उन्हें चिंतित होने की आवश्यकता नहीं। डाक्टर लोग बड़ी सावधानी से मेरी औषधि कर रहे हैं।"

१६ ता. को हालत सन्तोष-जनक होने के समाचार आते रहे।

१७ ता.

महात्माजी की तबीयत पिछले सब दिनों से आज अच्छी है और चेहरे पर रौनक मालूम होती है। दूध और फल के अलावा नरम भात खाने की छुट्टी डाक्टरों ने दी है। आज बिना ही पिचकारी के दस्त हुआ। यह तबीयत दुरुस्त होने का स्पष्ट चिह्न है। ताप-मान कोई ९७ है। नाड़ी और सांस की गति नियमित है। डाक्टर जीवराज ने महात्माजी को देखा। उन्हें हालत सन्तोषजनक मालूम हुई।

मिलने-जुलने में कष्ट

श्री. देवदास गांधी ने कर्नल मेडोक तथा उनके साथियों के प्रति, तुरन्त नश्तर लगाने के लिए, कृतज्ञता प्रकट की है। वे कहते हैं कि कर्नल मैडोक ने सफाई के साथ नश्तर लगाकर तथा यथोचित चिकित्सा कर के मेरे पिताजी को खतरे से बचा लिया है। महात्माजी कमजोर बहुत हैं; परन्तु खुशमिजाज रहते हैं। दो चार शब्द कहने में अथवा मिलने आनेवाले मित्रों को नमस्कार करने में उन्हें बहुत शारीरिक और मानसिक श्रम होता है। वे थक जाते हैं। इससे नींद में खलल पड़ता है। उत्तरी भारत के कितने ही मित्रों ने महात्माजी से मिलने की इच्छा प्रकट की है। पर महात्माजी ने श्री देवदास के द्वारा सब सज्जनों से यह अनुरोध किया है कि उनसे मिलने के लिए कोई सज्जन अपना स्थान और कार्य न छोड़ें।

तेजी से आराम

इसके बाद समाचार मिले कि बापूजी की तबीयत अच्छी है। रात को खूब सोये थे। कल कुछ नरम भात और बकरी का दूध पिया था। फल भी खाये थे। बुखार नहीं है। नाड़ी ठीक है। तेजी के साथ आराम हो रहा है। कमजोरी कम होती जाती है। आवाज जोरदार और साफ होता जाता है। पू० कस्तूर बा, अनसूया बहन, देवदास, मथुरादास सतत शुश्रूषा में रहते हैं।

फिर बुखार आया ता. १८

१७ ता. की रात को दो बजे तार मिला—महात्माजी को आज शाम को १००·६ डिग्री बुखार चढा। नाड़ी की गत ८२ है। जख्म में वरमे नहीं। पट्टी बदलने से पहले जरा दर्द होता था। पट्टी बदलने के बाद बिलकुल बंद हो गया। हालत आम तौर पर ठीक है; खाना ठीक ठीक खाया है।

१८ ता. (दो पहर) को खबर मिली—महात्माजी रात को अच्छी तरह सोये। तापमान ९८ है। नाड़ी की गति ७६ है। घाव बहता रहता है। हालत आम तौर पर सन्तोषजनक है।

डाक्टर दलाल कल सुबह यहां आये और शाम तक दो बार बापूजी को देखा। डा. जीवराज मेहता भी यहीं हैं। बापूजी को कब्ज रहता था; पर कल रात को दस्त साफ हुआ, इससे बहुत आराम मालूम हुआ और बुखार कम होने लगा। भोजन में द्रव-पदार्थ लेते हैं।

देश भर में जगह जगह गत १८ ता. को महात्माजी के आरोग्य के निमित्त ईश्वर-प्रार्थना की गई।

इसपर मैंने कहा कि "तब कैसे उस दिन मौलाना महम्मद अली ने आपका सन्देश सब को सुनाया?" ज्योंही ये शब्द मेरे मुख से बाहर निकले कि मुझे उनपर अफसोस होने लगा। परन्तु कर क्या सकता था, मुंह से तो बात निकल गई थी। महात्मा गांधी मेरे शब्द सुनकर चकित हो गये। आपके मुंह से हठात् निकला 'महम्मदअली को मेरा सन्देश मिला?'

गनीमत थी कि सौभाग्य से उसी समय धाई आ पहुंची और मुझसे बाहर चले जाने का इशारा किया। थोड़ी ही देर में उन्हें चीरफाड़ के कमरे में ले गये। और मैं बाहर बैठा हुआ उनकी विशाल-हृदयता, उदारता, क्षमा और परोपकारिता तथा साधारण मनुष्य के लिए अगम्य उनके प्रेम-भाव का चिन्तन करने लगा जिनका अभी मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया। ईश्वर की कितनी अगाध करुणा है जो ऐसा निर्द्वेष और निर्मल अन्तःकरण तथा आत्म-सम्मान की तीव्र भावना रखनेवाला नेता असहयोग-आन्दोलन को मिला।

सर्जन जनरल और इन्स्पेक्टर जनरल आव् प्रीजन्स (जेल के आला अफसर) भी वहां थे और उनके चिन्तातुर चेहरे से यह जाना जा सकता था कि उन्हें अपनी जिम्मेदारी का कितना खयाल था। उन्होंने कहा कि नश्तर के बाद महात्माजी सचेत रहे, कुछ मवाद निकल गया है, नश्तर में जरा देर न लगी। इसके लिए हम ईश्वर को जितना धन्यवाद दें, कम है। उन्हें अफीम का सत्व दिया गया है। आशा है कि उससे उन्हें अच्छी नींद आवेगी।

आज सुबह डाक्टर से मुझे समाचार मिला है कि महात्माजी की अवस्था सन्तोषजनक है। मैंने अपना उक्त वक्तव्य डाक्टर फाटक को दिखा दिया है। आप भी इससे सहमत हैं। सन्देश के विषय में पूछने पर आपको भी मेरे ही जैसा उत्तर महात्माजी ने दिया।"

मालवीयजी का सत्याग्रह

प्रयाग में संक्रान्ति के दिन श्री. मालवीयजी, पं. जवाहरलाल नेहरू और बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन ने जिला मैजिस्ट्रेट की आज्ञा भंग कर के त्रिवेणी में स्नान किया।

शास्त्रीजी का वक्तव्य

माननीय शास्त्रीजी ने महात्माजी के नश्तर के संबंध में निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया है—

"महात्मा गांधी से मुलाकात करने के लिए मैं कल रात को सासून अस्पताल में एकाएक बुलाया गया। यह समझ कर कि विशेष समाचार जानने के लिए जनता बहुत उत्सुक होगी, मैं निम्नलिखित विवरण प्रकाशित कर रहा हूं—

पौने नौ बजे रात को मैं खाना खा रहा था। उसी समय डाक्टर बी० डी०. गोखले ने मुझसे आकर कहा कि यरवदा जेल के अधिकारियों ने महात्माजी को सासून अस्पताल में भेज दिया है। वे अब अस्पतालवालों के चार्ज में हैं। उनकी आंत में फोड़ा हो गया है, अभी नश्तर लगाया जायगा। अवस्था बहुत चिन्ताजनक होने के कारण महात्माजी से कहा गया कि यदि चाहें तो आप अपने विश्वासी डाक्टरों और मित्रों को बुला सकते हैं। बम्बई के डाक्टर दलाल और बड़ोदा के डाक्टर जीवराज मेहता के लिए आपने इच्छा प्रकट की। उन दोनों जनों के पास तार और टेलीफोन किये गये परन्तु सफलता नहीं हुई। ज्वर कुछ और बढ़ जाने और नाड़ी की तीव्र गति के विचार से उपस्थित चिकित्सकों की राय हुई है कि नश्तर लगाने में देर न होनी चाहिए। इस कारण फिर पूछने पर कि आप अपने किसी मित्र को भी यहां बुलाना चाहते हैं, महात्माजी ने आपको, (श्री शास्त्री को) श्री केलकर और असहयोग-दल के डाक्टर फाटक को बुलाया है।

डाक्टर गोखले और डाक्टर फाटक के साथ मैं तुरन्त रवाना हुआ। श्री केलकर सतारा गये थे, वह नहीं मिले।

महात्माजी के कमरे में प्रवेश करते ही हमने एक दूसरे को नमस्कार किया। मैंने नश्तर दिये जाने के बारे में उनसे राय पूछी। आपने धीरता के साथ उत्तर दिया कि रोग के विषय में चिकित्सकों ने एक राय कायम कर ली है, उनका कहना मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। फिर पूछने पर आपने कहा कि इन डाक्टरों पर मेरा पूरा विश्वास है, बड़े प्रेम और सहानुभूति के साथ इन्होंने मेरी सेवा की है। उन्होंने यह भी कहा कि यदि देश में खलबली मचे तो यह साफ प्रकट कर दिया जाना चाहिए कि अधिकारियों के विरुद्ध मुझे कोई शिकायत नहीं करनी है। मेरा शरीररक्षा से जहांतक संबंध है, कोई उपाय बाकी नहीं रहने पाता। फिर मैंने पूछा कि श्रीमती कस्तूरी बाई गांधी को इस रोग का समाचार मिला है कि नहीं। उत्तर में महात्माजी ने कहा कि इस समय की अवस्था का उन्हें पता नहीं है, परन्तु इतना समाचार अवश्य मिला है कि कुछ दिनों से मैं बीमार हूं। मैं समझता हूं कि उनका कोई पत्र आता ही होगा। उसके बाद महात्माजी ने मेरी पत्नी तथा भारतीय सेवक-समिति वाले मेरे अन्य मित्रों—यथा श्री देवधर, जोशी, पटवर्धन और कुंजरू के समाचार पूछे। मुझसे उन्होंने यह भी पूछा कि "परदेश की यात्रा से आपके स्वास्थ्य को कुछ लाभ पहुंचा है?"

इसके बाद डाक्टर फाटक ने नश्तर के लिए रजामन्दी का मसविदा पढ़ कर सुनाया। इसपर महात्माजी को हस्ताक्षर करना था। सुनने के बाद महात्माजी ने चश्मा लगाया और इसे लेकर स्वयं पढ़ा और कहा कि कहीं कहीं मैं इसकी भाषा बदलना चाहता हूं। कर्नल मैडोक वहां बैठे थे। उनसे सलाह की गई। उन्होंने उत्तर दिया कि गांधीजी ही अच्छा मसविदा बना सकते हैं। मेरी सूचनाओं से ज्यादह काम नहीं चलेगा। इसपर महात्माजी लिखाने लगे और मैंने पेन्सिल से लिख लिया।

यह अनुमतिपत्र कर्नल मैडोक के लिए था। क्योंकि वही नश्तर लगाने वाले थे। उसमें महात्माजी ने कर्नल मैडोक, सरजन जनरल और उनके साथियों के प्रति उनकी सेवा शुश्रूषा और सहायता के लिए कृतज्ञता प्रकट की थी। उन्होंने कर्नल मैडोक आदि पर अपना पूरा पूरा विश्वास प्रकट किया। निजी डाक्टर बुलाने की अनुमति देने के कारण सरकार को भी धन्यवाद दिया गया था। कर्नल मैडोक के यह कहने पर कि तुरन्त नश्तर न लगाने से रोग बढ़ जायगा, अविलम्ब नश्तर लगाने का अनुरोध महात्माजी की तरफ से किया गया था। मसविदा पूरा हो जाने पर मैंने महात्माजी को पढ़कर फिर सुना दिया। फिर उन्होंने कर्नल मैडोक को अपने पास बुलाया और उनके कहने पर फिर मैंने एक बार अनुमति-पत्र को पढ़ सुनाया। कर्नल मैडोक को सुन कर बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने महात्माजी से कहा—"बेशक, आप ही इसे ठीक तौर पर लिख सकते थे।"

फिर घुटना ऊंचा करके महात्माजी ने उसपर सही की। उनका हाथ खूब कांप रहा था और मैंने देखा कि अपने नाम के अन्तिम अक्षर "i" पर बिन्दी न लगा सके। उन्होंने डाक्टर से कहा—"देखते हैं न, मेरा हाथ कैसा कांप रहा है। इसे दुरुस्त करना होगा।" कर्नल मैडोक ने जवाब दिया—"अजी हम तो आपको खूब हट्टा-कट्टा पहलवान बना देंगे"

नश्तर लगाने के लिए तैयारी होते समय वहां से लोग हट गये और महात्माजी के साथ मैं अकेला रह गया। कुछ निजी बातें करने के बाद मैंने पूछा कि आपको कुछ विशेषरूप से तो कहना नहीं है। उत्तर देते समय महात्माजी के भावों से प्रकट हो रहा था कि वे कहने के लिए बहुत उत्सुक थे। आपने कहा—"रिहाई पाने की मुझे कुछ भी इच्छा नहीं है, परन्तु यदि नश्तर लगने बाद इसके लिए कोई आन्दोलन उठे तो यत्न-पूर्वक वह उचित सीमा के अन्दर रक्खा जाय। सरकार के साथ मेरा झगड़ा ज्यों का त्यों कायम है। जबतक उसके मूल कारण न दूर कर दिये जायं, सरकार के साथ मेरी लड़ाई जारी ही रहेगी इसमें सन्देह नहीं कि रिहाई किसी शर्त पर नहीं हो सकती। यदि सरकार समझती है कि मैं जेल में काफी वक्त तक रखा जा चुका हूं तो वह मुझे छोड़ सकती है। उसकी शोभा इसीमें है। यदि सरकार की समझ में मैं निर्दोष हूं, मेरी नियत ठीक रही है और यद्यपि सरकार के साथ मेरा सख्त झगड़ा है परन्तु अंगरेजों से मैं प्रेम करता हूं और कई अंगरेज मेरे मित्र हैं तो वह मुझे छोड़ सकती है। परन्तु बनावटी कारणों से ऐसा न होना चाहिए। रिहाई के लिए जो कुछ किया जाय उसमें अहिंसा के विरुद्ध कोई आचरण न होने पावे। शायद मैं इन शब्दों के द्वारा ठीक ठीक अपना भाव प्रकट न कर सका हूं तो आप अपनी अनुकरणीय भाषा के द्वारा उसे प्रकट कीजियेगा।"

इसके बाद मैंने बड़ी व्यवस्थापक सभा में उपस्थित होनेवाले रिहाई के प्रस्ताव की चर्चा की और कहा कि साधारण अवस्था में सरकार शायद इसका विरोध करती परन्तु अब मेरे ख्याल में वह दूसरी दृष्टि से इसपर विचार करेगी।

फिर मैंने आपसे देश अथवा अपने अनुयायियों के लिए कुछ सन्देश देने का बहुत आग्रह किया, परन्तु इस बात में उनकी दृढ़ता को देख कर मैं दंग रह गया। आपने कहा कि मैं सरकार का कैदी हूं, इसलिए कैदियों का नियम ठीक ठीक पालन करना मेरा कर्तव्य है। समाज की दृष्टि से मैं मृतवत् हूं। मुझे बाहर की दशा मालूम नहीं, अतः जनता से इस समय मेरा कोई सरोकार नहीं। मुझे कोई सन्देश नहीं देना है।

(शेष पृष्ठ १८९ पर)

हिन्दी-नवजीवन

जेल-दिन ६८२, रविवार, पौष सुदी १४, सं. १९८०

बापूजी का सन्देश

काली अंधेरी रात में तारों की चमक कितनी सुहावनी, कितनी मधुर मालूम होती है! पिछले सप्ताह देश की गंभीर चिन्ता और वेदना के अवसर पर देश को एक दो प्रिय और मधुर प्रसंग देखने का सौभाग्य मिला। बापूजी अभी छूटे नहीं हैं। देश उन्हें छुडा नहीं पाया है। भाई शंकरलाल बैंकर के द्वारा देश को उनके मुंह के शब्द सुनने का एक बार अवसर मिला था। उसके बाद अबतक यह सौभाग्य उसे नहीं मिला था। यह सौभाग्य इस कठिन अग्नि-परीक्षा के समय प्राप्त होता है, यह ईश्वर का कितना बड़ा अनुग्रह है? यह सन्देश कितना अमूल्य है?

"मैं नहीं चाहता कि नश्तर लगाये जाने के बाद मेरी रिहाई के लिए किसी प्रकार का आन्दोलन किया जाय। पर यदि हो भी तो वह उचित तरीके पर हो। सरकार के साथ मेरा झगडा ज्यों का त्यों कायम है। और जबतक उसके मूल कारणों का निपटारा न होगा तबतक वह झगडा कायम रहेगा। मुझे छुडाने के लिए किसी किस्म की शर्त नहीं की जा सकती। यदि सरकार समझती हो कि मैं काफी समय तक जेल में रहा, तो भले ही मुझे छोड दे। वह उसके लिए इज्जत की बात होगी। यदि सरकार यह मानती हो कि मैं निर्दोष हूं, मेरा उद्देश निर्मल है, सरकार के साथ मेरी गहरी लडाई होते हुए भी मैं अंगरेजों के साथ प्रेम करता हूं और अनेक अंगरेज मेरे मित्र हैं, तो वह खुशी से मुझे छोड दे। पर झूठ-मूठ के कारण बताकर नहीं। जो कुछ आन्दोलन किया जाय वह ठीक ढंग से हो, अहिंसात्मक हो। शायद मैं इन शब्दों के द्वारा ठीक ठीक अपना भाव प्रकट न कर सका हूं तो आप अपनी अननुकरणीय भाषा के द्वारा उसे प्रकट कीजिएगा।"

इस सन्देश के उपरान्त श्री. शास्त्रीजी को दूसरे किस सन्देश की जरूरत दिखाई दी जो उन्हें ज्यादह गहरे पानी में उतरना पडा, और जिसके लिए खुद उन्हें भी पीछे से पछताना पडा? इस सन्देश के प्रकाशित होने के बाद कितने ही समाचार-पत्रों ने सरकार से बापूजी को छोड देने का मतालबा किया है। पू० श्री लालाजी ने भी सुझाया है कि देश महात्माजी को छुडाने का मतालबा सरकार से करे और (गत) १८ ता० को अखिल भारतीय प्रार्थना की जाय।

मौलाना महम्मदअली ने प्रार्थना करने की तो सूचना प्रकट की है—पर छुटकारे के मतालबे के संबंध में कोई इशारा नहीं किया है। यही ठीक भी है। मतालबे के मानी क्या हो सकते हैं? क्या सरकार से दरख्वास्त की जाय? या धारासभाओं के द्वारा सरकार से कहा जाय कि माफी के अधिकार का उपयोग करो? मैं नहीं मानता कि लालाजी का यह आशय होगा। जो मतालबा लालाजी चाहते हैं वह तो देश बराबर कर रहा है। हर १८ ता० को जब हम सभा करते हैं तब सरकार को मालूम हो ही जाता है कि लोग क्या चाहते हैं। लाखों और करोडों लोग 'महात्मा गांधी की जय' पुकारते हैं, बोरसद की जनता 'महात्मा गांधी की जय' के साथ मॉरिस हेवर्ड (बंबई के गृह-सचिव) को विदा करती है, इन बातों से क्या सरकार को यह नहीं जान पडता कि भारतवासी सरकार को महात्माजी को जेल भेजने का अपराधी समझ रहे हैं, सरकार की इस कृति पर रुष्ट रहे हैं। मतालबा तो खुद बापूजी ने सरकार से किया है कि "भाई, बात सीधी है। झगडे के मूल कारण जबतक कायम हैं तबतक मैं बराबर लडूंगा। यदि तुम ऐसा समझते हो कि मैं प्रेम और अहिंसा का उपासक हूं, मैं अपना कर्तव्य पालन किये बिना नहीं रह सकता, तो भले ही मुझे छोड दो। या तो कारणों को निर्मूल कर के छोडो—यदि ऐसा करो तो सोना और सुगन्ध। कारणों को कायम रखकर छोडते हो तो बाहर जा कर लडने के लिए छोडो।' यही बात हरएक भारतवासी कह सकता है, जब जब अवसर मिले तब तब कह सकता है, अपने असहयोग-कार्यक्रम में जुटा रहने पर भी कह सकता है। पर यह मतालबा करना कि 'महात्माजी बीमार हैं, इसलिए उन्हें छोड दो' महात्माजी को भारी दुःख पहुंचाना है। उनके वचन स्पष्ट और सीधे हैं—झूठ-मूठ के कारण बताकर नहीं।

प्रार्थना की सूचना ठीक है। प्रार्थना तो हर शख्स अपने हरएक श्वासोच्छ्वास और विचार तथा करुणा के निःश्वास के साथ कर रहा है। परन्तु सारा देश यदि अपने धर्म आदि के तमाम भेदों को दूर रख कर उस जगन्नियन्ता से प्रार्थना करे कि "संसार को अभी महात्मा जी की अत्यन्त आवश्यकता है, उन्हें अभी जगत् में रहने दे।" तो यह घटना संसार के इतिहास में अमर रह जायगी। प्रार्थना के बल का अनुभव जिन्हें है, उन्हें प्रार्थना करने की सूचना देने की जरूरत नहीं। जिन जिन लोगों को उनकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनमें मैं एक छोटे से छोटा सेवक हूं। और उसी हैसियत से मेरा हृदय प्रार्थना कर रहा है कि "परमात्मन्, हमारी आधी जिन्दगी ले कर भी हमारे गुरुदेव को हमारे हवाले कर दे।"

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

बापूजी को छुडाने की तैयारी करो

विदेशी कपडा खरीदना उसी प्रकार आसान है जिस प्रकार कि किसी जुर्म को करना। पर हम किसी जुर्म को एकाएक नहीं करते। क्योंकि आत्मसंयम में बड़ा सुख है, बड़ा आनन्द है। लेकिन इसका अनुभव उन्हींको होता है जो उसका पालन करते हैं। हो सकता है कि हम अपनी जिस खास आवश्यकता के लिए खादी लेना चाहते हों उसके अनुसार जैसी चाहिए वैसी खादी मिलने में हमें कठिनाई पडे। अज उसका हमारी जरूरत से कम होता हो। हमारी धोती या खादी की लंबाई-चौडाई से कम ज्यादह लंबाई-चौडाई उसकी हो। इसके अलावा वह हमारी जरूरत से बहुत ज्यादह मोटी भी हो। उसके मुकाबले में विदेशी कपडा, जो जो कि हमारी रुचि और जरूरत के अनुसार महीन या लंबा-चौडा सब जगह मिल जाता है, खरीदने के लिए हमारा मन ललचा उठता हो। हमारा यह प्रलोभन इस कारण से और भी बढ जाता हो कि खुद हमारी रुचि और आवश्यकतायें विदेशों से आने वाली सामग्री के आधार पर बनी हुई हैं। यदि और सब बातों को किसी तरह हमने निबाह लिया तो कीमत का सवाल-विदेशी कपडे की सस्ताई-जरूर अपनी ओर हमारा ध्यान खींच लेता है।

ऐसी अवस्था में इस बात की बडी आवश्यकता है कि हम इन सब प्रलोभनों से दूर रहें—इनका मुकाबला करें। हमें याद रखना चाहिए कि यदि आज हम किसी तरह भी कष्ट कर के महंगी खादी को अपनावेंगे तो अन्त को वह सस्ती पडे बिना न रहेगी। यदि अच्छे हाथ-कते और हाथ-बुने कपडे की सुन्दरता और मजबूती हमें न जंचती हो, तो कम से कम इस एक बात की याद अपनेको दिला लिया करें-जिस कपडे को हम खरीद रहे हैं वह कहां से आता है और उसका रुपया किन लोगों के घर जाता है। यदि हम इस बात का जरा भी खयाल करेंगे तो जरूर ही

हम किसी दूकान पर कपड़ा खरीदने जायंगे, हमारी आंखों के सामने हमारे उन किसान भाइयों के बीबी-बच्चों के सूखे चेहरे, जिन्हें दोनों जून पेट भर खाने को नहीं मिलता, खड़े हुए बिना न रहेंगे। यदि हम एक गज खादी खरीदते हैं तो उसकी रकम उन लोगों की मदद में जाती है, उससे उनके दोनों काम चलते हैं और वे कुछ समय तक अपने कर्ज और आर्थिक संकट के साथ लड़ने में समर्थ हो सकते हैं। उस रकम से उन लोगों को आशा मिलती है जिनके चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा और निराशा का राज्य रहता है। इससे उन लोगों का उत्साह बढ़ता है जिन्होंने चरखा कातना अंगीकार किया है और जो बराबर कातते हैं।

"महात्माजी तो जेल चले गये। अब मेरे काते सूत को कोई नहीं पूछता।" अपने मन में कितनी ही बहनें यह कहती होंगी। और वे कितने ही चरखे जो १९२१ के महान् दिनों में कुछ समय तक बड़े हर्ष और उल्लास के साथ अपना मधुर संगीत सुनाते थे अब अपने दिल की कसक को दिल में छुपा कर एक कोने में पड़े हुए हैं। आपका एक गज खादी खरीदना मानों एक चरखे को नींद से जगा कर घुमा देना है और अपनी अभागिनी गरीब देहाती बहनों को आशा का सन्देश पहुंचाना है। यदि हम इन तमाम बातों पर ध्यान दें तो खादी उस विदेशी कपड़े से निस्सन्देह सस्ती है, जो आज हमें कुछ सस्ते दाम पर मिल जाता है।

हम जो कपड़ा खरीदते हैं उसका परिणाम बहुत दूरवर्ती होता है। वह महज लंबाई-चौड़ाई, रंग और मोटाई का ही सवाल नहीं है। यदि हम खादी खरीदते हैं तो उसके फलस्वरूप चरखा अपने आप चलने लगता है और सूत का हर गरीब बहनों के घर से जुलाहे के घर पहुंचने लगता है। यदि हम विदेशी कपड़ा खरीदते हैं तो वह अपने उन गरीब नंगे-भूखे भाई-बहनों की मुफलिसी और पराधीनता की बेड़ियों को मजबूत करता है और साथ ही यहां के तथा बाहर के धनी मिल-मालिकों की ऐश्वर्य-वृद्धि करता है।

विचारवान् और भले मानुस के लिए अगर कोई कपड़ा हो सकता है तो वह है खादी। दूसरा कपड़ा पहनने में यदि क्रियात्मक दुष्टता न हो तो कमसे कम विचारहीनता और उदासीनता अवश्य है। आइए, इस साल हम ऐसा भगीरथ प्रयत्न करें कि घर घर में खादी हो जाय। यदि हम ऐसा करेंगे तो महात्माजी उसी तरह जेल से छूट कर आ जायंगे जिस तरह रात के बाद दिन स्वभावतः आता है। केवल यही नहीं, लोगों के उस त्याग और कार्यशीलता को देख कर उनका चेहरा आनन्द की मुसकुराहट से खिल और चमक उठेगा।

हरएक भले कुटुंब में कमसे कम एक चरखा जरूर होना चाहिए। हरएक लड़की को चरखा कातने की सादी कला जाननी चाहिए और रोज चरखा चलाना चाहिए। लड़के और उनके मां-बाप अपने फुरसत के समय का सदुपयोग चरखा कातने से बढ़ कर नहीं कर सकते।

पाठको, यदि आप इस अखबार को पढ़ने का समय पा सकते हों तो निश्चय ही आप कुछ मिनट इससे भी अधिक अच्छे काम के लिए दे सकते हैं—उस काम के लिए जो महात्माजी उससे जेल की दीवारों के अन्दर खामोश बन्द पड़े हुए कराना चाहते हैं। जब वे जेल से बाहर निकलेंगे तो क्या आप उनके सामने अपनेको निर्दोष दिखाना नहीं चाहते? यदि हां, तो आप बिना विलंब चरखा ले कर कातने बैठ जाइए।

इस बार महासभा ने निश्चय किया है कि हमने जो समय अबतक गंवाया है उसकी कसर निकाल लें, अबतक के डालमटोल के पाप का पूरा पूरा प्रायश्चित्त कर लें। हमें फिर से अपने धर्म और ईश्वर-पूजा को ग्रहण करना चाहिए। सबसे श्रेष्ठ ईश्वर-पूजा और सबसे बढ़कर धार्मिक सेवा है सुबह काम करने से पहले और शाम को खाना खाने से पहले आधा घंटा चरखा कातें। यह सब से कीमती राष्ट्रीय सेवा भी है। बड़े से बड़े वकील, बड़े से बड़े व्यापारी, और बड़े से बड़े पुस्तक-प्रिय विद्यार्थी और तमाम लड़कियां जरूर ही इतना समय इस राष्ट्र-पूजा और ईश्वरोपासना के लिए निकाल सकती हैं।

मैं जानता हूं कि मेरे ये शब्द देहात में रहनेवाले भाइयों तक नहीं पहुंच सकते और कस्बों में रहनेवाले लोगों में भी बहुत ही कम लिखने-पढ़ने वालों तक ये पहुंचते होंगे। पर मैं उन सब लोगों से प्रार्थना करता हूं जो इस अखबार को पढ़ते हों, कि वे दूसरों तक यह बात पहुंचावें—और इन सबसे अधिक अच्छी बात यह होगी कि खुद चरखा कात कर औरों के आगे अपनी मिसाल पेश करें। हरएक महासभा के कार्यकर्ता का यह कर्तव्य है कि वह महासभा के इस चरखा-सन्देश को देहात में ले जाय और ऐसा उद्योग करे कि चरखे को लोग बापूजी का दिया हुआ एक बच्चा समझ कर अपना लें। आइए, हम सब इस साल अपनी पूरी शक्ति भर ऐसा प्रयत्न करें, अपने कार्यक्रम को इस काबिल पूरा कर दिखावें कि जिससे समस्त जनता को साथ लेकर धावा करने की संभावना हमारी आंखों के सामने खड़ी हो जाय। इस स्थिति को प्राप्त करने की एक मात्र कुंजी है—चरखा।

मौलाना शौकतअली से बढ़ कर कोई दिलेर, कोई बहादुर, कोई बेचैन आत्मा इस समय है? खादी-मण्डल में उन्होंने एक खास स्थान प्राप्त किया है। क्या इसका कोई अर्थ नहीं है? रचनात्मक कार्यक्रम और चरखा एक ही बात है। दूसरी तमाम मदों की पूर्ति उसका स्वाभाविक परिणाम होगा। यदि हम चरखे को अपना लेंगे तो दूसरी तमाम बातें उसके साथ ही अपने आप ठीक हो जायंगी।

(यं० इं०) च. राजगोपालाचार्य

पूर्णाहुति का उत्सव

आत्म-शुद्धि के रास्ते—

बोरसद-सत्याग्रह की विजय का समाचार पिछले अंक में पाठक पढ़ ही चुके होंगे। गत सप्ताह इस विजय का उत्सव बोरसद ताल्लुके में बड़ी धूमधाम से मनाया गया। उसका सविस्तर वर्णन "नवजीवन" के एक विशेष अंक में प्रकाशित हुआ है। उसे पढ़ कर तथा वहां का जबानी हाल सुन कर हृदय आनन्द और आश्चर्य से उछल उठता है। इस युद्ध के दरम्यान वहां के जाहिल देहाती लोगों ने जो संयम, शान्ति, दृढ़ता और एकाग्रता का परिचय दिया तथा युद्ध में विजय प्राप्त होने के बाद युद्ध के नेता श्री वल्लभभाई पटेल ने जो विनयशीलता, सौम्यता, मिठास, उदारता दिखाई एवं लोगों को उनका उपदेश दे कर आत्म-शुद्धि की प्रतिज्ञा कराई वह तो सराहते ही बनता है। लोगों और लोक-नेताओं के इन्हीं गुणों में इस संग्राम के इतने शीघ्र विजय की कुंजी है।

संग्राम का प्रभाव

बोरसद ताल्लुके के ८८ और आणंद ताल्लुके के १८ गांवों पर सरकार ने २,४०,०७८) ज्यादह पुलिस के कर के रूप में लगाया था। श्री वल्लभभाई पटेल के सभापतित्व में बोरसद ताल्लुका परिषद् ने इस कर को न देने का प्रस्ताव किया। तुरन्त सरकार की ओर से सख्तियां शुरू हुईं। कर-विभाग तथा पुलिस-विभाग के तमाम कर्मचारी मामूली काम से हटा कर इसी काम में लगाये गये। ज्यादह पुलिस से भी यह काम लिया गया। सख्तियों में बड़ी सख्ती और ज्यादती से काम लिया गया। छोटी छोटी रकमों के

लिए बेशकीमती चीजें जब्त की गईं, दूध देनेवाली गाय-भैंसें लिया के गये, जमीने जब्त करने की नोटिसें दी गई, झूठे दावे और फरियादें करा कर लोगों को जेल भेजा गया। इन ज्यादतियों का मुकाबला करने के लिए सत्याग्रह-छावनी की भिन्न भिन्न शाखाओं ने जगह जगह स्वयंसेवक तैनात कर दिये, जिनसे लोगों को शान्ति के साथ यह सब कष्ट सहन करने में सहायता मिली। इस कष्ट-सहन के फल-स्वरूप लोगों में एकता का प्रसार हुआ। हरएक गांव के लोगों ने कर न देने का निश्चय किया। यहां तक कि आगे चल कर तो जब्ती करने वाले लोगों और ज्यादह पुलिस तक ने जब्त किया हुआ माल उठा कर ले जाने से इन्कार कर दिया। कितने ही लोगों ने हस्त के भी पता कर दिये। मर्दों की अपेक्षा जब्ती के सिलसिले में औरतों ने ज्यादह सरगर्मी और होशियारी बताई। पीतल के बरतन की जगह मट्टी के बरतनों में खाना पकाने लगीं। दिन की जगह रात में ही पानी भरना और दिनभर भूखे रह कर रात को खाना पकाना शुरू कर दिया। कोई एक महीने की सख्तियों के फलस्वरूप सरकार उतनी भी रकम वसूल न कर पाई जितना खर्च उसे वसूल करने में उठाना पड़ा। लोगों की इस उग्र तपस्या का फल बंबई के लाट सा. की वह विज्ञप्ति है जो पिछले अंक में प्रकाशित हो चुकी है और जिसके अनुसार जब्त किया माल लोगों को लौटाया जायगा और ज्यादह पुलिस का खर्च सरकारी खजाने से दिया जायगा।

उत्सव की तैयारी

पूर्णाहुति के उत्सव की तिथि गत १२ जनवरी निश्चित हुई थी। लोगों ने स्वप्न में भी यह खयाल न हुआ था कि इतनी जल्दी विजय मिल जायगी। बहुतों के खयाल में तो इस शान्त विजय ने युद्ध का मजा ही किरकिरा कर दिया। केवल जवान लोग ही नहीं केवल पुरुष ही नहीं, बूढ़े और स्त्रियां भी इस संग्राम में बड़ा दिल चस्पी लेते थे। पर रस-हानि की भावना क्षणिक थी लोग विजय की महत्ता को समझ सके थे। महात्माजी की गैरहाजिरी में उन के शुद्ध शस्त्र के सामने दाना दुश्मन ने अपने हथियार रख दिये। यह बात वे खूब जान गये थे। खेड़ा के सत्याग्रह के समय स्वयं महात्माजी मौजूद थे। पर फिर भी लोगों के अन्दर एकता की भावना उतनी नहीं दिखाई दी जितनी कि इस समय है। और उस समय सरकार ने भी इस प्रकार खुले दिल से अपनी शिकस्त कुबूल नहीं की थी।

पूर्णाहुति के दिन चीटियों की तरह लोगों का तांता लगा हुआ था। ठेठ बम्बई तक से लोग उसमें शरीक होने के लिए आये थे। सारी तैयारी एक दिन में की गई। एक ही रात में आलीशान मंडप तैयार किया गया। यह डेढ़ महीने के संग्राम के नियम-पालन का फल था। मंडप में २५-३० हजार आदमियों का समूह था। सफेद टोपियों और साफों का मानों क्षीरसागर उमड़ पड़ा था। स्त्रियों की संख्या एक चौथाई से कम न होगी। स्त्रियों के लिए तो सत्य, अहिंसा और कष्ट-सहन के द्वारा सरकार को शिकस्त देने का यह पहला ही अवसर था।

मंडप में तीन-चार मंच जगह जगह बनाये गये थे जिससे भिन्न भिन्न स्थानों से व्याख्यान हों और सब लोग अच्छी तरह सुन सकें। स्त्रियां तो व्याख्यान सुनने की परवा न रखते हुए-

"गांधीजी स्वराज्य लई व्हेला आवजो रे!"

यह गीत बलन्द आवाज में गा रही थीं।

आकर्षण का रहस्य

लोगों के इस आकर्षण का रहस्य एक बड़े बाबा के इन वचनों में है—"भाई, इन मोहनलाल पंड्या और इनकी सेना ने इन ३० दिनों के अन्दर जो काम कर के दिखाया है वह मैंने अपनी इस साठ बरस की जिन्दगी में नहीं देखा। न दिन देखते हैं न रात; न सर्दी-गर्मी की परवा करते हैं। थोड़े से दिनों में सारी तहसील को हिला डाला। स्त्री-पुरुषों, बाल-बच्चों सबको खड़खड़ा कर जगा दिया। इन रविशंकर ने केवल दिन में १८ गांव की गश्त कर डाली। धाराला जाति की सेवा करने का तो मानों इन्होंने बीड़ा ही उठाया है।" इसी सत्याग्रही-सेना के प्रति, एक अर्थ में अपनी रक्षा करनेवाली सच्ची सरकार के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए इतना जन-समूह वहां एकत्र हुआ था।

"अभ्युदये क्षमा"

इस उत्सव के मूल में विजय का नशा नहीं, रस था, आनन्द था। विजय की शोभा विनय से है। श्री वल्लभभाई पटेल के तमाम भाषण नम्रता, मिठास और उच्च भाव से भरे हुए थे। श्री वल्लभभाई को इतना विजय-विनम्र कभी किसीने न देखा होगा। उन्होंने लोगों का ध्यान सरकार की कमजोरी देखने के बजाय स्वयं अपनी कमजोरियां देखने और उन्हें दूर करने की ओर खींचा। उन्होंने कहा कि इस संग्राम में हमें जो फतह मिली है उसका कारण हमारी बुद्धि-चातुरी नहीं, बल्कि हमारे गुरु-देव और जगत के महान् पुरुष महात्माजी की बताई युद्ध-विधि है। उन्होंने जो दीक्षा हमें दी है उसकी गुरु-दक्षिणा तो अभी बाकी ही है। यह तो हमने उनके ऋण का ब्याज-मात्र चुकाया है। जबतक उनका ऋण हम अदा नहीं कर देते तबतक आपका और मेरा सिर नीचे ही झुकता रहेगा। हम उन्हें भूल गये हैं, उनके काम को भूल गये हैं। यदि ऐसा न होता तो आज डाकुओं का नाम ही कहां रहजाता? यदि उनके उपदेशों को हमने समझ लिया होता तो आज डाकू-लुटेरे हमारे आसपास क्यों होते?

इसके बाद उन्होंने लोगों को चेतावनी दी कि वे इस विजय के गर्व से फूल न उठें। उन्हें पुलिस के तथा अन्य सरकारी कर्मचारियों के साथ मिठास और प्रेम का बरताव रखना चाहिए। सारी तहसील का वायुमण्डल पवित्र बनाने पर जोर दिया कहा-हरएक गांव का वायुमण्डल हमें ऐसा धार्मिक और पवित्र बना देना चाहिए कि जिससे लोग अपने आप नीति-विरुद्ध, बुरे काम करना छोड़ दें। आपके गांवों में डांके पड़ना असम्भव हो जाय।

आत्मशुद्धि की प्रतिज्ञा

यह तो हुआ खास बोरसद कस्बे का दृश्य। अब तहसील के हृदय में प्रवेश कीजिए। श्री. महादेवभाई कहते हैं कि खेड़ा संग्राम के दिनों में मुझे बापूजी के साथ घूमने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पर जो जल्से और जो दृश्य मैंने अब की बार देखे उनकी बराबरी वे दृश्य नहीं कर सकते। न ऐसी शान्ति, न ऐसी एकाग्रता उस समय देखी गई थी। लोग सभा के लिए अपना घर-बार सूना छोड़कर दौड़ पड़ते थे।

आंकलाव नाम के गांव की सभा में २२ गांव के धाराला और पाटनवाडिया लोगों ने चोरी न करने, चोरी का माल घर में न लेने और शराब न पीने की प्रतिज्ञा की। पंच बनाये गये और इन प्रतिज्ञाओं का पालन कराना उनके जिम्मे हुआ। इसपर विधवा और कितनी ही सधवा स्त्रियों ने भी व्रत धारण किये। सधवा स्त्रियों ने यह प्रतिज्ञा की कि मेरा पति जेल में है। जेल से छूटने पर उसे मैं शराब न पीने दूंगी, चोरी न करने दूंगी। पाठक इस बात को न भूले होंगे कि ये धाराला और पाटनवाडिया वे लोग हैं जिन्हें सरकार ने जरायम पेशा करार दिया है।

इन तमाम गांवों की तरफ से इस आशय का प्रस्ताव हुआ कि हम इस बात का पूरा पूरा इन्तजाम रक्खेंगे कि हमारे गांव का

कोई भी शख्स शराब न पीने पावे, न कोई चोरी या लूट-मार करने पावे और यदि कोई ऐसा करेगा तो हम उससे अपना कोई ताल्लुक न रक्खेंगे।" इसके अलावा ३२ स्वयंसेवकों और कार्यकर्ताओं ने बोरसद-तहसील में कमसे कम एक साल तक आत्म-शुद्धि के कार्यक्रम के लिए काम करने का वचन दिया।

बापूजी की याद

श्री वल्लभभाई को हर जगह व्याख्यान देना पड़ता था। पर एक जगह तो उनका भाषण सुनकर बापूजी की याद आ गई। उन्होंने कहा—"आप लोगों ने हमारे ऊपर अपार प्रेम की वर्षा की है। पर हमें अपनी कमजोरियों का पूरा भान है। जिस प्रकार आपके अन्दर पाप और कमजोरियां भरी हुई हैं उसी प्रकार हम भी उनसे भरे हुए हैं। आपका यह वन्दन हमें नहीं, जरोडा जेल में बैठे उस महात्मा को है, जिसके चरण-चिन्ह देखकर चलने का हम प्रयत्न करते हैं, अपनी अल्पशक्ति और बुद्धि के अनुसार आपकी सेवा करने का प्रयत्न करते हैं। आपने उनके नाम से हमारी कीमत आंकी है।

हम सरकार से केवल ढाई रु० के कर के लिए नहीं लड़े। बल्कि उस कलंक के लिए लड़े जो आपके सिर उसने मढ़ा था। पर इससे आप यह न मानिए कि हमें लड़ाई लड़ने में मजा आता है। सरकार यदि अपना उल्टा रास्ता छोड़ दे तो मैं उससे मिल कर आपकी सेवा शान्ति के साथ करना पसन्द करूंगा। पर यदि वह उल्टा रास्ता न छोड़े तो मैं मरते दम तक उससे लड़ता रहूंगा। अब सरकार जबतक फिर ऐसा अवसर न उपस्थित कर तबतक हमें उसे न छेड़ना चाहिए। जबतक हमारे अन्दर पाप ऐब और बुराइयां कायम हैं तबतक दूसरों के दोषों को खोजना मूर्ख लोगों का काम है।

सरकार ने अपने प्रस्ताव के द्वारा आपको निर्दोष तो बताया पर साथ ही डरपोक भी कहा। यह देख कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। वह कहती है कि तुम डाकुओं से डरते हो। डाकुओं ने तुम्हें जेरबार कर रक्खा है। यदि सचमुच तुम पशुओं की तरह डाकुओं के डर से भागते फिरते हो तो फिर महात्माजी को छुड़ाने के लिए सरकार से किस तरह लड़ सकोगे? यदि तुम लोगों के पास बकरी का दिल हो तो मैं तुमसे दोस्ती करना नहीं चाहता। मैं तो जवांमर्द का साथी हूं।

महात्माजी का हथियार लो

यह हमारी मूर्खता है जो हमने ज्यादह पुलिस को कायम रहने दिया है। बन्दूक वाले सिपाही तो हमसे ज्यादा डाकुओं से डरते हैं। मैं आपके पास से बन्दूक के बिना इन खादी टापीवाले रविशंकर महाराज जैसी हिम्मत चाहता हूं। मैं धाराळाओं से कह चुका हूं कि यदि तुम किसीको लूटोगे, चोरी करोगे, या किसीकी बहन-बेटी की इज्जत लोगे तो मुझे और मेरे साथियों को अपना सिर फोड़ना पड़ेगा। तुम्हारे इन पापों से महात्मा गांधी के नाम पर बट्टा लगता है। इसी भूमि पर पांच वर्ष पहले महात्मा गांधी ने लड़ाई लड़ी थी। पर वह मार-काट की लड़ाई नहीं थी। तुम्हें मर्द बनाने, और शहीद बनाने के लिए तुम्हें साथ लेकर वे लड़े थे। यदि तुम उनके हथियार को लेकर निकल पड़ो तो बदमाशों के हथियार नीचे गिर जायंगे। देखो न, सरकार को ही कैसे अपने हथियार रख देने पड़े? हमारे पास न बन्दूक थी न तलवार। पर हमारे पास सत्य था। इसीसे उसे हथियार रख देने पड़े। इसी हथियार को तुम ग्रहण करो, डाकुओं के हथियार उनके हाथ से गिर जायंगे। यदि तुम ऐसी मर्दानगी न बताना चाहो तो तुम्हें गृहस्थी करने का कोई अधिकार नहीं, नामर्द औलाद पैदा करने का कोई अधिकार नहीं, जीवित तक रहने का अधिकार नहीं। आज तुम प्रतिज्ञा करो कि हम चोर-डाकुओं को हरगिज गवारा न करेंगे, उनके मुकाबले में यदि हमें मरना पड़े तो मर जायंगे; पर किसी को न तो लूटने देंगे, न किसीपर हमला होने देंगे।

क्षत्रिय बनो

आंकलाव नामक मुकाम पर उन्होंने इसी विषय पर कहा "तुम को अपना नाम 'धाराळा' खटकता है। लो मैं तुम्हें आज ही से क्षत्रिय कहता हूं। पर जबतक तुम क्षत्रियों के से कर्म न करो तबतक तुम्हें क्षत्रिय कैसे कहें? यदि तुम क्षत्रिय हो जाओगे, यदि कहीं चोरी-डकैती होती हो, किसी बहन की इज्जत जाती हो और तुम लोग उनकी जान-माल और आबरू को बचाने के लिए अपने प्राण देने को तैयार हो जाओ तो तुम क्षत्रिय कहाओ, तुम्हारी दोस्ती में मुझे अभिमान हो।" अलारसा गांव में कहा—

तुम्हारी जाति के १८०० लोग एक साल में नेकचलनी के लिए जमानत न देने के अपराध में जेल जायं, यह तुम्हारे लिए शर्म की बात है। तुम्हारा जन्म बेकार है। ऐसी दशा में जीना मरने के बराबर है। या तो तुम सब मर मिटो या जल्दी अपना सुधार करो। मैं तुम्हारे लिए सरकार से लड़ने और मर मिटने को तैयार हूं। पर कब? तभी जब मेरे लड़ने से तुम्हारी तरक्की होती हो, तुम मर्द बनते हो, तुम्हारा भला होता हो। जिस गुरु ने मुझे यह लड़ने की विद्या सिखाई है उन्होंने कह दिया है कि सत्य के लिए लड़ना, मर्द बनाने के लिए लड़ना।

बाबर को सन्देश

बाबर देवा नाम के डाकू को जिसने बोरसद में सारा उपद्रव मचा रक्खा है उन्होंने कई सभाओं में इस आशय का सन्देश दिया—"तेरा उपद्रव उपद्रव नहीं है। बन्दूक का ठीकरा ले कर भागते और छिपते फिरना और बेकुसूर लोगों को मारना, उपद्रव नहीं कहलाता। सच्चे उपद्रवी को हथियार की जरूरत नहीं रहती। उपद्रव तो है दया के दरबार का, महात्मा गांधीजी का। जो शख्स निहत्थों को सताता है, लूटता है और खून करता है वह मनुष्य-जाति के लिए एक कलंक है। उसे कौन बहादुर कहेगा? यदि तू मर्द हो, तुझे हिम्मत हो तो दे सरकार को सात दिन की नोटिस कि मैं सात साल तक घूमता रहा; पर तुम मुझे न पकड़ सके। आज मुझे ईश्वर का ख्याल हुआ है। मुझे तुम्हारी सजा का डर नहीं, पुलिस का भय नहीं। या तो मुझे सात दिन में पकड़ लो, नहीं तो मैं खुद हाजिर हो जाऊंगा। यह है सच्ची मर्दानगी, यह है सच्ची हिंमत। तुझे एक न एक दिन तो कुत्ते की मौत मरना ही होगा। फांसी का तख्ता तेरे लिए एक न एक दिन बना ही हुआ है। यहां की पुलिस से तू चाहे बच भी जाय; पर ईश्वर की पुलिस से नहीं बच सकता। इसलिए तू अपनी जाति से खुली माफी मांग। अब भी तेरे लिए समय है कि तू ईश्वर का अपराधी न बन।

मेरी दोस्ती

मेरे साथ यदि दोस्ती करना चाहते हो तो मुझे कितने ही वचन देना पड़ेंगे। एक महीने बाद मैं फिर यहां आऊंगा। उस समय मैं ऐसी स्थिति देखना चाहता हूं कि एक बच्चा भी शराब पीने न जाता हो, एक बालक भी रुपये-पैसे उछालता चला जाय, कोई बहू-बेटी अंधेरी रात में भी बेखटके चली जाय। यदि ऐसा कर सको तो मैं मानूंगा कि तुम महात्माजी के काम में कुछ सहायक हो सकोगे।"

श्री रणछोड़जी की मूर्ति के सामने हजारों हाथ ऊंचे उठे और प्रतिज्ञा की।

जरायम पेशा मानी जानेवाली जातियों में आत्म-शुद्धि की ऐसी लहरों का उठना देश के कल्याण का चिन्ह है। ह० भाऊ०

महासभा की कथा

(२)

एक दो विनोद

इस विनोद की बात के सिलसिले में एक-दो मजाक भी सुना देता हूं। कोकनाडा जाने के लिए सामलकोट में गाड़ी बदलना पड़ती है। सामलकोट से कोकनाडा १०—१५ मिनट का रास्ता है। पर हम जिस गाड़ी से गये उसका इंजन रास्ते में बीमार हो गया। हमें कोकनाडा पहुंचते दो घण्टे लगे। इंजिन के पास के डिब्बे में गुजराती लोग बैठे थे और उसके पीछे के डिब्बे में अलीभाई थे। कोकनाडा पहुंचने पर मौ० महम्मदअली श्री वल्लभभाई पटेल से कहते हैं, "गुजरात का अगुआपन बेकार साबित हुआ।" श्री वल्लभभाई ने तुरन्त उत्तर दिया "अलीभाइयों का ब्रेक बड़ा जबरदस्त जो था।" महासभा के अन्तिम दिनों में संयुक्त प्रान्त के एक सभ्य ने श्री वल्लभभाई से कहा—"ठीक सिपटारा हो गया न ?" तब श्री वल्लभभाई उनसे हंसते हुए कहते हैं—"तमाम विघ्न संयुक्त प्रान्त से ही तो पैदा हुए हैं! देखिए, चौरीचौरा-काण्ड आपके प्रान्त से, फिर स्वराज्य-दल आपके प्रांत से, हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े आपके प्रान्त से, सेंटर पार्टी आपके प्रान्त से, पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव करनेवाले आपके प्रान्त से और राजगोपालाचार्य का विरोध करने वाले भी आपके ही के प्रान्त से खड़े हुए।" इसपर पता नहीं उन महाशय ने क्या जवाब दिया; पर कुछ ऐसा जवाब दिया हो तो आश्चर्य नहीं कि "पर इन तमाम व्याधियों का इलाज करनेवाले अलीभाई भी हमारे ही प्रान्त में निकले न ?"

मत-प्रदान

जिस ढंग से इस महासभा में मत दिये गये हैं उससे यह साफ जाहिर होता था कि लोग खूब सोच-समझ कर रायें देते थे। बंबई के एक नेता ने जो कि असहयोगी नहीं थे, बातचीत करते हुए सब से पहले यही कहा कि इस बार का Voting (मत-प्रदान) बहुत intelligent (सोच विचार कर किया हुआ) मालूम हुआ। खास तौर पर मत-भेद उत्पन्न करनेवाले तीन प्रस्ताव थे—एक यह कि महासभा का ध्येय इंडिपेंडेंस (आजादी) बनाया जाय, दूसरा राष्ट्रीय अहदनामा-संबंधी और तीसरा असहयोग-विषयक। पहले प्रस्ताव पर इने-गिने हाथ ऊंचे उठे। दूसरे प्रस्ताव पर दो बार मत लिये गये। एक बार तो उस संशोधन पर जिसमें 'बंगाल पैक्ट' इन शब्दों को निकाल देने की तजवीज थी, रायें ली गईं। 'बंगाल पैक्ट' शब्दों को प्रस्ताव में रखने की बात को तो देशबन्धु ने अपना और अपने प्रान्त का सवाल कर डाला था। फिर भी श्री राजगोपालाचार्य ने उसका समर्थन किया था। आम तौर पर बहुतेरे मुसलमान-भाई 'बंगाल पैक्ट' शब्द कायम रखने के पक्ष में थे; परन्तु मदरास के याकूब हसन साहब इसके सख्त खिलाफ थे। जब श्री श्यामबाबू के इस संशोधन पर कि 'बंगाल पैक्ट' शब्द प्रस्ताव से निकाल दिया जाय, रायें ली गईं तब श्री वल्लभभाई पटेल को इस संशोधन के पक्ष में राय देते हुए लोगों को आश्चर्य हुआ था। इस संशोधन के पक्ष में अकेले श्री राजगोपालाचार्य थे, और विपक्ष में श्री वल्लभभाई, श्री गंगाधरराव देशपांडे, और श्री ब्रजकिशोर बाबू इत्यादि थे। संशोधन बहुमत से स्वीकृत हुआ। तब "बंगाल पैक्ट" शब्द निकाल कर मूल प्रस्ताव उपस्थित किया गया। इसपर जो मत-प्रदान हुआ वह भी देखने लायक था। श्री वल्लभभाई तथा उनके पक्ष के तमाम लोग किसी भी प्रकार के अहदनामे के खिलाफ थे। इससे उन्होंने इस संशोधित प्रस्ताव के खिलाफ अपनी राय दी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इन विरोधियों की एक को संख्या २०० से ऊपर थी। तीसरे अर्थात् असहयोग के प्रस्ताव पर रायें ली गईं तो श्री श्यामबाबू का प्रस्ताव ३०० की कसरत राय से गिर गया। फिर श्री राजगोपालाचार्य के प्रस्ताव पर मत लिये गये। इसके पक्ष में केवल उन्हीं लोगों ने मत नहीं दिये जो श्यामबाबू के संशोधन के खिलाफ थे; बल्कि श्यामबाबू के पक्ष के भी कम से कम आधे लोगों ने इसके हक में राय दी थी और जब यह पूछा गया कि श्री राजगोपालाचार्य के प्रस्ताव के खिलाफ कौन हैं तब सिर्फ १०—१५ ही हाथ ऊंचे उठे। सोच विचार कर मत देने में हमारी यह प्रगति ध्यान देने योग्य है।

आशा की किरणें

परन्तु चातुर्य, वाक्पटुता और मत-प्रदान की बातें एक ओर रख कर अब काम की बातों का विचार करें। यह कहने में कोई दिक्कत नहीं कि कोकनाडा में फिर से बुनियादी और ठोस काम करने का मंगलाचरण हुआ है। यह दो-तीन बातों से सिद्ध होता है। कार्य-समिति का संगठन बहुत उत्कृष्ट हुआ है। उसमें पिछले बहादुर कार्यकर्ताओं के उपरान्त नवीन में मौ० महम्मदअली, शौकतअली, शंकरलाल बैंकर और जवाहरलाल नेहरू को स्थान मिला है। श्री शंकरलाल बैंकर तो जेल से निकलते ही बारडोली के कोने में आ कर बैठ गये थे। उन्होंने अपने मौन का निश्चय सात-आठ महीने तक कायम रक्खा। परन्तु देहली के बाद उनसे न रहा गया। उन्होंने समझा कि बापूजी का काम रसातल को जा रहा है। दौड़-धूप करने लगे। मौ० महम्मदअली से मिले, दूसरे लोगों से मिले। शान्ति-स्थापना में उनका हिस्सा कोई ऐसा-वैसा न था। अब उन्होंने कार्य-समिति में भी स्थान प्राप्त किया है। एक तरफ उनकी और मौ. शौकतअली की जोड़ी; और दूसरी मौ० महम्मदअली और पं. जवाहरलाल की जोड़ी। ये सब मिल कर क्या नहीं कर सकते ?

दूसरी आवश्यक बात खादी-मण्डल की नियुक्ति है इस मण्डल में सेठ जमनालालजी और मगनलालजी गांधी जैसे व्यवहारदक्ष और कार्यदक्ष कार्यकर्ता हैं। श्री रेवाशंकरभाई और वेलजी भाई नप्पू जैसों की साख इसके साथ है, रगड़ कर झपाटे के साथ काम लेनेवाले शंकरलालजी बैंकर इसके मन्त्री हैं। और खादी के काम की दुहाई सारे देश भर में फेरनेवाली जौबत मौलाना शौकतअली भी इसमें हैं। यह मंडल अपने काम में लग भी गया है। दक्षिण प्रान्तों के इनके दौरे के हाल समाचारपत्रों में प्रकाशित भी होने लगे हैं। इस मंडल की रचना तीन साल के लिए हुई है। फिर इन तीन बरसों के दरम्यान चाहे स्वराज्य आवे या न आवे। इन्हें इस बात से गरज नहीं कि तीन बरस में महासभा बंद हो कर पार्लियामेंट की बैठक हो या न हो। ये तो तीन वर्ष तक बराबर काम करते रहेंगे। महासभा के कोष से उसे आर्थिक सहायता मिलेगी। इसके अलावा अपनी साख पर धन एकत्र करने तथा ऋण लेने की भी स्वाधीनता उसे दी गई है। जैसा कि श्री. वल्लभभाई ने खादी-मंडल के प्रस्ताव पर भाषण करते हुए कहा था, खादी-मंडल ने खादी का जादू बताने का काम सिर पर उठाया है और ईश्वर की कृपा से वह जादू को करामात दिखायेगा भी।

तीसरी बात यह कि महा-समिति ने प्रत्येक प्रान्त को अपने कार्यक्रम बनाने की स्वतन्त्रता दे दी है। इसकी रूप-रेखा मिलते ही वे सब युक्त करने का प्रयत्न करेंगे।

इस प्रकार से मांगलिक और व्यवस्थित रीति से जिस कार्य का आरंभ हुआ है वह अवश्य ही देश का ध्यान आकर्षित किये बिना न रहेगा।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

सत्याग्रह की दूसरी विजय

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	„ २)
एक प्रतिका	„ -)॥
विदेशों के लिए	„ ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी (जेल में)

वर्ष ३] [अंक २४

सम्पादक—हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, माघ बदी ६, संवत् १९८०
रविवार, २७ जनवरी, १९२४ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

बापूजी के दर्शन

पिछले सप्ताह मुझे बापूजी के दर्शन करने का तो सौभाग्य प्राप्त हुआ, पर सेवा करने का नहीं, क्योंकि आज तो उनकी सेवा अंगरेज और एंग्लो इंडियन धाइयां कर रही हैं।

आठ दिन पहले श्री जमनाभाई के साथ बापूजी के पहली बार दर्शन किये। २६ महीने बाद यह पहली बार दर्शन हुए। बंबई के उपद्रव के समय उन्हें आखिरी बार देखा था। उसके बाद पिछले सप्ताह दर्शन हुए। उनकी कमजोरी की तो सीमा नहीं थी। उन्हें धीमे धीमे बोलने का प्रयत्न करते हुए देखकर जी बेचैन हो उठता था। बिछौने की चद्दर से उनका केवल चेहरा बाहर दिखाई देता था। शरीर मानों इतना सूक्ष्म हो गया था कि प्रयत्न करने पर भी दिखाई नहीं देता था। उनसे बातचीत करना या उन्हें बातचीत करने देना ही निष्ठुरता थी। पर उनके प्रेम का सागर रोके किस तरह रुक सकता था? हमें देखते ही वह सागर हास्य के रूप में उमड़ पड़ा—वे खुद ही अपनी हालत बयान करने लगे। उन्होंने शुरू से अखीर तक तमाम किस्सा सुनाया कि वे जेल से अस्पताल में किस तरह आये। यह बात वे जरूर जानते होंगे कि हमें तमाम हाल औरों के द्वारा मालूम हो गये होंगे, पर प्रेम की अतिशयता यही थी कि वे स्वयं स्व-मुख से वही बातें सुना रहे थे। हम इस प्रेम के पात्र हुए, इसलिए क्या मैं उन्हें धन्यवाद दूं। हरगिज नहीं। सूर्य का प्रकाश दसों दिशाओं में और पृथिवी के हरएक कोने में एक सा पड़ता है। अवश्य ही हम बड़े बड़भागी हैं जो हम इस प्रेम के अधिकारी हुए।

क्योंकि अहमदाबाद से निकलते समय हमें आशा नहीं थी कि मुलाकात हो सकेगी। यह खयाल बराबर हुआ करता था कि सरकार मिलने देगी या नहीं, अस्पताल के अधिकारी मिलने देते होंगे या नहीं? परन्तु यहां आने पर तमाम शंका-कुशंकायें लुप्त हो गईं। डाक्टरों ने इस बात की इजाजत रक्खी है कि बापूजी जिससे मिलना चाहें वे मिल सकते हैं।

इसके बाद से आजतक बापूजी के कमरे के बाहर सिपाही के काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और वे दिन याद आते हैं जब तीन साल पहले, बापूजी की बीमारी के समय, मैं इसी तरह चौकीदारी करता था।

इन आठ दिनों के अन्दर बापूजी को दिन पर दिन इतना आराम होता हुआ देखा गया है कि आज इतना लिखने का साहस मुझे हो रहा है। पहले दिन तो एक सतर तक लिखने की हिम्मत नहीं होती थी।

अपनी तबीयत के हाल सुनाते हुए बीच बीच में वे अपनी सेवा-शुश्रूषा के लिए अस्पताल के लोगों का बहुत गुण-गान करते जाते थे। कहते—"इससे बढ़ कर सेवा-शुश्रूषा हम लोग कर ही नहीं सकते।" यहां के अधिकारियों और धाइयों को उन्होंने अपने प्रेम में सराबोर कर दिया है। इससे उनके कमरे में इसी प्रेम का वायुमण्डल लहरा रहा है। डाक्टर लोग जिस मृदुल-भाव को ले कर उनके पास आते हैं और जिस मिठास के साथ उनकी तबीयत के हाल चाल पूछते हैं उसे देख कर कठोर हृदय रखने वाले लोगों पर भी असर हुए बिना नहीं रहता। एक अंगरेज रमणी धाइयों की अफसर है। वह जब कभी आती है तब सागर में लहरों पर डोलने वाली नौका की तरह हंसती हुई ही आती है। उसे देख कर बापूजी से भी हंसे बिना नहीं रहा जाता। वह खुद बापूजी के कमरे की सजावट इस तरह करती है जिसे बापूजी भी देखते रहते हैं। बढ़िया, साफ, चमकदार कपड़ों पर सुन्दर फूलों के गुच्छे रख कर अपनी सजावट बापूजी को दिखलाती हैं और वे उसकी तारीफ करते हैं। रात-दिन की परिचर्या के लिए दो एंग्लो-इंडियन युवतियां नियुक्त हैं। दिन में शुश्रूषा करनेवाली बहन से मेरा ठीक परिचय हो गया है। उसके प्रेम की कोई सीमा नहीं। कहती है—"यह मेरा पहला ही खानगी केस है। चार साल तक मैं पढ़ी। अब अस्पताल छोड़ने का ही इरादा था कि गांधीजी आ गये। और उन्हींका केस मुझे पहले-पहल मिला। इसे मैं अपने कार्य-क्षेत्र का मंगलाचरण समझती हूं। रोगी की सेवा-शुश्रूषा हमेशा ही रुचिकर नहीं होती। कभी कभी तो जी भी ऊब उठता है। पर शुश्रूषा में यदि सच्चा आनन्द आया हो तो इसी रोगी की सेवा में।" एक बार मुझसे कहती थी कि मेरी रिपोर्ट देख कर डाक्टर ने कहा—"तुम ऐसे मोती के दाने की तरह बना बना कर हरूफ तो कभी नहीं लिखती थीं।" मैंने कहा "कभी ऐसा रोगी भी नहीं मिलता था!" बाहर जाकर जब अपनी सखी-सहेलियों से मिलती तब भी बापूजी की ही बातें करती है। तब वे कभी दिल्लगी में उससे कहती हैं—"क्यों आज गांधीजी की कोई बात नहीं है? तुम तो मानों अपने रोगी पर मोहित हो गई

हो!" वह तुरन्त जवाब देती है-"तुम यदि जान लो कि गांधीजी क्या हैं तो तुम्हें भी उनकी बातें किये बिना चैन न पड़े।"

और डाक्टरों का तो कहना ही क्या? क्या बड़े और क्या छोटे सब डाक्टर उनपर मुग्ध हैं। कर्नल मैडोक [illegible] हैं कि एक सरकारी अधिकारी की हैसियत से उनकी [illegible] क्या है? पर वे भी बापूजी के प्रेम से घायल हैं। वह संकोच और लज्जा के स्वर में वे कहते हैं-"धन्यवाद और कृतज्ञता-दर्शक सैकड़ों तार और पत्र मेरे नाम आ रहे हैं! मैं इन सब को किस प्रकार उत्तर दूं? समाचार-पत्रों के द्वारा दूं? मैंने कौनसी सेवा की है? मैंने सिर्फ अपने कर्तव्य का पालन किया है?" इस बात को सब लोग भूल गये कि रोगी सरकारी कैदी है। सब लोग यही मानते हुए नजर आते हैं कि किसी महापुरुष की सेवा करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है।

पर उन्हें कैदी की नजर से देखने वाले अधिकारी की भी बात सुना दूं न? एक दिन कर्नल मरे—बापूजी के जेलखाने के सुपरिंटेंडेंट—मिलने के लिए आये। उनकी नम्रता और मृदुलता को देख कर मैं चकित रह गया। "मि. गांधी आप यह तो नहीं न समझते हैं कि मैं आपको भूल गया? मैंने सोचा आपकी शान्ति में क्यों बाधा डालूं? मैं बहुत दिनों के बाद आपको देखता हूं। तबीयत पहले से बहुत अच्छी मालूम होती है। चेहरे पर भी बहुत रौनक दिखाई देती है।" बापूजी ने अपनी जेलवाले साथियों की बात पूछी। उन्होंने आनन्द के साथ उत्तर दिया—"आपको सब लोग याद करते हैं। मि. गनी ने कहलवाया है कि आप तो चले गये; पर मैं चार बजे सुबह उठने के नियम का पालन बराबर करता हूं। मि. इन्दुलाल आदि सब अच्छे हैं। सब लोगों को आप की गैरहाजिरी अखरती है। और (जरा मुंह मटकाकर कहा) आशा रखता हूं कि उन्हें हमेशा के लिए आपकी अनुपस्थिति अखरे।" बापूजी ने हंस कर जवाब दिया—"यह तो सच, पर मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि मुझे इधर-उधर घूम कर फिर आपकी देख-भाल में रह कर अपना काम करना जितना अच्छा मालूम होता है उतना दूसरा कुछ नहीं!" कर्नल के मुंह पर संकोच और लज्जा की रेखा खिंच गई। वे "जल्दी चंगे हो जाइए और मेरे लायक काम-काज हो तो फरमाइए" कह कर विदा होते हैं-तब बापूजी कहते हैं—"देखो न, इनका चेहरा ही कैसा है? कितनी सफाई और कितनी भलमनसाहत!" कर्नल मरे को देख कर यह खयाल होने लगा कि बापूजी की जेलवाली कोठरी कितनी प्रेममय होगी और इस सरकार के अज्ञान पर जो इस प्रेम के प्रकाश को एक कमरे में बन्द करने का प्रयत्न कर रही है, दया आने लगी।

पर मैं तो इस प्रेम के प्रवाह में बह कर दूसरी ही बातें कहने लगा। बापूजी की तबीयत के हाल तो रही गये। बापूजी की शक्ति बढ़ रही है। घाव लगभग ९ इंच लंबा और बड़ा गहरा है। अब सूखने लगा है। नौ इंच की लंबाई चमड़ी पर ही है। घाव के टांके तोड़ दिये गये हैं। जखम में अभी किंचित् मवाद बहता है। अभी मवाद बहाने के लिए नली रखनी पड़ती है। जबतक मवाद बहता है तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि पूरा आराम हो गया। पर बुखार अब बिल्कुल नहीं रहा। ९८ के बजाय ९७ और ९७॥ ताप मान रहता है। और यह बापूजी का मामूली ताप-मान है। पहले उनकी अंगुली और हाथ कांपता था, अब दोनों में ताकत आ गई है। पलंग के ऊपर एक जंजीर लटका दी गई है। जिसे दोनों हाथ से पकड़ कर अब खुद ही उठकर बिछौने पर बैठ सकते हैं। पथ्य इस प्रकार लेते हैं—तड़के ही कुछ गरम पानी और नीबू, फिर ८ बजे कुछ गरम पानी और दो तीन चम्मच शहद, अथवा गरम दूध, कोई तीन घण्टे बाद फिर दूध अथवा किंचित् [illegible] दूध और एक नारंगी, दोपहर को भी यही, शामको पांच बजे दूध, नारंगी और अंगूर। आहार धीरे धीरे पूर्ववत् हो जायगा। अभी २ से [illegible] पौंड तक दूध लेते हैं। पहले पेट पर भारी जखम होने के कारण आंत को साफ रखने के लिए पिचकारी के प्रयोग की जरूरत पड़ा करती थी। पर अब दस्त अपने आप साफ हो जाता है—दो दिन से पिचकारी की जरूरत नहीं पड़ती। जेल में यदि कभी पेटभर न सोये हों तो उसका बदला आज ले रहे हैं। आठ सात आठ घण्टे तक बराबर सोते हैं। दिन में जो आध-पौन घण्टे सोये हों सो जुदा ही।

इस तरह सब प्रकार हालत सन्तोषजनक है। बिछौने से उठ कर कुरसी पर बैठने लायक शक्ति आने में अभी समय लगेगा। और घूमने-फिरने के लिए तो अभी एक-दो महीने चाहिए। पर यह बेखटके कहा जा सकता है कि अब रोग और खतरा दोनों चला गया।

मैंने डाक्टरों और अधिकारियों के प्रेम का चित्र तो चित्रित किया; परन्तु जनता के प्रेम की बात ही नहीं सुनाई। क्योंकि वह तो जगत्प्रसिद्ध है। उसका वर्णन ही क्या? पर उसके भिन्न भिन्न स्वरूपों को देखिए। दिन-रात इतने तार आते हैं कि भाई देवदास की दिनभर की सेवा उनके उत्तर देने में ही पूरी हो जाती है। पर तारों और पत्रों पर ही यह प्रेम समाप्त नहीं हो जाता। एक दिन तिरुवाडी (तंजावर) के निवासी लिखते हैं "हम सबने फलां देवता के मन्दिर में अभिषेक और अर्चना की थी और पंच-नदीश्वर की विभूति तथा धर्मसंवर्धनी अंबा का कुंकुमप्रसाद महात्माजी के लिए भेजते हैं। दूसरे दिन काशी से समाचार आते हैं कि काशी के ब्राह्मणों ने मृत्युंजय महादेव के मन्दिर में जप किया था और जबतक महात्माजी चंगे नहीं हो जाते तबतक हर रोज अनुष्ठान करेंगे। और पत्र के साथ ही गंगाजल का ताम्रपात्र और शिव का निर्माल्य मिलता है। किसी दिन श्रीवाकी (तिरुपुर) जैसे पुरातन तीर्थ से अबीर-गुलाल आता है और किसी दिन [illegible] जैसे स्थान से पवित्र भस्म आती है। एक दिन एक पारसी बहन ने महात्माजी के आरोग्य के लिए अपना खून तक दे देने की इच्छा प्रकट की और उस दिन एक अंगरेज महिला ने लिखा कि मैं रोज आपके नैरोग्य के लिए भगवान् से प्रार्थना करती हूं। खादी की उपासक श्रीमती अवन्तिका बाई गोखले तो लिखती हैं कि जबतक बापूजी बीमार हैं तबतक मैं उनके बदले में दो-चार घण्टे ज्यादह सूत कातूंगी। कोई बहन मौन रह कर एकबार भोजन करती है और कोई अंगरेज बहन उन्हें भोजन-पान में अधिक सचेत रहने की सूचना देती हैं।

सैकड़ों लोग रोज बापूजी के दर्शन के लिए आते हैं और उन्हें मना करना पड़ता है। पर एक बूढ़ा अंगरेज आता है। उसे कोई मना नहीं कर सकता। हर तीसरे रोज वह अपने बाग से सुन्दर से सुन्दर गुलाब के फूल लेकर आता है, महात्माजी को अर्पण करता है और दो-तीन वाक्यों में अपने प्रेम की वृष्टि कर के लौट जाता है—"ओहो, आज तो आप परसों से बहुत ही अच्छे दिखाई देते हैं। चिन्ता न कीजिएगा, जल्द हो पहले जैसे हो जाइए। मुझे जरा भी सन्देह नहीं, आप अवश्य भले-चंगे हो जायंगे। देखो, मेरी उम्र कितनी है? जानते हैं ८९ वर्ष की है। आपकी क्या उम्र है? (बापूजी कहते हैं-५५) ओहो, यह तो कुछ भी नहीं है। जल्दी अच्छे हो जाइए।" वह पेन्शनर है और अब भी सरकारी नौकरी करता है। एक दिन तो कहता है—"कहिए, गांधीजी, मैं आपकी क्या सेवा करूं?" बापूजी कहते हैं—"नहीं, बस, यही सेवा कि आप मेरे लिए ईश्वर से प्रार्थना करते रहिए"

हिन्दी-नवजीवन

जेल-दिन ६८९, रविवार, माघ वदी ६, सं. १९८०

सत्याग्रह की दूसरी विजय

सत्य की हार दुनिया में कहीं नहीं होती। सत्य तो विजय पाने के ही लिए जन्मा है। जहां कहीं हार होती है उसका एक ही कारण हो सकता है—सत्याग्रह की कमी। सत्य ही बल है, सत्य ही धर्म है। इसलिए सत्य स्वयंरक्षित होता है। सत्य की रक्षा के लिए बाहरी उपकरणों की—शस्त्रास्त्रों की आवश्यकता नहीं होती। इसीलिए सत्याग्रही केवल सत्य के बल पर विजय प्राप्त करता है, शस्त्रास्त्रों की ओर वह आंख उठा कर भी नहीं देखता। बड़े बड़े शस्त्रास्त्र उसीके सामने निस्तेज हो जाते हैं, उसी प्रकार जैसे परशुराम का परशु रामचन्द्र की शान्ति के सामने हतबल हो गया था। पिछले साल गुरु-का-बाग, और नागपुर में हमने सत्याग्रह के चमत्कार का प्रत्यक्ष अनुभव किया। इस साल के आरंभ में ही बोरसद-सत्याग्रह ने असत्य और शस्त्र-बल को झुका कर छोड़ा। अभी तीर्थराज प्रयाग में लोगों ने सत्य और शान्ति के अद्भुत फल को अपनी आंखों देख लिया है। इस वर्ष में सत्याग्रह की यह दूसरी अपूर्व और तत्काल विजय है।

हरएक हिन्दू इस बात को जानता है कि मकर संक्रान्ति पर प्रयाग-स्नान का बड़ा माहात्म्य है। प्रयाग में त्रिवेणी तट पर बड़ा मेला लगता है। हजारों हिन्दू दूर दूर से त्रिवेणी-स्नान के लिए वहां आते हैं। प्रयाग में गंगा या यमुना के स्नान का विशेष महत्व नहीं है। त्रिवेणी-स्नान का ही माहात्म्य है। फिर इस साल प्रयागराज में अर्धकुंभी-पर्व के निमित्त भी बड़ा भारी मेला है। पर प्रायः और वर्षों के विपरीत इस साल संगम की धारा तेज है, पानी कटाव करता है और वहां स्नान करने में खतरा है। बस, प्रयाग के कलेक्टर श्री नाक्स ने संगम में स्नान करने की मुमानियत कर दी। पं० मालवीयजी आदि जनता के प्रतिनिधियों का कहना था कि धार के तेज रहते और पानी के कटाव करते हुए भी स्नान करने का प्रबन्ध किया जा सकता है। हिन्दू-विश्वविद्यालय के तथा स्वयं सरकारी इंजिनियरों की भी यही राय थी। उन्होंने तो श्री नाक्स से यहां तक कहा कि हां, २४ घण्टे के अन्दर स्नान करने योग्य घाट तैयार किया जा सकता है। सरकार ने उसके खर्च के लिए ३० हजार रुपयों की मंजूरी भी देदी थी। घाट बन कर तैयार भी हो गया था। पर बस संक्रान्ति के दिन नाक्स साहब अड़ ही गये। उन्होंने नहाने की इजाजत नहीं दी। पं० मालवीयजी के नेतृत्व में पं. जवाहरलाल नेहरू, बा० पुरुषोत्तमदास टंडन, पं. कृष्णकान्त मालवीय, पं. रमाकान्त मालवीय, पं. श्यामलाल नेहरू, पं. वेंकटेशनारायण तिवारी, स्वामी जगदीश्वरानन्द, स्वामी अंगानन्द, पं. गोविन्द मालवीय, पं. प्रेमनारायण मालवीय, पं. बसन्तलाल प्रयागवाल, स्वामी प्रेमानन्द सरस्वती, स्वामी रामानन्द और श्री मंजरअली सोख्ता (जिनकी हिन्दू-रहन-सहन के कारण मौ. महम्मद अली ने स्वामी मंजरानन्द नाम रक्खा है) आदि ने नाक्स सा: को समझाया। खुद पं० मालवीयजी ने भी अपनी सारी शान्ति, धैर्य, बुद्धिमानी, नम्रता और कौशल लगा कर उन्हें तरह तरह से समझाया—उन्होंने सविनय भंग कर देने तक का अपना निश्चय प्रकट किया तब भी साहब टस से मस न हुए। संक्रान्ति के दिन स्नान के लिए पं. मालवीयजी के तथा त्यागमूर्ति नेहरूजी आदि के परिवार के लोग कोई १० ½ बजे से त्रिवेणी तट पर गये थे। कोई साढ़े तीन बजे तक सब निराहार और निर्जल बैठे रहे; पर जिद्दी नाक्स साहब ने इसकी कुछ परवा न की। तब लाचार हो कर लोगों को आज्ञा-भंग करने पर उतारू होना पड़ा।

पं० मालवीयजी ने स्लीपरों की दीवार पर, जो स्नानार्थियों की रक्षा के लिए खड़ी की गई थी, सीढ़ी लगा कर चढ़ने के लिए पांव रक्खा, त्योंही सीढ़ी पुलिस अधिकारी ने खींच ली। पं० मालवीजी ने कहा, आप हमें गिरफ्तार क्यों नहीं कर लेते? इस प्रकार पं० मालवीयजी आदि के सत्याग्रह करने का निश्चय मालूम होते ही पुलिस और फौज के घुड़सवारों ने त्रिवेणी तट और स्नान के घाट को घेर लिया। सत्याग्रहियों का दल पूरी शान्ति के साथ पं० मालवीयजी के संकेत के अनुसार आज्ञाभंग करके स्नान करने की तैयारी में बैठा था। ३½ बजे के लगभग फौज के सिपाही बन्दूक लिए आते नजर आये। बस, पं. जवाहरलाल नेहरू स्वराज्य का झण्डा लेकर कुछ साथियों के साथ आगे बढ़े-स्लीपरों की दीवार पर चढ़ गये और पुकारा आओ, चले आओ। अफसरों ने सवारों को बढ़कर रोकने की आज्ञा दी। मालवीयजी ने बढ़ते हुए सवार की लगाम थाम ली और अफसर के ललकारने पर सवार के बढ़ने की चेष्टा करते ही पं. मालवीयजी अन्य साथियों सहित जमीन पर लेट गये। घोड़े पीछे हटे। बस कोई डेढ़ सौ सत्याग्रही दीवार को फांद कर या स्लीपरों को हटा कर भीतर चले गये। जयध्वनि से त्रिवेणी तट गूंज उठा। घोड़ों की कतार में से घुस कर पं० मालवीयजी, टण्डनजी आदि को स्नान करना पड़ा। इतना हो चुकने पर कोई ५ बजे नाक्स साहब यह कह कर कि सब लोग स्नान के लिए जा सकते हैं, घटनास्थल से दलबल-सहित चले गये।

सहयोगी 'अभ्युदय' ने खूब विस्तार के साथ यह रोचक कथा लिखी है। घटनाओं की छानबीन करने से शुरू से अंततक कलेक्टर नाक्स साहब की हठधर्मी साबित होती है। वे एक हुक्म दे चुके थे—फिर वह भले ही बेजा हो, जनता के धार्मिक भावों पर उससे आघात पहुंचता हो, और सामान्य लोकमत के खिलाफ हो। उसे वापस करके अपनी बात हेठी करने के लिए वे अन्त तक राजी न हुए। एक दृष्टि से बेजा और अपमानकारी हुक्मों को मान मान कर ही लोगों ने हाकिमों को स्वेच्छाचारी और हठी बना दिया है। जब सत्याग्रह के अमोघ अस्त्र से काम लिया गया तब उन्हें झुकना ही पड़ा।

सत्याग्रह की इस विजय पर पं० मालवीयजी अपने तमाम साथियों सहित केवल हिन्दू-जनता के ही नहीं, तमाम भारत वासियों की बधाई के पात्र हैं। एक दृष्टि से यह सत्याग्रह बोरसद सत्याग्रह से भी महत्वपूर्ण है। बोरसद सत्याग्रह के नेता असहयोगी थे। संगम-सत्याग्रह के नेता पं० मालवीयजी थे जो स्वतन्त्र-दल के माने जाते हैं और सरकार की दृष्टि में असहयोगियों की अपेक्षा ज्यादह जिम्मेवार श्रेणी के हैं। दूसरे श्री. वेंकटेशनारायण तिवारी, पं. रमाकान्त मालवीय, जैसे नरम दलवाले भी इसमें शामिल थे। युक्त-प्रान्त में यह पहला ही सत्याग्रह इस रूप में हुआ और ईश्वर की कृपा से वह सफल हुआ।

सब से बढ़कर खुशी इस बात की है कि इस मुठभेड़ में न तो सत्याग्रहियों की ओर से न पुलिस-फौज की ओर से किसी प्रकार का शान्ति-भंग हुआ। सत्याग्रही तो शान्ति-भंग न करने का कसद ही कर के बैठे थे; पर पुलिस और फौज के अफसरों और सिपाहियों ने भी काफी सहिष्णुता दिखाई। सरकारी शान के ख्याल और जनता के सामने न झुकने की आज तक की अधिकारियों की परम्परा को देखते हुए अन्त को नाक्स

शासन का, इतनी हलाकान के बाद ही क्यों न सही, अपनी भूल स्वीकार लेना, उनके मानवी हृदय और ठंडे दिमाग का परिचायक है। यह सत्याग्रह घटना सरकारी अधिकारी और जनता दोनों के लिए शिक्षा-प्रायिनी है। अधिकारियों को याद रखना चाहिए कि लोग अब उनके हर किस्म के हुक्मों को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्हें अब अपनी निरंकुशता का अन्त कर देना चाहिए। इसीमें उनका भला है। लोगों को यह नसीहत लेना चाहिए कि बेजा हुक्मों को मानना अपनी मनुष्यता को कलंकित करना है। उनकी इस विजय का मूल कारण यह नहीं है कि पू. मालवीयजी या पं. जवाहरलालजी उनके नेता थे, या सत्याग्रहियों की तादाद बहुत थी। बल्कि यह है कि उनके पक्ष में सत्य और न्याय था और उसके आग्रह के लिए काफी शान्ति रखने और हर तरह का कष्ट सहने की तैयारी उन्होंने दिखाई। वे गिरफ्तार होने, घोड़ों के पैरों तले कुचले जाने को तैयार हो गये; पर अपनी सत्य की टेक न छोड़ी।

हरिभाऊ उपाध्याय

महात्माजी के जेल-चेला

खादी-मंडल के मन्त्रि-पद को ग्रहण करते ही श्री शंकरलाल बैंकर काम में जुट पड़े। एक मिनिट का भी विलम्ब न किया। वे तमाम भारत का दौरा करने पर निकल पड़े हैं। यह लेख लिखने के समय तक आन्ध्र-प्रान्त का दौरा खतम कर के तामिल-नाड में उन्होंने प्रवेश किया है। अपनी अदम्य कार्य-शक्ति के बल उन्होंने खादी-कार्य का जुआ अपने कंधों पर रक्खा है और इस बात में कोई सन्देह नहीं कि इसका फल शीघ्र ही सारे देश में दिखाई देगा। देश का वायुमण्डल बदला हुआ नजर आवेगा। महात्माजी से वे एक खास पैगाम ले कर यरवडा के जेलखाने से बाहर आये। वह पैगाम था चरखे की पुकार। जेल से निकलते ही वे बारडोली में चुपचाप अपना काम कर रहे थे। परन्तु चुपचाप ठोस और भीतरी काम करने के लिए भी देश में अनुकूल वायुमण्डल की आवश्यकता रहती है। ज्यों ज्यों धारासभाओं और उनके लिए रायें लेने-देने की बातों का जोर बढने लगा त्यों त्यों उन्हें इसकी जरूरत दिन पर दिन ज्यादह महसूस होने लगी। अन्त को कोकनाडा महासभा के पहले उन्हें अपने एकान्त-वास से प्रकट होना ही पडा। अब शंकरलालजी चाहते हैं कि कातना बुनना और पहनना तीनों काम हर जगह होने लगे। जहां का कता सूत वहीं बुना जाय और वहीं पहना जाय। यदि खादी पहनना महज एक नया फैशन न हो तो यह काफी नहीं है कि खादी पैदा तो हो एक जगह और बेंची जाय दूसरी जगह। यदि केवल विदेशी कपडे का बहिष्कार करना ही हमें अभीष्ट होता तो कहीं न कहीं उतनी खादी पैदा कर लेने से हमारा काम चला जाता—बशर्ते कि वह विदेशी कपडे से सस्ती पडे।

पर यदि खादी का अभिप्राय सिर्फ यही नहीं है कि उसके द्वारा विदेशी कपडे पर प्रहार किया जाय, बल्कि राष्ट्र को स्व-शासन के लिए संगठित करना भी है, यदि हम इसे एक ऐसी रचनात्मक शक्ति बना देना चाहते हैं जो हमारे जड पिण्ड को ऐसे सजीव मनुष्य-समूह के रूप में परिवर्तित कर दे जो न केवल स्वेच्छाचारी शासन को शान्तिमय संग्राम के द्वारा पराजित कर दे; बल्कि स्वयं भी शान्ति के साथ अपना शासन कर सके तो खादी संगठन हमें सहयोग और स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर करना होगा। हर मुकाम को अपनी जरूरत के लायक सूत और कपडा अपने ही यहां तैयार करना और खुद उसीका इस्तैमाल करना होगा। कातने, बुनने और पहननेवाले सब एक-दूसरे के पडौसी हों और सब मिल कर अपना काम करते हों। तभी जा कर खादी हमारे राष्ट्र की रचना का एक और एक मुख्य भाग होगा। तभी जा कर शंकरलालजी बैंकर का दौरा खादी और रचनात्मक कार्यक्रम के संबंध में भारी फल दिखला सकेगा। जहां जहां शंकरलाल बैंकर जायं वहां वहां के लोग उनके पहुंचने के पहले चरखा कातने लग जायं। इससे बढ कर महात्माजी के इस जेल-चेला का स्वागत दूसरा नहीं हो सकता।

(यं० इं०) च. राजगोपालाचार्य

खादी-मंडल का दौरा

खादी-मंडल के मन्त्री श्री शंकरलाल बैंकर तथा दूसरे सदस्य श्री जमनालालजी बजाज और मगनलालजी गांधी पिछले कुछ सप्ताह से आन्ध्र-देश और तामिल-नाड में भ्रमण कर रहे हैं। वहां से वे उत्तरी भारत की यात्रा करेंगे। महात्मा गांधी और चरखे का सन्देश वे देहात में घर घर पहुंचा रहे हैं। वे क्या शहराती, क्या कस्बाती और क्या देहाती सब लोगों के हृदय पर खादी का आदर्श-वस्त्र-स्वातन्त्र्य का आदर्श अंकित कर देना चाहते हैं। वे केवल यही नहीं चाहते कि लोग खादी तैयार करने की शक्ति को बढावें बल्कि यह भी चाहते हैं कि जहांतक हो वहां की पैदा हुई खादी वहीं बेंचने का भी इन्तजाम किया जाय। उनकी अभिलाषा है कि क्या स्त्री और क्या पुरुष सब खुद अपने ही घर और गांव का कता-बुना कपडा इस्तेमाल करें। अपने गांव के गरीब देहातियों को भूखा छोड कर खादी दूसरे मुकामों पर न भेजी जाय। नीचे श्री शंकरलाल बैंकर की मदरासवाली वक्तृता दी जाती है जिससे मालूम हो जाता है कि लोगों के प्रति उनका वक्तव्य क्या है।

"महासभा के पिछले अधिवेशन ने देश को आदेश किया है कि वह रचनात्मक कार्य में लग जाय। यदि देश सत्याग्रह शुरू करना चाहता हो तो इस कार्यक्रम का पूरा होना परम आवश्यक है। लेकिन इस संग्राम में सत्याग्रह के सिवा दूसरा कोई साधन हमारे पास नहीं है। इसलिए हमें सारे देश में इस कार्यक्रम को पूरा करने का निश्चय अवश्य करना पडेगा। इस कार्यक्रम का मुख्य अंग है खादी। महात्माजी ने हमसे बार बार कहा है कि खादी के ही बल पर हमें सच्चा स्वराज्य मिल सकता है। खादी के ही द्वारा लोगों में उन गुणों का उत्कर्ष हो सकता है जो हमें सच्चे स्वराज्य का साक्षात्कार करा दें। खादी का उद्देश है जीवन को सादा बनाना। खादी ही अकेली देश को उद्योगशील और स्वावलंबी बना कर एक रास्ते पर ला सकती है। एक-मात्र खादी की ही सहायता से हम अपने राष्ट्र का संगठन इस प्रकार कर सकते हैं कि जिससे हम अपने ध्येय की सिद्धि कर सकें। पर वह खादी आज की तरह व्यापार के लिए तैयार की हुई खादी नहीं हो सकती। उसका तो आदर्श ही भिन्न होना चाहिए। 'वस्त्र-स्वातन्त्र्य' शब्द के द्वारा उस आदर्श के आशय को कुछ हद तक व्यक्त कर सकते हैं। जो मनुष्य इस आदर्श को सामने रख कर खादी को अपनाना चाहेगा वह तुरन्त बुनाई और कताई के काम को हाथ में ले लेगा, और दूसरे तमाम कपडों को छोड कर सिर्फ अपने ही कते सूत के कपडे पहनेगा। सच पूछिए तो कपडे के मामले में भी आपको वही तरीका अख्त्यार करना होगा जो आप अपने भोजन-पान के लिए करते हैं। मुमकिन है आपमें से कुछ लोग इसे अमल करने की हद के बाहर समझें। पर आन्ध्र और तामिल नाड के लोगों को ऐसा मानने की जरूरत नहीं।

आन्ध्र के देहात

आन्ध्र-प्रान्त की अपनी यात्रा में हमने देखा है कि कुछ गांवों के कोई ९० फी सदी लोग अपने ही गांव की कती-बुनी खादी

है। किसान अपने यहां कपास जमा कर रखता है, अपने घर पर उसे कताता है और वहीं के लोग उसे खरीद कर कपड़ा बुनवा लेते हैं। वह ऐसा इसलिए करता है कि उसे वह कपड़ा सस्ता पड़ता है और दूसरे मजबूत भी खूब है। हां, मैं यह जरूर कहूंगा कि उनके इस काम में प्रेरक हेतु राजनैतिक नहीं होता है। पर यदि किसान लोग अपनी शक्ति को समझ लें तो उन्हें पता लगे कि इसके द्वारा हम उसी आदर्श को पहुंच जाते हैं जिसके लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु दूसरी जगह मैंने इसी आदर्श के अनुसार काम होते हुए देखा है और वहां उनका प्रेरक हेतु राजनैतिक ही है। इसीलिए मैं कहता हूं कि यदि हम कमर कस लें तो यह काम जरूर होने लायक है।

कस्बे और शहर

पर संभव है आपमें से कुछ लोग पूछें क्या शहरों और कस्बों में भी लोग ऐसा कर सकते हैं? इसपर मेरा जवाब है कि हां, शहरों में भी लोग वैसा ही कर सकते हैं। इसकी एक मिसाल लीजिए। बंबई के आसपासवाले मुकामों पर एक जगह एक कारकुन रहता है। उसका आफिस वहां से एक घण्टे का रास्ता है। वह पूरे १० घण्टे दफ्तर में काम करता है। दो घण्टे आने-जाने में लगते हैं। फिर भी वह चरखा कातने का समय निकाल ही लेता है। वह धर्म-भाव-पूर्वक चरखा कातता है। वह कपास जमा करके खुद ही धुनता है। वह अपने लिए सूत भी कातता है और कपड़ा भी बुन लेता है। उसने फुरसत के वक्त बुनना सीखा। वह केवल अपने ही लिए कपड़ा नहीं बुनता, बल्कि अपने पड़ोसियों के सूत का भी कपड़ा बुनता है। जब बंबई का एक कारकुन अपने फुरसत के समय में अपने लिए इतना कर सकता है तो दूसरी जगह के लोगों के लिए यह असंभव कैसे हो सकता है? इस प्रकार वस्त्र-स्वातन्त्र्य के आदर्श को सामने रखकर बड़े बड़े शहरों में भी काम किया जा सकता है।

महात्माजी क्या करते हैं?

अब मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि इस संबंध में महात्माजी का क्या सन्देश हो सकता है—मैं कहता हूं क्या संदेश हो सकता है, क्योंकि उन्होंने वास्तव में कोई सन्देश नहीं भेजा है। मैंने उनसे कहा कि कोई सन्देश दीजिए। उन्होंने सन्देश तो कुछ नहीं दिया—सिर्फ इतना कहा—"अच्छा हो कि तुम लोगों को सिर्फ यही बताओ कि मैं यहां क्या कर रहा हूं।" उन्होंने ऐसा क्यों किया? इसलिए कि अबतक उनकी आवाज हमारे दिल तक नहीं पहुंच पाई। हम सब लोगों के लिए यह बड़े शर्म और रंज की बात है। हां, तो सुनिए, वे यरवडा में क्या करते हैं?

वे जेलखाने में चार घण्टे चरखा कातते हैं। यदि उनकी तन्दुरुस्ती अच्छी होती तो वे दिन भर सूत ही काता करते। उन्होंने जेल में बुनना भी सीखा है। इसपर शायद कोई यह कहे कि जेल में उन्हें दूसरा काम ही क्या है? लेकिन यह बात नहीं है। वे दिन भर बड़ा सख्त काम करते हैं। वे उर्दू पढ़ते हैं ताकि अपने मुसल्मान मित्रों से उर्दू में ही बात-चीत कर सकें। वे वेद, उपनिषद् और गीता का भी अध्ययन कर रहे हैं। वे इस्लाम के मर्म को जानने के लिए कुरान भी पढ़ रहे हैं। मैं कहता हूं वे किसी भी परीक्षार्थी से अधिक कड़ा परिश्रम करके अध्ययन कर रहे हैं। फिर भी वे चरखा कातने का समय निकाल ही लेते हैं। उनकी आंखों में दाने पड़ जाते हैं। दो बार उन्हें नश्तर लगवाना पड़ा। इससे उनकी आंखों को भी तकलीफ होती है। तो भी वे चरखा नहीं छोड़ते। जबतक वे कुछ सूत नहीं कात लेते तबतक खाना नहीं खाते। मैं समझता हूं यह वे इसलिए करते हैं कि जिससे उनका सन्देश लोगों पर अधिक असर कर सके।

हमारा काम

इसलिए यदि हम सचमुच उनके काम को आगे बढ़ाना चाहते हों तो हमें वही काम करना चाहिए जो वे कर रहे हैं। हमें खादी को अपनाना होगा और चरखा कातना होगा। वे घर घर चरखा चलता हुआ देखना चाहते हैं। हमें इस आदर्श को सामने रख कर अब संगठन करना चाहिए। हमें इस सन्देश को देश के एक एक झोंपड़े में पहुंचाना होगा। हमें लोगों को हर प्रकार की सहायता करनी होगी। जहां कपास पैदा नहीं होती है वहां हमें कपास पहुंचानी होगी। जहां लोग बुनाई नहीं जानते वहां उन्हें बुनाई की शिक्षा दिलानी होगी। जहां काम करनेवालों की कमी होगी वहां उन्हें भेज कर कते हुए सूत की बुनवाई का प्रबन्ध करना होगा। इस काम के करते हुए हम एक ऐसे संगठन को तैयार कर लेंगे जो हमें अपने भावी संग्राम में सहायता दे सके। मुझे विश्वास है कि आप महात्माजी के सन्देश को अपने हृदय में स्थान देंगे और देश को उसके अनुसार काम करने में सहायक होंगे। परमात्मा हमें अपने संग्राम में मदद दें।

टिप्पणियां

निकोलाय लेनिन का परलोकवास

जगत् के एक महान् पुरुष, यूरोप की एक ज्वलन्त शक्ति, बोल्शेविक रूस के विधाता, निकोलाय लेनिन की मृत्यु पक्षाघात के कारण गत २२ जनवरी को हो गई! २६ जनवरी को आपकी समाधि-क्रिया होनेवाली थी।

कोई अन्त्यज न मिला

नश्तर लगाने के पहले डाक्टरों ने महात्माजी से पूछा कि यदि आप चाहें तो अपने पूनेवाले मित्रों से मिल सकते हैं। अब किस मित्र को बुलावें? शास्त्रीजी का नाम तुरन्त सूझ पड़ा, श्री केलकर का भी नाम सूझा। अब किसी खादी-सेवक को खोजने लगे। इतने में डाक्टर फाटक की याद आई। डा० फाटक उस समय महात्माजी के साथ रहे थे जब वे सिंहगढ़ पर कुछ समय रहे थे। आप ही पूना में खादी का काम करते थे। बेचारे हरिभाऊ फाटक को सपने में भी खयाल न हुआ कि महात्माजी मुझे याद करते होंगे। पहले तो उन्होंने कहा—"भाई, कोई और फाटक होगा।" पर जब कहा गया 'नहीं, आप ही को बुलाया है।' तब उनके हर्ष और आश्चर्य की सीमा न रही। पर बापूजी ने पीछे से कहा कि इन लोगों से तो मिला, पर यदि कोई जान-पहचानवाला अन्त्यज यहां होता तो उसे भी जरूर बुलाता।

डा० राय और अन्त्यज

जिस अन्त्यज को मिलने के लिए महात्माजी इस नाजुक हालत में भी इतने आतुर थे, उन्हें अभी तक हमने अपने गले नहीं लगाया, यह देख कर उन्हें कितना रंज होता होगा?

जो इस दर्द का अनुमान कर सकते हैं वे अन्त्यज की अवगणना नहीं कर सकते। आचार्य राय इस दर्द को जानते हैं। उनके विदीर्ण हृदय के उद्गार सुनने योग्य हैं। कलकत्ता में एक पत्र-प्रतिनिधि से उन्होंने कहा—

"अस्पृश्यता संसार में अत्यन्त निंद्य वस्तु है। ईश्वर के नजदीक इससे बढ़ कर हेय वस्तु दूसरी नहीं हो सकती। हमारी दुर्दशा के मार्ग में सब से बड़ा विघ्न यही है। हिन्दू-समाज पर इससे बड़ा कलंक नहीं है। वशिष्ठ मुनि का जन्म वेश्या के गर्भ से हुआ और नारद की भी ऐसी ही कथा है। वेद व्यास धीवर की

आदमी के पुत्र थे। उस समय ब्राह्मण लोग कहाँ चले गये थे? उन सबके विशेषाधिकार कहाँ गये थे? अधिकार के ठीकेदारों को लिए एक ही पैगाम है—ईश्वर सब का पिता है। हम सब उसके बाल-बच्चे हैं। हम सब-आपस में भाई भाई हैं। केनिया में गोरे लोगों ने जिस प्रकार अपना एक तहखाना बना लिया है, उस प्रकार अपने सहियों का ठीका न ले बैठो। दुःखमय पाप केनिया के गोरों के ललाट लगा है। अस्पृश्य भाइयों को मेरा सन्देशा यह है—आत्मसम्मान को न खोओ, अपने हक की रक्षा निर्भय होकर हिम्मत के साथ करो। अपने लिए कपास पैदा करो, खुद ही उसका सूत कातो और खुद कपड़ा बना कर पहनो।

एक प्रसंग

डाक्टर राय की यह सलाह कि "हम लोग एक परिवार के हैं" नडियाद के नजदीकवाले एक गांव की एक घटना की याद दिलाती है। नडियाद अन्त्यजाश्रम के एक सज्जन लिखते हैं—

"एकबार एक भंगी के घर में आग लग गई। बेचारे ने बड़ी मिहनत करके और २००-३००) कर्ज लेकर झोंपड़ा बनाया था। आग लगने की खबर सुनते ही गांव के ठाकुर तथा बनिये लोग इकट्ठे हो गये। उसके घर में घुस कर उन्होंने चीज-वस्त और कपड़े-लत्ते निकालने में मदद की। और अपने घर से पानी लाला कर आग बुझाई। इतना ही नहीं, गांव वालों में चन्दा करके १००-२००) की मदद भी उसे की।"

महात्माजी के सच्चे भक्त ये लोग हैं—वे नहीं जो मुंह से 'महात्मा गांधी की जय' पुकार कर अन्त्यजों को दुरदुराते हैं।

नई सरकार

ब्रिटेन में भी जमाना बदलता जा रहा है। आज ब्रिटिश इतिहास में पहली ही बार श्रमजीवी-दल की जीत हुई है। और उस दल के प्रधान नेता रामजे मैकडोनल्ड प्रधान मन्त्री हुए हैं। नहीं कह सकते उनका मन्त्रित्व कितने दिन तक टिक सकेगा। पर यह बात सच है कि हिन्दुस्तान के साथ हमदर्दी रखने की बातें करनेवाले पक्ष के हाथों में आज राज्य-सत्ता आई है। श्री शास्त्री ने तमाम सभाओं को सूचना की है कि वे मजदूर-दल को इसपर तार-द्वारा धन्यवाद दें। जो लोग यह मानते हों कि ब्रिटेन के किसी न किसी कारण से सत्ताधीश होनेवाले पक्ष के ऊपर हमारा उत्कर्ष अवलंबित है वे अवश्य ऐसा करें। पर जिनका भरोसा स्वयं अपने बल पर है उन्हें ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं। हां, यदि मजदूर-दल अधिक समझदार हो, हमारे साथ सुलह करने के लिए उत्सुक हो तो हम उनकी शर्तों पर विचार करने के लिए अवश्य तैयार रहेंगे। परन्तु इतनी भारी आशा रखने की भी कोई [illegible] नहीं। [illegible] पहले से ही दिखाई देने लगे हैं। एक पत्र के विशेष प्रतिनिधि ने रामजे मैकडोनल्ड से पूछा कि अब भारत के प्रति आपके दल की नीति क्या रहेगी? इसका जो उत्तर उन्होंने दिया है वह पढ़ने लायक है—

"अनेक बार हिन्दुस्तान की घटनाओं को देखकर मुझे बड़ी चिन्ता हुई है। मैंने अपने राजनैतिक जीवन में हमेशा एक ही सिद्धान्त को अपना ध्रुव लक्ष्य बनाया है और वह यह कि यदि सभी बुनियाद पर प्रगति करनी हो तो वह राजमान्य अर्थात् विधि-विहित तरीके से ही करनी चाहिए। हमें कितनी ही क्रान्तिकारी हलचलों को देखने का मौका मिला है। वे जरा देर के लिए उठीं परन्तु बड़े ही संकट और विडम्बना के बाद बहुत कटुता पैदा कर चुकने पर अन्त को उसी पुरानी राजमान्य रीति को ग्रहण करने पर लाचार होना पड़ा।

यदि हिन्दुस्तान राजमान्य उपाय और क्रान्तिकारी उपायों के संग्राम का क्षेत्र हो जाय तो मुझे उसके लिए किसी प्रकार की आशा नहीं है। ब्रिटेन का कोई भी दल ऐसा नहीं है जो बल-प्रयोग अथवा प्रचलित राजतन्त्र को बेकार करने की नीति से डर जायगा। यदि भारत के किसी भी दल को यह भ्रम हो कि वे डर जायंगे तो उन्हें भविष्य में निराश होना पड़ेगा। मैं तमाम असहयोगियों से कहता हूं कि हमारे नजदीक आओ—हमसे दूर न हटो; हमें बुद्धि के बल पर अपनाओ और हृदय के बल पर जीतो।"

लार्ड बर्कनहेड की फौलादी हड्डियों की याद दिलानेवाले रामजे मैकडोनल्ड और उनके साथियों को अभी असहयोग के पर्यालोचन करने का अवसर नहीं मिला है। वे शौक से राजमान्य उपायों के पुजारी हुआ करें। भारत में तो उनके प्रतिनिधि कर न देने के आन्दोलन को राजमान्य कह दे करार नवीन युग के उदय की आशा दिला रहे हैं। परन्तु यह बात पक्की है कि चाहे मजदूर दल हो चाहे और कोई दल हो, जब हमारे पुरुषार्थ का परिचय उसे मिलेगा तब उसका फौलादी घूंसा ढीला पड़े बिना न रहेगा। (नव०)

रचनात्मक-कार्य का शुभारंभ

खादी-मण्डल ने अपनी स्थापना होते ही कार्यारंभ कर दिया। उसका हाल अन्यत्र मिलेगा। इधर भिन्न भिन्न प्रान्त भी अपनी जिम्मेवारी को महसूस करके कार्य में जुट पड़े हैं। तामिलनाड की प्रान्तीय समिति ने रचनात्मक कार्यक्रम के लिए नीचे लिखे प्रस्ताव स्वीकृत किये हैं—

१—खादी-काम ही सारे प्रान्त का मुख्य कार्यक्रम हो। २—छुआ छूत दूर करने तथा पंचायतों के लिए आमतौर पर तो प्रचार किया ही जाय; पर कुछ चुने हुए क्षेत्रों में भीतरी ठोस काम करने का भी प्रबन्ध किया जाय। ३—शराबखोरी दूर करने के लिए इस तरह प्रचार किया जाय जिससे भिन्न भिन्न जातियों के संगठन से इसमें लाभ उठाया जा सके और लोकमत भी तैयार किया जा सके। ४—जो मौजूदा राष्ट्रीय पाठशालायें सहायता पाने के योग्य हों उन्हें सहायता दी जाय।

खादी-नीति इस प्रकार रक्खी गई है—जहां खादी ज्यादा तैयार ज्यादह होती हो वहां की ईजाद खादी का उपयोग तो प्रान्त के उन हिस्सों में किया ही जाय जहां खादी कम होती है; पर साधारण नीति यह रक्खी जाय कि हर जिला कपड़े के मामले में अपनेको पूर्ण स्वाधीन बना ले अर्थात् अपनी जरूरत की तमाम खादी खुद ही बनावे और जब वह ज्यादह हो जाय तभी दूसरी जगह भेजी जाय।

अखिल भारतीय खादी-मण्डल के ढंग पर प्रान्तीय खादी-मण्डल की स्थापना ३ वर्ष के लिए हुई है। मण्डल के सभापति श्री ई. वी. रामस्वामी नायकर और मन्त्री श्री के. सन्तानम् हैं। सदस्यों में च. राजगोपालाचार्य, डाक्टर राजन् आदि पांच छः प्रसिद्ध खादी-भक्त हैं।

बंगाल में भी प्रान्तिक खादी-मण्डल की स्थापना हो गई है और आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र घोष, श्री [illegible] चक्रवर्ती आदि भिन्न भिन्न जिले के १५ से ऊपर सदस्य हैं।

संयुक्त प्रान्त में भी स्थापना हो चुकी है और श्री [illegible] उसके मंत्री नियुक्त हुए हैं।

इनके अलावा आन्ध्र, बिहार और पंजाब प्रान्तों में पहले ही से खादी की पैदावार के लिए काम हो रहा है। पर वस्त्र-स्वातन्त्र्य के आदर्श को सामने रखकर भारत के प्रत्येक प्रान्त में ऐसे प्रान्तिक खादी-मण्डलों की स्थापना होने और उनके काम में जुट पड़ने की

परम आवश्यकता है। जिन जिन प्रान्तों ने इसके संबंध में अभीतक कोई कार्रवाई नहीं की है उन्हें अब समय बिल्कुल न गंवाना चाहिए।

ह० उ०

बारडोली में खादी-कार्य

श्री शंकरलालजी बैंकर ने तामिल नाड में एक जगह व्याख्यान देते हुए बारडोली के खादी-कार्य का वर्णन इस प्रकार किया—"मेरे कुछ मित्र एक गांव में जाकर रहने लगे। उन्होंने स्वयं अपना जीवन वस्त्र-स्वातन्त्र्य के आदर्श के अनुकूल बना लिया है। वे वहां इस नीयत से जाकर बसे कि लोगों को इस आदर्श के अनुकूल जीवन बनाने के लिए काम करने की प्रेरणा करें। परन्तु इसके पहले कि वे किसानों से जाकर कहें, खुद तमाम शर्तें पूरी करने की कोशिश की। वे जानते थे कि कोरे कहने की अपेक्षा कर दिखाना ज्यादह असर करता है। उन्होंने वहां अड्डा जमा दिया, कपास खरीदा, और सूत कातने और कपड़ा बुनाने लगे। इसमें कोई दो-तीन महीने लगे। इस बीच आसपास के देहाती लोग उनके पास आने लगे और उनसे कहने लगे कि हमें भी कुछ कहिए। वे जानते थे कि खाली कहने से कुछ फायदा नहीं। कहने से कर दिखाना अच्छा है। पर जब वे खुद काम करने लगे तब कहने की जरूरत ही नहीं रह गई। हमारे किसान लोगों में बुद्धि काफी होती है और जब वे किसी चीज को अपनी आंखों के सामने होता हुआ देखते हैं तब फौरन् उसका महत्व समझ जाते हैं। उन्हें काम जंच गया। कपास की मौसम चली गई थी। इससे कपास के बारे में उन्हें कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन्होंने मेरे उन मित्रों से इस बादे पर कपास लिया कि अगले साल लौटा देंगे। वे धुनकना भी नहीं जानते थे। गांव के नौजवान लोगों ने धुनकना सीखना शुरू किया। एक महीने में कोई १५० लोगों ने धुनकना सीख लिया। चरखों की तादाद भी काफी नहीं थी। और स्त्रियां अच्छी तरह कातना नहीं जानती थीं। पर लोगों ने चरखा खरीदने का और औरतों ने चरखा कातने का निश्चय कर लिया। एक बड़ी कठिनाई वहां जुलाहों की थी। एक भी जुलाहा वहां ऐसा न था जो हाथ-कते सूत का कपड़ा बुन सके। तब दूसरी जगह से कुछ कपड़ा बुननेवाले लोग वहां बसाये गये। अब वहां के लोग अपने ही कते सूत की खादी बना कर पहनते हैं। इसमें पूंजी की जरूरत नहीं। किसान अपने घर का कपास जमा कर रक्खें। धुनकना, कातना खुद ही कर लेने से दूसरा कुछ खर्च अलहदा नहीं पड़ता। किसान लोग खुद ही उस कपड़े को इस्तेमाल कर लें। इससे बेचने का झगड़ा नहीं। बस, उन्हें सिर्फ भोजन-पान के लिए जो खर्च करना पड़े वही। लोगों ने इस रहस्य को समझ लिया और उसे करने लगे। मेरे मित्र वहां से उठ कर दूसरी जगह जा बैठे।"

उन्होंने एक शिक्षक का उदाहरण दिया। उसने पहले पहल अपने मदरसे के लड़कों और लड़कियों को चरखा कातने के लिए समझा-बुझाकर तैयार किया। फिर उनके सूत का कपड़ा बुनवाकर उन्हें पहना दिया। तब लड़कों के माँ-बाप भी उस सूत का कपड़ा बुनवाने लगे। धीरे धीरे उन घरों में खादी का प्रवेश हो गया। इस तरह इन लड़कों ने खादी-प्रचार का जितना काम किया उतना उस तहसील की समिति के मन्त्री ने भी नहीं किया।

शादी में खादी

आगरा के नजदीक से एक सज्जन ने निमंत्रण-पत्र भेजा है। उसमें वे लिखते हैं कि "मेरी आन्तरिक इच्छा है कि देश-प्रेम, धर्म और सादगी के के साथ विवाह किया जाय अतः सेवा में सविनय निवेदन है कि आप इस शुभवसर पर खादी के वस्त्र धारण करके पधारने की अवश्य कृपा करें। ईश्वर से प्रार्थना है कि आपकी आत्मा में सादगी उत्पन्न हो और आपकी आत्मा का भाव मेरे लिए प्रतिनिधि और वर के लिए स्वर्ग-सेवक का स्वरूप हो।

उन महानुभाव सज्जनों के सम्मुख जो गौ तथा अन्य पशुओं की चर्बी के संयोग से बने वस्त्र त्याग करने में असमर्थ हैं मैं कर जोड़ क्षमा-प्रार्थी हूं। आशा है, मेरी विनीत प्रार्थना स्वीकार होगी।"

भारत के कितने माँ-बाप शादियों में इस प्रकार धर्म और देशसेवा का खयाल रखते हैं?

छठी संगीत परिषद्

राष्ट्रीय संगीत मंडल, अहमदाबाद, के प्रयत्न से गांधर्व महाविद्यालय की छठी संगीत परिषद् का अधिवेशन वसंत पंचमी के अवसर पर वहां होगा। उसके साथ ही संगीत के जलसे भी होंगे। परिषद् और जलसों में संगीत की शास्त्रीय चर्चा और प्रत्यक्ष कौशल-प्रदर्शन करने के लिए भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के प्रसिद्ध संगीत-शास्त्री और गायक-वादक उपस्थित होंगे। गुजरात तथा काठियावाड़ के संगीत और रास की तजवीज तथा अनेक प्रकार के वाद्यों के बजाने में प्रवीण वादकों को बुलाने का प्रयत्न खास तौर पर किया गया है। अन्तिम दिन कथाकारों की परिषद् होने की भी संभावना है। परिषद् के मन्त्रीगण सूचना करते हैं कि पधारनेवाले सज्जन अपने साथ अपना बिछौना जरूर लावें। वहां सरदी ज्यादह पड़ती है।

ह० उ०

कार्य-समिति की बैठक

कार्य-समिति की बैठक आगामी ३० जनवरी को बम्बई में होगी।

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नये नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी)। कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डांक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डांक से भेजी जायं या रेल्वे से।
५. बची हुई प्रतियों का दसवां भाग वापस लिया जायगा। मगर डाक खर्च एजन्ट के जिम्मे।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

हिन्दी-नवजीवन-प्रकाशन मन्दिर

लोकमान्य को श्रद्धांजलि ॥)

जयन्ति अंक ।)

रेल्वे पार्सल मंगाने वालों से रेलखर्च नहीं।

प्रकाशित हो गये

जीवन का सद्व्यय—महात्मा मालवीयजी इस ग्रन्थ पर मुग्ध हैं और बिहार के नेता बाबू राजेन्द्रप्रसादजी लिखते हैं—"यह अमूल्य ग्रन्थ है। धर्मग्रन्थों की तरह इसका पठन-मनन होना चाहिए। चरित्रगठन के लिए विद्यार्थियों को दूसरा ग्रंथ नहीं मिल सकता।" मूल्य ।॥)

आश्रम भजनावलि (तीसरा संस्करण) मूल्य ।≈)

नवजीवन-प्रकाशन-मन्दिर, अहमदाबाद

पहला पैगाम

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रतिका „ -)॥
विदेशों के लिए „ ७)

हिन्दी नवजीवन

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १] [अंक २६

सम्पादक—हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, माघ सुदी ५, संवत् १९८०
रविवार, १० फरवरी, १९२४ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

तू आया !

"वही चिर-परिचित मुक्त हास्य"

सूना था जग, सोते थे जन, विस्मृति-निद्रा मादक थी।
ज्ञान अन्ध था, तर्क दुष्ट था, हृदय-मूढ़ता घातक थी॥
सत्य कैद था, दम्भ मुक्त था, माया की छाई माया।
कर्म-प्रेरित विश्व-विमोहन, आत्म-तेज ले तू आया॥१॥

धर्म पंगु था, कर्म हीन था, नास्तिकता का था सत्कार।
प्रेम-धर्म था हुआ पराजित, पशुबल का था जयजयकार॥
ईश्वर सत्ता का सेवक था, शैतानी वैभव छाया।
प्रेरक ताली दी प्रकृति ने—सत्य-शक्ति ले तू आया॥२॥

प्रकृति क्षुब्ध थी, विकृति मुग्ध थी, संस्कृति की अति दुर्गति थी।
रक्त-सिक्त रणचण्डी की चहुँओर चमकती भृकुटि थी॥
नर-हृदयों ने क्रूर, हिंस्र, भय-भावों को था अपनाया।
नारायण करने हित नर को दया धर्म ले तू आया॥३॥

* * *

पूरब ने गौतम को पाया, पश्चिम ने ईसा देखा।
असुर और शैतान-रजा ने मूर्तिमान यम को देखा॥
भारत ने अपना उद्धारक, आप्त जन ने गुरु पाया।
गगन-गिरा में जय जय गाथा—"तू आया है, तू आया!"॥४॥

हरिभाऊ उपाध्याय

पुण्य दर्शन

शाहीबाग के सर्किट हाउस में महात्माजी को सजा हुई थी। सजा सुना कर जज साहब चले गये। और तुरन्त ही मुलाकाती तथा समस्त भारत के नेताओं और सेवकों ने महात्माजी को घेर लिया। उस समय का दृश्य भव्य था, धर्म-स्फूर्ति का प्रेरक था। उस दिन महात्माजी के अन्तिम दर्शन हुए थे। उसके कोई दो वर्ष बाद उनकी अनुमति से उनके पुण्य दर्शन करने के लिए पुण्य पुरी गया था।

जेल से बाहर आते ही सुना कि महात्माजी गहरी बीमारी से बच गये हैं। उसी दिन महादेवभाई का पत्र आया कि महात्माजी ने कहलवाया है—मिलना चाहते हों तो शौक से आइए। महात्माजी से मिलने जाने की इच्छा तो कई बार हुई थी परन्तु हिम्मत नहीं होती थी। जब जब पूने जाकर दर्शन करने की इच्छा होती तब तब एक मौके पर कहा उनका एक वचन याद आ जाया करता—"दुनिया में अनेकों रत्न हैं; पर क्या हम हरएक रत्न पाने के अधिकारी हैं?" जेल के नियम के अनुसार नाते-रिश्तेदारों को हर महीने मिलने की इजाजत है। मैं आश्रम में रहता हूं, महात्माजी मुझे अपना समझते हैं, इसलिए क्या यह उचित है कि मैं इस सुविधा से लाभ उठाऊं? जिसे इस बात की तसल्ली हो कि मैंने बिना प्रमाद के अपने कर्तव्य का पालन बराबर किया है, तथा जो उनके दर्शन करने का अधिकार रखता है उसीको वहां जाने की इच्छा के अधीन होना उचित है। जिस प्रेमभाव से महात्माजी अन्त्यजों को अपना भाई समझते हैं, वह यदि हमारे अन्दर उत्पन्न हुआ हो तो हम अपना हंसता हुआ मुख लेकर महात्माजी के सामने खड़े रह सकते हैं। ५५ वर्ष की उम्र में महात्माजी जिस निष्ठा के साथ चरखा कातते हैं और जो धुनकते हैं वह निष्ठा वह सक्रिय निष्ठा—जिसके पास हो वही कह सकता है कि मैं महात्माजी से मिलना चाहता हूं। आंख की पलकें जिस जागरूकता के साथ आंख की पुतलियों की रक्षा करती हैं उस जागरूकता के साथ जिसने देश के मान-गौरव की रक्षा करने की चिन्ता की हो वही राष्ट्र के गौरव-रक्षक महात्माजी के दर्शन करने का अधिकारी है।

योग्यता चाहे न हो पर यदि देश-सेवा करने की अखंड उत्कटता हो, महात्माजी के प्रेम के योग्य पवित्रता प्राप्त करने की अभिलाषा हो, हृदय की दुर्बलता को धो डालनेवाले पावक अश्रु आंख से निकलते हों तो उनसे मिलने की वासना तृप्त की जा सकती है।

देश-सेवा के उन्माद में यदि भयंकर भूल की हो और उसका प्रायश्चित्त यदि महात्माजी के सम्मुख उपस्थित होकर करना हो तो भी यरवडा के कारागार के दरवाजे खड़े रह सकते हैं।

इनमें से यदि किसी प्रकार की पात्रता न हो तोभी वे मातायें अथवा ऐसे शिक्षक जिनके सिर पर यह कर्तव्य आ पड़ा है कि वे देश के आशा और आश्वासन स्वरूप महात्माजी का हृदय बालकों को अर्पण करें, यदि यरवडा के दरवाजे फूल चढ़ावें और अन्दर से फैलते हुए अदम्य प्राण को हृदय में भर कर वापस लौटें तो यह भी समझ में आ सकता है। यदि इनमें से एक भी बात का दावा न हो सके तो उस अवस्था में यही एक भावना है, यही एक कर्तव्य हो जाता है कि हृदय की दर्शन करने की इच्छा को नष्ट कर डालें।

इस वेदना के कारण ही मुलाकात के लिए जाने से हृदय बार बार इनकार करता था। सरकार की मेहरबानी और स्वयंसेवकों की हलचल के प्रताप से जब जेल जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तब मन में विचार आया कि यदि सरकार मुझे यरवडा भेज दें तो कहना चाहिए कि दैव ने यह वस्तु ही भी कर्म से जुटा दी। वह एक अपूर्व योग हो। परन्तु दैव ही अधिक बलवान् साबित हुआ अथवा यह कहना ठीक होगा कि कर्म का अभाव ही बाधक हुआ। मेरे मन की ऐसी अवस्था थी कि महादेवभाई ने सन्देश भेजा—"बापूजी कहते हैं—'आना चाहते हों तो शौक से आइए।'" बस बिना विचार किये फौरन् पूना दौड़ गया। रास्ते में रामकृष्ण परमहंस का एक वचन याद आया—"शिष्य की गुरु-भक्ति की अपेक्षा गुरु का शिष्य-प्रेम अधिक बलवान् है।" परन्तु यह वचन यहां किस तरह चरितार्थ हो सकता है? शिष्य का नाम ग्रहण करने से पहले उस आदर्श का ध्यान करना चाहिए जिसको वेद-काल से लेकर आजतक अनन्य शिष्य-परंपरा ने कायम रक्खा है। इस ख्याल से महात्माजी से मिलने की आशा के आनन्द की अपेक्षा अस्वस्थता ही बढ़ी। इतने में हमारे सनातन आश्वासन-वचन की याद आई—

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

पिछले रविवार को शाम को पूना जा पहुंचा। ऐसा समझता था कि अस्पताल में जाते हुए उमंग और उत्तेजना से छाती धड़कने लगेगी; पर वहां तो ५० कदम जा मिलीं, महादेवभाई मिले, देवदास मिले। खुद बापूजी के दर्शन करने के पहले आश्रम का वायुमण्डल मिल गया। दो वर्ष की अवधि इसप्रकार लुप्त हो गई—मानों दुःख-निद्रा या स्वप्न की अस्वस्थता हो। सुशोभित कमरे में प्रवेश करते ही वह चिर-परिचित प्रसन्न मुख हास्य नजदीक आया। और अन्तर से हर तरह का अन्धकार दूर हो गया। महात्माजी के स्वागत का अनुभव आजतक यदि करोड़ों को नहीं तो लाखों लोगों को जरूर है। सो उसके वर्णन की यहां जरूरत नहीं। कमरे में पूर्व और पश्चिम का, जित और जेता का भेद [illegible] को प्राप्त हो गया था—स्वराज्य-संग्राम का अन्त हमारे पुरुषार्थ के अनुसार जब होना हो होवे; पर महात्माजी ने तो जेता की [illegible] अपने लिए प्रेम का साम्राज्य कभी से स्थापित कर लिया है।

जिसने जीवन के रहस्य को समझ लिया है उसे वैरी या बहुतेरे प्रतिस्पर्धी से डरने का कोई प्रयोजन नहीं है; परन्तु प्रेमी प्रतिस्पर्धी बड़ा भारी होता है। रात को सोते समय विचार आया "इसके बराबर प्रेमी प्रतिस्पर्धी सारी दुनिया में कोई दूसरा पुरुष होगा? ऐसे आत्मबलि के साथ टक्कर में आनेवाली सरकार का क्या होगा?" अन्तरात्मा के अन्धकार में से आवाज आई "उद्धार अथवा विनाश, तीसरी कोई गति नहीं।" मेरा हृदय तो इन दोनों में से किसीकी गति को स्वीकार कर सकता है। यदि उद्धार हो तो फिर और क्या चाहिए? यदि विनाश हो तो हमारी वह ऐसी शिक्षा हो जायगी जिसे यह नास्तिक दुनिया कभी न भूल सकेगी! पर जिसके उद्धार के लिए, जिस पतित राष्ट्र को ऊंचा उठाने के लिए यह अजातशत्रु इतना वीर कर्म कर रहा है उसका क्या होगा? स्पष्ट उत्तर नहीं मिला—एक ही चरण याद आया—

नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

प्रकाशित हो गये

जीवन का सत्काव्य—महात्मा भगवानदीनजी इस ग्रंथ पर मुग्ध हैं और बिहार के नेता बाबू राजेन्द्रप्रसादजी लिखते हैं—"यह अमूल्य ग्रन्थ है। धर्मग्रन्थों की तरह इसका पठन-मनन होना चाहिए। चरित्रगठन के लिए विद्यार्थियों को इससे अच्छा ग्रंथ नहीं मिल सकता।" मूल्य ॥)

आश्रम भजनावलि (तीसरा संस्करण) मूल्य ।=)

नवजीवन-प्रकाशन-मन्दिर, अहमदाबाद

बड़ा दिन

बापूजी छूट गये। ५ फरवरी १९२४ को सुबह ८ बजे छूट गये। यह दिन भी १८ मार्च १९२२ की तरह याद रहेगा। १८ मार्च का दिन घोर अन्याय का दिन था; ५ फरवरी का दिन कुछ हद तक न्याय का दिन कहा जा सकता है—हालां कि इस न्याय-प्रदान के मूल में न्यायकर्ता की इच्छा नहीं है—और जब कि इच्छा नहीं है तो मधुरता कहां से हो सकती है?

मार्च १९१९ में 'यंग इंडिया' के एक लेख के लिए महात्माजी पर और शंकरलाल पर हाईकोर्ट में मुकदमा चलाया गया था। उसपर अदालत की मानहानि का जुर्म लगाया गया था। मुकदमा चलने के एक दिन पहले लेबरनम रोड, गामदेवी (बंबई) में एक उल्लेख योग्य घटना हुई थी। कितने ही मित्र महात्माजी के पास आये और उनसे आग्रहपूर्वक अनुरोध करने लगे "गांधीजी, इस बार आप माफी मांग लीजिए। यदि आप माफी न मांगेंगे तो हमारे लिए आपको बचाना असंभव होगा। कानून की रू से आपने अपराध किया है और अदालत आपको सजा देने के लिए मजबूर होगी। इसी जुर्म पर इंग्लैंड में पार्लमेंट के सभ्यों को छः छः महीने कैद की सजा हुई है। फिर अब पर सरकार आपको छोड़ेगी? और यदि सरकार आपको न छोड़े तो हम कानून-दाँ लोग सरकार को दोषी न कह सकेंगे।" यह दलील मैं मि. जिना की ही सुनी यहां दे रहा हूं। वे उस समय बापूजी से मिलने आये थे। परन्तु महात्माजी ने उसका जो जवाब दिया वह भी उतना ही स्पष्ट था—"हां, आप ठीक कहते हैं; लेकिन माफी मैं किसी हालत में नहीं मांग सकता। मैं समझता हूं, सरकार इस मामले में कुछ नहीं कर सकेगी।" मि. जिना खामोश रह गये। उन्होंने कानून की रिपोर्टों का उल्लेख कर के कहा—"गांधीजी, यह आप का दुराग्रह है।" परन्तु महात्माजी अपनी बात से न हटे। और अन्त को महात्माजी की ही धारणा सच निकली—उनके लिए चिन्ता करने वाले मित्रों की चिन्ता बेकार साबित हुई। सरकार सचमुच कुछ न कर सकी। जब जब मुझसे यह सवाल पूछा जाता था कि सरकार महात्माजी को छोड़ेगी या नहीं तब तब मैं कहता "बुद्धि नहीं कहती कि छोड़ेगी, परन्तु अन्दर से आवाज आती है कि छोड़ देगी"—क्योंकि बापूजी इस समय कहते हैं कि 'सरकार मुझे वापस जेल में ले जाने का साहस नहीं कर सकती।' और बापूजी फिर एक बार सच साबित हुए। जिस समय जेल में जाने का तूफान उठ रहा था उस समय भी वे वैसे ही शान्त थे और मुकदमा खतम होने के बाद भी, जब कि उन्होंने कहा 'सरकार ने यह तो कुछ भी नहीं किया' उन्हें वैसी ही शान्ति थी। १८ मार्च को जितनी शान्तिशीलता का परिचय उन्होंने दिया उतना ही इस बार भी सुबह ५ फरवरी को दिया—हां, संभव है उस दिन वह उमंग न हो जो १८ मार्च को थी।

५ ता० का प्रातःकाल

उस समय मैं पूना नहीं था—कुछ ही घण्टे पहले मुझे वहां से रवाना हो जाना पड़ा था। परन्तु उस समय का चित्र चित्रित करने के लिए मुझसे भी अधिक अधिकारी साक्षी मिल गये हैं। भाई एण्ड्रयूज सुबह को ही वहां जा गये थे—बापूजी का सन्देश ले कर—और उन्होंने उस सुबह के सारे दृश्य का वर्णन मुझसे किया है जिस समय रिहाई का हुक्म उन्हें सुनाया गया था।

सुबह साढ़े सात बजे थे। भाई एण्ड्रयूज घर से [illegible] ही चाय [illegible] बापूजी के पास आकर बैठ गये थे। उन्होंने बापूजी से कहा "मैं [illegible] जिससे [illegible] के पहले [illegible] लिये आया हूं।" बापूजीने पूछा—"क्यों?" "इसलिए कि आपके पास कुछ समय पहले पहुंच जाऊं।" तब बापूजी मधुर कटाक्ष करते हुए बोले—"तो एक इच्छा का त्याग किया; पर वह आखिर दूसरी इच्छा के सहारे ही न कर पाये?" एण्ड्रयूज साहब खिलखिला कर हंस पड़े।

इसके बाद एण्ड्रयूज साहब के एक लेख के विषय में कहा—"इस लेख की बहुत सी बातों से मैं सहमत हूं। उत्तम प्रकार सुखी विवाहित जीवन का उदाहरण आपको हम जैसा कहां से मिल सकेगा?" यह कह कर वे पू० बा के गुण गान करने लगे। परन्तु यह गुण-गान कर के अन्त को बापूजी ने कहा—"परन्तु हमारा सच्चा सुख तो उस दिन से बढ़ने लगा जब से हमने ब्रह्मचर्य का पालन शुरू किया और आज तो उसकी पराकाष्ठा हो गई है।" एण्ड्रयूज साहब समझ गये कि इस आखिरी वचन के द्वारा विवाहित जीवन पर बापूजी टीका कर गये।

इस प्रकार रंगत हो रही थी कि एक नई घटना घटी। ७½ बजे कर्नल मैडोक कहां से? रोज तो वे ९ बजे जख्म धोने और पट्टी बदलने आते हैं। आज ७½ बजे ही उनके दर्शन कैसे? उनके हाथ में एक कागज था—लाल मुहर लगा हुआ—और ऐसा मालूम होता था कि वे हांफते-कांपते आ रहे हैं। बापूजी ने दिल में कहा—"चलो, इन दोनों भले अंगरेजों का आपस में परिचय करा दूं।" सो उन्होंने कहा—"कर्नल मैडक, ये मेरे परम मित्र चार्ली एण्ड्रयूज हैं।" यह बात उनके मुंह से पूरी हुई ही न थी कि कर्नल ने अधीर हो कर कहा—"इतनी सुबह मैं डाक्टर की हैसियत से यहां नहीं आया हूं। मैं तो एक खुशखबरी ले कर आया हूं। सरकार ने आपको बिना शर्त के छोड़ दिया है।" (बिना शर्त के शब्दों पर उन्होंने खास तौर पर जोर दिया) "अब आप यहां से जहां चाहें तहां जा सकते हैं।" बापूजी कुछ देर तक शान्त रहे, फिर मुसकरा कर बोले—"मैं आपका कृतज्ञ हूं। पर मैं आशा रखता हूं कि एक रोगी और मिहमान की हैसियत से आप मुझे कुछ दिन और रहने देंगे।" सर्जन भी जवाब में हंसे और बोले—"जरूर, बड़ी खुशी के साथ। पर एक शर्त है। जिस प्रकार अबतक डाक्टर की हैसियत से मेरा हुक्म मानते थे उसी तरह आगे भी मानना होगा। अब आप कैदी नहीं रहे; पर मेरे रोगी तो हई हैं।" बापूजी भी खिलखिला कर हंस पड़े और पीछे से एण्ड्रयूज सा० ने बापूजी से कहा कि "सर्जन जबरदस्त मिला है। बिलकुल सीधा जवाब देता है।" इसके बाद मामूली बातें हुईं। सर्जन ने जाते जाते कहा—"मैं आशा रखता हूं कि जिस प्रकार आपको सबसे पहले यह सन्देश सुनाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है उसी प्रकार आपको भला-चंगा कर के अस्पताल से भेजने का भी सौभाग्य मुझे मिलेगा।"

कैसी शान्ति!

इसके बाद जो शान्ति फैली उसका वर्णन कौन कर सकता है? भाई एण्ड्रयूज ने मुझसे कहा कि यह खबर सुनते ही लोग उनके कमरे में घुस आये। चारों ओर मुंह पर हंसी ही हंसी। सब दीवाने हो गये थे और सब से अधिक दीवाना हुआ था मैं। परन्तु सरल, शान्त, अ-क्षुब्ध, सुरम्य बापूजी तो ज्यों के त्यों बैठे थे। उन्हें देख कर मेरे मन में यह खयाल आया कि ये हमें देखकर अपने मन में हंस रहे होंगे कि "ये भुनगे क्या खुशी में मस्त हो कर झूम रहे हैं!"

रोगी मित्र

परन्तु अभी दूसरे दृश्य मेरे लिए तैयार हो रहे थे। बापूजी के आसपास के लोग यदि खुशी से नाचें और झूमें तो इसमें कौन

(शेष पृष्ठ २१२ पर)

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, माघ सुदी ५, सं. १९८०

महात्माजी का पहला पैगाम

(मौलाना महम्मदअली के नाम पत्र)

सासून अस्पताल,
पूना, ७ फरवरी

प्रिय मित्र और भाई,

मेरी रिहाई एकाएक हो गई, इससे मैं जानता हूं कि हमारे देश-भाई मेरा वक्तव्य सुनने की आशा रखते हैं। आप महासभा के सभापति हैं। इसलिए मैं आपकी ही मार्फत उन्हें अपना वक्तव्य सुनाता हूं। मुझे खेद है कि सरकार ने मुझे बीमारी के कारण जल्दी छोड दिया। ऐसे छुटकारे से मुझे हर्ष नहीं हो सकता; क्योंकि मैं मानता हूं कि किसी कैदी की बीमारी उसके छुटकारे का कारण नहीं हो सकती। मेरी बीमारी के दिनों में जेल के और अस्पताल के अधिकारियों ने बडी चिन्ता के साथ मेरी खबरदारी की है। यदि यह बात मैं आपपर और आपके द्वारा सर्व-साधारण पर प्रकट न करूं तो मैं अकृतज्ञता का अपराधी हूंगा। यरवडा जेल के सुपरिंटेंडेंट कर्नल मर्रे ने, ज्यों ही उन्हें मेरी बीमारी की गंभीरता का शक हुआ, कर्नल मैडोक को अपनी मदद के लिए बुलाया और मुझे निश्चय है कि मेरे अच्छे से अच्छे इलाज के लिए जल्दी से जल्दी तजवीजें की गईं। जिस समय मैं डेविड और अन्त्र सासून अस्पतालों में पहुंचाया गया उससे एक मिनिट भी जल्दी मैं नहीं पहुंचाया जा सकता था। कर्नल मैडोक तथा उनके दूसरे अधिकारियों ने बडी चिन्ता और प्रेम के साथ मेरी खबरदारी की है।

मैं उन दाइयों का नाम लेना कैसे भूल सकता हूं जिन्होंने एक बहन की तरह चिन्ता के साथ मेरी सेवा-शुश्रूषा की है? यद्यपि अब मैं जब चाहूं तब अस्पताल छोड सकता हूं; पर मैं जानता हूं कि इससे बढकर इलाज मेरा दूसरी जगह नहीं हो सकता। इसलिए कर्नल मैडोक की इजाजत से मैंने यही तय किया है कि जबतक घाव बिलकुल अच्छा न हो जाय और किसी प्रकार के औषधोपचार की जरूरत न रहे तबतक मैं उन्हींकी देखरेख में इलाज कराऊं।

इससे सब लोग यह आसानी के साथ समझ सकते हैं कि अभी कुछ समय तक मैं किसी काम में पडने के बिल्कुल अयोग्य हूं और जो लोग इस बात में दिलचस्पी रखते हैं कि मैं शीघ्र कार्यक्षेत्र में उतर पडूं वे यदि यहां आकर मुझसे मिलने का इरादा मुल्तवी कर दें तो उस दिन को जल्दी बुलावेंगे। मैं अभी इस योग्य नहीं हुआ हूं कि बहुतेरे लोगों से मिल-जुल सकूं और अभी कुछ और समय तक इस योग्य न हो सकूंगा। मुझे अपने उन मित्रों का प्रेम अधिक प्रिय होगा यदि वे अपने अंगीकृत राष्ट्रीय कार्यों में और खास कर चरखा कातने में ही अपना अधिक समय देंगे।

मेरी इस रिहाई से मुझे आराम नहीं मिला है। रिहाई के पहले मैं अपनी जिम्मेवारी से मुक्त था। उस अवस्था में मेरा सिर्फ यही काम था कि मैं अपनेको जल-जीवन के अधिक अनुकूल और अधिक श्रेष्ठ सेवा के योग्य बनाऊं। पर अब मेरे सिर पर ऐसी जिम्मेवारी का भार आ पडा है जिसको उठाने के लिए मैं अयोग्य हो रहा हूं। बधाई के तार पर तार मेरे पास आ रहे हैं। उन्होंने मेरे प्रति मेरे देश-भाइयों के प्रेम के अगणित सबूतों की संख्या को बढा दिया है। इससे मुझे खुशी और तसल्ली होना स्वाभाविक ही है।

पर कितने ही तार ऐसे भी आये हैं जिन में मुझसे इस प्रकार की सेवा की आशा रक्खी गई है। यह देख कर मेरा हृदय कांप उठता है। यह खयाल कि मैं अपने सामने पडे काम को उठाने में इस समय बिलकुल असमर्थ हूं मेरे गर्व को गिरा देता है। यद्यपि देश की मौजूदा हालत का बहुत-थोडा हाल मुझे मालूम है, तो भी मुझे इतना हाल जरूर मालूम हो गया है जिससे मैं जान जाऊं कि देश की समस्यायें बारडोली के प्रस्तावों के समय जितनी जटिल थीं आज उससे भी अधिक जटिल हो गई हैं। यह बिलकुल स्पष्ट है कि हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, पारसी, ईसाई तथा दूसरी जातियों की एकता के बिना स्वराज्य की तमाम बातें फजूल हैं। १९२२ में मैं बडी उमंग के साथ मानता था कि देश में एकता करीब करीब कायम हो चुकी है। पर अब मैं देखता हूं कि जहांतक हिन्दू-मुसल्मानों से ताल्लुक है, उसकी गति को भारी धक्का पहुंचा है।

पहले जहां परस्पर विश्वास था वहां अब अविश्वास फैल गया है। यदि हम आजादी हासिल करना चाहते हैं तो हमें अपनी जुदा जुदा जातियों में अटूट ममत्व स्थापित करना होगा। मेरी रिहाई पर देश की ओर से जो धन्यवाद बरस रहे हैं क्या वे जुदा जुदा जातियों की पक्की और ठोस एकता के रूप में परिणत हो सकते हैं? किसी भी तरह के दवा-दरपन, विश्राम या आराम के बनिस्बत इससे मुझे निहायत जल्दी सेहत हासिल होगी। अब जेल में मैंने कुछ जगह के हिन्दुओं और मुसल्मानों की तनातनी के हालात सुने तब मेरा दिल टूक टूक होने लगा। मुझे डाक्टरों ने आराम करने की सलाह दी है। पर जबतक यह नाइत्तफाकी मेरे आसपास मुंह फैलाये हुए है, मुझे आराम नहीं मिल सकता।

जो लोग मेरे साथ प्रेम-भाव रखते हैं उनसे मैं अनुरोध करता हूं कि वे इस एकता को, जिसे हम सब चाहते हैं, बढाने में अपने उस प्रेम का उपयोग करें। मैं जानता हूं कि काम मुश्किल है। पर अगर हमारे अन्दर ईश्वर के प्रति सजीव श्रद्धा हो तो कोई काम कठिन नहीं है। आइए, हम अपनी कमजोरियों को जानें और ईश्वर का सहारा मांगें, वह अवश्य मदद देगा। कमजोरी से डर पैदा होता है और डर से अविश्वास। चलो, हम दोनों अपने दिल से डर को निकाल दें। लेकिन मैं तो कहता हूं कि यदि हममें से कोई एक भी अपने डर को दूर कर दे तो हमारे लडाई-झगडे बन्द हो जायं। नहीं, मैं तो यहां तक कहता हूं कि आपके कार्य की कीमत इस एकता के लिए किये गये आपके प्रयत्न को ध्यान में रख कर ही आंकी जायगी। मैं जानता हूं कि हम एक-दूसरे को भाई की तरह प्रेम करते हैं। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मेरी चिन्ताओं में मेरा हाथ बटाइए और मेरी मदद कीजिए जिससे मैं अपनी बीमारी के दिनों को जरा शान्ति और निश्चिन्तता के साथ बिता सकूं।

यदि हम सिर्फ देश की बढती हुई दरिद्रता का चित्र अपनी आंखों के सामने खडा करें और यह समझें कि चरखा ही एक मात्र इस रोग की दवा है तो चरखा हमें लडने के लिए फुरसत ही नहीं लेने देगा। मुझे पिछले दो वर्षों में गहराई के साथ सोचने के लिए काफी समय और एकान्त मिला है। उसने मुझे बारडोली-कार्यक्रम की अर्थात् भिन्न भिन्न जातियों की एकता, चरखा, अस्पृश्यता-निवारण, और स्वराज्य के लिए कायिक, वाचिक मानसिक अहिंसा की सफलता की उपयोगिता का पहले से भी अधिक कायल कर दिया है।

यदि हम ठीक ठीक और सोलहों आना इस कार्यक्रम के अनुसार काम करें तो हमें सविनय भंग शुरू करने की जरूरत ही न पडे और मुझे आशा रखनी चाहिए कि उसकी कभी आवश्यकता

न होगी। लेकिन यह बात मैं जरूर कहूंगा कि एकान्त में प्रार्थना-पूर्वक चिन्तन और मनन करने के उपरान्त भी सविनयभंग की सफलता और धर्मता के संबंध में मेरा विश्वास जरा भी कम नहीं हुआ है। जब किसी व्यक्ति या राष्ट्र की आत्मा पर ही आघात पहुंचता हो तब सविनय भंग करना उसका हक और धर्म है। आज पहले से भी अधिक मजबूती के साथ मैं इस बात को मानता हूं। मुझे इस बात का निश्चय हो चुका है कि युद्ध की अपेक्षा सविनय भंग में कम खतरा है। युद्ध के अन्त में जहां जेता और जित दोनों को हानि पहुंचती है तहां सविनय भंग दोनों का मंगल करता है।

आप मुझसे इस बात की उम्मीद न करेंगे कि मैं छोटी और बड़ी धारासभाओं में महासभावादियों के जाने के कठिन प्रश्न पर अपनी राय जाहिर करूं। यद्यपि मैंने धारासभा, अदालतों और सरकारी शिक्षालयों के बहिष्कार-संबंध में अपनी कोई राय किसी तरह नहीं बदली है, तथापि देहली में किये परिवर्तन के संबंध में राय कायम करने की विचार-सामग्री अभी मेरे पास नहीं है और तबतक मैं उसपर अपनी राय जाहिर नहीं करूंगा जबतक उन प्रसिद्ध देश-भाइयों से इसके संबंध में अच्छी तरह चर्चा नहीं कर लेता जिन्होंने देशहित के खयाल से धारासभाओं के बहिष्कार को हटा देने की सलाह देना जरूरी समझा है।

अन्त में, मैं आपही के मार्फत बधाई भेजनेवाले तमाम सज्जनों को धन्यवाद क्यों न दे दूं? क्योंकि हर शख्स को अलाहदा उत्तर देना मेरे लिए असंभव है। कितने ही पत्र हमारे नरम दल के मित्रों की ओर से भी मुझे मिले हैं। यह देख कर मेरे हृदय को बड़ी खुशी हुई है। मेरा उनसे कोई झगड़ा नहीं और न असहयोगियों को ही हो सकता है। नरम दल वाले भी अपने देश के हितैषी हैं और अपनी धारणा के अनुसार देश की सेवा करते हैं।

यदि हम समझते हों कि वे गलती पर हैं तो हम मित्र-भाव और धीरज के साथ उनसे दलील कर के ही उन्हें अपने पक्ष में करने की आशा कर सकते हैं, उन्हें गालियां दे कर हरगिज नहीं। और निस्सन्देह अंगरेज लोगों को भी हम अपना मित्र समझना चाहते हैं—उन्हें अपना शत्रु समझकर उनके संबंध में अपना गलत खयाल बनाना नहीं चाहते। आज ब्रिटिश सरकार के साथ जो हमारी लड़ाई चल रही है वह उनकी शासन-प्रणाली के साथ है उन लोगों के साथ नहीं है जो उस प्रणाली के अनुसार काम करते हैं। मुझे मालूम है कि हममें से बहुतेरों ने इस बात को नहीं समझा है और हमेशा ही इस भेद को ध्यान में नहीं रक्खा है और जिस तक हमने इसमें गफलत की है उस हद तक हमने खुद अपना ही नुकसान किया है।

आपका सच्चा मित्र और भाई,

मोहनदास करमचन्द गांधी

एजंटों की जरूरत है

वह जादुई जगह

मुझे पूना छोड़े पांच दिन हो गये। परन्तु अभी एक [illegible] के लिए भी "तेहि नो दिवसा गताः" की ध्वनि कानों में गूंजती हुई बन्द नहीं हुई है। बहुत बार खयाल दौड़ जाता है—इस समय बापूजी क्या करते होंगे, यह उनके आराम का वक्त होगा, शायद मिलने जुलने वाले उन्हें तंग कर रहे हों, अब उस बूढ़ी धाय के साथ हंसी-मजाक हो रहा होगा, अपने सिवा दूसरे सेवकों को बापूजी के आस-पास खड़ा देख कर उसे ईर्ष्या होती होगी और कहती होगी—"गांधीजी, आपके पास तो बहुतेरी धायें हैं न?" परन्तु बापूजी को तो इस प्रकार की आसक्ति छू तक नहीं गई है। एक रोज कहते हैं—"मैं देखता हूं कि इस मुकाम के जादू में सब लोग फंस रहे हैं। पर मैं कहता हूं कि देखना, कोई अपने काम का हर्ज न होने देना। अनसूया बहन से मैं कहता हूं तुम अपने मजदूरों के काम को भूल कर तो यहां नहीं बैठ रही हो न?" इसमें कितना विरोधाभास है? यदि उस मुकाम से जादू हट जाय तो मुग्ध लोग भी वहां से खिसक जायं। पर मुझे तो वहां से विदा होना ही पड़ा—अच्छे मन से या बुरे मन से निकलना ही पड़ा। इसलिए वहां के जादू की रंगत पाठकों को सुनाने का जरा पहले से कम मधुर काम आज मुझे करना पड़ता है।

इस जादू भरी जगह-इस तीर्थस्थान पर अनेक यात्रीगण यात्रा कर गये। प्रायः सभी प्रान्तों के सभी दलों के प्रतिनिधि वहां जा पहुंचे थे। समस्त धर्मों और तमाम वर्णों और जातियों के यात्री वहां गये थे। नहीं गईं कितनी ही कार्य-रत आत्मायें जिन्होंने बापूजी की काम न छोड़ने की आज्ञा का पालन अक्षरशः किया और जादूगर के जादू को भी मोहित कर लिया। जो लोग जाते थे वे क्या असर लेकर जाते थे उसका वर्णन मैं कर चुका हूं। नानक के इस सुप्रसिद्ध भजन—

बिसर गई सब तात पराई, जब से साधू संगत पाई

का प्रत्यक्ष अनुभव करके जाते थे। बाहर जाकर यदि वे 'पराई' का अनुभव फिर से करने लगते हों तो ताज्जुब नहीं। तात्कालिक असर के चिरस्थायी रहने के लिए अकेली कुछ क्षण की 'साधु-संगत' की ही नहीं, कुछ और बातों की भी आवश्यकता रहती है।

इस मौके पर एक बड़े ही करुण दृश्य का वर्णन कर देता हूं। मद्रास के एक बड़े जमींदार श्री के. वी. रंगास्वामी आयंगार राज्य-सभा के सदस्य हैं। अभी उस दिन राज्य-सभा में उन्होंने उन लोगों की अच्छी खबर ली थी जिन्होंने शान्ति के लिए 'नोबल प्राइज' सर आगाखां को देने की सिफारिश की थी। वे देहली जाने से पहले बापूजी से मिलने आये थे। उनके हृदय की निर्मलता अपार थी। उम्र भी उनकी बहुत कम है। एक दिन सुबह आये। जरा कम सुनते हैं। इससे बापूजी ने कुछ ऊंची आवाज में कहा—"आप यह आशा न रखिएगा कि मैं आपके साथ बहुत बातें कर सकूंगा; क्योंकि इतनी ऊंची आवाज में अभी बोलना मेरे लिए कठिन है।" बेचारे चुपचाप खड़े रहे। बापूजी के शरीर पर हौले हौले हाथ फेरने लगे। जरा जरा पांव दबाने लगे। उनकी मुखाकृति कह रही थी—"बदन सिर्फ आधा रह गया है!" पर पीछे तो इस दशा में भी ज्यादह समय खड़े न रह सके। वहां से हटे, जरा दूर जा कर खड़े रहे। कठिन प्रयास करने पर भी उनकी आंखों ने उनके मन का कहा न माना। जेब में रुमाल खोजने लगे। रुमाल मिला नहीं। तब अपने कोट के लटकते हुए हिस्से से ही आंखें पोंछने लगे। उनका ध्यान दूसरी ओर खींचने के लिए एक ने पूछा—"आप देहली कब जायेंगे?" उन्होंने दुःख के साथ जवाब दिया—"वहां करना ही क्या है जो जाऊं?" कुछ देर चुपचाप खड़े रहे और

शामको मैं अपनी मां को ले कर आऊंगा, कह कर चले गये। शामको अपनी मां को ले कर आये। देहली जाने की जल्दी थी। सिर्फ बापूजी से विदा होने और अपनी मां को उनकी भेट कराने के ही लिए आये थे। कमरे से बाहर निकलते समय फिर गद्गद् हो गये और कहा—"जब वे छूट जायेंगे तब मैं इन्होंको अनुसरण करूंगा।" और विदा हुए।

कितने ही दर्शक तो बहुत ही रंगतदार आते थे। मैंने ऊपर कहा है कि समस्त प्रान्तों से लोग मिलने के लिए आये थे—पर कहना चाहिए था 'कितने ही देशों से'। एक दिन दो अमेरिकन महिलायें आई थीं। बेचारी उस बूढी धाय के पाले पड गईं। दरवाजे में ही बूढी उन्हें मिली। उन्होंने समझा था कि गोरी मेम है इसलिए जरूर गांधीजी के पास जाने देगी। धाय और उनके बीच बातचीत होने लगी—

"आप किससे मिलना चाहती हैं?" "गांधीजी से।" "गांधीजी आपके रिश्तेदार होते हैं?" "नहीं तो?" "गांधी जी आपके मित्र हैं?" "जी नहीं।" "गांधीजी आपको जानते हैं और मिलना चाहते हैं?" "जी नहीं, हम उनका 'स्नेपशाट' लेना चाहती हैं। हम अखबारों की तरफसे आई हैं; हमें उनके फोटोग्राफ दरकार हैं।"

बस, धाय का मिजाज बिगडा। बोली—"यह अस्पताल है। गांधीजी यहां बीमार हैं। यहां कोई नुमाइश नहीं है। गांधीजी कोई नुमायश की चीज नहीं हैं। चलो, भगो यहां से। आना हो तो सर्जन से इजाजत ले कर यहां आओ।" सुनते ही बेचारी रफूचक्कर हो गईं।

एक और किस्सा सुनिए। एक दिन एक फ्रेंच पत्र का प्रतिनिधि अपनी पत्नी को साथ ले कर आया। एक बार तो देवदास ने उन्हें समझा-बुझा कर रवाना कर दिया था। पर पीछे वे किसी एक मित्र को साथ ले कर आये, जिसका मुलाहिजा देवदास को करना पडा। बूढी धाय से भी सावका नहीं पड पाया—इससे वहां तक जा सके। महात्माजी के पास आ कर उन्होंने एसी बात कही जिसे सुनकर सब को अचम्भा होने लगेगा। बेचारे महात्माजी को इतना ही विश्वास दिलाने आये थे कि "आप अंगरेजों के प्रति जितना तिरस्कार रखते हैं उतना ही फ्रान्स का प्रत्येक निवासी रखता है।" देवदास ने मन में कहा—इन्हें कहां अन्दर घुसा लाया? बापूजी हंस दिये; परन्तु दो चार मिनिट में उन्हें किस तरह समझाते कि फ्रान्स के अंगरेजों के प्रति तिरस्कार में मेरी (बापूजी की) और भारतवर्ष की कभी हिस्सेदारी नहीं थी और न उसकी इच्छा ही की जाती है।

बहुत बार दर्शनार्थी लोगों से हुज्जत करना पडती। आज तो भाई देवदास को वहां दर्शकों से युद्ध करने में बडी तकलीफ पड रही होगी। यह देख कर एक दिन श्रीमती अवन्तिका बाई गोखले ने हंसते हंसते सुझाया "बापूजी, आपसे मिलने की छुट्टी सिर्फ उन्हीं लोगों को होनी चाहिए जो रोज दो घण्टा चरखा कातते हों।" इसपर बहुतेरे लोग चौंक उठे। श्रीमती अवन्तिका बाई इसलिए इस बात पर जोर नहीं दे रही थीं कि वे खुद रोज चरखा कात कर बापूजी से मिलने की पात्रता प्राप्त कर चुकी हैं बल्कि इसलिए कि यह शर्त रख देने से बहुतेरे लोगों को आने से रोका जा सकेगा। पर यह शर्त करता कौन? दर्शनार्थी स्वयं यदि अपने मन के ही साथ शर्त कर लें तो यह एक नहीं सैकडों शर्तें हैं। दर्शनार्थी यदि अपने अधिकार का विचार करने बैठें तो कभी उनका जी मिलने को उत्सुक न होगा। परन्तु कठिन स्थिति तो है द्वारपालों को। मधुर-भाषी द्वारपाल यदि उन्हें दया कर के, फुसलाकर रोकते हैं तो बूढी धाय जैसे मुंहफट द्वारपाल सीधे हटा देते हैं। पर कभी कभी मिठास से काम लेते हुए भी बडे गहरे पानी में उतरना पडता है। एक–दो महाशयों ने कहा—"आप खादी पहने बिना ही मिलना चाहते हैं, महात्माजी इससे कैसे सन्तुष्ट होंगे?" यह बात बडी नम्रता के साथ कही थी। पर तुरन्त जवाब मिला—"शास्त्रीजी खादी पहनते हैं?" मैं सोच में पडा। कहा—"शास्त्रीजी के लिए मुझसे पूछ कर आना लाजिमी नहीं था। उनसे खुद महात्माजी ही मिलना चाहते थे। आपको भी यदि महात्माजी बुलावे तो तो जरूर जाने दूंगा।" तब एक सज्जन कहते हैं—"देखिए, मैं तो खादी पहनता हूं; मुझे क्यों नहीं जाने देते?" इस प्रकार तर्क-शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए दिलचस्प दलीलें हुआ करती थीं। एक ने कहा—"आप ही मुझे रोकते हैं। महात्माजी तो इतने दयावान् हैं कि वे सब को मिलने देते हैं। आप ही कौन यहां रोक रखते हैं?" इसका जवाब मुझे देना पडा—"आप सच कहते हैं। मैं भी यदि उतना दयावान् होता तो महात्मा हो जाता और आप मेरे ही दर्शन करके तृप्त हो जाते। पर महात्मा तो गांधीजी ही हैं और मैं तो हूं उनका पहरेवाला।"

यह तो विनोद की बात हुई। अब जरा गंभीरता में प्रवेश करें। अपने छुटकारे के संबंध में बापूजी के क्या मनोभाव थे वह एक दो घटनाओं से ठीक तरह व्यक्त होता है। 'बोरसद के राजा'-इसी नाम से पहले दिन बापूजी ने श्री वल्लभभाई को संबोधित किया था—और 'बोरसद के सरदार' (दरबार श्री गोपालदासभाई) को देख कर बापूजी के हर्ष की सीमा न रही। बापूजी ने यह कह कर अपना आनन्द प्रकाशित किया—"गुजरात अपने तेज को प्रकट कर रहा है। देश ने ऐसी विजय अभी तक नहीं प्राप्त की थी। अब आत्मशुद्धि का जो काम शुरू हुआ है उसे यदि बोरसद पूरा कर डाले तो सारा गुजरात तैयार हो जायगा।" दरबार साहब जब विदा लेने के लिए आये, बापूजी कहते हैं—

"आपने खूब किया! आप दोनों ने (श्रीमती भक्तिबहन—दरबार सा. की धर्मपत्नी को संबोधन कर के) जितना कुछ कर दिखाया है उतना यदि सारा हिन्दुस्तान कर दिखावे तो देश को धारासभा के द्वारा यह मतालबा न करना पडे कि गांधी को छोड़ो मैं अपने आप छूट जाऊं, यरवडा की कुंजी आपके हाथ में आ जाय। "आज यदि मुझे छोड भी दिया जाय तो मन में आनंद नहीं मालूम होता।"

मैंने साफ तौर पर देखा कि उस दिन उन्हें भय था कि छोड देंगे। क्योंकि इसके एक ही दो दिन पहले उन्होंने पूछा था—"क्यों जी वह शार्टहैंड टाइपिस्ट अब कहां है जो पहले मेरे साथ था? कहीं छूट गया तो उसकी जरूरत पडेगी।" इस प्रकार यदि छुटकारा हो तो वे उसके लिए अपनेको तैयार कर रहे थे। पर कितने ही उद्गारों से यह भी मालूम होता था कि वे मानों मन में सोच रहे हों—फिर से जेल में जाना पडे तो अच्छा। ए. रंगास्वामी आयंगर जब मिलने के लिए आये तब उन्होंने छूटने के संबंध में कुछ बातें कीं। उत्तर में बापूजी ने कहा—"मेरे छूट जाने पर भी देश के भावी में क्या फर्क पड सकता है? फर्क अलबत्ते पडेगा मेरे शान्तिपूर्ण अध्ययनक्रम में।" परन्तु अधिक स्पष्ट विचार काकाजी के साथ हुई बातचीत से निकले हैं—"मेरा दृढ निश्चय है कि मैं बाहर रहकर जितनी सेवा कर रहा था उतनी ही—यदि उससे अधिक नहीं तो उतनी ही—सेवा आज मैं जेल में बैठे हुए भी कर रहा हूं।"

इन वचनों से जो शान्ति टपकती है वही उनके सारे अस्पताल के जीवन में देखी गई। उनके कानों पर अनेक तरह की बातें आती

थी—अनेक जगहों की अनेक ढंग की बातें लेता करते थे। कैदी की हैसियत से वे तटस्थ तो थे ही पर साथ ही उत्सुक भी थे। एक दिन पूछने लगे—"नवजीवन की क्या हालत है? और यंग इंडिया की?" इसका जवाब देने के पहले ही "हिन्दी-नवजीवन" का भी हाल पूछा। मैंने कहा—"जब आपकी तबीयत ठीक हो जाय तो मैं आपको सारी बातें सुनाऊंगा। इस हालत में ग्राहक-संख्या आदि की बातें आपको किसलिए सुनाऊं?" बापूजी हंस कर बोले—"क्या आप यह समझते हैं यदि आप कहेंगे कि यं. इं. की पांच ही प्रतियां बिकती हैं तो मुझे बुखार आ जायगा? बिलकुल नहीं। ज्यों ज्यों आराम होता जाता है त्यों त्यों योंही इधर-उधर की बातें पूछ लेता हूं।" यही शान्त अक्षुब्ध भाव उनका हर बात में रहा है। जब जब राजनीति के अलावा किसी बात की चर्चा उनसे की जाती थी तभी तब उन्होंने वही अपनी पूर्व परिचित शान्त समय-सूचकता के साथ उसका निपटारा करके पूछने वाले का समाधान किया है। सिर्फ एक बात का अपवाद उन्होंने रक्खा था। हिन्दू-मुसलमानों के संबंध में अबतक उनके कानों पर इन थोड़े दिनों में इतनी बातें पहुंच चुकी हैं कि जिसकी हद नहीं। कुछ दिनों तक तो वे तटस्थ और शान्त बने रहे। पर फिर एक दिन थोड़े ही साथियों को अपने आस-पास देख कर उन्होंने बात निकाली। सारी बात मैं आज नहीं दूंगा। विषय गंभीर था और बात लंबी थी। उसका सार भी महात्माजी को दिखाये बिना नहीं दे सकता। परन्तु एक दो बातें यहां कह देता हूं—"मैं भले ही कैदी हुआ करूं और मेरे लिए जेल से सन्देश भेजना चाहे कितना ही आपत्तियोग्य हो, तो भी मैं एक सन्देश मुक्त आकाश में हर जगह से भेज सकता हूं और वह यह कि हिन्दू-मुसलमान-प्रश्न का निपटारा अहिंसा के ही द्वारा हो सकता है। इसमें यदि कोई कठिनाई हो तो उसका कारण है— अन्तर्दृष्टि का विवेक न हो सकना और इस बात पर श्रद्धा की कमी होना कि सत्य और अहिंसा की सर्वदा सर्वत्र विजय होती है। आप लोगों में यदि सामर्थ्य हो तो आप पुकार पुकार कर यह बात कह सकते हैं और उसके अनुसार अपना आचरण बना सकते हैं। हिन्दू-धर्म का विशिष्ट तत्व अहिंसा है, आत्मत्याग है, और यदि हम तमाम बातों में एक वर्ष भी इसके अनुसार चल सकें—झगड़े के तमाम मौकों पर हम अपने चरित्र के द्वारा इसका परिचय दें तो अद्भुत फल दिखाई दे सकता है। दक्षिण आफ्रिका में इस सिद्धान्त का सोलहों आने पालन किया गया था। इसीसे वहां मुझे विजय मिली और हिन्दुस्तान में भी हिन्दू-मुसलमान-एकता की जो छोटी सी लहर उठी हुई दिखाई दी वह भी इसीके प्रताप से। मुझे दूसरा कोई रास्ता नहीं दिखाई देता।"

दूसरे मामूली विषयों की चर्चा में तो वे छूटने न छूटने की परवा किये बिना ही जोर-शोर के साथ बातें करते थे। चाहे कुत्तों की जातियों और एक साथी के तौर पर उसकी सेवा के संबंध में—बातें करते हों अथवा पांव दबवाने के विषय में शास्त्रीय चर्चा हो; श्री राजगोपालाचार्य को फलां दवा लेना चाहिए और फलां नहीं, इसकी छानबीन करते हों अथवा फलां साहब को म्युनिसिपल्टी में रहना चाहिए या नहीं इसका निर्णय करते हों; संगीत और कला की बातें चलती हों, अथवा भाई ऐण्ड्रूज के साथ भगवद्गीता और अहिंसा के विषय में विवेचन करते हों—इन तमाम अवसरों पर बापूजी की अद्वितीय समय-सूचकता उनकी सभ्यता उनकी तर्कस्पर्शी युक्तियां, उनका हृदयस्पर्शी आग्रह और उनके अमिय-भरे मज़ाक तो रहते ही हैं। श्री ऐण्ड्रूज विलायत से आये। उनके हृदय में जैसा ही जैसा व्याप्त था। उन्होंने भारत-सरकार के ढंग की बातें कीं। और फिर पूछा—"अब मुझे देहली जाना चाहिए या नहीं?" बापूजी—"क्या होना जाना है? कोई जरूरत नहीं।" बाद अंगरेजी सरकार के संबंध में एण्ड्रूज सा. ने बातें कीं। बापूजी ने कहा—"शायद लिबरल लोगों से भी बुरे साबित हों। उन्हें तो सिर्फ इतनी ही चिन्ता है कि मजदूरों का ही हित-साधन हो जाय, दूसरी तमाम बातों में वे अन्य समस्त दल के साथ मिल-जुल कर ही रहेंगे।" एण्ड्रूज सा. ने कहा—'सच है।' एण्ड्रूज सा. ने इंग्लैंड के लोगों के महात्माजी विषयक विचारों की बातें कीं और कहा कि कैंटरबरी के आर्च बिशप जैसे लोग भी मानते हैं कि आप इसलिए गिरफ्तार किये गये कि आपने अहिंसा को छोड़ कर हिंसा-पथ ग्रहण कर लिया है! मैंने तो आर्च बिशप से कहा कि यदि आप ईसाई धर्म छोड़ दें तो गांधीजी अहिंसा छोड़ें। इसपर बापूजी ने कहा—"तो भी यह नहीं कि गांधी अहिंसा को छोड़ ही देगा, बल्कि तब शायद उसकी संभावना हो।"

एक दिन शाम को बंगाल के सुप्रसिद्ध नाटककार स्व. द्विजेन्द्र लाल राय के पुत्र श्री दिलीपकुमार राय आये। वे हिन्दुस्तान के एक प्रसिद्ध गायक माने जाते हैं। वे सुबह आये थे और शाम को आकर गाने का वादा कर गये थे। रात के कोई आठ बजे होंगे। श्री दिलीपकुमार सितार साथ ले कर आये। कमरे में श्रोताओं की संख्या खासी हो गई थी। महात्माजी के पलंग के सामने पड़े एक सोफा पर बैठकर श्री दिलीपकुमार ने शुरू किया—

> दीन-दयाल गोपाल हरि वृन्दावन मोय बुला तो सही।
> रो रूं चरण पखार पलक टुक प्रेम-प्रवाह बहा तो सही॥
> तोय छोड़ के कौन की आस करूं, तेरे नगर में नित्य निवास करूं,
> दिन-रात यही अरदास करूं—मोय बंसी के घोर सुना तो सही।
> ब्रज-देश में तू मैं बिदेश में हूं, एक जोगी-बिजोगी के भेष में हूं,
> उपदेश में हूं, कलेश में हूं, मोय झांकी विशाल दिखा तो सही।
> विरहावश नयन चुवाय रहे, रो रो के समुद्र बहाय रहे,
> दिन जाय रहे अकुलाय रहे, ऐ नाथ मो प्राण बचा तो सही।
> मैं तो वन-फल खाय के बैठ रहूं, तोसे भूख पियास कछू न कहूं
> तोरे प्रेम के जल में सदाय बहूं मेरे दुःख को आज मिटा तो सही।
> ब्रज की मैं बुहारि दिया ही करूं, तेरी सेवा औ पूजा किया ही करूं
> तोरे धो धो के चरण पिया ही करूं, मेरी नाव को पार लगा तो सही।

इस भजन का भाव, गायक के सुर की मधुर मोहकता और श्रोताओं की भजन के अनुकूल वृत्ति के कारण सारा वायुमण्डल मानों इस प्रेममयी विनति से भर गया था। इसके बाद उन्होंने मीरांबाई का एक भक्ति-पूर्ण भजन गाया। थोड़ी देर तक खूब शान्ति छाई रही। फिर श्री दिलीपकुमार ने बात छेड़ी और जो चर्चा चली उसका अक्षरशः वर्णन खुद उन्होंने किया है—

"महात्माजी, पाठशालाओं और विद्यालयों में संगीत की खूब अवहेलना हो रही है?"

"हां, मेरी तो यह शिकायत ही है।"

"सचमुच? मैं तो अबतक यही मानता था कि आप संगीत के सदृश तमाम 'ललित कलाओं' के खिलाफ होंगे। पर आज आपका यह विचार सुन कर मुझे बड़ी खुशी होती है।"

महात्माजी चौंक कर—मानों उनके साथ भयंकर अन्याय होता हो—एकाएक कह उठे—"मैं! संगीत के खिलाफ? पर हां, मैं जानता हूं कि मेरे विषय में लोग मनगढन्त बातें किया करते हैं। उनकी संख्या इतनी अधिक बढ़ गई है कि उन्हें रोकना असंभव हो गया है, इससे जब मैं कहता हूं कि मैं कला-कोविद हूं तब लोग हंस देते हैं।"

"यह तो अच्छा है । आपने तपस्या को ही प्रधानता दी है, सो मैंने समझा था संगीत को वहां स्थान कहां होगा ?" तब महात्माजी ने आग्रह के साथ कहा—" हां, पर मैं कहता हूं तपस्या जीवन में सब से बडी कला है । संगीत के खिलाफ मैं हो ही कैसे सकता हूं ? मैं तो संगीत के बिना भारत के धार्मिक जीवन के विकास का खयाल ही नहीं कर सकता । मैं संगीत की तरह तमाम कलाओं का प्रेमी हूं । कला के नाम से आजकल अनेक चीजों का परिचय कराया जाता है । मैं उनके खिलाफ जरूर हूं । इस कला के लिए हृदय चाहिए, इसका रहस्य समझने के लिए शिक्षा और ज्ञान की जरूरत नहीं । आप यदि सत्याग्रहाश्रम में आयंगे तो आपको वहां दिवारें ऊंची-नीची सिर्फ और चूना पुती हुई दिखाई देंगी । पर इससे यह नहीं समझिए कि वहां कला नहीं है । क्योंकि दीवार तो सर्दी-गर्मी से रक्षा करने के लिए खडी की गई हैं । मेरे लिए तो जगत्कर्ता के बनाये आकाश-मण्डल में कला का अखूट खजाना भरा पडा है—मेरी आंखें उसे देखते हुए कभी नहीं थकती—हर बार कोई न कोई नई चीज नजर आती है । आप चाहे कितना ही भव्य चित्र चित्रित कीजिए पर वह अगणित तारों से सुशोभित नभोमंडल की भव्यता को नहीं पहुंच सकता । उसका आनन्द ही कुछ और है । ईश्वर की इस श्रेष्ठ कला-कृति के सामने मनुष्य की तुच्छ कला की कौन गिनती ?"

दिलीप बाबू ने कहा—" मैं भी यह नहीं मानता कि कला जीवन से बढ कर है ।"

तब बापूजी आगे कहने लगे । उन्होंने गीता के " योगः कर्मसु कौशलम् " (कर्म में कुशलता ही योग है) इस वचन को बदल कर 'कर्म में कुशलता का ही नाम कला है' इस आशय की बात कही—

"जीवन समस्त कलाओं से श्रेष्ठ है । मैं तो समझता हूं कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है । उत्तम जीवन की भूमिका के बिना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है ? कला के मूल्य का आधार है जीवन को उन्नत बनाना । जीवन ही कला है । कला जीवन की दासी है और उसका काम यही है कि वह जीवन सेवा करे । मैं कला को इस अर्थ में मानता हूं और उसकी कद्र करता हूं । कला विश्व के प्रति जाग्रत होनी चाहिए—कला जीवन के प्रति जाग्रत होनी चाहिए ।"

ऐसे उन्नत संवाद जिस जगह थोडे ही समय पहले हुए थे वह स्थान थोडे ही समय में अपनी पूर्वस्थिति को प्राप्त करेगा और अस्पताल 'जादुई जगह' न रह कर भारत में और संसार में हमें फिर जादू के चमत्कार देखने को मिलेंगे, इसके लिए हमें उस जगन्नियन्ता का कृतज्ञ होना चाहिए ।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

(पृष्ठ २०७ से आगे)

आश्चर्य है ? पर यह समाचार तो सारे अस्पताल में फैल गया । बापूजी के पडौस में चार रोगी रहते हैं । बेचारे अपने दुःखदर्द में भी पडे पडे बापूजी को याद करते रहते थे । आज तक वे कभी बिछौने से उठकर शायद ही बाहर गये हों । भाई एण्ड्र्यूज तो सच्चे सेवक ठहरे । उन्होंने उनसे मित्रता कर ली थी । वे तुरन्त उनके कमरे में जा पहुंचे और उन्हें खुशखबरी सुनाई । "खुदा का शुक्र है" कह कर वे बिछौने से उठे और एण्ड्र्यूज सा. उन्हें बापूजी के कमरे में ले गये । उन्होंने चरणस्पर्श किया और तुरन्त वहां से खिसके । एण्ड्र्यूज सा. ने सोचा कि यदि कहीं दाइयां उनके पलंग को खाली देखेंगी तो उन्हें धमकावेंगी और फौरन् उन्हें उनके मुकाम पर पहुंचा दिया । यह दृश्य देख कर सहृदय एण्ड्र्यूज की आंखों में पानी आ गया ।

सर्जन की चिन्ता

नौ बजे सर्जन सा. फिर आये—जख्म धोने के लिए—और घाव को देख कर एण्ड्र्यूज सा. से कहने लगे—" देखिए साहब, इन्हीं दिनों अधिक सावधानी और परहेज रखने की जरूरत है । अबतक तो हमने रक्खी; पर अब आपको रखनी चाहिए । क्योंकि लोगों की खासी भीड उमडेगी । और गांधीजी की हालत ऐसी नहीं है कि वे बहुतेरे आदमियों से मिल सकें । जबतक घाव पूरी तरह भर नहीं जाता तबतक यहां अखण्ड शान्ति रखने की विशेष रूप से आवश्यकता है । और यदि बेशुमार लोगों का मिलना-जुलना जारी रहा और इन्हें थकावट मालूम होती रही तो अबतक जिस तेजी से आराम हुआ है उसमें कमी पड जायगी । " एण्ड्र्यूज साहब ने उनकी हिदायत के अनुसार बराबर काम करने का निश्चय किया है और गुरुवार को ही पूना चले गये हैं । कहने लगे—" देवदास बेचारे को चिट्ठियों का और तारों का जवाब देने से ही फुरसत नहीं मिलती । वहां पहरा देने के लिए मुझे जल्दी लौट जाना चाहिए । "

इसके बाद बापूजी अस्पताल के दुमंजलेवाले कमरे से नीचे लाये गये और बाहर एक छोटे से खुले बंगले में उन्हें रक्खा है । बंगले का भीतरी हिस्सा खुला है इससे वहां प्रकाश और धूप खूब आती है । बापूजी अब चाहें धूप में बैठ सकते हैं । बरामदे के आसपास लकडी की चहारदीवारी है । यह स्थान शान्त और सुरक्षित समझा जाता है; पर मुझे डर है कि दुमंजले के कमरे से यहां लोगों की भीड और आवाजाही अधिक हो सकती है । हर शख्स यहां से झांक सकता है और हम लोगों की शुष्क कुतूहलवृत्ति इतनी अदम्य हो गई है कि भाई देवदास की उन्हें रोकने-संबंधी कठिनाइयों का अनुमान सहज ही किया जा सकता है ।

एण्ड्र्यूज सा. की विज्ञप्ति

इस विषय में भाई एण्ड्र्यूज ने लोगों से जो प्रार्थना की है । वह उन्हींके शब्दों में यहां दे देता हूं—

" महात्माजी अभी बहुत ही कमजोर हैं । हमें ऐसा कोई काम न करना चाहिए जिससे उनके शीघ्र नैरोग्य-लाभ में बाधा पडे । अगले पखवाडे में मिलनेवाला हर एक शान्तिपूर्ण दिन उनके स्वास्थ्य-लाभ के लिए बेश कीमती होगा । इसलिए मैं तो कहता हूं कि परमात्मा के लिए, उन लोगों को जिन्हें महात्माजी की तन्दुरुस्ती की सच्ची चिन्ता है, डाक्टर की हिदायतों को तामील करने में पूरी पूरी मदद करनी चाहिए । उनकी बडी दया होगी । मैं समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों से भी कहता हूं कि महात्माजी की मुलाकात आपसे न हो सकेगी । आप वहां पहुंच कर उन्हें कष्ट न दीजिए ।"

इसमें मैं अपनी तरफ से अब और क्या कहूं ? सिर्फ इतना ही कहता हूं कि बापूजी को छोड कर सरकार खुद छूट गई है । अब बापूजी की तन्दुरुस्ती कायम रखने की जिम्मेवारी से वह बरी हो गई है और वह भार हमारे सिर पर आ गया है । और यदि उसे हम अच्छी तरह न वहन कर सके तो फिर हमारी शर्मिन्दगी का कोई ठिकाना रहेगा ! जो लोग उनसे मिलना चाहते हैं उनसे मैं प्रार्थना करता हूं कि वे पहले भाई देवदास की मार्फत बापूजी से मिलने की इजाजत ले लें और इजाजत मिल जाने पर पूना जायं । बिना इजाजत लिये जाना एक तरह से भाई देवदास को भी असमंजस में डालना है और बापूजी को तो नाहक संकट में डालना है; क्योंकि दरवाजे खडे लोगों को वे कभी इनकार करते ही नहीं । पर इसी कारण हमें विशेष विवेक से काम लेने की जरूरत है ।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

वचन-भंग

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	,, २)
एक प्रतिका	,, -)॥
विदेशों के लिए	,, ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १] [अंक २७

सम्पादक-हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक-वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, माघ सुदी १२, संवत् १९८०
रविवार, १७ फरवरी, १९२४ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

महात्माजी का स्वास्थ्य

महात्माजी का स्वास्थ्य अभीतक इस लायक नहीं हुआ कि वे शीघ्र ही अस्पताल छोड सकें। बीच में एक दो रोज तक ताप मान कुछ बढा था जिससे घाव के अन्दर मवाद पडने का शक डाक्टरों को हुआ। जांच करने पर मालूम हुआ कि घाव के टांके तोडते समय एक टांका अन्दर रह गया और उसने एक फोडे का रूप धारण कर लिया। अब वह टांका तोड दिया गया। पर इससे घाव के भरने में फिर कुछ समय लगेगा। अभी यह अन्दाज है कि कोई एक महीने तक महात्माजी को सासून अस्पताल में ही रहना होगा। कमजोरी अभी बनी ही हुई है—बिना किसी के सहारे कमरे में चल-फिर नहीं सकते। बंगले के आसपास दर्शकों की भीड कम होने लगी है-इससे शारीरिक आराम अधिक मिलने लगा है। पर मानसिक चिन्ता कैसे कम हो सकती है? पिछले अंक में दिये उनके पैगाम से यह स्पष्ट ही है कि हिन्दू-मुसल्मान नाइत्तफाकी का सवाल इस समय उनके मन को सब से अधिक दुःख दे रहा है। इसी सप्ताह लाला लाजपतरायजी के नाम लिखा उनका एक पत्र प्रकाशित हुआ है—

सासून अस्पताल
८ फरवरी

"प्रिय लालाजी,

मैंने आपको पत्र लिखने का वचन दिया था; पर अबतक मैं उसका पालन न कर सका। मेरा हाथ अभी कमजोर है। मैं पत्र लिखवाना चाहता था; पर जब मैं लिखवाने को तैयार हुआ तब सहायक लोग नजदीक नहीं थे।

मुझे नहीं याद पडता कि मैंने श्री प्रकाशम् को यह कहा कि आप मुझसे पूने आकर मिल जायं। पर हां, मैं जितना जल्दी हो सके आपसे मिल कर हिन्दू-मुसल्मान-एकता, हिन्दू-सिक्ख-एकता, धारा-सभा, अन्त्यज आदि सवालों पर खूब बातें करना चाहता हूं। पर यह तो तभी हो सकता है जब आप बिल्कुल चंगे हो जायं और मेरी तबीयत इस लायक हो जाय कि देर तक बातचीत करने की मिहनत बरदाश्त कर सकूं। यदि आपका स्वास्थ्य ठीक न हो, अथवा रेल के द्वारा इतनी लंबी यात्रा करने से तबीयत खराब हो जाने का अन्देशा हो तो मैं आपको यहां आने का कष्ट कैसे दे सकता हूं? और मैं चाहता हूं कि जब आप आवें तब पूरे ३ दिन की फुरसत से आवें। शायद हमें जुदा जुदा हिस्सों में बातें करनी पडें। मैं तो शायद अगले बुधवार तक बातें करने के लायक हो जाऊं-पर यदि घाव में कुछ और टांके छिप रहे हों या कोई और चीज भर रही तो परमात्मा जाने।

आपका
मो० क० गांधी"

इस पत्र से साफ मालूम होता है कि जहां एक ओर हिन्दू-मुसल्मानों के सवाल की चिन्ता महात्माजी का पीछा नहीं छोड रही है तहां अभी यह खटका भी लगा हुआ है कि कहीं और कोई टांका अन्दर न छिपा हुआ हो। कर्नल मैडाक और डाक्टर फाटक की राय है कि महात्माजी की हालत चिन्ताजनक नहीं है और आमतौर पर वे चंगे हो रहे हैं। परमात्मा करें उनके वचन सच हों।

पाठको, धीरज रखिए!

यद्यपि महात्माजी अभी कमजोर हैं, अपने हाथ से चिट्ठी-पत्री अच्छी तरह नहीं लिख सकते तो भी अपनी जिम्मेवारी के खयाल से वे हरएक बात पर गंभीरता के साथ विचार करने लग गये हैं। हाल ही मौ. अबुलकलाम आजाद उनसे मिल कर आये हैं और उन्होंने कहा है कि और बातों के साथ हिन्दू-मुस्लिम-एकता की उन्हें गहरी चिन्ता है। उन्होंने मौलाना आजाद से कहा है कि सब जातियों की एकता के ही लिए मैं जी रहा हूं-यही नहीं मैं इसके लिए अपने प्राण भी दे दूंगा। इससे पाठक उनकी व्यथित मनोदशा का अनुमान कर सकते हैं। इसके अलावा भाई देवदास एक पत्र में लिखते हैं कि "आगे-पीछे 'यंग इंडिया' 'नवजीवन' का संपादन भार ग्रहण करने का भी उन्होंने निश्चय कर रक्खा है। अब भी वे कुछ लिख कर भेजना चाहते थे। पर कल उन्होंने देखा कि अभी वे किसी किस्म की मिहनत को बरदाश्त नहीं कर सकते। इससे अभी कुछ दिनों तक उन्होंने लिखने का इरादा मुल्तवी कर दिया है।"

तो आइए, हम परमात्मा से प्रार्थना करें कि महात्माजी शीघ्र ही हट्टेकट्टे हो जायं और अपने पत्रों के द्वारा अपना दिव्य सन्देश लोगों तक पहुंचावें। तबतक पाठकों को चाहिए कि धीरज रक्खें और अपनी उत्सुकता को चरखा कातने और हिन्दू-मुस्लिम-एकता के प्रयत्न में लगावें।

गांधी-मास

महात्माजी की रिहाई के पहले ही कार्य-समिति बंबई की बैठक में इस आशय का प्रस्ताव कर चुकी है कि आगामी १८ फरवरी से ले कर १८ मार्च तक एक मास गांधी-मास समझा जाय और उसमें तिलक स्वराज्य-कोष इकट्ठा किया जाय तथा खादी का प्रचार किया जाय। इसके अनुसार अली-भाइयों ने अपने दौरे का कार्यक्रम भी तय कर लिया है जो नीचे दिया जाता है—

"१०-११ फरवरी अजमेर, १२ दिल्ली, १३ और १४ अलीगढ, १५ और १६ फर्रुखाबाद और कायमगंज, १७ दिल्ली (खिलाफत कार्य समिति की बैठक के लिए,) १८ और १९ लखनऊ, २० जौनपुर, २१ गाजीपुर, २३ आजमगढ, २६ और २७ दिल्ली (कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक के लिए)। २८ फरवरी से ६ मार्च तक सिन्ध-प्रांतीय खिलाफत-सम्मेलन में सम्मिलित होंगे और कुछ जिलों में दौरा करेंगे, ८ को जामिया मिल्लिया इसलामिया के उपाधि वितरण के उत्सव में सम्मिलित होंगे, १० को भागलपुर पहुंचेंगे, १५ तक बिहार-प्रांत में दौरा करेंगे, १६ से १८ तक कलकत्ते में रहेंगे, १९ को बर्मा के लिए रवाना होंगे और उस प्रांत में पन्द्रह दिनों तक रहेंगे।"

महात्माजी के छूटने के पहले तक उन्हें छुडाने के लिए गांधी मास में जोर-शोर से काम करने की जितनी आवश्यकता थी, उससे अब उनके रिहा हो जाने पर वह कई गुना बढ गई है। उस अवस्था में हमें केवल महात्माजी को छुडाने की चिन्ता थी; और अब तो हमें महात्माजी को चिन्ता-मुक्त करने की, उनकी रिहाई और नेतृत्व के योग्य अपनेको साबित करने की चिन्ता है। जेल के अन्दर से वे हमारे कामों को देख नहीं सकते थे और न उनका परिणाम उनपर हो सकता था; लेकिन अब वे अपनेको उससे नहीं बचा सकते। ऐसी दशा में हमारा कर्तव्य बहुत बढ जाता है। उचित तो हमें यह है कि इस एक माह के अन्दर इतना काम कर के दिखा दें कि हम महात्माजी के सम्मुख ऊंचा सिर कर के खडे हो सकें। बल्कि मैं तो 'क्रानिकल' के संपादक की तरह यही सब से ज्यादह मुनासिब समझता हूं कि अभी कम से कम छः मास तक हम यही समझ कर कि महात्माजी जेल में ही हैं काम करें। उनके सलाह-मशवरे को ही हमारी रहनुमाई के लिए काफी समझना चाहिए। इस गहरी बीमारी के बाद इतना भी आराम यदि हम उन्हें न दे सके तो निश्चय ही हम स्वराज्य के उपभोग के योग्य अभी नहीं हैं। सो एक के बजाय छः गांधी-मास हमें मनाना चाहिए और उनमें और बातों के साथ हिन्दू-मुसलिम-एकता के लिए भी पूरी कोशिश करनी चाहिए। एक ओर यदि हम अपने दिल को साफ-पाक रखने की कोशिश करें और दूसरी ओर फुरसत का समय गप-शप और झगडों-टण्टों में बिताने की जगह चरखा कातने में लगावें तो गांधी-मास सचमुच सार्थक हो जाय और राष्ट्र बहुत ऊंचा उठ जाय। यदि लडाई-झगडों, मुकदमे-बाजियों और निन्दा-स्तुति के लिए हमें समय मिल सकता है तो हम यह किस मुंह से कह सकते हैं कि चरखे के लिए फुरसत नहीं मिलती?

एकता का उपाय

हिन्दू और मुसल्मानों की एकता का उपाय उतना मुश्किल नहीं है जितना कि समझा जा रहा है। नाइत्तिफाकी का असली कारण है दिल की खराबी। बाजे बजाना, पेड काट डालना, शुद्धि और तब्लीग आन्दोलन, आदि उसी बददिली के जाहिरा रूप हैं। अगर दोनों का दिल साफ हो, दोनों का एक-दूसरे पर ऐतबार हो तो वे झगडे उठ ही नहीं सकते। इसलिए एकता का एक ही उपाय है दिल की सफाई करना। दिल की सफाई तब तक नहीं हो सकती जब तक दो में से एक भी सापेक्ष भाव को छोड कर निरपेक्ष भाव को ग्रहण नहीं करता। यदि दो में से एक भी यह कहने के बजाय कि "देखो, वे ऐसा करते हैं, इसलिए हमें भी ऐसा करना चाहिए" यह न कहने लगेंगे कि "अच्छा वे बदी करते हों तो करने दो, हमें नेकी का रास्ता न छोडना चाहिए" तबतक एकता नहीं हो सकती। अभी हम अपनी नेकियों और दूसरे की बदियों पर ही नजर रखते हैं—नतीजा यह होता है कि हम अधिक नेक नहीं बन पाते—उल्टा दूसरे की बदी को देख कर बद होने की प्रेरणा हृदय में उठा करती है। इसके बजाय हमें चाहिए कि हम खुद अपनी बदियों और दूसरों की नेकियों को देखें जिससे हम अपनी बदी दूर कर सकें और दूसरे की नेकी को देख कर उसके साथ नेकी करने को ही जी चाहे। इससे दोनों के दिल की बदी कम हो कर नेकी बढेगी। और जब दोनों नेकी के रास्ते चलने लगेंगे तो झगडा खडा हो ही नहीं सकता। झगडा तब खडा होता है जब दोनों नेकी का रास्ता छोड देते हैं। यदि एक भी उस रास्ते पर अटल बना रहे तो झगडा होना तो दर किनार, झगडालू उल्टा शरमिन्दा हो कर मकामातुप्र बन जाता है। इसलिए इन ऊपरी ठहरावों के बजाय यदि हम अपने दिल की सफाई की ज्यादह कोशिश करें, अपने दिल के डर, सन्देह, अविश्वास, और बनियापन को हटा कर उसकी जगह प्रेम, विश्वास और आत्म-त्याग के भावों को स्थान दें तो एकता बात की बात में हो सकती है। मुसल्मानों का सवाल यदि मुस्लिम नेताओं के लिए छोड दें और हिन्दुओं की ही बात करें तो कहना होगा कि यदि पं० मालवीयजी और स्वामी श्रद्धानन्दजी, पं० लालाजी, ये तीनों बीमारी के लक्षणों को देख कर इलाज करने के बनिस्बत उसके मूल कारण को देख कर इलाज करें तो यह झगडा दो दिन में तय हो जाय। वे यदि हिन्दुओं को शरीर-बल और संख्या-बल बढाने की अपेक्षा धर्म-बल और आत्म-बल बढाने का उपदेश करें तो न केवल हिन्दुओं का उद्धार हो जाय, न केवल उनके प्रिय महात्माजी ही चिन्ता-मुक्त हो कर शीघ्र आरोग्य-लाभ कर लें, बल्कि इस अभागे राष्ट्र का भी कल्याण शीघ्र हो जाय।

हृदय का परिवर्तन?

महात्माजी की रिहाई से कुछ भले-मानस अन्दाज करते हैं कि हो न हो यह सरकार के हृदय-परिवर्तन का चिह्न है। यदि सचमुच ही बात ऐसी हो तो किसी भी असहयोगी को खुशी हुए बिना न रहेगी। सच पूछिए तो हृदय के पलटे से उन्हें जितनी खुशी होगी उतनी एक तरह स्वराज्य-प्राप्ति से भी नहीं हो सकती। क्योंकि अंगरेजी सरकार के हृदय के पलटे का अर्थ है पूर्व और पश्चिम का मेल। और हृदय-परिवर्तन के बिना मिले स्वराज्य का अर्थ है भारत और ब्रिटेन की कटुता की वृद्धि। असहयोगी कटुता बढाना नहीं चाहते। वे तो प्रेम के-मेल के पुजारी हैं। उन्होंने अहिंसा की प्रतिज्ञा कर के कटुता दूर करने का प्रयत्न किया है। पक्षान्तर में सरकार ने मनमाने दमन और भय-प्रयोग कर के अभी तक अपनी हिंसावृत्ति और पाषाण-हृदयता का ही परिचय दिया है। अब भी उसके कल पुर्जे कहीं १४४ दफा, और कहीं १२४ दफा का प्रयोग कर के पुकार पुकार कर यह बात मानने के लिए मना करते हैं कि सरकार के हृदय का पलटा हो रहा है। एक ओर महात्मा जी की रिहाई की जाती है और दूसरी ओर अल्मोडा में श्री विक्टर मोहन जोशी को ३ साल कडी कैद की, और अरा के 'असहकार' पत्र के संपादक को १॥ साल की सजा ठोंकी जाती है।

श्री मोहन जोशी ईसाई हैं और अल्मोड़े के प्रख्यात त्यागी वीर कार्यकर्ता हैं। बागेश्वर के मेले में १४४ दफा का भंग कर के शान्ति, चरखा, खादी पर व्याख्यान देने का पुरस्कार शान्ति के भूखे और भारत के हित-चिंतक मैजिस्ट्रेट ने उन्हें दिया है। जोशीजी नाम-मात्र के ईसाई नहीं हैं। वे सच्चे ईसाई का हृदय भी रखते हैं जोकि उनके सन्देश की एक एक सतर में और सरकारी अधिकारियों के प्रति उनके प्रत्येक बरताव में टपकता है। चौथी बार हजरत ईसा-मसीह का यह सच्चा अनुयायी, ईसा-मसीह की अनुयायिनी सरकार के स्वार्थ का शिकार हो रहा है। खेद है कि अभी तक सरकार की अक्ल में यह बात नहीं आई कि शांतिपूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करते हुए जेल जानेवाला तो वहां से अधिक तेजस्वी और पराक्रमी बन कर लौटता है और उसे जेल भेजनेवाली सरकार का उससे अधिक तेजोभंग होता है।

असहकार के संपादक और प्रकाशक को 'सरकारनु अपमान' नामक लेख के लिए १२४ दफा के अनुसार सजा दी गई है; पर दिल्लगी यह है कि लेख के असली लेखक पर सरकार ने कुछ भी महरबानी नहीं की। पाठकों को याद ही होगा कि 'नवजीवन' के मुकदमे में सरकार ने सिर्फ लेखक काका कालेलकर को सजा दी थी और प्रकाशक श्री रामदास भाई को छोड़ दिया था। ऐसी मिसालें पेश कर कर के सरकार भारत को यह बात भूलने नहीं देना चाहती कि यहां कानून का राज्य नहीं, बल्कि हाकिमों की लहर का राज्य है।

ह० उ०

एक ईसाई का सन्देश

"सरकार ने ३ साल की सख्त कैद से मुझ जैसे स्वल्प विनम्र कार्यकर्ता को सम्मान देना उचित समझा है। मैं सरकार के इस सम्मान से अति आनन्दित हूं—केवल इस हेतु कि एक ईसाई की हैसियत से मैं वाक्स्वातन्त्र्य, सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए रणक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ था और मैंने अपने देश भाइयों के समक्ष यह घोषणा की थी कि ईसाई-मत आजकल की पाश्चात्य भौतिक सभ्यता से बिलकुल ही भिन्न है और भारतवर्ष ही मेरे प्रभु नासरत के ईसामसीह के सिद्धान्तों का संरक्षक है। महात्मा गांधी जैसे नेता का बन्धन 'शान्ति के सम्राट्' के अनुयायियों के लिए असहनीय होना चाहिए, और संसार भर के सच्चे ईसाइयों को भारत की इस विकट गम्भीर स्थिति से चैतन्य व अधीर हो जाना चाहिए। भारत के ईसाइयों का कर्तव्य है कि महात्माजी के पवित्र युद्ध को हाथ में लें और सत्याग्रह की पताका के नीचे एकत्र हो जायं। मैं वास्तव में दुखी हूं कि सरकार महात्माजी और सहस्रों भारत-सन्तानों की कठिन तपस्या से भी नहीं हिल रही है; वह प्राचीन समय के फिरऔन की तरह विचार-रहित अपने अन्याय-काण्ड में बराबर आगे बढ़ती जा रही है। हमारा कर्तव्य शुद्ध है। महात्माजी ने हमको कष्ट-सहन का एक ऐसा तरीका बतलाया है जो अन्याय व अत्याचार को दूर कर सकता है। मेरी अन्तिम प्रार्थना अपने स्वदेश-भाइयों से यह है कि महात्माजी के कार्य को हाथ में लो और धैर्य व तत्परता के साथ कार्य करते जाओ, जब तक अन्तिम सिद्धि प्राप्त न हो। वन्दे मातरम्।

आपका सहचर,
मोहन जोशी"

महात्माजी के नाम आचार्य राय का पत्र

आचार्य राय ने यह सुन्दर पत्र महात्माजी को लिखा है—

"प्रिय महात्माजी,

मैं जान बूझ कर ही सासून अस्पताल की तीर्थयात्रा करने के लिए नहीं गया और आपको पत्र भी मैंने नहीं लिखा। मेरा विचार था कि बीमारी की दशा में आपको किसी तरह तंग न करूं। किन्तु आपका कृपापूर्ण तार पा कर मुझे अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ती है।

मैं मानता हूं कि आपकी रिहाई पर बंगाल में जो खुशियां मनाई गईं और जो उत्साह फैला उसे मैं मिश्रित भाव से देख रहा था। यदि हम लोगों में उत्तेजना और उत्साह न हो तो हम क्या रहे? यह उत्तेजना शीघ्र ही नष्ट हो जायगी और उसका चिन्ह भी बाकी न रहेगा। सहस्रों मनुष्य सार्वजनिक सभाओं में गांधी-उत्सव देखने के लिए आते हैं किन्तु कदाचित् उनमें सैकड़े एक व्यक्ति ही खादी पहनता है। कोकनाडा में मैंने देखा था कि साधारण लोग दूर दूर से गांधी नगर में आये हुए थे जिनमें ६० प्रतिशत व्यक्ति खद्दर धारण किये हुए थे। इस समय का दृश्य कितना विरोधी है! अस्पृश्यता दूर करने की ओर भी कोई प्रयत्न होता हुआ नजर नहीं आता। प्रत्येक व्यक्ति स्वराज्य के लिए शाही सड़क से ही जाना चाहता है और कठिन तथा कण्टकाकीर्ण मार्ग सब ही बचाना चाहते हैं। कांग्रेस-कार्यकर्ताओं के लिए कौन्सिलों में जाने के सम्बन्ध में विचार प्रकट करना मेरा काम नहीं है; किन्तु मैं इतना तो कह ही देना चाहता हूं कि इस कार्य में जितनी शक्ति लगाई गई है यदि उसका एक हिस्सा भी आपके बतलाये हुए रचनात्मक कार्यक्रम के लिए लगाई जाती तो अबतक स्वराज्य का रास्ता बहुत कुछ तय हो चुका होता।

कदाचित् आपको स्मरण होगा कि जब बम्बई में मालवीय सम्मेलन हो रहा था तब मुझे आपके साथ लगातार २ दिनों तक बैठने का सुअवसर और सौभाग्य प्राप्त हुआ था। और मैंने बंगाली भाइयों में खद्दर का सन्देश पहुंचाने तथा उसकी उत्पत्ति के लिए व्यावहारिक प्रयत्न करने की प्रतिज्ञा की थी। थोड़े से योग्य कार्यकर्ताओं की सहायता से मैं कुछ कर सका हूं किन्तु कार्य बहुत बड़ा है और उसकी सफलता के लिए अत्यन्त धैर्य और अलौकिक प्रयत्न की आवश्यकता है। फिर भी मैं जितना ही अधिक इस ओर काम करता हूं उतना ही मेरा इस बात पर विश्वास दृढ़ होता जाता है कि चरखे से ही भारत का आर्थिक उद्धार होगा। 'खद्दर के सन्देश' पर मैंने कोकनाडा में जो भाषण किया था उसमें मैंने यह बात स्पष्ट करने की चेष्टा की थी। मुझे यह देख कर प्रसन्नता होती है कि आपने मौलाना साहब को जो पत्र लिखा है उसमें इस बात पर विशेष जोर दिया है कि भारत की बढ़ती हुई दरिद्रता के लिए चरखा ही एकमात्र उपाय है।

अब आपके आराम में अधिक बाधा डालना उचित न समझकर मैं यहां पर यह पत्र समाप्त करता हूं। कदाचित् यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि मैं आपके दर्शन के लिए बहुत लालायित हूं लेकिन अभी आपके दर्शन करने के सुख से मुझे वंचित ही रहना चाहिए।

ईश्वर करे, आप शीघ्र ही पूर्ण आरोग्य हो जायं जिससे एक बार पुनः हमारे राष्ट्रीय उद्धार का मार्ग दिखावें।"

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, माघ सुदी १२, सं. १९८०

वचन-भंग

दक्षिण-आफ्रिका में इन दिनों एशियावासियों के खिलाफ हलचल हो रही है। वहाँ की यूनियन पार्लियामेन्ट में 'क्लास एरिया बिल' भी विचार के लिए दरपेश है। उसपर अपनी राय प्रकट करना मेरा कर्त्तव्य है; क्योंकि इनसे उत्पन्न परिस्थिति के ज्ञान की आशा लोग मुझसे रख सकते हैं।

दक्षिण-आफ्रिका के योरपियनों का एशियावासियों के खिलाफ आन्दोलन करना कोई नई बात नहीं है। यह आन्दोलन प्रायः उतना ही पुराना है जितना कि दक्षिण-आफ्रिका के बिला-शर्तबन्द हिन्दुस्तानियों का पहला निपटारा है। इसका मुख्य कारण है फुटकर चीजों के गोरे व्यापारियों का डाह। दुनिया के दूसरे हिस्सों की तरह दक्षिण आफ्रिका में भी स्वार्थ-प्रिय लोग, काफी कोशिश करने पर, बिना कठिनाई के उन लोगों की सहायता प्राप्त कर लेते हैं जो उनकी तरह स्वार्थमय तो नहीं होते पर जो अपनी बुद्धि से विचार नहीं करते। मौजूदा आन्दोलन, मुझे याद होता है, ठेठ १९२१ में शुरू हुआ था और यह क्लास एरिया बिल निस्सन्देह उसी आन्दोलन का एक फल है।

इस बिल की खासियत और असर पर कुछ लिखने के पहले यह दिखाना जरूरी है कि यह १९१४ में किये गये उस समझौते के खिलाफ है जो दक्षिण आफ्रिका की यूनियन सरकार और हिन्दुस्तानी लोगों के बीच हुआ था। इस समझौते में भारत सरकार और साम्राज्य-सरकार का भी उतना ही हिस्सा है जितना कि यूनियन सरकार और हिन्दुस्तानी लोगों का है। क्योंकि यह समझौता हिन्दुस्तान सरकार और साम्राज्य-सरकार को मालूम करके उनकी रजामन्दी से किया गया था। भारत-सरकार ने तो बा-कायदा सर बेंजामिन राबर्टसन को अपना प्रतिनिधि बना कर भेजा था कि कमीशन के काम-काज पर नजर रक्खें। इस कमीशन को यूनियन सरकार ने कहने को तो हिन्दुस्तानियों की स्थिति की जांच करने के लिए पर वास्तव में निपटारा करने के उद्देश से नियुक्त किया था। समझौते की मुख्य शर्तें सर बेंजामिन राबर्टसन के जो हिन्दुस्तान सरकार के प्रतिनिधि बन कर आये थे, हिन्दुस्तान लौटने के पहले ही तय हो गई थीं। उस समझौते के अनुसार यूनियन सरकार आगे एशियावासियों के खिलाफ कोई कानून नहीं पास कर सकती। उस समय यह बात तय पाई थी कि हिन्दुस्तानियों की कानूनी हालत धीरे धीरे सुधारी जायगी और एशिया-वासियों के खिलाफ जो कानून उस समय विद्यमान थे वे भविष्य में उठा लिये जायंगे। पर बात इसके ठीक उल्टा हुई। सर्व-साधारण को याद रहे कि इस समझौते की आत्मा को तोड़ने की पहली कोशिश उस समय की गई जब कि ट्रान्सवाल में मौजूदा कानून के अमलदरामद की कोशिश की गई, जो कि हिन्दुस्तानियों के हित के खिलाफ था और जो समझौते के समय के रवाज के प्रतिकूल था। और यह क्लास एरिया बिल तो हिन्दुस्तानियों की आजादी को और भी बहुत कम कर देता है।

इस समझौते के दूसरे तात्पर्य और भी हों, पर इस बात में कोई विवाद नहीं है कि १९१४ के निपटारे के अनुसार यूनियन सरकार इस बात के लिए वचन-बद्ध है कि अब आगे हिन्दुस्तानियों की आजादी कम न की जाय। दक्षिण आफ्रिका के गवर्नर के नाम भेजे हिदायत-नामे के अनुसार श्रीमान् सम्राट् को खास तौर पर अधिकार है कि वे गवर्नर जनरल को किसी बात की आज्ञा न दें। पर इसके अतिरिक्त भी साम्राज्य-सरकार का, यदि उसे अपने सौंपे काम का निर्वाह सचाई के साथ करना हो, यह फर्ज है कि हर हालत में वह पूर्वोक्त समझौते की शर्तों का पालन करने पर जोर दे। इस फर्ज से उसका छुटकारा नहीं हो सकता। हम, हिन्दुस्तान में रहनेवालों को, यूनियन सरकार की कठिनाइयों को आंखों की ओट न करना चाहिए, क्योंकि वह तो दक्षिण के योरपियनों की इच्छा पर अपनी हस्ती रखती है। और उनकी इच्छा का अर्थ है उनके चुने हुए प्रतिनिधियों की राय, जिसमें न तो हिन्दुस्तानी और न वहां के मूलनिवासियों की चलती है। दूसरे तमाम लोगों को इससे वंचित रखना यह दोष दक्षिण आफ्रिका के शासन-संगठन में है—नहीं उन अधिकांश स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों के शासन-संगठन में भी यही दोष है, जिनमें हिन्दुस्तानी या वहां के मूल निवासी बसते हैं। साम्राज्य-सरकार ने इस दोष को रहने दिया है तो वह इस बात के लिए बाध्य है कि उससे जो बुरे नतीजे पैदा हों उन्हें रोके। दक्षिण आफ्रिका और केनिया के सवाल इस बात को अच्छी तरह दिखा देंगे कि साम्राज्य-तन्त्र की नैतिक कीमत कितनी है। लोकमत के दबाव से संभव है, दोनों जगहों का कष्ट कुछ दिनों के लिए दूर हो जाय पर आखिर वह है चन्द ही रोज। जबतक इंग्लैंड या हिन्दुस्तान में कोई अकल्पित आमूल परिवर्तन नहीं हो तबतक इस शोकान्तक दृश्य का आखिरी अंक आगे ही बढ़ता चला जायगा।

अब खुद बिल के संबंध में सुनिए। नेटाल म्युनिस्पल मताधिकार बिल सिर्फ नेटाल पर ही लगाया जानेवाला था और खुशी की बात है कि उसे यूनियन गवर्नर जनरल ने अपने विशेष अधिकार का प्रयोग कर के नामंजूर कर दिया है। लेकिन यह क्लास एरिया बिल तो तमाम यूनियन प्रान्तों पर लगाया जानेवाला है। यह सरकार के लिए इस बात की गुंजाइश कर देता है कि वह वहां बसे तमाम हिन्दुस्तानियों और दूसरे एशियावासियों को अलग बसावे और अलग तिजारत करने दे। इस तरह यह ठेठ १८८५ में ट्रान्सवाल सरकार के तजवीज किये आबादी के तरीके का सिलसिला एक दूसरे रूप में बढ़ाया जा रहा है। अब मैं चन्द अल्फाज में यह बताता हूं कि इस अलगाव के मानी क्या हो सकते हैं? प्रिटोरिया में, जहां कि १८८५ के कानून के रहते हुए भी अभीतक कोई हिन्दुस्तानी वहां से हटने पर मजबूर नहीं किया गया है, हिन्दुस्तानियों की आबादी कस्बे से बहुत दूर है और अंगरेज, डच या नीग्रो कोई खरीदार वहां तक जाकर उन्हें हरा नहीं सकता। ऐसी आबादियों में कहां का तहीं व्यापार हो सकता है। ऐसी हालत में अलगाव-नीति के पूरे अमल का अर्थ है बिना ही मावजे के उनको अपने देश चले जाने पर मजबूर करना। हां, यह सच है कि बिल में कुछ मौजूदा हकों की रक्षा की हुई दिखाई देती है। पर हिन्दुस्तानी लोगों के लिए इस गुंजायश की कुछ कीमत नहीं है। अमल के वक्त ये गुंजायशें महज बेकार हैं। इस बात के कितने ही उदाहरण मैं अपने दक्षिण आफ्रिका के तजरिबों से दे सकता हूं। लेकिन मैं इस लेख को बढ़ाना नहीं चाहता।

अन्त में यह बात याद रखनी चाहिए कि जब हिन्दुस्तान से दक्षिण-आफ्रिका जाने की कोई कैद नहीं थी, योरपियनों ने यह डर प्रकट किया था कि लाखों हिन्दुस्तानी आ आ कर दक्षिण-आफ्रिका को उथल देंगे। उस समय दक्षिण आफ्रिका के तमाम राजकाजी लोग कहा करते थे कि कुछ हिन्दुस्तानी लोगों को तो दक्षिण आफ्रिका आसानी से हजम कर सकेगा और उनके साथ बरताव भी उदारता

पूर्वक किया जा सकेगा लेकिन योरपियन लोग तबतक दम नहीं ले सकते जबतक दक्षिण आफ्रिका को उथल देने की संभावना बनी हुई है। पर अब जब कि १८९७ से यह उथल देने की संभावना दूर हो गई है उन्हें अलग हटा देने की पुकार मचाई जाती है और यदि वह पूरी हो गई तो अगला कदम होगा उनके लिए अपने देशको जाना अनिवार्य कर देना। यदि अलग हटाये गये हिन्दुस्तानी अपनी खुशी से नहीं चले जायंगे तो बात यह होगी कि दक्षिण आफ्रिका के योरपियन-निवासी साम्राज्य के ट्रस्टियों को जितना ही अधिक मुलायम पावेंगे उतना ही अधिक वे एशिया के खिलाफ अपनी मांगों की आवाज ऊंची उठावेंगे।

(अंगरेजी से अनुवादित) मोहनदास करमचंद गांधी

भारत का सच्चा राजा

इंग्लैंड से वापस लौटने पर जब मैंने सासून अस्पताल पूना में महात्मा गांधी के क्षीण शरीर को देखा तो मुझे बड़ा क्षोभ हुआ। लेकिन जो लोग उनकी बीमारी के दरम्यान उनके साथ रहे हैं उन्होंने तो कहा कि यदि आप इनकी हालत कुछ रोज पहले देखते तो आपके क्षोभ की सीमा न रहती। सुनते ही मैंने मन में कहा रवीन्द्रनाथ टागोर का यह कथन बिल्कुल सच है कि "महात्माजी के जेल में रहने का एक एक दिन इस देश के शासकों के सर्वनाश का दिन है।" तबतक उनकी रिहाई का हुक्म नहीं पहुंचा था और बड़े लाट सा. के भाषण में भी उसका कोई इशारा नहीं था। बड़े दिनों का, शान्ति और सद्भाव के दिनों का, इस प्रकार सरल और स्वाभाविक शान्ति और सद्भाव पूर्ण काम के किये बिना ही गुजर जाना मेरी कल्पना के बाहर था।

पर आखिर यह लेख लिखते समय, यह खबर आ गई थी। महात्माजी के छुटकारे की आज्ञा प्रकाशित हो गई है। यद्यपि इस विलम्ब के कारण उसकी कीमत कुछ कम हो गई है तथापि यदि इसके द्वारा राज्य-कर्ताओं के हृदय-परिवर्तन की सूचना मिलती हो तो यह हमारे लिए अभिनन्दनीय है। पर इसका निर्णय तो भावी पर अवलंबित है।

अस्पताल में जो लोग महात्माजी के पास रहते हैं उन्होंने मुझसे महात्माजी के प्रति दिखाये गये प्रेमभाव की बहुतसी बातें कही हैं। सिविल सर्जन की हिम्मत, चतुराई और भलमन्सी, दाइयों की प्रेममय सेवा-शुश्रूषा और सरकार की ओर से किसी भी रोक-टोक का अभाव—यह सब परिवर्तन अगले सख्ती के दिनों को देखते हुए, कुछ और ही भाव व्यक्त कर रहा था। आखिरी रिहाई-हुक्म का रास्ता इन सब के बदौलत तैयार हो गया था।

महात्मा गांधी को यह दृढ़ विश्वास है कि हरएक शख्स के अन्दर एक उच्च तत्व रहता है, और उसे हम प्रेम के बल पर जीत सकते हैं। इसीसे उन्होंने यह असहयोग-आन्दोलन कटुता से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि प्रेम-भाव से शुरू किया। इसी कारण उन्होंने अपनेको सजा देनेवाले न्यायाधीश को संबोधित करके शुद्ध अन्तःकरण से सच्चे प्रेमपूर्ण वचन उच्चारण किये थे। इसी कारण अपना यथार्थ उद्देश राज्यकर्ताओं को समझाने के लिए उन्होंने बार बार 'यंग इंडिया' में लेख लिखे कि जिससे गलतफहमी होने का जरा भी अन्देशा न रहे। इतना होते हुए भी मैंने इंग्लैंड में इनके विषय में जबरदस्त गलतफहमी फैली हुई देखी। यह देख कर मेरे शोक की सीमा न रही।

यदि कोई यह पूछे कि हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सरकार पर महात्माजी ने क्या इलजाम लगाया है तो मैं उसे एक ही वाक्य में यह देता हूं। उनका इलजाम है कि सरकार ने गरीब प्रजा को सताया है। अपने मुकदमे के समय जो लिखित बयान उन्होंने पेश किया उसमें ब्रिटिश सरकार पर उन्होंने यही इलजाम लगाया है कि उसने गरीबों को सताया है। महात्माजी ने उड़ीसा तथा दूसरे मुकामों पर सिर्फ हड्डी-चमड़ी वाले आदमियों को देखा। वह चित्र उनके हृदय में भर रहा था। उसे न दिन को भूल सकते थे न रात को। यदि ब्रिटिश राज्यकर्ता उनके साथ शराब, अफीम, आदि नशीली चीजों का नाश करने के आन्दोलन में तथा खादी को उत्तेजना दे कर देहात के औद्योगिक जीवन को बनाने में साथ देते तो उन्होंने फिर एक बार सहयोग करने तक की तत्परता दिखाई थी। परन्तु यह सेवा-रूप इतना मामूली काम करना भी वर्तमान शासकों के दृष्टि-पथ के बाहर था। वे या तो अपनी ही मनमानी करेंगे—या कुछ भी न करेंगे। वे तो शाही देहली की शोभा बढ़ाने और उसे सजाने की ही धुन में मस्त थे। उन्होंने इस बात की परवा तक न की कि इसके खर्च का भार बेचारे निरीह गरीबों के सिर अधिक कर के रूप में पड़ेगा। खजाने का दिवाला निकलने तक वे पानी की तरह पैसा बहाते रहे। फिर जब बजट में रकम कम हुई तब नमक कर दूना कर दिया। पुरानी देहली के खंडहरों पर नई देहली खड़ी करने के लिए जो करोड़ों रुपये खर्च हुए उन्हें सरकार न बचा सकी—अन्त को अध-पेट रहने वाले लाखों लोगों के जीवन के लिए मुख्य आवश्यक वस्तु—नमक-पर बेचारों को कर लगाना ही पड़ा!

हिन्दुस्तान बरसों से पिस रहा है। इससे उसके मन पर एक तरह की कमजोरी ने कब्जा कर लिया है। और यही कमजोरी नई देहली की सजधज और रौनक को देखने की तुच्छ तृष्णा का पोषण करती है। महात्मा गांधी ने इसे 'गुलाम की मनोदशा' कहा है। जब जब बड़े लाट और लाट साहब दरबारी लिबास में घुड़दौड़ देखने के लिए जाते हैं लोगों की भारी भीड़ उन्हें देखने की राह देखती हुई बैठी रहती है। यह भी उनकी इसी मनोदशा का सूचक है। देश के द्रव्य को चूसने वाले दिखाविये दरबार, शाही मुलाकात, शाही तमाशे, ब्रिटिश साम्राज्य की नुमाइशें ये सब सामान्य जन-समूह की बढ़ती हुई उदासीनता को मिटाने के लिए उत्पन्न किये गये मोह-साधन हैं। और आज अच्छी तरह उनसे लाभ उठाया जा रहा है। परन्तु इन मिथ्या बातों से भारत का आध्यात्मिक मन मोहित नहीं किया जा सकता। उलटा यह तो पूने के उस थके-मांदे रोगी को जो निर्भयता से मृत्यु के मुख को निहारता रहा था मौन प्रणाम कर रहा है, क्योंकि यहां इस अस्पताल में भारत के राजा महात्मा गांधी बैठे हुए हैं, जिनकी दुहाई तमाम शाही हुकमत से भी अधिक चलती है। नई देहली के महलों में रहने वाले वर्तमान गवर्नरों के नाम भूल जाने के बाद भी बहुत काल तक देहात के लोग उसके नाम का गान किया करेंगे। कुतुबमीनार और तुगलकाबाद के आसपास वाले स्थानों की तरह रायसिना के तमाम मकानों के खंडहर हो जाने के बाद भी महात्मा गांधी का नाम, भारत के एक सब से महान् साधु और तारनहार के रूप में, मातायें अपने नन्हें बच्चों को गा गा कर सुनाया करेंगी।

क्योंकि महात्मा गांधी ने शाश्वत तत्वों से एक आध्यात्मिक महालय की रचना की है। उसकी नींव परमात्मा के राज्य में बहुत गहरी और ठीक ठीक डली है। गरीबों पर किये गये जुल्म के द्वारा यह नहीं बना है। बल्कि प्रेम, भक्ति और रंक की सेवा—इसकी सुनहली सजावट है। इसके अन्दर सैनिक रौब और आतंक नहीं बल्कि मानवी हृदय की शान्त एकदिली छा रही है। इसमें जाति-भेद अथवा वर्णभेद को स्थान नहीं है। इसके मौन में धार्मिक चर्चाओं के झगड़ों का वि प नहीं। इसका साम्राज्य है हृदय।

जिस भव्य दृश्य को राह में इतने लंबे समय तक अपनी समुद्र यात्रा में देख रहा था, आखिर एक बार उसके दर्शन मुझे हुए-इसलिए अस्पताल के इस कमरे से रोगी के पास से हटना सचमुच कठिन हो गया है। मैं पूना के अस्पताल में इसी इरादे से आया था कि यहां आकर फिर देहली जाऊंगा। पर मेरी अन्तरात्मा ने बगावत शुरू कर दी और अब मुझे देहली जाने का विचार तक करना असंभव मालूम होता है। क्योंकि यहां जो दृश्य मैंने देखा है उसे देखने के बाद देहली जाकर कुछ राजनैतिक काम करने के मेरे तमाम इरादे हवा हो गये। यदि मैं इस अस्पताल में न आया होता तो शायद देहली जा पाता। पर यहां आकर वहां जाना प्रायः धर्मद्रोह ही है। मैं साबरमती-आश्रम जा सकता हूं; शान्तिनिकेतन जा सकता हूं; पर देहली की राजनैतिक झंझट में नहीं पड़ सकता। परमात्मा ने जो दृश्य यहां दिखलाया है उसीको मैं निर्मल बनाये रक्खूंगा। क्योंकि ऐसी भेंट मिलने पर उसी को हृदय में रखने के बराबर अनमोल बात जीवन में दूसरी कुछ नहीं हो सकती।

सी. एफ. एण्डूयूज

जबर का स्वराज्य

जबर आगरे के नजदीक एक गांव का रहनेवाला है। आज से कोई ४ बरस पहले की बात है! जाड़े की मौसिम में एक दिन शाम को वह सत्याग्रहाश्रम की गो-शाला के नजदीक खड़ा था। मायूस मालूम होता था। बदन पर फटे-टूटे चिथड़े के सिवा कुछ न था। भूख और दुःख से दुखी मालूम होता था। उसने हर-किसी काम को करके गुजर करने की इच्छा दिखाई! यहां इस बात का सुभीता नहीं है कि ऐसे हर शख्स को काम दिया जा सके। परन्तु जबर की दरख्वास्त में और उसके चहरे पर एक तरह का सौजन्य झलक रहा था। शाम हो रही थी। उसे भूखा और ठंढ में ठिठुरते हुए जाने देना मुमकिन नहीं था। रात उसने यहां काटी। सुबह बातचीत करके उसे गो-शाला साफ रखने का काम दिया। जबर ने इस काम में अपनी भलमंसी का परिचय दिया। उसके राज्य में गो-शाला आईने की तरह साफ-सुथरी रहती। वह खुद भी साफ-सुथरा रहता था। कभी नहीं देखा गया कि जबर ने काम में कभी १ मिनिट की भी चोरी की हो। फिर सारे आश्रम की सफाई का काम उसे सौंपा गया। भंगी को तो कभी से छुट्टी दे दी गई थी। इससे रास्ते की सफाई किसी न किसी आश्रम-वासी को करनी पड़ती थी। पैखाना कोई कोई पुराना आश्रमवासी साफ करता था। जबर रास्तों की सफाई इस तरह करता मानों आने-जाने वाले लोगों के स्वागत की तैयारी कर रहा हो। विद्यार्थी लोग जब पैखाना साफ करते तब वह हमदर्दी के साथ उन्हें देखा करता। कभी कभी खुद भी उसमें मदद करने लगा। एकबार आश्रम में लोग कम रह गये और पैखाने का भी काम जबर के सिर पड़ा। कितने ही समय तक वह अच्छी तरह पैखाने साफ करता रहा। वह अपने शरीर को हमेशा साफ रखता था। साथ ही उसका आचार भी पवित्र था। इससे बीच बीच में पीने का पानी भी उससे मंगवाया जाता। अपने शुद्ध आचरण के कारण आश्रम के सब लोग उसे चाहते थे। जो लोग उसके समागम में आते थे उनके दिल में आया कि जबर के जीवन को और भी उन्नत बनाया जाय। जबर की सौम्यता और उसकी सचाई ने सब का मन जीत लिया। वह बिलकुल निरक्षर था। एक हिन्दी-भाषी ब्रह्मचारी उसे पढ़ाने लगे। अधेड़ जबर ने पढ़ने में भी उतना ही उत्साह दिखाया। धीमे धीमे परन्तु दृढ़ता के साथ उसने पढ़ना जारी रक्खा। कभी कभी उसका पाठ लेना बन्द रहता; पर यों पढ़ना-लिखना बराबर जारी रहता था। जब उसने अपने आसपास लोगों को चरखा कातते और धुनकते हुए देखा तो वह उसमें भी दिल-चस्पी लेने लगा एक चरखा ले लिया और फुरसत के वक्त उसे कातने भी लगा। थोड़े ही समय में बढ़िया सूत कातने लगा। ६ से १५ तक जुदा जुदा अंक निकालने का उसे खासा महावरा हो गया। उसकी चतुराई पर काम लेनेवाले हमेशा फिदा रहते। रुपये-पैसे का भरोसा करना तो कुछ आसान है पर समय का विश्वास करना कठिन है। इस जमाने में एक मिनिट भी फजूल न खोने का विश्वास बहुत कम लोग पैदा करा सकते हैं। यह बहुत ऊंचे दरजे की ईमानदारी है। जबर ने सब लोगों के दिल में अपने लिए यह विश्वास पैदा किया। उसके काम में किसीको निगरानी करने की जरूरत नहीं रहती थी।

जब सूत कातने में जबर कुशल हो गया तब उसे धुनकना सीखने की उमंग हुई। यह काम उसने शौक के साथ किया। काम चाहे कम हुआ हो पर सफाई में उसका मुकाबला नहीं होता था। जबर के हाथ से दूसरे काम छूटने लगे और वह धुनाई और कताई में लग गया। शुरू में उसे सिर्फ खाना-कपड़ा मिलता था। बढ़ते बढ़ते वह २०) मासिक वेतन पाने लगा।

कोई तीन बरस तक यह सिलसिला चला। फिर जबर का जमाना पलटा। बही-खाते में उसके नाम छोटी-सी पूंजी जमा हो चुकी थी। विद्या और हुनर का उसे शौक लगा। वेतन लेना उसने बन्द किया और अपनी जमा-पूंजी पर गुजर करके अधिक पढ़ने और बुनाई सीखने का समय चाहा। समय मिला। दो घण्टे रोज उसकी पढ़ाई होती है—पढ़ना-लिखना और हिसाब वह अब भी सीख रहा है। चौथी हिन्दी पाठमाला पढ़ता है। अब अपने आप रामायण पढ़ कर समझ लेता है। पढ़ने के अलावा वह बुनाई सीखने में भी अपना समय देने लगा। बुनाई उसने कोई तीन महीने में ठीक तरह सीख ली। अब वह कपड़ा बुनने लगा—जुलाहा हो गया। फिर उसका वेतन शुरू हुआ। परन्तु जितना समय पढ़ाई में लगाता है उतना वेतन कम लेता है।

यह तो हुआ जबर का परिचय, उसके संबंध में खास बात अब शुरू होगी।

जबर को कपास लोढ़ने से ले कर कपड़ा बुनने की तमाम क्रियायें अब अच्छी तरह मालूम हो गई हैं। उसे उमंग हुई कि मैं अपने फुरसत के वक्त में अपने लिए क्यों न सूत कातूं और कपड़ा बुन लूं? इसका प्रयोग करने के लिए उसे ३ सेर रुई दी गई है। इस बात को कोई तीन महीने हुए। शुक्रवार को आधे दिन की छुट्टी में वह रुई धुनक लेता है और ब्यालू के बाद रोज शाम के उजाले में या रात को दिया जला कर घण्टा-डेढ़ घण्टा सूत कातता है। ढाई महीने के अन्दर उसने उस तमाम रुई का कोई छः अंक का सूत कात डाला। उतनी रुई उसने चार या पांच शुक्रवार अर्थात् आधी छुट्टी के दिनों में धुनक डाली।

अब उसने २१ गज की तानी बना कर करघे पर चढ़ाई है। शाम को पांच बजे जब अपने काम से छुट्टी मिलती है तब वह अपने ही हाथ से बानी के कोकड़े भर कर ३० इंच अर्ज का कोई आध पौन गज कपड़ा बुनता है। अपने सूत की आंटियां उसने इस सफाई से लपेटी थी कि तानी का ३ पौंड सूत खोलने में उसे २ से ३ घण्टा समय लगा होगा। ऊंची पढ़ाई पढ़ने वाले विद्यार्थियों का सूत आश्रम में कपड़ा बुनाने के लिए आया है। उसे खोलने में जिसे पांच-सात गुने ज्यादह समय लगने का तजरिबा हुआ हो उसे जबर के अंकों को देख कर उसके काम और नियम के विषय में आदर उत्पन्न हुए बिना कैसे रह सकता है?

पन्द्रह बीस दिन में जबर अपना कपड़ा बुन लेगा। कोई १९ गज का थान तैयार होगा। उसमें से वह साढे तीन तीन गज सुटने तक की दो धोतियां बनावेगा। तीन तीन गज के दो कुड़ते होंगे। डेढ पौने दो दो गज की दो मिमास्तीनें होंगी। और एक-दो गज कपड़ा बच रहेगा। उससे दो टोपियां और एक गमछा बन जायगा। इस प्रकार चार महीने के फुरसत के समय में उसके साल भर का कपड़ा तैयार हो गया।

वह रोज सुबह ४ से ५ बजे के भीतर उठता है। खाना-पकाना करके सुबह ७ बजे काम पर चला जाता है। १०॥ बजे सब के साथ छुट्टी पाता है। फिर १२ से ५ बजे तक काम करता है। इसमें १॥ से २ घण्टे तक पढ़ाई में जाता है। शेष समय कपड़ा बुनता है। सुबह, दो पहर और शाम को उसे अपने लिए अभ्यास करने का वक्त मिलता है। उसीमें वह लिखता-पढ़ता है। शाम को प्रार्थना में रोज हाजिर रहता है। रात को ९-९॥ बजे तीनों मौसिम में ऐसी जगह सहन में होता है जहां से चौकी भी बनी रहती है। वस्त्र-स्वातन्त्र्य को तो उसने बायें हाथ का खेल कर लिया है। पर उसके अलावा अपने सरल, निर्दोष, मिजाज के बदौलत उसे हर तरह की आजादी प्राप्त है। सब लोग उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं। लालच उसे छू तक नहीं गया। ऐसा यह विद्यार्थी जबर सचमुच 'जबर' है।

मगनलाल खुशालचंद गांधी

कपास जमा करो

राष्ट्रीय महासभा के लिए न तो यह संभवनीय ही है और न आर्थिक दृष्टि से फायदेमन्द ही है कि वह व्यापारियों से कपास खरीद कर जमा करे और उसे सूत के लिए उन्हीं किसानों को फिर से बांटे जिन्होंने उसे पैदा किया है। इस बात की क्या जरूरत है कि कपास इतनी लंबी यात्रा करे—किसानों से व्यापारियों के यहां जाय, व्यापारियों के यहां से महासभा के पास जाय और वहां से फिर अपने असली घर को पहुंचे? यदि ऐसा न हो तो भी कपास को किसी एक जगह जमा करना और फिर उसे जगह जगह बांटना फजूल नुकसान करना है। यदि हम इस बात पर ध्यान दें कि हमें कितने क्षेत्र में काम करना है तो हम फौरन जान जायं कि यह कुछ हद तक भी अमल में लाने लायक नहीं है।

हां, ऐसी जगहों के लिए जहां कि सूतकार तो बहुत हैं परन्तु उनके निजी कपास के खेत नहीं हैं, अलबत्ते काफी तादाद में कपास पहुंचाने की तजवीज की जा सकती है, जिससे सूतकारों को सुविधा हो। लेकिन जहांतक हो सके ऐसे लोगों को भी इस बात के लिए तैयार करना चाहिए कि वे अपने लिए खुद कपास खरीद लिया करें। हमारा खास मकसद यह होना चाहिए कि जहां के लिए वहीं कपास मुहैया कराया जाय और जहां ऐसा न हो सके सिर्फ उन्हीं मुकामों के लिए कपास जमा किया जाय। आम तौर पर हमारी कोशिश यही होनी चाहिए कि किसान खुद ही अपने लिए कपास इकट्ठा कर रक्खें। हमें यह बात न भूलना चाहिए कि हमारे पास कितने आदमी हैं और कितना रुपया है और उसीके अन्दर हमें ज्यादह से ज्यादह काम और लाभ कर दिखाना चाहिए।

जो लोग कपास पैदा करते हैं उन्हींको सूत भी कातना चाहिए। कितने ही लोग ऐसा करते भी हैं। यदि हम अपनी शक्ति खास कर इसी बात में खर्च करें कि उन्हीं लोगों में चरखे का प्रचार किया जाय जो खुद कपास बोते हैं—और इस काम के लिए हमारे पास बहुत बड़ा क्षेत्र-फलदायी क्षेत्र पड़ा हुआ है—तो कपास को जमा करने और फिर बांटने का सवाल अपने आप हल हो जाय।

यदि हम चरखे के द्वारा हाथ से सूत निकालने के काम को एक बड़ी भारी कंपनी खड़ी करके, जिसमें बहुत बड़ी पूंजी हो और सारे देश का काम जिसकी मुट्ठी में हो, करना चाहें तो गैर-मुमकिन होगा। ऐसी तजवीज को अमल में लाने के लिए इतनी प्रचण्ड साधन-सामग्री दरकार होगी कि जिसका इन्तजाम हमारे किये नहीं हो सकता। हाथ से सूत कातने और हाथ से कपड़ा बुनने का काम और खूबी तो यही है कि उसकी साधन-सामग्री इस तरह फैलाई और बांटी जा सकती है कि जिसके लिए हमें एक जगह बड़ी पूंजी इकट्ठी करने और एक अलहदा संगठन खड़ा करने की जरूरत ही न रहे। यदि हम सिर्फ अपने किसान भाइयों को इस बात के लिए तैयार कर सकें कि वे कपास की एक अच्छी मिकदार को अपने घर रख छोड़ें-बेचे नहीं तो इसका अर्थ यही है कि हमने अपने आप सूतकारों के लिए काफी कपास जमा कर लिया-नहीं हमने उसे भले प्रकार बांट भी दिया और तिसपर भी तारीफ यह कि कपास का एक रेशा भी फजूल न गया। हमारा वह सारा रुपया भी बच रहा जो हमें बीच वाले दलालों, कारकुनों, या बीमा-कम्पनियों को देना पड़ता।

इसके लिए हमें उन लोगों के अन्दर भारी काम करने की जरूरत है जो कपास बोते हैं। हमें उन्हें ये सब बातें अच्छी तरह समझानी चाहिए। इसके साथ ही हमें उन्हें यह यकीन दिला देना होगा कि जितना सूत वे कातेंगे वह उसी आसानी के साथ ले लिया जायगा जिस आसानी के साथ उनका कपास बिक जाया करता है। यदि कपास को खरीदने और जमा करने के बजाय हम अच्छे सूत को ही खरीदें और जमा करें तो हम अपने मकसद के नजदीक जल्दी पहुंचेंगे। तमाम महासभा-समितियों को यह काम उठा लेना चाहिए और इसके लायक अपनी साधन-सामग्री उन्हें बढ़ा लेनी चाहिए। यदि हम उन लाखों करघों को जो आज विदेशी सूत का कपड़ा बुनते हैं हाथ-कता सूत दे कर कपड़ा बुनवा सकें तो फिर सूत को जमा करने की भी आवश्यकता न रह जायगी। हमारा उद्देश यह होना चाहिए कि चरखा कातना एक राष्ट्रीय प्रथा हो जाय। हम बुनियाद से अपना काम उठावें-बड़ा भारी कारखाना खोलकर चोटी से काम न शुरू करें।

तमाम प्रान्तीय समितियों और उनके खादी-मण्डलों को चाहिए कि वे अखिल भारतीय खादी-मंडल की नीचे लिखी अपील को कपास बोनेवाले लोगों तक पहुंचावें—

"यह मण्डल हरएक कपास बोने वाले भाई से अपील करता है कि वह कम से कम अपने कुटुंब की जरूरत भर के लिए कपास अपने पास जमा कर रक्खे और हरएक महासभा-समिति से अनुरोध करता है कि वह आगामी कपास की मौसिम के खतम होने के पहले ही इस बात का ज्ञान किसान भाइयों को कराने का प्रचण्ड उद्योग करें।"

यह कपास की मौसिम है। इसलिए इस बात का प्रचार तुरन्त शुरू हो जाना चाहिए। किसानों के झोंपड़ों में जा जाकर हमें यह बात उन्हें समझानी चाहिए और उनसे प्रार्थना करनी चाहिए। हर हफ्ते हाट लगा करती है और वहां सब किसान इकट्ठे हो जाते हैं। इस अवसर से हमें लाभ उठाना चाहिए। इन हाटों और बाजारों के मौकों पर सभायें की जायं, गीत गाये जायं भजन-मण्डलियों का जलूस निकाला जाय और उनके द्वारा किसानों को यह बात समझाई जाय कि इतना कपास जमा कर लो जिससे साल भर घर में चरखा चलता रहे। अपने अपने स्थान की सुविधा के अनुसार और और किस्म से भी प्रचार किया जाय। पर समय हर हालत में न खोया जाय-तुरन्त काम शुरू कर देना चाहिए।

(यंग इंडिया) च० राजगोपालाचार्य

टिप्पणियां

(२)

मालवीयजी और अस्पृश्यता-निवारण

सनातन हिन्दू-धर्म के स्तम्भ पू० मालवीयजी को अन्त्यजोद्धार के लिए इस लगन से प्रयत्न करते हुए देख कर किस देश-भक्त हिन्दू का हृदय उछले बिना न रहेगा? पिछले साल सनातन-धर्म सभा और इस साल विद्वत्परिषद् में अछूतों के सवाल को पेश करने का साहस उन्हींको हो सकता था। पर हमारे धर्म-शास्त्रियों ने धर्म-शास्त्र की दुहाई दे कर धर्म की आत्मा को उज्ज्वलित होने के इस अवसर को ठोकर मार कर मालवीयजी के खून के पसीने करने को कुछ कदर न की। हां, प्रयाग की हिन्दू-सभा ने अछूतों की हालत पर कुछ ध्यान दिया और नीचे लिखा प्रस्ताव पास किया है—

"यह महासभा हिन्दू-जाति का यह धार्मिक कर्तव्य समझती है कि वह हिन्दू धर्मानुयायी अन्त्यज भाइयों की उचित शिक्षा और कल्याण का प्रबन्ध करे जिसमें उनकी अपने धर्म में श्रद्धाभक्ति बनी रहे और बढ़े और अन्य मतावलम्बियों के भुलावे में पड कर वे अपने पुनीत पुरातन धर्म से च्युत न हों।

(क) वर्तमान समय में हिन्दू जाति को जैसी धार्मिक और सामाजिक आपदों का सामना करना पड रहा है और सम्भव है कि भविष्य में भी करना पड़े, उसे ध्यान में रख कर यह महासभा शास्त्र के आपत्काल-विषयक उन अपवाद-वाक्यों पर हिन्दू-समाज का ध्यान दिलाना आवश्यक समझती है जिनके अनुसार तीर्थयात्रा, उत्सव और विवाह, नाव, संग्राम, देश-विप्लव तथा ऐसे अन्य अवसरों पर स्पर्श दोष नहीं माना जाता।

(ख) महासभा की सम्मति में उन सर्वसाधारण स्कूल, पाठशाला तथा कला-शालाओं में जिनमें अन्य मतावलम्बी बालक शिक्षार्थ भर्ती किये जाते हैं अन्त्यज बालकों के भर्ती करने में कोई रोक नहीं होनी चाहिए। और जहां आवश्यक हो उनके लिए शिक्षालयों का प्रबंध किया जाना चाहिए।

(ग) महासभा की सम्मति में हिन्दू धर्मानुयायी अन्त्यजभाइयों की देवदर्शन-अभिलाषा सराहने योग्य है। इसलिए महासभा मन्दिरों के अधिकारियों से प्रार्थना करती है कि वे जहां मर्यादा के अनुसार इसका प्रबन्ध कर सकते हों वहां उनको देवदर्शन कराने की सुविधा कर दें।

(घ) महासभा की सम्मति में प्रत्येक बस्ती की हिन्दू सभा को अपनी बस्ती के लोगों को राय मिलाकर ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिससे किसी अन्त्यज भाई को कुए से पानी लेने में संकट न रहे और जहां आवश्यक हो उनके लिए अलग कुए बनवा दिये जायं।

(ङ) महासभा की सम्मति में हिन्दू जाति के संगठन और अछूतोद्धार के काम में सफलता के लिए यह आवश्यक है कि ऊपर लिखी हुई रीतियों से उनकी शिक्षा और कल्याण का यत्न किया जाय। महासभा की सम्मति में अन्त्यजों को जनेऊ देना, वेद पढाना और उनके साथ सहभोज करना सनातन-धर्मानुसार शास्त्र और लोक-मर्यादा के विरुद्ध है इसलिए हिन्दू महासभा ऐसे यत्नों का अनुमोदन नहीं करती और इस बात की घोषणा करती है कि महासभा के नाम या अधिकार से कोई सज्जन ऐसे प्रयत्न न करें।"

पर इससे भी बढ कर प्रयत्न अभी देहली में हुआ है। मालवीयजी के सभापतित्व में हिन्दुओं की भारी सभा हुई मालवीयजी ने कहा—हिन्दू-धर्म एक अजन्मा, अविनाशी, घटघटवासी परमात्मा को मानता है, और वह कर्मों को प्रधान रखता है 'जात पांत पूछे ना कोय। हर को भजे सो हर का होय' यही हिंदू-धर्म का सिद्धान्त है। हमारे अछूत भाई भगवान् में भक्ति रखते हैं और गाढे पसीने की कमाई से पेट भरते हैं। वह भी हिन्दू हैं, हमारे भाई हैं। परमात्मा का अंश उनमें भी उसी प्रकार है। अन्त में आपने हिन्दू जाति से अपील की कि वह अछूतों को कुओं से पानी भरने दे। मन्दिरों में देवदर्शन करने और शिक्षालयों में जाने की खुली आज्ञा दें। अछूतों से आपने प्रेम-पूर्वक निवेदन किया कि वह अपने अधिकारों को प्राप्त करते हुए विनय और प्रेम से काम लें, ऐसा न होना चाहिए कि लोग उन्हें उद्धत कहने लगें।"

व्याख्यान में भक्ति की एक अद्भुत लहर बह रही थी, जिसके प्रभाव से कई बार श्रोताओं की आंखों में से आंसू बह निकलते थे।

व्याख्यान के पश्चात् हजारों हिन्दुओं की भीड़ के साथ जा कर दलित भाइयों को कई कुओं पर चढाया और उन्होंने पानी खींचा।

आशा है, हिन्दू और खास कर वे लोग जो अपनेको सनातन धर्मी कहते हैं इस भाषण और घटना से कुछ नसीहत लेंगे और धर्म के शरीर की रक्षा के लोभ में धर्म की आत्मा को हनन न करेंगे।

बंगाल के दधीचि

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय एक संसार-प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य हैं। केवल यही नहीं वे बडे भारी उद्योग-व्यवसायज्ञ और शिक्षा-शास्त्रज्ञ भी हैं। जब कोई ३ साल पहले महात्माजी बंगाल में विदेशी कपडों की होलियां जलाने का उपदेश करते थे तब डाक्टर राय इस बात पर बहुत बिगडे थे। उनके खुलना जिले में उन दिनों भारी अकाल था। उनका कहना यह था कि इन वस्त्रहीन लोगों को कपडे न देकर उन्हें जलाना मूर्खता है। लेकिन थोड़े ही दिनों में उन्होंने समझ लिया कि भूखे को भोजन या नंगे को कपडा देना उसकी सहायता करना नहीं है। बल्कि भूखे को कमाने का और नंगे को कपडा बनाने का साधन दे देना उनकी सच्ची और स्थायी सहायता करना है। बस उसी दिन से वे चरखे के पीछे पागल हो गये। तब से उन्होंने अपनी वैज्ञानिक प्रयोग-शाला को ताला लगा दिया है और विज्ञान-विद्यालय को खादी-भाण्डार बना दिया है। वे कहते हैं कि विज्ञान रुक सकता है; पर स्वराज्य नहीं रोका जा सकता है। अपना सारा समय और शक्ति तो वे खादी और चरखे के प्रचार में खर्च करते ही थे अब उन्होंने अपनी कमाई सारी जमा-पूंजी भी खादी के अर्पण कर दी। दरिद्रता और दान के साथ उनकी लडकपन से दोस्ती रही है। फिर भी बुढापे के लिए कोई ५० हजार रुपये बचा कर रक्खे थे। अब वे भी स्वाहा कर दिये। बूढे आचार्य का यह सर्वस्व-त्याग निस्सन्देह उन्हें दधीचि के पद पर बैठा देता है। बंगाल के इस दधीचि का यह त्याग महाकवियों के महाकाव्यों और विज्ञानाचार्यों के आविष्कारों से अधिक स्फूर्तिकर और देश के गरीब-गुरबा के लिए अधिक कल्याणकर अतएव वन्दनीय है।

ह० उ०

एजंटों की जरूरत है

देश के इस संक्रमण-काल में महात्माजी के राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिन्दी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

व्यवस्थापक

वचन-भंग

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रतिका ,, -)॥
विदेशों के लिए ,, ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक २७

सम्पादक-हरिभाऊ विश्वनाथ उपाध्याय | अहमदाबाद, माघ सुदी १२, संवत् १९८० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,
मुद्रक-प्रकाशक-वेणीलाल छगनलाल बूच | रविवार, १७ फरवरी, १९२४ ई० | सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

महात्माजी का स्वास्थ्य

महात्माजी का स्वास्थ्य अभीतक इस लायक नहीं हुआ कि वे शीघ्र ही अस्पताल छोड़ सकें। बीच में एक दो रोज तक ताप मान कुछ बढ़ा था जिससे घाव के अन्दर मवाद पड़ने का शक गलत में भी हुआ। जांच करने पर मालूम हुआ कि घाव के टांके तोड़ते समय एक टांका अन्दर रह गया और उसने एक फोड़े का रूप धारण कर लिया। अब वह टांका तोड़ दिया गया। पर इससे घाव के भरने में फिर कुछ समय लगेगा। अभी यह अन्दाज है कि कोई एक महीने तक महात्माजी को सासून अस्पताल में ही रहना होगा। कमजोरी अभी बनी ही हुई है—बिना किसी के सहारे कमरे में चल-फिर नहीं सकते। बंगले के आसपास दर्शकों की भीड़ कम होने लगी है-इससे शारीरिक आराम अधिक मिलने लगा है। पर मानसिक चिन्ता कैसे कम हो सकती है? पिछले अंक में दिये उनके पैगाम से यह स्पष्ट ही है कि हिन्दू-मुसलमान नाइत्तफाकी का सवाल इस समय उनके मन को सब से अधिक दुःख दे रहा है। इसी सप्ताह लाला लाजपतरायजी के नाम लिखा उनका एक पत्र प्रकाशित हुआ है—

सासून अस्पताल
८ फरवरी

"प्रिय लालाजी,

मैंने आपको पत्र लिखने का वचन दिया था; पर अबतक मैं उसका पालन न कर सका। मेरा हाथ अभी कमजोर है। मैं पत्र लिखवाना चाहता था, पर जब मैं लिखवाने को तैयार हुआ तब सहायक लोग नजदीक नहीं थे।

मुझे नहीं याद पड़ता कि मैंने श्री प्रकाशम् को यह कहा कि आप मुझसे पूने आकर मिल जायँ। पर हां, मैं जितना जल्दी हो सके आपसे मिल कर हिन्दू-मुसलमान-एकता, हिन्दू-सिक्ख-एकता, धारा-सभा, अन्त्यज आदि सवालों पर खूब बातें करना चाहता हूं। पर यह तो तभी हो सकता है जब आप बिलकुल चंगे हो जायँ और मेरी तबीयत इस लायक हो जाय कि देर तक बातचीत करने की मिहनत बरदाश्त कर सकूं। यदि आपका स्वास्थ्य ठीक न हो, अथवा रेल के द्वारा इतनी लंबी यात्रा करने से तबीयत खराब हो जाने का अन्देशा हो तो मैं आपको यहां आने का कष्ट कैसे दे सकता हूं? और मैं चाहता हूं कि जब आप आवें तब पूरे ५ दिन की फुरसत ले आवें। शायद हमें जुदा जुदा किस्तों में बातें करनी पड़ें। मैं तो शायद अगले बुधवार तक बातें करने के लायक हो जाऊं-पर यदि घाव में कुछ और टांके छिप रहे हों या कोई और चीज भर रही तो परमात्मा जानें।

आपका
मो० क० गांधी"

इस पत्र से साफ मालूम होता है कि जहां एक ओर हिन्दू-मुसलमानों के सवाल की चिन्ता महात्माजी का पीछा नहीं छोड़ रही है तहां अभी यह खटका भी लगा हुआ है कि कहीं और कोई टांका अन्दर न छिपा हुआ हो। कर्नल मैडाक और डाक्टर फाटक की राय है कि महात्माजी की हालत चिन्ताजनक नहीं है और आमतौर पर वे चंगे हो रहे हैं। परमात्मा करें उनके वचन सच हों।

पाठको, धीरज रखिए!

यद्यपि महात्माजी अभी कमजोर हैं, अपने हाथ से चिट्ठी-पत्री अच्छी तरह नहीं लिख सकते तो भी अपनी जिम्मेवारी के खयाल से वे हरएक बात पर गंभीरता के साथ विचार करने लग गये हैं। हाल ही मौ. अबुलकलाम आजाद उनसे मिल कर आये हैं और उन्होंने कहा है कि और बातों के साथ हिन्दू-मुस्लिम-एकता की उन्हें गहरी चिन्ता है। उन्होंने मौलाना आजाद से कहा है कि सब जातियों की एकता के ही लिए मैं जी रहा हूं-यही नहीं मैं इसके लिए अपने प्राण भी दे दूंगा। इससे पाठक उनकी व्यथित मनोदशा का अनुमान कर सकते हैं। इसके अलावा भाई देवदास एक पत्र में लिखते हैं कि "आगे-पीछे 'यंग इंडिया' 'नवजीवन' का संपादन भार ग्रहण करने का भी उन्होंने निश्चय कर रक्खा है। अब भी वे कुछ लिख कर भेजना चाहते थे। पर कल उन्होंने देखा कि अभी वे किसी किस्म की मिहनत को बरदाश्त नहीं कर सकते। इससे अभी कुछ दिनों तक उन्होंने लिखने का इरादा मुल्तवी कर दिया है।"

तो आइए, हम परमात्मा से प्रार्थना करें कि महात्माजी शीघ्र ही तन्दुरुस्त हो जायँ और अपने पत्रों के द्वारा अपना दिव्य सन्देश लोगों तक पहुंचावें। तबतक पाठकों को चाहिए कि धीरज रक्खें और अपनी उत्सुकता को चरखा कातने और हिन्दू-मुस्लिम-एकता के प्रयत्न में लगावें।

गांधी-मास

महात्माजी की रिहाई के पहले ही कार्य-समिति बंबई की बैठक में इस आशय का प्रस्ताव कर चुकी है कि आगामी १८ फरवरी से ले कर १८ मार्च तक एक मास गांधी-मास समझा जाय और उसमें तिलक स्वराज्य-कोष इकट्ठा किया जाय तथा खादी का प्रचार किया जाय। इसके अनुसार अली-भाइयों ने अपने दौरे का कार्यक्रम भी तय कर लिया है जो नीचे दिया जाता है—

"१०-११ फरवरी अजमेर, १२ दिल्ली, १३ और १४ अलीगढ, १५ और १६ फर्रुखाबाद और कायमगंज, १७ दिल्ली (खिलाफत कार्य समिति की बैठक के लिए,) १८ और १९ लखनऊ, २० जौनपुर, २१ गाजीपुर, २३ आजमगढ, २६ और २७ दिल्ली (कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक के लिए)। २८ फरवरी से ६ मार्च तक सिन्ध-प्रांतीय खिलाफत-सम्मेलन में सम्मिलित होंगे और कुछ जिलों में दौरा करेंगे, ८ को जामिया मिल्लिया इसलामिया के उपाधि वितरण के उत्सव में सम्मिलित होंगे, १० को भागलपुर पहुंचेंगे, १५ तक बिहार-प्रांत में दौरा करेंगे, १६ से १८ तक कलकत्ते में रहेंगे, १९ को बर्मा के लिए रवाना होंगे और उस प्रांत में पन्द्रह दिनों तक रहेंगे।"

महात्माजी के छूटने के पहले तक उन्हें छुडाने के लिए गांधी मास में जोर-शोर से काम करने की जितनी आवश्यकता थी, उससे अब उनके रिहा हो जाने पर वह कई गुना बढ गई है। उस अवस्था में हमें केवल महात्माजी को छुडाने की चिन्ता थी; और अब तो हमें महात्माजी को चिन्ता-मुक्त करने की, उनकी रिहाई और नेतृत्व के योग्य अपनेको साबित करने की चिन्ता है। जेल के अन्दर से वे हमारे कामों को देख नहीं सकते थे और न उनका परिणाम उनपर हो सकता था; लेकिन अब वे अपनेको उससे नहीं बचा सकते। ऐसी दशा में हमारा कर्तव्य बहुत बढ जाता है। उचित तो हमें यह है कि इस एक माह के अन्दर इतना काम कर के दिखा दें कि हम महात्माजी के सम्मुख ऊंचा सिर कर के खडे हो सकें। बल्कि मैं तो 'क्रानिकल' के संपादक की तरह यही सब से ज्यादह मुनासिब समझता हूं कि अभी कम से कम छः मास तक हम यही समझ कर कि महात्माजी जेल में ही हैं काम करें। उनके सलाह-मशवरे को ही हमारी रहनुमाई के लिए काफी समझना चाहिए। इस गहरी बीमारी के बाद इतना भी आराम यदि हम उन्हें न दे सके तो निश्चय ही हम स्वराज्य के उपभोग के योग्य अभी नहीं हैं। सो एक के बजाय छः गांधी-मास हमें मनाना चाहिए और उसमें और बातों के साथ हिन्दू-मुसलिम-एकता के लिए भी पूरी कोशिश करनी चाहिए। एक ओर यदि हम अपने दिल को साफ-पाक रखने की कोशिश करें और दूसरी ओर फुरसत का समय गप-शप और झगडों-टण्टों में बिताने की जगह चरखा कातने में लगावें तो गांधी-मास सचमुच सार्थक हो जाय और राष्ट्र बहुत ऊंचा उठ जाय। यदि लडाई-झगडों, मुकदमे-बाजियों और निन्दा-स्तुति के लिए हमें समय मिल सकता है तो हम किस मुंह से कह सकते हैं कि चरखे के लिए फुरसत नहीं मिलती ?

एकता का उपाय

हिन्दू और मुसल्मानों की एकता का उपाय उतना मुश्किल नहीं है जितना कि समझा जा रहा है। नाइत्तिफाकी का असली कारण है दिल की खराबी। बाजे बजाना, पेड काट डालना, शुद्धि और तब्लीग आन्दोलन, आदि उसी बददिली के जाहिरा रूप हैं। अगर दोनों का दिल साफ हो, दोनों का एक-दूसरे पर ऐतबार हो तो ये झगडे उठ ही नहीं सकते। इसलिए एकता का एक ही उपाय है दिल की सफाई करना। दिल की सफाई तब तक नहीं हो सकती जब तक दो में से एक भी सापेक्ष भाव को छोड कर निरपेक्ष भाव को ग्रहण नहीं करता। यदि दो में से एक भी यह कहने के बजाय कि "देखो, वे ऐसा करते हैं, इसलिए हमें भी ऐसा करना चाहिए" यह न कहने लगेंगे कि "अच्छा वे बदी करते हों तो करने दो, हमें नेकी का रास्ता न छोडना चाहिए" तबतक एकता नहीं हो सकती। अभी हम अपनी नेकियों और दूसरे की बदियों पर ही नजर रखते हैं—नतीजा यह होता है कि हम अधिक नेक नहीं बन पाते—उल्टा दूसरे की बदी को देख कर बद होने की प्रेरणा हृदय में उठा करती है। इसके बजाय हमें चाहिए कि हम खुद अपनी बदियों और दूसरों की नेकियों को देखें जिससे हम अपनी बदी दूर कर सकें और दूसरे की नेकी को देख कर उसके साथ नेकी करने को ही जी चाहे। इससे दोनों के दिल की बदी कम हो कर नेकी बढेगी। और जब दोनों नेकी के रास्ते चलने लगेंगे तो झगडा खडा हो ही नहीं सकता। झगडा तब खडा होता है जब दोनों नेकी का रास्ता छोड देते हैं। यदि एक भी उस रास्ते पर अटल बना रहे तो झगडा होना तो दर किनार, झगडालू उल्टा शरमिन्दा हो कर भलामानुष बन जाता है। इसलिए हम ऊपरी ठहरावों के बजाय यदि हम अपने दिल की सफाई की ज्यादह कोशिश करें, अपने दिल के डर, सन्देह, अविश्वास, और बनियापन को हटा कर उसकी जगह प्रेम, विश्वास और आत्म-त्याग के भावों को स्थान दें तो एकता बात की बात में हो सकती है। मुसल्मानों का सवाल यदि मुस्लिम नेताओं के लिए छोड दें और हिन्दुओं की ही बात करें तो कहना होगा कि यदि पू० मालवीयजी और स्वामी श्रद्धानन्दजी, पू० लालाजी, ये तीनों बीमारी के लक्षणों को देख कर इलाज करने के बनिस्बत उसके मूल कारण को देख कर इलाज करें तो यह झगडा दो दिन में तय हो जाय। वे यदि हिन्दुओं को शरीर-बल और संख्या-बल बढाने की अपेक्षा धर्म-बल और आत्म-बल बढाने का उपदेश करें तो न केवल हिन्दुओं का उद्धार हो जाय, न केवल उनके प्रिय महात्माजी ही चिन्ता-मुक्त हो कर शीघ्र आरोग्य-लाभ कर लें, बल्कि इस अभागे राष्ट्र का भी कल्याण शीघ्र हो जाय।

हृदय का परिवर्तन ?

महात्माजी की रिहाई से कुछ भले-मानस अन्दाज करते हैं कि हो न हो यह सरकार के हृदय-परिवर्तन का चिह्न है। यदि सचमुच ही बात ऐसी हो तो किसी भी असहयोगी को खुशी हुए बिना न रहेगी। सच पूछिए तो हृदय के पलटे से उन्हें जितनी खुशी होगी उतनी एक तरह स्वराज्य-प्राप्ति से भी नहीं हो सकती। क्योंकि अंगरेजी सरकार के हृदय के पलटे का अर्थ है पूर्व और पश्चिम का मेल। और हृदय-परिवर्तन के बिना मिले स्वराज्य का अर्थ है भारत और ब्रिटेन की कटुता की वृद्धि। असहयोगी कटुता बढाना नहीं चाहते। वे तो प्रेम के-मेल के पुजारी हैं। उन्होंने अहिंसा की प्रतिज्ञा कर के कटुता दूर करने का प्रयत्न किया है। पश्चात्तर में सरकार ने मनमाने दमन और भय-प्रयोग कर के अभी तक अपनी हिंसावृत्ति और पाषाण-हृदयता का ही परिचय दिया है। अब भी उसके कल पुर्जे कहीं १४४ दफा, और कहीं १२४ दफा का प्रयोग कर के पुकार पुकार कर यह बात मानने के लिए मना करते हैं कि सरकार के हृदय का पलटा हो रहा है। एक ओर महात्माजी की रिहाई की जाती है और दूसरी ओर अलमोडा में श्री विक्टर मोहन जोशी को ३ साल कडी कैद की, और वहां के 'अलहकार' पत्र के संपादक को १॥ साल की सजा ठोंकी जाती है।

श्री मोहन जोशी ईसाई हैं और अल्मोड़े के प्रख्यात त्यागी वीर कार्यकर्ता हैं। बागेश्वर के मेले में १४४ दफा का भंग कर के शान्ति, चरखा, खादी पर व्याख्यान देने का पुरस्कार शान्ति के भूखे और भारत के हित-चिंतक मैजिस्ट्रेट ने उन्हें दिया है। जोशीजी नाम-मात्र के ईसाई नहीं हैं। वे सच्चे ईसाई का हृदय भी रखते हैं जोकि उनके सन्देश की एक एक सतर में और सरकारी अधिकारियों के प्रति उनके अतीव बरताव में टपकता है। चौथी बार हजरत ईसा-मसीह का यह सच्चा अनुयायी, ईसा-मसीह की अनुयायिनी सरकार के स्वार्थ का शिकार हो रहा है। खेद है कि अभी तक सरकार की अकल में यह बात नहीं आई कि शांतिपूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करते हुए जेल जानेवाला तो वहां से अधिक तेजस्वी और पराक्रमी बन कर लौटता है और उसे जेल भेजनेवाली सरकार का उससे अधिक तेजोनाश होता है।

असहकार के संपादक और प्रकाशक को 'सरकारनु अपघात' नामक लेख के लिए १२४ दफा के अनुसार सजा दी गई है; पर दिल्लगी यह है कि लेख के असली लेखक पर सरकार ने कुछ भी महरबानी नहीं की। पाठकों को याद ही होगा कि 'नवजीवन' के मुकदमे में सरकार ने सिर्फ लेखक काका कालेलकर को सजा दी थी और प्रकाशक श्री रामदास भाई को छोड़ दिया था। ऐसी मिसालें पेश कर कर के सरकार भारत को यह बात भूलने नहीं देना चाहती कि यहां कानून का राज्य नहीं, बल्कि हाकिमों की लहर का राज्य है।

ह० उ०

एक ईसाई का सन्देश

"सरकार ने ३ साल की सख्त कैद से मुझ जैसे स्वल्प विनम्र कार्यकर्ता को सम्मान देना उचित समझा है। मैं सरकार के इस सम्मान से अति आनन्दित हूं—केवल इस हेतु कि एक ईसाई की हैसियत से मैं वाक्स्वातन्त्र्य, सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए रणक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ था और मैंने अपने देश भाइयों के समक्ष यह घोषणा की थी कि ईसाई-मत आजकल की पाश्चात्य भौतिक सभ्यता से बिलकुल ही भिन्न है और भारतवर्ष ही मेरे प्रभु नासरत के ईसामसीह के सिद्धान्तों का संरक्षक है। महात्मा गांधी जैसे नेता का बन्धन 'शान्ति के सम्राट्' के अनुयायियों के लिए असहनीय होना चाहिए, और संसार भर के सच्चे ईसाइयों को भारत की इस विकट गम्भीर स्थिति से चैतन्य व अधीर हो जाना चाहिए। भारत के ईसाइयों का कर्तव्य है कि महात्माजी के पवित्र युद्ध को हाथ में लें और सत्याग्रह की पताका के नीचे एकत्र हो जावें। मैं वास्तव में दुखी हूं कि सरकार महात्माजी और सहस्रों भारत-सन्तानों की कठिन तपस्या से भी नहीं हिल रही है; वह प्राचीन समय के फिरऊन की तरह विचार-रहित अपने अन्याय-कांड में बराबर आगे बढ़ती जा रही है। हमारा कर्तव्य स्पष्ट है। महात्माजी ने हमको कष्ट-सहन का एक ऐसा तरीका बतलाया है जो अन्याय व अत्याचार को दूर कर सकता है। मेरी अन्तिम प्रार्थना अपने स्वदेश-भाइयों से यह है कि महात्माजी के कार्य को हाथ में लो और धैर्य व तत्परता के साथ कार्य करते जाओ, जब तक अन्तिम सिद्धि प्राप्त न हो। वन्दे मातरम्।

आपका सहचर,

मोहन जोशी"

महात्माजी के नाम आचार्य राय का पत्र

आचार्य राय ने यह सुन्दर पत्र महात्माजी को लिखा है—

"प्रिय महात्माजी,

मैं जान बूझ कर ही खादी-प्रदर्शन की प्रदर्शिनी में जाने के लिए नहीं गया और आपको पत्र भी मैंने नहीं लिखा। मेरा विचार था कि बीमारी की दशा में आपको किसी तरह तंग न करूं। किन्तु आपका कृपापूर्ण तार पा कर मुझे अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ती है।

मैं मानता हूं कि आपकी विदाई पर बंगाल में जो खुशियां मनाई गईं और जो उत्साह फैला उसे मैं मिश्रित भाव से देख रहा था। यदि हम लोगों में उत्तेजना और उत्साह न हो तो हम क्या रहें? यह उत्तेजना शीघ्र ही नष्ट हो जायगी और उसका चिन्ह भी बाकी न रहेगा। सहस्रों मनुष्य सार्वजनिक सभाओं में गांधी-उत्सव देखने के लिए आते हैं किन्तु कदाचित् उनमें सैकड़े एक व्यक्ति ही खादी पहनता है। कोकनाडा में मैंने देखा था कि साधारण लोग दूर दूर से गांधी नगर में आये हुए थे जिनमें ९० प्रतिशत व्यक्ति खद्दर धारण किये हुए थे। इस समय का दृश्य कितना विरोधी है! अस्पृश्यता दूर करने की ओर भी कोई प्रयत्न होता हुआ नजर नहीं आता। प्रत्येक व्यक्ति स्वराज्य के लिए शाही सड़क से ही जाना चाहता है और कठिन तथा कण्टकाकीर्ण मार्ग सब ही बचाना चाहते हैं। कांग्रेस-कार्यकर्ताओं के लिए कौन्सिलों में जाने के सम्बन्ध में विचार प्रकट करना मेरा काम नहीं है; किन्तु मैं इतना तो कह ही देना चाहता हूं कि इस कार्य में जितनी शक्ति लगाई गई है यदि उसका एक हिस्सा भी आपके बतलाये हुए रचनात्मक कार्यक्रम के लिए लगाई जाती तो अबतक स्वराज्य का रास्ता बहुत कुछ तय हो चुका होता।

कदाचित् आपको स्मरण होगा कि जब बम्बई में मालवीय सम्मेलन हो रहा था तब मुझे आपके साथ लगातार २ दिनों तक बैठने का शुभवसर और सौभाग्य प्राप्त हुआ था। और मैंने बंगाली भाइयों में खद्दर का सन्देश पहुंचाने तथा उसकी उत्पत्ति के लिए व्यावहारिक प्रयत्न करने की प्रतिज्ञा की थी। थोड़े से योग्य कार्यकर्ताओं की सहायता से मैं कुछ कर सका हूं किन्तु कार्य बहुत बड़ा है और उसकी सफलता के लिए अत्यन्त धैर्य और अलौकिक प्रयत्न की आवश्यकता है। फिर भी मैं जितना ही अधिक इस ओर काम करता हूं उतना ही मेरा इस बात पर विश्वास दृढ होता जाता है कि चरखे से ही भारत का आर्थिक उद्धार होगा। 'खद्दर के सन्देश' पर मैंने कोकनाडा में जो भाषण किया था उसमें मैंने यह बात स्पष्ट करने की चेष्टा की थी। मुझे यह देख कर प्रसन्नता होती है कि आपने मौलाना साहब को जो पत्र लिखा है उसमें इस बात पर विशेष जोर दिया है कि भारत की बढ़ती हुई दरिद्रता के लिए चरखा ही एकमात्र उपाय है।

अब आपके आराम में अधिक बाधा डालना उचित न समझकर मैं यहां पर यह पत्र समाप्त करता हूं। कदाचित् यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि मैं आपके दर्शन के लिए बहुत लालायित हूं लेकिन अभी आपके दर्शन करने के सुख से मुझे वंचित ही रहना चाहिए।

ईश्वर करे, आप शीघ्र ही पूर्ण आरोग्य हो जावें जिससे एक बार पुनः हमारे राष्ट्रीय उद्धार का मार्ग दिखावें।"

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, माघ सुदी १२, सं. १९८०

वचन-भंग

दक्षिण-आफ्रिका में इन दिनों एशियावासियों के खिलाफ हलचल हो रही है। वहां की यूनियन पार्लियामेन्ट में 'क्लास एरिया बिल' भी विचार के लिए दरपेश है। उसपर अपनी राय प्रकट करना मेरा कर्तव्य है; क्योंकि इससे उत्पन्न परिस्थिति के ज्ञान की आशा लोग मुझसे रख सकते हैं।

दक्षिण-आफ्रिका के योरपियनों का एशियावासियों के खिलाफ आन्दोलन करना कोई नई बात नहीं है। यह आन्दोलन प्रायः उतना ही पुराना है जितना कि दक्षिण-आफ्रिका के बिला-शर्तबन्द हिन्दुस्तानियों का पहला निपटारा है। इसका मुख्य कारण है फुटकर चीजों के गोरे व्यापारियों का डाह। दुनिया के दूसरे हिस्सों की तरह दक्षिण आफ्रिका में भी स्वार्थ-प्रिय लोग, काफी कोशिश करने पर, बिना कठिनाई के उन लोगों की सहायता प्राप्त कर लेते हैं जो उनकी तरह स्वार्थमय तो नहीं होते पर जो अपनी बुद्धि से विचार नहीं करते। मौजूदा आन्दोलन, मुझे याद होता है, ठेठ १९२१ में शुरू हुआ था और यह क्लास एरिया बिल निस्सन्देह उसी आन्दोलन का एक फल है।

इस बिल की खासियत और असर पर कुछ लिखने के पहले यह दिखाना जरूरी है कि यह १९१४ में किये गये उस समझौते के खिलाफ है जो दक्षिण आफ्रिका की यूनियन सरकार और हिन्दुस्तानी लोगों के बीच हुआ था। इस समझौते में भारत सरकार और साम्राज्य-सरकार का भी उतना ही हिस्सा है जितना कि यूनियन सरकार और हिन्दुस्तानी लोगों का है। क्योंकि यह समझौता हिन्दुस्तान सरकार और साम्राज्य-सरकार को मालूम करके उनकी रजामन्दी से किया गया था। भारत-सरकार ने तो बा-कायदा सर बेंजामिन राबर्टसन को अपना प्रतिनिधि बना कर भेजा था कि कमीशन के काम-काज पर नजर रक्खें। इस कमीशन को यूनियन सरकार ने कहने को तो हिन्दुस्तानियों की स्थिति की जांच करने के लिए पर वास्तव में निपटारा करने के उद्देश से नियुक्त किया था। समझौते की मुख्य शर्तें सर बेंजामिन राबर्टसन के जो हिन्दुस्तान सरकार के प्रतिनिधि बन कर आये थे, हिन्दुस्तान लौटने के पहले ही तय हो गई थीं। उस समझौते के अनुसार यूनियन सरकार आगे एशियावासियों के खिलाफ कोई कानून नहीं पास कर सकती। उस समय यह बात तय पाई थी कि हिन्दुस्तानियों की कानूनी हालत धीरे धीरे सुधारी जायगी और एशिया-वासियों के खिलाफ जो कानून उस समय विद्यमान थे वे भविष्य में उठा लिये जायंगे। पर बात इसके ठीक उलटा हुई। सर्व-साधारण को याद रहे कि इस समझौते की आत्मा को तोड़ने की पहली कोशिश उस समय की गई जब कि ट्रान्सवाल में मौजूदा कानून के अमलदरामद की कोशिश की गई, जो कि हिन्दुस्तानियों के हित के खिलाफ था और जो समझौते के समय के रवाज के प्रतिकूल था। और यह क्लास एरिया बिल तो हिन्दुस्तानियों की आजादी को और भी बहुत कम कर देता है।

इस समझौते के दूसरे तात्पर्य और भी हों, पर इस बात में : के निपटारे के अनुसार यूनियन सरकार इस बात के लिए वचन-बद्ध है कि अब आगे हिन्दुस्तानियों की आजादी कम न की जाय। दक्षिण आफ्रिका के गवर्नर के नाम भेजे हिदायत-नामे के अनुसार श्रीमान् सम्राट् को आम तौर पर अधिकार है कि वे गवर्नर जनरल को किसी बात की आज्ञा न दें। पर इसके अतिरिक्त भी साम्राज्य-सरकार का, यदि उसे अपने सौंपे काम का निर्वाह सच्चाई के साथ करना हो, यह फर्ज है कि हर हालत में वह पूर्वोक्त समझौते की शर्तों का पालन करने पर जोर दे। इस फर्ज से उसका छुटकारा नहीं हो सकता। हम, हिन्दुस्तान में रहनेवालों को, यूनियन सरकार की कठिनाइयों को आंखों की ओट न करना चाहिए, क्योंकि वह तो दक्षिण के योरपियनों की इच्छा पर अपनी हस्ती रखती है। और उनकी इच्छा का अर्थ है उनके चुने हुए प्रतिनिधियों की राय, जिसमें न तो हिन्दुस्तानी और न वहां के मूलनिवासियों की चलती है। दूसरे तमाम लोगों को इससे वंचित रखना यह दोष दक्षिण आफ्रिका के शासन-संगठन में है—नहीं उन अधिकांश स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों के शासन-संगठन में भी यही दोष है, जिनमें हिन्दुस्तानी या वहां के मूल निवासी बसते हैं। साम्राज्य-सरकार ने इस दोष को रहने दिया है तो वह इस बात के लिए बाध्य है कि उससे जो बुरे नतीजे पैदा हों उन्हें रोके। दक्षिण आफ्रिका और केनिया के सवाल इस बात को अच्छी तरह दिखा देंगे कि साम्राज्य-तन्त्र की नैतिक कीमत कितनी है। लोकमत के दबाव से संभव है, दोनों जगहों का कष्ट कुछ दिनों के लिए दूर हो जाय पर आखिर वह है चन्द ही रोज। जबतक इंग्लैंड या हिन्दुस्तान में कोई अकल्पित आमूल परिवर्तन नहीं हो तबतक इस शोकान्तक दृश्य का आखिरी अंक आगे ही बढ़ता चला जायगा।

अब खुद बिल के संबंध में सुनिए। नेटाल म्युनिस्पल मताधिकार बिल सिर्फ नेटाल पर ही लगाया जानेवाला था और खुशी की बात है कि उसे यूनियन गवर्नर जनरल ने अपने विशेष अधिकार का प्रयोग कर के नामंजूर कर दिया है। लेकिन यह क्लास एरिया बिल तो तमाम गरीब प्रान्तों पर लगाया जानेवाला है। यह सरकार के लिए इस बात की गुंजाइश कर देता है कि वह वहां बसे तमाम हिन्दुस्तानियों और दूसरे एशियावासियों को अलग बसादे और अलग तिजारत करने दे। इस तरह यह ठेट १८८५ में ट्रान्सवाल सरकार के तजवीज किये आबादी के तरीके का सिलसिला एक दूसरे रूप में बढ़ाया जा रहा है। अब मैं चन्द अल्फाज में यह बताता हूं कि इस अलगाव के मानी क्या हो सकते हैं? प्रिटोरिया में, जहां कि १८८५ के कानून के रहते हुए भी अभीतक कोई हिन्दुस्तानी वहां से हटने पर मजबूर नहीं किया गया है, हिन्दुस्तानियों की आबादी कस्बे से बहुत दूर है और अंगरेज, डच या नीग्रो कोई खरीदार वहां तक जाकर उन्हें हरा नहीं सकता। ऐसी आबादियों में जहां का तहीं व्यापार हो सकता है। ऐसी हालत में अलगाव-नीति के पूरे अमल का अर्थ है बिना ही मावजे के उनको अपने देश चले जाने पर मजबूर करना। हां, यह सच है कि बिल में कुछ मौजूदा हकों की रक्षा की हुई दिखाई देती है। पर हिन्दुस्तानी लोगों के लिए इस गुंजायश की कुछ कीमत नहीं है। अमल के वक्त वे गुंजाइशें महज बेकार हैं। इस बात के कितने ही उदाहरण मैं अपने दक्षिण आफ्रिका के तजरिबों से दे सकता हूं। लेकिन मैं इस लेख को बढ़ाना नहीं चाहता।

अन्त में यह बात याद रखनी चाहिए कि जब हिन्दुस्तान से दक्षिण-आफ्रिका जाने की कोई कैद नहीं थी, योरपियनों ने यह डर प्रकट किया था कि लाखों हिन्दुस्तानी आ आ कर दक्षिण-आफ्रिका को ढंक देंगे। उस समय दक्षिण आफ्रिका के तमाम राजकाजी लोग कहा करते थे कि कुछ हिन्दुस्तानी लोगों को तो दक्षिण आफ्रिका आसानी से हजम कर सकेगा और उनके साथ बरताव भी उदारता

पूर्वक किया जा सकेगा लेकिन योरपियन लोग तबतक दम नहीं ले सकते जबतक दक्षिण आफ्रिका को उथल देने की संभावना बनी हुई है। पर अब जब कि १८९७ से यह उथल देने की संभावना दूर हो गई है उन्हें अलग हटा देने की पुकार मचाई जाती है और यदि यह पूरी हो   तो अगला कदम होगा उनके लिए अपने देशमें जाना अनिवार्य र देना। यदि अलग हटाये गये हिन्दुस्तानी अपनी खुशी से हीं चले जावेंगे तो बात यह होगी कि दक्षिण आफ्रिका के गोरों द-निवासी साम्राज्य के दृष्टियों को जितना ही अधिक मुलायम पावेंगे उतना ही अधिक वे एशिया के खिलाफ अपनी मांगों की आवाज ऊंची उठावेंगे।

(अंगरेजी से अनुवादित) मोहनदास करमचंद गांधी

भारत का सच्चा राजा

इंग्लैंड से वापस लौटने पर जब मैंने सासून अस्पताल पूना में महात्मा गांधी के क्षीण शरीर को देखा तो मुझे बड़ा क्षोभ हुआ। लेकिन जो लोग उनकी बीमारी के दरम्यान उनके साथ रहे हैं उन्होंने तो कहा कि यदि आप इनकी हालत कुछ रोज पहले देखते तो आपके क्षोभ की सीमा न रहती। सुनते ही मैंने मनमें कहा रवीन्द्रनाथ टागोर का यह कथन बिल्कुल सच है कि "महात्माजी के जेल में रहने का एक एक दिन इस देश के शासकों के तेजो-नाश का दिन है।" तबतक उनकी रिहाई का हुक्म नहीं पहुंचा था और बड़े लाट सा. के भाषण में भी उसका कोई इशारा नहीं था। बड़े दिनों का, शान्ति और सद्भाव के दिनों का, इस प्रकार सरल और स्वाभाविक शान्ति और सदभाव पूर्ण काम के किये बिना ही गुजर जाना मेरी कल्पना के बाहर था।

पर आखिर यह लेख लिखते समय, यह खबर आ ग थी। महात्माजी के छुटकारे की आज्ञा प्रकाशित हो गई है। यद्यपि इस विलंब के कारण उसकी कीमत कुछ कम हो गई है तथापि यदि इसके द्वारा राज्य-कर्त्ताओं के हृदय-परिवर्तन की सूचना मिलती हो तो यह हमारे लिए अभिनन्दनीय है। पर इसका निर्णय तो भावी पर अवलंबित है।

अस्पताल में जो लोग महात्माजी के पास रहते हैं उन्होंने मुझसे महात्माजी के प्रति दिखाये गये प्रेमभाव की बहुतसी बातें कही हैं। सिविल सर्जन की हिम्मत, चतुराई और भलमन्सी, धाइयों की प्रेममय सेवा-शुश्रूषा और सरकार की ओर से किसी भी रोक-टोक का अभाव—यह सब परिवर्तन अगले सख्ती के दिनों को देखते हुए, कुछ और ही भाव व्यक्त कर रहा था। आखिरी रिहाई-हुक्म का रास्ता इन सब के बदौलत तैयार हो गया था।

महात्मा गांधी को यह दृढ विश्वास है कि हरएक शख्स के अन्दर एक उच्च तत्व रहता है, और उसे हम प्रेम के बल पर जीत सकते हैं। इसीसे उन्होंने यह असहयोग-आन्दोलन कटुता से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि प्रेम-भाव से शुरू किया। इसी कारण उन्होंने अपनेको सजा देनेवाले न्यायाधीश को संबोधित करके शुद्ध अन्तःकरण से सच्चे प्रेमपूर्ण वचन उच्चारण किये थे। इसी कारण अपना यथार्थ उद्देश राज्यकर्त्ताओं को समझाने के लिए उन्होंने बार बार 'यंग इंडिया' में लेख लिखे कि जिससे गलतफहमी होने का जरा भी अन्देशा न रहे। इतना होते हुए भी मैंने इग्लैंड में इनके विषय में जबरदस्त गलतफहमी फैली हुई देखी। यह देख कर मेरे शोक की सीमा न रही।

यदि कोई यह पूछे कि हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सरकार पर महात्माजी ने क्या इल्जाम लगाया है तो मैं उसे एक ही वाक्य में यह देता हूं। उनका इल्जाम है कि सरकार ने गरीब प्रजा को सताया है। अपने मुकद्दमे के   जो लिखित बयान उन्होंने पेश किया उसमें ब्रिटिश सरकार पर उन्होंने यही इल्जाम लगाया है कि उसने गरीबों को सताया है। महात्माजी ने उड़ीसा तथा दूसरे मुकामों पर सिर्फ हड्डी-पसली वाले आदमियों को देखा। वह चित्र उनके हृदय में भर रहा था। उसे न दिन को भूल सकते थे न रात को। यदि ब्रिटिश राज्यकर्ता उनके साथ शराब, अफीम, आदि नशीली चीजों का नाश करने के आन्दोलन में तथा खादी को उत्तेजना दे कर देहात के औद्योगिक जीवन को बनाने में साथ देते तो उन्होंने फिर एक बार सहयोग करने तक की तत्परता दिखाई थी। परन्तु नम्र सेवा-रूप इतना मामूली काम करना भी वर्तमान शासकों के दृष्टि-पथ के बाहर था। वे या तो अपनी ही मनमानी करेंगे—या कुछ भी न करेंगे। वे तो शाही देहली की शोभा बढाने और उसे सजाने की ही धुन में मस्त थे। उन्होंने इस बात की परवा तक न की कि इसके खर्च का भार बेचारे निरीह गरीबों के सिर अधिक कर के रूप में पड़ेगा। खजाने का दिवाला निकलने तक वे पानी की तरह पैसा बहाते रहे। फिर जब बजट में रकम कम हुई तब नमक कर दूना कर दिया। पुरानी देहली के खंडहरों पर नई देहली खड़ी करने के लिए जो करोड़ों रुपये खर्च हुए उन्हें सरकार न बचा सकी—अन्त को अध-पेट रहने वाले लाखों लोगों के जीवन के लिए मुख्य आवश्यक वस्तु—नमक-पर बेचारों को कर लगाना ही पड़ा!

हिन्दुस्तान बरसों से पिस रहा है। इससे उसके मन पर एक तरह की कमजोरी ने कब्जा कर लिया है। और यही कमजोरी नई देहली की सजधज और रौनक को देखने की तुच्छ तृष्णा का पोषण करती है। महात्मा गांधी ने इसे 'गुलाम की मनोदशा' कहा है। जब जब बड़े लाट और लाट साहब दरबारी लिबास में घुड़दौड़ देखने के लिए जाते हैं लोगों की भारी भीड़ उन्हें देखने की राह देखती हुई बैठी रहती है। यह भी उनकी उसी मनोदशा का सूचक है। देश के द्रव्य को चूसने वाले दिखाऊ दरबार, शाही मुलाकात, शाही तमाशे, ब्रिटिश साम्राज्य की नुमाइशें ये सब सामान्य जन-समूह की बढती हुई उदासीनता को मिटाने के लिए उत्पन्न किये गये मोह-साधन हैं। और आज अच्छी तरह उनसे लाभ उठाया जा रहा है। परन्तु इन मिथ्या बातों से भारत का आध्यात्मिक मन मोहित नहीं किया जा सकता। उलटा यह तो पूने के उस थके-माँदे रोगी को जो निर्भयता से मृत्यु के मुख को निहारता रहा था मौन प्रणाम कर रहा है, क्योंकि यहां इस अस्पताल में भारत के राजा महात्मा गांधी बैठे हुए हैं, जिनकी दुहाई तमाम शाही हुकमत से भी अधिक चलती है। नई देहली के महलों में रहने वाले वर्तमान गवर्नरों के नाम भूल जाने के बाद भी बहुत काल तक देहात के लोग उसके नाम का गान किया करेंगे। कुतुबमीनार और तुगलकाबाद के आसपास वाले स्थानों की तरह रायसिना के तमाम मकानों के खंडहर हो जाने के बाद भी महात्मा गांधी का नाम, भारत के एक सब से महान् साधु और तारनहार के रूप में, मातायें अपने नन्हें बच्चों को गा गा कर सुनाया करेंगी।

क्योंकि महात्मा गांधी ने शाश्वत तत्वों से एक आध्यात्मिक महालय की रचना की है। उसकी नींव परमात्मा के राज्य में बहुत गहरी और ठीक ठीक डली है। गरीबों पर किये गये जुल्म के द्वारा यह नहीं बना है। बल्कि प्रेम, भक्ति और रंक की सेवा-इसकी सुनहली सजावट है। इसके अन्दर सैनिक रौब और आतंक नहीं बल्कि मामूली हृदय की शान्त एकदिली छा रही है। इसमें जाति-भेद अथवा वर्णभेद को स्थान नहीं है। इसके मौन में धार्मिक चर्चाओं के झगड़ों का वि य नहीं। इसका साम्राज्य है हृदय।

जिस भव्य दृश्य की राह में इतने लंबे समय तक अपनी समुद्र यात्रा में देख रहा था, आखिर एक बार उसके दर्शन मुझे हुए—इसलिए अस्पताल के इस कमरे से रोगी के पास से हटना सचमुच कठिन हो गया है। मैं पूना के अस्पताल में इसी इरादे से आया था कि यहां आकर फिर देहली जाऊंगा। पर मेरी अन्तरात्मा ने बगावत शुरू कर दी और अब मुझे देहली जाने का विचार तक करना असंभव मालूम होता है। क्योंकि यहां जो दृश्य मैंने देखा है उसे देखने के बाद देहली जाकर कुछ राजनैतिक काम करने के मेरे तमाम इरादे हवा हो गये। यदि मैं इस अस्पताल में न आया होता तो शायद देहली जा पाता। पर यहां आकर वहां जाना प्रायः धर्मद्रोह ही है। मैं साबरमती-आश्रम जा सकता हूं; शान्तिनिकेतन जा सकता हूं; पर देहली की राजनैतिक झंझट में नहीं पड़ सकता। परमात्मा ने जो दृश्य यहां दिखलाया है उसीको मैं निर्मल बनाये रक्खूंगा। क्योंकि ऐसी भेंट मिलने पर उसी को हृदय में रखने के बराबर अनमोल बात जीवन में दूसरी कुछ नहीं हो सकती।

सी. एफ. एण्ड्रयूज़

जबर का स्वराज्य

जबर आगरे के नजदीक एक गांव का रहनेवाला है। आज से कोई ४ बरस पहले की बात है! जाड़े की मौसिम में एक दिन शाम को वह सत्याग्रहाश्रम की गो-शाला के नजदीक खड़ा था। मायूस मालूम होता था। बदन पर फटे-टूटे चिथड़े के सिवा कुछ न था। भूख और दुःख से दुखी मालूम होता था। उसने हर-किसी काम को करके गुजर करने की इच्छा दिखाई! यहां इस बात का सुभीता नहीं है कि ऐसे हर शख्स को काम दिया जा सके। परन्तु जबर की दरख्वास्त में और उसके चहरे पर एक तरह का सौजन्य झलक रहा था। शाम हो रही थी। उसे भूखा और ठंढ में ठिठुरते हुए जाने देना मुमकिन नहीं था। रात उसने यहां काटी। सुबह बातचीत करके उसे गो-शाला साफ रखने का काम दिया। जबर ने इस काम में अपनी भलमंसी का परिचय दिया। उसके राज्य में गो-शाला आईने की तरह साफ-सुथरी रहती। वह खुद भी साफ-सुथरा रहता था। कभी नहीं देखा गया कि जबर ने काम में कभी १ मिनिट की भी चोरी की हो। फिर सारे आश्रम की सफाई का काम उसे सौंपा गया। भंगी को तो कभी से छुट्टी दे दी गई थी। इससे रास्ते की सफाई किसी न किसी आश्रम-वासी को करनी पड़ती थी। पैखाना कोई कोई पुराना आश्रमवासी साफ करता था। जबर रास्तों की सफाई इस तरह करता मानों आने जाने वाले लोगों के स्वागत की तैयारी कर रहा हो। विद्यार्थी लोग जब पैखाना साफ करते तब वह हमदर्दी के साथ उन्हें देखा करता। कभी कभी खुद भी उसमें मदद करने लगा। एकबार आश्रम में लोग कम रह गये और पैखाने का भी काम जबर के सिर पड़ा। कितने ही समय तक वह अच्छी तरह पैखाने साफ करता रहा। वह अपने शरीर को हमेशा साफ रखता था। साथ ही उसका आचार भी पवित्र था। इससे बीच बीच में पीने का पानी भी उससे मंगवाया जाता। अपने शुद्ध आचरण के कारण आश्रम के सब लोग उसे चाहते थे। जो लोग उसके समागम में आते थे उनके दिल में आया कि जबर के जीवन को और भी उन्नत बनाया जाय। जबर की सौम्यता और उसकी सचाई ने सब का मन जीत लिया। वह बिलकुल निरक्षर था। एक हिन्दी-भाषी ब्रह्मचारी उसे पढ़ाने लगे। अधेड़ जबर ने पढ़ने में भी उतना ही उत्साह दिखाया। धीमे धीमे परन्तु दृढ़ता के साथ उसने पढ़ना जारी रक्खा। कभी कभी उसका पाठ लेना बन्द रहता; पर यों पढ़ना-लिखना बराबर जारी रहता था। अब उसने अपने आसपास लोगों को चरखा कातते और धुनकते हुए देखा तो वह उसमें भी दिल-चस्पी लेने लगा। एक चरखा ले लिया और फुरसत के वक्त उसे कातने भी लगा। थोड़े ही समय में बढ़िया सूत कातने लगा। ६ से १५ तक जुदा जुदा अंक निकालने का उसे खासा महावरा हो गया। उसकी चतुराई पर काम लेनेवाले हमेशा फिदा रहते। रुपये-पैसे का भरोसा करना तो कुछ आसान है पर समय का विश्वास करना कठिन है। इस जमाने में एक मिनिट भी फजूल न खोने का विश्वास बहुत कम लोग पैदा करा सकते हैं। यह बहुत ऊंचे दरजे की ईमानदारी है। जबर ने सब लोगों के दिल में अपने लिए यह विश्वास पैदा किया। उसके काम में किसीको निगरानी करने की जरूरत नहीं रहती थी।

जब सूत कातने में जबर कुशल हो गया तब उसे बुनकला सीखने की उमंग हुई। यह काम उसने शौक के साथ किया। काम चाहे कम हुआ हो पर सफाई में उसका मुकाबला नहीं होता था। जबर के हाथ से दूसरे काम छूटने लगे और वह धुनाई और कताई में लग गया। शुरू में उसे सिर्फ खाना-कपड़ा मिलता था। बढ़ते बढ़ते वह २०) मासिक वेतन पाने लगा।

कोई तीन बरस तक यह सिलसिला चला। फिर जबर का जमाना पलटा। बही-खाते में उसके नाम छोटी-सी पूंजी जमा हो चुकी थी। विद्या और हुनर का उसे शौक लगा। वेतन लेना उसने बन्द किया और अपनी जमा-पूंजी पर गुजर करके अधिक पढ़ने और बुनाई सीखने का समय चाहा। समय मिला। दो घण्टे रोज उसकी पढ़ाई होती है—पढ़ना-लिखना और हिसाब वह अब भी सीख रहा है। चौथी हिन्दी पाठमाला पढ़ता है। अब अपने आप रामायण पढ़ कर समझ लेता है। पढ़ने के अलावा वह बुनाई सीखने में भी अपना समय देने लगा। बुनाई उसने कोई तीन महीने में ठीक तरह सीख ली। अब वह कपड़ा बुनने लगा—जुलाहा हो गया। फिर उसका वेतन शुरू हुआ। परन्तु जितना समय पढ़ाई में लगाता है उतना वेतन कम लेता है।

यह तो हुआ जबर का परिचय, उसके संबंध में खास बात अब शुरू होगी।

जबर को कपास लोढ़ने से ले कर कपड़ा बुनने की तमाम क्रियायें अब अच्छी तरह मालूम हो गई हैं। उसे उमंग हुई कि मैं अपने फुरसत के वक्त में अपने लिए क्यों न सूत कातूं और कपड़ा बुन लूं? इसका प्रयोग करने के लिए उसे ३ सेर रुई दी गई है। इस बात को कोई तीन महीने हुए। शुक्रवार को आधे दिन की छुट्टी में वह रुई धुनक लेता है और ब्यालू के बाद रोज शाम के उजाले में या रात को दिया जला कर घण्टा-डेढ़ घण्टा सूत कातता है। ढाई महीने के अन्दर उसने उस तमाम रुई का कोई छः अंक का सूत कात डाला। उतनी रुई उसने चार या पांच शुक्रवार अर्थात् आधी छुट्टी के दिनों में धुनक डाली।

अब उसने २१ गज की ताणी बना कर करघे पर चढ़ाई है। शाम को पांच बजे जब अपने काम से छुट्टी मिलती है तब खुद अपने ही हाथ से नाली के कोकड़े भर कर ३० इंच अर्ज का कोई आध पौन गज कपड़ा बुनता है। अपने सूत की आंटियां उसने इस सफाई से लपेटी थी कि ताणी का ३ पौंड सूत खोलने में उसे २ से ३ घण्टा समय लगा होगा। ऊंची पढ़ाई पढ़ने वाले विद्यार्थियों का सूत आश्रम में कपड़ा बुनाने के लिए आता है। उसे खोलने में जिसे पांच-सात गुने ज्यादह समय लगने का तजरिबा हुआ हो उसे जबर के अंकों को देख कर उसके काम और नियम के विषय में आदर उत्पन्न हुए बिना कैसे रह सकता है?

पन्द्रह बीस दिन में अमर अपना कपडा बुन लेगा। कोई १९ गज का थान तैयार होगा। उसमें से वह साडे तीन तीन गज कुटके तक की दो धोतियां बनावेगा। तीन तीन गज के दो कुरते होंगे। डेढ पौने दो दो गज की दो मिमास्तीनें होंगी। और एक-दो गज कपडा बच रहेगा। उससे दो टोपियां और एक गमछा बन जायगा। इस प्रकार चार महीने में फुरसत के समय में उसके साल भर का कपडा तैयार हो गया।

वह रोज सुबह ४ से ५ बजे के भीतर उठता है। खाना-पकाना करके सुबह ७ बजे काम पर चला जाता है। १०॥ बजे सब के साथ छुट्टी पाता है। फिर १२ से ५ बजे तक काम करता है। इसमें १॥ से २ घण्टे तक पढाई में जाता है। शेष समय कपडा बुनता है। सुबह, दो पहर और शाम को उसे अपने लिए अभ्यास करने का वक्त मिलता है। उसीमें वह लिखता-पढता है। शाम को प्रार्थना में रोज हाजिर रहता है। रात को ९-९॥ बजे तीनों मौसिम में ऐसी जगह सहज में होता है जहां से चौकी भी बनी रहती है। वस्त्र-स्वातन्त्र्य को तो उसने बायें हाथ का खेल कर लिया है। पर उसके अलावा अपने सरल, निर्दोष, मिजाज के बदौलत उसे हर तरह की आजादी प्राप्त है। सब लोग उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं। लालच उसे छू तक नहीं गया। ऐसा यह विद्यार्थी अमर सचमुच 'अमर' है।

मगनलाल खुशालचंद गांधी

कपास जमा करो

राष्ट्रीय महासभा के लिए न तो यह संभवनीय ही है और न आर्थिक दृष्टि से फायदेमन्द ही है कि वह व्यापारियों से कपास खरीद कर जमा करे और उसे सूत के लिए उन्हीं किसानों को फिर से बांटे जिन्होंने उसे पैदा किया है। इस बात की क्या जरूरत है कि कपास इतनी लंबी यात्रा करे—किसानों से व्यापारियों के यहां जाय, व्यापारियों के यहां से महासभा के पास जाय और वहां से फिर अपने असली घर को पहुंचे? यदि ऐसा न हो तो भी कपास को किसी एक जगह जमा करना और फिर उसे जगह जगह बांटना फजूल नुकसान करना है। यदि हम इस बात पर ध्यान दें कि हमें कितने क्षेत्र में काम करना है तो हम फौरन जान जायेंगे कि यह कुछ हद तक भी अमल में आने लायक नहीं है।

हां, ऐसी जगहों के लिए जहां कि सूतकार तो बहुत हैं परन्तु उनके निजी कपास के खेत नहीं हैं, अलबत्ते काफी तादाद में कपास पहुंचाने की तजवीज की जा सकती है, जिससे सूतकारों को सुविधा हो। लेकिन जहांतक हो सके ऐसे लोगों को भी इस बात के लिए तैयार करना चाहिए कि वे अपने लिए खुद कपास खरीद लिया करें। हमारा खास मकसद यह होना चाहिए कि जहां के लिए जरूरी कपास मुहैया कराया जाय और जहां ऐसा न हो सके सिर्फ उन्हीं मुकामों के लिए कपास जमा किया जाय। आम तौर पर हमारी नीति यही होनी चाहिए कि किसान खुद ही अपने लिए कपास इकट्ठा कर रक्खें। हमें यह बात न भूलना चाहिए कि हमारे पास कितने आदमी हैं और कितना रुपया है और उसीके अन्दर हमें ज्यादह से ज्यादह काम और लाभ कर दिखाना चाहिए।

जो लोग कपास पैदा करते हैं उन्हींको सूत भी कातना चाहिए। कितने ही लोग ऐसा करते भी हैं। यदि हम अपनी शक्ति खास कर इसी बात में खर्च करें कि उन्हीं लोगों में चरखे का प्रचार किया जाय जो खुद कपास बोते हैं—और इस काम के लिए हमारे पास बहुत बडा क्षेत्र-फलदायी क्षेत्र पडा हुआ है—तो कपास को जमा करने और फिर बांटने का सवाल अपने आप हल हो जाय।

यदि हम चरखे के द्वारा हाथ से सूत निकालने के काम को एक बडी भारी कंपनी खडी करके, जिसमें बहुत बडी पूंजी हो और सारे देश का काम जिसकी मुट्ठी में हो, करना चाहें तो गैर-मुमकिन होगा। ऐसी तजवीज को अमल में लाने के लिए इतनी प्रचण्ड साधन-सामग्री दरकार होगी कि जिसका इन्तजाम हमारे किये नहीं हो सकता। हाथ से सूत कातने और हाथ से कपडा बुनने का लाभ और खूबी तो यही है कि उसकी साधन-सामग्री इस तरह फैलाई और बांटी जा सकती है कि जिसके लिए हमें एक जगह बडी पूंजी इकट्ठी करने और एक अलहदा संगठन खडा करने की जरूरत ही न रहे। यदि हम सिर्फ अपने किसान भाइयों को इस बात के लिए तैयार कर सकें कि वे कपास की एक अच्छी मिकदार को अपने घर रख छोडें-बेंचे नहीं तो इसका अर्थ यही है कि हमने अपने आप सूतकारों के लिए काफी कपास जमा कर लिया—नहीं हमने उसे भले प्रकार बांट भी दिया और तिसपर भी तारीफ यह कि कपास का एक रेशा भी फजूल न गया। हमारा वह सारा रुपया भी बच रहा जो हमें बीच वाले दलालों, कारकुनों, या बीमा-कंपनियों को देना पडता।

इसके लिए हमें उन लोगों के अन्दर भारी काम करने की जरूरत है जो कपास बोते हैं। हमें उन्हें ये सब बातें अच्छी तरह समझानी चाहिए। इसके साथ ही हमें उन्हें यह यकीन दिला देना होगा कि जितना सूत वे कातेंगे वह उसी आसानी के साथ ले लिया जायगा जिस आसानी के साथ उनका कपास बिक जाया करता है। यदि कपास को खरीदने और जमा करने के बजाय हम अच्छे सूत को ही खरीदें और जमा करें तो हम अपने मकसद के नजदीक जल्दी पहुंचेंगे। तमाम महासभा-समितियों को यह काम उठा लेना चाहिए और इसके लायक अपनी साधन-सामग्री उन्हें बढा लेनी चाहिए। यदि हम उन लाखों करघों को जो आज विदेशी सूत का कपडा बुनते हैं हाथ-कता सूत दे कर कपडा बुनवा सकें तो फिर सूत को जमा करने की भी आवश्यकता न रह जायगी। हमारा उद्देश यह होना चाहिए कि चरखा कातना एक राष्ट्रीय प्रथा हो जाय। हम बुनियाद से अपना काम उठावें-बडा भारी कारखाना खोलकर चोटी से काम न शुरू करें।

तमाम प्रान्तीय समितियों और उनके खादी-मण्डलों को चाहिए कि वे अखिल भारतीय खादी-मंडल की नीचे लिखी अपील को कपास बोनेवाले लोगों तक पहुंचावें—

"यह मण्डल हरएक कपास बोने वाले भाई से अपील करता है कि वह कम से कम अपने कुटुंब की जरूरत भर के लिए कपास अपने पास जमा कर रक्खे और हरएक महासभा-समिति से अनुरोध करता है कि वह आगामी कपास की मौसिम के खतम होने के पहले ही इस बात का ज्ञान किसान भाइयों को कराने का प्रचण्ड उद्योग करें।"

यह कपास की मौसिम है। इसलिए इस बात का प्रचार तुरन्त शुरू हो जाना चाहिए। किसानों के झोंपडों में जा जाकर हमें यह बात उन्हें समझानी चाहिए और उनसे प्रार्थना करनी चाहिए। हर हफ्ते हाट लगा करती है और वहां सब किसान इकट्ठे हो जाते हैं। इस अवसर से हमें लाभ उठाना चाहिए। इन हाटों और बाजारों के मौकों पर सभायें की जायं, गीत गाये जायं भजन-मण्डलियों का जलूस निकाला जाय और उनके द्वारा किसानों को यह बात समझाई जाय कि इतना कपास जमा कर लें जिससे साल भर घर में चरखा चलता रहे। अपने अपने स्थान की सुविधा के अनुसार और और किस्म से भी प्रचार किया जाय। पर समय हर हालत में न खोया जाय-तुरन्त काम शुरू कर देना चाहिए।

(यंग इंडिया) च० राजगोपालाचार्य

टिप्पणियां

(२)

मालवीयजी और अस्पृश्यता-निवारण

सनातन हिन्दू-धर्म के स्तम्भ पू० मालवीयजी को अन्त्यजोद्धार के लिए इस लगन से प्रयत्न करते हुए देख कर किस देश-भक्त हिन्दू का हृदय उछले बिना न रहेगा? पिछले साल सनातन-धर्म सभा और इस साल हिन्दूपरिषद् में अछूतों के सवाल को पेश करने का साहस उन्हींको हो सकता था। पर हमारे धर्म-शास्त्रियों ने धर्म-शास्त्र की दुहाई दे कर धर्म की आत्मा को उज्ज्वलित होने के इस अवसर को ठोकर मार कर मालवीयजी के खून के पसीने करने की कुछ कदर न की। हां, प्रयाग की हिन्दू-सभा ने अछूतों की हालत पर कुछ ध्यान दिया और नीचे लिखा प्रस्ताव पास किया है—

"यह महासभा हिन्दू-जाति का यह धार्मिक कर्तव्य समझती है कि वह हिन्दू धर्मानुयायी अन्त्यज भाइयों की उचित शिक्षा और कल्याण का प्रबन्ध करे जिससे उनकी अपने धर्म में श्रद्धाभक्ति बनी रहे और वह और अन्य मतावलम्बियों के भुलावे में पड कर वे अपने पुनीत पुरातन धर्म से च्युत न हों।

(क) वर्तमान समय में हिन्दू जाति को जैसी धार्मिक और सामाजिक आपदों का सामना करना पड रहा है और सम्भव है कि भविष्य में भी करना पडे, उसे ध्यान में रख कर यह महासभा शास्त्र के आपत्काल-विषयक उन अपवाद-वाक्यों पर हिन्दू-समाज का ध्यान दिलाना आवश्यक समझती है जिनके अनुसार तीर्थयात्रा, उत्सव और विवाह, नाव, संग्राम, देश-विप्लव तथा ऐसे अन्य अवसरों पर स्पर्श दोष नहीं माना जाता।

(ख) महासभा की सम्मति में उन सर्वसाधारण स्कूल, पाठशाला तथा कला-शालाओं में जिनमें अन्य मतावलम्बी बालक शिक्षार्थ भर्ती किये जाते हैं अन्त्यज बालकों के भर्ती करने में कोई रोक नहीं होनी चाहिए। और जहां आवश्यक हो उनके लिए शिक्षालयों का प्रबंध किया जाना चाहिए।

(ग) महासभा की सम्मति में हिन्दू धर्मानुयायी अन्त्यजभाइयों की देवदर्शन-अभिलाषा सराहने योग्य है। इसलिए महासभा मन्दिरों के अधिकारियों से प्रार्थना करती है कि वे जहां मर्यादा के अनुसार इसका प्रबन्ध कर सकते हों वहां उनको देवदर्शन कराने की सुविधा कर दें।

(घ) महासभा की सम्मति में प्रत्येक बस्ती की हिन्दू सभा को अपनी बस्ती के लोगों की राय मिलाकर ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिससे किसी अन्त्यज भाई को कुए से पानी लेने में संकट न रहे और जहां आवश्यक हो उनके लिए अलग कुए बनवा दिये जायं।

(ङ) महासभा की सम्मति में हिन्दू जाति के संगठन और अछूतोद्धार के काम में सफलता के लिए यह आवश्यक है कि ऊपर लिखी हुई रीतियों से उनकी शिक्षा और कल्याण का यत्न किया जाय। महासभा की सम्मति में अन्त्यजों को जनेऊ देना, वेद पढाना और उनके साथ सहभोज करना सनातन-धर्मानुसार शास्त्र और लोक-मर्यादा के विरुद्ध है इसलिए हिन्दू महासभा ऐसे यत्नों का अनुमोदन नहीं करती और इस बात की घोषणा करती है कि महासभा के नाम या अधिकार से कोई सज्जन ऐसे प्रयत्न न करें।"

पर इससे भी बढ कर प्रयत्न अभी देहली में हुआ है। मालवीयजी के सभापतित्व में हिन्दुओं की भारी सभा हुई मालवीयजी ने कहा—हिन्दू-धर्म एक अजन्मा, अविनाशी, घटघटवासी परमात्मा को मानता है, और वह कर्मों को प्रधान रखता है 'जात पात पूछे ना कोय। हर को भजे सो हर का होय' यही हिंदू-धर्म का सिद्धान्त है। हमारे अछूत भाई भगवान् में भक्ति रखते हैं और गाढे पसीने की कमाई से पेट भरते हैं। वह भी हिन्दू हैं, हमारे भाई हैं। परमात्मा का अंश उनमें भी उसी प्रकार है। अन्त में आपने हिन्दू जाति से अपील की कि वह अछूतों को कुओं से पानी भरने दे। मन्दिरों में देवदर्शन करने और शिक्षणालयों में आने की खुली आज्ञा दें। अछूतों से आपने प्रेम-पूर्वक निवेदन किया कि वह अपने अधिकारों को प्राप्त करते हुए विनय और प्रेम से काम लें, ऐसा न होना चाहिए कि लोग उन्हें उद्धत कहने लगें।"

व्याख्यान में भक्ति की एक अद्भुत लहर बह रही थी, जिसके प्रभाव से कई बार श्रोताओं की आंखों में से आंसू बह निकलते थे।

व्याख्यान के पश्चात् हजारों हिन्दुओं की भीड के साथ जा कर दलित भाइयों को कई कुओं पर चढाया और उन्होंने पानी खींचा।

आशा है, हिन्दू और खास कर वे लोग जो अपनेको सनातन धर्मी कहते हैं इस भाषण और घटना से कुछ नसीहत लेंगे और धर्म के शरीर की रक्षा के लोभ में धर्म की आत्मा को हनन न करेंगे।

बंगाल के दधीचि

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय एक संसार-प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य हैं। केवल यही नहीं वे बडे भारी उद्योग-व्यवसायज्ञ और शिक्षा-शास्त्रज्ञ भी हैं। जब कोई ३ साल पहले महात्माजी बंगाल में विदेशी कपडों की होलियां जलाने का उपदेश करते थे तब डाक्टर राय इस बात पर बहुत बिगडे थे। उनके खुलना जिले में उन्हें दिनों भारी अकाल था। उनका कहना यह था कि इन वस्त्रहीन लोगों को कपडे न देकर उन्हें जलाना मूर्खता है। लेकिन थोडे ही दिनों में उन्होंने समझ लिया कि भूखे को भोजन या नंगे को कपडा देना उसकी सहायता करना नहीं है। बल्कि भूखे को कमाने का और नंगे को कपडा बनाने का साधन दे देना उसकी सच्ची और स्थायी सहायता करना है। बस उसी दिन से वे चरखे के पीछे पागल हो गये। तब से उन्होंने अपनी वैज्ञानिक प्रयोग-शाला को ताला लगा दिया है और विज्ञान-विद्यालय को खादी-भाण्डार बना दिया है। वे कहते हैं कि विज्ञान रुक सकता है; पर स्वराज्य नहीं रोका जा सकता है। अपना सारा समय और शक्ति तो वे खादी और चरखे के प्रचार में खर्च करते ही थे अब उन्होंने अपनी कमाई सारी जमा-पूंजी भी खादी के अर्पण कर दी। दरिद्रता और दान के साथ उनकी लडकपन से दोस्ती रही है। फिर भी बुढापे के लिए कोई ५० हजार रुपये बचा कर रक्खे थे। अब वे भी स्वाहा कर दिये। बूढे आचार्य का यह सर्वस्व-त्याग निस्सन्देह उन्हें दधीचि के पद पर बैठा देता है। बंगाल के इस दधीचि का यह त्याग महाकवियों के महाकाव्यों और विज्ञानाचार्यों के आविष्कारों से अधिक स्फूर्तिकर और देश के गरीब-गुरबा के लिए अधिक कल्याणकर अतएव वन्दनीय है।

ह० उ०

उत्तरदाता कौन है ?

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रतिका „ -)।
विदेशों के लिए „ ७)

संस्थापक—महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक २८

सम्पादक—हरिभाऊ विठ्ठलराव उपाध्याय
मुद्रक-प्रकाशक—वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, फाल्गुन बदी ४, संवत् १९८०
रविवार, २४ फरवरी, १९२४ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

गांधी—मास का कार्यक्रम

महासभा के सभापति मौलाना महम्मदअली ने निम्नाङ्कित अपील प्रकाशित की है:—

"पहले ही घोषणा की जा चुकी है कि गांधी मास १८ तारीख से आरम्भ होता है। सभी महासभा-समितियों के कार्यकर्ताओं से मेरा निवेदन है कि वे प्रारम्भिक दिवस को महासभा में सदस्य भर्ती करने के लिए विशेष उद्योग करें और उस दिन की चेष्टा के फल की सूचना उसी दिन सन्ध्या को अपनी अपनी प्रान्तीय महासभा समिति के पास पत्र द्वारा भेजें। मैं विश्वास करता हूं कि इस विषय में भिन्न भिन्न महासभा समितियों के बीच खूब प्रतिद्वन्द्विता होगी और समस्त गांधी मास में दिन प्रतिदिन प्रतियोगिता का भाव उत्तरोत्तर बढ़ता जायगा। हम लोगों के महान् नेता को कारामुक्ति के पश्चात् स्वास्थ्य-सुधार के काल में इस बात से बढ़ कर और कोई वस्तु आनन्ददायक नहीं होगी, कि उनके देशवासी उनकी शान्तिमयी सेना में अधिकाधिक संख्या में अहिंसा मतावलम्बी सैनिक बन रहे हैं। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि जो लोग महात्माजी को प्यार करते हैं तथा जिनके हृदय में उनके प्रति भक्ति है, वे यदि दृढ़ सङ्कल्प के साथ चेष्टा करेंगे तो १९२१ में महासभा के जितने सदस्य बने थे उससे कहीं अधिक संख्या में इस बार सदस्य बनाये जा सकेंगे। मैं आशा करता हूं कि भिन्न भिन्न स्थानों का समुचित विभाग कर के उन्हें विभिन्न कार्यकर्ताओं के बीच बांट देना चाहिए और यह सब प्रबन्ध सुचारु रूप से १७ तारीख तक हो जाना चाहिए। मैं आशा करता हूं कि इन फलों को मैं क्रमानुसार समय समय पर बम्बई से प्रकाशित कर सकूंगा। मुझको कार्यकर्ताओं से यह अपील करने के लिए राय दी गई थी कि 'गांधी मास' के पहले दिन, दिन-रात चर्खे चलाने के लिए आदमियों का प्रबन्ध किया जाय। परन्तु मुझे मालूम होता है कि उतने सूत कातनेवाले [illegible] केवल चर्खा चलाकर नष्ट करना बेकार है—विशेष कर जब [illegible] अभी इतना ठण्डा है। परन्तु सूर्योदय से ले कर सूर्यास्त तक एक एक या दो दो घण्टे की बारी से २,००० चर्खा चलाने का बिल्कुल सम्भव है। इस प्रकार अधिक सूत तैयार हो सकेगा। मैं विश्वास करता हूं कि स्थानीय महासभा समितियां जहां तक हो सके, अधिक से अधिक संख्या में चर्खे चलवाने का आयोजन करेंगी और जितने चर्खे चलें और जितना सूत तैयार हो तथा जिस प्रकार का तैयार हो, उसकी सूचना प्रांतीय महासभा समितियों और अ० भा० महासभा समिति को भेजी जायगी। गांधी मास के पहले दिन जो अनुभव होगा उससे स्थानीय महासभा समिति को समस्त मास यह क्रम जारी रखने में उत्साह मिलेगा। घूम घूम कर खद्दर बेचने का काम भी होना चाहिए। साथ ही तिलक स्वराज्य फण्ड के लिए चन्दा भी वसूल होना चाहिए, तथा हर विषय का परिणाम अ० भा० महासभा समिति तथा प्रांतिक महासभा समितियों के पास भेजना चाहिए।

महात्मा गांधी के पास उनकी कारामुक्ति तथा चङ्गे होने के सम्बन्ध में ढेर के ढेर बधाई के तार और पत्र आये हैं। परन्तु मैं समझता हूं कि उनकी सत्यता मेरे बताये उपाय से काम करने से ही सिद्ध की जा सकती है। महात्माजी के कारावास तथा बीमारी में अधिक बनावटी सहानुभूति प्रकट करने की अपेक्षा उनके रचनात्मक कार्यक्रम की सफलता के लिए थोड़ा भी काम करना कहीं बेहतर है। मैं राष्ट्र से यह भी अपील करता हूं कि वह गांधी मास में स्वयं महात्मा गांधी जैसे जोश से कार्य आरम्भ करे—जो सर्वोत्तम उपदेशक और हिन्दुस्तान की एकता की प्रतिमा हैं। यदि विदेशी शासकों के साथ भी हमारा युद्ध ऐसा है, जिसमें कोई दुश्मन नहीं है, तब क्या इस बात की और भी अधिक आवश्यकता नहीं है कि हम मजहबी कट्टरपन, जातिगत द्वेष और व्यक्तिगत ईर्ष्या को अपने मार्ग में अड़चन न डालने दें? प्रत्येक व्यक्ति को उचित है कि अपने महान् नेता के पवित्र नाम पर उत्सर्ग किये हुए मास को आत्मपरीक्षण और इस प्रार्थना के साथ आरम्भ करें कि हममें जितने अच्छे आदमी हैं वे हमारी हृदय की सङ्कीर्णता, दुर्भाव और कठोरपन को दूर करें तथा हममें उस पूज्य नेता की भांति सच्ची राष्ट्रीयता का भाव भर दें। मुझे यह भी विश्वास है कि हिन्दुस्तानी समाचार पत्र इस विषय में राष्ट्र के समक्ष उदाहरण रखेंगे तथा उनसे मेरी एक यह भी अपील है कि वे अवसर के अनुसार कार्य करें। मुसलमानों से मेरी विशेष प्रार्थना है कि वे इस गांधी मास में अपने उद्योग से उस महात्मा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करें जिन्होंने उनके लिए इतने निःस्वार्थ भाव से कार्य किया है और जिसपर मुसलमान हृदय से विश्वास करते हैं।

खादी टिप्पणियां

कपास-संग्रह करने की विधि

कपास जमा करने के संबंध में प्रस्ताव और भाषण हो रहे हैं और लेख भी लिखे जा रहे हैं पर उसका अमल करने की विधि जानना भी जरूरी है। विजापुर (गुजरात) उद्योगालय की संचालिका श्रीमती गंगा बहन मजमूदार ने यह काम किस प्रकार शुरू किया है यह बात उनकी "[illegible] में निवेदन" नाम की विज्ञप्ति से मालूम हो सकती है। उसमें उन्होंने कपास जमा करने की प्रार्थना की है और उसके साथ ही कपास से कपड़ा बनवाने तक हर काम में जिस बात की जरूरत हो उसमें मजदूरी पर मदद देने की तजवीज की है। कपास खरीद देने का भी भार उन्होंने अपने सिर लिया है। वे गांवों में जाकर लोगों को कपास जमा करने के लिए उत्साहित भी करती हैं। ऐसी तजवीज हर प्रान्त में होनी चाहिए।

श्री काठियावाड़ खादी कार्यालय, अमरेली, के व्यवस्थापक ने अपने सूत के बंडल बांधने के प्रयोग के बारे में [illegible] रुई तथा कपास के बंडल बनाकर नमूने के तौर पर [illegible] हैं। यह रीति बहुत उपयोगी देखी गई है। [illegible] के लिए रुई को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में ऐसा बंडल मामूल से आधे आकार का बन जाता है। मशीन के [illegible] बंधी गांठों की रुई की अपेक्षा इस तरह बंडल में बंधी रुई को धुनकने में आसानी होती है। यह बात अनुभव कर के देख ली गई है। यदि खादी-संस्था में ऐसे हाथ के चलाये जाने लायक प्रेस रक्खें तो लाभ हो। जबतक लोग रुई के संबंध में पूरी तरह स्वावलंबी न हो जायं तबतक खादी-विभाग को रुई का संग्रह थोड़ा बहुत रखे बिना काम न चलेगा। [illegible] से एक जगह की कातने वालों ने यहां से अच्छी रुई मांगी है। आज ही [illegible] पत्र मिला है। वे १० [illegible] अच्छी रुई मांगते हैं। वह यहां से भेजी जा सकती है; पर [illegible] के [illegible]-मंडल को यह सुविधा क्यों न कर दी जाय? और [illegible] प्रान्त के खादी-मंडल इसका इन्तजाम क्यों न कर सकें? कारण समझ में नहीं आता। [illegible] पहले बंगाल की एक सुशिक्षित बहन ने अपना काता सूत बुनने के लिए यहां भेजा है। पूनी [illegible] यहीं से मंगाई थी। सूत का कपड़ा [illegible] के साथ [illegible] और पूनियां भी मंगाई हैं। भिन्न भिन्न स्थानों से ऐसी कितनी ही मांगें आया करती हैं। खादी का काम जबतक [illegible] स्थिति को न पहुंच जाय तबतक यह आवश्यक है कि इसकी सुविधा हर प्रान्त के खादी-मंडल [illegible]। [illegible] है, इसमें कुछ नुकसान उठाना पड़े; परन्तु उसके बदले में धुनने कातने की मजदूरी की जो रकम उनकी मार्फत पैदा हुई होगी उसी कीमत बहुत संभव है हानि से ज्यादह हो। कितनी ही बार तो ऐसा भी देखा गया है कि ऐसी हानि को बचाने के लिए कितनी ही गुनी मजदूरी गंवानी पड़ती है।

बाल-चरखा-वर्ग

बाल-वर्ग के एक उत्साही शिक्षक अपने विद्यार्थियों का कातने का वर्ग सफल बनाने के लिए कितने ही प्रश्न पूछते हैं। उन्हें अलहदा जवाब दे दिया गया है। परन्तु ऐसे वर्गों के प्रयोग बहुत सी जगह हो रहे हैं, इससे उनके प्रश्नों और उत्तरों का सार यहां दे देता हूं—"चरखे के प्रयोग विद्यार्थियों पर करने से क्या अनुभव हुआ है? इस प्रयोग के अनुसार चरखा-वर्ग अनिवार्य या वैकल्पिक करने के संबंध में आपकी क्या राय हुई है? बालक अपनी इच्छा से कातना पसन्द करते हैं? किस कारण? कितनी उम्र से कातना शुरू कर सकते हैं? किस उम्र में किस तरह का और कितना सूत आसानी से कात सकते हैं? इस संबंध में यदि कुछ अंक आपके पास हों तो भेजिएगा। कैसे चरखे की सिफारिश करते हैं? बालवर्ग में बालक ७ ८-९ साल के हैं। उनके लिए चरखा बड़ा पड़ता है। इस उम्र के बच्चों के लिए कोई खास चरखा तैयार किया है? इनमें से कितने ही बच्चे १०-१२ अंक का सूत कातते हैं। यह काम स्वयं-प्रेरणा से होता है। [illegible]-पाठशाला के एक शिक्षक उनकी निगरानी करते हैं।"

इन सवालों का जवाब यहां [illegible] विस्तार के साथ देता हूं। चरखे का वर्ग किसी भी बालक या बड़े विद्यार्थी के लिए, औद्योगिक शिक्षा की दृष्टि से, तो अवश्य ही उपयोगी है, परन्तु जिसे हम शिक्षा कहते हैं अर्थात् जिसमें तन और मन-संबंधी चतुराई, चिन्ता और उमंग पैदा की जाती है, उसके लिए तो चरखा वर्ग सादे से सादा, उपयोगी और दिलचस्प साधन है। यह तजरबे की बात है। यदि बालकों का दिल इसमें न लगता तो [illegible]। वर्तमान शिक्षा भी [illegible] मालूम होती? दिलचस्पी पैदा करना शिक्षक की चतुरता और कुशलता पर अवलंबित है। लड़कों के पास यदि मिट्टी और पानी रख दिया जाय तो वे मिट्टी के गोले बना कर खेलने लगेंगे। इसी प्रकार यदि अच्छा चरखा और अच्छी पूनी उसके पास रक्खी जाय तो वह आसपास लोगों को कातते हुए देख कर कातने लगेगा। और जब उसके सूत की [illegible] रोज एक डोरी में अलग अलग लटका कर रक्खी जायगी तब तो वह अपने सूत का मुकाबला हर रोज करेगा। [illegible] घर के दूसरे लोगों के सूत के साथ मिलायगा और इसमें से जब एक [illegible] कपड़े का बनाकर उसे दिया जायगा तब अनिवार्य या वैकल्पिक का सवाल [illegible] न करेगा। एक बार ऐसा वायु-मण्डल तैयार हो जाय और वह निर्जीव न हो पाने तो [illegible] बराबर चलता रहेगा। सात बरस की लड़की को मैंने [illegible] से कातना सिखाया है। उससे भी कम उम्र के बच्चों को [illegible]-चरखे के साथ कातते हुए देखा है। [illegible] उस लड़की को दिया गया था। मामूली तरह के छोटे चरखे उस वक्त मौजूद न थे। [illegible]-चक्र में यदि [illegible] को बराबर [illegible] और [illegible] की जाय तो बालकों के लिए वह ठीक मालूम होता है। उसकी बनावट साफ और मजबूत है। और वह हलका भी काफी है। उसके तकुवे का [illegible] सीधा-सादा है। और काम पूरा होने पर उसे चरखे के अन्दर तक में अच्छी तरह रख सकते हैं। अच्छा चलने वाला चरखा देखकर वह बालिका कातने तो बड़ी उमंग के साथ बैठी; परन्तु थोड़ी देर कात कर रख देती जब आसपास कातनेवाले अपने तारों को फालकी पर उतारने लगते तब वह खेलने को छुट्टी चाहने लगती। थोड़े [illegible] इस प्रकार शुरू में चार पूनियां, फिर आठ पूनियां, फिर १८० तार फिर कितने ही दिनों तक २०० तार इस तरह धीरे धीरे आगे बढ़ती। फिर सूत इकट्ठा हुआ और वह बुनने गया (सिर्फ बानो में गया) तब उसकी उमंग बढ़ी और फिर तो काम मजे में चला। फिर तो उसे अपने कपड़े पहनने की खुशी होती है और यदि दूसरा कपड़ा ले तो उसके बदले में उतना सूत मांगने से बेजा नहीं मालूम होता।

"जरा पढ़े-लिखे विद्यार्थी तो फिर हिसाब भी लगाने लगते हैं कि इतना गज कपड़ा चाहिए तो उसके लिए कितना सूत कातना होगा? कितने अंक का सूत कातना ठीक है? उसके लिए कितनी

दरकार होगी ? कपास ही लेना चाहें तो कितना लेना चाहिए ? यह हिसाब लगाते हुए गणित और अर्थशास्त्र अर्थात् वस्तु और समय की कमखर्ची का ज्ञान उसे सहज ही हो जाता है। और यह बात कोरी कल्पना नहीं, अनुभव की है।"

मगनलाल खुशालचन्द गांधी

खादी-मंडल की यात्रा

खादी-मण्डल ने बैलगाड़ी में बैठ कर करनाटक की यात्रा शुरू की है। उसमें श्री शंकरलाल बैंकर, श्री जमनालाल बजाज, श्रीमती अवन्तिकाबाई गोखले, श्री गंगाधरराव देशपाण्डे और श्री राजगोपालाचार्य भी थे, जो कि चौबीसों घण्टे खादी का चिंतन करते हैं। करणाटक की धूल से त्रस्त होने के बजाय श्री राजगोपालाचार्य वहाँ के देहात पर मुग्ध हुए हैं। यं. इं. में अपनी यात्रा का सविस्तर वर्णन उन्होंने दिया है। उसका शिक्षादायक अंश यहाँ दिया जाता है—

"सीजहल्ली गाँव जाते हुए हड्डी-पसली तो ढीली हो गई; पर मालूम हुआ कि वहाँ जाना अच्छा हुआ। वहाँ के लोग सूत कात कर पाछापुर के बाजार में भेजते हैं। पाछापुर के जुलाहे अपनी ही जिम्मेवारी पर इस सूत का कपड़ा बुनकर बेचते हैं। सीजहल्ली के एक मन्दिर में हम लोग जमा हुए थे। बहनें अपने चरखे और पूनियाँ ले कर वहाँ आई थीं। उनके चरखे किसी सजीव यन्त्र की तरह उनके प्रेमपूर्ण हाथों से बड़े प्रेम के साथ घूम रहे थे। चरखे पुराने शीशम के बने हुए थे। नये बनाये सागौन के नहीं। उनपर नक्शी और कारीगरी भी खूब की गई थी। इस से मालूम होता था कि यह उनकी पुरानी बपौती है।

इन चरखों की बनावट बहुत सादी होती है। इनकी धुर लकड़ी की होती है। आश्रम के चरखे के बराबर ये अच्छे चाहे न हों; पर काम अच्छा दे रहे हैं। लोग जंगल से लकड़ी लाते हैं और एक रुपये में बढ़ई उन्हें चरखा तैयार कर देता है। चरखा उनके अर्थ-शास्त्र में एक आवश्यक वस्तु हो गई है। आज ये स्त्रियाँ अपना खर्च चरखे पर ही [illegible] हैं [illegible] आमदनी के बदौलत उनकी [illegible] बढ़ी हुई है।

सूत कातनेवाले लोग तमाम किसान हैं। अपने खेतों में कपास बोते हैं और उसे धुनक कर, सूत कात कर फिर एक खास लंबाई की फालकियाँ बना कर उन्हें बेचते हैं। इन फालकियों को वे सील कहते हैं। और ऐसी ५ सीलों से ४२ इंच अर्ज की आठ गज और ४ सीलों से ३६ इंच अर्ज की आठ गज खादी तैयार होती है।

हमने जिस गाँव को देखा उसमें २५ घरों में २० चरखे चलते थे। दूसरे एक गाँव में २५० घरों में १०० चरखे चलते थे। जो गाँव पाछापुर के बाजार में सूत भेजते हैं उनमें ८०० चरखे चलते हैं। साल में ९ महीना चरखे चलते हैं। [illegible] से फागुन तक औरतें खेतों में कपास चुनती हैं। कपास को हाथ से ही ओटती हैं—पत्थर की [illegible] पर [illegible] का [illegible] घुमा कर [illegible] अलग कर लेती हैं। [illegible]

[illegible] हाथ के सूत का कपड़ा नहीं पहनती थी। [illegible] की साड़ी पहनती थी। वह [illegible] सूत कातने का जो रुपया मिलता है उससे वे साड़ी खरीदती थीं।

"तुम अपनेलिए अपने ही सूत का कपड़ा क्यों नहीं बुनवा

"हमको कोई बुन दे तब न ? पाछापुर के तमाम करघे ब्राह्मण स्त्रियों के लिए चलते हैं!" उसने व्यंग्य में उत्तर दिया।

वहाँ एक जुलाहा खड़ा था। उसने कहा—"तुम जितनी कहो, साड़ियाँ बना दूं?" तब वह बोली—"हम अपनी साड़ियाँ तुम्हारे यहाँ बुनवावेंगी ?" हमने बहनों के साथ हिसाब लगा देखा। सब की समझ में यह बात आ गई कि हाँ, हमें अपने काते सूत की ही साड़ियाँ सस्ता पड़ती हैं और ज्यादह टिकती हैं। हमने तमाम औरतों और मर्दों से पसन्द कराया कि हम अपनी जरूरत का कपड़ा पाछापुर में बुनवा लेंगे।

पाछापुर में १५० मुसलमान और २५ हिन्दू जुलाहे हैं। इनमें ६० करघों पर हाथ का सूत बुना जाता है। एक मुसलमान जुलाहे के पास ३० करघे हैं। वह हर मास एक हजार रु. का सूत खरीदता है। ३६ इंच अर्ज की खादी की ८ गज की बुनाई १।=) थी और एक आदमी दिन में ८ गज बुन लेता है। तीन हजार की पूंजी पर यह आदमी अपना काम चलाता है। ५००) उसने समिति से लिये थे—वे उसने लौटा दिये। उसके १० करघे ५० इंच अर्ज का कपड़ा बुनते हैं। महीने में ३०० थान तैयार करते हैं। उनमें ५०-६० थान उसी गाँव में बिकते हैं। ३६ इंच अर्ज की आठ गज खादी का टुकड़ा वह समिति को ४) में बेचता है। उसने हमसे कहा—फी टुकड़ा दो-तीन आना ही मुनाफा लेता हूं। पहले वह मिल का सूत इस्तेमाल करता था। पिछले दो साल से वह अपनी ही निगरानी में हाथ का सूत बुनता है। जुलाहे तो तमाम खादी पहनते हैं; पर स्त्रियाँ सब नहीं।

करणाटक तो खादी के लिए मानों सोने की खान है। हम धारवाड़, हुबली, गदग, बागलकोट, आदि जगह घूम आये। वहाँ हमें खादी का भविष्य बहुत उज्ज्वल दिखाई दिया।

तुलसीगिरी नाम के एक गाँव में हमें एक बुढ़िया मिली। दूसरी कातने वाली औरतों की तरफ से वह जवाब देती थी। तमाम औरतों के कातना छोड़ देने पर भी बुढ़िया ने चरखा नहीं छोड़ा था।

"मैं तो अपना सूत [illegible] जुलाहे (अन्त्यज) को दे कर कपड़ा बुनवाती हूं। [illegible] अच्छी बनता है; मगर साड़ी नहीं बुन सकता।"

दो अन्त्यज पुरुष खादी बुनते थे। उन्होंने हाथ के सूत की खादी बुनना मुतलक नहीं छोड़ा था। उनमें से एक को बुलाकर हमने अपने पास बैठाया भी; पर किसीने इसपर नाक-भौंह नहीं चढ़ाई! यह देखने का बड़ा अच्छा अवसर था कि खादी कितनी ऐक्य-साधक चीज है।

"तुम दूसरे करघे ले कर अधिक सूत क्यों नहीं बुनते ?"

"मेरे सिर ५०) कर्ज है। इससे दूसरा करघा नहीं ले सकता।" तुलसीगिरी के स्त्रियों ने हमें वचन दिया कि हम [illegible] जमा करके, सूत निकाल कर, आस पास वाले जुलाहों से ही बुनवावेंगी। उन्होंने यह भी अंगीकार किया कि हम इस जुलाहे को कर्ज [illegible] और [illegible] लाकर देना भी [illegible]।

[illegible] ने कहा था—"[illegible] हैं; परन्तु [illegible] कामों से केवल वही लोग आगे बढ़ सकते हैं जो पढ़े होते हैं। और बहुत थोड़े लोग इस काम के लिए आगे पैर बढ़ावेंगे।"

बागलकोट से १८ मील, कजदोनी गाँव में ३०० घर हैं और १०० चरखे चलते हैं। दो अन्त्यज जुलाहे वहाँ सूत बुनते थे।

सूत बढिया था। एक औरत और उसकी बहन ने यहां पिछले साल १५०) का सूत काता! एक लडके और ३ लडकियों वाले छः आदमी के कुटुम्ब का काम-काज करके रोज चार घण्टा सूत कातती थी। उसने बडे अभिमान के साथ कहा कि मैंने सारा लगान अपने सूत की ही रकम से अदा किया।"

गदग में हमारी कितने ही अच्छे आदमियों से मुलाकात हुई। हाजी लाल साहब नाम का एक बुड्ढा और भारी जमींदार है। उसके पास दस करघे हैं। पहले वह मिल का सूत बुनता था। परन्तु असहयोग के बाद मिल का सूत न बुनने की कसम उसने खाई। अब उसके सिर्फ ४ ही करघे चलते हैं। उसके परिवार के ही लोग उनपर काम करते हैं और जितना हाथ का सूत मिलता है उतने ही का कपडा बुनकर सन्तुष्ट रहता है। उसके आनन्द को देख कर हम दंग रह गये। उसके बदन पर तमाम खादी उसीके करघे पर बुनी हुई थी। उसके सिर पर महीन खादी का बढिया बुना हुआ साफा था।

रायप्पा बुक्का नाम का एक लिंगायत व्यापारी खुद ही कातता है। और हाजी सा. से खादी बुनवा कर पहनता है। उसके बदन पर भी अपने ही सूत की बनी खादी थी। और वह कितनी बढिया थी! इसके उपरान्त उसे ८ हजार रुपये के व्यापार करने का समय मिलता था और उसने ५००) मुनाफा कमाया था।

शिवप्पा नायक नाम के एक खादीधारी बूढे आदमी हमें मिले। डा० उपाध्ये नाम के गदग के अग्रगण्य डाक्टर के वे पिता थे। अपना काम [illegible] चुकने पर रोज १२ बजे वे डाक्टर सूत कातते हैं और [illegible] घण्टा बुनते हैं। दूसरे एक डाक्टर वेंकटराव भी दो घण्टा रोज कातते हैं। उन्होंने श्री गंगाधरराव देशपांडे को अपने ही बनाई एक धोती भेंट की।"

कायर वार

प[illegible]बल के प्रयोग के बराबर कायरता शायद ही दूसरी हो। फिर यदि उसका प्रयोग छिपकर किया जाय तो उससे बढकर शर्म की बात और क्या हो सकती है? बेतिया म्युनिसिपल्टी के उप-सभापति पं. प्रजापति मिश्र पर ऐसा ही घृणित कायर वार एकने किया। वे गाडी पर चढे जा रहे थे। किसीने पिछे से ऐसे जोर की लाठी उनके सिर में तान कर जमाई कि उन्हें चक्कर आ गया। सिर से खून बहने लगा। डाक्टर बमुश्किल तमाम खून बन्द कर पाये।

बाबू राजेन्द्रप्रसादजी ने इसकी तहकीकात कर के अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है। उससे जाना जाता है कि बहुत संभव है यह करतूत बेतिया-राज के मैनेजर श्री रदरफोर्ड की हो। म्युनिसिपल्टी के चुनाव में भी रदरफोर्ड के दल की गहरी हार हुई और प्रजापति मिश्र अर्थात् महासभा-दल ही चुना गया। रदरफोर्ड सा. खुद चेयरमैनी के [illegible]दवार थे; मगर बुरी तरह शिकस्त खाई। कई दिनों से ग[illegible] अफवाह थी कि महासभावालों से इसका बदला साहब अच्छी त[illegible] लेंगे। लोग शंकित थे ही कि किसी दिन कोई वारदात न हो। [illegible] एक दिन प्रजापति मिश्र का सिर फुडवा ही डाला गया।

इसके पहले एक छोटी-सी घटना हो चुकी थी। महात्माजी की रिहाई पर खुशी मनाने के निमित्त सभा होने वाली थी और पं. प्रजापति मीना बाजार में, जोकि बेतियाराज में है, इसकी खबर देने गये। रदरफोर्ड सा० का एक चपरासी वहां पहुंचा और उनसे कहा यहां से निकल जाओ। साथ ही उनके एक साथी को एक तमाचा भी जड दिया। और, मिश्रजी को धक्का मारा। मीना बाजार के लोग इससे बडे नाराज हुए। वे उसे पीटने को तैयार हो गये। पं. प्रजापति ने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया। उसी दिन बडी धूम से वहां सभा हुई और कितने ही व्यापारियों ने मीना बाजार छोड दिया। और यह दूसरी वारदात होने पर तो मीनाबाजार में एक कुत्ता भी नहीं रह गया। छोटे-बडे सब व्यापारी राज की हद छोड कर म्युनिसपल्टी की हद में आ बसे। एक ओर तो पं. प्रजापति पर निष्ठुर आक्रमण और दूसरी ओर खटिया पर पडे हुए भी उनके शान्ति रखने के प्रयत्नों और चिन्ता का यह परिणाम है। इससे बेतिया राज की कोई ५०,०००) वार्षिक हानि हुई है। बाबू राजेन्द्रप्रसादजी लिखते हैं कि असहयोगी होने के कारण अदालतों की शरण नहीं ली जायगी; पर लाठी मारने वाले शख्स का पता हम को लग गया। उनके विवरण से यह भी पूरा संदेह होता है कि इस दुर्घटना के मूल में बेतियाराज के मैनेजर हैं और वहां के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट और पु० सुपरिटेंडेंट भी इससे बेखबर नहीं थे।

यदि इस नीचतापूर्ण कार्य में भी रदरफोर्ड का हाथ हो तो उनकी यह कायरता अंगरेज जाति को लजानेवाली है। [illegible] मजिस्ट्रेट और सुप० पुलिस को इसकी खबर पहले से थी [illegible] रदरफोर्ड साहब से अधिक मुजरिम हैं। जिस राज्य में ऐसी नीचता और कायरता हो सकती है वह कितने दिनों तक ईश्वर धोखा दे सकता है? धन्य है, पं. प्रजापति मिश्र को जिन्होंने इस आक्रमण को वीरता और शान्ति के साथ सहा, कहीं शान्ति-भंग न होने दी और इस प्रकार बिहार में पशुबल की कायरता और आत्मबल की वीरता के परिचय का मौका लोगों को दिया!

अन्त में बाबू राजेन्द्रप्रसाद के ही शब्दों में कहना पडता है कि "मि. रदरफोर्ड महात्मा गांधी के चम्पारण में आने के पहले वाले जमाने में नील वाले साहिब थे और जान पडता है कि वे अपने उस समय की रीति-नीति को भूले नहीं हैं और उन तरीकों पर अभी उन्हें विश्वास है जो उस समय काम में लाये जाते थे। यह सभी जानते हैं कि रैयतों को पीटना और उन्हें भिन्न भिन्न तरह से सताना साधारण बात थी। यह अच्छा ही है कि जो ढंग नीलवाले साहिबों को इतने दिनों तक खूब काम देता रहा वह अब महासभा कार्यकर्ताओं और मध्य-श्रेणी के लोगों पर भी आजमाया जा रहा है। उन दिनों में तो लोग इन व्यवहारों को अपमान-जनक नहीं समझते थे। और जो इसे अपमान-जनक समझते भी थे उन्हें अपनी पूर्ण निर्बलता का भी ख्याल होता था और इससे छुटकारे के लिए कोई यत्न नहीं पाते थे; कहीं कहीं मारा-पीट और आगलगी हो जाया करती थी। पर इन दिनों तो इस प्रतिशोधक ने नये ही ढंग निकाले हैं और मेरा पूर्ण विश्वास है, कि अगर जनता मार के बदले मार करने से बाज रही और बेइज्जती तथा दुर्व्यवहार को भी न बर्दाश्त करने की दृढ प्रतिज्ञा कर ली तो विजय उनके साथ है। पं. प्रजापति मिश्र का कठिन दुःख और दर्द भोगते हुए भी बारम्बार लोगों को शान्ति-रक्षा करते रहने व बदला लेने का हर्गिज ख्याल न करने के लिए समझाना, साबित करता है, कि चम्पारण में महात्मा गांधी का छः महीना रह जाना व्यर्थ नहीं हुआ।"

ह० उ०

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, फाल्गुन बदी ४, संवत् १९८०

उत्तरदाता कौन है ?

गोपीनाथ सहा को फांसी की सजा हुई है। कितनी ही बार सिनेमा के पर्दे पर तथा रंगभूमि पर ऐसी चीजें दिखाई जाती हैं जिनसे विकृत मस्तिष्क को बहुत कुछ शिक्षा मिलती है। और कितने ही अपराधों के लिए यह शिक्षा ही जवाबदेह होती है। गोपीनाथ सहा का मुकदमा बहुत दिनों तक चला। इस बीच उसने लोगों का ध्यान भी खूब खींचा। फिर एसोशियेटेड प्रेस ने उसके सविस्तर समाचार प्रकाशित किये। गोपीनाथ सहा के मन की स्थिति पागल जैसी थी या अच्छी थी, यह तो ईश्वर को ही मालूम; परन्तु अदालत में उसके मुंह से निकले वचन सर्वसाधारण के सामने रख देने से किसी का लाभ नहीं, विप्लव-दल के लोगों को यदि उनके द्वारा उत्तेजना मिले तो आश्चर्य नहीं। अतएव जिन जिन पत्रों ने इस मुकदमे का लंबा-चौड़ा चिट्ठा छापकर खून की घातकता विशेष रूप से दिखलाने का प्रयत्न किया है उन्होंने समाज की सेवा नहीं अ-सेवा ही की है।

मि. डे तो निरपराध अंगरेज थे। वे यदि सदोष होते, उन्होंने निर्दोष लोगों को सताया होता, तो भी उनका खून निंदा का ही पात्र समझा जाता। श्री टेगार्ट का खून हुआ होता तो वह भी निंद्य माना जाता। श्री टेगार्ट यदि सचमुच ही सपाटे में आ जाते तो गोपीनाथ सहा को खेद न होता। उसके लिखित बयान से यही मालूम होता है। उसके बयान में सर्वसामान्य विप्लववादी के बयान के अतिरिक्त कुछ नहीं है। प्रत्येक अहिंसावादी का कर्तव्य है कि वह इस मनःप्रवृत्ति का प्रतिकार करे। हिंसा-काण्ड के द्वारा स्वराज्य हरगिज नहीं मिल सकता—इतना ही नहीं बल्कि जो यह भी अपनी वाणी और व्यवहार के द्वारा दिखा देगा कि किसी भी राजनैतिक अथवा दूसरे साध्य के लिए हिंसात्मक साधन दुष्ट और गंदा है, वह देश की उत्तम सेवा करेगा। वे एक और प्रकार से भी सेवा कर सकते हैं। जो लोग ऐसे विप्लववादियों को जानते हैं उन्हें वे सज्जनों के सम्पर्क में लावें या किसी दूसरे उद्यम में उनको लगावें।

इतना कह चुकने पर अब यह देखें कि इस मनःस्थिति और ऐसे क्रूर कृत्यों के लिए जिम्मेवार कौन है? इस जवाबदेही का पता लगाने में एंग्लो इंडियन अखबारवालों को कठिनाई नहीं पड़ी। अलाबला बन्दर के सिर। महात्माजी जबतक आजाद रहे और असहयोग का संचालन करते रहे तबतक जो कुछ बिगाड़ होता था उसका ठीकरा उनके सिर फोड़ा जाता था। जब वे जेल में थे तब भी ऐसी बातों के लिए उनके सिद्धान्त जवाबदेह माने जाते थे। अब जब वे छूट कर आ गये हैं तो फिर उनका नाम लेना एंग्लो इंडियन पत्रकारों के लिए आसान और स्वाभाविक हो गया है। टाईम्स लिखता है कि "गांधीजी के अबतक इतने लिखने और कहने पर तथा हिन्दुस्तान में नवीन युग के उदय की इतनी बातें कही जा चुकने पर भी आज वही षड्यन्त्र हो सकते हैं जो १५ साल पहले देखे जाते थे और उनमें कितने ही लोग शरीक हो सकते हैं, यह कैसी अनोखी बात मालूम होती है।"

ऐसे समय में जब कि श्री डे जैसे निरपराध व्यक्ति का खून हुआ है उस अवसर पर उस खून की तथा ऐसी मनःप्रवृत्ति की निन्दा करने के सिवा दूसरी कोई बात करना सुरुचि-युक्त नहीं कहा जा सकता। फिर भी जब ऐसे प्रसंग पर कुतर्क किया जाता है और उसके मूल कारण के विषय में आंखें मूंद ली जाती हैं तब उसकी चर्चा आवश्यक हो जाती है।

गोपीनाथ सहा के सदृश उत्साही और कुपथगामी देशभक्त युवक १० साल पहले बहुतेरे थे, पर समय पाकर उनकी देशभक्ति को सच्चा मार्ग मिला। पांच साल पहले जब महात्माजी ने सत्याग्रह शुरू किया तब और उसके बाद १९२१ में हजारों नवयुवक जेलों में गये। उस समय ऐसे युवकों की संख्या अतिशय बढ़ गई थी—यही नहीं बल्कि उनके उत्साह और आवेश को सन्मार्ग भी मिल गया था। महात्माजी ने देश में पहली ही बार युवकों के सामने शुद्ध कर्तव्य-पथ रक्खा उनके सामने इतना काम लाकर रख दिया कि २४ घण्टे करने पर भी उन्हें फुरसत नहीं मिल पाती। फिर भी सरकार ने उनके काम की कदर नहीं की। उसने उलटा महात्माजी को ही जेल में ठूंस दिया। जब महात्माजी आजाद थे तब बिजली की गति से राष्ट्र-कार्य हो रहा था और राष्ट्रीय भावना फैल रही थी; पर विप्लव दल के एक भी शख्स को खून-खच्चर नहीं सूझा अथवा वे अपने साधनों को भूल गये थे, तो अब वर्ष १५ बाद फिर उसी हालत पर आने का कारण क्या हुआ? टाईम्स को सरकार के कामों में इसका कुछ भी कारण नहीं दिखाई देता। पर जिसे निष्पक्ष विचार करने की जरा भी शक्ति है वह जान जायगा कि इसके कारण खुद सरकार ने ही पैदा किये हैं। जब विप्लवदल की हलचल बिलकुल शान्त थी, असहयोग के रास्ते, रचनात्मक-कार्यक्रम के रास्ते अनेक युवक आ रहे थे और जिस समय रचनात्मक कार्यक्रम पर ही महात्माजी ने खास तौर पर जोर दिया, तभी उन्हें गिरफ्तार करने का अच्छा मौका समझा गया! उनको जेल में भेज कर सरकार ने सोचा कि अब पहले की तरह अन्याय और अत्याचार का वायुमण्डल बड़े मजे में स्थापित किया जा सकता है। नमक पर कर लगा, केनिया के साथ बेइन्साफी हुई, गवर्नरों और वाइसराय की धमकियां रोजमर्रा आने लगीं, दमन-नीति जारी ही रही और बंगाल में अनेक लोग वकील, दलील और अपील के बिना १९०८ और १९१४ की तरह नजरबन्द किये गये। ऐसी अवस्था में यह सवाल उचित है कि महात्माजी की शिक्षा के होते हुए भी यह क्यों हो रहा है, या यह समझना उचित है कि महात्माजी की शिक्षा के बदौलत ही इतने दिनों के बाद यह पहला खून हो रहा है। पिछले १० वर्ष के इतिहास से महात्माजी को निकाल दीजिए, यह मान लीजिए कि वे दक्षिण आफ्रिका से भारतवर्ष में आये नहीं, तो फिर अन्दाज लगाइए क्या हालत हुई होती? यदि हम पिछले कुछ वर्षों के राजकाज से महात्माजी को हटा देने का अनुमान कर सकते हैं तो भारत में आयर्लैंड और मिस्र में हुए हत्यों की कल्पना भी, देश की विस्तृतता के हिसाब से, करना कठिन न होगा। १९२१ में तो सरकार के इतिहासकार ने भी गवाही दी थी कि गांधीजी की शिक्षा के फल-स्वरूप ही अराजकता-संबंधी भीषण अपराध न होने पाये। परन्तु आवेश और क्रोध सच्ची वस्तुस्थिति के भान को भुला देते हैं। यह बात नहीं कि कोई भी एंग्लो इंडियन पत्र विवेक से काम न लेता हो। कैथोलिक हेरल्ड आव् इंडिया ने तो श्री डे के खून के बाद लिखी महात्माजी के छुटकारे संबंधी टिप्पणी में यह आशा प्रकट की है कि गांधीजी ही बंगाल के विपथगामी युवकों को सन्मार्ग दिखावेंगे। कलकत्ते के इंग्लिशमैन ने भी उनके छुटकारे पर लिखते हुए ऐसी आशा प्रकट की थी।

इसके साथ ही एक दूसरी बात का भी भान न भुलाना चाहिए।

सत की गति और शक्ति अपार है, अमोघ है, यह बात सच; परन्तु असत्, अन्याय और अन्धकार की गति और शक्ति सत् से भी अधिक त्वरित है। सत्य और प्रकाश तो अपना प्रभाव डालते ही रहते हैं। पर असत्य, अन्याय और अन्धकार भी उसके साथ जारी रहें तो वे अपना प्रभाव सत्य और प्रकाश की अपेक्षा अधिक जल्दी डालेंगे। इसका कारण है मनुष्य-स्वभाव। महात्माजी ने शान्ति की रक्षा और अराजकता के निर्मूल करने की आशा रखना ठीक है; पर महात्माजी की शिक्षा के खिलाफ कदम कदम पर यदि असत्य, अन्याय और अत्याचार को खड़ा कर दिया जाय तो इससे यद्यपि उनकी शिक्षा का प्रभाव असंभव तो न होगा, पर उसमें विलम्ब अवश्य लगेगा। अराजकता और हिंसा दोनों को खेत और खाद की जरूरत होती है। सरकार ने अबतक ये दोनों चीजें मुहैया करने में कोई कसर नहीं रक्खी है। अहिंसा के सत्वर प्रचार के लिए सरकार को ये दोनों बातें छोड़ देनी चाहिए।

(नवजीवन) महादेव हरिभाई देसाई

टिप्पणियां

महात्माजी का स्वास्थ्य

कर्नल मैडक ने जिस स्नेह के साथ महात्माजी की चिकित्सा और शुश्रूषा की है वह लोगों पर भली भांति प्रकट ही है। वे समय समय पर महात्माजी के स्वास्थ्य के समाचार मुझे भेजते रहते हैं। १५ ता. का लिखा उनका पत्र टांकों के विषय पर भी अच्छा प्रकाश डालता है—

"इन टांकों के संबंध में किसी प्रकार की चिन्ता करने की जरूरत नहीं। ऐसे केस में यह एक मामूली तकलीफ है। जो कुछ तकलीफ थी वह—अर्थात् कोई चार टांके-हटा दिये गये हैं और अब तो एक भी कष्टदायी टांका रहने की जरा भी संभावना नहीं मालूम होती।

"जख्म रोज बरोज साफ और कम होता जाता है। और इस बात में जरा भी सन्देह नहीं है कि महात्माजी के शरीर में अब पहले से ज्यादह ताकत मालूम होती है और दिमाग भी अच्छे दिखते हैं। ९ ता. की शाम को सिर्फ ९९ तापमान था और मेरे अन्दाज से तो वह थकावट का परिणाम है। उसदिन बहुत लोग मुलाकात के लिए आये थे। अथवा सोमवार को निकले टांके का भी फल हो सकता है।

"मुझे सिर्फ एक ही बात की चिन्ता रहती है कि किस प्रकार उन्हें अधिक मानसिक महनत करने से रोकूं। हम सब लोग इस बात में खूब चिन्ता रखते हैं। और आप इस बात को समझ सकते हैं कि महात्माजी के जैसे दिमाग के लिए इतनी चिन्ता रखना कितना कठिन है। मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि मेरी समझ में तो चिन्ता करने का कोई कारण नहीं।"

मैं १८ ता. के दिन महात्माजी से मिलने गया था। उनका शरीर पहले से अब अच्छा दिखाई देता है। हां, घाव में नये टांके लगने से पहले की तरह कमरे में घूम-फिर नहीं सकते। ये टांके इसलिए लगाये गये हैं कि घाव के ऊपर जल्दी चमड़ी आ जाय और जब वह भर जायगा तो फिर अच्छी तरह घूम-फिर सकेंगे। जिस दिन मैं गया, उन्हें इन टांकों के कारण दर्द हो रहा था। परन्तु मैं जिस काम के लिए गया था उसपर उन्होंने तुरन्त ध्यान लगा दिया और तुरन्त अपने हाथ से लिख कर तो जवाब भी दिये। काम में उनका ध्यान गये बिना रह कैसे सकता है?—यह तो कर्नल मैडक अच्छी तरह बता चुके हैं। दक्षिण आफ्रिका के क्लास एरिया बिल के संबंध में लिखाया उनका लेख इस बात का साक्ष्य देता है। नये टांके लगाने के पहले लिखे भाई देवदास के एक पत्र में महात्माजी की बढ़ती हुई शक्ति का अच्छा वर्णन है—

'पिछले दो दिनों से बापूजी की [illegible] बहुत ही अच्छी है। प्यारेलाल से दरवाजा न खुला तो खुद ही उठकर उसे खोलने गये!"

घाव के [illegible] तरह भर जाने पर ताकत तो बढ़ेगी ही। पर इस बीच कोई पन्द्रह दिन अभी अस्पताल में रहना पड़ेगा। भाई देवदास की लिखी एक बात पर मैं पाठकों का ध्यान दिलाना चाहता हूं—

"डाक का भार बढ़ता जा रहा है। पर उसका पूरा पूरा इन्तजाम रखते हैं। आपका सिर्फ एक ही पत्र बापूजी को दिखाया है, दूसरे भी जरूरी पत्र ही वे देखते हैं। कम जरूरी चिट्ठियों के संबंध में उनसे पूछ-ताछ करली जाती है।"

ऐसी अवस्था में पत्र भेजने वाले अभी महात्माजी पर और उनकी सेवा करने वालों पर दया करें तो अच्छा हो और यदि किसीके पत्र का उत्तर महात्माजी की ओर से न मिला हो तो आशा है वे उसे दरगुजर करेंगे।

२२ ता. का समाचार है कि जख्म के अन्दर फिर कुछ टांके निकले हैं। इससे आखिरी टांके खोल देना पड़े हैं। कर्नल मैडक की राय में चिन्ता का कोई कारण नहीं है।

पुकार का जवाब

श्री वल्लभभाई ने गुजरात से महात्माजी के चरणों में अर्पण करने के लिए जो फूल-पांखुरी मांगी है उसका अच्छा जवाब गुजरात की तरफ से मिल रहा है। एक भाटिया सज्जन के दस हजार रुपये श्री मणिलाल कोठारी के मार्फत मिले हैं। दैरेसलाम और स्टान्डर्टन जैसे दूर दूर के मुकामों से भी तार से रुपये आने लगे हैं। बरेली से एक सज्जन लिखते हैं कि मैंने "लीडर" में श्री वल्लभभाई की पुकार को पढ़ा और दो रु. भेज दिये। पीछे से ठीक ठीक पढ़ने पर मालूम हुआ कि कम से कम १०) भेजने चाहिए तो ८) फिर भेज रहा हूं। क्या करूं, मेरी हालत ऐसी नहीं है कि अधिक भेज सकूं। मैं गुजराती नहीं हूं। पर क्या महात्माजी के प्रेम का ठीका किसी एक ही प्रान्त ने ले लिया है? सो ये १०) स्वीकार करने की कृपा कीजिएगा।"

एक "रेल्वे मजूर" भाई ने एक पत्र लिखा है। उसकी सरलता हृदय-भेदक है। उसे दिये बिना रह नहीं जाता—

"आज के "नवजीवन" में श्री वल्लभभाई का सन्देश पढ़ा। मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि एक गुजराती की हैसियत से महात्माजी के प्रेम के खातिर यथाशक्ति सहायता करूं। गुजरात प्रान्तिक समिति के सभापति ने हर एक गुजराती से कम से कम १०) मांगे हैं। पर गरीब लोगों की कमजोरी को वे जानते हैं। इसलिए यह गरीब मजदूर जो कुछ रकम भेजता है उसे स्वीकार कीजिएगा। घर में धोती खोर में है, हाथ तंग है। फिर भी इस महीने के जेब खर्च की रकम महात्माजी के १० तारीख के फण्ड में अर्पण करता हूं। एक महीने तक मैं हरबात में संयम से काम लूंगा।

आप जानते होंगे कि बंबई जैसे शहर में ५० ६०) में एक मजदूर किस प्रकार की जिन्दगी बसर करता है। फिर भी देश और बापूजी के प्रेम के लिए श्री वल्लभभाई की पुकार पर यथाशक्ति सहायता करने से मुंह कैसे मोड़ा जा सकता है? जब से महात्माजी ने आन्दोलन उठाया है तब से आज तक [illegible]) का भी विलायती कपड़ा नहीं लिया। खादी और स्वदेशी मिल के सूत का कपड़ा पहनता हूं। मैं अपनी धोती [illegible] लड़कियों की ओढ़नी तथा

अपनी धोतियाँ मिल की इस्तैमाल करता हूँ। पर कातने के संबंध में मेरी बड़ी भारी कमजोरी है। इसे मैं अबतक दूर नहीं कर सका। यह मेरी बदनसीबी है। आज रविवार है। इससे डाक खाना बन्द है। कल मनीआर्डर करूँगा। जी तो बहुत छटपटा रहा है कि इसी दम जाकर मनीआर्डर भेज दूँ। पर आज सब डाकखाने बन्द हैं।"

यह लंबा पत्र ज्यों का त्यों मैंने इसीलिए दे दिया है कि इसे पढ़कर ऐसा शुद्ध, सरल, भक्ति-भाव केवल मजदूर ही नहीं बल्कि दूसरे लोग भी अपने अन्दर पैदा करें। यदि हम सब मजदूर हो जायं तो स्वराज्य दूर नहीं रह सकता।

विद्यार्थियों का हिस्सा

जब मैं पूना था तब महात्माजी की तन्दुरुस्ती चाहने वाले पत्रों में एक छोटी-सी पाठशाला के विद्यार्थियों का एक पत्र भी था। उसमें उन्होंने कहा था कि हम सब नियमित-रूप से सूत कातते हैं। उस समय तो महात्माजी छूटे नहीं थे। परन्तु महात्माजी की तन्दुरुस्ती की कुंजी निस्सन्देह उन्हें मिल गई थी। गुजरात महाविद्यालय के विद्यार्थियों के संबंध में, कितने ही महीने पहले, जरा सी शिकायत हुई थी। आज उन्होंने आश्चर्यजनक प्रगति कर ली है। विद्यालय में जितने घण्टे फुरसत के होते हैं उनमें वे सूत कातते हैं, धुनाई का काम नियमित रूप से चलता है, विद्यार्थी खुद अपने ही रुई को धुनक कर पूनी बनाते हैं और चरखे के दरजे में तो सारा दिन कोई न कोई चरखा चलता ही रहता है। इससे चरखा-दरजा अग्निहोत्री के अग्नि की तरह सतत जारी रहता है! इन विद्यार्थियों ने यह निश्चय किया है कि महात्माजी के स्वागत के लिए कम से कम १ हजार रुपया आपस में ही एकत्र किया जाय। यही नहीं, बल्कि पांच पांच तोला बढ़िया सूत कात कर उसकी खादी बना कर महात्माजी को अर्पण की जाय। ऐसा प्रशस्त निश्चय यदि सरकारी कालेज के विद्यार्थी भी करें तो क्या बुरा?

हमारी कमजोरी

कमजोरी हमारी नसनस में घुस गई है। कुछ ही दिन पहले, अहमदाबाद के सरकारी कालेज में एक जलसा था। उसमें गाने वालों ने "वन्दे मातरम्" का सुर अलापा। तुरन्त विद्यार्थी खड़े हो गए। आवेश में वे उठ तो गये; परन्तु प्रिन्सिपाल की जरा ही घुड़की से फौरन् बैठ गये! सिर्फ एक अध्यापक बाबू सोल और उनकी पत्नी इस करुणदृश्य को न देख सके और तुरन्त उठ कर बाहर चले गये! किसी विद्यार्थी की यह हिम्मत न हुई कि उठ कर उनके साथ बाहर निकल आता।

कितने लोग पूछा करते हैं कि राष्ट्रीय पाठशालाओं और विद्यालयों में आप सरकारी शिक्षालयों से अधिक क्या पढ़ाते हैं? उसका एक ही उत्तर है "निर्भयता"। शील का मूल है निर्भयता। हमारी शिक्षा-संस्थायें यदि इतनी ही बात अपने विद्यार्थियों के दिल में बैठा सकें तो हमारा कर्तव्य पूरा हुआ।

एक कदम आगे

बोरसद में आत्मशुद्धि का जो रचनात्मक काम चल रहा है उसके संबंध में वकीलों के कर्तव्य के विषय में उनसे कुछ कहा गया था। आनन्द की बात है कि पटेलभाइयों के सब से छोटे भाई काशीभाई जवेरभाई पटेल ने बोरसद के रचनात्मक कार्य के लिए अपनी वकालत छोड़ दी है और दूसरे एक-दो वकीलों के नाम भी सुनाई देते हैं। इसके लिए हम भाई वल्लभभाई और काशीभाई दोनों का अभिनन्दन करते हैं। जब असहयोग पूरे जोश के साथ चल रहा था और अदालत के असहयोग की लहर ऊंची उठ रही थी उस समय असहयोग करने वाले बहुतों ने पीछे से सहयोग किया है। पर आज जब कि असहयोग का प्रवाह शान्ति के साथ बढ़ रहा है तब असहयोग करनेवालों के लिए फिर से सहयोग करने का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। खेडा में और भी खादी के प्रेमी और नित्य कातनेवाले वकील हैं। हमें आशा रखनी चाहिए कि वे भी असहयोग में योग दे कर बोरसद के आत्मशुद्धि के कार्य में और महात्माजी के स्वागत में सहायक होंगे।

डाक्टर किचलू और श्री गिदवानी

श्रीमती गंगाबाई गिदवानी का तार है कि डा. किचलू और श्री गिदवानी की जोड़ी जैतो में गिरफ्तार कर ली गई है। यह हिन्दू-मुसल्मानों की जोड़ी यदि इससे पहले पकड़ी जाती तो हमें जरा खेद हो सकता था। अब तो उनकी सेवा इतनी अधिक हो गई है कि सरकार को उसकी कदर किये बिना चारा ही न रह गया। और अकालियों का काम भी ठीक ठीक चल रहा है। जैतो और भाईफेरू का मोर्चा तो चल ही रहा है। भाई फेरू के सिलसिले में ७६६ वीर पकड़े जा चुके हैं। गुरुद्वारा प्र. क. के तमाम सभ्यों के दूसरी बार पकड़े जाने के बाद अकालियों को सरकार ने यह नई उत्तेजना दी है। यदि डा. किचलू और आचार्य गिदवानी की गिरफ्तारी से पंजाब के हिन्दू-मुसल्मान की एकता बढ़े और अकालियों का भी दोनों जातियों के साथ अच्छा संबंध हो जाय तभी कहना होगा कि हमने इस गिरफ्तारी की कद्र की है। नहीं तो क्या यह बढ़िया आत्म-बलिदान व्यर्थ न जायगा?

दोनों सज्जन जैतो में पकड़े गये हैं। १५ ता. को जैतो जाने के लिए ५०१ वीरों की सेना ने कूच किया था। उनकी कूच दक्षिण आफ्रिका की कूच की तरह ऐतिहासिक थी। उसका यथावत् वर्णन पहले ही दिन आचार्य गिदवानी ने अखबारों में किया था। अब ऐसे वर्णन प्रकाशित करने का अधिकार उनसे छीन लिया गया है। गिदवानीजी की तो जैतो जाने की ममानियत पहले ही से थी। अतएव उनके लिए तो २॥ वर्ष की सजा गढ़ रखी ही है। मगर यह नहीं स्पष्ट होता कि डा. किचलू किस परिस्थिति में पकड़े गये हैं।

एक गवर्नर का सत्याग्रह

अकोला से खबर मिली है कि सर फ्रेंक स्लाय पिछले महीने में वहां जाने वाले थे। उनका स्वागत करने के लिए रा. ब. जी. के. दामले स्टेशन पर गये थे। जिला के मिजाजी कलेक्टर ने उन्हें यह कह झड़क दिया कि "जब आप लोग उनका स्वागत करना नहीं चाहते तो आप यहां किसलिए आये हैं?" श्री दामले घर चले आये और गवर्नर को एक पत्र लिखा कि "अपनी इस मान-हानि के कारण मैं आपके किसी स्वागत-समारंभ में शरीक नहीं हो सकता।" इसपर गवर्नर ने कलक्टर से कहा कि उनसे माफी मांगो। पर वह तैयार नहीं होता था। तब गवर्नर ने निश्चय प्रकट किया कि मैं आपके तजवीज किये किसी भी स्वागत-कार्यक्रम में शरीक न होऊंगा! और इससे एक कार्यक्रम भी अधूरा रह गया। तब कहीं जा कर हजरत ने बुरे-भले मन से किसी तरह माफी मांगी और अधूरा रहा कार्यक्रम पूरा हुआ।

यह घटना यदि सच हो-और जिस सूत्र से यह मिली है उसे देखते हुए विश्वास-पात्र मालूम होती है-तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। सत्याग्रह अंगरेजों के लिए अपरिचित नहीं है। वे भी मौका पड़ने पर सत्याग्रह कर लेते हैं; पर जब उनके साथ सत्याग्रह किया जाता है तब लार्ड लेवर ह्यूम के कथन के अनुसार वे तबतक सत्याग्रह के बल का स्वीकार नहीं करते जब तक हार नहीं जाते। दक्षिण आफ्रिका में जनरल स्मट्स ने एक बार स्पष्ट कहा था कि जहां आत्म-सम्मान का सवाल हो वहां मैं हरएक मनुष्य का कर्तव्य

मौलाना पर इल्जाम

[illegible]

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक [illegible]

मुद्रक–प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, चैत्र सुदी ९, संवत् १९८० रविवार, १३ अप्रैल, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाड़ी

टिप्पणियां

क्या यह बेजा हुआ ?

बड़े भाग्य से मुझे ऐसे मित्र प्राप्त हैं जो यदि मैं सत्पथ से भ्रष्ट होता होऊं या होने का अंदेशा हो तो मुझे उससे विचलित नहीं होने देते। ऐसे एक मित्र का ख्याल है कि पिछले अंक में "मेरा कार्य" नामक लेख में मैंने बंबई के सरकार के साथ पूरा इन्साफ नहीं किया। मैंने सरकार को इसबात के लिए धन्यवाद देने से इन्कार किया है, जो उसने मेरी अच्छी से अच्छी चिकित्सा का प्रबंध कराया और मित्रों आदि को शौक से मिलने देने की सुविधा करके मेरे भले–चंगे होने का रास्ता सुगम कर दिया। मेरे मित्र की राय में सरकार का यह व्यवहार उसके हृदय के पलटे का एक चिह्न था और इसका कारण था बंबई के नये लाट साहब का आगमन। इस दलील पर मैंने बड़ी गहराई के साथ विचार किया और, इच्छा न रहते हुए भी, मुझे इसी नतीजे पर कायम रहना पड़ता है कि सरकार को इस बात के लिए कि उसने सर्वोत्तम औषधोपचार का प्रबन्ध किया या मित्रों को मुझसे मिलने–जुलने की सुविधा कर दी, धन्यवाद देने का कोई [illegible] नहीं। हां, यदि सरकार [illegible] अपने कर्तव्य का पालन करे तभी तक उसे धन्यवाद [illegible] हो तो बात दूसरी है। मैंने इस बात को काफी [illegible] स्वीकार किया है कि सरकार से हम एक कैदी के [illegible] उम्मीद रख सकते थे उसके अनुसार उसने मेरी बीमारी के [illegible] बरताव किया। परन्तु इसके लिए मैं सरकार को सरकार के नाते धन्यवाद देने में असमर्थ हूं—उस भाव में जिस भाव में मैंने कर्नल मैडक, कर्नल मरे और मेजर जोन्स को दिया है। इन सज्जनों ने जो मिलनसारी मेरे साथ दिखलाई वह मामूल से अधिक थी और यदि वे इतना न करते तो भी मैं इस बात को जानता कि अपने दायरे के अन्दर उनसे जो कुछ उम्मीद की जा सकती थी, वह उन्होंने किया। इन सज्जनों के इस व्यवहार में हमारा निजी–ताल्लुक कारणीभूत था, और इसलिए उन्हें धन्यवाद देना मेरा कर्तव्य था। दलील के इस सिरे को पूरा करते हुए, यदि औचित्य की मर्यादा न टूटती हो, तो मैं कह सकता हूं कि मेरे और जेल के अफसरों—यहां तक कि सरकार के भी दरम्यान जो [illegible] संबंध बना रहा उसमें एक कैदी की हैसियत से मेरे सावधानी और एहतियात के साथ रक्खे विनीत आचरण का कम हिस्सा नहीं है। मैंने केवल अपनी इस चौथी परीक्षा के मौकों पर [illegible] बात पर जोर देने के लिए इसका उल्लेख किया है कि यदि हम अपना व्यवहार एक–सा विनीत रक्खें तो उससे भीतर विरोध, बदगुमानी और सन्देह के हाथ–पांव ढीले हो जाते हैं।

अब हृदय–परिवर्तन की कल्पना को लें। मैं बहुत चाहता हूं कि इस हृदय–परिवर्तन का अनुभव हो। मैं तो उसकी राह देख रहा हूं। पाठको, मैं तो थोड़े भी सच्चे हृदय के पलटे से बिना विलम्ब हथियार रख सकता हूं। परन्तु वह बहुत [illegible] चाहिए हृदय के पलटे की मामूली कसौटी थी इतना [illegible] छोड़ देना और मि० हार्निमैन को स्वाभाव [illegible] देना। सरकार उन्हें [illegible]

प्रिय पाठकगण !

आजकल उत्तर–हिन्दुस्तान के कई अखबारों में हिन्दू–मुसल्मानों के दिल बिगाड़ने की कोशिश हो रही है। इन अखबारों में द्वेष, अत्युक्ति, इत्यादि झूठ के लक्षण दिखाई देते हैं। इसलिए ऐसे मौके पर आपका और मेरा कर्त्तव्य है कि हम इस बढ़ती हुई ज्वाला को बुझाने की पूरी पूरी कोशिश करें। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमारे बीच में अन्तराय–तफरका–पड़ने का कोई कारण नहीं है। हम सब अपने अपने धर्म–कर्म पर कायम रहते हुए एक दूसरे के साथ भाई के मुआफिक बरताव कर सकते हैं। इसीतरह रहना हमारा धर्म है। इसलिए मैं उम्मीद रखता हूं कि आप सब लोग दोनों कौमों में भाई–चारा बढ़ाने की निरंतर कोशिश करेंगे। हिन्दू या मुसल्मानों के खिलाफ जो कुछ कहा या लिखा जाय उसे आप बगैर जांचे और छान–बीन किये हरगिज न मानें।

जुहू
चैत्र शुक्ल ६

आपका
मोहनदास गांधी

भी फैल गई। मैं मानता हूं कि मेरा इस सरकार पर बड़ा विश्वास था, पर अब इतना ही अविश्वास हो गया है। किन्तु मैं इतना विवेकशील जरूर हूं कि सच्चे हृदय-परिवर्तन को पहचान सकूं। यह कहा गया है कि यदि सर जार्ज लायड होते तो वे मेरी बीमारी में श्रीमान् सर हेस्ली विल्सन की तरह व्यवहार न करते। मैं इस बात को नहीं मानता। यद्यपि सर जार्ज लायड मुझे चाहते नहीं थे तो भी वे मेरे इलाज का इन्तजाम उसी तरह करते जिस तरह कि इन लाट साहब ने किया। कोई ९ माह पहले जब मैं शुरू में यरवडा जेल में बीमार हुआ तब उन्होंने कर्नल मैडक को मुझे देखने के लिए भेजा था। उनसे कहा गया था कि जब तक मुझे आराम न हो जाय वे हफ्ते में एक बार मुझसे मिलें और हर हफ्ते मेरी तबीयत के समाचार उन्हें भेजते रहें। अंगरेज अफसरों के संबंध में मेरे इतने ऊंचे खयालात हैं कि बहुत लोग उसका अनुमान न कर सकेंगे। उन्हें अपने कर्तव्य-पालन का बड़ा ही खयाल रहता है। हां, किसी मामूली हाकिम की ईमानदारी व्यवहार-नीति (policy) की सीमा को लांघ कर आगे नहीं जाती। यह उसका कसूर नहीं। वह ऐसी कार्य-प्रणाली का वारिस है जो पुश्तों से चली आ रही है, जो सबल के द्वारा निर्बल की लूट पर अपनी हस्ती रखती है। जब उस प्रणाली के, जिसपर उसका जीवन अवलम्बित है, हाथ-पांव ठण्डे पड़ने लगते हैं तब वह आपे से बाहर हो जाता है। पर मेरा यह विश्वास है कि कोई भी मनुष्य उस प्रणाली के अधीन रहकर इससे बेहतर परिचय दे सकता है। इसलिए जितना ही जल्दी यह मटिया-मेट हो जाय या जड़-मूल से बदल दी जाय, उतना ही हम सब के लिए अच्छा है। (यं०इं०)

एक और गलतफहमी

मौलाना महम्मदअली के संबंध में जो गलतफहमी हुई उसका उल्लेख मैंने अग्रलेख में किया है। उसी तरह की एक और गलतफहमी हकीम अजमलखान साहब के तिब्बी कालेज में हुई। तिब्बी कालेज में मेरे छुटकारे पर जल्सा किया गया। उसमें एक हिन्दू विद्यार्थी ने मेरी तुलना ईसा-मसीह के साथ की इसपर एक विद्यार्थी ने इशारा किया कि बड़े बड़े पैगम्बरों के साथ एक प्राकृत मनुष्य की तुलना करना ठीक नहीं। इसपर उस विद्यार्थी को बुरा मालूम जिसने तुलना की थी; क्योंकि इसे उसने मेरा अपमान समझा। तब तुलना की मुखालिफत करनेवाले ने उसे समझाया और माफी मांगी। किसी अखबारवाले ने इस तिल का ताड़ बना दिया।

यह टिप्पणी लिखते समय ही एक छोटा-सा समाचार मेरी नजरों से गुजरा। कलकत्ते में दो शख्स चाय पी रहे थे। एक ने मेरी तारीफ की, दूसरे ने बुराई। तारीफ करनेवाले को निन्दा अच्छी न लगी और उसपर टूट पड़ा। फिर दोनों बहादुरों के दो दो हाथ हुए। अन्त को पुलिस ने इस हिंसक मुकाबले का अन्त किया।

अब मैं वीर-माल किसे पहनाऊं? स्तुतिकर्ता को या टीकाकर्ता को, या दोनों को, या दोनों नहीं? जवाब आसान है। स्तुतिकार ने टीकाकार पर प्रहार करके मेरी निन्दा की। उसने वह प्रहार मुझीपर किया। टीकाकार यदि आ कर मुझे दो कोड़े लगा जाता तो मैं अपने अहिंसा-धर्म के अनुसार उसे तुरन्त माफ कर देता—शायद उसके चाबुक को चूम भी लेता अगर मुझमें इतना बल होता। जिन्होंने चोरासी वैष्णवों की वार्ता पढ़ी है उन्हें इसपर आश्चर्य न होना चाहिए। परन्तु स्तुतिकर्ता ने टीकाकर्ता पर प्रहार कर के मुझपर कोड़े से भी अधिक चोट पहुंचाई। अभी मेरी अहिंसा इतनी दूर नहीं जाती कि उसे माफ कर दूं। स्तुतिकार यदि मुझसे आज तो मिले तो उन्हें मेरे कटाक्ष जरूर सहने पड़ें। बुराई करनेवाले ने जैसा माना वैसा किया। परन्तु स्तुति करनेवाले ने जैसा माना वैसा नहीं किया। स्वामीजी और मौलाना की भाषा में कहूं तो स्तुतिकार ने अपने धर्म-सिद्धान्त की निन्दा की और उसका धर्म-सिद्धान्त चाहे कितना ही बढ़िया क्यों न हो, पर आचरण में वह टीकाकार से उतर गया।

अतएव मेरी वीरमाल तो मेरे ही पास रहेगी। उसे मैं स्तुतिकार को नहीं दे सकता। और टीकाकार तो बेचारा विधर्मी ठहरा—अतएव आज के वायु-मण्डल में विधर्मी को वीर-माल कौन पहनावे? पर यदि वायु-मण्डल बदल जाय और मुझे दो में किसी एक को वीर-माल पहनानी ही पड़े तो मैं टीकाकार को पहना कर हिमालय की गोद में भाग जाऊं।

सहनशीलता स्वराज्यवादियों का प्रथम लक्षण है। जबतक यह दुनिया बनी हुई है तबतक जितने दिमाग हैं उतनी अक्ल तो रहेगी ही। स्वराज तो इन तमाम मत-वादियों के लिए होगा। लंबे और छोटे सब तरह के सिरों को यदि हम काटने लगजायं तो एक-से सिर की जोड़ी रही नहीं सकती। अतएव हमें अपनी आजादी के बराबर दूसरे की आजादी की इज्जत करनी चाहिए। सरकार से हम किस बात के लिए लड़ते हैं? क्या केवल विचार-स्वातन्त्र्य के लिए नहीं? मेरे विचार सरकार को बुरे मालूम हुए—इसलिए उसने मुझे पकड़ कर कैद कर दिया। तिब्बी कालेजवाले और कलकत्तेवाले स्तुतिकार ने भी सरकार का रास्ता अंगीकार किया। अतएव वे सरकार के सहयोगी हुए। हिन्दू और मुसलमान दोनों को यदि साथ रहकर स्वराज्य लेने की गरज हो तो वे इस पाठको बरजबान याद कर लें और उसके अनुसार चलें—

एक-दूसरे के आचार-विचार को बरदाश्त करें और अपने अपने आचार का पालन करने में एक दूसरे को बाधक न हो।

जो सब से पहले इस सिद्धान्त का पालन करना शुरू कर देंगे उन्हींकी जीत समझिए। यदि एक दूसरे की राह देखा करेंगे तो दोनों जहां के तहीं रह जायंगे। 'आप बैठिए-आप बैठिए' कहते हुए गाड़ी चली जाने का डर है।

बचे

दक्षिण-आफ्रिका में हिन्दुस्तानियों पर जो अलग बसने की तलवार लटक रही थी उससे अभी तो वे बच गये हैं। श्रीमती सरोजिनी के प्रयत्न की सफलता आकस्मिक रूप से हुई है। जनरल स्मट्स ने देखा कि लोक-मत द० आ० की सरकार के पक्ष में नहीं है। सो उन्होंने वहां की पार्लियामेंट को बन्द करके नया चुनाव करने का प्रस्ताव किया है। इससे जो नये कानून मौजूदा पार्लियामेंट में बनने वाले थे वे अभी तो मुल्तवी हो गये हैं। परन्तु नई पार्लियामेंट में ऐसे सभासद नहीं आवेंगे जो भारतीयों के साथ ठीक ठीक इन्साफ करें। यदि उनके भाव मौजूदा सभासदों से भी द० आ० निवासी हिन्दुस्तानियों के प्रति अधिक कठोर हों तो जरा भी आश्चर्य नहीं। फिर भी 'मौत के मुंह से निकला बहुत बरस जीता है' इस न्याय से अभी तो हमें सन्तोष मान लेना चाहिए।

सजीव लोकमत की कीमत

द० आ० में जो घटना अभी हुई है उससे हमें बहुत नसीहत लेनी चाहिए। एक ही शहर में जनरल स्मट्स के पक्ष के प्रतिनिधि की हार हो जानेसे उन्होंने देश का सारा काम रोक दिया है। पार्लमेंट बन्द करते समय भी उन्होंने कहा कि यदि लोकमत हमारे पक्ष में न हो तो हम इच्छा रखते हुए भी नई नीतियों को ग्रहण

नहीं कर सकते। एक ही मुख्य शहर के मतदाताओं का इतने प्रतिपक्ष के साथ अपनी राय देना ही हमारे लिए काफी है। इसमें जनरल स्मट्स ने अपनी चतुराई और लोकमत का आदर दोनों प्रकट किया है।

क्या यह हालत हमारे यहां है?

यहां तो सरकार आम तौर पर लोकमत के खिलाफ चलने की ही कायल है। जहां देखिए तहां लोकमत का अनादर होता है। मौलाना हसरत मोहानी अथवा श्री हार्निमन का सवाल सरकार की दृष्टि से न-कुछ समझना चाहिए। परन्तु सरकार इन बातों में भी लोकमत के अधीन होना नहीं चाहती। मानों उसके खिलाफ चलने में ही उसे आनन्द आता है।

यह चित्र और वह चित्र

द० आ० में श्रीमान् युवराज के जाने की तैयारियां हो रही थी। पर वहां अब गोरे लोग नये चुनाव हंगाम में मशगूल रहेंगे। इससे जनरल स्मट्स ने कहलवाया कि अभी शाहजादे का आना मुल्तवी कर दीजिए। वह मुल्तवी हो गया। यह चित्र है द० आ० का। अब यहां के १९२१ के चित्र पर नजर डालिए। श्रीमान् युवराज को यहां न बुलाने के लिए सारे देश ने सरकार से प्रार्थना की। पर सरकार टस से मस न हुई। अपनी ही जिद पर अड़ी रही। इसका जो कड़वा फल निकला वह अभीतक भूला नहीं गया। न चाहते हुए भी जनता की ओर से उनका अपमान हुआ। बम्बईमें लोगों ने शान्ति-भंग कर के अपनी प्रतिज्ञा को हरताल लगा दिया और जरा देर के लिए ऐसा मालूम हुआ कि बाजी हाथ से चली गई।

यह राष्ट्र का अनादर कबतक जारी रहेगा? इसका जवाब १९२० में कलकत्ता और नागपुर की महासभा ने जो दिया था वही आज भी कायम है। एक वाक्य में कहें तो तबतक जबतक देश तैयार-लायक-न हो। इसका यह अर्थ हुआ कि (१) लोग जबतक सर्वांग में खादी-भूषित होकर विदेशी तथा यहां की मिलों के कपड़ों का त्याग न करें तबतक (२) अथवा हिन्दू-मुसल्मान एक दिल न हो जायं तबतक (३) अथवा अछूत और दलित जाति का सत्कार कर के हिन्दू लोग शुद्ध न हों तबतक (४) अथवा लोग महासभा का काम-काज ठीक ठीक चलाना न सीख जायं तबतक (५) अथवा देश व्यावहारिक शान्ति को पूर्ण रूप से—तन मन, वचन और काया के द्वारा—स्वीकार न करे तबतक।

विचार करने से देख पड़ेगा कि पांच में से यदि एक भी बात को हम पूरी तरह कर सकें तो दूसरी चार बातें उसके साथ अपने आ जा सकती हैं।

सरकार को कोसना, उसे गालियां देना फजूल है। यही नहीं, वह हमारी कायरता का निशान है। जैसे हम हैं वैसी हमारी सरकार है। सरकार लोक-जागृति के नाप का औजार है।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

सरोजिनी की मोहिनी

श्रीमती सरोजिनी नायडू ने अपने कोकिल-स्वर से दक्षिण आफ्रिका के अंगरेजों को मुग्ध कर डाला है। हिन्दुस्तानी तो उनके पीछे पागल हो गये हैं। श्रीमती की हलचल का पूरा चित्र मेरे पुत्र मणिलाल गांधी ने चित्रित किया है। उसे यहां देता हूं—

"पिछले कोई २० दिनों से श्रीमती सरोजिनी नायडू यहां आई हुई हैं। उन्होंने इस देश के निवासियों पर खास कर के गोरे लोगों पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव डाला है। जोहानीस्बर्ग में शुरू शुरू में तो लोगों के भाव बुरे थे; पर श्रीमती नायडू की वक्तृता एक बार सुनने के बाद हर शख्स उनकी ओर आकर्षित हो रहा है और वे लोग जो कुछ शरारत या उपद्रव करना चाहते थे शर्मिन्दा हो जाते हैं। यात्रा के अन्त में वे जोहानीस्बर्ग आईं। उस समय हजारों की तादाद में गोरे सभाओं में आते थे। मैं खुद वहां नहीं गया था। जब वे इस तरफ आने को हुई तब मैं वोकसरस्ट उन्हें लिवा लाने गया था। हर स्टेशन पर सैकड़ों लोग क्या गोरे और क्या हिन्दुस्तानी उनसे मिलने आते थे और उनकी गाड़ी तो फूलों का बाग हो गया था। मेरीत्सबर्ग में वे दो दिन ठहरी थीं। वहां एशियाई लोगों के खिलाफ भाव बहुत उग्र हैं और उपद्रवी प्रवृत्ति के लोग भी बहुत हैं। श्रीमती नायडू के आने के पहले होसे वे झगड़ा कर रहे थे कि हिन्दुस्तानियों को टाउन हाल बिलकुल मिलना ही न चाहिए और यदि मिलेगा तो भारी झगड़ा हो जायगा। आखिरी दिन मेरीत्सबर्ग के 'टाइम्स' ने अग्रलेख लिख कर झगड़ा-फसाद न करने के लिए लोगों को समझाया। तो भी सभा के वक्त नगर-मन्दिर में लोग खचाखच भर गये थे और गेलरी गोरों से भर गई थी। मेयर ने सभापति-पद ग्रहण करना मंजूर नहीं किया तब एक दूसरा गोरा सभापति बनाया गया। उनके बोलने के लिए खड़े होते ही गेलरी में इतना गुल-गपाड़ा मच गया कि उन्हें बैठ जाना पड़ा। फिर भायात सेठ बोलने के लिए खड़े हुए। उन्हें भी बैठ जाना पड़ा। अन्त को श्रीमती नायडू खड़ी हुई। वे दो-तीन वाक्य बोलीं कि इतने में फसादी लोगों के मुखिया चलते बने। और बीस मिनिट बोलने के बाद बाकी फसादी भी रवाना हो गये। व्याख्यान खतम होने के बाद गेलरियों से भी तालियों की आवाज आने लगी और अपरिचित लोग श्रीमती नायडू से हाथ मिलाने के लिए आये। दूसरे दिन पादरी लोग जान-पहचान करने के लिए आये। और नेटाल के बिशप की भी मुलाकात हुई। लोगों की भीड़ तो इतनी बनी रहती थी कि उनके निवास-स्थान में समा भी नहीं सकती थीं और गोरी तथा रंगीन (कलर्ड) स्त्रियां तो श्रीमती नायडू की हिम्मत देखकर दंग रह गईं थीं, और उनके साथ हाथ मिलाने को अधीर हो रही थीं। डर्बन में श्रीमती नायडू का सब से अधिक स्वागत-सत्कार हुआ। मेरीत्सबर्ग तक स्पेशल ट्रेन उन्हें लेने के लिए गई थी। डरबन स्टेशन पर तो लोगों का झुण्ड चिउटियों की तरह जमा हो गया था और बाहर रास्ते भी ठसाठस भरे हुए थे। गाड़ी हाथ से खींच कर अल्बर्ट पार्क ले जाई गई। वहां कम से कम पांच हजार आदमी और उतने ही पाठशाला के विद्यार्थी एकत्र हुए थे। स्त्रियों की सभा ऐसी हुई जैसे पहले कभी नहीं हुई थी। नगर-मन्दिर में दो व्याख्यान उनके हुए। उस समय मन्दिर खचाखच भर गया था। पहले दिन तो कम से कम तीन-चार हजार लोगों को वापस लौट जाना पड़ा था। गोरी महिलाओं ने खास तौर पर सभा की आयोजना की थी। इसके सिवा वे कुलैंड तक सफर कर आई हैं। अभी टोंगाट और फिनिक्स बाकी है। वहां तीन दिन रह कर केप टाउन चली गई। वहां खास एशिया बिल की चर्चा के वक्त उपस्थित रहने का इरादा रखती हैं। उसके बाद केपके दूसरे शहरों की यात्रा कर के तथा फिर जोहानीस्बर्ग जा कर वहां एक हफ्ता रहेंगी और वहीं से अप्रैल में पहले जहाज पर रवाना हो जायंगी। श्रीमती नायडू की शक्ति अजीब है। उन्हें कभी कभी बुखार आता है और सिर भी दर्द करता है। फिर भी व्याख्यान देने से पीछे नहीं हटतीं। हाकिम लोग बड़ी अच्छी तरह पेश आते हैं। ट्रेन में स्पेशल डब्बा का इन्तजाम उनके लिए किया जाता है। राह में भी सरकारी कर्मचारी अच्छा बरताव करते हैं। श्रीमती नायडू खुद ही आपको लिखना चाहती थीं, पर काम की अधिकता से न लिख सकीं। मुझे कहा था कि पत्र लिख देना।"

(नवजीवन) **मो० क० गांधी**

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, चैत्र सुदी ९, संवत् १९८०

मौ० महम्मदअली पर इल्जाम

एक सज्जन लिखते हैं कि मौलाना महम्मदअली ने अपने एक भाषण में कहा कि गांधीजी महा अधम मुसलमान से हीन हैं। गुजराती अखबारों में इस किस्म के लेख आ रहे हैं। वे सज्जन लिखते हैं कि मौलाना सा० ऐसा कभी नहीं कह सकते। तथापि 'नवजीवन' के पाठकों को यह बात साफ कर देनी चाहिए कि बात दर-असल क्या है, जिससे गलतफहमी दूर हो जाय।

मुझे बड़े अफसोस के साथ लिखना पड़ता है कि महज़ गुजराती ही में नहीं, बल्कि अंगरेजी अखबारों में भी यह बात फैली है और उसके विषय में चर्चा भी खूब हुई है।

भगवान् जाने हुआ क्या, पर हिन्दू-मुसलमानों के दरम्यान आजकल गलतफहमी की हवा बहुत बह रही है। एक दूसरे के अन्दर अविश्वास फैल गया है। मैं जानता हूं कि इसके कुछ कारण हैं। उनकी चर्चा करने की यहां जरूरत नहीं मालूम होती। उत्तर भारत में हिन्दी-उर्दू अखबारों ने तो हद कर दी है। डाक्टर अनसारी लिखते हैं कि ऐसा मालूम होता है, मानों एक दूसरे पर इल्जाम लगाना, झूठी अफवाहें फैलाना, एक दूसरे के मजहब को बदनाम करना और इस प्रकार एक दूसरे को बदनाम करना ही उन अखबारवालों ने अपना कर्तव्य ठान लिया है। और जान पड़ता है कि यही उनके रोजगार को बढ़ाने का जरिया हो गया है। इस छूत की बीमारी को किस तरह रोकें, यह विकट समस्या हो गई है। उसको हल करना मेरी समझ में धारासभा-प्रवेश की बनिस्बत ज्यादह जरूरी और मार्के का है। मुझे निश्चय है कि इसको हल करने पर ही राज्य-तंत्र-संचालन की हमारी क्षमता अवलंबित है। यदि हम देश के सम्मुख उपस्थित प्रश्नों को हल कर सकें तो आज ही स्वराज्य हमारे हाथों में रखता है। जबतक हम इन गुत्थियों को न सुलझा सकें तबतक स्वराज्य असंभव है। इन उलझनों को दूर करने में धारासभा असमर्थ है।

पर इस लेख में मैं इन कठिनाइयों की छानबीन करना नहीं चाहता। यहां तो मैं मौलाना साहब पर किये गये एतराज की जांच करना चाहता हूं।

मौलाना साहब के मूल-भाषण पर लखनऊ की एक सभा में उनसे एक सवाल पूछा गया। उसका जवाब उन्होंने दिया—'महात्मा गांधी के धर्म-सिद्धान्त की बनिस्बत एक व्यभिचारी मुसलमान के धर्म-सिद्धान्त को मैं ज्यादह अच्छा मानता हूं।' इसमें मौलाना साहब ने महात्मा गांधी और व्यभिचारी मुसलमान की तुलना नहीं की, बल्कि दोनों के धार्मिक मत की तुलना की है। अब जरा यह भी देखें कि यह तुलना उन्हें क्यों करनी पड़ी? मौलाना साहब पर मुसल्मानों ने ऐसा इल्जाम लगाया कि मौलाना तो गांधी-परस्त अर्थात् गांधी-पूजक हो गये हैं। गांधी-परस्त होना यानी गांधी को मूर्ति मान लेना अर्थात् यह मान लेना कि दुनिया में उसके सिवा दूसरा कोई नहीं। ऐसा करना मानों गांधी का धर्म कुबूल कर लेना है। यह है मौलाना साहब पर इल्जाम। कितने ही मुसल्मानों के इस इल्जाम का जवाब मौलाना ने पूर्वोक्त वाक्यों में दिया। तो क्या इसका यह अर्थ हुआ कि मुसल्मानों को सन्तुष्ट करते हुए उन्होंने हिन्दुओं का दिल दुखाया? पूर्वोक्त कथन यदि मौलाना ने किसी दूसरी जगह कहा होता तो उसपर बिल्कुल टीका-टिप्पणी न होती। हिन्दू अखबारों ने उनके भाषण का बिल्कुल उल्टा अर्थ किया। उन्होंने लिखा कि मौलाना व्यभिचारी मुसल्मान को 'महात्मा' गांधी से अच्छा समझते हैं। इसमें देखा कि मौलाना ने ऐसी बात नहीं कही। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने तो स्वामी श्रद्धानन्दजी के नाम लिखे अपने पत्र में 'महात्मा' गांधी को सारे संसार में सर्वोत्तम मनुष्य माना है। पर हां, उन्होंने 'महात्मा' के धर्म-सिद्धान्त को व्यभिचारी मुसल्मान से कनिष्ठ माना है। इसमें विरोध जरा भी नहीं, उल्टा लगभग सारा संसार सिद्धान्त और सिद्धान्ती में यह भेद मान रहा है।

मेरे कितने ही ईसाई मित्र मुझे बहुत अच्छा आदमी मानते हैं। फिर भी इसलिए कि वे अपने धर्म को मेरे धर्म से श्रेष्ठ मानते हैं, हमेशा ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि मैं ईसाई हो जाऊं। दक्षिण-आफ्रिका के एक ऐसे मित्र का पत्र मुझे दो-तीन सप्ताह पहले मिला, जिसमें वे लिखते हैं—'आपके छुटकारे का समाचार जान कर मुझे बड़ी खुशी हुई। आपके लिए मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह आपको सु-बुद्धि दे कि जिससे आप ईसा-मसीह को और मुक्ति देने की उसकी शक्ति को मानने लगें। यदि आप यह कर सकें तो आपके काम तुरन्त फलीभूत हो जायं।' इस तरह अनेक ईसाई-मित्र चाहते हैं कि मैं ईसाई हो जाऊं।

अच्छा, अधिकांश हिन्दू भी क्या करते हैं? क्या अच्छे से अच्छे ईसाई या मुसल्मान के धर्म-सिद्धान्त से वे अपने धर्म-सिद्धान्त को सर्वोत्तम नहीं मानते? यदि वे ऐसा न मानते हों तो क्या वे अपनी कन्या की शादी एक अच्छे से अच्छे मुसल्मान या ईसाई से करेंगे? यही क्यों, हिन्दुओं में भी किसी अच्छे से अच्छे शख्स को नहीं, बल्कि अपने संप्रदाय के या जाति के सर्वोत्तम मनुष्य को देंगे। इससे क्या साबित होता है? यही कि पर-धर्म से स्वधर्म को वे श्रेष्ठ मानते हैं।

मेरी नाकिस राय में मौलाना ने अपनी राय जाहिर कर के अपने दिल की सफाई और अपनी धर्म-श्रद्धा को सिद्ध कर दिया है। मेरी तो उन्होंने दूनी इज्जत की है। एक तो मित्र के रूप में और दूसरे मनुष्य के रूप में: मित्र के रूप में मेरी इज्जत इस तरह की कि उन्होंने मेरे संबंध में अपनी यह धारणा कर ली कि मैं उनके संबंध में जो चाहे कहूं, पर मैं उसमें अपना अपमान न मानूंगा और मैं उनके भाव को गलत न समझूंगा। मनुष्य के रूप में मेरी इज्जत इस तरह की कि हम दोनों के धर्म भिन्न होते हुए भी, अपने धर्म को मेरे धर्म से श्रेष्ठ मानते हुए भी मुझे सर्वोत्कृष्ट मनुष्य मानते हैं। यह कितनी श्रद्धा! यदि संसार मुझे अच्छा मानता है तो उसके इस भरम को मैं समझ सकता हूं। परन्तु मेरे निकट रहनेवाले मेरे मित्र, मेरे अनेक छिद्रों को देखते हुए मुझे सर्वोत्तम मानें, यह कितनी अजीब बात है?

किसी भी मनुष्य को सर्वोत्कृष्ट मानना, मुझे तो बड़ा खतरनाक मालूम होता है। उसके दिल को ईश्वर के सिवा कौन जान सकता है? उस मनुष्य के बनिस्बत जिसके दिल की गंदगी प्रकट होती रहती है, वह मनुष्य अधिक मलिन होना चाहिए जो अपनी गंदगी को छिपा रखता है। पहले मनुष्य को तो मुक्ति मिलने की संभावना है; क्योंकि उसकी गंदगी प्रकट हो गई—अर्थात् उसके निकलने का रास्ता खुल गया। पर दूसरे मनुष्य को, जिसने अपनी मलिनता को दिल के परदे में मुहरबंद कर रखा है, गंदगी अन्दर की अन्दर ही पड़ी रहती है और वह अहर्निश

जन्तु की तरह उसे नोंच खायगी। उसका छुटकारा इस जन्म में असंभव है। और इसीसे शास्त्रों ने सत्य को सर्वोपरि माना है, इसीसे शास्त्रों ने पाप को छिपाना मना किया है। यदि हम कसी भी मनुष्य को सर्वोपरि मान सकते हों तो यह निश्चय उसकी मृत्यु के बाद ही किया जा सकता है।

मैं खुद तो अपना विश्वास नहीं कर सकता। दूसरे का विश्वास करना मुझे बहुत आसान मालूम होता है। ऐसा करते हुए यदि मुझे धोखा होगा, तो इससे मेरी कुछ आर्थिक हानि हो सकती है, दुनिया मुझे सीधा-भोला कह सकती है, पर यदि मैं अपना विश्वास करके गाफिल रहूं तो मेरा नाश ही हो जाय। पाठको, इस मौके पर मैं आपसे यह भी कह देता हूं कि एकबार मैं अपना विश्वास करके ईश्वर-कृपा से डूबते डूबते बचा हूं। दूसरी बार अपने एक व्यभिचारी मित्र ने मुझे बचाया। वे खुद तो बचने की हालत में नहीं थे; परन्तु मुझे वे निर्मल समझते थे। अतएव यह समझ कर कि इसे तो इस पाप में हरगिज न पड़ना चाहिए उन्होंने मुझे मोह-निद्रा से जाग्रत किया। हम एक दूसरे की चौकी करने या काजी बनने की बनिस्बत खुद अपनी चौकी करें तो खुद हमारी भी रक्षा हो और संसार को भी अपने दुःख से बचा सकें। इसीसे स्वराज्य की सच्ची व्याख्या यह है "स्वराज्य उस राज्य को कहते हैं जो खुद अपनेपर किया जाता है।" 'आप भला तो जग भला' इस कहावत में बहुतेरा अर्थ भरा हुआ है।

अपने विषय को छोड़कर मैं गूढ़ चर्चा में नहीं चला गया था। बल्कि यह बात इसी विषय से संबंध रखती है। मित्रलोग जब मुझे सर्वोत्कृष्ट मानते हैं तब मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यदि मैं खुद ऐसा मानने लगूं तो मेरा पतन हुए बिना न रहे। क्योंकि मुझे तो अभी बहुत ऊपर चढ़ना बाकी है। मेरे लोभ के सीमा नहीं। मुझे अभी असंख्य शत्रुओं को जीतना है। ज्यों ज्यों मैं गहरा विचार करता हूं त्यों त्यों मुझे अपनी खामियां दिखती जाती हैं। जब यह देखता हूं तब मेरे मन में विचार उठता है कि सचमुच सर्वोत्कृष्ट मनुष्य कैसा होगा? यह विचार करते हुए मेरे मन में मोक्ष की और उसके द्वारा मिलनेवाले अति आनन्द की कुछ कल्पना होती है। उस समय मुझे इस बात की झलक दिखाई देती है कि ईश्वर-तत्त्व क्या हो सकता है?

अब पाठक शायद यह समझ सकें कि मौलाना साहब ने मुझे सर्वोत्कृष्ट मानकर मेरी कितनी इज्जत की है। उसके इस कथन का अर्थ क्या है, यह बात पाठक को उनके पत्र पढ़ने से अधिक अच्छी तरह मालूम होगी। उन खतों का तरजुमा मैं इसी अंक में देता हूं।

स्वामीजी ने मौलाना के इस खत का स्वागत किया और उन के दिल की सफाई पर उन्हें धन्यवाद दिया। मौलाना को हिन्दुओं का मित्र माना और जिन लोगों ने मौलाना पर इल्जाम लगा कर उन्हें महासभा से इस्तीफा देने का नोटिस दिया था उन्हें नोटिस वापस लेने की सिफारिश की; परन्तु साथ ही उन्होंने उन्हें यह भी जताया कि मेरे धर्म के अनुसार तो अकेले सिद्धान्त की कोई कीमत नहीं। मनुष्य के शील और आचार पर उसकी कीमत आंकी जाती है। इसका जवाब देकर मौलाना ने स्वामीजी के केवल की शंका भी दूर की। मौलाना यह बात नहीं मानते कि सिद्धान्ती को अपने सिद्धान्त के अनुसार आचरण करने की जरूरत नहीं। उन्होंने तो सिर्फ दो कायदों की तुलना की और बताया कि इसमें ऊंचा कौन है। अच्छे से अच्छा कानून-दां यदि उसके अनुसार न चले तो उसे कुछ फल नहीं मिलता—यह बात उन्होंने अपने दूसरे पत्र में प्रकट की है।

इसलिए मौलाना महम्मदअली के कथन का तात्पर्य सिर्फ इतना ही निकलता है कि सबको अपना अपना धर्म अच्छा मालूम होता है। इस वचन का विरोध कौन हिन्दू कर सकता है? यह राई का पर्वत किस प्रकार हुआ और इसके न होने-देने का उपाय क्या है, इसका विचार फिर कभी करेंगे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

पूर्व अफ्रिका में खादी

जब मैं पूना-अस्पताल में था तब पूर्व-आफ्रीका से एक पत्र मिला था। उसमें इस विषय पर कि पूर्व-आफ्रिका के हिन्दुस्तानियों को खादी पहनना चाहिए या नहीं, श्रीमती नायडू के विचारों का जिक्र था। पत्र तो खोगया पर उसमें प्रदर्शित श्रीमती के विचारों का सार इस प्रकार है—

"गांधीजी की राय है कि खादी का व्रत अकेले हिन्दुस्तान के लिए है। विदेशों में उसकी जरूरत नहीं। यही नहीं बल्कि उसे छोड़कर अंगरेजों जैसा लिबास पहनना चाहिए। गाँधीजी खुद यदि पूर्व-आफ्रिका में आवें तो लंगोट न पहनेंगे, बल्कि भी बर्मा की तरह विलायती कपड़े पहनेंगे और आपको भी ऐसा ही करना चाहिए।"

मुझे इस बात में सन्देह है कि श्रीमती नायडू ने ऐसी बात कही होगी। पूर्वोक्त पत्र-लेखक ने इन विचारों पर मेरी राय मांगी है। वे लिखते हैं कि पूर्व-आफ्रिका में बहुतेरे हिन्दुस्तानी खादी के कपड़े पहनते हैं और खादी की टोपी भी पहनते हैं। वे सब लोग श्रीमती के भाषण से उलझन में पड़ गये हैं।

मैं मानता हूं कि विदेशों के लिए खादी का व्रत नहीं है। विदेशों में इस व्रत का पालन बहुत बार असंभव भी हो जाता है। फिर इस व्रत का उद्देश है भारत की आर्थिक आजादी, अतएव भारत के बाहर उसके पालन करने की आवश्यकता नहीं। पर मेरी यह राय न पहले थी न अब है कि विदेश में भी जहां खादी आसानी से पहनी जा सकती है वहां न पहनी जाय। मेरा खयाल है कि श्रीमती भी ऐसी राय न देंगी। पूर्व-आफ्रिका, एडन आदि देशों में खादी आसानी से पहनी जा सकती है। दक्षिण-आफ्रिका में भी गर्मियों में पहन सकते हैं। मतलब यह कि गरम मुल्कों में खादी पहनने में दिक्कत नहीं। फिर घर के अन्दर तो ज्यादह तर चीजें खादी की ही होनी चाहिए।

पर हां, मैं यह राय जरूर दूंगा कि यदि हम ऐसे देश में जायं जहां कपास पैदा होता हो और खादी बनती हो तो वहां हमें वहीं का कपड़ा पहनना चाहिए। जो न्याय हम भारत के लिए चाहते हैं वही दूसरे देशों के लिए भी होना चाहिए। जब विदेशी यहां आते हैं तब इस देश में जो सामान मिलता है उसीका इस्तेमाल करना जिस प्रकार उन्हें उचित है इसी प्रकार हमें भी दूसरे देशों में करना चाहिए। पूर्व-आफ्रिका आदि देशों में तमाम कपड़ा विदेश से आता है। वहां कभी नहीं सुना कि यहां कपड़ा बनता है। अतएव वहां हमें खादी इस्तेमाल करने का अधिकार है। यही नहीं बल्कि मेरी धारणा है कि उसे भरसक इस्तेमाल करना हमारा धर्म है। सत्याग्रह-संग्राम के दरम्यान ज्यों ज्यों मेरे विचार आगे बढ़ते गये, ज्यों ज्यों मैंने सादगी और गरीबी की ज्यादह जरूरत देखी त्यों त्यों मैं सादगी अख्त्यार करता गया और अन्त को आकर हिन्दुस्तान से आनेवाला कपड़ा मैं पहनने लगा—तथा अपना लिबास हिन्दुस्तानी मजदूर की तरह बना लिया। अर्थात् मदरासियों के जैसी लुंगी और कुरता। यही लिबास मैं पहनता। जाड़े में दो मोटे गाढ़े के कुरते पहनता। टोपी छोड़ दी थी। इसी लिबास

जलता। पर इससे मेरे अंगरेज मित्रों को बुरा लगते हुए मैंने नहीं देखा। मैं मजदूरों में रह रहा था। उनके जीवन और लिबास का अनुकरण करते हुए देखकर कितने ही अंगरेज मित्र मुझे धन्यवाद देते थे। इस किस्से को सुनाने का इतना ही मतलब है कि यदि हम विदेश में इतने ही कपड़े पहनें कि जिससे हमारे अवयव ढंक जायं, तो बस है।

श्रीमती के भाषण में एक इशारा था। वह काबिल गौर है। उनके भाषण का संबंध हमारी कुटेवों से था। उसमें हमारी गंदगी और बेडौलपन का वर्णन था। बहुत अंश तक यह इल्जाम सच है। लिबास खादी का हो अथवा दूसरे कपड़े का हो, पर यदि वह बेडौल हो, बेढंगा और बेतरतीब हो तो आंखों को अच्छा नहीं दिखाई देता। सुडौलता और सुघड़ता की जरूरत शृंगार के लिए नहीं, बल्कि सफाई और शिष्टाचार के लिए है। वही लिबास भद्दे तरीके से पहना जाय तो बेडौल मालूम होता है और ठीक पहना जाय तो सुघड़ मालूम होता है। इससे मर्यादा का पालन होता है और दूसरों के प्रति आदर-भाव व्यक्त होता है। इसमें गफलत न होनी चाहिए। विवेक-युक्त सुघड़ता और शृंगार में बहुत थोड़ा अन्तर है। परन्तु उस अन्तर को कायम रखने की बड़ी जरूरत है। मेरे कहने का यह आशय बिलकुल नहीं है कि हम बार बार आईने में देखकर वेष-भूषा किया करें। पूर्व-आफ्रिका के लोगों के संबंध में मुझे ऐसा डर भी नहीं। जो कपड़े पहने जायं वे मैले जरा भी न होने चाहिए। सफेद खादी के कपड़े हमेशा धोने चाहिए। हिन्दुस्तान में तो एक छोटी-सी धोती पहन कर मर्यादा का पालन कर सकते हैं। हिन्दुस्तान की भव्य सभ्यता तो ऐसी है कि मेरे जैसा लंगोट पहनना बिलकुल अविवेक-युक्त नहीं माना जा सकता। यहां लिबास पर परीक्षा नहीं होती। पर दूसरे देशों में लंगोट काम नहीं दे सकता। मुझे यदि विदेश जाना पड़े तो मैं लंगोट को बाजिजाब सन्दूक में बन्द करके रख दूं। परदेश में घुटने तक पांव ढंकने की जरूरत मालूम होती है। "जैसा देश वैसा भेस" यह कहावत बिलकुल निरर्थक नहीं है। यदि हम बिला जरूरत के ऐसा काम करें जिससे दूसरे देशवालों के चित्त को आघात पहुंचे तो वह अविवेक होगा। मैं उसे हिंसा कहूंगा। अविवेक में हिंसा भरी रहती है।

पूर्व-आफ्रिका के पत्र पर विचार करते समय मैं यह भी बताये देता हूं कि वहां खादी-प्रचार किस तरह किया जा सकता है। पूर्व और दक्षिण-आफ्रिका में तैयार कपड़े बहुत जाते हैं। वहां के आदिम निवासियों के तथा हिन्दुस्तानियों के इस्तैमाल के कपड़े यहां से तैयार करा कर ले जा सकते हैं। वहां के व्यापारी लाखों रुपये की खादी बड़े मजे में ले जा सकते हैं। हिन्दुस्तान अभी उतनी खादी तैयार नहीं करता जितनी कि जरूरत उसे है। खादी की बुनाई और बिक्री अभी सिन्धु में बिन्दु के बराबर है। यह मैं न जानता होऊं सो बात नहीं। खादी-प्रचार अभी इतना मन्द है कि कितनी ही जगह खादी भरी हुई पड़ी है। कितना आश्चर्य! कितना दुःख!! इसी बात का विचार करके मैंने पूर्वोक्त सूचना की है। गुजरात में जमा खादी तो दक्षिण-आफ्रिका का एक ही व्यापारी बिला दिक्कत ले सकता है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

एजेंटों की जरूरत है

अब महात्माजी संपादन करने लगे। उनके राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिन्दी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है। व्यवस्थापक

दक्षिण-आफ्रिका का सत्याग्रह

अध्याय २

भूगोल

आफ्रिका दुनिया का एक बड़े से बड़ा भू-खण्ड है। हिन्दुस्तान भी एक भू-खण्ड के बराबर देश माना जाता है; पर केवल रकबे के लिहाज से आफ्रिका में चार-पांच हिन्दुस्तान का समावेश हो सकता है। आफ्रिका के बिलकुल दक्षिणी हिस्से को दक्षिण आफ्रिका कहते हैं। हिन्दुस्तान की तरह आफ्रिका भी प्रायद्वीप है। अर्थात् दक्षिण-आफ्रिका का एक बड़ा भाग समुद्र से घिरा हुआ है। आफ्रिका के संबंध में आमतौर पर ऐसा माना जाता है कि वहां सबसे ज्यादह गरमी पड़ती है। और एक तरह से यह बात सच भी है। भू-मध्य-रेखा आफ्रिका के बीच से गुजरती है। इस रेखा के आसपास की गरमी का खयाल हिन्दुस्तान के रहने वालों को नहीं हो सकता। हिन्दुस्तान के ठेठ दक्षिण में जिस गरमी का अनुभव हम करते हैं उससे भू-मध्य-रेखा की गरमी का थोड़ा-बहुत अन्दाज लग सकता है। परन्तु दक्षिण-आफ्रिका में वह गरमी नहीं। क्योंकि यह भाग भू-मध्य-रेखा से बहुत दूर है। वहां के कितने ही भागों की आब-हवा तो इतनी बढ़िया है और ऐसी सम-शीतोष्ण है कि वहां योरपीय जातियां खुशी से घर बनाकर रह सकती हैं। हिन्दुस्तान में यह उनके लिए प्रायः असंभव है। फिर दक्षिण-आफ्रिका में तिब्बत अथवा काश्मीर की तरह बड़े ऊंचे प्रदेश हैं। वे तिब्बत अथवा काश्मीर की तरह दस से चौदह हजार फीट ऊंचे नहीं। इससे वहां की हवा सूखी और बरदाश्त होने लायक ठण्डी होती है। और इसीसे दक्षिण-आफ्रिका का कितना ही प्रदेश क्षय के रोगियों के लिए अत्युत्तम माना जाता है। ऐसा एक हिस्सा है जोहानिसबर्ग—दक्षिण आफ्रिका की सुवर्णपुरी। जिस जमीन के टुकड़े पर जोहानीस्बर्ग बसा हुआ है वह आज से ५० साल पहले बिलकुल वीरान था—सूखी घास खड़ी रहती थी। पर जब वहां सोने की खानों का अविष्कार हुआ तब वहां जादू के मुआफिक देखते देखते घर बनने लगे और आज तो वहां विशाल सुशोभित बंगले बने हुए हैं। वहां के धनी लोगों ने, अपने खर्च से, दक्षिण आफ्रिका के उपजाऊ मुकामों से तथा योरप से भी, एक एक पौधे के पन्द्रह पन्द्रह रुपये देकर वहां लगाये हैं। इस पूर्व इतिहास के न जाननेवाले यात्रियों को आज ऐसा दिखाई देगा मानों ये पेड़ यहां एक जमाने से लगे हुए हैं।

दक्षिण आफ्रिका के तमाम विभागों का वर्णन मैं यहां नहीं करना चाहता। मैं तो सिर्फ उन्हीं विभागों का वर्णन करूंगा जो हमारे विषय से कुछ संबंध रखते हैं। दक्षिण आफ्रिका में दो हुकूमतें हैं—(१) अंगरेजी और (२) पोर्तुगीज। पोर्तुगीज भाग को डेलागोवे कहते हैं और हिन्दुस्तान से जाते समय दक्षिण आफ्रिका का पहला बन्दर है। वहां से नीचे आने पर नेटाल, पहली ब्रिटिश रियासत, आती है। उसके बन्दर को पोर्ट नेटाल कहते हैं। पर हम उसे डरबन के नाम से पहचानते हैं। दक्षिण आफ्रिका में भी वह आम तौर पर इसी नाम से प्रसिद्ध है। नेटाल का यह सब से बड़ा शहर है। नेटाल की राजधानी का नाम है पीटरमारित्सबर्ग। वह डरबन से आगे अन्दर कोई ६० मील दूर है। समुद्र से कोई दो हजार फीट की ऊंचाई पर बसा है। डरबन की आबहवा बंबई से कुछ कुछ मिलती है। पर बंबई से वहां की हवा कुछ सर्द जरूर है। नेटाल से आगे और अन्दर बढ़ने पर ट्रान्सवाल आता है। वहां की धरती आज संसार को सब से ज्यादह सोना दे रही है। वहां कुछ साल पहले हीरे की

भी खानें निकली थी। उन से पृथ्वी का सब से बड़ा हीरा निकला था। कोहिनूर से बड़ा हीरा रूस के पास समझा जाता है। उसका नाम खान के मालिक के नाम पर रक्खा गया है और वह क्लीनन हीरा कहलाता है।

परन्तु जोहानीस्बर्ग के सुवर्णपुरी होते हुए तथा हीरे की खानें भी उसके नजदीक होते हुए वह ट्रान्सवाल की राजधानी नहीं। ट्रान्सवाल की राजधानी प्रिटोरिया है। जोहानीस्बर्ग से ३६ मील दूर है। वहां खास करके राज-दरबारी आदमी तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाले लोग रहते हैं। इससे वहां के वायु-मण्डल को शान्ति पूर्ण कह सकते हैं। पर जोहानीस्बर्ग का वायुमण्डल बहुत अशान्त है। जिस प्रकार हिन्दुस्तान के किसी शान्तिपूर्ण देहात से अथवा छोटे से शहर से बंबई पहुंचने पर वहां के धूम-धड़के और अशान्ति से हमारा जी घबड़ा उठता है इसी प्रकार प्रिटोरिया से जानेवालों का जोहानीस्बर्ग का दृश्य मालूम होता है। यदि यह कहूं तो अत्युक्ति न होगी कि जोहानीस्बर्ग के लोग चलते नहीं बल्कि दौड़ते हैं। किसीको किसीकी तरफ देखने भर की फुरसत नहीं रहती और सब लोग इसी फिराक में डूबे रहते हैं कि थोड़े से थोड़े समय में अधिक से अधिक धन किस तरह कमा लें। ट्रान्सवाल को छोड़ कर और भी अन्दर यदि हम जाय तो आरेंज फ्री स्टेट अथवा ऑरेंजिया रियासत आती है। उसकी राजधानी ब्लुमफोंटीन है। यह अत्यन्त शान्त और छोटा-सा शहर है। ऑरेंजिया में खानें-वानें कुछ नहीं हैं। वहां से थोड़े घण्टे रेल की यात्रा करके हम केप कालोनी की सरहद पर पहुंच जाते हैं। केप कालोनी वहां सबसे बड़ा राज्य है। उसकी राजधानी और बड़े बन्दर का नाम केप टाउन है। वहीं केप आव् गुड होप नाम का अन्तरीप है। 'गुड होप' के मानी है शुभ आशा। वास्कोडिगामा जब पोर्तुगाल से भारत की खोज में निकला तब उसने यहां आ कर जहाज ठहराया और यहां उसे आशा बंधी कि अब अवश्य अपनी मुराद पूरी होगी। इसीसे उसने इस स्थान का नाम रक्खा शुभ आशा का अन्तरीप। इन चार अंगरेजी रियासतों के अलावा ब्रिटिश सल्तनत की 'रक्षा' के अधीन बहुतेरा प्रदेश है, जहां दक्षिण-आफ्रिका में योरपियनों के आगमन के पहले के बाशिन्दा रहते हैं।

दक्षिण-आफ्रिका का मुख्य पेशा खेती है। खेती के लिए यह देश उत्तम है। कितने ही भाग तो अत्यन्त उपजाऊ और सुहावने हैं। मकई वहां बहुत और आसानी से पैदा होती है। मकई दक्षिण आफ्रिका के हबशियों का प्रधान भोजन है। कितनी ही जगह गेहूं भी पैदा होता है। फलों के विषय में तो दक्षिण आफ्रिका मशहूर है। नेटाल में बीसों किस्मों के और बड़े बढ़िया केले, पपीते और अनन्नास पकते हैं और सो भी इतनी तादाद में कि गरीब से गरीब आदमी उन्हें खा सकता है। नेटाल तथा दूसरी रियासतों में नारंगी, संतरे, 'पीच' और 'अप्रिकाट' (जर्दालू) को तो इतनी इफरात वहां है कि हजारों आदमियों को मामूली मिहनत पर देहात में मुफ्त मिल सकते हैं। केप कालोनी तो अंगूर और 'प्लम' (एक तरह का बड़ा बेर) की भूमि है। वहां जैसा अंगूर शायद ही दूसरी जगह फलता हो। और मौसिम पर ये इतने सस्ते हो जाते हैं की एक गरीब आदमी भी पेट भर कर के खा सके। जहां हिन्दुस्तानी न रहते हों वहां आम के पेड़ न हों, यह नहीं हो सकता। हिन्दुस्तानियों ने आम की गुठलियां लगाईं। इससे वहां आम भी अच्छी तादाद में मिल सकते हैं। कुछ किस्म के आम तो बंबई के 'हापुस पायरी' का जरूर मुकाबला कर सकते हैं। साग-तरकारी भी उस रसीली भूमि में बहुत पैदा होती है। और शौकीन हिन्दुस्तानियों ने तो हिन्दुस्तान की लगभग हर-किस्म की साग तरकारी वहां तैयार कर रक्खी है।

मवेशियों की तादाद भी खूब है। गाय-बैल हिन्दुस्तान के गाय-बैल से ज्यादह ऊंचे-पूरे और मोटे-ताजे बलवान् होते हैं। गोरक्षा का दावा करनेवाले हिन्दुस्तान में अनेक गायों-बैलों को हिन्दुस्तान के लोगों की तरह दुबला-पतला देख कर मुझे बड़ी शर्म मालूम होती रहती है और अनेक बार मेरा हृदय रोया है। मुझे याद नहीं पड़ता कि दक्षिण-आफ्रिका में दुबली गाय या बैल मैंने देखे हों—हालां कि मैं प्रायः अपनी आंखें खोल कर सारे देश में घूमा हूं। कुदरत ने अपने अन्य उपहारों के साथ इस भूमि को सृष्टि-सौन्दर्य से सजाने में कोई कसर नहीं रक्खी है। डर्बन का दृश्य बड़ा ही सुन्दर माना जाता है; परन्तु केप कालोनी उससे बढ़ जाता है। केप टाउन 'टेबल माउंटन' नाम के एक पहाड़ की तलहटी पर बसा हुआ है, न बहुत ऊंचा न बहुत नीचा। एक विदुषी ने जो दक्षिण-आफ्रिका की भक्त है, इस पहाड़ पर एक कविता लिखी है। उसमें वह कहती है कि जो अलौकिकता मैंने 'टेबल माउंटन' में अनुभव की है वह किसी पहाड़ में नहीं। इसमें चाहे अत्युक्ति हो—मेरी राय में अत्युक्ति है,—पर इसकी एक बात मुझे जंच गई। वह कहती है कि 'टेबल माउन्टन' केप-टाउन के निवासियों के मित्र का काम देता है। यह बहुत ऊंचा नहीं है जिससे डरावना नहीं मालूम होता। लोगों को दूर ही से उसका पूजन कर के नहीं रह जाना पड़ता। वे तो उस पहाड़ में ही अपना घर बना कर रहते हैं। वह बिल्कुल समुद्र के किनारे है। समुद्र अपने निर्मल जल से उसकी पाद-पूजा करता है और उसका चरणामृत पीता है। क्या बालक, क्या बूढ़े और क्या स्त्रियां सब निडर हो कर तमाम पहाड़ में घूम-फिर सकते हैं और हजारों शहरातियों के कोलाहल से सारा पहाड़ रोज गूंज उठता है। विशाल वृक्ष, सुगन्धित और रंग-बिरंगे पुष्प सारे पहाड़ को इस तरह सजाते हैं कि देख कर घूम कर लोग अघाते ही नहीं।

दक्षिण-आफ्रिका में ऐसी बड़ी नदियां नहीं हैं जिनकी तुलना गंगा-यमुना के साथ की जा सके। कुछ हैं, पर वे छोटी हैं। इस देश में कितनी ही जमीन ऐसी है जहां नदी का पानी पहुंचता ही नहीं। ऊंचे प्रदेशों में नहरें भी कैसे कट सकती हैं? जहां समुद्र-सदृश नदियां न हों तहां नहरें कहां से हो सकती हैं? दक्षिण-आफ्रिका में कुदरत ने जहां जहां पानी की तंगी कर रक्खी है तहां पाताल के ऐसे गहरे कुएं खोद गये हैं और हवा-चक्की तथा भाफ-यन्त्रों के द्वारा पानी खींच कर सिंचाई की जाती है। खेती के लिए वहां की सरकार की तरफ से बहुत मदद मिलती है। किसानों को सलाह-मशवरा देने के लिए सरकार खेती के विशेषज्ञों को भेजती है। कितनी ही जगह सरकार प्रजा के लिए खेती के अनेक प्रयोग करती है, नमूने के खेत तैयार करती है, लोगों को मवेशियों और बीज की सुविधा कर देती है—बहुत कम दाम पर पाताल-ऐसे गहरे कुओं की मिट्टी वगैरह निकलवा देती है और उसका खर्च किस्तों के द्वारा लेने की सहूलियत उन्हें कर देती है। इसी प्रकार खेतों के आस-पास लोहे के कांटेदार तार लगवा देती है।

दक्षिण-आफ्रिका भू-मध्य-रेखा से दक्षिण की ओर है, हिन्दुस्तान उत्तर की ओर। इससे वहां का सारा वायु-मण्डल हिन्दुस्तानियों को अटपटा मालूम होता है। वहां की ऋतुयें भी अटपटी हैं। जब हमारे यहां गरमी की ऋतु होती है तब हमारे यहां जाड़े की ऋतु। बारिश का कोई खास नियम नहीं। जब चाहे तभी आ जाती है। बारिश आमतौर पर २० इंच से ज्यादह नहीं होती।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

मौ० महम्मदअली के पत्र

मौलाना साहब के जिन दो पत्रों का जिक्र अग्रलेख में आया है वे उर्दू में हैं। उनका तरजुमा यहां दिया जाता है। पहला पत्र स्वामी श्री श्रद्धानन्दजी के नाम है और दूसरा 'तेज' के संपादक के नाम है, जो स्वामीजी की शंका के जवाब में भेजा गया है।

मो० क० गांधी

पहला पत्र

नं. १ दरियागंज, देहली, २६ मार्च

स्वामीजी महाराज,

बाद सलाम के निवेदन है कि कल मैं रामपुर के नवाब साहब की मुलाकात को गया था। वहां साढे ग्यारह बजे से ठेठ शाम के ८ बजे तक रुका रहना पड़ा। इससे मैं, आपकी बात के जवाब देने के अपने वादे के मुताबिक, आपको पत्र न लिख सका। 'तेज' में अभी मैंने देखा कि आपके चार आर्य-समाजी मित्र चाहते हैं कि मैं महासभा से इस्तीफा दे दूं। इससे मुझे हंसी भी आई और दुःख भी हुआ। ऐसे सज्जन कितने ही समय से ऐसा प्रपंच रच रहे हैं। पर मैं समझता था कि लखनऊ में जो सवाल मुझसे किया गया था और उसका जो जवाब मैंने दिया उसे सुनने के बाद इन महाशयों को ऐसा प्रपंच रचने की हिम्मत न रहेगी। क्योंकि वह जवाब सुनकर एक भाई ने उत्साह में आ कर कहा था कि २२ करोड़ हिन्दू आपका साथ देने को तैयार हैं। पर अब मैं देखता हूं कि मेरा वह ख्याल कितना गलत था। जिस तरीके से यह प्रपंच रचा जा रहा है उसे देख कर उसकी उपेक्षा करने को जी चाहता है। परन्तु एक तो आप चाहते हैं और दूसरे मैंने आपसे वादा कर लिया है, इसलिए यह जवाब दे रहा हूं। उस वक्त मैंने आपसे रोबरू में कहा था कि मुझपर कितने ही मुसल्मानों ने यह इल्जाम लगाया कि मैं गांधी-पूजक और हिन्दू-पूजक हो गया हूं और यह कह कर कि मैं धर्म-मत में महात्मा गांधी का अनुयायी हूं, मुसल्मानों की सहानुभूति महासभा, खिलाफत कमिटी और मुझसे उठा देने का प्रयत्न किया था। इसलिए मैंने कितना ही बार साफ तौर पर कहा कि मेरा धर्म-मत किसी भी मुसल्मान के धर्म-मत से जरा भी भिन्न नहीं और मैं हजरत महम्मद रसूलिल्लाह का अनुयायी हूं, महात्मा गांधी का नहीं। मैं इस्लाम को खुदा की बड़ी से बड़ी न्यायत मानता हूं। और महात्मा गांधी पर मेरी मुहब्बत होने के कारण मैं खुदा से दुआ करता हूं कि इनके हृदय में इस्लाम का प्रकाश फैले। हां, मैं यह जरूर मानता हूं कि आज मुसल्मानों, हिन्दुओं, यहूदियों या नसरानियों (ईसाइयों) में ऐसा एक भी पुरुष नहीं दिखाई देता जो शील में महात्मा गांधी को पा सके। और इसी कारण मैं उन्हें महान् मानता हूं और उनपर मुहब्बत रखता हूं।

मैं अपनी पूजनीया माता पर बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखता हूं और यदि इस्लाम का यह मर्म हो कि हर हालत में सन्तोष और कृतज्ञता रखनी चाहिए, तो इस्लाम को समझने को किसी भी आलिम से वे कम नहीं। मौलाना अब्दुल बारी साहब मेरे पीर और मुर्शिद हैं। मैं उनके प्रेम और एहसान से बंधा हुआ हूं। फिर भी मैं महात्मा गांधी के विषयमें कह सकता हूं कि उनके बराबर कोई नहीं। परन्तु धार्मिक सिद्धान्त जुदी चीज है। और मनुष्य का शील और धर्म-सिद्धान्त दो जुदी वस्तुएं हैं। मुसल्मान होने का अर्थ यह है कि मैं एक मुसल्मान की हैसियत से अपने धर्म-सिद्धान्त को दूसरे किसी गैर-मुस्लिम व्यक्ति के गैर-मुस्लिम धर्म-सिद्धान्त से श्रेष्ठ समझूं। इस दृष्टि से देखें तो एक विषयी और व्यभिचारी मुस्लिम का धर्म-सिद्धान्त पवित्र से पवित्र गैर-मुस्लिम व्यक्ति के धर्म-सिद्धान्त से श्रेष्ठ है—फिर भले ही वह व्यक्ति खुद महात्मा गांधी क्यों न हो। लखनऊमें एक महाशय ने एक सवाल छपवा कर बांटा और उसकी एक प्रति मुझे दी। तब मैंने जवाब दिया कि ऐसे सवालों का जवाब देने के लिए मैं बाध्य नहीं हूं। जो हिन्दू-भाई मुझसे अधिक प्रेम और आदर महात्माजी के प्रति रखता हो उसीको मुझसे यह सवाल पूछने का हक हो सकता है। परन्तु जब उन महाशय ने कहा कि इस सवाल का संबंध महात्मा गांधी के अपमान से नहीं बल्कि हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति से है तब मैंने ऊपर लिखे अनुसार जवाब दिया। उस समय (एक महीना पहले) मेरे भाषण का विवरण "हमदम" में छपा था। मैंने यह भी कहा था कि ईसाई-मजहब के अनुसार एक पतित और व्यभिचारी ईसाई का धर्म-सिद्धान्त पवित्र से पवित्र हिन्दू, यहूदी या मुसल्मान के धर्म-सिद्धान्त से बढ़कर है और यही बात हिन्दू अथवा दूसरे तमाम धर्मों की है। मेरा उत्तर इस हद तक सन्तोषजनक मालूम हुआ कि, जैसा मैं पहले कह चुका हूं, एक हिन्दू-भाई ने उठ कर कहा '२२ करोड़ हिन्दू आपका साथ देने के लिए तैयार हैं।' कितने ही हिन्दुओं ने जय-घोष भी किया। 'अल्लाहो अकबर' और 'वन्दे मातरम्' के नारों के द्वारा इस जवाब का स्वागत किया गया। और जो महाशय सवाल छपा कर लाये थे वे खिटपिटा गये। दिल्लगी तो देखिए, जिन महाशयों ने मुझे इस्तीफा दे देने की सिफारिश की थी, उन्हींमें से एक सज्जन ने कुछ ही दिन पहले मुझे देहरादून के जल्से के लिए निमंत्रण भेजा। मैं इन महाशयों के अनुरोध को स्वीकार नहीं कर सकता। खुद महासभा ही ऐसी बातों का निपटारा कर सकती है। मैं तो सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं कि एक अदने से अदना मुसल्मान होते हुए भी यदि मैं हिन्दू-मुसल्मान-एकता का दुश्मन और महात्मा गांधी तथा उनके धर्म-सिद्धान्त की बेइज्जती करनेवाला माना जाऊं तो एक भी मुसल्मान ऐसा नहीं मिल सकता जो उन्हें सन्तोष दिला सके।

मैं फिर कहता हूं कि यदि मैंने वादा न किया होता तो मैं इतना भी न लिखता। क्योंकि आजकल असह्य विवाद उपस्थित हो रहे हैं। मैं उनकी संख्या बढाना नहीं चाहता। जिन महाशयों ने यह खेदजनक चर्चा खड़ी की है—और सो भी ऐसे समय जब कि मेरी लड़की के इन्तकाल और मेरी पूज्य माता तथा मेरे बुजुर्ग भाई की गहरी बीमारी ने मेरे चित्त को झगड़ों में पड़ने के अयोग्य कर डाला है—उन्हें मैं कर्तव्य का उपदेश नहीं दे सकता। आपने मेरे साथ जो हमदर्दी जाहिर की है उसके लिए मैं आपका शुक्रिया अदा करता हूं और रुखसत लेता हूं। यदि आप इस विषय पर अखबारों में कुछ लिखना चाहें तो इस पत्र को भी छपाइएगा।

आपका कृपाकांक्षी
महम्मदअली

(दूसरा पत्र आगले अंक में)

काबुलियों का कष्ट

अखबारों में काबुलियों के द्वारा होनेवाले कष्टों के संबंध में कुछ न कुछ लिखा ही रहता है। और हमारे मन में यह बात पैठ गई मालूम होती है कि उससे बचने का उपाय हमारे पास सिर्फ एक ही है। यदि सरकार हमारी रक्षा न करे तो हम लाचार बनकर बैठ रहते हैं।

असहयोगियों ने तो यह रास्ता खुद होकर बन्द कर दिया है। सरकार से यदि वह मदद मांगने जाय तो उसका असहयोग-धर्म हम हो और मदद मांगते हुए उसे शर्मिन्दा भी होना पड़े। परन्तु सहयोगी का भी धर्म नहीं कि हमेशा ही सरकार की मदद लिया करे। तमाम सहयोगी यदि हरवक्त सरकार की ही सहायता पर नजर रक्खें तो फिर या तो वह सरकार ही न रहे अथवा सरकार एक जालिम राज्य हो जाय। संसार के दूसरे किसी भाग में लोग सरकार पर ही सारा दारमदार रख कर नहीं बैठ रहते, बल्कि खुद ही अपनी और अपने गौरव की रक्षा करते हैं—यह समझ कर मानों सरकार है ही नहीं।

तो सरकार की मदद चाहे बिना काबुलियों के कष्ट से बचने के कौन कौन से रास्ते सहयोगी और असहयोगी दोनों के लिए खुले हैं?

एक तो आम रास्ता—यह कि लोग काबुली से लड़ लें।

दूसरा सत्याग्रह।

पहला रास्ता अंगीकार करना लोगों का हक है, धर्म है। यदि लोग अपनी रक्षा न कर सके तो उन्हें कायर समझना चाहिए। स्वराज्य सरकार भी पल पल पर लोगों की रक्षा ही न करती रहेगी। सरकार बड़े बड़े कष्टों के लिए तैयार हो सकती है; पर कहीं इक्के-दुक्के आदमियों की रक्षा वह कर सकती है? इस सरकार की तो नीति ही ऐसी है कि काबुलियों के कष्ट जैसे भय से वह लोगों की रक्षा एकाएक नहीं कर सकती। उसकी रक्षा-प्रणाली यहां तक बढ़ जाती है कि जिससे हम आपस में लड़-झगड़ कर उसकी मातहती न छोड़ बैठें। अपने व्यापार के लिए वह हिन्दुस्तान की बाहरी और भीतरी रक्षा की जरूरत समझती है और इसी हेतुसे रक्षा करने के लिए वह मोटा खर्च उठाने तैयार रहती है। मैं यह कहना नहीं चाहता कि हमारी रक्षा वह करना नहीं चाहती। परन्तु ऐसी रक्षा करना उसका मुख्य उद्देश्य नहीं—उसके लिए वह पूरी तैयार नहीं होती। यदि वह तैयारी करना चाहे तो आज से ज्यादह रक्षा के नाम पर खर्च करे और करना पड़े। आज भी घर-खर्च से हमें दरबान का खर्च ज्यादह उठाना पड़ता है। फिर यदि काबुलियों के कष्ट रूपी भय को दूर करने की पूरी तैयारी वह करे तो दरबान अलबत्ते सुखी रहेगा—पर गृहस्थ तो बेचारा अन्दर ही भीतर ही मर रहे। इसलिए ऐसे भयों से हमें अपनी रक्षा खुद ही कर लेनी चाहिए। हां, इसके लिए यह समझो जरूर है कि हमारे पास हथियार नहीं। परन्तु हथियार से भी ज्यादह जरूरत हिम्मत की है। डरपोक के हाथ में बन्दूक किस काम की? उसकी बन्दूक उसीपर चल पड़ेगी। डरपोक बन्दूकधारी को दूसरे हथियार रखनेवाले हिम्मतवर डरा देंगे और उसकी बन्दूक को, चलाने के पहले ही, वे छीन लेंगे। हर गांव के हिम्मतवर लोग यदि जान हथेली पर लेकर लोगों की रक्षा करने के लिए तैयार हो जायं तो काबुलियों का कष्ट तुरन्त कम हो जाय। यहां यह लिख देना भी आवश्यक है कि शान्त असहयोगी की प्रतिज्ञा में ऐसी स्व-रक्षा बाधक नहीं है।

'पर ऐसे काम में क्या मैं हाथ बटाऊंगा?' यह सवाल यदि कोई मुझसे पूछे तो मुझे नकारात्मक ही उत्तर देना पड़े। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मुझमें हिम्मत तो है। हिम्मत न हो वह सत्याग्रही हो ही नहीं सकता। डरपोक का अर्थ सत्याग्रह नहीं हो सकता। हां, डरपोक भी डर के मारे सत्याग्रही सेना में शामिल हो सकता है; पर वह बात और है।

लेकिन मैं दो घोड़ों पर सवारी नहीं कर सकता। मैं तो सत्याग्रह करते करते सत्यमूर्ति बनना चाहता हूं, सत्यमय हो जाना चाहता हूं। इसलिए मैंने किसीको मार कर जीवित रहने का कार्य आजन्म के लिए छोड़ दिया है। मैं तो मर कर जीवित रहने का काम सीखना और उसके मुताबिक चलना चाहता हूं। मैं संसार के प्रेम के द्वारा जीवित रहना चाहता हूं। कोई भी शख्स जो मुझसे वैर-भाव रखता हो इसी क्षण आ कर मेरे शरीर को हलाक कर सकता है। मैं ईश्वर प्रार्थना करता हूं कि उस समय भी मेरे हृदय में प्रेम ही दिखाई दे। इस प्रयोग के करते हुए मैं मार कर रक्षा करने के प्रयोग में शामिल नहीं हो सकता, न होना चाहता हूं।

ऐसी अवस्था में मेरे और मुझ जैसों के लिए केवल दूसरा रास्ता शेष रह जाता है। इसके लिए बहुतेरे लोगों की जरूरत नहीं। इसके लिए सामुदायिक सत्याग्रह असंभव है। शास्त्र की यह प्रतिज्ञा है कि हममें यदि कोई संयमी पुरुष हो तो वह काबुलियों के हृदय को भी भेद सकता है। कोई सच्चा मुसलमान फकीर इस काम को आसानी से कर सकता है। पर यह बात नहीं कि कोई हिन्दू सन्यासी इस काम को न कर सके। सत्याग्रह-शास्त्र में न तो जाति-भेद है, न धर्म-भेद। उसकी [illegible] भी जरूरत नहीं रहती। हृदय हृदय का काम किया ही करता है।

जो काम एक सहजानन्द ने गुजरात में किया उसे राज्य-[illegible] न कर सका। जो काम चैतन्य ने बंगाल में किया उसे सरकार आजतक न कर सकी—कर भी नहीं सकती। चैतन्य के तेज से ही डाकू चोर आदि सधे हो जाते थे। हिन्दुस्तान में मुसलमान फकीरों और हिन्दू संन्यासियों के ऐसे कितने ही उदाहरण मिलते हैं। अब्दुल कादर जिलानी के सत्य-बल से डाकुओं ने लूटा हुआ माल फिर वापस कर दिया और अपना डाकुओं का धंधा छोड़ दिया। गुजरात के यतियों और साधुओं में यदि कोई भी निर्मल संयमी हो तो वह काबुलियों के कष्ट से लोगों को सहज ही मुक्त कर सकता है। सहजानन्द का जमाना पूरा नहीं हो गया। जरूरत है उनके सदृश भक्ति, और संयम की ही। इस युग में थोड़ी भक्ति और थोड़ा संयम भी फलीभूत हो जाता है। क्योंकि बीमार को जब ऐसी मात्रा दी जाती है जिसका अनुभव उसे अबतक न हुआ हो, तो वह थोड़ी भी असर कर जाती है।

हां, इसपर भी यह सवाल हो सकता है—"दूसरों को आप कहते हो तो तुम खुद ही यति हो कर दिखा दो न? बैठे बैठे हुए कहते हो।" यह बात भी सच है। पर मेरा जवाब तैयार है। वह यदि समझ में न आया हो तो उसे लिख कर नहीं समझा सकता। फिर यह लेख उन लोगों के लिए नहीं लिखा गया है जो ऐसी शंका उठाते हैं। यह क्यों न संभवनीय हो कि जो शक्ति मुझे बुद्धि के द्वारा बिल्कुल सरल मालूम होती हो उसे करने का हृदय-सामर्थ्य मुझ में न हो? मैंने सामर्थ्य का ठेका तो किसीसे नहीं लिया। बहुत संभव है, देश में मुझ से भी अधिक हृदय-बल रखने वाले लोग हों। उन्हींसे मेरी प्रार्थना है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

परन्तु जब सामुदायिक सत्याग्रह का सवाल खड़ा होता है तब व्यक्ति के उत्साह पर पूरा पूरा अंकुश रखने की जरूरत है, तब लोगों में श्रद्धा, धीरज, और सहिष्णुता की जरूरत है। यदि केवल उत्साह हो और सफलता न मिलने पर धीरज खो बैठे तो हार हुए बिना रहे? यदि कष्ट सहन करने की शक्ति न हो तो जब सत्याग्रह [illegible] , वह देते हैं तब थक जाने की संभावना रहती है। इसलिए इन तमाम बातों पर विचार करके अगुआ लोग युद्ध में उतरें।

एक और बात भी ध्यान में रखने लायक है। यह विश्वास बहुत रक्खा जाता है कि सत्याग्रही एक हद से आगे नहीं रहेंगे। ऐसे विश्वास के लिए स्थान रहना नहीं। [illegible] का तो काम ही होता है दबा देना। [illegible] वह लोगों की बात को कुबूल न करना चाहता हो तब वह उन्हीं को हर तरह से दबा देना अपना धर्म समझता है। [illegible] कि वह दया-भाव से [illegible] सिद्ध है और [illegible] है! ऐसी ही स्थिति से वाईकोम [illegible] नेताओं को न [illegible] सत्याग्रह [illegible] पकड़ने से [illegible] जाता हो तो [illegible] धर्म है। इसमें व्यवहार [illegible] और यदि [illegible] नेता [illegible] होने पर [illegible] होंगे— [illegible] यदि सत्याग्रही नेता को न [illegible] लड़ाई अधिक [illegible] हमें यह [illegible] लड़ाई खड़ी करनी चाहिए कि [illegible] है [illegible] उपायों का [illegible] करेगा।

इस प्रकार तमाम [illegible] करने पर यह निश्चय हो जाए कि हाँ, तमाम [illegible] तो फिर [illegible] किया जा सकता है और उसका [illegible]।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

खादी और शुद्धि

[illegible] एक मित्र लिखते हैं—"[illegible], पवित्र और [illegible] खादी पहनना पवित्र वस्तु को [illegible] के बराबर है। ये गुण मुझमें पूरे पूरे नहीं, इसलिए मेरी हिम्मत नहीं होती कि खादी पहनूं।" मेरे दिल में यह बात अब आ जाती है कि हरएक खादी पहनने वाला इन्हीं गुणों से युक्त हो; पर यदि मैं ऐसी इच्छा रक्खूं तो मुट्ठी भर आदमी भी खादी न पहन सकें। लेखक ने खादी के गुण [illegible] बताये हैं। खादी का एक सब से बड़ा गुण यह है कि भारत की दरिद्रता और फाकेकशी मिटाने का दूसरी किसी भी वस्तु में [illegible] खादी है। केवल इतना ही कारण तमाम गरीब और अमीर लोगों को हर किस्म का दूसरा कपड़ा छोड़कर सिर्फ हाथ-कती-बुनी खादी पहनने के लिए लालायित करने को काफी है। [illegible] सवाल ही नहीं है। हर शख्स को खादी पहननी चाहिए—फिर वह कोई भी क्यों न हो। [illegible], मुझे [illegible] देश के [illegible] लोगों को भी कपड़ा पहनने और खाना खाने [illegible] सकता। यदि मैं उनसे [illegible] जीवन [illegible] सकूं तो भी मैं उन्हें खादी पहनने पर जोर देने में जरा भी न हिचकिचाऊंगा। खादी में जो शक्ति हई नहीं उसका आरोप उसपर करने से हमें बाज आना चाहिए। (यं० इं०)

सत्याग्रह और समाज-सुधार

सत्याग्रह के सिद्धान्त को लोग ज्यों ज्यों समझते जाते हैं त्यों त्यों नये नये क्षेत्रों में उससे काम लिया जा रहा है। केवल सरकार के मुकाबले में ही नहीं, बल्कि कुटुम्बों और जातियों के मुकाबले में भी उसका उपयोग होता हुआ दिखाई देता है। एक जाति में कन्या-विक्रय का घातक रिवाज है। एक नौजवान उसे रोकने की उमंग रखता है। उसने यह सवाल उठाया है कि मुझे क्या करना चाहिए। सत्याग्रह का सुगम अंग अ-सहयोग है। इस जाति के कन्या-विक्रय को रोकने का इरादा इस युवक ने किया है। इरादा स्वच्छ है; पर सवाल यह है कि वह असहयोग का अवलंबन करे या नहीं? यदि करे तो किस तरह और किसके मुकाबले में?

प्रस्तुत प्रसंग के विषय में निश्चित राय देना कठिन है। हां, ऐसे मौकों के लिए कितने ही सर्व-सामान्य नियम बताये जा सकते हैं।

पहले तो असहयोग एकाएक अंगीकार किया ही नहीं जा सकता। जो बुरे रवाज एक जमाने से चले आ रहे हैं वे एक क्षण में नष्ट नहीं हो सकते। सुधार के एक पांव होता है-इससे वह लंगड़ाता हुआ चलता है। जो मनुष्य धीरज खो बैठता है वह शुद्ध अ-सहयोगी नहीं हो सकता। सुधारक के लिए पहली सीढ़ी है लोकमत को तैयार करना। उसे चाहिए कि जाति के समझदार लोगों से मिले, उनके विचार और दलीलें सुने। सुधारक यदि सीधा-सादा आदमी हो, उसे कोई पहचानता न हो, समझदार लोग उसे दाद न दें तो उसे क्या करना चाहिए? यदि वह ऐसा दीन-हीन हो तो उसे जानना चाहिए कि वह सुधार का निमित्त बनने के लिए उत्पन्न नहीं हुआ है। हम सब लोग चाहते हैं कि संसार से झूठ का नाश हो जाय। परन्तु झूठे लोगों को जाकर कौन समझाता है? यह सुधार बहुत आवश्यक है। फिर भी हम क्यों धीरज रख कर बैठे हैं?

बात यह है कि सुधारक में अहन्ता न होनी चाहिए। तमाम बुराइयां दूर करने की जिम्मेवारी हम अपने सिर क्यों ले बैठें? हमें इतने ही पर सन्तुष्ट रहना चाहिए कि खुद सच बोलें और सच्चा व्यवहार करें। इसी प्रकार जाति की कुरीतियों के संबंध में भी हमें खुद अपने आचार-विचार साफ-सुथरे रखना चाहिए और दूसरे के संबंध में उदासीन रहना चाहिए। नरसी महता के इस इस वचन को कि

"मैं करूं, मैं करूं, येहि अज्ञानता

शकट का भार ज्यों श्वान खींचे"

ध्यान करके उसके अनुसार निरभिमान हो कर रहना चाहिए।

जब निरभिमान रहते हुए भी हम यह महसूस करते हों कि हां, हमपर यह जिम्मेवारी है तब हमपर विशेष कर्तव्य का भार आ पड़ता है। जाति के मुखिया निरभिमान होने का दावा कर के जाति की कुरीतियों को दरगुजर नहीं कर सकते; क्योंकि मुखियापन को अंगीकार कर के वे जाति की नीति के रक्षक बने हैं। यदि एक भी कन्या-विक्रय होगा तो उस निर्दोष बालिका का शाप उनपर पड़ेगा।

परन्तु मुखिया लोग यदि खुद उस बुराई को दूर करने का प्रयत्न न करें—यही नहीं बल्कि खुद ही कन्या-विक्रय करते हों तो फिर बेचारे उस जाति-सुधारक को क्या करना चाहिए? वह खुद तो स्वच्छ हो गया है। जाति के तमाम अगुओं से मिल चुका है। उन्होंने उसे कुत्ते की तरह दुतकार कर निकाल दिया है। उसपर गालियों की बौछार हो रही है। बेचारा हताश और

विवश होकर कर गया है। नीचे जमीन और ऊपर आसमान के सिवा उसे कोई दिखाई नहीं देता। अब ईश्वर उसकी पुकार सुनता है। पर अभी थोड़ी तो परीक्षा ही है। तपस्या के द्वारा शोधित होने के लिए उसको अच्छी इम्तिहान हो चुका है। अब वह अपनी अन्तरात्मा की पुकार को सुन सकता है। वह अन्तर्यामी से पूछता है—"अपमान-सहन करके भी क्या मैं अपने बन्धुओं के साथ प्रेम रखता हूं? क्या मैं उनकी सेवा करने के लिए तैयार हूं? क्या मैं उनके जूतों के प्रहार को भी बरदाश्त कर सकूंगा?" यदि अन्तरात्मा इन तमाम सवालों के जवाब में 'हां' कहता है तो वह दूसरा कदम बढ़ाने की तैयारी करता है।

अब वह प्रेममय असहयोग का आरंभ कर सकता है। प्रेममय असहयोग का मतलब है तमाम हकों का त्याग, फर्जों का त्याग नहीं। जाति में इस गरीब सेवक के हक क्या हैं? जाति-भोजन और विवाह-संबंध। इन दोनों हकों का वह नम्रता-पूर्वक त्याग कर दे। इतना करने पर वह अपना कर्तव्य पूरा कर चुका। यदि जाति के मुखिया उसे कांटे की तरह चुन कर फेंक दें, मद की मस्ती में यह समझ कर कि 'चलो एक पत्तल कम हुई—एक लड़कियां मांगनेवाला कम हुआ' उसे बिरादरी से खारिज कर दें, तो वह गरीब सेवक निराश न होते हुए यह श्रद्धा रक्खे कि जो शुद्ध बीज मैंने बोया है उससे महान् वृक्ष पैदा होगा। अपना कर्तव्य पूरा कर चुकने के बाद—उसके फल नहीं—वह गा सकता है—"अधिकारी हूं कर्म का फल से मुझे क्या काम?"

यह गरीब तपस्वी अब वनवासी होता है। उसमें यदि वह ब्रह्मचारी है तो वह भीष्म प्रतिज्ञा कर लेता है कि जबतक जाति में यह बुराई मौजूद है तबतक मैं ब्रह्मचारी रहूंगा। यदि वह विवाहित हो तो अपनी पत्नी के साथ मित्रता का नाता रक्खेगा। यदि बाल-बच्चे हों तो उन्हें भी ब्रह्मचर्य का पालन करने की तालीम देगा। जातिवालों से मदद न मांगनी पड़े, दूसरी जगह हाथ न लम्बा करना पड़े, इसलिए वह कम से कम परिग्रह मात्र-अपना व-रक्खेगा। इस प्रकार एक संन्यासी की तरह जीवन व्यतीत करना ही उसका कर्त्तव्य है। प्रेममय असहयोग में स्वच्छन्दता के लिए स्थान हई नहीं। वहां तो संयम ही की शोभा है। बोये हुए बीज को वह संयमरूपी पानी देता है। जो यह विचार करता है कि 'मैं दूसरी जाति में लड़के-लड़कियों की शादी कर दूं या और कहीं भोजन-विलास किया करूंगा' वह संयमी या असहयोगी नहीं। वह तो मिथ्याचारी है। संयमी असहयोगी तो अपनी जाति के ही गांव में रहकर तपश्चर्या करेगा। ऐसों के सान्निध्य में वैरत्याग कहा गया है। वह स्वार्थी हिमालय में बैठकर मुखिया के प्रति अहिंसापालन का दावा करते हुए मुखियों के हृदय को पानी पानी कर देने की आशा नहीं रख सकता। मुखियों ने जो उसका अनादर किया है उसका एक कारण यह भी है कि उन्होंने उसे एक अविवेकी और उद्धत लड़का मान लिया है। पर अब उसे यह साबित करना बाकी है कि मैं गरीब और कमजोर होते हुए भी उद्धत या विवेकशून्य नहीं, बल्कि नम्र और विवेकवान् हूं।

इस प्रकार सेवा के मौके पर जाति-भाइयों की सेवा करते हुए, पर फिर भी उसके बदले की आशा न रखते हुए वह देखेगा कि इस सुधार-कार्य में दूसरे लोग भी शामिल होंगे—वे चाहे असहयोग न करें पर उनकी हमदर्दी उसके साथ रहेगी। क्योंकि जिस प्रकार हम अपने सहयोगी भाइयों को अपने त्याग और ज्ञान के बयान से कोसते हैं उस प्रकार हमारा यह संयमी युवक अपने जातिवालों को गालियां नहीं देता—इसलिए कि वे उसका [illegible]। नहीं देते हैं अथवा विचार से तो साथ देते हैं पर असहयोग नहीं करते। बल्कि उनके प्रति प्रेम-भाव रखकर ही वह उनके मन को हर लेता है। वह नित्य इस बात का अनुभव करेगा कि प्रेम तो एक पारस-मणि है। परन्तु ऐसा अनुभव होने में यदि विलंब हो तो वह अधीर न होगा और विश्वास रक्खेगा कि प्रेम-बीज का फल अगणित प्रेम-फल ही हो सकता है।

मेरे पास जो पत्र आया है, उसमें यह भी पूछा गया है कि हमारा तपस्वी असहयोगी यदि जाति-भोजन का त्याग करे तो क्या जाति के मित्रजनों के यहां भी भोजन का त्याग कर दे? सो बात तो ऐसी होगी कि उसका त्याग पत्र मिलते ही जाति के मुखियों को गुस्सा लगेगा और वे उसे बिरादरी से खारिज कर देंगे और जो उसके साथ रोटी बेटी-व्यवहार करेगा या करेगा उसे वे सजा देंगे। इस अवस्था में व्यक्तियों के साथ भोजन-व्यवहार का सवाल ही नहीं रह सकता। इस प्रकार यदि जाति से बाहर करना न हुआ तो भी संयमी का विशेष धर्म यह होगा कि वह खुले या छिपे तौर पर अपने जाति-बन्धु मित्रों के यहां न्योता मिलने पर भी भोजन करने न जाय। हां, यदि कोई जाति-बन्धु विचारपूर्वक असहयोग में शामिल हो तो वह उसे अवश्य स्वीकार करे—और ऐसा होने की संभावना भी है।

पर आमतौर पर ऐसा कहा जा सकता है कि मित्रों के साथ भोजन व्यवहार के त्याग करने का मौका ही न आ पावेगा। फिर भी यदि आ गया तो उसका त्याग करने की आवश्यकता नहीं। हां, जो लोग कन्या-विक्रय करते हों उनका निमंत्रण तो वह हरगिज कबूल न करे।

इससे हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि—

(१) असहयोग का आरम्भ करने के पहले लोकमत तैयार करने की बहुत चेष्टा करनी चाहिए।

(२) असहयोगी में यह शक्ति होनी चाहिए कि बिना रोष के विरोधियों के दुर्वचन वगैरह सुन सके और बरदाश्त कर सके।

(३) असहयोग प्रेम-मूलक होना चाहिए।

(४) असहयोग अंगीकार कर लेने के बाद अपना असली मुकाम नहीं छोड़ सकते।

(५) असहयोगी का कठिन संयम का पालन करना चाहिए।

(६) असहयोगी को अपने साधन पर पूरी श्रद्धा होनी चाहिए।

(७) असहयोगी फल के विषय में उदासीन रहे।

(८) असहयोगी की प्रत्येक बात में विवेक, विचार और नम्रता होनी चाहिए।

(९) असहयोग करने का अधिकार और धर्म सबको नहीं प्राप्त नहीं होता। अधिकार के बिना किया असहयोग व्यर्थ हो सकता है।

यदि किसी ही या बहुतेरे लोगों को यह मालूम हो कि इन नियमों का पालन करना असंभव है, तो यह ठीक है। बीज संयम के बिना शुद्ध असहयोग असंभव है। फिर प्रस्तुत प्रश्न में तो बालक स्वयं ही कर्ता है, स्वयं ही भोक्ता है, स्वयं ही सेनापति है और स्वयं ही सिपाही है। उसमें यदि कमी रहती तो निराशा ही उसके भाग में लिखी समझिए। अतएव ऐसे स्वतन्त्र असहयोगी के लिए तो असहयोग का अनारंभ ही प्रथम बुद्धि-लक्षण है। परन्तु एक बार आरंभ कर चुकने पर चाहे देह-पात हो जाय पर उस कार्य का त्याग न हो।

दूसरा सवाल यह उठता है कि ऐसे संयम का पालन कर के जाति जैसी संकुचित संस्था में सुधार की कौन बड़ी जरूरत थी? कुछ लोग कहेंगे हम तो जाति-बंधन को ही नष्ट कर डालना चाहते हैं तो

फिर कन्या-विक्रय आदि कुरीतियों के पीछे पड़ने से क्या लाभ ? यह सवाल यहां अप्रासंगिक है । हमारे सुधारक का प्रश्न जाति-संबंधी ही है । कौटुम्बिक असहयोग यदि ठीक माना जाय तो जब तक जातियां कायम हैं तबतक जातिसंबंधी असहयोग की बात भी ठीक माननी चाहिए ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

टिप्पणियां

मौ० शौकतअली की बीमारी

पाठक इस बात को जानते ही हैं कि मौ० शौकतअली कुछ समय से बीमार हैं और डा०-अनसारी के यहां उन्हींका इलाज जारी है । पाठकों को सुन कर दुःख होगा कि अभीतक उन्हें जैसा कि ख्याल था, आराम नहीं हो रहा है । मौ० महम्मदअली और डा० अनसारी के पत्र हाल ही मिले हैं । उनमें वे लिखते हैं कि रोगी को बहुत ही कमजोरी मालूम होती है और बड़ी चिन्ता के साथ सेवा-सुश्रूषा करनी होगी । पाठकों से मेरा अनुरोध है कि वे दयामय परमात्मा से इस प्रार्थना काल में मेरा साथ दें कि हमारा यह विशाल देशभाई शीघ्र भला-चंगा हो जाय ।

नेताओं के साथ बात-चीत

स्वराज्य-वादी नेताओं और मेरे बीच जो बातचीत हुई है उसकी खबरें अखबारों में छपी हैं । मैं चाहता हूं कि पाठक ऐसी खबरों को बिलकुल कच्ची समझ कर उनपर कुछ ध्यान न दें । अब तक जो चर्चा हुई है उससे किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाये हैं । देशबन्धु अभी तक इस चर्चा में शामिल नहीं हो पाये । डाक्टरों ने उन्हें सलाह दी है कि आपको बहुत दिनों तक आराम करने की जरूरत है । शायद वे बिलकुल ही न आ सकें । जो हो, लेकिन जबतक देशबन्धु तथा दूसरे मित्रों के विचार न मालूम हों तबतक इस विषय में मैं अपने विचार लोगों के सामने नहीं उपस्थित कर सकता ।

मैं सुनता हूं कि इस बात-चीत के फल-स्वरूप कार्यकर्ताओं में एक प्रकार की अनिश्चितता फैल रही है और अखबारों की गैर-जिम्मेवार खबरें इस उलझन में मदद कर रही हैं । इसलिए हर जगह के कार्यकर्ताओं से मैं कहे देता हूं कि वे इस सलाह-मशवरे के पीछे अपना वक्त न गवावें । एक बात का तो मैं हर कार्यकर्ता को यकीन दिलाये देता हूं कि रचनात्मक कार्यक्रम में कोई भी फर्क होने की संभावना नहीं है । अतएव जो इस बातचीत के नतीजे की राह देखते हुए रचनात्मक कामों में सुस्ती करेंगे वे भारी भूल करेंगे और उस हदतक रचनात्मक कामों को धक्का पहुंचावेंगे । फिलहाल तो हमें अपना हरएक कार्यकर्ता और हमारा तमाम वक्त रचनात्मक कार्यक्रम में लगाना होगा ।

कार्यकर्ताओं की सभा ?

एक मित्र सूचित करते हैं कि जिस प्रकार मैं अभी नेताओं के साथ चर्चा कर रहा हूं उसी प्रकार कार्यकर्ताओं की भी एक सभा की जाय । पहले तो मुझे यह तजवीज अच्छी दिखाई दी । पर देखता हूं कि ऐसा होना कठिन है । ऐसी सभा न करने का मुख्य से मुख्य कारण है मेरी शारीरिक दशा । अभी तक मेरे शरीर को इतना बल नहीं हुआ है कि मैं किसी बड़ी चर्चा या सभा में बैठ सकूं । और यदि ऐसी सभा करना जरूरी ही हो तो उसमें अभी जल्दी न होनी चाहिए । अधिक से अधिक इस मास के अन्त में उसकी तजवीज करनी होगी । परन्तु मैं देखता हूं कि इतनी थोड़ी अवधि में मेरा शरीर इतना स्वस्थ न हो सकेगा । इसके अलावा उस सभा में होगा भी क्या ? जितनी मिल सकती है उतनी वाकफियत मैं हासिल कर ही रहा हूं । जो सार्वजनिक जटिल प्रश्न आज हमको परेशान कर रहे हैं उनपर मैं शीघ्र ही अपनी राय कायम कर सकूंगा । मेरी राय को चाहे जितना ही महत्व दिया जाता हो तो भी उसे एक व्यक्ति की ही राय समझना चाहिए । और इसलिए वह प्रमाणभूत नहीं कही जा सकती । महासभा वादियों के लिए तो महासभा का निर्णय और उसके अभाव में कार्य-समिति अथवा महा-समिति का निर्णय ही प्रमाणभूत माना जा सकता है । हां, मेरे विचार जब महासमिति की बैठक हो तब चर्चा के विषय के तौर पर अलबत्ते गृहीत किये जा सकते हैं । कार्य-समिति की बैठक शीघ्र ही होनेवाली है । पर इस काम के लिए वह बहुत जल्दी कही जा सकती है । फिर महासमिति से पूछे बिना तो वह नयी नीति अथवा नया कार्यक्रम तैयार कर ही नहीं सकती ।

इस प्रकार यद्यपि मैं कार्यकर्ताओं की सभा करने में कठिनाइयाँ देख रहा हूं तो भी यदि वे अपने सामने उपस्थित तमाम जटिल प्रश्नों पर अपने विचार और राय भरसक संक्षेप में मुझे लिखकर भेज दें तो मुझे अपने निर्णय पर पहुंचने में भारी मदद मिलेगी । ऐसे तमाम लेख इस महीने के अन्त के पहले पोस्ट अंधेरी बंबई, के पते पर मेरे पास भेज देने चाहिए ।

गुरुद्वारा-आन्दोलन

५०० अकालियों का एक और जथा जंगसर गुरुद्वारा जाते हुए रास्ते में रोके जाने पर पूरी शान्ति के साथ रोकनेवालों के ताबे हो गया और नाभा के अधिकारियों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया । यदि ऐसी गिरफ्तारियों के हम आदी न हो गये होते तो आज ऐसी खबर से सारे देश में खलबली मच गई होती । पर अब तो हमारे लिए ये मामूली बातें हो गई हैं । न तो इनपर किसीको अचम्भा ही होता है न दुःख ही । इस प्रकार जिस हदतक इन घटनाओं पर खलबली मचना और जोश फैलना कम हो उसी हदतक इन घटनाओं की नैतिक कीमत बढ़ गई समझना चाहिए । ऐसी गिरफ्तारियों से जितनी ही सनसनी कम फैलेगी उतना ही लोगों को उन्माद भी कम होगा । जो लोग जोश-खरोश के अभाव में चुपचाप जा कर गिरफ्तार हो जाते हैं वे एक न्याय्य-कार्य में सत्य के लिए बिना किसी पर रोष किये कष्ट सहन करने के सिवा सिवा किसी प्रभाव पर अटल श्रद्धा रखते हैं । वह कैसे कर सकते हैं ? आज चार साल से सिक्ख सत्याग्रह के तरीके से गुरुद्वारा-आन्दोलन चला रहे हैं । उनके कितने ही नेता आज जेल में हैं । फिर भी यह स्पष्ट है कि उनका उत्साह मन्द नहीं हुआ । उन्होंने कष्ट-सहन भी कम नहीं किया है । उन्होंने मार भी खाई और गोलियों की वर्षा भी सिर पर झेली—पर उंगली तक न उठाई । सैकड़ों वीरों को उन्होंने जेल भेज दिया है । ऐसी स्थिति में विजय तो अब केवल समय का ही प्रश्न हो सकता है । सरकार की ओर से एक नये हमले की तैयारी दिखाई देने लगी है । सरकार उन सिक्खों को कैद कर रही है जो धार्मिक फरमान के अनुसार चले जा रहे हैं । उनके दल को उसने गैर कानूनी जमात करार दे दिया है । अब देखना है कि बहादुर सिक्खों को डराने के लिए सरकार क्या क्या प्रबंध रचती है । परन्तु यह अन्दाज करना मुश्किल नहीं है कि सरकार के किसी भी हमले का क्या जवाब सिक्खों की ओर से मिलेगा । सरकार की ओर से किये गये प्रत्येक सख्त हमले का मुकाबला वे 'कार्यं वा साधयेत् देहं वा पातयेत्' इस निश्चय से करेंगे ।

वाइकोम-सत्याग्रह

वाइकोम का नाम आजतक तो ट्रावनकोर अथवा बहुत हुआ तो मदरास-प्रान्त के बाहर शायद ही किसीने सुना हो । परन्तु

काम पर सत्याग्रह का एक-क्षेत्र हो जाने के कारण एकाएक विख्यात हो गया है। वहां के सत्याग्रह का दैनिक विवरण रोज अखबारों में प्रकाशित होता है। पाठक जानते ही हैं कि यह सत्याग्रह शुरू किस प्रकार हुआ। हम लोग अन्त्यजों को 'अस्पृश्य' नाम से जानते हैं। परन्तु 'दूरितों' के नाम से हम उन्हें इसी हलचल के बाद जानने लगे हैं। केवल इतना ही नहीं कि हमारे इन बदनसीब देश-भाइयों से दूसरे हिन्दू छूते नहीं, बल्कि उन्हें हिन्दुओं से हमेशा कुछ कदम या कुछ गज दूरी पर चलना पड़ता है। इस दूषण के हर अंग के खिलाफ हलचल मचाने की अपेक्षा इस आन्दोलन के अगुओं ने सिर्फ दूरितों के कुछ खास रास्तों से जाने का हक प्रतिपादन करने के लिए ही सत्याग्रह शुरू किया है—इस आशा से कि यदि इसमें सफलता मिल गई तो कम से कम ट्रावनकोर में अस्पृश्यता की जड़ पर कुठाराघात हो जायगा। इस संग्राम में मलाबार के कितने ही वीर कार्यकर्ता जेल चले गये हैं, उनमें श्री जार्ज जोसेफ भी हैं।

कितने ही अगुओं के जेल चले जाने के कारण अब हिन्दुस्तान के नेताओं से प्रार्थना की गई है कि वे वहां आकर लड़ाई चलावें। यह अनुरोध स्वीकार किया जाय या नहीं—इसका विचार यहां करना अनावश्यक है, क्योंकि खुद मदरास से ही अनेक अगुआ वहां जाने को तैयार हो रहे हैं। अब पीछे हटने की तो कोई बात ही नहीं हो सकती। यदि पुराने ख्याल के हिन्दू इस हलचल का सख्त विरोध करें तो संभव है कि यह संग्राम बहुत दिनों तक चले। यदि सत्याग्रही लोग नम्रता और दृढ़ता के साथ सत्य और अहिंसा पर अविचल रहेंगे तो दुराग्रह की कठिन से कठिन और मजबूत दिवार भी टूटे बिना नहीं रह सकती। सत्य और अहिंसा पर उनकी इतनी श्रद्धा तो अवश्य होनी चाहिए कि कठिन से कठिन पत्थर को भी पानी कर देने का सामर्थ्य उनमें है।

ज्यों का त्यों

एक सज्जन ने बड़ा गरमागरम पत्र मुझे भेजा है। और लिखा है कि यदि जरूरत मालूम हो तो आप उसे छाप सकते हैं। बड़े अदब के साथ मैं उन्हें सूचित करता हूं कि मैं आपके पत्र को प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं समझता। हां, नीचे उसकी थोड़ी सी बानगी पाठकों को चखा देता हूं।

"यदि आप स्वराज्य दल वालों के पिछले और वर्तमान कार्यों को कड़े से कड़े शब्दों में न धिक्कारें तो सत्य और ईश्वर के प्रति अपने धर्म का पालन करने से चूकेंगे। यदि आप उन्हें न फटकारेंगे तो आपकी यह हलचल तहस-नहस हो जायगी। ईश्वर के लिए कृपा कर के दूसरी बारडोली न खड़ी कीजिए।"

यह वचन मैं जान-बूझकर यहां उद्धृत करता हूं। इसके द्वारा मैं उस अ-कीर्ति को शिरोधार्य करने की—उसकी तीव्रता कम करने की पेशबन्दी कर रहा हूं जो मुझपर मिथ्या मोह रखनेवालों का मोह कम होने से हो सकती है। धारासभा के सवाल के संबंध में मेरे निर्णय का स्वरूप चाहे कैसा ही हो; पर इतनी बात निश्चित है कि मैं स्वराज्य-दलवालों को किसी प्रकार धिक्कारूंगा नहीं। मैं अपना मत-भेद चाहे जितनी कड़ी-भाषा में प्रकट करूं, पर इसलिए कि मेरे विचार उनसे जुदे हों, मैं उनकी निन्दा नहीं कर सकता। जितना हक मुझे अथवा बड़े से बड़े आदमी को इस बात की उम्मीद रखने का है कि वे अपने विचार जनता के सामने पेश करें और जनता उसे उचित अदब के साथ सुने, उतना ही हक उन्हें भी है। फिर 'मेरे आन्दोलन' नाम की कोई चीज नहीं है। और जिस अर्थ में किसी आन्दोलन को मेरा कहा जा सकता है उस अर्थ में उसके तहस-नहस हो जाने का तबतक डर नहीं जबतक मैं खुद न गिर पड़ूं। अतएव मैं यद्यपि उन पत्र-लेखक की मेरे-विषयक चिन्ता की कद्र करता हूं तथापि मैं उनसे कहता हूं कि आप मेरे विषय में निश्चिन्त रहिए। जहांतक मेरी नजर पहुंचती है वहां तक तो मुझे इस बात के डर रखने का विशेष कारण नहीं दिखाई देता कि मैं अपने प्रति बेवफा साबित हूंगा। इसी अवसर पर मैं एक बात और भी कबूल कर लेता हूं। बारडोली के समय किये अपने निर्णय का मुझे इतना अभिमान है कि संभव है ऐसी बात बार बार सुझाई दे। उस ऐन मौके पर किये गये उस सच्चे दिल के इकबाल से मुझे बड़ा लाभ हुआ है। उससे मेरी शुद्धि हुई और मेरा दृढ़ विश्वास है कि हलचल का भी हित ही हुआ है। उस इकबाल ने तथा हमारे कदम पीछे हटा लेने की घटना ने अहिंसा का जो पदार्थ-पाठ सिखाया है वह दूसरी किसी बात से न हो पाता। अतएव मुमकिन है कि जब जब ऐसे मौके खड़े हों तब तब मैं ऐसी ही भूल करूं—फिर भले ही अपने दल में अकेला क्यों न रह जाऊं। यदि लोकप्रियता खो बैठने के डर से मैं सत्य बोलने और सत्य के अनुसार चलने में 'हिचकिचाऊं' तो मैं देश की सेवा करने के लायक न रहूं। जिस बात के लिए मैं जी रहा हूं उसे खोकर प्राप्त की हुई लोक-प्रियता मेरे किस काम की? (यं० इं०)

मेरे दर्शन ?

एक सज्जन ने मुझसे मिलने के लिए पत्र लिखा है। उसका कुछ अंश यहां देता हूं—

"आपके दर्शन करने की इच्छा किसे नहीं होगी? फिर भी बहुत समय तक इच्छा को रोक रक्खा था। पर मेरी मां तथा बहन की तीव्र इच्छा होने के कारण यह पत्र लिख रहा हूं। पहले मैं अपनी हालत आपको सुना दूं जिससे आप जान सकेंगे कि हम आपके दर्शन करने के योग्य हैं अथवा नहीं।

"अहमदाबाद की महासभा के बाद हमारे सारे परिवार ने चरखा कातने का व्रत धारण किया। फिर मेरी बहन की हिम्मत से हमने एक करघा भी लिया। और अब हम अपना ही काता और अपना ही बुना कपड़ा पहनने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस तरह हमें रचनात्मक कार्य पूरा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरी मां तथा बहन को आपके दर्शन करने की बड़ी ही इच्छा है।। अतएव आपसे प्रार्थना है कि यदि आप अगले रविवार को दो पहर का समय हमें दें तो हम आपका दर्शन करने के लिए आ सकें।"

यह पवित्र परिवार मेरा दर्शन तो क्या करेगा? पर मैं उनका दर्शन करके जरूर कृतार्थ हूंगा और अपनी शक्ति को बढ़ाऊंगा। यदि तमाम कुटुंब इसी प्रकार महासभा के रचनात्मक कार्य को हाथ में ले तो मेरे लिए उनके दर्शन एक रामबाण दवा हो जाय और हिन्दुस्तान को घर बैठे स्वराज्य मिल जाय।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

के लिए अथवा सब कुछ बलिदान करने के लिए तैयार हैं । ऐसी हालत में यह स्पष्ट है कि उन्हें किसी प्रकार की बाहरी सहायता की जरूरत नहीं । पर मान लीजिए कि उन्होंने बाहरी इमदाद ली, तो इससे अछूतों को क्या फायदा होगा ? जबतक वहां के सवर्ण हिन्दू आगे न बढ़ें तबतक निर्बल हिन्दुओं का सवर्ण प्रतिपक्षियों के सामने कुछ न चलेगा । हिन्दुस्तान के अन्य प्रान्तों से सहायता [illegible] लोगों की कुरबानी से क्या वहां के लोगों के दिल में [illegible] वहम दूर हो सकेंगे ? इससे संभव है अछूत भाइयों [illegible] पहले से भी ज्यादह खराब और नाजुक हो जाय । [illegible] का मुकाबला करने के लिए तो एक-मात्र सत्याग्रह ही सब से कारगर इलाज है । यह बात हमेशा याद रखना ठीक है । सत्याग्रह सीधे हृदय से ही विनय करता है । और वे लोग वाइकोम के जन-समाज अथवा राज्य को उतना सचेत नहीं कर सकते जो हिन्दुस्तान के दूसरे प्रान्तों से दौड़ दौड़ कर वहां जायंगे ।

फिर आन्तरिक लड़ाई को बाहर से आर्थिक सहायता की भी जरूरत न होनी चाहिए । ट्रावनकोर-राज्य के हमदर्दी रखनेवाले [illegible] निर्बल हिन्दू चाहे सब जेल के कष्टों को सहन न कर सकें; पर जिनकी कोशिशों के साथ उनकी हमदर्दी है उन्हें आवश्यक आर्थिक सहायता वे अवश्य कर सकते हैं और उन्हें करनी चाहिए । यदि ऐसी सहायता भी वे न करें तो उनकी हमदर्दी का कुछ भी अर्थ नहीं । इसके अलावा जहां घोर संकट निवारण के लिए थोड़े ही लोग सत्याग्रह करने के लिए आगे बढ़े हों वहां भी उन्हें बाहर से मदद लेने की छुट्टी न होनी चाहिए । सामाजिक सत्याग्रह व्यक्तिगत अथवा कौटुम्बिक सत्याग्रह का विस्तृत रूप है । सामाजिक सत्याग्रह की प्रत्येक मद की परीक्षा ऐसे ही कौटुम्बिक सत्याग्रह की घटना की कल्पना कर के करनी चाहिए । इस तरह फर्ज कीजिए कि मैं अपने कुटुम्ब में छुआछूत के पाप को मिटा देना चाहता हूं । अच्छा, अब मान लीजिए कि मेरे माता-पिता इस विचार का विरोध करते हैं, मेरे अन्दर उतना ही दृढ़ विश्वास है जितना कि प्रह्लाद में था, और अच्छी तरह मेरे पिता मेरी खबर लेने की धमकी भी देते हैं, और यह भी फर्ज कर लीजिए कि वे मुझे सजा देने में राज्य की भी मदद लेते हैं । तो मुझे क्या करना चाहिए ? क्या मैं अपने मित्रों को मेरे साथ कष्ट-सहन करने के लिए और जो सजा मेरे लिए तजवीज हुई है उसमें शरीक होने के लिए बुलाऊं ? या मुझे चाहिए कि मैं हर तरह के कष्टों और तकलीफों को, जो मुझे पहुंचे जांय, खुद चुप-चाप सहन करूं और प्रेम और कुरबानी की शक्ति पर ही पूरा भरोसा रख के उनके हृदय को पानी पानी करूं जिससे उनकी आंखें खुल जांय और वे छुआछूत की बुराई को देख सकें ? हां, यह मैं जरूर कर सकता हूं कि विद्वानों और कुटुम्ब के इष्ट-मित्रों को अपनी सहायता के लिए बुलाऊं कि मेरी-उनके एक [illegible] की-जो बात मेरे पिता को न पटती हो उसे उन्हें समझावें । लेकिन कष्ट-सहन करने के मामले इस धर्म और सौभाग्य में मैं उन्हें हाथ न बंटाने दूंगा । इस कौटुम्बिक सत्याग्रह के कल्पित [illegible] पर जो बात घटती है वही इस सामाजिक सत्याग्रह पर [illegible] चरितार्थ होती है । ऐसी अवस्था में वाइकोम-सत्याग्रह के पक्ष में चाहे इन-गिने लोग हों, चाहे बहुतेरे लोग हों, जैसा कि मैंने सुना है कि बहुतेरे हिन्दू उनके साथ हैं, यह साफ है कि उन्हें लोगों की हमदर्दी के अलावा दूसरे किस्म की सहायता से बाज आना चाहिए । शायद हर मौके पर हम इस नियम के अनुसार काम न कर सकें और इस मौके पर भी शायद ऐसा न होने पावे । परन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि इस विषय में सिद्धान्त क्या है और जहांतक हमसे बन पड़े तहांतक हमें उस पर कायम भी रहना चाहिए ।

चिरला-पेरला की मिसाल

ऐसी ही एक घटना के मौके पर मैंने पहले सलाह दी है और वह है चिरला-पेरला की घटना । उसका जिक्र भी मैं यहां किये देता हूं । वहां के निवासियों का दावा था कि हमारा समुदाय संगठित है और कुरबानी के लिए तैयार है । और सचमुच मैंने वहां अद्भुत एकदिली तथा साहसी और कर्तृत्ववान् नेताओं के नेतृत्व के दृश्य देखे । मैंने तो कह दिया था कि मैं महासभा को अथवा लोगों को इस बात की सिफारिश नहीं कर सकता कि आपको किसी तरह की आर्थिक सहायता दी जाय । यही नहीं बल्कि मैं तो प्रस्ताव पास करा के भी आपको उत्साहित करने की सलाह महासभा को न दे सकूंगा । आपको यदि विजय हुई तो उसका यश महासभा लेगी-यह कह कर कि यह हमारे तजवीज किये साधन की विजय है, और यदि आपको असफलता मिली तो उससे महासभा का कुछ वास्ता न रहेगा । आज तीन साल के गहरे और चिन्तापूर्वक विचार के बाद भी मैं उस समय दी गई सलाह में कुछ भी परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं देखता । उलटा मुझे तो यह दिखाई देता है कि यदि हम अपनी पूरी शक्ति आजमाना चाहते हों तो इस खेल के तमाम नियमों का ठीक ठीक पालन किये बिना हमारा छुटकारा नहीं ।

(यंग इंडिया) मो० क० गांधी

बहुमति

एक सज्जन ने एक खुले पत्र में एक विचारणीय सवाल उठाया है—म्युनिसिपल्टी में अथवा दूसरी किसी सार्वजनिक संस्था में धर्म के प्रश्नों का निपटारा बहुमत से हो सकता है ? [illegible] कि हिन्दू-मुसल्मान, पारसी सभासद मिलकर बहुमत से ऐसा प्रस्ताव पास करें कि हिन्दू मदरसों में अन्त्यजों के लड़कों को भरती करना चाहिए । कल्पना कीजिए कि यदि केवल हिन्दुओं की ही राय ली जाती तो वह प्रस्ताव रद्द जाता । ऐसी हालत में क्या ऊपर लिखे ढंग से पास प्रस्ताव उचित माना जा सकता है ? मैं तो समझता हूं कि उचित नहीं कहा जा सकता-बल्कि मैं तो कहता हूं कि ऐसा प्रस्ताव करने से सुधार में रुकावट पड़ेगी । हिन्दुओं के समाज का सुधार क्या विधर्मियों के मतों से हो सकता है ? हिन्दुओं के बहुसंख्यक लोगों को यह ज्ञान होना चाहिए कि अस्पृश्यता पाप है । इसमें दूसरे के मत का कुछ मूल्य नहीं । यह बात स्वयंसिद्ध है ।

इसी प्रकार इस सवाल का निपटारा कि मुसल्मानों को गोरक्षा करनी चाहिए या नहीं, मिश्र-समाज बहुमत से नहीं कर सकता । उस प्रस्ताव को तो अकेले मुसल्मान ही बहुमत से पास कर सकते हैं । जब कि हिन्दू-मुसल्मानों के दिल बिगड़ गये हैं तब उस सवाल का भी संबंध धर्म के साथ हो गया है, जिसका वर्ना से कुछ संबंध नहीं है । छोटे बछड़ों को कत्ल न करने के लिए धर्मशास्त्र के आधार की जरूरत नहीं । ऐसे आर्थिक नियम का विरोध कोई धर्म नहीं कर सकता-नहीं करता । परन्तु मुसल्मान आज के जख्मी और वहमी दिल को इसमें 'अंगुली पकड़ कर पहुंचा पकड़ने' का अन्देशा दिखाई देता है । ऐसी अवस्था में यदि मैं म्युनिसिपल्टी का सभासद होऊं तो जबतक मुसल्मानों का बहुमत बछड़े को बचाने के पक्ष में न हो तबतक मैं अपने को कट्टर हिन्दू मानते हुए, उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म आदेशों को जानते और उनका पूरा पूरा पालन करते हुए भी, उसके लिए अपना शरीर देने को हमेशा तैयार रहते हुए भी-अपनी राय मुसल्मान

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, वैशाख बदी ७, संवत् १९८०

आचार बनाम विचार

मौलाना महम्मदअली के इस्लाम-विषयक भाषण की चर्चा अभी समाचार-पत्रों में चल ही रही है। मैं देखता हूं कि उन्होंने जो भेद दिखाया है उसे कितने ही समझदार और विवेकवान् सज्जन भी नहीं समझ पाये हैं और उसके विषय में बोलते और लिखते समय उस भेद को भूल जाते हैं। अर्थात् उनके दिल के तह में उस भेद का ज्ञान स्थिर नहीं रहता। अतएव मौलाना साहब के दिखाये भेद को बार-बार समझ लेना जरूरी है। वे मानते हैं कि—

१—मनुष्य के आचार और विचार में भेद होता है।

२—श्रेष्ठ विचारवालों का आचार बुरा हो सकता है।

३—श्रेष्ठ आचारवाले के विचार दूसरे विचारों के मुकाबले में हीन हो सकते हैं।

यहां विचार का अर्थ है विश्वास, धर्म-मत, धर्म—जैसे-ईसाई-मत में ईसा-मसीह को ऐकान्तिक ईश्वर मानना, इस्लाम में ईश्वर को अद्वैत और महम्मद साहब को पैगम्बर मानना। हिन्दू-धर्म में (मेरे विचार के अनुसार) सत्य और अहिंसा की श्रेष्ठता मानी गई है'—सत्यान्नास्ति परो धर्मः' 'अहिंसा परमो धर्मः'।

पूर्वोक्त सिद्धान्तों के अनुसार मौलाना साहब ने कहा था—

'मुसलमान की हैसियत से मैं मानता हूं कि श्रेष्ठ आचारवाले गांधी के धर्म-विचार (धार्मिक विश्वास) की अपेक्षा व्यभिचारी मुसलमान के धर्म-विचार (धार्मिक विश्वास) ज्यादह अच्छे हैं।'

पाठक देखेंगे कि इसमें मौलाना ने मेरी और व्यभिचारी मुसलमान की तुलना नहीं की। उन्होंने तो मेरे और उनके धार्मिक विश्वास की तुलना की है। मौलाना साहब अपनी उदारता और मेरे प्रति उनके स्नेह के कारण ऐसा कहते हैं कि यदि मनुष्य की मनुष्य के साथ तुलना करनी हो तो गांधीजी गुण में अर्थात् आचार में मेरी पूजनीया माताजी और पूज्य गुरु से भी बढ़ जाते हैं।

इसमें न तो मेरा अपमान है और न हिन्दू-धर्म का अपमान है। सच तो यह है कि सारा संसार पूर्वोक्त तीन सिद्धान्तों का मानता है। फर्ज कीजिए कि योरप का एक सर्वश्रेष्ठ साधु यह मानता है कि मनुष्य के शरीर की रक्षा के लिए जिन्दे पशु इत्यादि को सब तरह के कष्ट दे कर उनपर प्रयोग करने अथवा उन्हें मार डालने में किसी तरह की बुराई नहीं—यही नहीं, बल्कि ऐसा न करने में बुराई है। इसके खिलाफ फर्ज कीजिए कि मैं एक दुष्ट मनुष्य हूं, पर मैं मानता हूं कि मनुष्य-शरीर को बचाने के लिए भी किसी जीवधारी की हिंसा करना इन्सानियत को कम कर देता है। तो क्या उस श्रेष्ठ साधु के साथ जरा भी गुस्ताखी किये बिना मैं यह नहीं कह सकता कि केवल विचार-विश्वास-का मुकाबला करें तो मेरे दुष्ट होते हुए भी मेरा विश्वास उन सर्वश्रेष्ठ साधु के विश्वास से बहुत ऊंचे दरजे का है? यदि मेरा यह कहना दोषास्पद न हो तो मौलाना साहब के कहने में भी कोई दोष नहीं।

इस वर्तमान चर्चा में एक बात साफ तौरपर चमक उठती है और वह मानों इस अंधेरे में आशा की किरण है। सब लोग यह प्रतिपादन करते हुए मालूम होते हैं कि आचार-हीन विचार बेकार हैं और अकेले शुद्ध विचार से स्वर्ग नहीं मिल सकता। मौलाना साहब ने अपनी राय में कहीं भी इस बात का विरोध नहीं किया है। इस प्रयत्न में मुझे आशा की किरणें दिखाई देती हैं—क्योंकि आचार का पालन करनेवाले तथा उसका निरादर करनेवाले दोनों आचार के अर्थात् सदाचार के पुजारी हैं।

परन्तु आचार की पूजा करते हुए हमें विचार की शुद्धता की आवश्यकता को न भुला देना चाहिए। जहां विचार में दोष होगा तहां आचार अन्तिम सीढ़ी पर न चढ़ पावेगा। रावण और इन्द्रजित की तपस्या में किस बात की खामी थी? इन्द्रजित के संयम का मुकाबला करने के लिए लक्ष्मण के संयम की आवश्यकता थी—यह दिखा कर आदिकवि ने आचार का महत्व सिद्ध किया। परन्तु इन्द्रजित के विचार में—विश्वास में—आर्थिक वैभव को प्रधान-पद दिया गया था और लक्ष्मण के विश्वास में वह पद परमार्थ को मिला था। अतएव अन्त में कवि ने लक्ष्मण को विजय-माल पहनाई। 'यतो धर्मस्ततो जयः' का भी अर्थ यही है। यहां धर्म का अर्थ यही हो सकता है कि उच्च से उच्च विचार अर्थात् विश्वास और उसका उच्च से उच्च आचार।

एक तीसरे प्रकार के भी लोग हैं। उनके लिए इस चर्चा में जगह नहीं। वे हैं ढोंगी। उनके पास विचार का—विश्वास का केवल दावा भर है; पर आचार बिलकुल स्वांग है—आडम्बर है। वास्तव में उनका कोई विश्वास ही नहीं होता। तोता राम-राम रटता है। तो क्या इससे लोग उसे राम-भक्त कहेंगे? फिर भी हम दो तोतों या तोते और चिड़िया की बोली की तुलना कर के उनकी बोली की कीमत आंक सकते हैं।

परन्तु एक सज्जन कहते हैं कि—"मौलाना साहब ने विशदता भले ही बताई हो......उसका लाभ देश को कितना मिला? हिन्दू-मुसलमानों का तनाजा और तन गया। संयमी गांधी से अधम मुसलमान ऊंचा है, ये वचन हिन्दुओं के दिल में बाण की तरह चुभ गये। मौलाना साहब ने तो बेध पर एक बम गोला ही फेंक मारा है।" ये उद्गार प्रकट करनेवाले मौलाना साहब के प्रेमी हैं। ये धर्मान्ध हिन्दू नहीं हैं। ये हिन्दुओं के ऐबों को निष्पक्ष होकर देख सकते हैं। यह होते हुए भी वर्तमान जहरीली हवा का असर उनपर भी हुआ है। पहले तो, जैसा कि मैं कह चुका हूं, 'संयमी गांधी से अधम मुसलमान ऊंचा है' यह मौलाना ने कहा ही नहीं। उन्होंने तो इतना ही कहा है कि 'संयमी गांधी के मन्तव्य से अधम मुसलमान का मन्तव्य बढ़कर है।' मौलाना की उक्ति में, और उनपर आरोपित वचन में हाथी-घोड़े का अन्तर है। एक में दो व्यक्तियों की तुलना है, दूसरे में विचारों की। 'संयमी गांधी' और 'अधम मुसलमान' हमारे प्रयोजन के लिए निरर्थक हैं। मुख्य बात तो मन्तव्य है। फिर मन्तव्य भले ही 'क' या 'ख' के हों अथवा 'ग' या 'घ' के हों। तुलना व्यक्तियों की नहीं, उनके विचारों की है। उनके आचार तथा गुण-दोष का इस तुलना के साथ कुछ भी संबंध नहीं।

अब इस बात पर विचार करें कि मौलाना को उनके मन्तव्य के संबंध में कुछ कहने की आवश्यकता थी भी या नहीं। मौलाना साहब के और मेरे बीच दो भाइयों का सा सम्बन्ध है। इसके कारण वे जहां तहां मेरी स्तुति किया करते हैं। इन दिनों हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कलह उत्पन्न करनेवालों की संख्या बढ़ गई है। उनमें से कितने ही लोगों ने उनके लिए 'गांधी-परस्त' अर्थात् 'गांधी-पूजक' विशेषण बनाया। ऐसा करने में उनका उद्देश यह था कि मुसलमानों पर मौलाना का जो असर है वह कम हो जाय। अतएव मौलाना ने कहा—'मैं गांधीजी का

पुजारी तो हूं; पर गांधीजी मेरे धर्म-गुरु नहीं। गांधीजी का धर्म मेरे धर्म से जुदा है। धार्मिक विश्वास तो एक व्यभिचारी मुसलमान के जो हैं वही मेरे भी हैं और उन्हें मैं गांधीजी के धार्मिक विचारों से अधिक अच्छा समझता हूं।' यह मौलाना के भाषण का सार है। यदि ऐसी ही कुछ बात न कहते तो क्या कह कर मौलाना अपना, मेरा, हमारे पारस्परिक संबन्ध का और साथ ही अपनी इस धर्म-निष्ठा का खुलासा और बचाव कर सकते थे? किस तरह आक्षेपकर्ताओं के आक्षेपों का उत्तर दे पाते?

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

शिक्षक और वकील

"आशा है, अब आप उन लोगों से मिल चुके होंगे जिन्हें बेलगांव में महासभा के त्रिविध बहिष्कार के प्रस्ताव में परिवर्तन करने की आवश्यकता दिखाई दी थी। आप किस नतीजे पर पहुंचे? क्या आप इन तीनों बहिष्कारों को फिर उसी रूप में देश के सामने रखना चाहते हैं?

धारासभा के बहिष्कार के संबंध में मुझे कुछ भी कहने का अधिकार नहीं। स्वराज्य-दल के नेताओं ने आपके सामने तमाम बातें साफ साफ पेश की ही होंगी। और अपनी दलीलें भी रक्खी होंगी। वे लोग जो काम कर रहे हैं और करने की संभावना है वह आपकी आंखों के सामने है। विद्यालयों और अदालतों का बहिष्कार यदि मैं अपने ही अनुभव से कहूं, तो पूरा पूरा असफल साबित हुआ है। मैं अपनी ही मिसाल पेश करता हूं। यहां दो हाईस्कूल हैं जिनमें तमाम दरजों की पढ़ाई होती है-हर एक में पांच पांच सौ विद्यार्थी हैं। लेकिन राष्ट्रीय पाठशाला में सिर्फ ३० ही विद्यार्थी हैं। विद्यार्थियों की तादाद बढ़ाने के लिए हमने अनेक तरह से कोशिशें कर देखीं, पर कुछ न हुआ। मुझे निश्चय हो चुका है कि लोग इस बहिष्कार के लिए तैयार नहीं।

अब तीसरे बहिष्कार की बात लीजिए। शुरू से ही इने-गिने वकीलों ने वकालत छोड़ी। अब लगभग सब ने फिर वकालत शुरू कर दी है। अदालत में आनेवाले लोगों की संख्या तो कभी कम हुई ही न थी। राष्ट्र-कार्य करनेवालों की स्थापित पंचायतों की भी वृद्धि नहीं हुई-और अब तो वे सो भी गई हैं। इन पंचायतों के पास ऐसी सत्ता नहीं जिससे वे अपने फैसलों को व्यवहार में ला सकें और न लोगों में ही उनके फैसलों को मान लेने के भाव उत्पन्न हुए हैं। ऐसी हालत में उन्हें इच्छित फल किस तरह मिल सकता है?

महासभा ने देश से एक साल के लिए कुरबानी चाही थी। उसके अनुसार हमने अपनी भावी शिक्षा और भावी जीवन की आहुति दी। पर अब इस हालत में हमें क्या करना चाहिए? हमारे तो एक नहीं तीन साल चले गये। लोगों के लिए हमने राष्ट्रीय पाठशालायें स्थापित कीं और लोगों को तो उनकी कुछ गरज ही नहीं, कार्यकर्ताओं के बलिदान की उन्हें कुछ कद्र ही नहीं। इतने थोड़े विद्यार्थियोंवाली राष्ट्रीय पाठशालायें क्या लोगों के धन, शक्ति और जीवन का दुर्व्यय नहीं है? क्या इसका यह अर्थ नहीं कि हमारी कोशिशें और तजवीजें बे-मौका थीं? हमारा यह त्याग खुद हमें भी सन्तोष नहीं देता। बहुत बार देशभक्ति और देश-कार्य के उत्साह में यह असन्तोष बाधक होता है। काफी मिल के कपड़े से मंहगी पड़ती है और हमारी जेबें तो खाली पड़ी हैं। महासभा के प्रतिनिधि निर्वाचित होते हुए भी आना-आर्थ पास न होने के कारण हम महा-सभा में नहीं जा सकते अथवा प्रतिनिधि होने से इनकार करना पड़ता है। देश-काम के लिए नहीं, बल्कि अपनी दैनिक जरूरतों के लिए भी हमें रुपया कमाना पड़ता है। परन्तु महासभा ने हमारे रास्ते बन्द कर रक्खे हैं।

मुझपर अपने कुटुम्ब के पोषण का भार है और शरीर मेरा है कमजोर—इससे ग्राम-प्रचार की कठिनाइयों को मैं बरदाश्त नहीं कर सकता। और यह कहा जा सकता है कि महासभा के लिए तो अब कुछ काम-धाम रहा नहीं। मेरा यह विचार है कि महासभा को कार्यकर्ताओं के निर्वाह की तजवीज करनी चाहिए। और वह उन्हीं लोगों को अपने काम में रोके जिनकी गुजर का भार वह उठा सके। और दूसरे लोगों को इस बात की आजादी दे देनी चाहिए कि वे गुजर के लिए जिस काम को चाहे करें—पर करें देश-सेवा की दृष्टि से, और ऐसी सेना के सिपाही बनें, जो जरूरत पड़ने पर लड़ाई के लिए उठ खड़ी हो, और जब देश पुकार करे तब दौड़ पड़ें। ऐसे लोग सरकारी और अर्ध-सरकारी पाठशालाओं में काम करेंगे और वहां की पाठ्य-पुस्तकों को देश-सेवा की दृष्टि से पढ़ावेंगे। वे वकालत करेंगे और पग पग पर लोगों को समझावेंगे कि अदालत में कितना समय और धन बरबाद होता है; वे फौज में भरती होंगे और अपने भाइयों पर गोली चलाने से इनकार करेंगे। इत्यादि।

मुझे पता नहीं कि पूर्ण तन्दुरुस्त हो जाने पर आप क्या करेंगे? इस बीच मैं आपकी सलाह चाहता हूं। मैं समझता हूं कि यहां की राष्ट्रीय पाठशाला का, जिसकी न तो लोग कद्र करते हैं, न जिसे चलाने के लिए तैयार हैं, मुख्य अध्यापक रह कर मैं जनता की या देश की कुछ अधिक सेवा नहीं कर रहा हूं। इसके बनिस्बत यदि कानून का अध्ययन कर के, वकील हो कर मातृभूमि की कुछ सेवा करूं तो कैसा? इन बहिष्कारों को रद कर के आप स्वराज्य प्राप्त करने के दूसरे साधनों से काम लेने की सलाह दीजिएगा? या इन्हीं बहिष्कारों को उसी जोर-शोर के साथ फिर चलाना चाहते हैं? क्या आपकी सलाह की राह देखें?

पुनश्च—असहयोग अन्तरात्मा और धर्म का प्रश्न नहीं है। मैं तो उसे एक साधन-मात्र समझता हूं।"

इसे पत्र भेजनेवाले तथा मुझसे मिलने आनेवाले सज्जन विद्यालयों और अदालतों के बहिष्कार के खिलाफ जो दलीलें पेश करते हैं उनका सार पूर्वोक्त पत्र में आ जाता है। बिच्छू का डंक उसकी दुम में होता है। यही बात इस दलील के संबंध में समझना चाहिए। लेखक की बहिष्कार-विषयक अ-श्रद्धा 'पुनश्च' में प्रकट होती है। अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति में किसी साधन पर अ-टल रहने के लिए साधन को अन्तरात्मा या धर्म का विषय बनाने की जरूरत नहीं रहती। साधन भी इतने आवश्यक और महत्वपूर्ण हो सकते हैं कि उनका त्याग मृत्यु-रूप हो जाय। फेफड़े श्वास लेने और जीवन को कायम रखने के साधन हैं, जीवन नहीं। फिर भी जहां फेफड़े नष्ट हुए कि जीवन का भी नाश हो समझिए। हां, असहयोग एक साधन है। पर सवाल यह नहीं है। सवाल यह है कि १९२० में तजवीज किया असहयोग ही हमारे उद्देश की सिद्धि का एक-मात्र उपाय है या नहीं? महासभा ने स्वीकार किया था कि यही एक-मात्र उपाय है। पर महासभा का प्रस्ताव उस समय के प्रतिनिधियों के मत की प्रतिध्वनि था। हां, अब कितने ही लोग जरूर यह मानते हैं कि असहयोग को साधन मानना ही एक भूल थी। दूसरे कितने ही लोगों की धारणा है कि असहयोग एक-मात्र नहीं, अनेकों में एक, साधन था, और उसके साथ दूसरे साधनों से भी काम लेने की जरूरत थी। फिर कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी श्रद्धा तो असहयोग पर न थी पर जिन्होंने बहुमति को शिरोधार्य कर और यह मान कर कि

महासभा के प्रस्ताव आज्ञाकारक हैं और सिद्धान्त तथा बिना सिद्धान्त की बातों में भी वह अल्पमतवालों पर बन्धनकारक है, असहयोग को स्वीकार किया था। और कितने ही लोग ऐसे हैं जो आजतक उसी राय पर कायम हैं कि १९२० की धारणा के अनुसार आज भी असहयोग ही हमारे ध्येय की सिद्धि का एक-मात्र साधन है। मैं इस अन्तिम दल में हूं और मेरा यह नम्र कर्तव्य होगा कि समय समय पर यह दिखाऊं कि असहयोग ही एक-मात्र उपाय क्यों है? पूर्वोक्त पत्र-लेखक निःसन्देह मुझसे विपरीत विचार रखनेवाले सम्प्रदाय में हैं।

मैंने बार बार कहा है कि किसी भी सम्प्रदाय को यह दावा करने का अधिकार नहीं है कि हमारा ही विचार सच्चा है। हम-सब से भूलें हो सकती हैं और हमें खुद बार-बार अपने ही विचार बदलने पड़ते हैं। भारत जैसे विशाल देश में हरएक प्रामाणिक सम्प्रदाय के लिए अवश्य स्थान होना चाहिए। अतएव हमारा खुद अपने प्रति तथा दूसरे के प्रति कम से कम इतना कर्तव्य अवश्य है कि हम अपने विरोधियों के विचारों को समझें और यदि हम उन्हें न स्वीकार कर सकें तो हम उनका उतना ही आदर करें जितना हम अपने विचारों के आदर के लिए उनसे उम्मीद रखते हैं। यह मनस्थिति नीरोग राष्ट्र-जीवन की एक आवश्यक कसौटी है। और इसीपर स्वराज्य-संबंधी हमारी पात्रता अवलंबित है। यदि हमारे अन्दर प्रेम-भाव और सहिष्णुता न हो तो हम अपने मत-भेदों का निपटारा कभी शान्ति के साथ नहीं कर सकते। हमें हमेशा तीसरे दल की अर्थात् पर-राज्य की पंचायत के ताबे रहना पड़ेगा। अतएव मैं पाठकों से अनुरोध करता हूं कि वे पत्र-लेखक के विचारों को वैसे ही आदर की दृष्टि से देखें जैसे कि मैं उन्हें देखता हूं और यदि पाठक पत्र-लेखक के संप्रदाय के हों तो वे मेरे विरोध को सहन करें।

मेरी धारणा के अनुसार तो विद्यालयों और अदालतों का बहिष्कार सफल भी हुआ है और निष्फल भी। बिलकुल तो नहीं, पर अधिकांश में उसे अ-सफल कह सकते हैं; क्योंकि विद्यालयों और अदालतों में जाना इतना बन्द नहीं हुआ जिसे हम अच्छा कह सकें या दिखा सकें। परन्तु इस लिहाज से इस बहिष्कार को सफल कह सकते हैं कि सरकारी विद्यालयों और अदालतों की जो शान और धाक-धमक थी वह उठ गई, लोग आज पहले की अपेक्षा राष्ट्रीय पाठशालाओं और पंचायतों की स्थापना की जरूरत ज्यादह मानते हैं। वकीलों और सरकारी शिक्षकों को पांच साल पहले जो कृत्रिम प्रतिष्ठा प्राप्त थी उसे वे अब बहुत-कुछ खो चुके हैं। यह कुछ ऐसा-वैसा काम नहीं माना जा सकता। पर कहीं मेरे कहने का कोई अनर्थ न कर बैठें। शिक्षकों और वकीलों की कुरबानी की कीमत मैं कम नहीं आंकता। दादाभाई और गोखले शिक्षक थे। फिरोजशाह मेहता और बद्रुद्दीन तैयबजी वकील थे। परन्तु मैं अपने इन कीर्तिशाली देशबन्धुओं को भी समझदारी और नेतापन की शक्ति के इजारे का दावा न करने दूंगा। सूतकार, वस्त्रकार, (जुलाहा), कृषिकार, कारीगर और व्यापारी को देश के भाग्य निर्माण करने का उतना ही अधिकार है जितना कि उच्च माने जानेवाले व्यवसाय करने वालों को है। वे उच्च व्यवसायी राजसत्ता के दाहने हाथ थे। इस कारण हम उनसे दब गये हैं। और उस हद तक उन्होंने हमें यह विचार करने का आदी बना दिया है कि हम केवल सरकार के द्वारा ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। उन्होंने हमें यह नहीं सिखाया कि सरकार प्रजा की पैदा की हुई सत्ता है और वह प्रजा की इच्छा के अनुसार काम करने का एक साधन मात्र है। इन शिक्षकों की मिथ्या प्रतिष्ठा इतनी हिल गई है कि अब मुझे आशा नहीं कि वह फिर सिर उठा पावेगी।

राष्ट्रीय शालायें और पंचायतें जो उतनी सफल नहीं हुईं जितनी होनी चाहिए थी उसके अनेक कारण हैं। कुछ गिनाये जा सकते हैं और कुछ को अनिवार्य कह सकते हैं। यह काम हमारे लिए बिलकुल नया था—इसलिए हमें यह न सुझाई पड़ा कि इसे किस तरह करना चाहिए। अतएव जो थोड़ा फल हमें मिला है उससे निराश न होना चाहिए—बल्कि अधिक बल के साथ ज्ञान-पूर्वक प्रयत्न करते रहना चाहिए। ऐसा करने से हमारी तमाम निष्फलतायें सफलता की सीढ़ियां बन जायेंगी।

देहात में जाकर काम करने से हम लोग चौंकते हैं। हम शहराती बन गये हैं। इससे देहात का काम करने का हमें साहस नहीं होता। बहुतों के शरीर भी इस कठिन जीवन को व्यतीत करने के योग्य नहीं होते। पर यदि हम लोगों के लिए स्वराज्य स्थापित करना चाहते हों—एक दल के बदले शायद उससे भी अधिक बुरे दल का राज्य न स्थापित करना हो तो इस कठिनाई का मुकाबला हमें केवल साहस के ही साथ नहीं बल्कि अपनी जान को भी दांव पर लगाकर करना चाहिए। आज तक झुण्ड के झुण्ड देहाती हमें जीवित रखने के लिए मरे हैं—अब हमें मरना होगा उन्हें जिलाने के लिए। दोनों के मरने में जमीन आसमान का अन्तर है। देहाती लोग अज्ञान में और अनिच्छा से मरे हैं। उनके बल-पूर्वक हुए बलिदान से हमारी अवनति हुई है। अब यदि हम ज्ञान-पूर्वक और इच्छा-पूर्वक मरेंगे तो हमारा यह बलिदान हम और सारे राष्ट्र को उन्नत बनावेगा। यदि हम चाहते हों कि समस्त राष्ट्र बनकर हम कायम रहें—आबाद रहें तो यह आवश्यक बलिदान करते हुए हमें पीछे कदम न हटाना चाहिए।

असहयोगी वकीलों की कठिनाइयां इससे भी अधिक हैं। दुर्भाग्यवश उन्हें ऐसा कृत्रिम जीवन बिताने की आदत पड़ गई है जो उनके देश के वायु-मण्डल से बिलकुल वि-संवादी है। यदि कोई वकील अथवा डाक्टर १,०००) रोजाना—नहीं हजार क्यों १००) रोज भी ले या उसे मिले तो मुझे यह जुर्म मालूम होता है। यह कह कर कोई इस जुर्म से अपनी सफाई नहीं कर सकता कि इतनी फीस देनवाले अक्सर धनी लोग ही होते हैं और यदि धनवानों के पास से कुछ ज्यादह रुपये ले कर वकील लोग उसे लोकहित में लगावें तो इसमें कोई हानि नहीं। यदि वकालत या वैद्यक करनेवाले लोग निस्वार्थ हों और यदि केवल अपनी आजीविका के लिए आवश्यक रकम ही लेते हों तो धनवानों को भी अपना बजट दुरुस्त करना पड़े। पर आज तो इस पाप-चक्र से—एक पाप करता है, इसलिए दूसरे को भी पाप करना चाहिए—हमारा निस्तार नहीं हो सकता।

यदि हमें स्वराज्य में नगर-जीवन को ग्राम-जीवन के अनुरूप बनाना हो तो नगर-जीवन का रंगढंग हमें जरूर बदलना होगा। इसकी शुरूआत आज ही से होनी चाहिए। वकीललोग अपने को इतने निराधार क्यों समझते हैं? क्या वकालत न छोड़ कर सकें तो बस भूखों ही मरना पड़े? दूसरा कुछ चारा नहीं? क्या एक साधन-प्रचुर उद्योगी वकील के लिए बुनाई अथवा दूसरा कोई बाइज्जत काम खोज लेना असम्भव है?

असहयोगी वकीलों और शिक्षकों को सलाह देना मेरे लिए कठिन है। यदि बहिष्कार में वे श्रद्धा रखते हों तो उन्हें इन तमाम कठिनाइयों का सामना कर के बहिष्कार को जारी रखना चाहिए। यदि उनकी श्रद्धा न हो तो उन्हें बिना किसी बदनामी

के अब के अपने पुराने कामों में लग जाने में कोई खिलाफ़ नहीं। महासभा के प्रस्ताव को मैं कुन्दकारक नहीं मानता। अतएव मैं यह भी नहीं मानता कि केवल इसलिए कि बहिष्कार का प्रस्ताव कायम है, सरकारी विद्यालयों और अदालतों में कोई भी शिक्षक अथवा वकील न जाय। मैं तो अब भी बहिष्कार जारी रखने पर ज़ोर देता हूं; परन्तु वह विद्यालयों और अदालतों को खाली करने की हलचल के रूप में नहीं, (यह काम १९२०-२१ में हुआ) बल्कि रचनात्मक प्रणाली पर ज़ोर दे कर—अर्थात् राष्ट्रीय पाठशालाओं और पंचायतों को स्थापित कर के—उन्हें लोकप्रिय बना कर के।

(नं० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी।

दक्षिण-आफ्रिका का सत्याग्रह

इतिहास

(गतांक के आगे)

इस जाति में समाज-सुधार धीरे धीरे घुस रहा है। एक ओर से सज्जन पादरी, अपनी समझ के अनुसार, ईसा-मसीह का संदेश उन्हें पहुंचाते हैं। उनके लिए मदरसे खोलते हैं और उन्हें मामूली लिखना-पढ़ना सिखाते हैं। इनकी कोशिश से कितने सुशील हबशी तैयार भी हुए हैं। परन्तु ऐसे कितने ही लोग जो अबतक अक्षर-ज्ञान और समाज-सुधार से परिचय न रखते थे ढोंगी भी हो गये हैं। शायद ही कोई ऐसा हबशी शराबखोरी के दुर्व्यसन से बचा हो, जिसका सावका इन सुधारों से पड़ चुका हो। उन हट्टे-कट्टे मस्त लोगों के सिर जब शराब का नशा सवार होता है तब वे पूरे पागल हो जाते हैं और सब-कुछ कर गुज़रते हैं। सुधारों की जहां बढ़ती हुई कि ज़रूरतें बढ़ीं। यह दो और दो चार के बराबर सत्य है। आगे ज़रूरतें बढ़ाने के लिए कहिए अथवा उन्हें मिहनत की कीमत सिखाने के लिए कहिए, सबको हेड टैक्स, कुत्ता-टैक्स देना पड़ता है। यदि ये टैक्स उनपर न लगाये जांय तो यह खेतों में रहने वाली कौम पृथ्वी के पेट के अन्दर सैकड़ों गज गहरी खानों में सोना और हीरे निकालने के लिए क्यों उतरे? और यदि खानों के लिए इनकी मजदूरी सुलभ न हो तो सोना और हीरे पृथ्वी के उदर में ही न रह जायं? इसीप्रकार अनर्थ कर बैठाये बिना योरपियन लोगों को नौकर मिलना भी मुश्किल हो जाय। फल यह हुआ कि खानों के अन्दर काम करनेवाले हजारों हबशियों को दूसरे रोगों के साथ एक तरह का क्षय रोग भी हो जाता है जिसे 'माइन्स थाइसिस' कहते हैं। यह रोग प्राणहारक है। उसके चंगुल में फंसे बाद शायद ही कोई बच सकता है। ऐसे हजारों लोग जब एक साथ के अन्दर रहते हैं और साथ उनके बालबच्चे न हों तो पाठक सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि वे संयम का पालन कहांतक कर सकते होंगे? उसके फलस्वरूप पैदा होने वाले रोगों के भी शिकार ये लोग हो जाते हैं। दक्षिण-आफ्रिका के विचारशील गोरे भी इस गंभीर प्रश्न का विचार न करते हों सो बात नहीं। ऐसे कितने ही गोरे ज़रूर मानते हैं कि इन सुधारों का असर समष्टि-रूप से इन लोगों पर अच्छा ही हुआ है, यह दावा शायद ही किया जा सके। इसका बुरा असर तो किसी भी शख्स को दिखाई दे सकता है।

इस महान् देश में जहां ऐसी भोली-भाली जाति बसती थी, कोई चार सौ साल पहले वलन्दा लोगों ने अपना पड़ाव डाला। वे गुलाम तो रखते ही थे। अपने जावा-राज्य से कितने ही मलाया अपने मलायी गुलामों को ले कर वह मुल्क में आये जिसे हम आज केपकालोनी के नाम से जानते हैं। ये मलायी लोग मुसल्मान हैं। उनमें वलन्दा लोगों का खून है और उसीके अनुसार कितने ही गुण भी हैं। ये सारे दक्षिण-आफ्रिका में इक्के-दुक्के फैले हुए नज़र आते हैं। परन्तु उनका मुख्य स्थान केपटाउन है। आज उनमें कितने ही लोग गोरों की नौकरी करते हैं और दूसरे अपना निजी पेशा करते हैं। मलायी स्त्रियां बहुत उद्योगी और होशियार होती हैं। उनकी रहन-सहन बहुत-कुछ साफ़-सुथरी दिखाई देती है। औरतें सीना-पिरोना और कपड़े-धोना बहुत अच्छा जानती हैं। मर्द कुछ छोटा-बड़ा रोजगार करते हैं। कितने ही लोग गाड़ियां हांक कर अपनी गुजर कर लेते हैं। कुछ लोगों ने उच्च शिक्षा भी पाई है। उनमें एक डाक्टर अब्दुल रहमान केपटाउन में विख्यात हैं। ये केपटाउन की पुरानी धारा-सभा में भी पहुंच गये थे। नवीन विधान के अनुसार मुख्य धारासभा में जाने का अधिकार छीन लिया गया है।

वलन्दा लोगों का वर्णन करते हुए बीच में मलायी लोगों का भी कुछ बयान आ गया। अब ज़रा यह देखें कि वलन्दा लोग किस तरह आगे बढ़े। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि वलन्दा डच लोगों को कहते हैं। ये लोग बहादुर लड़वैया थे और हैं। उतने ही कुशल खेतिहर थे और आज भी हैं। उन्होंने देखा कि हमारे आस-पास का मुल्क खेती के बहुत लायक है। उन्होंने देखा कि वहां के निवासी साल में थोड़ा ही समय काम कर के अपनी गुजर आसानी से कर सकता है। तो फिर उनसे मजदूरी क्यों न करावें? वलन्दा के पास अपना हुनर था, बन्दूक थी, और वे यह भी जान सकते थे कि मनुष्यों तथा दूसरे जीवधारियों पर किस प्रकार अपना काबू करें। उनका यह विश्वास था कि ऐसा करने में धर्म की कोई बाधा नहीं है। अतएव अपने कार्य के औचित्य के विषय में ज़रा भी शंकाशील हुए बिना उन्होंने दक्षिण-आफ्रिका के निवासियों की मजदूरी के बलपर खेती वगैरह करना शुरू किया। जिस प्रकार वलन्दा दुनिया में अपना फैलाव करने के लिए अच्छी अच्छी जमीनें खोज रहे थे उसी तरह अंगरेज लोग भी जमीन की फिराक में थे। धीरे धीरे अंगरेज भी वहां आये। अंगरेज और डच चचेरे भाइ तो हई हैं। दोनों की खासियत एक, कौम एक। जब एक ही कुम्हार के मटके एक जगह जुट जाते हैं तब किसी वक्त टकराते भी हैं, फूटते भी हैं। इसी प्रकार ये दोनों जातियां अपना पांव पसारते हुए और धीरे धीरे हबशियों अपना कब्जा करते हुए आपस में लड़ पड़ीं। झगड़े हुए—लड़ाइयां भी हुईं। मजूबा की पहाड़ी पर अंगरेज लोग हारे भी। यह मजूबा का दाग रह गया और पक कर फोड़ा बन गया। १८९९ से १९०२ तक जो संसार-प्रसिद्ध बोअर-युद्ध हुआ उसमें वह फोड़ा फूटा और जनरल क्रान्जे को जब लार्ड राबर्ट्स ने शिकस्त दी तब उन्होंने स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया को तार किया—'मजूबा का बदला ले लिया।' परन्तु जब पहली—(बोअर-युद्ध के पहले की) चकमक इन दोनों के बीच हुई तब बहुतेरे वलन्दा लोग अंगरेजों की नाममात्र की सत्ता भी कुबूल करना नहीं चाहते थे। इससे वे दक्षिण-आफ्रिका के भीतरी भागों में चले गये। फलतः ट्रान्सवाल और आरेंज फ्री-स्टेट की सृष्टि हुई।

यही वलन्दा अथवा डच लोग दक्षिण-आफ्रिका में 'बोअर' के नाम से प्रसिद्ध हुए। बच्चा जिस प्रकार माता की सेवा करता है उसी प्रकार उन्होंने अपनी भाषा की सेवा कर के उसको सुरक्षित रक्खा है। उनकी नस नस में यह बात पैठ गई है कि आज़ादी का घनिष्ठ संबंध भाषा से है। कितने ही आक्रमण होने पर भी वे अपनी मातृभाषा की रक्षा कर रहे हैं। अब इस भाषा ने ऐसा

नवीन रूप धारण कर लिया है जो वहां के लोगों को अनुकूल पड़े। वे हालैंड के साथ अथवा घनिष्ट संबंध न रख सके। इससे जिस प्रकार संस्कृत से प्राकृत भाषायें निकली हैं उसी प्रकार डच से अपभ्रष्ट डच बोअर लोग बोलने लगे। पर अब वे अपने बच्चों पर गैरजरूरी भार डालना नहीं चाहते। इसलिए उन्होंने इस प्राकृत बोली को स्थायी रूप दे दिया है और उसे 'टाल' कहते हैं। उसी भाषा में उनकी पुस्तकें लिखी जाती हैं। बालकों को शिक्षा उसी भाषा में दी जाती है। और धारासभा में बोअर सभासद टाल-भाषा में ही भाषण करते हैं। युनियन के बाद सारे दक्षिण-आफ्रिका में दोनों भाषायें—टाल अथवा डच और अंगरेजी-एकसी प्रतिष्ठित हैं—यहांतक कि वहां नियम है कि सरकारी गजेट दोनों भाषाओं में प्रकाशित होना चाहिए और धारा-सभा की कार्रवाई भी दोनों भाषाओं में छापनी चाहिए। बोअर लोग सादगी से रहनवाले और पक्के धर्मनिष्ठ हैं। विशाल खेतों में बसते हैं। हम यहां के खेतों के विस्तार का अन्दाज तक नहीं कर सकते। हमारे यहां के किसानों के खेत २-३ बीघे से अधिक नहीं होते। इससे भी कम होते हैं। वहां के खेतों का न पूछिए-सैकड़ों अथवा हजारों बीघा जमीन एक एक शख्स के कब्जे में! इन किसानों को यह भी लोभ नहीं होता कि तमाम जमीन जोत डालें। और यदि कोई कहे तो कहते हैं-"पड़ी न रहे। जिसे हम न जोत पावेंगे उसे हमारी औलाद जोतेगी।"

हरएक बोअर युद्ध-कला में पूरा पूरा प्रवीण होता है। वे चाहे अपने आपस में भले ही लड़-झगड़ लें पर उन्हें अपनी आजादी इतनी प्यारी होती है कि जब उनपर किसी का हमला होता है तब तमाम बोअर उसका सामना करन को तैयार हो जाते हैं और एक शरीर की तरह लड़ते हैं। उन्हें कवायद-परेड की भारी जरूरत नहीं होती। क्योंकि लड़ना तो उनकी सारी जाति का स्वभाव या गुण है। जनरल स्मटस, जनरल डीवेट, जनरल हर्जोग तीनों बड़े वकील हैं, और बड़े कृषिकार हैं, और तीनों वैसे ही लड़वैया भी हैं। जनरल बोथा के पास ९ हजार एकड़ का एक खेत था। खेती की तमाम पेचीदगियां वे जानते थे। जब वे सुलह के लिए योरप गये तब उनके सम्बन्ध में यह कहा गया था कि भेड़ों की परीक्षा में उनके जैसा निपुण योरप में भी शायद ही कोई हो। वे जनरल बोथा स्वर्गीय प्रसिडेंट क्रूगर के स्थाना पन्न हुए थे। वे अच्छी अंगरेजी जानते थे। पर जब वे इंग्लैंड में सम्राट से तथा मन्त्रि-मण्डल से मिले तब उन्होंने हमेशा अपनी ही मातृभाषा में बात-चीत करना पसन्द किया। कौन कह सकता है कि यह यथार्थ नहीं था? अंगरेजी-भाषा के ज्ञान का परिचय देने के लिए भूल कर बैठने के खतरे में क्यों पड़े? मौजूं शब्द की खोज करते हुए अपनी विचार-श्रेणी के भंग करने का साहस किसलिए करें? मन्त्रिमण्डल यदि कदाच अनजान में कुछ अपरिचित मुहावरों का प्रयोग करें, वे उनका अर्थ न समझ पावें और कुछ का कुछ जवाब निकल जाय, शायद गड़बड़ा भी जांय और उससे अपनी हानि कर बैठें तो ऐसी गहरी भूल वे क्यों करें?

बोअर पुरुष जिसप्रकार बहादुर है और सादगी से रहते हैं उसी प्रकार उनकी स्त्रियां भी वीर और सादगी-पसन्द हैं। बोअर-युद्ध के समय बोअर लोगों ने जो अपना इतना खून बहाया वह उन की स्त्रियों की हिम्मत और उत्साह के बल पर। स्त्रियों को न तो विधवा हो जाने का डर था, न भविष्य का डर था। मैं ऊपर कह चुका हू कि बोअर लोग कट्टर धर्मनिष्ठ हैं, ईसाई हैं। पर यह नहीं कह सकते कि वे ईसा-मसीह के 'न्यू टेस्टामेंट' को मानते हैं। सच पूछिए तो योरप भी 'न्यू टेस्टामेंट' को कहां मानता है? फिर भी योरप में 'न्यू टेस्टामेंट' को मानने का दावा किया जाता है—हां, कितने ही योरप-वासी अलबत्ते ईसा मसीह के शान्ति-धर्म को जानते और मानते हैं। पर बोअर लोग तो न्यू टेस्टामेंट का नाम-मात्र जानते हैं। हां, ओल्ड टेस्टामेंट को वे बड़ी भावुकता के साथ पढ़ते हैं और उसके लड़ाइयों के वर्णनों को रटते हैं। हजरत-मूसा के 'दांत के बदले दांत और आंख के बदले आंख' की नीति को बोअर लोग मानते हैं। और जैसा मानते हैं वैसा ही करते भी हैं। (अपूर्ण)

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

झरिया में वचन-भंग

मौलाना महम्मदअली के साथ जब मैं झरिया गया था तब वहां के लोगों ने बहुतेरी रकम तिलक-स्वराज्य-कोष में दी थी। यह देखकर कि बिहार में रहनेवाले मारवाड़ी और गुजराती भाइयों ने बिहार की तरफ से एक बड़ी रकम दी, हमें बड़ी खुशी हुई थी। उनका वादा यह था कि रकम तुरत अदा कर देंगे। इस वादे को आज तीन साल हो गये। अब झरिया से ऐसा पत्र आया है कि कितने ही कच्छी-भाइयों ने जो रकम खुद लिखाई थी वह अदा नहीं की। इसे सुनकर हर शख्स को दुःख हुए बिना न रहेगा। दिये हुए वचन का पालन करने की महिमा जग-प्रसिद्ध है। जहां लगातार वचन भंग होते रहते हों वहां उन्नति कैसे हो सकती है? वचन-भंग से कुटुम्ब का और राष्ट्र का भी नाश हुआ है। नीति-शास्त्र के अनुसार एक तरफा वचन की कीमत दो-तर्फा वचन से अधिक है और वचन की कीमत पैसे से अधिक है। इन भाइयों का वचन एकतर्फा था और उसके पालन का आधार केवल उनकी सत्यनिष्ठा है। मैं उनसे विनय करता हूं कि वे अपने वचन का पालन करें। यदि वे वचन का महत्व समझते हों तो प्रायश्चित के तौरपर उसका दुगुना ब्याज भी दें।

मिल की पूनियां

कितनी ही जगह अभी मिल की पूनियां काम में लाई जाती हैं। चरखे की शुरूआत के जमाने में लोग यह नहीं जानते थे कि पूनियां किस तरह बनानी चाहिए। उस समय मिल की पूनियों का इस्तेमाल मजबूरन करना पड़ता था। पर आज तो मिल की पूनियों का उपयोग असह्य समझना चाहिए। जो चरखे का रहस्य न समझता हो, वही मिल की पूनी इस्तेमाल करेगा। हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तान के गांव गांव और घर घर में चरखा पहुंच जाय। हिन्दुस्तान में सात लाख गांव हैं। कितने ही तो रेल से बहुत ही दूर हैं। वहां मिल की पूनियां पहुंचाना असम्भव है। फिर जिस गांव में कपास पैदा होती है वह से वह दूसरी जगह जा कर लुढ़े, फिर मिल में जाय, वहां धुनकी जाय और वहां से फिर पूनी के रूप में उसी गांव को पहुंचे और वहां सूत काता जाय! यह तो ऐसा ही हुआ कि गेहूं में आटा भाना जाय और किसी दूर देहात में उसकी रोटियां पकाई जाय। ये नहीं सुनकी जाय वहां वह कासी जाय और जहां उगे वहीं लोढी जाय। वर्तमान अस्वाभाविक पद्धति का समूल नाश होना ही चाहिए। चरखा-प्रचार के मूल में ही उसके पहले की तमाम क्रियायें समाई हुई हैं। मो० क० गांधी

एजंटों की जरूरत है

अब श्री गांधीजी संपादन करने लगे। उनके राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिन्दी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

व्यवस्थापक

हिन्दू-मुसलमान

वार्षिक	मूल्य [illegible]
छः मास का	,, [illegible]
एक प्रति का	,, [illegible]
विदेशों के लिए	,, [illegible]

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ३८

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, वैशाख सुदी १, संवत् १९८० रविवार, ४ मई, १९२४ ई०	मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

असहयोग में हिंसा ?

"हमारे अन्दर जो मत-भेद है उसका एक अजीब सबूत हिन्दुस्तान की वर्तमान हालत से मिलता है। मैं अप्रतिकार के सिद्धान्त का कायल हूं। गांधीजी भी, मेरी धारणा के अनुसार, प्रेम-धर्म की घोषणा करते हैं; पर फिर भी उन्हें यह नहीं दिखाई देता कि असहयोग में हिंसा व्याप्त है। फर्ज कीजिए कि न्यूयार्क नगर के दूध के गाड़ीवालों को कुछ सच्ची, वाजिब और गहरी शिकायत है। मान लीजिए कि उन्होंने अपनी तकलीफ दूर करने के लिए हड़ताल कर के न्यूयार्क के दुधमुंहे बच्चों का दूध बन्द कर दिया, तो ऐसी अवस्था में उन्होंने चाहे किसीपर हाथ न उठाया हो पर क्या [illegible] अंगीकृत उपाय हिंसामय नहीं है? ऐसे असहयोग के द्वारा उन्हें जो विजय प्राप्त होगी वह सैकड़ों निर्दोष बच्चों की लाशों के ढेर के सहारे मिली विजय होगी। जैसा कि बर्टॅण्ड रसेल ने बोल्शेविकी के लिए कहा है—'ऐसे तरीके से किया कष्ट-सहन अभीष्ट ध्येय की सिद्धि के लिए स्वीकृत साधनों के औचित्य पर सन्देह उत्पन्न करता है। गांधीजी के असहयोग का अर्थ है संहाशाय की हानि। और अन्त को वह विवेक की अपेक्षा हिंसाभाव को ही आवेश करने का परिणाम है।

यह बात मेरे विषय पर पूरी पूरी घटती तो नहीं है; एक तरह से मेरा भाव इससे स्पष्ट हो जाता है। भारत में होमरूल के हामी लोग धारासभाओं में पहुंचे हैं और वे चाहते हैं कि वहां असहयोग करके काम चलना बन्द कर दें। इंग्लैंड जैसे देश में तो जहां कि, जैसा कि जान फिस्के ने कहा है, एतिहासिक घटनाक्रम के बल पर बिना लड़ाइयां लड़े प्रजाकीय संस्थाओं का विकास हुआ है, सहयोग के ही तरीके से तरक्की हुई है।"

शिकागो (अमेरिका) से एक पत्र प्रकाशित होता है 'यूनिटी'। उसकी १८-२-२४की संख्या में प्रकाशित एक लेख एक अज्ञात अमेरिकन मित्र ने भेज दिया है। उसीमें पूर्वोक्त अंश उद्धृत किया गया है।

यह लेख है श्री आर्थर एल० वेधली का द्वारा गांधी जी, होम्स के नाम लिखा पत्र। पत्र में यह साबित करने की चेष्टा की गई है कि जो आदर्श-वादी असली बनना चाहे उसे अपने आदर्श को इतना नीचे उतारना ही पड़ता है कि जिससे वह परिस्थिति के अनुकूल हो जाय। अपनी दलील की पुष्टि में उदाहरणों की भी भरमार की है। उनकी मुख्य दलील से यहां कोई प्रयोजन नहीं। अतएव मैं आशा करता हूं कि उनके लेख से सिर्फ एक ही अंश उद्धृत करने में उनके साथ अन्याय नहीं हुआ है। श्री वेधली के असहयोग-संबंधी विचार बहुत भ्रम-पूर्ण हैं। परन्तु इसकी चर्चा से पाठकों को भी कुछ लाभ जरूर होगा।

श्री वाधली ने एक सार्वभौमिक सिद्धान्त के तौर पर कह दिया है कि 'असहयोग हिंसात्मक है।' यदि उन्होंने एक क्षण के लिए विचार किया होता तो उन्हें ज्ञात हो जाता कि उनका खयाल गलत है। जब मैं शराब की दूकान में शराब बेचने की अथवा किसी खूनी की साजिश में मदद देने से इनकार करता हूं तो वह मेरा असहयोग है। मेरा विश्वास है कि वह [illegible] असहयोग हिंसात्मक नहीं—बल्कि [illegible] प्रेम-भाव से [illegible] हो कर इनकार किया हो तो मेरा असहयोग एक प्रेम का काम है। बात यह है कि सब प्रकार का असहयोग हिंसात्मक नहीं होता, और अहिंसात्मक असहयोग तो हिंसात्मक हो ही नहीं सकता। हां, यह हो सकता है कि वह हमेशा प्रेममय न हो। क्योंकि प्रेम क्रियात्मक गुण है, एक किसी कृत्य के द्वारा उसका अनुमान हमेशा नहीं हो सकता। एक आदमी कायदा के साथ सहयोग करता है—फिर भी हो सकता है कि उसके दिल में जरा भी प्रेम न हो।

श्री वेधली ने जो मिसाल दी है वह बहुत ही बे-मौजूं और अधूरी है। न्यूयार्क के दूध की गाड़ीवालों को यदि न्यूयार्क की म्युनिसिपल्टी की शिकायत हो कि वह अपने कर्तव्य का पालन ठीक ठीक नहीं करती है—अंधाधुंधी चलाती है, और यदि वे म्युनिसिपाल्टी को झुकाने के लिए न्यूयार्क के बालकों को दूध पहुंचाना बन्द कर दें तो वे मनुष्य-जाति के अपराधी होंगे। पर फर्ज कीजिए कि दूध के गाड़ीवालों को उनके मालिक वेतन कम देते हैं और इसलिए उन्हें भूखों रहना पड़ता है। ऐसी हालत में यदि गाड़ीवाले वेतन बढ़ाने के लिए दूसरे तमाम उचित तरीकों को आजमा चुकने के बाद गाड़ी हांकना बन्द कर दें तो यह बहुत उचित होगा—फिर इसके फलस्वरूप क्यों न न्यूयार्क के बच्चे मर जायं। उनका यह इनकार प्रेम का कृत्य नहीं हो सकता; पर वह हिंसात्मक भी हरगिज नहीं हो सकता। उन्होंने मानव-जाति की सेवा करने का संकल्प नहीं किया था। वे तो अपने पेट के लिए गाड़ियां चलाते थे। एक मजदूर की हैसियत से यह उनके कर्तव्य का अंग नहीं था कि वे हर हालत में बालकों को दूध जरूर पहुंचावें। जहां मनुष्य अपना धर्म नहीं चूकता वहां हिंसा की संभावना ही

नहीं । अच्छा और भी फर्ज कीजिए कि दूध की गाड़ी हांकनेवाले मजदूर को मालूम हो कि हमारे मालिक सस्ता परन्तु पानी-मिला दूध बेचते हैं और दूसरी एक कंपनी उससे अच्छा परन्तु महंगा दूध बेचती है; यह भी मान लीजिए कि इन गाड़ीवालों के दिल में न्यूयार्क के बच्चों के कल्याण का भाव हो तो उनका दूध की गाड़ी हांकने से इनकार करना प्रेम का कृत्य माना जायगा । हालांकि इसका फल यह हो सकता है कि न्यूयार्क की किसी अदूरदर्शिनी माता को वह पानी मिला दूध मिलना बन्द हो जाय और वह उस ज्यादह ईमानदार कंपनी से—जिसके अस्तित्व की कल्पना हमने दलील के लिए की है—अच्छा पर महंगा दूध न ले ।

इस कल्पित निष्ठुर दूध के गाड़ीवालों और न्यूयार्क के बच्चों वाली बातों के फेर से 'यू नेशन' का लेखक हमें लंकाशायर पर ले आता है और यदि हिन्दुस्तान में प्रचलित असहयोग सफल हो तो उससे कल्पित लंकाशायर के विनाश का चित्र खड़ा करता है । अपनी मुख्य दलील को साबित करने की जल्दी में लेखक ने सीधी-सादी बातों का मनन करने की भी तकलीफ गवारा न की । हिन्दुस्तान में असहयोग की सृष्टि इस गरज से नहीं हुई है कि लंकाशायर अथवा ब्रिटिश टापुओं के दूसरे किसी भाग को नुकसान पहुंच जाय । उसका ध्येय है अपने घर का कारोबार खुद करने के कुदरती हक की रक्षा करना । हिन्दुस्तान के साथ लंकाशायर का वर्तमान व्यापार जोरोजुल्म की बुनियाद पर कायम किया गया था और आज भी वह ऐसे ही तरीकों से कायम रक्खा जा रहा है ।

हिन्दुस्तान के प्राण-रूप गृह-उद्योग का जो लाखों किसानों की आमदनी की पूर्ति कर के उन्हें फाकाकशी से बचाता था, उस लंकाशायर के व्यापार ने सत्यानाश कर दिया है । अब यदि हिन्दुस्तान अपना गृह-उद्योग और हाथ-कताई का पुनरुज्जीवन न करे और किसी भी तरह के विदेशी कपड़े या हिन्दुस्तानी मिलों तक के बनाये कपड़े खरीदने से इनकार करे और उसके फल-स्वरूप लंकाशायर को या हिन्दुस्तान की मिलों को नुकसान उठाना पड़े तो उसके लिए किसी भी नीति-नियम की रू से असहयोग हिंसात्मक नहीं माना जा सकता । हिन्दुस्तान ने लंकाशायर को पालने-पोसने की जिम्मेवारी कभी नहीं ली थी । शराब की दुकानों या गणिका-गृहों में जानेवाले लोग पहले से नोटिस तक दिये बिना इन जगहों में जाना बन्द कर दें और इसके फलस्वरूप कलवारों या वेश्याओं को भूखों मरना पड़े तो भी उन लोगों को उनके संयम पर धन्यवाद ही मिलेगा—यही नहीं बल्कि वे उन कलवारों और वेश्याओं के हितकर्ता भी समझे जायंगे । इसी प्रकार यदि साहूकारों के ग्राहक कर्ज लेना बन्द करें और साहूकारों को भूखों रहना पड़े तो यह नहीं कहा जा सकता कि कर्ज न करने के ग्राहक हिंसा कर रहे हैं । पर यदि वे द्वेष या वैर-भाव से बिना उचित कारण के एक साहूकार को छोड़कर दूसरे के यहां जाय तो यह मान सकते हैं कि उन्होंने हिंसा-दोष किया ।

इस प्रकार हमने देखा कि जब नियम के अधीन होने से इन्कार करना हक हो तथा धर्म हो तब उस हक अथवा धर्म के पालन के फलस्वरूप चाहे कितने ही लोगों को हानि उठानी पड़ती हो तो भी असहयोग हिंसात्मक नहीं । यही नहीं बल्कि जब केवल अन्यायी के भले के लिए ही असहयोग का आश्रय लिया गया है तब तो वह शुद्ध प्रेम का कृत्य है । हिंदुस्तान का यह असहयोग हक भी है और धर्म भी है; पर इसे प्रेम कृत्य नहीं कह सकते; क्योंकि इसका आश्रय एक कमजोर राष्ट्र ने अपनी आत्मरक्षा के लिए किया है ।

स्वराज्य दल की विरोध-नीति का जो उल्लेख श्री बेवरली ने किया है उसकी चर्चा मैं पहले प्रकाशित किये कारणों से, यहां नहीं कर सकता ।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

स्वर्गीय रमा बाई रानडे

रमा बाई रानडे का नाम जितना दक्षिण में प्रसिद्ध है उतना हिन्दुस्तान में नहीं । इस देवी ने स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानडे के नाम को सुशोभित कर दिया है । उनकी मृत्यु से हिन्दू-संसार की बड़ी हानि हुई है ।

रमा बाई ने अपने वैधव्य को जिस प्रकार सुशोभित किया है उस प्रकार बहुत कम बहनों ने किया होगा । पूना के सेवासदन की जोड़ सारे हिन्दुस्तान में खोजने पर न मिलेगी । इस सेवा-सदन में एक हजार लड़कियां और स्त्रियां अनेक प्रकार की शिक्षा प्राप्त करती हैं । यह सेवा-सदन आज जिस गौरव को प्राप्त हुआ है वह रमा बाई की अनन्य भक्ति के बिना उसे कभी न प्राप्त हो पाता । रमा बाई ने एक ही कार्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया था ।

वैधव्य का अर्थ ही है अनन्य भक्ति । पातिव्रत के मानी हैं शुद्ध वफादारी । मामूली वफादारी का संबंध देह के साथ है । अतएव देह के साथ ही उसका अन्त हो जाता है । वैधव्य में जो वफादारी है वह आत्मा के प्रति है । वैधव्य को धर्मस्थान दे कर हिन्दू-धर्म ने यह सिद्ध कर दिया है कि विवाह वास्तव में शरीर का नहीं बल्कि आत्मा का होता है । रमाबाई ने रानडे की आत्मा के साथ विवाह किया था । अतएव उन्होंने उस आत्म-संबंध को अखंडित रक्खा । और इसीलिए रमा बाई ने उन कामों में से जो रानडे को प्रिय थे, अपनेसे होने लायक एक काम को उठा लिया और उसमें अपना सर्वस्व लगा कर वैधव्य का पूरा अर्थ समाज को समझाया । ऐसा कर के रमा बाई ने स्त्री-जाति की भारी सेवा की है । जब मैं सासून अस्पताल में था तब कर्नल मैडक ने मुझसे कहा था कि अच्छी हिन्दुस्तानी धाई केवल इसी अस्पताल में तालीम पाती हैं, ये तमाम धाइयां सेवा-सदन के द्वारा तैयार होती हैं और उनकी मांग सारे हिन्दुस्तान से आती है । विधवायें यदि कार्य-क्षेत्र में उतरें तो अच्छे काम करने के अनेक स्थान खाली पड़े हैं । केवल चरखे का ही काम इतना है कि वह सैकड़ों विधवाओं का सारा समय ले सकता है । और यह अनुभव किस विधवा को नहीं हुआ कि चरखा गरीबों का रखवाला है ! यह तो मैंने एक ऐसा काम सुझाया जो सर्वव्यापक और परम कल्याणकारी है । ऐसे अनेक काम हैं जिनमें धनिक विधवायें गरीब विधवाओं तथा अन्य बहनों को तैयार करने में अपना समय लगा सकती हैं । (नवजीवन)

फहरिस्त जरायम

(१) तिलक-स्वराज्य-कोष में चन्दा देना,

(२) असहयोगियों के साथ समागम रखना,

(३) असहयोगी अखबारों का ग्राहक होना,

(४) असहयोग का पक्ष लेना, और

(५) खादी पहनना ।

इन बातों को मदरास के पोस्ट-मास्टर जनरल ने अप्रैल १९२२ में जुर्म माना था और केवल यही कारण बताकर श्री सुब्बाराव नामक डाक-विभाग के एक कर्मचारी को १७ बरस की पुरानी सरकारी नौकरी से बरखास्त कर दिया था । पाठक यह न समझें कि अब श्री सुब्बाराव को फिर नौकरी दे दी गई है । नहीं ऐसा नहीं हुआ । बेचारे बरखास्त-शुदा नौकर ने बड़े लाट सा० की खिदमत में दरख्वास्त भेजी । ३ अक्टोबर १९२३ को उन्हें जवाब मिला कि श्रीमान् बड़े लाट सा. ने हुक्म भेजा है 'आपकी दरख्वास्त रद कर दी जाय ।' दरख्वास्तदाता के हुक्म में वही इलजाम बताये गये हैं जो मैंने ऊपर दर्ज किये हैं ।

हर एक जुर्म के बाद उसका वर्णन किया गया है। मिसाल के तौर पर—तिलक-स्वराज्य-कोष में दिये चन्दे के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह रकम सुब्बाराव की सगी लड़की के नाम से दी गई है और वह ५) है। इससे बढ़कर जहर और क्या हो सकता है? ऐसी बदगुमानगी की जड़ में जो नीति अंगीकार की गई है उसकी आखिरी कार्रवाई तो यही होनी चाहिए कि सरकार ऐसा फरमान निकाले कि धारासभा के सभ्यों के लिए भी खादी पहनना जुर्म है। फिर तो कलम की एक ही रगड़ से देशभर में शान्ति फैल जायगी। सरकार भी सुख से बैठेगी और धारासभा वाले तथा बाहर के लोग भी खामोश हो जायंगे। आज की हालत में तो जबतक श्री सुब्बाराव जैसे लोगों को सब से सच्ची शिकायत है तबतक शान्ति नहीं मिल सकती। उन्हें सरकार से शिकायत इसलिए है कि उसने नये नये जरायम की टकसाल खोली है। धारासभावादियों की शिकायत इसलिए है कि उन्हें तो बड़े आदमी होने के कारण कोई पूछता नहीं—फिर भी वे श्री सुब्बाराव तथा दूसरों के दुःख किसी प्रकार दूर नहीं करते। धारासभा के विरोधियों से भी उन्हें शिकायत है कि वे खादी को घर घर फैलाने में और इस प्रकार स्वराज्य के मतालबे को अनिवार्य बनाने में सफल न हुए। (मं० इं०)

मिल का कपड़ा

राष्ट्रीय-हलचल में मिल के कपड़ों को खादी का स्थान दिलाने का कुछ कुछ आन्दोलन हो रहा है। इससे यह बात जानी जाती है कि लोग अभी खादी का रहस्य और उसका दरजा पूरा पूरा नहीं समझे हैं। मिलों के द्वेष के कारण खादी-आन्दोलन का जन्म नहीं हुआ। बल्कि हिन्दुस्तान के गरीबों की दशा के खातिर वह उत्पन्न हुआ है। स्वराज्य के लिए उसकी तजवीज हुई है। खादी को मैं स्वराज्य का प्राण मानता हूं। उसके बिना हिन्दुस्तान जीवित नहीं रह सकता और निर्जीव देश के लिए स्वराज्य कहां? हिन्दुस्तान को एक विराट् स्वरूप मान लीजिए। तो धड़ पर रहनेवाले सिर और सिर में रहनेवाले दिमाग को यह क्या खबर हो सकती है कि यह स्वरूप पांव की तरफ से जड़ होता जा रहा है? हम लोगों को, जिनकी हालत अच्छी है, देहात का विनाश नहीं दिखाई देता, परन्तु अर्थशास्त्री तथा देहात में बसनेवाले लोग देख सकते हैं कि हिन्दुस्तान-रूपी विराट्-स्वरूप के पैर थकने लगे हैं। यह ह्रास निरंतर हो रहा है। उसे रोकने का उपाय खादी है। मिल का कपड़ा नहीं। देशी मिल के कपड़े से विदेशी मिलों के कपड़ों का बहिष्कार भले हो जाय; पर उससे करोड़ों भूखे लोगों की भूख नहीं बुझ सकती। हिन्दुस्तान में धन की कमी है—इसलिए कि काम की कमी है। शहरों में जो मजदूरी मिलती है वह काफी नहीं। ७ लाख देहात को आबाद करना है। देहात में ही देहातियों के लिए काम मिलना चाहिए। चरखे से ही वह मिल सकता है। इसीलिए मैं उसे अन्नपूर्णा कहता हूं। हमें उसीका प्रचार करना है। उसीका अर्थात् चरखे की अगली-पिछली तमाम क्रियाओं का। हम उसे तभी पूरा कर सकते हैं जब हजारों लोग उसके लिए काम करें। हमारा काम सिर्फ इतना ही है कि खादी को सु-संगठित करें।

मिलें संगठित हैं। उन्हें स्वयंसेवकों की जरूरत नहीं। हीरा का व्यापारी अपना रास्ता खोज लेता है। उसे मदद देने के लिए स्वयंसेवक-मण्डल खड़े नहीं करने पड़ते। यही बात मिलों की है। देशी मिलें चाहें तो विदेशी कपड़े को रोक सकती हैं। वे स्वार्थ को गौण-पद देकर हिन्दुस्तान के हित को प्रधान-पद दें। अपने व्यापार में ईमानदारी को स्थान दें। मुनाफे पर कम ध्यान रख कर यदि वे माल की उमदगी पर ज्यादा ध्यान रक्खें तो निस्सन्देह उनका माल ज्यादह बिके। खादी अभी तो उनकी प्रतिस्पर्धा नहीं कर रही है। खादी का असर अभी तो अ-प्रत्यक्ष-रूप से भले ही हुआ हो। पर हम तो अभी एक करोड़ रुपये की भी खादी पैदा न कर सके। फिर प्रतिस्पर्धा की बात ही क्या? खादी को अभी अटल स्थान नहीं मिला। जबतक उसके लिए भगीरथ प्रयत्न न होंगे तबतक वह अपना प्राचीन साम्राज्य नहीं प्राप्त कर सकती। ऐसी हालत में खादी के साथ मिल के कपड़े की बात तक करना मेरी कल्पना के बाहर है।

महासभा वाचाहीन की वाचा है अथवा होनी चाहिए। महासभा का क्षेत्र अकेले गरीबों के अन्दर है; पर वहांतक वह पहुंचती नहीं—न पहुंच सकती है। अतएव वह उन लोगों को सावधान करती है जो गरीबों पर सवारी कर रहे हैं और फिर भी यह नहीं जानते कि हम ऐसा कर रहे हैं। वह उनके लिए खादी का उद्योग कर रही है। अतएव इस बात में मुझे जरा भी शक नहीं कि महासभा के लोगों के लिए अथवा महासभा की आवाज जिन लोगोंतक पहुंच सकती है उनके लिए मिल का कपड़ा त्याज्य है।

इस कार्य में मैं तो हमेशा मिलमालिकों की सहायता चाहता हूं। वे खादी-हलचल का हृदय से अभिनन्दन करें और उसे उत्तेजना दें। खुद मिल का कपड़ा पहनने के बजाय खादी पहन कर गरीबों के साथ अपना संबंध करें। ये दो विरोधी चीजें नहीं। देशी मिल के कपड़े के लिए आज तो हिन्दुस्तान में जगह है। फर्ज कीजिए कि ईश्वर-कृपा से समस्त हिन्दुस्तान खादीमय हो गया तो उससे मिल के कपड़े को भय किस बात का? उनका विदेशी व्यापार तो बना ही हुआ है। अच्छा, यदि विदेश के लोग अपनी जरूरत खुद पूरी करने लगें तो भी क्या हर्ज है? मिल-मालिकों में जो धन उपार्जन करने की शक्ति है वह नष्ट नहीं हो सकती। देश में हमेशा धन की जरूरत रहेगी ही। देश में धनी लोगों के लिए स्थान तो रहेगा ही। उनके हृदय का पलटा हो जाना ही काफी है। उस समय उनके धन-लोभ में दया का अंश आज से अधिक रहेगा। आज नीति धन के अधीन हो रही है। उसके बदले धन नीति के अधीन हो कर रहेगा। इसमें धनवान का भला है और लोगों का तो है ही।

जबतक खादी का सर्वत्र प्रचार न हो तबतक ऐसा सु-योग असंभव है और खादी का प्रचार घर घर में करने के लिए जो लोग आजकल काम कर रहे हैं उन्हें यह बात निस्सन्देह मालूम हो जानी चाहिए कि उनके पास खादी के सिवा दूसरे कपड़े के लिए जगह नहीं। इस बात का प्रकाश अभीतक सब के दिल में नहीं पड़ा है। इसीसे खादी का प्रचार मन्द गति से हो रहा है। चरखे थोड़े समय चल कर बन्द हो जाते हैं। फिर चलते हैं-फिर रुकते हैं। इसीसे लोग कपास एकत्र नहीं करते। इसीसे तांत का शौक नहीं लगा। इसीसे बहुतेरे लोग दिखाने के लिए खादी पहनते हैं और घर में देशी या विदेशी मिल के कपड़े पहनते हैं। और जबतक यह अनिश्चितता जारी रहेगी तबतक देशी-मिल के कपड़े के त्याग पर जोर देने की जरूरत बनी ही रहती है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

एजंटों की जरूरत है

अब फिर गांधीजी संपादन करने लगे। उनके राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिन्दी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

व्यवस्थापक

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, वैशाख सुदी १, संवत् १९८०

हिन्दू-मुसलमान

हिन्दू-मुसलमानों में जो तनाजा पड़ गया है उसके संबंध में मैं अपने विचारों को प्रकट करने के लिए अभी तैयार न था, न हूं। मेरे विचार तो निश्चित हो चुके हैं; परन्तु मित्रों के सुभीते के लिए मैंने अभी उन्हें प्रकट नहीं किया है। वे अभी विचार कर रहे हैं। इसीसे ढिलाई हो रही है। परन्तु बीसनगर (गुजरात) में जो घटना घटी है उसके संबंध में मैं बिलकुल चुप नहीं रह सकता। यदि मुझे पत्र-संचालन करना है तो मौका पेश आने पर मुझे अपने विचार अवश्य प्रकट करना चाहिए।

बीसनगर जाकर अब्बास तैयबजी साहब और श्री महादेव देसाई ने समझौता करने का प्रयत्न किया और वह किस प्रकार बेकार हुआ उसका हृदय-भेदक चित्र श्री महादेव देसाईने मुझे भेजा है। उससे मालूम होता है कि हिन्दुओं ने रामनवमी के दिन रामजी का जलूस निकाला। बाजे बजते जा रहे थे। वह जब मसजिद के नजदीक आया तब नंगी तलवार ले के मुसल्मान मुकाबला करने के लिए तैयार नजर आये। जलूस कोई २४ घण्टे बाद पुलिस की रखवाली में वहां से गुजरने पाया।

तफसील की बातें मैं छोड़े देता हूं। हिन्दू बाजा बजाने का अपना हक नहीं छोड़ते थे और मुसल्मान बाजा बजाने नहीं देते थे। फिरभी ज्यों त्यों करके झगड़ा तो रुका। पर इसका श्रेय उनमें से किसी भी पक्ष को नहीं मिल सकता। श्रेय की पात्र तो अकेली पुलिस है।

अब फिर ऐसी खबर मिली है कि किसीने कितने ही पशुओं को लुक-छिप कर तलवार से जख्मी कर दिया है और मालूम हुआ है कि एक पशु तो मर भी गया है। हिन्दुओं ने मुसल्मानों के साथ अपना संबंध तोड़ दिया है।

जलूस की घटना हो जाने के बाद बीसनगर के एक प्रख्यात सज्जन श्री महासुखलाल चुन्नीलाल ने एक तेज व्याख्यान दिया। उसमें उन्होंने सफेद टोपीवालों को संबोधन कर के कहा कि आप जो चाहे प्रयत्न कीजिए—पर हिन्दू मुस्लिम-एकता नहीं हो सकती। श्री महासुखलाल ने हिन्दुओं को असहयोग करने की सलाह दी है।

बीसनगर के हिन्दुओं की संख्या मुसल्मानों से बहुत ज्यादह है। फिर भी वे मुसल्मानों से बहुत डरते हैं। मुसल्मान अपनी तलवार को म्यान में रखना नहीं चाहते।

मैं मानता हूं कि ऐसा कोई अटल धार्मिक नियम नहीं है कि धार्मिक जलूस के बाजे जहां एक दफा बजने शुरू हुए कि फिर वे लगातार बजते ही रहने चाहिए। मैं यह भी मानता हूं कि मुसल्मान-भाइयों के भावों को आघात न पहुंचे, इसलिए कुछ खास मौकों पर बाजे बन्द कर देना हिन्दुओं का फर्ज है। पर मैं यह भी उतनी ही दृढ़ता के साथ मानता हूं कि मुसलमानों की तलवार से डरकर बाजे बन्द करना अधर्म है। जिस प्रकार हिन्दू मुसल्मानों को दबा कर उन्हें गो-वध करने से नहीं रोक सकते उसी प्रकार मुसल्मान भी जबरन हिन्दुओं के बाजे बन्द नहीं कर सकते। यदि दोनों को मित्रता प्यारी हो तो दोनों अपनी अपनी गरज से गो-वध और बाजे बन्द कर दें। मैं यह भी मानता हूं कि यदि एक अपना फर्ज न अदा करे तो दूसरे को अपने फर्ज से न चूकना चाहिए। पर दो में से एक भी, तहस-नहस हो जाने पर भी, तलवार के सामने सिर न झुकावें—नहीं झुका सकते—न झुकाना चाहिए।

मौका पड़ने पर शान्त असहयोग करना हर शख्स का हक है। यह नहीं कि सरकार के साथ तो असहयोग हो सकता है; पर आपस में नहीं। यह भी नहीं कि हिन्दू मुसल्मान के ही साथ अथवा मुसल्मान हिन्दू के ही साथ करे और एक हिन्दू दूसरे हिन्दू के साथ या एक मुसल्मान दूसरे मुसल्मान के साथ न कर सके। सिद्धान्त की बात में तो संभव है बाप-बेटे के साथ भी असहयोग करना पड़े।

पर यह सवाल है कि ऐसा मौका बीसनगर के हिन्दुओं के सामने आ खड़ा हुआ है या नहीं। मेरी नाकिस राय के मुताबिक ऐसा मौका खड़ा नहीं हुआ है। गूढ़ और पेचीदा सवाल का फैसला हर गांव के हिन्दू-मुसल्मान खुद मुख्तार हो कर नहीं कर सकते। जेता पक्ष भले इस बात को माने कि इसका तात्कालिक नतीजा अच्छा हुआ; परन्तु इसका स्थायी परिणाम बुरा ही होगा। फिर यह भी मानने का कोई कारण नहीं कि एक पक्ष की जीत होने पर उस पक्ष के दूसरे सहधर्मियों को लाभ होगा। बीसनगर में हिन्दू संख्या-बल, राज-बल अथवा असहयोग-बल से मुसल्मानों को झुका दें तो इससे क्या हुआ? दूसरे गांव में जहां मुसल्मानों के लिए अनुकूल अवसर होगा वहां वे हिन्दुओं को दबावेंगे—क्या यह बात बीसनगर के हिन्दुओं को अच्छी मालूम हो सकती है? यदि यह उन्हें अच्छी न मालूम हो तो बीसनगर के मुसल्मान की हार दूसरे गांव के मुसल्मानों को कैसे अच्छी लगेगी? बीसनगर के हिन्दुओं का रास्ता आरंभ में चाहे भले ही मीठा हो, पर परिणाम में वह जहरीला है। अतएव गीता-वचन के अनुसार त्याज्य है।

मुझे याद दिलाने की जरूरत नहीं है कि बीसनगर के हिन्दुओं को मैं यह नहीं कहता कि दब कर बाजा बजाने का हक छोड़ दें। मैं यह भी नहीं कहता कि वे कभी असहयोग न करें। परन्तु यह राय मैं जरूर नम्रता के साथ देता हूं कि जो ब्योरा मुझे मिला है वह यदि ठीक ठीक हो तो हिन्दुओं के इस असहयोग में उतावलापन हो रहा है। इसके पहले जो जो काम उन्हें करना चाहिए वे कर नहीं पाये हैं। यदि उनमें समझदारी हो तो राज-सत्ता की सहायता कम से कम लें। सुनता हूं कि बीसनगर में सत्ताधिकारियों ने अपना काम शान्ति, और चतुराई के साथ निष्पक्ष हो कर किया है। तटस्थ हिन्दुओं के द्वारा मिले समाचारों के आधार पर यह लिख रहा हूं। तटस्थ मुसल्मानों के दिल पर क्या असर हो रहा है, यह मैं नहीं जानता।

परन्तु हम तो राजसत्ता की सहायता कम से कम लेना चाहते हैं। हम चार साल से इस सिद्धान्त की पुष्टि कर रहे हैं। अतएव हमें यह विचार करने की जरूरत है कि राजसत्ता की सिपहगीरी के अतिरिक्त हम क्या करें? बीसनगर के हिन्दुओं को फिलहाल मुसल्मानों की तलवार का भय नहीं। सत्ताधिकारियों ने उन्हें इस भय से बचाया है और बचा रहे हैं। इस लिए अब उन्हें सुलह के रास्ते खोजने की जरूरत है। क्या उन्होंने बीसनगर के बाहर के हिन्दू-मुसलमानों की सलाह और सहायता ली है? उन्होंने अली-भाइयों को कुछ लिखा है? हकीमजी को लिखा? संभव है, वे कुछ न कर सकें। पर हिन्दुओं का फर्ज है कि वे उनसे सहायता मांगें। हिन्दुओं ने गुजरात के अग्रगण्य पुरुष वल्लभभाई की सलाह ली? उन्होंने अब्बास सा. की बात न सुनी—उनकी अवहेलना की—इसके लिए उनसे माफी मांग कर उनकी सलाह ली है?

परन्तु श्री महासुखलाल कहते हैं कि दाढी और चोटी की कभी बन ही नहीं सकती। हिन्दू अपना निपटारा खुद कर लें। यदि वे सफेद टोपीवालों की बात मानेंगे तो वे हिन्दू न रह कर

मुसल्मान हो जायँगे। इन सज्जन से मैं नम्रता-पूर्वक कहता हूँ कि यदि उनके विचार वैसे ही हैं जैसे मेरे पास पहुँचे हैं तो वे भूल करते हैं। सफेद टोपीवालों में तो हिन्दू भी हैं और मुसल्मान भी हैं। मैं उन्हें यकीन दिलाता हूँ कि सफेद टोपीवाले हिन्दू अपना हिन्दूपन न जाने देंगे। हमारा झगड़ा इस वक्त सफेद या काली टोपी का नहीं है। सफेद टोपीवाले बुरे हों तो होते रहें। मैं उनकी सफाई क्या दूंगा? सफाई तो सबकी अपना अपना आचार देता है। पर यह धारणा मुझे भयंकर मालूम होती है कि हिन्दू-मुसल्मानों में एकता हो ही नहीं सकती। इस विचार में धार्मिक दोष है। यह विचार हिन्दू-संस्कृति के विरुद्ध है। हिन्दू धर्म में किसीका सर्वथा नाश नहीं है अर्थात् सब के अन्दर एक ही आत्मा रम रहा है। हिन्दू यह कह नहीं सकता कि दूसरों को स्वर्ग तभी मिलेगा जब वे भी उसी बात को मानें जिसे वह खुद मानता हो। मैं यह नहीं जानता कि मुसल्मान ऐसा मानते हैं या नहीं। परन्तु मुसल्मान शौक से यह मानते रहें कि तमाम हिन्दू काफिर हैं और वे स्वर्ग के अधिकारी नहीं हो सकते। पर हिन्दू-धर्म हमें यह शिक्षा देता है कि हम ऐसों पर भी प्रेम करें और उन्हें प्रेम-पाश में बांध लें। क्योंकि हिन्दू-धर्म किसी धर्म की अवहेलना नहीं करता। वह सब को कहता है—स्वधर्मे में ही श्रेय है।

व्यवहार की दृष्टि से भी यह मानना कि हिन्दू-मुसल्मानों की एकता असंभव है, मानों हमेशा के लिए गुलामी कबूल करना है। जो हिन्दू यह मानते हों कि सात करोड़ मुसल्मान को हिन्दुस्तान से नेस्त-नाबूद कर सकते हैं वे गहरी नींद में खुर्राटे ले रहे हैं। यह कहते हुए मुझे जरा भी संकोच नहीं होता।

फिर इसलिए कि वीसनगर में हिन्दू-मुसल्मान लड़ते हैं, यह क्यों मान लें कि हिन्दुस्तान के सात लाख गांवों में भी जहां दोनों जातियां बसती हैं, दोनों लड़ते हैं? सारे हिन्दुस्तान में ऐसे अनेक देहात हैं जहां हिन्दू-मुसल्मान खुद सगे-भाई की तरह रहते हैं—इतना ही नहीं बल्कि वे यह भी नहीं जानते कि कितने ही शहरों में और उनके नजदीक गांवों में हम लड़ रहे हैं।

अतएव धर्म और व्यवहार दोनों की दृष्टि से विचार करते हुए वीसनगर के इन समझदार हिन्दू को समझना चाहिए कि हिन्दू-मुसल्मान में इत्तफाक सम्भवनीय और आवश्यक है। असहयोग की सलाह देनेवाले इन सज्जन को यह भी सूचित कर देना चाहता हूं कि असहयोग का अर्थ ही यह है कि अन्त को सहयोग किया जाय। असहयोग मलिनता को धोने की क्रिया है। एक ही ईश्वर के इस जगत् में किसी भी जीव के साथ सर्वदा असहयोग नहीं हो सकता। यह विचार कल्पना के बाहर है। क्योंकि यह कल्पना ईश्वर के स्वामित्व का विरोध करती है।

इसलिए मैं वीसनगर के हिन्दुओं से प्रार्थना करता हूं कि वे वल्लभभाई तथा अब्बास साहब को बुलावें। और उनसे कहें कि हमारा झगड़ा मिटा दीजिए। यदि उन्हें इन असहयोगियों का विश्वास न हो तो वे शौक से सहयोगियों को बुलावें। गुजरात में बहुतेरे ऐसे सहयोगी हिन्दू-मुसल्मान हैं जो उन्हें मदद देंगे। जबतक वीसनगर के हिन्दू समझौते के तमाम उपाय न आजमा लें, तबतक उन्हें असहयोग करने का अधिकार नहीं प्राप्त होता।

यह तो हिन्दू-भाइयों के लिए हुआ।

मुसल्मान-भाइयों ने गहरी [illegible] की है। मुसल्मान तवारीखें कहती हैं कि इस्लाम की सफलता तलवार के जोर पर नहीं कायम रही है। इस्लाम की तलवार ने इस्लाम की रक्षा भले ही की हो; पर इस्लाम में इन्साफ और गैर-इन्साफ का फैसला तलवार के धार नहीं किया। आजतक कोई धर्म जगत् में महज तलवार पर जीवित नहीं रह पाया। जब तब तलवार खींच लेने की आदत ही खराब है; धर्म का नाश करनेवाली है। विधर्मी होते हुए भी यह बात मैं वीसनगर के मुसल्मानों को अवश्य कहना चाहता हूं। इस्लाम को उज्ज्वल किया है उसके फकीरों, सूफियों और तत्त्वज्ञानियों ने। उन्होंने अपनी या अपने मजहब की रक्षा तलवार के बल पर नहीं की, बल्कि अपनी रूहानी ताकत पर की है। इस्लाम की तारीख यही साबित करती है।

वीसनगर के मुसल्मानों को चाहिए कि वे अपनी तलवार म्यान में रख लें। तलवार के बलपर वे हिन्दुओं को मसजिद के पास बाजे बजाने से नहीं रोक सकते। तीस-चालीस वर्ष से हिन्दू बाजे बजाते आये हैं। उन्हें एकाएक बाजे बजाने से रोकना कठिन काम है। तलवार से यह काम नहीं हो सकता। दुनिया का यह कायदा है कि जैसा हमको मालूम होता है वैसा ही दूसरों को मालूम होता है। यदि कोई हिन्दू मुसल्मानों से जबरदस्ती कोई हक मांगे तो वे न देंगे। उसी प्रकार जबरदस्ती से हिन्दुओं से भी कुछ नहीं ले सकते—यह बात वीसनगर के मुसल्मान भाइयों को शान्त चित्त से विचार कर समझ लेनी चाहिए।

मैं यह नहीं कहता कि इसलिए कि हिन्दू चालीस वर्ष से बाजे बजाते आ रहे हैं, यह भूल हो तो भी बाजे बन्द नहीं किये जा सकते। ऐसी बात बहुत काल की होने से भी नहीं हो सकती। परन्तु ऐसी बात तलवार के बलपर छुड़ाई नहीं जा सकती। उसका तो एक ही तरीका है मेल-जोल-समझौता। वीसनगर के हिन्दुओं की, यदि उनकी भूल हो, तो दिखाना चाहिए—उन्हें समझा-बुझाकर काम लें। यदि वे न समझें और बाजे बजाते हुए ही जायं तो इससे मुसल्मानों की नमाज रुकी न रहेगी। नमाज का रुकना न रुकना नमाजी के दिलपर असर रखता है। मैंने ऐसा पढ़ा है कि पैगम्बर साहब ऐसी हालत में भी जब कि लड़ाई चल रही हो, तलवारों की झनझनाहट हो रही हो, घोड़े हिनहिना रहे हों, तीर सूं सूं कर रहे हों, शान्त चित्त से एकाग्र होकर नमाज पढ़ सकते थे। उन्होंने मक्का के बुत-परस्तों के दिल प्रेम के बल पर हर लिये थे। पैगम्बर साहब जो नमूना अपनी विरासत में दे गये हैं उसे वीसनगर के मुसल्मान क्यों भूलते हैं? नमाज पढ़ना उनका फर्ज है। यह तो कुरान शरीफ में पढ़ा है। पर यह नहीं पढ़ा, न सुना कि यदि दूसरे लोग बाजे बजाते हों तो जबरन् बन्द कर देने का हक उन्हें है और उसे बन्द कर देना मुसल्मानों का फर्ज है। हिन्दुओं को वे प्रेम से समझा सकते हैं। यदि हिन्दू न मानते हों तो वे वीसनगर के बाहर के हिन्दू मुसल्मानों की सहायता ले सकते हैं। मेल-जोल और समझौते के सिवा न तो हिन्दुओं के लिए कोई रास्ता है, न मुसल्मानों के लिए।

क्या वीसनगर के मुसल्मान स्वराज्य नहीं चाहते? क्या उन्हें गुलामी ही पसन्द है? क्या मुसल्मान खिलाफत के प्रति अपना फर्ज अदा कर चुके? गुलामी में रहकर के मुसल्मान खिलाफत की सच्ची सेवा कर सकते हैं? हिन्दुओं के साथ पाक-दिली-दोस्ती किये बिना मुसल्मान खिलाफत को रोशनी दे सकेंगे? अच्छा, यह मान लें कि खिलाफत का सवाल उनके सामने नहीं है। तो क्या वे अपने वतन हिन्दुस्तान में अपने हमवतन हिन्दुओं के साथ हमेशा दुश्मनी के ही नाते रहना चाहते हैं?

हिन्दू-मुसल्मान-संबंधी दूसरे कितने ही सवालों का विचार हम 'नवजीवन' में करेंगे। पर एक बात का निश्चय तो तुरन्त होना चाहिए। आपस के झगड़ों का फैसला या तो पंच के मारफत या

महाशय के मारफत हो सकता है । एक दूसरे को धर्म के अथवा दूसरे किसी चीज के नाम पर आपस में तलवार चलाना हराम समझना चाहिए । मुसल्मानों से हमेशा हिन्दुओं का डरते रहना जिस प्रकार हिन्दुओं को शोभा नहीं देता उसी प्रकार उन्हें डराना मुसल्मानों को भी शोभा नहीं देता । डरानेवाला और डरनेवाला दोनों भूल करते हैं । दो में किसका दरजा बड़ा है यह मैं नहीं कह सकता । पर यदि मुझे किसी एक को पसन्द ही करना पड़े तो मैं जरूर डरनेवाले के झुण्ड में जा बैठूं और डरानेवाले के साथ पूरा पूरा असहयोग करूं । मुझे निश्चय है कि डरनेवाले पर तो खुदा रहम करेगा । और डरानेवाले को उसकी तलवारी के लिए अपने पास खड़ा न रहने देगा ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

दक्षिण-आफ्रिका का सत्याग्रह

इतिहास

(गतांक से आगे)

बोअर स्त्रियों ने भी यह समझकर कि अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए चाहे कितना ही कष्ट-सहन करना पड़े, यह धार्मिक फरमान है, धीरज और आनन्द के साथ तमाम आपत्तियां सहन कीं । औरतों को झुकाने के लिए स्वर्गीय लार्ड किचनर ने किसी उपाय में कसर नहीं रक्खी । अलग अलग हिस्सों में उन्हें बन्द कर रक्खा । वहां उनपर असह्य आपत्तियां आईं । खाने-पीने की सांसत, सरदी-गरमी के मारे बेहाल । कोई शराब के नशे में चूर अथवा कामांध सोल्जर इन बिना धनी-धोरी की स्त्रियों पर हमला भी कर बैठता । इन हातों में अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा होते थे । ऐसा होते हुए भी ये बहादुर औरतें न झुकीं । और अन्त को खुद किंग एडवर्ड ने ही लार्ड किचनर को लिखा कि "यह मैं सहन नहीं कर सकता । यदि बोअर लोगों को झुकाने का यही इलाज हमारे पास हो तो इसकी अपेक्षा मैं हर तरह की सुलह को पसन्द कर लूंगा । लड़ाई को आप शीघ्र खतम कर दीजिए ।"

इन तमाम कष्टों की आवाज जब इंग्लैंड में पहुंची तब अंगरेजी जनता को भी दुःख हुआ । बोअरों की बहादुरी से वे लोग आश्चर्य-चकित हो गये । यह बात अंगरेज लोगों को चुभा करती थी कि इतनी-सी छोटी जाति ने दुनियां में चारों ओर फैली सल्तनत के छक्के छुड़ा दिये । पर जब इन हातों के अन्दर मुंदी हुई स्त्रियों का आर्तनाद इन औरतों के द्वारा नहीं, उनके मर्दों के द्वारा नहीं—वे तो संग्राम में ही जूझ रहे थे—बल्कि दक्षिण-आफ्रिका के इने-गिने उदारचरित अंगरेज स्त्री-पुरुष के द्वारा वहां पहुंचे तब अंगरेज जनता सोच में पड़ी । स्वर्गीय सर हेनरी केम्बेल बैनरमैन ने अंगरेजी जनता के हृदय को पहचाना और लड़ाई के खिलाफ गर्जना की । स्वर्गीय श्री स्टेड ने प्रकाश्य-रूप से ईश्वर से प्रार्थना की और दूसरों को भी प्रेरणा की कि इस लड़ाई में ईश्वर अंगरेजों को हरावे । यह दृश्य अद्भुत था । सच्चा कष्ट यदि सचाई के साथ सहन किया जाय तो वह पत्थर जैसे हृदय को भी पानी पानी कर डालता है । कष्ट-सहन की अर्थात् तपस्या की महिमा ऐसी ही है । और यही सत्याग्रह की कुंजी है ।

नतीजा यह हुआ कि फ्रीनिखन की सुलह हुई और अन्त को दक्षिण-आफ्रिका की चारों रियासतें एक तन्त्र के अधीन हुईं । यद्यपि इस सुलह की बात को हरएक अखबार पढ़नेवाला हिन्दुस्तानी जानता है तथापि एक बात ऐसी है जिसका खयाल तक होने की संभावना बहुतों को नहीं । फ्रीनिखन की सुलह के साथ ही चारों रियासतें संयुक्त न हो गईं थीं । हरएक के लिए अपनी अपनी धारासभा थी । उनका कार्यकारी-मण्डल पूरे तौर पर इन धारासभाओं के नजदीक जवाबदेह न था । ऐसे संकुचित हक से जनरल बोथा अथवा जनरल स्मट्स को सन्तोष नहीं हो सकता था । लार्ड मिलनर ने बिना दूल्हे की बारात के जाना निश्चित किया । जनरल बोथा धारासभा से अलग रहे । उन्होंने असहयोग किया । सरकार से संबंध रखने से साफ इन्कार कर दिया । लार्ड मिलनर ने एक उग्र भाषण किया और कहा कि जनरल बोथा को यह मान लेने की जरूरत नहीं है कि इतना सारा भार उनके सिर पर है । राज्य-कार्य उनके बिना भी चलाया जा सकेगा ।

बोअरों की बहादुरी, उनकी स्वतन्त्रता, उनकी कुरबानी का वर्णन मैंने बिना किसी संकोच के किया है; पर इससे मैं पाठकों का यह खयाल नहीं बनाना चाहता था कि संकट के समय में भी इनमें मत-भेद नहीं हो सकता अथवा कोई कमजोरी का परिणाम नहीं दे सकता । बोअरों में भी लार्ड मिलनर ऐसा दल खड़ा कर सके जो आसानी से राजी हो गया और मान लिया कि इनकी मदद से मैं धारासभा को चला सकूंगा । एक नाटककार भी मुख्य पात्र के बिना अपने नाटक को सुशोभित नहीं कर सकता । तो इस जटिल और दुर्गम संसार में कारोबार करनेवाला मनुष्य यदि मुख्य पात्र को भूल कर सफल होने की आशा रक्खे तो उसे पागल समझना चाहिए । सचमुच यही दशा लार्ड मिलनर की हुई । और यह भी कहा जाता था कि उन्होंने धमकी दे तो दी परन्तु ट्रान्सवाल और फ्री स्टेट का कार्य-संचालन जनरल बोथा के बिना करना उन्हें इतना कठिन हो गया कि वे अपने बगीचे में चिन्तातुर और बदहवास नजर आते ! जनरल बोथा ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि फ्रीनिखन के सुलहनामे का अर्थ मैं तो यही स्पष्ट तौरपर समझता हूं कि बोअर लोगों को अपनी भीतरी व्यवस्था का पूरा पूरा अधिकार तुरन्त मिलेगा । और उन्होंने कहा यदि ऐसा न होता तो मैं उसपर कभी दस्तखत न करता । लार्ड किचनर ने इसके जवाब में यह कहा कि हमने जनरल बोथा को किसी तरह ऐसा विश्वास नहीं दिलाया था । बोअर लोग ज्यों ज्यों विश्वास-पात्र साबित होते जायंगे त्यों त्यों धीरे धीरे उन्हें स्वतन्त्रता मिलती जायगी ! अब इन दोनों का इन्साफ कौन करे ? यदि कोई पंच की बात कहता तो भी जनरल बोथा क्यों मानने लगे ? उस समय बड़ी सरकार ने जो इन्साफ किया वह उसे सब तरह से शोभा देने लायक था । उसने मंजूर किया कि प्रतिपक्षी और उसमें भी निर्बल पक्ष—समझौते का जो अर्थ समझता हो वही अर्थ सबल पक्ष को स्वीकार करना चाहिए । न्याय और सत्य की नीति के अनुसार तो हमेशा यही अर्थ सच होता है । अपने वचन का अर्थ मैंने अपने मन में चाहे जो कर रक्खा हो, पर मुझे मानना चाहिए कि उसका जो भाव पढ़नेवाले अथवा सुननेवाले के दिलपर अंकित हो उसी भाव में मैंने वह वचन कहा या लेख लिखा था । इस सुनहले नियम का पालन हम व्यवहार में बहुत बार नहीं करते । इसीसे कई झगड़े खड़े होते हैं और सत्य के नामपर अर्धसत्य—अर्थात् ठेठ असत्य—से काम लिया जाता है ।

इस प्रकार जब सत्य की, अर्थात् यहां जनरल बोथा की, पूरी विजय हुई तब वे काम में जुटे । फलतः तमाम राज्य एकत्र हुए और दक्षिण-आफ्रिका को पूरी पूरी स्वतन्त्रता मिली । उसका यूनियन जेक है, नकशे में इस प्रदेश का रंग लाल है, फिर भी यह मानने में जरा भी ज्यादती नहीं कि दक्षिण-आफ्रिका पूर्णतया स्वतन्त्र है । ब्रिटिश-साम्राज्य दक्षिण-आफ्रिका के कार्यकर्ताओं की राय के बिना दक्षिण-आफ्रिका से एक पाई नहीं ले जा सकता । इतना ही नहीं बल्कि ब्रिटिश मन्त्रियों ने यह स्वीकार किया है कि यदि

दक्षिण-आफ्रिका ब्रिटिश झण्डे को निकाल डालना चाहे और नाम में भी स्वतन्त्र होना चाहे तो उसे कोई नहीं रोक सकता। और यदि आज दक्षिण-आफ्रिका के गोरे ऐसा नहीं करते हैं तो उसका सबब कारण है। एक तो यह कि बोअर लोगों के नेता बुद्धिमान् और समझदार हैं। ब्रिटिश-साम्राज्य के साथ यदि इस प्रकार की मित्रता रक्खी जाय अथवा ऐसा संबंध रक्खा जाय, जिसमें कुछ कुछ खोना न पड़े तो वह बेजा नहीं। पर इसके अतिरिक्त दूसरा व्यावहारिक कारण भी है। वह यह कि नेटाल में अंगरेजों की संख्या अधिक है, केपकालोनी में अंगरेजों की संख्या अधिक है, पर बोअरों से अधिक नहीं और जोहान्सबर्ग में तो केवल अंगरेजों का ही प्रभाव है। अतएव यदि बोअर लोग सारे दक्षिण-आफ्रिका में स्वतन्त्र प्रजासत्ताक राज्य स्थापित करना चाहें तो वह मानों घर में ही झगड़ा खड़ा करना है और शायद आपस में लड़ाई भी छेड़ उठे। इससे दक्षिणी आफ्रीका ब्रिटिश राज्य कहलाता है।

यह भी जानने लायक बात है कि यूनियन का कानून किस तरह बना। चारों रियासतों की धारासभाओं ने एकमत हो कर यूनियन का संगठन तैयार किया। संगठन ब्रिटिश पार्लमेन्ट को अक्षरशः कबूल करना पड़ा। आम-सभा में एक सदस्य ने एक व्याकरण-दोष की ओर ध्यान खींच कर दूषित शब्द निकाल डालने की तजवीज पेश की। स्व० सर हेनरी केम्बेल बैनरमैन ने उस तजवीज को नामंजूर करते हुए कहा कि राज्य-कार्य शुद्ध व्याकरण के द्वारा नहीं चल सकता। यह संगठन ब्रिटिश कार्यकारी मण्डल और दक्षिण-आफ्रिका के राजकाजियों के सलाह-मशवरे के बाद तैयार हुआ है। उसके व्याकरण-दोष तक को दूर करने का अधिकार ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के लिए नहीं रक्खा गया है। अतएव यह संगठन आम और उमराव दोनों सभाओं में ज्यों का त्यों स्वीकार करना पड़ा।

इस मौके पर एक और बात भी लिखने लायक है। संगठन-पत्र में कितनी ही धारायें ऐसी हैं जो एक तटस्थ मनुष्य को फजूल मालूम होंगी। उससे खर्च भी बहुत बढ़ गया है। यह बात संगठन की रचना करनेवालों के ध्यान के भी बाहर नहीं थी। फिर भी उनका उद्देश पूर्णता को पहुंचना नहीं था, बल्कि यह था कि कुछ घटा-बढ़ी कर के एकमत हों और अपना प्रयत्न सफल करें। इसीसे आजकल यूनियन की चार राजधानियां मानी जाती हैं; क्योंकि उपरियासतों में से कोई भी अपनी राजधानी का महत्व खोने के लिए तैयार नहीं थे। चारों रियासतों की स्थानीय धारासभायें भी कायम रक्खी गई हैं। चारों रियासतों को गवर्नर जैसा कोई पदाधिकारी जरूर चाहिए—इसलिए चार हाकिम मंजूर करना पड़े। सब लोग जानते हैं कि चार स्थानीय धारासभायें, चार राजधानियां और चार हाकिम अजायब-खान की तरह फजूल और एक आडम्बर-मात्र है। पर इससे कहीं आफ्रिका के व्यवहार-कुशल राजकाजी लोग डरने वाले थे? आडम्बर होते हुए भी और यदि इससे अधिक खर्च हो तो भी चार रियासतों की एकता होना वांछनीय था। अतएव उन्होंने बाहर के लोगों की टीका-टिप्पणी की चिन्ता किये बिना वही किया जो उन्हें उचित दिखाई दिया और वही पार्लियामेंट से मंजूर कराया।

यह दक्षिण-आफ्रिका का संक्षिप्त इतिहास मैंने पाठकों की जानकारी के लिए यहां देने की चेष्टा की है। उसके बिना सत्याग्रह के महान् संग्राम का रहस्य समझ में न आता। ऐसे प्रदेश में हिन्दुस्तानी लोग किस प्रकार आये और वहां सत्याग्रह-काल के पहले किस तरह अपने ऊपर आई आपत्तियों का मुकाबला किया, यह मूल विषय पर आने के पहले जानना जरूरी है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

करनाटक की बहनें

कुछ दिन पहले बंबई में रहनेवाली करनाटक की कोई ५० बहनें मुझसे मिलने आई थीं। तमाम बहनें अपना काता सूत साथ लाई थीं। ५००) भी लाई थीं। इनमें से एक बहन ने 'समाज-सेवा' नाम का एक नाटक लिखा है। दूसरी बहनों ने उसका अभिनय किया। खर्च जा कर ५००) की बचत हुई। नाटक के इन्तजाम में सिर्फ ५०) खर्च उन्होंने किया।

क्या दूसरी बहनें इनका अनुकरण करेंगी?

संभव है कि बहुतेरी बहनें पढ़ने लायक या खेलने लायक नाटक न लिख सकें, कितनी ही खेल भी न सकें। परन्तु सूत तो सब कात सकती हैं। एक बहन ने मुझसे कहा कि दक्षिणी बहनें तो चपल हैं, उद्योगी हैं; पर गुजराती बहनें सुस्त। ऐसा इल्जाम गुजराती बहनें किस तरह सहन कर सकती हैं? हालांकि मुझे यह बात कबूल करनी चाहिए कि जितना सूत श्री अवन्तिका बाई गोखले ने अपने दक्षिणी-समाज से कतवाया है उतना किसी गुजराती बहन के कतवाने का समाचार नहीं मिला। हां, निष्पक्ष दृष्टि से देखने लगें तो दक्षिणी बहनों की और बातों की अच्छाई के भी प्रमाण मिलेंगे। फिर भी मैं ठहरा गुजराती। गुजराती बहनों के लिए लिखते समय मैं निष्पक्ष कैसे रह सकता हूं? निष्पक्षता की नीति को अंगीकार करते हुए भी मैं गुजराती बहनों का पक्षपात कर के उनसे विनय करना चाहता हूं कि वे अपनेको दक्षिणी बहनों के जैसी चपल और उद्योगी साबित करें। यदि वे मेरे इस निहोरे पर काम न करें तो मुझ एक गुजराती बहन के द्वारा गुजराती बहनों पर किया यह एतराज सच मानना पड़ेगा।

पुरुष और स्त्री दोनों को चरखा कातना चाहिए। परन्तु बहनों का यह विशेष धर्म है। धनिक बहनें अपने कपड़ों के लिए कातें या परोपकार के लिए कातें। गरीब बहनें आजीविका के लिए या अपने खर्च की कमी को पूरा करने के लिए कातें। शहर में खास करके ऐसी ही कताई हो सकती है। शहर में रहनेवाली गरीब बहनें कातने की अपेक्षा दूसरी मजदूरी पर ज्यादा पैसा पा सकती हैं। उन्हें कातने पर जोर देना फिजूल है। उन्हें दूसरों से ज्यादह कताई देना हानिकार है और उससे कातने का मतलब पूरा नहीं होता।

अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ

मैं देखता हूं कि अभी उन विषयों पर भी सवाल किये जाते हैं जिन्हें मैं समझता था कि उनका अर्थ स्पष्ट हो गया है। अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ महासभा के प्रस्ताव के अनुसार मेरी समझ में एक ही है। वह यह कि हम-हिन्दू-जाति अस्पृश्यता के दोष से मुक्त हों। जिस प्रकार चारों वर्ण एक दूसरे के स्पर्श से अछूत नहीं होते, उसे पाप नहीं मानते, उसी प्रकार अस्पृश्यता के संबंध में भी हमारा आचार होना चाहिए। इससे अधिक और नहीं। यह बात कई बार कही जा चुकी है। जिस प्रकार जुदी जुदी जातियों में रोटी-बेटी व्यवहार नहीं उसी प्रकार अस्पृश्य माने जानेवाले लोगों के साथ भी ऐसे व्यवहार की जरूरत पूर्वोक्त प्रस्ताव के अनुसार नहीं। यह जरूरी नहीं है कि एक-दूसरे के साथ खाना खावें या शादी-ब्याह करें। परन्तु यह मानना कि एक दूसरे से न छुवें और एक मनुष्य केवल इसी लिए कि वह किसी जाति में जन्मा है अस्पृश्य है, सृष्टि के नियम दया-धर्म और सत्-शास्त्र के विरुद्ध है। ऐसे पापपूर्ण रवाज को नष्ट करने प्रयत्न को रोटी-बेटी व्यवहार के साथ शामिल करना, मानों आवश्यक प्रायश्चित्त के प्रवाह को रोकना है।

अस्पृश्यता की गंदगी ने इतना घर कर लिया है कि उसे हम गंदगी ही नहीं समझते। हम तो उसे मानों हिन्दू-जाति का भूषण समझकर रख रहे हैं। उसीको निकालने में जहां हित-चिन्तकों को मुसीबतें उठाना पड़ती है तहां उसमें विघ्नों को शामिल कर के सुधार को रोकना व्यवहार-कुशल मनुष्य का काम नहीं।

रोटी-बेटी-व्यवहार जाति-सुधार का सवाल है। ऐसे सुधार करने का प्रयत्न वे लोग कर रहे हैं जो चाहते हैं कि जातियाँ मिटा दी जायं। परन्तु यह कोशिश बिलकुल भिन्न है। और उसके साथ अस्पृश्यता-निवारण का बिलकुल संबंध नहीं। यह बात स्पष्टरूप से समझ लेने की आवश्यकता है। हां, यह ठीक है जो जाति-बंधन तोड़ने की इच्छा रखने वाले लोग भी अस्पृश्यता-निवारण के काम में योग देते हैं। पर यदि वे इतना समझ लें कि अस्पृश्यता तथा पूर्वोक्त दोनों सुधार बिलकुल अलग हैं और उनका मूल भी अलग हैं तो दोनों की कीमत और आवश्यकता उनके गुणदोष को देखकर निश्चित की जा सके।

तब अस्पृश्यता दूर करने के मानी क्या हैं? मैं तो समझता था कि यह बात भी लोगों की समझ में आचुकी है। अस्पृश्य माने जाने वाले भाई दूसरी जातियों की तरह बेखटके घूम-फिर सकें, जिन पाठशालाओं में, जिन मन्दिरों में दूसरी जाति के लोग जा सकते हैं उनमें जा सकें और जिन कुवों से सब लोग पानी भरते हैं उनसे वे पानी भी भर सकें।

यह दलील कि "अछूत लोग बहुत गंदे रहते हैं, उनका काम भी गंदा है।" मैं समझता हूं अज्ञान के ही कारण पेश की जाती है। अछूतों से भी अधिक गंदे दूसरे लोग आम कुंवो से पानी भरते हैं। दुध-मुंहे बच्चों की मा का काम भी गंदा होता है, डाक्टर भी गंदे होते हैं। पर हम उनकी इज्जत करते हैं। यदि कोई यह कहे कि वे अपना काम कर चुकने के बाद साफ सुथरे हो जाते हैं तो बहुतेरे अछूत भी कुवे पर साफ-पाक होकर पानी भरने जाते हैं। पर अगर वे न होते हों तो कुसूर हमारा है। हमने उनका तिरस्कार करके उनको गांव से दूर रख-कर उनके लिए साफ-सुथरे रहने के साधन अलभ्य या दुर्लभ कर दिये हैं। फिर भी उन्हें कोसना अन्याय की हद करना है। हमारी शिथिलता और जुल्म के कारण जो बुराइयाँ उनके अन्दर पैठीं उन्हें दूर करने में सहायक होना हमारा कर्तव्य है। और उसे न करते हुए हिन्दुस्तान की आजादी चाहना सूर्य की ओर पीठ कर के सूर्य के दर्शन की आशा रखने के बराबर है। (नवजीवन)

चेतावनी

खबर मिली है कि मनोहरलाल नाम का कोई शख्स, अपनेको गुजरात विद्यापीठ का अध्यापक बता कर, बहुत दिनों से युक्त-प्रान्त में चन्दा वसूल कर रहा है। इसलिए सब लोगों को सावधान किया जाता है कि श्री वल्लभभाई पटेल, श्री मणिलाल कोठारी आदि नेताओं के सिवा कोई शख्स विद्यापीठ के लिए चन्दा वसूल नहीं करते हैं। इसलिए निवेदन है कि चन्दा-दाता या तो बाला-बाला पूर्वोक्त सज्जनों को रकमें भेजें या उसी शख्स को दें जिसपर उनका एतबार हो।

किशोरलाल घ. मशरूवाला
महामात्र

ग्राहक होनेवालों को

चाहिए कि वे सालाना चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी. पी. भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है।

चरखे के प्रति उदासीनता

एक सज्जन काशीजी से लिखते हैं कि बोर्ड इत्यादि में हमारे लोगों के जाने से कुछ लाभ नहीं हुआ; बल्कि रचनात्मक काम थम गया है। वे यह भी लिखते हैं कि इन लोगों की चरखे के प्रति उदासीनता है। बहुतेरे लोगों का विश्वास भी चरखे में नहीं है। जब इन सज्जनों से कुछ कहा जाता है तो वे उत्तर देते हैं— हम गांधीजी के कहने पर बोर्ड में गये हैं।

प्रथम बात तो यह है कि मैं नहीं चाहता कि कोई शख्स मेरे कहने से कुछ भी करें। जो कुछ करें अपनी ही राय के मुताबिक करें। हम स्वतन्त्र बनना चाहते हैं। किसी व्यक्ति के— फिर वह कैसा ही प्रभावशाली हो—गुलाम बनना नहीं चाहते। मेरी राय तो ऐसी है कि लोकल बोर्ड इत्यादि में जाने की खास आवश्यकता नहीं है। यदि हम जायं तो सिर्फ रचनात्मक काम करने के इरादे से। इसलिए यदि यह काम भली-भांति न हो सके तो हमें ऐसी संस्था का त्याग करना चाहिए।

मैं जानता हूं कि चरखे की शक्ति में बहुत से असहयोगियों का अविश्वास है। उनको विश्वास दिलाने का एक ही उपाय है कि जिनको विश्वास है वे अधिक उत्साह से खुद चरखा चलावें और दूसरों को प्रोत्साहित करें। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि चरखे के बिना स्वराज्य का मिलना और कायम रखना असम्भव है। हां, एक बात है। सम्भव है कि स्वराज्य के मानी हम सब के दिल में एक न हों। मैं एक ही अर्थ करता हूं—**हिन्दुस्तान की कंगाली का मिटना और प्रत्येक स्त्री-पुरुष का आजाद बनना।** पूछो हिन्दुस्तान के भूख से पीड़ित भाई-बहनों से। वे कहते हैं कि हमारा स्वराज्य हमारी रोटी है। सिर्फ काश्तकारी से हिन्दुस्तान के करोड़ों किसान अपना पेट नहीं भर सकते। उन्हें किसी न किसी दूसरे उद्यम की सहायता आवश्यक है। ऐसा सार्वजनिक उद्यम चरखे के ही द्वारा मिल सकता है।

"भूखे भगति न होइ गोपाला"

दूसरे सज्जन लिखते हैं कि जिन्होंने असहयोग-आन्दोलन के कारण अपना धन्धा छोड़ दिया है उनके निर्वाह का कुछ न कुछ प्रबन्ध होना चाहिए। इस प्रश्न का जल्दी से हल होना मुश्किल है और न भी है। यदि सब लोग रचनात्मक-कार्य का मर्म समझ लें तो भूख का प्रश्न उठ ही नहीं सकता। यदि रचनात्मक-कार्य में श्रद्धा न हो तो भूख का प्रश्न सदा के लिए रह जायगा। मेरा दृढ़ मन्तव्य है कि जिसको चरखे और करघे में विश्वास है उसे आजीविका मिल सकती है। देश में मध्यम वर्ग की जो कठिनाइयां हैं उनका इलाज उद्यम से ही हो सकता है। हमारे अन्दर कितने ही बुरे रिवाज हैं। उन्हें हमको छोड़ना होगा। एक आदमी यदि मजदूरी करे और दूसरे दस कुछ न करें तो कमाई के द्वारा सबकी आजीविका नहीं मिल सकती। और ऐसा भी न होना चाहिए कि सब लोग महासभा का ही मुंह देखते रहें। स्वराज्य में यह भी तो होना चाहिए कि हम सब स्वावलम्बी बनें। उसीका नाम स्वराज्य-विश्वास है। भगवान गोपाल ने अपनी गीता में प्रत्येक मनुष्य के लिए आजीविका की एक शर्त रक्खी है। जो भूख मिटाना चाहता है उसे यही करना चाहिए। यज्ञ के कई मानी हैं। एक आवश्यक अर्थ मजदूरी है। जो मनुष्य मजदूरी नहीं करता है और खाता है उसको भगवान् ने चोर कहा है।

मोहनदास करमचंद गांधी

आगामी परिषद्

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)॥
विदेशों के लिए „ ७)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ३९

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, वैशाख सुदी ७, संवत् १९८० रविवार, ११ मई, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

वहोराओं का डर

एक वहोरा सज्जन लिखते हैं—"आज हिन्दु-मुसल्मान-एकता का सवाल बड़ा ही महत्व-पूर्ण हो रहा है। इस एकता से हम ढाई लाख वहोरों की जाति डरती है।

आपकी यह राय है कि जबतक हिन्दू-मुसल्मान एकता दृढ न हो तबतक स्वराज्य मिलना असंभव है। मैं भी यही मानता हूं।

अब सवाल यह है कि क्या इस एकता में हमारी जाति भी आ जाती है? यदि आती हो तो हिन्दु, मुसल्मान, यहूदी, पारसी, ईसाई आदि के नामों में 'वहोरा' शब्द भी लिखते रहिए। इस से हमारी जाति जो इस एकता से डरती है उसका डर दूर हो जायगा।

क्योंकि पहले मुगल बादशाहत के जमाने में हमारी जाति पर तरह तरह के अत्याचार किये गये थे। उसका मुख्य कारण है हमारा मुसल्मनों के साथ धार्मिक मतभेद।

यदि हिन्दू-मुसल्मान-एकता हो और कभी स्वराज्य मिले तो फिर इस बात का क्या यकीन कि मुसल्मान लोग हमपर बलात्कार न करेंगे? ७ करोड़ मुसल्मानों में हम ढाई लाख किस खेत की मूली हैं? यदि इस बात का यकीन हमारी कौम को हो जाय कि फिर से हमपर अत्याचार न हो और 'नवजीवन' में आप खास हमारी जाति के लिए ऐसे लेख लिखें कि जिससे हमारी धार्मिक स्वतन्त्रता कायम रहे तो आपका उपकार होगा और जो डर का वहम घुस गया है वह आपके लेख के प्रभाव से निर्मूल होगा। क्योंकि हमारी कौम यह मानती है कि वर्तमान राजतन्त्र में हम सुखी हैं और हमारे धर्म पर आक्रमण नहीं होता। इसी प्रकार स्वराज्य मिलने पर भी हमारी कौम निर्भय रहनी चाहिए।"

इस पत्र से ऐसी कितनी ही बातें मैंने निकाल डाली हैं जो जुल्मों को साबित करने के लिए लिखी गई थीं। भतकाल के झगडों को ताजा करने से किसीको लाभ नहीं। इन वहोराभाई ने जो प्रश्न उठाया है वह गूढ है। 'नवजीवन' में छापने या उसपर टीका-टिप्पणी करने से उसका फैसला नहीं होता। हिन्दू-मुसल्मान, ईसाई के साथ वहोरा शब्द जोड देने से भी सन्तोष नहीं मिलता। हिन्दू-मुसल्मान-एकता का नाम आज कितने ही वर्षों से सुनाई दे रहा है, पर आज वह ऐक्य कहां है? वह ऐक्य व्याख्यानों से होने वाला नहीं। बेचारी मेरी दुबली-पतली कलम और जबान भी क्या कर सकती है? हर कौम को यह समझ लेना चाहिए कि ऐक्य में ही हरएक का हित है, हर एक के धर्म की रक्षा है, और आपस में शुद्ध प्रेम रखना चाहिए। धर्मान्धता की जगह सहनशीलता होनी चाहिए। और सबसे बडी बात तो यह सीखनी चाहिए कि धर्म की खातिर या धर्म के नाम पर एक दल दूसरे दल पर बलात्कार न कर सके। यदि हिन्दू और मुसल्मान इतनी ही बात का पालन करें तो दूसरी कौमें अपने आप निर्भय हो जाती हैं। वहोराओं का नाम अलग लेने की जरूरत मुल्तक न होनी चाहिए। वे भी मुसल्मान हैं। यदि मुसल्मान-हिन्दू के साथ लाठी से लडना भूल जाय तो अपने आपस में लडना भी भूल जायगा। अतएव यदि हिन्दू-मुसल्मान के बीच सच्ची साफी दिल की सफाई हो जायगी तो एक ही धर्म के जुदे जुदे फिर्कों में भी हो जायगी। और यदि उसमें सफलता न मिली और हर मौके पर एक दूसरे के साथ लडने की ही नौबत आती रही तो फिर हमें सदा के लिए गुलामी पसन्द करनी पडेगी। 'सरकार बहादुर चिरंजीव रहे और हमें एक दूसरे के गले पर छुरी फेरने से रोकती रहे' यह हिन्दू-मुसल्मान सब का नया कल्मा हुआ और यही नया धर्म। देखना चाहिए कि हिन्दू-मुसल्मान दो में से किसी एक में भी अक्ल है या नहीं। आज की हालत में एक लाभ है, यह अधिक दिनों तक नहीं रह सकती। चार छः महीने में जो निश्चय दोनों कौमें करेंगी उससे मालूम हो जायगा कि हिन्दुस्तान के भाग्य में दूसरे पचास साल और गुलामी बदी है या थोडे ही समय में स्वराज्य लिखा है।

अन्त्यज परिषद्

गोधरा परिषद् के बाद से हम (गुजरात में) अन्त्यज-परिषद् करते आये हैं। पर इस साल उसका महत्व अधिक है। उसका एक कारण यह है कि मामा साहब फडके उसके सभापति हैं दूसरा यह कि मैं आ गया हूं। मैंने बारडोली और गुजरात से चाहा था कि अस्पृश्यता तुरन्त हट जानी चाहिए। पर अभीतक न हट सकी। इसमें दैव के सिवा किसको दोष दें? हिन्दू-जाति की रग रग में अस्पृश्यता का पाप पैठ गया है। इससे पाप को ही पुण्य मान बैठे हैं। जिस बात को सारा संसार पाप-रूप मानता है और जिसके कारण हिन्दू-जाति आज सारे संसार में तिरस्कृत है,

वह हमें दिखाई ही नहीं देता। पेटलाद (गुजरात) के पास एक दुर्घटना हुई। उसके संबन्ध में एक महाशय लिखते हैं—

"एक अन्त्यज १-५-२४ ई० के दिन इस प्रकार पीटा गया- पेटलाद स्टेशन पर वह रेल के एक खाने में बैठा हुआ था। उसके साथवाले खाने में कितने ही बनिये बैठे हुए थे। ढेड को बैठा हुआ देखकर एक उठा और उसने चपत जड़ दिया। बेचारा जी लेकर भगा। पर वे उसके पीछे पड़े। उसे पकड़ कर इतना पीटा कि जिसकी हद नहीं। यदि अन्त्यजोद्धार महासभा के काम का एक अंग न होता तो नहीं कह सकते बेचारे की क्या गत होती? तीन चार मुसल्मानों और तीन चार हिन्दू बीच में पड़ कर बेचारे को छुड़ाने लगे। ज्यों ज्यों छुड़ाते त्यों त्यों वे और मारने को टटकते। यह हाल देखकर हमारी आंख में आंसू छलछला आये। आप यदि मौजूद होते आपकी आत्मा को कितना क्लेश होता उसका खयाल नहीं किया जा सकता।"

ऐसी दुर्घटना आज भी हो सकती है और सो भी पेटलाद स्टेशन पर! यह एकही मिसाल नहीं है जहां तहां अभी ऐसी क्रूरता का अनुभव हुआ ही करता है। इस दयाजनक हालत को दूर करने के लिए हर एक महासभा के हिन्दू को अन्त्यज-रक्षक हो जाना चाहिए और जहां ट्रेन में अन्त्यज दिखाई दे वहां उन्हें उचित है कि व उसकी पूरी तरह रक्षा करे। अन्त्यजों को यदि कोई पीटे तो बीच में पड़कर वे उसे अपने पर झेलें। यही सबसे आसान तरीका है। पर इससे हम रोग की जड़ नहीं काट सकते। जड़ मिटाने के लिए अस्पृश्यता-निवारक हलचल अधिक व्यापक होनी चाहिए। व्यापक तभी हो सकती है जब महासभा के सभ्य सच्चे बन जायं। अभी तो उन्हींके अन्दर अस्पृश्यता की बीमारी घर कर रही है। महासभा के ही कितने ही सज्जन अन्त्यजों को राष्ट्रीय पाठशालाओं में स्थान नहीं देते। उनका विश्वास कच्चा है। अन्त्यज परिषद् ऐसे शंकित चित्त लोगों को महासभा छोड़ देने की प्रार्थना करे और अन्त्यजों में हलचल बढ़ावे। वे इस बात की जांच करें कि उन्हें रेल में सफर करने में किन किन बातों की दिक्कतें पेश आती हैं और उनके इलाज खोजें। उन्हें बतावें कि वे अपनी रक्षा किस तरह करें।

उनके लिए पाठशालायें बढ़ाना, कताई बुनाई आदि की वृद्धि करना शराब वगैरह छोड़ने की प्रेरणा करना आदि काम भी उसके साथ हई हैं। हरएक कार्य में विघ्न तो हुआ ही करते हैं। परन्तु यदि इस कार्य के लिए दृढ़ स्वयंसेवक मिल जायं तो अब तक जो काम हुआ है उससे बहुत अधिक हो सकता है। अन्त्यज-परिषद् यदि सच्चे सेवकों की संख्या बढ़ा सके तो यह काम बड़ा ही कीमती होगा।

ईद मुबारक

ईद मुबारक के कितने ही पत्र मुसलमान-भाइयों ने मेरे नाम भेजे हैं। उनके इस प्रेम के लिए मैं उनका शुक्रगुजार हूं। मुझे यकीन है कि वे यह न चाहते होंगे कि हर भाई को मैं अलहदा अलहदा पत्र लिख कर उन्हें धन्यवाद दूं। मैं उन्हें ईद मुबारक चाहता हूं। इस समय जब कि दोनों जातियों में अविश्वास फैल रहा है, यदि जरा भी शुद्ध प्रेम हो तो ऊखी जमीन में उगती हरियाली की तरह शोभा देती है। ईद मुबारक के पत्रों में यदि सच्चा प्रेम है तो उसका चिन्ह यह है कि मुझे पत्र भेजने वाले भाई ऐसे काम करें जिनसे हिन्दू-मुसल्मानों का प्रेम-भाव बढ़े। मैं आशा रखता हूं कि मुझे पत्र भेजने वाले भाई सुगन्ध के बीज जहां तहां बोते रहेंगे।

जाति-भोजन

यह शादियों का महीना है। विवाह के सिलसिले में जाति-भोजन आदि में बहुत खर्च किया जाता है। यह कहना कि जिनके पास रुपया है वे जाति-भोजन आदि में खर्च न करें, कुछ ज्यादती होगी। पर ऐसे भोज अनिवार्य हो गये हैं और इससे गरीब लोगों पर उसका असह्य बोझ हो गया है। ऐसे भोज ऐच्छिक होना चाहिए—नहीं, बल्कि धनी लोगों को मितव्यय से काम ले कर गरीबों के सामने मिसाल पेश करनी चाहिए। इससे जो बचत हो वह यदि शिक्षा-प्रचार अथवा दूसरे समाज या जाति के अच्छे कामों में लगाई जाय तो इससे जाति को तथा सारे देश को लाभ हो। विवाह के समय जाति-भोजन की प्रथा बंद करना केवल वांछनीय है—इष्ट है; परन्तु मरण के बाद होने वाला जाति-भोजन बन्द करना बिलकुल आवश्यक है। मृत्यु के पश्चात् होने वाले जाति-भोजन को मैं तो पाप-रूप मानता हूं। मुझे इस भोज में कुछ भी रहस्य नहीं दिखाई देता। भोजन एक आनन्द का प्रसंग है। मरण शोक का अवसर है। समझ में नहीं आता, ऐसे समय भोज किस प्रकार दिये जा सकते हैं। सर फिरू भाई के स्वर्गवास के उपलक्ष्य में जो भोज हुआ था उसमें मैं उनके सम्मान के खातिर उपस्थित हुआ था। उस समय का दृश्य, उस समय जुदी जुदी जातियों के होने वाले झगड़े, और भोजन करने वालों का स्वेच्छाचार आज भी मेरी आंखों के सामने घूमता फिरता नजर आता है। उसमें मैंने कहीं भी मृत व्यक्ति के प्रति आदर-भाव नहीं देखा। शोक के लिए तो वहां जगह ही कहां थी? इसके सुधार के लिए अभी समय दरकार है। यह रुचि का बल हमारी शिथिलता सूचित करता है। यदि जाति के मुखिया ऐसे सुधार न करें तो व्यक्ति कर सकते हैं। मुखियों की वर्तमान अवस्था दयाजनक है। वे बहुत बार सुधार करना चाहते हैं। परन्तु डरते हैं। अतएव साहसी लोग आगे बढ़कर सुधार करने की इच्छा रखनेवाले मुखियों को बल दें और सुधार का दरवाजा खोलें।

रोटी-बेटी

जाति-भोज को रोक करने से भी शायद अधिक जरूरी सवाल है भिन्न भिन्न जातियों में रोटी-बेटी-व्यवहार को उत्तेजना देने का। वर्णाश्रम आवश्यक है; परन्तु अनेक उपजातियां हानिकारक हैं। जहां रोटी-व्यवहार है वहां बेटी-व्यवहार के संबंध में दो-मत न होंगे। यह भी देखते हैं कि ऐसे विवाह ठीक तादाद में हो भी चुके हैं। अब इस सुधार को नहीं रोक सकते। अतएव यह बहुत आवश्यक है कि समझदार मुखिया ऐसे सुधार को उत्तेजना दें। समय की रुचि के प्रतिकूल यदि मुखिया लोग ज्यादह सख्ती करेंगे तो उनका मान-भंग होने की संभावना है। सुधारकों के लिए शोभनीय बात यह है कि यदि उन्हें ऐसा सुधार मुखियों के खिलाफ होकर करना पड़े तो विनय से काम लें। ऐसे सुधारक भी देखे जाते हैं जो मुखियों को तुच्छ मान कर उन्हें चुनौती देते हैं कि तुम से जो हो सके सो कर लो। ऐसी अदालत करने से सुधार रुकता है और यदि मुखिया बिलकुल निर्बल हो गया हो और इसलिए दण्ड देने में असमर्थ हो गया तो सुधारक सुधारक न रह कर स्वेच्छाचारी हो जाता है। स्वेच्छाचार सुधार नहीं है। उससे समाज ऊंचा नहीं उठता, नीचे गिरता है।

खादी का अर्थ

एक सज्जन ने खादी का अर्थ पूछा है। उनका प्रश्न है—हाथ कते रेशमी तार और हाथ-बुने रेशमी कपड़े को खादी कह सकते हैं? खादी का सच्चा अर्थ तो एक ही है और रहना चाहिए—हाथ कते सूत का हाथ-बुना कपड़ा। इसी तरह कते-बुने सन ऊन, रेशम को क्रमशः सन की, ऊनी और रेशमी खादी कह सकते हैं परन्तु रेशमी खादी पहन कर यदि कोई खादी-प्रचार का दावा करे तो वह हास्यास्पद है। हां, यह जरूर कह सकते हैं कि विदेशी रेशम से देशी रेशम का इस्तेमाल अच्छा है। परन्तु उसके इस्तेमाल से खादी की गरज पूरी नहीं हो सकती—नहीं उल्टा खादी-प्रचार को हानि भी पहुंच सकती है।

अखबार-नवीसों के लिए—

'नवजीवन' की एक टिप्पणी में प्रदर्शित श्री गांधीजी के नीचे-लिखे विचार हिन्दी पत्र-सम्पादकों के लिए भी विचार करने योग्य हैं—

"गुजरात में अखबार खूब निकले हैं। पुस्तकें भी बहुतेरी प्रकाशित हो रही हैं। पाठकों का भी विस्तार अच्छा हुआ है। पहले जहां एक हजार ग्राहक होने पर संतोष माना जाता था वहां अब ३-४ हजार ग्राहक संख्या मामूली बात हो गई है। इस तरह गुजरातियों के पढ़ने का शौक बढ़ा है। यह बात अवश्य अभिनन्दनीय है। पर इसी तरह लेखकों की और अखबार नवीसों की जिम्मेवारी भी बढ़ गई है। यह बड़ा सवाल है कि किस किस्म की लेख-सामग्री पाठकों को दी जाय और किस तरह दी जाय? जो आदत पाठकों को आज लगेगी संभव है वह हमेशा के लिए पड़ जाय। जो हाल बच्चों का है वही बड़ी वयस्थावालों का। बड़ी उमरवालों को भी नये अनुभव के संबंध में बालक ही समझना चाहिए। बूढ़े आदमी को भी यदि कोई नई चीज पसन्द आ जाय और उसकी आदत उसे पड़ जाय तो वह भी उसमें उतनी ही दिलचस्पी लेगा जितनी कि एक बच्चा लेता है। और फिर यदि वह अनुचित साबित हो तो फिर उसे छोड़ने में उसे दुःख उठाना पड़ेगा। अतएव संभव है कि गुजरातियों के पढ़ने के शौक की जो बढ़ती हुई है उसे यदि अच्छी राह न मिले तो वह अन्त को हानिकर साबित हो। अतएव लेखकों को अपनी कलम पर अंकुश रखना चाहिए।"

जाति—सुधार

जाति-सुधार में सत्याग्रह का उपयोग किस प्रकार हो सकता है इस विषय में मैंने 'नवजीवन' में जो लेख लिखा है उसे पढ़ कर कितने ही 'नवजीवन' प्रेमी चाहते हैं कि अब मैं जाति-सुधार को 'नवजीवन' में अधिक पल्लवित करूं। इधर दूसरे कितने ही लोगों को भय है कि अब मेरा राजनैतिक काण्ड खतम हुआ और मैं राजनैतिक हलचल को समाज-सुधार का रूप देना चाहता हूं। जाति-सुधार के सवाल को मैं 'नवजीवन' में प्रधान-पद नहीं दे सकता। 'नवजीवन' का उद्देश्य है स्वराज्य। 'नवजीवन' का अस्तित्व केवल उसीके लिए है। समाज-सुधार मुझे प्रिय है। पर मेरे वर्तमान पत्र-सम्पादन के कार्य से उसका कुछ भी संबंध नहीं। जाति-सुधार का बहुतेरा काम व्यक्तियों जीवन से और उदाहरण से हो सकता है। पर समाज-सुधार को मैं राजनीति से भिन्न नहीं मानता। जिस प्रकार राजनीति में भी नीति और धर्म अवश्य होना चाहिए उसी प्रकार समाज-सुधार में भी होना चाहिए। जिस समाज की भीतरी व्यवस्था गंदी है उसे स्वराज्य नहीं मिल सकता। अतएव मौका पड़ने पर ऐसे सुधार की चर्चा भी 'नवजीवन' में की जा सकती है। सच पूछिए तो अस्पृश्यता-निवारण समाज-सुधार का प्रश्न है। परन्तु वह इतना व्यापक और आवश्यक है कि अब हम यह मानने लगे हैं कि उसका निपटारा किये बिना स्वराज्य मिलना ही असंभव है। परन्तु उन सुधारकों को 'नवजीवन' की मर्यादा को समझना चाहिए जो केवल जाति-सुधार के ही प्रश्न का विचार करते हैं और दूसरे वे लोग जिन्हें यह डर है कि 'नवजीवन' स्वराज्य-आन्दोलन को ताक में रख देगा, मेरे पूर्वोक्त विचारों पर ध्यान देकर भय-मुक्त हो जायं।

धर्मसंकट

यहां——नामक एक राजपूत हैं। वे अन्त्यजोद्धार के काम में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। उन्होंने बड़ी मदद की है। अन्त्यजों को छूने के कारण उनकी जाति उनपर बहुत बिगड़ी है। बहुत समझाने पर जातिवाले कहते हैं कि——को अन्त्यज-स्पर्श के बाद प्रायश्चित्त करना चाहिए। यदि प्रायश्चित्त न करे तो उसे जाति से बाहर कर देंगे। पर वे महाशय सिद्धान्त की रूसे प्रायश्चित्त करने से इनकार करते हैं।"

ऐसा एक दयाजनक पत्र मेरे सामने पड़ा हुआ है। जो सज्जन प्रायश्चित्त करने से इनकार करते हैं उन्हें मैं धन्यवाद देता हूं। जब कि हम अस्पृश्यता को पाप मानते हैं तब प्रायश्चित्त कर के अपने ही सिद्धान्त को तिलांजलि कैसे दें? जातिवालों को हम नम्रता-पूर्वक समझावें; पर यदि वे न मानें तो जाति से बाहर होने का दण्ड विनय-पूर्वक सहन करें; पर प्रायश्चित्त तो हरगिज न करें। मेरी यही मजबूत राय है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

एजंटों की जरूरत है

अब श्री गांधीजी संपादन करने लगे। उनके राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिन्दी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

व्यवस्थापक

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी)। कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डांक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डांक से भेजी जायं या रेल्वे से।

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, वैशाख सुदी ७, संवत् १९८०

आगामी परिषद्

बोरसद में होनेवाली (गुजरात प्रान्तीय) परिषद् बड़ी महत्वपूर्ण है। १९२० ईसवी में गुजरात की प्रान्तीय परिषद् ने महासभा का काम आसान कर दिया था। अब फिर वही अवसर गुजरात को प्राप्त हुआ है।

ऐसे अवसर पर मैं हाजिर न हो सकूंगा, यह बात मेरे लिए बड़ी दुःखदायी है। मुझे आशा थी कि मैं खुद हाजिर रह कर बोरसद को उसके महान् विजय पर धन्यवाद दूंगा। परन्तु मेरी शारीरिक स्थिति का विचार कर के, आशा है, सब भाई-बहन मुझे माफी देंगे। मेरा इरादा इस मास के अन्त में आश्रम पहुंचने का है। पर देखता हूं कि बाहर घूमने-फिरने की ताकत आते हुए अभी समय दरकार होगा। अभी मेरा शरीर ऐसा नहीं है जो यात्राओं, जलसों और जय-घोषों का भार सह सके। आश्रम में पहुंच जाना मुझे आवश्यक मालूम होता है। पर कोई यह न समझें कि मैं गुजरात में आ गया हूं। फिल हाल तो मैं अहमदाबाद में भी कहीं न जा आ सकूंगा। जिस तरह मैं जुहू में आबहवा का तबादला कर रहा हूं और कहीं जाता-आता नहीं उसी प्रकार मैं आश्रम में भी हो सके तो ठीक मास अर्थात् अगस्त के अन्त तक, पड़ रहना चाहता हूं।

श्री अब्बास साहब दिन पर दिन जवान होते जाते हैं। उनका उत्साह बढ़ता जाता है। वल्लभभाई की नाक कटे तो वे बरदाश्त करने को तैयार नहीं। उनके पास कार्य-कुशल भक्त हैं। उनका अभिमान रखते हैं और मुझपर तो आशा हुक्म ही छोड़ते हैं—'तुम अभी गुजरात में न आओ। तुम्हारी थैली बहुत ही बड़ी है। हमें उसे पूरा करना लाजिमी है। तुम यदि यह गरूर रखते हो कि मैं ही रुपये जुटा सकता हूं तो हम उसे दूर कर देंगे। दूसरे लोग चाहे भले ही यह मानते रहें कि तुम्हारे बिना काम न चलेगा, तुम्ही अकेले सत्याग्रह का संचालन कर सकते हो छोटी-बड़ी सब बातों में तुम्हारी सलाह लेना जरूरी है; पर हम गुजराती ऐसा नहीं मानते। तुम्हारे बिना भी हमने तुमसे अच्छा सत्याग्रह कर दिखाया है। खुद तुम्ही यह बात कुबूल करते हो। तुम्हारे बिना हम रुपया भी एकत्र कर सकते हैं, चरखे का प्रचार कर सकते हैं, यह बात भी तुम्हीं को कुबूल करना होगी। पाठक यह न समझें कि हू ब हू यही शब्द उनके पत्र में हैं। उनका पत्र तो है अंगरेजी में। खुद गुजराती होने की डींगे तो खूब हाँकते हैं, पर गुजराती मुझसे भी खराब लिखते हैं—इतना मैं भी कह सकता हूं। परन्तु अब्बास साहब ठहरे दुधारू गाय। अतएव उनकी गुजराती पर टीका-टिप्पणी कौन कर सकता है? और जो अंगरजी में लिखता है उसकी गुजराती पर टीका-टिप्पणी किस तरह की जा सकती है? मैंने उनके अंगरेजी पत्र का भावार्थ पाठकों को पेश किया है। यदि यह भावार्थ सही न हो तो जो भावार्थ वे भेजेंगे उसे मैं 'नवजीवन' में प्रकाशित करके उनसे माफी मांगने को तैयार हूं।

पर इतनी बात तो सच है कि मेरी तन्दुरुस्ती के खयाल से यदि नहीं तो अब्बास साहब की प्रतिष्ठा के खातिर, जबतक थैली पूरी न भर जाय, मुझे आश्रम में ही दफन हो कर रहना पड़ेगा और तमाम गुजरातियों को यह मानना होगा कि अभी मैं गुजरात में आया ही नहीं। बोरसद को तो मेरी जरूरत हो नहीं सकती। मैं यदि वहां जा सकूं तो अपने स्वार्थ के लिए। अब हमारी परिषदें बिल्कुल असली होनी चाहिए। जहां काम से काम हो वहां जलसे आदि के लिए जगह नहीं। हर परिषद् में बड़े बड़े लोगों को एकत्र करने का जमाना गया। उनका खर्च आता है, फजूल भाड़ी-बराबी लगता है और स्थानीय लोगों का ध्यान काम-काज से खिंचकर स्वागत-सत्कार में लगता है। तमाशबीनों का भव्वड़ हो सो जुदा ही। हां, इस विचार को कि बड़े बड़े लोगों के आने से नये लोग भी आकर हमारे काम में दिलचस्पी लेंगे जो अबतक नहीं आते थे, एक समय जगह थी, पर आज नहीं। जनता के उस भाव का ध्यान हमें उनकी निजी सेवा कर के खींचना चाहिए। बोरसद के सत्याग्रह ने जितने लोगों को खींचा उतनों को सारे हिन्दुस्तान के तमाम नेताओं के आने पर भी न खींच पाते।

असल बात यह है कि जितनों को हम खींच पाये हैं उनकी सेवा भी हम पूरी पूरी नहीं कर पाये हैं। वे कुछ अभी काम नहीं करने लगे हैं। जब वे महासभा के शान्ति और सत्य के रास्ते पर चलेंगे, असहयोग का पाठ पूरी तरह पढ़ेंगे, उनकी हवा औरों को भी लगेगी।

हमें संख्या-बल की जरूरत थी। सो हमारे पास है। अब गुण-बल की जरूरत है। अब हमें यह जांचना है कि इस संख्या में से सच्चे ठिक कितने निकलते हैं। इसकी परीक्षा हम केवल काम करके और कराके ही कर सकते हैं।

बारडोली में हमने शिकस्त नहीं खाई। एक जगह कमजोरी देखकर हमने समझ से काम लिया और सच्चे सैनिकों की तरह उस कमजोरी को दूर करने के लिए थम गये। परन्तु जो काम बारडोली में करना था वह आज भी करना बाकी है। लेकिन पास होने के लिए जितने नंबर बारडोली में बस थे उतने आज बस नहीं। आज ज्यादह नंबर दरकार हैं; क्योंकि तैयारी का समय ज्यादह मिल गया है, काम अधिक मुश्किल है, अकल्पित विघ्न आ कर खड़े हो गये हैं। हम में दलबन्दी हो गई है, हिन्दू मुसलमान की सुलह शिथिल हो गई है। अतएव आज हमारे अन्दर अधिक बल की आवश्यकता है।

बोरसद को इस प्रश्न का जवाब देना है। इस विषय पर प्रस्ताव होंगे या नहीं, यह वल्लभभाई जानें। सूत्रधार वे हैं। मैं तो दूर बैठ कर नुक्ताचीनी करने वाला हूं। मैं सिर्फ इतना ही जानता हूं और सुझाता हूं कि यह काम आगे—पीछे करना जरूर होगा।

हां, स्वराज्य लेने के लिए सविनयभंग की जरूरत एक शर्त पर नहीं पड़ सकती। यदि हिन्दुस्तान का बड़ा भाग रचनात्मक कार्यक्रम के तमाम अंगों को पूरी तरह विकसित कर सकें तो जरूरत न रहेगी। सत्याग्रह एक प्रकार का तेज दाम है। वह सोये हुए को जाग्रत करता है, निर्बल को बल देता है। थोड़े ही लोग यदि कुरबानी के लिए तैयार हों और दूसरे लोग उनके उद्देश को समझते हों, पसन्द करते हों-हर्ज नहीं यदि वे कुरबानी के लिए तैयार न हों तो सत्याग्रही यज्ञ प्रज्वलित करता है और उसमें अपना बलिदान करता है।

पर मेरी यह धारणा है कि यदि सारा गुजरात ही सर्वांग संपूर्ण हो जाय तोभी सविनय भंग की जरूरत न पड़े। सर्वांग संपूर्ण होने का अर्थ है सविनयभंग के लिए पूरी लियाकत हासिल करना। ऐसी योग्यता रखने वाले लोगों का मुकाबला करने की इच्छा कोई नहीं रख सकता। बोरसद ने यह हमें दिखा ही दिया है। अपने कार्य के लिए आवश्यक बोरसद की तैयारी इतनी पूर्णता को पहुंच गई थी कि सरकार को मुकाबला करने की जरूरत ही न मालूम हुई। फिर सत्याग्रह में तो हृदय के पलटे की बात है। विरोधी को जहां यह विश्वास हुआ कि हमारे साधन सच्चे हैं वह

अपना बल आजमाने की इच्छा ही नहीं करता। अभी हमारे सत्य या शान्ति के विषय में सरकार को संदेह है, नहीं उस पर उसका विश्वास ही नहीं बैठता। अंगरेज लोग यदि आज विश्वास हो बैठें तो क्या वे आज हमारे बीच सुरक्षित हैं ? अभयदान सत्याग्रही की प्रबल परीक्षा है। इसमें कितने लोग पास हो सकते हैं ? अतएव हमें दो वर्ष पहले की स्थिति के आगे न बढना चाहिए और गुजरात का एक ही ताल्लुके या जिले को तैयार करने पर जोर देना चाहिए। ऐसा ताल्लुके, मैं मानता हूं कि फिलहाल तो बोरसद भी नहीं। बारडोली होना चाहिए। पर वह कहां है ? बोरसद के स्थानिक सत्याग्रह के लिए जिस कम तैयारी से काम चला उसके उसके बल पर हम स्वराज्य का बोझा नहीं उठा सकते।

ऐसी तैयारी की शर्तें ये हैं—

१—तैयार ताल्लुका में लगभग हरएक स्त्री-पुरुष ताल्लुका में ही कती-बुनी खादी पहनता हो।

२—शराब और अफीम का त्याग इस हदतक हो कि वहां एक भी दुकान इन चीजों की न हो।

३—हिन्दू-मुसलमानों में पूरी दिली मुहब्बत हो।

४—अन्त्यज लोग अछूत न माने जाते हों—इतना हो नहीं बल्कि उनके बालकों को राष्ट्रीय पाठशालाओं में शिक्षा पाने और आम कुओं से पानी भरने तथा मन्दिर में दर्शन करने में कोई रुकावट न हो।

५—जगह जगह राष्ट्रीय पाठशालायें हों।

६—अदालत में शायद ही कोई मामला जाता हो और आपस के लड़ाई-झगड़ों का फैसला पंच की मार्फत होता हो।

सच पूछिए तो ऐसी तैयारी करने के लिए बोरसद को तैयार रहना चाहिए और यदि न हो तो तैयार रहने का निश्चय करना चाहिए।

आणंद ताल्लुके ने तो बारडोली के समय अर्थात् १९२१ में ऐसी तैयारी कर लेने का प्रस्ताव किया था और आणंद को बारडोली में शामिल कर लेने की इच्छा प्रकट की थी। वह आणंद शायद आज तो तैयार नहीं है; पर क्या तैयार होने के लिए तैयार है ? मैं आशा करता हूं कि बोरसद में विलायती या देशी मिल के कपड़ों का एक टुकड़ा भी नजर न आवेगा; यदि आवे भी तो सिर्फ सरकारी नौकरों आदि के बदन पर। सुना है कि मंडप के संबंध में कुछ कठिनाइयां पेश आ रही हैं। यह भी सुना है कि खादी के मंडप में खर्च बहुत लगने के कारण मिल वगैरह के कपड़े से मंडप तैयार करने की बात चली थी। 'महंगी होनेपर भी खादी सस्ती है और दूसरा कपड़ा मुफ्त मिलने पर भी महंगा है' यह पाठ हम जबतक न पढ लेंगे तब-तक हम संपूर्ण खादीमय नहीं हो सकते। हिन्दुस्तान की कंगाल जनता के साथ यदि हमें तन्मय होना हो तो यह सवाल हमारे मन में उठना ही न चाहिए कि खादी महंगी है या सस्ती, महीन है या मोटी। यदि परता न बैठे तो हम नंगे रहने के लिए तैयार रहें, पर दूसरा कपड़ा बदन से हरगिज न छुवावें। इसी प्रकार यदि खर्च के लिए रकम न हो तो बिना ही मंडप के काम चला लें। हमारा मंडप तारका-रूपी रत्न-जटित आकाश है। जहां मौसम पर मेह बरसता हो वहां मंडप की बहुत जरूरत नहीं रहती। बांसों का ढांचा खींचकर अपना काम चला लें। जो कला-रसिक हों वे इसमें अपना कला-कौशल भी दिखा सकते हैं। सुबह-शाम सभा की जाय। दिन में दूसरे काम यदि हों तो वे भी हो सकते हैं। हजारों लोगों के लायक विशाल मंडप बनाने का खर्च हमारे पास हो भी नहीं सकता।

बोरसद में पण्डित मोतीलालजी इत्यादि हमारे महान् नेताओं के आने की संभावना है। उनके और हमारे बीच शायद मत-भेद हो। हमारे एक बड़े भाग को धारासभा-प्रवेश भले ही पसन्द न हो। पर ऐसी हालत में हमें धारा-सभा-प्रवेश के पक्षपाती का अधिक आदर करना चाहिए। सत्याग्रही उसका तिरस्कार कभी नहीं करता जिससे उसका मत-भेद हो। यदि वह उसे जीतना चाहे तो बुद्धि और प्रेम के बल पर जीतता है। बुद्धि धीरज रक्खे, प्रेम आदर करे। जहां मतभेद हो वहां यदि हृदय-भेद होता रहे तो स्वराज्य की गाड़ी नहीं चल सकती। जो बात पं० मोतीलालजी जैसे मेहमानों की, वही गुजरात के स्वराज्यवादियों की। हमारा आचरण ऐसा न होना चाहिए कि उन्हें भी जरा भर खोलता मालूम हो। इसलिए कि विट्ठलभाई धारासभा में गये, दूसरे गुजराती धारासभा में गये, हमें उनका आदर कम न करना चाहिए। हम करें वही जो हमें पसन्द हो; पर आदर सब का करें। सत्याग्रही का शत्रु कौन हो सकता है ? सुना तो यह है कि धारासभा-प्रवेश की बात ने गुजरात में भी एक दूसरे के मन को मैला कर दिया है। कोई कहते हैं कि स्वराज्यवादियों का दोष है और कोई कहते हैं कि असहयोगियों का। यदि यह सूत्र सच हो कि दोनों के दोष के बिना मन-मुटाव नहीं होता तो दोनों का कम-ज्यादह दोष होना चाहिए। असहयोगियों का दावा है कि स्वराज्यवादियों ने असहयोग को शिथिल कर दिया। जो असहयोगी ऐसा कहता है उसपर इस बात का भार है कि स्वराज्यवादी के प्रति मिठास अर्थात् विनय कायम रहे। फिर यह तो स्पष्ट ही है कि असहयोगियों की संख्या अधिक है। और विनय का बोझ हमेशा बहु-संख्या वाले पक्ष पर होता है। मैं आशा रखता हूं कि बोरसद की परिषद् विनय का पदार्थपाठ पढावेगी।

विनय कायम रखना एक बात है और विनय अथवा एकता के नाम पर अपने विचार का त्याग करना दूसरी बात है। देश के सामने इस समय महत्वपूर्ण प्रश्न है धारासभा-प्रवेश का। उसका फैसला जो-कुछ होना हो वह होगा। सेवकों का तो यही काम है कि वे श्रद्धा से एकाग्र हो कर अपना काम किये जायं। खादी जितनी चाहिए उतनी बनी है, पर काटने वाले के अभाव में वह यों ही पड़ी हुई है। जरूरत है—

(१) वस्त्र-शास्त्र में प्रवीण प्रामाणिक सेवक और सेविकाओं की।

(२) उद्यमी, निर्मल और जिज्ञासु शिक्षकों की और

(३) अन्त्यजों की खास तौर पर सेवा करने वाले सेवकों की।

इस किस्म के लोगों की कमी सारे देश में है। गुजरात में भी है। उसकी पूर्ति किस तरह हो ? इसका एक ही रास्ता है। हमारे अन्दर हमारे कार्य के प्रति श्रद्धा और सेवा करने की शक्ति होनी चाहिए। स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है कि सब अधिकारी बन जांय। स्वतन्त्र तन्त्र में सेवक अपने स्वार्थ के लिए सेवा नहीं करते, बल्कि उसे कर्तव्य समझ कर करते हैं। परतन्त्रता में सेवक पेट भरने के लिए मजबूरन् नौकरी करता है। स्वतन्त्रता में तन्त्र को सेवा धर्म है। उसमें इज्जत है। परतन्त्रता में जो नौकरी की जाती है वह अधर्म है। उसमें बे-इज्जती है। जहां सब अधिकारी बनना चाहते हैं और कोई किसीको मानने को तैयार न हों वहां स्वच्छन्दता का तंत्र बनता है। वह प्राण-पोषक नहीं, प्राण-घातक बनता है। यदि बोरसद की परिषद् शुद्ध सेवकों का दल गुजरात को अर्पण करे तो कहना चाहिए कि बहुत काम हुआ।

परिषद् के सभापति काका कालेलकर हैं। अन्त्यज परिषद् के सभापति मामा फडके हैं। दोनों जन्मतः दक्षिणी हैं और स्वेच्छा से गुजराती बने हैं। इससे मेरी दृष्टि में वे अधिक दक्षिणी और अधिक गुजराती हो गये हैं। दक्षिण में जो अच्छी बातें हैं उन्हें वे गुजरात को दे रहे हैं और गुजरात में जो अच्छाई है उसे वे अपने अन्दर जुन रहे हैं। दक्षिण गुजरात इत्यादि हिन्दुस्तान के

अंग हैं। वे एक-दूसरे के पोषक हैं। पोषक होने पर ही वे एक शरीर के अंग बन सकते हैं। अतएव आशा है कि काका साहब और मामा साहब को गुजरात अच्छी तरह पहचानेगा और अपनावेगा। गुजरात को यह खयाल न करना चाहिए कि पराये तो आखिर पराये ही हैं। ऐसे विचार की उत्पत्ति द्वेष के कारण होती है। हमें तो उल्टे यह याद रखनी चाहिए कि यदि दक्षिण बचा सके तो अभी और दक्षिणियों को हमारे यहां भेजे। सेवक के लिए तो चारों ओर जगह है। काका और मामा बिल्कुल सेवा-परायण हो कर गुजरात में रहे हैं। गुजरात ने उन दोनों का अपूर्व सम्मान करके अपना यह ज्ञान प्रकट किया है। और उनको सम्मानित कर वह स्वयं सम्मानित हुआ है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

अधीर काठियावाड

काठियावाड राजकीय परिषद् के संबंध में मैंने जो राय दी है उससे मेरे मित्रों का कहना है कि कुछ खलबली मची है। जब से मैंने तिहेरा पत्र-संपादन आरम्भ किया है तब से मेरा अखबार पढ़ना प्रायः बन्द हो गया है। पर मित्र लोग इस विषय में मेरी सुध लेते रहते हैं और उन बातों की ओर मेरा ध्यान दिलाते रहते हैं जिनको वे जरूरी समझते हैं।

मैंने यह भी सुना है कि 'यह गांधी—अपनी इच्छा से देश निकाला पाया हुआ गांधी—श्री पट्टनी (भावनगर राज्य के राज्याधिकारी) के मोह-पाश में फंस गया है और काठियावाड की जागृति पर ठंढा पानी छिड़क बैठा है। पट्टणीजी तो दांव-पेंच खेलकर ही छोटे से बड़े हुए हैं। अतएव यदि वे भंगियों और जुलाहों में विचरनेवाले लंगोटधारी को एक दांव में चित कर दें तो क्या आश्चर्य है?' जिस प्रकार मैंने एक स्थान पर अब्बास साहब के पत्र का भावार्थ दिया है उसी प्रकार भावार्थ यह भी है। येही शब्द मुझे किसीने सुनाये नहीं। पर पाठक इस बातपर विश्वास रक्खें कि जो शब्द मैंने सुने हैं उनका शुद्ध भावार्थ मैंने ऊपर दिया है। बंबई में रहनेवाले काठियावाडी कहते हैं कि 'गांधी ने तो सब गुड गोबर कर दिया।'

पर सच बात यह है। पट्टणीजी में लोग जितने समझते हैं उतने दांव-पेंच नहीं हैं। सत्याग्रही को दांव-पेंच में फंसाने के लिए पट्टणीजी जैसे कुशल काठियावाडी को भी दूसरा जन्म लेना पड़ेगा, और वह भी सत्याग्रही हो कर। सत्याग्रही के शब्द-कोष में पराजय अथवा इसी अर्थ का कोई शब्द नहीं है। पर क्या ऐसा कहा भी जा सकता है कि एक सत्याग्रही दूसरे सत्याग्रही को हरा दे। ऐसा कहना मानों 'हार' शब्द को आघात पहुंचाने का प्रयोग करना है। जब सत्याग्रही अपनी भूल देखता है तब झुकता है और झुकते हुए भी ऊंचा उठता है। इसे पराजय नहीं कह सकते।

मेरे सामने पट्टणीजी ने इस निर्णय के संबंध में जो कुछ हिस्सा लिया है वह, मेरी दृढ धारणा है, कि उन्हें और काठियावाड दोनों को भूषणीय है। पट्टणीजी को दांव खेलने की जरूरत ही न थी। जितने कारण थे वे सब मैंने अपनी राय में दे दिये हैं। उनके सिवा कोई कारण मुझे याद नहीं पड़ता।

किसी की भी शह में आकर अथवा किसी के प्रेम के वशीभूत हो कर यदि मैं सत्यपथ छोड दूं तो मैं समझता हूं कि मैं किसी काम का न रह गया। मुझे आत्महत्या प्रिय नहीं। अतएव मैं एकाएक सत्य-पथ छोड़ने की मूर्खता न करूंगा।

सत्याग्रह का विषय अणिशुद्ध होना चाहिए। जब पोरबन्दर में भावनगर परिषद् करने की सिफारिश की गई तब थोड़ा-बहुत अविनय अवश्य हुआ। जो कुछ काम हुआ है उसके संबंध में मैंने अति मुलायम शब्द 'अविनय' का प्रयोग किया है। सत्याग्रह का यह अनिवार्य नियम है कि सत्याग्रही का 'केस' दूध की तरह उजला होना चाहिए। जिस प्रकार दूध जरा ही मैला पड़ने से त्याज्य हो जाता है उसी प्रकार वह 'केस' भी सत्याग्रही के लिए त्यज्य है जिसमें जरा भी दोष हो। इस कारण कठोर विशेषण की मुझे जरूरत ही न थी।

दूसरा कारण भी इतना ही सबल है। मुझे यह मालूम ही न था कि कार्य-कर्ता लोग शर्तें कबूल कर के परिषद् करना चाहते हैं। मैं यह कितनी ही बार कह चुका हूं कि ऐसे कामों में मैं शर्तें कबूल करने के खिलाफ हूं। यह सवाल जुदा है कि परिस्थिति को देखकर शर्तें कबूल करने की आवश्यकता रहती है। परन्तु जहां शर्तें कबूल करने का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया कि वह बात सत्याग्रह का विषय न रही। यदि किसी एक शर्त पर परिषद् करना कबूल किया तो फिर सोनगढ में परिषद् करना मंजूर क्यों न करें? शर्त कबूल करने में हेतु यह था कि अभी प्रजा-जीवन दूसरी तरह से जाग्रत नहीं हो सकता। यह हेतु निरर्थक या पापयुक्त नहीं। दूसरी जगह परिषद् करने में भी यही हेतु चरितार्थ होता है। यह कोई नियम नहीं कि सत्याग्रह करने के बाद परिषद् होनी ही चाहिए। सत्याग्रही तो मरने दम तक लड़ना है। सत्याग्रह में यह विचार गृहीत है कि सत्याग्रही लड़ते लड़ते जहां मरा कि वह उसकी विजय ही है। सत्याग्रही जहां जेल में गये कि उनका काम पूरा हुआ। पर परिषद् तो न हो पाई। इस समय हेतु यह था कि किसी भी सूरत से परिषद् की जाय। सत्याग्रह का तो विषय यह है कि हमारी शर्तों पर यदि करने दें तो करेंगे न तो नहीं। 'येन केन प्रकारेण करना'—सत्याग्रह का विषय नहीं हो सकता। सरकार जिस स्वराज्य को दे उसे लेने को लोग सत्याग्रह की तैयारी नहीं कर रहे हैं। वह तो उस स्वराज्य के लिए इस उग्र बल को प्राप्त कर रहे हैं जिसे वह चाहती है। जब काठियावाड बिना शर्त परिषद् करेगा तभी उसे सत्याग्रह करने का अधिकार प्राप्त होगा। तभी सत्याग्रह करने का कर्तव्य उसके सामने आकर खड़ा रहेगा। शर्ती परिषद् करने का फर्ज किसी सत्याग्रही पर आयद नहीं होता। यह तो पैसे के दाम पर चवन्नी बंटाने जैसा न्याय हुआ।

इसका अर्थ यह नहीं है कि शर्त न हो तो सत्याग्रही को गालियां देने का इजारा मिल गया। वह सत्याग्रही क्या जो नम्रता और विनय को छोड दे। वह खुद अपनी मर्यादा को जानता है अतएव वह दूसरों की आंकी मर्यादा को मानने से इनकार करता है। वह खुद अपनी मर्यादा आंकने में बड़ी सख्ती से काम लेता है।

इस साल यदि परिषद् का काम बिल्कुल विनय के साथ परिपूर्ण हो, विरोधियों को भी 'वाह वाह'! करना पड़े—फिर भी यदि अगले वर्ष शर्त-रूपी अथवा दूसरे विघ्न आवें तो सत्याग्रही का 'केस' इतना शुद्ध और मजबूत हो जाता है कि उसके खिलाफ कोई कुछ नहीं कह सकता। उस समय यदि कोई सत्याग्रही हो तो उसे रण-भूमि तैयार मिलेगी।

परन्तु 'आज का सारा जोश ठण्डा पड जाने पर फिर हम सत्याग्रही कहां से लावेंगे?' ऐसा भी कहनेवाले भले और भोले काठियावाडी आज भी दिखाई देते हैं। उन्हें जानना चाहिए कि सत्याग्रह भांग का नशा नहीं है। सत्याग्रह दिमाग की मस्ती नहीं है। सत्याग्रह तो अन्तर्नाद है। समय बीतने से वह मन्द नहीं पड़ता। बल्कि तीव्र होता है। वह अन्तर्नाद नहीं है जो दब सके—वह तो सबका आभास-मात्र है। उसकी कीमत मृग-जल की तरह समझनी चाहिए। सत्याग्रही उसीको कह सकते

हैं जो उनके खाक भी तैयार रहे।

काठियावाड़ ऐसी भूमि है कि जहां खेतों के लिए राजपूत और काठीलोग पुश्तों तक लड़े हैं। बरडा के बाघेर-मूलु माणेक और जोधा माणेक ने सारी एजन्सी को कंपा कर छोड़ा था। उनका जोश एक क्षण में उमड़ कर एक क्षण में ठंडा नहीं हो गया था। मोर भैया डाकू बरसों तक अकेला लड़ा। ये सब तुच्छ स्वार्थ के लिए लड़े थे। तो फिर काठियावाड़ की सारी प्रजा के कष्टों का भार उठाने वाले सत्याग्रही के शान्त और निर्मल आग्रह की नाप कितनी अधिक होनी चाहिए, इसकी त्रैराशिक करके खुद वही आक्षेपकारों को उत्तर दें!

पर यह दलील भी पेश की जा रही है कि—"पट्टणीजी का हुक्म तो देखिए-एक कलम की रगड़ में दस-बीस नये जुर्म अपने जो-हुक्मी कानून में बढ़ा दिये। फिर उस कृत्रिम अपराध के लिए छः छः महीने की सजा! इस प्रकार 'बाप के माल'की तरह तो सरकार भी कानून नहीं बना सकती। ऐसा घोर जुल्म होते हुए भी सत्याग्रह न करना, सोनगढ़ में परिषद् करना, कहां का न्याय है?" इस दलील का दोष स्पष्ट है। यदि हमें इस कानून के खिलाफ सत्याग्रह करना हो तो यह कानून अवश्य सत्याग्रह करने के लायक है। पर हम तो परिषद् के संबंध में सत्याग्रह करने की बात कर रहे हैं। परिषद् करने के अपराध के लिए यदि फांसी का भी हुक्म निकाला जाय तो उससे सत्याग्रही का हंसा न खड़ा होगा। हां, ऐसे हुक्म को निकालनेवाला अलबत्ते लज्जित होगा। पूर्वोक्त हुक्म के लिए पट्टणीजी की निन्दा करने को यदि कोई मण्डल खड़ा किया जाय और यदि केवल सत्याग्रही गालियां देने का नियम किया जाय तो मैं भी उसमें अपना नाम लिखाऊंगा। मैं यह जरूर मानता हूं कि यह हुक्म बेहूदा है। यदि भावनगर के फौजदारी कानून में परिषद् करना जुर्म न हो तो उन्हें चाहिए था कि वे अपनी नौकरी को खो कर भी परिषद् होने देते। परन्तु ऐसे मनमाने कानून गढ़ना अकेले पट्टणीजी की ही खासियत नहीं है। यह तो काठियावाड़ के वायुमण्डल में रहनेवाली चीज है। हम यह चाहते हैं कि पट्टणीजी इस वायुमण्डल को पार कर जायं। परन्तु हम इस समय पट्टणीजी की नीति के चौकीदार नहीं हुए हैं। जब काठियावाड़ की ऊंची भूमि पर शुद्ध सत्याग्रहियों की फसल उतरने लगेगी तब पट्टणीजी जैसों के लिए आज का वायुमण्डल ही न रहेगा। उस समय यदि वे भी सत्याग्रही हो जायं तो मुझे आश्चर्य न होगा।

पट्टणीजी तथा खुद राजा लोग यदि निर्मल वायुमण्डल में न रहते हों तो पूर्वोक्त प्रकार का हुक्म छोड़ ही न सकें। परिषदें करना प्रजा का हक अवश्य होना चाहिए। उसके बिना राजा को प्रजा-मत का हाल नहीं मालूम हो सकता। प्रजा को राजा की निन्दा करने का और उसे गाली देने का हक है। और राजा को गालियां देनेवालों को दण्ड देने का हक है। रामचन्द्र के जैसा यदि राजा हो तो अपनेको गाली देनेवाले को कभी दण्ड न दे। उन्होंने तुच्छ धोबी तक को दण्ड न दिया। उल्टे सीता जैसे अमूल्य स्त्री-रत्न का एक क्षण में त्याग करते हुए उन्हें शरम तक न मालूम हुई। और आज ऐसे वे-सर्व राम को मुझ जैसे अकिंचन हिन्दू पूजते हैं। प्रजा की स्तुति से राजाओं का पतन हुआ है। यदि वे प्रजा की गालियां सुनने लगें तो अवश्य उनकी उन्नति हो।

गालियां देने का हक लेकर भी गालियां न देना सत्याग्रही का धर्म है। मैं चाहता हूं कि सोनगढ़ में इस धर्म का पालन पूरी पूरी तरह किया जाय।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

त्याग-मूर्ति

हिन्दू-विधवा की सृष्टि करके विधाता ने कमाल कर दिया है। जब जब मैं पुरुषों को अपने दुःख की कथा कहते हुए सुनता हूं तब तब विधवा बहनों की प्रतिमा मेरे सामने खड़ी हो जाती है। उस पुरुष को, जो अपने दुःखों का रोना रोता है, देखकर मुझे हंसी आ जाती है।

हिन्दू-धर्म ने संयम को उच्चतम कोटि पर पहुंचाया है और वैधव्य उसकी परिसीमा है। पुरुष तो अपने दुःख को दूर कर लेता है। उसके दुःख का कारण उसकी मूर्खता ही होती है। बहुतेरा दुःख तो वह केवल धन-लोभ के लिए भोगता है। पर विधवा क्या करे? उस बेचारी का तो अपने दुःख में हाथ ही नहीं। उसके दुःख की दवा उसके पास है ही नहीं। रूढ़ि-धर्म ने उसका दरवाजा बन्द कर रक्खा है। अनेक विधवायें दुःख को दुःख नहीं मानतीं। त्याग उसके लिए एक स्वाभाविक चीज हो गई है। त्याग का ही त्याग उसे दुःख-रूप मालूम होता है। विधवा का दुःख ही उसके लिए सुख माना गया है।

यह स्थिति बुरी नहीं। अच्छी है। इसमें हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता है। वैधव्य को मैं हिन्दू-धर्म का भूषण मानता हूं। जब मैं विधवा बहनों को देखता हूं तब मेरा सिर अपने आप उनके चरणों पर झुक जाता है। विधवा का दर्शन मेरे नजदीक अपशकुन नहीं। प्रातःकाल उसका दर्शन करके मैं अपनेको कृतार्थ मानता हूं। उसके आशीर्वाद को मैं एक बड़ा प्रसाद मानता हूं। उसे देख कर मैं तमाम दुःखों को भूल जाता हूं। विधवा के मुकाबले में पुरुष एक पामर प्राणी है। विधवा के धैर्य का अनुकरण असंभव है। प्राचीन काल की जो विरासत विधवा को मिली है उसके सामने पुरुष के क्षणिक त्याग की पूंजी की कीमत क्या हो सकती है?

विधवा अपने दुःख की कहनी किसे सुनावे? यदि संसार में वह किसीको सुना सकती हो तो अपनी माँ को जरूर सुनावे। पर सुनाकर करे क्या? माँ क्या मदद कर सकती है? 'धीरज रक्खो बेटी' कह कर अपने काम में लग जायगी। माँ का घर उसका घर है कहां? विधवा तो ससुराल में रहती है। सास के अत्याचारों को पत्थर ही जान सकती है। विधवा का तो एकमात्र धर्म है सेवा। देवर, जेठ, सास, ससुर—जो जो हों सब की सेवा करना उसका काम है। यह सेवा करते हुए उसका जी ऊबता ही नहीं। वह तो उल्टे अधिक सेवा करने का हक चाहती है।

यदि इस विधवा-धर्म का लोप हो, यदि कोई अज्ञान या जहालत के वशीभूत हो कर सेवा की इस साक्षात् मूर्ति का खण्डन करे तो हिन्दू-धर्म को बड़ी हानि पहुंचे।

ऐसे वैधव्य को किस प्रकार सुरक्षित कर सकते हैं? जो मां-बाप दस साल की कन्या का विवाह कर देते हैं क्या उनको वैधव्य के पुण्य में कुछ हिस्सा मिल सकता है? जिस कन्या का आज ही विवाह हुआ हो और आज ही पति मर जाय, क्या उसे विधवा कहना चाहिए? वैधव्य की अतिशयता को धर्म के नाम पर चला कर क्या हम महापाप नहीं करते? यदि वैधव्य को सुरक्षित रखना हो तो क्या पुरुषों को अपने धर्म का विचार करने की आवश्यकता नहीं? जिसका मन विधवा नहीं हुआ उसका शरीर विधवा रह सकता है? जिस बालिका का विवाह आज ही हुआ है उसके मन का हाल कोई जान सकता है? उसके प्रति उसके पिता का क्या धर्म है? या बाप ने उसके गले पर छुरी फेर कर उसके प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर लिया?

वैधव्य की पवित्रता की रक्षा करने के लिए, हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए, हिन्दू-समाज की सुव्यवस्था के लिए, मेरी नाकिस राय में, इतने नियमों की आवश्यकता है—

१—कोई पिता १५ साल के पहले अपनी कन्या का विवाह न करे।

२—जो विवाह अबतक पूर्वोक्त उम्र के पहले हो गये हों और उनकी १५ साल के अन्दर विधवा हो गई हो तो उसकी शादी की व्यवस्था करना पिता का धर्म है।

३—१५ साल की बालिका यदि विवाह के एक साल के भीतर विधवा हो जाय तो माता-पिता को चाहिए कि उसे फिर शादी करने के लिए उत्साहित करें।

४—कुटुम्ब के प्रत्येक व्यक्ति को विधवा के प्रति लोकों आदर-भाव रखना चाहिए। माता-पिता अथवा सास-ससुर को उसके लिए ज्ञान-वृद्धि के साधनों की तजवीज करनी चाहिए।

ये नियम मैंने इस गरज से नहीं पेश किये हैं कि इनका पालन अक्षरशः किया जाय। ये तो केवल मार्गदर्शक हैं। हां, इस बात में मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि ये नियम विधवा के प्रति हमारे कर्त्तव्य के दिशा-दर्शक हैं।

तो अब इन तथा ऐसे नियमों का पालन किस प्रकार किया जाय? हिन्दू-समाज के पास भिन्न भिन्न जातियां ऐसे कार्यों के लिए एक कुदरती साधन है। परन्तु जबतक उनमें सुधार न हो तबतक जो माँ-बाप इन नियमों के मुआफिक हों वे क्या करें? वे जाति में सुधार करने की कोशिश करें और तत्काल सफलता न मिले तो बन्धन-मुक्त हो कर विधवा के लिए योग्य वर की तजवीज करें। दोनों तरफ के लोग जाति से बाहर रहने के लिए तैयार हों। और बाहर रहने के बाद भी जातिवालों से अनुनय-विनय करें, जाति के मुखियों के दिल को चोट न पहुंचावें, सत्याग्रह करने का इरादा न करें अथवा करें भी तो यही समझें कि हमारा नम्रता के साथ जाति से बाहर रहना ही एक प्रकार का सत्याग्रह है। यदि अनिवार्य समझ कर ऐसा विवाह किया गया होगा, यदि उसका उद्देश संयम की रक्षा ही होगा, यदि इस बहिष्कृत कुटुम्ब का आचरण शुद्ध होगा तो मुखिया लोग खुद ही उन्हें फिर जाति में ले लेंगे—यही नहीं बल्कि वे उस सुधार को भी कुबूल करेंगे और दुखी दीन विधवाओं पर होनेवाले बलात्कार की जड़ मिटा देंगे।

ऐसे सुधार एकाएक नहीं हो सकते। उसका बीजारोपण हो जाना ही बस है। फिर उसका वृक्ष हुए बिना न रहेगा।

यह तो मैंने एक छोटा-सा सुधार बताया है। महान् सुधार के असम्भव मालूम होने पर ही यह छोटा सुधार सुझाया है। सच्चा सुधार तो यह है कि स्त्री की तरह पुरुष भी, विधुर हो जाने पर, फिर विवाह न करे। यदि हम हिन्दू-धर्म के रहस्य को समझ लें तो कष्ट-साध्य संयम को शिथिल करने की अपेक्षा हम दूसरे सभी प्रकार के संयमों को जीवन में अपना कर उसे अधिक दृढ़ करें। यदि पुरुष विधुर रहे तो स्त्री को अपना वैधव्य भार-रूप न मालूम हो। फिर यदि पुरुष विधुर रहें तो वर्तमान बे-जोड़ विवाह और बाल-विवाह बन्द हो जायं।

हां, एक खतरा रहता है। उससे हमें अपनेको बचाना चाहिए। मैंने एक दलील सुनी है—"वैधव्य सर्वथा उत्तम है। यदि बाल-विधवाओं की संख्या कम हो तो उन्हें पुनर्विवाह की जंजाल में पड़ने की क्या आवश्यकता है? हम तो विधुर पुरुष को भी विधुर रखना चाहते हैं। और बाल-विवाह को भी निर्मूल करना चाहते हैं। इसलिए किसी भी अवस्था में स्त्रियों के पुनर्विवाह की आवश्यकता नहीं।" यह दलील खतरनाक है। क्योंकि वास्तव में यह शब्द-जाल-मात्र है। यह दलील कितने ही अंगरेज मित्रों की इस दलील की तरह है—

"आप तो अहिंसावादी हैं। आप हमें भी अहिंसा-धर्म सिखाना चाहते हैं। अतएव हम चाहे कितनी ही हिंसा करते रहें पर आप लोगों से यह नहीं कह सकते कि हिंसा का मुकाबला हिंसा से करो।" इस दलील में जो दोष है वह हम से जाने-अनजाने में हमेशा हुआ करता है। ऐसी दलील करनेवाले अंगरेज भूलते हैं कि यद्यपि मैं दोनों पक्षों को अहिंसा-धर्म की दीक्षा देना चाहता हूं; तथापि जो लोग अहिंसा-धर्म को सीखने में असमर्थ हैं अर्थात् भीरु हैं, उनसे मैं अहिंसा की बात किस तरह करूं? मैं अपने पुत्र को यह बात न समझा सका। दलित और प्रपीड़ित बेतिया के लोगों को मैं यह धर्म न सिखा सका। उन्हें तो मुझे कहना पड़ा था कि "यदि आपको इन दो बातों में से ही कि या तो स्त्री को छोड़कर भाग जायं या लाठी ले कर अत्याचारी से उसकी रक्षा करें, किसी एक बात को पसन्द करना पड़े, यदि आप जालिम के सामने निडर खड़े रह कर उसे चोट पहुंचाये बिना मरते दम तक सत्याग्रह करने के लिए तैयार न हों तो बेशक उसकी रक्षा के लिए लाठी लेकर लड़ो।" सत्याग्रह नामर्द का धर्म नहीं है। जब मनुष्य नामर्द न रहकर मर्द बन जाता है तब वह अहिंसा-धर्म सीखने के लायक होता है।

अब यदि हम उस शब्द-जाल की परीक्षा करें जो विधवा के संबंध में फैलाया गया है तो मालूम होगा कि इस दलील को वही पेश कर सकता है जो पुरुष स्वयं विधुर रहने को तैयार हो। उन लोगों को जो विधुरता को पसंद न करते हों, या पसंद करते हुए भी उसका पालन करने के लिए तैयार न होते हों विधुरता की आवश्यकता को स्वीकार करके वैधव्यप्रथा की पैरवी के लिए उसे दलील के तौर पर पेश करने का अधिकार नहीं। कोई साठ साल का दूसरी शादी किया हुआ बुड्ढा अपनी नव वर्ष की बालिका पत्नी के वैधव्य का अभिनन्दन करते हुए यदि अपने वसीयतनामे में उस वैधव्य स्तुति करे और उस बेचारी विधवा होने वाली बालिका की वन्दना करते हुए लिखे:—'परमात्मा न करे, पर यदि मेरी मृत्यु मेरी परम पवित्र धर्मपत्नी से पहले हो जाय तो मैं जानता हूं कि वह विधवा रह कर मेरे अपने और मेरे कुटुम्ब के और हिन्दू-धर्म के गौरव को कायम रक्खेगी। इस बालिका से विवाह करके मैंने यह सबक सीखा है कि पुरुष को भी विधुर रहना चाहिए। बड़ा अच्छा होता यदि मैं विधुर रहा होता। मैं अपनी कमजोरी को कबूल करता हूं। परन्तु पुरुष की दुर्बलता से वैधव्य और भी भूषित होता है। इसलिए मैं चाहता हूं कि मेरी बाला पत्नी मेरे मरण के बाद विधवा बनी रहकर संयम-धर्म की शोभा को बढ़ावे।" ऐसी दलील का असर उस बालिका पर या वसीयतनामा पढ़नेवाले पर क्या हो सकता है?

इस दलील की समीक्षा करने की आवश्यकता इसलिए थी कि उस धर्म के प्रवर्तन का आश्रय लेकर अथवा उसके बहाने धर्म के सदृश दिखाई देने वाले अधर्म का बचाव बराबर होता रहता है। बाल-विवाह वैधव्य की व्याख्या में आ ही नहीं सकता। विधवा वह स्त्री है जिसका पति मर चुका हो—वह स्त्री जिसने उचित अवस्था में अपनी इच्छा या सम्मति से विवाह किया हो और जो स्त्री-पुरुष के संबंध से परिचित हो गई हो। इस व्याख्या में उन किशोर वय की बालिकाओं का समावेश हो ही नहीं सकता और न होना चाहिए जो अक्षत-योनि हैं अथवा मां-बाप ने जिन्हें अग्निकुण्ड में फेंक दिया है। अतएव बालिका के नाम-मात्र के 'वैधव्य' की पैरवी करना ही अनर्थ है। परन्तु जब इस कथन-मात्र के द्वारा कि पुरुष तक को विधुर रहने की आवश्यकता है, ऐसी बालिकाओं को विधवा रखने का प्रतिपादन किया जाता है तब तो ऐसा करनेवाला इस अनर्थ में उद्धतता अथवा घोर अज्ञान की भी वृद्धि करता है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

साम्राज्य-वस्तु-बहिष्कार

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।
विदेशों के लिए „ ७)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ३०

मुद्रक-प्रकाशक
वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, वैशाख सुदी १५, संवत् १९८०
रविवार, १८ मई, १९२४ ई०

मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

खुला व्यापार बनाम रक्षण-नीति

ताता स्टील वर्क्स के व्यापार को राज्य-रक्षण दिये जाने के संबंध में जो चर्चा चल रही है उसके सिलसिले में मुझ से कहा गया है कि मैं रक्षण-नीति के संबंध में अपने विचार प्रकट करूं। मैं नहीं कह सकता कि इस समय इससे क्या लाभ होगा। इसी तरह मैं यह भी नहीं कह सकता कि ताता स्टील वर्क्स संबंधी ऐसी सूचना से क्या लाभ-हानि हो सकती है। परन्तु इस अवसर से लाभ उठाकर मैं उन गलतफहमियों को दूर करना चाहता हूं जो मेरे बारे में प्रचलित हैं। एक गलतफहमी मेरे संबंध में यह फैली हुई है कि मैं पूंजी-पतियों का विरोधी हूं और यदि मुझ से हो सके तो मैं यन्त्र-सामग्री को और उसकी आमदनी को विध्वंस कर डालूं। पर दर असल बात यह है कि मैं रक्षण-नीति का पक्का हिमायती हूं। खुला व्यापार इंग्लैंड के लिए लाभकारक होगा। उसे अपने देशों में अपना माल फैलाना है और अपनी जरूरतों को अत्यन्त सस्ते भाव में दूसरे देशों से माल लाकर पूरी करना है। लेकिन हिन्दुस्तान की जनता को इस खुले व्यापार ने ही तबाह किया है; क्योंकि इसके द्वारा उसके देहात के गृह-उद्योग बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। फिर जबतक राज्य-रक्षण नहीं मिलता तबतक कोई भी नवीन व्यापार दूसरे देश के व्यापार के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता। नेटाल ने अपने शक्कर के उद्योग को एक ओर सरकार की सहायता देकर और दूसरी ओर आयात ड्यूटी बढ़ाकर, अपने पांव पर खड़ा किया। जर्मनी ने भी अपने बीट की शक्कर के उद्योग को सरकार की सहायता-नीति अख्त्यार कर के ही बढ़ाया। मैं भी हमारी मिलों के लिए रक्षण-नीति का ही स्वागत करूंगा—हालां कि मैं खुद तो हाथ-कती खादी का ही प्रबल हिमायती हूं और रहूंगा।

अकेले मिलों के ही उद्योग को क्यों, मैं तो प्रत्येक उपयोगी उद्योग को रक्षण-नीति के अधीन करना चाहूंगा; और यदि मैं देखूं कि सरकार हिन्दुस्तान के आर्थिक और नैतिक हित के विषय में सचमुच उत्सुक हो गई है तो मेरा सरकार के प्रति विरोध सचमुच कम हो जाय। यदि सरकार देशी कपड़े के उद्योग को इतना रक्षण देने के लिए तैयार हो जाय कि जिससे प्रायः तमाम विदेशी कपड़ा यहां आना बन्द हो जाय; प्रत्येक सरकारी महकमे के तमाम कपड़ों के लिए सिर्फ हाथ-कती खादी खरीद कर चरखे को सर्वप्रिय बना दे, आमदनी पर बिलकुल नजर न रखते हुए शराब और नशीली चीजों की बिक्री बन्द कर दें और उससे जो आमदनी में कमी पड़े उसे सैनिक खर्च कम करके बराबर कर लें—यदि ऐसा दुर्दिन लगे तो मेरा विरोध अपने आप ठंडा पड़ जाय। फिर उसमें बच रही क्या सकता है? ऐसे उपाय ही शासन-सुधार की सच्ची चर्चा के लिए रास्ता कर सकते हैं। मेरे नजदीक तो पूर्वोक्त दो बातें सरकार के हृदय-पलटे का ताजा चिह्न है। उसके बाद ही किसी सम्मान-पूर्ण समझौते की चर्चा की जा सकती है।

(यंगइंडिया) मो० क० गांधी

बाल-विवाह और शास्त्रार्थ

'त्याग-मूर्ति' नामक मेरे लेख के संबंध में एक सज्जन लिखते हैं, जिसका भावार्थ यह है: 'आप १५ वर्ष तक कन्या का विवाह करने के खिलाफ हैं। पर शास्त्र की तो आज्ञा है कि यौवन-प्राप्त होने के पहले ही कन्या का विवाह कर देना चाहिए। जो लोग बाल-विवाह के खिलाफ हैं वे भी उस शास्त्र के इस नियम को मानते हैं। इस धर्म-संकट का क्या उपाय?' मुझे इसमें धर्मसंकट नहीं मालूम होता। जो लोग ऐसा कहते और मानते हैं कि शास्त्र के नाम से प्रचलित पुस्तकों में जो कुछ लिखा है वह सब सच है और उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता, उन्हें पग पग पर धर्म-संकट होंगे। एक ही श्लोक के अनेक अर्थ होते हैं और वे एक दूसरे के खिलाफ भी होते हैं। फिर कितने ही शास्त्रों में तो अचल सिद्धान्त होते हैं और कितने ही में देश, काल इ० के अनुसार देश-विशेष या काल-विशेष के लिए होते हैं। उत्तरी ध्रुव में छः मास तक सूर्य अस्त नहीं होता। यदि वहां कोई [illegible] तो वह संध्या-वन्दन किस समय करे? उसे स्नानादि के लिए क्या करना चाहिए? मनुस्मृति में खाद्याखाद्य संबंधी अनेक नियम बताये गये हैं। आज उनमें से एक का भी पालन नहीं होता। फिर यह भी नहीं कि सब श्लोक एक ही व्यक्ति के रचे और एक ही समय बनाये गये हों। इसलिए जो ईश्वर से डर कर चलना चाहता हो और जो नीति के नियमों का भंग न करना चाहता हो, उन्हें तो उन तमाम बातों का त्याग करना लाजिम है जो नीति और सदाचार के विरुद्ध दिखाई दें। [illegible] नहीं सकता। हिन्दू-धर्म नहीं जानता कि संयम को मर्यादा

होती है। जिस बालिका को वैराग्य उत्पन्न हो उसका क्या रास्ता? स्त्री-धर्म-प्राप्ति के मार्ग क्या हैं? जो अवस्था स्त्री-जाति के लिए सर्व-सामान्य है उसके प्राप्त होते ही स्त्री को विवाह अवश्य करना चाहिए, यह आग्रह कैसे हो सकता है? हां, उसके बाद वो वह शादी कर सकती है, यह संयम की बात समझ में आ सकती है। शास्त्रार्थ के झगड़ों में पड़कर हमें अत्याचार न करना चाहिए। शास्त्र वही है जो हमें मोक्ष की ओर प्रेरित करे; धर्म वही है जो हमें संयम की शिक्षा दे। वह कर्महीन कहा जाता है जो बाप के कुएं में डूब मरता है। अखा भगत ने शास्त्र को 'अंधा कुआं' माना है, शंकर ने वेद को कृपण कहा है, नरसिंह मेहता ने अनुभव को ही ज्ञान बताया है। संसार की ओर नजर डालने से भी हम देख सकते हैं कि पूर्वोक्त सज्जन ने जिसे धर्म माना है वह धर्म नहीं है, बल्कि अधर्म है और सर्वथा त्याज्य है। इस अधर्म के फल-स्वरूप आज हम असंख्य बालिकाओं का वध कर रहे हैं। इतिहास इस प्रथा के लिए हिन्दू पुरुष-जाति की निन्दा करेगा। पर हमें इतिहास की चिन्ता नहीं करनी है। बालविवाह का कड़ुवा फल हम खुद ही चख रहे हैं। कितने ही हिन्दू युवक निःसत्व अपंग और भयभीत हैं। उसका एक सबल कारण बाल-विवाह है। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। कम उम्र में उत्पन्न बालक का शरीर किसी उपाय से दृढ़ नहीं हो सकता। यह बात हमें भुलानी न चाहिए। खुशकिस्मती से उस नियम का पालन तमाम हिन्दू-जातियां नहीं करती हैं, जो इन सज्जन ने लिखा है। इसीसे हिन्दू-जाति अपना सारा शरीर-सामर्थ्य नहीं गवां बैठी है। परन्तु यदि उसका अक्षरशः पालन किया जाता हो तो हिन्दू-जाति से पुरुषत्व का लोप हुए बिना न रहेगा। (नवजीवन)

आदर्श इंजिनियर कुटुंब

चटगांव के दौरे का विवरण भेजते हुए आचार्य राय मुझे लिखते हैं—

"इसके साथ ही मैं अपने हाल ही किये चटगांव के दौरे का विवरण भेजता हूं। आप जानकर खुश होंगे कि वहां मुफस्सिल में काम करने का बड़ा क्षेत्र है। और उसे विकसित करने के लिए सिर्फ व्यवस्था की ही आवश्यकता है।

इस यात्रा में एक सज्जन से मेरी मुलाकात हुई। मुझे मालूम हुआ कि वे इंजिनियर हैं—अब किसान हो गये हैं। अपनी जमीन में खुद काश्त करते हैं—खुद ही जोतते हैं, खुद ही बोते हैं और खुद ही फसल काटते हैं। घर का सर्व कुटुंब के लोग कात-बुन कर तथा शारीरिक मिहनत कर के चला लेते हैं।

आप इस पत्र का जवाब देने की तकलीफ न उठाइएगा। मैं जानता हूं कि अत्यन्त महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहार में आपका समय व्यतीत होता है। इसलिए कि इसके पढ़ने से आपको आनन्द होगा, यह चटगांव का वर्णन लिखकर भेजता हूं। आपके सिर पर अनेक चिन्तायें सवार रहती हैं। अतएव इस आशा से इसे भेज रहा हूं कि यह छोटी सी खुश-खबरी आपके स्वास्थ्य-सुधार के लिए एक दवा का काम देगी।"

पूर्वोक्त पत्र में उल्लिखित इंजिनियर कुटुम्ब जो काम कर रहा है वह महासभा का हर कार्यकर्ता, फिर वह चाहे वकील हो, शिक्षक हो, कोई भी हो, कर सकता है। यदि वह इतना ही करे तो फिर उसे महासभा के दूसरे काम की चिन्ता ही न करनी पड़े। मैं दृढ़ता के साथ इस बात को मानता हूं कि चरखे और खादी में सच्ची श्रद्धा और विश्वास रक्खे बिना लोगों को उसका महत्व समझाने और सभाओं में बुलन्द आवाज से भाषण करने वालों की अपेक्षा ये इंजिनियर महाशय अधिक खादी-प्रचार का काम कर रहे हैं।

डा० राय का विवरण भी उतना ही शिक्षाप्रद है। उससे ऐसा मालूम होता है कि सैकड़ों मुसलमान बहनें पुश्त दर पुश्त से कातने का पेशा करती आ रही हैं। वह अपने ही हाथों कपास ओटती हैं और खुद ही पूनियां बना लेती हैं। इसके लिए तमाम कपास आस-पास के पहाड़ी प्रदेश से लाया जाता है। विवरण से ऐसा मालूम होता है कि व्यापारीलोग तमाम रुई खरीद कर विदेशों को भेजते हैं। यह कैसी दयाजनक हालत है कि हमारे यहां उस कपास का उपयोग करने वाले हजारों सूतकारों के रहते हुए भी वे तो बेकार रहें और देश का कपास विदेशों को जाकर वहां कत-बुनकर कपड़े के रूप में, फिर हमारे पास आवे! खुशकिस्मती से डा० राय और उनके साथी स्थानिक कातने वालों की आवश्यकता के लायक कपास संग्रह करने के लिए तन मन से प्रयत्न कर रहे हैं।

विवरण में एक कमठे का भी वर्णन किया गया है जिसका इस्तेमाल उस प्रान्त में किया जाता है। उसमें यह भी लिखा है कि यह कमठा बारडोली कमठे के मुकाबले में अच्छा साबित हुआ है। +धनिया कमठे की तांत अनन्नास के पत्तों के रेशे की बनाई जाती है। कहते हैं, उससे एक हफ्ते तक काम चल सकता है। यह देखकर ताज्जुब हुए बिना नहीं रहता कि बारीक से बारीक क्रियायें भी कैसे सादे और सस्ते औजारों के द्वारा की जा सकती हैं।

+ वहां के कमठे का नाम। 'धनिया' नामक गांव से यह नाम पड़ा है।

'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'

'नवजीवन' की ओर से प्रदान किये गये ८०,०००) के संबंध में लिखते हुए एक सज्जन लिखते हैं कि यह बचत इस बात को जाहिर करती है कि अखबारों की कीमत कम करके बहुसंख्यक लोगों में उनका प्रचार किया जा सकता था। उनके पत्र का कुछ आवश्यक भाग यहां देता हूं—

"कुछ समय पहले यह प्रकट किया गया था कि 'नवजीवन' प्रेस को लगभग ५०,०००) मुनाफा हुआ और यह रकम सार्वजनिक कामों में खर्च की जायगी। इससे यह मालूम होता है कि छापखाने में नुकसान नहीं है और इसके लिए उसके व्यवस्थापक धन्यवाद के पात्र हैं।

पर मैं तथा मुझ जैसे बहुतेरे दूसरे लोग यह नहीं समझ सकते कि कागज की कीमत के अब बहुत कम हो जाने पर भी रद्दी कागज पर छपा सिर्फ आठ पेज का अखबार इतनी ज्यादह कीमत पर क्यों बिकना चाहिए? 'यंग इंडिया' की १ प्रति के दो आने और 'नवजीवन' की प्रति के पांच पैसे हिन्दुस्थान के लोगों के लिए बहुत ज्यादह कीमत है। यह बात सब लोग मानते हैं कि हिन्दुस्थान बहुत ही गरीब देश है। यदि इन अखबारों में मुनाफा होता हो तो न्याय के नाम पर क्या यह लाजिम नहीं है कि उनकी कीमत घटा दी जाय और इस तरह सर्व-साधारण को लाभ पहुंचाया जाय?

यहां मैं आपको यह भी जताना चाहता हूं कि विलायत के नामी साप्ताहिक अखबार जैसे—'डेटर के दिन', 'नेशन और ऐथीनियम' 'अमेरिकन नेशन', 'स्पेक्टेटर' आदि ६ पेनी की कीमत रहते हुए भी उनसे सस्ते हैं क्योंकि उनमें तिगुने ज्यादह पन्ने होते हैं और यदि आपके संपादित पत्रों की कीमत कम करना संभवनीय न हो तो क्या आप उनके पन्ने बढ़ाने की तजवीज नहीं कर सकते?

हम कितने ही लोग तो यहां तक मानने के लिए तैयार हैं कि 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' यदि २ से ३ पैसे कीमत पर बिकें

जाय तो भी जबतक आप संपादक के पद पर हैं तबतक उसमें नुकसान नहीं पड़ सकता। यदि आप ऐसा समझें कि इस विषय में सर्वसाधारण के सामने खुलासा करने की जरूरत है तो आप अपने अखबार में खुलासा करने की तजवीज कीजिएगा।

४. अच्छा फर्ज कीजिए कि अखबारों में कुछ भी मुनाफा न होता हो, अथवा मौजूदा दो आना और पांच पैसे की कीमत पर भी उनमें कुछ नफा न होता हो तो क्या छापखाने के मुनाफे की रकम का एक निश्चित भाग आप अखबारों को दे कर उन्हें सस्ता नहीं कर सकते?"

इस पत्र में उठाये गये प्रश्नों की चर्चा मैंने व्यवस्थापक के साथ की है और वे तथा मैं दोनों इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि नीचे लिखे कारणों से अखबारों की कीमत कम करना मुनासिब नहीं है—

(१) मुनाफा अनिश्चित वस्तु है।

(२) कीमत घटने से खरीदार जरूर ही बढ़ेंगे यह नहीं कह सकते।

(३) पाठकवर्ग में सर्व-साधारण की गिनती करना ठीक नहीं है। क्योंकि सर्व साधारण पढ़ना नहीं जानते।

(४) मेरे संपादन ग्रहण करने से ग्राहकों की संख्या कुछ बढ़ी जरूर है; परन्तु बहुत नहीं। अखबार जितने लोकप्रिय पहले थे उतने अब नहीं रहे। इसका कारण यह भी हो सकता है कि लोगों में पहले जो क्षोभ और जोश था वह अब कम हो गया है। 'यंग इंडिया' और 'हिन्दी-नवजीवन' अभी अपना खर्च आप ही नहीं निकालने लगे हैं। और यदि 'यंग इंडिया' का अंगरेजी पाठक-समाज और 'हिन्दी-नवजीवन' का हिन्दुस्तानी पाठक-वर्ग इन अखबारों को जीवित रखने में दिलचस्पी ले कर ग्राहक बढ़ाने में सहायता न करें तो उनको बंद करने का सवाल शीघ्र ही खड़ा हो सकता है।

५—यह नीति अनुचित है कि दूसरे कामों से मुनाफा कर के अखबार सस्ते किये जायं।

६—अखबारों के पाठकों का सस्ता अखबार खरीद करने की अपेक्षा उसके मुनाफे को सत्कार्य में लगाने से सीधे सम्मिलित होना ज्यादह श्रेयस्कर है।

७—यदि समाज में ऐसे लोग हों जो केवल कीमत अधिक होने के कारण ही अखबार न पढ़ पाते हों तो जो धनी लोग पूर्वोक्त पत्रों में प्रकाशित विचारों और नीति में दिलचस्पी लेते हों, वे जितनी चाहें एक मुफ्त प्रतियां मंगाकर उनका प्रचार कर सकते हैं। और यदि ऐसी मांग की संख्या अधिक हो तो उन्हें वे प्रतियां कम दाम में अवश्य मिल सकती हैं।

८—पूर्वोक्त सूचना की दृष्टि से विचार करते हुए ज्यादह कीमत के सवाल का अधिक महत्व नहीं रह जाता; क्योंकि समष्टि रूप से लोग मुनाफे की एक एक पाई का लाभ उठाते हैं।

९—अखबारों की संख्या यदि और किसी कारण से नहीं तो केवल इसीलिए नहीं बढ़ाई जा सकती कि मेरे पास शक्ति की पूंजी बहुत थोड़ी है और अखबारों की महत्वाकांक्षा भी मर्यादित है। मैं मानता हूं कि जनता मुझसे जो अभी देता हूं उससे अधिक बड़ा साप्ताहिक पत्र नहीं चाहती। (यंग इंडिया)

बुनकार की आमदनी

एक भाई दुःख के साथ नीचे लिखा पत्र भेजते हैं—

"गांधीजी लिखते हैं कि 'मध्यम श्रेणी' का एक कुटुम्ब २-३ रुपया रोज बुनाई के द्वारा कमा सकता है। यदि बुनाई की मजदूरी से औसतन २॥) मिल सकते हों तो मुझे लिखिएगा। रोज ८-९ घण्टे तक बुनाई—हफ्ते में एक दिन छुट्टी। एक आदमी बुनाई काम के लिए तैयार हो तो आप उसे क्या देंगे? अथवा आपके यहां एक आदमी को मासिक मजदूरी क्या मिलती है? और एक आदमी को अपने भरण-पोषण का मासिक खर्च कितना पड़ता है—यह भी लिखिएगा। यदि गांधीजी की धारणा के अनुसार २-३) मिल सकते हों तो मुझ जैसे अनेक लोगों के जीवन का प्रश्न हल हो जाय। यदि ऐसा न हो तो इस बात में सुधार होना चाहिए जिससे अनुभवहीन युवक गांधीजी के शब्दों पर भरोसा रख कर बुनाई के द्वारा गुजर करने की इच्छा न करें।"

इन लेखक महाशय के तथा दूसरे शंकित लोगों के चित्त को शान्त करने की आवश्यकता है। मेरा वह लेख वकील वर्ग जैसे तेज बुद्धि वाले लोगों के लिए था। यह होते हुए भी मैं उसमें परिवर्तन करना नहीं चाहता। मैं जानता हूं कि पंजाब में बहुतेरे जुलाहे २ से अधिक रुपया पैदा करते हैं। बंबई में मदनपुरा के कुशल जुलाहे ३) रोज आसानी से कमा लेते हैं। पर वे मिल का या विदेशी सूत इस्तेमाल करते हैं। यदि आलस्य के वशीभूत हो कर वे हाथ-कते सूत की ताणी बनाने से इनकार न करें तो तो आमदनी कम होने का जरा भी अन्देशा नहीं। तो फिर एक मजदूर वस्त्रकार (जुलाहा) जितनी रकम पैदा कर सकता है उतनी दूसरे क्यों नहीं कर सकते? एक उत्तर मिलेगा—इन जुलाहों को अनुभव बहुत होता है। यह बिलकुल सच है। लेकिन एक कुटुंब को दो रुपये रोज कमाने के लिए बरसों के अनुभव की जरूरत नहीं रहती। मैं मानता हूं कि एक साल तक यदि कोई शख्स रविवार छोड़कर ८ घण्टे रोज के हिसाब से करघे पर काम करे तो आवश्यक अनुभव प्राप्त कर सकता है। इतना तो स्पष्ट है कि यदि बुनाई में जरा भी कला-कौशल का योग कर दिया जाय तो समय थोड़ा जाता है और दाम ड्योढ़े या उससे भी ज्यादह मिलते हैं। रंगीन किनारी बनाने से मजदूरी ज्यादह मिलती है। कितने ही जुलाहे केवल अपने हुनर के बदौलत ज्यादह मजदूरी पा सकते हैं। फिर जिस आमदनी का अन्दाज मैंने किया है वह एक वस्त्रकार की नहीं, पर एक कुटुम्ब की है। कुटुम्बी लोग भी जब मदद में लगे हों तो आम तौर पर ज्यादह काम होता है। फर्ज कीजिए कि एक प्रवीण वस्त्रकार, उसकी पत्नी और उसका एक दस साल का लड़का बुनाई के काम में लगे हैं। वस्त्रकार ने अच्छा कपास जमा कर लिया है, उसकी पूनियां बना कर वह आस-पास की बहनों को कातने के लिए देता है। उसी सूतको वह बुनता है और खुद ही बेचता है। बुनने में पति-पत्नी दोनों जुट जाते हैं। दोनों को मिलकर १२ घण्टे काम होता है। लड़का कोकड़े भर देता है और दूसरी मदद देता है। इस तरह काम करनेवाले कुटुंब की रोजाना आमदनी बहुतसी जगह २) आसानी से हो सकती है। जहां ऐसा न होता हो वहां रहन-सहन भी सस्ती होगी। लेखक महाशय को डर है कि मेरे लेख से धोखा खा कर कोई ना-तजरबेकार आदमी बुनाई के कार्य में फंस जायगा। मैं तो उम्मीद करता हूं कि कुशल आदमी मेरा बताया प्रयोग ध्यान को पसंद करके जरूर कर देखे। संभव है कि उनका अनुभव मेरी कल्पना को पुष्टि न करे। पर इससे उनका कुछ बिगड़ेगा नहीं। ऐसे प्रयोग के लिए मैं सौ-दो सौ की आमदनी वालों को न्यौता नहीं देता; पर उनको देता हूं जो घर बैठे हैं, अथवा जो प्रतिकूल वायुमण्डल में ३०) की मुहर्रिरी कर रहे हैं। मेरी शर्त इतनी ही है कि उसकी तन्दुरुस्ती आम तौर पर अच्छी होनी चाहिए। वह मजबूरी से करता न हो और कमसे कम ८ घण्टा काम करने के लिए तैयार हो। यदि उसके कुटुंबी भी हों तो अच्छा। पर यदि वह अकेला हो और कार्य-कुशल हो तो अवश्य ३०) मासिक पैदा कर लेगा। पर फर्ज कीजिए कि इतने तक पहुंचने में समय लगे। तो क्या हानि? इससे उसे ऐसी शिकायत तो हो नहीं सकती कि अरे मैं तो गड्ढे में गिर पड़ा। (नवजीवन)

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, वैसाख सुदी १५, संवत् १९८०

साम्राज्य-वस्तु-बहिष्कार

यह एक विचित्र बात है कि साम्राज्य की वस्तुओं के बहिष्कार का प्रश्न फिर फिर अब तब लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचता रहता है। अहिंसात्मक असहयोग की दृष्टि से मैं समझता हूं उसका समर्थन किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। यह निरी प्रतिहिंसा है और इसीलिए एक तरह की सजा है। ऐसी हालत में जब तक महासभा अहिंसात्मक असहयोग की कायल है तब तक अंगरेजी माल का बहिष्कार-विदेशी माल का नहीं-ना-जायज होना चाहिए। और यदि महासभा में मुझ अकेले का ही ऐसा मत हो तो भी मुझे जरूर आगामी महासभा में पिछली विशेष महासभा द्वारा स्वीकृत इस विषय के प्रस्ताव को मन्सूख करने का प्रस्ताव पेश करना होगा।

लेकिन यहां इस समय मैं नैतिक दृष्टि से इस प्रश्न का ऊहा-पोह करना नहीं चाहता; बल्कि इस प्रतिहिंसात्मक बहिष्कार की उपयोगिता की छानबीन करना चाहता हूं। यह ज्ञान कि नरमदल के लोगों ने भी इस बहिष्कार में हमारा साथ दिया है, इस छान-बीन से किसीको विमुख नहीं कर सकता। बल्कि, पक्षान्तर में, यदि मेरी तरह उनका भी विश्वास हो गया कि यह प्रतिहिंसात्मक बहिष्कार, जिसे उन्होंने और महासभा ने स्वीकार किया है, केवल बेकार ही नहीं, बल्कि हमारे निर्बल रोष और कीमती समय के दुर्व्यय का एक और प्रदर्शन है, तो मैं उनसे विनय करूंगा कि आप उत्साह और निश्चय के साथ तमाम विदेशी कपड़े के बहिष्कार को हाथ में लीजिए और उसकी जगह हिन्दुस्तानी मिलों के कपड़े को नहीं बल्कि हाथ-कती खादी को स्थापित कीजिए।

बहिष्कार-समिति की रिपोर्ट को मैंने पढ़ा है। अंगरेजी या साम्राज्य-वस्तुओं के बहिष्कार के रूप में अधिक से अधिक जो कुछ किया जा सकता है उसके संबंध में इस रिपोर्ट की बातें आखिरी बातें हैं और होनी चाहिए। मेरी राय में इस रिपोर्ट के द्वारा ऐसे बहिष्कार का पक्ष नहीं बल्कि विपक्ष सबल-अविचल हो जाता है। वह साफ तौर पर कहती है कि साम्राज्य की ज्यादहतर और बड़ी बड़ी चीजें जैसे रेलवे का सामान आदि-या तो सरकार मंगाती है या अंगरेजी व्यापारी मंगाते हैं और कुछ ही छोटी-मोटी चीजें जैसे इत्र, तेल, साबुन बूट आदि ज्यादहतर वे आराम तलब, और मौज-विलास में जिन्दगी बितानेवाले हिन्दुस्तानी लेते हैं जिनके इस बहिष्कार को अपनाने की कभी संभावना नहीं है। उसके अंकों पर शान्ति-पूर्वक विचार करने से मालूम होगा कि प्रत्येक महासभावादी और नरमदल वाले के बड़े गौर के साथ इन छोटी बड़ी चीजों के बहिष्कार को पालन करने पर भी बहिष्कार की रकम १ करोड़ रुपये सालाना से अधिक न होगी। वह व्यक्ति निस्सन्देह एक धीर आशावादी होगा जो इस बात पर विश्वास कर सकेगा कि इतने से बहिष्कार की बदौलत केनिया के अंगरेजों या सर्वसाधारण अंगरेजों को अपनी नीति बदल देनी पड़ेगी।

इसपर टीकाकार कहते हैं-लेकिन देखिए ज्योंही बंबई के म्युनिसिपल कार्पोरेशन के साम्राज्य-वस्तु-बहिष्कार-संबंधी प्रस्ताव की खबर रायटर ने बिना फीस तार द्वारा भेजी तब लीवरपूल में कैसी हाय-तोबा मच गई थी? अवश्य ही हम अंगरेजों की व्यापार-रीतियों को इतना तो जरूर जानते हैं कि जिससे हम चिकनी-चुपड़ी बातों से ज्यादह फूल न उठें। यह कोलाहल अक्सर इसलिए उठाया जाता है कि जिससे भोली-भाली जनता 'हिन्दुस्तान के विवेक-विचार-हीन आन्दोलनकारियों' के खिलाफ 'जो इंग्लैंड को नुकसान करने के लिए तुले बैठे हैं,' समझ पड़े। यदि ऐसी उत्तेजना न दिखाई जाय तो भी वे जरा भी व्यापारिक चढ़ाव-उतार या हलचल से बेचैन हो जाते हैं। उनकी इस बेचैनी के ही बदौलत वे तमाम ऐसे अवसरों के लिए पहले से तैयार रहते हैं। इसलिए मैं लोगों से विनय करूंगा कि वे इंग्लैंड अथवा दूसरे विदेशी राज्य की चिल्लाहट या वाहवाही के भरोसे न रहें। यदि खुद हमारे वे काम ही जिनसे वे डरते हों या जिन्हें अच्छा कहते हों पूरे पुर-असर न हों तो उनके भय या प्रशंसा के वचनों से हमारी अभीष्ट-सिद्धि नहीं हो सकती।

यदि हमारे रोष के कारण हमारी आंखें अंधी न हो गई हों तो ज्यों ही हम यह समझ जायं कि हमें अपनी कुछ राष्ट्रीय आवश्यकताओं के लिए अंगरेजी चीजों पर अवलंबित रहना पड़ता है, हमें उस बहिष्कार के प्रस्ताव पर शर्म मालूम होनी चाहिए। जब कि हम अंगरेजी किताबों और अंगरेजी दवाइयों के बिना अपना काम नहीं चला सकते तो हमें अंगरेजी घड़ियों का बहिष्कार क्या इसीलिए करना चाहिए कि हम घड़ियां तो जिनीवा से मंगा सकते हैं? यदि अंगरेजी किताबों के बिना हम अपना काम नहीं चलावेंगे-इसलिए कि हमें उनकी जरूरत रहती है तो फिर अंगरेजी घड़ियां या इत्र-तेल वगैरा मंगाने वाले से यह कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि वह उन्हें न मंगाकर नुकसान उठाना कबूल करे? अस्पताल में मेरी एक धाई थीं जिन्हें मैं "जालिम" कहा करता था; क्योंकि वह हमेशा मुझे ज्यादह खाना खाने और ज्यादह नींद लेने का इसरार बड़े प्रेम के साथ किया करतीं। जब मैं अस्पताल से खानगी वार्ड में पहुंचाया गया तब हाउसफजंन के साथ वह भी मेरे साथ थीं। वहां पहुंचने पर वह मुस्कुराते हुए और कुटिलता से आंखें चमकाते हुए धीमे से बोलीं-"जब मैं आपपर अपना छाता ताने चल रही थी मुझे मन ही मन हंसी आये बिना न रही। आप तो हर अंगरेजी चीजों के एक भीषण बहिष्कार वादी हैं न? पर आपकी जान शायद एक अंगरेज सर्जन की कुशलता से बची, जिसके हाथ में अंगरेजी औजार थे, और जो अंगरेजी दवाइयां लगाता था। नहीं, एक अंगरेज धाई भी इसमें शामिल है। आपको मालूम है, कि जब आप यहां लाये जा रहे थे तब आपके सिरपर एक अंगरेजी छाता तन रहा था?" जब धाई ने अपना आखिरी विजयकारी जुम्ला खतम किया तब उसने अवश्य ही सोचा होगा कि उसके इस प्रेमपूर्ण प्रवचन को सुनकर मैं हक्का-बक्का हो जाऊंगा परन्तु खुश-किस्मती से मैंने यह कह उसके आत्मविश्वास को चक्कर में डाल दिया-"आप लोग कब सही बातों को जानने लगेंगे? क्या आपको पता है कि मैं केवल इसलिए किसी चीज का बहिष्कार नहीं करता हूं कि वह अंगरेजी है। मैं तो महज तमाम विदेशी कपड़े का बहिष्कार करता हूं; क्योंकि विदेशी कपड़े के भारत में अड्डा जमाने से मेरे करोड़ों देशवासी भिखारी हो गये हैं।" वह खादी आन्दोलन में दिलचस्पी भी लेने लगी थीं। बहुत कर के वह उसके पक्ष में भी लिख गयी थीं। जो हो, वह खादी की उपयुक्तता आवश्यकता और उपयोगिता को समझ गई थीं; लेकिन वह अंगरेजी माल के बिलकुल बेकार बहिष्कार पर हंसा करती थी-और बिलकुल ठीक हंसती थी।

यदि प्रतिहिंसात्मक बहिष्कार के हामी लोग खुद अपने ही घरों और अपनी ही चीजों की ओर नजर डालेंगे, तो वे निःसन्देह जान लेंगे कि उनका विचार कितना बेतुका है—ठीक उसी तरह जिस तरह मेरी भाई ने मुझे उस बहिष्कार का पक्षपाती मानकर महसूस किया था।

इस बात के लिए कि हमारे केनिया-वासी भाइयों के साथ पूरा इन्साफ हो और भारत को जल्द से जल्द स्वराज्य मिले, मेरी उत्सुकता किसीसे कम नहीं है। लेकिन मैं जानता हूं कि रोष और आवेश खुद हमारे ही ध्येय को हानि पहुंचाते हैं। तब वह कौनसी बात है जिसमें हम सब नरमदल वाले, धारासभा-वादी और अपरिवर्तन-वादी तथा दूसरे लोग-स्वराज प्राप्ति के लिए एक साथ मिल कर काम कर सकते हैं? इसका उत्तर मैं पहले ही दे चुका हूं। अगले अंक में मैं इसपर और विचार कर के दिखाऊंगा कि क्यों यही एकमात्र होने लायक उपाय है।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

क्या यह अ-सहयोग है ?

यह दलील पेश की जाती है कि 'खिताबों, मदरसों और धारासभाओं का बहिष्कार असफल होने के साथ ही असहयोग नष्ट हो चुका है।' व्यर्थ ही यह असफलता मान ली गई है। कुछ चीज लोगों को धीमे और बिना शोर-गुल के खादी-काम में असहयोग का नाम नहीं दिखाई देता। वे भूल जाते हैं कि यह चतुर्विध बहिष्कार स्वराज्य की सारी इमारत तैयार करने के लिए अत्यन्त आवश्यक आधार है। हम जिस सत्ता का नाश करना चाहते हैं उसके चिन्ह-स्वरूप संस्थायें तब तक भले जारी रहें, तो कोई हर्ज नहीं जबतक हम उनसे काम नहीं लेते। सच बात यह है कि इस चतुर्विध बहिष्कार के सहारे के बिना हमारी इमारत खड़ी होही नहीं सकती। और यदि हम महासभा की संस्थाओं का काम, पूर्वोक्त संस्थाओं से जुदा रह कर और उनके मौजूद रहते हुए भी, चला सकें तो हमारी विजय निश्चित है। इसके अलावा हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारा बहिष्कार चतुर्विध नहीं, बल्कि पंचविध है और पांचवा अंग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और वह है विदेशी (अकेले अंगरेजी नहीं) कपड़े का बहिष्कार।

यह बहिष्कार हमारे कार्यक्रम का अक्रियात्मक भाग है—हालांकि इस कारण वह कम उपयोगी नहीं है। खादी, राष्ट्रीय विद्यालय, पंचायत, हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य, और अन्त्यज तथा शराबखोरों और नशेबाजों का उद्धार—यह हमारे कार्यक्रम का क्रियात्मक भाग है। उसमें हम ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जायंगे त्यों त्यों नयी हिसाब से बहिष्कार की ओर, अर्थात् स्वराज की ओर हम आगे बढ़ते जायंगे। कुदरत शून्यता को—अभाव को नापसंद करती है। अतएव केवल खण्डनात्मक आन्दोलन कुदरत को पसन्द नहीं हो सकता। खण्डनात्मक के साथ रचनात्मक आन्दोलन बराबर चलना चाहिए। यदि खिताब वाले तमाम भाई खिताब छोड़ दें, और पाठशालायें, अदालतें और धारासभायें बिलकुल खाली हो जायं और उसके फल-स्वरूप सरकार घबड़ाकर अपना इस्तीफा पेश कर दे—फिर भी यदि हमारे पास रचनात्मक-कार्यक्रम-रूपी पूंजी कुछ भी न होगी तो हम स्वराज का संचालन न कर सकेंगे—हम बिलकुल अपंग हो रहेंगे। हमारी लड़ाई केवल इस बात पर नहीं है कि सत्ता का रुख बदल दिया जाय; बल्कि इस बात पर है कि सत्ता का सूत्र और तंत्र दोनों बदल दिये जायं। मुझे बार बार यह शंका हुआ करती है कि इस बात को हमने अभी पूरी तरह समझ लिया है या नहीं। अतएव मेरे लिए तो खादी का कार्य-क्रम जहां पूरा हुआ कि पूरा पूरा स्वराज्य मिल गया।

हिन्दुस्तान में अंगरेजों का हित बिलकुल स्वार्थमूलक है और वह लोकहित में बाधक है। जन-हित का बाधक वह इसलिए है कि उनकी हिन्दुस्तान के कपास पर अधर्म्य दृष्टि रहती है। अतएव विदेशी कपड़े का बहिष्कार करना इंगलैंड के तथा दूसरे तमाम विदेशों के स्वार्थ को असफल बनाना है। यदि अकेले अंगरेजी कपड़े का बहिष्कार किया जाय तो उससे चाहे अंगरेज लोगों को भले ही हानि पहुंचे; पर हिन्दुस्तान में रचनात्मक काम कुछ भी नहीं हो सकता। जबतक तमाम विदेशी कपड़े की आमद बंद न होकर उसकी जगह पर खादी विराजमान न हो तब तक "एक्सप्लोयटेशन" बन्द नहीं हो सकता। अतएव विदेशी कपड़े का बहिष्कार बहिष्कार-कार्यक्रम का मध्य-बिन्दु है। और बहिष्कार तबतक असंभव है जबतक खादी का प्रचार घर घर में न कर दिया जाय। अपने ध्येय की सिद्धि के लिए हमें अपने तमाम साधनों से काम लेना पड़ेगा। धन, जन और व्यवस्था-शक्ति की हमें जरूरत रहेगी। हिन्दू-मुसलमान-एकता और अस्पृश्यता-निवारण के बिना हम खादी को घर घर नहीं पहुंचा सकते। खादी के काम को सांगोपांग पूरा करने का अर्थ है स्वराज्य के लिए अपनी शक्ति सिद्ध करना। खादी का कार्यक्रम सार्वजनिक कार्यक्रम है। अतएव उसे सफल बनाने के लिए प्रत्येक भारतवासी को, फिर वह चाहे राव हो या रंक, छोटा हो या बड़ा, हिन्दू हो या अहिन्दू—हाथ बंटाना होगा।

पर नास्तिक लोग कहते हैं—"क्या खादी से स्वराज मिल जायगा? क्या अंगरेज हमारे लिए अपनी गद्दी छोड़ कर चले जायंगे?" मेरा उत्तर है 'हां' भी और 'नहीं' भी। 'हां,' इस तरह कि ऐसा होने पर अंगरेजों को खबर पड़ेगी कि हमारा हित ऐसा होना चाहिए जो हिन्दुस्तान के हित के साथ मिल-जुल सके। केवल सेवक बन कर यहां रहने में वे सन्तोष मानेंगे; क्योंकि उनकी आंख खुल जायगी कि मालिक बनकर हमारा रोजगार हम इनपर जबरन् नहीं लाद सकते। अर्थात् खादी का प्रचार घर घर में होने पर अंगरेजों के हृदय भी बदल जायंगे—अभी वे हमपर मालिकी करना अपना हक मानते हैं—तब वे हमारे मित्र बनने में अपना सम्मान मानेंगे। मेरा उत्तर 'नहीं' है; यदि हम अंगरेजों को यहां से निकाल भगाना चाहते हों और उनके धर्म्य अधर्म्य दोनों स्वार्थ का नाश करना चाहते हों। अहिंसात्मक असहयोग का यह हेतु नहीं। अहिंसा के भी नियम हैं। जो अहिंसक है वह तिरस्कार करने से अथवा तिरस्कार उत्पन्न करने से इनकार करता है। अहिंसा और तिरस्कार स्वभावतः ही परस्पर-विरोधी हैं। परन्तु फिर नास्तिक लोग कहेंगे "फर्ज कीजिए कि अंगरेज अपना तंत्र बदलने से इनकार करें और तलवार के बल पर ही हिन्दुस्तान पर अपना कब्जा कायम रखने की जिद पकड़ें तो खादी के घर घर हो जाने पर भी वह हमारे किस काम आवेगी?" खादी की शक्ति पर इस प्रकार अविश्वास रखते हुए वे इस बात को भूल जाते हैं कि खादी सविनय भंग की आवश्यक शर्त है और इस बात को तो सब लोग मानते हैं कि सविनयभंग एक ऐसा शस्त्र है जो कभी खाली नहीं जा सकता। खादी जबतक घर घर न हो जाय तबतक सामुदायिक सविनय—अर्थात् अहिंसात्मक-भंग होने की संभावना नहीं। कोई भी जिला जो सोलहों आना खादीमय हो गया होगा और साथ ही पूरी तरह तपस्या के लिए भी तैयार होगा वह सविनयभंग के लिए भी तैयार ही होगा। और मुझे तो रत्ती भर शक नहीं कि इस तरह तैयार हुआ एक जिला भी किसी के हटाये नहीं हट सकता—भले ही सरकार का सारा बल उसके खिलाफ क्यों न आजमाया जाय।

अब सवाल यह रह जाता है कि पहले कौन कदम बढ़ावे? पर जो चर्चा हम अभी कर रहे हैं उसके साथ इसका संबंध नहीं।

मैं तो सिर्फ एक ही सवाल का जवाब देना चाहता था—"क्या खादी का काम असहयोग का अंग माना जा सकता है ?" मैंने यह साबित करने की कोशिश की है कि खादी असहयोग के क्रियात्मक स्वरूप का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग है ।

(यंगइंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

कितनी ही मुसीबतें

एक स्वयंसेवक ने मुझे एक लम्बी पत्र लिखा है । उसमें उन्होंने कितने ही प्रश्नों की चर्चा की है । मैं सिर्फ उन्हीं अंशों को नीचे देता हूं जिनपर मैं अपनी राय प्रकट करने के लिए अभी तैयार हूं ।

"इस मौजूदा आन्दोलन में ऐसे लोग भी हैं जो आपके अनुयायी होने का स्वांग करते हैं । ऐसे ढोंगियों से साबका पड़ने का दुर्भाग्य मुझे प्राप्त हुआ है । गुजरात के इने-गिने नेता श्रीयुत वल्लभभाई, पूज्य अब्बास साहब, दरबार श्री गोपालदासभाई, श्री मोहनलाल पंड्या, श्री फूलचन्दभाई, श्री इन्दुलालभाई आदि के प्रति पूर्ण आदरभाव और श्रद्धा है । परन्तु कितने ही लोग ऐसे भी हैं जो इनकी महरबानी से नाजायज फायदा उठाकर सारे आन्दोलन को दाग लगाते हैं और उनके आसपास मंडराया करते हैं । वे लोग उनसे अ-ज्ञात हों सो बात नहीं । परन्तु 'उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुंबकम्' के अनुसार वे लोग काम चला लेते होंगे-सख्ती करना ठीक न पड़ता हो ! पर ज्यों ज्यों समय बीतता है त्यों त्यों असली और नकली छंटते जाते हैं ।

परन्तु महासभा का संगठन बिल्कुल ढीला पड़ गया है । भाषणों की हवा से कुछ जागृति हुई जरूर; परन्तु शाब्दिक आडंबर के मूल में कर्तव्य की अभिलाषा न होने के कारण देहात में एक ऐसी गलतफहमी फैल रही है कि महासभा के सभासद होकर चार आना देना या तिलक कोष में चंदा देना मानों किसी को भिक्षा देना है । यदि यह गलतखयाल विशेष दृढ होता चला जायगा (होता जाता है) और यह धारणा होती जायगी कि महासभा भिखारियों की संस्था है तो यह बड़ा खतरनाक है । इस पर तुर्रा यह कि आपको महात्मा बनाकर झूठा आदर बताने में ही हम जैसे अपने कर्तव्य की इति श्री मानते हैं—आपके बताये आदर्शों का पालन करने में नहीं ।

देहात में बड़ी मुफलिसी फैली हुई है इससे उनकी संग्राहक शक्ति बहुत कम हो गई है । चाहे कितना ही बल दीजिए, वे उसे हजम नहीं कर सकते । भागवत में जिस प्रकार युवा होते हुए भी बूढे हो जानेवाले ज्ञान-वैराग्य को हाथ पकड़ पकड़ कर जागृत करने में भक्ति माता निराश हुई थी उसी प्रकार इन लोगों में चेतना लाना महा कठिन है । धीरज के अभाव में उनकी दृष्टि हमेशा तात्कालिक लाभ पर रहती है । भविष्य का सुख उन्हें नहीं दिखाई देता । वे तो हर उपाय से तात्कालिक लाभ चाहते हैं । "बुभुक्षितः किं न करोति पापम्" की तरह यह ग्राम्य-समाज पाप-पुण्य को पहचानना नहीं चाहता । ग्राम्य-समाज शहरों की अपेक्षा भी कितनी ही बातों में अधम है । असहयोग-आन्दोलन के कारण उनपर गुजरने वाली मुसीबतों से हम उनकी कुछ भी रक्षा नहीं कर सकते-नहीं करते । इससे कितने ही लोग खुल्लमखुल्ला असहयोग-आन्दोलन में शामिल होने के बदले जीहुजूर करके, दरख्वास्तें देकर, गुलामी भोग कर, सहयोग का रास्ता पसंद करते हैं ।

परन्तु खादी-आन्दोलन से इन लोगों में ताकत आ सकती है । खादी ही एक ऐसी चीज है जो गरीबों की सेवा कर सकती है और हमारे असहयोग का तत्व कायम कर सकती है । परन्तु बदकिस्मती से खादी पैदा करने का काम गुजरात में और खास करके उस ताल्लुके में जिसमें मैं घूमता हूं बन्द हो गया है । यह खादी आन्दोलन अकेले आदमी से नहीं हो सकता । ऐसा मंडल हर ताल्लुके में होना चाहिए । परन्तु ऐसे मंडल की स्थापना नहीं होती और स्थापित करने की कोशिश होती है तो उसमें सच्चे कार्यकर्ताओं की दिक्कत पड़ती है । इसके कारणों की गहरी छानबीन करने से मुझे यकीन हो गया है कि हिन्दुस्तान की ऐसी स्थिति का कारण चिरकालीन गुलामी और मुफलिसी है । तोभी चरित्रहीन और हरामी लोग ऐसे कामों में घुसकर महा हानि पहुंचाते हैं । इससे यह सवाल हल नहीं हो पाता कि "जान दांव पर लगा देनेवाले कहां हैं ?"

आप कहेंगे कि तुम खुद मर मिटो । यह सच है और मुझे ऐसा ही करना भी चाहिए । पर मैं जरा कमजोर हूं । मुझ जैसे निर्बल और भी कितने ही होंगे । हमें साथ के, संघ के बल की आवश्यकता है । हम अकेले यदि इस लायक न हो कि अकेले जूआ खींच सकें तो ऐसे साथी की जरूरत है जिनके साथ साथ खिंचते हुए आगे चल सकें । यदि ऐसे साथी विशेष हो तो हम स्वयं उनके साथ साथ चले जायंगे नहीं तो भगवान के भरोसे रह कर हम से जो कुछ हो सकता है सो तो करेंगे ही । फिर भी यदि हम जैसे कार्यकर्ताओं का एक व्यवस्थित मंडल स्थापित हो तो यह वांछनीय है । इसमें हमें एक और कठिनाई है हम वेतन नहीं लेते । ऐसा माना जाता है कि वेतन ले कर काम करने से लोगों के दिल पर अच्छी छाप नहीं बैठती । फिर कुछ लोग वेतन लें और कुछ न लें तो लेनेवाले के दिल में संकोच बना रहता है । उनकी स्फूर्ति जाग्रत नहीं रहती । और वेतन न लेनेवाले लोग ऐसे देखे गये हैं मानों वे बड़ा भारी एहसान करते हों—वे कर्तव्य करने में शिथिल और कुछ अंश में स्वेच्छाचारी भी होते हैं । फिर आजकल के अखबारों ने हमारे संग्राम पर जो कुछ रंग चढाया हो लेकिन उससे दूसरी खराबियां बढ़ गई हैं । सबसे बड़ी खराबी तो यह है कि लोगों के हृदय नपुंसक बनते जा रहे हैं । जिस प्रकार वैद्य-डाक्टरों के विज्ञापन जो लोगों के शरीरों को दवाओं का और नशे का आदी बना कर अन्त में निर्बल बना डालते हैं, और उनका सत्यानाश करते हैं उसी प्रकार उससे भी अधिक उकसानेवाले, लोगों के दिल को हिला देने वाले, जोशीले जहरीले और भड़कीले लेख, जनता के मन को निर्बल बनाकर चौपट कर देते हैं । लोग ऐसे लेखों और भाषणों के रसिया हो गये हैं और कर्तव्य विमुख हो गये हैं । गंभीर और विचारशील तथा कर्तव्योन्मुख बनाने वाले लेखों की कमी है और वे पसन्द भी नहीं होते ।

अंत्यजों के सम्बन्ध में मैं पूरा पूरा सेवक नहीं बन पाया हूं । आपका सूत्र स्वीकार्य है । उसका प्रचार करने का प्रयत्न करूंगा । मैं अस्पृश्यता का कायल भी नहीं । पहले था । इसका सम्बन्ध भी धर्म के ज्ञान के साथ है । पूर्वोक्त कठिनाई यदि दूर हो जाय तो अस्पृश्यता का सवाल सहज हल किया जा सकता है । फिर भी मुझे एक बात खटकती है । वह यही कि क्या एक खुजली से बीमार लड़का मदरसे में और लड़कों के साथ बैठ सकता है ? आप कहेंगे कि अन्त्यजेतर लोगों में ऐसे गंदे लड़के बहुत होते हैं हम उनका बहिष्कार कहां करते हैं ? उसे छू कर क्या हम स्नान करते हैं ? मैं हिन्दू-धर्म की दृष्टि से मानता हूं कि यदि हम इसका पालन नहीं करते हैं तो यह हमारी भूल है । इसके साथ ही मैं यह भी मानता हूं कि यह मानना कि वह केवल इसीलिए अस्पृश्य है कि उसका जन्म अन्त्यज-जाति में हुआ है, एक भारी

मूल है। इस सिलसिले में यदि आप स्वच्छता के पालन के विषय में बार बार लिखा करेंगे तो अच्छा होगा।"

मेरी खुशकिस्मती है, जो मैं किसीको अपना अनुयायी मानता ही नहीं। इससे मैं किसी के पाप का हिस्सेदार नहीं हो सकता। पर इतने से पूर्वोक्त लेखक की उलझन नहीं सुलझती और मेरी जवाबदेही भी दूर नहीं होती। मेरे अनुयायी कहे जाने वाले लोगों की शिकायतें चारों ओर से आ रही हैं। उसका इलाज मैं खोज रहा हूं। दुखिया का बेली ईश्वर है। इस विश्वास से मुझे आशा है कि मेरे अनुयायी नामधारियों का पेशा बंद करने की दवा वह मुझे दे देगा। ढोंग हमेशा तक नहीं चल सकता। कुछ लोग कुछ समय तक भले ही ठगे जायं परन्तु सब लोगों के सब समय तक ठग जाने की मिसाल अभी इतिहास में दिखाई नहीं दी।

यह बात भी ठीक है कि महासभा का संगठन शिथिल हो रहा है। परिपूर्ण संगठन भी अयोग्य मनुष्यों के हाथ से छिन्दित होता है और सुयोग्य मनुष्य अपूर्ण संगठन का भी सदुपयोग कर सकते हैं। यह बात बहुतांश में सच है। यह तो स्पष्ट ही है कि स्वयंसेवकों को चाहिए पूरी तरह समझाये बिना किसी से ४ आने हरगिज न लें। ग्राम्य-समितियों की स्थापना का प्रयोजन ही यह है कि ग्रामीण लोगों का संबंध महासभा के साथ अखंड रहे।

देहात की गरीबी को जिन जिन लोगोंने इस लेखक की तरह देखा है उन्हें उसे दूर करने के लिए चरखे के सिवा दूसरा कार्य नहीं सूझ सकता। क्योंकि दूसरा साधन है नहीं। इसीसे जिस हद तक चरखे की प्रगति होगी उसी हद तक स्वराज्य की प्रगति मानी जा सकती है। यह केवल अभिमान है कि महासभा से वेतन न लें। बिना वेतन बहुतेरे सेवक नहीं मिल सकते। और यदि वेतन वाला कोई भी न मिले तो स्वराज-तन्त्र का चलना आगे चल नहीं सकता। यह भी एक वहम है कि वेतन लेनेवाले को लोग आदर की दृष्टि से नहीं देखते। वेतन लेनेवाला अथवा न लेनेवाला जो जनता की सेवा दिलोजान से न करेगा उसके प्रति उसका आदर-भाव रही नहीं सकता। मुझे इस बात का तजरिबा है की दिलोजान से काम करने वाले के लिए वेतन की रकम देने में लोग कभी पीछे न होंगे। हां, यह सच है कि बड़ी रकम महासभा वेतन में नहीं दे सकती। पर इस विषय में जरा भी सन्देह नहीं कि गरीब सेवक की गुजर जरूर हो सकती है। दूसरी जगह वेतन लेकर नौकरी करने की अपेक्षा महासभा से वेतन लेकर नौकरी करने में हमें प्रतिष्ठा माननी चाहिए। सिविल सर्विस का मोह कितना? क्यों है? उससे भी अधिक मोह हमें महासभा की सेवा के लिए होना चाहिए जिस प्रकार सिविल सर्विस में जाने वाला ऊंचे पदों पर चढ़ सकता है उसी प्रकार महासभा की सेवा करने वाला उसका सभापति तक हो सकता है। परन्तु जो इस लालच से सेवा करता है वह गिरे बिना नहीं रहता। स्व० गोखले ने अपने २० वर्ष फर्गुसन कालेज को दिये। रोयल कमीशन आदि से भी इनके मिलते थे, फिर भी कालेज से वेतन लेने में वे अपना गौरव मानते थे। यह तो याद ही होगा कि उनका वेतन ४०) से शुरु होकर ७५) से ऊपर नहीं जाता था। जबतक महासभा को भी-जीजान लगा देने वाले वैतनिक सेवक न मिलेंगे तबतक महासभा का काम ठीक ठीक नहीं चल सकता। जबतक हम यह न मानने लगेंगे कि वेतन लेकर सेवा करना माननीय है तबतक हमें सेवक अधिक संख्या में न मिलेंगे। इस प्रकार प्रतिष्ठा बढ़ाने का सबसे अच्छा रास्ता यह है कि महाभाई स्वयं वेतन लेने लगें। जब मैं सेवा करने लगूंगा तब मैं भी जरूर वैतनिक लोगों में अपना नाम लिखाऊंगा।

वेतन कितना और किस तरह निश्चित किया जाय, सब को एक-सा दिया जाय या नहीं, सेवकों की परीक्षा रक्खी जाय या नहीं, आदि उलझनें जरूर खड़ी होती हैं पर इन्हींके हल करने में हमारी कार्य-संचालन-क्षमता की नाप है।

अखबारों पर जो टीका-टिप्पणी की गई है उसपर मैं अपनी राय न दूंगा क्योंकि गुजरात के अखबारों से मेरा बिलकुल परिचय नहीं। यह महा-कार्य मेरे जेल जाने के बाद शुरू हुआ है। यह तो निश्चित है कि-वर्तमान पत्रों का धर्म है कि वे लोगों को कार्य की ओर प्रवृत्त करें। जोश दिलाने की अब बिलकुल आवश्यकता न रही। लोग इस बात को समझ गये हैं कि हमें वर्तमान राजनीति बदल देना है, स्वराज्य लेना है। वे रास्ता भी जानने लगे हैं। अभी उस रास्ते जाने की उमंग नहीं पैदा हुई है। वर्तमान पत्रों को उन्हें गति देने का काम करना चाहिए। इसके संबंध में दो-मत न होना चाहिए।

अन्त्यजभाई को साफ-सुथरे रहने की शिक्षा देना आदि अवश्य हमारा काम है। जब उन्हें छूने लगेंगे तो हम अपने आप अपनी ही गरज से उन्हें साफ-सुथरा रहने की शिक्षा देंगे। हमें यह समझ कर धीरज रखना चाहिए कि उनकी गंदगी हमारे पाप का फल है। आजतक हमने अन्त्यज भाइयों को अपना भाई नहीं माना। जैसा करते हैं वैसा फल पाते हैं। इसपर आश्चर्य न होना चाहिए। ऐसा होते हुए भी इस बात में कोई संदेह नहीं कि उनके ऐब दूर करने में हमें मदद करनी चाहिए। वे जानते हैं कि इस सुधार की जरूरत है। उन्हें हमारी सहायता की जरूरत थी। उसके मिलने पर मैं मानता हूं कि वे हमसे भी ऊंचे चढ़ जायंगे।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

गृह-कलह

एक 'अनाविल' (ब्राह्मण) भाई जिन्होंने अपना नाम-ठाम लिखा है-अपने दुःख की राम-कहानी इस प्रकार सुनाते हैं—

"सारे हिन्दुस्तान की हालत देखते हुए, कह सकते हैं, कि गुजरात में खादी-प्रचार ठीक ठीक हुआ है। पर उसमें भी जो कम्पित करने वाली खामी दिखाई देती है वह यह कि खास करके स्त्री-जाति में अभी खादी का प्रचार बिलकुल ही नहीं। यह कहूं तो अनुचित नहीं। नाटक में, सीनेमा में अथवा शादी में मैं जहां कहीं देखता हूं स्त्री-पुरुषों के समुदाय में पुरुष तो खादी पहने दिखाई देते हैं, पर स्त्रियों के शरीर पर मैंचेस्टर का ही कपड़ा नजर आता है। आपको मैं अपने कुटुम्ब का अनुभव सुनाता हूं नागपुर-महासभा से आये बाद मैंने विलायती कपड़ों का त्याग कर दिया। यह खबर मेरी धर्मपत्नी को लगते ही उन्हें सचमुच रंज हुआ और भीतर ही भीतर वे गुस्सा भी हुई। पर मैंने उन्हें खादी पहनने के लिए तैयार कर लिया—वे खादी पहनती भी हैं और आज तीन बरस से विलायती कपड़े खरीदे भी नहीं गये। फिर भी पुराने पड़े विलायती कपड़े पहनने को उनका दिल ललचाया करता है और मेरे विरोध करते हुए भी शादी के मौके पर विलायती कपड़े पहनती हैं। जब मैं अपना विरोध जाहिर करता हूं तब हमारे रिश्तेदारों और मित्रों (पुरुषों और स्त्रियों) की ओर से उनका बचाव किया जाता है कि हम पुरुष तो खादी पहनते ही हैं, स्त्रियों के पास जो कुछ पुराने कपड़े रक्खे हों उन्हें पहन डालने में क्या हर्ज है? ऐसी अवस्था में मुझे तथा मुझ जैसी हालत में पड़े हुए लोगों को बड़ी उलझन रहा करती है कि अब स्त्रियों के इस मोह को कैसे छुड़ावें? क्या हम सत्याग्रह करें? 'नवजीवन' पढ़ती हैं। आपके प्रति पूज्यभाव है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां आपकी भक्ति में दिन दिन अधिक लीन होती हैं

परन्तु यदि ऐसा विलक्षण मोह उनसे न छूट सका तो वह भक्ति भी निरर्थक होगी। खादी के प्रवेश से हमारे कपड़े के खर्च में बहुत ही कमी हो गई है। पिछले चार बरस में (१०-१०) वाली सेपरौरडैप अर्थात् (४०) के बदले में छः रुपये की २४ खादी टोपी पहनी। यही हाल है कोट-कुरते, धोती, मोजे आदि का भी। मेरा निजी खर्च तीन सौ रुपये सालाना था। अब वह ५०) से ६०) तक हो गया है। यह सब समझाने-बुझाने पर भी विलायती कपड़े का मोह उनसे नहीं छुटता। इस मनोदौर्बल्य के कारण शादी के मौकों पर ऐसा होता है कि मैं तो जाता हूं खादी पहन कर और मेरी गृहिणी जाती हैं विलायती कपड़े पहन कर। इससे उन लोगों की टीका-टिप्पणी सुननी पड़ती है जो खादी नहीं पहनते हैं और उसमें खास कर पुरुष की स्थिति तो बड़ी बेढंगी हो जाती है। खादी के विरोधी खुद घर में गुलाम के गुलाम रहते हुए भी हमें गुलाम बताते हैं और सारे आन्दोलन पर निन्दा की बौछार करते हैं। तब तो मन को इतना दुःख होता है कि कुछ सुझाई नहीं पड़ता। उस समय आखिरी विचार आने लगते हैं कि क्या करें, क्या असहयोग कर लें? ऐसे विचार में कभी कभी दोनों में झगड़े होने का भी समय आ जाता है। ऐसी हालत में स्त्री-जाति को खादीमय करने के लिए आप क्या सलाह देते हैं? यही जानने के लिए यह लंबा पत्र भेजा है। आशा है कि आपके विचार प्रकट होने पर मेरी गृहिणी खादी के सिवा दूसरे कपड़े हरगिज न पहनेंगी।"

मैं समझता हूं कि जैसी इन भाई की दशा है वैसे ही बहुतेरे पुरुषों की होगी। स्त्री-पुरुष का पारस्परिक संबंध इतना नाजुक है कि तीसरा पुरुष बीच में पड़कर शायद ही कुछ सेवा कर सके। सत्याग्रह शुद्ध प्रेम का चिन्ह है। दम्पति-प्रेम जब बिल्कुल निर्मल हो जाता है तब प्रेम पराकाष्ठा को पहुंचता है-तब उसमें विषय के लिए गुंजायश नहीं रहती-स्वार्थ की तो उसमें गंध तक नहीं रह जाती। इसीसे कवियों ने दम्पति-प्रेम का वर्णन करके आत्मा की परमात्मा के प्रति लगन को पहचाना है और उसका परिचय कराया है। ऐसा प्रेम विरला ही हो सकता है। विवाह का बीज आसक्ति में होता है। तीव्र आसक्ति जब अनासक्ति के रूप में परिणत हो जाय और शरीर-स्पर्श का खयाल तक न लाकर, न करके जब एक आत्मा दूसरी आत्मा में तल्लीन हो जाती है तब उसमें परमात्मा के प्रेम की कुछ झलक हो सकती है। यह वर्णन भी बहुत स्थूल है। जिस प्रेम की कल्पना मैं पाठकों को कराना चाहता हूं वह निर्विकार होता है। मैं खुद अभी इतना विकार-शून्य नहीं हुआ जिससे मैं उसका यथावत् वर्णन कर सकूं। इससे मैं जानता हूं कि जिस भाषा के द्वारा मुझे उस प्रेम का वर्णन करना चाहिए वह मेरी कलम से नहीं निकल रही है। तथापि शुद्ध हृदयवाले पाठक उस भाषा को अपने आप सोच लेंगे।

जहां दम्पति में मैं इतने निर्मल प्रेम को संभवनीय मानता हूं वहां सत्याग्रह क्या नहीं कर सकता? यह सत्याग्रह वह वस्तु नहीं है जो आजकल सत्याग्रह के नाम से पुकारी जाती है। पार्वती ने शंकर के मुकाबले में सत्याग्रह किया था अर्थात् हजारों वर्षतक तपस्या की। रामचन्द्र ने भरत की बात न मानी तो वे नन्दिग्राम में जाकर बैठ गये। राम भी सत्य पथ पर थे और भरत भी सत्य पथ पर थे। दोनों ने अपना अपना प्रण रक्खा। भरत पादुका लेकर उसकी पूजा करते हुए योगारूढ़ हुए। राम की तपश्चर्या में बहार के आनन्द की सम्भावना थी। भरत की तपश्चर्या अलौकिक थी। राम को भरत को भूल जाने का अवसर था। भरत तो पल पल राम-नाम का उच्चारण करता था। इससे ईश्वर रामानुदास हुआ।

यह शुद्धतम सत्याग्रह की मिसाल है। दो में से किसी की जीत न हुई। यदि कोई जीता कहा जाय तो वह भरत। यदि 'भरत-जन्म न हुआ होता तो राम-महिमा न होती' यह कहकर तुलसीदास ने प्रेम का रहस्य हमारे सामने प्रकट कर दिया है।

पत्र-प्रेषक सज्जन यदि स्थूल प्रेम को भूलकर दम्पति-प्रेम में छिपे सूक्ष्म प्रेम को धारण कर सकें—मैं जानता हूं कि वह धारण करने से धारण नहीं होता, वह तो प्रकट होना हो तो हो जाता है—तो मैं निश्चय-पूर्वक कहता हूं कि उनकी धर्मपत्नी अपने विलायती कपड़ों को उसी दिन जला दें। पर एक न-कुछ बात के लिए मैं इतना भारी उपाय क्यों बताता हूं! कोई यह सन्देह न करें कि मैं तारतम्य नहीं रखता। बात यह है कि न-कुछ घटनायें हमारे जीवन में जो परिवर्तन करती हैं वे जानबूझ कर लाये गये प्रसंगों और बड़ी भारी जानेवाली दुर्घटनाओं के द्वारा नहीं हो सकते।

दम्पति के बीच संभवनीय सत्याग्रह की बीसों मिसालें मैं अपनी अनुभव-पुस्तक से दे सकता हूं। पर मैं जानता हूं कि इन सब का दुरुपयोग भी हो सकता है। मौजूदा वायुमण्डल मुझे जहरीला मालूम होता है। ऐसे समय में उन अनुभवों की मिसालें पेश करके मैं इन भाई को जिन्होंने शुद्ध भाव से प्रश्न किया है, भ्रमित करने का पाप अपने सिर लेना नहीं चाहता। इससे मैं तब से उस स्थिति का वर्णन करके यह भार उन्हींपर सौंप देता हूं कि वे उसमें से जो उन्हें उचित दिखाई दे अपने संकट-निवारण का मार्ग खोज लें।

स्त्रियों की स्थिति नाजुक है। उनके लिए जरा भी कुछ करने से बल-प्रयोग की संभावना रहती है। हिन्दू-संसार कठिन है। इसी से वह औरों की अपेक्षा अधिक स्वच्छ रह सका है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पति को केवल वही प्रभाव डालने का अधिकार है जो शुद्ध प्रेम के द्वारा डाला जा सकता है। यदि दो में से कोई एक भी विषय-वासना को जड़ से काट सके तो रास्ता सरल हो जाता है।

मेरा दृढ मत है कि स्त्रियों में जो कुछ खामियां पुरुषों को दिखाई देती हैं उसकी यदि सारी नहीं तो मुख्य जवाबदेही पुरुषों पर है। स्त्रियों को सज-धज का मोह वे ही लगाते हैं। बढ़िया बढ़िया कपड़े वही पहनाते हैं। फिर स्त्री उसकी आदी हो जाती है और जब पति में परिवर्तन होता है तब वे तत्काल उनका साथ नहीं दे सकतीं। इसमें दोष पुरुष का ही है, स्त्री का नहीं। यह समझ कर पुरुष को धीरज रखना लाजिमी है। हिन्दुस्तान में यदि शान्त उपायों से स्वराज्य मिलनेवाला होगा तो स्त्रियों को उसमें पूरा पूरा योग जरूर देना पड़ेगा। स्त्रियों को जबतक विलायती मिल के तथा रेशमी कपड़ों का मोह रहा करेगा तबतक स्वराज्य दूर ही रहेगा।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

राजपूतों का कर्तव्य

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)॥
विदेशों के लिए „ ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १] [अंक ४१

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, ज्येष्ठ बदी ७, संवत् १९८० रविवार, २५ मई, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

श्री गांधीजी का वक्तव्य

(श्री गांधीजी ने धारासभा-प्रवेश के संबंध में अपना नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित किया है—)

महासभा-वादियों के धारा-सभा में आने के वादग्रस्त प्रश्न के संबंध में स्वराज्य-दलवाले मित्रों से मेरी बातचीत हो चुकी। मुझे कहते हुए दुःख होता है कि मैं उनसे सहमत न हो सका। मैं सर्व-साधारण को यकीन दिलाता हूं कि स्वराज्य-दलवालों के विचारों को समझने में मेरी ओर से प्रयत्न या रजामन्दी की कमी नहीं रही है। यदि मैं उनके विचारों को स्वीकार कर पाता तो मेरा काम बहुत हलका हो जाता। मुझे विचार तक में भी उन अत्यन्त मूल्यवान् और आदरणीय नेताओं का विरोध करने में सुख नहीं हो सकता, जिनमें से कुछ लोगों ने तो देश की सेवा के लिए महान् आत्मोत्सर्ग किया है और जो अपनी मातृभूमि की आजादी की लगन में किसीसे कम नहीं हैं। पर मेरी रजामन्दी और प्रयत्न के होते हुए भी उनकी युक्तियों से मेरा समाधान न हो पाया।

उनका और मेरा यह मत-भेद केवल तफसीली बातों में नहीं है। मूल विचारों में ही मत-भेद है और वह प्रामाणिक है। मैं अबभी इस राय पर कायम हूं कि धारासभा-प्रवेश, असहयोग के मेरे भावार्थ के अनुसार, असहयोग के विपरीत है। न यह मत-भेद 'असहयोग' शब्द के अर्थों पर आधार रखता है; बल्कि उस आवश्यक मनोवृत्ति से संबंध रखता है जिसके कारण देश के महत्वपूर्ण प्रश्न के निपटारे में फर्क हो जाता है। इस मनोवृत्ति के अनुसार ही त्रिविध बहिष्कार की सफलता या विफलता का निर्णय होना चाहिए—न कि महज प्रत्यक्ष फल के अनुसार। इसी दृष्टि से मैं कहता हूं कि धारासभाओं में जाने की अपेक्षा उनके बाहर रहना देश के लिए बहुत ही अधिक लाभदायक है। तथापि मैं अपने स्वराज्य-दलवाले मित्रों को अपने विचारों का कायल न कर पाया। लेकिन मैं यह जानता हूं कि जबतक उनके विचार इससे भिन्न हैं, निस्सन्देह उनका स्थान धारासभाओं में ही है। यह हम सब के लिए बेहतर है।

बातचीत के समय मैंने जो दलीलें पेश कीं उनके कायल हो जाने की उम्मीद शायद ही स्वराज्यदलवालों से की जाती हो। उनमें बहुत से योग्यतम, अत्यन्त अनुभवी और ईमानदार देशभक्त हैं। बिना पूर्ण विचार किये वे धारासभाओं में नहीं गये हैं और जबतक कि अनुभव के द्वारा उन्हें अपने उपायों की निष्फलता का यकीन न हो जाय तबतक उनके वहां से लौटने की आशा न करनी चाहिए।

अतएव देश के सामने यह प्रश्न नहीं है कि मेरे और स्वराज्य-दल के विचारों के गुण-दोष की छान-बीन की जाय। बल्कि यह है कि धारा-सभा-प्रवेश एक घटित और निश्चित घटना हो गई है। अब उसके संबंध में हमारा क्या रुख होना चाहिए? असहयोगी लोग स्वराज्य-दलवालों की रीति-नीति का विरोध करते रहें या तटस्थ रहें और जहां कहीं मुमकिन हो या उनके सिद्धान्तों के मुआफिक हो, वहां उन्हें मदद भी दें?

देहली और कोकनाडा के प्रस्तावों ने उन महासभा-वादियों को धारासभाओं में जाने की अनुमति दी है जो वहां जाना चाहते हों और जो इसे अपनी अन्तरात्मा और धर्म के खिलाफ न समझते हों। ऐसी अवस्था में मेरी राय में स्वराज्य-दल वालों का धारासभाओं में प्रवेश करना और अपरिवर्तन-वादियों की तरफ से पूरी तटस्थता की उम्मीद रखना बिल्कुल ठीक है। उनका विघ्न-बाधा-नीति रखना भी ठीक है; क्योंकि यही उनकी नीति थी और महासभा ने उनके प्रवेश के संबंध में कोई शर्त नहीं लगाई है। यदि स्वराज-दलवालों का कार्य वहां फले-फलेगा और देश को उससे लाभ होगा तो इस प्रत्यक्ष प्रमाण को देख कर मुझ जैसे प्रामाणिक विश्वासहीन लोग अपनी गलती को माने बिना न रहेंगे और मैं मानता हूं कि उनमें भी इतनी देशभक्ति जरूर है कि जब तजरिबा उनके भ्रम को दूर कर देगा तब वे अपनी भूल जरूर सुधारेंगे। ऐसी अवस्था में मैं स्वराज-दलवालों के धारासभा-प्रवेश के रास्ते में रोडे डालने या उसके खिलाफ प्रचार करने में योग न दूंगा। पर मैं उन्हें किसी किस्म की क्रियात्मक सहायता भी नहीं दे सकता; क्योंकि उनकी तजवीज और तदबीर में मेरा विश्वास नहीं है। देहली और कोकनाडा के प्रस्तावों की गरज यह थी कि स्वराज्य दलवालों को धारासभा-प्रवेश की तदबीर की आजमायश करने का मौका दिया जाय और यह तभी पूरी हो सकती है जब अपरिवर्तन वादी लोग पूरी सच्चाई के साथ बिना किसी प्रकार की बाधा डाले स्वराज्य-दलवालों को अपने धारासभा के कार्यक्रम को आगे चलाने की पूरी आजादी दे दें।

धारासभाओं के अन्दर के काम के संबंध में मैं कहूंगा कि मैं तभी धारासभा में प्रवेश करूंगा जब मैं देखूंगा कि मैं उनके द्वारा

देश को लाभ पहुंचा सकता हूं। अतएव यदि मैं धारासभा में जाऊं तो मैं आम तौर पर विघ्न-बाधा-नीति का अनुकरण न करूंगा—बल्कि महासभा के रचनात्मक कार्यक्रम को पुष्ट करने का प्रयत्न करूंगा। अतएव मैं बड़ी और प्रान्तीय सरकारों के लिए नीचे लिखे प्रस्ताव पेश करूंगा—

(१) अपनी जरूरत के तमाम कपड़े हाथकती और हाथबुनी खादी के ही खरीदे।

(२) विदेशी कपड़े पर इतनी चुंगी लगाई जाय जिससे उसका यहां आना रुक जाय।

(३) शराब तथा मादक पदार्थों की आमदनी बंद कर दे और कम से कम उतना ही फौजी खर्च कम करे।

यदि धारासभा में स्वीकृत होने पर सरकार इन प्रस्तावों को अंगीकार न करे तो मैं उसे उनके विसर्जन करने के लिए कहूंगा और उसी बात पर अपने निर्वाचकों की राय लूंगा। यदि सरकार उन्हें विसर्जित न करे तो मैं अपनी जगह से इस्तीफा दे कर देश को सविनय-भंग के लिए तैयार करूंगा। जब वह समय आ जायगा तब स्वराज्य-दल के लोग मुझे उनके साथ और उनके अधीन काम करने के लिए तैयार पावेंगे। सविनय-भंग की पात्रता की मेरी कसौटी वही रहेगी जो पहले थी।

जबतक यह परीक्षा-काल समाप्त नहीं होता तबतक मैं अपरिवर्तनवादियों को सलाह दूंगा कि वे इस झगड़े में न पड़ें कि स्वराज्य-दल के लोग क्या कहते हैं और क्या करते हैं। बल्कि एकचित्त और एकाग्र हो कर रचनात्मक कार्यक्रम के अनुसार काम करें और उसके द्वारा अपनी श्रद्धा और विश्वास सिद्ध कर दिखावें। खादी और राष्ट्रीय विद्यालयों का ही काम इतना है जो उनके प्रत्येक कार्यकर्ता को—उन कार्यकर्ता को जो बिना शोरोगुल के, बिना दिखावे के, सच्चे काम में विश्वास रखते हों—रोक सकें। हिन्दू और मुसलमानों का सवाल भी कार्यकर्ताओं की बड़ी से बड़ी शक्ति और श्रद्धा को व्यग्र रखने लिए काफी है। हिन्दुओं के सामने अछूतों का बड़ा भारी सवाल है। अपरिवर्तनवादी लोगों के लिए धारासभा-प्रवेश के अपने विरोध की पुष्टि का एक ही उपाय है—रचनात्मक कार्यक्रम में उसे लगा कर उसका फल दिखावें। उसी प्रकार परिवर्तनवादी भी अपने कार्यों के फल के ही द्वारा अपने धारासभा-प्रवेश की युक्तता को सिद्ध करेंगे। अपरिवर्तनवादियों को एक बात में अधिक सुभीता है; क्योंकि वे परिवर्तनवादियों का सहयोग भी प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम में अपना विश्वास प्रकट किया है; पर उनका कहना है कि महज रचनात्मक कार्यक्रम के बलपर देश अपने ध्येय को न प्राप्त कर सकेगा। फिर भी रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने में यदि आवश्यकता हो तो धारासभा के बाहर तमाम अपरिवर्तनवादी, परिवर्तनवादी और दूसरे लोग, यदि चाहें तो, अपनी अपनी संस्थाओं के द्वारा एक साथ काम कर सकते हैं।

महासभा-संस्था के कार्य की समीक्षा किये बिना यह वक्तव्य पूरा न होगा। इस मामले में मेरे विचार निश्चायक और निर्णयक हैं। मैं उन्हें आगे, शीघ्र ही, प्रकाशित करूंगा।"

(अंगरेजी से अनुवादित) मोहनदास करमचंद गांधी

एजंटों की जरूरत है

अब श्री गांधीजी संपादन करने लगे। उनके राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिन्दी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

व्यवस्थापक

ब्रह्मचर्य

इस विषय पर लिखना आसान नहीं। पर मेरा निजी अनुभव इतना विशाल है कि उसके कुछ बिंदु पाठकों को अर्पण करने की इच्छा बनी रहती है। फिर मेरे नाम आये हुए कितने ही पत्रों ने इस इच्छा को और भी बढ़ा दिया है।

एक सज्जन पूछते हैं—ब्रह्मचर्य के मानी क्या हैं? क्या उसका सोलहों आने पालन संभवनीय है? यदि सच हो तो क्या आप उसका पालन करते हैं?

ब्रह्मचर्य का पूरा और वास्तविक अर्थ है ब्रह्म की खोज। ब्रह्म सब में व्याप्त है। अतएव उसकी खोज अंतर्ध्यान और उससे उत्पन्न अन्तर्ज्ञान से होती है। यह अन्तर्ज्ञान इन्द्रियों के पूर्ण संयम के बिना अशक्य है। अतएव सब इन्द्रियों के तन, मन, वचन से सब समय और सब क्षेत्र में संयम करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं।

ऐसे ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करने वाली स्त्री या पुरुष बिल्कुल निर्विकार होता है। इस कारण ऐसे निर्विकार स्त्री-पुरुष ईश्वर के नजदीक रहते हैं; वे ईश्वरवत् हैं।

ऐसे ब्रह्मचर्य का तन, मन, और वचन से पालन किया जा सकता है। इस बात में मुझे जरा भी सन्देह नहीं। मुझे कहते हुए दुःख होता है कि इस ब्रह्मचर्य की पूर्ण अवस्था को मैं अभी नहीं पहुंच पाया हूं। पहुंचने का प्रयत्न निरन्तर कर रहा हूं। इसी शरीर के द्वारा इस स्थिति को पहुंचने की आशा मैंने छोड़ नहीं दी है। तन पर तो मैंने अपना कब्जा कर लिया है। जागृत अवस्था में मैं सावधान रह सकता हूं। वाचा के संयम का पालन करना भी ठीक ठीक जान गया हूं। विचार पर अभी मुझे बहुत-कुछ कब्जा करना बाकी है। जिस समय जिस बात का विचार करना हो उस समय उसके अलावा दूसरे विचार भी आते हैं। इससे विचारों में परस्पर द्वंद्व हुआ करता है।

फिर भी जागृत अवस्था में मैं विचारों को परस्पर टक्कर लेने से रोक सकता हूं। गंदे विचार नहीं आ सकते। यह मेरी स्थिति कही जा सकती है। परन्तु निद्रावस्था में विचारों पर मेरा कब्जा कम रहता है। नींद में अनेक प्रकार के विचार आते हैं। अकल्पित सपने भी आते हैं, और किसी बार इसी देह में की हुई बातों की वासना भी जाग्रत होती है। वे विचार जब गंदे होते हैं तब स्वप्न-दोष भी होता है। यह स्थिति विकारवान् जीव को ही हो सकती है। पर मेरे विचार के विकार क्षीण होते जा रहे हैं। हां, उनका नाश नहीं हो पाया है। यदि मैं विचारों पर भी साम्राज्य कर सका होता तो पिछले दस बरसों में जो तीन रोग—पसली का वरम, पेचिश और 'अपेंडिक्स' का वरम—हुए वे कभी न होते। मैं मानता हूं कि निरोगी आत्मा का शरीर भी निरोगी होता है। अर्थात् ज्यों ज्यों आत्मा निरोग—निर्विकार होती जाती है, त्यों त्यों शरीर भी निरोगी होता जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि निरोगी शरीर के मानी बलवान् शरीर हों। बलवान् आत्मा क्षीण शरीर में ही वास करती है—ज्यों ज्यों आत्मबल बढ़ता है त्यों त्यों शरीर-क्षीणता बढ़ती है। पूर्ण निरोगी शरीर बहुत क्षीण हो सकता है। बलवान् शरीर में बहुतांश में रोग रहते हैं। रोग न हों तो भी वह शरीर संक्रामक रोगों का शिकार तुरन्त हो जाता है; परन्तु पूर्ण निरोग शरीर पर उसका असर नहीं हो सकता। शुद्ध खून में ऐसे जन्तुओं को दूर रखने का गुण होता है।

ऐसी अद्भुतदशा दुर्लभ जरूर है। नहीं तो अबतक मैं वहां पहुंच गया होगा। क्योंकि मेरी आत्मा कहती है कि ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए जिन उपायों से काम लेने की आवश्यकता है उनसे मैं सुख नहीं मोड़ता हूं। ऐसी कोई भी बाह्य वस्तु नहीं है जो मुझे उससे दूर रखने में समर्थ हो। परन्तु पिछले संस्कारों को धोना सबके लिए सहल नहीं होता। इससे देर हो रही है। फिर भी मैं बिलकुल निराश नहीं हुआ हूं; क्योंकि मैं निर्विकार अवस्था की कल्पना कर सकता हूं। उसकी धुंधली झलक देख भी सकता हूं और जो प्रगति मैंने अब तक की है वह मुझे निराश करने के बदले आशावान बनाती है। फिर भी यदि मेरी आशापूर्ण हुए बिना ही मेरा शरीर पात हो जाय तो मैं अपनेको निष्फल न मानूंगा। जितना विश्वास मुझे इस देह के अस्तित्व पर है उतना ही मुझे पुनर्जन्म पर है। इससे मैं जानता हूं कि थोड़ा प्रयत्न भी व्यर्थ नहीं जाता।

इतने आत्मानुभव के वर्णन का कारण यही है कि जिन्होंने मुझे पत्र लिखे हैं उनको तथा उनके सदृश दूसरों को धीरज रहे और आत्म-विश्वास बढ़े। सबकी आत्मा एक है। सबकी आत्मा की शक्ति एकसा है। कितने लोगों की शक्ति प्रकट हो गई है—कितनों की बाकी है। प्रयत्न करने से उन्हें भी वह अनुभव हुए बिना न रहेगा।

यहां तक मैंने व्यापक अर्थ में ब्रह्मचर्य का विवेचन किया। ब्रह्मचर्य का लौकिक अथवा प्रचलित अर्थ तो इतना ही माना जाता है कि विषयेन्द्रिय का मन, वचन, काया के द्वारा संयम। यह अर्थ वास्तविक है। क्योंकि उसका पालन करना बहुत कठिन माना गया है। स्वादेन्द्रिय के संयम पर इतना जोर नहीं दिया गया। इससे विषयेन्द्रिय का संयम इतना मुश्किल बन गया है—प्रायः अशक्य हो गया है। फिर रोग से अशक्त शरीर में हमेशा विषय-वासना अधिक रहती है, यह वैद्यों का अनुभव है। इससे भी इस रोग-ग्रस्त समाज को ब्रह्मचर्य कठिन मालूम होता है।

ऊपर मैं क्षीण किन्तु नीरोगी शरीर के विषय में लिख चुका हूं। उसका अर्थ यह न करना चाहिए कि शरीर-बल प्राप्त न किया जाय। मैंने तो सूक्ष्म-तम ब्रह्मचर्य की बात अपनी अति प्राकृत भाषा में लिखी है। इससे शायद गलतफहमी हो। जो सब इन्द्रियों के पूर्ण संयम का पालन करना चाहता है उसे अन्त को शरीर-क्षीणता का अभिनन्दन अवश्य करना पड़ेगा। जब शरीर का मोह और ममत्व क्षीण हो जायगा तब शरीर-बल की इच्छा रही नहीं सकती। परन्तु विषयेंद्रिय को जीतनेवाले ब्रह्मचारी का शरीर अति तेजस्वी और बलवान् ही होना उचित है। यह ब्रह्मचर्य भी अलौकिक है। जिसकी विषयेंद्रिय को स्वप्नावस्था में भी विकार न हो वह जगत्वन्दनीय है। इसमें शक नहीं कि उसके लिए दूसरा संयम सहज बात है।

इस ब्रह्मचर्य के संबंध में एक महाशय लिखते हैं—"मेरी हालत दयाजनक है। दफ्तर में, रास्ते में, रात को, पढ़ते समय, काम करते हुए, ईश्वर का नाम लेते हुए, वही विचार आते हैं। मन के विचारों को किस तरह काबू में रक्खें? स्त्रियों के प्रति मातृ-भाव कैसे उत्पन्न हो? आंख से शुद्ध वात्सल्य की ही किरणें किस प्रकार निकलें? दुष्ट विचार किस प्रकार निर्मूल हो? ब्रह्मचर्य-विषयक आपका लेख मैंने अपने पास रख छोड़ा है; परन्तु इस जगह वह बिलकुल उपयोगी नहीं होता।"

यह स्थिति हृदयद्रावक है। बहुतों की यह स्थिति होती है। परन्तु जबतक मन उन विचारों के साथ लड़ता रहता है तबतक भय रखने का कुछ कारण नहीं। आंख यदि बुरा काम करती हो तो उसे बंद कर लेना चाहिए, कान यदि बुरा काम करते हों तो उनमें रुई भर लेनी चाहिए। आंख को हमेशा नीचा रख कर चलने की रीति अच्छी है। इससे उसे दूसरी बातें देखने का अवसर ही नहीं मिलता। जहां गंदी बातें होती हों अथवा गंदा गाना गाया जाता हो वहां से उठ जाना चाहिए। स्वादेन्द्रिय पर खूब कब्जा रखना चाहिए।

मेरा अनुभव तो ऐसा है कि जिसने स्वाद को नहीं जीता वह विषय को नहीं जीत सकता। स्वाद को जीतना बहुत कठिन है। परन्तु इस विजय के साथ ही दूसरे विजय की संभावना है। स्वाद को जीतने के लिए एक तो नियम यह है कि मसालों का सर्वथा अथवा जितना हो सके त्याग करना चाहिए। और दूसरा अधिक बलवान् नियम यह है कि भोजन स्वाद के लिए नहीं बल्कि केवल शरीर-रक्षा भर के लिए हम खाते हैं—इस भावना की वृद्धि करें। हवा हम स्वाद के लिए नहीं लेते, बल्कि श्वास के लिए। पानी प्यास बुझाने के लिए पीते हैं। इसी प्रकार खाना महज भूख बुझाने के लिए खाना चाहिए। हमारे मां-बाप लड़कपन से ही इसके उलटी आदत डालते हैं। हमारे पोषण के लिए बल्कि अपना दुलार दिखाने के लिए हमें तरह तरह के स्वाद चखा कर हमारी आदत बिगाड़ते हैं। हमें ऐसे वायुमण्डल के खिलाफ लड़ने की आवश्यकता है।

परन्तु विषय जीतने का सुवर्ण-नियम राम-नाम अथवा दूसरा कोई ऐसा मन्त्र है। द्वादश मंत्र भी वही काम देता है। अपनी अपनी भावना के अनुसार मन्त्र का जप करना चाहिए। मुझे लड़कपन से राम-नाम सिखाया गया। मुझे उसका सहारा बराबर मिलता रहता है। इससे मैंने उसे सुझाया है। जो मन्त्र हम जपें उसमें हमें तल्लीन हो जाना चाहिए। मंत्र जपते समय दूसरे विचार आवें तो परवा नहीं। फिर भी श्रद्धा रख कर मन्त्र का जप यदि करते रहेंगे तो अंत को अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे। मुझे इसमें रत्तीभर शक नहीं। यह मन्त्र उसकी जीवन-डोर होगी और उसे तमाम संकटों से बचावेगी। ऐसे पवित्र मन्त्रों का उपयोग किसी को आर्थिक लाभ के लिए हरगिज न करना चाहिए। इस मन्त्र का चमत्कार है हमारी नीति को सुरक्षित रखने में और यह अनुभव प्रत्येक साधक को थोड़े ही समय में मिल जायगा। हां, इतना याद रखना चाहिए कि तोते की तरह इस मंत्र को न पढ़ें। उसमें अपनी आत्मा लगा देनी चाहिए। तोते यन्त्र की तरह ऐसे मन्त्र पढ़ते हैं। हमें ज्ञान-पूर्वक पढ़ना चाहिए—अवांछनीय विचारों को निवारण करने की भावना रख कर और ऐसा करने की मन्त्र की शक्ति में विश्वास रख कर।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, ज्येष्ठ बदी ७, संवत् १९८०

विदेशी कपडे का बहिष्कार करो

पिछले सप्ताह मैंने साम्राज्य-वस्तु-बहिष्कार के आन्दोलन की निष्फलता दिखाने की कोशिश की थी। केवल व्यर्थ ही नहीं बल्कि वह हानिकर भी है। क्योंकि उसके द्वारा देश का ध्यान उस बहिष्कार की ओर से हटता है जो कि एक मात्र रामबाण और परम आवश्यक साधन है। मैंने एक दफा नहीं, कई बार कहा है कि यदि हम अपने दिमाग से अहिंसा को हटा दें, तो उन लोगों के लिए जो कि मेरी तरह इस बात को नहीं मानते कि हमारे राजनैतिक आन्दोलन में अहिंसा ही हमारे ध्येय तक पहुंचने का एक मात्र उपाय है, और जिनका यह इत्मीनान हो चुका है कि अहिंसात्मक उपाय बेकार हुए हैं, न केवल दूसरे उपायों से काम लेना उचित है—बशर्ते कि वे अधिक कारगर हों, बल्कि ऐसा करना लाजिमी भी है। परन्तु मेरा कहना तो यह है कि साम्राज्य की चीजों का बहिष्कार तबतक किसी हालत में होने लायक नहीं है जबतक कि मौजूदा तरीका मौजूद है। जहां तक मेरी नजर पहुंचती है, अहिंसा की जगह तथा अहिंसा से जो वस्तु अभिप्रत है उसकी जगह, सिर्फ सशस्त्र बगावत ही काम दे सकती है। यदि हम उसके लिए तैयारी करना चाहते हों तो हमारे राष्ट्रीय कार्यक्रम में साम्राज्य-वस्तु-बहिष्कार के लिए केवल उचित ही नहीं, बल्कि आवश्यक स्थान है। ज्यों ज्यों हम अपनी कमजोरी को महसूस करते जायंगे त्यों त्यों उसके कायम रहने और उसके पक्ष में घोर आन्दोलन करने से हमारा खून उबले बिना न रहेगा। ऐसे प्रचार का कुदरती फल यही होगा कि चारों ओर बेतरतीब और बेढंगा हिंसा-काण्ड मच जायगा। उस अवस्था में यदि वह कुचल दिया गया तो कुछ हर्ज न होगा। फिर भी वह सशस्त्र बगावत के लिए एक किस्म की तालीम मानी जायगी। जब जब दमन होगा तब तब लोग पथ-भ्रष्ट जरूर होंगे। बहुत से लोग पथ-भ्रष्ट होंगे तो कुछ लोगों का निश्चय और भी दृढ हो जायगा। और उन थोडे से निश्चयी लोगों की टोली से संभव है विलियम दि साइलेंट की सेना की तरह एक सेना उत्पन्न हो जाय। यदि राष्ट्र के कार्यकर्ता इस परिणाम पर पहुंचे हों कि भारत-वर्ष नये इतिहास की रचना नहीं कर सकता, बल्कि उसे उसी रास्ते जाना होगा जिस रास्ते योरप के देश जा रहे हैं, तो मैं उनके साम्राज्य-वस्तु-बहिष्कार के आन्दोलन को समझ सकूंगा और उसकी कद्र कर सकूंगा। फिर चाहे वह सफल न भी हो तो भी उसे एक आदर्श के तौर पर रखना चाहिए; क्योंकि वह एक कारखाना होगा जिससे आवश्यक भाप-जोश उत्पन्न हुआ करेगा। यदि भारतवर्ष चाहे तो उसे इस जीर्ण-शीर्ण साधन को ग्रहण करने का अधिकार है और दुनिया की कोई ताकत इसे उससे छीन नहीं सकती।

मगर मैं विश्वास और दृढता के साथ यह कहने की हिम्मत करता हूं कि तलवार का रास्ता भारतवर्ष के लिए खुला नहीं है। मैं साहस के साथ यह भविष्यवाणी करता हूं कि यदि भारत उस राह को पसन्द करेगा तो उसे दो में से एक बात के लिए तैयार रहना होगा—

(१) या तो भावी सैंकडों पीढियों तक विदेशी शासन को कबूल करना;

(२) या प्रायः सदा के लिए या तो बिलकुल हिन्दू या बिलकुल मुसल्मान राज्य को मंजूर करना।

मैं जानता हूं कि अभी ऐसे हिन्दू मौजूद हैं जो, यदि वे भारतवर्ष को शुद्ध हिन्दू-रूप न दे सकें तो अंगरेजों के साथ मिल-जुल कर रहने को तैयार हैं और मैं यह भी जानता हूं कि ऐसे मुसल्मान भी हैं जो तबतक अंगरेजी राज्य के अधीन रहने के लिए तैयार हैं जबतक वे सोलहों आना मुस्लिम राज्य हिन्दुस्तान के गले में न बांध सकें। पर इनकी संख्या थोडी है। उनसे मैं कुछ नहीं कहना चाहता। वे शौक से मरु-भूमि को जोतने की कोशिश करते रहें। लेकिन मैं जानता हूं कि बहुत बडी तादाद उन लोगों की है जो विदेशी आधिपत्य से घबडा उठे हैं और जो भारत को उससे छुडाने की रामबाण दवा खोजने की चिन्ता में हैं। मैं उनके लिए निराश नहीं हूं—मैं उन्हें यकीन कराना चाहता हूं कि वह स्वराज्य जिसमें हिन्दू-मुसल्मान तथा तमाम भिन्न भिन्न संप्रदाय के लोग बराबरी के नाते रह सकें, उससे भी कम समय में मिल सकता है जितना वे खयाल करते हैं—बशर्ते कि देश के विचारशील लोग उन साधनों को अपनावें जो बिलकुल अहिंसात्मक हों। मैं उन्हें यह भी विश्वास दिलाना चाहता हूं कि दूसरे किसी भी साधन से स्वराज्य मिलना असंभव है।

परन्तु यहां मैं इसी बात को गृहीत कर के चलता हूं कि महासभा के वर्तमान ध्येय के अनुसार महासभावादी ऐसा वायु-मण्डल नहीं तैयार कर सकते जो हिंसा-काण्ड के अनुकूल हो। साम्राज्य-वस्तु के बेकार बहिष्कार से अवश्य ऐसा वायुमण्डल उत्पन्न होगा, और इसलिए मैं तो यहां तक कहता हूं कि यह बहिष्कार-प्रस्ताव महासभा के ध्येय के भी खिलाफ हुआ है। लेकिन इस बात का निर्णय महज महासभा ही कर सकती है।

अतएव अब मैं पाठकों का ध्यान उसके बजाय विदेशी कपडे के बहिष्कार की ओर ही दिलाना चाहता हूं। मैं नरमदल वालों तथा महासभावादी दोनों को सुझाता हूं कि यदि वे देशी और विदेशी तमाम मिलों का कपडा छोडकर सिर्फ खादी ही अपने निजी इस्तैमाल में लावें और यदि वे रोज कुछ समय तक धर्म-भाव-पूर्वक चरखा कातें और कुटुम्ब के हर व्यक्ति को उसके लिए समझा कर तैयार करें तथा यदि वे अपनी शक्तिभर अपने पडौसियों के घर में भी चरखा पहुंचावें और खद्दर का इस्तैमाल करावें, तो देश एक ही साल के अन्दर अन्दर विदेशी कपडे का बहिष्कार करा सकता है। जिस प्रकार वे किसी भी कारण से विदेशी कपडा न इस्तैमाल करें उसी प्रकार हमारी मिलों का कपडा भी न इस्तैमाल करें। देशी और विदेशी मिलों के कपडों की मुमानियत में कुछ भेद है। वह यह कि विदेशी का बहिष्कार तो सदा के लिए एक परम आवश्यक बात है। परन्तु मिलों के कपडों का बहिष्कार सदा के लिए करने की जरूरत नहीं है। लेकिन कपडे की मौजूदा मांग को देशी मिलें कभी पूरा नहीं कर सकतीं; परन्तु चरखा और करघा कर सकता है। लेकिन खादी और चरखा अभी सर्वप्रिय और सार्वत्रिक नहीं हो पाये हैं। यह तभी हो सकता है जब भारत के विचारशील लोग उसका श्रीगणेश करें। अतएव उन्हें खादी के सिवा कोई कपडा इस्तैमाल न करना चाहिए। हमारी मिलों को हमारे आश्रय की जरूरत नहीं है। उनका माल काफी लोकप्रिय है। इसके अलावा मिलों पर राष्ट्र का अंकुश भी नहीं है। वे परोपकारिणी संस्थायें नहीं हैं। वे खालिस स्वार्थ के लिए खडी की गई हैं। उनका अपना प्रचारकार्य भी हो रहा है। यदि वे काल की गति को पहचानते होंगे तो वे अपने कपडे को सस्ता करके और उन स्थानों में कपडा पहुंचा कर जहां अभी

तक खादी नहीं पहुंच पाई है विदेशी कपड़े के बहिष्कार में सहायता देंगे। यदि वे चाहें तो खादी के साथ प्रतिस्पर्धा से अपनेको बचा सकते हैं और उसकी सहायता करके ही सन्तुष्ट रहेंगे। **जबतक हरएक राष्ट्रीय कार्यकर्ता धर्म-भाव-पूर्वक मिलके कपड़े से मुंह न मोड़ेगा तब तक विदेशी कपड़े का बहिष्कार शीघ्र नहीं किया जा सकता।** यह बात इतनी सरल है कि इसके लिए किसी दलील की जरूरत नहीं। खादी की बिकरी बढ़ाने के लिए पढ़े-लिखे लोगों के नजदीक उसे जरूर तरजीह मिलनी चाहिए।

अबतक तो मैंने इस बात पर विचार किया कि खादी का उपयोग किस तरह विदेशी कपड़े के बहिष्कार का सफल और रामबाण उपाय है और किस तरह ब्रिटिश माल के बहिष्कार से भिन्न है तथा उसके बजाय काम दे सकता है। परन्तु जब इसके साथ भूख से प्रपीड़ित करोड़ों लोगों की भूख बुझाने की खादी की शक्ति और मिला दी जाय तो उसका पक्ष इतना प्रबल हो जाता है कि किसी प्रकार उसका खण्डन नहीं हो सकता।

अब शायद यह समझना आसान होगा कि हमें क्यों चरखा-वायु-मंडल उत्पन्न करना है और क्यों उन तमाम स्त्री-पुरुषों और बालकों को जो राष्ट्र के कल्याण के लिए चरखे की आवश्यकता समझते हैं धर्म-भावपूर्वक नित्य कुछ समय चरखा कातने की आवश्यकता है। हिन्दुस्तान के किसान दुनिया में सबसे ज्यादा मिहनती और शायद सबसे ज्यादह निकम्मे हैं। यह मिहनत और यह निकम्मापन दोनों उसपर लादी गई हैं। खेतों में फसल पैदा करने के लिए काम किये बिना चारा नहीं। ईस्टइंडिया कम्पनी ने हाथ-कताई का संहार कर के उन्हें निकम्मा बना दिया। क्योंकि उन्हें काफी काम नहीं रह गया। वे किसान अब फिर चरखे को तभी ग्रहण कर सकते हैं जब हम खुद उसे चलाकर उनके सामने मिसाल पेश करें। महज उपदेश से उनपर बहुत कम असर होगा। और यदि इस तरह प्रेम के वशीभूत होकर हजारों लोग कातने लगेंगे तो यह भी मुमकिन है कि कताई के लिए मजदूरी ज्यादह दी जा सके और फिर भी खादी की कीमत वही रह सके। मैंने खुद सत्याग्रहाश्रम में बनी खादी सस्ती बेची थी; क्योंकि जब मैं १९१९ में पंजाब में घूम रहा था तब मनों सूत वहां की बहनों ने मुझे प्रेम-पूर्वक अर्पण किया था। यदि मैं चाहता तो कातने का पेशा करने वालों को खादी की कीमत कम न कर के अधिक मजदूरी दे सकता था। मैंने ऐसा इसलिए नहीं किया कि खादी-आन्दोलन की वह प्रथम अवस्था थी और मैं उस समय ऐसे-वैसे कते सूत की भी कताई बहुत-८ आना पौंड-देता था।

यदि नरमदल और महासभा के लोगों ने केनिया के निर्णय से घायल होकर केनिया के गोरे-निवासियों के सिर पर साम्राज्य-वस्तु-बहिष्कार को फेंक मारा है, जो कि बेकार है, तो फिर वे क्यों अपना चित्त शान्त करके खादी-आन्दोलन को सफल बनाने में अपनी सारी शक्ति न लगावें जिससे तमाम विदेशी कपड़े के बहिष्कार का निश्चय हो जाय? क्या मुझे इस बात के साबित करने की आवश्यकता है कि विदेशी वस्त्र के बहिष्कार से न केवल केनिया के भारतवासियों के दुःख दूर हो जायंगे बल्कि स्वराज भी मिल जायगा?

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

ग्राहक होनेवालों को

चाहिए कि वे सालाना चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी. पी. भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है।

राजपूतों का कर्तव्य

काठियावाड़ में राजपूत परिषद् होनेवाली है। उसमें हाजिर रहने की मुझे बड़ी लालसा रहेगी। पर यह असंभव है।

काठियावाड़ शूर-वीरों की भूमि थी। राजपूतों की बहादुरी संसार-प्रसिद्ध है। परन्तु प्राचीन बहादुरी की स्तुति से आज राजपूत बहादुर नहीं हो सकते। ब्राह्मणों ने ब्रह्मज्ञान छोड़ा, राजपूतों ने रक्षा-धर्म छोड़कर वणिक वृत्ति स्वीकार की, वणिक दास बन गये, फिर शूद्र यदि सेवक न रहे तो इसमें उसे कौन दोष लगा सकता है? चारों वर्णों के पतित होने पर उनमें से एक पांचवां वर्ण उत्पन्न हुआ—वह अस्पृश्य कहलाया। पांचवें वर्ण को उत्पन्न करके उसे दबा कर चारों वर्ण खुद दब गये और पतित हुए।

ऐसी कठिन दशा से हिन्दुओं का उद्धार कौन करेगा? हिन्दुओं की रक्षा यदि न हो तो मुसल्मानों की रक्षा नहीं हो सकती। बाईस करोड़ का यदि पतन हो तो सात करोड़ नहीं टिक सकते। जब रेलगाड़ी चलती हो तब हम नजदीक नहीं खड़े रह सकते; क्योंकि उसका तीव्र वेग हमें खींच ले जाता है।

अतएव हिन्दुस्तान के आजाद होने की दवा हिन्दुओं की उन्नति में है। हिन्दुओं की उन्नति यदि केवल धार्मिक हो तभी हिन्दुस्तान बच सकता है। हिन्दू लोग यदि पश्चिम के पशु-बल का अनुकरण करने लगें तो खुद भी गिरेंगे और दूसरों को भी गिरावेंगे।

इस पतित हिन्दुस्तान का उद्धार कौन कर सकता है? भयभीत को निर्भय कौन कर सकता है? यह धर्म तो क्षत्रियों का है। अतएव राजपूत-परिषद् यदि अपना कर्तव्य समझने और उसका पालन करने की इच्छा करे तो उसे अपने धर्म का विचार करना पड़ेगा।

रक्षा करने के लिए तलवार की जरूरत नहीं। तलवार का जमाना चला गया अथवा जाने की तैयारी में है। तलवार का अनुभव संसार ने खूब कर लिया है। संसार अब तलवार से थक उठा है। ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिम भी अब तलवार से थक गया है। जो मार कर रक्षा करता है वह क्षत्रिय नहीं; बल्कि जो मर कर रक्षा करता है वही क्षत्रिय है। जो भाग खड़ा हो वह बहादुर नहीं, बल्कि जो छाती खोल कर खड़ा रहे और प्रहार किये बिना प्रहार सहे वही क्षत्रिय है।

पर जरा देर के लिए मान लें कि तलवार की आवश्यकता है। तो इससे क्या? यदि राम ने तलवार चलाई है तो वे पहले चौदह साल वन में तपस्या कर के निर्मल हो गये थे। पाण्डवों ने भी वनवास भोगा था। अर्जुन को ठेठ इन्द्र के पास जा कर दिव्य अस्त्र प्राप्त करना पड़े थे। शस्त्र-बल के पहले तपोबल दरकार है। यदि वह न हो तो यादवी मच जाय और जिस प्रकार यादव अपने ही शस्त्रों से कट मरे उसी प्रकार हमारे शस्त्र हमारा ही संहार कर डालेंगे।

अतएव राजपूत-परिषद् का प्रथम कर्तव्य आत्मोन्नति है। राजपूत अपने हकों की बात तो करेंगे; पर अपने धर्म की बात पहले करें। व्यसनों को छोड़ें, सादगी ग्रहण करें, गरीब से गरीब काठियावाड़ी को पहचानें, उनके दुःख में शरीक हों, उनकी सेवा करें। इस सेवा करने के हक को कोई नहीं छीन सकता। काठियावाड़ के किसी भी व्यक्ति को काठियावाड़ छोड़ना पड़े तो राजपूतों को लज्जित होना चाहिए। जहाँ चरखा है, तांत है, करघा है, वहां आजीविका रही है। काठियावाड़ की अमृत जैसी हवा को छोड़ कर बम्बई की गंदी हवा खाने काठियावाड़ी क्यों जायं? इसका जवाब दूसरे काठियावाड़ियों को देने के पहले राजपूतों को देना चाहिए। इसका लांछन काठियावाड़ के राजाओं पर तो रहा है। काठियावाड़ के राजा

यदि प्रजा के हित का ही विचार करें तो काठियावाड की प्रजा को यह देश-निकाला क्यों भोगना पडे? राजपूत-परिषद् में राजा लोग तो न होंगे; पर राजपूत यदि चाहें तो राजाओं को भी समझा जाना पडे। यह जमाना प्रजा-सत्ता का है। अतएव प्रजा-जन जैसे होंगे वैसे राजा को होना और रहना पडेगा। प्रजा-जागृति में राजपूत अच्छी सहायता दे सकते हैं।

दूसरों के ऐब बताने के बदले यदि परिषद् के सभ्य अपने ऐब दूर करने में अधिक समय लगावेंगे तो वे दूसरों को भी सन्मार्ग दिखावेंगे। आजकल हम अपने कष्टों के लिए औरों की निन्दा करते हैं। हम भूल जाते हैं अथवा भूल जाना चाहते हैं कि अपने कष्टों के लिए खुद हमी जिम्मेदार हैं। यदि जुल्म को बरदाश्त करने वाले न हों तो वहां जालिम क्या कर सकता है? जबतक हम अधीन होने की कमजोरी को कायम रक्खेंगे तबतक अधीन करने वाले को गालियाँ देना आसान परन्तु व्यर्थ का [illegible]। अपनी कमजोरियों को खोज करना है तो कठिन, पर [illegible] फलदायी है। और वह कमजोरी दूर करने का इलाज हमारे ही पास है अतएव कोई उसे हमसे छिना नहीं सकता।

राजपूत-परिषद् के सभ्य इन विचारों को प्रधान-पद दे कर आत्म-निरीक्षण करें, यही उनके प्रति मेरी प्रार्थना है।

अन्त में उन्हें एक अनुभव-बिन्दु देता हूं। भाषणों से और भाषण करने वालों से डरना। उनसे दूर रहना अच्छा है। यदि चुपचाप काम करने की रीति अख्त्यार करेंगे तो काम सुधरेगा। भूख के कष्ट को रोने वाला मनुष्य भूखे की भूख दूर नहीं कर सकता। परन्तु यदि एक जन्मतः गूंगा साधु पुरुष उसके पास एक मुट्ठी ज्वार-बाजरी ले जायगा तो भूखे आदमी की आंखों में जान आ जायगी, उसके चेहरे पर लाली झलकने लगेगी और होंठ पर हास्य दिखाई देगा। उसकी आंतें उस गूंगे आदमी को दुआ देंगी। ईश्वर व्याख्यानों के द्वारा हमें शिक्षा नहीं देता। वह सदा कार्यमय रहता है। जब हम सो जाते हैं तब भी वह जगता रहता है। उसे अपने काम में बोलने का समय ही नहीं रहता। राजपूत केवल काम करके ही काठियावाड के दूसरे वाचाल, राज-काजी स्वयंसेवकों को पदार्थपाठ पढावें—यही उनसे मेरी विनय है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

पण्डित मालवीयजी और मोपला

मोपलाओं की मदद करने के संबंध में मैंने जो प्रार्थना यं० इं० में की है उसके संबंध में भारतभूषण मालवीयजी लिखते हैं—

"मोपला स्त्री और बालकों की सहायता के लिए आपने जो कुछ लिखा है, उससे मैं अक्षरशः सम्मत हूं।

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥
ते साधवः भुवन्मण्डलमौलिभूता ये साधुतां [illegible] भजितः च सः।
अपकारिषु मूढेषु ये भवत्युपकारिणः ॥

यह मेरा अभिप्राय नहीं कि इन सब मोपलाओं ने हिन्दुओं का अपकार किया है, किन्तु यदि किया भी हो तो उनके दुःख की दशा में उनके साथ उपकार करना यही अपने धर्म का महत्व है।

अक्रोधेन जयेत्क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्।
जयेत्कदर्यं दानेन सत्येन अनृतम् जयेत् ॥

मोपलाओं की सहायता के लिए अभी मुझे सिर्फ छः सौ की रकम मिली है। उनमें पांच सौ तो एक बहोरा महाशय के दिये हुए हैं। मैं आशा करता हूं कि भाई-बहन यथाशक्ति मदद करेंगे।

मो० क० गांधी

टिप्पणियां

देशी-राज्यों के लिए राजनैतिक काम

श्री गांधीजी ने 'काठियावाड क्या करे'? नामक लेख में 'काठियावाड राजनैतिक परिषद्' के लिए राजनैतिक काम बताये हैं। वे दूसरे प्रान्तों के देशी-राज्यों के लिए भी उपयोगी हो सकते हैं। उसमें आप लिखते हैं:—

"सारे भारतवर्ष में, पर खास करके काठियावाड में अभी मौन का समय आया है। काठियावाड पर तो यह सदा का इल्जाम है कि हम बातों में तो बहादुर हैं; पर काम करने में दुम दबाते हैं। यदि बातें बनाने की कला दरकार हो तो वाग्देवी अपना वरद हस्त उनके सिर पर रक्खेगी। दक्षिण आफ्रिका में भी मुझे यह अनुभव होता था। वहां के काठियावाडी इसकी गवाही देंगे। यह न समझिए कि वहां कोई भी मुझ जैसे काम करनेवाले न थे। वे अपवाद-रूप थे। लेकिन भाषण करनेवालों की तो सृष्टि विधाता ने काठियावाड में ही की है।

अतएव काठियावाडियों को अब अपनी जबान बन्द कर लेने की जरूरत है। कलम भी शौक से कलमदान में आराम करे। यदि परिषद् हो तो इसलिए नहीं कि अगले साल के व्याख्यानों का क्रम रचा जाय, बल्कि इसलिए कि कार्यक्रम की रचना की जाय। हमने अनुभव से यह देख लिया है कि लोगों में जागृति खूब है और हम मौका पडने पर हजारों लोगों को एकत्र कर सकते हैं। इस ज्ञान की आवश्यकता थी। अब हजारों लोगों को एकत्र करने की जरूरत नहीं। इससे तो समय और धन फजूल बरबाद होगा।

काठियावाड की छब्बीस लाख की आबादी में काम करना आसान है। खादी का, पाठशालाओं का, अन्त्यजों का, शराब-अफीम के निषेध का काम आवश्यक है। ये ऐसे काम हैं जो तुरन्त फल दे सकते हैं। यदि भूख के कारण एक भी आदमी को काठियावाड छोडना पडे तो राजा और प्रजा दोनों को शरमिन्दा होना चाहिए। काठियावाड में क्या चीज नहीं है? जमीन बढिया है, होशियार और तन्दुरुस्त स्त्री-पुरुष हैं। काठियावाड में जितना चाहिए उतना कपास होता है। वस्त्रकारों ने ही खुद मुझे कहा है कि कितने ही वस्त्रकारों को रोजी न मिलने से काठियावाड छोडना पडता है। दो साल पहले उन्हें काम मिलता था। आज तो और भी ज्यादह मिलना चाहिए। उसके बदले कम क्यों हो गया? इस गिरी हालत के लिए क्या काठियावाड के कार्यकर्ता जिम्मेवार नहीं हैं? कार्यकर्ता लोग यदि व्याख्यानों का पेशा बन्द कर के कपास से कपडा बनाने की तमाम विधियों का ज्ञान प्राप्त कर लें तो वे काठियावाडियों की आर्थिक हालत एक साल के अन्दर अच्छी कर सकें। वे काठियावाड से विदेशी या मिल के कपडे का बहिष्कार कर दें। मिल के कपडे से बहुत लोगों का धन थोडे लोगों की जेब में जाता है। जब खून दिमाग में एक जगह जम जाता है तब धनुर्वात की बीमारी होती है। उससे बचना मुश्किल होता है; फस्त खुलवाने से आराम हो तो भले ही। जब बहुतेरे लोगों का रुपया एक आदमी के पास इकट्ठा हो जाता है तब कहना चाहिए कि उसे आर्थिक धनुर्वात हुआ है। तन्दुरुस्त आदमी के शरीर के रग रग में खून बा-कायदा दौडा करता है, कहीं एक जगह जम नहीं जाता, जिस हिस्से को जितनी जरूरत होती है उतना उसको मिला करता है उसी प्रकार तन्दुरुस्त आर्थिक हालत में धन का संचार यथा-नियम जितनी जहां जरूरत होती है उतना होना चाहिए। ऐसे आर्थिक आरोग्य को प्राप्त करने का एक बडा जर्या है चरखा। चरखे के लोप होने से दुनिया का

धन लंकाशायर में खिंच कर चला जाता है। यह महारोग का चिह्न है। यह बीमारी चरखे के पुनरुद्धार से ही दूर हो सकती है।

यदि इस सादे और चमत्कारी नियम को काठियावाड़ के स्वयंसेवक समझ गये हों तो वे कपास से कपड़े बनाने की तमाम विधियों का ज्ञान प्राप्त करके लोगों में उसका प्रचार करेंगे। यह पहला राजनैतिक काम है।

काठियावाड़ में राष्ट्रीय शालायें कितनी हैं? बेपढ़े लड़के और लड़कियां कितनी हैं? उनके लिए काफी पाठशालायें हैं? यदि न हों तो ऐसी शालाओं की स्थापना करके उनके द्वारा भी अक्षर-ज्ञान के साथ ही चरखा-ज्ञान भी कराया जा सकता है। यह हुआ दूसरा राजनैतिक काम।

अस्पृश्यता के दोष को दूर करना तीसरा राजनैतिक काम है। इस कलंक को धोते हुए भी चरखा-प्रचार सहज किया जा सकता है।

यहां दूर बैठे हुए मैं यह नहीं कह सकता कि शराब-अफीम के निषेध की कितनी जरूरत है। बाहर का असर भी थोड़ा-बहुत हुए बिना न रहेगा। यह चौथा राजनैतिक काम हुआ।

ये काम मैंने मिसाल के तौर पर बताये हैं। ऐसे कितने ही काम वहां के जानकार लोग खोज सकते हैं।

इसपर कोई शायद यह कहे कि ये तो समाज-सुधार-संबंधी काम हैं। ये राजनैतिक काम कैसे हो सकते हैं? ऐसा कहना मिथ्याभास है। राजनैतिक के मतलब है राजा या राज्य से संबंध रखने वाला। राजा कौन है? प्रजा-तन्त्र का संचालक। प्रजा-तन्त्र के संचालक को पूर्वोक्त हरएक अंग की जांच करनी ही पड़ती है। यदि वह जांच न करे तो वह राजा नहीं। जिस संस्था में उसकी अवगणना हो अथवा उसे गौणपद दिया जाय वह राजनैतिक नहीं। राजनैतिक परिषदों का उद्देश है राजा की सहायता करना अथवा राजा यदि राज-पथ छोड़े तो उसपर अंकुश रखना। ऐसी सहायता वही शख्स दे सकता है, ऐसा अंकुश वही शख्स रख सकता है जिसका चलन प्रजा में राजा के ही जैसा हो। प्रजाजन में ऐसा वास्तविक चलन उसीका हो सकता है जो प्रजा की शुद्ध सेवा करता हो। यह सेवा पूर्वोक्त कामों के द्वारा ही हो सकती है। अतएव राजनैतिक परिषदें यदि सचमुच राजनैतिक काम करना चाहती हों तो पूर्वोक्त सेवा उनकी आरंभिक शिक्षा है, और इसलिए वह अनिवार्य है।

इसीलिए यह सेवा सत्याग्रह की अच्छी और आवश्यक तालीम है। जिसने इतना नहीं किया उसे प्रजा के लिए सत्याग्रह करने का अधिकार नहीं। प्रजा उसका स्वागत भी न करेगी। इस सेवा के बिना हम के-भग्न सेवक या सत्याग्रही साबित होंगे।

जो ऐसी सेवा करेंगे उनकी बात राजा-प्रजा दोनों को सुननी पड़ेगी। सत्याग्रही हमेशा बलवान् तो होता ही है; पर उसमें भीरुता की गन्ध तक नहीं आती। परन्तु उसकी निर्भयता के हिसाब से ही उसकी नम्रता भी बढ़नी चाहिए। विवेक-शून्य की निर्भयता उसे घमण्डी और उद्दंड बनाती है। गर्व और सत्याग्रही के बीच तो समुद्र लहराता है। विवेकवान् की बात महा अभिमानी राजा को भी सुनना पड़ती है। बिना सेवा के नम्रता और विवेक नहीं आते। सत्याग्रही को स्थानिक अनुभव होना चाहिए। वह भी सेवा के बिना नहीं आ सकता। राजाओं पर टीका-टिप्पणी कर देना—यह अनुभव नहीं कहा जाता। काठियावाड़ी कार्यकर्ता बहुतेरे महज राजकाजी हुआ करते हैं। राजकाजीपन और सेवा के साथ बहुत कम संबंध होता है। राजकाजी लोग क्या है? राजवर्ग। प्रजा उन्हें अपने दिल का हाल नहीं सुनाती। मेरी बात-पन का अनुभव यही है। काठियावाड़ी यदि सेवा करना चाहते हों तो राजकाजी न रहकर भंगी, किसान, जुलाहा, कुम्हार, बढ़ई, आदि बनें। उसमें अपने अक्षर-ज्ञान और राजकाजी अनुभव का संयोग करें। इस संयोग के साथ यदि सत्य और अहिंसा की पुट हो तो इस त्रिपुटी से जो शक्ति पैदा होगी उसका मुकाबला कोई राजशक्ति नहीं कर सकती।"

सत्याग्रही गालियां

'अधीर काठियावाड़' नामक लेख में मैंने सत्याग्रही गालियों का उल्लेख किया है। एक सज्जन सत्याग्रही गालियों की फहरिस्त चाहते हैं, कि जिससे वे गालियां सीखकर देने लग जायं! पहली शर्त तो यह है कि अ-सत्याग्रही अथवा दुराग्रही मनुष्य गालियां दे ही नहीं सकता और यदि देने लगे तो उसके मुंह में वे अवश्य नहीं दिखाई देंगी। जो शख्स इस नियम को समझ लेगा उसे फहरिस्त देने की जरूरत न रहेगी।

सत्याग्रही गालियां अनन्त हैं। जिस प्रकार प्रेम की कोई मर्यादा नहीं उसी प्रकार सत्याग्रही गालियों की भी सीमा नहीं। यदि मैं वल्लभभाई को सत्याग्रही गालियां देना चाहूं तो यह कहूं कि 'यह पटेलवा खुद तो नंगा हो ही गया, अब दूसरों को लूटने की ठानी है। इसीसे दस लाख रुपये उसकी नजर में कोई चीज ही नहीं!' अब्बास साहब को यदि सत्याग्रही गालियां देनी हों तो कहें—'बुड्ढा ठहरा! घर-बार छोड़कर सारा दिन भटकता फिरता है, न धूप की परवा न छांह की! लोगों को परेशान करता है? बुड्ढा है! कोई क्या कर सकता है?' श्री पट्टणीजी को ऐसी ही गालियां देना हो तो कहें—'काठियावाड़ के राजाओं को नचाते हैं! गवर्नरों को फुसलाकर भावनगर को ऊंचा चढ़ाते हैं और अब काठियावाड़ियों को फुसलाने चले हैं। पर हम भी अगर सच्चे भावनगरी होंगे तो उन्हें मजा बता देंगे! हम राजाओं या साहबों जैसे सीधे-भोले नहीं। हम तो हैं "जैसे के साथ तैसे।"'

ये तो मैंने सत्याग्रही गालियों के सौम्य प्रयोग कर के दिखाये। पूरी पूरी गालियां खुद मैं भी नहीं जानता। मैं तो प्रेमाग्रही हूं। यदि प्रेम-मूर्ति होता तो गोपियों की तरह गालियां लिख लेता। 'माखन-चोर' 'कपटी' आदि विशेषण कृष्ण को गोपी ही लगा सकती है। नरसिंह महेता तो कृष्ण जैसे अखण्ड ब्रह्मचारी को 'व्यभिचारी' कहता है और कृष्ण उसकी गालियां खा कर उसका हुक्म बजा लाता है।

यह सब किस तरह होता होगा—यह बात शुकदेव जैसे जन्मतः निर्दोष मनुष्य जान सकते हैं। गुजरात के आधुनिक इतिहास में तो एक विशेषण 'प्याज-चोर' है, जिसका प्रयोग मैंने श्री मोहनलाल पंड्या के लिए किया है। वह गोपियों की गालियों से कुछ मिलता-जुलता है। पाठकों को मैं इतनी खबर खास तौर पर दे देना चाहता हूं कि यह सत्याग्रही गालियों की सूची मांगने वाले सज्जन भावनगरी हैं। मैं आशा करता हूं कि मैंने जो नमूने पेश किये हैं उनसे दूसरी वे खुद बना लेंगे। यदि भावनगरी यह पाठ सीख लें तो मुझे निश्चय है कि अब भी भावनगर में वे बिना शर्त काठियावाड़ राजकीय परिषद् कर सकते हैं। पर—

"सत का मारग है शूरों का नहिं कायर का काम है जी"

"लोकप्रिय" का अर्थ

एक शिक्षक लिखते हैं—

"आप लिखते हैं कि सार्वजनिक संस्थायें तभी तक जीवित रहनी चाहिए जबतक वे लोकप्रिय हों। जबलोग जब उनकी सहायता करना बन्द कर दें तब वे अवश्य बन्द हो जानी चाहिए। यह पढ़ कर हमारी राष्ट्रीयशालाओं के संबन्ध में कुछ उलझनें पैदा हुई हैं। मेरी समझ में तो हमारी कितनी ही राष्ट्रीय शालायें

(देहात की) ऐसी हैं कि जिनमें गांव के लोग धन नहीं देते हैं। यही नहीं बल्कि उनमें अपने लड़कों को भी नहीं भेजते। मतलब यह कि ऐसी शालाओं में थोड़े विद्यार्थियों पर बहुत खर्च होता है और यह खर्च बड़े शहरों से अथवा सारे ताल्लुके से चन्दा करके पूरा किया जाता है। फिर कितनी ही जगह तो १९२१ के क्षणिक उत्साह में आकर लोगों ने सरकारी मदरसे खाली कर के राष्ट्रीय मदरसे कायम किये —परन्तु उस उत्साह के मन्द पड़ने पर अब लोग यदि सरकारी मदरसे न हों तो अपने लड़कों को राष्ट्रीय शालाओं में भेजते हैं परन्तु उनका खर्च नहीं देते। अतएव विद्यापीठ की अथवा दूसरी उसी प्रकार की सहायता से (जो शाला के खर्च के लिए काफी नहीं होती) पाठशालायें किसी न किसी तरह चलाई जा रही हैं। इससे शिक्षक कनिष्ट प्रकार के होते हैं। फलतः न तो बालकों में राष्ट्रीय भावना उत्पन्न होती है और न उन्हें मामूली शिक्षा ही मिलती है। संक्षेप में ये दोनों प्रकार की शालायें लोकप्रिय नहीं होतीं। तो क्या आपके पूर्वोक्त वचन के अनुसार ये शालायें बन्द होनी चाहिए? मैं मानता हूं कि आपके अभिप्राय के अनुसार ये पाठशालायें बन्द होनी चाहिए। या संभव है 'लोकप्रिय' शब्द अर्थ का आपने जो किया होगा उसे मैं न समझा न हूंगा।"

'लोकप्रिय' का अर्थ जो लेखक ने किया है वही मैंने अपने लेख में माना है। मैंने सिद्धान्त के अनुसार अपने विचारों को प्रकट किया है और उस विचार के अनुसार तो जो गांव पाठशाला की सहायता न करे वहां हम शाला न रक्खें, यदि रक्खें तो उसे 'लोकप्रिय न' कहें। परन्तु नवीन हल-चल के उत्साह में हमें यह मालूम हो सकता है कि जगह जगह पाठशालायें कायम करना उचित है और समाज रुपया देता है तो हमें उन्हें चलाते हैं। फिर भी मैं ऐसे काम को निर्दोष नहीं मानता। इसीसे कितनी ही ईसाई-पाठशालायें उनके उद्देश को देखते हुए निरर्थक मालूम होती हैं। हम देखते हैं कि एक जगह से एकत्र धन का उपयोग दूर दूसरी जगह किया जाता है। फिर ऐसा करने से हम जिस विभाग के लिए ऐसा करते हैं वह अपंग हो जाता है। अतएव हम जिस हद तक पूर्वोक्त सिद्धान्त के अनुसार चलेंगे उस हद तक मैं कहूंगा कि हम ठीक रास्ते जा रहे हैं। इस न्याय के अनुसार यह संभव है कि जिस गांव में मां-बाप न लड़के भेजें न रुपया दें वहां रुपया लगाना फजूल हो।

लेकिन इसपर यह प्रश्न तुरन्त उठता है कि इस न्याय के अनुसार तो अन्त्यज-शाला एक भी नहीं खोली जा सकती। क्योंकि अन्त्यजों में जब हमारा काम 'लोकप्रिय' हो तब देखा जायगा! फिर कितने ही गांवों में सारा हिन्दू-समाज इसका विरोधी होता है—और यदि विरोधी नहीं तो उदासीन होता है।' यह बताता है कि सिद्धांत एकदेशी नहीं होते। कितने ही सिद्धान्तों का उनमें कितने ही तो परस्पर विरोधी होते हैं—एक साथ प्रयोग करना पड़ता है। अतएव सबको मान कर किया हुआ काम अधिक फलदायी साबित होता है।

अन्त्यजों के तो हमने पर काट डाले हैं, उनकी सद्भावनाओं को हमने दबा दिया है। अतएव उनके अन्दर बहुतेरा काम तो हमें प्रायश्चित्त के रूप में करना पड़ेगा। मदरसे, कुवे, मन्दिर हमीको बनाने की जरूरत है। यह हमारे सिर उनका कर्ज है। फिर यह धर्म लोकप्रिय नहीं हो सकता। जिन्हें यह प्रिय हो वे उसके लिए रुपया दें और फल की आशा न रख कर काम करें। यहां 'लोकप्रियता' का अर्थ हमें दूसरी तरह करना चाहिए। और ऐसी उलझन में ही धर्म-संकट उपस्थित होता है। उस जगह भिन्न भिन्न सिद्धान्तों का एकीकरण कर के कार्य करने में विवेक-दृष्टि की परीक्षा है।

मुसाफरों की गन्दी आदतें

रेल के तीसरे दरजे में सफर करनेवाले एक महाशय लिखते हैं कि मुसाफिरों की बुरी आदतों के कारण रेल की तीसरे दरजे की मुसाफरी असह्य हो गई है। इस दुःख से बचने के लिए एक छोटीसी झाडू और एक ढक्कनदार थूकदानी साथ रखनी चाहिए। बुहारी से डब्बा साफ करते रहें और यदि कोई अन्दर थूकने लगे तो उसे थूकदानी में झेल लें! ऐसा करने से यह कष्ट कुछ कम हो सकता है।

इसमें कोई शक नहीं कि जिन्हें सफाई पसन्द है उन्हें तो गन्दगी असह्य ही है। फिर भी तीसरे दर्जे में सफर किये बिना हमारा छुटकारा नहीं। जब मैं हमेशा तीसरे दर्जे में ही सफर करता था तब मैंने पत्रिकायें प्रकाशित की थीं और उन्हें यात्रियों में बंटवाता भी था। फिर मेरा काम बदल गया तब पत्रिका का काम एक ओर रह गया। फिर तो मैं अपंग हो गया; अतएव तीसरे दरजे की सफर का सुख चला गया और उसके साथ उसका दुःख भी न रहा। परन्तु उनकी मीठी स्मृति अभी ताजी बनी हुई है और फिर ताजी करने की उम्मीद रखता हूं।

यह आवश्यक है कि पत्रिका हरएक स्वयंसेवक बांटे और उन्हें पढ़ सुनावे। उसके साथ ही झाडू का प्रयोग करना चाहिए। थूकदानी का काम कठिन है। ऐसा करते हुए पिट भी जाना पड़े और फिर भी संभव है कि मुसाफिर लोग उसमें थूकने से इन्कार करें। झाडू का प्रयोग आवश्यक है। मुसाफिरों को डब्बे में कूड़ा कचरा न करने के लिए समझावें भी। फिर भी यदि कूड़ा-कचरा हो जाय तो झाडू से प्रेम-पूर्वक उसे साफ कर दें। थूकदानी के इस्तेमाल से एक तरह की गंदगी हटा कर दूसरी तरह की प्रचलित करने का अन्देशा है। एक दफा थूकने के बाद वह ठीक ठीक साफ होनी चाहिए। थूकदानी भी ऐसी हो जिसमें अंदर जोड़ न हो, जो फट न जाय और आम तौर बड़ी हो। मैं तो ऐसे समय कागजों से काम लेता था। जहां किसीने थूका हो वहां कागज से साफ करने से एक हो तो हाथ नहीं खराब होता और दूसरे वह साफ भी अच्छी तरह हो जाता है। फिर यदि धोना चाहें तो धो भी सकते हैं। ऐसा करने से दूसरे थूकने वाले शरमिन्दा होते हैं। और कम थूकते हैं। खेद की बात तो यह है कि स्वयंसेवक स्वयं सफाई के नियमों का हमेशा ख्याल नहीं करते। दूसरों की सुविधा का खयाल हम लोगों में बहुत ही कम दिखाई देता है। इसीसे रेल में, जहाज में, जहां जाइए तहां बे-हद गंदगी दिखाई देती है। लड़कपन से ही यदि साफ सुथरा रहने की शिक्षा दी जाय और हम यह समझें कि वे पालन करने के लिए हैं तभी ऐसा सुधार हो सकता है। पाठकों को शायद खबर न हो कि रेल के डब्बों में इस तरह गंदगी करना रेल के कानून के अनुसार अपराध है। परन्तु किसीपर मुकद्दमा नहीं चलाया जाता। क्योंकि जुर्म करने वालों की संख्या बहुत है और न करने वालों की बहुत कम। इसीसे यह कहावत पड़ गई है कि जिस कानून को बहुसंख्यक लोग मानें उसीका व्यवहार थोड़े लोगों के खिलाफ किया जा सकता है। अर्थात् ऐसे कानून के लिए अनुकूल वायुमण्डल की आवश्यकता है। उसका विशेष अर्थ यह हुआ कि बहुतेरे कानून निरर्थक होते हैं। वायुमण्डल तैयार होने के बाद थोड़े लोग खुद-ब-खुद रिवाज को देखकर उसके अनुसार चलते हैं।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष १] [अंक ४२

मुद्रक-प्रकाशक
वेणीलाल छगनलाल बूच

अहमदाबाद, ज्येष्ठ बदी १४, संवत् १९८०
रविवार, १ जून, १९२४ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

हिन्दू-मुसल्मानों का तनाज़ा

उसका कारण और उपाय

पाठकगण,

यदि यह सारा अंक हिन्दू-मुसल्मान-एकता के ही मजमून से भर जाय तो पाठक मुझे मुआफी दें। यदि पाठक इस बात से मेरे साथ इत्तफाक रखते हों कि आज मुल्क के सामने इससे बढ़कर मार्के का या जरूरी कोई मसला नहीं है तो उन्हें ऐसा करने में जरा भी कठिनाई न होगी। मेरी राय में तो यह एक ही मसला हमारी तमाम पेशकदमी को रोक रहा है। इसलिए पाठकों से मेरी दरख्वास्त है कि वे इस बयान को पूरे तौर से ध्यान से पढ़ें और इसके मुतअल्लिक उनके अपने ख्यालात या दूसरी वाकिफियत जो इस मामले पर ज्यादह रोशनी डाल सके (उसका छापा करना जरूरी नहीं है) उनके पास हो तो मुझे भेज दें। उसी तरह इसमें अगर किसी हकीकत या ख्याल में गलती दिखाई दे तो वह भी दुरुस्त करके भेज दें।

मो० क० गांधी]

हिन्दुओं का इल्जाम

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की मार्फत टांगानिका (पूर्वी अफरीका) में रहने वाले एक हिन्दू सज्जन ने मुझे एक संदेसा भेजा था कि "गांधीजी से कहना, कि मुल्तान में हिन्दुओं पर जो जोरोजुल्म हुआ है उसके जिम्मेवार आप हैं।"

अबतक मैंने यह संदेसा नहीं छापा था। क्योंकि मैं इस आला मसले पर अपने ख्यालात जाहिर करने के लिए तैयार न था। परन्तु यह संदेसा आने के बाद मेरे पास रोज खत पर खत चले आ रहे हैं, जिनमें से बहुतेरे तो मशहूर मित्रों के हैं। कितने ही तो यहां तक कहते हैं कि मोपलाओं की ज्यादतियों के लिए भी मैं ही जिम्मेवार हूं। बल्कि खिलाफत की तहरीक के पैदा होने के बाद जितने हुल्लड़ हुए और जहां हिन्दुओं को जान-माल का नुकसान उठाना पड़ा, उन सबके लिए मैं ही जवाबदेह हूं।

इनकी दलील इस किस्म की है—"आपने हिन्दुओं से कहा कि खिलाफत के मामले में मुसल्मानों का साथ दो। आपने खुद अपनेको इस मामले के साथ एक कर दिया। इससे इसको इतना रुतबा मिल गया जितना कभी न मिलता। आपकी इस कार्रवाई से ही मुसल्मान जग पड़े और एक हो गये। इससे मौलवियों को वह इज्जत मिली जो पहले कभी न मिली थी। और अब खिलाफत का निपटारा होगया तो जगे हुए मुसल्मानों ने हिन्दुओं के खिलाफ एक प्रकार की 'जेहाद' छेड़ दी है। मेरे इस इल्जाम का सार मैंने सीधी-सादी, समझ में आने लायक जुबान में यहां दिया है। कितने ही खतों में तो ऐसी ऐसी गालियां दी गई हैं जिन्हें अखबार में नहीं छाप सकते। यह तो हुई हिन्दुओं के इल्जाम की बात।

मुसल्मानों के इल्जाम

एक मुसल्मान दोस्त लिखते हैं—

"मुसल्मान कौम बड़ी भोली-भाली और दीन-परस्त है। इससे उसने दिल में ख्याल किया कि खिलाफत पर बड़ी आफत आ गुजरी है और उसकी हिफाजत महज हिन्दू और मुसल्मान की मुत्तहिदा आवाज से ही हो सकती है। इन सीधे-भोले लोगों ने आपकी फसीह तकरीरों के जोश में आकर सरकारी मदरसों, अदालतों और धारा-सभाओं का बहिष्कार करने में सबसे पहले कदम बढ़ाया। अलीगढ़ की सबसे नामी संस्था को सर सैयद अहमद जैसे शख्स की सारी जिन्दगी की तपस्या का फल कह सकते हैं। वह ऐसी तमाम संस्थाओं की नाक थी और वह ठीक थी। वह संस्था इसके बदौलत मिट्टी में मिल गई। क्या आप हिन्दुओं की कोई ऐसी संस्था दिखा सकेंगे जो इस कदर बरबाद हुई हो? मैं सैंकड़ों तुलबा को जानता हूं जिनसे कहा गया है कि तुम्हें मजहबन् पढ़ाई छोड़ देनी चाहिए और उनकी पढ़ाई बरबाद होगई। ये लोग आसानी के साथ विश्व-विद्यालय की ऊंची पदवियां और इनाम पा सकते थे। ऐसा करके वे अपनी और कौम की नेकनामी करते। इसके खिलाफ हिन्दू तुलबा की दुनिया से बहुत थोड़े लोगों ने स्कूल-कालेज छोड़े और जिन्होंने छोड़े थे वे भी तहरीक को ठंढा पड़ते हुए देखते ही फिर जाकर भरती हो गये। वकीलों का भी यही हाल हुआ। उन दिनों आपने किया तो दोनों कौमों में एकदिली कायम करने जैसा कुछ ही काम, और सारी दुनिया में शोहरत मचा दी कि इत्तहाद की बुनियाद मजबूत हो गई। बेचारी भोली-भाली मुसल्मान कौम ने यह सब सच माना, जिसका फल यह मिला कि अजमेर, लखनऊ, मेरठ, आगरा,

सहारनपुर, लाहौर तथा दूसरी जगह मानिन्द जानवरों के वे पीटे गये। मि० महम्मदअली जैसे निहायत आला दर्जे के पैशवाजी अखबार-नवीस, जिनका गैर-मामूली 'कामरेड' अखबार मुसल्मान कौम की भारी खिदमत कर रहा था, आपकी तरफ दर किये गये, और अब तो वे कौम के हिसाब से गोया कहीं हैं नहीं। आपके हिन्दू अगुआ लोग शुद्धि और संगठन के बहाने मुसल्मान कौम को कमजोर बनाने की कोशिश कर रहे हैं। फिर आपके इस तंग-खयाल फैसले ने कि धारासभाओं में न जाना चाहिए, मुसल्मान कौम को बहुत बैजा धक्का पहुंचाया है। क्योंकि अच्छे कारगुजार लोगों का एक बहुत बड़ा हिस्सा धारासभाओं के मुतअल्लिक फतवे के बदौलत धारासभा में न गया। इन तमाम वाकयात पर गौर करते हुए क्या आप सच्चे दिल से यह नहीं महसूस करते कि आप चन्द मुसल्मान अशखास को भी अपने दल में रखकर मुसल्मान कौम का गहरा नुकसान कर रहे हैं?"

मैंने यह खत पूरा नहीं दिया है। लेकिन इन चन्द जुमलों में गुस्सवर मुसल्मानों की तरफ से किये गये इल्जाम का मतलब आ जाता है।

मैं बे-कुसूर हूं

इन दोनों इल्जामों के मुतअल्लिक मुझे यही कहना है कि मैं बे-कुसूर हूं। बल्कि मुझे इतना और कहना चाहिए कि यह जो कुछ हुआ है उसपर मुझ जरा भी अफसोस नहीं होता। अगर मैं खुदाई फरिश्ता या पैगम्बर होता और जो कुछ वाकयात हुए हैं इन्हें पहले से देख पाता तो भी मैं खिलाफत की तहरीक में कूदे बिना न रहता। मेरा तो मजबूत खयाल है कि जो दोनों कामों से चाहे आज कितना ही कडुवापन क्यों न फैल गया हो, पिछली तहरीक से दोनों को फायदा ही पहुंचा है। हमारी कौमी तालीम के लिए आम लोगों में रोशनी फैलना और उनका अपनी हालत को समझना जरूरी था। यह एक ही चीज हमारे नजदीक एक बड़ा फायदा है। मैं ऐसी कोई बात न करूंगा जिससे लोगों की खुली आंखें फिर मुंद जायं और वे पेट कता जायं। हमारी होशियारी और लियाकत इसीमें है कि हम लोगों की कुव्वत को ठीक ठीक रास्ता दिखावें। इस वक्त जो नजारा हम अपनी आंखों के सामने देख रहे हैं यह बेशक काबिल रंज और अफसोस है; लेकिन हमें अगर अपने पर पक्का एतबार हो तो इससे घबरा जाने की कतई जरूरत नहीं है। मौजूदा तूफान आनेवाले अमन-आमान का निशान है। यह अमन हमारी कुव्वत और ताकत के ज्ञान का फल होगा, थकावट और ना-उम्मेदी की वजह से आनेवाली सुस्ती उसका बायस न होगी।

लोग मुझसे यह न चाहेंगे कि मैं मुल्क में जगह जगह हुए दंगों और लड़ाई झगड़ों के मुतअल्लिक फैसला दूं। मैं मुतलक नहीं चाहता कि काजी बनूं। और यदि चाहूं भी तो इन्साफ देने लायक मसाला मेरे नजदीक नहीं है।

मोपला लोग

मैं इन झगड़ों की वजूहात के मुतअल्लिक दो अल्फाज कहूंगा। मलबार के मोपला-फसाद से हिन्दुओं का दिल जरूर खट्टा पड़ गया। इसमें सच बात क्या है, यह कोई नहीं जानता। हिन्दुओं का कहना है कि मोपलों के जोरोजुल्म का बयान नहीं किया जा सकता। डा. महमूद का बयान है कि इन ज्यादतियों के बारे में तिल का ताड़ बनाया गया है। हिन्दू लोग मोपलों को बहुत तंग और परेशान करते थे और जबरन् मुसल्मान बनाने की अफवाहों में एक भी सच न साबित हुई। एक मिसाल बताई जाती थी। तहकीकात करनेपर वह सच साबित न हुई। डा. महमूद कहते हैं कि इस बात में खुद हिन्दू-लोग गवाह हैं। मोपला-बलवे के ये दोनों रुख मैंने इसलिए पेश किये हैं कि लोग मेरे साथ इस बात में मुत्तफिक राय हों कि दर-असल सच बात को खोज निकालना गैर-मुमकिन है, और हमारे आयन्दा अमन का कायदा बनाने के लिए यह जरूरी भी नहीं है।

मुल्तान, सहारनपुर, आगरा, अजमेर, वगैरह मुकामात पर हिन्दुओं के ही जानो-माल का सबसे ज्यादह नुकसान हुआ है। सब लोग इस बात को मानते हैं। पलवल की खबर है कि वहां के हिन्दुओं ने मुसल्मानों को एक खास मसजिद को पुख्ता बनाने से रोका। कहा जाता है कि उन्होंने पक्की दिवार का एक हिस्सा गिरा भी दिया। मुसल्मानों को गांव के बाहर निकाल दिया और जबतक मुसल्मान इस बात पर राजी न हो कि यहां मुसल्मान एक भी मसजिद खड़ी न करें और बांग न दें तबतक उन्हें गांव में न रहने देंगे। कहते हैं कि कोई एक साल से ज्यादह अर्से से यह हालत वहां है। कहा जाता है कि जिन मुसल्मानों को उन्होंने निकाल दिया था रोहतक के आसपास कच्ची झोंपड़ियां बनाकर रहते हैं। एक और मुसाफिर मुझे खबर देते हैं कि ब्यादर, जिला धारवाड़, में मुसल्मानों ने मसजिद के सामने बाजे बजाने पर एतराज किया—इसपर हिन्दुओं ने मसजिद की हतक की, मुसल्मानों को पीटा और पीछे उनको सताया भी।

इन मिसालों को मैं बतौर साबित मामले के पेश नहीं कर रहा हूं; बल्कि महज यह दिखाने के लिए पेश कर रहा हूं कि मुसल्मानों को भी यह फरियाद है कि हिन्दुओं ने हमें भी कम नहीं सताया है।

और इतना तो जरूर कहा जा सकता है कि जहां मुसल्मान लोग साफ तौर पर कमजोर थे और हिन्दू जोरावर थे (जैसे कि कटारपुर और आरा में) वहां पड़ोसी हिन्दू-भाइयों के हाथों वे बेरहमी से पीटे गये हैं। बात यह है कि जब इन्सान का खून उबल उठता है और बदखयाली और बदगुमानी का बोलबाला होता है, तब इन्सान जानवर बन जाता है और निरा जानवर के पेश आता है—फिर वह चाहे अपनेको हिन्दू कहलाता हो, या ईसाई या और कुछ कहलाता हो।

फसादों का अड्डा

इन तमाम फसादों का अड्डा पंजाब है। मुसल्मानों की शिकायत है कि फजलुल हक साहब ने जरासे करके मुसल्मानों की तादाद सरकारी मुलाजमत में ठीक ठीक रखने की कोशिश की—इसी बात पर हिन्दुओं ने चारों ओर शोर-गुल मचा दिया। ऊपर मैंने जिस खत का हिस्सा नकल किया है उसके लेखक भारी शिकायत करते हैं कि जहां कहीं हिन्दू किसी महकमे का अफसर होता है वहां वह हमेशा मुसल्मानों को सरकारी नौकरी में न घुसने देने की बड़ी खबरदारी रखता है।

इस तरह हमारे झगड़े की वजूहात महज मजहबी ही नहीं। मैंने जिन इल्जामों का जिक्र किया है वे एक एक शख्स से ताल्लुक रखते हैं, लेकिन आम लोगों का दिल व्यक्तिगत राय का प्रतिबिंब होता है।

अहिंसा से घबड़ा उठे

लेकिन इन सबका जो बिल्कुल नजदीकी सबब है वही सब से ज्यादह खतरनाक है। ऐसा मालूम होता है कि दमाग रखने वाले लोग अहिंसा—अदम तशद्दुद—से घबड़ा गये हैं। इन लोगों की समझ में अभी मेरे अहमदाबाद तथा विरमगाम के दंगों के बाद के और उसके बाद बंबई और आखिर को चौरी चौरा-कांड के बाद के मेरे सत्याग्रह को मुल्तवी रखने की

असलियत नहीं आई है। आखिरी दंगे के वक्त मैंने जो किया वह आखिरी बात थी। बस, दिमाग रखनेवाले लोगों ने समझा कि अब थोड़े दिनों के अन्दर सत्याग्रह की—और इसीलिए स्वराज्य की भी तमाम तालीमें फजूल हैं। अहिंसा पर उनका एतबार महज ऊपरी था। दो साल पहले एक मुसल्मान दोस्त ने मुझसे दिल खोल कर कहा था—'मैं आपके अहिंसा-धर्म को नहीं मानता। और अगर औरों को नहीं तो कम से कम अपने मुसल्मान-भाइयों को तो मैं इसे सीखने देना नहीं चाहता। जिन्दगी का कानून तो हिंसा ही है। अहिंसा-धर्म के मानी जो आप करते हैं उससे अगर स्वराज्य मिलता हो तो मुझे वह दरकार नहीं। मैं तो अपने दुश्मन से जरूर नफरत करूंगा।" वे एक ईमानदार शख्स हैं। मैं इनकी बड़ी इज्जत करता हूं। दूसरे एक बड़े भारी मुसल्मान-दोस्त की भी ऐसी खबर आई है। मुमकिन है कि यह गलत हो; पर जिन्होंने लिखा है वे ऐसे नहीं हैं।

हिन्दुओं की नफरत

और अहिंसा की यह नफरत अकेले मुसल्मानों में ही देखी जाती हो सो बात नहीं। मेरे हिन्दू-दोस्तों ने भी ऐसी ही बातें, बरबक ज्यादह जोश के साथ, कही हैं। मैं इस दरजे तक के अहिंसा-धर्म की हिमायत करता हूं—इससे कितनों ही ने मेरा अपनेको हिन्दू कहने का हक भी छीन लिया है। उनका कहना है कि मैं प्रच्छन्न—छिपा हुआ ईसाई हूं। मुझसे बड़ी संजीदगी के साथ कहा गया है कि भगवद्गीता का यह अर्थ करने में कि उसमें शुद्ध अव्यभिचारी अहिंसा-धर्म का उपदेश दिया गया है, मैं गीता के अर्थ का सचमुच अनर्थ करता हूं। मेरे कितने हो हिन्दू-मित्र मुझसे कहते हैं कि खास खास मौकों पर हिंसा को भगवद्गीता ने मनुष्य का धर्म माना है और उसके लिए वह कर्तव्य बताया गया है। कुछ ही दिन पहले एक भारी विद्वान् शास्त्रीजी ने गीता के मेरे अर्थ पर गुस्सा और नफरत जताते हुए कहा कि कितने ही टीकाकारों ने गीता का जो अर्थ निकाला है कि 'गीता में दैवी और आसुरी संपदा के सनातन युद्ध का वर्णन है और गीता में आसुरी सम्पत्ति को बिना संकोच और बिना दया-माया निर्मूल करना हमारा कर्तव्य बताया गया है' उसको यथार्थ मानने का कोई भी आधार नहीं है।

अहिंसा के खिलाफ इन तमाम रायों को इतने मुफस्सिल तौर पर यहां इस लिए देता हूं कि कौमी मसले की जो तदबीर मेरे पास है उसे समझने के लिए इन खयालात को समझ लेने की जरूरत है।

इस तरह आज जो नजारा मैं अपने आस-पास देख रहा हूं वह अहिंसा के खयाल के फैलाव के खिलाफ एक जबरदस्त रुकावटी खयाल है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि हिंसा की एक जबरदस्त लहर उठती आ रही है। हिन्दू मुसल्मानों का तनाजा अहिंसा के मुतअल्लिक फैली बे-दिली की एक शकल है।

इस सवाल का विचार करते कुछ मेरा खयाल न करना चाहिए। मेरा मजहब तो मेरे और मेरे सिरजनहार के दरम्यान की बात है। अगर मैं हिन्दू हूं तो सारी हिन्दू-दुनिया के छोड़ देने पर भी मेरा हिन्दू-पन मिट नहीं सकता। फिर भी मैं इतना जरूर कहूंगा कि अहिंसा ही तमाम मजहबों का आखिरी मकसूद है।

एक हदतक अहिंसा

परन्तु हिन्दुस्तान से तो मैंने यह कभी नहीं कहा कि वह उस हद दरजे तक की अहिंसा को कुबूल करे, जिसका कि इलजाम मुझपर लगाया गया है,—अगर किसी और वजह से नहीं तो महज इसी वजह से कि मैं अपनेको इस बात के लिए पूरा लायक नहीं मानता कि इस पुराने पैगाम को फिर एक बार हाल की दुनिया को सुनाऊं। मैं मानता हूं कि यह मेरे अकल-अकीदे तो सोलहों आना हो गया है और मेरे दिल में भी अच्छी तरह जम गया है; फिर भी अभी वह मेरे रगो-रेशे में जज्ब नहीं हो पाया है। और मैं समझता हूं कि ऐसी बात को न पेश करने में ही मेरे काम की मजबूती है जिस को मैंने अपनी जिंदगी में बार बार न आजमा लिया हो। फिर अपने देश-भाइयों को अहिंसा-धर्म उनके आखिरी और सब से बढ कर धर्म के तौर पर नहीं, बल्कि जुदा जुदा कौमों के बाहमी तअल्लुकात में अपना बरताव ठीक ठीक रखने के लिए और स्वराज्य हासिल करने के लिए ही उसे मंजूर करने की बात मैं कह रहा हूं। हिन्दू, मुसल्मान, ईसाई, सिक्ख, पारसी—किसी कौम को अपने बाहमी तफर्कों और झगडों का फैसला, एक दूसरे के सिर फोड कर हरगिज न करना चाहिए। स्वराज्य हासिल करने की हमारी तदबीरें भी हिंसा-रहित होनी चाहिए। इसे मैं हिन्दुस्तान के सामने कमजोर के हथियार के तौर पर नहीं बल्कि जोरावर के हथियार के तौर पर पेश करने की हिम्मत करता हूं। हम हिन्दू मुसल्मानों को हमेशा यह पुकारते हुए सुनते हैं कि "मजहब की बात में जबरदस्ती न होनी चाहिए" लेकिन अगर कोई हिन्दू एक गाय को बचाने के लिए एक मुसल्मान की जान लेने को तैयार हो तो यह मजहब की बात में जबरदस्ती नहीं तो और क्या है? यह तो मानो किसी मुसल्मान को जबरन् हिन्दू बनाना ही हुआ। उसी तरह अगर मुसल्मान हिन्दुओं को मसजिद के सामने जबरन् बाजे बजाने से रोकने की कोशिश करें तो वह भी जबरदस्ती नहीं तो और क्या है? मजहब तो वह चीज है कि चाहे कितनी ही शोरगुल और गुल-गपाड़ा क्यों न होता रहे, इन्सान खुदा की बन्दगी में—ईश्वरप्रार्थना में-तल्लीन हो जाय। अगर हम अपनी मजहबी ख्वाहिशों के मामले में एक दूसरे पर जबरदस्ती कर के उससे अपना चाहा कराने की फजूल कोशिश करना इसी तरह कायम रक्खेंगे तो हमारी आयन्दा नस्ल हम दोनों कौमों को अधर्मी और जंगली ही समझेगी। एक लाख अंगरेजों की अक्ल ठिकाने लाने के लिए ३० करोड लोगों को हाथ उठाने का इरादा करते हुए शरम से डूब मरना चाहिए। इन लाख लोगों के दिल को बदल देना, अगर आप ऐसा न चाहते हों तो उन्हें इस मुल्क से बिदा कर देना, इस इतने से काम के लिए हमें तलवार की नहीं, सिर्फ निश्चय की-कस्द कर लेने की जरूरत है। अगर इस बात की कमी होगी तो हमसे तलवार भी न खिंच सकेगी। फिर अगर हम निश्चय-बल-हासिल कर लेंगे तो हम देखेंगे कि हमें तलवार की जरूरत ही न रही।

इस तरह ऊपर कही बातों को ही हासिल करने के लिए अहिंसा—तत्व—अदम तशद्दुद—को अख्त्यार करना हमारी कौमी हस्ती के लिए बिलकुल कुदरती और उतनी ही जरूरी शर्त है। इसीसे जबें हम अपनी सामुदायिक जिस्मानी ताकत से अच्छी तरह काम लेना सीखेंगे। अभी तो हम इस ताकत को आपस में लड़कर ही गवां रहे हैं और नतीजा यह होता है कि ऐसे हरएक लड़ाई झगडे के बाद हर फरीक ज्यादा ही ज्यादह कमजोर होता है। इसके अलावा तलवार की ताकत पर की गई हरएक राज्यक्रान्ति भी, अगर उसकी हिमायत पर तमाम कौम न हो तो, महज पागलपन ही माना जाना चाहिए। और अगर मुल्क हिमायत पर है तो असहयोग—तर्कें मवालात—के तरीकेसे किसी भी हिस्से के जरिये इस गरज को बिना एक बूंद लहू गिराये लोग पूरा कर सकते हैं।

मैं यह नहीं कहता कि चोरों और डाकुओं के साथ, या अगर विदेशी लोग आपपर हमला करें तो उनके साथ भी आप

अदम तशद्दुद से काम लें।' परन्तु इसके लिए कि ऐसे खतरे के वक्त हम ज्यादह काबलियत और खूबी के साथ मुकाबला करें हमें अपने जोश को अपने कब्जे में रखने की आदत डालना जरूरी है। ज़रा ज़रासी बातों में तलवार खींच लेना ताकत का नहीं, कमजोरी का निशान है। आपस का जूता-पैजार जिस्मानी कूवत की नहीं बल्कि नामर्दी की तालीम है। जो अहिंसा का तरीका मैं बता रहा हूं उसमें कमजोरी का ज़रा भी अन्देशा नहीं बल्कि इसी तरीके पर, अगर लोग चाहें तो, खतरे के समय बा-कायदा और बा-तरतीब तलवार चला सकेंगे।

हमारी खाम ख़याली

जो लोग यह मान रहे हैं कि अहिंसा की तालीम से हम प्रमादी और अकर्मण्य बन रहे हैं वे अगर एक लमहे के लिए भी सोच कर देखेंगे तो उन्हें मालूम होगा कि हम सच्चे मानी में कभी अहिंसापरायण रहे ही नहीं। हां, यह बात सच है कि हमने प्रत्यक्ष शारीरिक हिंसा-जिस्मानी तशद्दुद-नहीं किया; मगर हमारे दिल में तो हिंसा सुलगी रहती थी। अगर हमने सच्चे दिल से अपने इरादे और जुबान पर इस तरह कब्जा रक्खा होता कि उनका और हमारी जिस्मानी हरकत का मेल पूरा पूरा बना रहता तो आज हमको जो थकावट मालूम होती है वह हरगिज न होती। अगर हम अपनी अन्तरात्मा के प्रति अपने दिल से सच्चे बने रहते तो अब तक हमने बे-मिसाल हेतु-बल और निश्चय-बल हासिल कर लिया होता।

अटल शर्त

अहिंसा के मुतअल्लिक इस खाम-खयाली का इतना लम्बा-चौड़ा जिक्र मैंने इसलिए किया कि मुझे यकीन है कि अगर हम एक बार अपने दिल में अहिंसा पर, ऊपर वाले दो ही मकासिद हासिल करने के लिए, एतबार रख सकें (यदि पहले सचमुच ही एतबार रहा हो तो) तो आज जो तनाजा हिन्दू-मुसलमानों में पड़ गया है वह जल्दी दूर हो जाय; क्योंकि मेरी राय में दोनों कौमों के बाहमी ताल्लुकात के लिए अहिंसा का इस्तैमाल एक ऐसी अटल शर्त है जो इस तनाजे का इलाज करनेवाले किसी भी तजवीज की पाबन्दी के लिए जरूरी है। दोनों कौमों में इतना समझौता आम तौर पर जरूर होना चाहिए, कि कुछ भी हो जाय लेकिन दो में से एक भी फरीक मनमानी न करे और खुद ही कानून न बन बैठे; बल्कि जहां जहां और जब जब किसी जगह झगड़ा खड़ा हो जाय वहां झगड़े की तमाम बातों का फैसला या तो पंचायत की मार्फत हो या, फरीकैन चाहें तो, अदालतों में फैसला करावें। जुदा जुदा कौमों के बाहमी ताल्लुकात के लिए तो अहिंसा के मानी सिर्फ इतने ही हैं, इससे ज्यादह नहीं। दूसरे अल्फ़ाज़ में कहूं तो जिस तरह मामूली दुनियादारी की बातों में हम एक-दूसरे के सिर फोड़ने पर आमादा नहीं हो जाते उसी तरह मजहबी मामलों में भी न हों। इतना एक ही इकरार होना तमाम फरीकों में इसी वक्त जरूरी है और अगर हम इतना कर सकें तो मुझे यकीन है कि बाकी तमाम बातें अपने आप ठीक हो जायंगी।

जबतक यह पहली शर्त कायम और मंजूर नहीं होगी तबतक हम न तो जुदा जुदा कौम की गलतफहमी दूर करने के लिए जरूरी जमीन तैयार कर सकेंगे और न कोई कायमी बा-इज्जत समझौते पर आ सकेंगे।

गुंडे और नामर्द

अच्छा, मान लीजिए दोनों कौमें इस शुरुवाती शर्त को कुबूल करने में एक-राय हो जायं, तो अब दोनों कौमों में तनाजा पैदा करनेवाले जो हमेशा के कारण हैं उनका विचार करना चाहिए। मुझे रत्तीभर शक नहीं कि हिन्दू-मुसलमान के झगड़ों की मिसालों में हिन्दू लोग ही ज्यादह तर ढीले साबित होते हैं। मेरा खासी तजरिबा इस ख़याल को मजबूत करता है कि मुसलमान अमूमन् गुंडे होते हैं और हिन्दू अमूमन् नामर्द होते हैं। रेलगाड़ी में, रास्तों पर, तथा ऐसे ही झगड़ों का निपटारा करने के जो मौके मुझे मिले हैं उनमें मैंने यही देखा है। भला अपनी नामर्दी के लिए हिन्दुओं को मुसलमानों को दोष देना मुनासिब है? जहां नामर्द रहते हैं वहां गुण्डे लोग जरूर ही रहेंगे। कहते हैं कि सहारनपुर में मुसलमानों ने घर लूटे, तिजोरियां तोड़ डालीं, और एक जगह एक हिन्दू औरत को बे-इज्जत भी किया। इसमें गलती किसकी? यह सच है कि मुसलमान अपनी इन बुरी और वहशी करतूतों की सफाई किसी तरह नहीं दे सकते; पर मैं तो मुसलमानों पर उनके गुण्डेपन के लिए गुस्सा होने के बजाय बहैसियत एक हिन्दू के हिन्दुओं की नामर्दी का ख़याल कर के ज्यादह शरमिन्दा होता हूं। जिनके घर लूटे गये वे अपने मालअसबाब की हिफाजत करते हुए वहां मर क्यों न गये? जिन बहनों की बे-इज्जती हुई उनके नाते-रिश्तेदार उस वक्त कहां गये थे? क्या वे कुछ भी जवाब देने के जिम्मेवार नहीं? मेरे अहिंसाधर्म में खतरे के वक्त अपने अजीजों को मुसीबत में छोड़ कर भाग खड़े होने के लिए जगह नहीं है। मारना या नामर्दी के साथ भाग खड़ा होना—इन में से यदि मुझे किसी बात को पसंद करना पड़े तो मेरा उसूल कहता है कि मारने का—हिंसा का रास्ता पसंद करो। क्योंकि अगर मैं अंधे को कुदरत का जौहर देखना सिखा सकूं तो नामर्द को अहिंसा-धर्म सिखा सकूं। अहिंसा बहादुरी की हद है। और मुझे यह जाती तजरिबा है कि हिंसा के रास्ते में तालीम पाने वाले लोगों को अहिंसा की श्रेष्ठता साबित करने में मुझे कठिनाई न हुई। पहले जब मैं खुद डरपोक था, मैं भी हिंसा के भाव रखता था। लेकिन ज्यों ज्यों मेरा डरपोकपन दूर होने लगा त्यों त्यों मैं अहिंसा की कीमत समझने लगा। जो हिन्दू अपने कर्तव्य की जगह को छोड़ कर ऐसे समय भाग खड़े हुए जब कि उसमें खतरे का सामना करना पड़ता था, तो वे इसलिए नहीं भागे कि वे अहिंसा-परायण थे, या वे मारने से डरते थे बल्कि इसलिए कि वे मरना—नहीं, अपनी जान पर किसी किस्म की तकलीफ पहुंचाना नहीं चाहते थे। जब खरगोश शिकारी कुत्ते से डर कर भागता है तब वह अहिंसा के ख़याल से नहीं भागता है। बेचारा उसकी नजर ही देख कर धड़का जाता है और जान ले कर भाग खड़ा होता है। जो हिन्दू अपनी जान बचाकर भाग गये थे अगर हंसते हुए अपनी छाती खोल कर अपनी जगह पर खड़े रहे होते और वहीं मर मिटते तो वे सच्चे अहिंसापरायण कहे जाते, उनका यश और गौरव बढ़ जाता, उनका धर्म चमक उठता, और उनपर हमला करनेवाले मुसलमान उनके दोस्त बन जाते। अगर वे अपनी जगह पर खड़े रहकर भी दो हाथ दो कर लेते तो भी बेहतर था—हालांकि उनका यह काम उतना शरीफाना न होता। अगर हिन्दू लोग मुसलमान भाइयों को अपने कदरदां दोस्त बनाना चाहते हैं तो उनको भाई व भाई बहनों की आबरू के सामने मजबूत रहकर मरने के लिए तैयार होना चाहिए।

रास्ता

लेकिन अखाड़े इसकी तदबीर नहीं हैं। मैं अखाड़ों को बुरा नहीं कहता। बल्कि मैं तो जिस्मानी तरक्की के लिए उनकी जरूरत समझता हूं। पर तन्दुरुस्ती के लिए वे सबके लिए होने चाहिए। अगर हिन्दू मुसलमानों के झगड़े के वक्त उनसे मदद लेने के

वज़न में रखना चाहिए। हां, उसमें वकादली और पक्षपात न होना चाहिए। अर्थात् अगर हमें पांच इंजिनियर की जरूरत हो तो हर जाति में से एक एक इंजिनियर लेने का तरीका ठीक न होगा बल्कि सबसे ज्यादह काबिल पांच जनों को ही वह जगह मिलनी चाहिए-फिर चाहे पांचों पारसी हों या मुसल्मान। सबसे निचले दरजे की जगहों पर, जरूरी मालूम हो तो, जुदी जुदी जातियों के एक निष्पक्ष मण्डल की निगरानी में एक इम्तहान लेकर उसके नतीजे के अनुसार भरती की जाय।

परन्तु इन नौकरियों का बंटवारा हरएक कौम की तादाद के लिहाज से हरगिज न होना चाहिए। प्रजासत्तात्मक राज्य में उन जातियों के लिए जो तालीम में पिछड़ी हुई हैं, तालीम जैसी बात में जरूर खास रिआयत की जाय। यह बहुत आसान बात है। पर जिन लोगों को बड़े बड़े सरकारी पदों पर काम करने की महत्वाकांक्षा है उनके लिए आवश्यक इम्तहानों में पास होना लाजिमी होना चाहिए।

मेरी श्रद्धा

मेरे नजदीक तो आज देश के सामने एक ही मसला ऐसा है जिसका निपटारा तुरन्त होना चाहिए और वह है हिन्दू-मुसल्मान का। मैं श्री जिना की राय का बिल्कुल कायल हूं कि हिन्दू-मुसल्मान एकता के ही मानी स्वराज्य हैं। जबतक इस दुःखी देश में हिन्दू-मुसल्मान की एक-दिली हमेशा के लिए नहीं होती तबतक मुझे तो कोई अच्छा फल मिलने की उम्मीद नहीं दिखाई देती। मैं यह भी मानता हूं कि ऐसी एकता जल्दी स्थापित की जा सकती है। क्यों कि यह बिल्कुल कुदरती और जीवन की तरह जरूरी है, और क्यों कि मनुष्य-स्वभाव पर मुझे विश्वास है। मुसल्मान अनेक बातों के लिए जवाबदेह होंगे। खुद मेरा ऐसे मुसल्मानों के समूह से साबका पड़ा है जिन्हें बुरा कह सकते हैं। फिर भी मुझे एक मौका ऐसा याद नहीं पड़ता जिसमें मुझे उनके साथ अपने व्यवहार के लिए कभी पछताना पड़ा हो। मुसल्मान लोग बहादुर हैं, दर्यादिल हैं। जिस वक्त उनके दिल से शक निकल जायगा उसी दम वे विश्वास करने लगेंगे। फिर जहां हिन्दू खुद कांच के मकानों में रहते हों वहां उन्हें अपने मुसल्मान पड़ोसी के घर पर पत्थर फेंकने का कोई अधिकार नहीं। जरा गौर कर के देखिए कि हम खुद दलित जातियों पर क्या क्या गजब ढहाते हैं और अब भी ढहा रहे हैं। अगर 'काफर' लफ्ज नफरत से भरा हुआ है तो 'चाण्डाल' में कितना ज्यादह तिरस्कार है? पर दलित जातियों के साथ हम जो सलूक कर रहे हैं उसकी मिसाल दुनिया के किसी मजहब में नहीं मिलती। अफसोस की बात तो यह है कि यह बदसलूकी हमारी इस घड़ी तक जारी है। जरा वाइकोम पर नजर फेंकिए न! इन्सानियत के हक के श्री-गणेश तक के लिए कैसा घोर संग्राम छिड़ा है! ईश्वर सीधे रास्ते सजा नहीं देता। उसकी गत न्यारी है। कौन कह सकता है कि हमारे आज के तमाम दुःख इस घोरतम पाप का फल न होगा? इस्लाम की तवारीख में यदि इस्लाम की नैतिक ऊँचाई में कहीं कहीं खामी दिखाई देती है तो उसके बजाय उसके चमकीले सफों की भी कमी नहीं है। पर इस्लाम उसकी तरक्की और बढ़ाई के दिनों में ऐसा नहीं था जो दूसरे के मजहब को गवारा न कर सके। सारी दुनिया को उसने अपने बड़प्पन से चकित कर दिया था। जब कि पश्चिम अंधेरे में गोते खा रहा था तब पूर्व दिशा के आकाश में एक चमकीला सितारा निकला और उसने दुःख पीड़ित दुनिया को रोशनी दी, दिलासा दिया। इस्लाम कोई झूठा धर्म नहीं। हिन्दू लोग आदर के साथ उसका अध्ययन कर सकेंगे तो उन्हें दिखाई देगा मैं जिस तरह उसे चाहता हूं उसीतरह वे भी चाहेंगे। यदि वह इस देश में गहरियाना और मजहबी पागलपन से भरा हुआ हो गया है तो उसे इस तरह विकृत बनाने में हमारा हिस्सा कुछ कम नहीं है। अगर हिन्दू लोग अपने घर को ठीकठाक कर लें तो इस बात में जरा भी शक नहीं कि इस्लाम भी उसका ऐसा ही जवाब देगा जो उसकी पुरानी उदार परम्परा को जेबा होगा। सारी हालत की कुंजी हिन्दुओं के हाथ में है। अगर हम अपने डरपोकपन और नामर्दी को खदेड़ देंगे, हम दूसरों पर विश्वास रखने लायक बहादुर बनेंगे तो सब लोग अच्छे हो जायंगे।

(यंगइंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

लालाजी का पत्र

योरप जाते हुए जहाज से लालाजी ने एक पत्र मुझे लिखा है, जिसमें वे लिखते हैं—

"जब मैं जहाज पर सवार हुआ तब मैंने खादी टोपी ही थी। अहिंसा-धर्म के इस चिह्न को मेरी समुद्र-यात्रा के पहले ही दिन हिंसा का बड़ा भय हुआ। जहाज पर कोई २० हिन्दुस्तानी होंगे। पर हम जब जहाज पर सवार हुए तब गांधी-टोपी सिर्फ दो ही जनों के सिर पर थी। हरशख्स हमारे चहरे को घूर घूर देखता था और किसी किसी के चहरे पर तो रोष के चिह्न भी साफ तौर पर दिखाई देते थे! भोजन के समय मैंने अपनी टोपी भोजन-शाला के बाहर वाले टोपियां लटकाने के खोंटे पर लटका दी। भोजन कर चुकने के बाद जो बाहर आकर देखता हूं तो टोपी का पता नहीं! चारों ओर खोज की; पर पता कैसे लगता? वह तो अदृश्य हो गई थी! टोपी की कीमत को देखते हुए तो उसे कोई छू तक नहीं सकता था। ऐसी अवस्था में टोपी के संबंध में एक निर्णय करना पड़ा कि किसीने उसे 'समुद्रार्पणमस्तु' कर दिया।

इस घटना से मुझे जरा भी अफसोस नहीं। क्योंकि जिसने यह काम किया होगा उसके दिल को जरूर सन्तोष हुआ होगा। पर मुझे भी अपने धर्म पर कायम रहना जरूरी था। कल फिर मैंने अपनी (दूसरी) टोपी उसी जगह रक्खी; परन्तु इस बार उसे किसीने नहीं छूआ और इस तरह यह काण्ड पूरा हुआ।

मेरा स्वास्थ्य तो इतने ही समय में सुधरता हुआ मालूम होता है। समुद्र की हवा से मुझे आराम और फायदा मालूम होता है। आप भी यदि अपने को वहाँ की उपाधियों से मुक्त करके कुछ समय हिन्दुस्तान के बाहर पूरा आराम करें तो क्या ही अच्छा हो?"

यह तो स्पष्ट है कि खादी टोपी को अभी कठिन लड़ाइयां लड़नी हैं।

(नवजीवन)

कांगड़ी गुरुकुल में चर्खा

इस गुरुकुल के विद्यार्थियों को मैंने उनके उत्सव के समय एक खत भेजा था। उस के उत्तर में एक खत कई दिन हुए मिला है। गुरुकुल के बालकों का प्रेम चर्खे पर कैसा है यह जाहिर करने के लिए मैं खत का थोड़ा हिस्सा पाठकों के सामने पेश करता हूं।

"यद्यपि आपके संदेश के लिए यह उत्तर बहुत ही अपूर्ण है, यह हम अच्छी तरह समझते हैं—हम अपने काते हुए इस थोड़े से सूत की श्रद्धापूर्ण भेंट आपके पूज्य चरणों में रखना चाहते हैं। यह सूत इसी राष्ट्रीय सप्ताह में (७ अप्रैल से १३ अप्रैल तक) सात दिन तक चौबीस घण्टे अखण्ड सतचक चलाकर हमने इसी प्रयोजन के लिए कातकर तैयार किया है कि हमारी तुच्छ भेंट स्वीकार हो। इसमें (चतुर्थ श्रेणी के) हममें से छोटे बालकों का काता हुआ भी कुछ सूत अलग रखा है। यद्यपि यह अखण्ड चरखा चलाकर नहीं काता गया है, तथापि हम समझते हैं कि आपसे प्रेम रखने वाले ये छोटे बालक अवश्य ही आपके प्रेमपात्र हैं। अतः इनका प्रेमपूर्वक काता हुआ यह राष्ट्रीय सप्ताह का सूत भी आपके चरणार्पित होने के योग्य ही है।" मो० क० गांधी

इरादे से वे खोके जाते हों तो उनसे कुछ मतलब न निकलेगा। क्या मुसलमान भी ऐसा दांव नहीं खेल सकते? ऐसी छुपी या खुलमखुला पेशबन्दी से सिवा बाहम शक बढने और चिढ पैदा होने के और कुछ नहीं हो सकता। इन झगडों को तो कुछ थोडे इज्जतदार लोग ही गैर मुमकिन कर सकते हैं और उसके लिए पंचायत का तरीका फैलाना चाहिए और उसका फैसला लोगों से मनवाना चाहिए।

नामर्दी की दवा जिस्मानी तालीम नहीं, बल्कि खतरों का मुकाबला बहादुरी के साथ करना है। जबतक मंझले दरजे के डरपोक हिन्दू अपने जवान लडकों-बच्चों के बदन पर मुलायम कपडे पहना कर उनके अन्दर अपना डरपोकपन फैलाने से बाज न आयेंगे तबतक यह खतरे से दुम दबाने की और जोखिम सिर पर न लेने की ख्वाहिश बराबर बनी रहेगी। उन्हें अपने लडकों को अकेला छोडने का साहस करना चाहिए—वे उन्हें शौक से जोखों में पडने दें उसमें कभी वे मर भी जायं तो हर्ज नहीं। एक छोटे बौने आदमी में भी शेर का दिल हो सकता है। और बडा हट्टा-कट्टा जुलू भी अंगरेज लोगों के सामने बकरी बन जाता है। हरएक गांववालों को अपने गांव से ऐसे शेरदिल और जवांमर्द लोग खोज निकालने होंगे।

बुराई के बीज

गुण्डों के सिर दोष लगाना भूल है। जब तक कि हम लोग उनके लिए आस-पास वैसी हालत और सूरत न पैदा करें तबतक वे बदमाशी नहीं कर पाते। १९२१ में शाहजादे की तशरीफ आवरी के दिन बंबई में जो वाकया हुआ उसमें मैंने खुद अपनी आंखों यह देखा। हमने उसके बीज बोये थे और गुण्डों ने उसकी फसल काट ली। हमारे आदमी उनकी पुश्त पर थे। मुलतान, सहारनपुर और दूसरी जगह जहां जहां से काली खबरें हुई हैं, मैं बेखटके वहां वहां के इज्जतदार मुसल्मानों को (किसी एक ही मामले में सब लोग नहीं) उसका जिम्मेवार मानता हूं। इसी तरह कटारपुर और आरा के भी इज्जतदार हिन्दुओं को बिला हिचकिचाहट वहां के कुकर्मों का जिम्मेवार मानता हूं। अगर यह बात सच है कि पलवल में हिन्दुओं ने कभी मसजिद की जगह पक्की मसजिद बनाना रोक दिया तो यह काम गुण्डे लोग नहीं कर रहे हैं-वहां के इज्जतदार हिन्दू ही उसके लिए जिम्मेवार माने जाने चाहिए। हमको अपनी यह चाल कि हमेशा आबरूदार लोगों को दोषारोप से बचा लें, जरूर छोड देनी चाहिए।

इसलिए मैं यह मानता हूं कि अगर हिन्दू लोग अपनी हिफाजत के लिए गुण्डों का संगठन करेंगे तो भारी गलती करेंगे। उन्हें लेने के देने पड जायंगे। या तो वैश्यों, ब्राह्मणों को अगर अहिंसा के अर्थ नहीं तो जिस्मानी ताकत के अर्थ ही सही, अपनी हिफाजत खुद करने का मुहावरा करना होगा या अपने जान-माल और औरतों को गुण्डों के हवाले करना पडेगा। गुण्डों को एक अलहदा जाति ही समझिए-वे चाहे हिन्दू हों या मुसलमान।

अछूतों का इस्तेमाल

एक जगह बडे तपाक के साथ यह बात कही गई थी कि एक गांव में अछूतों की हिफाजत में (क्योंकि वे मौत से नहीं डरते थे) हिन्दुओं का जलूस एक मसजिद के सामने से (धूम के साथ बाजे बजाते हुए) बिना खटकडे निकल गया।

पवित्र काम का यह एक निहायत बेजा दुनियावी इस्तैमाल है। अछूत भाइयों के ऐसे बेजा इस्तेमाल से न तो आम तौर पर हिन्दू-धर्म का फायदा है, न खास कर अछूतों का। इस तरह कुछ वक्तीकूब तौर पर महफज जलूस भले ही कुछ मसजिदों से सही-सलामत निकल जायं। पर इसका नतीजा यह होगा कि बढता हुआ तनाजा ज्यादह बढेगा और हिन्दू-धर्म नीचे गिरेगा। मंझले दरजे के लोग यदि मुखालिफत होते हुए भी गाते-बजाते निकलना चाहते हों तो उन्हें या तो पिटने के लिए तैयार होना चाहिए, या एक इज्जत-आबरूदार शख्स की तरह उनसे दोस्ती करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

हिन्दुओं ने पिछले जमाने में दलित भाइयों के साथ जो ज्यादतियां कीं, और अब भी कर रहे हैं उसके लिए उन्हें जरूर प्रायश्चित्त करना होगा। ऐसी हालत में हमें जो उनका कर्जा चुकाना है, उसे अदा करने के बदले में हम उनसे किसी चीज की उम्मीद नहीं कर सकते। अगर हम अपनी नामर्दी को छिपाने के लिए उनका इस्तेमाल करेंगे तो हम उनके दिल में ऐसी आशायें पैदा करेंगे जिन्हें हम कभी पूरा न कर पावेंगे और अगर ईश्वर इसका बदला हमसे ले तो वह हमारे उनके साथ किये गये अमानुष बरताव की ठीक ठीक सजा मानी जायगी। अगर हिन्दू-जाति के पास मेरी किसी भी कदर पहुंच हो तो मैं उससे प्रार्थना करूंगा कि वह मुसलमानों के हमलों से बचाने के लिए उन्हें अपनी ढाल न बनावे।

बे-एतबारी का हंगाम

इस बढते हुए तनाजे का एक और सबल कारण है कि हमारे अच्छे से अच्छे लोगों के दरम्यान बढती हुई बे-एतबारी। मुझे पण्डित मालवीय के बारे में चेतावनी दी गई है! उनपर यह इल्जाम है कि उनकी घातें बडी गहरी—छुपी हुई—होती हैं। कहा जाता है कि वे मुसल्मानों के खैरख्वाह नहीं हैं। यहां तक कि वे मेरे सतत की हसद करने वाले बताये जाते हैं। जबसे १९१५ में हिन्दुस्तान आया, तब से मेरा उनके साथ बहुत समागम है और मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूं। मेरा उनके साथ गहरा परिचय रहता है। उन्हें मैं हिन्दू-संसार की श्रेष्ठ व्यक्तियों में मानता हूं। कट्टर और पुराने खयालात के होते हुए भी बडे उदार विचार रखते हैं। वे मुसल्मानों के दुश्मन नहीं हैं। उनके पास किसी को हसद रखना गैर-मुमकिन है। उनकी दर्या-दिली ऐसी है कि उसमें उनके दुश्मनों के लिए भी जगह है। उन्हें कभी हुकूमत की चाह न रही। और जो हुकूमत आज उनके पास है वह उनको मातृ-भूमि की आजतक की लम्बी और अखंड सेवा का फल है। ऐसी सेवा का दावा हममें से बहुत कम लोग कर सकते हैं। उनकी और मेरी खासियत जुदी जुदी है; लेकिन हम दोनों एक दूसरे को सगे भाई-सा प्यार करते हैं। मेरे और उनके बीच कभी जरा बिगाड न हुआ। हमारे रास्ते जुदे जुदे हैं। इसलिए हमारे बीच स्पर्धा और डाह का सवाल पैदा हो नहीं हो सकता।

लालाजी

दूसरे शख्स जिन पर अविश्वास किया जाता है लालाजी हैं। मैंने श्री लालाजी को एक बच्चे के मानिन्द खुले दिल वाला पाया है। उनके त्याग की जोड लगभग है नहीं। मेरी उनसे हिन्दू-मुसल्मानों के बारे में एक बार नहीं अनेक बार बातें हुई हैं। वे मुसल्मानों के साथ मुतलक दुश्मनी नहीं रखते। लेकिन उन्हें जल्दी एकता हो जाने में शक है। वे ईश्वर से प्रकाश पाने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। खुद शंकित रहते हुए भी वे हिन्दू-मुसल्मान-एकता के कायल हैं। क्यों कि जैसा कि उन्होंने मुझसे कहा है वे स्वराज्य के कायल हैं। वे मानते हैं कि ऐसी एकता के बिना स्वराज्य स्थापित नहीं हो सकता। तो भी वे यह नहीं जानते कि यह एकता किस तरह और कब होगी। मेरा उपाय उन्हें पसन्द है; परन्तु

उन्हें इस बात में शक है कि हिन्दू लोग उसका मर्म समझ पावेंगे या नहीं और अगर समझ पावेंगे तो उसकी शराफत की कदर करेंगे या नहीं। यहां मैं इतना कह देता हूं कि मैं अपनी तसवीर को उदास-पशीकाया नहीं कहता। मेरे खयाल में तो वह बिलकुल ठीक और हो सकने लायक तसवीर है।

आर्य-समाज

स्वामी श्रद्धानन्दजी पर भी लोग ऐतबार नहीं करते हैं। मैं जानता हूं कि उनकी तकरीरें ऐसी होती हैं जिनसे कई बार बहुतों को गुस्सा आ जाता है। परन्तु वे भी हिन्दू-मुस्लिम-एकता को जरूर चाहते हैं। पर बदकिस्मती से ये यह मानते हैं कि हरएक मुसलमान आर्यसमाजी बनाया जा सकता है, जैसे कि शायद बहुतेरे मुसलमान मानते हैं कि हरएक गैर-मुस्लिम किसी न किसी दिन इसलाम को कबूल कर लेगा। श्रद्धानन्दजी निडर और बहादुर आदमी हैं। अकेले हाथों उन्होंने गंगाजी के किनारे पर तराई के जंगल को एक अचम्भे गुरुकुल के रूप में बदल दिया। उन्हें अपने तथा अपने काम पर श्रद्धा-ऐतबार है। पर वे जल्दबाज हैं। और थोड़ीसी बातपर क्रोध में आ जाते हैं। आर्यसमाज की परम्परा की विरासत उन्हें मिली है। स्वामी दयानन्द सरस्वती को मैं बड़े आदर की दृष्टि से देखता हूं। मैं मानता हूं कि उन्होंने हिन्दू-धर्म की भारी सेवा की है। उनकी बहादुरी के सम्बन्ध में कोई सवाल ही नहीं उठा सकता। पर उन्होंने अपने हिन्दू-धर्म को संकुचित-तंग बना दिया है। आर्य-समाज की बाइबिल 'सत्यार्थ प्रकाश' को मैंने दो बार पढ़ा है। जब यरोडा जेल में मैं आराम कर रहा था तब उसकी तीन प्रतियां कुछ दोस्तों ने मुझे भेजी थीं। ऐसे महान् सुधारक का लिखा इतना निराशाजनक ग्रंथ—मायूस करने वाली किताब—मैंने नहीं पढ़ी। उन्होंने सत्य की और बिलकुल सत्य की ही हिमायत करने का दावा किया है; पर ऐसा करते हुए उनसे अनजान में जैन-धर्म, इसलाम, ईसाई-मजहब और खुद हिन्दू धर्म के अर्थ का अनर्थ हो गया है। जिन्हें इन महान धर्मों की थोड़ी भी वाकिफयत है वे सहज ही देख सकते हैं कि उस महान् सुधारक से किस तरह भूलें हो गई हैं। उन्होंने दुनिया के एक सबसे ज्यादह सहनशील और उदार धर्म को तंग बना डालने की कोशिश की है। और खुद गो कि मूर्तिभंजक थे तो भी उनकी कोशिशों का फल हुआ है सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में मूर्ति-पूजा की स्थापना होना। क्योंकि उन्होंने वेद के एक एक अक्षर को ईश्वर-स्वरूप बना दिया। और इस जमाने के विज्ञान के हर एक तथ्य वेद में थे, यह साबित करने की कोशिश की है। आज आर्य-समाज की जो उन्नत है वह, मेरी नाचीज राय में, 'सत्यार्थ प्रकाश' की शिक्षा के गुण के कारण नहीं, बल्कि उसके संस्थापक के महान् और उदात्त शील के बदौलत है। जहां जहां आप आर्य-समाज को देखेंगे वहां वहां चेतना और प्राण दिखाई देगा। ऐसा होते हुए भी संकुचित दृष्टि और विवादप्रिय स्वभाव होने के कारण दूसरे फिर्कों के लोगों के साथ और जब वे न मिलें तो आपस में झगड़ा करते हैं।

स्वामी श्रद्धानंदजी में इस जोश का बहुत कुछ अंश है। पर इन तमाम दोषों के होते हुए मैं उन्हें ऐसा नहीं मानता जो समझाये न समझें। मुमकिन है कि आर्य-समाज तथा स्वामी जी का जो खाका मैंने यहां खींचा है, उससे वे नाराज हों। यह कहने की जरूरत नहीं कि मेरे दिल में उनका दिल दुखाने की जरा भी इच्छा नहीं है। मैं आर्य-समाजियों को चाहता हूं; क्योंकि मेरे कितने ही साथी आर्य-समाजियों में हैं। स्वामीजी को तो मैं उन्हीं दिनों से चाहने लगा हूं जब मैं दक्षिण आफ्रिका में था। हां, अब मैं उन्हें ज्यादा अच्छी तरह पहचानने लगा हूं; पर इससे मेरा प्रेम उनके प्रति कम नहीं हो पाया है। मेरा प्रेम ही मुझसे यह कहलवा रहा है।

श्री जयरामदास

मुझे जिनके बारे में चेतावनी दी गई है उनमें सबसे आखिरी नंबर है श्री जयरामदास और डा॰ चोइथराम का। जयरामदास के नाम पर तो मैं कसम खा सकता हूं। इनसे ज्यादह सच्चा आदमी मुझे अपनी जिन्दगी में अभी नहीं मिला। जेल में इनके साथ-चलन पर हम लोग रहू थे। इनकी नेकचलनी की सीमा न थी। इनके दिल में मुसलमानों के खिलाफ रत्ती भर भाव नहीं। डा॰ चोइथराम से मेरी जान पहचान तो पहले से है; पर मैं उन्हें पूरी तरह नहीं जानता। परन्तु जितना मैं उन्हें जानता हूं उतने पर से मैं उनका परिचय सिवा इसके दूसरी तरह देने से इनकार करता हूं कि वे हिन्दू-मुसलमान-एकता के हामी हैं। अभी यह फहरिस्त खतम नहीं हुई है। जो कुछ महसूस होता है वह यह है कि इन तमाम हिन्दुओं और आर्य-समाजियों को अब भी हिन्दू-मुस्लिम-एकता की ओर जीत लेने की जरूरत रही हो तो फिर "हिन्दू-मुसलिम-एकता" इन लफ्जों के मेरे लिए कुछ मानी नहीं रह जाते, और मुझे अपनी इस जिन्दगी में ऐसी एकता प्राप्त करने के बारे में ना उम्मेदी ही रखनी चाहिए।

मौ॰ अब्दुलबारी

पर इन मित्रों पर के ये इलजाम ही इसका सबसे बुरा हिस्सा नहीं है। जैसी हिन्दुओं के बारे में चेतावनियां मुझे दी गई हैं। वैसीही मुसलमानों के विषयमें भी मिली हैं। यहां मैं सिर्फ तीन ही नाम पेश करूंगा। मौलाना अब्दुलबारी साहब एक धर्मोन्मत्त हिन्दू द्रोही के रूप में मेरे सामने पेश किये गये हैं। मुझे उनके लिखे ही लेख दिखाये गये हैं। जिन्हें मैं समझ नहीं सकता। मैंने तो इस विषयमें उनसे पूछ-तांछ भी नहीं की। क्यों कि वे तो खुदा के एक भोले-भाले बच्चे हैं। मैंने उनके अन्दर किसी तरह की छल-कपट नहीं देखा। बहुत बार वे बिना विचारे कह डालते हैं जिससे उनके दिलोजान दोस्तों को भी परेशानी उठानी पड़ती है। पर वे कड़वी बातें कह बैठने में जितनी जल्दी करते हैं उतनी जल्दी अपनी भूल की माफी मांगने को भी तैयार रहते हैं। जिस वक्त जो बात बोलते हैं उस वक्त वे सच्चे दिल से बोलते हैं। उनका गुस्सा और उनकी माफी दोनों सच्चे दिल से होती है। एकबार वे मौ॰ महम्मदअली पर बिना योग्य कारण के बिगड़ बैठे। मैं उस वक्त उनका मिहमान था। उनके मन में लगा कि उन्होंने मुझे भी कुछ सख्त-सुस्त कह डाला। उसी समय मौ॰ महम्मदअली और मैं कानपुर जाने के लिए स्टेशन जाने की तैयारी में थे। हमारे बिदा हो जाने के बाद उन्हें लगा कि उन्होंने हमारे साथ बेजा बरताव किया। मौ॰ महम्मदअली के साथ उन्होंने सचमुच बे-जाइयत की थी। मेरे साथ नहीं। पर उन्होंने तो हम दोनों के पास कानपुर में अपनी तरफ से कुछ लोगों को भेज कर हम दोनों से माफी मांगी। इस बात से वे मेरी नजरों में ऊंचे उठ गये। ऐसा होते हुए भी मैं कुबूल करता हूं कि मौलाना साहब किसी वक्त एक खतरनाक दोस्त का काम दे सकते हैं। पर मेरा मतलब यह है कि ऐसा होते हुए भी वे दोस्त ही रहेंगे। उनके पास 'खाने के और दिखाने के और' यह बात नहीं। उनके दिल में कोई दांव-पेंच नहीं। ऐसे दोस्त के इलजाम ऐसों के होते हुए भी मैं उनकी गोदी में अपना सिर रखकर बाफिकर सो जाऊंगा, क्यों कि मैं जानता हूं वे छिपकर वार कभी न करेंगे।

अली-बिरादर

ऐसी ही चेतावनी मुझे अली भाइयों के बारे में दी गई है। मौ॰ शौकतअली तो बड़े से बड़े सूरवीरों में एक हैं। उनकी

कुरबानी का अजीब माद्दा है और उसी तरह खुदा के मामूली से मामूली बन्दे को चाहने की उनकी प्रेम-शक्ति भी अजीब है। वे खुद इस्लाम पर फिदा हैं; पर दूसरे मजहबों से वे नफरत नहीं करते। मौ० महम्मदअली इनका दूसरा कालिब है। मौ०महम्मद अली में मैंने बड़े भाई के प्रति जितनी अनन्य निष्ठा देखी है उतनी कहीं नहीं देखी। उनकी बुद्धि ने यह बात तय करली है कि हिन्दू-मुसलमान-एकता के बिना हिन्दुस्तान के छुटकारे का दूसरा कोई रास्ता नहीं। उनका 'पेन-इस्लाम-वाद' हिन्दू विरोधी नहीं। इस्लाम भीतर और बाहर से मुक्त हो जाय और बाहर के हर किस्म के हमलों से संगठित होकर टक्कर ले सके ऐसी स्थिति देखने की तीव्र आकांक्षा पर कोई कैसे एतराज कर सकता है? कोकोनाडा के उनके भाषण का एक हिस्सा बहुत ही काबिल एतराज बताकर मुझे दिखाया गया था। मैंने मौलाना का ध्यान उसपर खींचा उन्होंने उसी दम कबूल किया कि हां, वाकई यह भूल हुई। कुछ दोस्तों ने मुझे खबर दी है कि मौ०शौकतअली के खिलाफत परिषद् वाले भाषण में कितनी ही बातें काबिल एतराज हैं। यह भाषण मेरे पास है; परन्तु उसे पढने का समय मुझे न मिल पाया। मैं यह जरूर जानता हूं कि यदि उसमें सचमुच कोई ऐसी बात होगी जिससे किसीका दिल दुखित हो तो मौ०शौकतअली ऐसे लोगों में पहले शख्स हैं जो उसको दुरुस्त करने के लिए तैयार रहते हैं।

यह बात नहीं कि अली-भाई दोषों से खाली हों। मैं खुद भी दोषों से भरपूर हूं। इससे इन भाइयों की दोस्ती की खोज करने और उसकी कीमत समझने में मैं हिचकिचाता नहीं। अगर उनके अंदर कुछ ऐब हैं तो उनसे ज्यादह गुण भी हैं और मैं उनके ऐबों के रहते हुए भी उन्हें चाहता हूं। जिस प्रकार अंदर बसनेवाले मित्रों का त्याग करके मैं हिन्दुओं के अंदर कोई पुख्ता काम नहीं कर सकता; उसी प्रकार मैं इन मुसल्मान-दोस्तों के बिना एकता के लिए मुसल्मानों में भी काम करने की आशा नहीं रख सकता। यदि हममें से बहुतेरे लोग पूर्णता को पहुंचे हुए होते तो हमारे अंदर झगडे होते ही क्यों? पर हम सब अपूर्ण प्राणी हैं और इसीसे हम सबको एक-दूसरे की अनुकूल बातें खोज कर और ईश्वर पर भरोसा रखकर एक ध्येय के लिए मरना चाहिए।

हमारे कितने ही अच्छा से अच्छा लोगों के दिल में वहम और अविश्वास का वायुमण्डल दूर करने के लिए मुझे कुछ खास खास व्यक्तियों के बारे में लिखना पडा। मुमकिन है कि मेरा अन्दाज पाठकों को न जंचा हो। जो कुछ हो; लेकिन यह जरूरी था कि मैं अपना अन्दाज पाठकों के सामने पेश कर दूं। भले ही उनका ख्याल मुझसे जुदा हो।

सिन्ध की शिकायत

ऐसा गहरा अविश्वास असली सत्य की खोज को प्रायः गैर-मुमकिन कर देता है। डाक्टर चोइथराम की तरफ से मुझे खबर मिली है कि सिन्ध में एक हिन्दू के धर्मान्तर की जबरन् कोशिश की गई। उस शख्स ने जब धर्मान्तर करने से इनकार किया तब उसके मुसल्मान साथियों ने उसे जान से मार डाला। यदि यह खबर सच हो तो सचमुच इसे सुनकर रोंगटे खडे हो जाते हैं। यह खबर मिलते ही मैंने सेठ हाजी अब्दुल्ला हारू को तार दे कर हालात पूछे। उन्होंने बडी मुस्तैदी के साथ तुरन्त जवाब दिया कि कहते हैं उस शख्स ने खुदकुशी की है-फिर भी वे ज्यादह तहकीकात कर रहे हैं। मुझे आशा है कि इस मामले में हम को सच्ची खबर मिल कर रहेगी। मैंने तो इस बात का जिक्र यहां इस लिए किया कि जहां आसपास अविश्वास फैल रहा हो वहां काम करते हुए कितनी दिक्कतों का सामना करना पडता है। एक और वाकया भी है; लेकिन जबतक उसके मामले में ज्यादह एतबार के लायक तफसील न मिलेगी तबतक मैं उसका जिक्र न करूंगा। मेरी दरख्वास्त इतनी ही है कि हिन्दू या मुसल्मान किसीके भी खिलाफ अगर कोई बात लोग सुनें तो एक तो वे खुद शान्ति रक्खे रहें और दूसरे उसके संबंध में जब बात करें तो उतनी ही और वैसी ही करें जो साबित की जा सके। मैं अपनी तरफ से यह वादा करता हूं कि ऐसी जो कुछ खबरें मुझे मिलेंगी उनकी फिर वे कितनी ही मामूली और फजूल क्यों न हों—मैं काफी तहकीकात करूंगा और उतना जरूर किये रहूंगा जितना एक शख्स के किये हो सकता है। मुझे तो उम्मीद है कि बहुत ही थोडे समय में हमारे पास काम करने वालों की एक फौज तैयार हो जायगी, जिसके सभ्यों का फर्ज यह होगा कि ऐसी हरएक शिकायत की जांच करें, फरयादी का इन्साफ करावें और ऐसी तजवीज करें कि जिससे आयन्दा ऐसे झगडे खडे होने के कारण दूर हो जायँ।

बंगाल में अत्याचार

बंगाल से खबरें आ रही हैं कि वहां हिन्दू स्त्रियों पर ज्यादती हो रही है। वे अगर आधी सच हों तो भी उनसे क्षोभ पैदा होता है। यह जानना कठिन है कि आजकल चारों ओर ऐसे जरायम क्यों फूट निकले हैं। उसी तरह से उन हिन्दुओं के संबंध में भी जबान को संभाल कर बोलना कठिन है, जो उन भ्रष्ट की गई बहनों के नाते-रिश्तेदार हैं। और उन कामान्ध होकर बे-कुसूर स्त्रियों पर हैवान की तरह ज्यादती करने वालों की पशुता के संबंध में क्या कहें? वहां के मुसल्मानों को लाजिमी है कि वे इन अत्याचारों को खोज निकालें-खास तौर पर सजा दिलाने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि भरसक फिर ऐसी ज्यादतियां न होने पावें। दो-चार बदमाशों को किसी कोने-कुचरे से खोज कर पुलिस के सिपुर्द कर देना कोई बडी बात नहीं है। परन्तु इससे समाज में ऐसे जरायम का होना बन्द नहीं होता। इसके लिए तो पूरे सुधार का कोई उपाय अख्त्यार करके उसके असली कारणों की ही जड काट डालने की जरूरत है। क्या हिन्दुओं में और क्या मुसल्मानों में ऐसे लोग जरूर हैं जो खुद नेक चलन हैं और ऐसे लोगों के अन्दर काम करना मंजूर करेंगे। यही बात काबुलियों और पठानों के जुल्म के बारे में कही जा सकती है। काबुलियों की इस बात का कुछ संबंध हिन्दू-मुसल्मान के सवाल के साथ नहीं है; पर अगर हम यह न चाहते हों कि अकेले पुलिस की दया पर ही जिन्दा रहें तो ऐसे सवालों को भी हमें हाथ में लेना होगा और उनका निपटारा करना होगा।

शुद्धि और तबलीग

परन्तु वह बात जो इन झगडों की जड को पानी सींच रही है शुद्धि या धर्मांतर करने का मौजूदा तरीका है। मेरी राय के मुताबिक तो ईसाइयों की तरह और उनसे कम इस्लाम की तरह दूसरे मजहबवालों को भ्रष्ट कर के अपने मजहब में मिला लेने की विधि हिन्दू-धर्म में है नहीं। ऐसा मालूम होता है कि इस बात में आर्यसमाजियों ने ईसाइयों की नकल की होगी। यह आजकल का तरीका मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं मालूम होता। इससे अबतक श्रेय के बजाय अ-श्रेय ही ज्यादह हुआ है। धर्मांतर महज अपने दिल से संबन्ध रखनेवाली और इन्सान तथा उसके सिरजनहार से संबंध रखनेवाली बात है। फिर भी यह इतनी बाजारू चीज बना दी गई है कि इसके द्वारा खास कर के स्वार्थ-भाव जाग्रत किया जाता है। आर्यसमाजी उपदेशक जब दूसरे धर्मों का खण्डन करने के लिए खडा होता है तब उसे जो मजा आता है वैसा आनन्द

किसी बात में न आता होगा। मेरा हिन्दू-धर्म-भाव तो मुझे यह शिक्षा देता है कि तमाम धर्म थोड़े-बहुत अंश में सच्चे हैं। सब की उत्पत्ति एक ही ईश्वर से है। फिर भी सब धर्म अपूर्ण हैं। क्योंकि वे हमें अपूर्ण मनुष्य के द्वारा मिले हैं। सच्चा शुद्धि-कार्य तो मैं इसे कहूं कि हर शख्स-स्त्री हो या पुरुष-अपने अपने धर्म में रह कर पूर्णत्व प्राप्त करने के लिए कोशिश करे। ऐसी तजवीज में शील ही मनुष्य की कसौटी होती है। अगर मनुष्य नीति और सदाचार में आगे न बढ़ता हो तो फिर एक घर से निकल कर दूसरे घर में जाने से क्या फायदा? जहां मेरे घर में रहनेवाले लोग ही हरदम अपने चाल-चलन में ईश्वर का सरेदस्त इनकार करते हों वहां मैं उस ईश्वर की सेवा के लिए बाहर के लोगों को भ्रष्ट करके अपने घर में लाने की कोशिश करूं (क्योंकि शुद्धि या तबलीग के मानी ऐसे ही मानने चाहिए) तो ऐसी कोशिश के क्या मानी हो सकते हैं? 'पहले अपने घर को सुधारो' यही कहावत इस समय दुनियावी बातों की बनिस्बत धार्मिक बातों में ज्यादह सच साबित होती है।

परन्तु ये मेरे निजी खयालात हैं। अगर आर्य-समाजियों का यह खयाल हो कि उनकी अन्तरात्मा उन्हें उसके लिए प्रेरित कर रही है तो उन्हें इस हलचल को चलाने का पूरा हक है। ऐसा अन्तर्नाद किसी भी तरह की समय की मर्यादा या उपयोगिता की कैद को कुबूल न करेगा और अगर इतनी ही बात से कि कोई आर्य-समाजी उपदेशक या मुसल्मान मौलवी अपनी अन्तरात्मा की प्रेरणा से अपने धर्म का प्रचार करता हो, हिन्दू-मुसल्मान एकता को धक्का पहुंचता हो तो पक्का समझना चाहिए कि ऐसी एकता कोरी ऊपरी एकता होगी। क्यों हम इन कामों से इतना घबरावें? हां, वे काम सच्चाई-ईमानदारी के साथ किये जाने चाहिए। अगर मलकाना राजपूतों को फिर हिन्दू-धर्म में शामिल होना था तो अब वे चाहें उन्हें ऐसा करने का पूरा पूरा हक था। परन्तु अपने धर्म का प्रचार करने के लिए दूसरे धर्मों की निन्दा करने की प्रवृत्ति नहीं चलने दी जा सकती। क्योंकि इससे सहिष्णुता लोप हो जायगी। ऐसे प्रचार के मुकाबला करने का सब से अच्छा उपाय यह है कि आम तौर पर उसकी निन्दा करें। हरएक हलचल प्रतिष्ठित होने का स्वांग बनाती है; परन्तु जिस दम लोक-मत इस ढोंग की पोल खोल देगा उसी दिन प्रतिष्ठा के अभाव से वह लोप हो जायगा। मैं सुनता हूं कि आर्य-समाजी और मुसल्मान दोनों लोग औरतों को सरेदस्त भगा ले जा कर धर्मान्तर कराने की चेष्टा करते हैं। मेरे सामने आगाखानी-साहित्य का ढेर पड़ा हुआ है। उसे गौर के साथ पढ़ने की फुरसत अभी मुझे न मिल सकी। पर मुझे यकीन दिलाया गया है कि उसमें हिन्दू-धर्म की टूटी-फूटी बातें भरी हैं। मैं जितना कुछ पढ़ पाया हूं उससे मैं इतना तो कह सकता हूं कि उसने श्रीमान् आगाखान को हिन्दू अवतार बताया है। यह जानना जरा मजेदार होगा कि खुद श्रीमान् आगाखान इसके बारे में क्या खयाल करते हैं। कितने ही खोजे लोग मेरे दोस्त हैं। उन्हें मैं सिफारिश करता हूं कि वे इस साहित्य को जरूर पढ़ जावें। एक महाशय ने मुझसे कहा है कि आगाखानी-संप्रदाय के कितने ही कार्यकर्ता बे-पढ़े गरीब हिन्दुओं को रुपया उधार देते हैं और पीछे से कहते हैं कि अगर तुम इस्लाम में मिल जाओ तो रुपया तुमसे न लिया जायगा। इसे मैं खिलाफ-कानून लालच देकर धर्म भ्रष्ट करने का जुर्म कहूंगा। परन्तु सबसे ज्यादह बुरा तरीका तो देहली के एक साहब का है। इन्होंने एक छोटीसी पुस्तक बनाई है। उसे मैं शुरू से आखिर तक देख गया हूं। उसमें इस्लाम के उपदेशकों को इस बात की मुफस्सिल हिदायतें दी गई हैं कि वे किस तरह इस्लाम के प्रचार का काम करें। इसकी शुरुआत इस ऊंचे असूल को ले कर की गई है कि इस्लाम खुदा की एकता का प्रचारक है। इस महासिद्धान्त का प्रचार लेखक के कथन के अनुसार हर तरह के मुसल्मान को बिना किसी ऊंचनीच के भेद-भाव के करना जरूरी है। जासूसों का एक छिपा महकमा खोलने की हिमायत की गई है। उसके लोगों का काम होगा कि वे गैर-मुस्लिम आबादियों में हर बहाने जावें। इस बात पर जोर दिया गया है कि वेश्यावें, गाने-बजाने का पेशा करनेवाली औरतें, फकीर, सरकारी नौकर, वकील, डाक्टर, कारीगर सब लोग इस महकमें में शामिल हों। अगर इस किस्म के धर्मप्रचार की हवस लोगों में होती रहे तो इस्लाम के पैगम्बर के महान् पैगाम का अनर्थ करनेवाले ऐसे वेषधारी धर्म-उपदेशकों (उन्हें मैं सच्चा प्रचारक न कह सकूंगा) की छुपी करतूतों से एक भी हिन्दू घर सही सलामत न रह पावेगा। प्रतिष्ठित हिन्दुओं के मुंह से मैंने यह सुना है कि यह किताब निजाम के राज्य में बहुत पढ़ी जाती है और उसमें सुझाये तरीकों के मुताबिक वहां काम भी खूब हो रहा है।

एक हिन्दू की हैसियत से मुझे अफसोस होता है कि ऐसे तरीके कि जिनकी नैतिक श्रेष्ठता में शक है, ऐसे नामी उर्दू लेखक की तरफ से फैलाये जा रहे हैं जिनके पाठकों की संख्या बहुत बड़ी है। मेरे मुसल्मान मित्र मुझे बताते हैं कि कोई प्रतिष्ठित मुसल्मान उसमें बताये तरीकों को पसन्द नहीं करता। पर सवाल यह नहीं है कि प्रतिष्ठित और पढ़े-लिखे मुसल्मान उस किताब के बारे में क्या खयाल करते हैं, बल्कि सवाल तो यह है कि मुस्लिम जनता का एक बड़ा हिस्सा उसको मानता और उसके मुताबिक चलता है या नहीं।

पंजाब के अखबार

पंजाब के अखबारों का एक हिस्सा तो बिल्कुल बे-हया हो बैठा है; उसके बाज बाज लेख तो बिल्कुल गन्दे होते हैं। ऐसे कितने ही जुमलों को पढ़ जाने की महाव्यथा मैंने सहन की है। एक तरफ आर्यसमाजी या हिन्दू पत्र और दूसरी तरफ मुसल्मान लेखक इन अखबारों के संचालक हैं। दोनों ने एक-दूसरे को गालियां देने और एक-दूसरे के मजहब की बुराई करने की मानों बाजी बद ली है। मैं सुनता हूं कि इन अखबारों के खरीदारों की तादाद भी खासी बड़ी है। प्रतिष्ठित लोगों के वाचनालय में भी वे अखबार आते हैं। मैंने यह भी सुना है कि लोगों की इन गालियों और निन्दा के उद्योग को सरकार की शह है। इस बात पर भरोसा करते हुए मैं झिझकता हूं; पर यदि जरा देर के लिए यह मान लें कि ये तमाम बातें सच हैं तो पंजाबी भाई-बहनों को उचित है कि वे अपने प्रान्त की इस बढ़ती हुई बदनामी को बिना विलंब रोकने का उद्योग करें।

मैं समझता हूं कि मैं इन दोनों जातियों के झगड़ों की पुरानी और नयी, तमाम वजूहात, की छानबीन कर चुका हूं। अब झगड़े के उन दो कारणों की जांच करें जो सदा से चले आ रहे हैं।

गो-वध

पहला है गो वध। गो-रक्षा को मैं हिन्दू-धर्म का प्रधान अंग मानता हूं—प्रधान इसलिए कि वह ऊंचे दरजे के लोग तथा आम लोग दोनों के लिए सामान्य है—फिर भी इस मामले में जो हमारा रोष हमेशा मुसल्मानों पर ही रहता है वह मेरी समझ में किसी तरह न आ पाया। अंगरेजों के लिए रोज कितनी ही गायें कटती हैं, पर उसके लिए हम शायद ही कभी कुछ कहते हों। पर जब कोई मुसल्मान गाय को कत्ल करता है तब हमें

महासभा का शासन

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	„ २)
एक प्रति का	„ -)।
विदेशों के लिए	„ ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ४३

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, ज्येष्ठ सुदी ६, संवत् १९८० रविवार, ८ जून, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

हिन्दू-मुस्लिम-एकता

हिन्दू-मुसलमानों के तनाजे का सवाल हिन्दुस्तान के देश-सेवकों के लिए सबसे बड़ा सवाल है। उसपर मैं अपना लंबा-चौड़ा बयान पिछले सप्ताह में जाहिर कर चुका हूं। उसीका सार यहां मैं देता हूं। दोनों मजहबों के लोग इस मामले में अपनी तरफ से अपना अपना फर्ज किस तरह अदा करते हैं, इसका फैसला हमारी आयंदा नस्लें करेंगी। हिन्दू-धर्म और इस्लाम के उसूल चाहे कितने ही अच्छे क्यों न हों, दोनों की जांच करने का सिर्फ एक ही साधन है—वह है आम तौर से उनके अनुयायियों पर होने वाला उनका असर।

अब इस वक्तव्य का सार सुनिए—

कारण

(१) इस अनबन का दूरवर्ती कारण है मोपलों की बगावत।

(२) श्री फजली हुसेन का पंजाब के महकमे तालीम में मुसलमानों की तादाद के मुताबिक सरकारी नौकरियों का बटवारा करना और फलतः हिन्दुओं की तरफ से उसकी मुखालिफत होना।

(३) शुद्धि-आन्दोलन।

(४) सबसे ज्यादह सबल कारण है अहिंसा से जी ऊब उठना और इस अंदेशे का होना कि अहिंसा की ग्यारह दिनों तक तालीम मिलने से दोनों कौमें बदला चुकाने और आत्मरक्षा करने के उसूल को भूल जायंगी।

(५) मुसलमानों का गो-वध करना और हिन्दुओं का बाजा बजाना।

(६) हिन्दुओं का बुज़दिलपन और इस कारण हिन्दुओं की मुसलमानों पर ना-ऐतबारी।

(७) मुसलमानों का गुण्डपन।

(८) हिन्दुओं की मुन्सिफ-मिजाजी पर मुसलमानों का अविश्वास।

इलाज

(१) इसके सुलझाने की सबसे बढ़िया कुंजी है तलवार खींचने के बजाय पंचायत में फैसला कराने का रिवाज डालना।

ऐसा सबल लोक-मत होना चाहिए कि जिसके कारण फरयादी फरीकैन को कानून अपने हाथों में ले लेना गैर-मुमकिन हो जाय। हरएक दावा या तो खानगी पंचायतों में पेश हो और अगर फरीकैन असहयोग के कायल न हों तो अदालतों में दावा दायर करें।

(२) यह डर और खयाल कि घूंसे के बदले में घूंसा जमाना छोड़कर अहिंसा-भाव को उत्पन्न करने से कायरता फैलेगी अज्ञान के फल हैं। यह दूर होना चाहिए।

(३) अगर कौम के अगुआ लोग एकता के कायल हों तो उनके अंदर बढ़ता हुआ बाहमी अविश्वास विश्वास के रूप में बदल जाना चाहिए।

(४) हिन्दुओं को मुसलमान गुण्डों से न डरना चाहिए और मुसलमानों को चाहिए कि वे अपने हिन्दू-भाई को डराना अपनी शान के खिलाफ समझें।

(५) हिन्दुओं को यह न सोचना चाहिए कि हम मुसलमानों से जबरन् गो-कुशी बन्द करा देंगे। वे मुसलमानों के साथ दोस्ती करके यह विश्वास रक्खें कि वे खुद अपनी खुशी से अपने हिन्दू-पड़ोसी के खातिर गो-कुशी बन्द कर देंगे।

(६) और न मुसलमानों को ही यह खयाल करना चाहिए कि वे हिन्दुओं को जबरदस्ती करके बाजा बजाने या आरती करने से रोक सकेंगे। उन्हें भी हिन्दुओं को अपना दोस्त बना लेना चाहिए और विश्वास रखना चाहिए कि वे मुसलमानों के उचित भावों का खयाल रक्खेंगे।

(७) हिन्दुओं को चाहिए कि वे लोक-निर्वाचित संस्थाओं के प्रतिनिधित्व के सवाल को मुसलमानों तथा दूसरी छोटी जातियों पर छोड़ दें और वे जो फैसला करें उसको सच्चे दिल से, शराफत के साथ मान लें। अगर मेरा बस चले तो मैं हकीम अजमलखान साहब को पूरा सरपंच बना दूं और उन्हें पूरी आजादी दे दूं कि मुसलमानों, सिक्खों, ईसाइयों, पारसियों तथा दूसरी जातियों से सलाह-मशवरा करें या जो बहतर समझें करें।

(८) जब राष्ट्रीय सरकार हो तब उसमें नौकरियां लियाकत के लिहाज से दी जाय। जुदा जुदा कौमों का एक मंडल बनाया जाय और उसके द्वारा इम्तहान होकर जो लायक साबित हों उन्हें जगह दी जाय।

(९) शुद्धि या तबलीग के काम में खलल नहीं डाला जा सकता; लेकिन दोनों का काम सचाई और ईमानदारी के साथ होना चाहिए और सुशील लोग ही इस काम को करें।

उसी उत्साह और तेजी के साथ काम करूंगा जिसके साथ शायद मैंने अपने साथ चलने वाली लहर के जमाने में किया होगा। अगर हमें भारतवर्ष का उद्धार करना है तो हमें अपने साधन को साधक से ऊंचा समझना चाहिए। साधक तो आते जाते रहते हैं; लेकिन बड़े से बड़े व्यक्ति के कार्य का असर उसके चले जाने के बाद भी कायम रहता है।

आर्य-समाज का विरोध

आगरा के आर्य-समाज की तरफ से मुझे नीचे लिखा तार मिला है—

'आर्य-समाज, ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्दजी, सत्यार्थ प्रकाश और शुद्धि-आन्दोलन के बारे में आपने जो कड़े उद्गार प्रकट किये हैं उनसे आगरा अपना विरोध प्रकट करता है। उसे विश्वास है कि आर्य-समाज के सिद्धान्तों का पूरा परिचय न होने के कारण अनजान में वे लिखे गये हैं। (वह) आपसे सादर प्रार्थना करता है कि आप अपने विचारों पर फिर से विचार करें और उनके द्वारा जो अनर्थ होने की संभावना है उसे दूर करें।"

मैं इस तार को इसलिए छाप रहा हूं कि मुझे विश्वास है कि आगरा-समाज आर्य-समाज की राय को बहुत-कुछ प्रकट करता है। उसके उत्तर में मैं इतना ही कह सकता हूं कि मैंने समाज या ऋषि दयानन्द या स्वामी श्रद्धानन्दजी के विषय में एक भी शब्द बिना गहरा विचार किये नहीं लिखा है। मैं अपनी राय को आसानी से दबा कर रख सकता था। लेकिन जब कि उसका प्रस्तुत प्रकरण से संबंध है तब सत्य का अवलंबन करते हुए मैं ऐसा न कर सका। हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य हमारी आंखों के सामने है। उसको दूर करने का अत्यन्त महत्व का सवाल सामने खड़ा है। वह वस्तुस्थिति की ओर आंखें मूंद कर या उसे दबा कर नहीं की जा सकती। ऐसे मौके पर जो बात सत्य दिखाई दे उसे कहना जरूरी हो जाता है—फिर वह चाहे कड़वी क्यों न लगे। लेकिन मैं इस बात का दावा नहीं करता कि मुझसे भूल नहीं होती। अभी-तक मुझे ऐसी कोई बात न दिखाई दी जिससे मैं अपने ख्यालात को तब्दील करूं। मैं अज्ञान की बात को भी नहीं मान सकता। मैंने सत्यार्थप्रकाश को जरूर पढ़ा है। मैं स्वामी श्रद्धानन्दजी से भी गहरा परिचय रखता हूं। इसलिए मैंने ये बातें सोच-समझ कर ही लिखी हैं। पर अगर कोई आर्य-समाजी मुझे इस बात को समझा दे कि किसी बात में मुझसे गलती हुई है तो मैं खुशी के साथ अपनी गलती को कुबूल करूंगा उसके लिए माफी मांगूंगा और अपने तमाम गलत बयान को वापस ले लूंगा। (यं. इं)

मेरे विचार

एक साहब ने मेरे विचारों पर किसी जैन-मुनि की राय लिख कर भेजी है और वे चाहते हैं कि उसपर मैं कुछ लिखूं। मुनिजी की राय और उसपर मेरी नुक्ताचीनी इस तरह है—

(१) "अगर गांधीजी के खयालात के मुताबिक सोलहों आने काम हो जाय तो इससे जैन-धर्म को नुकसान पहुंचेगा।"

मुझे विश्वास है कि अगर मेरे विचार कार्यरूप में परिणत हो जायं तो उससे संसार का कल्याण ही होगा। संसार का कल्याण जैन अथवा किसी दूसरे मजहब को नुकसान नहीं पहुंचा सकता। अहिंसा का मतलब है प्रेम। महज प्रेम के ही बलपर सुधार करने के तरीके से नुकसान होना कैसे मुमकिन है?

(२) "खादी से अन्त्यजों का फायदा है; मगर जैनों का तो इससे निहायत नुकसान है।"

यह राय समझ में नहीं आ सकती। अन्त्यज क्या किसी दिन श्रावक हो ही नहीं सकता? फिर श्रावकों को नुकसान पहुंचने के मानी यही हो सकते हैं कि जैन-लोग जो विदेशी कपड़े की तिजारत करते हैं उसके टूट जाने का अन्देशा। पर अगर उनका यह रोजगार टूट भी जाय तो वे दूसरी चीज का व्यापार कर सकते हैं। खादी की ही तिजारत वे क्यों न करें? जैनों के अलावा दूसरे लोग भी विदेशी कपड़े का व्यापार करते हैं। दूषित व्यापार का बन्द होना तो अन्त में धार्मिक-दृष्टि से चाहने योग्य है।

(३) "व्यापारी चाहे किसी भी काम को करे, पर इससे उसे पाप नहीं लगता।"

यह बात जैन-धर्म के मुआफिक नहीं हो सकती। मैंने किसी भी मजहब में ऐसी विधि नहीं देखी।

(४) "गांधीजी के स्तुति-स्तोत्रों में बातें खूब बढ़ा बढ़ा कर कही जाती हैं। महावीर जैसों के गुणों का आरोप उनपर करना ना-मुनासिब है।"

मैं इस राय का बिलकुल कायल हूं। मेरी तारीफ के पुल बांधना छोड़कर अगर स्तुतिकार लोग महज अपने कर्तव्य के पालन करने में ही लगे रहें तो वही सभी भारी स्तुति होगी। और उसमें न तो अत्युक्ति के लिए जगह रहेगी और न किसी दूसरे के लिए।

(५) "अन्त्यज चाहे कितना ही पवित्र क्यों न हो जाय, आखिर वह अन्त्यज ही है।"

इस खयाल के मूल में न तो धर्म है न विवेक है।

(६) "गांधीजी अपनेको कट्टर वैष्णव मानते हैं। पर उनका मतलब जुदा है। गांधीजी के तमाम मनोरथ अगर सफल हों तो तमाम धर्मों का नाश हो जायगा। गांधी ढोंगी है।"

मेरे तमाम विचारों के अनुसार अगर काम होने लगे तो तमाम मजहबों की बढ़ती हो और तमाम मजहबी झगड़ों की सोलहों आने जड़ कट जाय। मैं ढोंगी नहीं हूं। पर मेरे लिए खुद मेरे दिये प्रमाण-पत्र को कौन मानने लगा? इसलिए ढोंगीपन के इल्जाम का निपटारा तो मेरी मौत के बाद ही हो सकता है। इसके अलावा और इल्जाम भी मुझपर लगाये गये हैं। पर मैंने जो खास खास हैं वही ऊपर लिखे हैं। जिन महाशय ने इन इल्जामों को लिखकर भेजा है उन्हें तथा दूसरे लोगों को जिन्हें मेरे विचार पसन्द हैं, मैं सलाह देता हूं कि वे मेरे विचारों की सफाई देने के फेर में न पड़ें। ऐसा करना उनका मेरे खयालात पर अमल करना ही है। जो लोग मेरे विचारों पर चलते हैं उन्हें तो यह देहाती कहावत याद रखनी चाहिए—'आम के आम गुठलियों से क्या काम?' इल्जामों का जवाब देने से द्वेष पैदा होता है, वक्त फजूल बरबाद होता है और एक-दूसरे के मनोविकार प्रबल होते हैं सो जुदे ही। फिर हमें यह भी समझना चाहिए कि यह मानने की कोई जरूरत नहीं कि तमाम इल्जाम द्वेष से प्रेरित हो कर ही किये जाते हैं। मेरे नुक्सों को देखनेवाले कितने ही लोग सच्चे दिल से इस बात को मानते हैं कि मेरे बहुतेरे कामों से मजहब को नुकसान पहुंचता है। इन्साफ की बात तो यह है कि अगर वह दोष हमारे मित्रों पर लगाया जाता हो तो हम उसकी छान-बीन कर के देखें और अगर हमें उसमें कोई बात उचित मालूम हो तो वह उस मित्र को जता दें। इन्सान अपने विरोधी पक्ष की बात सुनने के लिए तैयार नहीं रहता। पर जब उसके मित्र उसे उसके दोष बताते हैं तब अगर उसमें जरा भी सरल भाव हो तो तुरन्त उसके कान खड़े हो जाते हैं और वह विचार कर के आत्म-निरीक्षण करता है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, ज्येष्ठ सुदी ६, संवत् १९८०

महासभा का शासन

धारासभा-प्रवेश के बारे में मैंने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है उसमें कहे मुताबिक जबतक महासभा के कार्य-संचालन की जांच मैं अपने खयालात के मुताबिक न करूं तबतक वह अधूरा रहेगा। मेरे और स्वराजियों के बीच जो मत-भेद है वह सच्चा और गहरा है। मैं मानता हूं कि सच्चे मत-भेद को मान लेने से मुल्क का कदम आगे ही बढेगा; और लीपापोती कर के किसी समझौते के द्वारा मतभेद छिपाने से मुल्क का कदम पीछे हट जाता। अब हर दल के लोगों को अपने खयालात के मुताबिक काम करने का पूरा पूरा मौका रहेगा—किसी किस्म का खयाल उनके रास्ते में रुकावट न डाल पावेगा—उनकी नजर सिर्फ एक ही लक्ष्य पर रहेगी।

ऐसी हालत में इसपर गौर करना जरूरी है कि महासभा का काम किस तरह चलाना चाहिए। मुझे तो यह साफ तौर पर दिखाई देता है कि दोनों दल के लोग मिल कर उसका काम नहीं चला सकते। जिस तरह कि किसी सरकार का काम उन दो दलों के लोगों के एक साथ रहने से अच्छी तरह नहीं चल सकता, जो एक दूसरे के खिलाफ खयालात रखते हों। मैं खिताबों वगैरह के बहिष्कार को महासभा के कार्यक्रम के अंगभूत मानता हूं। बहिष्कार के दो उद्देश हैं। पहला तो यह कि उन लोगों को जो खिताब वगैरह रखते हैं उन्हें छोडने के लिए राजी करें; दूसरा उन संस्थाओं के असर से महासभा को बचावें जिनका बहिष्कार किया गया है। अगर पहले में हमें तात्कालिक सफलता मिल गई होती तो हम तुरन्त अपने लक्ष्य पर पहुंच जाते। पर अगर हम कभी शान्तिमय असहयोग के कार्यक्रम के द्वारा अपने मंजिले-मकसूद पर पहुंचना चाहते हों, तो दूसरी बात की भी हमें उतनी ही जरूरत है। मेरे नजदीक तो बहिष्कार तबतक राष्ट्रीय है जबतक महासभा उसे अपनी संस्थाओं में पालन करती हो। अगर वह सरकारी खिताबवालों, वकीलों, मुदर्रिसों और धारासभाओं के सदस्यों को पदाधिकारी बनाये बिना अपना काम नहीं चला सकती तो वह सरकारी संस्थाओं के प्रभाव, शान और रौबको कम नहीं कर सकती; क्यों कि ये लोग सरकार के शासन-यन्त्र के ही एक अंग के प्रतिनिधि हैं, सिर्फ उनमें वे स्वेच्छापूर्वक जाते हैं। असहयोग-कार्यक्रम का असली आशय यह था कि यदि सचाई शान्ति और सफलता के साथ बिना इनके प्रभाव के—नहीं उसके मौजूद रहते हुए भी, यदि महासभा संस्थाओं का काम, चला सके तो सिर्फ यही बात हमें स्वराज दिला देने के लिए काफी होगी। हमारा संख्या-बल तो इतना बढा हुआ है कि हमारी राष्ट्रीय महासभा के द्वारा किये गये बहिष्कार के पूरे पालन से महासभा की शक्ति इतनी बढ जायगी कि कोई उसकी ओर आंख उठा कर न देख सकेगा।

इससे हम नतीजे पर पहुंचते है कि वे लोग महासभा के अधिकारी नहीं रह सकते जो खिताब रखते हों, जो सरकारी मदरसों के मुदर्रिस हों, जो वकालत करते हों, जो धारासभाओं के सदस्य हों और जो विदेशी और यहां तक कि मिल का बना भी कपडा पहनते हों और जो ऐसे कपडों की तिजारत करते हों। हां, वे लोग महासभा के सदस्य हो सकते हैं पर उसके पदाधिकारी नहीं हो सकते न होने चाहिए। हां, वे प्रतिनिधि हो सकते हैं और महासभा के प्रस्तावों पर अपने विचारों का असर डाल सकते हैं, पर एक बार जहां महासभा की नीति निश्चित हो गई तो फिर जो लोग उसके कायल न हों मेरी राय में उन्हें कार्यकारिणी संस्थाओं से अलग रहना चाहिए। महासमिति तथा तमाम स्थानिक समितियां ऐसी संस्थायें हैं और उनमें केवल वही लोग रहने चाहिए जो सच्चे दिल से उस नीति के कायल हों और उसके अनुसार काम करना चाहते हों। महासभा की संस्थाओं में फिरते हुए मत देने का तरीका मेरा ही सुझाया हुआ है। लेकिन तजरिबे से यह मालूम होता है कि जहां तक कार्यकारी पदों से ताल्लुक है, यह काम नहीं दे सकता। यदि कार्यकारिणी संस्थाओं को ऐसा बनाना हो कि जिससे वे महासभा की निश्चित नीति के अनुसार काम कर सकें तो इस खयाल को छोड देना होगा कि सब तरह के खयालात रखने वाले लोग इन समितियों में रहें।

हमें पूरी कामयाबी न मिलने का एक सब से बडा महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि इन कार्यकारिणी समितियों के सदस्य महासभा के ध्येय तक में विश्वास न रखते थे। कार्य-कारिणी समिति के बारडोली में पास किये प्रस्तावों के बाद महासमिति की जो बैठक देहली में हुई थी उसके संबंध में मैंने अपने विचार उन्हीं दिनों 'यंग इंडिया' में प्रकाशित किये थे। उस समय जो मेरी हालत थी वही आज भी है। उस समय मैंने जितना ही सका साफ तौर पर देखा कि अगर बहुमत नहीं तो बहुतेरे सदस्य अहिंसा और सत्य को महासभा के ध्येय के अंगभूत मानने में विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने 'शान्तिमय' का अर्थ 'अहिंसात्मक' और 'न्यायोचित' का अर्थ 'सत्य' न स्वीकार किया। मैं देखता हूं कि फरवरी १९२२ की बनिस्बत आज हमारे अन्दर हिंसा और असत्य के भाव कहीं ज्यादह हैं। इसलिए मैं प्रार्थना करूंगा कि जो लोग पांचों बहिष्कारों और अहिंसा और सत्य के कायल न हों उन्हें महासभा के पदों से इस्तीफा दे देना चाहिए। यही कारण है जो मैंने धारासभा-प्रवेश संबंधी अपने वक्तव्य में कहा है कि रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति जुदा जुदा फिरके के लोग अपनी अपनी संस्थाओं के द्वारा करें। पांचों बहिष्कारों के माननेवाले और अहिंसा और सत्य के कायल अगर कोई लोग हों तो उनकी कोई संस्था महासभा के सिवा नहीं है। ऐसी हालत में, मेरी राय में, सब से ज्यादह कुदरती बात यही है कि स्वराजी लोग अपनी जुदी संस्थाओं के द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति करें। जहांतक मैं सोच सकता हूं उसकी कार्य-प्रणाली बहिष्कारियों से जरूर जुदी होगी। अगर वे धारासभा-प्रवेश को सफल बनाना चाहते होंगे तो उन्हें अपनी सारी शक्ति उसी काम में लगानी होगी और इसलिए वे रचनात्मक कार्यक्रम की सहायता खासकर धारासभाओं के द्वारा कर सकते हैं।

मैं उस गज-ग्राह के युद्ध में शामिल नहीं हो सकता जिसमें हर दल के लोग महासभा के पदाधिकारी बनने की कोशिश करें। यदि जरूरी ही हो तो यह युद्ध दिसंबर में, आगामी महासभा के अधिवेशन के समय, बिना तेजी और कटुता के, लडा जा सकता है। महासभा हमारी विचारसभा और धारासभा है। उसकी स्थायी संस्थायें बिलकुल कार्यकारिणी समितियां हैं और उनका काम है महासभा के प्रस्तावों को कार्य-रूप में परिणत करना। मुझे बे-हद जल्दी है। महासभा के द्वारा स्वीकृत शुद्ध और पूर्ण अहिंसात्मक असहयोग कार्यक्रम में मेरा पूर्ण विश्वास है। यदि मेरे पास सच-मुच अहिंसक और सत्य-भक्त कार्यकर्ता हों, जो मेरे साथ पूर्वोक्त बहिष्कारों में श्रद्धा रखते हों, जो खादी की शक्ति के कायल हों,

हिन्दू-मुस्लिम-एकता और अस्पृश्यता-निवारण को मानते हों तो फिर मुझे यह मालूम होने लगेगा कि स्वराज्य इतनी तेजी के साथ आ रहा है जिसका खयाल तक हम में से बहुतेरे लोगों को न होता होगा। पर अगर हम महासभा-समिति में झगड़ा मचाते रहें तो हम महज एक दूसरे के काम में बाधक होंगे और एक-दूसरे को बदनाम करेंगे। अगर हर दल के लोग बिना ईर्ष्या-द्वेष और वैमनस्य के अपनी अपनी इज्जत के साथ अलहदा काम करते रहें (क्योंकि मिलकर वे काम कर नहीं सकते) तो मानों वे एक-दूसरे की मदद ही करेंगे।

मुझे भरोसा है कि आगामी महासमिति के समय तमाम सदस्य उपस्थित होंगे। अगर हम शान्ति के साथ बिना किसीकी नियत को बुरा बताये, हमारी कार्य-योजना पर चर्चा कर सकें और महासमिति को एक विचारकों की समिति बना सकें तो हम इन अगले छः महीने में पर्वत-प्राय काम कर डालेंगे। हर सदस्य का ध्यान मैं इस बात की ओर बड़े अदब के साथ खींचता हूं कि वे इस बात को सोचें कि इस कार्यक्रम के संबंध में उनके क्या विचार हैं। अगर इस मौजूदा कार्यक्रम की बिना किसी और सहायता के स्वराज्य प्राप्त कराने की क्षमता में उनका विश्वास नहीं है, और अगर वे सचमुच अपने निर्वाचकों के मत को प्रकट करते हों तो मैं महासमिति को इस बात की सिफारिश करते हुए जरा भी न झिझकूंगा कि वह इस कार्यक्रम पर फिरसे विचार करे और उसमें आमूल परिवर्तन कर देने की जोखिम अपने सिर पर ले ले—इस आशा से कि आगामी महासभा उसकी मंजूरी दे देगी। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे घोर परिवर्तन के लिए सबल और पुष्ट कारण होने चाहिए और सच्चा लोकमत उसके पक्ष में होना चाहिए। इन दो शर्तों के पूरा होने पर महासभा के नियम में इसके प्रतिकूल किसी बात के होते हुए भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि, महा-समिति का यह फर्ज है कि निन्दा-पात्र होने की संभावना रहते हुए भी वह महासभा की रीति को बदल दे और साल के अखीर में अच्छा और ठोस काम कर के दिखावे। यह सब काम के बन्द हो जाने की हालत हर हालत में दूर होनी चाहिए।

इतना लिख चुकने के बाद मुझे यह जताया गया कि हो सकता है कि मेरे इन विचारों के कारण स्वराजी लोग जनता की नजर में अपरिवर्तनवादियों से कमजोर या हीन दिखाई दें। ऐसा कोई खयाल मेरे दिमाग में जगह नहीं रखता। योग्यता का तो सवाल ही नहीं है। यह तो सिर्फ स्वभाव की भिन्नता की बात है। मैंने तो सिर्फ इसी बात पर दृष्टि रखकर यह लिखा है कि महासभा का कार्य सुचारु-रूप से किस तरह चलाया जाय। काम तभी हो सकता है जब सिर्फ एक ही दल के लोगों के हाथों में उसका शासन-सूत्र हो। यदि स्वराजियों के विचार लोकमत के निदर्शक हों तो महासभा का शासन महज उन्हींके जिम्मे रहे। महासभा को हमेशा लोक-मत का निदर्शन करना चाहिए—फिर चाहे वह कैसा ही हो-अच्छा हो या बुरा। और यह उन लोगों को उचित है जो महासभा के निर्णय के खिलाफ विचार रखते हैं, कि उनके कमजोर या हीन न होने पर भी, वे महासभा के शासन से अलहदा रहें और अलहदा रह कर ही लोकमत को अपनी तरफ लाने की कोशिश करें। यदि अपरिवर्तनवादी लोग परिवर्तनवादियों को इस कारण कि उनका मत उनसे जुदा है, अपनेसे किसी तरह हीन समझेंगे तो वे उनके सौंपे काम के प्रति झूठे साबित होंगे।

एक बात यह भी सुझाई गई है कि किसी एक ही दल के हाथ में शासन-सूत्र सौंप देने की हिमायत करते हुए मैं देहली और कोकनाडा के प्रस्तावों की भाषा के यद्यपि नहीं पर आशय के खिलाफ जा रहा हूं। मैंने दोनों प्रस्तावों को गौर के साथ पढ़ा है। मेरी राय में देहली वाला और खास कर कोकनाडा वाला प्रस्ताव यह नहीं कहता कि शासन-संस्थाओं पर दोनों का कब्जा रहे। कोकनाडा का प्रस्ताव केवल अहिंसात्मक असहयोग को पुनः स्थापित ही नहीं करता बल्कि उसपर जोर भी देता है। पर अगर उन प्रस्तावों का आशय समझने में मुझसे भूल होती हो तो भी मेरी दलील को उससे बाधा नहीं पहुंचती। मैंने तो जो अपनी राय थी वह दे दी है; उसे मानना न मानना महा-समिति के सदस्यों की मर्जी की बात है। और वह सिर्फ कार्य के सुचारु-रूप से चलने की आशा से प्रेरित है। मैं समझता हूं कि दोनों दल अलगअलग काम कर के ही एक दूसरे को अच्छी तरह मदद दे सकते हैं।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

महा-समिति

आगामी महा-समिति की बैठक इस बात का फैसला कर देगी कि महासभा के अगले छः महीनों का काम किस तरह किया जाय। जो कौम अपने मंजिले मकसूद पर पहुंचने के लिए तड़प रही हो उसके लिए छः महीने खोना मोया एक युग को खो देना है। उसका एक एक लहमा कीमती है। महासमिति के सदस्य प्रतिनिधियों के प्रतिनिधि हैं। वे कौम के सच्चे पदाधिकारी हैं या होने चाहिए। अगर वे चाहें तो स्वराज्य को बहुत जल्दी बुला सकते हैं। वे—स्त्री हों या पुरुष—ऐसे हों जो तत्कालीन राष्ट्रीय कार्यक्रम में अटल विश्वास रखते हों। उन्हें खुद उसके मुताबिक चलना चाहिए और औरों को भी उसके लिए तैयार करना चाहिए। अगर तीन सौ और पचास प्रतिनिधि एक दिल हो कर काम करें तो मुल्कके दिलपर आग की आग में सिक्का जमा दें।"

तो आइए, हम सब अपने अपने दिल से पूछें—

१—क्या स्वराज्य हासिल करने के लिए मैं अहिंसा और सत्य में विश्वास करता हूं?

२—क्या मैं सच्चे दिल से हिन्दू-मुसलमान-एकता का कायल हूं?

३—क्या मैं चरखे की इस ताकत का कायल हूं कि उसके जरिये हिन्दुस्तान के करोड़ों भूख से पीड़ित लोगों के आर्थिक कष्ट दूर हो जायंगे? क्या मैं हाथकती खादी का घर घर प्रचार करने के लिए कम से कम आध घण्टा रोज मजहबन् चर्खा कातने के लिए तैयार हूं? हां, जब २४ घण्टे सफर में हों तब की बात दूसरी है और क्या मैं खादी के सिवा दूसरे किसी कपड़े को न पहनने के लिए तैयार हूं?

४—क्या मैं सरकारी खिताबों, मदरसों, अदालतों, और धारासभाओं के बहिष्कार पर विश्वास रखता हूं।

५—अगर मैं हिन्दू हूं तो क्या मैं इस बात को मानता हूं कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म के सिर पर एक दाग है?

६—क्या मैं शराबखोरी और नशेबाजी को उठा देने में विश्वास रखता हूं, बावजूद इसके कि एक ही सपाटे में उसकी सारी आमदनी सफा हो जायगी?

मेरी अपनी राय में तो जो शख्स महासभा के कार्यक्रम की इन मदों को न मानता हो उसे महासमिति में न रहना चाहिए। तमाम मदों की ओर ध्यान दिलाने की जरूरत इसलिए हुई कि बहुतेरे सदस्य अहिंसा और सत्य को नहीं मानते हैं। मुझे यह भी मालूम होता है कि महासभा की कार्यकारिणी संस्थाओं में ऐसे वकील लोग भी हैं जो वकालत कर रहे हैं, ऐसे सदस्य भी हैं जो हमेशा और एकमात्र खादी नहीं पहनते हैं, ऐसे असहयोगी सदस्य भी हैं जो राष्ट्रीय पाठशालाओं की व्यवस्थापक-समितियों में हैं और जो खुद अपने लड़कों को सरकारी मदरसों में भेजते हैं। और, अन्त में, ऐसे व्यापारी भी हैं जो विदेशी मिल के

कपड़ों का व्यापार करते हैं और फिर भी महासभा के पदाधिकारी हैं। अगर वे लोग जो महासभा के कार्यक्रम के अनुसार काम करना चाहते हैं खुद ही उसके मुताबिक न चलें तो उस कार्यक्रम को सफल बनाना गैर-मुमकिन है। जो वकील खुद वकालत करता हो वह अपने भाई से किस तरह कह सकता है या उससे आशा रख सकता है कि वह वकालत छोड़ दे? या वह शख्स जो खुद चरखा नहीं कातता है किस तरह दूसरे को उसकी जरूरत बता सकता है?

मैं समिति से कहूंगा कि उसका कार्यक्रम ऐसा रहे जिसके अनुसार वह चलना चाहती हो अगर किसी दूसरे कार्यक्रम के पक्ष में बहुमत हो तो मैं अल्पमत वालों से कहूंगा कि वे महासमिति में न रहें और उसके बाहर रहकर उस कार्यक्रम के अनुसार काम करें। महासभा के प्रस्तावों और कार्य-समिति के मतालबों का अबतक बहुत-कुछ निरादर हो चुका है। इसलिए मैं यह भी सूचित कर देना चाहता हूं कि महासमिति के सदस्यों को चाहिए कि वे हर माह के आखीर में कमसे कम १० नंबर का १० तोला अच्छा बट दिया हुआ एकसा सूत खुद कातकर भेजा करें। अगर रोज आध घण्टा काता जाय तो एक महीने में इतना सूत आसानी से काता जा सकता है। हर मास की १५ ता० के पहले यह सूत खादी-मंडल के मंत्री के पास पहुंच जाना चाहिए। जो इसमें गफलत करेगा वह इस्तीफा देने के लायक समझा जायगा। इसी तरह वे लोग भी जो अपने अपने हाथों से धुनई, कताई और हाथसे कते सूत की बुनाई का हिसाब हर माह न भेजेंगे इस्तीफे के पात्र समझे जायंगे। हिसाब हर माह की १५ ता० के पहले मन्त्री के पास पहुंच जाना चाहिए।

मैं जानता हूं कि ये शर्तें उन लोगों के लिए मुश्किल हैं जो काम करना नहीं चाहते हैं, लेकिन उन लोगों के लिए कुछ नहीं है जो वाकई काम करना चाहते हैं। अगर कौम के चुनींदा प्रतिनिधि काम न करें तो महासभा का कार्यक्रम पूरा करने का कोई तरीका दुनिया में नहीं है।

हमारे काम करने के तरीकों में बड़ी ढील फैल रही है। अब वक्त आ गया है कि हम जरा अपनी अव्यवस्थितता और अनियमितता को कम करें। यह इल्जाम लगाया जाता है कि यह कार्यक्रम प्राण-प्रेरक नहीं है। सूत कातने वालों के मुल्क को स्वराज्य नहीं मिल सकता। इस इल्जाम से मैं डरता या घबड़ाता नहीं हूं; क्योंकि मैं इस बात का कायल हो चुका हूं कि ठोस और बुनियादी काम से बढ़कर प्राण-प्रेरक काम कोई नहीं हो सकता और अगर हमें इस भूमि से फाकेकशी का नाम-निशान दूर करना हो और आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होना हो तो हमारी कौम को धुनियों, सूतकातों और जुलाहों की कौम बने बिना चारा नहीं।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

देशी राज्य-परिषदों का ध्येय

(काठियावाड़ राजकीय परिषद का ध्येय क्या होना चाहिए, इस विषय पर 'नवजीवन' में श्री गांधीजी ने एक लेख लिखा है। उनके विचार तमाम देशी-राज्यों के लिए उपयोगी होंगे। वे लिखते हैं:—)

मेरी राय में का० रा० परिषद् का ध्येय ऐसा होना चाहिए—

(१) ऐसे काम करना जिससे हरएक रियासत में राजा और प्रजा का संबंध लोकोपकारी हो।

(२) ऐसे उपाय करना जिससे हर एक राज्य के बीच और हरएक राज्य की प्रजा के बीच निकट और परस्पर लाभदायी संबंध हो।

(३) ऐसे उपाय करना जिससे समस्त काठियावाड़ की प्रजा की आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक उन्नति हो।

परिषद् का प्रत्येक कार्य शान्ति और सत्य के ही रास्ते करें।

राजाओं को अंगरेजी सरकार के कब्जे से निकालने का भार परिषद् नहीं उठा सकती। यदि यह ध्येय रक्खा जाय तो राजा और प्रजा दोनों की हानि होगी। राजा लोग सरकार के मांडलिक हैं। वे ऐसी परिषद् करने की सलाह नहीं दे सकते। यही नहीं, बल्कि उन्हें आजाद करने की हलचल उन्हें पसन्द होने भी उन्हें उसकी मुखालिफत ही करनी होगी। इसलिए जबतक राजा लोग खुद आजादी को अपना ध्येय बना कर उसके लिए आम तौर पर आन्दोलन न करें अथवा न कर सकें तबतक प्रजा के इस दिशा में किये गये काम को मैं फजूल और हानिकारक मानता हूं। राजाओं के अन्याय और जुल्म के खिलाफ लोकमत तैयार करने का काम तो परिषद् का होना ही चाहिए। उसका समावेश पहले नियम में हो जाता है। हरएक राज्य की प्रजा अपने मुकामी सवालों का निपटारा शौक से करे। परन्तु काठियावाड़ एक छोटा सा राष्ट्र है, इसलिए समस्त काठियावाड़ को परिषद् करने का उसे अधिकार है और यह उसका फर्ज भी है। परिषद् महज सारी प्रजा के सामान्य सवालों की ही चर्चा कर सकती हो सो बात नहीं। बल्कि मुकामी सवालों को भी हाथ में ले कर उनके विषय में समस्त लोकमत तैयार कर के उस मत के द्वारा मुकामी सवालों की सहायता कर सकती है।

राजनैतिक शब्द का व्यापक अर्थ मैं एक पिछले अंक में बता चुका हूं। मैं मानता हूं कि वही सच्चा अर्थ है। परिषद् को लोकप्रिय होने का काम अब करना है। लोकप्रियता का अर्थ इतना ही नहीं है कि लोग सभाओं में आने लगें। उसका अर्थ यह है कि लोग परिषद् की मार्फत अपने दुःखों को दूर करावें और लोग परिषद की सलाह के अनुसार चलें। यह काम होने के पहले परिषद् के कार्य-संचालकों को लोक-सेवा करनी चाहिए। देहात के लोगों में रह कर काम करना चाहिए और उनकी तरह गरीब हो कर सादगी से रहना चाहिए।

राज्य का दुश्मन न बनना चाहिए। राजाओं के साथ हमारा असहयोग नहीं। राजाओं से हमने अभी आशा नहीं छोड़ दी है। मैंने तो हरगिज नहीं छोड़ी है। कितने ही राजाओं के जुल्मों से मैं अनजान नहीं हूं। उनके मनचाहे और बेजा खर्च से मैं बहुत व्यथित हूं। उन्हें स्वदेश-वास की बनिस्बत योरप-वास ज्यादह पसन्द है। यह खतरनाक बात है। पर उसके लिए मैं उन्हें नहीं कोसता। अंगरेजी शासन-प्रणाली का यह भी एक फल है। लड़कपन से राजा लोग बिल्कुल पराधीन रहते हैं। उनके पालक अंगरेज शिक्षक आदि बनते हैं। उन्हें हुक्म होता है कि वे राजाओं को अंगरेजों के जैसा बनावें, अंगरेजी शासन का शौक पैदा

करें और तमाम अंगरेजी बातों की रुचि उत्पन्न करावें। हम कितने ही धनीलोगों में योरप के प्रति पक्षपात देखते हैं। राजा लोगों में वह जरा अधिक अंश में होता है। दोनों के इस विदेश-प्रेम का कारण एक ही है। मेरी पक्की राय है कि यदि काठियावाड़ में अर्थात् देशी राज्यों में लोकमत तैयार हो, मजबूत हो और निर्भय हो तो हमारे राजा लोकमत को तुरन्त मानने लगें। राजालोगों में बहुतेरे ऐब हैं। फिर भी मैं उन्हें सरल मानता हूं। वे ईश्वर से डरते हैं। लोकमत का तो उन्हें बहुत डर होता है। ये दोनों मेरे निजी तजरिबे हैं। परन्तु जहां लोक-मत हो ही नहीं अथवा जहां लोग महज खुशामदी हों, वहां राजा बेचारे क्या करें? अगर उनके दोष बताने वाले, कड़वी बातें कहने वाले, कोई न हों तो इससे वे निरंकुश बनते हैं और उसमें फिर उन्हें सरकार की मदद मिलती है अर्थात् समय उनका दुश्मन बनता है और उनकी अवनति होती है। हां, यह सच है कि राजाओं के ज्यादहतर जुल्म बेढंगे होते हैं। इससे वह जुल्म हमें बड़ा खलता है। पर सरकार का जुल्म बड़े ढंग से बड़ी सभ्यता के साथ होता है। इससे वह कष्टदायी मालूम नहीं होता। फिर अंगरेजी सल्तनत में तो कितने साथियों और लोकमत की सहायता होती है; लेकिन देशी राज्यों में अभी थोड़े ही लोग हिम्मतवान निकलते हैं। इसलिए उसे दबा देना आसान होता है। ऐसा होते हुए भी मैं मानता हूं कि यदि विनयी, नम्र, सुशील और विवेकवान् लोक-सेवक पैदा हों तो राजा लोग उसके सामने झुके बिना न रहेंगे। और उनका यह नमन डर के कारण नहीं बल्कि गुण के कारण होगा।

राजाओं के प्रति वहम रखकर अगर हम शुरुआत करेंगे, उनकी बुराई ही करने का इरादा रक्खेंगे, उनकी अच्छी बातों की ओर नजर ही न करेंगे तो हम पहले ही से राजा के बहीखाते में खर्च की मद में दर्ज हो जायंगे फिर जमा की मद में दर्ज होते बहुत मिहनत पड़ेगी। इससे कोई यह न समझे कि मैं भीरुता का उपदेश दे रहा हूं। मैं अहोदन और नम्र निर्भयता के बीच भेद बता रहा हूं। आम का पेड़ ज्यों ज्यों बढ़ता है त्यों त्यों झुकता है। उसी तरह बलवान् का बल ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है त्यों त्यों वह नम्र होता जाता है और त्यों ही त्यों वह ईश्वर का डर अधिक रखता जाता है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

प्रेम का अभाव या अतिरेक?

मैंने राम, शंकर, भरत इत्यादि अवतारों के लिए मैंने एकवचनी प्रयोग किये हैं। इसपर एक वैष्णव सज्जन प्रेम के साथ उलहना देते हैं। उन्हें इस बात पर दुःख हुआ है कि मैंने 'राम' को 'श्री रामचन्द्र प्रभु' और 'भरत' को 'श्री भरतमुनी' नहीं लिखा। और विनय-पूर्वक अनुरोध करते हैं कि अब आगे से मुझे उन पवित्र नामों का उल्लेख आदर-पूर्वक करना चाहिए। इन सज्जन को मैं खानगी में खत लिखकर जवाब दे देता; परन्तु इस ख्याल से कि कहीं किसी और वैष्णव के दिल को चोट पहुंची हो, इस बात का विचार मैं पाठकों के सामने करता हूं। पत्र-लेखक शायद इस बात को न जानते हों कि मैं खुद भी वैष्णव हूं और मेरे कुटुंब के इष्टदेव श्री रामचन्द्र प्रभु हैं। परन्तु यद्यपि मैंने राम को 'श्री रामचन्द्र प्रभु' केवल उन सज्जन को सन्तुष्ट करने के लिए यहां एक बार लिखा है, तो भी खुद मुझे "राम" एक नाम ही प्रिय है।

'श्री रामचन्द्र प्रभु' मुझे अपनेसे बहुत दूर मालूम होते हैं; 'राम' तो मेरे हृदय में राज्य कर रहे हैं। जिन जगहों पर मैंने राम, भरत आदि पवित्र नामों का प्रयोग किया है वहां मेरी दृष्टि से तो मेरी भक्ति ही टपकती है। अगर ये वैष्णव भाई ऐसा दावा करें कि राम के प्रति उनका प्रेम मुझसे ज्यादह है तो मैं उनपर राम के दरबार में दावा दायर करूंगा और राम-राज्य में इन्साफ मेरे पक्ष में होगा।

हनूमान ने जिस प्रेम की परीक्षा दी थी वैसी ही परीक्षा देने को मेरा जी चाहता है। प्रिय से प्रिय वस्तु निकट से निकट रहती है। वह तो 'तू' ही हो सकता है। 'आप' में दूरी सूचित होती है। मैंने अपनी मां को किसी दिन 'तुम' कह कर नहीं पुकारा। और अगर भूल से भी मैं उसे 'तुम' कह देता तो वह रोती; क्योंकि उसका बेटा उससे दूर हो गया।

मेरी जिन्दगी में एक ऐसा अवसर था जब मैं राम को 'श्री रामचन्द्र' के रूप में पहचानता था। पर वह जमाना चला गया। राम तो मेरे घर आ गये हैं। उन्हें अगर मैं 'आप' कहूं तो वे मुझपर ऐतराज करते हैं। मुझे न मां है, न बाप है, न भाई है,—मैं छत्रहीन हूं। राम ही मेरे सर्वस्व हैं। वही मां हैं, बाप हैं, भाई हैं, सर्वस्व हैं। मैं उसीका जिलाया जीता हूं। सारी स्त्री-जाति में मुझे वही दिखाई देता है। इससे मैं तमाम स्त्रियों को मां या बहन के बराबर मानता हूं। तमाम पुरुषों में मैं उसीको देखता हूं, इससे सबको अवस्था के अनुसार बाप, भाई या पुत्र की तरह मानता हूं। उसी राम को मैं भंगी और ब्राह्मण में देखता हूं। इससे दोनों को वन्दन करता हूं।

अभी राम मेरे पास रहते हुए भी दूर रहता होगा। इसीसे मुझे 'तू' कहकर पुकारना पड़ता है। जब वह चौबीसों घण्टे मेरे पास रहेगा तब मुझे 'तू' कहने की भी जरूरत न रहेगी। दूसरे लोग मेरी मां के लिए तुंकार का प्रयोग न करते थे। वे तो अनेक आदरवाचक विशेषणों का प्रयोग करते थे। इसी तरह अगर राम मेरा न होता तो मैं भी जरूर उसका अदब-लिहाज रखता। पर वह अब मेरा है और मैं उसका गुलाम हूं। इसलिए चाहता हूं कि वैष्णव-जन उससे जुदा होने का बोझ मेरे सिर पर न रक्खें। जिस प्रेम के लिए शिष्टाचार की जरूरत हो क्या वह प्रेम है? तमाम भाषाओं में, तमाम धर्मों में ईश्वर 'तू' सर्वनाम के द्वारा ही संबोधित किया जाता है।

द्राविड़ प्रान्त में अव्वाई माई नामक मीराबाई जैसी एक महा तेजस्विनी भक्तिन थी। वह नित्य विष्णु-मन्दिर में बैठी रहती। कभी उसकी पीठ मूर्ति की तरफ होती और कभी वह मूर्ति के सामने पैर फैलाकर बैठी रहती। एक दिन कोई भावुक बाल-भक्त वहां दर्शन के लिए पहुंचे। ईश्वर के साथ अव्वाई माई का कितना गहरा संबंध था, यह बात उस भक्त को मालूम न थी। उसने आंखें तरेर कर अव्वाई माई को कुछ सत्याग्रही गालियां सुनाईं।

अव्वाई माई खिलखिला कर हंस पड़ीं। उनके हास्य से सारा मन्दिर गूंज उठा। अव्वाई माई उस भक्त से बोलीं—"बेटा! आ यहां बैठ जा। बच्चा! तू कहां से आया है? तूने मुझे धिक्कारा तो! पर तू एक बात बता। मैं अब बूढ़ी हो गई; परन्तु मुझे एक भी जगह ऐसी न मिली जहां भगवान् न हों। जहां कहीं मैं पैर फैलाती हूं वहीं वह सामने खड़ा दिखाई देता है। अब तू कोई ऐसी जगह बता, जहां वह न हो। तो जरूर मैं उसी दिशा में पैर फैलाया करूं।"

वह बाल-भक्त तो था विनयी। अज्ञान के कारण अव्वाई माई को पहचान न पाया था। वह गद् गद् हो गया। आंखों में मोती छलकने लगे और माई के अंगूठे पर टपकने लगे। माई ने पैर खींच लिये। उसने पैर पकड़ लिये। 'माता मुझसे भूल हुई। मुझे माफ करो, मेरा उद्धार करो। माई ने पैर खींच लिया और अपने हाथ से उसे पकड़ कर छाती से लगाया और चूमने लगी। फिर खिल खिलाई और हंस कर कहने लगी—"भक्त आ, इसमें

माफी की कौन बात है ? तू तो मेरा बेटा है। मुझे ऐसे कितने ही बेटे हैं। तू समझदार है। इससे तेरे मन में जहां कुछ शंका हुई कि तुरन्त तूने मुझसे कह दी। जा, श्रीरंग भगवान् तेरी रक्षा करेंगे। पर बेटा, मां की खबर लेते रहना भला।"

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

क्या सिक्ख हिन्दू हैं ?

पंजाब से एक मित्र लिखते हैं—

"वायकोम वाली टिप्पणी में आपने सिक्खों को भी मुसलमानों और ईसाइयों के साथ अ-हिन्दुओं में गिना है। इस बात पर अकाली लोग थोड़े-बहुत बिगड़े हैं। बहुत से लोगों को मैंने यह शिकायत करते हुए सुना है कि सिक्खों ने बाज़ाब्ता अपनेको हिन्दू-धर्म से कभी अलहदा नहीं कर लिया है। हां, कुछ अपनेको हिन्दू नहीं कहते हैं,। सो इसपर वे कहते हैं कि यों तो स्वामी श्रद्धानन्द भी कुछ समय पहले अपनेको हिन्दू कहलवाने पर बड़ी आपत्ति किया करते थे। शि० गु० प्र० कमिटी के कितने ही सदस्य हिन्दू-सभा के सदस्य हैं; और यद्यपि कुछ अकालियों के दिल में यह भाव है कि हिन्दू-धर्म से अपना ताल्लुक तोड़ लेना बेहतर है, तो भी एक बड़ी जमात ऐसी भी है जो ऐसा नहीं चाहती। हां, अपने मन्दिरों को वे आम हिन्दू-मन्दिरों से अलहदा और अपने कब्जे में रखना जरूर चाहते हैं। पर हिन्दुओं के प्रत्येक संप्रदाय का यही हाल है। जहां तक मुझे पता है जैन लोगों को ऐसा हक हासिल है और मुझे यह बताया गया है कि आर्य-समाजी, ब्रह्मसमाजी तथा दूसरे लोग जो कट्टर या सनातनी हिन्दू नहीं हैं—जो दावा करते हैं उससे अधिक दावा सिक्ख लोग नहीं कर रहे हैं। यहां के सिक्ख नेताओं से घनिष्ठ परिचय होने और सिक्ख-आन्दोलन के कुछ अध्ययन-मनन के बाद मैं खुद भी यह महसूस करता हूं कि अकालियों को अ-हिन्दू कहना उनके साथ पूरा पूरा न्याय नहीं करना है।"

मुझे यह जानकर बहुत खुशी होती है कि सिक्ख-मित्रों को उन्हें अहिन्दू मानने पर बुरा मालूम हुआ है। मैं उन्हें यकीन दिलाता हूं कि मेरा इरादा मुतलक ऐसा नहीं है। जब मैं पंजाब यात्रा कर रहा था, सिक्खों के बारे में एक जगह मैंने कहा था कि मैं सिक्खों को हिन्दू-जाति का एक अंग मानता हूं। मेरा ऐसा कहने का कारण यह था कि लाखों हिन्दू गुरु नानक को मानते हैं और ग्रन्थ साहब में हिन्दू-भाव और हिन्दू-कथायें भरी पड़ी हैं। लेकिन उस सभा में एक सिक्ख-मित्र थे। मुझे अलहदा ले जाकर उन्होंने बड़ी संजीदगी के साथ कहा कि आपके सिक्खों को हिन्दू-जाति में शामिल करने से लोगों को बुरा मालूम हुआ है, और उन्होंने मुझे सलाह दी कि आगे हिन्दुओं के साथ साथ सिक्खों का नाम हरगिज़ न लेना। पंजाब के दौरे में मैंने देखा कि मेरे मित्र ने जो चेतावनी दी थी वह ठीक थी। क्यों कि मैंने देखा कि बहुतेरे सिक्ख अपने धर्म को हिन्दू-धर्म से पृथक् मानते थे। मैंने उन मित्र से कहा कि अब मैं कभी सिक्खों को हिन्दू न कहूंगा। ऐसी हालत में मुझे इस बात से बढ़कर खुशी नहीं हो सकती कि सिक्ख आमतौर पर अपनेको हिन्दू मानते हैं और अलहदा मानने वाले लोग बहुत ही थोड़े हैं। आर्यसमाजियों के यहां भी मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ। वे भी मेरे सहज भाव से हिन्दू कहने पर बिगड़ उठे थे। एक सज्जन को मैंने हिन्दू कहा। मेरा इरादा उनके दिल दुखाने का न था। पर उन्होंने इस बात में अपना अपमान समझा था। मैंने उसी दम माफी मांग ली, तब उन्हें तसल्ली हुई। कुछ जैन लोगों का भी अनुभव मुझे इससे अच्छा नहीं हुआ। मेरे महाराष्ट्र के दौरे में कुछ जैनों ने मुझसे कहा था कि हमारी जाति हिन्दुओं से जुदी है। जैनों का यह मत मेरी समझ में आजतक नहीं आया। क्योंकि जैनधर्म, बौद्धधर्म और हिन्दू-धर्म में बहुतसी बातें सर्व-सामान्य हैं। हां, आर्यसमाजियों का ऐतराज कुछ समझ में आ सकता है; क्योंकि वे वेदों और उपनिषदों को छोड़कर किसीकी बात को नहीं मानते—वे मूर्ति-पूजा और पुराणों के बुरी तरह खिलाफ हैं। लेकिन जैन-धर्म और बौद्ध-धर्म का ऐसा कोई झगड़ा, जहांतक मैं जानता हूं, हिन्दू-धर्म के साथ नहीं है। हां, जैनधर्म और बौद्ध-धर्म ने हिन्दूधर्म में जबरदस्त सुधार करना चाहा है। बुद्धधर्म ने आभ्यन्तर शुद्धता पर ज्यादह जोर दिया है; और वह उचित भी है। वह सीधे हृदय को जाग्रत करता है। उसने उच्चता और श्रेष्ठता की उद्धत भावना को छिन्न-भिन्न कर डाला। जैनधर्म में तर्क-शक्ति चरम सीमा को पहुंच गई है। उसने किसी बात को गृहीत कर के विचार नहीं किया है और बुद्धिबल के द्वारा आध्यात्मिक तथ्यों का निर्णय किया है। मेरी राय में इन दो सुधारक-धर्मों ने जो साहित्य उत्पन्न कर रक्खा है उसका बहुत थोड़ा ज्ञान हमें है।

मेरे विचार इस किस्म के हैं। इसलिए मैं आशा करता हूं कि मेरे सिक्ख मित्र इस बात को मानेंगे कि मैंने उन्हें जो अ-हिन्दू लिखा है वह केवल उनके भावों का खयाल कर के और अपनी इच्छा के खिलाफ लिखा है। मो० क० गांधी

परिषदों के नियोजकों को इशारा

लोग कहते हैं "बड़ी बड़ी सभाओं, जलसों और व्याख्यानों के दिन चले गये। अब मुंह बंद कर के काम करने के दिन आ गये हैं।" लेकिन परिषदों अथवा जल्सों के संचालक हमेशा चाहते हैं कि खूब धूमधाम हो। इस मोह में वे कई बार सत्य को भी भूल जाते हैं। और भोली-भाली जनता को धोखा दे कर परिषद की तैयारी करते हैं। एक परिषद् की विज्ञप्ति में लिखा है—

"बहुत हर्ष की बात है कि—अधिवेशन बड़ी धूमधाम से होना निश्चित हुआ है। महात्मा गांधी, अली-बंधु, पंडित जवाहरलाल नेहरू, डॉक्टर किचलू, मौलना अबुल कलाम आजाद, देवदास गांधी, शंकरलाल बैंकर, राजगोपालाचारी, सेठ जमनालाल बजाज, मौलाना अ० जबारखां, श्रीमती गांधी, बीअम्मा साहिबा, तपस्वी सुंदरलाल, माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीमती सुभद्राकुमारी आदि आदि प्रमुख नेताओं के पधारने की संभावना है।"

संभव है कि स्वागतकारिणी सभा ने ऐसे नेताओं को निमंत्रणपत्र भेजा हो, लेकिन जबतक कम से कम उनकी तरफ से इस आशय का जवाब न मिले कि 'आने की कोशिश करूंगा' तबतक ऐसा लिखना कि उनके पधारने की संभावना है, अयथार्थ है। लोगों के मन में भ्रम पैदा करने की इच्छा कितनी ही अच्छी हो तो भी वह कार्य अनुचित ही है। लोग एक-दो दफे धोखे में आ जा सकते हैं, लेकिन थोड़े ही समय में कार्यकर्तागण अपनी प्रतिष्ठा और लोगों का विश्वास खो बैठते हैं। अब्राहम लिंकन ने ठीक ही कहा है, 'हम थोड़े लोगों को हमेशा धोखा दे सकते हैं और सब लोगों को कुछ समय धोखा दे सकते हैं, लेकिन सब लोगों को हमेशा धोखा देना अशक्य है।'

वार्षिक मूल्य ४)
छः माह का „ २)
एक प्रति का „ -)॥
विदेशों के लिए „ ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ४४

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, ज्येष्ठ सुदी १३, संवत् १९८० रविवार, १५ जून, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियाँ

जबरदस्त का ठेंगा सर पर

मेरे एक घनिष्ठ यहूदी मित्र बात करते करते अक्सर "राजधर्म" इस शब्द-समूह का प्रयोग किया करते थे। उसका अर्थ यह है कि देश में जो शख्स सब से बड़ा हो वह हर तरह का अंधेर खुले निःशंक कर सकता है। इतना ही नहीं "जबरदस्त का ठेंगा सर पर" इस न्याय के मुताबिक अपने कु-कृत्यों के लिए लोगों से धन्यवाद भी प्राप्त कर सकता है। यह शब्द-समूह आज ओडवायर नायर केस पर अच्छी तरह लागू होता है। इस मुकदमे में आरंभ से ही जज ने अपना पक्षपात दिखाया था। प्रतिदिन अखबारों में इस मामले के मुताल्लिक जो खुलासा प्रकट होता था वह दिल दहलाने के लिए काफी था। इस मुकदमे का फैसला तो निश्चित ही था, पर लोगों को निराशा में भी यह आशा लगी रहती थी कि जज फैसला देने के वक्त कुछ न्याय अवश्य करेंगे। लेकिन होनहार ऐसा न था। बुरा से बुरा नतीजा जो हो सकता था वह हमारे सामने है। जिस कार्य के करने में एक हिन्दुस्तानी को अपनी जान गवानी पड़ती है वही काम एक अंग्रेज जज बिना किसी हिचकिचाहट के कर सकता है।

सर मायकेल ओडवायर की चुनौती को मंजूर कर के सर शंकरन् नायर ने सारे ब्रिटिश तंत्र को कसौटी पर चढ़ाया था। वे पूरे न उतरे। ऐसी सीधी-सी बात में भी सर शंकरन् नायर जैसे राज्य-भक्त को न्याय न मिला। यदि सर माइकेल ओडवायर हार जाते तो उससे ब्रिटिश साम्राज्य नष्ट न हो जाता। मगर उसकी झूठी प्रतिष्ठा को सिर्फ जरासा धक्का ही पहुंचता। क्या ब्रिटिश राष्ट्र अपने एकनिष्ठ सेवकों को जबतक वे साम्राज्यवाद के हामी हैं तबतक उनसे कभी गलती हो जाने पर भी उनकी मदद देने के लिए वचन-बद्ध नहीं है? मेरा विश्वास है कि सर शंकरन् नायर की इस हार के कारण उनके प्रति आज प्रत्येक भारतवासी की सहानुभूति है। मैंने तो यह भविष्य पहले ही जान लिया था। ज्यों ज्यों इस मुकदमे की सीयाद बढ़ती गई त्यों त्यों इस निराशाजनक मामले को लड़ने में सर शंकरन् नायर ने जो धैर्य दिखाया उसे मैं कुतूहल की दृष्टि से देखता था। इस मुकदमे की वजह से इस राजतन्त्र के विरुद्ध कारणों में एक और कारण उन्होंने बढ़ा दिया है। अतएव यह तंत्र हर हालत में मिटा देने के ही योग्य है।

कु-मार्ग

लेकिन हमारे इस सवाल से कि हम असहाय हैं, हमें धीरज न छोड़ बैठना चाहिए। सिराजगंज की परिषद् ने हमें कु-मार्ग बताया है। गोपीनाथ साहा-संबंधी प्रस्ताव की असल प्रति मेरे पास यह लिखते समय तक नहीं है। 'टाइम्स आव इंडिया' के रिपोर्टर ने उसका जो मजमून मुझे दिखाया था, खेद है, कि यह प्रस्ताव उससे भी ज्यादह भद्दा है। ४ जून के 'फारवर्ड' से उसकी नकल यहां देता हूं—'अहिंसा की नीति पर दृढ रहते हुए यह परिषद् गोपीनाथ साहा की देशभक्ति [illegible] क्योंकि उन्होंने श्री [illegible] के खून के सिलसिले में फांसी की सजा पाई है।' इस प्रस्ताव को मैं सिवा अहिंसा की खिल्ली के और कुछ नहीं मान सकता। यदि अहिंसा इसमें मुल्क न घसीटी गई होती तो इसका बेहूदापन कुछ कम हो जाता। गोपीनाथ साहा की देशभक्ति तो उस खून में हो सकती थी न कि उसके फल-स्वरूप मिलनेवाली सजा में। वह मरने के लिए नहीं बल्कि उस शख्स को मारने पर तुला हुआ था जिसको वह जिन्दा रखना पसन्द न करता था। इस बात को जानते हुए कि इसके द्वारा मुझे फांसी मिल सकती है, उसे बहादुर समझा होगा, पर निर्विवाद देशभक्त नहीं: क्योंकि हरएक खूनी इस बात को जानता है कि इसका नतीजा फांसी हो सकता है और इसलिए हम उसे बहादुर कह सकते हैं। ऐसी हालत में अगर यह देशभक्ति हो सकती हो तो वह उस खून के कृत्य में ही है। खून तो अहिंसा के खिलाफ है—भले ही अहिंसा महज व्यवहार-नीति के तौर पर क्यों न मानी जाती हो। खुद अपनेतईं अहिंसामय रहकर [illegible] करना और दूसरे का घात करना ये दोनों बातें एक ही साथ देशभक्ति की सूचक नहीं हो सकती। हर एक देश-प्रेमी की देशभक्ति उससे चाहती है कि जबतक उसका देश अहिंसा-नीति पर चल रहा है, तबतक वह उसके काम में खून-खराबी करके बाधा न डाले। और जो लोग ऐसा करते हैं उनसे अपनेको केवल अलग ही रखने के लिए नहीं, बल्कि जितने साफ लफ्जों में हो सके उनको धिक्कारने के लिए वे लोग बाध्य हैं जो अहिंसा-नीति के लिए वचन-बद्ध हैं। क्योंकि इस तरह उनके खिलाफ लोकमत तैयार करके ऐसे खून की प्रवृत्ति कम करना उनका कर्तव्य है। उनके शुद्ध से शुद्ध भाव के रहते हुए भी उनके [illegible] कृत्य की इस तरह निन्दा करना जरूरी है। राज[illegible] दुनिया में कार्य या फल से ही कीमत [illegible]

कुछ मानी नहीं होते । सिर्फ करनी का ही हिसाब किया जाता है । अगर अहिंसा-नीति में विश्वास न प्रकट किया गया होता, तो मेरी दलील बेशक बहुत कमजोर हो गई होती । लेकिन मैं यह जरूर कहूंगा कि जबतक महासभा का वर्तमान ध्येय मौजूद है, हरएक महासभावादी, यदि वह अपने ध्येय पर सचाई के साथ कायम रहना चाहता हो, तो इस बात के लिए वचन-बद्ध है कि वह राजनैतिक हिंसा की हरएक हरकत का तन, मन, और वचन से विरोध और निषेध करे । इसलिए मैं बंगाल प्रान्तिक समिति को नम्रता-पूर्वक सलाह देता हूं कि वह या तो इस परिषद् के प्रस्ताव से अपनेको अलग कर ले या उस प्रस्ताव के संबंध में अगर कोई खुलासा हो तो उसे प्रकाशित करे; क्योंकि वह प्रस्ताव भारी बहुमत से पास हुआ दिखाई देता है ।

'महात्मा' से बचाइए !

सिराजगंज की परिषद् (बंगाल-प्रान्तीय परिषद् के अधिवेशन) में मेरे नाम के साथ 'महात्मा' जोड़े जाने का जो दृश्य दिखाई दिया, उससे मुझे गहरी व्यथा पहुंची है । जिन लोगों ने मेरे नाम के साथ 'महात्मा' का खिताब जोड़ने के पागलपन की धुन में या तो उस सज्जन को जो 'महात्मा' का उच्चार करना न चाहते थे हुल्लड़ मचाकर मजबूर करना चाहा या ऐसा करने का अनुनय-विनय किया, उन्होंने न तो स्वराज्य की कोई सेवा की, न मेरी । उन्होंने अहिंसा को बहुत धक्का पहुंचाया, और मेरे दिल को दर्द । किसी शख्स से जबरदस्ती कोई नाम लिवाने में कौनसा भूषण था ? मैं उन सज्जन को उनके साहस पर बधाई देता हूं जिन्होंने उस शब्द का उच्चारण करने की अपेक्षा, न बोलना पसन्द किया । मेरे स्तुतिकारों की अपेक्षा, मेरी राय में, उन्होंने मेरे सिद्धान्त की सच्ची कद्र की है । मैं अपने तमाम स्तुतिकारों और मित्रों को यकीन दिलाता हूं कि वे अगर 'महात्मा' को भूलकर सिर्फ 'गाँधीजी' को याद रक्खेंगे जैसा कि पूर्वोक्त सज्जन ने शिष्टता के साथ किया है, या मुझे सिर्फ गांधी समझेंगे तो इससे मुझ ज्यादह खुशी होगी । मेरे मित्र दो तरह से मेरे प्रति अपना ज्यादह से ज्यादह आदर-भाव प्रकट कर सकते हैं—या तो मेरे कार्यक्रम के अनुसार अपना जीवन बना लें, या यदि वे उसके खिलाफ हों, तो उनसे जितना हो सके मेरा विरोध करें । इस कार्य-युग में अन्ध-स्तुति का कुछ भी मूल्य नहीं । उससे ख्वाहमख्वाह परेशानी उठानी पड़ती है और बहुत बार जी को रंज भी होता है ।

उचित प्रश्न

एक सज्जन लिखते हैं—"आपने महासभा के शासन से दर हकीकत स्वराजियों को तुरन्त निकल जाने की ही सूचना दे दी है । इसमें यह बात मान ली गई है कि देश में उनकी संख्या कम है और सारे देश में नहीं पर महासभा में अपरिवर्तनवादियों का बहुमत है । हां, यह बात सच है कि गया में साफ तौर पर उनका बहुमत था । परन्तु देहली और कोकनाडा में दोनों दलों की संख्या संदिग्ध रही । देश का वायुमण्डल तो निस्सन्देह ही अपरिवर्तनवादियों के पक्ष में था; पर क्या इसका कारण यह नहीं हो सकता कि आप यरोडा जेल में थे और लोगों का हृदय आपके प्रति भक्तिभाव से पूर्ण था । उस समय आप अपने विचारों को समझाने के लिए आजाद न थे । अतएव क्या हमें इस बात का यकीन न कर लेना चाहिए कि अब बिना आपके विचारों पर असर रहने का खयाल किये, लोग अपरिवर्तनवादियों के पक्ष में या यों कहूं कि परिवर्तनवादियों के खिलाफ हैं या नहीं ? परन्तु दिसम्बर की महासभा के पहले इस बात को तजवीज करना ठीक नहीं है, इसलिए क्या इस बात को मान लेना अच्छा नहीं है कि रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने के लिए कार्यकर्ता लोग स्वेच्छापूर्वक दोनों के संयुक्त मंडल के मातहत रहकर महासभा का शासन चलावें ?"

हां, मैं मानता हूं कि लेखक की दलील बहुतकुछ माकूल है । मुझे अन्देशा है कि बहुत मुमकिन है अपरिवर्तनवादियों ने मेरे प्रति उनकी भक्ति होने के कारण मूल कार्यक्रम के पक्ष में अपनी राय दी हो । अगर यही बात हो तो अब वे अपनेको उस पेचीदा हालत से मुक्त समझें । मुझे खुशी है कि पत्र-लेखक के लिखने के पहले ही मैंने यह कह रक्खा है कि अगर महा-समिति के सदस्य महासभा के कार्यक्रम में विश्वास न रखते हों तो वे मुझे शिकस्त देने में कोई पसोपेश न करें । राष्ट्र-कार्य ही सर्वोपरि है । राष्ट्र-कार्य के सामने हमें अपने अजीजों तक को एक ओर रख देना होगा । राष्ट्र-कार्य के प्रति हमारी भक्ति के सामने दूसरे तमाम विचार गौण होने चाहिए । मेरा जो कुछ कहना है वह यही कि दोनों पक्ष के लोग जो कहें वही करें भी । मैंने सुचारु-रूप से कार्य चलाने पर दृष्टि रखकर ही यह खयाल पेश किया है । तमाम कार्यक्रम पर जिन लोगों का विश्वास न हो उन्हें चाहिए कि वे उन लोगों को अपनी जगह दें जिनका उसपर विश्वास है । यदि सब लोग या बहु-संख्यक लोगों का विश्वास नहीं है तो उन्हें नया कार्यक्रम बनाना चाहिए और उसे पूरा करना चाहिए । मैं तो महासभा के प्रस्तावों तक की मूर्तिपूजा न होने दूंगा । महासभा का लक्ष्य है स्वराज्य । और अगर पिछले छः महीनों के तजरिबे से हमें कोई इससे अच्छा उपाय मिल जाता हो तो हमें ब-खुशी उसका अवलंबन करना चाहिए । इससे हम अपने विचारों के अनुसार काम करके महासभा के सच्चे अनुयायी तो साबित होंगे ! आज तो हम महासभा के उन प्रस्तावों के अमल करने का डंका सदा भर करते हैं जिनपर कभी हमारा एतबार था ही नहीं अगर था तो अब वह हिल गया है । अगर इन छः महीने के तजरिबे से हमारा झुकाव स्वराजियों के मत की तरफ होता हो तो हमें सच्चे दिल से बेखटके यह बात कह देनी चाहिए और बिना पसोपेश स्वराज-दल में मिल जाना चाहिए । मेरा कहना यही है कि जो बात हो साफ हो, उसमें ढकोसला न हो, बनावट न हो । इससे हमारा काम चौपट हो जायगा । अगर हम बिना वकीलों के महासभा का शासन-संचालन न कर सकते हों तो हमें बा-मिजाज वकीलों का बहिष्कार उठा देना चाहिए । और अगर चरखे में हमारा विश्वास न हो तो उसे भी जाने दीजिए । कोरी जबानी भक्ति करने से कहीं चरखा हमें ३० करोड़ लोगों के लिए सूत दे सकता है ? दूसरे शब्दों में कहूं तो हमें वही नीति अख्त्यार करनी चाहिए जो अबतक सफलता के साथ अपना काम चलाने वाली संस्थाओं की रही है । अर्थात् उनका काम उन लोगों के सिपुर्द किया जाय जिनका उसमें पूरा पूरा विश्वास हो । जिस संस्था का मुख्य काम तो हो चरखे का घर घर में प्रचार करना और उसका काम लोगों को सिखाना, उसका काम भाषण-कुशल लोग कैसे चला सकते हैं । और जो लोग सूतकार हैं वे उन चर्चा-सभाओं का कार्य-भार कैसे उठा सकते हैं जहां भाषण-पटुता ही का बोल बाला होता है ।

एक और मित्र ने एक दूसरा एतराज किया है जो कि ठीक है । उनका कहना है कि अगर महा-समिति महज शासन-सभा होती तो आपकी बात ठीक थी । पर वे कहते हैं कि यह तो चर्चा-सभा और दर हकीकत नियामक सभा है । क्योंकि वह अगली महासभा के लिए प्रस्तावों का ढांचा तैयार करती है । कोई शासन-समिति बिना ही इस बात के जाने कि उसे किन नियमों का पालन करना है, कैसे

जुगी जा सकती है ? मेरी राय में यह ऐतराज बिलकुल ठीक है। मगर यहां भी मेरी बात कटती नहीं है। क्योंकि मैंने तो सिर्फ इस बात पर अपनी राय दी है कि महासभा के प्रस्तावों के अनुसार अगले छः महीनों में किस तरह काम किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। महासभा के कार्य में किसी झगड़े की कठिनाई को बाधक न होने देना चाहिए। और अगर महासभा के सदस्यों को महासभा के शासन-संबंधी मेरा मत ठीक जंचता हो, तो यह कठिनाई आसानी से दूर की जा सकती है-अगले साल से महासभा की बैठक के बाद शासन-समिति का फिर से चुनाव हो जाया करे। मेरी राय, अगर कुछ वक्त रखती हो सदस्यों और मतदाताओं के लिए बतौर रहनुमा के समझिए। मुझे यह राय देने पर मजबूर होना पड़ा है; क्योंकि उस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए मैं बहुतांश में जिम्मेवार माना जाऊंगा। इसलिए अपनी इस राय के द्वारा मैंने यह भी जतला दिया है कि किस तरह मेरी सेवा का अच्छा उपयोग हो सकता है।

मुसलमानों की तरफदारी

मुसलमानों की तरफदारी करने का इलजाम फिरसे मुझपर लगाया जाने लगा है और अबकी दुगुने जोर-शोर के साथ। टीकाकारों का कहना है कि मैं हिन्दुओं के ऐबों को बढ़ाकर कहता हूं और मुसलमानों की बुराइयों को घटाकर। एक तरह से मैं इस इल्जाम को कबूल करता हूं। यदि हम ठीक ठीक फैसला देना चाहते हों तो हमको जो बातें जैसी हैं उनको उसी रूप में देखने के बढ़िया कुदरती कानून के मुताबिक चलना चाहिए। लेकिन हम उसके खिलाफ चलने के आदी हो गये हैं। हम अपने दोषों को तो कम आंकते हैं और हमारे प्रतिपक्षी के दोषों को बढ़ाकर कहते हैं। इसीसे अ-सहिष्णुता बढ़ती है। अगर हमारे अन्दर उदारता और सहिष्णुता हो तो हम अपने प्रतिपक्षियों को भी उसी तरह देखने का प्रयत्न करेंगे जिस तरह वे खुद अपनेको देखते हैं। हमारी कोशिश में हम कामयाब चाहे न हों; पर हम उन्हें असली रूप में जरूर देख पावेंगे। ऐसी हालत में जो मेरी हिन्दुओं के दोषों की अत्युक्ति समझी जाती है वह ऐसी दिखाई मात्र देती है। लेकिन एक टीकार कहते हैं—आप मौलाना अब्दुलबारी को खुदा का भोला-भाला बालक बताते हैं। पर हमें इसपर भरोसा नहीं होता। हम संयुक्त प्रान्त के लोग उन्हें जानते हैं। हमें तो वे झूठी बड़ाई चाहने वाले, झूठ बोलने वाले और भरोसा न करने लायक मालूम होते हैं।" मैं उन्हें यह यकीन दिला देना चाहता हूं कि अगर मैं मौलाना साहब को ऐसा पाता तो मैं बेखटके ऐसा कह देता। मैंने कहा कि वे एक खतरनाक दोस्त हैं। इसमें उनके खिलाफ मुझे जो बुरी से बुरी बातें मालूम हैं वे आजाती हैं। कुछ टीकाकार समझते हैं कि मैं मुसलमानों से राजनैतिक मतलब गांठने के लिए उनकी चापलूसी कर रहा हूं। वे ऐसा हरगिज न मानें। मेरे लिए ऐसा करना गैर-मुमकिन है। क्योंकि मैं जानता हूं कि खुशामद से एकता नहीं हो सकती। शिष्टाचार और सौजन्य को हमें भूल से चापलूसी न मान बैठना चाहिए और न अहालत को निर्भयता।

एक मुसलमान का गुब्बार

मेरे हिन्दू-मुस्लिम-निवेदन के बारे में एक मुसलमान सज्जन के लिखे एक पत्र से कुछ बातें यहां देता हूं। वे लिखते हैं कि "आप के ये जुमले हिन्दुओं को भड़काने वाले हैं—'मुझे हिन्दुओं की बुजदिली पर जियादह शरम मालूम होती है। वे लोग जिनके मकानात लूटे गये अपने जानोमाल की हिफाजत करने में मर क्यों न गये ?' बड़े अफसोस की बात है जो आपकी कलम से ऐसी बातें निकलें। इसके नतीजे का खयाल तक करना खतरनाक है।

मुझे अपने लेख में कोई बात खतरनाक नहीं दिखाई देती। अगर मेरे लेखों के द्वारा हिन्दुओं में वह शक्ति आ जाय जिससे वे खतरे के मौकों पर खुद अपनी हिफाजत या बचाव कर सकें तो मुझे दर-असल खुशी ही होगी। जब तक हम एक दूसरे से डरना न छोड़ देंगे तबतक हमें एकता की उम्मीद न रखनी चाहिए। लेखक ने कोई दूसरा तरीका भी तो नहीं सुझाया। जो हिन्दू अपने पड़ोसी से दिन-रात डरा करता हो उसको मैं सिवा इसके क्या सलाह दे सकता हूं कि या तो तुमको बिना हाथ उठाये अपने बचाव में मर मिटना चाहिए या घूंसे का जवाब घूंसे से देकर अपनी रक्षा करनी चाहिए ? वे आगे चल कर लिखते हैं—"कोई भी समझदार हिन्दू या मुसलमान आपकी इस राय को न मानेगा कि 'पण्डित मालवीयजी मुसल्मानों के दुश्मन नहीं हैं।' वे तो मुसल्मानों के खुल्लमखुल्ला दुश्मन हैं—सूरज की रोशनी की तरह खुले दुश्मन हैं। मैं तो कहता हूं कि खुद हिन्दू भी आपकी इस बात को न मानेंगे। लाला लाजपतराय भी पण्डित मालवीयजी की तरह एक थैली के चट्टे-बट्टे हैं। जयरामदास और चौइथराम के बारे में तो आप खुद अपने ही साथ बे-इन्साफी कर रहे हैं। मुसल्मानों के साथ उनका सलूक हर अखबार पढ़ने वाले को चिराग की तरह रोशन है। मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि आप इन हिन्दू-नेताओं की तारीफ और मुसल्मान अगुओं की बुराई करके हिन्दू-मुसलिम-एकता का एक धागा भी मजबूत न कर पावेंगे।" इसी तरह हिन्दू मित्र मुझे कहते हैं कि मैं जबतक अली-भाइयों और मौलाना बारी साहब पर ऐतबार रखता रहूंगा तबतक हिन्दू-मुसल्मान-एकता गैरमुमकिन है। मैं इन तमाम मित्रों से कहता हूं कि अगर न तो इन मौजूदा हिन्दू और न मुसल्मान नेताओं पर एतबार रक्खा जाय तो एकता की आशा इनके मर जाने के बाद भले ही की जा सके !

फिर वे कहते हैं—"आपको आर्यसमाजी साहित्य और तबलीग का जिक्र करने की क्या जरूरत थी ? उनके बदौलत हमारी राष्ट्रीय हलचल को जरा भी नुकसान नहीं पहुंचा। वे तो निहायत ही शांति के साथ अपना तबलीग-काम कर रहे हैं। आप मुसल्मानों के प्रचार के वाहियात तरीकों का जिक्र करते हैं। पर जरा शुद्धि आन्दोलन को तो देखिए। आपने यह लिखकर अपने सिरपर एक जोखिम उठा ली है कि उस पुस्तिका में लिखी तदबीरों के मुताबिक निजाम रियासत में तेजी के साथ काम हो रहा है। यह लिखकर गोया आपने जान-बूझकर एक मुस्लिम-रियासत पर हमला किया है।—" इन लेखक की तबीयत का रुख उन कार्यकर्ताओं की तरह मालूम होता है जो चाहते हैं कि हम जिन बातोंको जानते हों उनके बारेमें अपने खयालात जाहिर न करें बल्कि उन्हें चुपचाप दबा दें। हां, मैं इस बात को तो समझ सकता हूं कि हम हरएक गन्दी चीज को सब लोगों के सामने पेश न करें; पर जो बातें साफ तौर पर हमारी नजरों के सामने आती हैं और जो हर शख्स के दिमाग में चक्कर खा रही हो उनकी ओर हम आंखें नहीं मूंद सकते। अपने जोश की धुन में लेखक इस बात पर ध्यान रखना भूल गये हैं कि मैंने किसी मुस्लिम-रियासत पर हमला नहीं किया है। मैंने तो इतना ही कहा है कि 'मैंने सुना है' कि मेरे निवेदन में वर्णित तबलीग का काम निजाम-रियासत में जोर-शोर के साथ हो रहा है।

लेखक और भी लिखते हैं—"मेरी समझ में नहीं आता कि गो-वध और बाजे एक ही श्रेणी में कैसे आ सकते हैं ? मुसल्मानों के लिए कुरान में हुक्म है कि गो की कुरबानी करो, मगर हिन्दुओं को ऐसी कोई धर्माज्ञा नहीं है कि वे मसजिदों के सामने

(शेष पृष्ट ३५८ पर)

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, ज्येष्ठ सुदी १३, संवत् १९८०

आर्य-समाज

सारे हिन्दुस्तान के आर्य-समाजी भाइयों ने मुझपर क्रोध की झड़ी बरसाना शुरू कर दिया है। ऐसे तारों और खतों का मेरे पास ढेर पड़ा हुआ है जिसमें आर्य-समाज, उसके महान् संस्थापक, तथा स्वामी श्रद्धानन्दजी के संबंध में हिन्दू-मुसलमान वाले निवेदन में किये मेरे उल्लेख का विरोध किया गया है। गाजियाबाद, मुल्तान, देहली, सक्खर, करांची, जालन्धर, सिकन्दराबाद, लाहौर, सियालकोट, इलाहाबाद, वगैरह कितने ही मुकामों से ये खत और तार आये हैं। इनमें उन पत्रों की गिनती नहीं की गई है जो कितने ही लोगों ने अपने तौर पर मुझे लिखे हैं।

इनमें ज्यादह तर खत इस बात की उम्मीद रखते होंगे कि मैं उनके ऐतराजों को छापूं। कितने ही महाशयों ने तो मुझसे ऐसा करने का इसरार भी किया है। मैं इन सज्जनों का मनोरथ पूरा करने से लाचार हूं। इसलिए मैं उनसे माफी चाहता हूं। कितने पत्रों और तारों का मजमून पिछले हफ्ते में प्रकाशित लाजपतराय वाले तार से मिलता-जुलता है। सब में आर्यसमाज, सत्यार्थ-प्रकाश, ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्दजी और शुद्धि-आन्दोलन पर उनके खयाल में मैंने जो हमला किया है, उसपर क्षोभ प्रकट किया गया है। मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि मेरे विचार अभीतक ज्यों के त्यों बने हुए हैं।

मेरे सामने जो बातें पेश की गई हैं उन्हें मैंने गौर के साथ पढ़ा है। जिन लोगों ने आर्य-समाज-संबंधी बातों में मेरे अज्ञान की कल्पना की है उन्होंने शायद मेरी गलतबयानी का रास्ता रहने देने के लिए ऐसा किया है। पर बदकिस्मती से मैंने अपने लिए ऐसा कोई रास्ता रहने नहीं दिया है। मैं यह नहीं कह सकता कि सत्यार्थ-प्रकाश तथा आर्य-समाज के सामान्य सिद्धान्तों से मैं ना-वाकिफ हूं। मैं इस तरह भी अपनी सफाई नहीं दे सकता कि आर्य-समाज के बारे में पहले से ही मुझे कुछ वहम था। बल्कि मैंने तो पूरी श्रद्धा और भक्ति के साथ उसकी खोज की है।

ऋषि दयानंद के शील के प्रति मेरा हमेशा असीम आदर-भाव रहा था और है भी। उनके ब्रह्मचर्य को मैंने अपने लिए हमेशा अनुकरण योग्य माना है। उनकी निर्भयता ने मुझे हमेशा मुग्ध किया है। इसके अलावा अगर मेरे अंदर कुछ भी प्रांतीयता के भाव हों तो ऋषि दयानंद मेरी ही तरह एक काठियावाड़ी, थे यह बात भी मेरे लिए कोई कम फख की नहीं है। पर मेरा बस न रहा था। मुझे अपनी इच्छा के खिलाफ उन नतीजों पर पहुंचना पड़ा और मैंने उन्हें जाहिर भी उसी वक्त किया जब ऐसा मौका पेश आया। अगर इस मौके पर मैं उनका जिक्र करते हुए हिचकिचाता तो वह मेरी भारी कमजोरी होती। समाजी भाइयों से मेरी प्रार्थना है कि निर्मल भाव से प्रकट की गई मेरी राय पर गुस्सा होने के बदले वे मेरी टीका को सीधे अर्थ में लें, उसकी छान-बीन करें। अगर कहीं मेरी भूल हुई हो तो मुझे दिखावें। और अंत को मेरी राय उनसे न मिले तो वे परमात्मा से प्रार्थना करें कि मुझे ज्ञान प्राप्त हो।

दो चिट्ठियों में मुझे चुनौती दी गई है कि मैं अपने निर्णयों के सबूत पेश करूं। इसपर किसीको ऐतराज नहीं हो सकता और चन्द ही दिनों में अपने निर्णयों की पुष्टि में सत्यार्थ-प्रकाश के वचन पेश करने की आशा रखता हूं। मित्रों से मैं यही चाहता हूं कि वे धार्मिक चर्चा में कूद न खींचें। मैं तो सिर्फ वह सामग्री उनके सामने पेश करके खामोश रहूंगा। जिसके सहारे मैं उन नतीजों पर पहुंचा हूं।

स्वामी श्रद्धानन्दजी के विषय में मेरे लिए सबूत या दलील पेश करने का कोई सवाल पैदा नहीं होता। उनसे मेरी मित्रता होने का दावा पिछले लेख में करही चुका हूं। उसपर ध्यान दे कर टीकाकार लोग यदि इस मामले में उनके और मेरे बीच में न पड़ें तो महरबानी होगी। फिर उनके संबंध में मेरी राय चाहे कुछ होती रहे, मैं उनके साथ झगड़ा नहीं कर सकता। मेरी टीका मित्र-भाव से हुई है।

शुद्धि के बारे में भी मेरे टीकाकार अपने महाक्रोध में मेरे लेख की मर्यादा पर ध्यान न रख सके। मैंने लिखा है कि ईसाई-धर्म में और उससे कम इस्लाम में जिस तरह अपने धर्म का प्रचार किया जाता है उस तरह हिन्दू-धर्म में नहीं होता। यह बात और है और यह कहना कि हिन्दू-धर्म में प्रचार होता ही नहीं, बिलकुल और बात है। हिन्दू-धर्म के पास उसकी खासियत के मुआफिक एक निराला ही तरीका शुद्धि का है। अगर समाजी भाई फिर से मेरे निवेदन को पढ़ जायंगे तो देखेंगे कि मैंने कहा है कि अगर वे चाहते हों तो उन्हें अपनी हलचल जारी रखने का पूरा हक है। जब दो रायें एक दूसरे से मिलती हों तब वह सहिष्णुता नहीं कही जाती। सहिष्णुता के मानी तो यह है कि दो आदमियों के मत में पूर्व-पश्चिम का अंतर हो तब भी दोनों एक दूसरे को निबाह लें और यही होना चाहिए।

अंत को, मैंने अपने निवेदन में यह भी नहीं कहा कि समाजी या मुसलमान जरूर ही औरतों को उड़ाते हैं। मैंने तो लिखा है कि 'मैं सुनता हूं' कि वे ऐसा करते हैं। मैंने तो जो बात कान पर आई उसे कह कर दोनों फरीक को यह मौका दे दिया कि वे इस इलजाम को झूठ साबित करें। जो बात एक दूसरे के खिलाफ कही जाती थी उसका गुब्बार बना रहने देने की बनिस्बत क्या यह बेहतर न हुआ कि उसे प्रकाशित करके मैंने वायुमंडल को निर्मल करने की कोशिश की।

आर्य-समाजी मित्रों से मैं कहूंगा कि उनका गुस्सा और उनके प्रस्ताव उनकी सहिष्णुता की कमी दिखाते हैं। जो लोग या संस्थायें सार्वजनिक जीवन व्यतीत करते हैं उनके इतने तुनुक-मिजाज होने से कैसे काम चल सकता है? उन्हें तो कठोर से कठोर टीका भी हंसमुख होकर सहन करनी चाहिए।

आखिर में मुझे उनसे एकही प्रार्थना है—आपमेंसे लगभग बहुतेरे भाई मेरी टीका पर अपना विरोध प्रकाशित कर चुके हैं। इसका मुझे रंज नहीं। मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि आपके दुःख से मैं दुखी हुआ हूं। मैंने दुःखित हृदय से वह टीका लिखी थी। अब यह देख कर कि उससे बहुतों के दिल को चोट पहुंची है मुझे भी उतना ही दुःख होता है। मैं आपका दुश्मन नहीं। बल्कि मैं तो मित्र होने का दावा करता हूं। समय आने पर इसका सबूत आपको मिलेगा। आप लोगों के बहुतेरे पत्रों में यह कहा गया है कि हम किसी धर्म का विरोध करना नहीं चाहते। अगर ऐसा हो तो आप इस बात को क्यों भूलते हैं कि मैंने आर्य-समाज को, उसके संस्थापक की और स्वामी श्रद्धानन्दजी की स्तुति भी की है। आर्य-समाज ने हिन्दू-समाज की बुराइयां दूर करने का जो काम किया है उससे मैं अजान नहीं हूं। क्या मैं यह बात नहीं जानता हूं कि हिन्दू-धर्म को कलंकित करने वाली कितनी ही

कुप्रथायें आपने निर्मूल कर दी हैं। परन्तु मूलधन पर कोई कबतक जीवित रह सकता है? आप अक्षर से आगे बढ़कर भाव को विशाल बनाइए और धर्म-सुधार कीजिए। आप शौक से इन्कार कीजिए, पर मैं फिर कहता हूं कि आपके शुद्धि-आंदोलन में मुझे पादरियों के धर्म-प्रचार की विधि की बू आ रही है। मैं यह देखने के लिए उत्सुक हूं कि आप उससे ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित हों। अगर आप अपने ही घर को साफ करने की दिल में लावें तो भी आपके लिए इतना काम पड़ा है कि आपका जी भर जाय और आपका सारा समय उसीमें लग जाय। मेरी तरह अगर आप भी मानते हों कि आर्य-समाज हिन्दू धर्म का एक अंग है तो हिन्दू को हिन्दू बनाने का प्रयत्न कीजिए। अगर आर्य-समाज को हिन्दू-धर्म से जुदा मानते हों तो मैं समझता हूं कि हिन्दुओं को बनाना आसान नहीं है। पहले अपनी जगह निश्चित कीजिए। मैंने आपपर टीका इसलिए की है कि मैं आपसे वर्तमान सार्वजनिक और महान् आन्दोलनों में आपका हिस्सा चाहता हूं। अगर आर्य-समाज उस संकुचितता को छोड़ कर, जो मुझे दिखाई दी है आम व्यापक दृष्टि धारण करे तो उसका भविष्य उज्वल है। अगर आप यह कहते हों कि हमारे लिए अब विस्तार की जरूरत नहीं तो मुझे जरूर रंज होगा। और अगर गुस्सा ही हो तो इस बात के लिए कि मुझे आपमें उदारता नहीं दिखाई देती आपको मुझपर गुस्सा करना मुनासिब नहीं। बल्कि आपको मुनासिब है कि आप अपने को उदार आशय बनाकर मेरे अज्ञान को सहकर, समझ कर उसे मिटाने का उद्योग धीरज के साथ करें।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

गुजराती आर्य-समाजियों के प्रति

समस्त हिन्दुस्तान के आर्य-समाजों के तार और पत्र मुझे मिले हैं। उनका जवाब मैं यं० इं० में दे चुका हूं। गुजरात के आर्य-समाजी भी गुस्सा हुए हैं। मैं यह आशा जरूर रखता था कि वे तो मेरे अर्थ का अनर्थ न करेंगे; क्योंकि वे शायद मेरा मतलब ज्यादह समझते हैं। गुजरातियों के पांच पत्र तो मैं पढ़ चुका हूं— और भी अभी होंगे। उन्हें भी बहुत दुःख हुआ है। वे मुझे माफ करें। जो बात मुझे सच मालूम होती है उसे मैं सरल भाव से कहता हूं। उसमें बुरा मानने की क्या जरूरत है? यह बात मेरी समझ के बाहर है। किसीकी अप्रिय बात से यदि हमें निरंतर दुःख होता रहे तो फिर हममें सहिष्णुता कब और किस तरह आवेगी?

इन पांचों पत्रों में मेरे साथ दलील करने की कोशिश बहुत कम की गई है। एक महाशय तो इतने गुस्सा हुए हैं कि मुझे आत्महत्या करने की सलाह देते हैं। वे लिखते हैं कि अब अगर आप के द्वारा लाभ पहुंचता हो तो भी देश उसे लेने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए इसके द्वारा आपसे प्रार्थना करता हूं कि अब आप राम-नाम का भजन करके स्वर्ग प्राप्त करने की कोशिश करें। दूसरे लोग लिखते हैं कि मैं हमेशा मुसलमानों की ही तरफदारी करता हूं। इसके अलावा एक सज्जन अखबारों से ले कर हिन्दुओं के दुःखों की कहानी सुनाते हैं।

इन सब बातों का बहुत-कुछ जवाब मेरे यं० इं० में लिखे लेख में आ जाता है। यहां इतनी बात और कहना चाहता हूं कि यह सारा क्रोध असहिष्णुता को साबित करता है। एक दूसरे की टीका को सहन करने की शक्ति अभी हमारे अन्दर नहीं आई। सार्वजनिक जीवन में यह बात बड़ी जरूरी है। हिन्दुओं पर जो मुसीबतें आती हों उनकी जांच करने के लिए मैं तैयार हूं। अखबारों में छपनेवाली तमाम बातों को मानने के लिए मैं तैयार नहीं। तमाम पाठकों से मैं कहता हूं कि वे उनका बहुतेरा हिस्सा सही न समझा करें। मेरे नाम पत्र भेजनेवाले भाई यदि मुसल्मानी अखबारों को पढ़ें तो वे देखेंगे कि उनमें कितने ही आक्षेप हिन्दुओं पर किये जाते हैं। हिन्दू लोग उसका क्या जवाब दे सकते हैं? हिन्दू अखबारों की तरह उनके अखबारों में भी बहुतेरी बातें बनावटी रहती हैं।

संगठन के द्वारा यदि हिन्दू अपने डर को छोड़ सकते हों तो मैं संगठन में शामिल हो सकता हूं। संगठन का अर्थ सिर्फ मैं 'अखाड़ा' ही समझता हूं। उसमें मैं नहीं पड़ता; क्योंकि मैं जानता हूं कि इससे तुरन्त बचाव नहीं हो सकता। उसके लिए तो निर्भयता प्राप्त करनी चाहिए। यदि वह अखाड़े के द्वारा आ सकती हो तो हिन्दू शौक से अखाड़े बनावें। मैंने यह तो कभी नहीं लिखा कि अखाड़े न बनाये जांय। गुजरात के पुराने ढाई के अखाड़े का मैंने कभी निषेध नहीं किया। यही नहीं बल्कि मैंने अपनी पसन्दगी ही बतलाई है। मेरे कहने का मतलब सिर्फ इतना ही है कि मुसल्मानों के हमले से अपनेको बचाने का उपाय संगठन नहीं है। उससे उलटा झगड़ा बढ़ता है, घटता नहीं।

इस सवाल का निपटारा इस तरह प्रश्न करने से हो सकता है। क्या हम हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य चाहते हैं? उसकी जरूरत है? अगर जरूरत हो और आवश्यक हो तो हिन्दुओं को प्रतिकार की तैयारी छोड़नी पड़ेगी या सरकार की तरह शरीर-बल के द्वारा मुसल्मानों का भी मुकाबला कर के, खून की नदियां बहाकर शान्ति प्राप्त करनी पड़ेगी। वह भी हिन्दू-मुसल्मानों के संबंध में असंभव है। क्योंकि सरकार के बारे में तो आशय यह है कि अंगरेजों के साथ दुश्मनी करके उन्हें यहां से बाहर निकाल दें। संभव है कि यह किसी तरह संभवनीय हो; क्योंकि अंगरेज लोग इस देश को अपना मुल्क नहीं मानते। वे यदि घबड़ा उठें तो अपने घर चले जा सकते हैं। परन्तु मुसल्मानों का तो हिन्दुओं की तरह यही देश है। उन्हें हिन्दुस्तान से भगा देना मैं बिलकुल असंभव मानता हूं। अतएव उनके साथ शान्ति-पूर्वक रहना ही एक-मात्र उपाय है। अथवा यह कि हम अपने जीवन की बागडोर अंगरेजों के हवाले कर दें।

अब इस बात का विचार करें कि हमें करना क्या है। मुसल्मान लोग हमारी स्त्रियों का जो हरण करते हैं उससे हमें अपनेको बचाना है। यह बात तो हरएक हिन्दू खुद जान को हथेली पर रखकर ही कर सकता है। तमाम मुसलमान तो स्त्रियों का हरण करते ही नहीं हैं? फर्ज कीजिए कि कितने ही लोग धर्म के नाम पर ऐसा करते हैं। पर ऐसा हिन्दू-स्त्रियों का हरण क्या कितने ही हिन्दू स्वयं नहीं करते हैं? फर्क सिर्फ इतना ही है कि हिन्दू हरण-कर्ता अपनी विषय-वासना की तृप्ति के लिए ऐसा करता है। उससे उनकी रक्षा करने की शक्ति अगर हमारे अन्दर न हो तो वह हमें कौन ला देगा? ऐसी व्याधियों का स्थायी और तुरन्त फल-दायी इलाज मैंने बताया है। वह है सत्याग्रह अर्थात् बिना प्रहार किये खुद मर मिटना। यह तो स्त्री और बालक भी कर सकता है। इसका अभ्यास तमाम हिन्दुओं को क्यों न करना चाहिए? प्रहार करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए शरीर-बल प्राप्त करने की जरूरत रहती है। मरने की शक्ति प्राप्त करने के लिए आत्म-बल प्राप्त करने की जरूरत है। यदि समझ में आ जाय तो आत्म-बल प्राप्त करना ज्यादा आसान है। जो शख्स अपंग हो वह भला शरीर-बल कहां से लावेगा? आत्मा तो किसीकी अपंग होती ही नहीं। स्थिरता के साथ विचार करके मैं इतना तो सीख चुका

हूं कि यदि मेरे भतीजों पर कोई हमला करे तो मैं उनकी हिफाजत करते हुए मर मिटूं।

पर ऐसी तैयारी करने लिए मुझे शान्त स्वभाव रखने की आदत डालनी चाहिए, मुझे अपना गुस्सा रोक कर उससे नवीन शक्ति पैदा करनी चाहिए। यदि ऐसा हो तो मुझे अखबारों के लेखों को पढ़ कर आग-बबूला न हो जाना चाहिए। जिस जगह रक्षा करने को मेरा जी चाहे वहां मुझे पहुंच जाना चाहिए और वहां मर मिटना चाहिए।

जिस प्रकार योद्धाओं की सेना हो सकती है उसी प्रकार सत्याग्रहियों का संघ हो सकता है। हजारों धाराळाओं के लिए अकेले रविशंकर बस हो रहे हैं। रविशंकर तो अभी जीवित हैं। सैकड़ों रविशंकर पैदा हो कर हमलों से निर्बल हिन्दुओं को बचा सकते हैं और ऐसा करते हुए निर्बल को बलवान् भी बना सकते हैं।

यह तो हुई हमलों की बात। गाय की रक्षा के लिए तो हिन्दुओं को मुसल्मानों पर जबरदस्ती हरगिज न करनी चाहिए। उनके दिल को जीतकर ही वे गायों की रक्षा करें।

मसजिदों के सामने जहांतक हो सके बाजे न बजावें, मुसल्मानों के साथ सलाह-मशवरा करें और मुसल्मान अगर न मानें और बेजा तरीके पर दबावें तो बिल्कुल न दबें, बराबर बाजे बजाते रहें और ऐसा करते हुए वहीं मर मिटें।

इसके अलावा जो और बातें हैं वे न-कुछ हैं। अर्थात् यह कि धारासभा में कितने मुसल्मान जायं। मैं तो जितने जाना चाहें सब को जाने दूंगा। आज तो मेरी आंखों के सामने यह सवाल पैदा ही नहीं होता। जो असहयोग का पालन कर रहे हैं उनके लिए धारासभा या सरकारी नौकरी का विचार करने की जरूरत ही नहीं रहती।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

ग्राहकों को सूचना

जिन ग्राहकों की मीयाद चलू महीने के अन्त में पूरी होती है उनके पते की चिट पर इत्तिला के लिए महीने के अखीर में मीयाद पूरी होने की सूचना की छाप लगा दी जाती है। ग्राहकों को चाहिए कि जिस महीने के अन्त में उनका चन्दा पूरा होता है उस महीने में मनीऑर्डर द्वारा चन्दा पहले ही भेज दें।

यह छाप महीने के अन्त तक, अर्थात् चार सप्ताह तक, बराबर पते की चिट पर लगाई जायगी और यदि नये साल का चन्दा महीना खतम होने के पहले न मिलेगा तो बिना किसी नोटिस के पत्र बंद कर दिया जायगा।

चन्दा भेजने के वक्त मनीऑर्डर के कूपन में अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखना चाहिए।

व्यवस्थापक हिन्दी-नवजीवन

एजंटों के लिए

"हिन्दी-नवजीवन" की एजंसी के नियम नीचे लिखे जाते हैं—

१. बिना पेशगी दाम आये किसीको प्रतियां नहीं भेजी जायंगी।
२. एजंटों को प्रति कापी)। कमीशन दिया जायगा और उन्हें पत्र पर लिखे हुए दाम से अधिक लेने का अधिकार न रहेगा।
३. १० से कम प्रतियां मंगाने वालों को डांक खर्च देना होगा।
४. एजंटों को यह लिखना चाहिए कि प्रतियां उनके पास डांक से भेजी जायं या रेल्वे से।

कुलपति का भाषण

(गुजरात महाविद्यालय के नये सत्र की शुरुआत के मौके पर गुजरात विद्यापीठ के कुलपति की हैसियत से श्री गांधीजी ने सत्याग्रहाश्रम में एकत्र विद्यार्थियों, अध्यापकों और अतिथियों के सामने जो भाषण किया उसका मुख्यांश यहां दिया जाता है:—)

कृपालानीजी, विद्यार्थियों, भाइयो और बहनो,

आज सुबह मुझे तीन खत पढ़ने के लिए दिये गये। एक कहता है कि आपसे हो सके तो विद्यापीठ को दियासलाई लगा दीजिए। विद्यापीठ ने आजतक कोई अच्छा काम नहीं किया। लेखक विद्यापीठ में शिक्षा पाये हुए हैं। दूसरा पत्र कहता है कि विद्यार्थी शौकीन-मिजाज और स्वाद-लोलुप हैं। मैंने यह समझ कर अपने लड़के को वहां भेजा है कि विद्यापीठ में विद्यार्थीलोग सादगी से रहते होंगे, चरित्र-बल बढ़ता होगा। अब मुझे क्या करना चाहिए? तीसरा पत्र मदरास से आया है। उसमें लिखा है कि मेरा भाषण आज ऐसा होना चाहिए जिससे सारे हिन्दुस्तान को कोई सूचक वस्तु मिले।

तो अब मुझे क्या करना चाहिए? तीन में से कौनसा काम करूं? मैं इनमें से कुछ भी करना नहीं चाहता। जिस विद्यापीठ को स्थापित करने में मेरा कुछ भी हिस्सा है उसे मैं किस तरह जला डालूं? एक अंगरेज चित्रकार की कथा है। उसने विनोद के लिए अपना एक चित्र बाजार में लटका दिया और लिखा कि इसमें जहां जिसको कोई ऐब दिखाई दे वहीं वह कुछ निशान बना दे। दूसरे दिन उस चित्र में तिल रखने को भी खाली जगह न रही। तब उसने कहा—अगर ऐब ही देखने लगें तो ऐसा ही हाल होगा। पर जबतक उसे यह चित्र अच्छा मालूम होता है तबतक मैं इसे अपने पास अदब से रक्खूंगा।

मुझे सुबह यही चित्रकार याद आया। और मुझे उसकी दृष्टि सच मालूम हुई। यदि हम दोषों की खोज करने लगेंगे तो उनका पार पाना कठिन होगा। ईश्वर ने मनुष्य के अन्दर मोह जैसी चीज रख छोड़ी है। उसके वशवर्ती हो कर हम अपना काम करते रहते हैं। आप खुद तो इन तीनों पत्रों में जो सार हो उसीको ग्रहण कीजिएगा। उन महत टीकाकार ने लिखा है कि न तो विद्यार्थियों में कुछ दम है, न अध्यापकों में। वे चाहते हैं कि उनका यह पत्र 'नवजीवन' में छापूं और उसपर टीका भी करूं। मैं न तो उसे छापूंगा न उसपर टीका-टिप्पणी करूंगा। यह एतराज किया गया है कि विद्यार्थी लोग सादी जिन्दगी नहीं बिताते हैं। उसपर आपको विचार करना चाहिए। मद्रासी सज्जन से मैं निपट लूंगा। और अगर कोई मेरे इस भाषण को प्रकाशित न करें वे अपने आप समझ जायंगे कि मैंने सचमुच कोई भारी भाषण किया होगा।

यह तो हुई प्रस्तावना। दो वर्ष तक यरोडा आश्रम में शान्तिपूर्वक चिन्तन करने से मेरे विचार और भी दृढ हो गये हैं। जो चीज मैंने देश के सामने पेश की है उसपर मुझे जरा भी अफसोस नहीं है। हमने गुजरात-विद्यापीठ की स्थापना की, महाविद्यालय कायम किया, उसमें सिन्धियों और दक्षिणियों को लाकर भर दिया और गुजरातियों के लिए स्थान न रक्खा—इसके लिए भी मुझे जरा पछतावा नहीं। गुजरात का धर्म है कि दक्षिण और सिन्ध में जो कुछ अच्छी बातें हों उन्हें ग्रहण करें।

विद्यापीठ की स्थापना हमने किसलिए की? असहयोग के लिए? असहयोग किसके साथ? सरकारी कालेज के विद्यार्थियों और अध्यापकों के साथ? नहीं इनके साथ हमारा जरा भी असहयोग नहीं। हमारा असहयोग तो तरीके के साथ

है । यह असहयोग किस तरह का है और इस असहयोग के द्वारा हम क्या करना चाहते हैं? इसपर विचार करते हुए मुझे दो बातें याद आईं । एक बात है शेर और बकरे की । एक शेर और बकरा एक साथ रक्खा गया । शेर था पिंजड़े में, बकरा बाहर था । बकरे को खाना-पानी बराबर ठीक ठीक मिलता था । फिर भी बकरा दिन पर दिन दुबला होने लगा । मेरे जैसे एक विचक्षण मनुष्य ने देखा कि बकरे की ताकत न बढ़ने का कारण यह है कि इसके पास शेर बैठा हुआ है । शेर की नजर से दूर हटाने पर बकरा मामूली खाना पानी खाकर भी उछलने-कूदने लगा और मोटा-ताजा हो गया ।

दूसरी बात सर नारायण चन्दावरकर की लिखी मैंने जेल में पढ़ी थी । सर नारायण पूने में घूमने जा रहे थे । वहां एक बुढ़िया एक भेड़ को उसके घर ले जा रही थी । भेड़ साहब के घर थी । वहां खाने-पीने का क्या पूछना? पर वहां उसे चैन नहीं था । जब बुढ़िया उसे ले जा रही थी तब वह नाचता उछलता हुआ जाता था और बुढ़िया को खींच ले जा रहा था । क्यों कि वह अपने घर जा रहा था । पराधीनता से छूट कर स्वतन्त्रता की ओर जा रहा था । कोई भी जीवधारी हो, वह स्वतन्त्रता की अवस्था में ही फल-फूल सकता है, परतन्त्रता में नहीं । इसी बात को तुलसीदास ने अपनी अनुपम वाणी में कहा है—"पराधीन सपने सुख नाहीं ।"

सरकारी शिक्षा के लिए अच्छी से अच्छी सुविधा रहती है, अच्छे अध्यापक मिलते हैं, बड़ी बड़ी इमारतें रहती हैं, फिर भी हमारे ललाट पर तो वही काला दाग बना रहता है । हमारे भाग्य में तो नौकरी—क्लर्की के बिना दूसरा कुछ नहीं । बहुत हुआ तो वकालत सूझती है । वकालत भी दूर रही, हमें तो ग्रेज्युएट होने पर ३०) से शुरू होने वाली नौकरी ही सूझती है । ज्यादह से ज्यादह आगे बढ़े तो किसी कालेज में अध्यापक हो गये । बस, हद हो गई । यहां महाविद्यालय में तो टूटी-फूटी पढ़ाई होती है, अक्षर ज्ञान भी जो मिल जाय सो गनीमत । महाविद्यालय के मकान पर छप्पर हुआ तो हुआ वर्ना वह भी नदारद । मकान मालिक जब चाहे नोटिस देकर निकाल बाहर कर सकते हैं, विद्यापीठ के लिए जमनाभाई दर दर भीख मांगते फिरते हैं, विद्यापीठ कल रहेगा या नहीं यह भी हमेशा सवाल रहा करता है । ऐसी हालत है । गुजरात (सरकारी) कालेज पर तो सूर्य अस्त ही नहीं होता । आपके विद्यापीठ पर रोज सूर्य उगता है, और रोज अस्त होता है । दुनिया का कुदरती कानून यही है । इस कानून के अनुसार ही हमें अपना उद्धार करना है

आदर्श हम अपना ऊंचा ही रक्खेंगे । ऊंचे आदर्श तक हम पहुंच नहीं सकते, हमसे भूलें होती हैं यह ठीक है । हमसे पाप हो जाता है, यह भी ठीक है । पर हम पाप को पुण्य के रूप में पेश नहीं करते ।

'सा विद्या या विमुक्तये" यह हमारा आदर्श है । भाई किशोरलाल (गुजराती विद्यापीठ के महामात्र) ने मुझसे कहा कि इस महान सूत्र का संकुचित अर्थ करके हम उसका दुरुपयोग तो नहीं न करते ? भाई किशोरलाल की बात का मुझे बहुत विचार करना पड़ता है । उनकी बातपर मुझसे रुककर विचार किये बिना नहीं रहा जाता । मैंने विचार करके देखा कि इस सूत्र का दुरुपयोग नहीं हो रहा है । जो इस मुक्ति को पा सकता है उसीको वह मुक्ति मिल सकती है । जो इतनी छोटी-सी भी मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता उसे बड़ी मुक्ति कैसे मिल सकती है ? अतएव मुक्ति के प्राकृत और वास्तविक दोनों अर्थ में यही हमारा आदर्श है ।

अब मेरे चित में इस बात पर कि मैंने इस विद्यापीठ को उत्पन्न किया, जरा भी अशान्ति नहीं, जरा भी पश्चात्ताप नहीं । महाविद्यालय के यदि तमाम लड़के चले जांय और सरकारी कालेज में भरती हो जायं तो भी मैं तो हंसता ही रहूंगा और कहूंगा कि यह कैसा बे-समझ है और मैं कितना समझदार हूं ! हिन्दुस्तान के उद्धार का दूसरा उपाय हई नहीं । हम सब लोग महामोह के नशे में मस्त रहे हैं । इससे हमें यह बात नहीं दिखाई देती । मैं तो मरते दम तक यही कहूंगा कि मेरे लिए बहिष्कार के सिवा दूसरी बात हई नहीं । जब मैं देखूंगा कि हां, अब पूरा पूरा सहयोग कर सकते हैं तभी मैं दूसरी बात मुंह से निकालूंगा । तबतक तो मैं चाहे सारा हिन्दुस्तान मुझे छोड़ दे, बहिष्कार पर ही अटल रहूंगा । यह बात मैं इसलिए कह रहा हूं कि मैं एक अनुभवी आदमी हूं । यह मेरे वर्षों के विचार का फल है । मैं यह भी कह सकता हूं कि इसके लिए मैंने तपश्चर्या की है । दूसरी बात मेरे मुंह से निकल ही नहीं सकती । जिस शख्स को मालूम है कि बीस पचे सौ होते हैं, क्या वह यह कहेगा कि बीस चौके या बीस छक्के सौ हो सकते हैं? यरोडा आश्रम में मेरे विचार अधिक दृढ ही हुए हैं ।

यह सवाल है कि पढ़ाई खतम हो चुकने के बाद लड़के क्या करें ? भावी जीवन के विषय में कृपलानीजी ने मेरे कहने के लिए कोई बात बाकी नहीं रक्खी । मुख्य बात यह है कि हम भय से अपना उद्धार करना चाहते हैं । मैं कहता हूं तुम्हें नौकरी करना हो तो खुशी से करना । अक्षरज्ञान को बेचना भी हो तो भलेही बेचना । यहां तो मैं यह बात बताना चाहता हूं कि एक अंगरेज युवक क्या करता है ? अंगरेजों का मैं तिरस्कार नहीं करता । बहुतेरे लोग शायद इस बात को न जानते हों कि मैं अंगरेजों पर फिदा हूं । उनसे मैंने बहुतेरी बातें सीखी हैं । अंगरेजों का अनुकरण मैं त्याज्य नहीं मानता । मैं तो अपनी जमीन चाहता हूं । अपनी जमीन में मैं चाहे कहीं से लाकर रंग भरूंगा । मेरे साथ के अंगरेज मित्रों ने मुझे कभी यह नहीं कहा कि तुम्हारे साथ रहने पर हमारा क्या होगा ? आजीविका छोड़ छोड़ कर वे मेरे साथ आये । उनकी जरूरतों के बारे में मेरा अन्दाज गलत निकला । तो भी उन्होंने किसी दिन मुझे कड़ुवा वचन नहीं कहा कि आपने गलत अन्दाज क्यों लगाया ? वे जानते थे कि मैंने स्वच्छ भाव से हिसाब लगाया था । फिर वे हरएक अपने दिल में कहते थे कि क्या मैं गांधीजी का जिलाया जीऊंगा ? मुझे जिलानेवाला तो है ईश्वर । जिस पुरुष ने—चैतन्य ने तुम्हें पैदा किया है वह तुम्हें रोटी भी देगा । क्या मुसल्मान और क्या हिन्दू इस बात को जानते हैं । पर आज तो मुसल्मान कुरान को भूल गये हैं और हिन्दू गीता को और उसके बदले तीन कौड़ी का अर्थशास्त्र लेकर बैठ गये हैं । भूखों न मरने के लिए दुनियाभर की दौड़-धूप कर रहे हैं । वे नहीं जानते कि जिन लोगों ने दौड़-धूप नहीं की वे भूखों नहीं मरते हैं । और वह दौड़-धूप करें भी किसलिए ? विद्यालय में सीखना क्या है ? यही कि ध्येय के विषय में बे-फिक्र रहना । अंगरेजी पाठशालाओं में भी विद्यार्थियों को आजीविका की चिन्ता नहीं करने दी जाती । शिक्षक कहते हैं—"पढ़कर पुरुषार्थ करो और अपनी रोटी आप पैदा करो ।" इसीसे आप देखते हैं कि एक छोटे से टापू से लोग न जाने कहां कहां जाते हैं । मेरे अनेक अंगरेज मित्र आज दुनिया में घूम रहे हैं । इसपर कोई कहेगा—'पर उनपर ब्रिटिश झण्डे की छाया जो है ?' वे ब्रिटिश झण्डे की छाया में पेट नहीं भरते हैं । हां, उनकी रक्षा जरूर होती है । अगर कोई उनपर उंगली उठावे तो ब्रिटिश झण्डा फहराने लगता है और तोपें चलने लगती हैं । हमें इस रक्षण की जरूरत

पर आज यह विषय हमारे सामने नहीं है। प्रस्तुत विषय तो यह है कि तुम लोग इस बात का विचार ही न करो कि भविष्य में आजीविका का क्या होगा? तुम्हारे दिल में यह बात पैदा होनी चाहिए कि चाहे अंगो के काम से पुरुषार्थ कर के रोजी कमालेंगे-पर ऐसा काम कभी न करेंगे जिससे सिर नीचा करना पड़े-किसीके दरवाजे भीख मांगने न जायगे। फिर मां-बाप या भाई-बहन की चिन्ता किस लिए? अंधेरे में रोशनी करने के लिए एक चिराग काफी है। इसी तरह अगर तुम अपने कुटुम्ब में एक सपूत निकलोगे तो काफी है। भले ही तुम्हारे सिर मां बाप भाई-बहन आदि का पोषण भार आ पड़े। अपनी-बहन से कहना कि पहले मुझे खिलाकर फिर खाउंगा। पर रबड़ी-मलाई नहीं, रोटी मिलेगी। तब वह बहन तुम्हें महनत करते हुए देखकर बैठ न रहेगी, बल्कि मिहनत करने लगेगी और तुम्हारी रोटी में मदद देगी। इस तरह अगर तुम्हारे अन्दर हिंमत होगी तो सब बातें ठीक हो जायंगी।

अब रहा मंझला पक्ष। तो अब हमें क्या करना चाहिए? सो मैं तुमसे कहता हूं कि अगर अध्यापकों पर से तुम्हारा विश्वास उठ जाय, तुम्हें यह मालूम हो कि अध्यापक यहां धन कमाने आये हैं, बडे बनने आये हैं तो तुम उन्हें छोड कर चले जाना। एक सज्जन ने कहा—आपको धन का लोभ चाहे न हो, पर आप आडंबर तो करते हैं; क्योंकि आपको महात्मा जो बनना है? बात सच है। अतएव अगर तुम्हें यह मालूम हो कि अध्यापक बडे बनना चाहते हैं तो उनको छोड देना। छोडना ही नहीं, बल्कि बाहर उनकी खब निन्दा करना। अध्यापकों और विद्यार्थियों में किसी बात का ठहराव नहीं। पर अध्यापक अगर शीलवान् हों तो अपना सारा भार उनपर न डाल देना। विद्या-ज्ञान कौन दे सकता है? विद्याज्ञान कोई नहीं दे सकता। अध्यापकों का काम है तुम्हारे जौहर को परख कर उसे खींच निकालना। इस जौहर को उज्वलित कर के खिला तो तुम ही सकते हो। Education का भी अर्थ यही है-जो भीतर हो उसे बाहर खींच लाना। अतएव इस बात के विषय में कि पढाई क्या होगी, तुमको निर्भय रहना चाहिए। अध्यापकों पर विश्वास रखकर जो वे सिखावें उसे श्रद्धा के साथ ग्रहण करना चाहिए।

अपनी नीति और सदाचार की रक्षा करना खुद तुम्हारे हाथों में है। तुम्हारी नीतिमत्ता की रक्षा अध्यापकों के द्वारा नहीं हो सकती। तुम्हें हमेशा यह बात याद रखनी चाहिए कि तुम यहां चहल-पहल, रंग-राग और आमोद-प्रमोद के लिए नहीं आये हो। तुम्हारा आमोद-प्रमोद है तुम्हारा अध्ययन, तुम्हारा बाहुबल और तुम्हारा पुरुषार्थ। तुम अपने हाथ-पैर हिलाना सीखो। पहले तो विद्यार्थी अपंग बन जाते हैं और फिर कहते हैं कि अब अखाडे में जा कर हट्टे-कट्टे बनेंगे। अखाडे में जाने से हट्टा-कट्टा नहीं बना जाता। पहले तुम हृदय-बल को प्राप्त करो तब शरीर-बल प्राप्त हो सकेगा।

मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं—ईश्वर से तो प्रार्थना क्या करूं? उसके दरबार में तो मैं रोता हूं। अतएव मेरी प्रार्थना तुम से है। तुम खुद अपनी तथा अध्यापकों की कीर्ति बढाओ। हमारा यह विद्यापीठ सारे देश के लिए एक नमूना है। शिक्षा-विषयक असहयोग को गुजरात ने सुशोभित कर दिखाया है। किस हद तक सुशोभित किया है—इसका निर्णय तो भविष्य में होगा।

अध्यापकों से मैं विनय करना नहीं चाहता। क्योंकि मैं भी उन्हींमें से हूं। आज तो मैं यही ख्याल पेश करना चाहता हूं कि शिक्षा-विषयक असहयोग सफल हुआ है या नहीं, इसका आधार आपही पर है। मैं चाहता हूं कि यही विचार ले कर आप घर जायं।

(पृष्ठ ३५३ से आगे)

बाजे बजाया करें। हिन्दुओं को सरकारी अस्पतालों और दफ्तरों के सामने बाजा बन्द करना पड़ता है, मगर उनकी हठधर्मी उन्हें मसजिद के सामने बाजे बन्द कर देने की इजाजत नहीं देती।"

लेखक इस बात को मान लें कि कुरान में मुसल्मानों के लिए गाय की कुरबानी करना जरूरी नहीं कहा गया है। हां, कुछ मौकों पर कुछ प्राणियों की कुरबानी का हुक्म कुरान अलबत्ते देती है, जिनमें गाय भी शामिल है। इससे गाय की कुरबानी कोई अनिवार्य बात नहीं है। परन्तु जब कि वह जायज मानी गई है और जब कोई तीसरा शख्स मुसलमानों से जबरदस्ती उसे बन्द कराता है तब वह उनके लिए जरूरी हो जाती है। इसी तरह हिन्दुओं के लिए भी मसजिदों के सामने बाजा बजाना जरूरी नहीं है, तो भी जब मुसल्मान तलवार के जोर पर हिन्दुओं का बाजा मसजिद के सामने बंद करने पर आमादा होते हैं तो वह हिन्दुओं का धर्म हो जाता है। इसलिए ठीक तो यह है कि इन दोनों बातों का निपटारा दोनों की मरजी पर ही छोड देना चाहिए।

नरमदल और खादी

एक नरम दल वाले मित्र लिखते हैं—"मैं खादी के मसले पर सोच रहा हूं और अपने साथियों के साथ चर्चा भी कर रहा हूं। मैं देखता हूं कि खादी के गुणों के संबंध में कोई मत-भेद नहीं है। परन्तु जब खादी का संबंध आपकी इस बात के साथ जोड दिया जाता है कि खादी तो सविनय भंग की पगदण्डी है तभी झगडा शुरू हो जाता है। अगर उससे अलग रहे—असहयोग आन्दोलन का एक भाग न हो तो मैं समझता हूं कि खादी-आन्दोलन ज्यादह विशाल और सार्वत्रिक हो जायगा।"

खादी के विरुद्ध यह कुशंका उतनी ही पुरानी है जितना कि असहयोग है। मैंने कितनी ही मर्तबे यह दिखलाने की कोशिश की है कि बिना सत्याग्रही के किसी भी शख्स को खादी के संबंध में सविनय भंग का ख्याल न होना चाहिए। सविनय भंग का कोई प्रत्यक्ष संबंध खादी के साथ नहीं है। खादी के जन्म होने के भी पहले मैंने सविनय भंग की कितनी ही लडाइयां लडी हैं। खेडा के सत्याग्रह के समय खादी का जिक्र तक न था। यहां तक कि बोरसद की फौज ने भी खादी का व्रत नहीं लिया था। महासभा के स्वयंसेवकों के अलावा किसीके लिए यह लाजिमी नहीं था कि वह सत्याग्रहियों में अपना नाम लिखाने के पहले खादी पहने। इसका कारण साफ है। वह स्वराज स्थापित करने की लडाई नहीं थी। स्वराज्य की स्थापना की लडाई के लिए मैंने खादी को जो अनिवार्य बताया है उसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि जबतक यहां घर घर में खादी का प्रचार न हो तबतक मैं स्वराज को असंभव मानता हूं। दूसरे यह जन-समाज को नियमबद्ध बनाने में खूब सहायक होगी। और यह तो निर्विवाद है कि बिना नियमबद्धता सीखे सामूहिक सविनय भंग गैर-मुमकिन है। नरमदल वालों को तथा दूसरे साहबान को यह जान लेना चाहिए कि सविनय भंग को टालने का सबसे अच्छा रास्ता यही है कि हर शख्स महासभा के रचनात्मक कार्य-क्रम को अपना ले। उसके तीन अंगों को तो खास कर। अगर हम सब लोग एक दिल हो कर हिन्दू-मुस्लिम-एकता को सिद्ध कर सकें, घर घर में हाथ-कती खादी फैला सकें, और हिन्दू लोग सब अछूतता की बुराई को मिटाने में एक हो जायं तो स्वराज हमारी आंखों के सामने दिखाई देने लगे। कुछ ऐसे अंगरेज हैं, जो सविनय भंग या असहयोग के साथ हमदर्दी रखने के ख्याल तक का विरोध करेंगे; परन्तु खादी को वे बडे शौक से पहनते हैं। (यं० इं०)

हिन्दू क्या करें?

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	„ २)
एक प्रति का	„ -)।
विदेशों के लिए	„ ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ४५

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, आषाढ सुदी ६, संवत् १९८०, रविवार, २२ जून, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

फिर से आर्यसमाजी

इतने आर्य-समाजी मित्रों ने मेरे आर्य-समाज के सिद्धान्त-संबंधी (उनकी राय में) अज्ञान और उन सिद्धांतों की उत्तमता के विषय में इतने लंबे-चौड़े प्रवचन लिखकर भेजे हैं कि मैं इस बात के लिए उत्सुक हो रहा था कि कम से कम एक पत्र तो जरूर छापूं जिससे पाठकों को यह मालूम हो जाय कि आर्य-समाजी मेरी टीका को किस दृष्टि से देखते हैं। अन्त को मुझे एक ऐसा पत्र मिला और उसे मैं खुशी के साथ प्रकाशित कर रहा हूं। पत्र-लेखक हैं आचार्य रामदेव, गुरुकुल कांगडी। उसमें से मैंने सिर्फ एक वाक्य निकाल डाला है, जो मेरी राय में जल्दी में लिखा गया होगा और जिससे खुद उन्हीं के साथ इन्साफ न होता था। उसके निकाल डालने से उनकी दलील में कुछ कमी नहीं पडती और आर्य-समाज के संस्थापक की उनके द्वारा गाई गई कीर्ति में भी किसी बात की त्रुटि नहीं होती। आचार्य रामदेव का पत्र नीचे देता हूं—

"यंग इंडिया में लिखे हिन्दू-मुस्लिम एकता-संबंधी आपके लेख को पढकर मुझे बडा ही रंज हुआ। मैंने अपने जीवन में ऐसे महान् पुरुष की कलम से ऐसा निराशा-जनक लेख कभी न पढा था। इस लेख के द्वारा पंजाब और युक्त-प्रांत में बडी नाराजगी और बेचैनी फैल गई है। स्थिति को सुधारने के बजाय इसके द्वारा हिन्दुओं के दिल दहल उठे हैं और कितने ही विचारशील आर्य-समाजी इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि आप इस्लाम का इतना पक्षपात और आर्य-समाज का इतना विरोध रखते हैं कि आर्य-समाज के साथ ऐसा गहरा अन्याय—चाहे अनजान में हो—किये बिना नहीं रह सकते थे। आर्य-समाज के आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर हमला करने की कोई जरूरत न थी और हिन्दू-मुसलमान-प्रश्न के साथ उसका कुछ संबंध भी न था। आपके आक्षेप न तो युक्तिपूर्ण ही थे और न इस समय आप शास्त्रार्थ के लिए ही तैयार हैं। आर्य-समाज के वेद-विषयक इस विश्वास का कि वेद अपौरुषेय हैं हिन्दू मुसलमान-तनाजे से उतना ही संबंध है जितना कि आपके आध्यात्मिक सिद्धान्तों का संबंध महासभा की फूट से है।.........फिर यदि श्रुतियों पर विश्वास रखना संकुचितता है तो इस्लाम भी उतना ही संकुचित है जितना कि वैदिक धर्म। क्योंकि ऐसा विश्वास रखना मुस्लिम धर्म का मुख्य अंग था— इस्लाम के उस सौभाग्य के युग में भी जिसका वर्णन आपने बडे उत्साह के साथ किया है। आपका यह अभिप्राय कि महर्षि दयानन्द ने ही सबसे पहले वेदों की पूर्णता और निर्भ्रान्तता के सिद्धान्त की घोषणा की, वास्तव में निर्मूल है और यह प्रकट करता है कि जिस शख्स ने—फिर वह कितना ही बडा हो, उन विषयों का अध्ययन नहीं किया है, उसका उनपर कलम चलाना कितना खतरनाक है। मैं आदर-पूर्वक यह बताना चाहता हूं कि उपनिषद्, मनुस्मृति, षड्दर्शन, पुराण, और शंकराचार्य रामानुज, मध्वाचार्य, चैतन्य तथा अन्य मध्यकालीन साधु-सन्तों और विद्वानों के ग्रन्थ सब इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। फिर यह मत कि वेदों में तमाम सत् विद्याओं (पदार्थ विज्ञान भी उसमें शामिल है) का बीज है, कोई नया नहीं है। तमाम प्राचीन ज्योतिषी-जैसे आर्यभट्ट भास्कराचार्य-इसको मानते थे। इसके अलावा आधुनिक वैदिक विद्वान् जैसे पावगी, परमशिव ऐयर, द्विजदास दत्त जिनमें कोई आर्यसमाजी नहीं है-अपने तौर पर विचार करते हुए इसी नतीजे पर पहुंचे हैं। पता नहीं आप जानते हैं या नहीं कि अरविंद घोष ने यह बात लोगों के सामने प्रकट की है कि अकेले स्वामी दयानन्द ने ही वेद की टीका के सच्चे प्रमाणों का आविष्कार किया है। इन प्रामाणिक विद्वानों के प्रमाण, जिन्होंने सारा जीवन वेदों के अध्ययन में बिताया है, एक ऐसे महात्मा के अप्रासंगिक उद्गारों से खिन्न नहीं हो सकते—फिर उसका चरित्र कितना ही ऊंचा हो और मनुष्य-जाति के प्रति उसका हृदय चाहे कितना प्रेम-परिप्लुत हो, जिसने लगातार थोडे काल भी मूल पर से वेद-वेदांगों का अध्ययन न किया हो। तमाम जातियों और धर्मों के सबसे बडे नेता की हैसियत रखते हुए आपने धार्मिक खण्डन-मण्डन में पडकर अच्छा न किया। सत्यार्थ-प्रकाश के बारे में आपने जो सामान्य सिद्धान्त बनाये हैं वे तो बडे ही अनुचित हैं। मालूम होता है कि आपने पहले दस समुल्लासों को नहीं पढा है, जिनमें उपासना, ब्रह्मचर्य, शिक्षा, विवाह-संस्कार, संन्यास, राजनीति, मुक्ति, ज्ञान-विज्ञान, वेद और भक्ष्याभक्ष्य का विवेचन किया गया है जो और ग्रन्थ का मुख्य भाग है। इन समुल्लासों में दूसरे धर्मों को स्पर्श तक न किया गया है। इनको छोडकर आप आखिरी चार अध्यायों पर कूद गये हैं। बात यह है कि सत्यार्थप्रकाश को पढने के बहुत समय पहले ही आप इस विचित्र नतीजे पर पहुंच चुके थे कि स्वामी दयानन्द असहिष्णु थे।

आपने सत्यार्थप्रकाश को जल्दी में पढ़ा है और उसपर आपके इस पूर्व-विचार ने उसे दूषित कर दिया है। आपकी हालत उस न्यायाधीश की सी हुई जो फरयादी की बात सुनकर सजा दे देता है और फिर उसके बचाव की सूरत निकालता है, जिससे कि अपने सजा के फैसले का समर्थन किया जा सके। जिन लोगों ने स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों को ध्यान से पढ़ा है—आपके मित्र एण्ड्रयूज साहब भी उनमें हैं—या जिन्हें उनके चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जैसे—ए. ओ. ह्यूम, पादरी स्काट, सर सैयद अहमद, रानडे, तैलंग, मालबारी, रघुनाथराव और किशन नारायण दर उन्होंने निःसंदिग्ध यह बात कही है कि वे अपने कालके एक अत्यन्त सहिष्णु धर्म सुधारक थे और उनके मानव-प्रेम के जाति, देश, वर्ण, और संस्कृति आदि की सीमा न थी। अब मैं खतम करता हूं। मेरा यह लिखना छोटे मुंह बड़ी बात समझी जा सकती है। मेरे हृदय में आपके प्रति प्रेम, आदर और भक्ति है। उसीके बल पर मैं अपनी सफाई दे सकता हूं। प्रेम और भक्ति में ऐसी अद्भुत शक्ति है कि वह छोटे आदमी को भी बड़े आदमी से कुछ निवेदन करने की हिम्मत दे देती है। विशेष विनय।

भवदीय

रामदेव

मैं हमेशा कहता रहता हूं कि मेरी राजनीति मेरे धर्म का अनुसरण करती है। मैं राजनैतिक क्षेत्र में इसलिए पड़ा हूं कि मैं अपने धार्मिक जीवन अर्थात् सेवामय जीवन को उससे प्रभावित हुए बिना व्यतीत न कर सका। यदि उसके बदौलत मेरे धार्मिक जीवन में बाधा पड़ेगी तो मुझे उसका त्याग कर देना होगा। इसलिए मैं इस सिद्धान्त से सहमत नहीं हो सकता कि एक राजनैतिक नेता होने के कारण मुझे धार्मिक बातों में न बोलना चाहिए। मैंने आर्यसमाज के बारे में इतना इसलिए लिखा कि मैंने देखा कि वह अपनी उपयोगिता को खोता जा रहा है और उसकी मौजूदा कार्रवाइयों से देश को हानि पहुंच रही है। उनका एक मित्र और हिन्दू होने के कारण मुझे उन लोगों से कहने का हक है जिनके मतों और विचारों का उद्गमस्थान एक ही है। यदि यहां मैं भिन्न भिन्न धर्मों के गुण-दोष की समीक्षा करता होता तो अवश्य ही मुझे इस्लाम के बारे में भी अपने विचार प्रकाशित करने पड़ते।

मैं इकबाल करता हूं कि मैंने मूल वेदों को नहीं पढ़ा है। पर मुझे उनका इतना ज्ञान अवश्य है कि मैं अपने लिए कुछ विचार बांध सकता हूं। आचार्य रामदेव का यह खयाल गलत है कि महर्षि दयानन्द के उपदेशों के सबब में मेरा खयाल पहले ही से खराब था। आचार्य रामदेव ने जिन महान् पुरुषों का उल्लेख ऊपर किया है उनके द्वारा उस महान् सुधारक की की गई स्तुति के ठीक ठीक शब्द मुझे मालूम नहीं हैं। पर उनके साथ इस स्तुति में शामिल होते हुए भी मैं अपनी इस राय पर कायम रह सकता हूं। मैं अपनी पत्नी की त्रुटियों को जानता हूं। पर इसलिए मैं उसे कम प्यार नहीं करता। मेरे टीकाकार विचार करते समय यह भूल कर बैठते हैं कि चूंकि मैंने उनके समाज-संस्थापक पर टीकाटिप्पणी की है, इसलिए मेरा उनके प्रति प्रेम और आदर नहीं है। मैं आचार्य रामदेव को यकीन दिलाता हूं कि मैंने सत्यार्थ-प्रकाश के तमाम समुल्लासों को पढ़ा है। उन्हें यह न भूलना चाहिए कि किसी मनुष्य के नैतिक उपदेश के उच्च होते हुए भी उसका दर्शन संकुचित हो सकता है। मेरे कितने ही मित्र जो नैतिक दृष्टि से मुझे और मेरी नैतिक शिक्षाओं को बहुत ऊंचे दरजे का मानते हैं, मेरे जीवन-संबंधी विचारों और दृष्टि-बिन्दु को संकुचित और धर्मोन्मत्तता से पूर्ण मानते हैं। मैं उनकी इस टीका टिप्पणी से बुरा नहीं मानता—हालां कि मैं मानता हूं कि जीवन-विषयक मेरा दृष्टि-बिन्दु विशाल है और मैं मनुष्यजाति के अत्यन्त सहनशील लोगों में रखने योग्य हूं। मैं अपने आर्य-समाजी मित्रों को यकीन दिलाता हूं कि यदि मैंने उनकी आलोचना की हो तो वह उसी दृष्टि से की है जिस दृष्टि से मेरी आलोचना उन्हें करने का अधिकार है। इसलिए हम दोनों अपना हिसाब चुकता करलें। वे मुझे देश में सब से अधिक अज्ञानी और असहिष्णु समझते रहें और मुझे अपनी राय पर कायम रहने दें।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

अस्पृश्यता और स्वराज्य

एक सज्जन गंभीरता के साथ लिखते हैं—"अस्पृश्यता शब्द मुझे विचित्र मालूम होता है। क्योंकि आम तौर पर स्पृश्य नामक कोई जाति है नहीं। बिना जरूरत के शायद ही कोई किसीके बदन को छूता हो। 'अछूत' माने जाने वाले लोगों से भिन्न लोगों में ऐसी प्रथा है कि वे एक-दूसरे के पास आने जाने में बुराई नहीं समझते। बस। परन्तु कोई शख्स जान-बूझकर किसीको नहीं छूता। इसी तरह अगर 'अछूत' अपने काम से काम रक्खें और दूसरे लोग अपने काम से काम रक्खें तो क्या इस जटिल प्रश्न का निपटारा न होगा?

मुझे विश्वास है कि अस्पृश्यता के पाप को धोने के लिए खास तौर पर 'अछूत' के पास जा कर उन्हें छूने की जरूरत आप न बतावेंगे। और अगर साक्षात् स्पर्श की आवश्यकता न हो तो इस पाप को 'अस्पृश्यता' के नाम से पुकारने का क्या अर्थ है? आप जो अस्पृश्यता शब्द का प्रयोग करते हैं इससे ऐसा सूचित होता है कि इस बुराई को दूर करने के लिए जबरदस्त छूना जरूरी है। और मैं समझता हूं कि आपकी इस हलचल पर पुराने विचार के लोग जो आपत्ति करते हैं उसका कारण यही है। मैं नहीं समझता कि मैं अपने भाई को भी बहुत बार छूता हूंगा। सच पूछिए तो मेरे इस प्रश्न के निपटारे के लिए तैयार रहने पर भी मेरे लिए दूसर शख्स का छूना जरूरी नहीं और फायदेमंद भी नहीं। इसलिए मेरी राय में 'दूरता' शब्द ही इस समाज की हालत को अधिक सचाई के साथ व्यंजित करता है। और जबतक यह दूरता दूर न हो, सहिष्णुता के भाव हमारे हृदय में न उपजें तबतक बाहरी स्पृश्यता की वृद्धि से कुछ लाभ नहीं हो सकता।

फिर इस पाप से स्वराज्य की स्थापना का क्या वास्ता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। हिन्दू-समाज में अनेक दूषण हैं। उनमें एक 'दूरता' भी है। शायद यह सब से बड़ा हो। परन्तु जबतक समाज अपनी हस्ती रखता है तबतक ऐसे पाप भी जरूर कायम रहेंगे। क्योंकि कोई समाज बुराई से खाली नहीं। यह बुराई किस तरह स्वराज्य के लिए बाधा-रूप है और आपने किस खयाल से स्वराज्य के योग्य होने की पहली शर्त अस्पृश्यता-निवारण को रक्खा है? स्वराज्य मिलने के बाद मौजूदा हालत को हम लोगों की राजी-खुशी से नहीं तो क्या कानून बना कर न सुधार सकेंगे?

हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य की अनिवार्य आवश्यकता को मैं समझ सकता हूं; क्योंकि दोनों पक्षवालों के झगड़े से संभव है सरकार फायदा उठावे और हमारी मांगों को जबतक चाहे, खटाई में डालती रहे। 'अस्पृश्यता' का सामाजिक, धार्मिक और मानवी रूप भी मैं समझ सकता हूं। परन्तु यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि हम इसको ऐसा राजनैतिक मसला क्यों बना लें जिसके निपटारे के बिना स्वराज्य असंभव हो जाय।"

शब्द के लिए मेरा कोई झगड़ा नहीं। जिस प्रथा के बदौलत हिन्दुओं का एक बड़ा हिस्सा पशु से भी अधम अवस्था को जा पहुंचा है उसके लिए मेरे रोम-रोम में घृणा व्याप्त हो रही है। बेचारे अन्त्यज को—अस्पृश्य शब्द का प्रयोग नहीं करता—यदि अपने रास्ते जाने दिया जाय तो इस सवाल का निपटारा बहुत-कुछ हो सकता है; पर दुःख की बात यह है कि उसे न तो विचार-शक्ति है और न उसके लिए कोई रास्ता ही है। क्या पशु के लिए उसके मालिक की मरजी के अलावा कोई विचार-शक्ति या रास्ता हो सकता है? अन्त्यज के लिए कोई ऐसा स्थान है जिसे वह अपना कह सके? क्या पंचमा (अछूत) के कोई ऐसी जगह है जिसे वह अपनी समझता हो? जिन सड़कों को वह साफ करता है जिनके लिए वह अपने खून का पसीना बहाकर कर देता है उन्हीं पर वह चलने नहीं पाता। वह औरों की तरह कपड़े तक नहीं पहन सकता। बेशक सहिष्णुता की बात करते हैं। यह कहना कि हम हिन्दू लोग पंचमा-सदस्यों के साथ जरा भी सहिष्णुता का बरताव करते हैं, केवल वाणी-व्यभिचार है। एक तो हमने उन्हें नीचे गिरा दिया और फिर उन्हींके पतन का उपयोग, उनके उत्थान के खिलाफ, करने की धृष्टता हम करते हैं!

मेरे नजदीक स्वराज्य का मतलब है हमारे देश के हीन से हीन लोगों की आजादी। जब कि हम सब लोग दुःखावस्था में हैं तब यदि पंचमा के भाग्य न जागें तो जब कि हम स्वराज्य के नशे में मदमात हो जायंगे तब उनकी कौन सुनेगा? यदि हमारे लिए स्वराज्य-प्राप्ति की यह शर्त आवश्यक है कि हम मुसलमानों से मेल कर लें तो यह भी उतना ही आवश्यक है कि इसके पहले कि जरा भी इन्साफ या आत्मसम्मान के साथ हम स्वराज्य की बातें करें हम पंचमा भाइयों को अपना लें। मुझे इस बात में कुछ भी दिलचस्पी नहीं है कि हिन्दुस्तान की गर्दन से महज अंगरेजों का जुआ हट जाय। मैं तो हिन्दुस्तान के गले से हर किस्म के जुए को हटा देनेपर तुला हुआ हूं। मैं नहीं चाहता कि भूत को गद्दी से हटाकर पिशाच को बिठाऊं। इसीलिए मेरे नजदीक तो स्वराज्य के आन्दोलन के मानी हैं आत्मशुद्धि का आन्दोलन।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

परदा और प्रतिज्ञा

मैंने यह शीर्षक इसलिए नहीं चुना कि इन दो शब्दों में कुछ संबंध है। परन्तु काठियावाड़ राजपूत-परिषद् के सिलसिले में मैं इन्हीं दो बातों के संबंध में कुछ लिखना चाहता हूं और इसीलिए इन दोनों लफ्जों को एक-साथ लिखा है। परिषद् के एक दर्शक लिखते हैं कि परिषद् में जमा का तो कुछ ठिकाना ही न था। लगभग १८ हजार राजपूत एकत्र हुए होंगे। स्त्रियों की संख्या भी इतनी थी कि किसीको खयाल न हो सकता था अर्थात् कम से कम एक हजार होगी। यह संख्या सचमुच भारी कही जा सकती है। परन्तु परदे का इन्तजाम इतना सख्त किया गया था कि अनजान लोगों को तो मालूम भी नहीं हो सकता कि परिषद् के मंडप में कहीं स्त्रियां भी बैठी हुई हैं। उनके मुकाम से स्त्रियां इस खूबी के साथ लाई जाती थी कि किसीको मालूम तक न होता था कि स्त्रियां जा रही हैं। ऐसे कामिल इन्तजाम के लिए परिषद् के कार्यकर्ता धन्यवाद के पात्र हैं। परन्तु परदे की प्रथा पर तो खेद ही प्रकट करना पड़ता है। यह कहा जा सकता है कि परदे की आवश्यकता का जमाना अब चला गया। राम-राज्य में कहीं परदा हो सकता है? हां, अभी राम-राज्य हुआ नहीं है; पर अगर हम उसे चाहते हों तो हमें आज ही से वैसा व्यवहार शुरू कर देना चाहिए। हमें यह दिखा देना है कि परदे के न रहने पर भी हम मर्यादा की रक्षा कर सकते हैं। जिन लोगों में परदे का रिवाज नहीं है उनमें कोई नहीं कह सकता कि मर्यादा का खयाल कम है। जिस जमाने में औरतें हमारी मिल्कियत समझी जाती थीं और वे हरण की जा सकती थीं, तब चाहे परदे की जरूरत भले रही हो। यदि पुरुषों का भी हरण होता हो तो उन्हें भी परदे में रहना पड़े। जहां ऐसी हालत हो कि मनुष्य को देखा नहीं कि उसे बेगारमें पकड़ा नहीं वहां आज भी पुरुष परदे में रहते हैं अर्थात् छिपकर रहते हैं। परन्तु पुरुष की कुदृष्टि से स्त्रियों को बचाने का इलाज परदा नहीं, बल्कि पुरुष की पवित्रता है। पुरुष को पवित्र बनाने में स्त्री बड़ी सहायक हो सकती है। जो स्त्री परदे में पड़ी पड़ी दब रहती हो वह पुरुष को कैसे पवित्र बना सकती है? यदि शुरू से ही उसे पुरुष से डर कर चलने की आदत डाली जाय तो वह पुरुष को कैसे सुधार सकती है? फिर परदे में रखना मानों स्त्रियों में एक बुराई पैदा करना है। मेरा मत है कि परदा सदाचार का पोषक नहीं, बल्कि घातक है। सदाचार के पोषण के लिए सदाचार की शिक्षा, सदाचार के वायु-मण्डल और बड़े-बूढ़ों के नीतियुक्त आचरण की आवश्यकता है। परदे के लिए जो मैंने इतना लिखा है सो परिषद् का दोष दिखाने के लिए नहीं। एकदम ही सपाटे में परदा उठा देना कठिन काम था; परन्तु भविष्य के लिए जितने ही राजपूतों को इसकी तैयारी अवश्य करनी चाहिए।

अब रही प्रतिज्ञा। सुनता हूं कि प्रतिज्ञा भी अच्छी तादाद में की गई है। यह भी सुना है कि प्रतिज्ञा विधि-पूर्वक की गई। इसलिए हमें आशा रखनी चाहिए कि उसका पालन भी होगा। पर मेरा अनुभव यह जरूर है कि बड़े समुदाय में की गई प्रतिज्ञा जहां की तहां रह जाती है। इसका मतलब यह नहीं कि प्रतिज्ञा न की जाय। मेरा तो अभिप्राय और अनुभव यही है कि प्रतिज्ञा के बिना मनुष्य का कदम आगे नहीं बढ़ सकता। प्रतिज्ञा का अर्थ है मरते दम तक का निश्चय। ऐसे निश्चय के बिना कोई काम नहीं हो सकता। 'यथाशक्ति' का कुछ अर्थ नहीं। प्रतिज्ञा से मनुष्य को अक्षय शक्ति मिलती है। 'यथाशक्ति' करने की इच्छा रखनेवाला कभी न कभी तो निर्बलता का परिचय अवश्य देता है। उस समय वह निस्सहाय हो जाता है। परन्तु उस समय प्रतिज्ञा खरी उतरती है। क्योंकि उसने तो ईश्वर को हाजिर-नाजिर मान कर व्रत धारण किया था। जब उसकी शक्ति खो जाती है तब उस अभाव के साथ जो उसके पास मौजूद रहा समझिए।

बदकिस्मती से हमने प्रतिज्ञा की कीमत को कम कर दिया है। प्रतिज्ञा करते समय हम विचार नहीं करते, इसीसे उसका पालन बराबर नहीं होता। प्रतिज्ञा न पालन करने की टेव पड़ जाने से हम प्रायः यह मानने लग हैं कि उसके पालने की जरूरत ही नहीं। हम आशा करें कि जिन राजपूत भाई-बहनों ने प्रतिज्ञा की हैं वे उन्हें पालने में समर्थ होंगे।

परिषद् की सादगी महासभा के अनुकरण करने योग्य थी। इस बड़े जन-समूह को सिर्फ दाल-रोटी के सिवा और कोई भोजन न दिया गया। बड़े समुदाय में इससे अधिक की संभावना भी नहीं और अच्छा भी नहीं मालूम होता। विवाह लोग भी अपने संघों में इसी तरह सादगी से काम लेते हैं। इससे खर्च और मिहनत दोनों बचते हैं, और साथ ही शरीर अच्छा रहता है और उसको तालीम मिलती है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, आषाढ़ सुदी ६, संवत् १९८०

आखिरी कसौटी

अगली महा-समिति की बैठक में मैं नीचे लिखे चार प्रस्ताव पेश करना चाहता हूं—

१—इस बात पर ध्यान रखते हुए कि स्वराज्य की स्थापना के लिए चरखा और हाथकती-खादी के आवश्यक माने जाने पर भी और महासभा के द्वारा सविनय भंग के लिए पेश-बन्दी के तौर पर उनकी स्वीकृति होते हुए भी देश की तमाम महासभा संस्थाओं के सदस्यों ने चरखा कातने पर अबतक ध्यान नहीं दिया है, यह महा-समिति निश्चय करती है कि तमाम प्रतिनिधिक महासभा-संस्थाओं के सदस्यों को चाहिए कि वे, बीमारी अथवा लगातार सफर की हालत को छोड़कर, रोज कम से कम आध घण्टा चरखा कातें और कम से कम १० नंबर का १० तोला एक-सा और पक्का सूत अखिल भारतीय खादी-मण्डल के मन्त्री के पास भेज दें जोकि हर महीने की १५ ता. तक उन्हें मिल जाय, पहली किश्त १५ अगस्त १९२४ तक उनके पास पहुंच जाय और उसके बाद हर महीने बराबर भेजते रहें। जो सदस्य नियत तारीख तक नियत तादाद में सूत न भेजेगा उसका पद खाली समझा जायगा और मामूल के मुआफिक उसकी जगह पर दूसरे सदस्य की तजवीज की जायगी तथा पद-च्युत शख्स अगले साधारण चुनाव तक फिर से चुने जाने का पात्र न समझा जायगा।

२—चूंकि इस बात की शिकायतें पहुँची हैं कि प्रान्तीय मन्त्री तथा महासभा के दूसरे पदाधिकारी उन हुक्मों की तामील नहीं करते हैं, जोकि महासभा के बाकायदा अफसरों की तरफ से उनके नाम समय समय पर भेजे जाते हैं, इसलिए महासमिति निश्चय करती है कि जो पदाधिकारी अपने बाकायदा मुकर्रर अफसरों के हुक्मों की तामील करने में गफलत करेगा वह अपनी जगह से खारिज समझा जायगा और उसकी जगह पर मामूल के मुआफिक दूसरा शख्स तजवीज किया जायगा और वह पद-च्युत व्यक्ति अगले साधारण चुनाव तक फिर से चुने जाने का पात्र न समझा जायगा।

३—महासमिति की राय में यह बात वांछनीय है कि महासभा के निर्वाचक लोग सिर्फ उन्हीं लोगों को पदाधिकारी चुनें जो महासभा के ध्येय के अनुसार तथा महासभा के विविध असहयोग-प्रस्तावों के अनुसार, जिनमें पंचविध बहिष्कार अर्थात् मिल-कते कपड़ों, सरकारी अदालतों, स्कूलों, खिताबों और धारासभाओं के बहिष्कार शामिल हैं, खुद चलते हों; और महासमिति यह निश्चय करती है कि जो सभ्य इन पांचों बहिष्कारों को न मानते हों और उनके मुताबिक न चलते हों वे अपनी जगहों से इस्तीफा दे दें और उन जगहों के लिए नया चुनाव किया जाय—इस्तीफा देने वाले सज्जन चाहें तो चुनाव के लिए फिर से उम्मीदवार हो सकते हैं।

४ महासमिति स्वर्गीय गोपीनाथ साहा के द्वारा किये गये श्री डे के खून पर अपना अफसोस जाहिर करती है और मृतात्मा के परिवार के प्रति अपना शोक प्रकट करती है और ऐसे खून जिन देश-प्रेम के कारण होते हैं—फिर वह भ्रान्त ही क्यों न हो—उसका महत्व खयाल रखते हुए भी यह समिति ऐसे तमाम राजनैतिक खूनों की सख्त निन्दा करती है और जोर के साथ अपनी राय जाहिर करती है कि ऐसे तमाम काम महासभा के ध्येय और उसके शान्तिमय असहयोग के प्रस्तावों के खिलाफ हैं और उसकी राय है कि ऐसे कामों से स्वराज्य का कदम पीछे हटता है और उस सविनय भंग की तैयारी में बाधा डालता है जो कि महासमिति की राय में शुद्ध से शुद्ध बलिदान को उत्साहित करता है और जो पूर्ण शान्ति-मय वायु-मण्डल में ही किया जा सकता है।

इस मौके पर तो मैं ठीक वही काम करता हुआ दिखाई देता हूं जिससे मैं बचने की इच्छा रखने का दावा करता हूं—अर्थात् महासभा में फूट पैदा करना और देश में चर्चा और विवाद का तूफान खड़ा कर देना। फिर भी मैं पाठकों को यकीन दिलाता हूं कि कम से कम जहांतक मुझसे ताल्लुक है यह हालत ज्यादह दिनों तक न रहेगी। मेरी एक-मात्र चिन्ता और उत्सुकता यह है कि यह अनिश्चितता का वायु-मण्डल स्वच्छ हो जाय। मैं समझता हूं कि हर शख्स इसमें मेरा साथ देगा। अगर हमें यह जानना हो कि हम कहां हैं तो कुछ चर्चा करना लाजिमी है। मेरे संबंध में लोग खयाल करते हैं कि मैं कुछ चमत्कार करके बता दूंगा और देश को उसके मंजिले मकसूद पर पहुंचा दूंगा। खुशकिस्मती से मेरे दिल में ऐसा कोई भ्रम नहीं है। हां, मैं एक क्षुद्र सैनिक होने का दावा जरूर करता हूं। और अगर पाठक मेरी बात पर हंसे नहीं तो मैं उनसे यह भी कह देना बुरा नहीं समझता कि मैं एक कुशल जनरल भी हो सकता हूं—महज उन्हीं शर्तों पर जो मामूली हुआ करती हैं। मेरे पास ऐसे सैनिक होने चाहिए जो आज्ञा-पालन करते हों, जो आपसमें और अपने जनरल के तईं विश्वास रखते हों और जो खुशी खुशी कामों को करते हों। मेरी कार्य-विधि हमेशा खुली और निश्चित रहती है। कुछ निश्चित शर्तें रहती हैं। उनकी पूर्ति पर सफलता का निश्चय ही समझिए। पर ऐसी हालत में बेचारा जनरल क्या कर सकता है जब उसके सैनिक उसकी शर्तों को मानते तो हों पर उन्हें खुद पालते न हों और शायद उनका विश्वास भी उनपर न हो। इन प्रस्तावों की तजवीज इसलिए की गई है कि जिससे सैनिकों की योग्यता की जांच हो जाय। बल्कि इसे दूसरी तरह से कहूं तो ठीक होगा। सैनिकों की हालत तो बड़ी अच्छी है। क्योंकि वे अपना जनरल खुद चुनते हैं। उनके भावी-जनरल के लिए उसकी सेवा की शर्तें जान लेना जरूरी हैं। मेरी हालत वही है जो १९२० में थी। पर जितने दिन बीते हैं उतना ही मेरा विश्वास बढ़ गया है। अगर मेरी सेवा चाहने वालों का भी यही हाल है तो वे मेरा तन और मन-सर्वस्व अपना ही समझें। दूसरी किसी तजवीज में मेरा विश्वास नहीं है। इसलिए दूसरी किसी शर्त पर मैं सेवा करने योग्य नहीं हूं। इसलिए नहीं कि मुझे सेवा की इच्छा नहीं है, बल्कि इसलिए कि मैं उसके लिए अ-पात्र हूं। जहां किसी २५ वर्ष के पक्के हट्टे-कट्टे नौ-जवान की जरूरत हो वहां अगर कोई सफेद-बाल वाला ७५ बरस का बूढ़ा जिसके दांत टूट गये हों, न तन्दुरुस्ती अच्छी हो, दरख्वास्त ले कर हाजिर हो तो कैसे काम चल सकता है?

इसलिए इन चार प्रस्तावों को जनरल की जगह के लिए मेरी दरख्वास्त ही समझिए। इसमें मेरी योग्यता और मर्यादा दोनों आ जाती हैं। इसमें न तो किसी प्रकार किसी तरह की मनमानी की जाती है और न कोई अर्थहीन बात चाही गई है। अगर सदस्य लोग समझें कि मैं गलती पर हूं और अगर वे अपने को तथा अपने मुल्क को धोखा न देना चाहते हों तो उन्हें मेरा जरा मुलाहिजा न रखना चाहिए। मैं जानता हूं कि कोई शख्स ऐसा नहीं है जिसके बिना देश का काम रुकता हो। हर शख्स

अपनी जन्म-भूमि का, उसके द्वारा मानव-जाति का ऋणी है। और जिस घडी वह अपना ऋण चुकाने से मुंह मोडे उसी घडी उसे खारिज कर देना चाहिए। इसलिए मौजूदा सेवा-कार्यों का भार सौंपते समय किसीकी पिछली सेवाओं पर ध्यान देने की जरूरत नहीं है—फिर वे कितनी ही उज्ज्वल हों। एक शख्स के लिए—नहीं सौ आदमियों के लिए भी, देश-हित का त्याग न होना चाहिए। बल्कि देश-हित पर उसीको या उन्हींको कुरबान कर देना चाहिए "त्यजेदेकं कुलस्यार्थे"। मैं महासमिति के सदस्यों से निवेदन करता हूं कि वे एक दृढ उद्देश को लेकर, बिना पक्षपात और मिथ्या आतुरता और भावनाओं के अधीन न होते हुए इस काम को हाथ में लें। मैं आपको जता कर और चेता कर कहता हूं कि मुझपर अंधश्रद्धा न रखिएगा। किसी बात को इसलिए ठीक न मानिएगा कि मैं उसे ठीक कहता हूं। आपको खुद ही निर्णय करना चाहिए। आपको खुद अपने दिल का और क्षमता का अन्दाज मालूम कर लेना चाहिए। इतने दिनों के समागम से आपको यह तो मालूम हो ही गया होगा कि मैं एक बेढब साथी हूं और एक कडा काम लेने वाला हूं। पर अब वे मुझे और भी ज्यादा सख्त पावेंगे।

मैंने यह दलील पढी है कि खादी से स्वराज नहीं मिल सकता। यह पुरानी है। अगर हिन्दुस्तान को योरप के नफीस कपडों की—फिर वे चाहे मैंचेस्टर के बने हों चाहे बंबई की मिलों के—चाह हो तो उसे करोडों भाइ-बहनों के लिए स्वराज की बात का खयाल ही छोड देना चाहिए। अगर हमारा विश्वास चरखे के पैगाम पर हो तो हमे खुद चरखा कातना चाहिए और मैं वादे के साथ कहता हूं कि वे इसे बडा उत्साहजनक काम पावेंगे। अगर हम शान्तिमय उपायों से, और इसलिए शान्तिमय मंत्र के द्वारा, स्वराज लेना चाहते हैं तो हमें शान्तिमय वायु-मण्डल तैयार किये बिना चारा नहीं। अगर हम हजारों की भीड में मनमाने व्याख्यान झाडने के बदले उनके अन्दर चरखा कात कर उन्हें दिखावें तो अभीष्ट शान्तिमय वायुमण्डल तैयार हो जायगा। अगर मुझसे हो सके तो मैं तो महासभा-संस्थाओं के हरएक सदस्य का मुंह बंद कर दूं—हां, मेरा और शायद शौकतअली का नहीं—जबतक कि स्वराज न मिल जाय, और उसे चरखे में लगा दूं या किसी कताई के क्षेत्र का काम सौंप दूं। अगर चुपचाप अपना काम करने वाला चरखा हमारे अन्दर श्रद्धा, साहस और आशा पैदा नहीं कर सकता तो सदस्यों को चाहिए कि वे ऐसा साफ साफ कह दें।

दूसरे और तीसरे प्रस्ताव को पहले प्रस्ताव का पूरक समझिए।

चौथे प्रस्ताव के द्वारा हमारी अहिंसात्मक नीति की जांच होगी। मैं गोपीनाथ साहा-संबंधी प्रस्ताव पर देश-बन्धु दास का वक्तव्य पढ चुका हूं। पर उससे पिछले सप्ताह में कही मेरी बात पर कुछ असर नहीं होता। जबतक महासभा अपने वर्तमान ध्येय पर कायम है और उसे मानती है तबतक मेरे तजवीज किये इस प्रस्ताव में समझौते को कोई जरूरत नहीं है।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

एजंटों की जरूरत है

अब भी गांधीजी संपादन करने लगे। उनके राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिन्दी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

व्यवस्थापक

हिन्दू क्या करें?

हिन्दू-मुसलमान-तनाजे-संबंधी मेरे निवेदन के बारे में बहुतेरे पत्र मेरे पास आये हैं। पर उनमें कोई बात नई या जानने योग्य नहीं। अतएव मैंने उन्हें प्रकाशित न किया। परन्तु बाबू भगवानदास ने इस बारे में एक पत्र लिख कर कितने ही सवाल किये हैं। वे मानते हैं कि अबतक जो कितनी बातें ठीक ठीक न मालूम हुई थीं वे इसके द्वारा हजारों लोगों को मालूम हो जायगी। फिर भी वे समझते हैं कि इसकी चिकित्सा और भी गहरी होनी चाहिए और इलाज भी कडा और जल्दी होना चाहिए। उनके पत्र का सार इस तरह है—

१. "आप कहते हैं कि साधारण तौर पर मुसलमान गुण्डे होते हैं और हिन्दू डरपोक। यदि यह सच है तो इसका कारण क्या हो सकता है? हिन्दू और मुसलमान असल में भिन्न भिन्न जातियों से पैदा नहीं हुए हैं। ९० फी सदी मुसलमान हिन्दुओं के ही वंशज हैं।

भिन्न भिन्न जाति के बहुतेरे हिन्दू योद्धाओं ने लडाई के वक्त मुसलमान सिपाही या ईसाई सिपाहियों से कुछ कम बहादुरी नहीं दिखाई है। फिर भी ऐसी लडाइयों में तो नहीं लेकिन जैसा कि आप कहते हैं छोटे-मोटे झगडों में एक डरानेवाला समझा जाता है और दूसरा डरपोक। इसका क्या सबब? क्या इन दोनों कौमों के धर्म-तत्त्व में ही यह बात नहीं पाई जाती है कि जिससे एक सबल बने और दूसरा निर्बल? केवल अन्त्यजों के संबंध में ही नहीं लेकिन दूसरी कौमों के संबंध में भी हमने जो आपस में अस्पृश्यता की बुराई फैला दी है, उससे तो हम कहीं पशु न बन गये हों? डरपोक डरानेवाले को पैदा किये बिना कैसे रह सकते हैं? इस्लाम भी आज हिन्दू-धर्म के मुकाबिले गिरा हुआ नजर आता है। लेकिन फिर भी उसमें हिन्दू धर्म के बनिस्बत कितनी ही बातें अच्छी हैं। उसमें एक दूसरे के प्रति अस्पृश्यता का भाव नहीं है। जरूरत के वक्त एक दूसरे का साथ देने का भाव उसमें जरूर पाया जाता है।

२. आप कहते हैं कि यदि हिन्दू खुद अपने को स्वच्छ कर लें तो मुसलमान भी अपनी तरफ से उसका उचित प्रत्युत्तर देंगे। लेकिन सफाई किस तरह करनी चाहिए? जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये मलाबार के हिन्दुओं को फिर हिन्दू बनाने में बनारस के पण्डितों को जूडी चढ आई! ईसाई लोग मुसलमानों को क्या ईसाई नहीं बनाते हैं? फिर मुसलमान उनसे क्यों नहीं चिढते? हमारे शुद्धि और संगठन के कार्य का कोई ढंग ही नहीं है। हमारे पण्डितों और पुरोहितों को अभिमान छोडकर यह बात जाहिर कर देना चाहिए कि जो शख्स अपनेको हिन्दू कहलवाना चाहे वह हिन्दू ही है और उस हिन्दू के साथ सब हिन्दुओं को खाना पीना करना चाहिए। आज तो हम सब हिन्दू मनुष्य हैं यह भी स्वीकार करने के लिए वे तैयार नहीं हैं।

३. आप कहते हैं कि हमने बीज बोये और गुण्डों ने उसकी फसल काटली। यह किस तरह? दोनों कौम के नेताओं की मक्कारी की वजह से या समझौते का प्रयत्न नहीं किया गया इस वजह से?

४. आप कहते हैं कि हमारे बडे बडे नेताओं में परस्पर अविश्वास बढता जाता है। यह अविश्वास क्यों है और क्यों बढता जाता है? क्या इसका कारण यह नहीं है कि हम सब "स्वराज, स्वराज" चिल्लाते हैं लेकिन स्वराज का अर्थ जुदा जुदा करते हैं?

५. आप लिखते हैं कि "हम को एक दूसरे के स्वभाव में से अनुकूल तत्त्व ढूंढ निकालने चाहिए और उनके द्वारा मिलाप बढाना चाहिए" इसको जरा खुलासे से समझाइएगा। आप कैसी कैसी

चाहते हैं ? व्यक्ति की व्यक्ति के साथ, कौम की कौम के साथ, एक पक्ष की दूसरे पक्ष के साथ या धर्म की धर्म के साथ ?

६. आप राजकीय झगड़े निपटाने के लिए हकीम साहब के हाथ में कलम सौंप देना चाहते हैं। इसका सबब वे पहले सज्जन हैं और फिर मुसलमान, यह होगा या उनमें धर्मांधता नहीं है यह ? लेकिन खुदा न करे अगर उनके हाथ-पैर न चलते हों तो क्या आप दूसरे नाम बता सकेंगे ? इस काम का भार एक ही शख्स पर डालने के बजाय क्या उत्तम स्त्री-पुरुषों की बनी एक पंचायत के जिम्मे नहीं किया जा सकता ?

७. जैसा कि आपने कहा है, सब कबूल करते हैं कि हिन्दू-मुसलमान-एकता ही स्वराज है। हृदय की संधि के बिना कुछ नहीं हो सकता। फिर भी हम क्यों लड़ते हैं ? क्या हमें सिर्फ ऐसा कहते ही रहना चाहिए कि एक हो जाओ, एक हो जाओ या एक होने के मार्ग ढूंढकर, सब धर्मों के समान तत्व खोज निकाल उन्हें जाहिर करना चाहिए ? क्या यह अच्छा न होगा ?"

पहले दो सवालों का जवाब तो खुद लेखक ने ही दे दिया है। मेरी राय में वे एक हदतक ही सच हैं। यद्यपि हिन्दुस्तान के बहुतांश मुसलमान और हिन्दू एक ही 'नस्ल' से संबन्ध रखते हैं, तो भी धार्मिक परिस्थिति ने उनको एक दूसरे से भिन्न बना दिया है। मैं इस बात को मानता हूं और मैंने देखा भी है कि विचारों के कारण मनुष्य का रूप और स्वभाव बदल जाता है। सिक्ख लोग इस बात की ताजी मिसाल हैं। मुसलमान लोगों की तादाद आम तौर पर कम है—इससे उनकी जाति में गुण्डापन आ गया है। फिर वे एक नई परंपरा के वारिस हैं। इससे एक नई जीवन-प्रणाली के योग्य मर्दानगी उनमें दिखाई देती है। मेरी राय में तो कुरान में अहिंसा का एक मुख्य स्थान है, पर १३०० साल के साम्राज्य-विस्तार ने मुसलमान-जाति को योद्धा बना दिया है। इसलिए उनमें उग्रता भी आ गई है। गुण्डापन उग्र स्वभाव का एक कुदरती पर अनावश्यक फल है। हिन्दू लोगों की सभ्यता प्राचीन-तम है। वे महजतः अहिंसापरायण हैं। उनकी सभ्यता उन अनुभवों को पार कर गई है जिनमें से ये दो नई जातियां अभी गुजर रही हैं। अगर हिन्दू-धर्म में आजकल के अर्थ में कभी साम्राज्य-वादिता रही हो तो अब वह जमाना चला गया और उसने या तो अपने आप या काल-चक्र की गति के अधीन हो उसका त्याग कर दिया है। अहिंसा-भाव की प्रधानता होने के कारण शस्त्रों का प्रयोग कुछ ही जातियों तक मर्यादित हो गया और वे जातियां भी विद्वान, निस्वार्थ और आध्यात्मिक दृष्टि से बढ़े चढ़े लोगों की व्यवस्था के अधीन रहती थीं। इसलिए हिन्दू-समाज में लड़ने के आवश्यक गुण नहीं हैं। परन्तु अपनी आध्यात्मिक शिक्षा से हाथ धो बैठने के कारण वे शस्त्र की जगह किसी दूसरे कारगर साधन का प्रयोग करना भूल गये और उसकी उपयोग-विधि के न जानने के कारण तथा उसकी रुचि भी न होने के कारण उनकी नम्रता, भीरुता और कायरता की हदतक पहुंच गई है। इस तरह यह पाप उनकी उज्ज्वलता का एक कुदरती फल हो गया, जो कि अनावश्यक है। ऐसा मत रखते हुए, मैं नहीं खयाल करता कि हिन्दुओं की ऐकान्तिकता—अपनेको किसी में शामिल न करना—बुरी होते हुए भी उससे उनकी भीरुता का अधिक संबंध है। आत्म-रक्षा के लिए अखाड़ों के उपयोग पर जो मेरा विश्वास नहीं उसका कारण भी यही है। हां, शारीरिक उन्नति के लिए मैं जरूर उसको कीमती समझता हूं। अगर आत्म-रक्षा के लिए तो मैं आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षा को ही पुनर्जीवित करना पसन्द करूंगा। आत्म-रक्षा का सब से अच्छा और चिरस्थायी साधन है आत्म-शुद्धि। मैं इन मिथ्या भयों से डरनेवाला नहीं हूं। अगर हिन्दू-लोग सिर्फ आत्म-विश्वास रक्खें और अपनी परंपरा के अनुसार बर्ताव करें तो उन्हें गुण्डापन से डरने की कोई जरूरत न रहे। ज्यों ही वे वास्तविक आध्यात्मिक शिक्षा को फिर से शुरू करेंगे त्यों ही मुसलमानों का दिल उनकी तरफ खिंचने लगेगा। वे ऐसा किये बिना रही नहीं सकते। अगर मेरे पास सिर्फ कुछ ऐसे हिन्दू-युवकों की एक टोली हो जो खुद अपने पर भरोसा रखते हों और इसलिए मुसलमानों पर भी जिनका भरोसा हो तो वह दल कमजोर लोगों के लिए एक ढाल का काम देगा। वे (हिन्दू-युवक) इस बात की शिक्षा देंगे कि बिना मारे किस तरह मरना चाहिए। मेरी अकल में दूसरा रास्ता नहीं। जब हमारे पूर्वज लोगों पर संकट आ पड़ता तब वे तपस्या-शुद्धि करने जाते थे। वे अपने शरीर को असहाय पा कर परमेश्वर से प्रार्थना करते और उसे उनकी पुकार पर दौड़ने के लिए मजबूर होना पड़ता। लेकिन इसपर मेरे हिन्दू-मित्र कहेंगे-"हां, बेशक-मगर ईश्वर ने तो धनुष्य-बाण ले कर अवतारों को भेजा है।" इसकी व्याख्या से इनकार करने से मेरा यहां संबंध नहीं है। मेरा कहना सिर्फ इतना ही है कि हिन्दू लोग कारण की अवहेलना कर के फल प्राप्त कैसे कर सकते हैं ? जब हम काफी तपस्या कर चुकेंगे तब कहीं लड़ाई का समय आ सकता है। मैं पूछता हूं क्या हमने अपनेको काफी शुद्ध बना लिया है ? क्या अपने अस्पृश्यता के पापों के लिए हम अपनी राजी-खुशी से प्रायश्चित्त कर चुके हैं ?

व्यक्तिगत निर्मलता की तो बात जाने दीजिए। क्या हमारे धर्माचार्य और धर्मगुरु आदर्श हैं ? जबतक हम महज मुसलमानों के छिद्र ढूंढने में ही अपनी सारी शक्ति लगाते रहेंगे तबतक मानों हम अधेरे में अपने हाथ-पैर फट-फटाते रहेंगे। जो बात अंगरेजों के लिए है वही मुसलमानों के लिए है। अगर हमारे दावे सच हैं तो अंगरेजों की बनिस्बत मुसलमानों के हृदय को जीतना बहुत ही कम मुश्किल है। लेकिन हिन्दू मेरे कान में आ कर कहते हैं कि हमें अंगरेजों से तो कुछ उम्मीद है पर मुसलमानों से नहीं। मैं उनसे कहता हूं कि अगर आपको मुसलमानों की कुछ आशा नहीं है तो अंगरेजों से जो आप आशा रखते हैं वह निराशा में परिणत हुए बिना न रहेगी।

दूसरे सवालों का जवाब थोड़े में दिया जा सकता है। गुण्डे लोग इसलिए आ खड़े हुए कि मुखिया लोग उन्हें वहां चाहते थे। अगुआ लोग एक दूसरे पर अविश्वास रखते थे। जहां हेतु स्पष्ट हों वहां अविश्वास उत्पन्न नहीं होता। जब बहुत से कारण या हेतु होते हैं और जब वे जाने तो नहीं जाते पर महसूस होते रहते हैं तब उनसे अविश्वास पैदा होता है। हम कभी इस बात को प्रत्यक्ष नहीं कर पाये हैं कि हमारे स्वार्थ एक हैं। हर फरीक अपने तौर पर यह मानता हुआ मालूम होता है कि हम दूसरे को किसी न किसी तरकीब से हटा देंगे। पर मुझ यह कबूल करते हुए जरा भी संकोच नहीं होता कि जैसा कि बाबू भगवानदास ने कहा है, कि हमारा यह न जानना भी कि हम किस किस्म का स्वराज्य चाहते हैं, इस अविश्वास से बहुत-कुछ ताल्लुक रखता है। पहले मेरा खयाल ऐसा न था। लेकिन उन्होंने मुझे यरोडा जेल में सर जार्ज लाइड के मेहमान होने के पहले ही अपने मत का बहुत कुछ कायल कर लिया था और अब तो मैं पूरा पूरा उनके मत में मिल गया हूं।

'अनुकूल बातों' से मेरा अभिप्राय तमाम व्यक्तियों और जन-समूह के सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक संबंधों की अनुकूल

बातों से है। जैसे—धार्मिक बातों में मत-भेद के स्थानों को खोजने की बनिस्बत मुझे दोनों की अच्छी और एकता की बातें ढूंढनी चाहिए। अपने धार्मिक मन्तव्यों पर कायम रहते हुए मैं जहां जहां हो सकता है सामाजिक बातों में दोनों के बीच की खाई को पाटने का प्रयत्न करूंगा। राजनैतिक क्षेत्र में कार्य की एकता के लिए मैं अपने रास्ते से कुछ हट जाना भी पसन्द कर लूंगा।

दोनों का फैसला कर देने के लिए मैंने हकीम साहब का नाम इसलिए सूचित किया कि उनके प्रति सब आदर-भाव रखते हैं। पर मैं तो ऐसे मुसलमानों के हाथों में भी कलम देते हुए न हिचकूंगा जिनकी धर्मनिष्ठा और हिन्दुओं की निस्बत बुरे खयाल पहले से मशहूर हों। क्योंकि एक हिन्दू के नाते मुझे जानना चाहिए कि अगर वह हर प्रान्त में मुसलमानों को ज्यादह जगहें दे देगा तो भी मेरी उससे कुछ हानि न होगी। निर्वाचन-संस्थाओं के लिए जगहों के देने या लेने में सिद्धान्त की कोई हानि नहीं होती है। इसके अलावा तजरिबे ने मुझे यह शिक्षा दी है कि जब सारी जिम्मेवारी एक ही शख्स के सिर पर रख दी जाती है तब वह अपने आप कसौटी पर चढ़ जाता है और उसका स्वाभिमान या ईश्वर का डर उसे समुचित बना देता है।

अन्त को किसी घोषणा-पत्र या किसी और चीज से कुछ काम न बनेगा जबतक कि हममें से कुछ लोग भी-फिर हम चाहे इने-गिने ही हों—उसके अनुसार चलने न लग जायं।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

टिप्पणियां

वैकोम सत्याग्रह

तियाओं के गुरु श्रीमान् नारायण गुरु वैकोम सत्याग्रह के मौजूदा तरीकों को ठीक नहीं समझते हैं। उनका कहना है कि स्वयंसेवकों को टट्टी लगाये हुए रास्तों पर भी जाना चाहिए और टट्टियां तोड़ डालनी चाहिए। उनको मन्दिरों में जाना चाहिए और दूसरे लोगों के साथ खाना भी खाना चाहिए। उनकी तरफ से मुलाकात में जो कुछ कहा गया है उसका सार मैंने यहां थोड़े में दे दिया है। फिर भी तकरीबन् उन्हींके लफ्जों का इस्तैमाल किया है। उन्होंने जो काम करने की सलाह दी है वह सत्याग्रह नहीं है। टट्टियां तोड़ डालना सरेदस्त जबरदस्ती है—हिंसा है। यदि टट्टियां तोड़ी जा सकें तो फिर मन्दिरों के दरवाजे क्यों न तोड़े जांय और उनकी दीवारों में क्यों छेद न किये जाँय? शारीरिक बल का प्रयोग किये बिना स्वयंसेवक पुलिस की कतारों को लांघ कर कैसे जा सकते हैं? मैं एक क्षण के लिए भी ऐसा नहीं कहता कि इन तरीकों से तिया लोग, यदि वे मजबूत हैं और मरने के लिए काफी तादाद में तैयार हैं, तो अपना मकसद हासिल नहीं कर सकते। मैं तो इतना ही कहता हूं कि उस हालत में उन्होंने अपना मतलब उन तरीकों से पूरा किया है जो सत्याग्रह के तरीकों के बिलकुल खिलाफ हैं। और फिर इससे वे एक भी पुराने खयाल के हिन्दू को अपनी राय के मुआफिक न कर सकेंगे और उन्हें जबरदस्ती अपनी राय मानने पर मजबूर करेंगे। एक मित्र जिन्होंने इस मुलाकात का हाल एक अखबार से काटकर भेजा है, लिखते हैं कि मैं इन गुरु की सलाह की वजह से वहां की महासभा-समिति को यह सत्याग्रह बन्द करने की सलाह दूं। मेरा दिल कहता है कि ऐसा करने के मानी तो यह हैं कि अपने तरीकों हमारा विश्वास नहीं है और हम अशान्ति से डर गये हैं। जबतक इस सत्याग्रह के संचालक इस बांधी हुई हद के बाहर नहीं जाते तबतक उसको बन्द करने का कोई कारण नहीं है। इन मित्रों ने चौरीचौरा का उदाहरण पेश किया है। इस उदाहरण को पेश करने से मालूम होता है कि वे वस्तु-स्थिति को जानते ही नहीं और उनके विचार अपूर्ण हैं। बारडोली का सत्याग्रह इसीलिए स्थगित किया गया था कि चौरीचौरा कांड में महासभा और खिलाफत के लोग भी शामिल थे। यदि वैकोम के सत्याग्रह से संबंध रखने वाले महासभा के सदस्य भी तियाओं के गुरु की राय को ठीक समझते हों तो प्रायश्चित का और सत्याग्रह के बन्द करने का सवाल उठ सकता है अन्यथा नहीं। मैं वैकोम सत्याग्रह के संचालकों से प्रार्थना करता हूं कि वे दुगुने जोश के साथ अपने काम को आगे बढ़ावें और जो लोग इसमें लगे हुए हैं उनके व्यवहार पर कड़ी निगाह रक्खें। वक्त चाहे ज्यादह लगे या कम, इसके मकसद को हासिल करने के लिए आत्मशुद्धि, कष्ट-सहन करके पुराने खयाल के लोगों को शान्त उपायों से अपनी राय के मुआफिक करने के सिवा दूसरा उपाय नहीं है।

विशेष अधिवेशन

मुझे मालूम हुआ है कि आगामी महासमिति की बैठक में महासभा के एक विशेष अधिवेशन के लिए आंध्र के डा. पट्टाभि सीतारामैया ने एक प्रस्ताव पेश करने का इरादा जाहिर किया है। विशेष अधिवेशन करने की जरूरत तो दिखाई नहीं देती। महासभा के प्रस्ताव मौजूद ही हैं। उनके अर्थ के विषय में भी मत-भेद का कोई कारण नहीं है।

पर ऐसा मत-भेद होने पर भी जुदे जुदे पक्ष अलग, अलग रहकर काम में लग सकते हैं। जरूरत सिर्फ इस बात की है कि महासमिति इस बात का निर्णय करे कि अब अगामी छः महीनों में काम किस प्रकार करना चाहिए। महासभा के अधिवेशन में तो उसकी नीति निश्चित की जा सकती है। विशेष अधिवेशन हमारी अनिश्चितता, उदासीनता और शिथिलता दूर करने में कुछ भी मदद न कर सकेगा। मुझे विश्वास है कि जबतक एक पक्ष दूसरे पक्ष को देश की प्रगति का बाधक समझ कर उस पर दोष मढ़ता रहेगा तबतक यह हालत ज्यों की त्यों बनी रहेगी। मेरी राय में तो जो कोई अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छा कार्य करता रहता है वह प्रगति का बाधक कभी नहीं होता। लेकिन वह शख्स जरूर उन्नति का बाधक होता है जो खुद अपने लिए न तो विचार करता है न काम करता है, आलसी बन बैठ रहता है और जो इस खयाल से कि दूसरे को बुरा लगेगा कायर बनकर कुछ नहीं करता। दूसरे के दिल को चोट लगे-कड़वी लगे, तब भी हमें 'नहीं' कहने की हिम्मत अवश्य होनी चाहिए।

"झूठे" के मानी

एक स्वराजी मित्र शिमले से मेरे अभी हाल ही एक लेख में लिखे 'हिंसामय' और "झूठे" विशेषणों के बारे में मुझे लिखते हैं:—"इन विशेषणों से आपका मतलब उन लोगों से है जो त्रिविध बहिष्कार नहीं मानते। मैं आपसे सविनय प्रार्थना करता हूं कि आप अपनी टिप्पणी में इसका खुलासा कर दें। यहां के कितने ही प्रसिद्ध मित्रों को इससे दुःख पहुंचा है और इसी तरह दूसरी जगह के लोगों को भी जरूर दुःख हुआ होगा। मैं तो इसको इसी प्रकार समझा हूं। लेकिन मेरा विश्वास है कि आपके भाव को समझने में अर्थ का अनर्थ नहीं होता है, तो भी इस विषय में यदि आप अपनी टिप्पणियों में कुछ लिख देंगे तो वह निरर्थक न होगा।"

यदि इस बात पर इन मित्र ने मेरा ध्यान खींचने की कृपा न की होती तो मुझे इसके अस्तित्व का भी पता न चलता। झुठाई का जो वायु-मण्डल आज हमारे चारों ओर घिरा हुआ है उसी

के बारे में मेरे हाल के सब लेख लिखे गये हैं। मेरा यह आक्षेप सब पक्षों पर है। मैं ऐसे अपरिवर्तनवादी लोगों को भी जानता हूं कि जो खादी के प्रस्ताव का अमल स्वयं नहीं करते हैं। मेरी राय में उनका यह कार्य निश्चय ही असत्य-अप्रामाणिक है। अदालतों के बहिष्कार को यदि हम न मानते हों और फिर भी उसके बहिष्कार में विश्वास दिखाने का दंभ करें तो हमारा यह ढंग अप्रामाणिक है। हममें बहुत से लोग ऐसे हैं जो वाणी, विचार, और कार्य से अहिंसा को नहीं मानते और फिर भी वे अहिंसा-नीति के हामी होने का दावा करते हैं, तो हम चाहे परिवर्तनवादी हों या अपरिवर्तनवादी, सब झूटे हैं।

केनिया के भारतवासी

केनिया के भारतवासी बड़ी बड़ी तकलीफें उठाकर भी बहादुरी से लड़ रहे हैं। श्री. गुलामहुसेन अलादीन, अहमदभाई करीम, वलीभाई इस्माईल, और कासिम नूरमहम्मद और दूसरे भी बहुत लोग जेल में पहुंच चुके हैं। और अब समाचार मिला है कि श्री देसाई को भी वही इज्जत मिली है। केनिया के भारतवासी इस युद्ध को जारी रखने के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। लेकिन सविनय भंग के लिए जो कायदा पसन्द किया गया है उसका संबंध बहुत थोड़े ही लोगों से है और सजा भी थोड़ी ही दी जाती है। इसलिए अगर केनिया के भारतवासी तबतक युद्ध को जारी रखना चाहते हैं जबतक उन्हें सफलता न मिले तो उन्हें राज्य के दूसरे नीति-हीन कानून सविनय भंग के लिए ढूंढ निकालने होंगे, जिससे अगर वे चाहते हों तो अधिक संख्या में युद्ध में शामिल हो सकें और उन्हें अधिक कष्ट-सहन करने का मौका मिले। केनिया कमिटी जिसकी बैठक लंदन में हो रही है उन्हें थोड़े दिन के लिए राहत दे सकती है। यहां आन्दोलन करने से उनको हिम्मत मिल सकती है। लेकिन सच्चा उपाय तो उन्हींके हाथ में है। उन्हें अपने खिलाफ किसी भी सही शिकायत का कारण न रहने देना चाहिए और साथ ही सविनयभंग शुरू करके सर्वसाधारण के हित के लिए बहुत दिनों तक कष्ट-सहन करने की हिम्मत दिखानी चाहिए। तब सफलता मिले बिना न रहेगी।

जहरीला साहित्य

एक मित्र ने मुझे "रंगीला रसूल" नाम की एक उर्दू पुस्तिका भेजी है। उसपर लेखक का नाम तो नहीं दिया गया है पर वह मैनेजर आर्यपुस्तकालय, लाहौर, की तरफ से प्रकाशित की गई है। पुस्तक का खुद नामही दिल दुखाने के लिए काफी है, और जो बातें उसमें लिखी गई हैं वे भी वैसी ही हैं। मैं शिष्ट-सभ्य पाठकों का दिल दुखाये बिना उसके कुछ वाक्यों का अनुवाद पेश नहीं कर सकता। मैंने अपने दिल से पूछा कि सिवा लोगों को उभाड़ने के ऐसी पुस्तकें लिखने और छपाने का दूसरा क्या मतलब हो सकता है? मुसलमानों के नबी को बुरा कहने से या गालियां देने से क्या एक भी मुसलमान अपना मजहब छोड़ देगा और उस हिन्दू को भी जिसका यकीन ही पक्का नहीं है इससे क्या फायदा हो सकता है? इसलिए धर्म-प्रचार के कार्य में तो ऐसी पुस्तक से कोई लाभ नहीं। पर इससे जो हानि होती है वह साफ है।

एक दूसरे मित्र ने पब्लिक प्रिंटिंग प्रेस लाहौर में छपी एक पत्रिका भेजी है। इसका नाम "शैतान" है। उसमें मुसलमानों की ऐसी बुराई की गई है कि जिसका अनुवाद मैं यहां दे ही नहीं सकता। मुझे ऐसी पत्रिकाओं का भी पता है जिसमें मुसलमानों की तरफ से भी ऐसी ही गाली-गलौज की गई है। किन्तु इससे हिन्दुओं और आर्य-समाजियों की तरफ से प्रकाशित गालियों का समर्थन नहीं हो सकता और न यह उसका कोई जवाब ही है। यदि मुझे ऐसी खबर न मिलती कि ऐसी पत्रिकायें या पुस्तकें लोग चाव से पढ़ते हैं तो मैं इनपर जरा भी ध्यान न देता। ऐसे साहित्य के प्रचार को रोकने या कम से कम उसके घटाने के उपाय स्थानिक नेताओं को ढूंढ निकालने चाहिए और उसके बजाय एक दूसरे के धर्म के प्रति सहिष्णुता प्रकट करने वाला शुद्ध साहित्य लोगों में फैलाना चाहिए।

(यंग इंडिया) मो० क० गांधी]

तीन प्रश्न

एक सज्जन लिखते हैं:—

(१) क्या कताई-बुनाई करने से मनुष्य शूद्र नहीं बनता है?

(२) क्या जो मनुष्य अपनी बुद्धि के बल से ज्यादह कमाई करता है उसका भी कताई-बुनाई करके आजीविका पैदा करना अर्थशास्त्र के प्रतिकूल नहीं है?

(३) क्या सबका कताई-बुनाई करना श्रम-विभाग के सिद्धान्त को नष्ट नहीं करता है?

मेरे खयाल से शूद्र वह है जो नौकरी या दूसरों की मजदूरी कर के आजीविका प्राप्त करता है। इस हिसाब से जितने आदमी नौकरी करते हैं सब शूद्र होते हैं। जो मनुष्य स्वतंत्र धंधा करता है उसको शूद्र कैसे माना जाय? इसमें मैं वर्णाश्रम की कुछ भी हानि नहीं देखता हूं।

अब दूसरा प्रश्न। मेरी मति मुझे यह बताती है कि ईश्वर ने हमें बुद्धि आत्म-दर्शन के लिए दी है। आजीविका कृषि इत्यादि से प्राप्त करनी चाहिए। जगत में जो अनीति होती है उसका बड़ा सबब बुद्धि का दुरुपयोग है। बुद्धि के ही दुरुपयोग से जगत में बड़ी असमानता फैल गई है। करोड़ों भीख मांगते हैं और सौ दो सौ करोड़पति बनते हैं। सच्चा अर्थशास्त्र वह है जिससे प्रत्येक स्त्री पुरुष को शारीरिक उद्यम से आजीविका मिले। प्राचीन-काल में हमारे ऋषि लोग कृषि करते थे, गौशाला रखते थे। विद्यार्थी जंगलों में जा कर लकड़ियां लाते थे, इत्यादि।

अब रहा तीसरा प्रश्न। श्रम-विभाग की कुछ भी हानि नहीं होती है। क्योंकि बढ़ई, सुनार इत्यादि को बुनाई करने की सलाह नहीं दी जाती है। जो नौकरी करते हैं, वकालात करते हैं, जिनके कुछ भी धंधा नहीं है, उनको बुनाई से आजीविका पैदा करने की सलाह अवश्य दी जाती है। कताई को तो मैं आधुनिक काल में और इस क्षेत्र में यज्ञ समझता हूं। बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष, धनिक गरीब सबके लिए कताई आवश्यक यज्ञ है। भले लोग भूखों मरते हैं। वे कताई करके पेट भरें। परन्तु दूसरे सब उनके निमित्त प्रतिदिन ईश्वर के नाम का स्मरण करते हुए कातें।

मो० क० गांधी

अकाली-संग्राम

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।
विदेशों के लिए „ ७)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ४६

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, आषाढ़ बदी १३, संवत् १९८१ रविवार, २९ जून, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

महासमिति के सभ्यों के प्रति—

प्रिय मित्रो,

चाहे अच्छा हो या बुरा, हम महासभा को जो राष्ट्र की सबसे बड़ी प्रातिनिधिक संस्था मानते हैं, यह ठीक ही है। मेरी राय में महासभा का संगठन प्रायः संपूर्ण है और उसमें राष्ट्र का प्रतिनिधित्व पूरी तरह प्रदर्शित होता है। पर हम खुद ही अपूर्ण हैं—त्रुटिपूर्ण हैं—इससे हमने उसके काम में बड़ी ला-परवाही दिखाई है। देश के कितने ही हिस्सों में हमारे मत—दाताओं का रजिस्टर प्रायः कोरा ही रह गया है। पर फिर भी जो संस्था ४० साल से जीती—जागती चली आई है और जिसने अबतक कितने ही तूफानों की हवा खाई है, वह अवश्य ही देश में सब से अधिक सत्ता-संपन्न रहनी चाहिए। हम अपनेको उसके चुने हुए प्रतिनिधि मानते हैं।

महासभा ने १९२० में एक प्रस्ताव पास किया, जो कि १ वर्ष में स्वराज्य प्राप्त करने की गरज से बनाया गया था। साल के खतम होने के मौके पर हम स्वराज्य से जरा ही दूर रह गये थे। पर चूंकि हम उस समय उसे न प्राप्त कर सके, हमें यह मानने की जरूरत नहीं है कि अब वह अनिश्चित समय तक मुल्तवी हो गया है। बल्कि इसके प्रतिकूल हमें वही आशा की भावना अब भी रखनी चाहिए। हर हालत में हमारे आसपास के वायुमण्डल से हमें जितने जल्दी स्वराज्य प्राप्त करने का भरोसा हो सकता है उससे भी पहले हमें स्वराज्य प्राप्त करने का निश्चय कर लेना चाहिए।

इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने आपके विचारार्थ इन प्रस्तावों की रचना की है। कोई एक सप्ताह से वे देश के सामने पेश हैं। उनपर हुई कुछ टीका-टिप्पणी को मैंने पढ़ा है। मैं मानता हूं कि मुझे अपने निश्चयों का दुराग्रह नहीं है। पर इन टीका-टिप्पणियों से मेरा विश्वास नहीं बदल पाया है। इसमें मेरा कुछ भी स्वार्थ नहीं है, और अगर कुछ है तो वह यह है, कि उसके द्वारा हमारे स्वराज्य-प्राप्ति के रास्ते के तमाम विघ्न निर्मूल हो जायं।

खादी पर मेरी श्रद्धा है। चरखे में मेरा विश्वास है। इसके दो स्वरूप हैं—एक रुद्र और दूसरा मांगलिक।

रुद्र-रूप में वह हमारे राष्ट्रीय जीवन को पूर्णरूप से स्वाधीन बनाने के लिए आवश्यक एक-मात्र बहिष्कार को विदेशी कपड़े के बहिष्कार को सिद्ध करेगा। वही अकेला हमारी आत्मा का दमन करनेवाले ब्रिटिश स्वार्थ का नाश कर सकता है। जब वह स्वार्थ नष्ट हो जायगा तब और केवल तभी हम इस लायक होंगे कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों से बराबरी के नाते बातें कर सकें। आज तो वे अपने स्वार्थ से वैसे ही अन्धे बने हुए हैं जैसे कि हम उनकी जगह होने पर होंगे। मांगलिक रूप में वह देहातियों को एक नया जीवन और नई आशा प्रदान करता है। वह लाखों भूखे-पेट लोगों को दाना दे सकता है। खादी के तार से हम देहात के साथ एकतार हो सकेंगे। अपना कपड़ा खुद बना लेने से बढ़ कर शिक्षा लाखों लोगों के लिए और क्या हो सकती है? यह जीवनदायी है। अतएव मुझे इस बात में जरा भी हिचकिचाहट न होगी कि स्वराज प्राप्त होने तक मैं महासभा को एक खादी—उत्पादक और खादी-प्रचारक संस्था के रूप में बदल दूं—ठीक उसी तरह जिस तरह मैं उसे, अगर शस्त्र—संचालन का कायल होता और उसके द्वारा इंग्लैंड से युद्ध करने के लिए तैयार होता, तो केवल शस्त्रास्त्रों की शिक्षा देने वाली संस्था बना डालता। महासभा उसी अवस्था में सच्ची राष्ट्रीय संस्था हो सकती है जब वह अपनी सारी शक्ति महज उसी काम में लगा दे जिससे देश को शीघ्र स्वराज प्राप्त हो सके।

मैं इस बात का कायल हूं कि खादी में इतनी शक्ति है कि वह हमें स्वराज्य दिला सकेगी। इसीलिए मैंने खादी को हमारे कार्यक्रम में सबसे प्रधान स्थान दिया है। अगर मेरी तरह आपका विश्वास उसपर न हो तो आप निस्संकोच उसे एकबारगी रद कर दीजिएगा। पर अगर आप भी उसके कायल हों तो आप मेरी बताई अहरियात को कम से कम समझेंगे। मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि अगर मुझे इस बात का डर न होता कि आपके सिर पर बेजा बोझ लाद रहा हूं तो मैं चरखे के लिए रोजाना ४ घण्टे देने की प्रार्थना करता—बजाय न कुछ आध-घण्टे के।

इस सिलसिले में मुझे स्वराजियों के बारे में अपना अविश्वास कुबूल करना चाहिए। मुझे मालूम हुआ है कि औरों की बनिस्बत उनके अन्दर खादी तिरोहित होती चली है। यह देख कर मेरे चित्त को बड़ी व्यथा हुई कि कितने ही स्वराजी लोगों ने खादी को आखिरी नमस्कार कर लिया है और वे विदेशी कपड़ा पहनते हैं। कुछ लोगों ने तो यहां तक धमकी दी है कि अगर आप हमारे पीछे इसी तरह पड़े रहेंगे तो हम खादी और चरखे को बिलकुल छोड़ देंगे। मैंने सुना है कि बहुतेरे अपरिवर्तनवादियों की

भी हालत ऐसी ही है। अबभी वे प्रसंगोपात्त खादी पहनते हैं। पर घर तो विदेशी या मिल का कपड़ा पहनने में नहीं झिझकते। मुझे खुश करने के लिए खादी पहनना महज़ वाहियात है और खास खास मौकों पर पर पहनना तो कोरा ढकोसला है। क्या आप इस बात से सहमत न होंगे कि खुशामद और स्वांग दोनों हमारे अन्दर से निर्मूल हो जायं? यदि आप खादी के सामर्थ्य के कायल हों तो आप उसे इसलिए न अपनावेंगे कि मैं उसकी हिमायत करता हूं बल्कि इसलिए कि वह आपके जीवन का एक अंग हो गया है। बड़े लाट के यहां खास मौके पर जाने के लिए एक खास पहनाव पहनना पड़ता है। यह बात मुझसे छिपी नहीं है। इसके बाद और एक कदम आगे बढ़कर खादी की ममानियत कर दी जाय तो तअज्जुब नहीं। एक और कदम आगे बढ़ें कि फिर छोटी और बड़ी धारासभाओं में भी खादी की रोक हुई समझिए।

एक और मुश्किल सवाल है वकालत करने वाले वकीलों का। मुझे तो यह साफ दिखाई देता है कि अगर हम उनके बिना महासभा का काम नहीं चला सकते तो हमें खुल्लमखुल्ला यह बात कुबूल करके उस बहिष्कार को उठा देना चाहिए। मैं मंजूर करता हूं कि धारासभा के बहिष्कार के उठा देने के बाद स्वभावतः उसके साथ ही अदालतों का बहिष्कार भी उठ जाय। अगर धारासभा में जाने से कुछ सुविधा हो सकती है तो अदालतों में वकालात करने से भी कुछ सुविधा जरूर होगी। हम सब इस बात को जानते हैं कि स्वर्गीय मनमोहन घोष ने अपनी वकालत की सारी आमदनी गरीबों की सहायता में लगा कर ही बड़ी भारी सेवा की है। अगर सरकारी संस्थाओं में कोई बात आकर्षक और मोहक न होती तो उनकी हस्ती ही न रही होती। पर यह कोई नवीन आविष्कार नहीं है। हमारा युद्ध तो शुद्ध आत्म-यज्ञ का युद्ध है। हम देश के स्थायी लाभ के लिए इन संस्थाओं के संदेहास्पद क्षणिक, और अस्थायी लाभ का त्याग करते हैं। अब अगर हमारे अन्दर इज्जत नाम की कोई चीज हो तो क्या हमें यह उचित नहीं है कि यदि और किसी कारण से नहीं तो सिर्फ इसी कारण से कि हमारे आन्ध्र, करनाटक, महाराष्ट्र तथा दूसरी जगह के जिन वकीलों की सनद रद कर दी गई है उनकी खातिर ही अदालतों का बहिष्कार जारी रक्खें? हम अपनी इज्जत का इतिहास तभी लिख सकेंगे जब हम अपने छोटे से छोटे लोगों की भी इज्जत का खयाल रक्खेंगे। इसलिए वकालत करने वाले वकील सावधान हो जायं। इज्जत के विचार के सामने कौटुम्बिक-स्थिति के खयाल को प्रधानता नहीं मिल सकती। यह कभी भूल कर खयाल न कीजिए कि हमारे अन्दर आत्म-समान के भावों के न रहने पर भी हम स्वराज को शीघ्र पा सकेंगे। जबतक महासभा अपनी टेक पर कायम रहनेवाले, निडर, मानधनी, तेजस्वी, निस्वार्थ और ऐसे स्वार्थ-त्यागी, जो किसी भी बात का त्याग करते हुए मुंह न मोड़ें, देशभक्त पैदा न करेगी तबतक हमारे दीन देश के लिए वह स्वराज्य स्वप्नवत् है जिसका उपभोग गरीब से गरीब जन भी कर सकता है। आप और मैं चाहे देश की लूट में कुछ अधिक टुकड़े पा सकें पर मुझे विश्वास है कि आप उसे स्वराज्य न कहेंगे।

और अब मदरसों के लिए भी कुछ कहने की आवश्यकता है? अगर हम अपने लड़कों-बच्चों को सरकारी मदरसों में पढ़ने को भेजने का मोह न रोक सकें तो दर हकीकत हमारे उस शिक्षा-प्रणाली के विरोध का अर्थ मेरी समझ में नहीं आ सकता। यदि सरकारी शालायें, अदालतें और धारासभायें इतनी अच्छी चीजें हैं कि हम उनकी ओर खिंचे बिना नहीं रह सकते तो फिर हमारा विरोध वास्तव में व्यक्तियों के प्रति है, प्रणाली के साथ नहीं। असहयोग की कल्पना तो इससे भी ऊंचे उद्देश के लिए पैदा हुई है। अगर हमारी यही इच्छा हो कि प्रणाली ज्यों की त्यों रहे सिर्फ अंगरेजों के बजाय हम लोग उसमें रहें तो मैं मानता हूं कि हमारे बहिष्कार महज फजूल ही नहीं हानिकर भी हैं। सरकार की इस नीति का स्वाभाविक परिणाम होगा हिन्दुस्तान को योरप के सांचे में ढालना और जहां हम योरप के रंग में रंग गये कि बस हमारे अंगरेज प्रभु खुशी खुशी सरकार की बागडोर हमारे हाथों में दे देंगे। उनके रजामन्द एजन्ट के तौर पर वे हमारा स्वागत करेंगे। मैं उस प्राण-हारक विधि से कोई दिलचस्पी नहीं रख सकता—सिवा इसके कि मैं अपनी सारी क्षुद्र शक्ति उसके खिलाफ लगा दूं। मेरा स्वराज तो हमारी सभ्यता की आत्मा को अक्षुण्ण रखना है। मैं बहुत-सी नई चीजें लिखना चाहता हूं; पर वे तमाम हिन्दुस्तान की स्लेट पर लिखी जानी चाहिए। हां, मैं पश्चिम से भी बातें खुशी से उधार लूंगा पर तब जब कि मैं उसे अच्छे सूद-समेत वापस कर सकूं।

इस दृष्टि से देखने पर पांचों बहिष्कार महासभा के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। वे जनता के स्वराज्य के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

ऐसे भारी प्रश्न का निर्णय खाली हाथ ऊंचे उठा कर नहीं किया जा सकता। दलील से भी उसका निपटारा नहीं हो सकता। इसका निर्णय हम सब को अपनी अन्तरात्मा की पुकार पर ध्यान दे कर करना चाहिए। हममें से हर शख्स को चाहिए कि हम एकान्त में जाकर ईश्वर से प्रार्थना करें कि वह हमें निश्चित राह दिखावे।

यह आजादी की लड़ाई आपके और मेरे लिए कोई खिलवाड़ नहीं है। यह हमारे जीवन की सब से बड़ी गंभीर वस्तु है। सो अगर मेरा बनाया कार्यक्रम आपको न जंचे तो आप इसे हर हालत में एक बारगी रद कर दीजिएगा।

मातृभूमि की सेवा में
आपका साथी
(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

शाबाश देहली

हिन्दू-मुस्लिम-तनाज़े के सिलसिले में पंचायत कायम करने के बारे में देहली ने अपना कदम आगे बढ़ाया है। सिर्फ दो ही बरस पहले हरएक को हिन्दू-मुस्लिम-एकता का पूरा विश्वास मालूम होता था। हकीम साहब देहली के बिना ताज के राजा थे और स्वामी श्रद्धानन्दजी को जुमा मसजिद में मुसल्मानों की सभा में व्याख्यान देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। निश्चय ही हिन्दुओं और मुसल्मानों के सम्मिलित सामर्थ्य के बाहर की यह बात नहीं है कि देहली में चिरस्थायी सुलह दोनों में हो जाय। यदि देहली जैसे मध्यवर्ती स्थान में ऐसी सुलह हो सके तो निःसन्देह दूसरे स्थानों में भी ऐसा हुए बिना न रहेगा। मेरे हृदय में इतना सामर्थ्य नहीं है कि मैं अपने पाठकों की धार्मिक उन्नति के लिए वह सारा साहित्य पेश करूं जो मुझे देहली से मिला है और जिसमें हर दल के लोगों ने दूसरे दल का बहुत बदरंग चित्र खींचा है। फिर भी पाठकों को यकीन रखना चाहिए कि मैंने अपने वक्तव्य में जो कुछ विचार प्रतिबिम्बित किये हैं वे उसी साहित्य में पाये जाते हैं। अगर दोनों फरीक अपने अपने इलजाम उस पंचायत में पेश करके उनपर उसका अधिकार-युक्त फैसला हासिल करेंगे तो यह एक प्रकार का प्रसाद ही होगा।

(यंग इंडिया) मो० क० गांधी

मैं हारा

कभी कभी कुछ सज्जन मेरे पास आ कर मुझसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। "दूसरे लोग अस्पृश्यता के बारे में चाहे कुछ कहते रहें पर आपको तो इसका नाम तक मुंह से न निकलना चाहिए क्योंकि आप धर्म का नाम लेकर बातें करते हैं। इससे लोगों को धोखा होता है। अगर धर्म-शास्त्रों ने अस्पृश्यता को पाप माना हो तो या तो उन वचनों को पेश कर के आप साबित कर दीजिए नहीं तो मैं वेदों के प्रमाणों से यह दिखला सकता हूं कि उसमें अस्पृश्यता के लिए काफी जगह है। यदि अस्पृश्यता नष्ट हो जाय तो सनातन धर्म का लोप हो जाय।" इस तरह बातें एक स्वामीजी ने आकर मुझसे कहीं।

सुनकर मैं चौंका। मैंने तो सिर्फ इतना ही कह दिया कि मैं तो वाद-विवाद करने में अपनी हमेशा हार मान लेता हूं। मैं आप के साथ शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। मैं पहले से ही यह बात कुबूल कर लेता हूं कि मैं आपके सामने बहस में नहीं टिक सकता। फिर भी मैं यह जरूर कहता रहूंगा कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म में महापाप है। पर इससे स्वामीजी को संतोष न हुआ। हां, मैंने अपने दिल में पूरा सन्तोष मान लिया। मैं तो यह मुख्तसिर जवाब देकर पार हुआ। जब स्वामीजी आये तब मैं यं. इं. और नवजीवन के पाठकों को सिखाने के नित्यकर्म में लीन था। एक क्षण भी बातचीत में लगाने के लिए तैयार न था। इसलिए 'नंना' मानों मुझे रामबाण दवा मालूम हुई। हमारे बड़े-बूढ़ों ने हमें बहुत कुछ अनुभव-शास्त्र सिखा रक्खा है। वह मेरे लिए बस था। "एक नन्ना छत्तीस रोग हरता है' इस कहावत का प्रयोग मैंने बहुत बार किया है। और मैं तो समझता हूं कि एक नन्ना छत्तीस ही नहीं बल्कि छत्तीसों रोगों को दूर करता है।

शास्त्रार्थ का पेशा वकीलों के पेशे की तरह है। शास्त्रार्थ-वादी स्याह का सफेद और सफेद का स्याह करके दिखा सकता है। किसे इस बात का अनुभव नहीं होता? बहुत से वेद-वादरत प्राणी वेदों से अनेक बातें साबित करते हैं। और वैसे ही नाम धारण करने वाले दूसरे कितने ही लोग उनके विरुद्ध बातें उतने ही जोर के साथ उनमें से सिद्ध करते हैं। मैं अपने जैसे प्राकृत मनुष्यों को एक आसान तरीका बताता हूं जिसका अनुभव मैंने किया है। मैंने हरएक धर्म का विचार करके उसका लघुत्तम निकाल रक्खा है। कितने ही सिद्धान्त अचल-वत् मालूम होते हैं। अनुभव उनका अनादर नहीं कर सकता। भक्त तुलसीदास ने आधे दोहे में कह दिया है "दया धर्म को मूल है"। 'सत्य के सिवा दूसरा धर्म नहीं' यह सनातन वचन है। किसी भी धर्म ने इन सूत्रों को अस्वीकार नहीं किया है। ऐसे हरएक वचन को जिसके लिए धर्मशास्त्र के वचन होने का दावा किया गया हो, सत्यकी निहाई पर दया-रूपी हथौड़े से पीटकर देख लेना चाहिए। अगर वह पक्का मालूम हो और टूट न जाय तो ठीक समझना चाहिए। नहीं तो हजारों शास्त्रवादियों के रहते हुए भी 'नेति' 'नेति' कहते रहना चाहिए। अखा (एक गुजराती भक्त कवि) की अनुभव-वाणी में शास्त्रार्थ एक अन्धा कुवा है। जो उसमें गिरता है वही मरता है। आत्मा एक है। शरीर-मात्र में उसका निवास है। ऐसी दशा में अस्पृश्य किसे कहना चाहिए?

यहां हमें अस्पृश्यता का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। रजस्वला स्त्री अस्पृश्य है। स्मशान से आये हुए लोग अस्पृश्य हैं। मैला उठाने पर स्वच्छ न होने तक मनुष्य अस्पृश्य है। इस अस्पृश्यता को तो हम अपने माता-पिता के साथ भी पालते हैं। पर रजस्वला माता यदि बीमार हो और उसका लड़का उस समय उसकी सेवा न करे तो वह नरकवासी हो। फिर भले ही वह भी अस्पृश्य क्यों न हो जाय। मैला उठाने वाले सब अन्त्यज हैं। वे यदि मैला उठाकर न नहावें और हम उनसे छू कर नहाना चाहें तो नहा डालें। परन्तु ऐसे मामूली और व्यावहारिक विचार में से अन्त्यज-जाति को पैदा करना और उन्हें गांव के एक कोने में निकाल देना, जानवर से भी अधिक त्याज्य मानना, वह च हे मरे या जीये उसका खयाल तक न करना, उसके पल्ले में जूठन और सड़ा-गला खाना फेंकना, उनके बाल-बच्चों को न पढ़ाना, वे अगर बीमार हो जायं तो उनके दवा-दरपन में मदद न देना, उन्हें मन्दिरों में न बैठने देना और कुओं पर पानी न भरने देना—यह धर्म नहीं अधर्म है। इसे हिन्दू-धर्म का अंग मानकर हम हिन्दू-धर्म की जड़ उखाड़ने की तैयारी कर रहे हैं।

ऐसी अस्पृश्यता आत्मघातक है। यह असहिष्णुता की पराकाष्ठा है। इसे दूर करने का प्रयत्न करना और ऐसा करते हुए मर मिटना हरएक हिन्दू का परम धर्म है। मुझे इस विषय में जरा भी सन्देह नहीं रह गया है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

क्या तू भी?

एक प्रतिष्ठित मित्र लिखते हैं, "यदि हम अवसर रहते कारगर प्रयत्न न करेंगे तो आज जो कुछ पंजाब पर गुजर रही है कल वही संयुक्त प्रांत पर भी गुजरेगी। अवध में हिन्दू-मुसलमानों का तनाजा बढ़ रहा है। नमूने के तौर से मैं बारहबंकी के संबंध में नीचे कुछ सच्ची बातें लिखता हूं। उस शहर के म्युनिसिपल बोर्ड पर गहरे इल्जाम लगाये गये हैं। उसके मुसलिम सदस्य जो कि पहले पक्के असहयोगी थे और अब भी हैं, इस्तीफा दे चुके हैं। इसलिए म्युनिसिपल बोर्ड में अब हिन्दू सदस्य ही रह गये हैं। उन इल्जामों के बारे में विस्तार-पूर्वक जांच करने का समय मुझे नहीं मिला, किन्तु एक बात बहुत कुछ साबित है और उससे मुसलमानों के दिल में कटुता पैदा हो रही है। इन हिन्दू सज्जनों ने कानून बना दिया है कि "बोर्ड को जितनी दरख्वास्तें दी जायं, वे सब हिन्दी-लिपि में होनी चाहिए। किसी अन्य लिपि में लिखी हुई दरख्वास्तें न ली जावेंगी।" यह समाचार पाकर मुझे आश्चर्य और दुःख हुआ क्योंकि बारहबंकी, यदि मुझे ठीक याद है तो, मौलाना शौकतअली के गर्व की वस्तु थी। वे बारहबंकी के हिन्दू और मुसल्मान दोनों की बड़ी तारीफ किया करते थे। मैं अब भी उम्मीद करता हूं कि मेरे संवाददाता को गलत खबर लगी होगी। मैं विश्वास नहीं करता कि जैसा कि उनके बारे में कहा जाता है, उन्होंने वैसी कोई विचार-हीन कार्रवाई की होगी। हिन्दी-लिपि को मुसल्मानों से स्वीकार कराने के लिए जबरदस्ती करके वे हिन्दी को हानि ही पहुंचावेंगे। हिन्दुस्तान में जहां कहीं हिन्दुस्तानी प्रांतीय भाषा है वहां लोगों को इस बात की स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे अपनी दरख्वास्तें देवनागरी में लिखें या उर्दू में। आखिर में कौन-सी लिपि मंजूर होगी यह तो दोनों लिपियों के आन्तरिक गुणों पर ही अवलंबित है।

यह जानना भी कठिन है कि मुसल्मानों ने इस्तीफा क्यों दिया। मैं आशा करता हूं कि बारहबंकी से कोई सज्जन पूरी बातें लिख भेजेंगे।

मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, आषाढ़ बदी १३, संवत् १९८१

अकाली-संग्राम

लोगों को यह आशा लग रही थी कि अकाली-नेताओं और पंजाब-सरकार के बीच जो सुलह की बातें हो रही हैं वे फलीभूत होंगी और गुरुद्वारा का मसला सन्तोषजनक रीति से हल हो जायगा तथा अकालियों के कष्ट-सहन का अन्त आ जायगा। पर अगर शि० गु० प्र० समिति की खबर सच हो तो कहना होगा कि सरकार ऐसा चाहती ही न थी। कहते हैं अकाली-नेता सब तरह से तैयार थे, पर सरकार उन कैदियों तक को छोड़ देने के लिए तैयार नहीं थी, जिन्हें उसने इसलिए नहीं कि उन्होंने हिंसा-कृत्य किये थे या करने की कोशिश की थी बल्कि इसलिए कैद कर रक्खा है कि उन्होंने गुरुद्वारा-आन्दोलन में योग दिया था। ऐसी हालत में अकाली-संग्राम, बहुत मुमकिन है, और भी जोरशोर के साथ चलाया जाय। संभव है, सरकार भी ज्यादह दमन का जोर दिखावे। खुश किस्मती से अब हम दमन के आदी हो गये हैं। उसका डर हमारे दिल से निकल गया है। अकालियों ने अबतक अपने बल का खासा परिचय दिया है।

अब हम इस बात को देखें कि अकालियों ने अपने धार्मिक सवाल के लिए अबतक कितना कष्ट सहा है। ननकाना-हत्याकाण्ड, कुंजी-प्रकरण, गुरु-का बाग के पाशवी अत्याचार या जैतो के गोली बार के बारे में मैं यहां कुछ न कहूंगा। शि० गु० प्र० समिति को गैर-कानूनी करार देने के बारे में भी मैं कुछ न कहूंगा। महासभा ने इसे उन तमाम सार्वजनिक संस्थाओं के लिए जो कि सरकार की मुखालिफत करती हैं, एक चुनौती ही माना है। जैतो के गोली-बार के बाद से, अकाली लोग यह समझ कर कि गिरफ्तारियों के लिए किया गया हमारा सत्याग्रह कहीं हिंसात्मक न समझा जाय, प्रायः हर पन्द्रहवें दिन ५०० आदमियों का एक शहीदी जत्था चुपचाप सविनय गिरफ्तारी के लिए भेजते रहे हैं। वे बिना किसी हुज्जत या विरोध के गिरफ्तार होते गये। गिरफ्तारी के बाद वे एक स्पेशल ट्रेन में बैठा कर उस जगह जो जंगल कही जाती है, छोड़ दिये जाते और वहां बिना मुकदमा, और बिना किसी जुर्म के लगाये रोक रक्खे जाते थे। सूखी रसद उन्हें दी जाती थी। वे खुद पकाकर खाते थे। उस जगल की हवा फसली बुखार को लाने वाली मानी जाती है और इतनी घास वहां खड़ी है कि वह एक जेलखाने से भी बदतर है। मुझे मालूम हुआ है कि कुछ लोग तो बुखार और सर्दी लग जाने से मर भी गये हैं। इस तरह कोई तीन हजार से ऊपर कैदी तकलीफ भोग रहे हैं। शहीदी जत्थे के अलावा पिछले ९ महीनों से २५ आदमियों का एक छोटा जत्था भी रोज जैतों की हद में जा रहा है। वे बावल नामके एक स्टेशन पर लेजा कर छोड़ दिये जाते हैं ताकि वहाँ से वे जी चाहें तहां चले जायें। अपने मुकाम पर पहुंचने तक इन अकालियों को अक्सर बड़ी तकलीफों का सामना करना पड़ता है। और इस तरह यह भीषण क्रम घड़ी के कांटे की तरह बराबर नियम से जारी है और जाहिरा तौर पर देखने से उसका कुछ भी असर सत्ताधारियों पर नहीं हो रहा है।

तो यह जत्थे इस तरह क्यों कष्ट सहते हैं? सिर्फ इसलिए कि वे अखण्ड-पाठ कर सकें, जिसमें कि नाभा के अधिकारियों ने भद्दे तरीके से दस्तन्दाजी की और जो पाठ अब भी मना किया जा रहा है। अकालियों ने बार बार यह बात कही है कि एक ओर जहां हमारा दावा है कि हमें महराजा नाभा के मामले की निष्पक्ष और खुले तौर पर तहकीकात चाहने और कराने का हक है तहां दूसरी ओर हम अखण्ड-पाठ की ओट में उनके लिए आन्दोलन करना नहीं चाहते। अखण्ड-पाठ की मुमानियत का खुलासा इसके सिवा कोई दूसरा नहीं हो सकता कि इसके द्वारा अकालियों का दुर्दमनीय तेज कुचल डाला जाय, जिसके बल पर अकाली लोग सुधार-अन्दोलन का संगठन और संचालन कर रहे हैं।

अकालियों का मतालबा बहुत सीधा-सादा है। जहां तक मैं जानता हूं वह यह है,

(१) सिक्खों द्वारा निर्वाचित मुख्य समिति के कब्जे में ऐतिहासिक गुरुद्वारों का होना

(२) किसी भी आकार के कृपाण को रखने का अधिकार हर सिक्ख को होना और

(३) जैतो में अखण्ड-पाठ करने का अधिकार होना।

सरेदस्त ये मांगें मामूली हैं और उनकी पूर्ति जरूर होनी चाहिए।

अकालियों की तरह किसी कौम ने अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इतनी वीरता, इतने त्याग और इतने कौशल का परिचय नहीं दिया है। उनकी तरह किसी जाति ने इतनी खूबी के साथ निष्क्रिय वृत्ति को कायम नहीं रक्खा है। हिन्दुस्तान-सरकार को छोड़कर किसी भी सरकार ने कभी से उन मांगों को पूरा करके अकालियों की कुरबानियों की कदर की होती और उनको अपने प्रतिपक्षी से स्वेच्छा-प्रेरित सहायक बना लिया होता। परन्तु भारतीय सरकार को यदि लोकमत की परवा होती तो वह इतने सार्वत्रिक विरोध के भावों को उत्तेजना न देती।

हिन्दू, मुसलमान तथा दूसरी जातियों का कर्तव्य इस मामले में स्पष्ट है। उन्हें इन सिक्ख सुधारकों को अपनी नैतिक सहायता अवश्य देनी चाहिए और सरकार को स्पष्ट रूप से यह मालूम करा देना चाहिए कि पूर्वोक्त मामले में अकालियों के साथ सारे भारत का नैतिक बल है। मैं जानता हूं कि जो अविश्वास आज भारतीय वायुमण्डल में व्याप्त है उसने अकालियों को भी नहीं छोड़ा है। हिन्दू और शायद मुसलमान उनके उद्देश्य पर विश्वास नहीं रखते हैं। वे उनकी हलचल को शक की नजर से देखते हैं। उनकी यह नीयत बताई जाती है कि उनका आखिरी मकसद है सिक्ख-राज की स्थापना करना। अकाली ऐसी नीयत रखने से इनकार करते हैं। सच पूछिए तो ऐसे इनकार की जरूरत भी नहीं है और भविष्य में ऐसी कोशिश वे करें तो उसे कोई रोक भी नहीं सकता। क्योंकि अगर कभी उनके उत्तराधिकारी लोग ऐसी अयोग्य महत्वाकांक्षा रक्खें तो आज के तमाम सिक्खों के द्वारा प्रकट घोषणा को वे आसानी से रद्दी के ढेर में फेंक दे सकते हैं। अतएव हमारी सुरक्षितता महज इसी बात में है कि हम सब लोग मिलकर सबकी आजादी का दृढ़ निश्चय करें। व्यावहारिक दृष्टि से भी सिक्खों के सुधार-आन्दोलन में देश की नैतिक सहायता होने से, यह स्पष्ट ही है कि सिक्खों के दिल में ऐसी अयोग्य महत्वाकांक्षा के स्थान पाने के अवसर कम हो जायगे। वास्तव में देखा जाय तो यह पारस्परिक संदेह हमारी स्वराज्य-हलचल में अवश्य बाधा डालता है, क्योंकि इसकी बदौलत भिन्न भिन्न जातियों में हार्दिक सहयोग नहीं होने पाता और इस तरह यह इस सुन्दर भूमि को लूटने वाली शक्तियों को एकत्र करता है और शायद उस महत्वाकांक्षा को भी संभवनीय बना देता है जो कि अभी हाल में स्वप्नवत या असंभव है। इसलिए हमें चाहिए कि हम हर जातीय हलचल को उसके लाभालाभ की ही दृष्टि से देख कर उसे बेखटके सहायता दें—बशर्ते कि वह

अच्छी हो, और उसके लिए प्रयुक्त साधन, सम्मान-पूर्ण, खुले, और शान्तिमय हों।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचन्द गांधी

टिप्पणियां

जा-मीन या आमीन

एक मित्र लिखते हैं, "भविष्य के लिए स्पष्ट कार्य-क्रम बताने के लिए आपको धन्यवाद। मैं जानता हूं कि आप पुराने कार्यक्रम को ही फिर से पेश कर रहे हैं। किन्तु वह नया और अजीब मालूम होता है क्योंकि हम असली रास्ते से अलग भटक गये थे। डेनमार्क की भाषा में एक शब्द है जा-मीन जिसका मतलब है, 'हां, लेकिन'—बर-खिलाफ आमीन के जिसका मतलब है सिर्फ 'हां।' हममें से अधिकांश जा-मीन में विश्वास करते हुए मालूम होते हैं। 'हां, हमने सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार करने और हमपर अत्याचार करने वालों की सहायता न करने का वचन दिया था लेकिन उनके बिना हमारा काम कैसे चल सकता है?' हम यह कहते मालूम होते हैं। ये 'लेकिन' शैतान के आविष्कार हैं।'

दुर्भाग्य से यह भग्न मानुस सदा हमारे साथ रहता है। वह हमारी कमजोरियों को उभाड़ता है, और उनके जरिये हमपर अपना असर डालता है और मोहित कर अपने मायाजाल में हमें फंसाता है। राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को उसके पंजे से निकलना होगा और सब 'लेकिनों' को स्वाहा कर देना होगा। यदि उनका मतलब बिना किसी शर्त के 'हां' है तभी तो व बहिष्कारों के लिए 'हां' कहें। यदि व बहिष्कारों में विश्वास रखते हुए भी अपनी कमजोरी की वजह से 'हां' नहीं कह सकते तो उन्हें यह बात खुले तौर से मंजूर कर लेनी चाहिए। इससे उनको और मुल्क को अनन्त लाभ होगा।

डाक्टर महमूद और जब्रन् धर्मान्तर

हिन्दू-मुस्लिम-तनाजे संबंधी मेरे निवेदन में आये जब्रन् धर्मान्तर के सिलसिले में मेरे पास कई खत आये हैं—कुछ तो गुस्सा से भरे हैं और कुछ गालियों से भी। हां, श्री माधव नायर का एक ऐसा खत था जो शान्त-चित्त से लिखा गया था और जिसमें लेखक की चिन्ता प्रकट होती थी। उसमें उन्होंने उस बात का विरोध किया था जिस बात का आरोप मैंने डाक्टर महमूद पर किया था। वह पत्र मैंने डाक्टर महमूद के पास भेज कर जवाब मांगा, जिससे कि पाठकों के सामने उनका भी कथन पेश कर सकूं। मगर मेरा खत पहुंचने के पहले डाक्टर महमूद मेरे नाम इसी सिलसिले में एक खत भेज चुके थे; क्योंकि उनके पास भी इसके विरोध में बहुतेरे पत्र पहुंचे थे। यहां मैं डाक्टर महमूद के उर्दू खत का आवश्यक अंश देता हूं—

"मेरे पास अक्सर हिन्दू अहबाब के खतूत आये हैं जिनमें वह मुझपर इल्जाम लगाते हैं कि मैंने मलाबार के मुतअल्लिक आपको गलत खबर दी। बाज खतूत में मुझे सख्त गालियां भी दी गई हैं। मेरे खयाल में उन लोगों का गुस्सा हक बजानिब है। आपको किसी कद्र गलत फहमी हुई। मैंने आपसे यह अर्ज किया था कि खतना करके जबरदस्ती मुसलमान बनाने की मिसाल नहीं मिलती। सिर्फ एक वाकया का जिक्र किया गया जो कि मि. एण्ड्रयूस ने देखा है। लेकिन उसकी भी तस्दीक न हो सकी। बाकी सर पर टोपी पहना कर, औरतों को कुरती पहना कर, चोटी काट कर मुसल्मान बनाने की तो बहुत सी मिसालें हैं। जो नोट मैंने दफ्तर को लिखवाया था उसमें भी यही था। महरबानी फरमा कर यंग इंडिया में इसकी तरमीम कर दीजिए। वर्ना कुछ अर्सा के बाद इस पर भी अखबारात में बहस शुरू हो जायगी।"

मैं देखता हूं, मेरे हाथों डा० महमूद के साथ अन्याय हो गया है। मैं तो खतना करके ही जब्रन् धर्मान्तर किये गये लोगों की बात सोच रहा था, इसी खयाल से हिन्दुओं के दिल को भारी चोट पहुंची है। जो हो पर और बातों से ज्यादह इसी बात ने मेरे दिल पर असर डाला है।

डाक्टर महमूद ने जिस वक्तव्य का जिक्र ऊपर किया है वह इस प्रकार है—

"जब्रन् धर्मान्तर

(अ) खतना कर के। आंखों देखा गवाह नहीं। कोई सीधा सबूत नहीं मिलता। कोई मिसाल नहीं दी गई। हिन्दुओं में से विश्वास-पात्र लोग कहते हैं तीन चार मामले ऐसे हुए हैं। इस तरह की एक घटना का सीधा सबूत यही है कि श्री एण्ड्रयूस ने एक खतना किये हुए शख्स को देखा था। मैंने उसकी तसदीक नहीं कराई।

(आ) कलमा पढाया जाना।

(इ) (१) जब्रन (२) महज डर से जिस में हर असल जबरदस्ती न की गई हो।

(ई) चोटी काटना।

(उ) हिन्दू मर्दों को टोपी पहनाना।

(ऊ) हिन्दू औरतों को कुरती पहनाना।

(आ) से लगा कर (ई) तक में अन्दाजन १८०० से २००० लोगों तक (हिन्दुओं के कथन के अनुसार) धर्मान्तरित किये गये। मुसल्मान लोग इस संख्या को कुछ सैकड़ा बताते हैं।

मैंने सोचा कि मेरा वक्तव्य स्पष्ट है। यद्यपि मैंने श्री एण्ड्रयूज का नाम नहीं लिया था तो भी यह बात सब को मालूम थी कि उन्होंने एक ऐसे शख्स का जिक्र किया है जिसका खतना जबरदस्ती किया गया था। इसबात पर ध्यान रखने से मेरे आशय को समझने में कोई गलती नहीं हो सकती थी। पर अब मैं देखता हूं कि मैंने जबरन मुसलमान बनाए हुए आदमियों की जाहिरा तौर से कम तादाद बताकर डाक्टर महमूद पर पक्षपात का दोष लगाने का अवसर ला कर उनको नाजुक अवस्था में डाल दिया। मुझे इस अनिच्छित गलती पर अफसोस है। कशमकश के बीच कोई शख्स बहुत सावधानी नहीं रख सकता, न बहुत ठीक ठीक बात कह सकता है। डाक्टर महमूद के साथ न्याय करने की कोशिश करते हुए मुझसे उनके साथ अन्याय हो गया है। मैं पाठकों को यकीन दिलाता हूं कि हरएक बात में मैं वस्तुस्थिति से जरा भी दूर नहीं गया हूं और तमाम अतिरंजित या निमक-मिर्च लगी बातों को मैंने एक ओर हटा दिया है। जो कुछ कागजात मेरे पास हैं उनमें तमाम पक्ष के लोगों के खिलाफ भयंकर बातें लिखी हुई हैं। लेकिन हर बात में मैंने इल्जामों को बहुत ही सौम्य-रूप दे दिया है और जिन बातों पर मैं अपनी राय कायम न कर सका उन्हें सिर्फ उस पक्ष की तरफ से पेश भर कर दिया है और इस तरह उनके इल्जामात को बहुत सौम्य बना दिया है।

यंत्र-कता और हाथ-कता

एक मित्र जोकि पहिले चरखे की कसमें खाया करते थे नीचे लिखे आशय की बात अपने पत्र में लिखते हैं:—

"आपकी यह हलचल फजूल है। आप 'यंगइंडिया' और 'नवजीवन' में पुरानी और बासी बातें भरने में अपने शरीर और मन की शक्ति खर्च करते हैं। मुझे उसके पढने में फायदा नहीं दिखाई

देता। मैंने तजरिबा करके देख लिया है कि चरखा किसी काम का नहीं। जिन लोगों ने उत्साह के पहले बहार में चरखे खरीदे थे उनके यहां अभी वे पड़े पड़े सड़ रहे हैं। उनसे कमाई नहीं होती।

मैं आपका ध्यान एक दूसरी बात की ओर दिलाना चाहता हूं जो कि उससे बेहतर है। हाथ-कताई की जगह मशीन-कताई शुरू कर दीजिए। हरएक ताल्लुका में कातने के यंत्र का कारखाना खोल दीजिए और उसके मुनाफे को राष्ट्रीय रूप दे दीजिए। सिर्फ वही लोग उसमें काम करें जिनका हृदय देशभक्ति से भरा हो और वे अपने देश-प्रेम से प्रेरित हो कर उसमें फायदा करें। सूत सिर्फ मुकामी जुलाहों में ही बांटा जाय जो कपड़ा तैयार हो वह उसी ताल्लुके में रहे। इससे समय और किराये की फिजूल-खर्ची बच रहेगी। कारखाने को शुरू करने के लिए अगर आप इस तरीके पर एक ताल्लुके का संगठन करें तो आप देश की सेवा करेंगे।"

यह दलील ऊपर से अच्छी दिखाई देती है और ऐसे शख्स के तरफ से पेश हुई है जिन्होंने अपने ढंग से चरखे को आजमा देखा है। मैं उन लोगों के लिए जो इसी किसम के विचार रखते हों इस दलील की जांच करना चाहता हूं। पाठकों को यह कहने की जरूरत नहीं है कि यह तजवीज उतनी ही पुरानी है जितना कि खादी-आन्दोलन। बनावटी रुपये की तरह यह फिर फिर कर वापस आती है।

यह मित्र इस प्रधान सत्य को भूल गये हैं कि चरखे के द्वारा उन करोड़ों लोगों को एक काम और उसके जरिये कुछ आमदनी मिल जाती है जिनको फाकेकशी से बचने के लिए मामूल के अलावा किसी और काम की जरूरत होती है। हर घर में करघा रखना नामुमकिन है। हर गांव में एक करघा और हर घर में एक चरखा, यह नियम होना चाहिए। यदि हर एक ताल्लुका में एक कताई का कारखाना खड़ा करें तो इसका नतीजा यह होगा कि थोड़े लोग बहुतों को लूटेंगे और उसे राष्ट्रीय स्वरूप मिल जायगा।

ताल्लुका-मिल में सब लोगों को काम नहीं मिल सकता। इसके अलावा हमको कम से कम २००० ताल्लुकों के लिए यंत्र-सामग्री बाहर से मंगानी होगी। फिर लोगों को उसकी व्यवस्था और काम की तालीम देकर विशेषज्ञ बनाना होगा। कल-कारखाने कुकुरमुत्ता की तरह हर जगह नहीं फैल सकते। पर चरखे फैल सकते हैं। चरखे की नाकामयाबी का असर किसीपर नहीं होता; परन्तु एक ताल्लुका के कारखाने की असफलता उस ताल्लुके लोगों का दम बन्द कर देगी। मेरी राय में इन मित्र का कहना साधार नहीं है। फिर भी मैंने उनको सूचित किया है कि अगर उनकी श्रद्धा इसपर हो तो वे इसे आजमा देखें। मैं तो अपनी ही नाव का डांड चलाऊंगा; क्योंकि दूसरी किसी बात पर मेरा ध्यान नहीं जमता। मेरी दृष्टि में चरखे का जादू कुछ और ही है। शायद मैं इतना ठोस हूंगा कि जिससे मुझे उसकी असफलता नहीं दिखाई देती। यह बात नहीं कि मैं अपनी गलती का कायल होने के लिए तैयार न होऊं।

जिस दिन मुझे इन मित्र का खत मिला उसी दिन मुझे एक दूसरे मित्र का भी खत मिला, जिसमें वे कहते हैं कि मुझे कल-कारखाने का अनुभव दस बरस से है उन्होंने यंत्र-कताई और हाथ-बुनाई का कुछ काम किया है और अब वे हाथ-कताई और हाथ-बुनाई के रोजगार में लगे हैं। वे आर्थिक कष्टों से छुटकारा कराने की शक्ति का सेहरा हाथ-कताई और हाथ-बुनाई के सिर पर बांधते हैं। यह तजरिबा यहां इसलिए देता हूं कि इससे कुछ फायदा हो। अभी तो सारा प्रयोग ही ऐसी धुंधली अवस्था में है कि जिसपर कोई मुस्तकिल राय कायम नहीं की जा सकती; परन्तु इतनी बात तो साफ है कि चरखा ही आज बहुतेरे घरों के दुःख मिटाने का जरिया हो रहा है और दूसरी कोई चीज उसकी जगह नहीं ले सकती। चरखे के लिए यह बात जितनी सचाई के साथ कही जा सकती है उतनी किसी दूसरे के लिए नहीं। इसमें न तो कोशिश फजूल जाती है और न निराशा ही होती है। इसके थोड़े ही उपयोग से लोग बड़ी तकलीफों से बच सकते हैं।

हाकिमों की देरी

श्री गिदवानीजी के बारे में मेरे पत्र का जो उत्तर नाभा के अधिकारियों ने दिया वह मैंने यं. इं. में प्रकाशित किया था। उसपर पं० जवाहरलाल नेहरू ने एक पत्र के द्वारा उनके इस कथन का खण्डन करना चाहा कि उनका तथा आचार्य गिदवानी आदि उनके साथियों का छुटकारा शर्तों पर हुआ था। यह पत्र गत २४मई को भेजा गया था। अब तक उसका जवाब न पाकर पं० नेहरू ने १९ जून को बतौर यादद्दिहानी के एक दूसरा खत लिखा। वह नीचे दिया जाता है—

"२४ मई को मैंने आपको एक पत्र बजर्ये रजिस्ट्री भेजा जिसमें मैंने आपसे यह अनुरोध किया था कि आचार्य गिदवानी श्री के० सन्तानम् की और मेरी सजा को रोक रखने के हुक्म की या उसके मुतअल्लिक किसी और हुक्म की जो उस वक्त इजरा किया गया हो, एक एक कापी मुझे भेज दी जाय। अब तक मुझे कुछ भी उत्तर नहीं मिला और न हुक्मों की नकलें ही मिलीं।

मुझे इस बात में कोई शक नहीं है कि यं. इं. के संपादक महोदय को जो अपना वक्तव्य आप ने भेजा है कि आचार्य श्री गिदवानी सन्तानम् और मैं तीनों शर्तों पर रिहा किये गये थे, बिलकुल गलत है और उन हुक्मों का तथा दूसरे कागज-पत्रों का मुलाहिजा करने से आपको भी इस बात का यकीन हो गया होगा। मुझे आशा है कि इस बात का यकीन हो जाने से आप पिछले वक्तव्य को शीघ्र दुरुस्त करेंगे और इस बात को साफ कर देंगे कि आचार्य गिदवानी और सन्तानम् की तथा मेरी रिहाई बिला शर्त हुई थी। आचार्य गिदवानी बिना फिर से मुकदमा चलाये और सजा दिये जेल में नहीं भेजे जा सकते। क्योंकि यह कहा जाता है कि उन्होंने उस शर्त को तोड़ा है। पर शर्त तो हमने कोई की ही न थी।

मैं फिर आपसे अनुरोध करता हूं कि आप उस रिहाई-हुक्म की नकलें भेज दें। मैं आपसे यह भी निश्चित रूप से जानना चाहता हूं कि क्या नाभा-राज्य की हद मेरी पहुंच के बाहर मानी जाती है और अगर हां, तो किस हुक्म के मुताबिक-अभी तुरन्त ही नाभा जाने का मेरा इरादा नहीं है। पर अगर मेरी इच्छा वहां जाने की हो गई तो मैं जानना चाहता हूं कि वहां मेरा स्वागत किस तरह होगा?"

हमें आशा करनी चाहिए कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू के इस सीधे सवाल का उत्तर मिलने में अब और देर न होगी। अमूमन अधिकारियों की ओर से लोगों की पूछताछ का जवाब देने में बेजा देरी की जाती है—खास कर उस हालत में तो और भी जब कि उनका जवाब देना सवालत-तलब होता है। अगर इसका जवाब मुतलक न मिला या मिला तो सन्तोषजनक न मिला, तो ऐसी हालत में संभव है कि पंडित जवाहरलाल और श्री सन्तानम् कार्य-समिति से इस बात की इजाजत चाहें कि वह उन्हें वहां जाकर गिरफ्तारी की चुनौती देने दें। अपने एक साथी के प्रति

अपने कर्तव्य के खयाल से भी ऐसा करना आवश्यक हो सकता है। पण्डितजी के पत्र के आखिरी हिस्से में तो स्पष्टतः उनकी तरफ से ऐसी चुनौती की छाया दिखाई देती है। यह बुद्धि-विरुद्ध बात है कि आचार्य गिदवानी जेल में रक्खे जायं-हालांकि जब जेतो के हत्या-कांड के समय नाभा-रियासत में उन्होंने प्रवेश किया तब सविनय भंग का उनका इरादा न था। उन्होंने केवल मानव-धर्म के भाव से प्रेरित होकर ऐसा किया था और इसके लिए भी जीमण्ड जैसे निष्पक्ष व्यक्ति की गवाही मौजूद है।

निजाम की रियासत में नहीं

हिन्दु-मुसलिम तनाजे के बारे में अपने वक्तव्य में मैंने लिखा है मुझे मालूम हुआ है कि उस हानिकारक प्रचार की पुस्तिका के मुताबिक निजाम की रियासत में कार्य हो रहा है। उस वक्तव्य को पढ़ने पर ख्वाजा हसन निजामी साहब ने मेरे पास नीचे लिखा तार भेजा है।

"मेरी जिस पुस्तक दाइए इसलाम में लिखी बातों के संबंध में आपने अपने वक्तव्य में शिकायत की है उसके बारे में मैं इसलाम और हिन्दू-मुसलिम एकता के लिहाज और आप के प्रति प्रेम-भाव होने कारण आपकी सलाह मानने को तैयार हूं—बशर्ते कि उससे इसलाम के प्रचार, मुसलमानों की उन्नति, सुधार, और संगठन, और आर्य-समाज के प्रकट तथा अप्रकट प्रयत्नों का असर दूर करने के कार्य में, जिनके करने के लिए मैं मजहबन् बाध्य हूं, कोई बाधा न पड़े। मैंने आपत्तिजनक बताई जाने वाली बातों में से बहुत सी उस पुस्तक के बाद के संस्करणों में से पहले ही निकाल दी थीं और अब आपकी इच्छा के अनुसार मैं अगले संस्करणों में और भी अधिक सुधार करने को तैयार हूं। उस पुस्तक के जो अनुवाद हिन्दुओं द्वारा छपाये गये हैं वे सिर्फ झूठा डर पैदा करने और सहानुभूति प्राप्त करने के लिए हैं। इसलिए उनको नहीं किन्तु उस पुस्तक के पिछले उर्दू संस्करण को ध्यान से पढ़ने के बाद आप अपनी सूचनायें मुझे लिखिएगा।"

इस तार के बाद ही इसी आशय का एक पत्र भी उन्होंने भेजा और गतसप्ताह उन्होंने आ कर मुझसे मिलने और खुद अपना मतलब समझाने की इज्जत मुझे बख्शी। उन्होंने मुझसे कहा कि बच्चों को भगा ले जाने वगैरह के जितने इल्जाम मुझपर लगाये जाते हैं वे सबके सब बिलकुल बे-बुनियाद हैं। और उन्हें उस पुस्तक में प्रकाशित करने में उनका उद्देश्य यह नहीं है, जो कि मैंने सच माना है। बदकिस्मती से यह भेंट उस वक्त हुई जब कि मैं मौन धारण कर रहा था। इसलिए मैं उनकी पुस्तक के बारे में उनपर अपनी राय जाहिर न कर सका। ख्वाजा साहब इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि मैं निजाम साहब की रियासत के बारे में उनका आश्वासन प्रकाशित कर दूं। इसलिए मैंने वह तार और मुलाकात का सारांश खुशी से प्रकाशित कर दिया है। तोभी यहां यह लिख देना आवश्यक है कि उस प्रकार के प्रचार की खबर मुझे विश्वसनीय आदमियों द्वारा मिली थी। उस खबर की ताईद करने वाले पत्र भी मुझको मिले हैं। और मेरे सहायक मुझसे कहते हैं कि उस प्रकार की शिकायतें देशी-भाषाओं के अखबारों में अक्सर छपा करती हैं। इसलिए निजाम साहब की रियासत में जो कुछ हो रहा है उसके बारे में कोई प्रत्यक्ष जानकारी न होने के कारण अपनी कोई राय कायम किये बिना मैं दोनों तरफ की बातों को प्रकाशित किये देता हूं। इस मामले में निजाम साहब की सरकार जो कुछ कहना चाहे उसको भी मैं खुशी से अवश्य प्रकाशित कर दूंगा।

जहांतक ख्वाजा साहब की पुस्तक से संबंध है, हालांकि यह तारीफ की बात है कि वे उसमें ऐसे परिवर्तन करने को तैयार हैं जो कि उनके विश्वास के अनुकूल हों, तोभी जिस बात की जरूरत है वह इससे कुछ अधिक और कुछ भिन्न प्रकार की है। यद्यपि ख्वाजा साहब ने इस बात का प्रतिवाद किया है कि उनका उद्देश्य खराब नहीं है तोभी उस पुस्तक से जिसको कि मैंने उर्दू में पढ़ा है वह अर्थ निकलता है जो कि मैंने किया है। जिन मुसलमान-मित्रों को मैंने वह पुस्तक दिखाई है वे मेरे अर्थ से सहमत हैं। इसलिए यदि मैं राय देने का विचार भी करूं तो यह काफी नहीं होगा कि मेरी राय के मुताबिक ख्वाजा साहब अपनी पुस्तक में परिवर्तन कर दें। जरूरी तो यह है कि वे खुद अपने विचार की गलती को देखें और इस बात को जानें कि उन्होंने प्रचार के आपत्तिजनक तरीके सुझा कर वास्तव में इसलाम को हानि पहुंचाई है। इसलिए इसलामी प्रचार में जो कुछ निरापद और प्रशंसनीय है उसकी दृष्टि से उस पुस्तक में आमूल परिवर्तन करें। यह कहने की जरूरत नहीं कि जिस तत्परता से ख्वाजा साहब ने अपना मतलब समझाने के लिए कदम बढ़ाया है और हिन्दू-मुसलिम-एकता के बारे में अपनी अभिलाषा जाहिर की है उसकी मैं सराहना करता हूं।

खतरनाक रिवाज

१२ जून के "हिन्दू" में मैंने अभी एक मजमून पढ़ा जो कि मेरे साथ की 'बातचीत' के नाम से प्रकाशित हुआ है। हाँ, मुझे एक सज्जन के साथ बहुत देर तक बातचीत करने की बात याद पड़ती है; पर मुझे यह जरा भी खयाल न था कि वे 'इंटरव्यू' लेने के लिए आये हैं। मैंने समझा कि उनके दिल में दरहकीकत कुछ शंकायें हैं और उन्हें वे दूर कराना चाहते हैं। और इसलिए मैंने बड़े ध्यान से बड़ी देर तक शान्ति के साथ उनसे बातचीत की और उनके तमाम सवालों के जवाब दिये। चूं कि मेरे पास वक्त बहुत ही कम रहता है, अतएव मैं इतनी देर तक 'इंटरव्यू' देने से जरूर इनकार कर देता। मेरे पास छिपाव की कोई बात नहीं रहती। अगर लोगों को मुझसे या मेरे निस्बत कोई बात मालूम हो जाय तो वे उसे प्रकाशित कर देने के लिए पूरे आजाद हैं। हाँ, मैं यह जरूर नहीं चाहता कि व उलटपुलट या तोड़-मरोड़ कर पेश की जायं। अगर वे छापने के पहले मुझे बता दें तो मुझे कोई ऐतराज न हो। पूर्वोक्त 'इंटरव्यू' और कुछ नहीं मैंने जो कुछ कहा उसका नष्ट-भ्रष्ट खाका है। मिसाल के तौर पर जैसे-उसमें कहा गया है कि मैंने कहा-हर एक मुसल्मान आवारा होता है। लीजिए, मैंने तो कभी सपने में भी यह खयाल न किया होगा कि हरएक मुसल्मान आवारा होता है। मैं हकीम साहब को आवारा नहीं मानता। और न इसी तरह अपने सैकड़ों मुसल्मान दोस्तों में से किसी को ऐसा समझता हूं। हाँ, मैं कितने ही मुसल्मान गुण्डों को तो जानता हूं पर किसी आवारा मुसल्मान से अभीतक काम नहीं पड़ा है। मैं तो हरएक मुसल्मान को गुण्डा तक नहीं समझता। मुझपर यह कहने का इल्जाम लगाया गया है कि 'सरकार अभी मेरी उतनी परवा नहीं कर रही है; पर ज्यों ही मैंने देश में एक छः महीने दौरा किया कि उसकी रूह कांप उठेगी।' पर मैं एक ओर बड़े अभिमान के साथ यह समझता हूं कि सरकार कभी मेरे लेखों और कामों को उदासीनता की दृष्टि से नहीं देखती है और दूसरी ओर मेरी नम्रता मुझे इस बात का खयाल नहीं करने देती कि मेरे किसे दौरे से सरकार डर जायगी। हां, अगर किसी भी कोशिश से सच्ची हिन्दू-मुस्लिम-एकता कायम हो जाय तो वह जरूर डर जाय। जो सज्जन मुझसे मुलाकात करने आये थे वे एक खादी में धोकेबाजी करनेवाले की बात करते हैं। मैं अपने साथ काम करनेवाले लोगों से बात-

चोरा कर रहा था। उसके सुनने का जो अवसर उन्हें मिला उसका यह दुरुपयोग-मात्र है। खादी में धोखेबाजी होने की बात चल रही थी। मुझे पता नहीं कि दर असल कहीं ऐसी धोखेबाजी हो रही है। मैंने यहां सिर्फ भारी गलतियों के हो उदाहरण दिये हैं। इसमें कोई शक नहीं कि मुलाकाती सज्जन ने अच्छे ही भाव से ये बातें लिखी होंगी। पर ऐसे सदाशय मित्र जोकि अपनी जिम्मेवारी को न समझकर काम करते हैं, दुराशय प्रतिपक्षियों से भी ज्यादह नुकसान पहुंचाते हैं। अतएव जो लोग मुझसे मिलने के लिए आते हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे तबतक मुझपर महरबानी रक्खें जबतक मैं लोगों कि दृष्टि में प्रतिष्ठित हूं। जब मैं अप्रतिष्ठित हो जाऊं तब वे मेरे लेखों और कार्यों के संबंध में जो जी चाहें करें। मैं उन लोगों से भी निवेदन करता हूं जो मेरी मुलाकात या बातचीत पढ़ा करते हैं, कि वे उन मुलाकातों पर ध्यान न दिया करें जिन्हें मेरी मंजूरी न मिली हो।

म्युनिसिपालिटियां

एक स्थान की महासभा के मन्त्री लिखते हैं:—

"यहां आपने लोगों से इन (सरकारी) संस्थाओं से अलग रहने का आग्रह किया है वहां आपने उन लोगों के बारे में कुछ भी नहीं कहा जिन्होंने कि जिला बोर्डों और म्युनिसिपालिटियों की मेंबरी पर कब्जा किया है। मैं जानता हूं कि अपरिवर्तनवादियों में बहुत से ऐसे हैं जो अब भी यही कहते हैं कि उनके जिला बोर्डों और म्युनिसिपालिटियों में जाने से असहयोग के सिद्धान्त में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। किन्तु मेरी राय में ये बोर्ड अर्ध-सरकारी संस्थायें हैं। क्या वे शिक्षा-प्रणाली या सफाई में किसी प्रकार का फलदायी परिवर्तन करा सकते हैं?"

जहांतक महासभा के प्रस्तावों का संबंध है वहांतक तो महासभा के सदस्यों के लिए उन संस्थाओं में जाने और पदाधिकारी भी बनने का मार्ग खुला है। वास्तव में बाद का एक प्रस्ताव तो चाहता है कि महासभावादी इन संस्थाओं पर कब्जा जमावें। सिद्धांत में ये संस्थायें सरकार के अधिकार में होने के कारण सरकारी संस्थाओं की श्रेणी में हैं। किन्तु हमारा असहयोग तो विशेष रूप का है और वह केवल उन खास संस्थाओं से है जोकि सबसे ज्यादा नैतिक पतन करनेवाली मानी जाती हैं और इसलिए सरकारी प्रतिष्ठा को सबसे ज्यादा कायम रखती हैं। इसलिए उन सरकारी संस्थाओं की, जिनका कि महासभा ने खास तौर से बहिष्कार नहीं किया है, सबसे अच्छी कसौटी यह है कि उनसे विधायक-कार्यक्रम में कितनी सहायता मिल सकती है। यदि उनसे उस कार्यक्रम में बाधा पहुंचती है तो मेरी तो स्पष्ट राय है कि महासभावादियों को वे संस्थायें छोड़ देनी चाहिए। मेरे पास कई स्थानों से इस शिकायत के पत्र आये हैं कि महासभा-वादियों के म्युनिसिपालिटियों और जिला बोर्डों में जाने के कारण समस्त विधायक कार्य बन्द हो गया और कुछ स्थानों में तो महासभावादी ही एक दूसरे के खिलाफ उम्मेदवार खड़े हुए थे। इसमें शक नहीं कि जहां जहां ऐसी अवस्था हो वहाँ महासभावादियों को अलग ही रहना चाहिए। महासभावादियों का आपस में एक दूसरे के खिलाफ उम्मेदवार होना मेरी समझ में नहीं आ सकता। महासभावादियों को एक नियम के अधीन होना चाहिए और जिसको उनकी महासभा-समिति चुने उन्हींको उम्मेदवार होना चाहिए। जहांतक शिक्षा (प्राथमिक) और सफाई पर नियन्त्रण कर सकने का प्रश्न है वहां तो आमतौर से यह कहा जा सकता है कि उन मामलों में म्युनिसिपालिटियों को बहुत-कुछ अधिकार है। बहर हाल म्युनिसिपालिटियाँ ज्यादातर चुने हुए प्रतिनिधियों की संस्था होने के कारण उचित अवसर आने पर उनके जरिए सत्याग्रह की काफी गुंजाइश है।

नई बात!

एक सज्जन लिखते हैं, आपके बारे में यह जाहिर हुआ है कि आपने कहा है—"सात बकरों की अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि एक गाय का वध किया जाय।" इसपर वे मुझसे कहते हैं कि या तो इस बात से इन्कार करो या उसे मंजूर करो और उस हालत में उसका कारण बताओ। पत्र-प्रेषक ने जिस बात का उल्लेख किया है, मुझे याद नहीं कि वैसी कोई बात मैंने कही है। और जिस किसीने मुझसे वैसी बात सुनी हो वे उस अवसर की याद मुझे दिलावेंगे तो मैं कृतज्ञ हूंगा। मेरे पत्र-प्रेषक के अनुसार तो यह माना जाता है कि मैंने यह बात यंग इंडिया के संपादक की हैसियत से कही है। उस हालत में तो मेरे सामने उसे पेश करने में कोई कठिनाई न होनी चाहिए। परंतु मैंने जो कुछ कहा या लिखा होगा वह यही हो सकता है कि यदि मैं लोगों को अहिंसापूर्वक समझा सकूं तो मैं यह चाहूंगा कि वे बकरे की भी उसी प्रकार रक्षा करें जिस प्रकार मैं चाहूंगा कि वे गाय की करें। जैसा कि मैं इन पृष्ठों में पहले लिख चुका हूं, मेरे लिए गाय मनुष्य से नीचे की श्रेणियों के जानवरों का सबसे शुद्ध स्वरूप है। नीचे दरजे के सभी प्रकार के जानवरों की ओर से वह प्राणियों में श्रेष्ठ मनुष्य से उनके प्रति न्याय करने की दुहाई देती है। वह अपनी आंखों के जरिए (पाठक मेरी धारणा से उनकी ओर देखें) यह कहती हुई मालूम होती है कि 'तुम हमें मार डालने और हमारा गोश्त खाने या दूसरी तरह से हमारे साथ बुरा बर्ताव करने के लिए नहीं, बल्कि हमारे मित्र, और संरक्षक बनने के लिए हमारे ऊपर तैनात किये गये हो।' (यं. इं.)

चरखे की धुन

एक बूढ़े मित्र अपने पत्र में नौजवानों की त्रुटियां बताते बताते आत्म-परीक्षा करने लगे और लिखते हैं कि "उन्हें कुछ कहते हैं तो बुरा मानते देर नहीं लगती। पर उनकी भूल निकालने से क्या फायदा? मेरा भी तो यही हाल है? भाइयों के साथ लड़-पड़ता हूं और फिर पछताता हूं। जबान पूरी बस में नहीं। इस उम्र में अब हो भी कहां से? अगर होना होगी तो चरखे से भले हो। मेरा खयाल है कि उसमें यह शक्ति है। मैं रोज दो-तीन घण्टे चरखा कातता हूं और जबतक कातता हूं तबतक दुनिया को भूल जाता हूं। यहां तक कि यदि किसीके साथ झगड़ा हो गया हो तो उसका भी खयाल तक नहीं आता। सचमुच दुनिया का खयाल ही नहीं रहता। पर उतने ही से खुदा का नूर दिल में चमकता हुआ दिखाई नहीं देता। सिर्फ तार का ही विचार मन में रहता है। मुझे आशा है कि आगे चल कर, जब चरखे का अच्छा रफ्त हो जायगा तब तार का खयाल छूट कर ऊंचे दरजे के विचार करने का अवसर मिलेगा।"

इन मित्र ने चरखा अभी हाल ही शुरू किया है। ऐसी हालत में यह भी कुछ कम बात नहीं है जो कातते समय दुनिया को भूल जाते हैं। मुझे यकीन है कि जब सूत आसानी से ठीक ठीक निकलने लगेगा तब उनके हृदय में भगवान् की ज्योति दिखाई देगी और भगवान् सूत के तार पर नाचते हुए दिखाई देंगे। कौन सी वस्तु इस जगत् में ऐसी है जहां वह न हो? आंखें रहते हुए भी हम अन्धे हैं-इसीसे वह नहीं दिखाई देता। चरखे से भारत का संकट दूर होगा, भूखों को रोटी मिलेगी, स्त्रियों की लाज रहेगी, काहिलों की सुस्ती मिटेगी, स्वराज्यवादी को स्वराज्य मिलेगा और संयम पालने वाले को संयम-लाभ होगा। जब यह भाव चरखे के साथ जुड़ जायगा तब जरूर सूत पर भगवान् नाचने लगेंगे। और पूर्वोक्त सज्जन को चरखा चलाते हुए भगवान् के भी दर्शन होंगे। जैसी जिसकी भावना होती है वैसा फल उसे मिलता है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

पराजय

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ४७

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच	अहमदाबाद, आषाढ सुदी ४, संवत् १९८१ रविवार, ६ जुलाई, १९२४ ई०	मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

गत महा-समिति

महा-समिति के तमाम प्रस्ताव अन्यत्र दिये गये हैं। पहले प्रस्ताव में सजावाला अंश हट गया है। यह मेरी पहली शिकस्त थी—आगे और भी हुई। बहुमतों से मुझे धोखा नहीं हो सकता। जब कि मैं देखता था कि यदि बाहर चले जाने वाले स्वराजियों के मत गिने जायं तो निश्चय-पूर्वक मेरी शिकस्त है तब मैं एक छोटे से बहुमत से सन्तुष्ट कैसे हो सकता था? इसलिए मैंने समिति से निवेदन किया कि समिति से उठ जाने वाले सज्जनों की रायें भी गिनी जायं और सजावाला अंश प्रस्ताव से निकाल दिया जाय।

दूसरा प्रस्ताव भी अपने असली रूप में नहीं रहा है; लेकिन उसका सार या आशय नहीं है। गफलत करने वालों के खिलाफ बाजता कार्रवाई करने का सिद्धान्त उसमें स्वीकृत किया गया है।

तीसरे प्रस्ताव में तो दर हकीकत असफलता रही। मेरा अभी तक यही खयाल है कि महासभा के निर्वाचित सदस्य पदाधिकारी ही हैं और इसलिए वे वही शख्स होने चाहिए जो सच्चे दिल से महासभा के प्रचलित कार्यक्रम का समर्थन करते हों, और जो उसमें बाधा डालने या उसे कमजोर बनाने के लिए नहीं, बल्कि उसे पूरी तरह कार्यरूप में परिणत करने के लिए तैयार हों। लेकिन कानूनी कठिनाइयों से पार पाना मुमकिन न था। कोकनाडा के कार्यक्रम पर किसी प्रकार का बंधन लगाना मानो महासभा-संगठन को तोड़ना माना जाता था। मैंने उसका जो अर्थ किया था और अब भी करता हूं उसके मुताबिक तो उससे कानून का भंग न होता था। पर मुझे बताया गया कि मुझे अपना अर्थ उनके सिर मढ़ने का कोई हक न था और स्वराजियों को यह मानने का हक था कि जो लोग धारासभाओं में गये हैं वे पदाधिकारी बनने से वंचित नहीं रक्खे जा सकते। उन्होंने कहा कि सच पूछिए तो स्वराजी तो कार्य-समिति में पहले ही से मौजूद हैं। इस दलील में मैंने बहुत-कुछ बल पाया और यह तो मैं देखता ही था कि वह असली प्रस्ताव जिसके द्वारा स्वराजी लोग पदाधिकारी न हो सकते थे, एक छोटे से बहुमत से पास हो सकता है, इसलिए उस प्रस्ताव को उस शकल में बदल दिया जिसमें कि वह पास हुआ। इससे मुझे खुशी नहीं होती। सारे प्रस्ताव को ही रद्दित कर देने के सिवा अब यही एक रास्ता मेरे लिए खुला हुआ था; पर यह इसलिए अच्छी था कि देश के सामने महासभा में एकमत के लोगों के रहने का खयाल पेश किया जाय और राजनैतिक कामों में स्वच्छता रक्खी जाय। जो नियम और नाप औरों के लिए बनाये जायं उसीके अनुसार चलने की आशा प्रतिनिधियों से जरूर रक्खी जाय। तरह तरह से दिखाया जाना चाहिए कि अब महासभा भिखारिणी नहीं रह सकती; बल्कि वह आत्मशुद्धि की संस्था है और अपनी आन्तरिक शक्ति को बढ़ा कर अपना ध्येय सिद्ध करने के हेतु से तजवीज की गई है। इसलिए राष्ट्रीय जीवन के लिए जिन बातों की आवश्यकता है उनके अनुकूल लोक-मत जरूर तैयार किया जाना चाहिए। और इसका सब से अच्छा तरीका यही है कि ऐसे प्रस्ताव पेश किये जायं और उनका अनुमोदन प्राप्त किया जाय। ऐसी हालत में यद्यपि मैंने भिन्न भिन्न मत के लोगों के पदाधिकारी होने की संभावना को कुछ समय के लिए मान लिया है तथापि मैं दोनों दलवालों से जोर देकर कहूंगा कि वे एक दूसरे के रास्ते में बाधक न हों।

फिर भी चौथे प्रस्ताव ने मेरी रही सही शिकस्त पूरी कर दी। यह सच है कि गोपीनाथ वाला प्रस्ताव पास हुआ; पर एक थोड़ी बहुमति से। एक छोटी बहुमति की अपेक्षा साफ साफ अल्पमति होने से मुझे खुशी होती। मैं इस बात को नहीं भूलता हूं कि बहुतेरे लोगों ने तो श्री दास के संशोधन के पक्ष में मत इसलिए दिया था कि उनकी गिरफ्तारी की अफवाह फैल रही है। बहुत से लोगों ने स्वभावतः इस बात में अपना गौरव माना कि वे अपने सरदार और साथी की रक्षा करें, जिनकी देश-सेवा विख्यात है और जिन्होंने महान् स्वार्थ-त्याग किया है। इस प्रकार अकसर नैतिक विचारों के आगे भावना को प्राधान्य दिया जाता है और बंगाल सरकार भारी गलती करेगी अगर वह देशबन्धु और उनके साथियों को गिरफ्तार करेगी। अब रायों के लिए सजा देने का जमाना चला गया। यदि श्री० दास के संशोधन के खिलाफ मेरे मन में नैतिक विचार न होते तो मुझे उसका समर्थन करने में जरा भी हिचकिचाहट न होती। पर मैं ऐसा न कर सका, कोई महासभावादी ऐसा न कर सकता था। श्री० दास को मेरे और उनके प्रस्तावों में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। मैं इसे आत्म-वंचना के सिवा और कुछ नहीं कह सकता।

जिन लोगों ने उसका समर्थन किया उन्होंने साफ साफ लफ्जों में कह दिया। उनके दर्शन-शास्त्र में राजनैतिक खूनों के लिए स्थान था और आखिर क्या यह सर्व-साधारण लोगों की नीति नहीं है? सभ्य कहलाने वाले अधिकांश लोग इसके कायल हैं और जब जब मौका पड़ता है तब तब वह उससे काम भी लेते हैं। वे मानते हैं कि अवलम्बित और पीड़ित लोगों के पास एक ही इलाज है राजनैतिक हत्यायें। यह एक मिथ्या सिद्धान्त है, इससे संसार रहने के लिए अधिक अच्छा नहीं बन पाया है। यह बिल्कुल सच बात है। मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि यदि श्री दास और उनके समर्थकों ने भूल की है तो अधिकांश 'सभ्य' लोकमत उनके पक्ष में है। भारत के विदेशी प्रभुओं की करतूतें इससे अच्छी नहीं हैं। यदि महासभा ऐसी राजनैतिक संस्था होती जिसके साधनों के मर्यादा न रहती तो श्री दास के संशोधन पर गुण-दोष की दृष्टि से ऐतराज करना असंभव होता। उस दशा में यह केवल उपयोगिता का प्रश्न रह जाता।

लेकिन यह बात कि महासभा के ७० प्रतिनिधि इसके समर्थन करनेवाले निकले, एक दिल दहला देनेवाली बात है। उन्होंने अपने ध्येय के प्रति अपने तईं झूठा साबित किया। मेरी राय में यह संशोधन महासभा के ध्येय या अहिंसा-नीति को भंग करता था। परन्तु मैंने जान बूझकर ऐसा ऐतराज न किया। यदि सदस्य लोग ऐसे प्रस्ताव को चाहते थे तो यह उनके लिए ठीक ही था। मेरी राय में यह हमेशा बेहतर होता है कि कानूनी सवालों का निपटारा आम तौर पर सदस्य ही कर लिया करें।

दूसरे प्रस्तावों की चर्चा करने की जरूरत नहीं मालूम होती।

सिक्खों के त्याग और वीरता की प्रशंसा करना महासभा की स्वीकृत नीति के अनुकूल ही था।

अफीमवाला प्रस्ताव दो कारणों से आवश्यक था। कुमारी का ओट संसार में अफीम की बढ़ती को रोकने और केवल दवा-दारू के ही लिए उसका उपयोग करने की छुट्टी रहने के लिए बहुत ही कीमती काम कर रही हैं। उन्होंने बड़े ही शोकपूर्ण शब्दों में भारत-सरकार की अनीति-मूलक अफीम-नीति का दिग्दर्शन कराया है। श्री एण्ड्रयूज यह बात दिखा चुके हैं किस तरह खुद भारत-सरकार ने अफीम-परिषद् में लोगों को अफीमखोरी बढ़ाने में 'वैधर्म्य' के बजाय 'मोक्ष' शब्द दाखिल कराया है। ऐसी हालत में जिनीवा की आगामी परिषद् पर दृष्टि रखते हुए महासमिति के लिए यह आवश्यक हुआ कि वह कह दे कि भारत-सरकार की इस नीति के विषय में देश के क्या विचार हैं। और अफीम के दुर्व्यसन के कारण आसामियों की हालत की जांच करना भी उतना ही आवश्यक हो गया। अफीम के इस घातक दुर्व्यसन के कारण वहां के अच्छे अच्छे स्त्री-पुरुषों की शक्ति का ह्रास हो रहा है। आसाम प्रान्तीय समिति इसकी तहकीकात के लिए तैयार है। इसलिए महासमिति ने श्री ऐंड्रयूज का इस बात के लिए नियुक्त करना ठीक समझा कि वे प्रान्तीय समिति के सहयोग से इसकी तहकीकात करें।

सातवां प्रस्ताव कार्य-समिति को इस बात का अधिकार देता है कि यदि आवश्यक हो तो मलाया और लंका के हिन्दुस्तानी कुलियों की हालत की जांच करने के लिए एक शिष्ट-मण्डल भेजा जाय। जो कुली मलाया और लंका में जाते हैं उनकी हालत का हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है। अखबारों से जो कुछ मालूम हो जाता है वह भले हो। हमारा कर्तव्य है कि हम उनकी हालत की जांच करें और उसे सुधारने की भरसक कोशिश करें।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

वायकोम

वायकोम का सत्याग्रह शायद आखरी हद तक पहुंच गया है। अखबारों में समाचार आये हैं—यह समाचार आमतौर पर भी सही ठहराये गये हैं—कि ट्रावनकोर के अधिकारियों ने सत्याग्रहियों को केवल गुण्डों की दया पर ही छोड़ दिया है। सभ्य भाषा में यह पुराने मत वालों का निरंकुश विरोध कहा जा सकता है। हम जानते हैं कि पुराने मत को पकड़ बैठने में अक्सर अच्छे बुरे का खयाल नहीं होता। सुधारक के बनिस्बत उनकी तरफ साधारण तौर पर प्रतिष्ठा और लोकमत विशेष होता है। इसलिए वे लोग निर्भयता के साथ वे बातें करते हैं जिनके करने की हिम्मत बेचारा सुधारक कभी नहीं कर सकता। लेकिन ट्रावनकोर के अधिकारियों का ढंग तो समझ में नहीं आता। बे-गुनाह सत्याग्रहियों के खिलाफ जो जबरदस्ती-हिंसा-हो रही है उसको क्या वे देखा न देखा करना चाहते हैं? क्या ट्रावनकोर जैसी सभ्य रियासत ने जान-माल के रक्षण का अपना प्रथम कर्तव्य ही छोड़ दिया है? गुण्डों की जबरदस्ती-हिंसा-कहा जाता है कि जंगली तरीके पर है। स्वयंसेवकों की आंखों में चूना डाल कर वे उन्हें अंधा कर देते हैं।

केरल के प्रतिनिधियों ने इस हल-चल की पुष्टि करने के लिए महासभा की ओर से एक प्रस्ताव करने के बारे में मुझसे पूछा। मैंने उनसे कहा कि मुझे यह विचार पसंद नहीं है। उनको तो नैतिक अनुमोदन की जरूरत है। यदि उन्होंने सभापति के पास प्रस्ताव भेज कर अनुमोदन मांगा होता तो समिति की तरफ से उन्हें वह जरूर मिल जाता। इसलिए उनको इस बात से राजी करने में मेरी जवाबदेही बहुत बढ़ गई है। मेरा विचार है कि सब स्थानिक हलचलें ऐसी होनी चाहिए जो अपना काम खुद कर सकें और महासमिति को तो कुछ अपवाद-रूप मामलों में ही अपना नैतिक अनुमोदन देना चाहिए। इसके बाद सिक्खों के प्रस्ताव का जिक्र चला। इस प्रस्ताव का मसविदा देखकर इन प्रतिनिधियों ने मुझसे फिर कहा कि इस प्रस्ताव को देख कर भी क्या आपका हृदय द्रवित न होगा। मैंने कहा कि सिक्खों का मामला तो महासभा ने पहले ही से उठा लिया है इसलिए मिला हुआ पेश किया कि महासभा ने सिक्खों को जोड़ दिया है अब वह उससे अपना हाथ वापिस नहीं खींच सकती। वे शायद मेरी दलील के कायल न हुए, लेकिन उन्होंने खुशी से उसे मान लिया। फिर भी ट्रावनकोर के अधिकारियों से सम्मानपूर्वक कहा जा सकता है कि महासभा तात्विक उदासीनता अख्तियार कर इस जंगलीपन को नहीं देख सकती। जब तक सत्याग्रह का सामना साधारण रियासत के नियमों से ही किया जाता है तबतक यह हलचल स्थानिक ही रहनी चाहिए। लेकिन सत्याग्रहियों के ऊपर गुण्डों को छोड़ देने से सत्याग्रहियों की तरफ सारे हिन्दुस्तान का लोकमत अवश्य जमा हो जायगा।

अब वायकोम सत्याग्रह के संचालकों को एक शब्द कहना चाहता हूं। गुण्डों की चुनौती जरूर स्वीकार कर लेनी चाहिए। परन्तु सत्याग्रही को अपना सर ठिकाने रखना चाहिए। यह कहा जाता है कि स्वयंसेवकों की खादी की पोशाक उनसे छीन ली गई और जलाई गई। यह उत्तेजित करने के लिए काफी है। लेकिन ऐसे भी कारण होने पर उन्हें ठंडा रहना चाहिए और जान जाती हो तब भी हिम्मत रखनी चाहिए। कुछ देशवासी अपनी दूसरों की स्वतंत्रता की बहुत बड़ी कीमत नहीं है। सिर्फ शहीदों को ध्यान रख कर मरना चाहिए। सीजर की पत्नी की तरह सत्याग्रहियों को भी शुबह से परे रहना चाहिए। (यं० इं०)

महासमिति के स्वीकृत प्रस्ताव

१ चरखा-कताई

इस बात पर ध्यान रखते हुए कि स्वराज्य की स्थापना के लिए चरखा और हाथकती-खादी के आवश्यक माने जाने पर भी और महासभा के द्वारा सविनय भंग के लिए पेश-बन्दी के तौर पर उसकी स्वीकृति होते हुए भी देश की तमाम महासभा-संस्थाओं के सदस्यों ने चरखा कातने पर अबतक ध्यान नहीं दिया है, यह महा-समिति निश्चय करती है कि तमाम निर्वाचित महासभा संस्थाओं के सदस्य बीमारी अथवा लगातार सफर की हालत तथा अन्य ऐसे ही कारणों को छोड़कर, रोज नियम-पूर्वक कम से कम आध घण्टा चरखा कातें और कम से कम २००० गज एक-सा और अच्छा बटा हुआ अपना कता सूत अखिल भारतीय खादी-मण्डल के मन्त्री अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के पास भेजें कि जिससे हर महीने की १५ ता. तक उन्हें मिल जाय, पहली किश्त १५ अगस्त, १९२४ तक उसके पास पहुंच जाय और उसके बाद हर महीने बराबर भेजते रहें। जो सदस्य नियत तारीख तक नियत तादाद में सूत न भेजेगा उसका पद खाली समझा जायगा और और मामले के मुताबिक उसकी जगह पर दूसरे सदस्य की तजवीज की जायगी तथा पद-च्युत शख्स अगले साधारण चुनाव तक फिर से चुने जाने का पात्र न समझा जायगा।

भाग २

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि समिति की कार्रवाई के दर्म्यान, कुछ सदस्यों ने कताई का अपना-रूप बनानेवाले प्रस्ताव के उस अंश से नाराज हो कर जिसका संबंध उसकी सजा से था, समिति को छोड़कर बाहर जाना उचित समझा, और इस बात को भी ध्यान में रखते हुए कि वह सजा-संबंधी अंश सिर्फ ६७ खिलाफ ३७ राय से पास हुआ है और इसके अलावा इस बात को भी ध्यान में रखते हुए कि यदि बाहर चले जानेवाले लोगों ने उसके खिलाफ राय दी होती तो वह अंश गिर जाता, इसलिए यह समिति इस बात को उचित और अच्छा समझती है कि वह सजा वाला अंश उस प्रस्ताव से निकाल दिया जाय और शेष प्रस्ताव फिर से कायम रक्खा जाय।

२ हुक्मनामों के संबंध में

चूंकि इस बात की ओर इस समिति का ध्यान दिलाया गया है कि महासभा की बा-जाब्ता सत्ताधिकारी संस्थाओं और दफ्तरों की ओर से जो हुक्म समय समय पर भेजे जाते हैं उनकी ठीक ठीक तामील कभी कभी नहीं होती है इसलिए महा-समिति निश्चय करती है कि उन लोगों के खिलाफ जिनकी शिकायत की गई हो ऐसी बाजाप्ता कार्रवाई की जाय, जो उस प्रान्त की, जहां ऐसी गफलत हुई हो, प्रान्तीय महासभा समिति की कार्य-कारिणी समिति मुनासिब समझे और उसमें बरखास्तगी तक शामिल रहे। उन मामलों में जिनमें मध्यवर्ती संस्था की ओर से हिदायत हुई हो, उसको इस बात की रिपोर्ट की जाय कि प्रान्तीय कार्य-कारिणी समिति ने उसके निस्बत क्या जाब्ता कार्रवाई की? यदि किसी बाहरी संस्था की ओर से गफलत हो तो उसके बारे मामला बदस्तूर जाब्ता कार्रवाई करे।

३ प्रतिनिधियों से दरख्वास्त

महासमिति महासभा के मतदाताओं का ध्यान इस बात की ओर दिलाती है कि पंचविध बहिष्कार यथा-तमाम विदेशी कपड़ा, सरकारी अदालतों, शिक्षा संस्थाओं तथा धारासभाओं का बहिष्कार-कौन्सिलों के प्रस्तावों से जहांतक उसमें बाधा पड़ती है वहांतक छोड़कर-तथा एकमात्र खादी के ही उपयोग करने का प्रचार अब भी महासभा के कार्यक्रम का एक अंश है और इसलिए यह कमेटी समझती है कि जो महासभा के मतदाता महासभा के कार्यक्रम को मानते हों उन्हें चाहिए कि महासभा की वे भिन्न भिन्न मातहत संस्थाओं में उन लोगों को न चुनें जो पूर्वोक्त पंचविध बहिष्कार के सिद्धान्त को जहांतक कि उसमें कौन्सिल प्रस्ताव से बाधा न पड़ती हो, मानते न हों और स्वयं उस पर अमल न करते हों, और एकमात्र खादी न पहनते हों और इसलिए महासमिति यह दरख्वास्त करती है कि ऐसे शख्स जो अभी महासभा की निर्वाचित संस्थाओं के सदस्य हों, अपने अपने पदों से इस्तीफा दे दें।

४ खून की निन्दा

महासमिति गोपीनाथ साहा के द्वारा किये गये श्री डे. के. खून पर अपना अफसोस जाहिर करती है और मृतात्मा के परिवार के प्रति अपना शोक प्रकट करती है और ऐसे खून जिस देश-प्रेम के कारण होते हैं-फिर वह भ्रान्त ही क्यों न हो-उसका गहरा खयाल रखते हुए भी यह समिति ऐसे तमाम राज-नैतिक खूनों की सख्त निन्दा करती है और जोर के साथ अपनी राय जाहिर करती है कि ऐसे तमाम काम महासभा के ध्येय और उसके शान्तिमय असहयोग के प्रस्तावों के खिलाफ हैं और उसकी राय है कि ऐसे कामों से स्वराज्य का कदम पीछे हटता है और उस सविनय भंग की तैयारी में बाधा डालता है जो कि महासमिति की राय में शुद्ध से शुद्ध बलिदान को उत्साहित करता है और जो पूर्ण शान्तिमय वायु-मण्डल में ही किया जा सकता है।

५ सिक्खों का समर्थन

यह महासमिति सिक्खों के उस अनूठे स्वार्थत्याग की कदर करती है जो उन्हें अपने धार्मिक अधिकारों की रक्षा करने में करना पड़ा है, और खास कर उनकी बहादुरी और शान्तिपूर्ण साहस पर उन्हें बधाई देती है जिसका परिचय उन्होंने जैतो के निर्दय और अनावश्यक गोलीबार के समय दिया है।

६ अफीम-नीति

महासमिति की राय में भारत-सरकार की अफीम-नीति भारत के तथा अन्यदेशों के निवासियों के नैतिक कल्याण के खिलाफ है। महासमिति की यह भी राय है कि सरकारी आय के लिए किये जाने वाले अफीम के व्यापार को उठा देने की कार्रवाई का भारत की जनता स्वागत करेगी और उसकी यह भी राय है कि भारत की औषधोपचार संबंधी आवश्यकता से बहुत ज्यादह अफीम पैदा होती है।

इसलिए यह महासमिति श्री सी. एफ. एण्डरूज को इस बात के लिए नियुक्त करती है कि आसाम प्रान्तीय समिति के संबंध में आसामी लोगों की अफीम के दुर्व्यसन की ओर सरकार की अफीम-नीति के उनपर होने वाले असर की जांच करें और इसके लिए कार्य-समिति को यह अधिकार देती है कि वह आवश्यक प्रबन्ध करे।

७ प्रवासी भारतवासी

मजदूरों के लिए गिरमिट में जाने के संबंध में श्री ऐण्डरूज और श्री चतुर्वेदी की रिपोर्ट को देख कर यह महासमिति कार्य-समिति को इस बात का अधिकार देती है कि यदि जरूरत हो तो वह रिपोर्ट में सूचित शिष्ट-मण्डल बनावे और उसे भेजे और शिष्ट-मण्डल के लिए दूसरी संस्थाओं से सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

हिन्दी–नवजीवन

रविवार, आषाढ सुदी ४, संवत् १९८१

पराजय

रिपोर्टरों की बातों में मुझे बहुत कम दिलचस्पी हुआ करती है; परन्तु उस दिन एक रिपोर्टर की बातों में मुझे जरूर दिलचस्पी हुई। इसलिए मैंने उसकी मुलाकात के अन्त में उसे उसकी अपेक्षा से अधिक बातें कह दीं। उसने पूछा था कि अगर महासमिति में दोनों दल के लोग बराबर बराबर रहे तो आप क्या कीजिएगा? मैंने इस आशय का जवाब दिया था कि ईश्वर ऐसी विपत्ति से बचाने का कोई न कोई रास्ता दिखा देगा। मैंने यह बात बिलकुल निर्दोष–भाव से और कुछ विनोद–भाव से कही थी। मुझे खयाल न था कि यह बात सच हो जायगी।

इस महासमिति की कार्रवाई ने मुझे देहली वाली उस महासमिति की बैठक को याद दिला दी जो कि मेरे जेल जाने के जरा ही पहले हुई थी। देहली में जो भ्रम दूर होना बाकी रह गया था वह अहमदाबाद में पूरा हो गया।

चारों प्रस्तावों के लिए मेरे हक में एक थोड़ा बहुमति बराबर रही थी। परन्तु इसे मैं अल्पमति ही मानता हूं। दोनों दलों में प्रायः बराबर बराबर लोग बटे हुए थे। गोपीनाथ साहा वाले प्रस्ताव ने इस मामले को बहुत ही साफ तौर पर पेश कर दिया। उस पर हुए भाषण, उसका नतीजा और उसके बाद जो दृश्य मैंने देखा वह मेरी आंखें खोलने के लिए काफी था। पर जो रायें मिलीं उन्हें मैं निस्सन्देह श्री दास की विजय मानता हूं— हालां कि ऊपर से देखने पर ८ रायों से उनकी शिकस्त होती थी। यह बात कि उन्हें १४८ लोगों में से ७० लोग अपने हक में मिल गये मेरे लिए एक गहरा महत्व रखती थी। उसने उस अंधकार में रोशनी दिखा दी—यद्यपि अबतक धुंधलापन बना ही हुआ है।

रायों का नतीजा मालूम होने तक मैं उस सारे दृश्य को एक भारी मजाक समझकर खुश हो रहा था—हालांकि बराबर मुझे यह खयाल बना रहा था कि यह दृश्य उतना ही गंभीरता–पूर्ण है जितना कि भारी है। अब मैं देखता हूं कि मेरी खुशी ऊपर ही ऊपर थी। उसने मेरे हृदय की व्यथा को छिपा रक्खा था।

नतीजा प्रकट हो जाने पर मुख्य पात्र रंग–मंच से चले गये। और समिति में मानों लड़कपन छा गया। अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी इस तरह पास हुए मानों उनसे किसी का कुछ वास्ता ही न था। इन प्रस्तावों के बीच बीच में हंसी–दिल्लगी की पुट रहती थी। हर शख्स उठता था और 'पाइंट आव् आर्डर' और 'पाइंट आव् इनफरमेशन' खड़ा करता था। यह अग्निपरीक्षा किसी भी सभापति के धीरज की जांच के लिए बहुत काफी थी। मौलाना मुहम्मद अली इस कसौटी में से खरे निकल आये। उन्होंने अपने मिजाज को खूब संभाल रक्खा। 'पाइंट आव् इनफरमेशन' को तसलीम करने से मौलाना मौहम्मद अली इनकार कर देते थे और यह ठीक भी था। हां मुझे यह बात जरूर कुबूल करनी चाहिए कि मैं कीर्ति के उम्मेदवार सभापति के सरसरी तौर पर दिये गये फैसलों को खुशी खुशी मंजूर कर लेते थे। पाठक इस नतीजे पर न पहुंचे कि समिति की कार्रवाई में किसी भी अवस्था में किसीने जरा भी अपमानजनक व्यवहार किया हो। मैंने ऐसी बहुत बैठकें नहीं देखी हैं जहां कि चर्चा में इतने कम व्यक्तिगत आक्षेप और कटु वाक्य न हुआ हो जितना कि इस जलसे में हुआ हालां कि दिल उमड़े हुए थे और मतभेद तेज और गहरा था। मैं ऐसी सभाओं को जानता हूं जहां कि ऐसी हालतों में सभापति को शान्ति और व्यवस्था कायम रखना मुश्किल हो गया था। इस महासमिति के सभापति की आज्ञाओं का पालन सदस्य खुशी खुशी करते थे। फिर भी गोपीनाथ–साहा के प्रस्ताव के बाद सभा की शान जाती रही। ऐसी दशा में मैंने अपना आखिरी प्रस्ताव पेश किया। ज्यों ज्यों उसकी कार्रवाई आगे बढ़ती गई त्यों त्यों मैं अधिकाधिक गम्भीर होता गया। अकसर मेरे मनमें यह बात जोर मारती कि मैं उस दुखदायी दृश्य को छोड़ कर भाग खड़ा होऊं। जिस प्रस्ताव को मुझे पेश करना था उसे इस सभा में पेश करते हुए मैं घबड़ाता था। मैं उस प्रस्ताव को स्थगित करने की दरख्वास्त कर सकता था, परन्तु मैंने सभा से यह वायदा किया था कि दीवानी के मामले मुकदमे करने वाले लोगों को तीसरे प्रस्ताव के असर से बचाने के लिए कोई इलाज ढूंढ निकालूंगा, या ऐसा न होने पर कोई प्रस्ताव पेश करूंगा। इस तीसरे प्रस्ताव के अनुसार उन लोगों को इस्तीफा पेश करना लाजिमी है जो अदालतों के बहिष्कार सहित पांचों बहिष्कार सिद्धान्त को न मानते हों और जो खुद उसका अमल न कर सकते हों। यहां बचाव की सूरत उन लोगों के लिए की जाती थी जिन्हें संभव है कि मुद्दई या मुद्दाअलेह बन कर अदालतों में जाने पर मजबूर होना पड़े। इस विषय पर जो प्रस्ताव पहले कार्यसमिति में स्वीकृत हो कर सदस्यों में बांटा गया था उसमें उनके बचाव की सूरत थी। महासमिति में ऐसा एक प्रस्ताव दरअसल हो चुका था और उसकी जगह उसकी तजवीज की गई थी। पाठक इस बात को जानते ही हैं। इससे वे लोग मुस्तसना हैं जो कोकनाडा प्रस्ताव में आते हों। इस संशोधन का मसविदा बनाते समय मैंने दीवानी दावा करने वालों के बचाव की सूरत नहीं रक्खी थी। मैंने एक अलहदा प्रस्ताव के द्वारा ऐसा करने की बात सोच रक्खी थी। जब मैंने उस प्रस्ताव को पेश किया तभी यह बात प्रकट कर दी थी। और यही वह प्रस्ताव था जिसने मेरे लिए 'अदृश्य अन्धकार' से निकलने का रास्ता खुला कर दिया। मैंने इस प्रस्तावना के साथ उसे पेश किया कि यह मेरे सुबह दिये गये वचन के अनुसार पेश किया जा रहा है। मैंने यह भी कहा कि श्री गंगाधरराव देशपांडे इसकी मिसाल हैं। मैं मुस्तसनाओं और यथा–संभवों में विश्वास नहीं रखता। पर मैं जानता हूं कि कुछ असहयोगियों को अदालतों से बचना कठिन हो रहा है। ऐसे कर्जदार लोग, जिन्हें धर्माधर्म की परवाह नहीं रहती, असहयोगियों को उनका पावना अदा करने से इनकार कर देते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि ये अदालतों में नालिश तो करेंगे नहीं। इसी तरह मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूं जिन्होंने असहयोगियों पर दावे दायर किये हैं—यह सोच कर कि वे तो अदालत में आ कर सफाई देंगे नहीं। यदि इसपर भी किसीको जिज्ञासा हो और यदि वे तलाश करेंगे तो उन्हें यह जानकर ताज्जुब होगा कि सैकड़ों मामलों में छोटे–बड़े असहयोगियों ने अदालतों में जा कर दावों की सफाई नहीं दी और उसके फल–स्वरूप हानि सहना कुबूल किया। फिर भी यह बात बिलकुल सच है कि कार्यकारी मंडल के लोग अपने सब आदर्शों पर कायम न रह पाये हैं। इसलिए दावा दायर करने की ओर आंखें मूंदने का रिवाज–सा पड़ गया है और इससे ज्यादह सफाई देने की ओर। इस समिति ने समय समय पर ऐसे नियम बनाये हैं जिनसे यह रवाज कुछ हद तक कानूनन् कायम हो जाता है। जैसे दोनों

कि अब जब कि इन बहिष्कारों के पालन के बारे में महासमिति सख्ती से काम लेना चाहती है, दोनों दलों को स्थिति को साफ कर देना चाहिए। मुझे इससे बढ़कर कोई खुशी नहीं हो सकती कि महासभा अपने पदों पर सिर्फ उन्हीं लोगों को रक्खे जो खुद पांचों बहिष्कारों पर पूरा पूरा अमल करते हों। परन्तु आज की हालत में उसका यथावत् पालन बहुतों के लिए प्रायः असंभव हो गया है। इसके लिए स्वेच्छापूर्वक दरिद्रता का व्रत धारण करना परम आवश्यक है। महासभा संस्थाओं में ऐसे ही स्त्री-पुरुषों को स्थान देने और उसका काम सुचारु-रूप से चलाने के लिए अभी समय दरकार होगा। इस कठिन वस्तुस्थिति को समझ कर मैं उस प्रस्ताव का सारा कलंक अपने सिरपर लेने के लिए तैयार हुआ था। मैंने अभी उसका पढ़ना खतम किया ही था कि आन्ध्र के वीर हरि सर्वोत्तमराव साहब अपने पैरों पर खड़े हुए और उसका विरोध करते हुए एक जोरशोर की प्रभावशाली वक्तृता दी। उन्होंने कहा कि मुझ आपके प्रस्ताव के विरोध करने का अपना कर्तव्य बड़े दुःख के साथ पालना पड़ता है। मैंने कहा कि दुःख तो मुझे होना चाहिए कि मुझे ऐसा प्रस्ताव उपस्थित करना पड़ता है जिसका बचाव मैं नहीं कर सकता। ऐसे प्रस्ताव का विरोध करने और महासभा को हर हालत में ऐसे लोगों से अलग रखने में आपको तो सच्ची खुशी होनी चाहिए। मैंने इस विरोध को पसन्द किया और राय लेने के प्रसंग की राह देखने लगा। लेकिन इसके बाद ही स्वामी गोविन्दानन्द खड़े हुए और उन्होंने यह जाब्ते का ऐतराज खड़ा किया कि ऐसा कोई प्रस्ताव उसी बैठक में नहीं पेश किया जा सकता जो उससे पहले पास किये प्रस्ताव के प्रतिकूल हो। परन्तु सभापति महाशय ने इस आपत्ति को ना-मंजूर कर दिया। अगर और किसी वजह से नहीं तो सिर्फ इसी कारण से कि इसके अगले ही दिन पहला प्रस्ताव बहुमत से पास होने के उपरान्त ऐसा प्रस्ताव पास हो चुका है जिससे उस प्रस्ताव में परिवर्तन होता था। परन्तु मेरा धीरज पूरा पूरा खो देने के निमित्त कारण डाक्टर चोइथराम अनजान में हो गये। मैं समझता हूं कि वे एक जिम्मेदार आदमी हैं। उनके नाम लम्बी देश-सेवा जमा है। उन्होंने देश के लिए फकीरी अख्त्यार की है। पहले यही महासमिति ऐसे कितने ही प्रस्ताव स्वीकार कर चुकी है जो बहिष्कार के प्रस्ताव को कमजोर बनाते थे। फिर ऐसा होते हुए भी इस विषय में डा० चोइथराम ने कानूनी आपत्ति उठाई। यह देख मैं दंग रह गया। वे बिना-विचारे हो पूछ बैठे कि क्या यह प्रस्ताव महासभा के प्रस्ताव के खिलाफ नहीं है? मौलाना महम्मदअली ने मुझसे पूछा क्या यह ऐतराज ठीक नहीं है? मैंने कहा बेशक। तब वे लाचार हो गये मेरे प्रस्ताव को खिलाफ कानून जाहिर करने के लिए। तब मेरा दिल बैठ गया। किसी के वचन में या व्यवहार में कोई बात अनुचित हो सो नहीं। सबके भाषण संक्षिप्त थे। उसी प्रकार उनमें विनय की भी कमी न थी। फिर यों सबकी बात सच दिखाई देती थी। फिर भी यह सारा खेल था। जो ऐतराज किये गये वे ऐसे थे जैसे अविच-वर्ष कनिष्ठ मूर्ख व्यक्ति को संयम के सामर्थ्य का प्रवचन सुनाना। हर शख्स जानबूझ कर नहीं, बल्कि गफलत में ऐसा कर रहा था। मेरे दिल में हुआ कि उनके द्वारा ईश्वर मुझे कह रहा है 'अरे बेवकूफ; तू समझता नहीं कि तेरी बात कोई नहीं मानता है। तेरा वक्त अब नजदीक आ गया है। मेरा प्रस्ताव उड़ जाते ही श्री गंगाधरराव ने मुझसे पूछा 'मुझे इस्तीफा दे देना चाहिए न?' मैंने कहा 'हां, तुरन्त दे दीजिए।' और उन्होंने फौरन इस्तीफा लिखकर दे दिया। सभापतिजी ने उसे सभा में पढ़ सुनाया। प्रायः सर्व-सम्मति से वह पास हुआ। इससे गंगाधररावजी को आराम ही हुआ।

शौकतअली सात आठ गज दूर मुझसे बैठे थे। उन्होंने मुझे भाग जाने से रोका। मेरे दिल में यह सवाल बराबर उठा करता था कि क्या असत्य में से ही सत्य पैदा हो सकता है? क्या मैं दुष्टता के साथ सहयोग नहीं कर रहा हूं? शौकत अली मानों अपनी विशाल आंखों की चमक से मुझे कह रहे थे 'कुछ बिगड़ा नहीं है, सब ठीक हो जायगा।' उन्होंने मुझे मंत्र मुग्ध कर लिया। मैं भाग खड़े होने के लिए व्याकुल हो रहा था पर भाग न सका।

सभापति ने पूछा—'अब सभा का काम खतम किया जाय न।' मैंने कहा—'जरूर।' परन्तु मौलाना अबुल कलाम आजाद मेरे चेहरे पर बदलने वाले रंगों को गौर से देख रहे थे। उन्होंने तुरन्त आकर कहा—आपने पैगाम सुनाने का वचन जो दे रक्खा है। उसके बिना सभा का काम पूरा कैसे हो सकता है?' मैंने कहा—'मौलाना साहब, आपका कहना बजा है। आगे काम किस तरह करना चाहिए इस सिलसिले में मैं कुछ कहना चाहता था। परन्तु गोपीनाथ के प्रस्ताव के बाद पिछले एक घण्टे से जो कुछ यहां हो रहा है उससे मुझे दुःख पहुंचा है। अब मैं यह नहीं जानता कि मेरी हालत क्या है और मुझे क्या करना चाहिए?' उन्होंने कहा—अच्छा आप यही कह दीजिए।' मैंने मंजूर किया। और हिन्दुस्तानी में एक छोटा सा भाषण करके अपना हृदय चीर कर उसमें टपकता हुआ लहू उन्हें दिखाया। मुझे रुलाना कोई एहीवैसी बात नहीं है। आंसू बहाने के मौकों पर भी मैं आंसुओं को रोकने की कोशिश करता हूं। परन्तु इस मौके पर तो दिल को मजबूत बनाने का पूरा पूरा प्रयत्न करते हुए भी आखिर मेरी हिम्मत टूट गई। सभा पर भी उसका असर पूरा पूरा दिखाई देता था। मैंने अपनी सारी मनोदशा का वर्णन उनके सामने कर दिखाया और कहा कि यदि शौकतअली रास्ते में न आये होते तो मैं भाग जाता। क्योंकि जिस प्रकार मैं इस बात का अभिमान रखता हूं कि मुसल्मानों की इज्जत मेरे हाथ में सुरक्षित है उसी प्रकार मैं मानता हूं कि हिन्दुओं की आबरू उनके हाथों में महफूज है। और फिर मैंने कहा कि अपने भावी कार्यक्रम के विषय में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। इतना ग्लानि-पूर्ण भाषण मैंने शायद ही कभी किया हो। यह खतम कर के मैं तुरन्त ही मौ. अबुल कलाम आजाद की खोज करने लगा। वे चुपके से मेरे पास से खिसक कर दूर मेरे सामने खड़े थे। मैंने उनसे कहा—'अब तो जाना चाहिए न'। उन्होंने कहा 'नहीं—जरा ठहर जाइए। हमें भी अपने खयालात आप पर जाहिर करना है।' यह कह कर उन्होंने सभा से कुछ कहने की दरख्वास्त की। सब लोग सिसकते हुए बोल रहे थे। लंबी सफेद दाढ़ी वाले सिक्ख मित्र को बोलते हुए गद् गद् कंठ हो कर बैठते देख कर मेरा दिल हिल गया। शौकतअली भी बोले और दूसरों ने भी माफी मांगी और अटल रूप से मेरा साथ देने का यकीन दिलाया। महमदअली बोलते बोलते रो पड़े। मैंने उन्हें दिलासा देने की कोशिश की।

मुझे किसी बात की माफी न देनी थी, क्यों कि किसी ने मेरा कुछ बिगाड़ा न था। उलटा सब ने मेरे प्रति ममत्व दिखाया था। मुझे दुःख इसलिए हुआ था कि महासभा के संकल्प की तराजू पर चढ़ कर हम अधूरे साबित हुए थे। देश के हम इतने पामर प्रतिनिधि थे। मुझे वहां अपना स्थान ही न दिखाई दिया।

टिप्पणियां

शुभस्य शीघ्रम्

ज्यों ही महा-समिति में यह प्रस्ताव पास हुआ कि जो खुद सहियों को अमल में न ला सकते हों वे इस्तीफा दे दें, श्री कालिदास जवेरी ने अपना इस्तीफा पेश कर दिया। आप वकालत करते हुए भिन्न भिन्न समितियों के सदस्य थे। मतदाता लोगोंने इस बात को जानते हुए भी कि उन्होंने फिर वकालत करना शुरू कर दिया है उन्हें चुना था। समिति के इस निमंत्रण का जवाब तुरन्त ही देने के लिए मैं श्री कालिदास जवेरी को बधाई देता हूं। आप एक अच्छे कार्यकर्ता हैं। आइए, हम आशा करें कि इसलिए कि उन्होंने अपने पदों से इस्तीफा दे दिया है, महासभा उनकी सेवाओं से वंचित न रहेगी। हर शख्स जो या तो महासभा के तमाम कार्यक्रमों से सहमत न हो, या जो कमजोर हो या ऐसी परिस्थिति में हो जिस पर उसका कुछ वश न चलता हो और इसलिए वह पदाधिकारी न हो सकता हो, उसी प्रकार अच्छी तरह काम कर सकता है जिस प्रकार मानों वह कोई पदाधिकारी हो। मिसाल के तौर पर श्री जवेरी को महासभा के सदस्य बनाने से, चरखा कातने-कताने से, खादी-प्रचार करने से और चंदा जमा करने आदि से कोई नहीं रोक सकता। सच्चा कार्यकर्ता तो पदाधिकारी की जिम्मेवारी को बनिस्बत काम करने को ज्यादह पसन्द करेगा और पदारूढ न होने के कारण वह उसके अंदर की तू तू-मैं मैं से बच जाता है।

जब कि महासमिति ने दीवानी मुकदमों से संबंध रखनेवाला प्रस्ताव नामंजूर कर दिया, फौरन ही श्री गंगाधर राव देशपांडे ने अपना इस्तीफा पेश कर दिया और उसीदम वह मंजूर भी कर लिया गया। श्री देशपांडे महासभा के महामंत्री थे। वे करनाटक प्रान्तीय समिति के सभापति भी हैं। श्री देशपांडे अपने प्रान्त की कार्य-कारिणी आत्मा है। देखना चाहिए अब करनाटक की कठिनाइयां किस तरह दूर होंगी। वे महासभाके काम का संगठन कर रहे हैं।

श्री गंगाधर राव का यह उदाहरण एक भारी आवश्यक है। अब यदि वे बिना किसी ओहदे पर रहते हुए भी लोगों का ठीक रास्ता दिखाते रहे, तो हम सब लोगों के अनुकरण के लिए एक मिसाल बन जायँगे। हमें ऐसे कार्यकर्ताओं को सख्त जरूरत है जो ओहदे तो न चाहते हों पर उतनी ही अच्छी सेवा करना जरूर चाहते हों जितनी कि एक अच्छा पदाधिकारी कर सकता हो। ऐसे स्त्री-पुरुषों को समाज का नमक ही समझिए। वे उसको 'रिजर्व' सेना है।

इस मजेदार स्थिति से एक और सवाल दिल में उठता है। क्या जरूरत है जो हम सब लोग जायदादें रक्खें? हम जायदादें कुछ अरसे रखने के बाद छोड़ क्यों न दें? सर्वाधिकार का जिन्हें खयाल नहीं एक व्यापारी बेइमानी से भरे मतलबों के लिए ऐसा करते हैं तो फिर हम एक बड़े और नीतियुक्त मतलब के हासिल करने को ऐसा क्यों न करें? हिन्दुओं के लिए खास अवस्था पर पहुंचने पर यह मामूली बात थी। प्रत्येक हिन्दू से यह आशा रक्खी जाती है कि एक अरसे तक गृहस्थाश्रम में रहने के बाद वह वैसा ही जीवन अख्त्यार करे जिसमें जायदाद पास नहीं रक्खी जाती। यह पुरानी नजीर क्यों हम फिर से ताजी क्यों न करें? इसका परिणाम में आखिर तो यही होता है कि हम जीवन निर्वाह के लिए उनकी दया पर निर्भर रहते हैं कि जिन्हें हमने अपनी जायदाद सौंप दी है। यह विचार मेरे दिल को बड़ा आकर्षक मालूम होता है। ऐसे विश्वास के लाखों उदाहरणों में एक भी ऐसा दृष्टांत मुश्किल से मिलेगा जिसमें विश्वास का दुरुपयोग हुआ हो। अवश्य इसमें से कितने ही नैतिक सवाल पैदा होते हैं। एक पिता पुत्र का दृष्टांत लीजिए। यदि पुत्र पिता के जैसा ही असहकारी है तो फिर पिता अपनी जायदाद की मालिकी के हक का बोझ उस पर लाद कर उसे क्यों सतावें? ऐसे सवाल तो हमेशा ही पैदा होंगे। मनुष्य की नैतिक कीमत कितनी है इसकी जांच सदाचार के ऐसे गूढ प्रश्न बारीकी से ठीक ठीक तौलने में उसकी शक्ति कितनी है, इसपर निर्भर है। बेइमान शख्सों को इसका दुरुपयोग करने का मौका न देकर यह रूढि किस तरह व्यवहार में लाई जा सकती है इसका निर्णय तो एक बड़े अरसे तक के अनुभव के बाद ही हो सकता है। फिर भी इस खयाल से कि उसका दुरुपयोग होगा किसीको इसका प्रयोग करने के प्रयत्न से रुकना न चाहिए। गीता के दिव्य कर्ता "दिव्य गीता' का उपदेश देने से न रुके यद्यपि शायद वे जानते थे कि सब प्रकार की बुराइयों यहां तक कि खून को भी न्यायसंगत ठहराने के लिए उसको खूब तोड़ा मरोड़ा जायगा।

क्षमा याचना

मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ नीचे दिया हुआ पत्र छाप रहा हूं। बारहबंकी पर लिखी मेरी टिप्पणी में मैंने अपने संवाददाता का नाम नहीं लिखा था लेकिन अब मैं नाम को अधिक नहीं छिपा सकता। मैं चाहता हूं कि श्री शेब की तरह सब अपनी भूल स्वीकार करने को तैयार रहेंगे और हिन्दू-मुसलमानों की खराब करतूतों का विश्वास कर लेने में जल्दी न करेंगे। पाठकों को भी मेरे साथ यह प्रसन्नता होगी कि बारहबंकी के हिन्दू म्युनिसिपल कमिश्नरों पर जो दोष लगाया गया था वह झूठा था। उनके साथ अन्याय करने का अनजान में हथियार बनने के लिए मैं उनकी माफी मांगता हूं। संपादक "यंग इन्डिया"

"महाशय,

बारहबंकी के हालात मैंने आपको लिखे, उसके बाद बारहबंकी के जिला समिति के एक मुसलमान सभ्य ने, जो प्रान्तिक समिति के भी सभ्य हैं, मुझे खबर दी कि जो खबर मुझे दी गई थी वह सच न थी। जो कुछ हुआ वह यह कि बारहबंकी का जो पुराना म्युनिसिपालिटी का कानून था कि उर्दू लिपि में ही अरजियां दी जाय उसको बदल कर यह कानून किया गया कि अरजियां देव नागरी और उर्दू दोनों लिपि में लिखी जा सकती है। यह कानून स्वयं मेरी राय में तो ठीक और न्यायानुकूल ही है। मुझे बड़ा अफसोस है कि मैंने आपको वे खबरें पहुंचाई जो गलत साबित हुईं। मेरी सिर्फ यही दलील है कि जिन्होंने मुझे यह खबर दी थी वह बड़े विश्वास लायक शख्स थे। मैं उनका नाम देना नहीं चाहता लेकिन इतना ही कहना चाहता हूं कि वे दोनों महासभा के अधिकारी कार्यकर्ता हैं और उनका जातीय पक्षपात से परे होना सब कबूल करते हैं। यही कारण है कि मैंने जो कुछ उन्होंने कहा झट मान लिया। फिरभी मैं उन महाशयों को दोष देना चाहता जिन्हें इस बात के सच होने का पूरा विश्वास था। मैं यहां यह भी कह देता हूं कि सर्व गलती तो मेरी ही है। आपको लिखने के पहले मुझे इस बात की पूरी जांच कर लेनी चाहिए थी, यद्यपि वे खबरें उन शख्सों की तरफ से पहुंचाई थीं जिन्हें मैं सम्पूर्ण विश्वास के लायक समझता हूं। भविष्य के लिए मैंने यह सबक सीखा। लेकिन अभी तो मैं अपना सच्चे दिल से सिर्फ अफसोस ही जाहिर करता हूं कि हिन्दू-मुस्लिम तनाजा जो अभी बहुत बढ़ा हुआ है उसपर बुरा असर करने वाली झूठी खबरें फैलाने का हथियार मैं अनजान में ही बन गया।" आपका सेवक

(यंग इंडिया) शौ० कु० शौकी

एक ही कार्यक्रम

वार्षिक मूल्य ४)
छ मास का „ २)
एक प्रति का „ -)॥
विदेशों के लिए „ ७)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ४८

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, आषाढ सुदी २, संवत् १९८१ रविवार, १३ जुलाई, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

धारा-सभाप्रवेश

महासमिति के खतम हो जाने पर पंडित मोतीलालजी आनन्दी (कोटुम्बिक) मुलाकात के लिए राजकोट गये थे। वहां से बम्बई जाते वक्त वे अहमदाबाद ठहरे और मुझसे मिले। बातचीत में मेरी मुंह से यह बात निकल पडी कि अब आज की हालत में स्वराजवादियों का धारासभायें छोड देना बहुत ही नुकसानदेह होगा। उन्होंने मुझे फौरन ही मेरा पहला लेख याद दिलाया कि यदि मैं स्वराजवादियों को यकीन करा सकता तो मैं उन्हें धारासभाओं में से निकल जाने को कहता। मैंने कहा कि मुझे इन दो बातों में कुछ विरोध नहीं मालूम होता। प्रथम कथन हमेशा के लिए और सिद्धान्त के विचार से कहा गया है और दूसरा कथन अभी के लिए ही उपयोगिता के विचार से कहा गया है। इसमें कोई शक नहीं कि स्वराजवादियों ने सरकार के अहाते में वह हलचल पैदा कर दी है। और इसमें भी कोई शक नहीं है कि अभी धारासभाओं से उनका निकल आना कमजोरी और उनके बल का भंग होना समझा जायगा। दर असल, जहां तक महासमिति का सबब है, वहां तक स्वराजियों की स्थिति कभी इतनी जोरदार न थी जितनी कि आज है। वे अपनी नैतिक जीत का दावा कर सकते हैं। धारासभाओं में जाकर सरकार के साथ लडने का—जैसा कि वे विश्वास करते हैं—विश्वास रखते हुए अभी धारासभाओं से निकल आने का उनके पास कोई भी सबल कारण नहीं है।

इस मौके पर धारासभाओं में से उनका निकल आना देश की वर्तमान उदासीनता को और भी बढा देगा और जो सरकार न्याय के नाम पर कुछ भी देना नहीं चाहती और बिना किसी शोभा के जो इच्छा न होते हुए भी दबाव पडने पर दब जाती है, उसके हाथों को और भी अधिक मजबूत कर देगा।

स्वराज्यवादियों को धारासभायें छोड देने का वही अच्छा मौका होगा जब हम कट्टर असहयोगी जिस कार्यक्रम को समझते हैं कि वही सिर्फ स्वराज दिला सकता है उसके मुताबिक उत्साह के साथ काम करने लगें और उसमें यह दिखावें कि अधिकाधिक सफलता मिलती जाती है और जब कडवे अनुभव के बाद स्वराज्यवादियों को यह विश्वास हो जाय कि धारासभायें सिर्फ मिरच-मसाला तो दे सकती हैं लेकिन रोटी नहीं दे सकती और इसलिए हमें अपना तमाम वक्त और ख्याल रचनात्मक कार्यक्रम में ही लगा देना चाहिए।

इन तमाम हालात की कुंजी तो हम असहयोगियों के हाथ ही में है। हमारा दावा है कि सर्वसाधारण हमारे पक्ष में है। कम से कम मैं तो ऐसा ही महसूस करता हूं। अगर वे अपने पक्ष में है तो हमें नतीजे के द्वारा यह दिखा देना चाहिए—सिर्फ महासभा में बहुमति प्राप्त कर के नहीं, लेकिन ठोस काम कर के हमें यह दिखा देना चाहिए। सब अपरिवर्तनवादी सब प्रान्तों में ठीक ठीक परिणाम नहीं दिखा सकते हैं। शायद इसमें उनका दोष नहीं है। हम कार्यक्रम को तो पसंद करते हैं केवल उसके मुताबिक काम करने की शक्ति को हमने नहीं बढाया है। यदि यह निदान सही है तो हमें काम करना चाहिए। क्योंकि शब्दों से नहीं लेकिन काम ही से हम अपने कार्यक्रम के मुताबिक काम करने की शक्ति प्राप्त होगी। जब हम ठोस काम करके दिखावेंगे तभी, उसके पहले नहीं, स्वराजी अपने आप धारासभाओं में से निकलेंगे।

मेरे ख्याल में मध्य-दल के लिए कोई स्थान नहीं है। मध्य-दल डॉवाडोल पक्ष रहता है। वह बात के साथ हो बदला रहता है। और सच तो यह है कि हम सब को एक या दूसरा रास्ता जरूर पसंद कर लेना चाहिए। जो धारासभाओं में विश्वास रखते हैं उन्हें धारासभाओं में ही रहना चाहिए और अगर वे बाहर हैं तो उन्हें धारासभाओं में जाना चाहिए या उसके लिए संगठित काम करना चाहिए। अगर वे धारासभाओं में विश्वास रखते हुए भी लोकमत के डर से धारासभाओं में से निकल आवेंगे तो वह उनके लिए और देश के लिए बडा नुकसानदेह होगा। जो स्वराज चाहते हैं वे अपना वक्त आलस्य में गवां देने की हिम्मत नहीं कर सकते।

मेरी स्थिति

मैं महासभा पर अपना कब्जा बनावटी और झूठी बहुमति से कायम रखना नहीं चाहता हूं और इसलिए भी कब्जा नहीं कायम रखना चाहता कि मेरे हाथ खींच लेने पर संगठन ढीला होगा और उदासीनता फैलेगी। यदि मैं अपना कार्यक्रम मंजूर नहीं करा सकता हूं तो उसका भी सामना करना ही पडेगा। उत्साहहीनता के बाद फिर जोश आना ही चाहिए। १९२०-२१ में महासभा सभी महासभा

शायद हमारी भिन्नता का कारण हो, पर मुसल्मानों को मैं सावधान कर देता हूं कि कहीं वे इससे यह अनुमान न निकालें कि मैं मुसल्मानों को आम तौर पर सैनिक और शिक्षा-शास्त्री मानता हूं। मेरी अपनी राय तो यह है कि समष्टि-रूप से हम सब प्रायः एक से हैं-बराबर हैं और अच्छा अवसर मिलने पर यदि हम कोशिश करें तो एक दूसरे को खुले मुकाबले में हरा सकते हैं।

मिथ्या अभिमान ?

खादी-मण्डल ने बहुतेरे नौजवानों को खादी-काम के लिए रक्खा है। पर मुझे मालूम हुआ है कि उसे ऐसे अच्छे और लायक आदमी जो अपना सारा समय उसके लिए दे सकें, मिलने में दिक्कत पड़ रही है। वे दूसरे जर्ये से अपनी गुजर करना चाहते हैं। मेरी राय में तनख्वाह न लेने की प्रवृत्ति कोई सुचिन्ह नहीं है। हमें सारा समय लगाने वाले कार्यकर्ताओं की एक सेना की जरूरत है। भारत जैसे निर्धन देश में बिना वेतन दिये ऐसे कार्यकर्ता मिलना मुमकिन नहीं है। ईमानदारी और वफादारी के साथ किये गये राष्ट्रीय कार्य के लिए वेतन लेना मैं शर्म की बात नहीं समझता, उलटा मुझे तो उसमें गौरव दिखाई देता है। जब स्वराज स्थापित हो जायगा तब हमें तमाम समय देने वाले वैतनिक कार्यकर्ताओं को रखने की जरूरत होगी। तब क्या उस अवस्था में हमें स्वराज सर्विस में शरीक होने पर भारतीय सिविल सर्विस में नौकरी करने वाले अंगरेजों से कम अभिमान होगा ? फिर आज जब कि, पन्शन की तो बात दूर रहे, पर स्थायित्व की भी कोई गॅरंटी नहीं दिया सकता, यह कहां तक उचित है ? और क्या यह भीषण उलटी गत नहीं है कि एक ओर तो वकील लोग जीविका के अभाव के कारण फिरसे वकालत करने जाते हैं और दूसरी ओर खादी-मंडल को सुयोग्य कार्यकर्ता मिलना दुश्वार हो रहा है ?

एक और बात की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। जब कोई व्यक्ति किसी राष्ट्रीय कार्य में स्वेच्छा से कोई नौकरी अख्त्यार करता है फिर वह चाहे वेतन लेकर करे या बिना वेतन करे, वह मामूली नौकरी के तमाम नियमों का पालन करना अंगीकार कर लेता है। बल्कि स्वेच्छा से काम करने वाले पर तो यह बात और भी अधिक चरितार्थ होती है। इसलिए उसे बिना इजाजत के छुट्टी न जाना चाहिए। बिना इजाजत लिए वह जेल का भी आवाहन नहीं कर सकता। सविनय भंग एक नहीं किन्तु अनेक आशयों में सविनय होना चाहिए। न तो उसकी डींगें मारना चाहिए। न उसमें जोश-खरोश होना चाहिए। वह तो एक सुव्यवस्थित, विचार पूर्ण और नम्र आहुति होनी चाहिए।

जैसे से तैसे आप

'रंगीला रसूल' नामक न पढ़ने लायक पुस्तिका तथा 'शैतान' नाम निन्दनीय पर्चे के संबंध में मैंने जो उद्गार प्रगट किये थे उसके सिलसिले में आर्य-समाजियों की तरफ से ढेर के ढेर पत्र आये हैं। वे मेरी बात की सचाई के तो कायल हैं पर कहते हैं कुछ मुसल्मान पर्चों का भी यही हाल है और पहले उन्होंने यह गाली-गलौज शुरू की तब आर्य-समाजी उसका वैसा ही जवाब बतौर बदले के देने लगे। पत्र-लेखकों ने मेरे पास ऐसे कुछ पर्चे भेजे भी हैं। उनके कुछ हिस्सों को पढ़ने की व्यथा मैंने सहन की है। उनके कुछ हिस्सों की भाषा तो दिल को दहला देती है। उन्हें यहां उद्धृत करके मैं इन पन्नों को कलंकित नहीं करना चाहता। एक मुसल्मान-लिखित स्वामी दयानन्द के एक जीवन चरित की एक प्रति भी मुझे मिली है। मुझे कहते हुए दुःख होता है कि यह बहुतांश में उस महान् धर्म-सुधारक का तोड़ा-मरोड़ा चरित है। उनके किये हर काम पर लेखक ने जहर उगला है। एक पत्र-लेखक इस बात की बड़ी बुरी तरह शिकायत करते हैं कि मेरे लेखों ने मुसल्मान लेखकों और वक्ताओं का हौसला इतना बढ़ा दिया है कि वे अब आर्य-समाज और समाजियों को और भी ज्यादह गाली-गलौज करने लगे हैं। एक ने हाल ही हुई लाहौर की एक सभा का हाल लिख कर भेजा है जिसमें आर्य-समाज पर ऐसी ऐसी गालियों की वृष्टि की गई कि जिनको लिखते हुए लेखनी कांपती है। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि ऐसी कार्रवाइयों के साथ मेरी कुछ हमदर्दी नहीं हो सकती। मैंने जो कुछ अपनी राय आर्य-समाज के बारे में प्रकाशित की है, उसके होते हुए भी मैं आर्य समाज के संस्थापक के एक नम्र प्रशंसक होने का दावा रखता हूं। उन्होंने कितनी ही कुप्रथायें हमें दिखाई हैं जो हिन्दू-समाज को भ्रष्ट कर रही थीं। उन्होंने संस्कृत विद्या के पठन-पाठन का शौक बढ़ाया। उन्होंने अन्धविश्वास को ललकारा। अपने शुद्ध चरित्र के द्वारा उन्होंने अपने काल के समाज का स्तर ऊंचा कर दिया। उन्होंने निर्भयता सिखाई और कितने ही निराश होने वाले युवकों में नई आशा का संचार किया। और न मैं उनकी राष्ट्रीय सेवा से बेखबर हूं। आर्य-समाज ने राष्ट्र-सेवा के लिए कितने ही सच्चे और स्वार्थत्यागी कार्यकर्ता दिये हैं। उसने हिन्दुओं में स्त्री शिक्षा का जितना प्रचार किया है उतना ब्रह्मसमाज को छोड़ कर शायद ही किसी हिन्दू संस्था ने किया हो। कुछ अनजान लोगों ने यहां तक कह डाला है कि मैंने श्रद्धानन्दजी के विषय में वे बातें इसलिए लिखी हैं कि वे मेरी बातों की आलोचना किया करते हैं। परन्तु उनका यह दोषारोपण मुझे उनके गुरुकुल में किये मार्गदर्शक कार्य को फिरसे स्वीकार करते हुए नहीं रोक सकता। ऐसी हालत में मैं जहां एक ओर समाज, सत्यार्थप्रकाश, ऋषि दयानन्द तथा स्वामी श्रद्धानन्दजी के विषय में प्रकाशित अपने उद्गारों का एक भी शब्द वापस लेना नहीं चाहता, तहां दूसरी ओर मैं फिर दुहराता हूं कि मैंने बिलकुल मित्रभाव से वह आलोचना की है और इस अभिलाषा से की है कि समाज उन त्रुटियों से मुक्त हो कर जिनकी ओर मैंने उसका ध्यान दिलाया है, अधिक सेवा कर सके। मैं चाहता हूं कि वह समय के साथ कदम बढ़ाते हुए चले, खण्डन-मण्डन वृत्ति को छोड़ दे और अपनी राय पर कायम रहते हुए दूसर संप्रदाय वालों के साथ उसी सहिष्णुता का परिचय दे जिसका दावा वह खुद अपने लिए करता है मैं चाहता हूं कि वह अपने कार्य-कर्ताओं पर निगाह रक्खे और तमाम कलंक लगाने वाले लेखों-पत्रों आदि को बंद कर दे। यह कोई जवाब नहीं है कि मुसल्मानों ने पहले इस निन्दा-कार्य को शुरू किया है। मुझे पता नहीं कि उन्होंने ऐसा किया या नहीं। पर मैं इतना जरूर जानता हूं कि अगर उनकी बातों के जवाब में वैसी ही बातें न कही जातीं तो थक कर वे अपने आप चुप हो जाते। मैंने तो समाजियों से शुद्धि तक को छोड़ देने को नहीं कहा है। पर मैं उनसे और मुसल्मानों से भी यह प्रार्थना जरूर करूंगा कि वे अपने शुद्धि के वर्तमान सवाल पर फिर से जरूर विचार करें।

उन मुसल्मान लेखकों और वक्ताओं से जिनके निस्बत मेरे पास खत आये हैं, यह कहना चाहता हूं कि अपने प्रतिपक्षी को मनचाही गालियां देकर वे न तो अपनी नेकनामी को बढ़ाते हैं और न अपने मजहब को। आर्य-समाज और समाजियों को गालियां देकर वे न तो कुछ अपना फायदा कर सकते हैं और न इस्लाम की खिदमत कर सकते हैं।

(यंग इंडिया) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, आषाढ सुदी १२, संवत् १९८१

एक ही कार्यक्रम

मित्रों ने मुझे एक ही ऐसा सामान्य कार्यक्रम ठहराने को कहा है जिसमें राजा-महाराजा, अपरिवर्तनवादी, परिवर्तनवादी, उदारमत वाले, स्वतंत्र पक्ष वाले वकालात करने वाले वकील, ऍंग्लो इन्डियन और दूसरे गैर हिन्द यूरोपियन के शामिल हो सकते हैं। मुझे इस शर्तपर यह कार्यक्रम ठहराने को कहा गया है कि स्वराज पाने के लिए वह पुरअसर और त्वरित होना चाहिए। सबसे ज्यादह असर करने वाला और तेज कार्यक्रम जो मैं बता सकता हूं वह है—खादी-संगठन, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य बढाना और हिन्दुओं की तरफ से अस्पृश्यता का निवारण। मेरा यह पक्का विश्वास है—जो बदल नहीं सकता कि यदि हम इन तीन बातों को सफलता-पूर्वक हासिल कर लेंगे तो हम जरा सी भी मुश्किल के बिना स्वराज स्थापित कर सकेंगे। और मेरा यह भी विश्वास है कि यदि सब पक्ष मिलकर इस कार्यक्रम को करेंगे तो यह एक ही वर्ष में सफल हो सकता है। खादी की सफलता के मानी होंगे विदेशी कपडों का बहिष्कार। जितना कपडा हिन्दुस्तान को चाहिए उतना कपडा तैयार करना हिन्दुस्तान का हक है और फर्ज भी है। यह करने के लिए उसके पास साधन भी मौजूद हैं। विदेशी कपडे का बहिष्कार ही स्वयं अंग्रेजों के मन को पवित्र कर देगा और हिन्दुस्तानी चीजों को हिन्दुस्तानियों की दृष्टि से देखने में जो बहुत बडी रुकावट उन्हें मालूम होता है उसे वह दूर हटा देगा। इसलिए अगर सब इस कार्यक्रम की त्रिपुटि को अख्त्यार करने के लिए तैयार हैं तो मैं एक साल के लिए असहयोग के कार्यक्रम और सविनय भंग को मुल्तवी रखने की राय देने के लिए तैयार हूं। मैं एक साल इसलिए कहता हूं कि यदि ईमानदारी से इस कार्यक्रम के अनुसार काम किया जायगा तो इसी अरसे में विदेशी कपडे का सच्चा बहिष्कार जरूर हो जाना चाहिए।

मुझे यह कहने की जरूरत नहीं कि सिर्फ स्वराज्यवादियों का इस कार्य में सहयोग, असहयोग या सविनय-भंग की तैयारियों को एक साल तक मौकूफ रखने के लिए काफी नहीं है। वे तो राजी ही हैं। महासभा के दूसरे सभ्यों के मुआफिक वे भी सम्पूर्ण रचनात्मक कार्यक्रम से बंधे हुए है। जबतक सरकार के दिल में परिवर्तन नहीं होता तबतक असहयोग की जरूरत है। और बिना इस परिवर्तन के जो लोग महासभा के बाहर रहते हैं वे खुले तौर पर सरगर्मी से इस काम में हाथ न बटायेंगे।

मुझे भय है कि अभी वह समय नहीं आया है कि सरकार या वे लोग जिनकी हस्ती या बडाई सरकार से मिलनेवाले संरक्षण पर आधार रखती है, इस प्रकार लोगों के साथ सच्चे दिल से सहयोग करने को तैयार होंगे। मैं यह भी जानता हूं कि एक बहुत बडी तादाद लोगों की अबतक शुद्ध खादी की तजवीज की कायल भी नहीं हुई है। वे चरखे की महान् शक्ति पर विश्वास ही नहीं करते। वे हिन्दुस्तानी मिलों के खिलाफ बुरी कारंवाई करने का इलजाम लगाते हैं। चरखे के सन्देश से क्या मतलब है उसका आलंकारिक चित्र खींचने की तकलीफ थोडे ही लोग उठाते हैं।

यदि चरखे को मानने वाले अपने विश्वास के सच्चे हैं तो मुझे कुछ भी शक नहीं कि देश चरखे को बहुत ही जल्दी मानने लगेगा। लेकिन मेरे कुछ मित्र मुझसे कहते हैं कि मैंने निदान ठीक नहीं किया। वे कहते हैं कि यदि मैं असहयोग और सविनय भंग को छोड दूं तो सब के सब चरखे की ओर ध्यान देने लगेंगे और मेरा यह शक कि सरकार हिन्दू और मुसलमानों को लडाना चाहती है विश्वास के लायक नहीं है। मैं आशा करता हूं मैं गलत निकलूं।

मिलों के बारे में मैं फिर एक बार अपनी स्थिति का खुलासा कर देता हूं। मैं उनका दुश्मन नहीं हूं। मैं मानता हूं कि हमारे जीवन में अभी कुछ समय तक उनका भी स्थान है। मिलों की मदद के बिना विदेशी कपडे का बहिष्कार शायद जल्दी सफल न हो सकेगा। लेकिन यदि वे इसमें सहाय तो करना चाहती हैं तो उन्हें राष्ट्रीय बनना पडेगा। वे सिर्फ शेरहोल्डर और एजन्टों के लिए ही न चलाई जानी चाहिए, किन्तु समस्त राष्ट्र के लिए ही चलाई जानी चाहिए। हमारे कार्यक्रम से तो फिर भी मिलों को निकाल ही देना पडेगा; क्योंकि खादी को अपने लिए अभी स्थान बनाना है। सात लाख गावों में से अभी एक को भी खादी का संदेश नहीं पहुंचाया गया है। अभी हिन्दुस्तान का ¾ भाग मिलों के हाथ में है। यदि खादी को स्थायी जगह देना है तो महासभा के लोगों को मिलों के कपडे छोड कर खादी ही को इस्तैमाल करना चाहिए और उसे लाखों में फैलाना चाहिए। स्वदेशाभिमानी मिल-मालिक लोग मेरे प्रस्ताव की उपयोगिता, आवश्यकता और न्यायानुकूलता एक ही नजर में समझ सकते हैं। व अपनेको नुकसान पहुंचाये बिना ही खादी को सहायता कर सकते हैं। यदि ऐसा समय आवे जब कि सारा हिन्दुस्तान खादी का स्वीकार करे तब उन्हें भी राष्ट्र के साथ आनन्द मनाना चाहिए और उन्हें लंकाशायर के मिल-मालिकों की तरह किसी दिन ऐसा वक्त आना ही चाहिए कि अपनी पूंजी और मशीनरी का उपयोग करने के दूसरे रास्ते उन्हें मिल जायं। आग्रही मित्रों के संतोष के लिए मैंने सर्व सामान्य कार्यक्रम तैयार किया है। लेकिन मैं कार्यकर्ताओं को यह चेतावनी देता हूं कि वे अपने और अपने पडौसी के कातने के आवश्यक काम से अपना ध्यान जरा भी दूर न करें। यदि सब लोग अभी इसको मानने के लिए तैयार नहीं हैं तो कार्यकर्ताओं की श्रद्धा उन्हें मनावेगी। कोई दिन ऐसा आयगा यह निश्चित समझिए। उस अमूल्य दिन को तो वही लोग निश्चित कर सकते हैं जिन्हें इसमें संपूर्ण श्रद्धा है और जो भारी से भारी मुश्किलों के होते हुए भी इस काम में लगे हुए हैं।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

१८१४ और १९१४

खादी प्रतिष्ठान वाले बाबू क्षितीशचन्द्र दासगुप्त सूचित करते हैं कि आज से सौ बरस पहले अर्थात् १८१४ में दो करोड रु० (अब १२ करोड के बराबर) की खादी अकेले कलकत्ते से देश-देशान्तर को गई थी; पर दूसरे हाथ १९१४ में हिन्दुस्तान ने ६६ करोड का विदेशी कपडा मंगाया! जहां ऐसी दशा हो वहां हिन्दुस्तान यदि कंगालों और मुफलिसों का मुल्क हो जाय तो क्या आश्चर्य है? यदि हम तरह तरह के प्रलोभनों के शिकार होकर कताई-बुनाई का व्यवसाय न गवां बैठते तो हमारी यह नादार हालत कभी न हुई होती। हम ऐसा इसलिए न कर सके कि देश के प्राण-रूप यह उद्योग जान-बूझ कर कोशिश कर के तहस नहस किया गया है और उसे नष्ट-भ्रष्ट करने वालों ने उसके बजाय दूसरा उद्योग लोगों को नहीं बताया न दिया। (नवजीवन)

कताई का प्रस्ताव

महासमिति का कताई वाला प्रस्ताव मेरी राय में महासमिति के तमाम प्रस्तावों से अधिक महत्वपूर्ण है। पर उसको हंसी में गुजार देने की प्रवृत्ति कुछ लोगों की दिखाई देती है। महासभा संस्थाओं के सदस्य एक ही महीने में इस हंसी के अनौचित्य को दिखला सकते हैं। अगर खादी के सिर्फ आर्थिक महत्व को ही मान लें तो तजरिबे से यह साबित होगा कि आर्थिक क्रान्ति करने के लिए इस प्रस्ताव की जरूरत थी। महासभा का जो सब से अधिक लोकप्रिय कार्यक्रम है उसके लिए सिर्फ आधा घण्टा काम करना महासभा के कार्यकर्ताओं के लिए कुछ ज्यादा नहीं है।

जिन लोगों ने इस प्रस्ताव के हक में राय दी थी वे तो अपने आप इसका अमल करने के लिए बाध्य हैं। मेरी राय में दण्ड-विधान के लिए उस प्रस्ताव में अच्छा स्थान था। किसी संस्था के सदस्य यदि स्वयं अपने ऊपर कुछ शर्तें लगावें तो उनके भंग होने की दशा में कुछ सजा रखने का अधिकार उस संस्था को जरूर है। पर अब जब कि दण्ड-विधान उस प्रस्ताव में नहीं रह गया है, मैं आशा करता हूं कि वे लोग भी जिनका एतराज था उस प्रस्ताव का पालन करेंगे।

इससे अगणित लाभ होने की संभावना है। महासभा के तमाम प्रतिनिधियों के लिए चरखा कातना कर्तव्य-रूप है। तमाम-बीसों प्रान्तों में प्रान्तीय, जिला, तहसील और ग्राम्य समिति हैं या होनी चाहिए। वे हरएक कम से कम पांच सौ एसे प्रतिनिधि रखती है। मुझे मालूम हुआ है कि कुछ प्रान्तों में कुछ हजार प्रतिनिधि हैं इनकी छोटी से छोटी तादाद लें तो १० हजार से ऊपर सदस्य हो जाते हैं। १० अंक के २००० गज सूत का मतलब है कोई १० तोला। इस हिसाब से दस हजार सदस्य कोई २५,०० पौंड सूत भेजते रहेंगे। इसका यह मतलब हुआ कि इतने प्रतिनिधियों के सूत से पांच हजार गरीबों को कुरतों के लिए कपड़ा मिलेगा। दूसरी बातों को छोड़ दें तो भी क्या गरीबों के लिए इतनी मिहनत करना उचित नहीं है? जरा खयाल कीजिए—इस काम का असर गरीब लोगों पर क्या पड़ेगा? जब उनको यह मालूम होगा कि हमारे लिए महासभा के लोग इतना काम कर रहे हैं तब उनके जीवन में नई आशा का संचार हुए बिना न रहेगा।

एक और बात। ये दस हजार प्रतिनिधि सिर्फ खुद ही चरखा कात कर खामोश न हो रहेंगे। वे अपने उत्साह का संचार उन लोगों में भी जरूर करेंगे जिनके प्रतिनिधि वे हैं और इस तरह जो खादी आज गिरती हुई दिखाई देती है वह दूनी ताकत के साथ चमक उठेगी।

कार्यकर्त्ता स्त्री या पुरुष-बुद्धिमान लोग होंगे। वे कताई की विद्या सीख लेंगे और व अपने पड़ोसियों को संगठन करके हाथ कताई का प्रचार करेंगे।

फिर आधा घंटा और १० तोला तो कम से कम तादाद रक्खी गई है। सच पूछिए तो आध घण्टे में १०० गज सूत आसानी से काता जा सकता है। इसलिए हर शख्स कमसे कम तीन हजार गज सूत भेज सकता है। और आध घंटा तो उन कार्यकर्ताओं के लिए है जो बहुतेरे कामों में व्यस्त रहते हैं। बहुतेरे लोग १ घण्टा कात सकते। मैं एसे कितने ही लोगों को जानता हूं जो रोज दो घण्टा कातते हैं। इसलिए मेरे बताये हिसाब से कम से कम दूना अर्थात् ५ हजार गज सूत मिलना चाहिए।

मैं नहीं खयाल करता कि अभी किसी ने इस बात को समझा है कि चरखे का अभिप्राय क्या है। राष्ट्रीय काम को स्वावलंबी बनाने से कम उसका अर्थ नहीं है। इसके कुछ अंक लीजिए। मैंने दर और काम का औसत कम से कम लगाया है।

		रु० आ० पा०
एक मन लुढाई	१२ घण्टे	०-८-०
एक मन कपास में से		
१३ पौंड रुई की धुंनाई	४० घण्टे	२-८-०
२७५ गज फी घंटे के हिसाब से		
१२॥ पौंड की १० अंक सूत		
की कताई	४०० घण्टे	२-६-०
		रु० ५-६-०

इस तरह एक आदमी ४५२ घण्टे (४५० मान लीजिए) ५-६-० (या ५ रु० कहिए) कमाता है.·. ४५० आदमी एक घंटा काम करके ५ रु० पैदा करेंगे.·. ४५० आदमी ३० दिन १ घंटा रोज काम करके १५० पैदा करेंगे.·. ४५० आदमी रोज एक घंटा देकर ३० रु० महीना के हिसाब से कमसे कम ५ स्वयंसेवकों की गुजर करा सकते हैं। और ५ स्वयंसेवक ४५० पुरुषों और स्त्रियों में तमाम महासभा के कामों का संगठन कर सकते हैं। किसी एक बात के लिए बहुतेरे लोगों के सम्मिलित कार्य से असीम काम बन पड़ता है। पर एक आदमी की उतनी मिहनत का कुछ भी सार न निकलता हो।

प्रचण्ड और उत्साही कार्यकर्त्ता तो ऐसे अंक निकाल सकते हैं कि दांतों उंगली लगानी पड़े। इस तरह हिसाब करने के लिए मैं तीन बातें पेश करता हूं—

१—यदि किसी गरीब जिले में कताई प्रधानतः मजदूरी पर कराई जाय तो उसकी दरिद्रता दूर हो सकती है।

२—यदि किसी संपन्न जिले में कताई मुख्यतः स्वेच्छापूर्वक होती हो तो उससे तमाम आवश्यक कार्यकर्ताओं की गुजर हो सकती है।

३—यदि हर पाठशाला के दिन लड़कों से कम से कम ३ घंटे कताई तक के तमाम काम कराये जाय तो हर ग्राम-पाठशाला कम से कम अपना आधा खर्च अदा कर सकती है।

मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि खादी डाक के टिकटों की तरह न बिके तो ये नतीजे पैदा होना मुमकिन नहीं। ऐसे देश में, जहां कि जरूरत से ज्यादा कपास पैदा होता हो, जिसके लोग कातने के आदी हों, और जिसके पास उसके लिए आवश्यक तमाम सामग्री मौजूद हो और जहां बहुत बड़ी तादाद में लोग भूख से पीड़ित रहते हों और उनके अन्दर एसे काम के संगठन की परम आवश्यकता हो, ऐसा न होना एक अक्षम्य अपराध है।

यदि इस काम को सुचारुरूप से और किफायत से चलाना हो तो प्रान्तीय मन्त्रियों को तथा दूसरे लोगों को खादी-मण्डल की सूचनाओं पर अमल करना होगा। प्रधान कार्यालयों में एक दुहेरा रजिस्टर रक्खा जाय जिसमें यथाक्रम उन तमाम सदस्यों के नाम दर्ज रहें जिनके लिए कातना लाजिमी है। तमाम सूत पर गज की तादाद, वजन और कातने वाले का नाम तथा अनुक्रम नंबर लिखा रहे। प्रान्तीय समितियों को काफी रुमाल लोगों को देने के लिए एकत्र करना होगा। धुनाई की भी व्यवस्था करनी होगी। इस तरह यदि सूत पूरी तादाद में पहले हो महीना में भेजना हो जैसा कि भेजना चाहिए तो वक्त न गवाना चाहिए।

जो लोग कातना न जानते हों वे यदि सिर्फ आधा ही घंटा रोज कातते रहेंगे तो तरक्की न कर पावेंगे। शुरुआत के कुछ दिनों जब तक कि उंगलियों को रफ्त न हो जाय, उन्हें कुछ घण्टों तक रोज कातना होगा।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

बलात्कार या संयम ?

एक मित्र ने बड़ा गूढ़ प्रश्न उपस्थित किया है। वे कहते हैं—"यदि बलात्कार कर के किसी बात का सुधार करना अहिंसा-नीति के खिलाफ हो तो कानून के द्वारा किसी से शराब छुड़वाना भी बलात्कार होना चाहिए।"

इसमें कुछ गलतफहमी है। इन मित्र का यह खयाल मालूम होता है कि हर किस्म का कानून बलात्कार-सूचक है। पर हर तरह का कानून बलात्कार-सूचक नहीं। अपने स्वार्थ के निमित्त और दूसरों को दुःख देने के लिए दुःख पहुंचाना हिंसा है। इसके खिलाफ यदि किसीको उसके सुख के लिए कष्ट देने का अवसर उपस्थित हो तो स्थिर और निःस्वार्थ भाव से ऐसा करना अहिंसा हो सकता है। चोर के भय से बचने (अपने इतने स्वार्थ के लिए) मेरा चोर को सजा देना हिंसा है। बीमार के सुख के लिए डाक्टर उसे नश्तर लगा कर दुःख पहुंचाता है। यह अहिंसा है। इस दृष्टि से चोर को पकड़ कर उसे दुःख देने के लिए नहीं बल्कि उसे चोर-सुधार-गृह में रखकर उसके साथ दया-माया दिखाकर उसे अच्छे वायुमण्डल में रखना कि जिससे वह सुधर जाय न तो बलात्कार है न हिंसा; बल्कि समाज का या शासन-कर्ता का संयम है। ऐसा शासनकर्ता चोर को फरयादी के भय से बचा देता है यह उसका विशेष उपकार है। इसी तरह शराबी को कोड़े लगाना बलात्कार है; पर कानून के द्वारा प्रत्येक दुकान को बन्द करके पीने वाले की आंखों के सामने से प्रलोभन हटा देना संयम है और अहिंसा है। इसमें शुद्ध प्रेम के सिवा दूसरी कोई बात नहीं है। इसी तरह यदि धमकी देकर मैं किसीसे विदेशी कपड़ा छुड़ाऊं तो यह बलात्कार है। परन्तु कानून बनाकर विदेशी कपड़े की आमद रोकना संयम है। इसमें शुद्ध प्रेम के सिवा और कुछ नहीं है। परन्तु विदेशी कपड़े पहनने वाले को कानून के द्वारा सजा करना बलात्कार है। यह समाज का रोष है।

इससे यह यह जाना जाता है। कि हर किस्म का कानून बलात्कार का चिन्ह नहीं है। हां, आधुनिक कानूनों में बलात्कार होता है; क्योंकि उन्हें बनाने वाले का हेतु होता है भय उत्पन्न करके उसके द्वारा समाज को गुनहगारों से बचाना। गुनहगार का सुधार करना उनका हेतु नहीं होता।

अब सिर्फ एक प्रश्न रहता है। बलात्कार के द्वारा भी सुधार होतेहुए देखे जाते हैं। ठोंक-पीट कर चोरी की आदत छुड़ाई जाती है। कितने ही लोग कहते हैं और मानते हैं कि मार-पीट से लड़के अच्छे सुधरे हैं। ऐसी धारणा के ही कारण संसार में हम आज पापों का पुंज बढ़ता हुआ देखते हैं। बलात्कार से मनुष्य की आत्मा का हनन होता है। और उसका असर के बल हन्ता पर ही नहीं बल्कि उसके वारिसों पर भी और उसके वायुमण्डल पर भी पड़ता है। बलात्कार के तमाम परिणामों की और लोगों बहुत लंबे काल तक के-जांच होनी चाहिए। बलात्कार बहुत काल से चला आता है। फिर भी हमने जिन जिन बातों के लिए बलात्कार से काम लिया है वे बातें निर्मूल होती हुई नहीं दिखाई देतीं। चोरी के लिए पहले बड़ी बड़ी सजायें थीं। तमाम अवलोकन से शास्त्रियों का यह मत है कि उस चोरियां होना कम न हुआ। ज्यों ज्यों सजा में दया-भाव शामिल होता गया त्यों त्यों चोरी कम होती गई। गुनाहों के लिए सजायें देने की बनिस्बत उनके कारणों को जांच कर उन्हें निर्मूल करने से गुनाह कम होते हैं।

पर बलात्कार से होने वाली हानियों का सबसे बड़ा सबूत यह है कि बलात्कार से जहां सुधार करने का रिवाज पड़ जाता है वहां लोग मंद और जड़वत् बन जाते हैं। और हर बात में सजा से ही काम लेने का आलसियों और जंगलियों का इलाज काम में लाया जाता है। इससे मनुष्य अपने दो कीमती गुणों को खो बैठता है; धीरज और प्रयत्न। अतएव हमें यद्यपि यह आभास मालूम होता हो कि बलात्कार के प्रयोग से शान्ति मिलती है, तो भी उसका फल समष्टि-रूप से बुरा ही होता है। अनेक सबूतों से यह बात सिद्ध की जा सकती है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

बालहत्या

बहुत दिनों से नीचे लिखा पत्र मेरे पास रक्खा हुआ है—

"मैं खुद पाटीदार* हूं। पाटीदार जाति मर्द है, बहादुर है, उदार है। क्षत्रियोचित गुण उसमें है। प्राणान्त होने तक भी पाटीदार कभी पीठ नहीं दिखाता। पर अनेक सद्गुणों में यदि एक भीषण दुर्गुण हो तो वह सद्गुणों पर पानी फेर देता है या सद्गुणों का प्रकाश नहीं हो पाता। संभव है कि वह दुर्गुण छिपा हुआ हो; पर ईश्वर से तो कोई मनुष्य उसे नहीं छिपा सकता। दुर्गुण यह है कि यह जाति बड़ी मिथ्याभिमानिनी है। इस मिथ्याभिमान को वे स्वाभिमान मानते हैं। और उसमें कुलाभिमान के नाम पर जो भयंकर पाप हो रहे हैं वे तो हृदय को टूक टूक कर देते हैं। आपने जाति-सुधार के सवाल को अंगीकार किया है। इसीलिए यह लिखने का साहस किया है। इस मिथ्याभिमान के कारण इस जाति के बारह गांवों में विवाह में बहुत खर्च करना पड़ता है। इससे गरीब लोग अपनी लड़कियों को अफीम जैसी जहरीली चीजें देकर बालपने में ही मार डालते हैं। चरोतर के बारह गांव में एक भी घर ऐसा न होगा जहां पिछले पचीस साल में कम से कम एक भी हत्या न हुई हो। खून का जुर्म लगा-कर यदि इन बारह गावों के पाटीदारों पर मुकदमा चलाया जाय तो तमाम पाटीदार जाति को फांसी पर चढ़ जाना पड़े और ये बारहों गांव नेस्त-नाबूद हो जायं।

पता लगाने पर मुझे मालूम हुआ कि तीस वर्ष में सांकड़ घरों के एक मुहल्ले में ४९ कन्यायें जन्मी। उनमें से ३१ कन्यायें बचपने में ही भगवान् के यहां पहुंचा दी गईं! १२ लापरवाही से लालन-पालन होने के कारण बचपन में ही मर गईं। ७ की शादियां हुईं। उनमें से २ तो पहली ही प्रसूति में मर गईं। ५ अभी मौजूद हैं।

यह खोज मैंने फाल्गुन १९७९ में की थी। दयावान् सुधारक को यह बात मालूम है। अतएव उनका ध्यान इस बात की ओर गया है। फलतः पिछले साल सुणाव की राष्ट्रीय शाला के आचार्य ने, जो कि पूरे असहयोगी हैं, बिलकुल सादगी के साथ पैदल जा कर, कन्या के काते सूत का कपड़ा खुद पहन कर और कन्या को अपना काता पहना कर, शादी की। शादी में सिर्फ दस आदमियों को ले गये और १००) में शादी निपटा दी, जहां कि २-४ हजार रुपये खर्च होते हैं। श्री गोपालदास भाई भी इस बात में कोशिश कर रहे हैं। परन्तु मिथ्याभिमानी पुरुषों और अगुआओं नहीं सुनते।"

इस पत्र में से ब्योरे की बहुतेरी बातें मैंने निकाल डाली हैं। इसमें जो दोष बताये गये हैं वे कहांतक सच हैं यह तो पाटीदार लोग ही जानते होंगे। मेरा उन लोगों से अच्छा परिचय है।

* पाटीदार कुर्मी-जाति की एक शाखा है।

मेरा पेशा तो है गुणों को जानना । इसलिए दोषों को जानने की कोशिश नहीं की—न किसीने मुझे बताये ही ।

पर यदि इस चिट्ठी में लिखी बातें सच हों तो शरम की बात है । लड़की के जन्म को अपशकुन मानने का पापी वहम हम लोगों में फैला हुआ है । स्वार्थ के अलावा इसका दूसरा कोई कारण नहीं दिखाई देता, इस वहम का जन्म चाहे भले ही भयानक काल में हुआ हो । जब कन्यायें हरण की जाती रही हों तब लोगों का कन्या-जन्म से घबराना कुछ समझ में आ सकता है । पर अब यह भय प्रायः नहीं रह गया है । जन्म होने पर यदि हर्ष होने का कई कारण हो तो फिर लड़का हो या लड़की दोनों एक से प्रिय होने चाहिए । संसार को दोनों की एकसी जरूरत है, एक दूसरे का पूरक है । ऐसी हालत में एक से खुश होना और दूसरे से रंजीदा होना हानिकर है । सुव्यवस्थित जाति में दोनों का परिमाण बराबर होना चाहिए । कन्या के बाप को शादी में बहुत खर्च करना पड़ता है । यह रवाज भी हिन्दू-जाति में सर्व-सामान्य है । संभव है कि पाटीदारों में उसने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया हो । इस पाप को निर्मूल कर देने की पूरी पूरी आवश्यकता है । इसके बारे में दो-मत नहीं हो सकते । बहुत खर्चीले रिवाजों के मारे गरीब मा-बाप की बड़ी दुर्गत होती है और उनके लिए लड़कियों की शादी करना असंभव हो जाता है और इसके फल-स्वरूप लड़कियों को जहर देने की प्रथा पड़ती है ।

सुणाव के मास्टर साहब की मिसाल अनुकरणीय है । इस खादी के युग में तो खादी की वर-माला से ही शादी हो सकती है ।

लेखक ने सारा दोष बूढ़े लोगों के ही सिर मढ़ा है । इसमें कुछ अत्युक्ति होनी चाहिए । पर यदि बूढ़े लोग सचमुच मिथ्या मिजाज के कारण किसीकी न सुनते हों तो युवक-मण्डल को बागडोर अपने हाथ में लेनी चाहिए । वे खर्चीले विवाहों में शरीक होने से साफ इनकार कर दें । इससे विवाह का खर्च कम हो जायगा । इसमें न तो कोई अविनय है और न किसी कोशिश की जरूरत है । खेद की बात तो यह है कि युवक न आज तक ऐसी बातों को अपने क्षेत्र के बाहर मानते आये हैं । अपनी शिक्षा का भी उपयोग उन्होंने अपने समाज-सुधार के लिए बिलकुल नहीं किया ।

पर अब जमाना बदल गया है । युवकवर्ग खूद विचार करने लगा है । अतएव यह सुधार बिना ही महाप्रयास के हो सकता है । आवश्यकता है सिर्फ अचल निश्चय की ।

मुझे बारह गांवों की मर्यादा भी खलती है । मैं सिर्फ चार वर्ण को मानता हूं । उपवर्णों को मिला देने की जरूरत है । पर उसके लिए समय चाहिए । फिर भी पाटीदारों के गांवों के भी विभाग कर के शाखायें बनाना यह वर्ण-विभाग की अतिशयता है । सारे गुजरात के पाटीदारों में जिनका रोटी-व्यवहार है उनका बेटी व्यवहार क्यों न होना चाहिए ? बारह गांव के संकेत का कारण संयम नहीं, बल्कि मिथ्याभिमान ही दिखाई देता है । जहां मिथ्या भिमान होता है वहीं पाप होता है । इसलिए समझदार और प्रौढ पाटीदारों को मिलकर आवश्यक सुधार और इस बाल हत्या को तथा इसके कारण रूप पूर्वोक्त दुष्ट रिवाजों का निषेध तुरन्त करना उचित है ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

ग्राहक होनेवालों को

चाहिए कि वे सालाना चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें । वी. पी. भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है ।

कार्यकर्ताओं के लिए नियम

अखिल भारत खादी-मण्डल ने नीचे लिखे प्रस्ताव पास किये हैं—

" १—महासमिति का हरएक सभासद, प्रान्तीय समितियों और जिला, सब डिविजनल तथा ताल्लुका-समितियों का हरएक सभासद, और आरंभिक सभाओं की कार्य-कारिणी-समिति का हर एक सदस्य, महासमिति के कताई-संबंधी प्रस्ताव के अनुसार अखिल भारत खादी-मण्डल के मन्त्री को कम से कम २००० गज़ सूत हर मास की १५ ता. को जिसकी शुरुआत आगामी १५ अगस्त को होगी भेजने के लिए बाध्य हैं ।

२—प्रान्तीय खादी-मण्डलों के मन्त्री, प्रान्तीय समितियों के मन्त्रियों की सहायता से उन तमाम सदस्यों का, जो पूर्वोक्त प्रस्ताव के अनुसार बाध्य हैं, एक ऐसा रजिस्टर बनावें जिसमें क्रमानुसार उनके नाम हों और उन्हें इस बात की खबर करें कि उन पर क्या क्या फराइज़ आयद होते हैं ।

३—रजिस्टर फांलिस्केप साईज का बनाया जाय । एक पृष्ठ पर तीन नाम रहें और हर नाम के नीचे काफी जगह खाली रहे जिसमें हरमाह इन्दराज होता रहे । यदि रजिस्टर एक जिल्द में पूरा न हो सके तो ज्यादह जिल्दें बनवा ली जायें । अखीर में काफी पृष्ठ कोरे रक्खे जायं जिनमें नये चुने गये सदस्यों के नाम लिखे जा सकें । अकारादि क्रम से उनके नामों की एक सूची भी उसमें रहे ।

४—हर प्रान्तीय खादी-मन्त्री प्राप्त सूत को एकत्र कर के अखिल भारत खादी-बोर्ड के पास एकमुश्त भेज दे । हर सदस्य का सूत एक अलहदा पैकट में हो और उसपर उसका नाम और ब्योरा लिखा हो । तमाम पैकट एक ही पार्सल के द्वारा अखिल भारत खादी-मण्डल के दफ्तर में भेजे जायं ।

५—जहां प्रान्तीय खादी-मन्त्री न हों वहां प्रान्तीय-समिति के मन्त्री से अनुरोध किया जाता है कि वे पूर्वोक्त आवश्यक कार्रवाई करें ।

६—सदस्यों से अनुरोध किया जाता है कि वे इन बातों पर ध्यान रक्खें कि उनका सूत (अ) स्वयं उनका काता हुआ हो (आ) एक-सा और मजबूत हो (इ) फालकियां एक आकार की हों और जहां तक हो उनका आकार स्टैंडर्ड हो, हर तार चार फीट का हो (ई) उसके दोनों सिरे ठीक ठीक बंधे हुए हों (उ) सूत के साथ एक चिट रहे और उस पर सदस्य का नाम और उसका अनुक्रम नंबर, सूत की लंबाई, और तारीख लिखी रहे ।

७—प्रान्तीय खादी मन्त्री रजिस्टर में हर माह सूत के मिलने की तारीख दर्ज करें और जो लोग इसमें गफलत करें उनका भी इन्दराज करें ।

८—हर माह के आखिरी सप्ताह में तमाम गफलत करने वालों के नाम की रिपोर्ट की जाय ।

नवजीवन-प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद

जीवन का सद्व्यय—महात्मा मालवीयजी इस ग्रन्थ पर मुग्ध हैं और बिहार के नेता बाबू राजेन्द्रप्रसादजी लिखते हैं—"यह अमूल्य ग्रन्थ है । धर्म ग्रन्थों की तरह इसका पठन-मनन होना चाहिए । चरित्रगठन के लिए विद्यार्थियों को दूसरा ग्रन्थ नहीं मिल सकता । " मूल्य ॥।)

लोकमान्य को श्रद्धांजलि ॥)

शकुन्तला अंक ।)

जो सज्जन पुस्तकें मंगावेंगे कि रेल्वे से भेजना पड़े उनके रेलवार्च नहीं । मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेजिए—वी. पी. नहीं भेजी जाती ।

टिप्पणियां

बकरीद (२)

बकरीद के त्योहार का समय हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के लिए चिन्ता का होता है। यदि हम परस्पर सहिष्णुता और एक दूसरे का लिहाज़ रक्खें तो ऐसी स्थिति न हो। जो मुसलमान पशुओं की कुरबानी को जायज़ मानते हैं और इसीलिए जो गो तक की कुरबानी करते हैं उसमें हिन्दुओं को क्यों दस्तन्दाजी करना चाहिए? इसी तरह मुसलमानों को भी क्यों गाय की कुरबानी और वो भी इस ढंग से करनी चाहिए जिससे हिन्दुओं के भावों को आघात पहुंचे। क्यों मुसलमानों को १९२१ की उसी शराफत का फिर परिचय न देना चाहिए जबकि उन्होंने अपने हिन्दू सहवासी के भावों का लिहाज रखने के लिए खुद ही गायों को बचाने का भार अपने सिर लिया और दरहकीकत हजारों गायों को बचाया भी, जिसे कि खुद हिन्दुओं ने भी तसलीम किया। निश्चय ही बकरीद के दिन मुसलमानों को खास तौर पर हिन्दुओं के प्रति प्रेम भाव पैदा करने की कोशिश करनी चाहिए और हिन्दुओं को चाहिए कि मुसलमानों के धार्मिक रस्म-रिवाज का लिहाज रक्खें फिर भले ही वे उन्हें कितने ही अप्रिय हों। उसी प्रकार जिस प्रकार कि मूर्तिपूजा मुसलमानों को अप्रिय होते हुए भी वे उसका लिहाज रखने की उम्मीद उनसे करते हैं। परमात्मा खुद अपने काम के लिए हमको जिम्मेवार मानेगा, हमारे सहवासी के काम के लिए नहीं।

स्त्रियां आगे बढ़ें

महासमिति की एक सभासद श्रीमती हेमप्रभा मुजुमदार—(बंगाल) लिखती हैं—

"मेरा खयाल है कि जब तक हमारे देश की महिलायें कताई खास तौर पर अपने जिम्मे न ले लेंगी, तबतक यह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि महासमिति से यह खास तौर पर अनुरोध किया जाय कि वे स्त्रियों को कताई की शिक्षा देने की चिन्ता विशेष रूप से करें।"

मैं अपने दिल से इसकी ताईद करता हूं और अपनी तरफ से इतना और कहना चाहता हूं कि और भी बहुतेरी बातें भारत की महिलाओं की सहायता के बिना असंभव हैं। सिर्फ सवाल यही है कि इस काम को कौन और किस तरह करें? बहुतेरी बहनें कर रही हैं पर अभी और भी बहनों की आवश्यकता है। पुरुषों की तरह स्त्री—कार्यकर्ता भी ऐसे होने चाहिए जो अपना पूरा समय दें। हां, मैं जानता हूं कि कुछ ऐसी स्त्रियां इस क्षेत्र में काम कर रही हैं, पर उनकी संख्या बहुत ही कम है। मैं इस पत्र की लेखिका को निमंत्रण देता हूं कि वे ही इस कार्य का आरम्भ करें। वे इसे इस तरह कर सकती हैं—अपना कुछ समय कताई के लिए तथा धुनाई सीखने, कपास की परीक्षा करने, सूत का नंबर जानने, उसकी मजबूती परखने के लिए खास तौर अलहदा कर लें, वे अपने पड़ोसियों में भी यह काम शुरू कर सकती हैं, उन्हें इस राष्ट्रीय व्यवसाय में दिलचस्पी पैदा करा सकती हैं और ऐसा करते हुए वे देखेंगी कि उनका दायरा बढ़ रहा है। हां, मैं उनके पतियों से जरूर यह प्रार्थना करूंगा कि वे अपनी पत्नियों को ऐसा संगठन-कार्य करने दें। बंगाल की हालत शायद कम,दुःखदायक है, क्यों कि वहां क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सब महिलायें परदा रखती हैं। मैं प्रतिज्ञा कर के कहता हूं कि जो कोई इस काम को श्रद्धा और सरगर्मी के साथ शुरू करेगा उसे यह बड़ा सरल और राष्ट्रीय दृष्टि से लाभकारक दिखाई देगा।

८६ साल की उम्र में चरखा

बड़ा दादा ने नीचे लिखा प्रोत्साहक पत्र मुझे भेजा है—

"भारत के और प्रान्तों के लोगों की अपेक्षा हम बंगाली लोगों को तात्विक तर्कनाओं का व्यसन अधिक है। जिस मनुष्य को मामूली व्यावहारिक बुद्धि है वह अगर यह समझे कि मौजूदा हालत में यही हमारे देश का तरणोपाय है तो सीधा अपने काम में लग जाता है; पर जो सदा तात्विक तर्क में लीन रहता है वह यदि अपने सामने किसी अच्छे काम को करने की जरूरत देखता है तो वह अपनी सहायता के लिए बीसों 'अगर, मगर' ढूंढता है जो कि उसके अंगीकृत काम को सफलता पूर्वक करने के लिए आवश्यक थोड़ी भी कुरबानी से बच जाने के लिए खिड़कियों का काम दे सकें। हम इस तरह दलील करते हुए दिखाई देते हैं—यदि अ और क जैसा गण्य-मान्य व्यक्ति को जो कि महान् लक्षण-कार्य में व्यस्त है और जिसके लिए शरीर के बनिस्बत बुद्धि के उपयोग की ज्यादह आवश्यकता है, अपना कीमती वक्त वाणी और लेखनी के बजाय, पुराने जमाने की बुढ़ियाओं की तरह चरखा चलाने में गवांना पड़े, तो वे नेतापन के अयोग्य हो जायंगे।' पर व्यवहार-बुद्धि रखने वाला मनुष्य तुरन्त समझ लेगा कि यदि किसी नेता के उच्च पद-पर प्रतिष्ठित व्यक्ति रोज सिर्फ आध ही घण्टा चरखा काते, तो उसकी वाणी और लेखनी शेष समय में जनता को चरखा का सन्देश पहुंचाने के विषय में उपदेश देने और लेख लिखने के लिए बिल्कुल आज़ाद रहेगी और सो भी बहुत ज्यादह निश्चयकता और सुचारुता के साथ।"

उनके सेक्रेटरी उस पत्र के साथ लिखते हैं—

'बड़ा दादा खादी-आन्दोलन के सोलहों आना कायल हो चुके हैं। चरखे में उनकी श्रद्धा अब पहले से भी बढ़ गई है और उनका विश्वास है यह भारत की आर्थिक मुक्ति का साधन हो सकेगा, जिसकी कि आवश्यकता इस समय देश को बहुत भारी है। वे कहते हैं कि हमारा यह एक वहम है कि पुरुषों को चरखा न कातना चाहिए—मानों अकेली बूढ़ी स्त्रियों ने ही इसका ठेका ले रक्खा हो। इस वहम को दूर करने के लिए उन्होंने खुद अपने लिए एक चरखा मंगवाया है और वे इस बात की कोशिश करेंगे कि देखें वे खुद अपने हाथों चरखा कात सकते हैं या नहीं। आप यह जान कर ताज्जुब करेंगे कि इस ८६ वर्ष की अवस्था में भी वे किस सरगर्मी के साथ वे इस हलचल की गति-विधि को निहार रहे हैं।"(यं०इं०)

सोमाली देश में चरखा

सोमाली देश के एक खोजा व्यापारी श्री. महमद हाशम चमन लिखते हैं कि सोमाली देश में बहुतेरी औरतें बुनाई का काम करती हैं। अबतक वे मिल के सूत का कपड़ा बुनती थीं, अब वहां चरखा भी चलता है। उसका प्रचार अभी काफी तौर पर तो नहीं हुआ है, फिर भी ठीक होता जा रहा है। सोमाली अरबों पर हिन्दुस्तान की हलचल की खूब असर हुई है। श्री. चमन मानते हैं कि सोमाली देश में चरखा बड़ी तेजी के साथ चलेगा। वे और भी कहते हैं कि वहां पाठशालायें प्रायः मुफ्त चलती हैं। हर बच्चों को प्राथमिक शिक्षा केवल धार्मिक दी जाती है। तमाम बालकों के लिए कुरान शरीफ सीखना अनिवार्य है। मकान घास के बने रहते हैं और उनका खर्च नहीं के बराबर होता है। हर बालक रोज एक मुट्ठी ज्वार लेकर पाठशाला को जाता है और यही मास्टर साहब का वेतन है। अन्त को श्री. चमन यह खबर देते हैं कि यद्यपि सोमाली देश में महज अरबों की आबादी है और हिन्दू व्यापारी इने गिने हैं तो भी वे वहां आराम से रहते हैं और अरब लोग उनके साथ मित्र-भाव से रहते हैं। क्या खुद अपने ही देश में हिन्दू-मुसलमानों को लड़ने की जरूरत रहती होगी?

(नवजीवन)

राष्ट्र से अपील

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)॥
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ४९

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच } अहमदाबाद, श्रावण बदी ७, संवत् १९८१ रविवार, २० जुलाई, १९२४ ई० { मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

देहली और नागपुर

देहली ने अपने मुंह पर कालिख लगा ली है। देहली के दंगे इस बात को सूचित करेंगे कि वहां असहयोग की हस्ती नहीं रह गई है, क्योंकि सरकार के साथ असहयोग करने का अभिप्राय है लोगों में परस्पर सहयोग होना। परन्तु देहली में पिछले सप्ताह सरकार की बनिस्बत हमारे आपस में ही अधिक असहयोग दिखाई दिया। महासभा और खिलाफत के लोग लोगों में शान्ति न स्थापित कर सके। पुलिस और फौज को उसका श्रेय प्राप्त होने वाला था। इसका गौरव उन्हें है और शर्म हमें है। मुझे जो चिट्ठियां मिली हैं उनसे मालूम होता है कि हमारे स्वयंसेवक लोग शान्ति कायम करने की कोशिश में सफल हुए और उन्होंने उन लोगों की सेवा-शुश्रूषा का भार अपने सिर लिया जो पुलिस के द्वारा नहीं बल्कि अपने आपस में लड़कर घायल हुए थे।

इस सारे खुराफात का कारण बताया जाता है कुछ हिन्दुओं के द्वारा एक मुसलमान युवक के पीटे जाने की खबर। अगर वह लड़का मर भी गया होता तो कौन बात थी? मुसलमान लोग या तो हाल ही कायम हुई पंचायतों या सरकारी अदालतों के द्वारा उसका इलाज कर सकते थे।

अच्छा मान लीजिए कि हिन्दुओं ने एक मुसलमान लड़के को पीटा, और उसपर कुछ मुसलमानों ने हिन्दुओं पर हमला किया, तब दूसरे हिन्दुओं ने, फिर कोई भी हों, क्यों उसके बदले में हाथ उठाया? क्योंकि जो चिट्ठियां मुझे प्राप्त हुई हैं उनके अनुसार यह लड़ाई तमाम बस्ती में जहां जहां तक हिन्दुस्तानी बस हुए हैं, फैल गई थी। उन्हीं खतों में यह भी लिखा है कि अगरचे लड़ाई इतनी फैल गई थी तो भी देहली-निवासियों का प्रधान भाग उससे अलग रहा—यही नहीं बल्कि ऐसा भी हुआ है कि हिन्दुओं ने मुसलमानों को पनाह दी है और मुसलमानों ने हिन्दुओं को। हां, इसमें कोई शक नहीं कि यह बात सराहनीय है। पर बात यह है कि देहली का प्रधान भाग गुंडमालों को रोक न सका। कुल बात तो यह है कि हम लोग अभी इन उपद्रवी व्यक्तियों पर कब्जा नहीं कर पाये हैं।

नागपुर का भी यही हाल मालूम होता है। अबतक वहां से बहुत थोड़ी खबरें आ पाई हैं। पर यह बात स्पष्ट है कि नागपुर के हिन्दू और मुसलमान हम सब लोगों के एक हो कर सरकार से लड़ने (यह लड़ाई शान्तियुक्त ही हो सकती है) की अपेक्षा आपस में दिल खोल कर लड़ना ज्यादह फायदेमन्द समझते हैं।

इस तरह अगर देहली और नागपुर में किसी भी रूप में अधिकांश लोगों की प्रकृति के चिह्न हों तो हमें बहुत समय तक के लिए हिन्दू मुस्लिम-एकता को नमस्कार कर लेना होगा और इसलिए आजादी के लिए जोर-शोर की कोशिश करने की अपेक्षा हमेशा गुलामी में ही रहना मंजूर करना होगा।

मगर मैं मायूस नहीं होता। मौलाना शौकतअली की तरह मेरा यह विश्वास है कि ये झगड़े अन्दरूनी हैं और थोड़े ही दिनों में दोनों जातियां अवश्य एक शान्तिमय कार्यक्रम के अनुसार काम करने लगेंगी।

और यदि हम सचमुच किसी ऐसे कार्यक्रम में लग जाना चाहते हों तो मैं देहली और नागपुर दोनों के महासभावादी और खिलाफतियों के हृदय में यह जमा देना चाहता हूं कि किसी भी फरीक को किसी भी हालत में अदालतों का दरवाजा खटखटाने जरूरत नहीं है और ये तमाम झगड़े पंचायतों में फैसल किये जायं। वकील लोग फिर वे चाहे वकालत करते हों या न करते हों, इस बात में बहुत-कुछ मदद कर सकते हैं। बस, वे इन मामलों को अदालत में पैरवी करने से इनकार कर दें और दोनों फरीक को दिखावें कि इससे उन्हें कुछ भी हासिल नहीं हो सकता, उलटा शायद नुकसान हो हो। वे उन्हें यह यकीन दिला सकते हैं कि यदि आप सचमुच सच्ची शान्ति चाहते हों तो वह अदालतों के जरिये हरगिज नहीं मिल सकती।

बड़ा बाजार के महासभावादी

जब मैंने कलकत्ते के बड़ाबाजार के महासभावादियों के झगड़े और मार-पीट का हाल पढ़ा तब मुझे उसपर यकीन न होता था। पर मुझे तीन चिट्ठियां उन महासभावालों की तरफ से मिली हैं जिनमें अधिकांश ने वहां यह सब अपनी आंखों से देखा है उनसे जाना जाता है कि समिति की बैठक में महासभावादियों में खुल्लम खुल्ला दो दो हाथ हुए और सो भी महासभा के उद्देश की सिद्धि के लिए नहीं बल्कि समिति पर अपना कब्जा जमाने के लिए। तीन चिट्ठियों में लिखने वाले वे लोग हैं जो अपनेको अपरिवर्तनवादी कहते हैं। इन पत्रों के द्वारा यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि कुसूर किस दल का है। मुझे इस बात में कोई शक

नहीं कि स्वराजी अपने प्रभाव से द्वारा ढोंग अपरिवर्तनवादियों के मत्थे मढ़ते। मैं जिस बात से डरता रहा हूं वह तो यह है कि जो संस्था अहिंसात्मक होने का दावा करती है उसीपर कब्जा करने के लिए कोई भी दल हिंसाकाण्ड मचाने पर कैसे आमादा हो सकता है? पत्रों के लेखक अपनेको मेरा अनुयायी बताते हैं। यदि अपनेको मेरा अनुयायी बताकर वे अहिंसा के पुजारी होने का दावा करते हों तो उन्हें परस्पर झगड़े के हरएक मौके को टालना चाहिए इसलिए उन्हें महासभा या किसी दूसरी समिति पर कब्जा करने के लिए हथियार बांध कर लड़ाई लड़ने से अपनेको अलहदा रखना चाहिए। पत्र लेखक कहते हैं कि यद्यपि बड़ा बाजार में अपरिवर्तनवादियों का निश्चित बहुमत है, तो भी स्वराजी लोग या तो उनकी बैठकों में खचाखच भर जायंगे या अपरिवर्तनवादियों की सभायें भंग कर देंगे और इस प्रकार महासभा-समिति पर कब्जा कर लेंगे। मान लीजिए कि ये सब इल्जाम सही हैं, तो अपरिवर्तनवादियों के पास इसकी अहिंसात्मक दवा है। बस, वे स्वराजियों की सभा में कदम न रक्खें और अपने कार्यक्रम को चलाने के लिए अपनी अलग संस्था बना लें—बशर्ते कि वे कार्यक्रम को चलाना चाहते हों न कि महासभा पर कब्जा जमाना। मैं प्रतिज्ञा कर के कहता हूं कि यदि अपरिवर्तनवादी काम करेंगे तो स्वराजियों का काम उनके बिना चल ही न सकेगा। हमारे लिए एक ही ईश्वर है, एक ही साध्य है और एक ही साधन है। दोनों बीमारियों में एक ही तत्व छिपा हुआ है और इसलिए उनके इलाज भी एक ही तत्व पर निर्धारित है। चाहे सरकार हो, चाहे स्वराजी हो, दोनों की एक ही रामबाण दवा है अहिंसात्मक असहयोग। इसलिए मेरे अनुयायी यदि बातें न करके काम करेंगे तो बेहतर होगा। उन्हें अपनी अलग संस्था बनाकर अपनी सेवाओं के द्वारा राष्ट्र के हृदय तक पहुंचने का रास्ता तैयार करना चाहिए। मैंने ये बातें अपरिवर्तनवादियों से इसलिए कहीं हैं कि उन्हींकी ओर से इसपर विरोध किया जा रहा है और अपनेको मेरा अनुयायी कह कर उन्होंने पत्र लिखे हैं। स्वराजियों पर उनके द्वारा किये गये इल्जामों पर मैं न तो विश्वास करता हूं और न अविश्वास ही। मैं तो स्वराजियों को भी अपना अनुयायी मानने का दावा करता हूं, क्योंकि वे भी अपरिवर्तनवादियों के इतनाही महासभा के ध्येय के पुजारी होने का दावा करते हैं। यदि वे यह प्रतिपादन करेंगे, और मैं समझता हूं कि वे जरूर करेंगे, कि इसमें हमारा कुछ भी कुसूर नहीं है, तो उन्हें भी मैं वही दवा बताऊंगा जोकि अपने अपरिवर्तनवादी अनुयायियों को मैंने बताई है। 'मेरे अनुयायी' तो बदला नहीं लेते। जो उत्तर की राह नहीं देखते वे बदले में कुछ आशा भी नहीं रखते। इसलिए उन्हें कभी कोई हानि नहीं पहुंचाता। यदि इसी बात को मिसाल देकर कहूं तो जिस शख्स को चरखा कातना हो, हिन्दू-मुस्लिम-एकता बढ़ाना हो, या अगर वह हिन्दू है तो अछूतोद्धार करना हो तो उसे किसी संस्था की जरूरत नहीं। हां संस्थाओं को उसकी जरूरत हो सकती है और जहां कहीं उसकी सेवा की जरूरत हो वह खुशी से सेवा के लिए कदम आगे बढावेगा। एक स्वराजी मित्र कहते हैं कि महाराष्ट्र में अपरिवर्तनवादियों ने महज पशु-बल के जोर पर अपना बहुमत बना रक्खा है और बरार में तो अपरिवर्तनवादियों ने ही हाथ चलाया। यदि यह बात ऐसी ही हो तो मैं अपरिवर्तनवादियों से कहूंगा कि वे माफी मांगें और जहां कहीं वे पशु-बल के द्वारा या गंदे तरीकों से अधिकारारूढ हों वहां वे उन्हें त्याग दें और फिर भी अपना काम बराबर करते रहें। यह मानना एक भारी वहम है कि बिना महासभा की प्रतिष्ठा की सहायता के हम अच्छी तरह सेवा नहीं कर सकते।

एक कदम आगे

गुजरात प्रान्तिक समिति ने चरखे-संबंधी महासमिति के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए उससे भी आगे कदम बढ़ाया है और पहले महीने में ३००० गज सूत कातने और जल्द ही ५००० तक की कोशिश करने का अनिवार्य नियम बना दिया है। उसने उस दण्ड-विधान को भी अपने प्रस्ताव में जोड़ दिया है जो कि महासमिति की बैठक में हटा दिया गया था। मेरी हमेशा यह राय रही है कि हर प्रान्तीय समिति के अधिकार की बात है कि वह महासमिति की चाह से आगे कदम उठावे। जो प्रान्त इतनी जुरत रखता हो उसको ऐसा करना अपना कर्तव्य मानना चाहिए। यह दो हजार गज सूत एक किस्म का चन्दा है जो हर प्रतिनिधि को अदा करना लाजिमी है। हां, ज्यादह देने से अवश्य ही उनका गौरव बढेगा। और यदि कोई सदस्य अपना चन्दा न दे तो उसे उसके अयोग्य बनाने में कोई बुराई नहीं है। इसलिए मैं आशा करता हूं कि दूसरे प्रान्त यदि हो सके तो गुजरात का अनुकरण करेंगे। १५ अगस्त इस बात का स्पष्ट रूप से परिचय देगी कि महासभा के प्रतिनिधियों का चरखे पर कितना विश्वास है। उन्हें याद रखना चाहिए कि आचरण-हीन श्रद्धा आत्मा-हीन शरीर की तरह मुर्दा है, जो कि केवल जला डालने या दफन करने लायक होता है।

हर प्रान्त में चरखे के संगठन का भार प्रान्तिकसमितियों पर है। उन्हें बिना विलंब उन प्रतिनिधियों के नामों को जान लेना चाहिए और देखना चाहिए कि सामग्री या वाकफियत के अभाव से वे अपने कर्तव्य में असफल न रहें। हमारी असहाय अवस्था तो दयाजनक है; हमारे सिर पर मंडराने वाले इस खतरे से—इस सत्याग्रह से हम उसी अवस्था में बच सकते हैं जब हम पिछले जमाने की तरह, जुलाहों और सूतकारों की जाति बन जायं। महासभा ने कम से कम कागज पर तो इस सिद्धान्त की सत्यता को स्वीकृत कर लिया है। अब उसके कौन कौन से प्रतिनिधियों से यह आशा की जा रही है कि वे कताई और धुनाई में प्रवीण हो जायं, चरखा-शास्त्र की सब बारीकियों का ज्ञान लें और अपने अपने जिलों में उसका संगठन करें।

यह आध घण्टे का काम तो एक शुरूआत है। लेकिन शुरूआती विधियों के लिए बहुतेरे ब्योरे की बातों की ओर ध्यान देने की जरूरत है—जैसे कपास जमा करना और पहुंचाना, उसे धुनकना और पूनियां बनाना और कता हुआ एकत्र सूत को प्रान्तीय केन्द्रों में भेजना होगा। चरखे पर भी ध्यान देना होगा। चरखा और तकुआ भी यदि ठीक ठीक हो तो बहुतेरा वक्त बच जाता है और कातने वाले को कातने में बड़ा आनन्द आता है। महासभा के प्रतिनिधियों पर तो यह कताई का कर्तव्य आयद होता है महासमिति के प्रस्ताव से। पर दरअसल यह कर्तव्य हर शख्स पर लागू पड़ता है फिर चाहे वह महासभावादी हो या न हो। हर एक उत्साही कार्यकर्ता एक चरखा-समाज कायम कर सकता है जिसका काम यह हो कि वह अपने हर सदस्य से जितना हो सके सूत कतावे और वह खादी-मण्डल के मन्त्री के पास भेजा जाय। पाठक यह जानकर खुश होंगे कि गुजरात विद्यापीठ के महामात्र ने पहले ही इसका श्री गणेश कर दिया है। उन्होंने अपने दफ्तर के कर्मचारियों से यह वचन ले लिया है कि वे पांच हजार गज सूत हर माह कातेंगे और उसमें दो हजार गज विद्यापीठ को दिया जायगा और शेष उनके पास रहेगा।

इस्तीफे

महासमिति के तीसरे प्रस्ताव के फलस्वरूप महासभा के प्रति-

समितियों के तरफ से इस्तीफों की खबरें आ रही हैं। मैं इसे एक शुभ चिह्न समझता हूं बशर्ते कि उन्होंने अच्छे भाव से इस्तीफे दिये हों और इसका यह मतलब न हो कि अब वे महासभा का काम न करेंगे। देश की हालत एसी नहीं है कि वह किसी भी कार्य-कर्ता की शक्ति व छोटी सेवा से वंचित रक्खा जा सके। पर वह सेवा शर्तों और आवश्यकताओं के अनुसार होनी चाहिए। इसीलिए हर प्रान्त के कार्यकर्ताओं को अपना इमान उठा रखना होगा और बिना संघर्ष के काम करना होगा। जहां कहीं बहुतेरे इस्तीफे पेश होंगे वहां समितियों की पुनर्रचना में उन्हें बहुत श्रम उठाना पड़ेगा। बहुतेरे प्रान्तों में प्रान्तिक समिति के सदस्यों की तादाद हद से ज्यादा है। प्रान्तों का तो प्रायः स्वराज्य हुई है। इसलिए वे एक नियम बना सकते हैं जिससे समितियां अब से बहुत छोटी हो जाय। वे एक सभा के बजाय दोन के बजाय सचमुच उपयोगी और बड़ी होशियारीवाली होने का अपना सुभाव क्य के काम करनेवाली होना चाहिए। (मो० क०)

मिथ्या भ्रम

एक सज्जन लिखा है कि ऐसन हो बूढ़े लोग अपने पौत्रों को देख कर, लड़के के मां बाप की ओर मुखातिब हो कर कहते हैं—तुम हम तो अच्छे अच्छे पड़े पहन चुके, इसलिए अब खादी पहनने लगे हैं। पर इन नन्हें बच्चों को खादी पहनाना मानों इन का कुछ भी दुलार न करना है। मैं पूछता हूं कि ऐसे धर्म-संकट के समय क्या करना चाहिए? पर मुझे इसमें कुछ भी धर्म-संकट नहीं दिखाई देता। बड़े-बूढ़ों के इस अतिप्रेम के अधीन हो कर नन्हें बच्चों का भविष्य हम किस तरह बिगाड़ सकते हैं, अथवा हिन्दुस्तान की स्वाधीनता मिलान के महान संग्राम को किस प्रकार धक्का पहुंचा सकते हैं? विदेशी माल का इस्तैमाल करना हम अपना धर्म समझते हैं तो फिर हम एक प्रेम के वशवर्ती हो कर किस तरह छोड़ सकते हैं? फिर यह महज भ्रम है कि विदेशी या देशी मिलों का कपड़ा ज्यादह महीन होने से ज्यादह अच्छा है। आज तो एक फैशन हो गया है या महीन कपड़ों को छूएंगे तक नहीं और खादी ही पहनेंगे। बच्चों को हम जैसी आदत डालते हैं वैसी पड़ती है। यही समझना मुश्किल है कि मिल के कपड़े में कौनसा दुलार है? थोड़ी दिनों के बाद जब सब लोग खादी पहनने लगेंगे तब लोग यह भी मानने लग जायगे कि खादी में दुलार है। निर्दोष बालकों के नन्हें बदन पर सफेद दूध जैसी खादी जितनी फबती है उतने रंग-बिरंगे, शरीर से चिपक जानेवाले और बहुत दर मैले कुचैले कपड़े कभी नहीं फबते। फिर हमारे देश की आबहवा में तो बालकों के लिए कम से कम कपड़े ही अच्छे होते हैं। बूट, मोजे और अनेक कपड़े हमारे बालकों के लिए बीमारियों के घर हैं। यह उन्हें सुकुमार बनाने का रास्ता है और फजूल खर्ची है। झूठे दुलार कर करके हम बच्चों को शुरू ही से कु-शिक्षा देते हैं। यह कैसा अन्याय है? (नवजीवन)

फिर बारडोली

बारडोली-संबंधी मेरी टिप्पणी पर मुझे दो ऐसे पत्र मिले हैं जिनसे उस विषय पर बहुत प्रकाश पड़ता है। उनमें एक मुसलमान सज्जन का लिखा है और दूसरा हिन्दू सज्जन का। यद्यपि वे एक दूसरे से जुदा जुदा लिखे गये हैं, तो भी वस्तुस्थिति के बारे में वे दोनों एकमत हैं और दोनों ने उसपर कुछ विवेचन किया है। दोनों में कुछ नई बातें हैं। दोनों निष्पक्ष दृष्टि से लिखते हुए दिखाई देते हैं। मैं उन चिट्ठियों को इसलिए प्रकाशित नहीं कर रहा हूं कि उनके छापने से किसीकी भलाई नहीं हो सकती। जो बातें उनमें प्रकट की गई हैं उनसे लेखकों को छोड़ कर किसीकी नेकनामी नहीं होती है। फिर भी एक बात साफ हो जाती है कि म्युनिसिपलटी पर कब्जा करना-वहां के हिन्दुओं और मुसलमानों के वैमनस्य का कारण हो गया है। यदि अखबारों की बात माने तो मुझे तो यह साफ साफ दिखाई देता है कि वहां हिन्दुओं और मुसलमानों में हार्दिक एकता न हो, असहयोगी फिर वे चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, म्युनिसिपलटी या किसी लोकल बोर्ड से अलग रहें। और जहां कि एक जाति के लोग उसमें जाने के लिए तैयार हों वहां दूसरे जाति के लोग उससे हट जाय। कहते हैं कि इस म्युनिसिपलटी के बेहूदा झगड़े के पहले दोनों जातियों के लोग बिलकुल मेल-मिलाप के साथ रहते थे। पर अब म्युनिसिपल चुनाव के कारण केवल म्युनिसिपलटी के दोनों दलों में ही नहीं बल्कि सारे कस्बे में तनाजा फैल गया है। मैं आशा रखता हूं कि बारडोली अपनी पुरानी मित्रता को फिर से स्थापित कर अपनी कीर्ति को पुनः कायम करेगी। (मो० क०)

'कातो, कातो, कातो'

एक महाराष्ट्रीय सज्जन लिखते हैं—'बराबर चरखा कातते रहने और मौन रहने वाली आपकी बात मुझे बड़ी अच्छी मालूम होती है। मेरे आस-पास जो वायुमण्डल फैला हुआ है उसमें मुझे न तो बोलना अच्छा मालूम होता है न किसीको कुछ समझाना-बुझाना। इससे मैं तीन घण्टे रोज पढ़ाता हूं और छः से आठ घण्टे तक सूत कातता हूं।'

इस सज्जन की मिसाल मैं हरएक भाई-बहन के सामने पेश करता हूं। जिनका यह अटल विश्वास हो कि शान्तिमय उपायों से भारत को स्वराज्य मिल सकता है उन्हें दूसरे प्रपंचों में पड़ने की बिलकुल जरूरत नहीं। शान्ति के द्वारा स्वराज्य की संभावना वहीं हो सकती है जहां लोगों के पास एक निष्ठा और एक कार्य हो। अशान्ति की जरूरत नहीं हो सकती है, जहां कुछ लोग अधीर हो जाय, दूसरे लोग उनका साथ न दें और इससे वे जबरदस्ती दूसरों को अपने साथ घसीटें। यह स्वराज्य नहीं हो सकता। यह तो वैसा ही है जैसा कि कड़ाई में से निकल कर भट्टी में गिरना। उससे इन करोडों नर-कंकालों के लिए कुछ हासिल नहीं हो सकता। इतना ही नहीं बल्कि उसमें तो उनका अनिच्छा पूर्वक बलिदान होगा। नरमेध का जो जमाना बीता हुआ माना जाता है वह फिर वापस आवेगा। योरपमें तो नरमेध बराबर चल रहा है। वहां के वर्तमान प्रवीण दारुण युद्ध नरमेध यदि नहीं तो क्या है? हिन्दुस्तान में यदि वह आवे तो करोडों का बलिदान ले, क्योंकि लोगों में इतनी शूरवीरता नहीं है कि उसका मुकाबला करे।

आजकल जहां बहुतेरे अविश्वास लोग हैं एक दूसरे का द्वेष करते हैं, जहां टीका-टिप्पणी सहन नहीं होती, जहां आक्षेपों की हद नहीं, वहां मौन ही सबसे बढ़िया उपाय है। पर मौन के साथ काम होना चाहिए और काम है चरखा।

पर यह शंका होती है कि 'दूसरे जो नहीं कातेंगे?' यह शंका हमारे मन का भ्रम है। जिस प्रकार यह प्रश्न कि 'दूसरे लोग जो न खायेंगे' नहीं उठता उसी तरह यह भी नहीं उठ सकता? यदि मुझे इसपर विश्वास है तो दूसरे की चिन्ता मुझे क्यों होनी चाहिए उलटा यह आग्रह होना चाहिए कि यदि दूसरे न कातेंगे तो उनके बदले मैं ज्यादह कातूंगा। ऐसा करने से दूसरा अपने आप वैसा करने लगेगा। (नवजीवन) मो० क० गांधी

ग्राहक होनेवालों को

चाहिए कि वे सालाना चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी. पी. भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, श्रावण वदी १२, संवत् १९८१

राष्ट्र से अपील

[श्री गिरीशचन्द्र चेटरजी तथा दूसरे अठारह सज्जनों के दस्तखत से एक लेख अखबारों में प्रकाशित हुआ है। उसका नाम है "राष्ट्र से अपील"। यं० इं० के अंक में श्री गांधीजी ने इस लेख की समालोचना की है। उस लेख का सार इस प्रकार है—

"संसार में राष्ट्रों का भविष्य आज एक विचित्र रीति से बदल रहा है। भारत भी एक कठिन अवसर को पार कर रहा है। यह पुनरुत्थित भारत किसी की सत्ता को सिर नहीं झुका सकता। उसे स्वतन्त्र राष्ट्र बनना होगा। तमाम राष्ट्र अब पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं। तब भारत के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता को अपना ध्येय स्वीकारते हुए हिचकिचाना शर्म की बात होगी। हमें भरी महासभा में यह बात साफ साफ कह देनी चाहिए कि पूर्ण स्वतन्त्रता ही हमारा ध्येय है। बिना किसी विशेषण के खुल्लम खुल्ला अपना ध्येय प्रकाशित कर देने से ही राष्ट्र की उन्नति होगी। इसलिए हम महासभा के प्रतिनिधियों से प्रार्थना करते हैं कि वे स्वराज्य की व्याख्या इस प्रकार करें। भारत के संयुक्त राज्यों का प्रजासत्ताक संघ।'

इसके सिवा हमारी यह भी प्रार्थना है कि महासभा के प्रतिनिधि महासभा के ध्येय-पत्र से 'शान्तिपूर्ण और न्यायोचित उपायों के द्वारा' ये शब्द निकाल डालें कि जिससे हर किस्म के मत रखने वाले लोग महासभा में शामिल हो सकें। साधन तो आखिर साधन ही हैं, साध्य नहीं और उसे तथा साध्य को एक बना देने में कुछ लाभ नहीं। परन्तु ध्येय-पत्र को बदल देने या प्रस्ताव पास कर देने से कुछ होना-जाना नहीं है। इसलिए हम लोगों से प्रार्थना करते हैं कि वे महासभा की सारी शक्ति को ऐसे कार्य-कर्ताओं की एक ऐसी संस्था सेना तैयार करने में लगावें जो अपना सारा समय और शक्ति और देश के लिए अर्पण करें। हमारे कार्यक्रम की अन्य बातों की मदें ये होनी चाहिए—

(१) ब्रिटिश माल का बहिष्कार

(२) बिलकुल सहकारिता के तरीके पर कारखानों और गृह-उद्योगों की स्थापना करना और उन्हें मदद देना।

(३) मजदूरों और किसानों की शिकायतें दूर करने में उन्हें मदद करना और उनके आर्थिक तथा नैतिक कल्याण के लिए उनका संगठन करना

(४) तमाम एशियाई जातियों का शीघ्र संगठन करना।"

श्री गांधीजी का लेख नीचे दिया जाता है—उप-संपादक]

मैं जानता हूं कि यह अपील देश के सामने कुछ समय से पेश है। इसमें कोई बात नई नहीं है। फिर भी इसमें प्रदर्शित विचार केवल इन उन्नीस लोगों के ही नहीं बल्कि बहुतेरे शिक्षित भारत वासियों के भी हैं। इसलिए यदि यहाँ उसकी छानबीन करें तो परिश्रम व्यर्थ न होगा।

महासभा ने तो स्वराज्य की कोई व्याख्या नहीं दी है; पर अपीलकर्ता पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं और स्वराज्य की व्याख्या करते हैं भारतीय संयुक्त राज्यों का प्रजासत्ताक संघ। महासभा के ध्येय-पत्र में ऐसी कोई बात नहीं है जो भारत को स्वातन्त्र्य की आकांक्षा रखने से रोक सके। सच पूछिए तो वह स्वराज्य स्वराज्य हई नहीं जो भारत को यदि आवश्यकता हो तो स्वतन्त्रता की घोषणा न कर सकने दे। पर अपीलकर्ताओं का अभिप्राय स्वतन्त्रता से यह है कि हर हालत में और हर तरह जोखों उठाकर इंगलैंड से अपना संबंध तोड़ लिया जाय। मेरा मत है कि भारतवर्ष की उन्नति और आजादी के लिए ऐसा संबंध-विच्छेद अनिवार्य नहीं है। उस का भार अंगरेज लोगों के सिर पर होना चाहिए। हमारे लिए यह अधिक गौरवपूर्ण बात होगी कि हम स्वतन्त्र राज्यों के संघ में अंगरेजों के साथ रहने और बराबरी के हिस्सेदार रहने की तैयारी जाहिर करें। हो सकता है कि अंगरेजों के लिए ऐसी स्थिति को कबूल करना असंभव हो। पर हमें उस वस्तु को असंभव मान लेने का कोई हक नहीं है जो कि स्वभावतः असंभव नहीं है। विश्व-राज्यों का ध्येय ऐकान्तिक स्वतन्त्रता नहीं है। वह तो स्वेच्छापूर्वक परस्परा-वलंबन है। इंगलैंड किसी हालत में ऐसा स्वतन्त्र नहीं है कि वह योरप के किसी राज्य को हड़प कर जाय। उसकी स्वतंत्रता निर्भर करती है कुछ अंशों में उसके पड़ौसियों की शुभेच्छा पर, कुछ अंशों में उसकी सेना पर। और जिस हद तक वह अपनी सेना पर आधार रखता है, वह संसार के लिए एक संकट है, जैसी कि सचमुच वह पिछले महाभारत के जमाने में हो गया था। अब हम जानने लगे हैं उसका कि हेतु भलाई करना नहीं बल्कि लूटखसोट था। उसके राजनीतिज्ञगण, फ्रान्स और दूसरे राज्यों के उतना ही गुप्त मुआहदों, कूटनीति की कपट चालों और बर्बरताओं के गुनहगार हैं जो कि जर्मनी से शायद ही कम हों। यह बात हर शख्स साफ तौर पर जानता होगा कि अपीलकर्ता लोग ऐसे खतरनाक स्वातन्त्र्य को नहीं चाहते और यदि वे ऐसा ही चाहते हों तो फिर यह उन्हींका अपना मत है—वे औरों के मतों के प्रतिनिधि नहीं हैं। स्वतन्त्रता एक ऐसा शब्द है जो बलात्कारियों के प्रयोग से पुनीत हो गया है और इसलिए उसके अनुकूल बहुतेरे लोगों को रायों को एकत्र कर लेना कोई बड़ी बात नहीं है; परन्तु उसकी ऐसी व्याख्या कर के झगड़े में कोई न पड़ेगा कि जो उन सबको मुआफिक हो सके? इसलिए मैं सुझाता हूं कि स्वराज की जगह दूसरा कोई अच्छा शब्द नहीं मिलता है और उसकी एक ही सार्वत्रिक व्याख्या हो सकती है कि भारत का वह स्थान जिसकी अभिलाषा आवश्यक अवसर पर भारतीय लोग करें।

यदि मुझसे कोई यह पूछे कि इस घड़ी हिन्दुस्तान क्या चाहता है, तो मैं कहूंगा मुझे पता नहीं। मैं सिर्फ इतना कह सकूंगा कि मैं तो उससे यही चाहता हूं कि हिन्दुओं और मुसलमानों में सच्चे संबंध रहें, जन-साधारण को रोटी मिले और छुआछूत दूर हो। इसी घड़ी तो मैं स्वराज्य की यही व्याख्या करूंगा। यह व्याख्या मैं इसलिए पेश कर रहा हूं कि मैं एक अमली आदमी होने का दावा रखता हूं। मैं जानता हूं कि हम इंगलैंड से अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता चाहते हैं। वह पूर्वोक्त तीन बातों के बिना कभी नहीं मिल सकती—यदि हमारे पास हथियार होते और हमें उसका प्रयोग भी याद होता तब भी नहीं मिल सकती।

अपीलकर्तागण दूसरी बात चाहते हैं कि महासभा के ध्येय-पत्र से यह अंश निकाल दिया जाय जो उसके साधनों को 'शान्तिमय और न्यायोचित' तक ही मर्यादित ही कर देता है। मैं उनसे इस बात में सहमत हूं; पर उन कारणों से नहीं जो उन्होंने पेश किये हैं, बल्कि मेरे कारण ठीक उनसे उलटा हैं। वे कहते हैं 'साधन आखिर तो साधन ही हैं।' मैं कहूंगा 'साधन ही तो सब कुछ है।' जैसे साधन वैसे साध्य। हिंसापूर्ण साधन हिंसात्मक स्वराज्य देंगे। ऐसा स्वराज्य सारे संसार के लिए और खुद भारत के लिए भी एक खतरा होगा। फ्रान्स ने हिंसात्मक साधनों से अपनी स्वतन्त्रता हासिल की। वह अब तक अपने हिंसाकांड की

भारी कीमत दे रहा है। अब अपनी जंगली आफ्रीकन सेना की दया पर उसका जीवन अवलंबित रहेगा। मैं मनुष्यों की समता का पक्का कायल हूं; पर मेरा यह विश्वास मुझे उस हद तक नहीं ले जाता जहां तक मान्य गया है। आफ्रिकन लोगों को उनका तालीम देना उनके समानता के सिद्धान्त की स्वीकृति का प्रमाण नहीं है। बल्कि लोकहों आने अपनी राज्यसत्ता करने के लोभ का प्रमाण है। साधन और साध्य में ऐसी कोई दिवार नहीं खड़ी है जो दोनों को एक दूसरे से अलग करती हो। हां, उस जगत्कर्ता ने हमें साधनों पर कब्जा करने की शक्ति प्रदान की है (और सो भी एक हद तक) किन्तु साध्य पर नहीं। ज्यों ज्यों हम साधन का साक्षात्कार करते जायंगे त्यों ही त्यों हमें साध्य का साक्षात्कार होता जायगा। यह एक ऐसा नियम है जिसमें किसी तरह का अपवाद नहीं हो सकता। ऐसा विश्वास रखने के कारण मैं देश को उन्हीं साधनों पर कायम रखने का प्रयत्न करता रहा हूं जो कि बिलकुल 'शान्तिमय और न्यायोचित' हैं।

परन्तु अनुभव ने मुझे यह नसीहत दी है कि साधनों को मर्यादित कर देने से यह प्रयोजन शायद सिद्ध नहीं हुआ है। क्योंकि मैं देखता हूं कि जो लोग स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सत्य और अहिंसा की आवश्यकता में विश्वास नहीं रखते वे भी महासभा में शामिल हो गये हैं; क्यों कि खुद उनमें विश्वास न रखते हुए भी वे महासभा के ध्येय पर दस्तखत कर देना बिलकुल अनुचित नहीं समझते। कदाचित वे 'शान्तिपूर्ण और न्यायोचित' शब्दों का अर्थ क्रमशः 'अहिंसात्मक और सत्यपूर्ण' नहीं करते हों। इसलिए शायद मैं खुद ही इस बात का प्रस्ताव पेश करूं कि 'शान्तिमय और न्यायोचित साधनों द्वारा' यह अंश निकाल दिया जाय। देश की मौजूदा हालत का यह सच्चा दिग्दर्शन होगा। उस अवस्था में हम मिथ्या आभास के इल्जाम के पात्र न समझे जायंगे। हर शख्स को उसी नीति का पालन करने की आजादी रहेगी जिसे वह सर्वोत्तम समझे।

'अपील' का आखिरी खण्ड दिखाई तो बड़ा अच्छा देता है; पर उससे अपीलकर्ताओं की अमली काम की पूरी नावाकिफकारी का पता लगता है। यह बात उनके ख्याल में आई नहीं दिखाई देती कि यदि अबतक हमारे पास 'राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं का ऐसा समुदाय नहीं है जो अपना सारा समय और शक्ति लगा दें' तो इसका कारण यह नहीं है कि महासभा ने इसके लिए कोशिश नहीं की है; बल्कि यह है कि महासभा को ऐसे बड़ी तादाद में कार्यकर्ता प्राप्त करने में सफलता नहीं मिली है। हाँ, अपीलकर्ता जरूर ही ऐसा समुदाय यदि कहीं हो तो उसे उपस्थित कर सकते हैं। अच्छे और सच्चे कार्यकर्ताओं के लिए रुपया उन्हें काफी मिल रहेगा। यदि अपीलकर्ता भारत की भिन्न भिन्न संस्थाओं को देखेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि किसी को भी रुपये के अभाव से कष्ट नहीं सहना पड़ता है। इससे क्या यह बात स्पष्ट नहीं होती कि राष्ट्र हमेशा उन संस्थाओं के खर्च का भार उठाने के लिए तैयार रहता है जिनकी जरूरत उसे होती है? अभी पिछले ही सप्ताह मैंने इस बात की ओर ध्यान खींचा था कि खादी-मण्डल को जैसे चाहिए वैसे कार्यकर्ता नहीं मिल रहे हैं।

अपीलकर्ताओं के कार्यक्रम की दूसरी मदों के बारे में अधिक विवेचन करने की आवश्यकता नहीं मालूम होती।

मेरा खयाल है कि पिछले अंकों में मैंने इस बात को अच्छी तरह दिखा दिया है कि अंगरेजी माल का बहिष्कार एक बिलकुल अव्यवहार्य सवाल है।

फैक्टरियों की स्थापना के प्रस्ताव पर गहरा पश्चिमी रंग चढ़ा हुआ है और वह भारतीय परिस्थिति की अवहेलना करता है।

केवल एक ही गृहउद्योग संभवनीय है; पर उसे इस कार्यक्रम में स्थान नहीं दिया गया है।

मजदूरों और किसानों की सहायता की तजवीज कहने में जितनी सहल है उतनी करने में नहीं है। और आखिरी तजवीज कि नजदीकी भविष्य में तमाम एशियाई जातियों का एक संघ बनाना, यह दिखलाता है कि यह कार्यक्रम आज कितना असंभव है।

इसलिए मैं तमाम उत्साही अपीलकर्ताओं को सुझाता हूं कि अपने कार्यक्रम की तमाम मदों को अपने अन्दर तकसीम कर लें—हर टुकड़ी अपनी मद के लिए विशेष रूप से काम करे और जब किसी भी विभाग में सफलता दिखाई दे तब वे महासभा के पास आवें कि इसे राष्ट्रीय कार्यक्रम बना लीजिए। पर यदि उन्होंने यह कार्यक्रम खुद उसे अमल में लाने के विचार के बिना बनाया हो तो मैं उनसे निवेदन करता हूं कि वे मेरी राय को मानें—खादी के काम को अंगीकार करें—यह एक ऐसा कार्यक्रम है जो तमाम काम करने वालों की शक्ति को अपनेमें लगा सकता है।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

वर्णाश्रम या वर्णसंकर ?

एक विदुषी लिखती हैं—

"सफर में एक सज्जन का और मेरा साथ हो गया, जिन्होंने मुझे बरसेन की राजपूत-परिषद् के लिए भेजे आपके संदेश की ओर मेरा ध्यान खींचा। उसे पढ़ कर मेरे दिल का वह विरोध उमड़ आया जो कि बहुत दिनों से दब रहा था। मनुष्य उसे कहते हैं जो चिन्तन-मनन करता हो। इससे मुझे आशा है कि आप मेरे चिन्तन को सह लेंगे और उसके आपसे भिन्न होने पर भी उसपर विचार करेंगे। १९२० में आश्रम और उसका वस्त्रविद्यालय देख कर ये विचार मेरे दिल में उठे थे। फिर चले गये—बीच बीच में आते जाते रहते। पर कुछ दिनों से तो उन्होंने मेरे दिल में घर बना लिया है और राजपूत परिषद्वाला आपका संदेश उनके उद्रेक का आखिरी निमित्त हुआ है।

जहां का सारा स्टेशन एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिजलियों की तरह चमकती हुई तलवारें धारण करनेवाले स्वयंसेवकों से खचाखच भरा हुआ था, जहां का सारा वायुमण्डल क्षत्रिय जाति के शौर्य और दाक्षिण्य के स्मरण से गूंजता था, वहां उनकी तलवार का स्थान चरखे को देने की आपकी सलाह क्या ईसाई पादरियों की सलाह की तरह बिलकुल अप्रासंगिक न थी? आपको तो क्या प्राचीन ऋषियों की तरह ब्राह्मण को अधिक सच्चा ब्राह्मण, क्षत्रिय को आदर्श क्षत्रिय, वैश्य को वैश्य बनने की सलाह न देनी चाहिए? ब्राह्मण का चिह्न पोथी या कलम, क्षत्रिय का तलवार और वैश्य का चरखा या हल है। आप शौक से अपने को जुलाहा या किसान कहलवाने में अपना गौरव मानें—ऐसा करना अपनी जाति की स्वाभाविक वृत्ति के प्रति आपकी वफादारी है। पर आपके सदृश वर्णाश्रम के मानने वाले हिन्दू को ब्राह्मणों और क्षत्रियों से उनके स्वाभाविक जातिधर्म छुड़ा कर वैश्य-धर्म अंगीकार कराने के लिए क्यों इतना आग्रह करना चाहिए? क्या वैश्य-धर्म को स्वीकार किये बिना आज क्षत्रिय गरीबों की रक्षा और सेवा नहीं कर सकते?

भारतवर्ष के महापुरुषों ने तो हर व्यक्ति को स्वभाव के अनुसार स्वधर्म का ही उपदेश हमेशा किया है। आपही पहले-पहल इन तमाम धर्मों को ताक पर रख कर सारे राष्ट्र को वैश्य-वृत्ति अंगीकार करने का उपदेश देने लगे हैं। वैश्य-धर्म

का उद्धार आप शौक से कीजिए; पर दया कर के ब्राह्मणों और क्षत्रियों को पीछे न घसीटिए। आप अपनी जाति को शौक से आध्यात्मिक बनाइए; परन्तु दूसरी जातिवालों को अपने विभूति-चक्र से मुक्त कर के जुलाहा और धुनिया बनाकर उन्हें दुनियादारी क्यों बना डालते हैं? मेरी राय में तो आपके आश्रम के विनोबा और बालकोबा आपके बनाये आध्यात्मिक जुलाहों की अपेक्षा यदि शुद्ध ब्राह्मण रहे होते और अपनी मेधा का पूर्ण विकास किया होता तो उनके द्वारा राष्ट्र की अधिक सेवा हुई होती।"

यह पत्र मैंने पूरा नहीं दिया है—हां उसका सार भाग जरूर दे दिया है। जो हिस्सा नहीं दिया गया है वह पूर्वोक्त अंश का भाष्य-मात्र है। पत्र-लेखिका का जन्म हिन्दु-कुल में हुआ है और वे उसका दावा भी रखती हैं। मेरा भी वही हाल है। चरखे को मैंने भिन्न भिन्न धर्म-मतों से भी ऊंचा माना है। इसलिए मेरा यह खयाल था कि उसके बारे में सुसंस्कृत मित्रों को गलतफहमी न होगी। पर ऐसा न हुआ। लेखिका कहती हैं कि मैं अकेली ही चरखे के खिलाफ नहीं हूं। इसलिए मुझे उचित है कि धीरज के साथ मैं उनकी दलीलों पर विचार करूं। १९०४ से मैंने पत्र-संपादन शुरू किया है। तब से अबतक के अपने अनुभव से मैंने यह देखा है कि संपादकों पर बहुतेरी टीका-टिप्पणियां इस कारण से होती हैं कि लोग अपने प्रतिपक्षी के वक्तव्यों को पूरी तरह नहीं समझते हैं। प्रस्तुत विषय में यदि लेखिका इस एक बात को अपने ध्यान में रखतीं कि चरखे का पैगाम मैंने अकेले हिन्दुओं को नहीं दिया है; बल्कि बिला मुस्तसना तमाम भारत-वासियों को दिया है—फिर वे चाहे स्त्री हों या पुरुष और चाहे मुसल्मान हों, पारसी हों, ईसाई हों, यहूदी हों, सिक्ख हों, या और कोई हों—वे सिर्फ अपने को हिन्दुस्तानी मानते हों—तो वे इस तरह न लिखतीं। उस अवस्था में वे इस अनुमान पर पहुंचतीं कि मैंने भारत के लोगों के सामने ऐसी चीज पेश की है, कि जो न केवल उनके विविध धर्मों के संघर्ष में नहीं आती, बल्कि जहांतक उसका अमल किया गया है तहां तक उससे उनके धर्म का और हिन्दू-धर्म वालों के तो वर्ण या जाति का तेज और गौरव बढ़ा है। इसलिए मेरा दावा है कि मेरा विचार वर्ण-संकरता फैलाने वाला नहीं, बल्कि वर्ण-शोधन करने वाला है। मैं किसी से यह नहीं कहता कि आप अपने परंपरागत धर्म-कर्म को छोड़ दीजिए; हां, मैं हर मजहबवालों से यह जरूर कहता हूं कि अपने कुदरती कर्म के साथ साथ चरखे को भी शामिल कर लीजिए। काठियावाड़ के राजपूत इस बात को जानते थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या आप यह चाहते हैं कि हम अपनी तलवारें छोड़ दें? मैंने कहा, नहीं, मैं यह नहीं चाहता। बल्कि उलटा मैंने तो यह कहा कि जबतक आप लोग तलवार के कायल हैं तबतक मैं यही चाहता हूं कि आप अपने पास ऐसी तलवार रक्खें जो कभी दगा न दे। हां, मैंने उनसे यह जरूर कहा कि मेरा आदर्श राजपूत तो वह है जो बिना ही तलवार के अपनी रक्षा करे और जो बिना दूसरे पर प्रहार किये अपनी जगह पर खड़े खड़े प्राण त्याग दे। तलवार तो हमसे कोई छीन सकता है पर बिना वार किये प्राण विसर्जन करने की वीरता हम से कोई नहीं छीन सकता। पर यह तो दूसरी बात हुई। मेरे प्रयोजन की पूर्ति के लिए तो इतना ही दिखलाना काफी है कि राजपूतों को निर्बलों की रक्षा करने के अपने कर्तव्य को छोड़ने की जरूरत नहीं बताई गई। और न मैं यही चाहता हूं कि ब्राह्मण लोग अपने अध्यापन-कर्म को त्याग दें। मैंने तो सिर्फ उनसे इतना ही कहा है कि वे पवित्र सूत्र-विद्या को यदि अपना लेंगे तो अधिक योग्य अध्यापक होंगे। विनोबा और बालकोबाने सूतकार, जुलाहा और भंगी बन कर, अपनेको योग्यतर ब्राह्मण बना लिया है। उन का ज्ञान अब अधिक परिपक्व हो गया है। ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को जानता हो। मेरे ये दोनों साथी आज ईश्वर के अधिक नजदीक पहुंच गये हैं; क्यों कि उन्हें भारत के लाखों क्षुधापीड़ित लोगों की हालत पर दुःख हुआ है और उन्होंने चरखे के द्वारा उनकी आत्मा से अपनी आत्मा को मिला दिया है। ईश्वरीय ज्ञान पुस्तकों से नहीं मिल सकता। उसे तो हम खुद अपने ही अंदर अनुभव कर सकते हैं। पुस्तक बहुत से बहुत हुआ तो कुछ हद तक सहायता दे सकती है—अकसर तो वह बाधक ही होती है। एक विद्वान् ब्राह्मण को एक ईश्वर-परायण कसाई से ब्रह्मज्ञान सीखना पड़ा था।

अच्छा तो यह वर्णाश्रम क्या चीज है? ये ऐसे विभाग नहीं है जिनका एक दूसरे से कुछ भी ताल्लुक न हो। मेरी राय में तो यह एक वैज्ञानिक तथ्य को प्रकट करता है—फिर चाहे हम उसे जानते हों या न जानते हों। ब्राह्मण का कर्म एक-मात्र अध्यापन नहीं। वह उसका प्रधान कर्म है। पर जो ब्राह्मण शरीर यज्ञ (शारीरिक श्रम) से इन्कार करता है, उसे लोग मूर्ख कहेंगे। हमारे प्राचीन अरण्यवासी ऋषि लकड़ी काटते थे, ढोरें चराते थे और लड़ते भी थे। पर उनके जीवन का प्रधान कार्य था सत्य की शोध। इसी प्रकार विद्या-विहीन राजपूत किसी काम का न होता था—फिर शस्त्र-विद्या में चाहे कितना ही निपुण क्यों न हो। और वैश्य बिना अपने काम चलाने लायक ब्रह्म-ज्ञान के उस राक्षस के समान होगा जो कि आज के वैश्यों की तरह फिर वे पूरब के हो या पश्चिम के, समाज के खून को चूसता रहता है। ऐसे लोग गीता-मत के अनुसार सिर्फ अपने ही लिए जीने वाले और पापात्मा और रौरव नरक के अधिकारी हैं। चरखे का उद्देश्य ही यह है कि हरएक के दिल में अपने कर्तव्य की स्मृति जाग्रत हो जाय। वह हरएक को अपना धर्म या कर्तव्य अच्छी तरह पालन करने का सामर्थ्य देता है। जब समुद्र शान्त हो तब जहाज का काम ठीक ठीक चलता रहता है। पर जब वह एक बार तूफान में पड़ जाता है और डूबने लगता है तब हर मल्लाह को लोगों के प्राण बचाने में सहायता देना पड़ती है—वही उस समय सब से आवश्यक कार्य हो जाता है।

हमें एक बात और याद रखनी चाहिए। सारे संसार के साथ में भारत भी आज जगद्व्यापी व्यापार-रूपी काल-सर्प के जबड़े में फंस रहा है यह उन दुकानदार सिपाहियों का राष्ट्र हो रहा है जो कि जगपर शासन करने का दावा करते हैं। उसके जबड़े से उसे छुड़ाने के लिए हिन्दुस्तान के तमाम ब्राह्मणों को सारी विद्या—बुद्धि और साधन-सामग्री लगा देनी पड़ेगी। इसलिए उसके पंडितों और सैनिकों को अपनी तमाम विद्या और शस्त्र-कौशल को व्यापारिक आवश्यकताओं में खर्च करना होगा। इसलिए उन्हें चरखा कातना सीखकर रोज उसे चलाना ही होगा—तभी वे सचाई के साथ अपने धर्म का पालन कर सकेंगे।

और न मुझे उन लोगों के लिए जो नीति और इज्जत के साथ अपनी जीविका चलाना चाहते हैं हाथ-बुनाई की सिफारिश करने में कुछ संकोच होता है। उन ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा दूसरे लोगों को जो कि आजकल अपने वंशपरंपरागत कर्मों को छोड़ कर धन कमाने के पीछे पागल हो रहे हैं, जुलाहे का निस्स्वार्थ (उनके लिए) और प्रामाणिक काम जरूर करता हूं और उन्हें निमंत्रण देता हूं कि आओ, फिर से अपने अपने धर्म-कर्म को अपनाओ, और करघे से जो कुछ आमदनी हो उसी पर सन्तुष्ट रहो। जिस प्रकार खाना, पीना, सोना आदि सब जातियों और मजहबों के लिए सामान्य है उसी तरह जबतक यह संकरता, स्वार्थमय लोभ और

उसका यह-स्वरूप जोतक कि जबतक कायम है तबतक कताई भी बिला मुलायजा हरएक के लिए सामान्य होना चाहिए। इसी कारण मेरा यह उपाय वर्णसंकर बनाने का अर्थात् अधिक गोलमाल पैदा करने का नहीं बल्कि वर्णाश्रम-व्यवस्था का अर्थात् शोधन को पुख्ता बनाने का है।

(यं०इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

प्रश्नोत्तरी

असहयोग का अध्ययन करनेवाले एक मित्र ने कितने ही सवाल पूछे हैं। वे कितने ही लोगों को उपयोगी हो सकते हैं। इसलिए और उनके जवाब-सहित यहाँ देता हूं—

प्र०—हमारा विरोध व्यक्तियों के साथ नहीं 'सिस्टम' के साथ है। यहाँ सिस्टम का क्या अर्थ है? समुदाय, पद्धति या संस्कृति?

उ०—समुदाय हरगिज नहीं। पद्धति जरूर है और जहां तक संस्कृति उसके लिए जिम्मेवार हो वहां तक संस्कृति भी।

प्र०—'जबरदस्त का ठेंगा सिर पर' नामक लेख में आपने लिखा है कि सर शंकरन् नायर के साथ जो अन्याय हुआ है उससे इस राज्यतन्त्र की बुराई अधिक स्पष्ट हो गई। इधर महासमिति के सभ्यों को लिखते हैं कि "अदालतों और पाठशालाओं की तरफ खिंचाव होते हुए भी यदि हम उनका विरोध करें तो हमारा विरोध पद्धति के साथ नहीं बल्कि व्यक्तियों के साथ होगा।......मेरा स्वराज तो है हमारी संस्कृति के प्राण को अक्षुण्ण रखना।" इन वाक्यों पर विचार करते हुए पहले में 'गोरों की सरकार' की ध्वनि दिखाई देती है और दूसरे में संस्कृति पर कटाक्ष है।

उ०—नहीं, जरूर ही ऐसा नहीं है। सर शंकरन् का न्यायाधीश ब्रिटिश राजनीति का संचालक होने के कारण उसके हाथों दूसरी तरह न्याय न हो सका। हम हिन्दुस्तान में देखते हैं कि वर्तमान राज्यतन्त्र में काम करने वाले हिन्दुस्तानी न्यायाधीशों से मानमान के मौके पर न्याय की आशा नहीं रख सकते। यह उनका नहीं, बल्कि प्रणाली का दोष है। मामूली आदमी अपने वायुमण्डल की सीमा को लांघ ही नहीं सकता। जो लांघ सकता है वह न्याय्य पद्धति में एक लहमे के लिए नहीं ठहर सकता। असहयोग हमें इसी तरह की शिक्षा देता है। मैंने तो कितनी ही बार कहा है कि यदि वर्तमान प्रणाली कायम रहे और उसमें तमाम अधिकारी हिन्दुस्तानी हों तो भी वह मेरे लिए त्याज्य है।

प्र०—मैं समझता हूं कि असहयोग की तजवीज हमारी संस्कृति की रक्षा के लिए नहीं (संस्कृति की रक्षा उसका अप्रत्यक्ष पर एक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण परिणाम हो) बल्कि हमारे मान-गौरव की रक्षा के लिए हुई थी।

उ०—हमारे मान-गौरव पर जो हमला होता था वह प्रत्यक्ष था। इसलिए उसकी बात करना ज्यादह पुर-असर था। पर मान-गौरव हमारी संस्कृति में छिपा हुआ था। अब जब कि मान-गौरव की रक्षा न होते हुए भी सरकारी अदालतों और पाठशालाओं आदि का मोह फिर बढ़ने का भय दिखाई देता है, तब उसमें संस्कृति पर होने वाला छिपा हमला हम खोल कर बताते हैं। ऐसी उत्तरोत्तर दलीलें जान-बूझ कर नहीं की जातीं। परिस्थिति उन्हें उत्पन्न करती है। अगर और गहरा विचार करें तो मान-गौरव, संस्कृति, पद्धति आदि शब्दों का परस्पर निकट संबंध दिखाई दे सकता है। और इन सब का मूल एक ही बात में है।

प्र०—मुझे यह निश्चय नहीं हुआ कि सरकारी अदालतों में कोई बात जरूर ही विघातक है। फिर भी मैं अपने पड़ोसी की फरियाद वहां न ले जाऊंगा। क्योंकि यह उस विदेशी सरकार की अदालत है जो हमपर जुल्म गुजारती है। इसी प्रकार मौजूदा शिक्षा-पद्धति में बुराई न देखने वाले आदमी को भी उसका बहिष्कार करना चाहिए। सरकारी अस्पताल की दवा कितनी ही अच्छी हो, पुलिस का प्रबन्ध सराहनीय हो तो भी असहयोगियों को उससे लाभ न उठाना चाहिए।

उ०—जिन लोगों ने अदालतों और पाठशालाओं में इतना ही दोष देखा है कि वे गैरों की हैं उन्हें असहयोग कठिन हो पड़ा है। इस बुराई की जड़ संस्थाओं के पराची होने में नहीं बल्कि उनके दूषित पद्धति के अंग होने में है। इस जगह पद्धति की व्याख्या की जरूरत है; क्योंकि प्रश्नकर्ता ने शिक्षा-पद्धति शब्द का प्रयोग किया है। मुझे सरकार की शिक्षा-पद्धति में भी दोष दिखाई देता है। पर वह मेरे विरोध का कारण नहीं है। मेरा विरोध शासन-पद्धति के साथ है—वह पद्धति कि जिसमें राज्यकर्ता का आर्थिक स्वार्थ प्रधान-पद रखता है और इस कारण जिसमें धर्म या नीति को गौण स्थान मिलता है; वह पद्धति कि जिसमें राज्यकर्ता अपने आर्थिक लाभ की रक्षा के लिए डायरशाही रचने में नहीं हिचकते; एक भी पाप करते नहीं सकुचाते—नहीं डरते। यदि यह पद्धति ऐसी स्वार्थमय न होती तो अंगरेजों को राज्य गैर कहने का मौका ही न आता। इस दलील की सचाई की कसौटी यह है—फर्ज कीजिए कि यह सरकार पंजाब के हत्याकाण्ड का प्रायश्चित्त कर ले, विदेशी कपड़े का आना बंद कर दे, खादी को उत्तेजना दे, अफीम-शराब का कर मिटा दे, उसका ७५ फी सदी खर्च बन्द कर दे, हिन्दू-मुसलमान-एकता को अपना कर्तव्य समझे तथा अन्यान्य बातों में लोकमत का आदर करे तो उसका विरोध कौन करेगा और यदि करे तो उसे कौन सुनेगा? फिर दूसरी बातों में सदोष होते हुए भी हम प्रचलित अदालतों और पाठशालाओं का बहिष्कार न करेंगे। पूर्वोक्त स्वार्थमय राज्यनीति आधुनिक या पश्चिमी संस्कृति के मूल में स्थित है। पर इस प्रकार जो गहराई में नहीं उतरना चाहते उनका विरोध जाग्रत करने के लिए उस संस्कृति का स्पष्ट परिणाम इस सरकार की डायरशाही है।

प्र०—आप लिखते हैं कि सरकारी राज्यनीति का उद्देश है हमें जंगली बनाना। जहां हम जंगली हुए नहीं कि तुरंत हमारे राज्यकर्ता हमारे हाथों में राज्य की बागडोर खुशी से सौंप देंगे और हमें अपने आश्रित बना रक्खेंगे।' क्या अंगरेज लोग इतने निःस्वार्थ भाव से यहां रह रहे हैं? जिसे आप उसका दोष बताते हैं उसी को मैं पुकार पुकार कर उसका गुण बताते हैं। यदि हम योरपियन चाल-ढाल कबूल कर लें तो क्या अंगरेज लोग यहां से चले जायंगे? हम उनके मनचाहे आश्रित किस तरह होंगे? इंग्लैंड और जर्मनी की संस्कृति एक ही है। फिर भी उनमें झगड़े होते ही हैं या नहीं? मैं तो कहता हूं कि संस्कृति एक है इसीसे झगड़े होते हैं।

उ०—इसमें बहुतेरी बातों का समावेश हो गया है। यदि हम जंगली हो जायंगे तो हम खादीवादी नहीं रह सकेंगे। आधुनिक संस्कृति परिणाम में जड़वादी और अनात्म है। हमारे जंगली होने का अर्थ है दुनिया को लूटने की पद्धति को स्वीकार करना—फिर हम किसानों की हालत की ओर लापरवाही करेंगे और पशु-बल को अपनी हस्ती का आधार बनावेंगे। ऐसा करने पर उसका अर्थ आदि इसी प्रकार रहेंगे। ऐसा होने पर उन्हें हमारी कोई शिकायत न रहेगी। हमारी जरूरतें खूब बढ़ जायंगी तो हम इंग्लैंड के एक भारी से भारी खरीदार हो जायंगे। इंग्लैंड और जर्मनी की लड़ाई भी इसी संस्कृति का भिन्नरूप में उत्पन्न फल है। दोनों निर्बल राष्ट्रों से लाभ उठाना चाहते थे और दोनों ज्यादह से ज्यादह हिस्सा मांगते थे इससे लड़ पड़े। पर उनके और हमारे संग्राम में भारी भेद है। उनका मुकाबला बराबरी वालों का था और उसमें मान-गौरव की

प्रकृति रहती है । योरप की संस्कृति को यदि हम ग्रहण कर लें तो फिर जब तक हम अंगरेजों के ग्राहक बने रहेंगे तबतक हमारे और उनके बीच बहुत काल तक लड़ाई होने की संभावना न रहेगी । अंगरेज लोग बारबार यह बात कहते हैं कि हम अभी अपना कारोबार चलाने लायक नहीं हुए । यह बिलकुल पाखण्ड नहीं है । कितने ही लोग यह बात मानते हैं और कहते भी हैं कि जबतक हमारी संस्कृति जुदी रहेगी तबतक हम योरपीय पद्धति के अनुसार राज्य-संचालन करने के योग्य न होंगे । दक्षिण आफ्रिका आदि को छुट्टी क्या है ? इसका क्या कारण है ? लोगों को दिखाई देता कि वहां के गोरे एक ही संस्कृति के पुजारी हैं । इसीसे वे इंग्लैंड के आढ़तिये बने हुए हैं । इंग्लैंड अपना माल उन गोरों के मार्फत बेचता है । इससे वहां उसे खुद अपने आदमियों को रखने की जरूरत नहीं होती । यह बात नहीं कि इनका खून एक ही हो । अगर द० अ० के गोरे आज निःस्वार्थ होकर वहां के हबशियों के स्वार्थ को प्रथम स्थान दें तो उनके गोरे होने पर भी इंग्लैंड को बड़ी दुविधा में गिरना पड़े और यह तो हम देखते ही हैं कि यदि ऐसे परोपकारी अंगरेज उत्पन्न होते हैं तो अंगरेजी समाज उनका बहिष्कार करता है ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

सभापति कौन हो ?

जब से बेलगांव की आगामी महासभा के सभापतिपद के लिए मेरा नाम पेश किया गया है, दो तरह की रायों में मेरी कशमकश हो रही है । शुरू में तो मेरा यही ख्याल हुआ था कि तुरन्त अपने नाम को पेश होने से रोकूं । पर मैं यह भी सोचता था कि राष्ट्र की मौजूदा तूफानी अवस्था में शायद मैं उसे मनलब स्थान पर ले जाने के लिए सर्वोत्तम व्यक्ति हूंगा । लेकिन अब मुझे साफ तौर पर यह दिखाई देता है कि मेरा यह पिछला ख्याल गलत था । जब जब मैं आगामी महासभा के अधिवेशन का चित्र अपनी आंखों के सामने खड़ा करता हूं तब तब मैं कांप उठता हूं । अगले एक साल तक सभापति की हैसियत से महासभा के कार्य-संचालन का ख्याल मुझे पशोपेश में डाल देता है । मुझे इस बात का अभीतक निश्चय नहीं हुआ है कि देश किस ओर जा रहा है । इससे मेरा मन कहता है कि मैं इस नाव का कप्तान होने के लायक नहीं हूं । चरखा, हिन्दू-मुस्लिम-एकता और अछूतोद्धार के सिवा मेरे पास दूसरा कोई कार्यक्रम नहीं है । मैं दूसरे किसी कार्यक्रम के अनुसार जैसे अंगरेजी माल का बहिष्कार या धारासभा की कार्रवाई के तरीके पर लोगों में जीवन का संचार करना, काम करने के योग्य नहीं हूं । ये तो उन बातों के नमूने मात्र हैं जिनकी संभावना और आगे हो सकती है । और यदि मैं उनकी सहायता नहीं कर सका तो मुझे महासभा के भीतर रहकर उनमें बाधा पहुंचाना भी उचित नहीं । यह मेरे स्वभाव के खिलाफ है कि जिस कार्यक्रम में मेरा विश्वास नहीं है, या नहीं हो सकता, उसके अनुसार मैं कार्य कर दिखाऊं । इसके अलावा मुझे आकस्मिक आवश्यक बातों के लिए अपनेको इससे अलहदा ही रखना ठीक है । यदि महासभा के प्रतिनिधिगण आध घण्टा चरखा कातने और २००० गज अपना काता अच्छा सूत हर महीने भेजने का अपना कर्तव्य न मानें, तो मैं नहीं समझता कि महासभा के लिए मेरी उपयोगिता क्या होगी ? सभापति के नाते मेरा भाषण एक प्रबन्ध होगा—चरखे पर और हिन्दुओं के लिए अपनी दुनियावी महत्वाकांक्षाओं को मुसलमानों तथा दूसरी छोटी जातियों के लाभार्थ उनके समर्पण कर देने की, तथा छुआछूत को एक पाप समझने की आवश्यकता पर । यदि ये बातें देश में उत्साह का संचार नहीं कर सकतीं तो मैं एक निरुपयोगी सभापति हूंगा । ऐसे शख्स को सभापति बनाने से महासभा का काम कैसे चलेगा, जो एक ऐसा कार्यक्रम पेश करता हो जिसके अनुसार सारे देश वासियों को उसके लिए पतलून पहनना पड़े । हम कै-कटके ऐसे शख्स के खिलाफ अपनी राय देंगे—फिर वह अपने काम में कितना ही बड़ा और अपनी तजवीज के मुताबिक काम चलाने में कितना ही लायक हो । हम उसे अपना सभापति न बनावेंगे, क्योंकि वह हमारे काम का न होगा । यही बात मुझपर भी चरितार्थ हो सकती है ।

ऐसी हालत में मुझे उचित है कि मैं अपना चुनाव न होने दूं । जिन सज्जनों ने मेरा नाम पेश किया है उनके प्रेम की मैं कदर करता हूं । पर मैं उनसे निवेदन करता हूं कि वे मेरी हालत पर गौर करके मेरे साथ हमदर्दी करें और मेरा नाम वापस ले लें ।

तो अब सभापति-पद के लिए दो नाम रह जाते हैं—सरोजिनी देवी नायडू और डाक्टर अनसारी । जब मैंने डा० अनसारी का नाम लिया तब एक मित्र ने कहा कि इन चार सालों में डाक्टर अनसारी चौथे मुसलमान सभापति होंगे । पर यह कारण मुझे उनका नाम पेश करने से नहीं रोक सकता । हिन्दुओं को चाहिए कि वे एक मुसलमान को अपना सभापति बनाकर हिन्दू-मुसलमान-एकता की अपनी दृढ़ अभिलाषा का परिचय दें । हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों में जो कुछ थोड़े निष्पक्ष नेता हैं डाक्टर अनसारी उनमें एक हैं । इसलिए सिर्फ हिन्दू-मुस्लिम-एकता की ही दृष्टि से डा० अनसारी का चुनाव सबसे बढ़िया होगा ।

पर मुझे कहना होगा कि वर्तमान अवसर पर मैं अपनी राय श्रीमती सरोजिनी नायडू के हक में दूंगा । वे हिन्दू-मुस्लिम-एकता की पक्की हामी हैं । मुसलमान उन्हें अविश्वास की दृष्टि से नहीं देखते हैं । अभीतक कोई भारतीय महिला महासभा की अध्यक्ष न हो पाई है । बहुत दिनों से हमने अपने देश की बहनों के प्रति अपना आदर-भाव प्रकट नहीं किया है । यह उसका सर्वोत्कृष्ट अवसर है । पूर्वी और दक्षिणी आफ्रिका में उनके द्वारा की गई सेवायें अभी हमारे दिलों में ताजा बनी हुई हैं । उनका पुरस्कार हम इससे बढ़कर दूसरा नहीं दे सकते कि हम अगामी बैठक के लिए सरोजिनी देवी को अपना अध्यक्ष बनावें । इससे हमारे प्रवासी भारतवासी भाइयों का पक्ष पुष्ट होगा । वे खास तौर पर इस बात को समझेंगे कि हम उनके हितों की उपेक्षा नहीं कर रहे हैं । पूर्वी और दक्षिण आफ्रिका में सैकड़ों योरपियनों ने हमारे इस देश-दूत के प्रति बड़ी ही शिष्टता और सभ्यता प्रदर्शित की है और उनके प्रति हमदर्दी जाहिर की है । हमारा यह चुनाव उनके इस सद्व्यवहार और सहानुभूति की अच्छी स्वीकृति होगी । यह हमारे इस निश्चय का सूचक होगा कि हम प्रवासी भाइयों के काम को अपना काम मानते हैं । और आखिरी बात यह कि हमें इस बार एक निष्पक्ष सभापति की आवश्यकता है । मैं तो खुल्लम-खुल्ला एक दल-विशेष से संबंध रखता हूं—अर्थात् मैं पुराने कार्यक्रम का ही पक्का हामी हूं । देश के और अपने सद्भाग्य से श्रीमती नायडू के विचार ऐसे अपरिवर्तनीय नहीं हैं । और इससे भी बढ़कर बात यह है कि उन्हें कोई किसी कार्यक्रम से उस तरह एकरूप नहीं कर सकता जिस तरह मैं अपने कार्यक्रम के विषय में हो सकता हूं । इसलिए मैं उन तमाम प्रान्तीय समितियों से आदर-पूर्वक अनुरोध करता हूं कि वे मेरा नाम वापस ले लें और सरोजिनी देवी को अपना अध्यक्ष चुनें । हां, यदि पूर्वोक्त कारणों से वे किसी मुसलमान को सभापति बनाना चाहते हों और डाक्टर अनसारी को यह पद देना चाहते हों तो बात दूसरी है ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

शिक्षकों की दशा

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)॥
विदेशों के लिए ,, ७)

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ५०

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच } अहमदाबाद, श्रावण वदी ११, संवत् १९८१ रविवार, २७ जुलाई, १९२४ ई० { मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

दुःखद चित्र

अमृतसर के एक मुसलमान-सज्जन बड़े दुःख के साथ लिखते हैं—

"आजकल उत्तर भारत में और पंजाब में हिन्दुओं और मुसलमानों के दो-दो हाथ होने के समाचार रोज सुनाई देते हैं। इससे यह साबित होता है कि दोनों जातियां अपने देश में उठने वाले प्रश्नों का निपटारा करने में असमर्थ हैं—यही नहीं, बल्कि अनेक वर्षों लोगों के बने इस विशाल देश के राज्य की बागडोर अपने हाथों में लेने के अयोग्य हैं। दोनों का विरोध मिटाने का आपका उद्योग बेशक सफल हुआ था; पर आप ज्यों ही जेल में पहुंचे कि तुरत ही मनचले लोगों ने सिर ऊंचा उठाया। आपके जेल जाने के पहले जहां जहां दोनों जातियों में प्रेम-भाव और सम-भाव था वहां वहां आज फूट और दुश्मनी फैली हुई है। पंजाब के तमाम बड़े बड़े शहर इन दोनों जातियों की आपस की लड़ाई के अखाड़े हो गये हैं और यह आशा नहीं दिखाई देती कि भूतकाल का मीठा संबंध फिर कभी दिखाई देगा।

क्या इस रोग के असाध्य होने के पहले आप कुछ इलाज नहीं कर सकते? कृपा कर के पंजाब पधारिए और खुद अपनी आंखों सब हाल देखिए। जब तक आप फिर उसी स्थिति को नहीं ला पावें तब तक आपकी खादी की हलचल फजूल है! कहां १९१९ का अमृतसर और कहां आज का! अमृतसर की आबादी कोई २ लाख है। पर उनमें ५० आदमी भी मुश्किल से खादी धारी दिखाई देंगे। और सो भी इसी कारण कि वे महासभा की समितियों के कोई न कोई पदाधिकारी हैं। और यह सारी स्थिति हिन्दू-मुसलमानों की फूट का परिणाम है। आप इस मूल कारण पर कुल्हाड़ी चलाइए—बस, दूसरी सब बातें अपने आप दुरुस्त हो जायंगी। अफसोस! संगठन की बुनियाद किसी बुरी साइत में रक्खी गई मालूम होती है।"

पत्र-लेखक द्वारा चित्रित यह चित्र निःसंदेह कुछ अधिक काला है। पंजाब में अगर हिन्दुओं और मुसलमानों में रोज खुल्लमखुल्ला दो दो हाथ होते हों तो वहां रहना कठिन हो गया होगा। पर मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं कि बाह्य दृष्टि से तो पंजाब दूसरे किसी भी प्रांत के बराबर ही शांत है। फिर यह सज्जन सारा दोष संगठन के ही मत्थे मढ़ते हैं। यह उनकी भूल है। रोग तो था ही। हां, संगठन से वह बढ़ जरूर गया है। दोनों जातियां अपनी अपनी समता खो बैठी हैं।

यदि पंजाबियों ने हिन्दू-मुसलमान तनाजे के कारण खादी छोड़ दी हो तो खादी और देश के प्रति उनका प्रेम दिखौवा भर रहा होगा। परंतु मैं इस बात को नहीं मानता कि उनकी देशभक्ति औरों से कम है। इसलिए खादी कम होने का कारण कहीं और खोजना होगा। इसका साफ कारण तो यह है कि लोगों का यह विश्वास जाता रहा कि खादी के बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। और स्कूल तथा कालिजों से वंचित ऐशआराम की जिन्दगी बसर करने की इच्छा बढ़ गई है। तमाम प्रांतों में पंजाब ही एक है जो अगर चाहे तो विदेशी कपड़े का बहिष्कार आज ही कर सकता है। पर वह चाहता ही नहीं। मैंने लोगों को यह कहते हुए सुना है कि कितने ही हिन्दू इसलिए खादी पहनने से इनकार करते हैं कि वह मुसलमानों की बुनी होती है और मुसलमान इसलिए इनकार करते हैं कि उन्हें स्वराज्य से कोई वास्ता नहीं। वे तो अंग्रेजों को निकाल देना चाहते हैं और उनकी जगह पुराना मुसलमानी राज्य कायम करना चाहते हैं। और यह भी कहा जाता है कि अगर हिन्दू और मुसलमान दोनों एक सामान्य ध्येय के लिए चर्खे के सूत्र से बंध जायं तो पुराना राज्य नहीं कायम किया जा सकेगा। मगर यह सब फटे दिमाग की भाफ है। ऐसी बातों का विचार करने तक की फुरसत गरीब हिन्दू और मुसलमानों को नहीं रहती। वे तो खुशी खुशी चर्खा चलाकर २-४ रुपये की आमदनी बढ़ाने के लिए उत्सुक रहते हैं।

परन्तु खादी कम होने की तथा पूर्वोक्त पत्र में जो बातें बढ़ाकर कही गई हैं उन्हें छोड़ दीजिए। तो भी इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि दोनों जातियों में वैमनस्य ने बड़ा गंभीर रूप धारण कर लिया है। क्या इस बात से कोई आंखें मूंद सकता है कि देहली में नेता लोग अपना वजन और पहुंच खो बैठे हैं।

पर खुशकिस्मती से फिर अक्लमन्दी आने के दिन दिखाई देते हैं। जाटों और कसाइयों को एक दूसरे का सिर फोड़ने की अपनी बेवकूफी दिखाई दी है और कहते हैं कि उनमें सुलह हो गई है। पर सब से आशाजनक खबर तो दूसरे पत्रों से मिलती है। उसमें यह खबर है कि एक ओर जहां खून-खराबी करने पर तुले हुए दीवाने लोग थे तहां दूसरों की जान बचाने का निश्चय

कर रखनेवाले समझदार स्त्री-पुरुष भी वहां थे और ऐसी मिसाल एक दो ही नहीं बल्कि इतनी ज्यादह तादाद में हैं कि जिससे जाना जाता है देहली में जितनी इच्छा लड़ाई की थी उतनी ही शांति की भी थी। लड़ाई स्वाभाविक नहीं, वह तो निरोग शरीर पर उठने वाली गांठ की तरह क्षणिक है। पर शांति स्वाभाविक है, चिरस्थायी है। दोनों जातियां यदि एक बार इस बात का निश्चय कर लें कि हम एक-दूसरे के धार्मिक रिवाजों का लिहाज रक्खेंगे तो फिर कोई बात मुश्किल नहीं। मेरे पंजाब जाने के विषय में यह बात छिपी नहीं रह गई है कि मेरा दिल उन जगहों पर जाने के लिए तड़प रहा है, जहां पर तनाजा फैला हुआ है। इच्छा तो अपार है। सिर्फ शरीर दिल को पीछे हटाता है। जहां मैं देखूंगा कि अब सफर करने में तन्दुरुस्ती के लिए ज्यादह खतरा नहीं है फौरन् मौलाना शौकतअली के साथ सिंध और पंजाब जाने का इरादा करता हूं।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

मिलों की हिमायत

एक महाशय लिखते हैं—

"आपकी राय में स्वराज्य हासिल करने का सब से बढ़िया साधन चरखा है। आपके सब आशय और स्वार्थत्याग से इनकार नहीं किया जा सकता। पर यह सोचना कठिन है कि यह बात आपकी समझ में क्यों नहीं आती कि खादी का घर घर में प्रचार करके आप अनेक मिलवालों और उससे भी अधिक शेयरवालों को घोर-संकट में डालेंगे? मिलवालों ने मिलों में लाखों रुपया खर्च किया है और कितने ही शेयरवाले तो ऐसे हैं जिन्हें पूरी रोजी नहीं मिलती। उन्होंने मिलों को हरा-भरा देख कर इसलिए अपनी सारी जमा-पूंजी शेयरों में डाल दी है कि जिसका ब्याज और मुनाफा निर्वाह का एक और साधन हो। इसका फल यह होगा कि उन निचले लोगों की हालत सुधारने की आशा में, जिन्हें अपने गौरव या इज्जत का कुछ भी खयाल नहीं होता है और जो हर उपाय से अपना पेट पाल सकते हैं, आप उतने ही बल्कि उससे भी अधिक मध्यम श्रेणी के लोगों का सत्यानाश कर बैठेंगे।

आप तो ऐसे महात्मा हैं जिनका जनता के प्रति अत्यन्त निःस्वार्थ समभाव है। इसलिए आपको तो ठीक न्याय करना ही उचित है। कोई ऐसा मध्यम मार्ग निकालिए जिससे एक को नुकसान पहुंच कर दूसरे का लाभ न हो—चरखे को भी एक हद तक उत्तेजना दीजिए और दूसरी तरफ मिलवालों और शेयरवालों की बड़ी तादाद को भी मदद देना चाहिए।

आप विदेशी कपड़े का बहिष्कार बेशक कीजिए, परन्तु खादी के बदले मिल का कपड़ा इस्तैमाल करने की छुट्टी दे दीजिए। इससे आप अनेक उत्तम और मध्यम वर्ग के लोगों के सहाय-रूप होंगे।"

यह पत्र करुणाजनक है। मन में यह उठने लगता है कि यदि लेखक के तमाम अन्देशे सच हो जायं तो क्या अच्छा हो। क्योंकि उसी अवस्था में वे महाशय समझ सकेंगे कि मिलों और शेयरवालों के सत्यानाश की घड़ी खुद उनके तथा भारतवर्ष के उद्धार की घड़ी है। ऐसा होने पर वे यह भी देखेंगे कि हिन्दुस्तान की धमनियों में नया खून बह रहा है और मंझला दल आज भूखों मरने वाले किसानों के प्राण पर जीने के बजाय सुखी और मजबूत किसानों के साथ बढ़िया सहयोग करते हुए अपना निर्वाह कर रहा है। क्योंकि वे किसान लोग खुशी खुशी उस चीज को जिसे वे पैदा नहीं कर सकते पर जिसकी उन्हें जरूरत तो रहती है, अपनी पैदा की हुई चीज बदले में दे कर लेंगे। जरा ही विचार करने से पूर्वोक्त पत्र-लेखक समझ जायंगे कि चरखे का प्रचार इस हद तक करने के लिए कि जिससे मिलें टूट जायं खुद पत्र लेखक को तथा दूसरे शेयरवालों और मिल के डिरेक्टरों को लोगों के साथ पूरा सहयोग करना होगा। इसके पहले कि चरखा हिन्दुस्तान की मिलों के कपड़े पर अपना असर डाल सके, उसे कोई ६० करोड़ रुपये के विदेशी कपड़े को मार भगाना पड़ेगा। इतनी ही बात से पत्र-लेखक की चिन्ता दूर हो जानी चाहिए। परन्तु मैंने जिन कारणों का उल्लेख बारबार इस पत्र में किया है उनके अनुसार तो हमें मिल का कपड़ा छोड़कर केवल खादी का ही विचार लाजिमी है। हमारी मिलों को मेरे तथा दूसरे किसी के आश्रय की जरूरत नहीं है। उनके पास खुद अपने आढ़तिये होते हैं और अपने माल की शोहरत फैलाने की खास तरकीबें होती हैं। इसलिए जो लोग महासभा के दायरे में हों उन्हें खादी के बदले मिल का कपड़ा पहनने की छुट्टी देना मानों खादी के उद्योग का नाश करना है। इसके पहले कि खादी का असर कपड़े के बाजार पर हो उसे जितना रक्षण दिया जा सके, देना चाहिए।

यह तो हुआ पूर्वोक्त पत्र-लेखक तथा उनके सदृश विचार रखनेवाले लोगों के चित्त की शान्ति के लिए। परन्तु यहां यह कह देना चाहिए कि यदि यह पत्र मिलों और मंझले दरजे पर आने वाली आफत के अज्ञान-पूर्ण भय से न लिखा गया होता तो इसे मुझे हृदय-शून्य कहना पड़ता। 'जिन्हें इज्जत-आबरू का कुछ खयाल नहीं' इस प्रकार निचले दरजे के लोगों का परिचय देने में पत्र-लेखक की क्या मन्शा है? क्या उनका विश्वास है कि निचले दरजे के लोगों को अपनी इज्जत-आबरू का कुछ विचार नहीं होता? क्या उनके हृदय नहीं है और उसमें भाव भी नहीं हैं? क्या कड़वे और तीखे शब्द उन्हें बुरे नहीं मालूम होते? उनके निचले होने का कारण सिवा उनकी गरीबी के और क्या है? और क्या इस मुफलिसी के लिए मंझला दल जिम्मेवार नहीं है? और पत्र-लेखक को मैं यह भी कह देता हूं कि निचली श्रेणी के लोग 'हर उपाय से अपना पेट नहीं पाल' सकते हैं—यही नहीं बल्कि उनका एक बड़ा भाग आधे पेट रह कर जिन्दगी तय कर रही है। यदि मंझला वर्ग निचले वर्ग के लिए स्वेच्छापूर्वक नुकसान बरदाश्त करे तो कहना होगा कि अबतक जो उन्होंने उन्हें चूसा है उसका कुछ बदला उन्हें दिया। निचले कहे जानेवाले वर्ग से ऊंचे होन का यह अभिमान और उसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली उनके कष्टों के प्रति निष्ठुरता ही स्वराज्य के रास्ते में विघ्नरूप है और जीवनदायी चरखे की प्रगति को रोकती है। मैं पत्र-लेखक से प्रार्थना करता हूं कि वे सारी स्थिति को तथा सर्व-साधारण लोगों की दशा पर गौर कर के विचार करें और चरखे को स्वीकार करके अपनेसे कम सुखी अपने देश-भाइयों के साथ आत्मभाव रक्खें।

पत्र-लेखक को यह बात भी याद रखनी चाहिए कि यदि जनता के प्रति मेरे विशाल समभाव के कारण निचले वर्ग की तरफदारी पर मिलों के प्रति दयाभाव रखने की बात मुझसे कही जा सकती हो तो उसी कारण से विदेशी मिलों के प्रति दयाभाव रखने का आग्रह भी मुझसे किया जा सकता है, जैसा कि कितने ही मित्रों ने किया भी है। परन्तु यदि यह बात सच हो कि विदेशी मिलों ने हमारी साधारण जनता को तहस-नहस कर दिया है—और यह बात अक्सर सच है—तो विदेशी मिलवालों को नुकसान होते हुए भी मान व दया के खातिर सर्वसाधारण को जिन्हें

चरखा ग्रहण करने की शिक्षा दिये बिना छुटकारा नहीं। इसी प्रकार जिन सर्वसाधारण-समाज के सत्यानाश पर हमारे देश को मिलें खड़ी की गई हैं उन्हें भी नुकसान सहने की जरूरत दिखाई दे तो उसे सहन करना लाजिमी है। हमारे देहात में आ कर कोई साहसी मदिरालय वहाँ बंद करने के लिए सस्ती Buckery खोले तो मुझे आशा है कि सारा समाज ऐसे साहस का विरोध करेगा। यह विरोध जितना सकारण है उतना ही मेरा मिल-विरोध भी सकारण है, यदि मिलें सर्वसाधारण के हित में बाधक होती हों।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

चरखे के लिए

जब बड़ी धारासभा के सदस्य श्री एम. के. आचार्य ने मुझे खुली चिट्ठी लिखी, मैंने उनसे वादा किया था कि 'यंग इंडिया' में उसका जवाब देने की मैं कोशिश करूंगा। मुझे अफसोस है कि मैं इसके पहले जवाब न दे सका। उस चिट्ठी को खूब गौर से पढने के बाद मेरा खयाल है कि मत-भेद के लिए बहुत जगह नहीं रहती। मेरी यह खुशनसीबी है कि अपने प्रतिपक्षी के दृष्टिबिन्दु से मैं वस्तुओं को देख सकता हूं और उस हद तक उनके विचारों में भी शरीक हो सकता हूं। और यह मेरी बदनसीबी है कि मैं उन्हें मेरे दृष्टिबिन्दु से देखने के लिए समझाने में समर्थ नहीं होता हूं। अगर मैं ऐसा कर सकता तो मतभेद होते हुए भी हमारे बीच अच्छा इत्तफाक हो सकता था।

असहयोग के कारण और मूल के विषय में मेरे और श्री आचार्य के बीच ठीक ठीक इत्तफाक है। लेकिन महासभा के प्रस्तावों को तैयार करने में मेरा और उनका मतभेद है। मेरा उनकी दृष्टि से इस राय के साथ इत्तफाक है कि महासमिति के सामने पेश मेरे प्रस्तावों का प्राक्कथन महासभा के प्रस्तावों के शब्दों से आगे बढ जाता है। लेकिन तब से (मुझे कहना चाहिए) कावेरी में बहुतेरा पानी बह चुका है। मैं उन्हें पहले की महासमिति के प्रस्तावों पर विचार करने का अनुरोध करता हूं; उन्हें इस प्राक्कथन की छाया उसमें दिखाई देगी। मेरा खयाल था, कि सविनय-भंग की तैयारी के लिए चरखा अख्त्यार करना अनिवार्य समझा जाता है। प्रस्तावों में यह शर्त बार बार कही गई है। आखिरी महासमिति में बहुत-सी बातों का पूर्ण विरोध किया गया था, लेकिन इस प्राक्कथन के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा गया था। क्योंकि हरएक ने सविनय भंग के लिए चरखे को पहले ही से आवश्यक मान लिया था। मैं मानता हूं कि मैंने उस प्राक्कथन को पेश करके ठीक ही किया था। उसके गुणों के विचार से तो मैं अपना यह विश्वास दुहराता हूं कि जबतक कताई व्यापक न होगी तबतक जनता के अर्थ में स्वराज्य नहीं हो सकता। यह सच है कि हम लोग परदेशी सत्ता के अधीन होने के पहले कातते तो थे लेकिन उस वक्त हम उसकी राष्ट्रीय उपयोगिता को नहीं जानते थे। क्या हम शुद्ध वायु को ग्रहण करके अक्सर अपने फेफडे खराब नहीं कर लेते हैं? जब वे खराब हो जाते हैं तभी उनकी और शुद्ध वायु की जरूरत हम समझ सकते हैं। चरखे को फिर अपनाने के मानी होते हैं बहुतेरा संगठन, बहुत-सा सहयोग, बहुत से पैसे की बचत और उसका जनता में वितरण होना और अंग्रेजों के आतंक का हट जाना। इसलिए जब कोई मुझसे चरखे से स्वराज्य स्थापित करने की संभावना के बारे में सवाल करता है तो मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। मुझे यह कहने की जरूरत नहीं है कि जैसे स्वराज्य पाने के लिए हर राष्ट्र को हर हालत में चरखा चलाना आवश्यक नहीं बताया है। श्री आचार्य देखेंगे कि उन्होंने चरखे के खिलाफ जो दलीलें पेश की हैं वे उस पूर्व-पक्ष को लेकर की हैं जिसे मैंने कभी पेश नहीं किया है।

अब धारासभायें लीजिए। मैं कुछ हदतक धारासभाओं की उपयोगिता से इन्कार नहीं करता। मेरा तो यही कहना है कि वे जनता के लिए किसी भी अर्थ की नहीं हैं। और इसलिए कि महासभा राष्ट्रीय रहे, उसमें जनता के प्रतिनिधि ही होना चाहिए और ऐसा ही कार्यक्रम रखना चाहिए जिसमें जनता भाग ले सके। इसीलिए मेरा यह कहना है कि बहिष्कार को वैसे ही कायम रहने देना चाहिए। मेरे इस प्रस्ताव की खूबसूरती तो जिस हिसाब से हम नीचे उतर कर जनता के साथ अपनेको एक कर देंगे उसी हिसाब से महसूस की जा सकती है। वकील लोग और धारासभावादी यदि उस सत्य की कीमत कर सके जिसे मैं प्रतिपादन करता हूं तो वे महासभा के पदों का खयाल किये बिना ही प्रजा की अच्छी सेवा कर सकते हैं और महासभा में रह सकते हैं।

कार्यक्रम में कोई बुराई नहीं है। बुराई तो हमारे आपस के अविश्वास में, असहिष्णुता में, कल्पना के अभाव में और अधिकार की जगहों के लिए प्रयत्न करने में ही है। यदि दोनों पक्ष सत्ता की चाह छोड देंगे और केवल सेवा करना ही सीख लेंगे तो असहयोग का कार्यक्रम ही एक-मात्र सच्चा कार्यक्रम साबित होगा। क्या यह जानना मुश्किल है कि बहुत से गांव जो रेल के प्रभाव से बच गये हैं अदालतों, डाकाओं और धारासभाओं के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं और वे जरूरत की वजह से, उनके बहिष्कार ही किये हुए हैं। यदि हम जो उनकी सेवा करना चाहते हैं सरकार के प्रभाव से दूर रहेंगे तभी इन करोड ग्रामवासियों के लिए कुछ आशा बंध सकती है। अगर हम ऐसा नहीं करते तो एक महान् देशभक्त के इस कथन का सत्य हमें प्रत्यक्ष होगा कि "मैं आपके कार्यक्रम में विश्वास नहीं करता हूं; क्योंकि जनता के संबंध में जैसा आपका भाव है वैसा मेरा नहीं है। वे प्लेग में या भूख से मर जायं इससे बहतर तो यह है कि मैं उन्हें सिर्फ लडाई के मैदान में भेजा कर वहीं उनकी आहुति चढा दूं। यह सच है कि यह बलिदान खुशी से न होगा किन्तु उसकी जरूरत है। जब इन लोगों को जो समाज को सिर्फ भाररूप हैं रणक्षेत्र में मरने देंगे तभी भारतवर्ष रहने के काबिल जगह होगी। तब भारतवर्ष भूखों मरते लोगों का और गुलामों का देश नहीं, स्वतंत्र मनुष्यों का स्वतंत्र देश होगा।" उस मित्र को मैंने कहा कि यदि मैं उनके पक्ष को स्वीकार कर सकता तो उनकी दलील ला-जवाब थी। लेकिन जब हम एक दूसरे का पक्ष स्वीकार नहीं कर सकते थे तो हमारा मतभेद कायम रहा। हमने एक दूसरे के नतीजे को आदर दृष्टि से देखा और मित्र की तरह जुदा हुए। मुझे तो छोटे से छोटे देशवासी के साथ या तो डूब जाना चाहिए या तैर कर पार होना चाहिए। यदि श्री आचार्य मेरी इस स्थिति का अनुभव करने के लिए समझाये जा सकते हैं तो वे मुझे १९२० में जैसा जानते वैसा ही आज भी पावेंगे।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

एजंटों की जरूरत है

जब से गांधीजी संपादन करने लगे। उनके राष्ट्रीय संदेशों का गांव गांव में प्रचार करने के लिए "हिन्दी-नवजीवन" के एजंटों की हर कस्बे और शहर में जरूरत है।

व्यवस्थापक

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, श्रावण बदी ११, संवत् १९८१

शिक्षकों की दशा

एक जिले में चौदह राष्ट्रीय शालाओं में से सात बन्द हो गई हैं। शेष बन्द होने की तैयारी में हैं। और विद्यार्थियों की संख्या दो हजार से घटकर पांचसौ रह गई है। इन पाठशालाओं में से एक शाला के प्रधान शिक्षक पाठशालाओं की गिरी हालत का चित्र चित्रित करके लिखते हैं—

"यदि सच कहूं तो, राष्ट्रीय शालाओं के बहुतेरे शिक्षकों की हालत ऐसी हो गई है कि अपने अध-पेट रहने वाले परिवार का और भीषण कर्ज के बोझ का विचार करते हुए उनका दिल दहल उठता है। और उनमें ऐसा अंदेशा होने लगता है कि इतने कर्जदार व्यक्ति के लिए इतना कष्ट-सहन करना अक्लमन्दी है या बेवकूफी? और यह भी सवाल होता है कि भूखे रहकर शिक्षक का काम करने के बदले दूसरे तरीके से देश की सेवा करना क्या अधिक ठीक नहीं है? मुझे यहां यह कह देना चाहिए कि इनमें से कितने ही शिक्षकों ने देश-माता की पुकार पर कान कर के जो जगहें छोड़ी थीं, अधिक वेतन वाली थीं।"

इस दुःख-दशा से डर जाने की जरूरत नहीं। अपार संकट के फल-स्वरूप ही राष्ट्र-निर्माण होता है। या तो हमें सदा बलते में मक्खियों की तरह पिस जाना चाहिए और स्वेच्छाचारी सैनिक सत्ता के ताबे होना चाहिए तथा अति दूरवर्ती भविष्य में प्रजासत्ताक राज्य स्थापित करने की आशा रखनी चाहिए; या धीरज रखकर स्वाभाविक रीति से, बिना उतावल किये, कष्ट-सहन करके स्वराज्यप्राप्त, आत्मसम्मान-पूर्ण राष्ट्र निर्माण करना चाहिए। पत्र-लेखक शिक्षक जिन दुःखों का वर्णन करते हैं उन्हें सहन करके ही हम अपने सामने उपस्थित कठिनाइयों का निपटारा कर सकेंगे। ये कष्ट-सहन ही स्वराज्य की सच्ची तालीम है। दोष सारा बालकों के माता पिताओं का नहीं है। ये तो हमारी परिस्थिति से संलग्न हैं। हम अभी हर तरह की कठिनाइयों को ठोकर मार के अनवरत कार्य करने का गुण प्राप्त नहीं कर पाये हैं। राष्ट्रीय शिक्षा का सारा तन्त्र जिस केन्द्र के आस-पास घूमना चाहिए वह शिक्षकों का बना हुआ है। यदि यह केन्द्र स्थान छोड़ दें तो सारा तन्त्र उलट-पुलट हो जाय। परन्तु हमारे शिक्षक लोग अनुभव हीन थे। उन राष्ट्रीय सब्में शिक्षा का अनुराग जीवित रखने के लिए आवश्यक और आवश्यक कर्तृत्वशक्ति न थी। उनमें आज व्यवस्था-शक्ति नहीं, एकाग्रता और आत्मार्पण की क्षमता नहीं। हर जगह कार्यकर्ता सेवा के एक क्षेत्र में निष्णात होने के बदले तमाम बातों में टांग अड़ाते रहे हैं और इसका फल यह हुआ है कि वे कोई भी काम ठीक ठीक न कर पाये हैं। पर यह अनिवार्य था। इस खेल के हम नये खिलाड़ी हैं। हमारे राज्यकर्ताओं ने हमें कारकुनी की ही तालीम दी है और ऐसा काम हमें सौंपा है जिसमें न कुछ विचारना पड़े न कुछ स्वतन्त्र रूप से करना पड़े। परन्तु पुरानी परिपाटी बदलती जा रही है। ऐसा मालूम हुआ था कि हमने आरम्भिक आवेश में यदि बिलकुल ठीक नहीं तो ठीक ठीक काम किया। अब वह शुरूआत का वेग बंद हो गया है और सार्वजनिक आश्रय की नमी न मिलने के कारण महज उन्हीं पौधों के टिक रहने की आशा रही है जो कि पहले ही से मजबूत थे। जो पाठशालायें और शिक्षक अभीतक अटल बने हुए हैं वे आशा है कि सच्चे और तेजस्वी भी होंगे। उन्हें निर्वाह के लिए घर घर भीख मांगनी पड़ेगी। और अगर वे प्रामाणिक कार्यकर्ता होंगे तो ऐसा करते हुए उन्हें शर्म खाने की जरूरत नहीं।

पूर्वोक्त प्रधान शिक्षक ने कुछ खास खास सवाल पूछे हैं। वे सर्व साधारण के लिए उपयोगी हैं। इसलिए जवाब-सहित यहां देता हूं—

स०—बढ़ते जानेवाले कर्ज के बोझ से दबे हुए गरीब शिक्षकों को फाकेकशी के मिहनताने पर इन शालाओं के साथ अपना संबंध कहांतक कायम रखना चाहिए?

ज०—मौत की घड़ी तक। जिस तरह सिपाही तबतक लड़ता है जबतक वह विजय के दर्शन न कर ले या मरण के दर्शन कर के विजय न प्राप्त कर ले।

स०—यदि फी सदी १ लोग भी पाठशालाओं की परवा न रखते हों तो संचालकों को कबतक अतिशय आर्थिक हानि सह कर उन पाठशालाओं को चलाना चाहिए?

ज०—यदि लोगों को पाठशालाओं की कुछ गरज न पड़ी हो तो उस पाठशाला को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं। परन्तु जिन लोगों ने पाठशालायें स्थापित की हों उन्हें यदि पीछे से उसकी आवश्यकता न दिखाई दे तो मैं संचालकों को ही दोष दूंगा।

स०—शिक्षा को बन्द रखना और कार्यकर्ता लोगों का कष्ट-सहन करना एक साल तक, दो साल तक, बहुत हुआ तो तीन साल तक संभवनीय है; परन्तु यदि स्वराज्य की लड़ाई वर्षों तक जारी रहे तो फिर क्या करें?

ज०—एक से तीन साल तक जो कष्ट-सहन कर सकेंगे, उनमें तीस साल तक कष्ट-सहने की क्षमता आ जायगी।

स०—जहां एक भी राष्ट्रीय पाठशाला न हो, वहां राष्ट्रीय शिक्षा पाने की इच्छा रखने वाले इने गिने लड़कों का क्या होगा?

ज०—अगर माता-पिता में अथवा खुद लड़कों और लड़कियों में सूझ हो तो उन्हें रास्ता अवश्य दिखाई देगा। शिक्षा केवल पाठशालाओं में, अथवा महज अंगरेजी के ही द्वारा या सिर्फ पुरानी लकीर के ही द्वारा मिल सकती है, यह मानना एक वहम है। वर्तमान हालत में तो कातना और बुनना सीखना ही सर्व-श्रेष्ठ शिक्षा है। और हमें भूल न जाना चाहिए कि अधिकांश गांवों में तो पाठशालायें बिलकुल हई नहीं।

स०—हमारे देश-बन्धुओं के पास कबतक ऐसे प्रस्ताव पास कराते रहेंगे कि जिनके पालने की कभी उन्हें इच्छा न हो? सरकारी पाठशालाओं के बहिष्कार के लिए सब लोग राय देंगे और उनमें से इने-गिने लोग अपने बालकों को राष्ट्रीय शालाओं में भेजेंगे।

ज०—जहां तक बन सके उससे एक क्षण भी अधिक नहीं। पिछली महासमिति में मेरी तमाम लड़ाई इसी हेतु से थी कि हम प्रस्तावों को कर के उनको पालें।

मुझे निश्चय है कि मैंने जो जवाब दिये हैं उनसे बहुतों को सन्तोष न होगा। परन्तु मैं कहने का साहस करता हूं कि यही जवाब सच्चे और व्यावहारिक हैं। हमें पाखण्ड को तिलांजलि अवश्य दे देनी चाहिए। सरकारी पाठशालाओं की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि उनके बहिष्कार के लिए राष्ट्रीय पाठशालाओं की सारे देश को यदि न जरूरत हो तो बहिष्कार के प्रस्ताव में फेर बदल करना जरूरी है। ऐसा करने के बाद जो थोड़े लोग बहिष्कार के पक्ष में रहेंगे उन्हें महासभा के आश्रय में नहीं, बल्कि अलहदा राष्ट्रीय शालायें चला कर अपनी बहिष्कार की इच्छा-पूर्ति करनी होगी।

ये शाखायें वहीं चलेंगी जहां उनकी जरूरत होगी। यदि ऐसी एक भी शाखा होगी तो भी वह हताश हुए बिना चलती रहेगी। श्रद्धा के लिए निराशा बेमानी है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

छोटी बातों की चिन्ता

सूत कातने की प्रतिज्ञा के सांगोपांग पालन के लिए छोटी से छोटी बात पर ध्यान रखने की जरूरत है। अंगरेजी में एक कहावत है "यदि हम पेनी की चिन्ता रक्खेंगे तो अशर्फी अपनी चिन्ता खुद ही कर लेगी।" जो पैसे की परवा नहीं करता वह रुपया कभी नहीं बचा सकता। यह बात तमाम बड़े कार्यों पर चरितार्थ होती है। जब छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता है तभी बड़ी बातें बिगड़ती हैं। बड़े यन्त्रों में यदि एक छोटी सी कील रह जाय या ढीली पड़ जाय या उसमें गर्द पड़ जाय तो अक्सर वह बिगड़ जाता है।

स्वराज्य-तंत्र को चलाने की हमारी क्षमता की नाप हमारी छोटी छोटी बातों पर ध्यान देने की क्षमता से होगी। यह क्षमता हमें कातने की प्रतिज्ञा की प्रेरणा करेगी। बराबर नियम से सूत का कतना, एकत्र होना, प्रान्तिक समिति में उसका इंदराज होना, फिर वहां से मुख्य समिति के पास आना, वहां उसका इंदराज होना, उसका एकीकरण होना और फिर खादी बनकर उसका निकास होना—इन बातों का लिखना तो आसान है, पर इनके करने के लिए अनेक प्रकार की शक्तियों की और बहुतेरे काम करने वालों की जरूरत पड़ेगी।

गांव अपनी निगरानी रक्खें, और उनकी निगरानी तहसील, तहसील की जिला और जिला की प्रान्त तथा प्रान्तों की महासभा करे।

जहां हर शख्स अपने फर्ज को समझता हो और उसे करना जानता हो वहां तो सब कुछ आसान होगा; परन्तु जहां जिम्मेवारी का ज्ञान न हो वहां प्रान्तीय समितियों को तमाम बातों की संभाल रखनी होगी—

१—चरखों का संग्रह करना, उन्हें दुरुस्त करना और रखवाना होगा।

२—तकुए अच्छे और सीधे होने चाहिए।

३—चरखे ठीक और ऐसे रखना चाहिए जो मजबूत बैठ जायं।

४—माल का प्रबन्ध करना।

५—कपास जमा करना, उसे ओटवाना, धुनकवाना और पूनियां बनाकर जहां जरूरत हो वहां पहुंचाना और फिर सूत इकट्ठा करना।

जो लोग इस काम में दिलचस्पी लेंगे उन्हें न तो व्याख्यान झाड़ने की फुरसत रहेगी, न टीका-टिप्पणियों की, और न हुज्जत बकवाद की। वे तो अपने काम में मगन रहेंगे।

आदर्श यह है कि हर शख्स अपने लिए चरखा पैदा कर ले, भीख मांग कर कपास ले आवे, उसे ओटे, धुनके और पूनी बना कर काते। फिर सूत को लपेट कर, लच्छी बना, उसपर अपना नाम, नंबर, सूत का वजन, तार और अंक लिखकर लपेट कर हर मास प्रान्तिक समिति को भेज।

परन्तु जबतक तमाम कातनेवाले इस तरह तैयार न हो तबतक प्रान्तिक समिति पर इनमें से बहुतेरी बातों की जिम्मेदारी पड़ेगी। और इसके लिए एक या अधिक कातने वाले उस्ताद भी थोड़े समय के लिए रखने पड़ेंगे।

यदि कातने वाले अच्छी तादाद में तैयार हो जायं तो हमारे पास काफी चरखे न होंगे और इतने चरखे तैयार होने में कुछ समय दरकार होगा। फिर उसके लिए काफी रुपये की भी जरूरत रहेगी। जब हमने शुरू शुरू में कातना शुरू किया तब भाई लक्ष्मीदास ने सूत कातने की फिरकी बनाई। जब पहले पहल मैंने उसे उनके हाथों में देखा तब मैं आनन्द-पूर्वक खूब हंसा था। पर उसके विषय में कुछ पूछताछ न की। फिर मैंने जुहू में भाई मथुरादास के हाथ में उसे देखा। उसपर सूत कातने की कला सीखने की इच्छा हुई और मैंने थोड़ी-बहुत सीखी भी। बस उसी समय से वह मेरे दिल में बस गई थी। उसकी कीमत ज्यादह से ज्यादह दो आने है। उसे बनाने में भी बहुत वक्त या दिक्कत नहीं लगती। वह एक मामूली चरखे से आधा काम दे सकती है। उसकी सुविधाओं की तो गिनती ही नहीं। जहां चाहें वहां ले जा सकते हैं। सूत एक-सा और मजबूत निकलता है। आज भी ब्राह्मण लोग फिरकी पर जनेऊ के लिए सूत कातते देखे जाते हैं। कितने ही मदरसों के लड़के मुझसे मिलने आया करते हैं। मेरे सवालों के जवाब में कुछ लोग कहते हैं चरखा नहीं, कोई कहते हैं, सिखाने वाला नहीं। कितने ही मदरसों में इतनी जगह नहीं रहती कि वहां चरखे रक्खे जा सकें। ऐसी हालत में फिरकी बड़े काम की चीज है। ऊपर सूत कातना जो लोग जान जाते हैं उन्हें चरखा कातने में दिक्कत नहीं हो सकती। अर्थात् कातना तो फिरकी पर ही सीख लिया जा सकता है। और उस सुंदर तथा सादे यंत्र से हमेशा ही बार सूत कातना आसान है। मैं आशा करता हूं कि जिस शख्स या संस्था के पास चरखा न हो वे फिरकी पर सूत कातने लगेंगे।

"एक एक कंकरी से बांध बंध जाता है। एक एक बूंद से सागर भर जाता है।" इस कहावत में बड़ा चमत्कार है। अकेला एक बूंद किसी काम नहीं आता। एक अकेली कंकरी बांध नहीं बांध सकती। परन्तु अनेकों बूंदों और कंकरों का चमत्कार हम जानते ही हैं। यही चमत्कार बहुत लोगों के थोड़े परन्तु नियम-पूर्वक कातने में है। जिस प्रकार ईंटों के ढेर से मकान नहीं बन जाता, वह तो उन्हें यथा-नियम लगाने और जोड़ने से ही बनता है; उसी प्रकार नियम-पूर्वक कते सूत की यथानियम व्यवस्था करने से ही पोषक खादी तैयार होती है।

आम तौरपर खेतिहर किसान बहुतेरा अनाज बोते हैं। योरपीय महाभारत के समय इंगलैंड में खाद्य-सामग्री कम पड़ गई थी। खेत में खड़ी फसल काफी न थी। आलू की फसल सबसे आसान थी। अतएव हर शहराती अपने पांच-पचीस गज आंगन में आलू बोने पर मजबूर किया गया था। एक आंगन में कहे आलू पर तो शायद ही एक कुटुम्ब का भी पेट भर सकता हो; परन्तु हजारों आंगनों में बोये आलुओं की मदद अनमोल हो गई थी। उसी तरह असंख्य रेडक्रास मिले, और कुरतों की जरूरत थी। दरजी उसके लिए काफी न थे। इसलिए उन लोगों से भी यह काम लिया जाता था जिन्होंने कभी सुई-धागा हाथ में न लिया हो। नौसिखियों के लिए नमूना आदि रक्खे जाते थे। सिखाने वालों की भी तजवीज की गई थी और इस प्रकार हजारों स्वयंसेवक जो लड़ाई में न जा सकते थे और जिन्हें थोड़ा बहुत भी समय बच रहता था, उनसे ऐसा काम लेकर लाखों रेडक्रास के भुजबंद और कुरते आदि मुफ्त तैयार किये गये थे। एक आदमी की मिहनत की कीमत कुछ नहीं। पर एक समुदाय की एक ही तरह की हुई मिहनत ने उस समय सोने से अधिक काम दिया। इस काममें वकील, विद्यार्थी, दलाल, स्त्री, पुरुष सब शामिल होते थे और उसमें अभिमान मानते थे। पाठक शायद न जानते हों कि उसमें सरोजिनी देवी भी शरीक थीं और मैं भी था। हमारे

किसी में यह भाव न पैदा हुआ कि यह काम तो दरजी का है। अमीर-उमराओं ने उसे अपने रुतबे से नीचा न माना। आज चरखा कातने वाले की हंसी उड़ाते हुए जब मैं किसी पढ़े-लिखे आदमी को देखता हूं तब मुझे अपना लड़ाई का अनुभव याद आ जाता है। जब इस समय और उस समय की तुलना करता हूं तब देखता हूं कि हिन्दुस्तान में सुलगे दावानल को मिटाने के लिए जितनी जरूरत सब लोगों के कातने की है उतनी उस भयंकर लड़ाई के समय लोगों के लाल स्वस्तिक वाले भुजबन्द बनाने और कुरता सीने की नहीं थी।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

मेरा कच्छ

एक मुसलमान भाई लिखते हैं:—

मैंने आपको नडियाद स्टेशन पर दो मरतबा देखा है और बुद्धजयन्ति के मौके पर आपकी तसवीर "आमे-जमशेद" में देखी। उससे मालूम हुआ कि आपने कच्छ यानी लंगोट पहनने का नियम रक्खा है। भारत में करोड़ों आदमियों को एक जून पूरा खाना भी नहीं मिलता है और वे बिना वस्त्र के नंगे फिरते हैं, इस स्थिति का ख्याल करके आपने यह पोशाक धारण किया होगा, ऐसा मेरा ख्याल है। आपकी सत्य मान्यता पर मुझे शंका नहीं करना है; मेरी तो यह अर्ज है कि ऐसा पोशाक मर्यादा और सभ्यता के अनुकूल नहीं है। इसलिए आप अपना पहले का पोशाक ही पहनें। जैसे पुरुष वैसे स्त्रियां भी आपके दर्शनों के लिए और आपके साथ चर्चा करने के लिए आते हैं। स्त्रियों के आगे मर्यादा और सभ्यता की बहुत जरूरत रहती है। आपको यह निश्चय कराना चाहिए और मनाना चाहिए कि हिन्दुस्तान के हरेक आदमी के लिए टोपी कुरता (गले में पट्टीदार-खुली गरदन का नहीं) और धोती या पाजामा और चप्पल (जूता) इतना पोशाक होना जरूरी है। भारत-संतानों को दो मरतबा पूरा खाने को और इतना ही पोशाक मिले तो वह संतोषकारक है। ऐसा मनाने के लिए और ऐसी मान्यता से आप अपना पहले का ही पोशाक धारण करके कच्छ या लंगोट जो मर्यादा-रहित दिखाई देती है उसे दूर करने की आवश्यकता है।"

यह पत्र जैसा है वैसा ही मैंने दे दिया है। दूसरे मुसलमान भाई और कितने ही हिन्दू-भाइयों को भी जैसी इस भाई को शंका हुई है वैसी ही शंका हुई होगी। यह जान कर मैंने इस पत्र का जवाब देने की हिम्मत की है। खुद मुझसे संबंध रखने वाले कितने ही पत्र आते हैं। लेकिन उनके बारे में चर्चा करना व्यर्थ समझ कर 'नवजीवन' में मैं उनकी चर्चा नहीं करता हूं। पर इस पत्र में कितनी ही भूलें हैं जिनका बताना मैं आवश्यक समझता हूं।

मेरे कच्छ पहनने का सबब टीकाकार ने ठीक ठीक समझ लिया है। उस कारण को दूर करने के लिए सिवा स्वराज्य के दूसरा रास्ता नहीं है। हिन्दुस्तानी भाई-बहन स्वराज्य प्राप्त करके मेरे इस कच्छ को उतार सकते हैं। या ईश्वर मुझे ऐसा कमजोर कर दे कि मुझसे ज्यादा कपड़ों के बिना चल ही न सके तो यह उतर सकता है। शुरू में कच्छ पहनने के वक्त खुद मुझे यह डर था कि इसपर असभ्यता का आरोप होगा। किन्तु मेरा जीवन जिस दिशा में बह रहा है उसका विचार करते हुए मुझे यही ठीक मालूम हुआ कि मैं इस असभ्यता को बरदाश्त करने का साहस करूं। मैं हमेशा अपने मुसलमान मित्रों के लिए बहुत कुछ करने को तैयार रहता हूं। मुझे उनकी बहुत जरूरत है। पोशाक बदलने के पहले मैंने एक मित्र के साथ चर्चा भी की। उन्होंने मेरे इस विचार को पसंद किया और इससे मुझे बहुत हिम्मत हुई। इस तीन साल के अनुभव के बाद इस परिवर्तन के लिए मुझे जरा भी पश्चात्ताप नहीं हुआ है; अधिकाधिक संतोष ही होता जाता है।

मैं गरीब से गरीब हिन्दुस्तानी के जीवन के साथ अपने जीवन को मिला देना चाहता हूं। मैं जानता हूं कि दूसरे तरीकों से मुझे ईश्वर के दर्शन हो ही नहीं सकते। मुझे उसे प्रत्यक्ष देखना है; इसके लिए मैं अधीर हो बैठा हूं। जबतक मैं गरीब से गरीब न बन सकूं तबतक साक्षात्कार हो ही नहीं सकता। जब तक उन्हें पूरा खाने को नहीं मिलता है और पहनने के लिए कपड़े नहीं मिलते हैं तब तक मुझे खाना और कपड़े पहनना बुरा लगता है। यदि ईश्वर ने मुझे कमजोर नहीं बनाया होता तो मैंने अपने जीवन में और भी अधिक परिवर्तन किये होते। इन टीकाकार को भारत-वर्ष के नर-कंकालों के हाल की कल्पना भी नहीं आ सकती। इसका अनुभव करने के लिए तो उन्हें दूर गावों में जाना चाहिए और गांव वालों के साथ मिल कर रहना चाहिए।

हिन्दुस्तान के लिए यह भाई जिस प्रकार का पोशाक चाहते हैं वैसा पोशाक तो उन्हें दो सौ चार सौ वर्ष में भी नहीं मिल सकता। उन्हें यह जानना चाहिए कि हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों को तो कच्छ भी नहीं मिलता है। वे सिर्फ लंगोटी ही लगा कर फिरते हैं। करोड़ों को चप्पल-जूता भी नहीं होता है, उन्हें उसकी जरूरत भी नहीं मालूम होती है। गले में पट्टीदार कुरते ये गरीब लोग कहां से लावें? उन्हें टोपी भी कौन दे? ऐसे कपड़े खुद पहन कर हम इन गरीबों को कपड़े न पहना सकेंगे; लेकिन हमारा धर्म तो यह है कि उन्हें पहना कर पहनें और खिला कर खांय। इन टीकाकार को तो पोशाक की पड़ी है। मैं उन्हें नम्रता-पूर्वक यह खबर देना चाहता हूं कि इस देश के गरीबों को तो खाने को भी पूरा नहीं मिलता है—फिर पोशाक के सुधार की तो बात ही क्या हो सकती है।

अब सभ्यता को लीजिए। सभ्यता कोई ऐकान्तिक शब्द नहीं है। उसका सब जगहों पर एक ही अर्थ नहीं होता है। पश्चिम की सभ्यता पूर्व के लिए असभ्यता हो सकती है। पश्चिम का कितना ही पहनाव पूर्व में असभ्य समझा गया है। अमेरिका में तो मुझे कैद ही में रक्खा जायगा। श्री नारायण हेमचन्द्र धोती पहनने के लिए कैद किये गये थे। मेरी माता हमें-भाइयों को पतलून पहनते देख दुःखी होती थीं। इसे वह नंगा पहनावा मानती थीं। असंख्य हिन्दू कच्छ को असभ्य पोशाक मानते ही नहीं। साधुलोग केवल लंगोटी ही पहनते हैं। इससे वे असभ्य नहीं गिने जाते।

मेरी नजर में तो कम कपड़े पहनने में असभ्यता है ही नहीं। कपड़ों की जरूरत केवल शरीर की रक्षा के लिए है। उपरोक्त टीकाकार ने जिस दृष्टि से पोशाक के बारे में लिखा है उस दृष्टि से तो ज्यादा कपड़े पहनने में जो बुराई है वह मेरे धर्म-सिपाही के कच्छ में नहीं है। मनुष्य का शरीर जैसा है वैसा ही यदि उसको देखा जाय और उसका विचार किया जाय तो उसमें मोह का कोई भी कारण दिखाई नहीं देता है। इस नर-कंकाल को जब अनेक प्रकार के काट के और भांति भांति के कपड़ों से सजाते हैं तब वह मोह पैदा करता है। यह विचार ठीक है। इसका एक ही दृष्टांत देता हूं। मुरदे पर कोई मुग्ध हुआ है, ऐसा आज तक मालूम नहीं हुआ है। मोह सिर्फ उसमें रहने वाले जीव के संबंध में है। फिर शरीर के लिए इतना विचार क्यों? इतना शृंगार किसलिए?

कितनी ही बहनें मुझे दर्शन देने के लिए आती हैं। वे मुझ पर प्रेम रखती हैं और मुझे आशीर्वाद देती हैं। हिन्दू और मुसल्मान दोनों बहनें आती हैं। मेरा विश्वास है कि वे मेरे शरीर को देखने के लिए नहीं आती। वे मेरे शरीर को देखती हैं ऐसा मुझे कभी मालूम नहीं हुआ है; और होना भी ऐसा ही चाहिए। पुरुष हो या स्त्री उसे भिन्न के शरीर को देखना ही न चाहिए। अनजान में अगर देख लिया जाय तो फौरन् नजर हटा लेनी चाहिए। एक को दूसरे का केवल चेहरा ही देखने का अधिकार है। लक्ष्मण जैसे संयमी ने तो सीताजी के केवल पैर की उंगलियां ही देखी थीं। क्योंकि वे सीताजी के चरणों की वन्दना किया करते थे। इसलिए जब बहनें मुझे आशीर्वाद देने के लिए आती हैं, मुझे अपने कच्छ के लिए उन्हें देख कर कभी भी संकोच नहीं हुआ। मैं तो उनकी दया का भूखा हूं। मैं उनसे बहुत मदद चाहता हूं। वे थोड़ी मदद कर भी रही हैं। लेकिन वह अभी बहुत ही कम है। हिन्दू और मुसलमान बहनें जब चरखे को अपना लेंगी, जब खादी को अपना शृंगार बनावेंगी तब मैं मान लूंगा, मुझे सर्वस्व मिल गया। तब फिर मैं इस भाई को भी धोती और भले ही पहरेदार कुरता पहन कर संतोष पहुंचाऊंगा। क्योंकि जहां बहनों को खादी का रंग लगा कि स्वराज्य मिल ही गया मैं समझता हूं। [illegible]न इस दरम्यान इस भाई को मुझ पर और मुझ जैसे कच्छ पहनने वालों पर दया रखनी चाहिए और कच्छ को असभ्य मानते हुए भी अपने भाई समझ कर इन कच्छ वालों की असभ्यता को सह लेना चाहिए।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

आचार्य राय कातते हैं

आचार्य राय की उमर इस समय साठ साल से ऊपर है—तिस पर भी उन्होंने कातने का पाठ शुरू किया है। वे लिखते हैं कि 'सचमुच चरखे की गति की मधुरता मेरे लिए शान्तिदायी साबित हुई है। खादी पर मेरी श्रद्धा दिन दिन बढ़ती जाती है और ज्यों ज्यों मेरा यह काम बढ़ता जाता है त्यों त्यों चरखा मेरे प्रोत्साहन को कायम रखने वाला अखण्डित झरना बनता जा रहा है।' इस प्रकार यदि आचार्य राय जैसे अति उद्यमी बूढे बड़े लोग सूत कातने लगें तो फिर युवा लोग जिनके पास बहुतेरा समय रहता है, क्यों न कातेंगे? आचार्य राय के उत्साह का कारण समझना आसान है। उन्होंने कितने ही वर्षों से अकाल-पीड़ित बंगालियों की सहायता करने का बीड़ा उठाया है। उस काम को करते हुए उन्होंने देखा कि अकाल-पीड़ितों को केवल दान देने से तो वे नीतिभ्रष्ट हो जाते हैं और इससे उन्हें लाभ होने के बदले हानि होती है। हजारों स्त्री-पुरुषों को ऐसा कौनसा काम दिया जा सकता है जिससे उन्हें रोजी मिल सके? चरखे के सिवा दूसरी कौनसी वस्तु इतनी व्यापक हो सकती है? उनकी तीक्ष्ण और परोपकारशील बुद्धि के लिए इतना जान लेना कठिन न था।

इस्तीफे

गुजरात के कितने ही महासभा के पदाधिकारियों ने महासमिति के प्रस्ताव की रू से इस्तीफे दिये हैं। कुछ लोग इस हालत पर पशोपेश में पड़ गये हैं, पर मैं तो इसे एक शुभ चिन्ह मानता हूं। क्योंकि इसमें समिति के प्रस्ताव के प्रति आदर व्यक्त होता है। जिन संस्थाओं के पास राजदण्ड नहीं, उनकी हस्ती महज उनके सभ्यों के आदर पर अवलंबित रहती है। मैं जानता था कि ऐसे पदाधिकारी बहुतेरे लोग हैं जो पंचविध बहिष्कारों को न मानते हैं या उनका पालन न करते हैं। और इसीलिए मैंने ऐसा प्रस्ताव सूचित किया जिसके अनुसार उन्हें पद छोड़ने का अनुरोध किया जाय। ऐसे पदाधिकारी यदि बिना रोष के और यह समझ कर कि हमें पद छोड़ देना ही उचित है, निकले हों तो इससे राष्ट्र को दूना लाभ है। उन्होंने उचित कार्रवाही करके अपनी मनमनसाहत का परिचय दिया, इस्तीफे देकर समिति को शुद्ध किया। ऐसा होते हुए भी उनकी सेवा तो देश के पास रही है। यदि वे रुष्ट हो कर निकले हों तो उन्हींकी हानि है। क्योंकि इससे उनके प्रति लोगों के उस प्रेम के नष्ट हो जाने की संभावना है जिसे उन्होंने अपनी सेवाओं द्वारा प्राप्त किया था। पर मुझे जो समाचार मिले हैं उनके अनुसार तो सब लोग साधु-भाव से अलग हुए हैं। उनकी सेवा देश को मिलती रहेगी। श्री० गंगाधरराव देशपाण्डे ने केवल करनाटक के ही नहीं, बल्कि सारे देश के सामने जो बढ़िया मिसाल पेश की है उससे ऐसी आशा रक्खी जा सकती है कि सब इस्तीफा देनेवाले उनका अनुकरण करके पदों को छोड़ देने पर भी सेवा करते रहेंगे। गुजरात के सामने तो श्री० कालिदास झवेरी की मिसाल हई है। इस्तीफा दे देने से वे सेवा करना बंद कर देंगे—सो बात नहीं। ऐसे लोग जो कि महासभा के प्रस्तावों का अमल न कर सकें, यदि पदाधिकारी रहें तो वे मानों खुद अपने को और देश को धोखा देते हैं। ऐसा करने से किसी भी संस्था का काम नहीं चल सकता। जो शख्स खुद विदेशी कपड़ा पहनता हो वह उसका बहिष्कार कैसे करा सकता है? जो खुद वकालत करता हो वह दूसरे से वकालत किस तरह छुड़ा सकेगा? जो खुद अपने लड़कों को सरकारी पाठशाला में पढ़ाता है वह राष्ट्रीय पाठशाला का काम किस तरह चला सकता है? और फिर यदि बहिष्कार को मानने वाले और उसका पालन करने वाले लोगों में महासभा-संघ को चलाने की क्षमता न हो तो फिर स्वराज्य का अर्थ ही क्या? और यदि बहिष्कार का पालन करने वाले कोई भी न हों तो फिर भावना-रूप में भी बहिष्कार किस तरह कायम रक्खा जा सकता है? वही वस्तु भावना-रूप में रह सकती है जिसका अमल कुछ लोग तो जरूर करते हों। किसी वस्तु के भाव-रूप में रहने का हेतु यह होता है कि किसी न किसी दिन उसपर अमल हो। यदि कोई भी उसपर अमल न करता हो तो फिर वह भावना नहीं, बल्कि ढकोसला हो जाय। आज जो स्वच्छता हो रही है यह ढोंग-ढकोसले का बहिष्कार करती है। यह कोई ऐसी-वैसी बात नहीं। इस तरह जिस तरह हम विचार करें उसी तरह हमें एक ही जवाब मिलता है कि महासमिति के प्रस्ताव और उसकी रू से होने वाले इस्तीफे दोनों बातें स्वागत करने योग्य हैं।

शिक्षकों के विषय में क्या?

परन्तु एक कुमार-मन्दिर के आचार्य पूछते हैं कि जिस गांव में लोगों को राष्ट्रीय पाठशाला की चाह न हो, शिक्षक वेतन के अभाव में भूखों मरता हो वहां शिक्षकों को क्या करना चाहिए? ऐसा ही सवाल एक बंगाली शिक्षक ने किया था। उसका जवाब मैंने यं. इं. में दिया है। उसपर यहां जरा अधिक सूक्ष्म विचार करें। अध्यापक साहब ने इस सवाल को दूसरे ढंग से विचारने का भार मुझपर डाला है। वे कहते हैं कि कितने ही गांवों में पाठशाला मुत्लक नहीं है। वहां क्या किया जाय? पहली कठिनाई का जवाब सरल है। यदि शिक्षक में निपुणता होगी वह हर उपाय से अपना काम चला लेगा। शिक्षक तो लोहचुम्बक की तरह काम करते हैं। उनके आस-पास

लड़के बने ही रहें—उन्हें घड़ीभर छोड़ना पसन्द न करें। शिक्षक का वियोग विद्यार्थियों को असह्य हो जाय। ऐसे शिक्षक का बहिष्कार माँ-बाप हरगिज न करेंगे। शिक्षक यदि साहूकार हो जाय तो वह 'चोर' समझा जायगा और यदि भूखों मरे तो 'गुरु' माना जायगा। पूर्वोक्त शिक्षक को मेरी सलाह है कि वे घर घर भीख मांग कर अपना पेट भरें, लेकिन अपना शिक्षा-धर्म न छोड़ें। काका कालेलकर ने एक जगह लिखा है कि शिक्षा को पेशा न बनाना चाहिए। यह बात बिलकुल सच है।

फिर आज तो शिक्षा सस्ती हो जानी चाहिए। लड़के पढ़ें और पढ़ाई कमावें। पहले के जमाने में ऐसा ही होता था। विद्यार्थी 'समित्पाणि' हो कर गुरु के पास जाता। उसके दो अर्थ हैं—एक तो उसके द्वारा ऐसी प्रतिज्ञा करता था कि वह अपना भार गुरुपर न डालेगा और खुद मिहनत-मजदूरी करके अपना और अपने गुरु का पेट पालेगा। उसका दूसरा अर्थ यह कि शिष्य सदा विनयशील रहेगा। आज भी इन दोनों बातों की जरूरत है। चरखे में मजदूरी और विनय दोनों हैं। पूर्वोक्त शिक्षक लड़कों को कपास की तमाम विधियाँ सिखावें और बढ़िया सूत कतावें। खुद भी उनके सामने बैठें और सूत कातें। साथ साथ लड़कों को पहाड़े याद करावें। संस्कृत धातुओं और संज्ञाओं के रूप रटावें। श्लोकों के अर्थ समझावें—अच्छी अच्छी ऐतिहासिक कथायें कहें। लड़कों के लिए चरखा कातना एक सरस और ज्ञानमय विषय बना डालें, ऐसा होने से लड़कों का जी भी न ऊब उठेगा। फिरकी पर सूत कातने की सूचना अन्यत्र एक लेख में की गई है। उसकी तजवीज करने से काम तुरन्त शुरू हो सकता है।

अब अब्बास साहब के सवाल पर विचार करें। 'नवजीवन' के पढ़नेवाले शायद ही इस बात को जानते होंगे कि भारत में अंगरेजी का ज्ञान चाहे बढ़ा हो पर समष्टि-रूप से अक्षर-ज्ञान कम हुआ है। हिन्दुस्तान में पिछले पचास वर्षों में देहाती पाठशालायें कम हो गई हैं। अर्थात् जितने अंश में हम मध्यम वर्ग के लोग अपने को ऊपर चढ़ा मानते हैं उस हद तक देहाती बालक नीचे गिरे हैं। ज्यों ज्यों हमारी आर्थिक उन्नति हुई है त्यों त्यों देहात की अवनति हुई है—उसी तरह ज्यों ज्यों हमारी विद्योन्नति हुई है त्यों त्यों उनकी अवनति। यह बात है तो भयंकर पर बिलकुल सच है। कोई भी अंक-शास्त्री इस बात को साबित कर सकता है। ब्रह्मदेश में ऐसा देखा गया है कि अंगरेजी-राज्य होने के पहले प्रायः तमाम बालकों को अक्षरज्ञान था—क्योंकि एक भी गाँव ग्राम्य-पाठशाला से वंचित न था। आज वह हालत बदल आ रही है। ग्राम्य-पाठशालायें टूटती जा रही हैं और इससे अक्षरहीनता बढ़ती आ रही है।

हमारा आन्दोलन मुख्यतः गरीबों के लिए है। इससे जिस हद तक वह उनमें फैलेगा उसी हद तक गरीबों की आर्थिक और अक्षर-उन्नति होगी। इसका उपाय यह है कि हर गाँव में वहीं के एक पंडगाजी खोज कर उनसे पाठशाला खुलवाई जाय। वे पेड़ों के नीचे बैठ कर पढ़ावें। हिन्दुओं के लड़के मंदिरों में पढ़ें, मुसल्मान मस्जिदों में। शुरुआत इस तरह कर के फिर दोनों के लिए एक ही पाठशाला तजवीज करें। इसमें कठिनाइयाँ तो अनेक हैं; परन्तु उन्हें दूर करने में ही हमारी क्षमता की कसौटी है। देहात में इतनी जागृति, इतना विद्यानुराग पैदा करना चाहिए। चरखे की हलचल के मूल में ये सब बातें निहित हैं। जिला और तहसील समितियों को उचित है कि वे सावधान होकर इन कामों को करें।

मुस्लिम-खादी-समिति

श्री सैयद हुसेन कुरैशी ने एक सूचना-पत्र प्रकाशित करने के लिए भेजा है जिससे मालूम होता है कि "गत १५ जुलाई को कानपुर वाले हजरत मौलाना आजाद सुभानी साहब ने कितने ही उत्साही मुसल्मान सज्जनों की सहायता से अहमदाबाद में मुस्लिम खादी-समिति की स्थापना की है। यह खादी-समिति इस बात की कोशिश करेगी कि यहाँ के मुसल्मानों में खादी-प्रचार किस तरह अधिक हो सकता है।" इसके लिए एक अहमदाबाद के कितने ही मुस्लिम कार्यकर्ता और नागरिकों की एक समिति बनाई गई है, जिसके सभापति हकीम सैयद अहमद साहब देहलवी और मन्त्री सैयद हुसेन कुरैजी हैं।

मौलाना आजाद सुभानी साहब को तथा अहमदाबाद के मुसल्मान भाइयों को इस समिति की स्थापना के लिए मैं मुबारकबादी देता हूं। यों तो सारे हिन्दुस्तान में खादी का प्रचार शिथिल पड़ गया है; पर मुसल्मान भाइयों ने तो आम तौर पर खादी से अपना नाता तोड़-सा लिया है। सुना है कि पिछली ईद के दिन शायद ही कोई मुसल्मान खादी-लिबास में दिखाई देता था। यह खादी-समिति यदि चाहे तो बहुत कुछ काम कर सकती है। चरखे की यह हलचल ऐसी है कि इसमें हिन्दू-मुसल्मान एकसा योग दे सकते हैं। कितनी ही कारीगरी में मुसल्मान दुनिया में सब से ऊँचे हैं। इनमें एक बुनाई है। ढाका की मलमल के बुनने वाले मुसल्मान ही थे। इसीसे जुलाहों का नाम 'नूरबाफ' है, जो कि बड़ा भाठी और रतबेवाला है। जरी के काम में कोई उनका मुकाबला नहीं कर सकता। पटने के नूरबाफ का हुनर दुनिया में सब से परिपूर्ण है। आज भी महीन बुनाई के हुनर में प्रवीण मुसल्मान ही हैं। वे आजकल विदेशी सूत बुनते हैं। यही पहले हाथ-कते सौ अंक का महीन सूत बुनते थे। ढाका की 'शबनम' यही लोग बुनते थे। इस खादी-आन्दोलन में उसी हुनर का पुनरुद्धार अभिप्रेत है। हजारों नूरबाफ अपना यह पेशा छोड़ बैठे हैं। उनकी रोजी इस खादी के रोजगार से फिर शुरू हो सकती है। आज भी बीजापुर की मुसल्मान बहनें महीन सूत कातती हैं। यदि मन में लावें तो मुसल्मान बहनें महीन से महीन सूत कात सकती हैं। यह समिति यदि मिहनत करे तो बहुत काम कर सकती है। मैं मान लेता हूं कि इसका हर एक सभासद शुद्ध खादी ही पहनता है। मेरी यह भी धारणा है कि हर सभासद हर माह कमसे कम २ हजार तार कातेगा। समिति यदि सफल होना चाहती है तो कितने ही सभासदों को अपना सारा समय इस काम के लिए देना होगा। मैं समिति की सफलता चाहता हूं।

खेड़ा जिला

गुजरात में कताई की जो स्पर्धा हो रही है वह बधाई के योग्य है। खेड़ा-जिला-समिति ने हर माह ५ हजार गज सूत कातने का प्रस्ताव किया है और कम से कम ५०० स्त्री-पुरुषों को सूत देने का निश्चय करके तालुकों और विभागों में बंटवारा कर दिया गया है। मैं आशा करता हूं कि खेड़ा-जिला-निवासी इतने ही पर संतुष्ट न हो रहेंगे। हम तो अन्त को जाकर लाखों लोगों के आध घण्टे की मजदूरी मांगते हैं। इसलिए खेड़ा-जिला-समिति को धन्यवाद देने के साथ ही इतनी चेतावनी भी देता हूं कि ५०० कातने वालों को प्राप्त करने की उनकी प्रतिज्ञा को मैं बड़ी इच्छा की सूचक मानता हूं। यह खेड़ा की शक्ति की हद नहीं हो सकती है। मैं आशा करता हूं कि खेड़ा जिला समिति की तरह दूसरी समितियाँ भी इसके लिए आवश्यक कार्रवाई करेंगी।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

लोकमान्य की पुण्य-तिथि

वार्षिक	मूल्य
छः मास का	,, [illegible]
एक प्रति का	,, [illegible]
विदेशों के लिए	,, [illegible]

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ५१

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, श्रावण सुदी ३, संवत १९८१ रविवार, ३ अगस्त, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियां

दैवी दुर्घटनायें

अहमदाबाद में श्री मनसुखभाई की मिल का सबसे ऊपरी हिस्सा गिर पड़ा और उससे लोग हताहत हुए। यह घटना हमारी आंखों के सामने हुई, इससे हमारा हृदय दहल उठता है। पर मलाबार पर इस समय जो संकट उमड़ा है उसका खयाल तक हमें नहीं होता अथवा थोड़ी देर के लिए होकर रह जाता है। हिन्दुस्तान के बाहर यदि मलाबार से भी भयंकर जानोमाल की हानि हो तो हमारे दिल पर शायद कुछ भी असर न हो। परन्तु ये दुर्घटनायें हमें बताती है कि राजा और रंक, ब्राह्मण और भंगी, मनुष्य और पशु में कुछ भी भेद नहीं। दैवी दुर्घटनायें सब के लिए बराबर है। एक जहाज में बैठे हुए मनुष्य और पशु सब एकही साथ डूबते हैं। मनुष्य उनमें भेद-भाव रखकर पहले अपने सगे-संबंधियों को बचाता है और फिर यदि हो सके तो पशुओं को भी बचाता है। इन बचे-खुचे लोगों में से भी कुछ लोग थोड़े दिन के बाद मर जाते हैं। मौत किसीको नहीं छोड़ती तो फिर हम खुद हो कर उसकी गोद में क्यों न चले जावें? मौत हमारा परम मित्र क्यों न हो? वह हमें अनेक आपत्तियों से छुडानेवाली और दुःख-भंजन क्यों न हो? ईश्वर कोई पातकी नहीं है जो अपने खिलवाड के लिए कीड़ों की तरह प्राणियों को पीड़ा देता है; पैदा करता है और मरवा डालता है। उसकी तमाम कृतियों में कुछ न कुछ युक्ति होती है।

पर इस तरह तत्वज्ञान की ओट में क्या हम बैठे रहें? मुत्लक नहीं। हम खुद जरूर मौत का स्वागत करें; पर दूसरों को जो पीड़ा होती है उससे उन्हें मुक्त करने का काम भी हम मौत का भय छोड कर ही सीख सकते हैं। जो बात दूसरे के लिए है वही हमारे लिए भी है। मौत मित्र है, इसलिए हमे यह मनाने का हक नहीं कि भले ही सब लोग कल मरते हों तो आज मर जाय। यमराज की गति न्यारी है। यदि हमें मौत की घड़ी मालूम होती हो तो हम जरा भी कष्ट न भोगें। किसीको कुछ मदद देने की भी जरूरत न रहे। पर हम उसका समय नहीं जानते। इसीसे दुःख भोगते हैं। हम कोई ज्ञानी नहीं है। फिर भी यदि ज्ञान की स्थिति की कल्पना कर के हम चलें तो हमारी अधोगति होगी। ज्ञान का विचार करके हम शान्त रहते है; पर एक दूसरे को सहायता करना नहीं भूल सकते। इस न भूलने में ही मौत की गोद में जाने की तैयारी है।

अहमदाबाद की दुर्घटना के संबंध मे तो हम यह माने लेते है कि मृत लोगों के परिवारवालों को मिल के मालिक मदद पहुंचावेंगे। यह उनका विशेष धर्म है। पर यह दुर्घटना हो क्यों पाई? आजकल की इमारतों में मजबूती बहुत कम देखी जाती है। ठेकेदार और कारीगर इत्यादि ज्यादह धोखेबाजी करते हैं। सीमेंट की जगह रेती से काम लेते हैं। ईंटें बहुत बार ऐसी कम-जोर होती हैं कि चूर चूर हो जाती है। ज्यादह मजबूत लकड़ी के बजाय कमजोर लकड़ी लगा देते हैं। चूने के बदले मिट्टी से ईंट-पत्थर चुन देते हैं। और यदि कसर रही हो तो इंजिनियर लोग मालिक को खुश करने के लिए कितनी ही बार कम मजबूती पर काम चला लेते हैं। इन कारणों से बम्बई में कितनी ही इमारतें गिर चुकी है और लोग दब कर मर चुके हैं। मुझे आशा है कि मिल-मालिक इमारत की बनावट के बारे मे पूरी तहकीकात कराके अधिकारी-रूप से दुर्घटना के कारण प्रकट करेंगे और शहरवासियों को सन्तोष पहुंचावेंगे। और यह आशा रखते है कि दूसरे बडे मकानों की जांच भी उनके मालिक करावेंगे और जहां उन्हें कमजोर दिखाई दे वहा पर मरम्मत करावेंगे।

मलाबार में जो संकट उपस्थित हुआ है वह तो मानों समुद्र में आग लग गई है। और उसका मुकाबला करना किसी खानगी संस्था के बस के बाहर है। ऐसे समय महासभा के लोग यदि उस संस्था को जो उनकी मदद करती है और उनका दुःख निवारण करती है अपनी सेवा से मदद पहुंचावें तो उससे असहयोग-सिद्धान्त में बाधा पडेगी, यह न समझना चाहिए। यदि हमारे पास अखूट खजाना हो तब हमें जरूर अलहदा महकमा खोल कर उनकी सहायता करनी चाहिए। परन्तु जहां लाखों रुपये से भी काम नहीं चल सकता वहां बेचारी महासभा क्या कर सकती है? अतएव यदि सरकार कुछ सहायता करे तो हमें उसमें जरूर सेवा करनी चाहिए।

पर हरएक सेवक को याद रखना चाहिए कि सच्ची सेवा को द्रव्य की जरूरत नहीं रहती। सच्ची सेवा है वह कार्य जो सच्चे दिल से किया गया हो। आंख की मिठास और समय पर कहा गया उचित शब्द जो सेवा करता है वह पैसा नहीं कर सकता। घर-बार-हीन हो जानेवाले स्त्री-पुरुषों के पास जाना, उनकी मज-दूरी करना, उन्हें अनेक प्रकार की छोटी-छोटी बातों में मदद करना और उन्हें अपनी हाजिरी से उत्साहित करना—इसमें जो

सहायता है वह अनुपम है। ऐसी सहायता करनेवाले मूक स्वयं-सेवक जितने मिलें उतने कम हैं। इस क्षेत्र में सब लोग प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। और इसमें कोई किसीके बीच में नहीं आ सकता। अतएव ऐसे समय में यह वांछनीय है कि महासभा धन के अभाव में हार कर बैठ न जाय। ऐसा उत्तर मैंने मलाबार के सब महासभा वालों को दिया है जो मदद चाहते हैं। जब पहला तार मुझे मिला तब मैंने सोचा कि कुछ धन एकत्र कर के भेज देना चाहिए। एक मित्र से सहायता मांगी भी। उन्होंने २५०) भेजे भी; पर पीछे जब आसमा[illegible] पड़ने की खबरें सुनीं तब मेरा हृदय कांप उठा। मैंने [illegible] यह काम मुझ जैसे की शक्ति के बाहर है। महासभा की श[illegible]के भी बाहर है। फिर भी यदि कोई सज्जन धन देंगे तो मैं उसे अवश्य महासभा के अधिकारियों को भेज दूंगा। वाइकोम के सत्याग्रह के लिए तो बाहर से रुपये पैसे मंगाने के मैं खिलाफ था। पर इस मामले में मदद पहुंचा सकूं तो पहुंचाना अपना फर्ज समझता हूं। यहां रुकावट असमर्थता के कारण है, अनिच्छा के कारण नहीं। जहां इच्छा तो चक्रवर्ती के बराबर हो पर सामर्थ्य कंगाल के बराबर हो वहां मौन में ही विवेक है। यह समझ कर महासभा के स्थानीय अधिकारियों को मैंने दूसरे तार के जरिये यह सलाह दी है कि मलाबार की शारीरिक सेवा कर के तथा सरकारी मंडल की मार्फत जो कुछ सेवा उनसे हो सके वह भी कर के सन्तोष मानें। (नवजीवन)

पाठ्य पुस्तकों की जब्ती

गत १५ जुलाई को संयुक्तप्रान्त की सरकार ने नीचे लिखा सूचना-पत्र जारी किया है—

"दफा ९९ अ (१८९८ के पांचवें) में दिये अधिकारों के अनुसार, अपनी सभा के सहित लाट साहब यह जाहिर करते हैं कि पण्डित रामदास गौड लिखित और बैजनाथ केडिया, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, १२६ हरिसन रोड, कलकत्ता के द्वारा प्रकाशित और वणिक् प्रेस कलकत्ता में मुद्रित हिन्दी रीडर नं. ३-४-५, ६ को तमाम कापियां सरकार ने जब्त कर ली हैं। इसके सिवा इन रीडरों को दूसरी तमाम प्रतियां या उनके अंश भी, फिर वे कहीं भी छपे हों, जब्त समझे जायें; क्योंकि रीडरों में स्थानिक सरकार की राय में राजद्रोहात्मक पाठ हैं, जिनका कि प्रकाशित करना दफा १२४ अ ताजीरात हिन्द के अनुसार दण्डनीय है।"

कोई तीन साल से ये रीडरें हिन्दी-संसार के सामने हैं। राष्ट्रीय पाठशालाओं में उनका बहुत प्रचार है। म्युनिसिपल पाठशालाओं में भी वे चलती हैं। इसलिए संयुक्तप्रान्त की महासभा-समिति ने बहुत ठीक किया जो अध्यापक रामदास गौड को इस पर बधाई दी है, उन्हें निर्दोष बताया है और इस सरकारी हुक्म के होते हुए भी उनको जारी रखने की सिफारिश की है। इधर कुछ लोग शायद यह समझने लगे हों कि अब सरकार ने असहयोगियों के खिलाफ मनमानी कारवाइयां करने की नीति को छोड़ दिया है। सरकार का कथन है कि इन पुस्तकों में ऐसे पाठ हैं जो ताजीरात हिन्द की १२४ अ धारा के अनुसार काबिल सजा है। ऐसी अवस्था में वह लेखक पर मुकदमा चला कर उन्हें सजा दिला सकती थी। तभी उसका यह पुस्तकें जब्त करना न्यायोचित हो सकता था। इन रीडरों की तमाम जिल्दों की पाठ-सूची मैं पढ़ गया हूं; मुझे तो वे बिलकुल हानिकर नहीं मालूम होतीं सरकार की दृष्टि से। लोगों के प्रति सरकार का कम से कम इतना कर्तव्य अवश्य था कि वह यह बताती कि इन पुस्तकों का कौन कौन सा अंश आपत्ति-योग्य है, जिससे कि लोग, यह मान लेने पर भी कि ऐसे मौके पर सरकार को मनचाहा करने का अख्त्यार है, इस बात पर विचार कर सकें कि सरकार का यह हुक्म जा है या बेजा। पर मौजूदा हालत में तो इस नतीजे पर पहुंचे बिना नहीं रहा जा सकता कि सरकार इन रीडरों की बढ़ती हुई लोकप्रियता को पसन्द नहीं करती और अपने उन प्रतिपालित लोगों को फायदा पहुंचाना चाहती है, सो भी ऐसे बेजा तरीके से, जिनकी पाठ्य पुस्तकों का प्रचार अध्यापक गौड की रीडरों के बदौलत कम हो गया हो। यदि पुस्तकें सचमुच राजद्रोही पाठों से युक्त होतीं तो उसके मिहनती खुफिया-विभाग की ओर से यह बात जरूर उसके सामने पेश की गई होती। और इतने दिनों के बाद पुस्तकों का जब्त होना मेरे इस अनुमान को पुष्ट करता है। मैं युक्त-प्रान्त की सरकार को दावत देता हूं कि वह अपने इस फैसले के तमाम कारण सर्व-साधारण के सामने पेश करे। मुझे यह जान कर बड़ी खुशी होगी कि मेरा अनुमान ठीक नहीं है। मैं प्रान्तीय समिति के सभापति को सलाह देता हूं कि वे सरकार से इसके कारण पूछें और यदि समिति को सरकार का फैसला ठीक दिखाई दे तो वह अध्यापक रामदास गौड को सलाह दे कि वे उन पुस्तकों में आवश्यक संशोधन कर दें या उनका प्रचार रोक दें।

हिन्दू-मुस्लिम-एकता

देहली के हाल के फसादों पर प्रकाशित हकीम अजमल खां साहब का वक्तव्य जिस किसीने पढ़ा होगा वह उसमें छिपे गहरे सन्ताप को महसूस किये बिना न रहा होगा। कम से कम उसका एक अंश यहां दिये बिना मैं नहीं रह सकता—

"देहली के फसादों के वक्त जो कुछ वाकयात हुए उनमें सब से ज्यादा शर्मनाक और दिल दहलाने वाले वाकयात हैं औरतों पर दुष्टता-पूर्ण और नामर्दाना हमले होना। जहां तक मुझे मालूम हुआ है एक ही मुसलमान महिला के साथ हिन्दुओं ने दुर्व्यवहार किया है; परन्तु इससे ज्यादह बुरी बात तो यह है कि १५ ता० के फसाद के वक्त कुछ ऐसे लोग जो दीने इस्लाम के पुजारी होने का दावा रखते हैं, सिर्फ हिन्दू-मन्दिर पर हमला करके और मूर्तियों को तोड़-फोड़ कर ही सन्तुष्ट न हुए बल्कि औरतों और बच्चों पर भी नामर्दाना हमले करने में न सकुचाये। स्त्री-जाति की पवित्रता और इज्जत तथा हुर्मत के प्रति अपने हम-दीन लोगों के इस दुष्ट भाव के खयाल-मात्र से मुझे घोर मनस्ताप होता है और मेरी रूह कांप उठती है। ऐसे गुनहगारों की जितनी ही निन्दा की जाय थोड़ी है और मैं तमाम सच्चे मुसलमानों से अपील करता हूं कि वे मुक्तकण्ठ से बिना आगा-पीछा सोचे इस नीचता की निन्दा करें। मैं जमीयत्-उल्-उलेमा और खिलाफत-कमिटियों को दावत देता हूं कि वे डट खड़ी हों और इस्लाम की सारी श्रद्धा को ऐसी जंगली निरंकुशता की निन्दा करने और आयन्दा ऐसा न होने देने में लगावें। सच्चे मुसलमान की हैसियत से ऐसी करतूतों को बिलकुल ना-मुमकिन कर देना हमारा नैतिक फर्ज है और अगर हम इसमें कामयाब न हों तो हम इस कौमी आजादी और स्वराज्य की कोशिशों में हारे ही हुए हैं।"

एक सज्जन मुझे उलहना देते हैं कि हकीमजी ने जिन हमलों का जिक्र किया है उनपर आपने अपने वक्तव्य में कुछ नहीं कहा। फसाद की बिलकुल पहली खबरों के आधार पर मैंने अपनी टिप्पणी लिखी थी। उसमें इन हमलों का कोई जिक्र न था। उसके बाद हालात ने बुरा रंग पकड़ा। यह खबर इतनी गंभीर थी कि महज डरावने तारों के आधार पर सर्व-साधारण के सामने टीका-टिप्पणी नहीं की जा सकती थी। इसलिए मैंने देहली के मित्रों से चिट्ठी-पत्री शुरू की; पर अबतक मैं किसी काबिल टीका-टिप्पणी करने की हालत में नहीं पहुंचा हूं। खुशकिस्मती से मौलाना महम्मदअली अब देहली पहुंच गये हैं।

वे तहकीकात कर रहे हैं और उन्हें मैंने सुझाया है कि यदि किसी तरह मुमकिन हो तो वे महासभा के सभापति के नाते अपनी आरंभिक तहकीकात की रपोट प्रकाशित करें। इस मामले में मुझे अपने कर्तव्य का पूरा खयाल है। फिलहाल मेरा स्थान यहीं, मौलाना साहब के साथ, है। लेकिन डाक्टरों की सलाह के कारण अभी रुक रहा हूं। अबतक जो कुछ पथ्य-परहेज करना पड़ता है वह सब शायद जरूरी न हो; क्योंकि यद्यपि मैं बाहर आता-जाता नहीं हूं तो भी काम बहुत-कुछ कर सकता हूं। लेकिन जहांतक मुमकिन हो मैं खतरे को बचाना चाहता हूं। जो मित्र मुझे इस अवसर पर मेरे कर्तव्य की याद दिलाते हैं उन्हें मैं यकीन दिलाता हूं कि मैंने बिना शर्त अपनेको मौलाना महम्मदअली के विचार पर छोड़ दिया है और मैंने उनसे कह दिया है कि यदि मेरी जरूरत आपको देहली में तुरन्त मालूम हो तो मेरी तन्दुरुस्ती का खयाल न करना। और यों भी हर हालत में मैं जल्द ही देहली जाने की तैयारी कर रहा हूं। पर अगर मौलाना महम्मद अली मेरा वहां जल्द जाना जरूरी न समझते हों तो मैं अगस्त के अन्ततक सफर करना नहीं चाहता। अहमदाबाद में मेरी तन्दुरुस्ती कुछ बिगड़ गई है और इसीलिए श्री विठ्ठलभाई पटेल [illegible]अनुरोध किया गया है कि आप बंबई-कारपोरेशन की ओर से मुझे दिया जाने वाला अभिनन्दन-पत्र अगस्त के अन्त में देने की तजवीज करें। परन्तु यदि देहली जाने की जरूरत होगी तो मैं बंबई आने के पहले वहां जाने में आगा-पीछा न करूंगा।

सूतकारों को—

सत्याग्रह-आश्रम के व्यवस्थापक कहते हैं कि पूनियों, तकुवों, चमरखों, चरखों, तांतों और ओटनों की मांगों की बाढ़-सी आ रही है। महासमिति के प्रस्तावों को अपनाने का यह शुभ चिन्ह है। पर यहां एक चेतावनी दे देना जरूरी है। जो लोग इस काम में नये हैं उन्हें स्वभावतः सहायता और रहनुमाई की जरूरत होगी। लेकिन व्यवस्था करनेवालों और सूत कातनेवालों को यह समझ लेना चाहिए कि अगर हर सूतकार को दूरवर्ती मुकाम से पूनियां मंगवानी पड़े तो सारे देश में चरखे का संगठन करना मुमकिन न होगा। पूनियां बहुत मुलायम चीज होती हैं और एक जगह से दूसरी जगह भेजने में खराब हो जाती हैं। यदि लोहे के डिब्बों में भरकर भेजी जायं तो वे अच्छी तरह जा सकती हैं; पर इसमें "दमड़ी की बुढिया और टका मुंड़ाई" वाली कहावत चरितार्थ होगी अर्थात पूनी की कीमत से भी खर्च ज्यादह बैठ जायगा। इसलिए सब से बढ़कर बात तो यह है कि हर सूतकार धुनकना भी जान ले। लेकिन जहां यह मुमकिन न हो, २५-३० आदमियों का एक एक चरखा-समाज कायम किया जाय। एक सदस्य सारे दिन धुनक कर पूनिया बनाया करे—सिर्फ आध घण्टा अपने हिस्से का सूत काता करे। और अगर चरखे, तकुवे आदि भी किसी एक ही जगह से मंगवाने पड़ें तो कताई का भी सफलता-पूर्वक चलना मुमकिन नहीं है। हर प्रान्तीय समिति से संलग्न ऐसी दुकानें होनी चाहिए जहां चरखे-संबंधी तमाम औजार आदि मिल सकें। चरखे को पैक करना बड़ा मुश्किल पड़ता है और बहुत रेल-खर्च पड़ जाता है। यदि अच्छा नमूना सामने हो तो एक मामूली बढ़ई भी अच्छा चरखा बना लेना चाहिए। किसी संस्था के सुचारु-रूप से चलने के लिए हजारों छोटी छोटी बातों का इन्तजाम करना पड़ता है। और इसीलिए अगर मेरा बस चले तो मैं महासभा को एक ऐसा 'वर्कशाप' बना दूं, जहां चरखे की तमाम सामग्री मिला करे; और एक खादी-कोठी बना दूं, जहां से खादी बिका करे। हमारे आन्तरिक प्रयत्नों द्वारा विदेशी कपड़े का संपूर्ण बहिष्कार करने के लिए हमें बहुत सोच-विचार करना पड़ेगा और उससे भी अधिक मशक्कत करना पड़ेगी। एक आदमी या एक तहसील के खादी-पोश हो जाने से चाहे स्वराज्य न मिले; परन्तु सारे देश के ऐसा करने से तो वह बात अवश्य सिद्ध होगी जो कि एक सफल बहिष्कार से होनी चाहिए। अहा! खादी के आन्दोलन के तात्पर्य को समझने की यदि जरा ही बुद्धि हम में हो तो हमारी सब शंकायें जड़ से की तरह निर्मूल हो जायं। खादी की बात लोगों को जंचती नहीं है, यह दूसरी बात है। पर यह भी तबतक नहीं कहा जा सकता जबतक उसके लिए सचाई के साथ पूरी कोशिश न की जा चुकी हो। और ऐसी कोशिश हार्दिक श्रद्धा के ही बल पर की जा सकती है।

अनभिज्ञता

एक मित्र ने मेरे पास "गार्डियन" का वह भाग उत्तर देने लिए काट कर भेजा है कि जिसमें एक हिन्दुस्तान के भूतपूर्व पुलिस अधिकारी ने हिन्दुस्तानी मामलों में आम तौर पर अपनी अनभिज्ञता प्रकट की है। वर्तमान-पत्रों के वाक्यों को लेकर उन्हें सुधारना बहुत मुश्किल है। किसी भी हलचल को सफल होने के पहले अज्ञान और मजाक स्थिति की मैं से जरूर गुजरना पड़ता है। लेकिन मैं जोर देकर यह बात कह सकता हूं कि असहयोग की हलचल यदि रचनात्मक नहीं है तो कुछ भी नहीं है। उसका खादी-कार्य उसके प्रयत्न (अभी यद्यपि ये असफल होते हुए दिखाई देते हैं तो कुछ हर्ज नहीं) और अस्पृश्यों के लिए उसका कार्य, उसकी राष्ट्रीय शालायें, पंचायतें कायम करने का उसका प्रयत्न, अफीम और शराबखोरी के खिलाफ उसकी हलचल, अकाल और बाढ़ से पीड़ित लोगों को उसकी मदद ये सब उसके रचनात्मक कार्य के उदाहरण हैं। पर यह हलचल 'ब्रीटिश सरकार की महरबानी' से हिन्दू-राज्य स्थापित करने का प्रयत्न नहीं करती है। लेकिन उत्तरदायित्वहीन ब्रिटिश राज्य के बजाय प्रातिनिधिक स्वराज्य स्थापित करना इसका उद्देश है। इस युद्ध में जहां कहीं भी गलती हुई है उसके लिए हमेशा दिलखोल कर संपूर्ण पश्चात्ताप किया गया है और उसका सुधार किया गया है। असहयोग की तरह कोई भी बड़ी दूसरी हलचल हिंसा-जोरो-जुल्म से, खाली नहीं रही है। इस भारतीय हलचल को सम-सामयिक दूसरी राष्ट्रीय हलचल और स्वदेश-भक्ति के नाम पर किये गये खून और दूसरे प्रकार के जोरो-जुल्म की सूची के साथ मिलाइए तो पता चल जायगा। लेखक अस्पृश्यों में ईसाईयों के किये कार्य की प्रशंसा करते हैं। हिन्दुस्तान में किये ईसाइयों के काम के गुणदोष की छानबीन में मैं नहीं पड़ना चाहता। ईसाई-मजहब का अप्रत्यक्ष परिणाम हुआ है हिन्दू-धर्म में शीघ्र जीवन पैदा करना। अस्पृश्यों के विषय में अपने गंभीर पाप-कार्य को सुसंस्कृत हिन्दू-समाज ने स्वीकार किया है। लेकिन ईसाई-मजहब का हिन्दुस्तान पर जो असर साधारण तौरपर हुआ है उसका सही अन्दाज तो केवल साधारण ईसाइयों की हमारे बीच रहन-सहन पर से और उसका हमारे उपर जो असर होता है उसपर से लगाया जा सकता है। मुझे अपनी यह राय जाहिर करते हुए बड़ा दुःख होता है कि भारत पर उसका विनाशक असर हुआ है। मुझे यह कहते बड़ा दुःख होता है कि आम तौरपर ईसाई मिशनरियों ने—कुछ भले अपवादों को छोड़कर—उसी तंत्र को जोरशोर से मदद की है कि जिस तन्त्र ने उन लोगों को जो दुनिया में बहुत भले और सभ्य गिने जाते हैं, उत्साहहीन और गरीब बना दिया और उन्हें नैतिक दृष्टि से भी गिरा दिया है। मैं इस बात को नहीं मानता कि दुनिया में एक ही धर्म हो सकता है या भविष्य में कभी एक ही धर्म होगा। इसलिए मैं सर्व-सामान्य बातों को ढूंढ निकालने का प्रयत्न करता हूं और आपस में सहनशीलता बढ़ाना चाहता हूं।

मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, श्रावण सुदी ३, संवत् १९८१

लोकमान्य की पुण्य-तिथि

लोकमान्य के भौतिक शरीर का वियोग हुए पहली अगस्त को ४ साल होंगे। इस पुण्य-तिथि का एक खास रहस्य मेरे लिए तथा उस हलचल के लिए है, जिसका प्रतिनिधि मैं आज हूं। मित्र तथा टीकाकार लोग मुझे सूचित करते हैं कि महाराष्ट्रीय अखबारों का एक भाग इस हलचल पर तथा मुझपर प्रहार की सतत वृष्टि कर रहा है। मुझे उसे पढना चाहिए और उसका उत्तर देना चाहिए। परन्तु ऐसा करने के लोभ के अधीन मैंने अपनेको नहीं होने दिया है। परन्तु जो कुछ उन्होंने लिखा है उस पर से उनका भावार्थ जानने योग्य बातें मुझे मिल जाती हैं।

लोकमान्य की इस चौथी पुण्य-तिथि के अवसर पर उनकी आत्मा को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने के लिए मैं उत्सुक हूं; पर लोकमान्य के कितने ही उत्तम अनुयायियों का मेरे प्रति यह अविश्वास देखते हुए मैं उसे किस तरह अर्पण करूंगा?

यह कार्य कठिन है। १९२० की उस चिरस्मरणीय रात को, सरदारगृह में स्वर्गीय लोकमान्य के शव के अन्तिम दर्शन करके वापस लौटते हुए मुझपर आ पडे अकेलेपन के भाव से मेरा हृदय दब रहा था। जबतक लोकमान्य थे तबतक मैं सुरक्षित था। परन्तु उनके चले जाने से अपनी अतिशय अरक्षित दशा का ज्ञान मुझे हुआ। उनके साथ मैं मतभेद रख सकता था और अपना मतभेद आदर-पूर्वक प्रकट भी कर सकता था। परन्तु हम दोनों में कभी गलत-फहमी होने की गुंजाइश ही न थी। अब उनके अनुयायियों के बीच मैं गलत-फहमी के लिए इसी तरह निर्भय नहीं रह सकता। इसका कारण यह नहीं है कि वे मेरा अविश्वास करना चाहते हैं; बल्कि यह है कि ऐसे मार्गदर्शक के बिना, जिनका शब्द उन्हें वेदवाक्य था, उन्हें मेरे मत के विषय में हमेशा भय और सन्देह के भाव बने रहते हैं, और आपस में पूरा पूरा एकमत नहीं होता। उनके पक्ष में भेद पडे ऐसी इच्छा मुझे तो कभी नहीं हो सकती। मैंने तो अनेक बार महाराष्ट्र-दल की प्रशंसा की है। इस दल की एक नियमित नीति है। वे अच्छी तालीम पाये हुए हैं। वे समर्थ हैं, और उनका इतिहास महान् कुरबानियों से भरा हुआ है। इस दल को तोडने की नहीं, बल्कि उसपर कब्जा करने की इच्छा मुझे थी और अब भी है। मैं चाहता था और अब भी चाहता हूं कि स्वराज्य प्राप्त करने के साधन-संबंधी मेरे विचारों को यह दल ग्रहण करे। लोकमान्य यदि होते तो मुझे एक-मात्र उन्होंको अपने विचारों का कायल करने की या उन्हें मुझे अपने विचारों का कायल करने की जरूरत रह जाती। वस्तुस्थिति-विषयक उनकी सूझ स्वभाव-सिद्ध थी। मुझे उन्होंने कहा था कि "यदि लोग आपकी प्रणाली को स्वीकार करें तो मुझे अपना ही समझना।" परन्तु आज तो हम विभक्त महाराष्ट्र को देख रहे हैं। यदि सत्याग्रह-विषयक मेरी श्रद्धा अचल होगी तो जिस प्रकार मैं अंगरेजों को जीतने की आशा रखता हूं उसी प्रकार महाराष्ट्र को भी जीतने की आशा रखता हूं। पर ऐसा करने के लिए महाराष्ट्रीय अपरिवर्तनवादियों की सहायता की जरूरत मुझे होगी। यदि उन्होंने सत्य और अहिंसा के रहस्य को समझ लिया हो तो उन्हें मतभेद रखते हुए भी परिवर्तनवादियों के प्रति सक्रिय प्रेम का परिचय देना चाहिए। उन्हें उनपर टीका-टिप्पणी न करनी चाहिए। एक-दूसरे के सिर फोडने के बदले दूसरा बहुतेरा काम हर पक्ष के लिए पडा हुआ है।

दो नामी मित्रों ने दोनों दलों को एक करने का और उनका नेतृत्व ग्रहण करने का अनुरोध मुझसे किया है। एक लंबे पत्र में एक सज्जन लिखते हैं—"मेरे विचार के अनुसार तिलक-नीति और गांधी-नीति में कोई अनिवार्य अथवा तात्विक विरोध नहीं है, जैसा कि पनडुब्बी नाव के हमले और हवाई जहाज के हमलों में विरोध नहीं, पर भेद है। इतना ही नहीं बल्कि दोनों एक साथ, खुले तौर पर, दोनों के सामान्य शत्रु के मुकाबले, सामान्य कल्याण के लिए, प्रकट धर्म-सन्धि करके काम कर सकते हैं। हां, जुदी जुदी नीति के अनुसार-तिलक-नीति धारासभा में और गांधी-नीति धारासभा के बाहर खुले मैदान में।" इन वाक्यों में एक हद तक स्थिति यथार्थ-रूप में दर्शित की गई है। 'एक हद तक' मैं इसलिए कहता हूं कि धारा-सभा द्वारा असहयोग की कल्पना मैं नहीं कर सकता। यह कदाचित् मेरी न्यूनता हो। और एक ही आदमी दोनों हलचलों, पनडुब्बी और हवाई जहाज के हमलों का एक साथ संचालन नहीं कर सकता। और दोनों का लक्ष्य एक होने पर भी दोनों कप्तान एक-दूसरे की जगह नहीं ले सकते। धारासभा का कार्य मैं धारासभा के बाहर काम करके ही, धारासभा को बदनाम करके ही और ऐसा करके लोगों का ध्यान उसकी तरफ से हटा कर ही मजबूत कर सकता हूं। मेरे कहने का तात्पर्य प्रदर्शित करने के लिए तो इससे ज्यादह अच्छी उपमा एण्टीसेप्टिक और एसेप्टिक दवाओं के भेद हैं। एक का काम जंतुओं का नाश करना है और दूसरी का काम जंतुओं को उत्पन्न ही न होने देना है। ये दोनों प्रयोग एक ही समय और एक ही रोगी पर नहीं किये जा सकते। परन्तु इन दोनों प्रयोगों के हिमायती सर्जन अपने अपने प्रयोग उन प्रयोगों को माननेवाले रोगी पर कर सकते हैं; और ऐसा करते हुए एक-दूसरे के कार्य में किसीके रुकावट डालने की भी संभावना नहीं। यही मित्र आगे लिखते हैं—"जहांतक तिलकजी और गांधीजी का विरोध बन्द न होगा तबतक दोनों के बीच में भारत के हृदय की खींचातानी होती रहेगी। और देश स्थिर कार्य करने में असमर्थ रहेगा।" यदि सचमुच यही दुष्परिणाम हो, देश स्थिर न हो जाय, तो मैं एक अ-कुशल सर्जन और खुद अपने प्रयोग का मिथ्या प्रतिनिधि हूंगा। मैं इन मित्र को और पाठकों को विश्वास दिलाता हूं कि मैं पूरी तरह सावधान हूं। इस विरोध का जारी रहना मेरे लिए कुछ आनन्द की बात नहीं है; परन्तु यथासंभव एक दिन भी इसकी उम्र लंबी न की जायगी।

स्थिर कार्य में लग जाने की क्रिया को जल्दी बुलाने में मैं अपरिवर्तनवादियों की मदद चाहता हूं। अपरिवर्तनवादियों की श्रद्धा अन्तर्मुख होकर कार्य करने में ही निहित है। अतएव वे मौन-व्रत ले कर बैठ जा सकते हैं। ऐसा करेंगे तो वे अधिक अच्छा काम कर सकेंगे। उलट कर जवाब देने का नाम ही उन्हें छोड देना चाहिए। जहां जहां मत हासिल करने की और अपने प्रभाव से काम लेने की बात पर झगडा हो वहां वे महासभा पर से अपना कब्जा छोड दें। परिवर्तनवादियों का काम बाहिरी हलचल के बिना नहीं चल सकता। इसलिए वर्तमानपत्रों और इच्छा हो तो महासभा की संस्थाओं पर भी वे अपना कब्जा कर लें। उनकी इजाजत से मैं तो महासभा को जन-समाज की संस्था बनाना चाहता हूं। और दूसरा तमाम काम छोडकर सिर्फ इसी एक काम को लेकर जब कार्य-कर्ता, बैठ जायंगे तभी यह हो सकता है।

परन्तु यदि इसके लिए दोनों दलों में मोचाबिन्द और तुमुल संग्राम होना अनिवार्य हो तो बेहतर है कि ऐसा न हो।

यदि ऐसा ही हो तो फिर अपरिवर्तनवादियों के कोशिश करने से बहुमत होने की संभावना होते हुए भी उन्हे परिवर्तनवादियों को अत्यन्त मिठास के साथ महासभा का कब्जा दे देना चाहिए। हां, इसकी एक बात हमें मान लेने की जरूरत है कि जनता अभीतक हमारी काम करने की रीति में ज्ञान-पूर्वक हाथ नहीं बंटाती है। उनपर सिर्फ वही लोग अपना प्रभाव जमा सकते हैं जो उनके अन्दर काम करते हों। हमारे नामी नामी व्याख्यानबाजों की अपेक्षा उन लोगों का असर उनपर ज्यादह होता है जो चुपचाप देहात में काम करते हैं। इसके मैं सैकड़ों उदाहरण दे सकता हूं। इसलिए हमें शतरंज के मोहरों की तरह जनता का उपयोग न करना चाहिए। फिर यह भी आवश्यक है कि महासभा का कब्जा इस ढंग से न छोड़ा जाय जिससे परिवर्तनवादियों को चक्कर में पड़ना पड़े। यह कब्जा सौंपने का कार्य अत्यन्त विनय-पूर्वक, शुद्ध चित्त से और पाप-रहित होकर करना चाहिए। मेरी सूचना के अनुसार तो यह काम उन्हीं लोगों से हो सकता है जिनकी जाग्रत श्रद्धा चरखे पर हो और जिन्हें चरखे के काम से एक [illegible] भी अलग होना अखरता हो।

परन्तु अपरिवर्तनवादियों को मेरी यह सलाह चाहे पसंद हो या नापसन्द और वे इसे मानें या न मानें तोभी यदि ईश्वरेच्छा होगी तो ऐसे समय और तरीके से जिससे परिवर्तनवादियों को दिक्कत में न पड़ना पड़े और राष्ट्र-कार्य की भी हानि न हो, मैं महासभा का कब्जा उनको सौंप कर अपना धर्म उन्हें सिद्ध कर सकूंगा। जिस दिन मैं यह कर सकूंगा उसी दिन लोकमान्य को मेरी नम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित होगी। मैं तो अपने धर्म-पालन के ही द्वारा उनकी दी हुई विरासत के लायक हो सकता हूं।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

सहयोगियों के प्रति

मैंने यह कितनी ही बार इकबाल किया है कि हम जो अब तक सहयोगियों का प्रेम प्राप्त नहीं कर पाये हैं उसमें असहयोगियों का ही दोष है। पर इससे सहयोगियों अथवा असहयोगियों को देश को नुकसान पहुंचाने का अधिकार नहीं प्राप्त हो जाता। १९२२ की शुरुआत में अनेक सहयोगी खादी का काम करने को तैयार हो गये थे। कितने ही सहयोगी यह मानने लगे थे कि खादी से देश की आर्थिक स्थिति अवश्य सुधर सकती है। फिर यह बात जहां की तहां रक्खी रही। अब जब कि चरखे की हलचल को फिर से जोर-शोर के साथ चलाने की कोशिश हो रही है तो मैं सहयोगियों से मदद मांगने की हिम्मत करता हूं। भिक्षुक को शर्म ही किस बात की? देश के प्रति चाहे सहयोगी और असहयोगी के धर्म भिन्न भिन्न हों। हिन्दू एक तरह से मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहें और मुसल्मान दूसरी तरह से। दोनों को आपस में लड़ने का कुछ भी प्रयोजन नहीं। दोनों अपनी अपनी दृष्टि से तो सच्चे हो हैं। परन्तु हमारी धारणा यह है कि राजनैतिक मुक्ति इसी बात में है कि दोनों एक दूसरे को सहन करें।

इसी प्रकार असहयोगियों और सहयोगियों को अपनी अपनी दृष्टि के अनुसार काम करते हुए भी एक दूसरे के प्रति जरूर सहनशील होना चाहिए। और जहां दोनों एक-मत हों वहां मिल कर एक-साथ काम क्यों न करें?

मैं सुनता हूं कि सहयोगी कहते हैं कि जबतक गांधीजी चरखे को असहयोग का वाहन मानते हैं तबतक सहयोगी उसमें सहायक नहीं हो सकते! ऐसा क्यों? क्या इसलिए कि मुझे चरखे में राम अर्थात् धर्म दिखाई देता है, दूसरे लोग जो उसमें सिर्फ सूत अर्थात् अर्थ देखते हैं, उसे छोड़ देंगे? चरखा अपने चरखे के रूप में न तो राम को सूचित करता है और न सूत को। उसके चलानेवाले ही सूत कातते हैं और वे बातें उसमें देखते हैं। मुझ जैसा असहयोगी उसमें भावना का आरोप करता है। परन्तु चरखा यदि व्यापक वस्तु हो जाय तो असहयोग अपने आप छिन्न हो जाता है। मैंने ही यह बात कही है। क्या सहयोगी असहयोग की इस छिन्नता में सहायक न होंगे?

परन्तु दूसरी तमाम बातें असहयोगियों के ही सिर पर हैं। असहयोगियों के दोष से सहयोगियों और असहयोगियों के बीच खाई हो गई है। इस खाई को पूरने का भार भी हमींपर होना चाहिए। इसी दृष्टि से मैंने सहयोगियों से यह प्रार्थना शुरू की है। और ऐसा करते हुए असहयोगियों को दूसरी सलाह देता हूं कि वे उन सहयोगियों से जिनका समागम उनसे हो, प्रार्थना करें, उन्हें सूत कातने के लिए निमन्त्रित करें और यदि वे कातना न जानते हों तो उन्हें सिखावें। यह बात नहीं कि जो लोग महासभा में शामिल हों वही चरखा कातें। यह तो भारतवासी-मात्र का धर्म है। अतएव हमें सहयोगियों की प्रेम-पूर्वक आराधना करनी चाहिए। यदि वे हमारी बात न सुनें तो हमें बुरा मानने की जरूरत नहीं। फिर मौका पड़ने पर उनसे विनय करें और विश्वास रक्खें कि हमने जो शक्ति चरखे में मानी है वह उसमें जरूर है और यदि हमारे अन्दर रोष न होगा तो सहयोगी चरखे को जरूर अपनावेंगे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

शिक्षा-परिषद् में गांधीजी

[गत १ अगस्त को राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद अहमदाबाद के सभापति-आसन से गांधीजी ने नीचे लिखा पढ़ने-योग्य भाषण किया था— उप-संपादक]

भाइयों और बहनों,

मुझे यह कहते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि मैं जितनी तैयारी करना चाहता था उतनी न कर सका। सच बात तो यह है कि मुझे यह साहस बिल्कुल न करना चाहिए था। मेरे पास न तो इतनी शरीर-शक्ति है और न समय ही है। परन्तु मुझपर इतना दबाव डाला गया कि मैंने कहा कि अगस्त के आरंभ में यदि परिषद् की जाय तो मैं उसमें हाजिर हो सकूंगा। कुछ विचार के बाद मुझे मालूम हुआ कि हाजिर होने के उपरान्त मुझे कुछ काम भी करना होगा। अपने विचार लिख रखने का समय मैं खोज रहा था; परन्तु वह न मिल सका। जितने विचार करने चाहिए थे उतने न कर सका। इसके लिए मैं आपसे माफी चाहता हूं।

श्री किशोरलाल भाई की याचना मेरी शक्ति के बाहर है। शिक्षक लोग परस्पर सखा-भाव से रहें, यह स्थिति ही स्वराज्य है। यह देना मेरे बस की बात नहीं। ऐसी भिक्षा तो ईश्वर से ही मांगी जा सकती है। ईश्वर यदि इतना दे दे तो सब कुछ मिल गया समझिए। ऐसी भिक्षा आपकी दृष्टि में चाहे कुछ भी न हो, परन्तु मेरे लिए तो इसका देना असंभव है। मैं तो आपको कुछ सूचनायें और ऐसे कुछ अंक देना चाहता हूं जिससे आपको और मुझको कुछ उत्साह मिले।

भारत में आज निराशा का काल आ गया है। मैं भी इसका एक कारण हूं। मैंने हिन्दुस्तान के सामने काल-मान रक्खा कि हम स्वराज्य एक साल में लेंगे। एक वर्ष तो बीत गया: इससे भी ज्यादह वर्ष बीत गये। फिर भी ऐसा मालूम होता है कि स्वराज्य अभी दूर है। कितने ही लोगों को १९२१ से भी शायद अधिक दूर दिखाई दे। पर मैं यह नहीं मानता। मुझे तो स्वराज्य अधिक नजदीक आता हुआ दिखाई देता है। पर यह देखने के लिए मेरी सदृश अटल श्रद्धा होनी चाहिए। वह किसीकी दी नहीं मिल सकती। अनुभव से ही मिल सकती है। यदि मैंने काल-मान न पेश किया होता और उसके अनुसार त्रैराशिक न लगाई होती तो मैं समझता हूं कि जितना काम हुआ है उतना न हुआ होता।

मैं जो अंक आपके सामने पेश करता हूं वे आपसे छिपे नहीं हैं। हमारा उत्साह कायम रखने के लिए वे बस हैं। असहयोग के किसी भी अंग में गुजरात ने जो काम किया है वह ऐसा नहीं कि नीचा सिर करना पड़े। गुजरात को ही क्यों हिन्दुस्तान को भी सिर नीचा नहीं करना पड़ेगा। त्रैराशिक के हिसाब से हमारे हिस्से का पूरा काम हम न कर सके, यह बात सच है। परन्तु हर शख्स यथाशक्ति कर चुका हो और मैं जानता हूं कि वे कर सके हैं तो नीचा सिर करने की जरूरत नहीं। मैं ऐसा क्यों कहता हूं, इसका कारण मैं आपको समझाता हूं। अपने साथियों को उलहना दिया है कि इतना ही काम क्यों किया? यह उलहना देना मेरा धर्म है। क्यों कि जो सेवा करना चाहता है और जिस के सिर पर सरदारी सेवा के कारण आ पड़ी है उसके लिए तो ज्यादह से ज्यादह काम मांगना लाजिमी है। उलहना देना उसका धर्म है। परन्तु निष्पक्ष-रूप से जब विचार करने लगता हूं तब मैं नहीं समझता कि सभी लोगों ने बेईमानी की। यह तो हुआ उजला पक्ष। इसके समर्थन में मैंने अंक प्राप्त किये हैं। आप उन्हें जानते हैं। यह महामात्र द्वारा मुझे मिले हैं और आप शिक्षकों के ही द्वारा संकलित हैं। इन अंकों से ही खुद मुझे और आपको उत्साहित करना चाहता हूं। हमारे पास राष्ट्रीय पाठशालाओं में १०,००० विद्यार्थी हैं—तीन म्युनिसपल्टियों की पाठशालाओं को छोड़ कर। उनपर साढे तीन लाख रुपये खर्च हुए हैं। विद्यार्थियों में ५०० लड़कियां हैं। यह संख्या कम है, पर इतनी लड़कियां भी शिक्षा पा रही हैं॥ अहमदाबाद, नड़ियाद और सूरत की म्युनिसिपाल्टियों ने, म्युनिसिपाल्टी में असहयोग का तत्व प्रचलित करके, अपनी पाठशालाओं को राष्ट्रीय बना दिया। इनके अंक जुदे हैं। उन शालाओं के अंक सहित विद्यार्थियों की संख्या २० हजार हो जाती है। इनमें ६० हजार अहमदाबाद में हैं। हमारे पास ८०० शिक्षक हैं। उनकी आजीविका का प्रबन्ध भी इन साढे तीन लाख में से किया गया है। ३ महाविद्यालय हमारे पास हैं। पुरातत्व-मन्दिर भी है। इसके संबंध में मैंने सुना है कि ऐसा काम भारत में दूसरी जगह कहीं नहीं होता। तीन सजीव संस्थायें हमें पोषण दे रही हैं—और हमसे पोषण ले रही हैं। वे संस्थायें हैं दक्षिणामूर्ति भवन, चरोतर एज्युकेशनल सोसायटी और भड़ोंच शिक्षा-मण्डल। इन संस्थाओं के संस्थापक और संचालक इस बात को मानेंगे कि इन संस्थाओं ने असहयोग करके जैसे इस हलचल को शोभित किया है, उसी प्रकार असहयोग से बहुत-कुछ पोषण भी लिया है।

पाठ्य पुस्तकें

इसके अलावा हमने पाठ्य पुस्तकें भी बहुतेरी लिखी हैं। मैंने ऐसी बहुतेरी पुस्तकें जेल में देखी हैं। दक्षिणामूर्ति और चरोतर एज्युकेशनल सोसायटी की पुस्तकें भी सरसरी तौर पर देख चुका हूं। मैं यह नहीं कहता कि उन्हें पढ़ गया हूं। पर बहुतेरी पुस्तकों को देखते रहने से इतनी शक्ति आ गई है कि पुस्तक को सरसरी तौर पर देख लेने से ही यह मालूम हो जाता है कि इसमें क्या लिखा है, किस शैली में लिखा है, लेखक का आशय क्या है। ये लेखक और संस्थायें धन्यवाद के पात्र हैं। विद्यापीठ की पुस्तकें इससे अलग हैं।

गुजरात का वर्तमान अर्थात् पिछले ५० वर्ष का सारा इतिहास यदि देखें तो ऐसा काम कभी हुआ ही नहीं। अबतक जो काम हुआ है वह सब सरकार के द्वारा हुआ है। इसका श्रेय हम नहीं ले सकते। इसमें लोग तो हमारे ही थे; परन्तु योजना सरकार की—सरकार-नियुक्त लोगों की थी। यह योजना मौजूदा शासन-प्रणाली का पोषण करनेवाली थी और इस विचार को प्रधान रखकर रची गई थी कि इस प्रणाली को पोषण किस प्रकार दिया जाय। यह काम जब उन्होंने शुरू किया तब पहले वर्ष में जितनी पुस्तकें प्रकाशित कीं, उसकी त्रैराशिक में भी हम आगे बढ़ जाते हैं। पर हम किसीके साथ मुकाबला करना नहीं चाहते।

गुजरात सबसे पिछड़ा हुआ प्रान्त था। आज भी है। गुजराती लोग निरक्षर हैं—सिर्फ व्यापार करना जानते हैं और व्यापार के द्वारा जितना धन गुजरात में लाया जा सके उतना लाना ही जानते थे। असहयोग के पहले समाज के लिए साहित्य तैयार करने की आवश्यकता न थी। इस दिशा में सबसे पहले काम करने वाली संस्था है सस्तु-साहित्य-वर्द्धक कार्यालय—अर्थात् स्वामी अखण्डानन्द। उन्होंने सस्ती पुस्तकों का प्रचार गुजरात में खूब किया। परन्तु असहयोग की हलचल इससे भी आगे बढ़ गई है। इससे अखण्डानन्दजी के पुख्ता काम को हम भूल जा सकते हैं, यद्यपि हम उसे भूल नहीं सकते।

चेतावनी

पाठ्य पुस्तकों के विषय में मैंने जरूरत से ज्यादह कहा है, पर इसके साथ चेतावनी भी देता हूं। ऐसी पाठ्य-पुस्तकों का एकसा-प्रवाह गुजरात में बहता रहे, यह मुझे पसन्द नहीं। यरोडा जेल में मुझपर पाठ्य-पुस्तकों की वर्षा होने लगी थी तब मैं चौंका। छपाई-आदि सब बढ़िया था; एक पर तो मोहित ही हो गया। परन्तु यह प्रवृत्ति ऐसी नहीं जो गुजरात को शोभा दे सके। गुजरात भिखारी नहीं। गुजरात में औरों के मुकाबले में रुपये ठीक ठीक हैं। पर मैं समझता हूं कि गुजरात इतना भार नहीं उठा सकता। पुस्तकों के ऐसे प्रवाह को वह हजम भी नहीं कर सकता। उसकी जेबें भी इसे सहन नहीं कर सकतीं। अहमदाबाद, सूरत, भड़ोंच, नड़ियाद जैसे शहरों के लिए ही यदि ऐसी पुस्तकें लिखी जायं तो फिर मुझे कुछ नहीं कहना—फिर भी इन शहरवासियों का दिमाग भी इतना भार न उठा सकेगा—जेबें भले ही उठा सकें। पर देहात के मां-बाप तो किसी तरह नहीं उठा सकते। हम जो पुस्तकें प्रकाशित करके लोगों के सामने पेश करें, वे ऐसी होनी चाहिए जिन्हें गरीब से गरीब बालक खरीद सकें। यदि मेरा बस चले तो मैं १२ और ४ पैसे की पुस्तकें देना चाहता हूं।

नवजीवन-प्रकाशन-मन्दिर

मुझ से कहा जाता है कि नवजीवन-प्रकाशन-मन्दिर ने बड़ी भारी भारी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। लोग शायद इस बात को न जानते हों कि उसका मालिक मैं नहीं—मालिक तो स्वामी आनन्दानन्द हैं। वे तो पुस्तक वगैरह छापकर फिर मुझे खबर करते हैं कि मैंने ऐसा किया है। मेरे पास ऐसी शिकायतें आई हैं कि आनन्दानन्द ने गुजरात को लूट कर नवजीवन से ५,०००) की भेंट दिखाई है। वे स्वयं कितने रुपये खा गये; यह आप क्या जानें? ऐसों को मैं इतना जवाब देता हूं कि मेरे पास ऐसे आदमी नहीं

जो रुपया कम आते हैं और यदि हैं तो मैं नहीं जानता। कितने ही लोग वेतन लेते ही नहीं और कितने ही अपनी गुजर के लायक लेते हैं, पर यदि सब लोग ठीक ठीक वेतन लें तो उसका अंक ([illegible]००) से भी अधिक हो जाता है।

पाठ्य-पुस्तकों की जरूरत नहीं

यह बात ठीक है कि यदि मैं बाहर होता तो इतनी पुस्तकें नवजीवन-प्रकाशन-मन्दिर से न प्रकाशित होने देता। मैं तो इसके पहले कि एक पुस्तक लोगों के सामने पेश करूं, बहुत विचार करूंगा। मैंने एक मामूलीसी पुस्तक 'बाल-पोथी' लिखी है। वह केवल पांच मिनिट में पढ़ी जा सकती है और यदि रंग बांध कर पढ़ूं तो १० मिनिट में। उसपर कितनी ही आलोचनायें आई हैं। उन्हें मैं अभी तक पढ़ न पाया हूं। मैं जानता हूं कि बहुतेरी टीकायें ऐसी हैं जिनसे मुझे हर्ष नहीं हो सकता। मेरी स्तुति और निन्दा का तो पार नहीं। अतएव इनका मुझपर कुछ असर नहीं होता। फिर भी इस 'बालपोथी' के मूल में जो विचार है वह भारी है। शिक्षक को मुंह से शिक्षा देनी चाहिए। शिक्षा पुस्तकों और पाठ्यपुस्तकों के द्वारा नहीं दी जा सकती। जिन जिन देशों में [illegible] पाठ्यपुस्तकों का ढेर लगा रहता है उस देश के बालकों के दिमाग में कौन जाने क्या भरा रहता है— भूत भरा रहता है। बालकों की विचार-शक्ति शून्यवत् हो जाती है। असंख्य बालकों के अनुभव से और अनेक शिक्षकों के साथ संवाद के आधार पर मेरा यह अनुभव बना है। दक्षिण आफ्रिका में मैं आंखें खोल कर रहता था। वहां दावानल सुलग रहा था। उसमें भी मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ है। दो पाठशालाओं की तुलना कीजिए। एक में शिक्षकों के पास बहुतेरी पाठ्यपुस्तकें हों और दूसरी में एक भी न हों। दोनों शिक्षकों में सत्य तो है। इनमें जिनके पास पाठ्य पुस्तकें नहीं हैं वह जितना ज्ञान बालकों को दे सकता है उतना वे शिक्षक नहीं दे सकते जिनके पास पाठ्यपुस्तकें हैं। मैं बालकों के हाथों में पाठ्यपुस्तकें नहीं देना चाहता। शिक्षक स्वयं अपने लिए यदि उन्हें पढ़ें तो भले ही पढ़ें। शिक्षकों के लिए हम चाहे जितनी पुस्तकें लिखें। बालकों के लिए यदि लिखिएगा तो फिर इससे शिक्षक एक यन्त्र बन जायंगे। शिक्षकों में शोधक-बुद्धि, स्वतन्त्रता न रह जायगी। परन्तु मैं शिक्षकों की गति को रोकना नहीं चाहता। मैं तो इतना ही चाहता हूं कि आप मेरे यह विचार भी जान लें। पाठ्य-पुस्तकों के लेखक अनुभवी हैं। लोगों को जबतक उनकी जरूरत है तब तक वे शौकसे उन्हें लें। परन्तु किस दृष्टिसे मैं यह कहता हूं, यह जान लीजिए। आप पूछेंगे, आपने शिक्षक का काम किया है? तो मैं कहूंगा, कि हां। मेरे विचार की पुष्टि में ठीक ठीक अनुभव भी है। मैंने शिक्षा-विषय पर खूब विचार भी किया है। मैंने जो दृष्टि पेश की है उसके अनुसार विचार कर देखिएगा और अपनी गति को जरा हलकी कीजिएगा मेरा मतलब यह है *कि लाखों बालकों के लिए यदि गुजरात को पुस्तकें तैयार करनी* पड़ें तो गुजरात के पास इतने पैसे नहीं-और दूसरी बात यह कि बालकों के दिमाग पर बहुत बोझ पड़ जायगा।

मनुष्य अपने मन में जहां नया विचार आया कि तुरन्त उस पर कुरबान होकर यदि संसार के सामने पेश कर दे तो इसमें दोनों को कुछ हासिल न होगा। परन्तु यदि वह उस विचार को संग्रह कर रक्खे, खुद प्रयोग करे, लड़कों पर प्रयोग करे और फिर उसका मेल मिलाकर लोगों के सामने पेश करे तो इसमें संसार को कुछ हानि नहीं। इसके लिए मेरे पास बड़े बड़े लोगों की मिसालें हैं। विचार को रोक रखने से न तो उनकी हानि हुई है न संसार की। और उन्होंने पीछे से अपने विचार बदले भी हैं और नये अनुभव में पुराने विचारों को भूल भी गये हैं। इसका एक उदाहरण है उतावले एण्ड्रूज साहब—मेरे परम मित्र—मेरे साथ उठने-बैठने और खानेपीने तथा सोने वाले। दस साल पहले ये जहां विचार आया कि झट् लिख मारा करते। इन्हें यह लत ही पड़ गई थी। दस बरस पहले जो विचार इनके थे वे आज नहीं। ये तो धार्मिक पुरुष हैं। हम भी धार्मिक पुरुष हैं—हम जिन विचारों को प्रकट किये बिना ही साथ लेकर मर जायंगे वे हमारी आत्मा के साथ जायंगे और किसी किसी दिन संसार को जरूर मिल जायंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा की उत्पत्ति

विद्यापीठ और तत्संलग्न संस्थायें किस परिस्थिति में स्थापित हुईं इसका विचार यदि कर लेंगे तो अनेक गुत्थियां सुलझ जायेंगी। आज हम शिक्षक की दृष्टि से शिक्षा का विचार कर रहे हैं। शिक्षक का काम शिक्षा देना है और इस दृष्टि से हमें अच्छी से अच्छी शिक्षा देनी चाहिए। परन्तु हमारा प्रश्न इतना सहल नहीं है। महज शिक्षा के लिए हम विद्यापीठ और पाठशालाओं को नहीं चला रहे हैं। हमने असहयोग के संबंध में विद्यापीठ की स्थापना की है। इसका अर्थ यह है कि शिक्षक, शिष्य और माँ-बाप स्वराज्य के संघ में शामिल हुए हैं, स्वराज्य के सेवक हैं, असहयोगी हैं। परन्तु इस समय मैं यहां असहयोग का चमत्कार बताने के लिए नहीं आया हूं। बल्कि राष्ट्रीय शिक्षक की हैसियत से आपके धर्म सिखाना चाहता हूं। जिस दिन हम स्वराज्य के संघ में शामिल हुए उसी दिन हमने यह बात मान ली थी कि असहयोगका सिद्धान्त बिलकुल ठीक है। इस सिद्धान्त में यदि भूल होगी तो महासभा उसे सुधारेगी। फिलहाल यह मान कर ही हमें काम करना होगा कि गाड़ी ठीक ठीक चल रही है। हम यह तात्त्विक निर्णय करने के लिए नहीं आये हैं कि असहयोग ठीक है या नहीं। मुझे और आपको दोनों को यह अभिमत है कि विद्यापीठ का अस्तित्व स्वराज्य के संबंध में है। स्वराज्य मिलने के बाद शिक्षा के खातिर शिक्षा का विचार करेंगे। आज पूर्वोक्त संकुचित दृष्टि से ही विचार करना है।

हमारी प्राथमिक पाठशालायें, विनय-मन्दिर, और पुरातत्व-मन्दिर के भी, संचालन में यही दृष्टि सामने रखनी चाहिए। स्वराज्य और असहयोग के सिद्धान्त का भंग न होने देना चाहिए। हमें स्वराज्य प्राप्त करना है। इसका साधन सत्य और अहिंसा हमने निश्चित किया है। महासभा के संकल्प में शान्तिमय और न्यायोचित शब्दों का चाहे जो अर्थ होता हो, मेरे नजदीक तो इसका एक ही अर्थ है—सत्य और अहिंसा। और मैं मानता हूं कि गुजरात भी यही अर्थ करता है। इसके अलावा पंचविध बहिष्कार भी हमने स्वीकार किया है। इन्हें यदि छोड़ दें तो हमारी प्रतिज्ञा टूटती है। हम बालकों के नीति-सदाचार के पालक हैं। अतएव बहिष्कार को छोड़कर हम इन्हें गलत पदार्थ-पाठ देंगे। जिन्हें इनपर श्रद्धा न हो वे पाठशालाओं में से निकल जायें। उदर-पोषण तो सबके पीछे लगा हुआ है; पर यह हमारा प्रधान हेतु नहीं है। परन्तु जिन्हें असहयोग की तमाम शर्तें मंजूर न हों उन्हें इनमें से निकल जाना चाहिए। केवल उदर-पोषण के लिए राष्ट्रीय शालाओं में प्रवेश करना न तो शिक्षकों को शोभा देता है और न विद्यार्थियों को।

लड़ाई के दो अंग

हमारी लड़ाई के दो अंग हैं। एक ध्वंसात्मक। इस अंग को हम पूरा कर चुके। अब भी यही काम करते रहें तो वह गंवार किसान की तरह होगा। किसान बुआई करने के पहले घास, कंकर निकाल कर जमीन को जोतता है।

इतना करने पर भी यदि वह जमीन को उथल-पुथल ही करता रहे तो यह कालक्षेप ही होगा। उसी प्रकार परिणाम देखे बिना दूसरे खेत में काम करने लगे तो यह भी ठीक न होगा। उसी तरह यदि एक छोड कर चला जाय और उसकी जगह दूसरा आबैठे, यह भी ठीक नहीं। उसे तो वहां स्थायी काम ही करना चाहिए। यह काम करते वह धीरज रक्खे तो वह खेत खुद बखुद तैयार हो जायगा। हमारा ध्वंसात्मक काम पूरा हो चुका। अब रचनात्मक—स्थायी—काम करना बाकी रहा है। यह रचनात्मक काम बहिष्कार का पोषक है। जिस काम को हम कर रहे हैं वह यदि संसार की स्तुति का पात्र हो जाय, संसार उसे अपना ले, तो दूसरी पाठशालायें अपने आप नष्ट हो जायगी। सब लोग इस बात को मानते हैं कि दूसरी पाठशालाओं में आत्मा नहीं है और कहते हैं इनके स्थान पर कुछ दूसरी बातें तजवीज कीजिए। हमे यदि अपने काम पर अटल श्रद्धा हो तो फिर उसकी सिद्धि में चाहे एक साल, लगे या बीस साल लगे हमें तो इसीमें लगे रहना होगा।

शिक्षा का स्थायी काम

हमारा स्थायी काम यह है कि हम पाठशालाओं की स्थापना करें। शिक्षकों को पंचायतों और अदालतों को भूल जाना चाहिए। इन सब का विचार करने की आवश्यकता हमें नहीं। हम तो बस उतनाही विचार करें जितनी जिम्मेवारी हमारे सिरपर है; बस हमारा काम पूरा हुआ। हमारी दूसरी जिम्मेवारी है पाठशालाओं को सुशोभित करने की। हमने अबतक विस्तार तो खूब किया है। अब इस विस्तार में चुनाव करने की जरूरत है। आप लोगों में जो किसान होंगे वे समझ जायंगे कि किसान बीज बोने पर उन में से खराब, पीले और मुर्दार पौधों को उखाड फेंकता है। गेहूं पकने पर भी अच्छे से अच्छा बीज चुन कर अगले साल के लिए रखता है और हर साल इस तरह करते हुए बढिया फसल तैयार करता है। हमारा विस्तार-कार्य अब पूरा हुआ, अब गुण बढाने के काम को हाथ में लेना चाहिए।

दूसरा काम है चरखा और अस्पृश्यता का और तीसरा हिन्दू-मुसलमान-एकता का। हां, गुजरात में हिन्दू-मुसलमान-समस्या उतनी नहीं है, पर कुछ है जरूर। यदि हम बालकों के अन्दर इस भाव को व्याप्त करेंगे कि हिन्दू-मुसलमान सगे भाई हैं तो गुजरात में भी जो कुछ कटुता है वह दूर हो जायगी। हां, यह सच है कि गुजरात में हमने आपस में एक दूसरे के सिर को खून से रंगा नहीं है-फिर भी हमारे अन्दर सच्चा भाव नहीं है इसके लिए पाठशालायें जिम्मेवार हैं, परन्तु बहुत नहीं। अन्त्यजों को भर्ती करने का बोझ तो तमाम पाठशालाओं पर है। विद्यापीठने अपनी हस्ती को खतरे में डालकर भी अन्त्यजों को लेने का नियम बनाया। परन्तु शिक्षकोंने क्या किया? मा-बापोंने क्या किया? मा-बाप डरते हैं। वे अन्त्यजों को छोडकर पाठशालायें चलाने को लिए तैयार हैं। उनका भाव यह है कि यदि अन्त्यज दूर रक्खे जा सकें तो ठीक। इसीसे पाठशालाओं में अन्त्यज-बालकों की संख्या बहुत नहीं है। हमारे सद्भाग्य से श्री० इन्दुलाल, मामा फडके तथा दूसरे सेवकों के बदौलत १५ अन्त्यज पाठशालायें हैं। यह तो हमारी अकीर्ति के चिन्ह हैं—हमारी कार्य-शक्ति या उदारता के नहीं। अन्त्यज-पाठशालाओं की जरूरत वहीं हो सकती है, जहां उनके प्रति तिरस्कार हो। नहीं तो अन्त्यज [illegible]च की मामूली पाठशालाओं में ही क्यों न आवें? हमें चाहिए [illegible]म-मूलक बलात्कार करके अन्त्यज बालकों को ले आवें। [illegible]हें पढावें, नहलावें, खिलावें—तुतलाते हों तो उनके उच्चारण [illegible]र हमने यह नहीं किया। यह छोटा नहीं भारी गुनाह है।

यदि हम अस्पृश्यता-निवारण को महासभा का अंग मानते हों तो मानना पडेगा—जो अबतक हम अन्त्यजों को दूर रक्खे रहेंगे, उन्हें गले लगाने के लिए तैयार न रहेंगे, तबतक स्वराज्य असंभव है। संभव है कि मेरे इन वचनों का दुरुपयोग अंगरेजी अखबारवाले किया करें, पर इसके लिए मैं बे-फिक्र हूं। स्वराज्य तो हमें आत्मशुद्धि के बल पर लेना है। इसीलिए ऐसी बातें तो मैं अवश्य ही कहता रहूंगा।

खोटे रुपये

पर मुझसे कहा जाता है कि शिक्षक लोग इस्तीफे दे देंगे, लडके चले जायंगे। तो इससे क्या? श्री बेलगामवाला और सेठ जमनालालजी ने मुझे खबर दी है कि जगह जगह इस्तीफे दिये जा रहे हैं। कितनी जगह तो इतने सभ्य भी नहीं रहे कि जिससे समिति का काम चल सके। मैं यह सुनकर खुश हुआ। मेरे पास यदि एक करोड रुपये हों उन्हें मैं पत्थर पर बजा कर देखूंगा और यदि वे कम बोलते हों तो फिर मैं उन्हें क्या करूं? उन्हें तो मैं साबरमती के अर्पण कर दूंगा। पर एक करोड में एक ही सच्चा हो और किसी दिन मुझे उसे खोज लेने की बात कही जाय तो वह मुझे किस दिन मिलेगा? मुझे यदि अपने बाल बच्चों के लिए आटा लाना हो वह किस तरह काम दे सकता है? इसलिए मैं तो आज ही उस सच्चे रुपये को खोज लूंगा और दूसरों को छोड दूंगा। इसलिए मैं इस्तीफों के विषय में निश्चिंत हूं। ये खोटे रुपये भले ही चले जायं। हमारे शिक्षकों को चाहिए कि वे निर्भय बने, सत्य पर निर्भर रहें और कहें कि जिस पाठशाला में अन्त्यजों के लडके न आते हों वह राष्ट्रीय नहीं, स्वराज्य की नहीं, असहयोगी नहीं। मैं तो स्वराज्य का जौहरी हूं। जो पाठशाला किसी मसरफ की हो उसीकी कीमत मैं आकूंगा। हमें दृढता के साथ यह अटल निश्चय कर के जाना चाहिए कि जिस पाठशाला मे अन्त्यजों की बन्दी हो, दबे-छुपे माँ-बाप अन्त्यजों को दूर रखना चाहते हों उस पाठशाला से हम अपना कुछ वास्ता न रक्खेंगे। हम अन्त्यजों के घरों के पास जा कर रहेंगे और उनके लडकों को पढावेंगे। शहर के लडके यदि वहां आवें तो ठीक, नहीं तो इतना भार हमारा कम हुआ। इतने पैसे की जोखम कम हुई। आज हमारे पास रुपया नहीं। लोग हमें रुपये नहीं देते। अन्त्यजों का काम लोगों को पसंद नहीं। यह काम अब लोकप्रिय नहीं। इससे लोग इसके लिए धन नहीं देते यह मानने में क्या बुराई है? फिर भी हमे तो यही काम करते रहना है। यदि हमें यह दिखाई दे कि लोग गलत रास्ते जा रहे हैं तो उन्हें सीधे रास्ते आना ही होगा और जब आयंगे तब हम 'सिमलर्स' तैयार हैं। जिस किसी पाठशाला में हम असहयोग के स्थायी अंगों को कायम न रख सकें और फिर भी यह मानें कि यह राष्ट्रीय पाठशाला है तो हम पाप में पडेंगे। (अपूर्ण)

माला या चरखा !

वार्षिक ४)
छः मास का २)
एक प्रति का -)॥
विदेशों के लिए ७)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ३] [अंक ५२

मुद्रक-प्रकाशक वेणीलाल छगनलाल बूच | अहमदाबाद, श्रावण सुदी १०, संवत् १९८१ रविवार, १० अगस्त, १९२४ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर, सरकीगरा की वाडी

मलाबार में प्रलय

मलाबार के प्रलय के संबंध में सहायता देने के लिए मेरे पास तार पर तार आ रहे हैं। जहां हजारों लोगों के घर-बार पानी में बह गये हैं, जहां सारी फसल जलमग्न हो गई है। जहां सुन्दर हरा जमीन भी वहां रेत ही रेत भर गई है, ऐसी हालत में कौन किसे मदद दे सकता है? ऐसे समय यही एक उपाय है कि सरकार जो कुछ करे वही ठीक; यह समझ कर बैठ रहें। सरकार हमसे जो सहायता चाहे और जो हम दे सकें वह जरूर दें। इतना होते हुए भी लोगों के अपने तौर पर दान और सेवा की जरूरत तो रही है।

यह संकट एक दिन या एक मास में दूर नहीं हो सकता। यह तो एक साल या सालों तक भी चल सकता है। पिछले साल दक्षिण कानडा (करनाटक) में बाढ आई थी। उसका काम अभी तक चल ही रहा था। इतने ही में वहां फिर बाढ आई। फिर पहले दिन का पहला ही दिन बना हुआ है। परन्तु जब कि इतनी छोटीसी बाढ से हुए नुकसान का प्रबंध करने में लगभग एक साल भी पूरा न हुआ, तब फिर जहां सारा प्रान्त का प्रान्त जलमग्न सा हो गया है वहां कितना समय लगने की संभावना है? इसलिए मैं अब गुजराती समाज की उदारता को उत्तेजित करना चाहता हूं।

गुजरातियों ने उडीसा के अकाल-पीडित लोगों की दिल खोल कर मदद की थी। गुजरातियों ने दूसरे अनेक कामों में रुपया दिया है। दान देना जिसका स्वभाव बन गया है उसीके सामने हाथ ऊंचा किया जा सकता है। अतएव मेरी याचना मलाबार के निराधार लोगों की सहायता के लिए 'नवजीवन' के प्रत्येक पाठक से है। वे जो चाहें और जितना चाहें भेजें। विद्यार्थियों को भी मलाबार का सूचीक चित्र कर के उनके संकट की बातें उनसे कर के उनकी प्रेमवृत्ति को जाग्रत कर के उनसे भी कुछ लिया जा सकता है।

प्रत्येक पाठक

१ अपने एक दिन की आमदनी दे सकता है। [illegible]

[illegible]

२ अपने एक दिन के खाने की कीमत दे सकता है।

३ इस निमित्त अधिक सूत कात कर भेज सकता है।

४ अपने कपडे-लत्ते से कुछ बचा कर भेज सकता है।

५ यदि उसे कुछ व्यसन हो तो उसे छोड कर या कम करके उसकी रकम भेज सकता है।

६ जो बहुतेरे भोगों को भोगता है वह कुछ भोग कम करके मदद कर सकता है। जो खुद ऐसा करेगा वह अपने मित्रों और रिश्तेदारों को भी उसकी प्रेरणा कर सकता है।

इसमें सहयोगी-असहयोगी का भेद नहीं हो सकता। पाठक इस बात पर विश्वास रक्खें कि जो धन और जो चीजें मिलेंगी उनका सदुपयोग ही हो, इसका जितना प्रबंध हो सकेगा, किया जायगा।

कोई यह सवाल न पूछें कि कितने धन की जरूरत है। यहां इसी समय से कम देना चाहिए कि जितना देंगे उतना ही अधिक फल होगा। जितना दें और जितना देंगे सब कम होगा। सद्भाव से जो चीजें मिलेगी वह लाख के बराबर है। सब लोग शुद्ध भाव से यथाशक्ति दें; यही मेरी याचना है। जो कुछ मिलेगा उसकी पहुंच 'नवजीवन' में देने का इरादा रखता हूं। एक सज्जन ने ५५०) दिये हैं। वे तो उसी समय मिले थे जब दक्षिण कानडा में पहली बाढ आई थी। फिर भी उसकी पहुंच यहां दे देता हूं।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

दानियों से प्रार्थना

गुजराती 'नवजीवन' में मैंने मलाबार के प्रलय के विषय में लिखा है। वह तो सब पाठक पढे होंगे। परन्तु मैं जानता हूं कि 'हिन्दी-नवजीवन' के पढनेवालों में कई दानवीर भी हैं। उनसे मेरी प्रार्थना है कि जितना धन वे दे सकें उतना भेज दें।

मो० क० गांधी

मलाबार के लिए—

गुजरात राष्ट्रीय महाविद्यालय के विद्यार्थियों के सम्मुख भाषण करते हुए उस दिन गांधीजी ने मलाबार के प्रलय-पीड़ित जनों को सहायता के लिए इस प्रकार उद्बोधन किया—

"तुम अपना खाना कम कर के इसमें रुपया दो। अपना दूध कम कर के चंदा दो। जो समय ठलुएपन में खोते हो उसमें सूत कातकर रुपया दो। तुम खुद भी दो और चंदा जमा करने के लिए घूमो भी। अपनी जिम्मेवारी पर जितना जमा कर सको उतना करो। राष्ट्र के लिए मरना सीखो। हमारे दिलों में राष्ट्र के लिए दर्द पैदा होना चाहिए। यही राष्ट्रीय शिक्षा है। यदि हममें इतना मातृप्रेम हो कि हम दूसरों का भीगी जमीन से उठाकर सूखो में सुलावें और खुद भीगी जगह में जाकर सो जायं तो ही हम से राष्ट्र-सेवा हो सकेगी। तुम यदि अपनी पड़ी हुई चीजों में से कुछ दोगे तो उसका कुछभी अर्थ नहीं। उसके अलावा खुद कष्ट सहन करके, असुविधा उठा करके, कुछ दो। ऐसा करने में शुद्ध प्रेम होगा, शोहरत नहीं।"

शिक्षण-परिषद् में गांधीजी

(गतांक से आगे)

सूत के धागे से स्वराज्य

मैं दीवाना हो गया हूं? यदि हम इस बात को मानते हों कि सूत के धागे से स्वराज्य मिलेगा तो हमें ऐसा कर दिखाना चाहिए। मेरे नाम दो पत्र आये हैं। उनमें लिखा है कि "तुम तो मूर्ख हो गये हो, पहले तो चरखे की बात कुछ मर्यादा रख कर करते थे, अब तो वह भी छोड दी।" दुनिया मुझे चाहे मूर्ख कहे, दीवाना कहे, चाहे गालियां दें—मैं तो यही बात कहता रहूंगा। यदि दूसरी बात मुझे सूझ ही न पड़ती हो तो मैं क्या करूं? मैं तो महाविद्यालय के स्नातक को भी फेल कर दूंगा, उसे प्रमाण-पत्र न दूंगा, यदि वह चरखे की परीक्षा में पास न हो। यह आक्षेप किया जाता है कि यह तो जबरदस्ती है। अच्छा, जबरदस्ती के मानी क्या हैं? क्या इन नियमों का रखना कि अंगरेजी, गुजराती, संस्कृत, पढना पढेगा, जबरदस्ती नहीं है? उसी तरह यह कहते हैं कि कातना भी सीखना लाजिमी है। हां, यदि हमारा उसपर विश्वास न हो तो बात दूसरी है। यदि विद्यार्थियों से यह कहें कि यदि सूत न कातोगे तो विद्यालय में न रह सकोगे, इसमें कौन बुराई है? फोड़े को छूने से मनुष्य चिल्लाता है, तो क्या उसे हाथ न लगावें? उसे फोड़ देने के बाद तो वह खुश ही होगा। यह बलात्कार नहीं, सुव्यवस्था है। जिस बात को हम जरूरी समझते हैं उसे बिना संकोच के विद्यार्थियों के सामने रखना चाहिए। जिन बालकों और मा-बापों को यह कुबूल न हो, वे न आवें। प्राथमिक पाठशालायें, विनय मन्दिर, महाविद्यालय यदि स्वराज्य-शाला हों तो उनमें यह नियम अवश्य रहना चाहिए। दूसरी बात का विचार हमारे लिए अप्रस्तुत है। जिनके विचार बदल गये हों वे इस्तीफा दे सकते हैं। जबतक महासभा का प्रस्ताव कायम है तबतक ऐसा शख्स नहीं रह सकता।

इन दो शर्तों को हम छुड़ा नहीं सकते। मां-बापों का क्या डर? यदि मां-बापों को यह बात पसन्द न हो तो वे सरकारी शाला में उन्हें भेज देंगे, यही न? तो फिर सरकारी और हमारी राष्ट्रीय शालाओं में भेद क्या रहा? मैंने ही यह बात कही थी कि दोनों में भेद यह है कि हमारी शालाओं का वायुमण्डल स्वाधीनता के भावों से भरा हुआ है। कोई कह सकता है, कि क्या यह सच नहीं है? जी हां, नहीं है। चरखों और अन्त्यजों को तो मैं कभी भूला ही नहीं। मैंने स्वप्न में भी यह खयाल नहीं किया है कि स्वतंत्रता का अर्थ है स्वच्छन्दता। बालक शौक से शिक्षकों के सिर पर चढा करें, उन्हें सख्त-सुस्त कह दें, परन्तु वे उनका कहना जरूर मानें। जो बालक अन्त्यज को गर्दनियां देता हो वह स्वतन्त्रता को क्या जानेगा? उसे स्वतन्त्रता के साथ अनुराग भी क्या होगा? बारडोली के जो उजले लोग दुबले लोगों को सताते हैं वे तो जुल्म को समझते हैं, स्वराज्य को क्या समझेंगे? शिक्षकों को तो यह प्रतिज्ञा है कि हम हर प्रकार के जुल्म से बचेंगे। यदि मेरी चले तो यह नियम अवश्य बनाऊं कि इतना सूत तो हर विद्यार्थी को अवश्य देना चाहिए। फिर थोड़े ही दिनों में दिखा सकूंगा कि हर एक राष्ट्रीय शाला स्वावलंबी बन सकती है। यह बता सकूंगा कि जो सिद्धान्त मैंने हिन्दुस्तान के सामने रक्खे हैं वे सच हैं।

यदि हम अपनी पाठशालाओं को राष्ट्रीय बनाये रखना चाहते हैं तो ये दोनों बातें हमें करनी चाहिए। यदि शिक्षक कातना, धुनकना, और कपास की जातियां पहचानना न जानते हों तो जरूर जान लें। अपनी फुरसत का सारा वक्त इसीके लिए दे दें। यदि वे खुद ही न जानते होंगे तो बालकों को क्या सिखावेंगे? कोई शिक्षक शायद यह कहे कि हम तो सिर्फ भाषा-ज्ञान ही देंगे। कातने, धुनकने, बुनने आदि की कला सिखाने के लिए औरों को रखिए। तो इसपर मैं कहूंगा कि जिस प्रकार हमें खाने की शक्ति है, और कपड़े पहनने का ज्ञान है उसी प्रकार कातना आदि भी जरूर आना चाहिए। ऐसा होने पर ही बालकों को पदार्थ-पाठ दिया जा सकता है।

भारत के नर-कंकाल

अबतक महाविद्यालय, विनय मन्दिर और अन्त्यज शालाओं के निमित्त ही सब रुपया खर्च किया गया है। प्राथमिक शालाओं पर विद्यापीठ ने जोर नहीं दिया है। मेरे प्रतिपादित सिद्धान्तों को यदि जीवित रखना है तो विद्यापीठ को खादीशाला बनानी होगी। असहयोग-आन्दोलन सार्वजनिक है। थोड़े से लोगों के लिए नहीं है। हम तो करोड़ों नर-कंकालों को जगाने की इच्छा रखते हैं। इन नर-कंकालों पर चरबी चढाना चाहते हैं। हमें तो खाना-दाना मिल रहा है, इससे हमारे बदन पर तो चरबी है— और हम समझते हैं कि हमारा बदन भी ठीक दिखाई देता है। परन्तु हिन्दुस्तान के नर-कंकालों को चमड़ी के सिवा दूसरा कोई आच्छादन नहीं। इन नर-कंकालों को देखकर मेरा हृदय रोया है। यदि आप भी इन्हें देखें तो रोये बिना न रहें और कहें कि 'क्या सचमुच ऐसी हालत है?'

बंबई में रहनेवाले को क्या पता हो सकता है कि नर-कंकाल कैसे होते हैं? हमारा काम है जनता को जाग्रत करना। यदि अखबार बन्द हो जायं तो क्या बिगाड़ होगा? जनता अखबार नहीं पढती। वह तो आपको, और मुझको पढती है। उनके नजदीक दो आंखें खड़ी कर दीजिए; बस उसीके वे देखेंगे। इसे वेदवाक्य समझिए। यदि आपकी आंखों में कुछ होगा तो लोग उसे समझेंगे। और अखबार को वे हंस कर रख देंगे।

गंगोत्री बनाइए

यदि हम सर्व-साधारण जनता को शिक्षा देना चाहते हों तो हम महाविद्यालय पर जोर भले ही देते रहें, पर अन्त को तो उसे गंगोत्री ही बना देना चाहिए। अन्त को उसके विद्यार्थी तैयार होकर देहात में जा बैठें। इसी खयाल से उन्हें तैयार कीजिए। यदि विद्यार्थी थोड़े भी आवें तो चिन्ता नहीं।

प्रारंभिक शालायें

पर मैं तो प्रारंभिक शालाओं पर जोर देना चाहता हूं। मैं

चाहता हूं कि विद्यापीठ प्राथमिक शालाओं पर ज्यादह ध्यान दे, उनकी विशेष जिम्मेवारी अपने सिर पर लें। प्रारंभिक शालायें किस प्रकार चलानी चाहिए? इसपर अपने विचार प्रकट किये देता हूं [illegible] पाठशालाओं का अनुकरण करना मूर्खता है। दो साल पहले [illegible] मैंने कितने ही अंक प्रकाशित किये थे। उनमें बताया गया था कि पंजाब में ५० वर्ष पहले जितनी पाठशालायें थीं उनसे आज कम हैं। ब्रह्मदेश में भी जगह जगह पर शालायें थीं। तमाम बच्चे लिखना पढना और हिसाब जानते थे। आज यह हालत नहीं रही। क्योंकि वे जंगली माने जानेवाली ग्राम्य पाठशालायें सरकार ने बंद कर दीं और अपनी पाठशालायें शुरू कीं। सात लाख देहात में सरकार भला क्या पहुंचती? साल में तीन लाख में भी मदरसे नहीं हैं। जहां ऐसी असहाय हालत हो वहां सरकारी तर्ज की पाठशालायें खडी करने में क्या लाभ हो सकता है? हमें मकान की जरूरत न होनी चाहिए—सिर्फ सुशील और सच्चरित्र शिक्षक की आवश्यकता रहे। पुराने पण्ड्याजी ऐसे ही शिक्षक थे। वे लडकों को पढाते थे और भीख मांग कर अपनी गुजर करते थे। आटा मांग लाते थे। घी मिल जाता तो घी भी ले [illegible] जहां ऐसे पंड्याजी अच्छे न थे वहां शिक्षा भी अच्छी नहीं मिलती थी, जहां अच्छे थे वहां अच्छी मिलती थी। आज उनका लोप हो गया है। बढिया बढिया मकानों के द्वारा शिक्षा नहीं दी जा सकती। यदि हम देहात में जाकर सादगी से रह कर चरखा वगैरह का काम करना चाहते हों तो हमारा जहाज किनारे लग सकता है। हम विद्यापीठ से इसका विचार करावेंगे; पर विद्यापीठ आपसे और मुझसे परे नहीं है। पांच सात आदमी योजना तैयार करके विद्यापीठ को दे और स्वार्थ त्यागी लोग देहात में जा बैठने और रूखा सूखा जो मिल जाय खाने को तैयार हों तो यह हो सकता है।

एक शिक्षक एक पत्र में लिखते हैं—मैंने अपनी शाला तीन विद्यार्थियों से शुरू की। आज उसमें ९६ लडके हैं—७३ लडके और २३ लडकियां। इन्हें वे पेड के नीचे बैठ कर पढाते हैं। ये बालक ब्राह्मण वैश्यों के नहीं, अन्त्यजों के हैं। जो काम वह अन्त्यज-शिक्षक कर सके हैं, उसे क्या हम और आप नहीं कर सकते? क्या हमें अन्त्यज लडके भी न मिलेंगे? यदि वे भी न मिलेंगे और दूसरी आजमायश करेंगे। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि प्राथमिक शिक्षा के काम पर खूब ध्यान अवश्य देना चाहिए।

दुःख का दावानल

मैंने सुना है कि मां-बाप हमारे शिक्षा-क्रम से ऊब गये हैं। मातृ-भाषा के द्वारा जो शिक्षा विद्यार्थियों को दी जाती है वह उन्हें खलती है। यह सुन कर मुझे हंसी आ गई। पर पीछे से दुःख हुआ। जब मनुष्य के दिल में दुःख का दावानल सुलगता है तब वह रो नहीं सकता, हंसता है। मैंने मन में कहा—यह कितनी अधोगति! मां-बापों को भय है कि लडके अच्छी अंगरेजी न बोल सकेंगे। गुजराती खराब बोलेंगे, यह उन्हें नहीं खलता। उन्हें इस बात का विचार कहां से हो कि यदि गुजराती पढेगा तो घर में भी कुछ शिक्षा का पदार्पण करायेगा? मैं खुद भूमिति, बीज गणित और अंकगणित की परिभाषा नहीं जानता। 'सर्कल' शब्द के लिए गुजराती शब्द यदि मुझसे पूछा जाय तो मुझे विचार करना पडे। त्रिकोणों के भिन्न भिन्न अंग्रेजी नाम एक भी नहीं जानता। यह कैसी दुरवस्था? ऐसे मां-बापों को मैं कहूंगा कि भाई आपके लडके आपको मुबारिक हों। क्या मैं उन्हें अंगरेजी की शिक्षा देकर दूसरों से गुजराती शब्द पूछने जाऊं? उसके लिए राष्ट्रीय शालायें खडी करके चंदा जमा करूं? इसके बदले तो मैं पसंद करूंगा कि खुद ही घर बैठ जाऊं, खुद ही सारी परिभाषायें सीख लूं, और फिर प्रवाह छोडूं। मैंने किसी भी अंगरेज विद्वान् को अपनी भाषा के शब्दों की कठिनाई आते नहीं देखी। एण्ड्र्यूज नामक एक अंगरेज था। विद्वान तो बहुत न था; पर जब अंगरेजी बोलने लगता तब मानों प्रवाह बहने लगता। छोटे से छोटे जल-सेना-संबंधी शब्दों की भरमार करके वह सब को दंग कर देता। हमारे बडे से बडे विद्वान श्री नरसिंहराव और श्री आनंदशंकर से यदि ऐसी समस्यायें पूछूं और यदि वंदनीयती से उनकी परीक्षा लूं तो उन्हें तुरंत फेल कर दूं। जहां ऐसी दरिद्रता है वहां यदि मुझसे कहा जाय कि अंगरेजी की मार्फत शिक्षा दो तो मैं इनकार ही करूंगा। हां, मैं कुबूल करता हूं कि *मातृभाषाद्वारा शिक्षा देना असहयोग का अंग नहीं है।* कोई मां-बाप यदि कहें कि हमारे लडके को अंगरेजी पढाइए और उसके साथ ही आपका चरखा, संगीत आदि भले ही सिखाइए तो मैं जरूर यह सौदा कर लूं। चार घण्टे अंगरेजी पढाऊं और चार घण्टे चरखा चलाऊं—अंगरेजी पढाते हुए भी जितनी गुजराती पढा सकूं उतनी पढा दूं। इस तरह उन्हें धोखा भी दे दूं; क्यों कि मेरे मन में तो चोरी का भाव है। एम. ए. पास भी गलत अंगरेजी लिखते हैं, गलत वाक्य-रचना करते हैं।

स्त्री-शिक्षा

स्त्री-शिक्षा के बारे में मुझे बहुत कुछ कहना था। पर यह विषय गंभीर है। एक लिहाज से इस संग्राम के साथ उसका संबंध नहीं। हम स्त्रियों को अज्ञान तो रखना ही नहीं चाहते। पर स्त्री-शिक्षा की पद्धति क्या होनी चाहिए, कन्याओं और स्त्रियों की शिक्षा के दो मार्ग कहां हो जाते हैं, यह बिल्कुल स्वतंत्र विषय है, इसका संबंध केवल शिक्षा के साथ है। यहां तो हमारी दृष्टि संकुचित है। फिलहाल तो लडकियों को प्राथमिक शालाओं में खींच कर मैं चरखा ही कताऊंगा। दूसरे सूक्ष्म प्रश्नों पर मैं विचार नहीं कर पाया हूं। हालां कि लडकियों की शिक्षा के प्रयोग जितने मैंने किये हैं उतने शायद ही और किसीने किये हों। जवान लडके-लडकियों को मैंने एक-साथ पढाया है। इसके लिए मुझे जरा भी पश्चात्ताप नहीं। हां, मेरी अंगुलियों को कुछ आंच जरूर पहुंची हैं; पर वे साबित जली नहीं। क्योंकि उनपर मैं सिंह की तरह गरजता रहता था। मैं अधिक नहीं कह रहा हूं सो यह बात हरगिज न समझिएगा कि मैं इस विषय की अवहेलना करता हूं।

मेरे विचारों के निचोड-रूप में मैंने कुछ प्रस्ताव तैयार किये हैं। उनपर आप विचार कर लीजिएगा। केवल इसीलिए उन्हें न मान लीजिएगा कि मैंने उन्हें पेश किया है। महासमिति में तो मैं लठ लेकर पहुंचा था कि मेरे प्रस्ताव को जरूर पास करना ही होगा। यहां तो मैं सिर्फ सलाह के रूप में उन्हें पेश कर रहा हूं। यदि आप इनका विरोध निर्भयता के साथ करेंगे तो मुझे जरा भी रंज न होगा। मुझे दुःख होता है, पाखण्ड का, प्रतिज्ञा करके फिर उसे तोडने का। पर यहां पाखण्ड की कोई बात नहीं है; क्योंकि प्रतिज्ञा भी नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन

रविवार, श्रावण सुदी १०, संवत् १९८६

माला या चरखा ?

['नवजीवन' में गांधीजी ने एक गुजराती सज्जन का एक दो कालम लंबा पत्र छापा है । उसमें लेखक ने गांधीजी पर अनेक आक्षेप या शंकायें की हैं । वे पूछते हैं कि 'आप चरखे के पीछे इतने पागल क्यों हो गये है? रोजमर्रा चरखा कातने से कोई अच्छा सूतकार भले ही हो जाय, वह उत्तम विद्या-गुरु कैसे हो सकता है ? आप जहां देखिए तहीं चरखे का भूत लोगों के पीछे लगाने की कोशिश करते हैं ।' बंबई में श्री नरनारायण के मन्दिर में श्री यादवजी महाराज के भक्त-मण्डल के प्रति हुए गांधीजी के एक पुराने चरखे संबंधी-भाषण का जिक्र करते हुए कहते हैं कि 'मण्डल को माला के बदले चरखा कातने की सलाह देना केवल अध्यक्ष यादवजी महाराज का ही अपमान न था, सारे हिन्दू-धर्म का अपमान था । हर धर्म, सम्प्रदाय और पंथ के लोग माला, तसबी, रोजरी आदि फेरकर ईश्वर का नाम लेते हैं । आपका भाषण मुझे मूर्खता-भरा मालूम हुआ । यदि यादवजी महाराज में हिम्मत होती तो वे आपका भाषण वहीं रोक देते । आप अपनेको और अपनी हलचल को धार्मिक कहते हुए भी ईश्वर-भजन से चरखे को उत्तम मानते हैं । यह गोलमाल मेरी समझ में नहीं आता । नरसिंह मेहता ने तो एक पद में साफ कहा है कि दुनिया इधर की उधर हो जाय, पर मैं माला न छोडूंगा । माला तो मेरे जीवन के साथ लगी हुई है । आप कहते हैं कि कातने को मैं साम्प्रदायिक धर्मों से श्रेष्ठ मानता हूं । यदि सचमुच यही बात हो तो यहां नरसिंह मेहता भी मूढ़ बन जाता है ।

आपने लिखा है कि विनोबा और बालकोबा सूतकार और वस्त्रकार होकर आज श्रेष्ठ विद्या-गुरु बन गये हैं । यदि इस तरह कातने-बुनने से ही ईश्वर अधिक नजदीक आता हो तो फिर मन्दिरों में जाने की, ईश्वर-भजन करने की, ज्ञान लेने की और दान आदि देने की क्या जरूरत है ? क्या उपनिषदों और शास्त्रों के रचयिताओं की अक्ल मारी गई थी जो उन्होंने ये सब उलटी बातें लिख मारी हैं ? 'हिन्द स्वराज्य' में आपने यन्त्रों का विरोध किया है । फिर आप छापखाना क्यों रखते हैं ? मोटर, रेल, जहाज में सफर क्यों करते हैं ? अहिंसा आपका जीवन-प्राण है । फिर भी चोरों-डाकुओं को मारने की सलाह देते हैं । जब सारे भारत को चूस लेने वाले अंगरेजों के प्रति अहिंसाभाव रखने की सलाह देते हैं तो फिर छोटे-मोटे घर लूटनेवालों की हिंसा क्यों की जाय ? यह तो वही हाल हुआ कि जहां बस चले वहां दबा दें और जहां न चले वहां 'असमर्थो भवेत् साधु' की तरह साधु बन जायें । अस्पतालों और डाक्टरों की आपने कड़ी आलोचनायें की हैं । फिर भी अस्पताल में जाने के लिए राजी-खुशी से आपने दस्तखत कर दिये और अस्पताल तथा डाक्टरों की सहायता ली । सरकार के यहां से जाने की सूचना करने पर भी आप जानबूझ कर वहीं रहे । विदेशी चीनी और विलायती दवायें सेवन कीं । औरों को माला फेंक कर चरखा कातने की सलाह देते हैं; पर जब पूने में आपने देखा कि अब अन्त समय आगया तो तुलसी की माला ले कर राम-नाम जपने लगे । यदि माला से चरखा श्रेष्ठ है तो फिर चरखा छोड़ कर माला क्यों ली ?"

यही लेखक के पत्र का यथा-संभव उन्हींकी भाषा में सारांश है । गांधीजी का उत्तर नीचे दिया जाता है— उप संपादक]

धर्म सीधी लकीर नहीं; बल्कि विशाल वृक्ष है । उसके करोड़ों पत्ते हैं जिन में दो पत्ते भी एक-से नहीं हैं । प्रत्येक टहनी जुदी जुदी है । उसकी एक भी आकृति रेखा-गणित की आकृति की तरह नपी तुली नहीं होती । ऐसा होते हुए भी हम जानते हैं कि बीज, टहनी या पत्ते एक ही हैं । रेखागणित की आकृति के साथ उनमें कोई बात नहीं है । फिर भी वृक्ष की शोभा के साथ रेखा गणित की आकृति की तुलना तक नहीं हो सकती । धर्म जिस प्रकार सीधी लकीर नहीं उसी प्रकार टेढ़ी भी नहीं । वह सीधी लकीर के परे है । क्योंकि वह बुद्धि के परे है । वह अनुभव से जाना जाता है ।

पूर्वोक्त लेखक को जिस बात में असंगति दिखाई देती है उसमें मुझे तो बिल्कुल सुसंगति ही दिखाई देती है । मुझे अपने जीवन में न विरोध दिखाई देता है और न पागलपन । हां, यह बात सच है कि मनुष्य जिस प्रकार अपनी पीठ को नहीं देख सकता उसी तरह अपने दोष को, पागलपन को भी नहीं देख सकता । परन्तु ज्ञानी लोगों ने धर्मी और पागल में भेद नहीं किया है । इसीलिए मैं सन्तोष मानकर बैठा हूं कि मैं पागल नहीं हूं, सचमुच धर्मी हूं । पर इसका इन्साफ तो मेरी मौत के बाद ही हो सकता है ।

मैं नहीं मानता कि यादवजी महाराज ने भीरुता से मेरा विरोध नहीं किया । क्योंकि मेरे कथन का अर्थ वे अच्छी तरह समझ गये थे और उस समय मेरी बात से सहमत हुए थे । होते भी क्यों नहीं ? मैंने नारायण का नाम छोड़ कर चरखा चलाने की बात नहीं कही थी । मैंने सुझाया था कि चरखा कातते हुए भी नारायण का जप किया जा सकता है । और आज जब कि सारे देश में आग लग रही है तब तो चरखे-रूपी बंबे में सूत-रूपी जल भर कर नारायण नाम लेते हुए इस आग को बुझाना ही हम सबका धर्म है ।

मुझे सब बातों में चरखा ही चरखा दिखाई देता है; क्योंकि मैं चारों ओर निर्धनता और दरिद्रता ही देखता हूं । हिन्दुस्तान के नर-कंकालों को जबतक अन्न-वस्त्र न मिले तबतक उनके लिए धर्म नाम की कोई चीज ही दुनिया में नहीं । वे आज पशु की तरह जीवन बिता रहे हैं और उसमें हमारा दोष है । इसलिए चरखा हमारे प्रायश्चित्त का साधन है । अपंग की सेवा एक धर्म है । भगवान् हमें अपंग के रूप में हमेशा दर्शन देते हैं; पर हम तिलक-छापा करते हुए भी उनकी और ईश्वर की अवहेलना करते हैं । ईश्वर वेद में है भी और नहीं भी । जो वेद का सीधा अर्थ करता है उसमें उसे उसकी ज्योति दिखाई देती है और जो उसके अक्षर पर चिपट रहता है उसे हम वेदिया कहते हैं । हां, नरसिंह मेहता ने माला की स्तुति बेशक की है; पर वहां वह उचित भी थी । उन्हीं मेहता जीने ने कहा है "तिलक और तुलसी धारण करने से क्या हुआ ? माला हाथ में लेकर नाम जपने से भी क्या हुआ ? और वेद, व्याकरण, और साहित्य का पण्डित होने से भी क्या हुआ ?" मुसलमान अवश्य तसबी फेरते हैं और ईसाई 'रोजरी', परन्तु यदि किसीको सांप काट जाय और वे तसबी या 'रोजरी' छोड़कर उसे मदद देने न जायं तो वे अपनेको धर्मभ्रष्ट मानेंगे । ब्राह्मण केवल वेदों को पढ़ कर ही धर्म-विद्यागुरु नहीं हो सकते । यदि होते तो मह मोक्षमूलर धर्म-विद्या-गुरु हो जाते । सर्वसाधारण

सेवा-धर्म को जाननेवाला ब्राह्मण जरूर वेदाध्ययन को गौण मानकर चरखा-धर्म का प्रचार करेगा और करोड़ों क्षुधा-पीड़ितों की भूख बुझाने के बाद फिर वेद-मस्त हो जायगा।

चरखा कातने को मैंने सांप्रदायिक धर्मों से श्रेष्ठ माना है। इसका अर्थ यह नहीं कि संप्रदाय छोड़ दिये जायं। जिस धर्म का पालन हर सम्प्रदाय और धर्मवालों के लिए लाजिमी है वह तमाम संप्रदायों से अवश्य श्रेष्ठ होगा और इसलिए मैं कहता हूं कि सेवा-भाव से जो ब्राह्मण चरखा कातता है वह ज्यादह अच्छा ब्राह्मण बनता है; मुसलमान ज्यादह अच्छा मुसलमान और वैष्णव ज्यादह अच्छा वैष्णव बनता है।

मैंने यह समझ कर कि अब अन्त समय आ गया, राम-नाम का जप नहीं किया, न माला फेरी। बल्कि उस समय चरखा कातने की शक्ति नहीं थी। जब माला मुझे राम-नाम जपने में मदद करती है तब माला जपता हूं। जब इतना एकाग्र हो जाता हूं कि माला विघ्न-रूप मालूम होती है तब उसे छोड़ देता हूं। सोते सोते यदि चरखा कात सकूं और मुझे राम-नाम लेने में उसकी सहायता की जरूरत मालूम हो तो मैं अवश्य माला के बदले चरखा चलाऊं। यदि माला और चरखा दोनों चलाने का सामर्थ्य हो और दो में से किसी एक को पसंद करना हो तो जबतक भारत में फाकेकशी जारी है तबतक मैं जरूर चरखा-रूपी माला को पसंद करूंगा। मैं एक ऐसा समय आने की राह देख रहा हूं जब राम-नाम का जप करना भी एक उपाधि मालूम होने लगे। जब यह अनुभव होगा कि 'राम' वाणी से भी परे है तब 'नाम' लेने की जरूरत ही न रह जायगी। चरखा, माला और राम-नाम ये मेरे लिए जुदी जुदी चीजें नहीं। मुझे तो ये तीनों सेवा-धर्म की शिक्षा देती हैं। सेवा-धर्म का पालन किये बिना मैं अहिंसा-धर्म का पालन नहीं कर सकता। और अहिंसा-धर्म का पालन किये बिना मैं सत्य की खोज नहीं कर सकता और सत्य के बिना धर्म नहीं। सत्य ही राम है, नारायण है, ईश्वर है, खुदा है, अल्ला है, गॉड है।

'हिन्द-स्वराज' में यन्त्रों के संबंध में जो-कुछ लिखा है वह यथार्थ ही है। उसमें अखबारों की बात भी आ जाती है। शंका-शील उसे देख लें। फिर उन्हें याद रखना चाहिए कि फिलहाल मैं 'हिन्द-स्वराज्य' देश के सामने नहीं रख रहा हूं, बल्कि पार्लिमेन्टरी अर्थात् बहुमतिवाला स्वराज्य रख रहा हूं। अभी मैं हर तरह के यन्त्र के विनाश की प्रेरणा नहीं कर रहा हूं; बल्कि चरखे को सर्वोपरि यन्त्र बना रहा हूं। 'हिन्द-स्वराज्य' में आदर्श स्थिति का चित्र खींचा गया है। उसमें से जिनका पालन मैं नहीं कर रहा हूं उसे मेरी कमजोरी समझ लेना चाहिए। मैं अहिंसा को परम-धर्म मानता हूं। फिर भी खाने-पीने में हिंसा किया ही करता हूं। हां, मैं अहिंसा का आदर्श अपने सामने रखकर उसमें संयम के पालन का प्रयत्न करता हूं। उस प्रवृत्ति को बढ़ाने का नहीं; बल्कि घटाने का प्रयत्न करता हूं।

अस्पतालों के संबन्ध में मैंने जो कुछ लिखा वह भी यथार्थ है। फिर भी जबतक मुझे शरीर का मोह रहा है तबतक दवा करता हूं। हां, यह जरूर चाहता हूं कि यह मोह कम कम हो। मैं अस्पताल में कैदी की हैसियत से गया था और छूटने पर तुरन्त वहां से भाग खड़े होने की जरूरत न दिखाई दी। जिन लोगों ने इतने विनय और दया-माया का परिचय दिया था उनकी देख-भाल में रहना मुझे धर्म दिखाई दिया। अस्पताल में मैंने अपने व्रतों का पालन किया है। यदि मुझे वहां न ले गये होते तो मैं वहां दौड़ कर न जाता। अस्पताल में अपनी खुशी से नहीं गया था। वहां जाने की सूचना का विरोध भी मैंने नहीं किया। विदेशी शक्कर न खाने का व्रत मैंने नहीं लिया है; परन्तु मैं विदेशी चीनी खाता ही नहीं। मुझे चीनी आदि खाना ही नापसंद है। पिछली बीमारी में ही मैंने चीनी खाना शुरू किया था, पर वह स्वदेशी ही थी। दवायें भी वही ली थीं जिनके खाने से मेरे व्रत में बाधा न पड़ती थी।

फिर भी यह बात सच है कि मेरी यह बीमारी मेरी तात्विक कल्पनाओं के खिलाफ है और मेरे लिए शर्म की बात है। किसी किस्म की दवा लेना मेरे लिए हीनता है। अस्पताल में जाने लायक हालत हो जाय, यह तो उससे भी अधिक। मेरी इन कमजोरियों के लिए लेखक और पाठक मुझे दया-दृष्टि से देखें और मुझे निबाह लें और ऐसा आशीर्वाद करें कि मैं इन उपाधियों से मुक्त होकर बिल्कुल निर्विकार हो जाऊं और जबतक यह आशीर्वाद फलीभूत न हो तबतक मैं जैसा हूं उसीको निबाह लें और सहन कर लें।

चोरों और डाकुओं को मारना मैंने पसंद नहीं किया है। मैंने तो पसन्द किया है उन्हें भी प्रेम से जीतना। परन्तु जो लोग इस धर्म का पालन न कर सकते हों और अपने आश्रित तथा धन दौलत की रक्षा करना चाहते हों और जिसके पास इतने प्रेम-बल की पूंजी नहीं है उन्हें चोरों-डाकुओं को मार कर भी आत्मरक्षा करने का अधिकार है।

अंगरेजों को चोरों-डाकुओं की उपमा देने में महा विचार-दोष है। चोर-डाकू बल-पूर्वक लूटते हैं। अंगरेज मनहरण करके लूटते हैं। इससे उनकी लूट में पद्धति-दोष है। शराब बेचने वाले भी शराब बेचकर मेरा धन और मेरी आत्मा को लूटते हैं। उसे मैं मारने की कोशिश करूं या उसका त्याग करने की? पर यदि कोई अंगरेज दूसरे के बदन पर हमला करे अथवा कोई शराब का दुकानदार दूसरे को जबरन् शराब पिलावे और इन दोनों से दुःखी होने वाला शख्स यदि प्रेम से उन्हें वशीभूत करने का सामर्थ्य न रखता हो तो जरूर मार कर हटा सकता है। फिर वह अंगरेज या शराबी एक हो या अनेक और सबल हो या निर्बल।

इस पत्र का जवाब मैंने दिया तो; परन्तु अभी मुझे सन्देह है कि मैंने यह ठीक किया या अनुचित किया। लेखक के हेतु को निर्मल समझ कर मैंने ये जवाब दिये हैं। परन्तु ऐसे लेखों में बहुत विचार-दोष होते हैं। यह बात मेरे जवाबों से जानी जा सकती है।

कितने ही पढ़े-लिखे लोगों का जीवन विचार-शून्य हो गया दिखाई देता है। जबतक एक सिद्धान्त से उपसिद्धान्त घटा लेने की शक्ति न हो तबतक कह सकते हैं कि सिद्धान्तों का ज्ञान ही नहीं है। लेखक ने यदि इतना गहरा विचार किया होता तो वे खुद ही उन जवाबों पर पहुंचते जाते जो मैंने दिये हैं। सच पूछिए तो ये तमाम जवाब मेरे पहले लेखों में आ चुके हैं। परन्तु लेखक की विचार-शिथिलता हमारा एक सर्व सामान्य दोष है। मेरे नाम जो अनेक चिट्ठियां आती हैं उनमें मैं यही बात देखता हूं। इसीलिए मैंने यह जवाब दिया है। परन्तु हर पाठक और लेखक को मेरी सलाह है कि वे प्रत्येक बात पर खूब विचार करें, जिससे वे अनेक मिथ्याभासों से बच जायंगे। शिक्षा बिना विचार के व्यर्थ है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

ग्राहक होनेवालों को

चाहिए कि वे सालाना चन्दा ४) मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी. पी. भेजने का रिवाज हमारे यहां नहीं है।

शिक्षण-परिषद्

यह परिषद् हुई और गई । शिक्षकों और सर्वसाधारण दोनों की दृष्टि में यह परिषद् महत्वपूर्ण होनी चाहिए । परन्तु यह समय ऐसा नहीं है कि दो में से कोई भी इसे इतना महत्व दें । शिक्षकों की कीमत न तो लोगों के नजदीक है न खुद उन्हींके नजदीक है । उनकी कीमत उनके वेतन पर आंकी जाती है । शिक्षक का वेतन एक गुमाश्ते से भी कम होता है । इसलिए रिवाज के अनुसार शिक्षक की कीमत गुमश्ते से भी कम हो गई !

तो अब शिक्षक का दरजा किस प्रकार ऊंचा हो ? सात लाख देहात के सात लाख शिक्षकों का वेतन भला कोई बढा सकता है ? इतने शिक्षकों का वेतन नहीं बढाया जा सकता और बढाना आवश्यक मालूम हो तो कुछ गांवों में महंगे शिक्षक रखकर शेष गांवों को शिक्षा-रहित रखना पडे । अंग्रेजी राज्य की स्थापना होने के बाद हम ऐसा ही करते आये हैं । हम देखते हैं कि यह तरीका गलत है । अतएव हमें ऐसी तरकीब ढूंढ निकालनी चाहिए जिससे हम तमाम गांवों की शिक्षा का प्रबन्ध कर सकें । वह तरकीब यह है कि शिक्षकों की कीमत वेतन के अनुसार न आंकी जाय बल्कि शिक्षक वेतन को गौण मान कर शिक्षा को प्रधान-पद दे । संक्षेप में कहें तो शिक्षा प्रदान करना शिक्षक का धर्म होना चाहिए । इस यज्ञ को किये बिना जो शिक्षक भोजन करे उसे चोर समझना चाहिए । यदि ऐसा हो जाय तो फिर शिक्षकों की कमी न रहे । और फिर भी उनकी कीमत करोड पति से भी करोड गुनी अधिक हो जाय । प्रत्येक शिक्षक अपनी भावना को बदल कर आज इस स्थान पर प्रतिष्ठित हो सकता है ।

इस परिषद् को सफल करना न करना शिक्षकों के हाथ है । शिक्षकों की प्रतिज्ञा में सफलता की कुंजी है । शिक्षक लोग यदि अपना धर्म मानकर कताई-संबन्धी तमाम विधियां सीख लें और और प्रतिमास कम से कम ३००० गज सूत महासभा को अर्पण करें तो शिक्षण-परिषद् बहुतांश में सफल मानी जा सकती है । इतना तो हरएक कर के दिखा सकता है । राष्ट्रीय शिक्षकों का कार्य है स्वराज्य-प्राप्ति में मदद करना । सूत कातना, खादी पहनना यह कम से कम और पहली सहायता है । जो इतना करेंगे वे शेष सब बातें कर सकेंगे । दूसरी तमाम बातों के करते हुए भी जो इतना न करेंगे वे कुछ भी नहीं कर सकते ।

और बडे लोग जैसा करते हैं वैसा ही छोटे करने लगते हैं, इस गतानुगति-न्याय के अनुसार शिक्षक जैसा करेंगे वैसा ही उनके शिष्य करने लगेंगे । इस तरह लोगों को सहज ही शिक्षकों और शिष्यों की ओर से एक भारी भेंट मिलेगी ।

दूसरी कसौटी है छुआछूत । शिक्षकों के अन्दर यदि आत्म-बल होगा तो वे अपनी शालाओं में अन्त्यजों को जरूर लेंगे । यदि शाला टूट जाय तो चिन्ता नहीं । शाला धर्म के लिए है धर्म शाला के लिए नहीं है । बालकों को यदि अस्पृश्यता छोड देने का पदार्थ-पाठ न दिया जाय तो फिर क्या दिया जायगा ? कोई मां-बाप यदि कहें कि हमारे लडकों को सत्य की शिक्षा अधिक न दीजिएगा; क्योंकि सत्याचरणी होने से वे व्यापार के लायक न रहेंगे । तो शिक्षक क्या कहेंगे ? उन बालकों से मुंह न मोड लेंगे ? सत्य-हीन इतिहास भूगोल और अंकगणित से क्या लाभ होगा ? उसी प्रकार अपने गांव के मुसलमानों, पारसियों तथा इतर जातियों के बालकों को पाठशाला में भेजने के लिए शिक्षक जरूर उनके मां-बाप से अनुरोध करें ।

शिक्षक यदि आजीविका को भूलकर शिक्षा-दान के अपने कर्तव्य को ही याद रक्खें तो शालाओं में नवीन चैतन्य दिखलाई देने लगे और वे सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय हो जावें । ऐसी हालत में राष्ट्रीय हलचल में उनका उपयोग हो सकता है । जिस बात को हमने अंगीकार किया है उस पर दृढ रहना तो बालक, वृद्ध-स्त्री-पुरुष सब के लिए पहला पाठ है ।

(नवजीवन)　　　　मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

मौलाना हसरत मोहानी

अन्त को मौलाना हसरत मोहानी आगामी १२ ता० को छूट जायंगे । कानपुर जाते हुए रास्ते में वे अहमदाबाद ठहरने वाले हैं जहां जायंगे वहां वहां उनका धूमधाम से स्वागत होगा । पता नहीं, इस समय उनके विचार क्या हैं । सब बात को जानते हैं कि अनेक बातों में मेरा उनसे मत-भेद है । जेल में कैदियों का आचरण कैसा होना चाहिए, इस विषय में मेरा मत उनसे बिल्कुल नहीं मिलता । स्वदेशी-संबंधी उनके विचार तो मेरी राय में भयंकर हैं । परन्तु इतना मत-भेद होते हुए भी मैं उन्हें, उनकी देशभक्ति और विद्वता को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखता हूं । उनकी दृढता को देखकर उनके मित्रों को उनकी ईर्ष्या होती है और शत्रु हाय-तोबा करते हैं । उन्होंने अपने देश और धर्म के लिए जितना कष्ट-सहन किया है उतना बहुत कम लोगों ने सहा होगा । मैं आशा रखता हूं कि वे जहां जायंगे तहां उनका स्वागत दिलोजान से किया जायगा ।

खादी भरी पडी है ?

श्री भरूचा ने अपनी बंगाल-यात्रा की रपोट भेजी है । उसमें उन्होंने इस बात का जिक्र किया है कि डा० राय को खादी के ग्राहक खोजने में कितनी दिक्कत पडती है । यही शिकायत करनाटक से डाक्टर हर्डीकर करते हैं । पंजाब में भी खादी का ढेर पडा हुआ है । गुजरात को आन्ध्र देश से जियादह माल मंगवाना बंद करना पडेगा । इसलिए आन्ध्र भी शायद खादी के ढेर की शिकायत करेगा । यही बात खादी उत्पन्न करने वाले प्रायः हर प्रान्त को लागू होती है । और फिर भी सारे हिन्दुस्तान के तमाम प्रान्तों में मिलकर अधिक से अधिक गिनें तो २० लाख से ज्यादह की खादी न होगी । करोडों रुपयों के विदेशी कपडे के ढेर के साथ इन अंकों का मुकाबला कर देखिए । हमारे काम पर तथा धनी लोगों की स्वदेश-प्रीति पर क्या यह एक दुःखदायक टीका नहीं है ? एक ही लखपति यदि चाहे तो आज तमाम खादी को खरीद कर गरीबों को सस्ते दामों पर बेच सकता है । हां, कोई स्वदेश-प्रेमी मिल-मालिक भी बिना कुछ नुकसान उठाये इतना अवश्य कर सकता है । हमारी सभाओं में लाखों स्त्री-पुरुषों की भीड होती है । यदि वे खादी खरीदें तो उन्हें कुछ भूखों न मरना पडेगा, और तमाम खादी एक दिन में बिक जाय । सार्वजनिक संस्थायें बिल्कुल नहीं या बहुत कम हानि उठा कर दूसरे कपडों की जगह खादी खरीद सकती हैं । बंबई यदि चाहे तो उसकी विशाल जन-संख्या अपनी बीस लाख जेबों को बहुत उलटाये बिना ही यह तमाम खादी उठा ले सकती है । पर मैं रोना रोना नहीं चाहता । दोष लोगों का नहीं । हो या न हो, यह अभी साबित नहीं हुआ । दोष है काम करने वालों का । जिस प्रकार हम खादी पैदा करने की व्यवस्था करते हैं उसी प्रकार बिक्री का इन्तजाम करना भी हमारा फर्ज है । अतएव [illegible] [illegible] होना चाहिए कि हर प्रान्त जितनी खादी पैदा करे उतनी

[illegible] साथ ही हर प्रान्त अपनी अधिक से अधिक [illegible]सार खादी बेचा करे और यदि फाजत् रहती हो तो [illegible], मदरास आदि मुख्य शहरों में, जो कि खादी को [illegible] अच्छे अड्डे नहीं हो सकते, भेज दें। इन सब [illegible] और विचार की आवश्यकता है। हर प्रान्त को [illegible] बिक्री का अन्दाज निश्चित कर लेना चाहिए। [illegible] वाले और काम करने वाले खुद विदेशी या मिलका कपड़ा पहनें और अपनी तैयार की हुई खादी बाहर बेचने के लिए भेजें, यह नहीं हो सकता। इस योजना के लिए पहला काम बेशक यही है कि महासमिति के कताई-संबंधी प्रस्ताव का सोल हों आने पालन किया जाय।

यह उपाय ?

एक पत्र-लेखक हिन्दू-मुसल्मान-समस्या का निपटारा इस प्रकार सुझाते हैं—

"मुसलमान हिन्दुओं का लिहाज तभी करेंगे तब उन्हें खबर पड़ेगी कि हिन्दू शरीरबल में उनका मुकाबला कर सकते हैं और उसी अवस्था में दोनों में एकता होने की संभावना होगी। इसलिए [illegible] ऐसी कोशिश करनी चाहिए जिससे हिन्दू-जाति का शरीर [illegible] हो। हरएक गांव और शहर में अखाड़े खोलना और पौष्टिक [illegible] देना चाहिए। आप उन्हें उपदेश कीजिए कि लड़के लड़कियों की शादियों में बहुत खर्च न करें और २१ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करें। ऐसा करके आप हिन्दू-जाति की भारी सेवा करेंगे और फलतः स्वराज्य भी तुरन्त मिल जायगा।"

इन महाशय की इच्छा तो ऐसी मालूम होती है कि हिन्दू और मुसल्मान को पशु-कोटि में उतार कर दोनों की एक दूसरे से मुठभेड़ होती रहे। पर वे इस बात को भूल जाते हैं कि पशुओं में प्रेम नहीं होता। हाँ, मैं यह जरूर चाहता हूं कि तमाम हिन्दू बलवान् हों। मैं यह भी चाहता हूं कि वे दुनिया के किसी आदमी से न डरें। ये बातें केवल हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के लिए नहीं, बल्कि इस ऐक्य के बाद राष्ट्र अविचल बना रहे, इसके लिए भी आवश्यक है। पर मैं जानता हूं कि केवल शरीर-बल से एकता नहीं हो सकती। यदि हम दोनों में आपस में प्रेम न हो तो हमेशा चूहे-बिल्ली की तरह हमारे अन्दर वैर-भाव रहेगा। और मैं अपना जीवन ऐसी [illegible]ति पैदा करने के लिए अर्पण करना नहीं चाहता कि हथियार बांध [illegible] दोनों जातियां एक दूसरे के हमलों को रोकें। मैं तो चिरकालीन [illegible]न्ति चाहता हूं। वह केवल पर-धर्म-सहिष्णुता से ही पैदा हो [illegible]कती है। यह बात तो अब पुरानी पड़ गई। हम केवल यही [illegible]चाहते हैं कि क्या अंग्रेजों का और हमारा तथा क्या हिन्दुओं का और क्या मुसलमानों का हृदय-परिवर्तन हो। दूसरी सब बातें अपने आप दुरुस्त हो जायंगी।

पत्र-लेखक शरीर-बल की प्राप्ति का उपाय ब्रह्मचर्य बताते हैं। शरीर-बल प्राप्त करने के लिए आत्मसंयम करने का विचार करना मानों हीरे को कौड़ी के दाम बेचना है। क्या ब्रिटिश सोल्जर [illegible] बनने के लिए आत्मसंयम का पालन करते हैं? [illegible] से मैं सिफारिश करता हूं कि उनके उपायों से [illegible] हिसाब वे लगा देखें। हमारे [illegible] ब्रह्मचारी हों तो क्या बात हो? [illegible] मुसल्मान, अंगरेज आदि सब के हृदय [illegible] यह बात इन महाशय की समझ में नहीं [illegible] इस तरीके से लड़ने से इन्कार कर [illegible] ? ऐसा करने की उन्हें जरूरत भी [illegible]) मो० क० गांधी

हिमालय की महिमा

हिमालय में रहने से तन्दुरुस्ती अच्छी रहती है। यह आविष्कार अकेले अंगरेजों का ही नहीं है। हिमालय की महिमा प्राचीन ग्रंथों में भी गाई गई है। यह दिखलाने के लिए एक मित्र ने आयुर्वेद से हिमालय की स्तुति का अनुवाद करके भेजा है। वह पाठकों को पसन्द होगा—

"किसी समय (ऐसा हुआ कि) [illegible]मनीतस्वभाव, यायावर ऋषि ग्राम्य औषध तथा आहार [illegible] सेवन से बहुधा मन्दचेष्टित और शिथिलकाय से हो गये और अपने कर्तव्य-कर्म करने में भी असमर्थ हो गये। तब उन्होंने सोचा कि 'इसमें हमारा ग्रामनिवास ही कारणीभूत है और पूर्वनिवास ग्राम्य दोषों से रहित है।' यह समझ कर वे कल्याणमय, पुण्य, उदार, पवित्र, पापियों के लिए अगम्य, गंगा के उत्पत्तिस्थान, देवता, गन्धर्व, किन्नरों से सेवित, नाना प्रकार के रत्नों से युक्त, अचिन्त्य, अद्भुत प्रभाववाले, ब्रह्मर्षि, सिद्ध, चारणों से सेवित, दिव्य तीर्थ तथा औषधों का प्रभव-स्थान, अत्यन्त शरण जाने योग्य, तथा इन्द्र से रक्षित हिमालय पर गये। इन ऋषियों में भृगु, अंगिरा, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, असित, गौतम आदि थे। उनसे सहस्राक्ष इन्द्र ने कहा "हे ब्रह्मवेत्ता, ज्ञानधन, तपोधन, ब्रह्मर्षियो, आपका स्वागत है। गांव में रहने से आप के मुख पर ग्लानि, प्रभावहीनता, मन्दभाग्यता, विवर्णता, सुखहीनता तथा दुःख के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं ग्राम्यवास ही सब दुखों का मूल है। अपने अपने पुण्य स्वभाव से लोकहित के कारण आपने शरीर का कुछ विचार न करते हुए ग्राम्यवास स्वीकार किया है। आज आयुर्वेद के उपदेश का समय आया है। यह आयुर्वेद ऋषियों के, मेरे तथा प्रजाजन के प्रति अनुग्रह के कारण अश्विनीकुमारों ने मुझे पढ़ाया था।"

इन वाक्यों को पढ़ते पढ़ते किसके मन में यह भाव न उठता होगा कि जब ऐसे वाक्य लिखे गये तब हमारे पूर्वजों का जीवन कितना काव्यमय होना चाहिए। अतिशय सीधी बात को उन्होंने अलंकारों से सजा कर मधुर बना दिया है। वे ऐसा कर सकते थे। क्योंकि उस समय लोगों को सन्तोष था। हिन्दुस्तान सुखी था। गरीब लोग भूखों न मरते थे। भरतभूमि स्वावलंबिनी थी। क्या ऐसा अवसर फिर न आवेगा? वैद्य यदि सच्चे बन जायं, हम सब सच्चे हो जायं तभी आ सकता है। वैद्य लोग खुद हिमालय में जा कर तरोताजा हों, प्रामाणिक हों, औषधों की खोज करें और हमें पुण्यार्थ दें। आज तो वैद्य लोग पाई की जगह रुपया लेना चाहते हैं। पश्चिम की शोधक शक्ति को तो छोड़ देते हैं, पर पश्चिम के धन-लोभ का अनुकरण करते हैं। पुराने श्लोकों को रट कर दवाइयां देते हैं और रोगों को घटाने के बदले बढ़ाते हैं। अखबारों में तरह तरह के विज्ञापन छपा कर हम रोग-पीड़ित जनों को, ललचाते हैं और दवा के और आयही अपने सदाके लिए गुलाम बना लेते हैं। वे यदि हिमालय में जा कर, खोज करके हमें संयमी बनाने का प्रयत्न करें तो उनका भी कल्याण हो और हमारा भी। जो काम सौ दवायें नहीं कर सकती वह काम एक हवा कर सकती है, यह बात उनसे सीखें। आज पहाड़ या तो धनी लोगों के लायक रह गये हैं या फकीरों के लायक। मध्यम वर्ग के भाग्य में तो बदा है अनेक दवायें पी पी कर अपना जीवन ज्यों त्यों बिताना। (नवजीवन) मो० क० गांधी

राष्ट्रीय शिक्षण परिषद् में स्वीकृत प्रस्ताव

प्रस्ताव १

इस उद्देश से कि प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों का शिक्षण-विषयक सामर्थ्य बढ़े, यह वांछनीय है कि विद्यापीठ शिक्षकों के लिए इस प्रकार व्यवस्था करे—

(१) शिक्षकों के लिए अध्ययन-क्रम तैयार किया जाय;

(२) प्रत्येक राष्ट्री[illegible] एक शिक्षण समिति बनावे जिसमें (१) के अनु[illegible]र अध्ययन-क्रम पर महीने में कम से कम दो बा[illegible] की जाय;

(३) विद्यापीठ को समय समय पर ऐसी सूचनायें करते रहना चाहिए कि राष्ट्रीय पाठशालायें शिक्षोपयोगी पुस्तकालयों, वाचनालयों तथा ऐसे दूसरे साधनों की व्यवस्था करे, जिनसे शिक्षण-शक्ति बढ़ती हो। (बहुमत से स्वीकृत)

मूल प्रस्ताव यह था—इसलिए कि प्राथमिक शालाओं की शिक्षण-शक्ति बढ़े, यह वांछनीय है कि विद्यापीठ शिक्षकों के लिए नीचे लिखी योजना करे—

(१) शिक्षकों के लिए अध्ययन-क्रम रचा जाय;

(२) तमाम शिक्षकों की एक सर्व-सामान्य परीक्षा ली जाय;

(३) नवीन शिक्षकों की छः मासिक परीक्षा ली जाय;

(४) शिक्षकों के लिए पत्र द्वारा शिक्षणवर्ग (कारस्पांडन्स क्लास) खोला जाय;

(५) ऐसे दूसरे काम किये जायं जिनसे शिक्षकों की शिक्षण-क्षमता बढ़े।

प्रस्ताव २

असहयोग का शाश्वत स्वरूप आत्मशुद्धि है और महासभा की कोशिश है कि असहयोग के सिद्धान्त देहात में फैलाये जायें और इस परिषद् का यह मत है कि देहात में आत्मशुद्धि का कार्यारंभ लड़कों से ही होना चाहिए एवं इस परिषद् की यह राय है कि उच्च और माध्यमिक शिक्षा के मुकाबले में विद्यापीठ को प्राथमिक शिक्षा को प्रधान-पद देना चाहिए; इसलिए विद्यापीठ को चाहिए कि वह इस दृष्टि को सामने रख कर जो परिवर्तन करना मुनासिब मालूम हो करके देहात में प्राथमिक शिक्षा का प्रचार करे।

(सर्व सम्मति से स्वीकृत)

प्रस्ताव ३

इस परिषद् की यह राय है कि राष्ट्रीय ग्राम्य शालाओं की स्थापना में मौजूदा सरकारी शालाओं का अनुकरण करने के बजाय, अक्षर-ज्ञान का बहुत फैलाव करने के लिए, थोड़े खर्च में शिक्षा की सच्ची दृष्टि से शालायें कायम की जायं और विद्यापीठ को सिफारिश करती है कि उसके लिए असली तजवीज तयार करके उसका अमलदरामद करे। (सर्व-सम्मति से स्वीकृत)

प्रस्ताव ४

राष्ट्रीय शिक्षा को उत्तेजना देने के शुभ हेतु से विद्यापीठ ने तथा स्वतन्त्र राष्ट्रीय संस्थाओं ने जो पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित की हैं उनके लिए यह परिषद् उन्हें धन्यवाद देती है; परन्तु उसके साथ ही यह परिषद् अपना यह अभिप्राय प्रकट करती है कि पाठ्यपुस्तकों की संख्या की बनिस्बत उनके गुणों की तरफ विद्यापीठ का तथा दूसरी संस्थाओं को अधिक ध्यान देना चाहिए और उसके साथ ही इस देश की निर्धनता का भी ध्यान रखने की आवश्यकता है। (बहुमत से स्वीकृत)

प्रस्ताव ५

इस परिषद् की राय है कि राष्ट्रीय शालाओं की उत्पत्ति शुद्ध और स्वतन्त्र शिक्षा देने के हेतु से ही हो सकती है; सच्ची शिक्षा के ही द्वारा स्वराज्य-सिद्धि है; और असहयोग के सिद्धान्त आज शुद्ध और स्वतन्त्र शिक्षा के [illegible] हैं। [illegible] प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय शालाओं के संचालन में इन सिद्धान्[illegible] होना चाहिए। (बहुमति से स[illegible]

मूल प्रस्ताव यह था—इस परिषद् का यह [illegible] राष्ट्रीय शालाओं का जन्म स्वराज-सिद्धि के अंगभूत [illegible] की सहायता करने के हेतु से हुआ है इसलिए उनके [illegible] असहयोग के सिद्धान्तों का त्याग किसी भी तरह न होना [illegible]।

प्रस्ताव ६

इस परिषद् का यह अभिप्राय है कि पाठशालाओं के संचाल[illegible] में शिष्यों की संख्या पर नहीं बल्कि उनकी योग्यता पर अधिक [illegible] देना चाहिए। इसलिए ऐसे लड़के-लड़की भरती किये जायं जिनके माँ-बाप—(१) यदि हिन्दू हों तो जातीय अस्पृश्यता को पाप मान[illegible] हों और उनके लड़कों के साथ यदि अन्त्यजों के लड़के बैठकर प[illegible] तो उन्हें आपत्ति न हो;

(२) इस बात को पसन्द करते हों कि उनके लड़के-लड़कि[illegible] को कताई बुनाई तथा उसके अंतर्गत कला का ज्ञान कराया जाय और (३) वे हिन्दू, मुसल्मान तथा इतर धर्मी भारतवासियों [illegible] की आवश्यकता और संभवनीयता में विश्वास रखते हों।

(बहुमति से स्वीकृत)

प्रस्ताव ७

इस परिषद् की राय है कि राष्ट्रीय शाला के शिक्ष[illegible] व्यवस्थापक ऐसे होने चाहिए जो स्वराज-सिद्धि के लिए [illegible] और सत्य तथा असहयोग के तमाम अंगों को आवश्यक सा[illegible] मानते हों (बहुमति से स्वीकृत)

मूल प्रस्ताव में 'होना चाहिए' की जगह 'रखने जायं' शब्द थे, जो कि 'भविष्य में रखने' का अर्थ सूचित करते थे।

प्रस्ताव ८

इस परिषद् का यह अभिप्राय है कि हरएक शिक्षक औ[र] शिक्षिका जो कपास की किस्म पहचानना, लोढ़ना, धुनकना, पूनिय[ाँ] बनाना, सूत कातना और सूत का अंक और गुण की परीक्षा करना न जानते हों उन्हें तुरन्त इस सब का ज्ञान प्राप्त क[र] लेना चाहिए। (बहुमति से स्वीकृत)

प्रस्ताव ९

(१) इस परिषद् की यह राय है कि महासमिति का कता[ई] संबंधी प्रस्ताव सार्वजनिक हित की दृष्टि से ठीक होने के का[रण] उसका अमल अतिशय व्यापक रूप में होना चाहिए; और इसलि[ए] हर महीने कम से कम २००० गज (और हो सके तो ५,००[०] गज) सूत हर शिक्षक और शाला-समिति के सदस्य (अमल[ी] सुविधा के खयाल से फिलहाल) उस तरीके से अर्पण करें [जो] प्रान्तिक समिति तजवीज कर दे; और

(२) यह परिषद् हरएक राष्ट्रीय विद्या-मन्दिर को सिफारि[श] करती है कि उन्हें अपने विद्यार्थियों से रोज औसतन् आधा घण्टा [सूत] कातने की परिपाटी डाल लेना चाहिए और ऐसी सलाह देनी चाहि[ए] कि जितने हो सके विद्यार्थी उसमें से हर महीने २,००० [गज] महासमिति को दें और शेष अपने मन्दिर को अर्पण करें।

(३) पूर्वोक्त प्रस्ताव के अनुसार काम होने में [illegible] इसलिए यह परिषद् प्रत्येक शाला-समिति से अनु[illegible] थ.के वेतन वाले और गरीब विद्यार्थियों को [illegible] का इन्तजाम करें। (सर्व-सम्मति [illegible]

प्रस्ताव १०

इस परिषद् की यह राय है कि शाला के [illegible] वर्ग का शिक्षण-विषय में प्रधानस्थान और [illegible] स्थान मिलना उचित है। (सर्व-सम्मति [illegible]